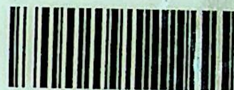
SARASWATI JAN-DEC 1964 G.K.U.

सुखद अवसरों को अधिक सुखद बनाइये



सुखद अवसरों पर शुभकामनाएं अथवा बधाई भेजने का श्रेष्ठ साधन है---बधाई तार ।

बधाई तार सुचित्रित फार्म पर लिखा जाता है और जिस लिफाफे में तार पहुंचाया जाता है वह भी रंग-बिरंगा और खूबसूरत होता है ।

व्यक्तिगत और सामाजिक सभी तरह के विशेष अवसरों के लिए उपयुक्त वाक्यों अथवा वाक्यांशों की एक सूची तारघर में उपलब्ध है। आप अवसर के अनुकूल इनमें से कोई वाक्य चुन सकते हैं ।

साधारण बधाई तार का न्यूनतम शुल्क ७५ नये पैसे है। प्रत्येक अतिरिक्त शब्द के १० नये पैसे लगते हैं ।

डीलक्स तार

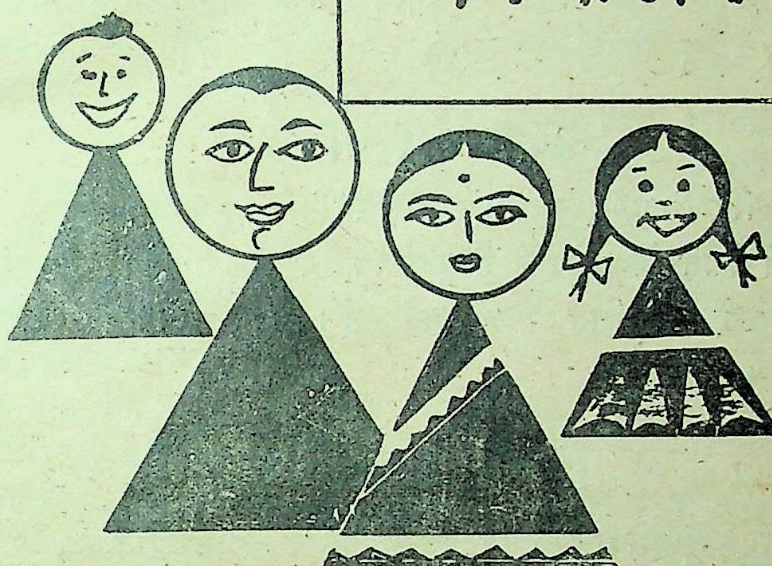
यदि आप निर्धारित वाक्यों में से चुनना पसन्द न करें और अपने निजी शब्द भेजना चाहें तो वह डीलक्स तार से सम्भव है ।

आप अपनी इच्छानुसार संदेश लिख दीजिए और विशेष हिदायतों के खाने में 'डीलक्स' शब्द लिख दीजिये । आपका तार बधाई तार के फार्म पर ही पहुंचाया जायेगा ।

बधाई या डीलक्स तार भेजिये

डाक-तार विभाग

परिवार नियोजन



सबकी सुख-सुविधा का साधन

यदि आप चाहते हैं कि

१. **आपके बच्चे स्वस्थ हों,**

२. **उनकी शिक्षा और खान-पान का उचित प्रबन्ध हो,**

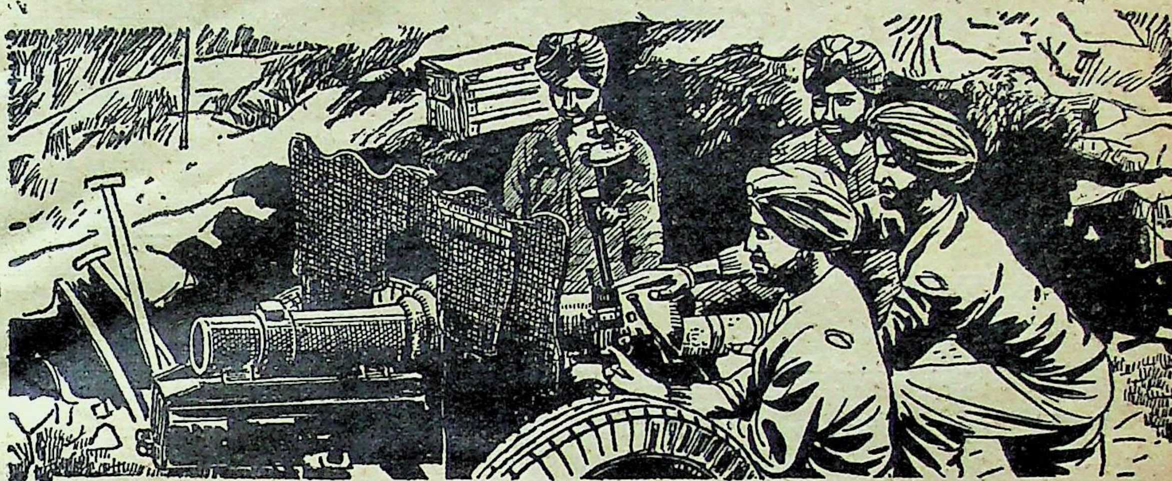
३. **उनको जीवन में आगे बढ़ने के उपयुक्त अवसर उपलब्ध हों, और**

४. **आपका वैवाहिक जीवन सुखी और सुव्यवस्थित हो**

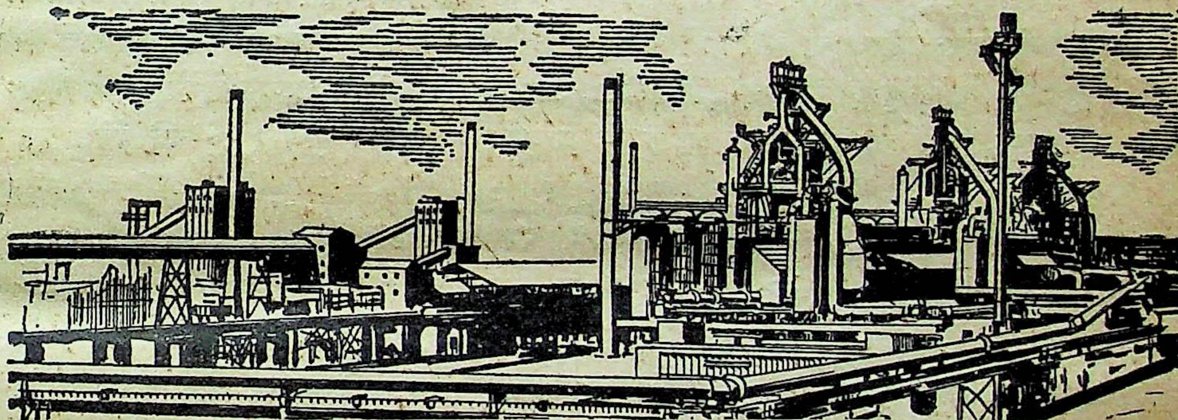
तो पास के परिवार नियोजन केन्द्र **में जाइए और**

अपने परिवार को सीमित रखने के तरीके मालूम कीजिए।

रक्षा और



विकास का काम



साथ साथ चलता है

देश की विकास योजनाएं हमारी रक्षा-व्यवस्था का अभिन्न अंग हैं। संकट का सामना करने के लिए नई प्राथमिकताएं निश्चित की गई हैं और बिजली योजनाओं, इस्पात, मशीन, मशीनी औजार, बिजली का साज-सामान, कोयला खनन, रेलवे जैसे बुनियादी उद्योगों, इंजीनियरी और चिकित्सा कर्मचारियों के प्रशिक्षण कार्यक्रमों पर तेजी से अमल करने की व्यवस्था की गई है।

शक्ति की ठोस बुनियाद पर ही रक्षा की तैयारी निर्भर करती है। यही हमारी समस्या का एकमात्र हल है।

इस कार्य में मन, बचन और कर्म से पूरा पूरा सहयोग दीजिए। भारत के करोड़ों नागरिकों की निरन्तर और निस्वार्थ सेवा-भावना और कठोर परिश्रम से ही देश की रक्षा-सामर्थ्य बढ़ सकती है।



योजना को सफल बनाइये

भारत की रक्षा-व्यवस्था को सुदृढ़ कीजिए

डी ए-६३/१९५

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

हमारे चार अनुपम प्रकाशन

धर्म निरपेक्ष राज्य

लेखक : श्री रघुनाथ सिंह—प्राक्कथन लेखक : श्री जवाहरलाल नेहरू

डिमाई आकार पृ० सं० २३७, मूल्य ६·५० नये पैसे ।

लेखक ने इस आवश्यक विषय पर पुस्तक लिखकर उसके मूल सिद्धान्तों की तरफ ध्यान आकर्षित किया है । हमें संसार के सामने यह उदाहरण उपस्थित करना है कि एक ही देश और एक ही राज में किस प्रकार परस्पर सौहार्द और शान्ति के साथ भिन्न-भिन्न संप्रदायों के अनुयायी, भिन्न-भिन्न भाषाओं के बोलनेवाले, भिन्न-भिन्न रीति के अनुसार चलनेवाले लोग रह सकते हैं । संसार के विकास में हमारा यही अनुदान है । इससे बढ़कर मनुष्य के वास्तविक कल्याण का दूसरा कार्य नहीं हो सकता ।

प्लेटो का प्रजातन्त्र

अनुवादिका—सुश्री विनीता वाँचू, एम० ए०

यूनान के इस महान् दार्शनिक की सबसे उत्कृष्ट कृति यह ग्रंथ ही है । यह उसकी सबसे वृहद रचनाओं में से एक है । इस रचना में ही उसकी गहरी व्यंगोक्ति, कल्पना या हास्य का प्रचुर वैभव तथा नाटकीय प्रभाव उसकी अन्य सब रचनाओं से अधिक है । इसी में जीवन तथा चिन्तन को ओतप्रोत करने अथवा दर्शन से राजनीति को सम्बन्धित करने का प्रयत्न किया गया है । खंड एक, पृष्ठ २१२, मूल्य ५), पाँच रुपये, खंड दो, पृष्ठ ३९४ मूल्य १०) दस रुपये ।

विष्णुधर्मोत्तर में चित्रकला (सचित्र)

लेखक, श्री बद्रीनाथ मालवीय, एम० ए०

श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण में चित्रकला का सांगोपांग वर्णन है । उसके आधार पर लेखक ने इस पुस्तक में कला-विषयक ज्ञान संकलित करके इस विषय को सर्वसाधारण के लिए प्रस्तुत किया है । पुस्तक में १० अध्याय और ३ परिशिष्ट हैं । सचित्र पुस्तक का मूल्य दो रुपये ।

विष्णुधर्मोत्तर में मूर्त्तिकला (सचित्र)

लेखक, श्री बद्रीनाथ मालवीय, एम० ए०

श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण में मूर्तिकला के सम्बन्ध में जो वर्णन है उसके आधार पर लेखक ने इस पुस्तक का प्रणयन किया है । इसमें ३८ अध्याय और ४ परिशिष्ट हैं । किस देवता की मूर्ति का निर्माण किस प्रकार का होना चाहिए, यह इसमें पढ़ने से पाठकों को ज्ञात होगा कि इस विषय में हमारे पूर्वजों को कितनी विशद जानकारी थी । सजिल्द पुस्तक का मूल्य चार रुपये ।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

बाल कवि श्री निरंकारदेव सेवक के अपूर्व प्रकाशन

फूलों के गीत

बच्चे यदि बगिया में खिले नये नये फूल हैं तो इस पुस्तक के बालगीत उनके मन के गीत हैं। मूल्य १ रुपया ७५ नये पैसे।

रिमझिम

रिमझिम में निरंकार जी के वे अनमोल बालगीत संगृहीत हैं जिन्हें बच्चे बहुत पसन्द करते हैं। मूल्य २) रुपये।

माखन-मिसरी

इस पुस्तक का प्रत्येक बालगीत मिसरी की तरह मीठा और माखन की तरह कोमल है। बच्चे इसे पढ़ते ही गले से उतार लेंगे। मूल्य २) रुपये।

पंचतन्त्री

पंचतन्त्र की जिन कहानियों में ज्ञान और उपदेश की बातें कूट-कूटकर भरी हैं वे कविता में इस ढंग से कही गई हैं कि बालक एक बार प्रारम्भ करके पूरी पुस्तक बिना समाप्त किये नहीं छोड़ सकता। मूल्य ३) रुपये।

मुन्ना के गीत

बच्चों के सोने-जागने, उठने-बैठने, खाने-पीने, दौड़ने-भागने, पढ़ने-लिखने के ऐसे रसमय बालगीत सूरदास के बाद पहिली बार हिन्दी में लिखे गए हैं। मूल्य २) रुपये ५० नये पैसे।

धूपछाया

बच्चों की भिन्न-भिन्न क्रीड़ाओं से सम्बन्धित इतने मनोहर गीत इस पुस्तक में संगृहीत हैं कि बच्चे इन्हें पढ़कर खुशी से झूम झूम उठते हैं। मूल्य १ रुपया ५० नये पैसे।

दूध जलेबी

बहुत छोटी आयु के बच्चों के लिए यह अनुपम और बेजोड़ पुस्तक है। इसकी छोटी-छोटी सुन्दर कवितायें बच्चे पढ़ते ही याद कर लेते हैं। मूल्य १ रुपया ५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

विषय-सूची



मा और बच्चा

[चित्रकार—अब्दुर्रहमान चगतई]



सम्पादक
श्रीनारायण चतुर्वेदी
सहायक सम्पादिका—**शीला शर्मा**

वर्ष ६५ पूर्ण संख्या ७६६ } इलाहाबाद : जनवरी १९६४ : पौष २०२० वि० { खण्ड १ संख्या १

सम्पादकीय

हिन्द महासागर में अमरीका का सातवाँ जहाजी बेड़ा—अमरीका के इस निश्चय ने कि उसका सातवाँ जहाजी बेड़ा हिन्द महासागर की भी गश्त करे, दक्षिण एशिया के देशों के लिए एक नयी स्थिति उत्पन्न कर दी है। इसके पूर्व कि हम इस स्थिति पर विचार करें, हमारे बहुत से पाठक इस सातवें जहाजी बेड़े का परिचय प्राप्त करना चाहेंगे।

द्वितीय महायुद्ध के पहिले तक संसार में इंग्लैण्ड की नाविक शक्ति सबसे अधिक थी। किंतु इस समय नाविक शक्ति में अमरीका का स्थान प्रथम, रूस का द्वितीय और इंग्लैण्ड का तीसरा है। १९६१ में स्थिति इस प्रकार थी :

	अमरीका	रूस	इंग्लैण्ड
वायुयान-वाहक	५६	—	७
युद्धपोत (बैटलशिप)	८	—	—
क्रूजर	४७	२५	६
फ्रिगेट	१५	२७५	७८
विध्वंसक (डिस्ट्रायर)	३६०	१६५	३७
पनडुब्बी (सबमेरीन)	१७८	४३०	४५
अन्य	१,३५३	९००	६४२
नाविक	६,२७,०००	७,५०,०००	१,०२,०००

अमरीका का जहाजी बेड़ा सबसे बड़ा ही नहीं है, उसके जहाज औरों की अपेक्षा बड़े भी हैं। इसका वायुयान-वाहक "एण्टरप्राइज़" ७५,००० टन भार का है और वह आणविक शक्ति से चलता है। उसकी चाल ३५ समुद्री मील प्रति घंटे की है। इसी प्रकार इसकी कई पनडुब्बियाँ बहुत बड़ी हैं। इसके पास आणविक शक्ति से चलनेवाले जहाजों और पनडुब्बियों की संख्या सबसे अधिक है।

अमरीका की नौसेना कई 'जहाजी बेड़ों' में बँटी हुई है। इनमें पहिले पाँच बेड़े अमरीका के आस-पास और अटलांटिक महासागर में नियुक्त हैं, छठवाँ बेड़ा भूमध्यसागर में रहता है और सातवाँ बेड़ा प्रशान्त महासागर में तैनात है।

सातवें बेड़े में सब मिलाकर १२५ जहाज हैं। इसके वायुयान-वाहकों पर अत्यन्त शक्तिशाली और दूरगामी ६५० वायुयान हैं। इसमें सब मिलाकर साठ हजार से अधिक अफसर और नाविक-सैनिक काम करते हैं। सारी अमरीकन जलसेना की प्रायः दसवीं शक्ति इस बेड़े में केंद्रित है। अपने आप में यह संसार के दो तीन अत्यन्त शक्तिशाली बेड़ों में गिना जाता है। वास्तव में यह चलता-

फिरता अद्वितीय शक्तिपुंज है जिसका सामना कम ही राष्ट्र कर सकते हैं।

इस बेड़े का प्रत्येक जहाज किसी विशेष काम के लिए चुना गया है। उदाहरण के लिए इसके वायुयान-वाहकों को लीजिए। वे हैं: केयरसार्ज, थीटिस बे, मिडवे, कोरल सी और लेक्सिंग्टन। जहाजी बेड़े को सबसे अधिक भय शत्रु की पनडुब्बियों और बमवर्षक वायुयानों से रहता है। इसलिए 'केयरसार्ज' को शत्रु की पनडुब्बियों का पता लगाने और उन्हें नष्ट करने का उत्तरदायित्व दिया गया है। आस-पास के सैकड़ों मील दूर तक के समुद्री क्षेत्र में उनका पता लगाने के लिए इस वायुयान-वाहक के हवाई जहाज बराबर चक्कर लगाया करते हैं। इसके साथ कुछ विध्वंसक (डिस्ट्रायर) भी कर दिये गये हैं जिनका मुख्य काम शत्रु की पनडुब्बियों का पता लगाना और उन्हें नष्ट करना है। शत्रु की पनडुब्बियाँ बहुधा तट के दहों या चट्टानों में छिपी रहती हैं। उनका पता लगाने के लिए 'सोनाबॉय' नामक एक यंत्र का प्रयोग किया जाता है। उसमें राडार से मिलता-जुलता एक यंत्र होता है जिसे 'सोनार' कहते हैं। उसे समुद्र में उतार देते हैं और वह उस पर तैरने लगता है। यदि कोई पनडुब्बी पचास-पचीस मील के भीतर हुई, तो जल के भीतर उसके चलने का स्पंदन इस यंत्र में अभिलिखित हो जाता है, तथा यह भी पता लग जाता है कि वह किस दिशा में और कितनी दूर है। इस बात को जानते ही विध्वंसक और बमवर्षक पनडुब्बी की खोज में चल पड़ते हैं और फिर उसका बच निकलना प्रायः असंभव ही हो जाता है।

उसके साथ ही सात-आठ पनडुब्बियाँ भी हैं। ये शत्रु के जहाजों पर आक्रमण करने के लिए हैं। इनमें कई पनडुब्बियाँ ऐसी भी हैं कि उनसे प्रक्षेप्य अस्त्र (मिसाइल्स) छोड़ जा सकते हैं। यह ठीक-ठीक नहीं मालूम कि इन प्रक्षेप्यों की मार कितनी दूर की है, किंतु अनुमान किया जाता है कि वे प्रक्षेप्य एक हजार मील दूर तक के निशाने पर मारे जा सकते हैं।

इस बेड़े को दूसरा भय शत्रु के बमवर्षक वायुयानों से है। उनसे बचने के लिए इसमें पूरा प्रबंध है। इन वायुयान-वाहकों में ध्वनिभेदी गति के बड़े शक्तिशाली लड़ाकू जैट वायुयान हैं जो शत्रु के बमवर्षकों को बेड़ से सैकड़ों मील दूर ही रोककर नष्ट कर सकते हैं। इनके अतिरिक्त इस बेड़े के बहुत से जहाजों में वायुयानों को नष्ट करनेवाले प्रक्षेप्य चलाने का प्रबंध है। ये प्रक्षेप्य ऐसे होते हैं कि आनेवाले बमवर्षक की ओर अपने आप आकर्षित हो जाते और उसे नष्ट कर देते हैं।

अपना बचाव करना इस बेड़े के लिए आवश्यक है और इसका इसमें पूरा प्रबंध है। किंतु इस बेड़े का मुख्य उद्देश्य शत्रु पर आक्रमण कर उसे नष्ट करना है। शत्रु पर आक्रमण करने के लिए आजकल बमवर्षक वायुयान और प्रक्षेप्य अस्त्रों का प्रयोग किया जाता है। इन प्रक्षेप्य अस्त्रों में आणविक बम भी लगे रहते हैं। अतएव ये बड़े संहारकारी और विनाशक होते हैं। जिस देश पर आक्रमण करना हो उसके तट से कई सौ मील दूर समुद्र में पहुँच कर वे वहाँसे अपने वायुयान और प्रक्षेप्य अस्त्र छोड़ते हैं। अमरीका के पास इस समय संसार के सबसे शीघ्रगामी और शक्तिशाली वायुयान हैं। ये अधिकतर ध्वनिभेदी (सुपर सॅनिक) जैट हैं। इनकी चाल ८०० मील प्रति घंटे के लगभग होती है। इनसे साधारण भयंकर बम और आणविक बम, दोनों ही, छोड़ जा सकते हैं।

प्रत्येक वायुयान-वाहक में उसके आकार के अनुसार ६५ से लेकर ९० लड़ाकू या बमवर्षक वायुयान रहते हैं। वायुयान-वाहकों पर से वायुयान या तो उसकी छत से उड़ाये जाते हैं या भाप से चलनेवाली गुलेलों (केटापुल्ट) से। यह प्रबंध इतना अच्छा है कि वायुयान-वाहक से तीस सेकण्डों के अन्तर में एक वायुयान उड़ाया जा सकता है। जब ये वायुयान लौट कर आते हैं तो इन्हें उतारने में अधिक सावधानी करनी पड़ती है! फिर भी ये वाहक एक घंटे में ४५ वायुयान उतार लेते हैं। ये वायुयान इतने बड़े और दूरगामी हैं कि ये वाहक से हजार-पंद्रह सौ मील दूर जाकर अपने लक्ष्य पर बम गिरा कर, बिना कहीं रुके, लौट आते हैं।

कुछ जहाज केवल आक्रमण के लिए हैं। इन आक्रमणकारी जहाजों के समूह को 'टास्क फोर्स' कहते हैं। सातवें बेड़े की 'टास्क फोर्स' का पूरा नाम "७७वीं टास्क फोर्स" है। इसमें मिडवे, कोरल सी और लेक्सिंग्टन नाम के तीन वायुयान-वाहक, कुछ क्रूजर और विध्वंसक हैं। सब मिलाकर इसमें प्रायः २० जहाज हैं। ये जहाज आधुनिकतम और अत्यन्त संहारक अस्त्रों से सुसज्जित हैं। संसार के इतिहास में किसी जहाजी बेड़े में इतनी संहारक शक्ति नहीं रही जितनी इस बेड़े में है। यह ७७वीं टास्क फोर्स तीन हिस्सों में विभाजित रहती है। प्रत्येक में एक वायुयान-वाहक, कुछ क्रूजर और कुछ विध्वंसक होते हैं। ये खुले समुद्र में, एक दूसरे से हजार-आठ सौ मील दूर रहते हैं और बराबर अपना स्थान बदलते रहते हैं। शत्रु के किनारे से ये सैकड़ों मील दूर रहते हैं। इसलिए उसके लिए इनकी स्थिति का पता लगाना कठिन होता है। और यदि वह अपने वायुयान भेजे भी तो इनका बचाव का प्रबंध ऐसा मजबूत है कि वे उनके पास तक पहुँचने नहीं पाते। और इतनी दूर से वे अपने वायुयानों तथा प्रक्षेप्यों से शत्रु के नगरों, कारखानों, यातायात आदि को शीघ्रता से नष्ट कर सकते हैं।

किन्तु कभी-कभी उन्हें किनारे पर सेना या सामान उतारने की भी आवश्यकता पड़ सकती है। इसके लिए 'थीटिस बे' नामक वायुयान-वाहक, विशेष रूप से सज्जित किया गया है। इस पर ऐसे वाहन (या नौकाएँ) हैं जो जल और स्थल—दोनों पर—चल सकते हैं। समुद्र में इनमें सैनिकों को बैठाकर वे तैरते हुए किनारे की भूमि पर पहुँचकर स्थल पर चढ़ जाते और भीतर घुसते चले जाते हैं। यदि किनारे से दूर, दस-बीस मील भीतर

सैनिक भेजने हों तो वे 'थीटिश बे' से हेलिकाप्टरों में बैठाकर भेजे जाते हैं। 'थीटिस बे' वास्तव में 'हेलिकाप्टर वाहक' है। उसमें लगभग एक सौ हेलिकाप्टर रहते हैं।

आधुनिक विज्ञान और अपार धन से जो-जो सैनिक सामान और सुविधाएँ प्राप्त की जा सकती हैं, वे सब इस बेड़े को उपलब्ध हैं। आधुनिकतम राडार की सहायता इसे उपलब्ध है। पैसिफिक महासागर के गुआम द्वीप में दूर और शीघ्रगामी सुपर कांस्टलेशन वायुयानों का एक बेड़ा रहता है, जिसके वायुयान हजारों मील समुद्र में बराबर चक्कर लगाते रहते हैं जिससे वे शत्रु की गतिविधि की सूचना तुरन्त सातवें बेड़े को पहुँचा सकें। इसे ऋतु सम्बंधी जानकारी, जैसे तूफान, वर्षा, वायु की गति और दिशा आदि की सूचना बराबर पहुँचाने के लिए अमरीका की सरकार ने जगह-जगह पक्का प्रबंध कर रखा है। तीस माल ढोनेवाले जहाज भी इसकी सेवा में रहते हैं जो इसे अमरीकन भंडारों से तेल, पैट्रोल, खाद्य सामग्री, अस्त्र-शस्त्र आदि पहुँचाते रहते हैं।

इस सारे प्रबंध का परिणाम यह है कि अमरीका का सातवाँ बेड़ा इतना शक्तिशाली हो गया है कि उसका सामना करने की सामर्थ्य संसार की शायद ही किसी नौ-सेना में हो। चीन से फारमोसा केवल ९० मील दूर है। चियांग काई शेक ने चीन से भागकर वहाँ शरण ली और उस पर अधिकार कर लिया। चीन की वर्तमान कम्यूनिस्ट सरकार उसे लेने को बहुत लालायित है, और उसने उसे ले भी लिया होता, किन्तु चियांग काई शेक की रक्षा के लिए अमरीका ने सातवाँ बेड़ा वहाँ भेज दिया। चीन की सैनिक शक्ति कितनी महान् है—यह सबको मालूम है, किन्तु अमरीकी सातवें बेड़े के सामने उसकी एक न चली, और वह फारमोसा पर अधिकार न कर सका। इस एक घटना से इस बेड़े की शक्ति का अनुमान किया जा सकता है।

इस समय सातवाँ बेड़ा चीन समुद्र में स्थित है। उत्तर में बैरिंग जलडमरूमध्य से लेकर आस्ट्रेलिया तक, और मध्य पैसिफिक से प्रायः हिन्द महासागर तक उसका कार्यक्षेत्र है। किंतु अभी वह विशेष रूप से जापान और चीन के बीच के क्षेत्र पर ही विशेष ध्यान दे रहा है। अब ऐसा मालूम पड़ता है कि अमरीका इसके कार्यक्षेत्र में हिन्द महासागर को भी सम्मिलित करना चहता है। ऐसा करने से सातवें बेड़े का कार्यक्षेत्र अफ्रीका के पश्चिमी तट से लेकर आस्ट्रेलिया तक और बढ़ जायगा तथा वह दक्षिणी एशिया के अनेक देशों (जैसे इंडोनेशिया, मलेशिया, बर्मा, श्री-लंका, भारत, पाकिस्तान, सऊदी अरब, ईरान, इराक आदि को स्पर्श करनेवाले समुद्रों में भी गश्त करने लगेगा। इस अतिरिक्त उत्तरदायित्व के कारण, संभव है कि, इस बेड़े को और अधिक शक्तिशाली बनाया जाय तथा उसमें और अधिक युद्धपोत लगा दिये जायँ। दक्षिणी एशिया या पश्चिमी अफ्रीका का कोई राष्ट्र इस शक्तिशाली बेड़े का सामना नहीं कर सकता।

सातवें बेड़े का हिन्द महासागर में आगमन—इस अमरीकन शक्तिशाली बेड़े के हिंद महासागर में आने के समाचार ने इस क्षेत्र के देशों में हलकी सनसनी उत्पन्न कर दी है। जो लोग या जो राजनीतिक दल अमरीका के विरोधी हैं उनके लिए अमरीका के इस निश्चय का विरोध करना स्वाभाविक है। इसी प्रकार, जो अमरीका के अंधभक्त हैं, उनका समर्थन भी उतना ही अनिवार्य है। इन पक्षपातियों की संख्या अपेक्षाकृत कम ही है। अधिकांश जनता में कोई पूर्वाग्रह नहीं है। वह केवल इस बात में रुचिशील है कि इससे उसके राष्ट्रीय हितों तथा विश्वशांति पर कैसा प्रभाव पड़ेगा।

अमरीका ही नहीं, पश्चिम के अन्य गैरकम्यूनिस्ट देशों का भी यह विश्वास है कि कम्यूनिस्ट शक्तियाँ अपनी सैनिक-शक्ति द्वारा तथा स्थानीय कम्यूनिस्ट तत्वों से विद्रोह कराकर और उनकी सैनिक सहायता करके सारे संसार पर कम्यूनिस्ट राज्य स्थापित करना चाहती हैं। पिछले महायुद्ध के बाद रूस का कम्यूनिस्ट सोवियत संघ संसार की एक महान् सैनिक-शक्ति बन गया। उसने पूर्वी योरप के कई देशों में कम्यूनिस्ट राज्य स्थापित कर दिये और उनमें अपनी सेनाएँ भेज दीं। उधर चीन पर रूस की सहायता से चीनी कम्यूनिस्टों ने अधिकार कर लिया और वे अपने पड़ोसी देशों में कम्यूनिस्ट राज्य स्थापित करने की योजना बनाने लगे। उन्होंने कोरिया में कम्यूनिस्ट राज्य स्थापित करना चाहा और आधे कोरिया पर अधिकार कर भी लिया। दक्षिण में वियतनाम को भी उन्होंने कम्यूनिस्ट बनाने का प्रयत्न किया और वहाँ भी आधा देश कम्यूनिस्टों के हाथ में चला गया। लाओस में भी कम्यूनिस्ट षड्यंत्र चल रहा है। इंडोनेशिया तथा मलाया पर भी वे डोरे डाल रहे हैं। तिब्बत को तो कम्यूनिस्ट चीन ने जिस प्रकार हड़प लिया है, वह हम जानते ही हैं। भारत को उनके आक्रमण का नमूना मिल भी चुका है। अफ्रीका के सद्यः स्वतंत्र देशों तथा पश्चिमी एशिया के मुस्लिम देशों में भी वे घुसने का प्रयत्न कर रहे हैं। दक्षिण अमरीका में भी उनके प्रयत्न जारी हैं। क्यूबा पर तो कम्यूनिस्टों का अधिकार हो ही गया है।

कम्यूनिस्टों के इस प्रसार और विस्तार को रोकने के लिए पश्चिमी राष्ट्रों ने कई प्रयत्न किये और कई सैनिक संगठन बनाये। ये राष्ट्र जनतंत्र में विश्वास करते हैं और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के पक्षपाती हैं। इनमें इस समय सबसे अधिक शक्तिशाली अमरीका है जिसके पास अपार धन और वैज्ञानिक तथा सैनिक साधन हैं। इस समय परिस्थिति ने उसे जनतंत्रीय संसार का अगुआ बना दिया है। अतएव वह कम्यूनिस्टों के विस्तार को रोकने के लिए अपने को जिम्मेदार समझता है। कम्यूनिस्टों की योजना सारे संसार पर अधिकार करने की है। इसके उत्तर में अमरीका ने भी एक संसारव्यापी योजना बनायी जिससे संसार के प्रत्येक क्षेत्र में कम्यूनिस्टों का बढ़ाव

रोका जा सके। रूस के निकट जो छोटे-छोटे देश थे, जैसे तुर्की, वे रूस से बहुत आतंकित थे। अमरीका ने उनकी रक्षा का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया। कितनों ही में अपने सैनिक अड्डे बना कर उसने वहाँ अपनी सेना रखी जिसमें वायुयान, प्रक्षेप और आणविक अस्त्र भी थे। अमरीका के इस सैनिक हस्तक्षेप का फल यह हुआ कि सारे कोरिया और वियतनाम पर कम्यूनिस्ट अधिकार न कर सके, और तुर्की आदि छोटे देश भी बचे रहे।

किन्तु इन देशों में अमरीकन सैनिक अड्डों के रहने से राजनीतिक उलझनें पैदा हो जाती हैं और उनके विरोधियों को इस बात का प्रचार करने का अवसर मिल जाता है कि वे देश अमरीका के अधिकार में आ गये हैं या वे उसके गुलाम बन गये हैं। इन अड्डों से और भी तरह-तरह की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। इसलिए अमरीकन सेनानायकों ने इन अड्डों का विकल्प खोजना आरंभ किया।

इस बीच वायुयानों, प्रक्षेप अस्त्रों, नियंत्रित प्रक्षेपों (गाइडेड मिसाइल्स) ने कल्पनातीत उन्नति कर ली। अब किसी भी नगर या स्थान को हजार-बारह सौ मील दूर से आणविक प्रक्षेप अस्त्रों के द्वारा नष्ट किया जा सकता है। वायुयान इतने बड़े, शीघ्रगामी और दूरगामी बन गये हैं कि वे दस मील ऊँचाई पर उड़कर सात-आठ सौ मील प्रति घंटे की चाल से हजारों मील दूर जाकर, बिना कहीं उतरे, लौट आ सकते हैं। वायुयानवाहक जहाज इतने बड़े बनाये जाने लगे हैं कि एक वाहक पर अस्सी-नब्बे शीघ्रगामी जेट वायुयान ले जाये जा सकते हैं। अतएव अमरीकी सेनानायकों ने विभिन्न छोटे-छोटे देशों में अपने सैनिक अड्डे बनाने की अपेक्षा यह अधिक सुविधाजनक समझा कि ऐसे बेड़े बनाये जायँ जो अजेय हों, जिनमें अपार संहारक शक्ति हो और जो इच्छानुसार संसार में कहीं भी जा सकें। यदि उनका एक बेड़ा उस देश से, जिस पर आक्रमण करना है, पाँच-सात सौ मील दूर तक भी पहुँच जाय तो अपने आणविक प्रक्षेप अस्त्रों और शक्तिशाली वायुयानों के द्वारा उस पर आक्रमण करके उसे काफी क्षत-विक्षत कर सकता है। चूँकि यह बेड़ा बराबर चलता रहता है, और युद्ध के समय उसकी स्थिति गुप्त रखी जाती है, उस पर आक्रमण करना कठिन है। और यदि कोई भूला-भटका वायुयान या पनडुब्बी उसका पता लगा भी ले तो उसके बचाव का प्रबंध इतना पक्का है कि उसकी क्षति पहुँचने की संभावना अत्यल्प है।

अंतर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार खुले समुद्रों पर किसी का अधिकार नहीं है। देश के तट से तीन मील से लेकर बारह मील तक दूर के समुद्र को उस देश की सीमा में समझा जाता है, किंतु उसके बाहर के समुद्र में कोई भी जहाज इच्छानुसार आ जा सकता है। इसलिए अमरीकी बेड़े को संसार में कहीं भी जाने की छूट है। उसकी मार इतनी दूर की है कि उसे किसी देश के निकट जाने की आवश्यकता ही नहीं होगी।

जब चीन ने भारत पर आक्रमण किया और इस बात की आशंका होने लगी कि वे असम के मैदानों में घुस आवेंगे, तब, कहा जाता है कि अमरीकन सातवें बेड़े के कुछ जहाजों को बंगाल की खाड़ी में जाने की आज्ञा दे दी गयी थी। यह भी कहा जाता है कि चीनी सेना जो एकाएक बोमडीला से लौट गयी, उसका एक बड़ा कारण अमरीकी सातवें बेड़े का यह उपक्रम था। हम ऊपर बता चुके हैं कि फारमोसा के अब तक कम्यूनिस्ट चीन के पंजों से बचे रहने का एकमात्र कारण यह अमरीकी बेड़ा ही है।

प्रश्न यह है कि अमरीकन सातवें बेड़े से किसको भय हो सकता है? भारत को चीन से खतरा है। यदि वह खतरा प्रत्यक्ष हुआ तो उस समय यह बेड़ा भारत की सहायता करेगा या उससे भारत का खतरा बढ़ जायगा?

हिन्द महासागर पर अभी तक इंग्लैण्ड का प्रभुत्व था, किंतु इस महासागर के आस-पास के जो एशियायी और अफ्रीकी देश ब्रिटिश साम्राज्य में थे, वे स्वतंत्र हो गये हैं। इंग्लैण्ड ने इस क्षेत्र से अपनी जलसेना प्रायः समेट ली है, और आज इस महासागर में कोई जलशक्ति नहीं है क्योंकि इसके आस-पास के देशों के पास जलसेना नहीं के बराबर है। अतएव आज हिंद महासागर में किसी शक्ति का प्रभुत्व नहीं है। ऐसा मालूम पड़ता है कि इस भय से कि कहीं इस महासागर में कोई विरोधी शक्ति न घुस आवे, अमरीका ने इस पर अपना प्रभुत्व जमाने का निश्चय कर लिया है। इस समय कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो उसे हिन्द महासागर में प्रवेश करने से रोक सके। यह उसकी संसार-व्यापी सैनिक योजना (ग्लोबल स्ट्रेटजी) का अंग है और उसे उससे विरत करना संभव नहीं मालूम पड़ता।

इस बेड़े के हिन्द महासागर में आ जाने से इस क्षेत्र में आपसी छोटे-मोटे विग्रह तो न रुकेंगे, किन्तु यहाँ कोई बड़ी शक्ति किसी कमजोर देश को न दबा सकेगी। इससे संभव यही है कि इस क्षेत्र के देश बड़ी शक्तियों के आतंक से मुक्त होकर सुस्थिर भाव से अपना विकास कर सकें।

कुछ तत्वों ने प्रधान मंत्री पर इस बात का काफी जोर डाला कि वे हिन्द महासागर में सातवें बेड़े के प्रवेश का विरोध करें। किन्तु उन्होंने जो कुछ कहा उसका आशय यही था कि हिन्द महासागर खुला अंतर्राष्ट्रीय समुद्र है। उसमें किसीके आने जाने पर रोक नहीं लगायी जा सकती। हमें ठीक तरह से यह भी नहीं मालूम कि वहाँ आने का सातवें बेड़े का क्या प्रयोजन है। मालूम यही होता है कि वह अपने जहाज वहाँ इसलिए भेज रहा है जिससे वे उससे परिचित हो जायँ।

फिर भी यह निश्चित है कि हिन्द महासागर में अमरीकन सातवें बेड़े के आने से इस क्षेत्र में एक नयी शक्ति का प्रवेश हो रहा है जिसके राजनीतिक और सैनिक परिणामों को आज ठीक तरह से आँकना कठिन है।

महँगी का एक बड़ा कारण—आज सारा देश भ्रष्टाचार और महँगी से त्रस्त है। निम्न वर्ग में जो निम्न

स्तर का भ्रष्टाचार है उसका मुख्य उत्तरदायित्व महँगी को ही दिया जाता है। कुछ लोगों का विचार है कि निम्न श्रेणी के कर्मचारियों का वेतन उनकी परम आवश्यक वस्तुओं का ऊँचा मूल्य देखते हुए इतना कम है कि उनमें जो सामान्यतः ईमानदार हैं वे भी रुपया आठ आने की 'दक्षिणा' या 'बख्शीश' या 'नजर' या 'हक' लेने को विवश हो जाते हैं। यह स्पष्ट है कि या तो सरकार मूल्यों का नियंत्रण करना अनावश्यक समझती है, अथवा, यदि वह उसे आवश्यक समझती है और इसके लिए प्रयत्न करती है तो उसे अभी तक कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली। प्रत्येक बजट के कुछ दिनों पहिले नये करों की आशंका से सैकड़ों वस्तुओं के भाव दस-पाँच प्रतिशत बढ़ जाते हैं, और यदि किसी वस्तु पर कर नहीं भी लगता तब भी वह अपने पुराने मूल्य पर नहीं आती। अतएव सामान्य नागरिक को महँगी और सरकारी करनीति का सम्बंध बड़ा घनिष्ठ मालूम होता है। बहुत से नेता, विशेषकर वे जो तथाकथित 'पूँजीवादियों' के विरुद्ध हैं, बढ़ती हुई महँगी के लिए व्यापारियों की मुनाफाखोरी को दोषी ठहराते हैं और इस बात की माँग करते हैं कि जनता में वस्तुओं के वितरण (अर्थात् व्यापार या दूकानदारी) का काम निजी लोगों के हाथों में न रहने देना चाहिए। सरकार को यह काम करना चाहिए जिससे जनता का शोषण न हो और वस्तुएँ उसे उचित मूल्य पर मिलें। सरकार ने इस काम का श्रीगणेश 'स्टेट ट्रेडिंग कार्पोरेशन' बनाकर कर भी किया है, और इसे कुछ चुनी हुई वस्तुओं के आयात का इजारा या एकाधिकार-सा दे दिया गया है। यह आशा की जाती है कि वह मुनाफाखोरी न करेगी, और 'पूँजीपतियों' की तरह उसमें लाभ का लोभ (प्राफिट मोटिव) न होगा। व्यापार के राष्ट्रीयकरण के पक्ष में यही सबसे बलवान् तर्क दिया जाता है। हम किसी 'वाद' से नहीं बँधे। हमारी समझ में जिस उपाय से भी बहुसंख्यक जनता को लाभ हो, और जिससे उसे राहत मिले, उसी उपाय का अवलम्बन करना चाहिए क्योंकि राज्य का सर्वोपरि लक्ष्य 'बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय' ही है। सरकार की करनीति और स्टेट ट्रेडिंग कार्पोरेशन के हस्तक्षेप का वस्तुओं के मूल्यों पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसका एक उदाहरण अभी हाल ही में 'स्टेट्समैन' में छपे एक पत्र से लगता है।

१ दिसम्बर १९६३ के स्टेट्समैन में बंगलोर के श्री पी० एच० एस० राव ने एक पत्र छपाया है जिसका आशय यह है कि हाल ही में पश्चिमी बंगाल सरकार ने 'मूल्य जाँच समिति' नाम की एक समिति बनायी जिसका उद्देश्य मूल्यों की वृद्धि के कारणों की जाँच करना था। कलकत्ते की 'बंगाल नेशनल चेम्बर आफ कामर्स एन्ड़ इन्डस्ट्री' (बंगाल के व्यापार और उद्योग परिषद्) ने उस समिति को एक ज्ञाप प्रस्तुत किया। उसमें उसने सुपाड़ी के मूल्य का उदाहरण देते हुए बताया है कि

विदेश से आयात १०० किलो सुपाड़ी का मूल्य कलकत्ते में	३७ रुपये २० नये पैसे है।
उसपर तटकर (कस्टम ड्यूटी)	३०० रुपये लगता है।
उस पर स्टेट ट्रेडिंग कार्पोरेशन अपना मार्जिन।	६९ रुपये ५० नये पैसे लेता है।
उस पर व्यापारियों को	८ रुपये १० नये पैसे लाभ मिलता है।

इस प्रकार १०० किलो सुपाड़ी का दाम ४१४ रुपये ८० नये पैसे थोक में हो जाता है। इस पर श्री राव कहते हैं 'इस प्रकार जो वस्तु देश में ३७ रुपये २० नये पैसे में पहुँचती है, वह उपभोक्ता (जनता) को ४१४ रुपये ८० नये पैसे में मिलती है। क्या इससे भी अधिक आश्चर्यजनक कोई बात हो सकती है? यह ध्यान योग्य बात है कि जनता का इस प्रकार शोषण करने में सबसे अधिक हाथ तटकर और स्टेट ट्रेडिंग कार्पोरेशन का 'मार्जिन' है। यह 'आढ़त' माल के आयात मूल्य से भी अधिक है। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि व्यापारियों को केवल ८ रुपये १० नये पैसे ही मिलते हैं।'

इससे स्पष्ट है कि व्यापारी सुपाड़ी के आयात मूल्य का केवल २२ प्रतिशत ही लेता है, और फिर भी लोग उसे 'शोषक' कहते हैं। इसके विपरीत, स्टेट ट्रेडिंग कार्पोरेशन केवल फटकदलाली करके ही माल के आयात का प्रायः दुगना 'मार्जिन' के नाम पर वसूल कर लेती है। यदि कोई व्यापारी इस प्रकार 'मार्जिन' लेता तो उस पर भयंकर मुनाफाखोरी का अभियोग लगाया जाता और वह आरोप ठीक भी होता। स्टेट ट्रेडिंग कार्पोरेशन की इस फटकदलाली का बोझ जनता को उठाना पड़ रहा है। किंतु सरकार ने सुपाड़ी पर जो कर लगा रखा है वह भी महत्त्वपूर्ण है। सुपाड़ी पर उसके आयात मूल्य का आठ गुने से अधिक केंद्रीय सरकार 'कर' के रूप में ले लेती है। इसके बाद उस पर नगरपालिकाओं को चुंगी और राज्य सरकारों को 'बिक्री-कर' अलग देना पड़ता है। सबका परिणाम यह होता है कि बेचारे उपभोक्ता को उस एक किलो सुपाड़ी के लिए जिसका आयात मूल्य इस देश में प्रायः ३७ नये पैसे (प्रायः छः आना) है, उत्तर प्रदेश के नगरों में आठ रुपये देने पड़ते हैं। यदि सरकार इतना भारी 'कर' लगावे, और उसकी बनायी इजारेदार व्यापारिक संस्थाएँ मनमाना 'मार्जिन' लें तो महँगी कैसे रुक सकती है? अनुचित मुनाफाखोरी किसी भी दशा में क्षम्य नहीं है—चाहे वह निजी व्यापारियों की हो, और चाहे वह राज्य की व्यापारिक संस्थाओं की हो। सरकार को भी कर लगाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि वस्तु के मूल्य और 'कर' के आकार में कोई सामंजस्य और संतुलन हो। यह ठीक है कि देश को योजनाओं के लिए प्रचुर धन की आवश्यकता है, किंतु सोने के अंडे देनेवाली मुर्गी को इस अवस्था में कर देना बुद्धिमानी नहीं है कि वह अंडा देने योग्य न रहे या मर ही जाय। यदि और

वस्तुओं के मूल्यों का अध्ययन किया जाय तो बहुतों की कहानी ऐसी ही मिलेगी। यदि लोगों की आय भी मूल्यों की वृद्धि के साथ बढ़ती रहे तो लोगों को वस्तुओं का बढ़ा हुआ मूल्य भी इतना न अखरे। किंतु अधिकांश वेतन-भोगी जनता की आय में यदि कहीं हुई भी है तो नाम मात्र की ही वृद्धि हुई है। राज्य और शासन की स्थिरता तथा देश की उन्नति के लिए जनता का सुखी और संतुष्ट रहना परमावश्यक है। वर्तमान भीषण महँगी जनता की कमर तोड़े दे रही है।

डाक विभाग को साधुवाद—हमने कई बार डाक विभाग की इस बात की आलोचना की है कि वह जो स्मारक डाक टिकट प्रसारित करता है उनमें जो कुछ लिखा जाता है वह केवल अंग्रेजी में होता है। हमने सुझाव दिया था कि उस पर जो कुछ लिखा जाय वह हिंदी में अवश्य हो। चाहिए तो यह कि हमारे टिकट केवल राष्ट्र की राजभाषा में ही छपें, किंतु यदि सरकार अंग्रेजी को भी रखना चाहती है तो वह उसे रखे, पर हिंदी को अनिवार्य रूप से रखा ही न जाय, प्रत्युत उसे प्रमुखता भी दी जाय। ४ जनवरी को डाक विभाग ने दो नये स्मारक टिकट जारी किये हैं।



एक है उड़ीसा के प्रसिद्ध नेता श्री गोपबंधु दास की स्मृति में, और दूसरा दिल्ली में होनेवाले अन्तर्राष्ट्रीय प्राच्य विद्या-सम्मेलन के सम्मान में। हमें यह देख कर संतोष हुआ कि इन टिकटों पर हिंदी को स्थान दिया गया है। हम इसके लिए डाक विभाग को साधुवाद देते हैं और आशा करते हैं कि वह भविष्य में अपने सभी साधारण और स्मारक टिकटों पर हिंदी को प्रमुख स्थान देगा। हम यह भी आशा करते हैं ये दो नये टिकट डाक विभाग की नयी नीति के परिचायक हैं न कि उसके अपवाद। हमें यह शंका इसलिए होती है कि कुछ सप्ताह पहले ही उसने श्रीमती रूज़वेल्ट के चित्र सहित मानव-अधिकारों की घोषणा के वर्ष दिन के अवसर पर एक टिकट प्रसारित किया था जिसमें देश के नाम को छोड़कर हिंदी को स्थान नहीं दिया गया था। शंका का दूसरा कारण दिल्ली का वातावरण है जो हिंदी-विरोधी मालूम होता है। किन्तु हम यही आशा करते हैं कि डाक विभाग ने जो अग्रगामी कदम उठाया है, वह उससे पीछे न जायगा। यह भी सुना जाता है कि डाक विभाग भारत के नकशेवाले वर्तमान साधारण टिकटों के स्थान पर नये साधारण टिकट जारी करने जा रहा है। हमें विश्वास है उन पर वह हिंदी को प्रमुख स्थान देगा।

इन टिकटों में से एक के सम्बन्ध में एक बात कहनी आवश्यक है। प्राच्य विद्या विश्वसम्मेलन के टिकट में डाक विभाग ने संस्कृत का एक आदर्श वाक्य भी दिया है। इस सूझ और सुरुचि के लिए हम उस विभाग की सराहना करते हैं। वह आदर्श वाक्य है, "समवाय एवं साधुः" जिसका अर्थ है "समवाय ही साधु (ठीक) होता है।" किन्तु टिकट पर छपा है "समवाय एव साधु" जो व्याकरण से अशुद्ध है, क्योंकि "साधु" "समवाय" का विशेषण होने के कारण लिंग-वचन में तदनुसार होना चाहिए। "समवाय" पुल्लिंग है, अतः "साधुः" (पुल्लिग रूप) ठीक होता। यहाँ वाक्यान्त में आने के कारण "साधुः" के विसर्ग का लोप भी नहीं हो सकता।

यदि टिकटों की अंग्रेजी में कोई अखरोटी या व्याकरण की अशुद्धि हो जाय तो वह सहन न की जायगी और उसके कारण शिक्षित समाज में हलचल मच जायगी। इसीलिए अंग्रेजी के छापने में बड़ी सावधानी से काम लिया जाता है। प्राच्य विद्या विश्वसम्मेलन में अनेक विदेशी संस्कृतज्ञ विद्वान् आवेंगे, और वे संस्कृत के एक छोटे से वाक्यखंड को अशुद्ध छपा देखकर हमारे देश की सरकार की कुशलता के बारे में क्या सोचेंगे? डाक विभाग को चाहिए कि वह हिन्दी और संस्कृत शब्दों और वाक्यों की शुद्धता का उतना ही आग्रह रखें जितना कि अंग्रेजी की शुद्धता का। इसके लिए इतने बड़े विभाग में संस्कृत जाननेवालों की कमी न होनी चाहिए। एक बात और। संस्कृत में "सम्मेलन" लिखा जाता है, न कि "संमेलन" जैसा कि इस टिकट पर छपा है। चूँकि हिन्दी में बहुत से लोग "संमेलन" भी लिखते हैं, इसलिए हम उस पर विशेष आपत्ति नहीं करते, यद्यपि इस अवसर पर उसका उचित रूप "सम्मेलन" छापना ही अधिक ठीक होता।

डाक विभाग को इस कार्य के लिए हम फिर साधुवाद देते हैं। उपर्युक्त सुझाव मैत्री-भाव से उसकी ख्याति की रक्षा और कुशलता बढ़ाने की दृष्टि से ही दिये गये हैं।

श्री हुमायून कबीर का उत्तर प्रदेश के निवासियों को उपदेश—उत्तर प्रदेश हिंदीभाषी राज्य है। हिंदी का लक्ष्य भारत जननी को एक-हृदय करना है। वहाँ भावनात्मक एकता का साकार रूप देखा जा सकता है। उसने अपनी समझ में अपने व्यक्तित्व को भारत के व्यक्तित्व में घोल कर एकाकार कर दिया है। वह हिंदी आंदोलन का केन्द्र रहा है जिससे वह अँगरेजीपरस्तों को खटकता रहा है। इस 'भारतीय' प्रदेश में चार साधारण प्रान्तीय विश्वविद्यालय हैं। इलाहाबाद, आगरा, लखनऊ और गोरखपुर। इनमें से तीन में उत्तर प्रदेश के बाहर के वाइस चान्सलर हैं। उनमें दो अहिन्दी-भाषी हैं। दो

अँगरेजी के प्रोफेसर या विद्वान् रहे हैं और दो विज्ञान के। लखनऊ के वाइस चांसलर "माइसूरियन" हैं, और अँगरेजी के प्रोफेसर थे। अतएव उनके हाथों में अँगरेजी के हित सुरक्षित हैं। उन्होंने इस वर्ष दीक्षान्त समारोह में दीक्षान्त भाषण देने के लिए श्री हुमायून कबीर को निमंत्रित किया। श्री कबीर ने अपने भाषण में उत्तर प्रदेश के साथ बड़ी हमदर्दी जाहिर की। उन्होंने बतलाया कि किसी समय उत्तर प्रदेश बहुत अग्रगामी था। उसने मोतीलाल नेहरू के समान राजनीतिक नेता, मदनमोहन मालवीय के समान शिक्षाविद और जयशंकर प्रसाद तथा अकबर अलाहाबादी के समान कवि उत्पन्न किये। कबीर साहब की नजरों में मालवीयजी राजनीतिक नेता नहीं, शिक्षाविद थे। इसके बाद उन्होंने कहा कि आज स्थिति बदल गयी है। उत्तर प्रदेश आज देश का सबसे पिछड़ा हुआ प्रदेश है। आर्थिक, औद्योगिक, साक्षरता, शिक्षा—सभी क्षेत्रों में वह सबसे पीछे है। और अन्त में उन्होंने उत्तर प्रदेश के पिछड़ेपन का निदान करते हुए बतलाया कि पहिले तो उत्तर प्रदेश ने अँगरेजी शिक्षा को देर से स्वीकार किया, जब किया भी तब केवल रोजी और रोटी के लिए, और अन्त में स्वतंत्रता के बाद उत्तर प्रदेश ने अँगरेजी शिक्षा को सबसे अधिक ठुकराया। उन्होंने शिक्षा के माध्यम के लिए अँगरेजी की आवश्यकता बतलाते हुए कहा कि English can serve India both as a subject of study and under certain specific conditions and for certain limited purposes, also as a medium of instruction precisely for this reason. (भावार्थ यह कि अँगरेजी का विषय के रूप में अध्ययन करने से और किन्हीं कामों के लिए कुछ शर्तों के साथ अँगरेजी को शिक्षा का माध्यम बनाने से वह भारत का हित कर सकती है।) अंत में अँगरेजी की शिक्षा के लाभ बतलाते हुए उन्होंने कहा—we must be responsive to all the currents that flow throughout the world and one of the strongest of these currents is brought to us in India through the English language. More than any other part of India, this is necessary for Uttar Pradesh. I have sometimes said that I am not concerned whether English is taught on a large scale or not in other parts of the country, but for Uttar Pradesh it is a *must* and must be taught compulsorily to every body who goes beyond the stages of elementary education. (संसार में जो धाराएँ बह रही हैं, हमें उन सबके प्रति जागरूक रहना चाहिए और इनमें से एक अत्यंत बलवती धारा भारत में अँगरेजी के द्वारा लायी जाती है। भारत के किसी अन्य भाग को इसकी इतनी आवश्यकता नहीं है जितनी उत्तर प्रदेश को। मैंने कई बार कहा है कि मुझे इस बात से मतलब नहीं कि भारत के दूसरे भागों में अँगरेजी व्यापक रूप से पढ़ायी जाती है या नहीं, किंतु उत्तर प्रदेश में तो यह आवश्यक रूप से पढ़ायी ही जानी चाहिए और (यहाँ) वह (अँगरेजी) प्रारंभिक कक्षाओं से आगे पढ़नेवाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य होनी चाहिए।"

यदि उद्योग-धंधों, व्यापार, प्रति व्यक्ति की आय आदि में उत्तर प्रदेश पिछड़ा हुआ है तो क्या केंद्र के मंत्रियों और भारत सरकार को यह बात आज मालूम हुई है? उन्होंने उसकी आर्थिक अवस्था सुधारने का क्या प्रयत्न किया? यहाँ कितने नये कारखाने खोले? यहाँके उद्योग-धंधों को बढ़ाने का क्या उपाय किया? तीन पंचवर्षीय योजनाओं में सरकार ने अरबों रुपयों के जो कल-कारखाने खोले उनकी सारी मलाई अहिन्दी प्रान्तों ने हथिया ली। उत्तर प्रदेश की विशेष रूप से उपेक्षा की गयी, और अब हमसे कहा जाता है कि हम आर्थिक क्षेत्र में पिछड़े हुए हैं!

श्री कबीर ने उत्तर प्रदेश के पिछड़ेपन का एक-मात्र कारण वहाँ की अँगरेजी पठन-पाठन की उपेक्षा के माथे थोपा है, मानो अँगरेजी पढ़ते ही उत्तर प्रदेश में अँगरेजी-रूपी अलादीन के चिराग से यहाँ एकदम कल-कारखाने और उद्योग-धंधे उत्पन्न हो जायेंगे! हमने किसी बड़े आदमी को कार्य और कारण का इतना लचर संबंध बतलाते हुए नहीं देखा। यदि आर्थिक, व्यावसायिक और औद्योगिक उन्नति के लिए अँगरेजी इतनी अनिवार्य है तो अँगरेजी से अपरिचित हमारे लाखों बोहरा और मारवाड़ी भाई व्यवसाय में क्यों इतने सफल हैं? यदि अँगरेजी की शिक्षा के बिना देश में औद्योगिक और आर्थिक उन्नति नहीं हो सकती तो मिस्र, अफगानिस्तान, जापान, चीन, इसराइल, श्रीलंका आदि जो अपनी भाषाओं द्वारा सारी शिक्षा दे रहे हैं, किस प्रकार इतनी भौतिक उन्नति

करते जा रहे हैं ? जिस प्रकार पीलिया के रोगी को सारा संसार पीला ही दिखलायी पड़ता है, उसी प्रकार इन अँगरेजीपरस्तों को सारी उन्नति अँगरेजी ही पर टँगी दिखलायी पड़ती है।

उत्तर प्रदेश का "पिछड़ापन" तो बहाना मात्र है। वह किसी नेता की नींद हराम नहीं करता। मुख्य उद्देश्य तो उत्तर प्रदेश में अँगरेजी का प्रचार करना है। अँगरेजीपरस्तों ने संविधान की आत्मा के विरुद्ध केन्द्र में विजय प्राप्त कर ली है। हिंदी को "आफिशियल लैंग्वेज" (राजभाषा) के पद से हटा कर अब केवल "लिंक लैंग्वेज" कह कर उसका दर्जा घटाना आरंभ कर दिया है। केन्द्र में हिंदी का केवल कागजी सम्मान रहने दिया गया है जिससे अँगरेजी की वास्तविक स्थिति और मुक्त उपयोग में कोई बाधा न पड़ेगी। किंतु अँगरेजीपरस्त यह भी जानते हैं कि भारत में अँगरेजी के स्थायी स्वार्थ तब तक सुरक्षित नहीं हैं जब तक उत्तर प्रदेश हिंदी का हिमायती और राजभाषा तथा शिक्षा के माध्यम के क्रम में अँगरेजी का विरोधी है। अतएव वे उत्तर प्रदेश में अँगरेजी की जड़ मजबूत करने पर जुट गये हैं। इसी लिए श्री कबीर ने यहाँ तक कह डाला कि I am not concerned whether English is taught on a large scale or not in other parts of the country; but for Uttar Pradesh it is a *must* and must be taught compulsorily to every body who goes beyond the stages of elementary education. (मुझे इस बात से मतलब नहीं कि भारत के दूसरे भागों में अँगरेजी व्यापक रूप से पढ़ायी जाती है या नहीं, किन्तु उत्तर प्रदेश में तो यह आवश्यक रूप से पढ़ायी ही जानी चाहिए, और वहाँ वह प्रारंभिक कक्षाओं से आगे पढ़ने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य होनी चाहिए।) उनका विश्वास यह मालूम होता है कि भारत में अँगरेजी को सबसे बड़ा खतरा उत्तर प्रदेश से है, और यदि उत्तर प्रदेश के अविश्वासियों को भी अँगरेजी का बप्तिस्मा देकर अँगरेजीपरस्त बना दिया जाय तो फिर भारत में अँगरेजी सदा-सर्वदा के लिए दिल्ली की कीली की तरह अचल और अडिग हो जायगी। अँगरेजीपरस्तों का अब यही प्रयत्न मालूम होता है। श्री कबीर का उपदेश उसी अभियान की पहिली गोलाबारी है। अँगरेजीपरस्तों की यह योजना और चाल हिन्दीवाले भली भाँति समझते हैं।

आज अँगरेजीपरस्त प्रान्तों में संकुचित प्रान्तीयता दिखलायी पड़ती है जो भारत के भविष्य के लिए खतरनाक है। वह अँगरेजी के अंधभक्त होने का फल है। इसके विपरीत, हिन्दी समग्र भारत को एक सूत्र में बाँधने, और भारतवासियों के हृदयों को एक करने का काम करती है। वह भावनात्मक एकता उत्पन्न करती और प्रान्तीयता की भावना को दबाती है। यह हिंदी का ही प्रभाव है कि उत्तर प्रदेश में मुख्य मंत्री और चीफ जस्टिस से लेकर कितने ही वाइस चांसलर और उच्च एवम् निम्न अधिकारी प्रदेश के बाहर के और अहिन्दीभाषी हैं। क्या अँगरेजीपरस्तों के प्रिय प्रदेशों में यह संभव है ? अँगरेजी-परस्ती जहाँ जितनी अधिक है, वहाँ प्रान्तीयता भी उतनी ही प्रबल है। भारत की एकता को अँगरेजी से खतरा है। हिंदी का मिशन तो भारत को एक करना है।

साहित्यकार बन्धुओं का सम्मान——हाल ही में हिंदी के तीन यशस्वी साहित्यकारों——पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, श्री भगवतीचरण वर्मा और श्री यशपाल ने क्रमशः ७०, ६० और ६० का वय पूरा कर लिया। इस अवसर पर लखनऊ में श्री भगवतीचरण वर्मा तथा दिल्ली में पं० बनारसीदास चतुर्वेदी और श्री यशपाल का हिंदी साहित्यकारों और हिंदीप्रेमियों द्वारा सार्वजनिक अभिनन्दन किया गया। लखनऊ के समारोह में पं० सुमित्रानन्दन पन्त जी ने अध्यक्षता की, और चतुर्वेदीजी के अभिनन्दन में श्री लालबहादुरजी शास्त्री ने तथा श्री यशपालजी के समारोह में श्री जैनेन्द्रजी ने। ये उत्सव बड़े शोभनीय ढंग से हुए। 'सरस्वती' इस अवसर पर इन साहित्यकार बन्धुओं का सादर और सप्रेम अभिनन्दन करती है, और यह कामना करती है कि वे चिरजीवी हों तथा हिन्दी साहित्य और हिंदी भाषा की अधिकाधिक सेवा करते रहें।

श्री उग्रजी ने भी हाल ही में अपने जीवन के ७० वर्ष पूरे किये हैं। वे अभी कड़ी बीमारी से उठे हैं। इस अवसर पर सरस्वती उनका भी अभिनंदन करती और उनके स्वास्थ्यलाभ की हार्दिक कामना करती है।

हिन्दी का साम्राज्यवाद कहाँ है ?

श्री जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी

हाल ही में लोकसभा में जब एक कांग्रेसी सदस्य श्री सिंहासनसिंह ने यह निर्दोष मांग की जिन प्रश्नों की सूचना हिन्दी में दी जाती है, उनके उत्तर हिन्दी में देने की संसदीय परम्परा का पालन किया जाये तो हिन्दी-विरोधियों ने एक तूमार खड़ा कर दिया कि इस प्रकार अहिन्दी-भाषी मंत्री किसी महत्त्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर न दे सकेंगे और उनकी हैसियत तीसरी श्रेणी की हो जायेगी। श्री हनुमन्तैया तथा श्री एन्थनी जैसे वरिष्ठ संसद-सदस्यों ने यह शिकायत की। श्री एन्थोनी तो हाल ही में दक्षिण में "हिन्दी साम्राज्यवाद" पर अनेक भाषण दे आये हैं और उन्होंने यह हवा फैलाने का प्रयत्न किया है कि हिन्दी-भाषी अहिन्दी-भाषियों पर अपना साम्राज्यवाद फैला कर उनकी रोजी-रोटी हड़पना चाहते हैं।

लोकसभा के अध्यक्ष श्री हुकुमसिंह ने तो इस शंका का समाधान तत्काल यह कहकर कर दिया कि अंग्रेजी की अपेक्षा हिन्दी में बहुत थोड़ी सूचनाएं मांगी जाती हैं, इससे यह स्थिति न उठेगी। ३ दिसम्बर को उन्होंने लोकसभा के विविध दलों के सम्मेलन के निर्णय भी प्रकाशित कर दिए तथा यह आश्वासन भी दिया कि शीघ्र ही अंग्रेजी तथा हिन्दी के एक साथ अनुवाद की व्यवस्था की जायेगी, जिससे सदस्यगण हिन्दी या अंग्रेजी जिस भाषा में भी चाहें बोल सकेंगे व सुन सकेंगे। परन्तु भीतर ही भीतर यह आग सुलगाने का प्रयत्न चलता रहता है कि हिन्दी का साम्राज्यवाद छा जायेगा। अतएव यह आवश्यक है कि हम देखें कि इस शिकायत में कितनी जान है।

सन् १९५० से जब से संविधान स्वीकृत हुआ है, संसद की भाषा हिन्दी व अंग्रेजी दोनों रही हैं। संविधान सभा में तो हिन्दी में भाषण होते थे। मुझे वह दिन भी याद है जब श्री लालबहादुर शास्त्री ने अपना रेलवे बजट का भाषण हिन्दी में पढ़ा था और प्रथम सूचना तथा प्रसारण मंत्री श्री आर० आर० दिवाकर ने अपनी मंत्रालय सम्बन्धी मांगों की चर्चा का उत्तर हिन्दी में दिया था। प्रधान मंत्री श्री नेहरू ने भी एक बार विदेश मंत्रालय की चर्चा का उत्तर हिन्दी में दिया था तथा हिन्दू कोड विधेयक आदि कई बिलों तथा अन्य अवसरों पर वह हिन्दी में बोले थे। मौलाना आजाद तो उर्दू में बोला ही करते थे। उस समय संसद के दोनों सदनों में श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन, आचार्य नरेन्द्रदेव, श्री बालकृष्ण शर्मा, स्वामी रामानन्द तीर्थ आदि सदस्य थे, जिनके हिन्दी भाषण बड़े ध्यान से सुने जाते थे। अब भी श्री गंगाशरणसिंह, श्री प्रकाशवीर शास्त्री, श्री अटलबिहारी बाजपेयी, श्री भक्तदर्शन, श्री रामधारीसिंह दिनकर जैसे लोग हिन्दी में ही बोलते आये हैं। उस समय श्री मैथिलीशरण गुप्त, श्री प्रफुल्ल भंजदेव या श्री महावीर त्यागी हिन्दी, संस्कृत व उर्दू की कविताएं पढ़ते थे और वित्तमंत्री श्री चिन्तामणि देशमुख उनका उन्हीं भाषाओं में समुचित उत्तर देते थे, जिससे संसद की कार्यवाही में जान आ जाती थी। पर क्या यह कहा जा सकता है कि इस सबसे संसद में या भारत सरकार के राजनीतिक चित्र में अहिन्दी-भाषी व्यक्तियों की भूमिका महत्त्वहीन हो गई है? सत्य तो यह है कि हिन्दी-भाषियों की अपेक्षा अहिन्दी-भाषियों का राजनीतिक शक्ति व प्रभाव दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है।

शासन के उच्चपदासीन व्यक्तियों को ही ले लीजिये। राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति तथा राज्यसभा के अध्यक्ष, लोकसभा के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, राज्यसभा की उपसभानेत्री, सभी ऐसे हैं जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है। मंत्रिमंडल के १२ सदस्यों में से केवल एक मंत्री, संसदीय कार्य तथा अस्थायी रूप से सूचना व प्रसारण मंत्री श्री सत्यनारायण सिंह ही ऐसे हैं जिनकी मातृभाषा हिन्दी है। परन्तु उनका भी मुख्य काम यही है कि मंत्रिमंडल के अहिन्दी-भाषी मंत्रियों का प्रचार और विज्ञापन करें तथा संसद में उनके लिए अनुकूल वातावरण बनावें। राज्य मंत्रियों में से तीन ऐसे हैं जिनकी मातृभाषा हिन्दी है, शेष ११ ऐसे हैं

जिनकी हिन्दी मातृभाषा नहीं है। जहां तक उपमंत्रियों का सम्बन्ध है, केवल पांच ऐसे हैं जिनकी मातृभाषा हिन्दी है। ऊपर से लेकर नीचे तक ५३ महत्वपूर्ण स्थानों पर केवल ९ व्यक्ति ऐसे हैं जिनकी मातृभाषा हिन्दी है। उनमें भी छोटे स्थानों पर ही हिन्दीवालों की संख्या कुछ है, ऊपर बिलकुल नहीं। इसके बाद भी क्या यह कहा जा सकता है कि हिन्दीवालों की राजनीतिक ताकत बढ़ रही है?

एक समय था जब भारत का राष्ट्रपति हिन्दी-भाषी था तथा मंत्रिमण्डल में आधे सदस्य ऐसे थे जिनकी मातृभाषा हिन्दी थी। उनमें से एक-एक हटता गया और किसीका भी स्थान भरा नहीं गया।

पर कहा जा सकता है कि सरकार में न सही कांग्रेस संगठन में तो हिन्दी-भाषी शक्तिशाली हैं। देखें क्या यह दावा सही है?

स्वतन्त्रता के पश्चात कांग्रेस के जितने अध्यक्ष चुने गये, उनमें यदि श्री नेहरू तथा श्रीमती इन्दिरा गांधी को निकाल दें जिन्होंने पूरे समय तक कांग्रेस अध्यक्ष का भार भी नहीं उठाया तो केवल श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन ही ऐसे अध्यक्ष थे जो हिन्दीवाले कहे जाते हैं। उन्हें इस पद से त्यागपत्र देना पड़ा। पिछले तीन अध्यक्ष श्री ढेबर, श्री संजीव रेड्डी तथा श्री संजीवैया अहिन्दी-भाषी रहे हैं और नये अध्यक्ष श्री कामराज तो हिन्दी जानते भी नहीं हैं। जहां तक सचिवों का सम्बन्ध है, पहले प्रायः एक सचिव हिन्दी क्षेत्र से होता था। इस समय के दोनों सचिव श्री के० के० शाह व श्री चन्द्रिकी अहिन्दी-भाषी हैं और उनसे पहले तीनों सचिव श्री राजगोपालन, श्रीमती आभा मैत्री व श्री सादिकअली ऐसे नहीं थे, जिनकी हिन्दी मातृभाषा हो। केन्द्रीय संसदीय बोर्ड में तीन हिन्दी-भाषी सदस्य हैं, पर वह भी ऐतिहासिक कारणों से। श्री जगजीवनराम व श्री शास्त्री का त्यागपत्र कांग्रेस के काम के लिए ही लिया गया है, पर इसका यह अर्थ नहीं कि यदि इनके स्थान कभी खाली होंगे तो हिन्दी-भाषी ही वहां लिये जाएंगे। कांग्रेस की जो महत्त्वपूर्ण समितियां हैं, भ्रष्टाचार, संगठन, कांग्रेस कार्यक्रम आदि सम्बन्धी उन सबके अध्यक्ष अहिन्दी-भाषी हैं। संसद में कांग्रेस दल के नेता श्री नेहरू अवश्य हैं, परन्तु दोनों सदनों के उपनेता अहिन्दी-भाषी हैं। सचिवों के चुनाव में भी अभी तक परम्परा थी कि लोकसभा में दो में से एक अवश्य दक्षिण का हो। इस समय भी चुनाव-चक्र में हिन्दी-भाषी आ गये तो एक दक्षिण का भी है। संसदीय कार्यमंत्री प्रधान सचेतक हैं, परन्तु उनके अधीनस्थ उपसचेतक सभी ऐसे हैं जिनकी हिन्दी मातृभाषा नहीं है। हाल ही में बिहार के श्री रामेश्वर साहू के स्थान पर श्री मुथियल राव नियुक्त किये गये हैं। कांग्रेस कार्यसमिति या कांग्रेस दल की कार्यसमिति में भी ऐसे सदस्य जिनकी मातृभाषा हिन्दी है, उस अनुपात में भी नहीं है, जिसमें संख्यानुसार उन्हें होना चाहिए, बहुमत की बात दूसरी है।

यदि हम राज्यपालों की सूची की ओर दृष्टिपात करें तो पता लगेगा कि भारत के चार राज्यों के तीन राज्यपाल (श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित को जोड़कर जिनकी मातृभाषा उर्दू थी) ऐसे हैं जिनकी मातृभाषा हिन्दी मानी जा सकती है। भारत के प्रथम मुख्य न्यायाधीश जो हिन्दी-भाषी थे, कम से कम दस-पन्द्रह वर्षों तक उसके अन्तिम हिन्दी-भाषी मुख्य न्यायाधीश होंगे और शीघ्र ही अवकाश ग्रहण करनेवाले हैं। सर्वोच्च न्यायालय में मुख्य न्यायाधीश वरीयता से बनते हैं और न्यायाधीशों की सूची देखने से मालूम होता है कि कोई ऐसा न्यायाधीश जिसकी मातृभाषा हिन्दी है प्रधान न्यायाधीश बनता दिखाई नहीं देता।

हिन्दी-भाषी क्षेत्रों ने भारतीय सेना में बहुत अधिक लड़ाकू सिपाही दिये हैं और चीनी आक्रमण के समय वालोंग तथा चुशूल के पास रेजांगला की ऐतिहासिक लड़ाइयों में जिन भारतीय सिपाहियों ने भारतीय सेना की लाज रक्खी, वह गढ़वाल और कुमायूं रेजीमेंटों के जवान तथा जाट थे। उनको अधिकाधिक पुरस्कार भी दिये गए। लेकिन जहां तक भारत की स्थल, जल व वायुसेना का सम्बन्ध है, अभी तक न तो कोई हिन्दी-भाषी अधिकारी

प्रधान सेनाध्यक्ष बना है और न निकट भविष्य में इसकी सम्भावना है।

अब जरा नई दिल्ली के सचिवालय पर निगाह डालिए, जिसके हाथ में इस संकटकाल में सारे देश की तकदीर आ गयी है। वित्त, खाद्य और रक्षा उत्पादन के इन तीन विभागों के तीन विभागीय सचिव ऐसे हैं जिनकी हिन्दी मातृभाषा है। इनके अतिरिक्त विदेश-मंत्रालय तथा गृह-मंत्रालय में एक-एक अतिरिक्त या विशेष सचिव हिन्दी-भाषी है। इनके अतिरिक्त जितने भी सचिव या अतिरिक्त और विशेष सचिव हैं, सब अहिन्दी-भाषी हैं। जहां तक अन्य बड़े अधिकारियों का सम्बन्ध है, दिल्ली के निम्नलिखित बड़े अधिकारी ऐसे हैं जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है। कुछ ये हैं: आडिटर जनरल, अकाउन्टेंट जनरल, अटरनी जनरल, सालिसिटर जनरल, डायरेक्टर जनरल आकाशवाणी, डायरेक्टर जनरल स्वास्थ्य, डायरेक्टर जनरल सैनिक चिकित्सा सेवा, डायरेक्टर जनरल वैज्ञानिक अनुसंधान, डायरेक्टर जनरल इम्प्लायमेंट एंड ट्रेनिंग, डायरेक्टर जनरल पुरातत्त्व, डायरेक्टर जनरल भूगर्भ सर्वेक्षण, डायरेक्टर जनरल मानवजीव सर्वेक्षण, डायरेक्टर जनरल निपटान व संभरण, अनुसूचित जातियों व जन-जातियों के आयुक्त, चीफ कंट्रोलर आयात व निर्यात, मुख्य श्रम-अधिकारी। एक डायरेक्टर जनरल डाक व तार को छोड़कर, जो हाल ही में इस पर आये हैं, अन्य कोई ऐसा महत्त्वपूर्ण महकमा नहीं है जिसका मुख्य अधिकारी ऐसा हो जिसकी मातृभाषा हिन्दी हो। लोकसेवा आयोग के अध्यक्ष श्री भोलानाथ झा भी यू० पी० में दीर्घकाल तक बसे होने के कारण हिन्दी-भाषी माने जाते हैं, यद्यपि उनकी मातृभाषा गुजराती है।

परन्तु देश के प्रधान मंत्री प्रयाग के रहनेवाले हैं, इसलिए हिन्दी-भाषी इस स्थिति पर शिकायत भी नहीं कर सकते और करें भी तो कैसे जब कि सबसे बड़े हिन्दी-भाषी राज्य उत्तर प्रदेश का मुख्यमंत्री तक मातृभाषा की दृष्टि से बंगलाभाषी है। उत्तर प्रदेश के सात विश्वविद्यालयों में पांच के कुलपति हिन्दी-भाषी नहीं हैं। यही हाल अनेक विभागों के अध्यक्षों का है, मुख्य न्यायाधीश तथा न्यायालय के कई अन्य न्यायाधीशों का है। जब उस राज्य में जो हिन्दी साम्राज्यवाद, प्रान्तवाद और प्रतिक्रिया का गढ़ समझा जाता है, यह हाल है तो कोई इस बात की कल्पना भी कैसे कर सकता है कि हिन्दी साम्राज्य-वाद अन्य भाषायी क्षेत्रों को दबाकर उनके आर्थिक व राजनीतिक स्वत्व छीनकर उनको गुलाम बना सकेगा। जो हिन्दी-भाषी डा० राजेन्द्रप्रसाद, श्री गोविन्दवल्लभ पन्त और श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन की छत्रछाया में इससे अधिक नहीं पा सके, वह क्या श्री चन्द्रभानु गुप्त के नेतृत्व में अहिन्दी प्रान्तों पर अपना आधिपत्य जमा सकेंगे?

हिन्दी-भाषियों के पास इस समय ऐसी कोई राज-नीतिक या आर्थिक सत्ता नहीं है जिससे वह अहिन्दी प्रान्तों के निवासियों के रोजगार अथवा आर्थिक हितों को हिन्दी के कारण हानि पहुंचा सकें। भारत सरकार के अधीनस्थ बड़ी-बड़ी कम्पनियां व निगम रोजगार होते हैं और वह सब प्रायः अहिन्दी-भाषी अधिकारियों के हाथ में है। व्यापार व उद्योग को सहायता देनेवाले रिजर्व बैंक, स्टेट बैंक, औद्योगिक वित्त निगम, राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम, जीवन बीमा निगम आदि संस्थानों के अध्यक्ष या प्रबन्ध-कारी संचालक प्रायः वह व्यक्ति हैं जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है। परिणाम यह है कि आर्थिक व औद्योगिक दृष्टि से हिन्दी-भाषी प्रदेश सबसे पिछड़ गये हैं और वहां की प्रतिव्यक्ति आय सबसे कम है। यदि राजनीतिक सत्ता का देश के किसी भाषायी या भौगोलिक क्षेत्र के हित में प्रयोग किया भी गया है तो वह क्षेत्र हिन्दी-भाषियों का नहीं है।

कहा जाता है कि हिन्दी थोपी जा रही है। क्या हिन्दी-भाषी हो या अहिन्दी-भाषी, जिसका भी जी चाहता है, हिन्दी के उत्साही लोगों को बुरा-भला कहने लगता है कि हिन्दी लादने का प्रयत्न न करें। हिन्दी के प्रचार की बात कहना, संविधान की धाराओं के परिपालन की मांग करना

और हिन्दी लादना समानार्थक हो गया है। एक समय था जब गांधीजी ने राष्ट्र के १४ रचनात्मक कार्यक्रमों में राष्ट्रभाषा का प्रचार रक्खा था। आज हिन्दी का प्रचारक राष्ट्रीय एकता का द्रोही और समाजविरोधी तत्त्व समझा जाने लगा है। जब भारत स्वतन्त्र हुआ था, यह आशा थी कि हिन्दी बिना किसी रोकटोक के हमारी राष्ट्रभाषा होगी। इसके बाद संविधान के मसौदे में पांच वर्ष का समय रक्खा गया जो संविधान स्वीकृत होते-होते पन्द्रह वर्ष का हो गया। उस समय तक संविधान-सभा में हिन्दी के स्थान के बारे में कोई विवाद नहीं था। राजाजी, एन्थनी महोदय तथा द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम के नेताओं ने यह प्रचार कर रक्खा है कि हिन्दी को राजभाषा बनाने का निर्णय केवल एक मत के बहुमत से हुआ था। इसका दक्षिण पर बुरा प्रभाव पड़ता है। परन्तु यह बिलकुल मिथ्या है। संविधान सभा में तो हिन्दी सम्बन्धी धारा सर्वसम्मति से स्वीकृत हुई थी। केवल अंग्रेजी अंकों के प्रश्न पर टण्डनजी के नेतृत्व में पांच हिन्दी समर्थकों ने विरोध में मत दिया था। जहां तक कांग्रेस दल का सम्बन्ध है, उसमें भी विवाद केवल हिन्दी-हिन्दुस्तानी का था, जो उत्तरभारतीयों की आपसी चीज थी। दक्षिण व बंगाल के सदस्यों ने उस समय भी संविधान में वर्णित हिन्दी के पक्ष में ही मत दिया था। यह कहना असत्य और ईमानदारी से दूर है कि दक्षिण के सदस्यों ने उस समय भी हिन्दी का विरोध किया था।

संविधान में कहा गया था कि पांच वर्ष बाद राष्ट्रपति एक राजभाषा आयोग की नियुक्ति करेंगे। वह आयोग देर से नियुक्त हुआ और उसकी रिपोर्ट पर कार्यवाही हो भी नहीं पाई कि दस वर्ष व्यतीत हो गये। दूसरा आयोग नियुक्त ही नहीं हुआ। प्रथम आयोग की सिफारिशें कुछ तो संसदीय कमेटी ने काट दीं और जो बचीं, उनपर राष्ट्रपति का आदेश निकल जाने के बाद तक परिपालन नहीं हुआ। इनमें से एक सिफारिश थी कि लोकसेवा आयोग की परीक्षाओं में हिन्दी भी माध्यम हो। इनके स्थान पर हिन्दी वालों को मिला राजभाषा अधिनियम, जिसके अनुसार अंग्रेजी अनिश्चित काल तक सहभाषा बन गयी। हिन्दी-वालों की रग पर इस प्रकार नश्तर लगवाने के पश्चात् गृह मंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री को भी गृह-मंत्री पद से मुक्त कर दिया गया और हिन्दी वालों को उन्होंने जो आश्वासन दिये थे, वे धरे के धरे रह गये।

विधेयक पर चर्चा के समय तथा निजी वार्ताओं में शास्त्रीजी ने आश्वासन दिया था कि अपने कार्यकाल में वह राष्ट्रपति के आदेशों का परिपालन करायेंगे तथा हिन्दी के प्रसार को बढ़ाने के लिए एक हिन्दी समिति की स्थापना की जायेगी। जो लोग शास्त्रीजी के हिन्दी प्रेम में विश्वास रखते थे, वह मान गये, लेकिन कामराज योजना को सफल बनाने के लिये शास्त्रीजी की भी आहुति हो गयी।

शास्त्रीजी के गृह-मंत्रालय छोड़ते ही हिन्दी सम्बन्धी नीति और बदलने लगी। हिन्दी कमेटी के नाम पर मुख्य मंत्रियों की एक कमेटी नियुक्त की गयी, जिसमें केन्द्र के गृह, शिक्षा व विधि मंत्रालयों के मंत्री सदस्य होंगे। तीनों में एक भी हिन्दी-भाषी नहीं है और दो दर्जन सदस्यों की इस कमेटी में कठिनाई से चार हिन्दी-भाषी होंगे। मुख्य मंत्रियों को न इतना समय है और न वह इसे बुद्धिमत्ता ही समझेंगे कि कांग्रेसी सरकार के हिन्दी कामों की आलोचना करें जबकि अधिकांश यही चाहेंगे कि इस काम को धीरे धीरे चलाया जाये। हिन्दी के काम में तैयारी की कमी में सरकार का पूरा-पूरा दायित्व है। अब यह स्वीकार किया जाता है कि यदि मौलाना आजाद के कार्यकाल में हिन्दी का काम बढ़ता तो शायद यह नौबत न आती। श्री श्रीमाली ने इस काम को बढ़ाया था, लेकिन उनका हिन्दी प्रेम उनके पद का ग्राहक बन बैठा। पन्तजी के नेतृत्व में गृहमंत्रालय ने हिन्दी का काम प्रारम्भ किया तो यमराज ने उन्हें छीन लिया और उनके उत्तराधिकारी श्री लालबहादुर शास्त्री को कामराज ने। दोनों ही दक्षिण दिशा के स्वामी हैं। हिन्दी का बाजार तो दिन-ब-दिन मन्दा होता जा रहा है। वैज्ञानिक शब्दावली का एक आयोग बना था, जिसके अध्यक्ष डा० कोठारी थे और समाजशास्त्र विषयों के लिए एक समिति बनी थी जिसके अध्यक्ष श्री दिनकर थे। दोनों अध्यक्षों ने त्यागपत्र देना उचित समझा और वह समितियां एक कर दी गयीं। इस प्रकार हिन्दी का काम तो केन्द्र में बढ़ नहीं रहा है।

आज जब हिन्दी में प्रश्न पूछने पर भी साम्राज्यवाद का आरोप हो तो यह कहना कि इस प्रकार अहिन्दी-भाषियों का महत्त्व घट जायेगा, कटे पर नमक छिड़कना है। अगर देश में किसीका साम्राज्यवाद है भी तो वह हिन्दी का नहीं, हिन्दी पर ही अहिन्दीभाषियों का साम्राज्य है।

हिन्दी प्रदेश की प्रगति में बाधक हिन्दी

भारत जब पराधीन था तो पराधीनता के दुःख को तीव्र-तर बनाने के लिए समस्त दुःख पराधीनता के माथे मढ़ दिये जाते थे; किसी का लड़का यदि काना जनमता था तो भी यह कहा जाता था कि गुलाम देश का यही तो अभिशाप है कि लड़के काने पैदा होते हैं। स्वाधीन होने पर भी बहुत से दुःख गये नहीं। स्वाधीनता को तो दोष दिया नहीं जा सकता, स्वाधीनता लानेवाले कारणों को ही दोष दिया जा सकता है। उन कारणों में एक प्रमुख कारण है हिन्दी। सो यदि देश पिछड़ा है तो हिन्दी का कसूर है। यदि प्रदेश केन्द्र की विनियोजित संस्कृति की आकांक्षा को पूर्ण नहीं करता तो भी कसूरवार हिन्दी है। यदि उत्तर प्रदेश में कृपलानी जीतते हैं तो हिन्दी का कसूर और अगर जेड० ए० अहमद जीतते हैं तो हिन्दी का कसूर। लोग बेजबान होकर जुल्मोसितम बर्दाश्त करते रहें तो हिन्दी का कसूर और यदि जवाब देने की जुर्रत करें तो हिन्दी का कसूर। लोगों में बटेरबाजी, कबूतरबाजी और बुलबुलबाजी के शौक की तहजीब नहीं रही, यह भी हिन्दी का कसूर और तिफ्ल माशूकों की आँखों की शोखी का कोई शिकार नहीं होता, यह भी हिन्दी का कसूर। हिन्दी जिम्मेवार है समाजवादी उच्छृङ्खलता के लिए। हिन्दी जिम्मेवार है प्रतिक्रियावादी रूढ़िवादिता के लिए। क्या कीजिएगा यह बड़ी बेजबान जबान है, सब पी लेती है, यह धरती की बेटी है, निवासिन भी झेलकर यह राम का मंगल ही मनाती है, अयोध्या में अपनी सोने की प्रतिमा की पूजा से ही सन्तोष कर लेती है। इसे किसी पर आक्रोश नहीं, न उस विदेशी शासन के रावण पर है, जिसने इसे पददलित किया, न उस धोबी पर जिसने फब्ती कसी, न उस देवर पर जिसने निष्कासन का रथ हाँका, न उन न्यायकर्त्ताओं पर जिन्होंने चुपचाप राजधर्म की बलिवेदी पर इसे बलि हो जाने दिया। पर अब तो यह वनवास भोग रही है। बहुत ही छोटे लोगों के बीच रह रही है, राजधानी के ऐश्वर्य से दूर, अब भी राजधानी के पालतू प्रशंसक इसका पिण्ड नहीं छोड़ते।

राजधानी का प्रसिद्ध पत्र है 'हिन्दुस्तान टाइम्स', भारत के सात्विक बिड़लाशाही पूँजीवाद का धरोहरी पत्र है बड़ा ही प्रबुद्ध और बड़ा ही सुरुचिसम्पन्न। उसने 'फिराक' का आक्रोशपूर्ण निबन्ध छापते हुए यह प्रकाशकीय अभिमत दिया है——

"फिराक गोरखपुरी ने आक्रोश से भरकर हमारी सांस्कृतिक गतिहीनता का पर्यालोचन किया है। उर्दू के इस शायर ने हिन्दी प्रदेश के रोगों का गहरा निदान किया है और कुछ तात्कालिक औषध भी सुझाई है।" अब जरा फिराक गोरखपुरी द्वारा प्रस्तुत हिन्दी प्रदेश का सांस्कृतिक गतिरोध भी देखा जाय। फिराक गोरखपुरी हिन्दी प्रदेश को भारत का सबसे सबल और सबसे दुर्बल अंग मानते हैं। यह प्रदेश सबल इस माने में था, इसने इस्लाम की चुनौती स्वीकार की और दुर्बल इस माने में कि यह प्रदेश इण्डो-मुस्लिम संस्कृति (यह राजधानी की अपनी खास ईजाद है, जो मुस्लिम को हिन्दुस्तान से बाहर भी रखती है, और हिन्दुस्तान के साथ संयुक्त रखती है, पर जो भारतीय में मुस्लिम को अन्तर्भूत मानने का साहस नहीं करती) से प्रेरणा ग्रहण करके भी कुंठित ही रह गया। इसी कारण हिन्दी साहित्य ने "भारत की राजनैतिक और सांस्कृतिक राजधानी दिल्ली के आसपास की भाषा ग्रहण करने में" इतनी देर लगाई। खुदा भला करे हिन्दी प्रदेश के उन शहरी लोगों का जिन्होंने एक इन्तिहा दर्जे की शहरी फसीह और महीन जबान को अपनाया, जिसमें महज दो हजार अरबी-फारसी के शब्द थे (बाद में उनकी वंश-वृद्धि हुई तो यह सृष्टि का क्रम था।) ये शब्द आम जनता की जबान में घुल-मिल गये थे (आम जनता से मतलब दरबार के आस-पास शासन की फिरकी पर नाचनेवाली नौकरशाही या सामंतशाही से है)।

हिन्दी प्रदेश की दूसरी बड़ी नादानी यह थी कि उसने अंग्रेजी तमद्दुन को भी तरजीह न दी, जब कि अंग्रेजी तमद्दुन ने ही ७५ वर्षों तक राष्ट्र का निर्माण किया। फिराक साहब जब अपना दिल टटोलकर पूछते हैं कि हमने ऐसा करके भाषा, संस्कृति और अपनी मेधा पर आघात नहीं पहुँचाया तो उनके दिल से आवाज आती है कि हाँ। वे आज की हिन्दी को नकली हिन्दी कहते हैं क्योंकि इसमें संस्कृत के शब्द हैं; इसमें जनभाषा के शब्द नहीं हैं और इसमें अंग्रेजी और उर्दू के शब्दों का बहिष्कार है। यह

हिन्दी मदनमोहन मालवीय, जवाहरलाल नेहरू, श्रद्धानन्द और डॉ० भगवानदास जैसे महापुरुषों को जन्म देने में असमर्थ है।

वह तो उनके पीछे की दूसरी, तीसरी, चौथी और पाँचवीं पंक्ति को भी नहीं तैयार कर सकती। इस हिन्दी ने हमारे लोगों को बौना बना दिया है।

संस्कृत है ही जंगली भाषा, तभी तो फिराक को शिकायत है कि हिन्दी गाली-गुफ्ता की भाषा बनती चली जा रही है और उर्दू परम्परा के अभाव में विद्यार्थी अब उस तहजीब का और उस अदा का पालन नहीं करते जो कि मुगल दरबारों तक पहुँचने की पहली सीढ़ी थी। इसी के कारण विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता आ गयी है। हिन्दी के ही कारण माध्यमिक और विश्वविद्यालय शिक्षा उपहासास्पदता को प्राप्त हो गयी है। संक्षेप में सांस्कृतिक गतिरोध के मुख्य कारण हैं--(१) अंग्रेजी का विरोध और उसे प्रोत्साहन न देना (२) उर्दू का विरोध और उसे प्रोत्साहन न देना और (३) एक ऐसी हिन्दी की स्थापना जो कि हिन्दी का मजाक है।

फिराक ने अन्त में यह प्रश्न पूछा है कि क्या इस खतरे की सूचना देना हिन्दी के हित का विरोध है? (जी नहीं, आप जैसे हितचिन्तक जुग-जुग जियें।)

अंग्रेजी और उर्दू के गठबन्धन का यह तमाशा नया नहीं है। आज से सौ वर्ष पहले भी दो फातेह (विजेता) संस्कृतियों ने हाथ मिलाये थे और मफतूह (विजित) संस्कृति ने तब भी घुटने न टेके थे। संविधान बनने के समय उर्दूपरस्तों ने अंग्रेजी का नाम नहीं लिया। वे हिन्दुस्तानी के लिए आग्रह करते रहे। पर जब हिन्दी प्रदेश के बाहर वालों की प्रेरणा से हिन्दी स्वीकार कर ली गयी तो फिर से अंग्रेजी के लिए कोशिश की जाने लगी क्योंकि वे प्रदेश अंग्रेजी को स्वीकार कर सकते थे। फिराक ने हिन्दी की सेवा ही की है। उनके दिल का यह गुबार एक म्रियमाण किंतु खतरनाक संस्कृति का गुबार है। वह संस्कृति बनावट, शोषण, गुलामी, विकृत सामाजिक रुचि और छिछले रूमान की संस्कृति है। भारत की संस्कृति के प्रखर ताप से बचने के लिए ये शीशमहल विदेशी पौधों के रख-रखाव के लिए खड़े किये गये। अब अगर इन शीशमहलों पर रोशनी के तीर आकर टूटते हैं तो सिवा इसके कि रोशनी को ही जी भरके कोसा जाय दूसरा चारा ही क्या रह जाता है। हिन्दी-साहित्य की परम्परा के बारे में यह कहना कि वह बँधी हुई परम्परा है, कल्पनातीत गजनिमीलिका है। हिन्दी ने प्रभाव मुक्त भाव से ग्रहण किये हैं। वह केवल शहर के गली-कूँचों की भाषा नहीं है, घुटन-भरे और घुटने टेक राजदरबारों की भाषा नहीं है; वह भाषा है गाँव देहात के मुक्त गगन की, आँधी-पानी की, धूप की और नदी के सीधे बहाव की। हिन्दी साहित्य का जातीय बोध किसी एक धर्म, एक विश्वास, एक भौगोलिक सीमा, एक सामाजिक स्तर, एक व्यवहार, एक शाही घराने या एक सम्प्रदाय तक (चाहे वह राजनैतिक हो या धार्मिक) न कभी सीमित रहा है न कभी सीमित रहेगा। उसने राष्ट्र की एकता को इसलिए प्रतिध्वनित किया कि विश्व-शक्ति का यह तकाजा था कि कोई राष्ट्र पराधीन न हो, दलित न हो। हिन्दी-साहित्य के शक्तिशाली स्वर ने रूढ़ियों का और जीवन-विरोधी शक्तियों का हमेशा खण्डन किया है। कठमुल्लापन और पोंगापन्थ हिन्दी की प्रकृति को कभी भी ग्राह्य नहीं रहे हैं। कबीर और तुलसी ने अशिव शक्तियों को फटकार बताने के लिए जो भाषा अपनाई है वह भाषा लाग-लपेट की भाषा नहीं है। वह प्रखर और स्पष्ट भाषा है। उस भाषा का सहज संस्कार हिन्दी के साहित्यकारों के नैतिक साहस से आया है। हिन्दी ने इस्लाम से प्रभाव ग्रहण किया पर वह प्रभाव राज-दरबार के माध्यम से नहीं आया, वह प्रभाव आया अलमस्त फकीरों के माध्यम से--उन फकीरों के माध्यम से जिनको कट्टरपंथी शाहंशाह सूली पर चढ़वाते थे और जो फकीर विश्व की समरसता की तलाश में हमारे संतों के सहयात्री थे। हिन्दी ने पश्चिमी साहित्य से भी प्रभाव ग्रहण किया, न निलहे साहबों के माध्यम से, न इँगलैण्ड के समाज-बहिष्कृत छोकरों के माध्यम से। हिन्दी ने अंग्रेजी से प्रभाव ग्रहण किया उन तत्त्वजिज्ञासुओं के माध्यम से, जिन्होंने भारतीय जन की संस्कृति-सम्पन्नता को आशंसा की दृष्टि से देखा और जिन्होंने हमारे बौद्धिक प्रकाश में ग्रीक संस्कृति की सी प्रखरता पायी। हिन्दी ने प्रभाव ग्रहण किया उन रोमांटिक-कवियों से जिन्होंने प्रकृति-प्रेम, स्वाधीनता, विश्वमैत्री और समता तथा सामाजिक न्याय के गीत गाये थे, जिनमें से कुछ ने तो दूसरे देशों के स्वाधीनता-संघर्ष में अपनी आहुति भी दी। हिन्दी ने सामाजिक न्याय

के लिए संघर्ष करनेवाले पश्चिमी विचारकों से प्रभाव ग्रहण किया। और अंत में इन सब प्रभावों को अपने जीवन प्रतिमान की संघटना में यथोचित स्थान देने के लिए, देश के स्वाधीन होने के बाद, हिन्दी ने अपनी समग्र परम्परा का आकलन किया। उसने अपने को पूरे देश के साथ जोड़ा, पूरे इतिहास के साथ जोड़ा और पूरी विश्व-सत्ता के साथ जोड़ा। इस जोड़ने की प्रक्रिया में उसे स्वाभाविक रूप में संस्कृत की शब्द-राशि से सहायता मिली। संस्कृत जनभाषा के रूप में अपना स्थान दूसरी भाषाओं को देने के बाद भी दार्शनिक चिन्तन, बौद्धिक अनुसंधान और सांस्कृतिक व्यवहार की भाषा १५०० वर्षों तक बनी रही और अभी भी बनी हुई है। हिन्दी कोई कोठरी नहीं है जिसमें प्रभाव ग्रहण करने के लिए खिड़की खोलने की जरूरत पड़े। वह एक खुला मैदान है जिसमें प्रभाव मुक्त-भाव से अपने आप आते हैं। यदि वह कायदे अदब के शिकंजों से बँधी भाषा नहीं है तो यह उसकी शक्ति है, उसका अपराध नहीं। हिन्दी-साहित्य को काश एक बार परिश्रम करके फिराक साहब पढ़ते तो उन्हें विक्टोरियन-युग के महामानवों के पीछे भटकने की जरूरत न होती। हिन्दी-साहित्य की आधुनिक चेतना ने छोटे मानव में भी शक्ति के केन्द्र दीपित कर दिये हैं।

भारतीय भाषाओं में और साहित्यों में अग्रस्थान ग्रहण करने का हिन्दी ने आग्रह नहीं किया। वह इन सबकी संयोजक शक्ति के रूप में बनी रहना चाहती है। हिन्दी की यह विनय हिन्दी के हीन भाव के कारण नहीं है। **अब वह समय आ गया है जब हम हिन्दी की संतानों को क्षमा प्रार्थना के स्वर में नहीं, सत्य-स्थापना के स्वर में यह दृढ़ता-पूर्वक कहना चाहिये कि राज-भाषा होने के लिये हिन्दी अब अपने को अपमानजनक शर्तों पर बेंचने को तैयार नहीं है। राज-भाषा का पद हिन्दी के लिए बहुत छोटा पद है। हिन्दी का साहित्यकार राजस्तुति को, प्राकृतजन के गुणगान को हमेशा तुच्छ और हेय कवि-कर्म मानता आया है। वह हमेशा से तेज का उपासक रहा है—वह तेज चाहे छोटे-छोटे से आदमी में हो पर हो वह ऐसा कि उसमें समग्र विश्व का तेज प्रतिबिम्बित हो। हम शासन के दबाव के कारण नहीं, अपने दायित्व के बोध के कारण समग्र भारत के जीवन के संस्पर्श से हिन्दी को पुलकित कर रहे हैं और करेंगे। प्रकाश की किरण देश या विदेश के किसी भी कोने से आये उसे ग्रहण करेंगे।** पर उसके साथ ही हम प्रत्येक ऐसी बाधा का या दीवाल का भंजन भी करेंगे जो हमें घेरती हो, जो हमारे प्राणों को बन्धन में डालती हो और जो हमारे प्रकाश को रूँधती हो। हिन्दीवालों ने न तो अंग्रेजी का तिरस्कार किया न उर्दू का, **उन्होंने अंग्रेजी की गुलामी का तिरस्कार किया और करेंगे, उन्होंने उर्दू की एक विलग और अस्वाभाविक सत्ता का खण्डन किया और करेंगे।** रही बात हिन्दी प्रदेश में सांस्कृतिक गतिरोध की, यदि **आज के राजनैतिक और साहित्यिक नेता अँग्रेजी-परस्त सरकारी नौकरियों में भरती को ही संस्कृति का मापदंड मानते हों तो हिन्दी प्रदेश सदा से इस ओर से कुछ उदासीन रहा है। उदासीन न रहता तो हिन्दी के ही खिलाफ फतवा देनेवाले ये नेता आज इस स्थिति में और इन पदों पर न होते कि हमारे ही प्रदेश में वे हमारे विरुद्ध मजे से विष उगल सकते।** यदि संस्कृति का मापदंड साहित्य, कला एवं विज्ञान है तो मैं नहीं समझता कि गति-रोध कहाँ है और किस प्रकार है। केवल आँकड़े लीजिए तो हिन्दी में सबसे अधिक पुस्तकें छपी हैं और उर्दू साहित्य भी न केवल देवनागरी में छप रहा है बल्कि अधिकाधिक मात्रा में उन्हीं जंगली संस्कृत तत्सम शब्दों का पर्याय कोष्टक या पाद-टिप्पणी में देते हुए छप रहा है। यदि वैशिष्टच के आधार पर ही परीक्षा करें तो जितना जागरूक और तीव्र प्रयत्न सांस्कृतिक चेतना को उद्बोधित करने के लिए हिन्दी में है वह विश्व की किसी भी समृद्ध आधुनिक भाषा के समकक्ष कहा जा सकता है। यह जरूर है कि हम हिन्दी वाले स्वयं अपनी क्षमता और अपनी उपलब्धि के बारे में आत्मविस्मृत रहते हैं। मुझे उन हिन्दी के अध्यापकों और हिन्दी के हिमायती नेताओं पर बड़ी दया आती है, जो हाथ जोड़कर यह कहते हैं कि हिन्दी को अभी बंगला और तमिल से सीखना है। कहना यह चाहिए कि प्रत्येक भाषा को और प्रत्येक साहित्य को दूसरी भाषा से और दूसरे साहित्य से, यदि वे भाषा और साहित्य जीवित रहना चाहते हैं तो, सीखना ही होता है और प्रतिदान में कुछ देना ही होता है।

हमें फिराक के शिकवे में आक्रोश का स्वर नहीं मिला। 'हिन्दुस्तान टाइम्स' का क्रोध-मापक यंत्र कुछ अधिक सुकुमार होगा। मुझे तो सिर्फ एक राँड़ के रोने का स्वर मिला जो हर दुर्भाग्य को अपने सुहाग के लुटने के साथ जोड़ देती है। **सांस्कृतिक गतिरोध फिराक का है हिन्दी प्रदेश का नहीं, और इस गतिरोध का कारण हिन्दी नहीं है, बल्कि हिन्दी को न स्वीकार करने की जिद है।**

'हिन्दुस्तान-टाइम्स' के सप्ताहिक विधाता ने 'बनाये लल्लू और सराहे छबीले' की उक्ति चरितार्थ की है। वे अपनी अंग्रेजीपरस्त कच्छप वृत्ति के लिए एक सहारा पाकर मगन हैं कि उनके मर्ज में मुबतिला एक और मिला जिसे वे रोग कहते हैं वह निदान है और जिसे निदान कहते हैं वह उनके मन का रोग है। जिन लोगों ने समझदारी को अंग्रेजीपरस्ती से जोड़ रखा है उनकी बुद्धि की दवा सिर्फ नेचुरोपैथी हो सकती है। खुले मैदान में घूमें, धूप लें, नदी में नहायें और चक्की का पिसा खायें। इसके अलावा दूसरी सलाह क्या दूँ?

दिनचर्या

श्री रामधारीसिंह 'दिनकर'

प्रातःकाल

कहो अन्धविश्वास या कि आदत ही कह लो,
जैसे ही टूटती सुबह में नींद, नयन खुलते हैं,
हरि का लेता नाम, देखता हूँ अपने हाथों को;
तब शरीर को तान तनिक फुर्ती तन में भरता हूँ।
नहीं देखता, कौन कहाँ सोया है, कौन जगा है;
सबसे पहले दर्पण में निज को देखा करता हूँ।
इस विचार से नहीं कि मेरा मुख सबसे सुन्दर है।
(अब सौन्दर्य कहाँ ? आँखों के पास मेघ छाये हैं,
गालों पर गंगा-यमुना के स्रोत निकल आये हैं।)
किन्तु, देखने को, जितना कुछ कल मैं ने खोया था,
सूर्य-संग कर होड़ रात जितना जल कर रोया था,
वह प्रवाह मिट गया कि उसका दाग अभी बाकी है ?
निद्रा ने कुछ दिया कि कल की वही बुझी झाँकी है ?
तब तक घर में कई-कई अखबार पहुँच जाते हैं,
भोर-भोर ये चुगलखोर कितनी चुगली खाते हैं !
किसने काटी किसे चिकोटी या भोंका भाला है,
फटे हुए पाजामे को कुछ और फाड़ डाला है ?
किसने किसको सुई चुभोयी, कौन कहाँ रोता है ?
कौन छीन किसके कंधे से, भार स्वयं ढोता है ?
कहाँ जगा है देश ? कहाँ जगने की तैयारी है ?
यानी होगी कहाँ, कहाँ हड़ताल आज जारी है !
जीता कौन दबंग, शील में फँसा कौन हारा है,
बीच सड़कपर किसने किसको उलटा दे मारा है ?
फिर जपता कुछ नाम, देवता को धोखा देता हूँ,
बच्चा हूँ, माँ से चाहे जो चीज माँग लेता हूँ।
धरता हूँ जब ध्यान, सामने माता आ जाती है,
कहती तो कुछ नहीं, समझ सब कुछ हँसती जाती है।
फटी शान्ति को, इस प्रकार, जैसे-तैसे सींता हूँ,
मधुमेही हूँ, चना चबा कर चाय जरा पीता हूँ।

मुलाकाती

तब तक, जानें, कहाँ-कहाँ के लोग पहुँच जाते हैं,
'होम टास्क' मेरे निमित्त कुछ नया रोज लाते हैं।
मंत्री के हो मित्र, यार, बस, इसे बहाल करा दो,
बड़ा पुण्य होगा भाई, यह गोटी लाल करा दो।
और हाय, यह बेकसूर तो नाहक आन फँसा है,
दफ्तर में साजिश है जो, उसने ही इसे डँसा है।
तुम्हें ज्ञात ही है, अफसर किस कदर दुष्ट होते हैं !
हिन्दी के हामी पर तो बेवजह रुष्ट होते हैं !
सुनता हूँ सब, कभी शान्ति से, कभी चीख पड़ता हूँ,
नरम किसी को और किसी को गरम दीख पड़ता हूँ।
पर, जैसे भी सुनूँ, किसी का काम नहीं होता है,
सत्ता का पर्याय खोखला नाम नहीं होता है।

डाक

तब तक आती डाक, भीड़ से अलग छूट पड़ता हूँ,
बंडल पर भूखे मनुष्य के सदृश टूट पड़ता हूँ।
किन्तु, रोज ही सब्जी कम, कंपोस्ट अधिक होते हैं,
बन्द लिफाफे विरल, खुले बुक-पोस्ट अधिक होते हैं !
खैर, खोलिये उन्हें अगर तो वही एक क्रन्दन है,
'बन्धु ! यहाँ ऊँचे कवियों का भारी सम्मेलन है।
निश्चय ही, इस बार आप, आशा है, दर्शन देंगे।
यह भी बतलाइये, फीस, कम से कम, कितनी लेंगे।'
ज्यादातर चुप ही रहता हूँ; पर, जी डरता है,
हाँ-हूँ या ना-नू करके कुछ लिखना ही पड़ता है।
यानी 'अब थक गया, मंच पर ठीक नहीं छजता हूँ,
'आर्केष्ट्रा' तो छोड़ चुका, हाँ, 'सोलो' कुछ बजता हूँ।
सो बजदूँगा, मौका गर मिल गया उधर आने का,
आप-सरीखे काव्य-प्रेमियों का दर्शन पाने का।'

(काव्य-प्रेम के ये मतवाले बड़े दिव्य होते हैं,
ले जाने के समय आपके पाँव तलक धोते हैं।
किन्तु, लौटते समय आप इनको अद्भुत पायेंगे,
'आटोग्राफ' भले माँगें, पर, कार नहीं लायेंगे।)

साहित्य-संलाप

अब सुनिये, संध्या को जब साहित्यकार आते हैं,
एक साथ कितनी बातें कविता की कह जाते हैं।
'मात्र काव्य ही नहीं, भविष्यत् जग का बड़ा विषय है,'
कहते हैं, 'ग्रह सभी वाम हैं, अच्छा नहीं समय है।'
फिर कहते, हम सोच 'रहे जो, कभी सत्य सब होगा।'
भूले भी मैं नहीं पूछता, 'आखिर, यह कब होगा ?'
एक भाव है और, मुझे जो बहुतों में दीखा है,
छिपा रखूँ क्यों भेद, इधर जो वर्षों में सीखा है ?
वह कवि हरगिज नहीं, और को भी जो कवि कहता हो,
सूर्य नहीं वह, अपर सूर्य को भी जो रवि कहता हो।

संसद में

'वृथा फँसे हम सब,' बनारसीदास सदा कहते हैं,
'जंगल छोड़ कभी योगी क्या शहरों में रहते हैं ?
मगर, आन ही फँसे अगर तो समय नहीं खोओ रे !
जैसे मैं सोया रहता, तुम भी सुख से सोओ रे !
जगे अगर, तो सच कहता हूँ, पीछे पछताओगे,
पकड़ गये तो, अजब नहीं, मंत्री ही बन जाओगे।
छूट जायगा काव्य, बना कर मर्कट नचवायेंगे,
आगे करके नमन, पीठ पीछे बिचकायेंगे।'
चौबेजी पर भक्ति हमारी विरल नहीं, महती है,
लेकिन, उनकी सीख हमेशा याद नहीं रहती है।
सच है, नींद बहुत अच्छी, जगना ही काम बुरा है,
खलल यही, पंडितजी कहते हैं, आराम बुरा है।
सो लेता हूँ तनिक देर, जब नींद कभी लगती है,
पर, जैसे ही राजनीति की सुखद खाज जगती है,

घर से भाग तुरंत पार्लियामेंट पहुँच जाता हूँ,
किन्तु, सभा में कभी देर तक बैठ नहीं पाता हूँ।
इधर-उधर झूमता घूमता मस्ती या पस्ती में
आखिर जाता पहुँच उसी कोलाहल की बस्ती में——
जिसकी मौजें बेमिसाल, चुहलों की शान गजब है,
सचमुच, 'सेंट्रल हाल' देश का बड़ा सियासी क्लब है।
बीत रहा क्या बंगलोर में, पटने या झूँसी में,
ये खबरें फैलतीं यहाँ चुप-चुप कानाफूसी में।
छिपकर चलता सत्य (उसीको हाय ! सभी से भय है !
लेकिन, वह प्रत्यक्ष, मंच का जो केवल अभिनय है।
कभी-कभी, पर, दर्द हृदय का दूना हो जाता है,
कर 'नवीन' की याद, हाल यह सूना हो जाता है।
फिर भी, माँ की कृपा, मित्र अब भी अनेक छाये हैं,
बड़ी बात तो यह कि 'लोहिया' संसद में आये हैं।
मुझे पूछते हैं, 'दिनकर', कविता में जो लिखते हो,
वह है सही याकि वह जो तुम संसद में दिखते हो ?'
मैं कहता हूँ, 'मित्र ! सत्य का मैं भी अन्वेषी हूँ,
सोशलिस्ट ही हूँ, लेकिन, कुछ अधिक जरा देशी हूँ।
बिलकुल गलत 'कमून', सही स्वाधीन व्यक्ति का घर है,
उपयोगी विज्ञान, मगर, मालिक सबका ईश्वर है।
अच्छे लगते मार्क्स, किन्तु है, अधिक प्रेम गाँधी से,
प्रिय है शीतल पवन, प्रेरणा लेता हूँ आँधी से।
नहीं चाहता युद्ध, लड़ाई, लेकिन, अगर ठनेगी,
किसी तरह भी शान्तिवाद से मेरी नहीं बनेगी।
जब तक युद्ध शेष, तब तक है बड़ा महत्त्व छुरी का,
झूठ नहीं यह बात, नहीं कायल मैं किसी धुरी का।
'शाश्वत' कहते जिसे, लाख उस सुख का ध्यान धरूँ मैं,
महाकाल का मन से जितना भी सम्मान करूँ मैं ;
वर्तमान के लिए होम, लेकिन, सब कुछ देता हूँ,
और बदलती घड़ियों से आदेश सदा लेता हूँ।
एक नहीं, दोनों ध्रुव मेरे भीतर धँसे हुए हैं,
सभी सत्य अपने-अपने शिखरों पर बसे हुए हैं।

इसीलिए, चलदल-समान रह-रह डोला करता हूँ,
जब होता हूँ जहाँ, उसी ध्रुव से बोला करता हूँ।
अलम् नहीं, बस, आँख मूँद अपने मन का मंडन ही,
कभी-कभी चाहिए सत्य के लिए आत्म-खंडन भी।
इसीलिए, मैं ने स्वतंत्रता-सार बचा रक्खा है,
अपनी बात काटने का अधिकार बचा रक्खा है!
खादी के नीचे महीन गैरिक वर्दी रखता हूँ,
जो खिलाफ लड़ते, उन पर भी हमदर्दी रखता हूँ।
न तो भूत का मित्र, न भावी का ही मैं स्रष्टा हूँ,
दोनों में चल रहा द्वन्द्व जो, मैं उसका द्रष्टा हूँ।
जिये देश का वह अतीत, जो आगे जी सकता है,
पिये हिन्द नूतन प्रकाश, जितना भर पी सकता है।
गत के साथ अनागत का संघर्ष मुक्त चलने दो,
सूख चुकी जो स्वयं, शीर्ण उस शाखा को जलने दो।
पर, तुम रहो तटस्थ, शस्त्र मत दो भविष्य या गत को,
भारत स्वयं बचा लेगा अपने स्वरूप शाश्वत को।
जितना ही यह देश अंधड़ों के झोंके खाता है,
पुनः आप अपने समान उतना ही हो जाता है।
हम उधार के आदर्शों पर बहुत फूल जाते हैं,
कभी-कभी अपना सारा इतिहास भूल जाते हैं।
मँगनी के तूफान और अंधड़ में जितना बल है,
उससे कहीं अधिक भारत का अपना भाव प्रबल है।
जो भी आवें वाद, प्रथम तो उन्हें अंक भर लेंगे,
पर, सबको हम कभी खरल में घोंट एक कर देंगे।
इसी देश में कभी जगत् का द्वन्द्व शमन पायेगा,
नया रूप धर कर समक्ष फिर वही धर्म आयेगा—
भूल चुके पंडित, पर, भूली जिसे नहीं जनता है,
ध्येय विपुल धन नहीं, ध्येय तो समुचित निर्धनता है।
अभी विषम है देश, पीट कर समतल इसे करेंगे,
जहाँ-जहाँ हैं खड्ड, तोड़ शिखरों को उन्हें भरेंगे।
भोगेंगे सुख, पर, भोगासुर के न ग्रास हम होंगे,
यंत्र चलायेंगे, पर, यंत्रों के न दास हम होंगे।
अति लोभी जो भृत्य, वही होता गुलाम स्वामी का,
यही हाल है लोभ-ग्रस्त मानव विलास कामी का।
जब तक नित्य नवीन सुखों की प्यासी बनी रहेगी,
मानवता तब तक मशीन की दासी बनी रहेगी।
जो सुख हैं अनिवार्य, प्राप्त हम, रातों-रात करेंगे,
जहाँ-जहाँ अवरोध, वहाँ खुल कर आघात करेंगे।
निर्धन का धन बढ़े, घटें धनवान, बात समुचित है,
पर, भोगों की तृषा जगाना बहुत-बहुत अनुचित है।
बेलगाम यदि रहा भोग, निश्चय संहार मचेगा,
मात्र गरीबी-छाप सभ्यता से संसार बचेगा।'

रात के समय

जब है आती रात, खोजता हूँ खोये सपने को,
अँधियारे में हाथ बढ़ा ढूँढ़ता आप अपने को,
ग्रन्थों के अक्षरों, विचारों में, निगूढ़ ध्यानों में,
लिखी हुई कविताओं में, अनलिखे गुप्त गानों में।
उन कुंजों में जहाँ मदिरनयनाएँ कभी मिली थीं,
उन वृन्तों पर जहाँ मुग्ध कलिकाएँ कभी खिली थीं,
उस गवाक्ष पर खुला जहाँ से व्योम दीख पड़ता है,
दोपहरी का सूर्य, निशा का सोम दीख पड़ता है;
भीतर के उस अन्ध-कूप में जहाँ तिरोहित मन है,
उतराते उठ जहाँ अतल से स्वप्न मूक, निःस्वन हैं।
शब्दों के भीतर अशब्द इन स्वप्नों को लाने को,
स्वर में किसी भाँति भर कर निःस्वरता को गाने को।
छन्दों का ले जाल, घात में सदा लगा रहता हूँ,
रात-रात भर ध्यान-मग्न निःशब्द जगा रहता हूँ।
ये सपने, ये दृश्य प्राण में उड़े-उड़े फिरते हैं;
कभी-कभी लगता, आँखों के बहुत पास तिरते हैं।
किन्तु, हाय! इस अतल कूप की मिलती थाह नहीं है,
हम हैं जहाँ, वहाँ जाने की, शायद, राह नहीं है।
बहुत देर तक मुझे रोज माया यह भरमाती है,
प्रभु की कृपा, थके कवि को भी निद्रा आ जाती है!

मीरां एवं आण्डाल के पदों में स्वप्न-साम्य

श्री एन० सुन्दरम् एम० ए० 'प्रचारक'

श्री गिरधरलाल की प्रेमिका मीरां तथा श्री रंगनाथ[1] की प्रिया आंडाल दोनों का भारतीय साहित्य में विशिष्ट स्थान है। मीरांबाई तथा आण्डाल, दोनों, वैष्णव साधना में गोपी-भाव अथवा मधुर-भाव की उपासिका थीं। आण्डाल द्वारा प्रवर्तित साधना-भक्ति और मीरांबाई की साधना-भक्ति दोनों एक ही है। गंभीर भाव से दोनों के साहित्य या दर्शन पर विचार करने से दोनों की साधना-पद्धति एक सी दिखायी पड़ती है। आण्डाल अपने पिता पेरियाष्वार[2] के साधन-पंथ और मीरांबाई महाप्रभु चैतन्यदेव से अधिक प्रभावित हुई थीं। मीरां और आण्डाल दोनों द्वारा प्रदर्शित प्रेम-विरह गर्भित एवं मार्मिक है। दोनों ने एक ही प्रकार से अपने "सुपने में परण" (स्वप्न में विवाह) जाने का विस्तृत परिचय देकर उसका कारण पूर्व जन्म का भाग्य कहकर समर्थन किया है।

बालापन से ही आण्डाल एवं मीरां के मन में अपने आराध्य देव के प्रति कांता भाव की भावना अंकित हो गयी थी। अपने आराध्यदेव के प्रति इस आकर्षण के अनुभव को रागानुगा भक्ति कहते हैं। इस भक्ति में मानसिक दृढ़ संकल्प तथा सेवा-भाव अत्यधिक प्रमुख स्थान पाते हैं। यह रागानुगा भक्ति-भावना राग अथवा प्रेम पर ही पूर्णतया आधारित है। अपने संकल्प को साकार देखने के लिए भावना के लोक में विचरते-विचरते भक्त परमानंद प्राप्त करता है तथा प्रियतम से सान्निध्य का अनुभव करता है। भावना के लोक में मग्न, भक्त, अपने प्रियतम के लीला गुणों में गोते लगाता कभी नहीं अघाता और उनकी लीलाओं में अपने अस्तित्व को भूल जाता है। इस अवस्था को ही "भावजगत् में निमग्न" कहते हैं।

आण्डाल और मीरां इसी भाव-जगत् में मस्त रहती थीं और स्वप्न में अपने आराध्यदेव को पति रूप में परिणत होने की कल्पनाएँ किया करती थीं। क्योंकि अपने प्रियतम के प्रति उन दोनों की प्रीति एक जन्म की नहीं है अपितु पुरानी है। अपना संबंध घोषित करते हुए मीरां कहती हैं—

"मेरी उण की प्रीत पुराणो उन बिनि पल न रहाउँ"
"म्हे तो जनम-जनम की दासी थें म्हारा सिरताज[3]"

आण्डाल ने तो अपने को प्रियतम को ही अर्पण कर दिया है। आण्डाल कहती हैं—

एर्रैक्कुम एष़ेष़ पिरविक्कुम उन्ट्रन्नोड्डे
उट्रोमेयावोम उनक्के नाम आट सेय्वोय"[1]

अर्थात्—सात जन्म से हम तुम्हारी दासी ही रहती आयी हैं। हम तुमको ही अपना सर्वस्व समर्पण करेंगी।

मीरां एवं आण्डाल की मिताई एवं सगाई बचपन से ही अपने प्रियतम श्री गिरधरलाल एवं श्री रंगनाथ से हो गयी थी। अतः वे सदा एक ही की प्रिया बनी रहीं। सदा मीरां अपने को श्रीगिरधरलाल की वधू समझती रहीं तथा आण्डाल अपने को श्री रंगनाथ की परिणीता पत्नी मानती रहीं।

दोनों ने स्वप्न में अपने प्यारे प्रियतम के दर्शन मात्र ही नहीं किये, अपितु पूर्व जन्म के भाग्य से, स्वप्न में, प्रियतम ने ही आकर उनसे ठाठ-बाट से परिणय संबंध स्थापित कर लिया। दोनों के स्वप्न-विवाह के चित्रण से तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक चित्र की झाँकी मिलती है। आण्डाल तमिष् संस्कृति में ब्राह्मण भक्त परिवार में पली थीं। मीरां राजपूताने के वीर क्षत्रिय वंश की संस्कृति में पल्लवित हुई थीं। अतएव इन दोनों भक्त कवयित्रियों की रचना में अपने सामाजिक जीवन की छाप दिखायी पड़ना स्वाभाविक ही है।

आण्डाल अपने स्वप्न-परिणय की बात प्रिय सखी से कहती हैं—"हे सखी, मैंने सपना देखा कि श्रीमन्नारायण हजारों हाथियों से परिवृत नगर में आ रहे हैं। मार्ग में सर्वत्र तोरण बंधे हुए हैं। सभी लोग सुवर्ण-कलश लिये अगवानी कर रहे हैं।"

स्वप्न में सखी, मैंने देखा "सबने आपस में विचार-विमर्श करके यह निश्चय किया कि कल शुभ विवाह सम्पन्न करेंगे। कदली, पूंग आदि से विवाह-मंडप सुशोभित था। इस मंडप में तेजपुंज माधव पधारे।"

सखी, मैंने देखा, इन्द्रादि देवगण पधारे हैं। उन्होंने मेरे माता-पिता से प्रार्थना की कि वे अपनी सुपुत्री के साथ श्रीमन्नारायण का शुभ पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न कर दें। "स्वयं गिरिजा ने ही विवाह के शुभ अवसर पर अपने हाथों से माला तथा मंत्र-वस्त्र पहनाये।"

१ वारणमायिरम सूष़ वलम सेय्दु नारण नम्बि नटक्किन्ट्रानेदिर
पूरण पोर्कुडम वैत्तुप्पुरमेंगुम तोरणम नाट्टक कनाक्कण्डेन तोषि नान।

२ नालै वदुवै मणमेन्रु नालिट्टु पालै कमुगु परिसुडै पन्दर कीष़
कोलरि माधवन गोविन्दनेन्पानोर कालै पुगुदक कनाक्कण्डेन तोषि नान।

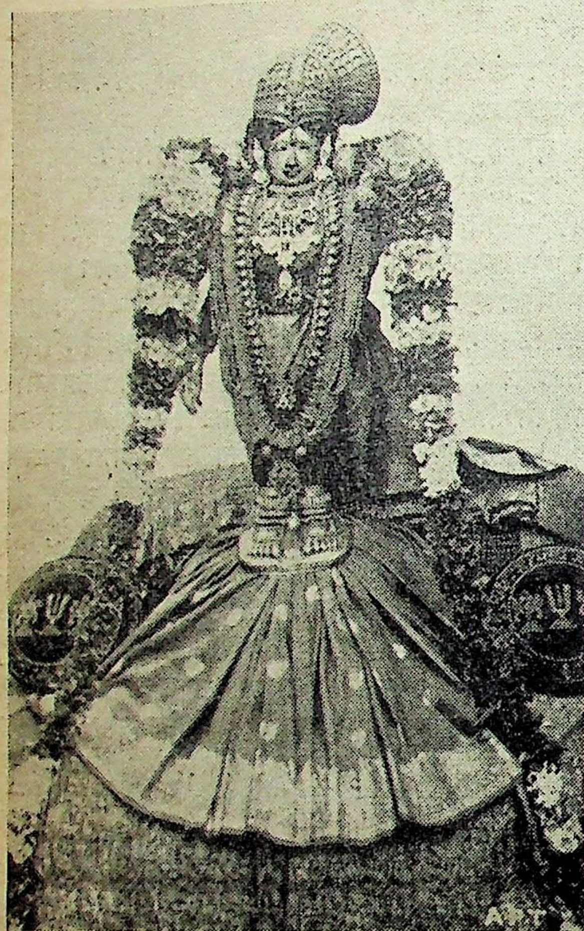
मीरां १६वीं शताब्दि की प्रसिद्ध भक्त कवयित्री हैं किन्तु तमिष़ भाषा की प्रसिद्ध वैष्णव कवयित्री आण्डाल का समय ८वीं शताब्दी है। इन्हीं दोनों की कविताओं का तुलनात्मक अध्ययन इस लेख का विषय है।—लेखक

१ विष्णु

२ "ष़" : तमिष़ में मूर्धन्य ड़ की भाँति इसका उच्चारण होता है।

३ मीरांबाई की पदावली—श्री परशुराम चतुर्वेदी

१ तिरुप्पावै—पद २९



आण्डाल।

श्रीविल्लिपुत्तूर में, जहाँ आण्डाल का जन्म हुआ, आण्डाल के नाम पर एक प्रसिद्ध मंदिर है जो "नाच्चियार देवस्थानम्" के नाम से प्रसिद्ध है। उस मंदिर में आण्डाल की मूर्त्ति प्रस्तुत चित्र में है। यह स्थान मदुराई (मदूरा) से ५० मील की दूरी पर है।

३ इन्दिरनुल्लिट्ट देवर कुषामेल्लाम वन्द्रिन्देन्नै मकट् पेसि मन्दिरत्तु
मन्दिरकोडियुडुत्ति मणमालै अन्दरि सूट्टक कना-क्कण्डेन तोषि नान।[1]

इसी भाँति मीरां से उसके पूर्व जन्म के सौभाग्य के कारण स्वप्न में स्वयं श्री गिरधरलाल ने आकर परिणय कर लिया। विवाहोत्सव पर छप्पन करोड़ जनों ने आकर अपनी साक्षी दी। उस अवसर पर चारों तरफ तोरण बँधे थे। श्री गिरधरलाल ने उसका पाणिग्रहण करके उसे अचल सौभाग्य प्रदान किया।

---

१ नाच्चियार तिरुमोषि ६।१, २, ३।

"छप्पण कोटि जहाँ जण पधारे दूलहा श्री भगवान
सुपणे में तोरण बांधियो जी, सुपणे में आयी जाण
मीरां को गिरधर मिल्या जी, पूर्व जन्म के भाग
सुपणे में म्हांने परण गया जी, हों गया अचल सुहाग"[1]

आण्डाल के समान मीरां भी अपने प्रियतम को हाथियों और घोड़ों के मध्य बरात में आते देख अत्यधिक आनंद का अनुभव करती है। सखी से कहती है कि हे सखी, स्वप्न में श्री गिरधरलाल ने मुझसे विवाह कर लिया। वे बरात में अनेक घोड़े और हाथी भी लाये थे।

"माईं में तो सपणा में परणी गोपाल।
हाथी भी लायो घोड़ा भी लायो और लायो सुखपाल।"[2]

आगे आण्डाल अपनी सखी से स्वप्न में विवाह का विस्तृत वर्णन करते हुए कहती हैं "सखी, मैंने स्वप्न में देखा कि वेदाभ्यासी अनेक ब्राह्मणोत्तमों ने चतुर्दिक् से तीर्थ-जल लाकर हम वर-वधुओं पर प्रोक्षण कर दिया। वेद-मंत्रों से हमें आशीर्वाद दिया। तदुपरांत माधव के हाथ के साथ मेरे हाथ बाँध दिये गये।"

"हे सखी, मैंने देखा कि हाथों में कलशधारी चारु-मुख परियाँ मेरे आराध्यदेव का स्वागत करने आयीं। उस समय मैंने मधुसूदन को गंभीर चाल से आते देखा।"

आगे आण्डाल अपनी सखी से बताती है कि कैसे प्रियतम श्री रंगनाथ के साथ वैदिक क्रम से विवाह संपन्न हुआ। हे सखी, मैंने स्वप्न में देखा कि मुक्ताओं से शोभित मंडप में शंख मदंग आदि बज रहे थे। मधुसूदन ने आकर मेरे हाथों को पकड़ लिया। द्विजवृन्द वेदमंत्रोच्चारण कर रहे थे। गज-सम चालवाले गोपाल ने मेरे पाणि पकड़कर अग्नि-परिक्रमा की।

१ नार्रिशैत् तीर्थ कोणर्न्दु ननि नल्गि पाप्पनच्चिट्टगल पल्लारडुत्तेत्ति
पूप्पुनैक्कनि पुनितनोडेन्रेन्नै काप्पुनाण कट्ट कना-क्कण्डेन तोषि नान

२ कदिरोलिदीपम कलसमुडनेन्दि सदिरिलमंगयैर ताम वन्देदिर कोल्ल
मदुरैयार मन्नन अडिनिलै तोट्टेंगुम अदिरपुगुदक कनाक्कण्डेन तोषि नान

३ मत्तलम कोट्ट वरिसंकम निन्रूद मुत्तुडैत्तामम निरै-तालन्द पन्दर् कीष्
मैत्तुनन नम्बि मधुसूदन वन्देन्नै कैत्तलम पर्र कना-क्कण्डेन तोषि नान।

---

१ मीरांबाई की पदावली--श्री परशुराम चतुर्वेदी
२ मीरां बृहत् पदसंग्रह--श्रीमती पद्मावती "शबनम"

४ वाय नल्लार नल्ल मरैयोदि मन्दिरत्ताल पासिलै
नाणल पडुत्तुप परिदि वैत्तु
काच्चिन मा कलिरन्नान एन कै पऱ्ऱि तीवलं सेय्य
कनाक्कण्डेन तोषि नान।[१]

मीरां भी स्वप्न में इसी प्रकार का चित्र देखती हैं। श्री गिरधरलाल ने आकर किस भाँति मीरां से सगाई की उसका वर्णन करते हुए वह अपनी सखी से कहती हैं कि हे सखी, गोपाल ने आकर मुझसे विवाह कर लिया। मैंने लाल व पीले रंग की चूनर पहनी थी। हाथों में मेंहदी लगा ली थी। अब मैं जगत् के जंजाल से छूट गयी हूँ। कोई मेरा क्या कर सकता है।

"माई री म्हांने सुपणे में परणी गोपाल
राती पीरी चूनर पहरी, मेंहदी पान रसाल
कांई करो और संग भांवर म्हांने जग जंजाल
मीरां प्रभु गिरधरन लाल सूं करी सगाई हाल।"[२]

आगे आण्डाल वैदिक क्रम से विवाह होने के उपरांत साधारण कार्य-क्रम जो वर-वधुओं के क्षेमार्थ किये जाते हैं उसका परिचय देते हुए कहती हैं—"हे सखी! मैंने स्वप्न में देखा कि मेरे जनम-जनम के रक्षक प्रभु श्रीमन्नारायण ने मेरे चरणों को अपने कर-कमलों से पकड़कर सिल पर रखा।" दक्षिण के ब्राह्मण परिवार में विवाहोपरांत उस दिन सन्ध्या समय वर को, वधू के पैर को उठाकर सिल पर रखने को कहा जाता है और ऐसा करने के बाद दोनों अरुन्धती नक्षत्र का दर्शन करते हैं। आण्डाल के स्वप्न पर अपने सामाजिक जीवन की छाप यथातथ्य रूप में पड़ी है।

इसके उपरांत "लाज-होम" करना अनिवार्य है। प्रयोगचन्द्रिका नामक ग्रंथ के विवाहोत्सव अध्याय में "लाज-होम" के बारे में बताया गया है कि पत्नी के भाई द्वारा धान की लाई को वर-वधुओं के हाथ में गिराकर अग्नि में डालकर "लाज-होम" करना चाहिए। इसका उद्देश्य पति और पत्नी से हास-परिहास करना एवं दोनों में निकटतम संपर्क स्थापित करने का प्रयत्न करना ही है। आण्डाल अपनी सखी से कहती है, "हे सखी! मैंने स्वप्न में देखा कि मेरे भ्राताओं ने मुझे और प्रियतम को अग्नि-कुंड के आमने-सामने खड़ा करके, हम दोनों के हाथों को मिलाकर "लाज-होम" कराया।" तदुपरांत आण्डाल ने अपने पति श्री रंगनाथ के साथ चंदन कुंकुमादि का शरीर में लेपन कर एवं मत्त गज पर आरूढ़ होकर नगर की परिक्रमा की। दक्षिण भारत में वर-वधूओं को नगर के सज्जनों से परिचित कराने के उद्देश्य से उन्हें बरात में ले जाने का रिवाज प्रचलित है।

१ इम्मैक्कुम एषेष् पिरविक्कुम पऱ्ऱावान नम्मैयुडैयवन
नारायणन नम्बि
सेम्मैयुडैय तिरुक्कैयाल ताल पऱ्ऱि अम्मि मिदिक्क
कनाक्कण्डेन तोषि नान।

२ वरिसिलै वाण्मुगत्तु एन ऐमार ताम वन्दिट्टु एरि-
मुगम पारित्तु एन्नै मुन्ने निरुत्ति
अरिमुगन अच्चुअन कैमलन कैवैत्तु पोरिमुगम तट्टक्
कनाक्कण्डेन तोषि नान।

३ कुंकुमप्पि कुलिरसान्दम मट्टिट्टु मंगल वीदि वल-
मसेय्द मणनीर
अंगवनोडुम उडनसेन्रु अंगानैमेल मंजनमाट्ट कना-
क्कण्डेन तोषि नान।[१]

मीरां भी इसी भाँति स्वप्न में देखती हैं कि उनका सारा शरीर विवाह के समय हल्दी के रंग से रँग दिया गया है :—

"माई, म्हांने सुपणे में परण गया गोपाल
अंग-अंग हल्दी में करो जी सूधे भीज्यो गात"[२]

मीरां और आण्डाल दोनों स्वतः नारियाँ थीं। अतएव उनका माधुर्य भाव तथा रागानुगा भक्ति मार्मिक एवं स्वाभाविक है। दोनों भक्त कवयित्रियाँ अपने आराध्य-देव की अनुपम एवं अलौकिक भक्ति में निमज्जित रहती थीं। दोनों ने श्री रंगनाथ के दर्शन के लिये अपना सारा शरीर जनम-जनम के लिए सर्मपित कर दिया था।

---

१ नाच्चियार तिरुमोषि—६।४, ५, ६, ७।
२ मीरां बृहत् पदसंग्रह—श्रीमती पद्मावती "शबनम"

१ नाच्चियार तिरुमोषि—६।८, ९, १०।
२ मीरां बृहत् पदसंग्रह—श्रीमती पद्मावती "शबनम"



मुहणोत नैणसी की ख्यात

श्री पद्मधर पाठक एम० ए०

मध्यकालीन भारत के इतिहास पर जितना भी प्रकाश डाला जा सका है, उसका मूल आधार फारसी की वे तवारीखें (इतिहास) हैं जिनको बादशाहों और वजीरों ने अपनी प्रशंसा में लिखवाया था। संदेह नहीं कि, वे इतिहास समकालीन हैं, आँखों देखा वर्णन करते हैं, किंतु सौ में अस्सी ऐसे हैं जहाँ केवल चाँद और सितारों की दुनिया से लाड़ लड़ाया गया है। कल्पना का पूरा सहारा लेकर इन इतिहासकारों ने इस्लाम धर्म का प्रचार करने की दृष्टि से बादशाह में अल्लाह को देखना चाहा पर वहाँ मानवता का कोई स्थान नहीं। पूर्व-मुगलकालीन इतिहास-कारों में तो यह भावना कूट-कूटकर भरी थी। अल-उतबी, बरनी, अफीफ, सीहरीन्दी, अमीर-खुसरो, इसामी, इन सभी का एक सा रवैया रहा। इन्होंने खुले आम सुलतानों, अमीरों, सूफी-संतों का यशोगान मात्र किया है।

मुगल-काल में आने पर थोड़ा परिवर्तन अवश्य हुआ किंतु यहाँ भी दरबारी लेखकों की अपनी सीमाएँ थीं जिसके कारण वे भी सत्ता की हाँ में हाँ मिलाते रहे। यही राजपूत राजवंशों के चारण-भाटों ने किया है। बुद्धि-बल का प्रयोग हमें अबुलफजल के 'आइने-अकबरी' में निःसंदेह थोड़ा बहुत देखने को मिलता है, लेकिन इस पुस्तक के पीछे अकबर का पूरा हाथ था और उसे अपने नये धर्म का विज्ञापन करना आवश्यक था। फिर भी 'आइने-अकबरी' ने इतिहास-लेखन को एक नया मोड़ दिया जिसने नैणसी की ख्यात को भी प्रेरणा प्रदान की है।

नैणसी की ख्यात राजस्थानी भाषा में लिखी गयी थी और इस कारण वह तत्कालीन समाज का प्रामाणिक चित्रण है। इधर कुछ समय से इतिहासकारों का ध्यान मध्ययुगीन भारत के सभी उपलब्ध साधनों को जुटाने की ओर गया है। फारसी तवारीखें काफी चर्चा का विषय बन चुकी हैं जिनके अनेक अंग्रेजी अनुवाद भी सुलभ हैं। राजपूताना, मालवा, गुजरात, बुन्देलखण्ड में प्रचुर मात्रा में सामग्री विद्यमान है जिसके आधार पर मध्ययुगीन भारत का अध्ययन बहुत आवश्यक है, किंतु यह साहित्य फारसी में नहीं है। जब तक इन्हें भी धीरे-धीरे प्रकाश में न लाया जाय तब तक फारसी ग्रंथों का ही सिक्का जमा रहेगा, और हम निश्चित रूप से एक अधूरे इतिहास के जानकार कहलायेंगे। यह भी आवश्यक नहीं है कि हम फारसी ग्रंथों को उपेक्षा की दृष्टि से देखें पर यह आवश्यक है कि सम्पूर्ण सामग्री की जानकारी प्राप्त हो। इस कारण नैणसी की ख्यात एक बहुत उपयोगी ग्रंथ है जिसकी प्रामाणिकता पर संदेह नहीं।

नैणसी मारवाड़ का रहनेवाला था। इसके पूर्वज जोधपुर राज्य के विश्वस्त सेवकों में थे। वह ओसवाल जाति का था और जिस 'मुँहणोत' गोत्र का था वे अपने को राठोड़ राव सीहा का वंशज मानते हैं। पिता का नाम जयमल था जो ई० सन् १६३९ में मारवाड़ का राज्य मंत्री बना। जयमल के पाँच पुत्रों में नैणसी और सुंदरदास प्रसिद्ध हुए। पंडित गौरीशंकर ओझा के अनुसार वि० स० १६६७ (ई० सन् १६११) में नैणसी का जन्म हुआ। उसने सैनिक के पद पर जोधपुर राज्य की तरफ से अनेक युद्ध जीते थे जिनमें तीन का उल्लेख कर देना उचित रहेगा :—

१—वि० सं० १६८९ (ई० सन् १६३२) में मेरों का दमन करना।

२—वि० सं० १६९४ (ई० सन् १६३७) में फलोधी का हाकिम नियुक्त हो बल्लोचों का दमन करना।

३—जैसलमेर के भाटी राजपूतों से पोकरण का ठिकाना छीन लेना। वि० सं० १७१४ (ई० सन् १६५८) में महाराजा जसवन्तसिंह ने नैणसी को मियाँ फरासत के स्थान पर दीवान नियुक्त किया जिस पद पर वह वि० सं० १७२३ (ई० सन् १६६६) तक बना रहा।

नैणसी और उसके भाई सुन्दरदास को साथ ले महाराजा जसवन्तसिंह दक्षिण में मराठों से युद्ध करने को चले। पता नहीं किन कारणों से औरंगाबाद के निकट दोनों को सहसा पदच्युत कर बन्दी बना लिया गया (वि० सं० १७२३)। इनकी सब जागीरें जब्त कर ली गयीं और भारी जुर्माना कर दिया गया। भुगतान न करने पर १६७० ई० सन् (वि० सं० १७२७) में दोनों को बन्दी की ही दशा में जोधपुर भेजा गया। मार्ग में ही, यातनाओं से दुखी होकर दोनों भाइयों ने फूलमरी गाँव में एक दूसरे के कटारी मार कर जीवन लीला समाप्त कर ली। रह गयी नैणसी की ख्यात।

ख्यात का आरंभिक भाग केवल कही-सुनी बातों पर आधारित है। जहाँ जिसका उपयोग हुआ लेखक ने ईमानदारी से उनके नाम दे दिये हैं। अबुलफजल ने तो कई स्थलों पर हमें अँधेरे में छोड़ रक्खा है। नैणसी के समय के राजपूताने पर इससे अधिक प्रामाणिक ग्रंथ अभी नहीं मिला है। जिस बात पर खेद किया जा सकता है वह यही कि नैणसी केवल सामग्री जुटाकर चला गया, किंतु इसमें भी भलाई यह रही कि ख्यात को व्यवस्थित कर अंतिम रूप देने पर संभव था कि उस पर प्रभाव डालकर राज्य द्वारा मनमानी की जाती। यह इस ख्यात का पहला आकर्षण है।

ख्यात में वंशावलियों की भरमार है, परंतु साथ ही मारवाड़ का भूगोल भी विस्तार से दिया गया है जिसके अन्तर्गत नदी-नाले, पहाड़-पहाड़ियाँ, किले तथा परगनों को भी स्थान है। अंग्रेजों ने जैसे 'गजिटयर' लिखे थे वैसा ही सर्व-संग्रह यह भी है। यह सामग्री भी ख्यात का ही भाग होनी चाहिए।

नैणसी को इतिहास का शौक था और इस कारण उसकी लेखनी 'जिसका खाना, उसका गाना' से बची रही। उसने सहज में ही सामग्री को एकत्र किया और हमें उसके राजाश्रित भाट अथवा चारण होने का प्रमाण नहीं मिलता।

राजपूताने की कहानी लिखनेवाले कर्नल जेम्स टॉड को नैणसी की ख्यात का पता न था।

सन् १९३४ में काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा 'मुंशी देवीप्रसाद ऐतिहासिक ग्रन्थमाला' के अन्तर्गत इस ख्यात का हिन्दी अनुवाद निकला था। मूल पाठ का अभाव इतिहासकारों को खटकता था, और इसी कारण राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर द्वारा मूल पाठ का संपादन चार भागों में हो रहा है। तीन भाग निकल चुके हैं। विद्वान् संपादक ने अनेक हस्तलिखित प्रतियों के अध्ययन से यह कार्य किया है और कठिन शब्दों के अर्थ भी दे दिये गये हैं। भाषा, साहित्य और इतिहास तीनों ही दृष्टि से यह ख्यात एक श्रेष्ठ रचना है।

कहते हैं कि नैणसी के वंशज आज भी जोधपुर, कृष्णगढ़ और मालवे के मुरथाण नामक स्थान में विद्यमान हैं।

नैणसी की भाषा और ख्यात लिखे जाने की प्रणाली से परिचय कराने की दृष्टि से मूल-पाठ के कुछ अंश नीचे दिये जाते हैं :—

बूंदी देसरी हकीकत। संमत १७२१ रा[१] जेठ मांहै[२] रा०[३] रामचंद जगनाथोत[४] मंडाई[५]। बूंदी सहर भाखर[६] लगती[७] वसै छै। रावला-घर[८] भाखर के आघोफरै[९] छै। पिण[१०] मांहै[११] पांणी मांमूर[१२] नहीं। सहर आयो पीजै। भाखर वालारो सहर लगतो[१३]। झाड़[१४] घणा। वलारै भाखर में पांणी घणो। सहर मांहै पाखती[१५] पांणी घणो। वडो तलाव सूरसागर, तिणरी मोरी[१६] छूटै छै, तिणसूं[१७] वाघ[१८]-वाड़ी घणा पीवै[१९]। वागे[२०] आंबा फूलाद[२१] चंपा घणा। सहर वस्ती उनमांन[२२] घर ५०० वांणियांरा, घर १०० वांभण-विणजांरारा[२३], घर सो पांच भईया-हीड़ागरांरा[२४]।

राव भावसिंघ नूं हमार[२५] जागीर में इतरा[२६] परगना छै। तिणांरा गांव——

३१६ प्र०[२७] बूंदी।
३६० खटखड़ बूंदी सूं कोस ६।
८४ पाटण बूंदी सूं कोस १२।
४२ लाखेरी गोडां वाली, बूंदी सूं कोस ६। इत्यादि

(नैणसी री ख्यात, भाग १ पृ० ११३) संपा० बद्रीप्रसाद साकरिया।

हिन्दी अनुवाद——(बूंदी देश का विवरण जगन्नाथ के पुत्र राव रामचन्द्र ने विक्रम संवत् १७२१ के जेठ मास में लिखाया। बूंदी नगर पर्वतश्रेणी के पार्श्व में बसा हुआ है। राज-गृह पर्वत के मध्य भाग में है परन्तु इनमें पानी का नितांत अभाव है। नगर में आकर पीना पड़ता है। नगर अरावली से लगा हुआ है। यहाँ वृक्ष बहुत हैं, पास के पर्वत में पानी बहुत है, नगर में भी पानी की अधिकता है। बड़ा सरोवर सूर-सागर है जिसकी मोरी खोलने पर बहुत से बाग-बगीचों और बाड़ियों की सिंचाई होती है। बागों में आम, फूलों वाले पौधे और चम्पा की बहुतायत है। नगर की बस्ती में अनुमानतः ५०० घर बनियों के, १०० घर ब्राह्मण और बनजारों के, ५०० घर सेवकों आदि के हैं। राव भावसिंह की जागीर में इस समय इतने परगने हैं, उनके गाँवों की संख्या इस प्रकार है :—

३१६ परगना बूंदी, ३६० खटखड़ बूंदी से ६ कोस ८४ पाटण बूंदी से १२ कोस, ४२ लाखेरी गौड़ों वाली बूंदी से ६ कोस। इत्यादि।

---

१ के। २ में। ३ राव। ४ जगन्नाथ के पुत्र राव रामचंद। ५ लिखवाई। ६ पर्वत।

७ निकट। ८ जागीरदारों के। ९ मध्य में। १० परन्तु। ११ अंदर। १२ कदापि। १३ अरावली पहाड़ शहर के निकट। १४ वृक्ष १५ पास। १६ मोरी बहती है। १७ जिसके द्वारा। १८ बाग। १९ सींचा जाता है। २० बाग। २१ फूल के वृक्ष। २२ अनुमान। २३ बनजारे। २४ पाँच सौ हीन-घर, अर्थात् छुट भाई नौकरों के। २५ अभी। २६ इतने। २७ प्रगाना (परगना)।

'दंपति वाक्य विलास' : अतिरिक्त सूचनाएँ

डा० चन्द्रभान रावत

'सरस्वती' (खंड १, संख्या ६) में श्री प्रभुदयाल मीतलजी का एक लेख, 'ब्रजभाषा का एक ज्ञानकोश' प्रकाशित हुआ था। उस लेख में उक्त विद्वान् ने 'दंपति वाक्य विलास' नामक एक ब्रजभाषा काव्य ग्रंथ का परिचय दिया था। साथ ही उन्होंने उस ग्रंथ को अप्रकाशित माना था। इस सम्बन्ध में दूसरा लेख श्री अगरचन्द नाहटा ने लिखा : 'दम्पति वाक्य-विलास के दो प्रकाशित संस्करण', सरस्वती खंड २, संख्या ८। उसमें उक्त ग्रंथ के प्रकाशित संस्करणों की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया है : "किसनलाल श्रीधर ने इसे शिला की छपाई द्वारा प्रकाशित किया था, पर वह मुद्रित मुझे प्राप्त न होने से उसका प्रकाशन कब हुआ, निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। .... इसकी द्वितीयावृत्ति जो खेमराज श्रीकृष्णदास ने अपने बम्बई के वेंकटेश्वर प्रेस में मुद्रित करके प्रकाशित की थी, वह हमारे अभय जैन ग्रंथालय में है। विक्रम संवत् १९५२ अर्थात् अब से ६८ वर्ष पूर्व यह द्वितीयावृत्ति निकली थी।" इस ग्रंथ की कुछ प्रतियों से मेरा भी संबंध है। अतः कुछ अतिरिक्त सूचनाएँ देने के लिए मुझे प्रेरणा मिली है।

के० एम० हिन्दी विद्यापीठ के अनुसन्धान-सहायक के रूप में मैं वृन्दावन के कुछ हस्तलिखित ग्रंथागारों की खोज कर रहा था। उस समय रंगजी के मन्दिर में मुझे उक्त ग्रंथ की एक प्रति मिली थी। मैंने इसका विवरण 'भारतीय-साहित्य' (वर्ष ३, अंक ४) में, एक लेख 'श्री रंगजी के मन्दिर के हस्तलिखित ग्रंथ' में दिया था। पर उस समय विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित नहीं हुआ। इस बार मैंने उक्त ग्रंथ श्री प्रभुदयाल मीतल को दिखाया। इसे देखकर वे उछल पड़े। इसके दो कारण थे। एक तो आपने एक चैतन्य सम्प्रदाय के ब्रजभाषा काव्य से संबंधित नव प्रकाशित ग्रंथ में, 'दंपति वाक्य विलास' के कवि गोपाल राय का नामोल्लेख किया था। पर ग्रंथ न मिलने के कारण उसका विशेष परिचय नहीं दे पाये थे। यहाँ तक कि इस कवि के रचित ग्रंथ का नाम 'दंपति काव्य विलास' दिया था। दूसरे ब्रजभाषा साहित्य के विषय-वैविध्य-सूचक इस ग्रंथ को पाकर मीतलजी ने एक सात्विक गर्व का अनुभव किया। मीतलजी ने उस ग्रंथ से कुछ उद्धरण संकलित कर लिये और उक्त लेख लिखा। मुझे ज्ञात नहीं कि मीतलजी को कोई और हस्तलिखित प्रति भी प्राप्त हुई या नहीं। नाहटाजी ने इस ग्रंथ के प्रकाशित संस्करणों को प्रकाश में लाकर इसकी महत्त्व-वृद्धि तो की ही है, साथ ही एक भ्रम का भी निवारण किया है। हम यह सोचते थे कि यह ग्रंथ अब तक अप्रकाशित ही है। प्रकाशित प्रति का भी उन्होंने परिचय दिया है। उन्होंने प्रकाशित ग्रंथ से उद्धरण देकर यह स्पष्ट किया है कि इस रचना की प्राप्ति में किशनगढ़ दरबार के कवि श्री जयलाल का हाथ था। इस प्रकार किशनगढ़ राज्य को इस ग्रंथ को प्रकाश में लाने का श्रेय है। यह भी प्रकट होता है कि विद्वज्जनों में यह कृति समादृत थी और राजस्थान तक यह लोकप्रिय थी। गोपाल कवि का संबंध वहाँके राजपुरुषों या कवियों से हो सकता है। भावी शोध इस पक्ष पर प्रकाश डाल सकती है।

मेरे पास इस ग्रंथ की दो प्रतियाँ हैं। एक तो वह है, जिसका परिचय मीतलजी ने अपने लेख में दिया है। यह प्रति सभी प्राप्त प्रतियों से बड़ी है। इसमें सबसे अधिक छंद संख्या है और अध्याय भी इसमें सबसे अधिक हैं। दूसरी हस्तलिखित प्रति उस्मानिया विश्वविद्यालय हैदराबाद के हिन्दी-विभाग से मिली है। यह प्रति इस ग्रंथ की सबसे छोटी प्रति है। इसमें मूल प्रति के एक ही अध्याय को सात अध्यायों में विभक्त कर दिया गया है। अन्त में मूल प्रति के अन्तिम अध्याय को आठवें अध्याय के रूप में संयुक्त कर दिया गया है। वैसे यह भी कवि के हाथ की ही लिखी हुई प्रति है। मूल प्रति में जो ग्रंथारंभ-काल दिया गया है, वही इसमें है। पर दोनों की समाप्ति के काल में अन्तर है। दोनों में ही ग्रंथ के आरम्भ का संवत् १८८५ दिया हुआ है—

ठारह सै पिच्यासिया पून्यौ अगहन मास।
दंपति वाक्य विलास कौ तब कीनों परकास॥

पर हैदराबादवाली प्रति में ग्रंथ की समाप्ति का समय इस प्रकार दिया हुआ है : "इति दंपति वाक्य विलास संपूर्ण समाप्त, संमत १८९०, मिती बैसाख बदी ८, रविवार।" इस प्रकार इस प्रति का लेखन संवत् १८९० में समाप्त हुआ। इसका अर्थ है, पाँच वर्ष में संपूर्ण ग्रंथ की रचना हुई। रंगजी के मन्दिरवाली प्रति के

अन्त में लेखक ने संवत् का इस प्रकार उल्लेख किया है "इति श्री दंपति वाक्य विलास संपूर्ण समाप्त संमत १९००, मि० जेष्ठ सुदी ७, चंद्रवार लिपी स्वहतम्।" इस प्रकार इस प्रति की समाप्ति हैदराबादवाली प्रति से १० वर्ष पश्चात् हुई। ग्रंथ की रचना में १५ वर्ष लगे। हो सकता है कि आरम्भ में लेखक की ग्रंथयोजना हैदराबाद वाली प्रति के अनुसार हो और आगे के १० वर्षों में ग्रंथ को वृहत् रूप दिया गया हो। जिस संस्करण की चर्चा श्री अगरचन्द नाहटा ने की है, वह इन दोनों के बीच की है। वस्तुतः उसकी रूपरेखा वृन्दावनवाली प्रति के समान ही है। पर उसमें भी मूलप्रति से कुछ अध्याय कम हैं। आगे इन दोनों प्रतियों की तुलनात्मक सूची दी गयी है।

नाहटाजी ने अपने उक्त लेख में कुछ पृच्छाएँ की हैं। वे ये हैं: "दम्पति वाक्य विलास की हस्तलिखित प्रति में २७ अध्याय या प्रबन्ध होने का उल्लेख श्री मीतलजी ने किया है, पर प्रकाशित संस्करण में तो २१ विलास या प्रकाश हैं। पता नहीं मीतलजी ने संख्या देने में भूल की या प्रकाशित संस्करण में ६ अध्याय कम हैं।" "कवि ने अन्त में अपनी १८ रचनाओं के नामवाला जो पद्य हस्तलिखित प्रति में लिखा है, वह मुद्रित संस्करण में नहीं है।" "मीतलजी ने ३८० पृष्ठों में हस्तलिखित प्रति लिखी हैं, अतः यह एक बड़ा ग्रंथ है, लिखा है। पर प्रति का साइज क्या है? पद्य-संख्या कितनी है? आदि ग्रंथ का परिमाण उन्होंने नहीं बतलाया।" "मुद्रित ग्रंथ १३८ पृष्ठों का है।...सम्भव है खेमराज श्रीकृष्णदास ने मूल ग्रंथ में कुछ कमी या रद्दोबदल कर दिया हो। इसका निर्णय तो हस्तलिखित प्रति के साथ मिलान करने से ही हो सकेगा।" वस्तुतः बहुत सी बातों का निर्णय तो हस्तलिखित प्रति से मिलान करने पर ही हो सकेगा। पर नाहटाजी ने जितनी सूचनाएँ अपने लेख में दी हैं, उनसे कुछ तुलना की जा सकती है। नाहटाजी का यह अनुमान ठीक प्रतीत होता है कि सम्पादकों ने इस ग्रंथ में कुछ परिवर्तन किया हो। यह भी सम्भव है कि स्वयं कवि ने उस प्रति के पश्चात् कुछ नवीन अध्याय और छन्द जोड़े हों। वृन्दावन से प्राप्त हस्तलिखित प्रति और नाहटाजीवाली मुद्रित प्रति के अध्यायों और छन्दों की तुलनात्मक सूची नीचे दी जा रही है। इसका क्रम हस्तलिखित प्रति के अनुसार है।

हस्तलिखित प्रति की अध्याय क्रम-संख्या	मुद्रित प्रति की अध्याय क्रम-संख्या	अध्याय का नाम	मुद्रित प्रति की छंदसंख्या	हस्तलिखित प्रति की छंदसंख्या
१	—	ग्रंथ भूमिका (घूमिका)	—	३५
२	२	प्रदेस सुख दुख वर्णन	२०	२५
३	—	बारह मास	—	२५
४	३	निज देस प्रबन्ध	४४	५२
५	४	अमल प्रबन्ध	३३	३८
६	—	खेल प्रबन्ध	—	२८
७	—	निवास प्रबन्ध	—	२४
८	—	गुन प्रबन्ध	—	३४
९	—	ग्रन्थ सूची वर्णन	—	२१
१०	—	सास्त्र प्रबन्ध	—	९५
११	—	भिक्षा प्रबंध	—	३६
१२	७	मंद्र प्रबन्ध	४०	४२
१३	८	साधु प्रबन्ध	७९	८२
१४	—	वर्णाश्रम	—	३१
१५	९	सहर प्रबन्ध	६४	८०
१६	१०	राज्य सुख	१०४	१३१
१७	११	फिरंगी प्रबन्ध	४९	६१
१८	१२	बनज प्रबन्ध	७६	६३
१९	—	दुकान प्रबन्ध	—	६०
२०	१३	रकान प्रबन्ध	२५	२४
२१	१४	जाति प्रबन्ध	७४	१०८
२२	१५	अधम प्रबन्ध	५५	६१
२३	१६	अधमाधम प्रबन्ध	३२	५४
२४	—	प्रकृति प्रबन्ध	—	१०१
२५	१८	परमारथ प्रबन्ध	२४	१०१
२६	१९	फूहर प्रबन्ध	२५	२६
२७	२०	करुणरस सांतिरस प्रबंध	९/९	१२/१०
२८	२१	नीति उपदेस	२८	३०
२९	—	ग्रन्थ फल	—	—

इस सूची को देखने से प्रतीत होता है कि छन्दों की संख्या हस्तलिखित ग्रंथ में बहुत अधिक है। मुद्रित प्रति में अध्याय भी कम हैं। ऊपर की सूची से प्रतीत होता है कि मुद्रित प्रति में हस्तलिखित प्रति से ११ अध्याय कम हैं। पर चार अध्यायों के शीर्षक मुद्रित प्रति में हैं और हस्तलिखित में नहीं। वे ये हैं—

धन सुख वर्णन छन्द २७

रुजिगार सूचि वर्णन २७

ब्राह्मण रुजगार तथा शास्त्र रुजगार ७४
बाल्यादि अवस्था ५२

वस्तुतः ये सभी प्रकरण हस्तलिखित प्रति के अध्यायों में समाविष्ट दीखते हैं। हैदराबाद की प्रति की योजना से मुद्रित प्रति की योजना का साम्य दीखता है। हैदराबादवाली प्रति में रोजगारों का वर्गीकरण जातियों के अनुसार किया गया है। साथ ही बाल्यादि अवस्था भी उसमें हैं। हैदराबादवाली प्रति के आठ अध्यायों की सूची इस प्रकार है :—

प्रथम विलास	भूमिका
द्वितीय विलास	ब्राह्मण रुजिगार वर्णन
तृतीय विलास	छत्री रुजिगार
चतुर्थ विलास	वैश्य रुजिगार
पंचम विलास	अधमाधम रुजिगार
षष्ठ विलास	शूद्र रुजिगार
सप्तम विलास	राजसुख तथा बाल्यावस्था आदि
अष्टम विलास	परमारथ रुजिगार।

मुद्रित प्रति में भूमिकावाला अध्याय नहीं है। हैदराबादवाली प्रति में भूमिका के सभी प्रसंग हैं। हस्तलिखित प्रति में ये सभी विषय कहीं न कहीं समाविष्ट हैं। नीचे हस्तलिखित प्रति के अध्यायों के प्रसंगों की सूची दी जा रही है। इनसे यह स्पष्ट हो जायगा कि मुद्रित प्रति के कौन से प्रसंग हस्तलिखित प्रति में कहाँ सन्निविष्ट हैं।

(१) प्रथम : भूमिका—मंगलाचरण, कविवंश, वृन्दाबन-वर्णन, मनीपारो, ग्रंथहेत, ग्रंथसूची, संमत ग्रंथ, ग्रंथ बखत, ग्रंथ-व्यवस्था, धन सुख दुख, पुनिधन। = ११ विषय।

(२) द्वितीय : प्रदेश सुखदुख—पूरब दिसा, दक्षिण दिसा, पश्चिम दिसा, उत्तर दिसा, प्रदेस कौ = ५ विषय।

(३) बारहमास (मास प्रबंध)—चैत्रादिक मास वर्णन।

(४) चतुर्थ : निजदेस प्रबंध—बरात के, जाति के, बेटा-व्याह, बेटी-व्याह, मिजमानी, खवावनी, मिजमानी खान के, ससुरार बास, ससुरारि के, समध्याने के, तीरथ-यात्रा, दरसन-जात्रा, कथा-कीर्तन, मेलातमासो, घोड़े की सवारी।

(५) पंचम : अमल प्रबंध—भाँग अमल, अफीम को, पोसत को, आसव, मदरा को, खानो तमाखू, हुलास को, हुक्का को, गाँजा, चरस।

(६) खेल प्रबन्ध—सिकार, पटेबाजी, पतंगबाजी, कबूतरबाजी, चौपड़, सतरंज, गंजफा।

(७) निवास प्रबन्ध—ग्रामबास, सहरबास, ब्रजबास, बनवास, सुरगवास, घरवास।

(८) गुन प्रबन्ध—करमगत, करमसुख, दलिद्र, संतोष के, प्रभुपोलि, गुन के गुन, संस्कृत, भाषा, पारसी, रुजगार सूची, रुजगार सुख।

(९) ग्रन्थसूची वर्णन—

(१०) सास्त्रप्रबन्ध—वेदान्त शास्त्र, व्याकरण, न्याय, सांख्य, पातंजल, मीमांसा, मंत्र, राजनीति, पिंगल, कोक, वैदक, जोतिस, मिसुराई, पांडे, पंडिताई, कवीश्वर, नये कवि, कुकवि, काव्य पढ़े, बादी कवि, मागध जन, सूत पौरानी, बंदीभाट, चारण, रसायनी, लिखाई के, रासधारी, गवैया।

(११) भिक्षा प्रबन्ध—भिखारी के, प्रोहित, गहुनावा, चौबे, घटमंगा, खुसामदी, रोजाना, वृत्तिवारे।

(१२) मंद्र प्रबन्ध—गोस्वामी, भट्ट, अधिकारी, भंडारी, पंडा, पुजारी, रसोइया, सिरकार, फौजदार, छड़ीदार, कुतवाल।

(१३) साधु प्रबन्ध—महंत, महंतानी, महंत चेला, महंत चेली, गुरदक्षा, चेला, मुखिया, साध के, संत के, नागा के, सिद्धाई के, फकीरी के, तपसी, विदेही, बिरकत, जोगी, जती, परमहंस, मोडा, सँजोगी, सरभंगी, स्यानपथ।

(१४) वर्णाश्रम—ब्राह्मण, छत्री, वैश्य, सूद्र, ब्रह्मचारी, गृहस्थी, बाणप्रस्थ, सन्यासी।

(१५) सहर प्रबन्ध—पंच के, सरदार, थोकदार, मुहल्लेदार, जुम्मेदार, जाति चौधरी, चबूतरा चौधर, ग्राम चौधर, यजारदारी, जमीदारी, गाम बैनामा, किसान के, स्यारी की खेती। होनहारी खेती, कानूगोही, पटवारी, तहसीलदार, सहनागीरी, ग्वारिया के, ठकुराई के, जामिनी।

(१६) राज सुख—पातसाही, नवाबी, राजसुख, रानी के, लक्षनडर, दीमांनी, कामदारी, मुसद्दी, फौजदारी, बकसी, रसालदार, मुसाहब, पोतेदार, दरोगा, खजांची, सिलहदार, दानादक्ष, मंत्रीराज, वकील, हलकारे, पहल-

मानु, सूरवीर, सिपाही, चाकर के, दरमान, चोबदार, धाऊ के, खोजा के, चिरवादार, खवास के, गुलाम, पिलमान, गडमान, मुल्ला, कलामत, हकीम, मोदीखानो, चेलाराज के।

(१७) फिरंगी प्रबन्ध--फिरंगी, फिरंगीराज, सदरसदूल, सिरिस्तेदार, थानेदार, जमादार, नाजरी, नायब, चौकीदार, चपरासी, परमट, मीर बहरी, दीमानी, फौजदारी, अपील, गवाही, तिलंगा, सूबेदार, हवालदार, कपतान, जेलखाना।

(१८) बनज प्रबन्ध--सर्वबनज, नाजबंज, घीतेलबंज, खंडगुरबंज, नौनबंज, रुईबंज, कपराबंज, किरानेबंज, धातुबंज, लीलबंज, पत्थर, चूना, काठ, बौहरा, गामबौहरा, अठवारिया, आसामी।

(१९) दुकान प्रबन्ध--दुकानदारी, सेठसाह, गुमास्ते, जौहरी, कलाबत्तू, कोठी दुकान, हुंडाभारो, दलाली, तौला, बदनी, लदैनियाँ, आढ़त, तमोली, गंधी, अत्तार, रफूगर।

(२०) रकान प्रबन्ध--सराफी, बजाजी, परचूनी, पसरट्टो, हलवाई, कसेरट।

(२१) जाति प्रबन्ध--कायथ, सुनार, दरजी, रँगरेज, छीपी, माली, मालिन, मन्यार, कूजरे, भटारे, कसाई, कडेरे, कोरिया, गूजर, जाट, लुहार, बढ़ई, राजा, संकतरास, उस्ता, चित्रकार, तेली, सक्का, मलार, कहार, गड़रिया, भरभूजा, नाऊ, वारी, धोबी, कुम्हार, चमार, चूहरे, हीजरा, भाँड, नट, कंजर, हबूड़ा, मुसलमान।

(२२) अधम प्रबन्ध--चुगल, चोर, ठग, मसखरा, हरामजादे, डिम्भधारी, लवार, बेसरम, सेषी खोरा, नंगा, हरामी, ग्वाला, ज्वारिया, सगाई के बिचौलिया, रसिया, गमार, अल्हैया, ढुलैया, लगति के, वरह के।

(२३) अधमाधम--गड़िया, भड़आ, कसवी, भभैया, जनानिया, छिनरा, छिनारि, रंडीबाज, लौंडेबाज, कुटनी, धरूका, परस्त्री, कामप्रबलता, इस्त्रीसुख।

(२४) प्रकृति प्रबन्ध--बाल अवस्था, तरुणावस्था, वृद्धावस्था, हुरमति, दलिद्री, जसी के, कुजसी, कपूत, सपूत, दाता, सूम, दानरीति, मचूच, मतलबी, भाजीमारा, सत्यवादी, मिथ्यावादी, व्याह के, सुगाह के, दूजिहा व्याह, बुढ़ापै व्याह, दूजिहा इस्त्री, द्वै स्त्री, बेटी की संतान, बेटा की संतान, रडुआ के, रांड के, सौति के, सौतेला के, मतेई के, कातनहारी, पनिहारी।

(२५) परमारथ प्रबंध--परमारथ, सुकृत, नवधा भक्ति, निरगुण, सरगुण, इतिहास, त्रिजोग, विधनारद संवादवर्णन, नाममहातम, रामगीता, ब्रह्मविचार, सिक्षा, चतुरसलोकी भागवत, अक्कलनामा, इस्त्रीसुख, पतिवरता, चारिभाति।

(२६) **फूहर पच्चीसी : कलहा प्रबन्ध।**

(२७) **करुणरस : सांतिरस प्रबन्ध।**

(२८) **नीति उपदेस : ज्ञानोपदेश**

(२९) **ग्रंथ फल।**

इस सूची से स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने अपने समय की समस्त प्रमुख परिस्थितियों के बुरे-भले दोनों पक्षों पर लिखा है। साथ ही, यह भी सिद्ध हो जाता है कि नाहटाजी की मुद्रित प्रति में जो अतिरिक्त प्रबंध मिलते हैं, वे भी हस्तलिखित ग्रंथ के अन्य प्रबन्धों में समाविष्ट हैं। 'धनसुख वर्णन', प्रथम विलास में, 'रुजिगार सूची', आठवें प्रबन्ध में, 'ब्राह्मण रुजिगार' सम्भवतः ११वें तथा १२वें प्रबंध में तथा 'बाल्यादि अवस्था' २४वें प्रबंध में सम्मिलित हैं। यह ग्रंथ ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है तथा साहित्यिक दृष्टि से भी। तत्कालीन परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण कवि ने इसमें किया है। रीतिकालीन साहित्य की विधाओं के वैविध्य को भी यह सिद्ध करता है। आईनअकबरी की ज्ञानकोश-परम्परा में भी इसका स्थान है। इस ग्रंथ के सुसम्पादित प्रकाशन की आवश्यकता है। आशा है नाहटाजी जैसे विद्वान् इस ग्रंथ के पाठानुसंधान में सहयोग देंगे।



प्राचीन हिन्दी नाममालाओं संबंधी नई जानकारी

श्री अगरचन्द नाहटा

'सरस्वती' के गत् अक्टूबर अंक में डा० अचलानन्द जखमोला का 'मध्यकालीन हिन्दी कोश-साहित्य' नामक लेख प्रकाशित हुआ है। जिसमें उन्होंने कतिपय हिन्दी नाममालाओं का उल्लेख किया है। इससे पूर्व उनका एक विस्तृत लेख इसी नाम से 'हिन्दुस्तानी' भाग २३ अंक १में छप चुका है। उसमें उन्होंने करीब ८० नाममाला व कोश-ग्रन्थों का विवरण प्रकाशित किया है। जब वे इस विषय में शोध-कार्य कर रहे थे तो मैंने कई नाममालाओं की नकलें करवा के उन्हें भेजी थीं। यद्यपि उन्होंने इलाहाबाद में रहते हुए अधिकाधिक सामग्री व जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न किया है तथापि बहुत से ग्रन्थों को उन्होंने स्वयं देखा नहीं है इसलिए विवरण में भूल-भ्रान्तियाँ भी रह गई हैं; और बहुत सी महत्त्व की बातें उनके ध्यान में नहीं आई। अतः विवरण में आवश्यक जानकारी देने की कमी रह गई है। इसके २-४ उदाहरण दे देना यहाँ आवश्यक समझता हूँ। हिन्दुस्तानी में प्रकाशित लेख का संशोधन सूचित करके फिर नई जानकारी इस लेख में दी जायगी।

१—डिंगलनाममाला कुशललाभ की स्वतन्त्र रचना नहीं है। वह तो उनके 'पिंगल शिरोमणी' नामक छन्दग्रन्थ का मध्य-वर्ती छोटा-सा अंश है और उसका नाम ग्रन्थकर्त्ता ने 'उडिंगल नाममाला' दिया है जो विशेषरूप से उल्लेखनीय है क्योंकि अभी तक डिंगल शब्द के लिए प्राप्त सभी उल्लेखों में यही (उडिंगल) सबसे पुराना है। डा० जखमोला ने इस नाममाला का जिस रूप में परिचय दिया है उससे यह भ्रान्ति हुए बिना नहीं रहती कि यह कोई मौलिक रचना है पर वास्तव में है वह पिंगल शिरोमणी छन्दग्रन्थ का एक अंश ही।

२—नं० ९ शिरोमणी मिश्र रचित 'उर्वशी नाममाला' वास्तव में स्वतन्त्र रचना नहीं है, धनंजय की संस्कृत नाममाला का हिन्दी पद्यानुवाद-सा है। उसके रचनाकाल संबंधी जो पद्य टिप्पणी में उद्धृत किया है उसमें रचना स्थान का नाम अशुद्ध है*। बीकानेर की अनूप संस्कृत लायब्रेरी में इस नाममाला की सबसे प्राचीन सं० १६८२ की प्रति है उसमें वह पद्य इस प्रकार है—

संवत् सोरह सै असी, माघ मास तिथि सार।
मूल नखतु बुरहानपुर, कृष्णपक्ष गुरुवार॥

३—(नं० १२) विनय सागर की 'अनेकार्थ नाममाला' की उनके लिखे अनुसार २ प्रतियाँ उपलब्ध नहीं हैं। मूल प्रति भण्डारकर इन्स्टीटयूट में ही है। हमारे संग्रह में उसीकी प्रतिलिपि मात्र है।

४—(नं० १३) लखपत मंजरी का रचनाकाल सन् १६४७ छपा है पर वह ठीक नहीं है। उसकी रचना संवत् १७९४ में हुई थी। इसी नाम की एक और भी रचना मिलती है। दोनों के रचयिता गुरु-शिष्य हैं। मेरे सम्पादित 'राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज' भाग ४ में इन दोनों का विवरण छपा है। कर्ता का नाम नहीं दिया पर इसका रचियता कुँवर कुशल (कनक कुशल शिष्य) है। टिप्पणी में लखपत-मंजरी का जो ७वाँ पद्य उद्धृत किया है, वास्तव में वह विनयसागर की अनेकार्थ नाममाला का अन्तिम (१६९वाँ) पद्य है।

५—(नं० १४) बद्रीदास की मानमंजरी नाममाला में रचना-तिथि १७२५ बतलायी है पर वह तो प्रति का लेखन समय है।

इसी तरह महासिंह की अनेकार्थ नाममाला संवत् १७६० में निर्मित हुई, लिखा है—पर यह संवत् भी प्रति के लेखन का है, रचना के निर्माण का नहीं।

६—(नं० ३०) में हरि कवि रचित अमरकोश भाषा का उल्लेख किया है। वह सम्भवतः नम्बर २५ वाली रचना ही है। केवल रचनाकाल सन् १७३५ और सन् १७५३ ये दो अलग-अलग लिखे होने के कारण दोनों को भिन्न-भिन्न ग्रन्थ मान लिया है। पर मेरे ख्याल से १७३५ की जगह १७५३ में ३ और ५ के उलट-पुलट छप जाने से ही यह गड़बड़ी हो गयी है।

७—(नं० ३२) कनककुशल रचित 'लखपत मंजरी' नाममाला का प्रणयन संवत् १८२३ में बतलाया है पर वास्तव में वह सही नहीं है। संवत् १८३३ की लिखी हुई प्रति का विवरण मैंने प्रकाशित किया है। उसीको गलत पढ़कर उन्होंने रचनाकाल १८२३ लिख दिया प्रतीत होता है। कनककुशल का समय सं० १८०० से कुछ पहले का है।

*उद्धृत पद्य में 'वधनु' पाठ छपा है।

८—(नं० ४२) पारसात नाममाला की रचना तिथि संवत् १८५७ लिखी गई है। वह भी प्रति के लिखने का समय है। रचना तो इससे काफी पहले हो चुकी थी।

९—(नं० ४३) उमराव कोश की छन्द संख्या ४ प्रतियों की अलग-अलग होना बतलाया है पर ३ काण्डों की छन्द संख्या से वे संख्याएँ मेल नहीं खातीं (छन्द संख्या तीनों को मिलाने पर १८५६ होती है जब कि प्रतियों में २६१६, २५३०, १९४४ और ३०२४ लिखी हुई है।) सम्भवतः वह छन्द संख्या न होकर, अनुष्टुप छन्द से ग्रन्थ परिमाण बतलाया गया होगा।

डा० जखमोला द्वारा सूचित नाममालाओं के अतिरिक्त और भी बहुत-से ऐसे ग्रन्थ प्राप्त हैं। पर हस्तलिखित ग्रन्थ संग्रहालयों में स्वयं नहीं पहुँचकर खोज रिपोर्टों आदि के विवरण से ही संग्रहीत करके शोध-प्रबन्ध लिख डालने के कारण नई जानकारी प्रकाश में नहीं आ सकी।

इसी विषय पर श्री सत्यवती महेन्द्र ने आगरा विश्वविद्यालय से शोध-कार्य किया है। उनका नाममाला साहित्यिक नामक लेख 'भारतीय साहित्य' वर्ष ३ अंक ४ में प्रकाशित हुआ है। पर उसमें बहुत थोड़ी-सी नाममालाओं का विवरण दिया गया है और कई महत्त्व की अशुद्धियाँ भी उनके लेख में छपी हैं। नंददास जैसे प्रसिद्ध कवि की नाममालाओं का समय सं० १८१२ ई०; सं० १८३५ ई० लिखा गया है। सम्भव है यह संवत् प्राप्त प्रतियों के लेखन का हो। नंददास का समय तो सं० १६०० के लगभग का है।

जहाँ तक मेरी जानकारी है, नाममाला साहित्य के संबंध में सबसे पहले मैंने एक शोधपूर्ण लेख उदयपुर से प्रकाशित 'राजस्थान साहित्य' नामक मासिक के अप्रैल १९४४ के अंक में प्रकाशित करवाया था जिसमें १० ज्ञात और ९ अज्ञात नाममालाओं का विवरण दिया गया था। उसके बाद मैंने अपने 'राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज' (भाग २) (प्रकाशन सन् १९४४) में १० अज्ञात नाममालाओं का विशेष विवरण छपाया था। इसी ग्रन्थ के भाग ४ में पीछे से ज्ञात ९ नाममालाओं का विवरण और प्रकाशित किया गया था। उसके बाद मैंने 'ब्रजभारती' वर्ष १७ अंक ७-८-९ में 'कतिपय हिन्दी नाममालायें' नामक एक लेख प्रकाशित किया था। उसमें और भी कई अज्ञात रचनाओं का विवरण दिया गया था। पर मेरा यह लेख जखमोलाजी के देखने में नहीं आया मालूम देता है। यह लेख सत्यवती महेन्द्र के लेख के संशोधन और विशेष जानकारी के रूप में प्रकाशित किया गया था। मेरे उक्त लेख में (१) नाम चक्र—लक्ष्मणप्रसाद कृत (र० संवत् १९००) (वैद्यक कोश) विवरण सन् १९०९-११ की रिपोर्ट नम्बर १६२, (२) अनेकार्थ नाममाला—जान कवि रचित। (३) भवानी नाममाला—भवानीदास रचित, जोधपुर रामद्वारा से प्रकाशित। (४) नाम रत्नमाला—उदयचन्द भण्डारी कृत, र० संवत् १८९९। (५) गुलाब कोश—गुलाबसिंह राव कृत, संवत् १९२८। (६) विरह बुध चन्द्रिका—सारंगधर पंडित रचित। (नं० ५/६ की हिन्दी संग्रहालय, इलाहाबाद में प्रतियाँ हैं।) (७) शब्दरत्नावली—प्रयागदास कृत, रचना संवत् १८६९ का विवरण सन् १९०६ से ८ की खोज रिपोर्ट में छपा है।

नाममालाओं में जिस तरह एक वस्तु के अनेक नाम संग्रहीत किये जाते हैं उसी तरह की कई ऐसी अन्य रचनाएँ प्राप्त हैं जिनका नाम कपड़-कौतूहल, फल कौतूहल, फूल कौतूहल, पक्षी कौतूहल आदि मिलता है। उनमें फूल, पक्षी आदि के नामों का संग्रह किया गया है।

जयगोपालदास रचित "तुलसी शब्दार्थ-प्रकाश" एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसकी रचना संवत् १८७४ में हुई थी। उसमें शब्दांक आदि अनेक प्रकार के शब्दों का कोश दिया गया है।

चिरंजीवी सम्प्रदाय के हरिरामदास ने "नाम-प्रकाश" नामक एक हिंदी पद्यबद्ध शब्दकोष सं० १८२५ की अक्षयतृतीया को धनोप नामक गाँव में बनाया। मूलतः उसमें २३५ पद्य थे। २१ पद्य उसमें पीछे से जोड़े गये। इस ग्रंथ का परिचय 'सरस्वती' के फरवरी-मार्च १९५६ के अंक में मैं दे चुका हूँ।

स्वामी मंगलदासजी ने दादूपन्थी साहित्य की जो सूची प्रकाशित की है उसमें लालदास और हृदयराम रचित नाममालाओं का उल्लेख किया है पर वे किस ढंग की नाममालाएँ हैं यह तो देखे बिना नहीं कहा जा सकता। विद्या विभाग, कांकरोली के संग्रह में (१) नाम कुसुममाला—नारायणसिंह नृप रचित पत्र ४६ सं० १७२०; (२) नाम जयमाल गंगाराम कृत, अपूर्ण, पत्र १०; (३) भाषा कोश—माधोदास, पत्र ४६, अपूर्ण; (४) अंग्रेजी, हिन्दी, फारसी शब्द कोश—वृन्द कवि, पत्र ९६; की हस्तलिखित प्रतियाँ होने का उल्लेख मेरी नोटबुक में हैं। इनमें १-२ रचनायें सम्भव हैं कोश संबंधित नहीं भी हों। उदयचन्द भण्डारी की नाम रत्नमाला का उल्लेख ऊपर किया गया है। वह तो हेमी नाममाला के सार रूप में ६ अध्यायों में रची गई है पर उनकी एक स्वतन्त्र नाममाला और भी प्राप्त हुई है जिसका विवरण मदनराज मेहता ने यथा स्मरण 'अमरज्योति' में छपवाया था। खोज करने पर और भी नयी जानकारी प्रकाश में आयेगी।

लद्दाख (२)

(लद्दाख का महत्त्व)

मेजर सीताराम जौहरी

"जब आप लेह जायें तो मेरी लड़की से अवश्य मिलिएगा" ठाकुर मंगल सिंह ने कहा। ठाकुर साहब लाहुल के एक प्रमुख व्यक्ति हैं। इनकी आयु लगभग ८० वर्ष की होगी। आजकल वे मनाली में अपने नाती-पोतों के साथ शान्तिमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। आपने १९६० में भारतीय सरकार की ओर से धर्मशाला में द्विभाषिया का काम किया था। स्वर्गीय ले० कर्नल खुशहालचन्द आपके ही सुपुत्र थे जो इन्डोचाइना में वायुयान दुर्घटना के शिकार हो गये थे। वास्तव में कर्नल के कारण ही ठाकुर साहब से मेरा परिचय हुआ। मैंने पूछा :—

"क्या आपकी लड़की लेह में है ?"

"उसका विवाह वहाँके राजा से हुआ है !"

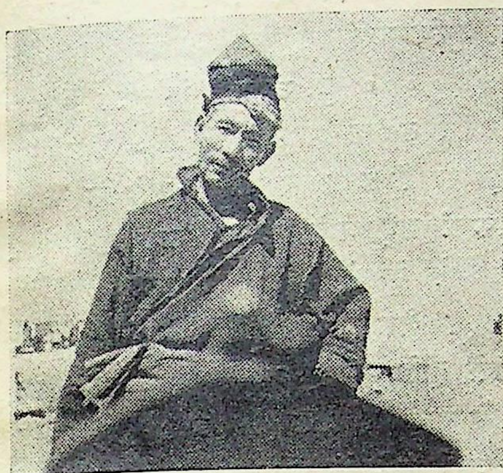
"इतनी दूर !"

वे तनिक हँसे। बोले, आपके लिए दूर हो सकता है, परन्तु हमारे समस्त सामाजिक संबंध तथा व्यापार सदैव ही लद्दाखियों से ही होते चले आये हैं। मेरी लड़की का विवाह ही केवल लद्दाख में हुआ हो, ऐसी बात नहीं है। इससे पहिले भी हमारे केलांग के सम्मानित परिवारों के वैवाहिक सम्बन्ध लद्दाख में ही हुए हैं। शतियों से ऐसा ही होता आया है। बिना लद्दाख के लाहुल क्या? लाहुल का आधा अंग तो लद्दाख ही है। हम लोग लद्दाख से व्यापार करते थे। भद्रोवा, किशटोवारवाले लाहुल की राह ही लद्दाख से ऊन लाया करते थे। जन्सकार और रूपशू निवासी तो पूर्ण रूप से लद्दाख पर निर्भर हैं। वास्तविकता भी यही है कि लद्दाख हिमालय की दीवार के उत्तर में पड़नेवाले समस्त प्रान्तों का आर्थिक और सांस्कृतिक केन्द्र है।

लद्दाख का दक्षिणी प्रान्तों से यह सम्बन्ध है कि रूपशू के चरवाहे हर साल जुलाई के महीने में ऊन विक्रय हेतु स्पिती आते हैं। यह लोग पारांग दर्रा पार करते हैं और लदारचा (स्पिती) में अपने सामान को कपड़ा, चीनी आदि के बदले में दे देते हैं। इनके पड़ोसी, जन्स-कारी, मक्खन तथा जानवर आदि लेकर शरद में लेह के बाजार में आते हैं। लद्दाख में पैदावार होती तो है, पर अधिक नहीं। फिर भी उनको द्रव्य की आवश्यकता तो होती ही है और यह द्रव्य वे व्यापार में कमीशन द्वारा कमाते हैं। यह व्यापार सिंक्यांग से होता था। लद्दाखी व्यापारी सिंक्यांग जाते थे अथवा सिंक्यांग के व्यापारी लद्दाख में काराकोरम 'दर्रे' के रास्ते आते थे। इस प्रकार सिंक्यांग को मिस्री और सूती वस्त्र भारत से प्राप्त होते थे, और सिंक्यांग का पश्मीना लद्दाखियों द्वारा श्रीनगर के बाजारों में पहुँचता था। १९५४ से चीनियों ने इस व्यापार को प्रायः समाप्त कर दिया है। अब जो भी थोड़ा-बहुत पश्मीना उत्तर से लद्दाख में आता भी है वह शायोग की वादी या चांगचिनमों के ग्रामों से। अब लद्दाखियों का उन लोगों से व्यापार नाम मात्र का ही है परन्तु इनका व्यापार सड़कें बन जाने के कारण भारत से बढ़ गया है। फिर भारतीय फौज जो लद्दाख में पहुँच गयी है उससे भी मजदूरों को मजदूरी और लद्दाखी ठेकेदारों को ठेके मिलने लगे हैं। पश्मीने से जो कमीशन मिलता था उससे कहीं अधिक धन अब इनको भारत और भारतीय फौज से मिल जाता है। इतना अवश्य हुआ कि जो पश्मीना भारत आता था वह अब चीनियों को मिलने लगा है।

इससे स्पष्ट हो गया कि स्पिती, लाहोल और काश्मीर, व्यापार के लिए सभी अधिकांश लद्दाख पर ही निर्भर रहे हैं और रहेंगे। यदि आज लद्दाख की स्वतन्त्रता छिन जाए तो लाहोल और स्पिती कब बच सकते हैं? ये दोनों पंजाब के सीमान्त जिले हैं। यदि संकट में रहें तो क्या पंजाब खतरे से बाहर हो सकता है? फिर यदि भारत लद्दाख में शान्ति तथा सुरक्षा नहीं रख सकता तो क्या कश्मीर सुरक्षित रह सकता है? इन्हीं बातों से भारत के लिए लद्दाख का महत्त्व समझा जा सकता है।

इसी महत्त्व को सुरक्षित रखने के लिए १९४७ में भारतीय सेना ने लद्दाख में प्रवेश किया। १९४७ में पाकिस्तानियों ने लेह पर आक्रमण कर दिया। लद्दाख का यह आक्रमण एक प्रकार से लाहोल पर आक्रमण था। यदि यह भी कहा जाय कि यह आक्रमण भारत पर था तो



लामायारू ग्राम का एक लद्दाखी (उसकी गठन विशुद्ध आर्य है)

भी अत्युक्ति न होगी। लद्दाखियों ने बड़ी वीरता से काम लिया। कर्नल पृथ्वीचन्द (ठा० मंगलसिंह के भतीजे) और कर्नल खुशालचन्द ने लेहवासियों की एक सेना बनायी। जब तक भारतीय बटैलियन पहुँची तब तक इन्होंने पाकिस्तानी आक्रमण को रोके रखा। लेह की इस लड़ाई की योजना अधिकांश लाहोल और कुलू के अफसरों की ही थी। ये लोग लद्दाख के चप्पे-चप्पे से परिचित थे। उनका लद्दाख में व्यापारिक और सांस्कृतिक स्वार्थ था और इसकी रक्षा के लिए उन्होंने प्राणों का मोह भी त्याग दिया और उन्हें सफलता मिली।

भारतीय सेना जो लेह पहुँची वह रौहतांग 'पास' पार करके केलांग होते हुए वारालाचा (१६०४७ फुट ऊँची) पहुँची। इसके पार करने के पश्चात् भयानक और निर्जन रेत का पठार ही है। ग्राम का तो कहीं चिह्न भी नहीं। पानी भी बड़ी कठिनाई से ही मिलता है।

"आज कहाँ ठहरें? पानी कहाँ मिलेगा?" पैट्रोल कमांडर ने एक परिमापक (सर्वेयर) से पूछा। उस समय मध्याह्न २ बजे का समय होगा। "आप लोग इसी मार्ग पर चलते रहिए। इस बटिया को मत छोड़िएगा। लगभग ७ मील चलने के बाद दाहिनी ओर कुछ ऊँची भूमि आयेगी। वहाँ ठहर जाइएगा। बाएँ हाथ की बटिया की सीध में लगभग १०० गज चलिएगा। वहींपर हम एक पत्थर रख आये हैं। बस, उसीके नीचे पानी का सोता है। यदि आप लोग वहाँ पर पानी न पा सके तो आगे १० मील तक कहीं पानी नहीं मिलेगा। परिमापक ने बताया कि सर्वेक्षण वाले भी पूरी फ़ौजी ट्रेनिंग पाये होते हैं। उन्होंने बिलकुल ठीक बताया था। पैट्रोल कमांडर ठीक रास्ते से चला भी। पर उस पठार की उँचाई १५,००० फी० से भी ऊँची थी। इतनी ऊँचाई पर चलने की गति धीमी होती है, फिर पैट्रोल को बहुत सावधानी से चलना पड़ता है। उनका कार्य केवल चलना ही तो नहीं होता, उस क्षेत्र की जाँच-पड़ताल भी तो करनी होती है। इसका परिणाम यह हुआ कि पैट्रोल ७ बजे संध्या तक पहाड़ी के निकट पहुँचा। अक्टूबर का महीना था और सरदी का आरम्भ। भगवान् भास्कर भी अस्ताचलगामी हो चुके थे। पैट्रोल कमांडर को पूर्ण विश्वास था कि वह पानी तक पहुँच जायेगा और वह पहुँच भी गया, परन्तु ज्योंही पत्थर को हटाया भूमि सूखी ही दृष्टिगोचर हुई। "यह क्या! क्या परिमापक ने ठीक नहीं बतलाया?" कई विचार एक साथ आये और गये। पर सुरक्षा-विभाग का कर्मचारी झूठ क्यों बोलेगा? उसे क्या लाभ? अवश्य ही इसमें कुछ भूल है। पैट्रोल कमांडर विचारमग्न हो गया। सहसा उसके होठों पर मुस्कुराहट दिखायी दी और नेत्रों में प्रसन्नता की चमक। उसके सिपाही जो थके और प्यासे थे, इस समय उदास हो चुके थे। उनके समक्ष निस्तब्ध काली ठण्डी रात्रि थी जिसमें उन्हें अभी १० मील और चलना था, जिसका अर्थ था उसी भीषण सर्दी और अन्धकार में कम से कम ७ घंटे की यात्रा। फिर न मालूम कितने दर्रे पार करने पड़ें (रूपशू तो दर्रों से भरा हुआ है)। फिर अन्त में क्या होगा? सब जवानों की दृष्टि अपने कमांडर पर थी। अन्धकार के कारण कमांडर उनकी दृष्टि को भले ही न देख पा रहा हो परन्तु उनके हृदय की निराशा को भली भाँति समझ रहा था। कमांडर हँसा और उस हँसी से मानों जवानों में जीवन की लहर दौड़ गयी। कमांडर ने कहा, "हवलदार! पानी जम गया है। मिट्टी के कारण हम बरफ को नहीं देख पा रहे हैं।" टार्च के प्रकाश में मिट्टी हटाई गयी। अब भूमि पर हाथ लगाने से बरफ मालूम हुई। आशा जागी, पर पूर्ण रूप से नहीं। सोते के छोटे होने की भी तो सम्भावना थी। फिर भी साहस किया और आज्ञा दी "कुदाल से खोदो" सौभाग्यवश १ फीट खोदने के पश्चात् ही पानी मिल गया। फिर क्या था? स्टोव से उस स्थान को गरम किया। थोड़ा-बहुत पानी मिल गया। केवल

चाय पीकर ही सारा पैट्रोल डेरे लगाकर सो गया। यह है पानी की दशा रूपशू में।

परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि पानी का एकदम अभाव है। तिब्बत की भाँति यहाँपर पड़ाव हैं। वहाँ एक सोता होता है। उसके आस-पास घास होती है और उम्बू की घास की जड़ें ईंधन का काम देती हैं। ऐसे पड़ाव इस कुलूवाले मार्ग पर थोड़े ही हैं। इनके नाम हैं, किलाँग, सरछू, मुलडेल, राछोया, और सूमदू। फिर एक दर्रा है जिसका नाम है ला चुंग ला (१६६०० फुट) इसको पार करने के बाद पाँच-छः पड़ाव पार करने के पश्चात् डैबरिंग पहुँचते हैं, फिर उपशी। उपशी सिन्धु घाटी में लेह से ३० मील पश्चिम में है। तेज से तेज चलने पर भी रोहतांग को पार करने के बाद २४ दिन तो लग ही जाते हैं। लाहोल से लेह के लिए एक अन्य मार्ग भी है जो कि बारालाचा से जन्सकार नदी होता हुआ लेह के २० मील पश्चिम में नीमूग्राम के समक्ष निकलता है। परन्तु लाहोली बहुधा पहिले मार्ग का ही प्रयोग करते हैं। जब से तिब्बत चीनियों के हाथ आ गया है तभी से लाहोलियों का समस्त व्यापार रूपशू से होने लगा है। आजकल लाहोलियों को भय है कि कहीं रूपशू भी चीनियों के हाथ न चला जाये। रूपशू में तिब्बती चांगपा शरणार्थियों के अधिक संख्या में आने के कारण (लगभग १,००० से अधिक परिवार आ चुके हैं) इस भय में और भी वृद्धि हुई है। फिर चीनियों ने हानले का बहुत बड़ा भाग भी तो एकतरफा ही चीनी इलाका मान लिया है। पाठकों को यह जानकर तनिक भी चकित नहीं होना चाहिए कि बहुत सम्भव है कि कुछ चीनी लुटेरे हानले इलाके में छिपकर छोटी-छोटी टोलियों में घूम रहे हों। इन्हीं सब कारणों से लाहोली यह समझते हैं कि कहीं उनका व्यापारिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र लद्दाख, लाहोल से पृथक् न हो जाये। उनकी माँग है कि लाहोल से उपशी वाली सड़क ऐसी बना दी जाये कि उस पर ३ टन के ट्रक मनाली से उपशी पहुँचने लगें। भारत-सरकार इस ओर पूरा ध्यान दे रही है। इस सड़क की कठिनाई रौहतांग 'दर्रा' है। यह 'दर्रा' भी जोजीला की भाँति हिमालय दीवार के ढलान पर है। यहाँ हिमपात भी बहुत होता है और कई मास जोजीला तो यातायात के लिए बन्द रहता ही है, रौहतांग 'दर्रा' भी इस बात में जोजीला से कम नहीं है। इसकी कठिनाइयाँ तो जोजीला से भी बढ़ी हुई हैं। यहाँ भी सुरंग नहीं बन सकती। अधिक से अधिक यदि रहाला (१०,००० फुट ऊँचाई) से सुरंग खोदी जायें तो दर्रा के उत्तरी ढलाव पर भूमि १०,००० फीट से अधिक ही ऊँची है। उत्तरी ढाल पर लोसर है जो कि १०,५०० फुट से अधिक ऊँचा है। यदि रहाला से ऊपर जाकर सुरंग खोदी जायें तो 'दर्रे' से थोड़े ही नीचे सुरंग खोदने से लाभ? अतः विवश होकर भारतीय सरकार उलाहजी, चम्बा और पांगी होते हुए सड़क निकाल रही है। सम्भव है कि इसमें उसे सफलता प्राप्त हो। इस सड़क के बन जाने से लाहोल अपने सदियों पुराने व्यापारिक और सांस्कृतिक केन्द्र से फिर से मिल जायेगा।

व्यापारिक और सांस्कृतिक केन्द्र होने के अतिरिक्त लद्दाख का अन्य महत्त्व भी है। अकसाई चिन इसका महत्त्वपूर्ण प्रान्त है। यहाँसे जो सड़क रूदोक को चीनियों ने बनाई है उसकी सुरक्षा की दृष्टि से इसका कितना महत्त्व है, उसपर इस लेख के अन्तिम भाग में विचार करेंगे। यहाँ इस मार्ग के विषय में बताना ही अधिक उचित होगा।

दसवीं शताब्दी से अरबों की दृष्टि तिब्बत पर पड़ी। इस लालच का कारण थीं तिब्बत की स्वर्ण प्रतिमाएँ। उन दिनों हर एक मनचला अरब तिब्बत में घुसकर मार-काट करने का इच्छुक रहता था। इन्हीं लुटेरों में एक 'साबित' भी था। जैसा कि उन दिनों प्रचलन था कि माताएँ अपने बच्चों को कहानियाँ सुनाया करती थीं, साबित की माँ ने भी अपने बेटे के समक्ष तिब्बत की स्वर्णिम मूर्ति खींची। साबित के मुँह में पानी भर आया। उन दिनों पश्चिमी तिब्बत के लिए खुतन से मार्ग था। साबित खुतन आया (लगभग ९१२ ई० में)। यहाँ उसको ज्ञात हुआ कि तिब्बत का मार्ग एक पुल पर से जाता है। यह पुल आकाश नदी पर कारा नाकू ताग ग्राम के निकट कुइनलन के उत्तरी ढाल पर है। फिर इस पुल की चर्चा १५१४ में आती है। इस साल खुतन के दो राजकुमारों में झगड़ा हुआ। एक का नाम था मिर्जा आवा वक्र और दूसरे का सुलतान सईद खान। आवा वक्र ने सुलतान खान को रणक्षेत्र में हरा दिया। सुलतान खान भागा परन्तु आवा वक्र ने पीछा किया। सुलतान खान के पास

सोना-चाँदी बहुत था। द्रव्य के भार के कारण उसकी चाल धीमी थी। उसने समस्त आभूषण आकाश नदी के पुल पर फेंक दिये। इस पुल को पार करके उसने बड़े तिब्बत (उन दिनों लद्दाख को बड़ा तिब्बत कहते थे) में प्रवेश किया। 'स्टाइन' ने इस पुल को देखा था। उसका कहना है कि कारानाकू ताग के निवासी आज भी विश्वास करते हैं कि सुलतान खान ने अपना धन आकाश नदी के पुल से तीव्र गति से बहती हुई नदी में फेंका था। इसका अर्थ यह हुआ कि दसवीं शताब्दी से १६वीं शताब्दी तक यात्री अकसाई चिन के मार्ग का प्रयोग करते रहे। १७वीं या १८वीं शताब्दी तक कोई सेना तो यहाँसे नहीं गुजरी, परन्तु यह मार्ग प्रयोग में आता रहा क्योंकि १९वीं शताब्दी में (१८२२) जब यात्री लेह पहुँचे तो उनको अकसाई चिन के मार्ग के विषय में ज्ञात हुआ। कुछ भौगोलिकों के कथनानुसार मूरक्राफ्ट को पश्चिमी तिब्बत से खुतन को एक अन्य मार्ग भी ज्ञात था। कुछ भी हो, यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि मूरक्राफ्ट को अकसाई चिन के मार्ग के विषय में बहुत कुछ ज्ञात था। इसको प्रमाणित करने के लिए जर्मन वैज्ञानिक श्लेगिनवाइट ने अकसाई चिन पार कर पंगी दावन दर्रे होते हुए सिंक्यांग में प्रवेश किया था। तत्पश्चात् जानसन ने १८६६ में अकसाई चिन के मार्ग का पूरा सर्वेक्षण किया। उन्हीं दिनों सर रौलिन्सन ने भविष्यवाणी की कि" इस अकसाई चिन के मार्ग से होकर खुतन से नीती दर्रे (उत्तर प्रदेश) तक मोटर गाड़ियाँ चला करेंगी।" लगभग ८० साल पश्चात् चीनियों ने प्रमाणित कर दिया कि रौलिनसन ने ठीक कहा था। अब यदि हम अपनी ही मूर्खता के कारण इसे न समझ सकें तो किसे दोष दिया जाय?

इस मार्ग के महत्त्व के अतिरिक्त लद्दाख इस कारण भी महत्त्वपूर्ण है कि इसकी सीमा अफगानिस्तान, रूस, सिंक्यांग और तिब्बत से मिलती है। यह हाल शताब्दियों से रहा है, और जब तक भारतीय युवकों की रगों में आर्यरक्त प्रवाहित होता रहेगा तब तक ऐसा ही रहेगा। लद्दाख का एक राजा गीसार ७वीं शताब्दी में हुआ। उसने तो चीनियों की खूब ही मरम्मत की। गीसार की इस विजय के गाने भी लद्दाखी भाषा में बनाये गये। कार्ल मार्क्स (कम्युनिस्ट क्रान्ति का देवता नहीं वरन् एक मिशनरी) का कथन है कि गीसार के विजय-गान लद्दाखियों को ज्ञात अवश्य हैं, परन्तु भय के कारण वे उन्हें जनता में गाते नहीं। गीसार के समय में लद्दाख एक शक्तिशाली विस्तृत राज्य था। इसका विस्तार पूर्व में तकलाकोट तक था और दक्षिण में कुलू घाटी तक। दसवीं शताब्दी में इस बड़े राज्य का राजा 'नीमागौन' था। इतिहासज्ञों ने इसको सूर्यवंशी राजपूत कहा है। इसने तकलाकोट का क्षेत्र अपने पुत्र को दिया। इस प्रकार ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं कि नीमा नामगियाल (१६८०-१७२०) के समय तक रूदोक जो लद्दाख का एक महत्त्वपूर्ण प्रान्त था, लद्दाखी राजाओं के अधीन था। वास्तव में रूदोक एक नदी की घाटी में है। यह नदी (आजकल तिब्बत में) सिन्धु में मिलती है। यह घाटी खूब उपजाऊ है। यहाँकी आबादी भी पश्चिमी तिब्बत में सबसे अधिक है। इसी कारण यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं कि नामगियाल ने अपनी राजधानी रूदोक में रखी। इससे यह स्पष्ट है कि लद्दाख के शासक लद्दाख से पूर्व में तकलाकोट की ओर सभ्यता के आरम्भ से १८ वीं शताब्दी तक बढ़े। फिर इतिहासज्ञों ने तो यह प्रमाणित किया है कि एक समय आर्य स्वात घाटी म रहते थे। इन्हीं आर्यों की एक शाखा लद्दाख आयी और उसने पश्चिमी तिब्बत पर शासन किया। इस आधार पर यह कहना मिथ्या न होगा कि लद्दाख निवासियों की रगों में आर्यरक्त बहता है। चाहे हम गूजरों को देखें (यह लोग अधिकतर गाय अथवा भैंसें ही पालते हैं और ऋतु के अनुसार अपने पशुओं की रक्षा के लिए एक स्थान से दूसरे पर घूमते रहते हैं) चाहे वक्रवालों (बकरियाँ अथवा भेड़ पालनेवाले) को, अथवा पहाड़ी असभ्य जातियों को देखें, सबों का रंग गेहुँआ, नाक लम्बी, माथा चौड़ा और बाल काले मिलेंगे। इनकी रगों में भी वही रक्त है जो पंजाबियों में। परन्तु लद्दाख-निवासी नाटे होते है। इसका कारण है खाद्य पदार्थों का अभाव। ऐसी ऊँचाई पर शारीरिक लम्बाई बढ़ाने वाले पदार्थ नहीं खाये जा सकते। फिर खाएँ भी कहाँ से? शताब्दियों से साधारण सत्तू और मक्खन मिश्रित नमकीन चाय के प्रयोग ने इनको नाटा बना दिया है। यह साधारण लद्दाखियों के चिह्न हैं। सम्पन्न परिवार के व्यक्ति जहाँ खाद्य पदार्थों का अभाव नहीं है, लम्बे भी हैं और कश्मीरियों की भाँति गौर वर्ण भी। सौन्दर्य तो उनकी वंशपरम्परागत विशेषता है। जब भारतीय सैनिक लद्दाख गये तो उन्होंने सोचा कि लद्दाखी भी तिब्बतियों की भाँति ही चपटी नाक-नकशेवाले होंगे। परन्तु उन्हें देखकर वे सचमुच चकित रह गये। एक सैनिक अफसर ने कहा "हम लोग तो लेह से वासगो चकोर का शिकार करने जाया करते थे।" यह शिकार चकोरें थीं या लद्दाख की सुन्दरियाँ?

लद्दाख पहाड़ी धार लेह के उत्तर में है। इसके दक्षिण के समस्त लद्दाखी कश्मीरियों से लगभग मिलते-जुलते हैं। हाँ, रूपशू और जन्सकारी, जिनकी संख्या अधिक नहीं है, इन लोगों से कुछ भिन्न हैं। बात यह है कि सातवीं शताब्दी में चीनियों के दबाव के कारण मंगोलों का आगमन दक्षिणी इलाकों में आरम्भ हो गया। यह लोग चरागाहों की खोज में पश्चिमी तिब्बत के उत्तर में घुसे, और आज तक उसी क्षेत्र में अपने पशुओं सहित घास की खोज में घूमते रहते हैं। ये लोग चांगपा कहलाते हैं। तिब्बती भाषा में 'चांग' का अर्थ है 'उत्तर' और 'पा'

का 'निवासी' यह लोग घास की खोज में रूदोक और चांगचिनमों के क्षेत्रों में भी आते हैं। इनमें से कुछ रूपशू आकर भी बस गये। ये लोग लम्बे और सुडौल हैं, परन्तु इनका रंग गेहुँआ ही है। बाल काले हैं। किसी-किसी के दाढ़ी-मूछें भी होती हैं। तिब्बत में शासन-व्यवस्था ठीक न होने के कारण यह कभी-कभी यात्रियों को लूट भी लेते थे। परन्तु रूपशू और जन्सकार के चांगपा ऐसा नहीं करते। इनके जीवन-निर्वाह के साधन केवल भेड़, बकरियाँ, घोड़े अथवा याक ही हैं।

लद्दाख धार के उत्तर शायोक घाटी में जनसंख्या कम है। परन्तु नुवरा की घाटी की जनसंख्या यहाँकी प्राकृतिक दशा देखते हुए काफी है। लद्दाखी नुवरा घाटी होते हुए सिंक्यांग जाते रहे हैं और सिंक्यांगी लद्दाख आते रहे हैं। डनबोर का कथन है कि सैरीकोल के निवासी आर्य हैं। सम्भव है सिंक्यांगी तातार जाति के हों, परन्तु उनके भी नख-शिख आर्यों से विशेष भिन्न नहीं हैं। इस कारण नुवरावासी भी सिन्धु घाटी के निवासियों से भिन्न नहीं हैं।

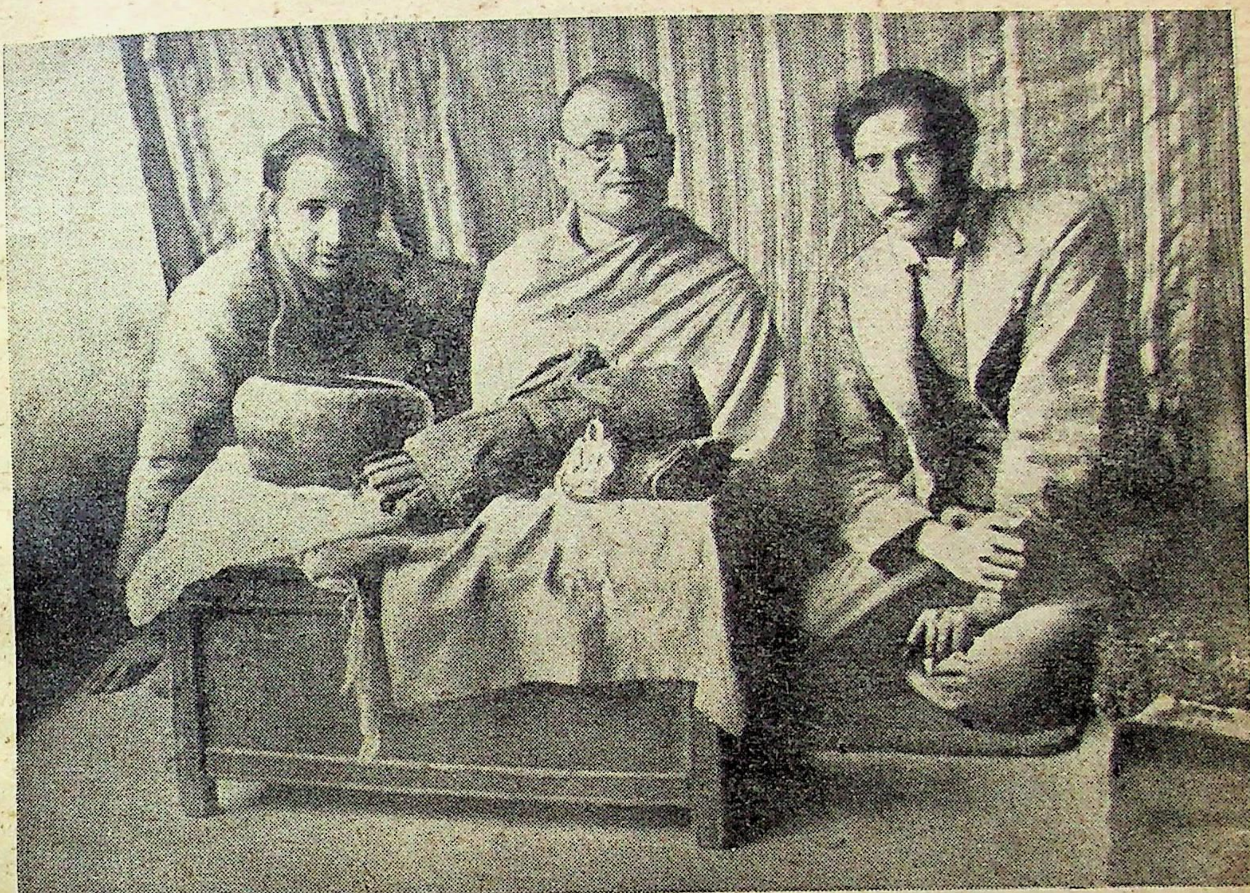
लद्दाख धार के उत्तर में पांगोग क्षेत्र है। इसके पश्चिमी तट पर भान, युगुलिब आदि ग्राम हैं। फोबरांग ग्राम का वर्णन तो किया ही जा चुका है। इस ग्राम का अपना अनोखा महत्त्व है। इस ग्राम के वासी कुछ शताब्दियों पहिले ही तिब्बत से आये हैं। कारण क्या है? चीनी अपने पड़ोसी जातियों को उनके स्थान से हटाकर वहाँ स्वयं बसते जा रहे हैं। मंचू १६४४ ई० में चीन की गद्दी पर आये और उन्होंने अपनी शक्ति का विस्तार आरम्भ कर दिया। उन्होंने तिब्बत के शासन में भी हस्तक्षेप किया। उस समय पंचम दलाई लामा तिब्बत में शासन करता था। चीनियों की सहायता से दलाई लामा ने ल्हासा की गद्दी पर अपना अधिकार कर लिया और चीनियों की प्रसन्नता के हेतु तिब्बती सीमा बढ़ाना आरम्भ किया। उसकी फौजों ने लद्दाख पर आक्रमण कर दिया। उन दिनों जहाँगीर भारत के शासक थे। तिब्बती सैनिक लद्दाख में ३ साल तक घुसे रहे। जब लद्दाखियों ने मुगल सम्राट् से सहायता माँगी तो शाही सेना ने लद्दाख में प्रवेश किया और उन्होंने बासगो के मैदान में तिब्बतियों को हराकर भगा दिया। कुछ तिब्बती लद्दाखी सीमान्त ग्रामों में बस गये। वे फिर वापिस नहीं गये। उसी समय कुछ और तिब्बती भी लद्दाख के सीमान्त प्रान्त में आ बसे। आज भी ये लोग पांगोंग और फोवरांग ग्रामों में पाये जाते हैं।

यदि वास्तविकता देखी जाय तो ज्ञात होगा कि लद्दाख में दो ही जातियाँ (races) हैं। एक आर्य और दूसरी तारतारी। इसी प्रकार लद्दाख में दो धर्म हैं, एक बौद्ध और दूसरा इसलाम।

लद्दाख की पहाड़ी धाराएँ संसार के अन्य बड़े-बड़े पर्वतों की भाँति समानान्तर हैं। यह धारें इन दोनों धर्म के लोगों को विभक्त करती हैं। हिमालय और जन्सकार धारों के बीच में मुसलमान रहते हैं। बौद्ध 'मूलवेक' से आरम्भ हो जाते हैं। मूलवेक जन्सकार धार के दक्षिणी ढाल पर है। लद्दाख के बौद्धों ने अपनी सभ्यता को प्राकृतिक सीमा के आगे के ढालों तक पहुँचाया। यही नीति (Policy) हिन्दुओं की थी। कुछ ही शती पहिले हिन्दू धर्म की सीमा हिमालय के उत्तरी ढाल तक थी। इस प्रकार लद्दाखी बौद्ध जन्सकार धार के दक्षिणी ढाल पर हैं, और उत्तर में लद्दाख रेंज के उत्तरी ढाल तक।

अब शायोक और नुवरा घाटियों की चर्चा करनी है। प्राचीन काल में सिंक्यांग में बौद्ध धर्म था, फिर आया इसलाम। इसी प्रकार बालतिस्तान और खावकार प्रान्तों में। नुवरा घाटी पर इसका प्रभाव निश्चय ही होना था। यही कारण है कि नुवरा घाटी के निवासी बौद्ध भी हैं और मुसलमान भी। परन्तु शायोक घाटी पर लद्दाख और तिब्बत का प्रभाव पूर्णरूप से रहा। इसी कारण यहाँके निवासी बौद्ध ही रहे।

धर्म की भाँति ही यहाँ दो भाषाएँ भी प्रचलित हैं। एक लद्दाखी जो तिब्बती भाषा के समान ही है, और दूसरी हिन्दुस्तानी जो कि उर्दू लिपि में लिखी जाती है। अब लद्दाखी स्कूलों में हिन्दी और अँगरेजी भी पढ़ाई जाने लगी है। यहाँके स्कूलों का विकास भी काफी हुआ है। यह लद्दाख के इतिहास में प्रथम अवसर है जब कि लद्दाखी बालक एवं बालिकाएँ प्रातः ८, ९ बजे बगल में बस्ता दबाए पाठशालाओं को जाते दिखायी देते हैं। ये वे ही लोग हैं जो प्राकृतिक जीवन को ही जीवन समझते थे और इसी बहाने पानी की बूंद भी शरीर से न लगने देते थे। अब उन्हींकी सन्तान प्राकृतिक जीवन से हटकर सभ्यता की ओर अग्रसर हो रही है, स्कूल जा रही है। यहाँ हाई स्कूल भी खुल चुके हैं। यहाँके बालकों को कालिज की शिक्षा के लिए ही श्रीनगर आना पड़ता है, अन्यथा सब वहीं शिक्षा पा रहे हैं। परन्तु समय पुकार-पुकारकर कह रहा है कि भारतीयकरण की गति धीमी है। इसको अपना आर्थिक विकास शीघ्रातिशीघ्र करना अति आवश्यक है, और लद्दाख का, जो लाहोलियों का व्यापारिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र है, विश्व में अपना निराला ही महत्त्व है। वह भारत का प्राचीन काल से एक विशेष अंग रहा है। इसको भारतीय बनाये रखना, और भारत का अविछिन्न अंग बनाये रखना अत्यन्त आवश्यक है।



पोए-खंग गुम्पा में शाक्यश्री भद्र का सामान देखते हुए। (बाएँ से श्री कँवलकृष्ण, राहुल जी, फेनी मुकर्जी)

राहुलजी के साथ तिब्बत के अभियान में (८)

श्री फेनी मुकर्जी

आज प्रातः से ही विशाल प्रसिद्ध पोए-खंग गुम्पा बादलों की धुंध में छिपा खड़ा था, मानों अपने आँचल से अपने को छिपाये हुए अपने निर्बोध भक्तों से आँखमिचौनी खेल रहा हो। सर्दी की प्रबलता के कारण हमारे सभी साथी कम्बलों से लिपटे अपनी शयन-सज्जाओं पर पड़े थे। सर्दी के कारण मैं बरामदे से उठकर कमरे के अन्दर अपने साथी अभयसिंहजी के पास आ बैठा। गेशेलाजी ने बताया कि कल किसी खच्चरवाले ने उनको बताया था कि कोई भारतीय ग्यानसी आये हुए हैं और हम लोगों से मुलाकात करने की चेष्टा कर रहे हैं। यह सुनते ही तुरन्त मैंने कहा कि हमारे मित्र कँवलकृष्णजी तिब्बत पहुँच गये हैं। मैंने तिब्बत में प्रवेश करते ही अंग्रेज अधिकारी एवं तिब्बती अधिकारियों से "पारपत्र" बनवाकर अपने वचन के अनुसार कँवलकृष्ण को कलकत्ते भज दिया था। वह एक तिब्बती व्यापारियों की टोली के साथ तिब्बती नगर ग्यानसी तक आ पहुँचे थे। राहुलजी ने उनको एक कलाकार अतिथि के रूप में अवश्य स्वीकार किया परन्तु हमारे अभियान दल का सदस्य मानने से इंकार कर दिया था। खाने-पीने की सुविधा हमसे मुफ्त मिलेगी पर बदले में उनको मेरे फोटोग्राफी के कार्य का सहायक बनना होगा। मित्र से मिलने की उमंग की तरंगें मेरे मन में हिलोरें लेने लगीं। मेरे बार-बार अनुरोध करने पर श्री अभयसिंहजी ग्यानसी की ओर नौकर, खच्चर और कलकत्ते की फोटोग्राफी की विदेशी कम्पनियों के नाम लिखे हुए कुछ आवश्यक तार लेकर चल पड़े।

अधिक सर्दी होने के कारण मैंने नौकर को कमरे में आग जलाने के लिए कहा और फिर से एक नई स्फूर्ति लेकर अपने कार्य में जुट गया। आज के कार्य के परिणाम-स्वरूप यह अनुभव हुआ कि आग के जलने और बुझने से कमरे के तापमान में जो परिवर्त्तन होता है उसका प्रभाव फोटोग्राफी के रसायन पर पड़ता है। इस नये अनुभव को लेकर दूसरे दिन प्रातः से ही नई उमंग और स्फूर्ति के साथ कार्य आरम्भ किया। सारे दिन काम करने के उपरान्त मैंने पूरे दो भारतीय हस्तलिखित तालपत्रों के निगेटिव सफलतापूर्वक बना डाले।

दस-बारह दिन काम रुक जाने की क्षति की पूर्ति करने के लिए मैं फोटोग्राफी के काम को चौगुनी गति से करने लगा। प्रातः आठ बजे से रात्रि के बारह-एक बजे



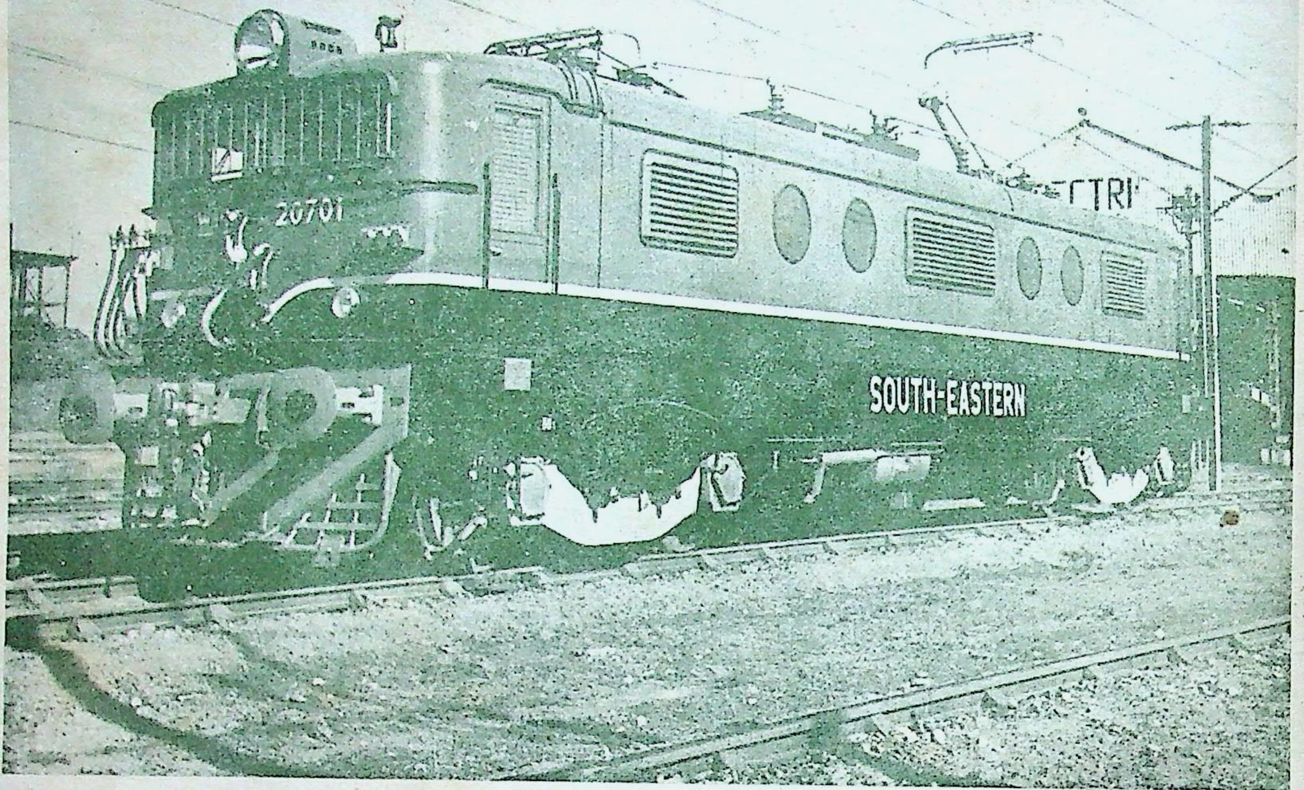
पोए-खंग गुम्पा में शाक्यश्री भद्र के सामान का परीक्षण करते हुए श्री अभयसिंह परेरा और गेशेला गैंडम चौमफेल

तक काम करके लगभग नौ पुस्तकों की फोटो पाँच दिन में ले डालीं। इस कठोर परिश्रम एवं सर्दी में ठंडे पानी में हाथ भिगोये रहने के कारण मैं बीमार पड़ गया। थर्मामीटर लगाने से पता चला कि मुझको दिन-रात १०४° के ऊपर ज्वर रहता है। तिब्बत के कड़ाके की सर्दी में ज्वर की तेजी को आदमी अनुभव नहीं करता, इसी कारण तीन-चार दिन में निमोनिया से ग्रस्त रोगी मर जाता है। गेशेलाजी के आदेशानुसार बुखार में भी मैं पेट भर कर कच्चा सूखा मांस खाता रहा और अपने पेट को एक लम्बे गुलूबंद से लपेटे रहा। जब राहुलजी और गेशेलाजी पुस्तकों को बदलने गुम्पा में गये तो वहाँके मुख्य लामा ने मेरी खोज की। वह मुझको मेरी सुन्दर दाढ़ी के कारण प्यार करने लगे थे। मेरे अस्वस्थ होने की खबर सुनकर दुखी हुए और उन्होंने चार छोटी-छोटी गोलियाँ खाने के लिये और एक तावीज़ लाल कपड़े की पट्टी में बाँधकर मेरे लिये भेज दी। राहुलजी ने लौटकर उनकी सारी बातें बताईं तो मैं प्रसन्न होकर उठ बैठा और मैंने उन चीजों को माथे से छुआकर तावीज को गेशेलाजी की सहायता से अपने बायें हाथ में बाँध लिया। नौकर से चाय मँगवाकर जब मैं उन गोलियों को खाने लगा तो हमारे दोनों साथी हँस पड़े और गेशेलाजी ने बताया कि वह गोलियाँ कोई जड़ी-बूटी या धातु पदार्थ से बनाई हुई दवाइयाँ नहीं हैं बल्कि वह दलाई लामा के मल-मूत्र को सत्तू में सानकर बनाई गई हैं। इस देश में हर प्रकार के रोगी के लिए यही दवाई उत्तम समझी जाती है और बड़े भाग्यशाली को यह दवाई प्राप्त हो पाती है। पूर्ण विश्वास रखनेवाला रोगी इस दवाई के सेवन से स्वस्थ हो जाता है और मन में संकोच रखनेवाला रोगी तुरन्त मर जाता है। ऐसा विश्वास था यहाँ के लोगों का। इतना सुनने पर भी उन गोलियों को मैं फेंक न सका। तावीज की गाँठ खोलकर उन मंत्र लिखे कागजों के साथ उन गोलियों को भी कपड़े में बाँधकर अपनी बायीं भुजा पर बाँध लिया। भगवान् की कुछ ऐसी कृपा हुई कि चौथे दिन मेरा ज्वर उतर गया और मैं धीरे-धीरे फिर काम-काज करने लगा।

चौदह पन्द्रह तालपत्र की पोथियों की नकल उतारने के बाद सारे पुस्तकालय की छान-बीन करने पर भी और कोई प्राचीन भारतीय पोथी प्राप्त न हुई। उस बड़े कमरे में सिवाय इस प्रवेश-द्वार के और कोई अन्य द्वार न था। केवल पीछे की दीवार पर एक खिड़कीनुमा द्वार था जिसके बंद पल्लों पर भी सील मुहर लगी हुई थी। उन सहायक भिक्षुओं को चाय पीने की छुट्टी देकर उस द्वार पर लगी सील मुहर को राहुलजी ने तोड़ डाला। खोलते ही देखा एक अंध कूप बड़ा भारी कमरा पुस्तकों के छोटे-बड़े बण्डलों से भरा पड़ा है। मशालों की सहायता से भीतर



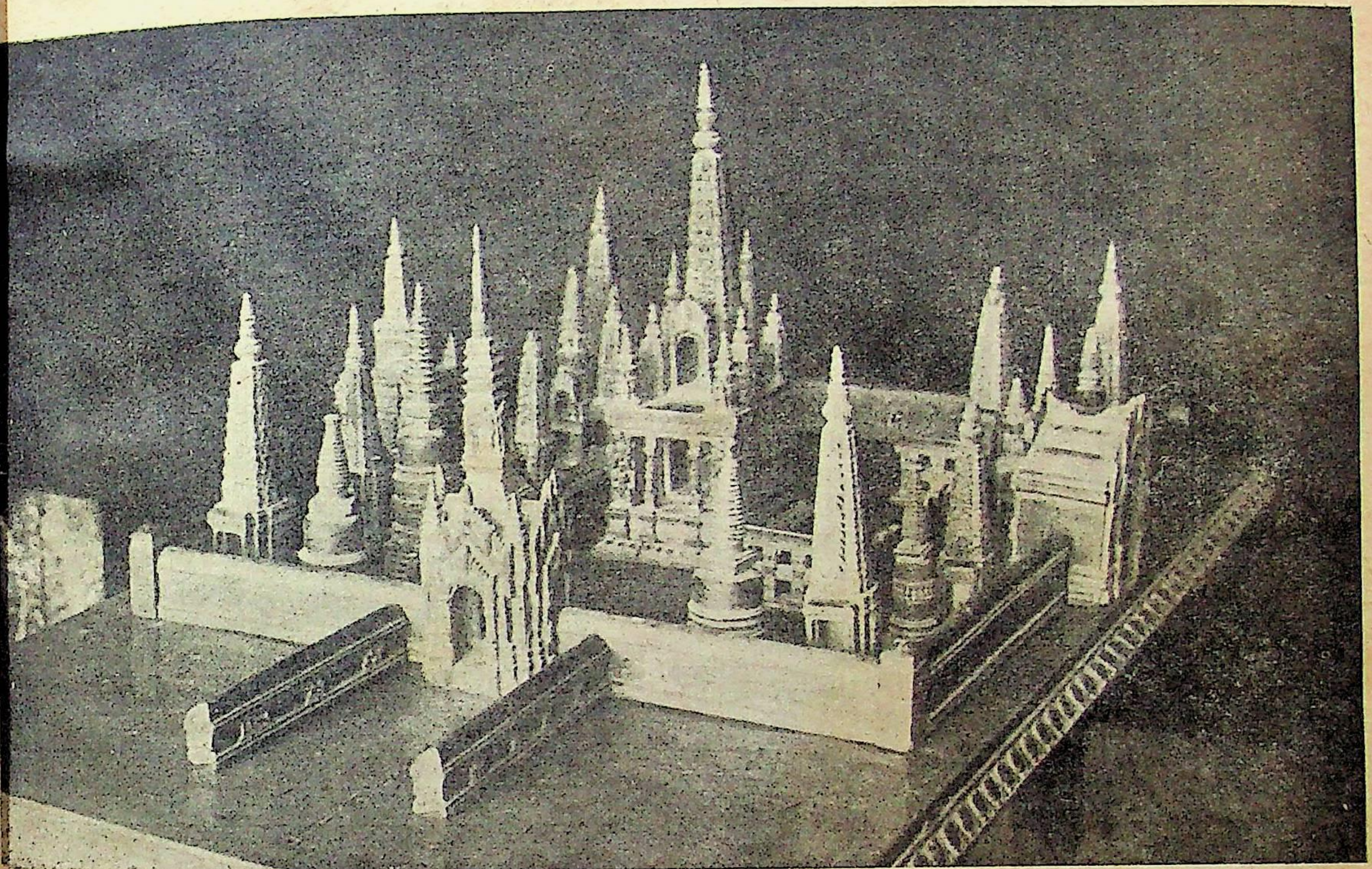
पोएखांग गुम्पा (मूल चित्र रंगीन है। इसे श्री फेनी मुकर्जी ने वहीं २८ जून १९३८ को अंकित किया था।)



चित्तरंजन कारखाने में अभी तक भाप से चलनेवाले रेलगाड़ियों के इंजिन बनते थे। अब उसने बिजली से चलनेवाले इंजिन बनाना भी आरंभ किया है। उसका ए० सी० बिजली से चलनेवाला पहिला इंजिन गत मास तैयार हुआ। इसका नाम 'विधान' रखा गया है। यह बड़ा शक्तिशाली है और २००० टन माल से लदी गाड़ी ३२ किलोमीटर प्रति घंटे के हिसाब से ले जा सकता है। तृतीय पंचवर्षीय योजना काल में यह कारखाना ऐसे एक सौ इंजिन तैयार करेगा।



नवंबर में राष्ट्रपति ने नेपाल की यात्रा की। हवाई अड्डे पर महाराजाधिराज नेपाल



पोए-खंग गुम्पा में प्राप्त गया के प्राचीन बुद्ध-मंदिर की अनुकृति

जाकर कुछ बण्डल खोलने पर पता चला कि इस कमरे में बहुमूल्य प्राचीन, बड़े-बड़े और सुन्दर धार्मिक चित्र भी रक्खे हैं। इन चित्रों की शैली हमारी प्राचीन भारतीय चित्र-शैली से मिलती-जुलती थी और यह चित्र बौद्ध धर्म के देवी-देवताओं के थे। प्रत्येक चित्र की लम्बाई-चौड़ाई लगभग बारह और आठ फुट से कम न थी। ये चित्र रेशमी मोटी किर्मिच पर तैल-रंगों से अंकित थे। देवी-देवताओं की मुखाकृतियाँ, एवं भाव-भंगिमाएँ इतने सूक्ष्म और निपुण ढंग से कलाकार ने चित्रित की थीं कि जी करता है इस विषय पर एक अलग से लेख लिख डालूँ। विभिन्न चमकदार चटकीले रंगों का प्रयोग इतने नापतौल से प्राचीन कलाकारों ने किया था कि हम ऐसे आजकल के कलाकारों की विद्या और ज्ञान की योग्यता उनके सामने नगण्य है। इन विराट् चित्रों की सफाई, सूक्ष्म नक्शाकशी एवं गम्भीरता हमारे देश की मुगल शैली या राजस्थानी शैली से कहीं अधिक उत्तम और सूक्ष्म थी। मैं स्वयं चित्रकार होने के नाते इन चित्रों को खड़े देखता ही रह जाता था, यह सोचता हुआ कि प्राचीन काल के यह भारतीय कलाकार भी अन्य ऋषि-मुनियों की भाँति बुद्ध महाराज एवं बौद्ध धर्म का गुण गा-गाकर जगत् में मोक्ष पाने की कहानी का प्रचार करते फिरते थे। इतिहासकारों के मतानुसार सम्राट् कनिष्क के समय में तिब्बत एशिया में बौद्ध धर्म का केन्द्र था और यहींसे कला के द्वारा चीन, जापान और मध्य एशिया में बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ था। उस समय की कला के कुछ अवशेष चिह्न इस पोए-खंग गुम्पा के पुस्तकालय में उपलब्ध थे।

हमारे सहायक भिक्षुओं से खबर पाकर नीचे से मुख्य लामा के साथ अनेक लामा और भिक्षु दौड़ आये। सभी लामा जीभ निकाल-निकाल कर बड़ी श्रद्धा से इन चित्रों पर माथा टेक रहे थे। वे सभी इन चित्रों के दर्शन से प्रसन्न थे। मौका पाकर मैं दौड़कर अपना फोटो उतारने का एक केमरा ले आया और मैंने मुख्य लामा महोदय का चित्र एक बड़े भारी बुद्ध महाराज के चित्र के साथ उतार लिया। दूसरे दिन चित्र की एक कापी बनाकर जब मुख्य लामाजी को भेंट दी तो वे अपनी फोटो को इस प्रकार बुद्ध महाराज के साथ देखकर गद्गद हो उठे और इस खुशी में उन्होंने उन सारे चित्रों की फोटो उतारने की आज्ञा, बिना कोई फीस लिये, दे दी। दो चार दिन में लगभग ४६ चित्रों के फोटो उतार कर बड़े ही उत्तम निगेटिव तैयार कर लिये।

जब मैं अपने काम में जुटा हुआ था तो ग्यानसी से लौटकर नौकर ने हाँफते हुए आकर बताया कि अभय-



पोए-खंग गुम्पा में प्राप्त महाकाल का विशाल चित्र

सिंहजी हमारे मित्र कँवलकृष्णजी को साथ लेकर चलेआ रहे हैं। सब काम छोड़कर मैं बाहर पठार पर दौड़ा गया, और अपने दोनों साथियों को दूर से आते हुए देखा। लपक कर मैं भी आगे बढ़ा और लिपट कर अपने प्यारे साथी कँवलकृष्णजी को अपने पड़ाव पर लिवा लाया। अपने सहायक साथी कँवल को पाकर बड़े ही उत्साह और प्रसन्नता से फोटोग्राफी का कार्य निपटा डाला दो तीन दिन में।

इस बड़े कमरे में मूल्यवान् चित्रों के साथ एक पोटली में दो बहुत प्राचीन हस्तलिखित तालपत्र की पुस्तकें भी निकलीं जो कि राहुलजी के कथनानुसार एक प्राचीन संस्कृत व्याकरण और दूसरी पाली भाषा में रोग-चिकित्सा रसायन मंत्रों की थीं। दोनों ही किताबें हमारे भारत से लुप्त हो गयी थीं और इनके पाने को हमारे देश के विद्वान् निराश हो चुके थे। राहुलजी ने कहा "ये खोई हुई बहुमूल्य पोथियाँ फिर से हमारे देश के निराश विद्वानों के हृदय में ज्ञान डाल देंगी और इनसे संस्कृत के पंडितों के आपस के मतभेदों का भी आसानी से निर्णय हो सकेगा।"

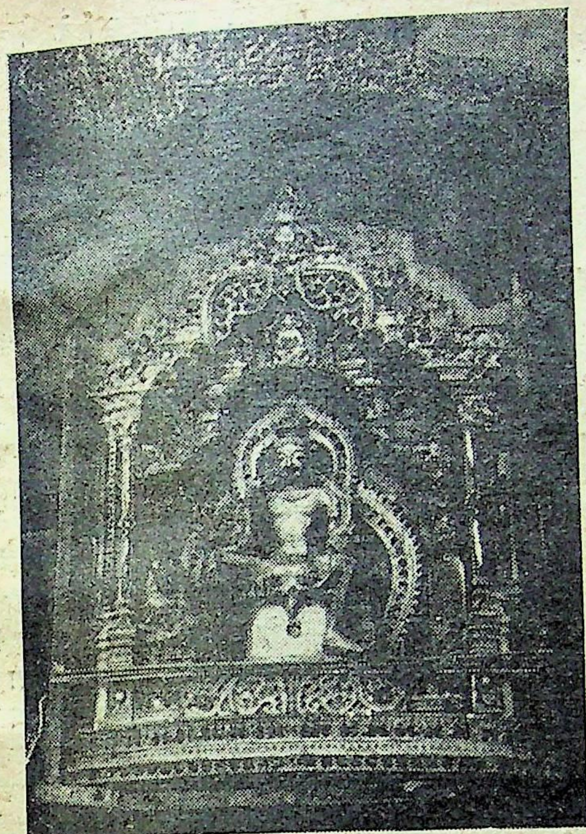
यहाँ एक और अदभुत, बहुमूल्य और दुर्लभ वस्तु मिली। वह थी गया के बुद्ध-मंदिर की अनुकृति (मॉडेल)। यह पत्थर की थी और प्राचीन समय में श्रद्धालु भिक्षु इसे भारत से बनवा कर ले गये थे। मैंने इसकी प्लास्टर आफ पैरिस की एक प्रतिलिपि बनायी। इसे देखने से मालूम हो सकता है कि गया के बुद्ध मंदिर का मूल आक प्रकार कैसा था।

अन्तिम दिन हम हर एक छोटी-बड़ी पोटली खोल-खोलकर खोज रहे थे कि कहीं कोई और मूल्य वस्तु मिल जाय, तो देखा कि एक सुन्दर र रेशमी कपड़े में बँधी हुई कुछ वस्तुएँ एक अलमारी रक्खी हैं। उस पोटली के भीतर एक गहरे पीले रंग मोटी रेशम की चादर, एक ताँबे का गोल भगौना, काँसे का बना हुआ हजामत करने का चाकू और बुद्ध देवता की छोटी मूर्ति थी। यह पीली चादर प्रा काल के बौद्ध धर्म के नियमों के अनुसार अनेक चौ कपड़ों को जोड़कर बनायी गयी थी। ताँबे का भगौना उसी आकार का था जैसा कि अजन्ता की गुफ में भिक्षा माँगते मुद्रा में महात्मा बुद्ध के हाथ में अं है। इन चीजों को पाकर हम सब बहुत प्रसन्न ज हुए पर अब पता कैसे लगे कि इन वस्तुओं का स्वा कौन था?

हमारी उत्सुकता को शान्त करने के लिए गु के एक बुद्ध लामा ने बताया कि पिछले दलाई लामा के "तंज्जौर" पढ़ने से इन चीजों की रामकहानी पता लग जायगा। मुख्य लामा के पुस्तक-भंडार उस "तंज्जौर" को लाकर गेशेलाजी और अभयसिंह पढ़ने लगे। हरेक दलाई लामा धार्मिक ज्ञान की किता



पोए-खंग गुम्पा में प्राप्त भगवान् बुद्ध का तेरह सौ व प्राचीन चित्र जो १२ फुट लंबे और ८ फुट चौड़े रेशमी कपड़े पर बना है।



यह बुद्ध भगवान् की हाथीदाँत की प्रतिमा शाक्य श्री भद्र भारत से तिब्बत ले गये थे और हमने इसे पोए-खंग गुम्पा में देखा

ही अनुभूत बातें एक बड़ी लम्बी चौड़ी मोटी पोथी में लिखकर छोड़ गया है जिसको वह "तंज्जौर" कहते हैं। यहाँके लामाओं का विश्वास है कि दलाई लामा को, बुद्ध भगवान् का अवतार होने के कारण, युग-युग की पुरानी धार्मिक कथाओं का पूर्ण ज्ञान रहता है और वे आनेवाले युगों की भविष्यवाणी भी ठीक-ठीक कर सकते हैं। हर एक दलाई लामा अपने सारे जीवन भर पंडितों को बैठा-कर अपने मन की बातों को लिखाते रहते हैं। इन 'तंज्जौरों' को पढ़ने से तिब्बत की अनेक प्राचीन बातों का पता चलता है। वास्तव में उन लामा महोदय का अनुमान ठीक निकला। गुम्पा के दो-तीन लामाओं की सहायता से गेशेलाजी ने खोज निकाले वे पन्ने जिनमें इन चीजों से सम्बंधित कुछ बातें लिखी थीं। इनको पढ़ने से पता चला कि यह भारतीय तालपत्र की बनी हुई हस्तलिखित पोथियाँ लगभग तेरह सौ वर्ष पहले कुछ भारतीय बौद्ध भिक्षु यहाँ तिब्बत में लाये थे। इसके बाद बौद्ध धर्म के भारतीय प्रचारक बौद्ध धर्म के देवी-देवताओं के बड़े-बड़े चित्रों को भारत से लाये। लगभग आठ सौ वर्ष पूर्व कुछ भारतीय भिक्षु जो चित्र-कार भी थे, यहाँ भेजे गये थे जो अपने साथ इन चित्रों को लाये थे। उन्हीं लोगों ने यहाँ मठों की दीवारों पर धार्मिक चित्र अंकित किये थे एवं यहाँके चित्रकारों को बौद्ध भिक्षु बनाकर उन्हें यह चित्रकारी की कला सिखायी थी।

इन "तंज्जौरों" को पढ़ने से पता चला कि प्राचीन काल में यहाँ एक महान् भारतीय बौद्ध पंडित आकर रहे थे। इनका नाम था शाकेश्री (शाक्यश्री) भद्र। वे १२०३ ई० में तिब्बत में अपने दस शिष्य भिक्षुओं के साथ आये थे। लगभग दस वर्ष तिब्बत के विभिन्न नगरों में घूम-घूम कर उन्होंने जगह-जगह बौद्ध धर्म के मठ स्थापित किये थे। तिब्बत में बौद्ध धर्म के प्रचार के बाद जब वह भारत लौटकर गये तो वे विक्रमशिला के प्रधाना-ध्यापक हुए तथा पाल वंश के राजगुरु माने जाने लगे। आगे चलकर तंज्जौर के पढ़ने से पता चला कि इन महान् पंडित ने अपनी उच्च शिक्षा कश्मीर के धार्मिक विद्या-लयों में प्राप्त की थी। वह सामान जो पोटली में मिला था, उन्हीं का था।

उपर्युक्त यह सारा विवरण उस समय की लिखी हुई अपनी डायरी के पन्नों से उतारकर लिख रहा हूँ। जब मैं तिब्बत गया तब मैं केवल एक तरुण चित्रकार मात्र था और अपने ऊपर प्राचीन हस्तलिपियों के फोटो उतारने का एक बड़ा भारी महत्त्वपूर्ण भार लेकर गया था। आदरणीय भैया साहब के पास उठने-बैठने से प्राचीन भारत का इतिहास सुनने का थोड़ा-बहुत शौक



पोए-खंग गुम्पा में प्राप्त "सती डोन" (सफेद तारा) का चित्र। यह ९ फुट लम्बा, ६ फुट चौड़ा चित्र रेशमी कपड़े पर बना है और १३ सौ वर्ष पुराना है।

हो गया था। इसी कारण अपने साथियों की आपस की बातचीत, एवं वहाँके लामाओं से अपने साथियों की बातचीत और वाद-विवाद से आकर्षित होकर मैंने प्राचीन इतिहास की कुछ बातों को अपनी डायरी में लिख लिया था। प्रथम तो मैं अकेला फोटोग्राफर होने के कारण अपने कार्य में अत्यन्त व्यस्त रहता था; द्वितीय, अड़चन थी कि मैं तिब्बती और संस्कृत भाषा को समझने में असमर्थ था। लामाओं की बातें भी स्वयं नहीं समझ पाता था। समय के अभाव के कारण अपनी डायरी में लिखने के लिए द्विभाषी गेशेलाजी की बताई हुई बातों को कई दिनों तक याद रखना पड़ता था। तिब्बत-निवासियों ने जो ऐतिहासिक तिथियाँ अपने ग्रंथों में लिखी हैं वे निश्चित रूप से नहीं बतायी जा सकती हैं कि वे ईसा पूर्व की, या ईसा के बाद की हैं या वे तिब्बती संवत् की तिथियाँ हैं। और एक कठिनाई यह भी थी कि तिब्बत के लेखकों ने हमारे शहरों एवं लोगों के असली नाम न लिखकर उनका अनुवाद कर डाला है जिसके कारण सही नामों का पता लगाना कठिन है। माननीय पाठकों से प्रार्थना है कि मेरी ऐतिहासिक विवरण की त्रुटियों को क्षमा करें और अगर महापंडित शाकेश्री भद्रजी के विषय की सटीक जानकारी लिख भेजें तो लेखक बड़ा आभारी होगा।

थोड़े ही दिनों के मेलजोल के बाद हम लोग गुम्पा के लामाओं एवं गाँववालों के साथ इस प्रकार घुल-मिल गये मानों हम भी उसी स्थान के नागरिक हों। वे लोग हमसे अपनी सारी दुख-सुख की बातें कहते और हमारे सहयोग की अभिलाषा में रहते थे। मठ या गाँव के प्रत्येक कार्य में माननीय राहुलजी एक भारतीय प्रसिद्ध लामा के रूप में आमंत्रित किये जाने लगे। एक दिन मठ के मुख्य लामा ने हमारे दल के नेता पंडित राहुल सांकृत्यायनजी को मठ की एक विशेष कार्यसमिति की बैठक में आमंत्रित कर भेजा। राहुलजी हम लोगों को भी मठ के भीतर तमाशा दिखाने ले गये।

मठ के द्वार पर अनेक ग्राम-निवासी एकत्र थे और बारी-बारी से प्रत्येक परिवार आज्ञा पाकर भीतर प्रवेश कर रहा था। मठ के भीतर प्रवेश के बाद हम सब दो-तल्ले के बड़े भारी एक सुसज्जित कमरे में ले जाये गये। वहाँ उपस्थित थे मठ के मुख्य लामा और उनके तीन सहयोगी लामा। इन सहयोगी लामाओं में एक तो थे भूतपूर्व मुख्य लामा के सचिव और दूसरे थे भिक्षु भर्ती विभाग के मुख्य अधिकारी। हम लोगों को बड़े आदर से बिठाकर बताया गया कि ग्राम-निवासियों के छोटे-छोटे लड़कों को भिक्षु बनाने के लिए चुना जा रहा है। इसी कारण आज दूर-दूर के ग्रामों से लोग अपने-अपने पुत्रों को लेकर आये थे। श्री गेशेलाजी ने बताया कि मठ में लड़कों को भर्ती होने के लिए एक निर्धारित दिन पर आकर एक परीक्षा पास करनी पड़ती है। शिशु की परीक्षा निम्नलिखित आधार पर होती है।

(१) लड़के की आयु नौ और बारह वर्ष के भीत होनी चाहिए।

(२) लड़का पूर्ण स्वस्थ होना चाहिए।

(३) लड़के के सब अंग निर्दोष हों।

(४) लड़के की लम्बाई उम्र के मुताबिक हो चाहिए।

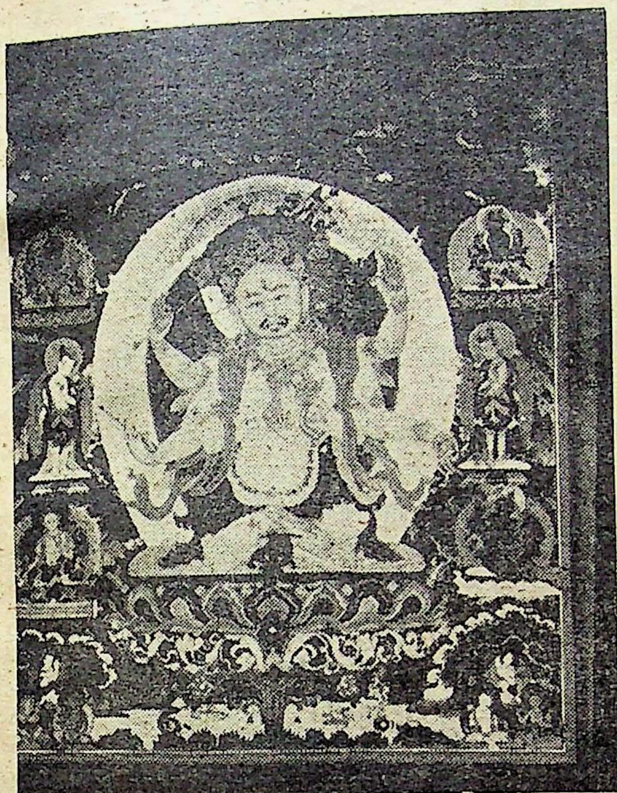
(५) आँख, नाक, कान इत्यादि ठीक प्रकार का करते हों।

(६) लड़के का मुखावरण लावण्यपूर्ण और आ र्षक होना चाहिए। इत्यादि।

शारीरिक परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर एक साधार बुद्धि-परीक्षा भी पास करनी पड़ती थी। प्रार्थी हाजिरजवाबी, शान्त प्रकृति और उसके शिष्टाचा की ओर विशेष ध्यान रक्खा जाता था। हमारे देश सरकारी नौकरी की नियमों की भाँति चुने हुए लड़के पारिवारिक सम्बन्धों की जाँच-पड़ताल भी की जाती थी

इस परीक्षा में पूर्ण रूप से उत्तीर्ण होने पर लड़ को मठ में भिक्षु बनाने के लिए चुन लिया जाता था फिर इन चुने हुए लड़कों की एक निर्धारित दिन पर पूजा पाठ द्वारा शुद्धि कराकर ब्रह्मचारी (ढावा) बना जाता था। तिब्बत में मठों में भर्ती होना हमारे देश सरकारी नौकरी पाने की भाँति महत्त्वपूर्ण समझा जात था। एक बार भर्ती हो जाने पर उस बालक का भवि जीवन उज्ज्वल और उन्नतिशील बन जाता था। आरम् में बालक को किसी प्रमुख भिक्षु का सेवक बनकर रहन पड़ता था। धीरे-धीरे उसको मठ के मोटे-मोटे आधारि नियमों का ज्ञान दिया जाता था। दो चार वर्ष बा उस बालक भिक्षु की रुचि के अनुसार उसको किसी दूसरे ऊँचे दर्जे के ढावा का सेवक बना दिया जाता था फिर तीन चार साल के बाद, लगभग चौदह-पन्द्रह व की आयु में अगर किसी तरुण भिक्षु की रुचि पढ़ने-लिख की ओर पाई जाती तो उसको एक उच्च श्रेणी विद्यार्थी भिक्षु का सेवक बना दिया जाता था। अप गुरु की देखरेख में विद्या ग्रहण करते हुए वह सबसे पह गुरुजनों की सेवा करना, अपने मुख्य धर्म के रूप सीखता था। दस-ग्यारह वर्ष वह पूर्ण मनोयोग से कठि से कठिन और छोटे से छोटे काम बड़ी रुचि से करता तथा मठ के लामाओं तथा ज्येष्ठ ढावाओं की सेव करता हुआ एक दिन लामा की परीक्षा उत्तीर्ण क लेता और मरते दम तक मठ का सच्चा सेवक बन रहता था।

तिब्बती लड़का किसी मठ में भर्ती होने पर भोजन और कपड़े के साथ तीन तिब्बती रुपये (संघ) छात्रवृत्ति पाने लगता था। यह रकम उसके गरीब माँ बाप आक ले जाते थे। धीरे-धीरे ढावा की उन्नति के साथ-साथ छात्रवृत्ति की रकम भी बढ़ती जाती थी। अन्त में पच्चीस, पचपन या सौ तिब्बती रुपये तक हो जाती थी। इस प्रकार ढावा की उन्नति के साथ-साथ उसके परिवार की

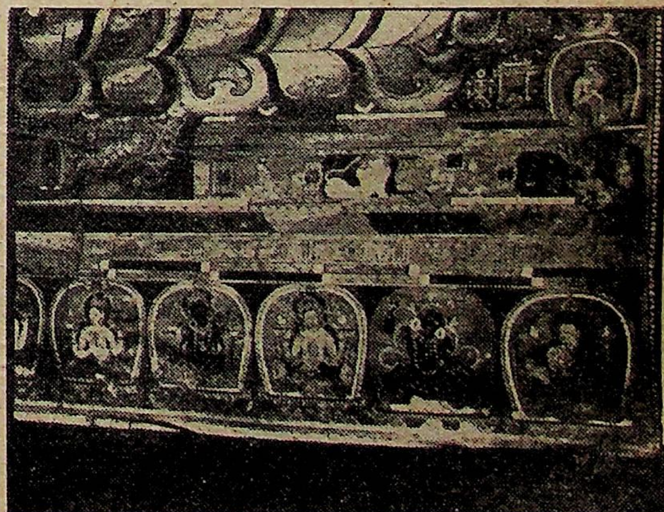


पोए-खंग गुम्पा में तिब्बती गणेश का प्राचीन चित्र जो ९ फुट लंबे और ६ फुट चौड़े रेशमी कपड़े पर बना है।

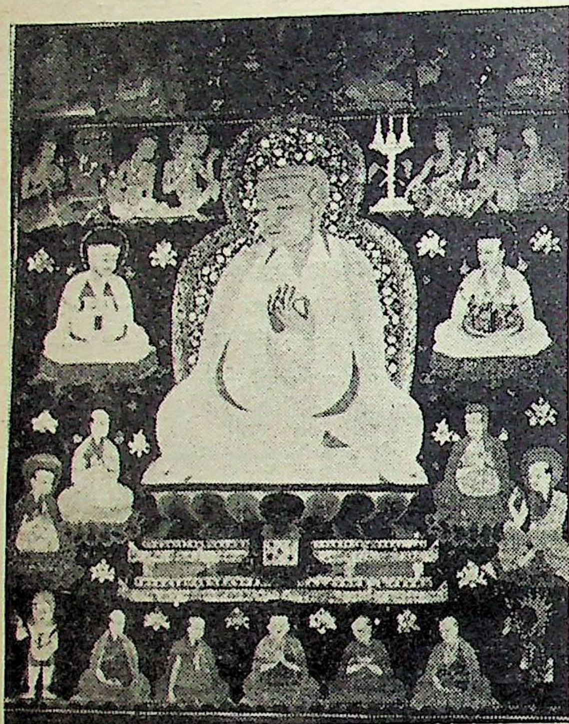
आर्थिक स्थिति भी सुधरती जाती थी। तिब्बती बालक (लड़का या लड़की) के एक बार गुम्पा (मठ) में ढावा या ऐनी (भिक्षु या भिक्षुणी) बन जाने पर उसे सारे जीवन सिर मुँड़ाकर ब्रह्मचर्य का पालन करना अनिवार्य हो जाता था। जीवन में एक भी भ्रष्टाचार की गलती कर डालने पर कड़ी सजा देकर उसको मठ से निकाल दिया जाता।

जिन लड़कों में पढ़ने-लिखने की रुचि नहीं होती वे सारे जीवन मठ के सेवक बनकर रहते थे और सेवक दल में रहकर सेवा-पद पर ही उन्नति करते रहते थे। एक बड़े लामा के प्राइवेट सेक्रेटरी ढावा का दर्जा मठ के एक छोटे मोटे लामा के समान ऊँचा समझा जाता था। प्रत्येक गुम्पा में दो, चार, आठ या दस हजार ढावा और लामा रहते थे। उनके खाने, पहनने, पूजापाठ, गुम्पा की सफाई, मरम्मत, पैसे-कौड़ी का हिसाब-किताब, गुम्पा (मठ) की जमींदारी से कर की वसूली, मठ के अधीन यजमानों के धार्मिक संस्कारों के काम इत्यादि-इत्यादि अनेक काम इन ढावा एवं लामाओं को धर्म शिक्षा ग्रहण करते हुए करने पड़ते थे। उदाहरणस्वरूप, मठ का रसोई-विभाग एक बड़े भारी मिल के कपड़े के धुलाई विभाग की भाँति प्रातः चार बजे से सारे दिन चलता रहता था। उनकी बड़ी-बड़ी ऊँची चाय उबालनेवाली ताँबे की टंकियाँ, बड़ी-बड़ी लोहा गलानेवाली जैसे आग की भट्टियों के ऊपर देखकर हमें अपने देश के किसी बड़े भारी कारखाने की याद आ जाती थी। सैकड़ों ढावाओं को आठ दस लामाओं की देखरेख में बड़ी फुर्ती से चुपचाप काम करते देखकर पता चलता कि वे लोग कितने शान्तिप्रिय और कुशल थे। इन विराट् भट्टियों में भेड़ बकरी की मेंगनी तथा याक का गोबर बहुत बड़ी-बड़ी लोहार की चमड़े की बनी धौंकनियों के सहारे जलाया जाता था। आठ दस फुट ऊँची याक के मोटे चमड़े से बनी धौंकनी को, बड़े मोटे तगड़े चार-चार ढावा लटकी हुई लोहे की मोटी जंजीरों को अपने पैरों से दबा-दबाकर, चलाने का काम पसीना बहाते हुए पारी-पारी से करते रहते थे। फिर पानी पूरी तरह उबल जाने पर खौलते पानी को नल के द्वारा निकाल कर बड़ी-बड़ी डेगचियों में डालने तथा चाय और सोडे की बोरियों को उनमें उड़ेलने के पश्चात् जब पीपों से उनमें मक्खन उड़ेल कर बड़ी भारी मोटी मथनी को चमड़े और ऊन की बनी मोटी रस्सी को चार लम्बे-तगड़े ढावा बारी-बारी से खींच-खींचकर घुमाते तो मशीन पर विश्वास करने-वाला व्यक्ति भौंचक्का रह जाता कि कितना बड़ा काम कितनी सफाई और फुर्ती से मनुष्य अपने शारीरिक बल और बुद्धि से कर सकता है। तिब्बत देश में लकड़ी या कोयला नहीं प्राप्त है। इसलिए गोबर पर ही निर्भर करना पड़ता है। हजारों लाखों मन इस ईंधन को एकत्र करना कोई सरल काम नहीं है। और फिर बारह-चौदह घंटे इन भारी धौंकनियों को बिना किसी इंजन या मोटर की सहायता के चलाते रहने का काम वह अपने शारीरिक बल, ध्येय और अपने धर्मसेवा की भावना के द्वारा करते रहते थे।

इसी प्रकार बड़े परिश्रम से ये लोग दूर-दूर पहाड़ों की चट्टानों से चौकोर पत्थरों को काट-काट कर अपने



पोए-खंग गुम्पा के कुछ प्राचीन चित्रों की निकट से ली गयी फोटो।



पोए-खंग गुम्पा में प्राप्त अवलोकितेश्वर नामक एक प्राचीन तिब्बती महात्मा का चित्र। यह एक हजार वर्ष से अधिक पुराना है।

ऊँचे पठार पर बसे हुए गुम्पा में ले जाते थे। गुम्पा में एक किसी भवन का निर्माण या किसी कमजोर अंग की मरम्मत का काम इतने ठंडे और कम आक्सीजनवाले देश में हाँफते और ठिठुरते हुए करते रहना, और वह भी हँसते हुए महीनों और वर्षों करते रहना, साधारण काम नहीं है। उनके कठोर परिश्रमी जीवन को देखने से इस बात का विश्वास हो जाता था कि उन्होंने देश और धर्म की सेवा में तन मन से अपने को अर्पित कर दिया है।

पोए-खंग गुम्पा की बहुमूल्य प्राचीन तालपत्र की पोथियों तथा धार्मिक चित्र इत्यादि की फोटोग्राफी का काम समाप्त हो जाने पर अब हम लोग शिगष्टषी नगर जाने की तयारी में लग गये। अब कोई और विशेष काम न रहने के कारण छोटी-छोटी बातों को लेकर आपस में लड़ाई-झगड़े होने लगे। महापंडित राहुलजी और श्री अभयसिंहजी फिर पुरानी बातों को दोहरा-दोहराकर दिन-रात लड़ते रहते थे। अन्त में हमारे नये साथी श्री कँवलकृष्णजी के बीच-बचाव से राहुलजी ने थोड़ा-बहुत रुपया अभयसिंहजी को दे दिया और वह हम लोगों से बिदाई लेकर तिब्बत के प्रसिद्ध डेबुंग गुम्पा को चले गये। एक बहादुर शेरदिलवाले साथी के छूट जाने की चोट मेरी छाती में पसली टूट जाने की वेदना से भी अधिक लग रही थी। इन थोड़े ही दिनों में मैं उनका सच्चा मित्र बन गया था। वह तिब्बत में अकेले चार साल से रहते थे और लगभग सभी प्रसिद्ध गुम्पाओं के दर्शन कर चुके थे। तिब्बत के सभी बड़े-बड़े लामा, सौदागर एवं सरकारी उच्च अधिकारियों से वे भली भाँति परिचित हो गये थे। उनके साथ रहने से मेरे मन में बड़ा बल रहता था। उनके चले जाने से अब हमारे अभियान दल में और कोई व्यक्ति उनकी कमी की पूर्ति करने योग्य नहीं रह गया। उनको बिदाई देने के लिए मैं और कँवलजी छः-सात मील की उतराई उतरकर गागादुम गाँव तक आये। राह में अपने को तिब्बत में सुरक्षित रखने के लिए उन्होंने हमको अनेक अमूल्य बातें बतलायीं। उनकी बतायी हुई बातें आगे चलकर अक्सीर दवाइयों की भाँति उपयोगी साबित हुईं। ऊँची-नीची पथरीली पगडंडी से उतरते-उतरते उन्होंने राहुलजी की चार वर्ष पूर्व की तिब्बत-यात्रा का एक संक्षिप्त विवरण बताते हुए बताया कि पिछली बार राहुलजी अधिकतर शिगष्टषी नगर के आसपास ही घूमते रहे थे। वहाँकी एक ग्रामीण नारी के साथ वह खूब हिल-मिल कर रहते थे। तिब्बत से लौटकर जाने से पहिले उनकी एक गोपनीय बात भी बतायी और उसको पुष्ट करने की तरकीब भी बता दी। उन्होंने चुपके से हमें बताया कि शिगष्टषी पहुँचकर राहुलजी किसी बहाने उस ग्रामीण परिवार से भेंट करने अवश्य छिपकर जायेंगे। गागादुम गाँव पहुँचकर अभयसिंहजी ने हँसते हुए कहा कि लौटते बारी देखना कहीं राहुलजी यहाँ उस बीमार बालक परिवार के घर रुककर फिर अपनी इस तिब्बत यात्रा की निशानी ग्रामीण के घर में न छोड़ जायें।

हमारे मित्र कँवलजी के आ जाने से मेरे शुष्क हृदय में फिर से उमंग की हरी कोपल फूट निकली। फोटोग्राफी के साथ-साथ रंग और तूलिका से तिब्बत के रंगीन चित्र भी अंकित करने लगा। पहला चित्र अंकित किया मैंने अपने आदर्श पोए-खंग गुम्पा का। रोजाना प्रातः उठकर बड़ी उत्सुकता से उचककर उस अलबेली की रंगीन शोभा देखने दौड़ता कि आज किस नवीन बनाव-श्रृंगार से सुसज्जित होकर खड़ी है हमारी प्रेमिका। आज उसने बादलों की केशराशि को किस ढंग से बिखेरा है, और धूप-छाया के आँचल से नीलाम्बरी गगन में किस अदा से अँगड़ाई ले रही है। इस प्रकार इसकी रंगीन अदाओं ने मुझको मजनू बनाकर मारा, और मैंने खींच डाली उसकी एक रंगीन तसवीर अपने पागलपन से उस मतवाली गुम्पा रानी की।

पोए-खंग गुम्पा और नगरनिवासियों से बिदाई लेकर हम सब तिब्बत के एक अत्यन्त प्रसिद्ध नगर की ओर मन में अपनी-अपनी अभिलाषाएँ छिपाये चल पड़े। पोए-खंग गुम्पा से सात मील की ऊँची नीची पथरीली उतराई के बाद जब हम गागादुम गाँव पहुँचे तो उस मैले-कुचैले बीमार बालक को हँसता-खेलता देखकर महात्मा राहुलजी ने गोद में उठा लिया। उस ग्रामीण परिवार के आग्रह करने पर हम सब उसके यहाँ अतिथि बनकर ठहर गये। उन लोगों ने बड़े आदर से हमारा सत्कार किया और सारे अन्य ग्रामनिवासियों की

बुला कर भारतवर्ष के प्रसिद्ध लामा महात्मा राहुलजी के दर्शन कराये। हमारे आगमन से आज उनके घर में बड़ी धूम-धाम सी मच गई थी।

घर की स्वामिनी भी सुसज्जित होकर अपने भारतीय अतिथियों की आवभगत के लिए तैयार हो गयी। वह चटकीले कोट पर चाँदी की सुन्दर तावीज और रंगीन मोतियों की मालायें गले में पहिने थी। अपने सुन्दर कढ़े हुए केश पर बड़ा भारी "पागो" लगाये बड़ी शान से घर में डोल रही थी। गाँव के किसी ग्रामीण के आने पर चट से जाकर भारतीय लामा राहुलजी के पास कालीन पर आ बैठती और उनको दिखाने लगती कि ग्यागर के लामा उनको कितना चाहते हैं। सायंकाल उस ग्रामीण परिवार के घर हम सब विशेष आयोजित भोज पर आमंत्रित हुए। इस विशेष भोज के आयोजन में एक तो थी जौ के सत्तू की बनीं छोटी-छोटी गोलियाँ; ताजे मांस के नन्हें-नन्हें टुकड़े और काली मटर के आटे की सिवइयों की एक रसेदार तरकारी। इस खौलती तरकारी को चीनी मिट्टी की एक गहरी सुन्दर कटोरी में रखकर दो सुन्दर चिकनी स्वेटर बुनने की तीलियों की सहायता से खाना पड़ा। स्वाद इसका फीका, लिबलिबा और बिलकुल अधउबला था जो कि इसकी खास विशेषता थी। इस तरकारी का नाम था "थुकमा और इस थुकमें के उबले हुए कच्चे मांस की सुगंध से सारा कमरा महक रहा था। हमको एक दूसरी तिब्बती चटपटी चीज खाने को परोसी गई। वह थी "मोमो"। यह मोमो हमारे दक्षिणी भारत के भोजन इडली की भाँति जौ के आटे की लोई में ताजे मांस के छोटे-छोटे टुकड़ों की पूर लगाकर केवल गर्म पानी की भाप में उबालकर बनायी गयी थी। गरम-गरम कच्चे आटे में कच्चे मांस के टुकड़े मुँह के भीतर जब लेई बनकर रह गये तो निगल गये उनको गर्म चाय के घूँट से। अन्त में आयी मसालेदार तिब्बती खस्ता कचौड़ी, जिसका नाम बताया उन्होंने "शा-बाले" अर्थात् मांस की रोटी। ताजे मांस के कीमा और जौ के आटे से छोटी-छोटी कचौरियाँ सड़े मक्खन में तली गई थीं। निमक में छुआकर साँस रोक कर खाने में कच्चे सूखे मांस के बदले कुछ अच्छा ही लगा। परन्तु हमारे दयालु भाई गेशेलाजी लगातार सूखे मांस के टुकड़े बिस्कुट की भाँति खाते जा रहे थे। मानो अचार चटनी के सहारे भोजन कर रहे थे।

हमारे वीर साथी अभयसिंहजी की भविष्यवाणी ठीक ही निकली। हमारे अभियान दल के नेता महात्मा राहुलजी हम लोगों को आगे बढ़ने का आदेश देकर स्वयं इस ग्रामीण परिवार में ठहर गये। हम तीनों साथी अपने नौकर "नावंग लोपसंग" और उसकी तरुण बालिका "थुपटेन वाँगमो" के साथ हँसते खेलते भयंकर ऊँचे नीचे पहाड़ी उतार-चढ़ाव और नदी-नालों को पार करते चल पड़े शिगष्टषी नगर की ओर। (क्रमशः)

एक टोपी भर धूप

श्री अनन्तकुमार पाषाण

एक टोपी भर धूप, फटी जेबों में बादल चार,
मुट्ठियों में सपनों की रेत, एक बोरी भर चीख पुकार।
चाँदनी पूनम की दी खोल,
लच्छियाँ उलझीं रेशम की!
झालरें काट रहा पतझार
घास की गीली जाजम की!
झील में चक्र, चक्र में चील, टूटते बिम्बों का विस्तार।
एक टोपी भर धूप, एक चुल्लू भर लाल बहार।
बयारों की साँसों से फूल
उठे पैबन्द - लगे पतलून।
'माउथ-ऑरगन' में भर कर फूँक
निकाली नयी एकदम 'ट्यून'!
काँपती छाँव, थिरकते पाँव, रूप का मोहित हाहाकार!
एक टोपी भर धूप, बँधी रूमालों में झंकार।
शाम को हुए मदरसे बन्द,
जंगलों के बच्चों का शोर!
देख पच्छिम का पहरेदार,
भागता साया जैसे चोर!
झुक चली रात, चुक चली बात, कहकहों के टूटे गलहार।
एक टोपी भर धूप, बिना घोड़े का एक सवार!



गूलर का फूल

श्री कुबेरनाथ राय

"गूलर का फूल होता है क्या?" बक ने अपने मित्रों की ओर चोंच करके प्रश्न किया।

आज फिर काक, बक और उलूक तीनों मित्र काम्यक वन की उत्तरी-पूर्वी सीमा पर स्थित गूलर वृक्ष के नीचे इकट्ठे हुए। बगल में ही निर्मल जलवाली पुष्करिणी थी जिसमें कभी महाभाग धर्मराज युधिष्ठिर स्नान किया करते थे। स्नानोपरान्त कभी-कभी वे इसी गूलर के नीचे बैठकर सहस्रशीर्षा पुरुष विष्णु का ध्यान किया करते थे। और जब कभी-कभी यह ध्यान अति दीर्घकालीन हो जाता एवं धर्मराज के ललाट पर अरुण तिलक करनेवाली प्रातः किरणें उनकी पीठ पर पड़ने लगतीं तो भीमसेन भूख से छटपटा कर बेमतलब द्रौपदी से लड़ बैठते थे और नकुल-सहदेव बार-बार देखकर लौट जाते कि भैया की पूजा समाप्त हुई या नहीं। यह गूलर का वृक्ष अति पुरातन था। द्वापर से पूर्व, त्रेता से भी पहले, जब नारायण ने जगत् के उद्धार के लिए नृसिंह वपु धारण किया था तब यह वृक्ष अपनी कुमारावस्था में था। पास ही पार्श्व में एक कटहल का नवीन वृक्ष महाबाहु भीमसेन ने आरोपित कर दिया था। महापराक्रमी वायु-पुत्र लघु आकारवाले फलों को अवहेलना की दृष्टि से देखते थे।

यह सतयुगी वृक्ष-पुरुष युगों के ज्वार-भाटे के बीच मौन साक्षी सा खड़ा रहा। शृंगार, वीर, करुणा आदि नवरसों से परे इसका संन्यासी मन भी कभी-कभी अतीत माधुरी की स्मृति में विगलित हो उठता था। विशेषतः रात्रि की नीरवता में द्रौपदी की करुणा का उसे ध्यान हो जाता, तो इस युगों के वृद्ध सहचर के हृदय को चीरती हुई एक लम्बी साँस निकल जाती।

इस "श्वेत वाराह-कल्प, कलि-युग' प्रथम चरण के मध्य में जब सहस्रानीक अर्जुन के वंशज उदयन का कौशाम्बी में, प्रसेनजित का अवध में एवं अजातशत्रु का मगध में राज चल रहा था, एवं विष्णु के बौद्धावतार का पदार्पण हो चुका था, काम्यक वन की उत्तरी-पूर्वी सीमा पर स्थित इसी गूलर के पेड़ के नीचे बक ने काक और उलूक से पूछा—"गूलर में फूल लगता है क्या?"

"हमने तो कभी नहीं देखा, भाई! उड्डीन-पड्डीन आदि शताधिक गतियों से ससागरा धरा को कई बार मा[प] डाला पर गूलर का फूल कहीं नहीं मिला। परन्तु मैं दि[न] की बात कह रहा हूँ। रात की बातों का विशेषज्ञ तो मित्र उलूक है। पूछ कर देखो।"

"क्यों बन्धु, कुछ इस पर प्रकाश डाल सकते हो? तुम्हें तो अन्धकार की मायाविनी गतियों का भी परिचय है।"

उलूक ने शान्त भाव से उत्तर दिया—

"देखा तो मैंने भी कभी नहीं और न कभी अनुसंधान करने की चेष्टा ही की। पर बड़ी अचरज की बात है। भला बिना फूल के फल कैसे होगा?"

"काकभुसुण्डी के कुलपतित्व में मैं गरुड़ जैसे बलवान् और उजड्ड छात्र का सहपाठी था। परन्तु इस विषय पर कोई विशिष्ट आलोचना नहीं सुनने में आई। हाँ, मनुष्यों में प्रचलित है कि गूलर का फूल होता है एवं यह आधी रात को खिलता है, अल्पकाल के लिए। फिर अन्तर्धान। उस समय यक्षों का इसपर अदृश्य पहरा बैठता है एवं प्रेतों के समुदाय आस-पास विचरण करते हैं। सुनता हूँ कि एक बार एक पंखड़ी टूटकर एक दही-वाली की हाँड़ी में गिरी, सो दिन भर वह दही समाप्त ही नहीं हुआ।"

"ऐसा?" काक की बुद्धिमत्तापूर्ण एवं विचित्र बात को सुनकर दोनों ने चकित स्वर में कहा।

"तब तो आज रात, भूत हो या प्रेत, यहीं इस बात की जाँच हो जाय।" बक ने, जो निरीक्षण का स्वभावतः प्रेमी था, सुझाव दिया।

तीनों साहसी वीरों ने यही निश्चय किया। भगवान् सूर्यनारायण अपनी पीत-अरुण आभा से इस धरती को राग-मय कर रहे थे। धीरे-धीरे दबे पाँव श्यामली उतरने लगी। पक्षियों ने थोड़ी देर दुःख-सुख की कथा एक दूसरे से कहकर रैन बसेरा लिया। तारे उगे। रात्रि का काल-रथ क्षण-प्रति-क्षण बढ़ता गया। हवा धीमी हो चली। वातावरण से भय और वैराग्य के अनुभवों का संवेदन मिलने लगा। इस भयानक चुप्पी में गूलर की सर्वोच्च

शाखा पर ये तीनों मित्र भय एवं उत्साह की मिश्रित भाव-दशा में आधी रात के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

ठीक आधी रात को गूलर के तने को चीरती हुई दीर्घ-निःश्वास निकली। बक और अन्य दो मित्र सावधान हो गये। इसी समय जम्हाई लेते हुए कटहल ने पूछा—"दादा, आज क्यों दुःखी ज्ञात होते हो?"

"क्या कहूँ?" गूलर ने उत्तर दिया। "मेरी शाखा पर आज तीन अतिथि आये हैं। विश्राम के लिए नहीं। मेरे मस्तक की शोभा—मेरा पुष्प-दल देखने की अभिलाषा से। मैं इन्हें कैसे समझाऊँ? मेरे पास फूल कहाँ? इन्हें निराश लौटना होगा। ऐसा फूल तो कभी नहीं, कहीं नहीं खिला जैसा लोग कहा करते हैं। यह तो मनुष्य-लोक के मोह का प्रतिरूप है। मेरा शरीर तो फोड़े की तरह स्वाद-हीन फलों से लदा है जिन्हें कोई जीव भी नहीं पूछता है। क्या कहूँ? किसीके काम नहीं आया?" गूलर ने फिर लम्बी साँस ली।

"दादा, ऐसा क्यों हुआ? तुम तो बड़े धर्मात्मा हो। तुम्हारी छाया में महाभाग पाण्डवों ने विश्राम किया है। फिर विधाता की ओर से तुम्हें पुण्य का वरदान क्यों नहीं मिला?"

"मेरी इस अवस्था का कारण और है। एक समय धरती पर हिरण्यकशिपु का अत्याचार दुःसह हो गया। वेद लुप्त हो गये। ब्राह्मणों की जीभ काट ली गयी, कुछ की शस्त्र से और कुछ की स्वर्ण से। उस समय भक्तवत्सल विष्णु ने असुर के विनाश के लिए नृसिंह रूप धारण किया था। आज भी उस अपूर्व तेजोमय सिंह पुरुष का स्मरण करके रोमांच हो जाता है।" गूलर क्षण भर उस रूप की स्मृति में मौन रहा। फिर आगे बोला—"असुर का वध करने के पश्चात् उनके नखों में भयंकर जलन होने लगी। यह जलन जब किसी उपाय से शान्त न हो पायी तो नारायण पीड़ित होकर हमारे पास आये। तीनों लोकों के त्राता जनार्दन को अपने दरिद्र द्वार पर खड़ा याचना की मुद्रा में देखकर मैं धन्य-धन्य हो गया और उन्हें अपना शरीर समर्पित कर दिया। उनकी नख-ज्वाला तो मेरे शरीर में नखों के धँसाने से शान्त हो गयी। परन्तु उस दाह को खींचकर मेरा शरीर विषाक्त हो गया। तभी से फोड़े की तरह फल-व्रण ही मुझमें लगते हैं—पुष्प मुझमें नहीं लगता। फल भी रसहीन और कीट-पूर्ण होते हैं।"

"दादा, तुमने उसके विष को आत्मसात् किया जिसके चरणों से पतित पावनी गंगा निकली हैं। तुम्हारे पुष्प, तुम्हारी मस्तक मणियाँ तुम्हारे अन्तर में हैं। तुमको ही देखकर मुझे भी फूलों का बहुत शौक न रहा। मेरे फूल भी नाम मात्र के होते हैं। मैं भी पुष्पमाल धारण करके प्रेमियों का हृदय विगलित करने और जगत को रिझाने की अपेक्षा परिपुष्ट और दीर्घाकार फल देने की ही चेष्टा करता हूँ।" कटहल ने कहा।

"चराचर को रिझाने से क्या लाभ? जिन्हें वास्तव में रिझाना है वे तो अन्तर्मन के सौन्दर्य को देखते हैं। औरों से हमें क्या काम?" कहकर गूलर मौन हो गया।

बक, काक और उलूक तीनों अलभ्य कुसुम की आशा में आये थे। उससे भी बढ़कर अलभ्य और मनोरम कुसुम उन्हें मिल गया। तीनों ने मन ही मन गुरु और शिष्य दोनों को प्रणाम किया।



जापान की गेशाएँ

श्री गोपीनाथ 'व्यथित'

यदि आप किसी अमरीकी सज्जन के मेहमान हैं तो आपका स्वागत उसके घर में होगा जहाँ परिवार के सभी सदस्य आपकी अगवानी करेंगे और आपकी सुख-सुविधा की संपूर्ण जिम्मेदारी गृह-स्वामिनी पर होगी। जापान में प्रथा इसके सर्वथा विपरीत है। आप यदि किसी जापानी भाई के मेहमान बने हैं तो आपका स्वागत वह अपने घर में कभी नहीं करेगा। आपका स्वागत होगा वहाँके किसी शानदार होटल, बार या टी-हाउस में, और आपकी सेवा-उपचार करेंगी जापान के स्वर्ग की अप्सराएँ जो संसार में 'गेशा'' नाम से प्रसिद्ध हैं। कोई भी जापानी सज्जन बड़ा व्यापारी जो जापान की राजधानी तोकियो या पुरानी राजधानी और वर्तमान संस्कृति केन्द्र क्योतो, अथवा इसी प्रकार के विशाल नगर में रहता है, अपने किसी मित्र या संपन्न ग्राहक के आ जाने पर उसके रहने का प्रबंध किसी होटल में करा देगा और उसी समय टेलीफोन का चोंगा उठाकर अपनी पसंद के किसी टी-हाउस के मालिक या मैनेजर को एक शानदार 'डिनर' का आर्डर दे देगा और यह कहना न भूलेगा कि वर्तमान की विख्यात दो-चार 'गेशाएँ' भी बुला लीजिए। और जब आप नियत समय पर उस स्थान पर पहुँचेंगे तो आप वहाँके विलासी वातावरण को देखकर स्वप्नाविष्ट से हो जायेंगे और अनुभव करने लगेंगे जैसे आप सदेह स्वर्ग पहुँच गये हैं।

जापान में इसी प्रकार का एक स्वर्ग है 'गिंजा'। यह तोकियो महानगर की एक विशाल 'एविन्यू' (सड़क) है जिसके दोनों किनारों पर बहुत दूर तक आधुनिक ढंग की बड़ी-बड़ी दूकानें, उद्योगपतियों के कार्यालय और होटलों तथा टी-हाउसों की लम्बी कतारें अपनी विशेष सज-धज के साथ खड़ी हैं। दिन के समय तो यह स्थान देशी-विदेशी लोगों की दृष्टि में 'व्यापारियों का स्वर्ग' है, किन्तु ज्यों ही साँझ का झुटपुटा रात के रूप में घुलना शुरू होता है, यह व्यापारियों का स्वर्ग सहसा 'परी देश' में बदल जाता है। तब इसकी छटा अलकापुरी से होड़ लेने लगती है और इसका रंग-बिरंगा रेसमी प्रकाश गंधर्वलोक सा रहस्यमय हो उठता है। तब इस परीदेश की छोटी-मोटी पतली गलियों में रंग-बिरंगी विद्युत् किरणें सम्मोहन सी फैलकर इसे विचित्र लोक बना देती हैं जहाँ साँझ की रंगीन पोशाक पहने उन किरणों की डोरी पकड़ कर धरती पर उतर आई सजीव पुतलियों सी अल्हड़ यौवन और सजीले सौन्दर्य की यह नवनीत पुतलियाँ प्रकट हो जाती हैं। यही हैं 'गेशा' जापान के इस इन्द्रलोक की 'अप्सराएँ'।

कौन होती हैं ये 'गेशा गर्ल्स'? इस विषय में आम धारणा यही है कि ये भी समाज के अन्याय का शिकार वे लड़कियाँ हैं जिन्हें किसी लम्पट पुरुष की वासना का शिकार होकर अथवा दरिद्रता के हाथों मजबूर माँ-बाप की उदर पूर्ति के साधन स्वरूप 'शरीर विक्रय' जैसा जघन्य कार्य करना पड़ता है। ऐसी भ्रान्त धारणा जिन लोगों की बन गयी है, उनका दोष इसलिए अधिक नहीं माना जा सकता कि उन्होंने सिने चित्रों में, कहानी और उपन्यासों में शायद इन गेशाओं के बारे में यही देखा, सुना और पढ़ा है कि गेशा जापान की वे सुन्दरियाँ हैं जिनकी नियुक्ति ही इसलिए की जाती है कि वे होटलों में खाना खानेवाले ग्राहकों अथवा मेहमानों का मनोरंजन कर उनके स्वादिष्ट पौष्टिक पदार्थों को अपने रूप और यौवन की चाशनी मिला-कर अधिक स्वादिष्ट और स्वास्थ्यकर बना दें। यह सत्य है, और यह भी सत्य है कि इन किन्नरियों का आविष्कार भी जापान के बुर्जुवा विलासी वर्ग द्वारा हुआ था, किन्तु इसके आगे की बात सत्य नहीं है। गेशाएँ विभिन्न देशों के उस वेश्या वर्ग से सर्वथा भिन्न हैं जो यौन-तृप्ति का धंधा कर अपना जीवन यापन करती हैं।

वास्तव में गेशा जापानी समाज की सुसंस्कृत सभ्य और व्यवहार-कुशल लड़कियाँ हैं जो जापान के महानगरों के ऊँचे दर्जे के होटलों, पेयालयों तथा टी-हाउसों में नियुक्त होकर समाज के सुसभ्य लोगों का मनोरंजन उच्च स्तर के साधनों से करती हैं।

ये गेशा जहाँ संगीत, नृत्य और कई प्रकार के साज बजाने तथा कविता गान में निपुण होती हैं, वहाँ वे अत्यन्त व्यवहार-कुशल और ऊँचे दर्जे की सभ्य सुन्दरियाँ होती हैं। लड़की को गेशा बनने के लिए कठिन परिश्रम और अनवरत सौन्दर्य-साधना करनी पड़ती है। यह समझना भूल होगी कि किसी परिस्थितिवश घर से भागी या भगाई गयी लड़कियाँ समाज में सम्मान न पा सकने के कारण ही गेशा बन जाती हैं। वहाँ गेशा बनना सौभाग्य

समझा जाता है। प्रत्येक माँ-बाप की यह इच्छा रहती है कि यदि भगवान् ने उसकी कन्या को अद्भुत रूप-लावण्य दिया है तो वह उसे गेशा की ट्रेनिंग दिलवाकर किसी अच्छे टी-हाउस या बार अथवा रेस्तराँ में नियुक्त करा दे। अगर्चे गेशाएँ जापान के किसी भी नगर-उपनगर से हो सकती हैं किन्तु अधिकतर ये उसी इलाके से जाती हैं जिनके आसपास इस प्रकार के मनोरंजन सदन हैं जहाँ गेशाएँ कार्य करती हैं।

आवश्यक नहीं कि ये गेशा उन्हीं टी-हाउसों या रेस्तारों में रहें जहाँ वे काम करती हैं। वे या तो अपने परिवार के साथ रहती हैं अथवा रेस्तराँ के साथ सटे उन कमरों या फ्लैट्स में रहती हैं जो 'गेशा एसोसियेशन' की तरफ से बनवाये या किराये पर लिये गये होते हैं। प्रत्येक प्रान्त में ऐसे संघ होते हैं जो किसी लड़की की परीक्षा लेकर उसके उत्तीर्ण होने पर ही उसे इस व्यवसाय में आने देते हैं। इसके प्रमाणपत्र के बिना कोई भी लड़की गेशा नहीं हो सकती। प्रत्येक गेशा को अपने प्रान्त के संघ की सदस्यता लेनी पड़ती है जिसके चंदे के रूप में उसे कम से कम डेढ़ डालर मासिक देना पड़ता है। संघ की कौंसिल की मेम्बर पुरानी गेशाएँ ही होती हैं जो निर्णय देती हैं कि कौन इस कार्य के योग्य है। इसका निर्णय भी यही कौंसिल करती है कि कौन से टी-हाउस अथवा ओपेरा गेशा नियुक्त करने के योग्य हैं, और कहाँ कौन सी गेशा जाय। केवल प्रसिद्ध और सम्पन्न टी-हाउस ही गेशाएँ नियुक्त कर सकते हैं, साधारण नहीं। इसी प्रकार जो व्यक्ति गेशा की माँग करता है, पहले उसकी आर्थिक स्थिति की जाँच कर ली जाती है क्योंकि गेशा की फीस ५ से १५ डालर प्रति घंटा होती है। कोई प्रसिद्धिप्राप्त गेशा तो ५० डालर तक चार्ज कर लेती है। कुछ गेशाओं को समारोह से कुछ दिन पूर्व ही तय करना पड़ता है और उन्हें यह भी बताना होता है कि कौन से टी-हाउस में उन्हें बुलाया जायगा। यदि वह स्थान ऊँचे स्तर का नहीं है तो गेशा की स्वीकृति नहीं मिलेगी। वह टी-हाउस जिसमें गेशा नियुक्त होती है, उसकी आय का तिहाई भाग शुल्क के रूप में वसूल करता है। यह कार्य संघ के एजेंट द्वारा होता है। आय की दूसरी तिहाई राज्य द्वारा कर के रूप में ले ली जाती है, और शेष में से गेशा अपने सौन्दर्य प्रसाधन, मूल्यवान् वस्त्र तथा केश-विन्यास और ट्रेनिंग पर खर्च करती है। यह तभी संभव होता है जब कि गेशा की निश्चित फीस के अतिरिक्त उस पार्टी या समारोह का सारा व्यय ग्राहक ही चुकाये।

गेशा को सबसे अधिक व्यय कपड़ों और सौन्दर्य प्रसाधनों पर करना पड़ता है। 'सांध्य गाउन' जिसे 'किमोनो' कहते हैं, अधिक से अधिक मूल्यवान् होती है। प्रायः कीमती मखमल, जरी या किमखाब के किमोनो ही पहने जाते हैं अन्यथा गेशा को जनता की आलोचना, ग्राहकों की उपेक्षा और टी-हाउस के मालिक या मालकिन की नफरत का शिकार बनना पड़ता है जो उसे बर्दाश्त नहीं क्योंकि उसके धंधे और आय पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। गेशा को यह भय सदा रहता है कि वह कहीं लोगों की नजरों से न उतर जाय, क्योंकि एक बार नजर से उतर जाने पर उसका सँभलना या उठना असंभव है। जापानी जन समाज में गेशा को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। एक व्यक्ति किसी गेशा के साथ घूमते हुए गर्व और महत्त्व का अनुभव करता है यद्यपि समाज में गेशाओं से विवाह करने की प्रथा प्रायः नहीं है। जापानी नर-नारी अपने संबंधों में प्रायः स्वच्छन्द हैं। एक गेशा-गामी कभी यह जानने की चेष्टा नहीं करता कि उसके अन्य मित्र या मिलनेवाले कौन हैं। जापानी स्त्री अपने पति को गेशा के साथ देखकर सौतियाडाह अथवा स्त्री-सुलभ व्याकुलता का भी अनुभव नहीं करती।

गेशा प्रायः जापान के बड़े-बड़े नगरों में ही हैं, जैसे तोकियो (राजधानी), क्योतो, ओसाका आदि में। अकेले तोकियो में ही एक हजार से ऊपर प्रमाणित गेशा हैं। गेशा की प्रथा वास्तव में क्योतो नगर से आरंभ हुई जो जापान की भूतपूर्व राजधानी और वर्तमान सांस्कृतिक केन्द्र है। कॉंगवा नदी के किनारे बनी सैकड़ों गज लम्बी-चौड़ी गलियों में आपको ऐसे ही टी-हाउस देखने को मिलेंगे जिनके आगे बड़े-बड़े रंगीन कागजी कंदील एक हल्का रहस्यमय प्रकाश फैलाते रहते हैं। इनपर वहाँ काम करनेवाली प्रसिद्ध गेशा का नाम और कभी-कभी चित्र भी अंकित रहता है। प्रत्येक दरवाजे के सामने लकड़ी की खूबसूरत तखतियों पर उस रात का सारा प्रोग्राम या विवरण लिखा रहता है जिस पर रंग-बिरंगा धूमिल प्रकाश प्रकाशमान होता रहता है। दिन में तो इन गलियों में आपको सौदा के खरीदारों, स्कूल जाते हुए बच्चों या कूड़ा

समेटनेवालों के अतिरिक्त और कोई दिखाई न देगा, लेकिन ज्यों ही रात होती है इस सुप्त दुनिया में सहसा प्राण पड़ जाते हैं, एक मुस्कुराती जिंदगी आ जाती है। तब यह ऊँघती गलियाँ रोशनी से धुल जाती हैं और खामोश रेस्तराँ चहचहा उठते हैं। चारों तरफ रंग-बिरंगे जरदोजी और मखमली किमोनो अपने फूलों के ढेर जैसे गुदगुदे शरीर पर लपेटे देवकन्याओं सी गेशा रेस्तराँ के बड़े-बड़े काँच लगे सुसज्जित कक्ष में अपना हँसता यौवन छलकाती हुई हास-परिहास की फुहार छोड़ती, अपने मेहमानों, ग्राहकों अथवा दर्शनार्थियों के पार्श्व में सिमटकर सौन्दर्य और संगीत बिखेरने लगती हैं। पतली लम्बी उँगलियों में नन्हें बिल्लौरी जाम गरम गरम 'शेक' (चावलों की शराब) से लबरेज होकर मेहमान के होंठों से लग जाते हैं, और सिगरेट के पैकेट पर नजर पड़ते ही बढ़िया सिगरेट होंठों में आ जाती है, और उन कलियों जैसी उँगलियों में मैच बाक्स से निकली चीनी सींक पर हल्की सी लौ काँप उठती है। इन सबके साथ ही तीन तारा जापानी गिटार 'सेमिसन' अपना मादक संगीत चहचहाने लगता है। इन टी-हाउस के नाम भी बड़े प्यारे होते हैं जैसे 'जैन्टल मून' (कोमल चंद्रमा), 'मेगनिफिशेन्ट स्टार्क' (शानदार सारस), 'फ्लावर प्लम' (पुष्पित फल) आदि।

जापानी लोककथाओं पर आधारित गेशा-के 'प्रतीक नृत्य' यहाँके विशेष आकर्षण होते हैं। किसीमें दो प्रेमी किसी देवता से अभिशप्त वृक्ष बन जाते हैं तो किसीमें पशु-पक्षी। कभी ऐसे नाम और अक्षर बन जाते हैं कि अनायास ही उस टी-हाउस का नाम सामने आ जाता है। ये नृत्य अत्यन्त कलापूर्ण और अर्थपूर्ण होते हैं, और साथ-साथ मनोरंजक भी। यह लोकप्रसिद्ध बात है कि 'गिजा' की रंगीन रातें पेरिस की रातों से भी ज्यादा खूबसूरत और मनोरम होती हैं। विलास का जो स्वस्थ रूप यहाँ देखा जाता है, वह पश्चिम के किसी भी देश में दिखाई नहीं देता।

यह एक विचित्र और मार्के की बात है कि विलास में आकंठ मग्न यह 'काम कन्याएँ' घोर संयम और कठोर नियमों का पालन करती हैं। उन्हें इसकी विशेष शिक्षा दी जाती है कि वे अपने सौन्दर्य और स्वास्थ्य को बनाये रखने में दत्तचित्त रहें। सफल गेशा वही मानी जाती है जो बड़ी उम्र तक अपने सौन्दर्य और आकर्षण को बनाये और बढ़ाये रखे। उसके लिये अपने आपको प्रत्येक परिस्थिति में ढाल लेना अत्यन्त आवश्यक है, किन्तु उसे ऐसा कोई कार्य न करना चाहिये जिससे स्वयं उसमें या उसके मेहमान ग्राहक में किसी प्रकार की उत्तेजना या आवेग का उदय हो, और न ऐसा ही व्यवहार करना चाहिए जिससे ग्राहक उखड़ या ऊब जाय। उसे हर प्रकार से अपने ग्राहक को खुश रखना होता है, और इस बात का सतर्कता से ध्यान रखना पड़ता है कि वह किसीके बाहुपाश में न चली जाय और न स्वयं ऐसा करे। उसे अपने सौन्दर्य की शक्ति पर अगम विश्वास रहना चाहिए, और घोरतम आत्मसमर्पण की स्थिति में भी उसे अनासक्त रहना चाहिए। गेशा का किसीके प्रति लगाव या आसक्ति उसके व्यवसाय के सर्वथा विरुद्ध और उसके लिये प्राण-घाती सिद्ध होता है। उसे प्रत्येक पुरुष के अन्तर की बुराइयों और अपनी कमजोरियों को अच्छी तरह से समझ कर चलना चाहिए। इस प्रकार ये गेशाएं एक तरह से विलासिनी तापस बालाएँ होती हैं।



जोशीजी का निवेदन

डॉ० हेमचंद्र जोशी डी० लिट्०

अक्टूबर, १९६३ की 'सरस्वती' में पं० शिवाधार पाण्डेजी का "तुलसी के पढ़ाऊ" लेख देखने को मिला। लेख से यह मालूम हुआ कि पाण्डेजी महाराज तुलसी-रामचरितमानस और तुलसी के राम के अनन्य भक्त हैं। इस भक्ति को मेरा बार-बार प्रणाम है। तुलसी ने ठीक ही कहा है :—

"भवानीशंकरौ वन्दे, श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति, सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम् ॥"

शिवाधार पाण्डेजी के समान अपने भीतर विराजमान ईश्वर का साक्षात्कार करनेवाले भक्तों का मैं दासानुदास हूँ। यद्यपि यह देखकर महान् आनन्द हुआ कि एक परमभक्त ने बार-बार मेरा नाम लिखने का कष्ट उठाया, तथापि यह देखकर खेद भी हुआ कि मैं अपने लेख के खण्डन में किसी भाषा-विज्ञानी के दर्शन न कर सका। मैं नित-प्रति तुलसी का पाठ करता हूँ, उनके साहित्य के रस को अमृत के समान पीता हूँ; किन्तु कविता का रस या भक्ति कुछ और चीज है, भाषा-विज्ञान कुछ और पदार्थ है। भाषा-विज्ञान में भाषा के तथ्यों की खोज होती है। काव्य में अलंकारों और भावों आदि का प्राधान्य रहता है। श्री पाण्डेजी के लेख में, मैंने कविता का आनन्दमय रस पाया और उस अमृत के सागर में मैं डूबा और उतराया किंतु उसमें भाषा के संबंध में कोई समाधान नहीं पा सका। तुलसी ने भले ही लिखा हो 'उमा सहित जेहि जपु त्रिपुरारी' तो भी रामचरितमानस में कम से कम २०-२५ बार शिवजी के लिए पुरारि शब्द आया है और उससे कुछ कम बार त्रिपुरारि भी आया है। तुलसी ने हरि और राम को एक ही माना है, यह ठीक ही है। पाण्डेजी का उक्त मत है। उनका कहना यह भी है कि अध्यात्म रामायण में हरि और राम एक ही माने गये हैं। हम लोगों को इतना तो जानना ही चाहिए कि अध्यात्म रामायण बाद के युग का ग्रंथ है। यदि पाण्डेजी वाल्मीकि रामायण को पढ़ने का कष्ट उठाते तो उन्हें 'हरि' के दर्शन नहीं होते। वहाँ तो रामराज्य है। महाभारत के रामोपाख्यान में भी हरि अन्तर्धान हो गये हैं। विनय का माहात्म्य देखिए कि पाण्डेजी की विनय ने कालिदास को भी ठुकरा दिया है। संस्कृतभाषा के ज्ञान में पाण्डेजी महाराज तुलसी को कालिदास से भी बड़ा समझ बैठे हैं। तुलसी को मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ और नितप्रति उनके रामचरितमानस का पाठ करके हृदय को ठंडा करता हूँ, किंतु यह उचित नहीं समझता कि भक्ति के कारण अपने आराध्य का दोष नाम मात्र भी न देखूँ। तुलसी की भाषा के दोष के कई कारण हैं। प्रथम कारण है कि छंद की मात्रा ठीक रखना, दूसरा कारण है कि अपनी अटल रामभक्ति में लेशमात्र भी कमी न आने देना, तीसरा कारण है—तुलसी के समय तक भाषा के शब्दों के उपयोग का उचित ढंग न जानना और शब्दों में अस्पष्टता रहना। यह उस समय की परिस्थिति, समाज और समय का दोष है, तुलसी का नहीं।

पं० शिवाधार पाण्डेजी का लेख देखकर और उनके आवेश का हृदय में अनुभव करके इतना ही सीख सका कि मुझ जैसे मूर्खों को अपनी इन्द्रियों के आवेग के ऊपर दमन रखना चाहिए और बड़ों की आवेशपूर्ण बातों को चुपचाप सुन लेना चाहिए क्योंकि उनका आवेश सात्विक और तुलसी की एकान्त भक्ति से प्रेरित है। अंत में बार-बार पुनः उनकी तुलसी-भक्ति को श्रद्धा सहित प्रणाम करता हूँ।

ए जौक ! किसको चश्मे हिकारत से देखिए,
सब हम से हैं जियादह, कोई हमसे कम नहीं।



आँगन के बीच —

बचत

श्री कमला शर्मा

आज की महँगी और संकट के समय में हम सब व्यय में बचत करनी चाहिए।

आप पूछेंगी कि बचत आखिर किन मदों पर जा सकती है? आप तो पहले से ही काफी किफायतशा हैं। अब और गुंजाइश है ही कहाँ किफायतशारी की?

तो लीजिए, मेरी कुछ बातें सुन लीजिए। शाय इन बातों को पढ़कर आपको बचत करने के कुछ न तरीके मालूम हो जायें। पहली बात——स्वास्थ्यदा खाद्य पदार्थों जैसे दूध, हरी भाजियाँ, अंडे आदि में किफाय करने से अपनी बचत-योजना का श्रीगणेश मत कीजि कारण, जितना आप इन चीजों में कमी करके बचायें उससे अधिक, आगे चलकर, दवाओं और डाक्टरों बिल में आपको खर्च कर देना होगा। हाँ, अचा मिठाइयों, मुरब्बों, पेस्ट्रियों आदि स्वास्थ्य के लिए हा कारक वस्तुओं का प्रयोग बिल्कुल बंद करके अवश्य ब कीजिए। इस प्रकार महीने में काफी रुपये बचाने अलावा, आप अपने घर के सदस्यों की खाने की आद को सुधार सकेंगी, तथा उनके स्वास्थ्य को बेहतर बन में सहायक होंगी; और आज राष्ट्र-संकट की घड़ी में ह सबका पूर्णतया स्वस्थ और चुस्त रहना परमावश्यक है।

रसोई में ही, एक और बात का ध्यान रखकर आ काफी किफायत कर सकती हैं। हम सब बहनों कमजोरी होती है कि रसोई के नये-नये बर्त्तनों या रसो में प्रयुक्त होनेवाली अन्य वस्तुओं जैसे कुकर, स्टोव्ह, क बोर्ड आदि की खरीद के मामलों में हम अपनी पड़ोसि या अन्य परिचित बहनों से जरा भी पीछे नहीं रह चाहतीं। पड़ोसिन श्रीमती मलथानी जैसा नया कु खरीद कर लायी हैं, वैसा हमारे यहाँ भी जरूर आ चाहिए। श्रीमती खन्ना ने आइसक्रीम का जैसा खरीदा है, वैसा सेट अगले महीने अवश्य खरीदना है,

सब बातों को युद्ध-संकट समाप्त होने तक तो भूल ही जाइए। यह मत सोचिए कि हम क्या करें, और भी तो नयी-नयी चीजें खरीद रही हैं। अपने पर संयम रखकर आप दूसरों के लिए खुद एक नया आदर्श स्थापित कीजिए। आपकी देखादेखी अन्य बहनें भी वैसा ही करेंगी।

हमारे नेताओं ने अपील की है कि जब तक देश पर से सम्भावित चीनी आक्रमण की काली छाया दूर नहीं हो जाती तब तक हम त्योहारों, उत्सवों तथा भोजों पर खर्च बिल्कुल कम कर दें। ये सब खर्च आप ही के हाथों में रहते हैं। तनिक कल्पना तो कीजिए, इन सब पर न्यूनतम खर्च करके आप कितनी अधिक राशि बचा सकती हैं। त्योहारों पर नयी-नयी वस्तुएँ या नये-नये वस्त्र खरीदने के स्थान पर यथासम्भव पुरानी वस्तुओं और पुराने वस्त्रों को अधिक समय तक चलाकर उनसे ही काम चलाइए। अपनी सीने की मशीन से अधिकाधिक काम लेकर दर्जी के बिल में कमी कीजिए। पुराने कपड़ों को बदल कर नये वस्त्र खरीदने की आदत भी त्याग दीजिए। घर पर ही कपड़े सीने में आपका समय भी अच्छी तरह बीतेगा, और आप मनपसंद डिजाइन के कपड़े भी तैयार कर सकेंगी। आपके हाथ के सिले कपड़े पहनकर बच्चे कितना गर्व अनुभव करेंगे।

बाहर से आये हुए मित्रों तथा रिश्तेदारों को कीमती रेस्तराओं में चाय पिलाने या भोजन की व्यवस्था करने की आदत तो एकदम बंद ही कर दीजिए। प्रायः बहनें ऐसा इन मित्रों तथा रिश्तेदारों पर रौब डालने के लिए करती हैं, पर सोचिए जब हमारे जवान युद्ध के मोर्चे पर अपनी जानें गँवाने के लिए प्रस्तुत हैं, उस समय इस प्रकार रौब डालने का प्रयत्न कितना हास्यास्पद लगता है। मेहमानों को अपने घर के शांत तथा स्नेहपूर्ण वातावरण में खाना खिलाइए। इससे उन्हें भी सन्तोष मिलेगा, और आप को भी। और जरा हिसाब तो लगाइये, इस प्रकार कितना अधिक बचा लेंगी आप! रेस्तराँ आने-जाने का खर्च बचा, बेयरे की टिप बची तथा रेस्तराँ का कीमती बिल नहीं देना पड़ा।

विवाह, जन्मदिवस आदि पर भेंट देनी ही हो तो कोई और उपहार न खरीद कर राष्ट्रीय सुरक्षा निधि-पत्र ही खरीदिये। उपहार देने की इस प्रथा को विचित्र मत मानिए. आजकल इसका 'फैशन' चल पड़ा है। ऐसा उपहार देनेवाले के देशप्रेम तथा दूरन्देशी की सब प्रशंसा करते हैं।

बचत करने के लिए सबसे पहली आवश्यकता है, अपने को संयमी बनाने की। बिना अपने पर संयम किये आप कुछ नहीं बना पायेंगी। वैसे संयम करना आसान नहीं है, पर उसकी एक आसान तरकीब मैं आपको सुझाती हूँ। कम से कम ६ महीनों के लिए अपने जरूरी और अनिवार्य खर्चों की एक सूची बना लीजिये। इन खर्चों की कम से कम एक चौथाई राशि, राष्ट्रीय सुरक्षा निधि-पत्रों में लगाने के लिए अलग रख लीजिए। अब, इस सूची को सदा अपने पास रखिए। जब कभी आपका मन नयी साड़ी, नया फर्नीचर, बच्चे के लिए नया फर्नीचर, गर्ज किसी भी ऐसी चीज को खरीदने के लिए करे जो आपकी सूची में नहीं है, तो अपने से कहिए——"मुझे अफसोस है बहन! यह वस्तु हमारी सूची में नहीं है, इसलिए आप इसे खरीद नहीं सकतीं। फिर देखेंगे। सचमुच मुझे बड़ा अफसोस है, पर क्या किया जाये?"

शुरू-शुरू में तो इस कल्पित वार्त्तालाप से आपको बड़ी हँसी आयेगी, पर इसके प्रभाव को देखकर आप इस सूची को अपनी सबसे प्रिय सखी मानने लगेंगी!

अच्छा, अब मैं इस कामना के साथ कि आपकी बचत-योजना सफल हो, बिदा लेती हूँ!



नई गृहस्थी पुराने अनुभव

● कालीनों पर पड़े चिकने दागों को साफ करने के लिए केवल थोड़े से 'टरपिनटाइन' की जरूरत है। छोटे से कपड़े पर 'टरपिनटाइन' को गिरा लीजिए और जहाँ पर दाग पड़ा हो वहाँ कसकर मलिए। जब दाग छूट जाय तब साफ कपड़े से थोड़ा-सा और मलिए जिससे कि 'टरपिनटाइन' के दाग निकल जायँ।

● फोटोग्राफ को साफ रखना काफी आसान काम है। 'माइथिलेटेड स्प्रिट' से कपड़े को जरा-सा भिगो दीजिए और उसको फोटोग्राफ पर फेर दीजिए। चित्र साफ हो जायेगा, इसका ध्यान रखिए कि कपड़ा ज्यादा तर न हो।

● जिस अलमारी में बोतलें रखिए उसके नीचे ब्लाटिंग पेपर बिछा दीजिए। जिससे कि बोतल से गिरनेवाला तेल आदि ब्लाटिंग पर सूख जाय और नीचे के पटरे खराब होने से बच जायँ।

● शीशे और तस्वीरों के फ्रेम भी 'माइथिलेटेड स्प्रिट को किसी बहुत मुलायम कपड़े पर डालकर उससे साफ करने से साफ हो जाते हैं। सबसे अच्छा तो यह रहेगा कि माइथिलेटेड स्प्रिट को टीशू पेपर पर डालकर तब उससे फ्रेम आदि की सफाई की जाय।

● फर्श पर पालिश करने का सबसे आसान और सस्ता तरीका यह है कि मक्खन निकले हुए दूध से फर्श की रगड़ रगड़कर सफाई कर दी जाय।

● 'पेटेन्ट लैदर' के जूते पेट्रोल से साफ करने पर बड़ी आसानी से साफ हो जाते हैं। किसी मुलायम कपड़े में थोड़ा पेट्रोल लगाकर उनपर मलिए और फिर सूखे मुलायम कपड़े से पोंछ डालिए।

● 'पेटेन्ट लेदर' के जूतों को चटकने से बचाने के लि[ए] उनके ऊपर वैसलीन मल डालिए और कुछ दिनों त[क] वैसलीन को लगा रहने दीजिए। फिर मुलायम कपड़े [से] सारी चिकनाई को पोंछ डालिए, और फिर मुलायम कप[ड़े] से ही मलकर साफ कर लीजिए। ऐसा करने से जूत[ों] में बरसाती के गुण आ जाते हैं और पानी नहीं लगता।

● पीतल की चीजों को साफ करने का एक बहुत आसा[न] तरीका यह है कि उनको निमक और सिरके से साफ [कर] दिया जाय। आपको यह देखकर आश्चर्य होगा कि [वे] कितनी जल्दी साफ हो जाती हैं।

● प्लेटों के ऊपर से जले निशान को निकालने के लि[ए] एक कौर्क (डाट) को नमक में गीला करके मलिए। उससे दाग निकल जायगा।

● चावल बनाते समय जब चावल थोड़ा सा गल जा[य] तो उसमें नीबू की थोड़ी सी बूंदें डालने से चावल सफेद रह[ता] है और दाने मिलने भी नहीं पाते।

● चीज़ (पनीर) को डिब्बे से निकालकर खराब हो[ने] से बचाने के लिए उसको सिरके से भिगोये हुए बारी[क] कपड़े में लपेट दीजिए। इससे वह खराब न होगा।

● रेशम का सामान धोने से पीला न पड़ जाय इस[के] लिए उसमें बहुत थोड़ी सी 'क्रीम आफ टार्टर' डाल दीजि[ए] और दस मिनट तक कपड़े को उसमें भीगा रहने दीजिए। फिर धोकर सुखा दीजिए।

● कैंची आदि तेज करने के लिए 'एमरी कागज' को कैंची से काटिए। थोड़ी देर में कैंची तेज हो जायगी।



बात की बात

डा० श्यामसुन्दर व्यास

बात, अपने आप में एक बड़ी बात होती है। चितवन की तरह चलने लगती है तो चलती रहती है और 'चालू बात' हो जाती है। अंगद के पाँव के तरह अगर जम जाती है तो 'वजनी बात' कहलाती है एवं 'छोटे मुँह से निकलकर बड़ी बात' भी 'ओछी बात' बन जाती है। यह सब इसलिए कि बात बात में अंतर होता है और बात की बात में अंतर उठ खड़ा होता है।

बात, जब बहकने लगती है या बेलगाम हो जाती है तो उसे प्रायः बाजारू बात बना दिया जाता है और बाजारू बनने के बाद, बात, गधे की लात बन जाती है। बात के धनियों ने तो यहाँ तक कह मारा है कि 'जिसकी बात का ठीक नहीं, उसके बाप का ठीक नहीं।' हो सकता है यह लट्ठमार बात हो मगर एकदम बेपर की बात भी नहीं है क्योंकि बात की कीमत को बातवाला ही जानता है! बात बनाना और बात है तथा बात निभाना और बात है।

बात, गरिष्ठ होती है और हलकी-फुलकी भी। बात को पचाना कठिन काम है, इसलिए वह गरिष्ठ है। बात, हवा में हवा हो जाती है, इसलिए हलकी-फुलकी है। बात, फलती-फूलती और 'फिस्स' हो जाती है। बात बनती है, बिगड़ती और बेकार हो जाती है। बात में पानी होता है और बात से ही पानी उतर जाता है। यह और बात है कि ऐरा-गैरा भी बात कर ले, वरना बात जमाना मामूली बात नहीं है। गले पड़ू बात तो साधारण बात है, मगर बात को गले उतारना साधारण बात नहीं।

बात मर्द की होती है। शायद इसीलिए औरतों के पेट में बात नहीं पचती। वैसे जनानी बात का भी अपना जायका है मगर लाख जायकेदार होकर भी बात जनानी ही कहलाती है।

बात की निराली बात है। वह बोली जाती है, तौली जाती है; चबाई भी जाती है और पी भी जाती है। उगली और निगली जाती है। बात लगती है, चुभती है; गड़ती और अड़ती है। बात का आधार भी होता है और निराधार भी रहती है। यह बेपर की होकर भी उड़ने लगती है और कभी-कभी बात को पर भी लग जाते हैं। यह निराकार भी होती है और साकार भी। कहनेवाले तो कहते हैं बात ही ब्रह्म है, बात ही माया। यही धूप, यही छाया। इसीमें भुक्ति, इसीमें मुक्ति। इसीसे लोक, इसीसे परलोक।

बात साधना भी है और कला भी। 'एक साधे सब सधे' के अनुसार जो बात साधना जानता है उसकी हर बात बन जाती है। इसके लिए साधना की शक्ति और कला की युक्ति आवश्यक है। जिस बात के पीछे साधना हो, वह फलती है और अगर उसे ही लकालक चोला पहना दिया जावे तो वह फलने के साथ 'फबने' भी लगती है।

बात से आदमी की जात पहचानने के पीछे संस्कारों का योग होता है। योग्यता की तख्ती सिर पर लगी नहीं रहती। कुल, संस्कार, शिक्षा का परिचय बात से ही लगता है। कुलवान के मुख से 'ऐसी-वैसी बात' नहीं निकलती। संस्कारों की झलक बात में झलक जाती है और शिक्षा बात को सजा-सँवार देती है। रघुकुल अपनी बात के लिए इतिहास-प्रसिद्ध हुआ है। संस्कारों का 'मजमून' बातों के लिफाफे से भाँपा जाता है और सुलझी साफ-सुथरी बात शिक्षितों की बात कहलाती है। अतः बात ही कुल, संस्कार तथा शिक्षा की परिचायक है।

बात, सफलता का राम-बाण नुस्खा है। देश, काल एवं वातावरण को देखकर बात करनेवाला व्यवहार-कुशल होता है और यह व्यवहार-कुशलता लौकिक दृष्टि से आदमी को लोकप्रिय एवं सफल व्यक्ति बनाती है। बात से बिगड़ी बाजी बन जाती है। बात से ही जमी-जमायी शतरंज उलट जाती है। तौलकर बोलनेवाला लाख रुपये की बात कहता है और जबान से तालू लगाकर बत्तीसी बजानेवाला दो टके की बात बकता है। अतः बात कोहनूर की तरह कीमती भी सिद्ध हो सकती है और कौड़ी की तरह तीन कौड़ी की भी हो सकती है।

नीतिकारों के कथनानुसार बात आदमी को धूल भी चटा सकती है और धूल में से उठाकर आसमान भी दिखा सकती है। बात कालजयी हो सकती है। बात, बात की बात में भूचाल खड़ा कर सकती है। बात से बासी कढ़ी में उबाल आ जाता है और बात से ही बाग में भी आग लग जाती है।

बात, रसों का रस और स्वादों का स्वाद है। बात से ही नवरस की सृष्टि होती है। बात से ही षट्रस का स्वाद आता है। बात प्रेम से परिपूर्ण, वात्सल्य से लबरेज, करुणा से पूरित, वीरता से संयुक्त और हास्य से मनोविनोदपूर्ण होती है। कभी बात मीठी लगती है, कभी कड़वी; कभी कसैली, कभी तीखी। कभी बात में मिर्च-मसाला तो कभी बात में अचार, मुरब्बा, चासनी सभी कुछ। इसलिए बात रसों की कामधेनु और स्वादों का कल्पवृक्ष है।

बात की जितनी बात हो, थोड़ी बात है। सार-संक्षेप में कहे तो यह सफलता की कुंजी, लोक-परलोक सुधारने का महामन्त्र और हर ला इलाज का ला जवाब इलाज है। जिसने बात साधना सीख लिया उसके लिए जगत् में कुछ भी दुर्लभ नहीं है। शक्की, बक्की और झक्की को छोड़कर यह सबके लिये लाभदायक है। बात की बात में, बात का यह बतंगड़ इसीलिए खड़ा किया गया कि बात, बात है और इस जमाने में यह सबके समझने जैसी बात है!

प्रकाश और परछाईं

श्री प्रेमस्वरूप श्रीवास्तव

आफिस में हरकिशनलाल के पेंशन का कागज टाइप हो रहा था। एकाउण्टेण्ट, क्लर्क, दफ्तरी, चपरासी किसी का मन आज अपने काम में नहीं लग रहा था। आँखों के सामने फाइलें खुली रखी थीं मगर उन पर आज अक्षर नहीं थे, हरकिशनलाल की तस्वीर नाच रही थी। सदा के उपेक्षित हरकिशनलाल आज सबकी पुतलियों पर छाये हुए थे।

हरकिशनलाल का इस आफिस की नींव के साथ खून का रिश्ता है। जिस दिन यहाँ आफिस खोले जाने का परवाना लेकर हरकिशनलाल आये थे, उनकी रेखें उभर रही थीं, आज इस आफिस से हमेशा के लिए नाता तोड़ते वक्त उनके सिर के अधिकांश बाल सफेद हो चुके थे।

हरकिशनलाल ने आँखों पर से चश्मा उतार कर उसके शीशे को धोती के छोर से पोंछा। अकस्मात् ही उनकी आँखें सामने की दीवाल घड़ी पर उठ गईं। टकटिक की कभी न रुकनेवाली आवाज के साथ उसकी सुइयाँ सेकण्ड, मिनट और घंटों के कदम रखती हुई आगे बढ़ रही थीं। उनकी जिन्दगी का यह लम्बा कारवाँ भी इसीके साथ कदम मिलाकर आगे बढ़ा था। सामने रखे हुए रैक, मेज, कुर्सी, आलमारियों और उनमें भरी हुई फाइलों—सभी ने उन्हें आगे बढ़ने में सहारा दिया था। इन्हीं में वे सोये थे, इन्हीं में जागे थे। इस आफिस के हर कागज पर जैसे उनकी जिन्दगी की रामकहानी लिखी हुई थी।

आज वे जो ड्राफ्ट लिख रहे थे यह उनके हाथ का अन्तिम चिह्न होगा। अब न यह दीवाल घड़ी होगी, न टाइपराइटरों की खटखटाहट और न किसी विशाल यंत्र के पुर्जों की तरह गतिशील आफिस की यह भारी दुनिया। कभी देर से आने पर हाजिरी रजिस्टर पर लगनेवाला लाल निशान, साहब के चिड़चिड़ाए हुए चेहरे पर क्रोध से लाल आँखें सब उनके जीवन से हमेशा के लिए हट जायेंगे। न अब किसी घण्टी की अवाज पर उनका दिल धड़केगा और न ड्राफ्टिंग की किसी साधारण-सी त्रुटि पर, बड़े बाबू की झिड़कियाँ सुनने को मिलेंगी।

टप टप! सहसा आँसू की चार बूँदें उनकी आँखों से फाइल के पृष्ठ पर लुढ़क आईं। कितना जटिल था मोह का यह बन्धन! जहर हो या अमृत—सबने किस बुरी तरह जकड़ लिया था, उन्हें आज पहली बार अनुभव हुआ। बन्धन का एक-एक तार करके टूट रहा था। पीड़ा और कसक में डूबी हुई आँखों पर हरकिशनलाल ने फिर चश्मा चढ़ा लिया।

थोड़ी देर बाद एक चपरासी बड़े साहब का पत्र लाया। हरकिशनलाल को अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। ऐसा भी हो सकता है—उन्होंने आपसे पूछा। धूप में वे मीलों पैदल सफर करके आये और साहब ने उनके पपड़ी पड़े ओठों पर कभी एक नजर न डाली। ऐसा भी कई बार हुआ कि कमजोरी से वे गश खाकर अपनी कुर्सी पर ही लुढ़क पड़े मगर साहब के कण्ठ से करुणा का एक बोल भी न फूटा। कितनी अनहोनी बात है—आफिस द्वारा पार्टी का आयोजन होते हुए भी साहब हरकिशनलाल को अपने घर पर व्यक्तिगत रूप में बिदाई भोज दे रहे हैं।

जीवन के सतत संघर्षों की दास्तान कहती चेहरे की झुर्रियों में एक सिहरन सी हुई। मन चंचल हो उठा। अपने पाँच बच्चों और रोगजर्जरा पत्नी को जिन्दा बनाये रखने के लिए आत्मसम्मान का सौदा करनेवाले हरकिशनलाल की आत्मा पता नहीं क्यों चीख पड़ी। क्या इस चलती बेला में भी यह उपहास सहना पड़ेगा? और सहसा उनका चेहरा तन आया। रंग लगाकर सुर्खरू नहीं बनेंगे वे। वह पत्र वे साहब की मेज पर पटक देंगे।

मगर जब हरकिशनलाल साहब के आफिस के निकट पहुँचे तो उन्हें अनुभव हुआ कि जिस झटके और जोर के साथ उन्होंने अपनी कुर्सी छोड़ी थी, अब वे उनका साथ नहीं दे रहे हैं। रोज की निःसहायता ने उनके पैर जकड़ लिए। उनके चलने की गति एकदम मंद हो गयी। वे जितना ही अपने निश्चय और संकल्पों को एकत्र करते उतना ही वे बालू के ढेर की तरह बिखर-बिखर जाते। जिस वक्त उन्होंने चिक उठाई उनके हाथ काँप रहे थे।

वे चुपचाप साहब की मेज के सामने स्वयं एक प्रश्नवाचक चिह्न बनकर खड़े हो गये।

साहब कोई आवश्यक पत्र लिखने में इतने व्यस्त थे कि उन्होंने सर उठाकर उन्हें देखा भी नहीं। उस वक्त यह बताना कठिन था कि साहब की कलम के चलने की गति तेज थी या हरकिशनलाल के हृदय की धड़कन।

घड़ी की सुई निरन्तर आगे बढ़ती रही और हरकिशनलाल मेज से एक हाथ का फासला बनाये खड़े रहे।

जब साहब ने पत्र लिखकर सर ऊपर उठाया हरकिशनलाल के हाथ का कागज जेब में जा चुका था और हाथ स्वाभाविक रूप में बँधकर पेट और सीने के बीच आ लगे थे।

उन्होंने सोचा अब साहब ही बिदाई भोज की चर्चा करेंगे। तब वे निडर भाव से अपना निश्चय उनके सामने रख देंगे। इस तरह के किसी भोज में वे नहीं सम्मिलित होना चाहते। यह उनका अपमान है।

मगर साहब बोले—'हरकिशन बाबू, इंडियन स्टील वर्क्स को भेजे गये 'रिमाइंडर' का कोई जवाब आया कि नहीं?'

'यस सर! अभी लाया।' हरकिशनलाल तेजी से बाहर निकल गये।

साहब ने फाइल के पन्ने उलटे-पलटे। कुछ नोट्स दिये। फिर फाइल हरकिशनलाल को लौटा दी।

लेकिन हरकिशनलाल फाइल हाथ में लेकर भी लौटे नहीं। इस बार वे अडिग होकर आये थे।

साहब ने उन्हें खड़े देखा तो पूछा—'कुछ कहना चाहते हो?'

'यश सर!' कहकर हरकिशनलाल दो-चार सेकण्ड के लिए चुप से हो गये। फिर कण्ठ खोला—'जी . . . जी . . . बात यह है कि . . . ।' और उन्हें पुनः लगा कि बात निकल नहीं पा रही है। मगर दो क्षण अटक कर उन्होंने फिर कहा—'यह जो आप विदाई भोज दे रहे हैं . . .।' और उन्हें लगा कि आफिस के हरकिशनलाल ने उनकी जबान अपनी दोनों मुट्ठियों में भींच ली है। वे आगे न बोल सके।

साहब मुस्कराये। उन्होंने सिगरेट का एक लम्बा कस खींच कर धुआँ मुँह के बाहर किया तो वह सीधा हरकिशनलाल के चेहरे से जा टकराया। वे कुछ देर तक हाथ की उँगलियों में पड़ी हुई अँगूठियों को देखते रहे। फिर गंभीर स्वर में बोले—'बिदाई भोज दे रहा हूँ तो क्या हुआ? हरकिशन बाबू, तुम पैंतिस साल से इस आफिस को देते ही चले आए हो, तुम्हें मिला क्या?'

हरकिशनलाल का रोम-रोम खड़ा हो गया।

साहब कहते रहे—'तुम इस आफिस के सबसे पुराने आदमी हो। तुम्हारे हाथ से ही इसका जन्म हुआ है। तुमने इसका बचपन देखा और अब इसके यौवन की पराकाष्ठा भी तुम्हारे सामने है। तुम्हारे जाने में जो स्थान रिक्त होगा उसकी पूर्ति न हो सकेगी। किन्तु मनुष्य नियमों से विवश होता है!'

हरकिशनलाल के शरीर में एक अनिर्वचनीय पुलक दौड़ गया। साहब ने हिन्दी और अंग्रेजी साहित्य में एम० ए० कर रखा है, उन्हें कविता लिखने का भी शौक है, यह सारी बातें वह जानते थे। मगर उनके इस उदार रूप का दर्शन उन्हें आज तक कभी न मिल सका था। फिर शालीनतावश उन्होंने अपना निश्चय उपस्थित करना उचित समझा। वे बोले—'सर, आफिस तो पार्टी का प्रबन्ध कर ही रहा है फिर आप क्यों व्यर्थ यह कष्ट उठा रहे हैं?'

'इसीलिए तो मेरा यह आयोजन और भी आवश्यक है।' साहब बोले—'व्यक्ति ही व्यक्ति को समझता है। कल जो लोग उस भोज में सम्मिलित होंगे उनके सामने यह बात स्पष्ट हो जायेगी कि मानवश्रम का कैसे सम्मान किया जाता है। आज हमें मानवश्रम के महत्त्व का अधिक से अधिक विज्ञापन करना है। कल शाम आना है, समझे? जाओ!'

हरकिशनलाल सम्मोहित से लौट पड़े।

साहब के चेहरे पर विजय की मुस्कान फैल गयी। कालेज जीवन के बाद उन्हें आज पहली बार 'डायलाग' बोलने का अवसर मिला था—पात्र भी। इसमें वे पूर्ण सफल हुए थे। एक और अवसर अनायास हाथ आ लगा था—अपनी एक महत्त्वाकांक्षा पूरी करने का। देश के सामने आज एक ही चमकता हुआ सूरज है—गरीब का श्रम। उनका भोज एक गरीब के श्रम के सम्मान में है। नगर के वरिष्ठ अधिकारियों के सामने आत्मविज्ञापन का इससे बड़ा और क्या अवसर होगा। और इस भारी आयोजना में हरकिशनलाल का स्थान? साहब ने सिगरेट का अन्तिम कश खींचा और बचे हुए टुकड़े को 'ऐश ट्रे' में डाल दिया।

हरकिशनलाल के पैर धरती पर नहीं पड़ रहे थे। मन बाँसों ऊपर उछल रहा था। आज पैंतिस वर्ष से वे अपने को उस आफिस का एक पुर्जा भर अनुभव करते आये थे। बीसियों और पुर्जों के साथ एक पुर्जे का यही महत्त्व था कि उसके बिगड़ने पर दूसरा आसानी से लगाया जा सकता था! फिर कोई क्यों उसे असाधारण स्थान देता। इस लम्बे समय में उन्होंने कितना खून-पसीना बहाया इसका आज मूल्यांकन तो हुआ। उन्हें अपनी धारणा बदलती लगी—लोग गलत कहते हैं कि हीरे को परखनेवाले जौहरी अब नहीं रहे। उनका मन प्राण एक ऐसे प्रकाश में डूब गया जो कि जीवन में बराबर अंधकार ही अंधकार खाने के पश्चात् दृष्टि के सामने आया था।

सात बजे जाड़े की शाम ढल कर ठंडी रात बन चली थी। हरकिशनलाल ने दालान में पैर रखा तो उनकी फटी हुई चप्पलों से घर की श्मशान सी शान्ति भंग हो गयी। उधड़े हुए लिहाफ में हरकत हुई और उसमें से छोटे-बड़े सिर झाँकने लगे। बड़ा लड़का उनके पास आ खड़ा हुआ। दो छोटे बच्चे चारपाई पर ही उठ बैठे, नीचे अँधेरे में उतरते शायद डरते थे। बड़े से छोटा बगल के ओसारे में ढिबरी के सामने बैठा स्कूल के कुछ सवाल हल कर रहा था।

उन्होंने छड़ी कोने में रख दी और टोपी तथा कुर्ता उतार कर खूँटी पर टाँग दिये। कुर्ते की जेब से उन्होंने एक पुड़िया निकाली और उसे चारपाई पर बैठे बच्चों के हाथ में दे दिया। बड़ा लड़का अभी तक अपनी जगह चुपचाप खड़ा था। वे धीरे-धीरे उसके पास पहुँचे। लड़के ने सिर नहीं उठाया, उसकी आँखें धरती में ही गड़ी रहीं। फिर भी हरकिशनलाल ने उसके चेहरे पर अंकित वेदना को देख लिया। बड़ी कठिनाई से वे बोले—'रमन, आज भी कुछ नहीं हो सका!' और कहते-कहते उनकी जीभ का स्वाद एकदम कड़ुवा हो गया। गले का थूक अपनी जगह पर ऐसा अटक गया जैसे काँच का टुकड़ा हो।

रमन कुछ दिन पहले तक किसी सेठ के यहाँ मुनीम था। काम छूटे तो एक ही महीना हुआ मगर वेतन तीन महीने से ही रुक गया था। उसे काम दिलाने के लिए हरकिशनलाल ने हर संभव प्रयत्न किया। लेकिन बेकारी का शनिश्चर उसके सिर से नहीं ही उतरा। नित्य आशाएँ लेकर वह अपने पिता की प्रतीक्षा करता और हमेशा निराशा का फौलादी पंजा उसकी गर्दन दबोच लेता।

हरकिशनलाल कई मिनटों तक यों हीं खड़े रहे। उन्हें लग रहा था जैसे कोई तेजी के साथ उनके पैरों का सारा सत्व चूस रहा है। अगर वे कुछ देर और इसी अवस्था में रहे तो गिर पड़ेंगे। वे भारी पैरों से आँगन के ओसारे में निकल आये।

शान्ता माँ के दुखते हुए सिर की मालिश करना छोड़ पानी का लोटा लिये खड़ी थी। उसने पिता को सहारा देकर चौकी पर बैठाया। हल्के हाथों से उनके पैरों को धोया, अपनी धोती के आँचल से पोंछा। फिर गुड़ की डली और एक गिलास पानी उनके सामने कर दिया।

पानी पीकर उन्होंने पूछा—'माँ की कैसी तबियत है?'

'ठीक ही है।' शान्ता ने रोज के शब्द दुहराये।

'और दवा?'

'दवा...।' शान्ता अटक गयी।

और तब अकस्मात् हरकिशनलाल को अपनी याददाश्त की कमजोरी का बोध हुआ। दवा समाप्त हुए तो आज तीन दिन हो चुके थे। अस्पताल के पानी से कोई लाभ न था और प्राइवेट डाक्टर कहाँ तक उधार खाता चलाता!

वे बड़ी देर तक ओसारे के खम्भे को देखते रहे जिसकी अब शान्ता ने ओट ले ली थी और जहाँ उसके आँसू सूखी धरती सींच रहे थे। होश सँभालने के दिन से उसने माँ को रोगों के पंजे में छटपटाते और पिता को अन्तर के दावानल में भुनते ही देखा। साधारण सी बात पर भी अब उसके हृदय की पीड़ा आँखों की राह बह निकलती।

हरकिशनलाल की आँखें ईंटों को भी भेदकर शान्ता को देख रही थीं। शान्ता—जिसे जवान हुए कई बरस बीत चुके हैं और जिसके हाथ पीले करने के लिए वे आज तक एक पायी भी न जमा कर सके। घर का शनि उनकी सारी कमायी सोखता गया। मुहल्ले में बैंड के साथ बारातें लगतीं और शहनाइयों की आवाज पर डोलियाँ उठतीं। अपनी विवशताओं पर वे हाथ मलते और पिंजरे में बंद पंछी की तरह अपने जर्जर मकान की चहारदीवारी में ही छटपटा कर रह जाते।

अपने बच्चों को छटाँक आधपाव दूध की कौन कहे, कभी ठीक से गेहूँ की रोटियाँ भी न खिला सके। जब पड़ोस के बच्चे रंग-बिरंगे कपड़ों में लकदक गुड़ियों की तरह सजकर निकलते तो उनके बच्चे किस प्यास भरी नजरों से उन्हें देखते रह जाते इसे उन्हींका आहत हृदय जानता था। पत्नी कभी पत्नी का सुख न पा सकी। वह अपने नारीत्व की सम्पूर्ण मर्यादा पाँच गज चीथड़े में छिपाये घर के एक कोने में पड़ी रहती। पैरों के पायल, कान की बाली, हाथ की सोने की चूड़ियाँ—सारी चीजें उससे एक-एक करके ऐसी अलग हुईं कि फिर अलग करने के लिए उसके पास कुछ भी न बचा। फिर भी उसने कभी कुछ न चाहा, कुछ न माँगा।

सहसा हरकिशनलाल ने अपने दोनों हाथों को फैलाया। वे ठंड से अकड़ चले थे। आँगन में बरसते हुए ओसकण हवा में उड़-उड़कर ओसारे में भी ठंडक बढ़ा रहे थे। उनके शरीर में सिहरन बढ़ रही थी, पिंडलियों में कम्पन हो रहा था। उन्हें जीवन में पहली बार अनुभव हुआ कि वे बुरी तरह बूढ़े और अशक्त हो गये हैं।

कब शान्ता उन्हें पकड़ कर रसोई में ले गयी, किस तरह उन्होंने ठण्डी खिचड़ी के दो-चार कौर मुँह में छोड़े और फिर कैसे वे अपने बिस्तर पर पहुँचे—हरकिशनलाल को ठीक से याद न रहा।

हरकिशनलाल ने शाम के खाने के लिए मना कर दिया। बच्चे जानते थे कि वे कहाँ जा रहे हैं। मगर उन्होंने साथ चलने की कोई जिद न की। शायद बड़े भाई ने समझा दिया था—यह बिरादरी की नहीं, बड़े साहब की दावत का मामला है।

जब हरकिशनलाल बाहर निकले, बच्चे ओसारे में खड़े थे। उनका चेहरा देखकर उनसे न रहा गया। उन सबको भी साथ ले लिया। सोचा—थोड़ा बाजार घुमा कर दो-चार पैसे की चीज हाथ पर रख देंगे। फिर बड़ा भाई उन्हें वापस लेता जायेगा।

बड़े साहब का बँगला रास्ते में ही पड़ता था। उन्होंने वह रास्ता छोड़ दिया और दूसरी गली से चक्कर लगाते हुए बाजार में पहुँचे। मगर लौटते वक्त वे ऐसा न कर सके।

अँधेरा हो जाने के कारण साहब के बँगले पर लगे हुए तेज रोशनी के बल्ब जगमगाने लगे थे। आज कुछ विशेष सजावट की गयी थी। हरकिशनलाल ने बच्चों को बगल के एक इमली के पेड़ के नीचे खड़ा कर दिया और उन्हें समझा दिया कि उनके लौटने तक वे वहीं खड़े रहें।

उन्हें आशा थी कि इस बीच कोई न कोई परिचित उन बच्चों को अवश्य देख लेगा और तब उन्हें भीतर ले जायेगा।

फाटक पर तीन-चार कारें और कई रिक्शे खड़े थे। स्पष्ट था कि अतिथि आ चुके हैं और अब केवल हरकिशनलाल की प्रतीक्षा है। जब वे सजे हुए हाल कमरे में घुसे तो उन्होंने देखा कि बात सच थी। लोग उन्हींका इंतजार कर रहे थे।

किसीने मुस्करा कर, किसीने हँसकर उनका स्वागत किया। कई अपरिचित उन्हें घूरते ही रह गये——यही है वह व्यक्ति जिसके सम्मान में इतना बड़ा भोज आयोजित किया गया है!

बड़े साहब ने स्वयं आगे बढ़कर उनका स्वागत किया और पास की एक कुर्सी पर बैठा दिया। शहर के अधिकांश रईस और बड़े-बड़े अफसर, आमंत्रित थे। सबसे हरकिशनलाल का परिचय कराया गया।

मगर जिस वक्त लोग मन ही मन हरकिशनलाल के भाग्य की सराहना कर रहे थे, स्वयं हरकिशनलाल की निगाहें मेजों पर रखे हुए गुलदस्तों, कतार में दो-दो हाथ की दूरी पर लगे हुए बिजली के पंखों और तश्तरियों से सजे हुए फल, नमकीन और मिठाइयों पर से फिसलती हुई रह-रहकर दरवाजे पर जा टिकती थीं। भीतर आनेवाले हर व्यक्ति की परछाईं देखते ही उनका दिल धड़क उठता था, मगर जब वह सामने आता वे मुर्दे की तरह शिथिल हो जाते।

लोगों ने खाना शुरू कर दिया था। हरकिशनलाल एक बार तश्तरी की तरफ हाथ बढ़ाते लेकिन तुरन्त ही पीछे खींच लेते। उन्हें मिठाई का स्पर्श करते भय अनुभव हो रहा था। जैसे वे साँप-बिच्छू हों, छूते ही काट लेंगे।

समय बड़ी तेजी के साथ बीत रहा था। लोग मिठाइयाँ साफ कर रहे थे, मगर हरकिशनलाल की आँखें दरवाजे में प्राण बनकर समायी हुई थीं। जब लोग हाथ-मुँह धोने को हुए तो हरकिशनलाल ने पाया कि उनके सामने रखा हुआ सारा सामान ज्यों का त्यों पड़ा हुआ है। लोगों के बहुत कहने पर दो एक बार वे मिठाई का एकाध टुकड़ा मुँह के करीब ले भी गये मगर तुरन्त ही उन्हें लगा कि उलटी हो जायगी।

खाने के बाद साहब बोले——'मैंने तो एक साधारण कर्त्तव्य पूरा किया है। इससे लोगों में आदमी, वह छोटा हो या बड़ा, और उसके श्रम का सम्मान करने की भावना पैदा होगी। मगर हरकिशनलाल सा आदमी न मिलेगा। उन्हें भी हमसे अलग होने का कम दुःख नहीं है। उन्होंने मिठाई का एक टुकड़ा तक नहीं तोड़ा जब कि काम के पीछे वे बराबर अपनी कमर तोड़ते रहे हैं...।'

हाल तालियों से गूँज उठा। साहब ने गर्व से सामने बैठे अफसरों को देखा। आज फिर उनका 'डायलाग' पूर्ण सफल हुआ था।

मगर हरकिशनलाल की आँखों से टपटप आँसू की दो बूँदें मिठाई की तश्तरी पर चू पड़ीं। फिर लोगों ने क्या-क्या कहा, हरकिशनलाल को कुछ याद नहीं। जब बगल के व्यक्ति ने उनके कंधे पर हाथ रखा तो उन्होंने देखा कि हाल आधे से ज्यादा खाली हो चुका था। साहब अपने मेहमान अफसरों को बिदा करने में व्यस्त थे।

वे थके पाँव से फाटक तक आये। बाहर बारिश हो रही थी। उन्होंने चारों ओर नजर दौड़ायी। कोई रिक्शा खाली न था। वे वैसे ही भीगते हुए इमली के पेड़ की ओर बढ़ने लगे जहाँ उनके आज्ञाकारी बच्चे बड़ी-बड़ी बूँदों के नीचे खड़े होकर बड़े धैर्य से अपने पिता की प्रतीक्षा कर रहे थे।

हरकिशनलाल के जी में आया कि वे तेज़ी से आगे बढ़ जायँ और अपनी छाती फाड़कर बच्चों को उसमें भर लें। उसी समय सड़क का गंदला पानी उछालती हुई एक कार सामने से निकल गयी। उन्होंने देखा——साहब की नीली शेवरलेट थी। साहब स्वयं 'ड्राइव' कर रहे थे। बगल में कोई मेहमान औरत थी जिसे वे पहुँचाने जा रहे थे। पीछे उनका अलसेशियन कुत्ता बैठा हुआ था।

उस घड़ी भी हरकिशनलाल के चेहरे पर जीवन का सबसे बड़ा व्यंग्य बनकर एक मुस्कराहट उभर आयी। उन्हें लगा——प्रकाश तो पीछे है। वे स्वयं अपनी परछायीं के साये में आगे बढ़ रहे हैं।

बच्चे सड़क पर निकल आये और चुपचाप अपने पिता के साथ चलने लगे।

———

आदमखोर

नोरा वर्क

अनुवादक--राजेन्द्रनाथ मिश्र एम० ए०

घने जंगल से आदमखोर बाहर आया।

शाम हो चुकी थी। शेर पहाड़ी के किनारे खड़ा घाटी का सिंहावलोकन कर रहा था। अस्ताचलगामी सूरज की किरणों से उसकी त्वचा चमक रही थी।

वह विशालकाय जवान शेर था किन्तु लँगड़ा रहा था। यह सेही के काँटे की कृपा थी। काँटा आड़ा होकर उसके मांस में गड़ गया था। देर तक घाव भरता रिसता रहा। इसीसे शेर को आदमखोर होना पड़ा। बेचारा वन्य पशु पकड़े, इतनी उसमें शक्ति नहीं रह गयी थी। स्वाभाविक शिकार अब उसके भाग्य में नहीं बदे थे।

वर्षों से वह दिन दहाड़े आदमियों का शिकार करने लगा था क्योंकि दिन में आदमी खूब मिलते हैं, किन्तु अब लोग-बाग उससे बहुत डरने लगे थे। उसके भय से जंगल में कुल्हाड़ी नहीं बजती थी। इस लँगड़े के इलाके से मुसाफिर अकेले निकलने की हिम्मत न करते थे।

आदमखोर ने अपनी भारी गर्दन चौक गाँव की तरफ फेरी। धुआँ उठ रहा था। वहाँ एक बार वह पहले भी हाथ साफ कर चुका था। हाँ, वही जगह थी।

वह घाटी में उतरा।

मौजा चौक में दो नन्हे साँवले बच्चे अपना दैनिक कार्य समाप्त कर रहे थे। उन्हें अभी काफी काम और करना बाकी था। पिछले हफ्ते उनके बाप को खाट पर लादकर १०० मील दूर के अस्पताल में ले गये थे क्योंकि कम्बख्त भालू ने उसकी खोपड़ी खरोंच डाली थी और बेचारों के माँ थी नहीं।

उन्हें सारा धन्धा सम्हालना होता था। लकड़ी बीनना, पानी भरना, भैंस चराना, उसका दूध निकालना, खेत ज़ोतना और रोटी टहल। आदमखोर हो या न हो, काम तो करना ही पड़ेगा। बच्चे हिरनों की तरह शेर से नहीं डरते जब तक कि उसे साक्षात् देख न लें। इस घर में, इस जमीन में, मर्द औरत सभी को मेहनत करनी पड़ती थी। ये बच्चे थे तो १२ या १३ साल के पर वे मरियल बन्दर से लगते थे। जैसे इन्हें भरपेट खाना ही न मिलता हो। फिर भी वे खुश थे, उन्हें किसी चीज की जरूरत या कमी न थी। वे हँसते, मसखरी करते, गप्प लड़ाते और चैन की बंशी बजाते, हालाँकि माधो को परिवार बड़ा होने के कारण कुछ सोचना-विचारना पड़ता था छोटे भाई की देखभाल, गिरस्ती की फिक्र। इन चीजों उसे कुछ गम्भीर व विचारशील बना दिया था। बड़े यह प्रभाव पड़ना उचित ही था।

इस सूनी शांत सन्ध्या में माधो खाना बना रहा था छोटा भाई चुन्नू खेत पर काम करने गया हुआ था। में धुआँ न भरे इसलिए किवाड़ खुले पड़े थे। फिर झोपड़ी में धुएँ की चादर ने धुंध छा दी थी।

चूल्हे पर भात चढ़ा था। माधो रोटियों के लि आटा गूँध रहा था। उसका विचार था कि चटपट टी के तवे पर २ रोटियाँ डाल ले। उसने वैसा ही किया हालाँकि उस आटे से ३ चपाती बन सकती थी पर उस २ ही बनायीं। एक ज़रा बड़ी थी। उसने बड़ी चपाती चुन्नू के लिए रख दी। झटपट उठा और नमक मिर्च भैंस का ताजा दही ले आया। फिर आवाज लगायी "चुन्नू"।

चुन्नू दूर से चिल्लाया "आया, अभी आया। जरा हाथ का काम निपटा लूँ।"

वह एक भारी कुदाली से काम कर रहा था। डूबते सूरज की लाल रोशनी में उसका बदन ताँबे की तरह चमक रहा था।

उसे देख व उसकी बात सुन माधो के दिल में एक अजीब सी कल्पना आयी। वह बात चुन्नू के प्रेम के कारण थी।

वह फिर चिल्लाया, अबे आ भी जा, गरमा-गरम रोटी उड़ा ले।

बात पूरी होते न होते चुन्नू आ पहुँचा।

वे दोनों दरवाजे की तरफ पीठ किये खड़े थे। झोपड़ी में रोशनी की जगह अँधेरा लेता जा रहा था। वे मुड़े।

दरवाजे में शेर खड़ा था।

उसे कोई जल्दी न थी। बरसों से आदमखोर हो चुका था। उसके दिल से आदमी का डर बिल्कुल जा चुका था। उसके भारी सर से दरवाजा घिर गया था। सूरज की रोशनी उसकी मूँछों पर पड़ रही थी। और उसके बदन की परछाईं फर्श पर।

उसकी आँखें चिराग की तरह चमक रही थीं और निगाहें चुन्नू पर पड़ रही थीं।

शेर भीतर झोपड़ी में आया।

माधो ने गहरी साँस ली। फिर झपटकर एक जलता हुआ चैला चूल्हे से खींचकर शेर के मुँह पर रसीद किया और चिल्लाया 'भाग-भाग' और फिर उसे खदेड़ने लगा।

शेर दहाड़ा। इतनी आवाज हुई जैसे झोंपड़ी उड़ गयी हो। बड़ा भयानक दृश्य था। क्रुद्ध शेर, जलती चिनगारियाँ, जलती आँखें, धुएँ की चादर, वह झपटकर बाहर भागा। बच्चों ने आनन-फानन किवाड़ तड़ाक से बन्द कर लिये। कमरे में शेर के बाल अभी-अभी जल चुके थे इसलिए उनकी दुर्गन्ध आ रही थी।

बाहर शेर दहाड़ रहा था। उसकी दहाड़ से धरती काँप रही थी, जैसे भूकम्प आ गया हो।

उन्होंने किवाड़े से कान लगा रक्खे थे। अब शेर गाँव से बाहर ऊपर पहाड़ी की ढलान पर चढ़ता जा रहा था। लँगड़ा शेर जा चुका था पर उसकी दहाड़ से बच्चों के कलेजे काँप रहे थे।

ठण्डी हवा चल रही थी। चारों तरफ मौत का सा सन्नाटा था। बड़ी देर बाद चिड़ियों की चूँ-चूँ सुनायी दी।

माधो ने धुएँ की घुटन कम करने के लिए किवाड़े खोले। अब क्या डर था?

पर उसका हाथ इस तरह काँप रहा था जैसे जूड़ी-बुखार चढ़ा हो। सारे बदन से पसीना छूट रहा था।

देखो, चुन्नू ने कहा, दादा! तुम जल गये।

'अरे! सचमुच' और फिर उसे दर्द महसूस होने लगा।

उन्होंने चुपचाप शान्तिपूर्वक भोजन किया। भोजन में स्वाद नहीं आया। हालाँकि भैंस का शुद्ध मक्खनदार दही था और मिर्चें चटपटी थीं। उन्होंने पैरों से कुचलकर आग बुझायी और जाड़े से बचने के लिए दोनों एक ही चारपाई पर गठरी बनकर लेट गये। जाड़े से बचने के लिए दोनों एक कम्बल के टुकड़े में लिपट गये।

माधो घर का बड़ा सदस्य होने के कारण सो नहीं सका। उसे चिन्ता घेरे थी कि इस आदमखोर लँगड़े शेर का कुछ इलाज करना पड़ेगा। कल को चुन्नू अकेला खेत में हुआ तो या भैंस चराने गया तो . . .बेचारा बच्चा क्या करेगा?

सुबह उठकर उसने अपनी तोड़ेदार बन्दूक निकाली। उसे ठीक-ठाक किया। सफाई की, और उसे गुप्त स्थान से निकाल कर जहाँ वह जंगल के महकमेवालों के डर से छिपी पड़ी थी, अलग रख दिया। उसे चैन न पड़ा तो उसे फिर निकाला। उसमें बारूद भरी और खतरनाक रास्ते पर चल दिया, जहाँ दूसरों से पहले वह पहुँचे और काम पूरा करने के लिए कुछ पा जाये।

वह नंगे पैर था। कमर में धोती के सिवाय और कुछ भी नहीं पहने हुए था। पेट में ठण्डी हवा लग रही थी। वह पुराने पीपल के पेड़ के पास से निकला। काला नाग जड़ से लिपटा सो रहा था। उसे गाँव के उस कोने में पहुँचना था जहाँ आदमखोर ने एक नवयुवती को तोड़ डाला था। वह जगह ढूँढ़ना कठिन न था क्योंकि सूखे जमे खून के दाग, टूटी हुई चूड़ियों के काँच एक झोपड़ी में फँसे काले लम्बे बाल खुद-ब-खुद रास्ता दिखा रहे थे।

पानी की चिड़ियों की पुकार, बन्दरों की खी-खी और कौओं की काँव-काँव से साफ जान पड़ता था कि सबेरा हो चला है। माधो जगंली दगड़े पर बढ़ा जा रहा था। उसे लम्बी घास, कँटीली झाड़ियों और नदी की चिन्ता न थी। वह एकदम फिसलकर गिरा। घास की तेज धार ने उसके पेट की नंगी खाल को काट दिया। पैरों में भी काँटे चुभे पर उसे कुछ भी न अखरा। आखिर सारी उम्र नंगे पैर ही तो कटी है और कटेगी।

एकाएक उसके कानों में बन्दरों की घबराहट-भरी आवाज पड़ी। जरूर कोई शेर या बाघ आ रहा होगा।

साथ ही पेड़ पर गिद्ध भी दिखायी दिये। दो कौए भी डालियों पर इधर-उधर उड़े। शायद कहीं शिकार नजर पड़ गया है और वह नीचे शेर के डर के कारण नहीं आ रहा।

माधो चुपचाप पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ा हो गया।

सामने रेतिया में नदी की पतली धार चट्टानों के पास बह रही थी। न तो अभी बर्फ पिघली है और न मान-सून ही आसपास है किन्तु वहाँ दल-दल में शेर ने अपना शिकार तोड़ा है, हड्डियाँ बिखरी पड़ी हैं। कुछ चिथड़े भी दिखायी दे रहे हैं, शेर के पैरों के निशानों में गंदा पानी भरा हुआ है।

माधो की नजर बाकी बचे हुए शिकार पर पड़ी जो

कि काँटेदार झाड़ी में छिपा था। पास ही सेमल के पेड़ में शेर ने पंजे साफ किये थे इसलिए वह खरोंचा हुआ पड़ा था। छाल बुरी तरह फटी हुई थी।

माधो ने धीरे से चारों ओर नजर दौड़ायी। उसका दिल डूबा जा रहा था। डर के मारे पैर के नीचेवाली बालू दबकर कुर-कुर कर रही थी। शेर से बचने के लिए स्थिर रहना बड़ा जरूरी है। हवा की खबर न रहे तो कोई बात नहीं, किन्तु किसी प्रकार का शोर या हरकत प्राणघातक सिद्ध हो सकती है। माधो ने अपनी बेवकूफी को समझा।

उसने बड़ी सावधानी से फिर इधर-उधर देखा। उसकी नजर लीक, खोह और खड्डों के साथ-साथ कटानों पर भी दौड़ी क्योंकि उसे पता था कि शेर कहाँ हो सकता है। वह स्थान गुप्त, शान्त, शीतल और जल के निकट होना चाहिए। पीछे एक खड़ी चट्टान थी जिसमें छिपने को स्थान था। अतः यदि शेर निकल आया तो वह उधर भागेगा।

माधो ने बन्दूक सम्हाली और बड़े हौले से उस चट्टान की तरफ जहाँ छिपने का विचार था, खिसका।

झँपड़ी से गुर्राने की आवाज आयी।

वह दिखायी दिया।

माधो एकदम पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ा हो गया।

उसे अब शेर नहीं दिखायी पड़ा। उसकी अनुभवी आँखें जो अँधेरे में भी जंगल के साल वृक्षों, बाँसों और लम्बी घासों के पार शेर, चीते व्याघ्र या चीतल को देख लिया करती थीं, आज धोखा दे रही थीं।

शेर फिर गुर्राया—उसकी गुर्राहट में धमकी थी। अब वह शिकार नहीं कर रहा था बल्कि गुस्सा दिखा रहा था। पहले बन्दर और गिद्ध उसे छेड़ रहे थे और अब यह छोकरा।

माधो हिला और शेर सिर पर आया।

एकाएक उसने देखा कि शेर आगे आ रहा है। तेजी से आगे बढ़ता आ रहा है। झपटता हुआ आ रहा है।

धारीदार शेर एकदम कटीली झाड़ी से बाहर निकला। माधो ने धड़ाक से बन्दूक दाग दी।

इत्तिफाक से गोली सीधी सर में लगी और छाती के पार हो गयी। वह चारों खाने चित्त गिर गया। फिर भी उसने गिरते-गिरते वार भी किया और माधो के बदन को कई जगह फाड़ दिया। कहना चाहिए कि शेर बेचारे पर चढ़ बैठा, पर जरा देर में वह निर्जीव हो लुढ़कता हुआ नदी की तलहटी में जा पड़ा।

माधो प्राण लेकर भागा। भागते-भागते उसने घावों पर मुट्ठी भर धूल डाल दी ताकि सारा खून निकल न जाय।

थोड़ी देर में उसने चाकू निकाला और उस आदमखोर की खाल उतारना शुरू कर दिया। गर्म लोथ होने के कारण उसकी खाल जल्दी-जल्दी उतर रही थी, फिर भी कई घंटे लग गये। शेर तन्दुरुस्त जो था। छोकरे की उँगलियाँ दुखने लगीं। शेर के गोश्त की महक चारों ओर फैल गयी। मक्खियाँ भिनभिनाने लगीं, उसे बार-बार सुस्ताने व चाकू को रगड़कर तेज करने के लिए ठहरना पड़ता था।

इसी बीच चील, कौए, गिद्ध पेड़ों पर झुण्ड के झुण्ड दावत मनाने के लिए आ बैठे। इस दृश्य ने गाँव के और लोगों को वहाँ न आने दिया। उनका ख्याल था कि शेर अभी वहाँ पर ही है।

माधो ने छुरी से शेर की खोपड़ी भी काटी, और वह पतली हडडी भी जिसे भागवान कहते हैं। उसने घर ले जाने के विचार से खाल को कसकर लपेटा। उसने यह भी ध्यान रक्खा कि मूछें न टूटे क्योंकि उनका बड़ा महत्त्व है। वशीकरण करनेवाले उन्हें खरीद लेते हैं। वह अब चल पड़ा—उसे चलते देख चील, कौए, गिद्ध लोथ पर टूट पड़े।

वह थक गया था। घाव दर्द करने लगे थे। सारे बदन में दर्द हो रहा था। नस-नस दुख रही थी।

वह जब घर पहुँचा तो उसने चुन्नू की मदद से शेर की खाल को तान कर खूँटियों के सहारे फैलाकर बाँध दिया ताकि वह खूब सूख सके। उन्होंने गोश्त की तरफवाले हिस्से को नमक से मलमलकर खूब रगड़ा ताकि खाल बढ़िया बने और मक्खियाँ भी वहाँ न आयें—वह काम करते में बात बात पर हँसते। कभी-कभी तो बेबात के ही हँसने लगते। बड़े कहकहे लगे। वे बहुत खुश थे।

खोपड़ी उन्होंने चीटियों की घरिया के पास रख दी ताकि वे उसका मांस चाटकर साफ कर दें। जब वह सूखकर साफ सफेद हो जाएगी तो उसपर खाल मढ़ देंगे। उन्होंने वैसा ही किया। हालाँकि अब खाल सूख गयी थी, उसपर इधर-उधर दरारें पड़ गयी थीं पर उन्होंने उसे सीकर ठीक कर ही डाला। उन्होंने उसे ऐसा बनाया जैसे पेशेवर कारीगर रहे हों।

उनका बाप जब अस्पताल से घर लौटा तो उन्होंने अपना खेत और यह खाल बड़ी शान से दिखायी। वह बड़ा प्रसन्न हुआ। उसे प्रसन्नता व्यक्त करने के लिए शब्द तक न मिले। फिर भी उसने दोनों बेटों की तरफ गौरवभरी दृष्टि डालते हुए कहा, 'अब घर में तीन मर्द हैं।'

इस प्रकार आदमखोर का अन्त हुआ। खाल माधो के घर पर टँगी है और लोग आ-आकर उसे देखते रहते हैं।

नवीन प्रकाशन

कुछ देखा, कुछ सुना—लेखक श्री घनश्यामदास बिड़ला। प्रकाशक, सस्ता साहित्यमंडल, कनाटप्लेस नई दिल्ली। सजिल्द। मूल्य ढाई रुपये।

श्री घनश्यामदास बिड़ला भारत के प्रमुखतम उद्योग-पतियों में हैं किंतु उन्हें हिंदी में तथा पठनपाठन में हार्दिक रुचि है। अत्यन्त व्यस्त रहते हुए भी वे जब तब हिंदी में लिखते रहते हैं। अब तक उनकी छोटी बड़ी प्रायः आधी दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रस्तुत पुस्तक अत्यन्त मनोरंजक और महत्त्वपूर्ण है। यह इतनी रोचक है कि हम इसे एक बैठक में पढ़ गये। इसमें १४ संस्मरण हैं। सब एक से एक अच्छे किंतु इनमें जितना शक्तिशाली संस्मरण 'मणीबेन' बन पड़ा है उतना अन्य नहीं। ऐसा हृदयग्राही और शक्तिशाली संस्मरण जिसमें चरित्र चित्रण की रेखाएँ एक साथ अत्यन्त कोमल और शक्तिशाली हों, हमारे देखने में कम ही आये हैं। इन संस्मरणों से आज से आधी शती पुराने भारत की सजीव झाँकी मिलती है। संवत् छप्पन के अकाल का वर्णन तो ऐतिहासिक हो गया है। 'मेरा शिक्षण' नामक संस्मरण हमें विशेषरूप से रोचक लगा। उससे उनके बाल्यकाल के समय की शिक्षा-व्यवस्था का अच्छा चित्र मिलता है। यह स्पष्ट है कि घनश्यामदासजी आज जो हैं उसके लिए कोई व्यवस्थित शिक्षा या शिक्षक उत्तरदायी नहीं है। पुस्तक अत्यन्त रोचक है। उसका ऐतिहासिक महत्त्व भी है। हिंदी संस्मरण साहित्य की वह गौरवग्रंथ मानी जायगी। पुस्तक की एक विशेषता यह भी है कि इसे सभी वर्ग के पाठक—शिक्षित, अर्धशिक्षित, वयस्क, विद्यार्थी, स्त्री, पुरुष,—समान रूप से मनोरंजक और उपयोगी पायेंगे। भाषा प्रांजल और सरल है। शैली मनमोहक है।

आर्थिक विकास का सापेक्ष चित्रण—श्री जॉन केनेथ गैलब्रेथ, प्रकाशक, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली-६। छोटा आकार, सजिल्द। पृष्ठ-संख्या, ७६। मूल्य, दो रुपये।

श्री गैलब्रेथ भारत में अमरीका के राजदूत थे। किंतु वे अमरीका के प्रसिद्ध विश्वविद्यालय हार्वर्ड में अर्थशास्त्र के स्थायी प्रोफेसर हैं। जब वे भारत में थे तब उन्होंने यहाँ की भिन्न-भिन्न संस्थाओं में पाँच व्याख्यान दिये थे। इनमें आर्थिक विकास के सिद्धान्तों का विवेचन था। इस देश में जो पंचवर्षीय योजनाएँ चल रही हैं, वे सब आर्थिक समृद्धि बढ़ाने के लिए हैं, और अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों से उनका गहरा संबंध है। किंतु बहुत से लोग तत्कालीन और प्रस्तुत समस्याओं के सामने अर्थशास्त्र के उन सिद्धान्तों को भूल जाते हैं जिनकी उपेक्षा करने से अच्छी से अच्छी आर्थिक योजना अंत में असफल हो जाती है, या उससे अपेक्षित फल प्राप्त नहीं होता। इन पाँच व्याख्यानों में प्रो० गैलब्रेथ ने बतलाया है कि आर्थिक विकास में किन बातों का ध्यान रखना चाहिए। पश्चिम मुक्त बाजार (फ्री मार्केट) में विश्वास करता है। उसके अधिकांश प्रमुख अर्थशास्त्रियों का यही मत है। किंतु विकासोन्मुख देश अपनी आर्थिक व्यवस्था में शीघ्र सुधार करने के लिए मुक्त बाजार पर रोक लगा देते हैं। किंतु अमरीका उद्योगों के निजी क्षेत्रों पर बहुत बल देता है। समाजवादी देश उद्योगों के राष्ट्रीयकरण पर विश्वास करते हैं। प्रो० गैलब्रेथ ने इन व्याख्यानों में पश्चिम के अर्थशास्त्रियों का दृष्टिकोण युक्तियुक्तपूर्ण ढंग से प्रतिपादित किया है। ये व्याख्यान उन लोगों के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं जो देश के आर्थिक विकास में रुचि लेते हैं। इनसे उन्हें संसार के एक प्रमुख पश्चिमी अर्थशास्त्री के विचार मालूम होंगे। नियोजन कार्य में लगे अधिकारियों को भी इसे पढ़ना चाहिए।

नारायण विजय पंचांग (वि० सं० २०२१)—लेखक ज्योतिषाचार्य पंडित संकर्षण व्यास, बड़े गणेश, उज्जैन, उन्हीं से प्राप्य। मूल्य ५० नयें पैसे।

यह पंचांग कार्तिक शुक्ल से आरंभ होता है। जो लोग दीपावली से नया पंचांग उपयोग में लाते हैं उनके काम का है। इसमें पंचांग की सभी बातें स्पष्ट रूप से दी गयी हैं। उज्जैन प्राचीन काल से ज्योतिष विद्या का केन्द्र रहा है। वहाँका समय मान भारत का समय मान माना जाता था। वहाँ की परम्परा पर तैयार यह पंचांग उपयोगी है।

कविसमय-मीमांसा—डा० विष्णुस्वरूप। प्रकाशक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-५। पाँच रंगीन चित्र, पृष्ठ-संख्या ३११। मूल्य ८ रुपये।

'कविसमय' शब्द हिंदी में बहु प्रचलित नहीं है। काव्य में बहुत सी अयथार्थ कल्पनाएँ की गयी हैं और कविगण पीढ़ी-दर-पीढ़ी उनका उपयोग करते रहे हैं जिससे अयथार्थ होते हुए भी साहित्य में स्वीकृत हो गयी हैं। उदाहरण के लिए नदियों या बहते जल में कमल का होना। अशोक वृक्ष में फल-फूल का न होना, बरसात में कोकिल का मूक हो जाना आदि। प्रकृति में ये बातें यथार्थ नहीं हैं किंतु कवि इन्हें सत्य मानकर अपने काव्य में प्रयुक्त करते रहे हैं। वे रूढ़ियाँ या परम्पराएँ बन गयी हैं।

संस्कृत काव्यशास्त्र में इन्हें 'कविसमय' की संज्ञा दी गयी है। कुछ आचार्य इन्हें 'कविमत' या 'कवि सम्प्रदाय' भी कहते हैं। केशवदास ने अपनी 'कविप्रिया' में इसके लिए कविमत शब्द का ही प्रयोग किया है :

साँचो बात न बरनहीं, झूठी बरनति बानि।
एकनि बरनत नियम करि, कविमत विविध बखानि।।

और उदाहरण देते हुए कहा है।

जहँ जहँ बरनत सिंधु को, तहँ तहँ रतननि लेखि।
सूछम सरवरहू कहत 'केसब' हंस विसेषि।।

किंतु विद्वान् लेखक ने इन परम्पराओं के लिए 'कविसमय' शब्द का ही उपयोग स्वीकार किया है क्योंकि अधिकांश संस्कृत काव्याचार्यों ने इसीका प्रयोग किया है।

यह पुस्तक हिन्दू विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में शोध अधिनिबंध के रूप में प्रस्तुत की गयी थी। यह सामान्य शिकायत है कि हिन्दी शोध निबंधों का स्तर गिर गया है। इसलिए हमें इस पुस्तक को देखकर प्रसन्नता हुई क्योंकि यह निबंध बड़ी योग्यता और परिश्रम से तैयार किया गया है। इसमें विषय का सांगोपांग और शास्त्रीय तटस्थता से विवेचन किया गया तथा संबंधित सामग्री को एकत्र ही नहीं किया गया, उसका विवेकपूर्ण उपयोग भी किया गया है। 'कविसमय' का शास्त्रीय विवेचन करने के अतिरिक्त, इसमें हिंदी में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख कविसमयों का वर्णन किया गया है तथा उनके उपयोग के समीचीन उदाहरण भी दिये गये हैं। इसकी परिशिष्टियाँ भी महत्त्वपूर्ण हैं। यदि इनमें उद्धृत किये गये संस्कृत अंशों के हिंदी अनुवाद भी दे दिये जाते तो केवल हिंदी जाननेवाले पाठकों को लाभ होता। इस अज्ञात और सूक्ष्म विषय पर ऐसी शास्त्रीय गवेषणा से हिंदी काव्यशास्त्र के साहित्य का बड़ा उपकार हुआ है और उसकी समृद्धि हुई है। इस शोध के निदेशक आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र थे। यदि सुयोग्य शोधकर्ता को अधिकारी मार्गदर्शक मिल जाय तो जैसा काम हो सकता है उसका यह अधिनिबंध अच्छा उदाहरण है। काव्यशास्त्र के अध्ययन करनेवालों के लिए यह पुस्तक बड़े काम की है। पाँच सुंदर रंगीन चित्रों ने इसका अलंकरण कर दिया है। कभी-कभी अधिनिबंधों को पढ़कर हमारी यह प्रतिक्रिया होती है कि उनके छपाने में धन का अपव्यय किया जा रहा है। किंतु यह अधिनिबंध इतना सुंदर, उपयोगी और विद्वत्तापूर्ण है कि उसके प्रकाशन के लिए हिन्दू विश्वविद्यालय का हिन्दी विभाग बधाई का पात्र है।

गीतिकाव्य का विकास—पं० लीलाधर त्रिपाठी, प्रकाशक, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, ज्ञानवापी, वाराणसी-१। सजिल्द, बड़ा आकार, पृष्ठ-संख्या ४९६+२१+१४। मूल्य, दस रुपये।

गीतिकाव्य के विकास के ऊपर अभी तक कोई प्रामाणिक पुस्तक न थी। त्रिपाठीजी ने इस शोधपूर्ण पुस्तक को लिखकर इस अभाव की पूर्ति की है। हिंदी का गीतिकाव्य मूल में संस्कृत गीत परम्परा पर आधारित है। आजकल संस्कृत का अध्ययन प्रायः अप्रचलित है। विश्वविद्यालयों के कोई-कोई प्रोफेसर तो हिंदी के अध्ययन के लिए संस्कृत का ज्ञान भी अनावश्यक समझते हैं। किंतु उनके इस दुराग्रह से इस तथ्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता कि हिंदी साहित्य की विचारसरणी संस्कृत साहित्य की ही अगली कड़ी है। संस्कृत के अज्ञान के कारण विश्वविद्यालयों के कितने ही प्रोफेसरों और स्नातकों को इस बात का ज्ञान नहीं है। इसलिए एक ऐसी पुस्तक की बड़ी आवश्यकता थी जो भारत के गीतिकाव्य के विकास की क्रमबद्ध रूप-रेखा और सरल रूप में पाठकों के सामने रख सके। हमें प्रसन्नता है कि इस परमावश्यक और उपयोगी काम को करके पंडित लीलाधर त्रिपाठी ने हिन्दी का महत् उपकार किया है। बहुत-से हिंदी प्रोफेसरों का मत है कि व्रजभाषा में उन्हें जो 'अश्लीलता' दिखलायी पड़ती है वह कवियों के राजाश्रित होने के कारण थी, और राजे विलासी थे। इस पुस्तक के पढ़ने से दूसरी ही बात सामने आती है। मध्यकालीन कवियों ने संस्कृत गीतिकाव्य की परम्परा को जारी रखा और वे जयदेव के समान संस्कृत तथा प्राकृत कवियों से प्रभावित थे। बहुत से लोगों की यह धारणा है कि भारतीय कवि प्रकृति के प्रति उदासीन थे और पश्चिम के प्रभाव से हिंदी में (विशेषकर छायावादी कवियों में) प्रकृति चित्रण करने का उत्साह जगा। इस विषय का भी इस पुस्तक में अच्छा विवेचन किया गया है। त्रिपाठीजी के विस्तृत अध्ययन और गंभीर मनन की छाप इस पुस्तक के प्रायः प्रत्येक पृष्ठ पर लगी हुई है। प्रकारान्तर से इस पुस्तक के पढ़ने से संस्कृत काव्य का भी बहुत अच्छा परिचय प्राप्त हो जाता है। संस्कृत और प्राकृत के असंख्य गीतियों के उद्धरणों से इस पुस्तक की उपयोगिता बहुत बढ़ गयी है। यह महत्वपूर्ण पुस्तक केवल पठनीय और ज्ञानवर्द्धक ही नहीं, एक अच्छा संदर्भग्रन्थ का काम भी देती है। स्वान्तःसुखाय और विद्याप्रेम के कारण लिखी हुई इतनी गवेषणापूर्ण और सुंदर पुस्तक आजकल बहुत कम देखने में आती है। काव्य में रुचि लेने वाले प्रत्येक व्यक्ति को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।

जो है सो—डा० आत्मानन्द मिश्र। प्रकाशक, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६, सजिल्द। मूल्य चार रुपये।

इसकी भूमिका पं० नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखी है जिसमें वे लिखते हैं कि "इन हास्य निबन्धों में मिश्रजी अपने पूर्वज निबन्धकार प्रतापनारायण से अच्छी टक्कर लेते हैं।" प्रकाशन ने भी इसे "हास्य-विनोदपूर्ण निबन्धों का संग्रह" बतलाया है। यह आंशिक सत्य ही है। इसके दो खंड हैं—'साहित्य' और 'साहित्यकार'। साहित्य खंड के कुछ निबंध अवश्य ही उच्च कोटि के हास्य के

नमूने हैं। किंतु अधिकांश निबन्धों में विद्वत्तासुलभ गंभीरता है। उनमें गंभीर बातों को विनोदपूर्ण ढंग से कहा गया है। कुछ निबंध अवश्य ही विशुद्ध हास्यरस के हैं। दूसरे खण्ड में साहित्यकारों के संस्मरण दिये गये हैं। इन्हें किसी भी दृष्टि से हास्यपूर्ण नहीं कहा जा सकता। वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और गंभीर हैं। इन्हें प्रथम खंड के साथ नत्थी करके हमारी दृष्टि से इनके साथ अन्याय किया गया है। वे इतने मनोरंजक हैं और उनमें इतनी ऐतिहासिक महत्त्व की बातें भरी हुई हैं कि हम उन्हें एक ही बैठक में पढ़ गये। उनसे हमारा मनोरंजन ही नहीं, ज्ञानवर्द्धन भी हुआ और जिन साहित्यकारों पर वे लिखे गये हैं उनके चरित्र और कृतित्व को समझने में वे बड़े सहायक हुए। डा० मिश्र का यह निबंध संग्रह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसकी भाषा टकसाली है, शैली मनोरंजक है और इसमें तथ्यों की प्रचुरता है। इस समय हिन्दी में निबंध लेखन की ओर ध्यान कम दिया जाता है। कठिनाई से आधे दर्जन विद्वान् अच्छे निबन्ध लिखते हैं। डा० आत्मानन्द मिश्र की गणना उनमें सरलता से की जा सकती है। जो लोग उच्चकोटि के अच्छे साहित्यिक, मनोरंजक और ज्ञानवर्द्धक निबंध पढ़ना चाहें उन्हें 'जो है सो' अवश्य पढ़ना चाहिए।

पदमावत का काव्य-सौन्दर्य—प्रो० शिवसहाय पाठक। हिंदी ग्रन्थ रत्नाकर, प्राइवेट लिमिटेड, हीराबाग, बम्बई—४।

जायसी का पदमावत विद्वानों में चलता था किंतु उसके महत्त्व को विद्वत्समाज के सामने लाने और उसके पठन-पाठन को प्रोत्साहन देने का श्रेय आचार्य रामचंद्र शुक्ल को है। अब विश्वविद्यालयों में जायसी का अध्ययन अनिवार्य है। शुक्लजी के विद्वत्तापूर्ण सम्पादन के बावजूद पदमावत का अध्ययन कठिन है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल की टीका से उसमें बहुत कुछ सहायता मिलती है, किंतु अभी विभिन्न दृष्टियों से जायसी का काफी अध्ययन नहीं हुआ। इस पुस्तक में उनके पदमावत का सांगोपांग अध्ययन करने का प्रयास किया गया जो बहुत अंशों में सफल है। हमें इसके "कथावस्तु का संघटन", "रूप सौंदर्य वर्णन और अप्रस्तुत विधान", "जायसी के रहस्यवाद का सौन्दर्य", "पदमावत की सांकेतिकता", "सामाजिक स्थिति चित्रण" नामक अध्याय विशेषरूप से बहुत विद्वत्तापूर्ण और महत्त्वपूर्ण मालूम हुए। पुस्तक की भाषा सरल, शैली स्पष्ट और विचार सुलझे हुए हैं। अपने मतों को विद्वान् लेखक ने इतने तर्कपूर्ण ढंग से और इतनी संयत भाषा में व्यक्त किया है कि पाठक को उसके निष्कर्ष पर श्रद्धा हो जाती है। पदमावत के अध्ययन करनेवालों, विशेषकर विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के लिए यह ग्रंथ बहुत उपयोगी है।

प्रसाद निराला पन्त महादेवी की श्रेष्ठ रचनाएँ—सम्पादक, श्री वाचस्पति पाठक। प्रकाशक, लोकभारती प्रकाशन, मूल्य, ४ रु० ५० नये पैसे।

इन कवियों की प्रतिनिधि रचनाओं का यह छोटा सा संग्रह है। एक कवि की ११ से लेकर १८ कविताएँ चुनी गयी हैं। कविताओं का चयन विश्वविद्यालयीन विद्यार्थियों का स्तर और उनकी आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर किया गया मालूम होता है। चयन सुरुचिपूर्ण और संतोषजनक है जिससे प्रत्येक कवि की विशिष्ट शैली और विशेषता का ज्ञान हो जाता है। आरंभ में प्रायः पचास पृष्ठ में छायावाद और इन कवियों के सम्बन्ध में एक विस्तृत निबंध दे दिया गया है। यह निबंध सावधानी और योग्यता से लिखा गया है। इसके पढ़ने से छायावाद के सम्बन्ध में सभी ज्ञातव्य बातें मालूम हो जाती हैं। सम्पादक को इन सभी कवियों की घनिष्ठता का सौभाग्य मिला है। इस कारण इन कवियों के सम्बन्ध में दी गयी बातें और सम्मतियाँ प्रामाणिक और महत्त्वपूर्ण हैं।

युद्ध के मोर्चे से—श्री वृंदावनलाल वर्मा। प्रकाशक, मयूर प्रकाशन, झाँसी। सजिल्द, मूल्य, २ रु० ५० नये पैसे।

चीन के सहसा आक्रमण से हमारी सेना को बिना पूरी तैयारी किये ही शत्रुओं का सामना करना पड़ा। किन्तु उस अवसर पर हमारे सैनिकों ने जो साहस, शौर्य और धैर्य दिखलाया वह अद्वितीय है। समाचार-पत्रों से हमें बहुत मोटी-मोटी खबरें मिलती हैं किन्तु सैनिकों की व्यक्तिगत वीरता के विवरण बहुत कम प्राप्त होते हैं। श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने इस युद्ध के २४ वीरों की वीरता की कहानियाँ इस पुस्तक में प्रस्तुत की हैं। सभी कहानियाँ एक से एक बढ़कर प्रेरणाप्रद हैं और हमारी जनता को यह बतलाने में समर्थ हैं कि हमारे वीर किस धातु के बने हैं। इन कहानियों से जनता, विशेषकर नवयुवकों को, प्रेरणा मिलेगी। इस सामयिक पुस्तक के लिए वर्माजी हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।



उदयशिखरिश्रृङ्गप्रांगणेष्वेव रिंगन्
सकमलमुखहासं वीक्षितः पद्मिनीभिः।
विततमृदुकराग्रः शब्दयन्त्या वयोभिः
परिपतति दिवोङ्के हेलया बालसूर्यः॥

(माघ)

बालक सूर्य उदयाचल के शिखर के आँगन में घुटनों के बल चलने लगा है। उसके कमलमुख की हँसी देख देख-कर पद्मिनियाँ मुदित हो रही हैं। पक्षियों के माध्यम से वह चहकने भी लगा है। लो, इसका कौतुक देखो। खेल-खेल में किरणों की बाहें फैलाकर यह दिवस की गोद में कूद पड़ा।

विततमिरपंकं पश्यति व्योम यावद्
धुवति विरहखिन्नः पक्षती यावदेव।
रथचरणसमाह्वस्तावदौत्सुक्यनुन्ना
सरिदपरतटान्तादागता चक्रवाकी॥

(माघ)

जब तक चकवा आकाश के प्रवाह को अन्धकार की कीचड़ से उबरा देखकर अपने पंख झाड़ने की तैयारी करता है, तब तक तो उत्कण्ठा-विह्वल चकई नदी के दूसरे किनारे से उड़कर चकवे के पास पहुँच जाती है।

विततपृथुवरत्रा तुल्यरूपैर्मयूखैः
कलश इव गरीयान् दिग्भिराकृष्यमाणः।
कृतचपलविहंगालापकोलाहलाभि-
र्जलनिधिजलमध्यादेष उत्तार्यतेर्कः॥

(माघ)

दिग्वधुएँ किरणों की लम्बी-लम्बी पुष्ट डोरियों से समुद्र के बीच से सूर्यरूपी विशाल घट ऊपर खींच रही हैं। पक्षियों के कोलाहल के रव में घड़े के जल में आवाज गूंज रही है और बड़ी मुश्किलों से यह घड़ा ऊपर आ पा रहा है।

मध्याह्न——

कण्डूलद्विपगण्डपिण्डकषणोत्कम्पेन सम्पातिभिः
घर्मस्रंसितबन्धनैः स्वकुसुमैरर्चन्ति गोदावरीम्।
छायापस्किरमाणविष्किरमुखव्याकृष्टकीटत्वचः
कूजत्क्लान्तकपोतकुक्कुटकुलाः कूले कुलायद्रुमाः॥

(भवभूति)

गोदावरी नदी के किनारे के छतनार वृक्षों के तने पर खुजली मिटाने के लिए मत्त वन्य गज अपने मस्तक रगड़ते हैं। इस रगड़ के कारण इन वृक्षों के फूल, जो दोपहरी की धूप में वैसे ही वृन्तों के कसाव ढीले पड़ने के कारण, गिरने गिरने को हुए रहते हैं, ऐसे झहरा पड़ते हैं कि लगता है कि ये वृक्ष गोदावरी को पुष्पांजलि दे रहे हों। इन वृक्षों की छाया में इधर-उधर चोंच मारते हुए छोटे पक्षी एक ओर छाल की भीतरी पर्तों से कीड़-मकोड़ों को ही निकालकर दोपहरी की भूख मिटाते हैं, दूसरी ओर इधर-उधर घूम कर थके कबूतर और बनमुर्ग अपनी थकान का आक्रोश मिटाते रहते हैं।

पत्रच्छायासु हंसा मुकुलितनयना दीर्घिकापद्मिनीनां
सौधान्यत्यर्थतापाद् बलभिपरिचयद्वेषि पारावतानि।
बिन्दूत्क्षेपात् पिपासुः परिसरति शिखी
भ्रान्तिमद्वारियन्त्रं
सर्वैरुस्रैः समग्रस्त्वमिव नृप गुणैर्दीप्यते सप्तसप्तिः॥

(कालिदास)

सूर्य अपनी समस्त किरणों से प्रतापी राजा की तरह अपने चरम उत्कर्ष पर तप रहा है। बावड़ियों की पुरइनों की छाया में आँख मूँदे हंस पड़े हैं। धूप असह्य होने के कारण कबूतर अब छतों की मुँडेर छोड़-छोड़कर इधर-उधर छिपने लगे हैं। मयूर फौवारे के ठीक बीच में पहुँचे बिना प्यास बुझने की तृप्ति नहीं पा रहा है।

अस्ताचलेऽस्मिन्निकषोपलाभे
सन्ध्याकषोल्लेखपरीक्षितो यः।
विक्रीय तं हेलिहिरण्यपिण्डं
तारावराटानियमादित द्यौः॥

सन्ध्या——

आकाश इस कसौटी सरीखे अस्ताचल पर्वत पर सूर्यरूपी स्वर्ण कसकर जब परखा देता है, तब असंख्य ताराखपी कौड़ियों के मोल इसे बेंच देता है। सन्ध्या की लाली उस कसौटी पर खिची स्वर्णरेखा ही तो है।

आदाय दण्डं सकलासु दिक्षु
योयं परिभ्राम्यति भानुभिक्षुः।
अब्धौ निमज्जन्निव तापसोयं
सन्ध्याभ्रकाषायमधत्त सायम्॥[1]

यह सूर्य परिव्राजक की तरह दण्ड लेकर सारी दिशाओं की फेरी लगाता रहता है। सायंकाल बेचारा समुद्र में डुबकी लगाने के पहले अपने काषायवस्त्र को अपने दण्ड पर टाँग देता है। सन्ध्या का आकाश ही वह काषाय वस्त्र है।

अनुरागवती सन्ध्या दिवसस्तत्पुरस्सरः।
अहो दैवगतिश्चित्रा तथापि न समागमः॥

(वाल्मीकि)

साँझ अनुरागभरी और दिन उसके सामने खड़ा, पर दैव का विधान कितना विचित्र कि दोनों का समागम तक भी नहीं हो पाता।

ब्रज-माधुरी (६)

अयोग्य को काम सौंपने का फल——

जोग-अजोग बिचारे बिना
सिर सौंपत भार महा अति ता पै[1]।
गादर[2] ऊँट किसानी[3] करै,
यह बात कहा कहि जात है का पै[4]?
'सिंह जू' काग सुहावनो होय तौ
काहेकों कोऊ मरालहिं थापै?
काम परे पछतायँगे वे
जो गयन्द कौ बोझ धरैं गदहा पै!

रूप माधुरी——

छहरैं सिर पै सुभ मोर-पखा,
उनकी नथ के मुकता थहरैं।
फहरै पियरो पट 'बेनी' इतै,
उनकी चुनरी के झबा झहरैं।
रस-रंग भिरे अभिरे हैं तमाल
दोऊ रस-ख्याल भरे लहरैं।
नित ऐसे सनेह सों राधिका-स्याम
हमारे हिये में सदा बिहरैं!

अनुरोध——

चूमौं कर-कमल ये अमल अनूप तेरौ
रूप के निधान! नेकु मो तन निहारि दै।
कहै 'कालिदास' नेकु मेरी ओर हेरि हँसि,
माथे धरि मुकुट लकुट कर डारि दै।
कुँअर कन्हैया मुखचन्द की जुन्हैया,
चाहि लोचन चकोरन की प्यासनि निवारि दे।
मेरे कर मेंहदी लगी है प्यारे नन्दलाल!
लट अरुझी है नेकु बेसर सुधारि दै!

——कालिदास कवि

रूपक——

कनक बरन बाल नगन-फबित साल,
मोतिन की माल उर सोहै भली भाँति है।
चंदन चढ़ाये चारु चन्द्रमुखी चन्द्रमा-सी
प्रातहिं अन्हाय कैं पधारी मुसक्यात है।
चूनरी विचित्र स्याम साजि कैं 'ममारख जू'
झाँपि नख-सिख तें निपट सकुचाति है।
चन्द कों समेटि कैं लपेटि कैं नखत मानों
द्यौस कों प्रनाम किये रात चली जाति है!

——ममारख

कुसमय!——

रूप है न रस है, न गुन है न ज्ञान कहूँ
सील है न सत्य भाई! निरस जमानौ है।
प्रीति है न रीति है, न नीति हैं न न्याव कहूँ
घर-घर देखियत हरष हिरानौ है।
'ठाकुर' कहत भूले सब हैं सँजोग-भोग,
निपट कुजोग लोग सब ही बिरानौ है।
कौन कों जतैये? कहाँ जइये? कहाँ पइये बीर!
मन बहराइबे कौ ठौर न ठिकानौ है!

——ठाकुर

संघ शक्ति——

सामिल ह्वै पीर में सरीर में न राखै भेद
अन्तर कपट कछू होय तौ उघरि जाय।
ऐसो ठान ठानैं तौ बिना हू जंत्र-मंत्रन सौं
साँप कौ जहर जो उतारैं तौ उतरि जाय।
'ठाकुर' कहत यह किम्मति विचारि देखौ
हिम्मति किये तें कहौ काह ना सुधारि जाय!
चारि जने चारि हू दिसा तें चारि कोन गहि
मेरु कौं हलाइ कै उखारैं तौ उखरि जाय!

गूदड़ी के लाल——

जौ लौं काहू पारखी सों भेंट भई नाहिं, तौलों
दीसत हैं इनके गरीब से सरीरा हैं।
पारखी सों भेंटत कमालैं चढ़ैं लाखन की
किमत के आगर सु गुन के गँभीरा हैं।
'ठाकुर' कहत रे! न निन्दौ गुनवानन कौं
मैले-से दिखात ये सपूत सूर-बीरा हैं।
ईश्वर के आनस तें होत ऐसे मानस,
ते मानस सहूरवारे धूरभरे हीरा हैं!

शिकायत——

बलि कंज से कोमल अंग गुपाल के
सोऊ सबै तुम जानतौ हौ।
वह नेकु रुखाई लगें कुम्हिलात,
इतौ हठ कौन पै ठानतौ हौ?
कवि 'ठाकुर' यों कर जोर कहै
इतने पै बिनै नहिं मानतौ हौ!
दृग-बान ये भौंहैं कमान सु तौ
तुम कान लौं कौन पै तानतौ हौ?

---

१ उस पर २. मट्ठर, सुस्त ३. खेती ४. किससे

मनोरञ्जक संस्मरण

चमत्कारपूर्ण समस्यापूर्तियाँ

इस देश के विद्वत्समाज में समस्यापूर्ति की प्रथा बहुत पुरानी है। संस्कृत में तो यह प्रथा थी ही, हिंदी में भी यह बहुत दिनों चलती रही। जो जितनी शीघ्रता से जितनी सुन्दर समस्यापूर्ति कर देता, वह उतना ही अधिक प्रतिभाशाली कवि माना जाता था। बहुत प्राचीन काल की बात जाने दें। भारतेन्दु-युग में भी उसका बड़ा प्रचार था। जब भारतेन्दु उदयपुर गये तो कहा जाता है कि महाराना ने उन्हें एक समस्या दी थी जिसकी तत्काल पूर्ति करके उन्होंने अपनी कवित्व-शक्ति का सिक्का जमा दिया था। भारतेन्दु-युग में भारतमार्तण्ड गोस्वामी गट्टूलालजी संस्कृत के अपूर्व विद्वान् थे। वे शतावधानी थे और संस्कृत में समस्यापूर्ति करने के लिए प्रसिद्ध थे। उन्हींके समकालीन पं० अम्बिकादत्त व्यास संस्कृत और हिन्दी दोनों ही में समस्यापूर्ति करते थे। काशी का कविसमाज अपनी समस्यापूर्तियों के लिए प्रसिद्ध था। तीन दशकों पूर्व तक प्रयाग का रसिक समाज इस प्रथा को जीवित रखे था। कानपुर में सनेहीजी की प्रेरणा से वहाँके कवि बहुत दिनों अपनी बैठकों में इस प्रथा को चलाते रहे। जब अँगरेजी और बँगला से अनुप्राणित होकर खड़ीबोली की कविता हिन्दी में आयी तब उसका सम्बन्ध पुरानी परम्परा से टूट गया। नयी हिंदी कविता पुरानी हिंदी कविता का स्वाभाविक विकास न होकर, एक बाहरी 'कलम' की तरह रोपी गयी और खूब फूली-फली। उसने हिंदी की पुरानी प्रायः सभी परम्पराओं को त्याज्य समझा, और उनके साथ 'समस्यापूर्ति' की प्रथा भी समाप्त हो गयी। किंतु समस्यापूर्ति के युग की बहुत सी पूर्तियाँ सुनकर पुराने तरह के रसिक आज भी फड़क उठते हैं। ऐसे दो उदाहरण यहाँ पाठकों के मनोरंजनार्थ दिये जा रहे हैं :

अजमेरीजी की पूर्ति

स्वर्गीय अजमेरीजी बड़े प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। सरस्वती उनके कंठ में थी। वे अच्छे संगीतज्ञ भी थे। नयी और पुरानी—सभी ढंग की कविता करते थे। वे चारण वंश के थे। इसलिए बहुधा राजदरबारों में जाया करते थे जहाँ पुरानी प्रथा के अनुसार उन्हें समस्यापूर्ति करने को कहा जाता था। एक बार वे बुंदेलखंड के एक रजवाड़े में गये। वहाँ एक सहृदय ने यह अर्द्धाली देकर उसकी पूर्ति करने को कहा :

"अब ये नैना स्याम के, सखी ! हमारे नाहिं"

अजमेरीजी ने तत्काल यह अर्द्धाली कही—

देखत ही उन ओर वे आनि बसे इन माँहि।
अब ये नैना स्याम के, सखी ! हमारे नाहिं।

इस सटीक और चमत्कारपूर्ण पूर्ति को सुनकर सारे श्रोता आनन्दविभोर हो गये।

सनेहीजी की एक पूर्ति

सनेहीजी को बहुत से कवि अपना गुरु मानते हैं। ऐसे कम लोग हुए हैं जिन्होंने हिन्दी काव्य का इतना प्रचार किया हो जितना सनेहीजी ने। सनेहीजी विजया के बड़े भक्त हैं। कभी-कभी काफी गहरी छन जाती है। एक बार वे किसी कार्य से फर्रुखाबाद गये हुए थे। वहाँ उन दिनों एक कवि-सम्मेलन हो रहा था। लोग आग्रह करके उन्हें वहाँ ले गये थ। उस दिन साधारण से कुछ अधिक गहरी छन गयी थी। वहाँ उन्हें मालूम हुआ कि उस सम्मेलन में समस्या दी गयी है और समस्या थी—"विचित्र चित्रकारी है।" गुरु भंग की तरंग में आँखें बंद किये हुए बैठे थे। लोगों ने समझा कि वे इस समय समस्यापूर्ति न कर सकेंगे। किंतु जब उनकी पारी आयी तो उन्होंने उसकी पूर्ति में यह छन्द पढ़ा जिसमें रात्रि का रूपक है :

काली काली कज्जल-कुमारी सी कुरूपमयी,
सजनी चुड़ैल की सी, विधि ने सँवारी है।
फैशन न बूझा, कैसा सूझा है कुढंग ढंग
काले रंगवाली को उढ़ायी नील साड़ी है।
जड़े हैं सितारे कैसे फूहड़पने से, देखो,
मिट्टी कर दिया सारा काम जरतारी है।
बेल हैं न बूटा, जहाँ देखो वहाँ टूटा क्रम
बेवकूफ़ बिधि की विचित्र चित्रकारी है!

भंग की गहरी तरंग में ऐसा सुन्दर रूपक खड़ा करके सनेहीजी ने श्रोताओं को आश्चर्यचकित कर दिया।

फ्रेडरिक पिन्काट

पण्डित रामचन्द्र शुक्ल

आज तक कई यूरोपियन विद्वानों का ध्यान हिन्दी की ओर रहा। पर यदि हमसे कोई पूछे कि इनमें से किस महानुभाव ने उसके हित के लिए सबसे अधिक व्यग्रता दिखाई, किसने उसके भंडार में अपने हाथों से कुछ रखने का कष्ट उठाया, कौन उसकी बढ़ती देखकर सबसे अधिक प्रफुल्लित हुआ, और कौन उसके बोलनेवालों की ओर सबसे अधिक आकर्षित हुआ तो हमको फ्रेडरिक पिन्काट ही का नाम लेना पड़ेगा। भारतवर्ष की कई भाषायें जानकर भी इनका हिन्दी की ओर झुकना और उसको हिन्दुस्तान की सर्वप्रधान भाषा मानना निस्सन्देह प्रशंसनीय था।

फ्रेडरिक पिन्काट का जन्म १८३६ ईसवी में इंगलैंड देश में, हुआ। इनके पिता की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं थी। इस कारण इनकी शिक्षा का प्रबन्ध जैसा होना चाहिए वैसा नहीं हुआ। कुछ काल तक ये "क्वीन एलिजबेथ चार्टर्ड स्कूल" में पढ़ते रहे। पर थोड़े ही दिनों में इन्हें उसे छोड़ना पड़ा। जीवन-स्थिति की चिन्ता ने इन्हें व्यग्र किया। पहले ये एक छापेखाने में कम्पोजीटर हुए और फिर रीडर (प्रूफ पढ़नेवाले) हुए। इससे यह न समझिए की इनकी शिक्षा का सिलसिला टूट गया। नहीं, वह बराबर जारी रहा। आरम्भ ही से पूर्वीय साहित्य की ओर इनकी रुचि थी। वह रुचि ऐसी दृढ़ और पक्की थी कि प्रेस के कमरों में भी वह उसी प्रकार प्रवर्धित होती गई जिस प्रकार आक्सफर्ड और केम्ब्रिज के भव्य विद्याभवनों में होती। संस्कृत की चर्चा ये बहुत दिनों से सुनते आते थे। ये सुनते थे कि शब्द शास्त्र और मानव-जाति के इतिहास के सम्बन्ध में कोई बात निश्चित रूप से स्थिर करने के लिए संस्कृत का जानना बहुत ही आवश्यक है। इससे इन्हें संस्कृत सीखने की प्रबल इच्छा हुई। उन दिनों जो संस्कृत पुस्तकें यूरोप में छपती थीं, वे बहुत महँगी पड़ती थीं। अतएव पुस्तकों को मोल लेने में भी इन्हें कठिनता पड़ी। किन्तु इनकी इच्छा ऐसी नहीं थी कि किसी ऐसी वैसी कठिनता के कारण वह दब जाय। संयोग-वश एक मित्र की कृपा से इन्हें पुस्तकें भी मिलने लगीं। फिर क्या था? परिश्रमपूर्वक इन्होंने उन पुस्तकों का अध्ययन आरम्भ किया। थोड़े दिनों में इन्हें संस्कृत में गति हो गई और इनके दिन और रात उसी के ग्रन्थ देखने में बीतने लगे। क्रमशः लोगों को इनकी योग्यता का परिचय मिलने लगा और ये उस समय के अच्छे संस्कृत जाननेवालों में गिने जाने लगे। ये रायल एशियाटिक सोसाइटी के मेम्बर हुए। इनका सारा जीवन इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि किस प्रकार एक दृढ़-प्रतिज्ञ पुरुष समाज की निम्न श्रेणी में रह कर भी अपनी ऊँची से ऊँची अभिलाषाओं को पूरा करता हुआ संसार में सुखी और यशस्वी हो सकता है।

विद्या-संचय के साथ ही साथ प्रेस के कामों में भी ये अधिक कुशल होते गये। अन्त में डबल्यू० यच० एलेन कम्पनी (W. H. Allen & Co., 13, Waterloo place, Pall Mall, S. W.) के विशाल छापेखाने के ये मैनेजर हुए। तब से बराबर उसी पद पर अपने जीवन के अन्तिम दिनों के कुछ समय पहले तक शान्तिपूर्वक रह कर भारतीय साहित्य और भारतीय प्रजा के लिए परिश्रम करते रहे। ये शान्तिप्रिय और गंभीर-स्वभाव थे। अवस्थाओं के परिवर्त्तन की लालसा ने इन्हें विचलित नहीं किया। अतः इनका जीवन घटना-पूर्ण नहीं है। इससे चाहे हमारा मनोरंजन न हो, पर इनके लिए यह सौभाग्य की बात थी। क्योंकि किसी दार्शनिक ने कहा है "(Happy the people whose annals are vacant)" अर्थात् "वे लोग सुखी हैं जिनके इतिहास बड़ी-बड़ी घटनाओं से खाली हैं।" यह एक बात व्यक्ति के विषय में भी उतनी ही ठीक है जितनी एक जाति के विषय में।

२३ वर्ष की अवस्था में इन्होंने अपना विवाह किया।

यह एक स्वाभाविक नियम है कि पुस्तकें पढ़ते-पढ़ते उनके कर्त्ताओं और तद्गत पात्रों से पढ़नेवाले का एक प्रकार का काल्पनिक साहचर्य्य स्थापित हो जाता है। कल्पना द्वारा हम उनके समागम से तृप्त होना चाहते हैं; उनके वेश-विन्यास, रूप-रंग, तथा रहन-सहन आदि का अवलोकन न सही तो उनका परिचय ही प्राप्त करना चाहते हैं। इनके अभाव में हम उनकी सन्तति, उनके इष्ट मित्र, उनके व्यवहार की वस्तुओं ही से प्रेम-सम्बन्ध जोड़ कर उनके प्रति उपकार करने के लिए आकुल होते हैं। मनुष्य की यही प्रवृत्ति उसको खंडहरों में दौड़ाती है और पुरसों ज़मीन खोदने को विवश करती है। इसी के झोंक में लोग शेक्सपियर की कुरसी और हुमायूँ की कब्र देखने जाते हैं। वह सहानुभूति, जो इस काल्पनिक साहचर्य्य से उत्पन्न होती है, अत्यन्त निर्मूल और निःस्वार्थ होती है। इसी के बल से इंगलैंड में बैठे-बैठे पिन्काट साहब ने भारतवर्ष में कई प्रेमी मित्र ढूंढ़ लिये और भारतवासियों के हितसाधन में यावज्जीवन लगे रहे। वाग्मी बर्क (Burke) के वारन हेस्टिंग्ज पर अकारण टूट पड़ने का कारण भी यही सहानुभूति कही जाती है। इसी से स्वदेश-भक्ति और स्वजाति-प्रेम के लिए अपने देश के इतिहास और साहित्य का पढ़ना परम आवश्यक है।

संस्कृत में यथेष्ट गति हो जाने पर इन्हें मालूम हुआ कि दुष्यन्त और कालिदास की सन्तति से परिचित होने और उनके साथ भलाई करने के लिए देशी भाषाओं का जानना बहुत जरूरी है। इससे ये तुरन्त श्रमपूर्वक हिन्दुस्थान की भाषाओं को सीखने लगे। जान पड़ता है कि पहले पहल इन्होंने उर्दू ही में योग्यता प्राप्त की। तदनंतर इन्होंने गुजराती और बंगला सीखी। इसके पीछे तामिली, तैलंगी, मलयालम और कनारी आदि दाक्षिणी भाषाओं की ओर झुके। हिन्दी की ओर इनका ध्यान सबके पीछे गया। पर यहाँ पर इनकी अभिलाषा पूर्ण हो गई। संस्कृत और प्राकृत की प्रधान उत्तराधिकारिणी इन्हें हिन्दी ही प्रतीत हुई। इससे आप तन, मन, धन से उसकी सेवा में तत्पर हो गये। हिन्दी के मुख्य-मुख्य हितैषियों से पत्र-व्यवहार होने लगा। जिस प्रेम-बेलि को सूर और तुलसी ने आरोपित किया था उसकी सुगन्ध रह रह कर समुद्रों को लाँघती हुई सहृदयों को मुग्ध करने लगी। इनके प्रत्येक पत्र में उस सच्चे प्रेम का आभास पाया जाता है जिसे भारतीय साहित्य ने इनके हृदय में स्थापित कर दिया था। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र से ये बड़ा स्नेह रखते थे और प्राय: उनके पास प्रेम-पीयूष-सिंचित पत्र भेजा करते थे।

एक चिट्ठी इन्होंने भारतेन्दु जी को हिन्दी-पद्य में लिखी थी जिससे इनकी हिंदी की योग्यता और सरल स्नेह-रंजित हृदय का परिचय भली भाँति मिलता है। वह चिट्ठी यह है:—

"बंस-बंस-अवतंस, श्रीबाबू हरिचन्दजू।
छीर-नीर-कलहंस, टुक उत्तर लिखि देव मोहिं॥
"पर उपकार में उदार अपनी में एक
भाषित अनेक यह राजा हरिचन्द है।
विभव बड़ाई वपु वसन विलास लखि
कहत यहाँ के लोग बाबू हरिचन्द है॥
चन्द वैसो अमिय अनन्द कर आरत को
कहत कविन्द यह भारत को चन्द है।
कैसे अब देखैं को बतावैं कहाँ पावैं, हाय,
कैसे वहाँ आवैं हम कोई मतिमन्द हैं॥
"श्रीयुत-सकल-कविन्द-कुल-नुत बाबू हरिचन्द।
भारत-हृदय-सतार-नभ, उदय रहो जनु चन्द॥"

इसी तरह ये अन्य हिन्दी-सेवियों के पास भी इंगलैंड से पत्र भेजते थे। हिन्दी के सम्बन्ध में जहाँ कोई बात छेड़ी जाती थी, आप तुरंत उस पर अपनी राय देते थे। जिन दिनों खड़ी बोली की कविता के विषय में विवाद चल रहा था इन्होंने उसका पक्ष लिया था। "खड़ी बोली का पद्य" नाम की बाबू अयोध्याप्रसाद की पुस्तक का सुन्दर संस्करण अपनी अँगरेजी भूमिका सहित, इन्होंने इंगलैंड में छपवाया था। उसमें आपने अँगरेजी में जो कुछ लिखा है उसका भावार्थ यह है—"यह देख कर सन्तोष होता है कि सही खड़ी बोली के प्रस्ताव का आदर किया गया। यद्यपि पुराने ढर्रे के साहित्य-सेवियों और संशोधकों के बीच बहुत विवाद हुआ और अब भी हो रहा है; पर गद्य का एक भाषा में लिखा जाना और पद्य का दूसरी में कैसी बेढंगी बात है, यह धीरे-धीरे लोगों को मालूम हो रहा है।"

उर्दू के विषय में आप लिखते हैं "फारसी-मिश्रित हिन्दी (अर्थात् उर्दू या हिन्दुस्तानी) के अदालती भाषा बन जाने के कारण उसकी बड़ी उन्नति हुई। इससे साहित्य की एक नई ही भाषा उत्पन्न हो गई। पश्चिमोत्तर प्रदेश के निवासी, जिनकी कि वह भाषा मानी जाती है, इसे एक विदेशी भाषा की तरह स्कूलों में सीखने के लिए विवश किये जाते हैं।" जो लोग यह कहते हैं कि उच्च हिन्दी एक बनावटी भाषा है और सर्वसाधारण के व्यवहार में नहीं आती, उन्हें साहब के इस कथन पर विचार करना चाहिए। थोड़ा सोचने से उन्हें यह स्पष्ट मालूम हो जायगा कि यदि आरम्भ ही से उन्हें करीमा न रटाया गया होता तो उर्दू उनके श्रीमुख से कदापि न सुन पड़ती! जनाब, यह उर्दू आप अपनी माँ की गोद से लेकर नहीं उतरे हैं किन्तु मौलवी साहब के मकतब में आपने उसे सीखा है। यदि आज से लड़के मदरसों में हिन्दी की उपयुक्त शिक्षा पाने लगें और अंग्रेजी के साथ अपनी दूसरी भाषा संस्कृत लेने लगें तो थोड़े ही दिनों में वह उर्दू, जिससे आज आमफ़हम कहते हैं हवा हो जाय और उसके स्थान पर गली-गली वही शुद्ध परिष्कृत हिन्दी, जिसको सुनकर आप इतना चौंकते हैं, सुनाई देने लगे। दूर की बात जाने दीजिए बंगदेश को देखिए जहाँ के छोटे छोटे बच्चे तक उन संस्कृत शब्दों को कैसी मधुरता से उच्चारण करते हैं जो आपके कानों में कंकड़ के समान लगते हैं।

पिन्काट साहब बड़े ही हिन्दी-हितैषी थे। आपका काशी के बाबू कार्तिकप्रसाद से पत्र-व्यवहार था। एक पत्र में आप उन्हें लिखते हैं:—

"आपका सुखद पत्र मुझे मिला है और उससे मुझको परम आनन्द हुआ।.... .....

"आपकी समझ में हिन्दी भाषा का प्रचलित होना उत्तर-पश्चिम वासियों के लिए सबसे भारी बात है। मैं भी सम्पूर्ण रूप से जानता हूँ कि जब तक किसी देश में निज भाषा और अक्षर सरकारी और व्यवहार सम्बन्धी कामों में नहीं प्रवृत्त होते हैं तब तक उस देश का परम सौभाग्य नहीं हो सकता। इसलिए मैंने बार-बार हिन्दी भाषा के प्रचलित करने का उद्योग किया है। आप अपने पत्र में यह सवाल पूछते हैं कि क्या उस बात के निबाहने का कुछ उपाय हो सके कि नहीं। उस सवाल का यह उत्तर है कि हाँ एक ही उपाय है—अर्थात जो कोई किसी समय हिन्दी भाषा लिखे तो उसको चाहिए कि आसान सरल हिन्दी लिखे। जब पण्डितजन हिन्दी भाषा लिखते हैं तब उसमें बहुत कुछ संस्कृत मिला देते हैं। यह भारी भूल है, क्योंकि अज्ञानी लोग संस्कृत-मिश्रित भाषा समझ नहीं सकते हैं। इसी कारण वे बड़ा शोर मचा के पुकारते

है कि हाय, हाय ! हिन्दी भाषा का प्रचलित होना अफसोस की बात है।

"देखो अस्सी बरस हुए बंगाली भाषा निरी अपभ्रंश भाषा थी। पहले पहल थोड़ी थोड़ी संस्कृत बातें उसमें मिली थीं। परन्तु अब क्रम करके सँवारने से निपट अच्छी भाषा हो गई। इसी तरह चाहिए कि इन दिनों में पण्डित लोग हिन्दी भाषा में थोड़ी-थोड़ी संस्कृत बातें मिलावें। इस पर भी स्मरण कीजिए कि उत्तर पश्चिम में हजार बरस तक फारसी बोलनेवाले लोग राज करते थे। इसी कारण उस देश में सब लोग बहुत फारसी बातों का जानते हैं। उन फारसी बातों को भाषा से निकाल देना असम्भव है। इसलिए उनके निकाल देने का उद्योग मूर्खता का काम है। मेरी समझ में भाषा और अक्षरों के प्रचलित करने का यह उपाय है कि पहिले सब लिखनेवाले जन सीधी सरल फारसी-मिश्रित भाषा लिखें। केवल या तो देवनागरी या कैथी अक्षर काम में लावें। जब देवनागरी अक्षर प्रचलित हो तब हिन्दी भाषा क्रम करके बंगाली के सदृश निपट अच्छी और सँवारी हुई भाषा हो जावेगी। बाकी फिर।"*

आगे चलकर एक पत्र में फिर, भारतवर्ष के प्रति स्नेह प्रदर्शित करते हुए, इस विषय में आप लिखते हैं :—

"आपका २४ जुलाई १८८७ का पत्र मुझे मिला है और उससे अत्यन्त आनन्द मेरे हृदय में उपज आया है। सच तो है कि यद्यपि मैं हिन्दुस्तान में कभी नही आया तो भी उस देश पर मेरा दिल लगता है। परमेश्वर करे कि मर जाने के आगे मैं हिन्दुस्तान के लिए कोई फलदायक काम करूँ।"

"हिन्दी भाषा के बारे में जो कुछ आपने लिखा है सो बिलकुल सच है। सच है कि भाषा के शब्दों की अपेक्षा देवनागरी के अक्षर दफ्तरों में बर्ते जाने बड़ी भारी बात है:............"

इसी प्रकार जब तक ये जीते रहे हिन्दी का उपकार सोचते और करते रहे। जहाँ कोई हिन्दी की उत्तम पुस्तक छपी, आप लंदन के पत्रों में उसकी प्रशंसा की धूम मचा देते थे। पं० श्रीधर पाठक के 'एकान्तवासी योगी' और 'ऊजड़ग्राम' की आप ने विलायती पत्रों में बड़ी प्रशंसा की थी। हिन्दी के प्रायः सब लेखकों से आपका पत्र-व्यवहार रहता था। इनके समय के प्रत्येक हिन्दी-लेखक के घर में इनके दो एक पत्र पड़े होंगे। इनका जैसा प्रेम हिन्दी साहित्य पर था, यहाँ की प्रजा पर भी वैसा ही था। ये निरंतर उसके दुखों को दूर करने की चेष्टा में रहते थे। हमको बिना देखे ही ये हमारे साथ ऐसा 'नेह का नाता' निबाहते रहे जो इस संसार में दुर्लभ है। जब भारतीय पुलिस के अत्याचारों की कथा इनके कानों तक पहुँची, ये एकदम अधीर हो उठे। उस समय आपने बाबू कार्तिकप्रसाद को लिखा——

"कुछ दिन हुए कि मेरे एक हिन्दुस्तानी दोस्त ने हिन्दुस्तान के पुलिस के जुल्म की ऐसी तस्वीर खैंची कि मैं हैरान हो गया। मैंने (यह जानने के लिए कि मेरा दोस्त कहाँ तक सच कहता है) एक चिट्ठी लाहौर नगर के 'ट्रीब्यून' नामी समाचार-पत्र को लिखी। उस चिट्ठी के छपते ही मेरे पास बहुत से लोगों ने चिट्ठियाँ भेजीं जिनसे प्रकाशित हुआ कि पुलिस का जुल्म उससे भी ज्यादा है कि जितना मैंने सुना था। अब मैंने यह पक्का इरादा कर लिया है कि जब तक हिन्दुस्तान की पुलिस वैसी ही न हो जावे जैसे कि हमारे इंगलिस्तान की है मैं इस बात का पीछा न छोड़ूँगा।"

बनारस में एक "बनारस असोसिएशन" नाम की सभा थी जो पुलिस के अत्याचारों को दूर करने का यत्न किया करती थी। पिन्काट साहब उसके अध्यक्ष बनाये गये थ।

१८८८ ईसवी में आप पर एक बड़ा भारी दुख पड़ा। आपकी स्नेहमयी भार्य्या का नवम्बर महीने में परलोकवास हो गया। उस समय आपके चित्त की जो दशा हुई उसे आप जी खोलकर अपने भारतीय मित्र से कहते हैं :——

"विगत महीनों में मुझ पर इस दुनिया का सबसे भारी दुख गिर पड़ा है। मेरी प्यारी स्त्री मर गई है और मैं शोक के द्वारा अचेत होकर उदासी के पेंदे में लुढ़क रहा हूँ। देखो मित्र, उनतीस बरस तक वह मेरी प्यारी साथिनी थी। अब मालूम हुआ कि सारा जगत् असार हो गया है। परमेश्वर की कृपा से कुछ काल बीतने पर मैं फिर शान्त हो जाऊँगा।

पाठक, इस लिखावट से इनकी सरलता का अन्दाज कीजिए। यह भी विचारिए कि ये शब्द एक ऐसे व्यक्ति को लिखे गये हैं जिससे इनका कभी प्रत्यक्ष परिचय भी न था। एक और चिठ्ठी में दीन भारतवासियों के साथ उपकार करने की चिन्ता में आप अपने दुःख को भूल जाते हैं और लिखते हैं :——

"इस समाचार मिलने से आपको परमानन्द होगा कि इंडियन गवर्नमेन्ट थोड़े काल में पुलिस डिपार्टमेन्ट को सरासर बदल देगी। सच मानिए यह ठीक-ठीक समाचार है। दो बरस तक मैं अपनी चिठ्ठी, लेखा, मजमून इत्यादि चारों ओर भेजा भिजवा करता रहा हूँ। अब मेरे इस परिश्रम का कुछ फल होगा। सावधान रखिए कि आप किसी से न कहें कि मैंने यह समाचार पिन्काट साहब से पाया है......"।

भारतवर्ष की उन्नति में सहायता पहुँचानेवाली जितनी बातें थीं पिन्काट साहब का प्रायः उन सब से सम्बन्ध रहता था। इनके राजनीति, व्यापार, तथा साहित्य-सम्बन्धी

---

*ये हिन्दी पत्र और फोटो मुझे स्वर्गीय बाबू कार्तिकप्रसाद जी के सुयोग्य पुत्र बाबू मनोहरदास जी की कृपा से मिले हैं। इसके लिए उन्हें अनेक धन्यवाद। लेखक।

लेख बराबर इंगलैंड और भारतवर्ष के संवादपत्रों में निकला करते थे। यद्यपि ये विलायत में रहते थे पर देशी भाषाओं के अध्ययन द्वारा ये भारतवर्ष की बहुत सी भीतरी बातों से जानकार थे। इसपर भी यहाँ की वास्तविक दशा जानते रहने के लिए आप यहाँ के समाचार-पत्रों को पढ़ा करते थे। राजनैतिक विचार आपके उदार थे। आप हिन्दी अखबार बड़े प्रेम से पढ़ते थे और नेशनल कांग्रेस को आप अच्छा समझते थे। इन बातों का पता आप के इस पत्र से लग सकता है। यह भी बाबू कार्तिकप्रसाद ही को उन्होंने लिखा था—

"इस समय तक जितने समाचारपत्र मेरे पास आते हैं उनके नाम नीचे लिखे हुए फिहरिस्त में हैं, अर्थात—

१—भारतमित्र (हिन्दी) (साप्ताहिक)।
२—भारतवर्ष (हिन्दी) (मासिक)।
३—भारतसुदशा-प्रवर्त्तक (हिन्दी) (मासिक)।
४—दिनकरप्रकाश (हिन्दी) (मासिक)।
५—भारतवर्त्त (मराठी) (साप्ताहिक)।
६—ट्रिब्यून (अँगरेजी) (दो बार प्रत्येक सप्ताह)।
७—एडवोकेट (अँगरेजी) (साप्ताहिक)।

"मैंने यह सुना है कि 'अमृतबाजारपत्रिका' नामक समाचार-पत्र एक बहुत अच्छी अखबार है। परन्तु मैंने उसको कभी नहीं देखा है।

"ऊपर लिखे हुए समाचार-पत्रों को मैंने कई एक मजमून लिख भेजे हैं और भेजूंगा।

"मेरी राय में नेशनल कांग्रेस बहुत अच्छी बात है। उसके बारे में मैं बहुत कुछ लिखूंगा।"

जब कभी किसी हिन्दी पत्र-सम्पादक पर कोई आपत्ति आती थी तब आप तुरन्त उसके पक्ष में खड़े हो जाते थे। एक बार एक प्रतिष्ठित हिन्दी पत्र के सम्पादक को निज प्रकाशित किसी राजनैतिक लेख के विषय में आशंका हुई। उन्होंने पिन्काट साहब के पास उस लेख को भेज कर अपने चित्त का हाल लिख भेजा। पिन्काट साहब ने तुरन्त उस लेख का अँगरेजी अनुवाद करके और उस पर अपनी सम्पत्ति लिखकर उनके पास भेज दिया, और लिखा कि यदि आप पर कोई आपत्ति आवे तो आप मेरी इस राय को पेश कर दीजिएगा। इसी तरह हमारे मिरजापुर से निकलनेवाले "खिचड़ीसमाचार" के सम्पादक बाबू माधवप्रसाद खत्री पर जिस समय मानहानि का अभियोग चल रहा था, आपने उनके पक्ष में अपनी साक्षी इंगलैण्ड से लिखकर भेजी थी। हिन्दी के विषय में इनकी सम्मति सदा माननीय समझी जाती थी।

डबल्यू० एच० एलेन एण्ड कम्पनी से आपने १८९० में सम्बन्ध छोड़ा और मेसर्स गिलबर्ट ऐंड रिविंगटन* (Messrs Gilbert and Rivington, St. John's House, Clerken well, London) के प्रसिद्ध कार्य्यालय के "पूर्वी मंत्री और कार्य्यकर्ता (Oriental Adviser and Expe[rt]) नियुक्त हुए। अन्त तक आप वहीं रहे। इस कम्पनी की तरफ से "आईनः सौदागरी" (Mirror of the Brit[ish] Merchandise) नामक व्यापार सम्बन्धी एक मासि[क] पत्र उर्दू भाषा में निकलता था, जिसके एडिटर पिन्काट साहब थे। उसमें इंगलिस्तान की बनी हुई वस्तुओं—कलों और औजारों आदि—का हाल रहता था, और उनकी उपयोगिता दिखलाई जाती थी। भारतवर्ष में उत्पन्न होनेवाले पदार्थों का भी वर्णन रहता था। इसके सिवा वाणिज्य व्यवसाय की और भी कितनी ही बातें रहती थीं।

पिन्काट साहब के सम्पादकत्व-काल में, इस पत्र में इन सब बातों के सिवा भारत के राजा-महाराजाओं और विख्यात पुरुषों के सचित्र चरित भी निकलते थे, यहाँ के प्रधान-प्रधान नगरों और राजधानियों का वर्णन रहता था, यहाँ के हिन्दी-संवाद-पत्रों के लेख उद्धृत होते थे। यह पत्र उर्दू का था, पर अन्त के दो-चार पृष्ठों में हिन्दी भी रहती थी। उर्दू लेखों के दो चार नाम नमूने के तौर पर सुनिए :—"गेहूँ का साफ करना।" "रौगनदार बीजों से तेल निकालने के लिए एक उम्द: कोल्हू।" "इंगलिस्तान की खोराक।" "रुई की तिजारत" "कटहल।" "शाहजादगान हिन्दोस्तान।" "प्रतापचन्द्र राय साहब बहादुर सी० आई० ई०।" "शहर बम्बई।" "जैपुर।"

हिन्दी लेखों के नमूने—'भयमुक्त दीपक' (Safe[ty] Lamps)। "जलोत्तोलन यंत्र, भूमि के सींचने के लिए" (Pumps for irrigation)। "पवन- चक्कियों के बा[रे] में (Machines driven by wind) "केले के पेड़ों का उपराजना।"

ये लेख हिन्दी पत्रों से उद्धृत किये गये थे :—हिन्दुस्तान का व्यापार—आर्य्यदर्पण से। भारतवासियों को विलायत जाने की आवश्यकता—हिन्दोस्तान से। भारतवर्ष को किस बात की आवश्यकता है—भारतमित्र से।

कभी-कभी दो एक मजेदार नोट भी हिन्दी में निकल जाते थे। जैसे—

"आस्ट्रेलिया में एक युवती ने फाँसी देनेवाले के पद को प्राप्त करने के लिए अर्जी दी है। उसने अपनी अर्जी में यह भी लिखा है कि चूँकि पुरुषगण स्त्री जाति के ऊपर जीवन नेवछावर करनेवाले होते हैं और मैं भी स्त्री हूँ, अतः पुरुषों को फाँसी देकर परलोक प्रयान कराने का काम मुझको मिलना चाहिए।"

१८९५ ईसवी में रीआ घास (Rhea Fibre) की खेती कराने के विचार से पिन्काट साहब ने हिन्दुस्तान को प्रस्थान किया। नवम्बर में ये कलकत्ते उतरे। सुना है कि वहाँ इनका एक व्याख्यान हुआ था। पर किस विषय पर और किस भाषा में, नहीं कह सकते। "लंदन रीआ फाइबर ट्रीटमेंट कंपनी" के साथ इन्होंने हिन्दुस्तान से १५००० टन रीआ की छाल सात पाउंड (१०५ रु०

---

*इस लेख के लिखने में मुझे इस कम्पनी के मैनेजर से भी सहायता मिली है। लेखक—

फी टन के हिसाब से भेजने का ठका लिया था। कलकत्ते से ये काशी जानेवाले थे, पर नहीं गये। नागरी प्रचारिणी सभा के ये आनरेरी सभासद थे। अवध प्रान्त को इन्होंने रीआ* की खेती के लिए उपयुक्त समझा था। इसी उद्योग के लिए ये लखनऊ गये। वहीं ७ फरवरी १८९६ को उन्हीं अभागे भारतवासियों के बीच, जिनके उपकार में ये जीवन भर लगे रहे, इनके शान्त और परोपकारी जीवन का शेष हो गया। इनका शरीर भारतवर्ष की पुनीत मिट्टी में मिल गया। हा! ये कुछ दिन भी हमारे बीच में न रहने पाये, इसका हम भारतवासियों को—विशेषकर—हिन्दी भाषा-भाषियों को—सब दिन सोच रहेगा।

पिन्काट साहब एक कन्या के सिवा और कोई सन्तति छोड़कर नहीं मरे। इनके भाई थोड़े दिन हुए लन्दन के "पंच आफिस" में रीडर थे। पर अब नहीं मालूम कहाँ हैं।

इनकी बनाई और सम्पादित की हुई पुस्तकों के नाम ये हैं:—

(१) हिन्दी शकुन्तला (राजा लक्ष्मणसिंह का किया हुआ अनुवाद, उस पर पिन्काट साहब की व्याख्या) यह संस्करण सिविल सर्विस की परीक्षा में जानेवाले अँगरेजों के लिए प्रकाशित हुआ था।

(२) Hindi Manual (हिन्दी-व्याकरण) यह भी सिविल सर्विस परीक्षा में नियत था।

(३) अल्फ लैलः बजबान उर्दू (रोमन अक्षरों में)

(४) हितोपदेश (अँगरेजी अनुवाद)

(५) खड़ी बोली का पद्य (बाबू अयोध्याप्रसाद का)

ये सब पुस्तकें इन्होंने डबल्यू० यच० एलेन एंड को० के छापेखाने ही में छपाई थीं, जिसके आप मैनेजर थे।

(६) बालदीपक (हिन्दी) चार भाग, कैथी और नागरी अक्षरों में।

(७) विक्टोरिया-चरित्र (हिन्दी)

ये दोनों पुस्तकें "खड्गविलास प्रेस" बाँकीपुर की छपी हैं और विशेष ध्यान देने योग्य हैं, क्योंकि उनसे पिन्काट साहब की हिन्दी-गद्य-रचना का परिचय मिलता है।

"बालदीपक" बिहार के स्कूलों में पढ़ाई जाती थी। इसमें अच्छे-अच्छे बालकोपयोगी पाठ, सरल हिन्दी भाषा में, थे। एक नमूना लीजिये।

१२वाँ पाठ। चौकसाई करने के बयान में।

"हे लड़को, तुमको चाहिए कि अपनी पोथी को बहुत सँभाल कर रक्खो। मैली होने न पावे, बिगड़े नहीं और जब उसे खोलो चौकसाई से खोलो कि उसका पन्ना अँगुली के तले दबकर फट न जावे।"

"विक्टोरिया चरित्र"। यह १३६ पृष्ठ की पुस्तक है। इसमें महारानी विक्टोरिया का जीवन-वृत्तान्त विस्तार के साथ शुद्ध हिन्दी भाषा में पिन्काट साहब ने लिखा है। इस पुस्तक की भाषा के विषय में मुझे केवल यही कहना है कि वह इनके पत्रों की अपेक्षा अधिक शुद्ध और मुहाविरेदार है। इससे सन्देह होता है कि कदाचित् इसका संशोधन यहाँ हुआ हो।

ये रायल एशियाटिक सोसायटी के जर्नल में पुरातत्व-सम्बन्धी लेख अक्सर लिखा करते थे। "त्रिरत्न" नाम के एक लेख में इन्होंने बौद्धों के चिह्न-चक्र, त्रिशूल और स्वस्तिक का मर्म बड़ी ही योग्यता से समझाया है। यह लेख सोसायटी के जर्नल की उन्नीसवीं जिल्द के दूसरे भाग में छपा है।

यूरोपियन लोगों में हिन्दी लिखने की योग्यता पहले पहल इन्होंने प्राप्त की। इनकी भाषा की त्रुटियों पर ध्यान देने के पहले इस बात का विचार कर लेना चाहिए कि ये विदेशी थे और हिन्दी भाषा उस समय क्या, अब तक इस योग्य नहीं बन सकी है, कि कोई विदेशी उसे पूर्णरूप से सीख सके। न तो उसके व्याकरण सम्बन्धी नियमों का निश्चय हुआ जिससे वह स्थिर होती और न उसके शब्द-विस्तार ही की कोई सीमा निर्धारित हुई। कोई विदेशी किस तरह यह जान सकता है कि 'हो' और 'होवे' (इसी प्रकार 'होइए' और 'हूजिए'; जायँ, जायें और जावें) एक ही है। हिन्दी के कवियों ने जो निरंकुशता दिखलाई है उसका तो कहना ही क्या है। 'कियो', 'कीन्ह्यो', 'कीन्हों', 'कीन्ह' 'करयो', के बीच में पड़कर एक बार पाणिनि की बुद्धि भी चक्कर खाने लगेगी। यहाँ तक कि लिपि सम्बन्धी भी कोई सर्वमान्य रीति नहीं है। यदि विश्वास न हो तो 'दैनिक हिन्दोस्थान' सामने रख लीजिए; फिर बहार देखिए।

पिन्काट साहब की देवनागरी लिपि बहुत अच्छी और स्पष्ट होती थी। उसका नमूना हम उनके एक पत्र से देते हैं। यह पत्र उन्होंने बाबू कार्तिकप्रसाद को लिखा था।

हिन्दुस्तान का हितसाधन करने में इनकी लेखनी कभी नहीं रुकी; इनके लेख निरन्तर इँगलिस्तान और हिन्दुस्तान के पत्रों में निकलते रहे। हिन्दी के प्रचार के लिए अँगरेजी पत्रों में आप हमेशा ही लिखा करते थे। १९-८-१८८७ के "ओवरलैंड मेल" (Overland Mail) में आपने जो लेख लिखा था, उसके कुछ अंश का अनुवाद सुनिए—

हिन्दी भाषा उत्तरी हिन्दुस्तान में सबसे अधिक ओजस्विनी भाषा है और अपनी सफाई और लचक के कारण वैज्ञानिक विचारों को व्यक्त करने के लिए भली भाँति उपयुक्त है। अँगरेजों ने फारसी अक्षरों में लिखी

---

* इस घास को आसाम में "रीआ" और बंगला में "कनखुरा" कहते हैं। यह छः से आठ फीट तक ऊँची होती है। इसकी गाँठों से नुकीली पत्तियाँ निकलती हैं। यह घास सुन्दरबन (बंगाल) और आसाम में आप से आप उगती है। इसकी छाल के रेशों से सुन्दर कपड़े बनते हैं। इसकी खेती से भारतवासियों को लाभ हो सकता है। लेखक।

जानेवाली उर्दू को भ्रमवश उत्तरी हिन्दुस्तान में बलात् जारी किया है। हिन्दुस्तान के लोगों ने सरकार तक इस अन्याय की कथा कई दफे पहुँचाई है; पर अमले और हाकिम परिवर्त्तन नहीं पसन्द करते हैं। क्योंकि परिवर्त्तन से उन्हें एक और देशी भाषा सीखने का कष्ट उठाना पड़ेगा। परन्तु आशा है कि किसी न किसी दिन, शीघ्र ही, कोई न्याय का प्रेमी उठ खड़ा होगा जो इस बात को समझेगा कि पोलैंड-वासियों के बीच रूसी भाषा को बलात् फैलाने के लिए जार को धिक्कारना कहाँ तक न्याय है जब कि स्वयं कसर-हिन्द दस करोड़ हिन्दी बोलनेवाले भारत-वासियों के गले में बलात् फारसी ठूँसते हैं।"

मेरी राय में नेशनल कान्ग्रेस बहुत अच्छी बात है। उस के बारे मे मैं बहुत कुछ लिखूंगा।

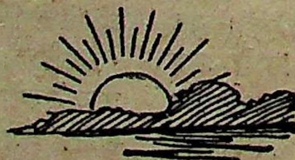
आशा है कि आप भले चंगे हैं और परमेश्वर करे कि हिन्दुस्तान के सब हितैषी आनन्द पूर्वक चिरायु रहें।

आप का परम मित्र
फ़्रेडरिक पिंकाट

दिसम्बर १८८७ के "इंडियन मैगजीन" में प्रकाशित इसके एक और लेख का भी थोड़ा सा भावार्थ सुनिए—

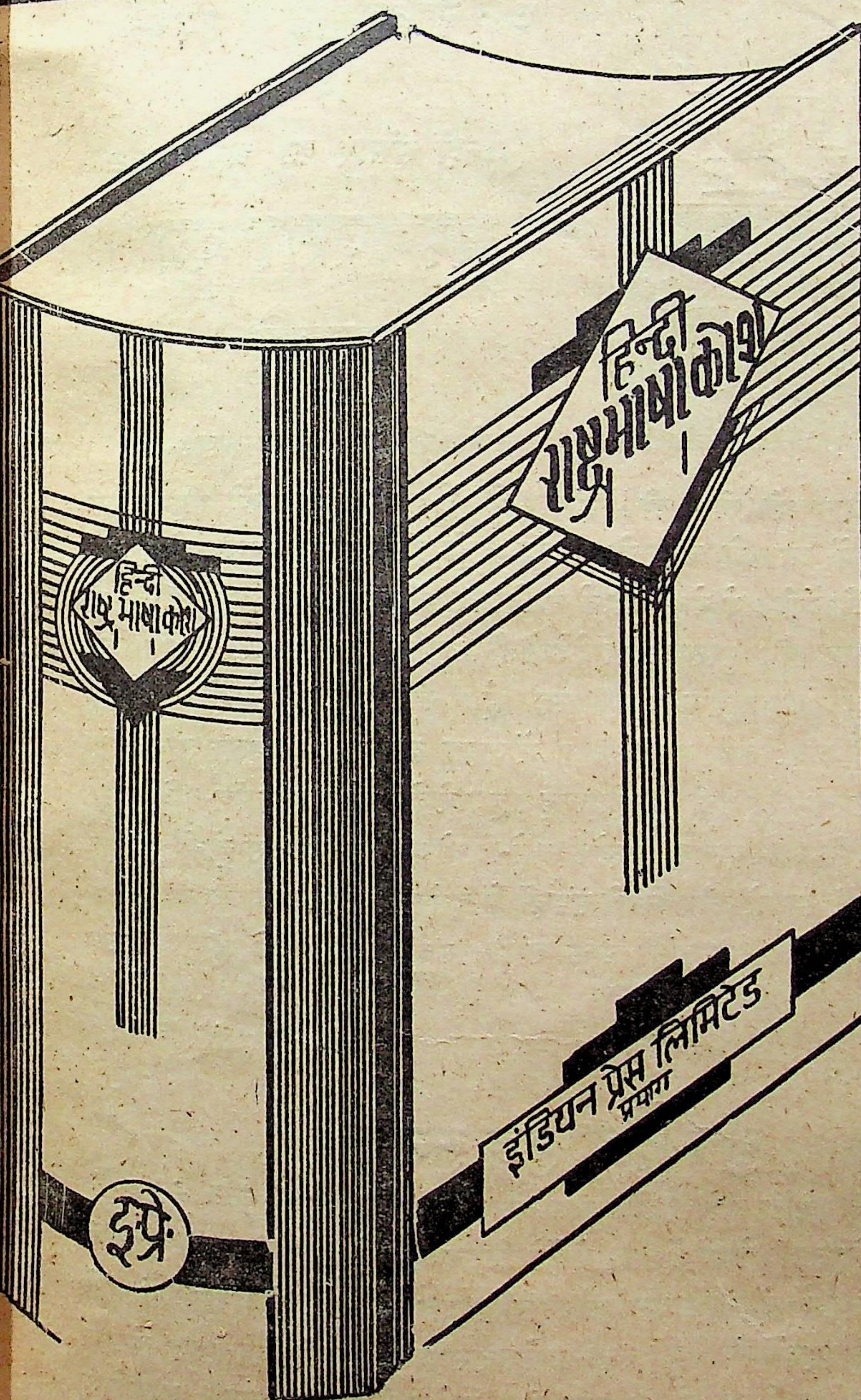
"हिन्दी के अन्तर्गत कितनी ही बोलियाँ हैं। पर इन बोलियों का समग्र समुदाय एक ही भाषा है। यही भाषा है जिसमें फारसी विजेताओं ने बहुत से फारसी शब्द मिला-कर एक दोगली भाषा उत्पन्न करदी, जो उर्दू या हिन्दुस्ता[नी] कहलाती है। सरकारी दफ्तरों और कचहरियों को [छोड़कर] इस भाषा का अन्यत्र कहीं अस्तित्व नहीं है। उत्त[री] भारत की भाषा हिन्दी है। वही वहाँ की "लिं[गुआ] फ़्रांका" है। हिन्दुस्तान में यह विलक्षण दृश्य देखने [में] आता है कि राजा और प्रजा राजकीय कार्य को एक [ऐसी] भाषा में सम्पादन करते हैं जो दोनों के लिए विदेशी [है।] यथार्थ भाषा सम्बन्धी प्रश्न जो आज ३० वर्ष से उत्त[री] भारत में उठ रहा है, लिपि विषयक है। जब तक फा[रसी] अक्षरों का एकाधिपत्य रहेगा और सब लोग अपनी [देव]नागरी को सरकारी कागज-पत्रों में व्यवहार करने से र[ह] जायँगे तब तक उत्तरी भा[रत] की भाषा पर बुरा प्र[भाव] पड़ता जायगा।"

चार्ल्स ब्राडला सा[हब] जिस समय भारत में आये [थे] पण्डित प्रतापनारायण मि[श्र] ने "ब्राडला स्वागत" ना[म] की एक कविता लिखी थी। उसका अँगरेजी अनुवाद कर[के] पिन्काट साहब ने इंगलैंड [में] प्रसिद्ध किया था। कहते [हैं] कि उस कविता की [बड़ी] बड़ी प्रशंसा हुई थी। "T[he] Brothers England a[nd] India" (बन्धु-इँगलैण्ड [और] भारत) नाम की अत्यन्त हृद[य]ग्राहिणी कविता भी इन्हों[ने] अँगरेजी में लिखी थी। उ[ससे] स्पष्ट मालूम होता है [कि] हिन्दुस्तान पर इनका कित[ना] प्रेम था। इस कविता [की] रचना कुछ विलक्षण हुई है। भारतवासियों को [रुचि]कर बनाने के लिए इस[में] अन्त्यानुप्रास की ओर विशे[ष] ध्यान रक्खा गया है। प्रत्येक पद्य (Stanza) में न[ौ] नौ चरण हैं जिनके अन्तिम अक्षरों की तुक बराब[र] मिलती गई है। कविता निस्संदेह बहुत ही ओजस्वि[नी] हुई है। खेद है, उग्र राजनैतिक भावों से भरी होने [के] कारण हम उसे इस पत्रिका में नहीं प्रकाशित कर सकते।



प्रकाशक बी० एन० माथुर, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक : [illegible], इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हिन्दी राष्ट्रभाषा कोश



भारी कमी की पूर्त्ति

- प्राचीन साहित्य
- नवीन साहित्य
- गद्य-पद्य
- कहावतें-मुहाविरे
- संविधान-शब्दावली

सभी एक कोश में !!

> भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद
> नई दिल्ली—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश
> को तैयार कर आपने राष्ट्रभाषा की
> जो अमूल्य सेवा की है, इसके लिए
> धन्यवाद स्वीकार कीजिए।...'

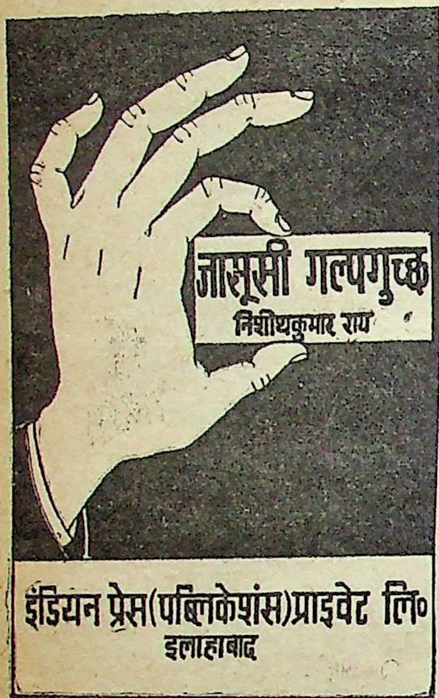
पृष्ठ १५८४

शब्द-संख्या लगभग ५०,०००

छात्रों और विद्वानों विद्यालयों और कार्यालयों सभी के लिए समान रूप से उपयोगी !!!

मूल्य चौदह रुपए

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग



प्रस्तुत हो गया

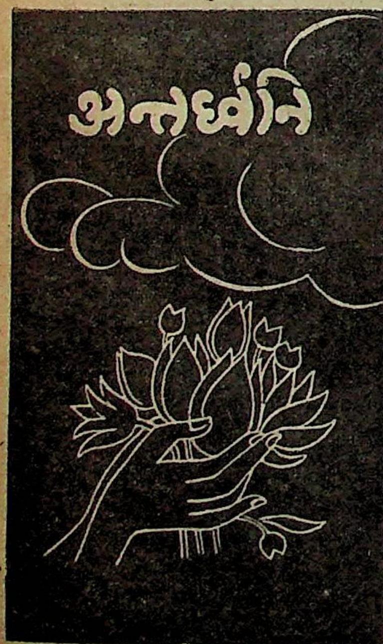
निकल गया

भेद भरी बातों को जानने की मनुष्य की अदम्य लालसा संसार भर के देशों में जासूसी कहानियों के रूप में प्रकट होती है। संसार के सब देशों के साहित्य में ऐसी रहस्योद्भाविनी कहानियाँ बहुत तीव्र वेग से प्रकाशित हो रही हैं। लेखक प्रयाग के ख्यात-नामा फौजदारी के वकील स्वर्गीय श्री हरिमोहन राय के पुत्र हैं और स्वयं भी न्यायिक अधिकारी हैं। इनकी लिखी जासूसी कहानियाँ हिन्दी जगत् में यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं। यह उनकी लिखी उत्कृष्ट जरूरी कहानियों का द्वितीय संग्रह है जिसमें समय-समय पर पत्रों में प्रकाशित हुई उनकी ३२ जासूसी कहानियाँ संगृहीत हैं।

पृ० सं० ३३६ मूल्य ३·५० नये पैसे।

नोट—कृपया अपनी प्रति सुरक्षित कराने के लिए आर्डर शीघ्र भेजिये।

कविवर देवेन्द्रदत्त तिवारी की दो काव्य कृतियाँ



"अन्तर्ध्वनि" की कविताओं को पढ़कर मन आर्द्र तथा रस-प्लावित हो जाता है।



"रजनीगंधा" भाषा की प्रभविष्णुता भावों की मौलिकता और कल्पना के साथ सत्यं शिवं, सुंदरं के दर्शन कराती है।



मूल्य २·५० नये पैसे

मूल्य २·५० नये पैसे

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

इस युग में जो विलक्षण औषधि संबंधी खोजें हुई हैं उनके प्रयोग का मूल वृत्तान्त इसमें पढ़िए। सजिल्द पुस्तक का मूल्य २·५० नये पैसे।

आधुनिक औषधि-आविष्कार

लेखक इर्मनगार्ड एबर्ले

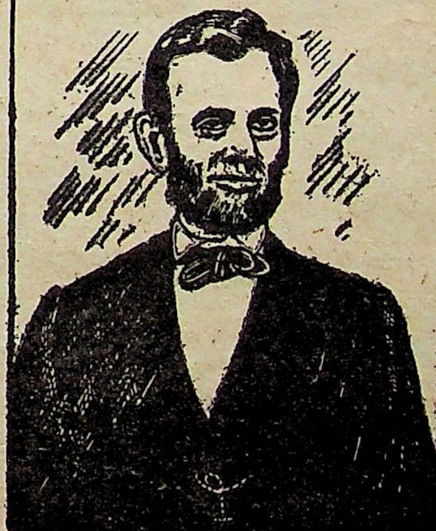
अमेरिका के महान् उदारवादी

सम्पादक गेब्रील रिचर्ड मेसन

१२ महान् अमरीकी उदारवादियों के जीवन की नई व्याख्या इसमें पढ़िए। सजिल्द प्रति का मूल्य २·५० नये पैसे।

"लिंकन केवल अमेरिका के महान् नेता नहीं थे, वह सारे विश्व की सम्पत्ति हैं। वह संसार के एक आदर्श वीर पुरुष हैं, उन इने-गिने व्यक्तियों में से जिन्होंने विशाल जनता को प्रेरणा दी और अब भी देते रहे हैं।"

जवाहरलाल नेहरू
प्रधान मंत्री, भारत

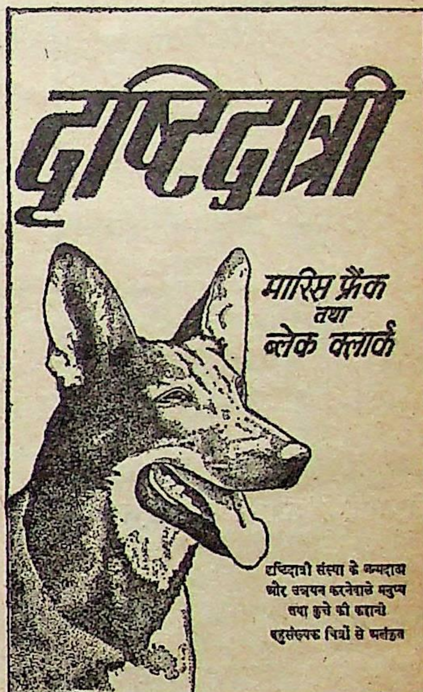


एब्राहम लिंकन के भाषणों, लेखों तथा उक्तियों का संकलन

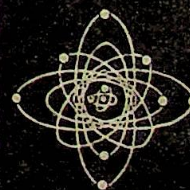
अनु०—श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन

मूल्य २·७५ नये पैसे।

इस नाम की संस्था के जन्मदाता और उन्नयन करनेवाले मनुष्य तथा कुत्ते की सच्ची कहानी। सजिल्द, सचित्र प्रति का मूल्य ४·२५ नये पैसे।



परमाणु का रहस्य



सेलिग हेक्ट

परमाणु बम और उद्जन बम के रूप में विस्फोट होनेवाली ताप न्यष्टि की युक्तियों के विकास का पूर्ण सारांश इसमें पढ़िए। सचित्र सजिल्द प्रति का मूल्य ३·५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

प्रेयरी नगर का बालक



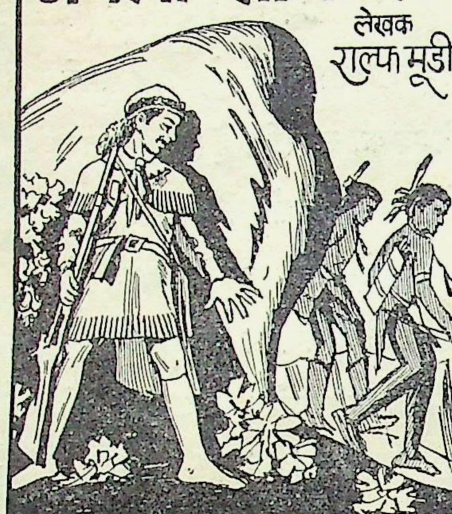
अनु०—श्रीयुत हरवंशराय शर्मा, एम० ए०

मूल्य ३ रु० २५ नये पैसे

लोकप्रसिद्ध जनकवि कार्ल सैण्डबर्ग के बाल्यकाल का हृदयग्राही वर्णन।

किट कार्सन और जंगली सीमान्त

लेखक राल्फ मूडी



अनु० --तिलकराज चोपड़ा, एम० ए०

मूल्य २ रु० ७५ नये पैसे

पहाड़ी नेता किटकार्सन के वयस्क जीवन का ललित वर्णन।



अनु०—हरवंशराय शर्मा, एम० ए०

मूल्य २ रु० ५० नये पैसे

लेखिका के बाल्यजीवन की सुन्दर कहानी में उस समय के सामाजिक जीवन का दिग्दर्शन।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक

लेखक

विलियम ओलिवर स्टीवेन्स



अनु०—सत्यप्रकाश त्रिपाठी एम० एस्-सी०

मूल्य ३ रु० ५० नये पैसे

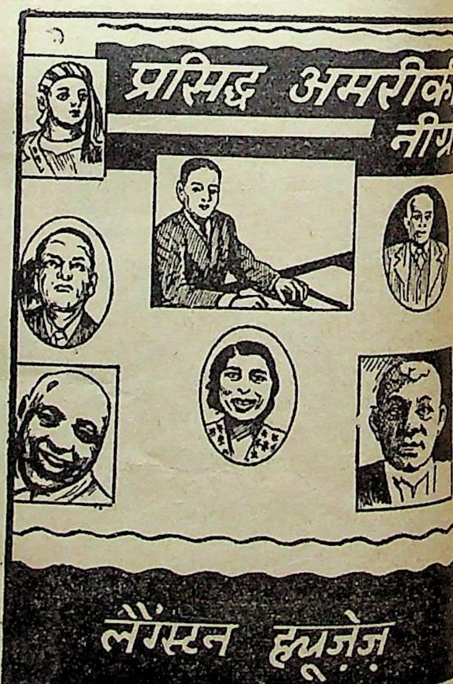
विख्यात वैज्ञानिकों के अनुसंधानों का सजीव चित्रण उनके जीवन-चरित्रों सहित।



अनु०—एम० पी० लखेरा, एम० ए०

मूल्य ३ रु० ५० नये पैसे

अन्धों को नया मार्ग दिखानेवाली ऐन सलिवाँ और उनकी शिष्या हैलेन कैलर की कहानी।



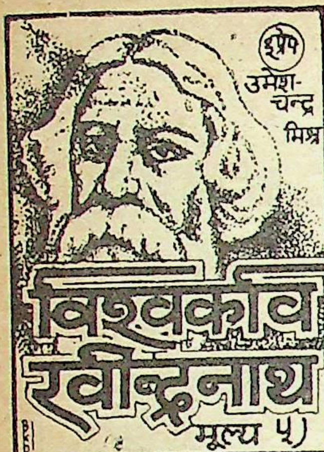
अनु०—रामऔतार अग्रवाल

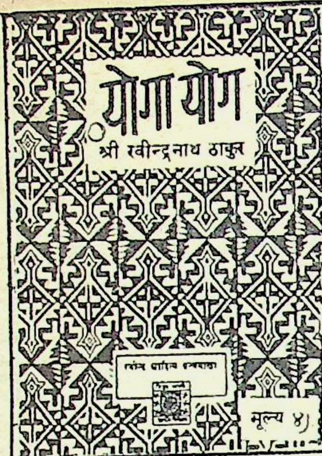
मूल्य २ रु० ७५ नये पैसे

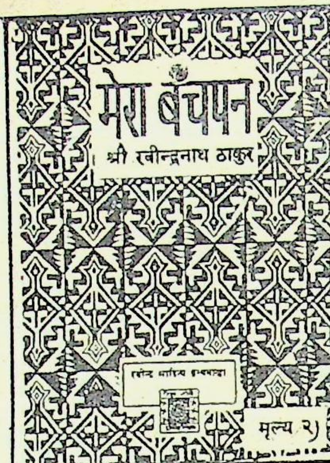
महत्त्वपूर्ण अमरीकी नीग्रो लोगों की जीवन-कथाएँ।

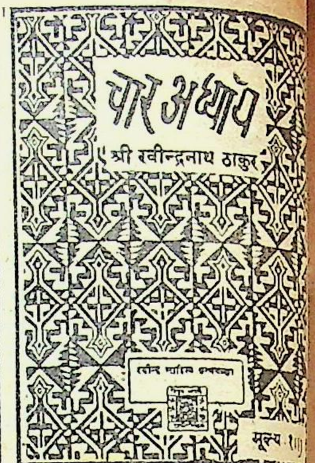
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हमारी कुछ चुनी हुई पुस्तकें

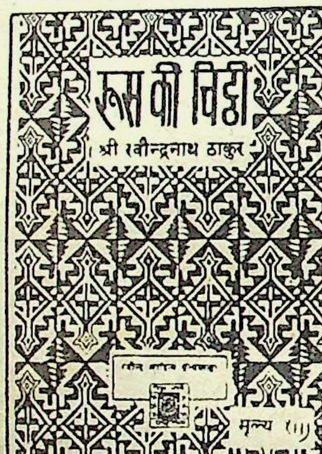


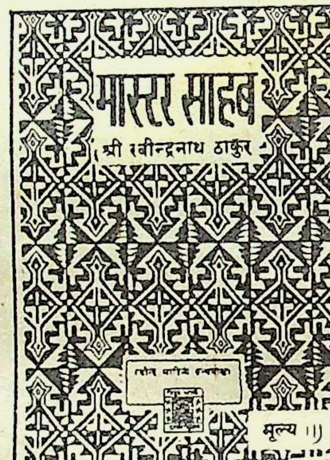


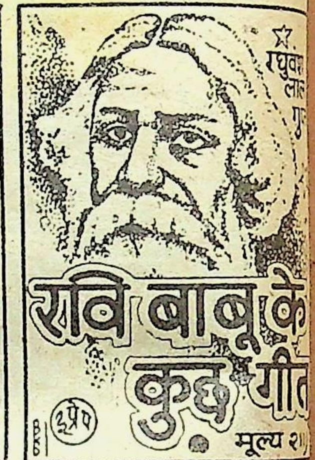


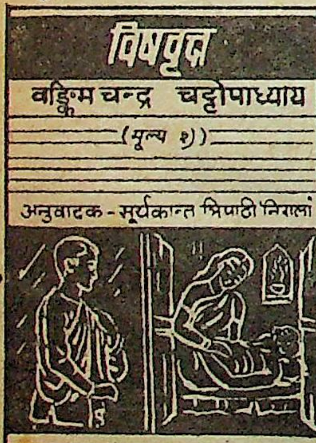


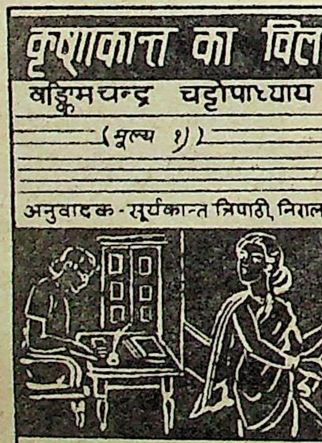


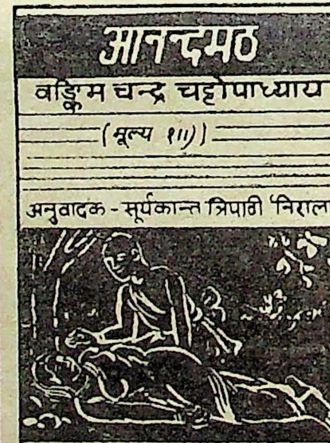








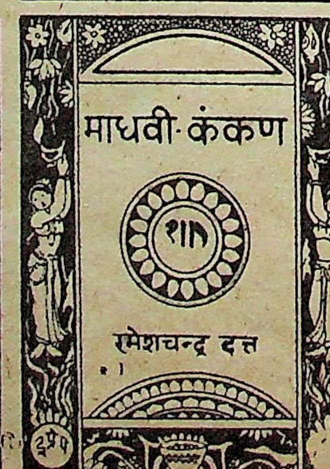


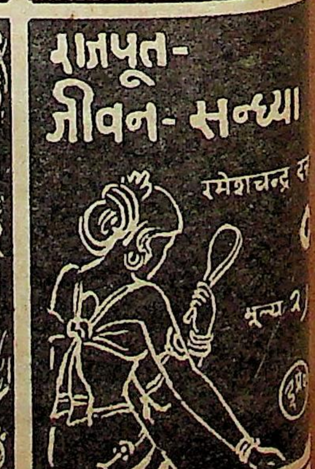










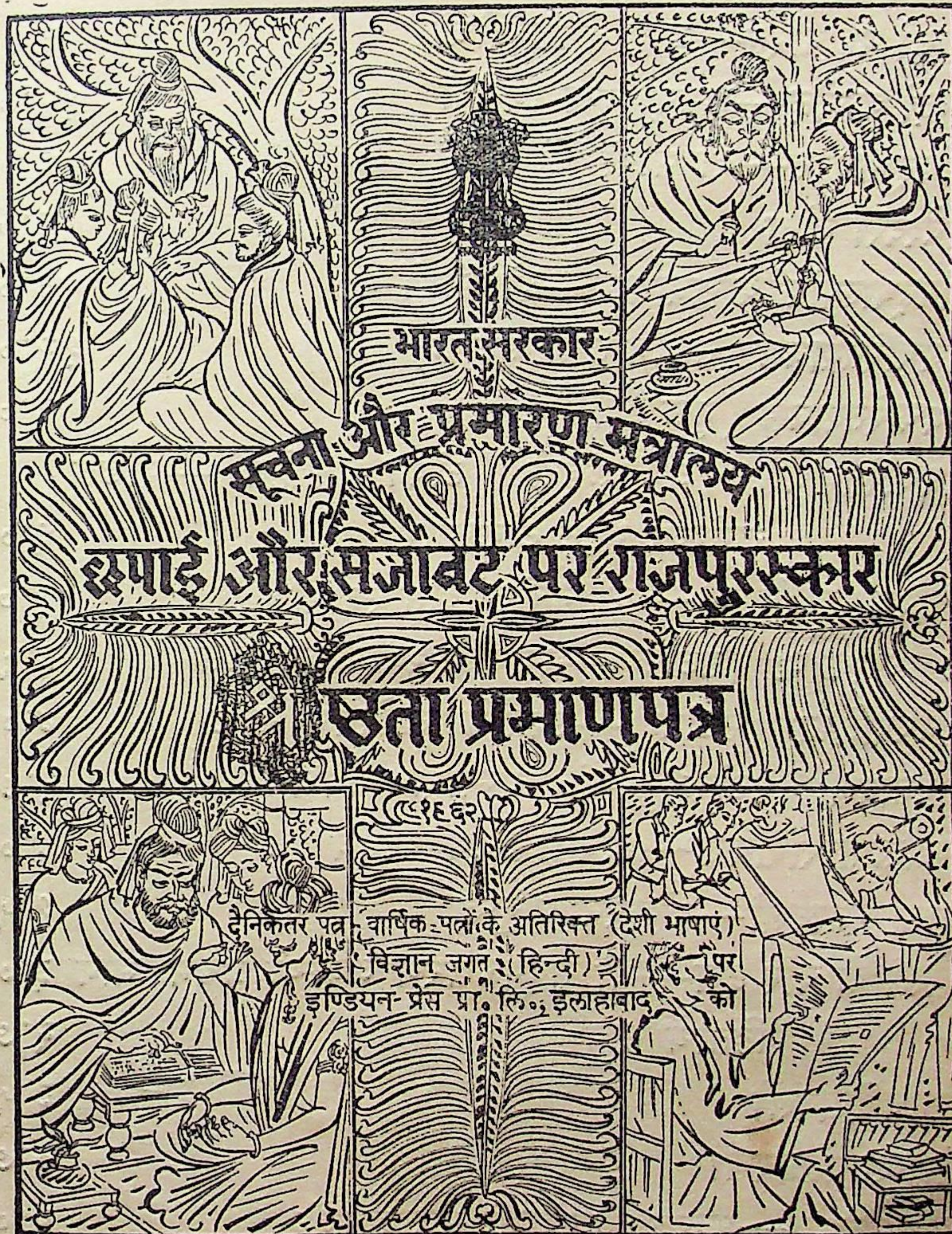


विज्ञान-जगत्

को

श्रेष्ठ आकल्पन तथा मुद्रण पर भारत सरकार का

प्रमाण-पत्र



- सर्व साधारण तथा विद्यार्थियों का सर्वोत्कृष्ट सचित्र वैज्ञानिक मासिक
- वैज्ञानिक चेतना तथा प्रेरणा का अक्षय भंडार
- वार्षिक मूल्य ९); एक प्रति का ७५ नये पैसे
- बिक्री के लिये प्रत्येक स्थान पर एजेन्सियाँ दी जा रही हैं।
- कृपया तुरन्त ग्राहक बनिये तथा विज्ञापन देकर लाभ उठाइए।

प्रकाशक : इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि॰, इलाहाबाद

Yearly Subscription : Rupees Seven and Fifty Naye Paise Rs. 7·50
Single Copy : Rs. 0·65 Naye Paise

SARASWATI—Reg. No. L-2

सरस्वती

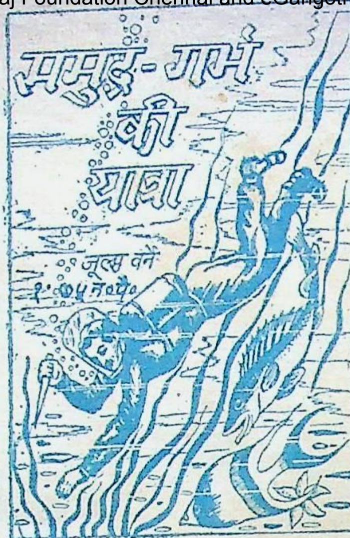


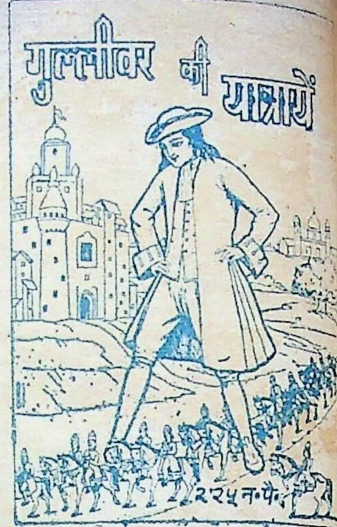
होलिकांक मार्च १९६४

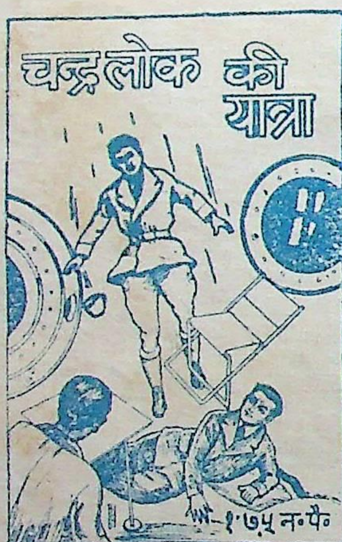
किशोर सीरीज़

इंडियन प्रेस पब्लिकेशंस प्रा. लि. इलाहाबाद

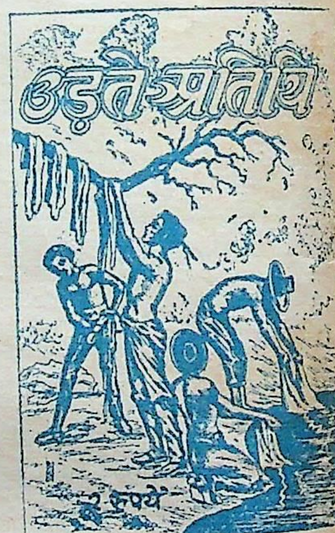






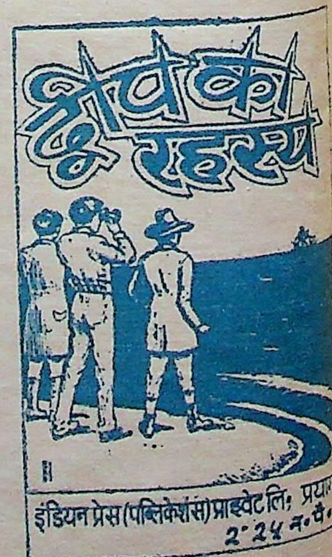












अंगरेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की अठारह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान, संबंधी किशोरोपयोगी उपन्यासों के अनुवाद डा० नवलबिहारी मिश्र के तत्त्वावधान में किये गये हैं। पुस्तकें इतनी रोचक हैं कि किशोर तथा वयस्क इन्हें पढ़कर मनोरंजन ही नहीं अपनी ज्ञानवृद्धि कर सकते हैं।

देश रक्षा में इससे क्या मदद मिलेगी ?



बचत करना अच्छा है : लेकिन रक्षा पत्र खरीदना ज्यादा अच्छा—विकास के लिए अधिक साधन उपलब्ध करने में सीधी मदद—देश रक्षा के लिए अधिक रसद और साज सामान

देश रक्षा में आपकी बचत का बहुत महत्व है

डीए ६३/४०८

उत्तमोत्तम धार्मिक पुस्तकें

सचित्र हिन्दी महाभारत—१० खण्डों में पूरे सेट का मूल्य	८०·००
हिन्दी महाभारत—आचार्य द्विवेदीजी	६·००
हिन्दी ऋग्वेद—रामगोविन्द त्रिवेदी	१२·००
श्रीमद्भागवत—दो भागों में	१६·००
ज्ञानेश्वरी गीता	६·००
श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—दो भागों में	१३·००
रामचरितमानस (सचित्र तथा सटीक)	१२·००
रामचरितमानस (मूल)	३·००
रामचरितमानस (अमृतलहरी टीका सहित)—पंडित रामेश्वर भट्ट टीकाकार	६·००
सुन्दरकाण्ड (मूल)—श्री नरोत्तमदास स्वामी	१·००
अयोध्याकाण्ड (सटीक)—स्वर्गीय श्यामसुन्दरदास	३·५०
विनयपत्रिका (सटीक)—स्वर्गीय रामेश्वर भट्ट	४·००
कवितावली (सटीक)—पं० चम्पाराम मिश्र	२·७५
कुण्डलिया रामायण—सत्यनारायण पांडेय	४·००
तुलसी रत्नावली—केदारनाथ गुप्त	१·५०
तुलसी के चार दल—श्री सद्गुरुशरण अवस्थी प्रथम भाग	३·००
द्वितीय भाग	२·७५
भक्तचरितावली	३·५०
श्रीकृष्ण गीतावली	०·७५
वेदान्त दर्शन—महन्त श्री स्वामी सन्तदासजी	५·००
ऋग्वेद प्रातिशाख्यम्—श्री मंगलदेव शास्त्री	८·७५
दुर्गापाठ—अनुवादक श्री राधामोहन लाल	२·५०
श्री भगवत तत्त्व—श्री करपात्रीजी	३·००
श्री मद्भगवतगीता (भाषा टीका सहित)	०·५०

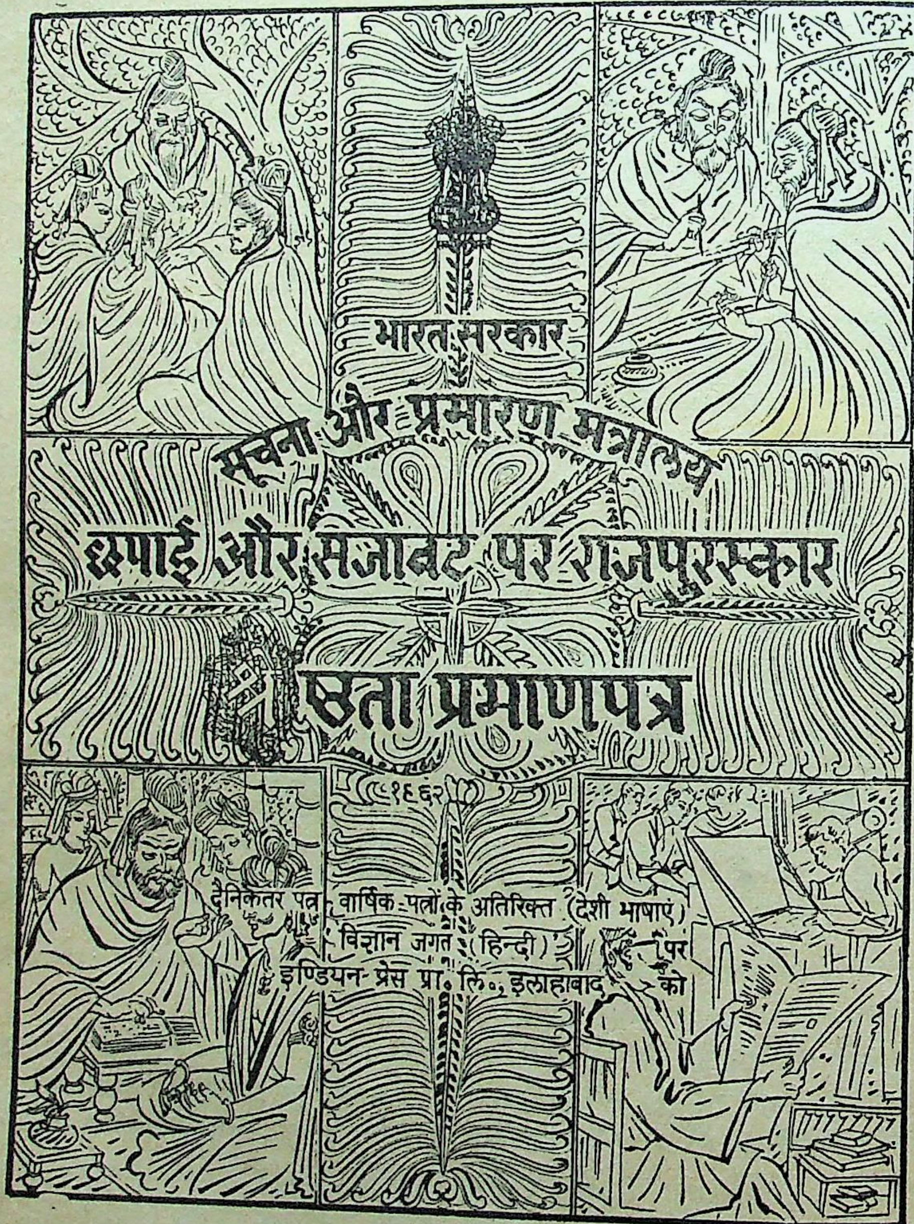
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

विज्ञान-जगत्

को

श्रेष्ठ आकल्पन तथा मुद्रण पर भारत सरकार का

प्रमाण-पत्र



- सर्व साधारण तथा विद्यार्थियों का सर्वोत्कृष्ट सचित्र वैज्ञानिक मासिक
- वैज्ञानिक चेतना तथा प्रेरणा का अक्षय भंडार
- वार्षिक मूल्य ९); एक प्रति का ७५ नये पैसे
- बिक्री के लिये प्रत्येक स्थान पर एजेन्सियाँ दी जा रही हैं।
- कृपया तुरन्त ग्राहक बनिये तथा विज्ञापन देकर लाभ उठाइए।

प्रकाशक : इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि॰, इलाहाबाद

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक

१९०० ई० से १९५९ ई० तक सरस्वती में प्रकाशित हिन्दी के यशस्वी कवियों, कहानी[illegible] तथा लेखकों की चुनी हुई रचनाओं का संग्रह इस हीरक जयन्ती अंक में है। यह विशेषांक [illegible] जयन्ती के अवसर पर ३१ दिसंबर १९६१ को भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति को राष्ट्र[illegible] भवन, नयी दिल्ली में समर्पित किया गया।

इस हीरक जयन्ती अंक में ८०८+५४ पृष्ठों की अनुपम पाठ्यसामग्री है जिसमें ५३ पृष्ठ[illegible] तो वर्तमान साहित्यकारों द्वारा लिखे संदेश और सरस्वती के इतिहास सम्बन्धी संस्मरण हैं और [illegible] पृष्ठों में १०९ कवियों की कविताएँ, ६० कहानी-लेखकों की कहानियाँ तथा १०० शीर्ष स्था[illegible] लेखकों के लेख सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त ६५ रंगीन कलात्मक चित्र भी दिये हैं।

मूल्य—साधारण संस्करण—१२ रु०—डाकव्यय—१ रु० २६ नये पैसे
पुस्तकालय संस्करण (बढ़िया कागज पर सजिल्द)—२० रु०—डाक व्यय—१·४९ नये [illegible]
[दो साल के लिए सरस्वती के नये ग्राहक बनने वालों या पुराने ग्राहकों को—
साधारण संस्करण—८ रु०, डाक व्यय के लिए १·१५ नये पैसे अतिरिक्त]

कतिपय पठनीय सम्मतियाँ—

श्री भगवतीचरण वर्मा

हिन्दी-भाषा के विकास में 'सरस्वती' मासिक पत्रिका का विशिष्ट स्थान रहा है। यह विशिष्टता प्रमुखता का भी धारण कर लेती है। जिसे हम हिन्दी-साहित्य का द्विवेदी युग कहते हैं उसके प्रवर्तक पण्डित महावीरप्रसाद [illegible] हैं, और उन्होंने सरस्वती के माध्यम से ही इस युग का प्रवर्तन किया है। कविता को नवीन धारा इस युग में [illegible] लेकिन यह युग हिन्दी गद्य के विकास का युग कहला सकता है।

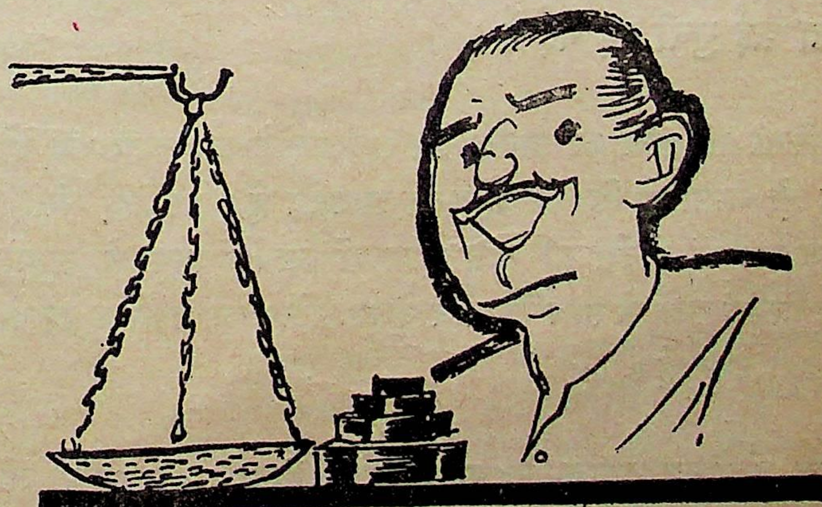
सरस्वती के हीरक जयन्ती अंक में हम हिन्दी गद्य के विकास का क्रम सुस्पष्ट-रूप से देख सकते हैं। इस[illegible] के साहित्यिक मूल्य के साथ इसका ऐतिहासिक रूप बड़ा सबल है। साठ वर्ष में हिन्दी भाषा कहाँ से कहाँ पहुँच[illegible] इस हीरक जयन्ती अंक में यह सुस्पष्ट हो जाता है। प्रत्येक पुस्तकालय में इस ग्रंथ का होना आवश्यक है। [illegible] में शोधकार्य के लिए यह अमूल्य ग्रंथ है। सरस्वती की हीरक जयन्ती के अवसर पर इस ग्रंथ को निकालकर सर[illegible] के सम्पादक और प्रकाशक ने हिन्दी साहित्य का कितना उपकार किया है, शायद वे स्वयम् यह नहीं जानते [illegible] सरस्वती के सम्पादक और प्रकाशक को हिन्दी जगत् की ओर से इसके लिए धन्यवाद देता हूँ और आशा [illegible] हूँ कि हिन्दी का प्रत्येक पुस्तकालय इस ग्रंथ की एक प्रति अपने यहाँ मँगाकर हिन्दी के विद्यार्थियों एवं शोध-[illegible] के प्रति अपना दायित्व पूर्ण करेगा।

सरस्वती हीरक जयन्ती विशेषांक का परिशिष्टांक

पृष्ठ-संख्या ७८, मूल्य दो रुपये

इस परिशिष्टांक में दिल्ली में महामहिम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद को सरस्वती का विशेषांक भेंट[illegible] के समारोह से प्रारंभ कर प्रयाग में सरस्वती के प्रतिष्ठित कतिपय लेखकों और पूर्व सम्पादकों के बहुमान और [illegible] पत्र प्रदान सरस्वती के यशस्वी पूर्व संपादक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की कांस्यमूर्ति का पद्मभूषण मै[illegible] शरण गुप्त द्वारा उद्‌घाटन प्रकाशन का सूत्रपात करनेवाले आधारों—नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी और [illegible] प्रेस प्रयाग, को ताम्रपत्र प्रदान, जयन्ती पर कुछ विशेष विद्वानों की प्रतिक्रिया पत्रकारगोष्ठी, जयन्ती के [illegible] संस्थाओं तथा विद्वानों के संदेश, समारोह में श्रीमती महादेवी वर्मा, माननीय श्री हरिभाऊ उपाध्याय[illegible] गोविन्ददास, श्री दिनकरजी आदि के भाषण पठनीय हैं। साथ ही अनेक बहुरंगे और उत्सव के दृश्यों तथा व्य[illegible] के सुन्दर चित्र भी दिये गये हैं।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग



ग्राहकों से निवेदन

ग्राहकों से निवेदन है कि पत्र-व्यवहार के समय अपना ग्राहक संख्या, चन्दा भेजने की तिथि अवश्य लिखा करें ताकि हम उनके आदेशों का पालन अविलम्ब कर सकें

—व्यवस्थापक पत्रिका विभाग

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

प्रकाशित हो गया **अदृश्य शत्रु** प्रकाशित हो गया

डा० नवलबिहारी मिश्र एम० बी० बी० एस०

यह एक अद्भुत वैज्ञानिक उपन्यास है। तेहरान विश्वविद्यालय से दो विचित्र आकार की बसों ने ५० लड़के-लड़कियों को एक दिन चुपके से भगा लिया। भारत में नन्दा देवी चोटी के नीचे हिममानव सरीखी एक लाश दिखाई पड़ी। लाश की पोशाक की जेब में सुहागा रक्खा मिला। भारत और चीन में लोहे के पुल और रेल की पटरियों को मुर्चे की तरह धूल बन जाते देखा गया। एक घायल आदमी भी भारत में पाया गया जिसके पास सुहागा मिला। पहले की लाश की गर्दन में त्वचा के नीचे दो वाल्व पाये गये। लाश पर पहरा देने वाले सिपाही गायब कर दिये गये। ये उड़ती हुई मोटरों की विचित्र करामातें थीं। वे पकड़ी नहीं जाती थीं। रडार भी उनका कुछ पता नहीं लगा पाता था। बाहरी ग्रह से धरती पर सुहागे के संग्रह के लिए हमला हो रहा था। आक्रामक शत्रु अदृश्य रहने की शक्ति रखता था। वह भू-वासी आदमियों के गले में वाल्व की कलम लगाकर उनकी स्मृति भंग कर अपने काम करवाता था। संसार की सभी पहाड़ी चोटियों पर उसके अड्डे थे। संसार भर के राष्ट्रों ने शत्रु का सामना करने के उपायों पर विचार प्रारम्भ किया। अंत में बृहस्पति ग्रह के ये अदृश्य शत्रु किसी कारण पृथ्वी पर से भाग गये। इसी तरह की सनसनीदार घटनाओं से पूर्ण यह वैज्ञानिक उपन्यास सब का मनोरंजन कर सकता है। पुस्तक में कौतूहलवर्धक चित्र भी दिये गये हैं। पृ० सं० ८३, मूल्य १) रुपया

अधूरा आविष्कार

डा० नवलबिहारी मिश्र एम० बी० बी० एस०

इस संग्रह में डाक्टर मिश्र की पन्द्रह वैज्ञानिक कहानियाँ हैं। प्रत्येक कहानी क्या कला की दृष्टि से और क्या कौतूहल बढ़ाने के दृष्टिकोण से अनुपम है। एक बार आरम्भ कर देने से बिना समाप्त किये पाठक का मन नहीं मानता। वर्तमान युग में जो वैज्ञानिक आविष्कार हुए हैं उनकी विलक्षणता कहानियों में प्रकट है। ढाई सौ से अधिक पृष्ठ हैं। कलापूर्ण रंगीन आवरण है। मूल्य ४·५० न० पै०।

ले०—जेराल्ड वेन्ट **परमाणु ऊर्जा और उसके शान्तिपूर्ण उपयोग** अनु०—रामनिवास राय

परमाणवीय पदार्थों के विज्ञान और परमाणु ऊर्जा के इंजीनियरी उपयोगों से संसार के सभी लोग लाभ उठा सकेंगे। साधारण जनता के लिए इन नई बातों का जानना उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कोयले और भाप के उपयोगों को समझना। शीघ्र ही इस नई शक्ति का विस्तृत उपयोग होने लगगा। अतएव इस नये ज्ञान के, और सामान्य शान्तिमय जीवन में इसके उपयोग के परिचय की तुरन्त आवश्यकता है, विशेषत: उन शिक्षकों के लिए जो स्कूलों में पढ़ाते हैं और जो जनता के लिए कुछ लिखते हैं। मूल्य २) रु०

ATOMIC PROBLEMS AND HOW TO SOLVE THEM

In English by S. S. NEHRU, Ph.D., LL.D., I.C.S. (Red.) अँगरेजी में

परमाणु बमों के विस्फोट से, समुद्र की मछलियाँ, द्वीपों के फलफूल विस्फोट के क्षेत्रों में विषाक्त होकर किस प्रकार मानव स्वास्थ्य और जन्तुओं तथा मानव के प्रजनन पर भयंकर परिणाम डाल सकते हैं। संसार भर की हवा विषाक्त धूल कणों से भर जाती है, गंगाजल परमाणु की रेडियमधर्मी शक्ति से कैसा अद्भुत लाभकारी है। गंगा से कावेरी तक किसी दिन बेकार बचे बमों के विस्फोट द्वारा नहर खोद डालना शायद संभव हो सके आदि आदि, अनेक मनोरंजक प्रसंग इस पुस्तक में दिए गए हैं। मूल्य २) रुपये

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

सचित्र समाचार

नेहरू चाचा के हाथ में 'नेहरू चाचा'



- १—प्रधान मंत्री पं० जवाहरलालजी को उनके जन्म-दिवस पर कवि श्री सोहनलाल द्विवेदी ने उन्हें 'नेहरू चाचा' पुस्तक भेंट की। नेहरूजी इस नवीन कृति को प्रसन्नतापूर्वक गौर से देख रहे हैं।
- २—भारत के राष्ट्रपति तथा शिक्षा-मंत्री ने बच्चों की प्रिय पुस्तक 'नेहरू चाचा' की सराहना मुक्तकंठ से की है।
- ३—'नेहरू चाचा के सम्बन्ध में भारत के उपशिक्षा मंत्री ने लिखा है :—
  आपने 'नेहरू चाचा' नाम से जो पुस्तक लिखी है, वह मुझे बहुत पसन्द आई है। उसे चित्रमय बनाकर तो आपने उस पर चार चाँद ही लगा दिये हैं और अब इस कारण सब बच्चे उसे और भी पसन्द करने लगे हैं। कृपया इस सफलता के लिए मेरे हार्दिक साधुवाद स्वीकार कीजिए।

मूल्य केवल दो रुपये २५ नये पैसे

प्राप्तिस्थान—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस). प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

प्राथमिक शिक्षा प्रसार

कृपया आप निम्नलिखित प्रश्नों पर सोचें :—

१—क्या आप बच्चों के सामने ऐसे काम करने से बचते हैं जिन्हें आप नहीं चाहते हैं कि बच्चे करें ?

२—क्या आप जो बच्चों को सिखाना चाहते हैं वह स्वयं करके दिखाते हैं ?

३—क्या आप बच्चे से कोई नुकसान होने पर नाराज न होकर उसके साथ सहानुभूति दिखाते हैं ?

४—क्या आप बच्चों को श्रम के कामों में आनन्द लेने देते हैं—जैसे झाड़ू लगाना, कपड़े धोना, रोटी बेलना, सूत कातना, क्यारी गोड़ना, पौधा लगाना ?

५—क्या आप स्कूल जाने योग्य अपने सभी बच्चों (लड़के-लड़कियों) को नियमित रूप से स्कूल भेजते हैं ?

६—क्या आपने अपने गाँव अथवा मोहल्ले की पाठशाला के भवन-निर्माण में सहयोग दिया है ?

७—क्या आपने स्कूल की जलपान-योजना में योग दिया है ?

८—क्या आप पाठशाला की उन्नति में अपने मित्रों का सहयोग प्राप्त कर सके हैं ?

९—क्या आप प्रतिवर्ष पाठशाला की उन्नति में सहयोग प्रदान करते हैं ?

१०—क्या आप अध्यापकों के सम्मान में खड़े होकर उन्हें स्नेह से नमस्कार करते हैं और उनका समुचित सम्मान करते हैं ?

यदि हाँ :—

तो आप अपने कर्तव्य का पालन कर रहे हैं।

शिक्षा प्रसार विभाग, उत्तर प्रदेश

FORM IV

(See Rule 8)

1. Place of Publication.	Allahabad.
2. Periodicity of its publication.	Monthly.
3. Printer's Name	Shri P. L. Yadav.
Nationality	Indian.
Address	36, Pannalal Road, Allahabad.
4. Publisher's Name	Shri B. N. Mathur.
Nationality	Indian.
Address	36, Pannalal Road, Allahabad.
5. Editor's Name	(i) Pt. Sri Narain Chaturvedi. (ii) Shrimati Sheela Sharma.
Nationality	Indian.
Address	(i) 53, Khurshed Bagh, (Vishunupuri) Lucknow. (ii) Prashashak Bhawan, Bena Jabar Road, Kanpur.
6. Names and addresses of individuals who own the newspaper and partners of shareholders holding more than one per cent of the total capital.	1. Shri H. P. Ghosh 2. Shri H. S. Ghosh 3. Shri H. N. Ghosh 4. Shri H. B. Ghosh 5. Shri D. P. Ghosh 5, Malaviya Road, Allahabad.

I, B. N. Mathur, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

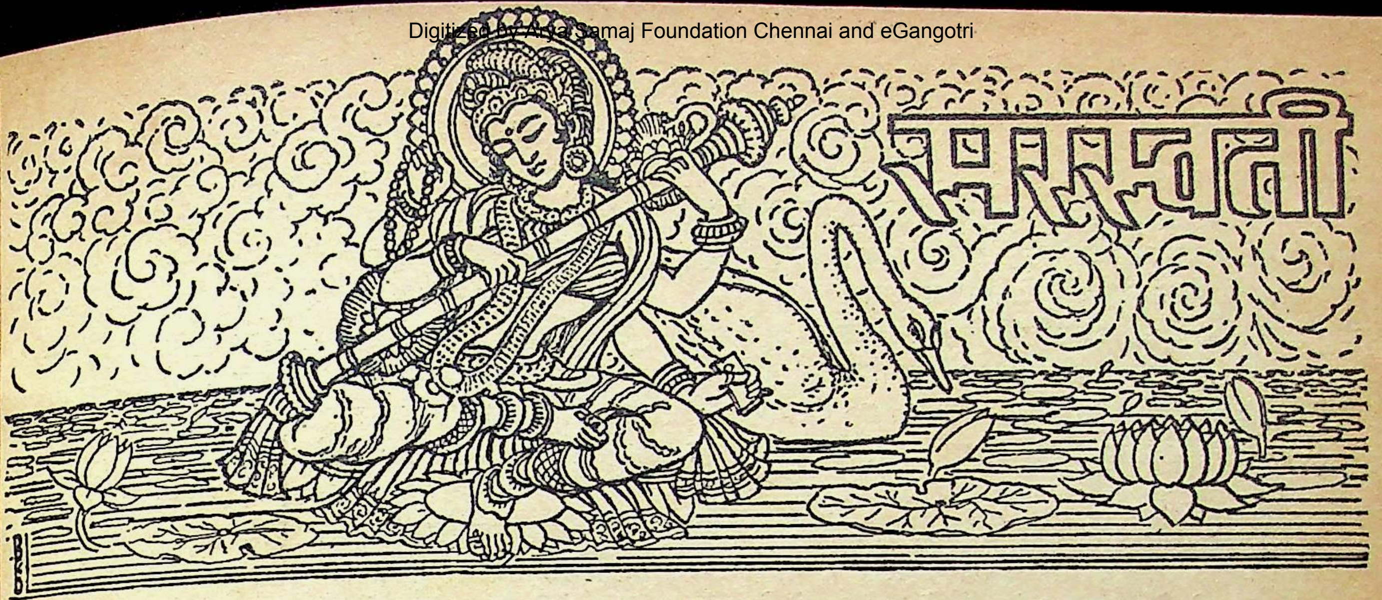
Dated 1.3.64.

(Sd.) B. N. Mathur,
Signature of Publisher

विषय-सूची



वृन्दावन की होली



सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—**शीला शर्मा**

वर्ष ६५ पूर्ण संख्या ७७१ | इलाहाबाद : मार्च १९६४ : चैत्र २०२१ वि० | खण्ड १ संख्या ३

सम्पादकीय

साइप्रस में अशान्ति—हमारा देश विशाल है। हमारी जनसंख्या भी बहुत बड़ी है। भाषा, धर्म, रहन-सहन की ऊपरी विभिन्नता होते हुए भी सारा देश एक राष्ट्रीयता में बँधा हुआ है। हमारे लिए बहुत छोटे स्वतंत्र और सर्वप्रभुत्व सम्पन्न राज्यों की कल्पना करना भी कठिन है। किन्तु संसार में कितने ही 'जेबी' स्वतन्त्र राष्ट्र कितनी ही शतियों से चले आ रहे हैं। योरोप में लक्सम-बर्ग (क्षेत्रफल ९९९ व. मी. जनसंख्या २८१५७२) या लाइ-खेस्टाइन (क्षेत्रफल ६२ व. मी. जनसंख्या १२१९७) इसके पुराने उदाहरण हैं। अभी हाल में दो 'जेबी' राष्ट्रों को स्वतन्त्र सत्ता प्राप्त हुई है। वे हैं भूमध्यसागर-स्थित द्वीप साइप्रस और पूर्वी-अफ्रीका के निकट स्थित जंजीबार द्वीप। जंजीबार में दो द्वीप हैं—जंजीबार और पेम्बा। जंजीबार का क्षेत्रफल ६४२ वर्गमील और पेम्बा का ३८० वर्ग-मील है। दोनों की संयुक्त जनसंख्या सन् १९५८ की जनगणना के अनुसार २,९९,१११ थी। साइप्रस जंजीबार से बड़ा है। उसका क्षेत्रफल ३५७२ वर्गमील है, और उसकी जनसंख्या १९६० में ५६४६०० आँकी गयी थी। उत्तर प्रदेश का क्षेत्रफल १,१३,४५४ वर्गमील है, और १९६१ में वाराणसी नगर की जनसंख्या ५७३५५८ थी। उसका क्षेत्रफल हमारे औसत जिलों से भी कम है, और हमारी वाराणसी नगरी ही में सारे साइप्रस से अधिक व्यक्ति रहते हैं। किन्तु फिर भी यह जेबी राज्य स्वतंत्र है। वह राष्ट्रसंघ का सदस्य है। और इस समय वह संसार की बड़ी से बड़ी शक्तियों के लिए एक सिर दर्द बन गया है।

साइप्रस पूर्वी भूमध्य सागर में एक द्वीप है। वह तुर्की से पूरे १०० मील भी दूर नहीं है। यह नहीं कहा जा सकता कि इस द्वीप के आदिवासी कौन थे। किन्तु ईसा से कई शतियों पहिले ग्रीस और फीनीशिया के लोग यहाँ आकर बसने लगे थे। कालान्तर में ईरानियों ने, और फिर रोमन लोगों ने इस पर अधिकार कर लिया। रोमन साम्राज्य के बाद इस पर कई छोटे-मोटे राज्यों का अधिकार रहा और सोलहवीं शती में यह वेनिस के राज्य का अंग हो गया था। जब तुर्कों ने इस्तम्बोल, सीरिया, लेबनान, फिलस्तीन आदि पर अधिकार कर लिया तो (सन् १५७१ में) उन्होंने इस द्वीप को भी जीत लिया और इसे अपने साम्राज्य में मिला लिया। यह उनके अधिकार में सन् १८७८ तक रहा। इस वर्ष तुर्की के सुलतान ने विवश होकर इसका शासन अँगरेजों को

सौंप दिया, किन्तु उसपर प्रभुता तुर्की की ही बनी रही। प्रथम महायुद्ध में जब तुर्की ने जर्मनों का साथ दिया और अँगरेजों से लड़ाई छेड़ दी तब अँगरेजों ने उसे विधिवत् अपने साम्राज्य में मिला लिया। तब से सन् १९५९ तक वह इंग्लैण्ड का एक उपनिवेश रहा।

साइप्रस के आदिवासी कभी के विलीन हो चुके थे। फीनीशिया से आकर बसे लोग भी समाप्त हो चुके थे। किन्तु साइप्रस में ग्रीक लोगों की संख्या बराबर बनी रही। यह द्वीप प्रायः चार सौ वर्ष तुर्कों के अधीन रहा और इन चार सौ वर्षों में कितने ही तुर्क भी वहाँ आकर बस गये। वे अधिकतर द्वीप के पूर्वी भाग में (जो तुर्की के निकट है) बसे हैं। द्वीप के अन्य भागों में भी वे फैले हुए हैं। जहाँ ग्रीक लोग बसे हुए हैं, वहाँ तुर्कों के गाँव अलग हैं। नगरों में भी तुर्कों के मोहल्ले अलग हैं। इन तुर्कों ने पिछली शती तक ग्रीकों पर शासन किया था। ग्रीक ईसाई हैं। तुर्क मुसलमान हैं। इन सब कारणों से दोनों में बड़ी अनबन है।

ग्रीक बहुमत में हैं। तुर्कों की संख्या प्रायः १८ प्रतिशत है। ४ प्रतिशत अन्य लोग हैं। शेष ७८ प्रतिशत ग्रीक हैं। ग्रीक लोग चाहते हैं कि साइप्रस ग्रीस राज्य में मिल जाय। किन्तु तुर्क इसके लिए किसी प्रकार भी तैयार नहीं हैं। फिर भी साइप्रस के ग्रीकों ने अँगरेजों के विरुद्ध हिंसक आन्दोलन आरंभ कर दिया। उनकी माँग थी कि साइप्रस ग्रीस में मिला दिया जाय। ग्रीक आतंकवादी कई वर्ष तक अँगरेजों पर छिपकर आक्रमण करते रहे। कभी बम फेंककर, कभी गोली मारकर इक्के-दुक्के अँगरेज अफसरों या सैनिकों को मारते रहे। अँगरेजों ने तीस हजार सेना वहाँ भेजी, किन्तु आतंकवादी ग्रीकों को न दबा सके। हजारों अँगरेज मारे गये। दूसरे युद्ध के बाद अँगरेजों ने अपने साम्राज्य को समेटना आरंभ कर दिया था, और भारत, बर्मा, लंका तथा अफ्रीका के उपनिवेशों को स्वतंत्र कर चुके थे या करते जा रहे थे। साइप्रस पर अधिकार जमाये रखने को वे बहुत उत्सुक नहीं थे। किन्तु साइप्रस भूमध्य सागर के पूर्वी भाग में है। वहाँ अँगरेजों ने महत्त्वपूर्ण सैनिक और हवाई अड्डे बना रखे हैं। स्वेज नहर पर नियंत्रण रखने, तथा अपने मित्र तुर्की की सहायता के लिए अँगरेजों के लिए ये सैनिक अड्डे महत्त्वपूर्ण हैं और इन्हें छोड़ने को वे तैयार नहीं हैं। अतएव उनका स्वार्थ साइप्रस में इतना ही था कि ये अड्डे उनके पास बने रहें। वे साइप्रस को ग्रीस में मिलने नहीं दे सकते थे क्योंकि तुर्की साइप्रस के तुर्कों की पीठ पर था और वे तुर्की को अप्रसन्न नहीं करना चाहते थे। साथ ही वे उसे तुर्की को भी नहीं सौंप सकते थे क्योंकि एक तो ग्रीकों का वहाँ बहुमत था। दूसरे ग्रीस से भी उनकी मित्रता है और ग्रीस उस कम्यूनिस्ट विरोधी सैनिकसंघ में सम्मिलित है जिसे उत्तरी अटलांटिक सैनिकसंघ (नाटो) कहते हैं। इस जटिल समस्या को हल करने के लिए ज्यूरिच (स्विट्जर लैण्ड)

में अँगरेजों की प्रेरणा से ग्रीस और तुर्की के परराष्ट्र मंत्रि का एक सम्मेलन हुआ (१९५९)। यहाँ जो निर्णय हु उनके आधार पर लंदन में एक संधि हुई जिस पर इंगलै ग्रीस और तुर्की के प्रधान मंत्रियों ने हस्ताक्षर किये, त जिसे साइप्रस के ग्रीकों और तुर्कों के प्रतिनिधियों ने स्वी कार किया। इस संधि के अनुसार साइप्रस एक स्वतं राज्य घोषित किया गया। उसका संविधान बनाया ग जिसमें साइप्रस का राष्ट्रपति सदा साइप्रसी ग्रीक, औ उपराष्ट्रपति साइप्रसी तुर्क होगा। न तो साइप्रस क ग्रीस में मिल सकेगा और न उसका विभाजन होगा। संस में ७० सदस्य होंगे जिनमें ३५ ग्रीक और १५ तुर्क होंगे असैनिक सेवाओं में ७० प्रतिशत ग्रीक और ३० प्रति तुर्क होंगे, किंतु सेना में उनका अनुपात ६० और ४० होगा। यदि संसद या शासन के किसी निर्णय का तु विरोध करेंगे तो वह कार्यान्वित नहीं हो सकेगा। ग्री और तुर्की—दोनों ही—भाषाएँ राज्यभाषाएँ होंगी साम्प्रदायिक विषयों (जैसे शिक्षा, धर्म और सांस्कृति विषयों) के लिए संसद के अतिरिक्त ग्रीकों और तु के अलग परिषद् होंगे जो अपने अपने क्षेत्रों के लिए वि और नियम बनाएँगे और इन विषयों का संचालन उन अलग-अलग विभाग करेंगे। यह भी तय हुआ कि साइप्र में जो अँगरेजी सैनिक और हवाई अड्डे हैं, उन पर इंगलै का अधिकार और प्रभुत्व रहेगा और उनमें अँगरेजी कानू ही लागू होगा। साइप्रस की आर्थिक अवस्था असंतो जनक थी। इसलिए उसका काम सुचारु रूप से चल के लिए इँगलैंड ने आरंभिक पाँच वर्षों में एक करोड़ बी लाख पाउण्ड की सहायता देने का भी वचन दिया इँगलैंड, ग्रीस और तुर्की ने साइप्रस की स्वतंत्रता औ इस संविधान की रक्षा करने का उत्तरदायित्व लिया

यह संविधान अव्यावहारिक है क्योंकि १८ प्रतिश तुर्कों के हाथ में ७८ प्रतिशत ग्रीकों के निर्णय को रोक का अधिकार दे दिया गया है। यद्यपि प्रशासनिक एकत बनाये रखने का प्रयत्न किया गया है तथापि बहुत मामलों में (जैसे शिक्षा आदि में) द्वीप का विभाजन क दिया गया है। शतियों के पुराने ईसाई और मुसलमा ग्रीकों और तुर्कों, जेताओं और विजित की शत्रुतापू भावनाएँ मौजूद हैं जिनके कारण दोनों जातियों में गह वैमनस्य और अविश्वास है। इस संविधान में इन मिटाने का प्रयत्न करना तो दूर, उन्हें निरन्तर बना रखने की व्यवस्था कर दी गयी है। अतएव यह संविधा नहीं चल सका। दैनिक प्रशासन कठिन हो गया। ग्री ने देखा कि बहुमत में होते हुए भी वे तुर्कों के विरोध कारण मनचाही बातें नहीं कर सकते। तुर्कों ने देखा ग्रीक उन्हें साइप्रस में अत्यल्प होने के कारण दबाना चाह हैं। यह मतभेद, अविश्वास और वैमनस्य इतना ब कि दोनों आपस में लड़ने लगे। जहाँ अवसर मिला व तुर्कों ने ग्रीकों पर, और ग्रीकों ने तुर्कों पर आक्रमण कर आरंभ कर दिया। गृहयुद्ध आरंभ हो गया।

१९६४

भाग में जहाँ तुर्क बसे हुए हैं, ग्रीकों का रहना या जाना निरापद नहीं रहा, और पश्चिमी भाग में तुर्कों को जान का खतरा हो गया। साइप्रस की सेना में केवल २००० सैनिक हैं जिनमें १२०० ग्रीक और ८०० तुर्क हैं। किंतु अँगरेजों के विरुद्ध ग्रीकों ने जब हिंसक आन्दोलन किया था तब उन्होंने छिपकर हथियार एकत्र किये थे। इधर उन्होंने फिर हथियार मँगाने आरम्भ कर दिये। अनुमान किया जाता है कि पिछले कुछ ही दिनों में ग्रीकों ने तीस हजार राइफिलें या स्वचालित हथियार प्राप्त किये हैं। अतएव अल्पसंख्यक तुर्कों को अपना सर्वनाश दीखने लगा और स्वभावतः भी सहायता के लिए तुर्की का मुँह देखने लगे। तुर्की भी अपने साइप्रसी भाई-बंदों की रक्षा के लिए तैयार हो गया। यदि तुर्की की सेना साइप्रस में आ जाती तो निश्चय था कि साइप्रसी ग्रीकों की रक्षा और सहायता के लिए ग्रीस भी अपनी सेना वहाँ भेज देता। इस युद्ध का परिणाम अत्यन्त भयंकर हो सकता था क्योंकि दोनों ही के बड़े-बड़े सहायक हैं, और जो पक्ष हारता वह अपने सहायकों को बुलाता। अतएव सभी समझदार व्यक्ति स्थिति को और बिगड़ने न देना चाहते थे। गृहयुद्ध को रोकना तुरन्त आवश्यक था जिससे तुर्की को साइप्रसी तुर्कों की सहायता के लिए साइप्रस में प्रवेश करने का बहाना न मिले। साइप्रस के पास इतनी या ऐसी सेना न थी कि वह उसे दबा सके। साइप्रस ने स्वतंत्र होने पर ब्रिटिश राज्यमंडल (ब्रिटिश कामनवेल्थ) में सम्मिलित कर लिया था। इसलिए साइप्रस के राष्ट्रपति मैकेरिओस ने अँगरेजों से साइप्रस में शान्ति रखने के लिए सैनिक सहायता माँगी। अँगरेजों ने तुरन्त सेना भेज दी, और ग्रीकों और तुर्कों के क्षेत्रों को अलग करके ऊपरी शान्ति स्थापित कर दी। किन्तु साइप्रस में शान्ति रखने का उत्तरदायित्व न तो अँगरेज ही अकेले अपने ऊपर लेना चाहते हैं और न साइप्रसी ग्रीक ही उनका पूरा-पूरा विश्वास करते हैं। मैकेरिओस चाहते हैं कि राष्ट्रसंघ अंतर्राष्ट्रीय सेना भेजकर यह काम करे। अँगरेज चाहते हैं कि चूँकि ग्रीस और तुर्की दोनों ही उत्तरी अटलांटिक सैनिकसंघ के सदस्य हैं, इसलिए इस संघ की सेनाएँ वहाँ रहें। ग्रीक इसके विरुद्ध हैं क्योंकि साइप्रस तटस्थ राष्ट्र है और नाटो की सेनाओं के आने से उसकी तटस्थता भंग होगी और वह पश्चिमी (अमरीकन अँगरेज) दल में समझा जाने लगेगा। अँगरेज राष्ट्रसंघीय सेना का विरोध इसलिए करते थे कि वहाँ रूस भी साइप्रस के मामले में बोलने का अधिकारी हो जायगा, और वे साइप्रस में रूस का प्रवेश नहीं चाहते। किन्तु वे अकेले यह काम नहीं करना चाहते। मैकेरिओस के कड़े रुख के कारण अब उन्होंने राष्ट्रसंघ से साइप्रस में शान्ति बनाये रखने का प्रस्ताव किया है।

अँगरेजी सेना ने साइप्रस के भीषण गृहयुद्ध और तुर्की तथा ग्रीस के संभावित युद्ध को रोक अवश्य दिया है किन्तु साइप्रस की मूल समस्या का हल नहीं दिखायी देता। तुर्कों का कहना है कि हमारा और ग्रीकों का मिलकर रहना असंभव है। इसलिए साइप्रस का विभाजन कर दिया जाय। पूर्वी साइप्रस का वह भाग जिसमें तुर्क रहते हैं, स्वतंत्र राज्य हो जाय। इसके विपरीत साइप्रस के ग्रीक विभाजन को किसी दशा में स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं। साथ ही वे संविधान के उस भाग को भी बदलने को कृतसंकल्प हैं जिसके अनुसार तुर्कों को विशेषाधिकार दिये गये हैं। वे तुर्कों को साइप्रस में अल्पमत के रूप में मानने और उनके सांस्कृतिक एवं धार्मिक स्वार्थों की रक्षा करने का वचन देते हैं, किंतु न तो वे उन्हें विशेषाधिकार देना चाहते हैं, और न साइप्रस का विभाजन करने को तैयार हैं। वास्तव में दोनों पक्षों के दृष्टिकोण में कोई साम्य नहीं है। दोनों के दृष्टिकोणों में सामंजस्य लाने का जो प्रयत्न संविधान में किया गया था वह अव्यावहारिक और असफल सिद्ध हुआ। दो समानान्तर रेखाओं के समान साइप्रस के ग्रीक और तुर्क मिल नहीं सकते।

हमारी दृष्टि में ऐसी स्थिति में रक्तपात रोकने का विभाजन के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। इस युग में शिक्षा, विशाल दृष्टिकोण, घनिष्ठ संपर्क, अन्तर्राष्ट्रीयता आदि की उन्नति के बावजूद धर्म, वंश, भाषा या ऐतिहासिक भेद कम नहीं हो पाये। विभाजन के दुष्परिणाम सर्वविदित हैं, किंतु इधर कुछ दिनों से संसार ने विवश होकर विभाजन को ही भीषण रक्तपात अथवा संघर्ष रोकने का तात्कालिक और व्यावहारिक उपाय माना है। पिछले बीस वर्षों में भारत का विभाजन हुआ, जर्मनी का विभाजन हुआ, कोरिया का विभाजन हुआ, वियतनाम का विभाजन हुआ। यह सच है कि इन विभाजनों से किसी समस्या का स्थायी हल नहीं हुआ। किंतु यह भी सच है कि इनसे तात्कालिक संकट टल गया। आज की राजनीति में तात्कालिक संकट को टाल सकना ही बड़ी उपलब्धि है। साइप्रस की वर्तमान उलझी हुई समस्या का एक ही व्यावहारिक हल है। एक की जगह दो और भी छोटे 'जेबी' राज्य हो जायँगे। संसार में उनसे भी छोटे 'जेबी' राज्य मौजूद हैं। यदि यह न किया गया तो जो विकल्प है वह और भी भयंकर है।

फिराक़ साहब का हिन्दी के विरुद्ध जिहाद और सार्वजनिक वाद-विवाद का स्वर—हिन्दी के विरुद्ध अँगरेजीपरस्तों ने एक जिहाद छेड़ रखा है। दुर्भाग्य से भारत के अधिकांश अँगरेजी समाचार-पत्र इन अँगरेजीपरस्तों के हाथों में हैं। जो क्षेत्र हिंदी-विरोधी हैं उनके अँगरेजी में निष्णात पत्रकार अँगरेजी के अधिकांश समाचार-पत्रों के सम्पादकीय विभागों के प्रभावशाली पदों पर बैठे हैं। वे मुट्ठी भर अँगरेजी-विरोधियों के विचारों का धुंआधार प्रचार करते हैं, हिन्दी-विरोधी मतों या समाचारों को मोटे-मोटे शीर्षक देकर या प्रमुखता से छापते हैं और समय-असमय हिन्दी-विरोधी बातें लिखकर देश में हिन्दी-विरोधी वातावरण बनाने का प्रयत्न करते रहते हैं।

उन्हें पढ़ने से यह नहीं मालूम होता कि दक्षिण की जनता लाखों की संख्या में प्रतिवर्ष स्वेच्छा से पैसा देकर हिन्दी पढ़ती और उसकी परीक्षाएँ देती है, अथवा यह कि दक्षिण के गाँवों तक में वहीं के हजारों हिन्दी-प्रेमी हिन्दी का प्रचार कर रहे हैं। हमारी सरकार के अधिकांश मंत्री भी अँगरेजीपरस्त हैं और वे अँगरेजी समाचार-पत्रों को––जो केवल अँगरेजीपरस्तों और निहित स्वार्थों के प्रतिनिधि हैं––आवश्यकता से अधिक महत्त्व देते हैं। उनमें से अधिकांश तो देशी भाषाओं के पत्र पढ़ते भी नहीं, और न यह जानने का प्रयत्न ही करते हैं कि जनता क्या सोच रही है। इन अँगरेजीपरस्तों ने अपने प्रचार के बल पर भारत के संविधान की राज्यभाषा सम्बंधी धारा को निरर्थक कर दिया है। किन्तु वे इतने ही से संतुष्ट नहीं हैं। अब वे हिन्दी को भारत की राजभाषा के बदले उसे भारत की "लिंक लैंग्वेज" कहने लगे हैं और उनका उद्देश्य यही मालूम होता है कि अँगरेजी भारत की (व्यवहार में एकमात्र) राजभाषा सदा-सर्वदा के लिए बनी रहे तथा हिंदी का प्रवेश न तो विश्वविद्यालयों में हो पावे और न सेवा-आयोग में। यद्यपि हिंदी को वे आज 'लिंक लैंग्वेज' कहते हैं, तथापि उनके लिए भारत की 'लिंक लैंग्वेज' अँगरेजी रही है।

इन अँगरेजी समाचार-पत्रों के ये अँगरेजीपरस्त सम्पादक अधिकतर हिन्दी नहीं जानते। यदि जानते भी हैं तो केवल 'साहबी' हिन्दी जिससे खानसामा और बेअरों से काम निकाला जा सके। यदि कक्षा ३ से भारत में अँगरेजी अनिवार्य कर देने की अँगरेजीपरस्तों की योजना सफल हो गयी तो इन्हें इस 'साहबी' टूटी-फूटी हिन्दी की भी आवश्यकता न रहेगी। वे हिंदी भाषा का विरोध तो कर लेते हैं, किंतु उनका हिन्दी का अज्ञान उनके हिन्दी-साहित्य को लांछित करने में आड़े आता है। इसलिए ये बेचारे हिन्दी-साहित्य के बारे में अधिक नहीं कह पाते। किंतु अब उन्हें श्री रघुपतिसहाय 'फिराक' के रूप में एक ऐसा व्यक्ति मिल गया है जो हिन्दी-साहित्य जानने का दावा करता और हिन्दी-साहित्य को जी भर कोसता है। ये हिन्दी-विरोधी अँगरेजी समाचार-पत्र ऐसे व्यक्ति का उपयोग करने से कैसे चूकते? अतएव दिल्ली के दो समाचार-पत्रों (हिन्दुस्तान टाइम्स और पेट्रियट) ने फिराक साहब के हिन्दी-विरोधी लेखों को छापना आरंभ किया। टाइम्स आफ इण्डिया बिड़लाओं का पत्र है। बिड़ला व्यापारी हैं। वे ग्राहक देखकर माल देते हैं। वे हिन्दी में हिन्दुस्तान (दैनिक और साप्ताहिक) भी निकालते हैं जिनकी खपत हिन्दी-भाषियों और हिन्दी-प्रेमियों में है। अतएव इनमें, विशेषकर साप्ताहिक हिन्दुस्तान में, हिन्दी का कट्टर पक्ष लिया जाता है। किन्तु 'हिन्दुस्तान टाइम्स' अँगरेजीपरस्तों के लिए है। इसलिए उसमें हिन्दी-विरोधी लेख छापना व्यापारिक दृष्टि से वांछनीय है। स्वयं बिड़ला लोग भाषा-निरपेक्ष हैं––हाँ, वे अपना व्यापार अँगरेजी ही में चलाते हैं। उनके कार्यालयों में हिन्दी में काम होना तो दूर, हिन्दी के साइनबोर्ड तक देखने को नहीं मिलें। 'पेट्रियट' 'लाल' समाचार पत्र है। वामपक्षी होने के कार वह भारतीय दकियानूसियत और अमरीकनों तथा अँगरे का विरोधी है, किन्तु अँगरेजी पर 'फरेफ्ता' है। हिन्दी विरोधी होना शायद 'प्रोग्रैसिव' होने का प्रमाणपत्र है उसके 'मालिक' लोग भी 'प्रोग्रेसिव' हैं। अतएव वह हिन्दी के विरोध में लेख छापना अपना कर्तव्य समझता है, और प्रोफेसर फिराक के लेखों को प्रमुखता से छापता है।

प्रोफेसर रघुपतिसहाय 'फ़िराक' इलाहाबाद विश्व विद्यालय में अँगरेजी के लेक्चरर थे और उस गोरखपुर के रहनेवाले हैं जिसके मुख्य बाजार का नाम 'उर्दू बाजार' है। 'शेरोशायरी' का बचपन से ही शौक है। विभाजन के पहिले उनकी इतनी कद्र न थी, किंतु विभाजन के बाद उनके समान उर्दू के अनन्य प्रेमी और हिंदी-साहित्य विरोधी हिन्दुओं में मुश्किल से मिलते। जिस दिन विभाजन हुआ, उस दिन संध्या को हमारे एक मित्र से स्वर्गीय सर तेज बहादुर सप्रू ने कहा था कि 'पार्टिशन' के बाद हिन्दुस्तान में उर्दू का कोई भविष्य नहीं रह गया। आरं में अधिकांश उर्दूवाले भी यही समझते थे। किंतु हमारे नेताओं को उससे बड़ा अनुराग था। उर्दू को पुनर्जीवि करने के प्रयत्न होने लगे और इस बार उसके हिन्दू-मुसल मानों की 'मुश्तर्का जबान' होने पर जोर दिया जाने लगा। उसके लिए उर्दू के कुछ हिन्दू-साहित्यिक भी आवश्यक थे। फिराक साहब उर्दू के 'पेशवाओं' में गिने जाने ल और वे अपना पार्ट बड़ी खूबसूरती से अदा करने लगे। आरंभ ही से उन्हें आधुनिक हिन्दी-साहित्य और हिन्दी भाषा के प्रति सहानुभूति न थी। प्रायः पच्चीस वर्ष पहि उनसे और निरालाजी से इसी बात पर टक्कर हो गयी थी। उन दिनों प्रयाग से 'तरुण' नामक एक मासिक पत्र निकलता था जिसमें उन्होंने निरालाजी के ऊपर एक आल्ह लिखा था। इस वाद-विवाद में बाद में डा० रामविला शर्मा को भी आना पड़ा। कहने का तात्पर्य यह फिराक साहब का हिन्दी-विरोध नया नहीं है। मामले में वे बहुत ईमानदार हैं।

फिराक साहब ने उपर्युक्त अँगरेजी पत्रों के अपने लेखों में कई विवादास्पद प्रश्न उठाये। हिन्दुस्तान टाइम्स प्रकाशित अपने एक लेख में उन्होंने यह कहा था कि हिन्दी उत्तर प्रदेश की उन्नति की बाधक है। इसकी समीक्षा सरस्वती के जनवरी अंक में 'हिन्दी प्रदेश की प्रगति बाधक हिन्दी' के नाम से की जा चुकी है। फिराक साह के 'पेट्रिअट' में छपे लेखों का उत्तर डा० सम्पूर्णानन्द ने दिया। यह उत्तर इतना गंभीर और सटीक था उससे फिराक साहब का संतुलन बिगड़ गया और उस जो उत्तर उन्होंने 'पेट्रिअट' में छपवाया उसकी शै विद्वानों को शोभा नहीं देती। डा० सम्पूर्णानन्द ने उन इस अशोभनीय उत्तर का प्रत्युत्तर देना अनावश्यक समझा। उन्होंने पेट्रियट के सम्पादक को यह पत्र भेजा:

१९६४

Dated February 4, 1964

DEAR SIR,

Your last Sunday issue carries an article by Sri Firaq which purports to be a reply to the one I contributed at an earlier date. A perusal of Sri Firaq's article shows that what I wrote has seriously disturbed him to the extent of making him lose his temper. This is hardly the way to carry discussion of public questions. He has gone to the extent of comparing the works of Hindi poets of today to Navatanki. I do not know if any other person who considers himself a writer, whether prose or poetry, would go to the length of using such language for those who use some other language as the medium for the expression of their thoughts. I can only hope and trust that no Hindi writer will follow Sri Firaq in this dirty game of mud-slinging. I, at any rate, do not propose to descend to such a level and shall not continue this discussion with him any further.

Yours Sincerely
SAMPURNANAND

हिन्दी के जिन कवियों को हिन्दी-संसार युग-प्रवर्तक कहता है, जिनकी कृतियों को सारे देश में उत्कृष्ट साहित्य माना गया है, जो साहित्य के गौरव समझे जाते हैं, उनके काव्यों को "नौटंकी" की श्रेणी के बतलाने का दुःसाहस श्री फिराक के समान व्यक्ति ही कर सकते हैं जिन्होंने मानो अपने विवेकहीन हिन्दी-विरोध के कारण हिन्दी की किसी अच्छाई को न देखने और न स्वीकार करने की 'कसम' खा रखी है। मालूम होता है कि फिराक साहब का हिन्दी-ज्ञान नौटंकी तक ही सीमित है। इसलिए वे हिन्दी की सभी आधुनिक कृतियों को 'नौटंकी" ही समझते हैं। वास्तव में बात यह है कि फिराक साहब का दृष्टि-दोष असाध्य है। उनकी 'उर्दू कलचर' में 'वाद-विवाद' का आदर्श भटियारिनों की लड़ाई है। उनके इसी रुख के कारण निरालाजी के विरुद्ध उनके 'तरुण' में छपे आल्हा को हिंदी-प्रेमियों ने नापसंद किया था। अतएव हमें इस बात से आश्चर्य नहीं हुआ कि डा० सम्पूर्णानन्द जी के समान वयोवृद्ध और गंभीर सज्जन के लेख का उत्तर उन्होंने ऐसी शैली में दिया। हमें इस बात का भी कोई आश्चर्य नहीं है कि उनके हिन्दी-विरोधी लेखों को ये हिंदी-विरोधी अँगरेजी-पत्र इतना उछाल रहे हैं। किंतु हमें आश्चर्य इस बात का है कि कितने ही हिन्दी-साहित्यकार और हिन्दी-भक्त अपनी तथाकथित उदारता और सहिष्णुता का ब-हाना कर फिराक साहब का साहित्यिक सम्मान करते हैं। कभी-कभी तो हिन्दी कवि उनके साथ संयुक्त कविसम्मेलन और मुशायरे में एक मंच तक पर सम्मिलित हो जाते हैं। उनमें फिराक के समान हिन्दी-विरोधियों का भी विरोध करने का साहस नहीं है। फिराक साहब अब उस अवस्था में पहुँच गये हैं जिसमें बदलना असंभव हो जाता है। यह भी आवश्यक नहीं है कि हम उनका सार्वजनिक विरोध करें। किंतु उनके समान हिन्दी-विरोधी व्यक्ति के संपर्क से दूर रहना वह कम से कम कार्य है जिसकी हम हिन्दी साहित्यिकों से अपेक्षा अवश्य करते हैं। "जाके प्रिय न राम बैदेही। सो त्यागिये कोटि बैरी सम, यद्यपि परम सनेही।" यह तुलसीदास की उक्ति है। यहाँ तो प्रिय न होने का प्रश्न ही नहीं है। यहाँ तो फिराक को हिंदी 'अप्रिय' है। श्री श्रीविनोद शर्मा ने उस समय फिराक साहब पर आल्हा की दस पंक्तियाँ लिखी थीं जिस समय फिराक ने निरालाजी के ऊपर एक आल्हा लिखा था। इसमें शर्माजी ने फिराक साहब के प्रति उस समय जो रुख अपनाया था, वही रुख आज भी ठीक है। शर्माजी ने ये पंक्तियाँ लिखी थीं:

रघुपति भैया ! पढ़ा ध्यान है, लिखेउ 'तरुन' माँ आल्हा जौन
मसल फारसी* की सुधि करिकें चाहेंउँ ग्रहन करौं मैं मौन !
सोचा, किन्तु, परोफेसर हौ, रहत सदा तुम बँगलन बीच
बाबू लोगन के लड़िकन काँ अँगरेजी की देत हौ सीख।
और मुसहरन माँ देखा है गजलन की प्यालो छानै
सेरन माँ तौ करत रहत हौ मासूकन की तुम बातैं !
हम तौ भैया ! देहाती हन, का समझीं रँगरेजिहा रंग ?
हम तौ भैया ! रहि जाइति है तुमकाँ देखि रामधै दंग !
गाँवन माँ जो करै लगी हम भैया झूठेहु नकल तुम्हार,
नाम दफा दस में लिख जाई, और पड़ी घेलुआ में मार !

फिराक साहब की नकल करना या उनसे वादविवाद करना व्यर्थ है। उनसे दूर रहना ही श्रेयस्कर है। "स्थानत्यागेन फिराकनः" [(व्याकरण से ठीक न होने पर भी अर्थ स्पष्ट है।)

स्कूलों में धूम्रपान—पिछली कई दशाब्दियों में इस देश में कई वस्तुओं का प्रचार बहुत अधिक हुआ है। साबुन, बिजली, दाँत के ब्रुश, दालदा, चाय, काफी और सिगरेट आदि भारतव्यापी ही नहीं हो गये, वे गाँवों में भी प्रवेश कर गये हैं। चाहे देश में भावनात्मक एकता न हुई हो, किंतु दालदा, साबुन और सिगरेट की एकता तो हो ही गयी है। इनमें कुछ वस्तुएँ अच्छी हैं, कुछ अनिवार्य हैं और कुछ जनता के स्वास्थ्य के लिए हानिकर हैं। सिगरेट ने मध्यवर्ग और उसकी छोटी बहिन बीड़ी ने किसान और मजदूर वर्ग पर विजय प्राप्त कर ली है। किन्तु लोग यह भी अनुभव करने लगे हैं कि स्वास्थ्य के लिए ये हानिकारक हैं। इनका अधिकतर प्रचार बड़े

*'जवाबे जाहिला बाशद खमोशी'—मूर्खों का सर्वोत्तम उत्तर मौन है।

आदमियों का अनुकरण करने के कारण होता है। जब वय या सामाजिक स्तर में छोटे लोग अपने से बड़ों को कोई काम करते देखते हैं तो उनकी नकल करने लगते हैं। दुर्भाग्य से ये वस्तुएँ छोटी अवस्था में अधिक हानि करती हैं, किन्तु अपने अध्यापकों को सिगरेट पीते देखकर बहुत से विद्यार्थी धूम्रपान करने लगते हैं। बहुत से प्राध्यापक धूम्रपान करते हैं और जब उनमें से कोई-कोई सामाजिक स्तर पर अपने विद्यार्थियों से मिलते हैं तो स्वयं सिगरेट पीने के पहिले सामने बठे हुए विद्यार्थी के सामने सिगरेट कर देना शिष्टता का तगादा समझते हैं। यदि ऐसा न भी हो तो भी विद्यार्थियों को सिगरेट पीने के लिए इतना कारण ही पर्याप्त है कि उनके प्राध्यापक कक्षाओं में, सेमिनारों में, सभा-सोसाइटियों आदि सार्वजनिक स्थानों में सिगरेट पीते हैं। अध्यापक प्रायः भूल जाते हैं कि वे अपने विद्यार्थियों के सामने सिगरेट पीकर उनके सामने एक अवांछनीय उदाहरण रख रहे हैं। इसलिए हमें यह जानकर प्रसन्नता हुई कि मदरास की सरकार ने स्कूलों में धूम्रपान बिल्कुल वर्जित कर दिया है। वहाँ स्कूलों में अब अध्यापक, कर्मचारी या आगन्तुक सिगरेट न पी सकेंगे। हम इसे एक बड़ा उपयोगी आदेश समझते हैं। इसका अनुकरण अन्य राज्यों में भी होना चाहिए। किंतु स्कूलों तक ही धूम्रपान का निषेध पर्याप्त नहीं है। शनैः शनैः इस निषेध को कालिजों और विश्वविद्यालयों में भी लगाना चाहिए। उनकी चहारदीवारी के भीतर धूम्रपान का एकदम निषेध होना आवश्यक है क्योंकि सिगरेट पीने की आदत अधिकांश पढ़े-लिखे लोग अपने कालिज के जीवन में सीखते हैं। जिन लोगों को भारत की भविष्य संतान के स्वास्थ्य की चिन्ता है उन्हें इस ओर ध्यान देना चाहिए।

श्री असित हालदार का स्वर्गवास—हमें यह जानकर अत्यन्त दुःख हुआ कि गत मास प्रसिद्ध कलाकार आचार्य असित हालदार का देहान्त हो गया। श्री हालदार भारत के चोटी के चित्रकारों में गिने जाते थे। पिछली शती के अन्त में भारतीय संस्कृति का पुनर्जागरण हुआ। वह पुनर्जागरण बहुमुखी था और भारतीय संस्कृति के प्रत्येक अंग में नवचेतना उत्पन्न हुई। अजन्ता युग के बाद भारतीय चित्रकला का ह्रास होने लगा था और यद्यपि काँगड़ा, राजस्थान आदि स्थानों में स्थानीय शैलियाँ जीवित थीं, तथापि सामान्य रूप से भारतीय चित्रकला मृतप्राय थी। उसे पुनर्जीवित करनेवालों में सबसे अधिक क्रियाशील श्री अवनीन्द्रनाथ टागोर थे। उन्होंने जिस भारतीय शैली को जन्म दिया उसका आधार प्राचीन भारतीय चित्रकला थी। यह नवोन्मेष बंगाल में हुआ। इसलिए इसे लोग भ्रम से बंगाली शैली (बंगाल स्कूल) कहने लगे। श्री हालदार उन्हीं श्री अवनीन्द्रनाथ के शिष्य थे। उनमें कला की सुकुमार दृष्टि थी। वे कलाकार मात्र न थे, प्रत्युत उन्होंने भारतीय गौरव-ग्रंथों (क्लासिक्स) का भी अध्ययन किया था और वे भारतीय संस्कृति के मर्म से बहुत कुछ परिचित भी थे। गुरुदेव के सान्निध्य में वे शान्तिनिकेतन में कुछ दिनों रहे, और वहाँ उनके सम्पर्क से उनके भारतीय कला और संस्कृति संबंधी विचारों को दिशा और प्रगति मिली। उन्होंने शान्तिनिकेतन में चित्रकला अध्ययन कक्ष का आरंभ किया जिसने बाद में आचार्य नंदलाल बोस की अध्यक्षता में सारे संसार में ख्याति प्राप्त की। बाद में वे जयपुर के कला विद्यालय में आचार्य होकर चले गये जहाँ उन्हें भारत की परम्परागत चित्रकला तथा लोककला का निकट से अध्ययन करने का अवसर मिला। जब लखनऊ के सरकारी कला विद्यालय में आचार्य का पद रिक्त हुआ तो वे उसके आचार्य नियुक्त हुए। वे उसके प्रथम भारतीय आचार्य थे, और उन्होंने अपना शेष जीवन लखनऊ में बिताया। उनके बनाये चित्र भारतीय कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं, और वे अमरीका, इँगलैण्ड, पैरिस आदि के कितने ही संग्रहालयों में प्रदर्शित हैं। उन्होंने उमरखैयाम और मेघदूत को भी बड़े सुंदर ढंग से चित्रित किया। ये दोनों ही कला-कृतियाँ इंडियन प्रेस से प्रकाशित हुईं। सरस्वती में उनके विविध प्रकार के चित्र प्रकाशित होते रहे हैं। माडर्न रिव्यू, प्रवासी आदि पत्रों में भी उनके चित्र प्रकाशित होते थे। किंतु आचार्य हालदार केवल चित्रकार ही नहीं थे; वे कवि और सहृदय साहित्यिक भी थे। उन्होंने संस्कृत के कई ग्रंथों का बँगला में सुंदर अनुवाद किया था। लखनऊ के कला विद्यालय से अलग होने पर वे अपना समय साहित्य-साधना और कला-साधना में बिताते थे। वे अत्यन्त विनयशील और सरल-हृदय थे। हमारी उनकी बहुत पुरानी मित्रता थी। जब सरस्वती की हीरक जयन्ती मनायी गयी और उसका विशेषांक निकाला गया तो उसका आवरण कृपा कर उन्होंने बनाया था।

गत मास एक दिन उन्हें हृदय का दौरा हो गया और मस्तिष्क में कुछ रक्तस्राव भी हो गया जिससे वे अचेत हो गये। उनके पड़ोसी-मित्र उन्हें मेडिकल कालिज अस्पताल ले गये। हमारे देश की यह विडंबना है कि हमारी शिक्षा इतनी एकांगी है और सांस्कृतिक बातों का इतना अज्ञान है कि विज्ञान, डाक्टरी, इंजिनियरी आदि में उच्च शिक्षा प्राप्त लोग देश की सांस्कृतिक गतिविधि से एकदम अपरिचित होते हैं। वे 'साहित्य-संगीत-कला-विहीन' होते हैं। आचार्य हालदार को जब एमर्जेंसी में ले जाया गया तो उपस्थित अधिकारियों ने उन्हें साधारण रोगी समझा और अनेक रोगियों के बीच एक खाली चारपायी पर डाल दिया तथा पुराने खैराती कपड़े और बिस्तर दे दिये। शायद उन लोगों ने लखनऊ में रहते हुए भी उन असित हालदार का नाम भी न सुना था जो सारे भारत ही में नहीं, संसार के कलाविदों में विश्रुत थे। दूसरे दिन जब उनके एक मित्र उन्हें देखने गये और उन्हें उस जन-संकुल जनरल वार्ड की एक चारपायी पर इस प्रकार पुराने खैराती कपड़ों से आवेष्टित देखा तब उन्होंने विश्वविद्या-

लय के एक उच्च अधिकारी को टेलीफोन से सूचना दी। ये अधिकारी हालदार साहब के गुणों और सामाजिक पद से परिचित थे। उन्होंने तत्काल मेडिकल कालिज अस्पताल के अधीक्षक को फोन किया और तब उन्हें विशिष्ट वार्ड में हटाया गया तथा उन्हें नये कपड़े और बिस्तर दिये गये। किंतु उनके मस्तिष्क में शायद इतना अधिक रक्तस्राव हो चुका था कि बुधवार को उनका शरीरान्त हो गया। उनके निधन से भारतीय कला के नक्षत्र-मंडल का एक प्रमुख नक्षत्र टूट गया। उनकी कलाकृतियाँ भावी पीढ़ियों को अनुप्राणित करती रहेंगी, किंतु उनके मित्रों को उनके सहृदय, सुसंस्कृत और महान् व्यक्तित्व का अभाव सदैव खटकता रहेगा। हम उनके शोक-संतप्त परिवार के प्रति हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हैं।

सर लक्ष्मीपति मिश्र का निधन--यह हमारे देश की विचित्रता है कि राजनीति को यहाँ इतना महत्त्व दिया जाता है कि उसके सामने अन्य राष्ट्रीय उन्नति के क्षेत्रों में काम करनेवालों के नाम और काम जनता तक नहीं पहुँच पाते। सर लक्ष्मीपति मिश्र, जिनका स्वर्गवास ७७ वर्ष की अवस्था में गत मास कलकत्ते में हो गया, भारत के अत्यन्त सफल और कल्पनाशील इंजिनियरों में थे। वे उस युग में इंजिनियर हुए थे जिसमें भारतीय इंजिनियरों को आगे बढ़ने का अवसर प्रायः नहीं ही मिलता था। किंतु उनकी प्रतिभा इतनी प्रखर थी, और उनकी कार्य-क्षमता इतनी ऊँची थी कि वे अँगरेजी सरकार के कई ऐसे उच्च पदों पर नियुक्त किये गये जिन पर उनके पहिले कोई भारतवासी नियुक्त नहीं हुआ था। उनकी देशभक्ति बड़ी गहरी थी, किंतु वह नारेबाजी की नहीं थी। वे देश की औद्योगिक और आर्थिक उन्नति करना ही सच्ची देश-सेवा मानते थे। आरंभ ही से उनके तीन स्वप्न थे। पहिला यह कि भारत में रेल के इंजिन बनने लगें, दूसरा यह कि भारत में मोटरकार बनने लगें और तीसरा यह कि भारत की नदियों को नदीय यातायात के योग्य बना-कर उनमें यातायात आरंभ किया जाय तथा इन नदियों को नहरों द्वारा इस प्रकार मिलाया जाय कि नदियों द्वारा उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक यात्री और माल जा सके। उनके दो स्वप्न साकार हो गये। चित्तरंजन के रेल के ऐंजिन के कारखाने को मूर्तरूप देने में उनका बड़ा हाथ था। आरंभिक योजना उन्होंने बनायी थी। कुछ लोग उस कारखाने को अजमेर में खोलने के पक्ष में थे, किंतु सर लक्ष्मीपति ने चित्तरंजन के पक्ष में दृढ़ रहकर, और उसकी सुविधाओं के (जैसे लोहे और कोयले की खानों एवं बंदरगाह की निकटता, कलकत्ते के निकट होने के कारण कुशल और प्रशिक्षित कर्मचारियों की सरल उप-लब्धि) तर्क देकर अधिकारियों को उसी स्थान पर उसे बनाने को राजी कर लिया। भारत का पहिला मोटर बनाने का कारखाना--हिन्दुस्तान मोटर्स--तो उनकी मानस संतान है। उसकी पूरी योजना आरंभ ही से उन्होंने बनायी और उसे कार्यान्वित किया, तथा मृत्यु के दिन तक उसका संचालन करते रहे। वे भारत में मोटर बनाने को इतने उत्सुक थे कि उन्होंने उस स्वप्न को साकार करने के लिए भारत सरकार के रेलवे चीफ कमिश्नर के पद से समय से पूर्व त्यागपत्र दे दिया। अपने तीसरे स्वप्न को साकार करने के लिए उन्होंने सारे भारत का भ्रमण और नदियों का अध्ययन करके एक सुविचारित योजना बनायी थी, किंतु देश की वर्तमान परिस्थिति में वह योजना ही रह गयी।

सर लक्ष्मीपति मिश्र का जन्म उत्तर प्रदेश के मैनपुरी नगर में हुआ था और वहीं स्कूली शिक्षा प्राप्त कर उन्होंने आगरा कालिज से बी० एस्-सी० किया। वे रुड़की के विख्यात टाम्सन इंजिनियरिंग कालिज में कुछ दिनों के लिए जूनियर डिमान्स्ट्रेटर हो गये, किंतु शीघ्र ही उन्होंने वहाँ इंजिनियरिंग पढ़ना आरंभ कर दिया और १९११ में उन्होंने वहाँ की सर्वोच्च परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। वे तत्कालीन ओ० आर० रेलवे में इंजिनियर हो गये, किंतु कुछ ही दिनों बाद जब महाराज बड़ौदा को अपनी रेल के लिए मुख्य इंजिनियर की आवश्यकता हुई तब उन्होंने इन्हें चुना। वहाँ उन्होंने ओखा के विकास की योजना बनायी जो अब कार्यान्वित हुई है। वहाँ से लौटने पर वे कई महत्त्वपूर्ण पदों पर रहे और बाद में ई० आई० आर० के डिप्टी जनरल मैनेजर बनाये गये। इस पद पर वे पहिले भारतीय थे। द्वितीय युद्ध के समय वे ईस्टर्न बंगाल आसाम रेलवे के जनरल मैनेजर नियुक्त हुए। इस पद पर भी यह पहिले हिन्दुस्तानी थे। इस क्षेत्र में युद्ध हो रहा था और उन्हें लेफ्टिनेंट जनरल का सम्माननीय सैनिक पद दिया गया। इस मोर्चे पर उनका काम इतना अच्छा था, तथा उन्होंने इतने साहस और वीरता के काम किये कि सैनिक खरीतों (डिस्पैचों) में कई बार इनकी प्रशंसा की गयी। वहाँ से हटने पर ये रेलवे बोर्ड के इंजिनियर मेम्बर बनाये गये। इस पद पर भी ये पहिले भारतीय थे। इसी समय वे कुछ दिनों फेडरल पब्लिक सर्विस कमीशन के सदस्य रहे। अन्त में वे रेलवे बोर्ड के प्रथम भारतीय अध्यक्ष नियुक्त हुए। उन दिनों अध्यक्ष को 'चीफ कमिश्नर, रेलवेज' कहा जाता था। वे भारत में मोटर कारखाना खुलवाने को बहुत उत्सुक थे और उन्होंने बिड़लाओं को इसके लिए प्रेरित भी किया था। जब बिड़ला उसे खोलने को इस शर्त पर तैयार हो गये कि वे स्वयं उसका निर्माण करें, तब उन्होंने निः-संकोच अपने कार्यकाल समाप्त होने से प्रायः डेढ़ वर्ष पूर्व उस उच्च पद से त्यागपत्र दे दिया और भारत में मोटर बनाने के अपने स्वप्न को साकार करने में लग गये।

रुड़की विश्वविद्यालय ने जब प्रथम बार इंजिनियरी में सम्मानित डाक्टरेट देने का निश्चय किया तब प्रथम वर्ष उन्होंने सर लक्ष्मीपति को यह सम्मान दिया। उनके गुणानुवाद में हिन्दुस्तान मोटर्स के संबंध में कहा गया था--Architect of the Hindusthan Motors Ltd.

which he has built up from scratch. उसमें वे इतने एकाकार हो गये थे कि कारखाने से लौटकर वे अचेत हो गये। अक्षरशः हिन्दुस्तान मोटर्स के कार्यालय ही में उन पर मृत्यु का प्रहार हुआ।

वर्ल्ड ऐनसाइक्लोपीडिया आफ इंजिनियर्स में सर लक्ष्मीपति ही ऐसा भारतीय इंजिनियर हैं जिन्हें स्थान मिला। रेलवे इंजिनियर होकर वे आटोमीबील आदि इंजिनियरी की कई शाखाओं में निष्णात थे।

वे केवल इंजिनियर ही न थे, वे बड़े अच्छे खिलाड़ी थे और अंत तक टैनिस खेलते रहे। अपनी खेल-प्रियता के कारण वे दिल्ली जिमखाना, कलकत्ता क्लब और कलकत्ता साउथ क्लब के सक्रिय सदस्य रहे। मृत्यु के समय वे कलकत्ता साउथ क्लब के अध्यक्ष थे। वे स्वयं ही अच्छे खिलाड़ी न थे, वरन् औरों को भी खेलने के लिए प्रोत्साहित किया करते थे। उनके तृतीय पुत्र श्री सुमन्त मिश्र ने टैनिस के खेल में अखिल भारतीय ख्याति प्राप्त की थी।

वे साहित्यिक अभिरुचि के सज्जन थे। व्रजभाषा से उन्हें बड़ा प्रेम था और उसके कितने ही छन्द तथा बिहारी के अनेक दोहे उन्हें याद थे जो प्रसंगानुसार वे बातचीत में उद्धृत किया करते थे। वे वार्तालाप में बड़े कुशल थे। उनसे बात करना ज्ञान-प्राप्ति और मनोरंजन का संयुक्त साधन था। अपने रहन-सहन में वे बहुत सादा और स्वभाव से बड़े विनम्र थे। ऊँचे से ऊँचे समाज में वे रहते थे, किन्तु उन्होंने जीवन में कभी चाय या काफी नहीं पी। उनका भव्य व्यक्तित्व दर्शकों में आदर उत्पन्न करता था और उनकी मधुर वाणी से आत्मीयता टपकती थी। वे महान् तो थे ही, देखने से भी महान् लगते थे। वे सदैव होनहार नवयुवकों को प्रोत्साहित किया करते थे। उनके मार्गदर्शन और उनकी सहायता से आगे बढ़े हुए लोगों की गणना करना असंभव है। उनकी रीझ का एक उदाहरण हमें याद है। १९३६-३७ में लखनऊ में एक बड़ी सरकारी प्रदर्शनी हुई थी। हम उसके शिक्षा कक्ष के अधिकारी बनाये गये थे। यह कक्ष अकेले ही एक छोटी-मोटी प्रदर्शनी के बराबर था। हमने उसके द्वार पर प्रायः तीस फुट ऊँची साँची के तोरण की अनुकृति बनवायी। लकड़ी से उसका ढाँचा बनवाकर हमने कलाकारों से उस पर पोटीन से साँची तोरण के उभरे हुए चित्र बनवाकर उन्हें पत्थर के हलके लाल रंग से रँगवा दिया था। यह अनुकृति बड़ी सच्ची बन पड़ी थी। सर लक्ष्मीपति जब प्रदर्शनी में आये तब इंजिनियर होने के कारण उसकी ओर आकर्षित हुए और बड़ी देर तक उसे देखते रहे। वे उससे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने कार्यकर्त्ताओं से पूछा कि यह तोरण किसने बनाया है। जब उन्हें हमारा नाम मालूम हुआ तब उन्होंने हमें बुलाया, हमारी बड़ी प्रशंसा की और अंत में बोले—"तुम्हें तो इंजिनियर होना चाहिए था।"

उनकी उदारता इसीसे प्रकट है कि उन्होंने छः लाख रुपये की निधि विधवाओं, रोगियों और छात्रों के लिए दान कर दी थी।

सर लक्ष्मीपति मिश्र रचनात्मक देशभक्ति के सजीव उदाहरण थे। उन्होंने देश के उद्योग-धंधों को बढ़ाकर देश की वास्तविक सेवा की। जिस सेवा और देश-प्रेम की भावना से उन्होंने सारे जीवन भारत की सेवा की वह अनुकरणीय है। उनके निधन से देश को एक अत्यन्त कुशल इंजिनियर की ही क्षति नहीं हुई, किंतु एक कर्मयोगी की हानि हुई है। हम उनके शोक-संतप्त परिवार के प्रति अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हैं।

भारत के स्वाभिमानी भिखारी—स्वाभिमान स्वतंत्र लोगों का लक्षण है क्योंकि स्वतंत्रचेता ही स्वाभिमान की विलासिता का उपभोग कर सकते हैं। देश स्वतंत्र हो गया है। इसलिए लोगों में स्वाभिमान आना ही चाहिए। अब वह आने लगा है। जिस प्रकार रस पेड़ की जड़ों में बनकर फिर ऊपर उठकर शाखाओं में होता हुआ फुनगी तक पहुँच जाता है उसी प्रकार स्वाभिमान हमारे समाज के निम्नतर वर्ग में आरंभ हुआ है। वह निम्नतर वर्ग है भिखारियों का। हिन्दुस्थान टाइम्स में ऋषिकेश का एक समाचार छपा है—"यहाँ कल भिखारियों और कोढ़ियों ने यह निश्चय किया है कि भविष्य में यदि उन्हें भीख में एक नया पैसा दिया जायगा तो वे उसे स्वीकार न करेंगे। अब दो नये पैसे से कम की भीख न स्वीकार की जायगी। जो भिखारी इस नियम को भंग करेंगे उन्हें बिरादरी से निकाल दिया जायगा।" इस शुभ समाचार से देश में उत्साह की लहर दौड़ जानी चाहिए और जनता को देश के उज्ज्वल भविष्य में विश्वास हो जाना चाहिए। इससे यह भी मालूम होता है कि सरकार के नये पैसे की क्या वकत है। एक नये पैसे ऐसी नगण्य वस्तु को भीख में स्वीकार करना भारत के स्वतंत्रचेता भिखारियों के स्वाभिमान और शान के विरुद्ध है। अब यदि बिना दान दिये आपके पेट में पीड़ा होती हो तो एक नये पैसे से काम न चलेगा। कम से कम दो नये पैसे निकालने पड़ेंगे। दान देने का संतोष और परलोक बनाने का नुस्खा इस महँगी के युग में सस्ता नहीं रह सकता। अब यदि दान देना हो तो भिखारी से पूछिए—"श्रीमन्! आप कम से कम कितने पैसे की भीख स्वीकार करने की कृपा करेंगे?" किन्तु वेतन-भोगी और पेंशनरों में अभी इतना स्वाभिमान भी नहीं आया जितना हमारे स्वतंत्रचेता भिखारियों में आ गया है। भारत के भिखारी जिंदाबाद!

उन्नीसवीं शती का मानववादी आन्दोलन

प्रोफेसर कुबेरनाथ राय

रचनात्मक वाङ्मय को चाहे हम समाज का प्रतिबिम्ब मानें या 'स्व' की व्यंजना, चाहे इसका उद्देश्य बहुजन हिताय हो या स्वान्तः सुखाय, इतना तो विवादोत्तर है ही कि रचनात्मक वाङमय, अर्थात् काव्य, उपन्यास, दर्शन राजनीति आदि जिसे नयी भाषा में "ह्यूमैनिटीज" कहा जाता है, किसी न किसी रूप में 'मनुष्य' से जुड़ा हुआ है। इसके अन्दर उद्घाटित सत्यों के अन्दर अन्तिम विश्लेषण में 'व्यक्ति' और 'समष्टि' की विधा से ऊपर का तत्त्व 'मनुष्य' सदैव वर्त्तमान मिलता है। महायुद्धोत्तर अस्तित्ववादी चिन्तनों में, महायुद्ध-पूर्व में स्थापित फ्यूचरिस्ट-सुरलियस्ट मूल्यों में सर्वत्र 'मनुष्य' विद्यमान है। इसका स्पर्श किसी भी अवस्था में अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। अतः सामान्य दृष्टि से देखने पर मानववाद या 'मनुष्य' की सत्ता वाङमय के जन्म से आज तक अविच्छिन्न रूप से नाना रूपों में सदैव विद्यमान रही है। फिर भी साहित्य और इतिहास में 'मानववाद' शब्द का एक रूढ़ अर्थ में प्रयोग होता है। मनुष्य के इतिहास में कुछ ऐसे युग आते हैं जिन्हें हम अन्धकार युग या 'गलित युग' (डिकेडेन्स) कहते हैं। जब मनुष्य के शरीर की, सौन्दर्य की, भौतिक प्रकृति की महिमा का तिरस्कार इस रूप में होता है कि ये पाप वृत्ति के उपादान हैं; जब स्वस्थ मन, मुक्त चिन्तन एवं मुक्त आत्म-विकास के ऊपर नियन्त्रण का लौह जाल लग जाता है; जब जीवन के घोर तिरस्कार को ही महत् आदर्श मान लिया जाता है; और जब इन सब के फलस्वरूप स्वस्थ धर्म के स्थान पर पाखण्ड का राज्य होता है तो हम ऐसे युग को अन्धकार युग कहते हैं। इसके प्रतिकूल है 'गलित युग'। जब सौन्दर्य की आराधना मानसिक सन्तुलन से हीन हो जाती है; जब सौन्दर्य से लोक-मंगल का भाव समाप्त हो जाता है; जब जीवन वासना की अंधकारमयी शक्तियों का गुलाम बन जाता है और साथ ही पाशविकता कला का रूप धारण कर लेती है; जब जीवन की आदर्शहीनता ही महत् आदर्श बन जाती है तो इसे हम 'गलित युग' कहते हैं। मानववाद इन दोनों के विरोध में उठनेवाला स्वस्थ आत्मा का विद्रोह है। यूरोप का मध्य युग (८वीं शती से १४ वीं शती) तो 'अन्धकार युग' के नाम से विख्यात है ही। हम भारतीय इतिहास में भी इसके उदाहरण पा सकते हैं। उदाहरण के लिए १७वीं, १८वीं एवं १९वीं शती (पूर्वार्ध) के अन्दर अन्धकार युग के लक्षण मिलते हैं; विशेषतः १८वीं शती में अंधकार युग एवं दरबारी वातावरण से गलित युग दोनों समानान्तर चलते हैं। इनकी प्रतिक्रिया में आता है १९वीं शती का मानववादी युग।

कहने का तात्पर्य यह कि मानववाद को अब एक रूढ़ अर्थ में लेते हैं। मानववादी युग का दूसरा नाम है रिनैसाँ (पुनर्जागरण) जो प्रत्येक अंधकार युग के बाद आता है। रिनैसाँ द्वारा प्रचारित जीवन दर्शन को ही मानववाद की संज्ञा देते हैं। देश-काल के कारण इस जीवन दर्शन में विभेद हुआ करता है, परन्तु इसके मूल उद्देश्य 'मनुष्य में आस्था' एवं 'जीवन की स्वस्थ आराधना' कभी नहीं बदलते हैं। सरदार कवलम् माधव पाणिक्कर ने १९५५ की 'इतिहास कांग्रेस' के अध्यक्ष पद से बोलते हुए भारत के मध्यकालीन उस गलित युग और अंधकार युग की चर्चा की है जो ९वीं शती से १२वीं शती तक भारत में व्याप्त था। पूर्वी भारत की डोम्बिनी साधनाएँ एवं तान्त्रिक मतवाद एवं उत्तर की संकीर्ण राजनीति, कला और साहित्य स्वस्थ सौन्दर्य की जगह पर वासनात्मक प्रवृत्तियों की प्रतिष्ठा (उदाहरण के लिए उस युग के बने मन्दिरों और मूर्त्तियों की नग्न एवं कामुक चेष्टाएँ एवं साहित्य में नायिकाओं के आंगिक अध्ययन तथा कुत्सित भाषा में लिखी गयी देव स्तुतियाँ) आदि हमारी संस्कृति के तत्कालीन रूप के परिचायक हैं। यह सौन्दर्यसाधना नहीं, 'डिकेडेंस' है। कालिदास ने यदि शृंगार चेष्टाओं पर लिखा है तो जीवन की अन्य उदात्त विधाओं पर भी उनकी लेखनी उसी प्रकार प्राणवान् है। शृंगार में केवल आंगिकता, मात्र ऐन्द्रिकता की साधना एक मनोविकार मात्र है। इस गलित युग की प्रतिक्रिया में श्री मद्रामानुज का भक्ति आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। परन्तु उत्तर की राजनैतिक परिस्थिति तब तक राहुग्रस्त हो चुकी थी।

फा० ४

वैष्णव आन्दोलन वास्तव में मानववादी आन्दोलन 'पुनर्जागरण' था। भक्ति मनुष्य के जीवन का तिरस्कार नहीं, जय-जयकार है। वह 'नरतनु' को सुरदुर्लभ कहकर घोषित करती है। यही नहीं, वैष्णव आन्दोलन के पास एक अपनी नयी सामाजिक परिकल्पना भी थी। इसके अनुसार शूद्र और स्त्री भी पुराण पढ़ सकते हैं। शूद्रों को और कहीं-कहीं यवनों तक को वैष्णव धर्म में दीक्षित किया गया। वैष्णव धर्म और इस्लाम के मेल से तर्कवादी चिन्तन भी कबीर आदि के द्वारा उसी प्रकार चला जिस प्रकार ईसाई धर्म और उपनिषद् के मेल से ब्रह्मसमाज। इतना होते हुए भी भक्ति आन्दोलन पूरे प्रकाश से खुलकर प्रज्वलित हुआ केवल १६वीं शती में। इसका कारण है राजनीतिक दासता। पंखों पर राहुकेतु बैठे थे इसलिए पुनर्जागरण व्यक्तिगत स्तर पर ही और अन्तर्मुखी वृत्तियों पर ही प्रभाव डाल सका। यह फड़फड़ा कर रह गया। मुक्त-पंखी उड़ान नहीं पा सका। नयी धरती, नया आकाश इसे नहीं मिल सका। केवल १६वीं शती के आसपास ही शृंखला कुछ ढीली हो गयी थी। इसके बाद आता है द्वितीय अंधकार युग १७वीं शती (उत्तरकाल) से १९वीं शती (पूर्वकाल) तक। फिर १८५७ की क्रान्ति आती है। परन्तु क्रान्ति से कुछ पूर्व ही मानववादी आन्दोलन का सूत्रपात बंगाल में हो जाता है। यह मानववादी आन्दोलन 'सम्पूर्ण पुनर्जागरण' (टोटल रिनैसाँ) था। इसमें दर्शन, समाज व्यवस्था, राजनीति, साहित्य, धर्म अर्थात् जीवन के प्रत्येक अंग पर पुनर्विचार हुआ। इन मानववादी संस्कारों के प्रवाह में विगत स्वतंत्रता आंदोलन चला एवं 'अभिनव हिन्दू धर्म' का प्राकट्य हुआ। वर्त्तमान हिन्दू धर्म अपना बाह्य आवरण बदल कर नवीन परिधान में हमारे सम्मुख खड़ा है। इसका श्रेय है उक्त मानववादी आन्दोलन को। विश्व के इतिहास में ऐसे 'सम्पूर्ण पुनर्जागरण' का उदाहरण कम मिलता है। हम इस 'सम्पूर्ण पुनर्जागरण' के उत्तराधिकारी हैं। अतः आवश्यक है कि इसके द्वारा स्थापित मूल्यों को ठीक से हृदयंगम करें।

(२)

१९वीं शती का यह 'सम्पूर्ण पुनर्जागरण' मूलतः हिन्दू महाजागरण था। यह एक ऐसा तथ्य है जिसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। इस हिन्दू महाजागरण की पृष्ठ-भूमि में तीन शक्तियाँ काम करती थीं। प्रथम है ईसाई-अभियान का प्रतिरोध, द्वितीय है 'दार-उल-इस्लाम' का अन्त, और तीसरा है हिन्दू धर्म का सर्वांगपूर्ण व्यक्तित्व। इतिहासकारों ने उक्त दोनों तथ्यों पर काफी विचार किया है परन्तु तीसरी की ओर बहुत कम का ध्यान गया है।

ईसाई-अभियान

ईसाई पादरियों की कार्य-प्रणाली विकृत और आक्रामक थी। वे प्रायः वंचनापूर्ण साधनों का प्रयोग करते थे। उन्होंने एक नकली उपनिषद भी रच लिया था, 'ईसा-उपनिषद', एवं मूर्ख जनता में अपने को ब्राह्मण कहकर प्रचारित करते थे। (देखिए 'कलकत्ता रिव्यू' भाग १६, पृष्ठ २३६) प्रारम्भ के प्रचारक जेसुइट मतावलम्बी थे और उनकी शब्दावली बड़ी ही कुत्सित रहती थी। स्मरण रहे कि भारत की ब्रिटिश सरकार की नीति धर्म-निरपेक्ष थी। वे व्यक्तिगत स्तर पर अवश्य इन अभियानों को सहायता दे देते थे, परन्तु सरकारी नीति से इन्हें प्रोत्साहन नहीं मिलता था। लार्ड मिण्टो ने एक बार पर्याप्त मात्रा में ईसाई-साहित्य जब्त करवा कर इन मिशनरियों को कड़ी धमकी दी थी। सरकारी विज्ञप्ति में लार्ड मिण्टो ने इनकी कड़ी भर्त्सना की है।* हिन्दुओं में इसकी दो प्रकार की प्रतिक्रिया हुई। एक तो इसने हिन्दू धर्म को आत्म-निरीक्षण के लिए प्रेरित किया। दूसरा यह कि इसने हिन्दुओं में वीर-भाव की सृष्टि की, जिससे वे इस आह्वान को स्वीकार करके द्वन्द्व के लिए उतर सके।

'दार-उल-इस्लाम' का अन्त

मुसलमानी हुकूमत में भारत को एक 'इस्लामी देश' ('दार-उल-इस्लाम') माना जाता था। हिन्दुओं का कोई अस्तित्व न था। यूरोप में भी यही धारणा-सी बन गयी थी। परन्तु मुस्लिम शासन के अन्त के साथ इस तथ्य का भी अन्त हुआ। विश्व ने स्वीकृत किया कि भारत हिन्दू देश है। सरदार पाणिक्कर ने अपनी पुस्तक 'द फाउण्डेशन्स ऑफ न्यू इण्डिया' में इस परिवर्त्तन की चर्चा की है। इसका एक व्यापक मानसिक प्रभाव पड़ा। हिन्दुओं

---

*"Without argument of any kind the (these papers) were full of hell and fire and still hotter fire denounced a whole race of men merely for believing in a religion they were taught by their fathers."—ये हैं उस विज्ञप्ति के शब्द।

इतना मानसिक बल आया कि वे विश्व के सम्मुख इसे 'अपना देश' कहकर अपने अधिकारों की चर्चा कर सकें। हिन्दू राष्ट्रीयता के राजनीतिक पहलू की ओर ध्यान देने वालों में छत्रपति शिवाजी प्रथम व्यक्ति हैं। उनकी इस भावना का प्रमाण जयसिंह को लिखा गया उनका पत्र है जिसका अँगरेजी अनुवाद सर यदुनाथ सरकार ने किया है। परन्तु अखिल जातीय स्तर पर इस भाव के राजनीतिक पहलू का विकास 'दार-उल-इस्लाम' की भावना के अन्त के बाद ही हुआ। सांस्कृतिक राष्ट्रीयता हममें सदैव विद्यमान थी परन्तु राजनीतिक चेतना का हममें अभाव था। अभाव का कारण था प्रतिकूल राजनीतिक परिस्थिति और बौद्धिक अन्धकार।

भारत को 'हिन्दुस्थान' के रूप में अनुभव कराने में इतिहासकारों का बहुत हाथ है। भारतीय इतिहास लेखन के प्रथम चरण में तो यह मान लिया गया कि हिन्दुओं का कोई इतिहास ही नहीं। जेम्स मिल द्वारा लिखित भारत का प्रथम इतिहास इस बात का प्रमाण है। इलियट और डासन की पुस्तक 'इस्लामी राज्यों की कथा' में "भारत का इतिहास उसके ही इतिहासकारों द्वारा कथित" रूप में रखा गया है और ये इतिहासकार मुसलमान हैं जिन्होंने हिन्दुओं के साथ कभी भी न्याय नहीं किया।* गंगा की घाटी में ही लगातार विद्रोह चार-पाँच शतियों तक होते रहे। दक्षिण और असम सदैव अविजित रहा। यहाँ तक कि कालिञ्जर का दुर्ग भी हर एक मुसलमान बादशाह के द्वारा नहीं जीता गया। इसका अर्थ है कि वह सदैव स्वतन्त्र रहा। यह एक विस्तृत विषय है जिस पर शोध की अब भी आवश्यकता है। (देखिए क० मा० पाणिक्कर: १९५५ की इतिहास-कांग्रेस का अध्यक्षीय भाषण)। पर मुस्लिम इतिहासकार निश्चय ही इस विषय पर प्रामाणिक नहीं माने जा सकते। भारतीय इतिहास लेखन का द्वितीय चरण लाता है मैक्समूलर, कीथ, विलियम जोन्स के द्वारा प्रचारित भारतीय महिमा से उद्बुद्ध यूरोपीय इतिहासकारों का दल। इन्होंने ही हिन्दूयुग के इतिहास की पुनर्कल्पना को सामने रखा। तीसरे चरण में हिन्दू इतिहासकार आते हैं जिन्होंने 'राष्ट्रीय इतिहास' के निर्माण का प्रयत्न प्रारम्भ किया। यह प्रयत्न अभी भी जारी है। इसका वर्तमान नेतृत्व डॉ० आर० सी० मजूमदार विद्याभवन के तत्त्वावधान में कर रहे हैं।

'हिन्दूधर्म का सर्वाङ्गपूर्ण व्यक्तित्व'

सर्वांगपूर्ण व्यक्तित्व का लक्षण है उसके अन्दर कोमल और कठोर दोनों तत्त्वों की संतुलित स्थिति। हिन्दू धर्म में स्नेह करुणा के साथ दर्प और घृणा को भी स्थान है। आदर्श व्यक्ति की परिभाषा में स्नेह करुणा, वीरपूजा के साथ शौर्य, दर्प, घृणा को भी सन्तुलन स्थान देना आवश्यक है। परन्तु दर्प और घृणा के विष को 'समत्व बुद्धि' (संतुलित स्थिति) के द्वारा शमित कर दिया गया है। जिस व्यक्ति और जिस जाति में दर्प और घृणा भर जाते हैं उसे दिशाभ्रमग्रस्त आकाश-कुसुम-लोभी और मृग-मरीचिका का जीव मानना चाहिए। हिन्दुओं की घृणा और दर्प को अलबेरूनी, जो महमूद गजनवी का प्रिय-पात्र था, देख चुका है। इसका अर्थ नहीं कि हिन्दू जाति सदैव 'जेनोफोबिया' (विदेशी-द्वेष) से पीड़ित रहती है। ऐसा भ्रम बहुतों को हो जाता है। उदाहरण के लिए एक आधुनिक भारतीय विद्वान् श्री नीरद चौधरी अपनी "बॉयग्राफी ऑव ऐन अननोन इण्डियन" में लिखते हैं कि "हिन्दुओं का देश-प्रेम उनकी घृणा के सर्प का जहर मात्र है" और जब तक हिन्दू इस घृणा को भूलेंगे नहीं उन्हें स्वस्थ दृष्टि नहीं मिलेगी और वे सांस्कृतिक सामाजिक विषयों पर ठीक से विचार नहीं कर सकेंगे तथा वे सदैव संकीर्णमन रहेंगे। (पृष्ठ ४२१) पर यह दृष्टिदोष है। 'घृणा' को अलग से देखने पर यह अमंगलकारी तथ्य मात्र है। इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। परन्तु भारतीय दर्शन के परिवेश में —'समत्व बुद्धि' और 'संतुलित स्थिति' के परिवेश में इसका अर्थ होता है 'सप्राणता'। यह ज्वलंत एवं जीवन्त व्यक्तित्व का लक्षण है। हत्या बुरी है। परन्तु कर्म-योग के समत्ववादी दर्शन में वह 'कर्म' बन जाती है और अर्जुन के धनुष की प्रत्यञ्चा पर दृढ़ निश्चय के साथ बैठ जाती है। हिन्दू-जाति की घृणा और दर्प १९वीं शती का राजनीतिक अवकाश पाकर ललकार उठा और

---

*उत्तर प्रदेश का मुस्लिम युग का इतिहास सबसे अन्धकारमय है। इस दिशा में शोध की अत्यन्त आवश्यकता है। तथ्य तो यह है कि उत्तर प्रदेश ने १२ वीं शती से १५ वीं शती तक मुस्लिम शासन से विद्रोह किया। उदाहरण के लिए कन्नौज का दुर्ग जयचंद की कौन कहे उसके पुत्र हरिश्चन्द्र के अधिकार में जीवनभर रहा और उसने नयी राजधानी स्थापित कर जीवन भर संघर्ष किया।

अपने सत्व को घोषित किया। प्रारम्भ में इसमें समत्व-बुद्धि का अभाव भले ही हो परन्तु बाद में तिलक-गांधी ने इसमें समत्व बुद्धि का प्रवेश करा के इसे विषहीन शौर्य का रूप दिया।

(३)

भारतीय पुनर्जागरण की पृष्ठभूमि में, जिसे मूलतः हिन्दू महाजागरण कह सकते हैं, उपर्युक्त तीन तथ्यों का स्पष्ट आभास मिलता है। भारतीय पुनर्जागरण की मानववादी साधना का प्रारम्भ तर्कवाद (रैशनलिज्म) से होता है। जिस प्रकार 'रैशनलिज्म' या तर्कवाद ने यूरोप में परम्परागत ईसाई मूल्यों का विरोध करके मनुष्य की महत्ता का प्रतिपादन किया और दूसरी ओर धर्म को पुनःसंस्कार देने का प्रयास किया, उसी तरह भारत के तर्कवाद ने भी एक ओर तो सनातन हिन्दू-धर्म के गलित संस्कारों पर निर्दय आघात किया और दूसरी ओर उसे नवीन संस्कार देकर स्वस्थ बनाने का प्रयत्न किया। १६वीं शती के यूरोपीय पुनर्जागरण के मानववाद का पृथक पहलू था 'तर्कवाद', और इसने धर्मसुधार तथा प्रोटेस्टेण्ट आन्दोलन को बौद्धिक भूमि प्रदान की। ठीक यही बात हमारे देश में भी हुई। ब्रह्मसमाज एवं आर्यसमाज की आधारभूमि उसी प्रकार तर्कवाद है जैसे प्रोटेस्टेण्ट धर्म की। इस तर्कवाद की तीन धाराएँ हमारे देश में, १९वीं शती में, बहने लगीं। निरुद्देश्य तर्कवाद (डिरोजियन आन्दोलन), सोद्देश्य और भविष्यमुखी तर्क-वाद (ब्रह्मसमाज) सोद्देश्य पर भूतमुखी तर्कवाद (आर्य समाज)।

निरुद्देश्य तर्कवाद: ''क्रुद्धतरुण''

बंगाल से बाहर की नयी पीढ़ी को उस आन्दोलन के बारे में कम ही ज्ञान है जिसे 'तरुण-बंग-आन्दोलन' या डिरोज़ियन-आन्दोलन कहते हैं। इसके मार्गदर्शक थे डिरोज़ियो साहब। इस आन्दोलन का भारतीय बुद्धिवाद के जागरण में अप्रत्यक्ष हाथ है। यह बंगाल के तरुणों को परम्परागत मूल्यों के उन्मूलन की ओर ले गया। इसका उद्देश्य था 'आमूल परिवर्त्तन।' उक्त यूरोपियन नवयुवक की शिक्षा नास्तिवादी (निहिलिस्ट) थी। १८१७ में कलकत्ता कॉलेज की स्थापना हुई। इसके कुछ छात्रों ने शेक्सपियर के साथ-साथ गोमांस और मदिरा का आस्वादन करना प्रारम्भ कर दिया। ये "क्रुद्धतरुण" (Angry Youngmen) खुले आम ये सब हरकतें क थे। इस आन्दोलन का मूल उपदेश था 'पूर्ण पश्चिमी करण।' परन्तु इसके रचनात्मक प्रोग्राम की नींव नास्ति वाद पर थी, अतः यह टिका नहीं। यह धूमकेतु की त भारतीय क्षितिज पर उगा और पुनर्जागरण के प्रभात क्षीण होकर मृत्यु को प्राप्त हुआ।

जब कभी भी परम्परावादी कृषि-प्रधान सभ्यता प पश्चिमी भावों की नयी नयी छाप पड़ी है तो एक विचि प्रकार का जीव पैदा हुआ है जिसे 'क्रुद्धतरुण' या 'ड जुआन' कह सकते हैं। यह क्रान्तिकारी नहीं होता है बल्कि विध्वन्सक मात्र होता है। इसका मस्तिष्क जनवादी न होता है बल्कि घोर वैयक्तिक सामन्तवाद का प्रतीक हो है। बंगाल के इन तरुण 'लार्ड बायरनों' का चित्र माइके मधुसूदन दत्त ने अपनी पुस्तक 'एई की बले सभ्यता' में दि है। इसमें नायक (एक अभिनव–'लार्ड बायरन') शरा पीकर अपनी बहन का ही हाथ पकड़ लेता है। यों प्रत्ये अँगरेजी साहित्य का विद्यार्थी लॉर्ड बायरन और उस सौतेली बहन के सम्बन्ध को जानता है। रूढ़ि मुक्ति आदर्श लेकर चलनेवाले विध्वंसक तरुण बंगालियों दल अधिक दिन तक सक्रिय नहीं रह सका। इनका टी युवावस्था में ही महामारी में समाज-सेवा करते हुए मर उसके बाद कोई इनका मार्गदर्शक न रहा। डिरोजि का दर्शन चाहे विध्वंसक हो या और कुछ हो, परन्तु इ देश की सुप्त बौद्धिकता को ठोकर कसकर दी। डिरोजि को इस देश से घोर प्रेम था। इसमें कोई संदेह नह २२ वर्ष की अल्प अवस्था में, १८३१ में, इस त यूरोपियन की मृत्यु हो गयी। उसकी एक कविता 'भार मेरा स्वदेश' इस देश के प्रति उसके प्रेम का परिचय दे है। वह सचमुच देश राष्ट्र की सीमाओं से परे वि मानवता में विश्वास करता था।

सोद्देश्य तर्कवाद: भविष्यमुखी

तर्कवाद के खड्ग ने इस देश में ब्रह्मसमाज और आ समाज के द्वारा रचनात्मक भूमिका अभिनीत की इसके पीछे डिरोजियनों की निरुद्देश्यता नहीं थी। इ विशिष्ट उद्देश्य था: सुधार एवं जागरण। ब्रह्मस की प्रेरणा का स्रोत पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान था। इ हम इसे भविष्यमुखी कह सकते हैं। परन्तु महर्षि दया का आर्यसमाज वैदिक अतीत से प्रेरणा ग्रहण कर रहा

ब्रह्मसमाज की स्थापना राजा राममोहन राय (१७७४–१८३३) ने की। इनका परिवार मुर्शिदाबाद से आया था। सभी धर्मों के प्रति उनका दृष्टिकोण तर्कवादी था। ये संस्कृत अरबी फारसी के अतिरिक्त हिब्रू-लैटिन-ग्रीक अँगरेजी तथा फ्रेंच के अच्छे जानकार थे। उन्होंने राहुलजी से बहुत पूर्व तिब्बत की यात्रा करके लामाओं से बौद्ध धर्म की जानकारी करने का प्रयत्न किया। ये प्रथम हिन्दू थे जिसका दृष्टिकोण अन्तर्राष्ट्रीय था। ये धर्म गुरु नहीं थे, बल्कि इन्होंने एक समाज-सुधारक मात्र बनकर कार्य किया। इनकी प्रथम पुस्तक 'प्रिसेप्टस ऑव जेसस: एक गाइड टु पीस एण्ड हैप्पिनेस' ईसाई धर्म की स्वतंत्र व्याख्या है। परिवार मूलतः वैष्णव था। मूर्त्तिपूजा विरोधी होते हुए भी माता को जगन्नाथपुरी ले जाकर जगदीश का दर्शन कराया। उस अविकसित युग की अपनी एक सीमा थी। उक्त सीमा के अन्तर्गत जितना प्रगतिवाद पनप सकता है, इनकी प्रतिभा ने पनपाने की चेष्टा की।

ब्रह्मसमाज का संक्षिप्त इतिहास इस प्रकार है। १८१५ में राममोहन राय ने सुधारवादी आदर्शों से प्रेरित होकर (जिनके पीछे पश्चिमी दृष्टिकोण तथा तत्कालीन ईसाई प्रभाव था) एक '**आत्मीय समाज**' नामक गोष्ठी की स्थापना की एवं सती प्रथा, वर्ण व्यवस्था, मूर्त्तिपूजा आदि को हटाकर ब्रह्मवादी दृष्टि की पुनर्प्रतिष्ठा के लिए उपनिषदों की बंगला व्याख्या प्रस्तुत की। उसी समय "क्रुद्ध तरुणों" (डिरोजियनों) ने एकाडेमिक एसोसिएशन की स्थापना की। 'आत्मीय समाज' बुद्धिजीवियों की गोष्ठी भर थी। "क्रुद्ध तरुणों" की उच्छृंखलता और ईसाई मिशनरियों के कुप्रचार से क्षुब्ध होकर उन्होंने एक महती सभा की आवश्यकता समझी और 'आत्मीय समाज' भंग करके १८२८ में बृहत दायरे में '**ब्रह्मसमाज**' की स्थापना की। अन्य लोगों के साथ इन्हें राजा द्वारकानाथ टैगोर तथा महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर का सहयोग प्राप्त था जो कवीन्द्र-रवीन्द्र के पितामह और पिता थे। टैगोर परिवार (कवीन्द्र से सम्भवतः १३ या १४ पुश्त पहले) कान्यकुब्ज देश (यू० पी०) का एक ब्राह्मण परिवार था। परन्तु द्वारकानाथ के समय ये लोग कुछ हीन माने जाते थे। इनके खानदान में किसी व्यक्ति ने मुसलमानी पुलाव खा लिया था, इसी कारण से ये लोग हीन माने जाते थे। १८३३ में राजा राममोहन राय की मृत्यु हो गयी। तब 'समाज' के नेता महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर हुए। स्मरण रहे कि प्राचीनतावादी हिन्दू धर्म भी चुप नहीं बैठा था। १८२८ में ही राय बहादुर राधाकान्त देव की अध्यक्षता में 'धर्मसमाज' की स्थापना हो गयी थी। जिसका उद्देश्य था ब्रह्मसमाज के पश्चिमी आदर्शों से संघर्ष। महर्षि और देव महाशय आपस में कई मामलों में सहयोग भी करते थे। उदाहरण के लिए भारत की सर्वप्रथम राजनीतिक संस्था है राजा द्वारकानाथ टैगोर द्वारा स्थापित (१८५१) 'ब्रिटिश इण्डिया एशोशियेशन' जिसके महर्षि सभापति थे और श्री देव सेक्रेटरी। श्री देव संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् भी थे। उनका कई भागों में लिखा संस्कृत अभिधान हाल ही में 'चौखम्भा' (काशी) से पुनर्मुद्रित हुआ है। इस प्रकार ईसाई-अभियान, "क्रुद्धतरुण", ब्रह्मसमाज और धर्मसमाज ये चार बौद्धिक शक्तियाँ १८५७ के गदर के बीसों वर्ष पूर्व बंगाल के क्षितिज पर आपस में टकराने लगीं।

महर्षि के नेतृत्व के साथ-साथ ब्रह्मसमाज का दूसरा चरण चलता है। महर्षि दार्शनिक अधिक थे और धर्म-सुधारक कम। "काव्य-शास्त्र विनोदेन" कालयापन करने-वाले व्यक्ति थे। आध्यात्म चिन्ता की ओर उनकी आत्मा सजग थी। इन्होंने एक गोष्ठी, 'तत्व बोधिनी सभा', भी स्थापित की थी जिसमें पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि सनातनी विद्वान् भी आते थे। १८५९ में यह सभा इन्होंने भंग कर दी।

ब्रह्मसमाज आन्दोलन का तीसरा चरण चलता है केशवचन्द्र सेन के प्रवेश के साथ। १८६२ में केशव बाबू आचार्य की गद्दी पर बैठे। ये कुशल वक्ता और प्रतिभाशाली तेजस्वी व्यक्ति थे। इनकी प्रथम टक्कर ईसाई मिशनरियों, यथा रेवरेण्ड लालबिहारी डे, डायसन आदि के साथ हुई। इसीसे इनका मानी व्यक्तित्व ब्रह्मसमाज में चला आया, अन्यथा ये ईसाई धर्म से अति प्रभावित थे। इनका झुकाव बाइबिल की ओर था और महर्षि का उपनिषदों की ओर। केशव बाबू के अनेक व्याख्यान जेसस क्राइस्ट पर हुए हैं, जैसे 'इण्डिया आस्क्स व्हू इज़ जेसस' 'जेसस एण्ड एशिया।' इनके मरने के बाद ईसाई पत्रिका 'इण्डियन क्रिश्चियन हेराल्ड' ने शोक प्रकट करते हुए इन्हें 'ईसाई धर्म का बन्धु' कहा था। महर्षि को ये सब बातें अच्छी नहीं लगीं। फलतः एक बौद्धिक-संघर्ष चला। कालान्तर में केशव बाबू ने '**भारतवर्षीय ब्रह्मसमाज**' की

अलग से स्थापना की। **'आदि ब्रह्मसमाज'** टैगोर परिवार के हाथ में रहा। पर आकर्षण केशव बाबू वाले दल में ही था।

इस विच्छेद के बाद ब्रह्मसमाज का चौथा चरण चलता है। १८७८ में 'भारतवर्षीय समाज' भी दो भागों में फिर बँट गया। रुष्ट लोगों का **'साधारण ब्रह्मसमाज'** और केशव पंथियों का 'नव **विधान ब्रह्मसमाज'**। ब्रह्म-समाज में बालविवाह का विरोध था परन्तु केशव बाबू अपनी बालिका पुत्री का विवाह कूचबिहार के राजा से करने का अवसर पाकर चूके नहीं। इससे भी लोगों की आस्था उन पर से घट गयी। बाद में यह हिन्दू-समाज में आत्मसात् हो गया। इसे आत्मसात् होना ही था, क्योंकि क्षितिज पर प्रचण्ड सूर्य का उदय हो जाने पर उषा को विलीन होना ही पड़ता है। वह प्रचण्ड सूर्य था रामकृष्ण परमहंस देव का व्यक्तित्व। परमहंस देव के साथ केशव बाबू के सम्बन्ध बड़े ही मधुर थे। केशव बाबू मन से बड़े ही उदार व्यक्ति थे और परमहंस देव के संसर्ग में आकर अन्तिमकाल में उनके विचारों में अधिक भार-तीयता आ गयी थी।

ब्रह्मसमाज की देन अकथनीय है। हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रारम्भिक रूप, हमारे प्रजातंत्र एवं संविधान के आदर्शों की आधारशिला, हमारे दृष्टिकोण में 'समन्वय-वाद' और 'पुनर्परिष्कार' इन दो महत् वृत्तियों का प्रवेश, वर्त्तमान शिक्षाप्रणाली, वर्त्तमान प्रेस और जनमत का समारम्भ आदि सभी की नींव इसी ब्रह्मसमाज के बुद्धि-जीवी नेताओं ने डाली थी। कालान्तर में यह नवीन भारत एवं नवीन हिन्दुत्व की नींव की एक ईंट मात्र रह गया, फिर भी नींव की ईंट का महत्त्व सभी को ज्ञात है। यह सनातन धर्म की शाखा आज भी नहीं, तब भी नहीं था। परन्तु हिन्दू धर्म (वेदान्त प्रधान) की शाखा तब भी था आज भी है। आधुनिक बुद्धिजीवी मध्यम वर्ग का प्रारम्भ ब्रह्मसमाज में ही होता है। आधुनिक भारत की रचना इसी वर्ग ने की है। हिन्दू-समाज में विलीन हो जाना ब्रह्मसमाज की सबसे बड़ी सफलता और सबसे बड़ी सिद्धि है। कट्टर ब्रह्मसमाजी भले ही इस तथ्य को नहीं मानें, परन्तु इतिहास का यही निर्णय है।

सोद्देश्य तर्कवाद : भूतमुखी

आर्य-समाज का सामाजिक चिन्तन, ब्रह्मसमाज के ही अनुरूप था। परन्तु दो प्रधान प्रश्नों पर यह ब्रह्मसमा[ज] से अलग है। इसका तर्कवाद अतीत (वैदिकयुग) [से] उत्प्रेरित है। इसका उद्देश्य नवीनयुग-धर्म का स्वागत नहीं अतीत की पुनर्स्थापना "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" है। दूसर[ा] यह कि यह समन्वयवादी नहीं संघर्षवादी है। यह ईसा[ई] धर्म और इस्लाम से समन्वय बरदाश्त करने के लिए तैया[र] नहीं, उलटे प्रहार करता है। यही कारण है कि आर्य-समा[ज] की राष्ट्रीयता कट्टर और उग्र है। उसमें नरमपंथ[ी] उदारवादी (लिबरल) आदर्शों की छुआछूत भी नहीं हजारों की संख्या में शुद्धि करना एवं बिना सौदाबाजी [के] अपने सत्य की रक्षा में अड़ जाना ब्रह्मसमाज के कार्यकर्त्ता[ओं] की शक्ति के बाहर की बात है। ब्रह्मसमाज का ए[क] बौद्धिक मूल्य है—स्थायी बौद्धिक मूल्य। परन्तु राष्[ट्र] निर्माण के सक्रिय सार पर एवं राष्ट्रीय आन्दोलन के संचा-लन में आर्यसमाज का ब्रह्मसमाज से अधिक योगदान है। गान्धीवादी आन्दोलन का सामाजिक दर्शन आर्य-समाज से ही आता है। लाला लाजपतराय, देशबन्धु गुप्त, श्रद्धानंद महात्मा हंसराज वगैरह राष्ट्रीयता के कर्मठ कार्यकर्त्ता थे। ब्रह्मसमाज को सफलता मिली है बौद्धिक मूल्यों को गढ़ने में, तो आर्यसमाज का योगदान है चारित्रिक एवं नैतिक मूल्यों की स्थापना में। दयानन्द के बारे में महान् ईसाई साहित्यकार नोबेल-पुरस्कार विजेता रोमे रोलां अपनी पुस्तक 'रामकृष्ण परमहंस देव' में लिखता है— "पश्चिमीकरण औचित्य की सीमा से बाहर जा रहा था और सदैव यह उत्तम तत्त्वों को ही नहीं प्रदान कर रहा था बल्कि अनेक अवांछनीय तत्त्वों को भी इससे प्रोत्साहन मिल रहा था। इससे एक उत्तरदायित्वहीन छिछली दृष्टि विकसित हो रही थी जो विचार-स्वातन्त्र्य के लिए घातक थी...और नवीन पीढ़ी को भारत से घृणा करना सिखाती थी। दयानंद और उनकी पीढ़ी ने चिन्ता, दुःख और आक्रोश के साथ भारत की नसों में यूरोपीय तर्कवाद के छिछले तत्त्वों का प्रवेश तथा ईसाई धर्म का प्रवेश देखा। यह ईसाई धर्म जेसस के कथन को, 'मैं बाप को बेटे से अलग कर दूंगा,—अक्षरशः शाब्दिक अर्थ में सत्य कर रहा था।" (पृष्ठ १४७) "यह स्वामी दयानन्द थे जिन्होंने (हिन्दू समाज के) जागरूक प्रहरी का कार्य किया।" (पृष्ठ १५८) "ब्रह्मसमाज पर जाने या अनजाने पश्चिम के ईसाई धर्म की मुहर लगी थी।" रोमेरोलाँ ने उन[के]

१९६४

पुस्तक में दयानन्द को बंगभंग आन्दोलन का अखिल भारतीय स्रोत बताया है। दयानन्द ने खुलेआम इसके प्रति अपनी उदासीनता प्रकट की थी। परन्तु जिस अग्निमय राष्ट्रीयता का उपदेश वे दे रहे थे उसके अन्दर इस अवसर पर चुप बैठने का आदेश ही नहीं था।

महर्षि दयानन्द (१८२४-१८८३) का जन्म मोर्वी (सौराष्ट्र) में हुआ था। इनके गुरु मथुरा के अन्ध संन्यासी विरजानन्द थे। काशी में ३०० पण्डितों से एक साथ शास्त्रार्थ किया। १८७२ में कलकत्ता आये थे और केशव चन्द्रसेन के ब्रह्मसमाज में इनका स्वागत हुआ। केशव बाबू ने इनसे सहयोग करने की इच्छा की परन्तु दयानन्द स्वामी ने अस्वीकार कर दिया। ईसाई-परक ब्रह्मसमाज से संधि करने का प्रश्न ही नहीं उठता। संधि के तीन प्रयत्न हुए। अन्तिम प्रयत्न १८७७ में हुआ जिसे स्वामी दयानन्द ने भर्त्सनापूर्वक ठुकरा दिया। १८७५ में इन्होंने बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की।*

फिर भी आर्यसमाज ने प्रारम्भ में ही एक भूल कर दी। वह संहिताओं की ओर गया। परन्तु भारत का वर्त्तमान धर्मग्रन्थ संहिताएँ नहीं 'गीता' है। 'गीता' में वेदों का अतिक्रमण करने का स्पष्ट आदेश है। वैदिक यज्ञवाद के विरोध में सभी स्थलों पर कथन मिलते हैं। यदि महर्षि दयानन्द ने अपने सारे सामाजिक सुधारों को रखते हुए 'गीता' का आधार लिया होता तो अधिक सफल होते। वे भारत की कल्पना को उस अवस्था में अधिक आर्कषित करते। विवेकानन्द ने जिस भक्ति और कर्मनिष्ठ वेदान्त का समन्वय किया वह स्वामी दयानन्द के हाथों होता तो और अधिक सक्रिय होता। स्वामी दयानन्द के हाथ स्वामी विवेकानन्द से अधिक मजबूत सिद्ध होते क्योंकि दयानन्द का माध्यम (हिन्दी) भाषा थी और उनकी संगठन की मशीनरी अधिक शक्तिशाली थी। वे तिलक और स्वामी विवेकानन्द दोनों के संयुक्त रूप होते। पर वैसा नहीं हुआ। (स्वामी दयानंद को हिन्दी माध्यम बनाने की सलाह केशवचन्द्रसेन ने दी थी। केशवबाबू की एक मात्र यही सलाह वे माने। रोमें रोलाँ; 'परमहंसदेव' पृष्ठ १४६)। फिर भी गान्धीवादी आन्दोलन की सामाजिक भूमिका स्वामी दयानन्द के द्वारा कल्पित है।

(३)

राधास्वामी-सत्संग, देवसमाज, प्रार्थनासमाज आदि साधना-पक्ष के प्रयत्न मात्र हैं। उनका मानववादी आन्दोलन में कोई योगदान नहीं। राधास्वामी सत्संग यू० पी० के सामन्तों और ब्यूरोक्रैटों में अधिक समादृत हुआ। परन्तु उत्तर प्रदेश का बौद्धिक और राष्ट्रीय आन्दोलन मध्यवर्गीय जनता का अन्दोलन है। अतः इन साधनापक्ष के प्रयत्नों का मानववादी आन्दोलन में विशिष्ट योग नहीं। हाँ, एक आन्दोलन और है 'थियोसोफिकल सोसायटी' (१८७५ में स्थापित) जिसका मद्रास और बनारस में काफी जोर था। श्रीमती एनी बेसेण्ट इसकी केन्द्रीय व्यक्तित्व थीं। 'गीता' और 'उपनिषद्' इस आन्दोलन के मुख्य ग्रंथ (कम से कम भारत में) बने। यह विश्वव्यापी आन्दोलन था। भारत में इसकी राजनीतिक भूमिका भी है। परन्तु इतना होते हुए भी यह गुरुडम में समाप्त हो गया। कृष्णमूर्त्ति को एनी बेसेण्ट ने ईश्वर का अवतार कहना शुरू कर दिया। विवेकानन्द ने इस प्रवृत्ति की खुले तौर पर निन्दा की। कवि जयशंकरप्रसाद ने अपने पुत्र रत्नशंकरजी को एनी बेसेण्ट स्कूल से इसी पर चिढ़ कर निकलवा लिया। एनी बेसेण्ट का राजनीतिक योगदान महान् है। परन्तु यह थियोसोफिकल सोसायटी राधास्वामी सत्संग से अधिक कार्य न कर सकी। कृष्णमूर्त्ति एक पवित्र व्यक्ति मात्र हैं। इससे अधिक नहीं। ये सब आन्दोलन बाद के हैं।

(४)

उपसंहार : "ज्ञान येथा मुक्त उच्च येथा शिर"

इस मानववादी आन्दोलन के जीवन दर्शन के सर्वोच्च मूल्य रवीन्द्रनाथ की एक कविता में सूत्र रूप से कथित हैं—"जहाँ मन भय-मुक्त है, जहाँ मस्तक ऊँचा रहता

---

*इस कलकत्ता यात्रा (१८७२) में नवयुवक दयानन्द की परमहंस देव रामकृष्ण से भी भेंट हुई थी। परमहंस देव ने "है, थोड़ा-थोड़ा" कहकर उनका मूल्यांकन किया था। उस समय स्वामी दयानंद का आर्य-समाज नहीं स्थापित हुआ था। परमहंस देव का दृष्टिकोण आध्यात्मिक था और स्वामी दयानंद का कर्म-प्रधान दर्शन एवं उनका संगठनात्मक मूल्य अभी अज्ञात था। आध्यात्मिक या साधनात्मक तुला पर परमहंस देव ने आँक कर उन्हें "अल्प शक्तिवाला" कहकर स्वीकार किया था। (रोमें रोलाँ, पृष्ठ १६३-१६४)

है, जहाँ ज्ञान मुक्त है, जहाँ विश्व संकीर्ण प्राचीरों से विभक्त नहीं, जहाँ शब्द सत्य के अन्तराल से उठते हैं, जहाँ भावना बाँह पसार कर पूर्णता की ओर उन्मुख है, जहाँ विवेक की निर्मल धारा मृत संस्कारों के मरु में अपना पथ नहीं भूलती है, जहाँ मन को तुम सदैव विकासमान विचार और क्रिया की ओर ले जाते हो, हे मेरे पिता, मेरे प्रभु, तुम मेरे स्वदेश को उस मुक्त स्वर्ग में, अपने हाथों से निर्दय आघात कर के भी, जागृत करो।" मानववादी आन्दोलन की सारी फिलॉसफी सूत्र रूप से यहाँ कवि ने कह दी है। कवि इस मानववाद के सर्वोच्च व्याख्याता एवं सर्वोच्च प्रतिफल थे। वे अपेक्षाकृत राष्ट्रवादी कम थे और मानववादी अधिक। उनकी राष्ट्रीयता सीमित राष्ट्रीयता थी।

हिन्दूसमाज पर इस मानववादी आन्दोलन का प्रभाव दो प्रकार का हुआ : समन्वय-वृत्ति का प्रवेश और ऐतिहासिक चेतना का जन्म। गीता की कर्मवादी व्याख्या, वेदान्त की मानववादी और कर्मवादी व्याख्या; पश्चिमी भौतिकवाद के परिवेश में नये जीवनदायी मूल्यों का शोषण इसी समन्वयवादी वृत्ति के फल हैं। इसका चरम फल हुआ हिन्दू-धर्म की वृद्ध आत्मा का मुक्त विस्तार। दूसरा यह कि वर्तमान हिन्दू दर्प अतीत से बल पाकर अपने अतीत के कर्त्तव्य को पहचानने लगा। उसे खड़ा होने का ऐतिहासिक आधार मिल गया। उसके शास्त्रों की प्रामाणिकता धीरे-धीरे सामने आने लगी। दोनों वृत्तियों के फलस्वरूप हिन्दू-जीवन में प्रगति और स्वाभिमान आये तथा प्राचीन गलित विधान टूटने लगे। सोचने की शैली ही बदल गयी। चिन्तनशैली का परिवर्त्तन एक बड़ी घटना है।

इस मानववादी आन्दोलन का भारतीय समाज पर प्रभाव यह पड़ा कि इसने 'नवीन मध्य वर्ग' की सृष्टि की। यह मध्य वर्ग औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप पुरानी वर्णव्यवस्था टूटने के कारण पैदा हुआ। इस नवीन मध्य वर्ग का माप 'धन' या अधिकार' नहीं था, बल्कि 'शिक्षा' थी। यह आर्थिक रूप से स्वतंत्र था; किसी राजा या धनी का आश्रय लेने की इसे आवश्यकता न थी। इस मानववादी आन्दोलन के कारण 'शिक्षा' का स्वरूप धर्म-निरपेक्ष हो गया था। धर्म-निरपेक्ष 'शिक्षा' में मँजा हुआ, आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र, यह मध्य वर्ग विचार-स्वातंत्र्य का अग्रणी बना। भारत का बहुत कुछ रूप जो आज इसी स्वाधीन मध्य वर्ग की देन है। इसमें पत्रकार, वकी डाक्टर और शिक्षक आते हैं। विशेषतः वकीलों ने राष्ट् आन्दोलन के आरम्भिक दिनों में एक महान् भूमि का निर्वाह किया है। वर्ग संस्कृति का उदय औ मध्यम वर्ग की सृष्टि का प्रभाव राष्ट्रीय चेतना के मु प्रवाह में बहुत दूर तक गया है।

मध्यवर्गीय संस्कृति के उद्भव के साथ-साथ शिक्षा धर्मनिरपेक्ष आदर्श की स्थापना इस आन्दोलन की दूस सामाजिक देन है। ईश्वर का शिक्षा से कोई मतलब रहा। इसका एक सुन्दर फल हुआ विचार-स्वातं परन्तु इसके कुफल भी कम नहीं। शिक्षा में नैतिक दृष्टिको को स्थान न देने से इसका रूप 'कमाऊ' ज्यादा, और 'लो संग्रही' कम हो गया। विद्या और चरित्र दो प्रकार भिन्न वस्तुएँ मान ली गयीं। आज भी विश्वविद्यालयों अकथनीय काण्ड सुनने में कभी-कभी आ जाते हैं। इ बुद्धि-स्वातंत्र्य ने उच्छृंखलता को कम प्रोत्साहन नहीं दि है; और कभी-कभी तो एक छिछली दृष्टि निर्माण कर में ही इसका सारा प्रयत्न बल-रिक्त हो गया। रचनात्म प्रोग्राम के लिए कुछ इसके पास बचा नहीं। इस शि का जनक मैकाले था। यद्यपि यह भी सही है कि प्राची शिक्षा-प्रणाली से हमें दूसरे प्रकार की हानियाँ उठा पड़तीं और लेखा-जोखा लेने पर अन्त में प्राचीन प्रणा अधिक हानिप्रद ज्ञात होती है। इसीसे राममोहन रा ने कम्पनी के डायरेक्टरों के इस निर्णय का तीव्र प्रतिवा किया था कि संस्कृत के माध्यम से भारत में शिक्षा दी जा फिर भी अब समय आ गया है कि शिक्षा के दृष्टिको और **माध्यम** दोनों पर फिर से विचार किया जाय।

मानववाद की सबसे बड़ी देन है भारतीय राजनीति ब्रह्मसमाज की राजनीति लिबरल (उदारवादी) थी प्रारम्भ में कांग्रेस की नरमपंथी नीति भी इसी उदारवा राजनीति का एक रूप थी। लिबरल आदर्शों में कट राष्ट्रीयता के लिए स्थान नहीं। मद्रास के गवर्नर ट्रेवलि (देखिए, 'आन एजूकेशन ऑफ पीपुल इन इण्डिया' १८३८; पृष्ठ १८९) ने कहा था कि अँगरेजी शिक्षा दे हम अपना एक बहुत बड़ा सहायक वर्ग तैयार कर रहे **"भारतीय हमारे विरुद्ध कभी भी क्रान्ति नहीं करेंगे ... क्योंकि शिक्षित भारतीय समाज, यह सोचकर कि हमा**

शिक्षा-प्रणाली पर आधारित भारतीय समाज की उन्नति बिना हमारे संरक्षण के संभव नहीं, सदैव हमसे चिपका रहेगा।"

आज से ११५ वर्ष पहले कही बात कितनी सटीक है। न तो क्रान्ति काल में लिबरल पंथियों ने खुलकर कट्टर राष्ट्रीयता का समर्थन किया और न आज करते हैं। गांधीजी और तिलक तथा लाजपतराय के नारों से उदारवादी मध्यम वर्ग का राजनीति से प्रधानत्व उठ गया। यह आन्दोलन, यद्यपि नेतृत्व मध्यवर्ग करता था, जन-आन्दोलन हो गया। उस समय तिलक और दयानन्द की उग्र राष्ट्रीयता हमारे आदर्शों का ध्रुव थी। उक्त काल में लिबरल राजनीतिज्ञ सरकारी पदों की ओर एवं कौंसिलों में चले गये। आजादी के बाद लिबरलों का समूह शासन पर छा गया। हमारा विधान, हमारी शासन-व्यवस्था, हमारी सांस्कृतिक नीति एवं हमारा समाजवाद सब कुछ 'लिबरल' है। कांग्रेसी समाजवाद मार्क्स-लेनिन-पंथी न होकर 'फेबियन' है। ये लिबरल-आदर्श इस सीमा तक बुरे नहीं। परन्तु स्थिति आगे तक जा रही है। भय है कि कहीं 'लिबरल' से घटकर यह नौकरशाही मात्र न हो जाय और सहस्रशीर्षा सहस्र-बाहु जनता जनार्दन को, जिनके कंधे पर निर्माण का जुआ रखा है, अपमान, प्रताड़ना और उपहास ही मिले और सागर-मंथन की रत्नराशि देवगण आपस में बाँट लें। लेखक को सर रमेशचन्द्र मित्र की एक बात, जो उन्होंने १८९६ की कांग्रेस में कही थी, याद आती है—"शिक्षित वर्ग ही देश का मस्तिष्क और अन्तःकरण है.... सदैव शिक्षित वर्ग ही काम करनेवाले वर्ग पर शासन करता आया है, तो इसी देश में हम इसे क्यों उलटा करें? यह उलटना अस्वाभाविक बात है।" मध्यवर्ग का यह दर्प आज भी धरती के (सहस्रशीर्षा) शेषनागों के फण पर पदाघात कर रहा है।

धरती का श्रृंगार

श्री जगदीशचन्द्र शर्मा

वासन्ती अपने हाथों से धरती का श्रृंगार कर रही—
मिट्टी के कण-कण में नूतन आभा का संचार कर रही।

स्नेहमयी सज्जाएँ लाकर,
चतुराई से उन्हें सजाकर,

चिर गोपन की पृष्ठभूमि से,
संजीवन्निधियाँ सरसाकर,

अनायास ही वसुन्धरा पर नंदनवन साकार कर रही—
वासन्ती अपने हाथों से धरती का श्रृंगार कर रही।

खिला मधुर जीवन का शतदल,
भरा पवन में ढेरों परिमल,

ममता का उन्मेष हो रहा,
दर्शनीय तेजो से प्रतिपल;

सुन्दरता सम्मोहन की स्वरधारा में गुंजार कर रही—
वासन्ती अपने हाथों से धरती का श्रृंगार कर रही।

दिग्मंडल है रोचक-मधुमय;
पाकर सुख-सम्पन्ना अक्षय,

देख रहा टकटकी लगाये,
संसृति का समुदय-सर्वोदय;

निर्माणों की पावन वेला मानों सबको प्यार कर रही—
वासन्ती अपने हाथों से धरती का श्रृंगार कर रही।



संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी भाषाओं की मौलिक एकता

डा० हेमचन्द्र जोशी डी० लिट्०

भारत में अति प्राचीन समय में जब आर्य आये तो वे अपने साथ आर्य-भाषा लाये। प्रारंभ में यह भाषा काम्बोज, हिंदूकुश, गांधार और सिन्धु देशों में फैली। ये आर्य उक्त देशों में बसे और पुरंदर (इंद्र) के इन कुछ अनुयायियों ने मोहनजोदड़ो की, संभवतः सुमेरियन सभ्यता को, जो उच्चता के शिखर पर पहुँच चुकी थी, इतना दल डाला कि अभी तक उसका ठीक-ठीक पता नहीं चल सका है। इधर खित्ताइत (Hittite) भाषा के आविष्कारक चेक विद्वान ह्रौज़्नी महोदय ने मोहनजोदड़ो के अक्षरों का पता चलाना आरम्भ किया था कि वे मर गये। उनके विचार से मोहनजोदड़ो की लिपि आर्य थी और खित्ताइत लिपि से मिलती थी। आर्य, आर्यों के साथ भी लड़ते ही थे। इसके प्रमाण भारत और ईरान में अनेक मिलते हैं। आर्य भाषाओं के दो भेद हैं—पहला जो योरुप की ओर गया। दूसरा वह जो सीरिया, ईरान, काबुल आदि होता हुआ भारत पहुँचा। खत्ती (Hittite) बोली योरुप की ओर जानेवाले आदि आर्यों की आदि आर्य भाषा मानी जाती है। यह भाषा चार हजार वर्ष पुरानी है और वेदों की भाषा से भी पहले की मानी जाती है। इसका जो पहला वाक्य ह्रोजनी साहब ने पढ़ा वह विशुद्ध आर्य है और उसमें शब्दों के योरोपियन रूप हैं, जैसे Water के लिए Vadar (वदर) शब्द आया है। मेरे विचार से यह शब्द **उद्र** रूप से वैदिक और संस्कृत में मिलता है। समुद्र शब्द सं+उद्र से बना है। इसका अर्थ है 'वह विस्तृत स्थान या गड्ढा जिसमें जल एकत्र होता है।' यह उद्र ग्रीक भाषा में **हुद्रौस** रूप में मिलता है, जिसका रूप अँगरेजी में Hydro हो गया है। Hydro-gen शब्द का अर्थ है 'वह गैस जो उद्र (जल) को जन्म देती है।' पाठक जानते ही हैं कि संस्कृत में **जन** धातु का अर्थ 'पैदा करना, जनना' है। अँगरेजी के शब्द Oxygen, Nitrogen इसी प्रकार के शब्द हैं। अब और आश्चर्यमय तुलना देखिए कि जिस प्रकार आदि आर्य धातु गेन् 'जनना, पैदा करना' ग्रीस देश की भाषा में रह गया था और भारत में भी भारतीय आर्यों को वैदिक समय में इस गेन् धातु की तो नहीं, किन्तु इसके कुछ रूपों की स्मृति बनी रही। **गणपति, गण, ग्ना** आदि रूप ऋग्वेद में अब तक पाये जाते हैं। जब हम अँगरेजी शब्द Republic का अनुवाद **गण-तंत्र** रूप में करते हैं तो यह नहीं ताड़ सकते कि **गण** आदि आर्य धातु **गेन्** का ही एक रूप है। भारतप्रवासी आर्य कभी **गेन्** धातु का अर्थ 'जनना' करते होंगे। ग और ज का बड़ा साम्य है। इसलिए संस्कृत में **ज** के स्थान पर **ग** और **ग** के स्थान पर **ज** का मेल दिखाई देता है। **जगत्, जगाम** आदि में **ग** के स्थान पर ही **ज** आ बैठा है। ग के स्थान पर ज का आगमन मुख-सुख के कारण ही हुआ होगा। वैदिक ऋषियों को **गेन्** धातु के रूप याद रहे, किन्तु प्राचीन आर्य भाषाओं में ये रूप चल बसे। यहाँ ग के स्थान पर ज का ही जोर रहा। **जन, जन्म, जणण, जनना** आदि ऐसे ही रूप हैं। किसी समय गण-तंत्र का अर्थ था 'जाति-विशेष का प्रजातंत्र।' हमारे प्राचीन **गण**, जाति-विशेष से ही सम्बन्ध रखते थे। तमाशा देखिए कि अँगरेजी भाषा में भी e से पहले आनेवाले g का उच्चारण ज हो जाता है। इटालियन में भी ऐसा ही नियम है। इस नियम के अनुसार gen अँगरेजी में **जन्** हो गया है। समय और स्थान का माहात्म्य देखिए कि ग्रीक **ग** बहुत समय के बाद यूरोप के इंगलैंड, इटली आदि देशों में तथा भारतीय आर्य भाषाओं में **ज** रूप में उच्चारित होने लगा है।

अँगरेजी में एक शब्द Eugenics (यूजेनिक्स) 'सु-जनन शास्त्र' है। इसमें **सु** के स्थान पर ग्रीक उपसर्ग Eu (यु) है। **जेनिक** में पाठक संस्कृत शब्दों **जनक, जननी** आदि के रूप देख रहे होंगे, जो **जन्** 'पैदा करना' धातु से निकले हैं। इसी प्रकार का एक शब्द Pro-geny (प्रो-जेनी) है जिसका अर्थ है 'प्रजा।' हमारी सृष्टि के आदि-जनक ब्रह्मा का एक नाम **प्रजापति** भी है। यहाँ प्र-जा का अर्थ **प्रो-जेनी** है। संस्कृत, हिंदी और अँगरेजी आर्य भाषाएँ होने के कारण यह साम्य देखा जा रहा है।

अब देखिए कि अँगरेजी Cruel शब्द हिंदी में क्रूर हो गया है। अँगरेजी में Cruel, Cruelly क्रूर आदि शब्द संस्कृत क्रूर के समान वैदिक **क्रवि** (रक्त) से निकले हैं। **क्रवि** के ऋग्वेद में **क्रु, क्रविहस्त क्रव्याद** आदि रूप मिलते हैं। अँगरेजी शब्द go **और** come

१६६४

दोनों ही रूप **गम्** धातु से आए हैं। अति प्राचीन समय में गम् का अर्थ 'आना और जाना' दोनों ही था। बाद को संस्कृत में आगम 'आना' और **निगम, निर्गम** 'निकलना' रूप बनाए गये। अँगरेजी cow हमारे **गो** का ही रूप है। शब्द किस भाँति घिस-मँज कर और स्वरों को बदल कर अपना रूप बदलते जाते हैं उसका उदाहरण sweet है। यह **स्वीट्** हमारे **स्वादिष्ट** शब्द का अँगरेजी प्रतिरूप है। इसका जर्मन रूप suess (ज्युस्स्) है। उक्त दोनों रूप गौथिक भाषा के su-t-st (सुतस्त) रूप से निकले हैं। देखिए **स्वादिष्ट** की चीर फाड़ करने पर इसमें ३ भाग मिलते हैं; **सु-अद्-इष्ट**; सु का अर्थ है 'अच्छा', **अद्** का अर्थ है 'खाना' और इष्ट का अर्थ है 'सबसे अधिक'। गौथिक **सुत्स्त** में इस शब्द के ये तीनों भाग वर्तमान हैं। su (सु) का अर्थ 'अच्छा' है। **अद्** धातु के स्थान पर उसका घिसा और विकृत रूप केवल हलन्त **त** (त्) रह गया है, यह त् अँगरेजी में इस समय eat रूप में वर्तमान है। st (स्ट) हमारे **इष्ट** के स्थान पर बैठा हुआ है। अब देखिए घिसते मँजते संस्कृत का **स्वादिष्ट** शब्द गौथिक में **सु-त्-स्त** रूप में परिवर्तित हो गया। यह गौथिक शब्द भी अँगरेजी में स्वीट रूप में आ खड़ा हुआ तथा जर्मन में suess रूप में। हमारे प्राकृत के **साइज्ज, साइम** आदि शब्द भी स्वाद से सम्बन्ध रखते हैं। कुछ रंग लीजिए। अँगरेजी Pale हमारा **पीला** है। वैदिक **बभ्रु** 'भूरा' अँगरेजी में Brown रूप में वर्तमान है। **लाल रंग** का अँगरेजी समानार्थक शब्द Red संस्कृत रुधिर का अँगरेजी रूप है। हमारा **अंतरिम** या **अंतर** का रूप अँगरेजी में **इंटरिम** (Interim) है। हमारा **अंतर** अँगरेजी में Inter है। **बभ्रु** शब्द का वेदों में एक अर्थ वह जल-जंतु है जिसको अँगरेजी में Beaver (बीभर) कहते हैं। ऋग्वेद में **उद्र** नामक एक जल-जंतु का भी उल्लेख है जिसका हिंदी में **ऊद** (-बिलाव) शब्द में **ऊद** रूप में प्रयोग है। यह **उद्र** अँगरेजी में otter (औटर) हो गया है। वैदिक **उक्षन्** (बैल, साँड़) अँगरेजी में ox (औक्स) रूप में वर्तमान है। मनु या मनुष्य को अँगरेजी में man (मैन) कहते हैं। यह शब्द जर्मन भाषा में मनुष्य से घिस कर Mensch (मेन्श) रूप में मिलता है।

कौयला शब्द प्राकृत में **कोइल** है और कहा जाता है कि इसका संस्कृत रूप **कोकिल** था। यह रूप केवल मध्यकाल के कोशों में मिलता है। इसका प्रयोग साहित्य में कहीं नहीं मिलता। इस कारण अँगरेजी **कोल** से प्राकृत **कोइल** का रूप बहुत ही मिलता-जुलता है; तो भी यह रहस्य ही रह गया है कि यह कोइल रूप प्राकृत में कहाँ से आ गया? अँगरेजी Day (डे) 'दिवस' हमारे **दिव** (चमकना, प्रकाश करना) का ही रूप है। यह लैटिन में Dies रूप में भी वर्तमान था। अँगरेजी Night (नाइट, उच्चारण में निहट) वैदिक **नक्त** (रात) का ही रूप है। अँगरेजी की बहिन जर्मन भाषा में रात को Nacht (नाख़्ट) कहते हैं। अँगरेजी शब्द लाइट (Light उच्चारण में लिघ्ट) संस्कृत **लघुता** का प्रतिरूप है। Might (माइट) वैदिक महत्त्व 'शक्तिशालिता' का प्रतिरूप है।

पारिवारिक सम्बन्ध बतानेवाले बहुत से अँगरेजी शब्द वैदिक और संस्कृत भाषा के समान हैं। फादर (Father) हमारे **पितर** या **पितृ** का ही रूप है। Mother (मदर) **मातृ** का प्रतिरूप है। अँगरेजी Son (सन) हमारे **सूनु** का रूप है। Jackson नाम बताता है कि जैक्सन वंश का आदि पुरुष **जैक** नामक किसी व्यक्ति का पुत्र था। Daughter (डौटर) जिसे जर्मन में Tochter (टौख़्टर) कहते हैं वह फारसी में **दुख़्तर** है। ग्रीक में **दुघातेर** और वैदिक भाषा में **दुहितृ** है। कहा जाता है कि कन्या के उक्त नाम इसलिए पड़े कि आर्यों के प्रारंभिक काल में पुत्री से गायों को दुहने का काम लिया जाता था। Brother (ब्रदर) जिसका फारसी रूप बिरादर है, **भ्रातृ** या **भ्रातर** का प्रतिरूप है। Sister (सिसटर) **'बहिन'** हमारे **स्वसृ** शब्द का अँगरेजी रूप है। इस विषय में इतना ही कहना काफी होगा कि पारिवारिक शब्द के अधिकांश शब्द सभी आर्य जातियाँ अपनी आदि आर्यभूमि से अपने साथ ले गयी थीं। जब हम व्याकरण की ओर दृष्टि फेरते हैं तो उसके रूप भी अँगरेजी में बहुत देखने में आते हैं। MaxMullar साहब ने Love-d (लव्ड) भूतकाल के रूप की उसके मूल तक की शोध की है। इस शब्द को गौथिक आदि प्राचीन भाषाओं के रूपों से मिलाते हुए अपनी शोध को संस्कृत के **लुब्ध** रूप तक पहुँचाया है। इसका अर्थ यह हुआ कि इस विद्वान्

ने स्वीकार किया है कि अँगरेजी Loved संस्कृत रूप लुब्ध से निकला है। लुबुध मधुप इव का व्यवहार प्राचीन हिन्दी में भी बहुत मिलता है, भले ही लुब्ध का रूप विकृत होकर लुबुध हो गया है। रूप-परिवर्तन भाषाओं का नियम है। अँगरेजी में अपूर्णभूत gone का रूप प्राचीन हिन्दी के गवने रूप से मिलता है और यह रूप दीना, लीना आदि की भाँति का है। इस रूप का अँगरेजी में बहुत प्रचार है। Show का Shown, Grow का Grown आदि शब्दों के अंत का –n हिंदी रामदीन के दीन का ही प्रतिरूप है। रामदीन का अर्थ है 'राम का दिया हुआ' और Gone का अर्थ है 'गया हुआ'। अँगरेजी Is (इज़्) संस्कृत अस्-,ग्रीक और लैटिन इष्ट का रूप है। गौथिक में यह इज़् (Ist) इष्ट रूप में था जो संस्कृत अस्ति, ग्रीक एस्ति और लैटिन एस्त का विकृत रूप है। इष्ट रूप जर्मनी में आज भी चलता है। अँगरेजी Is (इज़्) से अंतिम t घिस गई है। अँगरेजी Was (वाज़्) अस् धातु से नहीं बना। यह वस् धातु का भूत-काल है। अँगरेजी Am (ऐम=हूँ) गौथिक में इस्म रूप में था। यह इस्म रूप संस्कृत के अस्मि रूप के समान ही है। अब अँगरेजी में इसका रूप एम् (Am) हो गया है। अँगरेजी में भूतकाल में Bend (ब्यन्ड) धातु का जो Bent हो जाता है, अथवा Mean धातु का Meant आदि हो जाता है उसका अंतिम t गत, लुप्त, मृत आदि के अंतिम त के स्थान पर आया है। जैसा पाठक ऊपर देख चुके हैं—Light, Might, Night का अंतिम द् हिंदी के-त्व और-ता के समान ही एक प्रत्यय है। अँगरेजी में बहुत से आर्य प्रत्यय भी हैं जो संस्कृत और हिंदी से मिलते हैं। अँगरेजी में हमारे बहुत से उपसर्ग वर्तमान हैं। First हमारे पुरस्त या पुरस्तात् से निकला है। यह हमारे प्रष्ठ=प्रस्थ रूप से भी निकल सकता है। प्र प्रत्यय Progeny (प्रोजीनी) में है ही। Far हमारे परा का विकृत रूप है। अ-अँगरेजी बहुत ही मिलता है। अ का दूसरा रूप अन् भी अँगरेजी में वर्तमान है। अ-वे=वह दूर का स्थान है जहाँ को रास्ता नहीं मिलता। Un-holy में हमारा अनहित, अनभल का अन प्रस्तुत है।

अँगरेजी संख्याएँ भी हिंदी और संस्कृत के समान ही हैं। अँगरेजी में एक को One कहते हैं। यह One Greek भाषा में oi-n-os था। ग्रीक oe संस्कृत का प्रतिरूप है। क्योंकि ए, अ+इ से बना है। इस कार यदि ग्रीक Oinos का रूप अपने अक्षरों में लिखा जा तो वह ए-नह होगा। यह मूल रूप एन अवेस्ता में ए और संस्कृत तथा हिंदी में ए-क है। ए बीजाक्षर है इसमें Greek भाषा में n-os प्रत्यय जोड़ा गया; अवे स्ता में- व प्रत्यय जोड़ा गया तथा संस्कृत और हिंदी में क प्रत्यय मिलता है। इस Greek oinos का घिसा रू अँगरेजी one (वन) है। दो अँगरेजी में Two (टो) उच्चारण में टू हमारे द्वौ के बहुत ही निकट है। य बात ध्यान देने की है कि बीस के लिए वेदों में विंश शब्द आया है जिसमें द्वि या द्वौ का द् उड़ गया है Latin-Greek में भी यही दशा है, किन्तु अँगरेजी में द्व-व-ओ सभी मूल ध्वनियाँ वर्तमान हैं। अँगरेजी विंशति या बीस के स्थान पर Twenty शब्द है जिस द का प्रतिरूप ट और व का व और ति के स्थान प (ty) टी वर्तमान है। इससे यह बात मालूम होत है कि अँगरेजी में ट्यूटौनिक भाषा के प्रभाव के कार विंशति के स्थान पर द्विंशति रूप मिलता है जो मूल रू को बताता है, क्योंकि भले ही विंशति शब्द वेद में आय है और इसका लैटिन रूप भी विगिन्ति है, तो भी द्वि द्विंशति ही बनेगा न कि विंशति। इसमें कोई संदेह पै नहीं हो सकता। इस मूल रूप की रक्षा अँगरेजी औ जर्मन भाषा ने ही की है। तीन को अँगरेजी में thre (थ्री) कहते हैं। अवेस्ता में ३ का रूप थ्रि, थ्रय है औ संस्कृत में यह त्रि, त्रय है। हमारा तीन रूप संस्कृत त्रीणि से निकला है। अँगरेजी में चार को four कहते है इस Four का विचित्र तमाशा है। सुनिए—इसका कहाँ से और कैसे आया? ग्रीक भाषा की एक बोली हमारे चत्वार का प्रतिरूप तेत्तारौस था जो संस्कृत तुरी से मिलता है; किन्तु एक दूसरी बोली में इस तेत्तारौ का रूप पेद्वर बन गया। यह पेद्वर घिस कर अँगरेज का Four हो गया है। इसी प्रकार Penta 'पंच' का अँगरेजी में Five हो गया। अँगरेजी Six हमा षष् है; लैटिन सेप्त, संस्कृत सप्त विकृत होकर अँगरेजी में Seven रूप में दिखाई देता है। अष्ट Latin oct होकर अँगरेजी Eight रूप में आ गया है। हमा नव लैटिन नोवो, अँगरेजी में nine बन गया है। इ



फिलीपाइन विश्वविद्यालय के अध्यक्ष डा० कार्लोज़ पी० रोमुलो को दिल्ली विश्वविद्यालय के चांसलर डा० जाकिर हुसेन डाक्टर ऑफ लाज़ की सम्मानित डिगरी प्रदान करते हुए।



...धान सेनाध्यक्ष जनरल जे० एन० चौधरी ...हिमा, कोहिमा (नागा-...लैंड) की निरीक्षण-...यात्रा के समय नागा सैनिक अंचला धारण किये हुए।

प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू निर्विभाग मंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री के साथ संसद भवन जाते हुए प्रसन्न मुद्रा में यहाँ दिखाई दे रहे हैं।

स्व० सर लक्ष्मीपति मिश्र



सास्ट लेक रेंज, कलकत्ता में हाल में ही आयोजित नेशनल स्पोर्ट्स चैम्पियनशिप के बालिका विभाग में राइफिल चलाने की ११वीं और १२वीं प्रतियोगिता में सिरामपुर राइफिल क्लब की कुमा० तृप्तिकना दास सर्वप्रथम आयीं।

प्रकार और संख्याओं को भी समझिए। एक और चमत्कार देखिए कि अँगरेजी में सौ को hundred कहते हैं। यह शब्द वास्तव में लैटिन Centum (केन्टुम) का घिसा-मँजा रूप है। Centum का अँगरेजी में hund हो गया और गौथिक में इस hund का उच्चारण कुंड था। योरुप की कई भाषाओं में h अक्षर का उच्चारण पहले क या ख था। इस कारण हमारे सुन का ग्रीक में कुन और अँगरेजी में hund (कुंड) हो गया। आजकल H का उच्चरण ह हो जाने से अँगरेजी और जर्मन में कुत्ते को Hund (हुंड) कहते हैं। इस हुंड का अँगरेजी में हौउन्ड भी हो गया है। Hundred में जो red प्रत्यय आया है उसका अर्थ rate='दर या भाव' है। इस शब्द का वास्तविक अर्थ हुआ 'सैकड़ा।' इस प्रकार हम अब जान गये कि हिंदी के बहुत से शब्द यूरुप की नाना भाषाओं के शब्दों से मिलते जुलते हैं। कारण यह है कि आर्य जाति में हम सब भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के निवासियों का जन्म होने के कारण हमारे बहुत से शब्द और व्याकरण के रूप अवश्य मिलेंगे।

इसी प्रकार हम फिनलैण्ड, हंगरी, एस्थोनिया इन ३ देशों को छोड़कर सर्वत्र आर्य भाषा का बोलबाला पाते हैं, जिनमें आर्य शब्द ईरान, भारत आदि देशों के समान ही पाय जाते हैं। इस शब्द-साम्य को देखकर ही योरुप के भाषा-वैज्ञानिकों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि सब आर्य भाषाओं में शब्दों और व्याकरण के रूपों की समानता पाई जाती है। योरुप की सभी भाषाओं के हजारों शब्द संस्कृत और हिंदी से मिलते जुलते हैं। अँगरेजी सर्वनाम We, you, your आदि वयं, वः-रा आदि के जोड़ के हैं। His का s वैदिक और संस्कृत स्य का घिसा रूप है। Hi—m का m सस्कृत कर्मकारक की विभक्ति-म् का ही प्रतिरूप है। लेख बढ़ने के भय से अधिक शब्द नहीं दिये जा रहे हैं। अँगरेजी में भारतीय आर्य भाषाओं के समान इतने अधिक शब्द हैं कि एक पुस्तक इन शब्दों से भरी जा सकती है; किन्तु लेख बढ़ने के भय से उनका उल्लेख यहाँ पर नहीं किया जा सकता।

काली-गोरी

श्री देवनाथ पाण्डेय 'रसाल'

नीलम-द्वीप,
सुरमई बादल
इन्द्रधनुष के
रंगों डूबी काली-गोरी है!!
काली जब कदली के श्यामल पातों लिपट गई।
थिरक रहे मोरों की फैली पाँखें सिमट गईं॥
गोरी जब किरनों की बेला-बाँहों छिटक गई।
मोती-सी जूही की कोमल कलियाँ चिटक गईं॥

मौसम के
पनघट रसवन्ती
रजतधार की
शुभ्र, रेशमी बुनती डोरी है!!
काली जब जामुनी शिखर के रंगों झलक गई।
फालसई घाटी में कजली गाती थिरक गई॥
गोरी जब उजली धारा के सँग-सँग बहक गई।
फूले हुए कदम्बों के जीरों में ललक गई॥

रंग-कुञ्ज
गन्धों की अञ्जलि
दुहरी छबि से
भरी मेंहदी रचती थोड़ी है!!
काली जब इन्दीवर के पत्रों से छलक गई।
छलक गई, लहरों के क्वारेपन में ढलक गई॥
गोरी जब यौवन की अरुणिम गाँछों लहक गई।
शहनाई के स्वर में बहकी-बहकी गमक गई॥

साध-स्वप्न
दोनों के पाटल
तूली से साँवरी
कि गोरी रँगती चोली है!!

'होली'—भारतेन्दु की

प्रो० शैलेन्द्रनाथ श्रीवास्तव

भारतेन्दु का काव्य-व्यक्तित्व दुहरा है। एक ओर आधुनिकता के अग्रदूत हैं, दूसरी ओर रीतिकालीन काव्य-परम्परा के समर्थ प्रतिनिधि; यदि उन्हें 'आफत टिक्क्स' की चिन्ता है तो मकर-संक्रांति और हिंडोले की भी। पर यह मानना पड़ेगा कि भारतेन्दु मूलतः रूप-रस-रंग के कवि हैं और लोक-जीवन की मानस-तरंगों के साथ उनका हार्दिक तादात्म्य है। उत्तर भारतेन्दु-काव्य पर यह एक बहुत बड़ा आक्षेप है, और किन्हीं अंशों में सही भी है, कि वह सामान्य पाठक को काफी पराया प्रतीत होता है। कवि या तो उपदेशक बन जाता है या गाली बकने लगता है या कुछ ऐसा कहने लगता है कि पाठक से उसकी दूरी काफी बढ़ जाती है। पर भारतेन्दु के काव्य में उत्तर भारत की जनता (मुख्यतः हिन्दू जनता) के सामान्य धार्मिक विश्वास, पर्व-त्योहार, शकुन-अपशकुन, काव्य-रूढ़ियाँ और लोक-रूढ़ियाँ, परम्परागत भाव-बोध, नवीन की ललक, चिन्ता और उन्माद सब कुछ निबद्ध है, सुरक्षित है। भारतेन्दु-काव्य की लोकप्रियता के अनेक कारणों में एक कारण, उसकी यह जीवन्त सामाजिक पृष्ठभूमि भी है। होली उत्तर भारत में राग-रंग के त्योहार के रूप में सदियों से मनायी जाती रही है। इसकी धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक और अलौकिक व्याख्याएँ की जाती हैं, किन्तु होली त्योहार से अधिक उपहार है रूढ़ियों और मर्यादाओं में बँधे सामान्य हिन्दू परिवार के लिए। रंग, रस, हास और हुलास का यह पर्व भारतेन्दु के काव्य में अपनी सम्पूर्ण श्री-शोभा के साथ चित्रित है।

रससिद्ध कवि भारतेन्दु ने होली के बहुरंगी चित्र अपने अनेक काव्यों में उपस्थित किये हैं, पर महत्त्वपूर्ण यह है कि 'होली' नाम से उन्होंने एतद्विषयक मुक्तकों का एक स्वतंत्र संग्रह भी प्रकाशित किया था। यह काव्य हरिप्रकाश यंत्रालय से सं० १९३६ में मुद्रित हुआ था, किन्तु श्री ब्रजरत्नदासजी के अनुसार इसका रचना-काल संवत् १९३५ है। अर्थात् यह एक अट्ठाईस-वर्षीय युवक कवि की रचना है। कवि ने इसे 'होली के कुतूहल खेल' कहा है। मस्ती का यह त्योहार एक मस्त कवि की मस्तानी लेखनी से चित्रित होकर काव्य-रसिकों के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण हो गया है। भारतेन्दु की 'होली' में ७९ मुक्तक हैं, (जिनमें से कुछ उनके दूसरे काव्यों में भी ज्यों के त्यों हैं) जो ३५ राग-रागिनियों और भाषाओं में निबद्ध हैं। दो राजस्थानी के मुक्तक हैं, एक रेख्ते का, एक पंजाबी का और शेष सभी ब्रजभाषा में हैं। रेख्तावाला मुक्तक काव्यगुणों की दृष्टि से तो नहीं, पर भाषा-वैचित्र्य की दृष्टि से उद्धृत है—

बचे रहो जरा यह बदनाम फाग है
आँखों को भी हमसे तुमसे लाग है
मेरी तुमरी प्रीति बहुत मशहूर है
तिसमें भी होरी रंग चकनाचूर है
उतरे जो के साथ अजब खुमार है
हरीचंद बचना इससे दुश्वार है

पंजाबी रंग की होली ईमन कल्याण में है—

तैंडा होरी खेल मैंडे जीउ नुं भांवदा।
तुवारी कोई दी सरमन करदा बुरी वे गालियाँ गाँवदा।
पाय अबीर नैण बिच साडे बंसी निलज बजांवदा।
'हरीचंद' मैंनूँ लगी झड़, तैंडी तू नहि आस पुरांवदा।

ब्रजभाषा के मुक्तकों में अधिकांश रसिया कृष्ण और रसमयी गोपिकाओं की ही नोंक-झोंक, लाज-संकोच, मान-मनुहार, वियोग-व्यथा से सम्बद्ध हैं। अनेक छन्दों में विरहिणी नायिका की मधुमासी मनोदशा वर्णित है। यद्यपि रीतिकालीन कवियों की भाँति इन मुक्तकों में भी भारतेन्दु ने राधा-माधव की छाप लगा दी है, तथापि मुख्यतः वे सामान्य नर-नारी के प्रणय-विरह के चित्र हैं। ऐसे पदों में प्रसंग-गर्भत्व गौण है, मुख्य है उनकी रसात्मकता।

होली में सारी प्रकृति और सम्पूर्ण परिवेश को रस-स्निग्ध एवं हर्षोल्लसित देखकर एक विप्रलब्धा अपनी सखी से उच्छ्वसित भाव से कहती है——

सखी हमरे पिया परदेश होरी मैं कासों खेलौं।
जिनके पीतम घर हैं सजनी तिनहिं की है होरी।

प्रणयी के अभाव में 'चोआ चंदन अबिर अरगजा' सब उसे बिष से लगते हैं। इसीलिए तो एक दूसरी नायिका अपने भोले, पर निष्ठुर नायक को परदेश-यात्रा को उद्यत होते देखकर कहती है——

तुमहि अनोखे बिदेस चले पिय आयो फागुन मास रे।
या रितु में कोउ जात न बाहर भयो काम परकास रे।।

रसभरी होली का स्वाद जानकर पुनः-पुनः उसकी कामना सर्वथा स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक कही जायगी। बीते मधुमास के मधुर क्षणों की स्मृति विरहिणी के हृदय में वेदना जगाती है और वह अपने लाल को कहती है—'लाल फिर होरी खेलन आओ।' यों होली में रंग डालनेवालों या डालने के उत्सुकों की क्या कमी होगी, किन्तु अपने गिरधारी की पिचकारी के समान भला किसी और की क्या होगी! फिर किसी राह चलती स्त्री पर रंग डालना और अपनी प्यारी पर रंग उड़ेलना—— दोनों की क्या तुलना——

खेलनवारे बहुत मिलैंगे राग-रंग पिचकारी।
'हरीचंद' इक सो न मिलैगो जो कहि है मोहिं प्यारी।।

'माखन सों मन दूध सो जोबन' का स्वाद जानकर भी कैसे कन्हाई इतने कठोर हो गये कि फागुन में भी उन्हें अपनी सखियों की सुध नहीं आई? भला क्या करती गोपिका? उसने अकेली होली मनाई, विरह-उसास का गुलाल उड़ाकर, दृग की पिचकारी से रंगहीन अश्रु बहाकर——

बिनु पिय आजु अकेली सजनी होरी खेलौं।
बिरह-उसास उड़ाइ गुलालहि दृग-पिचकारी मेलौं।
गाओ बिरह धमार लाल तजि हो हो बोलि नवेलो।
'हरीचंद' चित माहिं गलाऊँ होरी सुनो हो सहेली।।

पर भारतेन्दु की 'होली' में विरहिणियों की हूक और कूक ही नहीं हैं, बल्कि सौभाग्यशालिनी प्रगल्भाओं द्वारा नायक को स्नेह-भरा आमंत्रण, चेतावनी, चुनौती और 'चैलेंज' भी है——

कान्ह तुम बहुत लगावत अपुने को होरी खिलार
निकसि आव मैदान तुरत क्यों लै चौगान निवार।
नंद-गैयाँ तो हैं हमहूं बरसाने की नारि।
अबको दाँव जो जीतै तो पै 'हरीचंद' बलिहार।।

ऐसी ललकार सुनकर निकल पड़े रसिया नटनागर रंग-स्थली की ओर और फिर तो लजवंतियों की लाज का निर्वाह ही कठिन हो गया। इस ऊधमी को बरजने की चेष्टाएँ होने लगीं। श्याम की बरजोरी से बचने का प्रयास, बस अब स्पष्टवादिता ही है——यहाँ तुम्हारी एक न चलेगी, कहीं और घात लगाओ——

होरी में का बरजोरी करोगे क्यों इतने इतराय।
रूप गरब फागुन मदमाते ताहू पै अति रसिकाये।।
जो तुम चाहत सो न इतै कछु चलो रहौ न लगाय।
'हरीचंद' तुम्हरे व्यवहारन दूरहि से फल पाये।।

इस स्पष्टोक्ति को भी जो नखरा ही समझ लें, उससे कैसे निबटा जाय। मोहन नहीं माने और दौड़ पड़े इन ब्रजबालाओं के पीछे, घोर रंगारंग के बाद परिणाम यह हुआ कि कृष्ण हार गये और ये बरसानेवालियाँ जीत गयीं। देखिए, कृष्ण की दुर्गति का एक चित्र——

जीती सब बरसाने वारी।
आँख अँजाइ पहिरिकर चूरी हारे मोहन गिरिधारी।
फगुआ दै हाहा करि छूटे अरु अनेक खाई गारी।
'हरीचंद' कोउ बिधि घर आए, तन मन धन सरबस हारी।

पर कृष्ण से पार पाना इतना आसान तो नहीं था इन तन्वंगी, सुकुमारी एवं लजीली-सजीली किशोरियों के लिए। कृष्ण ने भी जमकर बदला लिया और फिर गोपिकाएँ रिरियाने लगीं——

झकझोरन मैं कर मेरो मुरक्यो, कंकन बाजू टूट गयो।
'हरीचंद' तेरे पाँव परत गारी मत दै, अपजस बहुत दयो।।

उपर्युक्त उद्धरणों से यह भ्रम न हो कि भारतेन्दु ने केवल कृष्ण की होली-लीला को ही अपने काव्य का विषय बनाया है। उसमें तो सामान्य भारतीय गृह-स्थिन, जो सारा वर्ष इसी दिन की आशा में, सीमा और मर्यादा की परिधि में गुजार देती हैं, के भी हास-विलास और उमंग-उल्लास के चित्र हैं। होलिका के साथ ही हमारे गार्हस्थ्य-धर्म की सीमारेखाएँ और परिधियाँ भी एक दिन के लिए जल जाती हैं। फिर आज कोई ग्राम्या भला क्यों किसी ननदिया की बात मानने लगी——

कवि और ठोकर

श्री बालकृष्ण मिश्र

कवि

उफ ! इतना तेज प्रहार ! किया था क्या मैंने,
जो तुमने इस तरह राह में रोक दिया,
मैं कितना तेज बढ़ रहा था क्या ज्ञात न था,
जो तुमने इस तरह बीच में टोक दिया।
क्या ज्ञान नहीं था तुझको मेरी सत्ता का,
छेड़ कर राह में नादानी दिखलाई है,
मैं रुकने वाला नहीं, बढ़ूँगा निश्चय है,
सर पर अपयश की गठरी व्यर्थ धराई है।
तिस पर भी तुम ओ गर्वीली ! मुस्करा रही,
बोलो तो तुम, बोलो क्या नाम तुम्हारा है,
हर बढ़ने वाले की गति में अवरोध बनो,
क्या दुनिया में इतना ही काम तुम्हारा है ?

ठोकर

हँसकर बोली वह, नाम हमारा ठोकर है,
छेड़ती न उसको राह देख जो चलता है,
मैं उसे सचेत किया करती रे कवि ! केवल,
जो व्योम देखता हुआ धरा पर चलता है।
जिनके मस्तिष्क कदम के साथ नहीं चलते,
वे बरबस ही मुझसे आकर टकराते हैं,
आदर्श सुरा पीकर जो धरती पर चलते,
मुझसे मिलते ही तुरत होश में आते हैं।
तुम भी उन भूले भटके में से एक रहे,
जिनकी नजरें थीं ऊपर, चलते थे भूपर,
बस इसी लिये है मैंने तुम्हें सचेत किया,
उसको देखो तुम चलते हो जिसको छूकर।

बस इतना ही कुछ नहीं और आगे सुन लो—
कोई-कोई मुझको यथार्थ भी कहते हैं,
जो एक बार आ मुझसे गला मिला जाते,
जीवन की कठिनाई हँस-हँसकर सहते हैं।
मैं मना न करती गीत व्योम के मत गाओ,
पर धरती का संगीत सुनाना मत भूलो,
जिस माँ की गोदी में पलकर तुम बड़े हुए,
उस अंचल का एहसान चुकाना मत भूलो।
यों तो रहते हैं सभी व्योम की छाया में,
सूरज चन्दा का उजियाला वह देता है;
पर धरती है आधार शिला जिसके ऊपर
मानव पलता है, नये रूप नित लेता है।
तुम गाओ ऐसे गीत सभी जग झूम उठे,
तारे-तारे की आँखें भी डबडबा जायँ,
भूपर रहनेवाले मानव को शान्ति मिले,
धरती अम्बर सब तेरे रस में डूब जायँ।

कवि

आभार तुम्हारा मानूँगा मैं जीवन भर,
मौके पर तुमने मुझको राह दिखाई है,
अन्यथा भटकता रहता अंधकार ही में,
मौके पर तुमने जीवन ज्योति जगाई है।
आकाश देखता हुआ धरा पर चलता था,
कैसी विडम्बना थी यह मेरे जीवन की,
यह रक्त धार जो निकली तेरे लगने से
वह बतलायेगी ठीक दिशा अब जीवन की !

अब मैं घर न रहूँगी काहू के रोके, मोंहि मति बरजै कोय।
ऐसो पिय लहि या फागुन को मरें अभागिन रोय॥
जाऊँगी जहँ पिय होरी खेलत मिलूँगी जगत-भय खोय।
निधरक पिय के अधर मिलूँगी भेटूँगी भरि भुज दोय॥
नहिं मानूँगी काहू की बात मैं पिय संग आजु खेलूँगी फाग।
मोहिं घर के बरजो जिन कोऊ परी आनि सब लाग॥

ऐसा ही एक पारिवारिक परिहास का चित्र 'समधिन मधुमास' के अन्तर्गत उपस्थित है। एक समधिन होरी में समधी के घर आई, परिणाम का अनुमान कोई भी कर सकता है—

समधिन की तो चुपरी चपटी चोटी सोंधो लाय।
समधिन को लखि रपटि परत है समधी को मन धाय।
समधिन की तो अतिहि चिकनी फिसिल फिसिल सब ज[...]
देहरिया रँग भीनि रही जहँ प्रविसत सबैं बरा[...]

भारतेन्दु के इस काव्य में लोक-तत्त्व और [...] तत्त्व, काव्य और संगीत, स्वाभाविकता और शास्त्री[य] चित्रात्मकता और वैचित्र्य सभी एक साथ देखे जा [...] हैं। दुख है कि अपने को 'भारतेन्दु की परम्परा' बतानेवालों में से किसी और ने फिर होली के र[...] ऐसा रूप और स्वर नहीं प्रदान किया।

हास्य और होली

श्री पुत्तूलाल शर्मा 'उद्दण्ड'

हास्य का जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। हास्य के न होने से जीवन मनहूस बन जाता है, इसलिए कि जीवन जीने के लिए या जीवन का भार वहन करने के लिए, हास्य वह बैसाखी हैं जो उसे संतुलित बनाये रखती है। बिना हास्य के जीवन नीरस ही नहीं, अपने लक्ष्य से भी दूर हो जाता है; अतः हास्य, जीवन के लिए आवश्यक ही क्या, अनिवार्य समझिए। जहाँ तक हास्य का रस रूप में बोध है, इसके वर्गीकरण में अनेक भाग किये गये हैं जो शास्त्रीय विवेचन से संबंधित हैं। यहाँ उनके समझने या समझाने की आवश्यकता नहीं। हम केवल हँसने और आप को हँसाने जा रहे हैं। सामाजिक रूप से लेकर हास्य के विभिन्न माध्यम हैं, यहाँ तक कि हास्य ने देवताओं तक से सामंजस्य हासिल कर लिया, जिसे कि आप आगे के उद्धरणों से देख लेंगे। विशेष बात यह है कि हास्य, जीवन से साम्य रखते हुए असाम्य की ओर झुका रहता है। यह होता है होली का अवसर, जब हास्य अपनी चरम पराकाष्ठा में पहुँच जाता है। हास्य के संग न होकर महापर्व होली, होली न रहती और न हास्य ही अपना जी भर पाता। प्रकृति-प्रदत्त हास्य और परम राग-मय होली जब स्वयं गले मिलते हैं तो सृष्टि एकाकीपन से दूर हो जाती है और गले मिलने का महोत्सव बन जाती है। आइए, अब होली के इस अवसर पर हास्य से अठ-खेलियाँ करें। पहले एक-दो छन्द, जिनमें होली ही हास्य बन गयी, प्रस्तुत किये जाते हैं। तो जरा पद्माकर की सुनिए--गुनिए मत, नहीं तो ताक लगाकर बैठेंगे!

ऊधम ऐसो मचो ब्रज में सब रंग तरंग उमंगनि सीचैं।
त्यों पद्माकर छज्जनि छातनि छ्वै छिति छाजतीं केसरि कीचैं।
दै पिचकी भजी भींजि तहाँ परे पीछे गुपाल गुलाल उलीचैं।
एक ही संग इहाँ रपटे सखि! वे भये ऊपर, हौं भई नीचैं।

घटना को जो रूप दिया जा रहा है, उसका अन्य को यकीन न होते हुए भी यकीन करने पर मजबूर कर दिया गया है। ऐसा असाधारण कौतुक जिसकी कोई टीका नहीं, परिवाद नहीं। रहस्य पर चतुराई का चोखा रंग! कोई न माने तो कैसे न माने? मगर बात की बात यह है कि पद्माकर स्वयं किसी जीवन-घटना को प्रतीक के आव-रण में डाल कर अपनी मार्मिक अनुभूति का उल्लेख कर बैठे हैं!

आए पास कौन के हौ, भूले कौन भौन के हौ,
डगमग गौन के हौ, देह मौज माची है।
पाग पेंच ढीले भये, दृग उनमीले भये,
तऊ न लजीले भये पाटी भली बाँची है।
ग्वाल कवि और न उपाय ब्रजराज अब,
जाउ जाउ जहाँ चाउ मैं तो यह जाँची है।
घर की जो मिसिरी सो फीकी-सी लगन लागै,
मीठो गुड़ चोरी को, कहन यह साँची है।

पैरों का डगमग होना, पाग के पेंच ढीले पड़ जाना, आँखों में ललाई भर उठना--ये सब मौज मचाई हुई देह के लक्षण हैं। उस पर भी न कुछ लाज न संकोच--ऐसी धृष्टता! तब मानना ही पड़ेगा कि चोरी का गुड़ मीठा होता है! और यह भी कहना पड़ेगा कि ग्वाल ने घर में झिड़की पाकर ब्रजराज को कैसा माध्यम बना डाला। परन्तु आज के कवि अपनी बात नहीं कहते, जनता की कहते हैं जैसे कि जनता से भिन्न हों।

तोरी तनी टकटोरि कपोलनि जोरि रहे कर त्यों न रहौंगी।
पान खवाइ सुधाधर पान कै पाइँ गहे तब हौं न गहौंगी।
केसव चूक सबै सहिहौं मुख चूमि चले यह तौ न सहौंगी।
कै मुख चूमन दे फिरि मोहिं, कै आपनी धाय सों जाय कहौंगी।

ऐसी धमकी! ऐसी शर्त! बिना पूरा किये बचना मुश्किल! तनी तोर डाली, कपोलों को मसल दिया। पान खिलाकर अधरामृत का पान भी कर लिया, पर मुख क्यों चूमा? यह अपराध अक्षम्य है सिवाय इसके कि दूसरा भी मुख चूमे! हीला-हवाला चल नहीं सकता नहीं तो धाय के पास दौड़! मजबूरी पर मजबूरी! इस धौंस से सिट्टी गुम हो गयी होगी और झुकना ही पड़ा होगा। तो ऐसे अचूक वर्णन पर भी जो केशव को कवि न माने, उसे अपने भ्रम का परिहार करना पड़ेगा। यह एक छन्द ही उसे केशव का लोहा मनवाने में समर्थ है।

ऐरे मतिमंद चंद धिक है अनंद तेरो,
जो पै बिरहिनि जरि जात तेरे ताप तें।

तू तो दोषाकर, दूजे धरे है कलंक उर,
तीसरो कपालि संग देखो सिर छापते।
कहै मतिराम हाल जाहिर जहान तेरो,
बरुनी को बासी भासी रबि के प्रताप ते।
बाँध्यो गयो, मथ्यो गयो, पियो गयो, खारो भयो,
बापुरो समुद्र तौ कुपूत ही के पाप ते।

चन्द्रमा को भावुकों ने विभिन्न रूपों में देखा है। किसीने कुछ कहा है, किसीने कुछ। किन्तु मतिराम की पारदर्शी दृष्टि ने उसे जैसे देखा, दूसरों को शिक्षा भी मिल सकती है। वह ज्योतिर्मय है, पीयूषवर्षी है--यह सब कह सकेंगे। किन्तु बाप को खतरे में डालनेवाला भी है, यह किसे सूझेगा? मतिराम की मति ही धन्य है जिसने इस रहस्य का उद्घाटन किया।

गृहिन वियोग गृह-त्यागिन बिभूति दीन्हीं
योगिन प्रमोद पुनवन्तन छलो गयो।
ग्रहनि ग्रहेस कियो सनि को सुचित्त लघु
व्यालनि स्वतंत्र सेस भारन दलो गयो।
'फेरन' फिरावत गुनीन द्वार-द्वार नीच
गुनन बिहीन घर बैठे ही भलो भयो।
कौन-कौन बात तेरी कहैं एक आनन तें
नाम चतुरानन पै चूकतै चलो गयो।

वह विधि जो सबसे बड़े कामकाजी हैं (इसीलिए कर्ता नाम ही पड़ गया) और काम करने में भी कोई रोक-टोक नहीं, सारे प्रबन्ध की कुशलता अकेले ओढ़े बैठे हैं। सलाह-मशविरा तक नहीं। जो जी में आया, कर डाला। उत्तरदायित्व का कोई प्रश्नकर्ता नहीं। तो अनाप-शनाप काम हो ही जायेंगे। ऐसे सर्वतंत्र को फटकार सुनानेवाले 'फेरन' की साहसी बुद्धि वंदनीय है! फिर भी प्रश्न यह है कि जब चार खोपड़ीवाला भी चूकों से बरी नहीं तो एक खोपड़ीवाले की बात साधारण है--नजरे अन्दाज है। और नजीर भी अच्छी है। हर मिनिस्टर को इसे रट लेना चाहिए और भाषण के पूर्व वंदना के स्वर में इसका गान करना चाहिए, जिससे कि विरोधी दल की बोलती बन्द हो जाय।

जगत के कारन, करन चारों वेदन के
कमल में बसे वे सुजान ज्ञान धरिकैं।
पोखन अवनि, दुख सोखन तिलोकन के
समुद में जाय सोये सेज सेस करिकैं।
मदन जरायौ औ सँहारचो दृष्टि ही सों सृष्टि
बसे हैं पहार वेऊ भाजि हरबरि कैं।
बिधि हरि हर बड़ इनमें न कोऊ तेऊ,
खाट पै न सोवैं खटमलन सों डरि कैं।

लघु जीवरक्त-पायी खटमल मायावी असुर है। असुर की तरह इनका नाश भी दुष्कर है। इनकी रण-नीति और प्रकृति आसुरी प्रवृत्ति की है। असुर, असुर ही लघु होने से क्या? फिर त्रास भी भयानक! इसीलिए तीनों देवताओं को अपना निवास-स्थान सुरक्षा और पीड़ा की दृष्टि से सोच-समझकर चुनना पड़ा। यह है कवि की खोज, जिससे वैज्ञानिक भी पिछड़ जाएँगे!

कूर भये कुँवर, मँजूर भये मालदार,
सूर भये गुपत, असूर भये जबरे।
दाता भये कृपन, अदाता कहैं दाता हम,
धनी भये निधन, निधन भये गबरे।
साँचन की बात न पत्यात कोऊ जग माँझ,
राज दरबारन बुलैये लोग लबरे।
भनत प्रबीन अब छीन भई हिम्मति सो,
कलिजुग अदलि-बदलि डारे सबरे।

कलियुग का यह माहात्म्य कितना रोचक है। कलियुग का ही प्रभाव है कि प्राणियों में किसी समय परोपकारी माने जानेवाले ब्राह्मण आज अछूत-वर्गीय नेताओं की दृष्टि में समाज के सबसे बड़े शत्रु और निकृष्ट अंग हैं। कलियुग को माननेवाले भले ही कम पड़ गये हों, पर भ्रष्टाचार, बेईमानी, उठाईगीरी और रिश्वतखोरी की बातें सभी मानते हैं। राज-दरबार तो मिट गये, क्योंकि राजा रहे नहीं; किन्तु शासन में लबरों की आज भी अच्छी पूछ है, पहुँच है! यह कलियुग की कृपा नहीं तो और क्या!

कंज बन मानि मन हंसगन आइ फिरे,
गंधबन भृंग भरि भंग करि डारे तें।
पाके फल जानि सुकपुंज पछिताने आइ,
पाइकैं बसंत बात वृथा पात झारे तें।
दूरितें बिलोकि अरुनाई अति फूलन की,
अमिष अकार गीध वायस बिडारे तें।
एरे तरु सेमल के! सुफल तिहारे कहा,
आस-दिये पच्छिन निरास करि डारे तें।

बसंत ऋतु में सेमल का वृक्ष कैसा सुहावन होता है लेकिन उससे किसीको कोई लाभ नहीं। ऐसा जीवन

सफल जीवन नहीं कहा जा सकता, जिसमें आशावान निराश ही लौटें। पर आज के जन-समाज में सेमल के प्रतिरूप व्यापक तौर से हैं। कोई किसी को दोष तो नहीं देता, हाँ, अपनी-अपनी तिकड़म में सब लगे रहते हैं। निराशा के साथ आशा का संचार आज की कला है।

माथो बन्यो, मुँह बन्यो, मूँछ बनी, पूँछ बनी,
लाघव बन्यो है सब बाघ सम तूल कौ।
रँग्यो-चुंग्यो अंग बन्यो, लंक बनी, पंजा बने,
कृत्रिम बन्यो है रूप सिंघ ही के मूल कौ।
गूँजिबे की बेर मौन गहि बैठो देवीदास,
यद्यपि सुभाव कूद फाँद फैल फूल कौ।
कुंजर के कुंभहिं बिदारिबे की बेर कैसें
कूकर पै निबहैगो स्वाँग सारदूल कौ?

पर आज चुनाव की प्रथा है। चुन जाने पर कुत्ता भी शासन के कर्मक्षेत्र में महामान्य बन सकता है। शार्दूल भी आकर पूछ हिलायेंगे। अर्थप्रधान युग में सभी महिमा-मंडित हैं, जिसे भी अवसर मिले! रँगे-चुंगे नेता का बाना बनाये जनहित के ठेकेदार गुप्त संधियाँ भी कर लेते हैं और शार्दूल का पद भी पा जाते हैं!

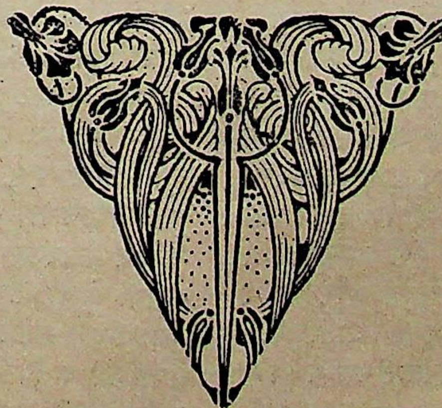
दानी भये नये माँगत दान हौ, जानिहै कंस तो बंधन जैहौ।
टूटे छरा बछरा दिक गोधन, जो धन है सो सबै धन दैहौ।
रोकत हौ बन में रसखानि चलावत हाथ घनो दुख पैहौ।
जैहै जो भूषन काहू तिया कोतोमोल छला के ललान बिकैहौ।

गूजरियों को वन म अकेली पाकर कृष्ण दधि-दान के लिए मचले खड़े हैं। उनमें से एक प्रतिनिधि बनकर आगे आ जाती है और बचाव के लिए कुछ न सूझने पर गुस्से के तेवर दिखाने लगती है। वह कृष्ण के बरियार-पने से परिचित है। अतः कंस का आतंक (कि बाँध मँगाये जाओगे) प्रदर्शित करके चेतावनी देती है कि खबरदार अगर कहीं हाथ चलाया तो घने दुःख उठाने पड़ेंगे! किसी का कोई भूषण खोया तो एक छल्ला के बराबर भी तुम्हारी कीमत न होगी!

आज नूपुर बजे

श्री चन्द्रपाल शर्मा

आज नूपुर बजे, रस पगे।
रुनन झुनन मधु ध्वनि-सरिता में--
डूब गई सुधि बाला।
मौन खड़े तट प्राण, जगे।।
आज नूपुर बजे, रस पगे।।
श्रुति-मधुर पग पग पर निक्वण,
मुखर अहेरी-नाद मधुरतम--
सुन सुन चंचल मृगशावक-से
भाव रहे ठगे ठगे।
आज नूपुर बजे, रस पगे।।
अस्फुट गीत, सिक्त पथ-अन्तर,
द्रवित साधना का मन प्रस्तर
विस्मृत देह, गीत बस जाग्रत--
उर को भले लगे।।
आज नूपुर बजे, रस पगे।।



लद्दाख में सैनिक जीवन (४)

मेजर सीताराम जौहरी (अवसरप्राप्त)

(१)

"फौज को अंग्रेज नष्ट कर गये" एक खद्दरधारी राजनीतिक नेता ने कहा। मैंने पूछा, 'आपने यह कह तो दिया परन्तु क्या आप इस बात का अर्थ भी समझते हैं ? क्या आप अपनी बात का प्रमाण दे सकते हैं ?' अबतो वे बगलें झाँकने लगे और व्यथ की बातें करने लगे, "अमुक अफसर की पत्नी अँगरेज है" 'अमुक अफसर का बच्चा विलायत में पढ़ता है।' पर ये बातें जमीं नहीं और मैंने महाशयजी का पीछा छोड़ा नहीं। इस खींचातानी में काफी समय निकल गया और उन्होंने भारत के एक महान् पुरुष की आड़ लेते हुए कहा, "जब आक्रमण के पश्चात् हम लोग नीफा से देहली लौटे तो .... ने कहा कि हमारी भारतीय सेना भी विचित्र है। एक चीनी सैनिक को देखिए कि रूई का कोट, पाजामा पहिने हुए ही उसको कभी भी और कहीं भी लड़वा लो। परन्तु हमारा सिपाही तो तब आगे बढ़ेगा जब उसको पूरा सामान इकट्ठा करके दिया जायगा। यह सब अँगरेज अफसरों की शिक्षा है आदि।" बात मूखतापूण थी। इन सज्जन को न तो भारतीय सैनिकों के विषय में कुछ ज्ञान था और न चीनी सैनिकों के ही विषय में। मैंने भी निश्चय किया कि इनको ऐसा उत्तर दूँ कि आगे इस प्रकार की बे सिर-पैर की बातें न कर सकें। मैंने कहा, "आपने अंग्रेजों से कौन सी शिक्षा नहीं ली ? हाँ, केवल आपने अपने वस्त्र बदल दिये। कोट, पतलून तो छोड़ दिये और मुगल-दरबारियों की भाँति चूड़ीदार पाजामा पहिन लिया और कमर के ऊपर का शरीर ढकने के लिए एक ढीला-ढाला ब्लाउज पहिन लिया। अंग्रेजों की स्फूर्ति छोड़ी और मुगल दरबारियों की सभ्यता।" इसपर वे शान्त हो गये। उनके मुख की भंगिमा से कुछ ऐसा ज्ञात होता था कि वे भारतीय सेना और सैनिकों के विषय में वास्तविक बातें जानना चाहते थे।

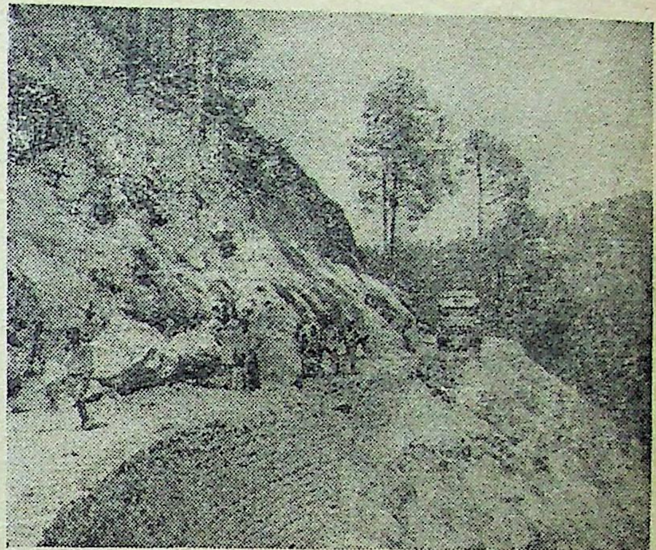
मैंने महाशयजी को उन कर्मचारियों के विषय में कुछ नहीं बताया जो सुरक्षा विभाग के कमचारी हैं और जिन्होंने चार वर्षों ही में भारतीय सीमा की सड़क बनाकर ऐसा रूप-परिवर्तन कर दिया है कि यदि कोई इन सड़कों को देखे तो दाँतों-तले उँगली दबाए बिना न रहे। जरा उस समय पर ध्यान दीजिए जब सीमान्त प्रान्तों म न खाने का प्रबन्ध था न पानी का। इसका कोई ठिकाना न था कि कब खाना मिलेगा और कसा। भयंकर सर्दी और पूरी तरह वस्त्रों का भी प्रबन्ध नहीं था। पत्थर तोड़ते-तोड़ते और पत्थर की चट्टानें उड़ाते-उड़ाते सुबह से शाम हो जाती थी। बहुत से लोग सड़क-निर्माण में पत्थरों से दबकर मर गये। मैं एक बार १९६१ में पिथौरागढ़ से थल जा रहा था। गाड़ियाँ रुकी हुई थीं। कारण क्या था ? दो व्यक्ति पहाड़ काट रहे थे। अकस्मात् एक पत्थर पहाड़ से टूट गया और सीधा इन्हीं दोनों व्यक्तियों पर गिरा। ये दोनों व्यक्ति पिता और पुत्र थे। दोनों ही बुरी तरह घायल हो गये। पुत्र ने तो तत्काल ही प्राण छोड़ दिये परन्तु पिता में प्राण शेष थे। वह बेसुध था। दो घंटे पश्चात् जब होश आया तो पानी माँगा। पानी कौन देता और कहाँ से ? दूर-दूर तक पानी का चिह्न भी न था। मीलों तक न डाक्टर था, न चलने-फिरने वाला अस्पताल। बूढ़े ने भी प्राण त्याग दिये। मृतकों के घरवाले पहुँचे परन्तु बिना स्थानीय पटवारी की आज्ञा के लाशें भी नहीं हटाई जा सकती थीं। पटवारी जिलाधीश की हाजिरी में थल गये हुए थे। मुझे बाद में ज्ञात हुआ कि पटवारी दूसरे दिन पहुँचे और लगभग ३६ घण्टे बाद मृतकों के कुटुम्बी उन लाशों को क्रिया करम करने के लिए ले जा सके। उन दिनों सीमान्त प्रान्तों में प्रति सप्ताह कोई न कोई इसी प्रकार की दुघटनाएँ होती रहती थीं। आज भी ये सड़क निर्माणकर्त्ता जोजीला आदि दर्रों पर डेरा डाले पड़े हैं। इनका समस्त जाड़ा इन्हीं ऊँचे-ऊँचे भयानक दर्रों में ही व्यतीत होगा। पाठकों ने फ्रांस के 'फारेन लीजन' के विषय में सुना होगा। बस, हमारी सड़क बनाने वाली फौज भी इसी 'फारेन लीजन' की भाँति है। इसके कुछ जवान तो खूब हृष्ट-पुष्ट हैं। कोट, पतलून पहिनते हैं और शिक्षित भी हैं। इन कमचारियों के अफसर में अधिकांश सैनिक ही हैं। इनका वेतन सैनिकों से अच्छा है। इनके भोजन और निवास-स्थान का प्रबन्ध भी सरकार के ऊपर ही है। सैनिक आरम्भ में ४ साल सेवा करने का स्वीकृति-पत्र भरता है, पर यह केवल ३ साल के लिए। इससे कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि सीमान्त प्रान्तों में सड़कें बरसों बनती रहेंगी और उनकी देखभाल होती रहेगी। हर तीन साल पश्चात् इनकी नौकरी का समय बढ़ाया जाएगा। वास्तव में तो इसमें सड़क निर्माण करने वालो का ही लाभ है। जब तीन साल पश्चात् चाहें अपने स्थान से त्यागपत्र दे दें। सैनिक तो ७ साल के बाद भी नहीं छोड़ सकता। वह १५ साल तक सेना का कर्मचारी है। ७ साल बाद भी उसका नाम स्थायी सूची (रिजर्व लिस्ट) में आ सकता है और आवश्यकतानुसार युद्ध के लिए किसी समय भी बुलाया जा सकता है। सैनिक १५ साल बाद सेना से अलग होता है, परन्तु कुछ जवान तो २०-२० साल तक रखे जाते हैं। १९५... में जब सरकार को आवश्यकता हुई तो अधिकांश सैनिक स्थायी सूची के ही बुलाये गये थे। रहे-सहे १९६२ ... बुला लिये गये। इस दृष्टिकोण से सड़क निर्माणकों की सेवा की शर्तें सैनिकों से अच्छी हैं। यद्यपि सड़क कर्मचारियों को सिपाहियों की भाँति 'रम' और सरकारी पोशाक मुफ्त नहीं मिलती तथापि सबसे बड़ी बात है व्यक्तिगत स्वतन्त्रता। वह सीमा सड़क-निर्माण के कर्म...

...रियों को काफी है। यही कारण है कि मनचले लोग इस विभाग में बहुतायत से देखे जाते हैं।

सनिकों का जीवन इन सड़क निर्माणकों से भिन्न है। भारतीय सैनिक के प्रति दिन के रहन-सहन का ढंग लद्दाख में अपने केन्द्र के साधारण जीवन से सवथा भिन्न है। यह विचित्र जीवन श्रीनगर से आरम्भ हो जाता है। लद्दाख जानेवाले जवान यात्रा आरम्भ होने के एक दिन पहिले ट्रानजिट कैम्प में एकत्र होते हैं। शाम को उपस्थिति ली जाती है और उनको अगले दिन का प्रोग्राम सुना दिया जाता है।

फौजी गाड़ियों के यूनिट बहुधा श्रीनगर में ही होते हैं। उनको भी एक या दो दिन पहिले ही सूचित कर दिया जाता है कि कौन-कौन ड्राइवर गाड़ी लेकर जाएगा। यह गाड़ियाँ जी० टी० (जनरल ट्रान्सपोट) की होती हैं। इन कम्पनियों के कमांडर मेजर रैंक के होते हैं। एक कम्पनी में अधिकतर १४० के लगभग गाड़ियाँ होती हैं। यह कम्पनी ४ प्लाटूनों में विभक्त होती है। प्लाटून कमांडर भी अफसर होते हैं। कभी-कभी पूरी कम्पनी कानवाय ड्यूटी पर जाती है, कभी प्लाटून। इस विषय में स्थानीय उच्च फारमेशन निश्चित करती है। कान्वाय चलने से पहिले ड्राइवर अपनी गाड़ियों की जाँच करते हैं और उन्हें यात्रा योग्य बनाये रखने के उत्तरदायी हैं। यदि अगले दिन प्रातः ही चलना है तो वह पहिली संध्या को 'मारशलिंग' खेत में आकर एकत्र हो जाते हैं। यहाँ उनको पहिले से ही अपना चलने का क्रम (आर्डर आफ माच) ज्ञात हो जाता है। उसी हिसाब से वे अपनी गाड़ियों की पंवित लगा लेते हैं। इस कान्वाय का कमांडर अधिकांशतः मेजर ही होता है। उसकी सहायता के लिए दो-चार जूनियर अफसर भी होते हैं। 'कानवाय' चलने से लगभग २ घंटे पहिले ड्राइवर जग जाते हैं। वे गाड़ियों को स्टाट करके जांच करते हैं। दूसरी ओर उनके लंगरी उनके लिए भोर का नाश्ता और चाय बनाते हैं। नित्यकर्म आदि से निवृत्त होकर ड्राइवर चाय पीते हैं, और सूर्योदय से पहिले ही जलपान कर लेते हैं। लंगरी कान्वाय चलने से एक घंटा पहिले ही काम समाप्त कर लेते हैं क्योंकि उनको आगे जाकर मध्याह्न का भोजन भी तो बनाना है। इसी प्रकार वे दोपहर में भी कान्वाय से आगे चलते हैं और शाम का भोजन बनाकर तैयार रखते हैं। ट्रान्जिट कैम्प में भी यात्री-सैनिक यह सब काय करते हैं। अन्तर केवल इतना है कि उनके भोजन-पान की व्यवस्था ट्रान्जिट कैम्प कमांडर करते हैं। यह यात्री भी 'मारशलिंग ग्राउंड' में कान्वाय चलने के एक घंटे पहिले आ जाते हैं। उनको पहिले से ही सूचित रहता है कि उन्हें कौन सी गाड़ी में बैठना है। वह अफसरों और उनके मातहतों की सहायता से अपनी गाड़ियों में बैठ जाते हैं।

यदि मान लिया जाये कि लगभग १० प्लाटून का कान्वाय है तो फिटर आदि की भी आवश्यकता रहती है। हर प्लाटून या कम्पनी के फिटर होते हैं जो माग में गाड़ियों



बाईं तरफ पहाड़ पर काला निशान। है यहीं पर से यह पत्थर गिरा था और बाप-बेटे की मृत्यु हुई थी।

की देखभाल करते जाते हैं। सारे 'कान्वाय' के पीछ 'पिकअप' होता है जो सड़क पर रुकी हुई गाड़ियों को ठीक करता चला करता है। मान लें कि एक कान्वाय में ३०० गाड़ियाँ हैं तो इन गाड़ियों को चलने में ३०,००० गज या १७ मील मार्ग के अन्तर की आवश्यकता होगी। अर्थात् पहिली और अन्तिम गाड़ी में चलते समय १७ मील का अन्तर हो जाता है। पहाड़ी मार्गों पर गाड़ियों के चलने की गति औसतन ८ मील प्रति घंटे से अधिक नहीं होती। अर्थात् एक स्थान पर पहिली गाड़ी पहुँचने के दो घंटे पश्चात् अन्तिम गाड़ी पहुँचेगी। फिर सड़क पर जो गाड़ियाँ खराब हो जाती हैं उनको भी लाना होता है। इस प्रकार पहिली गाड़ी और अन्तिम गाड़ी में पहुँचने का अन्तर लगभग ३ घंटे का तो हो ही जाता है। पहाड़ी सड़कें कम चौड़ी होती हैं। केवल एक ओर से ही गाड़ियाँ निकल सकती हैं। अब यदि कोई गाड़ी बीच मार्ग में ही खराब हो गयी अथवा सड़क का छोटा सा पुल ही टूट गया तो बस सारा कान्वाय खड़ा हुआ है। लाँगरी आगे भोजन बनाये बैठे हैं, और कान्वाय यात्रा के बीच में ही रुका है। घंटों बीत जाते हैं। कभी-कभी तो, और विशेषतया जोजीला के पास, दो दो दिन बीत जाते हैं। अब अफसर का काम आता है। वह मार्ग में रुके हुए इन जवानों के भोजन पान की व्यवस्था करता है। बफ में उनकी देख-भाल करता है। फिर गाड़ियों को भी तो देखना है। सीमा की सड़कवालों को सड़क खुली रखना है। पचासों झंझटें होती हैं। यही कारण है कि किसी घटनावश यदि कान्वाय रुक जाता है तो अफसरों में हलचल मच जाती है। डिवीजन से लेकर ब्रिगेड और सी० एम० पी० को (फौजी पुलिस) टेलीफोन और बेतार (वायरलैस) से संदेश भेजे जाते हैं। बड़ी ही तीव्र गति से काय होता है।

कान्वाय को चलना है, समय नष्ट नहीं किया जा सकता। बिगड़ी गाड़ी ठीक की गयी अथवा सड़क सुधार दी गयी। कान्वाय चला। अपने आगे आये हुए टुकड़े से मंजिल के कैम्प में मिल गया। अब अगले रोज फिर चलेगा।

कभी-कभी तो ऐसा होता है कि कान्वाय की कोई गाड़ी इतनी खराब हो जाती है कि कान्वाय के "पिक-अप" के मिस्त्री भी उसे सुधार नहीं पाते। रास्ते में उपयुक्त स्थानों पर सुधार कारखाने (रिकवरी वर्कशाप) बने हुए हैं। जब वहाँ सन्देश पहुँचेगा तो क्रेन लगी हुई गाड़ी आयेगी, और वह बिगड़ी हुई गाड़ी को घसीटकर वर्कशाप ले जायेगी। जब तक वह क्रेन न आयेगी तब तक गाड़ी का ड्राइवर चाहे सरदी हो या अथवा हिम, गाड़ी के साथ सड़क पर ही रहेगा। परन्तु उसके खाने-पीने का भार उसके कम्पनी कमांडर के ऊपर ही रहेगा। जब उसकी गाड़ी कारखाने में पहुँच जायगी तब वर्कशाप का प्रभारी अधिकारी उस ड्राइवर की देख-रेख का उत्तरदायी है।

सारे कान्वाय की गाड़ियों को ठीक रखने का, उनके पैट्रोल को ठीक समय पर अड्डे पर पहुँचाने का, कारखाने भेजने का प्रबन्ध आदि अफसरों को करना पड़ता है। समस्त कान्वाय के जवानों की देख-रेख का उत्तरदायित्व भी इन्हीं पर है। इनके पास गाड़ियाँ भी अच्छी होती हैं और इनकी देखभाल के लिए एक सैनिक भी रहता है। परन्तु इनकी यात्रा का जीवन कितना कठिन होता है, इसे उनका हृदय ही जानता है। श्रीनगर से लेह २७० मी॰ से अधिक है और इस यात्रा को पूरी करने में शान्ति के समय ४ दिन लगते हैं। इन चारों दिन कान्वाय कमांडर धूल और मिट्टी में सना हुआ 'मंजिल के शिविर' में १० बजे रात्रि के पश्चात् ही पहुँचता है। "जौहरी! यह कुत्ते का जीवन है। युद्ध करना इससे कहीं अच्छा है।" एक कान्वाय कमांडर ने मुझसे एक बार कहा था।

फिर युद्ध के दिनों की ओर तनिक ध्यान दीजिए। पाकिस्तानियों के पिकेट जोजीला से लेकर कारगिल तक सड़क से दूर नहीं हैं। यदि उनके मस्तिष्क में कुछ उपद्रव ही समा जाये तो? फायर ही खोल दें! उस समय कान्वाय कमांडर का उत्तरदायित्व है कि वह इस युद्ध को भी लड़े। दिन हो अथवा रात्रि, हिम बरस रहा हो अथवा सूखा, युद्ध हो या शान्ति, पर कानवायों को तो चलना ही है। आगेवाली फौज के युनिटों को राशन भी पहुँचाना है, सामान भी, गोला-बारूद भी और सैनिकों को भी। इस कार्य को चालू रखने का उत्तरदायी कान्वाय कमांडर है।

जब इन अफसरों पर इतना भारी उत्तरदायित्व है तो इनके भोजन एवं निवास की व्यवस्था भी सेना ने कर रखी है। इनके लिए भी आफीसर्स मैस बने हुए हैं। लद्दाख में सर्दी अधिक पड़ती है। इस कारण अफसरों के लिए प्रत्येक 'स्टेजिंग कैम्प' में 'मंगोल हट' (तम्बू) लगे हुए हैं। मंगोलियन टैन्ट गोल गुम्बद की भाँति पृथ्वी पर एक बल्ली (पोल) के सहारे खड़े किये जाते हैं। बीच में एक मजबूत बल्ली होती है जो तम्बू के समस्त भार का वहन करती है। उसके चारों ओर दीवार पर लकड़ी का एक ढाँचा होता है जो कि दीवार को साधे रखता है। वायु के आवागमन के लिए भी छोटी-छोटी खिड़कियों का प्रबन्ध होता है। ये तम्बू बड़े गरम होते हैं। मंगोलिया के लोग समस्त जीवन इन्हीं तम्बुओं में व्यतीत करते हैं। वे लोग इनमें अन्दर चारों ओर नमदे का अस्तर लगाते हैं। मंगोलिया में सरदी भी बहुत है और हवा भी बड़े जोर से चलती है। परन्तु नमदा महँगा होता है। यही कारण है कि जब ये तम्बू भारत में बनाये गये तो नमदे के स्थान पर मोटा मोटा ऊनी अस्तर लगाया गया। परन्तु यह भी महँगा पड़ा तो फौज ने ३२ कम्बल लगाये। वे भी महँगे पड़े तो पुराने कम्बल लगाना आरम्भ किया। फिर भी ये टैन्ट काफी गरम होते हैं। अग्रिम स्थानों में अभी भी नये-नये ३२ कम्बल लगाये जाते हैं, परन्तु पीछे के स्थानों में पुराने। श्रीनगर से लेह के बीच में तो कमांडरों ने वे भी हटा दिये हैं। अफसरों को भी कहीं कहीं कैम्प में इन कम्बलों रहित तम्बुओं में ही ठहरना पड़ता है।

रात्रि में जब ये अफसर मंजिल के शिविर पर पहुँचते हैं तो मैस के कार्यकर्त्ता इन्हें स्नान करने अथवा मुँह-हाथ धोने के लिए गरम जल देते हैं। भोजन इत्यादि करते-करते १० या ११ बज जाते हैं। फिर लद्दाख की उस भयंकर सर्दी में प्रातः $4\frac{1}{2}$ बजे साहब को चाय देना है, शेव का पानी तथा जलपान तैयार रखना है और फिर दोहपर का भोजन। मैस के कर्मचारियों को यह समस्त कार्य प्रातः तक कर देना है क्योंकि $5\frac{1}{2}$ बजे कान्वाय को कूच देना है।

(२)

श्रीनगर तो कान्वाय के चलने का स्थान है। कारण लोग प्रातःकार्य से निवृत्त होकर ही काश्मीर से कूच करते हैं। केवल उन्हींके लिए नहीं, वरन् के हर कर्मचारी के लिए (वैसे राजनीतिक हिसाब से लद्दाख आरम्भ होता है जोजीला के उत्तर से) लद्दाख का प्रारम्भ सोनामर्ग से हो जाता है। यहाँसे जवानों को जब तक लद्दाख में रहेंगे गरम स्थान न मिलेगा। प्रत्येक को गरम वस्त्रों का प्रयोग ही करना पड़ेगा। अपने से यात्रा के समय बाहर होते ही इन जवानों को जो सुविधाएँ प्राप्त होती हैं वह ट्रांजिट कैम्प के कमांडर से ही। इनके लिए पूरा प्रबन्ध होता है। साथ में होता है। निवास के लिए गरम तम्बू, मुँह-हाथ धोने के लिए पानी आदि। परन्तु सर्दी तो प्रकृति की देन है। इन ठंडे स्थानों पर भी जनता शताब्दियों से निवास करती आ रही है। उस प्रदेश में जहाँ कहीं भी कोई भी कुछ भी गरम है वह नागरिकों के पास है। नागरिकों को तो हटाया नहीं जा सकता, और कई कारणों से सैनिकों को नागरिकों के बीच रखा भी नहीं जा सकता।

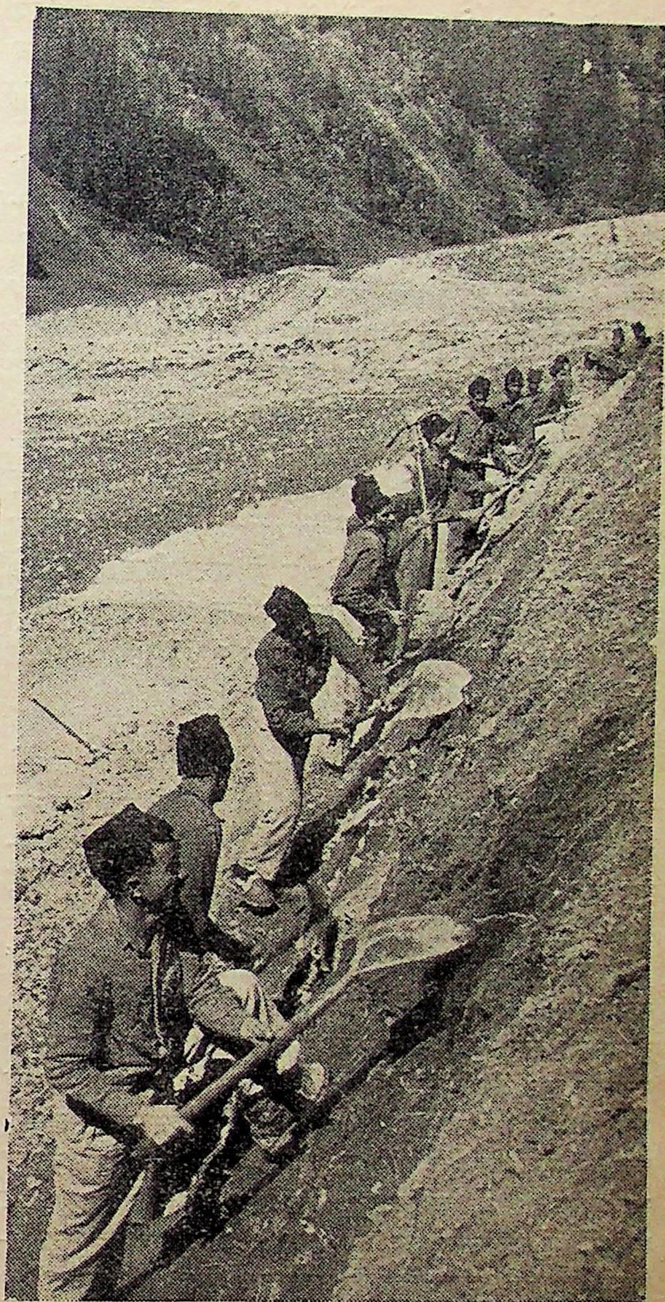
मा ९६४

...शा में फौजी कैम्प बनाने के लिए ठंडा स्थान ही मिलता ...। हर स्थान पर यही समस्या है। ड्रास के उदाहरण ... हम फौजी कैम्पों की स्थिति समझ सकते हैं। वास्त-...वक ड्रास ग्राम का विस्तार कई मील है। दो-दो चार-...ार परिवार इधर-उधर बसे हुए हैं। थोड़े-थोड़े घरों के ...मूह दो छोटी-छोटी पहाड़ियों के बीच बसे हुए हैं। ये ...हाड़ियाँ तेज और अत्यंत ठंडी हवाओं को रोकती हैं। ...फर समस्त ग्राम ही दो पर्वतमालाओं के बीच बसा हुआ ...। इस प्रकार मनुष्य इस बर्बर ग्राम में रह रहा है और ...हाँ धरती की प्राकृतिक उर्वरा-शक्ति से लाभ उठा रहा ...। परन्तु फौजी कहाँ रहते हैं? इस ग्राम से दो मील ...क्षिण में जोजीला की ओर। यही कारण है कि ड्रास का ...निक यात्री शिविर बहुत ही ठंडा है। यदि वास्तव में ...देखा जाय तो समस्त कैम्पों की यही दशा है। नागरिक ...हवा से बचे हुए स्थानों पर रहते हैं उनके निवास-स्थान ...बन्द और छोटे-छोटे होते हैं। वे अधिक गरम होते हैं ...जिससे रात्रि बीत जाती है और दिन में तो धूप होती ही ...है। इसके विपरीत सैनिकों के कैम्प एक तो खराब स्थान ...पर होते हैं, फिर उनका अनुशासित जीवन उनके लिए ...और भी कठिनाइयाँ उत्पन्न कर देता है। फिर यह ...कैम्प स्थायी तो होते नहीं जहाँ कुछ दृढ़ व्यवस्था ...हो सके। आगे के यूनिट भी इन शिविरों की भाँति ही ...ऊबड़-खाबड़ भूमि पर होते हैं। पानी के निकट तो ग्राम ...बसे हैं। इस कारण यूनिट कैम्प पानी के पास बनाये नहीं ...जा सकते। उनको तो ग्राम से दूर ही स्थान मिलता है। ...पानी भी दूर से ही लाना पड़ता है।

हाँ, तो सैनिकों के यात्री जीवन का वर्णन कर रहा था। जब कान्वाय जोजीला, ड्रास, कारगिल, फोटोला, ...बुतकार वू, निमकी ला, लामा मारू होता हुआ सिन्धु-...घाटी में उतरता है तो वायु में कुछ नमी मालूम होती है। ...इस घाटी में उतरने के लिए १८ कैंचियाँ हैं। पहाड़, रेत, ...और छोटे पत्थरों का ढाल लगभग ३,००० फीट ३ या ४ ...मील में है। तो पाठक विचार सकते हैं कि ऐसे स्थान पर ...साल में एक दो ट्रकों का खड्ड में गिर जाना कोई आश्चर्य-...जनक घटना नहीं।

कान्वाय खालसी पहुँचता है। अगले दिन वासगो, ...रला और नीमा होता हुआ लेह पहुँच जाता है। फौज ...के लिए लेह लद्दाख का गरम प्रान्त है। यहाँसे आगे ...जानेवालों को लेह में ३ दिन रखा जाता है।

चार दिनों की थकान से चूर और धूल से भरा हुआ ...जवान स्नान करता है। कपड़े साफ करता है और ३ दिन ...आराम करता है। फिर उसे ४ रोज में ५००० फुट की ...ऊँचाई से एकदम ११,५०० फुट की ऊँचाई पर आने के ...लिए धीरे-धीरे उसे वहाँकी पतली हवा को सहन करने ...की आदत भी डालनी होती है क्योंकि लेह के आगे कोई ...भी यूनिट ऐसे स्थान पर नहीं जहाँ की ऊँचाई १३,००० ...फुट से कम हो। डाक्टर ३ रोज से पहिले किसीको आगे ...नहीं जाने देते। एक बार एक कर्नल वायुयान द्वारा कुछ



हमारे सीमान्त सड़क बनानेवाले जवान कोट-पतलून पहनते हैं और शिक्षित भी हैं।

ही घंटों में लेह से दिल्ली पहुँच गये। परिणामस्वरूप उनको दिल का दौरा हो गया। कहाँ ११,००० फुट की ऊँचाई और कहाँ दिल्ली! इसलिए डाक्टरों को इस बात का विचार भी करना पड़ता है कि मनुष्य के हृदय पर एकदम से भार न पड़ जाये। जवान ३ दिन विश्राम करने के पश्चात् चुशूल आदि स्थानों पर जाने के लिए तैय्यार हो जाते हैं। फिर वही कान्वाय, और फिर भयंकर शीत और धूल का बवंडर! फिर प्रातः उठना! वहाँ पहुँचने में भी उनको ३ दिन तो लग ही जाते हैं क्योंकि चुशूल लेह से १७० मील से अधिक ही है, कम नहीं।

ड्राइवरों के भाग्य में लेह का ३ रोज का विश्राम भी नहीं होता। लेह पहुँचते ही उनकी गाड़ियाँ सामान उतारने के लिए विभिन्न अड्डों पर पहुँच जाती हैं। सब इस बात का ध्यान रखते हैं कि सामान शीघ्रातिशीघ्र उतार दिया जाये, फिर भी रात्रि के ९ या १० बज जाना कुछ असंभव नहीं। फिर अगले रोज वापिस जाने के लिए लादना पड़ता है। यूनिट के कुछ जवानों को श्रीनगर छुट्टी पर भी जाना है। शाम को कहो, अथवा रात्रि को फिर 'मारशलिंग' आदि आरम्भ हो जाता है। लौटते समय सफर भी ३ रोज में पूरा करना होता है। फिर लौटते समय भी तो जोजीला को पार करना पड़ता है। जोजीला के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। वह कब रोक दे और कान्वाय वहीं खड़ा रह जाये। जब सड़क साफ हो जाये तो वह फिर चले। यह जीवन है मोटर ड्राइवरों का। इस जीवन के विषय में हम नागरिकों को क्या मालूम है? फिर उन ड्राइवरों के विषय में जरा विचार करिये जो लेह से चुशूल जाते हैं और वापिस आते हैं। उनको तो वहाँ रहते समय कभी भी ११,५०० फुट से नीचे की धरती के दर्शन तक नहीं होते।

(३)

जवान का वास्तविक सैनिक जीवन लेह से आगे अपने युनिट में होता है। यहाँपर मनुष्य के लिए ३ मुख्य और विशेष कठिनाइयाँ होती हैं। पहिली, वायु का हल्कापन, दूसरी, लद्दाख की सूखी हवाओं के तूफ़ान और तीसरी, विकट सर्दी।

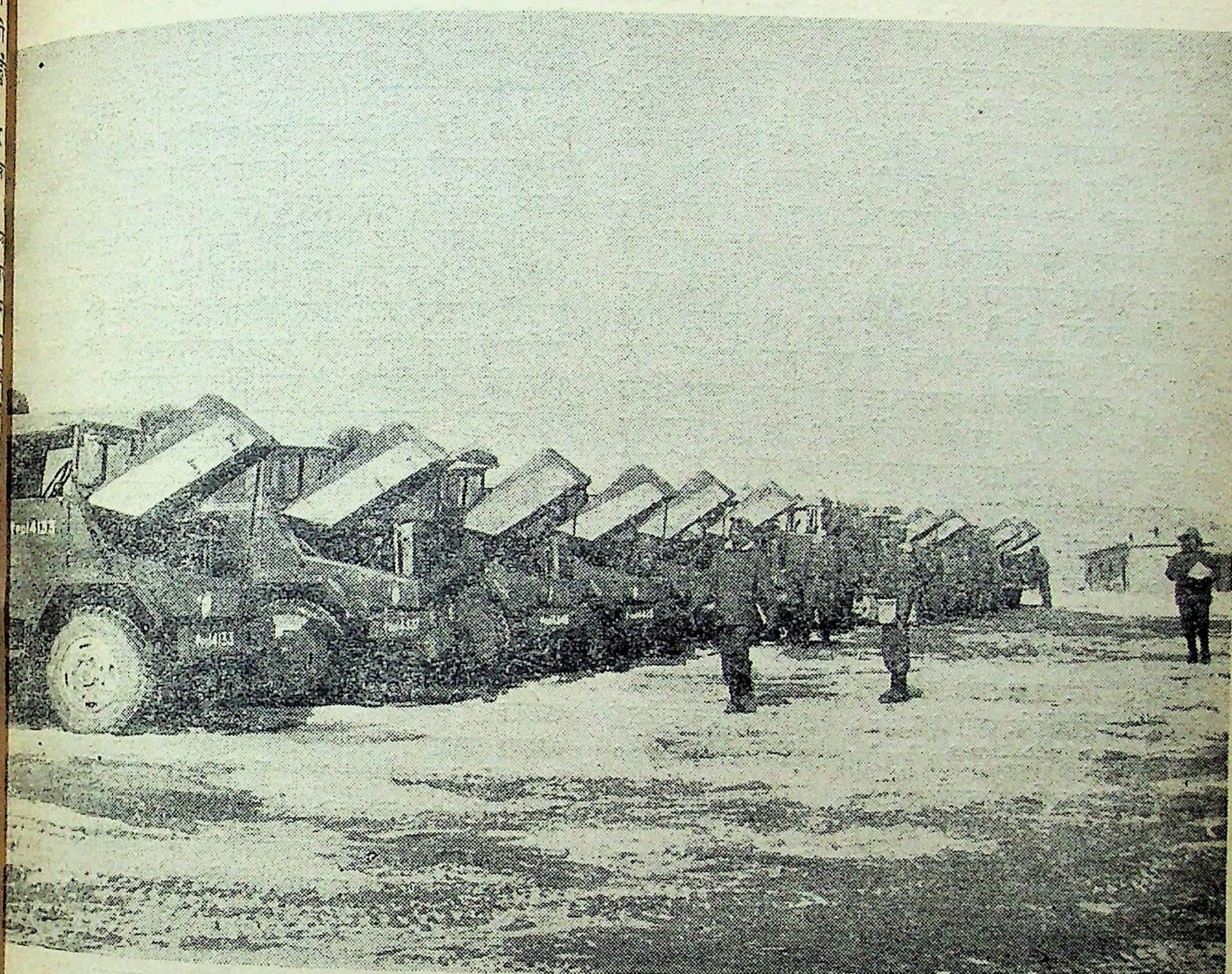
वायु के हल्केपन के कारण जवान अधिक कार्य नहीं कर सकते। परन्तु धीरे-धीरे आदत पड़ जाती है। हृदय का आकार से बड़ा हो जाना अथवा फेफड़ों में पानी उतर आना ही यहाँकी बीमारियाँ हैं। अधिकांश मनुष्य यहाँ बीमार नहीं होते। यदि होंगे भी तो जुकाम नहीं होगा, एकदम न्युमोनियाँ ही होगा। यही कारण है कि सरकार यहाँ सिपाहियों की बहुत देखभाल रखती है। सभी यूनिटों में डाक्टरों का प्रबन्ध है। बीमार को शीघ्रातिशीघ्र वायुयान द्वारा देश के अस्पताल भेज दिया जाता है।

थोड़े दिनों बाद जवानों को हलकी वायु में कार्य करने की आदत पड़ जाती है, परन्तु हवा और धूल उनको सदैव ही परेशान करती है। इनके स्नान के लिए गरम पानी का प्रबन्ध सप्ताह में २ बार हर युनिट में किया जाता है। वायु के सूखेपन के कारण शरीर की त्वचा बिलकुल सूखी सी हो जाती है। इससे बचाव के लिए जवानों को पानी, चाय आदि अधिक दी जाती है। चिकनाई की भी आवश्यकता होती है। इस कारण घी की मात्रा इनको देश से दुगनी मिलती है। सर्दी की अधिकता के कारण शरीर में गरमी की आवश्यकता होती है। इस गरमी को बढ़ाने के लिए चीनी भी देश से दुगनी दी जाती है। इसके अतिरिक्त अखरोट, पिस्ता, बादाम, टाफी, चाकोलेट, काफी, हारलिक्स एवं दूध आदि भी दिया जाता है। ताजी सब्जी वायुयान द्वारा लेह में गिराई जाती है। नुबरा घाटी में भी इसी प्रकार सामान पहुँचाया जाता है। मांस के भेड़ बकरियाँ भी वायुयान द्वारा ही पहुँचाई जाती सायंकाल दो आउंस रम जवानों को रात्रि में गरमी पहुँ के लिए दी जाती है।

मैं जब तक ११,००० फुट तक की ऊँचाई पर प्रतिदिन सायंकाल रम और सिगरेटों का प्रयोग क रहा, परन्तु जब मैं १२,५०० फुट पर गया तो न शराब पीने की रुचि हुई और न सिगरेट की। मुझसे ह्विस्की पीने को कहा गया पर मेरी रुचि इस 'स्व जल' को भी ग्रहण करने की न हुई। मैं भोजन भी क करता था तब भी वायु रूपी व्याधि से घिर ही गया। "य यह तो अधिक ऊँचाई पर होता ही है। नीचे जाने पर ठीक हो जायेंगे।" यूनिट के कैप्टन डाक्टर ने मुझे बता और हुआ भी यही! जब मैं लेह वापिस पहुँचा तो दिन संध्या को फिर ह्विस्की के पैग और सिगरेट लगने लगे। उस यूनिट में जिसमें मैं ठहरा था, मुझे हुआ कि जवानों को 'उदर शूल' रहता है और सि से खाँसी आती है। सुना है कि फौजी हेडक्वार्टर ज को रम के स्थान पर पैसा देगा। रम मोल बिकेगी जो जवान पीना चाहे वह मोल लेकर पी सकता अर्थात् अब सैनिकों को बिना मूल्य 'रम' देना लद्दा अवश्य समाप्त कर दिया जायेगा क्योंकि अधिक ऊँ पर यह लाभ के स्थान पर हानिप्रद ही सिद्ध हुई है

जवानों को गरम रखने के लिए रूई के वस्त्र एवं कोट और पतलून दिये जाते हैं जिनमें रुई की चिड़ियों के पर भरे होते हैं। जूते कई प्रकार के होते सोने के लिए एक विशेष प्रकार का थैला दिया जा और चार कम्बल। रहते तो बनायी गयी गुफ़ा (बंकरों) में हैं, परन्तु ये गुफाएँ स्टोवों द्वारा रखी जाती हैं। बहुधा दिन में इन आवास गुफ़ाओं (बं को गरम करने की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि काफी तेज होती है परन्तु रात्रि में ये अवश्य गरम रखी हैं। एक स्टोव (बुखारी) इसे गरम रखने के लिए होता है परन्तु इसमें मिट्टी का तेल अधिक जलता समस्त रात्रि में लगभग ४ गैलन तेल अथवा २४ गुफा को गरम रखने में समाप्त हो जाती हैं। इन के बिना जाड़े में १२,००० से ऊपर जीवित रहना अ हो जाये। इसका अनुमान वही लगा सकते हैं जो इन ऊँचाइयों पर रहे हैं। कुछ भारतीय 'आपत्ति (emergency) बनाये रखने के विरुद्ध हैं, और इसके समर्थक। इन दोनों सज्जनों का गठबन्धन कर जायें और केवल १ सप्ताह १४,०००, १५,००० के पर जाड़े में रख दिया जाये तो उनको वास्तविक हो जायेगा, और वे जान जायेंगे कि भारत में चीनि युद्ध के लिए तैयारी करने के लिए 'आपत्ति (emergency) की आवश्यकता है अथवा नहीं।

इन तीन बड़ी कठिनाइयों, अर्थात् वायु के दबाव अल्पता, नीचे तापमान और वायु की रूक्षता को सहन



कानूवाय चलाने से पहले ड्राइवर अपनी गाड़ियों की जाँच करते हुए

के साथ ही सैनिक को अपनी ड्यूटी भी देनी पड़ती है। यदि वह गश्त (पैटरोल) पर भेज दिया गया तो उसका जीवन यूनिट से पृथक् ही व्यतीत होगा। यह प्रत्येक यूनिट का कर्त्तव्य है कि स्थानीय मार्गों, दर्रों, नदी-नालों आदि सबकी जाँच करता रहे और सजगता से शत्रु की गति-विधि पर ध्यान रखे कि कहीं उसकी छोटी-छोटी टोलियाँ छिपकर अपनी सीमा में प्रवेश न करें। इस कार्य के लिए हर यूनिट अपनी गश्ती टुकड़ी भेजता है। हर यूनिट को अपने क्षेत्र के भूगोल और उसमें होनेवाली बातों की यथासंभव पूरी जानकारी रखनी होती है।

जवानों का यूनिट-जीवन गर्मियों में तो साधारण ही रहता है परन्तु जाड़ों में शीत के कारण प्रतिदिन के कार्य में कुछ परिवर्तन आ जाता है। वे ६ बजे प्रातः उठकर ८ बजे तक अपने सब कार्यों से निवृत्त हो जाते हैं। जलपान में उनको गरम चाय, दो पूरियाँ अथवा पराठा मिलते हैं। फिर वे आवास गुफाओं को ठीक करने में, उनपर से बर्फ हटाने में अथवा यूनिट की अन्य ड्यूटी में लग जाते हैं। लगभग १२ बजे उनको गरम भोजन मिलता है, और ३ बजे फिर जलपान जिसमें अखरोट आदि मिलते हैं। सायंकाल ६ बजे भोजन मिल जाता है और उसके पश्चात् हारलिक्स मिलता है। इस खाने के अतिरिक्त प्रत्येक जवान कई बार चाय पीता है। अब आयी रात्रि, जिसमें सन्तरी की ड्यूटी भी देनी है। इस ड्यूटी को एक जवान केवल दो घण्टे करता है। तत्पश्चात् उसके स्थान पर दूसरा जवान आ जाता है। रात्रि में बड़ी कड़ी सर्दी होती है। वायु तीर की भाँति तेज चलती है जिससे हथियारों की धातु इतनी ठंडी हो जाती है कि यदि बिना दस्ताने पहिने उसे छू लिया जाय तो हाथ उस पर चिपककर रह जायगा, और छुड़ाने पर त्वचा उसीपर चिपकी रह जायेगी और त्वचा रहित रक्त बहता हुआ मांस ही हाथ पर रह जायेगा। वायु-रूक्षता के कारण लोहे और हाथों में बिजली पैदा हो जाती है जिसके कारण हाथ लोहे से चिपक जाता है।—सर यंग हसबैन्ड ने बताया है कि गोबी के रेगिस्तान में इतनी रूक्षता है कि वहाँ पर

कम्बल खोलने में भी बिजली पैदा हो जाती है। इससे कभी-कभी तो कम्बल जल तक जाते हैं। इसी कारण उन दिनों वहाँ धातु की चीजों पर कभी नंगे हाथ नहीं रखे जाते। सदैव मोटे-मोटे दस्ताने पहिने जाते हैं और हथियार आवास गुफाओं में ही रखे जाते हैं। कहावत है कि सैनिक का विवाह उसकी राइफिल से होता है। उसको पहरे पर उसी राइफिल को हाथ में रखना है। वह हथियार की धातु को ढाँके रहता है और हाथों में दस्ताने भी पहने रहता है। ड्यूटी देने की चौकियाँ बनी हुई हैं। प्रत्येक चौकी में केवल एक ही व्यक्ति खड़ा हो सकता है। उसकी दीवारों में एक एक छेद हर ओर होता है। यह छोटा सा कमरा स्टोव से गरम रखा जाता है। सिपाही छेदों द्वारा ही चारों ओर देखता रहता है। दो घंटे समाप्त होने पर दूसरा सन्तरी आ जाता है। इसी प्रकार समस्त यूनिट की रात्रि में देख-रेख होती रहती है। प्रत्येक यूनिटों की चौकी बनी हुई हैं। कुछ चौकियाँ तो २०,००० फुट से अधिक ऊँचाई पर हैं, वैसे १८,०००, १९,००० फुट की चौकियाँ तो कई हैं। इन चौकियों पर गर्मियों में पहरा दिया जाता है। जाड़ों में भारतीय सेना १६००० फुट तक की चौकियाँ सँभालती हैं। इसके विपरीत चीनियों के पास १६,००० फुट से अधिक ऊँचाई की अब कोई चौकी नहीं है। वे लोग जाड़ों में तो १४,००० फुट से ऊपर जाते ही नहीं।

(४)

जब मैंने उन नेताजी को सैनिक जीवन का यह सूक्ष्म विवरण बताया तो वे चकित रह गये। फिर भी मैंने उन्हें छोड़ा नहीं। मैंने उन्हें यह भी बताया कि चीनी सैनिकों की देखभाल भारतीय सैनिकों से कम नहीं होती। उनका वेतन भी भारतीय सैनिकों से अधिक है। भोजन भी अच्छा मिलता है और वस्त्र भी। परन्तु यह ऐतिहासिक सत्य है कि जब चियांग काई शेक की फौजें और माओत्से तुंग की फौजों में युद्ध हुआ तो उस समय चियांग के सहस्रों चीनी सिपाही अपना पक्ष छोड़कर शत्रु पक्ष से जा मिले। आजकल तो उनका साहस बढ़ा हुआ है। ३० साल से वे विजयी ही होते आ रहे हैं तो ज्ञात होता है कि वह रजाई पहिने हुए ही किसी भी स्थान पर लड़ने को उत्सुक रहते हैं। उनको एक बार मार खाने दो, फिर देखा जायेगा कि मार पड़ने पर भी उनमें कितना साहस रह जाता है। इस समय चीनी सैनिक की तुलना भारतीय सैनिक से करना व्यर्थ है। भारतीय सैनिकों की वीरता भी प्रशंसनीय है और उन्होंने दो महायुद्धों के विभिन्न मोरचों पर वीरता के अनेक पदक प्राप्त किये हैं। परन्तु १९४७ के बाद उसने बारकें बनायी हैं। कोरिया में, इंडोचाइना में और मध्यपूर्व (गाजा) में शान्ति-सेना का काम किया है। उन्हें आजकल कश्मीर में केवल एक साल रहने के पश्चात् ही एक पदक मिल जाता है। फौज में कुछ लोग मखोल में इसे 'फ्री राशन' पदक कहते हैं। तो फि में तो शान्ति ने यह दशा कर दी। यदि देखा जाय चीनी सिपाहियों के पास हाल के प्राप्त आक्रमणों मेडल हैं, और हमारे पास हाल के मिले हुए शान्ति मिश के मेडल हैं। तो भेद तो अवश्य होना था। फिर, ची सैनिक कम्युनिस्ट देश के निवासी हैं। उनकी हर फौ टुकड़ी के साथ एक राजनैतिक कार्यकर्त्ता होता है उनको भाषण देता रहता है। हमारे यहाँ प्रजातन्त्र (और वह प्रजातन्त्र भी अँगरेजों का सिखाया हुआ) हमारी शासक पार्टी तक 'सोशलिस्टिक पैटर्न' का स अर्थ नहीं बता पाती तो भला साधारण सैनिक को पता कि 'सोशलिज्म' है क्या? वह राजनीति के का नहीं लड़ता, वह लड़ता है मान और प्रतिष्ठा के लिए, जि कारणों से उसके पूर्वज लड़ते चले आये हैं। स्वयं उसी मर्यादा को स्थिर रखने के लिए भारतीय सैनिक रहा है। भारतीय सैनिक भाषण द्वारा अथवा लिखि अपनी किसी माँग को नहीं रखता। वह तो उसके अफ हैं जो उसकी ओर से माँग रखकर उसकी आवश्यकता पूर्ति कराते हैं। अफसर उन्हीं बातों के लिए सैनिक साथ देते हैं जिससे सेना की युद्ध करने की क्षमता दक्षता (Combat efficiency) बढ़े। इसमें अँगरे अथवा अफसरों पर दोषारोपण करना व्यर्थ है। भारत सेना में लोग स्वेच्छा से भर्ती होते हैं। अधिकतर परम् से युद्ध में भाग लेनेवाले परिवारों के युवक सेना (इन्फै आरमर्ड कोर और तोपखाना) में जाते हैं। इस का भारतीय फौज की तुलना चीनी फौज से नहीं की सकती। फिर, चीनी सैनिक असभ्य हैं। जो व्य जितना ही असभ्य होगा वह उतना ही अधिक सहन करनेवाला भी होगा। परन्तु इसका अर्थ कदापि नहीं कि सभ्य जातियाँ असभ्य जातियों से क्षेत्र में पराजित ही होंगी। सभ्य जातियों को अपने शान्तिमिशनों में लिप्त न करके अपनी 'फायर' (ग दागने की) शक्ति बढ़ानी होगी, और अन्य क्षेत्रों में रा नीतिक प्रचार को सफल बनाना होगा जिससे अन्तर्रा जगत् में लोग भारत के पक्ष और उसके दृष्टिकोण को ढंग से समझ सकें, तथा उन्हें विश्वास हो जाय कि भा का पक्ष न्याय और सत्य पर आधारित है। हम किसी आक्रमण करने या किसी की भूमि दबाने को उत्सुक हैं। हम तभी शस्त्र उठाते हैं जब हमारी प्रतिष्ठा, सम्म या देश की अखंडता पर कोई आक्रमण करता है। हम अंतर्राष्ट्रीय प्रचार इतना सफल होना चाहिए कि शत्रु झूठा प्रचार दूसरे देशों के लोगों पर असर न कर स सत्य, न्याय और आत्म-सम्मान के आधार पर लड़नेवा सभ्य जातियाँ, जो ठीक ढंग से उचित अंतर्राष्ट्रीय प्र का भी ध्यान रखती हैं, असभ्य और अन्यायी तथा ल जातियों से उच्च रही हैं, और सदैव उच्च रहेंगी।

पृथ्वी की चुम्बकीय शक्ति का जीवन पर प्रभाव

डॉ० कैलाशनाथ मिश्र

जिस प्रकार मानव-जीवन पर ग्रह-नक्षत्रों का तथा विभिन्न वातावरण का प्रभाव पड़ता है उसी प्रकार जीवन-पर्यंत, अविच्छिन्न रूप से उसके ऊपर पृथ्वी की चुम्बकीय शक्ति का भी प्रभाव पड़ता रहता है जो जीवन के विभिन्न पहलुओं को क्रमबद्ध या विशृंखलित करने की अभूतपूर्व क्षमता रखती है। चुम्बकीय शक्ति के मुख्यतः तीन रूप हो सकते हैं।

(१) पृथ्वी की चुम्बकीय शक्ति।

(२) लौह-चुम्बक की शक्ति।

(३) जैव या प्राणि चुम्बक (Animal magnetism) की शक्ति (सम्मोहन विद्या और मैस्मेरिज्म में)।

इन विभिन्न प्रकार की शक्तियों पर हजारों वर्षों से विचार हो रहा है जिससे अनेक वैज्ञानिक तथ्य सामने आये हैं। ये सारे प्रयोग श्रृंखलाबद्ध परीक्षण प्रणाली के अंतर्गत नहीं रहे इसलिए इनका एकत्र कर पाना अत्यन्त ही कठिन कार्य है। आज मैं पृथ्वी की चुम्बकीय शक्ति का जीवन पर प्रभाव सम्बन्धी तमाम खोजों और उपलब्धियों को सारांश में पाठकों के मनन के लिए रक्खूंगा, इस आशा में कि संभवतः कोई पाठकबन्धु इस विषय की खोजों को और आगे बढ़ायें जिससे मानव-जीवन को एक नयी दिशा मिले।

यह सामान्य ज्ञान तो सबको होगा कि पृथ्वी अपने चारों ओर स्वयं का एक चुम्बकीय क्षेत्र बनाये हुए है। विश्वास किया जाता है कि पृथ्वी के गर्भ में फेरस ऑक्साइड या मैगनेटाइट का जो विशाल भंडार है उसीमें चुम्बकीय शक्ति के गुप्त गुण हैं, अर्थात् यह लोहे को अपनी ओर आकर्षित कर सकता है; यही प्राकृतिक चुम्बक है। इसी की चुम्बकीय शक्ति के कारण जब कोई चुम्बकीय सुई किसी धागे या तार में लटकाई जाती है तो उसका एक सिरा सदैव उत्तरी ध्रुव की ओर तथा दूसरा दक्षिणी ध्रुव की ओर घूम जाता है। दिशा-निर्देशक-यंत्र (कम्पास) इसी सिद्धान्त पर काम करता है।

पृथ्वी की इस चुम्बकीय शक्ति के प्राकृतिक गुणों के काफी अध्ययन के पश्चात् यह मालूम हुआ कि यह शक्ति जीव-जन्तुओं के जीवन के कुछ अंगों पर अपना निश्चित प्रभाव डालती है। पक्षियों का ऋतु-देशान्तर गमन इसे अच्छी तरह सिद्ध करता है। वास्तव में अधिकांश मौसमी उड़ानें ग्रीष्मान्त में उत्तर से दक्षिण तथा वसन्त में दक्षिण से उत्तर की ओर होती हैं। इन पक्षियों की सैकड़ों-हजारों मील की उड़ानें पृथ्वी की चुम्बकीय रेखाओं के नियत पथ पर ही होती हैं। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि इन मौसमी पक्षियों का झुंड बड़े-बड़े महासागरों के ऊपर से भी गुजरता है जहाँ निश्चय ही दिशा निर्देशन के किसी चिह्न की कोई संभावना नहीं। सबसे मनोरंजक बात तो यह है कि ये उड़ानें बहुधा रात्रि में ही होती हैं अर्थात् उस अवस्था में जब कि सूर्य की सहायता से दिशा निर्दिष्ट करना असंभव हो। यह सोचना कि ये पक्षी तारों की स्थिति देखकर दिशा ज्ञान करते होंगे बिलकुल बेकार है।

उपर्युक्त तथ्यों से लगता है कि संभवतः इन पक्षियों का दिशा निर्धारण पृथ्वी की चुम्बकीय रेखाएँ ही करती हैं।

इस सम्बन्ध में एक दूसरा प्रमाण भी मिला है जो कि निम्न कोटि के जीवों के जीवन से सम्बन्धित है। इनमें से सबसे रोचक उदाहरण "टरमाइट" नामक कीड़ा है। ये कीड़े अपने घरों को ठीक पृथ्वी की चुम्बकीय रेखाओं के समानान्तर ही बनाते हैं, इधर-उधर नहीं (विस्तृत विवरण तथा चित्र के लिए देखें—("Vie d' Italia e del Monde" Oct. 1936, pp. 1058.)

हमें इस सम्बन्ध में जैव-सेलों के सूत्रिभाजन के प्रारम्भिक और मध्यावस्था के रूप (Metaphase and anaphase of cellular karyokinesis) तथा "चुम्बक की शक्ति रेखाओं" के बीच जो आश्चर्यजनक एकरूपता है उसे भी नहीं भूलना चाहिए। सेल विभाजन के इन क्रमों में क्रोमोजोम अविराम गति से सेलों के ध्रुवों की ओर घूमता रहता है और इसकी आश्चर्यजनक समानता किसी चुम्बक के चुम्बकीय क्षेत्र में दोनों ध्रुवों की ओर लोहे के बुरादे द्वारा बने हुए रूप से मिलती है।

इस कल्पना को स्वीकार करने के पहले कि पृथ्वी की चुम्बकीय शक्ति मानव-जीवन को प्रभावित करती है हमें जीव विज्ञान सम्बन्धी कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बातों पर विचार करना होगा। इनमें से एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथ्य

इस बात पर विचार करने से मिलता है कि चुम्बक और विद्युत् ये दोनों परस्पर एक दूसरे से कितने अधिक सम्बन्धित और परस्पर एक दूसरे पर कितने अधिक आधारित हैं, इस बात को भी हमें नहीं भूलना होगा। यह तो सभी जानते होंगे कि किसी "सरकिट" में यदि चुम्बकीय क्षेत्र का निरन्तर परिवर्तन किया जाय तो विद्युत्धारा उत्पन्न होती है और इसके विपरीत यदि किसी लोहे के टुकड़े पर लपेटे हुए तार में से विद्युत्धारा प्रवाहित की जाय तो वह साधारण लोहे का टुकड़ा चुम्बकीय शक्ति युक्त हो जाता है।

यह भी सत्य है कि विद्युत्धारा हमारे शरीर में अविराम गति से उत्पन्न होती रहती है और जीवन-पर्यंत चलती रहती है (यह इलेक्ट्रोकार्डियोग्राफी तथा इलेक्ट्रोइनसिफैलोग्राफी में स्पष्ट दिखाया गया है); और यह भी कि लौहयुक्त हेमोग्लोबिन शरीर के तमाम तन्तुओं (Tissue) में मौजूद है (यह रक्त नलिकाओं द्वारा समस्त शरीर में फैला हुआ है) इस धारणा की पुष्टि करता है कि पृथ्वी की चुम्बकीय शक्ति मानव-जीवन पर तथा अन्य जीवधारियों पर अपना प्रभाव डाल रही है। यद्यपि इस बात का हमारे पास कोई ठोस प्रमाण नहीं है फिर भी पृथ्वी के भीतर छिपी हुई इस अपार शक्ति को ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अनुभव किया जा सकता है।

इस संभावना पर अब हम आपका ध्यान दिलायेंगे कि हमारे शरीर में वर्तमान विद्युत्धारा हमारे जीवन को कितना अधिक प्रभावित करती है। भले ही आप इसको अधिक महत्त्व न दें पर हम आपके सामने दो प्रसिद्ध तथ्यों को रखेंगे।

इनमें से प्रथम का सम्बन्ध उन कष्टों की संभावना से है जो साधारणतः स्नायविक ढंग के होते हैं जैसे—सीफेली ट्राइजेमिनल न्युरैलजिया इत्यादि जो विद्युत्धारा की बहुत ही कम "पोटेंशियल" (स्थितिक ऊर्जा) तथा "इंटेसिटी" (आवेश) पर निर्भर होते हैं। यह विद्युत्-धारा मुख गह्वर में ताप विद्युतीय संयोजन (Thermoelectric Coupling) अथवा रासायनिक प्रभाव के कारण उत्पन्न हो सकती है और ऐसा उस स्थिति में होता है जब दंत क्षय को ठीक करने में विभिन्न धातुओं का मुख के भीतर सम्पर्क होता है।

दूसरा तथ्य रूस के अनुसंधानकर्त्ताओं के (सोबोडोर १९३२) उन खोजों से सम्बन्धित है जिन्हें हाल ही में अमेरिका की प्रयोगशालाओं ने अपने हाथ में लि[ए] इन अनुसंधानों में यह दिखाया गया कि निम्न आ[...] के अविच्छिन्न विद्युत् क्षेत्र द्वारा "एक्स" और "वा[ई]" क्रोमोजोमों को रखनेवाले शुक्रकीट या डिम्ब को प्रभा[वित] करके भावी पीढ़ी का लैंगिक परिवर्तन किया जा[ना] संभव है। इस विषय में यह स्मरणीय है कि इन्हीं X [और] Y क्रोमोजोमों के कारण नर या मादा होता है।

इस सम्बन्ध में हमें विभिन्न अन्वेषकों की प्रायो[गिक] खोजों को विशेषकर मोडेना के रेडियोलॉजिकल स[...] (बाली, लेंजी, मूज़िउली) के अन्वेषकों की उन खो[जों] को स्मरण रखना होगा जिन्हें उन्होंने चुम्बकीय [...] के जीवन पर प्रभाव के सम्बन्ध में किया। इन खोजों [में] बहुत सी महत्त्वपूर्ण बातों पर ध्यान दिया गया [...] केवल इतना ही नहीं देखा गया कि चुम्बकीय क्षेत्र [...] जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है वरन् यह भी नोट [किया] गया कि इसका श्लेषाभ पदार्थों (Colloids) पर, [...] के घावों को पूरित होने की क्रिया पर, टूटी हुई अस्[थियों] पर, प्रायोगिक "निओप्लासिया" के संस्थापन तथा वृ[द्धि] पर क्या प्रभाव पड़ता है।

इन खोजों के परिणामों ने यह सिद्ध कर दिया [कि] पृथ्वी की चुम्बकीय शक्ति के जीवन पर प्रभाव की कि[सी] प्रकार भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। यह सत्य है कि [इन] प्रयोगों में जिन चुम्बकीय क्षेत्रों के प्रभाव का अध्य[यन] किया गया उनके चुम्बकीय आवेशों से पृथ्वी की चुम्ब[कीय] शक्ति का आवेश बहुत ही कम है, पर यह भी [नहीं] भूलना चाहिए कि पृथ्वी का चुम्बकीय आवेश स[तत] तथा अविच्छिन्न रूप से जीवन भर हमें प्रभावित [करता] रहता है।

जहाँ तक यह मानने का सवाल है कि मनुष्य [जिस] दिशा में सिर या पैर करके सोता है उसका उसके जी[वन] पर प्रभाव पड़ता है तो यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए [कि] इसका सीधा सम्बन्ध हमारी निद्रा से है। संभवतः यह [...] पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र के कारण होता है। इसमें [कोई] संदेह नहीं कि निद्रा की गहनता का, इसमें लगने[वाले] समय का तथा निद्रा लानेवाली शक्ति का मनुष्य के [सिर] की दिशा से गहरा सम्बन्ध है।

इस प्रकार के विचारों पर मुस्कुरा देना आसा[न है] क्योंकि इन्हें कोई भी चिकित्सा पद्धति स्वीकार नहीं क[रती]

और अधिकांश स्नायु-मानसिक चिकित्साशास्त्री भी इसकी उपेक्षा करते हैं। हजारों वर्षों से ये तथ्य जाने जाते रहे हैं पर चूंकि इनको भाषा में समझा सकना अत्यन्त दुरूह है इसलिए इस विचारणीय विषय को वैज्ञानिक मान्यता नहीं मिल सकी। इसके अतिरिक्त लोगों में इसके द्वारा उत्पन्न परिणामों को जो कभी-कभी इतने आश्चर्यजनक होते हैं कि अविश्वसनीय से लगते हैं, साधारणतः स्वतः द्वारा उत्पन्न की हुई मानसिक स्थिति (Auto suggestion) से जोड़ देने की प्रवृत्ति होती है। ये परिणाम निरन्तर बनी रहने वाली अनिद्रा में पाये जाते हैं जिनका कोई भी वास्तविक कारण ढूंढने पर नहीं मिलता और इस प्रकार सारे तथ्यों पर पर्दा पड़ जाता है।

शुलचन आरुख (हिब्रू धर्म की धार्मिक मान्यताओं की पुस्तक) में लिखा है कि चारपाई या बिस्तर को सदा उत्तर-दक्षिण दिशा में करके रखना चाहिए। उसे पूर्व पश्चिम दिशा में करके सोने को मना किया गया है। अपने भारत में मान्यता है कि सिर दक्षिण या पूर्व दिशा में करके सोना चाहिये इसके विपरीत दिशा में नहीं। जहाँ तक सिर दक्षिण तथा पैर उत्तर की ओर करके सोने की अपने देश की मान्यता है तो वह वैज्ञानिक प्रयोगों में गलत साबित हो चुकी है। इसका वर्णन हम आगे करेंगे। जापानियों में भी एक पुरानी मान्यता है जिसे एम० डुचाटेल ने बताया और जिसके अनुसार कमरे की सारी वस्तुएँ इस समानान्तर क्रम में रक्खी जायँ कि सोने वाले का सिर सदा उत्तर दिशा की ओर रहे जिसमें प्रकृति की शक्ति का कोप हमारे ऊपर न हो। आधुनिक एलोपैथिक चिकित्सा विज्ञान के जन्मदाता हिप्पोक्रेट्स ने अपनी चिकित्सा पद्धति में 'हवा, पानी और स्थान' के विषय में जो लिखा उसे भी हमें नहीं भूलना चाहिए। यद्यपि इन सूत्रों में निहित महान् सत्य को उस समय जब ये लिखे गये थे नहीं सिद्ध किया गया पर वर्तमान समय में इन पर अन्वेषकों द्वारा काफी अनुसन्धान किया गया है और उसमें निहित सत्य को पूर्णरूप से स्वीकार किया गया है।

सन् १८४५ में पहले पहल रीचेनबेक ने लक्ष्य किया कि बहुत से लोग जब पूर्व दिशा में सिर तथा पश्चिम में पैर करके सोते हैं तो एक विचित्र प्रकार की बेचैनी अनुभव करते हैं। उसने लोगों को सलाह दी कि चारपाई का सिरहाना सदा उत्तर दिशा में रक्खा जाय जिसमें सोने वाले का सिर सदा उत्तर दिशा में रहे। डुरविले ने सूक्ष्म संवेदनशील व्यक्तियों पर कई प्रयोग किये और निम्नलिखित परिणामों पर पहुँचा।

१—सिर उत्तर तथा पैर दक्षिण की ओर—खुला श्वासोच्छवास, बड़ी सुखद अनुभूति।

२—सिर दक्षिण तथा पैर उत्तर की ओर—कष्टकर प्रतीति।

३—सिर पूर्व तथा पैर पश्चिम की ओर—स्वस्थकर अनुभूति (पर सिर उत्तर की ओर करके सोने की अपेक्षा कम)।

४—सिर पश्चिम तथा पैर पूर्व की ओर—विचित्र प्रकार की बेचैनी।

क्लैरिक ने १८६५ ई० में अपने कुछ दिलचस्प प्रयोग इस सम्बन्ध में किये और इस परिणाम पर पहुँचा कि कुछ प्रकार के स्नायुशूल विशेषकर दन्तपीड़ा में यदि रोगी का सिर ठीक उत्तरी ध्रुव की ओर करके सुला दिया जाय और पीड़ित स्थान को चुम्बक के दक्षिणी ध्रुव से छुआ जाय तो स्नायुशूल या दन्त पीड़ा कम हो जाती है। विश्व-विख्यात साहित्यकार विक्टर ह्यूगो भी अपनी अमर कृति "लेस मिजरेबुल्स" (Les Miserables 1862) में अपने अमर चरित्रों के बीच इस शक्ति को लाने से नहीं चूका, जब कि कल्पित रोगी संदेह में अपने जीर्ण कोच को उलट देता है—"afin, qua, le muit, la circulation de son sang ne fût pas contrariee par la grand courant magnitique du globe.

इसके अतिरिक्त इसी शताब्दी के अब्राम्स, रेगनॉल्ट और लेप्रिंस को भी हमें नहीं भूलना चाहिये जिन्होंने बताया कि जब शरीर उत्तर दक्षिण दिशा में सोता है तो शरीर के कोषों के ऋण विद्युत्कणों (electrons) पर पृथ्वी की चुम्बकीय शक्ति का प्रभाव पड़ता है और फलतः गहरी निद्रा का सुखदायक परिणाम प्राप्त होता है। रेगनॉल्ट द्वारा कितने ही प्रयोग उस सम्बन्ध में किये गये जिनसे यह सिद्ध हुआ कि शरीर के लेटने की दिशा का रक्त के श्वेत कणों की संख्या पर निश्चित प्रभाव पड़ता है और इसके द्वारा उनमें परिवर्तन करना संभव है। ज्यूरिच के मुलर को रेगनॉल्ट ने कुछ विशिष्ट प्रयोग बताये जिसमें विभिन्न शारीरिक दशाओं (Position) में शरीर का 'हिप्नो-सिनेमैटोग्राफ' (Hypnocinematograph) लेना प्रमुख

था। दूसरे शब्दों में निद्रा की गहनता को विभिन्न वैज्ञानिक उपकरणों और तरीकों द्वारा मालूम किया गया।

मुलर ने शरीर के विद्युतीय निरोध (Electrical resistance) को निश्चित करने के लिए 'न्यूरोमीटर' की सहायता से अनेक प्रयोग किये। इन प्रयोगों में शरीर को चार मुख्य खड़े और लेटी दशाओं (directions) में रक्खा गया था। स्वस्थ और रोगी दोनों प्रकार के लोगों को इन प्रयोगों में रक्खा गया। इन तमाम विभिन्न प्रयोगों में मानव विद्युतीय निरोध का मूल्यांकन उसी अवस्था में किया गया जब वह उत्तर की ओर सिर करके लेटा था।

इसी से मिलते प्रयोग रेगनॉल्ट द्वारा भी 'ऑसिलोमीटर' (Oscillometer) की सहायता से किये गये। उसने अपने प्रयोगों में देखा कि ऑसिलोमीटर में निम्नतम तनाव (Lowest tension) उसी स्थिति में था जब कि मनुष्य उत्तर सिर करके लेटा हुआ था। इसलिए उसने उत्तर सिर करके लेटने या सोने की अवस्था को सर्वोत्तम करार किया। ठीक इसके विपरीत रेगनॉल्ट ने यह भी सिद्ध किया कि यदि मनुष्य पश्चिम की ओर मुँह करके कार्य करे तो उसकी कार्य करने की क्षमता बढ़ जाती है।

दुर्भाग्यवश उपर्युक्त खोजों का बहुत कम लोगों को ज्ञान है। इसे दृढ़ता से प्रतिपादित करने के लिये और अधिक अनसन्धान होने चाहिए। वर्तमान युग में यह कार्य सूक्ष्म इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के कारण और अधिक सरल हो गया है। फिर भी इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि ये सब तथ्य गंभीर रूप से ध्यान देने योग्य हैं। बोन ने कहा था कि निद्रा मस्तिष्क में ध्रुवों के बदल जाने के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है। इस सम्बन्ध में मैरिनेस्को के प्रयोगों को भी हमें स्मरण रखना होगा। वह अपने प्रयोगों में तीसरी वेंट्रिकिल (Ventricle) को धन ध्रुवीण (anodal polarisation) करके निद्रा उत्पन्न कर देता था। इस प्रकार की निद्रा ठीक उसी प्रकार की होती थी जैसी कैल्शियम के लवणों के इंजेक्शन द्वारा उत्पन्न होती है। इस सम्बन्ध में एक दूसरा प्रयोग अनेक बार प्रदर्शित किया जा चुका है और वह यह मूर्च्छा की अवस्था के साथ मस्तिष्क के ओर-छोर (Tran Cerebral) पर निम्न आवेग तथा तनाव (Intensi and tension) का वैद्युतिक प्रवाह उत्पन्न हो जा है।

उपर्युक्त तथ्यों पर ध्यान देने के बाद इस बात कोई इनकार नहीं कर सकता कि हमारे सोने की दिशा हमारी निद्रा का गहन सम्बन्ध है, यद्यपि अनेक प्रयोगों बावजूद भी अभी तक निद्रा का पूर्ण रहस्य विज्ञान न समझ सका है। क्या यह उचित नहीं होगा कि अनि (insomnia) के रोगियों के बिस्तरों की दिशा दिशा-निर्देशक यंत्र (Compass needle) की सहाय से ठीक उत्तर-दक्षिण (जिसमें सिर उत्तर की ओर रहे करके इस हानि रहित प्रयोग से लाभ उठाया जाय?

इस सम्बन्ध में आज कल की बनी लोहे के ट स्प्रिंग या धातु की बनी उन चारपाइयों पर भी ध्या देना आवश्यक होगा जिन पर पृथ्वी की चुम्बकीय शक्ति का प्रभाव पड़ता है। इस संदर्भ में यह याद रखना चाहि कि जब किसी लोहे का टुकड़ा ठीक उत्तर दक्षिण दि में कुछ दिन तक जमीन के अन्दर गाड़ दिया जाता तो वह चुम्बकीय गुण युक्त हो जाता है। इस सम्बन्ध लकड़ी इत्यादि की बनी चारपाइयों पर जो निश्चय अचुम्बकीय (non-magnetic) हैं पर ध्यान देना चाहि जिससे पृथ्वी की चुम्बकीय शक्ति का प्रभाव केव अपने असली रूप में ही रहे, कम अधिक न हो।

इन खोजों में आधुनिक ढंग के बने विशालका मकानों को भी लेना चाहिए जिनमें सीमेंट के अतिरि बड़े परिमाण में लौह का उपयोग होता है। यह केव पृथ्वी की चुम्बकीय शक्ति के प्रभाव की दृष्टि से ही न होना चाहिए अपितु घर्षण या स्थिर विद्युत् (Atmos pheric electricity, Static electricity) के प्रभा से उत्पन्न "फैराडे-केज" को ध्यान में रखते हुए हो चाहिए। विज्ञान के विद्यार्थी इसे अच्छी तरह समझ होंगे।

बहु-उपयोगी केला

श्री नरेन्द्र छाबड़ा

केले के फल की उत्पत्ति की कहानी इतनी ही प्राचीन है जितनी कि वर्तमान सभ्यता। एक ग्रीक इतिहासकार ने भारत पर सिकन्दर के आक्रमण के बारे में लिखे अपने ग्रन्थों में इस फल का वर्णन किया है। उनका दावा है कि ग्रीक लोग केले के फल से पर्याप्त पूर्व समय से परिचित थे। वे लोग इसे "पाला" नाम से पुकारते थे। केले का यह नाम आज भी दक्षिण भारत में प्रचलित है। कई विशेषज्ञों के मत में केले का उत्पत्ति-स्थान मलाया द्वीपसमूह है। इसके आरम्भिक नाम "स्वर्ग का सेब", "आदम का अंजीर" भी हैं।

संसार भर में केले की १०० से अधिक किस्में उगायी जाती हैं और भारत के फूल-पौधों में केले के पौधे का महत्वपूर्ण स्थान है। सृष्टि के आरंभ से केले के पत्ते और पौधे समृद्धि का प्रतीक माने गये हैं। यही कारण है कि सभी शुभावसरों पर इनके बन्दनवार बनाये जाते हैं और इसके तने के थम्भ बनाकर मंडप सजाये जाते हैं।

भारतीय घरेलू वाटिकाओं में केले के पौधे अक्सर उगे दिखायी देते हैं और इसके स्वच्छ मुलायम, चौड़े पत्ते हजारों-लाखों घरों में खाना खाने के लिए सस्ती पत्तलों का काम देते हैं। केले के पत्तों व तनों के रेशे से भारत की प्रसिद्ध साड़ियाँ बुनी जाती हैं तथा कई किस्मों के कपड़े भी तैयार किये जाते हैं। इस लाभदायक पौधे का फल-पत्तों सहित शायद ही कोई ऐसा भाग होगा जिससे हमें कोई न कोई लाभ न होता हो।

मुख्य किस्में

निस्संदेह, भारत में केले की अनेक किस्में उगायी जाती हैं जैसे—माल-भोग, चीनी चम्पा, सोन-केला, राजेली, रसवाल आदि; परन्तु बाजारों में केवल ५-६ किस्में ही अधिकतर लोकप्रिय हैं। इनमें देशी, सोन, बम्बई, भुसावली और कलकत्ता किस्में ही सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। इन सब किस्मों में भुसावली किस्म के केले खूब मीठे, भरे-भरे और बढ़िया महक लिये होते हैं। केले के फल बड़े-बड़े गुच्छों में लगते हैं और अभी फल हरे ही होते हैं कि गुच्छों को पेड़ों से काट लिया जाता है। यदि फलों को पेड़ पर पकने दिया जाता है तो फलों में महक नहीं रहती, फलों का छिलका फट जाता है और उन पर कीड़े रींगने लगते हैं, जिससे फल खाने के योग्य नहीं रहते।

केले में पोषक तत्त्व

सारे भारत में, केले को छोड़कर शायद ही कोई ऐसा फल होगा जो बारहों महीने उपलब्ध होता हो, पौष्टिक तत्वों से भरपूर हो और सब फलों में सस्ता फल हो। वास्तव में यह जनता जनार्दन का फल है। पौष्टिकता में केला मीट का सानी रखता है और जो व्यक्ति मीट नहीं खाते वे केला खाकर सम्पूर्ण पोषक तत्त्व प्राप्त कर सकते हैं। केले की पौष्टिकता तो अब सर्व-विदित है, यहाँ तक कि बड़े शहरों में कई गरीब लोग इसे दोपहर के भोजन के स्थान पर खाते हैं और उतनी ही पौष्टिकता प्राप्त करते हैं जितनी कि दूसरे भोजन में उपलब्ध होती है।

केला इतना लोकप्रिय क्यों है? इसके कई कारण हैं। एक तो यह कि केला एक सस्ता फल है, दूसरे यह कि कच्चे फलों को कुछ दिनों तक रखा जा सकता है, तीसरे यह कि केला हर मौसम में होता है और सबसे बढ़कर यह कि यह फल सभी पोषक तत्त्वों से भरपूर है। अनेक देशों में केला आज लाखों लोगों का मुख्य भोजन बन चुका है। केले का फल गोल्ड कोस्ट, दक्षिणी नाईजीरिया और उष्णकटिबन्ध अमेरिका के आदिवासियों का एक मुख्य भोजन है और अनाज की रोटी के स्थान पर मुख्यतया इसीका प्रयोग किया जाता है। संसार में केले की पैदावार के मुख्य देश अमेरिका, फ्रांस, मैक्सिको, भारत इत्यादि हैं। भारत में मद्रास, ट्रावनकोर, कोचीन, पश्चिमी बंगाल, और बम्बई केले के उत्पादन के मुख्य केन्द्र हैं। देश में लगभग ३०६०११ एकड़ भूमि में केले की खेती की जाती है।

केले के रासायनिक विश्लेषण से पता चलता है कि इसमें औसतन ६१·४ प्रतिशत जल, १·२ प्रतिशत प्रोटीन, ०·२ प्रतिशत मज्जा, ०·७ प्रतिशत खनिज पदार्थ, ३६·४ प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, ०·०१ प्रतिशत कैल्शियम, ·०५६ प्रतिशत फास्फोरस और ०·४ प्रतिशत लोहा रहता है। इसमें विटामिन बी और राइबोफ्लेवाईन भी पर्याप्त मात्रा में रहता है और यह विटामिन ए, विटा-

मिन सी और नियासिन का भी अच्छा स्रोत है। केले में सोडियम १·२, पोटाशियम ३४·८, मैग्नेशियम ४१·९, कॉपर ०·१६, सल्फर १३·० और क्लोराईन ७८·५ भी प्रति सौ ग्राम के पीछे रहती है। इससे पता चलता है कि केले में बहुत बड़ी मात्रा में अम्लता के तत्त्व होते हैं जिससे शरीर में अम्लता स्थिर रखने में यह फल पर्याप्त सहायक सिद्ध होता है। एक बात और ध्यान देने योग्य है कि केले में लोहा और फास्फोरस शत-प्रतिशत मात्रा में पाये जाते हैं।

नीचे की तालिका से हमें पता चलेगा कि एक औंस केले में एक औंस सेब की अपेक्षा कहीं अधिक मात्रा में पोषक तत्त्व पाये जाते हैं :—

पोषक तत्त्व	केला	सेब
कार्बोहाइड्रेट	१०·३ ग्राम	३·८ ग्राम
फास्फोरस	१४ ग्राम	६ ग्राम
विटामिन बी	१४ ग्राम	११ ग्राम
कैलोफिफिट	४३	१६
राइबोफ्लेविन	दोनों में बराबर-बराबर मात्रा में	

केले की सभी किस्मों की मुख्य विशेषता यह है कि इन सब में स्टार्च और शूगर के तत्त्व भरपूर मात्रा में पाये जाते हैं और इनमें पर्याप्त मात्रा में कैलोरी भी पायी जाती है। ऐसा अनुमान है कि १०० ग्राम केले से १५३ ग्राम उष्णता की कैलोरी प्राप्त होती है। केले में इसकी मात्रा अन्य सभी फलों की अपेक्षा कहीं अधिक होती है और यही कारण है कि केला आटा, चावल, मक्का आदि अनाजों से पाये जानेवाले पोषक पदार्थों की कमी को पूरा करता है। कच्चे केले में २० से २५ प्रतिशत स्टार्च पायी जाती है और पके में १४ प्रतिशत से २० प्रतिशत तक। परन्तु पकाते वक्त कच्चे फलों में विद्यमान स्टार्च की मात्रा पूर्णतः शूगर में परिवर्तित हो जाती है।

कच्चा केला

यह एक निर्मूल धारणा है कि पका केला देर से पचता है। सच तो यह है कि केले में विद्यमान स्टार्च पाचनशील सभी स्टार्चों (जैसे आलू) की अपेक्षा बढ़िया स्टार्च समझी जाती है। यही कारण है कि कच्चा केला भी खाने में पौष्टिक होता है। कच्चे केले की सब्जी बढ़िया बनती है। कच्चे केले के आटे की रोटी से वायु-विकार (Dyspepsia) दूर होता है। पका केला पाचक, शीतल और पुष्टिकारक होता है। नेत्र रोग में भी इसका सेवन लाभप्रद होता है। यद्यपि केले में अनेक खाद्य-तत्त्व रहते हैं, परन्तु इसमें प्रोटीन की कमी रहती है। हाँ, यदि केले को दूध के साथ खाया जाए, तो यह एक पूर्ण संतुलित भोजन का काम देता है। केले के पौधे के तने का अन्दर का भाग, जिसे सर्वसाधारण की भाषा में "दान्तू" कहते हैं, पकाये जाने पर बढ़िया भोजन का काम देता है। दक्षिण भारत के लोग इसे बड़े चाव से खाते हैं।

रोगनाशक गुण

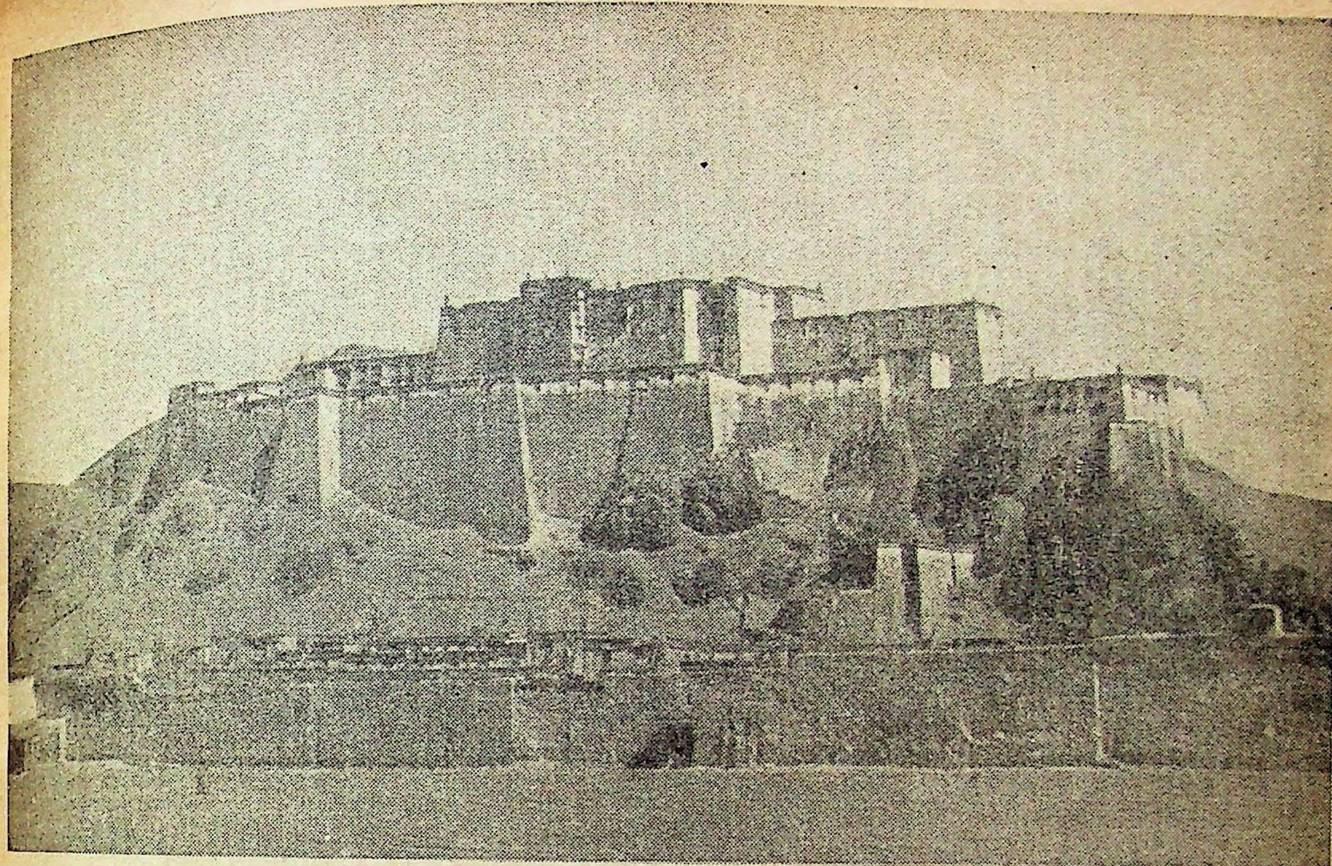
केला आँतों के लिए एक उत्तम रोगाणु-रोधक का काम देता है और पेशाब में से यूरिक एसिड की मात्रा कम करने में सहायक सिद्ध होता है। यह भी देखा गया है कि उदरशूल रोग (पेट की पीड़ा) के कीटाणुओं को मारने में भी केले का सेवन लाभदायक सिद्ध हुआ है। जोड़ों के दर्द (सूजन) में भी केले का प्रयोग उत्तम बताया जाता है। केला, आलू, शकरकंदी जैसी मूलवर्गीय सस्ती शाक-तरकारियों में मुख्य स्थान रखता है। केला एक सस्ता फल है जिसे निर्धन जन भी खरीद सकते हैं और इस प्रकार अपने भोजन में पोषक तत्त्वों की कमी को पूरा कर सकते हैं।

केला पाक-विज्ञान में भी अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इससे भाँति-भाँति के भोज्य-पदार्थ तैयार किये जाते हैं। केले के फलों को काटते समय लोहे का चाकू न इस्तेमाल कर मक्खन-टोस्ट काटने की छुरी प्रयोग में लायी जाए। इससे गूदा काला नहीं पड़ता है। पके केले को छीलकर गूदे के टुकड़े डालकर मजेदार कस्टर्ड तैयार किया जाता है, जो घरेलू पार्टियों, व्याह-शादियों के अवसर पर "स्वीट डिश" या "स्पेशल डिश" के रूप में परोसी जाती है। इसमें मोटी इलायची भी पीसकर डाल ली जाती है, जिससे बढ़िया महक आने लगती है।

केले को सुखाकर सूखे अंजीर के रूप में भी खाया जाता है। फलों के सलाद में मिलाकर भी इसे बड़े स्वाद से खाया जाता है। हरे-हरे कच्चे फलों को सुखाकर इनका पाउडर बना लिया जाता है जो चपाती बनाने के लिए आटे का काम देता है। आजकल बड़े शहरों में कच्चे केले की फलियों को पकाने के लिए गैस हीटरों का प्रयोग किया जाता है। सर्दियों में बन्द कमरे में इथिलीन गैस छोड़ने से भी कच्चे केले फौरन पक जाते हैं। हरे केले पर चित्ती डालने के भी कई कृत्रिम साधन प्रयोग में लाये जाते हैं।

केले में इतने गुण होते हुए भी इसका छिलका घातक सिद्ध होता है। इसके छिलके पर पैर फिसला नहीं कि बस, चोट लगेगी ही। यहाँ तक कि कई व्यक्ति इसके कारण मौत के शिकार हो गये हैं।

———

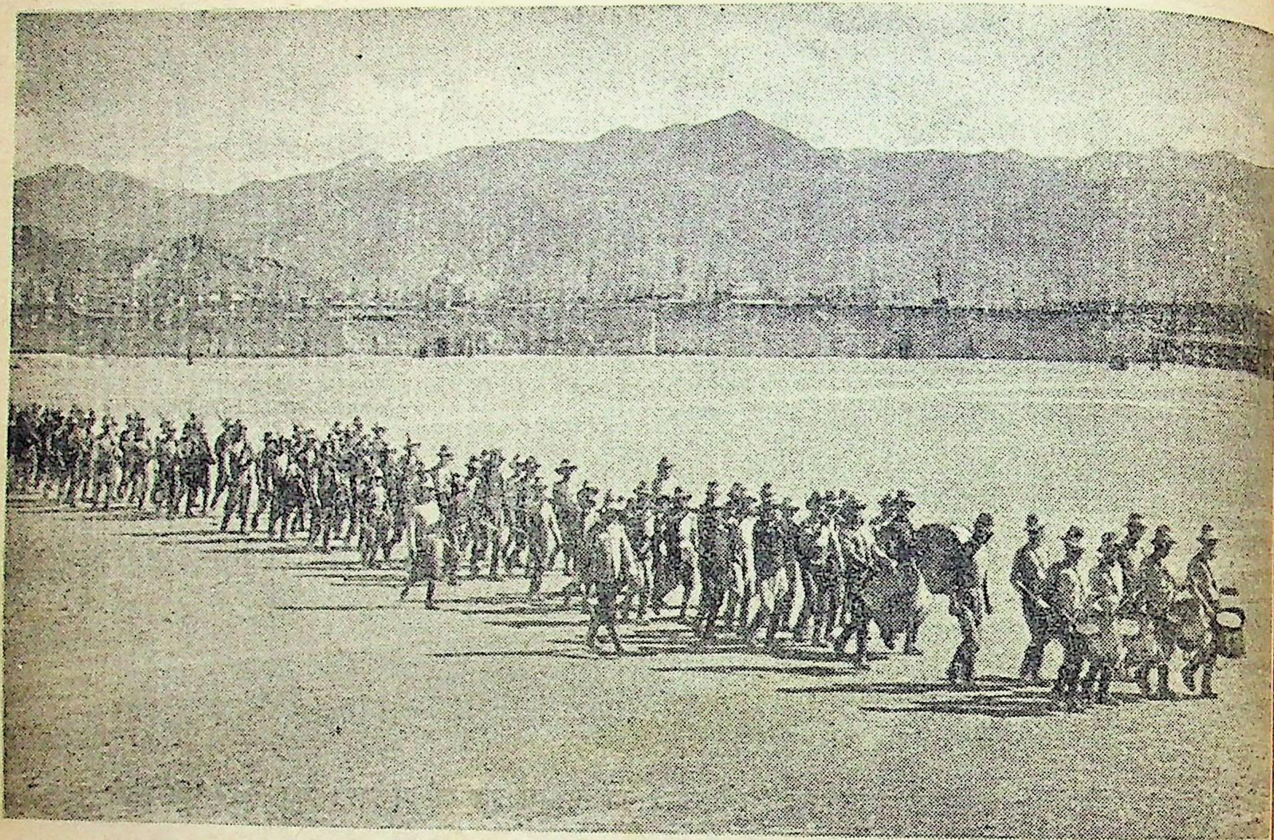


शिगात्से का जोंग--शिगात्से के राज्यपाल (जोंगसर) का निवास इस दुर्ग में था। यह ५०० फुट ऊँची पहाड़ी पर स्थित है और इसमें ३०० से अधिक कमरे, भवन, मंदिर, आदि हैं।

राहुलजी के साथ तिब्बत के अभियान में (१०)

श्री फेनी मुकर्जी

प्रातःकाल पोए खंग गुम्पा के निवासियों को पुजारी अपने बड़े-बड़े तुरही और शंख घड़ियाल बजाकर जगाते थे। और सबेरा होते ही शिगात्से नगर के निवासी तिब्बती फौज के बैंड बाजे की आवाज आते ही अपने-अपने काम पर चल पड़ते थे। आज प्रातः उठकर नगर के उस पार मैदान की ओर चल पड़ा जहाँ तिब्बती फौज कवायद कर रही थी। वर्दीहीन तिब्बती जवानों को कतार बाँधे कवायद करते देखकर जब मैं आगे बढ़कर उनके चित्र उतारने लगा तो मुझ विदेशी को देखकर उनके बन्दूकधारी अफसर मेरी ओर चल पड़े। उनको लपक कर आते देखकर मैं घबड़ा गया। मन में सोचने लगा कि बिना राहुलजी और गेशेलाजी की अनुमति लिये यहाँ अकेले आना एवं बिना फौज की अनुमति प्राप्त किये उसका चित्र उतारना बहुत ही अनुचित काम हुआ है। उस फौजी अफसर को आते देखकर मन ने कहा कि उल्टे पाँव भाग चलो; परन्तु पता नहीं क्यों एक सहमी हुई भेड़ की तरह खड़ा रह गया। उस अफसर ने निकट आकर मुस्कुराकर हमारे देश के फौजियों की तरह मुझे सलाम किया। सलाम का उत्तर देकर मैं भी उसके स्वागत में अदब से कुछ आगे बढ़ गया। निकट आकर बड़ी नम्रता से, हाथ फैलाकर वह फौजी अफसर बोला, "कुची-कुची बाबूला थमा टुकरा चिक", अर्थात् "बाबूजी, कृपया सिगरेट का एक टुकड़ा दे दें।" एक भयभीत हिरनी जिस प्रकार शेर के चंगुल से निकल भागने को विह्वल हो उठती है, उसी प्रकार तुरन्त ही मैंने अपनी जेब से सिगरेट का पूरा पैकट दियासलायी की डिब्बी सहित उसको भेंट कर दिया। वह प्रसन्न हो गया और एक फौजी सलामी देकर "लाथुचीचे" (धन्यवाद) कहते हुए लौट गया। वहाँ खड़े सिपाहियों में से दो-चार बहादुर सिपाही मेरी ओर सिगरेट के टुकड़े माँगने के लिए दौड़ पड़े। मेरे पास और सिगरेट नहीं थे, इसलिए मैंने एक सिपाही को अपनी अधजली सिगरेट दे दी। तिब्बत के एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र में इस तिब्बती सेना की टुकड़ी के इस प्रकार के आचार व्यवहार को देखकर मैं चुपचाप मन में कुछ सोचता हुआ अपने पड़ाव की ओर लौट पड़ा। कुछ ही दूर गया था कि अचानक आठ दस खूंख्वार बड़े-बड़े तिब्बती कुत्ते मेरे ऊपर टूट पड़े और मैं निहत्था डर कर चीखता हुआ भागने लगा। मेरी चीख को सुनते



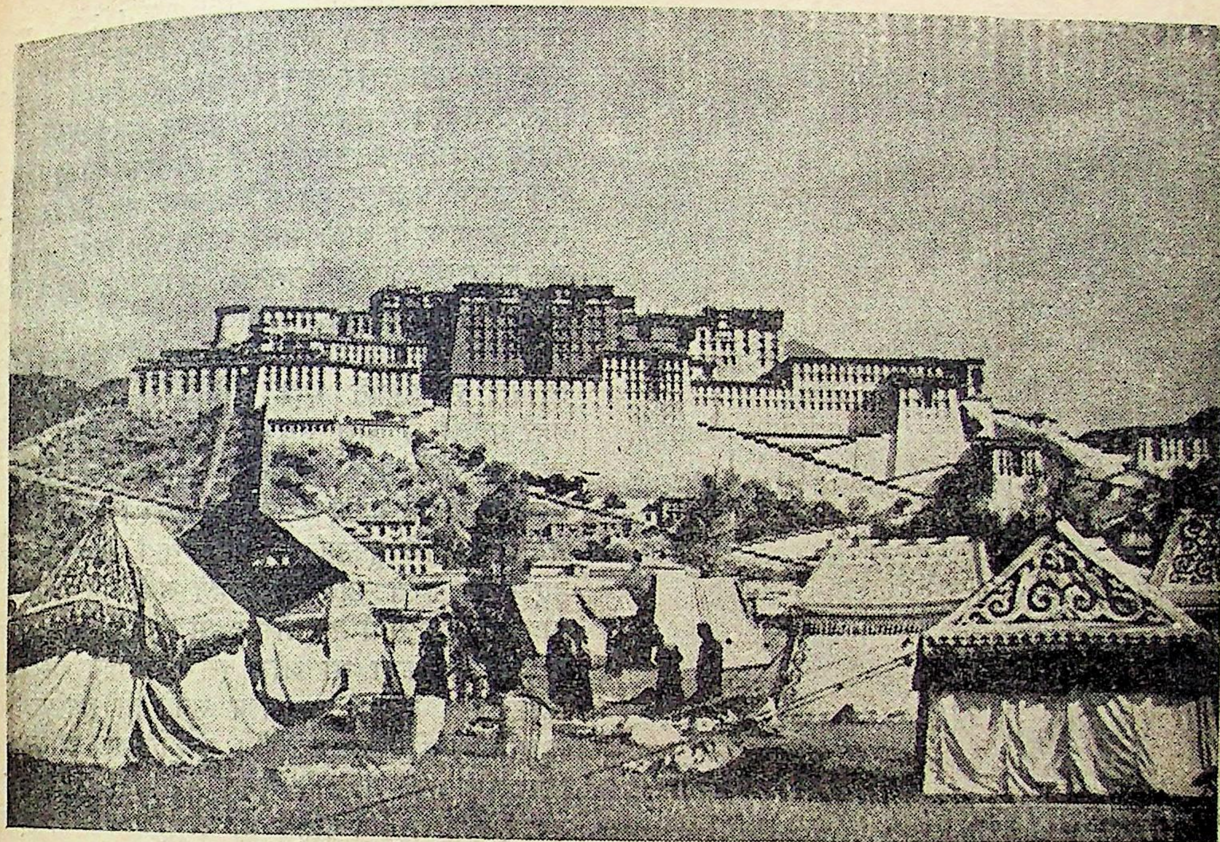
शिगाट्शे में तिब्बती सेना की कवाइद।

ही तिब्बती फौजी शेर उछलकर मुझको बचाने के लिए दौड़ पड़े। मैं घबड़ाहट में लड़खड़ाकर जमीन पर गिर पड़ा। तिब्बती जवान अभी कुछ पीछे ही थे कि एक खूंख्वार कुत्ता उछलकर मेरी छाती की ओर झपटा। दूर खड़े फौजी अफसर ने तुरन्त अपनी बन्दूक की गोली से उस उछलते हुए कुत्ते को हवा ही में उड़ा दिया। बन्दूक की गोली कुत्ते के छाती के आर-पार निकल गयी थी और मरे कुत्ते की देह खून उगलती हुई मेरी टाँगों पर आ गिरी। बन्दूक के धमाके से डर कर सारे कुत्ते भाग गये, और मैं बाल-बाल मौत के मुँह से बच गया।

कुछ ही क्षण पूर्व जिस तिब्बती सेना का उपहास मैं अपने मन में कर रहा था अब उसी सेना के प्रति मेरे ऐसे एक नितान्त अजनबी की सहायता करने और उनके अचूक निशाने को देखकर मेरा मन श्रद्धा से झुक गया। म अपने पड़ाव पर लौट आया और वहाँ मैंने राहुलजी को इस दुर्घटना की कहानी सुनायी। राहुलजी और गेशेला-जी दोनों ही मेरे लापरवाही से घूमते-फिरने के कारण मुझपर बिगड़ गये। गेशेलाजी ने अपने पहले आदेश को दोहराते हुए समझाया कि हम भारतवासियों के लिये तिब्बत एक बहुत ही रहस्यपूर्ण देश है; जहांका वातावरण एवं रहन-सहन की धारा हमारे देश से भिन्न है। यहाँ सबसे अधिक ध्यान अपनी प्राण-रक्षा की ओर रखना है। जरा सी भूल-चूक से यहाँ मिनटों में आदमी की जान चली जाती है। राहुलजी ने बताया कि अँगरेजों ने १९०४ में तिब्बत पर आक्रमण करके पराजित तिब्बत से अपनी कुछ मनमानी शर्तें मनवा ली थीं। उन्हीं शर्तों में से एक शर्त के अनुसार उस समय भी कुछ भारतीय फौज ग्यानषी नगर में रहती थी। उन्हींकी देखा देखी तिब्बत सरकार ने भी एक फौज का निर्माण किया है। अँगरेजी फौज के आधार पर यह लोग भी अँगरेजी बैंड बजाकर कवायद करते हैं।

शिगट्षी की प्राचीन प्रसिद्ध गुम्पा में उस समय छोटे बड़े सब मिलाकर लगभग छः हजार ढावा (भिक्षु) एवं लामा रहते थे। इतनी प्राचीन प्रसिद्ध गुम्पा एवं इतना बड़ा भारी शिग्टषी नगर (जिसकी जनसंख्या आठ-दस हजार से कम न थी) एवं टाषी लहम्पो प्राण-हीन से लगते थे। पूछने पर पता चला कि यहाँ प्रधान लामा के वहाँ न होने के कारण इस नगर एवं मठ की यह शोचनीय दशा कई सालों से चल रही थी। यहाँ के प्रधान लामा (टाषी लामा) उस समय चीन देश में रहते थे। उनकी अनुपस्थिति में मठ के उच्च लामाओं की एक कौंसिल उनकी ओर से शासन करती थी।

शिगट्षी नगर और टाषी लहम्पो के बीच में होकर

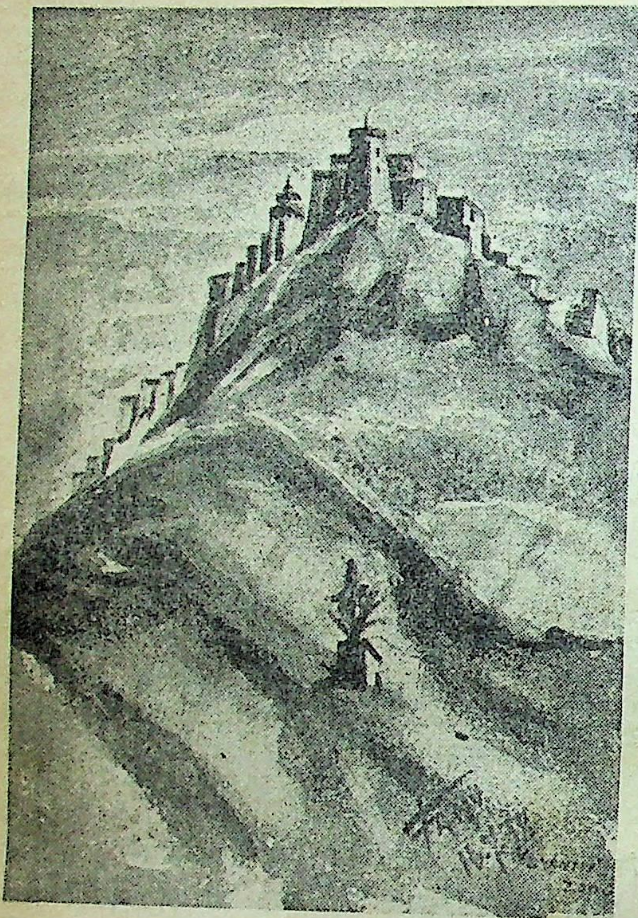


पोटाला—ल्हासा में दलाई लामा का निवास और संसार में बौद्ध धर्म का सबसे ऊँचा और पवित्र केन्द्र।

एक नदी बहती थी। जब पता चला कि यह नदी हिमालय पर्वतों के भीतर बहती हुई ब्रह्मपुत्र नदी की एक सहायक है तो मेरे मित्र कंवल कृष्णजी और मेरे मन में ब्रह्मपुत्र नदी के असली रूप को देखने की बड़ी इच्छा हुई। इधर राहुलजी का स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण वे रात दिन अपने गद्दे पर पड़े रहते और कभी-कभी उठकर लिखने-पढ़ने में समय व्यतीत करते थे। हमारे दयालु भाई गेशेलाजी अपने मित्रों एवं अमदो लामा के साथ बातचीत में व्यस्त रहते थे। काम की बात पूछने पर कह देते थे कि शिगट्षी में प्राचीन भारतीय पोथियाँ नहीं हैं, और जो थीं उनकी नकल राहुलजी ने अपनी पिछली यात्रा में अपने हाथ से लिखकर उतार ली थी।

इस नीरस नगर में इस प्रकार गुमसुम रहते-रहते जब हमारा मन ऊब गया तो जाकर राहुलजी से मैंने और कंवल कृष्णजी ने ब्रह्मपुत्र नदी के दर्शन कर आने की आज्ञा प्राप्त की। हम दोनों पथिक पिस्तौल और कैमरा लेकर नदी के किनारे-किनारे एक पगडंडी पर चल पड़े। नगर के बाहर निकलकर जब हम चले जा रहे थे तो ऊँचाई पर पीछे मुड़ कर उस विशाल टाषी लहुम्पो के जगमगाते हुए रूप को और उसके समीप बसे हुए विशाल नगर को देखा जो कि तिब्बत की राजधानी ल्हासा के बाद वहाँका दूसरा बड़ा केन्द्र कहलाता था। यह विशाल मठ प्राचीन काल में एक पवित्र सुमेरु नामक पहाड़ की ओट में बनाया गया था। मठ एक बड़े भारी ऊँचे पठार पर बना हुआ था और मठ के पीछे एक-दूसरे से सटे हुए पहाड़ खड़े थे। लगभग आठ-नौ मील की यात्रा, पहाड़ी पगडंडियों एवं कुछ चौरस मैदानों को पार करते हुए बड़े आराम से हम ब्रह्मपुत्र के तट पर पहुँच गये। वहाँ पहुँचकर देखा कि ब्रह्मपुत्र नदी बड़े-बड़े ऊँचे पहाड़ों को चीरती हुई और साँप की तरह लहराती हुई हिमालय के अँधेरे जंगलों से ढके पहाड़ों की घाटियों में होकर चली आ रही है। इस स्थान पर ब्रह्मपुत्र नदी का दृश्य इतना सुहावना लगा कि हम दोनों अपने-अपने खच्चरों को पत्थरों से बाँध कर इस नदी के मनोरम दृश्य की सुन्दरता का आनन्द लेने के लिए वहाँ बैठ गये।

जब हम दोनों कलाकार अपने मुग्ध नैनों से उस चंचल नदी की बल खाती, लहराती चाल को निहार रहे थे और अनमने मन से उस मनोरम दृश्य को अपनी तूलिका से अंकित करने की बात सोच रहे थे तो हम दोनों अचानक एक बड़े जोर के धमाके की आवाज से चौंक पड़े। ऐसा लगा मानों कोई विशाल पर्वत टूट पड़ा है। दोनों पहाड़ों की अँधेरी दरार से दूर से कुछ बादल आते दिखायी पड़े। देखते ही देखते सफेद बादलों की धुन्ध में वह सारा मनोरम दृश्य छिप गया और बादलों की गरज और भयंकर बिजली के धमाकों से वह घाटी गूंजने लगी। अभी कुछ सोच भी न पाये थे कि लगी बड़ी-बड़ी बूंदों की बौछार पड़ने। हमने बँधे हुए



ग्यानसीका ज़ोंग। ग्यानसीके राज्यपाल का दुर्ग
(श्री फेनी मुकर्जी के बनाये एक रंगीन चित्र की फोटो)।

परेशान खच्चरों को खोल दिया। वे समीप के पहाड़ पर भागते हुए चढ़ गये और एक गुफा में सिर छिपा कर खड़े हो गये। उनकी दिखायी हुई राह पर दौड़कर हमने भी उस गुफा में शरण ली। इतनी जोरों की मूसलाधार बारिश हमने पहले कभी न देखी थी, और न इतनी जोर की बादलों की गरज ही सुनी थी। ऐसा लग रहा था कि मानों हम दोनों प्रलयंकर वर्षा में फँस गये हैं। कुछ ही देर में ब्रह्मपुत्र नदी का पानी उफान देकर ऊपर फूल उठा, और हजारों शेरों के समवेत गर्जन से गरजता हुआ उन दोनों पहाड़ों के बीच की सँकरी घाटी में ऐसा जोर मारने लगा कि मालूम होता था कि वह दोनों विशाल पर्वतों के बीच के संकीर्ण रास्ते को विदीर्ण कर डालेगा और बाहर निकलकर जगत् में एक प्रलय मचा देगा। हम दोनों कलाकार सहमे हुए अपने जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहे थे। नदी का पानी तेजी से ऊपर उठ रहा था और पहाड़ों को रगड़ता तथा गरजता हुआ भीषण गति से बहा चला जा रहा था। नदी का पानी जब लगभग पचास फुट ऊँचा उठकर हमारे पावों को छूने लगा, तो हम दोनों मारे डर के काँप उठे।

जिस प्रकार एकाएक यहाँ तूफान आया था, उसी प्रकार सहसा, बात की बात में, फिर आसमान एकदम साफ हो गया और सुनहरी धूप की किरणें चारों ओर बिखर गयीं। हम लोग झटपट खच्चरों को लेकर पहाड़ के नीचे उतर गये। जेब से एक शीशी निकाल कर मैंने उसमें ब्रह्मपुत्र का पवित्र जल भर लिया और उस नदी के जल से अपने माथे का मार्जन कर लिया। फिर हम तुरंत ही शिगट्षी नगर की ओर लौट पड़े और अँधेरा होने से पहिले ही अपने पड़ाव पर पहुँच गये।

राहुलजी ने जब हमारी कहानी सुनी तो बोले : तिब्बत में प्रकृति बड़ी अनिश्चित है। कभी-कभी तो वहाँ पर्वतों में ऐसा भयंकर भूकम्प आता है कि बर्फ से लदे पहाड़ों के पार्श्व जमीन में समा जाते हैं। जाड़े में यह प्राचीन तिब्बत सफेद बूढ़े का रूप धारण कर लेता है, और भयंकर बर्फीले तूफानों की थपेड़ें यहाँ के लामा मंत्र पढ़ते हुए सहन करते रहते हैं। कहने लगे, मैंने अपनी पिछली यात्रा में एक सर्दी का मौसम इस शिगात्से के टाषी ल्हुनपो में व्यतीत किया था और दूसरा तिब्बत की राजधानी ल्हासा में। ल्हासा का नाम सुनते ही हम पूछ बैठे कि ल्हासा हम लोग कब पहुँचेंगे। उन्होंने कुछ उपेक्षा से उत्तर दिया कि वहाँ जाने से समय और पैसा दोनों ही व्यर्थ नष्ट होंगे। वहाँ वे पहिले भी जा चुके थे और वहाँ उनको जो भारतीय प्राचीन पुस्तकें मिली थीं उनकी नकल उतार चुके थे। राहुलजी की रूखी बातें सुनकर मुझे अच्छा न लगा और मैंने उनसे कहा कि क्या आपने भारत से चलते समय तिब्बत की राजधानी ल्हासा के दर्शन कराने का वचन नहीं दिया था? राहुलजी कुछ न बोले। फिर मुझे संदेह हो गया कि वे हमें ल्हासा नहीं दिखाएँगे।

हम दोनों कलाकार दयालु भाई गेशेलाजी के साथ मिलकर तरकीब भिड़ाने लगे कि किस बहाने से ल्हासा की ओर निकल भागें। गेशेलाजी तिब्बती लामा होने के नाते मन से चाहते थे कि हम दोनों भी पवित्र पोताला के दर्शन कर लें। कहावत ठीक है कि भगवान् अपने भक्तों के खेवट स्वयं बन जाते हैं। उन दिनों राहुलजी का स्वास्थ्य बहुत ही खराब हो गया और एक दिन मुझको अपने पास बुलाकर उन्होंने मुझे अपने रोग का हाल बताया और अनुरोध किया कि मैं तुरन्त तिब्बत की सीमा ग्यान[त्से] जाकर कलकत्ते से अपने किसी मित्र के द्वारा उनकी [लिये] की दवाई मंगवा दूं। मैंने उनके आदेश के अनुसार ग्यान[त्से] जाना स्वीकार कर लिया। मैंने कँवलजी को भी साथ ले चलने का निश्चय किया। हम दोनों ने झटपट सफर की तैयारी कर डाली। तब तक के तैयार किये सारे फोटो निगेटिवों के पार्सल बना डाले। राहुलजी ने आदेश दिया कि इन मूल्यवान् फोटो निगेटिवों को भारत में किसी बड़ी विदेशी फोटो कम्पनी के पास भेज दूं, जिससे वे तिब्बत में किसी दुर्घटना में नष्ट न हो जायें और हम लोगों के वापिस लौटने तक भारत में फोटो के किसी अच्छे स्टूडियो में सुरक्षित रूप से रक्खे रहें।

तिब्बती नौकर को साथ लेकर हम दोनों कलाकर कुछ रुपया पैसा और खाने-पीने का सामान बाँधकर चल पड़े। चलते समय राहुलजी ने मुझसे आग्रहपूर्वक कहा, कि चाहे जितना भी समय लग जाय मैं ग्यानसी नगर में तब तक रुका रहूँ जब तक उनकी दवाई कलकत्ते से न आ जाय, और उसे साथ लेकर ही लौटूँ। चुपके से एक तिब्बती नोटों की गड्डी मेरे जब में डालते हुए बोले, कि रुपये पैसे की कमी के कारण आवश्यक कार्य न रुकने पावे। उन्हें उनकी सब आज्ञाओं के पूर्ण पालन का विश्वास दिलाकर हम तीनों भारत और तिब्बत की सीमा पर बसे ग्यानसी नगर की ओर चल पड़े। अपने-अपने खच्चर बढ़ाते हुए एक ऊँची पहाड़ी पगडंडी पर चढ़ने लगे। पीछे मुड़कर देखा कि कि पीत वस्त्रधारी भव्यमूर्ति हमारे अभियान-दल के नेता राहुलजी जहाँके तहाँ खड़े हमारी ओर देख रहे हैं। नीले गगन के नीचे खड़े लम्बे नीले रंग का कोट पहिने गेशेलाजी और पीत वस्त्रधारी राहुलजी दूर से बड़े ही भव्य लग रहे थे। उस ऊँची पगडंडी से स्वर्ण गुम्बजों वाला टाषी लहम्पो दिखलायी पड़ता था और नीचे एक विशाल समतल मैदान में शिगात्से नगर फैला हुआ था। हम दूर से जब हाथ हिला-हिला कर बिदाई का संकेत दे रहे थे तो अचानक देखा कि राहुलजी घबरा कर हमको लौट आने का संकेत करते हुए हमारी ओर दौड़े चले आ रहे थे, और गेशेलाजी भागे चले जा रहे थे अपने पड़ाव की ओर। हम दोनों भी राहुलजी को लगभग एक मील की दूरी से दौड़ते आते देखकर घबड़ा गये। नौकर को खच्चर तेज दौड़ा कर जल्दी राहुलजी के पास पहुंचने को कहा। वह तेजी से बढ़ चला आगे और हम भी उसके पीछे चले खच्चरों को भगाते हुए। थोड़ी देर में देखा कि गेशेलाजी भी राहुलजी के पीछे-पीछे दौड़ चले आ रहे हैं। कुछ वह लोग आगे निकल आये और कुछ हमलोग उनकी ओर दौड़े, और जब हम चारों फिर आ मिले तो पता चला कि राहुल जी को याद पड़ा कि हम दोनों बिना पिस्तौल लिये ही चल पड़े थे। राहुलजी तिब्बती परिस्थिति से भली भाँति परिचित थे इसलिये वे जानते थे कि हम दोनों अजनबी भारतीय तरुणों का इतना मूल्यवान माल और धन लेकर तिब्बत के सुनसान बीहड़ मैदानों और पहाड़ों में निःशस्त्र यात्रा करना कितना खतरनाक था। इसी कारण वे स्वयं दौड़ पड़े हमको शस्त्रधारी बनाने। मेरे गले में भरी पिस्तौल लटकाते हुए उन्होंने हमको चौबीसों घंटे चौकन्ने रहने का आदेश दिया। पिस्तौल के कारतूसों की थैली को अपने कोट की जेब में रखकर और दूसरी बार राहुल जी और गशेलाजी से बिदाई लेकर हम ग्यानसी की ओर चल पड़े।

भर सक तेजी से बढ़े चले जा रहे थे किंतु मन में भय के अंधकार की छाया बढ़ती जा रही थी। सोचते थे कि हमको तिब्बती भाषा नहीं आती, संभव है कि हमारा तिब्बती नौकर डाकुओं से मिलकर हमको लूट ले और मार डाले। न हमारा कोई यहाँ सगा या सहायक है, और न है हमारे पास शरीर और जानकारी का बल। किस भरोसे हम चले हैं अपनी जान और बहुमूल्य भारतीय अभियान की बहुमूल्य सम्पत्ति लेकर!

इस प्रकार की दुश्चिंताओं से आक्रान्त हम तीनों तेजी से ऊँचे-नीचे-पठारों और रूखे सूखे मैदानों को पार करते हुए ग्यानसी की ओर चले जा रहे थे। वर्फ की टोपी पहिने नंगे पहाड़ों के किनारे-किनारे चक्कर काटते हुए अनेक गाँवों एवं छोटे-छोटे मठों की झांकी लेते हुए हम यथासंभव द्रुतगति से बढ़ रहे थे। अचानक कँवल जी के खच्चर ने ठोकर खायी, और ऊबड़-खाबड़ पत्थरों पर पटकनी खाकर गिर पड़े। उनके माथे और घुटनों पर चोट अवश्य आई, पर कुछ विश्राम लेने के बाद फिर चल पड़े। आगे चल कर ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों के बीच से एक नदी के किनारे-किनारे एक पगडंडी का रास्ता था। उस पर चलते हुए पर्वतों का दृश्य अत्यन्त सुन्दर दिखायी देता था। नीरस और निर्जन तिब्बती पहाड़, मैदान और पठारों को पार किया ही था कि हमको बादलों ने आ घेरा। बरसाती बर्फ के समान ठंडी तेज हवा तीर की तरह लग रही थी और पहाड़ी पगडंडी में खतरनाक फिसलन हो गई थी। किंतु सौभाग्य से और कोई दुर्घटना नहीं हुई। हम लोग इसी प्रकार तीन दिन और तीन रात यात्रा करते रहे। राह में फागाह, चोंग-छार और कीबुक गाँव में पड़ाव किया और लगभग सत्तर मील की यात्रा तीन दिन में तय कर डाली। साधारण गति से इसमें कम से कम चार दिन लगते। यात्रा में सबसे अधिक कष्ट उठाना पड़ा हमारे तीनों खच्चरों को। राह में कहीं-कहीं उनको घास तक नहीं मिली, और वे भूख-प्यासे बराबर हमारे कोड़ों की मार के कारण तेजी से चलने को विवश रहे। हम तीनों आ पहुँचे ग्यानसी नगर में। जब पहुँचे तब हम प्रायः अधमरी दशा में थे। खच्चरों का विशेषरूप से बुरा हाल था। वहाँ पहुँचते ही हम सीधे ग्यानसी स्थित अँगरेज सरकार के डाकघर में गये। पिछली वार जब अभयसिंहजी वहाँ गये थे तब वे वहाँ से कुछ आवश्यक तार और चिट्ठियाँ भारत भेज गये थे। जब मेरे फोटोग्राफी के कार्य में रुकावट पड़ी थी तब मैंने भी कलकत्ते की कुछ विदेशी फोटो कम्पनियों से सहायता के लिए पत्र भिजवाये थे। उन कम्पनियों ने मेरी प्रार्थना पर विभिन्न प्रकार के फिल्म, फोटोग्राफी के रसायन और कुछ नवीन नुसखे और किताबें भेज दी थीं। कँवल जी और मेरे मित्रों और रिश्तेदारों ने अचार, सूखी मिठाई तथा नमकीन और सिगरेट के पार्सल भेजे थे जो वहाँ डाकघर में जमा थे। राहुलजी की पुस्तकों के प्रूफ के बड़े-बड़े पैकट भी डाकघर में प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके अतिरिक्त हमें वहाँ कुछ निजी पत्र और मित्रों द्वारा भेजे समाचार-पत्र भी मिले। मैंने अपने मूल्यवान फोटो निगेटिवों और राहुलजी की, किसी पुस्तकों के पार्सल बनाकर भारत को रवाना कर दिये। राहुलजी के रोग

विशेष की दवाई मँगाने के लिए मैंने अपने दो विश्वसनीय मित्रों को पत्र और तार भेजे। यह सब करके हम ग्यानसी में ठहरने की जगह ढूंढ़ने लगे।

सौभाग्य से हम तीनों को ठहरने के लिए एक तिब्बती सौदागर के घर में जगह मिल गई। दूसरे दिन अँगरेजी फौज के अफसर रिसालदार साहिब, रायसाहिब रामरत्न जी और अँगरेजी अस्पताल के सिविल सर्जन साहिब से भेंट की। दूसरे दिन बाजार में घूमते समय उसी तिब्बती तरुणी सुश्री "समझो दुंमा" से भी भेंट हो गई। हमको देखकर वह बड़ी प्रसन्न हुई और बाद में हमसे मुलाकात करने वह हमारे पड़ाव पर आई। साथ में वह अपनी दुकान से सिगरटों का एक बड़ा बंडल, कुछ तिब्बती बिस्कुट और ताजा मक्खन का एक गोला हमें भेंट करने को लाई थी। हम लोगों ने भी उसका बड़े आदर से स्वागत किया और उसको बालों में लगाने की एक सुगंधित तेल की शीशी, दो सुन्दर रेशमी रूमाल और २३ तिब्बती रुपये दिये। उस दिन सायंकाल का भोजन उसने हमारे साथ ही किया और तिब्बती नौकर के सहारे उसके साथ अनेक बातें भी हुईं। हमारा तिब्बती नौकर सुश्री समझो-दुंमा को जानता था। उसने बताया कि इसका पिता तिब्बती ऊन का एक बड़ा व्यापारी था, और समझो-दुंमा ऊनी गलीचा बुनने की अच्छी कलाकार होने के कारण तिब्बत सरकार के एक गलीचा बनाने के कारखाने में काम करती थी। किंतु दुर्भाग्य से उसका बाप मर गया और उसके बाद ही जब तिब्बत में ऊन का भाव गिर गया तो यह टुकड़े-टुकड़े की मोहताज हो गई। घर जमीन सब बिक गई और तब वह सड़क पर बैठ कर सौदा बेचने लगी। दूसरे दिन 'समझो' को साथ लेकर हम लोगों ने ग्यानसी नगर के अनेक फोटो लिए और कुछ रंगीन चित्र भी अंकित किये। समझो-दुंमा ने अपने एक रिश्तेदार से भी परिचय कराया। यह एक बड़ा व्यापारी था और खच्चरों पर ल्हासा नगर को माल भेजने की तैयारी कर रहा था। ऐसा अनमोल अवसर पाकर हम ल्हासा जाने को उत्सुक हो उठे। पूछने पर पता चला कि ल्हासा पहुँचने में बारह दिन लगते हैं और लौटने में भी बारह दिन। चौबीस दिन जाने-आने और दो-चार दिन वहाँ घूमने-फिरने में कुल २८ दिन अर्थात् पूरा एक महीना लग जायगा। जब मैंने उनको अपनी अभिलाषा और समय की कमी की बात बतलाई तो वे स्वयं हमारे साथ ल्हासा चलने को तैयार हो गये। उन्होंने बताया कि तिब्बती डाक एक छोटे रास्ते से जाती है जो तेज घोड़े पर चार दिन में वहाँ पहुँच जाती है। यह रास्ता ऊँची-नीची पहाड़ियों और पठारों पर से होकर जाता है जहाँसे माल लदे गधे और खच्चर नहीं जा सकते। हमने उनका इस रास्ते से उनके साथ चलने का प्रस्ताव तत्काल स्वीकार कर लिया और दूसरे दिन हम अपना सारा माल-असबाब और अपने नौकर की और तीनों खच्चर रायसाहिब रामरत्न जी के देख-रेख में छोड़कर ल्हासा नगर की ओर उस नौजवान तिब्बती सौदागर के साथ उन्हींके दो[...] दौड़नेवाले घोड़ों पर सवार होकर चल दिये।

अँगरेजी डाकखाने के पोस्ट मास्टर साहब ने [...] कि हमारी चिट्ठियाँ भारत पहुँचने और वहाँसे माल [...] में बीस से अधिक दिन लगेंगे और हमारी गैरहाजि[...] वह बराबर टेलीफोन और तार द्वारा हमारे माल [...] जल्दी मँगाने की चेष्टा करते रहेंगे। इस स्वतंत्र दे[...] आदमी-आदमी के प्रति कितनी सद्भावना थी, कि[...] प्रेम था, चाहे वह नेपाली हो, भारतीय हो या ति[...] हो! दैनिक जीवन में परस्पर कोई भेद-भाव न [...] ऐसा अगर न हो तो तिब्बत में रहना असम्भव था। [...] दूसरे की सहायता के लिए लोग तुरन्त तैयार हो जा[...] अपनी शान समझते थे।

ग्यानसी से चलते समय घने काले बादल हमारे [...] छाये हुए थे। तेज ठंडी हवा चल रही थी और गरज-[...] कर बिजली तड़प रही थी। हम दोनों भारतीय कला[...] का दिल ऐसे भयंकर वातावरण में पहाड़ों और प[...] की उतार-चढ़ाववाली सड़क पर जाने के भय से [...] रहा था। सुश्री समझो-दुंमा हमारे घोड़े पर च[...] थोड़ी दूर साथ गई और फिर वापिस लौटते समय [...] कि घोड़े की चाल अच्छी है और आराम से मैं ल्हा[...] जाकर लौट आऊँगा। उसकी इस प्रकार की शुभकाम[...] को पाकर मैंने अपने मन में बड़ा बल पाया। [...] घोड़े दौड़ाते हुए हम तीनों लगभग पाँच-छः [...] निकल गये। अचानक वर्षा की बूंदों के साथ बड़ी[...] ओलों की बौछार पड़ने लगी। हम दोनों डर कर [...] पत्थर की ओट में शरण लेने की बात सोचने लगे, [...] हमारे तिब्बती नौजवान कुशोलाजी ने झटपट अपने [...] से उतर अपने बरसाती कोट को निकालकर पहिन लि[...] हम दोनों ने भी अपनी-अपनी काठियों से लटके चम[...] झोलों (टाडू) से बरसाती कोट निकाल लिये और [...] पहिन कर बड़े-बड़े ओलों और वर्षा की बौछार के [...] से ठंडी हवा को चीरते हुए फिर अपने-अपने घोड़ों [...] सरपट दौड़ाते चल दिये। हमें साहस दिलाने के [...] कुशोलाजी ने बताया कि जो पवित्र धार्मिक यात्रा को [...] पड़ता है उसकी रक्षा स्वयं भगवान् बुद्ध करते हैं। [...] लोग दलाई लामा के निवास स्थान पोताला के दर्शन [...] जा रहे थे जो कि तिब्बत में सबसे बड़ी तीर्थ-यात्रा [...] जाती थी।]

सचमुच ऐसा ही हुआ, और दूसरे दिन जबकि [...] हिमालय की पहाड़ियों को पार करके तिब्बती पठारों [...] पहुँचे तो आसमान साफ था और धूप खिली हुई थी। [...]

ल्हासा की ओर यात्रा के प्रारम्भ में भयंकर [...] और वर्षा के कारण हमारी चाल कुछ धीमी पड़ गई [...] पर अब अच्छे मौसम को पाकर हम तेजी से बढ़ [...] चौथे दिन जब हम 'गेनपाल' नामक पहाड़ी पर से [...] रहे थे तो धूप के सुनहरे उजाले में बहुत दूर से ल्हासा [...] की एक चमचमाती हुई झांकी देखी। और आगे बढ़[...]

प्रथम बार जीवन में दर्शन हुए तिब्बत के प्रधान लामा दलाई लामा के निवास भवन पोताला के। अनेक छतोंवाले इतने बड़े भवन को जब इतनी दूर से एक ऊँचे पठार पर बसे हुए देखा तो हमारे साथी कुशोलाजी ने अपने घोड़े से उतरकर जमीन पर माथा टेक कर प्रणाम किया। हम दोनों ने भी उनकी देखा-देखी वैसा ही किया और फिर तेजी से आगे बढ़ चले। हमारा मन तिब्बत के प्रसिद्ध राजधानी ल्हासा शीघ्र पहुँचने को बड़ा उतावला हो रहा था। पहाड़ों की खड़ी चढ़ाई और फिर सीधी उतराई के कारण ल्हासा नगर सामने होते हुए भी हम वहाँ शीघ्र न पहुँच पा रहे थे।

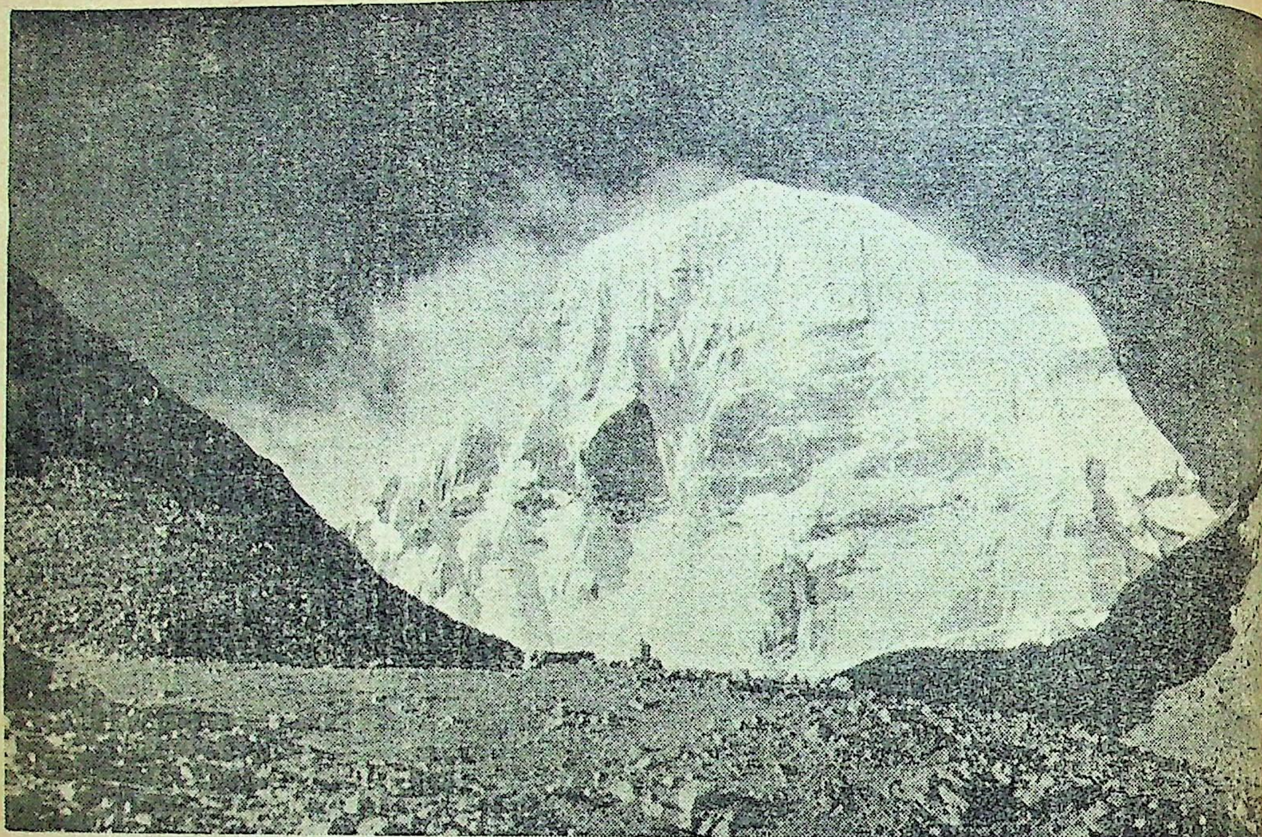
चलते-चलते शाम हो गई और राह में 'पाछे' नामक गांव में रात बिताने के लिए फिर रुकना पड़ा। बर्फीले ऊँचे पहाड़ों की पैदल चढ़ाई और उतराई के कारण हमारे पैरों के तलवों में छाले एवं घाव हो गये थे, पर विश्राम करने को मन नहीं मानता था। दूसरे दिन जब हम ब्रह्मपुत्र नदी के तट पर पहुँचे तो कुछ दूर उसके किनारे-किनारे रेत पर चलकर एक घाट पर आ पहुँचे जहाँसे हमने वह विशाल और भयंकर उतावली नदी चमड़े की एक बड़ी भारी मशक के ऊपर चढ़कर पार की। इस पहाड़ी नदी में तेज धारा एवं बड़े-बड़े पत्थरों के होने के कारण लकड़ी की नाव नहीं चलायी जा सकती। इसलिए यहाँ के लोग याक गाय के मोटे चमड़े को सींकर एक बड़ा भारी थैला तैयार करते हैं और इस थैले में फूंक भरकर एक कुप्पा सा बना लेते हैं। इस पर माल असबाब और आदमी लादकर यहांके मल्लाह बड़ी चतुराई से हमको पार उतार ले गये। याक चमड़े की यह तिब्बती कुप्पानुमा नाव "कोवा" कहलाती है जिसका अर्थ है "चमड़ा"।

धीरे-धीरे हम तिब्बत की राजधानी की ओर अग्रसर होते जा रहे थे और चारों ओर का दृश्य बड़ा ही मनोरम होता जा रहा था। रूखे-सूखे पीले और भूरे पठार और मैदान के बदले अब चारों ओर हरियाली छायी हुई थी मानो हम नरक से निकल कर स्वर्ग की ओर जा रहे हों। हरियाली की भीनी-भीनी महक मन्द गति से बह रही थी। कुछ तिब्बती यात्री राह में गाना गाते हुए आते-जाते मिल रहे थे। राह में मिलनेवाले एक दूसरे को नमस्कार करते जाते थे। जब हम एक बड़े भारी "यामदो" नामक झील के किनारे पहुँचे तो देखा कि इस झील में हजारों कमल के फूल खिले हुए थे। इस मनोरम दृश्य को देखकर जी करता था कि उतर कर यहाँ कुछ विश्राम करूँ और इस प्राकृतिक दृश्य का आनन्द लूं। इस प्रकार की मनोरम हरियाली को भी हमने दलाई लामा के "पोताला" के दर्शन की आशा त्याग दिया।

हमारे पाँव के तलवों में घाव हो गये थे; घुटनों में अब कोई शक्ति न रह गयी थी और हमारे घोड़े थककर चूर हो रहे थे, पर मन में एक ही अभिलाषा लिये हम तीनों साथी तिब्बत के सर्व श्रेष्ठ तीर्थ धाम ल्हासा में पोताला के दर्शन के लिये चले जा रहे थे। "नाम" नामक गाँव पर जल्दी से तिब्बती गरम-गरम चाय "शोजा" पीकर फिर आगे दौड़ पड़े और लगभग छः मील ऊँची पहाड़ी पर चलते-चलते एक ऊँची पहाड़ी पर स्थित एक बड़े भारी गुम्पा के समीप आ पहुँचे। चारों ओर का दृश्य बड़ा ही मनोरम था। नीले और बैंगनी पहाड़ों के बीच में एक हरे रंग के ऊँचे पठार पर मठ की सफेद ऊँची-नीची दीवारों पर गहरे लाल (मेरून) रंग की चौड़ी पट्टियाँ बड़ी सुहावनी लग रही थीं। पूछने पर पता चला कि यह तिब्बत का सबसे प्रमुख विश्वविद्यालय "डेबुंग" है तो हमें अपने श्री लंका निवासी वीर साथी अभय सिंह परेरा जी की याद हो आयी जो उस समय वहाँ रह रहे थे। मन में आया कि दौड़कर उनसे मिल जाऊँ। दूर दक्षिण समुद्र पार गरम लंका द्वीप का रहनेवाला हिमालय की चोटियों के इस पार बर्फ के समान ठंडे पठार पर रहता है और वहाँ इन अनजान तिब्बती लामाओं के साथ तिब्बती भाषा और उनकी धार्मिक पोथियों को पढ़ने के लिये समय व्यतीत कर रहा है।

पाँचवें दिन आगे बढ़कर जब हम एक सुन्दर मन्दिर के समीप पहुँचे तो पता चला कि इस सुन्दर मन्दिर की स्थापना प्राचीन काल में भारतीय बौद्ध महात्मा श्री अतिस ने की थी। इस मन्दिर में देवी के विभिन्न २१ रूपों की सुन्दर स्वर्ण मूर्तियाँ स्थापित थीं। इन मूर्तियों में सबसे मुख्य मूर्ति को तिब्बत निवासी अपनी भाषा में "डोलमा निशु शा चिक" के नाम से पूजते थे। जी तो करता था कि दो-चार दिन इस सुन्दर मन्दिर में रह जाऊँ, पर समय के अभाव से हम बड़ी तेजी से ल्हासा की ओर भागे चले जा रहे थे। एक लकड़ी के बने हुए बड़े भारी पुल के द्वारा "किचू" नामक नदी को पार करके जब हम अन्त में एक पहाड़नुमा बड़े ऊँचे ठोस पठार के सम्मुख पहुँचे तो हमें एका-एक तिब्बत के धार्मिक महाराज दलाई लामाजी के निवास भवन के भव्य दर्शन हुए। हम तीनों अपने खच्चरों से उतरकर जमीन पर औंधे लेटकर अपनी-अपनी मन की कामनाएँ व्यक्त करने लगे। देखा कि नीले गगन में सूर्य की अंतिम सुनहरी किरणों में दलाई लामा का "पोताला" नामक विशाल और दिव्य भवन ऊँचे पठार पर चमचमा रहा है।





कैलास शिखर
(शिखर के बाएँ किनारे पर बादल हैं)

श्री कैलास और मानसरोवर की यात्रा

श्री चंद्रकान्त खाटा

सभी धर्मों के अनुसार हर मनुष्य का कर्तव्य है कि अपनी जीवन-यात्रा में कुछ न कुछ तीर्थ-यात्रा अवश्य करे। भारत के चारों कोनों में भगवान के विविध स्वरूप कभी न कभी प्रकट हुए और वे स्थान जहाँ वे प्रकट हुए पवित्र माने गये हैं। उन पवित्र स्थानों में जाकर मनुष्य को उन स्वरूपों की याद ताजी हो जाती है और इस प्रकार ये तीर्थ-यात्राएँ हमें आध्यात्मिक शक्ति देती हैं और हमें अनुप्राणित करती हैं।

इन यात्राओं में श्री कैलासजी और मानसरोवर की यात्रा बहुत श्रेष्ठ मानी गई है। इस यात्रा की कठिनाई की तो बात ही न पूछिए। शायद इसीसे उसका महत्त्व भी ज्यादा है क्योंकि आसानी से यह यात्रा नहीं हो सकती। यात्रा की अपार कठिनाइयों के कारण बहुत कम लोग वहाँ पहुंच सकते हैं। वे स्थान बहुत ऊँचे हैं और इतनी ऊँचाई पर यात्री को कोई सुविधा नहीं मिलती।

श्री कैलास पर्वत उत्तर हिंदुस्तान में हिमाल[य के] उस पार तिब्बत में स्थित है। श्री कैलास शिख[र के] नीचे के पर्वत १८६०० फुट ऊँचे हैं। उसका शि[खर] प्रायः २२००० फुट ऊँचा चला गया है, और हिमालय के प्रसिद्ध ऊँचे शिखरों में गिना [जाता] है। यह गगन-चुंबी कैलास साल भर हिमाच्छादित र[हता] है। जो लोग पहाड़ चढ़ने में आनंद लेते हैं, उनके सा[हस] और कष्टसहिष्णुता की इसमें परीक्षा हो जाती है, उन्हें इस यात्रा में वास्तव में बहुत आनन्द आता [है।] दुर्गम अवरोधों और कठिनाई से भरी यह यात्रा म[नुष्य] की सहनशीलता परखने के लिए आदर्श यात्रा है। [वहाँ] पहुँचने पर आदमी बिलकुल स्तब्ध होकर अंदर से पु[कार] उठता है "भगवान् की यह कैसी अनुपम करा[मात] है!" इस शिखर का दर्शन होने पर सारे जीवन [की] मनोकामना पूर्ण हो जाती है, और मनुष्य सृष्टि का

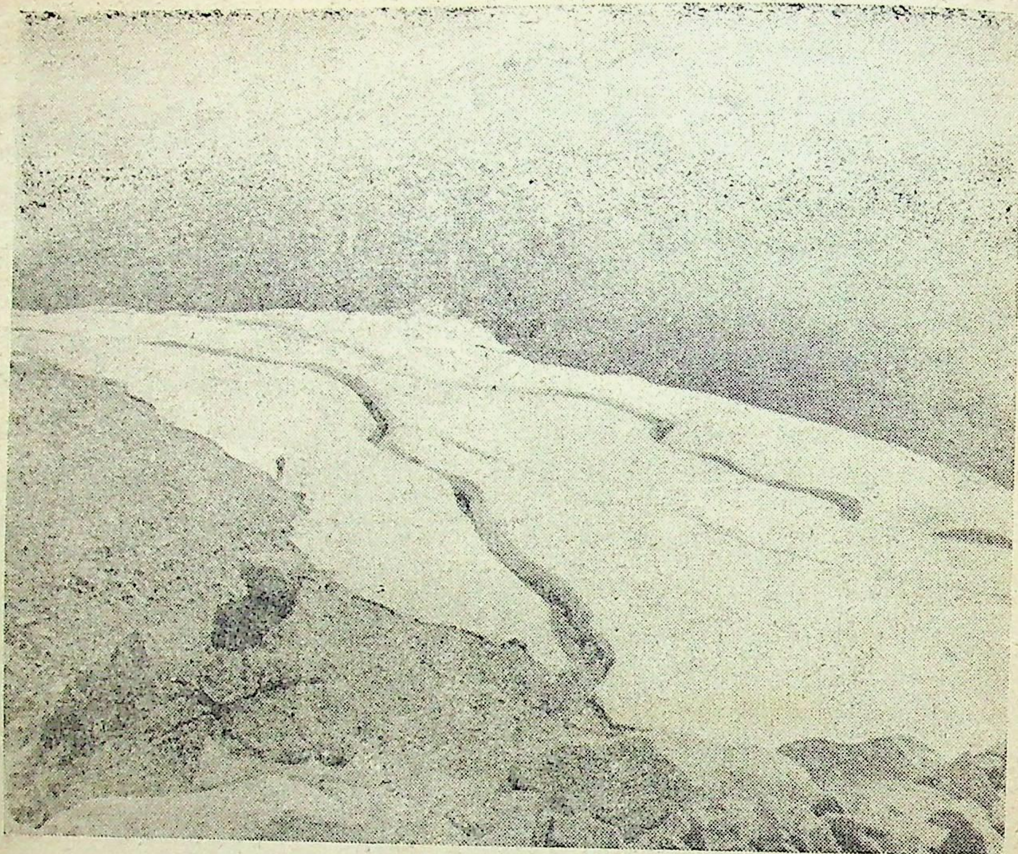


मानसरोवर के किनारे शिविर

आश्चर्यजनक दृश्य देखकर ईश्वर के प्रति श्रद्धा से नत हो जाता है।

श्री कैलास यात्रा के लिए एक रास्ता पिथौरागढ़ से आरंभ होता है। पिथौरागढ़ तक बस में जाते हैं। बाद में पैदल, खच्चर या डांडी से सैकड़ों मील चलना पड़ता है। उसके सिवा कोई चारा नहीं। इतनी ऊँचाई चढ़ने में रास्ते में अनेकानेक नदियाँ और छोटे-मोटे झरने पार करने पड़ते हैं, और अपने पैरों से धँसे हुए रेत और पत्थरों से बने हुए रास्ते पर ही जाना होता है। इस यात्रा के लिए जून से सितम्बर तक की ऋतु अनुकूल मानी जाती है। बाकी के दिनों में यात्रा असंभव है। इस अनुकूल मौसम में भी बहुधा तेज वर्षा का सामना अवश्य करना पड़ता है। पहाड़ टूटने या धरती के धसक जाने (Landslides) से रास्ते टूट जाते हैं। ऐसे रास्ते मिलना तो हररोज़ की बात है। १२००० फुट की ऊँचाई पर पहुँचने पर वर्षा तो कम हो जाती है किन्तु आंधी और तूफान उनका स्थान ले लेते हैं। वहाँ क्रूर मौसम और चमड़ीफाड़ सरदी का बहुत जोर का मुकाबला करना पड़ता है। यात्री समूह सभ्यता तथा डाकघर इत्यादि से प्रायः १५० मील दूर होने के कारण बिलकुल अलग हो जाता है। इस रास्ते पर चारों ओर सिर्फ वीरान रेतीली धरती तथा नग्न चट्टानें दिखाई देती हैं। विचित्रता तो यह है कि इस रास्ते में हरे-भरे खेत और पेड़-पत्ते बिलकुल ही देखने में नहीं आते। भारत सरकार को धन्यवाद है कि वह कृपाकर अपने हद के भीतर के रास्तों की प्रतिवर्ष मरम्मत करा देती है जिससे खतरनाक यात्रा अपेक्षाकृत सुगम हो सके और कठिनाइयाँ कम हों।

कैलास पहुँचने के पूर्व पौराणिक मानसरोवर का दर्शन होता है जो १४६०० फुट की ऊँचाई पर स्थित है। यह प्राकृतिक झील प्रायः ६४ मील के घेरे में फैली हुई है और पिघले हुए हिम के स्वच्छ नीले जल से भरी हुई है। मानसरोवर की उत्पत्ति श्री ब्रह्माजी के मनसे हुई मानी जाती है। इस झील का जल इस मौसम में बहुत



१८,००० फुट ऊँची गौरीकुंड हिमनदी
(हिमनदी की बर्फ में दरारें पड़ गयी हैं।)



कैलास शिखर के नीचे एक शिविर

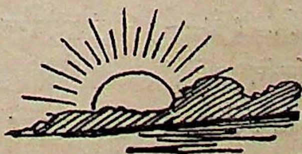
ठंडा नहीं होता। इसमें थोड़ी देर स्नान किया जा सकता है। इसका सुहावना नीला निर्मल जल दृश्य को स्वर्गीय बना देता है। यहाँ पड़ाव डालना सुविधाजनक है। यदि बादलों की कृपा हुई तो यहाँ से कैलासजी की निकटतम झांकी प्राप्त होती है। यहाँसे पंद्रह-बीस मील दूरी पर स्थित हिमाच्छादित गौरवमय बृहत् लिंगाकार श्री कैलास पर्वत का दर्शन होता है। उसे देखकर दैवी आनंद की उपलब्धि होती है। शिखर की परिधि छः मील की है। इस शिखर को एक छोटी सी बर्फीली घाटी (जो ३४ मील लंबी है और इसके चारों ओर परिक्रमा करती हुई मालूम होती है) हिमालय की दूसरी पर्वत श्रृंखलाओं से अलग करती है। लोग श्री कैलास शिखर की परिक्रमा इसी घाटी में होकर करते हैं। परिक्रमा दार्चीन मंडी से आरंभ होती है और घूमकर फिर दार्चीन मंडी आ जाती है। रात का पड़ाव १८६०० फुट की ऊँचाई पर स्थित दोलमादरी पर किया जाता है। श्री कैलास की चोटी पर लोग नहीं चढ़ते क्योंकि हिन्दुओं और वहाँ की जातियों के लिये यह स्थान पवित्र एवं पूजनीय है। दार्चीन से परिक्रमा का आरंभ करने के बाद नदीके किनारे-किनारे जाना पड़ता है। रास्ते में दिशफूक् और जुन्थुलफूक नामक स्थान मिलते हैं। आखिरी मठ श्री कैलास शिखर के निकट है। यहाँसे शिखर के स्पष्ट और पूर्ण दर्शन होते हैं।

लौटने पर कुछ ही आगे पौराणिक गौरीकुंड आता है। दोलमाघाट की विकट चढ़ाई पारकर उसका दर्शन होता है। यह नन्हीं सी झील १८६०० फुट पर स्थित है और कदाचित् विश्व की उच्चत्तम झीलों में से एक है। यहाँ बारहों महीने बर्फ जमा रहता है, और झील में हिमखण्ड तैरते नजर आते हैं। गौरी कुंड का फैलाव तीन मील का है। वास्तव में यह झील एक हिमनद का अंग है जिसे गौरीकुंड ग्लेसियर (Gauri kund Glaciar) कहते हैं।



कैलास के रास्ते की नीती घाटी की एक स्त्री जो अपने बुने हुए ऊन के सुन्दर रंग-बिरंगे कपड़े और अपने प्रदेश में प्रचलित आभूषण पहिने है।

जै कैलास !



कागद या कागर

श्री रामबली पाण्डेय

रामचरितमानस के काशिराज संस्करण को प्रकाशित हुए दो वर्ष हो गये। वाराणसी में तुलसी मानस-मंदिर के संगमरमर पर उसे उरेहा भी जा चुका है किंतु उसके पाठ के संबंध में कुछ मनोरंजक समीक्षाएँ अब भी सुनने को मिलती रहती हैं। समीक्षा होनी चाहिए पर ईर्ष्यावश अनर्गल प्रलाप को समीक्षा की सीमा में खींचना स्तुत्य नहीं हो सकता। उसकी सार्थकता का वास्तविक मूल्यांकन उपलब्धि के धरातल पर ही विवेकसंमत हो सकता है।

कुछ दिन पहले संस्कृत के एक विद्वान् का आगमन काशी नागरीप्रचारिणी सभा में हुआ। सभा से प्रकाशित मानस की प्रति का अवलोकन उन्होंने बड़ी तन्मयता से किया। उसमें पाठ है--

कबित बिबेक एक नहिं मोरे।
सत्य कहौं लिखि कागद कोरे।

काशिराज के संस्करण में 'कागद' के स्थान पर 'कागर' पाठ है। अतः काशिराज संस्करण के विरुद्ध शास्त्रार्थ करने के निमित्त वे सन्नद्ध हो गये। उनकी सन्नद्धता से आतंकित होकर मेरे मित्रों ने उन्हें मेरे पास भेज दिया। यहाँ मैं स्पष्ट कर दूँ कि मेरे पास भेजने का एकमात्र कारण यही था कि मानस के पाठसंकलन में काशिराज की ओर से मैं भी नियुक्त था। उनको परिचय के आदान-प्रदान की आवश्यकता नहीं हुई। उन्होंने रोष में मुझसे पूछा कि काशिराज ने मानस का प्रामाणिक संस्करण निकाला है अथवा गोस्वामी तुलसीदास का उपहास किया है। मैंने उनसे आसन ग्रहण करने का निवेदन किया और वे आसीन हुए।

कुछ क्षण मौन रहने के पश्चात् उन्होंने कहा कि "मानस की अन्य सभी प्रतियों में--सत्य कहौं लिखि 'कागद' कोरे--पाठ है किंतु काशिराज के बहुचर्चित संस्करण में 'कागर' कोरे है। गोस्वामी तुलसीदास ने कागर शब्द का प्रयोग केवल पंख के अर्थ में किया है-- 'कीर के कागर ज्यों नृप चीर विभूषन उप्पम अंगनि पाई।' इसके अतिरिक्त विश्व के किसी कोश में मुझे 'कागर' शब्द का अर्थ कागज नहीं मिला।" वे अभी कुछ और कहने को सोच रहे थे किंतु मैंने उनसे निवेदन किया कि पंडितजी! कागर तो हिंदी का शब्द है। इसे विश्व के कोशों में देखने की कौन सी आवश्यकता आ पड़ी? इस पर वे थोड़े सावधान दीख पड़े। उन्होंने संयमित होकर कहा कि 'यदि हिंदी का शब्द है तो हिंदी के कोशग्रंथों में तो इसका अर्थ मिलना चाहिए। उनकी चुनौती का अनुमान लग जाने पर मैंने निश्चित होकर सभा से प्रकाशित हिंदी शब्द सागर को--जो हिंदी जगत् का एकमात्र प्रामाणिक कोश है--उनके संमुख प्रस्तुत किया। उसमें कागर शब्द का प्रथम अर्थ कागज दिया हुआ है और द्वितीय पंख।

वस्तुतः कागर शब्द का मूल फारसी कागज या कागद है।[1] मानस की उपलब्ध अधिकांश प्रतियों में कागज, कागद, कागर तथा कागत रूप मिलते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने 'कागर' शब्द का प्रयोग कागज अर्थ में क्यों किया यह विचारणीय है--

कबित बिबेक एक नहिं मोरे, सत्य कहौं लिखि कागर कोरे।

के अंतर्गत 'कागर' और कोरे में अनुप्रास का जो स्वारस्य है उसका आनंद साहित्यानुरागी ही प्राप्त कर सकता है। खरी-खोटी बात कहनेवाले संत कबीर भी अपनी कविता में अनुप्रास की ओर हाथ बढ़ाए हुए दीख पड़ते हैं। मध्ययुगीन काव्य के प्रणेताओं में अनुप्रास की अवली अनायास खिंची चली आती थी। इसके लिये उन्हें किसी प्रकार का आयास नहीं करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त महाकवि सूरदास ने भी 'कागर' शब्द का प्रयोग कागज के अर्थ में किया है--

तुम्हरे देस कागर मसि खूटी।
प्यास अरु नींद गई सब हरि के बिना बिरह तन टूटी।

--सूरसागर

मानस के प्रस्तुत संस्करण की आधारभूत उपलब्ध प्राचीनतम प्रतियों में से अधिक में 'कागर' शब्द ही प्रयुक्त हुआ है। काशिराज का यह संस्करण केवल आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति पर ही आधारित नहीं है, इसमें साहित्यिक संपादन-पद्धति भी समाविष्ट है। वैज्ञानिक प्रक्रिया शब्द पर केंद्रित रहती है और साहित्यिक प्रक्रिया शब्द, अर्थ, व्याकरण तथा भाषा की मूल प्रवृत्ति की ओर भी झाँकती

१--स्टाइन गास--परशियन इंगलिश डिक्शनरी, पृष्ठ १००६।

१९६४

है। यही कारण है कि साहित्य-परंपरा से अपरिचित व्यक्ति इस संस्करण के प्रति अनावश्यक ऊहापोह को प्रश्रय देता है।

काशिराज संस्करण के संपादक आचार्य विश्वनाथ, प्रसाद मिश्र प्राचीन हिंदी काव्य के अन्यतम विद्वान् हैं। उन्होंने शताधिक ग्रंथों का संपादन विद्वत्तापूर्वक किया है। काशिराज श्री विभूतिनारायण सिंह के संभार तथा आचार्य मिश्र की निष्ठा एवं ज्ञानगरिमा के फलस्वरूप मानस का प्रस्तुत संस्करण शिला पर अंकित होने का सर्वथा अधिकारी है।

इस संस्करण के संबंध में कुछ इस प्रकार की भी बातें उठाई जाती हैं कि इसके संपादक ने अपनी ओर से शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा है और कहीं-कहीं तो नये पाठों की सृष्टि कर दी है। वस्तुतः वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। शपथपूर्वक यह कहा जा सकता है कि संपादक ने न तो शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा है और न कोई नवीन सृष्टि ही की है। प्राचीनतम प्रतियों में उपलब्ध पाठों को उपयुक्त स्थान पर जड़ने का काम संपादक ने अवश्य किया है। इसमें संपादक का अपना आग्रह नहीं है। इस प्रसंग में एक उदाहरण अप्रासंगिक न होगा।

मानस के अंतर्गत 'मानसरोवर' के रूपक में एक अर्द्धाली है—

सम जम नियम फूल फल ज्ञाना।
हरिपद 'रति रस' बेद बखाना।।

'रति रस' के विभिन्न पाठांतर प्राचीन प्रतियों में मिलते हैं। श्रावणकुंज की प्रति जो संवत् १६९१ की है उसमें केवल 'रस' पाठ है, काशिराज वाली सं० १७०४ की प्रति में 'रस बर' है। श्रावण कुंज में संशोधित पाठ 'रस बर' रखा गया। द्वितीय बार के संशोधन में उसका पाठ हो गया—हरिपद रति रस बर बेद बखाना। मात्राधिक्य के कारण पुनः संशोधन की अपेक्षा हुई अतः 'हरिपद रति सब बेद बखाना' रूप दिया गया। किंतु रूपक खंडित हो गया। सं० १७१४ की प्रति में 'रति रस' संशोधित पाठ है। इन पाठों में 'हरिपद रति रस बेद बखाना' सर्वोत्तम है। इस प्रसंग में कई दिनों तक विचार-विमर्श के उपरांत मिश्रजी ने निर्णय किया कि वास्तविक पाठ इस प्रकार है—

सम जम नियम फूल फल जाना।
हरिपद रस रस बेद बखाना।।

निर्णय के पक्ष में मिश्रजी का पुष्ट प्रमाण यह था कि श्रावणकुंज की प्रति का लेखक 'रस' शब्द लिखने के पश्चात् पुनः 'रस' लिखना भूल गया जो स्वाभाविक है। रस शब्द का अर्थ प्रीति होता ही है। हरिपद में प्रीति ही रस है। अतः रूपक के निर्वाह के साथ-साथ 'रस रस' में अनुप्रास का भी अद्भुत समन्वय हो जाता है। गोस्वामी तुलसीदास जैसे सिद्धहस्त कवि ने —हरिपद रस रस बेद बखाना—ही लिखा होगा।

कहने का तात्पर्य यह कि मिश्रजी ने अपने इस निर्णय को उपलब्धि मानकर प्रस्तुत संस्करण में स्थापित करने का प्रयास नहीं किया जब कि ऐसा करने के लिये वे पूर्ण स्वतंत्र थे। अतः 'हरिपद रति रस बेद बखाना' को ही मूल पाठ स्वीकार किया गया। किसी प्रकार की कोई नवीन सृष्टि नहीं की गई।

अवकाश

प्रो० रामस्वरूप आर्य

चिन्ताओं से परिपूरित यह क्या जीवन है?
निरख न पाएँ नैन, अरे क्या अवलोकन है?
मिली न पल भर हमें वही तरुवर की छाया।
धेनु सरीखे जीवों तक ने जिसको पाया।।
दिनकर के उजले प्रकाश में तनिक न गए निहारे।
फूलों सजे सुहाने निर्झर जैसे नभ में तारे।।
छू न सके ये नैन, नैन का आलोकित आकर्षण।
और असम्भव-सा है जैसे, लखना वह मृदु नर्तन।।
हँसी बिखर कर जो नैनों से मुखमंडल को घेरे।
इतना भी अवकाश कहाँ मन उस आभा को हेरे!
ऐसा दीन हीन जीवन भी क्या जीवन है?
निरख न पाएँ नैन अरे, क्या अवलोकन है?

———

स्त्रियों का स्वर्ग

श्री राजगोपाल माथुर

पुर्तगीज गियाना के तटवर्ती द्वीपों में ओरेंगो ग्रांडे नाम का एक द्वीप है। इस द्वीप में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्त्रियों का बोलबाला है। पुरुष समाज के पास यहाँ किसी प्रकार का कोई अधिकार नहीं है। शादी तक के लिये पुरुषों को लम्बे समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है। यहाँका पुरुष सदैव इसी प्रयत्न में रहता है कि कोई स्त्री उसे पसंद कर उसके साथ विवाह कर ले। इतना ही नहीं, जब तक कोई स्त्री किसी पुरुष को पसंद कर उससे विवाह नहीं कर लेती है, तब तक वह पुरुष किसी स्त्री की ओर आँख उठा कर देखने का साहस तक नहीं कर सकता है। यदि कोई पुरुष दुर्भाग्य से किसी स्त्री का दिल जीतने में सफल नहीं हो पाता है, तो फिर उसे उम्र भर कुँवारा ही रहना पड़ता है। और 'सौभाग्य' से यदि पुरुष किसी स्त्री का कृपा पात्र बन भी जाता है, तो भी वह यह आशा तो नहीं कर सकता कि अब उसका भावी जीवन सुख से बीत जाएगा। कारण यह कि, यदि वह पुरुष स्त्री की इच्छाओं के अनुकूल सिद्ध नहीं होता है, तो स्त्री किसी अन्य पुरुष को अपना लेती है और उस पुरुष को घर से निकाल बाहर करती है।

यहाँकी स्त्री यदि किसी पुरुष को तलाक देना चाहे, तो वह बिना कोई कारण बताये तलाक दे सकती है और किसी तरह की सफाई दिये बिना उसे घर से निकाल सकती है तथा अन्य पुरुष को पसंद कर सकती है। किंतु इसके विपरीत यदि कोई पुरुष अपनी स्त्री से असंतुष्ट हो, तो उस बेचारे के पास छुटकारे का कोई मार्ग नहीं होता। जब तक स्त्री ही उसे छोड़ना न चाहे, तब तक मजबूरन उसे स्त्री के साथ जीवन बिताना पड़ता है। ऐसी स्थिति में पुरुष के सामने बस यही एक रास्ता रह जाता है कि वह स्वयं को इतना आलसी और निकम्मा बना दे कि जिससे उसके द्वारा स्त्री की कोई भी इच्छा पूरी न हो पाए और स्त्री उसे निकम्मा समझकर घर से बाहर निकाल दे।

किंतु इतना होने पर भी पुरुष यह आशा तो किसी भी सूरत में नहीं कर सकता कि वह अपना अधिकार पुनः प्राप्त कर लेगा अथवा किसी अन्य स्त्री को अपनी ओर आकर्षित कर सकेगा या फिर उसके साथ विवाह कर सकेगा। सच बात तो यह है कि यहाँकी प्रत्येक स्त्री कि भी अविवाहित पुरुष के द्वारा अपनी इच्छा और आ श्यकताओं की पूर्ति करने को स्वतंत्र होती है। उन्हें प्रकार के सुख और सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

किंतु इसके विपरीत यदि कोई पुरुष अपने आ किसी स्त्री के चंगुल से छुड़ाने में सफल हो जाता है, भी उसके सिर पर दुधारी तलवार लटकी रहती है। प्रकार यदि कोई पुरुष किसी स्त्री की आवश्यकता को पूरा करने में, उसे संतुष्ट करने में असफल सि होता है, तो उसके दुर्भाग्य की कोई सीमा नहीं रह उसे फिर कोई भी स्त्री नहीं अपनाती है। इतना ही न यदि कभी वह किसी स्त्री की इच्छा पूरी करने के लि मना कर दे, तो द्वीप की समस्त स्त्रियाँ उसकी शत्रु जाती हैं। ऐसी दशा में ऐसे पुरुष के सामने दो ही मा रह जाते हैं कि या तो उम्र भर स्त्रियों की ओर से प्राप्ति की आशा तोड़ दे या फिर स्त्रियों के स्वर्ग ओ ग्रांडे को छोड़ कर भाग जाए।

इससे भी आश्चर्यजनक और मनोरंजक बात तो है कि इतने अधिक अधिकार और सुविधा होने के उपरा भी यहाँकी कोई भी स्त्री विवाह से पूर्व इन सुख-सुविधा और स्वतंत्रता का उपयोग बहुत ही कम करती है। इस मुख्य कारण यह है कि इस द्वीप के निवासियों में यह विश्वास है कि विवाह से पूर्व कौमार्य भंग होना उन मृत्यु का कारण बन सकता है। परंतु विवाह कर लेने बाद यहाँकी स्त्रियाँ हर बात में पूर्णतया स्वतंत्र हो जा हैं। प्रत्येक विवाहित स्त्री के एक या एक से अधिक पु मित्र होते हैं। जो पुरुष अपनी स्त्री के इस काम में वि डालता है, उसका सारा जीवन दुःख में बीतता है। जि दिन वह कोई बाधा डालता है, उसी दिन उसे घर निकाल दिया जाता है। किंतु यदि विवाहित पुरुष बेका साबित हो जाता है, तो फिर उसका जीवन पूर्णतया न हो जाता है। ऐसे पुरुष को स्त्री और पुरुष, दोनों बहि कर हमेशा के लिए देशनिकाले की सजा देते हैं।

ओरेंगे ग्रांडे के पुरुष अपने पौरुष के प्रति इतने अधि उदासीन हैं और अपने आप को इतना ज्यादा हीन सम

१९६४

दर्शन की बारहखड़ी

श्री रामइक़बालसिंह 'राकेश'

निष्प्रयोजन ही दिये तुमने मुझे प्रिय, दान!
भुवन में जिनके समान न अन्य दान महान!!

यह महार्णव का विशद आयाम,
यह सरोवर का सलिल वैदूर्यमणि-सम श्याम,
नन्दनोपम यह महावन, यह कुसुम-उद्यान,
यह विहंगाकुल मुकुल-संवीत विटप-वितान,
तारकांकित यह गगन-तल, यह क्षितिज-मैदान,

कर रहा अध्वर्यु-सम तप-यज्ञ यह हिमवान!
यह मनोरम रश्मि-वर्म-पिनद्ध स्वर्ण-विहान!
पाण्डुरारुण सान्ध्यरवि का यह सुखद अवसान!
निरख कर जिनकी अचिन्तितपूर्व छवि
सन्तत हुलसते प्राण!
विच्छुरित सर्वत्र जिनका बिम्ब
दिनमणि के प्रकाश-समान!!
पर न जो शिव-तत्त्व के संकेत या प्रतिमान!
पर न जो वरणीय या आराध्यतम ऐश्वर्य के व्याख्यान!!
निष्प्रयोजन दिये तुमने मुझे दुर्लभ दान!
नहीं जिनके अर्व या खर्वांश-सम विज्ञान के वरदान!!

दान वे अद्भुत, अपार्थिव, असाधारण दान!
दान वे चिति-चिन्तना के दिव्यतम आख्यान!!
सुमति, प्रज्ञा, चेतना, संकल्प, अध्याहार!
मनीषा, प्रणिधान, मेधा, तत्त्वग्रहण विचार!!
कल्पना, अनुभूति, मार्मिक व्यञ्जना-वैचित्र्य!
सृजन का सामर्थ्य, दर्शन-दृष्टि का वैविध्य!!
बुद्धि का मैं हूँ अतिथि, भू-स्वर्ग का ईशान!
उपनिषद् का ज्ञान, ऋग्यजुसाम का विज्ञान!!
निरख कर मम दान, जो तुमसे मुझे उपलभ्य!
कर रहे उनकी स्पृहा पशु-पक्षि-कीट-पतंग?
मूक-कुण्ठित-से ठगे-ठिठके अचल पाषाण!
विस्मयाकुल-चकित किंवा स्तब्ध द्रुम फलवान!!
यदि न ऐसे दान की सम्प्राप्ति से भी--
हो सकूँ मैं आत्मकाम, मनस्क, यतिगतिमान,
और अपने प्रति रहूँ मैं पूर्ण निष्ठावान!
तो न क्या मैं अल्पभोगी, अल्प में आसक्त?
तो न क्या मैं अल्पदर्शी, निखिल से परित्यक्त?
तो न क्या जाने बिना मैं बन रहा मतिमान?
तो न क्या जाने बिना मैं कर रहा पाण्डित्य का अभिमान!

है कि आज वहाँ का शासन पुरुषों के पास होते हुए भी सम्पूर्ण शासन कार्य स्त्रियों के ही हाथ में है। स्त्रियों का ही बोलबाला है। जिस दिन से ओरंगो ग्रांडे के सिंहासन पर रानी पाँया कजिम्पा आरूढ़ हुई थी, उसी दिन से पुरुषों की सारी स्वतंत्रता छिन गयी थी। इस रानी ने पुरुषों की शक्ति और अधिकार खतम कर दिये और धीरे धीरे पुरुषों को नारी प्रधान बना दिया। यहाँके पुरुषों की बोली तक में नारी की गंध आने लगी! यद्यपि कुछ समय पूर्व इस रानी की मृत्यु हो चुकी है और अब उसके स्थान पर उसका पुत्र सिंहासनारूढ़ हुआ है, फिर भी रानी कजिम्पा के द्वारा बनाये नियम और कानून आज तक चले आ रहे हैं।

यहाँ केवल स्त्री-पुरुष के परस्पर संबंधों के क्षेत्र में ही नहीं वरन् प्रत्येक क्षेत्र में स्त्रियों को ही प्रधानता दी गयी है। प्रत्येक कानून स्त्रियों के अधिकारों की रक्षा करता है। जब किसी पुरुष की मृत्यु हो जाती है, तो उसकी सम्पत्ति का एक छोटा-सा भाग नाम मात्र को परिवार के अन्य सदस्यों में बाँटा जाता है बाकी समस्त सम्पत्ति विधवा पत्नी को ही मिलती है। इसके विपरीत यदि पत्नी की मृत्यु पहले हो जाती है, तो विधुर पुरुष उसकी सम्पत्ति नहीं पा सकता है। मकान जैसी अचल सम्पत्ति की स्वामिनी बड़ी पुत्री बनती है। ओरेंगो ग्रांडे की स्त्रियाँ जो मकान बनवाती हैं, उस पर उनका पूर्ण अधिकार होता है और यदि कभी कोई पुरुष कोई मकान बनवाता है, तो वह मकान स्त्रियों के आकर्षण का मुख्य कारण बन जाता है। परंतु ज्योंही पुरुष किसी स्त्री से विवाह करता है, त्योंही उसे अपना मकान स्त्री के नाम कर देना पड़ता है। घर की अन्य आवश्यक वस्तुएँ—यहाँ तक कि अनाज और कपड़े तक यहाँ स्त्रियों की निजी संपत्ति माने जाते हैं।

भक्त कारैक्कालम्मैयार

श्री वे० रंगराजन्

पुनितवतियार—तमिलनाडु के कारैक्काल नगर में, पुराने जमाने में, धनदत्तनार नामक एक मशहूर व्यापारी हुए। उनके पुनितवतियार नामक एक बेटी थी जो साक्षात् लक्ष्मी-देवी सी थी। छुटपन से ही वे बड़ी ईश्वर-भक्त थीं।

गृहस्थ-जीवन—नागप्पट्टिनम् के प्रसिद्ध व्यापारी परमदत्तन् से उनकी शादी हुई। एक ही बेटी थी; इस कारण पुनितवतियार के माता-पिता ने अपनी बेटी को ससुराल भेजना पसंद नहीं किया। कारैक्काल में ही गृहस्थ-जीवन के लिए आवश्यक सभी सामग्रियाँ देकर अलग अट्टालिका में उनके रहने का प्रबंध कर दिया। नव-दंपति प्रेम से रहने लगे। दोनों नित्य नियमपूर्वक सर्वेश्वर की पूजा करते थे। अपने यहाँ आये हुए शिव-भक्तों को प्रेम से खिलाते-पिलाते थे।

आम्र-फल और भूखे साधु—एक दिन की बात है। एक व्यापारी परमदत्तन् को दो आम्र-फल देकर चला गया। परमदत्तन् ने उन फलों को नौकर के द्वारा अपने घर भेज दिया। पुनितवतियार दोनों फलों को सुरक्षित रखने के बाद अपने काम में लग गयीं। थोड़ी देर में एक भूखा साधु उनके यहाँ आया। पुनितवतियार ने उनको भोजन के साथ एक आम भी दे दिया। साधु खुशी-खुशी भर-पेट खाने के बाद उन्हें आशीर्वाद देकर चला गया।

पति को खिलाना—साधु के चले जाने के थोड़ी देर बाद ही परमदत्तन् भोजन करने घर आया। पुनितवतियार ने उसे भोजन कराया और बचा हुआ आम भी दे दिया। परमदत्तन् को आम्र-फल बहुत मीठा लगा। उसने अपनी पत्नी से कहा—"यह तो बहुत मीठा है। ऐसा ही और एक फल है न! उसे भी लाओ।"

ईश्वर की देन—पुनितवतियार ने रसोई घर में जाकर ईश्वर से प्रार्थना की। सर्वेश्वर की कृपा से उनके हाथ में एक आम्र-फल आ गिरा। उसे उन्होंने अपने प खिलाया। वह फल और भी अधिक मीठा था। खाते-खाते उसने अपनी पत्नी से पूछा—"पहले मैंने जो खाया उससे भी यह मीठा है। व्यापारी से फल एक ही जाति के थे। यह तो व्यापारी से दिया फल नहीं है। इसे तुमने कहाँ से पाया?"

और एक फल—पुनितवतियार ने सब बातें सुनायीं। परमदत्तन् आश्चर्य में पड़ गया। उसने क "अगर सचमुच यह ईश्वर की देन है तो और एक मँगवाओ।" पुनितवतियार ने आँखें मूँदकर सर्वेश्व प्रार्थना की। उन्हें एक सुन्दर फल और मिल गया। उन्होंने अपने पति के हाथ में दिया तो वह तुरंत हो गया।

पांडियनाडु में पति—इस घटना से परमदत्तन् पत्नी से बहुत डरने लगा। उसने समझा कि उसकी में कोई अद्भुत दैवी-शक्ति है। वह डर गया और किसी न किसी तरह उसे छोड़कर कहीं चले जा पक्का इरादा कर लिया। एक दिन उसने समुद्र पार में जाकर व्यापार करने की इच्छा प्रकट की। एक बनवाया गया, और आवश्यक व्यापार की चीजों से भ परमदत्तन् जहाज लेकर विदेश चला गया। विदेश कर परमदत्तन् ने खूब कमाया। उस धन से वह पांडियनाडु (पांड्यदेश) पहुँचा। वहीं एक शहर में व्यापार करने लगा। वहाँ उसने खूब धन-क और एक दूसरे व्यापारी की कन्या से दूसरा विवा लिया। उसके एक बेटी हुई। उसका नाम उसने पहली पत्नी पर रखा, और बड़े लाड़-प्यार से पालन-पोषण करने लगा।

पति के घर में—कारैक्काल में पुनितवतिया रिश्तेदारों को मालूम हुआ कि परमदत्तन् पांडि

पहुँचकर व्यापार कर रहा है। उन्होंने पुनितवतियार को पति के घर भेजने का निश्चय किया। एक विश्वस्त आदमी के द्वारा परमदत्तन् को यह खबर भेजी गयी कि अमुक दिन तुम्हारी पत्नी तुम्हारे यहाँ पहुँचेगी। इस समाचार से वह बहुत डरा। निश्चित तारीख को उसने अपनी दूसरी पत्नी और बेटी के साथ पुनितवतियार का बड़े ठाट-बाट से स्वागत किया, और उसके पैरों पर सिर नवाया। अपने पति को अपने पैरों पर सिर नवाते देखकर पुनितवतियार बहुत लज्जित हुईं और अपने रिश्तेदारों के पीछे जाकर खड़ी हो गयीं। रिश्तेदारों ने परमदत्तन् से पत्नी के पैरों पर सिर नवाने का कारण पूछा तो उसने सारा हाल कह सुनाया और बताया कि ये साधारण स्त्री नहीं हैं, इनमें दैवी-शक्ति है। इनके सम्मान में मैंने अपनी बेटी का नाम इन्हीं पर रखा है; आप भी इनके पैरों पर सिर नवाइये। उसकी बातें सुनकर रिश्तेदार आश्चर्य में डूब गये।

अस्थि-पंजर—अपने पतिदेव की बातें सुनकर पुनितवतियार बेहद दुखी हुईं। उन्होंने सर्वेश्वर से प्रार्थना की—"मेरे पति मुझे देवी मानते हैं। मैं कैसे उनके साथ गृहस्थी संभाल सकूँगी? इसलिए मैं अब यह भौतिक शरीर धारण करके जीवित रहना पसंद नहीं करती। मेरा रूप अभी से अस्थि-पंजर मात्र रह जाय।"

कारैक्काल का भूत—उनकी प्रार्थना पूरी हुई। वे सर्वेश्वर की स्तुति करती हुई कारैक्काल पहुँचीं। वहाँ लोग उनको "भूत" के नाम से पुकारने लगे। उससे वे खुश हुईं, और बोलीं—"सर्वेश्वर मुझे पहचान सकें तो वही काफी है। मैं इन नाशवान शरीरवालों की बातों की चिन्ता नहीं करती।" उन्होंने सर्वेश्वर के स्तोत्र में जो गीत गाये वे "अर्प्पुदत्तिरुवन्तादि" और "तिरुविरट्टैमणिमालै" नाम से प्रसिद्ध हैं।

कैलास पर्वत पर—पुनितवतियार कारैक्काल से क्षेत्राटन करती हुई कैलास पर्वत पर चलीं। तब उनको भूत के रूप में देखकर उमादेवी ने सर्वेश्वर से पूछा कि यहाँ आनेवाली अस्थि-पंजरवाली औरत कौन है? सर्वेश्वर ने कहा—"यह हमारी सच्ची भक्त है। जब इसके पति ने इसके साथ गृहस्थ-जीवन यापन करना स्वीकार नहीं किया तब से इसने इस रूप को पसंद करके अपनाया।"

वर माँगना—पुनितवतियार ने "पिताजी" कहकर सर्वेश्वर के कमल-चरणों पर सिर नवाया। सर्वेश्वर ने उनकी पीठ पर हाथ फेरते हुए पूछा—"बेटी, तुम क्या चाहती हो?" पुनितवतियार ने विनीत भाव से कहा—"पिताजी! आपके चरण-कमलों में मेरा अटल प्रम होना चाहिए। दूसरे जन्म न हों। यदि हों तो उन जन्मों में आपको न भूलूं। जब आप नृत्य करें तब उस समय मैं साथ-साथ गान किया करूँ। ये ही वर मैं माँगती हूँ।"

स्वर्गवास—सर्वेश्वर ने प्रसन्न होकर उन्हें ये वर दिये। "तुम्हारी इच्छा की पूर्ति हो। तुम पलैयनूर तिरुवालंकाडु में हमारे नृत्य के दर्शन करके स्तोत्र गान करती रहो।" तदनुसार जीवन व्यतीत कर पुनितवतियार एक शुभ दिन में सर्वेश्वर के चरण-कमलों में विलीन हो गयीं।

आम्र-फल महोत्सव—पुनितवतियार का एक मंदिर कारैक्काल में है जो "कारैक्काल अम्मैयार (कारैक्काल की देवी) के मंदिर" के नाम से प्रसिद्ध है। हर साल वहाँके नागरिक ज्येष्ठ महीने की पूर्णिमा के दिन बड़े ठाट-बाट से एक उत्सव मनाते हैं। वह उत्सव "कारैक्काल अम्मैयार" (आम्र-फल महोत्सव) के नाम से बहुत प्रसिद्ध है और उसे देखने के लिए तमिलनाडु के कोने-कोने से लोग आते हैं।

आंगन के बीच—

देखिये ! आपके घर में ही राष्ट्रीय एकता नहीं है ।

श्रीमती कमला शर्मा

आप चौंक पड़ीं न ! मेरी बात आपको विचित्र लग रही है। आपको यह भी लग रहा है कि ऐसी बात कहकर मैं आपकी राष्ट्रीय एकता की भावना के प्रति सन्देह व्यक्त कर रही हूँ। नहीं, आप नाराज न हों बहन, मेरा ऐसा इरादा कतई नहीं है। मेरे कहने का तात्पर्य तो केवल इतना है कि कभी-कभी आवेश में आकर इस सत्य को भुला देती हैं कि हमारे देश की लोक-संस्कृति कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक एक ही प्राण की पुलकावली है।

देश-रक्षा के लिये राष्ट्रीय एकता परमावश्यक है। राष्ट्रीय एकता के बारे में तो आपने सुना और पढ़ा होगा ही, पर हमलावर चीन के हमारे देश पर आक्रमण करने के बाद से तो इसका महत्त्व और भी बढ़ गया है। यह देखकर बड़ी खुशी होती है कि सारा देश एक होकर चीन के मुकाबले के लिए खड़ा हो गया है। आवश्यकता इस बात की है कि जब तक शत्रु को पूरी तरह देश की भूमि से खदेड़ नहीं दिया जाता, तब तक तो, कम से कम, यह एकता बनी ही रहे।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि अनजाने में आप भी राष्ट्रीय एकता को कायम रखने में मदद देती आयी हैं, पर कभी-कभी कुछ छोटी-सी असावधानियों के कारण, राष्ट्रीय एकता की आपकी भावना कुछ कमजोर पड़ने लगती है।

राष्ट्रीय एकता के सिद्धान्त का आरम्भ प्लेटफार्म और अखबारों में नहीं, घरों में होता है। और अपने घर का केन्द्र आप हैं। लिहाजा, इस सिद्धान्त को तब तक शत-प्रतिशत विजय नहीं मिल सकती जब तक खुद आप और आप जैसी अन्य बहनें इसे अच्छी तरह पचा न लें। अभी तक कुछ बहनें अपने प्रान्त, अपनी जाति, अपनी

भाषा, अपनी बोली, अपने धर्म को भारत से बड़ा मानती हैं। क्या आपको प्रायः ऐसे वाक्य सुनायी नहीं देते रहते ?

"हमारा बिहार ! हमारे विद्यापति !"

"सारे गुजराती एक से ही होते हैं। हमें तो गुजरातियों का खाना-पीना भाता नहीं।"

"संगीत के क्षेत्र में बंगालियों को कौन मात दे सकता है?"

"आई० ए० एस० में हमारे मद्रास के लोग ही ज्यादा आते हैं!"

"क्रिकेट खेलना कोई पारसियों से सीखे। हमारे उमरीगर, कान्ट्रेक्टर, सूरती....."

"फिल्म इण्डस्ट्री पर पंजाबी ही पंजाबी छाये हुए हैं !"

"इस क्लब में महाराष्ट्रियों के अलावा कोई और भर्ती नहीं हो सकता।"

"तेरे स्कूल में इस साल कितने सिंधी पास हुए रे रमेश!"

"देख लेना, कोई सिख ही इस दौड़ में अव्वल आयेगा।"

बहनें और माताएँ जब इस प्रकार की बातें करती हैं तो प्रान्तीयतावाद को बढ़ावा देती हैं, और अनजाने में, राष्ट्रीय एकता के आधार को कुछ कमजोर बनाती हैं। उनकी देखा-देखी उनके बच्चों में भी वही भावना घर कर जाती है। वे देश को भूल जाते हैं, बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात, बिहार, पंजाब आदि को ही याद रखते हैं। आगे चलकर भी उन्हें अधिकतर ऐसी ही बातें सुनने को मिलती रहती हैं, और उन्हें कभी भी यह अहसास नहीं हो पाता कि वे सबसे पहले भारत देश के वासी हैं। इसी कारण, हमारे देश के बच्चे जब बड़े होकर बाहर जाते हैं, तो उनमें यही भावना प्रधान रहती है कि वे पंजाबी हैं, बंगाली हैं, मुस्लिम हैं, पारसी हैं, हिन्दु हैं। विदेशियों को इससे बड़ा आश्चर्य होता है।

अमरीका में हमारे देश से अधिक राज्य हैं तथा हमारे देश से अधिक मतों और धर्मों वाले लोग रहते हैं। उनका निजी जीवन कुछ भी हो, पर वे सब, सबसे पहले अपने को अमरीकन ही मानते और कहते हैं। हमारे देश में यह भावना अभी व्यापक नहीं हुई है। इसे व्यापक बनाने में आप बहुत सहायक हो सकती हैं। आज जब हम सब देशवासियों को एक होकर लड़ना है, तो इस भावना को मजबूत बनाइए, कमजोर मत होने दीजिए।

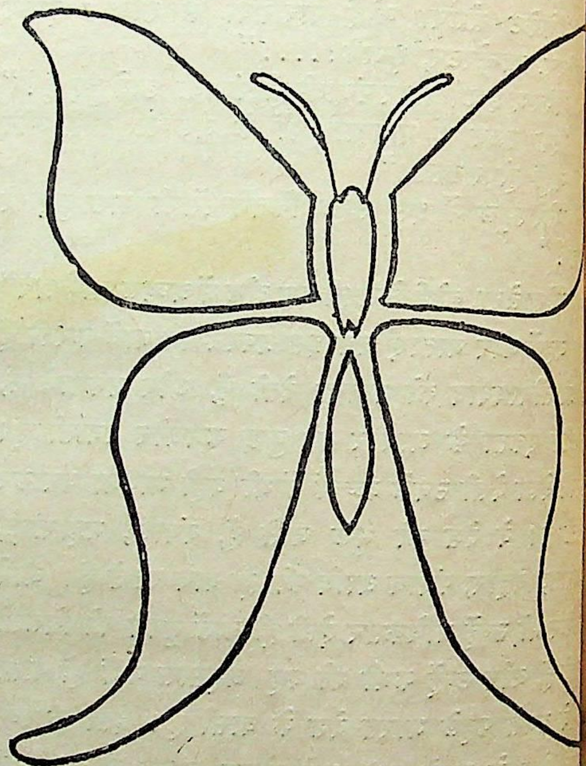
आप पंजाबी हैं तो अपने लड़के को बंगाली कुरता पहनने का शौक भी डालिए। गुजराती हैं तो अपनी लड़की को अपनी परम्परागत पोशाक के अलावा पंजाबी कुरता-शलवार पहनने की आदत भी डालिए। दोसा, इडली, छोले, नान, सन्देश, श्रीखंडपूरी, आदि किसी राज्य विशेष के प्रिय पकवान नहीं हैं, भारतीय पकवान हैं, यह सीख अपने बच्चों को दीजिए। हेब्बर, आरा, अलमेलकर ने कोई अच्छा चित्र बनाया तो यही कहिए कि एक भारतीय कलाकार ने अच्छा चित्र बनाया। रवीन्द्रनाथ टैगोर, शरतचन्द्र, प्रेमेन्द्र मित्र केवल बंगाल की ही विभूति नहीं हैं, सारे भारत को गौरव प्रदान करनेवाले लेखक हैं। राजकपूर, वैजयन्तीमाला, दिलीपकुमार, मेहबूब आदि सबसे पहले भारतीय सिने कलाकार या निर्माता हैं, बाद में किसी राज्य, जाति या धर्म के व्यक्ति हैं। कुचीपुडि, भरतनाट्यम्, भांगड़ा सर्वप्रथम भारतीय नृत्य शैलियाँ हैं, बाद में किसी राज्य-विशेष को उन पर अधिकार जताने का साहस हो सकता है।

भारत में किसी भी राज्य के नेता, कवि या कलाकार के सम्मान में कोई समारोह किया जाये तो इस बात का प्रयत्न कीजिए कि उसमें अन्य राज्यों के निवासी अधिक संख्या में भाग लें। सब त्योहारों को भी राष्ट्रीय त्योहारों का रूप देकर मनाइए। अपने बच्चों को प्रेरित कीजिए कि वे अन्य राज्यों की भाषाओं के प्राचीन तथा समकालीन साहित्य का भी अध्ययन करें। आज हमारे बच्चों को विदेशी साहित्यकारों तथा उनकी कृतियों के नाम तो ज्ञात रहते हैं, पर अपने ही देश की प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य की गतिविधियों से वे बिलकुल अनजान बने रहते हैं।

हमारे देश की भूमि पर चीन ने बलात् अधिकार करना चाहा तो सब देशवासी अपने भेदभाव भूलकर चीन को पीछे हटाने के लिये कृतसंकल्प हो उठे। याद रखिए, हमारे देश के सैनिक हमारे देश की जिस भौगोलिक एकता में बाहरी रूप को अक्षुण्ण रखने के लिये इतनी कुर्बानी दे रहे हैं, उसीके आंतरिक रूप को अक्षुण्ण रखने की जिम्मेदारी आपकी—प्रत्येक गृहिणी—की है। यदि आप अपने घर तथा अपने परिवार में राष्ट्रीय एकता को कायम रखने और उसे मजबूत बनाने में सफल हो गयीं, तो समझिए आपने उतना ही महत्त्वपूर्ण काम किया है, जितना मोर्चे पर लड़नेवाला सैनिक कर रहा है। तो फिर आइए, अभी से इस महत्-कार्य में जुट जाइए।....

सुई-डोरा

अपनी मुन्नी को काढ़ना सिखाइए। उम्र के हिसाब से यह नमूना कई प्रकार से काढ़ा जा सकता है। अगर अभी सुई पकड़ना ही सीखा है तो इस नमूने की सुई दौड़ाकर (running stitch) एक रेखा सी निकाली जा सकती है। रेखाएँ उभर आयेंगी, वरना (chain stitch) जंजीरे की कढ़ाई (stem stitch) उल्टी बखिया की कढ़ाई भी करी जा सकती है। बड़ी लड़कियाँ पंखों में जाली निकाल सकती हैं, और यदि मन करे तो सुन्दर रंग-बिरंगे कपड़ों से ऐपलीक की कढ़ाई (कपड़ा ऊपर से रखकर सीना) की जा सकती है। यह नमूना मेजपोस, चादरें, रेडियो के कवर आदि पर काढ़े जा सकते हैं।



यदि ऊपर से कपड़ा लगाकर तितलियों के पंख उभारना है तो कपड़े पर पहले नमूना उतार लीजिए। फिर उसको नमूने के अनुसार नापकर काट लीजिए। और फिर उसको काज की कढ़ाई से (सुई के आगे डोरा लाकर) काढ़ लीजिए।

पंखों में जाली लगाने के लिये जाली डोरे से ऊपर से बनाई भी जा सकती है तथा जाली का कपड़ा काटकर भी उसी प्रकार बटन की सिलाई से जोड़ा जा सकता है जैसा कि ऊपर लिखा है।

तितली के बीच का भाग बड़ी लड़कियों को भरकर भूरे, काले व लाखी रंग में काढ़ना चाहिये। छोटी लड़कियाँ तो उसको वैसा ही काढ़ेंगी जैसा कि अन्य भाग काढ़ा है।



फाँसी की प्रतीक्षा

श्री परिपूर्णानन्द वर्मा

जिसे फाँसी की सजा सुना दी गयी हो, उसका एक-एक दिन बीतना कठिन हो जाता है। आज मौत आयी और जीवन का चिराग गुल हो जायगा। रोज यही सोचते, यही प्रतीक्षा करते बीतता है। फाँसी पर लटका देने से अधिक कठोर काम है, अधिक निर्दय काम है फाँसी के लिए लम्बी इन्तजार करना।

और ऐसी मानसिक नर्क-यातना भोगते-भोगते हरखू को पाँच महीने बीत गये, फाँसी पर लटकनेवालों का अलग हाता प्रत्येक जेल में होता है। काल-कोठरी में पड़े-पड़े उसके लिए जीवन का हरेक दिन जीवन का नया दिन था। मरनेवालों को धार्मिक पुस्तकें पढ़ने को दी जाती हैं--पर हरखू को न राम सीता की कहानी में रुचि थी, न कृष्ण की गीता में या महाभारत की कथाओं में। उसके लिए संसार में कहीं कुछ नहीं था। ईश्वर की सत्ता ही नहीं थी। जब दुनिया से न्याय ही उठ गया तो ईश्वर तो कभी का मर चुका होगा।

बड़ी बेचैनी से वह अपने से ही पूछा करता था— "मुझे क्यों मारा जा रहा है? उस दिन-दहाड़े की डकैती और हत्याकांड में जब असली अपराधी नहीं मिला तो उस अभागे निर्दोष को फँसा कर पुलिस वाह-वाही लूट रही थी। मुकद्दमा ऐसा गढ़ लिया गया कि हरखू का रोना गिड़गिड़ाना भी अदालत की नजरों में एक नाटक था। उसके पास वकील के लिए पैसे नहीं थे। बिना पैसे के कोई वकील हाथ नहीं पकड़ने देता। उसकी स्त्री ने घर की लुटिया-थाली बेचकर वकील खड़ा किया। पर वकील का पेट आसानी से नहीं भरता। जब घर में भूजी भाँग भी नहीं रही तो अपने पति की जान बचाने के लिए हरखू की पत्नी ने अपनी बची खुची जवानी का भी दाँव लगा दिया। वह अपने ग्राहकों से रुपये निचोड़ने का भगीरथ प्रयत्न करती थी।"

किन्तु, मुकद्दमा खिंचता रहा। जो आदमी मारा गया था उसका पुनर्जन्म भी हो गया होगा। हरखू की जान धागे से लटकती रही। आखिर एक दिन ऐसा भी आया कि उसे फाँसी की सजा सुना दी गयी। उसकी पत्नी को इस निर्दयता पर इतना क्रोध आया कि वह जज साहब पर झपट पड़ी। अदालत में चपरासियों ने, पुलिस मैनों ने उसे खूब पीटा, खास तौर पर उसके स्तन खूब मरोड़े। औरत के साथ इतना ही सही। और, किसी दूर के जेल में वह बेचारी "एक खतरनाक पागल" घोषित करके भेज दी गयी। अब हरखू के सामने अँधेरा था। वह यही चाहता था कि जल्दी से जल्दी जीवन समाप्त हो जाय। अपील दाखिल करने के लिए उसके पास पैसा नहीं था। सरकार ऐसी खाना-पूरी स्वयं करती है। फाँसी सुनाकर तुरंत मार देने से सरकार की शान में बट्टा लग जाता है। समाज के एक सड़े अंग को काट देने में कुछ देर होना तो जरूरी होता है। मुकद्दमा सही उतरा। इस पर पुलिसवाले खुश थे। ऊपर के न्याया-लय ने नीचे के न्यायालय की बुद्धिमत्ता की प्रशंसा की।

(२)

जो मारा गया था वह एक बड़े जमींदार का बेटा था। जमींदारी चली गयी तो क्या, रियासत की बू बाकी थी। तीन शादी की पर सब औरतें सूखी निकलीं। चौथी शादी की तो बुढ़ापे में एक लड़का मिला। बड़ा खूबसूरत था। बड़ा गठीला शरीर था। किन्तु दुनिया का कोई ऐब उसमें नहीं था। गाँव की सुन्दर लड़कियाँ भोली नजरों से उसे देख लेतीं तो उसकी नजरें आपसे आप झुक जाती थीं।

एक दिन वह युवक लापता हो गया। खूब तलाश हुई। कहीं पता न चला। उसी गाँव में हरखू नाम का एक आलसी मजदूर था। काम कम करता था। बक-वास ज्यादा करता था। वह अपनी पत्नी को लाने के लिए ससुराल गया था, बहू आयी नहीं, अँधेरे पाख में बिदाई नहीं होती।

युवक की तलाश होते-होते नदी में जाल डाले गये। हाथ लगा उसके कपड़ों का बंडल—जो वस्त्र पहने वह घर से लापता हुआ था। तब और खोज हुई तो एक सड़ी लाश मिली। लाश काफी सड़ गयी थी। मुँह का हिस्सा मछलियाँ खा गयी थीं। बस तय हो गया कि किसीने युवक को काट कर नदी में फेंक दिया था। कपड़ा अलग फेंका गया था।

और हरखू ऐसे दरिद्र के अलावा अपराधी कौन हो सकता है। युवक के हाथ में हीरे की अँगूठी थी। सोने का कड़ा था। पुराने रईसों का पहनावा था। हरखू "जानबूझ" कर बहू लाने के बहाने गाँव से चम्पत हो गया था। जरूर यह कुकर्म उसी का होगा। इसीलिए हरखू को फाँसी हुई। उस बेचारे रईस का खानदान समाप्त हो गया था। चार बीबियों का परिश्रम बेकार हो गया था।

(३)

उस कैदी का कौन था जो उससे मौत के दिन मिलने आता। फाँसी पर लटकने के एक दिन पहले––यानी उसी संध्या को "आखिरी मुलाकात" करा दी जाती है। फाँसी की तैयारी में जेल में चहल-पहल मच जाती है। जिसे मारना होता है––उससे कुछ साफ तो नहीं कहा जाता पर हवा के रुख से वह सब कुछ समझ जाता है। आत्मीयों की डबडबाई आँखें सब कुछ बता देती हैं।

जीवन एक सपना है––कब आये––कब गये। देखते-देखते जिन्दगी बीत जाती है। मौत को अपना दिन भूल सकता है। सरकार को अपनी तारीख याद रहती है।

हरखू के जीवन का इतिहास समाप्त हो गया।

(४)

लावारिस मुर्दा था। कोई रिश्तेदार नहीं। कोई पूछनेवाला नहीं। लावारिस मुर्दा को श्मशान की अधजली लकड़ियों में भूनकर पानी में फेंक देते हैं। हरखू की यह क्रिया भी समाप्त हुई।

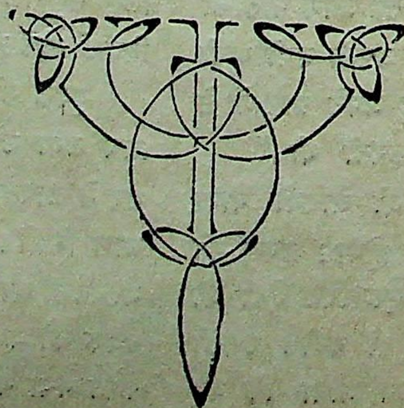
(५)

अभी हरखू को फाँसी लटके दो दिन ही बीते थे उसके गाँव में बड़ा हल्ला मचा, बड़ा कौतूहल उ हुआ। जमींदार-रईस का लड़का सजीव, वैसा ही जवान पिता के द्वार पर खड़ा था।

उसने सब कुछ स्वीकार कर लिया। गाँव की सुन्दरी उस पर लट्टू हो गयी। शाम को वह नदी कि घूम रहा था कि वह एकान्त नदी तट पर मिल ग दोनों युवक थे, युवती आग्रहशील थी। उसका आलि प्रगाढ़ था। कुछ क्षण में दोनों ने एक दूसरे की जव लूट ली। किन्तु वासना की गर्मी ठंडी पड़ी। यु तो हँसती हुई घर चली गयी। युवक के मन में क्षोभ, बड़ी वेदना उत्पन्न हुई, वह घंटों तक नदी किनारे घूमता रहा, अपने पाप-पुण्य को सोचता कुछ ऐसा वेग मन में आया कि उसने अपने कपड़े उ कर, उनका एक बंडल बनाकर पानी में फेंक दि लँगोटी लगा ली और साधुओं की एक टोली में शामि हो गया।

काफी समय तक साधुओं के साथ भटकने के उसके मन की आग शान्त हो गयी और साधुओं के पा जीवन से उसे घृणा हो गयी। उसका मन घर की भागने लगा। मन न माना, वह घर आ गया।

पर उसका हत्यारा कहा जानेवाला हरखू दुनि छोड़ चुका था। अब वापिस नहीं आ सकता। पुलिस साबित कर दिया था कि उसने युवक की निर्दय ह की थी।



वंश-बेल

श्री अनन्त चौरसिया

बड़ी खोज-खबर के बाद जो विवरण मिला है, वह ज्यों का त्यों लिखने की चेष्टा की जा रही है। सम्भव है कि कोई अन्य विद्वान् इस दिशा में अप्रत्याशित खोज करने में सफल हों।

लपटू—बहुत जाँच-पड़ताल के बावजूद भी पिता का नाम न जाना जा सका। जैसा कि प्रायः इतिहासकार किसी न किसी प्रकार जोड़-गाँठ करके अनुमान लगाते हैं, वैसा ही अनुमान लगाया जा सकता है कि इनका जन्म किसी कर्कशा और झगड़ालू विधवा के गर्भ से हुआ होगा। सम्भवतः लोक-लाज के भय से अथवा अपनी नई दुनिया में इन्हें बाधक समझकर किसी आत्मानुरागी सहेली ने इन्हें नौकर के तौर पर रखा होगा। इन्हें लपटा (एक प्रकार का बेसन से तैयार किया हुआ शोरवा) बहुत पसंद था। इसीलिए इनका नाम लपटू पड़ गया। किसी प्रकार (गाँव के लोगों द्वारा मजाक उड़ाने के कारण) इन्हें अपने बारे में पता लगा होगा, तो बहुत नाराज हुए होंगे। लेकिन खून का घूँट पीकर रह जाते होंगे। चूंकि गाय-भैंस भी चराते थे, इसलिए वहीं चरागाह में दूध भी दूह-कर पी लिया करते होंगे और घर पर मालिकों की नजरें बचाकर माल भी उड़ाते होंगे। अतः जवानी के जोश में बदला लेने की ठानी और घर से थोड़ा जेवर तथा गाँव की कानी लौंडिया डोमनी के साथ वहाँ से भाग खड़े हुए। भागकर बहुत दूर आबाद हुए। अपने को किसी ऊँची जाति से अवश्य सम्बन्धित किया होगा। लेकिन सचाई कहाँ छिपती? फिर वहाँ से कूच किया। असल में डोमनी का आचरण भी ठीक नहीं था। वह हाथ चमका-चमकाकर बातें करती थी और लोगों को देखकर बेवक्त मुसकुराती थी। इसलिए उस पर क्रोधित होना स्वाभाविक था। राह में लड़का पैदा हुआ। एक महीने बाद जब डोमिनी तालाब में नहा रही थी, तो उसका पैर फिसल गया। यह देखते रहे, लेकिन बचाया नहीं। उससे तंग भी आ चुके थे। लड़के का बड़ी लगन से पालन-पोषण किया और एक राँड़ को घर बिठा लिया। वह तीन साल तक निपूती ही रही, फिर न जाने कहाँ चली गई। लड़का अठारह साल का हुआ और गाँव के जमीदार को अपनी सेवा-भावना से प्रसन्न किया, तो उन्होंने अपनी गुप्त रूप में रखी हुई चमारिन रखैल की लड़की से शादी करा दी। बेटा-बहू जब गृहस्थी के आनन्दोपभोग में मग्न हुए और उनकी कुछ भी परवाह नहीं की, तो इनमें वैराग्य उत्पन्न हुआ। यह दर-दर की खाक छानते हुए हरिद्वार पहुँचे। वहाँ से फिर कभी वापस नहीं लौटे।

फकीरे—लपटू के पुत्र फकीरे ने जमींदार को अपनी सेवा-भावना से खूब प्रसन्न किया। इसके साथ ही जमींदार की बड़ी विधवा लड़की ने भी इन पर कृपा-दृष्टि की। मेहनती और दूध-मलाई खाने के कारण स्वास्थ्य अच्छा था ही। एक दिन कहीं इनकी घरवाली ने इनको जमींदार की विधवा लड़की से अँधेरे में फुसफुसाकर बातें करते हुए देख लिया, तो बहुत नाराज हुई—"अब अगर उस राँड़ से बातें करोगे, तो अच्छा नहीं होगा।" सुनकर इन्हें बहुत गुस्सा आया और रात में उसका गला घोंट दिया तथा पिछवाड़े के कुएँ में फेंक आए। फिर घर-घर घरवाली के विषय में पूछते फिरे। सुबह कुएँ में लाश मिली। साथ ही रस्सी और बालटी भी निकली। लोगों ने समझा कि पानी भरने आई होगी और पैर फिसल जाने से गिर गई। चूंकि जमींदार का दबदबा था और गाँव के सभी मामले जमींदार के दरबार में तय होते थे, इस लिए बाहर खबर नहीं गई। कुछ दिनों बाद यह विश्वस्त होने के कारण अकेले ही, जमींदार की विधवा लड़की को ससुराल पहुँचाने गये और एक महीना बाद लौटकर रोते हुए बोले कि बिटिया ने रास्ते में गाड़ी रुकवाई और उतरकर न जाने किधर गई। मैं समझा कि दिशा-मैदान (शौच) गई होंगी, सो बैठकर इन्तजार करने लगा। धीरे-धीरे शाम हो गई। मैं उन्हें ढूंढने निकला। मगर पता नहीं कहाँ चली गई? चूंकि बिटिया की ओर से जमींदार उदासीन भी थे, ससुरालवाले उसे चाहते नहीं थे, अपनी इच्छा से भेजा था और फकीरे भी उनका विश्वस्त नौकर था, इसलिए सुनकर बोले—"खैर, कोई बात नहीं। इसे किसीसे कहना नहीं। कोई पूछे, तो कहना कि ससुराल से काशी जी चली गई।" पूछनेवाला वैसे था ही कौन? उसके बाद फकीरे की तलब दुगुनी हो गई। गाँव में अधिक रोब बढ़ गया। अब वह अक्सर शहर चला जाता और आठ-आठ दस-दस दिन रहता था। एक दिन जमींदार से बोला—"हुजूर, शहर में बिटिया को मैंने देखा है। और क्या कहूँ मालिक, कुछ कहा नहीं जाता।" सुनकर जमींदार साहब ने आश्वासन दिया, तो उसने बताया कि बिटिया की गोद नें बहुत खूबसूरत-सा लड़का भी है। वे बड़ी मुसीबत में हैं।" क्रोध से जमींदार का चेहरा सुर्ख तो जरूर हो गया, लेकिन दो थैली भर कर गिन्नी-अशर्फियाँ उसे देकर बोले—"उसे काशी भेज आओ। वहाँ स्वामी आत्मानंद हैं। वे ऐसी लड़कियों का उद्धार कर देते हैं।" रुपया लेकर फकीरे चला गया, सो फिर वापस नहीं लौटा। लखनऊ जाकर उसने उसके साथ गृहस्थी बसाई। अपना नाम भी फकीरचन्द रख लिया।

दौलतचंद—फकीरचंद के बेटे दौलतचंद हुए। थोड़ा-बहुत पढ़ा भी। स्वास्थ्य पिता का था, खूबसूरती माँ की। इत्तिफाकन नवाब साहब के यहाँ नौकर हो गये। अपनी चुस्ती और चालाकी से नवाब साहब के अंग-रक्षकों में हो गये। नवाब साहब को एक बार काले नाग से बचाया, तो उन्होंने खुश होकर पाँच गाँव का मालिक बना दिया।

सुनते हैं कि नवाब साहब की लाड़ली दुख्तर अख्तरजहाँ ही नहीं और भी दो-एक सख्सियतें इनपर जान जान देने को तैयार थीं। और खास अख्तरजहाँ की कोशिशों से ही वह नवाब साहब के अंग-रक्षक हुए। यों उन्होंने बड़ी उमर तक शादी नहीं की।

खुशवक्तराय—दौलतचंद के बेटे खुशवक्तराय जब पाँच साल के थे, तभी दौलतचन्द को किसी ने जहर दे दिया। सुनते हैं कि शहजादी अख्तरजहाँ की मुहब्बत दूसरी सख्सियतों को पसन्द नहीं आई और उन्होंने जहर दे दिया। क्योंकि दौलतचन्द की मृत्यु के बाद ही अख्तरजहाँ ने खुदकशी कर ली थी। खुशवक्राय ने उर्दू और फारसी की अच्छी शिक्षा पायी और दरबार में मुंशी हो गये। हाजिरजवाब अव्वल दर्जे के थे इसलिए बड़े शहजादे इन्हें अपनी मजलिस में निमंत्रित करते थे। शाहजादा हुजूर जब तख्तनसीन हुए, तो इनको मीर मुंशी बनाया गया। अपने पिता और बाबा की आत्मा को शान्त करने के लिए खूब दान-पुण्य करके पर्याप्त यश अर्जित किया। बहुत सा रुपया ब्राह्मणों को खिला पिला कर अपने को ऊँचे खानदान के होने का पटटा लिखवा लिया। इनकी योग्यता से रीझकर बहुत लोगों ने अपनी लड़कियाँ देनी चाहीं, लेकिन इन्होंने भी बड़ी उमर तक शादी नहीं की। औरतों की ओर निगाह उठाकर भी नहीं देखा। शंकर जी के बड़े भक्त थे। आखिरकार पत्थर-दिल में दरार पड़ी और दूब उगी—यानी पैंतालीस साल की उमर में एक सोलह साल की लड़की पर रीझ गये और शादी कर ली। पचास साल की उमर तक दो लड़के और तीन लड़कियाँ हुईं। बड़ा लड़का पैदा होने के बाद मर गया। इससे इन्हें बड़ा दुख पहुँचा। छोटे लड़के को खूब पढ़ाने की कोशिश की, लेकिन जितना यह चाहते थे उतना वह पढ़ नहीं सका। लड़के की शादी के बाद लड़की की शादी तमाम विरोधों के बावजूद भी नवाब साहब के पोते के साथ कर दी। शेष दो लड़कियों की शादी करने के पहले ही अस्सी साल के होकर मर गये।

भानुप्रतापराय—मीर मुंशी खुशवक्तराय के पुत्र भानुप्रतापराय बहुत ही तीखे मिजाज के हुए। शिकार का काफी शौक था। नवाब साहब के साथ शिकार खेलने जाते थे। शहर कोतवाल मिर्जा शम्सुद्दीन की लड़की हमीदा बानों इन पर कुरबान हो गई। पत्नी की ओर पहले ही ध्यान नहीं देते थे। यह खबर सुनकर जहर खा लिया। उसके मरने के बाद हमीदा बा[नो से] शादी कर ली। पण्डितों ने बहुत गुल-गपाड़ा मचा[या] लेकिन इन्होंने कतई परवाह नहीं की। हमीदा बानो [कुछ] दिनों बाद हृदयेश्वरी रानी कहलाने लगीं। वह खूब [दान-] पुण्य करती थीं। धीरे-धीरे उनकी उदारता और भ[क्ति-] भावना से लोग उनको हृदयेश्वरी ही मानने लगे। ब्राह्[मणों] ने उनकी प्रशस्तियाँ लिख-लिखकर महल खड़े कर लि[ये।] अपनी दोनों ननदों की शादियाँ भी हृदयेश्वरी रा[नी ने] ऊँचे खानदानों में कीं। और यह किसी जमींदार अ[थवा] कर्मचारी का पहला सौभाग्य था, जो उनके घर आने[वाली] बारातों में खुद आलम पनाह हुजूर नवाब साहब शा[मिल] हुए हों।

राजा आलमचन्द्र—भानुप्रतापराय के सुपुत्र आ[लम-] चन्द्र को पच्चीस साल की उमर में, राजा की उपाधि मि[ली।] फारसी और उर्दू खूब पढ़ी थी। शौकीन भी खूब [थे।] एक कोठी बनवाई जिसमें गायिकाओं और नाचनेवालि[यों] के स्थायी रूप से रहने का प्रबंध था। एक अँगरेज पा[दरी] से अँगरेजी भी पढ़ने लगे थे। लेकिन पादरी ने इ[नकी] विलासिता पर टिप्पणी की, तो उसे मरवाकर फि[कवा] दिया। उसका और भी ज्यादा अनादर करने के लिए [एक] एक घोड़े को उसीका नाम दे दिया। घोड़े को खूब तक[लीफें] दीं और जब वह भूख-प्यास से मर गया, तो उसकी अ[च्छी] सी कब्र बनवाकर मजलिस लगवाई। यह मजलिस [हर] साल लगती रही। खुद पहले एक मोमबत्ती जला[कर] कब्र पर रखते थे। इनकी देखा-देखी इनके नौकर, गा[यि-] काएँ, नाचनेवाली वगैरह भी मोमबत्तियाँ जलाने ल[गीं।] इनके मरने के बाद कब्र पर मनौतियाँ मनने लगीं। [मेला] जुटने लगा। लेकिन इनके मरने के बाद इनके पु[त्र ने] इधर बिलकुल ध्यान नहीं दिया। राजा आलमचन्द्र न[वाब] साहब के हुजूर में जाने के अलावा और कहीं नहीं [आते] जाते थे।

नोट—इस समय तक अँगरेजों की शक्ति बढ़ [गई] थी और अवध के नवाब ने सहायक-संधि स्वीकार [कर] ली थी।

राजाबहादुर दिवाकरनाथ—राजा आलमचन्द्र [के] सौभाग्यशाली सुपुत्र दिवाकरनाथ को राजाबहा[दुर] की उपाधि मिली। नवाब साहब ने राजाबहादुर

उपाधि देने के साथ ही साथ पचास गाँव भी दिये। सुनते हैं कि एक बार नवाब साहब का दिल अँगरेज कमाण्डर की लड़की पर फिसल गया था। और इन्होंने इस काम में बड़ी मदद की। लेकिन इस बात पर विश्वास नहीं किया जा सकता, क्योंकि किसी के बदनाम करने के लिए लोग तरह-तरह की बातें गढ़ लेते हैं। राजाबहादुर दिवाकरनाथ ने फारसी-उर्दू के साथ-साथ अँगरेजी भी खूब पढ़ी। एक अँगरेज लेडी के साथ पूरे हिन्दुस्तान की करीब-करीब सैर की। नाच-गाने से बिलकुल शौक न होने के कारण इन्होंने पिता की रखी हुई गायिकाओं और नर्तकियों को महल से निकाल दिया। अँगरेजों से दोस्ती हो जाने के कारण अँगरेज लोग अक्सर इनके यहाँ आते थे। उनके साथ उनकी लेडियाँ भी आती थीं।

राजाबहादुर **मानबहादुर 'सितम'**—राजाबहादुर दिवाकरनाथ के सौभाग्यशाली सुपुत्र राजाबहादुर मानबहादुर 'सितम' हुए। यह बहुत विद्वान् थे। शायरी का इन्हें बहुत शौक था। इनकी गजलें तवायफों से लेकर भाँड़ों तक में खूब चलीं। कई मुशायरे इन्होंने अपने यहाँ कराये और कई शायरों को इन्होंने बड़े-बड़े इनाम दिये। लोग कहते हैं कि मीर तकी 'मीर' इनके यहाँ बहुधा आते थे और शायरी में इसलाह (राय) लेते थे। अभिनय भी करते थे। कई तवायफों ने तो इन्हें गजलों का बादशाह कह दिया था। अँगरेजों से भी इनके सम्बन्ध अच्छे थे। एक बार लन्दन की सैर भी कर आये थे। शायद यही सबसे पहले ताल्लुकेदार थे, जो लन्दन गये थे।

राजाबहादुर **सरताजबहादुर**—राजाबहादुर मानबहादुर 'सितम' के सुपुत्र राजाबहादुर सरताजबहादुर हुए। इन्होंने पढ़ा-लिखा तो बहुत कम, लेकिन बिलकुल अँगरेजों की तरह रहते थे। इस सभ्यता को सीखने के लिए इन्होंने कई अँगरेज लेडियाँ अपने यहाँ रखीं। इसके साथ ही साथ अभिनय में भी काफी रुचि थी। लोग कहते हैं कि नवाब वाजिदअली शाह की इन्द्र-सभा में अभिनय करने का इन्हें ही सौभाग्य मिला था। लखनऊ से बाहर जाना इन्हें बिलकुल नापसंद था।

नोट—इसी समय १८५७ का सिपाही-विद्रोह हुआ।

राजाबहादुर **वीरेन्दबहादुर जागीरदार**—राजाबहादुर सरताजबहादुर के सुपुत्र राजाबहादुर वीरेन्द्रबहादुर जागीरदार हुए। इन्होंने अँगरेजों की काफी मदद

की। विद्रोह के समाप्त होने पर इन्हें एक रियासत की जागीर दी गई। अँगरेजों में सम्मान बढ़ गया। बड़े लाट ने इनसे हाथ भी मिलाया था। शिकार खेलने के काफी शौकीन थे। दुर्भाग्य से पचपन साल की उमर में शिकार खेलते हुए इनको शेर का शिकार हो जाना पड़ा।

राजाबहादुर मणिभूषणसाहब जागीरदार—राजाबहादुर वीरेन्द्रबहादुर जागीरदार के सुपुत्र राजाबहादुर मणिभूषणसाहब जागीरदार हुए। इन्होंने अपने छोटे भाई को इसलिए धोखे से मरवा डाला क्योंकि वह रियासत में बँटवारा चाहता था। यह बहुत जिद्दी और स्वाभिमानी थे। लोगों से अँगरेजी में ही बातें करते थे। इन्होंने अँगरेज लेडी से दूसरी शादी की। अँगरेजों में इनकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ी।

रायबहादुर राजा बलवंतसाहब जागीरदार एडवोकेट—राजाबहादुर मणिभूषणसाहब जागीरदार के सुपुत्र रायबहादुर राजा बलवंतसाहब जागीरदार हुए। अँगरेजी सभ्यता के पूर्ण समर्थक होते हुए भी यह आचरण में कठोर संयम रखते थे। इन्हें रायबहादुर की उपाधि मिली। कई पेचीदा मुकदमे जीते और इनको कोर्ट का जज बनाया जानेवाला था कि एक रात हार्ट फेल हो गया। सुना जाता है कि उस रात एक मुकदमा जीतने की खुशी में खूब शराब पी थी।

रायबहादुर सर केशरी चन्द आई० सी० एस०—रायबहादुर राजा बलवंतसाहब जागीरदार के महान् प्रतिभाशाली पुत्र रायबहादुर सर केशरीचंद आई० सी० एस० हुए। विद्वत्-समाज में इनका बहुत आदर था। इन्होंने आई० सी० एस० परीक्षा लन्दन में जाकर दी। अँगरेज सरकार ने इन्हें सरकी उपाधि से विभूषित किया। बम्बई में एक मिल की स्थापना की। अपनी आन और शान के निराले थे। विधवा विवाह के समर्थक थे। इसलिए पत्नी के मर जाने पर विधवा से विवाह किया। अपने बड़े लड़के को अँगरेजों के खिलाफ आन्दोलन करने के कारण घर से निकाल दिया और सारी सम्पत्ति छोटे लड़के के नाम लिख दी। अपने नाम के आगे से 'राजा' निकाल दिया।

रायबहादुर स्वरूपचंद—रायबहादुर सर केशरीचंद आई० सी० एस० के छोटे सुपुत्र रायबहादुर स्वरूपचंद

हुए। इन्हें पढ़ने-लिखने से बिलकुल रुचि नहीं थी। कालेज में बहुत ही उदार कहे जाते थे। सिनेमा से काफी शौक था। साथियों के अनुरोध पर इन्होंने फिल्म-कम्पनी खड़ी की। दो-तीन फिल्में बनाईं जिसमें बहुत घाटा हुआ, यहाँ तक कि इनकी मिल उसमें खतम हो गई। उसके बाद अपनी प्रेमिका को लेकर लन्दन चले गये। वहाँ इनकी प्रेमिका ने इन्हें छोड़ दिया, तो इन्हें बड़ा दुख हुआ। भारत वापस लौटने पर इन्होंने संन्यास ले लिया।

रामप्रसाद 'विद्रोही'--रायबहादुर स्वरूपचंद के बेटे रामप्रसाद 'विद्रोही' हुए। स्वभाव के उदार और रसिक थे। विद्रोही उपनाम था। चौक से इन्हें बहुत लगाव था। क्योंकि इनपर जान निछावर करनेवाली तवायफें इनकी कविताओं पर कुर्बान थीं। अखबारवालों ने इनकी कविताएँ नहीं छापीं, तो इन्होंने खुद प्रेस खोला और पाँच सौ पृष्ठ का काव्य-संग्रह आर्ट पेपर पर छपवाया। उसे पूरे चौक के अतिरिक्त और लोगों को भी मुफ्त बाँटा। कुछ दिनों बाद अपनी प्रशस्ति लिखनेवाले को इन्होंने प्रेस इनाम में दे दिया। अपने बुजुर्गों की बनवाई हुई आलीशान कोठी बेच दी। और जैनाबाई को साथ लेकर यूरोप घूमने चले गये। वहाँ से लौटकर इन्होंने गोमती के किनारे छोटा-सा बँगला बनवाया और चौक न जाने की कसम खा ली।

शिवदीन एम० ए०--रामप्रसाद 'विद्रोही' के पुत्र शिवदीन एम० ए० हुए। नौकरी इन्होंने नहीं की। खुद स्कूल की स्थापना कर उसके प्रिंसिपल हुए। सारी जायदाद स्कूल के नाम लिख दी। लोगों ने ऐसा करने को मना किया, तो बोले--"हमारे लड़कों के हाथ में शक्ति होगी, तो कमाकर खा लेंगे। कुछ ज्ञान पाने के लिए जर्मनी गये। अपनी पुरानी कोठी की ओर भूलकर भी गये। और न अपने पूर्वजों की चर्चा करते थे। असह आन्दोलन में उपद्रवकारियों ने इनकी शेष रह गई कार भी तोड़ डाला। इन्होंने अपने यहाँ की सारी वि चीजों को खुद नष्ट कर डाला, जो बहुत कीमती शेष को म्यूजियम को दान दे डाला।

चतुरबिहारी लाल--शिवदीन एम० ए० के चतुरबिहारी लाल हुए। इन्होंने पढ़ने में ध्यान लगाने बजाय पतंगबाजों में ध्यान लगाया। पिता की मृत्यु बाद स्कूल से इन्हें निकाल दिया गया, क्योंकि यह मास्ट को बहुत तंग करते थे और शराब भी पीने लगे इन्होंने बँगला भी बेच दिया और किराये के मकान रहने लगे। इनकी पत्नी भी इन्हें छोड़कर चली एक रखैल इन्होंने रख ली, जिसने इनकी एकम संतान को पाला, हालाँकि उसके भी कई संतानें थीं।

भोलाशंकर--चतुरबिहारी लाल के बेटे भोलाशंकर हुए। इनकी विमाता ने इनको बहुत कष्ट दिये। इन्हें घर से निकाल दिया। अब भोलाशंकर एक बैंक में चपरासी हैं और इन्होंने किसी घर से भागी हुई लड़की से शादी कर ली है। हालाँकि शादी के दो महीने के बाद ही हुआ। मँहगाई के जमाने में बड़ी मुश्किल से गुजारा चलता है। पत्नी को बहुत प्यार करते हैं। इनकी अनुपस्थिति कुछ लोग इनकी पत्नी से हँस-हँसकर बातें करते हैं। मेरी तो वह भाभी लगती हैं। अपने कुछ स्वार्थ के वशी होकर इनके पुत्र को मैं अच्छा लड़का बनाने की कोशि कर रहा हूँ।



ममता की परत

श्री श्रीराम शर्मा 'राम'

उसदिन एकाएक ही, प्रमदा का मन पति पर और अपने आप पर झल्ला उठा। कारण यह हुआ कि दिन में ही, उसने पति से सिनेमा चलने को कह दिया था। लेकिन अपेक्षाकृत उसदिन पतिदेव को अदालत में मुकद्दमा करते हुए अधिक विलम्ब हो गया। कुछ देर पूर्व ही, पति ने फोन पर सूचना दी थी कि वह कचहरी से सीधे सिनेमा पहुँच जायेंगे, घर नहीं आयेंगे। इधर घर में अकस्मात लड़की कुमुद की तबीयत खराब हो गयी। कदाचित् नौकरों की असावधानी से बच्ची को ठण्ड लग गयी संध्या समय जब नौकरानी चाय लायी, तो वह भी, अन्य दिन की अपेक्षा ठीक से नहीं बनायी हुई थी।

यों, अनेक विपरीत बातों के एक साथ होने से प्रमदा के मन में चिढ़न और कुढ़न पैदा हुई। उसके पति मजिस्ट्रेट हैं। कचहरी में इजलास करते हुए वह कभी देर भी कर देते हैं। किन्तु उस दिन भी वह देर करेंगे, ऐसी आशंका या कल्पना प्रमदा नहीं कर सकती थी। मजिस्ट्रेट की कुर्सी पर बैठकर भले ही पति महोदय अभियुक्त को कसकर सजा दे पाते हों, परन्तु जिस घर में उनका निवास है, वहाँ प्रमदा का शासन चलता है। समाज की रीति के अनुरूप, उस पुरुष ने स्वतः ही पत्नी का आधिपत्य स्वीकार किया। पत्नी का भी एक अस्तित्व है, महत्त्व है, समाज के उस विशिष्ट पुरुष ने सहज ही इस बात को जान लिया था।

फलस्वरूप, सुन्दरी प्रमदा ने अपने को इसलिए भी भाग्यवान माना कि पति उसके अधिकार में था। नारी के रूप में उसके जितने अधिकार थे, वे सभी सुरक्षित थे। अपने सुरक्षित स्वत्व को देखकर उसे गर्व था। घर में सम्पदा थी, नौकर-नौकरानियाँ। आमोद-प्रमोद की जहाँ कमी नहीं, वहाँ अब प्रमदा दो बच्चों की माँ भी थी।

लेकिन उस दिन जब बड़ी प्रतीक्षा के बाद पति का फोन आया, तो प्रमदा ने सिनेमा जाने का विचार छोड़ कर भी, उसे फिर ग्रहण कर लिया। आदेश के साथ मोटर द्वार पर आकर खड़ी हो गयी। जब प्रमदा अपने कक्ष में जाकर शृंगार करने लगी, तो तभी, नौकरानी ने आकर कहा—'मेम साहब—'

'हाँ, क्या है!' प्रमदा ने मुंह पर पाउडर मलते हुए उसकी ओर देखा। स्वर में भर्त्सना थी और उपेक्षा।

किन्तु नौकरानी ने कहा—'मेम साहब, कुमुद···'

सुनते ही, प्रमदा के स्वर में आक्रोश फूट आया—'मैं सिनेमा जा रही हूँ समझी! कुमुद का ध्यान रखना।' इतना कह प्रमदा ने अपनी साड़ी ठीक की। पिन लगाया। होठों पर लगी लाली एक बार फिर आदमकद शीशे में झाँककर देखी। तभी वह बँगले के फर्श पर सेंडिलों की खट-खट करती हुई मोटर में जा बैठी। उसने शोफर को आदेश दिया—'चलो, रीगल! जल्दी!' और वह कलाई पर बँधी घड़ी देखकर अपने आप बड़बड़ायी—कितनी परेशानी है! बाबू जी हर बात में नाक पर दिया जलाते हैं। जब पता था कि आज सिनेमा का प्रोग्राम है, तो तब भी, फोन पर खबर देते हैं। वह भी इन-टाईम! भगवान् ही ऐसे लोगों का बेड़ा पार लगाता है!

लेकिन उसी समय, जब बँगले की नौकरानी ने द्वार से मोटर चली जाती देखी, तो वह साँस भरकर, एक दूसरे नौकर की ओर देखकर सहज भाव से बोली—'देखा रे, जग्गू! यह है, पैसे का नशा....इस जग का तमाशा.......'

जग्गू समझ नहीं सका। उसने पूछा—'क्या पार्वती?'

पावती ने खिन्न बनकर कहा—'हाँ, रे! मेम साहब ने दो बच्चे तो पैदा कर दिये, पर माँ बनना अभी तक नहीं आया। मन में ममता नहीं जागी।'

जग्गू ने साँस भरी और छोड़ दी। अपना कोई मत व्यक्त नहीं कर सका। वह पार्वती की बात के अन्तराल में नहीं उतरा।

लेकिन पार्वती स्वतः बोली—'जग्गू, कहीं ऐसा भी देखा या सुना कि बच्ची बीमार और माँ सज-बजकर सिनेमा जाये। अरे, मैं पूछती हूँ, तेरे तो बच्चे हैं। तू भी मर्द है। बता तो, क्या तू उन्हें प्यार नहीं करता। उनके दुःख-दर्द को नहीं समझता।'

जग्गू ने कहा—'पार्वती, बच्चों के दुःख-दर्द को समझने की तो बात क्या, उनके लिए प्राण भी दिय जा सकते हैं। जब यहाँ से घर जाता हूँ, तो अपने बच्चों में अपनी ही आत्मा देख पाता हूँ। वे खेलते हैं, तो मेरा दिल खेलता है। वे रोते हैं, तो मेरा दिल.....और बच्चों की माँ कितना कष्ट उठाती है, अपनी सन्तानों के लिये; उसे देखकर तो मैं सचमुच प्रायः सोचता हूँ कि औरत इस दुनिया की अजूबा है, ममता की खान!'

पार्वती बोली—'जग्गू, यह एक तेरी ही बात नहीं, सभी की है। इसीसे तो दुनिया बनी है। दुनिया की हर औरत अपनी सन्तान के लिए कुर्बानी करती है। पर एक ये हैं मेम साहब, माँ तो बन गईं, पर उसकी पत नहीं रख सकीं।'

जग्गू आँखों से मुसकराया और बोला—'यह बड़े घरों की बात है पार्वती!'

पार्वती तुनक गई—'खाक पड़े ऐसे बड़े घर पर।' वह बोली—'मेम साहब को अपने बच्चों से इतना प्रेम नहीं, जितना खेल-तमाशे और पार्टियों में जाने से! घर पर भी रहती हैं, तो सजने-सजाने की बात तो छोड़ जैसे

और कुछ नहीं सोच पातीं। पता है, आज कुमुद को बुखार है। उस फूल-सी बिटिया ने बार-बार माँ को पुकारा। और हम हैं नौकरानी, आज यहाँ हैं, कल कहीं और।'

जग्गू ने अपने पीले-पीले दाँत निपोर दिये और कहा —'ये साहब लोग अपने बच्चों को भी मनोरंजन का साधन समझते हैं। बस, टा-टा कहना जानते हैं। बच्चों से 'पापा' और 'ममी' सुनकर खुश हो जाते हैं।'

उस अवस्था में हो, पार्वती ने धुंधले हो आये अन्तरिक्ष की ओर देखा। उसी ओर मुँह उठाये उसने कहा— राम-राम! खाक पड़े इन माँ-बापों पर! यह जमाना ऐसा आया कि सभी कुछ बदल गया। लगता है, ऊँचाई पर बैठा इसान धरती की ओर देखना चाहता—इस जन्म में तो नहीं।'

जग्गू ने अपना मत व्यक्त नहीं किया, हलका-सा मुसकरा कर रह गया।

× × ×

रात के दस बजे प्रमदा सिनेमा से लौटी। उसके आते ही पीड़ित स्वर में पार्वती बोली—'मेम साहब, कुमुद........'

उस समय प्रमदा प्रसन्न थी। उसकी साड़ी से लेवण्डर की खुशबू टपक रही थी। वह बीच में ही बोली— 'उसे बुखार अब भी है। देख, सुबह डाक्टर को बुलाना।' उसने एक ही सांस में कहा—'आजकल मलेरिया फैला है। बुखार आज चढ़ा है, तो कल उतर जायगा' प्रमदा ने आदेश दिया—'देख, रात को सावधानी रखना। जग्गू को भी अपने पास बैठा लेना।'

पार्वती ने भीत स्वर में कहा—'जी, मेम साहब!'

प्रमदा अपने कमरे की ओर बढ़ गयी और बोली— 'जाकर रसोइए से कहो, साहब खाना खायेंगे।' और वह कमरे में जाकर अपने आप बोली—'आज की तस्वीर अच्छी थी। नायिका का काम भी खूब था! अपने प्रेमी के लिए उसका त्याग अपूर्व बना था।

जब प्रमदा डाइनिंग रूम में जाकर, पति के साथ खाना खाने बैठी, तो तभी, अनायास उसके मुँह से निकला —'आज कुमुद को बुखार है!'

पति को जैसे बिच्छू छू गया। तपाक से पूछा— 'कुमुद को बुखार है? कब से?'

'आज ही आया।' प्रमदा ने सहज भाव से कह दिया —'चिन्ता का प्रश्न नहीं। मैंने पार्वती से कह दिया है कि सुबह डाक्टर को बुलाकर दिखा दिया जाय!'

बात सुनी, तो रमा बाबू ने तुरन्त कहा—'हाँ, जरूर! इसमें ढील नहीं होनी चाहिए।'

भोजन के बाद रमाबाबू पलँग पर पड़ गये। किन्तु प्रमदा के मन में जो बात सिनेमा में आई, वही भोजन के समय। लेकिन जब वह सोने चली, तो अनेक करवट लेने पर भी, वह कुमुद का ध्यान न भुला सकी। फलस्वरूप, वह बच्चों के कमरे में गयी। जिस पलँग पर कुमुद पड़ी थी, उसके पास जाकर देखा कि लड़की बुखार की गर्मी में कराह रही थी। गरम तवे के सदृश उसकी काया तपी थी जिसे देखते ही प्रमदा चीख पड़ी— 'अरी, आया! ओ, पार्वती! तूने यह क्यों नहीं बताया कि बुखार इतना तेज है।'

पार्वती ने सहमे स्वर में कहा—'कहा तो था, मेम साहब!'

प्रमदा खीज उठी—'खाक कहा था, तूने!' और उसने स्नेह पलावित बन, बच्ची के रेशम सरीखे बालों को सहलाते हुए कहा—'कुमुद बेटी!'

क्षीण और कातर स्वर में कुमुद के मुँह से निकला— 'मेरी माँ!'

'मेरी बच्ची!' प्रमदा बरबस ही मर्माहत बन गयी—'घबरा नहीं कुमुद, बुखार उतर जायगा।'

लेकिन इतना सुनकर, उस नन्हीं कुमुद ने केवल होंठ फड़फड़ा दिये, कहा कुछ नहीं। क्या जाने कि बुखार की तेजी या माँ का बोल सुनकर उस कुमुद को रोना आ गया। आँसू उसके मुलायम गालों पर निकल आये उन्हींकी ओर देख, प्रमदा ने जैसे चंचल बनकर कहा— 'अरे, रोती है, कुमुद! पगली।' और उसने तभी अपना ठण्डा हाथ उन आँसुओं पर रख दिया।

उसी समय, पार्वती ने कुमुद की वकालत की और कहा—'मेम साहब, आप सिनेमा गयी थीं, तो पीछे कुमुद बार-बार माँ-माँ पुकार रही थी। और आप जानती तो हैं, ऐसी अवस्था में यह बच्ची माँ को छोड़ और भला किसे याद कर सकती थी।'

लेकिन इस बात का प्रमदा पर अनुकूल प्रभाव नहीं पड़ा। वह क्षुब्ध बनकर बोली—'पर तू तो थी, इसके पास! दिखता है, तूने इसका मन नहीं बहलाया। समझती हूँ, अब तुझसे बच्चों का ध्यान नहीं रखा जाता।'

विपत्ति की मारी पार्वती के सिर पर जैसे पहाड़ टूट पड़ा। उसने कम्पित बन, अपराधिनी के सदृश होकर कहा—'ऐसा तो नहीं, मेम साहब!'

प्रमदा ने कमरे के फर्श पर पैर पटका और कहा— 'जरूर, तूने, कुमुद से कहा होगा कि ममी सिनेमा गयी है,—मूर्ख! इतने दिन हो गये, पर तुझे बच्चों को रखने का शऊर नहीं आया।' वह आगे बढ़ी और बोली— 'कहे देती हूँ, रात को सो न जाना। कुमुद का ध्यान रखना।'

बलात् पार्वती के मुँह से निकला—'जी, सरकार!'

× × ×

प्रमदा विस्तर पर पड़ी थी। कितनी कठिनाई थी उसकी कि नींद नहीं आ सकी। दूसरे पलंग पर रमाबाबू खुर्राटे भरी नींद में सो रहे थे। उधर ही, अपना मुँह किये, लैम्प की रंगीन रोशनी में, प्रमदा के मन में बार-बार बात आती कि आज उसीको कुमुद के पास रहना था। यह उसीका काम था। [illegible] की रोगी है पीड़ित बनी है।

मन की उस उहापोह में ही, प्रमदा के कानों में ...वंती की वह बात फिर झनझना गयी कि मेम साहब, ...प सिनेमा गयीं, तो पीछे यह कुमुद माँ-माँ करके ...र उठी थी।

और आश्चर्य कि तभी प्रमदा को अपनी इस बात ... दुःख हुआ कि उसने गलत ही पार्वती को फटकार ...या। दोष उसका था और भोगना पड़ा, उस आया ...करानी को!

परन्तु इस प्रकार की बात प्रमदा सरीखी दम्भ ...री नारी के मानस में देर तक नहीं रह सकती थी। ...तएव, उसने उस बात के प्रति उपेक्षा प्रदर्शित की और ...हा, ये सभी कामचोर हैं, मुफ्त का खाना चाहते हैं। ...स गुस्ताख पार्वती को यह नहीं कहना था कि मैं बाहर ...यी हूँ,—सिनेमा! कम्बख्त ने बच्ची का मन दुखा दिया।

यों, प्रमदा रात में देर से सोयी, तो प्रातः भी उस ...की आँख देर से खुली। संयोग की बात यह कि दूसरे दिन रविवार था। रमाबाबू भी देर से उठे, रात में ही कुमुद का बुखार उतर चुका था। रमाबाबू और प्रमदा के लिये रविवार का दिन विशेषरूप से व्यस्त रहने का दिन था। उस दिन अनेक प्रोग्राम होते। उनमें से प्रायः सभी आवश्यक और पूरे करने योग्य होते। सिनेमा, पार्टी, बाजार की खरीदारी और अन्य बातें भी उसीदिन पूरी की जातीं। फलस्वरूप, उस रविवार को भी प्रमदा और रमाबाबू को एक पार्टी में जाना था। वहाँ से फिर क्लब या सिनेमा, ऐसा उन दोनों ने निश्चय कर लिया था।

सन्ध्या के समय, जब प्रमदा और रमाबाबू बँगले ...की पार्टी में जाने को प्रस्तुत हुए तो उनका छोटा बच्चा अलिन सामने आया प्रमदा को देखकर अपने पोपले मुँह से हँसा और अपने छोटे-छोटे हाथ उठाकर उसकी ओर बढ़ने लगा। यह देख, प्रमदा जरा ठिठकी, उस अलिन की ओर देखकर हँसी और तब व्यस्त भाव में बोली—'बेटा, अलिन। तू आयेगा मेरे पास!'

माँ से इतना सुन, बच्चा और विहँसा, आतुर बना।

"किन्तु प्रमदा ने हाथ की उँगली हिलाकर कहा——...अब नहीं लूंगी, रे! फिर लूंगी।' और वह अपने ...प बोली—'मेरे मुंह का पाउडर भी पोंछ देगा... ...ठों की लाली...' वह पार्वती को देखकर बोली——'यहाँ ...यों लिए बैठी है, लॉन में नहीं ले जा सकती!' वह ...ड़ी की ओर बढ़ गयी।

किन्तु अलिन तो इतना समझदार नहीं था। वह ...नी माँ की व्यस्तता नहीं समझ पाया। इसीसे, जब ...मदा ने उसे नहीं लिया, तो वह रो पड़ा। यह देख, ...टर में बैठते हुए प्रमदा ने रमाबाबू को सुनाया—— ...सी मूर्ख है, यह आया! समझती नहीं कि माँ को ...कर बच्चा रोयेगा। और ऐसे अवसर पर अन्यत्र ले ...ना तो दूर, उसे दिखा कर कह दियाऔर बता दिया——

'अनिल, ममी.....' वह झल्लायी——'कोई अच्छी नौकरानी तलाश करो जी, मैं इसको हटा दूंगी!'

रमाबाबू ने अनायास कहा——'हाँ, हाँ!'

गाड़ी दौड़ रही थी। रास्ते में ही, रमाबाबू के मन में बात उठी कि चिर-पुरातन से यह नारी बच्चे पैदा करने और उन्हींमें अपना ममत्व देखने की बात लेती आयी है। हमारी यह आया मूख तो होगी ही, अपढ़ भी; पुराने संस्कारों में पली, इससे अधिक और क्या सोच सकती थी। वह जिस शीशे में अपना मुंह देखती है, उसका यही रहस्य है। और बलात् उनके मुंह से निकला——'क्या यही मातृत्व है, नारी का! बच्चा पैदा करे और छाती से लगायें फिरे। मैं तो इसे कोरी भावुकता मानता हूँ। क्यों प्रमदा?'

प्रमदा ने गाड़ी से बाहर की ओर देखकर कहा——'यही मेरा मत है। मुझे यह सब नहीं रुचता। संगत नहीं लगता। बच्चा है, तो है। यह क्या कि रात दिन उसे कूल्हे से लगाये फिरो। यही कारण है कि मैं अपने बच्चों को न खिलाती हूँ, न उन्हें यही बताना पसन्द करती हूँ कि मैं ही उनकी माँ हूँ। और तुम?' प्रमदा मुसकरायी। सुरमई आँखों से हँसी।

रमाबाबू ने कहा——'सदा तो नहीं, पर कभी अवश्य ही मैं अपने आपको पिता कहलाने में रस पाता हूँ।'

इतना सुना, तो प्रमदा ने आँखें तरेर दीं——'जी, हाँ! कष्ट औरत उठाये और बाप बनने का आनन्द पुरुष ले,——वाह!'

रमाबाबू ने बात सुनी, तो खिलखिला दिया। उन्होंने फिर अपना मत नहीं दिया।

और स्थिति यह थी कि उस घर में ऐसे अवसर तो आते ही बहुत कम थे कि जब प्रमदा के वे दो बच्चे अपनी माँ को माँ कहते हों और उसका प्यार पाते हों। वे तो जिस आया (पार्वती) की गोद में खेलते, सोते और जिसके हाथों खाते-पीते, उसी को जैसे अपना सब-कुछ मानने लगे थे। इसके विपरीत वह आया स्वतः ऐसा प्रयत्न करती कि जब तब मालकिन और मालिक के सामने उन बच्चों को पेशकर देती और उनका मन बहलाने के अभिप्राय से, बच्चों के मुंह से 'पापा' और 'मामा' कहलाने की चेष्टा करती थी। क्योंकि वह चतुर आया जानती थी कि उसकी मालकिन और मालिक जब बच्चों को देखते, तो विहँसते, उनसे खेलते। मानो वे उनके लिये खिलौना थे, उनका मन प्रसन्न करने का साधन। किन्तु वे बच्चे कब आते, कब सोते, इसका उस दम्पत्ति को कोई ज्ञान नहीं। मानो यह उनका विषय नहीं। क्योंकि उनके मन और मस्तिष्क की रचना जिन तत्त्वों से हुई, वे पुराने नहीं, नये थे। और उस नवयुग में सन्तान का कोई महत्त्व नहीं। उसमें कोई लालित्य नहीं, कोई ममत्व नहीं। वे केवल प्रतीक थे इस बात के कि एक नारी ने, एक पुरुष ने उन्हें जन्म दिया है। और वह ऐसा चिरन्तन सत्य है, जिसे नहीं मिटाया जा

सकता है। इसमें नवीनता क्या! यह समाज सदा से जिस प्रकार था जीवन पाता आया है, उसे आज, भी पाता है। धरती में बीज पड़ता है, पानी और खाद दिया जाता है, तो अन्न का पौधा ऊपर उठ ही आता है। कदाचित इसीसे प्रमदा सोचती, रमाबाबू भी, ऊँह, यह जड़ता है, पुरानी परम्परा है कि सन्तान के मोह में डूबे रहो.... डूब कर भकटते रहो! न, न, शोभा नहीं पाता, इस युग में। आज देश को भी इसकी आवश्यकता नहीं। बोझ है, इस धरती पर। अरे, स्वयं आये हो, जीवन में डूबे हो, तो खो जाओ, इसी में। तुम्हारी प्रमदा..., तुम्हारा पति... हाँ, इसी का नाम तो है, जीवन! जीवन! अभिसार। समर्पण!

किन्तु एक दिन जब कहीं जाती हुई प्रमदा ने अपने बच्चे अलिन की ओर देख, उसे गोद में लेना चाहा, और उसका गुलाब सरीखा खिला हुआ मुंह चूमना पसन्द किया तो उसे यह देखकर अचरज हुआ कि बच्चे ने न तो उसे प्यार दिया और न बार-बार संकेत करने पर आया की गोद से उतरकर उसके पास आया। यद्यपि आया ने भी कई बार कहा, अरे, जा अलिन, ममी के पास! पर वह अलिन तो जैसे ममी के नाम से ही चिढ़ गया, अथवा डर गया। इसीसे, वह आया की गोद से न उतरा, न उतरा।

यह देख, चिढ़कर, प्रमदा ने उसे जबरदस्ती गोद म ले लिया और उसका मुह चूम लिया। किन्तु इतना करते ही वह अलिन कुपित बन गया। उसने प्रमदा का मुंह नोच लिया और रो दिया। यह देख, रुष्ट हो प्रमदा ने उसके मुह पर चपत मारा और कहा—'दुष्ट!' तभी उसे बड़ी अवहलना के साथ आया को लौटा दिया। मन में तो उसके यह आया कि वह उसे धरती पर पटक दे और जिस धृष्टता के साथ उसने मुह नोच लिया, तो उसकी सजा दे। किन्तु ऐसा उसने नहीं किया, नहीं किया गया।

फलस्वरूप, उस दिन प्रमदा के मन की गति तो भंग हो ही गयी, परन्तु साथ ही, जब वह सिनेमा पहुँची, तो उसके द्वार पर ही, एक भिखारिन को देखकर वह और अधिक विचलित बन गयी। भले ही वह भिखारिन के लिए इतनी कुपित न होती, परन्तु उसकी गोद में जो नन्हा-सा शिशु था और उसकी छाती से चिपट रहा था, वह इतना कृश और दुर्बल बना था कि उसके लिए प्रमदा के मन की सद्भावना पाना तो दूर, घृणा और उपेक्षा का भाव ही पाने में सफल बना। और उस भिखारिन को क्या पता था कि वह एक सम्भ्रान्त तथा कुलीन मजिस्ट्रेट की पत्नी के समक्ष हाथ फैला रही थी। यह उसकी विवशता थी कि बच्चा उसकी गोद में था। दुर्बल, निस्तेज बना वह बच्चा कदाचित् इसीलिए माँ की छाती से चिपटा था कि मौत का तेज और क्रूर पंजा उसे छीन लेने के लिए आगे बढ़ रहा था।

लेकिन जब वह भिखारिन प्रमदा द्वारा तिरस्कार और घृणा के अतिरिक्त और कुछ न पा सकी, तो भी नहीं दिखायी दिया कि भिखारिन किसी दुर्भाव के साथ उस ओर देखने लगी हो। क्योंकि यही उसका का काम था। कहीं उसे दया मिली, तो कहीं घृ मानों दोनों के लिए उसकी दृष्टि में कोई अन्तर न गया था। इस प्रकार प्रमदा तो पति के साथ सिनेमा में पहुँच गयी और वह भिखारिन वहीं सड़क के कि एक पेड़ के नीचे बैठ गयी।

दो-ढाई घण्टे बाद जब वह दम्पत्ति सिनेमा हॉ निकले, तो अपनी मोटर की ओर जाते हुए प्रमदा ने कि वह भिखारिन बच्चे को छादी से लगाये रो रही उसके पास लोगों की भीड़ भी लगी है।

उसी समय ड्राईवर ने बताया—'हजूर, इस भिख का बच्चा मर गया।' वह बोला, 'अभी भिखारिन क थी कि बच्चा कई दिन से बीमार था। ठण्ड खा ग ड्राईवर कहने लगा—'भिखारिन के पास तो स्वयं ढाँकने को कपड़ा नहीं, तब बच्चे को कहाँ से ओढ़ा अभी कहती थी, चार दिन हो गये कि छाती से जुदा किया, अपने लाल को!' इस बच्चे के लिये ही भिख बनी।'

जाने किस प्रेरणावश, एकटक हो, प्रमदा और र बाबू उधर देखने लगे। उस अवस्था में, समाज के है वे भी दया और ममता से भर सकते थे, उसे कुछ दे सकते थे, परन्तु ऐसा उन्होंने नहीं किया। उधर से ही प्रमदा ने अपना मुंह बिचका दिया। पति ने उपेक्षा से अपना मुँह दूसरी ओर कर लिया। उसी ओर दे हुए उन्होंने कहा—'कम्बख्त, भिखारिणी है, पर भी......'

प्रमदा पति का कथन समझ गयी। तुरन्त बोली 'कोरी जहालत है। समाज मूर्ख है। चारों ओर ज का राज्य है!'

रमाबाबू को बल मिला और उत्साह भाव में कहा 'प्रमदाजी, यह देश नहीं बदलेगा। मूर्ख ही रहे औरत और सन्तान के मध्य में ही इस इन्सान का घुटेगा।'

तभी एकाएक प्रमदा ने कहा—'पर हो क्या... हाँ, क्या!'

रमाबाबू ने अपना मत नहीं दिया। उन्होंने वि भाव से केवल मुसकरा भर दिया।

तभी कम्बख्ती के मारे ड्राईवर ने फिर कहा 'साहब, इस बेचारी भिखारिणी की छाती में भी इ गर्मी नहीं कि बच्चे को बचा पाती और मौत के मुँह जाने से रोक लेती!'

उसी समय प्रमदा ने तीव्र उपेक्षा के साथ कहा 'अच्छा, सुन ली तुम्हारी बात, गाड़ी चलाओ।'

ड्राईवर झनझना गया। उसका दिल भी ललक उसी अवस्था में उसने पूछा—'कहाँ चलूं सरका बँगले?'

जुकाम

श्री सुरेश चन्द्र

दे लाख लाख फिक्र, और दे हजार काम,
अल्लाह दे हजार सज़ा, पर न दे जुकाम !

लगता है खोपड़े में बारूद भरा है,
हर साँस में पटाखा तैयार धरा है।
बोले किसी शरीफ़ से तो धाँय से दगा,
सब शर्म औ लिहाज तो दुम दाब के भगा।
लगती है डाट नाक में तो साँस भी हराम,
अल्लाह दे हजार सजा पर न दे जुकाम ॥ १॥

कुछ रेंगता कभी, तो कभी बाढ़ आ गई,
रूमाल लेके चलना पड़ता कई कई।
अब नाक छूटती हुई बन्दूक तोप है,
क्यों लाल हो रही है—क्या शर्म, कोप है ?
अब 'सर्र-सर्र' करते हैं भूल 'राम राम',
अल्लाह दे हजार सज़ा, पर न दे जुकाम। २ ॥

फूलों की सब सुगंध मरी, स्वाद मर गया,
कानों में रुई धुनने का शोर भर गया।
सर में कोई लोहार चलाता है हथौड़े,
जबड़े में दाँत सोज सभी दाँत को तोड़े।
आँखें बनी हैं लाल ज्यों ठर्रे से भरा जाम,
अल्लाह दे हजार सज़ा पर न दे जुकाम। ३ ॥

लगता है, सभी के गले का जोर है नीचा,
पर पूंछते हैं मुझसे—'क्या सुनते हो जी ऊँचा ?'
गर हाथ पकड़ लूँ किसी का, तो तड़प कर,
वह पूछ बैठते हैं—'अरे क्या तुम्हें है ज्वर ?''
गालिब की तरह हम भी हुए काम से बेकाम,
अल्लाह दे हजार सज़ा पर न दे जुकाम ॥ ४ ॥

बिस्तर में जो लेटे, तो उठती है वह खांसी,
डाक्टर को मार गोली, खुद डाल लूं फांसी !
मिक्श्चर के जाम पर वह है जाम दे रहा,
लेकिन जुकाम हटने का नहीं नाम ले रहा।
डर है कहीं न लोग कहें 'सत्य राम नाम'
अल्लाह दे हजार सज़ा, पर न दे जुकाम ॥ ५ ॥

नेता को भी जुकाम, परेशान हैं वोटर,!
रोगी बने हैं साथ हमारे सभी डाक्टर !
ऐसा हुआ जुकाम कि मिलते नहीं अफसर,
'भेजा' बहाए फिर रहे मास्टर औ' एडीटर।
हम हुक्म के गुलाम, बने चिड़ी के गुलाम,
अल्लाह दे हजार सज़ा, पर न दे जुकाम ॥ ६ ॥

'हाँ, बँगले !' प्रमदा ने आतुर बनकर कह दिया।

रमाबाबू ने कहा—'अभी बँगले क्या करेंगे ! आओ, आज क्लब भी चलेंगे।'

किन्तु प्रमदा ने फिर भी जैसे झंकृत होते हुए कहा—'नहीं, घर। बँगले।'

रमाबाबू हँस दिये—'अच्छा, अच्छा, दिखता है, नारी की भावुकता का असर तुम पर भी हो गया।'

प्रमदा ने तब खिजकर कहा—'तुम्हें पता है, सिनेमा चलने से पूर्व ही, आया ने कहा था कि कुमुद की तबीयत आज ज्यादा खराब है। बुखार तेज है। पर तुमने प्रोग्राम बनाया, तो मुझे साथ आना पड़ा।'

किन्तु रमाबाबू ने चकित होकर कहा—'तुम तो कहती थीं कि अब बुखार उतर गया।'

'हाँ, उतरा तो था ! आया ने भी यही कहा।' प्रमदा ने कठिनाई से मुँह का थूक सटक कर कहा।

उसी समय रमाबाबू के मथे में बल पड़ गये, स्वर भी बदल गया। उन्होंने कहा—'आश्चर्य है कि तुम कैसी मा हो, अपने पेट के बच्चे की जीवन-मरण की रखवाली तुम नौकरों पर छोड़ती हो !'

यह सुन, स्वभाव के अनुरूप, प्रमदा के माथे की नसें तन गयीं। वह कुछ कहती, परन्तु खेद की बात यह हुई कि वह स्वयं अपनी दृष्टि में अपराधिनी बन गयी। सिर झुक गया, बोला नहीं गया।

बँगले पर पहुँच कर उसने देखा कि कमरे में आया सो रही थी और कुमुद पलँग पर पड़ी हुई ज्वर की तीव्रता के कारण फूट-फूटकर रो रही थी। सच, वह बच्ची छटपटा रही थी। प्रमदा उस समय उपेक्षा या ताड़ना से आविर्भूत नहीं हुई, अपितु, वह स्वयं भी जाने किस प्रेरणा-वश फुफक कर रो पड़ी।

नवीन प्रकाशन

साहित्य-रामायन—लेखक, महाराजकुमार श्री दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह 'नाथ।' प्रकाशक, साहित्यमन्दिर, रैन बसेरा दलीपपुर (शाहाबाद)। बड़ा आकार, सजिल्द, मूल्य, ९ रुपये।

साहित्य-रामायन के लेखक महाराजकुमार श्री दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह 'नाथ' हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक हैं। आपकी अनेक रचनाएँ हिन्दी में प्रकाशित हो चुकी हैं। आप प्रथम भारतीय राष्ट्रीय संग्राम के प्रसिद्ध योद्धा महाराज कुँवरसिंह के वंशज हैं। आपकी प्रस्तुत कृति साहित्य-रामायन भोजपुरी में है जिसका क्षेत्र पूर्वी उत्तर-प्रदेश एवं पश्चिमी बिहार है। श्री महाराजकुमार ने वाल्मीकि रामायण एवं तुलसीदास कृत रामचरित मानस के आधार पर अपनी इस अभिनव कृति का भोज-पुरी में प्रणयन किया है। इसके पूर्व स्फुट गीतों के रूप में भोजपुरी की कई रचनाएँ प्रकाश में आ चुकी हैं किन्तु स्वतंत्र महाकाव्य के रूप में यह प्रथम कृति है। इसकी भाषा बोलचाल की भोजपुरी की अपेक्षा साहित्यिक अधिक है किन्तु यह होते हुए भी यह भोजपुरी एवं पूर्वी हिन्दी की बोलियों के वोलनेवालों के लिए सहज बोधगम्य है। साहित्य-रामायन में राम एवं सीता के चरित्र से सम्ब-न्धित अनेक घटनाओं का अत्यन्त मार्मिक चित्रण हुआ है। उदाहरण स्वरूप यहाँ पर किष्किन्धा काण्ड से कतिपय पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं:—

घन घमण्ड निसि नभ में, घहरत घोर।
सीय बिहीन जी तन में डरपत मोर॥
सावन घटा बिजुरिया, चमकति आइ।
चंचल चख प' पलकवा, झँपि झँपि जाइ॥
जलद पटल बिच बिजुरी कड़कति जोर।
डाँटि डाँटि डरपावति, प्रान विभोर॥
राका तम निसि बिजुरी, लखि दुख मोर।
चमकि क सिय सुधि आनति, ड़रक अँजोर॥
सिय बिछोह जिय आवत, सुधि अकुलाति।
भरल छोह से छतिया, फट गरुआति॥

सम्पूर्ण रूप से साहित्य-रामायन के पढ़ने से यह [...] हो जाता है कि चित्रात्मक अभिव्यक्ति एवं भावप्र[...] की दृष्टि से हमारी क्षेत्रीय भाषायें कितनी सशक्त [...] मैं कुमार दुर्गाशंकर सिंह की इस कृति का स्वागत [...] हूँ।

भारतीय चित्रकला—लेखक, वाचस्पति गैरो[ला] प्रकाशक, मित्र प्रकाशन प्रा० लिमिटेड, इलाहा[बाद] आकार, डबल डिमाई अठपेजी। सजिल्द और [...] ७० रंगीन और सादे चित्र। छपाई, जिल्द बहुत सु[न्दर] पृष्ठ संख्या ३६२। मूल्य, ५० रुपये।

भारतीय चित्रकला पर फ्रेंच, अँगरेजी, जर्मन [...] अन्य विदेशी भाषाओं में सैकड़ों बहुमूल्य एवं [...] पुस्तकों का निर्माण हुआ है, किन्तु इस पुस्तक का [...] स्वतंत्र महत्त्व न केवल इसके हिन्दी में लिखे जा[ने] कारण है, अपितु इसलिए भी है कि संपूर्ण भारतीय [चित्र]कला का क्रमबद्ध इतिहास एक साथ इसी पुस्त[क में] देखने को मिलता है। पुस्तक के सम्बन्ध में डा० मो[ती]चन्द्र का यह अभिमत कि "श्री वाचस्पति गैरोला [...] अपनी पुस्तक में चित्रकला तथा आनुषंगिक रूप से [...] भारतीय कलाओं और शिल्पों के बारे में बिखरी [...] सामग्री एकत्र कर दी है। अगर यह कहा जाय कि उ[न्होंने] गागर म सागर भरने का प्रयत्न किया है तो अत्युक्ति [न] होगी"—इसकी उपादेयता को सिद्ध करता है।

युग और परिस्थितियों के अनुरूप कलाकारों [...] रचना-प्रक्रिया में जिस रूप से निरन्तर परिवर्तन [...] गया इसका सम्यक् विवेचन भी प्रस्तुत पुस्तक में [...] को मिलता है। २०वीं शताब्दी के कलाकारों के [...] कला का जो ध्येय था वह राजपूत, मुगल आदि पू[र्व] कलाकारों की अपेक्षा भिन्न था। मुगलकालीन भा[रत] चित्रकला को प्रतिस्पर्द्धा और आत्मवैभव की वस्तु [...] जाता था। २०वीं शती के कलाकारों के समक्ष रा[...] स्वातंत्र्य का प्रश्न मुख्य था। सारा देश अँगरेजों [...] हाथों में था। इस पराधीनता ने देश में बौद्धिक [...]

और कलानिर्माण की सभी दिशाओं को आच्छन्न कर दिया था। श्री अलाग्री नायडू, राजा रवि वर्मा और शिल्पाचार्य अवनीन्द्रनाथ ठाकुर आदि कलाचार्यों एवं कलाकारों द्वारा परम्परागत प्राचीन पद्धतियों को नये रूप में प्रस्तुत करके भारतीय चित्रकला के इतिहास में आधुनिक युग का नया अध्याय जुड़ा। राजनीति के क्षेत्र में स्वतंत्रता आन्दोलन को आगे बढ़ाने में जिस प्रकार देशभक्त नेताओं ने अपने आपको समर्पित कर दिया था, उसी प्रकार चित्रकला के क्षेत्र में राष्ट्रप्रेमी कलाकारों ने अपनी तूलिका को राष्ट्रीय जागरण के निमित्त केन्द्रित किया था।

प्रस्तुत पुस्तक का "आधुनिक एवं समसामयिक चित्र-शैली" नामक अन्तिम अध्याय विशेष रूप से चर्चा का विषय हो सकता है। प्रश्न यह उठता है कि लेखक ने आधुनिक एवं समसामयिक चित्रकारों की जो नामानुक्रमणी प्रस्तुत की उसमें से क्या केवल उतने ही इने-गिने चित्रकार इस युग का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिनका लेखक ने विशेष रूप से उल्लेख किया है? इसी प्रकार समसामयिक कलावादों को भी ओझल कर दिया गया है। इन कतिपय त्रुटियों के बावजूद हिन्दी साहित्य के लिए इस सराहनीय संकल्प का अपना महत्त्व है।

भारतीय चित्रकला के इस वृहद् इतिहास को प्रस्तुत पुस्तक के २० अध्यायों में अनुबद्ध किया गया है। पुस्तक के परिशिष्ट में देश के प्रमुख संग्रहालयों का संक्षिप्त परिचय और संस्कृत, हिन्दी तथा अँगरेजी के सन्दर्भ ग्रन्थों की प्रामाणिक एवं वैज्ञानिक सूची प्रस्तुत करके लेखक ने इस विषय के अध्येताओं का मार्ग सुगम बनाने में महत्वपूर्ण योग दिया है।

पुस्तक के अन्त में प्रागैतिहासिक युग से लेकर अब तक के लगभग ७० चित्र दिये गये हैं, जिनमें २७ रंगीन और ४३ सादे हैं। जहाँ तक विषय सामग्री की दृष्टि से चित्रों के चयन का संबंध है, ऐसा ज्ञात होता है कि वह संतोषप्रद नहीं हुआ है। इस सम्बन्ध में लेखक ने अपने 'कृतज्ञताज्ञापन' में अपनी जिस विवशता की ओर संकेत किया है, वह आंशिक रूप में ही सत्य हो सकती है, क्योंकि अच्छे चित्रों को प्राप्त करने के अन्य उपाय भी हो सकते थे।

पुस्तक के आदि में डा० सम्पूर्णानन्द जी के विद्वत्ता-पूर्ण उपोद्घात और डा० वासुदेवशरण अग्रवाल की विशद एवं सुविवेचित भूमिका ने पुस्तक की उपयोगिता को और भी बढ़ा दिया है। डा० संपूर्णानन्द जी ने लिखा है कि "मुझे आशा है कि प्रस्तुत पुस्तक चित्रकला के प्रेमियों का आप्यायन तो करेगी ही, जिन लोगों की अब तक इस विषय में विशेष अभिरुचि नहीं रही है, उनको भी इस ओर आकृष्ट करेगी।" इसी प्रकार डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का कथन है कि "कला के रूप में श्री वाचस्पति गैरोला ने हिन्दी साहित्य की जो अभिवृद्धि की है उसे देखकर प्रसन्नता होती है। इसमें प्राचीन और अर्वाचीन भारतीय चित्रकला के इतिहास का सांगोपांग परिचय दिया गया है।"

पुस्तक के आरंभ में विद्वान् संपादक श्री श्रीकृष्णदास ने अपने परिचयात्मक निबन्ध में कला और कलावादों के सम्बन्ध में तथा पुस्तक की आद्योपान्त विषय-सामग्री के सम्बन्ध में जो प्रकाश डाला है उससे इस वृहद्-ग्रन्थ की रूपरेखा समझने में बड़ी सहायता मिलती है।

'भारतीय चित्रकला' नामक यह पुस्तक कागज, मुद्रण, कवर और गेटअप की दृष्टि से हिन्दी पुस्तक जगत् के लिए एक अनुकरणीय प्रकाशन है। यह संतोषप्रद और आशाजनक बात है कि हिंदी में ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी इस प्रकार के मौलिक और वृहत्-ग्रंथों का लिखा जाना आरंभ हो गया है। इस दिशा में यह स्तुत्य प्रयास है। इससे हिंदी के एक बड़े अभाव की अंशतः पूर्ति हुई है। सबसे बड़ी बात यह है कि यह ग्रंथ अवश्य ही अन्य लेखकों को साहित्यिक विषयों पर इस स्तर के ग्रंथ लिखने को प्रेरित करेगा। हम इस ग्रंथ का स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि सरकार और हिंदी जनता इसका समुचित सम्मान करेगी।

श्री देवराज दिनेश के तीन काव्य-संग्रह --(१) पुरवैया के नूपुर (२) जीवन और जवानी (३) भारत माँ की लोरी। प्रकाशक, आत्माराम एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली-६, बड़ा आकार, सजिल्द और सुन्दर छपाई। संख्या (२) का मूल्य पाँच रुपये, संख्या (१) और (३) का चार-चार रुपये।

श्री देवराज दिनेश कवि-सम्मेलनों के लोकप्रिय कवि हैं। स्वस्थ, सुगठित लम्बा-चौड़ा शरीर, प्रभाव-शाली और आकर्षक व्यक्तित्व, सहज शालीनता, भारी

और गूँजती हुई आवाज तथा पढ़ने का सुन्दर ढंग--सब मिलाकर कवि-सम्मेलनों के लिए वे एक आदर्श कवि हैं। बीस-पचीस वर्षों से वे हिन्दी संसार में कवि के रूप से विख्यात हैं किन्तु इनकी कविताओं का कोई संग्रह अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ था क्योंकि वे उनके प्रकाशन की ओर से उदासीन थे। मानों विलम्ब से प्रकाशन की कमी पूरी करने के लिए एक साथ ये तीन संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इनमें 'पुरवैया के नूपुरों' में मुख्यतः प्रेम के गीत, 'जीवन और जवानी' में जीवन और यौवन के उल्लास, वेदना और संघर्ष की कविताएँ तथा 'भारत माँ की लोरी' में राष्ट्रीय उद्‌बोधन की कविताएँ (जिनमें चीनी आक्रमण से संबंधित कविताएँ भी हैं) संग्रहीत हैं। दिनेश की कविताएँ भाव और विचार प्रधान हैं--उनकी शैली या भाषा में कोई विशेषता नहीं है, सिवाय इसके कि उनकी भाषा सरल और बात कहने का ढंग सीधा है। उनकी कई कविताएँ श्रोताओं को बहुत प्रिय हैं। इन संग्रहों से कविता-प्रेमियों को, विशेषकर दिनेश के प्रशंसकों को, आनन्द मिलेगा। भारत माँ की लोरी की कई कविताएँ बड़ी उद्‌बोधक और प्रेरणाप्रद हैं।

पूर्वापर (कविता-संग्रह)--पं० उदयशंकर भट्ट। प्रकाशक, आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली -६, बड़ा आकार, सजिल्द। मूल्य, पाँच रुपये।

पंडित उदयशंकर भट्ट के इस संग्रह में उनकी नयी और पुरानी ७४ कविताएँ संग्रहीत हैं। भट्टजी सूक्ष्म-दर्शी कवि और विचारक हैं। पिछले कई दशकों में संसार में, विशेषकर भारत में, जो घटनाएँ हुईं उनसे कवि के समवेदनशील हृदय पर जो-जो प्रतिक्रियाएँ हुईं उनका कुछ आभास इन कविताओं से मिलता है। उनका भाषा पर अधिकार है और वे शब्दों के कुशल शिल्पी हैं। प्रत्येक कविता में उनके शब्द-कौशल और सरस वाक्यविन्यास के दर्शन होते हैं। इतना ही नहीं, ये कविताएँ हृदय को तो स्पर्श करती ही हैं, वे पाठक को सोचने को भी मजबूर करती हैं। भूमिका में कविता के सम्बन्ध में कुछ स्पष्ट बातें कही गयी हैं जो विचारणीय हैं, और जिनको समझकर पाठक आधुनिक कविता का ठीक मूल्यांकन कर सकेंगे। हमें विश्वास है कि भट्ट-जी के इस महत्त्वपूर्ण संग्रह का हिन्दी संसार समुचित आदर करेगा।

साहित्य-चिन्तन (निबंध)--श्री नरेशचन्द्र चतुर्वेदी। प्रकाशक, 'साहित्यायन', कानपुर। मिलने का पता, प्रत्यूष प्रकाशन, रामबाग, कानपुर। सजिल्द बड़ा आकार। मूल्य, साढ़े पाँच रु०।

इस निबन्ध-संग्रह में चतुर्वेदीजी के नौ निबन्ध संग्रहीत हैं। इनमें अधिकांश आलोचनात्मक हैं। लेखक की दृष्टि पैनी है, और उनका हृदय उदार एवं समवेदन-शील है। उनमें पूर्वग्रह नहीं है। साथ ही, गहरा अध्ययन और चिन्तन भी है। इसी कारण इनके आलोचनात्मक निबंध महत्त्वपूर्ण हैं। उग्र की 'अपनी खबर', दिनकर की 'उर्वशी' और नवीन की 'उर्मिला' पर लिखे गये निबन्ध उत्कृष्ट श्रेणी के हैं और उनके गुण-दोषों का विवेचन बड़ी तटस्थता, सहृदयता और पाण्डित्य के ढंग से किया गया है। 'गीतकाव्य' नामक निबन्ध में बच्चन और उनके परवर्ती गीतकारों के कृतित्व का मूल्यांकन बड़ी समझदारी और सहृदयता से किया गया है। इन निबन्धों की शैली बड़ी मनोरंजक है। इससे पाठकों को वर्तमान हिन्दी साहित्य की दिशा और गति-विधियों को समझने में बड़ी सहायता मिलेगी। हिंदी साहित्य में रुचि लेनेवाले पाठकों और विद्यार्थियों को इन्हें अवश्य पढ़ना चाहिए।

कश्मीर का लोक-साहित्य--श्री मोहनकृष्ण दर। प्रकाशक, आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६। बड़ा आकार, सजिल्द। मूल्य, दस रुपये।

हिंदी में विभिन्न क्षेत्रों के लोक-साहित्य पर कितनी ही पुस्तकें निकल चुकी हैं। किन्तु यह पुस्तक अपने ढंग की अनोखी है। यह बड़ी योग्यता और परिश्रम से लिखी गयी है। कश्मीर चिरकाल से विद्या का केन्द्र रहा है और संस्कृत साहित्य तथा दर्शन के विकास में उसने बड़ा महत्त्वपूर्ण योगदान किया। किन्तु उस पर मुसलमान शासन हो जाने के बाद कश्मीर, संस्कृत साहित्य की दृष्टि से, समाप्तप्राय हो गया। परिस्थितिवश कश्मीर की भाषा भी समुचित विकास नहीं कर सकी। किन्तु कश्मीर की प्राचीन समृद्ध संस्कृति की बहुत सी बातें उसके लोक-साहित्य (दंतकथाओं, लोकगीतों आदि) में सुरक्षित हैं। श्री दर ने कश्मीर के इसी समृद्ध लोक-साहित्य का अध्ययन करके यह महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी है। आरंभ में लोक-साहित्य, कश्मीरी भाषा आदि सामान्य विषयों पर कई अध्याय हैं। इनसे कश्मीरी भाषा के स्रोत और प्रकृति के संबंध में मनोरंजक बातें मालूम होती हैं। लेखक का मत है कि कश्मीरी भाषा संस्कृत से थोड़ी बहुत प्रभावित अवश्य है किन्तु वह पैशाची भाषा के दर्दी समूह की है और वह संस्कृत से कम प्राचीन नहीं है। पुस्तक के मुख्य अंग में 'लोकगीत और लोक-गाथाएँ', 'लोक-कथाएँ' और 'प्रकीर्ण साहित्य' नामक तीन बड़े और महत्त्वपूर्ण अध्याय हैं। इनमें रोचक और सरल भाषा में कश्मीरी लोक-कथाओं के नमूने, तरह तरह के लोकगीतों (अनुवाद सहित) तथा कहावतों आदि के प्रतिनिधि नमूने दिये गये हैं। इनका चयन और चुनाव बड़ी सुरुचि और सावधानी से किया गया है। लोकसाहित्य में रुचि लेनेवालों के लिए यह पुस्तक बड़ी महत्त्वपूर्ण है। इससे लोकसाहित्य-सम्बन्धी हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि हुई है।

सभाशृंगार--सम्पादक, श्री अगरचंद नाहटा। प्रकाशक, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी। सजिल्द बड़ा आकार। मूल्य, नौ रुपये।

वर्णकसाहित्य का यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। "इस साहित्य का सम्बन्ध किसी वस्तु के उस परिनिष्ठित वर्णन से है जिसे सार्वजनिक रीति से आदर्श वर्णन के रूप में स्वीकार कर लिया जाता था। जैसे, किसी राजा और उसकी राजसभा का वर्णन अथवा सोलह श्रृंगारों से सजी किसी रूपवती नायिका का वर्णन।" ये वर्णन कालान्तर में परिनिष्ठित होकर रूढ़िगत हो गये। "सोलह श्रृंगार" कहने से पाठक समझ जाता है कि किन श्रृंगारों से तात्पर्य है। ऐसे वर्णनों के लिए प्राचीन काल में संस्कृत शब्द 'वर्ण' का, और मध्यकालीन प्राकृत में 'वर्णक' शब्द का प्रयोग होने लगा था। श्री अगरचंद नाहटा ने अथक परिश्रम और खोज करके अनेक मध्यकालीन, प्राचीन और दुर्लभ-प्राय अप्राप्य-ग्रंथों का अध्ययन करके यह ग्रंथ तैयार किया है। इसमें मध्यकालीन युग में देश, नगर, वन, पशु-पक्षी, जलाशय, राजपरिवार, राजा, राजसभा, सेना, युद्ध, स्त्री-पुरुष, प्रकृति, ऋतु, कलाओं, विद्याओं, जातियों, धंधों आदि अनेक विषयों के वर्णक, अनेक ग्रंथों से संकलित करके, सुनियोजित क्रम से प्रस्तुत किये गये हैं। वास्तव में यह पुस्तक मध्यकालीन भाषा, सामाजिक इतिहास और रीति-रिवाजों सम्बन्धी खोज का आधार हो सकती है। इससे बहुत मनोरंजक तथ्य मालूम होते हैं। उदाहरण के लिए, मध्ययुग में लोगों के नाम कैसे होते थे, उस समय कपड़े कितने प्रकार के होते थे, मिठाइयाँ कैसी होती थीं, उनके नाम क्या थे, मेवों में कौन-कौन वस्तुएँ सम्मिलित की जाती थीं, हथियार कितने प्रकार के होते थे और उनके क्या नाम थे--आदि मध्यकाल संबंधी सैकड़ों बातों का पता लगता है। यदि पाठक ध्यान से पढ़ें तो बहुत से पुराने नामों के बावजूद वह कितनी ही मध्यकालीन वस्तुओं को अपने बीच पा सकता है। भाषा-शास्त्रियों, साहित्य-प्रेमियों और इतिहास में रुचि रखनेवालों के लिए यह पुस्तक समान रूप से उपयोगी है। यह मध्यकालीन भारत के समाज और साहित्य के दर्शन के लिए एक झरोखा है। ऐसी ज्ञानवर्द्धक, खोजपूर्ण और उपयोगी पुस्तकें हिन्दी साहित्य का गौरव बढ़ाती हैं। इसे प्रत्येक पुस्तकालय में होना चाहिए।

भूषण का अलंकार-प्रकाश--सम्पादक, श्री शूरवीर सिंह। प्रकाशक, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़। मूल्य, तीन रुपये।

श्री शूरवीर सिंह जी उच्च सरकारी अधिकारी होते हुए भी साहित्य-प्रेमी ही नहीं, कर्मठ साहित्य-सेवी हैं। जब वे फतेहपुर में थे, उन्होंने वहाँके एक सन्त कवि का कुछ महत्त्वपूर्ण काव्य खोज निकाला था जो तब तक सामने नहीं आया था। आपको भूषण के इस ग्रंथ की एक हस्तलिखित प्रति उपलब्ध हो गयी। भूषण द्वारा इस ग्रंथ के रचे जाने के सम्बन्ध में तो विद्वानों को कुछ अनुमान था, किन्तु अब तक यह ग्रंथ अंधकार में पड़ा था। श्री शूरवीर सिंह जी ने इसका सम्पादन करके प्रकाशित करा दिया है जिसके लिए वे हिंदी संसार के धन्यवाद के पात्र हैं। आरंभ में उन्होंने एक अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण विस्तृत भूमिका लिखी है जिसका बड़ा महत्त्व है, क्योंकि उसमें उन्होंने भूषण और मतिराम के संबंध में चिरकाल से फैली कई गलत धारणाओं का युक्तियुक्त ढंग से खंडन किया है। पहिली बात जो श्री शूरवीर सिंह जी ने प्रमाणित की है वह यह है कि भूषण का असली नाम मुरलीधर था और वे टिकमापुर के रहनेवाले थे तथा उनके पिता का नाम रामेश्वर था। दूसरी बात जो उन्होंने प्रमाणित की है वह यह कि मतिराम उनके सगे भाई न थे। वे बानपुर के रहनेवाले थे और उनके पिता का नाम विश्वनाथ था। भूषण कश्यप गोत्री थे, और मतिराम वत्स गोत्री। किन्तु दोनों ही समसामयिक थे, दोनों ही त्रिपाठी थे और दोनों ही के आश्रयदाता भी एक ही लोग थे। श्री शूरवीर सिंह जी की सप्रमाण भूमिका पढ़कर निष्पक्ष पाठक को वह मत सहज ही मान्य हो जाता है। चिरकाल से चले एक भ्रम को दूर करने और वास्तविक तथ्यों को प्रकाश में लाने के लिए श्री शूरवीर सिंह के प्रति हिंदी संसार अवश्य कृतज्ञ होगा। मूल पुस्तक अलंकार पर है और इसमें प्राचीन परिपाटी के अनुसार अलंकारों का वर्णन है। अच्छा होता यदि यह मूल पुस्तक किसी विद्वान् द्वारा सम्पादित कराकर तथा आवश्यक पाद-टिप्पणियों, व्याख्या आदि के साथ छापी जाती। हस्तलिखित प्रतियों से प्रेस के लिए कापी तैयार करना कठिन काम है क्योंकि पुरानी हस्तलिपियों में शब्दों को स्पष्ट रूप से अलग लिखने का रिवाज न था। प्रेस कापी तैयार करने में कहीं-कहीं एक शब्द या तो दूसरे से मिल गया है या उसके टुकड़े हो गये हैं। हस्तलिपियों से शुद्ध प्रति तैयार करना विशेषज्ञों का काम है। इस पुस्तक के प्रकाशक के प्रकाशनों की छपाई का स्तर काफी ऊँचा है। किन्तु न मालूम क्यों यह पुस्तक बहुत साधारण ढंग से छपी है। इसका मूल्य भी अधिक मालूम पड़ता है। सब मिला कर इसमें प्रायः १२४ पृष्ठ हैं, किन्तु मूल्य रखा गया है तीन रुपये। आशा है कि इसका दूसरा संस्करण अधिक सावधानी से और अधिक आकर्षक रूप में देखने को मिलेगा।



भारती-कण्ठाभरण

(पिछली शती के उत्तरार्द्ध में उरई (जिला जालौन, उत्तर प्रदेश) में पं० कालीदत्त नागर नाम के एक पं रहते थे। वे बड़े विद्वान् और ऊँचे दर्जे के तांत्रिक थे। उनका ऊपरी रहन सहन इतना कठोर और गंभीर था उनके बहुत से परिचित व्यक्तियों और मित्रों को इस बात का संदेह भी नहीं था कि वे कबिता करते होंगे। वे बड़े ऊँचे दर्जे के कवि थे और 'काली कवि' के नाम से लिखते थे। उनकी कविता ब्रजभाषा में होती थी उसमें काफी शृंगार होता था जिसकी आशा उनके समान ऊपर से कठोर दीखनेवाले विद्वान् और तांत्रिक से की जाती थी। वे संस्कृत के भी पंडित थे और उस पर उनका अच्छा अधिकार था। उन्होंने 'हनुमत्पता नामक एक छोटा सा काव्य ब्रजभाषा में लिखा था जो काव्य-सौंदर्य की दृष्टि से अपने ढंग का अनोखा है। सीताजी की खोज में हनुमानजी के लंका जाने की कथा है। वहाँ हनुमानजी ने लंका में बहुत सी बातें देखीं जिन उन्होंने वर्णन किया है। वहाँ उन्होंने रावण को शिवजी के मंदिर में पूजा करते भी देखा। 'हनुमत्पताका' में का कवि ने रावण के मुख से शिवजी की स्तुति संस्कृत में करायी है। यह स्तुति 'शिवताण्डवस्तोत्र' के ढंग लिखी गयी है, किंतु इसमें शान्त और शृंगार रस हैं। हम यहाँ सहृदय पाठकों के मनोरंजनार्थ काली कवि यह अनूठा शिवस्तोत्र प्रस्तुत कर रहे हैं।——सम्पादक, सरस्वती।)

विनिद्रसत्तरंगिणीतरंगभंगसंगमप्रकम्पमानकुन्तलावलीविलोलपन्नगे।
नगाधिराजनन्दिनीमुखेन्दुकौमुदीक्षणप्रफुल्लदक्षिकैरवे शिवे निवेशितं मनः ॥१॥
परस्परम्पुरन्दरप्रभृत्यदेवमण्डलीकुरंगशावकेक्षणाचरित्रचित्रितांगणे।
ललाटचन्द्रचन्द्रिकासुधावधौतमन्दिरे दृगग्निभग्नमन्मथे निमग्नमस्तु मे मनः ॥२॥
स्वभक्त-वैरियोषितां करप्रतालताडनैः पलाण्डुपक्वपाटलीकृताशुगण्डमण्डलः।
सुरेन्द्रभालचन्दनप्रलिप्तपादपंकजः प्रभुर्जगद्वशंकरश्शुभं करोतु शंकरः ॥३॥
दिने प्रियस्य मन्दिरे दिनेशरश्मिरञ्जिताः पिबन्ति चन्द्रिकारसञ्चिरञ्चकोरभक्तयः।
जटावटापियस्य संनदन्मयूरतोरणा तनोतु मंगलम्मुदैनसां स मे हरो हरः ॥४॥
उमाकपोलदर्पणप्रवेशदर्शितामलां स्वकीयकण्ठकालिमामलिभ्रमेण वारयन्।
प्रियाप्रहासदन्तकच्छटावकाशचन्द्रिकाचकोरशावकीकृतः पुनातु नो हसन् हरः ॥५॥
हलिप्रियारसालसाकुलावलालिकावलीविशालवालमालतीप्रसूनजालमालिका।
परागपुञ्जमञ्जुलेन रञ्जितांघ्रिपंकजं समस्तदोषदोषणम्भुजंगभूषणं भजे ॥६॥
नखांकितेन मञ्जुरञ्जितेन चन्दनाम्भसा विभूतिपिण्डपाण्डुरेण मण्डितेन सद्रुचा।
जटासिताननेन स्वेदितेन सुन्दरीप्रियापयोधरेण ह्लेपितः पुनातु चन्द्रशेखरः ॥७॥
सदाशिवाय शंकराय शाश्वताय शूलिने भवाय भैरवाय भूतभावनाय भास्वते।
विभावरीशखण्डभूषिताय कृत्तिवाससे मृडाय माधवप्रियाय मुक्तिदाय ते नमः ॥८॥



ब्रज-माधुरी (८)

पशु-नर—

बैठिबे की, उठिबे की, बोलिबे की, चालिबे की
जानत न एकौ चाल, आये जग ढाँचे में।
देखत में मानुस की आकृति दिखायी परें
पर नर पशु वा परिन्द हैं न जाँचे में।
'ग्वाल कवि' जानिए विरंचि तुच्छ जीवन कों
डारौ और ठौर लखि ख्यालन के खाँचे में।
गर्दभ तें, उल्लुन तें, कूकुर तें, सूकर तें
काढ़ि काढ़ि जीव डारे मानुस के साँचे में!

ब्रज की होली—

रंग-उमंग-समोई रहैं, रस-मोई रहैं ब्रज की बर गोरी
सील, सनेह, सुधारस-सानी रहै सदा राधिका स्याम की जोरी
बाल-गुपाल बिहार करें नित कुंजन कूल रहै रस-खोरी
गोरी सदा रँग-बोरी रहै, चिरजीवी रहै ब्रज की वर होरी!

(किशोरीलाल गोस्वामी)

(१)

खेलौ मिलि होरी, घोरौ केसर कमोरी, फेंको—
भरि भरि झोरी लाज जिय में बिचारो ना।
डारो बहु रंग, संग चंगऊ बजावो, गावो,
सबहिं रिझावो, सरसावो संक धारो ना॥
जोरि कर कहति, निहोर 'हरिचंद' प्यारे,
मेरी बिनती है एक, ताहि तुम टारों ना।
नैन हैं चकोर, मुख चंद सों परैगी ओट,
यातें इन आँखिन गुलाल लाल! डारो ना॥

(२)

या अनुराग की फाग लखौ,
जहाँ रागती राग किसोर-किसोरी।
त्यों 'पदमाकर' घाली घली,
फिर लाल ही लाल गुलाल की झोरी॥
जैसी की तैसी रही पिचकी कर,
काहू न केसर-रंग में बोरी।
गोरी के रंग में भींजिगो साँवरो,
साँवरे के रँग भींजिगी गोरी॥

(३)

नौल बसंत उठैं अकुलाय, सुनैं कल-कोकिल की किलकारी।
भाँवरैं सी भरैं साँवरे-साँवरी, होत निछावर ते सहचारी॥
'देव' दुहूँ कों दुहूँ दुरिकैं, रँग दै पठई अँग-अंग उजारी।
केसरिया खुलै नंदकिसोर, किसोरी के केसर की रँगी सारी॥

(४)

लै लै कर झोरी जुरि आईं इतै गोरी,
उतै होरी खेलिबे कों लाल जाल हू बनायो कीच।
छाइगौ छिनै में यों गुलाल मेघ-माल ऐसौ,
'द्विजदेव' जासों ना जनायौ परै ऊँच-नीच॥
ऐसी भई धुँधरि धँमारि की सु ताही समैं,
पावस के भोरैं मोर सोर कै उठे अपीच।
घन के समान ज्यों ज्यौं दौरैं घनस्याम, त्यौं-त्यौं—
संपा की दुरति आली, चम्पा-घन-बन-बीच॥

(५)

ठाढ़ी रहौ, डगो न भगो, अब देखो जो है कहु खेलत ख्यालहिं।
गावन दै री, बजावन दै सखी, आवन दै इतैं नन्द के लालहिं॥
'ठाकुर' हौं रँगिहौं रँग सों अँग, औंड़िहौं बीर! अबीर गुलालहिं।
धुंधर में, धधकी में, धमार में, हौं धसिहौं, धरि लैहौं गोपालहिं॥

(६)

'घनआनँद' प्यारे कहा जिय जारत, छैल ह्वै फीकिये खौरन सों।
करि प्रीति पतंग कौ रंग दिना दस, दोसि परै सब ठौरन सों॥
ये औसर फाग कौ नीकौ फब्यौ, गिरधारिहिं लै कहूँ टौरन सों।
मन चाहत है मिलि खेलन कों, तुम खेलत हौ मिलि औरन सों॥

मनोरंजक संस्मरण

'विमल' औ 'समल'

बाबूश्यामसुंदरदास 'सरस्वती' के प्रथम सम्पादक थे। उनके बाद आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने उसके सम्पादन का भार लिया। सम्पादन का भार लेने के बाद ही, बाबू साहब के प्रति 'सरस्वती' की कृतज्ञता प्रकट करने के लिए द्विवेदीजी ने 'सरस्वती' में उनका एक चित्र प्रकाशित किया और उसके नीचे एक दोहा भी बनाकर छाप दिया। वह दोहा यह था:

मातृभाषा के प्रचारक, विमल बी० ए० पास
सौम्य, शीलनिधान बाबू श्यामसुंदरदास।

उन दिनों कलकत्ते में बाबू बालमुकुन्द गुप्त, पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी आदि साहित्यिकों का एक दल था। इस दल के लोग बड़े फक्कड़ और विनोदी थे तथा साहित्यिक छेड़छाड़ करने में बड़ा आनन्द लेते थे। द्विवेदीजी बड़ी गंभीर प्रकृति के थे और 'विनोद' से दूर रहते थे। कई कारणों से यह दल द्विवेदीजी से अप्रसन्न भी था। द्विवेदीजी भाषा के शुद्ध प्रयोग पर बड़ा बल देते थे। इसलिए यह दल द्विवेदीजी की भाषा और शब्दों के प्रयोग की नुक्ताचीनी करने का अवसर ताकता रहता था। इस दोहे में 'विमल' शब्द को लेकर इस दल ने काफी विनोद किया। 'विमल बी० ए०' के क्या अर्थ हैं? क्या बी० ए० भी 'समल' और 'विमल' होता है? श्यामसुंदरदासजी ने बी० ए० में उच्च श्रेणी भी प्राप्त न की थी, फिर यहाँ 'विमल' के क्या अर्थ हुए? वास्तव में द्विवेदीजी ने यह तुकबंदी की थी, यह कोई कविता न थी। किंतु 'भारतमित्र' को अवसर मिल गया। पं० जगन्नाथप्रसाद च एफ० ए० तक पढ़े थे और उसमें अनुत्तीर्ण हो गये अतएव कुछ दिनों बाद भारतमित्र में चतुर्वेदीजी का चित्र छपा, और उसके नीचे यह दोहा छापा गया:

मातृभाषा के विदारक, समल एफ० ए० फि
जगन्नाथप्रसाद वेदी बीस कम चौबिस!

साहित्य जगत् में बहुत दिनों इस दोहे की चर्चा र कहते हैं कि यह दोहा जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदीजी ने ही लिखा था।

गोड़ खियाय गा

हमारे मित्र डा० आत्माराम मिश्र ने आचार्य राम शुक्ल का एक संस्मरण लिपिबद्ध किया है। वे कहते हैं एक बार शुक्लजी लम्बी यात्रा से लौटे। उनकी पुत्री जिससे वे बड़ा स्नेह करते थे उनके आते ही पैरों से लिपट गयी। उससे विनोद करते हुए वे घरेलू बोली में बोले—अरे, खियायगा! (अरे गये।)

भोली भाली बालिका ने कुतूहलवश पूछा—" चीज बाबूजी?"

शुक्लजी ने कहा—'गोड़।'

बालिका ने पूछा—'चलत चलत'?

शुक्लजी ने कहा—'नाहीं रे'!

बालिका का कुतूहल और बढ़ा। उसने फिर पूछा 'तब कैसे?'

शुक्लजी ने गंभीर होकर कहा—'छुअत, छुअत!'



हमारा संवत् और उसकी रक्षा

श्री काशीप्रसाद जायसवाल

संवत् देश की सभ्यता का मुख्य चिह्न है; देश और जाति के गौरव का स्तम्भ स्वरूप है। संवत् शाका चला लेना अतुल पौरुष की बात है। यह जाति-मात्र की शक्ति की बहुत बड़ी कसौटी है। संवत् का महत्त्व और उसके चलाने का नियम हमने हजारों वर्ष पहले समझा और निर्धारित किया, संवत् चलाना जाना और संवत् चलाया।

लगभग दो सहस्र वर्ष पहले कुछ म्लेच्छ हमारे देश के उत्तरी भाग को दबाये हुए थे। वे वहाँ से धीरे-धीरे देश के भीतर चले आ रहे थे, उन्हें जमे सैकड़ों वर्ष हो गये थे। इतने में उज्जयिनी में विक्रम के सूर्य का उदय हुआ, जिसके नायकत्व में हमने म्लेच्छों को कूड़े की तरह बटोर और भस्मसात् कर उनसे अपनी भूमि मुक्त कर ली और एकच्छत्र साम्राज्य स्थापित किया। इसे आज १९६४ वर्ष हुए। तभी हमने देश के छुड़ाने के आनन्द में, साम्राज्य स्थापित करने के संतोष में, जातीय विक्रम की स्मृति में, हिन्दू जाति की जातीय विक्रमीय नामक संवत् रूपी पताका अपने जातीय नायक के नेतृत्व में स्थापित की। यह ध्वजा स्थापित करते समय यदि हमारे पुरखों को जरा भी सन्देह-स्वप्न हुआ होता कि हमारी सन्तान इसे, अपने अस्तित्व तक भले और बुरे दिनों में, बनाये न रहेगी, याद न रक्खेगी, उपयोग में लाना बंद कर देगी——तो वे कभी इसकी स्थापना न करते। इसकी स्थापना उन्होंने इसी विश्वास, विश्वास क्या, हमारी गौण प्रतिज्ञा, पर हमारे चरित्र के एतबार पर, इस बात के भरोसे पर कि हमारे बेटे इस कीर्त्ति के झंडे से, अपने पुरखों के दिये हुए चिह्न से, पराङ्मुख न होंगे, उसका निरादर न करेंगे, उसे मरते-मरते भी भूल न जायेंगे, अपने बच्चों की योग्यता पर पूरा प्रत्यय करके इस यशःपताका की प्रतिष्ठा की। नहीं तो वे ऐसा न करते। जब यह भय रहता है कि अमुक काम चलाये जाने पर न चलेगा, तब उसे कोई नहीं प्रारम्भ करता और फिर संवत् चलाने में तो केवल इसी बात का विचार किया होगा कि हमारे लड़के इसे अपनाये रहेंगे या नहीं, इसे अपरिमेय-काल को मापते रहेंगे या नहीं। जब उन्हें निश्चय हुआ होगा कि हाँ रहेंगे, तभी उन्होंने इसे जारी किया होगा।

अच्छे काम के अनुकरण में हमारे पुरखों की अतीव प्रीति थी। हमारे विक्रमीय संवत् के बाद अनेक दान-पुण्य और पवित्र काम करके शालिवाहन ने अपना शाका चलाया तथा गुप्त वंश आदि ने ऐसी ही प्रतिस्पर्धा की पर उनकी जाति ने और काल ने यह प्रमाणित कर दिया कि हम अपने विक्रम की लाट, अपने पुरखों के विजय-चिह्न, को छोड़ दूसरे चिह्न को उसकी जगह अपना नहीं सकते। अर्थात विक्रमीय संवत् के सामने हमने अपने और संवतों को भुला दिया।

हमारे संवत् से ५७ वर्ष पीछे ईसाई सन् चलता है। यह विजय की कीर्त्ति नहीं है। बल्कि मरने के दिन की यादगार है, सूली पर जड़कर तलफाकर मार डालने के दिन की गिनती का नापना है। संसार के और साके भी विजय-सम्बन्धी नहीं हैं। हमारे संवत् की तरह कोई भी ऐसा पुराना जातीय कीर्ति का स्मारक नहीं है। ईसाई समझते हैं कि ईसा ही सत्य धर्म का बतानेवाला हुआ। उसके पहले कोई भी सत्य धर्म न था। उनका धर्म संसार भर में अन्त में विजयी होगा और उनके धर्म का साका ही सत्य और चलने वाला है। ईर्ष्या वश उन्होंने हमारे संवत् पर बड़े बड़े ऊहापोह किये। जैसा उनका प्रयत्न रहता है कि दिखावें कि संसार में ईसाई धर्म वालों की ही संख्या सबसे अधिक है उसी तरह इसके लिए भी वे प्राण देते हैं कि लोग समझें कि उनके धर्म का संवत् भी सबसे पुराना है।

जब कोई जाति किसी दूसरी जाति को अधीन करती है तब उसका यह प्रयत्न रहता है कि विजित जाति अपने कीर्त्ति चिह्नों को, अपने इतिहास को, भुला दे। इस नीति पर मजीनी ने लिखा है कि विजयी का बस चले तो वह इतिहास की घटनाओं को छील कर फेंक दे। इतिहास से जाति में जीवन आता है सो उस जीवन प्रतिबन्ध के लिए सब कुछ करना पर-जाति का अभीष्ट होता है। और अभीष्ट सिद्धि के लिए अपनी ओर से वह मनमानी शिक्षा जारी करती है। साका इतिहास का बहुत प्रबल

स्तम्भ है। उस स्तम्भ के ढहा देने में चाहे परजात जितना श्रम करें सब थोड़ा ही है।

इस समय देखते हैं कि प्रायः सामयिक पत्रों और आपस की चिट्ठियों पर ईसाई सन् और महीना अपने संवत् और तिथि की जगह पर बर्ता जा रहा है। इसका फल यह होगा कि हमारे बच्चे यह जानेंगे भी नहीं कि उनका भी कोई संवत् या मास चक्र था। और क्रमशः वह दिन आवेगा जबकि हमें अपने पंचांग बनाने की जरूरत न रह जायगी और अन्त में पंचांग बनाने की विद्या भी शायद भूल जायँगे। रियासतों में जहाँ हमारी जाति और हमारा धर्म परजाति संसर्ग से बहुत दूषित नहीं हुए हैं संवत् का बराबर राज्य व्यवहार होता है और सब प्रकार के दैनिक काम में उपयोग किया जाता है। अब कई रजवाड़ों में ईसाई-धर्म की प्रबलता से हमारा संवत् जरा पीछे हटता जाता है। यह बड़े शोक की बात है।

प्राचीन समय के हिन्दुओं को देखिए। अधिक अधोगति के काल में भी, जब उनका धर्म-कर्म और संपत्ति बही चली जा रही थीं, उन्होंने अपने हाथ से मुसलमानी सन् हिजरी नहीं लिखा। मुसलमानों ने कई सौ बरस अपना अधिकार चलाया, पर हमारे हिन्दुत्व को इतना दुर्बल और शक्तिहीन वे नहीं बना सके कि हम अपना संवत् भी भूल जायँ। यूरुप से अभी पचास ही बरस से परिचय हुआ है। पर ऐसे हिन्दू लड़के बहुत मिलेंगे जो हिन्दू संवत् का ध्यान तक नहीं करते। परजाति के स्थापित मदरसों में अपने बच्चों को पढ़ाने के ये बुरे फल हैं। जब हम मुसलमानों का हिजरी नहीं लिखते तब यूरुप का ईसवी सन् क्यों लिखें। यूरुप के लोगों का हमसे क्या मुसलमानों से भी अधिक गहरा सम्बन्ध है? हाय हमारी जातीयता का लोप हो रहा है।

जैसे हब्शी लोगों का निज का कुछ भी नहीं, सभी दूसरों से लिया हुआ है, वैसे ही संवत् के मामले में आर्यों के वंशज हम हबशियों के समान पतित हो रहे हैं। लेखक को इस विषय पर बड़ा सन्ताप गत जनवरी मास में हुआ। उसे यहाँ के प्रवासी भाइयों ने पहली जनवरी को "नये साल की खुशी में" कार्ड भेजे और मिलने पर बधाई दी। उसकी समझ में यह न आया कि उस साके को जिसे भिन्न-धर्मी "अपने लार्ड (मालिक) का साल" कहते हैं किस मुँह से, किस नाते से, वह अपना कहकर बधाई दें करें। हाय। ३०। ४० वर्ष, अर्थात् एक पीढ़ी पहले यह बात नहीं थी। वह अब हो रही है।

सो यदि हम अपने को उन्हीं हिन्दुओं की चली संतान मानते हैं जिन्होंने विक्रमीय संवत् चलाया, हमें संसार में रहने का हौसला है, तो हम अपनी स[illegible] के स्तम्भों की रक्षा करें। संवत् की रक्षा में विशेष करने की आवश्यकता भी नहीं है। केवल उसे हम रक्खें। अपने अखबारों में, चिट्ठियों में, कागजा[illegible] हर कहीं उसे और अपनी तिथि को स्थान दें। [illegible] उत्साहशील पुरुषों को उचित है कि वे जंत्री अच्छे का[illegible] पर छपवा कर अँगरेजी मदरसों में पढ़े हुए लोगों में [illegible] "कैलेन्डर" में इश्तिहार देने का भी अच्छा जरिया [illegible] यह मानो एक प्रकार का दूत है जो हर वक्त अपना [illegible] सुनाता रहता है। बनिज व्यापार में अच्छी छपी जन्त्रियाँ बहुत काम देती हैं। हमारे सेठ साहूकार दूकानदार यदि इस बात पर ध्यान दें तो स्वार्थ और [परा]मार्थ दोनों एक ही साथ सिद्ध हो सकते हैं। धर्म[illegible] और धनलाभ भी साथ ही हो सकता है।

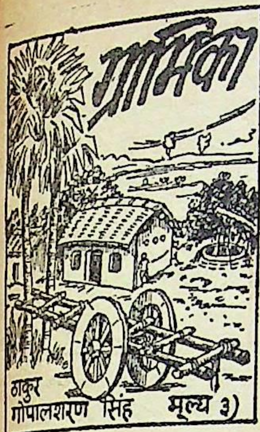
एक और उपाय संवत् प्रचार का यह है कि [illegible] छपे हुए चिट्ठी के कागज बिका करें। कई हिन्दू ऐ[से] जो उनको पसंद करेंगे। रियासतों में भी उनकी [illegible] माँग होगी।

यदि काम आसान करना हो तो पक्ष का लि[illegible] छोड़ते हैं। श्रावण शुक्ल ५ की जगह २० श्रावण लि[illegible] में कुछ हर्ज नहीं।

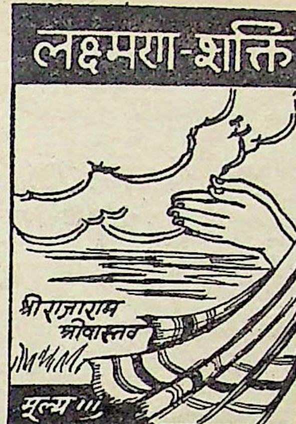
अपनी जाति की जो पाठशालायें या मदरसे कालेज हैं उनमें सब कारोबार संवत् से होना चाहिए। [illegible] हास की पुस्तकों में अपनी तिथियाँ लिखनी चाहिए [illegible] फीस भी अपने महीनों के हिसाब से लेनी चाहिए। ह[illegible] हिन्दी के कई पत्रों पर एक छत्र क्रिस्तानी संवत् का आ[illegible] पत्य देखकर मानसिक दुःख होता है। एक आध [illegible] बहुत लज्जित भी होना पड़ा है। आशा है, हमारे [illegible] भाई इस विज्ञप्ति पर जरूर ध्यान देंगे। इंगलिस्तान [illegible] कुछ आदमी इस समय ऐसे हैं जो अपनी तिथि [illegible] क्रिस्तानी तारीख निज की चिट्ठियों तक में नहीं [illegible] स्वदेश में तो इसका और भी अधिक पालन होना चाहि[ए]

प्रकाशक बी० एन० माथुर, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक: पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

नवीन काव्य-कृतियाँ

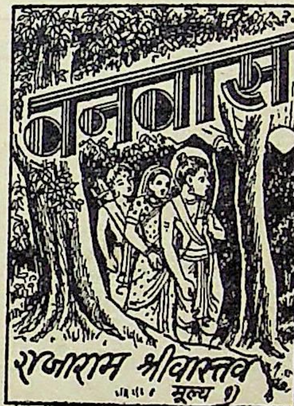








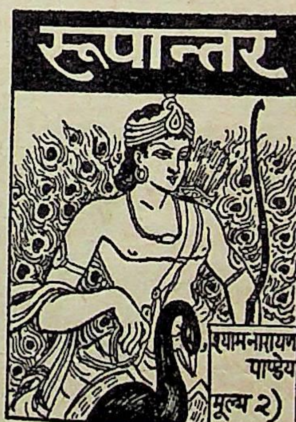










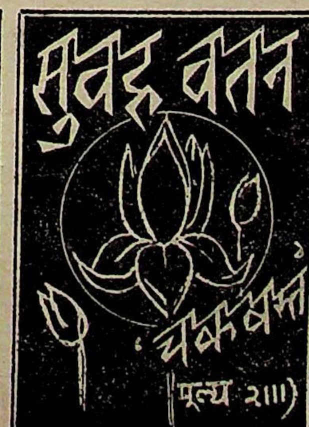














इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

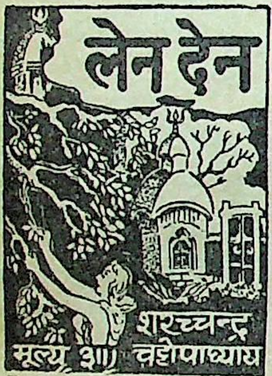
अमर कथाशिल्पी शरच्चन्द्र प्रणीत उपन्यासों का हिन्दी अनुवाद

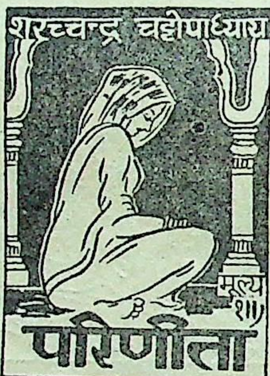






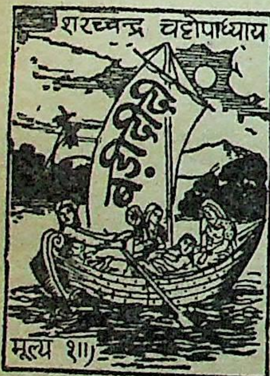




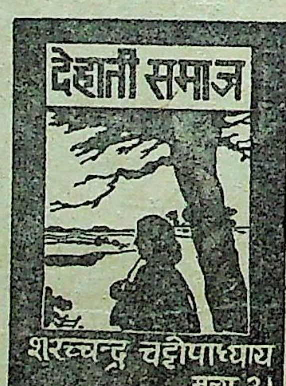






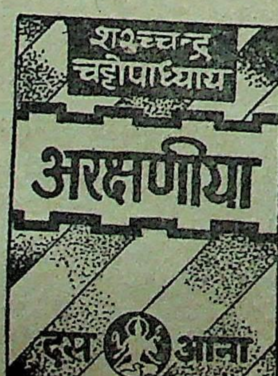












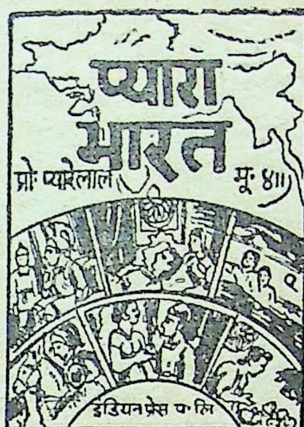




इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

कुछ चुने हुए नाटक-प्रहसन तथा उपन्यास

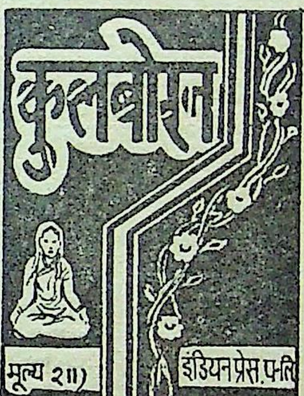




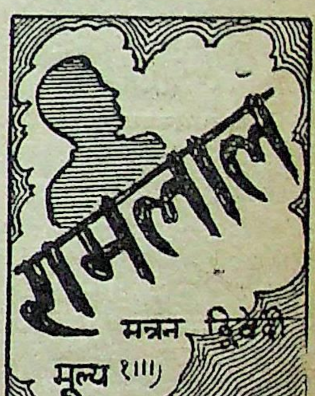












नाटक प्रहसन

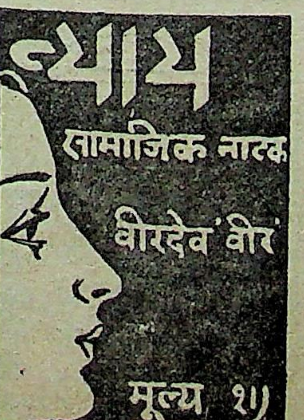




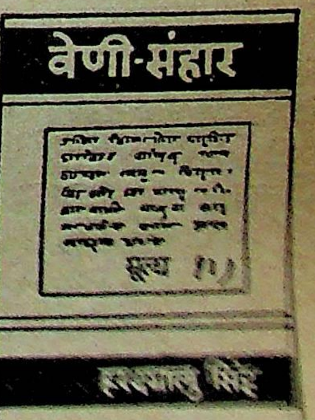


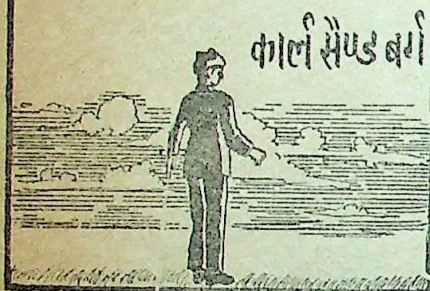




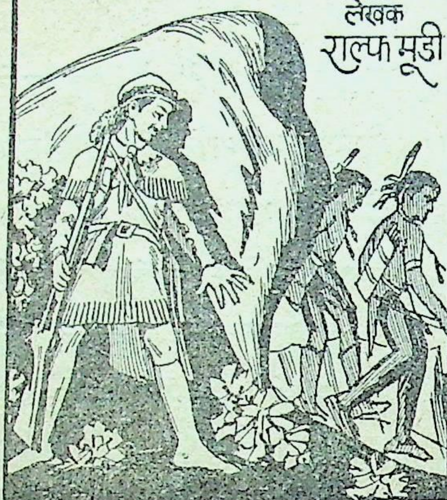








अनु०—श्रीयुत हरवंशराय शर्मा, एम० ए०
मूल्य ३ रु० २५ नये पैसे
लोकप्रसिद्ध जनकवि कार्ल सैण्डबर्ग के बाल्यकाल का हृदयग्राही वर्णन ।



अनु० —तिलकराज चोपड़ा, एम० ए०
मूल्य २ रु० ७५ नये पैसे
पहाड़ी नेता किटकार्सन के वयस्क जीवन का ललित वर्णन ।



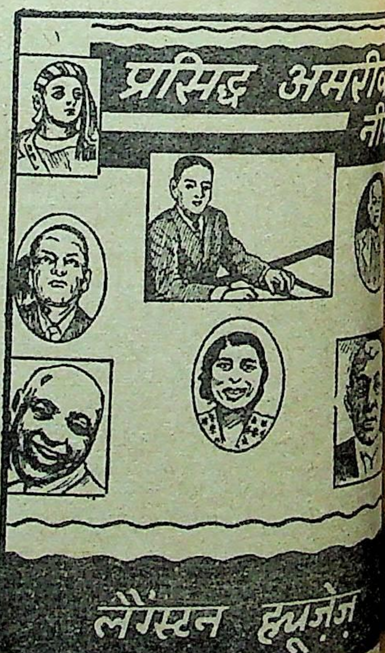
अनु०—हरवंशराय शर्मा
मूल्य २ रु० ५० नये पैसे
लेखिका के बाल्यजीवन की कहानी में उस समय के जिक जीवन का दिग्द



अनु०—सत्यप्रकाश त्रिपाठी एम० एस्-सी०
मूल्य ३ रु० ५० नये पैसे
विख्यात वैज्ञानिकों के अनुसंधानों का सजीव चित्रण उनके जीवन-चरित्रों सहित ।



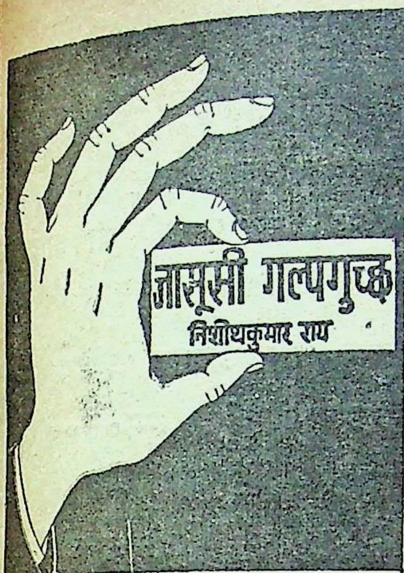
अनु०—एम० पी० लखेरा, एम० ए०
मूल्य ३ रु० ५० नये पैसे
अन्धों को नया मार्ग दिखानेवाली ऐन सलिवाँ और उनकी शिष्या हैलेन कैलर की कहानी ।



अनु०—रामऔतार अग्रवाल
मूल्य २ रु० ७५ नये पैसे
महत्त्वपूर्ण अमरीकी नीग्रो लोगों जीवन-कथाएँ ।

मूल्य

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद



प्रस्तुत हो गया **निकल गया**

भेद भरी बातों को जानने की मनुष्य की अदम्य लालसा संसार भर के देशों में जासूसी कहानियों के रूप में प्रकट होती है। संसार के सब देशों के साहित्य में ऐसी रहस्योद्भाविनी कहानियाँ बहुत तीव्र वेग से प्रकाशित हो रही हैं। लेखक प्रयाग के ख्यातनामा फौजदारी के वकील स्वर्गीय श्री हरिमोहन राय के पुत्र हैं और स्वयं भी न्यायिक अधिकारी हैं। इनकी लिखी जासूसी कहानियाँ हिन्दी जगत् में यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं। यह उनकी लिखी उत्कृष्ट जरूरी कहानियों का द्वितीय संग्रह है जिसमें समय-समय पर पत्रों में प्रकाशित हुई उनकी ३२ जासूसी कहानियाँ संगृहीत हैं।

पृ० सं० ३३६ मूल्य ३·५० नये पैसे।

नोट—कृपया अपनी प्रति सुरक्षित कराने के लिए आर्डर शीघ्र भेजिये।

कविवर देवेन्द्रदत्त तिवारी की दो काव्य कृतियाँ



"अन्तर्ध्वनि" की कविताओं को पढ़कर मन आर्द्र तथा रस-प्लावित हो जाता है।



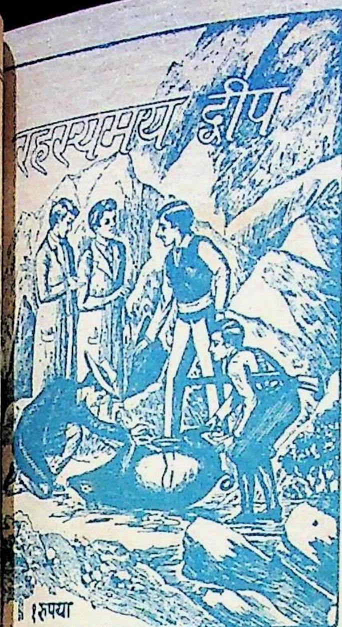
"रजनीगंधा" भाषा की प्रभ-विष्णुता भावों की मौलिकता और कल्पना के साथ सत्यं शिवं, सुंदरं के दर्शन कराती है।

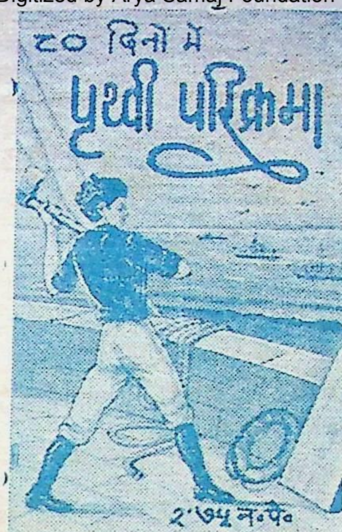


मूल्य २·५० नये पैसे

मूल्य २·५० नये पैसे

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद



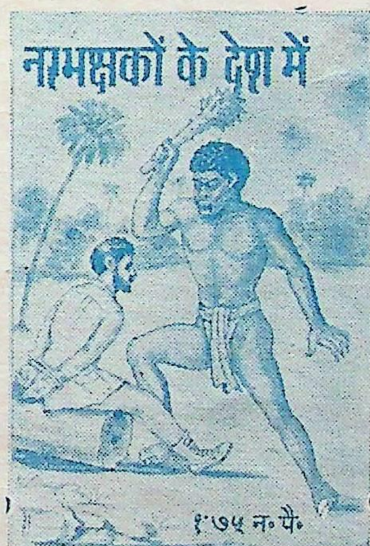


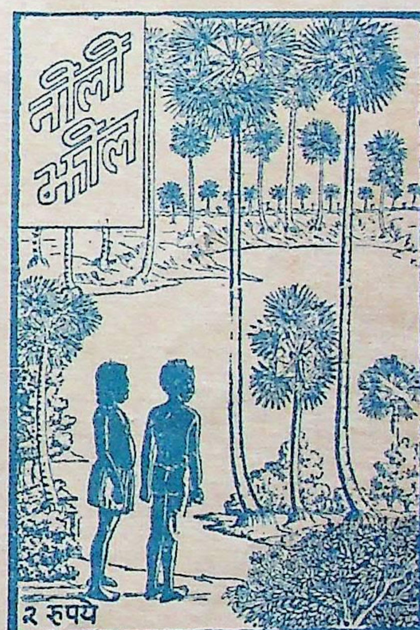


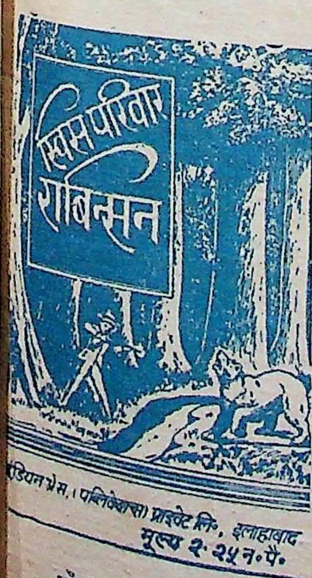
किशोर सीरीज़

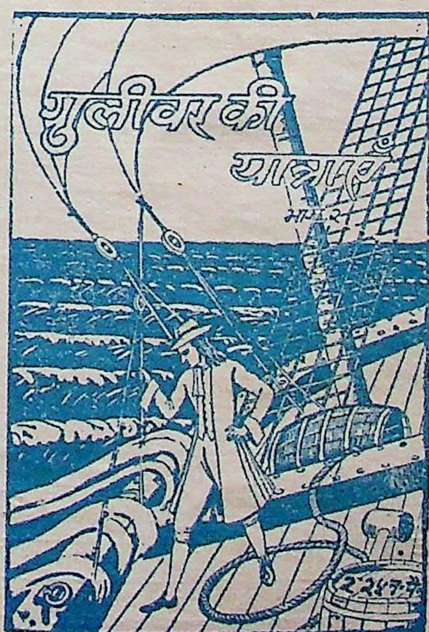
इंडियन प्रेस पब्लिकेशंस प्रा. लि. इलाहाबाद













अँगरेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की अठारह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान संबंधी किशोरोपयोगी उपन्यासों के अनुवाद डा॰ नवलबिहारी मिश्र के तत्त्वावधान में किये गये हैं। पुस्तकें इतनी रोचक हैं कि किशोर तथा वयस्क इन्हें पढ़कर मनोरंजन ही नहीं अपनी ज्ञानवृद्धि कर सकते हैं।


सरस्वती
अप्रैल
१९६४

भारतीय भाषाओं में तार भेजिये

अपना संदेश
देवनागरी लिपि में
लिखकर
आप किसी भी
भारतीय भाषा में तार
भेज सकते हैं।

अंग्रेजी में भेजे जाने वाले तारों को मिलने वाली सुविधाएं देवनागरी लिपि में भेजे जाने वाले तारों के लिए भी मिलती हैं, जैसे बधाई तार (बधाई वाक्यों की सूची हिन्दी में उपलब्ध है), डिलक्स तार, प्रेस तार, मानव जीवन अग्रता तार, फोनोग्राम तथा तार के संक्षिप्त पतों की रजिस्ट्री।

यह सुविधा
२००० तारघरों में उपलब्ध है



डाक-तार विभाग डीए ६३/४७५

विज्ञान-जगत्

को

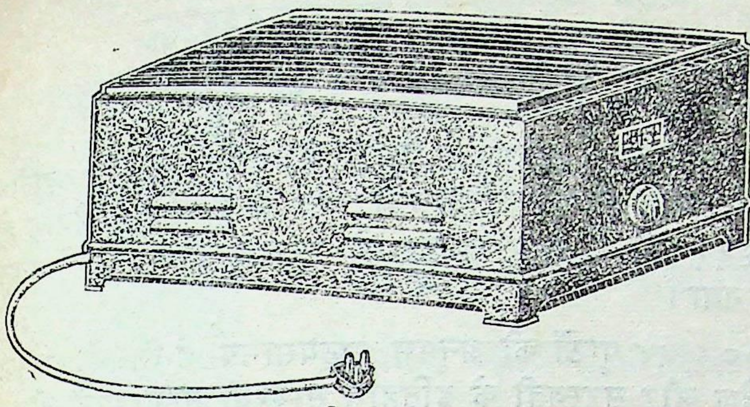
श्रेष्ठ आकलपन तथा मुद्रण पर भारत सरकार का

प्रमाण-पत्र



- सर्व साधारण तथा विद्यार्थियों का सर्वोत्कृष्ट सचित्र वैज्ञानिक मासिक
- वैज्ञानिक चेतना तथा प्रेरणा का अक्षय भंडार
- वार्षिक मूल्य ९); एक प्रति का ७५ नये पैसे
- बिक्री के लिये प्रत्येक स्थान पर एजेन्सियाँ दी जा रही हैं।
- कृपया तुरन्त ग्राहक बनिये तथा विज्ञापन देकर लाभ उठाइए।

प्रकाशक : ईंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद



सीको हाट प्लेटस

साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी के उत्पाद प्रामाणिक हैं और विशेषता (क्वालिटी), कर्म-कौशल (वर्कमैनशिप), रूपांकन (डिज़ाइन) और निष्पादन (परफारमेंस) में सर्वोत्कृष्ट हैं। हमारे निर्मित अन्य उपकरणिकाओं और साधनों (एप्लाएंसेज़) के लिए कृपया हमें लिखें।

दी साइएटिफ़िक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी लिमिटेड,

इलाहाबाद, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, नई देहली

समझिये

कि समस्या क्या है?

विकास और सुरक्षा का बहुत निकट का सम्बन्ध है। खेतों और कारखानों में आप जितना उत्पादन बढ़ाएंगे देश को उससे उतनी ही अधिक ताकत मिलेगी।

सुदृढ़ रक्षा के लिए जी तोड़ मेहनत करें।

DA63/F17

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक

१९०० ई० से १९५९ ई० तक सरस्वती में प्रकाशित हिन्दी के यशस्वी कवियों, कहानीका तथा लेखकों की चुनी हुई रचनाओं का संग्रह इस हीरक जयन्ती अंक में है। यह विशेषांक ही जयन्ती के अवसर पर ३१ दिसंबर १९६१ को भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति को राष्ट्र भवन, नयी दिल्ली में समर्पित किया गया।

इस हीरक जयन्ती अंक में ८०८+ ५४ पृष्ठों की अनुपम पाठ्यसामग्री है जिसमें ५३ पृष्ठों तो वर्तमान साहित्यकारों द्वारा लिखे संदेश और सरस्वती के इतिहास सम्बन्धी संस्मरण हैं और ८० पृष्ठों में १०९ कवियों की कविताएँ, ६० कहानी-लेखकों की कहानियाँ तथा १०० शीर्ष स्थानी लेखकों के लेख सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त ६५ रंगीन कलात्मक चित्र भी दिये हैं।

मूल्य—साधारण संस्करण—१२ रु०—डाकव्यय-१ रु० २६ नये पैसे
पुस्तकालय संस्करण (बढ़िया कागज पर सजिल्द)—२० रु०—डाक व्यय-१'४९ नये पैसे
[दो साल के लिए सरस्वती के नये ग्राहक बनने वालों या पुराने ग्राहकों को— साधारण संस्करण—८ रु०, डाक व्यय के लिए १'१५ नये पैसे अतिरिक्त]

कतिपय पठनीय सम्मतियाँ--

पद्मभूषण श्री सुमित्रानंदन पंत

सरस्वती हीरक जयन्ती विशेषांक मैं आद्योपान्त देख गया हूँ। उसकी सफलता के लिए आपको किन में बधाई दूं, नहीं जानता। पुराना मुहावरा दुहराऊँ तो उसे गागर में सागर ही कहना पड़ेगा, वह भी सुनहली गाग रस का सागर। हिन्दी के साठ वर्षों का विकास तथा हिन्दी साहित्यिकों की अनेक पीढ़ियों की साधना उसमें मूर्ति हो उठी है। इस ऐतिहासिक महत्त्व के अतिरिक्त उसके साहित्यिक तथा सांस्कृतिक महत्त्व को आँकना तो नहीं है। ऐसी कलात्मक अद्वितीय कृति किसी भी साहित्य का गौरव बढ़ाएगी। रंगीन चित्रों की तो वह एक चित्रशाला ही है। ऐसे सुंदर चित्र आजकल पत्र-पत्रिकाओं में देखने को नहीं मिलते। चित्रों में भी वही विका की श्रेणी देखने को मिलती है--राजा रवि वर्मा से आधुनिक चित्रकारों तक। निःसंदेह यह एक अमूल्य उपलब्धि— ही नहीं--समस्त भारतीय साहित्यों के लिए है। यह अंक साहित्य-प्रेमियों के पुस्तकालयों में तो रहना ही चाहिए समस्त प्रादेशिक तथा केन्द्रीय सरकार के अंतर्गत ग्रंथालयों में भी—सांस्कृतिक मणियों से जटित हमारी के ऐतिहासिक विकास के सर्वोच्च गौरव मुकुट की तरह—सुशोभित रहना चाहिए।

सरस्वती हीरक जयन्ती विशेषांक का परिशिष्टांक

पृष्ठ-संख्या ७८, मूल्य दो रुपये

इस परिशिष्टांक में दिल्ली में महामहिम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद को सरस्वती का विशेषांक भेंट के समारोह से प्रारंभ कर प्रयाग में सरस्वती के प्रतिष्ठित कतिपय लेखकों और पूर्व सम्पादकों के बहुमान और पत्र प्रदान सरस्वती के यशस्वी पूर्व संपादक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की कांस्यमूर्ति का पद्मभूषण मैथि शरण गुप्त द्वारा उद्घाटन प्रकाशन का सूत्रपात करनेवाले आधारों—नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी और इं प्रेस प्रयाग, को ताम्रपत्र प्रदान, जयन्ती पर कुछ विशेष विद्वानों की प्रतिक्रिया पत्रकारगोष्ठी, जयन्ती के संबं संस्थाओं तथा विद्वानों के संदेश, समारोह में श्रीमती महादेवी वर्मा, माननीय श्री हरिभाऊ उपाध्याय, गोविन्ददास, श्री दिनकरजी आदि के भाषण पठनीय हैं। साथ ही अनेक बहुरंगे और उत्सव के दृश्यों तथा व्यक्ति के सुन्दर चित्र भी दिये गये हैं।

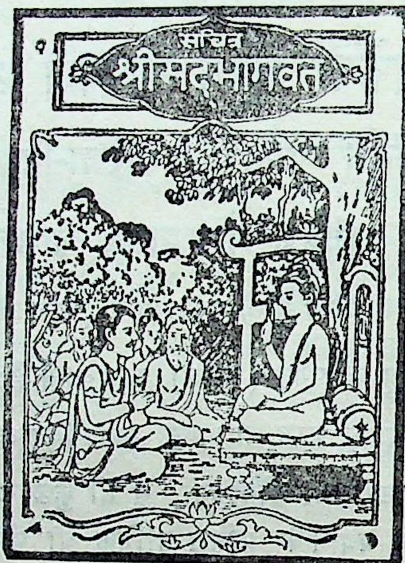
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

प्रिन्सिपल श्री केदारनाथ गुप्त एम० ए० ने गोस्वामी तुलसीदास के रामचरित मानस और विनयपत्रिका आदि ग्रंथों से अमूल्य रत्नों को ढूंढ़कर इसमें एकत्र किया है। मूल्य १·५०



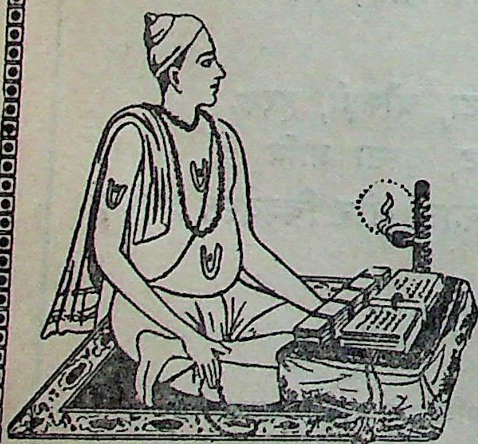
सरल भाषा में किया गया अविकल अनुवाद। इसमें सादे और रंगीन चित्रों की भरमार है और सुबोध भाषा में होने के कारण सभी के लिए उपयोगी है। २ जिल्दों का मूल्य १६) सोलह रुपये।



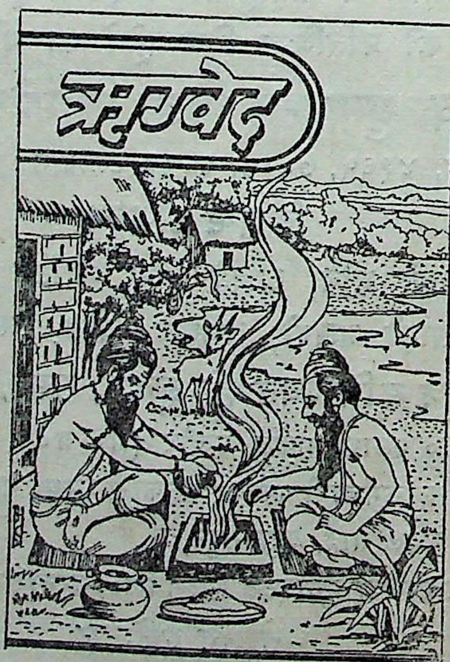
ज्ञानेश्वर महाराज ने मराठी के गीता पर जो टीका लिखी है यह हिन्दी अनुवाद है। बड़े मूल संस्कृत श्लोक, साधारण टीका है। सजिल्द प्रति का



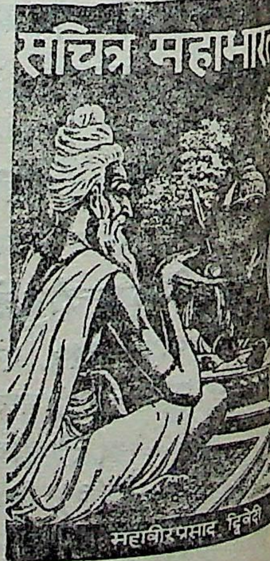
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग द्वारा प्रकाशित धार्मिक



गोस्वामी तुलसीदास की इस अमर रचना के विनय पदों का मर्म समझाने में पं० रामेश्वर भट्ट की टीका बड़ी सहायता करती है। बड़े आकार की सजिल्द प्रति का मूल्य ४) मात्र।



यह ग्रन्थ आठ अष्टकों और दस मण्डलों में विभक्त है। १०१७ सूक्तों में १०,४६७ मन्त्र हैं। ७४ पृष्ठ की भूमिका और ७१ पृष्ठ की विषय-सूची है। पृ० १६५०। सजिल्द प्रति का मूल्य १२)।



इसमें महाभारत के पर्वों की कथा बहुत ही सरल में लिखी गई है। इसके लेखक महावीरप्रसाद द्विवेदी हैं। और सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य

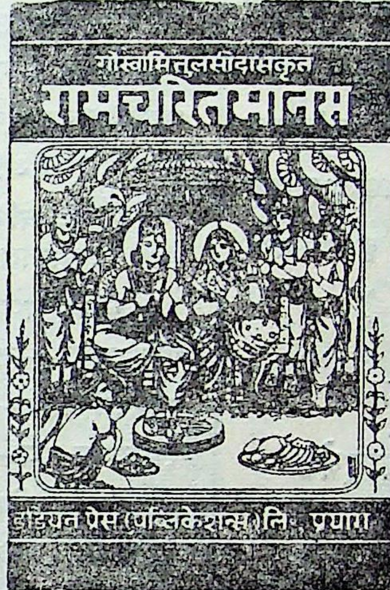
यह शुद्ध पाठ अच्छे कागज पर ...चित्र छापा गया है। कथा भाग में ...हुए देवताओं और ऋषि-मुनियों ...दि का परिचय अन्त में संक्षेप है। सजिल्द प्रति का मूल्य ३)।

टीकाकार—रामेश्वर भट्ट

यह संस्करण बहुत ही उपयोगी, मनोहर और सस्ता है। टीका बड़े काम की है। दुरंगे-तिरंगे चित्रों की अधिकता है। सजिल्द प्रति का मूल्य ६)।

इस रामायण का पाठ गुसाईंजी की पोथी से शोधा गया है। सत्तर पृष्ठों की भूमिका सहित बड़ी साँची के ११०० से अधिक पृष्ठों के सचित्र सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य केवल १२) बारह रुपये।







...डियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि॰, प्रयाग द्वारा प्रकाशित रामायण साहित्य

अयोध्या काण्ड

(सटीक)

इसमें भरतजी के चरित का वर्णन ...विस्तार से है। रामवनगमन, ...वट-प्रसंग आदि सुन्दर कथानक हैं ...र रचना तो अनुपम है ही। ...ल्य ३·५० नये पैसे।

बाल-रामायण

बालक-बालिकाओं के पढ़ने ...य रामायण के सातों काण्डों की ...रल भाषा में कथा। मूल्य १)

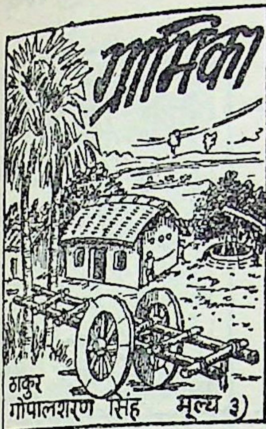


महर्षि वाल्मीकि का रामायण हिन्दू-संस्कृति का इतिहास है। इस ग्रंथ का अनुवाद सभी भाषाओं में हुआ है। सरल भाषा में किये गये हिन्दी अनुवाद का मूल्य ६·५० न॰ पै॰ प्रति भाग है।

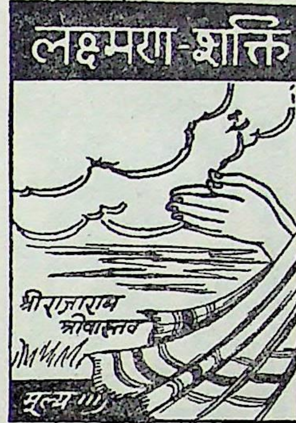


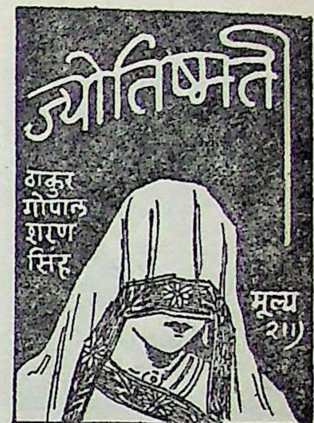
इसके टीकाकार श्रीयुत सत्यनारायण पाण्डेय हैं। कुंडलिया छंदों में लिखित गोस्वामी तुलसीदास-कृत रामायण, सुन्दर टीका सहित। मूल्य ४)।

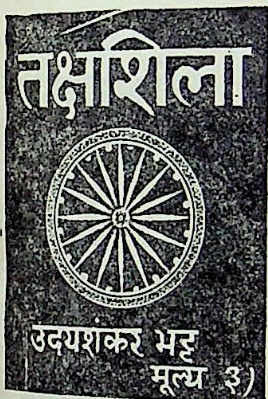
नवीन काव्य-कृतियाँ

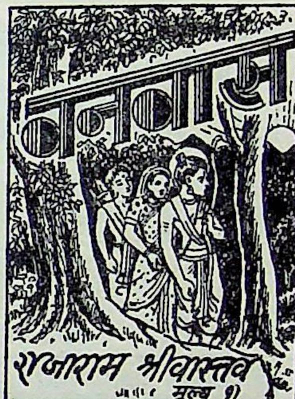

ग्रामिका
ठाकुर गोपालशरण सिंह मूल्य ३)


अपराजिता
'अंचल' मूल्य ३)


लक्ष्मण-शक्ति


ज्योतिष्मती
ठाकुर गोपाल शरण सिंह
मूल्य २॥)

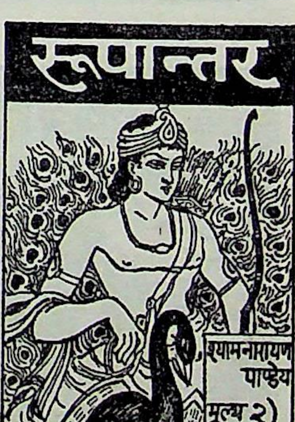

तक्षशिला
उदयशंकर भट्ट
मूल्य ३)

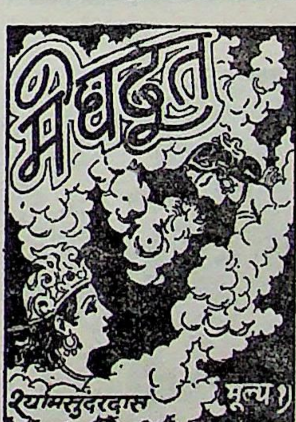

राजाराम श्रीवास्तव

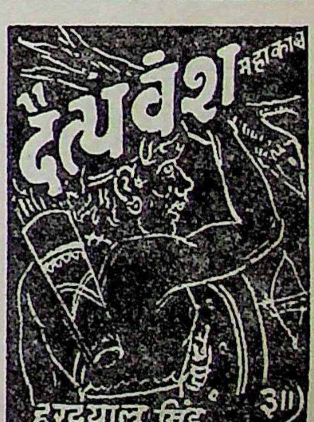

मानवी
ठाकुर गोपालशरण सिंह


ठाकुर गोपालशरण सिंह


श्यामनारायण पाण्डेय
मूल्य २)

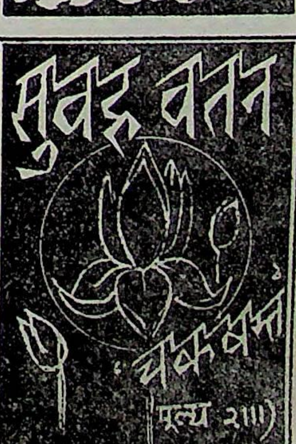

रूपान्तर
श्यामनारायण पाण्डेय
मूल्य २)


मेघदूत
श्यामसुंदरदास


दैत्यवंश
महाकाव्य
हरदयालु सिंह
३॥)


संक्षिप्त बिहारी
मूल्य २)

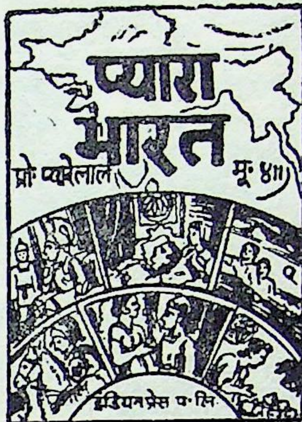

सवेरा और साया
मूल्य २॥)

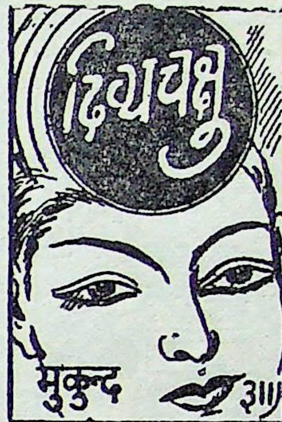

सुबह वतन
मूल्य २॥)

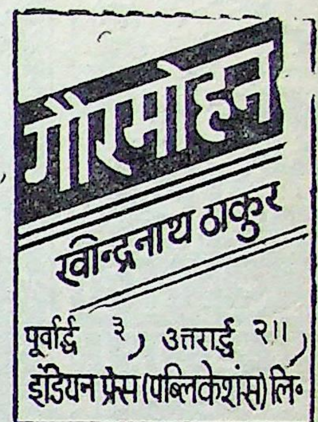

रानी दुर्गावती
१)

कुछ चुने हुए नाटक-प्रहसन तथा उपन्यास





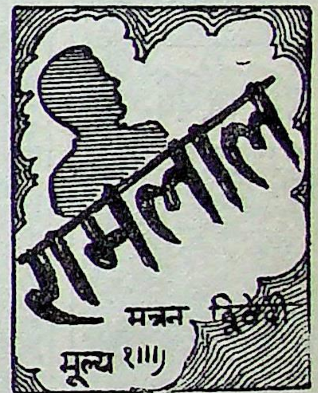








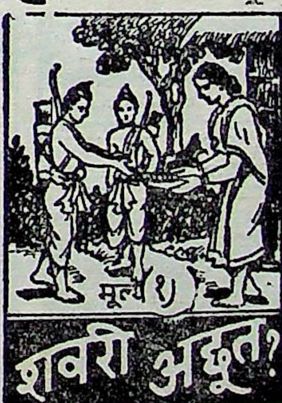




नाटक प्रहसन

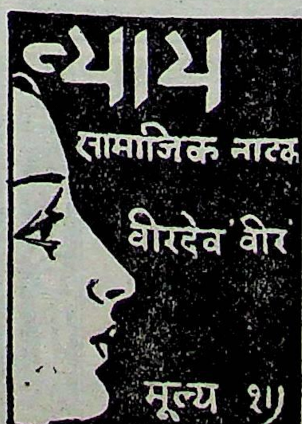




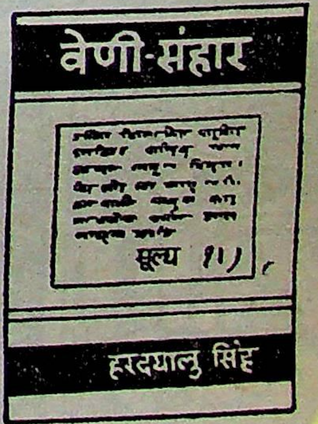








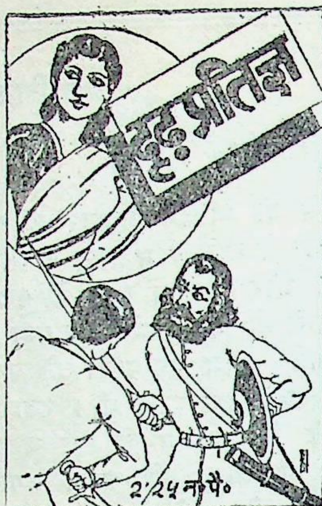




इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

किशोर सीरीज़

इंडियन प्रेस पब्लिकेशंस प्रा. लि. इलाहाबाद

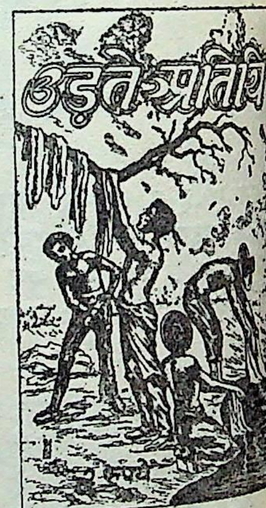














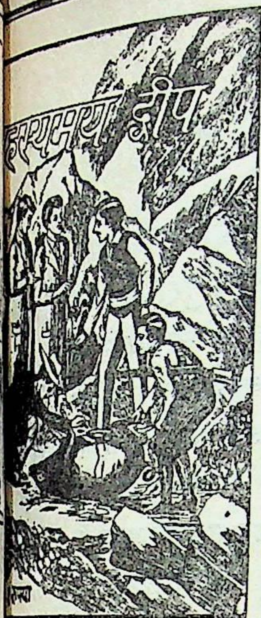




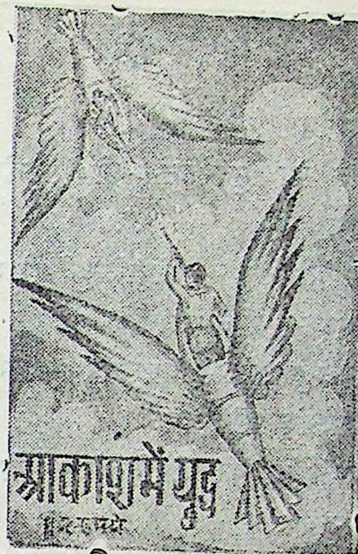
अंगरेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की अठारह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान, संबंधी किशोरोपयोगी न्यासों के अनुवाद डा० नवलबिहारी मिश्र के तत्त्वावधान में किये गये हैं। पुस्तकें इतनी रोचक हैं कि तथा वयस्क इन्हें पढ़कर मनोरंजन ही नहीं अपनी ज्ञानवृद्धि कर सकते हैं।

किशोर सीरीज़

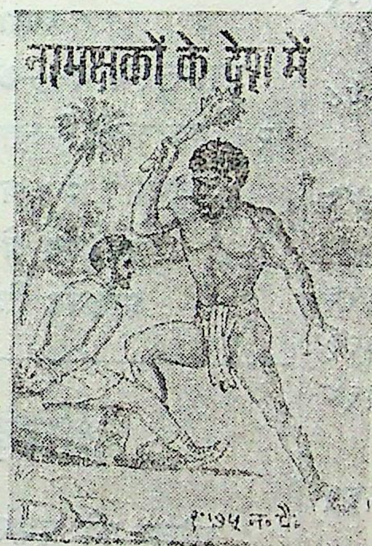
इंडियन प्रेस पब्लिकेशंस प्रा. लि. इलाहाबाद

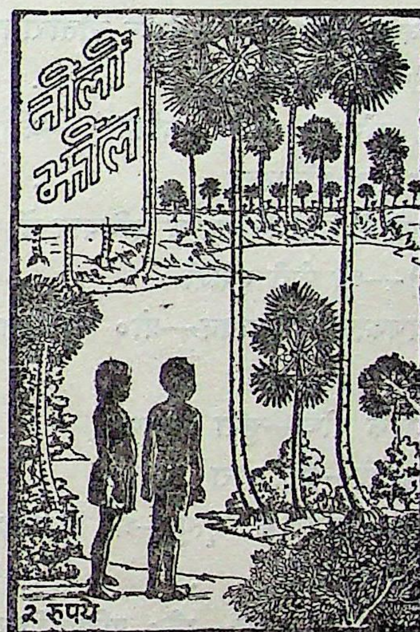












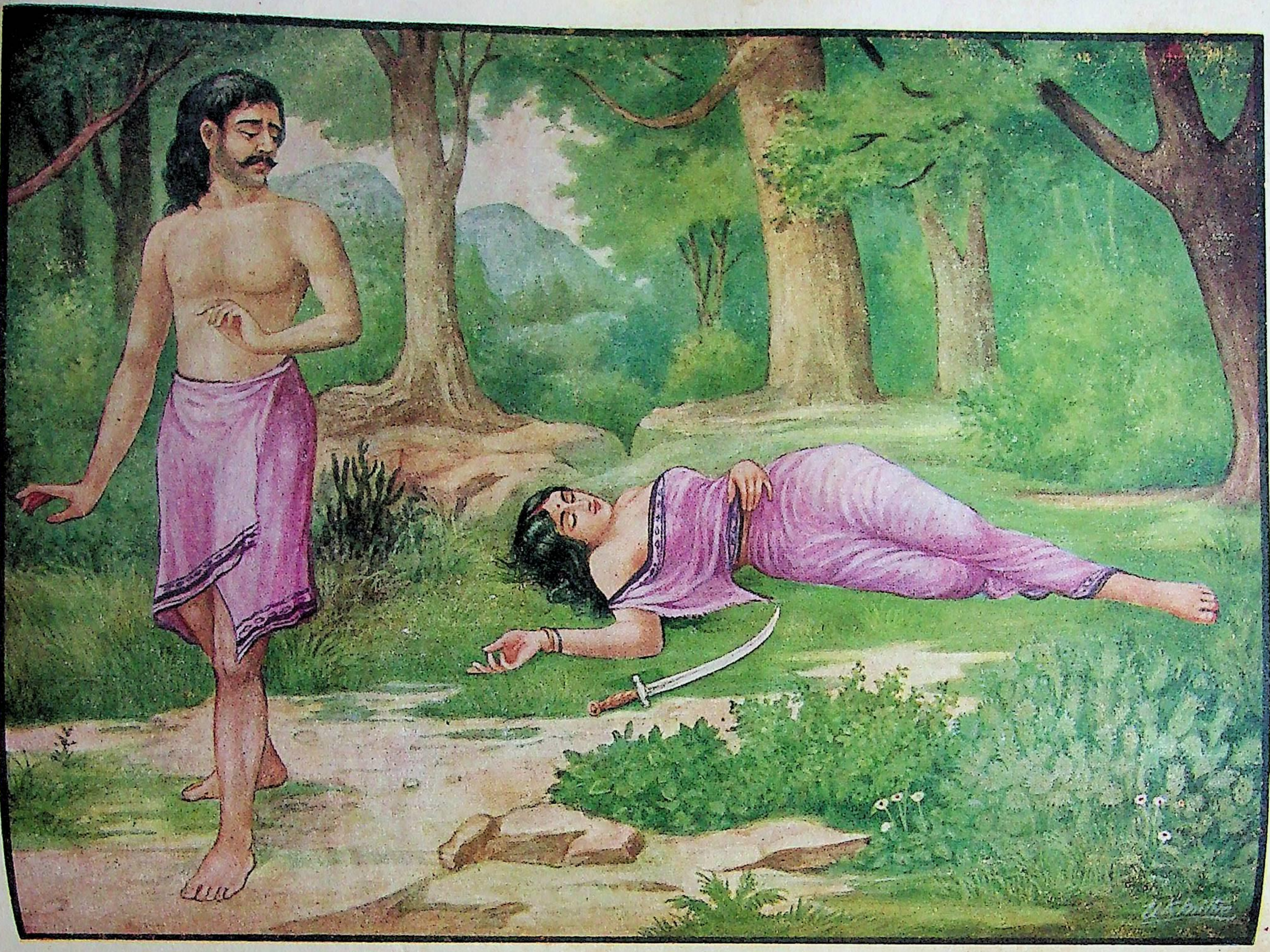






अंग्रेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की अठारह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान संबंधी किशोरोपयोगी उपन्यासों के अनुवाद डा० नवलबिहारी मिश्र के तत्त्वावधान में किये गये हैं। पुस्तकें इतनी रोचक हैं कि किशोर तथा बड़े इन्हें पढ़कर मनोरंजन ही नहीं अपनी ज्ञानवृद्धि कर सकते हैं।

विषय-सूची



नल-दमयन्ती-वियोग



सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—शीला शर्मा

वर्ष ६५ पूर्ण संख्या ७७२ | इलाहाबाद : अप्रैल १९६४ : वैशाख २०२१ वि० | खण्ड १ संख्या ४

सम्पादकीय

सेवा आयोग में हिन्दी माध्यम : आसमान से गिरे, खजूर में अटके—राजभाषा आयोग के प्रतिवेदन पर राष्ट्रपति ने हिन्दी को राजभाषा बनाने के सम्बन्ध में कई आदेश दिये थे। इनमें कुछ हमारी दृष्टि से हिन्दी के पक्ष में, और कुछ विपक्ष में थे। इनमें हिन्दी के पक्ष में एक आदेश यह था कि अखिल भारतीय सेवाओं के लिए केन्द्रीय सेवा आयोग जो परीक्षाएँ लेता है उनका वैकल्पिक माध्यम हिन्दी भी हो। अभी तक ये परीक्षाएँ केवल अंग्रेजी के माध्यम से ली जाती हैं। सरकार ने राष्ट्रपति के कितने ही आदेशों को लागू कर दिया। उदाहरण के लिए, हिन्दीवाले इस बात का विरोध करते हैं कि देवनागरी लिपि में अंग्रेजी अंकों का प्रयोग न किया जाय। राजर्षि टंडन इसका विरोध अन्त तक करते रहे। किन्तु राष्ट्रपति ने उनके उपयोग का आदेश दे दिया और सरकार ने उसका तुरन्त पालन कर दिया। किंतु सेवा आयोग में वैकल्पिक माध्यम बनाने का मामला खटाई में डाल दिया। इस बीच अंग्रेजी-परस्तों को प्रसन्न करने के लिए उसने संविधान के प्रयोजन के विपरीत अंग्रेजी को अनिश्चित काल के लिए भारत की सह-राजभाषा भी बना दिया, जिससे हिन्दी केवल कागजी राजभाषा रह गयी। जब हिन्दीवालों ने इस बात की माँग की कि राष्ट्रपति का यह आदेश कि अखिल भारतीय सेवाओं के लिए हिन्दी को भी वैकल्पिक माध्यम बनाया जाय, तब उसने घोषणा की कि इसके लिए एक समिति बनायी जायगी। वह समिति बनायी गयी। किन्तु उसमें शिक्षा-विशारद, परीक्षा-विशेषज्ञ या प्रशासनिक अधिकारी नहीं रखे गये। उसमें कौन रखा गया? राज्यों के मुख्य मंत्री, केन्द्रीय गृहमंत्री और केंद्रीय शिक्षामंत्री। गत मास उसकी बैठक हुई। उसने राष्ट्रपति का आदेश सिद्धान्ततः स्वीकार कर लिया। किन्तु उसमें 'अगर-मगर' की शर्तें लगा दीं। उसने कहा कि "इस प्रश्न का अभी और अध्ययन किया जाय, और (परीक्षाओं की) ऐसी विधि निकाली जाय जिससे इस बात का विश्वास हो सके कि हिन्दी को वैकल्पिक माध्यम बनाने से देश की जनता के किसी भाग को, विशेषकर अहिन्दीभाषियों को कोई हानि न होगी।" मदरास के मुख्य मंत्री श्री भक्तवत्सलम् ने इसका स्पष्टीकरण करते हुए मदरास में कहा है कि "मुख्य मंत्री सम्मेलन में यह निर्णय किया गया कि संघीय लोकसेवा आयोग की परीक्षाओं में तब तक हिन्दी में उत्तर देने की छूट न हो जब तक अंग्रेजी और हिन्दी के उत्तर-पत्रों की जांच का

फा० ३

ऐसा तरीका न निकल आये जो सब राज्यों को मान्य हो।" उन्होंने बतलाया कि "मैंने सम्मेलन में कहा कि मदरास को इसपर आपत्ति नहीं है कि लोकसेवा आयोग की परीक्षाओं के लिए हिन्दी को वैकल्पिक माध्यम के रूप में स्वीकार किया जाय, किंतु हमारी माँग है कि इस बात का आश्वासन मिलना चाहिए कि गैर हिन्दीभाषी क्षेत्रों के उम्मीदवारों को, जो अंग्रेजी में उत्तर देंगे, कोई हानि नहीं पहुँचेगी। मैंने कहा कि ऐसा तभी हो सकता है जब कि जाँच का सर्वसम्मत तरीका निकल आये। सम्मेलन ने मेरा सुझाव मान लिया।" उन्होंने यह भी कहा कि "यदि आगामी फरवरी तक सर्वसम्मत तरीका न निकला तो हिन्दी को माध्यम बनाने का प्रश्न सितम्बर १९६५ के बाद तक टल जायगा।"

यही नहीं, उन्होंने यह भी कहा कि "मैंने यह भी कह दिया था कि हिंदी के माध्यम से लोकसेवा आयोग की परीक्षा पास करनेवाले लोग गैर हिन्दीभाषी क्षेत्रों में काम नहीं कर सकेंगे। मुझे बतलाया गया कि जो लोग हिंदी में उत्तर देना चाहेंगे उनकी परीक्षा अंग्रेजी में भी ली जायगी और एक पत्र का उत्तर अंग्रेजी के माध्यम से देना होगा।"

इससे यह ध्वनि निकलती है कि हिन्दी के लिए "अभी दिल्ली दूर" है। हिन्दी और अंग्रेजी के माध्यमों से दिये जानेवाले उत्तर-पत्रों का मूल्यांकन एक-सा ही होगा, इसका विश्वास शंकालु लोगों को दिलाना असंभव-सा है। अंग्रेजीपरस्त पग पग पर हिन्दी के सीमित प्रयोग का विरोध करेंगे। और, हमारी सरकार का मत है कि जब तक ये अहिन्दीभाषी अंग्रेजीपरस्त राजी न हो जायें तब तक हिन्दी जहाँ की तहाँ बनी रहे। इससे जो निष्कर्ष निकलता है, उसे कहने की आवश्यकता नहीं है।

श्री भक्तवत्सलम् के उत्तर से एक बात और स्पष्ट हुई। अंग्रेजी पर जो बल अभी तक दिया जा रहा है, उसमें कमी न की जायगी। हिन्दी माध्यम से उत्तर देनेवालों की भी अंग्रेजी में परीक्षा होगी, और एक पत्र का उत्तर उन्हें अंग्रेजी के माध्यम से देना होगा। यदि विद्यार्थी एक पत्र का उत्तर अंग्रेजी के माध्यम से दे सकते हैं तो अन्य पत्रों में क्यों नहीं दे सकते? उन्हें हिन्दी को माध्यम कर देने से क्या लाभ हुआ? तात्पर्य यह है कि वे अंग्रेजी भी उतनी ही जानें जितनी अहिन्दीभाषी परीक्षार्थी जानते हैं, और इतनी हिन्दी भी जानें कि उच्च से उच्च विषय के उत्तर हिन्दी में दे सकें। किंतु तमिलभाषी केवल अंग्रेजी ही जानें। उन्हें अपनी मातृभाषा तमिल भी जानने की आवश्यकता नहीं—हिन्दी जानने की बात करना तो इस देश में 'कुफ्र' है! अब पाठक सोच सकते हैं कि इस भक्तवत्सली व्याख्या से हिन्दी माध्यम से परीक्षा देनेवालों को कोई सुविधा मिलेगी, या उनकी असुविधाएँ बढ़ जायेंगी?

भारत की तथाकथित राजभाषा हिन्दी को वैकल्पिक माध्यम बनाने में ऐसी-ऐसी साधारण बात के लिए भी इतने 'ननु-नच' लगा कर अवरोध उपस्थित किये जाते हैं। यह छोटी सी सुविधा भी भारत-सरकार रूपी आसमान से गिर कर "समिति" रूपी खजूर में अटक गयी है। अंग्रेजी-परस्त लोग राष्ट्रपति के भी हिन्दी संबंधी आदेशों में अड़ंगे लगाने से न चूकेंगे।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की जन्मशती—आगामी मास वैशाख शुक्ल ५ (१५ मई) को आचार्य द्विवेदी की जन्मशती है। द्विवेदीजी ने आधुनिक खड़ी बोली के उन्नयन में जो कार्य किया है वह सर्वविदित है। हम आशा करते हैं कि हिन्दी संसार आचार्य की जन्मशती उनके गौरव के अनुरूप ही मनावेगा। दुर्भाग्य से इस समय देश पर संकट है। लोग महँगी से त्रस्त हैं। मई के महीने में स्कूल, कालिज और विश्वविद्यालय भी बंद रहते हैं। अतएव इस उत्सव को ठीक ढंग से मनाने में बड़ी कठिनाइयाँ हैं। इन सब बातों को देखते हुए यह आवश्यक है कि यह उत्सव बहुत सादे ढंग से मनाया जाय। हिन्दी संसार में आचार्य का जीवन बड़ा सादा था। वे प्रदर्शन से घबड़ाते थे। जब हिन्दी संसार ने उनको सम्मानित करने के लिए प्रयाग में 'द्विवेदी मेला' नाम का अभूतपूर्व उत्सव किया तो वे उसमें बड़ी कठिनाई से सम्मिलित हुए थे। वे कर्मशूर थे। वे ठोस कार्य करने में विश्वास करते थे। हिन्दी का उन्नयन उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य था। उनकी आत्मा को जितनी शान्ति हमारी निस्पृह हिन्दी-सेवा से मिलेगी उतनी हमारे और किसी काम से नहीं मिलेगी। फिर भी, हिन्दी जनता, हिन्दी पत्रों और हिन्दी संस्थाओं का यह कर्तव्य है कि वे उस दिन द्विवेदीजी की स्मृति में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करें तथा हिन्दी की सेवा करने की प्रतिज्ञा करें। 'सरस्वती' की हीरक जयन्ती के अवसर पर प्रयाग में उनकी एक आवक्ष प्रतिमा, उनके स्मारक के रूप में स्थापित की गयी थी। आशा है कि प्रयाग के साहित्यिक और हिन्दीप्रेमी उस दिन उस प्रतिमा के सामने एकत्र होकर और उसको पुष्पहार समर्पित करके उनके प्रति अपना सम्मान प्रदर्शित करेंगे। आचार्य का जन्म राय-बरेली जिले के दौलतपुर ग्राम में हुआ था। वहाँ उनका घर अब भी वर्तमान है। रायबरेली नगर में भी उनकी स्मृति में एक उद्यान और पुस्तकालय की स्थापना हो चुकी है। हमें यह जानकर प्रसन्नता हुई कि रायबरेली के हिन्दीप्रेमियों ने वहाँ इस अवसर पर एक उत्सव करने का निश्चय किया है तथा साहित्यकारों को दौलतपुर ले जाने का भी प्रबंध किया है। काशी नागरीप्रचारिणी सभा भी इस अवसर पर एक विशेष उत्सव का आयोजन कर रही है। हमें विश्वास है कि हिन्दी संसार आचार्य की जन्मशती को समुचित रूप से मनावेगा।

मराठी उपन्यास-सम्राट् पंडित हरि नारायण आपटे—इस वर्ष मराठी संसार में प्रसिद्ध उपन्यासकार हरि नारायण

आपटे की जन्मशती मनायी जा रही है। वे मराठी ही के साहित्यकार नहीं थे, उनकी कृतियाँ देश और काल के बन्धन को तोड़ कर सार्वभौमिक और चिरन्तन हो गयी थीं। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों ने देशवासियों के हृदयों में मातृभूमि के प्रति एक सात्विक और शक्तिशाली भक्ति को जागृत किया था। उनका साहित्यिक कार्य देश को जागृत करने और अपने स्वरूप को पहिचानने के उस कार्य का पूरक था जो लोकमान्य तिलक आदि नेता राजनीतिक क्षेत्र में कर रहे थे। राजनीतिक नेताओं ने भारतवासियों में राष्ट्रीयता की जो भावना जगायी थी, उसकी लौ को हरि नारायण आपटे के ऐतिहासिक उपन्यासों ने बढ़ाया ही नहीं प्रत्युत उसे ठोस ऐतिहासिक आधार दिया। हमने अपने विद्यार्थी-जीवन में उनके अमर उपन्यास 'गढ़ आला पण सिंह गेला" (गढ़ आया पर सिंह गया) का हिन्दी अनुवाद पढ़ा था जो स्वर्गीय पं० कृष्णकान्त मालवीय ने अभ्युदय प्रेस से प्रकाशित किया था। उसे पढ़े हमें पचास वर्ष से अधिक हो गये, किंतु उसके प्रभाव की छाप हमारे हृदय पर आज भी बनी हुई है। राष्ट्रीयता की सूक्ष्म भावना को ठोस ऐतिहासिक आधार देकर उन्होंने देशवासियों में अपने राष्ट्रीय गौरव और अपने पूर्वपुरुषों के शौर्य की सच्ची कथाएँ प्रभावशाली ढंग से रखीं। इससे परोक्ष रूप से स्वतन्त्रता-आन्दोलन को बल मिला। ऋषि बंकिमचन्द्र ने 'आनन्दमठ' लिखकर जो कार्य बँगला भाषा में किया, वही काम पुण्यश्लोक हरि नारायण आपटे ने मराठी में 'उषःकाल', 'वज्राघात', 'मैसूरचा बाघ' आदि ऐतिहासिक उपन्यासों को लिख कर किया। जिस प्रकार 'आनन्दमठ' ने केवल बंगाल को ही नहीं प्रत्युत सारे देश को प्रेरणा दी, उसी प्रकार आपटेजी के उपन्यासों ने भी सारे देश को प्रबुद्ध किया। इस दृष्टि से दोनों ही अखिल भारतीय साहित्यकार थे।

हरि नारायण आपटे का जन्म सन् १८६४ के मार्च मास की आठवीं तारीख को खानदेश में एक सामान्य महाराष्ट्रीय ब्राह्मण के परिवार में हुआ था और उनकी शिक्षा पूना में हुई। जिस समय वे पूना में विद्यार्थी थे, उस समय महाराष्ट्र का यह हृदय-स्थल लोकमान्य, चिपलूणकर, आगरकर आदि नरपुंगवों के विचारोत्तेजक कार्यकलापों से सिक्त था। विद्यार्थी-जीवन में ही उनकी साहित्यिक प्रतिभा जाग उठी। वे कविता करने और लेख लिखने लगे। चिपलूणकरजी की मृत्यु के समय हरि नारायण आपटे दसवीं कक्षा के विद्यार्थी थे, किंतु उस समय उन्होंने 'शिष्यजन-विलाप' नामक जो कविता लिखी उसने सभी विद्वानों का ध्यान आकर्षित कर लिया। २१ वर्ष की अवस्था में उनका पहिला उपन्यास 'आजकलच्या गोष्ठीमधली स्थिति' प्रकाशित हुआ, और उसके प्रकाशित होते ही मालूम हो गया कि मराठी साहित्याकाश में एक दीप्तिमान नक्षत्र का उदय हुआ है। तब से उनकी जो साहित्य-साधना आरंभ हुई वह उनकी मृत्यु (१९१९) तक अबाध रूप से जारी रही। उन्होंने सब मिला कर २१ उपन्यास लिखे। इनके अतिरिक्त वे ६ उपन्यास अधूरे छोड़ गये।

पुण्यश्लोक हरि नारायण आपटे केवल उपन्यासकार ही नहीं थे, वे कवि भी थे। उन्होंने दो नाटक भी लिखे। मराठी भाषा की व्यंजना शक्ति बढ़ाने में उन्होंने जो काम किया वह भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। किंतु सबसे बड़ा काम जो उन्होंने किया वह यह था कि अपने सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यासों के द्वारा उन्होंने सामान्य जनता में सत्साहित्य पढ़ने की अभिरुचि उत्पन्न की।

आपटेजी विशुद्ध साहित्यसेवी थे। वे बड़े निस्पृह थे। उन्होंने कई वर्ष पूना के प्रसिद्ध नूतन मराठी विद्यालय में अवैतनिक रूप से शिक्षक का काम किया। उन्हें पत्रकारिता में भी रुचि थी। प्रसिद्ध मराठी पत्र 'ज्ञानप्रकाश' और 'सुधारक' से भी उनका वर्षों संबंध रहा। वे पूना की 'आनन्दाश्रम' नामक संस्था के सर्वेसर्वा थे। यह संस्था प्राचीन संस्कृत ग्रंथों का प्रकाशन करती थी। बाद में उन्होंने 'कर्मणूक' नामक अपना पत्र निकाला जिसमें उनकी अधिकांश कृतियाँ प्रकाशित हुईं।

पुण्यश्लोक आपटे सच्चे अर्थों में ब्राह्मण थे। उनके विद्याव्यसन, उनके उच्च चरित्र, उनकी अखण्ड साहित्य-साधना और उत्कट मातृभाषा-प्रेम तथा देशभक्ति ने उन्हें सारे देश का श्रद्धेय बना दिया था। मराठी संसार ने गत मास उनकी जन्मशती मनायी है। इस अवसर पर हिन्दी-भाषाभाषियों की ओर से 'सरस्वती' भी अपनी श्रद्धा के पुष्प इस महान् मनीषी और साहित्यकार की स्मृति में अत्यन्त विनीत भाव से अर्पित करती है। हमें विश्वास है कि उनकी कृतियाँ हमारी अगणित भावी पीढ़ियों के लिए प्रेरणा का स्रोत रहेंगी।

शिक्षा को समवर्ती विषय बनाने का प्रयास---इसी सिलसिले में केन्द्र के शिक्षा-विभाग का एक प्रस्ताव भी विचारणीय है। संविधान ने प्रशासन के कुछ विषय (जैसे मुद्रा, सुरक्षा, संचार आदि) पूरी तरह से केन्द्र के अधीन रखे हैं, और कुछ केवल राज्यों के अधीन (जैसे, कृषि, शिक्षा, चिकित्सा आदि)। किन्तु कुछ ऐसे विषय भी हैं जो समवर्ती (कानकरैण्ट) हैं, अर्थात् जिनके प्रशासन पर केन्द्रीय और राज्य सरकारों--दोनों ही का अधिकार है। शिक्षा ऐसा विषय है जो पूरी तरह से राज्यों के अधीन है। केवल उच्च (विश्वविद्यालयीन) शिक्षा में समन्वय करने का अधिकार केन्द्र को है। भारत का संविधान संघीय है। यहाँ राज्यों को बहुत से आन्तरिक मामलों में विस्तृत अधिकार हैं। किन्तु देश की 'एकता' और 'एकरूपता' (यूनिफॉर्मिटी) के नाम पर भारत-सरकार राज्यों के अधीनस्थ विषयों में परोक्ष रूप से, विशेषकर वित्तीय दबाव डालकर, हस्तक्षेप करती रहती है। शिक्षा एक ऐसा विषय है जिस पर उसकी विशेष दृष्टि है। यद्यपि सभी राज्यों में कांग्रेसी सरकारों के होने के कारण तथा राज्यों के वित्तीय दृष्टि से कमजोर

होने के कारण, अभी भी केन्द्र का शिक्षा-विभाग राज्य सरकारों से अपनी बातें मनवा लेता है, तथापि उसे शिक्षा के मामलों में हस्तक्षेप करने का वैधानिक अधिकार प्राप्त नहीं है। वह यह अधिकार लेना चाहता है। इसलिए यह प्रस्ताव किया जा रहा है कि संविधान का संशोधन करके उसे समवर्ती (कानकरेण्ट) विषय बना दिया जाय। तब केन्द्र को राज्यों की शिक्षा में हस्तक्षेप करने का वैधानिक अधिकार मिल जायगा। अभी स्थानीय जनमत के कारण राज्य सरकारें क्षेत्रीय भाषाओं को प्रधानता देने का प्रयत्न करती हैं, उन्हें उच्च शिक्षा में भी शिक्षा का माध्यम बनाने का प्रयत्न करती हैं तथा अन्य प्रकार से भी शिक्षा के मामलों में स्थानीय जनमत का ध्यान रखा जाता है। भारत-सरकार के हस्तक्षेप के साथ यह सब समाप्तप्राय हो जायगा। इसके साथ ही यह भी प्रायः तय हो गया है कि जिस प्रकार अखिल भारतीय प्रशासकीय सेवा (आई० ए० एस०) है, उसी प्रकार एक अखिल भारतीय शिक्षा सेवा (इंडियन एजुकेशन सर्विस) भी बना दी जाय। किन्हीं कारणों से अखिल भारतीय सेवाओं में अहिन्दी-भाषी लोग ही अधिक आते हैं। अभी उत्तर प्रदेश या मध्यप्रदेश में वहींके शिक्षा-विभाग के लोग उच्च पद पर पहुँचते हैं। वे कम से कम वहांकी भाषा को जानते हैं। किन्तु आई० ई० एस० बन जाने पर संभावना यही है कि हमारे राज्यों में शिक्षा-विभाग के उच्च पदों पर अन्य भाषा-भाषी अधिकारी बड़ी संख्या में दूसरे राज्यों से आ जायेंगे, और उनमें से कितने ही केवल कसम खाने के लिए हिन्दी जानते होंगे। ऐसे लोग हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाने अथवा मातृभाषा की शिक्षा को समझदारी से आगे बढ़ाने का काम कर सकेंगे या नहीं, इसको हम पाठकों के अनुमान और कल्पना पर छोड़ देते हैं। य अधिकारी शिक्षा-विभाग के प्रशासन में कितनी हिंदी चला सकेंगे, यह भी विवादास्पद है। इसका भी भरोसा नहीं है कि उनका अँगरेजी-प्रेम देशी भाषाओं के लिए बाधक न होगा। उन्हें विवश होकर 'अनुवाद' का सहारा लेना पड़ेगा। देशी भाषाओं की उन्नति की दृष्टि से सामान्यतः अन्य भाषा-भाषियों के ऊपर शिक्षा का भार डाल देना जोखिम का काम है क्योंकि शिक्षा-विभाग के अधिकारी ही क्षेत्रीय भाषाओं और उनके साहित्य को प्रोत्साहन देते और पुष्ट करते हैं। ये 'अनुवाद' वाले अधिकारी इस कर्तव्य को कितना निबाह सकेंगे? अँगरेज अधिकारियों के समय में स्कूलों और कालिजों में अँगरेजी का बोलबाला रहा। देशी भाषाएँ उपेक्षित रहीं। हमें भय है कि राज्यों की भाषाओं से अपरिचित या केवल 'कामचलाऊ' भाषा (जिसका अर्थ है टूटी-फूटी भाषा में दैनिक व्यवहार की बातें कर लेना) जाननेवाले अधिकारी क्षेत्रीय भाषा में दी जानेवाली शिक्षा का संचालन ठीक तरह से शायद ही कर सकें। उनके समय में यह 'अनुवाद' की मानसिकता और भी पनपेगी और देशी भाषाओं की उन्नति पिछड़ जायगी। यह सर्वविदित है कि केन्द्र के अधिकारी अँगरे के हिमायती हैं। वे अपने हिन्दी-प्रेम के लिए प्रसिद्ध न हैं। राज्यों की शिक्षा में केन्द्र का हस्तक्षेप होने से इस ब का भय है कि वे अँगरेजी पर बल दें तथा देशी भाषा की शिक्षा और उनकी उन्नति में परोक्ष रूप से बाधक हो अभी तक केन्द्र के शिक्षा विभाग का जो व्यवहार रहा उसके आधार पर यह आशा नहीं की जा सकती राज्यों की शिक्षा में उसके हस्तक्षेप से, और राज्यों शिक्षा का संचालन उस विभाग के अखिल भारत प्रशासकों के हाथों में आ जाने से, देशी भाषाओं—औ विशेषकर हिन्दी को—क्षति न होकर कोई लाभ होग यदि अखिल भारतीय शिक्षा सेवा बननी ही है तो ह यह माँग करनी चाहिए कि उसमें राज्यों की जनसं के अनुपात में भर्ती की जाय। अखिल भारतीय प्रशा और पुलिस सेवाओं (आई० ए० एस० और आई० पी एस०) में हिन्दी, मराठी, गुजराती-भाषी राज्यों का क प्रतिनिधित्व है उससे इन राज्यों में एक भीतरी असन्त सुलग रहा है। हमें सजग रहना चाहिए और इस न सेवा के निर्माण में इस बात की जोरदार माँग कर चाहिए कि उसमें प्रत्येक राज्य का प्रतिनिधित्व उस जनसंख्या के अनुपात में हो।

पूर्वी पाकिस्तान से हिन्दुओं का बहिर्गमन—पाकि के दो भाग हैं: पश्चिमी और पूर्वी पाकिस्तान। विभा के बाद पश्चिमी पाकिस्तान में जो नरसंहार हुआ उ कितने ही हिन्दू और सिक्ख मारे गये और लाखों अपने प्र बचा कर, और अपना सर्वस्व वहीं छोड़कर किसी प्रक भारत में चले आये। किंतु पूर्वी पाकिस्तान में (जो वास्त में बंगाल का पूर्वी भाग है) विभाजन के समय उतनी मारकाट नहीं हुई और वहाँ प्रायः एक करोड़ हिन्दू गये और उन्होंने वहाँकी नागरिकता स्वीकार कर किंतु पाकिस्तान भारत की तरह धर्म-निरपेक्ष राज्य है। वह इसलामी राज्य है और उसका शासन इसला शरीयत पर आधारित है। मुसलमानी राज्य (दा इसलाम) में, शरीयत के अनुसार, गैर मुसलमानों को राष्ट्रीय अधिकार नहीं मिल सकते। फिर भी पाकिस्तान के हिंदू वहाँ रहने को तैयार थे। किंतु मालूम होता है कि पाकिस्तान के प्रभुगण उसे वि मुस्लिम राज्य बनाने पर तुले हुए हैं। उन्होंने पश्चि पाकिस्तान की अल्पमत समस्या को हल कर लिया क्योंकि वहाँ अब हिंदू और सिख नाममात्र को ही गये हैं। अब वे पूर्वी पाकिस्तान की अल्पमत समस्या हल करने को कटिबद्ध मालूम होते हैं। इस लक्ष्य प्राप्त करने की उनकी विधि अब प्रायः स्पष्ट हो गयी कुछ समय का अन्तर दे-देकर वे हिन्दुओं पर आक्रमण उनकी हत्या, लूटमार और स्त्रियों का, अपहरण लगते हैं। प्रत्येक उपद्रव में कुछ हिंदू मारे जाते हैं, प्रत्येक उपद्रव के फलस्वरूप हजारों हिंदू अपना

छोड़ कर भारत में भाग आते हैं। जब से पाकिस्तान बना है तब से यही क्रम जारी है। पूर्वी पाकिस्तान बनने के बाद से ऐसे उपद्रव कई बार हुए, और कई लाख हिंदू वहाँसे भागकर भारत में आ गये। ऐसा मालूम पड़ता है कि पूर्वी पाकिस्तान का यह हिंदू-विरोधी अभियान तब तक चलता रहेगा जब तक कि वहाँके सारे हिंदू या तो भारत में न चले आवेंगे या मुस्लिम-धर्म स्वीकार न कर लेंगे। यह स्पष्ट है कि पाकिस्तान में हिन्दुओं का रहना असंभव है।

किंतु पूर्वी पाकिस्तान में इस बार जो उपद्रव हुए उनकी एक विशेषता थी। वे हिंदुओं के विरुद्ध ही नहीं थे। इस बार ईसाइयों पर भी आक्रमण हुए। पूर्वी पाकिस्तान से भागकर कई हजार ईसाइयों को भी भारत में शरण लेनी पड़ी। ऐसा मालूम पड़ता है कि पूर्वी पाकिस्तान में गैर मुस्लिमों का रहना असंभव हो गया है।

पूर्वी पाकिस्तान की जनसंख्या घनी है। उसकी आर्थिक व्यवस्था कृषि-प्रधान है। इस कारण वहाँ दरिद्रता भी अधिक है। भारत में भी यही समस्या है। किंतु यहाँ इस समस्या को पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा देश की समृद्धि बढ़ाकर, और परिवार नियोजन का प्रचार करके किया जा रहा है। ये उपाय समय-साध्य हैं। अर्थसाध्य भी हैं। किंतु मालूम होता है कि पाकिस्तान प्रायः एक करोड़ गैर मुसलमानों को निकाल कर अपनी अत्यधिक जनसंख्या की समस्या बर्बर ढंग से हल करना चाहता है। ऐसा करने से राष्ट्रसंघ के सिद्धान्तों का हनन होता हो या देश में किसी जाति का नाश या लोप हो जाय, इसकी उसे चिन्ता नहीं।

इतना ही नहीं। वह मुसलमानों को भी चोरी-छिपे दूसरे देशों में भेज रहा है। आसाम में पिछले दस वर्षों में कई लाख मुसलमान पाकिस्तान से घुस आये हैं। आसाम की सरकार आसामी-बंगाली झगड़ों में तो बड़ी रुचि लेती है किंतु इस संकट की ओर से वर्षों बेखबर रही। जब लाखों पाकिस्तानी घुस आये, और सारे देश में शोर होने लगा तब उसकी निद्रा भंग हुई। किंतु वह इतनी अक्षम और निरुपाय मालूम होती है कि गैरकानूनी ढंग से घुस आनेवाले पाकिस्तानियों को निकालने के लिए उसने कोई प्रभावशाली कार्य अब तक नहीं किया। यह एक अन्तर्राष्ट्रीय समस्या है और भारत सरकार को भी इसमें सजग रहना चाहिए था। किंतु इस मामले में वह भी आसाम सरकार से कम बेखबर या अक्षम प्रमाणित नहीं हुई।

आसाम में ही अपने नागरिकों को भेजकर पाकिस्तान संतुष्ट नहीं हुआ। उसके कई हजार नागरिक बर्मा के अराकान प्रान्त में भी घुस गये हैं। किंतु बर्मा सरकार ने इस ओर तुरन्त ध्यान दिया। अब शायद वे बर्मा में अधिक संख्या में न जा सकेंगे।

आसाम में पाकिस्तानियों के इतनी बड़ी संख्या में घुस आने से वहाँ मुसलमानों की संख्या बहुत बढ़ गयी है और यदि शीघ्र ही इसका उपाय न किया गया तो इसके राजनीतिक और अंतर्राष्ट्रीय परिणाम भयावह हो सकते हैं।

अतएव हम देखते हैं कि पूर्वी पाकिस्तान में इस समय दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ चल रही हैं: एक तो अल्पसंख्यक लोगों को निकालने की, दूसरे पड़ोसी देशों में अपने मुसलमान नागरिक भेजकर उनमें मुस्लिम जनसंख्या बढ़ाकर उनकी अल्पसंख्यकों की समस्या को जटिल बनाने की। इन उपायों से पूर्वी पाकिस्तान अपनी आर्थिक और बढ़ती हुई जनसंख्या की समस्या हल करने की आशा करता मालूम होता है।

किंतु पूर्वी पाकिस्तान की नीति का परिचालन पाकिस्तान की सरकार करती है। आज जो कुछ पूर्वी पाकिस्तान में हो रहा है उसका उत्तरदायित्व पाकिस्तान की केन्द्रीय सरकार पर है। केन्द्रीय सरकार रावलपिंडी में है। उसमें पश्चिमी पाकिस्तानवालों का प्राधान्य है। उनके हाथों में शक्ति आ गयी है, पर पश्चिमी भाग की जनसंख्या पूर्वी पाकिस्तान से कुछ कम है। इसलिए उन्हें पूर्वी पाकिस्तान को अधिक प्रतिनिधित्व देना पड़ता है। यदि पूर्वी पाकिस्तान की जनसंख्या कम हो जाय तो पाकिस्तान में पश्चिमी पाकिस्तान का प्राधान्य हो जाय। यह भी एक कारण है जिससे पश्चिमी पाकिस्तान के राजनीतिज्ञ पूर्वी पाकिस्तान की जनसंख्या कम करने को उत्सुक मालूम होते हैं।

जो भी हो, यह निर्विवाद है कि पूर्वी पाकिस्तान के अल्पसंख्यकों—हिन्दुओं, बौद्धों और ईसाइयों—पर वहाँ अमानुषिक अत्याचार हो रहे हैं। वे भागकर भारत में आ रहे हैं। इससे भारत की जनसंख्या की समस्या और भी विषम होती जा रही है तथा विस्थापकों को इस जनसंकुल देश में बसाने में हमारे ऊपर कमरतोड़ आर्थिक और प्रशासनिक भार बढ़ता जा रहा है। नेहरू-लियाकत अली खाँ समझौते के अनुसार दोनों देशों का कर्तव्य है कि अपने अल्पसंख्यकों की रक्षा करें तथा उन्हें पूरे नागरिक अधिकार दें। भारत ने इस समझौते का पूरी तरह पालन किया है, किंतु पाकिस्तान ने उसे पग-पग पर तोड़ा है। विभाजन को स्वीकार करने से भारत का यह नैतिक उत्तरदायित्व है कि पाकिस्तान में रहनेवाले अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करे। पाकिस्तान अपनी अल्पसंख्यक उन्मूलन नीति से बाज नहीं आ रहा किंतु भारत सिवाय कागजी विरोधों के कोई ठोस कार्रवाई नहीं कर रहा। यदि लाखों विस्थापित यहाँ आते हैं तो उनके लिए पाकिस्तान से भूमि माँगी जानी चाहिए। पाकिस्तान अपने यहाँ एक जाति का उन्मूलन कर रहा है। यह जाति-उन्मूलन (जीनोसाइड) राष्ट्रसंघ के सिद्धान्तों के विरुद्ध है, किंतु भारत ने अभी तक इस मामले को राष्ट्रसंघ तक के सामने उपस्थित नहीं किया और न संसार के जनमत को पाकिस्तान के इस कार्य की ठीक-ठीक जानकारी ही दी। यदि पाकिस्तान में रहनेवाले अल्पसंख्यकों की रक्षा करने का यथाशक्य उपाय भारत नहीं करता तो भावी इतिहासकार उसे

अपना कर्तव्य-पालन न करने का दोषी ठहरायेंगे, और वह स्वयं अपनी समस्याएँ बढ़ावेगा। इसके साथ ही उसे पाकिस्तान से आये हुए मुसलमानों को लौटाने की भी तुरन्त और प्रभावशाली कार्यवाही करनी चाहिए, नहीं तो उसके लिए बड़ी जटिल समस्याएँ उत्पन्न हो जायँगी जिनके परिणाम देश के लिए बड़े भीषण हो सकते हैं।

अनुवाद और हिन्दी की प्रगति—दूसरी भाषाओं की पुस्तकों का अनुवाद कई दृष्टियों से प्रत्येक भाषा के साहित्य के लिए वांछनीय है। उससे ज्ञान और विचारों का प्रसार होता है और इस प्रकार के साहित्यिक आदान-प्रदान से सभी साहित्यों की पुष्टि होती है तथा उनका दृष्टिकोण विस्तृत होता है। अतएव हम सिद्धान्ततः अनुवादों के विरुद्ध नहीं हैं। किन्तु कोई साहित्य केवल अनुवादों के भरोसे समृद्ध नहीं हो सकता। यदि कोई भाषा अनुवादों की 'अति' कर दे तो उसका मौलिक कृतित्व कुंठित हो जाता है। सामान्यतः लोग अनुवाद कार्य को सरल समझते हैं। यदि अनुवाद किसी ऐसी भाषा से किया जाय जिसकी प्रकृति और शब्दावली अनुवाद की भाषा से मिलती-जुलती हो तो वह अपेक्षाकृत सरल होता है और उसकी भाषा भी ठिकाने की हो सकती है। किन्तु किसी ऐसी भाषा से अनुवाद करना जिसकी प्रकृति और वाक्य-विन्यास अनुवाद की भाषा से भिन्न हों, तो कठिनाई बहुत बढ़ जाती है। अनुवाद करते समय हम मूल के विचारों को अपनी भाषा में व्यक्त करते हैं न कि उसकी भाषा को। जहाँ मूल पुस्तक का वैशिष्ट्य उसका भाषा-सौष्ठव ही होता है, वहाँ अनुवाद करना अत्यन्त कठिन है। किन्तु अधिकांश अनुवादक अनुवाद करते समय मूल की भाषा पर विशेष ध्यान देते हैं जिससे अनुवाद में जगह-जगह मूल की भाषा का वाक्यविन्यास आ जाता है। वह वाक्यविन्यास अनुवाद की भाषा की प्रकृति के विरुद्ध होने के कारण उसे दुरूह और कृत्रिम बना देता है। कभी-कभी तो उसका समझना भी कठिन हो जाता है।

'अति सर्वत्र वर्जयेत्।' अनुवाद पर भी यह सिद्धान्त लागू है। किन्तु दुर्भाग्य से आज हिन्दी में ज्ञान-विज्ञान के साहित्य की कमी के कारण हम हिन्दी में अनुवाद उपस्थित करने को कटिबद्ध हो गये हैं। भारत सरकार ने संसार की प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का अनुवाद कराने का कार्य अपने हाथ में लिया है। पहिले उसने अनुवाद कराने के लिए ३०० पुस्तकों की सूची बनायी थी। बाद में उस सूची को बढ़ाकर पुस्तकों की संख्या ४५३ कर दी गयी। उत्तर प्रदेश की सरकारी हिन्दी समिति ने ज्ञान-विज्ञान की ३०० पुस्तकें प्रकाशित करने का निश्चय किया था। उनमें भी अधिकांश पुस्तकें अनुवाद कराने के लिए ही चुनी गयी थीं। इनमें से कुछ अनुवाद प्रकाशित भी हो चुके हैं। अनुवाद करने के लिए अधिकतर विश्वविद्यालयों के प्राध्यापक चुने जाते हैं। वे अपने विषयों के विशेषज्ञ होते हैं। कि[illegible] इनमें से अधिकांश को हिन्दी लिखने का अभ्यास [illegible] होता। परिणाम यह होता है कि प्रकाशन-अधिकारि[illegible] के लिए उनका सम्पादन सिरदर्द हो जाता है। कम[illegible] कम एक अनुवाद तो हमने ऐसा देखा जिसकी भाषा [illegible] समझना हमारे लिए भी कठिन था। उसकी भाषा [illegible] 'हिन्दी' कहने में भी संकोच होता है। देखना है कि भा[illegible] सरकार द्वारा तैयार किये गये अनुवादों की भाषा कैसी [illegible]

किन्तु एक साथ इतने अधिक अनुवाद प्रका[illegible] करने का एक परिणाम यह हो रहा है कि हिन्दी में ज्ञा[illegible] विज्ञान के ऊपर मौलिक पुस्तकों का प्रणयन नहीं हो र[illegible] हम अनुवाद की बैसाखी के सहारे कहाँ तक चल सकें[illegible] क्या हमारा ज्ञान-विज्ञान का साहित्य केवल अँगरेजी [illegible] जूठन ही रह जायगा? जब तक हम ज्ञान-विज्ञान [illegible] मौलिक पुस्तकें तैयार नहीं करते तब तक हमारा [illegible] विषयों का साहित्य अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो सक[illegible] हमें खेद है कि इन विषयों पर मौलिक पुस्तकें तैयार क[illegible] के लिए समुचित प्रोत्साहन नहीं दिया जा रहा।

हमारे ऊपर अनुवाद का भूत कितना सवार हो [illegible] है, इसका एक उदाहरण अभी सामने आया है। भा[illegible] सरकार का शिक्षा-विभाग स्कूलों के लिए गणित [illegible] विज्ञान की कुछ पाठ्य पुस्तकें तैयार करा रहा है। [illegible] पुस्तकें अँगरेजी में तैयार की जा रही हैं। भारत-सर[illegible] के अपने स्कूल केवल दिल्ली आदि थोड़े से केन्द्र [illegible] प्रशासित स्थानों ही में हैं। वह चाहती है कि उ[illegible] तयार की गयी पुस्तकें सारे देश में चलें। किन्तु [illegible] देश में स्कूलों की शिक्षा का माध्यम देशी भाषाएँ [illegible] अतएव जो राज्य इन पुस्तकों को अपने यहाँ चलाना चाह[illegible] उन्हें इनका अनुवाद कराना पड़ेगा। राज्यों पर भा[illegible] सरकार का इतना प्रभाव है कि उसके इशारे पर वे उ[illegible] अनुवाद कराकर उन्हें अपने यहाँ चला देंगे। भारत-[illegible] कार इन पुस्तकों को मूलतः देशी भाषाओं में क्यों [illegible] तैयार कराती? क्या हिन्दी, बँगला, गुजराती, मरा[illegible] तमिल, तेलगू आदि भारतीय भाषाएँ इतनी अक्षम हैं [illegible] उनमें स्कूलों के स्तर की भी विज्ञान की पाठ्य-पुस्त[illegible] नहीं लिखी जा सकतीं? यदि इस स्तर पर भी वि[illegible] की पुस्तकें मौलिक रूप से देशी भाषाओं में तैयार [illegible] की गयीं तो विश्वविद्यालयीन स्तर की पुस्तकों का प्र[illegible] यन कैसे और कब संभव हो सकेगा? क्या इस अनु[illegible] की नीति से देशी भाषाओं की उन्नति संभव है? [illegible] भारत या राज्य सरकारों को अपने भाषा-क्षेत्र में [illegible] दो-चार भी योग्य विद्वान् नहीं मिल सकते जिनमें नि[illegible] रित पाठ्यक्रम के अनुसार अपनी भाषा में मौलिक पा[illegible] पुस्तकों के लिखने की योग्यता हो? बात यह है कि [illegible] हीन भावना से ग्रस्त हैं। हम पर अँगरेजी का आ[illegible] बुरी तरह छाया हुआ है। हम सोच ही नहीं सकते [illegible] अँगरेजी के सिवाय देशी भाषाओं में भी मौलिक [illegible]

लिखे जा सकते हैं। और अँगरेजी से आतंकित हमारे प्रभुगणों के बलिष्ठ हाथों में हमारे साहित्य और हमारी शिक्षा की बागडोर है। क्या वे भारत में भारतीय भाषाओं को भी वही स्वराज्य दिला सकेंगे जो राजनीतिक क्षेत्र में स्वयं उन्होंने पा लिया है? क्या ऐसे लोग देशी भाषाओं को उन्नत कर सकेंगे?

विवाह की अर्थनीति—पुराने 'दकियानूसी' लोग विवाह को संस्कार मानते हैं। किन्तु 'विचारकों' का कहना है कि वह एक 'करार' मात्र है। प्रगतिशील लोग विवाह की प्रथा का मूल नारी की आर्थिक परतंत्रता और परवशता में देखते हैं। उनका कहना है कि जहाँ स्त्री-पुरुष समान हैं और आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र हैं वहाँ विवाह केवल 'प्रेम' पर आधारित होता है, और वह तभी तक रहना चाहिए जब तक दम्पति का प्रेम 'ठंडा' न पड़ जाय। यदि प्रेम 'उड़ जाय' तो 'तलाक' का रास्ता पकड़ना ही ठीक है। सिद्धान्त कुछ भी क्यों न हो, आज के संसार में सभी तरह के विवाह होते हैं। किन्तु पाश्चात्य देशों में, विशेषकर उन्नत और प्रगतिशील देशों में, अब अधिकांश विवाह 'संस्कार' न रहकर 'करार' मात्र रह गये हैं। इनका आर्थिक पहलू भी मनोरंजक है। अमरीका में सामान्य जनता अधिकतर रूढ़िवादी विवाह करती है, किन्तु वहाँ अभी तक अधिक वय में विवाह होते रहे हैं। धनी लोग तो प्रायः अधेड़ अवस्था तक धन कमाने में इतने व्यस्त रहते हैं कि उन्हें विवाह करने की फुरसत ही नहीं मिलती। जब उनकी धन-पिपासा शान्त होने लगती है और वे लखपती या करोड़पती हो जाते हैं तब उन्हें विवाह करने की सूझती है। उस समय उनकी अवस्था पचास के लगभग, या उससे भी अधिक होती है। वे सुसंस्कृत और सुन्दरी तरुणी चाहते हैं। उनके धन से आकर्षित होकर उन्हें मनचाहे प्रकार की तरुणी मिल जाती है जो वय में उनसे पचीस-तीस वर्ष छोटी होती है। पंद्रह-बीस वर्षों में मियाँ चल बसते हैं और उनकी सारी सम्पत्ति तरुणी को मिल जाती है। योरप और अमरीका के क्रीड़ा-क्षेत्रों (पैरिस, माण्टेकार्लो, रिवियरा, इटली, स्पेन, स्विटजरलैण्ड, पाम बीच, फ्लोरिडा आदि) में ये धनी विधवाएँ अपने वैधव्य का गम गलत करती देखी जा सकती हैं। हम यह समझते थे कि वहाँ यह सब इसलिए होता है कि वह 'सर्वशक्तिमान् डालर' का पूंजीवादी देश है। यह सब उन देशों में नहीं होता होगा जहाँ साम्यवाद के दौर-दौरे ने पूंजीपति समाप्त कर दिये हैं और जहाँ नारी आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से उतनी ही स्वतंत्र है जितना पुरुष।

किन्तु एक अमरीकन समाचारपत्र के एक लेख ने हमें आश्चर्य में डाल दिया। यह सही है कि रूस में पूंजीवाद नहीं है। वहाँ धन का केन्द्रीकरण भी नहीं हो सकता और स्त्री आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र भी है। किन्तु वहाँ मकानों की बड़ी कमी है। यद्यपि रूस की सरकार नागरिकों के लिए मकानों की व्यवस्था कर रही है तथापि अभी भी असंख्य नागरिक अपना जीवन किराये के एक-दो कमरों में बिताते हैं। कहा जाता है कि रूस में औसत नागरिक के पास केवल ७० वर्ग फुट ढका हुआ स्थान होता है जिसमें उसका सारा जीवन बीतता है। अतएव जिन लोगों के पास अपने मकान हैं उनकी स्थिति (कम से कम विवाह के बाजार में) वहाँ प्रायः वैसी ही है जैसी पूंजीपतियों की अमरीका में है। उपर्युक्त समाचारपत्र ने मास्को के लितरेतुर्नाया गजटा का हवाला देते हुए लिखा है कि वहाँ कम वय की युवतियाँ ऐसे बूढ़ों से विवाह कर लेती हैं जो कब्र में पैर लटकाये हैं। अभी हाल में २४ वर्ष की एक युवती ने ८९ वर्ष के एक बूढ़े से विवाह किया है। यह बूढ़ा अब बिना कान के यंत्र की सहायता के न तो सुन सकता है और न चल-फिर ही सकता है। वहाँ विवाह के लिए सरकारी कार्यालय में अधिकारी के सामने जाना और वहाँ विवाह का निबंधन (रजिस्ट्रेशन) कराना पड़ता है। 'वर' महोदय पहियेवाली कुर्सी में बैठकर सरकारी कार्यालय गये। कुलियों ने सड़क पर से कुर्सी उठाकर कचहरी में पहुँचा दी। वहाँ जो कुछ पूछा गया, उसे 'वधू' ने कान के यंत्र की सहायता से 'वर' को समझा दिया। पंजी में दोनों के हस्ताक्षर हो गये और वे 'पति-पत्नी' होकर लौट गये। विवाह का कारण यह था कि मास्को के उपनगर में 'वर' का अपना निजी मकान है। बूढ़े की मृत्यु के बाद कानून के अनुसार यह उसकी 'पत्नी' को मिलेगा। उपर्युक्त 'गजटा' के लेख से मालूम पड़ता है कि ऐसे विवाह बहुधा हुआ करते हैं और उसने यह सुझाव दिया है कि उत्तराधिकार का कानून इस प्रकार बदल देना चाहिए कि यदि 'पति' अपनी 'पत्नी' के साथ एक वर्ष से कम रहा हो तो 'पत्नी' को उसकी सम्पत्ति न मिले। इससे मालूम होता है कि अधिकांश बूढ़े अपने विवाह के बाद पूरे एक वर्ष भी जीवित नहीं रहते! भारत में कभी-कभी बच्चों को चुरानेवालों की कहानियाँ सुनने को मिलती हैं। इन 'चोरों' को 'लड़कसुंघवा' कहते हैं। रूस की ये तन्वी तरुणियाँ 'बुढ़सुंघवा' कही जानी चाहिए। 'सम्पत्ति' का मोह साम्यवादी रूस में भी विवाह को प्रेम पर आधारित करने में आड़े आ रहा है। यह है 'सम्पत्ति' की महिमा!

सरकार और सरकारी संस्थाओं के प्रकाशन—संविधान की व्यवस्था के अनुसार सरकारी विभागों के हिसाब-किताब की जाँच भारत के महालेखा-परीक्षक करते हैं और जाँच की रिपोर्ट प्रकाशित होती हैं और संसद के सामने पेश की जाती हैं। सन् १९६२, ६३ में केन्द्रीय सरकार के असैनिक विभागों के हिसाब की जाँच रिपोर्ट अभी हाल में प्रकाशित हुई है और इससे सरकारी अपव्यय का कुछ पता चलता है। इस रिपोर्ट में केन्द्रीय प्रकाशन विभाग, नेशनल बुक ट्रस्ट और साहित्य तथा

ललित कला अकादमियों के प्रकाशन में घाटे, कुप्रबन्ध तथा अपव्यय का कुछ विवरण दिया गया है।

रिपोर्ट में बताया गया है कि केन्द्रीय सूचना मंत्रालय के प्रकाशन विभाग पर १९६२, ६३ में २९२४००० रु० खर्च हुए। इससे पूर्व दो वर्षों में २६२३००० और २६१८००० खर्च हुए थे। इस खर्च में छपाई और कागज का खर्च शामिल नहीं है अर्थात् यह केवल वेतन आदि का खर्च है। रिपोर्ट में बताया गया है कि विभाग १७ पत्रिकाएँ निकाल रहा है। इनकी बिक्री और विज्ञापन बराबर घटता जा रहा है और इनपर सन् १९६२, ६३ में ५ लाख ९ हजार और उससे पहले साल ४ लाख ८३ हजार रुपये का घाटा आया। इस घाटे में केवल पत्रिकाओं के कागज, छपाई, बँधाई आदि का ही व्यय शामिल है, दफ्तर खर्च नहीं। सबसे अधिक घाटा पंचायत और सामुदायिक विकास विभाग की अँगरेजी पत्रिकाओं पर आया। अँगरेजी 'पंचायत राज' की वर्ष में करीब १ लाख १७ हजार प्रतियाँ छपीं, केवल ११ हजार बिकीं (मूल्य १५ नया पैसा) छपाई पर ३५ हजार खर्च आया, और बिक्री व विज्ञापन से केवल १६८५ रु० की आय हुई। इसी प्रकार अँगरेजी 'कुरुक्षेत्र' (मूल्य ३५ नया पैसा) की १ लाख ७८ हजार प्रतियाँ छपीं, १९ हजार बिकीं, छपाई पर ९७॥ हजार खर्च आया और बिक्री व विज्ञापन से सिर्फ १४८२० रु० की आय हुई।

कहा जा सकता है कि सरकारी पत्रिकाएँ लाभ-हानि की दृष्टि से नहीं, जनता के ज्ञान-वर्धन के लिए निकाली जाती हैं, इसीलिए इनका मूल्य कम रखा जाता है। प्रश्न यह है कि इतने पर भी इनकी बिक्री इतनी कम क्यों है? जनता इनको क्यों नहीं पढ़ती? फिर पंचायत और सामुदायिक विकास के पत्र अंग्रेजी में क्यों निकाले जाते हैं? यह दावा तो श्री हुमायूं कबीर भी नहीं करते कि गाँवों में अँगरेजी के पाठकों की संख्या बहुत है। मुफ्त ही में बाँटना है तो भारतीय भाषाओं की पत्रिकाएँ बाँटी जायें, जिन्हें लोग कम से कम पढ़ तो सकें।

यह तो पत्रिकाओं का हाल है, पुस्तकों का हाल भी इससे अच्छा नहीं। अप्रैल सन् १९६० से पहले की छपी १२२ पुस्तकों का सन् १९६३ के सितंबर तक करीब १० लाख रुपयों का स्टाक अनबिका पड़ा था। ७३ पुस्तकों की तो आधी से अधिक प्रतियाँ नहीं बिक पायी थीं। करीब १॥ लाख रुपये का पुस्तकों का स्टाक बेकार समझ कर छाँट दिया गया। सन् १९६१ में ७ बरस पर पुस्तकों का स्टाक लिया गया, तो पता चला कि जबकि जमा खर्च से रोकड़ २० लाख ६४ हजार की निकलती है, तो जाँच से १६८००० रु० की कमी और ४३८४२ रु० की वेशी निकलती है। बिना मूल्य प्रकाशनों का तो कोई स्टाक कभी लिया ही नहीं गया।

यह तो सरकारी प्रकाशन विभाग का हाल है। ललित कला अकादमी, साहित्य अकादमी और नेशनल बुक ट्रस्ट सरकारी विभाग नहीं स्वायत्त संस्थाएँ हैं, पर इनका खर्च सरकारी मदद से चलता है। ललित कला अकादमी ने सन् ५४ से ६३ तक १० लाख ४८ रुपए की लागत के ३० प्रकाशन किये। ये सब अँगरेजी के प्रकाशन हैं। इनकी कुल १५१००० प्रतियाँ छपीं जिनमें, आधी से अधिक १९६३ तक नहीं बिकी थीं। करीब ७ हजार रुपए की किताबों को दीमक चाट गये। १८ हजार रु० के चार प्रकाशनों की जिल्दें मुद्रकों के पास रखे-रखे खराब हो गयीं। करीब १० हजार प्रतियों की जिल्दें अकादमी में खराब हो गयीं और इनकी मरम्मत पर ५ हजार रु० खर्च होगा।

इसी प्रकार साहित्य अकादमी ने सन् ६२, ६३ में विभिन्न भाषाओं में करीब सौ प्रकाशन किये, जिन पर १५३८००० रु० खर्च हुए। इनकी आधी से अधिक प्रतियाँ बिना बिकी पड़ी रहीं। २० किताबों की १० प्रतिशत से भी कम और ८ किताबों की १ प्रतिशत से भी कम प्रतियाँ बिकीं। कुछ किताबों की लागत तो उनके बिक्री मूल्य की दुगुनी से पँचगुनी तक है। अर्थात् छपाई पर खर्च अधिक है और यह तब, जबकि इनकी प्रतियाँ दो हजार तो अधिक ही छपती हैं। इन प्रकाशनों के इतना कम बिकने के कारण पर किसी टिप्पणी की जरूरत नहीं।

नेशनल बुक ट्रस्ट ने सन् १९५७ से १९६२ तक ... पुस्तकें प्रकाशित कीं। १९६३ की ३० जून तक इनमें अधिकांश की आधी से अधिक प्रतियाँ नहीं बिक ... थीं। सुख की बात इतनी ही है कि हिन्दी में ९ पुस्तकों की २३ हजार प्रतियाँ छपीं, जिनमें करीब १५ हजार बिकीं, १ हजार मुफ्त दी गयीं और करीब ६ हजार बचीं, जबकि अँगरेजी में १२ पुस्तकों की ४१॥ हजार प्रतियाँ छपीं, करीब २०॥ हजार बिकीं, १५०० मुफ्त बँटीं ... १९॥ हजार बचीं। अन्य भाषाओं में ४५ पुस्तकों की करीब २ लाख प्रतियाँ छपीं, जिनमें १ लाख १० हजार बिना बिकी पड़ी रहीं। यही नहीं सन् १९६२ में ... के प्रकाशन कार्यक्रम की समीक्षा की गयी और इसके फल-स्वरूप ४४ पुस्तकों को छापने का इरादा त्याग दिया गया। इनकी लिखाई पर ३३॥ हजार रुपया खर्च हो चुका ... २२ पुस्तकों की छपाई स्थगित करने का निश्चय हुआ। इनकी ८ पांडुलिपियों पर १८ हजार रुपये खर्च हो ... थे और १३ पुस्तकों को निजी प्रकाशकों के मत्थे ... का निश्चय हुआ। इन पर १२७०० रु० खर्च हो चुके ... इस बीच ट्रस्ट के दफ्तर वेतन कर्मचारी मद्दे १० ... रुपये खर्च हो चुके। मसल चरितार्थ होती है 'खोदा पहाड़ निकली चुहिया'। अन्त में हमारी योग-क्षेमकरी सरकार से यही बिनती है कि प्रभु हमें बख्श दो। यह योग ... बहुत महँगा पड़ रहा है।

सनातन का पुनर्गठन

प्रो० कुबेरनाथ राय एम० ए०

(१)

आज हिन्दू धर्म का रूप वही नहीं है जो १७वीं या १८वीं शती में था। संस्कार एवं भावस्रोत प्राचीन हैं, परन्तु इनकी विकास-भूमि में ही तात्त्विक परिवर्त्तन हो गया है। अतः प्राचीन संस्कारों के बीज से उत्पन्न नये चिन्तन का कल्पवृक्ष एवं प्राचीन स्रोत से निसृत साहित्य एवं वाङ्मय की नयी सुरधुनी अपने में सर्वथा नवीन हैं। आज दर्शन, इतिहास, काव्य, साहित्य एवं नीति-शास्त्र का 'चिन्तन' अभारतीय नहीं; परन्तु 'शैली' अभारतीय हो गयी है। शैली बदलने से चिन्तन का रूप भी नया आकार ले लेता है; उसके आयामों में परिवर्त्तन आ जाता है; परन्तु यह परिवर्त्तन तात्त्विक परिवर्त्तन नहीं। चिन्तन के तत्त्व वही हैं। यह सन्तोष की बात है। हमारा राष्ट्रीय दर्शन है कर्मनिष्ठ वेदान्त। हमारा राष्ट्रीय धर्म है: भक्ति। हमारी राष्ट्रीय सौन्दर्य-दृष्टि है: रस-सिद्धान्त। हमारा राष्ट्रीय साहित्यिक उत्तरदायित्व है: लोकसंग्रह। राष्ट्रीय अस्मिता के ये चार स्तम्भ अब भी धराशायी नहीं हुए हैं; और इनमें कालजयी तत्त्व इसलिए विद्यमान हैं कि इनकी विशाल परिधि में सभी देशी-विदेशी तत्त्व, जो मौलिक सत्यों का प्रतिषेध नहीं करते हैं, समन्वित हो सकते हैं। यह व्यापकता और समन्वय शक्ति ही इनके सनातन अस्तित्व का प्रथम कारण है। दूसरी बात है यह कि हमारी राष्ट्रीय अस्मिता बड़ी ही संवेदनशील है। जरा सा स्पर्श पाकर ही इसे पता चल जाता है कि अमुक तत्त्व मौलिक सत्य का प्रतिषेध है और फिर वह संसार-दुर्लभ तिरस्कार का उदाहरण प्रस्तुत करती है। उस नवीन को यह ग्रहण नहीं कर सकती जो इसके अतीत को सर्वथा अस्वीकार करता है। आज तक इस देश में प्रत्येक नवीन चिन्तन को 'प्रस्थानत्रयी' (उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, गीता) से जोड़ने की परम्परा सुरक्षित रखी गयी है। यदि नवीन चिन्तन प्रस्थानत्रयी के अनुसार प्रामाणिक है तो वह राष्ट्रीय जीवन का अंग बन जाता है। हम न केवल षड्दर्शन श्रुतियों की बात कर रहे हैं, बल्कि विविध वैष्णव सम्प्रदायों से लेकर ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, रोमाण्टिक कविता (रवीन्द्रनाथ और छायावाद), राष्ट्रीय आन्दोलन (तिलक), गांधीवाद (गांधी और विनोबा) सब ने अपनी प्रामाणिकता प्रस्थानत्रयी में खोजी है। इसका एक ओर तो यह फल हुआ कि इन आन्दोलनों में भारतीय संस्कारों के बीज आ गये, दूसरी ओर इन आन्दोलनों ने उक्त संस्कारों के आयामों को विस्तार दिया। अतः विगत शतक का परिवर्त्तन कोई नयी घटना नहीं है। महाभारत युग के बाद, बौद्ध युग के बाद, दूसरी शती के बाद, आठवीं शती के बाद, १२वीं शती के बाद, १५वीं शती के बाद और अन्त में १९वीं शती (पूर्वार्ध) के बाद हम सनातन तत्त्वों के ऐसे पुनर्गठन का स्पष्ट उदाहरण पाते हैं।

(२)

कुछ लोग हिन्दू पुनर्जागरण को प्रतिक्रियावाद मानते हैं। श्री नीरद चौधरी ने, जिनकी प्रतिभा से समय-समय पर लक्ष्यभ्रष्ट दिशाहीन वाण छूटा करते हैं, इस हिन्दू जागरण को 'बर्बरता का पुनरागमन' कहा है। अपनी पुस्तक 'बॉयग्राफी ऑफ ऐन अननोन इंडियन'* में उन्होंने कहा है कि तर्कवादी मानववाद (ब्रह्मसमाज) 'वाद' था और उसका 'प्रतिवाद' हुआ हिन्दू-जागरण। तीसरी अवस्था, 'समवाद' या 'समन्वय', आने ही वाली थी कि गांधीवाद ने आकर समन्वय की कमर तोड़ दी और हिन्दू जागरण को ही शक्तिशाली बनाया। फल हुआ बर्बरता का पुनरागमन। परन्तु यह भ्रामक दृष्टि-कोण है। किन्तु उनका यह कथन तथ्य का अपमान है। तथ्य इस प्रकार चलता है:

(१) ईसाई-अभियान और "क्रुद्धतरुण" (डिरोजियन) दल (**वाद**)।

---

* इस पुस्तक का 'समर्पण' देखिए—"ब्रिटिश सामाज्य की स्मृति में; जिसने हमें प्रजा बना करके भी नागरिकता नहीं दी और जिसे हम में से प्रत्येक ने 'ब्रिटिश न्यायादर्श' के नाम पर चुनौती दी थी—क्योंकि हमारे में जो कुछ भी महत् एवं सप्राण है वह इसी ब्रिटिश राज के द्वारा निर्मित एवं संचारित हुआ है।"

(२) तर्कवाद और मानववाद (ब्रह्मसमाज, आर्य-समाज) (प्रतिवाद)।

(३) हिन्दू महाजागरण (बंकिम से गांधीजी तक) (समन्वय)

परमहंसदेव रामकृष्ण के आगमन के पूर्व हिन्दू धर्म 'प्रतिवाद' के रूप में अवश्य सामने आया। परन्तु वह प्रारम्भिक अवस्था थी। प्रतिवादी हिन्दू धर्म के प्रथम संगठनकर्त्ता थे रायबहादुर राधाकान्त देव, जिन्होंने 'धर्म-समाज' की स्थापना ब्रह्मसमाज के विरोध में उसी वर्ष १८२८ में की। इसका बौद्धिक नेतृत्व बाद में पण्डित शशधर तर्कचिन्तामणि (१८४०-१९२३) और ऋषि बंकिम ने किया। शशधर पण्डित की बातें आज भले ही हास्यास्पद लगें परन्तु उन दिनों उनका बिजली की तरह असर हुआ था। उन्होंने शिखा-सूत्र, षोडश-संस्कार एवं शास्त्र विधियों की व्याख्या भौतिकशास्त्र के आधार पर करनी प्रारम्भ की। वास्तव में यह प्रवृत्ति उस युग के ईसाई धर्म में भी वर्त्तमान थी। अतः शशधर पण्डित की खिल्ली उड़ाने का कोई अर्थ नहीं होता। जब डार्विन ने ईसाई धर्म की मान्यताओं को मिथ्या सिद्ध कर दिया तो प्रत्येक ईसाई मान्यता का आधार विद्युत-विज्ञान और जीव-विज्ञान में खोजा जाने लगा। उस 'अर्ध-विज्ञान' को आज लोग भूल गये हैं। पर विक्टो-रियन युग में उसका पर्याप्त महत्त्व था। ऋषि बंकिम और बाद में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने प्रतिवाद को वैचा-रिक संघर्ष का रूप दिया। रेवरेण्ड हेस्टी एवं के० एस० मेगडानल्ड आदि पादरियों से उनका लिखित शास्त्रार्थ हुआ। बंकिम प्रथम व्यक्ति हैं जिन्होंने सनातन तथ्यों की नवीन और बौद्धिक व्याख्या प्रस्तुत की; गीता पर भाष्य लिखा; एवं श्रीकृष्ण के चरित्र की प्रथम बुद्धिवादी व्याख्या प्रस्तुत की। श्रीकृष्ण के चरित्र के साथ मध्यकालीन वैष्णव धर्म द्वारा स्थापित मूल्यों के आधार पर ठीक से न्याय नहीं किया जा सकता, इसको सबसे पहले समझनेवाले व्यक्ति हैं बंकिम। जहाँ कहीं उन्होंने मिथ्या और वंचना की प्राचीर को पाया, वहाँ निर्भय होकर प्रहार किया। निरन्तर शर-संधान करते रहने के कारण ही रवीन्द्रनाथ ने उन्हें 'सव्यसाची बंकिम' कहा था। बंकिम, और बाद में विद्यासागर, ने हिन्दू प्रतिवाद को प्राचीन कवच से मुक्त कर नवीन बुद्धिवादी कवच पहनाया। ब्रह्मसमाज के मानववादी प्रोग्राम से उनका विरोध नहीं था। वास्तव में समन्वय का प्रारम्भ तो इस प्रतिवादयुग के अन्तर्गत ही उपर्युक्त दोनों व्यक्तियों के प्रयत्न से हो जाता है।

परमहंसदेव--विवेकानन्द--रामतीर्थ

जिस समय केशवचन्द्र सेन के हाथ में ब्रह्मसमाज का नेतृत्व था भारतीय क्षितिज पर परमहंसदेव राम-कृष्ण का आगमन हुआ। ये रानी राशमणि के काली मन्दिर (दक्षिणेश्वर) के प्रधान पुजारी के रूप में सर्व-प्रथम सामने आये। समाधिअवस्था एवं भावोन्माद उन्हें बचपन से ही अपने आप प्राप्त था। इनकी प्रारम्भिक गुरु थी भैरवी ब्राह्मणी, जो बंगाली वैष्णव परिवार में उत्पन्न एक ३५ वर्षीया तेजस्विनी संन्यासिनी थीं। इसीसे इन्हें भक्ति एवं योग-साधना की शिक्षा मिली। बाद में इनका दूसरा गुरु हुआ एक पंजाबी अद्वैतवादी साधु: तोतापुरी। "बहुत सम्भव है कि दीक्षा-मंत्र इन्होंने इसी साधु से लिया हो।" (रोमेरोलाँ)। इनका पहला नाम था खुदीराम। "रामकृष्ण" नाम इसी तोता-पुरी ने दिया था। परन्तु तोतापुरी की अद्वैतवादी निरा-कार उपासना को परमहंस ने स्वीकार नहीं किया और सदैव भक्तिमार्गी वेदान्त एवं मातृशक्ति की उपासना का पक्ष लेकर वाद-विवाद करते रहे। तोतापुरी अद्वैत-वादी मत के अनुसार प्रकृति को मिथ्या-भ्रममात्र मानते थे। परन्तु रामकृष्ण के लिए वही ब्रह्म-शक्ति थी। मूर्त्तिपूजा में भी उनकी घोर आस्था थी। अन्त में तोता-पुरी को इनकी आध्यात्मिक शक्ति का पता लग गया। वे उस स्थान से अन्यत्र चले गये। परन्तु तोतापुरी की वेदान्ती शिक्षा ने परमहंसदेव के सहज योगी मन को सुदृढ़ आधार दिया।

रामकृष्ण काली को प्रेयसी, माता, देवी सब कुछ मानते थे। वे उच्चकोटि के योगी थे। परन्तु उनके योग का आधार सांख्य (ज्ञान) नहीं, 'प्रेम' था। चैतन्य का भावोन्माद और शंकर का वेदान्त उनके शरीर में मूर्त्तिमान हो उठा था। केशवचन्द्र सेन उनका बड़ा आदर करते थे एवं उनके सम्मुख सदैव भूमि पर बैठते थे। रामकृष्ण के शिष्यों का कथन है कि उन्होंने अन्तिम काल में परमहंस देव से दीक्षा भी ली थी। परन्तु रोमें रोलाँ ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'रामकृष्ण परमहंस देव

में इसका खण्डन किया है। मूर्त्तिपूजा के प्रश्न पर दोनों व्यक्तियों में अन्त तक विवाद होता रहा। केशव बाबू मन से उदार थे। उन्होंने अपनी धर्म-यात्राओं में जगह-जगह रामकृष्ण की चर्चा करके इनकी कीर्त्ति फैलायी। अन्त में ईसाई 'फादर' (पितातत्त्व) के साथ-साथ हिन्दू 'मातृतत्त्व' को भी वे परमहंस देव के संसर्ग से ही समान रूप में स्वीकार करने लगे। परन्तु दीक्षा की बात भ्रामक है। महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर पर रामकृष्ण की कोई आस्था नहीं थी। वे उन्हें आध्यात्म में रुचि लेने वाले रईस मात्र मानते थे।* स्वामी दयानन्द को "है, थोड़ा-थोड़ा" कह कर इन्होंने आकलन किया था। "ये ब्रह्मसमाज के उत्सवों में केशव बाबू के निमंत्रण पर जाते थे और वहाँ कबीर के भजनों का आनन्द लेते थे।" ब्रह्मसमाजी भक्त मूर्त्तिपूजा एवं अवतारविरोधी होने के कारण वैष्णव पदावली या श्यामागान नहीं गाते थे। तब गायें क्या? 'गीतांजलि' का जन्म ही नहीं हुआ था। कबीर के भजनों का प्रचलन इसी कारण से ब्रह्म-समाज में पर्याप्त हो गया था। इसी वातावरण में पल कर रवीन्द्रनाथ ने 'गीतांजलि' लिखी एवं कबीर के सौ पदों का अँगरेजी अनुवाद किया। (यह तथ्य है चाहे स्वर्गीय क्षितिमोहन सेन भले ही अस्वीकार करें।)†

परमहंस देव के शिष्यों में प्रधान थे: स्वामी विवेकानन्द। उन्हें हिन्दू महाजागरण का शीर्ष स्रोत बनाने का श्रेय इसी प्रतिभाशाली पुरुष को है। विवेकानन्द ३९ वर्ष की अवस्था में ही शरीर-मुक्त हो गये थे। रामकृष्ण का आशीर्वाद था कि ज्यों ही उनका कार्य पूरा हो जायेगा उनकी कुण्डलिनी सहस्रार में महामिलन प्राप्त कर लेगी। मृत्यु के १ घण्टे पूर्व शिष्यों के साथ बैठकर एक वैदिक कालेज की योजना बना रहे थे। विवेकानन्द की जन्म-शताब्दी भारत ने हाल ही में मनायी है। परन्तु उनकी जीवन-सम्बन्धी बहुत बातों की चर्चा, विशेषतः बंगाल में, लोग भूल रहे हैं। विवेकानन्द के साथ खेतड़ी-नरेश की चर्चा अब बंगाल में नहीं होती। परन्तु विवेकानन्द ने स्वयं कहा था कि यदि खेतड़ी-नरेश नहीं होते तो मैं भारत की कुछ भी सेवा नहीं कर पाता। खेतड़ी राजस्थान की एक रियासत थी। दूसरी बात यह है अपने युग के अन्य आध्यात्मिक नेताओं के संसर्ग में विवेकानन्द आये थे; उनके बारे में उन्होंने जगह-जगह अपना मत व्यक्त किया था; उनकी चर्चा भी अब नहीं के बराबर होती है। उदाहरण के लिए, गाजीपुर के पवहारी बाबा या स्वामी रामतीर्थ हैं। खेतड़ी-नरेश की इस उपेक्षा को देखकर एक राजस्थानी ब्राह्मण ने इस वर्ष अँगरेजी में एक पुस्तक लिखकर इस कमी को पूरा किया है।* इसमें खेतड़ी-नरेश की डायरी और अनेक अप्रकाशित पत्रों को स्थान दिया गया है। खेतड़ी में ही सूरदास के भजन (प्रभु मोरे अवगुन चित न धरो) को सुनकर स्वामीजी ने अपनी विचारधारा में ही संशोधन कर लिया। इसे उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है।

विवेकानन्द का दर्शन 'गतिशील वेदान्त' है। उनका सन्देश है: 'निर्भयता'। उनके सारे उपदेशों का निचोड़ उनके योगचतुष्टय के सिद्धान्त में मिलता है। उन्होंने चार प्रकार के योगों की चर्चा की है जो संन्यास की चार अवस्थाएँ हैं। प्रत्येक संन्यासी को एक के बाद दूसरी अवस्था को क्रमशः पार करना होता है। परन्तु साधारण गृहस्थ को प्रथम अवस्था पार करके द्वितीय के स्पर्श में जीवन बिताना चाहिए। वे चार योग हैं: कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग और ज्ञानयोग। भारत के अद्वैतवादी संन्यासी अक्सर कर्मों के निषेध को कर्महीनता और उत्तरदायित्व-

---

*नवयुवक रामकृष्ण ने महर्षि से प्रथम भेंट में उन्हें अपना वक्षस्थल दिखाने को कहा। रक्तवर्ण वक्षस्थल को वे आध्यात्मिक शक्ति का चिह्न मानते थे। यह चिह्न महर्षि और स्वामी दयानन्द दोनों में उन्हें मिला था। महर्षि इनकी बातचीत से प्रभावित हुए और दूसरे दिन एक गृहोत्सव में निमंत्रित किया, पर कहा—"बड़े-बड़े आदमी आयेंगे। कपड़े ठीक से पहन कर आइयेगा।" रामकृष्ण के असहमति प्रदर्शन पर उन्होंने अपने सहज रूप में ही आने के लिए कहा। रामकृष्ण ने स्वीकार कर लिया। परन्तु संध्या को महर्षि ने आदमी भेज कर निमंत्रण लौटा लिया।

†रामकृष्ण परमहंसदेव सम्बन्धी वे छोटी-बड़ी सारी सूचनाएँ लेखक को रोमेरोलाँ की पुस्तक से प्राप्त हुई हैं, जिनका इस निबन्ध में उल्लेख किया गया है।

*'विवेकानन्द: ए फारगाटेन चैप्टर आफ हिज लाइफ' (पं० वेणीशंकर शर्मा, आक्सफोर्ड पब्लिशिंग हाउस, कलकत्ता) हिन्दी में भी पं० झाबरमल शर्मा की एक पुस्तक इस विषय पर है।

हीनता का रूप दे देते हैं। विवेकानन्द को यह बहुत अखरा। इसीसे उन्होंने संन्यास की पहली सीढ़ी लोकसंग्रह को बनाया जिसे कर्मयोग के द्वारा ही प्राप्त कर सकते हैं। दूसरा है भक्तियोग। यह घोर तर्कवाद एवं शुष्क ज्ञानवाद का निषेध है। उपनिषद् युग के बाद जीवन में भावुकता को स्वीकृति देनेवालों में प्रथम नाम आता है वैष्णव आन्दोलन का। यह सात्वत या भागवत मत कहलाता था। बहुत सम्भव है कि बुद्ध के पूर्व भी यह विद्यमान था। यही रामानुजीय वैष्णव धर्म का आदि रूप है। यही तत्त्व सनातन हिन्दू धर्म को आर्य-समाज, ब्रह्म-समाज आदि से अलग कर देता है। जीवन में प्रेरणा, उल्लास, हर्ष आदि का शुष्क बुद्धि एवं ज्ञान से अधिक महत्त्व है। विवेकानन्द के भक्तियोग स्वीकृत करने का प्रथम कारण तो यह है कि इसके द्वारा निष्काम कर्म की नीरसता दूर हो जायगी और तरल भावुकता से सिंचित हृदय में लोक-संग्रह के बीज ठीक से जम पायेंगे। दूसरा यह कि हृदय की भावुकता जागरित रहने से उल्लास और प्रेरणा का जन्म होगा और ये कर्म के उत्प्रेरक बनेंगे। इसके बाद राजयोग आता है। गुह्य योग-साधना को ही राजयोग कहते हैं। यह हठयोग का सुधरा रूप है जिसमें शरीर के चक्रों को जागृत करने का विधान है। शरीर में अनेक दिक् शक्तियाँ हैं जो सुप्त पड़ी रहती हैं। उन्हें जगाना ही राजयोग का उद्देश्य है। चौथा है ज्ञानयोग जिसका अन्त ब्रह्म साक्षात्कार में है। संक्षेप में, १७वीं, १८वीं शती के गलित व्यक्तिवाद को उन्होंने कर्म और लोक-संग्रह के द्वारा नया संस्कार दिया, और भारत की राष्ट्रीय उपासना पद्धति 'भक्ति' के साथ राष्ट्रीय साधना-मार्ग, शुष्क योग, का समन्वय किया।

विवेकानन्द ने भारतीय दर्शन को नवीन संस्कार तो दिया ही, साथ ही उन्होंने एक साहसपूर्ण बात कही जो सनातनी परिधि के किसी ऋषि ने नहीं कही थी। उन्होंने स्पष्ट बताया कि समाज-व्यवस्था और धर्मव्यवस्था दो चीजें हैं। जो सामाजिक प्रश्न हैं उनका धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं। धर्म के दो अंग हैं: दर्शन और उपासना पद्धति। ये भारत के लिए सनातन हैं। परन्तु समाज-व्यवस्था तो युगानुरूप बदलती रही है और आज भी बदली जा सकती है। इस निर्भीक घोषणा से सनातन धर्म को एक नवीन भूमि पर खड़े होने का अवसर मिला।

रोमेरोलाँ का कथन अक्षरशः सत्य है: "भारत के आधुनि[illegible] महानेता, महाकवि और महासाधक (गांधीजी, रवीन्द्र औ[illegible] अरविन्द) ने इन्हीं दो नक्षत्रों, 'हंस' (रामकृष्ण) और 'ग[illegible] (विवेकानन्द) की छाया में प्रकाश प्राप्त किया है।"

विवेकानन्द के ही समकक्ष हम एक अन्य अन्तर्रा[illegible] ख्यातिप्राप्त संन्यासी को पाते हैं। वे हैं स्वामी रामतीर्[illegible] ये लाहौर में गणित के प्रोफेसर थे। बाद में इन्होंने संन्यास[illegible] लिया। स्वामी विवेकानन्द से इनके सम्बन्ध अत्यन्त म[illegible] थे। स्वामी रामतीर्थ साधक अधिक थे और आध्यात्मिक ने[illegible] कम। भावोन्माद में "कृष्ण-कृष्ण" कहकर रात भर र[illegible] रहते थे। ये चैतन्यदेव के आधुनिक संस्करण थे। हरि[illegible] के पास भावोन्माद में ही शरीर-त्याग भी किया। [illegible] सिद्धान्त से अद्वैतवादी संन्यासी थे। अपने को "रा[illegible] बादशाह" कहा करते थे। इनका माध्यम उर्दू था। य[illegible] स्वामी रामतीर्थ का माध्यम हिन्दी रहता तो जनता [illegible] निकट और आ जाते और उनका हिन्दुत्व के नव संस्क[illegible] में उतना ही हाथ रहता जितना विवेकानन्द और तिल[illegible] गांधी का रहा। उर्दू यू० पी० और पंजाब के साम[illegible] तबके की भाषा थी और यह वर्ग इन प्रान्तों में सबसे निष्क्[illegible] था। इस वर्ग के लिए वेदान्त भी मौज-शौक की वस्तु थ[illegible] उर्दू के महन्तों में भी इस विशाल वेदान्त-परम्परा के गौर[illegible] और प्रचार में कोई दिलचस्पी नहीं रही। इसके कार[illegible] सभी को ज्ञात हैं। फिर भी स्वामी रामतीर्थ का ना[illegible] सदैव से स्वामी विवेकानन्द के समकक्ष रखा जाता है[illegible] यह कहना कठिन है कि साधना में कौन महत्तर था।

गीता, तिलक और गांधी

गीता का दार्शनिक पक्ष वेदान्त है परन्तु व्यावहारि[illegible] स्तर पर वह कर्म एवं भक्ति का उपदेश देती है। गीत[illegible] का प्रारम्भ तो कर्मवाद (तृतीय अध्याय) से होता [illegible] परन्तु उसकी अन्तिम परिणति है भक्ति। निष्काम क[illegible] करें तो क्यों करें? बिना 'कामना' के कर्म-प्रेरणा [illegible] स्रोत कहाँसे आयेगा? इसका उत्तर है: "कर्म तो वास्त[illegible] में "मैं" करता हूँ। तुम तो 'निमित्त' बनते हो। मे[illegible] प्रसन्नता के लिए ही तुम 'निमित्त' बनकर कर्म करोगे।[illegible] अतः निष्काम कर्म हम प्रिय की, आराध्य की, प्रसन्नता [illegible] लिए करते हैं। यही है भक्ति। कर्म की गति गहन है[illegible] समत्वबुद्धि से, बिना किसी व्यक्तिगत कामना से किय[illegible] कर्म, चाहे वह हत्या ही क्यों न हो, वैध कर्म है।

गीता में कर्मवाद का दर्शन लोकमान्य तिलक के द्वारा आविष्कृत हुआ। 'गीता रहस्य' कर्मवाद पर ही आश्रित है। इससे पूर्व 'गीता' को 'योग वाशिष्ठ' जैसा संन्यासी-साहित्य ही माना जाता था। गृहस्थों के लिए इसका उपयोग नहीं था। परन्तु तिलक ने इसको नवीन दिशा प्रदान की। फल यह हुआ कि गीता राष्ट्रीय, सामाजिक एवं साहित्यिक आन्दोलनों की मुख्य प्रेरणा स्रोत बनी।

गांधीजी ने गीता की व्याख्या में एक नया तत्त्व जोड़ा 'कर्म-शुचिता', जिसे वे अपनी भाषा में 'अहिंसा' कहते हैं। कर्म 'निष्काम' रहे, तो भी इसमें एक खतरा है। 'घोर कर्म' भी हम निष्काम रूप में कर सकते हैं। अतः 'कर्म की शुचिता' आवश्यक है। इसीको 'अहिंसा' कहते हैं। अहिंसा का जो अर्थ जैनी लगाते हैं, 'जीवहत्या-निषेध', वही अर्थ ब्राह्मण धर्म नहीं लगाता। इसका अर्थ है 'घोर कर्म या अ-सात्विक कर्म का निषेध।' गांधीजी की भाषा में वह 'अहिंसा' है; परन्तु गीताकार ने कर्म-शुचिता के सिद्धान्त को समत्व बुद्धि-सिद्धान्त में ही अन्तर्भुक्त कर दिया है। जिसके पास समत्वबुद्धि है वह 'घोर कर्म' कर ही नहीं सकता। उसका ऊपर से दिखाई देनेवाला 'घोर कर्म' अन्तर से शुचितापूर्ण अवश्य रहेगा। गांधीजी ने भी गीता की एक सरल व्याख्या प्रस्तुत की है: 'अनासक्ति योग'।*

कहने का तात्पर्य यह कि हमारे पुराने आदर्श फिर से नवीन रूप धारण करके नवयुग के आदर्श बन गये। पुराने सनातन मूल्य अपनी १७वीं-१८वीं शती के परिवेश में हमारे काम लायक नहीं रह गये थे। पर वे मूल्य सनातन हैं। अतः वे मर नहीं सकते। उनका सन्दर्भ बदला जा सकता है, मूल अर्थ नहीं। विवेकानन्द, तिलक और महात्मा गांधी ने उन सनातन मूल्यों को नया सन्दर्भ प्रदान किया। वे फिर से सजीव हो उठे और हमारे राष्ट्रीय जागरण का युग-धर्म बन गये। 'गीता' के बाद दो अन्य ग्रंथ हैं, जिन्होंने कम से कम गाँधीवादी आन्दोलन की संचालना में समान योग-दान दिया। वे हैं 'सत्यार्थ प्रकाश' और 'रामचरित मानस'। हिन्दी प्रान्तों में गाँधीवादी आन्दोलन की सबलता का यही कारण है। राष्ट्रीय आन्दोलन में साहित्य के नये स्वरों का भी योगदान अवश्य है जैसे, 'भारतभारती' (मैथिलीशरण) 'नया शिवाला' (इकबाल) 'आनंदमठ' (बंकिम) और 'पाँचाली सपाटम्' (सुब्रह्मण्यम् भारती) परन्तु प्राण और प्रकाश के स्रोत पुराने स्वर ही थे।

रमण महर्षि और श्री अरविन्द

दक्षिण भारत में रमण महर्षि ने वही कार्य किया जो उनसे बहुत वर्ष पूर्व परमहंस देव ने उत्तर भारत में किया था। रमण महर्षि और योगी अरविन्द अपेक्षाकृत २०वीं शती के व्यक्तित्व हैं। बालयोगी रमण महर्षि का साधना केन्द्र अरुणाचल है। उनका व्यक्तित्व ही उनके आकर्षण का केन्द्र था। ये गतिशील व्यक्तित्व न होकर अचल स्थितप्रज्ञ प्रकाशपुञ्ज थे। इनकी उपस्थिति ने हिन्दुत्व की निष्ठा को जीवित रखा, यद्यपि इन्हें विवेकानन्द जैसा शिष्य नहीं मिल सका जो इनके नाम पर 'ज्ञान-अश्वमेध' का घोड़ा छोड़ दे और इन्हें दिग्विजयी घोषित करे, जैसा कि रामकृष्ण के बारे में विवेकानन्द ने किया। फिर भी महर्षि के तेज से मोह का अन्धकार, आत्महीनता का अन्धकार एवं निष्ठा-हीनता का अन्धकार पर्याप्त मात्रा में दूर हुआ, इसे कौन अस्वीकार करेगा? योगी अरविन्द ने समस्त विश्व का ध्यान अपनी ओर खींचा। उन्होंने प्राचीन योग विद्या का सरल संस्करण 'दिव्य जीवन' के रूप में प्रस्तुत किया है। योगी के अतिरिक्त वे धुरन्धर विद्वान् और विराट् साहित्यकार थे। परन्तु उनका माध्यम अंग्रेजी है। इसी से डर है कि उनकी सारी विरासत, सारी देन, बौद्धिक विलास का साधन मात्र बनकर रह जायेगी। यदि उनका माध्यम बँगला या हिन्दी (योगी अरविन्द अच्छी हिन्दी जानते थे) होता तो उनका प्रभाव स्थायी होता। संस्कारों का आविष्कार बुद्धिजीवी वर्ग करता है, परन्तु उन्हें स्थायी बनाने की सामर्थ्य जन वर्ग में है, उनमें नहीं। अनुवाद के माध्यम से पहुँचायी वाणी प्राणहीन होती है। परन्तु योगी अरविन्द और डा० राधाकृष्णन का महान् उत्तराधिकार इस देश को 'सेकण्ड हैण्ड' (जूठन के रूप में) ही मिलेगा।

दिव्य जीवन का अर्थ है शरीर की भौतिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों का एक सन्तुलित ढाँचे में विक-

*गीता की अन्य व्याख्याओं में अरविन्द की योग-मार्गी व्याख्या और विनोबा भावे की लोक-मार्गी व्याख्या विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन दोनों से अलग स्व० स्वामी सहजानन्द सरस्वती (बिहार के किसान नेता) की 'गीता बोधिनी' (मार्क्सवादी व्याख्या) का भी अपना मौलिक महत्त्व है।

सित करना। साधारण मनुष्यों के लिए सन्तुलित जीवन ही 'योग' है। योगी अरविन्द ने दिव्य जीवन में कामवृत्ति को भी अन्तर्भुक्त किया है। कामवृत्ति से यदि आध्यात्मिक सन्तुलन नष्ट होता है तो वह त्याज्य है, परन्तु आध्यात्मिक सन्तुलन के ढाँचे में यदि जीवन को आनन्द और तरलता प्रदान कर सके, तो उस अवस्था में त्याज्य नहीं। इस प्रकार योगी अरविन्द ने योग-मार्ग को नवीन और व्यावहारिक संदर्भ प्रदान किया।

× × ×

इस प्रकार हम देखते हैं, कि इस युग में हिन्दू दर्शन के समस्त अंगों को नयी व्याख्या, नया परिष्कार, प्रदान किया गया। दर्शन बदलने के कारण जीवन की पद्धति अर्थात् पैटर्न भी परिवर्त्तित हो गया है। जीवन-पद्धति पर बाहरी तथ्यों का--जैसे नयी शिक्षा, औद्योगिक क्रान्ति, वर्ग संघर्ष का जन्म, आदि का--प्रभाव भी पड़ा है। इस बदली हुई जीवन-पद्धति को स्वस्थ एवं परिष्कृत करने के लिए दर्शन का पुनर्परिष्कार आवश्यक था। आज सनातन मूल्य अपने नवीन संदर्भ में फिर इस योग्य हो गये हैं कि बदली हुई जीवन पद्धति में वे प्रेरणा के स्रोत बन सकें। यदि ऐसा न किया गया होता तो एक ओर तो सनातन मूल्य विस्मृति के गर्त्त में चले जाते और दूसरी ओर नवीन जीवन पद्धति कोई सजातीय मूल्य न पाकर पथभ्रष्ट हो जाती। इसका अर्थ होता इस राष्ट्र की सांस्कृतिक मृत्यु।

(३)

विगत राष्ट्रीय आन्दोलन हिन्दू राष्ट्रीयता का आन्दोदोलन था। इस पंक्ति को पढ़कर कुछ लोग तो चिढ़ेंगे ही, क्योंकि यह चर्चिल और जिन्ना की कही बात है। बात में पौने सोलह आना से कम सत्य नहीं। परन्तु इसके साथ साथ दो बातें और स्मरण रखनी चाहिये। प्रथम तो यह कि विवेकानन्द, तिलक और गांधी द्वारा परिष्कृत हिन्दू राष्ट्रीयता हीन, संकीर्ण या पुराण-पंथी राष्ट्रीयता नहीं थी। इसे 'लीग' मनोवृत्ति का हिन्दू संस्करण मानना भूल होगी। इसका रूप व्यापक और उदार था। इसमें मुहम्मद और जीसस के अपमान के लिए या निरादर के लिए कहीं भी स्थान नहीं था; बल्कि इसका आदर्श 'वसुधैव-कुटुम्ब' था। दूसरी बात यह कि हिन्दू राष्ट्रीयता को जानबूझ कर तिलक-गाँधी या नेहरू-पटेल नहीं लाये। विशेषतः नवीन नेतृवर्ग ने तो जहाँ तक हो सका इसका तिरस्कार ही किया। परन्तु जिस वायुमण्डल में सां[illegible] ले रहे हों, उसका तिरस्कार कितने क्षण तक नासिका [illegible] कर करते रहेंगे? प्रकृति-धर्म के अनुसार यह हि[illegible] राष्ट्रीयता अपने आप प्रविष्ट कर गयी थी।

ऐसा होना ही था। किसी भी आन्दोलन को शु[illegible] बौद्धिक पथ पर नहीं चलाया जा सकता। भावु[illegible] और कल्पना को जागृत किये बिना कोई क्रान्ति नहीं [illegible] सकती। राष्ट्रीय भाव-राशि एवं राष्ट्रीय कल्पना [illegible] मूलतः हिन्दू हैं। इन ६००-७०० वर्षों की अवधि [illegible] इस्लाम अपने को अलग रखने की चेष्टा में सदैव [illegible] रहा। उर्दू में विश्व की किसी भी भाषा के शब्द प्रसन्नता [illegible] ले लिये जायेंगे, परन्तु संस्कृत के नहीं। साहित्य के नाय[illegible] एवं काव्य-प्रवृत्तियों--कवि-परम्पराओं के प्रश्न पर [illegible] इस्लाम और भी कट्टर है। ऐसी अवस्था में राष्ट्[illegible] कल्पना और राष्ट्रीय भाव-राशि में स्वभावतः ही इस्ल[illegible] का अंश अत्यल्प होगा। यह तो हुई राष्ट्रीय चेतना [illegible] मनोवैज्ञानिक गति। दूसरी बात है, गैर-हिन्दू नेताओं [illegible] राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति दृष्टिकोण। १८८७ में मद्रा[illegible] कांग्रेस (तीसरा अधिवेशन) के अवसर पर सर सै[illegible] अहमद खाँ ने कहा था--"If you want that coun[illegible] should groan under Bengali rule..........in t[illegible] name of God, jump into the Madras Mail" ([illegible] चाहते हो कि देश बंगाली-शासन से पीसा जाय.... खुदा के नाम पर मद्रास मेल में सवार हो जाओ) बाद [illegible] मुसलमान राष्ट्रीय आन्दोलन में आये। परन्तु एक[illegible] के नाम पर नहीं, सौदा के नाम पर। और डा० लोहि[illegible] के शब्दों में, मुस्लिम जनता में कांग्रेसी मुस्लिम नेताओं [illegible] कभी भी कोई प्रभाव नहीं था। ऐंग्लो इण्डियन ईसा[illegible] वर्ग आज भले ही अपनी सभी बात नेहरूजी से मनवा [illegible] परन्तु राष्ट्रीय आन्दोलन से इसका सहयोग प्रारम्भि[illegible] अवस्था के बाद (जब आन्दोलन स्वराज्यवादी हो गया [illegible] नहीं के बराबर रहा। असहयोग आन्दोलन में सिर्फ ए[illegible] ईसाई सज्जन ने इसका समर्थन किया था: जार्ज जोजेफ [illegible] ये मद्रास के सबसे पुराने ईसाई घराने के 'टामिस्ट' ईसा[illegible] थे। पारसी वर्ग का योगदान निश्चय ही महान् है [illegible] प्रारम्भिक अवस्था में इन्होंने ही क्रान्ति को संचालि[illegible] किया था। पर जैसे-जैसे आन्दोलन उग्रतर होता गया [illegible] ये लोग पृष्ठभूमि में चलते गये। इस प्रकार भावात्म[illegible]

१९६४

…तना एवं संघटन-संचालन दोनों के लिए आन्दोलन …हिन्दुओं पर ही निर्भर था।

(४)

हमने विगत १०० वर्ष में घटित हुए उन भाव-परि…वर्तनों की चर्चा की है जिन्होंने अभिनव हिन्दू धर्म के …नये आयामों की सृष्टि की है। आज हमारा प्रतिनिधि …दर्शन वेदान्त कर्मवादी बन गया है। हमारी प्रतिनिधि …साधना पद्धति, भक्ति, उपचार-प्रधान न होकर भाव-…प्रधान एवं अनौपचारिक हो गयी है। साथ ही आज हम …मानते हैं कि धर्म के मूल्य सनातन (Absolute) होते हैं …परन्तु समाज व्यवस्था और जीवन-पद्धति के मूल्य युग-…सापेक्ष (Relative) होते हैं और वे बदले जा सकते …हैं। उदाहरण के लिए, वर्णाश्रम का सिद्धान्त है। आश्रम …तो बहुत पहले ही समाप्त हो गया। शायद ही मुगल युग …में सभी लोग चारों आश्रमों की जीवन-पद्धति मानते थे। …यदि ऐसा होता तो बालविवाह, वृद्ध-विवाह की कुरीतियाँ …जो आश्रम-व्यवस्था का घोर तिरस्कार हैं, १७वीं, १८वीं, …शती में क्यों चलतीं? आश्रम-व्यवस्था की परिकल्पना में …स्थायी महत्त्व के तत्त्व थे। ऐसी व्यवस्था से राष्ट्रीय जीवन …संतुलित और सुखी रहता। ऐसी व्यवस्था प्राचीन स्पार्टा …में भी थी। इसी प्रकार की व्यवस्था की कल्पना प्लेटो …की यूटोपिया 'रिपब्लिक' में भी है। परन्तु यह पतन, …प्रमाद तथा राजनीतिक दासता के कारण नष्ट हो गयी। …वर्ण और आश्रम दोनों संयुक्त सिद्धान्त थे। इनमें असली …महत्व 'आश्रम' का ही है जिसे हम जीवित नहीं रख सके। …रह गया 'वर्ण'। 'वर्ण' प्रथम तो आश्रम-व्यवस्था की …अनुपस्थिति में मूल्यहीन है। दूसरा यह कि इसका उद्देश्य …भी बिना गांधीजी या सन्तराम के आन्दोलन के ही, हमारे …ही द्वारा नष्ट हुआ है। श्रीकृष्ण का चातुर्वर्ण्य का सिद्धान्त …गुणों की शुद्धता की रक्षा के लिए है। परन्तु औद्योगिक …क्रान्ति के बाद भारत में वर्गों का जन्म हुआ। मजदूर वर्ग, …मध्यम वर्ग, उच्च मध्यम वर्ग आदि नये वर्ग बने। वर्ण …और वर्ग दोनों एक ही पथ पर या समानान्तर पथ पर नहीं …चल सके। 'क' का वर्ण ब्राह्मण है तो वर्ग मजदूर। 'ख' …का वर्ण ब्राह्मण है तो वर्ग मध्यमवर्ग। 'ग' का वर्ण …ब्राह्मण है, वर्ग पूंजीपति। एक ही वर्ण में विविध वर्ग, एवं …एक ही वर्ग में विविध वर्ण आ गये। 'वर्ग' से ही कर्मों …का नियंत्रण होने लगा। कर्म बदलने पर गुण भी उस पुश्त में न सही दो पुश्त बाद तो बदल ही जाते हैं। जब 'गुण' बदले, तो गुणों की शुद्धता के लिए संस्थापित वर्ण-व्यवस्था का कोई अर्थ ही न रहा। यही देखकर स्वामी विवेकानन्द ने घोषित किया कि धार्मिक मूल्य और समाज-व्यवस्था अलग चीजें हैं। समाज-व्यवस्था तो बाहरी वातावरण के दबाव से बदल ही जायगी। उसकी चिन्ता न करके धार्मिक मूल्यों की रक्षा की चिन्ता करनी है।

हम अपने धर्म के सनातन मूल्यों की रक्षा करते हुए उनके पुनर्गठन में इसलिए सफल हुए हैं कि हमारे पास दो शक्तिशाली वृत्तियाँ थीं। एक है सर्वांगपूर्ण सन्तुलित व्यक्तित्व। हिन्दू धर्म बौद्ध सम्प्रदाय की तरह एकांगी नहीं। इसका आदर्श वीर, रौद्र, शृंगार और करुण आदि भावों का सन्तुलन है, दमन नहीं। यही इसकी सजीवता है। दूसरी वृत्ति है समन्वय-कारिणी प्रतिभा। यह हर्ष-वर्धन-युग के बाद निगड़बद्ध हो गयी थी। १०वीं शती से १२वीं शती का युग गलित युग (डिकेडेन्स) है। पहले पहल इसे पुनः जागरित करने का श्रेय मानववादी हिन्दू (सनातनी नहीं) आन्दोलनों, यथा ब्रह्मसमाज आदि, को है। खेद है कि स्वतन्त्रता के बाद दोनों प्रवृत्तियों का ह्रास हुआ है। सर्वांगपूर्ण व्यक्तित्व के स्थान पर एकांगी बौद्ध व्यक्तित्व की दुहाई दी जाती है और समन्वय के स्थान पर अनुकरण होता है। विशेषतः हिन्दी प्रान्तों में अनुकरण पर अधिक जोर है। किसी राष्ट्र के मानसिक परिवर्त्तन का अध्ययन छोटी-छोटी बातों को लेकर ही किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने हाल ही में अपने एक लेख में बताया है कि पश्चिमी यू० पी० और पंजाब में धोती का प्रयोग धार्मिक अवसरों पर भी नहीं होता है। शेरवानी और चूड़ीदार पैंजामा भी हो तो कोई बात नहीं। परन्तु अब तो, सत्यनारायण की कथा कहनेवाले पण्डितजी भी बुशशर्ट और पैण्ट में बैठकर कथा कहते हैं! आधुनिक कविता और 'नयी कहानी' की बात छोड़िए। यह छोटी सी बात ही इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि राष्ट्र की समन्वय-शक्ति का ह्रास हुआ है। समन्वय के नाम पर अनुकरण की ही प्रधानता है।

(५)

समन्वय एवं सन्तुलन के पुनरागमन के अतिरिक्त दो अन्य तथ्यों की ओर हम संकेत करेंगे क्योंकि अभिनव

हिन्दुत्व के स्थायित्व के लिए इन पर ध्यान अत्यावश्यक है। प्रथम तो यह कि अभिनव हिन्दुत्व की एकसूत्रता के लिए एक भाषा आवश्यक है। भारतीय इस्लाम इस अर्थ में हिन्दूधर्म से प्रगतिशील एवं अधिक शक्तिशाली सिद्ध होता है। भारत में आने पर तुर्क मंगोलों ने अरबी का आग्रह छोड़कर फारसी को अपनाया। फारसी के जाने के बाद आज इस्लाम की अखिल भारतीय भाषा उर्दू है। केरल हो या आसाम, अब भारत के प्रत्येक प्रान्त का मुसलमान उर्दू को "अपनी भाषा" मानने लगा है। आये दिन अक्सर इकबाल की चर्चा बँगला या असमिया पत्रों में होती है। यह एक प्रशंसनीय प्रयास ही कहा जायगा। डेढ़ चावल की खिचड़ी पकानेवाली हिन्दू जाति कम से कम एक बार इस तथ्य पर सोचे तो अच्छा होगा। डा० ए० ए० ए० फैजी ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक 'माडर्न अप्रोच-टु-इस्लाम' में इस सिलसिले में उस्मानिया वि० वि०, अलीगढ़ वि० वि० आदि के प्रयत्नों की सराहना की है। खेद है कि हिन्दी को कोई भी सर सैयद, या निजाम नहीं मिला। हिन्दी ही एकमात्र ऐसी भाषा है जो संस्कृत के पुराने कार्य को करने में क्षमता रखती है। इस तथ्य को वैदिक सभ्यता का पुनरागमन चाहनेवाले दयानन्द स्वामी ने भी समझा था। कोई भी समझदार व्यक्ति संस्कृत के प्रति उनके प्रेम पर संदेह नहीं कर सकता। परन्तु देशकाल का यथार्थ समझ कर उन्होंने ऐसा किया। हमें फिर उसी यथार्थवादी ढंग से सोचना है।

दूसरी बात यह है कि हमें अपनी पुराण-परम्परा (myth) और सांस्कृतिक कर्मकाण्डों (rituals) की सतर्कतापूर्वक रक्षा करनी चाहिए। यदि कहीं इनका कोई अंश मृत एवं प्रेरणा-हीन जान पड़े तो उसमें नयी प्राण-प्रतिष्ठा करनी चाहिए। किसी भी जाति की संस्कृति का जीवित रहना उसके साहित्य के नायकों, कवि-प्रसिद्धियों, कवि-परम्पराओं (संक्षेप में पुराण-परम्परा या myth) तथा उसके उपासना विधान, उत्सवविधान (कर्मकाण्ड या rituals) के जीवित रहने पर निर्भर है। श्राद्ध, विवाह विधि एवं षोडशसंस्कार कर्मकाण्ड (rituals) के ही अंग हैं। यदि हम मानते हैं कि उनका कोई अंश युगधर्म के विपरीत एवं हानिकारक है तो उसे हम नवीन संस्कार दे दें, तो कोई हानि नहीं। परन्तु इनके परित्याग का अर्थ होगा संस्कृति एवं धर्म की मृत्यु। संस्कार का अर्थ तिरस्कार नहीं होता। परन्तु ये पुराण-परम्परा और कर्मकाण्ड तभी जीवित रह सकते हैं जब ये हमारी श्रद्धा को खींचते रहें। अश्रद्धावादी साहित्य, निष्ठाहीन दर्शन, जो आजकल साहित्य से आरोपित हो रहा है, हेय एवं तिरस्कार योग्य है। टी० एस० इलियट, एवं बाद में डब्ल्यू० एच० आॅडेन ने जिस प्रकार ईसाई-पुराण परम्परा में श्रद्धा के बीज खोजने की चेष्टा की है, उसी बीज को हमें भी वेद और वैष्णव धर्म में ढूँढ़कर पुनः पल्लवित करना है। श्रद्धा या भक्ति जीवन का आन्तरिक बल है। यह जब तक है तब तक ही हिन्दू धर्म भी है। अन्त में हम ऋषि बंकिम के 'आनन्दमठ' की 'उपक्रमणिका' से एक उद्धरण देकर अपनी बात समाप्त करते हैं :

"उस अन्तहीन घोर अरण्य की सूची-भेद्य अन्धकारमयी रात्रि में, उस भयंकर निस्तब्धता को चीरती हुई आवाज आयी : 'क्या मेरी मनोकामना पूरी नहीं होगी?' शब्द होने के बाद ही घोर वन एक बार फिर निस्तब्धता में डूब गया। कौन बोला? इस घोर अरण्य में मनुष्य का कण्ठ-स्वर कैसे सुन पड़ा? कुछ काल बीतने पर उस चुप्पी को मथता हुआ फिर वही स्वर उठा :

'क्या मेरी मनोकामना पूरी नहीं होगी?'

इस प्रकार तीन बार अंधकार-समुद्र आलोड़ित हुआ। इसके बाद उत्तर आया : 'दाव पर क्या लगा रहे हो?' प्रत्युत्तर में वही मनुष्य-कण्ठ सुनाई पड़ा : 'मेरा जीवन सर्वस्व दाव पर है।'

'जीवन तो तुच्छ है। सभी उसका त्याग कर सकते हैं।'

'तो फिर मेरे पास है क्या? और क्या दूं?'...

तुरत उत्तर आया : 'भक्ति।"



नेपाली 'भारतेन्दु'

"नेपालेन्दु" श्री मोतीराम भट्ट

प्रो० राजनाथ पांडेय, त्रिभुवन विश्वविद्यालय, काठमांडौ

नेपाली भाषा के आदिकवि भानुभक्त आचार्य के पूर्व बहुत से कवि हुए थे, किन्तु उन लोगों की भाषा पर मैथिली और हिन्दी (नेपाली के अनुसार हिन्दुस्यानी) भाषा का अधिक प्रभाव था। उदाहरण के लिए निम्नांकित उद्धरण पर्याप्त होंगे :—

१. जलैमा स्थलैमा स्ववच्छा **हरण्मा** (मैथिली)
२. बड़ी बाग माहाँ बड़ी **छर्दवाली** (मैथिली)
तथा
३. **आइनाथ शरणागत तेरी।**
दासिहूँ चरण को म जन्म को,
वात राख अब नाथ शरण को।। (हिन्दी)

स्पष्ट ही इन पंक्तियों में उस समय की प्रसिद्ध लावनी की निम्न पंक्तियों का प्रभाव है :—

कर गहे दुसासन चोर लाज गइ मेरी।
दुख हरो द्वारकानाथ शरण में तेरी।

यही कारण है कि भानुभक्त नेपाली के प्रथम या आदिकवि अथवा नेपाली साहित्य के प्रथम अधिष्ठाता माने जाते हैं। नेपाली को नेपाली भाषा बनाने का श्रेय भानुभक्त ही को है, नहीं तो यह साधारण बोल-चाल की भाषा 'खसकुरा' या 'परबतिया' ही कही जाती थी। 'खस' या 'खसिया' कश्यप शब्द का अपभ्रंश है। काश्यप गोत्रीय क्षत्री खस-जाति के कहे जाते, और उनकी भाषा 'खसकुरा' कहलाती थी। अँगरेजों ने खसकुरा को "KHASKURA" लिखा जिसे कुछ लोगों ने 'खासकुरा' पढ़ा और अर्थ लगाया कि वह कुरा (वार्ता) जो खास या विशेष होती है। वास्तव में यह शब्द 'खासकुरा' नहीं 'खसकुरा' ही है।

भानुभक्त का व्यक्तित्व अत्यन्त निरपेक्ष एवं एकाकी था। वे संस्कृत के विद्वान् थे। उनमें देश और जाति के गौरव के समान ही धर्म और संस्कृति के गौरव के प्रति भी अपार आस्था और तन्मयता थी। यही कारण है कि उनका काव्य 'क्लासिक' हो गया है। किन्तु भानुभक्त के जीवनकाल में ही, और उनके पश्चात् अत्यधिक वेग से नेपाल के पड़ोसी भारत में आधुनिकता का प्रवेश होने



नेपाल के भारतेन्दु

लगा था जिससे नेपाल बहुत दिनों तक अछूता रह नहीं सकता था। नेपाली साहित्य के विकास में यह बहुत ही सौभाग्यपूर्ण घटना घटी कि ठीक अवसर पर एक ऐसे क्रान्तदर्शी कवि और साहित्यकार का नेपाल में आविर्भाव हुआ जिसने एक ओर तो नेपाली साहित्य में आधुनिकता की स्थापना की, और दूसरी ओर अपने पूर्ववर्ती युग के प्रतिनिधि महाकवि भानुभक्त का अत्यन्त श्रद्धा के साथ नेपाली साहित्य में पुनःस्थापन किया। इस प्रकार उन्होंने प्राचीन और अर्वाचीन का यथोचित समन्वय किया। जिस प्रकार बहुत प्राचीन काल से ही काशी के पांडित्य का स्रोत नेपाल के पंडितों द्वारा दोनों देशों में अप्रतिहत रूप से प्रवाहित रहा और अब भी पूज्य पं० पद्मप्रसाद भट्टराई तथा पंडितराज सोमनाथ सिग्द्याल जैसे प्रकांड संस्कृतज्ञों द्वारा आज भी अटूट बना हुआ है, उसी प्रकार इस क्रान्तदर्शी महापुरुष ने काशी के हिन्दी के स्रोत को

भी नेपाली भाषा के साथ संयुक्त किया था। इन महापुरुष का नाम मोतीराम भट्ट था।

मोतीराम भट्ट का जीवन-काल भारतेन्दु के ही समान बहुत स्वल्प था। जिस समय काशी में भारतेन्दु का ३५ वर्ष की उम्र में अवसान हुआ था, मोतीराम जी उस समय १५ वर्ष के थे। उन दिनों उनका निवास काशी में ही था। भारतेन्दु से मोतीरामजी कितना प्रभावित थे, इसका अनुमान उन चार पंक्तियों से हो जाता है जो मोतीराम ने भारतेन्दु के निधन पर कही थीं। वे इस प्रकार हैं :--

बुद्धी मा सिन्धु जस्ता[१] अगम सहन मा भूमिजस्ता सभामा।
हुन् क्या बाचस्पती झैं[२] सरस वचन ले मोह पार्न्या कवित्मा॥
काशीवासी रसिक्[३] का मृदु हृदय विषे सर्वदा बीझनामा[४]।
तत्पर यस्ता पुरुषको मरण किन भयो ? गै दिए बे बखत्मा॥

[जो बुद्धि में सिन्धु जैसे[१] थे, सहनशीलता में भूमि जैसे अगम थे, सभा में क्या ही वाचस्पति समान[२], और कवित्त में सरस वचनों द्वारा मोहित पारने (करने) में; तथा जो काशी-वासी रसिकों के मृदु हृदय में सर्वदा चुभे ही हुए थे ऐसे (कल्याण के लिए) तत्पर पुरुष का मरण हाय! क्यों हुआ? वे चल दिये कैसे असमय में हाय क्यों?]

श्री मोतीराम भट्ट का जन्म सन् १८६६ ई० में (संवत् १९२३ वि० भाद्र कृष्ण अमावस्या के दिन) कान्तिपुर (काठमांडौ) के भोसिकी टोल में हुआ था। भारतेन्दु के ही समान ये भी बड़े रसिक, स्नेही और पैसे का मोह न रखनेवाले महानुभाव थे। इनका जीवनान्त भी केवल ३१ वर्ष के वय में क्षयरोग से हुआ था और इनके भी कोई पुत्र न था। भारतेन्दु के ही समान अपनी मातृ-भाषा और मातृभूमि के ये महान् आराधक थे। इनके दाज्यू (बड़े सहोदर) तथा दिदी (बड़ी सहोदरा) की मृत्यु बाल्यावस्था में ही हो चुकी थी। इससे इनके पिता श्री दयाराम भट्ट जी का इनके प्रति अगाध स्नेह रहता था। उधर इनकी माता श्री विजयराज गुरुजू (राजगुरु) की नतिनी थीं जिससे ननिहाल से भी इन्हें अशेष स्नेह प्राप्य था। नेपाल के राजगुरु श्री ६ कहलाते हैं जब कि राना प्रधान मंत्री केवल श्री ३ ही थे; और महाराजाधिराज भी श्री ५ ही हैं। राजगुरु के पास भी एक सेना होती है जिसे "शार्दूलजंग कंपनी" कहते हैं और जिसका व्यय सरकार के खजाने को वहन करना होता है। प्रत्येक शाही शोभा-यात्रा अथवा पर्वों के अवसर पर काली वर्दी वाले जवान जो सबके आगे-आगे चलते हैं इसी "शार्दूल जंग कंपनी" के सिपाही होते हैं। नेपाल में जात लेने (जाति से च्युत करने) तथा जात देने (च्युत व्यक्ति को पुनः जाति में प्रतिष्ठित करने) का एकमात्र अधिकार गुरुजू का ही होता है। इनमें भी उत्तराधिकार पिता से पुत्र के क्रम में न होकर भ्रातृ-क्रम में ही होता है। यह सब लिखने का एकमात्र प्रयोजन इतना ही कहना है कि भार-तेन्दुजी के ही समान इन "नेपाली भारतेन्दु" श्री मोतीराम भट्टजी का बाल्यकाल भी बहुत ही सम्पन्नता में व्यतीत हुआ था।

कहा जाता है कि बाल्यावस्था से ही मोतीरामजी का स्वभाव शान्त, मिलनसार तथा विद्याव्यसनी था। भट्ट जी के पिता अपनी मझली माताजी के काशीवास के लिए उनके साथ बनारस चले गये तब कुछ दिन बाद संवत् १९२८ में जब कि मोतीरामजी ५ वर्ष के थे इनकी माता-जी भी इन्हें साथ लेकर वाराणसी चली गयीं। वहीं इनका व्रतबन्ध-संस्कार हुआ और चार वर्ष तक पाठशाला में संस्कृत का अध्ययन करते रहे। फिर एक फारसी मदरसे में प्रवेश लेकर इन्होंने फारसी भी सीखी। काशी के प्रसिद्ध वादक श्री पन्नालाल सितारिया के सत्संग में कुछ समय बिताकर भट्टजी ने संगीत-शास्त्र की अभिज्ञता भी अर्जित की। उन्हीं दिनों इन्होंने नेपाली भाषा में कुछ गजलों की भी रचना की। फिर सं० १९३७ वि० (सन् १८८० ई०) में जब कि इनकी अवस्था १४ वर्ष की थी ये बहिन (छोटी सहोदरा) के साथ काशी से नेपाल आये और उसी वर्ष इनका विवाह हुआ। किन्तु विवाह के एक ही वर्ष बाद ये फिर काशी लौट गये। वहाँ जाकर अँगरेजी स्कूल में भरना (प्रवेश) लेकर अँगरेजी पढ़ने लगे। विद्यार्थी-जीवन में ही इन्होंने नेपाली मित्रों की--जिनमें श्री पद्मविलास पन्त, काशीनाथ तथा चेतसिंह आदि का नाम प्रमुख था--मंडली बनाई और प्रथम नेपाली-कविता-संग्रह "मनोद्वेग-प्रवाह" के प्रकाशन की योजना तैयार की।

इन्हें अपने साहित्यिक कार्यों के मुद्रण के लिए कठि-नाई का सामना करना पड़ रहा था। इस कठिनाई को दूर करने के लिए इन्होंने बाबू रामकृष्ण वर्मा के साथ

परामर्श करके तथा आर्थिक सहायता देकर "भारतजीवन" प्रेस की स्थापना की। श्री रामकृष्ण वर्मा से इनकी प्रगाढ़ मैत्री थी। नेपाल में उन दिनों राणा जंगबहादुर के बाद उनके भाई राणा रणोद्दीप सिंह का शासन था। नेपाल के बाहर मुद्रणालय खोलकर समाचार आदि का प्रवर्तन करके भी नेपाल से संबंध बनाये रखना उन दिनों बहुत कठिन था। शायद इसी कारण "भारत जीवन" प्रेस पर मोतीराम भट्ट का प्रत्यक्ष स्वामित्व नहीं था, किन्तु प्रेस के मैनेजर ये ही थे। इससे उक्त संस्था में इनका आर्थिक सहयोग निश्चित ही था; कारण इनकी आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी थी कि बाबू रामकृष्ण वर्मा की चाकरी करने की कल्पना नहीं की जा सकती। इसी प्रेस से सर्वप्रथम इन्होंने भानुभक्त की रामायण का मुद्रण कराया। फिर दो तीन वर्षों के भीतर क्रमशः इनकी अनेक कृतियाँ—— "गजेन्द्रमोक्ष", "प्रंचकप्रपंच", "स्वप्नाध्यायसंग्रह," "शकुनौती", "नीतिदर्पण", "भानुभक्त को जीवनी", "उषाचरित्र", "उखान को बखान", "गफास्टक संकलन", "कमल-भ्रमर-संवाद", तथा "पीकदूत"——प्रकाशित हुईं। इन्होंने "भारतजीवन" नामक हिन्दी-समाचार-पत्र का जो "भारत जीवन" प्रेस से निकलता था, नेपाली संस्करण भी इसी नाम से (नेपाली भारत जीवन) प्रकाशित कराया जो बहुत दिनों तक चलता रहा। यही नेपाली भाषा का सर्वप्रथम समाचार-पत्र था।

संवत् १९४३ वि० (सन् १८८६ ई०) में जब कि वे केवल बीस वर्ष के थे, उनकी कीर्ति नेपाल भर में फैल चुकी थीं। उसी समय नेपाल में धीर शमशेर (राणा जंगबहादुर के सबसे छोटे भाई जो मर चुके थे) के बड़े पुत्र वीर शमशेर ने अपने चाचा रणोद्दीप सिंह की हत्या करके प्रधान मंत्री का पद ग्रहण कर लिया था और जंग-बहादुर के पुत्र-पौत्रों का बड़ी निर्ममता के साथ बध करा डाला था। वीर शमशेर का आतंक भी नेपाल भर में फैल गया था। काठमांडौ में वीर-अस्पताल की स्थापना तथा अस्पताल के भवनों का निर्माण इन्हीं वीर शमशेर ने कराया। आज जहाँ वीर अस्पताल है उसके पीछे ही भोसिको टोल है जिसमें मोतीराम भट्ट का मकान था। बहुत से मकान तोड़े जानेवाले थे, संभवतः इसी कारण तत्कालीन राजगुरु श्री लोकराज पांडेय ने मोतीराम भट्ट को नेपाल में आ बसने की सलाह दी। उनकी प्रेरणा से मोतीरामजी अपनी माता, छोटी बहिन तथा पत्नी को साथ लेकर नेपाल वापस आ गये। यहाँ आने पर इन्होंने पुनः नेपाली साहित्य के संवर्द्धन का प्रयास आरंभ कर दिया और श्री कृष्णदेव पाण्डेय के साथ परामर्श करके पुस्तकों की एक दूकान "मोतीकृष्ण कंपनी" के नाम से ठहेटी मुहल्ले में खोल दी। संवत् १९५१ वि० (१८९४ ई०) में २८ वर्ष के वय में एफ० ए० में पढ़ने के लिए भट्टजी कलकत्ता गये किन्तु वहाँ डेढ़ वर्ष रहे और परीक्षा भी न दे पाये थे कि बहुत बीमार हो गये। रुग्णावस्था में ही किसी प्रकार कलकत्ते से नेपाल वापस आये। उन दिनों कलकत्ते से पटना होकर पटने से मुजफ्फरपुर-सुगौली होते रक्सौल और रक्सौल से अमलेखगंज तक रेल से तथा अमलेखगंज से भीमफेदी होकर पैदल काठमांडौ आना होता था। अतः ऐसी अवस्था में इतनी विकट यात्रा पूरी करके घर (काठमांडौ) पहुँच जाने पर भी ये स्वस्थ नहीं हो सके और सात महीने तक बीमार रहकर केवल ३१ वर्ष की अवस्था में स्वर्गवासी हो गये। मरने के सोलह वर्ष पूर्व काशी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के ३५ वर्ष में दिवंगत होने पर जिन शब्दों द्वारा मोतीराम भट्टजी ने अपने हृदय की वेदना व्यक्त की थी, आज सत्तर वर्ष बाद उनके ही निम्नांकित शब्दों में मैं भी अपनी व्यथा व्यक्त करना चाहता हूँ। वे शब्द थे :——

बुद्धीमा सिन्धु जस्ता अगम सहनमा भूमिजस्ता सभामा।
हुन् क्या बाचस्पतीझैं सरस वचन ले मोह पार्न्या कवित्मा॥
नैपाल्बासो[1] रसिक् का मृदु हृदय बिषे सर्वदा बीझनामा।
तत्पर यस्ता पुरुष् को मरण किन भयो ? गै दिए बे बखत्मा !

मोतीराम भट्ट की प्रायः सभी कृतियाँ मौलिक हैं। "गजेन्द्रमोक्ष" तथा "प्रह्लादभक्ति-कथा" कृतियों का आधार अवश्य पौराणिक कथानक है, फिर भी विषय के प्रतिपादन में लेखक की मौलिकता प्रत्यक्ष है। "पिक-दूत" की शैली में "मेघदूत" का आधार-ग्रहण संभावित है। परन्तु "कमल-भ्रमर-संवाद" विषय और कथानक सभी दृष्टियों से नितान्त मौलिक रचना है।

कई बातों में भानुभक्तीय परंपरा के अनुयायी होते हुए भी मोतीराम भट्ट का दृष्टिकोण तथा कार्य भानु-

---

१. "काशीवासी" के स्थान पर केवल "नैपालबासी" करने की धृष्टता की गयी है। आशा है, सहृदय पाठक इसे अन्यथा न मानेंगे।——लेखक

भक्त की अपेक्षा अधिक व्यापक तथा उपादेय था। नेपाली भाषा को इन्होंने अपनी व्यक्तिगत उपलब्धियों द्वारा अधिक सशक्त बनाया तथा नेपाली काव्य को नवीन दिशाओं का (नवीन विषयों और नवीन उपकरणों द्वारा) दर्शन कराया। कहें तो कह सकते हैं कि इन्होंने नेपाली साहित्य में एक नई जीवन्त परंपरा की प्रतिष्ठा की। इनके व्यक्तित्व में सरलता तथा निरभिमानता थी। यही कारण था कि केवल ३१ वर्ष के स्वल्प वय में जितना अर्जन इन्होंने किया शायद उतना उपार्जन अनेक दूसरे लोग ६१ वर्ष जीवित रहकर भी नहीं कर पाये हैं। भानुभक्त का जीवन-चरित्र रचकर उसे नेपाल में जन-जन तक पहुँचाना और भानुभक्त की रामायण का प्रथम बार मुद्रण कराना तथा उसका नेपाल भर में प्रचार करना साधारण कार्य नहीं था। इस महत्त्व-पूर्ण कार्य में इन्होंने तन-मन-धन सभी लगाया। तीन वर्ष के परिश्रम के बाद इन्होंने "भानुभक्त आचार्य को जीवनचरित्र" का निर्माण किया था। इनका यह अध्य-वसाय तथा अगलों (पूर्वजों) के प्रति यह श्रद्धामय पूत भावना आज के तरुणों के लिए अनुकरणीय है। इस ग्रंथ के आरंभ में "गुणगान" शीर्षक से कवि मोतीराम भट्ट ने भूमिका के रूप में जो ५ छन्द कहे हैं उनमें कवि की महान् सदाशयता एवं आदर्श विनम्रता की प्रतिभा झलक रही है। उनमें से प्रथम तीन छन्दों के उल्लेख का मोह संवरण नहीं होता है। वे इस प्रकार हैं :—

स्वस्ति श्रीयुत भानुभक्त कवि का जीवन् कथा जो थिया।[१]
भाषाका अनुरागिजन हरू सबै जानून्[२] भनी लेखिया।[३]
यस्मा ऊँच र नीच केहि छ भन्या सज्जन् सबै माफ् गरुन्।
तिन्का जीवनको कथा पढ़ि सबै आनन्द सागर् परुन्॥१॥
जाहाँते जति पाइयो उ उति ह्वाँ गै गै सबै सोद्धथ्याँ[४]।
पक्का हाल कविराज को यसरि मो एक्-एक् गरी जोर्दथ्याँ॥
यस्तै रीत्‌सित तीन वर्ष बितिगो जो जत्ति जम्मा गर्‌याँ।
सो सप्पै अब छापि गर्दछु प्रकाश् भन्न्या इरादा धर्‌याँ॥२॥
आफ्ना सक्‌भर गद्य-पद्य मइले मन्‌ले कथेको थियाँ।
यस्तो संग्रह फैलियोस् अब भनी काशी पठाई दियाँ॥

धन्यै भन्छुम राम कृष्णकन[१] ता जस्ले मदत् खुप् दिया।
भारत जीवन यंत्रमा यति कथा छापी प्रकाश गर्दिया॥३॥

भानुभक्त के ही प्रति नहीं, अपने पूर्ववर्ती नेपाल के सभी कवियों का मोतीरामजी ने बड़ी श्रद्धा एवं विनम्रता के साथ स्मरण किया है। उनके ही शब्दों में नेपाल के प्रख्यात तथा बड़े सरस कवि ये थे :—

भानूभक्त बिहारिलाल छबिलाल् पातञ्जली नाम् गरी।
नेपालीहरुमा अनेक कवि छन् भाषा सिलोकमा रची॥
फेरी खूप रसीक भाइ हरुमा राजीवलोचन् भनी।
प्रख्यात छन् कवि हुन् बड़ा सरस का नेपाल देश् का भनी॥

एक नेपाल-निवासी की काशी जाने पर प्रथम बार यह जानकर कि काशी में भी गो-बध होता है, क्या मनोदशा होती होगी इसका पता मोतीरामजी की निम्नांकित पंक्तियों से लग सकता है। उनके कोमल हृदय पर कितना आघात पहुँचा होगा, ये पंक्तियाँ इसका भी पूरा आभास देती हैं। वे पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

भारतवर्ष महाँ अबं यवनले राज् गर्न लाग्या जसै[२]।
सब् बल् तेज् नृपका तहाँ गइगया धनधर्म खोस्या[३] तसै[४]॥
अत्याचार बढ़दै गया यवन का रिस्फेर्न[५] लाग्या तहाँ।
पाई आज अनाथ शान्त गउमा रक्षात गर्छन् कहाँ?
धिक्काअजि यो क्षत्रिका बल महाँ चुप् छन् त गोबध सुनी।
भन्छन् व्यर्थ पुराण गौ र द्विज का रक्षक यिनै[६] हुन् भनी॥
गर्छन कीर्तन धन् लगाइ गृहमा वेश्याहरूका पनि[७]।
मन् तिन्का रति[८] छैन गाइहरुमा[९] जो छन् त ढूला धनी॥

उत्तर-वाहिनी गंगाजी की स्तुति में कही हुई मोती-राम भट्ट की कुछ पंक्तियों का स्मरण और उद्धरण करते हुए उनकी पुण्यस्मृति को अपने प्रणाम के साथ मैं यह प्रसंग समाप्त करता हूँ।

अए माता गंगा गरन मन चंगा अधम का।
बगाया पाप्‌जाला हर सकल माता सकल का॥
कली रूपी जल्मा जबर भइ ना उ सरि तिमी।
डुबौंला क्या हामी अब डर गयो छैननि कमी॥

---

१. थिया=थी। २. भाषानुरागी सभी सज्जन जान लें। ३. लेखिया=लिखा है। ४. जहाँ से जितने का (समाचार) मिला वह उतना (सभी) वहाँ-वहाँ जा जाकर शोधता (ढूँढ़ता) रहा था।

१. रामकृष्ण वर्मा। २. जसै=जब। ३. खोस्या=Forfeited. ४. तसै=तब! ५. रिस्फेर्न=revenge. ६. यिनै=इनको (क्षत्रियों को) ७. वेश्याओं के गृह में भी। ८. रति=रत्तीभर। ९. गाइहरुमा=गायों में।

× × ×

हिन्दू वास्तुकला का चमत्कार—देवगढ़

श्री गोपीचंद श्रीनागर

आनन्दकुमार स्वामी के अनुसार गुप्तकालीन मंदिर भारत के स्वर्णयुग में संस्थापित परम्परा के महकते हैं। गुप्तकाल में भारत की प्रत्येक दिशा और क्षेत्र नये जीवन का संचार हुआ जिसके परिणामस्वरूप हित्य-शिल्प, ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, धर्म आदि में एक भुत शक्ति-सौन्दर्य उदय हुआ। कलाओं में विशेषतया तम निखार आया। कला और विचार के बीच की ई पट गयी।

गुप्तकाल में पंजाब से लेकर आसाम तक और दक्षिण कृष्णा नदी की घाटी तक फैले विशाल भूभाग में सैकड़ों दिरों का निर्माण हुआ जिनके कुछ उदाहरण और शेष आज बच रहे हैं। इन सब उपलब्ध उदाहरणों देवगढ़ स्थित दशावतार मंदिर, हिन्दूमंदिर वास्तुकला चमत्कार रूप में मौजूद हैं जिसका आगे-पीछे कोई कावला नहीं मिलता है। श्री के० भरत अय्यर के अनुसार: 'ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्तकालीन मंदिर स्थापत्य-कला देवगढ़ मंदिर में अपने सर्वोच्च बिन्दु पर पहुँच यी है।' ('इंडियन आर्ट—ए शार्ट इन्ट्रोडक्शन' पृष्ठ ४७)।

यहाँ पर जो कुछ भी अवशेष बच-खुच गये हैं उनसे भारत की प्राचीन संस्कृति और सभ्यता पर काफी प्रकाश पड़ता है। यह कहने की जरूरत नहीं है कि देवगढ़ के दशावतार मंदिर का निर्माण उस स्वर्णयुग की सुघटना जब भाव और विचार कला को वाहन बनाकर चलते । कला एक अनियंत्रित भावाभिव्यक्ति न थी। कला र विचारों की सुनियंत्रित लगाम थी। भावों ने कला का सहारा लिया था और कला ने भावों को बड़े ही सुनियोजित ढंग से अभिव्यक्ति दी थी कि जिसकी प्रशंसा आज करनी पड़ती है। देवगढ़ हिन्दू कला जगत् का एक अद्भुत चमत्कार है जो काल के गाल से हम लोगों की किस्मत से बच गया है। देवगढ़ का दशावतार मंदिर आज सम्पूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं है लेकिन जो कुछ बच रहा है, उससे उसके प्रारम्भिक रूप की झाँकी मस्तिष्क में सरलता से उतारी जा सकती है।

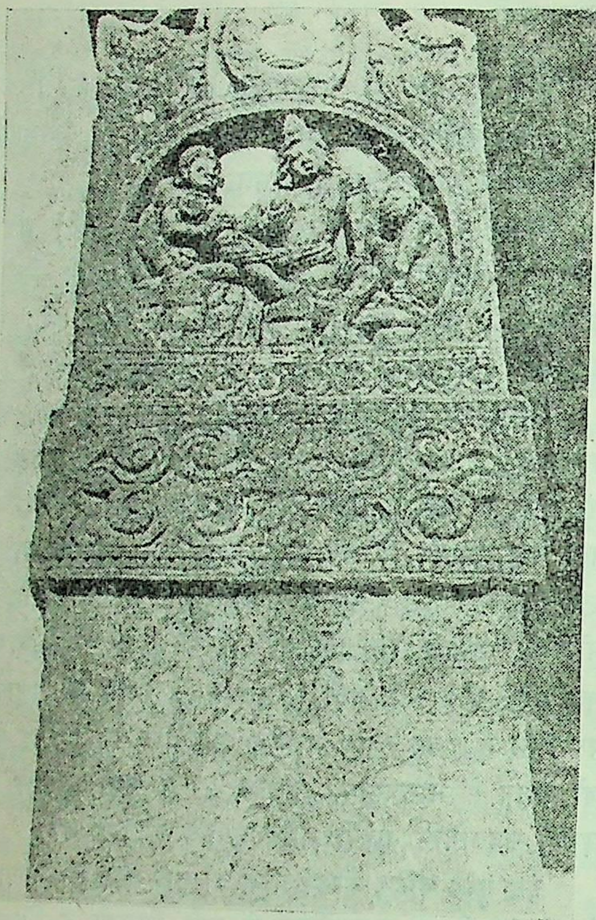
देवगढ़ एकमात्र दशावतार मंदिर के लिये ही दर्शनीय स्थान नहीं है। यहाँकी प्राकृतिक सुषमा निराली है। एकान्त शान्त वातावरण है। पहाड़ी पर जैनियों का तीर्थस्थान है। पास ही विन्ध्याचल की पहाड़ी का सिलसिला है। यहाँपर बेतवा चन्द्राकार बहती है। पहाड़ी से नीचे का दृश्य देखते ही बनता है।

देवगढ़ (२४°३२′ उत्तर तथा ७८°१५ पूर्व) मध्य रेलवे की ललितपुर-बीना लाइन पर जाखलोन रेलवे स्टेशन से ७ मील, तथा ललितपुर से १९ मील की दूरी पर उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश की सीमा के पास है।

देवगढ़ का पुराना नाम केशवपुर है जो कि यहाँ पर प्राप्त एक गुप्तकालीन खम्भे पर उत्कीर्ण गुप्तकालीन शंखलिपि के लेख (५-६वीं शती) में आया है। यह खम्भा यहाँ पर पुरातत्त्व विभाग द्वारा निर्मित गोदाम के बाहर रखा हुआ है। इस गुप्तकालीन प्रशस्ति के अलावा मिहिर-भोज और चन्देल राजा कीर्तिवर्मन के भी अभिलेख (क्रमशः सन् ८६२ ई० और सन् १०९७ ई०) पास की पहाड़ी पर मिले हैं। यह स्थान प्राचीन राजमार्ग पर पड़ता था जो उत्तर में भीतरगाँव, प्रयाग, पटना तथा दक्षिण में एरण, उदयगिरि, साँची आदि से इसे जोड़ता था।

इस गुप्त मंदिर की शैली में दो-चार ऐसी विशेषताएँ हैं जो प्रारम्भिक गुप्तमंदिरों में नहीं मिलती हैं जिसके कारण विद्वानों और कलालोचकों में इसके निर्माण-तिथि के बारे में कुछ मतभेद है। इन लोगों के अनुसार इस मंदिर का निर्माण गुप्तकाल में सन् ५००-६०० ई० के मध्य कहीं हुआ है। प्रसिद्ध कलालोचिका स्टेला क्रैमिश के अनुसार : "ऊँचे चबूतरे पर एकमात्र गर्भगृह पर आधारित तथा सिरपुर मंदिरों के समान ईंटों में बना भीतरगाँव का मंदिर, देवगढ़ और नचनाकुठारा के पत्थर मंदिर, सब ६वीं शती से पहले के हैं।" ('हिन्दू मंदिर' पृष्ठ १४८)। इस मंदिर में शिखर, मुख्य वास्तु के चारों ओर का छज्जा, किनारे के लघुमंदिर बाद में जोड़े हुए लगते हैं। यह मंदिर और भी पुराना है जो सपाट छत के चौपहल गर्भगृह, सीमित अलंकरण, द्वार पर ऊपर गंगा-जमुना की स्थिति, मूर्तिकला की संयत अभिव्यक्ति और विशिष्ट अभिप्रायों, स्तंभों की बनावट आदि से स्पष्ट है।

यह मंदिर विष्णु को समर्पित था जो यहाँ पर प्राप्त विष्णु तथा उनके विभिन्न अवतारों तथा लीलाओं की गुप्तकालीन तथा गुप्तोत्तर मूर्तियों से प्रमाणित होता है।



गुप्तकालीन स्तंभ (देवगढ़)। नीचे शंखलिपि में गुप्त-कालीन लेख का एक अंश दिखलाई पड़ रहा है।

मंदिर के द्वार के ललाटबिंब पर भी विष्णु शेषासन पर विराज रहे हैं। मंदिर का मुख पश्चिम की ओर है जो प्रायः विष्णु मंदिरों की अपनी निजी विशेषता है। यह मंदिर––गुप्त मंदिर, विष्णु मंदिर, दशावतार मंदिर, तथा सागर मढ़ही के नाम से याद किया गया है।

इस मंदिर के विभिन्न हिस्सों में एक मौलिक सन्तुलन और समन्वय है। एक सशक्त पुरुषमंडल के आधार पर इस मंदिर के निर्माण से जो जान स्थापत्य में आयी है, उसकी धड़कन अभी भी इसमें अक्षुण्ण है। चौकोर (५५ फुट ६ इंच लम्बा-चौड़ा) लगभग ९ फुट ऊँचे चबूतरे के मध्य में चौकोर (१८ फुट ६ इंच लम्बा-चौड़ा) ही गर्भगृह है जिसका मुख पच्छिम दिशा की ओर है। गर्भगृह के ऊपर से शिखर को अगर थोड़ी देर के लिये भुला दिया जाय तो मंदिर एक चौकोर इमारत की भाँति रह जाता है। इस प्रकार के मंदिर जिसका कुछ बदला हुआ रूप साँची के मंदिर संख्या १७ में मिलता है––ईसा की शुरू की शताब्दियों में बनते थे, जो गुफामंदिरों से विकसित हुए थे।

यह चबूतरा––जो न अनावश्यक रूप में बड़ा है और न ऊँचा ही––मुख्य मंदिर का सन्तुलन रखता है जिससे पूरे वास्तु में एक जादू पैदा हो गया है। चबूतरे के किनारों पर शिलाबद्ध आवश्यक सोपान हैं। इन सो[पानों] के नीचे प्रत्येक ओर चन्द्रशिलायें हैं। इस सम्पूर्ण [...] से वास्तु एक पद्म के ऊपर बैठाया हुआ लगता है। १९१५-१६ की खुदाई में श्री हारग्रीव्स को इस [...] का पता चला था।

शिखर का निर्माण मंदिरों में बाद में शुरू हुआ [...] पत्थर शिखर युक्त प्रारम्भिक मंदिर यही है। और [...] यह कहा जाय कि कोनों के चार छोटे मंदिर बाद [...] गये हैं तो असंगत न होगा। इन चार छोटे मंदि[रों के] निर्माण से––जिनके केवल अब आधार ही बच रहे [...] पूरे स्थापत्य की भावना में ही अन्तर पड़ा है। जहाँ [...] सम्पूर्ण मंदिर एक कमल पर स्थापित लगता था–– [...] मंदिरों की वजह से, जिनके मुख जोड़े में एक दूसरे [...] दिशा में हैं––ये मुख्य भाग को पालकी-सा उठाये [...] लगते हैं। इन मंदिरों का पता श्री दयाराम साह[नी ने] लगाया था। कुछ भी हो, पंचायतन शैली में बने [...] मंदिरों का देवगढ़ सबसे प्राचीन उदाहरण है। श्री [...] स्वरूप वत्स के अनुसार: "कुछ सर्वोत्तम मूर्तियों से [...] गुप्तकालीन मंदिर वास्तुकला के रत्न हैं। इसमें प्रा[...] गुप्तकला की सबसे सजीव, गहन और परिपक्व [...] व्यक्ति समाहित है जिसकी जीवनी शक्ति ६वीं शती त[क] मंदिर में मिलती है।" (आमुख 'गुप्ता टेम्पिल ऐट देवग[ढ़']

मंदिर का शिखर भी––जो अधिक ऊँचा नहीं [...] होता है––प्रारम्भिक काल का संकेत करता है। [...] छतवाली इमारतों को वास्तु का रूप देने के लिए [...] देवस्थान में उच्च भावना का सन्निवेश करने के लिए [...] कार ने शिखर निर्माण की शक्ल में एक चमत्कारी [...] किया जो बाद तक उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया और [...] के रोके न रुका। इसके शिखर में दो खण्ड होने के [...] भी मिले हैं।

मंदिर के अहाते में जवाबी इमारतों के आधार [...] रहे हैं। साथ ही इधर-उधर पत्थर के स्तंभ, पाद[...] आदि के अवशेष मिले हैं जो मंदिर में प्रयोग कि[ये गये] होंगे। श्री माधोस्वरूप वत्स, भूतपूर्व महानिदेशक [...] तीय पुरातत्त्व विभाग के मतानुसार मंदिर के शिखर [...] आधार पर चारों ओर साधारण चौड़ाई का एक छ[ज्जा] रहा है। इस छज्जे को सहारा देनेवाली पत्थर की [...] का एक नमूना अभी भी बाहर निकला दिखाई पड़ता [है।] यह सम्पूर्ण छाजन अब नहीं है।

मंदिर की तीन तरफ की सीढ़ियों से ऊपर जाने [...] सामने दर्शक को रथिकाबिंबों पर क्रमशः शेषशायी वि[ष्णु] नर-नारायण तपश्चर्या और गजमोक्ष मूर्ति दृश्यों [...] दर्शन होते हैं। ये मूर्तियाँ स्वर्णकाल की देन [...] संभव है इन सीढ़ियों के अगली-बगली बंदिशों के [...]

...र स्तंभों के सहारे, जिनके नमूने देवगढ़ में अब भी ...द हैं—तोरणों या तोरणभाव लिये अर्धमंडपों की ...योजना रही हो जिसके उदाहरण साँची के मंदिर सं० ... और अजन्ता की गुफा सं० १९ के द्वार में आज भी ...त हैं। इसका समर्थन श्री राखालदास बनर्जी के विचारों ...होता है।

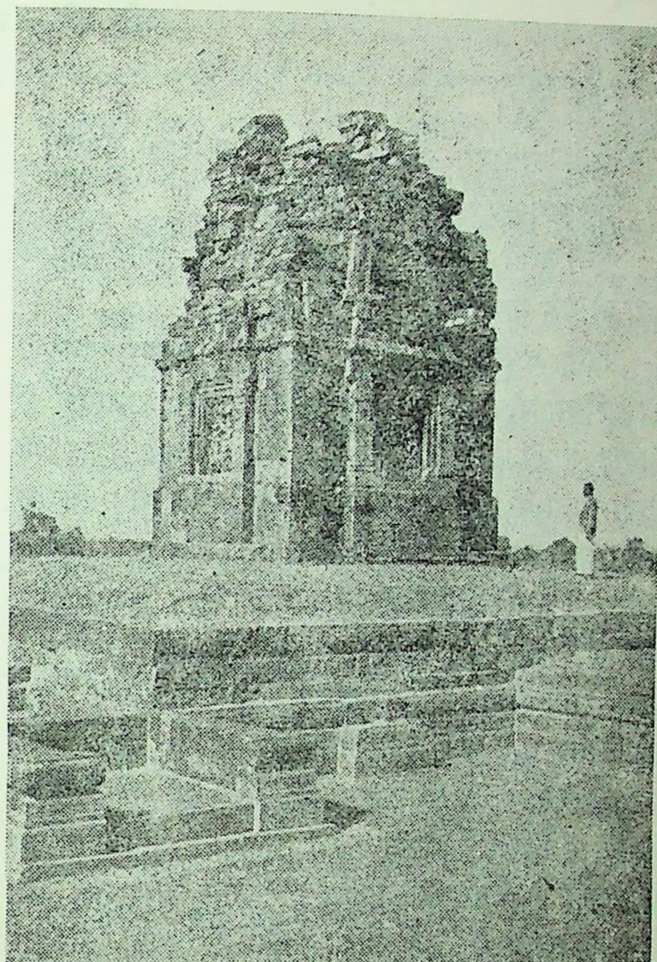
इस मंदिर में प्रारम्भिक गुप्त शैली और बाद के ...सित मंदिरों के कुछ अंश मिलते हैं। शिखर, मंदिर चौतरफा छाजन आदि ऐसी उपलब्धियाँ हैं जो बाद मंदिरों में मिलती हैं। शिखर और शिखररहित मंदिर ...प्राय भारत में बने हैं। देवगढ़ शिखरयुक्त प्रारम्भिक ...दिरों का बचा अवशेष है। मंदिर की बड़ी-बड़ी शिलाओं ...प्राप्त छेदों से यह निष्कर्ष निकलता है कि ये शिलायें ...हे की छड़ों से कसी रही थीं। चूने-गारे का प्रयोग मंदिर में नहीं मिलता है।

इस स्थान पर कई गुप्तकालीन स्तंभों के मिल जाने ...पुरातत्वशास्त्रियों का यह विचार रहा है कि मंदिर ...चारों ओर चबूतरे के किनारे-किनारे स्तंभों के ऊपर ...वरण रहा है अथवा एक ढका हुआ प्रदक्षिणापथ रहा ...। इसमें श्री जनरल कनिंघम, श्री ए० एल० बाशम ...और श्री के० भरत अय्यर प्रमुख हैं। श्री राखालदास ...नर्जी के अनुसार सारा चबूतरा ही एक सपाट छत के ...चे था। किन्तु श्री माधोस्वरूप वत्स का कथन उचित ...तीत होता है कि इस प्रकार के आवरण से दूर से इस ...दिर की बेजोड़ मूर्तियों का महत्त्व कम हो जायेगा। ये ...न विचारों को मानने में असमर्थ हैं। शिखर से अभी ...निकली एक शिला को वे केवल छाजन का एक बचा ...ग मानते हैं।

इन मतभेदों के बावजूद भी मंदिर की श्रेष्ठता का ...लोहा सब मानते हैं। श्री पर्सी ब्राउन का कथन अक्षरशः ...सत्य है: "मूर्तिकला-विषयक परिपक्व और उर्वर परिष्कार ...प्रभाव से मंडित, ऐसा कोई भी स्मारक अप्राप्त है जिसमें ...कारीगरी के इतने ऊँचे स्तर का प्रदर्शन हुआ हो जैसा कि ...देवगढ़ स्थित गुप्तमंदिर में मिलता है।" (इंडियन ...आर्किटेक्चर ग्रन्थ १, पृष्ठ ६१)।

सन् १९२७-२८ के पूर्व इस वास्तु चमत्कार की हालत ...अच्छी नहीं थी। मंदिर के अहाते में जंगल खड़ा था। शिखर ...पर मिट्टी की मोटी पर्त बैठ गयी थी। दो वृक्ष उग आये ...। डा० वोगेल और श्री दयाराम साहनी के प्रयत्नों ...से इस स्मारक की सफाई हुई और इसे सँवारा गया।

मंदिर अपनी वास्तु समता और सौष्ठव के अलावा ...सुन्दर मूर्तियों से भी अलंकृत है। मंदिर के बाहरी दीवार ...की रथिकाबिंबों पर शेषशायी विष्णु, नर-नारायण की ...तपस्या और गजमोक्ष (इस दृश्य में हाथी को मगर के ...स्थान पर नाग ने पकड़ रखा है) दृश्य देखते ही बनते हैं। ...कला में इतना प्रभाव, संयत अभिव्यक्ति और दृश्य तरलता ...अन्यत्र दुर्लभ ही है। यहाँपर रामायण और महाभारत



देवगढ़ का दशावतार मंदिर

के दृश्योंवाली अनेक मूर्तियाँ तथा मूर्तिदृश्य और उनके अवशेष मिले हैं जो यहाँके गोदाम तथा नयी दिल्ली स्थित राष्ट्रीय संग्रहालय में सुरक्षित हैं। गुप्तकालीन मंदिरों के द्वारों की शोभा निराली होती है। यहाँका भी द्वार अद्भुत है। द्वार के दोनों ओर नीचे प्रतिहार-प्रतिहारी, धनाढ्य सेविका और कीचक की सुन्दर मूर्तियाँ हैं। कीचक के सिर पर घट है जिनसे धतूरे की फलपूर्ण बेल निकली हुई है।

गंगा-जमुना की प्रतिमायें अपने वाहन सहित द्वार के नीचे के हिस्से में न होकर ऊपर तक्षित हैं जो प्रारम्भिक गुप्त मंदिरों में मिलती हैं। इसी द्वार की चौखट पर गुप्त मंदिरों के शिखरों के नमूने बने हैं जिनसे उस समय के मंदिरों की कल्पना करने में सहजता होती है। श्री ए० एल० बाशम कहते हैं: "सर्वोत्तम गुप्त मंदिरों में——संभवतः ६वीं शती के——मंदिर-वास्तु की अपार प्रगति मिलती है।" ('दि वंडर दैट वाज इंडिया', पृष्ठ ३२६)।

गर्भगृह में कोई अलंकरण नहीं है तथा मौलिक प्रतिमा गायब है। यहाँ पर प्राप्त मूर्तियों से उस समय की वेशभूषा पर भी काफी प्रकाश पड़ता है। रहन-सहन, वस्त्र-अलंकार, केशविन्यास आदि की यथेष्ट जानकारी हासिल होती है।

राष्ट्रमाता बा का दीपनिर्वाण

श्री जी० एस० पथिक

एक बैरिस्टर।

पत्नी साधारण मातृभाषा का ज्ञान रखने वाली।

यह अनमेल संबंध कहा जायेगा।

ऐसी पत्नी यदि पति के कार्यकलाप में जीवनसंगिनी बने, तो उसे महत् आश्चर्य कहा जाएगा।

हिन्दू समाज में वैदिक काल की विवाह-व्यवस्था का सर्वथा लोप हो गया। महाभारत और रामायण में विवाह के जो उदाहरण मिलते हैं, उनसे प्रकट है कि तब माता-पिता के हाथ में विवाह-व्यवस्था नहीं थी। विवाह शौर्य, प्रेम और विद्वत्ता के आधार पर होते थे। वस्तुतः समाज में प्रेम विवाह का अधिक प्रसार था। तब न कुल, वंश और जाति का खयाल था और न राजा रंक का। इससे आर्य जाति की सामाजिक व्यवस्था स्वस्थ और प्रगतिशील थी। इससे ही आर्य जाति की अभिवृद्धि हुई। पर इस देश में जब मुसलमान आये, तब धर्म और रूढ़ियों के द्वारा विवाह-व्यवस्था जकड़ गयी। माता-पिता के अधिकार में विवाह का निर्णय होने तथा जाति, वंश और कुल के ख्याल से छोटे-छोटे दायरों में विवाह होने से समाज अनेक रोगों से ग्रस्त हो गया। अर्थ पिशाच ने विवाह को कलुषित बना दिया। बिना एक दूसरे को जाने लड़के लड़कियाँ लोह दीवारों में से निकलते। यह संयोग अक्सर सुखद नहीं हुआ। कभी शिक्षित युवक के गले में ऐसी लड़की पड़ी, जो उसके जीवन में सहयोगिनी नहीं बनी और कभी शिक्षित लड़की के गले धनी घर का अपढ़ अथवा शराबी या ऐयाश लड़का पड़ा। नये जीवन में समाज के बढ़ने से कई रोग तो मिटे, किन्तु फिर भी कई रोगों से समाज इस तरह जकड़ा हुआ है कि प्रलयकाल तक उनके मिटने की आशा नहीं है। हिन्दू जाति की क्षीणता और विनाश के कारण ये रोग हैं।

महात्मा गांधी का कस्तूर बा से विवाह किशोर अवस्था में हुआ था। गांधीजी बैरिस्टर थे और कस्तूर बा साधारण गुजराती पढ़ी-लिखी महिला। कस्तूर बा सीधा-सादा जीवन और साधारण ज्ञान रखने पर भी सच्चे अर्थ में महात्मा गाँधी की जीवनसंगिनी बनीं। इस दृष्टि से महात्मा गाँधी परम भाग्यशाली थे। कहना न होगा कि कस्तूर बा ने उन्हें ऊँचा उठाया, उनके जीवन को बदला, उन्हें ब्रह्मचारी बनाया, और उनके राजनीतिक जीवन को यशस्वी बनाया। कस्तूर बा की इस महत्ता को गाँधीजी ने स्वीकार किया।

दक्षिण अफ्रीका से भारत के सभी आन्दोलनों में कस्तूर बा ने गांधीजी का हाथ बटाया और उन सबमें भाग लिया। कस्तूर बा से मेरा पहला साक्षात्कार अहमदाबाद में हुआ। और जब कभी मैं साबरमती और सेवाग्राम जाता, दैवयोग से मुझे बा के दर्शन होते। उनका रूप मुझे इतना पवित्र और महिमामय प्रकट हुआ कि वे सबकी बा थीं, माँ थीं। सफेद साड़ी उनका परिधान, सेवामय उनका जीवन था। गुजरात में संगठन और प्रचार उनका मुख्य कार्य था। मैंने देखा कि गुजराती महिलाओं का उनका अपना संगठन था। जब कभी मैं मिलता, जिज्ञासा रूप में वे अनेक बातें पूँछतीं। गांधीजी के निकट में सरला देवी चौधरानी, सरोजनी नायडू, डा० सुशीला नायर और जयप्रकाश नारायण की पत्नी प्रभावती तथा मीरा बेन अनेक महिलाएँ आयीं। सुशीला नायर ने बा का हाथ बँटाया और गांधीजी की सेवा की। मीरा बेन योरोपियन महिला थीं, जो गांधीजी की भक्त और शिष्या थीं। मैंने देखा कि इन महिलाओं के बीच भी कस्तूर बा का स्थान बना हुआ था। न तो किसी दिन गांधीजी बा को भूल सके और न बा गांधीजी को।

बा का कद छोटा था, केश श्वेत हो गये थे, उनकी वाणी बड़ी कोमल थी। बच्चों का सा स्वभाव था। ... संसर्ग में बा ने कैरम बोर्ड का खेल सीख लिया था। बोर्ड के तख्ते पर वे सफेद और काली गोटें इतनी दिलचस्पी से दौड़ातीं कि मानों उनका जीवन उसी पर निर्भर है। जब कभी हारतीं, तब बा को बड़ी खीज होती और जीतने पर उनके आनन्द का ठिकाना न रहता। इसलिए जो लोग साथ खेलते, बा को हारने नहीं देते। १९४२ के आन्दोलन में वे जब जेल गयीं, तब अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में उन्होंने यह खेल सीखा था। आगाखाँ महल के बन्दी जीवन में कस्तूर बा ने जो खेल सीखा, वह कुछ दिनों का था। १९४२ के भारत छोड़ो आन्दोलन में कस्तूर बा जेल गयी थीं। एक-दो बार को छोड़कर वे गांधीजी के प्रत्येक आन्दोलन में जेल गयीं। उन...

१९६४

लार्ड लिनलिथगो भारत के वायसराय थे। गांधीजी पहले लार्ड लिनलिथगो से शिमला में मिल चुके थे। गांधीजी की वह भेंट मुझे आज भी विस्मृत नहीं है। मैं उन दिनों दिल्ली में था। गांधीजी को लेने दो रिक्शे आये थे। एक में वे बैठे, और दूसरे में दूध की बोतल और टमलर आदि लिये देसाई और हम लोग। वाइसराय परिवार सहित शिमला शैल के अपने भवन के आगे गांधीजी से मिलने की प्रतीक्षा में खड़े थे। इस भेंट में गांधीजी का आत्मबल नजर आया। वाइसराय से शैक हैण्ड के पश्चात् गांधीजी वाइसराय के परिवार की ओर मुड़ गये। लेडी लिनलिथगो को थपथपाया और बच्चों में किसी का हाथ पकड़ा, किसीके गाल पर हाथ फेरा और किसी की चुटकी ली। उनसे मनोरंजक प्रश्न किये। बच्चे भी कूद पड़े, उनके आनन्द का कहना क्या था? वाइसराय भारत के एक राजनीतिक नेता का यह कार्य-कलाप खड़े देखते रहे। जब वे वाइसराय अंदर की ओर——हाल में प्रवेश करने लगे, तब अपने स्वभाव के अनुसार वाइसराय को अचंभे में डाल दिया। द्वार पर उन्होंने अपने कंधे की ओर नजर डाली, और कहा उनपर कोई बोझ नहीं है। बेचारे वाइसराय ने सोचा कि यह भारत का संत पुरुष है, साधु है, संभव है कि कंधे पर कोई चीज रखते होंगे, जो वे शायद भूल आये। उन्होंने कहा कि किसी आदमी को भेज कर आप के कंधे पर की चीज मँगायी जाये। तब, गांधीजी ने हँसते हुए कहा कि, नहीं योर एक्सलेंसी, वे देखते हैं कि कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने उनके कंधों पर कोई बोझ नहीं रखा है। ओह, तब दोनों हँसते हुए दिखाई पड़े। इससे गांधीजी ने अपनी स्थिति प्रकट की कि वे व्यक्तिगत् रूप में भेंट करने आये हैं। हाल में पहुँचने पर बातचीत के सिलसिले में गांधीजी ने महायुद्ध की विभीषिका के प्रति अपनी चिंता व्यक्त की। अहिंसा के पुजारी होने के कारण उन्होंने हिटलर सहित विश्व के सभी देशों के नायकों को पत्र लिखे। हिटलर को छोड़कर उनके पास सभी के पत्र आये। हिटलर का पत्र न आने से गांधीजी ने सोचा कि उनकी अहिंसा में शायद पौरुष नहीं है, इसलिए उनका अपना जीवन कायम रखना व्यर्थ है। उन्होंने इस चिंता में एक सप्ताह तक साधना की। एक रात्रि को ईश्वर ने उनसे कहा कि गांधी तुम्हारी अहिंसा पौरुषहीन नहीं है, योरप का मनुष्य शैतान बन गया है। एक व्यक्ति यह देखता है कि उसके मित्र पर जो मुकदमा चल रहा है, उसमें उसे सजा होगी, किन्तु उसमें यह कहने का साहस नहीं होता, इसकी अपेक्षा वह कहता है कि वह मुकदमा जीत जाएगा, अथवा मित्र के परिवार में किसी के बीमार पड़ने पर उसे यह कहने का साहस नहीं होता कि उसकी मृत्यु निकट है। पर गांधीजी ने तब भविष्यवक्ता के रूप में कहा——जब जर्मन सेना की इंग्लैंड पर बमबाजी शुरू नहीं हुई थी——कि, वेस्टमिनिस्टर, एबी और पार्लमेण्ट हाउस बमों से ध्वंस होंगे, इससे उन्हें वेदना होगी, क्योंकि वे ग्रेट ब्रिटेन से प्यार करते हैं। युद्ध के बीच में अंगरेजों से युद्ध छेड़ने का सुभाषचन्द्र बोस का प्रस्ताव गांधीजी ने नहीं माना था, इससे नेताजी को अपना दूसरा प्रोग्राम बनाना पड़ा। गांधीजी की अभी भी वह धारणा थी, उन्होंने कहा कि युद्ध के बीच में सरकार से कांग्रेस कोई सौदा करना नहीं चाहती। किन्तु अपने सहयोग का हाथ बढ़ाने के लिए यह चाहती है कि सरकार यह घोषित कर दे कि युद्ध-समाप्ति के अमुक समय के अंदर भारत को स्वराज दिया जायेगा। इससे अधिक कुछ नहीं। पर जब यह बात सरकार ने मंजूर नहीं की, तब सरदार बल्लभ भाई पटेल का गांधीजी पर सहसा क्या प्रभाव पड़ा कि उन दोनों के निर्णय के परिणामवत् कांग्रेस कमेटी की मीटिंग में ८ अगस्त १९४२ को भारत छोड़ो का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। सरदार पटेल ने पहले से देश को सचेत कर दिया था कि यह आन्दोलन किस ढंग का होगा और चौराचोरी की घटना की तरह वह बंद न होगा। ९ अगस्त को प्रातःकाल प्रायः सभी कांग्रेसी नेता गिरफ्तार कर लिये गये। गांधीजी के साथ, सरोजनी नायडू, महादेव देसाई और मीरा बहन थीं। कस्तूर बा इन गिरफ्तार शुदा में नहीं थीं।

मगर बा कब पीछे रहनेवाली महिला थीं। उनका स्वास्थ्य उस समय बहुत गिरा हुआ था। पर फिर भी वे गिरफ्तार होने के लिए बढ़ीं। उन्होंने सरकार के प्रतिबंध को भंग कर शिवाजी पार्क में राष्ट्रीय झण्डा फहराया। डाक्टर सुशीला नायर के साथ वे गिरफ्तार हो गयीं। वे बम्बई की जेल में रखी गयीं। गिरफ्तार होने के समय उनका स्वास्थ्य खराब था, और जेल में उनकी हालत यकायक बिगड़ गयी। अतः बम्बई सरकार ने बा को आगा ख़ाँ महल में भेज दिया, जहाँ गांधी जी बंदी थे।

आगा खाँ महल में भेजे जाने का निर्णय सुनने पर बा को परम संतोष हुआ। उन्होंने ख्याल किया कि उन्हें बापू के दर्शन होंगे। हुआ भी वही, गांधीजी के निकट में पहुँचने पर उनकी वाणी ने कस्तूर बा के गिरते स्वास्थ्य पर टानिक का असर किया। कम से कम कुछ दिनों के लिए उनके स्वास्थ्य में बड़ा सुधार हुआ। यह प्रगति आगे न बढ़ सकी। बा को अपने रोग से जबर्दस्त संघर्ष करना पड़ा। रोग ने इस गति से पग बढ़ाया कि बा के कष्ट और पीड़ा का उल्लेख नहीं किया जा सकता। बा को पीड़ा की असह्य वेदना झेलनी पड़ी। अपने लम्बे जीवन में कस्तूर बा कभी स्वगत तथा गांधीजी के उपवास काल में इतनी विचलित नहीं हुई थीं। पूना में गांधी जी, आमरण उपवास के काल में मृत्यु का सामना कर रहे थे, तब मैंने बा को देखा कि वे एक वीर नारी की तरह मौन खड़ी थीं। उन्होंने गांधीजी से नहीं कहा कि वे उपवास भंग कर दें। आगा खाँ महल में आने पर बा को जो सांत्वना मिली कि चार दिन में उनका स्वास्थ्य काफी सुधर गया था। पर इन चार दिनों के बीच में उन्हें दुःखसागर में पड़ना पड़ा। महादेव देसाई को बा अपने पुत्रों से अधिक स्नेह करती थीं। बंदी अवस्था में उनकी एकाएक मृत्यु हो गयी।

१५ अगस्त को करीब ८ बज कर २० मिनट पर जब महादेव भाई जेलों के इंस्पेक्टर-जनरल लेफ्टिनेंट कर्नल भंडारी से बातचीत करते-करते एकाएक चेतनाहीन हो गये तो भंडारी ने उनसे लेट जाने को कहा, किन्तु उनकी नाड़ी की गति धीमी पड़ गयी थी और हाथ-पैर ठंडे हो गये थे। डाक्टर सुशीला नायर दौड़ी हुई आयीं और उन्हें इंजेक्शन दिया। पर अब शरीर में क्या रखा था! जब गांधीजी ने जल्दी से उनके कमरे में प्रवेश किया, महादेव पहले ही चल बसे थे।

अपने जीवन में गांधीजी और कस्तूर बा उनके धर्म के पिता-माता थे। गांधीजी को जो दुःख हुआ, उसे तो वे झेल गए, किंतु कस्तूर बा को जो सदमा पहुँचा उससे वे विह्वल हो उठीं। एक तो यह दुःख और दूसरे जेल का एकान्त जीवन। यह बात नहीं थी कि वे पहले पहल जेल आई हों, बीसों बार उन्होंने जेल की सजा भोगी थी। दूसरी जेलों में उन्हें एकान्तता का सामना नहीं करना पड़ा था, वहाँ उनसे भेंट करने मित्र और नाते रिश्तेदार आते रहते थे। साथ ही वे नये और पुराने कैदियों के बीच रहतीं। इतना ही नहीं दूसरी जेलों में बा के साथ की स्त्रियाँ होती थीं, जिन्हें जेल की सजा मिलती थी। आगा खाँ महल में एक तो उनका स्वास्थ्य गिरा दूसरे महादेव भाई का दुःख था और इस सब पर के... रहना बा के लिए असह्य हुआ।

फिर भी आगा खाँ महल में गांधीजी की उपस्थि[ति] के कारण कस्तूर बा इन सब दुःखों को सहने में समर्थ हु[ईं]। किन्तु जेल में बंदी जीवन की कोई अवधि नहीं थी। कभी छूटेंगी, इसका कोई ठीक नहीं था। बाहरी दुनि[या] से वे बिलकुल अलग थीं। वे किसीसे भेंट क्या कर[तीं] किसीको पत्र तक नहीं भेज पाती थीं। उस विशाल भ[वन] में किसीसे मिलना-जुलना न होने पर बा को यह ल[गा] कि मानों वे जीवित ही गाड़ दी गयी हों।

गांधीजी भूचाल होने के पूर्व पर्वत की तरह एक[दम] मौन थे। वे कुछ नहीं बोलते थे। इस सब अनिश्चित स्थि[ति] ने बा को चिंताग्रस्त कर दिया, वे ऊब उठतीं। उन्हें थोड़ी बहुत सांत्वना कैरम बोर्ड खेलने से मिलती, जो वे मीरा बेन के साथ खेलतीं। मीरा बेन कैरम अच्छा खेलती थीं बा उन्हें बेन कह कर बार-बार खेलने के लिए बुलवा[तीं] और अपनी चिंता, अपनी उदासी मिटाने के लिए उन[के] साथ खेलने बैठतीं। यद्यपि बा के मुँह पर हँसी होती थी किन्तु अन्तर में दर्द छिपा हुआ था। मीरा के साथ [वे] बच्चों की तरह हठ कर खेलतीं। पर जब खेल में हा[र] जातीं, तो बड़ी निराश होतीं। इसलिए खिलाड़ियों ने [यह] तय किया था कि बा को आखरी खेल जीतने दिया जाय।

१९४३ आया, किन्तु आगा खाँ महल के कैदियों की अवस्था में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। गांधीजी बराबर वाइसराय के साथ पत्र-व्यवहार में लगे थे, जिससे [कि] राजनीतिक एकता का कोई रास्ता निकले। जब सरकार का हाथ बढ़ते नहीं दिखा, तब गांधीजी ने दूसरे के पा[प] के लिए अपने शरीर का माँस देने की दृष्टि से २१ दि[न] के व्रत का निश्चय किया। १० फरवरी को गांधीजी का उपवास शुरू हुआ। कलकत्ते से डाक्टर विधानचन्द्र रा[य] दौड़े आये। डाक्टर गिल्डर यरवदा जेल में बंदी थे, उन्हें आगा खाँ महल में लाया गया। इन दो यशस्वी डाक्टरों के सिवा गांधीजी की देखभाल के लिए डाक्टर सुशीला नायर थीं। उपवास आरंभ होने के कुछ दिन के उपरान्त

भेंट करने की इजाजत मिली। कुछ लोगों को गांधीजी से भेंट करने की इजाजत मिली। किन्तु उपवास के कारण गांधीजी की हालत तेजी से खराब होती चली गयी और एक समय यह दिखाई दिया कि कहीं दुर्घटना न हो जाए।

कस्तूर बा के मानसिक संताप का अनुमान नहीं किया जा सकता। ६२ वर्षों के अपने वैवाहिक जीवन में किस प्रकार यह दुःख सहतीं कि कैसे उनका पति धीरे-धीरे एक एक इंच मृत्यु के मुख में जा रहा है। वे अपने पति की ओर एकटक दृष्टि लगाये रखतीं, किन्तु बेबस थीं, दुर्घटना को रोकना उनके बस की बात नहीं थी। इस समाचार ने कि सरकार ने उनके पति को जलाने के लिए चंदन की लकड़ी का स्टाक जमा किया है, निश्चय ही कस्तूर बा के हृदय को छुरे से भोंका हो। कोमलमति-स्वामिभक्त महिला ने अपने लिए दो काम चुने, एक अपने हाथों से गांधीजी की सेवा करना, और दूसरे महल के बाग में तुलसीवृक्ष के आगे धार्मिक भावना से प्रार्थना करना, अपने सुख सौभाग्य की याचना करना। कहा जा सकता है कि भगवान् ने उस सती साध्वी की प्रार्थना सुनी और गांधीजी उस उपवास से आश्चर्यजनक रूप में उठ खड़े हुए। यद्यपि डाक्टर कुछ कहते नहीं थे, तथापि उन्हें सन्देह था कि गांधीजी बच सकेंगे।

३ मार्च को गांधीजी ने उपवास भंग किया। किन्तु उपवास के दिनों में कस्तूर बा को जो शारीरिक और मानसिक पीड़ा हुई, उसकी प्रतिक्रिया बा के स्वास्थ्य पर पड़ी। उपवास के दिनों में दिन-रात के जागरण और गांधीजी के समीप की हाजिरी ने बा के पहले से गिरे हुए स्वास्थ्य को अधिक गिरा दिया था। चिंता से उनका बदन सूख गया था। १० मार्च को बा बीमार पड़ गयीं। शरीर कांटा हो गया था। डाक्टर गिल्डर और सुशीला नायर ने उन पर बराबर निगाह रखी। इन डाक्टरों ने कर्नल भंडारी से कहा कि वे सरकार को सुझाव दें कि कस्तूर बा की चौबीस घण्टे सेवा के लिए एक नर्स की नियुक्ति की जाये। पर सरकार ने उस निवेदन पर कोई ध्यान नहीं दिया, यहाँ तक कि पत्र मिलने तक की सूचना नहीं दी गयी। किन्तु दोनों डाक्टरों की सावधानी से देखभाल के कारण बा कुछ काल में रोगमुक्त हुईं।

पर यह क्षणिक स्वास्थ्य-लाभ था। १९४३ के नवंबर मास में बा इतनी बीमार पड़ीं कि उनकी अवस्था नाजुक हो गयी। कैदियों के प्रति अपने कठोरतम रुख के कारण सरकार अड़ी हुई थी। लोग अब भी नहीं मिल पाते थे। किन्तु मुश्किल से पुत्रों की भेंट करने की इजाजत मिली कि पक्ष में एक बार मिल सकेंगे। यह मिलना भी न मिलने के समान था। नई दिल्ली से देवदास गांधी भेंट करने गये और उन्होंने बा से पूछा कि क्या वे पेरोल पर छूटना चाहेंगी। बा ने कहा हरगिज नहीं। वे अपने निश्चय पर दृढ़ थीं। ओह, बा ने कहा कि बिना पति के जेल छोड़ने की अपेक्षा वे मरना पसंद करती हैं।

एक मास के उपरांत जब उनकी अवस्था चिंताग्रस्त हो गयी, तब यह सुझाव दिया गया कि सरकार किसी प्राकृतिक चिकित्सक को भेजे। पर हृदयहीन सरकार ने कुछ कान न किया। देवदास गांधी ने यह सुझाव दिया कि रोगी के लिए आयुर्वेदिक चिकित्सक के इलाज से कुछ लाभ हो सकता है। सरकार से अपील की गयी, किन्तु बहरे कानों ने उसे सुनी अनसुनी कर दी। डाक्टर गिल्डर और सुशीला नायर रोगी के पास रहते। पर नर्स के अभाव में रोगी की भले प्रकार देखभाल नहीं हो रही थी। सरकार से बार-बार निवेदन किया गया कि रोगी को आराम देने के लिए नर्स अत्यंत प्रयोजनीय है। किन्तु जब सेवा की अत्यंत कठिनाई सामने आयी, तब डाक्टर ने अपनी बदली में जेल की एक आया को रखा। पर उसकी देखभाल संतोषजनक नहीं थी। फिर एक सप्ताह बाद उसे जेल से छुट्टी मिल गयी।

यह देखकर गांधीजी अधीर हो उठे। २७ जनवरी को उन्होंने भारत सरकार के होम सेक्रेटरी को पत्र लिखा कि पूना के प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक डाक्टर दीनशा मेहता को रोगी को देखने के लिए भेजें, और कनू गांधी जो बा को हर दूसरे दिन देखने आती हैं, उन्हें कैम्प में रहने की इजाजत दी जाये, जिससे वे रोगी की हर समय सेवा कर सकें। चार दिन बीत गए, किन्तु दिल्ली से कोई उत्तर नहीं मिला। वे दिन सबके लिए चिंताजनक थे, और बा तो मृत्यु-मुख में झूल ही रही थीं।

बा की हालत दिनोंदिन इतनी बिगड़ रही थी कि ३० फरवरी की रात मुश्किल से गुजरी। दूसरे दिन सबेरे उनका श्वास लेना कठिन हो गया। रह-रहकर श्वास रुकती थी और नाड़ी ढीली पड़ गयी थी। बदन पीला और श्वेत हो गया था। पीठ तथा छाती की बाईं

ओर शूल का सा दर्द उठा था। इस अवस्था में गांधीजी ने बम्बई के होम सेक्रेटरी को लिखा कि वे कनू गांधी को तुरन्त आदेश दें कि वे पूरे समय नर्स का काम करें और डा० दीनशा की भी सेवाएँ इस समय प्राप्त की जाएँ। उसी दिन जेल सुप्रिन्टेंडेण्ट खान साहब केटली सरकार से समाचार मिला कि क्या कस्तूर बा के विचार में कोई चिकित्सक है जो दीनशा मेहता के अतिरिक्त उपलब्ध किया जाये।

देवदास गांधी ने गांधीजी को लाहौर के प्रसिद्ध आयुर्वेद चिकित्सक पण्डित शिव शर्मा के नाम का सुझाव दिया था। गांधीजी ने सरकार को शिव शर्मा को भेजने के लिए लिखा। पर सरकार का कदम आगे बढ़ता नजर नहीं आया। वह किसी और का पत्र नहीं था, गांधीजी का पत्र था। मानवता का तकाजा था। युद्ध में शत्रु के कैदियों के साथ भी बेरहमी नहीं बरती जाती। आगा खाँ महल में रोगी की हालत एक एक घड़ी में बिगड़ रही थी। बंदी अवस्था में गांधीजी निःसहाय से हैं। जीवनसंगिनी जिसने कदम पर कदम पति का साथ दिया था, उसे बिना सेवा-सुश्रूषा के देखकर गांधीजी का हृदय व्याकुल हो उठा। उनसे न रह गया, बम्बई सरकार को गांधीजी ने दूसरा पत्र लिखा। इस पत्र से गांधीजी की व्यथा प्रकट होती है। पत्र बड़ा कड़ा था।

गांधीजी ने लिखा कि वह समझ नहीं पाते कि यह देरी क्यों की जा रही है, जब कि रोगी का जीवन झूल रहा है और तात्कालिक सहायता से उसे बचाया जा सकता है। रोगी के दुःख को दूर करना उतना ही अहम है, जितना कि सरकार का कोई बड़े से बड़ा मामला। गांधीजी के इस पत्र का सरकार पर असर पड़ा, वह उसे चुभा अपनी कर्तव्यहीनता पर। बम्बई सरकार के गृहमंत्री ने तुरन्त आदेश जारी किया कि कनू गांधी आगा खां महल में पूरे समय के लिए नर्स का काम करेंगी, किन्तु उन पर भी वे प्रतिबंध रहेंगे, जो आगा खाँ के अन्य कैदियों पर लागू हैं। कोई बाहरी डाक्टर कस्तूर बा को नहीं देख पाएगा जब तक कि सरकारी अधिकारी बिलकुल जरूरी न समझेंगे। बा को अपने संबंधियों से भेंट करने की इजाजत दी गयी और उस समय गांधीजी के हाजिर रहने की रोक नहीं रही। जयप्रकाशनारायण की पत्नी प्रभावती देवी को केम्प में रहने की इजाजत दी गयी कि मृत्यु मुख में पड़ी कस्तूर बा की सेवा सुश्रूषा कर सकें। आगा खा महल के कैम्प का वातावरण विषादपूर्ण और क्षुब्ध था। बा की हालत देखकर महात्माजी के संयम और धैर्य का बाँध टूट गया था।

११ फरवरी को बा की हालत और भी नाजुक हो गयी। एक स्थानीय वैद्य को बा को देखने के लिए बुलाया गया। पर सरकार गैर-ऐलोपेथी चिकित्सा की कोई जिम्मेदारी लेने के लिए तैयार न थी, इसलिए बाहरी वैद्य की चिकित्सा का कोई दुष्परिणाम हो, इसके जवाबदेह गांधीजी होंगे। सरकार ने इकरार पत्र लिखने को कहा और गांधीजी ने राजी से लिख दिया। अतः [illegible] फरवरी को आयुर्वेदाचार्य पं० शिव शर्मा पूना आ[illegible] पर उन्हें पूरी सुविधाएँ नहीं दी गयीं। संध्या हो[illegible] ही उन्हें केम्प छोड़ देना पड़ता था। बा की हालत रात गुजरने पर बिगड़ती थी और उस समय दर्द [illegible] राहत देने के लिए कोई डाक्टर उपलब्ध न था। [illegible] यह देख कर वे बाहर के पार्क में दो दिन तक रात अपनी मोटर में सोये। जेल के फाटक के बाहर ही उन[illegible] गाड़ी लगी थी। इस तरह पण्डित शिव शर्मा कितने दि[illegible] तक बाहर रहते, इसलिए गांधीजी ने सरकार से क[illegible] कि वह पण्डित शिव शर्मा को दिन रात कैम्प में र[illegible] की इजाजत दे। गांधीजी के इस पत्र की कुछ पंक्ति[illegible] अत्यंत हृदयद्रावक हैं। गांधीजी ने लिखा :—

I as her husband can not procure [illegible] her the help that she wants or that I th[illegible] necessary. I ask for my removal to any oth[illegible] place of detention that the Government m[illegible] choose. I must not be made a helpless witn[illegible] of the agonies the patient is passing through.

इस पत्र से दिल्ली में पत्थर का हृदय भी पसीजे बि[illegible] न रहता। सरकार ने वैद्यराज पर से रुकावटें हटा [illegible] पर अब समय हाथ से निकल चुका था। १८ फरव[illegible] को पण्डित शिव शर्मा को गांधीजी से यह कहना पड़ा [illegible] उन्होंने अपनी शक्ति भर सब कुछ प्रयत्न किया। [illegible] अपनी चिकित्सा की उपयुक्तता पर सन्देह है। इस[illegible] आयुर्वेदिक चिकित्सा रोक दी गयी और रोगी को डाक्[illegible] गिल्डर और सुशीला नायर देखने लगे। अब गांधी[illegible] ने समझ लिया कि रोग असाध्य है। वे नहीं चाहते [illegible] दवा-दारू से बीमार को पीड़ाजनक अवस्था में जिंदा [illegible] जाये। साबरमती आश्रम में गांधीजी कराहते [illegible] तड़पते हुए गाय के बछड़े का दर्द न देख सके और उन्[illegible] उसे इंजेक्शन लगवा दिया। कुछ लोगों ने गांधीजी [illegible] हत्यारा कहा। अब वही महात्मा अपनी पत्नी को [illegible] कराहते हुए नहीं देख सकते थे। बा के समाचार सुन[illegible] दिल्ली में होम सेक्रेटरी से देवदास गाँधी ने इजाजत प्रा[illegible] की और उस दिन रात में पेन्सिलिन इंजेक्शन की खोज [illegible] तब पेंसलिन इंजेक्शन नया-नया निकला था और जहाँ-त[illegible] प्राप्य नहीं था। जैसे-तैसे दिल्ली के एक केमिस्ट की दूका[illegible] पर वह मिला। उसे लेकर प्रातःकाल देवदास गांधी [illegible] से पूना पहुँचे। उन्होंने गांधीजी से कहा कि बा [illegible] पेन्सलिन इंजेक्शन दिया जाये। पर गांधीजी रोगी [illegible] घुलाने के सर्वथा विरोधी थे। अब गांधीजी बा के स[illegible] में दिन भर बैठते। अपने पति को सामने देखकर बा [illegible] बेहद शांति मिलती। वह अपने मनोभाव व्यक्त नहीं क[illegible] सकीं, किन्तु उनके नेत्र गवाही देते थे।

१९ तारीख को बा गांधीजी के घुटने पर झुक [illegible]

और उन्हें बड़ा आराम मिला। गांधीजी ने डाक्टर से कहा कि कृपया अब सब चिकित्सा रोक दीजिए। राम नाम महान् चिकित्सा है। आज बा ने स्वयं औषधि लेने से इन्कार कर दिया। बिना राम नाम के उनके हृदय को शांति नहीं मिलती थी। सबेरे से उनके मुँह से राम नाम निकल रहा था।

बापू बा के मुँह से निकलने वाले थूक और कफ को रूमाल से पोंछते और रूमाल को स्वयं ही धोते। डाक्टर सुशीला नायर के हाथ से गाँधीजी ने रूमाल खींच लिया।

२२ तारीख को प्रातःकाल बा प्रसन्न नजर आ रही थीं, जब उनसे कहा गया कि रामदास और देवदास मिलने आ रहे हैं। यह सुनकर उन्होंने अपनी दृष्टि मानों अनन्त की ओर दौड़ायी, और डाक्टर गिल्डर से कहा कि 'तुम सब मेरे पुत्र हो। बोलो, क्या नहीं हो?' यदि मैं मरूँ तो तुम मेरा दाह करोगे। तुम नहीं करोगे?'

दिन में पानी पीने में कठिनाई होने लगी। किन्तु बापू ने एक चम्मच गंगाजल आहिस्ते से बा के मुँह में डाला, जिसे उन्होंने खुशी से पिया। कुछ समय उपरांत बा ने गांधीजी से कहा--

'मेरी मृत्यु से दुखी मत होना। वह तो आनन्द का अवसर होगा।' बा ने आँखें बंद कर लीं और धीरे-धीरे कहा--'प्रभु, पशु के समान मैंने अपना पेट भरा। मुझे क्षमा करो प्रभु! मुझ पर अपनी कृपा करो! प्रभु, मैं तुम्हारी भक्तिन हूँ, तुम्हारा प्रेम चाहती हूँ! और कुछ नहीं। प्रभु, मेरे अपराध क्षमा करना!'

अपने पति के घुटने पर मस्तक रखे हुए बा के मुख से धीरे-धीरे राम नाम के साथ-साथ ये शब्द निकले। संध्या का समय हो चुका था। ७ बज कर १५ मिनट हुए थे। बापू कमरे से बाहर घूमने के लिए बाहर जानेवाले थे। बा ने उन्हें पुकारा--'बापूजी' यह एक शब्द महात्माजी को शय्या के पास खींच लाया। बापू कस्तूर बा का सिर अपनी गोद में रख कर उसे सहलाने लगे। दो बार बैठने का प्रयत्न किया, किन्तु उठा नहीं गया। बापू ने सहारा दिया। उन्होंने पूछा--'क्या बात है?' क्या अनुभव कर रही हो?' फिर बापू ने पूछा। एक निर्दोष बालक के समान जो अज्ञात तट पर निःसहाय खड़ा हो,--बा ने कहा--'मैं नहीं जानती।'

इतने में बा के भाई ने कमरे में प्रवेश किया। उन्होंने उनकी ओर देखा और पहचाना। नेत्र आँसुओं से भर गए किन्तु मुँह से शब्द नहीं निकले। उन्होंने फिर उठने की कोशिश की, किन्तु बापू ने रोका और कहा--'क्यों नहीं लेटी रहती हो?' बापू ने फिर उनका मस्तक अपनी गोद में रखकर सहलाया। बा सुख से लेट गयीं।

पर तुरन्त ही, बा के नेत्रों का प्रकाश डूबता नजर आया। कुछ हिचकियाँ आयीं और कण्ठ से आवाज सी निकली। बा ने मुँह खोला और दो तीन-बार श्वास ली और उसके बाद अंत हो गया। उनका संघर्ष समाप्त हुआ। अब वह ब्रिटिश राज की कैदी नहीं थीं।

उस रात्रि में पूना, बम्बई और नई दिल्ली के बीच में टेलिफोन पर टेलिफोन हुए। करीब ८ बजे जेल के इंस्पेक्टर जनरल गांधीजी के समीप आये और कहा कि सरकार शव-दाह के संबंध में उनकी इच्छा जानना चाहती है। गांधीजी ने मौखिक उत्तर दिया। गांधीजी ने कहा कि शव उनके पुत्र और संबंधियों को सौंप दिया जाये और आगा खाँ महल में मित्रों और संबंधियों की उपस्थिति में शव दाह हो। गांधीजी के अन्तिम शब्द थे कि अब सरकार से क्या आशा की जाये। रोगी अब रहा नहीं, सरकार शव-दाह के संबंध में जो चाहे निर्णय करे। अपनी सहधर्मिणी--अपनी जीवनसंगिनी के समीप वे सारी रात बैठे रहे। गांधीजी की इकटक दृष्टि बा पर रही। अब बा अनन्त निद्रा में शांत रूप में पड़ी थीं। यह प्रकट है कि बा के साथ अपनी जीवन-यात्रा के विचार हृदय में आये हों। सुख-दुख और स्नेह तथा विराग सब की घटनाएँ नजर से गुजरी हों। गांधीजी ने जो चाहा, नई दिल्ली से वे सब आदेश तत्काल आये।

२३ फरवरी का अन्तिम दिन था। गांधीजी अब भी बा के शव के पास मौन रूप से ध्यान में बैठे थे। उनके काते हुए सूत से जो सफेद साड़ी बुनी गयी थी, उससे बा का शव ढाँका गया। बा के मस्तक पर कुंकुम का चिन्ह था। बा कितनी सौभाग्यशालिनी थीं कि उन्होंने अपने पति के सामने, अपने पति की गोद में मृत्यु को वरण किया। जब चिता पर बा का शव रखा गया, तब गांधीजी अपने धैर्य को न रोक सके। गांधीजी के नेत्रों से आँसू गालों तक बह आये। आज वे अपने को न सम्हाल सके। जो वस्त्र गांधीजी कमर में पहने थे, उसके एक छोर से उन्होंने आँसू पोंछे। देवदास गाँधी ने शव में आग दी और लपटें ऊँची उठीं। बा सीता-सावित्री जैसी पवित्र नारियों में जाकर मिल गयीं!



हमारी उत्तरी सीमा और उसके संबंध में कुछ नग्न सत्य (

मेजर सीताराम जौहरी (अवकाशप्राप्त)

(१)

जापानियों से युद्ध करते समय माओ ने लिखा था—
"आज हम जो युद्ध कर रहे हैं वह संसार के समस्त व्यक्तियों की स्वतंत्रता के लिए है और हम जो स्वतंत्र, सुखी और विशाल-हृदय चीन स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे हैं वह नूतन संसार का एक भाग होगा।"

उपरोक्त पंक्तियों से मालूम होता है कि माओ संसार की समस्त मनुष्य जाति को स्वतंत्र कराने का इच्छुक है। किन्तु संसार के नूतन गठन (new world order) की उसकी कल्पना संसार को चीन के अधीन कर देने की है। इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए माओ की फौजें दक्षिणी और पूर्वी-दक्षिणी एशिया पर आक्रमण करने के लिए तत्पर हैं। दुर्भाग्यवश भारत, जो चीन की भाँति ही एक महान् देश है, माओ की इच्छा की पूर्ति में बाधक हो रहा है। यही कारण है कि वह भारत की प्रतिष्ठा को हानि पहुँचाने को उत्सुक हो उठा जिससे कि एशिया और अफ्रीका के छोटे-छोटे देश भी भविष्य के लिए पाठ सीख लें, और यदि वे भी भविष्य में चीनी विस्तार में बाधक बनें तो उनको भी नष्ट-भ्रष्ट कर डाला जाए। माओ का कहना है कि 'युद्ध का प्रथम नियम है सब शत्रुओं का विनाश और समस्त उपायों द्वारा अपनी रक्षा।' वे देश जो माओ के आक्रमणों में बाधक हैं, माओ के शत्रु हैं। उनका विनाश आवश्यक है। इसीलिए उसने हिमालय की शान्ति में हलचल मचा दी है, भारतीय सीमा को तोड़ दिया और उसकी सेना अकसाई चिन–लिगजीथांग पठार पर जम कर बैठ गयी है। इस आक्रमण के लिए कुछ बहाना आवश्यक था। माओ ने कहा कि यह पठार चीन का एक टुकड़ा है जब कि इतिहास, परम्परा और रीति-रिवाज कुछ और ही बात बताते हैं।

पाँचवीं शती में फाहियान ने, छठी शती में सुंग युंग ने और सातवीं शती में हुएनसांग ने सिंग्क्यांग की राह भारत में पदार्पण किया। उन सभी ने एक स्वर से कहा है कि भारतीय सीमा कुइनलन है। तत्पश्चात् दसवीं शती से सोलहवीं शती तक ऐतिहासिक लेख स्पष्ट रूपसे बताते हैं कि भारत सिंग्क्यांग सीमा की रेखा कुइनलन पर्वतों के उत्तरी ढाल पर पश्चिम से पूरब [illegible] है। उस समय 'कारा नाकू ताग' नामक ग्राम [illegible] तीय सीमा रेखा पर माना जाता था। अभी थोड़े समय की बात है कि उन्नीसवीं शती में चीनियों ने [illegible] ही स्वीकार किया है कि 'शहीदउल्ला' कश्मीर [illegible] में है। 'शहीदउल्ला' के पूरब-दक्षिण में 'यंगीदा[illegible] दर्रा है। यह दर्रा कश्मीर सीमा पर है। उसको पार [illegible] ही सिंग्क्यांग में प्रवेश किया जा सकता है। ज[illegible] कोई यात्री 'यंगीदावन' दर्रे को पार करके सिंग्क्यां[illegible] प्रवेश करने का इच्छुक होता था, उसको 'खुल[illegible] 'मीर' की आज्ञा प्राप्त करनी आवश्यक थी। '[illegible] दावन' तक भारतीय सीमा थी और भारतीयों को [illegible] दर्रे तक जाने देने में कोई अन्य देश बाधा नहीं डाल[illegible] था।

कुछ दक्षिण में 'लनाक ला' (Lanak La) यह दर्रा लद्दाख को तिब्बत से पृथक् करता है। [illegible] दक्षिण में पागोंग झील का क्षेत्र है। गाडविन आ[illegible] नामक अन्वेषण-यात्री तथा सर्वेक्षणकर्ता ने इस क्षेत्र [illegible] दौरा किया था। वह लिखता है कि "फ़ुरसुक [illegible] छोटा सा गड्ढा (जो पश्चिमी पागोंग को पूर्वी भा[illegible] पृथक् करता है) कश्मीर और तिब्बत की सीमा पर [illegible] इसी प्रकार अन्य सरकारी अधिकारी भी जो इस [illegible] में रह चुके हैं, कहते आये हैं कि पश्चिमी पागोंग [illegible] में है। इसके अतिरिक्त वह रेखा जो चांग दर्रे और [illegible] को छूकर निकलती है, लद्दाख को तिब्बत से पूर्व [illegible] में पृथक् करती है। इस कारण उत्तरी-पश्चिमी [illegible] तीय सीमा वह रेखा है जो किलिक, मिनतिका, खुंजे[illegible] काराकोरम, यंगीदावन, लनाकला और चांगला [illegible] जराला से मिलाती है। (दमचौक और हानले [illegible] में हैं और सदैव से रहे हैं।) यह रेखा प्रकृति एवं [illegible] म्परा द्वारा अंकित हुई है और इतिहास ने इसको [illegible] प्रदान की है। दसवीं शती में नीमागोंग (लद्दाखी रा[illegible] ने इसे स्वीकार किया था और १६८४ में लद्दाखियों [illegible] तिब्बतियों ने भी इसे स्वीकार किया था। [illegible] में तो सिखों ने, दलाई लामा ने, और चीनी सम्राट [illegible]

ने इसे स्वीकार किया था। इतने प्रमाण होने पर भी चीनियों ने इतने बड़े सत्य की अवहेलना करके यंगीदावन, लनाककला और दमचौक को अपना बताना आरम्भ कर दिया। इसी आधार पर माओ की सेना दक्षिण की ओर अग्रसर हुई और उसने अकसाई चिन में होकर दो सड़कें बना लीं। इतना ही नहीं, उन्होंने १० भारतीय सैनिकों की चांगचिनमों की घाटी में गरम सोते पर हत्या कर डाली। १९५९ से १९६१ तक उन्होंने काजिल जिलगाह, डेराला, निआगजू, दाम वूगरू पर भी अधिकार स्थापित कर लिया। चुशूल और दमचौक पर भी आक्रमण की धमकी दी। भारतीय सरकार ने चीनियों के इस प्रकार धोखे से आगे बढ़ने को रोकने का प्रयत्न किया और छोटी-छोटी फौजी टुकड़ियाँ चीनियों द्वारा मानी हुई अपनी सीमा पर चौकियाँ बना कर बैठा दीं। इसी प्रकार गलवान घाटी में कुछ सैनिक वायुयान द्वारा उतार दिए और कुछ सैनिक भेज कर दौलतवेग ओल्डी, चुशूल और दमचौक के पुलिस के अड्डों को दृढ़ किया। भारत का विचार इन स्थानों पर पहरे की चौकियाँ बनाने का था जिससे चोरी-छिपे चीनी इधर न चले आवें। ७ सितम्बर को भारतीय और चीनी सैनिकों के लगभग यही अड्डे थे।

"ऐतिहासिक घटनाएँ रक्त और लौह लेखनी से लिपिबद्ध की जाती हैं" यह दूसरी कहावत है जिस पर माओ को पूर्ण विश्वास है। चीनी इतिहास भी यही बताता है कि चीनियों ने मंचूरियावासियों तथा कानसू और सिक्यांग के मुसलमानों का रक्त बहा-बहा कर इतिहास के पृष्ठों को रंग डाला है। सिंक्यांग के मुसलमानों को तो अब भी सैकड़ों की संख्या में प्रतिवर्ष मृत्यु के घाट उतारा जाता है। अब माओ ठंडी फौलाद से भारतीयों का रक्त बहाना चाहता है। अपने इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए माओ की फौजों ने ८ सितम्बर १९६२ को अकसाई, चिन-लिंगजीथांग आदि भारतीय क्षेत्रों पर सिक्यांग और तिब्बत की ओर से आक्रमण कर दिया। भारतीय पुलिस अथवा फौज की चौकियाँ केवल पहरा देने के निमित्त थीं। वे आक्रमण रोकने के लिए नहीं बनायी गयी थीं। इसलिए उन पर सिपाहियों की संख्या भी बहुत कम थी। (जहाँ एक बटालियन होनी आवश्यक थी वहाँ केवल ३० जवान के लगभग थे।) इन भारतीय सैनिकों का मुख्य लक्ष्य था चीनियों को अपनी सीमा में चोरी छिपे बढ़ने से रोकना। उनके पास भोजन और गोली बारूद भी थोड़े ही समय के लिए था। आवश्यकता पड़ने पर उनके हताहतों को केवल हेलीकाप्टर द्वारा ही मोरचों से हटाया जा सकता था। सारांश यह कि इन चौकियों पर नियुक्त भारतीय सैनिक टुकड़ियाँ चीनियों की छोटी-छोटी टुकड़ियों का छिपकर अपनी सीमा में प्रवेश रोकने के लिए थीं न कि युद्ध में आक्रमण रोकने के लिए। भारतीय सरकार जो समस्त संसार में शान्ति स्थापित करने के प्रयत्न में संलग्न थी, वह तो यह विचार भी नहीं कर सकती थी कि स्वयं उसी पर आक्रमण कर दिया जायगा। इसके विपरीत, चीनियों ने इस सीमा के अपने फौजी मोरचों तक सड़कों का निर्माण कर लिया था जिससे उनके द्वारा शीघ्रातिशीघ्र राशन, गोला-बारूद और सैनिक मोरचों को दृढ़ करने के लिए भेजे जा सकें। तात्पर्य यह कि चीनी सेना भारत पर आक्रमण करने के लिए पूर्ण रूप से तैयारी कर चुकी थी। वास्तविकता तो यह है कि १९५० से ही चीनी सेना इस आक्रमण की तैयारी कर रही थी। १२ वर्ष तक तैयारी करके अन्त में उसने भारत पर आक्रमण कर ही दिया। ७-८ सितम्बर को चीनियों ने अपने मोरचों के सभी हथियारों का मुँह अचानक भारतीय मोरचों पर खोल दिया। भारतीय जवानों ने वीरता से सामना किया। हमारे जवान रणक्षेत्र में काम अवश्य आये पर शत्रु के सैनिक अधिक संख्या में मारे गये और यह पहिला चीनी आक्रमण व्यर्थ सिद्ध हुआ। एक सप्ताह तक रणक्षेत्र में पूर्ण सन्नाटा रहा। इस बीच चीनी सेना ने अपनी नयी सड़कों का लाभ उठा कर उस क्षेत्र में भारी तोपें और टैंक पहुँचा दिये तथा बहुत-सी नयी पलटनें भेज दीं। जब उन्होंने पूरी तैयारी कर ली, तब वह क्षणिक शान्ति सहसा समाप्त हो गयी। भारतीय सैनिकों की संख्या कम थी। उन्हें दबाने के लिए उनसे कई गुना अधिक चीनी सैनिक क्रुद्ध समुद्र की लगातार आनेवाली तरंगों की तरह भारतीय मोरचों पर टूटने लगे। मंचूरिया और उत्तरी कोरिया के अनुभवी सैनिक समूह, पंक्तिबद्ध होकर, एक के बाद दूसरा आक्रमण करने लगे। भारतीय मोरचों पर जैसा कि हम बता चुके हैं, न तो सेना ही अधिक थी और न

उनके पास इतने भीषण आक्रमण का सामना करने के लिए गोली-बारूद ही थी। परन्तु भारतीय सिपाहियों ने बड़ी वीरता और साहस से इनका सामना किया। उन्हें दौलतबेग ओल्डी की अग्रिम चौकियाँ छोड़नी पड़ीं पर उन्होंने पूरी शक्ति से गलवान घाटी में युद्ध किया, जीवन को दाँव पर लगा कर चुशूल की रक्षा की और दमचौक में घमासान युद्ध करके सैकड़ों की संख्या में शत्रु को मार कर पीछे हटे। अन्त में चीनियों की कई स्थानीय विजयें हुईं पर उन्हें भारी संख्या में सैनिकों की भेंट देनी पड़ी। फिर भी यह विजय राजनीतिक विजय न थी जिसकी चीनियों की अति आवश्यकता थी।

इस विश्वासघाती और बर्बर आक्रमण के समाचारों से संसार के समस्त समाचार-पत्रों के पृष्ठ के पृष्ठ रँगे जाने लगे, यहाँ तक कि चीन के इस नये कर्तब से निष्पक्ष (neutral) देश भी विचलित हो उठे। अँगरेजों और अमरीकनों ने तो अविलम्ब भारत की सहायतार्थ हथियार भेजने आरम्भ कर दिये। यह भी संभव है कि अमरीका, फारमोसा और दक्षिण-पूर्वी एशिया से चीन पर वायु-आक्रमण के लिए भी तैयार हो गया हो। अपने आक्रमण से संसार के देशों पर ऐसी अप्रत्याशित प्रतिक्रिया होते देख कर चीनियों ने इसीमें बुद्धिमत्ता समझी कि लड़ाई रोक कर युद्ध-विराम (cease-fire) कर दिया जाय। अतएव जिस आकस्मिक ढंग से उनका आक्रमण हुआ था उसी प्रकार ही अचानक उन्होंने लड़ाई रोक देने की घोषणा कर दी (२१ नवम्बर)। यही नहीं, साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि १ दिसम्बर १९६२ से चीनी सैनिक पीछे हटेंगे। इस घोषणा में "किन्तु, परन्तु" का प्रयोग बहुतायत से था। इस कारण यह कहना तो असंभव है कि चीनी सैनिक किस सुरक्षित रेखा तक पीछे हटे, परन्तु इतना अवश्य ज्ञात है कि लद्दाख में चीनियों ने अवैध रूप से जिस भूमि पर अधिकार कर लिया था, उससे तनिक भी नहीं हटे।

आक्रमण करने के बाद, जब युद्ध हो रहा था, तब २४ अक्तूबर को उन्होंने भारत से संधि-वार्ता करने की इच्छा प्रकट की। उनके सन्धि-प्रस्ताव से एशिया और अफरीका की जातियों पर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा। इसके विपरीत, भारत को संसार के प्रायः समस्त देशों की सहानुभूति और नैतिक बल (moral support) मिलता रहा। चीनियों ने जुआ खेला, पाँसा फेंका, [illegible] विजय हुई। उसकी चतुराई ने तटस्थ देशों में भी [illegible] तीय पक्ष के न्यायसंगत होने पर एक बार कुछ [illegible] उत्पन्न कर दिया। किन्तु अब चीनियों ने ऐसा [illegible] सीधा शब्द-जाल बिछाना आरंभ किया कि सत्य [illegible] असत्य, और असत्य पर सत्य का वह आवरण चढ़ाया [illegible] लोगों के लिए यह जानना कठिन हो गया कि क्या [illegible] है और क्या असत्य। जब भारत ने उनके २४ अक्तू[illegible] के प्रस्ताव को ठुकरा दिया तब उन्होंने उसे घुमा-फि[illegible] कर दूसरे शब्दों में फिर रखा। उन शब्दों का प्रयोग उन्[illegible] इतनी चतुराई एवं मक्कारी से किया कि उनका [illegible] सत्य लगने लगा। वे ही शर्तें नये शब्दों में रखीं। [illegible] संसार 'चीन की तीन शर्तों' के नाम से पुकारता है। [illegible] शर्तों में इस बात पर जोर दिया गया कि सारे [illegible] परस्पर वार्तालाप द्वारा शान्तिपूर्ण ढंग से हल [illegible] चाहिए और भारतीय और चीनी फौजों के बीच में [illegible] की एक पट्टी (no men's land) छोड़ दी जाय [illegible] पर किसी पक्ष का अधिकार न हो। भारत ने इन [illegible] को स्वीकार कर लिया और अपनी फौजें पीछे भी [illegible] लीं। हमारी इस कार्रवाई के कारण आजकल दौलत[illegible] ओल्डी के अगले यानी फारवर्ड मोरचे, गलवान घा[illegible] चांगचिनमों का गरम चश्मा, पश्चिमी पांगोंग झील [illegible] पूर्वी किनारा, चुशूल के सामने वाली पर्वत-श्रेणी ([illegible] गला) और हमारे समस्त सीमान्तीय दर्रे खाली पड़े [illegible] भारत स्वेच्छा से वहाँ अपने सैनिक नहीं भेजता। [illegible] यह नहीं कहा जा सकता कि चीनी भी अपने सैनिकों [illegible] वहाँ नहीं भेजते। उनका उन स्थानों में कभी-कभी [illegible] तो दूसरी बात है, परन्तु यदि उन्होंने अपने नवीन मो[illegible] भी इन क्षेत्रों में स्थापित कर लिये हों तो कोई आश्च[illegible] जनक बात नहीं।

चीन की दो बातें तो भारत ने मान लीं, परन्तु भा[illegible] तीय और चीनी नेताओं में मतभेद हुआ तीसरी बात [illegible] यह बात थी उस मानी हुई सीमा-रेखा की जिसके [illegible] दोनों ओर की फौजों को अपनी सीमा में हटना [illegible] चीनियों का कहना था कि उनकी सेना उस रेखा से, [illegible] तक उनकी सेना ९ नवम्बर १९५९ तक बढ़ आयी [illegible] २० किलोमीटर (लगभग १२ मील) पीछे हट जायगी [illegible] परन्तु दूसरी ओर उन्होंने यह भी कहा कि ९ नवम्[illegible]

१९५९ को वह रेखा वही थी जहाँ तक उनके सिपाही अक्टूबर, नवम्बर १९६२ में बढ़े। अर्थात् अक्टूबर और नवम्बर १९६२ में उनकी सेना ने भारत के क्षेत्र पर आक्रमण करके उसके किसी भाग को नहीं दबा लिया था। स्वभावतः भारत इस ज्वलन्त असत्य को स्वीकार नहीं कर सकता था। उसने इस पर बल दिया कि दोनों फौजें वहाँ तक हट जाएँ जहाँ पर वे ७ सितम्बर १९६२ को चीनी आक्रमण से पहिले थीं। चीन के इस प्रस्ताव को स्वीकार करने का तात्पर्य केवल यही नहीं होता था कि भारत 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली युक्ति को मानने को तैयार है वरन् यह भी कि उसे दौलतवेग ओल्डी, चुशूल, और हानले से भी हाथ धोने पड़ते। (इधर पाकिस्तान-चीनी सीमा रेखा सम्बन्धी सन्धि से दौलत बेग ओल्डी प्रभावहीन हो गया है) इसके अतिरिक्त चीनियों ने अवैध रूप से हमारे उन सैनिक महत्त्व के स्थानों पर अधिकार कर रखा है जहाँसे वे जब चाहें तब भारतीय नदियों की घाटियों पर आक्रमण करके हमारे मोरचों को तितर-बितर कर सकते हैं। इसे हम यों भी कह सकते हैं कि चीन की इस शर्त को स्वीकार करना पराजय मानने के समान है।

लद्दाख के विषय में सत्य क्या है? इसे स्वयं चीनियों के शब्दों में पढ़िए: "वह एकदम असम्भव है कि चीनी अपनी अधिकृत भूमि से पीछे हटेंगे। ऐसा करना ६५ करोड़ चीनियों के मत के विरुद्ध होगा। संसार की कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो हमें ऐसा करने को विवश कर सके।" इन शब्दों से स्पष्ट है कि चीनी अपने आक्रमण को कदापि वापिस न लेंगे। जब तक चीनी अकसाई चिन पर अधिकार किये रहेंगे तब तक उनकी पश्चिमी तिब्बत की फौजों को राशन, गोला, बारूद, हथियार और सैनिक मोटरें द्वारा अकसाई चिन सड़क से सुगमतापूर्वक भेजे जाते रहेंगे। तात्पर्य यह कि भारत का हिमालय का मध्यवर्ती क्षेत्र कभी भी चीनियों के आक्रमण के भय से मुक्त न होगा।

भारत ने चीनियों को पहिले ही सुविधाएँ दी हैं। २२ सितम्बर १९६२ को भारतीय सरकार इस बात पर बल दे रही थी कि सन्धिवार्ता होने से पहिले दोनों देशों की फौजों को १९५७ वाली सीमा-रेखा के पीछे हट जाना चाहिए। अब वही सरकार इच्छुक है कि यदि चीनी ८ सितम्बर १९६२ वाली रेखा तक भी हट जायें तो सन्धि-वार्ता हो सकती है। भारतीय सरकार इतना इसलिए दब रही है कि वह अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति बनाये रखना चाहती है। वह अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति को प्रमुख स्थान देती है। भारतीय सरकार ने चीन को और भी सुविधा दी। उन्होंने चीनी डाकुओं से कहा कि पहिले उनकी फौजें ७ सितम्बर वाली रेखा तक पीछे हट जायँ, और यदि फिर भी सन्धि न हो तो अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय से न्याय करवा लें। क्या वह अमानुषिक जाति जिसने सदैव अपने हाथों को निर्बलों के रक्त से ही रंजित किया है इस सभ्य रीति को स्वीकार कर सकती थी? क्या वह जाति जो पिछड़ी जातियों को स्वतंत्रता दिलाने की ओट में सदैव उनकी स्वतंत्रता का खून करती रही अपनी माँग अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में जाँच के लिए रखने को सहमत हो सकती थी? कदापि नहीं। और हुआ भी यही। चीनियों को यह प्रमाणित करने का एक अवसर मिला था कि वे निष्कपट एवं निर्दोष हैं। उनको एक सुअवसर मिला था यह प्रमाणित करने के लिए कि चीन भी प्रत्येक समस्या का हल शान्तिपूर्ण रीति से करने को तैयार है। परन्तु उन्होंने इस अवसर का उपयोग नहीं किया। चीनियों की तो यह दशा है परन्तु भारत में दो बातें विचित्र देखी जा रही हैं। पहिली बात है किसी दल में सम्मिलित न होने (Non-alignment) के विषय में। इस नीति की बड़ी प्रशंसा हो रही है। परन्तु इस पर तनिक भी विचार नहीं किया जाता कि कल के दो दल आज मिलकर एक हो रहे हैं। क्या पश्चिमी जर्मनी पंचशील वालों में था? परन्तु आज वहाँ भी रूस के नेता क्रुश्चेव जाने का विचार कर रहे हैं। जब उन लोगों को भी जो किसी दल में सम्मिलित न होने की नीति में तनिक भी विश्वास न रखते थे, समस्त संसार सहायता देने को तत्पर है तो भारत को कौन सहायता न देगा? मेरे विचारानुसार आजकल संसार में केवल दो दल हैं, और उनका चित्र परिवर्तित है। एक पश्चिमी दल, जिसमें रूस सम्मिलित है, दूसरा दल चीनियों का। यदि पाकिस्तान चीनियों का साथ दे तो क्या भारत चुप रहेगा? इस दशा में यह कहना कि नीति किसी भी परिस्थिति में किसी भी दल से सहयोग न करने की है, बहुत ठीक न होगा। भारत स्पष्ट रूप से

चीनी दल के विरुद्ध है, और जो भी उस दल में होगा उससे भारत की पटरी नहीं बैठ सकती। कागजी बातें व्यर्थ हैं। वास्तविकता क्या है? पश्चिमी दल और चीनी दल। और भारत चीनी दल का उस समय तक विरोधी रहेगा जब तक कि चीनी आक्रमण का अन्त नहीं हो जाता।

(२)

पहिली बात तो साधारण है। जब तक भारत को अपनी एक-एक इंच भूमि चीनियों से रिक्त करानी है तब तक चाहे भारत सरकार कहे कि वह दलीय (aligned) है अथवा निर्दलीय (non-aligned) इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। परन्तु दूसरी समस्या विचारणीय है। इस पर देश को स्थिर चित्त से गम्भीरतापूर्वक विचार करना होगा। किसी तथ्य पर पहुँचने के लिए हमें ऐतिहासिक तथ्यों की अवहेलना नहीं करनी चाहिए

वियतनाम में परिवर्तन हो चुका है। प्रीमियर दिएम और उनके भाई मारे गये। उनकी सरकार बहुत दृढ़ सरकार थी, फिर भी अचानक आन्दोलन हुआ और नवीन सरकार का निर्माण हो गया। संभव है कि चीनी सरकार ऐसे लोगों की खोज में हो सकती है जो इसी प्रकार का आन्दोलन करके वर्तमान भारत सरकार को उलटने का प्रयत्न करने को तैयार हो जायँ। हाल ही में विरोधी दल के एक नेता च्यांग काई शेक से फार्मोसा में भेंट कर आये हैं। इन नेता महोदय ने देशवासियों को विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया है कि च्यांग काई शेक भारत के मित्र हैं। उन्होंने दलाई लामा को भी यह विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया है कि यदि च्यांग विजयी हुए तो तिब्बतियों की राजनीतिक स्थिति वैसी ही कर देंगे जैसी १९५० तक थी।

क्या यह कोई आश्चर्य की बात होगी यदि च्यांग के एजेन्ट अपना जासूसी कार्य दलाई लामा के कैम्प में भी कर रहे हों? मुझे १९६० में धरमशाला के निकट एक ग्राम में रहने का अवसर मिला था। मैं अपना अधिकांश समय शिविर के लामाओं के साथ व्यतीत किया करता था। एक दिन मैंने देखा कि मेरे लामा मित्रों के कमरे में च्यांग का चित्र लगा है। जब मैंने उन लोगों से बात की तो मालूम हुआ कि वे लोग च्यांग का काफी सम्मान करते हैं। फिर अगले दिन मैंने देखा कि च्यांग का चित्र हटा दिया गया है। इस घटना के एक या दो दिन पश्चात् दलाई लामा के बड़े भाई का अमरीका से आगमन हुआ। इन समस्त बातों को दृष्टि-पथ में रखते हुए हम कह सकते हैं कि च्यांग का दलाई लामा के कैम्प में कार्य प्रचार है।

यदि तिब्बत के नवीन इतिहास पर दृष्टि डाली जाय तो च्यांग के समय में ही (१९३४) चीनी फौजों ने स्वतंत्र तिब्बत पर आक्रमण किया था और च्यांग के ही समय में जब वर्तमान दलाई लामा गद्दी पर बैठे तो चीनी उस उत्सव में भाग लेने ल्हासा आये और वहीं जम गये। यह भी च्यांग के समय की ही घटना है कि चीनियों ने यह कहना आरम्भ किया था कि तिब्बत चीन की सहायता के बिना रह ही नहीं सकता। तात्पर्य यह कि च्यांग ने तिब्बत की स्वतंत्रता को स्वीकार नहीं किया था। च्यांग के ही समय (१९४४) में हुआ था कि पूर्वी और दक्षिणी-पूर्वी तिब्बत का बहुत बड़ा भाग तिब्बत से पृथक् करके एक प्रदेश (सीकांग) का निर्माण करके उसे चीन में सम्मिलित कर लिया गया। क्या इन बातों से यह तथ्य नहीं निकलता कि च्यांग आज भी अपनी वही चीनी मक्कारी भाषा बोल रहा है?

अब सुनिए भारत के विषय में। क्या भारत यह भूल सकता है कि यह च्यांग ही था जो द्वितीय महायुद्ध के समय भारत आया और उसने अमरीका से कहा कि वह भारत को अँगरेजों से स्वतंत्र कराने के लिए भारत की सहायता करे? क्या वह च्यांग ही नहीं था जिसके समय में पंडित नेहरू ने दो बार चीन की यात्रा की? क्या यह वही च्यांग नहीं है जो इनर-आऊटर तिब्बती सीमा को रीमा के पूर्व से हटा कर तवांग के ऊपर ले आया? इस प्रकार उसने नेफा के उत्तर के तिब्बती प्रदेश को चीन में सम्मिलित करके भारत-तिब्बत सीमा को भारत-चीन सीमा बना दिया। क्या यह सच नहीं है कि च्यांग के समय में चीनियों ने अपने मानचित्रों में नेफा को चीन का भाग दिखाना आरम्भ कर दिया था? क्या यह च्यांग ही नहीं था जिसने हमारे स्वतंत्र होते ही भारत से सीमा-विवाद आरम्भ कर दिया था? यही नहीं, उसने दलाई लामा को भी विवश किया कि वह व्यर्थ की सीमा सम्बन्धी माँगें भारत के समक्ष रखे। इस पर दलाई लामा ने हिमालय के दक्षिण के कितने ही क्षेत्रों को अपना

और नवीन भारत से प्रार्थना की कि ये समस्त क्षेत्र तिब्बत को लौटा दिये जायँ। क्या भारत की स्मरण-शक्ति इतनी दुर्बल है कि वह इन सब महत्त्वपूर्ण घटनाओं को इतनी जल्दी ही भूल जाये? च्यांग उत्तरी-पूर्वी सीमा का विवाद छेड़कर उसे अनिर्णीत छोड़ गया था। उसके इस कार्य को माओ ने जारी ही नहीं रखा, बल्कि उसे आगे भी बढ़ाया।

माओ ने लद्दाख का बहुत बड़ा भाग ले लिया। च्यांग की भाँति ही उसने भी अकसाई चिन के क्षेत्र को (कोंगला दर्रे के उत्तर) सिंक्यांग में सम्मिलित कर लिया।

इस दशा में यदि च्यांग का अधिकार चीन पर हो भी जाये तो तिब्बत की स्थिति क्या होगी? वही, जिसके लिए च्यांग १९३४ से प्रयत्नशील था? अर्थात् तिब्बत चीनियों का सेवक होगा। फिर तिब्बत कौन सा होगा? च्यांग ने सीकांग प्रदेश बनाने से पहिले ही तिब्बत का अंग-भंग कर दिया। उस तिब्बत में न तो चामडो होगा और न लिटांग, विटांग, रीमा आदि। इससे भारत का सिर-दर्द ज्यों का त्यों बना रहेगा। पूर्वी और दक्षिणी-पूर्वी तिब्बत में तो चीन ही हमारा पड़ोसी रहेगा। रही लद्दाख की बात। सम्भव है कि सिंक्यांग किसी समय स्वतन्त्रता प्राप्त कर ले, पर क्या च्यांग अकसाई चिन को मुक्त करेगा? नहीं, यह असम्भव है। तो च्यांग के आने से किसी प्रकार भी भारत के सिर का दर्द कम न होगा। पाठक कहेंगे कि च्यांग अमरीकनों का मित्र है। यह सत्य है। अमरीका के समस्त चीनी जो वहाँकी नागरिकता स्वीकार कर चुके हैं, सभी अमरीकनों के मित्र हैं। परन्तु उनमें एक भी चीनी ऐसा नहीं है जो मैकमोहन रेखा को मानता हो अथवा अकसाई चिन को भारत का प्रान्त स्वीकार करता हो। चाहे अमरीकन हों अथवा ब्रिटिश, फ्रान्सीसी हों या जर्मन, सभी चीनी लेखकों पर विश्वास करते हैं। क्या अँगरेजों को ज्ञात न था कि कैलास हमारा है? क्या अँग-रेज इस बात से अनभिज्ञ थे कि हिन्दू यात्री सुवनसरी के उत्तर में माउण्ट सारी अर्थात् 'ब्रह्मपुत्रा मोड़' होते हुए तीर्थ-यात्रा के निमित्त जाया करते थे? क्या अँगरेजों को ज्ञात न था कि चुम्बी घाटी तिब्बत की कभी भी न थी? इन समस्त बातों के होते हुए भी अँगरेजों ने चीनियों पर विश्वास किया और वे भारत की सीमा को नेफा में दक्षिण की ओर हटा लाये। फिर क्या अमरीकन ही सीमा को दृढ़ करने में साथ देंगे? क्या प्रत्येक अमरीकन एटलस ने अकसाई चिन की सीमा को अपरिभाषित (undefined) या अनिर्णीत नहीं दिखाया है? क्या कोई पाठक बता सकता है कि एक भी अमरीकन ने भारतीय सीमा १९०८ वाले भारतीय मानचित्र के आधार पर खींची है? अम-रीकनों को तो पूर्ण विश्वास है कि हमारी सीमा अँगरेजों ने सैनिक बल पर बनाई। जार्ज वी० क्रेसे 'एशियाज लैण्ड एण्ड पीपुल्स' में १७३वें पृष्ठ पर लिखता है "शता-ब्दियों से तिब्बत और चीनी सभ्यता (culture) छलक कर दक्षिणी हिमालय पार करके उसके ढाल पर तराई के जंगलों तक पहुँची। इन दलदलों ने सदियों से हिन्दू सभ्यता की सीमा निर्धारित की। जब अँगरेज भारतीय शासक थे तब वे एकतरफा (unilaterally) सीमा को हिमालय की पीठ पर ले गए। इस प्रकार उन्होंने हिमालय के दक्षिणी ढाल को और उसकी रियासतों-नैपाल और भूटान को भारत में सम्मिलित कर लिया। आसाम के उत्तर में इस प्रकार ब्रिटिश और भारतीय मान-चित्र १९१४ से 'सो काल्ड (तथाकथित) मैकमोहन लाइन' जिसकी पुष्टि (रैटीफाई) नहीं हुई—दिखाने लगे। इसके विपरीत नेशनलिस्ट और कम्युनिस्ट चीनी, दोनों ही, भारतीय सीमा ब्रह्मपुत्र के निकट पर्वतों की जड़ में दिखाते हैं। इसी प्रकार के विवादग्रस्त क्षेत्र उत्तरी कश्मीर में भी हैं।"

तो यह है जार्ज वी० क्रेसे का कथन! परन्तु आश्चर्य तो यह है कि आगरा विश्वविद्यालय के १९६४-६५ के पाठ्यक्रम में भी यह पुस्तक पढ़ने के लिए अनुशंसित है, और उसमें हमारे छात्र पढ़ते हैं कि अँगरेज साम्राज्यवादियों ने अवैध रीति से चीन की भूमि को इन भागों पर अपना अधिकार कर लिया और अब हम उसी चोरी की सम्पत्ति का लाभ उठा रहे हैं। भला जिस देश में सरकार कुछ कहे और साहित्य कुछ, वहाँ वाद-विवाद न हो तो क्या हो? यही कारण है कि हमारे लोग चीनियों का पक्ष लेनेवालों की आलोचना ठीक तरह से नहीं कर पाते। पर हमें यह न भूलना चाहिए कि इस संबंध में ब्रिटिश और अमरीकन रुख क्या है। प्रत्येक व्यक्ति या जाति अपना लाभ देखती है। यह ७० करोड़ नागरिकोंवाले चीन देश से व्यापार करने का लोभ है जो कि ब्रिटिश और

आज पूर्णमासी है !

श्री शम्भूप्रसाद श्रीवास्तव

कार्तिक महीना कुहराया है क्षितिज-पंथ,
धरती पर शेष अभी पावस की सोंध गंध,
बेला अभिसार की प्रतीक्षा की दासी है,
आज पूर्णमासी है !

ढाके के मलमल-सी छितरायी चाँदी है,
पिला रही मधु आसव ज्योत्सना-सी बाँदी है,
रात कामिनी है और चन्द्रमा विलासी है !
आज पूर्णमासी है !

यहाँ-वहाँ कातर-तम चमगादड़-सा लटका,
जैसे अनभूला-सा दर्द-स्वरों में अटका
सन्नाटा जीवित है मर गई उदासी है !
आज पूर्णमासी है !

उजियाली को विवस्त्र किया गगन-मितवा ने,
बेच दिया धरम किसी युवती-सी विधवा ने,
क्या पी ले—ठीक नहीं उत्कंठा प्यासी है !,
आज पूर्णमासी है !

ज्वारों ने हाथ बढ़ा पुचकारा, चाँद हँसा,
अम्बर का दत्तक सुत, मुश्किल में आन फँसा,
सागर तो युग-युग से अन्धा विश्वासी है !
आज पूर्णमासी है !

फुनगी पर एक खगी-पिया-पिया रटती है,
कितनों की छाती इस मौसम में फटती है,
शायद अब घर लौटे मीत जो प्रवासी है,
आज पूर्णमासी है !

इतना विष पिला गई अमा निशा, कुछ न हुआ,
सारा रस चाट गई एक तृषा, कुछ न हुआ,
अरसे के बाद हुई आज बदहवासी है !
आज पूर्णमासी है !

अमरीका को चीन के अन्यायपूर्ण पक्ष को इतिहास के परिवेश में ठीक तरह से नहीं देखने देता।

ऐसी स्थिति में भारत को अपना लाभ स्वयं ही देखना होगा। यदि इस विषय में भारत ने अमरीका, इँगलैण्ड अथवा च्यांग पर विश्वास किया तो भविष्य कष्टमय हो जायगा। भारत को तिब्बत का मामला ५५ करोड़ भारतीय उप-महाद्वीप की जनसंख्या के लाभ को दृष्टि में रखकर निश्चित करना होगा। भारत को अपनी स्वतन्त्रता बनाये रखने के लिए अपनी उत्तरी सीमा से चीन को पृथक् करना होगा। भारत ने अधर्म किया जिस दिन (१९५४) उसने तिब्बत को चीन का अंग मान लिया। यह पाप ही नहीं, महान् पाप था जिसका प्रायश्चित भी वैसा ही करना होगा। सम्भव है कि भारत चीनि[यों से] अपने सीमान्त प्रान्त स्वतन्त्र करा ले, परन्तु जब [तक] चीनियों से तिब्बत स्वतन्त्र नहीं होता तब तक भार[त की] स्वतन्त्रता पर किसी भी समय संकट आ सकता है। [...] उपकार तो सभी करते हैं, परन्तु परोपकार कर[के] पुण्य मिलता है वही अमर है। अन्त में यही नीति [भारत] को अपनानी होगी। वे छोटी-छोटी जातियाँ और दे[श जो] आज चीनी डाकुओं के पैरों तले बर्बरतापूर्वक रौंदे [जाकर] त्राहि-त्राहि कर रहे हैं, उनको सहायता देकर स्व[तन्त्र] कराना होगा। स्वार्थ, परोपकार और मानवता का —सभी की यही माँग है।





राष्ट्रसंघ में भारत की ओर से पाकिस्तान को करारा उत्तर देकर भारत के प्रतिनिधि श्री छागला गत मास लौट आये। हवाई अडडे पर परराष्ट्र-सचिव श्री गुंडेविया से श्री छागला बात कर रहे हैं।

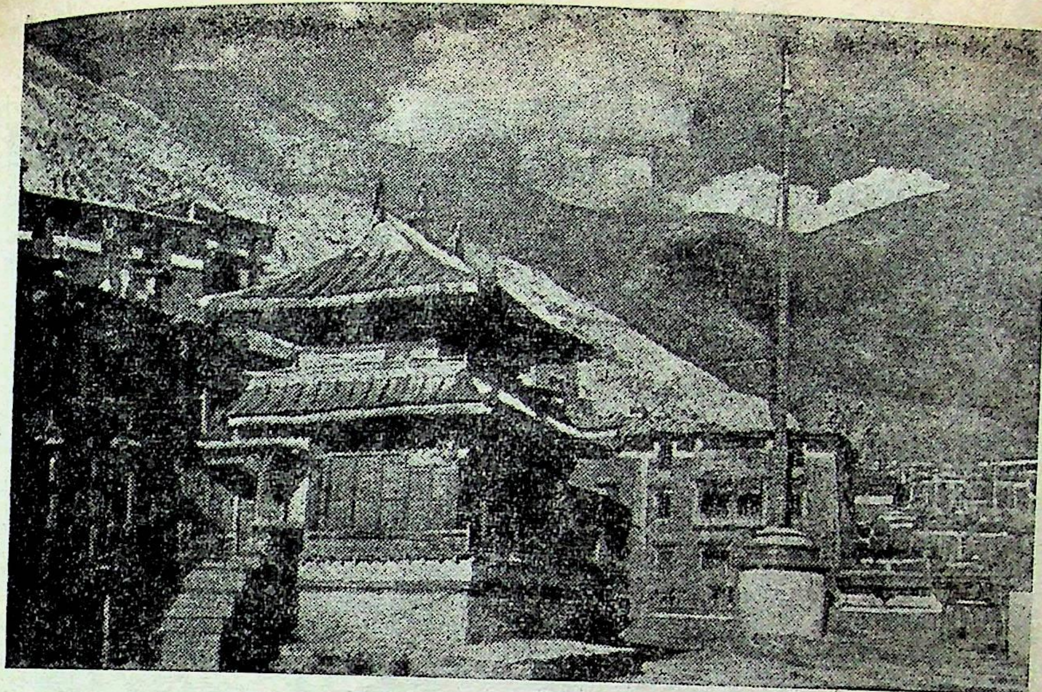
वाराणसी में डीज़ल [illegible]



राज्यसभा की सदस्यता से अवसर ग्रहण करने के उपलक्ष्य में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी को महामहिम राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन द्वारा दुशाले की भेंट।



वित्तमंत्री श्री टी० टी० कृष्णमाचारी संसद में बजट-भाषण देने को अपने कार्यालय से प्रस्थान करने को प्रस्तुत।



ल्हासा नगर के पास का पहाड़ी दृश्य

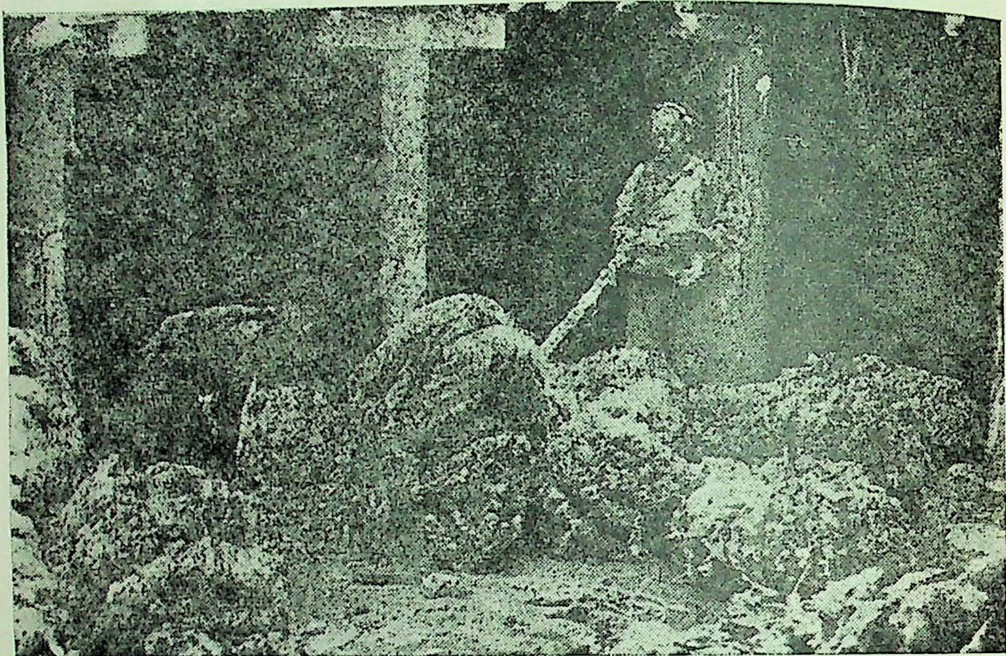
राहुलजी के साथ तिब्बत के अभियान में (११)

श्री फेनी मुकर्जी

हम अपने जीवन की बाजी लगाकर संसार के सबसे ऊँचे हिमालय पर्वत की बर्फ से ढकी खतरनाक चोटियों के उस पार जगमगाते प्राचीन भारत की एक झाँकी देखने के लिए गये थे। अपने मन में कितनी ही अभिलाषाएँ और कल्पनाएँ छिपाये ले गया था। जब हमें पता चला था कि हम उसे देखने से वंचित रह जायेंगे, और भगवान् बुद्ध के अवतार दलाई लामा के राजप्रासाद 'पोताला' के दर्शन के बिना ही लौटना पड़ेगा तो हमारा मन उतावला हो उठा था। छल, कपट और चोरी-वृत्ति अपना कर बेतहाशा बौद्ध जगत् के सर्वश्रेष्ठ राज्य-केन्द्र ल्हासा नगर की ओर भाग निकला था। वहाँ पहुँचकर पागलों की तरह जहाँ-तहाँ जमीन पर साष्टांग प्रणाम करता हुआ 'पोताला' मन्दिर के सम्मान में फिर रहा था।

जब हम तीनों अपने धनी सौदागर मित्र कुशोलाजी की सास के घर थके-माँदे पहुँचे तो शाम से ही सो गये। प्रातः हम दलाई लामा के निवास-स्थान पोताला को देखने चल दिये। एक चौड़ी सड़क पर चलकर "योथक-सम्बा" नामक एक लकड़ी के बहुत बड़े पुल पर पहुँचे; जिसके ऊपर एक चीनी शैली की सुन्दर छत बनी हुई थी। वहाँ से आगे चलकर और एक बड़े भारी कलात्मक फाटक से निकलकर विशाल पोताला के बाहरी प्रांगण में जा पहुँचे। हमारे सामने 'जीवित' बुद्ध का राज-मन्दिर चमक रहा था। मन्दिर की बाहरी दीवारों पर बड़े लम्बे चौड़े धार्मिक रंगीन चित्र अंकित थे। मन्दिर द्वार के सम्मुख लगे मंत्रों भरे ढोल को घुमाकर जब हमने मन्दिर में प्रवेश किया तो हमें बुद्ध भगवान् की एक विशाल स्वर्ण-मूर्ति जगमगाती हुई दिखायी पड़ी। वह एक बड़ी ऊँची खूबसूरत वेदी पर विराजमान थी और उसके चरणों पर घी के बड़े-छोटे सैकड़ों प्रदीप जल रहे थे। जलती हुई बड़ी-बड़ी मशालों को लिए हुए उस मूर्ति के अगल-बगल चार बौद्ध भिक्षु खड़े थे। यह मूर्ति एक बड़े विशाल हालनुमा कमरे में स्थापित थी जिसकी चिकनी दीवारें और खम्बे बड़े ही कलात्मक रूप से बुद्ध महाराज से सम्बन्धित चित्रों से सुसज्जित थे। लोहबान और धूप की सुगन्धि के साथ यह विशाल भवन लामाओं के मंत्र पाठ के स्वरों से गूँज रहा था। तिब्बती भक्त पारी-पारी से आगे बढ़कर भगवान् के चरणों पर माथा टेककर उल्टे पाँव फाटक के बाहर निकल जाते थे। जब हमारी बारी आयी तो हम तीनों भगवान् के चरणों के समीप प्रणाम करने के लिए लेट गये और फिर खड़े होकर सैकड़ों वर्ष पुरानी मूर्ति को देखते रह गये।

ऊपर से नीचे तक बुद्ध भगवान् की इस मूर्ति की बनावट प्राचीन भारतीय कला का एक जीता-जागता नमूना था। बड़ी ही सावधानी से, सैकड़ों वर्षों से इस स्वर्ण-मूर्ति की देखभाल करते हुए, एक के बाद दूसरे दलाई लामा इन्हीं भगवान् के चरणों में माथा टेक-टेक कर राज्य-शक्ति संचय करते आये थे। आज अपने अभियान दल के नेता राहुलजी की बताई हुई कुछ ऐतिहासिक बातें याद आयीं।



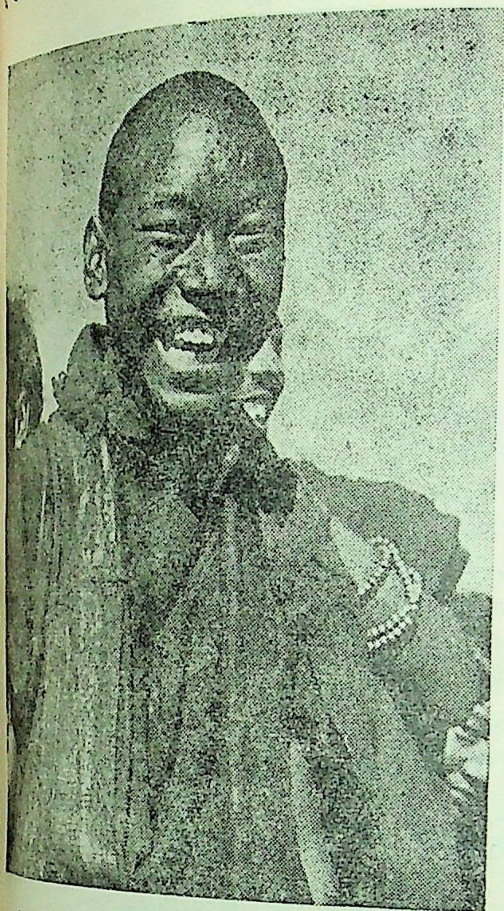
तिब्बती गाँव वाले ऊन को एकत्र कर भारत में भेजने के लिए तैयार कर रहे हैं"

उन्होंने बताया था कि प्राचीन काल में तिब्बत के सर्वप्रथम बौद्ध धर्म के नेता पंडित श्रोंग-षान-ज्ञाम्बोजी जब चीनी थांग वंश के सम्राट् टा-संग की कन्या उन-चिंग को विवाह कर लाये थे तब, वह बौद्ध मत को माननेवाली राजकुमारी अपने साथ भारत की बनी हुई बुद्ध भगवान् की एक स्वर्ण-मूर्ति पूजा करने के लिए लायी थी, और तभी से यह मूर्ति तिब्बत के राजप्रासाद पोताला में स्थापित थी। रह-रहकर हमें अपने दयालु भाई गेशेलाजी की याद आ रही थी। आज भी अगर वह हमारे साथ रहते तो हमको यहाँकी अनेक धार्मिक एवं प्राचीन ऐतिहासिक बातें बताते। किंतु उस समय तो हम दोनों भारतीय तिब्बत की राजधानी ल्हासा नगर में गूँगों बहरों की भाँति बड़े-बड़े सुन्दर भवन और उसके वैभव को देखते हुए घूम रहे थे।

घूमते-घूमते भूख और प्यास लग आयी, और हम एक तिब्बती चाय की दूकान पर जाकर बैठ गये। हमको गरम-गरम तिब्बती मक्खन और सोडा पड़ी चाय (शोजा) के साथ तिब्बती बिस्कुट मिले। खाने में यह बिस्कुट जितने स्वादिष्ट थे उतने ही देखने में सुन्दर भी थे। पूछने पर पता चला कि ल्हासा और शिगटषी नगर में कुछ मुसलमान रहते थे जो बिस्कुट बनाते थे और कीमती पत्थर और मोतियों का व्यापार करते थे। प्राचीन काल से ये थोड़े से मुसलमान यहाँ रहते आये हैं, और वे इन बौद्ध मत माननेवाले तिब्बतियों के साथ इस प्रकार घुल-मिलकर रहते थे कि दोनों की भाषा, पहनावे और जीवन धारा में कोई भी अन्तर न मालूम होता था। पहनावे में केवल इतना ही अंतर था कि मुसलमान नारियाँ अपनी कमर में हरे रंग की गरम ऊनी गुलूबंद लपेटे रहती थीं।

चाय पीते-पीते किसी तिब्बती नारी के कंठ का मधु गान सुनायी पड़ा। जब पता चला कि बगलवाली दूका एक शराब की भट्टी है तो चाय पीकर हम तीनों वह गये। मदिरा बेचनेवाली एक महिला थी जो स्वयं नशे में चूर ऊँचे चढ़े हुए सप्तक स्वर में गाना गा-गाकर दू दूर से आये हुए सौदागरों को तिब्बती मदिरा (Beer-छंग) पिला रही थी। हमारे कलाकार साथी कंवल इस वातावरण से आकर्षित होकर अपनी तूलिका से वहाँ एक चित्र अंकित करने बैठ गये। हमारे पाँव के तल के घावों में बड़ी पीड़ा हो रही थी। हमारे मित्र मुझे ए नेपाली सौदागर के पास ले गये जो कि अपनी डाक्ट योग्यता के लिए प्रसिद्ध थे। उन्होंने जब हमारे पाँव गंदे तलवों को गरम पानी से धोया तो देखा कि उन बड़े-बड़े फफोले फूटकर घाव बन गये थे और उँगलि के बीच से पीब बह रहा था। हमारे घाव को उन्हों साफ करके "जम्बक" मलहम लगा दी और रूई लपे कर पट्टी बाँध दी। जम्बक मलहम की एक डिबि देकर मुझको गरम कपड़े के बने तिब्बती फुल-बूट (Full-Boot) पहिनने को कहा। मेरे पैर असाधारण रूप बड़े हैं। बड़ी खोज के बाद मैंने अपने पाँव के नाप एक जोड़ा तिब्बती बूट नौ रुपये में खरीदा। ये रंग ऊनी कपड़े के बने फुल-बूट बर्फ और पथरीले मार्ग चलने के लिए बड़े ही सुविधाजनक होते हैं।

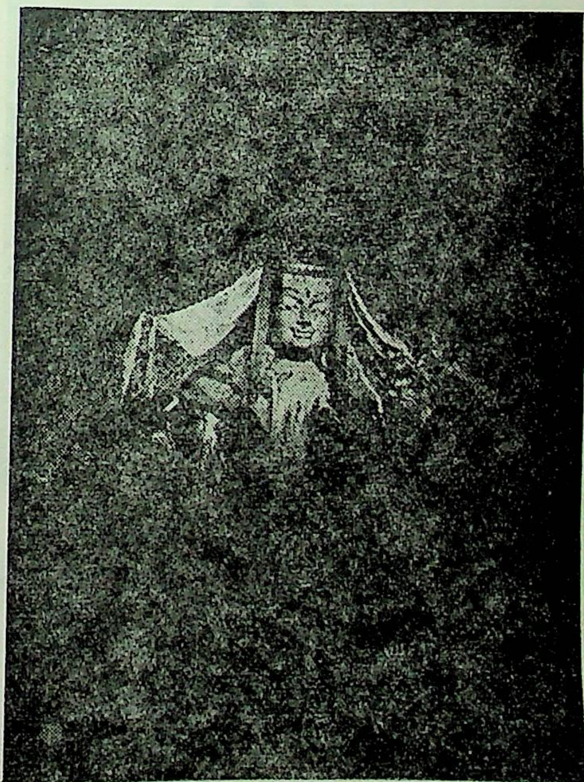
दयालु नेपाली सौदागर ने हमारे साथ सगे भाई



पोटाला के फाटक पर यह सुंदर तिब्बती युवक अतिथियों का स्वागत करता था

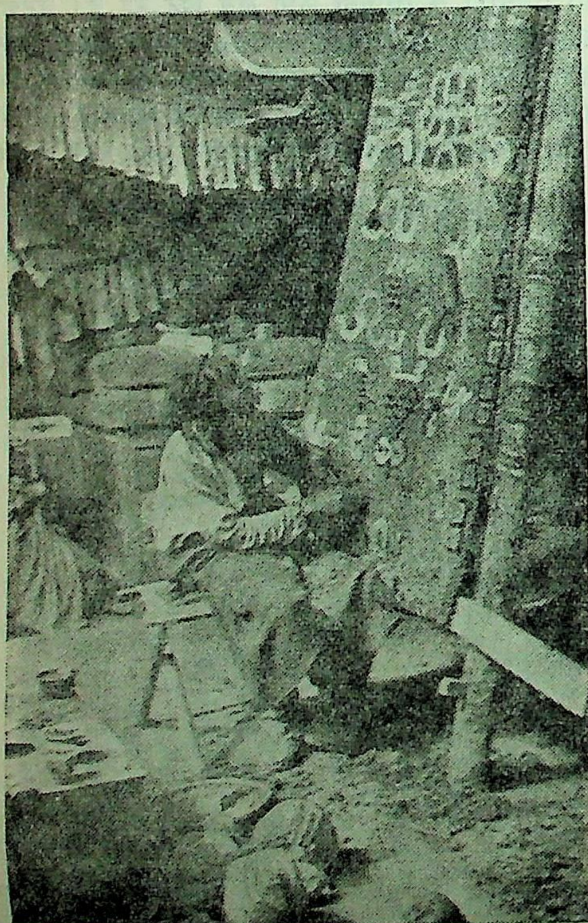
नि:स्वार्थ भाव से व्यवहार किया था। उन्होंने दूकान के पीछे अपने रहने के कमरे में ले जाकर के गिलास में इलायची और दालचीनीवाली मीठी पिलाई; और हमें अपनी नव-वधू से मिलाया जिसको हाल ही में लाकर अपने घर बिठाया था। इस तरुणी की आयु लगभग पंद्रह, सोलह साल की थी और हमारे नेपाली डाक्टर साहब चालीस पैंतालीस के रहे थे। वह अपनी नेपाली भाषा में कुछ टूटी-फूटी मिलाकर बोल सकते थे, और उन्होंने यहाँके अपने की अनेक बातें बतायीं। उनसे पता चला कि में गरीबी के कारण तिब्बती छोकरियाँ मूली-गाजर भाव सस्ते दामों मिलती थीं। दो-चार आने से लेकर रुपये में कोई भी आदमी एक तिब्बती औरत दिन एक सप्ताह या दस पाँच साल के लिये प्राप्त सकता था। जब किसी औरत से मन भर जाता तो हाथ पर कुछ रुपये-पैसे रखकर उसके बच्चों समेत निकाल बाहर कर सकता था। अत्यन्त गरीबी के यहाँके धार्मिक एवं सरकारी कानून पैसेवाले की इस प्रकार के व्यभिचार और अनीति को रोकने में असमर्थ थे। बातों ही बातों में हमको आगाह करते हुए उन्होंने बताया कि यहाँकी लगभग सभी नारियाँ गुप्त रोगों से पीड़ित थीं। तिब्बतियों का विश्वास था कि बिना गुप्त रोगवाली नारी हो ही नहीं सकती। हमारे मित्र कुशोलाजी ने इस बात पर हँसकर उनके पुरुषार्थ की सराहना की और अपनी भाषा में मुझसे कहा––"की मोदू सेमो दू, सेमोमिन्दु, कीमो मिन्दु" (अगर नारी है तो गुप्त रोग भी है, वरना गुप्त रोग के बिना नारी कहाँ ?) नेपाली सौदागर यहाँ बारह सालसे रहते थे और यह तिब्बती छोकरी उनकी तीसरी रखैल थी। इससे पहिले वे दो रखैलों को उनके बच्चों समेत अलग कर चुके थे। उनकी असली विवाहिता धर्मपत्नी अपने दो बालकों के साथ नेपाल में रहती थी, और उनका विचार था कि पाँच-सात वर्ष यहाँ और रहकर ढेर सारा धन लेकर सदा के लिए अपने देश नेपाल को लौट जायँगे।

बातों ही बातों में वे पूछ बैठे चीन की लड़ाई की ताजी खबरें। बिना अखबारवाले देश में मुझको स्वयं ही पता नहीं था कि हमारे देश भारत में क्या हो रहा था तो उन्हें दूर देश चीन की बातें कैसे बताता? वे खुद ही कह चले वहाँकी उड़ी हुई गप्पें और अफवाहें। बताया कि यहाँ के तिब्बती यह सुनकर बड़े प्रसन्न हैं कि जापानियों की बमबारी से चिनियाँ लोग खूब पिट रहे हैं। उनकी कल्पित जगत् की मनगढ़न्त बातों को सुनकर मन ही मन बड़ी हँसी आ रही थी। उन्होंने यह भी बताया कि होनेवाले दलाई लामा को ढूँढ़ निकाला गया है। ल्हासा से बहुत दूर किसी गाँव में, प्रसिद्ध सेरा और रेबुंग मठ के

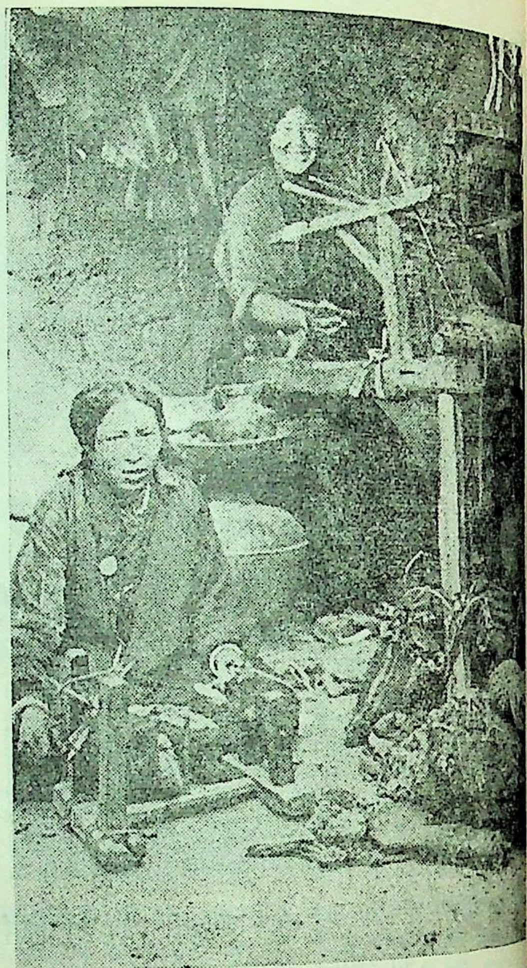


ल्हासा के पोटाला में भगवान बुद्ध की मूर्ति का मुख

उच्च अधिकारी लामाओं की मंडली ने उन्हें खोज निकाला है। वह इस समय केवल पाँच वर्ष के शिशु थे और ल्हासा पहुँचकर गद्दी पर बैठने में उनको लगभग एक वर्ष का समय लग जायगा। हमको उन्होंने बताया कि डेबुंग मठ का सही नाम रेबुंग मठ है जोकि तिब्बत निवासियों के मुँह से डुबुंग सुनायी पड़ता है। अगले दिन से दलाई लामा के पोताला में एक बड़ा भारी उत्सव मनाया जायगा। रेबुंग और सेरा मठों से आये हुए सैकड़ों लामा और हजारों ढावा (भिक्षु) सात दिन तक दलाई लामा के शुभ आगमन की तैयारी में उत्सव मनाएँगे। अर्थात् इस उत्सव के बाद सारे तिब्बत के खास-खास लामाओं एवं विशेष राज्य सरकारी अधिकारियों की एक टोली बालक दलाई लामा को लिवा ले आने के लिए रवाना होगी। इस उत्सव के बहाने सभी लामाओं, ढावाओं और सरकारी अधिकारियों को, जिनको दलाई लामा के ल्हासा नगर में प्रवेश करने पर विशेष समारोह में भाग लेना पड़ेगा, उस स्वागत उत्सव का एक पूर्वाभ्यास हो जायगा। ये सब बातें सुनकर मन में खुशी जरूर हुई कि सौभाग्यवश एक बड़ा महत्त्वपूर्ण धार्मिक समारोह देखने का अवसर मिलेगा; परन्तु मन



एक तिब्बती कालीन बनाते हुए



तिब्बत में ग्रामीण स्त्रियाँ ऊन का धागा बना रही हैं

में जल्दी से जल्दी ग्यानषी वापिस लौट जाने की चिन्ता लगी हुई थी, और हर घड़ी एक भय खाये जा रहा था कि कहीं कोई राहुलजी का परिचित न मिल जाय हमारी यह लुक-छिपकर ल्हासा पहुँचने की बात उस बता दे। अनेक उल्टी-सीधी बातें बताकर हमने किसी तरह अपने मित्र कुशोलाजी को इस बात के लिए तैयार कर लिया कि दूसरे दिन प्रातः इस धार्मिक समारोह का मजा लेकर दोपहर के भोजन के बाद ग्यानषी की ओर चल दिया जाय।

दूसरे दिन प्रातः चार बजे से ही पोताला में तुरही शंख और ढोल बज उठे जिनका उद्देश्य भूत-प्रेत और बुरी को दूर भगाने का था। नये दलाई लामा के अनुष्ठान सम्बंधित इस महत्त्वपूर्ण धार्मिक कार्य का श्रीगणेश मंगल-मय बनाने के लिए बड़े-बड़े शक्तिशाली और दयालु देवी-देवताओं का आवाहन सुरीली लय में नफीरी और बाँसुरी बजा-बजाकर किया जाने लगा। दलाई लामा का राजप्रासाद ल्हासा नगर से चार-पाँच मील की दूरी पर था। हमारे देश के ग्वालियर दुर्ग की भाँति एक

भारी ठोस पहाड़ी चट्टान पर वह बना हुआ था। यह भवन इतना भारी भरकम था कि लगता था कि वह ल्हासा नगर से सटा हुआ उसका प्रहरी बनकर खड़ा है।

झटपट हम तीनों तैयार होकर पोताला की ओर आने वाले धार्मिक समारोह के जलूस को देखने चल पड़े। जैसा कि पहले बता चुका हूँ कि तिब्बत निवासी केमरे द्वारा फोटो उतारने के काम को बुरा समझते थे, इसलिए सबों की यह राय हुई कि हम दोनों भारतीय भी कुशोलाजी के ढावाओं के लम्बे ढीले कोट पहन लें और बिना केमरे लिए हजारों तिब्बती तमाशबीनों की भीड़ में घूमते फिरें ताकि किसी मुसीबत में न फँस जायँ।

आसमान साफ था, चारों तरफ हरियाली पर धूप रही थी। हजारों नर-नारी और बालक-बालिकाएँ सजधज कर ऊँचे पोताला की ओर से आने वाले राजपथ के दोनों तरफ बैठने लगे। लगभग बजे हमने देखा कि हजारों लामाओं और ढावाओं का नाचता, उछलता हुआ पोताला के फाटक से निकल रहा था। दूर से उनके चटक रंग के वस्त्र और नीले गगन में खड़े पीत रंग के पोताला के अंग फूलों की मालाएँ लग रही थीं। धीरे-धीरे ढोल, आदि की आवाजें निकट आती गयीं और हजारों ओं और ढावाओं के एक साथ मंत्र पाठ की भनभनाहट हम सब बड़ी उत्सुकता से शांतिपूर्वक अपने स्थानों पर जम कर बैठ गये।

इस जलूस के सामनेवाले लामा लोगों की पोशाकों उछल-कूदवाले नाच से ऐसा लग रहा था मानों एक सैनिक दल चला आ रहा हो। इस दल के थे ढोल, तुतेरी और नफीरी इत्यादि बाजेवाले। इनके पीछे के आदमियों के हाथों में चमकदार, सुन्दर लोहवान के पात्र थे या धूप-दानियाँ। उनके पीछे सुन्दर छोटे-छोटे बालक-ढावा (भिक्षु) खूब सुन्दर कपड़े पहिने हाथों में अगरबत्ती के गुच्छे पकड़े चल थे। उनके पीछे थे सैकड़ों ढावा जो चमकदार भाले, आदि लिये हुए थे। उन्होंने चिकने डंडों पर भालों बर्छियों के सोने-चाँदी, ताँबे या पीतल के तरह-तरह सुन्दर फल लगा रखे थे। भालों में कपड़े की रंग- झंडियाँ लटक रही थीं और चिकने डंडों पर चाँदी- की पत्तियाँ जड़ी थीं। जब ये लोग अपनी-अपनी बर्छियाँ ऊपर उठाये जोर-जोर से मंत्र-पाठ के साथ एक से लोक नृत्य के आधार पर उछल-उछल कर आगे तो उनके भालों और बर्छियों की चमचमाहट और झंडियों का हवा में उड़ना बड़ा ही अच्छा लगता था। वर्दीधारी लामाओं की पलटन के पीछे लकड़ी के बड़े- सुन्दर तिकोनियाँ फलक लिये हुए कुछ लोग चल रहे इन फलकों पर रंगीन सत्तू इत्यादि से कुछ धार्मिक अंकित थे। उनके पीछे थे सैकड़ों जवान एवं बूढ़े लामा। फौजियों की भाँति कदम से कदम मिलाकर, पंक्तियों में मंत्र पाठ करते हुए चल रहे थे। इन पंक्तियों के बीच-बीच में ढोल एवं मजीरा बजानेवालों की पंक्तियाँ थीं जो लामाओं के मंत्र पाठ की लय में ताल का सहारा लगाते जा रहे थे। उनके पीछे दो-चार बहुत ही वृद्ध ऊँचे पदाधिकारी लामा थे। और सबों के पीछे चल रही थी हजारों की संख्या में मठ के छात्र ढावा गण की भीड़। पीछे की यह ढावाओं की भीड़ नये रंगरूटों की थी, जो हँसी-मजाक करते हुए और एक दूसरे को धकेलते हुए चल रहे थे। इनके बीच-बीच में कुछ तगड़े लामा अपने हाथों में डंडा लिये हुए थे जो कि जब तब शरारत करनेवाले ढावाओं को बुरी तरह से मारते जाते थे। लगभग एक मील लम्बा यह जलूस पोताला के सामने एक चहारदीवारी से घिरे हुए मैदान में आ रुका और वहाँ वे सब लोग सुन्दर पंक्तियों में चाय-पानी के लिए बैठ गये। पूछने पर पता चला कि थोड़ी देर विश्राम कर लेने के बाद पारी-पारी से हर एक दल उठ-उठकर अपनी-अपनी धार्मिक कवायद उस मैदान में करेगा।

दोपहर का समय हो गया था। अतएव हम तीनों अपने मित्र कुशोलाजी के घर की ओर चल पड़े। रास्ते में जब ल्हासा नगर का सुन्दर शांतिमय वातावरण देखा तो यह सोचकर मन में बड़ा दुख हुआ कि तुरंत ही तिब्बत की राजधानी ल्हासा से सदा के लिए बिदाई लेनी पड़ेगी। ल्हासा में हमारे देश के शहरों की भाँति कहीं कोला-हल न था। जहाँ-तहाँ बैठे लोग शांति से बातें कर रहे थे या एक प्रकार की चौपड़ खेल रहे थे। कभी-कभी माल लदे खच्चरों का काफिला आता-जाता दिखायी दे जाता था। खच्चरों के गलों से लटकती हुई घंटियों की घनघनाहट दूर से लोगों को सड़क से हट जाने की चेतावनी देती थी। कुशोलाजी के घर आकर देखा कि हमारे मित्र की सास ने हमारे लिए तरह-तरह के स्वादिष्ट तिब्बती भोजन तैयार कर रक्खे थे। खा-पीकर जब हमने बिदाई माँगी तो कुशोलाजी के ससुराल के लोगों की आँखों में अश्रु देखकर हमारा भी गला भर आया।

ल्हासा नगर से निकलकर हम उस लम्बे-चौड़े मैदान के पास आये जहाँ हजारों लामा और ढावा बैठे थे। थोड़ी देर रुककर उनका पूजापाठ देखने लगे। बीच में सत्तू से बनी शिव-लिंग की भाँति एक मूर्ति रक्खी थी जिसके चारों तरफ दो-तीन सौ लामा खड़े बड़े-बड़े ढोल और मजीरा बजा-बजाकर मंत्र पाठ कर रहे थे। उनमें से एक लामा मजीरा बजाते हुए हमारे देश के नृत्यकार उदयशंकर की भाँति मंत्रपाठ की ताल और लय के साथ पैर चलाते हुए आगे बढ़ा। उसके दोनों कंधों से जनेऊ की भाँति दो बड़ी-बड़ी मोतियों की मालाएँ कोट के ऊपर लटक रही थीं; और उसके सिर पर एक रंगीन ऊँची ऊनी टोपी लगी थी। किंतु सूर्य पश्चिम को झुकते हुए देखकर हम ग्यानषी की ओर चल पड़े। हरे-भरे पेड़-पौधों की छाया में चलते-चलते हम दलाई लामा के गर्मियों में रहने के स्थान

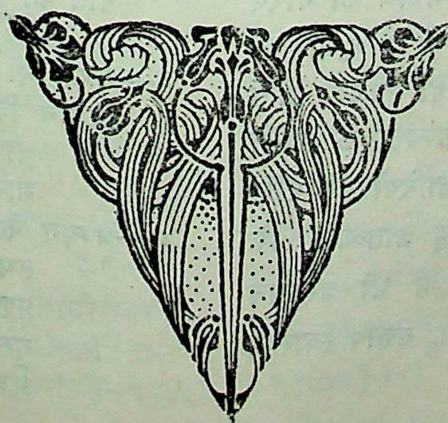
पर आ पहुँचे। इस प्रकार के बाग-बगीचेदार महल वहाँ सभी सरकारी अधिकारियों एवं मालदार सौदागरों के पास होते थे। दलाई लामा का यह "नोलपू-लिंका" नामक महल हरे-भरे मैदान पर कीचू नदी के पास एक ठंडी जगह पर बना हुआ था। उसके सभी भवन नये लग रहे थे।

जब कुशोलाजी हमको चहारदीवारी के फाटक के भीतर ले गये तो देखा कि सड़क के किनारे-किनारे दोनों ओर ऊँचे-ऊँचे धूपदान बने हुए हैं। जब दलाई लामा की सवारी यहाँ आती है तो इनमें धूप-लोहबान इत्यादि जलाये जाते हैं। चारों तरफ हरे-भरे सुन्दर चौरस मैदानों में अनेक सुन्दर भवन चमक रहे थे। बड़े-बड़े पेड़ों की छाया में चलते-चलते हमने वह भवन देखा जिसमें बड़े-बड़े पुजारी अधिकारी रहते थे। इन भवनों के चारों ओर रंग-बिरंगे फूलों की क्यारियाँ थीं। इस स्थान में चारों ओर हरे-भरे पेड़-पौधे और जहाँ तहाँ फूलों की क्यारियाँ देख कर कौन कह सकता था कि तिब्बत एक बड़ा ही रूखा-सूखा और मरुभूमि के समान पठार है? और थोड़ी दूर चलकर हमने दलाई लामा के राजवैद्य का भवन देखा। इस भवन के सामने इतने फूल खिले हुए थे कि लग रहा था जैसे सुन्दर गलीचा बिछा हुआ हो। उन दिनों दलाई लामा के उपस्थित न होने के कारण हम इधर-उधर घूम-फिर सके थे। दलाई लामा के राजप्रासाद के चारों ओर खुले हरे मैदान में तरह-तरह के फूलों की क्यारियाँ थीं, तरह-तरह के पेड़-पौधों का एक बड़ा भारी बगीचा था; जिसमें फलों के पेड़ भी थे। बड़े भारी फाटक के भीतर झाँक कर देखा कि भीतर पत्थर जड़े फर्श का बड़ा भारी आँगन था। फाटक के भीतर जाकर देखा कि दोनों तरफ सुन्दर पत्थर की बनी चौकियाँ बनी थीं और अगल-बगल की दीवारों पर रंगीन चित्रकारी की हुई थी। इन चित्रों में एक बड़ा भारी डरावना चित्र था जिसमें दिखाया गया था कि कोई बड़ा ही शक्तिशाली आदमी एक बड़े भारी खूंख्वार चीते को रस्सी से बाँधे खींचे लिये जा रहा था। यहाँकी दीवारों की चित्रकारी एवं छतों की बनावट पर अधिकांश चीन देश की कला का प्रभाव प्रतीत हो रहा था। ये भवन बहुत पुराने न थे। उस समय इनपर चूना की कलई की जा रही थी और खिड़की-दरवाजों पर ताजा रंग फेरा जा रहा था। दलाई लामा के खास महल के भीतर प्रवेश की आज्ञा न मिल सकी और समय के अभाव के कारण अधिक न रुककर हम ग्यानषी की ओर चल दिये। रात बिताने के लिये हम तीनों "सिंग-जोनखा" नामक एक गाँव में ठहर गये।

चार दिन लगातार तेजी से चलते हुए हम ग्यानषी के पास आ पहुँचे। यहाँ आकर हमारे ऊपर फिर आँधी, वर्षा और ओलों की बौछार होने लगी। तिब्बत की राजधानी ल्हासा में दलाई लामा के विख्यात पोताला के दर्शन करके हम तीनों केवल सोलह दिनों में सही-सलामत ग्यानषी लौट आये। वहाँ पहुँच कर दूसरे दिन हम अपना माल-असबाब रायसाहिब रामरत्नजी के मकान से उठा लाये। हमारे मित्र कुशोलाजी का बड़ा भारी मकान था जिसमें उन्होंने हम दोनों को ठहरने के लिए ऊपर के दो कमरे दे दिये और नीचे उनके ऊन के गोदाम में हमारा नौकर हमारे तीनों खच्चरों की देख भाल करता हुआ रहने लगा। डाकखाने जाकर हमको कलकत्ते से आये हुए फोटोग्राफी संबंधी रसायनों के कुछ पार्सल और राहुलजी के लिए समाचार-पत्रों और चिट्ठियों के पुलन्दे मिले। पोस्ट मास्टर साहिब ने बताया कि टेलीफोन द्वारा पता चला है कि हमारे कुछ पार्सल फारीजोंग पहुँच गये थे और वे चार-पाँच दिन में ग्यानषी पहुँचनेवाले थे। इस समाचार से हम बड़े प्रसन्न हुए और ग्यानषी में घूमने-फिरने का कार्यक्रम बनाने लगे। उधर हमारे लौट आने की खबर पाकर वही तिब्बती सुन्दरी श्रीमती समझो दुर्मा हमसे मिलने आयी। मौका पाकर उसके साथ हम ऊन के गोदाम और तिब्बती ग्राम उद्योग देखने गये। तिब्बत और भारत के बीच ऊन का बड़ा व्यापार होता था। यहाँ हजारों मन ऊन गोदामों में किस प्रकार भरा जाता था एवं उनकी गाँठें कैसे बाँधी जाती थीं, इसके हमने अनेक फोटो उतारे। उनके घरों में जाकर देखा कि वहाँकी नारियाँ किस प्रकार ऊन की सफाई, धुनाई और कताई करती थीं। अन्त में यह भी देखा कि तिब्बत के ग्रामीण किस प्रकार करघों पर गरम ऊनी कपड़ा और गलीचा बनाते थे। श्रीमती समझो की सहायता से हम यहाँके अनेक ग्राम-निवासियों से परिचित हो गये और इसी कारण यहाँके घरेलू व्यापार और धन्धों के फोटो उतार सके। यहाँ इन लोगों के रहस्यमय जीवन की अनेक बातें देखीं और सुनीं। मौसम के लगातार खराब रहने के कारण अधिकतर अपने कमरे में अँगीठी के पास ही बैठे रहना पड़ता था। समझो गाने-बजाने में निपुण थी और कुशोलाजी की धर्मपत्नी को नृत्य कला का बड़ा शौक था जिसके कारण हमारे चार-पाँच दिन आमोद-प्रमोद में बीत गये। पाँचवें दिन जब हमको खबर मिली कि भारत से आयी हुई डाक पहुँच गयी है तो हम तुरन्त डाकखाने गये। वहाँ अपने पार्सलों एवं पत्रों के बंडलों में हमें राहुलजी के रोग की दवाइयों का पार्सल भी मिल गया। यह सोचकर हम प्रसन्न हो रहे थे कि हमने तिब्बत की राजधानी ल्हासा में पोताला के दर्शन भी कर लिये और साथ ही अपने वचन के अनुसार हम राहुलजी को उनकी दवा भी पहुँचा देंगे। सारा माल-असबाब बाँधकर हम दूसरे ही दिन शिगष्टी की यात्रा के लिए तैयार हो गये। आज सायंकाल की हमारी आखिरी महफिल बहुत ही जोरदार थी। विरहिणी समझो दुर्मा ने कितने ही मीठे और सुरीले गाने सुनाये। जैसी थी वह मृगनयनी सुन्दरी वैसी ही थी वह कोकिल कंठी भी, और वैसी ही निपुण थी वाद्य बजाने में। तिब्बती लय में जब कूक उठती थी वह

अपने सारंगी के तारों को छेड़ कर तो मतवाली होकर नाचने लगती थी उसकी भौजाई अर्थात् कुशोलाजी की चमकदार दुलहिन। उस समय तिब्बती संगीत और नृत्य की मिठास और लचक के सामने हमें अपने पूर्वियों के बिरहा कजरी और ठुमका सब फीके लग रहे थे। अपने मित्र कुशोलाजी के आग्रह करने पर मैंने भी अपनी बाँसुरी बजाकर सुनायी, और हमारे साथी कंवलजी ने अपने पंजाब देश के लोक नृत्य भांगड़ा का प्रदर्शन श्रीमती समझो (छोटकी) की भौजाई "नेमोला" (मकान मालकिन) और उसके भैया (कुशोला जी) अर्थात् राजकुमारजी के गले में बाहें डालकर दिखाया। मेरी बाँसुरी और समझो ...के सारंगी-वादन की धुन में इन तीनों व्यक्तियों का मिलकर नाचना कुशोलाजी के सारे परिवार को बहुत पसंद आया। कौन जानता था कि उस दिन का आमोद-प्रमोद हमारे तिब्बती प्रवास का एक मधुर स्वप्न बनकर हमारे मन में सदा के लिए अंकित हो जायगा?

सबों के चले जाने के बाद हम अपने अपने कोट उतार कर मोटे तिब्बती कम्बल के थैलों में घुसकर लेट गये। थोड़ी देर बाद जब कुछ नींद आने लगी तो ऐसा लगा कि मानों कोई मोटा तगड़ा आदमी भारी बूट पहिने हमारी छत पर चल रहा था। मेरी नींद टूट गयी और मैंने ध्यान से उस आहट को सुना। जब मुझे निश्चय हो गया कि यह मेरा स्वप्न नहीं था और वास्तव में कोई हमारी छत पर चल रहा था तो मैंने दबी आवाज से अपने साथी कंवलजी को पुकारा। जब देखा कि वे गाढ़ी निद्रा में सो रहे हैं तो मुझे राहुलजी की चेतावनी याद आयी कि तिब्बत की गरीबी के कारण हमारी जान हर समय खतरे में थी और अपने बचाव के लिए हर समय पिस्तौल तैयार रखनी चाहिए। चट से तकिये के नीचे से पिस्तौल और टार्च बत्ती निकाल ली, और उठकर बिस्तर पर भरी पिस्तौल तानकर बैठ गया। मन ही मन गायत्री का जप करते हुए अपनी बेबसी को सोच रहा था कि अचानक अँधेरे में भान हुआ कि हमारा नौकर "बाबूला बाबूला" आवाज लगाता हुआ नीचे से लकड़ी के जीने पर धमधमाता हुआ तेजी से चढ़ा चला आ रहा है। मैं घबड़ाया कि अब क्या होगा? क्या सचमुच हमारा नौकर डाकुओं से मिलकर हमारे बहुमूल्य पार्सलों और धन को लूट ले जाएगा? हम यहाँ बेमौत मारे जाएँगे और भारत के इस अन्तिम तिब्बती अभियान पर पानी फिर जायगा! और आगे मैं कुछ सोच नहीं पाया था कि हमारे नौकर ने हाँफते हुए आकर जोर से हमको पुकारा और बताया कि हमें लूटने हमारे कोठे पर डाकू आ गये हैं। उसने जल्दी से पिस्तौल माँगी। हमने अपनी पिस्तौल और टार्च बत्ती दोनों उसको पकड़ा दीं, और वह भागकर छत के ऊपर चढ़ गया। अँधेरे में बैठे मैं छत के ऊपर दौड़ते हुए भारी पैरों की आहट सुन रहा था। कुछ ही दौड़-धूप के बाद मैंने दूर पर पिस्तौल चलने की आवाज सुनी। मन में सोचा कि बस, अब लड़ाई शुरू हो गयी है—डाकुओं के पास भी बन्दूकें हैं और हमारे नौकर को मारकर वे नीचे उतरकर हम दोनों को मार डालेंगे—और फिर लूट ले जाएँगे हमारे अभियान का सारा माल-असबाब। जब कंवलजी को झकझोरने पर भी उनको उठा न सका तो मन ही मन यह सोच कर अपने को कोसने लगा कि नौकर को पिस्तौल देकर मैंने बड़ी भारी भूल की है। मैंने अपने हाथों अपने बचाव के हथियार खो दिये और अपनी जान का खतरा और बढ़ा लिया। बचाव की और कोई सूरत न पाकर चट से उठकर ओवरकोट की जेब से वही नौ इंच लंबे फल वाला फौलादी चाकू निकाल लिया, और उसको खोलकर हाथ में पकड़े आ खड़ा हुआ अँधेरे कमरे के द्वार के पास दीवार से सटकर। मैं सर्दी में काँपता हुआ वहाँ यह निश्चय करके खड़ा हो गया कि कमरे में डाकू के प्रवेश करते ही मैं सारी शक्ति लगाकर उसकी छाती में यह छुरी भोंक दूँगा।



रामायणकालीन प्रसाधन

प्रोफेसर सत्यव्रत 'तृषित'

सौन्दर्य-बोध के परिष्कार की कहानी मानव-सभ्यता के क्रमिक उत्थान की कहानी है। प्रारम्भिक युगों के प्रकृति प्रदत्त पराग, मकरन्द एवं तरुपत्र आदि से लेकर आधुनिक यन्त्रनिर्मित देशी-विदेशी कृत्रिम प्रसाधन द्रव्यों के प्रयोग के पीछे मनुष्य की सौन्दर्य-अनुराग की शाश्वत भावना गतिशील है। मानव स्वभावतः सौन्दर्य-प्रेमी है। अपने नैसर्गिक लावण्य को प्रस्फुटित एवं चमत्कृत करने के लिए वह सदैव अलंकरण तथा प्रसाधन के विविध उपकरण व्यवहृत करता आया है। प्रसाधन के इन साधनों के स्वरूप एवं निर्माण विधियाँ इतिहास के पन्नों पर अपने पगचिह्न छोड़ते हुए निस्सन्देह परिवर्तित होते गये, किन्तु आधुनिक सभ्य विश्वसमाज को यह जानना कदाचित् रुचिकर होगा कि प्राचीन भारतीय श्रीमन्त शारीरिक शृंगार-सज्जा के प्रति अपेक्षाकृत कहीं अधिक जागरूक थे तथा कतिपय पक्षों में वे आधुनिक रसिक वर्ग से बहुत आगे निकल चुके थे। "प्राचीन भारतीय सभ्यता के केन्द्र-स्थल हड़प्पा के उत्खननों से जो 'शृंगारदान' मिला है, वह तत्कालीन समाज की प्रसाधन रुचि का परिचायक है। स्पष्टतः सिन्धु उपत्यका की स्त्रियाँ नेत्रों में अञ्जन, मुख पर लेप तथा सुगन्ध आदि अन्यान्य शृंगारिक वस्तुओं का उपयोग करती थीं। प्रसाधन के निमित्त ऐसे छोटे मञ्च मिले हैं, जिनका निर्माण विशेषतः स्त्रियों के लिये हुआ प्रतीत होता है। एक ऐसी मेज भी उपलब्ध हुई है जिसमें काँसे का अण्डाकार दर्पण लगा हुआ है। हाथीदाँत के विभिन्न आकार के कंघे नारियों के केश-प्रसाधन में प्रयुक्त होते होंगे।"[१] वैदिक तथा बौद्ध वाङमय, शुंग, कुषाण एवं गुप्तकालीन साहित्य तथा कलाकृतियाँ भारत की युगयुगीन प्रसाधन अभिरुचि की गौरव गाथा संजोए हुए हैं। वाल्मीकि-रामायण में शृंगार के उपकरणों एवं विधियों की जो विस्तृत सूची उपलब्ध होती है, वह तत्कालीन समृद्ध एवं समुन्नत सभ्यता के सर्वथा अनुरूप है तथा उसमें तात्कालिक नर-नारियों की परिमार्जित रुचि प्रतिबिम्बित है। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि आज की भाँति रामायणकालीन समाज में भी प्रसाधन का प्रमुख उद्देश्य सौन्दर्यवर्धन ही था, यद्यपि स्वास्थ्य की दृष्टि से उसकी उपयोगिता अस्वीकार नहीं की जा सकती।

प्राचीन भारतीय प्रसाधन-क्रिया का प्रारम्भ स्नान से होता था। देश की उष्ण जलवायु में स्नान, वैसे भी, अनिवार्य दैनिक कृत्य है। वैदिक युग में समावर्तन के अवसर पर स्नातक का स्नान पूर्ण वैभव के साथ सम्पन्न होता था। मोहन्जोदड़ो के मज्जनगृह तथा बौद्धकालीन 'जन्ताकघर' इस आवश्यकता की अनिवार्यता के सूचक हैं। इसके अतिरिक्त धर्मपरायण हिन्दुओं में स्नान स्फूर्ति एवं शुद्धि का साधन तथा कान्ति की वृद्धि का अमोघ कारण माना जाता है।[२] वाल्मीकीय रामायण में मुख्यतः राजकीय स्नान का वर्णन हुआ है, किन्तु इसकी प्रमुख विशेषताएँ सार्वजनीन प्रतीत होती हैं। रामायणीय स्नान विस्तृत कृत्य थी जिसके सम्पादन में, निस्सन्देह, पर्याप्त समय की आवश्यकता होती होगी। स्नान से पूर्व दन्तधावन अनिवार्य था।[३] भरत के सैनिकों ने भरद्वाज के आश्रम में दन्तधावन के अनन्तर ही स्नान किया था। ऋषि के आश्रम में शुभ्र दातुनों का विशाल संचय विद्यमान था (शुक्लानंशुमत-श्चापि दन्तधावनसंचयान्--२.९१.७५) तत्पश्चात् शरीर पर तैल मर्दन किया जाता था। रामायण में इसे 'अभ्यंग' तथा 'उच्छादन' कहा गया है[४] (२.६९.१०., २.९१.५३)

१--वैदिक एज--पृष्ठ १७५।

२--स्नानं नाम मनःप्रसादजननं दुःस्वप्नविध्वंसनं
शौचस्यायतनं मलापहरणं संवर्धनं तेजसः।
रूपोद्योतकरं गदप्रशमनं कामाग्निसंदीपनं
नारीणां च मनोहरं श्रमहरं स्नाने दशैते गुणाः॥
(सुभाषितरत्नभाण्डागार। परशुराम कृष्ण गोडे की पुस्तक 'Studies in Cultural History of India, Vol. 1. पृष्ठ १०३ पर उद्धृत।)

३--चरक ने सायं-प्रातः दोनों समय दन्तधावन का विधान किया है--
आपोत्थिताग्रं द्वौ कालौ सायम्प्रातश्च बुद्धिमान्। (चरक सूत्र, अ० ५)

४--अभ्यंग के गुणों के लिये देखिये--
तथा शरीरमभ्यंगाद् दृढं सुत्वक् च जायते।
प्रशान्तं मारुताबाधं क्लेशव्यायामसंसहम्॥
सुस्पर्शोचितांगश्च बलवान् प्रियदर्शनः।
भवत्यंगनित्यत्वान्नरोऽल्पजर एव॥
(चरक सूत्र ५.८६.८९)

...की चिकनाहट मिटाने तथा शरीर पर पड़ी धूलि आदि ...दूर करने के लिए 'कल्क' अथवा 'चूर्णकषाय' प्रयोग में ...थे (२.९१.७४) कालिदास ने इसके लिए 'लोध्रचूर्ण' ...उल्लेख किया है।[5] राजा तथा अन्य राजकीय पुरुष ...आदि पदार्थों से सुगन्धित जल से स्नान करते थे।[6] ...जल में सुगन्धों के प्रयोग की परम्परा अपने देश ...दूर अतीत से चली आ रही है। राजाओं तथा अन्य ...अधिकारियों को स्नान कराने के लिए, तत्कालीन ...में, लावण्यमयी परिचारिकायें नियुक्त की जाती ...स्नानक्रिया में पारंगत होती थीं। भरद्वाज के आश्रम ...आठ विशालाक्षी रमणियों ने एक-एक सैनिक को ...स्नान कराया था।[7] कलशों में सुगन्धित जल ...अन्य मांगलिक स्नानीय सामग्री लेकर जो ललाम ...नित्य-प्रति महाराज दशरथ की सेवा में उपस्थित ...करती थीं, वे शिष्टाचार सम्पन्न थीं (शुचिसमा-...--२.६५.७) जो राजकीय परिजनों के लिए ...अनुरूप तथा अनिवार्य है। आदि काव्य में उन्हें ...नकोविदा:' तथा 'स्नानशिक्षाज्ञा:' कहा गया है।[8] ...ज्ञात होता है कि उन्हें मालिश करने तथा शरीर ...एवं संवाहन आदि की विधिवत् शिक्षा दी जाती ...पूर्णत: प्रशिक्षित होने पर ही उन्हें राजकीय स्नान ...दायित्व सौंपा जाता था। संस्कृत-साहित्य में ...कई स्थलों पर राजकीय स्नान के विलासपूर्ण चित्र ...होते हैं।[9] जटाभार के कारण सामान्यत: प्रति-दिन केशस्नान करना सम्भव न होता होगा, किन्तु अयोध्या-वासियों को नियमित शिरःस्नायी कहा गया है (शिरः-स्नातैर्जनैर्युताम्--२.७.३) रावणवध के पश्चात् सीता भी केशस्नान एवं शृंगार करके राम के पास आई थीं (ततः सीतां शिरःस्नातां संयुक्तां प्रतिकर्मणा--६.११४.१४)।

राज्याभिषेक के अवसर युवराज का स्नान अनिवार्य था। युवराज को पावन जल से यथाविधि स्नान कराया जाता था। सुग्रीव के अभिषेक के लिए वानरों ने विभिन्न नद-नदियों तथा समुद्रों से जल संग्रह किया था, जिसे विविध सुगन्धों से सुवासित बनाकर उसका राज्याभिषेक सम्पन्न हुआ था (स्नातोऽयं विविधैर्गन्धैरौषधैश्च यथा-विधि--४.२६.६), मुनिजन नदीतीर्थों पर स्नान करते थे (सरितां तीर्थेषु २.९१.७४, तीर्थमकर्दमम्--१.२.४), भगवान् वाल्मीकि ने तमसा के जिस तीर्थ पर स्नान किया था, वहाँ का जल सत्पुरुषों के हृदय के समान निर्मल एवं शान्त था (रमणीयं प्रसन्नाम्बु सन्मनुष्यमनो यथा--१.२.५.) भरद्वाज के आश्रम में भरत के सैनिकों ने भी नदी के घाटों पर स्नान किया था। वहाँ उन्हें समूची सामग्री सुलभ थी। कल्क, चूर्ण कषाय, दातुन, उज्ज्वल-चमकीले दर्पण, पादुकाएँ, वस्त्र, शयनासन सभी कुछ वहाँ विद्यमान था (२.९१.७४-७६)।

उपर्युक्त निर्देशों से ज्ञात होता है कि रामायण-काल में सामान्य, राजकीय सभी प्रकार के स्नानों की विशेष विधि थी, जिसका पालन बड़े मनोयोग से किया जाता था। भगवान् वाल्मीकि के विधिवत् अभिषेक (स्नान) का आदि काव्य में पृथक् उल्लेख हुआ है (सोऽभिषेकं ततः कृत्वा तीर्थे तस्मिन्यथाविधि--१.२.२०) स्नान, सम्भवतः टब (द्रोणी) में बैठकर किया जाता था (द्रोणीकृत इवार्णवः--४.१.७९) द्विजातियों में स्नान के उपरान्त स्वयं पुष्प बीन कर बलि देने की प्रथा प्रचलित थी--

विविक्तेषु च तीर्थेषु कृतस्नाना द्विजातयः।
पुष्पोपहारं कुर्वन्ति कुसुमैः स्वयमर्जितैः ॥३-११-५२

तत्पश्चात् चमकीले दर्पण के सामने बैठकर केश-प्रसाधन किया जाता था। केशसज्जा के लिए आजकल की भाँति कंघी तथा ब्रुश का प्रयोग होता था। भरद्वाज के आश्रम में ये भी विद्यमान थे (कंकतान् कूर्चांश्छत्राणि च धनूंषि च--२.९१.७७)।

विशाल-मदिर नयन बड़े मादक होते हैं। नयनों का

...लोध्रकल्केन हृतांगतैलमाश्यानकालेयकृतांगरागाम्।
...वसानामभिषेकयोग्यं नार्यश्चतुष्काभिमुखं व्यनैषुः॥
(कुमारसम्भव ७.९)

...हरिचन्दनसम्पृक्तमुदकं काञ्चनैर्घटैः--२.६५.८।

...उच्छोद्य स्नापयन्ति स्म नदीतीरेषु वल्गुषु।
...एकमेकं पुरुषं प्रमदाः सप्त चाष्ट च॥ २.९१.५३.

...ततः शुचिसमाचाराः पर्युपस्थानकोविदाः।
स्त्रीवर्षवरभूयिष्ठा उपतस्थुर्यथा पुरा॥ २.६५.७.
हरिचन्दनसम्पृक्तमुदकं काञ्चनैर्घटैः।
...आनिन्युः स्नानशिक्षाज्ञा यथाकालं यथाविधि॥
२.६५. ८.

...अंशुकनिविडनिबद्धस्तनपरिकरा दूरमुत्सारितवलय-बाहुलताः समुत्क्षिप्तकर्णाभरणाः कर्णोत्संगोत्सारि-तालकाः गृहीतजलकलशाः स्नानार्थमभिषेकदेवता इव वारयोषितः--कादम्बरी।

आकर्षण उनकी विशालता तथा सूक्ष्म-कृष्ण पलकों पर अवलम्बित होता था। रामायण में कृष्ण एवं वक्र पलकों का बहुशः उल्लेख आया है (कृष्णवक्राक्षिपक्ष्मणा—४.१५.३६)। वास्तव में आँखों के सौन्दर्य के लिए काली, घनी एवं टेढ़ी पलकें आवश्यक मानी जाती थीं (वक्राः सुपक्ष्माश्च सुनेत्रमाला—४.५.२२; वाममरालपक्ष्म-राज्यावृतम्—५.२९.२.)। आँखों का सौन्दर्य उनके काले एवं श्वेत भाग के स्पष्ट होने पर भी निर्भर है (कृष्ण विशालशुक्लम् ५.२९.२.) यह काम अञ्जन से होता है। इसलिए चरकसंहिता में नित्यप्रति अञ्जन आँजने का विधान किया गया है (सौवीरमञ्जनं नित्यं हितमक्षणो प्रयोजयेत्)।

"अंजन का प्रयोग बहुत प्राचीन काल से प्रचलित है। सुमेरियन लोग प्राचीन काल से आँख में सुरमा लगाते थे। मिस्र में सुरमा पलकों पर लगाया जाता था। सिन्धु सभ्यता के अवशेषों में सुरमेदानी और सलाइयाँ मिली हैं"[१०]। रामायण काल में अंजन नेत्र प्रसाधन के लिए व्यापक रूप से व्यवहृत होता था। नारी के लिए यह श्रृंगार की प्रमुख वस्तु थी। पर्वों तथा उत्सवों पर अंजन अनिवार्यतः आँजा जाता था। दुःख शोक के समय अन्य प्रसाधनों के साथ अंजन भी त्याज्य था। कोपगृह में पड़ी कैकेयी ने दशरथ को कहा था—"यदि राम वन नहीं जायेगा तो मैं न खानपान करूँगी, न श्रृंगार, न चन्दन का लेप, न आँख में अंजन"[११]। राम को प्रस्रवण गिरि का शिखर चूर्णित अंजन-पुंज के समान प्रतीत हुई (४.२७.१४)। सुरमा सुरमेदानियों में रखा जाता था, जिन्हें 'आँजनी' कहते थे (२.९१.७७) प्रसाधन द्रव्यों में कदाचित् अंजन ही एकमात्र ऐसा है जो नेत्रों के सौंदर्य एवं स्वास्थ्य के लिए समान उपयोगी है।[१२]

चाप-सदृश कुटिल भौहें नेत्रों के सौन्दर्य को ... कर देती हैं (भ्रुवौ चापनिभे शुभे ७.२६.१८.) सौ... की दृष्टि से काली भ्रू आकर्षक होती है। कालिदा... पार्वती के भ्रुवों को 'शलाकांजन निर्मित' कहा है... भौहों के सौन्दर्य के कारण ही रामायण में सीता ... 'सुभ्रू' कहा गया है (५.२९.६)। भौहों को काली क... के लिए रामायण काल में सम्भवतः अंजन अथवा का... का प्रयोग होता था।

स्त्रियाँ माथे पर तिलक लगाती थीं, जो शोभाव... होने के साथ मांगलिक माना जाता था। आज भी ति... सौभाग्य-चिह्न समझा जाता है। इसीलिए भावुक हि... ललनाओं का यह अनिवार्य एवं पुनीत दैनिक कृत्य ... तिलक गोरोचना, मनसिल, हरताल इत्यादि मंगल-द्र... से किया जाता था। रामायण में केवल मनसिल के ति... का उल्लेख हुआ है। बन्दिनी सीता ने हनुमान् से क... था कि राम को मेरे मनसिल के तिलक का स्मरण दिला... (मनःशिलायास्तिलकं तत् स्मरस्वेति चाब्रवीत् ५.... २३) वस्तुतः सीता थी ही तिलक प्रिय (एष व्य... जानाति तिलकस्तिलकप्रियाम् ३.६०.१६) तत्का... समाज में तिलक का इतना महत्त्व था कि इसके अभा... में नारी का सौन्दर्य अधूरा रहता था। हेमन्त ऋतु ... सूर्य के दक्षिणायन में संक्रान्त होने पर उत्तर दिशा ... प्रकार श्रीहीन हो गयी जैसे तिलक के बिना नारी (विहीं... तिलकेव स्त्री नोत्तरा दिक् प्रकाशते ३.१६.८) स्ना... से तथा सोने से तिलक पुँछ जाता था। रावण के अन्तः... पुर में हनुमान ने जो स्त्रियाँ देखीं उनमें कुछ के तिल... शय्या पर लेटने से मिट चुके थे (व्यावृत्ततिलकाः कादि... ५.९.४५)

कपोलों का प्रसाधन दो प्रकार से किया जाता था... "चिबुक के कूप से ऊपर गालों पर रेखाएँ खींचकर उ... पर लता की भाँति शाखाएँ एवं पत्तियाँ डाल दी जा... थीं। इन्हें पत्ररेखा कहा जाता था। पावस में चक्रवा... तथा सिवार से युक्त नदीमुख पत्ररेखाओं से सज्जित नारि...

१०—देखिये—अत्रिदेव विद्यालंकार—'प्राचीन भारतीय प्रसाधन' पृष्ठ ६७

११—अहं हि नैवास्तरणानि न स्रजो
न चन्दनं नांजनपानभोजनम्।
न किंचिदिच्छामि न चेह जीवनं
न चेदितो गच्छति राघवो वनम्॥ २.९.६४

१२—अंजन के आयुर्वेदिक गुणों के लिए देखिये—
चक्षुस्तेजोमयं तस्य विशेषाच्छ्लेष्मतो भयम्।
ततः श्लेष्महरं कर्म-हितंदृष्टेः प्रसादनम्॥
चरक ५।१६

१३—तस्याः शलाकांजननिर्मितेव कान्तिर्भ्रुवोः
यतलेखयोर्या।
तां वीक्ष्य लीलाचतुरामनंगः स्वचापसौन्दर्य...
मुमोच॥ (कुमारसम्भव १४७)

...के सदृश शोभित हो रहे थे।[१४] सम्भवतः मुख पर ...के पत्ते भी चिपकाये जाते थे अथवा पत्तों पर नमूने ...कपोलों पर अंकित कर दिये जाते थे। "गालों को ...प्रकार की श्वेत-रक्त चन्दन की बुंदकियों से भी ...जाता था। इसी प्रकार ललाट के ऊपर केश-...के किनारे सफेद-लाल बुंदकियाँ डाली जाती थीं। ...ये दोनों ओर कान तक फिर नीचे भ्रुवों के ...और दोनों तरफ रेखाएँ आँखों की कोरों के ऊपर ...दी जाती थीं।[१५] यह विशेषक कहलाता था। ...के लिए जाती हुई रम्भा ने पुष्पों से (पुष्परस ...मुख पर विशेषक बनाया था (कृतविशेषकैरार्द्रैः ...ऋतुसमुद्भवैः ७.२६.१७) अपहरण के समय सीता ...अस्त-व्यस्त हो गये थे तथा उसका विशेषक पुँछ ...गया।[१६] "इन्हीं बुंदकियों से जब तिलक करते थे, ...उसको भक्ति कहते थे। भक्ति के रूप में ललाट के ...चारों ओर वृत्ताकार दौड़ती चन्दन की श्वेत ...बुंदकियों के बीच लाल बिन्दी या लाल बुंदकियों के ...बिन्दी भी रचते थे। इसमें घुली अथवा सूखी ...कुंकुम का भी प्रयोग होता था।"[१७] यह चित्र-...अधिकतर हाथियों के विशाल मस्तक पर की जाती ...चित्रों से युक्त हाथियों के विशाल मस्तक ...लगते थे मानों उनमें छोटे-छोटे झरोखे लगे हों ...इवाभान्ति गजाः परमभक्तिभिः ३.५.१५)।[१८] ...की आकृति एवं वर्ण का सौन्दर्य-वृद्धि में विशिष्ट ...है। पतले-गुलाबिल होंठ कवियों की मधुर कल्पना के प्रिय विषय हैं। संस्कृत-साहित्य में ओष्ठ की तुलना सर्वत्र 'बिम्ब' से की गयी है। यह फल पकने पर लाल सुर्ख होकर आदर्श अधर का प्रतिनिधित्व करता है। रामायण में भी सीता के अधर को बिम्बफल के तुल्य बताया गया है (तस्याः पुनर्बिम्बफलोपमोष्ठम् ५.२९.७; तां नीलकण्ठीं बिम्बोष्ठीम् ५.१५.२९) अधर में कृत्रिम लालिमा लाने के लिए किन द्रव्यों का प्रयोग होता था, इसका कोई उल्लेख रामायण में नहीं हुआ है।

रामायण काल में स्तनों का भी प्रसाधन किया जाता था। पुष्ट पयोधरों पर रक्तचन्दन का लेप होता था। सम्भवतः चन्दन की बुन्दकियाँ भी उरोजों को सजाने के लिए लगायी जाती थीं[१९]। शुंगकाल में स्तनों को विभिन्न आकृतियाँ डाल कर सजाया जाता था।

शरीर की शोभावृद्धि के लिए तथा पसीने की दुर्गन्ध कम करने के लिए स्नान के पश्चात् आधुनिक पाउडर की भाँति प्राचीन समय में सुगन्धित द्रव्यों का लेप किया जाता था। अधिकांश संस्कृत ग्रन्थों में चन्दन, कर्पूर तथा केसर का उल्लेख आता है। श्वेत अगुरु तथा गोरोचना का उपयोग भी अंगराग के लिए होता था। रामायण-काल में अंगराग के लिए अधिकतर चन्दन प्रयुक्त होता था। आदिकाव्य में कई प्रकार के चन्दन का उल्लेख हुआ है— शुक्लचन्दन (२.९१.७५), हरिचन्दन (२.५५.८; ४.४१.४०), रक्तचन्दन (२.९१.७५; ४.९.२६), गोशीर्षक पद्मक, श्याम (४.४१.४०) तथा परार्घ्य चन्दन (५.१०.१९)। इनमें परार्घ्य सर्वोत्कृष्ट एवं बहुमूल्य प्रतीत, होता है। यह शशक अथवा रुधिर के समान लाल तथा शीतल एवं सुगन्धित होता था। सुमन्त्र जब राम को मिलने गये तब राम ने परार्घ्य चन्दन का अनुलेप कर रखा था[२०]। रावण की भुजाएँ भी इसी उत्तम चन्दन से चर्चित थीं[२१]। अपनी शीतलता के कारण चन्दन विरह-सन्ताप

१४—...चक्राकानि सशैवलानि
कार्नदुकूलैरिव संवृतानि।
...रेखानि सरोचनानि
वधूमुखानीव नदीमुखानि॥ ४.३०.५५

१५—द्रष्टव्य—अत्रिदेव विद्यालंकार—'प्राचीन भारतीय प्रसाधन'—पृष्ठ ७४

१६—...कुलकेशान्तां विभ्रमृष्टविशेषकाम्।
...विनाशाय दशग्रीवो मनस्विनीम्॥ ३.५२.४३

१७—अत्रिदेवविद्यालंकार—'प्राचीन भारतीय प्रसाधन,' पृष्ठ ७४।

१८—तुलना कीजिए—
...तां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां
भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमंगे गजस्य॥ (मेघदूत १९)।

१९—तौ लोहितस्य प्रियदर्शनस्य
सदोचितावुत्तमचन्दनस्य।
वृत्तौ स्तनौ शोणितपंकदिग्धौ
नूनं प्रियाया मम नाभिपातः॥ ३.६३.८।

२०—वराहरुधिराभेण शुचिना च सुगन्धिना।
अनुलिप्तं परार्ध्येन चन्दनेन परंतपम्॥ २.१६.९.

२१—शशक्षतजकल्पेन सुशीतेन सुगन्धिना॥
चन्दनेन परार्ध्येन स्वनुलिप्तौ स्वलंकृतौ॥
५.१०.१९।

को शान्त करने के लिए प्रयुक्त होता था (विभ्रमोत्सिक्त मनसः स गरागा नरा इव † ४.१.६०) सन्ध्या की लालिमा से रंजित आकाश राम को कामातुर पुरुष के समान प्रतीत हुआ, जिसने चन्दन का लेप कर रखा हो (सन्ध्याचन्दन-रंजितं कामातुर मिवाम्बरम् ४.२८.६) स्त्रियाँ भी अंगों पर अंगराग लगाती थीं। अत्रिपत्नी अनसूया ने सीता को बहुमूल्य अंगराग दिया था[२२]।

रामायण में सुगन्धित श्वास का उल्लेख कई स्थलों पर हुआ है। राम के वनगमन के पश्चात् कौसल्या विलाप करती हुई कहती हैं कि मैं कमल-तुल्य श्वास से सुरभित राम का मुखड़ा पुनः कब देखूंगी[२३]। कमलों तथा केसर की गन्ध से युक्त वायु राम को सीता के सुगन्धित श्वास के समान प्रतीत हुई (४.१.७२)। रावण के अन्तःपुर में हनुमान् ने जिन अभिराम रमणियों को देखा उनका श्वास पद्मगन्ध के सदृश चित्ताकर्षक था। (अपश्यत् पद्मगन्धीनि वदनानि सुयोषिताम् ५.९.३६) इससे स्पष्ट है कि श्वास को सुगन्धपूर्ण बनाने के लिए आयुर्वेद में निर्दिष्ट इलायची, जायफल आदि पदार्थों का प्रयोग अवश्य होता होगा।

रामायणकालीन आर्यजनों का श्रृंगार पुष्पों एवं पुष्पमालाओं के बिना अधूरा रहता था। स्त्री-पुरुष दोनों ही मालाएँ पहनते थे। स्त्रियाँ अपने केशपाशों में पुष्प खोंसती थीं। अपहरण के समय वैदेही के सिर के फूलों ने रावण को आच्छन्न कर दिया था तथा शेष पृथ्वी पर बिखर गये थे (पद्मपत्राणि वैदेह्या अभ्यकीर्यन्त राव[णम्] ३.५२.१६,२६) राम के वियोग से सन्तप्त अयोध्या[...] युवकों ने वनमालाएँ पहननी भी छोड़ दी थीं[२४]। [...] को मालाएँ पहिन कर सोया जाता था। रावण की प[त्नियों] की मालाएँ पसीने से कुम्हला गयी थीं तथा कुछ की मा[लाएँ] टूट गयी थीं (विच्छिन्नमृदितस्रजः ५.९.४७)।

इन प्रसाधनों के अतिरिक्त तत्कालीन आर्य श्री[...] शरीर, वस्त्रों एवं बालों को सुगन्धित बनाने के लिए वि[विध] गन्धों का प्रयोग करते थे। रामायण में गन्धों का बार[-बार] उल्लेख हुआ है (४.२५.१६ ; ४.२६.६)। वस्तुतः प्रा[चीन] समाज में सुगन्धों की लोकप्रियता इतनी बढ़ी कि गन्धि[...] सर्वोत्तम व्यवसाय माने जाने लगा था।

पण्यानां गान्धिकं पण्यं किमन्यैः कांचनादिभिः।
तत्रैकेन च यत्क्रीतं तच्छतेन प्रदीयते !! (पंचतन्त्र)

इस प्रकार रामायणकालीन आर्य अतीव श्रृंगार[...] तथा कलात्मक अभिरुचि सम्पन्न थे। सौन्दर्य-वृद्धि [के] लिए वे विविध प्रसाधनों का प्रयोग करते थे। अयो[ध्या] में कोई ऐसा व्यक्ति न था जो अस्वच्छ हो अथवा [...] लेप, गन्ध, माला आदि श्रृंगार के विभिन्न उपकरणों [का] उपयोग न करता हो --

नाकुण्डली नामुकुटी नास्रग्वी नाल्पभोगवान् ।
नामृष्टो न नलिप्तांगो तासु गन्धश्च विद्यते ॥१.६.[...]

विस्तार भय से यहाँ केश-प्रसाधन का विवेचन प्र[...] नहीं किया गया। इसके लिए स्वतन्त्र लेख अपेक्षित है।

--ले[खक]

२२--अंगरागं च वैदेहि महार्हानुलेपनम्।
मया दत्तमिदं सीते तव गात्राणि शोभयेत् ॥
२.११८.१८।

२३--पद्मवर्णं सुकेशान्तं पद्मनिःश्वासमुत्तमम्।
कदा द्रक्ष्यामि रामस्य वदनं पुष्करेक्षणम् ॥
२.६१.८।

२४--चन्दनागुरुगन्धांश्च महार्हांश्च वनस्रजः।
गते रामे हि तरुणाः संतप्ता नोपभुञ्जते ॥
२.११४.२[...]



आंगनों के बीच —

सुना ! आपने ?

बात मेरी एक सहेली की है—पर सहेली ही की क्या ? ऐसी बातें तो अक्सर सुनने में आती हैं। "ओहो ! हो ! .....बाबाजी ! उनकी बात न करो। तुमको लगता होगा कि बहुत पहुँचे हुए हैं। हमारे साथ तो यह यह बीती।"

"तुम क्या सोचती हो....योगीजी के बारे में ? —भई, हमें तो तरह तरह की बातें सुनायी पड़ती हैं। कोई प्रशंसा कर कर के आकाश में चढ़ा देता है तो कोई बुराई का ऐसा तार खींचता है कि नरक में ही ला गिराता है। न जाने असलियत क्या है ?"

पर मैं तो बात अपनी सहेली की सुना रही थी। एक बाबाजी का उनके घर में बड़ा आना-जाना था। घर में एक कन्या थी। बाबाजी ने योग्य पति से उसका विवाह करा दिया था। वर को बाबाजी ने ही बताया था, बात-चीत बाबाजी ही ने की थी और फिर विवाह हो जाने पर आशीर्वाद भी बाबाजी ने दिया था। विवाह के छः महीने के पश्चात् लड़की में एक साथ भगवत भजन की ऐसी उमंग आयी कि वह घर छोड़-छोड़ कर भागने लगी। एक रट उसको लग गयी "मैं तो स्वामीजी के पास जाऊँगी। मैं तो भगवान् की दासी हूँ। मैं गृहस्थी में नहीं रह सकती।" उसके इस अकस्मात् भगवत्-प्रेम ने घर में एक विचित्र समस्या खड़ी कर दी। कभी उसको कमरे में बन्द किया जाय, कभी समझाया-बुझाया जाय। समस्या इतनी बढ़ी कि उसकी माता और पति दोनों ही अलग-अलग छिप-छिप कर अपने कर्मों को रोने लगे। अन्त में किसी ने राय दी कि यह सन्तों की लगी बीमारी दूसरे संत से ही ठीक होगी। एक दूसरी वृद्ध महिला संत के पास यह समस्या रक्खी गयी। माँ आँसू भर-भरकर भाग्य कोसती रहीं। उन महिला संत ने बच्चों के सिर पर हाथ रक्खा। (इस भगवत् प्रेम की उमंग में हमारी सहेली के दो लड़के भी शामिल हो गये थे जो घर छोड़-छोड़कर तो नहीं भागते

थे परन्तु पढ़ाई आदि छोड़कर खड़ताल बजाने लगे थे।) और कहा कि इसमें बच्चों का दोष नहीं, दोष उस स्वामी का है जिसने इन बच्चों के मन पर असर डाल रक्खा है। अन्त यह हुआ कि ये बच्चे उस श्राप से मुक्त हुए। वह लड़की अपने पति के साथ गयी और आज दो बच्चों की माँ है।'

यह कहानी भले ही थोड़ी विचित्र लगे परन्तु ऐसी कहानियाँ जगह जगह सुनने को मिल जाती हैं। और ऐसी कहानियों में दोष सारा स्वामियों को दिया जाता है। बात यह है कि अपना दोष देखना मुश्किल पड़ता है, दूसरे को भला बुरा कहना आसान पड़ता है। दूसरे को भला बुरा कहकर अपने अन्दर ऐसा लगने लगता है जैसे हम तो अच्छे हैं बुराई औरों में है। मैं स्वामीजी की सफाई में कुछ कहने नहीं जा रही हूँ। वह तो जो थे सो थे ही। आप से एक प्रश्न पूछने जा रही हूँ। आपकी चीज अगर कोई चोरी कर के ले जाय तो क्या सारा दोष चोर ही का है? यात्रा करते आपका सारा सामान कोई दूसरा उतारकर ले जाय तो क्या सारा दोष उसीका है जो सामान उतार कर ले गया? यदि आपका पुत्र बुरे व्यसन में पड़ जाय तो क्या सारा दोष आपके पुत्र का ही है? यदि कोई आपको कम सामान तोलकर दे तो क्या उसमें सारा दोष उसीका है जिसने कम सामान तौला है?

कहीं ऐसा तो नहीं था कि पहले आप सतर्क न थे और अब सारा दोष दूसरे आदमी पर थोप रहे हैं। अपने दोष देखना बड़ा मुश्किल होता है क्योंकि अनभ्यास के कारण जिस बुद्धि रूपी दर्पण में आप अपना मन देखते हैं, स्वयम् वह शीशा ही मलिन होता है। फिर आपको अपने मन के दोष कैसे दिखें? जैसे मलिन शीशे से अपने मुँह के दोष नहीं दिखते और गन्दा चेहरा भी सुन्दर ही लगता है, उसी प्रकार मलिन बुद्धि से मन के दोष कैसे दिखें? अपना मन तो सुन्दर ही सुन्दर लगेगा; दोष दूसरे के जल्दी दिख जायेंगे, क्योंकि उसके लिये हमने अपना शीशा चमका रक्खा है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि आप सतर्क न थे और घर में चोरी हो गयी; आप सतर्क न थे और आपका सामान रेल में से उतर गया; आप सतर्क न थे और पुत्र के बिगड़ते हुए लक्षण पहले देख न सके, आप सतर्क न थे और दूकानदार ने आपका सामान कम तौल दिया।

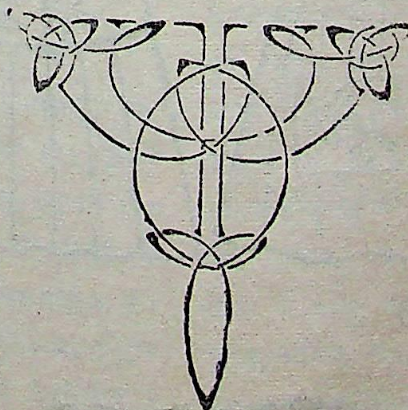
इसपर जो आप उत्तर देंगे वह मैं जानती हूँ कि स्वामी, संन्यासी, गुरु के पास श्रद्धा से जाना चाहिये। हाँ, तो अन्धा होकर नहीं जाना चाहिये, श्रद्धा से जाना चाहिये। जहाँ यह कहा है कि श्रद्धा से जाना चाहिये, वहाँ यह भी कहा है कि स्वामी व गुरु को ठीक से ठोंक बजा कर करना चाहिये। आपने ठीक से ठोंका बजाया या चमत्कार में आ गये? जरा सोचकर देखिये। यह आपके अन्दर दबा हुआ स्वार्थ और लोभ था जिसने आपको धोखा दिया है। जब यह कहा गया कि श्रद्धा से स्वामी और गुरु के पास जाओ तब यह भी कहा गया है कि स्वार्थ और लोभ लेकर भी गुरु के पास मत जाओ। स्वार्थ और लोभ की बात आपने नहीं देखी क्योंकि आपका मन मलिन था। श्रद्धा की बात पकड़ ली क्योंकि उससे आपके लोभ व स्वार्थ की पूर्ति होती थी। यह भी लिखा गया है कि गुरु, स्वामी व संत के पास स्त्रियों को अकेले नहीं जाना चाहिये—कोई साथ हो, कोई भी हो या वहाँ संगत हो तभी जाना चाहिये। अब पूछिये इसका आपने पालन किया था? अधिकतर जो महिलायें बाद में निन्दा करती सुनी गयी हैं वे वही हैं जिन्होंने केवल श्रद्धा की डोरी पकड़ी और बाकी चेतावनी छोड़ दी। इसलिये नहीं कि उनमें कोई चरित्र-दोष था, पर केवल इसलिये कि उनके मन के दबे स्वार्थ और लोभ ने उनको अंकुश मारा कि स्वामीजी की कृपा से उनको व उनके परिवार को कोई विशेष वस्तु—'कृपा रूपी वस्तु'—प्राप्त हो जाय; जिससे बड़े पुत्र की नौकरी लग जाय; मझले पुत्र का रोग ठीक हो जाय; लड़की का ब्याह हो जाय; व्यापार में लाभ हो जाय आदि आदि। यह सब हो जाता तो उनको कोई दोष संत बाबा में दिखाई न देता—जब यह सब न हुआ तो फिर उनमें एक क्या, सहस्रों दोष हैं! अपना दोष नहीं दीखता। मेरा यह तात्पर्य नहीं कि संत, स्वामी, बाबा व महात्माओं में दोष नहीं होता। वे दोषों से भरे हैं मैं यही मानकर चलती हूँ, परन्तु उनसे जो धोखा आप खाते हैं वह आप अपने चरित्र दोष के कारण खाते हैं, उनके चरित्र दोष के कारण नहीं।

न! न! बुरा न मानिये। जरा सा समझ लीजिये। यह उदाहरण ही सही—समाचार पत्र-पत्रिकाओं में बहुधा यह निकला करता है कि "बाबाजी ने दुगना धन कर देने के प्रलोभन में फलाने फलाने साहूकार का सारा मा

चम्पत कर दिया और खुद भी चम्पत हो गये।" या पहले ....का दस रुपये का नोट लेकर बीस वापिस कर दिये फिर ३००) लेकर चम्पत हो गये आदि-आदि। यह उदाहरण निम्नकोटि का अवश्य है। कोटि में अन्तर अवश्य ही है पर है मिलता जुलता ही उदाहरण। जरा सोचकर देखिये, धोखा खानेवाले ने धोखा क्यों खाया? अपने प्रलोभन के कारण कि साधु की धूर्तता के कारण? साधु बना रहता परन्तु उसकी धूर्तता उसी तक रहती। यदि इनमें प्रलोभन न होता तो इन तक न आती। वे उनकी धूर्तता से अछूते ही रहते। इसीलिये कहा गया है कि साधु संतों के पास प्रलोभन लेकर नहीं जाना चाहिये क्योंकि प्रलोभन, और मोह इतने प्रबल होते हैं कि वे समझ-दारी और विवेक के ऊपर छा जाते हैं। आशा का तार प्रलोभन के साथ ऐसा जुड़ता है कि अन्धा हो जाता है और—प्रत्यक्ष में क्या हो रहा है, उसको नहीं दिखता। बाबाजी सामने से यह कहकर रुपये टेंट में दबाये चले जाते हैं कि अभी आया, और भक्त स्पष्ट देख नहीं पाता कि क्या हो रहा है। वह आशा लगाये बैठा रहता है कि बस, अब बाबाजी आते ही होंगे। और जब बाबाजी नहीं लौटते हैं तो वह दोष बाबाजी को देता है, अपने प्रलोभन को नहीं। बाद में 'लुट गया', 'लुट गया' कह कर बौखलाता इसलिए है कि चोट उसके प्रलोभन को लगती है।

इस प्रकार जितने भी 'संतगण' हैं इनके जो कुछ भी दोष हैं वे उनके दोष उन्हीं तक रह जायेंगे। उनकी आँच आप तक नहीं आयगी यदि आप उनके समीप कोई अपना मानसिक दोष लेकर न जायँ। आप ज्ञान के लिये जाइये, ज्ञान मिले तो लीजिये; वरना आप अपने घर, और बाबा जी अपनी झोपड़ी में। चमत्कार के लिये जायेंगे, फिर उनकी पद-धूलि से अपना घर पवित्र करेंगे; फिर उनके आशीर्वाद से बेटी का ब्याह करायेंगे; तो फिर बाबाजी अपना चमत्कार दिखायेंगे ही—आँखें चौंधियाँ जायेंगी, और चमत्कार के जोर से पछाड़ खाकर गिर जायँ तो फिर रोइयगा मत। बाद में जब आपकी आँखें खुद ही खुल जाती हैं तब पास-पड़ोसी भी आँखें फाड़-फाड़कर पूछते हैं; तुमको पहले नहीं दीखा था, जब बाबाजी तुम्हारे यहाँ छक-छक के हलुआ उड़ाते थे?" "तुमको तब नहीं दीखा था, जब स्वामीजी तुम्हारे यहाँ दिन-रात लोच लगाते थे?" "तुमको तब नहीं दीखा था जब संतजी तुम्हारी बिटिया से पैर दबवाते थे?" "आपने उस समय नहीं देखा था जब संतजी बिटिया का ब्याह करा रहे थे? क्या बिटिया का ब्याह कराना संतों का काम है?" और आप खुद सोचते हैं कि मुझको क्यों नहीं दिखा था? सब कुछ प्रत्यक्ष तो हो रहा था पर क्यों नहीं दिखा था?

हर एक काम करने का एक शऊर हुआ करता है। सर्दी दूर करनी है तो सेंकिये अवश्य,—पर इस शऊर से सेंकिये और इतनी दूरी रखकर सेंकिये कि आग आप तक न पहुँचे और जल न जायँ, खाली सेंक ही लगे।



सुई डोरा

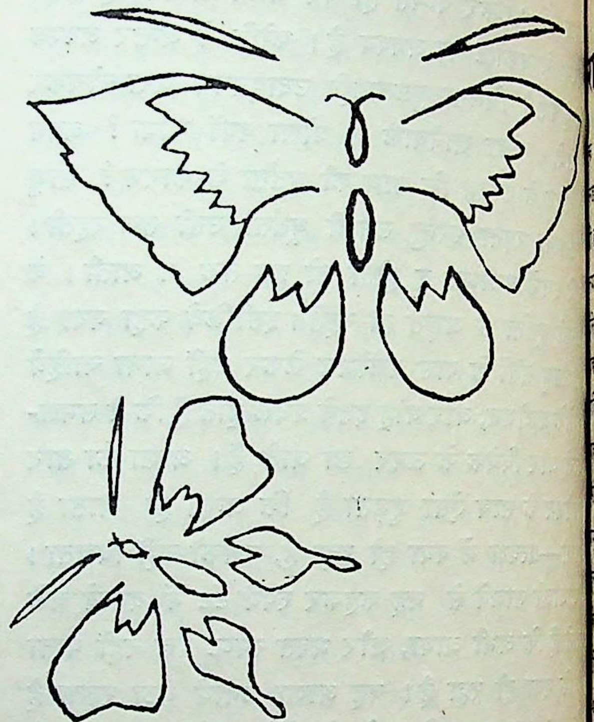
यह तितलियों का नमूना अपनी आवश्यकता के अनुसार बच्चों की फ्रॉकों के ऊपरी भाग पर, फ्रॉक की जेबों पर, या फ्रॉक के नीचे, व केवल पेटी पर, बच्चों के बिब पर, लड़कों की बुश शर्ट की जेब पर, टी कोजी व ट्रे क्लॉथ पर, मेजपोश के कोनों पर, पलंगपोश पर, चादरों व तकिया गिलाफ पर व कुशन कवर पर बनाइये।

पलंगपोश पर बनाने के लिये सारे पलंग पोश में पहले चार खाने निकालिये फिर उन चार खानों में एक खाने में इस को भरिये और एक खाली छोड़ दीजिये।

तकिया गिलाफ के एक कोने पर व चादर के एक कोने पर व दूर दूर पूरी ओढ़ने की ओर बेल के समान काढ़िये। टी कोजी व ट्रे क्लॉथ के कोनों में भी यह नमूना अच्छा लगेगा।

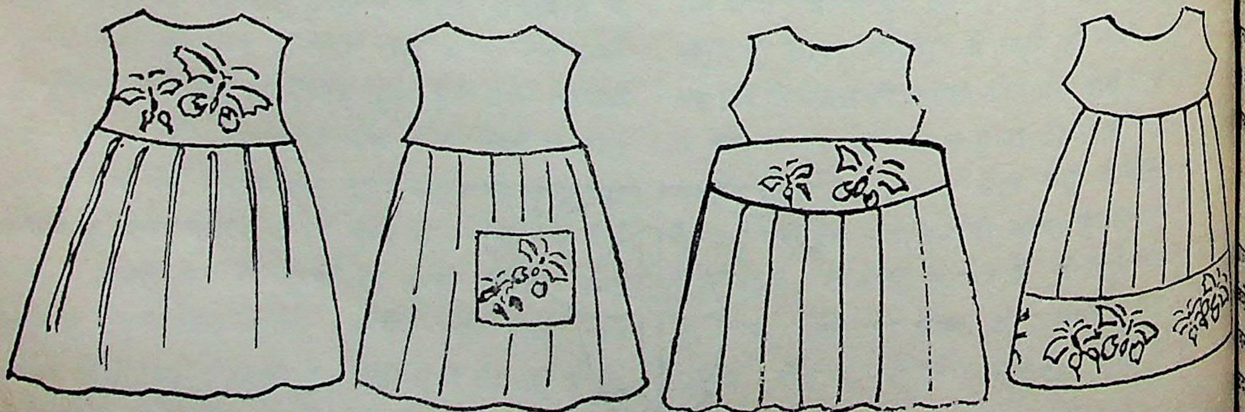
गर्मियों की सादी सफेद व हल्के रंगों की फ्रॉकों पर यह नमूना बहुत अच्छा लगेगा।

इन तितलियों की कढ़ाई भी पहले तितलियों के नमूनों के समान कई रूप से की जा सकती है। जैसी वस्तु काढ़ी जा रही हो और जो काढ़ रहा हो। चतुर स्त्रियाँ रंगीन जाली लगा कर व बना कर भी काढ़ सकती हैं। फ्रॉकों पर पोपलिन के कपड़े काट कर भी लगाये जा सकते हैं (काज की कढ़ाई में) भर कर तथा मोती व



रंगीन मोती भर कर भी काढ़ा जा सकता है। फ्रॉक पर रंगीन मोती भर कर व जगह जगह रंगीन मोती टाँक कर इस नमूने में बहुत सुन्दरता भरी जा सकती है।

छोटी लड़कियाँ केवल चित्र की रेखायें भर कर भी तितलियों की सुन्दरता उभार सकती हैं।





राष्ट्रपति कैनेडी की मृत्यु

श्री वेंकटेशनारायण तिवारी

राष्ट्रपति कैनेडी की मृत्यु एक हत्यारे की गोली से डलस में हुई। गोली चलानेवाला कौन था, इसका अभी ठीक-ठीक पता नहीं लगा। कहा जाता है कि ओसवल्ड नामक व्यक्ति ने गोली चलायी। ओसवल्ड की हत्या ...ची। रूबी, एक नाइट क्लब के संचालक, ने उसकी ...। लेकिन इसमें संदेह है कि ओसवल्ड ने राष्ट्रपति ...की हत्या की है। क्योंकि अर्जेन्टीना के एक प्रमुख ... ओसवल्ड की तस्वीर छापी है जिसमें नीचे की ... में खड़ा हुआ ओसवल्ड दिखाया गया है और कहा ... है कि श्री कैनेडी को मारनेवाली गोली छठी ... से चलायी गयी थी। अगर अर्जेन्टीना के इस ...पत्र का कहना सही है तो राष्ट्रपति कैनेडी का ... ओसवल्ड कदापि नहीं हो सकता। अर्जेन्टीना ... का कहना है कि ओसवल्ड का चित्र उसी समय ... था जिस समय राष्ट्रपति कैनेडी की हत्या हो रही ... इससे अनुमान यह होता है कि अर्जेन्टीना के पत्र का ... सही है। राष्ट्रपति जानसन ने इस मामले की ... के लिए एक कमीशन नियुक्त किया है जिसके सभा... संयुक्त राज्य, अमरीका, की सर्वोच्च अदालत के ...—चीफ जस्टिस वारेन—हैं। इस जाँच की ... का अंदाजा उस समय तक लगाया भी नहीं जा सकता ... तक इसकी रिपोर्ट प्रकाशित नहीं होती। यद्यपि ओस... की पत्नी का कथन है कि ओसवल्ड ने श्री कैनेडी की ... की है। अभी हाल में कमीशन ने डलस की पुलिस ... ओसवल्ड के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए ... सभी कागजात माँगे हैं।

× × ×

राष्ट्रपति कैनेडी, महापुरुष, एक बड़े प्रजासत्तात्मक ... के प्रमुख नेता और बहुत ही सज्जन थे। उनमें ... यह थी कि मित्रों का साथ देना वह जानते थे। ... तरह उन्होंने भारत के साथ अपने देश की मैत्री का ... उपस्थित किया, वह सर्वथा अनुकरणीय है। ... की बात है कि भारत का कोई उपयुक्त प्रतिनिधि ... कैनेडी के अन्तिम संस्कार के समय उपस्थित न था। इसका कारण भी हमारे प्रधान मंत्री ने लोकसभा में बताया था। बात चाहे जो कुछ रही हो, भारत का कोई प्रतिनिधि—उपराष्ट्रपति या प्रधान मंत्री के रूप में—राष्ट्रपति कैनेडी की मातमपुर्सी के लिए वहाँ अवश्य उपस्थित होना चाहिए था। राष्ट्रपति कैनेडी की अन्त्येष्टि क्रिया के समय यदि भारत से कोई न जा सका क्योंकि समय बहुत थोड़ा था तो मातमपुर्सी के लिए भारत से अवश्य किसी न किसी को जाना चाहिए।

× × ×

राष्ट्रपति कैनेडी की हत्या कैसे हुई, इसको जानने के लिए हमारे पाठक अवश्य उत्सुक होंगे। दिन के १२ बजकर ४५ मिनट पर उनकी हत्या हुई। पहली गोली गर्दन में लगी और दूसरी या तीसरी गोली सिर के पीछे के भाग में लगी। एक गोली गवर्नर कालोनी के लगी। कहा जाता है कि इस गोली के चलानेवाले का अभी तक कोई पता नहीं लगा। यह भी कहा जाता है कि छठी मंजिल से उस बन्दूक की नली निकाली गयी जिससे गोली चली थी लेकिन इसका आज तक कोई पता नहीं चला कि किसने गोली चलायी।

× × ×

जिस समय राष्ट्रपति कैनेडी की गर्दन में गोली लगी, उस समय छाती पर हाथ रखकर राष्ट्रपति आगे मोटर पर झुक गये। तुरंत ही उनकी पत्नी के मुँह से ये शब्द निकले 'ओह नो, दिस कैन नाट बी'। इसके बाद वह राष्ट्रपति के ऊपर झुक गयीं। उनका उद्देश्य था कि वह किसी तरह राष्ट्रपति की रक्षा करें। मोटर २५ मील फी घंटे की रफ्तार से जा रही थी। तीन सेकंड में वह शातिर हत्यारा कहाँ तक राष्ट्रपति की हत्या करने में सफल हो सकता था, यह संदिग्ध बात है। कुछ लोगों का कहना है कि उन्होंने सेकेंडों में सौ बार गोली चलाते देखा है। लेकिन इस विवाद से फायदा क्या! मोटरवाला गाड़ी को तेजी से दौड़ा रहा था ताकि वह अस्पताल जल्दी पहुँच जाय, लेकिन बाद में उसे धीमे चलाना पड़ा क्योंकि शरीररक्षक की आवाज आयी कि राष्ट्रपति को धीरे-धीरे ले

चलना चाहिए नहीं तो गाड़ी के तेज चलने से ही कहीं उनकी मृत्यु न हो जाय। अस्पताल पहुँचने पर डाक्टरों ने राष्ट्रपति के प्राण बचाने की प्राणपण से चेष्टा की लेकिन उनके प्राण न बचा सके, उनके प्राण-पखेरू उड़ गये। उन्हें होश तक न आया। बेहोशी ही में उनका प्राणान्त हुआ।

× × ×

मिसेज (श्रीमती) कैनेडी की अवस्था बड़ी चिंताजनक है। अभी उनकी आयु ३४ वर्ष की है। उन्होंने जिस संयम और साहस का परिचय दिया वह अनुकरणीय है। इधर उनके पति की मृत्यु हुई और उधर राष्ट्रपति जानसन को हवाई जहाज पर शपथ दिलायी गयी ताकि एक राष्ट्रपति की मृत्यु के बाद दूसरे राष्ट्रपति की नियुक्ति तुरंत हो जाय। अमरीका में इस बात को अशुभ समझते हैं कि एक राष्ट्र-पति की मृत्य के बाद दूसरे राष्ट्रपति की नियुक्ति में देरी हो। इस संबंध में भारत के साथ तुलना करना अनुचित है।

शपथ के समय राष्ट्रपति जानसन के बाँयीं ओर श्रीमती कैनेडी खड़ी थीं और उनके दाहिनी ओर उनकी पत्नी खड़ी थीं। श्रीमती कैनेडी ने इस दुखदायी अवसर पर जिस संयम का परिचय दिया वह अनुकरणीय है, एक भी आँसू उनकी आँखों से नहीं टपका। यह कहना तो असंभव है कि उन्हें श्री कैनेडी की मृत्यु का दुःख नहीं था किंतु उन्होंने अपने मृतप्राय पति के सामने वादा किया था कि वह संयम से काम लेंगी, रोना-धोना एकांत की बात है। हमारी स्त्रियाँ रोने को प्रधानता देती हैं और यदि आँसू न बहाये जायें तो वह स्त्री निष्ठुर कही जायेगी, लेकिन अमरीका में स्त्रियों को यह शिक्षा दी जाती है कि वे पति के मरने पर संयम से काम लें और नये राष्ट्रपति के शपथ लेने के समय श्रीमती कैनेडी ने जिस संयम से काम लिया वह बेमिसाल है।

साथ ही हमें यह बात भी लिख देना चाहिए कि अभी हाल में बड़े गिरजाघर में रोमन कैथलिक बिशप और कार्डिनल ने रिकियम (मृत आदमी की आत्मा की शांति के लिए) पढ़ा उस समय वैधव्यसूचक काले वस्त्र पहने हुए श्रीमती कैनेडी की आँखों से आँसुओं की धार बँधी हुई थी जिसे वह रुमाल से बार-बार पोंछती जा रही थीं। उन्होंने यह निश्चय किया है कि वह वाशिंगटन में रहेंगी ताकि अपने मृत पति की कब्र की देख-रेख कर सकें।

× × ×

वास्तव में नुकसान हुआ सबसे अधिक श्री कैनेडी का। भारत में यदि वह होतीं तो हमारी प्र अनुसार उन्हींको राष्ट्रपति बना दिया जाता और राष्ट्रपति न बनाते तो वह सैनेट या प्रजासत्तात्मक सभा के लिए अवश्य खड़ी की जातीं, लेकिन श्री कैनेडी के लिए इन बातों में से कोई भी बात संभव नहीं जहाँ वह अमरीका की प्रथम महिला "फर्स्ट लेडी" जाती थीं, वहाँ अब वह कुछ न रह गयीं, केवल साधारण नागरिक मात्र रह गयी हैं।

उनके स्थान पर लेडी बर्ड जानसन अब प्रथम महि "फर्स्ट लेडी" हैं और जो ह्वाइट हाउस की कर्ता-धर्ता वह अब कुछ न रहीं। पति की मृत्यु से वैधव्य के दुः अलावा और भी कई बातें शायद दुख देती हों इसलिए हमने कहा है कि उनकी अवस्था चिंताजनक

× × ×

श्री राबर्ट कैनेडी, जो स्वर्गीय राष्ट्रपति के भाई और जो उनके शासनकाल में एटार्नी जनरल का प्र पद सम्हालते थे, का नये राष्ट्रपति के समय में जो हाल उसकी भी कथा कहना आवश्यक है। कहा जाता है कि अपने पद पर नये राष्ट्रपति की सेवा केवल दिसम्बर करेंगे, उसके बाद वह इस्तीफा देकर अलग हो जायें इसका अर्थ यह हुआ कि नये राष्ट्रपति श्री जानसन आगामी चुनाव में जो नवम्बर में होनेवाला है उन सहयोग प्राप्त करेंगे क्योंकि कहा यह जाता है कि उ संयुक्त राज्य अमरीका, में उनका कहना बहुत से मानते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि स्वर्गीय राष्ट्र कैनेडी की तरह वर्तमान राष्ट्रपति जानसन भी विश्वास रखते हैं और उन्हें श्री राबर्ट कैनेडी से कि प्रकार का बोटों का खतरा नहीं है।

दो सज्जन तो चल दिये, राबर्ट कैनेडी भी दिस तक ही राष्ट्रपति जानसन की सेवा में रहेंगे। इस धीरे-धीरे पुराने लोग खिसकते जाते हैं और उनकी पर नये आदमी आते और नियुक्त होते जाते हैं। बात ठीक है। पुराने राष्ट्रपति ने अपने आदमी रखे थे, राष्ट्रपति को इतनी स्वतंत्रता होनी चाहिए कि अ मन के मुताबिक नयें आदमियों को भरती करें।

जहाँ तक मालूम हुआ है कि पर-राष्ट्र-सचिव र युद्ध-मंत्री मैक्नमारा, अर्थसचिव डिलन से राष्ट्र

बहुत संतुष्ट हैं। इसी तरह से नये राष्ट्रपति अर्थ-हेलर से भी प्रसन्न हैं। उनका कहना है कि अर्थ-मामले को बहुत सुलझाकर सामने रखते हैं। इसी मंत्री से भी नये राष्ट्रपति बहुत प्रसन्न हैं। कहा जाता है कि इन लोगों ने कुछ जादू सा नये राष्ट्रपति पर किया है। हमारा ऐसा विश्वास नहीं है कि इन्होंने कोई जादू किया है। मन का भी विचित्र है।

श्री जान एफ० कैनेडी के उत्तराधिकारी श्री लिंडन जानसन हुए। पहले आप राष्ट्रपति कैनेडी के साथ उप-राष्ट्रपति चुने गये थे। राष्ट्रपति कैनेडी की मृत्यु के बाद राष्ट्रपति हुए क्योंकि संयुक्त राज्य अमरीका के विधान के मुताबिक राष्ट्रपति के मरने के बाद उप-राष्ट्रपति उसका स्थान लेता है। इनकी भी गाथा, यह जान पड़ता है, यहाँ संक्षेप से कह दी जाय।

× × ×

श्री जानसन ने घोषणा की है कि वह पूर्ववर्ती राष्ट्रपति कैनेडी की नीति को अपनायेंगे। इस आशय का पत्र उन्होंने उन नेताओं को लिखा है जो राष्ट्रपति कैनेडी की मृत्यु के समय वहाँ उपस्थित न थे। उदाहरण के लिए उन्होंने भारत की सरकार को एक पत्र लिखा है जिसमें यह वादा किया है कि वह उसी नीति का पालन करेंगे जिसका अनुसरण कैनेडी ने किया था।

× × ×

उन बहुत से व्याख्यानों, जो श्री जानसन ने उप-राष्ट्रपति के पद से या बहु-संख्यक दल के नेता की हैसियत से दिये थे, की आलोचना करना व्यर्थ है लेकिन इनसे तीन बातें स्पष्ट होती हैं। एक तो यह कि श्री जानसन राष्ट्रपति कैनेडी की नीति का ही अनुसरण करेंगे जहाँ तक नीग्रो को अधिकार देने का प्रश्न है। इसपर बहुत कुछ राष्ट्रपति कैनेडी ने कहा था और उनकी हत्या भी इसी कारण हुई। श्री जानसन नीग्रो के विषय में वही नीति बरतेंगे जो राष्ट्रपति कैनेडी की थी।

एक तो यह बात हुई। दूसरे वह सैनिक खर्च बढ़ाने में दिलचस्पी लेंगे। अन्तरिक्ष यात्रा में उनका विश्वास है लेकिन केवल विश्वास से ही काम नहीं चलता। टके का मामला भी है। चन्द्रलोक को भेजे हुए अमरीकी जहाज के तहस-नहस हो जाने से अमरीका में प्रतिक्रिया बड़ी विपरीत हुई है। संभव है कि अंतरिक्ष की दौड़ में संयुक्त राज्य अमरीका, ढील डाल दे। जहाँ तक श्री जानसन का संबंध है वह अपने विश्वास के अनुकूल ही काम करेंगे किंतु अमरीका-वासियों की विपरीत प्रतिक्रिया का प्रभाव इस पर अवश्य पड़ेगा।

श्री जानसन के विषय में विपक्षी दल के एक सज्जन ने भविष्यवाणी की है कि श्री जानसन मुक्त हस्त से खर्च करेंगे और उनके विषय में यह कहना गलत है कि श्री जानसन उसी नीति का अनुसरण करेंगे जिसका परिचय उन्होंने संयुक्त राज्य अमरीका के बजट के संबंध में दिया है। कितने दिन तक श्री जानसन राज्य करेंगे, यह भविष्य की बात है, क्योंकि उनका संबंध बहु-संख्यक दल के सचिव, बेकर के साथ था। इसकी जाँच अभी तक नहीं हुई। भविष्य में इसकी जाँच होनेवाली है। यदि रिपब्लिकन पार्टी के नेताओं की चली तो वे श्री जानसन को अछूता नहीं छोड़ेंगे। श्री जानसन ने एक यंत्र बेकर से लिया है जिसका मूल्य ५०० डालर से भी अधिक है।

× × ×

जहाँ इनमें गंभीरता है वहाँ बाल-सुलभ लड़कपन भी है। पाकिस्तान से ऊँट चलाने वाले को अपने मकान पर बुलाना कि वह उनका आतिथ्य स्वीकार करे। उनके लड़कपन का एक उदाहरण माना जाता है। एक काम उन्होंने बुद्धिमानी का किया है। मिसेज कैनेडी को एक नया पद दिया गया है जिसका अर्थ है 'ह्वाइट हाउस की सहायक निरीक्षक'। इससे उन्हें अवश्य ही कुछ सांत्वना मिलेगी। लेकिन वह बात कहाँ जो श्री कैनेडी के समय थी। घाव को और ताजा करने के लिए यह काफी है।



एक अबला की कथा

श्री परिपूर्णानन्द वर्मा

आज के दो सौ साल पहले राजस्थान के देशी नरेश जितने ही वीर थे, उतना ही अपने स्वार्थ में, अपनी-अपनी ढपली और अपना-अपना राग बजानेवाले थे। यदि उनमें केवल अपने क्षत्रियत्व का अहंभाव न होता, यदि उन्हें केवल अपने छोटे से दायरे की मर्यादा ही न सताती रहती तो वे न जाने भारत में कितना बड़ा काम कर डालते। यदि उनमें राष्ट्रीय भावना होती तो आज भारत गुलाम न बना होता। जिस समय भारत में सन् १८५७ की राज्य-क्रान्ति हो रही थी, देशी नरेश अपने विलास तथा अपनी मदिरा में डूबे पड़े हुए थे।

उनके विलास की कहानी वही समझ सकता है जिसने इनके विलास-स्थल तथा राजमहल देखे हों। दर्जनों रानियाँ थीं। बरसों तक भेंट नहीं होती थी। आपस में इन रानियों में खूब चलती थी। एक दूसरे को नीचा दिखाने के प्रयत्न होते थे और राजा का कच्चा कान––कभी इस रानी का पलड़ा भारी, कभी उस रानी का।

अभी एक मूल पत्र प्राप्त हुआ है जो एक रानी ने अपने पति को लिखा है। लम्बे पत्र में तीन चौथाई भाग केवल महाराजा की प्रशंसा में है। रानी अपना भाग्य सराहती है कि उनके चरणों की दासी बनी। पर अन्तिम पंक्तियाँ हैं केवल एक अनुरोध :––"मेरी भूल क्षमा कर दो––चाहे जो भी भूल हो––और अब तो मुझे दर्शन दो––यानी एक रात मेरे यहाँ आ जाइये।"

कितना करुण जीवन है उस बेचारी का। कितनी दुःखी है वह––कितनी भाग्यहीन होती होंगी ऐसी रानियाँ ––जरा पत्र को पढ़कर ही निर्णय कीजिये।

।।श्री जलंधरनाथ जी सदा साय छै।।

।।राज श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री १०८ श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री मेलां मांय हे सीधश्री सरब ओपमा बिराजमान, अनेक ओपमां लायक, सकल गुणनीधान, बहु जाण, गंगाजल निरमल, गऊ बीरामण के प्रतपाल, षट दरसण के पोषण, माया रा मोड, सिर रा सेवरा, आतम रा आधार, संसार रा सुख, सेजां रा सवादी, मेलां रा मांडण, हीवड रा हार, ऊगता भाण, चंदे जैसा निरमला, समदां जीसा अथाह, गया री रा प्राण आधार, गोपीयां बीच मे कान, तारा बीच मे चंद, फूलां बीच मे गुलाब, गोरीयां बीच मे श्री साहब जी जाणे ऊगता [illegible] जाणे पूनम रो चांद, ढलकती नथ रा मोती, [illegible] ओपमा दीजे जितरी श्री साहब जी ने सोहे! राज [illegible] सूं सारा दुशमण दफै होय जासी, श्रीगुणराज, श्री [illegible] श्री हिंदुपत पातशाह छेत्रपती महाराज, सरब जा[illegible] करण, दुख भांजण, जीव री जडी, आंखां रा अंजन, [illegible] अनोप गुणां रा गायक, मीठा बोला, मोजां रा बगस[illegible] श्री साहब जी बाडी रा भंवरा, केतकी रा कंथ, फु[illegible] भारा, बाव नोचण चतुर बुध रा जाण, सोले कला [illegible] हीरा पना री ओपमा रतन जडाव री, चोसठ कला [illegible] तीरा गारा जांण, बोमीता गुणां रा सागर, धरती [illegible] घीमां भाषर, जैडा भारी खीमा आपरी तपसा भारी [illegible] साहब जी सा री हजूर मै ढोलिया री खीजमतदा[illegible] चरणांधोक सुखसेज राय रो मुजरो मालुम हुवै। श्री [illegible] जी सा संसार मै सुरज रो दरसण नीत हुवै तो गो[illegible] मन घणो कुसी रैवै। श्री साहब जी सा मैं तो आ[illegible] पूजी थी, नै घणी तपसा कीवी थी, घणा दान पुन [illegible] था, जदां श्री साहब जी सरीखा खावंद पाया, ढो[illegible] री चाकर ऊपर सुब नीजर रखाईजे, मारै तो आ[illegible] श्री खावंदा रोह राज रा चरणां लपटी हुं। श्री [illegible] जी सादु हो न देव न दी धीया खडी की मकर आऊं। [illegible] मुजरो मारो मानजो। नीत ऊगते सुर श्री जी सा [illegible] तपसा भारी नै आपरै श्री जलंधरनाथ जी साय [illegible] नै। राजसथानां मै धीन धीन कीया। श्रीनाथजी [illegible] कीलै सामै जोवै, जीण नै श्रीनाथजी भसम क[illegible] आपरी फते हुई। नै आप गढ पधारिया, जीण री [illegible] रो पार लिखिया जाय नही। हरख हीया मै माव[illegible] हीरा मोतीयां रो मेह वुठा, श्री जी साह मै तो खाना[illegible] नैं ईं दरसण दीण्यजे नै श्रीनाथजी का दरसण करा[illegible] भेट कराईजे। आप नै राज श्री जलंधरनाथजी [illegible] श्री जी सा अेक बार तो फुरमास सुणाई हुती। [illegible] मरजी तो चाकर माथै रखाईजो ई जे। आपरी फु[illegible] सुणी नहीं, जीण सूं चिंता हुवै है। श्री जी सा [illegible] मोकलो पडीयो है, पण आपरो वीरद विचार नै फु[illegible] सुरगाईजे। श्री जी सा अरजी मैं दसकत ऊंचो [illegible] लीषीयो हुवै तो गुनो माफ करावसी हूं। कांई जाणू [illegible] राज छो चतर परवीण।

तसवीर

श्रीमती शीला शर्मा

लाला हंसराज कुछ खीजे-खीजे से बरामदे की कुर्सी छोड़कर नहाने के लिए उठे। उनकी पत्नी को पूरे ३३ वर्ष के दाम्पत्य जीवन के बाद अब स्वर्ग सिधारे कुछ महीने कम, अब प्रायः पूरा वर्ष होने आया था। आज सुबह की चाय की प्याली देखकर उनको सहसा इसीका ध्यान हो आया था। चाय की प्याली मैकू एक तो लाया ही इतनी देर में था; फिर उसपर चाय की पत्तियाँ तैर रही थीं। लाला हंसराज ने उसे पास की मेज पर वैसे का वैसा ही छोड़ दिया था; और किसी ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया था। छोटी बहू पास ही पीठ किये बैठी मुन्ना को खिला रही थी और उनका बड़ा बेटा चश्मा नाक पर लगाये अखबार पढ़ रहा था। उनकी बेटी चुन्नी सुबह-सुबह अपने लम्बे बालों को संवारती दो बार पास से निकल गयी थी। पर उस ठंडी होती चाय की प्याली पर किसी ने ध्यान नहीं दिया था। सब अपनी-अपनी दुनिया में मस्त थे।

वह खीजे से स्नान के लिये उठकर गुसलखाने में चले गये। साबुनदानी पर हाथ रक्खा पर हाथ अन्दर चला गया और खाली ही निकल आया—अन्दर साबुन न था। उनका क्रोध से तमतमा गया। एक साथ उन्होंने वही गीला शरीर लिये गुसलखाने की कुंडी खोली और बाहर निकले। सामने ही पत्नी का पूरे आकार का लम्बा चित्र टंगा मुस्करा रहा था। उसपर दृष्टि पड़ते ही लाला हंसराज कुछ खिसिया से गये। आँखें नीची किये कमरा पार कर गये और बरामदे में जाकर बोले "बहू, जरा साबुन देना। कल रखने को कहा था अभी तक नहीं रक्खा।" सोचा था कितना आवेश लेकर निकले थे; कह इतना ही पाये, राह में पड़ गयी थी चित्र की मुस्कराहट।

छोटी बहू मुन्ना को बोतल से दूध पिला रही थी। एक साथ चौंक गयी। देखा पास की कुर्सी पर बैठा विशनराज, लालाजी का बड़ा बेटा, और उसका पति, अखबार नीचा किये आँखों से प्रश्न भरी दृष्टि से उसकी ओर देख रहा था। बहू मुन्ना की बोतल पकड़े पकड़े बोली "अरे! भाभीजी! आपसे कहा था जरा लालाजी के गुसलखाने में साबुन रख दीजियेगा। आपने अभी तक नहीं रक्खा?"

अन्दर से आवाज आयी "भाभी! तुम हर एक काम मेरे ही ऊपर छोड़ देती हो। मुझको कौलेज नहीं जाना है?" विशन ने अखबार रखकर झट से मुन्ना की बोतल पकड़ी, "जल्दी करो, साबुन ले आओ। लालाजी आधे भीगे खड़े हैं।"

बहू झपटकर साबुन लाने भागी। साबुन की टिकिया साबुनदानी में लेकर लाला हंसराज यों कमरे में से निकलकर गुसलखाने में गये कि कहीं वह पत्नी की लम्बी तसवीर उनको यह काम करते देख न ले; और फिर देखकर भी कहीं वहीं खड़ी यों ही मुस्कराती न रहे।

गुसलखाना फिर बन्द हो गया, नल खुल गया और स्नान भी शुरू हो गया। पर जैसे यंत्रवत् पुरानी स्मृतियाँ एक साथ कौंध गयीं। याद आने लगा साबुन उस दिन भी नहीं था—"साबुन नहीं है। तुमसे इतना भी नहीं होता कि जरा साबुन देख लो। आखिर दिन भर करती क्या रहती हो?"

"क्यों, साबुन नहीं है?"—तसवीर की आकृति ने गर्जते हुए प्रश्न का एक मीठा सा उत्तर दिया था। "रात ही तो रखकर गयी थी कि सुबह-सुबह तुमको वह पुरानी घिसी हुई टिकिया न मिले—बदलकर नया रक्खा था।" "बातें बनाने से काम नहीं हो जाते? तुम्हारी आदत ही भूल जाने की है।" इधर क्रोध बढ़ रहा था। उधर से वाणी में से मधु छलक रहा था, "अरे! चोरी हो गयी दिन दहाड़े सुबह सुबह साबुन की। फिर तो जासूसी करनी ही होगी।"

"आपको मजाक सूझा है और...." लाला हंसराज ने यों आँखें चढ़ाकर देखा कि तसवीर में खड़ी वह आकृति भागते हुए गयी और साबुन की नयी टिकिया निकालकर लायी—"ओ हो! यह रहा साबुन चूहेजी खींचकर ले गये थे! बड़े शौकीन नजर आते हैं इस घर के चूहे!"

इसी तसवीर के सामने से अब आधे भींगे हुए, भिक्षा-पात्र की तरह साबुनदानी पकड़े हुए बहू से साबुन माँगते जाते देखकर लाला हंसराज को लगा चित्र की वह भीनी मुस्कराहट उनकी हँसी उड़ा रही है। और पूछ रही है "क्यों जी, कहाँ गया वो गुस्सा।" और वे झुककर उसके सामने से यों निकल आये थे मानों वह आज भी जीती जागती प्रतिमा हो।

पुरानी स्मृतियों का झझकोरा लेकर वह गुसलखाने से निकले और अलमारी में कुर्तों की तलाश करने लगे। कभी पहले की बात थी कि नहाकर निकलने के पहले ही पहनने के कपड़े बिस्तरे पर लगे मिलते थे और अब उसकी मृत्यु के बाद से किसी न किसी ओर से कपड़ों का दस्तान सुनायी ही पड़ जाता था; "छोटी बहू! ओ छोटी बहू! लालाजी नहाने जा रहे हैं, उनके कपड़े निकाल आओ न।"

"हाँ! हाँ!! अभी जाती हूँ! बीबीजी! आप उधर ही तो जा रही हैं। जरा लालाजी के कपड़े निकाल दीजिये।"

"भाभी! तुम सारा काम मुझ पर टालती हो।" पर कपड़े निकले मिल जाते थे। कान में पड़ जाता था कि कपड़े निकालने का किसीको ध्यान है। पहले कभी चर्चा नहीं होती थी, पर कपड़े निकले हुए तैयार मिल जाते थे। और फिर कपड़ों की चर्चा अधिक होने लगी और काम कम, और अब न चर्चा ही होती थी और न कपड़ों के सँवारने का काम ही होता था। वही लाला हंसराज

जो कपड़े न निकले होने पर शेर की तरह पत्नी पर गरजते थे, अब भीगी बिल्ली की तरह बिना एक शब्द बोले खुद ही कपड़े निकालकर पहन लेते थे। जिनमें मरम्मत की जरूरत होती थी उन कपड़ों को बिना कोई टीका-टिप्पणी किये पास की कुर्सी पर डालते जाते थे। ढेर हो जाने पर किसी बेटे को बुलाकर दिखा देते थे, हड़बड़ाती हुई बहुएँ आती थीं और कपड़ों की गठरी उठाकर ले जाती थीं। अब ज्यादा कपड़े कुर्सी पर आ गये थे और अलमारी में कम रह गये। आज भी पहनने के लिये अलमारी में से एक कुर्ता खींचा, खोलकर देखा, बुड्ढे के मुँह की बत्तीसी के समान सब बटन गायब, दूसरा खींचा उसमें शिशु के मुँह में निकले प्रथम दाँत के समान एक बटन टिमटिमा रहा था। क्रोध से मुँह एक साथ लाल हो गया। आखिर पुरानी आदतें जाते ही जाते जाती हैं! झुंझलाकर तीसरा कुर्ता खींचा, पर जैसे ही पहना और बटन पर हाथ गया कि बटन गले की जगह टूटकर हाथ में आ गया। दीवार पर सामने खड़ी वही लम्बी तसवीर मुस्करा रही थी। पुरानी स्मृति फिर कौंध गयी, और मानों उस तसवीर की प्रतिमा सजीव होकर फिर धरती पर उतर आयी हो, और लाला हंसराज के सारे गर्जन शोर और गुस्से का जवाब "ओहो! ओहो! राममूर्ती जी, मैं तो भूल ही गयी थी आपकी ताकत। बटन देखो जरा उँगलियों के लगते ही चटनी की तरह हाथ में आ जाते हैं।" कहकर वह प्रतिमा मानों फिर वापस उसी तसवीर में चली गयी हो।

नाश्ते का दूध का गिलास मेज पर रक्खा था। वही दूध का गिलास जिसको उनकी पत्नी उसी समय झाग उठाती हुई लाकर उनके हाथों में थमाती थी—वही दूध का गिलास जिसको एक दिन उनकी पत्नी कार्यवश मेज पर रखकर चली गयी थीं तो उन्होंने धरती पर पटक मारा था क्योंकि उसका झाग उतना नहीं उठा था जितना उन्हें पसन्द था। फिर कितना भी मनाने पर तीन दिन तक उन्होंने दूध नहीं पिया था; और यही गुर्राते रहते थे कि जो सबका कर्ता-धर्ता हो उसीके एक गिलास दूध लेकर खड़ी रहने का तुमको समय नहीं है? कर्ता-धर्ता तो वे आज भी थे, पर वही दूध का ठंडा बिना झाग का गिलास उस मुस्कराती तसवीर के सामने पीते वे आज भी कुछ खिसियाते से थे। दूध पीने के बाद पान का बीड़ा जो अब धीरे-धीरे करके नदारद ही रहने लगा था—और मानों वह मुस्कराती तसवीर उसको भी देखती हो और पूँछती हो "कहाँ गया वह पान का बीड़ा जो मुझे अपने हाथों से ही लगाना पड़ता था?" और लाला हंसराज पान के बीड़े की तश्तरी को खाली देखकर यों झेंप जाते और धीरे से उसे ढक देते थे कि वह तसवीर कहीं उस खाली पान की तश्तरी को देख न ले।

तमाम पुरानी स्मृतियाँ आज प्रातः ही कई बार कौंध गयी थीं। भावावेश में चित्र की ओर कुर्सी करके वे बैठ गये और धीरे-धीरे चित्र से ही बोलने लगे "अच्छा! तो अब तुम जवाब भी देने लगी हो! यह जवाब नहीं तो क्या है? जिन-जिन चीजों पर मुझे क्रोध आता था उन्हीं-उन्हींको देखकर तुम मुझ पर मुस्कराती हो! बिना बोले ही जवाब देने की कला नहीं है तो क्या है?"

दोनों बहुएँ खिड़की में से मुँह में कपड़ा ठूँस कर हँस रही थीं। देख लो जरा लालाजी को! साल भर होने को आया, अभी तक भूले भी नहीं हैं अम्माजी को! छिप-छिपकर तसवीरों से बातें होती हैं।" पीछे हटती हुई मझली बहू बोली।—बड़ी बहू ने ठंढी साँस भरते हुए कहा "ऐसी जोड़ी हो तो भगवान किसी का बिछोह न करे।" फिर रुक कर बोली, "आज घर आयेंगे तब कहूँगी कि तसवीर उस कमरे से हटा लो। तसवीर का वहाँ रहना लालाजी के लिये अच्छा नहीं।"

दूसरे दिन वह तसवीर वहाँसे हटाकर पूजा के कमरे में लगा दी गयी।

लाला हंसराज ने कमरे की सूनी दीवार की ओर आँख फेरी। उनको लगा मानों कोई अपने आँचल से उनका स्मृति-पटल पोंछने का प्रयास कर रहा हो।

अभी रात है

डॉ० प्रेम प्रकाश गौतम

कौन कह रहा सुप्रभात है, अभी रात है।
विगत एक तम किन्तु दूसरा अभी शेष है।
उज्ज्वल हो पाया न अभी तक मनोदेश है।
रेख कालिमा की अब भी प्राची के मुख पर
केवल भ्रम वह क्षितिज जहाँ मिलते भू-अम्बर।
सब कुछ बुसा हुआ है, नीरस है, बासी है
ताजे रस के लिए धरा अब भी प्यासी है।
ठिठुर रहा जीवन-ऊष्मा से रिक्त गात है।
कौन कह रहा सुप्रभात है, अभी रात है।
कौन कह रहा निद्रा टूटी, धरा जगी है
खुली एक क्षण को जो, फिर वह आँख लगी है
चीख पुकारों से ही जगती है यह धरती।
तन्द्रा तज कब स्वयम् प्रभा का दर्शन करती?
कहाँ सूर्य के स्वागत की होती तैयारी?
किस प्रदेश में फैली है स्वर्णिम उजियारी?
कहाँ खिले हैं सुमन, कहाँ बहती सुवात है?
कौन कह रहा सुप्रभात है, अभी रात है।

अदृश्य के हाथ

श्री० स्वरूप ढौंडियाल

बारिश का दिन। कमबख्त छाता समय पर नहीं मिलता। सारे साल जरूरत भी नहीं होती। सारा घर छान मारा। छोटा रामू और नटखट बीना भी इसी काम में लगे रहे। और जब मिला, सब खीझ कर रह गये। अलमारी के पीछे रसोई में छाता सुरक्षित पड़ा था। पिछले साल जान-बूझ कर उन्होंने ही लड़कों के तोड़ देने के भय से वहाँ डाल दिया था। कुछ स्मरण-शक्ति भी कमजोर हो गयी है।

रिमझिम बारिश और कीचड़ की परवाह न करते हुए वह स्कूल पहुँचे। कक्षा में शोरगुल मचा था।

कक्षा में उनके पहुँचते ही एक सन्नाटा सा छा गया। सब सहमे हुए अपनी पुस्तकों पर झुक गये।

पल भर सोचने के बाद उन्होंने बच्चों से अपनी-अपनी स्लेटें निकाल लेने के लिए कहा। एक पीरियड खत्म होने की घंटी बज रही थी।

बच्चे स्लेटें निकाल चुके थे, पर मास्टर दरवाजे से बाहर नजर फेंके, सामने नल पर पानी पीने के लिए लाइन में खड़े बच्चों को गिनते रहे। नल के किनारे रग्घू हलवाई के खोमचे की ओर भी उन्होंने देखा। तीन-चार बच्चे वहाँ खड़े कुछ खा रहे थे। बाहर देखना छोड़ मास्टर अब सिर झुकाए टेबिल पर झुक गये। उनके सामने अब सिर्फ एक ही प्रश्न खड़ा था, उनके विलम्ब से स्कूल पहुँचने की खबर कहीं हेडमास्टर के कानों तक तो नहीं पहुँच गयी है।

वह अपनी शंका को मिटाने का उपाय सोच ही रहे थे कि किसी लड़के की सिसकियों का स्वर, जिसे वह अपनी चिन्ता में डूबे रहने के कारण अब तक नहीं सुन पाये थे, साफ-साफ सुनाई देने लगा।

कक्षा का सबसे होशियार और शरीफ लड़का गिरीश कोने में बैठा सुबक रहा था। अपनी चिन्ता छोड़, उन्होंने उसे बुलाकर पुचकारना शुरू किया। उससे रोने का कारण भी पूछने लगे। पर वह था कि लगातार सुबकता ही जा रहा था। उन्हें विनोद की ही शरारत लगी। बच्चों को रुलाने, तंग करने में विनोद को विशेष आनन्द आता है। झल्लाए हुए वह पहले ही से थे, विनोद को बुलाया और डाँटकर गिरीश के रोने का कारण पूछने लगे।

विनोद सहमा हुआ बोला—'मास्टरजी, मैंने कुछ नहीं किया। रघुबीर ने इसकी किताब फाड़ी है, और गालियाँ भी दी हैं।'

रघुबीर का नाम सुनते ही बूढ़े का वह चेहरा, जिसमें गरीबी से अधिक क्रूरता झलकती थी, उनके सामने कौंध गया।

'आज बच्चे को दाखिल करने आया हूँ... मास्टर जी, आप गलत न समझना। रघुबीर को हर हालत में पढ़ना है। मैंने तो अपनी सारी जिन्दगी जलील कामों में बितायी है। आधी उम्र मेरी जेल के सींखचों के अन्दर बीती है। मेरे बाप-दादा भी यही पेशा करके मर-बीते। चाहता हूँ, पीढ़ी-दर-पीढ़ी से चली आ रही यह गन्दगी यहीं खत्म हो जाए। रघुबीर अब आपकी गोद में है। इसे जरूर पढ़ना है।...पर, मास्टर जी...मास्टर जी, मैंने सुना है, बिना मार खाये बच्चे पढ़ते नहीं हैं। मेरे रघुबीर ने कभी मार नहीं खायी है। इसे मत मारना।' बूढ़े ने कहा था।

वह कुछ क्षण सोचते रह गये। कसमसाते हाथों की हरकत एकदम ठंडी पड़ गयी। शरीर में एक आलस्य-सा उभरने लगा और मन में तिक्तता समाती गयी। उन्हें लगा कि जैसे बूढ़ा आज भी उसी दिन की तरह उनके सामने खड़ा है। उसी कातर-स्वर में हिचकिचाते हुए उल्टा-सीधा प्रलाप कर रहा है।

गिरीश अब भी रोता जा रहा था। विनोद सहमा-सहमा हाथ सीधे नीचे किये खड़ा था।

मास्टर चेते, वह चुप क्यों हैं? वह एक अध्यापक हैं। उनका कर्त्तव्य बच्चों को अच्छी बातें सिखाने का है। आज तक वह चुप रहे। रघुबीर की शरारतों को हमेशा अनदेखा कर दिया। बूढ़े-बाप के शब्दों ने हर बार उन्हें हाथ उठाने से रोके रखा। ज्यों ही वह रघुबीर को शरारत करते देखते, उन्हें एक आलस्य-सा घेरने लगता। लगता, एक बूढ़ा बाप उनसे भीख माँग रहा है। उनके हाथों को पकड़कर अपने बच्चे का बचाव कर रहा है।

पर आखिर क्यों? और कब तक? दिन-प्रति-दिन रघुबीर की उच्छृंखलता बढ़ रही है। प्रोत्साहन पाकर

वह बिगड़ता जा रहा है। किसी बच्चे को दांत काट देना, किसी को नाली में गिरा देना, यह सब उसके रोज के काम हो गये हैं। समय पर न रोका गया तो परिणाम अनिष्टकारी हो सकता है। आज किताब फाड़ी है, गाली दी है, कल एक बच्चे को दाँत मार दिया था, और...इसी तरह कल किसीको चाकू मार सकता है, किसी की आँख फोड़ सकता है......

"आधी उम्र जेल के सीखचों के अन्दर बीती है।"—बूढ़े के शब्द याद आते ही मास्टर की भवें तन गयीं। उनके चेहरे की झुर्रियाँ और गहरी हो गयीं। बूढ़े ने अपनी उम्र में जाने कितने डाके डाले होंगे, जाने कितनी चोरियाँ की होंगी, और हो सकता है खून तक किये हों...और.., इसमें क्या सन्देह है कि एक दिन बूढ़े का यह बच्चा बड़ा होगा, वह भी बूढ़े के ही पदचिह्नों पर चलेगा। जो अभी से इस तरह नृशंस कार्य करने लगा है, उसे समय पर ताड़ना नहीं दी गयी...खूनी...हाँ, खूनी बनने में क्या देर लगती है?

उन्होंने क्लास की ओर देखा, रघुबीर अपनी बेंच पर अकड़ कर बैठा था। उसकी आँखों में पश्चात्ताप की जगह उन्हें ढीठता दिखायी दी। वह पसीने से नहा गये। हाथ छड़ी की ओर लपक गया और वह चिल्लाए—"रघुबीर!"

"जी!" रघुबीर अपनी जगह पर खड़ा हो गया।

कक्षा में बैठे सब बच्चे शान्त और स्थिर बैठे थे। गिरीश ने सुबकना बंद कर दिया था। दूसरा पीरियड खत्म होने की दो घंटियाँ बज रही थीं। बाहर कोई बच्चा चिल्लाकर अपने साथी को आवाज दे रहा था। नल पर पानी पीने के लिए लगी बच्चों की लाइन कक्षा से साफ नजर आ रही थी। रग्घू हलवाई के छप्पर के नीचे कोई नहीं था।

"इधर आओ।" मास्टर अब क्रोध में थे। रघुबीर पर हाथ उठाने का उन्होंने पूरा फैसला कर लिया था। आग्नेय-नेत्रों से वह अपनी ओर आते रघुबीर को देखते रहे।

मस्तानी चाल से, जैसे कि आवारा लड़के या बिगड़े हुए रईस चला करते हैं, रघुबीर उनकी ओर आ रहा था। एक-दो जगह वह बेंचों से उलझ कर गिरते-गिरते बचा। मास्टर उसके चलने के ढंग से और भी चिढ़ गये। उन्हें लगा, रघुबीर नहीं अपितु उसका बूढ़ा बाप उनकी ओर आ रहा है। वही बूढ़ा बाप जो एक दिन उनसे कह रहा था—"खुद मैंने किसी स्कूल में तालीम नहीं पायी, और मैंने अपनी सारी जिन्दगी जलील कामों में बिता दी है। पर....।"

"ऊँह!" मास्टर के सारे शरीर में घृणा की एक लहर फैल गयी। जलील बाप का बेटा...अच्छा कैसे हो? खून का असर झूठी बात नहीं है। जन्मजात संस्कार अवरोध न पाकर एक दिन पनपेंगे ही, और इसपर भी वह यदि चुप रहे, बूढ़े के कहने के मुताबिक उसके लड़के पर हाथ नहीं उठायेंगे, तो...लड़के के पतन की कल्पना नहीं की जा सकती। और उस शिक्षा का क्या महत्त्व हुआ जो बच्चे को सन्मार्ग पर न ला सके, जो शिक्षा बच्चे का सुधारकर बपौती कृत्यों से उसका पीछा न छुड़ा सके। अक्षर-ज्ञान और गिनतियाँ—याद तो तोते को भी करायी जा सकती हैं। परिश्रम से जानवर भी पढ़ाया जा सकता है। उन्हें अपने कर्त्तव्य को पहचानना चाहिए, उससे विमुख होना...बूढ़े का क्या है, उसमें बुद्धि होती तो सारी उम्र चोरी-डाके न डालता फिरता...

"रघुबीर, इधर आओ—" वह जोर से चिल्लाए—भूल गये कि रघुबीर उनके सामने खड़ा है।

""जी।" रघुबीर बोला।

मास्टर ने चौंककर रघुबीर की ओर देखा। पूछा "गिरीश की किताब क्यों फाड़ी है?"

रघुबीर चुप रहा।...कारण हो तो बताया जाए।

"किताब भी फाड़ी और गालियाँ भी देते हो।" मास्टर कह रहे थे—"तुम्हें पढ़ना है, ठीक से पढ़ो। नहीं तो मैं तुम्हें स्कूल से निकाल दूँगा। समझे..जाओ.. अपनी जगह पर बैठ जाओ। खबरदार, आइन्दा जो ऐसी हरकतें कीं।"

मास्टर फिर अपने में एक जड़ता महसूस करने लगे। उन्हें यह भी महसूस हुआ कि उनका क्रोध उनके अन्दर ही अन्दर घुटकर मर गया है। उन्हें अपनी इस अवस्था पर दुख होने लगा। उन्हें कुछ सजा देनी चाहिए थी। डाँटने भर से काम नहीं चलेगा। यद्यपि वह दण्ड के पक्ष पाती नहीं हैं, तथापि यह भी वह समझते हैं कि दुर्जन प्यार से नहीं सीखता। आज तक का उनका अनुभव है कि बच्चे को प्यार के समय प्यार दो, ताड़ते समय

दी। उन्होंने रघुबीर को ढील दे दी है। अब वह भी अपने को स्वतन्त्र समझ लेगा। जाने आगे क्या खिला दे,...और इसकी सारी जिम्मेदारी मास्टर पर होगी।

उनके अन्दर ढेर सारी कमियाँ समा गयी हैं, मास्टर सोचते रहे। वह ज्यों-ज्यों बूढ़े हो रहे हैं, अपने कर्त्तव्य को भूलते जा रहे हैं। पहले वह ऐसे नहीं थे। कैसे-कैसे लड़कों को उन्होंने ठीक किया है। याद आया, तीन साल पहले एक लड़का क्लास से भागकर सिनेमा चला गया था। दूसरे दिन उन्होंने फिर उसे क्लास में नहीं बैठने दिया। उसके पिता आए, अन्य मास्टरों ने सिफारिश की, पर वह अपनी जिद पर अडिग रहे। आखिर मुख्याध्यापक के कहने पर वह बड़ी कठिनता से माने थे। उनका सिर्फ यह कहना था—"आज माफ किया जा सकता है मनोहर को, पर कल अगर यह फिर भाग गया? क्या सजा दी जाएगी? मैं कहता हूँ, प्रश्न आजका नहीं है, जो हो गया उसका नहीं है; सवाल तो यह है कि भविष्य में यह क्लास से नहीं भागेगा, इसका मुझे विश्वास हो जाना चाहिए। आज इसे अगर आसानी से छोड़ दिया, तो दूसरे लड़कों पर इसका प्रभाव पड़ सकता है...।"

इतना सब सोचने पर भी मास्टर बदले नहीं। जाने क्यों उन्होंने स्वीकार कर लिया कि आज इतना ही काफी है। दूसरी बार रघुबीर ने यदि यह सब दुहराया, तो कदापि माफ नहीं करेंगे।

और जब उन्होंने ईमानदारी से सोचा तो लगा, इन विचारों के मूल में बूढ़े की भयानक और साथ ही दयनीय सूरत है, जो हर बार रघुबीर को उद्दंडता के बारे में सोचते समय उनके दिल और दिमाग में छाने लगती है। वह चाहें भी तो रघुबीर पर हाथ नहीं उठा सकते। बूढ़ा उस दिन, जब वह बच्चे को दाखिल कराने आया था, घबराया-सा लग रहा था। उसकी सिकुड़ी आँखों के इर्द-गिर्द जैसे जमाने भर का शोक तैर रहा था। वह अपने ठिगने कद के साथ इस तरह खड़ा था, जैसे मास्टर का एकमात्र आश्वासन उसे जीवन दे सकता है। मास्टर ने उस दिन उसे बताया था कि वह किसी भी बच्चे पर बिना मतलब हाथ नहीं उठाते। उसके रघुबीर पर भी हाथ नहीं उठाएँगे। और इस आश्वासन देने के बावजूद भी, घर जाते हुए सारे रास्ते उन्हें बूढ़े का ख्याल रहा था। मन में ही उन्होंने निश्चय कर लिया था कि रघुबीर को वह कभी सजा नहीं देंगे।

मास्टर ने सारे विचारों को झटक कर सिर उठाया। देखा, अभी भी रघुबीर सामने खड़ा है। वह डाँटते हुए बोले—"खबरदार जो आइन्दा ऐसे हरकत की। जाओ, अपनी सीट पर बैठ जाओ। नालायक कहीं के!"

बाहर अब रिमझिम बारिश शुरू हो गई थी। चारों ओर अँधेरा-सा छा गया था। जोरों से बारिश होने के आसार नजर आ रहे थे। रग्घू हलवाई पिछले हफ्ते से बना रहे छप्पर को सूत की रस्सियों से बाँधकर मजबूत कर रहा था।

रघुबीर के मुँह का स्याहपन, मास्टर के शब्दों को सुनकर और अधिक गाढ़ा हो गया। लगता था, उसे इस प्रकार के शब्द सुनने की आदत नहीं है। घूर-घूर कर वह मास्टर की ओर देखता रहा, जैसे अपनी आँखों में घृणा के भाव उभार कर मास्टर को चिढ़ाना चाहता हो। जैसे कि मास्टर आदेश दे चुके थे, वह अपनी सीट पर जाकर नहीं बैठा, और न उसने आदेश की परवाह की। उसकी इस क्रिया से स्पष्ट था कि वह मास्टर की उपेक्षा कर रहा है, और उसे अपने किए पर बिल्कुल भी पश्चात्ताप नहीं है।

रघुबीर की हरकत को वह सह न सके। एक बच्चा उन्हें नफरत की नजरों से देखे, यह कैसे हो सकता था? तनखा भले ही कम है उनकी, पर पेशा ऐसा है कि सम्मान की उन्हें कमी नहीं होती। जिधर भी निकलें, कोई भले ही उन्हें कुछ न दे, दो हाथ नम्रतापूर्वक अवश्य जोड़ देता है। बूढ़े की भयानक सूरत भी अब उन्हें याद नहीं आ रही थी। बूढ़े के शब्द भी उनके दिमाग में नहीं थे। बस, यही याद था कि एक नादान लड़का उनके मुँह लग रहा था।

वह सह नहीं सके। उसका कान उमेठते हुए बोले—"सुनाई नहीं दिया। मैं कहता हूँ, अपनी जगह पर जाओ। मेरा मुँह क्या ताक रहे हो? नालायक कहीं के।"

कान उमेठे जाने पर रघुबीर कुछ क्षण शान्त-सा खड़ा रहा। फिर धीरे-धीरे अपनी आवारा चाल से वह अपनी जगह पर जा पहुँचा, किताबें समेटी, बस्ता उठाया और तीर की तरह कक्षा से बाहर हो गया।

मास्टर हैरानी से देखते रहे। रघुबीर के कमरे से इस

तरह भाग जाने की उन्हें आशा नहीं थी। कुछ क्षण वह ठगे से खड़े रहे। सोच रहे थे, शायद उन्हें रघुबीर को रोक लेना चाहिए था। पर... मास्टर फिर सँभल गये। न रोक कर शायद ठीक ही किया है। उद्दण्ड लड़के से सहानुभूति दिखाना, उसकी उद्दण्डता को प्रोत्साहन देना होता। चला गया है, कौन सी आफत आ गयी है? दो दिन उनके पास रहे, सारा गरूर निकाल कर रख दें। कैसे-कैसे ढीठ बच्चों को उन्होंने ठीक किया है। इसकी तो बिसात क्या, कल का छोकरा।

उनकी नजर अपनी कक्षा के चालीस बच्चों की ओर घूम गयी। कई चेहरे उन्हें ऐसे लगे, जिनके गाल अभी भी उनकी मार से जैसे इतने लाल थे कि उनसे खून चू पड़ेगा। उन्हें लगा, खून चूने वाली बात तो सिर्फ़ भ्रम है, मगर यह सच है कि उन्होंने उन सब बच्चों को अभी एक सप्ताह भी नहीं हुआ, खूब मारा था। और बूढ़े के लड़के रघुबीर का तो सिर्फ उन्होंने कान ही उमेठा है। फिर भी वह क्लास से भाग गया।

अब मास्टर महज एक बात सोच रहे थे, वह क्या है, वह कौन है, जो इन बच्चों में से सिर्फ एक बच्चे को स्कूल से भगा रहा है? कौन नहीं चाहता, वह अच्छा रहे, अच्छी जिन्दगी गुजारे, भले व्यक्तियों में गिना जाए? पर मनुष्य क्यों ऐसे मौकों पर, भला बनना चाहते हुए भी, ऐसे कृत्य कर डालता है, जो उसे पतन की ओर धकेल देते हैं... क्यों...?

वह अपने को काफी भारी महसूस कर रहे थे। उन्हें लगा कि उनके कन्धे को किसी ने छू दिया है। पलट कर उन्होंने देखा, बाहर जोरों की आँधी चल रही थी। नल के आसपास कोई नहीं था। रग्घू हलवाई का छप्पर काँप रहा था। लगता था, छप्पर बावजूद रग्घू हलवाई के सूत की रस्सियाँ बाँधकर मजबूत करने के, अब गिरा... अब गिरा। हवा से उड़कर पेड़ से टूटी एक सूखी लकड़ी का टुकड़ा उनके कन्धे पर आ बैठा। उन्होंने आहिस्ते से उसे हटा दिया, और एक गहरे सोच में डूब कर वह रघुबीर की खाली सीट की ओर देखने लगे, एकटक। वह जान नहीं पाये कि तीसरी घंटी बज रही है।



मधु-गीत

श्री रामनाथ प्रणयी

सुनकर मधु संदेश आम्र में निकल पड़ीं मंजरियाँ।
अब न रात आँसू बरसाती,
अब न दिवस सिहराता,
अब न द्रुमों के विद्रुम-दल पर
तुहिन विन्दु छितराता,
गुन-गुन करतीं मलय-पवन पर लहरातीं मधुकरियाँ।
सुनकर मधु संदेश आम्र में निकल पड़ीं मंजरियाँ।
माथे पर बिंदी सुहाग की,
कंकण कनक-करों में,
चंचलता चित्रित पाँखों में,
आँखों में, अधरों में,
वन-उपवन के डगर-डगर में उन्मद रस-निर्झरियाँ।
सुनकर मधु संदेश आम्र में निकल पड़ीं मंजरियाँ।
जन-जीवन के कंठ-कंठ में
मादक स्वर के झूले,
नव वसंत के रंग-रूप पर
मन पथिकों के भूले,
गीतों का यौवन जी भर-भर लुटा रहीं किन्नरियाँ।
सुनकर मधु संदेश आम्र में निकल पड़ीं मंजरियाँ।
फिर प्राणों की अमर रागिणी,
कण-कण में इठलायी,
इन्द्र-धनुष की छवि अम्बर से
उतर भूमि पर छायी,
कली-कली पर, फूल-फूल पर थिरक रही हैं परियाँ।
सुनकर मधु संदेश आम्र में निकल पड़ीं मंजरियाँ।

प्रतियोगिता के पापड़

डा० श्यामसुन्दर व्यास

जिन्दगी भर पापड़ बेलने एवं चाकरी का काम करने के बाद भी जब मलूकदास के दाता राम ने, हमारे राम के पल्ले फूटी छदाम भी न छोड़ी तो प्रायः पत्नी के तरकश के तीर छूटने लगे––"तुम तो यों ही जिन्दगी भर रोते रहोगे!"

इस वचन वाणावली ने हमारे पुरुषार्थ को अनेक बार न ललकारा हो, सो बात नहीं। पर क्या करें? यदि पुरुषार्थ से ही सब कुछ संभव होता तो भीम को बावर्चीगिरी न करनी पड़ती! काम करते-करते हमारी कमर टूट चली थी; पर लक्ष्मी ने कभी आँख उठा कर हमारी ओर देखना तो दूर, हमारे दरवाजे को भी स्पर्श नहीं किया था।

भले आदमियों की भली-सी बात मानकर हमने भगवान् का भी पल्ला पकड़ा और सोचा कि कभी वही छप्पर फाड़कर देगा। मगर 'भरे में भरने' की उसे भी कुछ ऐसी आदत पड़ गयी है कि भले आदमी के कान तक इस बात की भनक भी नहीं पड़ती। एक बार छप्पर फाड़ने के बजाय छत जरूर उड़ा दी गयी थी परन्तु रुपयों की जगह ढेर कवेलुओं का ही लगा था! सिर सही सलामत रहा, यही उसकी अपरंपार कृपा थी।

इन्हीं दुश्चिन्ताओं के बीच किसी प्रकार दंड बैठक करते हुए अपने पहाड़ से दिन काट रहे थे कि एक दिन पत्नी ने ईश्वरीय वाणी की तरह कहा––"बैठे-बैठाले क्या हो? न हो तो शब्द प्रतियोगिताएँ ही भरा करो!"

बात कानों से सुनी पर मुहावरे के अनुसार गले उतर गयी। सोचा इस बार प्रतियोगिता अवश्य भरेंगे! किस्मत कब, किस बहाने चमक जावे, इसका कोई भरोसा नहीं। अतः एक दिन प्रतियोगिता का 'फार्म' भी ले आये। पहला पुरस्कार पचास हजार का था। अंकों पर नजर क्या पड़ी, कलेजा ठंडा हो गया। सोचा––अगर इस बार दीनदयालु ने सुन ली तो बस, बारे-न्यारे हैं। लक्ष्मी घर में रहेगी और पत्नी की 'कंठ-काकली' का 'सरगम' भी समाप्त हो जावेगा!

प्रतियोगिता भरने के पूर्व 'पंचांग' में चौघड़िया देखा और 'लाभ-शुभ' के मुहूर्त्त में पद्मासन लगाकर, ईश्वर स्मरण किया। पत्नी भी पास बैठी और हमारी किस्मत के वारिस अर्थात् सपूतजी भी आकर जम गये। पत्नी के प्रस्तावानुसार हमने पहला वाक्य पढ़ा "यह........का युग है।"

दूसरा अक्षर 'ल' दे रखा था और पहले अक्षर की पूर्ति करना था। अतः हमने बच्चों की तरह बारहखड़ी आरंभ की....कल, खल, गल, घल, डल!

पत्नी ने 'पल, फल, बल' की ओर सपूतजी ने 'तल, थल, दल, नल' का नारा लगाया। कहने का अर्थ यह कि 'क' से लगाकर 'ज्ञ' तक ल की तुक के शब्द गिने गये और उसमें से कल, बल और नल चुन लिये गये। हमने कहा––"यहाँ कल अच्छा रहेगा क्योंकि यह युग, कल का युग है!"

पत्नी ने कहा––"नहीं, कल के बजाय बल अच्छा रहेगा क्योंकि यह युग, बल का है।"

इसपर लड़का बोला––"नहीं पिताजी, यह युग नल का है। देखिये न, हमें रोज सुबह-शाम पानी के लिये नल पर जाना पड़ता है या नहीं?"

हम चक्कर में पड़ गये––कल, बल और नल ने बुद्धि को टल-मल बना दिया और हृदय खल-बल करने लगा।

बहुत दिमागी कसरत के बाद भी जब मामला उर्दू में ही बना रहा तो पत्नी ने कहा––"क्यों जी, छल रहेगा ठीक?"

हम उछल गये। बोले––"वाह जी क्या शब्द बताया है! वास्तव में यह छल का युग है।"

हमने छल की शब्द पूर्त्ति पूर्ण की ही थी कि पत्नी बोली––"दूसरा पढ़ो!"

पत्नी को यों हुक्म चलाते देखकर हमारा मिजाज जरा मिर्चाया! सोचा––चूहे को चिन्दी क्या मिली, बजाजी ही बघारने लगा। एक शब्द क्या बना दिया अपने परमेश्वर तुल्य पति पर ही हुक्म चलाने लगीं। पर, यह सोचकर कि 'शकुन' के समय 'चिक चिक' अच्छी नहीं, हमने दूसरा वाक्य पढ़ा––'रसिकों का खयाल है कि.....ती औरत बड़ी सुन्दर जान पड़ती है।'

'ती' अक्षर के रहने से हमने 'सोती' और 'रोती' शब्द बनाये। हमने कहा––"यहाँ रोती औरत अच्छा रहेगा।"

पत्नी ने तुनककर कहा––"क्या खाक अच्छा रहेगा! सोती औरत ही अच्छी जान पड़ती है।"

"मगर रसिकों का तो खयाल है कि........"

"भाड़ में गये तुम्हारे रसिक! रोती औरत कभी अच्छी नहीं लगती!"

लड़के ने अपनी राय दी––"नहीं पिताजी, रोती औरत ही अच्छी लगती है।"

पत्नी ने लड़के के कान उमेठकर कहा––"चुप! तुझे बीच में बोलने को किसने कहा? जमीन में से तो निकला नहीं और अच्छी औरत की बात करने चला है। देखो जी, मैं कहती हूँ सोती औरत अच्छी रहेगी!"

औरत के मामले में औरत की बात मान्य समझकर

हमने 'सोती' शब्द भर दिया। इसके पूर्व कि पत्नी कुछ कहे, हमने तीसरा पूर्त्ति-वाक्य पढ़ा—"स्त्री अपने बाल ....के लिये क्या नहीं कर सकती?"

बाल से 'बालक' एवं 'बालम' बनाये गये।

पत्नी बोली—"बालक लिखो!"

हमने कहा—"वाह, बालम ने क्या बिगाड़ा है? बालम के लिये स्त्री सब कुछ कर सकती है, बालक के लिये नहीं।"

सपूत जी जवाब दे बैठे—"वाह, बालक के लिये क्यों नहीं कर सकती! माताजी आपको ज्यादा प्यार करती हैं या मुझे?"

मैंने लड़के की बात पर मुस्कराकर पत्नी से पूछा—"क्यों जी?"

पत्नी ने पहले तो लड़के से कहा—"क्यों रे, तुझे बीच में बोलने को मना किया था न! चलो, बाहर जाकर खेलो!"

लड़का मुँह लटका कर चला गया तो पत्नी ने आँखें तरेर कर हमसे कहा—"लड़के के सामने ऐसी बात पूछते शर्म नहीं आती?"

हमने 'ढीठ' की तरह कहा—"शर्म की इसमें क्या बात है! तुम्हें बालक पसंद है या बालम?"

पत्नी की बंकिम मुद्रा में हँसिये का बांकपन उभरने लगा तो हमने स्वयं ही 'बालम' की पतंग काटकर बालक लिख दिया। इसके बाद, एक दो वाक्य सर्वानुमति से पूर्ण हो गये। मगर गाड़ी पुनः कामिनी के 'केश' और 'वेश' पर अटक गयी। हमने केश कहा, पत्नी ने वेश।

हमने तर्क प्रस्तुत किया—"वेश अच्छा होने पर भी केश खराब हों तो कामिनी किस काम की?"

पत्नी बोली—"केश अच्छे हों और चीथड़े पहन रखे हों तो कामिनी किस काम की!"

"जिसके केश खराब हों वह कामिनी 'झींतरी' दिखती है!"

"जिसका वेश खराब हो वह 'चींथड़ी' दिखती है।"

"मुझे तो केश पसंद हैं।"

"क्यों नहीं! वेश जुटा नहीं पाते और केश में हल्दी फिटकिरी नहीं लगती। फिर केश पसंद आवेंगे ही!"

"बस, कर दी न रामायण चालू! जरा अक्ल से सोचो, कामिनी का क्या अच्छा लगता है, इसे तुम जानोगी या मैं?"

पत्नी ने ब्रह्मास्त्र छोड़ा—"शायद आमने-सा[...] इसीलिये ताका-झाँका करते हो?"

गाड़ी को गलत पटरी पर जाते देखकर हमने नव[...] लेपन की शरण ली। कहा—"देखो, समझदार हो[...] तुम कैसी बातें करती हो। झगड़े से लक्ष्मी दूर भा[...] है। तुम कहती हो तो 'वेश' लिख देता, हूँ पर [...] 'केश' ही अच्छे हैं। केश काटकर अगर कामिनी [...] कीमती वेश..........।"

पत्नी ने बीच ही में बात काटकर कहा—"[...] करी न अपशकुनी बात! अच्छा केश ही लिख दो।"

हमने केश लिख दिया। अन्य वाक्यों की पूर्ति [...] हो गई। प्रतियोगिता पूर्त्ति के लिफाफे को परमात्मा [...] चरण-स्पर्श करवा कर 'रजिस्ट्री' से रवाना कर दि[...]

इसके पश्चात् प्रतियोगिता-परिणाम की प्रती[...] प्रारंभ हुई। हृदय की बढ़ती धड़कन के साथ, चो[...] शक्कर से मन-मोदक भी बाँधे जाने लगे। पचास ह[...] मिलने के पहले ही पचास हजार का व्यौरा तैयार [...] गया—पन्द्रह हजार का बँगला बँध गया, पाँच ह[...] टीम-टाम में लगा दिये। दस हजार की पूँजी से व्या[...] प्रारंभ करने की योजना बनी और पत्नी ने नेकले[...] ईयरिंग, हाथ के जड़ाऊ कंगन तथा घड़ी का सपना दे[...] हमने पीं पीं करती मोटर पर सवारी कर ली और दो[...] के काल्पनिक शब्द कानों में गूँजने लगे—"परमा[...] जिसे देता है, यों छप्पर फाड़कर देता है!"

मगर जब प्रतियोगिता का परिणाम सामने [...] तो आँखें खुली की खुली रह गयीं। सिर्फ सात कम [...] अशुद्धियाँ थीं—देखा—छलछला गया है और [...] कल पर ठहरी। सोती औरत सोती रही और [...] औरत रसिकों को भा गयी। कामिनी के केश तो दे[...] बालक की जगह बालम का पलड़ा भारी हो गया। [...] हाल अन्य वाक्य पूर्तियों का भी रहा। हमारा बंगला [...] व्यापार क्षार क्षार हो गया। मोदक, माहुर बन ग[...]

भगवान् की ओर हमने भरी-भरी आँखों से देख[...] छत की ओर ताका—फटना तो दूर उसमें दरार [...] नहीं दिखायी दी। हाँ, दो-चार मकड़ियों के जाले [...] बढ़ गये जो हमारे सिर पर हमारे दारिद्रय के प्रतीक [...] कर सवार थे।

पत्नी ठंडी साँस भरकर रह गयी, हम ठंडा [...] पीकर। हमें निश्चय हो गया कि अपनी जन्मकुं[...] में पापड़ बेलने का ही योग है, पुरस्कार का नहीं।



नवीन प्रकाशन

दिवास्वप्न—लेखक, स्व० आचार्य श्री गिजुभाई [illegible]। अनुवादक, काशीनाथ त्रिवेदी, प्रकाशक काशी-[illegible] त्रिवेदी, ग्राम भारती आश्रम, टवलाई, डा० टवलाई, [illegible] धार, मध्यप्रदेश। मूल्य सवा रुपया। पृष्ठ संख्या [illegible]।

यह है एक प्राथमिक पाठशाला के शैक्षणिक प्रयोगों [illegible] रोचक और उद्‌बोधक कहानी जिसकी कि लेखन-[illegible] इतनी परिपक्व है कि उस समस्त पुस्तक को पढ़ने [illegible] उपन्यास का आनन्द आता है। और आश्चर्य होता [illegible] शिक्षण के ऊपर भी इतनी रोचक तथा मार्मिक पुस्तक [illegible] जा सकती है। 'दिवास्वप्न' वास्तव में एक गुज-[illegible] पुस्तक है और यह उसका हिंदी अनुवाद है। यह [illegible] का दूसरा संस्करण है। इतना भली भाँति [illegible] जा सकता है कि यदि यह पुस्तक कहीं विदेश में छपी [illegible] तो न जाने इसके कितने संस्करण निकल गये होते। [illegible] पुस्तक का गुजराती का मूल प्रायः ३०-३५ वर्ष पूर्व [illegible] गया था—पुस्तक आज भी उतनी ही ताजी, प्रेरक [illegible] मार्गदर्शक है जितनी तब रही होगी। इसपर आश्चर्य [illegible] होता है, खेद भी होता है और ग्लानि भी। ३०-३५ [illegible] पूर्व जो बाल-शिक्षा की परिपाटी हमारे यहाँ चली [illegible] थी वही आज भी चली आती है। दिवास्वप्न जैसी [illegible] पुस्तकें इस देश में यदि कभी सौभाग्य से छप [illegible] तो छपें, और फिर मृत्यु के गर्त्त में समा जायँ! [illegible] शिक्षा की परिपाटी चाहे कितनी भी त्रुटिपूर्ण [illegible] बदली नहीं जा सकती क्योंकि किसीमें बहती धार [illegible] रोककर नया मोड़ देने की लगन नहीं है। एक होता [illegible] अज्ञानवश परिपाटी को पीटना पर ग्लानि तब होती [illegible] मार्गदर्शक होने पर भी, ज्ञान होने पर भी वही [illegible] परिपाटी पीटी जाती है। प्राथमिक पाठशालाओं की पढ़ाई [illegible] जो भारी दोष आ घुसे हैं उनकी ओर इशारा करके [illegible] स्वरूप को बदलने की अत्यन्त मूलगामी, अमूल्य, [illegible] व्यावहारिक सूचनायें इस पुस्तक में भरी पड़ी हैं। [illegible] गिजुभाई गुजरात के एक धुरन्धर शिक्षाशास्त्री थे। इस [illegible] को पढ़कर बहुत से अध्यापक तथा बहुत से माता-[illegible] नत-मस्तक हो जायेंगे। प्रत्येक माता-पिता तथा [illegible] अध्यापक को अवश्य ही यह पुस्तक पढ़नी चाहिये। [illegible] लगता है जैसे लेखक ने बड़ी ही सतर्कता के साथ [illegible] शिक्षा प्रणाली के सामने दर्पण रख दिया हो। [illegible] दर्पण रखकर दोष दिखाने का काम तो बहुत जानते [illegible] उन दोषों का निवारण किस प्रकार किया जा सकता है—इसका व्यावहारिक उदाहरण देकर कोई विरला ही करता होगा। इस पुस्तक में बड़ी कोमलता व सजीवता के साथ दोष निवारण की ओर संकेत है। रोचकता व लेखन शैली में तो इस छोटी सी पुस्तक ने बड़े-बड़े रोचक उपन्यासों को मात कर दिया। प्रथम पृष्ठ की कुछ पंक्तियाँ पढ़ने के पश्चात् पुस्तक को छोड़ना ही मुश्किल हो जाता है। खेद है कि 'दिवास्वप्न' अभी तक दिवास्वप्न ही है उसको तो हमारे जीवन का एक अंग हो जाना चाहिये था।

मार्ग की खोज—लेखक, रोहित मेहता, अनुवादिका, सुश्री देवी मेहता, आनन्द प्रकाशन (प्राइवेट) लिमिटेड, कमच्छा, वाराणसी—१, मूल्य एक रुपया पचास नये पैसे। पृष्ठ संख्या १२५।

यह पुस्तक रोहित मेहता की 'Seek Out The Way' का हिंदी अनुवाद है। वास्तव में 'मार्ग प्रकाशिनी' नामक पुस्तक थिऑसोफी के रहस्यवाद का एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है—उसका प्रकाशन ७० वर्ष पूर्व हुआ था और ऐसी मान्यता है कि मूल रूप में इस पुस्तक के ३० सूत्र थे। उन तीस सूत्रों पर समय-समय पर टीकाएँ होती रहीं। यह पुस्तक भी 'मार्ग प्रकाशिनी' के ऊपर एक भाष्य है। थियोसोफिकल सोसाइटी के वाराणसी केन्द्र में ब्रह्म विद्या जिज्ञासुओं के सामने दी गयी एक प्रवचन माला को पुस्तकाकार दे दिया गया है।

पुस्तक में ९ अध्याय हैं। सभी अध्यायों में गूढ़ अध्यातमवाद सरल भाषा में लिखा है। 'मार्ग प्रकाशिनी' पर टिप्पणी होते हुए भी इस पुस्तक को भी अलग अन्य किसी आध्यात्म पुस्तक के समान पढ़ा जा सकता है। टिप्पणियाँ सरस भी हैं और गूढ़ भी। 'उत्साह के बिना किसी महान् कार्य की सिद्धि कदापि नहीं हो सकती।'

'तूफान के बीच अकेलेपन या निस्सहायता की स्थिति की उत्पत्ति होती है। यह अकेलापन आध्यात्म साधना के लिये अत्यन्त आवश्यक है।'... अकेलेपन से भागने का मनुष्य सदैव प्रयत्न करता है—एकाकी से भयभीत होकर वह सदैव किसी वस्तु या व्यक्ति के सम्पर्क में रहना चाहता है.... वास्तविक अकेलापन अर्थात् एकाकी अवस्था एक ऐसी स्थिति है जिसमें मन किसी भी वस्तु पर आसक्त न हो।'....जो मन अपनी कल्पना और आकांक्षाओं के सम्पर्क में रहता है वह एकाकी अवस्था का अनुभव करने में असमर्थ रहता है।

'हमारी वाणी का डंक शब्द में नहीं अपितु हमारे मन में रहता है।'

ये कुछ ऐसे उदाहरण हैं जो पुस्तक के सुलझे हुए विचार एवं सादी भाषा पर प्रकाश डालते हैं, और मनुष्य को अपने हृदय में झाँककर देखने के लिये दर्पण का काम करते हैं। पुस्तक की छपाई सुंदर और स्पष्ट है।

अध्यात्म रोगों की चिकित्सा—लेखक, श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति, प्रकाशक, धर्मपाल विद्यालंकार, स० मुख्याधिष्ठाता, ऋते पुस्तक भंडार, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार मूल्य दो रुपये। पृष्ठ संख्या १७८।

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के उपकुलपति हैं और केन्द्रीय संस्कृत मंडल के माननीय सदस्य थे। यह पुस्तक आपने ७० वर्ष की आयु में लिखी है। यह लिखना इस कारण आवश्यक हुआ कि पुस्तक को पढ़ने के पश्चात् यह आभास होता है कि यह किसी अनुभवी, विचारशील, मस्तिष्क की उपज है जिसने यह सोचा है कि आध्यात्म ज्ञान को व्यवहार के नित प्रति के जीवन में किस प्रकार उतारा जाय कि नवयुवक उसका लाभ उठा सकें।

स्थान स्थान पर जो सूक्ष्म विश्लेषण हैं वे लेखक के मनन व अध्ययन का निष्कर्ष प्रतीत होते हैं। निबन्ध के प्रथम अध्याय में जो शास्त्रीय विवेचन किया गया है उसकी शैली ऐसी है कि वह जटिल नहीं लगता। अगले अध्यायों में दिये हुए व्यावहारिक विचारों की वह अच्छी पृष्ठभूमि है। इसमें भारतीय दर्शन-शास्त्रों के आध्यात्मिक मनोविज्ञान और वर्तमान मनोविज्ञान के भौतिक विश्लेषण का समन्वय किया गया है। वह भी निबन्ध के व्यावहारिक भाग की पृष्ठभूमि बन जाता है। यह पृष्ठभूमि उन पाठकों के लिए आवश्यक है जो भारतीय दर्शनशास्त्र से या तो अनभिज्ञ हैं या उसे उचित रीति से नहीं समझते।

एक प्रकार से देखा जाय तो निबन्ध के विचारों में कोई मौलिकता नहीं है—परन्तु उसमें देश-विदेश व प्राचीन मुनियों के वचन इस प्रकार लिखे गये हैं कि उनसे लेखक का यह अभिप्राय कि नवयुवकों के पल्ले कुछ पड़े—वे अपना चरित्र निर्माण कर सकें, पूर्णतः सफल होता है।

पुस्तक में पाँच प्रकरण हैं—इन प्रकरणों में आये अध्याय छोटे-छोटे हैं और अनावश्यक रूप से लम्बे नहीं किये गये हैं। इस कारण उनमें एक व्यवहारिकता आ गई है।

जो श्लोक बाहर से लिये गये हैं वे अत्यन्त उपयुक्त व सुन्दर हैं—देश-विदेशों के लेखकों से जो भाग उद्धृत किये गये हैं उनसे पुस्तक में उनकी उपयुक्तता के कारण गुरुता आ गई है।

औषधि से निरोध श्रेष्ठ है—कीचड़ लग जाने पर धोकर साफ किया जा सकता है पर उचित यही है कि 'कीचड़ लगने ही न दिया जाय' के अन्तर्गत वे माता-पिता के प्रति भी दो शब्द लिखते हैं। ऐसा नहीं है कि इस पुस्तक से केवल नवयुवकों को ही लाभ हो। जीवन के जिस किसी काल में भी पाठक क्यों न हो पुस्तक से वह लाभ उठा सकता है।

पुस्तक की शैली व भाषा अत्यन्त सरल है क्योंकि लेखक का स्वयम् यह मत है कि यदि किसी वाक्य को श्रोता न समझ सकें तो उसके लिये वक्ता को ही दोषी समझना चाहिये।

लेखक ने इस प्रकार की पुस्तक लिखने की ओर जो कदम उठाया है उसके लिये वे सराहना के पात्र हैं।

कठोपनिषद्—लेखक, विद्यावती मिश्र, शिवशंकर मिश्र, प्रकाशक विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान, होशियारपुर, मूल्य १२ आना। पृष्ठ संख्या ४०।

यह पुस्तक कठोपनिषद् का एक पद्यबद्ध रूपान्तर है। उपनिषदों के क्षेत्र में सरल भाषा में पद्यबद्ध रूपान्तर करने का यह प्रथम प्रयास कहा जा सकता है इस कारण उल्लेखनीय है व प्रोत्साहन का भागी है। ऐसा ही एक पद्यबद्ध अनुवाद गीता का भी 'दिनेश' द्वारा किया गया है। उसका अनुवाद इतना सुन्दर और यथाप्रसंग बना है कि उसको देखकर यह आशा बँधी थी कि ऐसे अनुवाद बिना मूल को विक्षिप्त किये हो सकते हैं और अधिक से अधिक मात्रा में होना चाहिये। परन्तु इस अनुवाद में हमें यह देखकर अत्यन्त खेद हुआ कि यह मूल से स्थान स्थान पर काफी दूर निकल गया है। जहाँ नचिकेता की कथा है वहाँ तो प्रवाह भी ठीक है, कथा भी ठीक है परन्तु जहाँ वह दार्शनिकता आ जाती है जिसके लिये कि उपनिषद् उपनिषद् कहलाते हैं वहाँ कुछ बच निकलने का सा प्रयास मालूम पड़ता है। इसमें एक बड़ा भारी दोष यह आ जाता है कि जो कठोपनिषद् से परिचित हैं वे उसका दार्शनिक भाग ही सर्वप्रथम देखते हैं—उनको यथेच्छ उत्कृष्ट स्तरीय न पाकर पुस्तक को छोड़ देते हैं तथा जो उससे अपरिचित हैं वह यही सत्य उपनिषद् है और यही उसकी दार्शनिकता है सोचकर गलत धारणा बना लेंगे। बहुत आशा लेकर आया पाठक पूर्णतः निराश भी हो सकता है—अनुचित धारणा तो उसके मन में स्थान बना ही लेगी, हो सकता है मूल के प्रति भी उसकी अरुचि हो जाय।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

कठोपनिषद् का बड़ा ललकार भरा श्लोक है—परन्तु उसके अनुवाद में एक अनुवाद मात्र आ गया है और लल-कार खो गई है। इस श्लोक की इस ललकार ने वास्तव में बहुत से सुप्त हृदयों में जागृत की भावना भर दी और विवेकानन्द ने तो इसको अपना 'आदर्शोक्ति' ही मान लिया था। अनुवाद में विशेषकर उपनिषदों के अनुवाद में तो इसका विशेष ध्यान रखना है कि अनुवाद निष्प्राण न होने पाये।

अनुवादित दोहों में यदि श्लोक के नम्बर भी दे दिये गये होते तो पाठकों को श्लोकों का अनुवाद खोजने में सरलता होती।

पुराने बोल : नये मोल––लेखक, काशिनाथ त्रिवेदी। [प्रका]शक, काशिनाथ त्रिवेदी, ग्राम भारती-आश्रम, टवलई ([मध्य]प्रदेश) मूल्य डेढ़ रुपया। पृष्ठ संख्या १३०।

वास्तव में यह एक लेखमाला है जो कि पुस्तक रूप [में] छपा दी गयी है। ये लेख पच्चीस श्लोकों व मंत्रों के [आधा]र लिखे गये हैं। प्रथम श्लोक व मंत्र दिया गया है। [फि]र उन्हीं मंत्रों व श्लोकों के आधार पर लेख हैं। ये लेख [वास्त]व में मध्यप्रदेश शासन के विकास और योजना [विभा]ग द्वारा सुअवसर प्रदान करने से प्रदेश-गाँधी-स्मारक-[नि]धि द्वारा संचालित ग्राम भारती आश्रम, टवलाई (जिला [धार]) के प्रशिक्षण केन्द्रों में दिये गये वे स्वाध्याय के पाठ [हैं] जो कि समय समय पर जिलों की पंचायतों के सरपंचों, [उप]सरपंचों, पंचों, पंचायत-सचिवों आदि में दिये गये। [...] में ये लेख, स्वाध्याय की परम्परा बने रहें और ये [...] सभी शिविरों के लिये सुलभ हों, इस विचार से [पुस्त]काकार छपा लिये गये।

जैसा कि पुस्तक के नाम से प्रत्यक्ष है, बोल पुराने [हैं] और अब नयी भाषा में तोले गये हैं। श्लोक बहुत सुन्दर [चु]ने गये हैं। इनके चुनने में एक उद्देश्य स्पष्ट दीखता है। [...] वे श्लोक हैं जिनमें कि प्राणी अपने में उच्चतर [गुणों] का विकास करने के लिये भगवान् से शक्ति माँगता [है]—ये कोरे भगवत नाम के श्लोक नहीं, न कोरी दार्श-[निकता] के श्लोक हैं। स्वाध्याय के निमित्त ऐसे ही श्लोकों [का] चयन करना चाहिये जिनसे कि प्राणी का व्यक्तित्व [वि]कसित हो तथा उसको नव गुणों की प्राप्ति हो।

पुस्तक की शैली अत्यन्त सरल तथा भाषा परिमार्जित [है]—क्लिष्ट न होकर भी शुद्ध है। यह पुस्तक स्वाध्याय [के] पाठ के लिये अमूल्य है।

सफलता की राह पर––रामलाल पुरी, संचालक, [आ]त्माराम एण्ड संस, काश्मीरी गेट, दिल्ली ७। मूल्य [...] रुपया पृष्ठ संख्या १२६।

पुस्तक पर लेखक का नाम नहीं है। आत्माराम एण्ड सन्स की ओर से पुस्तक प्रकाशित हुई है। यह प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू की उक्ति 'आराम हराम है' पर आधारित है।

पुस्तक में ११ छोटे छोटे अध्याय हैं। विषय प्रवेश, सफलता की कुंजी, संयम, स्नायुओं पर नियंत्रण, लगन, संवेग, उपचेतन की शक्ति, श्रद्धा, सुख व शान्ति साधना, कर्म का रहस्य, निस्वार्थ सेवा। पुस्तक का अन्तिम अध्याय तो 'आराम हराम है' की ओर कुछ संकेत करता है वैसे पुस्तक का ध्येय 'आराम हराम है' की उक्ति की ओर भले ही हो, अन्य अध्यायों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

पुस्तक के भिन्न भिन्न लेख सरल भाषा तथा रोचक शैली में लिखे गये हैं। प्रायः प्रत्येक लेख किसी रोचक कथानक से प्रारंभ होता है और बीच-बीच में भी कथानक के रोचक दृष्टान्त आते जाते हैं। इन कथानकों के कारण ही पुस्तक में रोचकता आ गई है। ऐसा नहीं है कि इसमें किसी भी विषय पर गूढ़ विवेचन किया गया हो, या कोई नवीनता हो। धन उपार्जन की ओर अपना दृष्टिकोण रख कर प्रकाशक गण जिस प्रकार की हल्की, फुल्की, चलती हुई, रोचक पुस्तक छपा लेते हैं वैसी ही यह पुस्तक है।

पुस्तक के पृष्ठ कवर के पिछले भाग पर मुद्रित विज्ञापन से ज्ञात होता है कि यह पुस्तक किसी लेखिका द्वारा लिखी गई है। किस लेखिका के द्वारा, इसकी चर्चा उसमें नहीं है। विज्ञापन के विपरीत पुस्तक न तो मर्म-स्पर्शी है और न इसके अध्ययन व मनन से जीवन में क्रान्ति-कारी परिवर्तन ही लाया जा सकता है। हाँ! पुस्तक किशोर अवस्था की ओर अग्रसर हो रहे बालक व बालि-काओं के पढ़ने के लिये अच्छी है और वे उससे कुछ लाभ भी उठा सकेंगे।



भारती-कण्ठाभरण

महाराज भोज अपनी गुणग्राहकता और दानशीलता के लिए विख्यात थे। एक बार उनकी सभा में एक निर्धन विद्वान् ब्राह्मण पहुँचे। उनके साथ उनकी वृद्धा पत्नी, पुत्र और पुत्रवधू भी थे। ब्राह्मण ने महाराज से निवेदन किया कि वे और उनके परिवार के सदस्य आशु काव्य-रचना में प्रवीण हैं, किन्तु उन्हें अभी तक ऐसा कोई गुणग्राहक नहीं मिला जो उनकी प्रतिभा का समुचित मूल्यांकन करे। महाराज भोज ने यह सुनकर उस ब्राह्मण परिवार की परीक्षा लेने के लिए उन्हें एक समस्या दी और उसे काव्य-बद्ध करने को कहा। ब्राह्मण-परिवार के प्रत्येक सदस्य ने ललित संस्कृत में शिखरिणी छन्द की रचना करके उस समस्या की पूर्ति की। कहते हैं, महाराज को वे छन्द इतने भाये कि उन्होंने ब्राह्मण विद्वान् को यथेष्ट धन देकर उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की। महाराज भोज की समस्या थी: "क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे"। इसकी पूर्ति क्रमशः वृद्ध ब्राह्मण, वृद्धा पत्नी, पुत्र और पुत्रवधू ने इस प्रकार की:—

विजेतव्या लंका चरणतरणीयो जलनिधि-
र्विपक्षः पौलस्त्यो रणभुवि सहायाश्च कपयः।
तथाप्येको रामः सकलमवधीद्राक्षसकुलं
क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे॥

राम को लंका पर विजय करनी थी, उस लंका पर जहाँ पहुँचने के लिए समुद्र पार करना था और समुद्र ऐसा जिस पर कोई सेतु भी नहीं था, पैदल ही पार करना था। शत्रु भी था पुलस्त्यवंशज रावण जैसा वीर और इधर राम के सहायक थे वानर। किन्तु राम ने इन कठिनाइयों के होते हुए भी अकेले अपने बाहुबल से सम्पूर्ण राक्षस कुल का विनाश कर दिया। इससे यह ज्ञात होता है कि महान् व्यक्ति के कार्य उसके पौरुष से सम्पन्न होते हैं, बाह्य साधनों से नहीं।

रथस्यैकं चक्रं भुजगयमिताः सप्त तुरगाः
निरालंबो मार्गश्चरणरहितः सारथिरपि।
रविर्गच्छत्यन्तं प्रतिदिनमपारस्य नभसः
क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे।

सूर्य के रथ में एक ही पहिया है और उसके घोड़ों को वश में रखनेवाली वल्गा विषैले सर्पों की है, उसका मार्ग निरालम्ब आकाश है और सारथि अ... पंगु है। इन विषमताओं के होते हुए भी सूर्य प्रति... अनन्त आकाश का चक्कर लगाया करता है। इससे ज्ञा... होता है कि महान् व्यक्ति के कार्य उसके पौरुष से सम्पन्न होते हैं, बाह्य साधनों से नहीं।

घटो जन्मस्थानं मृगपरिजनो भूर्जवसनं
वनेवासः कन्दाशनमपि च दुःस्थं वपुरिदम्।
तथाप्येकोऽगस्त्यः सकलमपिबद्वारिधिजलं
क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे॥

अगस्त ऋषि का जन्म हुआ घड़े में, उनके सा... संगी थे हिरण, भोजपत्र उनका वसन था, जंगल में... निवास करते थे, कन्दमूल का आहार करते थे और व... दुर्बल शरीर के थे। किन्तु इतने साधारण वंश और साधारण जीवन बितानेवाले अगस्त्य ने अकेले ही सा... समुद्र का जल पी लिया। इससे यह ज्ञात होता है कि महान् व्यक्ति के कार्य उसके पौरुष से सम्पन्न होते हैं, बाह्य साधनों से नहीं।

धनुः पौष्पं मौर्वी मधुकरमयी चंचलदृशां
दृशां कोणो बाणः सुहृदपि जडात्मा हिमकरः।
स्वयं चैकोऽनंगस्त्रिभुवनमपि व्याकुलयति
क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे

कामदेव का धनुष तो है फूलों का, उसकी प्रत्यंचा है भौरों की और बाण हैं चटुल नेत्रवाली कामिनियों के कटाक्ष। उसका मित्र है जड़ात्मा चन्द्रमा। स्वयं व... शिव के त्रिनेत्र की अग्नि से भस्म होने के बाद से अनं... है और वह भी अकेला, किन्तु फिर भी तीनों लोकों को उसने व्याकुल कर रखा है। इससे ज्ञात होता है कि महान् व्यक्ति के कार्य उसके पौरुष से सम्पन्न होते हैं, बाह्य साधनों से नहीं।

ब्रज-माधुरी (८)

(१)

सिर पै सुभ मोरपखा, उनकी नथ के मुकुता थहरैं,
पियरो पट बेनी इतै उनकी चुनरी के झवा झहरैं।
अभिरे है तमाल दोऊ रस ख्याल भरे लहरैं,
ऐसे सनेह सों राधिका स्याम हमारे हिये में सदा ठहरैं॥

(२)

री कहति मनमोहन लख्यौ मैं
मनमोहन लखे कौ येकौ लक्षन लखौती तू
गोविंद सुधि बुधि है तिहारे अंग
दीन्हीं ना अबै लौं लोक लाजहि चुनौती तू

तो चंग औ कुरंग कैसे होते नैन
अंगन अनंग वारी अगिनि अँगौती तू
भई है तू न साँवरी सबीह देखे,
साँवरी सबीह देखे बावरी न होती तू

(३)

है वह तात औ मात जनी,
जेहि देहि धरी सो घरी धनि है।
हैं जे तुम्हें दरसैं दृग औ
परसैं कर तेऊ महाधनि हैं।

है जेहि ठाकुर ग्राम बसै
जहँ डोलैं लली सो गली धनि है।
है तूं धनि, तेरो हितू,
जेहि को धन हौ, सो धनी धनि है।

(४)

प्रीति कियो तुम सो छल छाँड़ि
सदा तुमरो जस गावत है।
तज दीन्हो जहान की लाज सबै
हिय तेरोई रूप सराहत है।
कहि ठाकुर कासों कहा कहिये
बुधिमान सो नेह निबाहत है।
चहो बोलौ न बोलौ हँसौ न हँसौ
हम तो तुम्है चित्त में चाहत हैं।

(५)

वा निरमोहि न रूप की रास
जो ऊपर के उर आनत हू है।
बारहिबार बिलोकि घरी घरी
सूरति तो पहिचानत हू है।
ठाकुर वा मन की परतीति है
जो पै सनेह न मानत हू है।
आवत है नित मेरे लिये
इतनो तो विसेष हू जानत हू है।

(६)

जो पै इन ब्रोहिन के संपति न होती तो
सुपंथिन के पाँय इहाँ भूलिह न परते।
भागमान भागन ते जाइ कै अधीन होत
तापै वे कमीन कला कोटिन उचरते।
ठाकुर कहत गुन आन को बिबाद छोड़ि
आपनी सभा मैं बैठि और को निहरते।
जो पै गुनमानन के गरज न होती तो
अजान ये अभागे धौं गुमान कापै करते।



संस्मरण

कवि का शोक

मथुरा निवासी नवनीतजी पिछली पीढ़ी के ब्रजभाषा के चोटी के कवियों में गिने जाते थे। वे छन्दशास्त्र और ब्रजभाषा काव्य के अपने समय के महान् पण्डित थे, और अच्छे कवि भी थे। वे श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर' के काव्यगुरु थे। रत्नाकरजी उनके शिष्य ही नहीं थे, किन्तु उनका बड़ा आदर भी करते थे। नवनीतजी भी उनसे अकृत्रिम स्नेह करते थे। संयोग की बात कि जब नवनीतजी अपनी अन्तिम बीमारी में शय्याशायी हो गये तो सहसा रत्नाकरजी का देहान्त हो गया। घरवालों ने नवनीतजी को यह समाचार बहुत दिनों नहीं दिया, किन्तु एक दिन किसी ने उनसे यह दुःखद समाचार कह ही दिया। रोग शय्या पर पड़े नवनीत जी को इस दुःसंवाद से बड़ा दुःख हुआ। वे कुछ देर इसे सुनकर स्तब्ध पड़े रहे। वे इतने अशक्त हो गये थे कि न तो उठ-बैठ सकते थे और न लिख-पढ़ सकते थे। थोड़ी देर चुप रहने के बाद उन्होंने अपने पुत्र को बुलाया और एक छन्द लिख लेने को कहा। रत्नाकरजी के निधन पर उन्होंने यह छन्द लिखाया :

उत्तम अनन्य पुरुषोत्तम दुलारौ और
अग्रवाल बंस बीच हंस तन धारौ हो।
कहे 'नवनीत' नवनीत से हृदयवारौ,
कविता उजारौ कवि-ग्रंथ रखवारौ हो।
चातुरी कौ चूरन सुमूर-रस माधुरी की,
अबला बिचारी ब्रजभाषा कौ सहारो हो।
ओज कर मुदित मनोज सों सँवारौ भारौ,
बारौ रतनाकर हमारौ प्रानप्यारो हो!

अपने शिष्य के शोक में लिखा गया यह छन्द नवनीतजी का अन्तिम छंद था।

द्विवेदीजी की 'इस्लाह'

यद्यपि आचार्य द्विवेदीजी ने अपने अस्वास्थ्य के कारण 'सरस्वती' के सम्पादन से अवकाश ले लिया था, तथापि वे हिन्दी-साहित्य की गतिविधियों को बराबर देखते रहते थे और पुस्तकों तथा समाचार-पत्रों एवं पत्रिकाओं को बराबर पढ़ा करते थे या दूसरों से पढ़वाकर सुना करते थे। उन्हीं दिनों 'विशाल भारत' में ब्रजमोहन वर्मा का एक लेख छपा जिसका शीर्षक था 'उर्दू कवियों की इसलाह।' उर्दू में 'गालिब' का स्थान बहुत ऊँचा है। आरम्भ में उनकी अभिलाषा फारसी के कवि होने की थी और उन्होंने फारसी में बहुत-सी कविताएँ लिखीं भी। किंतु उस समय बहादुरशाह के दरबार में उर्दू शायरी का बोलबाला था और बादशाह स्वयं 'जफ़र' के उपनाम से उर्दू में कविता करते थे। उस समय दिल्ली में उर्दू शायरी का एक गहरा वातावरण बन गया था, अन्त में गालिब भी उससे प्रभावित होकर उर्दू में कविता करने लगे और बड़े सफल कवि हुए। किंतु फारसी में कविता लिखने के अभ्यास के कारण उनकी बहुत सी कविताएँ कठिन और कहीं-कहीं साधारण उर्दू जाननेवालों के लिए दुरूह हो गयी हैं। गालिब की कविता की इस दुरूहता पर कई विद्वानों ने टीका-टिप्पणी की है। इन आलोचकों में एक विद्वान् हकीम आगाजान भी थे। वर्माजी ने उनकी एक आलोचना की। उर्दू शेर को हिन्दी रूप देने के लिए उसमें कुछ परिवर्तन कर दिया और उसे अपने लेख में इस प्रकार छापा :

वही कविता कलामय है जिसे आलिम तो क्या समझे,
अगर सौ बार सिर मारे तो मुश्किल से खुदा समझे।

इसे पढ़कर आचार्य द्विवेदीजी ने विशाल भारत के सम्पादक पं० बनारसीदास चतुर्वेदी को यह पत्र लिखा :

"लेख बहुत पसन्द आया। लेखक का नाम ब्रजमोहन वर्मा है। आपके सहकारी सम्पादक का भी यही नाम है। क्या यह लेख उन्हीं का है? उन्होंने एक मिसरे में खुदा के साथ रियायत की है। मुझे यह अखरा खला है। मेरी राय में तो

'अगर सौ साल सर मारे तो शायद ही खुदा समझे'

यदि यह लाइन इस तरह कही जाती तो असलियत के ज्यादा करीब पहुँच जाती।"

सम्पादकी छोड़ देने पर भी सम्पादन की आदत नहीं छूटी थी। और कैसी 'इस्लाह' की! शेर कितना निखर उठा!

बौद्धाचार्य शीलभद्र

पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी

एक समय था जब भारतवर्ष के बड़े-बड़े दिग्गज विद्वान् चीन, लंका और तिब्बत आदि देशों में जाकर ...और धर्म्म की शिक्षा देते थे। एक यह समय है कि ...को अन्यान्य देशों में जाकर विद्योपार्जन करना पड़ता ...पादरी साहब अब हमें यह उपदेश देने आते हैं कि ...रा धर्म्म निःसार है, क्रिश्चियन होने ही से तुम्हें मुक्ति ...गी। ख़ैर इसका कुछ रंज नहीं, क्योंकि उत्थान और ...तन के पीछे लगा हुआ है। रंज इस बात का है कि ...अपने पूर्वजों की कीर्ति को, पांडित्य को, पराक्रम को ...कुल ही भूल गये हैं। उसका स्मरण तक हमें नहीं। ...यह भी नहीं जानते कि चीन ऐसे सभ्य देश के पण्डित ...रे पूर्वजों के चरणों पर मस्तक रखने और उनसे विद्या-...सीखने आते थे। इन बातों के जानने के कुछ तो ...कम रह गये हैं, कुछ हम लोगों में उनके जानने की ...छा ही नहीं रही। इसी से शीलभद्र ऐसे प्रख्यात ...का नाम तक लोग भूल गये थे। चीन से जो ...इस देश में आये थे उनके ग्रन्थों से इस अद्वितीय ...के विषय में बहुत सी बातें जानी गई हैं। उनके ...तो एक बौद्ध ग्रन्थों के आधार पर "डान" नामक ...जी मासिक पुस्तक में शीलभद्र पर एक लेख प्रकाशित ...है। उसे पढ़ने से शीलभद्र का संक्षिप्त वृत्तान्त मालूम ...सकता है।

शीलभद्र छठी शताब्दी में थे। नालन्द विश्वविद्यालय ...के अध्यक्ष थे। भारतवर्ष भर में उस समय कोई भी ...विद्वान् उनका समकक्ष न था। यह वही शील-...हैं जिनके पैरों पर प्रसिद्ध चीनी प्रवासी ह्वेनसांग ने ...ना मस्तक रक्खा था। ये पूर्वी बंगाल के रहनेवाले ...। ढाका जिले के रामपाल गाँव में इनका जन्म हुआ ...। यह गाँव उस समय समतट राज्य की राजधानी ...। पालवंशी राजाओं के पहले वहाँ ब्राह्मणवंशी राजाओं ...राज्य था। शीलभद्र का जन्म राजवंश में हुआ था। ...राज्याधिकार की इच्छा से वे अपना देश न छोड़ते ...बहुत संभव था उन्हें राजासन प्राप्त हो जाता। परन्तु ...राज्यप्राप्ति की अपेक्षा विद्या ही को उन्होंने श्रेष्ठ समझा। ...इसका फल यह हुआ कि बौद्ध धर्म्म के विस्तृत साम्राज्य ...के वे सम्राट् हुए। उस समय नालन्द ही बौद्धों का ...सर्वश्रेष्ठ विद्यालय था। उसमें १५१० अध्यापक थे और ...कोई १० हज़ार विद्यार्थी विद्याध्ययन करते थे। इन सब ...अध्यापकों के अध्यक्ष शीलभद्र थे।

जिस पद पर शीलभद्र अधिष्ठित थे उस पर उनके ...पहले कितने ही नामी नामी पण्डित और महात्मा अधि-...ष्ठित रह चुके थे। बौद्धों की माध्यमिक शाखा के आचार्य ...नागार्जुन इसी विश्वविद्यालय के आचार्य थे। यहीं उन्होंने बौद्ध धर्म्म के अनुयायियों को इस नई शाखा के सिद्धान्तों का उपदेश किया था। महापण्डित नागसेन ने यहीं से अपने उपदेश के द्वारा ग्रीक-नरेश मीनोस्ट्रेसी की शंकाओं का समाधान करके उसके हृदयान्धकार का नाश किया था। इसी विश्वविद्यालय के आचार्य पद को सुशोभित करनेवाले गुणमति बोधिसत्व ने सांख्यदर्शन का बड़ी ही निर्दयता से खण्डन करके बौद्ध मत की प्रकृष्टता सिद्ध की थी। इसी विश्वविद्यालय की बदौलत प्रभामित्र नामक पण्डित ने चीन में बौद्ध धर्म्म का प्रचार किया था। इसी नालन्द विश्वविद्यालय के जिनमित्र पण्डित को तिब्बत नरेश ने अपने देश में बुला कर बौद्ध धर्म्म के सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त किया था। चन्द्रपाल, स्थिरमति, ज्ञानचन्द्र और शीघ्रबुद्ध आदि पाण्डित्य व्योम-मण्डल के चमकते हुए तारे यहीं उदित हुए थे।

शीलभद्र का आदि नाम दन्तदेव था। लड़कपन ही से वे विलक्षण प्रतिभाशील और तीक्ष्णबुद्धि थे। सोलह ही वर्ष की उम्र में उन्होंने वेद, सांख्य, न्याय और वैद्यक-शास्त्र में पारदर्शिता प्राप्त कर ली। पर इतने ही से शील-भद्र को सन्तोष न हुआ। उनकी विद्या-परिशीलन की पिपासा न बुझी। उस समय नालन्द का विद्यालय भारत-वर्ष में अपना द्वितीय न रखता था। आप वहीं पधारे। इतनी छोटी उम्र में ढाका छोड़कर आप मगध आये। उस समय महापण्डित धर्म्मपाल नालन्द के विद्वद्रत्न थे। वही वहाँ के सर्वश्रेष्ठ आचार्य्य थे। शीलभद्र के बुद्धि-प्राखर्य्य ने उनको मोहित कर लिया। थोड़े ही समय में शीलभद्र ने अपने विद्यागुरु के विद्या-भाण्डार को ग्रहण करके अपने हृदय, कण्ठ और जिह्वा के अर्पण कर दिया।

इसके कुछ समय बाद दक्षिण से एक पण्डितराज मगध नरेश की सभा में आये। उन्होंने आचार्य्य धर्म्मपाल को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा। धर्म्मपाल सभा में बुलाये गये। पर दन्तदेव ने गुरु को शास्त्रार्थ करने जाने से रोका। मेरे रहते मेरे गुरु से शास्त्रार्थ! पहले वह पण्डित मुझे परास्त कर ले। तब मेरे गुरुदेव का मुकाबला करे। अन्यथा यह नहीं हो सकता। धर्म्मपाल अपने सच्छिष्य की योग्यता से अच्छी तरह परिचित थे। उन्होंने कहा "सिद्धिरस्तु", "गम्यतां वत्स"।

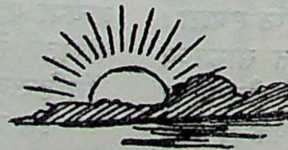
इस आदेश से और अध्यापक डरे। भला यह कल का अल्पवयस्क दन्तदेव विजयी दाक्षिणात्य पण्डित का कैसे मुकाबला कर सकेगा? कहीं यह नालन्द का नाम न धरावे। इस तरह की शंकाओं का उत्थान करके उन्होंने आचार्य की आज्ञा का प्रतिवाद किया। पर आचार्य्य धर्म्म-पाल ने सब का समाधान कर दिया। दन्तदेव मगधराज के दरबार में अपना पाण्डित्य दिखाने के लिए रवाना हुए।

साथ म सैकड़ों अध्यापक और विद्यार्थी भी गये। दूर दूर से लोग यह अद्भुत शास्त्रार्थ सुनने के लिए आये। शास्त्रार्थ का दिन नियत हुआ। सभा-स्थान दर्शकों से भर गया। कहीं तिल रखने को जगह न रही। दाक्षिणात्य पण्डित ने खड़े होकर पूर्व पक्ष का उत्थान किया। घंटों उसने अपने पक्ष का समर्थन करके वैदिक धर्म्म का श्रेष्ठत्व और बौद्ध धर्म्म का हीनत्व प्रतिपादन किया। उसके बैठते ही दन्तदेव उठे। प्रतिपक्षी की दलीलों का खण्डन आरम्भ हुआ। उसकी एक एक दलील दन्तदेव की अकाट्य और अखण्डनीय युक्तियों के चक्र से कट कट कर गिरने लगी। दन्तदेव के उत्तर और प्रभाव भरे वक्तृत्व ने उस दाक्षिणात्य पण्डित का दिल दहला दिया, वह काँपने लगा। सारी सभा में आतंक छा गया। अन्त को दन्तदेव ने जब "अहिंसा परमोधर्म्मः" की श्रेष्ठता प्रतिपादन की तब श्रोताओं पर विलक्षण प्रभाव पड़ा। विपक्षी दाक्षिणात्य पण्डित के मुँह से एक शब्द भी उत्तर में न निकला। उसने पराजय स्वीकार किया और सभा-स्थल छोड़कर चल दिया। यह घटना ५५४ ई० में हुई। बौद्धों की इस जीत का संवाद सारे भारत ही में नहीं, चीन और तिब्बत तक में फैल गया। मगध-नरेश दन्तदेव पर बहुत ही प्रसन्न हुए। गया के पास उन्हें कुछ जायदाद देने की उन्होंने इच्छा जाहिर की। पर दन्तदेव ने कहा मुझ "भिक्षु" को धन-सम्पत्ति से क्या सरोकार? तथापि जब राजा ने न माना तब उन्होंने गया के पास एक विहार बनवा देने की प्रार्थना की। राजा ने यह प्रार्थना खुशी से कबूल की और एक बहुत अच्छा विहार बनवाकर बुद्ध के पवित्र नाम पर अर्पण कर दिया। तब से दन्तदेव का नाम हुआ शीलभद्र। स्वार्थ-त्याग के कारण, चीन के प्रवासियों और ग्रंथकारों ने दन्तदेव का इसी नाम से उल्लेख किया है।

यथा समय धर्म्मपाल ने निर्व्वाण पाया। उनकी जगह शीलभद्र को मिली। शीलभद्र १५१० उपाध्यायों और अध्यापकों के निरीक्षक नियत हुए। नालन्द विश्व-विद्यालय के वे सर्वश्रेष्ठ अधिकारी हुए। शीलभद्र के अधीन अध्यापकों के तीन दरजे थे। पहले में १० अध्यापक थे जो भिन्न-भिन्न ५० प्रकार के "सूत्रों" और "शास्त्रों" पारंगत थे। दूसरे दरजे में ५०० अध्यापक थे। वे प्रकार के "शास्त्रों" में निष्णात थे। तीसरे दरजे में १,० थे जो बीस प्रकार के "सूत्रों" और "शास्त्रों" में कुशल इन सब के ऊपर शीलभद्र थे। शीलभद्र वैदिक और दोनों धर्म्मों के सिद्धान्तों के पारगामी विद्वान् थे। वि में वे अपने समय में एक ही थे।

शीलभद्र को, कोई ८३ वर्ष की उम्र में, एक अवलोकितेश्वर बोधिसत्व, मैत्रेयी बोधिसत्व और मं बोधिसत्व के दर्शन हुए। उस समय शीलभद्र एक दु रोग से पीड़ित थे। बोधिसत्वों ने उन्हें बौद्ध धर्म्म का प्र करने और उस धर्म में दृढ़ विश्वास रखने का उपदेश दि इसके बाद वे अदृश्य हो गये। शीलभद्र का रोग भी ज रहा। बोधिसत्वों ने चीन से आनेवाले प्रवासी ह्वेनसांग बौद्ध धर्म्म का मर्म्म सिखलाने की भी आज्ञा दी!

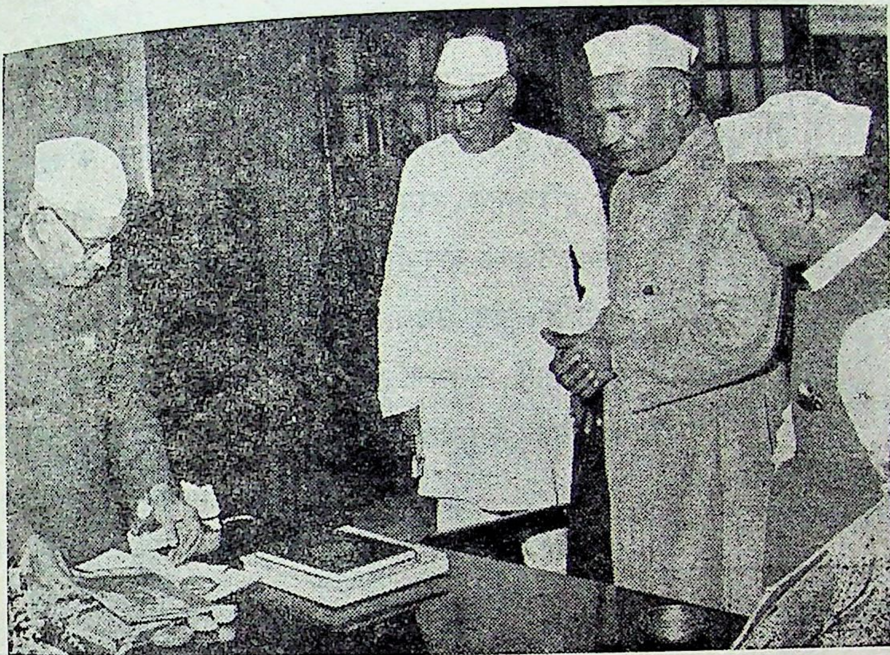
इसके तीन वर्ष बाद ह्वैनसांग वज्रासन (बुद्ध-गया) में पहुँचा। यह खबर सुनते ही शीलभद्र ४ "श्रवण" उसे लेने भेजे। ह्वेनसांग ने इस आमंत्रण बड़े भक्तिभाव से स्वीकार किया। तीर्थाटन करते हुए नालन्द पहुँचा। २०० श्रमणों ने नालन्द के विश्वविद्या के फाटक पर आकर उसकी अगवानी की। एक बौद्धों ने स्तुतिपाठ किया। बड़े समारोह से ह्वेन विश्वविद्यालय में लाया गया। जब वह सभामण्डप में पहुं तब उसे एक श्रेष्ठ आसन दिया गया। वहाँ के प्रधा भिक्षु ने आज्ञा दी कि जब तक ह्वेनसांग वहाँ रहे उस वही आदर किया जाय जो एक भिक्षु या उपाध्याय करना चाहिए। कुछ देर विश्राम करने के बाद २० अध्या पकों ने ह्वेनसांग को शीलभद्र के सम्मुख उपस्थित किया। उस समय शीलभद्र की उम्र १०६ वर्ष थी; उनके सिर एक भी बाल न रह गया था। वे बिल्कुल खल्वाट हो ग थे। ह्वेनसांग ने दण्डप्रणाम किया और शीलभद्र के पैरों को बड़ी भक्ति से चूमा। शीलभद्र ने ह्वेनसांग को अपने कर कमलों से उठाया और आशीर्वाद दिया। ह्वेनसांग उस दिन से नालन्द विश्वविद्यालय का विद्यार्थी हुआ और क वर्ष वहाँ रहकर बौद्ध आगमों का उसने अध्ययन किया।



प्रकाशक बी० एन० माथुर, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक : पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस, प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

सचित्र समाचार

नेहरू चाचा के हाथ में 'नेहरू चाचा'



- १--प्रधान मंत्री पं० जवाहरलालजी को उनके जन्म-दिवस पर कवि श्री सोहनलाल द्विवेदी ने उन्हें 'नेहरू चाचा' पुस्तक भेंट की। नेहरूजी इस नवीन कृति को प्रसन्नतापूर्वक गौर से देख रहे हैं।
- २--भारत के राष्ट्रपति तथा शिक्षा-मंत्री ने बच्चों की प्रिय पुस्तक 'नेहरू चाचा' की सराहना मुक्तकंठ से की है।
- ३--'नेहरू चाचा के सम्बन्ध में भारत के उपशिक्षा मंत्री ने लिखा है :--

आपने 'नेहरू चाचा' नाम से जो पुस्तक लिखी है, वह मुझे बहुत पसन्द आई है। उसे चित्रमय बनाकर तो आपने उस पर चार चाँद ही लगा दिये हैं.और अब इस कारण सब बच्चे उसे और भी पसन्द करने लगे हैं। कृपया इस सफलता के लिए मेरे हार्दिक साधुवाद स्वीकार कीजिए।

मूल्य केवल दो रुपये २५ नये पैसे

प्राप्तिस्थान—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस). प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग



इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लि०
इलाहाबाद

प्रस्तुत हो गया

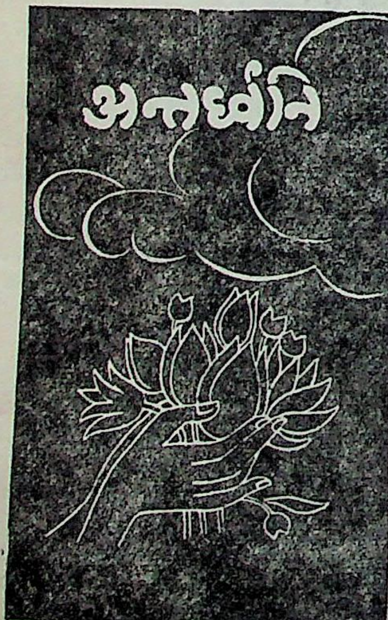
निकल

भेद भरी बातों को जानने की मनुष्य की अदम्य लालसा संसार के देशों में जासूसी कहानियों के रूप में प्रकट होती है। संसार के सब के साहित्य में ऐसी रहस्योद्भाविनी कहानियाँ बहुत तीव्र वेग से प्रका हो रही हैं। लेखक प्रयाग के ख्यातनामा फौजदारी के वकील स्व श्री हरिमोहन राय के पुत्र हैं और स्वयं भी न्यायिक अधिकारी हैं इनकी लिखी जासूसी कहानियाँ हिन्दी जगत् में यथेष्ट ख्याति प्राप्त चुकी हैं। यह उनकी लिखी उत्कृष्ट जरूरी कहानियों का द्वितीय सं है जिसमें समय-समय पर पत्रों में प्रकाशित हुई उनकी ३२ जा कहानियाँ संगृहीत हैं।

पृ० सं० ३३६ मूल्य ३·५० नये पैसे।

नोट—कृपया अपनी प्रति सुरक्षित कराने के लिए आर्डर शीघ्र भेजि

कविवर देवेन्द्रदत्त तिवारी की दो काव्य कृतियाँ



"अन्तर्ध्वनि" की कविताओं को पढ़कर मन आर्द्र तथा रस-प्लावित हो जाता है।



"रजनीगंधा" भाषा की प्रभविष्णुता भावों की मौलिकता और कल्पना के साथ सत्यं शिवं, सुंदरं के दर्शन कराती है।



मूल्य २·५० नये पैसे

मूल्य २·५० नये पैसे

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हिन्दी राष्ट्रभाषा कोश

भारी कमी की पूर्त्ति

- प्राचीन साहित्य
- नवीन साहित्य
- गद्य-पद्य
- कहावतें-मुहाविरे
- संविधान-शब्दावली

सभी एक कोश में !!

भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद, नई दिल्ली—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश को तैयार कर आपने राष्ट्रभाषा की जो अमूल्य सेवा की है, इसके लिए धन्यवाद स्वीकार कीजिए।...'

हिन्दी राष्ट्रभाषा कोश

इंडियन प्रेस लिमिटेड
प्रयाग

इं० प्रे०

पृष्ठ १५८४

शब्द-संख्या लगभग ५०,०००

छात्रों और विद्वानों विद्यालयों और कार्यालयों सभी के लिए समान रूप से उपयोगी !!!

मूल्य चौदह रुपए

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

कुछ संस्मरणात्मक ग्रन्थ

मेरी अपनी कथा

साहित्य वाचस्पति डा० पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

इसमें सुयोग लेखक ने अपनी हिन्दी सेवाओं का वर्णन करते हुए हिन्दी की उन्नति के अनेक मनोरंजक प्रसंगों का उल्लेख किया है। पृष्ठ ढाई सौ से ऊपर, मूल्य ४·५० नये पैसे।

मेरी आत्मकहानी

डा० श्यामसुन्दरदास

इस आत्मकथा में लेखक के समय के सभी प्रसिद्ध साहित्यसेवियों के कार्य की विवेचना की गई है और उनके समय के हिन्दी की उन्नति के लिए किये गये प्रयत्नों का खासा विवरण है। पृष्ठ २८४, मूल्य २) दो रुपये।

एक आत्मकथा

उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध के प्रतिष्ठित विद्वान् मुन्शी लुत्फुल्ला की आत्मकथा का विचित्र सारांश पढ़ने से उस समय की बहुत सी विलक्षण बातों का परिचय मिलता है। इस पुस्तक में तत्कालीन विलायत यात्रा का बड़ा मनोरंजक वर्णन है। पृष्ठ २४०, मूल्य २) दो रुपये।

मुदर्रिस की रामकहानी

श्री कालिदास कपूर

शिक्षा तथा साहित्य के क्षेत्र में सफलता का वरण करनेवाले विद्वान् लेखक का यह सचित्र आत्मचरित उनके अनुभवों, यात्राओं और संस्मरणों से ओतप्रोत है तथा उस समय की शिक्षानीति और प्रयत्नों का सारांश भी इसमें है। पृष्ठ ३००, मूल्य ३) तीन रुपये।

एक क्रान्तिकारी का संस्मरण

लेखक : श्री मनमोहन गुप्त

इस पुस्तक के लेखक जन्मजात क्रान्तिकारी हैं। कैसे-कैसे अराजक और वीरता के काम करके पुलिस अफसरों की आँखों में धूल झोंक दल का काम करते रहे, देशहित के काम को किस सफाई से करते रहे, कहाँ कैसे गिरफ्तार हुए, भाग निकले, इसका रोमांचकारी वर्णन ब्योरेवार इस पुस्तक में पढ़िये। सजिल्द २५० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल २·७५ नये पैसे।

हिन्दी साहित्य में जीवन-चरित का विकास—एक अध्ययन

लेखिका—कु० चन्द्रावतीसिंह एम० ए०

संसार की उन्नतिशील भाषाओं में जीवनी साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। कुँवरानी जी हिन्दी साहित्य के इस उपेक्षित अंग की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित कर भाषा साहित्य की एक बड़ी कमी को दूर किया है। पृष्ठ-संख्या २७५; मूल्य ४ रु० ७५ नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

शैलीकार समीक्षक

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की कृतियाँ

कवि और काव्य

इस पुस्तक से नयी समीक्षा का आरम्भ हुआ। इसमें इन विषयों पर लेख हैं—काव्यचिन्तन, नूतन और पुरातनकाव्य, मीरा का तन्मय संगीत, प्राचीन हिन्दी-कविता, आधुनिक हिन्दी-कविता, छायावाद-रहस्यवाद और दर्शन, कविता में अस्पष्टता, नवीन काव्य क्षेत्र में महिलाएँ, ठेठ जीवन और जातीय काव्यकला, कवि की करुण दृष्टि, कवि का मनुष्य-लोक, वेदना का गौरव, काव्य की लाञ्छिता कैकेयी, काव्य की उपेक्षिता उर्मिला। मूल्य २)

संचारिणी

इस पुस्तक में इन विषयों पर लेख हैं—भक्ति-काल की अन्तश्चेतना, व्रजभाषा के अन्तिम प्रतिनिधि, शरत्साहित्य का औपन्यासिक स्तर, कथा में जीवन की अभिव्यक्ति, कलाजगत् और वस्तु जगत्, भारतेन्दु-युग के बाद हिन्दी-कविता, नवीन मानव-साहित्य, छायावाद का उत्कर्ष, हिन्दी-गीतिकाव्य, कवि का आत्मजगत्, प्रकृति का काव्यमय व्यक्तित्व। मूल्य २·५० नये पैसे।

युग और साहित्य

यह पुस्तक अपने नाम के अनुरूप ही हिन्दी-साहित्य का मार्म्मिक इतिहास भी है और सरस समीक्षात्मक ग्रन्थ भी है। इसमें इन विषयों पर लेख हैं—नखविन्दु, साहित्य के विभिन्न युग, युगों का आदान, प्रगति की ओर, हिन्दी-कविता में उलट-फेर, इतिहास के आलोक में, वर्तमान कविता का क्रमविकास, छायावाद और उसके बाद, कथा-साहित्य का जीवन-पृष्ठ, प्रसाद और 'कामायनी', प्रेमचन्द और 'गोदान', निराला, पन्त और महादेवी। मूल्य ३·२५ नये पैसे।

प्रतिष्ठान

इस पुस्तक में साहित्य की समालोचना के अतिरिक्त संस्मरण और पर्शनल एसे भी हैं। जीवन और साहित्य का ग्रामीण अर्थशास्त्र की दृष्टि से विश्लेषण और निरूपण किया गया है। सभी लेख बहुत सरल और सरस हैं। मूल्य ३)।

परिव्राजक की प्रजा

यह पुस्तक सर्वहारा साहित्यकार की आत्म-कथा है। आत्मकथा के माध्यम से देश-काल और समाज का सजीव और मर्मस्पर्शी चित्रण है। अपनी सहजता और स्वाभाविकता के कारण यह पुस्तक हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ आत्मकथा मानी जाती है। मूल्य ३·५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

Yearly Subscription : Rupees Seven and Fifty Naye Paise Rs. 7·50 SARASWATI—Reg. No. L-248
Single Copy : Rs. 0·65 Naye Paise


सरस्वती
द्विवेदी जन्मशती अंक
मई
१९६४

हिन्दू-संस्कृति का अगाध सागर



यह हिन्दी के अमर कवि गोस्वामी तुलसीदास की सुप्रसिद्ध रचना है। इसमें गोस्वामीजी ने अपने आराध्य देव रामचन्द्रजी की कथा, सात काण्डों में, दोहा-चौपाई-सोरठा और छन्दों में कही है।

इस ग्रन्थ का प्रचार हिन्दी-भाषी प्रान्तों में तो है ही, दूसरे प्रान्तों में भी है।

डाक्टर श्यामसुन्दरदास ने इस अनुपम ग्रन्थ पर जो टीका लिखी है उससे अर्थ समझने में बहुत सुविधा होती है। इस संस्करण में क्षेपक आदि नहीं हैं। आरम्भ में विस्तृत भूमिका है जिसमे गोस्वामीजी के जीवनचरित और उनकी समस्त रचनाओं पर विशद विवेचन है। चित्रों की अधिकता है। सुन्दर जिल्द है। मूल्य १२)।

भारतीय जनता का सर्वप्रिय ग्रन्थ

मैनेजर, बुकडिपो, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्रा० लि०, प्रयाग

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक

१९०० ई० से १९५९ ई० तक सरस्वती में प्रकाशित हिन्दी के यशस्वी कवियों, कहानीकारों तथा लेखकों की चुनी हुई रचनाओं का संग्रह इस हीरक जयन्ती अंक में है। यह विशेषांक हीरक जयन्ती के अवसर पर ३१ दिसंबर १९६१ को भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति को राष्ट्रपति भवन, नयी दिल्ली में समर्पित किया गया।

इस हीरक जयन्ती अंक में ८०८+ ५४ पृष्ठों की अनुपम पाठ्यसामग्री है जिसमें ५३ पृष्ठों में वर्तमान साहित्यकारों द्वारा लिखे संदेश और सरस्वती के इतिहास सम्बन्धी संस्मरण हैं और ८०८ पृष्ठों में १०९ कवियों की कविताएँ, ६० कहानी-लेखकों की कहानियाँ तथा १०० शीर्ष स्थानीय लेखकों के लेख सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त ६५ रंगीन कलात्मक चित्र भी दिये हैं।

मूल्य—साधारण संस्करण—१२ रु०—डाकव्यय-१ रु० २६ नये पैसे

पुस्तकालय संस्करण (बढ़िया कागज पर सजिल्द)—२० रु०—डाक व्यय-१'४९ नये पैसे

[दो साल के लिए सरस्वती के नये ग्राहक बनने वालों या पुराने ग्राहकों को—
साधारण संस्करण—८ रु०, डाक व्यय के लिए १'१५ नये पैसे अतिरिक्त]

हीरक जयंती विशेषांक का परिशिष्टांक—मूल्य दो रुपये

कतिपय पठनीय सम्मतियाँ

साहित्य अकादमी के १९६२ ई० के हिन्दी-पुरस्कार विजेता

श्री भगवतीचरण वर्मा

हिन्दी-भाषा के विकास में 'सरस्वती' मासिक पत्रिका का विशिष्ट स्थान रहा है। यह विशिष्टता प्रमुखता का रूप धारण कर लेती है। जिसे हम हिन्दी-साहित्य का द्विवेदी युग कहते हैं उसके प्रवर्तक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी थे और उन्होंने सरस्वती के माध्यम से ही इस युग का प्रवर्तन किया है। कविता को नवीन धारा इस युग में मिली, लेकिन यह युग हिन्दी गद्य के विकास का युग कहला सकता है।

सरस्वती के हीरक जयन्ती अंक में हम हिन्दी गद्य के विकास का क्रम सुस्पष्ट-रूप से देख सकते हैं। इस अंक के साहित्यिक मूल्य के साथ इसका ऐतिहासिक रूप बड़ा सबल है। साठ वर्ष में हिन्दी भाषा कहाँ से कहाँ पहुँच गयी, यह हीरक जयन्ती अंक में यह सुस्पष्ट हो जाता है। प्रत्येक पुस्तकालय में इस ग्रंथ का होना आवश्यक है। हिन्दी के शोधकार्य के लिए यह अमूल्य ग्रंथ है। सरस्वती की हीरक जयन्ती के अवसर पर इस ग्रंथ को निकालकर सरस्वती के सम्पादक और प्रकाशक ने हिन्दी साहित्य का कितना उपकार किया है, शायद वे स्वयम् यह नहीं जानते। मैं सरस्वती के सम्पादक और प्रकाशक को हिन्दी जगत् की ओर से इसके लिए धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि हिन्दी का प्रत्येक पुस्तकालय इस ग्रंथ की एक प्रति अपने यहाँ मँगाकर हिन्दी के विद्यार्थियों एवं शोध-कर्ताओं के प्रति अपना दायित्व पूर्ण करेगा।

श्री रघुवंशलाल गुप्त, आई० सी० एस० (अवसरप्राप्त)

विशेषांक धीरे-धीरे पढ़ रहा हूँ। हिन्दी कविता, कहानी, लेख आदि के विकास की फिल्म की तरह है। कदम ब कदम हिन्दी प्रगति की तस्वीर है। यह विशेषांक हिन्दी साहित्य प्रेमियों और हिन्दी साहित्य सेवियों के लिए अनमोल निधि है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

हमारा धार्मिक : साहित्य



हिन्दी ऋग्वेद—रामगोविन्द त्रिवेदी	१२·००
श्रीमद्भागवत—दो भागों में	१६·००
ज्ञानेश्वरी गीता	६·००
कवितावली (सटीक)—पं० चम्पाराम मिश्र	२·७५
श्रीकृष्ण गीतावली	०·७५
वेदान्त दर्शन—महन्त श्री स्वामी सन्तदासजी	५·००
ऋग्वेद प्रातिशाख्यम्—श्री मंगलदेव शास्त्री	८·७५
श्रीभगवत तत्त्व—श्री करपात्रीजी	३·००
धर्म-कर्म-रहस्य	१·००
आध्यात्मिकी—महावीरप्रसाद द्विवेदी	१·५०
संक्षिप्त कर्मयोग	१·००
हर्बर्ट स्पेंसर की ज्ञेय मीमांसा	०·४४
मौलिकता—गोपाल दामोदर तामस्कर	०·३१
उद्बोधिनी—श्री सन्तराम	३·००
जागरण का मार्ग—लल्लीप्रसाद पांडेय	१·००
उपदेश-कुसुम	०·२५

सचित्र हिन्दी महाभारत—१० खण्डों में पूरे सेट का मूल्य	८०·०
हिन्दी महाभारत—आचार्य द्विवेदीजी	६·०
श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—दो भागों में	१३·०
श्रीरामचरितमानस—सचित्र तथा सटीक	१२·०
रामचरितमानस (मूल)	३·०
रामचरितमानस (अमृतलहरी टीका सहित)—टीकाकार—पं० रामेश्वर भट्ट	६·०
अयोध्याकाण्ड (सटीक)—श्यामसुंदरदास	३·५
विनयपत्रिका (सटीक)—रामेश्वर भट्ट	४·०
कुण्डलिया रामायण—सत्यनारायण पांडेय	४·०
तुलसी रत्नावली—केदारनाथ गुप्त	१·५
दुर्गापाठ—अनुवादक-श्री राधामोहन लाल	२·
गुरु-शिष्य-संवाद—काठिया बाबाजी	१·
सदुपदेश संग्रह—मुंशी देवीप्रसाद मुंसिफ	०·
सुखमार्ग—पं० महेन्दुलाल	०·





इतिहास

आधुनिक भारतवर्ष का इतिहास--डा० एस० सी० सरकार तथा के० के० दत्त
- भाग--१ ६·००
- भाग--२ ७·००

भारत का प्राचीन इतिहास--एन० एन० घोष ८·००

मध्ययुग का इतिहास--डा० ईश्वरीप्रसाद १०·००

मध्यकालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास--डा० ईश्वरीप्रसाद ८·००

अर्वाचीन भारत का इतिहास--डा० ईश्वरी प्रसाद और सूबेदार १२·००

मीर कासिम--डा० नन्दलाल चटर्जी ५·००

आधुनिक योरप का इतिहास--डा० के० एस० लाल
- भाग--१ ६·००
- भाग--२ ८·००

पंजाब का इतिहास--श्री धर्मवीर ५·५०

प्राचीन चिह्न--आचार्य पं० महावीर-प्रसाद द्विवेदी १·००

संस्कृत-केन्द्र उज्जयिनी--वृजकिशोर चतुर्वेदी ३·२५

भरत-दर्शन--झुन्नीलाल वर्मा २·५०

आदर्श भूमि चित्तौर--श्री रुद्रनारायण २·००

ईरान--महापंडित राहुल सांकृत्यायन १·७५

संसार का संक्षिप्त इतिहास--(दो भाग) प्रत्येक ४·००

अलबेरूनी का भारत--श्री संतराम
- प्रथम भाग १·७५
- दूसरा भाग २·७५
- तीसरा भाग ४·७५

यवन राजवंशावली--मुंशी देवीप्रसाद मुंसिफ ०·३१

इस्लामी दुनिया का सिरताज २·००

विज्ञान

विश्व-परिचय--डॉ० रवीन्द्रनाथ ठाकुर १·००

वैज्ञानिकी--श्री जगदानन्द राय २·००

ग्रह-नक्षत्र--श्री जगदानन्द राय ३·००

प्राकृतिकी--श्री जगदानन्द राय ३·५०

दूध पिलानेवाले जन्तु--श्री शुकदेव-नारायण ३·००

लकड़ी के दाम निकालने की जंत्री २·००

आधुनिक औषधि आविष्कार : लेखिका--इर्मनगार्ड एबर्ले २·५०

परमाणु का रहस्य :
लेखक--सेलिग हेक्ट : अनु०--हरिश्चन्द्र ३·५०

परमाणु ऊर्जा और उसके शांतिपूर्ण उपयोग:
मू० लेखक जेराल्ड वेन्ट : अनु०--निवास राय २·००

बृहत् मेटेरिया मेडिका--श्री मनोरंजन बनर्जी ५·००

आधुनिक छपाई--श्री कृष्णप्रसाद दर १०·००

दृष्टिदात्री :
ले०--मारिस फ्रैंक तथा ब्लेक क्लार्क :
अनु० मायाप्रसाद त्रिपाठी, एम० ए० ४·००

प्राणायाम विज्ञान और कला १·००

गो-पालन १·००

मक्खियों की करतूत ०·५०

सरस्वती सिरीज संशोधित संस्करण

प्रत्येक पुस्तक का मूल्य १ रुपया ५० नये पैसे

सूरसंदर्भ	चक्रभेद
समरकंद की सुन्दरी	दैनिक जीवन और मनोविज्ञान
पृथ्वी का इतिहास	मेरा संघर्ष
वंशानुक्रमविज्ञान	रामकृष्णचरितामृत

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

पिछले वर्षों की प्रतियाँ

बहुधा हमारे पास सरस्वती के कृपालु प्रेमियों द्वारा सरस्वती की पिछले वर्षों की प्रतियों की माँग आती है। अतएव हमने जनवरी १९६१ ई० से सरस्वती की पूरी फाइलें रखने की व्यवस्था की है। १९६१ से अब तक की पूरी फाइल या फुटकर अंक हम ३ रुपये प्रति अंक की दर से दे सकते हैं। जो कृपालु प्रेमी पिछली प्रतियाँ अपने संग्रहालय के लिए लेना चाहें वे हमसे कृपया मँगा लें। आर्डर के साथ पेशगी आना आवश्यक है।

व्यवस्थापक: पत्रिका विभाग
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

ग्राहकों से निवेदन

ग्राहकों से निवेदन है कि पत्र-व्यवहार के समय अपना ग्राहक संख्या, चन्दा भेजने की तिथि अवश्य लिखा करें ताकि हम उनके आदेशों का पालन अविलम्ब कर सकें।

—व्यवस्थापक पत्रिका विभाग
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

श्री रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य

सचित्र आकर्षक गेट-अप

श्री रामकृष्ण लीला प्रसंग—(सुविस्तृत जीवन चरित)
प्रथम खण्ड ९ रु०; द्वितीय खण्ड १०.००
तृतीय खण्ड ७.००
श्री रामकृष्ण लीलामृत—(जीवन चरित)
प्रथम भाग ५ रु०; द्वितीय भाग ५.००
श्रीरामकृष्ण उपदेश—(पॉकेट साइज) ०.७५
श्रीरामकृष्ण और श्री माँ—स्वामी अपूर्वानन्द कृत ३.४०
विवेकानन्द-चरित—सत्येन्द्रनाथ मजूमदारकृत ६.००
साधु नागमहाशय—(श्रीरामकृष्णदेव के अन्तरंग गृही शिष्य का जीवन चरित) १.५०
गीतातत्त्व—स्वामी सारदानन्दकृत २.८०
परमार्थ प्रसंग—स्वामी विरजानन्दकृत ३.२५
रामकृष्ण-संघ—आदर्श और इतिहास ०.७५
भारत में विवेकानन्द (भारतीय व्याख्यान) .. ५.००
देववाणी (अमरीकी शिष्यों को दिये गये उपदेश) २.७५
पत्रावली—प्रथम भाग ५.२५ —द्वितीय भाग ४.२५
विवेकानन्दजी के संग में वार्तालाप .. ५.२५
जाति, संस्कृति और समाजवाद .. १.२५
स्वाधीन भारत! जय हो! .. १.५०
परिव्राजक (मेरी भ्रमण कहानी) .. १.५०
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग .. १.६०
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त .. १.१५
विवेकानन्दजी के सान्निध्य में .. ०.९०
भगवान रामकृष्ण, धर्म तथा संघ .. १.३०
कर्मयोग .. १.७५ भक्तियोग .. १.५०
राजयोग .. ३.०० ज्ञानयोग .. ३.५०
प्रेमयोग .. २.०० सरल राजयोग ०.६०
हिन्दू धर्म .. १.५० शिकागो वक्तृता ०.६५
मेरे गुरुदेव १.०० प्राच्य और पाश्चात्य १.२५
शिक्षा .. ०.८५ हिन्दू धर्म के पक्ष में ..०.७५
पवहारी बाबा .., ०.६० हमारा भारत ०.६५
ईशदूत ईसा .. ०.४० मरणोत्तर जीवन ०.५०
मेरी समर नीति (पाकेट साइज) .. ०.६५
मेरा जीवन तथा ध्येय (पाकेट साइज) .. ०.६०

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखिए:
श्री रामकृष्ण आश्रम धन्तोली, नागपुर—१

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

साहित्यिक तथा समालोचनात्मक पुस्तकें

हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास—श्री गोपाललाल खन्ना २·००
हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास—पं० नन्ददुलारे वाजपेयी १·००
हिन्दी साहित्य में जीवनचरित का विकास—एक अध्ययन—चंद्रावती सिंह एम० ए० ४·७५
तुलसी के चार दल—श्री सद्गुरुशरण अवस्थी
प्रथम भाग ३·००
द्वितीय भाग २·७५
भाषा-रहस्य—डॉ० श्यामसुंदरदास ५·५०
भाषा-विज्ञान—डॉ० श्यामसुंदरदास ५·००
हिन्दी साहित्य—डॉ० श्यामसुंदरदास ३·५०
रूपक-रहस्य—डॉ० श्यामसुंदरदास ३·००
हिन्दी भाषा—डॉ० श्यामसुंदरदास २·००
हिन्दी निबन्ध रत्नावली—डॉ० श्यामसुंदरदास २·७५
काव्य कला—श्री गोपाललाल खन्ना २·००
काव्य-कलाप—श्री गोपाललाल खन्ना १·००
युग और साहित्य—पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी ३·२५
संचारिणी—पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी २·५०
कवि और काव्य—पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी २·००
आलोचनांजलि—आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी १·५०
कालिदास की निरंकुशता—आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ०·५०
आलोचनादर्श—डा० रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' २·५०
द्विवेदी-मीमांसा २·००
हिन्दी साहित्य की ऐतिहासिक चर्चा—पं० गंगाराम शर्मा १·५०
समीक्षा-दर्शन—श्री रामलालसिंह
(प्रथम भाग) ६·००
(द्वितीय भाग) ४·००
विष्णुधर्मोत्तर में चित्रकला—श्री वी० एन० मालवीय २·००
विष्णुधर्मोत्तर में मूर्तिकला—श्री वी० एन० मालवीय ४·००
धर्म-निपेक्ष राज्य—श्री रघुनाथ सिंह एम० पी० ६·५०
विचार तरंग—सद्गुरुशरण अवस्थी ३·५०
प्लेटो का प्रजातंत्र भाग १—जावेट, अनु० मिस विनीता वांचू ५·००
भाग २ १०·००
कामायनी-अनुशीलन—श्री रामलालसिंह ४·००
कामायनी का विवेचन—पं० ब्रजभूषण शर्मा १·५०
सिद्धराज-समीक्षा—पं० ब्रजभूषण शर्मा १·००
हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि—डॉ० रामरतन भटनागर, एम० ए०, डी० फिल० ४·००
प्राचीन हिन्दी काव्य—डॉ० रामरतन भटनागर, एम० ए०, डी० फिल० ४·००
प्राचीन साहित्य—डॉ० रवीन्द्रनाथ ठाकुर १·५०
हिन्दी मेघदूत विमर्श—सेठ कन्हैयालाल पोद्दार ४·००
भारती-कवि-विमर्श—श्री रामसेवक पाण्डेय ३·००
अपभ्रंश-पाठमाला (प्रथम भाग)—श्री नरोत्तमदास स्वामी १·००
शिक्षा-समीक्षा—श्री कालिदास कपूर १·००
अँगरेजी भाषा की शिक्षा—ई० एस० ओकली २·००
भारत में पश्चिमी शिक्षा—पं० मनोहरलाल जुतशी और पं० काशीराम ०·५०
प्रेम-रहस्य—पं० रामचन्द्र शुक्ल 'सरस' २·००
अपनों की खोज में—बुकसेलर की डायरी: श्री रावी १·००
प्रासंगिक कथाकोश—श्रीमती गुलाब मेहता २·५०
भारतीय आर्यधर्म की प्रगतिशीलता—डॉ० मंगलदेव शास्त्री ०·५० ३·५०
दर्शन और जीवन—डा० सम्पूर्णानन्द
शाह बरकत उल्ला की हिन्दी को देन—डॉ० लक्ष्मीधर शास्त्री १५·००

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलहाबाद

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

कहानी

फ्रांस की चुनी हुई कहानियाँ—
श्री कान्तिचन्द्र सोनरिक्सा १·००
की चुनी हुई कहानियाँ—श्री रवीन्द्र-
नाथ ठाकुर १·५०
—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर
दो भागों में १·५०
साहब—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ०·५०
की चुनी हुई कहानियाँ—
अनुवादक : श्री धनंजय भट्टाचार्य ०·६२
की कहानियाँ—श्री गौरी-
शंकर मिश्र १·२५
—श्री प्रभातकुमार मुकर्जी २·००
—श्री प्रभातकुमार मुकर्जी २·००
—सम्पादिका : श्रीमती
हीरादेवी चतुर्वेदी १·५०
और—देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' २·००
—पं० देवीदयाल चतुर्वेदी १·५०
—श्री सन्तराम, बी० ए० १·५०
—श्री सत्यजीवन वर्मा १·२५
—श्री राजेश्वरप्रसादसिंह १·००
—श्री अनादिघन वन्द्योपाध्याय ०·५०
—श्री रामस्वरूप दुबे १·२५

अमर ज्योति—श्री निशीथकुमार राय १·००
आख्यायिका सप्तक—अनु० श्री केदार-
नाथ भट्ट १·५०
कागज की नाव—उमाशंकर शुक्ल १·७५
ऊँचे और ऊँचे—वैकुण्ठनाथ मेहरोत्रा २·००
भेड़ और मनुष्य—यमुनादत्त वैष्णव
'अशोक' १·७५
सोने की खाल—आनन्दीप्रसाद मिश्र १·५०
रूस की प्रसिद्ध कहानियाँ—आनन्दी-
प्रसाद मिश्र १·५०
ग्रीस की महाभारत—मोहनलाल नेहरू १·००
दादी की कहानियाँ—अनु० श्री संतराम ०·७५
मास्को से मारवाड़—देवेशदास, आई०
सी० एस० २·००
महाजनों की कहानियाँ—गजानन महादेव १·५०
बेतवा में भँवर—भगवतस्वरूप चतुर्वेदी
आई० पी० एस० २·७५
जासूसी गल्प-गुच्छ—श्री निशीथकुमार
राय ३·५०
अधूरा आविष्कार—डॉ० नवलविहारी
मिश्र ४·५०
पूर्व का पंडित—श्रीमती विपुला देवी २·००

बहू-बेटियों के लिए उपयोगी पुस्तकें

—ठाकुर दुर्गाशंकरप्रसादसिंह २·५०
—पं० देवीदत्त शुक्ल
(संकलनकर्ता) २·००
और बच्चा—डॉक्टर बोधराज चोपड़ा २·७५
०·३१

सुशील कन्या ०·७५
शिशु-पालन—श्रीमती दुर्गादेवी और
मायादेवी २·००
सुन्दरी सुबोध—श्री संतराम २·५०

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

बाल-शिशु-साहित्य

बड़े वन में छोटा घर :
ले०—लॉरा इंगल्स विल्डर : अनुवादक—
हरवंशराय शर्मा एम. ए. २·५०

बाल-नाटक-माला—श्री दशरथ ओझा
पहला भाग ०·५६
दूसरा भाग ०·६२
तीसरा भाग ०·६९
चौथा भाग ०·७८

बाल-भारती—श्री सोहनलाल द्विवेदी १·२५
बच्चों के बापू—श्री सोहनलाल द्विवेदी २·००
नेहरू चाचा— २·२५
देवनागर-वर्णमाला— ०·७५
बाल-भारती—पं० सोहनलाल द्विवेदी १·२५
शिशु भारती—श्री सोहनलाल द्विवेदी १·००
दूध-बताशा—पं० सोहनलाल द्विवेदी १·२५
बच्चों के बापू—श्री सोहनलाल द्विवेदी २·००
बाल-गोपाल—पं० देवीदत्त शुक्ल ०·५०
बाल-पंचतंत्र—पं० सुन्दरलाल शर्मा २·००
सचित्र बाल-भारत—(दो भाग)—ठाकुर सूर्यकुमार वर्मा, प्रत्येक भाग का १·००
बाल गीता—पं० रामजीलाल शर्मा १·२५
बाल-भागवत—(दो भागों में) प्रत्येक १·००
बाल-रामायण १·००
बाल-मनु-स्मृति ०·५०
बाल-हितोपदेश १·००
बालोपदेश ०·५०
बालनीति-माला १·००
बाल-दुर्गा १·००
बाल-निबन्ध-माला—श्री गंगाप्रसाद १·००
बाल-द्विवेदी—पं० देवीदत्त शुक्ल १·००
बाल-कविता-माला—पं० देवीदत्त शुक्ल ०·५०
बाल-शिक्षा—पं० रूपनारायण पांडे ०·२५
बाल-निबन्ध-माला १·००
बालभोज-प्रबन्ध—पं० सुन्दरलाल शर्मा १·००
बाल-सद्बोध—डॉक्टर गोपालजी ऊधवजी ०·५०

बाल रवीन्द्रनाथ—श्री यामिनीकान्त सोम
बाल कालिदास—पं० रूपनारायण पांडेय
आदर्श महापुरुष—श्री साधुराम शास्त्री
युधिष्ठिर—श्री शशिभूषण बसु
प्रह्लाद
भक्त शिशु—श्री नयनचन्द्र मुखोपाध्याय
भक्त बालक
सद्गुणी बालक—श्री संतराम
चमत्कारी बालक—मुंशी देवीप्रसाद मुंसिफ
विदेशी विद्वान्—पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी
सोहराब-रुस्तम—श्री सुदर्शन
आल्हा-ऊदल—पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'
राजकहानी
दादी की कहानियाँ—श्री संतराम
अद्भुत कहानियाँ
अनोखी कहानियाँ
बाघ और भालू की कहानी
शेखचिल्ली की कहानियाँ
कालिदास की कहानी—पं० ठाकुरदत्त मिश्र
महाजनों की कहानियाँ
मुद्राराक्षस
बैलेडोना और पलसटिला का झगड़ा
समुद्र के उस पार
लकड़ी का घोड़ा
अद्भुत कथा—श्री श्यामाचरण दे
गुब्बारे में पाँच सप्ताह
बाघ और सिंह के मुँह में
अन्तू सरदार
गीतों भरी कहानियाँ—शकुंतला सिरोठिया

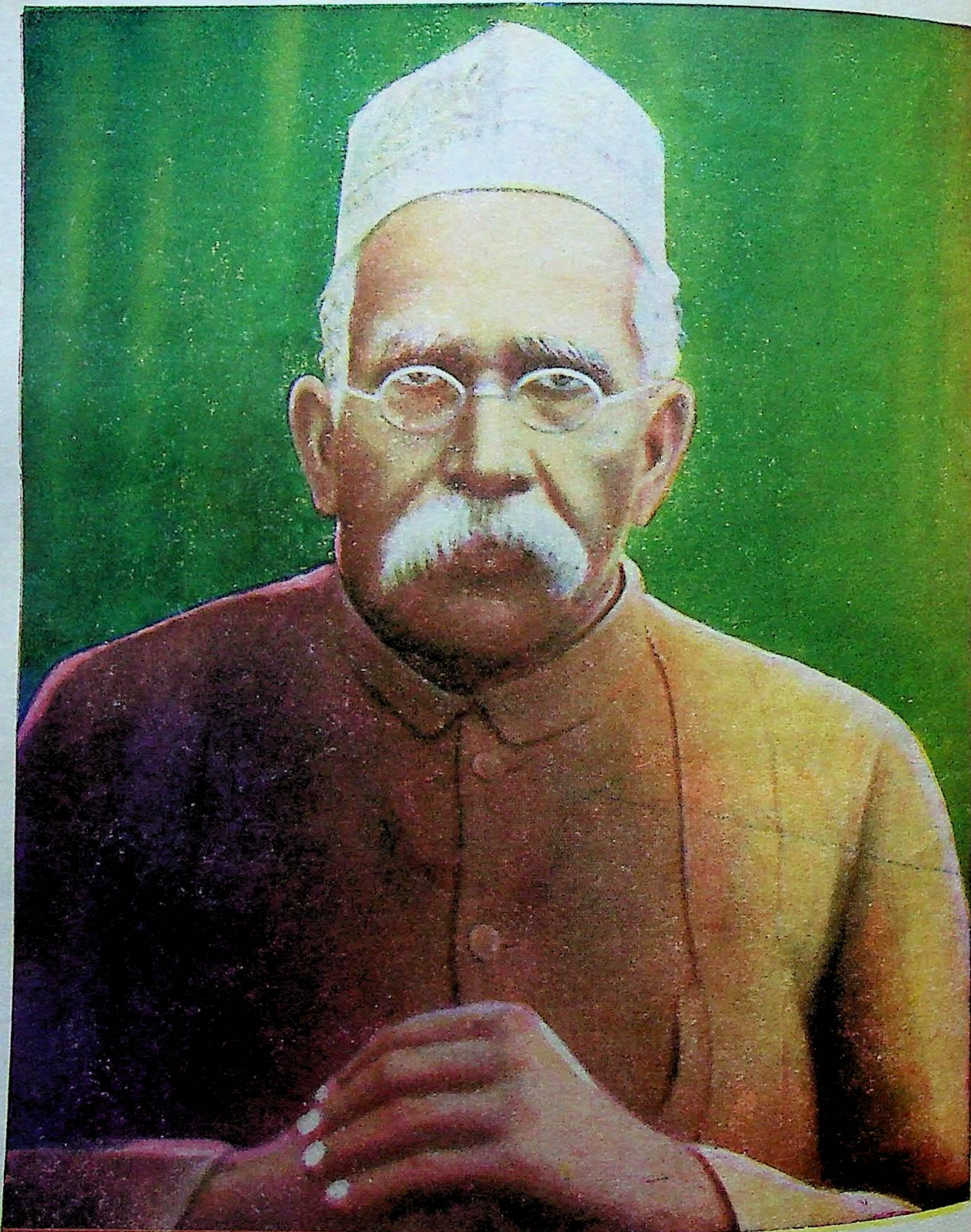
प्रकाशक—व्यवस्थापक इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

०·३१
...फ स्टालिन १·००
...ने का झरना ०·५६
...लौना—श्री रसिकलाल दत्त
...ना खिलौना—श्री सालिग्राम वर्मा २·००
...ष्ट्रपति रूज़वेल्ट ०·३१
...ढ़िया—पं० ठाकुरदत्त मिश्र ०·५०
...तमाशा—श्री रसिकलाल दत्त ०·५०
०·७५
...का पेड़
...गनेस—श्री विद्याभूषण 'विभु' १·००
...जीव-जन्तु १·००
...आकाश—पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' १·५०
...यात्रा १·००
...यात्री—श्री महेन्द्रचन्द्र राय १·५०
...: अनजान देश में (दो भाग)—श्री योगेन्द्रनाथ गुप्त प्रत्येक भाग ०·५०
...और हब्श देश का परिचय ०·५०
...देश की कथा—श्री देवनारायण मुखोपाध्याय १·००
...यात्रियों की कथा—पं० ठाकुरदत्त मिश्र ०·७५
...के उस पार १·००
...का हाल—पं० देवीदत्त शुक्ल ०·६२
...खेलों की पुस्तक—श्री रौनकराम अग्रवाल २·५०
...कला-विनोद—पं० हरिप्रसाद तिवारी 'विशारद' (चार भागों में) प्रत्येक का ०·७५
...शिक्षण (दो भाग)—श्री रौनकीराम अग्रवाल : प्रत्येक भाग का २·५०
...और शरीर-रक्षा—पं० चन्द्रमौलि सुकुल ०·७५

नवयुवकों के लिए हवाई शिक्षा—श्री श्रीराम वाजपेयी १·००
मुन्ना के गीत—निरंकार देव 'सेवक' २·५०
रिमझिम—निरंकार देव 'सेवक' २·००
माखन-मिसरी—निरंकार देव 'सेवक' २·००
दूध-जलेबी—निरंकार देव 'सेवक' १·५०
धूप-छाया—निरंकार देव 'सेवक' १·५०
फूलों के गीत—निरंकार देव 'सेवक' १·७५
पंच-तंत्री—निरंकार देव 'सेवक' ३·००
खेल-तमाशा (रंगीन) १·५०
बालसखा प्राइमर (रंगीन) १·००
बाल-स्मृति माला १·००
देशान्वेषण की सरल कथाएँ—श्री पी० एन० चक्रवर्ती और पं० लल्ली-प्रसाद पाण्डेय १·००
विज्ञान की कहानियाँ १·००
विज्ञान की देन—श्री बलरामस्वरूप १·००
हँसो हँसाओ—श्री सोहनलाल द्विवेदी १·५०
बच्चों के रवीन्द्रनाथ—श्री यामिनीकांत सोम २·२५
हिम्मत वाले—चन्द्रपाल सिंह 'मयंक' २·००
नेहरू चाचा—पं० सोहन लाल द्विवेदी २·२५
होनहार बालक—मनमोहन गुप्त १·५०
राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन—जगपति चतुर्वेदी १·५०
पं० मोती लाल नेहरू—जगपति चतुर्वेदी १·७५
सुन्दर बन की चिट्ठी—ले० योगेन्द्रनाथ गुप्त; अनु० पं० लल्लीप्रसाद पांडेय १·५०
रूस की कहानियाँ—अरुण घोष २·००

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

विषय-सूची



आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी--१९३९



सम्पादक
श्रीनारायण चतुर्वेदी
सहायक सम्पादिका—शीला शर्मा

वर्ष ६५ } संख्या ७७३ } इलाहाबाद : मई १९६४ : वैशाख २०२१ वि० { खण्ड १ { संख्या ५

सम्पादकीय

आचार्य द्विवेदी की जन्मशती—इस मास वैशाख [illegible] पंचमी (१५ मई) को आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के जन्म को पूरे सौ वर्ष हो जायँगे। उन्होंने साहित्य का निर्माण किया; लेख लिखे, पुस्तकें लिखीं, अनुवाद किये, कविताएँ लिखीं, सम्पादन किया। किंतु इतिहास में वे साहित्यकार के रूप में नहीं, साहित्यकार-निर्माता और भाषा-परिष्कारकर्ता के रूप में याद किये जायँगे। यह बात नहीं कि खड़ीबोली कविता या भाषा को वर्तमान रूप उन्होंने दिया। उनके पहिले भी कुछ इने-गिने लोग, और उनके समकालीन भी कुछ लोग जो उनसे प्रभावित नहीं थे, खड़ीबोली के उस रूप का विकास और प्रयोग कर रहे थे जिसका समर्थन और प्रचार द्विवेदीजी ने किया। किंतु द्विवेदीजी की विशेषता यह थी कि उन्होंने खड़ीबोली के इस रूप को स्थिरता दी और उसका अत्यन्त व्यापक प्रचार किया। यदि आचार्य ने उसके प्रचार में अपने [illegible] न दिया होता तो खड़ीबोली का वर्तमान व्यापक प्रचार शायद इतनी शीघ्रता से और इतनी सफलता से न हो पाता। उन्होंने इस संबंध में जो सबसे बड़ा और महत्त्व-पूर्ण कार्य किया वह था बहुसंख्यक युवकों में हिन्दी की सेवा की भावना उत्पन्न करना, और उसी भावना से हिन्दी में लिखने को प्रेरित करना तथा उनका मार्गप्रदर्शन करना। उस समय हिन्दी में लेखकों की कितनी कमी थी, यह बात उनके द्वारा सम्पादित सरस्वती के आरंभिक अंकों को देखने से मालूम हो सकती है। कितने ही अंकों में पचहत्तर प्रतिशत से अधिक लेख आदि द्विवेदीजी के होते थे, क्योंकि लेखक मिलते नहीं थे और 'सरस्वती' का कलेवर भरना अनिवार्य था। जो थोड़े-बहुत बाहरी लेख आते भी, उनकी भाषा द्विवेदीजी की परिनिष्ठित भाषा से इतनी भिन्न होती कि बहुधा उन्हें वे लेख दुबारा लिखने पड़ते। उनके प्रोत्साहन और परिश्रम का यह फल हुआ कि जब उन्होंने 'सरस्वती' के सम्पादन से विश्राम लिया तब न लेखकों की कमी रह गयी थी, और न उनकी भाषा को इतना अधिक सुधारने की। उन्होंने हिंदी में लेखकों की कमी बहुत कुछ पूरी कर दी थी और परिनिष्ठित खड़ी-बोली को सारे देश में प्रतिष्ठित कर दिया था।

द्विवेदीजी बड़े गंभीर प्रकृति के पुरुष थे, किंतु वे इतने नीरस नहीं थे जितने समझे जाते हैं। 'गंभीर' होने के कारण वे खुलकर तो बहुत ही कम हँसते थे। हिन्दी के दो आचार्यों की मूँछें इतनी सघन और बड़ी थीं कि उनकी मुसकान उनमें छिप जाती थी। इससे लोग समझते थे कि

अ० ३

उनमें हास्यबोध बिलकुल ही नहीं है और वे अत्यन्त शुष्क हैं। दोनों ही के बारे में यह धारणा निर्मूल है। इनमें से एक तो (पं० रामचन्द्र शुक्ल) हमारे व्यक्तिगत मित्र थे और हम जानते हैं कि उनका हास्यबोध कितना गहरा था। द्विवेदीजी भी निपट नीरस नहीं थे। उनकी कई कविताएँ इसका प्रमाण हैं। बहुत से पाठकों को यह सुनकर शायद आश्चर्य हो कि उन्होंने 'गर्दभाष्टक' और 'बलीवर्द-स्तोत्र' नामक दो 'हलकी' कविताएँ लिखी थीं। 'बली-वर्दजी मर्द गाय के गर्द उड़ानेवाले वीर' से आरंभ करके साँड़ों पर चुभता व्यंग्य किया गया था। गर्दभाष्टक का एक नमूना देखिए

चपत हमें चम्पा सम लागे, गेंदा फूल हजारा है
लात खात मुँह बात न बोलें, अटल-मौन विस्तारा है।
धम, धम, धम दस पाँच लगें जब गरुई गदा प्रहारा है
चलें पैंग भरि तब हम कबहूँ, अस सहनशील व्रत धारा है।

'सहनशीलता' का यह 'व्रत' हमारा राष्ट्रीय गुण है। हम हर एक अत्याचार, अन्याय सहन करने में गर्व का अनुभव करते हैं। उन्होंने इस सहनशीलता की पराकाष्ठा गधे में दिखाकर कितना चुभता व्यंग्य किया था! वाणी में तो नहीं किंतु उनकी सरसता व्यवहार में मुखर हो जाती थी। वे अपने मित्रों और परिचितों से इतनी आत्मीयता और ललक से मिलते थे कि वे आश्चर्यचकित रह जाते थे। प्रौढ़ावस्था में तो मित्रों से मिलने पर उनकी आँखों से आनन्दाश्रु तक निकल आते थे। ऐसे व्यक्ति को नीरस कैसे कहा जा सकता है?

उनकी आरंभिक कविताओं में व्रजभाषा और अवधी का पुट रहता था जैसे, "प्रासाद जासु नभमंडल में समाने"। पं० श्रीधर पाठक की आरंभिक कविताओं में (जैसे, 'कहाँ जलैहै वह आगी?') भी ऐसे प्रयोग मिलते हैं। वह संक्रांतिकाल था, किंतु इसके बाद ज्यों-ज्यों वे खड़ीबोली के परिष्कार में सचेत और सक्रिय होते गये त्यों-त्यों उन्होंने देशज शब्दों को छोड़कर तत्सम शब्दों का प्रचुर प्रयोग करके भाषा को संस्कृतनिष्ठ रूप देना आरंभ किया। आरंभिक प्रयोग देखिए—

चाहें कुटी अति घने वन में बनावे
चाहे बिना नमक कुत्सित अन्न खावे;
चाहे कभी नर नये पट भी न पावे
सेवा प्रभो! पर नहीं पर की करावे।

और इसके बाद तो एकदम संस्कृतनिष्ठ भाषा पर आ गये:

सुरम्य रूपे! रस-राशि-रंजिते
विचित्रवर्णाभरणे! कहाँ गयी?
अलौकिकानन्द-विधायिनी महा
कवीन्द्र कान्ते! कविते! अहो! कहाँ?

यह मानों 'प्रियप्रवास' के छन्दों का पूर्वादर्श हो जिसमें 'कहाँ गयी' और 'कहाँ' छोड़कर सभी शब्द तत्सम हैं।

तत्समों का प्रचुर प्रयोग द्विवेदीजी की विशे... थी। संस्कृतनिष्ठ हिन्दी का प्रयोग करके उन्होंने हि... भाषा का वह रूप प्रचारित किया जो केवल हिन्दीप्रेमि... ही को नहीं बल्कि आगे चलकर भारत के अन्य भा... भाषियों को भी ग्राह्य हुआ। इस प्रकार संस्कृत त... प्रधान हिन्दी पर बल देना उनके दूरदर्शी होने ... का नहीं प्रत्युत भविष्यदर्शी होने का भी प्रमाण है।

वे अपनी भाषा में प्रसंगानुसार खुलकर अ... फारसी एवम् अँगरेजी शब्दों का प्रयोग करते थे किन्तु ... भी उनकी तत्सम-प्रियता परिलक्षित होती है। उदाह... के लिए उनके लेखों और सम्पादकीय टिप्पणियों में ... वाक्य मिलते हैं: 'सिर्फ एक चिड़िया ऐसी कुन्द-... निकली', 'आदमी आँखों से नहीं देखता किंतु मग... देखता है', 'इसकी गंध तेज़ और ज़ायक़ा बहुत ख... है।' 'पंडितजी क़ायदे के सख्त पाबन्द थे।' 'कि... अखबारनवीसी पसन्द है, उसे यदि ज़बरदस्ती लोह... का काम दे देवे,' 'फिर उस तरक्की का वक्त क... आवेगा?' 'भलेमानुसों का सुअरों से तअल्लुक़ बतला... और भी बुरा हुआ।' 'बड़ी-बड़ी दूकानों की ख़रीद-फ़रो... का काम देखती है।' इत्यादि। इसका एक परिणाम ... हुआ कि विदेशी शब्दों के हिन्दीकरण की जो प्रक्रि... (लैण्टर्न का लालटैन या ग़ुलाम का गुलाम) चल ... थी जिससे उनका रूप हिन्दी की प्रकृति के अनुसार ढा... जा रहा था, वह रुक गयी।

द्विवेदीजी ने हिन्दी भाषा के व्याकरण पर बल दे... तथा शब्दों के उचित उपयोग के सम्बन्ध में भी हिन्... जगत् का विवेक जागृत किया, और यह उन्हींके स... प्रयत्नों का फल है कि हिन्दी के परिनिष्ठित रूप में इन बा... पर ध्यान दिया जाने लगा।

आधुनिक हिन्दी के उन्हीं आचार्य की जन्मशती ... आज हिन्दी संसार मना रहा है। हमारे पास इस अ... सर पर होनेवाले कितने ही उत्सवों की सूचनाएँ आ... हैं। इन बहुसंख्यक प्रस्तावित आयोजनों से स्पष्ट ... कि हिन्दी संसार की आचार्य द्विवेदी के व्यक्तित्व और का... के प्रति कितनी श्रद्धा और आस्था है। किन्तु यह वास्त... में खेद की बात है कि सरकार और सरकार के अधिकारी ... इस ओर से उदासीन हैं। जो भारत-सरकार स्मार... टिकट निकालने के लिए सदैव तत्पर रहती है, उसने भा... की राज्यभाषा के इस आचार्य की जन्मशती की ओर ध्या... देने की आवश्यकता नहीं समझी। हिन्दीभाषी राज्यों ... भी इस ऐतिहासिक अवसर को कोई महत्त्व नहीं दिया ... और तो और, उत्तर प्रदेश की सरकार ने भी केवल उदा... सीनता ही का परिचय दिया। जब द्विवेदीजी के घर ... की सरकार उदासीन हो तो दूसरों की क्या शिकायत ... जाय? इससे स्पष्ट हो जाता है कि हमारी सरकार ... जनता से कितनी दूर हैं। उनका हृदय जनता के हृद... की धड़कन के साथ स्पन्दित नहीं होता। इतिहास ...

१९६४

हिन्दी को कभी राज्याश्रय नहीं मिला, किन्तु फिर भी वह बराबर उन्नति करती गयी क्योंकि उसकी जड़ें जनता में गहरी पैठी हुई हैं। वहींसे उसे जीवनदायक रस और शक्ति मिलती है। द्विवेदीजी ने प्रायः बीस करोड़ भारतवासियों की मातृभाषा और देश की भावी राष्ट्रभाषा तथा उसकी गैर सरकारी राष्ट्रभाषा की अपूर्व सेवा की, उसे उसका वर्तमान स्वरूप दिया। सरकार चाहे उन्हें मान्यता दे या न दे, हिन्दीभाषी जनता इस अवसर पर आचार्य द्विवेदी के प्रति अपनी श्रद्धा तथा विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करती है, और 'सरस्वती', जो उन्हींकी मानसपुत्री है, अपने बीस करोड़ भाई-बहिनों के साथ उनकी पवित्र स्मृति में श्रद्धा से नत है।

शेक्सपियर की चतुर्थ जन्मशती—गत मास इंग्लैण्ड में प्रसिद्ध कवि और नाटककार, विलियम शेक्सपियर की चतुर्थ जन्मशती मनायी गयी। शेक्सपियर का जन्म एवन नामक एक क्षीणकाय नदी के किनारे बसी स्ट्रेटफोर्ड नामक छोटी सी बस्ती में हुआ था। ईसाइयों में जन्म के तीसरे या चौथे दिन बच्चे को बप्तिस्मा दिया जाता है और जिस गिर्जे में यह संस्कार किया जाता है, उसकी बही में इसको लिख भी लिया जाता है। उन दिनों इंग्लैण्ड के राजकाज और गिर्जों में लैटिन का चलनेवाला था। स्ट्रेटफोर्ड के गिर्जे की जिस बही में रजिस्टर में उसके बप्तिस्मा का संस्कार अभिलिखित किया गया है, वह बही आज भी मौजूद है। उसमें लैटिन में लिखा है कि Gulielmus filivucs Johannes Shakspere (विलियम पुत्र जॉन शेक्सपियर) को २९ अप्रैल १५६४ को बप्तिस्मा दिया गया। जिस घर में उसका जन्म हुआ था वह इंग्लैण्ड की देशभक्ति, भाषा-प्रेम और इतिहास एवम् कलाप्रियता के कारण आज भी प्रायः मूल रूप में सुरक्षित है। वहाँके होली ट्रिनिटी नामक गिर्जे के कब्रिस्तान में उसकी पत्थर की सादी समाधि यात्रियों का प्रमुख आकर्षण है। उसकी जन्मशती के उपलक्ष में १९६४ को इंग्लण्ड के लोगों ने 'शेक्सपियर वर्ष' की संज्ञा दी है और यह जन्मोत्सव आठ महीने मनाया जायगा। समारोह का केन्द्र स्ट्रेटफोर्ड है। जन्मदिवस पर स्ट्रेटफोर्ड में संसार के प्रायः १०० राष्ट्रों के प्रतिनिधि एकत्र हुए। इंग्लैण्ड के कितने ही प्रमुख साहित्यकार, कलाकार, अभिनेता तथा नेता पहुँचे और महारानी एलिजाबेथ के पति प्रिंस फिलिप के नेतृत्व में समारोह का आरंभ हुआ। प्रातःकाल एकत्र अतिथियों का एक जुलूस स्ट्रेटफोर्ड की सड़कों पर निकला जिसके आगे सैनिक बैंड था। इन अतिथियों ने शोभायात्रा के बाद शेक्सपियर के जन्मस्थान और समाधि के दर्शन किये और उस पर पुष्पांजलि अर्पित की। शेक्सपियर के नाटकों का अभिनय किया गया तथा और कितने ही साहित्यिक और सांस्कृतिक उत्सव किये गये।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि इस वर्ष बीस लाख यात्री बाहर से स्ट्रेटफोर्ड आवेंगे। इंग्लैण्ड की सरकार और यातायात कम्पनियाँ इस समारोह का धुआँधार प्रचार कर रही हैं। केवल ब्रिटिश ट्रेवल ऐसोसिएशन ने इसके प्रचार में एक करोड़ से अधिक रुपया व्यय किया है। यदि प्रत्येक यात्री अपने एक सप्ताह के प्रवास में इंग्लैण्ड में औसत से पाँच सौ रुपया भी व्यय करे तो शेक्सपियर की कृपा से इंग्लैण्ड को एक अरब रुपयों की अप्रत्यक्ष आय हो जायगी। इंग्लैण्ड में सैलानियों के लिए एक सप्ताह में पाँच सौ रुपयों का व्यय अधिक नहीं समझा जा सकता। फिर, जो लोग ऐसे अवसरों पर जाते हैं वे वहाँसे स्मृति-चिह्न भी लाते हैं। अँगरेज सबसे पहले बनियाँ है और उसकी बुद्धि व्यापार में बड़ी तीक्ष्ण है। स्ट्रेटफोर्ड ही में शेक्सपियर की भिन्न आकार की आवक्ष प्रतिमाएँ, शेक्सपियर-चित्रित अनेक आकर्षक सामान (जैसे केटली, प्याले, चम्मच आदि), नाना प्रकार के चित्र आदि इतने सुंदर तैयार किये गये हैं कि यात्री इनमें से कुछ न कुछ खरीदे बिना नहीं लौट सकता। एक कम्पनी ने शेक्सपियर के सारे नाटकों के अभिनय के वार्तालाप प्रसिद्ध अभिनेताओं के मुखों से ग्रामोफोन रेकार्डों और टेप में भर दिये हैं जिन्हें बजाकर शेक्सपियर के नाटक सुने जा सकते हैं। यह शेक्सपियर के नाटकों का बोलता हुआ पुस्तकालय है। इसका मूल्य प्रायः साढ़े तीन हजार रुपये है और इसकी काफी माँग है। इसके अतिरिक्त लंदन, स्ट्रेट-फोर्ड आदि में अनेक छोटे-बड़े, प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध नाटकगृहों में शेक्सपियर के विभिन्न नाटकों के अभिनय किये जा रहे हैं। इनमें से कई में इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध अभिनेता और अभिनेत्रियाँ भाग ले रही हैं। पश्चिम में नाटक देखने का काफी शौक है। इसलिए ये नाटक भी सैलानियों के लिए बहुत बड़े आकर्षण हैं। इँग्लैण्ड की सरकार इस राष्ट्रीय साहित्यिक उत्सव को सफल बनाने में पूरा-पूरा सहयोग और सहायता दे रही है। इंग्लैण्ड में यह सारा वर्ष शेक्सपियर को समर्पित कर दिया गया है। देश के सारे विश्वविद्यालय विशेष आयोजन कर रहे हैं और शेक्सपियर पर असंख्य पुस्तकें निकल रही हैं। जीवित राष्ट्र अपने अमर साहित्यिकों का किस प्रकार सम्मान करता है, यह एक वर्ष लम्बा उत्सव इसका जीवित उदाहरण है।

शेक्सपियर उत्सव और भारत के अंग्रेजीपरस्त—कहा जाता है कि कलकत्ते में ब्रिटिश इन्फार्मेशन सर्विस के श्री बैक्सटर ने एक सभा में बड़ी प्रसन्नता और गर्व से कहा कि इंग्लण्ड को छोड़कर संसार के किसी देश में शेक्सपियर की चतुर्थ जन्मशती का उत्सव इतने बड़े पैमाने पर नहीं मनाया गया जितने बड़े पैमाने पर कल-कत्ते में। समाचार-पत्रों में यह पढ़ने में आया कि कलकत्ते

के 'मेयर' ने (हम उन्हें 'नगर-प्रमुख' या 'महापौर' कह कर उनका अपमान न करेंगे) सुझाव दिया है कि कलकत्ते की पुरानी 'थिएटर राड' का नाम बदल कर 'शेक्सपियर सरणी' रख दिया जाय। सुना है कि भारत सरकार शेक्सपियर के सम्मान में स्मारक टिकट भी प्रसारित करने जा रही है। भारत सरकार ने इंग्लैण्ड में शेक्सपियर समारोह के लिए एक बड़ी धनराशि भी भेजी है। दिल्ली में यह उत्सव बड़े धूमधाम से मनाया गया। अधिकांश विश्वविद्यालयों ने भी इस उत्सव को किसी न किसी रूप में मनाया। साहित्यिक भी पीछे नहीं रहे। लखनऊ में साहित्यिकों ने भी उत्सव किया जिसकी अध्यक्षता एक प्रमुख हिन्दी लेखक ने की।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि शेक्सपियर संसार के अन्यतम कलाकारों में थे, और उनकी चतुर्थ जन्मशती पर उनका सम्मान करना प्रत्येक साहित्यिक का कर्त्तव्य है। किन्तु संसार में और भी साहित्यकार—शेक्सपियर के समकक्ष—हुए हैं। उदाहरण के लिए इटली के दान्ते या जर्मनी के गेटे को ही ले लीजिए। हमारे ही देश में कालिदास हुए हैं। किंतु इस देश में किसी साहित्यकार के जन्मोत्सव में लोगों को इतना विह्वल होते नहीं देखा गया जितना शेक्सपियर के जन्मोत्सव में। भारत ही नहीं, अमरीका, रूस, जर्मन, आस्ट्रिया, कनाडा आदि कितने ही देशों में यह उत्सव मनाया गया या मनाया जा रहा है। संसारव्यापी इस उत्सव का कारण यह है कि अँगरेजी संसार के दो महान् शक्तिशाली राष्ट्रों—अमरीका और इंग्लैण्ड की भाषा है जिनका प्रभाव सारे संसार पर है। इंग्लैण्ड अपने समय का संसार का सबसे बड़ा साम्राज्य था। अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड, दक्षिणी अमरीका आज स्वतन्त्र देश हैं। किन्तु आरंभ में ये इंग्लैण्ड के उपनिवेश थे और इनके अधिकांश निवासी प्रत्यक्ष या परोक्षरूप से अँगरेज उपनिवेशकों के वंशज हैं। ये अपने मूल देश की भाषा और साहित्य को अपनाये रहे और आज इन देशों की मातृभाषा अँगरेजी है। इन उपनिवेशों के अतिरिक्त एशिया और अफ्रीका में, प्रशान्त और अटलांटिक महासागरों के कितने ही द्वीपपुंजों पर सैकड़ों वर्ष इंग्लैण्ड का राज्य रहा, और अपने अधिकार की अवधि में अँगरेजों ने वहां के उच्च और मध्य वर्गों को अँगरेजी भाषा के रंग में रँग दिया। भारत को ही लीजिए। अँगरेजों का सबसे अधिक विरोध अँगरेजी पढ़े लोगों ही ने किया, किंतु अँगरेजों ने उनमें अँगरेजी इतनी ठूँस-ठूँसकर भर दी थी कि उनके चले जाने पर वे ही अँगरेजी के सबसे बड़े हिमायती हैं। आज अधिकार के पद पर वे ही हैं। उन्हें अधिकार और वैभव कालिदास, विद्यापति, कम्बन, ज्ञानेश्वर, कबीर, तुलसीदास का अध्ययन करने से नहीं मिला। उन्हें यह अधिकार तब मिला है जब सोलह वर्ष उन्होंने अँगरेजी घोंटी और कालिजों में शेक्सपियर के नाटक अनिवार्य रूप से पढ़े ही नहीं, उनकी बारीकियों के समझने में सारा मस्तिष्क लगा दिया क्योंकि उन्हें जाने बिना बी० ए० पास करना असंभव था। अँगरेजों के राज्य में यदि हम कालिदास के पढ़ने में उसका दुगना परिश्रम करते जितना हमने बी० ए० में मैकबैथ और मर्चेंट ऑफ वीनिस तथा मिल्टन के पैराडाइज़ लास्ट के पढ़ने में किया तो हमें इस देश में शायद पेट भर अन्न भी नहीं मिलता। अँगरेजों के चले जाने पर भी स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। अब अँगरेजों की ब्रिटिश काउंसिल के कर्मचारी और हमारे प्रभुगण मिलकर हिमालय से कन्याकुमारी तक अँगरेजी का प्रचार कर रहे हैं और उसे इस देश में दिल्ली की कीली की तरह अचल कर देना चाहते हैं। हमारा—शिक्षित वर्ग का—सारा वर्तमान उत्कर्ष, अधिकार, वैभव और सामाजिक सम्मान अँगरेजी ज्ञान के कारण है और अँगरेजी का ज्ञान शेक्सपियर के ज्ञान के बिना अधूरा है। हम शिक्षित वर्गों के लिए शेक्सपियर ऋद्धि-सिद्धि के साक्षात् स्वरूप हैं। भारतवासी अपनी कृतज्ञता के लिए संसारप्रसिद्ध हैं। अतएव इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि भारत में यह उत्सव वैबसटर साहब के अनुसार, इंग्लैण्ड को छोड़ कर सबसे बड़े पैमाने पर मनाया गया। शेक्सपियर के प्रति हम अपना हार्दिक सम्मान प्रदर्शित करते हैं, किन्तु भारत में इस उत्सव को अँगरेजी-परस्तों ने जिस ढंग से मनाया है उसका परिणाम जाने या अनजाने में इस देश में अँगरेजी का अधिकाधिक प्रचार और अँगरेजी की जड़ को दृढ़ करना होगा। यदि यह शुद्ध साहित्यिक उत्सव होता तो हमें बड़ी प्रसन्नता होती। इस उत्सव में जिन लोगों ने प्रमुख भाग लिया वे यदि विशुद्ध साहित्यप्रेमी होते और उनकी दृष्टि साहित्यकारों के सम्मान की होती तो वे कवीन्द्र रवीन्द्र के अतिरिक्त इस देश के अन्य साहित्यकारों के उत्सवों में भी भाग लेते। प्रतिवर्ष देश में जहाँ तहाँ कालिदास दिवस मनाया जाता है। तुलसी-जयन्ती भी मनायी जाती है। किन्तु ये अँगरेजीपरस्त 'साहित्यप्रेमी' उनमें नहीं दीख पड़ते। इसीलिए शेक्सपियर के 'समारोह' इस देश में अँगरेजी-जीवी लोगों के तमाशे बनकर रह गये। उन्होंने भारत की विशाल जनता के हृदय को स्पर्श नहीं किया।

इस अवसर पर 'सरस्वती' साहित्यिक पत्रिका होने के नाते इस महान् कलाकार के प्रति अपना सम्मान प्रदर्शित करती है तथा 'कविप्रेत ने कहा' नामक एक अध्ययनपूर्ण लेख प्रकाशित कर रही है जो शेक्सपियर के एक विशेषज्ञ ने हमारे लिए विशेष रूप से लिखा है। हमें विश्वास है कि हमारे पाठक शेक्सपियर के प्रति हमारी इस लेखरूपी श्रद्धांजलि को पसन्द करेंगे।

गृहमंत्री नन्दाजी की घोषणा—सेवा-आयोग में वैकल्पिक हिन्दी—गत मास गृहमंत्री श्री गुलजारीलाल नन्दा ने संसद भवन में कुछ चुने हुए संसद-सदस्यों और

हिन्दी के स्थानीय विद्वानों और कार्यकर्ताओं को निमंत्रित किया था। उस सभा में उन्होंने यह सूचना दी कि यदि सेवा-आयोग में समुचित प्रबंध हो गया तो सितम्बर १९६५ से अखिल भारतीय सेवाओं की परीक्षाओं में हिन्दी को परीक्षा का वैकल्पिक माध्यम बना दिया जायगा। इस सम्बन्ध में उन्होंने और कोई विवरण नहीं दिया। न तो उन्होंने यह बतलाया कि वैकल्पिक हिन्दी माध्यम सब या केवल कुछ विषयों के लिए स्वीकार किया जायगा, और न यह बतलाया कि हिन्दी माध्यम लेनेवालों को अँगरेजी की किस प्रकार की परीक्षा देनी होगी। उन्होंने यह भी नहीं बतलाया कि सेवा-आयोग द्वारा किस प्रकार का प्रबंध अपेक्षित है। श्री भक्तवत्सलम् ने जो वक्तव्य मदरास में दिया था उससे यह मालूम पड़ता था कि जब तक अहिन्दी-भाषी राज्य संतुष्ट न हो जायँगे कि हिन्दी और अँगरेजी माध्यम लेनेवालों के उत्तरों को 'बावन तोला पाव रत्ती' एक ही काँटे पर तोलने का पक्का-पूरा प्रबंध हो गया है, तब तक वे संतुष्ट न होंगे। और इन लोगों को संतुष्ट करना तो शायद ब्रह्मा के लिए भी असंभव है। "ब्रह्मापि तं नरं न रंजयति।" राजभाषा हिन्दी के मामले में अहिन्दीभाषियों को निषेध या अभिषेध (वीटो) का पूरा अधिकार दे दिया गया है। यदि वे इसका वैसा ही उपयोग करें जैसा कि राष्ट्रसंघ की सुरक्षा परिषद् में रूस अपनी अभिषेध शक्ति का उपयोग करता है, तो आश्चर्य की कोई बात न होगी।

जो भी हो, हम गृहमंत्री को इस घोषणा के लिए हार्दिक धन्यवाद देते हैं। उनकी इस घोषणा ने कम से कम हिन्दी संसार का यह विश्वास तो दिला दिया कि सरकार राष्ट्रपति के आदेश को भूली नहीं है और वह उसे कार्यान्वित करना चाहती है। वह उसे कर पाती है, या नहीं कर पाती है, यह अहिन्दी-भाषी राज्यों की कृपा पर निर्भर है। हम इस सम्बन्ध में शीघ्र ही अधिक स्पष्ट और पूर्ण घोषणा की अपेक्षा करते हैं क्योंकि यदि शीघ्र ही पूरी-पूरी सूचना प्रसारित न की गयी तो अगले वर्ष इन परीक्षाओं में बैठनेवाले जो लोग हिन्दी माध्यम लेना चाहते हैं वे संशय में रहने के कारण, उसमें परीक्षा देने की ठीक तरह से तैयारी न कर सकेंगे, और वे हिन्दी और अँगरेजी माध्यम के संशय में मारे जायँगे। अतएव गृह-मंत्रालय से अनुरोध है कि वह इस सम्बन्ध में स्पष्ट और अंतिम निर्णय और पूरा विवरण शीघ्र घोषित करे। तभी लोग यह समझ सकेंगे कि वैकल्पिक हिन्दी माध्यम सारवान् है या निःसार, और उससे वास्तव में हिन्दी माध्यम लेने-वालों को सुविधा मिली या नहीं।

हिन्दी माध्यम लेनेवालों की नियुक्ति—श्री भक्त-वत्सलम् ने मदरास में यह भी कहा था कि हिन्दी माध्यम लेनेवालों को अहिन्दी क्षेत्रों में न नियुक्त किया जाय। अहिन्दी क्षेत्रवालों को ऐसी माँग करने का शायद अधिकार है। तब क्या यह अनुचित होगा कि हिन्दी क्षेत्रवाले इस बात की माँग करें कि "जिन लोगों ने अँगरेजी माध्यम लिया है उनकी नियुक्ति हिन्दी क्षेत्रों में न की जाय? आज हिन्दी राज्यों में वहाँकी राजभाषा हिन्दी होने पर भी हिन्दी में काम नहीं हो रहा है। इसका एक बहुत बड़ा कारण केन्द्रीय सेवाओं के अधिकारी हैं जो हिन्दी राज्यों में भेज दिये जाते हैं। वे प्रायः हिन्दी नहीं जानते। कहने के लिए उन्हें हिन्दी का 'कामचलाऊ ज्ञान' (वर्किंग नॉलिज) होता है किन्तु वास्तव में उनमें से अधिकांश हिन्दी में काम नहीं कर सकते। वे ही राज्य के "बड़े साहब" होते हैं। सचिवालय में, राजस्व परिषद में, आयुक्तों, जिला-धीशों और पुलिस-अधीक्षकों के पदों पर वे ही रखे जाते हैं। वे स्वयं तो हिन्दी में काम करते ही नहीं, उनके अधीनस्थ कर्मचारी भी उनकी सुविधा और प्रसन्नता के लिए हिन्दी में काम करके उनकी अप्रसन्नता का खतरा मोल लेने का साहस नहीं करते। यही सबसे बड़ा कारण है कि हिन्दी राज्यों में हिन्दी नहीं चल पा रही, और राज्य सरकारों के हिन्दी सम्बन्धी सारे आदेश निरर्थक हो जाते हैं। इनमें जो लोग अहिन्दी क्षेत्रों से आते हैं—विशेषकर जहाँके शिक्षित वर्ग में हिन्दी का विरोध है—उनसे तो हिन्दी राज्यों में हिन्दी चलाने की आशा करना दुराशा मात्र है। और जब केन्द्रीय सेवाओं के इन्हीं अधिकारियों के कारण हिन्दी राज्यों में हिन्दी नहीं चल पाती तब कहा जाता है कि "देखो! हिन्दी कितनी अक्षम भाषा है! वह हिन्दी राज्यों ही में नहीं चल सकी तब भला केन्द्र में कैसे चल सकती है?" अतएव हिन्दी जनता को अपनी सरकारों पर इस माँग के लिए दबाव डालना चाहिए कि हिन्दी राज्यों में वे ही अधिकारी नियुक्त किये जायँ जो भली भाँति हिन्दी जानते हों और जिन्होंने हिन्दी माध्यम लेकर अखिल भारतीय सेवाओं की परीक्षा दी हो।

भाषावार राज्य बन जाने के बाद यदि उनमें जनता की भाषा का प्रयोग करना है तो कुछ ऐसा करना होगा कि प्रत्येक राज्य के अधिकारी उस राज्य की राजभाषा में निष्णात हों जिससे उसमें काम कर सकें। मन को झुठलाने वाली 'भाषा की कामचलाऊ योग्यता' से काम नहीं चलेगा। यह तभी हो सकता है जब अखिल भारतीय सेवाओं की भर्ती के लिए प्रत्येक राज्य की आवश्यकता और जनसंख्या के आधार पर उसका 'कोटा' बाँध दिया जाय। तब बहुत से उन राज्यों के लोग भी जो आज अँगरेजी की प्रधानता के कारण अखिल भारतीय सेवाओं में नहीं आ पाते, उनमें आ सकेंगे। सुना है कि इस वर्ष एक विशेष विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों में से आई० ए० एस० में उतने परीक्षार्थी उत्तीर्ण नहीं हुए जितने पिछले दो-चार वर्षों में हुए थे। इसपर जिस राज्य में यह विश्वविद्यालय है उसके एक प्रतिनिधि ने केन्द्रीय लोकसेवा-आयोग की

आलोचना की। वे सज्जन समझते हैं कि अखिल भारतीय सेवाओं में प्रधानता रखना उनके राज्य का जन्म-सिद्ध अधिकार है। 'कोटा' प्रणाली से ऐसी अनर्गल शिकायतों और दावों का भी अन्त हो जायगा। यदि अहिन्दीभाषी लोग हिन्दी का विरोध करते रहेंगे और हिन्दी राज्यों में भी हिन्दी न चलने देंगे तो यह प्रति-क्रिया अवश्यम्भावी है।

एक हिन्दीप्रेमी शिक्षाविद् का स्वर्गवास––जोधपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति पंडित भैरवनाथ झा का स्वर्गवास गत मास सहसा हृदय की गति रुक जाने से जोधपुर में हो गया। श्री झा की गणना देश के चोटी के शिक्षाशास्त्रियों में थी। वे उत्तर प्रदेश के शिक्षाविभाग के एक दीप्तिमान रत्न थे। उन्होंने भारत में और ऐडिन-बरा विश्वविद्यालय में शिक्षाशास्त्र की उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। वे उत्तर प्रदेश में ट्रेनिंग कालिज के आचार्य, संयुक्त शिक्षा-सचिव तथा शिक्षा-निदेशक रहे। वे कई वर्ष मध्य भारत के शिक्षा-संचालक भी रहे। सेवा से अव-काश ग्रहण करने के बाद शासन ने उन्हें इलाहाबाद विश्व-विद्यालय का उपकुलपति नियुक्त किया। उस समय वह संस्था बड़े संकट में थी और उसका अनुशासन बिगड़ चुका था। उसके सुधारने में श्री झा ने जो बुद्धिमत्ता, योग्यता और दृढ़ता दिखलायी उससे शासन ने उनकी कार्यकुशलता का लोहा मान लिया। दृढ़ होने पर भी सच्चे शिक्षाशास्त्री होने के कारण वे विद्यार्थियों के प्रति अत्यन्त उदार थे तथा प्रत्येक ढंग से उनकी उचित सहायता करते थे। इस कारण वे विद्यार्थियों के भी प्रिय हो गये। उनका चरित्र इतना उच्च था कि विद्यार्थी उनका हृदय से आदर करते थे। जब गोरखपुर विश्वविद्यालय की स्थापना हुई तब सरकार ने उन्हें उसका संगठन करने के लिए उसका प्रथम उपकुलपति नियुक्त किया। गोरखपुर विश्वविद्यालय बड़ी जल्दी में, बिना पूरी तैयारी के, स्थापित कर दिया गया था। किन्तु श्री झा ने वहाँ भी अपनी नैसर्गिक योग्यता का परिचय देकर उसे शीघ्र ही जमा दिया। गोरखपुर से हटने पर वे जोधपुर के नये विश्वविद्यालय के प्रथम उपकुलपति बनाये गये। इस प्रकार उन्हें दो नये विश्व-विद्यालयों के प्रथम उपकुलपति होने और उन्हें जमाने का गौरव और श्रेय प्राप्त हुआ। जब गोआ भारत में मिल गया तब वहाँकी शिक्षा के पुनर्गठन की योजना बनाने का काम भारत सरकार ने श्री झा को ही सौंपा था, और उन्हींकी बनायी योजना के अनुसार वहाँकी शिक्षा का संगठन किया जा रहा है। योजना-आयोग ने भी समाज-शिक्षा के कार्य के अध्ययन और मूल्यांकन का काम उन्हीं-को सौंपा था। इस प्रकार उन्होंने शिक्षा के अनेक क्षेत्रों में अपने गहन अध्ययन, विद्वत्ता और प्रशासनिक योग्यता का परिचय दिया।

किंतु वे कोरे प्रशासक और अध्यापक ही न थे। उनमें ऊँची साहित्यिक अभिरुचि थी। वे गुजराती और हिन्दी के अच्छे ज्ञाता थे। स्वतन्त्रता के बाद भी प्रदेश में ऐसा उपकुलपति एक 'करिश्मा' है जो साहित्यिक हिन्दी में भाषण दे सके! श्री झा इसके अप-वाद थे। यही नहीं, उन्हें हिन्दी से हार्दिक प्रेम था और हिन्दीनिष्ठ थे। वे हिन्दी के लेखक भी थे। जब वे ट्रेनिंग कालिज में थे तब उन्होंने देखा कि हिंदी में शिक्षा-विज्ञान की कोई अच्छी और अद्यतन पुस्तक नहीं है। अभाव की पूर्ति के लिए उन्होंने हिन्दी में इस विषय की पुस्तक लिखी जो अपने ढंग की पहिली पुस्तक थी। उसकी भाषा मँजी हुई और साहित्यिक होती थी। अँगरेजी में भी उन्होंने शिक्षा-शास्त्र पर कई पुस्तकें लिखी थीं।

ऐसे प्रौढ़, प्रतिभाशाली और योग्य शिक्षाशास्त्री के आकस्मिक निधन से देश की एक अपूरणीय क्षति हुई है। हम उनके शोक-संतप्त परिवार के प्रति हार्दिक समवेदना व्यक्त करते हैं।

भूटान में हलचल––भारत के उत्तर में तीन राज्य हैं: नैपाल, सिकिम और भूटान। ये तीनों हिमालय की पर्वत-मालाओं के बीच स्थित हैं। भूटान सबसे पूर्व में है। इस राज्य के पूर्व से पश्चिम की अधिकतम लम्बाई १९० मील और उत्तर से दक्षिण अधिकतम चौड़ाई प्रायः ९० मील है। इसका क्षेत्रफल १८००० वर्गमील और इसकी जनसंख्या प्रायः आठ लाख है। इनमें प्रायः तीन-तैंतिस प्रतिशत नैपाली हैं। शेष विभिन्न वंशों के भोटिया हैं। यहाँ भोटिया और नैपाली भाषाएँ चलती हैं। देश हिमालय की आड़ी-तिरछी पर्वतमालाओं से भरा हुआ है जिनके बीच-बीच में पहाड़ी नदियों की चौड़ी या सँकरी घाटियाँ हैं। इन घाटियों में खेती होती है और इन्हीं में बस्तियाँ हैं। पहाड़ों के ढालों पर घने जंगल हैं।

भूटानी कई वंशों में विभक्त हैं। पूर्व और पश्चिम के भोटियों में शक्ति प्राप्त करने के लिए काफी होड़ बनी रहती है। पश्चिमी भूटान के एक भाग को 'हा' कहते हैं। इस समय सारी शक्ति इन्हीं पश्चिमी भूटानियों के हाथ में है। देश के मुख्य नगर, पुनाखा, थिम्पू, पारो आदि पश्चिम ही में हैं। पश्चिम के ही एक आभिजात्य परिवार में कई पीढ़ियों से भूटान का प्रधान मंत्रित्व चला आ रहा है। महाराज पश्चिमी भूटान में रहते हैं। इस कारण उनपर पश्चिमी भूटान के सरदारों का प्रभाव होना स्वाभाविक है। इन सब कारणों से पूर्वी भूटान के सरदारों में काफी असन्तोष है। पश्चिम में भी शक्ति एक ही सरदार-परि-वार में केंद्रित है। इसलिए पश्चिम के सरदारों में भी सुप्त असन्तोष रहता है। जनता अधिकांश निरक्षर (लालपंथी महायान) बौद्ध हैं। अधिकांश लोग खेती करते हैं। यहाँकी अर्थव्यवस्था मध्यकालीन है। सिवाय कुछ घरेलू कारीगरियों के यहाँ कोई उद्योग नहीं है।

भूटान के अति प्राचीन इतिहास का वर्णन करने की

आवश्यकता नहीं है। इतना कहना पर्याप्त है कि शताब्दियों से वहाँका शासन विचित्र ढंग से होता था। लामा और वहाँके 'देव' नामक वंश के राजा—दोनों भूटान पर राज्य करने का दावा करते थे। अन्त में यह समझौता हुआ कि प्रधान लामा या धर्म-राजा और देव-राजा मिलकर संयुक्त शासन करें। आश्चर्य की बात है कि यह विचित्र शासन कई शतियों तक चलता रहा। १९०७ में टोंगसा के राज्यपाल को सरदारों ने भूटान का परंपरागत राजा चुन लिया। इनका नाम था उग्येन वांगचुक। वर्तमान महाराजा उन्हींके पौत्र हैं।

ईस्ट इंडिया कम्पनी ने जब सारे पूर्वी भारत पर अधिकार कर लिया तब उसका ध्यान उत्तर के हिमालयी राज्यों की ओर गया जिनके उस पार तिब्बत का रहस्यमय देश था। ईस्ट इंडिया कम्पनी, अपने राज्य की सुरक्षा के लिए तथा इन देशों में अपना व्यापार बढ़ाने के लिए मित्रता करने को उत्सुक थी और १७७४ में उसने भूटान से मित्रता की संधि कर ली। किंतु भूटानी डाकुओं का भारतीय क्षेत्रों में आकर लूटमार करना बंद न हुआ। ईस्ट इंडिया कम्पनी को कई बार उनके दमन के लिए भूटान में अपनी सेना भेजनी पड़ी। यह क्रम बहुत दिनों तक चला। भूटान निर्धन देश था। अंत में १९१० में भारत सरकार और भूटान में एक संधि हुई जिसके अनुसार उसने भूटान के आंतरिक प्रशासन में हस्तक्षेप न करने का, तथा उसे एक लाख रुपया वार्षिक सहायता देने का वचन दिया। साथ ही भूटान ने यह स्वीकार किया कि वह विदेशी मामलों में भारत-सरकार की सलाह के अनुसार कार्य करेगा। १९४२ में सहायता की रकम बढ़ाकर दो लाख कर दी गयी थी।

जब भारत स्वतंत्र हो गया तो उसने १९४९ में भूटान से नयी संधि की। इसमें १९१० की संधि की पुष्टि की गयी। भारत ने विदेशी आक्रमण से भूटान की रक्षा करने का जिम्मा लिया, किंतु यह शर्त रही कि भारतीय सेना भूटान में तभी प्रवेश करेगी जब महाराज उसको बुलावें। भारत सरकार ने भूटान की वार्षिक सहायता की रकम बढ़ाकर पाँच लाख कर दी। इतना ही नहीं, भूटान से मित्रता स्पष्ट करने के लिए भारत का दीवानगिरि का क्षेत्र (जिसका क्षेत्रफल ५० वर्गमील से कुछ कम है) उसे भेंट कर दिया गया।

भूटान पिछड़ा हुआ देश है। उसमें सड़कें नहीं थीं। कुछ वर्ष पहिले जब प्रधान मंत्री नेहरू भूटान गये तब उन्हें चीन-अधिकृत चुम्बी घाटी होकर जाना पड़ा क्योंकि भूटान की राजधानी तक पहुँचने के लिए वही एक सुविधा-जनक मार्ग था। भारत चाहता है कि उसके पड़ोसी राज्य उन्नति करें। इसलिए उसने उसे सड़कें बनाने के लिए अठारह करोड़ रुपये दिये जिससे अब भारत को कई मार्ग भूटान में खुल गये हैं। भारत ने वहाँ अपने खर्च से तार और टेलीफोन व्यवस्था की तथा भूटान में भारत होकर विदेशी सामान पहुँचाने की विशेष सुविधाएँ दीं। वहाँकी दूसरी बातों की तरह, वहाँकी सेना भी पुराने ढंग की थी। वास्तव में वहाँ कोई नियमित ढंग की सेना थी ही नहीं। भारत सरकार ने भूटान में सेना का संगठन करने और सैनिकों को प्रशिक्षित करने के लिए अपने व्यय से भारतीय सैनिक अफसरों का एक दल भेजा। इस प्रकार भारत ने इन पिछले कुछ वर्षों में भूटान को करोड़ों रुपयों की सहायता दी तथा उसे आधुनिक और प्रगतिशील बनाने में पूरा सहयोग दिया।

किंतु पिछड़े देशों में सहसा आधुनिकीकरण से वहाँकी पुरानी समाज-व्यवस्था और आर्थिक-व्यवस्था अस्तव्यस्त हो जाती है। मशीनों और आधुनिक सभ्यता के उपादानों से प्राचीन ढंग का जीवन और प्राचीन आदर्श नष्ट होने लगते हैं। प्रत्येक देश में अधिकांश लोग तेज परिवर्तन नहीं चाहते क्योंकि उनसे समाज का ढाँचा बदल जाता है। पुरानी व्यवस्था में जो लोग महत्त्वपूर्ण, प्रभावशाली और धनी थे वे नयी व्यवस्था में प्रायः महत्त्वहीन, प्रभावहीन और धनहीन हो जाते हैं। यदि सरकार शक्तिशाली हुई और पुराने लोग निष्क्रिय और मुर्दा हुए तो वह उनको दबा लेती है, किंतु जहाँ सरकार जबर्दस्त नहीं है वहाँ प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक है। भूटान में यही ऐतिहासिक प्रक्रिया हो रही है। कितने ही पुराने सैनिक नेताओं को हटाया जा रहा है और देहरादून में प्रशिक्षण-प्राप्त नौजवान उनकी जगह सेना के उच्च अधिकारी बनाये जा रहे हैं।

इन कामों के अतिरिक्त भूटान की जटिल राजनीति समझने के लिए वहाँके राजपरिवार और प्रधान मंत्री के परिवारों के सम्बंधों को जानना भी आवश्यक है। वास्तव में सिकिम और भूटान के राजा एक ही वंश के हैं। भूटान के वर्तमान महाराज के पितामह ने पश्चिमी भूटान के एक सरदार को अपना प्रधान मंत्री बनाया। उसका नाम कुमार दोर्जी था। कुमार दोर्जी का पुत्र भी प्रधान मंत्री हुआ। उसकी पुत्री का विवाह वर्तमान भूटान-नरेश से हुआ है। महाराज के एक सौतेली माँ भी हैं। उनके एक पुत्र और पुत्री है। पुत्री का विवाह मृत प्रधान मंत्री जिग्मे दोर्जी के एक भाई से हुआ, किंतु बाद में विवाह-विच्छेद हो गया। उससे एक संतान है।

उधर मृत प्रधान मंत्री के पिता का विवाह सिकिम की राजकुमारी (रानी चुन्नी) से हुआ जिनसे तीन संतानें हुईं। बड़े का नाम जिग्मे दोर्जी, दूसरे का नाम रिम्पी दोर्जी और तीसरे का लेंडुप दोर्जी है। बड़े भाई ने अपने पिता की मृत्यु के बाद भूटान के प्रधान मंत्री का पद संभाला। दूसरे भाई रिम्पी दोर्जी ने वर्तमान भूटान नरेश की सौतेली बहिन से विवाह किया और व्यापार करने लगा। सबसे छोटा भाई प्रायः डेढ़ दो वर्ष पहिले भूटान का 'सेक्रेटरी जनरल' बना दिया गया था। इसकी अवस्था अभी पूरे तीस वर्ष की भी नहीं है। जिग्मे दोर्जी अधिकतर

कलकत्ते में रहते थे जहाँ उन्हें आधुनिक जीवन बिताने की सुविधा थी। उनकी अनुपस्थिति में छोटा भाई राजकाज देखता था। मँझले भाई ने देश का सारा व्यापार हथिया लिया था। भूटान में बाहर से जो भी माल जाता है, वह सब इसी भाई के द्वारा। इस प्रकार यह परिवार अत्यन्त शक्तिशाली और धनी हो गया था। भूटान की सारी शक्ति और धन उसी में केन्द्रीभूत हो गया था। भारत सरकार से जो करोड़ों रुपयों की सहायता मिलती थी, वह प्रधान मंत्री ही के द्वारा व्यय होती थी। ऐसी दशा में भूटान के दूसरे सरदारों का इस परिवार से ईर्ष्या करना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

हम बतला चुके हैं कि मृत प्रधान मंत्री के दूसरे (व्यापारी) भाई का विवाह वर्तमान भूटान नरेश की सौतेली बहिन से हुआ था। बाद में विवाह संबंध छूट गया, और यह व्यापारी भाई अब कलकत्ते की एक अभारतीय सुंदरी के साथ देखा जाता है जिसे वह अपनी भावी पत्नी (फ़यान्सी) बतलाता है। भूटान-नरेश की सौतेली राजमाता अपनी पुत्री के इस प्रकार त्याग दिये जाने से दोर्जी परिवार से अप्रसन्न बतलायी जाती हैं।

मृत प्रधान मंत्री दोर्जी प्रतिभाशाली और विचित्र व्यक्ति थे। वे भूटान के प्रधान मंत्री थे किंतु रहते अधिकतर कलकत्ते में थे। कलकत्ते में उनके सम्पर्क तरह-तरह के लोगों से हो गये थे। चियाँग काई शेक की कुओमिटांग सेना के कई भूतपूर्व अफसरों से उनकी घनिष्ठता थी और दो-चार को वे भूटान भी ले गये थे। कुओमिटांग चीन के कम्युनिस्टों के विरोधी हैं। किंतु कम्युनिस्ट चीन के षड्यंत्रकारियों का जाल भी विस्तृत है और जिग्मे दोर्जी के चीनी संपर्क हमारी दृष्टि से खतरनाक हो सकते थे। जिग्मे दोर्जी भूटान-नरेश के परम विश्वासपात्र थे और वे बड़े शक्तिशाली हो गये थे। किंतु उन्हें मौज-मजे का जीवन भी पसन्द था जिसकी पूर्ति कलकत्ते में आसानी से हो सकती थी। उन्हें दाँव लगाकर ताश खेलने का भी शौक था और वे बड़े ऊँचे दाँव लगाया करते थे। भारत सरकार द्वारा भूटान को दिया हुआ रुपया उन्हींके नियन्त्रण में रहता था और उनसे उसका हिसाब यदि कोई माँग सकता था तो केवल महाराज ही। नये भूटान-नरेश युवक हैं। वे शिकार आदि के बड़े शौकीन हैं और प्रजा से बहुत मिलते भी थे। किंतु कुछ दिनों पहिले एकाएक वे बहुत बीमार पड़ गये और डाक्टरों ने उन्हें स्विटजरलैण्ड जाने की सलाह दी। यह ठीक तरह से नहीं मालूम हो सका कि उनकी बीमारी का वास्तविक कारण क्या था। जिस दिन जिग्मे दोर्जी की हत्या हुई उसके दो दिन बाद वे भूटान लौटनेवाले थे। वे समय से ही लौटे। षड़यंत्रकारियों ने उनके आने के पहिले ही दोर्जी की हत्या कर दी। शायद उनकी योजना शक्ति हथियाने की थी।

मालूम पड़ता है कि दोर्जी परिवार का विरोध भूटान में चरम सीमा पर पहुँच गया है। उनकी अपरि[illegible] राजशक्ति, दिनों दिन बढ़ता हुआ वैभव, भाई द्वारा व्या[illegible] का एकाधिकार, तथा ऐसी नीति जिससे पुराने प्रभा[illegible] शाली लोगों की रही सही शक्ति भी समाप्त होती [illegible] रही थी) आदि ने उनके विरुद्ध षडयंत्र संभव कि[illegible] इसके साथ ही सौतेली राजमाता का अपनी लड़की [illegible] परित्याग के कारण रोष और क्षोभ ने भी इस विरोध [illegible] बल दिया होगा।

शक्तिशाली और जमे हुए प्रशासक के सहसा हट [illegible] से भूटान की स्थिति संकटपूर्ण हो गयी है। पूर्वी और पश्चि[illegible] भूटान के लोगों का कलह पहिले ही से मौजूद था। सी[illegible] के उस पार कम्युनिस्ट चीनी सेनाएँ अवसर की ता[illegible] खड़ी हैं। चीन भूटान पर अपना दावा कर भी चुका है। उधर जिग्मे दोर्जी चतुर राजनीतिज्ञ की तरह भा[illegible] से सब प्रकार के लाभ उठाता रहा। उसने भारत [illegible] दीवानगिरि का क्षेत्र ले लिया। भारत के खर्च पर देश [illegible] सुंदर सड़कें बनवा लीं। भारत के ही व्यय पर तार और डाक की व्यवस्था कर ली, अपनी सेना का प्रशिक्षण [illegible] आरंभ करा दिया। भूटान का व्यापार बढ़ा लिया त[illegible] भारत से करोड़ों रुपयों की सहायता प्राप्त कर ली। [illegible] नहीं, उसने चतुरता से भारत सरकार से महाराज भूटा[illegible] के लिए 'हिज हाइनेस' की जगह 'हिज मैजेस्टी' का वि[illegible] स्वीकार करा लिया। किंतु उसने बदले में भारत को को[illegible] रियायत नहीं दी। यहाँ तक कि जब भारत के व्यय [illegible] वहाँ डाक की व्यवस्था हो गयी तब उसने अपने डाक [illegible] टिकट भी भारत में नहीं छपवाये। उसकी नीति [illegible] मालूम पड़ती थी कि वह भूटान को नेपाल के समान स[illegible] प्रभुत्व-सम्पन्न बना ले और विदेशी मामलों में भी स्वत[illegible] हो जाय।

भूटान में जो परिस्थिति है वह खतरनाक है। व[illegible] भी विभीषण हैं, और कब कौन असंतुष्ट सरदार चीनि[illegible] से मिलकर चीनियों को बुला ले, यह नहीं कहा जा सकता। भूटान की सेना निर्बल है। वह आन्तरिक विद्रोह [illegible] अभी ठीक तरह से नहीं दबा सकती। उत्तर की सी[illegible] की रक्षा में सजग रहने की आवश्यकता है। संधि [illegible] अनुसार, भारत विदेशी आक्रमण से उसकी रक्षा करने [illegible] प्रणबद्ध है। किंतु भारतीय सेना भूटान से सर्वथा अपरि[illegible] चित है। भूटान की बाह्य सुरक्षा और आंतरिक शा[illegible] बनाये रखने के लिए इस समय वहाँ भारतीय सेना [illegible] होना बहुत आवश्यक है। किन्तु बिना भूटान नरेश [illegible] निमंत्रण के भारतीय सेना भूटान में प्रवेश नहीं कर सकती। भूटान के महाराज को देश की सुरक्षा और शान्ति के हि[illegible] में भारतीय सेना का आवाहन करना चाहिए और उसे त[illegible] तक वहाँ रखना चाहिए जब तक भूटान सेना पूरी तरह [illegible] तैयार न हो जाय और जब तक बाह्य खतरा और आन्त[illegible] रिक अशांति दूर न हो जायँ।

पूज्य द्विवेदीजी के प्रति

श्री मैथिलीशरण गुप्त

ऋणी तुम्हारी है हिन्दी के उपवन की डाली डाली;
बोला ब्रह्म, और द्विजवर ! तुम बने आप इसके माली !

सींचा तुमने इसे रक्त से तब यह आज फली-फूली,
इन्द्रजाल की फुलवारी भी देख इसे निज सुध भूली।
नव रचना पर हुई चमत्कृत चित्रकार की भी तूली;
यहाँ झूलती सरस्वती की झाँकी कहाँ नहीं झूली ?

शासन आते हैं, जाते हैं; यह है वज्रासनवाली
बोला ब्रह्म, और द्विजवर ! तुम बने आप इसके माली।

खड़ी मात्र ही थी जो बोली इसने तुमसे गति पाई,
अहरह फूले और फलों से यह सहकार लता छाई।
स्वयं खींच लेगी रस अब यह, मूल शक्ति इसमें आई,
आज नहीं तो कल इसके बल भेटेंगे भाई भाई।

काली छाँह देख ले, आती बाँह बढ़ाती वह लाली,
बोला ब्रह्म, और द्विजवर ! तुम बने आप इसके माली।

आचार्यदेव

(सरस्वती के लिए विशेष लेख)

श्री मैथिलीशरण गुप्त

मैं जब और कुछ न बन सका तब मैंने कवि बनने की ठानी। हाय, कहीं सब पोले बाँस वेणु बन सकते। एक जन जो गधे पर बैठने की भी योग्यता न रखता था, बनानेवाले के बढ़ावे में आकर घोड़े पर चढ़ बैठा। घोड़ा भी ऐसा जो धरती पर पैर ही न रखना चाहता था। ऐसा आरोही तो उसके लिए अपमानजनक था। परन्तु क्या जानें, घोड़े को भी विनोद सूझा और वह उसे एक वर्जित स्थान में ले दौड़ा। वहाँका प्रहरी सतर्क होकर चिल्लाया—सावधान! परन्तु आरोही सावधान होकर भी क्या करे? तब प्रहरी ने अपना अस्त्र सँभाल कर कहा—अच्छा, चला आ ऐसे ही। अब आरोही चिल्लाया—दुहाई आपकी, मैं स्वयं नहीं आ रहा हूँ। यह दुर्मुख मुझे लिये आ रहा है। प्रहरी भी समझ गया और जिसे अनधिकार प्रवेश करने का दण्ड देने जा रहा था उस भाग्यहीन अथवा भाग्यवान की उसे उलटी सँभाल करनी पड़ी।

कवि तो बनाये नहीं जाते, परन्तु कोप-भाजन होने योग्य होकर भी मैं पूज्य द्विवेदीजी महाराज का अनुग्रह-भाजन हो गया। इससे बढ़कर किसीका क्या सौभाग्य होगा?

पैंतीस-छत्तीस वर्ष पहले की बात है। मैं कुछ पद्य बनाने लगा था। पण्डितजी उन दिनों झाँसी में ही थे। उनका नाम मैं सुन चुका था और उनकी 'सरस्वती' के दर्शन भी मैंने पा लिये थे। मेरे मन में प्रश्न उठा—क्या 'सरस्वती' में अन्य कवियों की भाँति मेरा नाम नहीं छप सकता? इसका उत्तर अपने ही दीर्घ निःश्वास के रूप में मुझे मिल जाना चाहिए था, परन्तु लड़कपन अल्हड़ होता है और दुस्साहसी भी।

पिताजी के साकेतवास के पीछे उनके नाते कृपा बनाये रखने के प्रार्थी होकर अपने काकाजी के साथ हम लोग पहली बार कलक्टर साहब को जुहारने झाँसी गये थे। मेरे जाने का प्रधान उत्साह और ही था। भीतर-भीतर 'सरस्वती' में अपना नाम छपवाने का डौल लगाने की लालसा से और बाहर-बाहर ऐसे महानुभाव के दर्शन करने की इच्छा से, अपने अग्रज को साथ लेकर मैं पण्डित जी के स्थान पर पहुँचा। घर छोटा ही था। द्वार पर बाँस की सींकों की बनी लिपटी हुई चिक बँधी थी, जिसकी गोट का हरा कपड़ा कुछ फीका पड़ चला था। एक ओर उनके नाम की पट्टी लगी थी। दूसरी ओर भी एक पटली थी। उसमें लिखा था—सवेरे भेंट न होगी। हम लोग इस बात को सुन चुके थे। अतएव, तीसरे पहर गये थे। तब भी वे आफिस से नहीं लौटे थे। छोटे से उसारे में एक बेंच पड़ी थी। उसीपर हम बैठ गये। भीतर कमरे में खुली अलमारियों की पुस्तकों की दूसरी दीवार-सी बनी थी। बाईं ओर के पक्खे से सटकर एक पलंग पड़ा था। उसपर लपेटे हुए बिछौने ने लोड़ का रूप धारण कर रक्खा था। दाईं ओर के पक्खे से लगी दो-तीन कुर्सियां पड़ी थीं। बीच के रिक्त स्थान में पलँग से कुछ हटकर प्रवेश-द्वार के खुले किवाड़ को छूता हुआ सा एक छोटा सा टेबुल या चेयर डैस्क था। उसके सामने भी एक कुर्सी पड़ी थी। टेबुल लिखने-पढ़ने की सामग्री से भरा था, परन्तु सब सामग्री बड़े ढंग से सजायी गयी थी। प्रवेश द्वार के सामने ही भीतर जाने का द्वार था। उसमें से एक मँझपोरिया दिखाय देती थी। सारा स्थान बहुत ही परिष्कृत, स्वच्छ और शान्त-कान्त दिखायी पड़ता था। तो भी पण्डितजी के आने का समय निकट जानकर घर की परिचारिका हाथ में गमछा लिये उसे कमरे में इधर-उधर फटकार रही थी। ऐसा जान पड़ता था मानों यह एक विधि है जिसे, आवश्यक हो या न हो, पूरा करना ही चाहिए। ऐसी समझदार और कुशल सेविकाएँ विरली ही होती हैं। बड़ी अपनाहट के साथ उसने हम लोगों का स्वागत-सत्कार किया। उसकी मृत्यु होने पर पण्डितजी ने मुझे यथार्थ ही लिखा था—ऐसा जन अब मिलने का नहीं।

तनिक देर पीछे उसने एक बार इधर-उधर देखा, फिर उसारे से नीचे उतरकर कुछ दूर तक पण्डितजी के आने का मार्ग भी बुहार दिया। इतना करके मानों वह उस समय के कार्य से निश्चिन्त हो गयी। उसी समय पण्डितजी आते हुए दिखायी दिये। व्यक्तियों की विशिष्टता मानों उनके आगे चलती है। हम लोगों ने देखते ही समझ लिया, यही पण्डितजी हैं। यद्यपि बिना पगड़ी के मैं पण्डितों का



सरस्वती की हीरक जयन्ती के अवसर पर प्रयाग में स्थापित आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की प्रतिमा जिसका उद्घाटन उनके शिष्य राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने किया था।

अनुमान ही न कर सकता था और उनके सिर पर टोपी थी। मैंने सन्ध्या समय दफ्तर से लौटते हुए बहुत से बाबुओं को झाँसी में ही देखा था। जान पड़ा, 'बाबू' के वेश में वे कोई 'साहब' हैं। विलायती साहब बहादुर से तो हम लोग मिल ही चुके थे। उसका जो तेज था बहुत कुछ उसके अधिकार के कारण था, पण्डितजी का प्रताप सर्वथा व्यक्तिगत। हम लोग ससम्भ्रम उठ खड़े हुए। जाड़े के दिन थे। वे हल्के कत्थई रंग का नीचा ऊनी कोट या अचकन पहने थे और ऊनी ही सफेद फलालेन का पतलून जैसा पाजामा। बायें हाथ में कुछ कागद-पत्र लिये थे, दाँयें में छड़ी। दफ्तर से लौटनेवालों के विपरीत अनातुर धीर गति से पैदल आ रहे थे। ऐसे, मानों अभी सवारी से उतरे हों। आफिस दूर न था और पैदल आने-जाने से वे छोटे नहीं होते थे क्योंकि सम्भवतः बड़े थे। झूठे सम्मान के पीछे वे टहलने के सुयोग से वंचित क्यों होते जब सच्चा सम्मान उन्हें सुलभ था? ऊँचे ललाट के नीचे घनी और मोटी भौंहें उसके अनुरूप ही थीं। उनकी छाया में विशेष चमकती हुई आँखें बड़ी न होने पर भी तेज से भरी दिखायी देती थीं। पण्डितजी वेश-भूषा से सुसंस्कृत, चिन्तनशील जान पड़ते थे। हम लोगों का प्रणाम स्वीकार कर और हम पर एक दृष्टि डालकर वे कमरे के भीतर जाकर ही रुके। वहाँ इधर-उधर देखकर और तुरन्त ही 'आइए' कहकर उन्होंने हमें भीतर बुलाया। जब तक हम कमरे में पहुँचे तब तक छड़ी और कागज-पत्र यथास्थान रखकर उन्होंने अपनी टाइम पीस घड़ी उठा ली थी और उसमें ताली देना आरम्भ कर दिया था। वे बड़े ही नियमबद्ध थे और सम्भवतः आफिस से लौटकर घड़ी कूकने का समय उन्होंने बाँध रक्खा था।

"बैठिए" सुनकर भी हम लोग खड़े ही रहे। हमारा भाव समझकर घड़ी रखते हुए वे पलँग पर बैठ गये। सामने की कुर्सियों की ओर हाथ बढ़ाते हुए फिर स्निग्ध स्वर में बोले--बैठिए। हम लोगों के नाम और परिचय से वे कुछ आकर्षित से हुए और हाल ही में हमें पितृहीन हुआ सुनकर सहानुभूति प्रकट करने लगे। पिताजी की अनन्य भक्ति की चर्चा के प्रसंग में उन्होंने यह भी पूछा कि आप लोग किस सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। 'विशिष्टाद्वैत' सुनकर बोले--हाँ। बहुत दिन पीछे प्रसिद्ध विद्वान् माननीय 'बार्हस्पत्य' जी से जब मैं पहली बार मिला तब उन्होंने भी मुझसे यही पूछा था और उत्तर सुनकर कहा था, हम विशिष्टाद्वैत मत के तो नहीं हैं पर अच्छा उसीको मानते हैं। यह कह कर वे मुसकराने लगे थे। मैं भी उन्हीं का अनुसरण करके हँस गया था। पण्डितजी ने हाँ, करते हुए अपना सम्प्रदाय भी बताया था, सम्भवतः वल्लभ। इसी सम्बन्ध में उन्होंने एक बार कहा था हमारे पिता कुछ लिखने के पहले लिखा करते थे--श्रीलाड़लेश्वराय नमः। परन्तु अब हम देखते हैं यह लाड़ले और ईश्वर का सन्धि-संयोग ही ठीक नहीं है।

पण्डितजी से हम लोगों की बातचीत आरम्भ ही हुई थी, इतने में भीतर से एक सुन्दर और हृष्ट पुष्ट बिल्ली आयी और उछलकर पण्डितजी की गोद में आ बैठी। उनके कंठस्वर से उन्हें आया जानकर ही वह भीतर से दौड़ आयी थी। पशु-पक्षी मैंने भी पाले हैं परन्तु पली बिल्ली मैंने पहले पहल वहीं देखी थी। मुझे बड़ा कौतूहल हुआ। मैंने देखा, पण्डितजी धीरे-धीरे उसपर हाथ फेर रहे हैं और वह हर्ष और गर्व से एक असाधारण शब्द कर रही है। जो लोग पक्के गाने से चिढ़कर उसे बिल्लियों का लड़ना कहते हैं वे कहीं उस बिल्ली का शब्द सुनते तो जानते कि बिल्लियाँ भी स्नेह में कैसा प्यारा बोलती हैं। पण्डितजी ने पशु-पक्षियों की चेष्टाओं पर 'सरस्वती' में एक लेख लिखा था। मुझे ठीक स्मरण नहीं, इस बिल्ली को देखकर मुझे उसका ध्यान आ गया था अथवा उसे देखकर इसका।

परन्तु जिस उद्देश्य को लेकर मैं पण्डितजी के यहाँ गया था उसके विषय में कुछ कहने का मुझे साहस ही न हुआ। मेरा सारा उत्साह न जाने कहाँ चला गया। मेरे अग्रज ने प्रसंग चलाकर एक बार कहा भी कि ये भी कुछ कविता बनाते हैं। 'बड़ी अच्छी बात है' कहकर पण्डितजी ने मेरी ओर देखा। मैं तो कुछ नहीं, कुछ नहीं, कहकर संकोच से सिकुड़ सा गया। मुझे विपत्ति में पड़ा देखकर फिर उन्होंने कुछ नहीं कहा। कुछ कहने के लिए मैंने कहा--हम लोग तो सबेरे ही आनेवाले थे परन्तु सुना कि सन्ध्या को ही आपसे भेंट होती है, इसलिए इस समय सेवा में उपस्थित हुए हैं। वे हँसकर बोले--हाँ, सबेरे हम 'सरस्वती' का काम करते हैं और कुछ लेख आदि लिखते हैं। फिर अवकाश नहीं पाते। परन्तु जब आप इतनी दूर से आये हैं तब क्या हम उस समय भी आपसे न मिलते?

...र्की आया कीजिए और सुविधा हो तो मिला ...।

...उनका अधिक समय लेना अपराध करना था। ...र भी हम लोगों को बिदा करने वे बाहर आये। ...का स्वागत सभी करते हैं परन्तु अपने छोटों के ... उनका सदा ऐसा ही उदार व्यवहार रहा।

...पत्रों के विषय में प्रत्यक्ष कुछ कहने की अपेक्षा ...हार करने में ही मुझे सुविधा दिखायी पड़ी। ...उनके प्रभाव से मैं अभिभूत हो गया। पीछे न ...कितनी बार उनकी सेवा में उपस्थित होने का ...प्राप्त हुआ, वे भी कृपाकर एक बार यहाँ पधारे ...का आतंक कभी नहीं जान पड़ा। इसके विरुद्ध ...निकट से उनका परिचय मिलता गया वैसे- ...की सदयता और सहृदयता का ही अधिकाधिक ...होता रहा। अपने कर्त्तव्य में ही वे कठोर प्रतीत ...आत्मसम्मान का प्रश्न आ जाने पर उनमें उग्रता ...जाती थी अन्यथा उनसा कोमल हृदय दुर्लभ ही है। ...वाद-विवाद में दूसरे पक्ष ने लिखा यह विवाद ...आप तो ब्राह्मण हैं आपको क्षमा नहीं छोड़नी ...पण्डितजी ने उत्तर में लिखा हमने जो आरोप ...हैं उन्हें व्यर्थ कहने से काम न चलेगा या तो आप ...कि वे झूठे हैं, हम आपसे क्षमा-याचना करेंगे या ...पर खेद प्रकट कीजिए। उस समय हम आपको ...क्षमा न कर दें तो ब्राह्मण नहीं।

...जैसी वेश-भूषा भी फिर मैंने नहीं देखी। एक ...के साथ उन्हें बंडी कोट पहने देखकर तो ऐसा ...जैसे यह उनके अनुरूप न हो। ...प्रायः कुर्ता और धोती ही वे पहना करते थे और ...उन्हें बहुत सोहता भी था। अभिनन्दन के अवसर ...इसी परिच्छद में थे। अस्तु।

...दिन लौटकर मुझे एक आत्मग्लानि सी हुई ...इतना हतप्रभ हो गया कि अपनी बात भी उनसे ...सका। और, झूठ क्यों कहूँ, उनके प्रति कुछ ईर्ष्या ...उत्पन्न हो गयी। परन्तु 'सरस्वती' में नाम छपने ...प्रबल था। आशा भी बलवती थी। कुछ दिन ...एक रचना भेज ही दी और उत्सुकता से मैं उनके ...प्रतीक्षा करने लगा। मुझे स्मरण नहीं, इतने ...में भी, पण्डितजी ने मेरे किसी पत्र का उत्तर देने में विलम्ब किया हो। इतनी तत्परता मैंने और किसी-के पत्र-व्यवहार में नहीं पायी। मैंने भी बहुत दिन उनका अनुकरण करने की चेष्टा की, परन्तु अन्त में मैं हार गया और अब तो शरीर और मन प्रकृतिस्थ न रहने से एक-आध पत्र लिखना भी भारी हो उठा है। परन्तु पण्डितजी वृद्ध और क्षीण होने पर भी अन्त तक अपना नियम निभाते रहे, कितनी दृढ़ता थी उनमें।

यथासमय उनका उत्तर आ गया--"आपकी कविता पुरानी भाषा में लिखी गयी है। 'सरस्वती' में हम बोल-चाल की भाषा में ही लिखी गयी कविताएँ छापना पसन्द करते हैं।" राय कृष्णदास जैसे बंधु के संसर्ग से भी, जो एक-एक चिट भी यत्न से छाँट कर रखते हैं, मैं पत्रों के संग्रह में उदासीन ही रहा हूँ। इसी प्रकार डायरी न रखने से प्रसंगवश अथवा अचानक उठे हुए कितने ही विचार किंवा भाव भी मुझे खो देने पड़े हैं। परन्तु पण्डितजी के पत्र न जाने कैसे मैं आरम्भ से ही रखता रहा। कुछ प्रारम्भिक पत्रों की एक गड्डी सम्भवतः कहीं ऐसी सुरक्षित रक्खी है कि इस समय मुझे भी नहीं मिल रही है। ऊपर मैंने जिस पत्र का उद्धरण दिया है, सम्भव है, उसमें शब्दों का कुछ हेर-फेर हो, किन्तु बात वही है।

'बोलचाल की भाषा' अर्थात् 'खड़ीबोली' और 'पुरानी भाषा' अर्थात् 'व्रजभाषा' पाठक ही समझ लें। मेरे मन में अपनी रचना की अस्वीकृति खली या व्रजभाषा की उपेक्षा। मन कुछ विद्रोही था ही, आशा भी पूरी न हुई। अब क्या था, एक बड़ा-सा पत्र लिख दिया। एक बात सुनी थी कि शेख सादी साहब को फारसी भाषा की मधुरता का बड़ा अभिमान था। एक बार वे यहाँ आये। व्रजभाषा की प्रशंसा सुनकर उन्होंने नाक सिकोड़ी और भौंह चढ़ाई। घूमते-घामते वे व्रज में पहुँचे। वहाँ मार्ग में पहले पहल एक छोटी-सी लड़की की बात सुनी। वह अपनी माता से कह रही थी--"मायरी माय, मग चल्यो न जाय--साँकरी गली पाय काँकरी गड़तु है।" इस बात का संकेत भी मैंने अपने पत्र में कर दिया और समझ लिया कि बदला ले लिया। परन्तु उस पत्र का कोई उत्तर न मिला। भगवान् ही जाने, इसे मैं अपनी जीत समझा या अपने प्रहार को सर्वथा निष्फल समझकर और भी हताश हो गया। प्रतिघात सह लिया जा सकता है किन्तु आघात का व्यर्थ होना प्रतिघात से भी कठोर होता है। तथापि

मेरी क्षुद्रता का वे क्या उत्तर देते? मैंने धृष्टतापूर्वक एक पत्र और भी इस सम्बन्ध में भेजा। वह वैसा ही लौट आया अथवा लौटा दिया गया।

इस बीच कलकत्ते के 'वैश्योपकारक' मासिक पत्र में मेरे पद्य छपने लगे थे। इससे मुझे अपने कवि होने का अभिमान भी हो गया था। परन्तु हिन्दी की एकमात्र प्रतिष्ठित पत्रिका 'सरस्वती' थी। कवि होने का प्रमाण तो उसीमें कविता छपने से मिल सकता था, छाप उसी-के नाम की लगती थी। मन मेरा उधर ही लगा था। झख मारकर खड़ीबोली के नाम से 'हेमन्त' शीर्षक कुछ पद्य लिखे। उन्हीं दिनों स्वर्गीय राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' की 'शरद' नाम की एक कविता 'सरस्वती' में छपी थी। वह पुरानी भाषा में ही थी। शरद छपी तो 'हेमन्त' छप सकता है। उसे भेजते हुए मैंने निर्लज्जतापूर्वक इतना और लिख दिया कि प्रसन्नता की बात है, अब 'पुरानी भाषा के सम्बन्ध में आपका वह विचार बदला है।' जिस दिन उत्तर मिलना चाहिए था, उत्सुकतापूर्वक मैं स्वयं डाक-घर पहुँचा। उनका उत्तर पोस्टकार्ड के रूप में उपस्थित था। धड़कते हृदय से पढ़ा। लिखा था—'आपकी कविता मिली। राय साहब की कविता अच्छी होने से हमने छापी है।' अब समझ में आया कि 'नई-पुरानी भाषा' का तो एक बहाना था, मेरी कविता अच्छी न होने से न छप सकी थी। यह उस समय भी न समझ में आया कि मेरी रचना अच्छी न थी, फिर भी उन्होंने उसे बुरा न बताकर भाषा की बात कहकर कितनी शिष्टता से मुझे उत्तर दिया, यद्यपि यह ठीक था कि बोलचाल की भाषा की कविता के ही वे पक्षपाती थे और उसीका प्रचार भी कर रहे थे। जो हो, मेरा जी बैठ गया। एक महीना बीत गया। 'सरस्वती' आयी पर 'हेमन्त' न आया। वह क्यों नहीं आया, आवेगा भी या नहीं, यह पूछने का भी धीरज न रहा। कन्नौज से 'मोहिनी' नाम की एक समाचार पत्रिका निकलती थी। उसीमें छपने के लिए मैंने 'हेमन्त' भेज दिया और अगले सप्ताह ही वह छपकर आ गया। एक द्विवेदीजी न सही तो दूसरे गुण-ग्राहक तो विद्यमान हैं, यों मैंने मन समझाने की चेष्टा की। मन ने मान भी लिया, कारण, अपमान भी उसीने माना था तथापि उसके एक कोने से यह शब्द उठे बिना न रहा कि हाय सरस्वती।

नये वर्ष की 'सरस्वती' आयी, नयी ही सज-धज से। अब उसका रूप रंग और भी सुन्दर हो गया। देखकर जी ललचा गया। परन्तु जिस बात की आशा भी न थी उस 'हेमन्त' को भी वह ले आयी। मेरा रोम-रोम पुलक उठा। जिस रूप में मैंने उसे भेजा था उससे दूसरी ही वस्तु वह दिखायी पड़ती थी, बाहर से ही नहीं भीतर से भी। पढ़ने पर मेरा आनन्द आश्चर्य में बदल गया। इसमें तो इतना संशोधन और परिवर्द्धन हुआ था कि यह मेरी रचना ही नहीं कही जा सकती थी। कहाँ वह कंकाल और कहाँ यह मूर्ति। वह कितना विकृत और यह कितनी परिष्कृत। फिर भी शिल्पी के स्थान पर नाम तो मेरा ही छपा है। मुझे अपनी हीनता पर लज्जा आ[ई] [और] पण्डितजी की उदारता देखकर श्रद्धा से मेरा मस्त[क] [झुक] गया। इतना परिश्रम उन्होंने किया और उसका [श्रेय] मुझे दे डाला। यह तो मुझे पीछे ज्ञात हुआ कि [उन्होंने] न जाने कितने लोग उनसे इस प्रकार उपकृत [हुए।] नाम की अपेक्षा न रखकर काम करना साधारण बा[त] है। परन्तु काम आप करके नाम दूसरे का करना अ[ौर भी] असाधारण है। पण्डितजी अपने सम्पादकीय जीव[न में] यही करते रहे। उनके तप और त्याग का मूल्य [आँकना] सहज नहीं। हिन्दी के प्रभविष्णु कवि स्वर्गीय ना[थूराम] 'शंकर' शर्मा ने एक पत्र में मुझे लिखा था—"सम्पा[दक] बहुधा कविताओं में संशोधन भी कर देते हैं।' के[वल] तारा' नाम की कविता में मैंने लिखा था—

पीठ पर टपका पड़ा तो आँख मेरी खुल ग[ई]
चार बूँदों से मिले मन की लँगोटी धुल गई।

इसमें नीचे की पंक्तियाँ उन्होंने बदलकर छा[पीं]

"विशद बूँदों से मिले मन मौज मिसरी घुल गई।

लाभ से मेरा लोभ और भी बढ़ गया। कुछ पीछे 'क्रोधाष्टक' नामक तुकबन्दी मैंने और भे[जी।] उपद्रव सहने की भी एक सीमा होती है। इस बार [रुष्ट] होकर उन्होंने जो पत्र लिखा वह, इधर स्मृति [क्षीण] होने पर भी, मुझे भली भाँति स्मरण है—

"हम लोग सिद्ध कवि नहीं। बहुत परिश्रम [और] विचारपूर्वक लिखने से ही हमारे पद्य पढ़ने योग्य ब[नते] हैं। आप दो बातों में से एक भी नहीं करना चा[हते।] कुछ भी लिखकर उसे छपा देना ही आपका उद्देश्य [जान] पड़ता है। आपने 'क्रोधाष्टक' थोड़े ही समय में [लिखा] होगा परन्तु उसे ठीक करने में हमारे चार घंटे लग [गये।] पहला ही पद्य लीजिए।

होवे तुरन्त उनकी बलहीन काया,
जानें न वे तनिक भी अपना-पराया।
हों वे विवेक-वर-बुद्धि-विहीन पापी
रे क्रोध, जो जन करें तुझको कदापि।

क्या आप क्रोध को आशीर्वाद दे रहे हैं जो [आपने] ऐसी क्रियाओं का प्रयोग किया है। इसे हम [तो] 'सरस्वती' में छापेंगे, परन्तु आगे आप 'सरस्वती' के [लिए] लिखना चाहें तो इधर-उधर अपनी कविताएं छपा[ने का] विचार छोड़ दीजिए। जिस कविता को हम चाहें[गे] छापेंगे। जिसे न चाहें उसे न कहीं दूसरी जगह छप[ाइए] न किसीको दिखाइए। ताले में बन्द करके रखिए।

रोष ही मेरे लिए परितोष बन गया। अयोग्य [होने पर भी] पण्डितजी ने मुझे त्यागा नहीं, सदा के लिए अ[प]ना [लिया।] इसी पत्र में मुझे बोलचाल की भाषा में पद्य रच[ने का] 'गुर' मिल गया। परन्तु बातें इतनी ही नहीं हैं। अ[ब] और कुछ न लिखकर अपने प्रभु से यही प्रार्थना क[रता हूँ] कि परलोक में भी उनका पथ-प्रदर्शन मुझे प्राप्त हो।

अनुचर
मैथिलीशर[ण]

चिरगाँव
मकर संक्रान्ति १९९५

द्विवेदीजी को श्रद्धांजलि

श्री भगवतीचरण वर्मा

...महावीरप्रसाद द्विवेदी की जन्म-शती है इस वर्ष ...मई के दिन; लेकिन किसी प्रकार की चहल-...प्रकार का उल्लास नहीं दिखाई देता हिन्दी ...यों में। टूटा-सा और हारा-सा हिन्दी प्रदेश, ऐसा ...सिसकियाँ भर रहा है। आचार्य महावीरप्रसाद ...जन्मशती क्यों मनाई जाय? प्रश्न मेरे ...है। जन्म-शती मनाया करते हैं उमंग और ...भरे हुए लोग जो लगातार आगे बढ़ रहे हों ...अपने उन पूर्वजों का, जिन्होंने उन्हें मार्ग दिखलाया ...प्रदर्शन करते हैं। उन्हें अपनी श्रद्धांजलियाँ ...करते हैं। जो मुर्दा की तरह पड़े हों, जो स्वयं ...विनाश कर रहे हों, जो निष्क्रियता और पराजय ...सीमा तक पहुँच गये हों, वे जब अपने पूर्वजों की ...याँ मनाने लगते हैं तब ऐसा लगता है कि वह ...उपहास कर रहे हैं।

...उपेक्षिता है, हिन्दी मर रही है। हम अँगरेजों ...से मुक्त होकर देश के मुट्ठी भर समर्थ और ...धर्मियों की गुलामी में जकड़ गये हैं जो हम पर ...की गुलामी लादकर स्वयम शक्तिशाली बन ...हम भयानक रूप से चरित्रहीन बन गये हैं। हममें ...है, न कहीं स्वाभिमान है। और इसी सद्भावना ...स्वाभिमान का ढिंढोरा पीटकर हम यह अनुभव ...चाहते हैं कि हममें ये गुण मरे नहीं, अभी तक ...हैं।

...शतियाँ मनाने का एक विस्तृत कार्यक्रम उठा ...हमारी सरकार ने, यह प्रदर्शित करने के लिए ...एक जीवित, स्वाभिमानी और उन्नत राष्ट्र हैं। ...न जाने कितने लोगों की जन्मशतियाँ मनायी ...टिकट निकाले गये, उनपर सभाएँ हुईं, उत्सव ...और इस सबमें लाखों रुपया खर्च हुआ। इस प्रकार ...ने लूट का एक नया बाजार खोल दिया है ...में, सांस्कृतिक ठीकेदारों की एक बहुत बड़ी ...हो गयी है यहाँ। इस देश में सम्पन्नता आज ...ठीकेदारी प्रथा में ही मानी जाने लगी है।

...द्विवेदीजी की जन्मशती को सरकार ने अपने कार्यक्रम में ...सम्मिलित किया, हिन्दी के लोगों को इसकी शिकायत ...लोगों ने सरकार को इस सम्बन्ध में गालियाँ भी ...। और इस सब पर मुझे हँसी आ सकती थी, लेकिन ...नहीं सका; मुझे कुछ सोचना पड़ा। हिन्दीवालों ...आक्रोश किसी लूट की भावना से प्रेरित नहीं है; ...से भावनात्मक है। आचार्य महावीरप्रसाद ...का स्थान उन अनेक विभूतियों से, जिनकी जन्म-...भारत सरकार ने बड़ी धूम-धाम से मनायी हैं, ...ऊँचा नहीं है तो उनसे हीन भी नहीं है। हिन्दी हमारे पिसते हुए, फिर भी अपनी आस्थाओं पर कायम, जन की भावना की प्रतीक है। अगर कभी हिन्दी के अच्छे दिन आये—बिना किसी आकस्मिक विस्फोट के अभी तो यह सम्भव नहीं दिखता—तो आचार्य द्विवेदी को देश के इतिहास में बहुत ऊँचा स्थान मिलेगा।

(२)

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के सम्पर्क में आने का अवसर मुझे नहीं मिला, दूर से दो-एक बार उनके दर्शन जरूर किये हैं मैंने। पर आज वह स्मृति भी धुँधली पड़ रही है। जो कुछ भी मैं आचार्य द्विवेदी के सम्बन्ध में जान सका हूँ, वह मित्रों से उनके सम्बन्ध में सुनकर, उनके सम्बन्ध में जो कुछ लिखा गया है उसे पढ़ कर और द्विवेदीजी का हिन्दी में जो योगदान है उसे देखकर।

जिला रायबरेली में गंगा के किनारे दौलतपुर ग्राम में उनका जन्म हुआ था। वैसे उनका जीवन कानपुर, इलाहाबाद और बनारस आदि नगरों में बीता, लेकिन उनकी जड़ें देहात में थीं। मध्यवर्ग के परिवार के वे सदस्य थे, और उन्हें मध्यवर्ग के आचार-विचार, धर्म-परायणता एवं सद्-असद् का विवेक—यह सब उत्तरा-धिकार के रूप में प्राप्त हुए थे। एक प्रकार की दृढ़ता, एक प्रकार का संकल्प—उनके समस्त जीवन की यही उपलब्धि थी।

द्विवेदीजी में साधारण कोटि की साहित्यिक प्रतिभा थी—जिसे हम महान् साहित्य कहते हैं उसका सृजन उन्होंने नहीं किया है; लेकिन वे भाषा और साहित्य के निर्माता के रूप में हमारे सामने आते हैं। आज हिन्दी भाषा का जो रूप है एवं हिन्दी साहित्य की जो उपलब्धि है उसमें उनका योगदान प्रमुख है। हिन्दी गद्य के निर्माण में उन्होंने हिन्दी की अमूल्य सेवा की है। यही नहीं, हिन्दी कविता को सक्षम और समर्थ बनाने में उनका बहुत बड़ा हाथ है। द्विवेदीजी के समय के पहले हिन्दी कविता ब्रजभाषा में लिखी जाती थी, हिन्दी गद्य खड़ीबोली में लिखा जाता था। उस समय तक लोगों में यह भ्राम धारणा थी कि कविता खड़ीबोली में लिखी ही नहीं जा सकती।

और 'सरस्वती' के माध्यम से उन्होंने खड़ीबोली में कविता को आगे बढ़ाया। द्विवेदीजी के सम्पादन में, उनके संकल्प और उनकी एकनिष्ठा के कारण 'सरस्वती' प्रायः बीस वर्षों तक हिन्दी की एकमात्र साहित्यिक पत्रिका रही, और द्विवेदीजी ने अनगिनती कवियों को खड़ीबोली में कविता लिखने को प्रोत्साहित किया।

यह सत्य है कि खड़ीबोली की कविता को शक्ति प्राप्त हुई छायावाद-युग में, और द्विवेदीजी छायावाद के

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के प्रति श्रद्धाञ्जलि

डा० हरिशंकर शर्मा

महामान्य आचार्य द्विवेदी का युग करता वन्दन है,
धन्य धन्य स्वर्गीय आत्मा, श्रद्धा से अभिनन्दन है।
भौतिक देह नहीं है जग में किन्तु सुयश-रवि दमक रहा,
शुभ-शिक्षा-दीक्षा-द्युति द्वारा कर्म्म-कलाधर चमक रहा।
क्रियाशीलता में शुचि साधक, कटु कुनीति-पथ बाधक थे,
ग्रन्थकारगण की गरिमा के वे सच्चे आराधक थे।
बहुसंख्यक लेखक-कवियों के नेता या निर्माता थे,
स्वयम् बड़े विद्वान् विज्ञ थे, सत्साहित्य-विधाता थे।
करणी में माधुर्य भरा था, वाणी रस बरसाती थी,
ललित लेखनी लेखों द्वारा अमृत-धार बहाती थी।
देव, आपके गुण-गण गाते भक्त न कभी अघाते हैं,
श्रद्धा-भक्ति-स्नेह से सादर 'जन्म-शताब्दि' मनाते हैं।

विरोधी थे; लेकिन जिस नींव पर छायावाद विकसित हुआ वह तो द्विवेदीजी ने ही डाली थी। युग के साथ रहने की प्रवृत्ति बहुत कम लोगों में मिलती है; और द्विवेदीजी भी युग के साथ नहीं रह सके, लेकिन इससे उनकी महत्ता तो कम नहीं होती न उनके योगदान की उपेक्षा की जा सकती है। छायावाद का जो विरोध उन्होंने किया उसके पीछे भी उनकी यह अनुभूति थी कि जिस कविता-धारा को उन्होंने बड़े श्रम और लगन के साथ आगे बढ़ाया था उसने गलत दिशा ले ली है।

द्विवेदीजी साहित्य-निर्माता हैं, भाषा-निर्माता हैं, और इस तरह द्विवेदीजी युग-निर्माता कहे जा सकते हैं। कुछ आलोचकों ने साहित्य के उस काल को जिसमें द्विवेदी जी ने हिन्दी साहित्य का नेतृत्व किया, द्विवेदी युग कहा है। यह द्विवेदी युग कब समाप्त हुआ, इसपर मतभेद हो सकता है, लेकिन एक समय यह द्विवेदी-युग हिन्दी संसार में था, इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

द्विवेदीजी की जन्मशती के इस पुण्य पर्व पर मैं अपनी श्रद्धांजलि उन्हें अर्पित कर रहा हूँ। जिस समय उन्होंने अपना जीवन हिन्दी को अर्पित किया था उस समय हिन्दी भाषा और हिन्दी साहित्य––दोनों का ही निर्माण-काल था। हिन्दी के लेखकों का न मान होता था और न आदर; यह भी नहीं कहा जा सकता था कि हिन्दी एक दिन अपने पैरों पर खड़ी होकर विश्व की उन्नत-भाषाओं में स्थान बना लेगी।

हिन्दी भाषा और हिन्दी साहित्य की आज ... है। यह सच है कि आज भी हिन्दी के आगे बहुत बड़ी ... है। इतनी सक्षम और शक्तिशाली बन जाने के बाद ... नीतिक कारणों से हिन्दी पर प्रहार के बाद प्रहार ... हैं और हिन्दी के नेताओं एवं साहित्यकारों में ... की थकावट की और पराजय की भावना दिखाई ... लेकिन हिन्दी इस समय तक इतना बल प्राप्त कर ... तथा इतनी परिपुष्ट हो चुकी है कि वह अपनी रक्षा ... कर लेगी। हाँ, इस संघर्ष के अवसर पर हमें ... पूर्वजों की याद अवश्य आती है जिन्होंने हिन्दी पर ... जीवन अर्पित करके उसे प्राण दान दिया है।

यह ऐसा अवसर है कि हिन्दी का हरेक लेखक, ... कर्ता तथा बोलने और पढ़नेवाला यह सोचे कि ... जिस संघर्ष के जीवन को द्विवेदी ने अपनाया था, ... अन्त अभी नहीं हुआ है, हिन्दी पर आज हर तरफ ... हो रहे हैं, और हरेक हिन्दीवाले में उस संकल्प, त्याग ... निष्ठा की आवश्यकता है जिसके द्विवेदीजी प्रतीक ... अपने पथप्रदर्शक और अपने गुरुजनों के रूप में ... आगे नमित हूँ।

आचार्य द्विवेदीजी के संस्मरण

पं० यज्ञदत्त शुक्ल



सम्पादकाचार्य द्विवेदी

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी एक अद्भुत महापुरुष थे। ...रण कोटि के मनुष्यों से उनकी ...नितान्त भिन्न थी। मैं उनके ...सम्पर्क में उनके निवास एवं ...स्थान दौलतपुर में महीनों रहा। ...उठते-बैठते, खाते-पीते और ...देखता था। उनका सब काम ...से नियमित रहता था। घड़ी ...उन्होंने मरतेदम तक नहीं छोड़ी। ...भी उसे सिरहाने रख कर। ...का दुरुपयोग वह जानते ही ...थे। सुबह सूर्योदय से पहले ...घूमने जाना, फिर शौच जाना ...लेख लिखने के लिए ...फिर शौचादि के बाद स्नान, ...सात्विक भोजन, दोपहर ...विश्राम, पुनः लेखन-कार्य ...सायंकाल होते ही बिस्तर पर ...के लिए चले जाना—यही सब ...उनकी दिनचर्या थी। उनको ...आने का रोग था इसीलिए वे शाम ही को लेट ...थे। यदि किसी समय शाम को या रात में पड़ोस ...गाना-बजाना होता तो वे बोलते तो कुछ नहीं ...इससे उनकी नींद में बाधा होती थी।

...उनको देखने ही से मालूम होता था कि वे उस समय ...के लौह-पुरुष थ। उनकी लौह-लेखनी तो प्रसिद्ध ...थी। बड़े-बड़े कवियों और विद्वानों को उनके सामने ...पूर्वक बोलने का साहस नहीं पड़ता था। उनका ...ही असाधारण रूप से प्रभावशाली था। यद्यपि ...मुखाकृति से गंभीर और कठोर प्रकृति का आभास ...था तथापि उनके हृदय में अत्यन्त करुणा भरी थी। उस करुणा, दया, उदारता तथा सहृदयता का परिचय वे वहीं देते थे जहाँ उचित समझते थे। एक एक पाई का हिसाब रखते हुए भी वे उचित अवसरों पर उचित व्यय करने से नहीं चूकते थे। परन्तु यथासंभव प्रत्येक खर्च का अनुमान वे पहले ही से लगाये रहते थे। मेरे लिए जो कुछ देना होता था उसे एक कागज की पुड़िया में बाँधकर पहले ही से कैश-बक्स में रख देते थे। उसपर लिखा रहता था—'यज्ञदत्त के लिए बिदाई'।

जो कुटुम्बीजन उनके आश्रित और अवलम्बित रहते थे उनके सुख-दुख का वे विशेष ध्यान रखते थे किन्तु उनसे घर-गृहस्थी के काम लेने में वे कोमलता नहीं दिखाते थे।

यदि किसीने कोई वस्तु ठीक जगह पर न रक्खी तो बहुत डाँटते थे। उस समय उनका बड़ा उग्र रूप हो जाता था। यद्यपि मुझको उनकी भांजी ब्याही थी और उन्हींने अपने हाथ से कन्यादान देकर विवाह-कार्य संपन्न किया था फिर भी मैंने कभी उनके साथ दमादी बर्ताव नहीं किया। उनको मैं अपने पिता के समान मानता था और वे भी मेरे इस स्वभाव के कारण मुझसे प्रसन्न रहा करते थे। एक बार मैं दौलतपुर गया तो वहाँ लौटते समय मुझे कुछ खर्च की कमी मालूम हुई। मैंने अपनी पत्नी (द्विवेदीजी की भांजी) से रुपयों का प्रबन्ध करने के लिए कहा परन्तु साथ ही साथ उससे मैंने यह भी कहा कि द्विवेदीजी से न माँगना। किन्तु उसने उन्हींसे माँगकर मुझे दिया। मैं उस पर क्रुद्ध होकर अपने घर दौलतपुर से छः मील दूर चला आया। दूसरे ही दिन द्विवेदीजी की चिट्ठी मिली जिसने अन्तस्तल को हिला दिया। आज भी जब उसे पढ़ता हूँ तो द्विवेदीजी के पावन स्मरण से मेरा हृदय भर आता है। वह पत्र कितना युक्ति-युक्त और सहृदयतापूर्ण है इसका परिचय देने के लिए उसे नीचे उद्धृत कर रहा हूँ:—

दौलतपुर
(रायबरेली)
२४-२-३३

आशीष,

घूम कर लौटे तो बिट्टी को रोता पाया। इससे हमें सख्त रंज हु[illegible]ा। इतना जल्दी भूल गये। याद करो, तुमने कभी हमसे कुछ माँगा है या नहीं। जब पढ़ते थे तब की बात हम नहीं पूछते। ८०) रुपये या उससे कुछ घट-बढ़कर तनख्वाह पाने पर भी तुमने हमसे रुपया माँगा है। जब से तुम्हारी शादी हुई तभी से हमारा-तुम्हारा सम्बन्ध हुआ। सो तुम्हें तो हमसे माँगने का अधिकार हासिल हो गया। पर जो लड़की हमारे घर पैदा हुई, जिसे गोद में लेकर हमने खिलाया, जिसकी बीमारी में सैकड़ों रुपया खर्च किया, जिसके सुख दुःख में सदा शामिल रहे, कहा था कि दस-पाँच रुपये की जरूरत खर्च के लिए हो तो बताना। उसीकी उसने याद दिलाई। हमारा जैसा स्वभाव है, हमने सिर्फ यह पूछा कि किस काम के लिए चाहिए। बस, इतने ही से तुम तिनग गये। यह तो कोई गैरमामूली बात न थी। माँगने का उसे अधिकार है। उसे तुम छीन नहीं सकते। अभी उसने पैर के लच्छे बनवाये हैं। उसमें उसके तीस-पैंतीस रुपये खर्च हुए हैं। हमसे कौड़ी नहीं माँगी। अब उसके पास रुपया न होने से इससे माँगा तो क्या गजब हो गया।

मुझे खुश रखने के लिए तुम अपनी इस तुनुकमिज़ाजी की आदत को छोड़ो और एक चिट्ठी लिखकर बिट्टी को सांत्वना करो।

शुभाकांक्षी
म० प्र० द्विवेदी

इस प्रकार की उनके निजी जीवन की कुछ घटनाओं पर प्रकाश डाला जा सकता है। उनके साहित्यिक जीवन के सम्बन्ध में केवल वयोवृद्ध व समकक्ष साहित्य-सेवी ही कुछ लिख सकते हैं। परन्तु उनकी बाल्यावस्था से लेकर मृत्युपर्यंत उनकी जीवनी लिखना अत्यन्त दुष्कर है। यदि तो वे स्वयं चाहते तो सम्भव हो सकता था। अब तो इधर-उधर बिखरी हुई सामग्री को एकत्र कर एक सूत्र में बाँधने की आवश्यकता है और खोज करने की भी। मैंने इस ओर कुछ प्रयत्न किया। एक बार द्विवेदीजी को लिखा भी कि वे मुझे अपने जीवन का हाल बतायें या लिखा दें। उन्होंने निम्नलिखित उत्तर दिया—

दौलतपुर
९-१-[illegible]

आशीष,

चिट्ठी मिली। तुम्हारा घर है, जब चाहो यहाँ आओ। मगर मुझसे मेरी पुरानी बातों की चर्चा न करो। उनकी याद से मुझे तकलीफ होती है। मरे हुओं का जीवन-चरित लोग कैसे लिखते हैं? क्या मुर्दों से पूछने जाते हैं? मुझे अपने शरीर से विरक्ति है, घर से विरक्ति है, संसार से विरक्ति है। जिस घर में रहता हूँ वह घर मेरे लिए जंगल से भी बदतर है।

शुभेच्छु
म० प्र० द्विवेदी

एक और पत्र जो द्विवेदीजी ने इससे पहले मुझे नौकरी दिलाने के सम्बन्ध में लिखा था, उसका आवश्यक अंश यहाँ बिना किसी टीका-टिप्पणी के उद्धृत कर देना उपयुक्त समझता हूँ—

दौलतपुर (रायबरेली)
२-१०-३२

१९ सितम्बर की चिट्ठी मिली। मैं पक्षहीन पक्षी तरह पड़ा हूँ। उसकी सेवा-सुश्रूषा और सहायता तो उस पर उलटा मानसिक अत्याचार किया जा रहा कोई इस बात तक का पुरसाँ नहीं कि तुझे क्या तक-है; तुझे किस तरह आराम पहुँचावें। कोई जेवर रहा है; कोई कपड़े माँग रहा है। तुम और कुछ तो रहे, नौकरी ही माँग रहे हो। निःसहाय दशा में, की उम्र में मारा-मारा फिरता हुआ अजमेर में नौकरी जो मैंने की थी वह किसने दिलाई थी? तार का काम सीखने में मेरी मदद किसने की तो १०) महीने पर एक गोस्वामी के चाकर थे। थे, तू भी ८) महीने पर उन्हींके पास सिपाही था।

कोई १५ वर्ष से घर पर बैठा हूँ। पढ़े लिखे से दूर। किससे कहूँ कि तुम्हें नौकरी दिला दो। ...मुझे बताओ किसको लिखूँ। मुझे तो कोई नज़र नहीं आता।

शुभैषी
म० प्र० द्विवेदी

मितव्ययता के तो वे आदर्श रूप थे। उनका सदैव रहता था कि आमदनी से ज्यादा खर्च मत। उन्होंने जीवन भर इस नियम का पालन किया। में, इस सिद्धान्त को जानते तो सभी लोग हैं किन्तु है, विशेषतया आजकल जो उसके अनुसार कार्य हैं? ऋण लेने के वे सदा विरोधी रहे। जो आत्म-से बढ़कर कोई वस्तु नहीं समझते थे वे भला किसी सामने हाथ फैलाकर ऋण की अथवा किसी अन्य की याचना कर सकते थे! प्रलोभन उनको छू नहीं था। जब वे झाँसी में रेलवे के दफ्तर में काम करते डालियाँ तथा अन्य भेंट की हुई वस्तुयें साहब उन्हीं देनेवालों से भिजवा देते थे। उन लोगों थे, हमें नहीं चाहिए। साहब के यहाँ ले जाओ। प्रकार उनमें पदलोलुपता भी नहीं थी। साहित्य-सम्मेलन का सभापति होना, महामहोपाध्याय का पद तथा हिन्दुस्तानी एकाडेमी की सदस्यता आदि को उन्होंने स्वीकार नहीं किया। गोरखपुर साहित्य सम्मेलन में सभापति का आसन ग्रहण करने के लिए उन पर बहुत जोर डाला गया था। किन्तु वे हिमालय की तरह अचल रहे। इस सम्बन्ध में कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने द्विवेदीजी को एक सुन्दर पत्र लिखा था जिसके कुछ अत्यन्त रोचक अंश यहाँ उद्धृत किये जाते हैं:—

श्रीरामः

चिरगाँव (झाँसी)
२३-८-'२९।

पूज्यवर श्रीमान् पण्डितजी महाराज,
प्रणाम

१९ तारीख का कार्ड यथासमय पहुँचा। उसकी प्रतिलिपि गणेशजी और दशरथजी को भी भेज दी। आज दशरथजी का एक पत्र और आया है। उसमें श्रीमान् के बालाबाला जवाब का भी उद्धरण है।

पढ़ कर बड़ी चोट लगी। सम्मेलन रहे या जाय, श्रीमान् सुख से रहें और जिस हिन्दी के पौधे को श्रीमान् ने अपने शोणित से सींचा है और आँखों की ज्योति देकर एवं श्वास-समीर पहुँचा जिसे बड़ा किया है उसे फूलता-फलता देखें। श्रीमान् गोरखपुर न जायँ, परन्तु मुझे तो वहाँ आने से न रोकें। जान पड़ता है, ये दोनों उत्तर श्रीमान् ने अपनी लेखनी से नहीं किन्तु कहींसे खोदकर निकाली हुई दधीचि की अवशिष्ट अस्थि से लिखे हैं।

माया तो श्रीमान् पहले ही छोड़ चुके हैं अब कदाचित् ममता छोड़ने का उपक्रम कर रहे हैं। परन्तु मैं तो अपना सम्बन्ध छोड़ने के लिए प्रस्तुत नहीं। मैं दशरथजी को वचन दे चुका हूँ। इसलिए यदि वे कहेंगे तो इस मिष भी आने से नहीं रुकूँगा। श्रीमान् की और दूसरों की दृष्टि में वह व्यर्थ हो, परन्तु मेरे लिए तो सार्थक ही होगा।

सूरत का—नहीं नहीं नातवानी का तमाशा? वह तो हम सब मिल गली-गली में देख लेते हैं। श्रीमान् कुछ मजनूँ तो हैं नहीं कि आने दो, पीछे-पीछे ताली पीट कर और कभी धूल-पत्थर फेंक कर भी गोरखपुर या कहींके लोग तमाशा देखें। दशरथजी के पत्रों से तो यही जान पड़ता है कि वे आप जैसे ज्ञान-वयोवृद्ध के दर्शनों में अपने

प्राचीन ऋषि-मुनियों की एक झलक पाकर धन्य होना चाहते हैं।

× × ×

श्रीमान् का शरीर अस्वस्थ रहता है, यह तो कठोर सत्य है। ऐसी दशा में उसका कष्ट और बढ़ने की आशंका हो तो इस दृष्टि से भी श्रीमान् का वहाँ जाना ठीक नहीं कहा जा सकता।

× × ×

श्रीमान् का ही वह काम था कि आज नये-नये सम्मेलन अस्तित्व में आ रहे हैं। तमाशा न दिखाइए पर तमाशा देखिए तो।

× × ×

चरणानुचर
मैथिलीशरण

द्विवेदीजी स्वयं किसी प्रकार की उपासना या पूजा-पाठ नहीं करते थे। वे किसी प्रकार का दिखावा नहीं करते थे। परन्तु भगवद्भक्ति में उनकी श्रद्धा जरूर थी और धार्मिक व सामाजिक रीति-रिवाजों को मानते थे।

द्विवेदीजी का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रतिभासम्पन्न था। उनमें निर्भीकता, तेजस्विता और आत्मसम्मान के गुण ओतप्रोत थे। वे क्या नहीं थे! सम्पादक, आलोचक, अनेक भाषाओं के विज्ञ, सद्गृहस्थ, दीन-दुखियों के पोषक, दार्शनिक, कवि, हिन्दी के युगनिर्माता सभी कुछ थे। यदि वे राजनीतिक क्षेत्र में आते तो भी मेरी धारणा है कि वे अपना एक स्थान बना लेते। उनको ऊपरी दृष्टि से देखने पर लोगों को यह विचार होता था कि वे बड़े कठोर और अभिमानी हैं। किसी असाधारण पुरुष को समझना जरा कठिन होता है। वे रसज्ञ भी थे। उन्होंने 'तरुणोपदेश' नामक कामशास्त्रविषयक पुस्तक लिखी थी किन्तु अपनी पत्नी के रुष्ट होने की संभावना से उसे प्रकाशित नहीं कराया क्योंकि वे उसे प्रकाशित कराना पसन्द नहीं करती थीं। उनका दाम्पत्य प्रेम गहरा था। इसीलिये पत्नी के देहान्त पर उन्होंने उसकी स्मृति में एक 'स्मृति-मंदिर' बनवाया था जो दौलतपुर में उनके मकान के सामने अब भी स्थित है। पत्नी ही से क्या, वे अपने सभी आश्रित जनों से परम स्नेह करते थे। उनकी तकलीफ देख कर वे विचलित हो जाते थे। तुरन्त उनकी दवा-पानी और देख-रेख का प्रबन्ध करते। मुझ पर तो उनकी विशेष कृपा रहती थी। मैंने भी कभी उनकी इच्छा [illegible] विरुद्ध कार्य नहीं किया। इसीसे प्रसन्न रहते थे। [illegible] ससुराल तो थी ही, मुझे सब प्रकार की सुविधा दे[illegible] लिए वे प्रबन्ध रखते थे। विवाह के कुछ समय बाद मैं प्रथम बार आमों की फसल में दौलतपुर गया। [illegible] दो-तीन महीने रहा। द्विवेदीजी भी थे। मैंने उन[illegible] जाने से पहले लिखा कि मैं 'दौलतपुर आना चाहता हूँ [illegible] मेरे लिए दूध का यथेष्ट प्रबन्ध किया जाय। यह [illegible] धृष्टता थी किन्तु इससे वे नाराज नहीं हुए क्योंकि [illegible] सरल और स्पष्ट निवेदन था। सच्ची और साफ बा[illegible] सदा पसन्द करते थे। उन्होंने कार्ड द्वारा उत्तर दिया [illegible] उनके घर ही में गाय और भैंस लगती हैं। इसके अति[illegible] उन्होंने बाहर से भी दूध मँगाने का प्रबन्ध कर रखा [illegible] मेरे लिए उन्होंने कपड़े बनवाये; मेरी स्वीकृति [illegible] एक देहाती बाजार से गाढ़े का थान मँगवाकर [illegible] कुरते आदि बनवा दिये। मैंने भी कोई आग्रह [illegible] किया कि मुझे रेशम, मलमल या तंजेब चाहिए। भो[illegible] के लिए अनेक शाक-भाजियाँ बनती थीं। द्विवेदीजी [illegible] लौकी और पालक आदि बहुत प्रिय थे। फसल न हो[illegible] पर भी जो व्यक्ति लौकी ढूँढ़कर उन्हें लाकर देता [illegible] उससे बहुत खुश होते थे और उसे तुरन्त दाम दे देते [illegible] उनको बहुत पुराने कब्ज की शिकायत रहा करती [illegible] इसीलिए दिन में कई बार शौच जाते थे। यों [illegible] रोगग्रस्त रहते ही थे किन्तु पत्नी के निधन [illegible] और कोई अपनी संतति न होने से वह उदासीन [illegible] रहते थे।

यद्यपि वे अंग्रेजी में पत्र-व्यवहार करने के विरु[illegible] तथापि वे मेरे पिता को अंग्रेजी ही में उत्तर दिया करते [illegible] उसका मुख्य कारण यह था कि मेरे पिता को अंग्रेजी [illegible] लिखने का अभ्यास था। इसलिए बिलकुल उत्तर न [illegible] की अपेक्षा वे उन्हें अंग्रेजी में उनके पत्रों का उत्तर [illegible] करते थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने पत्र द्वारा मेरे पि[illegible] अपना प्रतिरोध भी प्रकट किया था परन्तु अपने वि[illegible] को व्यक्त करने के लिए उन्होंने अंग्रेजी ही को पत्र-व्य[illegible] का माध्यम बनाया। कभी-कभी वे दूसरे महानुभावों [illegible] भी अंग्रेजी में उत्तर दिया करते थे। उनके एक अं[illegible] पत्र का नमूना यहाँ दिया जाता है जो थोड़ा-बहुत उ[illegible] जीवन पर भी प्रकाश डालता है—

17-7-29

My dear Chandika Prasad,

Your letter of the 8th instant reached me this morning. It greatly delighted me. You have remembered me after a very very long time.

I am glad you have approved of my endowment for scholarships to deserving Kanyakubja Brahman Youths. I was in a very poor family and the little education that I received in school was due to perseverence on my part, I having had to live on only Rs. 3/- a month. I therefore thought that I should provide for a few boys who are in circumstances similar to those under which I was placed during my school days.

I have no knowledge of the Danish system of education. But I would advise you to utilize, since your savings to the best advantage, for we cannot claim immortality. You are older than me and may depart from the world unexpectedly.

I would have been glad if I could have gone to Kashmir and enjoyed your company. But I am very weak. My infirmity is on the increase. I now subsist on milk only. My digestive organs have become deranged and I can digest nothing else. All literary work had to be stopped therefore. I now pass a retired life in my native village doing almost nothing beyond glancing over certain newspapers.

Yours Sincerely,

M. P. Dvivedi

द्विवेदीजी के लिखने का ढंग अजीब था। वे कभी कुर्सी पर बैठकर नहीं लिखते थे। लकड़ी के तख्त पर बैठते थे। पीठ गावतकिया से टेके रहते थे। घुटनों पर कोई मोटी किताब या दफ्ती पर कागज रखकर लिखते थे। कलम-दावात प्रयोग करते थे। फाउन्टेनपेन से कभी नहीं लिखते थे। अखबारों के कतरनों को तथा अखबारों के संग्रह को बड़ी सावधानी से रखते। चिट्ठियों में से अनावश्यक कागज निकाल लेते और लिफाफों के अन्दर के कागज पर तथा समाचारपत्रों के खोलों पर लम्बे-लम्बे लेख लिखते चले जाते। यह नहीं था कि वे एक लेख एक ही दिन में समाप्त कर देते। प्रायः थोड़ा-थोड़ा प्रतिदिन लिखते। यह सब उनकी वृद्धावस्था के समय की बात है जब वे सरस्वती के संपादन से अवकाश ले चुके थे। आमों का उन्हें बड़ा शौक था। आम खाने से उनका स्वास्थ्य ठीक रहता था। उनके बहुत से निजी बाग थे। इसके अतिरिक्त कई बाग वे ग्रामों की फसल में अपने तथा कुटुम्ब के लिये मोल ले लेते थे। ढेरों आम उनके घर में आ जाते थे। उन दिनों स्त्रियों को बहुत काम करना पड़ता। आमों को ठीक तरह से रखना, उनसे अमरस आदि निकालना--इन सब कामों में अधिक समय लगता था। दोपहर का भोजन भी इसीलिए देर में बनता था। द्विवेदीजी की डायरी में यह नोट रहता था कि अमुक बाग में अमुक वृक्ष हैं और लगभग उनमें इतने कच्चे आम लगे हैं। इसी तरह गाय या भैंस के गर्भाधान की तारीख से लेकर बच्चा देने तक की तारीख लिखी रहती थी।

बिना पहले से सूचना दिये हुए यदि कोई अतिथि द्विवेदीजी के यहाँ पहुँच जाता तो यह उन्हें अच्छा नहीं लगता था। पहले वे उसे बहुत डाँटते थे, फिर उसके आदर-सत्कार में कोई कमी नहीं करते थे। एक बार हमारे घर से हमारा भतीजा अपनी चाची (द्विवेदीजी की भांजी जो मुझको ब्याही थी) को बिदा कराने यों ही उनके यहाँ पहुँच गया। द्विवेदीजी ने कहा, तुमने पहले यहाँ आने की सूचना क्यों नहीं दी? तुम्हें मालूम है, हमारे घर में गेहूँ है या नहीं? अतिथि-सत्कार द्विवेदीजी खूब करते थे। परन्तु अतिथि का और अपना समय व्यर्थ नष्ट नहीं होने देते थे। यह नहीं कि जो महाशय उनके घर जायँ तो दिन में अधिक समय तक द्विवेदीजी ही से बात करते रहें। गाँव-घर में तो प्रायः यह होता है कि कोई प्रिय अतिथि आया तो अधिकांश समय उसी के आवभगत, सेवा-सत्कार में बीतता है। ऐसी बातों को द्विवेदीजी बुरा समझते थे। यह सब उनकी नियम-प्रियता के उदाहरण हैं।

पारिवारिक जीवन में उनकी स्त्री के देहान्त के बाद उनका अपना कोई नहीं था। तो भी उन्होंने अपने भांजे-भांजियों को और दूर के सम्बन्धियों को अपने यहाँ लाकर रक्खा और पालन-पोषण किया। लखनऊ के एक वाज-पेयी परिवार को तो उन्होंने पूरी सहायता दी। लड़कों को पढ़ाया-लिखाया और उनका पोषण किया। वे पूरे गृहस्थ थे। स्वावलम्ब उनका ध्येय था। किसीसे कोई भेंट या सहायता की चाह नहीं रखते थे। बड़े-बड़े धनी लोग इस ताक में रहते थे कि वे कुछ उनसे माँगें। किन्तु याचना करना तो उनके स्वभाव के बिलकुल विपरीत बात थी।

वृद्धावस्था और निर्बलता बढ़ने पर उनका वैराग्य भी दिन पर दिन बढ़ता जाता था। वे माया-मोह से रहित हो गये थे। अपने जीवन और शरीर से उन्हें घृणा हो गयी थी। और इसी तरह वे परम शान्ति की गोद में सो रहे। इस समय उनके भांजे श्री कमलाकिशोर त्रिपाठी अपनी स्त्री-सहित द्विवेदीजी के घर को बसाये हुए हैं।

आचार्य द्विवेदीजी का एक पत्र

श्री अमरबहादुर सिंह 'अमरेश'

'हिन्दी अछूत हो रही है।'

'कचहरी की उर्दू देखते ही मेरा दिल धड़कने लगता है।'

आचार्य द्विवेदी जी की कठोरता खटाई में पड़ गयी। उनकी अनुशासनप्रियता बगलें झाँकने लगी। वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ से होकर रह गये।

बात कुछ नहीं।

गाँव-पंचायत का मामला जो ठहरा। अँगरेजी में आदेश पर आदेश आ रहे थे।

मई १९३५ की बात है। आचार्यजी 'सरस्वती' से अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् अपने ग्राम दौलतपुर में रह रहे थे। वह ग्राम-पंचायत दौलतपुर के सरपंच थे। सरस्वती के 'नियमनारायण शर्मा' जी को यह सरपंची बहुत महँगी पड़ रही थी। गाँव में समर्थक कम, विरोधी अधिक थे। हिन्दी-भाषा में समरूपता लाने के लिए उन्होंने जो कठोर रूप धारण किया था उसकी छाया अब भी उनके चेहरे पर विद्यमान थी। वह गाँव का नव-निर्माण चाहते थे। इधर सरकारी छड़ी छूनेवाला मामूली चौकीदार भी अपने को गाँव का गवर्नर ही समझता था। पंचायत-अधिकारियों एवं क्लर्कों की बात तो दूर।

सरकार की ओर से जिला कार्यालय में एक पंचायत क्लर्क रहता था। वही संपूर्ण जिले की पंचायतों का कार्य करता था। आवश्यक रूप-पत्र (प्रपत्र), रसीदें तथा राजकीय आदेश वह समय-समय पर पंचायतों को भेजा करता था। राजकीय आदेश प्रायः अँगरेजी अथवा उर्दू में आते थे। उस समय यही दोनों भाषायें राजकीय कार्यों के लिए मान्य थीं। कचहरी में हिंदी का कहीं नामोनिशान तक न था। पंचायत क्लर्क द्विवेदीजी के पास अँगरेजी अथवा उर्दू में ही परिपत्र एवं आदेश भेजा करता था। सबसे मजे की बात तो यह कि आचार्यजी से संबंधित क्लर्क हिंदी जानता ही न था। और उसका पाला पड़ गया था हिंदी के भीष्म पितामह से। आचार्यजी को अँगरेजी और उर्दू दोनों भाषाओं का अच्छा ज्ञान था। फिर भी उन्हें अँगरेजी और उर्दू के आदेश पत्रों से आत्मिक कष्ट होता था। यह चिट्ठियाँ उन्हें खल रही थीं। पर करते क्या? विवशता थी। मन मसोसकर रह जाते। इन अँगरेजी पत्रों से वह ऊब गये। लेकिन ग्राम-पंचायत के सरपंच होने के नाते वह इसका खुला विरोध नहीं कर सकते थे। फलस्वरूप वह अवसर की ताक में रहने लगे।

संध्या का समय था। पत्रवाहक चपरासी पंचायत का डाक लेकर दौलतपुर आया। डाक देखते-देखते आचार्यजी का चेहरा गंभीर हो गया। उन्होंने पत्रों के बीच से एक सरकारी लिफाफा बाहर निकाला। लिफाफे में एक अगरेजी में पत्र था और अँगरेजी में ही पता लिखा था: श्रीपं० महावीरप्रसाद त्रिवेदी, सरपंच ग्राम पंचायत दौलतपुर। फिर क्या था! द्विवेदीजी को अपना क्रोध निकालने का अवसर प्राप्त हो गया। वह ऐसे अवसर की ताक में थे ही। नाम की गलती का बहाना बनाकर मातृभाषा हिंदी की उपेक्षा पर वह तड़प उठे। छाती में दबा हुआ ज्वालामुखी आग लावा उगलने लगा। उन्होंने उस अँगरेजी पत्र को तत्काल ही वापस करते हुए लिखा:

जनाब पंचायत क्लर्क साहब,

आप अपनी अँगरेजी की चिट्ठी लीजिए। अँगरेजी में मैं Well versed नहीं। आप लोगों के सुभीते के लिए किसी तरह उस ज़बान में काम चलाऊ कुछ पढ़-लिख लेता हूँ। क्या करूँ, कचहरी की उर्दू से मेरी बहुत कम जान पहचान है। उसे तो देखते ही मेरा दिल धड़कने लगता है। हाँ, हिंदी कुछ लिख लेता हूँ। मगर उसकी पैठ आपकी कचहरी में कहाँ? वह तो वहाँ अछूत हो रही है। देखूँ, मेरे इस लिखावट को आप दाद देते हैं या नहीं।

आपने लिफाफे के ऊपर मुझे द्विवेदी से त्रिवेदी बना डाला। मेरा एक वेद बढ़ा दिया। इसका शुक्रिया अदा करता हूँ। किसी तरह आपका नाम मालूम हो जाता तो नवाजिश होती।

सरकार, रसीद बुक (Forms) की कापियाँ तो भेजवा दीजिए। दो दफे लिख चुका। अब और क्या करूँ, तार भेजूँ?

म० प्र० द्विवेदी

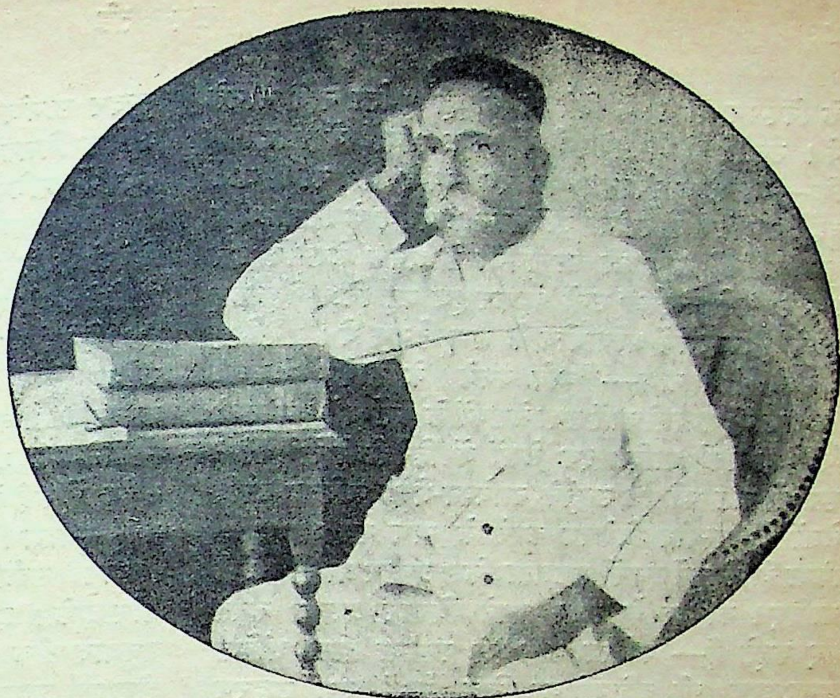
३०.५.३१

आचार्यजी के उक्त महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक पत्र में जहाँ तीखा व्यंग्य है वहीं हिंदी की उपेक्षा पर झुंझलाहट और आक्रोश भी। आज युग बदल गया है। समय बदल गया है। हिंदी राष्ट्रभाषा हो गयी है किन्तु लगता है कचहरी में वह अभी भी अछूत ही है। अभी भी सामान्यतः काम अंगरेजी में होता है। उसकी यह दशा कब तक रहेगी, कहा नहीं जा सकता। आचार्यजी के यह शब्द आज भी प्रश्न चिह्न बनकर सामने खड़े हैं। हमें इसका उत्तर देना है।

समर्थ आलोचक

श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी

श्रीमती सतवन्ती देवी व्यास



द्विवेदीजी कार्यालय में

भारतीय साहित्य अत्यधिक समृद्ध एवं सम्पन्न है। उसे महाकवि कालिदास एवं भास जैसे साहित्य-महारथी ... एवं भरत, अभिनवगुप्त जैसे आचार्य प्राप्त हुए। ...हिंदी-साहित्य को भी इसी प्रकार महान् विवेचक ... आचार्य प्राप्त हुए हैं। इसी श्रृंखला में एक कड़ी ... का सफल कार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने ... है। महावीरप्रसाद द्विवेदी हिन्दी-साहित्य में ...स्वती मासिक-पत्रिका के सम्पादक के रूप में ...रित हुए। इस सम्पादकत्व के अन्तर्गत द्विवेदीजी के ...भिन्न रूप उभरे हैं। प्रस्तुत विवेचन में हम द्विवेदीजी के आलोचक रूप पर ही विचार करेंगे।

...मान्यताएँ निश्चित हो चुकी हैं कि हिंदी-साहित्य ...भारतेंदु-काल से आलोचना क्षेत्र में नयी राह एवं थाह ...। परन्तु उसका महत्त्वपूर्ण विकसित रूप आचार्य द्विवेदीजी में आकर पूर्ण हुआ, जो नयी उद्‌भावनाओं के ... हिन्दी-साहित्य में आचार्यप्रवर शुक्ल के रूप में ...पित हुआ। यही रूप आज हिंदी-साहित्य-आलोचना ... महत्त्वपूर्ण मानदंड बन गया है।

आचार्य द्विवेदीजी ने समीक्षा अपनी रुचि के अनु-...र बदली। आचार्य द्विवेदी निडर एवं स्पष्टवादी व्यक्ति ...। उनका इस क्षेत्र में पदार्पण हिन्दी-साहित्य में मणि-...न योग था। आचार्य द्विवेदी ने अपनी समीक्षा-संबंधी ...धाराओं के अनुसार हिंदी-समीक्षा को नया मोड़ ...। द्विवेदीजी हिन्दी समीक्षा में युगान्तरकारी व्यक्तित्व के साथ प्रविष्ट हुए। आचार्य द्विवेदी ने समीक्षा के साथ व्याकरण एवं भाषा की त्रुटियाँ भी दूर कीं। आचार्य द्विवेदी ने समीक्षा के वर्ण्य-विषयों का भी परि-मार्जन किया। कवियों के क्षेत्र को नायिका-भेद, श्रृंगार अभिसार, प्रेम-प्रसंग तक ही सीमित नहीं रहने दिया। द्विवेदीजी ने हिन्दी समीक्षा के रूप में 'सरस्वती' के माध्यम से सुन्दर एवं चुभते व्यंग्य चित्र भी प्रस्तुत किये।

आचार्य द्विवेदीजी ने हिन्दी आलोचना को भारतेन्दु काल के अनन्तर समर्थ राह प्रदान की। उनकी आलोचना को हम त्रय-सिद्धान्त के अन्तर्गत ले सकते हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) आचार्य-प्रणाली, (२) सूक्ति-प्रणाली, एवं (३) आलोचन-प्रणाली।

आचार्य प्रणाली—आचार्य शब्द स्वयं में अर्थ व्यंजित करने में सफल है। साथ ही हम संस्कृत के आचार्यों से पूर्णतः परिचित हैं। संस्कृत के आचार्यों ने काव्यादि के लक्षण-ग्रंथों का प्रणयन कर आचार्य प्रणाली प्रस्तुत की। आचार्य द्विवेदी ने आचार्य-प्रणाली के अनसार अपनी आलोचना-पद्धति का निरूपण अवश्यमेव किया है, परन्तु वे अपने मौलिक रूप में हमारे समक्ष उपस्थित हुए हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि द्विवेदीजी ने आचार्य-प्रणाली में लक्षणों के प्रतिपादन को स्पष्ट न कर अन्य रूप में आचार्यत्व को प्रतिष्ठित किया। रसज्ञरंजन, नाट्यशास्त्र आदि में द्विवेदीजी ने इसी प्रणाली के आधार पर अपनी मान्यताएँ प्रस्तुत की हैं। वे छन्द, पद-ध्वनि, अलंकारादि

के निरूपण या उसके विवेचन को ही पूर्णता नहीं मानते थे। उन्होंने विचार-विमर्श में स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि--"छन्द, अलंकार, व्याकरण आदि तो गौण बातें हुईं। उन्हींपर जोर देना अविवेकता प्रदर्शन के सिवा और कुछ नहीं।" साथ ही आचार्यजी ने अनेक लेखादि इस प्रकार लिखे हैं कि "उन्हें पढ़कर हम यह निःसन्देह कह सकते हैं कि इनमें आचार्यत्व के सम्पूर्ण गुण थे।" देखिए कुछ लेखों के नाम--"'कवि बनने के सापेक्ष साधन', 'सम्पादकों, समालोचकों तथा लेखकों के कर्त्तव्य', 'कविता', 'नायिका-भेद' आदि। इन लेखों में द्विवेदीजी ने सूत्रों के रूप में बात की है। उन्होंने नायिका-भेद, कविता आदि लेखों में शास्त्रीय विवेचन करने के साथ यह भी संकेत किया है कि हमें इनमें सफलता किस प्रकार प्राप्त करनी चाहिए। कविता के ऊपर अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहते हैं--"कविता कवि की कल्पना द्वारा अंकित अन्तःकरण की वृत्तियों का चित्र है।" एक उद्धरण आप "कालिदास और उनकी कविता" का देखिए--"जिस साहित्य में समालोचना नहीं वह विटपहीन महीरुह के समान है। उसे देखकर नेत्रानंद नहीं होता। उसके पाठ और परिशीलन से हृदय शीतल नहीं होता। वह नीरस मालूम होता है।" कहने का तात्पर्य यह है कि आचार्य द्विवेदी ने आचार्य-प्रणाली में आलोचना का महत्त्वपूर्ण अंग प्रस्तुत किया है। इसके अन्तर्गत आपने काव्य के भिन्न-भिन्न रूपों का अत्यन्त ही मार्मिक ढंग से विवेचन प्रस्तुत किया है। अतः हम कह सकते हैं कि आचार्य द्विवेदीजी आचार्य-प्रणाली के सिद्धहस्त आलोचक थे।

सूक्ति-प्रणाली--सूक्ति-प्रणाली में लिखी गयी आलोचना प्रायः कविप्रशंसा, आचार्य प्रशंसा आदि के रूप में उल्लिखित होती है। जैसे--

सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगें, घाव करें गंभीर॥

वसे तो आचार्य द्विवेदी ने सूक्ति-प्रणाली में अधिक आलोचना नहीं की है तिस पर भी उनके निबंधों में यत्र-तत्र इस प्रणाली का बिखरा रूप मिलता है। आचार्यजी स्पष्टवक्ता थे एवं सत्य के प्रकाशन में कभी भी पीछे नहीं हटते थे। एक बार इनसे कहा गया किसी मित्र के बारे में लिखा जाय, तो आपने स्पष्ट रूप में कहा है--"मित्रता के कारण किसी की पुस्तक की अनुचित प्रशंसा करना विज्ञापन देने के सिवा और कुछ नहीं है।" सूक्तियों का सुन्दर सामंजस्य हमें द्विवेदीजी की अपेक्षा शुक्लजी अधिक मिलता है। इनकी सूक्तियाँ प्रायः उपदेशा रूप में अधिक मिलती हैं।

आलोचन-प्रणाली--आलोचन-प्रणाली में आ द्विवेदीजी ने उच्चकोटि का कार्य किया है। सही में द्विवेदीजी की समीक्षा का प्राण यही प्रणाली या प है। द्विवेदीजी के इस प्रणाली का सहारा लेने का प्र उद्देश्य हिन्दी में फैल रहीं गलत धाराओं का सम करना था। वास्तव में इस प्रणाली में आलोचक दोषों दिखाने की ओर अधिक झुकता है। द्विवेदीजी ने समय में कई लेखकों एवं कवियों के दोष स्पष्ट किये उन्हें सुधारा। साथ ही साथ उन्हें उचित मार्ग का प्रद किया। सर्वप्रथम द्विवेदीजी अनुवादित साहित्य की ओर झुके। इस ओर भी इन्होंने यह स्पष्ट किया अनुवाद ठीक तरह से किये जाने चाहिए। अनुवादों दोष-पूर्ण प्रणाली का उत्तम ढंग से दिग्दर्शन द्विवेदी ने किया एवं संस्कृत के महान् कवियों कालिदास के साहित्य की महत्ता को लगते हुए धक्के को संभाला इसी प्रणाली के अन्तर्गत द्विवेदीजी ने रचनाकार अन्तर्दृष्टि की विशद समीक्षा की है। उसके का की पहुँच, साहित्य के स्वरूप आदि का विस्तृत विवेच प्रस्तुत किया है। इस प्रणाली के अंतर्गत द्विवेदीजी रचनाकार की अंतःसमीक्षा अवश्य की, परन्तु यह समी साहित्य-शास्त्र के नियमों तक ही सीमित रही है। ति पर भी हम देखते हैं कि आलोचन-प्रणाली के अन्त 'मेघदूतरहस्य, रघुवंश, अकबर के राजत्व काल में हिंदी आदि लेखों में उन्होंने आलोचन का महत्त्वपूर्ण रूप प्रस्तुत किया है।

आचार्यजी की समीक्षा के तीन रूपों का संक्षेप विवरण प्रस्तुत किया है। हमारे मत में आचार्य आलोचक के रूप में नहीं, वरन् सफल सम्पादक के में हमारे सामने आये। हिन्दी और हिन्दी-लेखकों कवियों की दोषपूर्ण कृतियों ने उन्हें अपने आप सम्पाद के साथ आलोचक बना दिया। अतः हम कह सकते हैं आचार्यजी ने आलोचक का रूप युग-निर्माण करने के लि ही लिया था। देखा जाय तो द्विवेदीजी की हमें ऐसी को वृत्ति नहीं मिलती जिससे कि यह स्पष्ट हो कि उ 'आलोचना के लिए आलोचना करने में' मजा आता था

तिस पर भी यह पूर्णरूप से कहा जा सकता है आचार्य द्विवेदीजी बीसवीं सदी के समर्थ आलोचक



समालोचक द्विवेदीजी

श्री अशोक महाजन

आज से कुछ दशाब्दियों पूर्व जब अधिकांश हिन्दी-साहित्यसेवी एक ओर तो व्यर्थ की तू-तू मैं-मैं में फँसे और दूसरी ओर बँगला, अँगरेजी और संस्कृत आदि के ग्रंथों का अनुवाद करके दूसरों को ठग रहे थे, उस समय साहित्य-वाचस्पति द्विवेदीजी ने युग-निर्माण के महान् कार्य के निर्वाह के लिए आलोचना को तप के रूप में स्वीकार कर समालोचक का बाना धारण किया। उनकी आलोचनात्मक समीक्षाओं ने भाषा को सुव्यवस्थित करके हिन्दी-साहित्य की ईदृक्ता और इयत्ता को उन्नत करने की भूमिका प्रस्तुत की जिससे आगे चलकर मननीय ठोस ग्रन्थों की रचना हो सकी।

किसी रचना के गुणदोष एवं उस रचना के निर्माता की मनोवृत्तियों एवं प्रवृत्तियों के सूक्ष्म विवेचन की कला का ही नाम समालोचना है। आलोचना का लक्ष्य एक निश्चित मत का निर्धारण एवं रुचि का परिष्कार है। आलोचना साहित्य-उन्नति के लिए एक अनिवार्य सोपान है। स्वस्थ आलोचना से ही पूर्णता की प्राप्ति होती है।

द्विवेदीजी निर्भय प्रकृति के व्यक्ति थे। किसीकी [illegible]कता उन्हें स्वीकार्य न थी। अंधानुकृति से उन्हें [illegible] थी। उनकी रचनाएँ व आलोचनाएँ इसीलिए वादों से सर्वथा मुक्त हैं। डा० उदयभानुसिंह के मतानुसार, "द्विवेदीजी न तो भरत, विश्वनाथ आदि की भाँति रीतिवादी हैं, न भामह आदि की भाँति अलंकारवादी हैं, न [illegible] आदि की भाँति रसवादी हैं, न कुंतक आदि की भाँति वक्रोक्तिवादी हैं, न आनंदवर्धन, अभिनवगुप्त आदि की भाँति ध्वनिवादी हैं, न पंडितराज जगन्नाथ की भाँति चमत्कारवादी हैं और न पश्चिमीय समीक्षा-प्रणाली से प्रभावित आलोचक की भाँति अन्तःसमीक्षावादी। उनकी आलोचनाओं में सभी वादों के सार का समन्वय है।"

समालोचना सम्बन्धी आदर्श

समालोचना एक निष्पक्ष कार्य है। अपनी एक पुस्तक में द्विवेदीजी ने सुबंधु की 'वासवदत्ता' के निम्नांकित श्लोक को उद्धृत करके आलोचना के अर्थ और प्रयोजन की ओर संकेत किया है—

गुणिनामपि निजरूपप्रतिपत्तिः परत एव संभवति।
स्वमहिमदर्शनमक्ष्णोर्मुकुरतले जायते यस्मात्॥

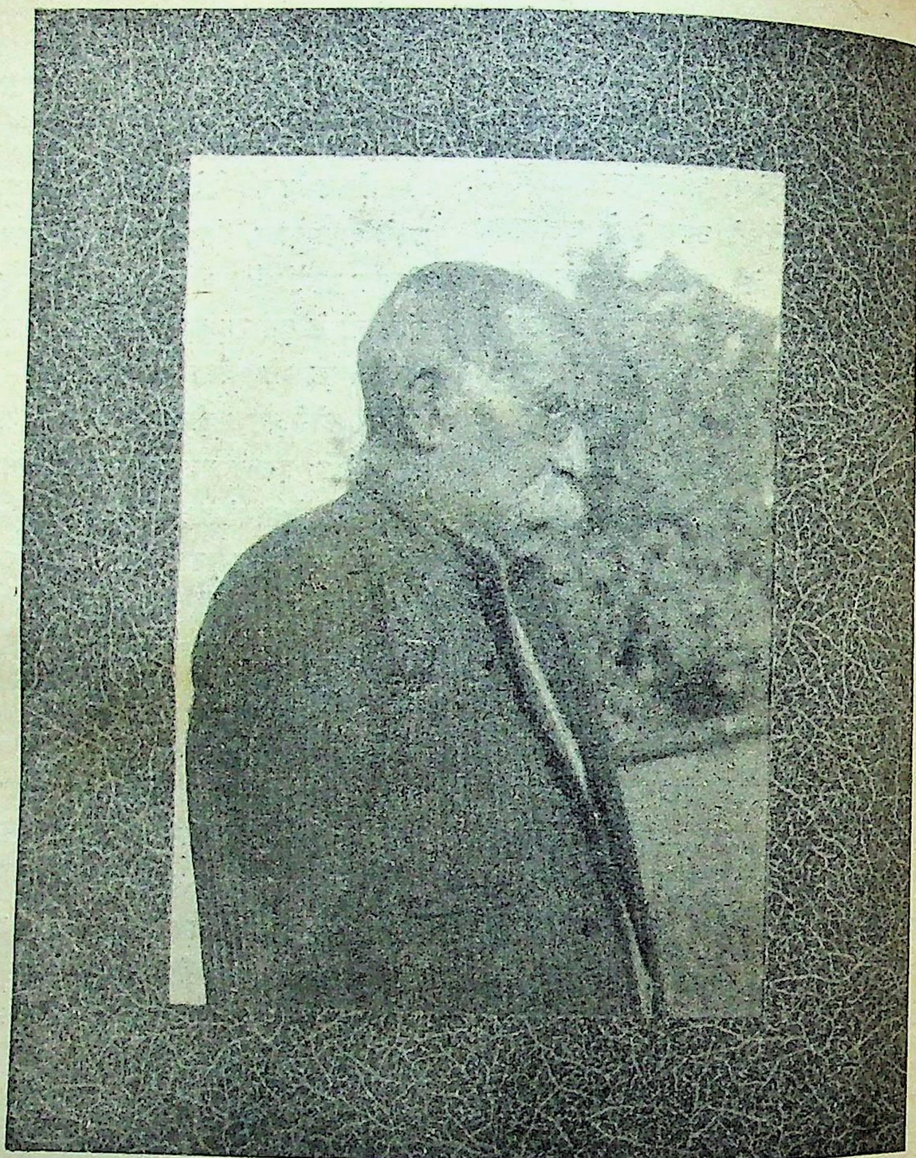
दोषदर्शन को द्विवेदीजी ने कभी बुरा नहीं समझा। उनके मतानुसार, "समालोचक की उपमा न्यायाधीश से दी जा सकती है। जैसे न्यायाधीश राग, द्वेष और पूर्व-संस्कारों से दूर रह कर न्याय का काम करता है, सच्चा समालोचक भी वैसा ही करता है। उसके फैसले को सुनकर कोई प्रसन्न होगा या अप्रसन्न; उसकी निंदा होगी या प्रशंसा; इसकी वह कुछ परवाह नहीं करता।...बड़े-बड़े कवि, विज्ञानवेत्ता, इतिहास-लेखक और वक्ताओं की कृतियों पर फैसला सुनाने का उसे (सच्चे समालोचक को) पूरा अधिकार है।"

यह तो हुई समालोचना-सम्बन्धी आदर्श की बात। अब द्विवेदीजी की आलोचना-पद्धतियों पर विचार कीजिए—

(अ) **आचार्य पद्धति**—यह वस्तुतः आलोचना की पीठिका है। द्विवेदीजी की आचार्य पद्धति पर की गयी आलोचनाओं की प्रधान विशेषता यह है कि उन्होंने हिंदी विद्यापीठ के वास्तविक आचार्यपद से ही सिद्धान्त-समीक्षा की है। छंद-अलंकारादि निदर्शक के आसन से कोरा सिद्धान्त-निरूपण ही उनका ध्येय नहीं रहा है। लेखक या उसकी कृति की आलोचना करने में जब अपने कथन को प्रमाणित करने की आवश्यकता उन्हें हुई तो द्विवेदीजी ने वहाँ अपने या अन्य आचार्यों के सिद्धान्तों का उपस्थापन किया। उदाहरणार्थ कालिदास के ग्रन्थों की आलोचना करते हुए उन्होंने लिखा है—"जिस साहित्य में समालोचना नहीं, वह विटपहीन महीरुह के समान है। उसे देखकर नेत्रानंद नहीं होता। उसके पाठ और परिशीलन से हृदय शीतल नहीं होता। वह नीरस मालूम होता है।"

(आ) **टीका पद्धति**—'कालिदास की वैवाहिक कविता' और 'कालिदास की कविता में चित्र बनाने योग्य स्थल' आदि व्याख्यात्मक आलोचनाएँ टीका पद्धति द्वारा ही की गयी हैं।

(इ) **शास्त्रार्थपद्धति**—द्विवेदीजी ज्ञान के अक्षय भण्डार थे। किसी विषय की आलोचना करते समय वे



आचार्य ध्यान-मुद्रा में

अपनी बात को पांडित्य व तर्क के बल से अकाट्य प्रमाणित करके ही छोड़ते थे। 'नैषधचरित चर्चा और सुदर्शन', 'भट्टी कविता', 'भाषा और व्याकरण' आदि आलोचनाएँ शास्त्रार्थ-पद्धति पर की गयी हैं।

(ई) **सूक्ति-पद्धति**—द्विवेदीजी द्वारा सूक्ति-पद्धति पर की गयी आलोचनाएँ अपेक्षाकृत बहुत कम हैं। द्विवेदीजी की सूक्तियों में निष्पक्षता है। हाँ, ओज और प्रभावोत्पादकता लाने के लिए कहीं-कहीं प्रशंसात्मक पदों की योजना अवश्य कर दी गयी है। उदाहरणार्थ, सरस्वती के जन० सन् १९०५ के अंक में श्रीधर पाठक की 'काश्मीर-सुषमा' की जो आलोचना प्रकाशित हुई है, वह पद[illegible] है।

(उ) **खण्डन पद्धति**—द्विवेदीजी की खण्डन[illegible] दो प्रकार की है—अभावमूलक और दोषमूलक। [illegible] का लक्ष्य था हिंदी के अभावों की आलोचना कर[illegible] उनकी पूर्तियों के लिए हिंदी-सेवियों को प्रेरित [illegible] 'हिन्दी नवरत्न' और 'कवियों की उर्मिला विषयक [illegible] सीनता' आदि लेखों में आलोचना की इस पद्धति [illegible] पुट है। द्विवेदीजी की दोषमूलक पद्धति का उद्दे[illegible] घटिया किस्म के साहित्य की निंदा करना और [illegible]

...कों की रचनाओं की धज्जियाँ उड़ाना। यदि द्विवेदी- ...उस समय इस आलोचना-पद्धति का सहारा न लेते ...आज हिन्दी साहित्य हमें इस उन्नत-स्वरूप में देखने को ...मिलता।

(क) ...लोचन-पद्धति––उनकी यह पद्धति चार प्रकार ...है––तुलनात्मक, सौंदर्यमूलक, ऐतिहासिक और जीवनी- ...। 'मेघदूत-रहस्य', 'रघुवंश' और 'किरातार्जुनीय' ...की आलोचनायें द्विवेदीजी ने इसी पद्धति पर लिखी

आलोचना-शैली

द्विवेदीजी की आलोचना-शैली के तीन रूप हैं––

(अ) तार्किक शैली––हास्य के पुट से युक्त

(ब) व्यंग्यपूर्ण

(स) ओजपूर्ण-कटाक्ष।

तार्किक शैली का एक उदाहरण 'नैषध-चरित-चर्चा ...सुदर्शन' शीर्षक लेख है। इसमें द्विवेदीजी ने सुदर्शन- ...की 'नैषध-चरितचर्चा' की आलोचना का ...किया है। उनके विचारों में दृढ़ता और तार्किक ...है––"श्रीहर्ष ने क्या हमारा घोड़ा खोला था जो ...उनपर अप्रसन्न होते।" यों तो द्विवेदीजी व्यंग्य- ...थे। उनकी सम्पादकीय टिप्पणियों में हमें ...व्यंग्यात्मक शैली के दर्शन होते हैं। 'भाषा पद्य- ...' की आलोचना करते वक्त द्विवेदीजी व्यंग्य ...करते हैं––

"इस व्याकरण के कर्ता आचार्यजी व्याकरण को भी ...में लिखकर उसे लड़कों से रटाना चाहते हैं। हाँ, ...! आप विद्वान्, आप पंडित, आप आचार्य और हम ...अज्ञ और दुर्जन, क्योंकि हमें आपका यह व्याकरण ...नहीं। 'सरकार की सेवा करते-करते' और 'प्रधान- ...संस्कृत पढ़ते-पढ़ाते' आपने अज्ञता और दुर्जनता की ...पहचान बतायी। आपकी संस्कृतज्ञ लेखनी सचमुच ...विलक्षणताओं की कामधेनु है।"

...होती है उनकी दंशशैली और सीधे प्रहार का ...। द्विवेदीजी की व्यंग्यात्मक शैली का एक और ...प्रस्तुत है––

"सरकार ने पागलों के मनोरंजन के लिए बहुत से प्रबंध कर रक्खे हैं। पागलों के लिए पचीसी, शतरंज और ताश खेलने के लिए वक्त मुकर्रर है। वे लोग फुटबाल और टेनिस भी खेलते हैं। हर रविवार को ढोलक बजती है, मँजीरे की भी किट-किट होती है और साथ ही दिल लुभानेवाला गाना भी होता है। जनाबेआली, रंडियाँ भी कभी-कभी पागलखानों में छमाछम करती हुई आती हैं। वे नाचते समय अपने हाव-भाव दिखाकर और गाना सुनाकर हर कक्षा के पागलों के दिमाग को ठिकाने लगाने की चेष्टा करती हैं। पर एक बात की कमी है। पागलखानों में कुछ ग्रामोफोन भी रहने चाहिए और उनपर बजाने के लिए अन्य रेकार्डों के साथ एक यह भी रेकार्ड होना चाहिए–– "राज करैं अँगरेज सदा ही।"

उनकी शैली का तीसरा रूप ओजपूर्ण है। एक साहित्यिक ने उन दिनों "अँगरेजी राज्य के सुख"–– शीर्षक एक पुस्तक लिखी जिसकी उन्होंने ओज-कटाक्षपूर्ण ढंग से आलोचना करते हुए यह टिप्पणी लिखी––"समाचारपत्रों और राजनीति की चर्चा करनेवाले भारतीयों को राजद्रोही कहकर लेखक ने अपने हृदय का कालुष्य भ्रम सबको दिखा दिया है। . .लेखक के पास क्या सबूत है कि सारे भारतवासी वैसे ही हैं जैसा कि लेखक महाशय उन्हें बताते हैं?"

उक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि द्विवेदीजी में अप्रिय सत्य को भी स्पष्ट कह देने का अद्भुत साहस था। वस्तुतः उनकी आलोचनाओं की प्रमुख विशेषता हिन्दी के प्रति पूजाभाव, अमायिकता, आराधना और तप में है।

डाक्टर जान्सन की तरह द्विवेदीजी के साहित्यिक कोड़ों की चोट से बहुत से अनधिकार-चेष्टा करनेवाले लेखकों को समय-समय पर तिलमिलाना पड़ता था। यह उनकी सर्जनात्मक सकर्मक आलोचनाओं का ही पुण्य परिणाम है कि आज हिन्दी-संसार मैथिलीशरण गुप्त, रामचन्द्र शुक्ल, डा० गुलाबराय जैसे अनेक साहित्यकारों के यशःसौरभ से सुवासित है।

आचार्य द्विवेदी : घर में

श्री रामस्वरूप दुबे एम० ए०, एल्-एल० बी०

साहित्यकारों के ज्ञान और रचनाशैली का परिचय उनके प्रकाशित ग्रन्थों से सहज ही मिल जाता है और प्रायः साहित्यकार के इसी पक्ष की ओर ध्यान भी अधिक दिया जाता है। साहित्यकार का अपना जीवन भी कुछ है और उसकी वैयक्तिक मान्यताओं अथवा परिस्थितियों का भी कोई महत्त्व है, इस बात को दृष्टि में रखकर यदि उसगी रचनाओं का अध्ययन किया जाय तो अध्ययन एकांगी होने के दोष से निश्चय ही बच जाय। वास्तविकता यह है कि पूर्ण अध्ययन के लिये अभिव्यक्ति के साथ-साथ अनुभूति अथवा स्रोतस्थल का परिचय प्राप्त करने का भी प्रयत्न होना चाहिये।

साहित्यकार की रचनाओं का सृजन किन परिस्थितियों में हुआ, इसका ज्ञान रचयिता के निकट सम्पर्क से, उसके सम्बन्ध में निकटस्थ व्यक्ति से हुई वार्ता के द्वारा, अथवा रचयिता की "आत्मकथा" के अध्ययन से होता है। वैयक्तिक पत्रों में भी इससे संबंधित सामग्री प्रायः मिल जाती है। सौभाग्य से आचार्य द्विवेदी की "आत्मकथा" उपलब्ध है और साथ ही उनके कुछ पत्र भी। उनके पत्रों का एक अच्छा संकलन श्री बैजनाथसिंह "विनोद" ने किया है। संपादकाचार्य श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने भी समय-समय पर उनके कुछ पत्र उद्धृत किये हैं।

द्विवेदीजी ने अनेक मौलिक तथा अनूदित ग्रन्थ हिन्दी जगत् को दिये और अनेक कवि तथा लेखकों का निर्माण किया, पथ-निर्देश किया, शुद्ध लिखना सिखलाया [illegible] स्वयं उनका जीवन आर्थिक अभाव और संघर्ष का [illegible] जागता उदाहरण था। दौलतपुर के इस ब्राह्मण [illegible] प्रारंभिक जीवन कितना कष्टमय था? "आत्मक[illegible] में उन्होंने लिखा है—"मैं एक ऐसे देहाती का एक[illegible] आत्मज हूँ, जिसका मासिक वेतन सिर्फ दस रुपया [illegible] अपने गाँव के देहाती मदरसे में थोड़ी सी उर्दू और घर [illegible] थोड़ी सी संस्कृत पढ़कर तेरह वर्ष की उम्र में ३६ [illegible] दूर, रायबरेली के जिला स्कूल में अँगरेजी पढ़ने [illegible] आटा दाल घर से पीठ पर लादकर ले जाता था। [illegible] आने महीना फीस देता था। दाल ही में आटे के पे[illegible] टिकियायें पका करके पेट-पूजा करता था। रोटी [illegible] तब मुझे आता ही न था। संस्कृत भाषा उस समय [illegible] स्कूल में वैसी ही अछूत समझी गयी थी, जैसे कि मद्रा[illegible] नम्बूदरी ब्राह्मणों में वहाँकी शूद्र जाति समझी जाती [illegible] विवश होकर अँगरेजी के साथ फारसी पढ़ता था। [illegible] वर्ष किसी तरह वहाँ काटा। फिर पुरवा, फतेहपुर [illegible] उन्नाव के स्कूलों में चार वर्ष काटे। कौटुम्बिक दु[illegible] के कारण मैं उससे आगे न बढ़ सका। मेरी स्कूली [illegible] की वहीं समाप्ति हो गयी।"

द्विवेदीजी को भी भरण-पोषण के लिए नौकरी ही [illegible] थी—'एक साल अजमेर में १५ रु० महीने पर [illegible] करके पिता के पास बम्बई पहुँचा और तार का काम [illegible] कर जी० आई० पी० रेलवे में २० रुपये महीने पर [illegible]

१६६४

...नु बना।' नये-नये काम सीखते रहकर, २१ वर्ष तक नौकरी करके वे २०० रुपये माहवार पाने भी लगे किन्तु ...के द्वारा किसी दूसरे पर अत्याचार हो, यह उन्हें ...कार न था। परिणाम यह हुआ कि उन्होंने इस्तीफा ...दिया और अल्प वेतन पर "सरस्वती" मासिक ...सम्पादन का कार्य स्वीकार कर लिया। इस सम्बन्ध ...द्विवेदीजी ने जो कुछ भी लिखा उससे उनकी त्याग-...ता एवं न्याय-निष्ठा और पत्नी की दृढ़ता का अच्छा ...चय मिलता है—"मैं यदि किसी के अत्याचार को ...हूँगा, तो उससे मेरी सहनशीलता तो अवश्य सूचित ...ती है पर उससे मुझे औरों पर अत्याचार करने का ...धिकार नहीं हो जाता है। परन्तु कुछ समयोत्तर बानक ...कुछ ऐसा बना कि मेरे प्रभु ने मेरे द्वारा औरों पर भी ...अत्याचार कराना चाहा। हुक्म हुआ कि इतने कर्मचारियों ...को लेकर रोज सुबह आठ बजे दफ्तर में आया करो ...और ठीक १० बजे मेरे कागज मेरे मेज पर मुझे रक्खे ...मिलें। मैंने कहा कि मैं आऊँगा पर औरों को आने के ...लिए लाचार न करूँगा। उन्हें हुक्म देना हुजूर का काम ...था, बात बढ़ी और बिना किसी सोच-विचार के मैंने ...इस्तीफा दे दिया। बाद को उसे वापस लेने के लिए इशारे ...हुए, सिफारिशें तक की गयीं। पर सब व्यर्थ हुआ। ...क्या इस्तीफा वापिस लेना चाहिए? यह पूछने पर मेरी पत्नी ...ने खिन्न होकर कहा—क्या थूककर भी कोई उसे चाटता ...है?' मैं बोला—नहीं, ऐसा कभी न होगा। तुम धन्य हो। ...तब उसने तो आठ आना रोज तक की आमदनी से भी मुझे ...खिलाने-पिलाने और गृह-कार्य चलाने का दृढ़ संकल्प ...प्रकट किया और "सरस्वती" की सेवा से मुझे हर महीने ...२०) उजरत और ३) डाक खर्च की आमदनी आती ...थी, उसीसे संतुष्ट रहने का मैंने निश्चय किया। मैंने ...सोचा—किसी समय तो मुझे महीने में १५ रुपये ही ...मिलते थे, २३) रुपये तो उसके ड्योढ़े से भी अधिक हैं। ...इतनी आमदनी मुझ देहाती के लिए कम नहीं।"

...थोड़े में भी काम चला लेने में वे अपने प्रारंभिक जीवन ...से ही अभ्यस्त हो चुके थे। उनकी मितव्ययिता आदर्श ...थी। इस सम्बन्ध में 'द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ' में श्री ...कमलापति शुक्ल ने लिखा है—"एक बार उन्होंने मुझे खासी ...डाँट बतलायी। द्विवेदीजी को मेरी फिजूलखर्ची का पता ...चल गया तो उन्होंने कहा—'मैं तो अपने तेईस रुपये मासिक में से चार रुपये प्रतिमाह बचा लेता हूँ और जनाब आप पौने दो सौ रुपये में से भी एक पैसा नहीं बचा पाते। आखिर हमें बतलाइए तो, कि आप किस चीज में ये पैसे उड़ा देते हैं।" द्विवेदीजी की मान्यता थी—

इदमेव हि पाण्डित्यमियमेव विदग्धता।
अयमेव परो धर्मो यदायान्नाधिको व्ययः॥

अर्थात्—"आमदनी से खर्च ज्यादा न करने में ही पंडिताई, चतुराई और धर्मात्मापन है।"

किन्तु, इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिये कि द्विवेदीजी कृपण थे। प्रत्युत वे इतने उदार-हृदय थे कि उन्होंने अपनी गाढ़ी कमाई का अधिकांश (आगे चलकर उनका सम्पादकीय मानदेय बढ़ गया था) हिन्दू विश्वविद्यालय को छात्र-वृत्तियों के लिए अर्पित कर दिया था। इसके अतिरिक्त अपना समस्त पुस्तक-संग्रह और एक हजार रुपया नगद नागरीप्रचारिणी सभा, काशी को दिया; रिश्ते की तीन भांजियों के विवाह और गौने तो किये ही, गैरों की दो लड़कियाँ ब्याहीं, गाँव की कई निर्धन लड़कियों के विवाह में सहायता की, कई विधवाओं का पालन किया और उन्हें वृत्तियाँ दीं, कूप-निर्माण कराया और कुटुम्ब की अन्तिम स्त्री की मृत्यु हो जाने पर अन्त्येष्टिकर्म में व्यय के साथ दीन-दुखियों में एक हजार रुपये का वितरण भी किया।

श्रेष्ठ मनुष्य में जहाँ अनेक गुण होते हैं, वहाँ कभी-कभी कोई दुर्बलता भी उसे आ घेरती है। कुछ मित्रों के परामर्श के चक्कर में पड़कर विशेष माँग वाली और टके सीधे करनेवाली कुछ सरस पुस्तकें तैयार करने का निश्चय द्विवेदीजी ने कर डाला। इस प्रकार की पहली पुस्तक जो उन्होंने लिखी उसका नाम था "तरुणोपदेश"। मित्रों को जब उसमें पर्याप्त सरसता न मिली तो उन्होंने दूसरी पुस्तक लिखी "सोहागरात"। मित्रों ने यह पुस्तक विशेष सरस पाई और द्विवेदीजी की पीठ भी खूब ठोंकी। द्विवेदीजी को प्रतीत हुआ कि बिक्री से उनके घर धन की वृष्टि होने लगेगी। किन्तु अश्लील पुस्तकों के रचयिता होने के कलंक से भी उन्हें अपनी पत्नी के विशिष्ट दृष्टिकोण के कारण ही बचना था। उन्होंने ये दोनों पुस्तकें अपनी पत्नी से छिपाकर लिखी थीं। एक दिन पत्नी ने वे पुस्तकें देख लीं। "देखा ही नहीं, उलट-पलटकर उसने उन्हें पढ़ा भी। फिर क्या था, उसके शरीर में कराल काली का आवेश हो आया। उसने मुझपर वचन-विन्यास-

रूपी इतने कड़े कशाघात किये कि मैं तिलमिला उठा। उसने उन दोनों पुस्तकों की कापियों को आजन्म कारावास या कालेपानी की सजा दे दी। वे उसके सन्दूक में बन्द हो गयीं। उसके मरने पर ही उनका छुटकारा उस दायमुल-हब्स से हुआ। छूटने पर मैंने एकान्त-सेवन की आज्ञा दे दी है, क्योंकि सती की आज्ञा का उल्लंघन करने की शक्ति मुझमें नहीं।" इस प्रकार द्विवेदीजी की पत्नी ने उन्हें "साहित्य के उस पंक-पयोधि" में डूबने से बचा लिया।

द्विवेदीजी यदि चाहते तो साधारण पुरुषों के समान लोभ में अंधे बने रहकर गृह-कलह को जन्म देते, मार-पीट करते और पुस्तकें बलात् लेकर प्रकाशित करा देते, किन्तु उन्होंने पत्नी के जीवन में ही नहीं, उसकी मृत्यु के पश्चात् भी कोई काम ऐसा नहीं किया जो पत्नी की इच्छा के विरुद्ध हो। पत्नी की बात को वे विशेष महत्त्व देते थे और यही कारण था कि अल्प आय और संघर्षमय जीवन के दिनों में भी उन्हें घरेलू शान्ति का पूर्ण लाभ सदैव प्राप्त होता रहा। उनका सद्व्यवहार पत्नी के प्रति ही न था वरन् नारीमात्र के प्रति उन्हें विशेष सहानुभूति थी। कवीन्द्र रवीन्द्र के लेख "काव्येर उपेक्षिता" (काव्य की उपेक्षितायें) ने उनकी इस सहानुभूति की भावना को और अधिक प्रोत्साहित किया। परिणाम यह हुआ कि सन् १९०८ में "सरस्वती" के जुलाई अंक में भुजंगभूषण भट्टाचार्य" के छद्म नाम से "कवियों की उर्मिला-विषयक उदासीनता" लेख लिख डाला। इस लेख का ही यह प्रभाव था कि मैथिलीशरण जी गुप्त और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने "साकेत" तथा "उर्म्मिला" शीर्षक प्रबन्ध काव्य लिखकर उपेक्षिता उर्मिला के चरित्र को विशेष रूप से उभारा। इतना ही नहीं, आगे चलकर गुप्तजी, बलदेवप्रसाद मिश्र, सोहनलाल द्विवेदी आदि कवियों ने यशोधरा, माण्डवी, तिष्यरक्षिता जैसी अन्य अनेक नारी पात्रियों को लेकर उनकी भावनाओं का चित्रण सहानुभूतिपूर्वक किया। एक प्रेरणा का प्रभाव कितना व्यापक हो सकता है, यह उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है।

रूप यह कैसा (शिवस्तुति)

डॉ० प्रेमप्रकाश गौतम

ओ अपरूप ! रूप यह कैसा ?

पुण्यमयी गंगा अलकों में
ध्वंसमयी ज्वाला पलकों में
उत्तमाङ्ग पर शुभ्र सुधाकर
नील कण्ठ पर काले विषधर
आशुतोष होकर प्रलयंकर
परम रौद्र होकर भी शंकर
आक-धतूरे से मदमाता
नाच नाच जग, अखिल नचाता।

सुन्दरतम 'सुन्दरी' पार्श्व में
योगी है अनूप यह ऐसा।
ओ अपरूप ! रूप यह कैसा ?

शोभित शशि की कला ताज-सी
बाघंबर ही वसन राजसी।
कर त्रिशूल का राजदंड है
औ' पिनाक-सा धनु प्रचंड है।
गण ही सैन्य, मुण्ड-चय धन है
वन ही जिसका राजभवन है।
दिये प्रजा को अमृत के कण
सकल स्वाद सब रस के व्यंजन।

अपने लिए लिया विष जिसने
पूछे तर्क भूप यह कैसा !
ओ अपरूप ! रूप यह कैसा ?

चरणों में विभूति है सारी
लगती तुम्हें भूति ही प्यारी।
शोभनतम यानासन सारे
पा न सके तव परस बिचारे।
तुमने किया अनुग्रह उन पर
जिन्हें मलिन कलुषित कहते नर।
धन्य वृषभ बन कर तव वाहन।
पूत हुई यह त्वक् बन आसन।

साम्यवाद जिसकी पग-रज के
कण कण में विरूप यह ऐसा।
ओ अपरूप ! रूप यह कैसा ?



शेक्सपियर की चतुर्थ जन्म शती के अवसर पर
जो इस वर्ष विश्व भर में मनायी जा रही है :

कवि-प्रेत ने कहा

(शेक्सपियर के मुख से उसके कृतित्व का सिंहावलोकन और आलोचकों को उत्तर)

श्री कु० ना० वात्स्यायन

[इस वर्ष अँगरेजी भाषा के प्रसिद्ध कवि विलियम शेक्सपियर की चतुर्थ जन्मशती मनायी जा रही है। शेक्सपियर के नाटकों ने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की, और साहित्य-जगत् में उसने अपना जो महत्त्वपूर्ण और स्थायी स्थान बना लिया है वह इसीसे प्रमाणित है कि सारा संसार इस जन्मशती को मना रहा है। और तो और, रूस ने भी इस अवसर पर शेक्सपियर के सम्मान में स्मारक डाकटिकट प्रसारित किये हैं। भारत-सरकार भी उनका स्मरण करने जा रही है। अँगरेजों के राज्यकाल में जब अँगरेजी-साहित्य के अध्ययन पर विशेष बल दिया जाता था, बी० ए० में शेक्सपियर के एक-दो नाटक अनिवार्य रूप से पढ़ाये जाते थे। आज भी, अँगरेजों के चले जाने के बाद भी, हमारी शिक्षा पर अँगरेजी का ही साम्राज्य है, और आज भी हमारे विश्वविद्यालयों में शेक्सपियर के नाटकों का वैसा ही गंभीर अध्ययन होता है। साहित्यकार देश और काल की सीमा से परे है, अतएव साहित्यकार शेक्सपियर के अध्ययन पर हमें कोई आपत्ति नहीं। किन्तु हमें आपत्ति यह है कि हमारे लिए अपने ही देश में कालिदास का अध्ययन अनिवार्य नहीं है, क्योंकि हम अँगरेजी भाषा के दास हो रहे हैं और अपनी भाषाओं की उपेक्षा करते हैं। किंतु इसमें शेक्सपियर का दोष नहीं। यह तो हमारे प्रभुगण की अँगरेजी-परस्ती का परिणाम है। हम चाहते हैं कि हमारे देश में फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश, इटालियन, रूसी आदि सभी साहित्यों के रत्नों का अध्ययन किया जाय। शेक्सपियर संसार के महानतम साहित्यकारों में हैं। उनके साहित्य के प्रति हमारी अपार श्रद्धा है। उनकी चतुर्थ जन्मशती के इस अवसर पर हिन्दी संसार और 'सरस्वती' इस महान् कलाकार की स्मृति में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करती है, और प्रस्तुत लेख द्वारा, उसीके मुख से, उसके कृतित्व का आलोचनात्मक परिचय प्रस्तुत कर इस सार्वभौम महोत्सव में अपना तुच्छ योगदान करती है। सम्पादक, सरस्वती।]

आज चार शताब्दियों बाद प्रेत के रूप में ही सही, फिर धरती पर उतर आया हूँ। जब धरती पर "रहूँ" या न रहूँ" की स्थिति में, संशय और भय के प्रेत-कड़ाह में आज से कई सौ वर्ष पूर्व (१५६४—१६१६), जब तुम्हारे देश में अकबरी सिक्का चल रहा था, मैं जीवित था तो यह धरती उतनी सरस नहीं जान पड़ती थी। तब मैंने सोचा था: "काल के कोड़े और दुर्दिन का व्यंग्य सहने को धरती पर कौन रहेगा? कौन अभागा अत्याचारी का अत्याचार, घमण्डियों द्वारा किये गये अपमान, उपेक्षित प्रेम का दर्द, न्याय की प्रवंचना, प्रभु वर्ग की घुड़की और अयोग्यों की पूजा बर्दाश्त करने के लिए धरती पर रहेगा?"* अज्ञात मृत्युदेश का भय ही हमें धरती पर बाँधे था। पर अब सोचता हूँ कि धरती कितनी राग-मय है यद्यपि यह बहुत कुछ बदल गयी है। आज तुम लोग यथार्थवादी बने हो। पर यथार्थवाद एक गतिशील तत्व है और उस दृष्टि से मैं भी यथार्थवादी था; सम्भवतः विश्व-साहित्य की प्रथम यथार्थवादी सम्पूर्णता को लेकर मैं ही आया हूँ। भूत-प्रेत, जो मेरे नाटकों में अक्सर आते हैं, उस युग के यथार्थवाद का उसी भाँति अंग थे जैसे आज 'स्पुतनिक' है। होमर और वर्जिल देवताओं के हास्य एवं अर्धदैवी मानवों की कथा के कवि हैं। दान्ते को मनुष्य के हृदय की पहचान थी। पर हृदय के मुर्दे को आध्यात्मिकता के उत्तरीय से ढँक कर उसने 'डिवाइन कॉमेडी' लिखी। यह मैं ही हूँ कि मनुष्य की समस्त उदात्तता और समस्त विकृति को बिना किसी भी अमानवीय स्पर्श दिये हुए अपना लिया। मैंने ही कहा था: "कैसी सृष्टि है मनुष्य! कितना उदात्त विवेक! असीम रूप और गतियों वाली मानसिक शक्ति! कर्म में कितना प्रशंसनीय! बिलकुल देवदूतों की तरह! समझ-बूझ का देवता! विश्व की सुषमा! चराचर का राजमुकुट! ओह, तिसपर भी यह मिट्टी के सार के अतिरिक्त क्या है?"* मैं कहता हूँ कि समाजवाद, फ्रॉयडवाद, अस्तित्ववाद

*हैमलेट।

*हैमलेट।

के बावजूद भी तुम इससे अधिक कुछ नहीं कह सके हो।

मैंने मनुष्य की उदात्तता और विकृति को विविध स्थिति में रखकर परखा है। 'प्यार' को ही लो। उसके जितने रूपान्तर संभव हैं, मैंने प्रस्तुत किये हैं: एकान्त समर्पण (रोमियो एण्ड जूलियट), वासन्ती विदग्धता (एज़ यू लाइक इट), अबोध सुकुमारिता (टेम्पेस्ट), तीव्र वासना (एण्टोनी एण्ड क्लियोपाट्रा), वाग्विदग्धता (लव्ज लेबर लॉस्ट), अबोध करुणा (ओथेलो), हेमन्ती वासना (हैमलेट), रिक्त प्रवंचना (ट्रायलस एण्ड क्रिसीडा) इत्यादि भावों के परिवेश में प्यार की उदात्त से उदात्त और विकृत से विकृत स्थिति मैंने प्रस्तुत की है। मेरा विश्वास है कि जीवन में ये सभी स्थितियाँ पायी जाती हैं। इसीसे मैंने कहा है: "जीवन शिव और अशिव दो धागों से बटी हुई रस्सी है।" एक दूसरे में ऐंठे हुए संयुक्त रूप से दोनों साथ-साथ चलते हैं। इसीसे मेरे दिल में इआगो, गॅनरिल और लेडी मैकबेथ के लिए उतना ही प्यार था जितना डिसडिमोना, कार्डेलिया या हैमलेट के लिए। यदि ऐसा नहीं होता तो मैं सजीव चित्रण कर ही नहीं पाता। शर्त्त बद कर कहता हूँ कि बिना लेडी मैकबेथ को प्यार किये कोई भी 'स्लीप-वाकिंग' दृश्य नहीं लिख सकता। यह प्यार ही है जो साहित्यकार को अन्तर्दृष्टि देता है। केवल खूबसूरत और चतुर को तो छोकरियों का प्यार मिलता है। साहित्यकार का दिल छोकरी के दिल से कहीं बहुत बड़ा होता है। "मेरा प्यार भूखे समुद्र की तरह है। जितना दो, उसे पचा जाता है उसकी तुलना किसी छोकरी के प्यार से मत करो।"* दर असल 'प्यार' ही हमारे युग में साहित्य का केन्द्र था जैसे 'विडम्बना' (आयरनी) तुम्हारे युग का। तुम लोग हम लोगों जैसी अन्तर्दृष्टि रख सकने में असमर्थ हो क्योंकि तुम्हारा हृदय-समुद्र सूख गया है। खैर, मन माने की बात।

लोग कहते हैं कि मेरे पात्रों में सजीवता वहींपर आयी है जहाँ विकृत सन्दर्भ है। विदग्ध विदूषक और बुद्धिवाद के सम्राट् ने मुझे निराशा का पैगम्बर कहकर बनाने की कोशिश की है। पर तुम समूचे चित्र पर विचार करो। मैं जिस युग में पैदा हुआ था उसके प्रति अनु[illegible] की ईमानदारी मुझे बरतनी ही चाहिए। मेरा युग [illegible] विकृत था। मैं तो अनुभूतियों का दर्पण मात्र हूँ। [illegible] भी युग के विकारों की प्रतिच्छाया को मैंने दर्पण [illegible] नाभिकेन्द्रों को परिवर्त्तित करके निरन्तर परिष्कृत क[illegible] की चेष्टा की है। मुझे तुम सहानूभूतिपूर्वक पढ़ो [illegible] तुम्हें विकृतियों के अन्तराल में उद्घाटित महिमा [illegible] दर्शन होंगे। मेरा हृदय एक रत्नाकर है। गहरे पा[illegible] पैठे बिना तुम रत्नाकर से मणि का उद्धार करोगे कैसे[illegible]

पहले मेरे युग को लोग 'स्वर्णयुग', 'मैरी इंगलैं[illegible] आदि कहकर प्रशंसित करते थे क्योंकि साम्राज्य के [illegible] उसी युग में बोये गये। पर वास्तव में मेरा युग '[illegible] मदिरा पान' एवं 'मुक्तवासना' का युग था—'शरा[illegible] और 'मखमल' उसके प्रतीक थे। २०वीं शती के तुम्हा[illegible] बन्धुओं ने, मेरी निन्दा करने के उद्देश्य से ही सही, [illegible] तथ्य को स्वीकार किया है। कैथोलिकों पर अमानु[illegible] अत्याचार मैंने अपनी आँखों देखा है। जिन्दगी [illegible] इस आसमान के नीचे काटी जाती थी। रानी एलिजा[illegible] जिसे चाटुकार सभासदों और स्पेन्सर जैसे कवियों [illegible] रहस्यमय सूफी प्रेमिका, चिरन्तन रूप का प्रतीक [illegible] 'महफिल की शमा' कहा है, तथ्यतः क्षुधातुर बिड़ाल [illegible] वह सूफी अर्थों में नहीं, बल्कि कुरूप अर्थों में 'शमा' [illegible] और उसके नौजवान प्रधान मंत्री मध्ययुग के 'कोर्ट[illegible] प्यार के आदर्शों पर चलते थे। 'एण्टोनी क्लियो[illegible] में मैंने मिस्र की सर्पकन्या क्लियोपाट्रा के जलवि[illegible] रजत-स्वर्ण-जलयान, पालों में भरी प्यार से बीमार [illegible] आदि का वर्णन करते हुए लिखा है। "वार्धक्य उस [illegible] पर झुर्रियाँ नहीं ला सकता; उपभोग उसे बासी [illegible] कर सकता, क्योंकि उसके नित्य नूतन रूपान्तर [illegible] रहते हैं। अन्य नारियों से तृप्ति के बाद मन ऊबते [illegible] पर वह और क्षुधातुर करती है।"—मेरा संकेत [illegible] रानी की ही ओर था जो अधेड़ अवस्था में भी [illegible] आधी उम्र के 'ऐसेक्स' को प्रेमी बनाने पर तुली [illegible] थी।* (मैं इस विषय पर फिर आऊँगा।) मुझसे [illegible] सौ वर्ष बाद गिबन ने यह कहा: "यदि क्लियो[illegible] की नाक आधा इंच बड़ी होती तो विश्व का इति[illegible]

---

*'ट्वेल्थ्यनाइट'

*लिटन स्ट्राची (एलिजाबेथ एण्ड ऐसेक्स)

...र ही होता।" मैं समझता हूँ मेरी रानी पर भी ...लागू होता है। उसके चरित्र ने इंगलैण्ड के युग-...को उसी तरह प्रभावित किया है, जैसे विक्टोरिया ...आदर्शवादी चरित्र ने विक्टोरियन युग को।

...मेरे युग की सुन्दरियों की सर्वोत्तम प्रशंसा थी: ...निर्मम, क्रूर बाघिन।" गर्भवती स्त्रियाँ भी ...चाव से वध-दृश्यों को देखती थीं। मेरे युग की ...कला की सर्वोत्तम 'थीम' थी: 'प्रतिशोध-षड्यंत्र।' ...लालसा, उद्दाम वासना तथा क्रूरता का युग था। ...युग के सारे नाटककार मार्लो, किड, वेबस्टर, फोर्ड ...उद्दाम लालसा का चित्र सामने रखते हैं। मैं भी ...करता हूँ। परन्तु एक भेद के साथ। उद्दाम लालसा, ...क्रूरता आदि मेरी कृतियों में साधन मात्र हैं। मैंने ...या लालसा के आस्वादन मात्र के लिए नहीं बल्कि ...द्वारा किसी गहरे सत्य के उद्घाटन के लिए अपने ...को लिखा है। शेष नाटककारों में लालसा और ...का आस्वादन एक तरह का 'आत्म-पीड़न-सुख' ...भावों को उद्वेलित-मथित करने से मिलता है।—— ...लिए 'कैथारिसिस' का अर्थ 'भावविरेचन' या ...शुद्धिकरण' नहीं, 'भाव-उद्वेलन' मात्र है।* ...बोध गहरा है। मेरा दर्पण ईमानदार है अपने ...युग के प्रति। पर उसकी प्रतिच्छायाओं के समवाय ...बोध में 'सुन्दर' का स्पष्ट संकेत है।

...ने प्रत्येक पृष्ठ अपने हृदय के रक्त से लिखा है। ...राजकतावादी नहीं था। ब्रिटिश राजमुकुट को ...के बाद सर्वोच्च आराध्य मानता था। पर युग ...विकृति के बारे में स्पष्ट नहीं लिख सकता था। जसे ...तुलसीदास ने मुगलों के अत्याचारों की व्यंजना ...वक्रोक्ति का आश्रय लिया है, वैसे ही मैं भी जब ...डेनमार्क" की चर्चा करता हूँ तो मेरा संकेत अपने ...प्लावित देश से है। मेरा तात्पर्य केवल राज-...में ही नहीं है बल्कि सामाजिक विकृति से भी है। ...'हैमलेट' के होरेशियो के प्रति कहे गये शब्दों ...एक युग-संकेत है:

"अगर तुमने कभी भी मुझे अपने दिल में जगह दी है, तो कुछ देर के लिए आनन्द और स्वर्ग की कामना रोके रहो। कुछ दिन और इस कठिन जगत् में व्यथा भरी साँस लो, और मेरी दुःखमय कथा सुनाने के लिए जीवित रहो।"

पर इस घोर अंधकारमयी स्थिति में भी मैंने जीवन और स्नेह की किरणों को एवं रस और प्राण के अधिपति प्रकाश को अपने नाटकों में सर्वथा लुप्त नहीं होने दिया है। 'ओथेलो' को ही लो। वातावरण कितना वायु-बद्ध और घुटा-घुटा है? गोया मजबूती से बन्द किया गया हत्या-कक्ष हो जिसमें हवा अन्दर ही अन्दर सड़ रही हो! ओथेलो एक गुमराह आत्मा है जो "हरी-हरी आँखों वाली शंका", पीली आँखों वाली शशा-मुखी ईर्ष्या एवं सन्देह के क्षीण कंकालों के बीच भटक रही है। इस शंका, ईर्ष्या, सन्देह के दुर्गन्धपूर्ण व्यूह में पड़े प्यार की ही अन्तिम जीत होती है। अन्त तक प्यार मरता नहीं——ओथेलो अपनी प्रिया का गला दबाने जा रहा है, पर आँखों से आँसू झर रहे हैं। डिसडिमोना एक अबोध मृगशावक की तरह है जो प्यार की सलीब पर चढ़कर और सुन्दर हो उठती है। डिसडिमोना या कार्डेलिया की मृत्यु उन्हें और महत् एवं सुन्दरतर कर देती है——क्रासोपरान्त मसीहा और अधिक महिमामय होजाता है। क्या तुम डिस-डिमोना, कार्डेलिया या ओफेलिया को कभी प्यार करते, जब नाटक सुखान्त होता और वे आगे चलकर चार-छः बच्चों की माँ बन जातीं? यहीं ईसाई चिन्तन की गरिमा मेरे नाटकों में प्रविष्ट होती है, जो ऊपर से देखने पर निराशामय लगती है। विकृति को जलाने के लिए पावक की आवश्यकता होती है। इस पावक के द्वारा जगत् पावन होता है, परन्तु इस प्रक्रिया में कुछ निर्दोष 'सुन्दर' भी जल जाता है। हैमलेट, डिसडिमोना, कार्डे-लिया आदि ऐसे ही निर्दोष 'सुन्दर' हैं। परन्तु विश्व-व्यवस्था में मंगल लाने के कुछ निर्दोष 'सुन्दर' एवं 'कोमल' का बलिदान करना ही पड़ता है। यह निराशा-वाद नहीं, ईसाई बलिदान की गरिमा है।

(२)

इस स्थल पर २०वीं शती में लिखे गये अपने सम्ब-न्धित काव्यालोचन की याद आ जाती है। तुम्हारी २०वीं शती कई अर्थों में १८वीं शती का अवतार है। १८वीं शती गद्य, बुद्धि एवं ज्ञान का युग था। पर इस

*एफ० लुकास ने 'कैथारिसिस' का अर्थ भाव उद्वे-...ही बताया है। ('ट्रेजडी': एफ० एल० लुकास)।

फा० ७

युग में ज्ञान का अर्थ बुद्धि-प्रधान दर्शन और साहित्य में नव्य क्लासिकी आदर्श तक ही सीमित था। जीवन के प्रति गंभीर दृष्टि का अभाव था। मेरे 'हैमलेट' जैसे नाटक को ऑपेरा बना कर ही खेला जाता था। होप और जानसन मेरे प्रेमी होते हुए भी मुझे "जंगली प्रतिभा" "ऊबड़-खाबड़" आदि कहा करते थे। मैंने रूपायन (फार्म) के क्लासिकी मॉडेल का तिरस्कार किया था, इसीसे वाल्तेयर ने, जिसने तुम्हारे युग में शॉ बनकर जन्म लिया, एडीसन के 'केटो' की तुलना में मेरे 'हैमलेट' को तुच्छ और अधूरा बताया था। १८वीं शती के तिरस्कार के बावजूद भी जर्मन आलोचकों के आशीर्वाद से मेरा साहित्य अभ्यर्थना पाता रहा। शिलर और ग्येटे, तथा बाद में कोलरिज एवं अन्त में ब्रैडले ने रूमानी आलोचना पद्धति का आश्रय लेकर घोषित किया कि मेरी श्रेष्ठता का अध्ययन 'चरित्र' और 'कविता' इन्हीं दो दृष्टियों से होना चाहिए, रूपायन (फार्म) के आधार पर नहीं। परन्तु तुम्हारी शती में 'फार्म' की संयोजना की चर्चा फिर प्रबल रूप से चली, और डा० जान्सन की मान्यताओं को टी० एस० इलियट ने नये शब्दों में प्रस्तुत किया। मेरा विषय तो मनुष्य का हृदय-रस है। जो मेरा विषय नहीं उसकी आशा मुझसे क्यों करते हो? हृदय की उद्दाम धारा पर संयोजना के सारे बाँध टूट जाते हैं। तुम्हारे युग की अनुभूति का केन्द्र है 'विडम्बना' (आयरनी) जैसे १८वीं शती का अनुभूति केन्द्र था 'व्यंग्य' (सैटायर)। इसीसे तुम हृदय की भाषा न बोल पाते हो और न समझ पाते हो।

तुम्हारी २०वीं शती के सर्वश्रेष्ठ आलोचक टी० एस० इलियट का कथन है कि 'हैमलेट' एक असफल रचना है। 'हैमलेट' में मैं क्या लिखना चाहता था मुझे ही नहीं मालूम था, इसीसे विषय अस्पष्ट एवं अर्ध अभिव्यक्त होकर रह गया और, फलतः, यह असफल रचना है। यही है उनके तर्क का सारांश। इन लोगों के अनुसार 'हैमलेट' में विषय की कई तहें हैं। बुनियादी तह आती है एक जर्मन उपन्यास से: 'पिता-घात का प्रतिशोध।' इसी पर 'किड' ने (जो 'स्पेनिश ट्रेजडी' तथा प्रतिशोध-नाट्य का सफल कलाकार था) 'हैमलेट' लिखा और वह प्रेत को उसके अन्दर लाया। तब मैंने पिता-घात, प्रेत, प्रतिशोध के ऊपर एक नयी तह, 'माता का व्यभिचार', चढ़ाकर 'हैमलेट' लिखा। पर इतनी [तहों] में मैं कौन सी तह व्यंजित करना चाहता था, यही [मुझे] स्पष्ट नहीं था। इसीसे मैं कोई प्रबल भाव नहीं [व्यक्त कर] पाया और न विषय को 'वस्तुगत प्रतिसाक्ष्य' (आब्जेक्टिव कोरिलेटिव) ही दे पाया। यही है इलियट [की] तर्क-पद्धति ('सेक्रेड वुड')।' फिर भी मैं इलियट [का] कृतज्ञ हूँ, जो मानता है कि 'हैमलेट' मैंने ही लिखा है। कुछ लोग तो ऐसे हैं जो मेरे नाम पर प्रचलित साहित्य में केवल १०% या १५% ही मेरा अपना बताते हैं और कुछ लोग तो कहते हैं कि मैंने एक पंक्ति भी नहीं लिखी है, सब मार्लो या बेकन या 'क', 'ख', 'ग' का लिखा हुआ है। अब मैं क्या हूँ?

मेरी जड़ खोदनेवाले आलोचकों के तीन दल हैं, जो मैकबेथ की तीन चुड़ैलों की तरह आलोचना की प्रेतशाला द्वारा पाठकों को भ्रान्ति में डाल रहे हैं। प्रथम दल है विखण्डनवादियों का, जे० एम० राबर्टसन के नेतृत्व में। इन लोगों के अनुसार अपने नाटकों को मैंने अकेले नहीं बल्कि एक सहयोगी-मण्डल के साथ लिखा है। मेरा कृतित्व एक अंश मात्र है। उदाहरण के लिए 'जूलियस सीजर' के लिखने की परम्परा इस प्रकार कल्पित की गई है, पहले पहल मार्लो ने तीन नाटकों को लिखा—'सीजर एण्ड पाम्पे', 'सीजर्स ट्रेजेडी', 'सीजर्स ट्रायम्फ'। फिर प्रथम दो को संयुक्त करके चैपमन ने एक नाटक बनाया और तीसरे को वेब्स्टर ने फिर से लिखा। इसके बाद शेक्स[पियर] ने उन दोनों नाटकों को फिर से लिखा। और अन्त में बेन जान्सन ने दोनों को मिलाकर एक कर दिया। प्रत्येक संस्करण में पूर्व संस्करणों का कुछ सुन्दर अंश सुरक्षित रहता आया और इस प्रकार समूचा नाटक संयुक्त कृतित्व है। समूची अटकलबाजी सुनकर हँसी आती है। 'स्टेशनर्स रजिस्टर', 'हेन्सलोय डायरी' आदि इस बारे में मौन हैं। मेरे जीवन-काल में ही १८ नाटक 'क्वार्टो' संस्करण में निकल चुके थे। मेरे मरने पर ७ वर्षों के भीतर ही हेमिंज और काण्डेल ने मेरे ३६ नाटकों का सम्पादन किया। ये आखिर क्यों संयुक्त कृतित्व का संकेत भी नहीं करते? क्यों सहयोगी नाटककारों ने प्रतिवाद नहीं किया? इस समूचे तर्क का आधार भी बड़ा विचित्र है। जो सुन्दर पंक्तियाँ हैं वे मेरी मान ली जाती हैं। जहाँ कमजोर पंक्तियाँ हैं (सभी पंक्तियों का एक तरह का होना

...है?) वे औरों के नाम पर चली जाती हैं। "शेक्स-
...ऐसी कमजोर पंक्तियाँ नहीं लिख सकता।" यही है
...तर्क का आधार। पर क्या यह किसी भी नाटककार
...लिए संभव है कि वह प्रत्येक 'पंक्ति में संवेग' ही भरता
...और मध्यम अनुभूतियों को एकदम तिरस्कृत कर दे?
दूसरा दल है डोवर विल्सन के नेतृत्व में पाठान्तर
(पाठ-परिवर्तन) वादियों का। इनके अनुसार नाटकों
...रूप से तो मैंने ही लिखा है, पर ज्यादा पाठ-परि-
...हो गया है। "अतः यह कहना कठिन है कि शेक्स-
...ने कैसा लिखा।" बुनियादी तौर पर यह तर्क सही
... मेरे मरने के ७ वर्ष बाद ही १६२३ में 'फोलियो'
...का संस्करण प्रकाशित हो गया। इतने अल्पकाल
...इतना पाठ-परिवर्तन हो जायगा कि लेखक का मूल
...खतरे में पड़ जाय, यह एक गजनिमीलिका है।
तीसरा दल जो मेरा सम्पूर्ण मूलोच्छेदन करना
...है, उनका है जो मेरे लेखकीय अस्तित्व को ही
...कर देते हैं। इनमें कुछ तो कहते हैं कि मेरे
...का वास्तविक रचयिता मार्लो है। मैं पूछता हूँ
...यदि मार्लो मेरे नाटकों का रचयिता है तो शराब खाने
...करते हुए मारा कौन गया? किसका शव दफन
...सब लोगों ने अपनी आँखों देखा था तथा जिसका
...मौजूद है? मैं मार्लो की प्रतिभा का ऋणी हूँ।
...उसकी प्रतिभा का स्वभाव मुझसे बिल्कुल अलग है।
...पण्डित था। उसके चरित्र विराट आयामवाले हैं,
...तैमूर लंग, या डाक्टर फास्टस। एडवर्ड द्वितीय एक
...है। यदि मार्लो की कला विकसित होती तो वह
...आयामवाले चरित्रों का सृजन करती और 'अमूर्त'
...का सृजन करती। मेरी प्रतिभा मांसल चरित्र एवं
...रसबोध की जननी है। मुझमें जहाँ अमूर्त आया है
...अनुभूति प्रगाढ़ता में ठोस बन गया है। अतः मार्लो
...जीवित रहता तो ग्येटे बन जाता, परन्तु शेक्सपियर
...यही तुम्हारे टी० एस० इलियट की भी राय है।
...भ्रामक तर्क वे रखते हैं जो कहते हैं कि मेरे
...को बेकन ने लिखा है। हे ईश्वर! आलोचना
...मुर्गी पता नहीं किस बीज से पैदा हुआ है! रचना-
...साहित्य के लिए बेकन जैसी शुष्क और अनुप-
...प्रतिभा का दावा! वह भी बिना किसी आधार के,
...ई० डी० लारेंस के दिमाग की घास-पात!

पता नहीं ये वकील महाशय साहित्य में क्यों दखल देने आये? वह बेकन जो घूसखोर जज के रूप में कुख्यात था, वह बेकन जिसको जीवन भर पछतावा रहा कि जितने धन की लालच से उसने विवाह किया था उतना धन उसे नहीं मिल पाया, वह बेकन जो थोड़े लाभ के लिए बड़े से बड़े मित्रों का गला काटने को तत्पर रहता था, हैमलेट और कार्डेलिया के अन्तर में घुसने की क्षमता नहीं रख सकता। ऐसा व्यक्ति किसीको प्यार नहीं कर सकता। जिसके पास हृदय रस का अभाव है, वह मेरे नाटकों जैसा कृतित्व कैसे प्रदान कर सकता है? अर्ल आफ 'ऐसेक्स' की चर्चा पहले कर चुका हूँ। ऐसेक्स बेकन का प्रथम आश्रयदाता प्रभु था। अर्ल आफ ऐसेक्स और रानी एलिजाबेथ की उम्र में माँ और बेटे की उम्र का अन्तर था। फिर भी रानी को 'शमा' बनने का शौक था। पर एक अधेड़ औरत के लिए ऐसेक्स 'पतंग' नहीं बन सका। फलतः उस पर झूठे अभियोग लगाये गये। साक्ष्य और प्राणदण्ड दोनों का पाप बेकन के सिर पर है। जब कोई साक्षी नहीं मिला तो बेकन ने स्वतः गवाही दी कि वह ऐसेक्स का घनिष्ठ मित्र है और जानता है कि ऐसेक्स रानी के खिलाफ षड्यन्त्र कर रहा है। अपने प्रथम आश्रयदाता के प्रति इस कृतघ्न व्यवहार का कारण था बेकन का लोभ। आदमी इतना गिर सकता है! मैंने अपनी आँखों से ऐसेक्स का वध देखा। उस अभियोग में मेरा आश्रयदाता-मित्र साउथैम्पटन का अर्ल भी जो सौन्दर्य में मूर्त्तिमान मधुमास था, फँसाया गया था। पर प्रमाणों के अभाव में और कच्ची उम्र के कारण छोड़ दिया गया। यह बेकन दर्शन का पण्डित भले ही हो पर कवि कैसे हो सकता है? उसकी गद्यशैली से प्रकट हो जाता है कि वह सूत्रबद्धता में फँसा था, भाव-स्फीति के लिए एवं तरलता के लिए उसमें स्थान ही नहीं था। बेकन तो प्लेटो की तरह काव्य-विरोधी नहीं था। क्यों नहीं उसने उन नाटकों को अपने नाम से प्रचलित किया? इसमें क्या बाधा थी? उस युग में नाटककार की महत्ता ऊँची नहीं थी तो वह घृणित भी नहीं थी। उस पर राज-कृपा थी। नाटककार कहलाने में बेकन का कोई अपमान नहीं होता।

बेकनवादियों के तर्कों को सुनकर हँसी आती है। वे कहते हैं कि मैंने 'हैमलेट' में जो प्रेत की भूमिका को मंच पर अभिनीत किया (क्योंकि मैं अभिनेता भी था) वह प्रतीकात्मक है—वह बताती है कि शेक्सपियर वास्त-

विक नहीं बल्कि प्रेतमात्र है। वाह रे प्रतीक खोजनेवाले! तब जिन्होंने हैमलेट, क्लाडियो और पोलोनियस की भूमिका का निर्वाह किया, उन पर कौन सा प्रतीक चस्पा किया जायगा? बिना किसी तथ्यात्मक आधार के यह दुराग्रह मात्र है। तीसरा तर्क है: बेकन ने गुप्त रूप से अनेक नाटकों में अपना 'हस्ताक्षर' दिया है। जसे किसी पृष्ठ पर प्रारम्भ की किसी पंक्ति में 'ब' अक्षर आता है, मध्य की किसी पंक्ति में 'क' और अन्त की किसी पंक्ति में 'न'। तीनों मिलकर हुए 'ब' 'क' 'न' अर्थात् 'बेकन'। कुछ इसी किस्म का तर्क वे देते हैं। मूल तर्क लैटिन की वर्णमाला और कुछ लैटिन शब्दों को लेकर दिया गया है, पर उन तर्कों की प्रकृति ऊपर कही बात जैसी ही समझो। (मुझे इस समय हिन्दी में बोलना जो पड़ रहा है।) पर यह तर्क बिना सिर-पैर का है, और किसी भी नाम को इसके द्वारा खोजा जा सकता है। एक ओर ऐसे लचर तर्क, और दूसरी ओर मेरे जीवन-काल में प्रकाशित १८ नाटक (क्वार्टो-संस्करण), मेरे मरने के ७ वर्ष बाद समूचे ३६ नाटकों तथा मेरी तीन-चार कविताओं का संग्रह, 'स्टेशनर्स रजिस्टर', 'हेंसलो डायरी', मेअर की 'पैलेडिस टामिया' के रेकार्ड आदि। अब तुम्हीं सोचो और निर्णय करो।

सुनता हूँ कि लखनऊ या कराँची के किसी प्रतिष्ठित उर्दू लेखक ने (मजाक में या गम्भीर रूप में, पता नहीं) मुझे एक उर्दूभाषी एवं अकबरी दरबार का 'जोकर', 'शेख पियारे' बताया है जिसे शहंशाह ने रानी को तोहफा के रूप में भेजा था। मैं समझता हूँ यह तर्क बेकनवादियों से कम प्रामाणिक नहीं। दोनों की स्थिति एक है। और जब भारतवासी होकर अंग्रेजी को तुम अपनी राष्ट्रभाषा मान सकते हो तो मैं 'शेख पियारे' होने को तैयार हूँ।

मेरी आत्मा भूखे समुद्र की तरह है। कुछ लोग मुझे 'प्रासपीरो' ('टेम्पेस्ट' का नायक) में ढूँढ़ते हैं। सोचते हैं कि प्रासपीरो के रूप में मैं अपना आत्म-परि[चय] देता हूँ। पर मैं समझता हूँ मेरा आत्म-परिचय सभी[के] अन्दर निहित है जो मेरी प्रतिभा से उत्पन्न हुए हैं। कोई भी अकेले मेरा सम्पूर्ण परिचय नहीं दे सक[ता]। ब्रैडले ने मुझे हैमलेट के अन्दर खोजा है, पर मैं हैमलेट [में] हूँ तो शाईलॉक में भी कम विद्यमान नहीं। जब मेरा हैमलेट हाथ में मुर्दे की खोपड़ी लेकर जीवन की असार[ता] पर चिन्तन कर रहा था, उस समय मैं जमींदारी खरी[द] रहा था। अतः मेरा शाईलॉक भी मेरे अन्दर विद्यमा[न] था। मेरी आत्मा में सर्प की तरह संवेदनशीलता, मु[ड़ने-] मरोड़ एवं अंग-अंग में सरकती गति विद्यमान है—[मैं] किसीकी भी मुट्ठी में नहीं आ सकता। अन्त में हैमले[ट] के एक कथन के साथ, जो वह अपने बनावटी सहपा[ठी] मित्रों को सम्बोधित करके कहता है, अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ।

"देखो तुम लोगों ने मुझे कैसा बना दिया है। क्या मैं इसीके लायक हूँ? तुम मुझे जाना चाहते हो और सोचते हो कि मेरे सारे छिद्र, सारी खूँटियाँ, तुम्हें मालू[म] हैं। तुम मेरे अन्दर छिप मेरे रहस्य को खींचकर बाह[र] निकालना चाहते हो। षड्ज से निषाद, मंद्र से तार सु[रों] को जबरदस्ती खींचकर निकालना चाहते हो। देखो इस वंशी की ओर। इसमें बहुत-बहुत संगीत भरा है पर इससे तुम 'शब्द' नहीं बोलवा पाओगे (यह केवल 'सुर' ही देगी)। तुम क्या समझते हो कि मुझे बजा[ना] इस वंशी से भी आसान है?"

पूरब दिशा पर लालिमा का आभास मिल रहा है और मुझे अंधकार रहते-रहते यह धरती छोड़कर अपने प्रेत-लोक में लौट जाना चाहिए।

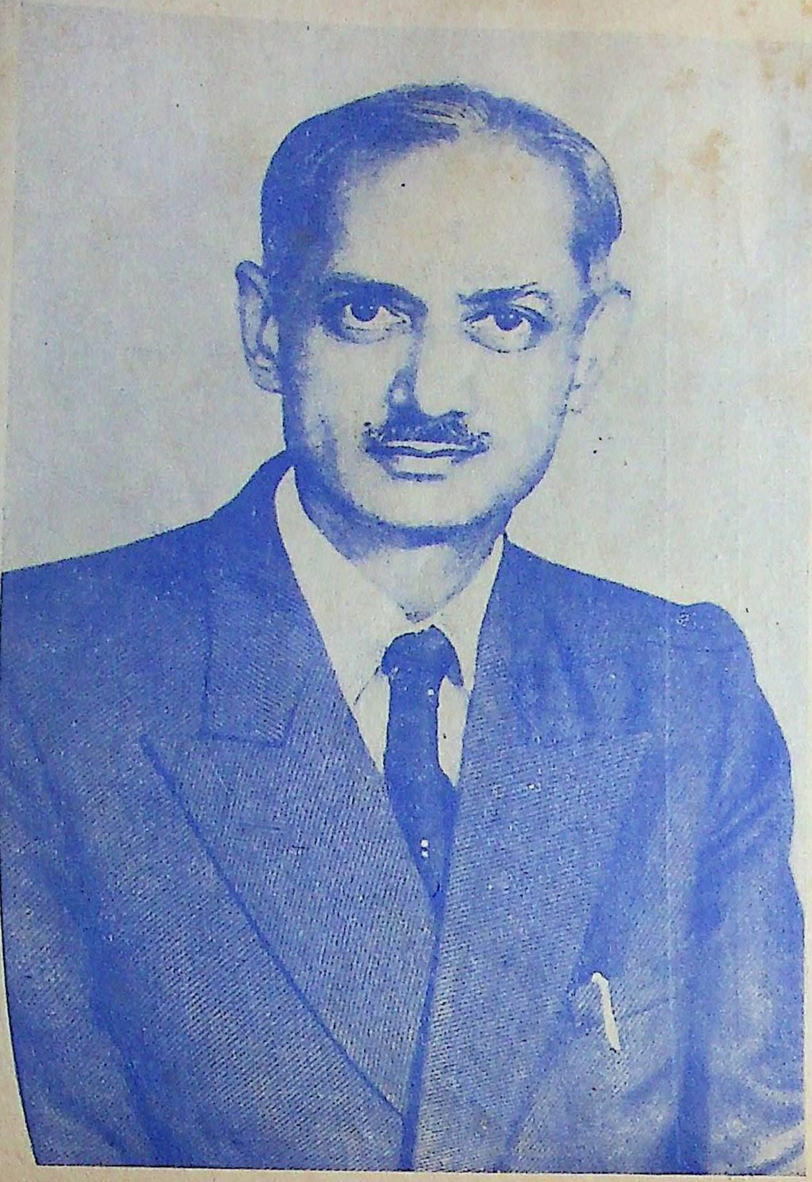




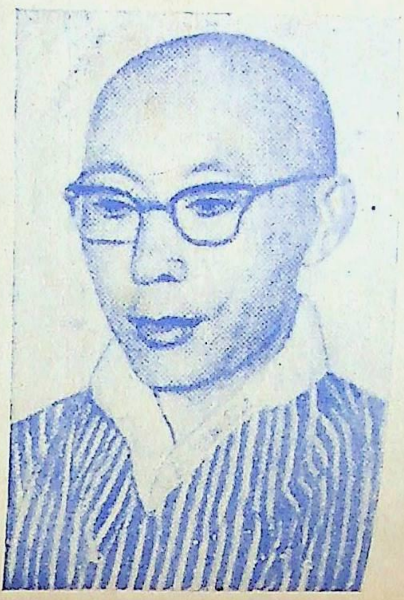
साइप्रस में शांति स्थापन के लिए राष्ट्रसंघ ने जो अंतर्राष्ट्रीय सेना भेजी है उसके सेनापति भारत के जनरल प्रेमसिंह ज्ञानी हैं। साइप्रस की राजधानी निकोसिया के निकट एक कैम्प का निरीक्षण करते हुए जनरल ज्ञानी।



राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त के राज्यसभा से अवसर ग्रहण करने के उपलक्ष्य में दिल्ली साहित्य-सम्मेलन द्वारा आयोजित समारोह की एक झांकी।
बाईं ओर से—उपराष्ट्रपति, राष्ट्रकवि, सेठ गोविन्ददास और पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी।



स्वर्गीय श्री भैरवनाथ झा



जिग्मी दोर्जी

जब अंग्रेजी स्वयं अपने देश में असभ्य भाषा मानी जाती थी

डा० मोती बाबू

[इंग्लैण्ड में एक समय था जब वहाँ सरकारी कामों में अथवा न्यायालयों में अँग्रेजी भाषा का प्रयोग नहीं होता था। पहिले लैटिन भाषा का प्रयोग किया जाता था किन्तु जब फ्रांस के नार्मन लोगों ने इंग्लैण्ड को जीत लिया तो उनकी भाषा (फ्रेंच) वहाँके राजकाज और न्यायालयों की भाषा हो गयी। बाद में अंग्रेजों ने इस अस्वाभाविक स्थिति के दोषों को समझा, और उनमें अपनी भाषा (अंग्रेजी) का अभिमान जागृत हुआ। किन्तु न्यायालयों में फ्रेंच भाषा की जगह अंग्रेजी चलाने में बड़ी कठिनाइयाँ हुईं। वकीलों को फ्रेंच भाषा में बहस करने का अभ्यास था, और सारी कानूनी पुस्तकें फ्रेंच भाषा में थीं। इसलिए वे फ्रेंच भाषा से चिपके रहना चाहते थे। अन्त में पार्लियामेंट ने एक कानून बना कर न्यायालयों में अंग्रेजी का व्यवहार अनिवार्य कर दिया; और यह व्यवस्था की कि जो लोग न्यायालयों में अंग्रेजी छोड़कर किसी दूसरी भाषा का प्रयोग करेंगे उनपर पचास पाउण्ड जुर्माना किया जायगा। तब कहीं जाकर वकीलों आदि ने फ्रेंच भाषा का उपयोग बन्द करके अपनी भाषा—अंग्रेजी में काम करना आरंभ किया! जिस समय इंग्लैण्ड में अंग्रेजी को न्यायालयों की भाषा बनाया गया उस समय अंग्रेजी भाषा आरंभिक अवस्था में थी। न उसमें कोई अच्छा कोश था, न अच्छा व्याकरण, न कानूनी पुस्तकें। किन्तु अंग्रेजों के देशप्रेम और स्वाभिमान ने उस समय की असमर्थ और अनुन्नत अंग्रेजी भाषा को अपने देश के न्यायालयों में चला दिया। इसका परिणाम यह है कि आज अंग्रेजी भाषा में कानून की असंख्य उत्तम पुस्तकें हो गयी हैं, और उस भाषा में सूक्ष्म से सूक्ष्म कानूनी विचार ठीक ढंग से व्यक्त करने की सामर्थ्य आ गयी है। यदि वे अंग्रेजी को न्यायालयों में प्रविष्ट करने के लिए उस समय की राह देखते रहते जब वह समर्थ हो जाती, तो अंग्रेजी कभी इतनी उन्नति नहीं कर सकती थी। हमें विश्वास है कि इस तथ्यपूर्ण और मनोरंजक लेख से पाठकों को प्रेरणा मिलेगी और वे इन तथ्यों से जो निष्कर्ष निकलते हैं, उन पर गंभीरतापूर्वक ठंडे दिल से विचार करेंगे। सम्पादक, सम्मेलन पत्रिका।]

अंग्रेजी भाषा के वर्तमान विकास और प्रसार को देख कर उस समय की कल्पना करना भी कठिन हो जाता है जब वह स्वयं अपने देश में एक असभ्य भाषा समझी जाती थी; किन्तु इतिहास से पता चलता है कि ऐसा भी एक समय था। फ्रांस से आकर नार्मन लोगों ने इँग्लैण्ड पर अधिकार कर लिया। नार्मन विजय के बाद लगभग ३०० वर्ष तक फ्रेंच भाषा इँग्लण्ड के उच्च वर्ग के सामान्य व्यवहार की भाषा रही। प्रारम्भ में फ्रेंच भाषा वही लोग बोलते थे जो नार्मन वंशज थे; परन्तु आगे चल कर उच्च वर्ग के अंग्रेजों ने शासक वर्ग से विवाह-सम्बन्ध कर तथा घनिष्ट सामाजिक सम्पर्क होने के कारण इस नयी भाषा को सीखना हितकर समझा। यह प्रवृत्ति बढ़ती गयी। इस प्रकार शीघ्र ही यह स्थिति आ गयी कि फ्रेंच भाषा बोलनेवालों और अंग्रेजी भाषा बोलनेवालों का अन्तर वंश के आधार पर न होकर सामाजिक स्तर के आधार पर हो गया। फ्रेंच भाषा शिष्ट समाज की सुसंस्कृत भाषा मानी जाने लगी। दूसरी ओर, उस समय अंग्रेजी भाषा समाज के निम्न वर्ग में चलती थी तथा असंस्कृत भाषा समझी जाती थी। स्थिति यह हो गयी कि अंग्रेज शासक वर्ग के लोग अंग्रेजी भाषा नहीं जानते थे, और उनके न्यायालय में सारा काम फ्रेंच भाषा में किया जाता था, तथा उनमें रचा जानेवाला सब साहित्य फ्रेंच भाषा में होता था। उस समय उच्चाकांक्षी अंग्रेज अपने बच्चों को फ्रांस इसलिए भेजा करते थे कि उनकी फ्रेंच भाषा और उसका उच्चारण शुद्ध हो, तथा उनकी वाणी अंग्रेजी के असभ्य प्रभाव से मुक्त हो जाये। उस समय इँग्लैड में सरकारी ही नहीं, अपितु अर्ध-सरकारी और निजी पत्र-व्यवहार भी प्रायः फ्रेंच भाषा में ही होता था।

वह ऐसा समय था जब कि योरप में लैटिन और ग्रीक भाषाएँ न केवल तत्कालीन उपलब्ध सारे ज्ञान की माध्यम

थीं, बल्कि वे ऐसी भाषाएँ थीं जिनका साहित्य अत्यन्त उन्नत था तथा जिनमें अत्यन्त समादृत काव्य, व्याख्यान तथा दर्शन पढ़ने को मिलते थे। लैटिन भाषा तो उस समय योरप में सर्वत्र प्रचलित थी। सारे योरप के शिक्षित व्यक्ति आपस में इसी भाषा के माध्यम से विचार-विनिमय करते थे। ग्रीक और लैटिन परिनिष्ठित भाषाएँ थीं। उन्होंने प्रत्यक्षतः एक पूर्णता प्राप्त कर ली थी। उस समय अंग्रेजी, जर्मन आदि देशीय भाषाएँ अपरिपक्व, असंस्कृत और सीमित साधनोंवाली थीं। उस समय यह समझा जाता था कि इन प्राचीन भाषाओं में जिस प्रकार विस्तृत भाव-जगत् और सूक्ष्म विचार व्यक्त किये जाते हैं, उस प्रकार वे इन देशीय भाषाओं में प्रकट नहीं किये जा सकते। इन परिनिष्ठित भाषाओं के उपासकों को अपने पक्ष के समर्थन में युक्तियों की कमी नहीं थी। आशंका यह की जाती थी कि यदि देशीय भाषाओं का प्रयोग अत्यधिक किया गया तो परिनिष्ठित भाषाओं की जानकारी तो घटेगी ही, साथ ही देशीय भाषाओं के द्वारा उच्च ज्ञान प्राप्त करना संभव न होने के कारण, लोगों के ज्ञान का स्तर ही गिर जायगा। किंतु ये परिनिष्ठित भाषाएँ—लैटिन और ग्रीक—संस्कृत के समान 'क्लासिकल' भाषाएँ थीं, जो किसी देश में बोली नहीं जाती थीं। वे केवल विद्वानों (पंडितों) तक सीमित थीं। इस स्थिति की कृत्रिमता स्पष्ट थी, और देशीय भाषाओं के सामने वे बहुत दिनों नहीं टिक सकती थीं क्योंकि बहुसंख्यक जनता उन्हें नहीं सीख सकती थी। इँग्लैण्ड में स्थिति यह हो गयी कि इन परिनिष्ठित भाषाओं के अतिरिक्त एक विदेशी देशीय भाषा (फ्रेंच), जिसे नार्मन विजेता लाये थे, आभिजात्य वर्ग की भाषा हो गयी।

जब १४वीं शती में फ्रेंच भाषा का लोगों पर प्रभाव कम होने लगा और अंग्रेजी बोलने की प्रवृत्ति बढ़ी तो फ्रेंच की रक्षा के लिए कदम उठाये गये। धार्मिक संस्थाओं ने इस प्रकार के नियम बनाये जिनसे धार्मिक कामों में अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर पाबन्दियाँ लगा दी गयीं। विश्वविद्यालयों में तो ऐसे नियम बनाये गये कि विद्यार्थी-गण आपस में लैटिन अथवा फ्रेंच भाषा में ही बातचीत करें। इँग्लैण्ड में फ्रेंच भाषा को जीवित रखने के लिए पार्लियामेंट ने भी सन् १३३२ ई० में एक प्रयत्न किया। उसने यह आदेश दिया कि सब बैरन (अमीर-उमरा) तथा आभिजात्य वर्ग के व्यक्तियों को इस बात का प्र[यत्न] करना चाहिए कि उनके बच्चे फ्रेंच भाषा सीखें और अभि[व्यक्ति के] योग्य बनें।

परन्तु मातृभाषा-प्रेम देश-प्रेम का एक महत्त्वपूर्ण [अंग] है। अतः अंग्रेजी के समर्थकों की भी कमी नहीं थी। म[र्चेंट] टेलर स्कूल के प्रधान अध्यापक श्री रिचर्ड मलकास्टर [ने] इस सम्बन्ध में जो लिखा उसका भावार्थ यह है:—

"किन्तु यह सारा काम अंग्रेजी में ही क्यों [न] किया जाय, उस अंग्रेजी में जिसका विचार[क्षेत्र] विस्तृत है और जिसकी अभिव्यक्ति सुस्पष्ट है? [मैं] नहीं समझता कि ऐसी कोई भाषा है जो सब [बातें] अंग्रेजी की अपेक्षा अधिक सारगर्भित और स्पष्ट [रूप] में प्रकट कर सकती है। शर्त यही है कि अंग्रेजी बोल[ने] वाला उस विषय में वैसा ही पारंगत हो जैसा [कि] विदेशी भाषा का प्रयोक्ता होता है........ क्या यह विचित्र बन्धन नहीं है कि केवल ज्ञान [के] लिए किसी भाषा का दास बना जाये और अधिक[तर] समय उसीमें नष्ट हो जाये, जब कि वह [सारा] ज्ञान-कोश हमें स्वयं अपनी भाषा में मिल [सके] और वह भी बहुत से समय की बचत करके? अंग्रे[जी] भाषा में हमें अपनी स्वतंत्रता और स्वाधीनता [का] आनन्दपूर्ण अनुभव होता है, जब कि लैटिन भा[षा] हमें बन्धन और दासता का स्मरण कराती है। [मैं] रोम से प्रेम करता हूँ, किन्तु लन्दन से उस[से] अधिक प्रेम करता हूँ। मैं इटली के पक्ष में [हूँ,] किन्तु इँग्लण्ड के पक्ष में उससे अधिक हूँ। [मैं] लैटिन का आदर करता हूँ, किन्तु अंग्रेजी [का] पुजारी हूँ।"

"मैं अपनी स्वाभाविक भाषा अंग्रेजी में [ही] लिखता हूँ, क्योंकि मेरे लेखों के निर्णायक विद्[वान] व्यक्ति भले ही हों, किन्तु म उन अशिक्षित व्यक्ति[यों] के हित का भी ध्यान रखता हूँ जो केवल अंग्रे[जी] जानते हैं। जो भली भाँति लैटिन समझता है [वह] अंग्रेजी उससे भी अधिक अच्छी तरह समझ स[कता] है, शर्त यही है कि वह सच्ची बात को स्वीकार [करे,] भले ही वह यह समझे कि उसे लैटिन का बहुत अधि[क] अभ्यास है।"

इँग्लैण्ड में विदेशी फ्रेंच भाषा के ज्ञान और

१६६४ की रक्षा के इतने सरकारी और गैर सरकारी प्रयत्नों के बावजूद वहां उसकी अवनति ही होती गयी। न केवल लोगों को उस भाषा का ज्ञान कम हो गया, अपितु अंग्रेजी की लिखावट से वह एक ऐसी नयी मिश्रित भाषा बन गयी जो मूल भाषा से बहुत भिन्न मालूम होती थी। इँग्लैण्ड में उस समय अंग्रेजी भाषा के कई स्थानीय रूप थे, जिन्हें बोलियां या उपभाषा कह सकते हैं। उनमें से एक उपभाषा, लंदन और उसके आसपास की बोली पर आधारित, १४वीं शती के अन्त तक लिखित भाषा के रूप में विकसित हो गयी और १५वीं शती में उसे सामान्य मान्यता प्राप्त हो गयी। (वर्तमान अंग्रेजी भाषा उसीका परिवर्तित रूप है)। किन्तु विधि (कानून) के क्षेत्र में प्रवेश और मान्यता प्राप्त करने के लिए अंग्रेजी को १४वीं शती के बाद भी बहुत दिनों कठिन प्रयत्न करना पड़ा।

नार्मन विजय के उपरान्त लैटिन भाषा इँग्लैण्ड में विधि (कानून) की लिखित भाषा हो गयी थी। नार्मन और अंग्रेज दोनों ही जातियों के शिक्षित व्यक्ति उस भाषा को जानते और उसका प्रयोग करते थे। परन्तु धीरे-धीरे लैटिन का स्थान फ्रेंच ने ले लिया और, इसके बहुत बाद, फ्रेंच का स्थान अंग्रेजी ले सकी। पार्लियामेंट में भी फ्रेंच ने लैटिन को अपदस्थ करके उसके कार्य का माध्यम बन गयी। पार्लियामेंट के अभिलेखों से यह प्रकट होता है कि १३वीं शती के अंत में फ्रेंच भाषा पार्लियामेंट में लेटिन का स्थान लेने का प्रयत्न कर रही थी, और १४वीं शती में वह इस प्रयत्न में सफल भी हो गयी। एडवर्ड (प्रथम) के शासनकाल में पार्लियामेंट को जो प्रार्थनापत्र या याचिकाएं दी जाती थीं वे सामान्यतः फ्रेंच भाषा में लिखी जाती थीं। कानून भी कभी-कभी फ्रेंच भाषा में लिखा जाने लगा था, यद्यपि उसके लिए प्रायः लेटिन का प्रयोग होता था। यदि मूल याचिका अंग्रेजी में होती तो भी पार्लियामेंट के अभिलेखों में वह फ्रेंच में ही अभिलिखित की जाती थी। यह स्थिति प्रायः एक शती तक चलती रही, किंतु १४वीं शती की समाप्ति होते-होते अंग्रेजी और फ्रेंच का संघर्ष समाप्त हो गया। सबसे पुराने अंग्रेजी में बने कानून जो मिलते हैं वे रिचर्ड (तृतीय) के शासनकाल के हैं। बात यह है कि इसके शासन में ऐसा हुआ कि 'स्टेटयूट रोल' का स्थान अधिनियमों के पंजीकरण ने ले लिया। याचिकाओं के आधार पर अधिनियम बनने के स्थान पर अब प्रायः सम्पूर्ण विधेयक पार्लियामेंट के किसी सदन में पुरःस्थापित हो जाता था जिस पर राजा अपनी सहमति दे देता था। जब विधेयक ही अधिनियम बन गया, और स्टेटयूट रोल में नकल किये जाने के स्थान पर केवल उसके पंजीकरण का प्रश्न रह गया तो यह स्वाभाविक था कि वह अपनी मूल भाषा में ही रहे। यह बात अवश्य है कि अंग्रेजी भाषा का पूर्ण प्रभुत्व हो जाने पर भी लेटिन और फ्रेंच भाषाओं के अवशेष कुछ मात्रा में पार्लियामेंट के अभिलेखों में बने रहे, और यह आज भी सत्य है। यह अत्युक्ति न होगी कि आज लगभग प्रत्येक अंग्रेजी शब्द, जिसका विधि-क्षेत्र में निश्चित अर्थ होता है, किसी न किसी रूप में फ्रेंच भाषा से लिया गया है।

जिस भाषा में कानून बनते हैं उसीमें अन्य कानूनी साहित्य का सृजन होना स्वाभाविक है। अतः जब हम इँग्लैण्ड के मध्यकालीन विधि (कानूनी) साहित्य का अध्ययन करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि वह प्रायः लेटिन भाषा में ही था। १३वीं शती में फ्रेंच भाषा इँग्लैण्ड में लेटिन को हटाकर विधि-भाषा (कानून की भाषा) का स्थान लेने लगी। उस शती की समाप्ति के समय से विधि-क्षेत्र में फेंच भाषा का ही प्रभुत्व हो गया। बाद में अंग्रेजी ने विधि-क्षेत्र में प्रवेश करने का प्रयत्न आरंभ किया किन्तु अंग्रेजी में विधि (कानून) १५वीं शती के उत्तरार्ध के पहिले नहीं बनी, और १६वीं शती में पहुँचकर ही हमको विधि की पुस्तकें अंग्रेजी भाषा में मिलती हैं।

यद्यपि मध्यकाल में स्थिति यही थी कि वे व्यक्ति जो लिख-पढ़ सकते थे, प्रायः लेटिन जानते थे; तथापि फिर भी लेटिन बोलने का अभ्यास विद्वानों ही को था। अतः यद्यपि न्यायालय में अभिलेखों (लिखित कागज-पत्र) के लिखने के लिए लेटिन का प्रयोग सहज था और प्रायः होता भी था, तथापि न्यायालय में किये जानेवाले मौखिक कार्यों के लिए उसका प्रयोग नहीं होता था। उस युग में इस क्षेत्र में कुछ समय तक फेंच और अँग्रेजी भाषाओं में प्रतिद्वन्द्विता चलती रही, किन्तु उस समय फ्रेंच भाषा को सफलता मिली क्योंकि राजा और उसके दरबारी, सभी, फ्रेंच भाषा का प्रयोग करते थे। उस समय जो भाषा सभ्य और संस्कृत समझी जाती थी उसीका न्यायालयों में व्यवहार होना स्वाभाविक था। अतः राजा के न्यायालयों में प्रयुक्त भाषा फ्रेंच ही थी। नार्मनों के आने के

बाद प्रारम्भ में, फ्रेंच-भाषा में काम करनेवाले राजकीय न्यायालय इँग्लैंड की न्याय-व्यवस्था में भले ही ऊपर से थोपे गये हों, किन्तु धीरे-धीरे राजा के नाम से किये जानेवाला न्याय (जो इन फ्रेंचभाषी न्यायालयों द्वारा किया जाता था) इँग्लैण्ड की न्याय-व्यवस्था का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अंग हो गया। देश के दूर-दूर के स्थानों में ऐसे फ्रेंच-भाषा में काम करनेवाले न्यायालयों की स्थापना हुई, और छोटे लोगों के छोटे-मोटे मामले तथा बड़े लोगों के बड़े-बड़े मामले, सब, इन्हीं न्यायालयों के निर्णयार्थ आने लगे। विधि के सभी मामलों में फ्रांसीसी तत्त्व अद्यतन, जाग्रत् और प्रगतिशील समझा जाता था। इस प्रकार एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी कि स्थानीय न्यायालयों में वादीगण, जो प्रायः किसान होते थे, अपना-अपना पक्ष फ्रेंच भाषा में प्रस्तुत करते थे और उसी भाषा में न्यायाधीश निर्णय भी देते थे। १३वीं शती में अधीनस्थ न्यायालयों तक के पथ-प्रदर्शन के लिए फ्रेंच भाषा में तो पुस्तकें प्राप्य थीं, अंग्रेजी में नहीं। किन्तु सन् १३६२ ई० में एक अधिनियम प्रसारित किया गया। इसमें यह घोषणा की गयी थी कि न्यायालयों में अभिवचन (प्लीडिंग) अंग्रेजी में होना चाहिए। किंतु मजे की बात यह थी कि यह अधिनियम फ्रेंच भाषा में तैयार किया गया था। जैसा कि उस अधिनियम की प्रस्तावना में बतलाया था, देशवासी फ्रेंच भाषा प्रायः नहीं जानते थे। इसका फल यह होता था कि जो लोग वाद प्रस्तुत करते थे, या जिनके विरुद्ध वाद प्रस्तुत किया जाता था, उन्हें यह भी नहीं समझ पड़ता था कि उनकी तरफ से उनके वकीलों द्वारा फ्रेंच भाषा में क्या कहा जा रहा है या दूसरे पक्ष उनके विरुद्ध क्या कह रहे हैं। यह अधिनियम अंग्रेजी के बढ़ते हुए महत्त्व का प्रमाण था। किन्तु उससे वांछित उद्देश्य की पूर्ति नहीं हुई। जो विवादी न्यायालय में स्वयं उपस्थित होता उसके लिए यह बात महत्त्वपूर्ण हो सकती थी कि न्यायालय की कार्यवाही अंग्रेजी में हो, किन्तु विवादीगण प्रायः स्वयं न्यायालयों में उपस्थित नहीं होते थे। यदि वे इतने निर्धन होते थे कि वकील न कर सकें तो न्यायालय उन्हें वकील की सेवाएँ प्राप्त करा देता था। विधि (कानून) के कार्य और कानून शिक्षण-विधि व्यवसायी वकीलों के एकाधिपत्य में आ गयी थी। यदि स्वयं ग्रामीण लोग न्यायालयों में फ्रेंच भाषा का प्रयोग नहीं कर सकते थे, तो उनके वकील उनकी ओर से उस भाषा का प्रयोग करते थे। वह समय ऐसा था जब छोटे-छोटे न्यायालयों में उपस्थित होनेवाले वकील भी उस विदेशी भाषा का ही प्रयोग करते थे। इसलिए नये अधिनियम का यह आदेश कि न्यायालयों में अभिवचन (प्लीडिंग) अंग्रेजी भाषा में होनी चाहिए, वकीलों की परम्परागत अभ्यास को न छुड़ा सका। कानूनों के लेटिन और फ्रेंच भाषाओं में ही बनने के कारण, तथा समस्त विधि-साहित्य उन्हीं भाषाओं में प्राप्य होने के कारण वकीलों को अभिवचन (प्लीडिंग) के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग अव्यावहारिक मालूम होता था। वास्तव में उस समय यही समझा जाता था कि अंग्रेजी भाषा विधि (कानून) के विचारों को यथार्थ रूप में प्रकट नहीं कर सकती।

रोजर नार्थ का (जिनकी मृत्यु १७३४ ई० में हुई) यह विचार था कि इँगलैण्ड की विधि (कानून) के विचार अंग्रेजी भाषा में ठीक से व्यक्त नहीं किये जा सकते और लेटिन तथा फ्रेंच भाषाओं का विधि-साहित्य पढ़े बिना कोई व्यक्ति पैरोकार भले ही बन जाये किन्तु वकील नहीं बन सकता। परन्तु समय ने अपना प्रभाव दिखाया। एक ओर तो न्यायालयों में प्रयुक्त होनेवाली फ्रेंच भाषा अंग्रेजी से अधिकाधिक प्रभावित होती गयी, और, दूसरी ओर, अंग्रेजी भाषा, मुख्यतया विधि-क्षेत्र में, फ्रेंच और लेटिन भाषाओं से शब्दावली लेती गयी, और १७३१ ई० के अधिनियम के प्रचलित होने के पश्चात् अंग्रेजी भाषा का ही विधिक्षेत्र में आधिपत्य हो गया।

सन् १७३१ ई० के इस अधिनियम ने न्यायालयों में अंग्रेजी भाषा के प्रयोग किये जाने का निदेश दिया और न्यायालय की कार्यवाहियों में लेटिन, फ्रेंच तथा अन्य भाषाओं के प्रयोग को वर्जित कर दिया। इस विधि (कानून) का उल्लंघन करनेवाले व्यक्तियों पर ५० **पौंड जुर्माने का भी विधान किया गया।** अतः इस अधि-नियम के प्रचलित होने के बाद यदि कोई वकील न्यायालय में अपना आवेदन फ्रेंच भाषा में प्रस्तुत करता तो वह इस दण्ड का भागी होता। इस विधि (कानून) के उद्देश्य को उसकी प्रस्तावना में इस प्रकार स्पष्ट किया गया था कि न्यायालयों में कार्यवाहियाँ ऐसी भाषा में होने के कारण जो कि मुकदमा लड़नेवालों के लिए अज्ञात भाषा थी कुचेष्टाओं को अवसर मिलता था; अतः जनता

...न एवं संपत्ति की रक्षा के लिए यह आवश्यक था कि ...ालतों में अज्ञात भाषा के प्रयोग से उनकी रक्षा ...ाये।

...जिस समय अंग्रेजी भाषा इँग्लैण्ड के राजकाज की ...विधि (कानून) की भाषा कानूनी और वास्तविक ...बनायी गयी, उस समय वह (अंग्रेजी भाषा अनुन्नत ...असमर्थ थी। उस समय के विद्वानों और विचारकों ...स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है। ड्राइडन ने ...ई० में लिखा था कि "अंग्रेजी भाषा में न छन्द-...है, न कोई ठीक शब्दकोष है, और न व्याकरण है। ...कार यह भाषा एक प्रकार से असभ्य ही है।"[२] ...स्टॉकहॉस ने १७३१ ई० में यह विचार व्यक्त किया कि "अंग्रेजी भाषा किसी नियम के आधार पर न लिखी जा कर प्रायः अनुमान से लिखी जाती थी और प्रत्येक व्यक्ति इस विषय में स्वतंत्र था; स्वच्छन्दतापूर्वक जो चाहता वह लिखता या आँख मीच कर दूसरे की नकल कर लेता।" (३) सैमुअल जानसन ने अंग्रेजी भाषा का पहिला मान्य शब्दकोश सन् १७५५ में प्रकाशित किया। उसने उसकी भूमिका में लिखा था कि जब मैंने भाषा के सर्वेक्षण का कार्य अपने हाथ में लिया तो भाषा को संपन्न हुए भी अव्यवस्थित पाया; सबल होते हुए भी वह अनियमित थी; जहाँ भी मैंने दृष्टिपात किया (वहाँ भाषा में) सन्देह और भ्रांति का ही साम्राज्य था। (४)

---

१. "But why not all in English, a tung of ...both depe in conceit, and frank in de-...? I do not think that anie language, ...whatsoever is better able to utter all ...ments, either with more pith, or greater ...ease, then our English tung is, if the ...English utterer be as skilfull in the matter, ...as he is to utter: as the foren utterer .... For is it not in dede a ...ellous bondage, to becom servants to ...tung for learning sake, the most of our ...with losse of most time, whereas we ...have the verie same treasur in our own ..., with the gain of most time? Our own ...ing the joyfull title of our libertie and ...dom, the Latin tung remembering us of ...thraldom and bondage? I love Rome, but ...London better, I favor Italie, but England ..., I honor the Latin, but I worship the ...English".—History of the English Language ...A. C. Baugh, 1951 edition Pp. 250 & 251. ...उद्धरणों में अँग्रेजी की तत्कालीन भाषा और अख-...ती है। —सम्पादक, सरस्वती।

"I do write in my naturall English tongue, bycause though I make the learned my judges, which understand but English, and he that understands Latin very well, can understand English farre better, if he will confesse the trueth, though he thinks he have the habite and can Latin it exceeding well." P. 254.

२. "We have yet no prosodia, not so much as a tolerable dictionery, or a grammar, so that our language is in a manner barbarous."

Dryden quoted in Ibid p. 316.

३. "We write by guess, more than by any stated rule, and form every man his diction either according to his humour and caprice or impursuance of a blind and servile imitation.' '

T. Stockhouse quoted in Ibid.

४. "When I took the first survey of my undertaking I found our speach copious without order and energetick without rules: wherever I turned my view, there was perplexity to be disentangled, and confusion to be regulated."

—S. Johnson quoted in Ibid p. 344.



भूटान के प्रधान मंत्री की हत्या

मेजर सीताराम जौहरी

[भूटान के प्रधान मंत्री जिग्मे डोर्जी की हत्या गत मास फण्टशोलिंग नामक स्थान में कर दी गयी। ... एक कस्बा है जो भारत-भूटान की सीमा पर इस प्रकार बसा है कि इसका आधा भाग भूटान में, और आधा भा... में है। संयोग से 'सरस्वती' के लेखक और हिमालय प्रदेशों के विशेषज्ञ मेजर जौहरी उस दिन फुण्टशोलिंग ही में ... उन्होंने उस समय वहाँ जो देखा और सुना उसे उन्होंने 'सरस्वती' के पाठकों के लिए लिख दिया है। मेजर जौ... से हमने नैपाल और भूटान पर लेख लिखने का अनुरोध किया है क्योंकि भारत-चीन संघर्ष के कारण उनकी भौ... लिक और सैनिक स्थिति ने उन्हें हमारे लिए बहुत महत्वपूर्ण बना दिया है। इन देशों की आंतरिक राजनीति, राष्ट्... नीति, वैदेशिक नीति, इतिहास तथा भूगोल से इस देश के निवासी प्रायः अपरिचित हैं। किंतु इस नयी परिस्थि... में हमारे लिए उनकी जानकारी आवश्यक हो गयी है। उनको जाने और समझे बिना हम इन देशों की गतिविधि... को न तो ठीक तरह से समझ ही सकते हैं और न उनके सम्बन्ध में सही परिणाम पर पहुँच सकते हैं। ये ले... भारतीय दृष्टिकोण से लिखे गये हैं किंतु वे वस्तुपरक हैं। वे 'सरस्वती' में क्रमशः प्रकाशित होंगे।

——सम्पादक, सरस्वती]

(इस लेख में प्रधान मन्त्री एवं उनके सम्बन्धियों के नामों के अतिरिक्त अन्य समस्त नाम काल्पनिक हैं।)

"सुना है क्या हुआ?" मेरे एक भारतीय खान मित्र ने पूछा।

"क्या हुआ?" मैंने पूछा।

आज ४ बजे प्रधान मन्त्री फुण्टशोलिंग पहुँच गये। वे सामची से आये हैं। जब वे फुण्टशोलिंग से कुछ ही मील दूर थे तो मार्ग में उन्हें भूटान ट्रान्सपोर्ट की एक सवारी गाड़ी फुण्टशोलिंग आती हुई मिली। उन्होंने उस गाड़ी को रोककर उसके ड्राइवर को अपनी गाड़ी दे दी और सवारी गाड़ी स्वयं ड्राइव करते हुए फुण्टशोलिंग के अतिथि-भवन में जा पहुँचे। पुलिस को ज्ञात ही न हुआ। जो विशेष पदाधिकारी उनके स्वागतार्थ अतिथि-भवन में उपस्थित थे वे तो कल्पना भी न कर सकते थे कि प्रधान मन्त्री सवारी गाड़ी में, वह भी स्वयं ड्राइव करते हुए, आ सकते हैं। खैर!

"बड़ी हँसी रही।" मेरे मित्र ने बताया।

फुण्टशोलिंग छोटी सी वस्ती है जिसका आधा भाग भारत में है शेष भूटान में। यदि पाठक विल्स सिगरेट की डिब्बी भारतीय दूकान से लें तो सत्तर नये पैसे देने होंगे लेकिन वही डिब्बी कुछ ही गजों की दूरी पर भूटानी दूकान से ४५ पैसों में मिल जायगी। कारण यह है कि भूटान में अदन या हांगकांग की भाँति राज्य की ओर से सामान पर आयात-कर नहीं लगता। इतना अवश्य है कि वहाँ सामान की इतनी अधिक माँग है कि जैसे ही भूटान को आनेवाला सामान फुण्टशोलिंग आया वैसे ही बिक गया। यही कारण है कि डयूटी-मुक्त वस्तुओं की कमी भूटान में सदैव र... है। यह सामान भारतीय दूकानों में ऊँचे दामों पर सरल... से लिया जा सकता है।

मैं भारतीय बाजार से डूक होटल में, जहाँ मैं ठ... हुआ था, सन्ध्या समय लौटा और अपने कमरे में न जा... भोजन वाले कमरे में ही रुक गया। वहाँ मेरे एक मि... दो युवकों से बातें कर रहे थे।

"महाशयजी का नाम है चिंग, आप मंचूरिया निवा... हैं। आप हैं अवकाश प्राप्त मेजर जौहरी।" हमा... परिचय कराते हुए मेरे मित्र श्री खान ने कहा। तत्पश्चा... खान साहब अन्य युवकों से बातों में लग गये। उन्हें अ... दिन थिम्पू जाना था। यह दूसरा युवक फुण्टशोलिंग ... ट्रान्सपोर्ट से कुछ सम्बन्ध रखता था और भूटान ... नागरिक था, यद्यपि इसका पिता चीनी था। ऐसे उदाह... भूटान में प्रायः ही मिलते हैं।

"आप यहाँ कहाँसे आये हैं?" मैंने मानचू मह... से पूछा। यह टूटी-फूटी हिन्दी बोल और समझ ... थे।

उन्होंने बताया, "मैं ल्हासा से १९५९ में आया था... कुछ दिनों कलकत्ते में रहा। आजकल यहाँ हूँ।"

यह सुनकर मेरे खान मित्र ने कहा, "अजी! ... बड़े ही योग्य युवक हैं और चीनी, जापानी एवं ... भाषाएँ जानते हैं। आजकल हमारे भूटान वर्कशॉ... के मुख्य मैकेनिक हैं।" मानचू महाशय अपनी ... प्रशंसा सुनकर फूल उठे। उन्होंने बताया—

"मैं कुमिंग टाँग फौज में लैफ्टीनैन्ट कर्नल था।"

भूटानी ह्विस्की का हम लोगों के लिए एक एक पग आया। सिगरेट भी सुलगने लगे। भूटानी ह्विस्की ह्विस्की से बुरी नहीं होती। धीरे-धीरे ह्विस्की कुल्कियों के साथ बातें चल रही थीं। कुछ नशे के सरूर महाशय ने व्यक्तिगत बातें आरम्भ कीं। ज्ञात था कि चिंग को महीनों से बातें करने का अवसर प्राप्त हुआ था।

"मैं बर्मा में लड़ा। मंचूरिया में जापानियों के विरुद्ध चीन के तो कोने कोने में कम्युनिस्टों से लड़ा...," एक दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए कहा।

मैंने पूछा—

"ल्हासा में तो कम्युनिस्ट थे, आप वहाँ कैसे गये?"

"जी, इस बात को छोड़िए। मैं ल्हासा में था, और दलाई लामा के साथ भारत में प्रवेश किया। मेरी हुई। कुछ दिनों तक मुझ पर कुछ प्रतिबन्ध रहे अन्त में मैं स्वतन्त्र कर दिया गया। मेरा सैनिक आइडेंटिटी कार्ड तो अभी तक भारतीय होम मिनिस्टरी है। मैं कलकत्ते चला गया। वहाँसे भूटान के सरकारी मुझे यहाँ ले आये।" उन्होंने अपनी टूटी-फूटी में अपनी बात साफ करने का प्रयत्न किया।

खान ने बीच में बात काटते हुए कहा—"अजी साहब, चार शादियाँ की हैं। एक चीनी, एक जापानी, और एक विवाह यहाँ भी कर डाला है। और बच्चा भी है।"

"क्या आपकी समस्त पत्नियाँ जीवित हैं।" मैंने आश्चर्य से पूछा।

"यह ज्ञात नहीं। हाँ, मेरी जापानी पत्नी जीवित उसके एक बच्चा भी है।"

मैंने कहा "सम्भव है कि आप अपनी भूटानी पत्नी को छोड़कर चले जायें।"

"मैं भारत तो नहीं ही जाऊँगा। मुझे होम मिनिस्ट्री विदेशी भाषा (Foreign language) के विद्यालय में (१४००) मासिक वेतन पर स्थान दे रही है, परन्तु मैं नहीं जाऊँगा।"

"अरे भाई! चौदह सौ बहुत होते हैं। चले न जाओ!" खान बोल उठा।

"पैसे का कोई प्रश्न नहीं।" मैंने कर्नल को ढाढ़स देते हुए कहा।

"हाँ, पैसे की क्या चिन्ता? अभी मैंने १०,०००) का तो मकान बनवाया, और १९,०००) जुये में हारे" उन्होंने कुछ गर्व मिश्रित स्वर में कहा।

कर्नल साहब को कुछ तो ह्विस्की का नशा था ही, उसपर उनकी प्रशंसा के पुल बाँधे जा रहे थे। और व्यक्तिगत प्रशंसा का नशा तो मदिरा से भी बढ़कर होता है। इतनी देर में उनके मित्र ने किसी भाषा में कुछ कहा, जिस पर कर्नल साहब ने नोटों का बंडल निकाला, और ५५ रु० अपने मित्र को दे दिये। सम्भव है यह उनके मित्र का हिस्सा रहा हो। बाद में मुझे ज्ञात हुआ कि यदि थिम्पू से मरम्मत के लिए गाड़ियाँ फुण्टशोलिंग आती हैं तो मरम्मत हो जाने के पश्चात् भी उन गाड़ियों को थिम्पू नहीं भेजा जाता। और प्रातः से सायंकाल तक इन गाड़ियों द्वारा किराये पर निजी सामान ढोया जाता है। शाम को इनके द्वारा जो धन मिलता है उसका हिस्सा-बाँट कर लिया जाता है। फिर जब दूसरी गाड़ी आ जाती है तो पहिली को वापिस भेज दिया जाता है।

"आपको भूटान कैसा लगा?" मैंने पूछा।

"यहाँ क्या रखा है? अब मैं अमरीका जाऊँगा"।

"तो क्या भूटानी पत्नी भी छोड़ दोगे?" खान ने पूछा।

"जैसे और छूटीं वैसे यह भी छूट जायेगी।"

कर्नल ने हँसकर ह्विस्की का गिलास खाली करते हुए कहा।

कर्नल के जाने का समय हो चुका था। जब वे चलने लगे तो मैंने उन्हें अगले दिन ड्रिंक के लिए निमंत्रित किया। चलते समय नमस्ते हुई। चिंग अंग्रेजी नहीं बोल सकते थे।

(२)

हम फिर बातों में लग गये। अभी बातें कर ही रहे थे कि महाशय छोजेन आ गये। ये सिक्किम के नागरिक थे। भूटान में व्यापार हेतु आये हुए थे। इन्होंने ल्हासा भी देखा था, और १९६२ के आक्रमण के समय ड्रांगजोंग पहुँचे ही थे कि डिवीजन हेडक्वार्टर्स की रसद की पंक्ति चीनियों ने तोड़ दी। छोजेन को टेंगा पानी होते हुए चाकू आना पड़ा। परन्तु चीनियों ने इन्हें यहाँ भी न ठहरने

दिया। यों भी छोजेन को तिब्बतियों और चीनियों का बहुत अनुभव था, केवल इन्हीं को नहीं, वरन् इनके समस्त कुटुम्बियों को भी। इनके दादा ने चीनियों एवं तिब्बतियों के विरुद्ध जनरल यंगहज़बैण्ड को सहायता दी थी। छोजेन महाशय को फुण्टशोलिंग में आने के २-३ महीनों ही में भूटान के विषय में इतना ज्ञात हो गया था कि उतना ज्ञान शायद ही और किसीको हो। छोजेन महाशय कर्नल चिंग से ल्हासा में भेंट कर चुके थे और मिसामारी कैम्प में भी। उनको उन चीनियों के विषय में भी पूरी-पूरी जानकारी थी जो भूटान में महत्त्वपूर्ण कामों में लगे थे।

छोजेन ने बातों ही बातों में बताया कि फुण्टशोलिंग में एक चीनी सज्जन हैं जिनकी लकड़ी काटने की आरे की मिलें चलती हैं, और एक दूसरे चीनी सज्जन थिम्पू गोम्फा के निर्माण के इंचार्ज हैं। इस गोम्फा के निर्माण का दायित्व एक भारतीय इंजीनियर पर है। पर यह इंजीनियर चीनी सज्जन के नीचे है। फिर ज्ञात हुआ कि ५ अप्रैल को एक चीनी व्यापारी प्रधान मन्त्री के साथ कलकत्ते से आया हुआ था, और प्रधान मन्त्री के साथ ही अतिथि-भवन में ठहरा हुआ था। छोजेन महाशय इतनी बातें करके एक अन्य मेज पर अपने मित्रों के साथ जलपान करने चले गये।

"फुण्टशोलिंग कालिम्पाँग की भाँति षड्यन्त्रों का केन्द्र ज्ञात होता है। जब यहाँ कुमिंगटाँग के एजेंट हैं तो कम्युनिस्टों के एजेंटों का होना भी आवश्यक ही है।" मैंने खान से कहा। "आप बिलकुल सही कह रहे हैं। लकड़ी काटने के आरे की मिल के मालिक लिङ्ग तीन भाई हैं। भारतीय सरकार ने इसके दो भाइयों को भारत रक्षा कानून के अन्तर्गत बन्दी कर लिया था। फिर एक भाई को चीन भेज दिया, दूसरे को कुछ समय पश्चात् मुक्त कर दिया। वह यहाँपर ही है।" खान ने धीमे स्वर में बताया।

मैंने कहा, "ऐसा तो होता ही है। कलकत्ते में तो हजारों चीनी हैं जिनके कारण उनकी बस्ती का नाम ही 'चाइना टाउन' के नाम से प्रसिद्ध है। पता नहीं वे क्या कर रहे होंगे। भारत सरकार को तो सूचना मिलती ही होगी। परन्तु कुछ भी हो, मुझे तो फुण्टशोलिंग शान्तिपूर्ण स्थान नहीं प्रतीत होता।"

खान ने उत्तर में कहा "हाँ, मैं भी कुछ दिनों से [illegible] रहा हूँ कि जब से भूटान के महाराजा अस्वस्थ [illegible] स्विटजरलण्ड गये हैं तब से यहाँ विचित्र बातें हो रही [illegible] महाराजा ने एक भूटानी सज्जन को थिम्पू में बड़ी [illegible] करा दी थी। यह दूकान भली भाँति चल रही थी [illegible] उसके मालिक को अच्छी आय हो रही थी। परन्तु महा[illegible] के प्रस्थान के दो महीने बाद ही वह दूकान बन्द हो [illegible] और थिम्पू से उन सज्जन का नाम ही मिट गया। [illegible] कुछ दिनों पश्चात् वे सज्जन सड़क पर कंकड़ [illegible] दिखायी दिये।"

"यह कैसे सम्भव है?" मुझे आश्चर्य हुआ।

"इसमें असम्भव क्या? कोई चार्ज लगाकर [illegible] दिया होगा। कुछ दिनों पश्चात् वह दुकानदार राज[illegible] के निकट अपनी विपद कथा लेकर पहुँचा। महाराजा [illegible] थिम्पू में उपस्थिति के समय राजमाता की काफी च[illegible] है, परन्तु उनकी अनुपस्थिति में वे क्या कर स[illegible] थीं?"

"इसका तात्पर्य यह हुआ कि यहाँ सामन्तशाही [illegible] तो है ही, साथ ही यहाँपर व्यक्तिगत बदले भी प्रा[illegible] काल की भाँति ही लिये जाते हैं।" मैंने बात स[illegible] करके उठते हुए कहा। मेरा विचार अपने कमरे में जा[illegible] थोड़ी देर आराम करने का था कि खान ने कुछ याद क[illegible] हुए कहा :—

"भूटान महाराज जब अस्वस्थ हो गये तब [illegible] कुछ लोगों का अनुमान था कि उन्हें विष दिया गया [illegible] एक योरोपियन डाक्टर की सम्मति के अनुसार उन्हें तत्[illegible] योरोप भेजा गया। वहाँ गये उनको ४ या ५ महीने [illegible] चुके हैं। वे अब स्वस्थ हैं, और १५ अप्रैल को भूटान वा[illegible] आ रहे हैं। उन्हींके स्वागतार्थ प्रधान मन्त्री भी [illegible] आये हुए हैं। महाराज के थिम्पू पहुँचने पर प्रधान [illegible] फिर कलकत्ते चले जाएँगे। वे बहुधा कलकत्ते में ही [illegible] कर भूटान के विदेशी मामले चलाते हैं।"

मैं उठा, और जीने की ओर चल दिया। खान हो[illegible] से बाहर चले गये। फुण्टशोलिंग में रात्रि अप्रैल की [illegible] गरम नहीं होती। यदि मच्छरदानी का प्रयोग किया [illegible] तो रात्रि भली भाँति कट जाती है। मैं उस रात आ[illegible] पूर्वक सोया।

(२)

मैं बड़ी मीठी नींद में सो रहा था कि प्रातः ५ बजे किसीने बड़े जोर से द्वार खटखटाया।

"कौन है?" मैंने अर्धनिद्रित अवस्था में पूछा।

"मैं! खान।"

मैंने तुरन्त उठकर द्वार खोल दिया। अभिवादन के पश्चात् खान कमरे में प्रविष्ट हुए। और एक कुर्सी पर मुस्कराकर बैठ गये। वे मुझे राय साहब कहा करते थे।

"राय साहब! आपका विचार ठीक था। फुण्टशोलिंग अति भयंकर स्थान हो गया है। कल रात्रि में बजकर २० मिनट पर किसीने प्रधान मन्त्री की हत्या कर दी" उन्होंने घबराये स्वर में कहा। 'कैसे?" मैंने बड़ी उत्सुकता से पूछा।

"कल सायंकाल प्रधान मन्त्री अपने भाई और उनकी मंगेतर (यह कलकत्ते की महिला है और बोलचाल से भारतीय नहीं ज्ञात होती) सहित सदैव की भाँति अतिथि-भवन के बड़े कमरे में ताश खेल रहे थे। सम्भव है उस समय उनके कुछ अन्य मित्र भी उस कमरे में हों। प्रधान मन्त्री मेज की उस दिशा में बैठे हुए थे जिसके ठीक पीछे खिड़की थी। उसी खिड़की से लगभग ९ फिट के अन्तर से, किसीने पिस्तौल चलायी। पिस्तौल सम्भवतः माउजर थी वह बहुत शक्तिशाली थी। गोली प्रधान मन्त्री के दाईं ओर वक्षस्थल में घुसी और बाईं ओर की पसलियों से नीचे निकलकर बाएं हाथ को चीरती हुई उनके भाई की मंगेतर का स्पर्श करके गिर गयी। प्रधान मन्त्री के भाई हत्यारे को पकड़ने अविलम्ब बाहर दौड़ पड़े। पर व्यर्थ! इधर भाई को भी देखना था। उन्हें दूसरे कमरे में ले जाकर पलँग पर लिटा दिया गया। लगभग आधे घंटे तक धीमे स्वर में बोल सकें। ९ बजे के बाद बोलना बन्द हो गया और कुछ ही क्षणों में उनका देहावसान हो गया। उनके अन्तिम शब्द जो, उन्होंने अपने भाई से कहे, यह थे कि "बदला मत लेना।" जाँच करने पर गोली का खोल कमरे के अन्दर पड़ा पाया गया। इससे यह कि पिस्तौल ऑटोमैटिक था। और पिस्तौल खिड़की के अन्दर करके फ़ायर किया गया था।" इतना कहकर खान चुप हो गये।

"आपको कैसे ज्ञात हुआ?" मैंने प्रश्न किया।

"आपसे बिदा होकर मैं गाड़ी का प्रबन्ध करने दफ्तर गया। वहाँ कोई गाड़ी न थी। एक ड्राइवर से पूछा पर उसने कहा "साहब कैसी गाड़ी? किसीने प्रधान मन्त्री की हत्या कर दी। अब फुन्टशोलिंग की समस्त सरकारी गाड़ियाँ एवं जीपें हत्यारे की खोज में दौड़ रही हैं।"

खान ने बतलाया कि यह समाचार सुनते ही वे तुरन्त अतिथि-भवन पहुँचे। प्रधान मन्त्री की मृत्यु की सूचना लगभग ११ बजे तक केवल उनके सम्बन्धियों और मुख्य-मुख्य अफसरों को ही दी गयी थी जिससे हत्यारे को कुछ सन्देह न हो और वह भागने में शीघ्रता न करे। जब खान साहब अतिथि-भवन में पहुँचे तब ११ बज चुके थे। अपने प्रधान मन्त्री की हत्या का समाचार सुनते ही जनता अतिथि-भवन में आने लगी थी। प्रधान मन्त्री के सबसे छोटे भाई, माता तथा अन्य कुटुम्बियों को फोन कर दिया गया था। लगभग २ बजे रात्रि से ही सबका आगमन आरम्भ हो गया। डाक्टर भी आ गये। जो भी मृतक क्रियाएँ की जाती हैं, वे की गयीं। शव को कई दिन तक सड़ने से बचाने के लिए पहिले इंजेक्शन दिये, फिर लगभग १० बजे तक आँतें और हृदय निकाल दिया गया, और उनके शरीर को बरफ से ढक दिया गया।

साथ ही वायरलेस द्वारा भारत को प्रधान मन्त्री की हत्या की सूचना दी गई। प्रातः आल इंडिया रेडियो ने भूटान के प्रधान मन्त्री की हत्या की घोषणा की। संसार चकित रह गया। शायद प्रथम बार भारतीयों ने यह अनुभव किया कि भूटान भी एक ऐसा महत्त्वपूर्ण देश है कि जिसके प्रधान मन्त्री की हत्या की सूचना शीघ्रातिशीघ्र आल इंडिया रेडियो से प्रसारित की गयी। भूटान के स्थानीय मुख्य कर्मचारी ने बंगाल सरकार से सहायता माँगी। पुलिस के कुत्ते और सैंट्रल इंटैलिजैंस ब्यूरो के अफसरों की भी सहायता माँगी। ये सब बातें खान साहब रात्रि भर देखते रहे। पौ फटने से कुछ पहिले ही थक कर वे सीधे मेरे कमरे में आये और मुझे सब सूचना दी। बातें करने के पश्चात् हम लोग स्नानादि में लग गये। उससे निवृत्त होकर हम लोग फिर भोजन वाले कमरे में जलपान के लिए एक ही मेज पर जा बैठे।

होटल में बाहर से यात्रियों का आगमन प्रारम्भ हो चुका था। सब कमरे भर गये थे, और बैरे होटल की

मेजों पर जाकर खाने के 'आर्डर' ले रहे थे। कोई तले हुए अंडे माँग रहा था, तो कोई आमलेट, कोई चावल मुर्गी, तो कोई 'चीनी चाओ'। कमरे के हर कोने में बरतन खनक रहे थे। स्थानीय युवकों में बहुत उत्तेजना थी। अकस्मात् एक युवक दौड़ता हुआ आया। वह कुछ कहना चाहता था और बुरी तरह हाँफ रहा था। कुछ क्षण दम लेने के उपरान्त उसने कहा कि हत्यारा भूटानी है, और सम्भवतः भूटानी फौज का ही जवान है। रात्रि को भागते समय अपना एक थैला छोड़ गया है जो खोज में अतिथि-भवन से कुछ ही दूर जंगल में मिला। उसने यह भी कहा कि ज्ञात होता है कि व्यर्थ का सामान साथ ले जाना उचित न समझ उसने अपने फालतू वस्त्र एक थैले में भरकर जंगल में फेंक दिये हों, अथवा यह भी सम्भव है कि उसने खोजनेवालों को गलत दिशा में डालने के हेतु ऐसा किया हो। हत्यारे के कपड़े मिल गये। सम्भव है कि उन कपड़ों पर उसकी उँगलियों के चिह्न भी हों। फिर यह तो निश्चित है कि उन कपड़ों में उसके शरीर की गंध तो आती ही होगी। इस गंध से पुलिस के कुत्तों को हत्यारे की खोज में सुविधा होगी। वहीं यह मालूम हुआ कि हत्या से पहिले राज्य के अतिथि-भवन के कमरे में प्रधान मन्त्री और उनके मित्र बैठे थे। उस समय ट्यूब लाइट के कारण अतिथि-भवन के इस मुख्य कमरे में दिन का सा प्रकाश था। वहाँ प्रधान मन्त्री के कुटुम्बी भी थे और मित्र भी। इन सबों की मोटरों के ड्राइवर भी अतिथि भवन के अहाते में थे। कर्मचारियों के क्वार्टरों में बँगले के नौकर-चाकर, प्रधान मन्त्री का रसोइया आदि भी थे।

अतिथि भवन के द्वार पर संतरी भी ड्यूटी पर उपस्थित था। ऐसी दशा में भी हत्यारा बेखटके अपना काम करके निकल गया और उसपर किसीकी दृष्टि तक न पड़ी, इसपर सभीको आश्चर्य था।]

थोड़ी देर बाद हमारे होटल में अतिथि-भवन से एक ड्राइवर आया जिसने रात भर जागकर वहाँका सब कुछ हाल देखा-सुना था। उससे ज्ञात हुआ कि हत्यारा भूटानी सैनिक वर्दी में था। गोली चलाने से पहिले उसने अतिथि-भवन के नौकरों से बातें भी कीं, और उन्हें सिगरेट-बीड़ी भी पिलाई। जब वे नौकर अपने कार्यों में व्यस्त हो गये तो अवसर पाते ही उसने प्रधान मन्त्री पर गोली चला दी। नौकरों ने अपने-अपने कमरों में कुछ आवाज सुनी अवश्य, पर वे समझे कि कोई बिजली का बल्ब फूट गया है।]

जलपान समाप्त करने पर खान ने कहा कि उनके दफ्तर चला जाये। हम लोग उसके दफ्तर जा ही रहे थे कि फुण्टशोलिंग के भूटानी 'बेस कमांडर' अपने दफ्तर में बैठे दिखायी दिये। हम लोग उनके पास पहुँचे और कुर्सी खींचकर बैठ गये। प्रधान मन्त्री की हत्या पर शोक प्रकट किया और बातें होने लगीं। ज्ञात हुआ कि हत्यारा भूटानी सेना का एन० सी० ओ० है। सम्भवतः इस परिणाम पर वे लोग हत्यारे का थैला पाने के पश्चात् पहुँचे थे। अथवा कोई अन्य पत्र या चिह्न मिला हो। यह स्पष्ट था कि भूटानी अधिकारियों को उस समय तक हत्यारे का पता चल चुका था। बातों ही बातों में ज्ञात हुआ कि उस समय फुण्टशोलिंग में भूटान के सुरक्षा विभाग का कोई अफसर भी न था। जब भारतीय सुरक्षा विभाग के अधिकारी आयेंगे तो जाँच-कार्य आरम्भ होगा। यदि भारत में ऐसी स्थिति में और इतने महान् व्यक्ति की हत्या होती तो हत्यारा कुछ ही देर में पकड़ लिया जाता। परन्तु भूटान में, जहाँ के प्रधान मन्त्री की हत्या को १४ घंटे से अधिक बीत चुके थे, जाँच-कार्य आरम्भ तक न हुआ था। फुण्टशोलिंग में भूटान की सेना के समस्त उपलब्ध सैनिक आस-पास के मार्गों और जंगलों में हत्यारे की खोज में लगे हुए थे। परन्तु इस खोज का संचालक सुरक्षा विभाग का कोई अफसर न था। कुछ देर बाद हम लोग होटल लौट आये।

दिन भर होटल में बड़ी चहल-पहल रही। होटल कर्मचारियों को तो सिर उठाने तक का अवकाश न था। इसी चहल-पहल में समस्त दिन बीत गया। शाम के ६ बज गये, पर हत्यारे का कहीं पता नहीं। होटल में भीड़ एकत्र थी कि एकाएक कुछ भूटानी अफसर आये। उनके साथ भारतीय पुलिस के दो व्यक्ति थे—एक अफसर और दूसरा सम्भवतः सिपाही। सिपाही के हाथ में पुलिस के कुत्तों की चेन थी। यह कुत्ते बैरकपुर से ४ बजे फुण्टशोलिंग पहुँच गये थे, और हत्यारे के वस्त्रों एवं जूतों को सूँघ चुके थे। परन्तु हत्यारे की खोज का कार्य दूसरे दिन भोर होते ही आरम्भ होनेवाला था। पुलिस के ये कर्मचारी भी होटल के खाने के कमरे में आकर बैठ गये।

फुण्टशोलिंग में जिस भाँति मैं परदेशी था, उसी भाँति के लोग भी। ज्यों ही भूटान सरकार की ओर से बंगाल सरकार को सूचना मिली, त्यों ही पुलिस के कुत्तों के दल को वायुयान द्वारा भूटान जाने का आदेश तुरन्त दे दिया गया। इस यात्रा और प्रबन्ध में पुलिस कर्मचारियों की रात्रि और समस्त दिन बीत चुका था। वे थके थे और उससे बातें करने के इच्छुक थे जिनको उनके प्रति सहानुभूति हो। हम सब एक ही मेज पर जलपान करने बैठे।

जलपान करने में गपशप में शाम के ८ बजे होंगे कि अकस्मात् एक भूटानी युवक ने कमरे में प्रवेश किया। नैपाली भाषा में (भूटान में केवल भूटिया और नैपाली भाषाएँ ही बोली जाती हैं) कह रहा था कि हत्यारा पकड़ लिया गया। नैपाली भाषा हिन्दी से मिलती-जुलती है, इसलिए हम लोग भी मतलब की बात समझ गये। पुलिस कर्मचारियों को आशा थी कि कोई भूटानी अफसर आयेगा और सूचना देगा। लगभग दो घंटे की प्रतीक्षा के पश्चात् भी कोई नहीं आया। तब हम लोगों ने परामर्श किया कि पुलिस इन्सपैक्टर को फुण्टशोलिंग के एस॰ डी॰ ओ॰ के पास जाना चाहिए। हम लोग इन्सपैक्टर को एस॰ डी॰ ओ॰ के मकान पर छोड़ आये। अगले दिन ज्ञात हुआ कि पुलिस के कुत्तों ने रात भर खोजा पर हत्यारे का पता न लगा। इस बीच कभी कोई गप्प आती, और पुलिस के कुत्ते खोज के लिए भेज दिये जाते। परिणामस्वरूप कुत्ते भी थक गये थे और पुलिस कर्मचारी भी। उधर भारतीय सुरक्षा के अफसर भी जाँच कार्य आरम्भ कर चुके थे। तारीख को भूटान सरकार द्वारा हत्यारे को पकड़ने के लिए हत्यारे का 'जुम्बेडुकपा' नाम भी भूटानी गजट में प्रकाशित हो गया।

७ तारीख की संध्या तक पुलिस कुत्तों से पूरा काम लिया गया। हत्यारा पकड़ में तो न आया परन्तु कुत्तों द्वारा यह पता भली भाँति चल गया कि हत्यारा कुछ मील पर भूटान में फिर से प्रविष्ट हो चुका है। यह भी ज्ञात हुआ कि वह किस जंगल में घुसा हुआ है। तारीख ८ तक फुण्टशोलिंग में हत्यारे के पकड़ जाने की आशा थी, परन्तु हत्यारे का पता न था। भूटानी अफसरों का विचार था कि एक बार फिर जंगल को छाना जाये।

तारीख ७ को प्रातःकाल प्रधान मंत्री का शव थिम्पू के लिए जा चुका था। सड़क पर ट्रान्सपोर्ट चलने लगा था। मैं भी ८ तारीख को हासीमारा के लिए रवाना हो गया।

बाद में समाचार-पत्रों द्वारा मुझे सूचना मिली कि 'जुम्बेडुकपा' गिरफ्तार कर लिया गया और उसपर मुकदमा चल रहा है। उसने ४३ भूटानी अफसरों के नाम बताये हैं जो इस हत्या के षड्यंत्र में सम्मिलित थे, आदि-आदि।

किसने हत्या की और क्यों, इसके पता लगाने का कार्य है सुरक्षा विभाग का। यदि पाठक इस हत्या का कारण जानना चाहें तो वे परिणाम पर स्वयं पहुँच सकते हैं, परन्तु भूटान, भूटानी और भूटान का इतिहास जानने के पश्चात्। इतने उच्चपदस्थ व्यक्ति की हत्या कोई साधारण घटना नहीं होती। और ऐसी रहस्यपूर्ण घटनाओं का मूल कारण जानने के लिए उस देश की आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं ऐतिहासिक तथ्यों की गम्भीरतापूर्वक छानबीन करनी पड़ती है। एक दिन आयेगा जब भूटान सरकार पूर्ण रूप से हत्यारे का पता लगा लेगी, और उस समय यह भी सम्भव है कि इस विषय में पाठकों के निर्णय और भूटान सरकार के निर्णय में मतभेद न हो।

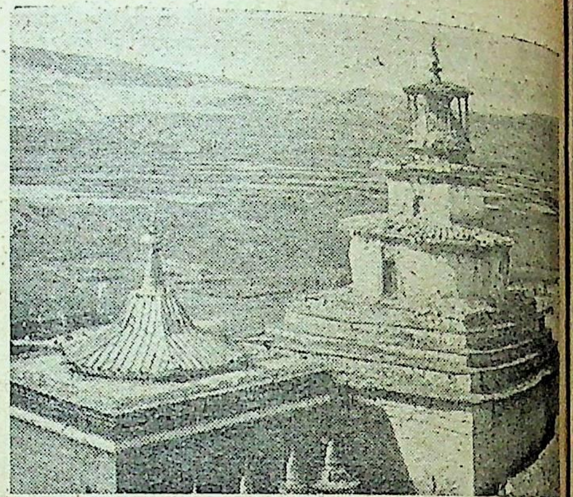


राहुलजी के साथ तिब्बत के अभियान में (१२)

श्री फेनी मुकर्जी

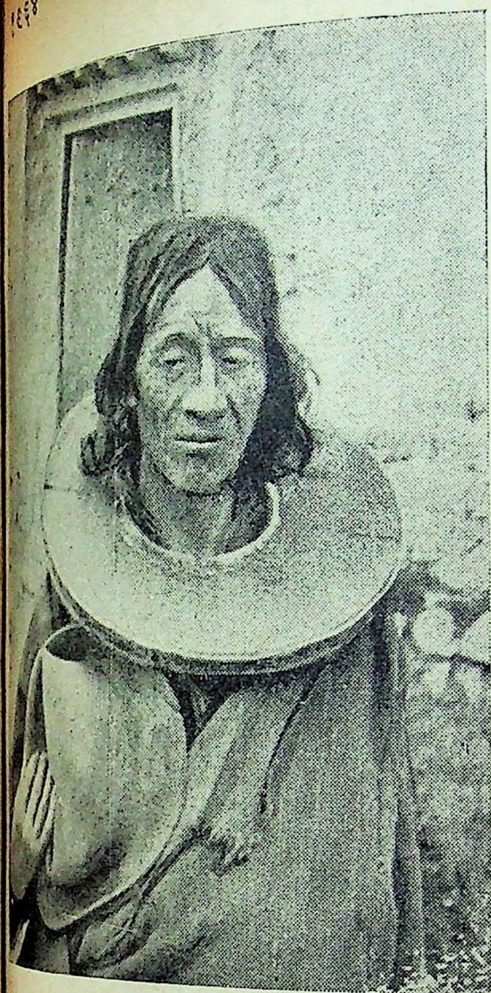
सैकड़ों मील लम्बे-चौड़े ऊँचे पठार पर बसे हुए देश का वातावरण हमारे हरे-भरे समतल देश से बिल्कुल विपरीत है। हिमालय के पीछे हजारों फुट ऊँचे देश को दुनिया का सबसे ऊँचा देश कहा जाता है। भयंकर ऊँचे-नीचे पहाड़, पथरीले पठार एवं रेतीले मैदान में तरह-तरह के प्राकृतिक तूफान आते रहते हैं। इस विशाल देश की जनसंख्या बहुत ही कम है। एक दूसरे से बहुत दूरी पर हरी-भरी घाटियों में तथा नदियों के किनारे छोटी-छोटी बस्तियाँ हैं जिनकी ऊँचाई बारह हजार फुट से लेकर अठारह-उन्नीस हजार फुट तक है। इतनी ऊँचाई पर बसे हुए देश में छोटे-छोटे गाँव एवं नगर के बीच में ऊँचे-नीचे पहाड़, पर्वत, नदी, नाले, मरुभूमि, पठार और बड़ी-बड़ी झीलें प्राकृतिक अवरोध बन गयी हैं जिनके कारण एक बस्ती से दूसरी बस्ती के बीच जनसाधारण का कोई सम्पर्क नहीं रहता। हर एक बस्ती अपनी एक निराली दुनिया है और उसके वासी किसी दूसरे बस्ती के बारे में इस प्रकार मनगढ़न्त बातें करते हैं जैसे भारत के गाँववाले अमरीका और अफ्रीका-निवासियों के विषय में कल्पित कहानी-किस्से कहते हैं। कभी किसीके दादा-परदादा किसी पड़ोस के नगर में घूमकर आये थे, उसीके आधार पर वही एक ही बात सैकड़ों वर्ष तक चलती रहती है। सड़कें नहीं के बराबर थीं। यातायात नाममात्र को होता था। मीलों चलने पर शायद ही कोई नर-नारी दिखायी पड़ता, और पास आने पर वह हमें इस प्रकार आँखें फाड़-फाड़कर देखता जैसे दूर जंगल में देहाती गाय हमारी जीप मोटर को देखती रह जाती है।

सूर्य छिपते ही नर-नारी पंछियों की भाँति दुबक कर अपने-अपने रैन-बसेरों में बैठ जाते हैं, और तिब्बत की ठंडी रात एक गजब के सन्नाटे में सायँ-सायँ करने लगती है। ऐसे वातावरण में बहादुर व्यक्ति की भी हिम्मत नहीं पड़ती कि वह अकेला मकान के बाहर निकले। जिस प्रकार बरसात के दिनों में पानी भरे मैदानों के निकट रहनेवाले ग्रामनिवासी लगातार सैकड़ों मेढकों की टरटराहट सारी रात सुनते रहते हैं, उसी प्रकार तिब्बत के नगर-निवासी सारी रात सैकड़ों कुत्तों के भौंकने की आवाज सुनते रहते हैं।



चोरटन और मानी समाधि का निकट दृश्य। मृत लामाओं या विद्वानों के ऐसे स्मारक तिब्बत में बहुत बने हैं। प्रत्येक यात्री को इनकी परिक्रमा करना आवश्यक होता है।

आज चाँदनी रात थी। बादल और कोहरे में आकाश में चन्द्रमा छिपा बैठा था। मैं अकेला जाग रहा था। साथी कँवलजी घोरनिद्रा में कम्बल के थैले में पड़े सो रहे थे। बन्दूक की गोली चलने की आवाज सुनने के बाद हथेली पर अपनी जान रखकर और चमकता हुआ छुरा पकड़े अपने कमरे के द्वार के किनारे अपने जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिनते हुए खड़ा था। चारों ओर भयंकर सन्नाटा छाया हुआ था। सुनायी दे रही थी केवल ऊपर से उतरते हुए किसी आदमी के पैरों की धमक। डर के मारे मेरा दिल धड़क रहा था; साँस फूल रही थी; और सोच रहा था कि हमारे नौकर को डाकुओं ने मार डाला है और अब वे मेरा खात्मा करने तथा हमारा सारा माल-असबाब लूटने आ रहे हैं। जब उस व्यक्ति की आहट हमारे दरवाजे के बिल्कुल निकट आ गयी तो उसके हाँफने की जोर-जोर की आवाज सुनायी पड़ने लगी। दीवार से पीठ सटाकर यह सोचकर कि अँधेरे कमरे में डाकू के प्रवेश करते ही उसकी छाती में नौ इंची छुरे को भोंक दूँगा, मैंने छुरा तान लिया। दरवाजे के बाहर रुककर उस आदमी ने "बाबूला" कहकर पुकारा। मारे खुशी के मैंने छुरा छुपाकर अपने नौकर को



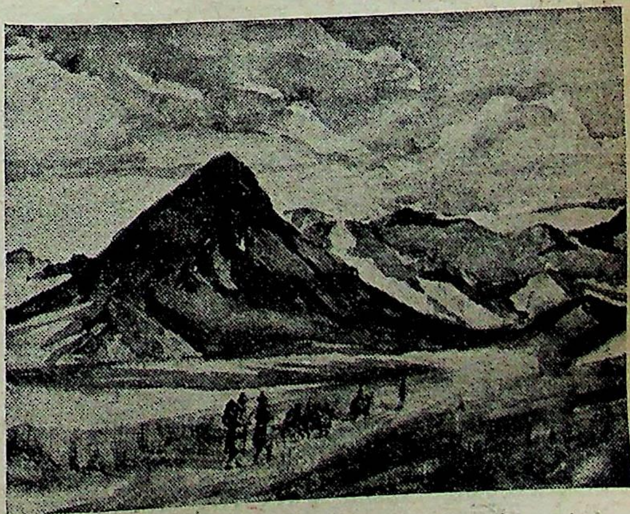
तिब्बत में कैदी को भारी सजा देने के लिए गले में लकड़ी का भारी चौड़ा चक्का जन्म भर के लिए पहना दिया जाता है।

कमरे के भीतर बुला लिया। पूछने पर पता चला कि तीन-चार आदमी हमको लूटने छत पर आये थे। नौकर के गोली चलाने पर वे सब छलाँगें मारकर एक छत से दूसरी छत पर चौकड़ी भरते हुए भाग गये। नौकर ने यह भी बताया कि इन डाकुओं की खबर उसको पहिले से ही लग चुकी थी। इस छोटी नगरी में कोई भी व्यक्ति अपने को छिपा नहीं सकता था। कानों कान खबर फैल जाती थी चारों ओर। यहाँके चोर-डाकू भी हमारे देश के चोरों की भाँति चतुर नहीं थे। इसीलिए वह आज सोया नहीं था और अपने खच्चरों की देखरेख करता हुआ चुपचाप पड़ा था। नीचे सहन से जब मेरे कमरे की छत पर उसने कुछ आदमियों को ताका-झाँकी करते देखा तो वह समझ गया कि डाकू आ गये हैं और हमारी सहायता को दौड़ पड़ा।

उसकी इस वीरता और हमारे प्रति प्रेम-भावना को देखकर मैं मारे शर्म के धरती में गड़ गया और मन ही मन अपने को धिक्कारने लगा कि जो नौकर हमारे लिए अपने प्राण की बाजी लगाने को तैयार था उसके प्रति मेरे मन में कितना अविश्वास की धारणा थी। मैंने यह क्यों समझ लिया था कि हमारा तिब्बती नौकर इस देश के डाकुओं से मिलकर हमको मरवा और लुटवा देगा। गुलाम और स्वाधीन मनुष्य के सोचने की धाराओं में कितना अन्तर होता है।

दूसरे दिन सवेरे से ही हम अपनी यात्रा की तैयारी में लग गये। हमारी विदाई की खबर पाकर हमारे सारे मित्र और अड़ोस-पड़ोस के कितने ही तिब्बती नर-नारी वहाँ जमा हो गये। पारी-पारी से सबों से विदाई लेकर अन्त में सुश्री समझो दुँमा एवं उसके भाई कुशोलाजी और भौजाई से बिदाई लेते समय हम सब रो पड़े। ऐसा लग रहा था कि वे हमारे सगे भाई-बहिन थे और सदा के लिए हम एक दूसरे से जुदा हो रहे थे। समझो ने रोते हुए मुझसे तिब्बत में रह जाने को कहा; उत्तर में मैंने उसको भारत चलने का न्योता दिया। कुछ सोचकर और घबड़ाकर वह बोली, "तुम्हारा देश बहुत गर्म है। मैं वहाँ जीवित नहीं रह सकती।" दूर तक कुशोलाजी, भौजाई जी और समझो दुँमा खच्चरों पर सवार होकर हमारे साथ आये थे।

हमारे मन की कुछ अजीब ही हालत थी। कल रात पहली बार डाकुओं से मुठभेड़ हुई थी। अभी तक तिब्बती डाकुओं की अनेक कहानियाँ ही सुनी थीं। उधर राहुल



तिब्बत के पहाड़ी मार्ग का एक चित्र

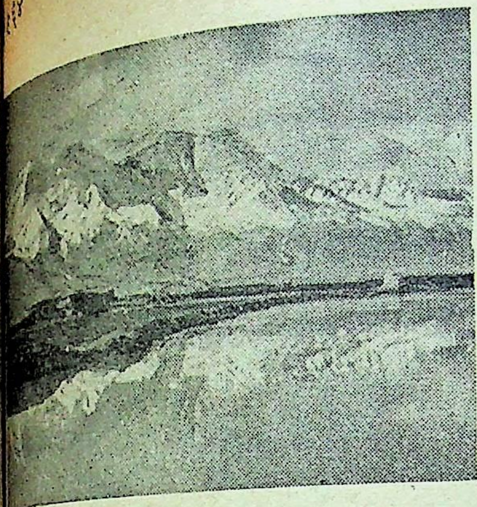
जी से छिपकर तिब्बत की राजधानी ल्हासा नगर के दर्शन करने का चोर मन में बैठा हुआ था। अगर राहुलजी को पता लग गया तो न जाने क्या होगा! तीसरी बात सोचकर प्रसन्नता होती थी। पीड़ित राहुल की दवाई प्राप्त हो गयी थी। वह उसे पाकर कितने खुश होंगे, और चौथी दिल तोड़नेवाली बात रह-रहकर कलेजे में आग जला रही थी कि समझो दुंमा मुझको कितना प्यार करती थी। गिरते-पड़ते दौड़े चले जा रहे थे हम तीनों पहाड़, नदी, नाले, और मरुभूमि समान मीलों लम्बे-चौड़े पठारों को पार करते हुए। रास्ते में इतने ऊँचे नीचे दुर्गम पथ पर नशेबाजों की तरह बेखबर चले जा रहे थे। शरीर के साथ-साथ अब मन भी थक गया था और उसमें सोचने की शक्ति नहीं रह गयी थी। उतनी छोटी उम्र में मेरी इस छोटी सी छाती में इतनी बड़ी-बड़ी जटिल समस्याएँ समाती न थीं। हमारे कुली बड़े परिश्रमी थे। उनमें एक बूढ़ा कुली था जिसकी दृष्टि बहुत कमजोर हो गयी थी। किन्तु वह परिश्रम में और कुलियों से कम न था। रास्ते में बहुत कम लोग मिले। एक उल्लेखनीय व्यक्ति एक डाकू मिला, जिसके गले में 'काठ' डाल दिया गया था।

एक दिन थका-माँदा जब एक गाँव में पड़ा सो रहा था तो सपने में देखा कि मेरी स्वर्गवासी माता आयी हैं और मेरे आँसू पोंछते हुए कह रही हैं "घबड़ा नहीं बेटे! सब ठीक हो जायेगा।" दूसरे दिन सपने की बात सोच-कर हिम्मत बढ़ी, और नये उत्साह से हम शिगष्टी नगर की ओर बढ़ चले। ४५ मील की यात्रा समाप्त करने के बाद जब हम शिगष्टी नगर में सरकारी पड़ाव के दरवाजे पर रुके तो मैं खच्चर से उतरते ही जमीन पर गिर पड़ा। लगातार खच्चर को दौड़ाते रहने के कारण जाँघों में खड़े रहने लायक ताकत नहीं रह गयी थी। माल-असबाब लदे खच्चरों को दरवाजे के बाहर छोड़कर मैं पड़ाव के भीतर घुस गया। वहाँ हमारे नौकर का परिवार रहता था। दौड़कर उन लोगों ने बताया कि भारतीय लामा गेशेलाजी के साथ नोर गुम्पा को चले गये हैं। यह खबर सुनकर हमारे मन में बड़ी चोट लगी। हताश मन लेकर मैं और कँवलजी आ बैठे एक कमरे में। थोड़ी देर में नौकर की हँसमुख पत्नी हमारे लिए चाय-बिस्कुट ले आयी। पूछने पर पता चला कि हमारे जाने के बाद



एक अर्द्धान्ध कुली जिसने शिगष्टी तक हमारा बोझा ढोया था।

राहुलजी यहाँ पास के किसी गाँव में गये थे और वहाँ से दो-चार दिन के बाद बहुत कमजोर होकर लौटे थे। उनकी हालत दिन पर दिन खराब होती गयी और अन्त में गेशेलाजी के मित्र की सहायता से वह नोर गुम्पा ले जाये गये जहाँ उनकी चिकित्सा के लिए उपयुक्त वैद्य मिल सकते थे। हमारी अनुपस्थिति में राहुलजी के एक गाँव में जाने की बात सुनते ही मुझे अभयसिंह परेराजी की बतायी हुई कुछ बातें याद हो आयीं। मुझे यह सुनकर बड़ा क्षोभ हुआ कि हमारी अनुपस्थिति में और अस्वस्थ होते हुए भी वे पड़ोस के गाँव में गये थे। चाय पीकर हमारे साथी कँवल कृष्णजी सिगरेट सुलगाकर कमरे से बाहर टहलते हुए निकल गये। मैं भी गले से लटके कैमरे और पिस्तौल को उतारकर मोटे ऊनी गद्दे पर टाँगें फैलाकर सिगरेट पीने लगा।



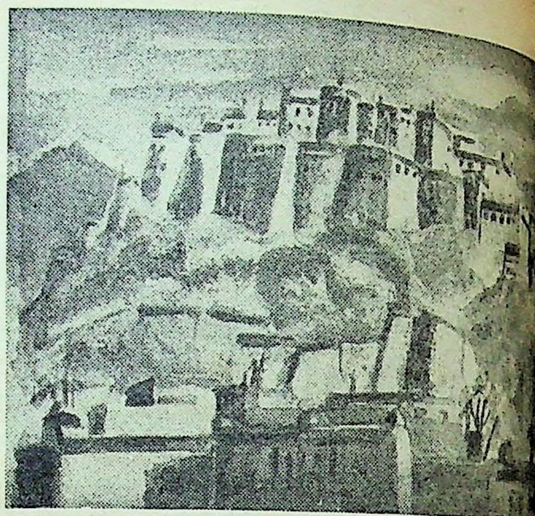
ल्हासा के मार्ग में एक बड़ी झील

अनमने मन में न जाने क्या-क्या सोच रहा था कि नौकर की छोटी लड़की दौड़कर मेरे कमरे में घुसी और बड़े घबड़ाये हुए स्वर में अपनी तिब्बती भाषा में हाथ हिला-हिलाकर मुझसे कुछ कहकर दरवाजे की तरफ भागने लगी। उसकी बोली तो कुछ समझ में नहीं आयी, परन्तु यह स्पष्ट समझ गया कि कुछ गड़बड़ है। कँवलजी के आदेश को पालन करते हुए चट से पिस्तौल उठा ली। उन्होंने अनेक बार कहा था कि किसी प्रकार की गड़बड़ी के समय सबसे पहिले अपने पिस्तौल तानकर अपनी जान की रक्षा करने का प्रबंध करके फिर समस्या को समझने अथवा सुलझाने की चेष्टा करना चाहिए। उस भागती हुई बालिका को देखकर ऐसा लग रहा था कि वह भागकर मुझको किसी घटनास्थल पर लेकर जाना चाहती है। मैं भी भरी हुई पिस्तौल हाथ में लिये उसके पीछे हो लिया। वह मकान के प्रांगण को पार करके बाहर के फाटक की ओर दौड़ी चली जा रही थी। मैं भी जब भागता-भागता आ पहुँचा मकान के फाटक के बाहर तो एक अजीब दृश्य देखकर हक्का-बक्का सा रह गया।

सराय के सामने एक बड़ा भारी मैदान था और उसके उस पार थे ऊँचे-नीचे पहाड़ी टीले। सूर्य डूब चुका था और संध्या की काली छाया रात्रि का आँचल पकड़े बढ़ी चली आ रही थी। दूर से देखा कि हमारे साथी कँवलजी जमीन पर पड़े हैं और उनकी छाती पर घुटना टेके एक आदमी अपनी बड़ी भारी कटारी से उनको काट डालने की चेष्टा कर रहा है। तगड़े नौजवान हमारे पंजाबी साथी एक हाथ से उसकी कटारी पकड़े कलाई को पकड़े उसके वार को रोके पड़े हैं। दो-तीन तिब्बती हमारे माल लदे दोनों खच्चरों को मार-मारकर दूर पहाड़ी की ओर भगाये लिये जा रहे हैं। इस भयंकर लूट-मार को देखकर मैं पिस्तौल चलाता हुआ अपने साथी कँवलजी की ओर दौड़ पड़ा। पिस्तौल चलने की आवाज सुनकर उस आदमी ने हमारे मित्र को छोड़ दिया और निकट पहाड़ी की ओर भागने लगा। वे दोनों आदमी भी जो हमारे माल लदे खच्चरों को भगाये लिये जा रहे थे, खच्चरों को छोड़कर भाग खड़े हुए और देखते ही देखते डाकुओं का दल पहाड़ियों की ओट में हो गया। कँवलजी के निकट जाकर देखा कि वे मूर्च्छित अवस्था में धूल भरी जमीन पर वीर अर्जुन की भाँति पड़े थे। उनके माथे से खून बह रहा था और श्वास धीरे-धीरे चल रही थी। बन्दूक के धमाके की आवाज सुनकर सराय का चौकीदार गोम्बू, उसकी पत्नी और मेरा नौकर अपनी पत्नी के साथ दौड़े घटनास्थल पर आ पहुँचे। हम सब मिलकर अपने अधमरे साथी को भीतर उठा लाये और भीतर लाकर उन्हें मोटे ऊनी गद्दे पर लिटा दिया। तिब्बती महिलाओं ने हमारे खच्चर लाकर सराय के अस्तबल में बाँध दिये और माल-असबाब से भरे थैलों को भीतर लाकर रख दिया। ठंडे पानी की छींटों की सहायता से कँवलजी थोड़ी देर बाद होश में आ गये। फिर धीरे-धीरे कराहते हुए उन्होंने बताया कि जब वह सिगरेट पीते हुए बाहर निकले तो देखा कि तीन आदमी हमारे माल लदे खच्चरों को भगाये लिये जा रहे थे। दौड़कर जब उनको रोकने की कोशिश की तो एक आदमी ने पीछे से उनके सिर पर एक पत्थर खींचकर मारा। अभी अपने को सँभाल भी न पाये थे कि एक आदमी ने लपककर उनके लम्बे बाल मुट्ठी में पकड़कर उनके मुंह को दबाकर जमीन पर पटक दिया। पत्थर मारनेवाला व्यक्ति अपनी कटारी निकालकर उन्हें मारने लगा और कटारी तानकर उनकी छाती पर चढ़ बैठा। बाकी दोनों व्यक्ति माल लदे खच्चरों को हाँके लिये जा रहे थे। सौभाग्यवश उस समय नौकर की छोटी लड़की बाहर खेलती हुई आ गयी और कँवलजी को इस प्रकार के संकट की दशा में देखकर मुझको बुलाने दौड़ आयी। हमने अपने झोलों से दवाइयाँ निकालीं

और कँवलजी के घाव की मरहम-पट्टी की। नौकर और गोम्बू के कहने पर हमने कँवलजी को थोड़ी-सी तिब्बती देशी शराब पिला दी। एक-दो घंटे बाद उनकी हालत कुछ सुधर गयी। हमारी इस परेशानी के कारण नौकर और गोम्बू का सारा परिवार बड़ा ही चिन्तित था, और वे सब आपस में विचार करने लगे। मिट्टी के तेल की गैस बत्ती जलायी गयी और हम सबों ने एक साथ बैठकर भोजन किया। गोम्बू की पत्नी अधेड़ उम्र की एक बड़ी लम्बी औरत थी और उसकी साली एक हृष्ट-पुष्ट सुन्दर नौजवान महिला थी। हम सब कँवलजी के मन बहलाने की चेष्टा कर रहे थे। अन्त में गोम्बू एक तार का बाजा ले आया और उसके स्वर के साथ स्वर मिलाकर हमारे नौकर की पत्नी और उसकी बड़ी पुत्री गाना गाने लगीं। नौकर की पत्नी को हम आचा (बहिन) कहकर पुकारते थे; उसकी आवाज और गाने की शैली बड़ी मधुर थी। गोम्बू की पत्नी और साली पैर पटक-पटककर नाचने लगीं। कँवलजी के आग्रह करने पर मैंने भी अपनी बाँसुरी निकाल ली और आधी रात तक इसी प्रकार नाच-गान होता रहा।

सवेरा होने पर कँवलजी उठ न सके। सिर की चोट में बहुत पीड़ा हो रही थी और कमजोरी के कारण वे सारे दिन गद्दे पर पड़े रहे। इस दुर्घटना की खबर पाकर दो तिब्बत सरकारी अफसर आये और गोम्बू तथा नौकर के साथ घंटों बैठे सलाह करते रहे। अन्त में नौकर ने बताया कि यह डाकुओं का दल हमारे पीछे ग्यानसी से ही लग गया था और वह इस ताक में था कि मौका पाते ही हमको लूट ले। उन्होंने हमको सलाह दी कि हम यहाँके जोंगसर (गर्वनर) के पास जाकर इसकी रपट करा दें जिससे हमको सरकारी मदद मिल सके। जोंगसर साहिब इन दिनों अपने पहाड़ी निवासस्थान से उतरकर बाग-बगीचों से घिरे गर्मी में रहने के लिए निर्दिष्ट निवासस्थान में थे। वह स्थान यहाँसे तीन मील पर था। कँवलजी को इस अस्वस्थ हालत में ले जाना असम्भव था, इसलिए मैं पिस्तौल कँवलजी के पास छोड़कर जोंगसर से भेंट करने चल दिया। इस मुसीबत में घबड़ाया हुआ मैं ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी टीलों को पार करता हुआ चला जा रहा था। नौकर के आदेशानुसार दो बड़े-बड़े पत्थर अपनी जेबों में छिपाये हुए था जो जरूरत पड़ने पर शस्त्र



शिगष्टी में जोंग (गवर्नर या राज्यपाल) का महल

का काम देते। नौकर ने पिस्तौल कँवलजी के पास छोड़ जाने की सलाह इस कारण दी थी कि जरूरत पड़ने पर घायल कँवलजी अपना बचाव कर सकें। और दूसरी बात यह थी कि मैं भारतीय लामा दल का सदस्य था, और अहिंसा के पुजारी होने से निःशस्त्र होने पर तिब्बत सरकार पर हमारे बचाव की पूरी जिम्मेदारी हो जायेगी। सौभाग्य का संयोग कुछ ऐसा हुआ कि थोड़ी दूर जाते ही देखा कि एक घुड़सवारों का दल सामने से चला आ रहा है। नौकर ने बताया कि जोंगसर साहिब अपने सरकारी अफसरों के साथ अपनी पहाड़ी कोठी को लौट रहे हैं। हम दोनों हाथ जोड़कर सड़क के एक किनारे खड़े हो गये। जोंगसर साहब के पास आने पर हम दोनों ने जमीन पर लेटकर प्रणाम किया। मुझ विदेशी को देखकर वे रु[illegible] गये और उन्होंने हमारे नौकर से हमारी सारी बातें पूछीं। बाद में मेरी ओर देखकर अपनी भाषा में कुछ कहा और फिर घूमकर अपने पीछे घुड़सवार एक अफसर से कुछ कहा। उन्होंने भी मुझसे बड़े प्यार से कुछ कहा और जोंग-सर के साथ आगे बढ़ गये।

जोंगसर साहब सबसे आगे-आगे एक सफेद ऊँची नोकीली टोपी पहिने एक सफेद घोड़े पर सवार थे। [illegible] कीमती जरीदार लम्बा कोट पहिने हुए थे और उनके पाँवों में काले चमड़े के घुटनों तक के बूट थे। उनके पीछे लगभग चालीस घुड़सवार चल रहे थे। कुछ तो उनके अधिकारी लग रहे थे और कुछ फौजी सिपाही लग रहे थे। घर लौटते हुए रास्ते में नौकर ने बताया कि जोंगसर

...अपनी कचहरी में जाकर रपट करने को कहा है। ...पीछे वाले अफसर फौजी दरोगा थे। वे भी हमारी ...ता का वचन दे गये थे। इन सब बातों से हमारी हिम्मत बढ़ गयी और मैंने खुशी-खुशी घर लौटकर ...बातें अपने साथी कँवलजी को बतायीं। कँवलजी ...सलाह दी कि राहुलजी अभियान दल के नेता हैं। ...उनकी अनुमति के बिना कोई मुकद्दमा चलाना ...नहीं है, उनका कहना था कि यदि यह मुकदमा ...चलते अंग्रेज सरकार तक पहुँच गया तो बड़ी ...पड़ जायेगी। राहुलजी उस समय हमसे लगभग ...की दूरी पर थे। मैंने कँवलजी को अस्वस्थ ...में मूल्यवान माल-असबाब के साथ अकेला छोड़-...राहुलजी के पास जाना ठीक नहीं समझा। अन्त में ...की साली मेरा पत्र लेकर राहुलजी के पास जाने ...तैयार हो गयी। इस समय सूर्य पश्चिम की ओर झुक ...रहा था। आसमान साफ था। लगभग चार बजे वह ...पत्र लेकर मेरे खच्चर पर सवार होकर "नोंर गुम्पा" ...की ओर चल पड़ी। इस तिब्बती नारी की हिम्मत तथा ...साहस को देखकर मैं चकित रह गया। देखते ही देखते ...तिब्बती वीर रमणी उछलते-कूदते पहाड़ी टीलों को ...लांघती हुई निःशस्त्र ही चल दी थी। मैंने हाथ जोड़-...कर भगवान् से प्रार्थना की कि वह सकुशल लौट आवे।

...मैं आकर अपने कमरे में बैठा ही था कि चिल्ल-...पों और शोर-गुल से मकान गूँज उठा। बाहर निकल ...कर देखता क्या हूँ कि हमारे नौकर और एक कुछ आद-...मियों में मारपीट हो रही है। नौकर की पत्नी ने बताया ...कि डकैत हमारे खच्चर और माल-असबाब को लूटने ...के लिए आ गये हैं। कँवलजी ने मुझको सामने जाने ...से रोका। कारण डाकुओं के पास भी बन्दूकें थीं और मेरा ...सामने जाना ठीक नहीं था। किंतु शोरगुल सुनकर गोम्बू ...अनेक आदमी बुला लाया और वह डाकुओं का ...सरदार आदमियों को आते देखकर भाग गया। नौकर ...और उसकी पत्नी हाँफते हुए हमारे पास आ बैठे, और ...उन्होंने बताया कि यह बदमाश डाकू कल सारी रात ...हमारे मकान की छत पर ताक लगाये बैठे थे जबकि हम ...ऊपर नाच-गान करते हुए जाग रहे थे—रात में ...मौका न पाकर वापिस चले गये थे और आज फिर शराब ...पीकर दिन-दहाड़े डाका डालने आये थे।

...वह वीर तिब्बती नारी प्रसन्न वदन राहुलजी का पत्र ...लेकर दूसरे दिन सवेरे १० बजे के लगभग लौट आयी। ...आकर उसने बताया कि वह रात को राहुलजी के पास ...पहुँची थी, और मेरे पत्र का उत्तर लिखवाकर तुरन्त ...वापिस चल दी थी। सारी रात चलकर वह हमारे पास पत्र ...ठीक उस समय लेकर आ पहुँची थी जिस समय मैं ...जोंगसर की कचहरी को जाने के लिए तैयार खड़ा था। ...जोंगसर का मकान एक ऊँची पहाड़ी पर एक बड़े ...किले की भाँति बना हुआ था। एक-डेढ़ घंटे की ...यात्रा कर जब हम अपने नौकर के साथ वहाँ पहुँचे तो जोंगसर साहब ने बुलाकर एक सुसज्जित कमरे में बिठाया। चाय और कुछ नाश्ता खिलाकर बड़े आदर से हमारा सारा हाल हमारे नौकर के माध्यम से पूछा। फिर उन्होंने अपने फौजी दरोगा को बुलाकर तुरन्त हमारी सहायता करने की आज्ञा दी। हम दोनों को पहुँचाने वे स्वयम् फाटक तक अपने छोटे से काले कुत्ते को अपनी गोदी में लिये हुए आये। हम पहिले भी इनसे गेशेलाजी के साथ मिल चुके थे।

जोंगसर की कचहरी से लौटकर जब हम नौकर के घर चूल्हे के पास बैठे चाय पी रहे थे तो अचानक एक नौजवान हैट पहिने हमारे पास आ बैठा। उसको देख-कर नौकर और उसकी पत्नी कुछ डर गयी और दोनों चुपचाप बैठ गये। अपनी रीति के अनुसार उन्होंने उस नौजवान को भी चाय दी। वह भी बिना कुछ बोले चाय पीता रहा। इतने में अचानक जोंगसर के भेजे फौजी दरोगा दो सिपाहियों के साथ कमरे में आ घुसे। उस नौजवान को वहाँ देखकर बोले "अच्छा! तुम यहाँ हो।" फिर इधर-उधर देखने लगे मानो कोई चीज ढूँढ़ रहे हों। बड़े अदब से नौजवान ने पूछा किस चीज की उनको दरकार है। उत्तर में उन्होंने कहा "धन्यवाद! कुछ नहीं—एक रस्सी की दरकार है।" उत्तर में नौ-जवान ने खड़े होकर कहा कि "कष्ट करने की जरूरत नहीं। मैं खुद आपके साथ चलने को तैयार हूँ।' उन्होंने खच्चर बाँधने की एक रस्सी उठाकर सिपाहियों को आज्ञा दी कि उसको जकड़कर बाँध लें, और बोले, "बिना बाँधे डाकू को पकड़ना गैर कानूनी है।" जब वह उसको बाँधकर ले गये तब पता चला कि वह ही था डाकुओं का सरदार और था हमारे गोम्बू के साली का पति। मैं पहिले भी बता चुका हूँ कि यहाँ कोई भी बात छिपी नहीं रहती। चोर या डाकू अपने को छिपाकर नहीं रख सकता। डाकू को जब पता चला कि तिब्बत सरकार की सबसे बड़ी ताकत उसको पकड़ने आ रही है तो वह दौड़ा आया हमारे पास शरण लेने, और दरोगाजी को भी पता चल गया कि डाकू कौन है और कहाँ छिपा बैठा है।

दूसरे दिन जब जोंगसरजी के यहाँसे बुलावा आया तो चलते समय देखा कि गोम्बू की साली खड़ी दरवाजे पर रो रही है। नौकर की पत्नी 'आचा' ने कहा कि वह हमसे एक निवेदन करना चाहती है। वह यह जानती है कि उसका पति कुसंगत में बैठकर डाकू हो गया है, और उसके पकड़े जाने से वह दुखी नहीं है। पर तिब्बती पत्नी होने के कारण वह हमसे यह निवेदन करना चाहती थी कि मैं तिब्बत सरकार से उसकी तरफ से एक विशेष अनुमति प्राप्त कर लूँ। तिब्बत सरकारी कानून के अनुसार कैदी को कारागार में सड़ा हुआ मांस और सत्तू दिया जाता था। उसकी पत्नी का कहना था कि अपने पति को ताजा मांस या सत्तू न खिला कर वह स्वयं ताजा भोजन कैसे करेगी। उसकी इस प्रकार की पति-सेवा की भावना को देखकर मुझे भारत की सतियों की याद हो आयी।

मुग़ल दरबार में शिष्टाचार

श्री पद्मधर पाठक, एम० ए०, प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

मुगलों के दरबारी जीवन का पक्ष, जिसमें नाना प्रकार के कायदे, कानून और रीति-रिवाज पनपते रहे, अपना पृथक् ऐतिहासिक महत्त्व रखते हैं। बादशाहों की अपनी-अपनी तबियत और झक के अनुसार इन व्यावहारिक रस्मों में जब-तब परिवर्तन भी होते रहे, परन्तु मोटे तौर पर तहजीब का एक बँधा सिलसिला बना रहा। यह एक ऐसा विषय है जिसमें इतिहासकारों ने दखल अवश्य दिया है पर, अब तक, जो कुछ प्रकाशित हो चुका है उसका मात्र आधार अबुलफज्ल की 'आइने-अकबरी' है और इस कारण नयी सामग्री के लिए पूरा-पूरा अवसर प्राप्त है। इस संबंध में फारसी में लिखे गये कुछ ग्रन्थ होने चाहिए जिनमें, संभव है, कुछ प्रकाशित भी हुए हों, परन्तु उनसे अपरिचित होने के कारण वे यहाँ स्थान नहीं पा सके हैं।

प्रस्तुत लेख, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर के हस्तलिखित ग्रन्थसंख्या १७,७२७ पर आधारित है जिसमें अन्य विषयों के अतिरिक्त लेखक ने पद और मर्यादा के अनुसार आदाब, शिष्टाचार के तरीके लिखे हैं, जिनको चौदह [१] शीर्षकों में बाँटकर एक-एक की परिभाषा दी गयी है। इन चौदहों के भी भेद कहीं-कहीं गिनाये गये हैं जिनके नाम लेख के अंत में ग्रन्थ की प्रतिलिपि के अन्तर्गत आ गये हैं। ग्रन्थ के इस भाग को 'बिनयबिधु' शीर्षक प्रदान किया गया है जहाँ उर्दू और हिन्दी दोनों में ही उसी बात को समझाया गया है। ग्रन्थ की पत्र-संख्या १०४ है, और लगभग हर दूसरी रचना के बाद दो-एक खाली पत्र भी मिलते हैं। पृ० ८१ पर विषय-सूची विद्यमान है जिसके अनुसार ग्रन्थ के एक भाग में निम्नलिखित वर्णन मिलते हैं:—

पृ० (१) हिंदुस्थान की पातिशाही की लंबाई-चोडाई को अधिकार। पृ० (१-१५) तैमूर का राजवंश की हकीकति पेढी (पीढी) दर पेढी अथवा चगत्ता की पातशाही की परंपरा। पृ० (१७-२७) अहल खिदमत कारखाना का नाम लक्षण को शतक संस्कृत में। पृ० २७ ग्वालेरी भाषा को व्याकरण। पृ० (२९-३०) तुकांत शास्त्र पारसी अनुसार। पृ० (३२-४०) एकसो लगाई च्यारि तांइ सिष्यापद (शिक्षापद)। पृ० (४४-५५), अनेक शास्त्र का संकेत। पृ० (५५-५७) मनसब, जागीर को यंत्र। पृ० (५७-६४) २२ सूबा की परगना फे... प्रकीर्ण श्लोक। पृ० ६८ सर्वमता विरोध। पृ० (... ७६) संस्कृत छंद फारसी में। पृ० ७७ शाल का ... पृ० ७७ पशमीना का भेद। पृ० ७७ वस्त्र की ... पृ० ७७ विलात (विलायत) का वस्त्र। पृ० ७८ ... का भेद। पृ० ७८ वस्त्र संस्कार का भेद। पृ० ... आभूषण हथियार संस्कार। पृ० ७८ में ही इसके अ... रिक्त सोलह शृंगार और यवन रीति से तीन उप शृं... का वर्णन हुआ है। ग्रन्थ की माप १९×१४ से० मी... है और लिखावट बहुत सुन्दर है।

संपूर्ण ग्रन्थ दो भागों में विभक्त है। एक तर... 'हिन्दुस्तान की पातशाही का प्रमाण' का आरम्भ हो... तथा दूसरे ओर से आलोच्य ग्रन्थ का। कुछ वस्त्र, आ... षणों व हथियारों के नाम गिनाकर ग्रन्थ का एक ... समाप्त हो जाता है। इस अवधि में 'राजरीति निरूप... 'भाषा-व्याकरण', और 'तुकांत शास्त्र' नामक ग्र... के अन्त में 'विरचित दलपतिरायेण', 'दलपतिराय ... 'विरचित दलपतिराय', के संकेत मिलते हैं। 'वि... बिधु' उर्दू के लगातार प्रयोग के कारण, सीधे हाथ... उलटे हाथ की दिशा में चलता है, जिसकी पत्र-संख्या ... कारण अलग से डाली गयी है। लिखावट पूरे ग्रन्थ की ...

---

[१] १—सिजद, २—तवाफ़, ३—सलाम, ४—तसलीम, ५—कियाम, ६—कऊद, ७—तहरीम, ८—इजाबत, ९—मुवाजिहत, १०—रिफक, ११—मुदारा, १२—इहतियात, १३—मजीदी मुहब्बत, १४—तफक्कुद।

[२] इस कृति में वकील, मुन्शी, सदर, नाजिर ... पदों का कार्यक्षेत्र संस्कृत में लिखा गया है। इसी प्र... कारखानों का वर्णन तथा सूबा, सरकार, परगने ... का भी विवरण दिया गया है। संस्कृत में यही वर्णन ... इसी शीर्षक से हमें अगरचंद नाहटा द्वारा संपादित '... शृंगार' नामक पुस्तक के परिशिष्ट (२) में मिलता ... जैन भवन, कलकत्ता की यह प्रति जिसका नाहटा... उपयोग किया है, हमारे 'राजरीतिनिरूपण' से ... तरह मेल खाती है और अन्तर केवल इतना कि ... के अंत में 'विरचित दलपतिरायेण' तथा दूसरे में ... मोतीचंद्र कस्य' लिखा मिलता है। अपनी प्रस्तावना ... नाहटाजी लिखते हैं "परिशिष्ट नंबर २ में राज... निरूपण नामक संस्कृत ग्रंथ दिया गया है। वह ... कालीन शब्दों एवं संस्कृत पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश ... है। इस रचना की एकमात्र प्रति जैन भवन, क... की लायब्रेरी से मिली है।" 'सभाशृंगार' का प्र... नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी-द्वारा संवत् ... में हुआ है। अपनी प्रस्तावना में संपादकजी 'राज... के स्थान पर 'राजनीति' लिखते हैं जिसका स्पष्टी... प्रेस की असावधानी में पाया जा सकता है। इस ... इसी ग्रन्थ की एकमात्र प्रति न होकर दूसरी प्रति ... नजर आ रही है।

के अनुसार गाजी खाँ नामक विद्वान् ने सिजदः की प्रथा का आविष्कार दरबारी रस्मों के लिए किया था।[३] एक हजारी मनसब प्राप्त गाजी खाँ अकबर के कृपा-पात्रों में था। अबुलफज्ल ने यह भी लिखा है कि सिजदः का हक केवल बादशाह तक सीमित था। बदाउनी ने सिजदः के स्थान पर 'जमीन-बोस' शब्द का भी प्रयोग किया है।[४] उलमा वर्ग के असन्तुष्ट रहने पर भी सिजदः का प्रचलन जहाँगीर के समय तक बना रहा।[५] शाहजहाँ ने तख्त पाते ही सबसे पहले उन सभी रिवाजों में परिवर्तन किये जो अकबर की उदारता और उसके 'दीने-इलाही' के कारण इस्लाम के मूल सिद्धांतों से टक्कर ले रहे थे। माथा टेक कर प्रणाम पाने की योग्यता इन्सान को न प्राप्त होने के कारण शाहजहाँ ने सिजदः में फेर-बदल किये और जमीन-चुम्बन का भी विरोध करते हुए तसलीम का तरीका निकाला।[६]

वास्तव में सिजदः कोई इस्लामी अथवा किसी धर्म-विशेष का दस्तूर नहीं वरन् बुजुर्गी और पद के समक्ष नम्रता दिखलाने की एक चली आ रही प्रथा-मात्र है। इस्लाम में, इस कारण, सिजदः का प्रचलन किसी विशेष तिथि से प्रारंभ न होकर केवल परंपरा द्वारा पल्लवित होता रहा, जिसको बनाए रखने में, विजयी सुलतानों ने अपनी वरिष्ठता का अच्छा माध्यम पाया।

'कोरनिश' और 'तसलीम' की प्रणाली का वर्णन हमें 'आईने-अकबरी' में मिलता है। 'कोरनिश' का नियम यह कि "दाहिने हाथ की हथेली मस्तक पर और सिर नीचे झुकाकर बन्दगी की जाती है।"[७] 'तसलीम' का अर्थ खोलते हुए अबुलफज्ल लिखता है :—"दाहिने हाथ का पिछला भाग धरती पर रख धीरे-धीरे उसको उठावें, जब तक शरीर तनकर सीधा न हो जावे, उसी हाथ की हथेली को माथे पर लगावें जो इस भाव का प्रतीक है कि, मैं बादशाह हुजूर के लिए हर कुरबानी को मुस्तैद खड़ा हूँ।"[८] यही भाव आलोच्य ग्रन्थ में व्यक्त किया गया है, यद्यपि यह वर्णन अबुलफज्ल के उपरोक्त विवरण से कहीं अधिक विशद है। यहाँ लिपिकर्ता ने तसलीम के दो अन्य भेद अर्थात् मुस्तकी और मुनहनी बतलाये हैं। मुस्तकी सीधा-सादा सलाम हुआ, परन्तु मुनहनी में हाथ को बल खिलाकर उठाते हुए सलाम किया जाता है। अदा से हाथ मरोड़कर तसलीम की कला (मुनहनी) में स्त्रियों का अधिक अधिकार था जिसके माध्यम से उनके हाथों की खूबसूरती तड़प कर उठती थी।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि, ग्रन्थ में तसलीम की पुरानी एवं परिवर्तित प्रणाली दोनों का तुलनात्मक चित्रण

---

३ 'Ain-i-Akbari', p. 488—Vol. I Ed: Blochmann, 1939.
४ ,, ,, p. 190 ,, ,, ,, ,,
५ ,, ,, p. 223, ,, ,, ,, ,,
६ ,, ,, p. 223, n, ,, ,, ,, ,,
७ ,, ,, p. 166 ,, ,, ,, ,,
८ ,, ,, p. 167 ,, ,, ,, ,,

किया गया है, परन्तु 'पुरानी' और 'नई' केवल इस विभाजन मात्र से हम यह निर्णय किस प्रकार लें कि समय की कौन सी रेखा इनको विभक्त करती है ?

'कोरनिश' और 'तसलीम' के संबंध में अबुल-फज्ल ने, स्वयं अकबर द्वारा बतलाई गयी एक घटना का इस प्रकार उल्लेख किया है :—"एक दिन मेरे शाही पिता ने मुझे पहनने हेतु अपनी एक टोपी दी। मैंने पहन ली। चूंकि बादशाह की टोपी थोड़ी बड़ी थी, इस कारण मैंने झुकते समय टोपी का एक भाग अपने दाहिने हाथ से दबाये रक्खा और इस प्रकार कोरनिश की। बादशाह इस नयी ईजाद से प्रसन्न हुए और उसकी उपयुक्तता समझ कर इसी हरकत को कोरनिश और तसलीम के दायरे में ले लेने की आज्ञा प्रदान की [९]।" अकबर ने, अपने में ईश्वर की झलक प्राप्त होने का प्रचार किया जिसके फलस्वरूप उसके लगे-बँधे चाटुकारों ने उसे इन्सान से ऊँचा उठाकर, 'इन्साने-कामिल' [१०] (चमत्कारी जीव) की संज्ञा दे डाली थी। इसी कारण, कम से कम दरबारी पद्धति में ये रिवाज एक गौरवपूर्ण स्थान पा सके, और अंततोगत्वा उलमाओं का रोष भी दूर से हाथ जोड़ता रहा। अकबर ने इन रस्मों को जन-साधारण के परिहास का विषय न बनने दिया और यह सभी क्रियाएँ दरबारी-दायरे में बँधी रहीं। आलोच्य ग्रन्थ में भी लिपिकर्त्ता ने स्पष्ट लिखा है कि ग्रन्थ को पढ़ने की मुमानअत थी, और महफूजखाँ नामक अपने परिचित के पास सुरक्षित "आदाबुस्सलातीन" और "मिफताहुज्जवाबित" के अकस्मात हाथ लग जाने पर ही वह इस संबंध में कुछ जानकारी पा सका। अंत में खाँन ने विरोध किया, जिसके परिणाम-स्वरूप लिपिकार ने अपनी स्मृति, तथा, अन्य सहयोगी ग्रन्थों का आश्रय ले, प्रस्तुत ग्रन्थ तैयार किया।

मुगलों से पूर्व हमें बलबन के समय में शिष्टता और बन्दगी का अधिक रोचक वर्णन मिलता है, जिसने तख्त पाते ही अपनी सफलता का रहस्य अनुशासन और आतंक जमाने में पाया। 'पायबोसी' और 'जमीन बोसी' के उदाहरण हमें बलबन के काल में मिलते हैं। इतना ही नहीं, इस्लाम शाहसूर (१५४५–१५५३ ई० सन्) अपनी जूतियाँ पुजवाने पर उतारू था [११]। अमीर खुसरो, बरनी, और अफीफ की तवारीखों में भी पायबोसी (पद-चुम्बन) का जिक्र हुआ है। इब्न-बतूता (१३०४–१३६८ सन्) ने मुहम्मद तुगलक के दरबार का बड़ा आँखों-देखा वर्णन किया है [१२]।

कट्टर सुन्नी पथ के अनुयायी 'साल्जुक' तुर्की सुल्तानों के दरबार में भी पायबोसी का प्रचलन था। यद्यपि इसे दूर के प्रमाण सम्मुख रखने की आवश्यकता नहीं, पर मध्य-एशिया की इस्लामी संस्कृति के अध्ययन के बिना भारत में आये मुगल रीति-रिवाजों आदि का सही-सही मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। इसी पुष्ठभूमि में यह देखना होगा कि वे अपने घर से क्या लेकर चले और हिन्दुस्तान पहुँचकर उन्होंने किस प्रकार नये वातावरण के अनुसार अपने को ढाला ?

आगे हमने 'बिनय-बिधु' की संपूर्ण प्रतिलिपि प्रस्तुत कर दी है। ग्रन्थ की भाषा बहुत सरल एवं स्पष्ट है। जैसा कि हम पीछे लिख चुके हैं कुछ शब्दों का अर्थ संक्षिप्त टिप्पणियों द्वारा प्रस्तुत कर मूल को इतना सरल कर दिया है कि अर्थ स्वतः खुलते जाते हैं।

लिपिकर्ता ने दो यावनी (फारसी) पुस्तकों के अतिरिक्त किसी संस्कृत ग्रन्थ का भी उपयोग किया है अर्थात् संस्कृत के किसी आचार ग्रंथ की सहायता से उसने दरबारी रस्मों के हिन्दी रूपांतर प्राप्त करने की सफल चेष्टा की है। ग्रंन्थ में संकेत मिलता है कि दोनों ही यावनी ग्रन्थ बादशाही किताबखाने की संपत्ति थी, जिसका बादशाहों और उनके दरबारी जीवन से सीधा संबंध था।

लेख का शीर्षक इतना व्यापक नहीं, जो सभी मुगल बादशाहों के राज्य काल को छू लेता हो। यहाँ तात्पर्य यह कि शिष्टाचार के वे नियम जो बादशाहों के दरबार में मान्यता प्राप्त थे। लिपिकर्ता द्वारा प्रयोग में लिये दोनों फारसी ग्रन्थों का रचनाकाल अविदित होने के कारण वर्तमान में शीर्षक का काल-विभाजन करने में आलोच्य ग्रन्थ साथ नहीं देता।

अंत में यह कहना पड़ेगा कि आलोच्य ग्रन्थ का ऐसे विषय से संबंध है जिसकी इतिहासकारों द्वारा अध्ययन की आवश्यकता है।]

(अगले अंक में इस लेख के शेषांश के साथ 'विनय बिधु' प्रकाशित किया जायगा।

—सम्पादक, सरस्वती)

९ 'Ain-i-Akbari' p. 167—Vol I. Ed : Blochmann, 1939

१० „ „ p. 190—„ „ „ ,

११ 'The early Turks were satisfied with Zaminbos and Pābos, but Islam Shah made his nobles show respect to his slippers'—p. 102, 'Some Aspects of Muslim Administration' —Dr. R. P. Tripathi, 1959

१२ Ibn Batuta : Travels in Asia and Africa (1325-...) —pp (198—213). Tr. H.A.R. Gibb



भारत के जेलों की जनसंख्या

श्री परिपूर्णानन्द वर्मा

[illegible] के जेलों की जनसंख्या के सम्बन्ध में अभी तक सुव्यवस्थित तथा सूचनापूर्ण आँकड़े उपलब्ध नहीं [illegible] इधर ध्यान जाने लगा है तथा ज्यों-ज्यों इस [illegible] में हमारी जानकारी बढ़ती जा रही है, समस्या की [illegible] तथा गुरुता का भी अनुमान लगता जा रहा है। [illegible] के ताजे आँकड़े सन् १९६० तक के प्राप्त हैं और [illegible] स्पष्ट है कि हमारे यहाँ अपराधों में कितनी तेजी [illegible] होती जा रही है। देश में प्रतिवर्ष दस-ग्यारह [illegible] आते-जाते रहते हैं। यों समझिये कि २० लाख [illegible] जेल का फाटक पार करते हैं यानी ४५ करोड़ [illegible] में फी २०० व्यक्ति पीछे लगभग १ का [illegible]। यह औसत अभी तो अमेरिका या इंग्लैण्ड [illegible] पर प्रगति यदि इसी प्रकार होती रही तो ज्यादा [illegible] कम नहीं रहेगा। औद्योगिक सभ्यता का वरदान [illegible] में वृद्धि।

[illegible] १९६० में कुल मिलाकर ११,२१,८३७ नये अप- [illegible] दाखिल हुए। रोजाना जेलों की आबादी का औसत [illegible] ,६७२ दंडित बन्दी तथा ५१,५०७ विचाराधीन [illegible] साल भर में कुल ७,४७,७६० विचाराधीन बन्दियों [illegible] हुआ और शेष सजा पाकर अदालत से सीधे [illegible] पहुँचाये गये थे। प्रमुख प्रदेशों में जितने व्यक्ति [illegible] से सजा पाकर सीधे जेल पहुँचाये गये तथा जितने [illegible] बन्दियों को दंड मिला उनकी तालिका इस [illegible] है:—

अदालत से सीधे सजा पाकर आय	विचाराधीन बन्दियों को दंड मिला
४७,५६७	१४,८८५
२६,१६४	१३,३१४
११,२३३	५,५७३
१०,४५४	१,४७३
८,९२७	४,६०८
५६,०८२	२७,९४२
७६,०६२	२२,००३
१७,४४०	३,१३९

उड़ीसा	३,५९५	४,२१४
पंजाब	४,९८७	११,४६७
राजस्थान	७,०६२	३,११०
उत्तर प्रदेश	४६,७४३	१७,८८३
पश्चिमी बंगाल	५२,४७१	१६,६३२

महाराष्ट्र तथा पश्चिमी बंगाल हमारे देश के सबसे धनी प्रदेश हैं। और वहीं अपराधियों की संख्या भी सबसे अधिक है। दिल्ली में कुल संख्या क्रमशः ३,८७५ तथा ३,१७३ थी तथा हिमांचल प्रदेश में केवल २६८ तथा ६३।

इसी संख्या को फी एक लाख आबादी पीछे औसत निकाला जाय तो नये दाखिले के हिसाब से दंडित तथा विचाराधीन, दोनों को मिलाकर यानी उन बन्दियों को भी मिलाकर जिनको अदालत से सजा नहीं मिली है, औसत इस प्रकार होगा :—

प्रदेश	फी एक लाख की आबादी पर औसत सन् १९५९	सन् १९६०
आन्ध्र	३८४	३६०
बिहार	३०५	२६९
गुजरात महाराष्ट्र मिलाकर	४३५	४७७
केरल	३००	१३५
मध्य प्रदेश	१४६	१३४
मद्रास	५९९	६०७
मैसूर	२२३	२२४
उड़ीसा	१४४	१३४
पंजाब	१६०	१६९
राजस्थान	१५०	१६९
उत्तर प्रदेश	२८७	२७६
पश्चिमी बंगाल	५३१	४९४
दिल्ली	७९७	८३८
हिमाचल प्रदेश	६५	५७

महाराष्ट्र, मद्रास, पंजाब, राजस्थान तथा दिल्ली में अपराधी बढ़े हैं। अन्य प्रदेशों में इनकी संख्या में कमी हुई है।

अपराधों की श्रेणी

मुख्य अपराधों के अनुसार ऊपर दी गयी संख्या में से, कुछ प्रदेशों में वर्गीकरण नीचे लिखे अनुसार होगा :—

(सन् १९६०) दाखिला संख्या

अपराध	प्रदेश			
	गुजरात	मैसूर	राजस्थान	महाराष्ट्र
हत्या	२११	५११	३३३	५३०
मारपीट-चोट	...	३९०	१०६४	११८१
डकैती आदि	३२०	१३२	५४८	४३३
बलात्कार तथा भगाना	३३	१९६	...	१५५
सेंध मारना चोरी	७२३	७५१४	२२१७	४४८२
जालसाजी	१६४	११५	...	७६४
सैनिक अपराध	१	३०२६	...	२२
रेलवे ऐक्ट	९१९	६५८	...	३१,१२४
पुलिस ऐक्ट	६७६	८४९	...	११,५३८
कंट्रोल ऐक्ट	...	...	५८	...
मादक द्रव्य निषेध	१२६९	१३५८	...	१७,७८०
अन्य	१३२९	११,१७१	६५८८	८४१३
योग	५६५१	२५,९१७	१०,९७२	७६,४६४

महाराष्ट्र के आंकड़ों से स्पष्ट है कि वहाँपर घोर अपराधों की तुलना में छोटे अपराधों की संख्या काफी भयावह है। ३१,१२४ व्यक्ति बिना टिकट यात्रा या अन्य रेलवे अपराध में—जिनमें कोयला चोरी भी शामिल है, पकड़े गये। निश्चयतः ये अपराध औद्योगिक सभ्यता की प्रसादि है।

कुल कैदी संख्या में से ८५६ कैदी पागल हो गये और पागलखाने भेजे गये। सबसे अधिक पागल कैदी मद्रास में थे—यानी १९५, उसके बाद मैसूर में, यानी १८९, तीसरा नम्बर पश्चिमी बंगाल का था यानी १३८ था। केरल का था १३९, उत्तर प्रदेश तथा बिहार में क्रमशः २१ तथा ३२ की संख्या थी। यह पता लगाने की बात है कि दक्षिण भारत के जेलों में इतने अधिक कैदी क्यों पागल होते हैं। आन्ध्र में पागल कैदियों की संख्या ११८ थी।

सजा को मीयाद और आदतन अपराधी

आज के उन्नत देशों में जहाँ आदतन अपराधियों की संख्या कुल संख्या में ३०-३५ प्रतिशत तक है। भारत की जेलों में यह औसत काफी कम है। सन् १९५९ में इनकी संख्या केवल ४·७ प्रतिशत थी। सन् १९६० में ७ प्रतिशत हो गयी थी। इन आदतन यानी दुबारा अपराधियों में से १५ फीसदी ऐसे थे जो दफा ११० में जमानत न दे सकने के कारण जेल में थे, दो बार से अधिक सजायाफ्ता [illegible] प्रतिशत थे तथा इससे भी अधिक सजा पानेवालों की संख्या १६ प्रतिशत थी। एक बात समझने की है। [illegible] देशों में जेल-सुधार बहुत काफी हो चुका है तथा [illegible] वैज्ञानिक उपचार का भी बहुत उन्नत प्रबन्ध है। [illegible] भी वहाँ आदतन अपराधी अधिक मात्रा में होते हैं। औद्योगिक सभ्यता की यह पहेली सुलझाना कठिन हो रहा है।

हमारे देश में जेल सुधार के काम में एक बड़ी कठिनाई यह है कि छोटी मीयाद के कैदियों की संख्या [illegible] अधिक होती है। बिना टिकट यात्री को एक महीने [illegible] में रखने से केवल करदाता पर बोझ पड़ता है। [illegible] लाभ कुछ नहीं, उस अपराधी के मन से जेल का [illegible] जाता रहता है। उसका कोई सुधार भी नहीं हो सकता। भारतवर्ष में छः महीने से कम सजावालों की [illegible] ८४·३ प्रतिशत सन् १९६० में थी। आजीवन [illegible] गारवालों की संख्या केवल ०·८ प्रतिशत तथा प्राण[illegible] प्राप्त की संख्या ०·२ प्रतिशत थी। दो वर्ष से अधिक सजावालों की संख्या ३·५ प्रतिशत थी। सुरक्षा [illegible] के अन्तर्गत बन्दियों की संख्या, आलोच्य वर्ष में [illegible] थी। इनमें ११७ अकेले महाराष्ट्र में थे।

अपराध करने के पूर्व बन्दियों का क्या पेशा [illegible] इसकी भी जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए। ४·७ [illegible] शत बन्दी नौकरी श्रेणी के थे, ४५ फीसदी किसान, [illegible] प्रतिशत व्यवसायी तथा ३·७ प्रतिशत तकनीकी काम [illegible] वाले थे।

बाल-अपराधी

बाल-अपराधियों की संख्या से पता चलेगा कि [illegible] समस्या कितनी उग्र होती जा रही है। यद्यपि सन् १[illegible] की तुलना में सन् १९६० में संख्या कम थी। सन् १[illegible] में १६ से २१ वर्ष की उम्र के बाल-अपराधियों की [illegible]

...१,८११, थी सन् १९६० में ७४, ५९६ थी। १६ वर्ष ...उम्र के ५९९३ बालक तथा ११८ बालिकायें अप-...थीं। नीचे दी गयी तालिका बड़ी रोचक है ...उससे यह पता चलता है कि आर्थिक दृष्टि से जो ...जितना उन्नत है वहाँ बाल-अपराध उतना ही ...है।

बाल-अपराधियों का दाखिला

प्रदेश	१६ वर्ष से कम		१६वर्ष से २१ वर्ष	
	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री
	११२	४	११,२३६	१७३
	१,३१७	४	७,६०३	६७
	२	...	१,३७४	१६
	५३	३	७२५	१३१
	७	१	१४,५६२	५०२
...प्रदेश	३२३	७	२,०९४	३७
	११५	३	९३३	५
	३०	३	कुल १६,२६८	
	२३३	१३	१,७७६	३३
...प्रदेश	१०१२	१	७,९६७	३८
...बंगाल	२,५५४	८२	८,०६४	५२५
	२३५	...	४५१	१६

रिहाई तथा फाँसी

...के दाखिले की संख्या तो हमने ऊपर दे दी है। ...रिहाई के भी आँकड़े मालूम होने चाहिए। साल में ...कैदी छूटे। इनमें से ५·८६ प्रतिशत यानी ...अपील से छूटे। २,९१,०१३ यानी ७४·८४ ...सजा की मीयाद पूरी करके छूटे। ६३,९८८ यानी ...प्रतिशत सजा में छूट देने के नियमों के अन्तर्गत ...के कारण छोड़े गये। ५१५ बीमारी के कारण ...। ३६० जेलों में मर गये तथा २०१ को फाँसी ...। फांसी लगनेवालों की संख्या कुल छूट संख्या ...प्रतिशत थी।

...प्रदेश में सबसे अधिक फाँसी हुई—यानी ६७ ...दूसरा नम्बर पंजाब का था, यानी ४५, इसके बाद ...आन्ध्र में २६, केरल में १४, महाराष्ट्र में ९, ...में ७, मैसूर में ९, गुजरात में २, दिल्ली में ३।

कैदियों पर खर्च और आमदनी

...में कल-कारखाने भी लगे हुए हैं। सन् १९६० ...कारखानों से १,९२,९८,५२२ रुपये का माल तैयार ...कठोर कारावास के लिए दंडित कैदियों से दिल्ली ...कैदी पीछे ७३ रुपया, गुजरात में ६५ रुपया, पश्चिमी ...में ६२ रुपया, मद्रास ५७, पंजाब ५१, मध्य प्रदेश ...आन्ध्र में २६ रुपया, बिहार में २३ तथा उड़ीसा में ...लाभ रहा। सबसे अधिक माल बिहार में तैयार हुआ—यानी ३४,५०,९६२ रुपये का। इसके बाद मद्रास में ३४,४९,२७८ रुपये का। उत्तर प्रदेश में ३०,७०,४३३ रुपये का। बड़े प्रदेशों में सबसे कम उत्पादन मध्य प्रदेश में था। यानी ३,३८,६५१ रुपये का।

कैदियों के रख-रखाव पर बहुत खर्च पड़ता है। कर-दाता को करोड़ों रुपये इनपर खर्च करने पड़ते हैं। भोजन, वस्त्र, दवा, सफाई तथा अन्य खर्च मिलाकर प्रति कैदी पीछे सबसे अधिक खर्च पश्चिमी बंगाल में पड़ता है यानी ३९४ रुपया।

प्रदेश	प्रति कैदी पीछे खर्च (रुपये में)
आन्ध्र	३१५·६८
बिहार	३६०·६५
महाराष्ट्र	२४२·५८
गुजरात	१६८·४८
मध्य प्रदेश	२७१·३४
मद्रास	३०७·६६
मैसूर	२९१·१३
उड़ीसा	३३६·८४
पंजाब	३१३·७९
उत्तर प्रदेश	२१२·८६
पश्चिमी बंगाल	२९४·५४

समूचे देश में जेलों में बन्दियों पर खर्च का औसत ४४८·३६ था।

(फी बन्दी पीछे)	
वेतन आदि	१३६·६४ रुपया
भोजन	२००·४१
दवा-चिकित्सा	२७·२३
वस्त्र-बिछौना आदि	२३·१३
सफाई	१०·४८
अन्य सामान	५०·४७
योग	४४८·३६ रुपया

जेलों की संख्या

सन् १९६० में भारत में ५६ सेंट्रल जेल (लम्बी मीयाद वालों के लिए), १७८ जिला जेल, ९५७ उप-जेल तथा २३५ हवालात थे जिनमें १५,६०० व्यक्तियों के रहने के लिए स्थान था। साल में औसतन नित्य की आबादी १,५८,९१३ थी जो सन् १९५० से १·५ प्रतिशत अधिक थी।

इनके अलावा महाराष्ट्र में ७०४ पुलिस हवालात तथा गुजरात में ३७३ पुलिस हवालात थे। आजकल विचाराधीन बन्दियों को पुलिस हवालात में रखना निन्दनीय समझा जाता है। जनमत इसके विरुद्ध है।

भारतीय जेलों की इस तस्वीर से हमको अपने देश के अपराधी अंग की समस्या को समझने में बड़ी सहायता मिलेगी।

आंगनों के बीच—

मुन्नी का सपना

श्रीमती निर्मला मित्र

शाम को मैं अपने आँगन में बैठी तुलसी चौरे को [illegible] रही थी कि रसोई कमरे से बहू बोली "देखिये माँ, [illegible] आपकी बेला ने आज कितना नुकसान कर दिया।"

बेला मेरी चार साल की नातिन है। जरा-जरा [illegible] में खीज उठती है, और बात-बात में चिढ़ जाती है।

मैंने पूछा "क्या किया बेला ने?" बहू बोली "[illegible] आपके कमरे में घुसकर आपकी लिखी तमाम का[illegible] फाड़ रही थी, मैं उसे खींचकर नीचे उतार लायी तो [illegible] आलमारी से सारी चीज निकाल-निकालकर बाहर [illegible] रही है।"

मैंने बेला को बाहर बुलाया, "इधर आ बेला, [illegible] अपने आँगन में फूलों का कैसा बिछावन बिछ [illegible] है।"

बेला भन्नाकर बोली "तुमसे कुट्टि।" मैं हँस पड़ी [illegible] बोली, "भला मैंने क्या कसूर किया?"

"तुमसे नहीं बोलूंगी, जाओ।"

अब तो मुझे उठकर अन्दर जाना ही पड़ा। [illegible] अन्दर जाते देख बेला ने दनाक से किवाड़ के पल्ले [illegible] लिये। मैं किवाड़ धकेलकर अन्दर हुई तो वह फ्राक [illegible] कर—आलमारी के आड़ में हो गयी।

काजू किसमिस बटोरती बहू बोली "आप ही ने [illegible] इसे सिर पर चढ़ाया है! अभी एक चाँटा पड़ जाय [illegible] यह सारी चीज फैलाकर नुकसान करना भूल जाय।"

मैंने पास जाकर उसका हाथ पकड़ा। बोली, "छिः-भली लड़कियाँ कभी ऐसा करती हैं? तुम नहीं जानती इससे लोग निन्दा करते हैं।"

बेला ने मेरा हाथ झटक दिया, बोली "जाओ तुम तो लेख लिखो।"

मैंने उसे खींचकर गोद में बठाया। उसके बहते आँसुओं को आँचल से पोंछा, फिर उसका मुँह चूमकर कहा, "भला, मेरे लिखने पर तुम्हारी इतनी चिढ़ क्यों है री?"

सिसकती बेला बोली "तुम दिन भर लिखती रहो तो मैं खेलूं किसके साथ?"

मैं हँस पड़ी "ओ राम, इस बुढ़ापे में मैं अब तुम्हारी खेल की साथिन बनूं?

बेला ने दृढ़ता से कहा, "हाँ!"

मैंने उसे समझाने के तौर पर कहा, "अच्छा चलो बाहर आँगन में बैठकर खेलें।"

अब वह बहुत कुछ शान्त हो गयी थी। मेरे गले लिपटकर बोली, "दिदिया! तुम मुझे एक हवाई जहाज ले दो।"

"फिर?"

"फिर मैं उसपर बैठूंगी।"

"ओ मुन्नी! तुम उसपर बैठकर कहाँ जाओगी-दिल्ली, कलकत्ता—?"

"ऊँहू ऊँहू, मैं उसपर बैठकर जाऊँगी चन्दलोक—।"

बहू मुँह चिढ़ाकर बोली "बड़ी चालाक है हत्यारी, सभी सब बातें सुनती रहती है, यह सिड़ी बनेगी वैलेन्सिना टेरिस्कोवा—!"

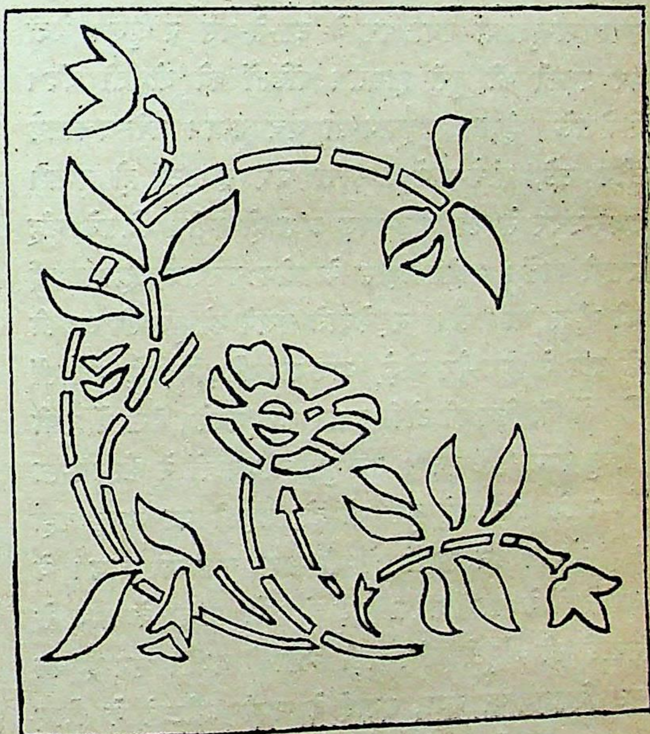
और मैं सोचने लगी, इस भविष्य-नारी की कल्पना यदि भविष्य में जाकर सफल भी हो सके तो क्या आश्चर्य!



घर-गृहस्थी

सुई-डोरा

मेजपोश, चादरें, तकिया गिलाफ तथा पलंगपोश का यह नमूना काढ़ने में आसान व देखने में सुन्दर है। जहाँ तक हो वहाँ तक इस नमूने को एक ही रंग में काढ़ें।



इस नमूने का उतारना अत्यन्त आसान है। जहाँ-जहाँ रंग लगा है नमूने को वहाँसे काट लें। किसी भी तेज धार की वस्तु से काटा जा सकता है। इस प्रकार काटने से जहाँ-जहाँ नमूना है वह भाग कट जायगा। कट जाने के पश्चात् कटे कागज को (जिसमें से कि नमूना आपने काटा है) उसको उस कपड़े पर रखिये जिस पर कि नमूना उतारना है। रुई के फाहे में गाढ़ा कच्चा रंग या बच्चों के रँगने का रंग लगाकर फेर दीजिये। जहाँ-जहाँ से कटा है वहाँ रंग लग जायगा और नमूना कपड़े पर उतर आयेगा। रंग कच्चा होने के कारण बाद में धुल कर निकल जायगा।

घूमते चेहरे

डॉ० हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'

ऐन फेरों के वक्त जब दूल्हा अकड़ गया तो हंगामा-सा मच गया। रात के लगभग तीन बजे का समय, दूल्हा ने पाँच हजार नकद और स्कूटर की माँग रखी। लड़की वाले बेहद परेशान। अब क्या किया जाय। इतनी रात कहाँसे बन्दोबस्त करें। दूल्हा और उसके बाप को बहुत समझाया-बुझाया गया पर वे टस-से-मस न हुए। वेदी पर लड़की की बुरी हालत। पंडितों की बोलती बंद। बाजेवाले हैरान, कुहराम-सा मच गया। थके-अलसाये लोग उठे, सोये-जागे। सारा घर इकट्ठा हो गया। इधर-उधर से भी भीड़-भाड़ जमा हो गयी। जितने मुँह उतनी बातें। अड़ोस-पड़ोस के लोग गरमाये, हात्थापाई की नौबत आ गयी। लड़केवाले चलने को हुए तो लड़की के बाप ने हाथ-पैर जोड़े, बार-बार गिड़गिड़ाये, पचासों मिन्नतें कीं, सिर की टोपी उतार कर उनके पैरों में रखी किन्तु काम नहीं बना। तब कुछ नौजवानों ने फैसला-सा किया कि अब चाहे कुछ भी हो, लड़की का ब्याह वहाँ नहीं होगा। इन सालों को भी मजा चखाया जाय। वे बरातियों के चारों तरफ खड़े हो गये, दूल्हा के हाथ से सगाई की अँगूठी और घड़ी निकाली गयी। सगाई का सूट निकलवाया गया, सगाई के रुपये लौटाने के लिए कहा गया और उन्हें सौ खरी-खोटी सुनाकर चलता किया।

अब समस्या थी लड़की के ब्याह की। ऐन मौके पर किसको पकड़ा जाय। इधर-उधर दौड़-धूप होने लगी और तब कुछ लोगों की नजर पड़ी मुझ पर। दो-तीन दोस्त नजदीक आये और कहने लगे—'भाई मुहल्ले की इज्जत का सवाल है। लड़की को तुम जानते ही हो। चलो, झटपट फेरे करो।'

मेरी सिट्टी-पिट्टी गोल। दो साल से इस मुहल्ले में। एम० ए० फाइनल की तैयारी कर रहा था। कुछ बोलते न बना। इसी बीच सबने मुझे घेर लिया।

मैंने कहा—'भई, लड़की की भी तो राय होनी चाहिए। ऐसे कैसे शादी हो सकती है?' लड़की के भाई ने कहा—'आप उसकी चिन्ता न कीजिए, आप तैयार हैं तो उसे भी तैयार समझिए। फेरों का लगन बीत रहा है। चाहो तो अभी आपके घर तार भेज देते हैं। कल शाम तक आपके यहाँसे भी लोग-बाग आ जायेंगे।'

और इस प्रकार माधुरी का ब्याह मुझसे रचा गया। अखबारों में हम दोनों के चित्र छपे, प्रशंसा के पुल बांधे गये, शहर में चारों ओर इसी घटना की चर्चा। दोस्त मेरी पीठ ठोंक रहे थे। मेरे सम्मान में अगले दिन शान-दार पार्टी दी गयी। शाम को घर वाले आये तो लगा बात ज्यादा बिगड़ी नहीं। माँ ने तो शाबासी दी परन्तु पिता-जी थोड़ा-कट-से गये और कहने लगे 'शादी-ब्याह के मामले में सोच-विचार कर काम लेना चाहिए। कम-से-कम एक बार हमें तो पूछ लेता। ऐसे गले-गले क्या आफत हुई थी तेरी जो बिना सोचे-समझे ब्याह कर बैठा। न-जाने लड़की के ग्रह-व्रह कैसे हैं। आलोक की तो तूने देखी ही है। क्या हालत हो गयी है बेचारे की। घरवालों ने उसे बार-बार समझाया—बेटा, जन्म-पत्री नहीं मिलती, लड़की के ग्रह बड़े क्रूर हैं। सातवें स्थान में राहु बैठा है, विषम के योग—लड़की बड़ी गुस्सैल और 'घर-भंगार', जो भी पंडित देखता—कहता, राम-राम, बहुत ही बुरे ग्रह हैं, एक भी नहीं सात-सात। इससे जो भी ब्याह करेगा या तो खुद—मर—, नहीं तो जिन्दगी भर रोता रहेगा। उस लड़की की तो कहीं शादी नहीं हो रही थी। जहाँ भी बातचीत चलती, जन्मपत्री देखकर सब नाक-भौं सिकोड़ देते और इस तरह पन्द्रह से पच्चीस साल हो गये थे पर बेचारी क्वाँरी-की-क्वाँरी। आलोक को न-जाने क्या सूझी या झक सवार हुई कि सब कुछ मालूम होने पर भी ब्याह कर बैठा। अब जानते हो रोज दोनों में महाभारत छिड़ा रहता। जब-तब आत्म-हत्या करने को तैयार बैठा रहता है। कितना अच्छा लड़का था आलोक पर अब देखो तो उसकी हालत। न किसीसे मिलना-जुलना, न किसीसे बातचीत। बस, चौबीस घंटे खोया-खोया सा रहता है। तक़दीर से पहले ही सरकारी नौकरी लग गयी थी, नहीं तो जिन्दा भी रहना मुश्किल था। घरवालों ने जब से अलग किया, पैसे-पैसे के लिए मुहताज है, ऊपर से बारीबारी

...कर्जा। और बीबी के ठाट देखिए, रोज नई साड़ी, रोज सिनेमा। घर की हालत देखो तो दिन में भी उल्लू बोलते नजर आते। एक बार उससे मिलने गया तो कहीं अखबार बिखरे हैं तो कहीं किताबों के ढेर पड़े हैं। अलमारी में मकड़ी के जाले लग हैं। आलोक ने चाय मँगाई तो प्याले सब टूटे-फूटे, केतली टूटी-फूटी। चाय का एक घूँट पिया तो मतली-सी आने लगी। दो बच्चे हैं, जो हमेशा बीमार रहते हैं, चौबीस घंटे रोते-बिलखते रहते हैं, ऊपर से उन्हें जोर-जोर से मारती भी है। आलोक सूखकर काँटा हो गया। लिखना-उखना सब छूट गया। ब्याह से पहले उसे कहानियों पर कई पुरस्कार मिले परन्तु अब सब चौपट हो गया। हमारे शास्त्रों में घरवाली को लक्ष्मी कहा गया। घर में लक्ष्मी आ गयी तो समझो सुख-ही-सुख, नहीं तो रोज-रोज का रोना-धोना, जिन्दगी नरक बन जाती—पिताजी लगातार उपदेश देते जा रहे थे। मैंने बीच में ही कुछ सँभलकर साहस बटोरते हुए कहा—'यह सब मैं नहीं मानता और अब तो जो होना था सो हो गया।'

'यह कैसे हो सकता है। लड़की के ग्रह तो मैं अवश्य किसी अच्छे पंडित को दिखलाऊँगा। अगर ग्रह-व्रह ऐसे-वैसे हुए तो पाठ-पूजा करने से ग्रह-शान्ति हो जायेगी। मन को तसल्ली तो रहेगी। मेरा तो अपना अटूट विश्वास है और मुझे क्या। मैं तो तुम्हारा ही भला चाहता हूँ।'

ब्याह के तीसरे दिन जब बहू को लेकर हम घर पहुँचे तो पिताजी ने बाकायदा मंत्र पढ़वाये। विशेष अनुरोध पर जन्मपत्री भी साथ ले गये थे। अगले दिन उन्होंने एक पहुँचे हुए ज्योतिषी को बुलाया और मेरी तथा माधुरी की जन्म-पत्रियाँ पंडितजी के सामने रखीं। पंडितजी ने पत्रा खोला, दोनों जन्मपत्रियाँ खोलीं। दस-बारह मिनट तक अँगुलियों पर कुछ हिसाब-किताब किया और तब आँखों पर का चश्मा सरका कर फूट पड़े—'और तो साहब ठीक-ठीक है पर दो-तीन ग्रह बड़े बेढंगे हैं।

पिताजी चौंके तो पंडितजी ने संस्कृत के बीसियों श्लोक सुना डाले। उनका अर्थ समझाकर कहने लगे कि देखिए, दूसरा स्थान धन का होता है—लड़की के भाग में फूटी कौड़ी भी नहीं है, क्योंकि धन का स्वामी चन्द्रमा क्रूर ग्रह के साथ बैठा है। लगन में केतु, शरीर से भी ठीक नहीं रहेगा। दसवें स्थान में भी कुछ गड़बड़ी है। लड़के को नौकरी मिलने में हमेशा परेशानी रहेगी। मतलब यह है कि बना-बना काम बिगड़ जायेगा। और भाग्यस्थान में शनि बैठा है। बस, पूछो मत और देखिए पाँचवें स्थान में कौन बैठा है...सन्तान-वन्तान के लिए भी अच्छा नहीं।

पिताजी कुछ सोच में पड़ गये। पंडितजी ने अपना पतड़ा सम्भाला। इसी बीच अड़ोस-पड़ोस के कई लोग जमा हो गये, औरतें भी इकट्ठी हो गयीं। जो देखो वो, बहू की तारीफ के पुल बाँधता। बहू क्या है, चाँद का टुकड़ा है। इतनी सुशील, इतनी सुन्दर, इतनी पढ़ी-लिखी और दूसरे दिन तो पिताजी भी बेहद खुश नजर आये, जब उन्होंने आई० ए० एस० के सफल परीक्षार्थियों में मेरा नाम भी देखा। फिर तो जहाँ देखो वहाँ बहू की चर्चा—उनके घर में तो साक्षात् लक्ष्मी आई है लक्ष्मी। देखो न, बहू के आते ही लड़का आई० ए० एस० में साफ निकल गया। किसको उम्मीद थी। लकड़ा भी कोई खास तेज नहीं, पर सब भाग्य का खेल समझिए। भगवान् जब देता है तो छप्पर फाड़कर देता है। घर में भी तो खुशियाँ मनायी गयीं। मुहल्ले में मिठाई बाँटी गयी। चार-पाँच दिन के बाद माधुरी को लेकर जब मैं ससुराल पहुँचा तो ससुर साहब की खुशी का ठिकाना न रहा। उनको थोड़ी चिन्ता थी कि लड़का अभी एम० ए० ही कर रहा है। न-जाने कब नौकरी मिलेगी, कब क्या होगा, पर ब्याह होते ही जैसे सारी समस्याएँ स्वतः सुलझ गयी हों।

× × ×

एक दिन ऐसे ही हम दोनों पहला 'शो' देखकर आये। क्वालिटी में खाना खाया और घूमते-घामते गांधी-पार्क में पहुँच गये। एकान्त में बैठकर इधर-उधर की बातें होने लगीं। मैंने माधुरी को छेड़ते हुए कहा—'सच बताओ माधुरी, तुम्हें तो गहरा धक्का लगा होगा, जब तुम्हारे मँगतेर ने ऐन मौके पर धोखा दिया फिर मजबूरन तुम्हें मुझसे शादी करनी पड़ी।'

'छिः आप भी कैसी बातें कर रहे हैं। मेरे तो अहो-भाग्य। नहीं तो जिन्दगी भर पछताना पड़ता, जो लोग पैसे के पीछे अपना ईमान धरम सब बेच देते हैं, उनके यहाँ कोई सुखी कैसे रह सकता। मैंने न जाने पहिले जन्म में कौन से पुण्य किये थे जो आपसे—हाँ एक बात पूछूँ—

'आपको अलबत्ता कुछ धक्का लगा होगा, क्योंकि आपको मार-बाँधकर तैयार किया गया। आपकी भी तो अपनी पसन्द होनी चाहिए थी—'

"अच्छा तो यह बात। अपने को तो सिर्फ एक लड़की पसन्द थी। उसको आज से चार साल पहले देखा था। कितनी हसीन थी वह? आम की फाँक-जैसी आँखें, पक्की खुबानी-जैसा रंग, बुरांश के फूल की तरह दमकता चेहरा। वह दरिया में नहा रही थी और हम लोग छिप-कर उसके रूप-सौन्दर्य को देख रहे थे। कमल-कली की तरह अपनी दो हमजोलियों के साथ पानी में ऊधम मचा रही थीं। हमने एक पत्थर फेंका तो तीनों-की-तीनों पानी से बाहर इधर-उधर देखने लगीं।

हम लोग सहस्रधारा गए हुये थे। साथी दो-तीन दोस्त। घूमते-घामते सहस्रधारा से बहुत ऊपर निकल गये और वहाँ एकान्त में हमने वरुण-कन्याओं की तरह, अप्सराओं और वनदेवियों की तरह जलक्रीड़ा करते देखा तो सब-के-सब चुपचाप छिप गये। आत्म-विभोर होकर उन्हें देखते रह गए। बदन पर नाम-मात्र के लिए पतली-पतली चुनरियाँ लपेटकर नहा रही थीं वे। सच पूछो तो बिलकुल ऐसी लग रही थीं जैसे नंगी नहा रही हों और उनमें उस लड़की की बात तो पूछो ही मत। सच कहता हूँ माधुरी, जीवन में ऐसा रूप आज तक नहीं देखा। कालिदास के शब्दों में 'अनाघ्रातं पुष्पम्।'

"फिर क्या हुआ?

'होना क्या था—वहींसे हम उनके पीछे पड़ गये। घर का अता-पता मालूम किया और फिर तो रोजाना उस लड़की को देखने का कार्यक्रम-सा बन गया। उसे देखे बिना न दिन को चैन न रात को नींद, न खाना-पीना ही अच्छा लगता। तुमसे क्या छिपाऊँ, जब तुमने छेड़ ही दिया तो—बस, समझो मैं उसके पीछे पागल हो गया था किन्तु बाद में पता लगा कि उसके ब्याह की बात पक्की हो गयी है। अपने राम इन मामलों में बड़े आदर्शवादी हैं जब पक्की बात मालूम हो गयी तो हमने उधर देखना ही पाप समझा, कभी आँख उठाकर भी नहीं देखा।

"आपके साथ तो भयंकर दुर्घटना हुई, कहाँ फँस गये आकर।" माधुरी ने गहरी साँस लेते हुए कहा।

"जीवन में सदा मनचाही चीज नहीं मिलती माधुरी। कुछ समझौते भी करने पड़ते हैं। इन्हीं समझौतों का नाम जिन्दगी है। अपना ही देख लो—कहाँ ब्याह हो रहा था, कितने दिनों से आना-जाना था, पर शादी हुई और ही। यह सब भाग्य का खेल है माधुरी।' मैंने दार्शनिकों-सा तुर्रा छोड़ते हुए कहा।

"आपको तो सदा उसकी याद सताती रहेगी, बिछो... सहलाता रहेगा। आपने जान-बूझकर गलती की—लेकिन यह तो बताओ अब कहाँ है वह?"

'यहीं, इसी शहर में, अपने पति के साथ।'

'तब तो आपके दिल पर बिजलियाँ गिरती होंगी जब कभी आप उसे देखते होंगे।'

'अब क्या बिजलियाँ गिरेंगी। उसका भी तो एक बाँगड़ू से ब्याह हो गया और मेरा भी। बस, इसीका नाम जिन्दगी है। कभी-कभी जीवन में ऐसा अप्रत्याशित घट जाता है कि झक मारकर भाग्य और भगवान पर विश्वास करना पड़ता है।'

'आप ठीक कहते हैं, पर अब पछताने से क्या। जो होना था सो हो गया, क्यों अपना दिल छोटा कर रहे हो। चलो, अब घर चलें, काफी देर हो गयी, नहीं तो उसीकी याद में तड़पते रहोगे।'

'अब क्या तड़पना।' मैंने माधुरी को अपनी बाहों में समेटते हुए कहा।

'छिः...यह क्या कर रहे हैं आप। कोई देख लेगा तो.....।'

'तो क्या करेगा। हम चोरी कर रहे हैं, हम डाका डाल रहे हैं, जो किसी से डरें। अपनी बीबी के साथ...'

'आप बड़े वैसे हैं, कुछ लाज-शरम नहीं। पहले लड़कियों को नंगा नहाते देखने के लिए सहस्रधारा जाया करते और अब....'

'अरे, लड़कियाँ तो हमसे भी सौ हाथ आगे हैं। यह कहाँ की भद्रता है कि दरिया में घंटों इस प्रकार नहाती रहो।'

'आप तो बड़े छिपे रुस्तम निकले, मुझे कभी आभास भी नहीं हुआ कि आप......।'

'माधुरी, बस एक तमन्ना है, तुमको एक बार वहीं उसी रूप में नहाते देखने की। मैं भी तुम्हारे साथ....'

× × ×

ब्याह के बाद दो महीने ऐसे ही हँसी-खुशी, सैर-सपाटे में उड़े कि पता ही नहीं चला। फिर ट्रेनिंग के लिए

पढ़ा और आठ-नौ महीने के प्रशिक्षण के बाद दिल्ली नियुक्ति हो गयी। एक साल के बाद पत्नी को अपने बुलाया और फिर चार साल तक दिल्ली में ही रहना चार साल बाद घर गये तो सब प्रश्नभरी नजरों रहे थे। पिताजी वैसे तो हम दोनों से बेहद खुश उन्हें कुछ सूना-सूना-सा लग रहा था। एक रात ने बताया कि सब यही कह रहे हैं कि ब्याह किये हो गये, अभी तक बहू की गोद खाली है। दिन के बाद पिताजी ने पंडितजी को बुलाया, नारायण की कथा करवाई। माँ ने एक दिन इधर-की बातें करते हुए भूमिका सी बाँधी, 'बेटा, बस एक ही इच्छा है, अपनी आँखों से एक बार पोते फिर मुझे कुछ भी हो जाय। भगवान् ने ऐसी कि उसके इस घर में आते ही घर की काया पलट साक्षात् लक्ष्मी है मेरी बहू। मैंने पढ़ी-लिखी में ऐसी सलीकेदार और भोली-भाली लड़की नहीं देखी, पर बेटा, लोग-वाग यही कहते हैं तक...। तुम्हारे पिताजी ने एक ज्योतिषी जन्मपत्री दिखायी तो उसने कहा सहस्रचंडी पाठ देवी की कृपा हो जाय हो बहू की गोद भर नहीं तो मामला कुछ गड़बड़ ही है।'

तुम भी ऐसी बातों पर विश्वास करती हो।'

ही कह रही हूँ बेटा। तबसे मेरा जी न जाने गया। एक ही तो बेटा है...'

हफ्ता ऐसे ही बीत गया। मुझे फिर दिल्ली किन्तु इसी बीच आर्डर मिला और मेरा ट्रान्सफर हो गया। अंधा क्या चाहे दो आँखें? तबादिले जब सबको मालूम हुई तो सभी को खुशी हो माधुरी भी बेहद खुश। मैं भी खुश, देहरादून में और मसूरी में नौकरी। और क्या चाहिए था। व्यस्तता और दमघुटाऊ वातावरण से मैं और दोनों कब के ऊब गये थे। मैं दिल्ली गया। सारा सामान ताम-झाम लेकर मसूरी पहुँच गया। मसूरी अच्छा-सा मकान भी मिल गया। कुछ दिनों के लिए और माताजी को भी वहीं बुला लिया। माँ-रात-पूजा-पाठ के चक्कर में रहतीं। मेरे मना करने पर पंडित से सहस्रचंडी पाठ कराया। पंडितजी दो घंटे बैठकर पाठ करते थे और इस प्रकार महीने तक यही सिलसिला चालू रहा। पिताजी एक महीने रहकर फिर वापस चले गये, माताजी हमारे साथ ही रहीं। बस, उन्हें एक ही चिन्ता थी—और इसी चिन्ता में घुल-घुल कर वे आधी रह गयीं तो माधुरी ने एक दिन मुझसे कहा—'भई अब नहीं सहा जाता। माताजी का दुख मुझसे नहीं देखा जाता, तुम्हारा "फैमली प्लानिंग" अब नहीं चलेगा। वैसे भी ठीक है, साढ़े चार साल हो ही गये हैं हमारी शादी के अब कब तक......।"

मसूरी में गर्मियों के दो-तीन महीने ऐसे ही मजे-मजे में गुजर गये। कुछ पता ही न लगा। रोज शाम को माल रोड पर घूमना, मसूरी की बहार और रंगरेलियों को देखना, हफ्ते में एक-आध बार कैम्टीफौल जाना...। माता जी भी कभी-कभी साथ चली जाती थीं। वे अब बेहद खुश थीं और रात-दिन माधुरी के खाने-पीने की फिक्र में रहतीं कि कब क्या देना है, कैसा खाना है, जब कभी मौका मिलता छोटे-छोटे मनभावने मोजें बुनती रहतीं। हम दोनों माताजी के इस मोह-ममत्व को देखकर विस्मित-से थे।

एक दिन ऐसे ही बूँदा-बाँदी हो रही थी। मिसेज नायर आयीं और कहने लगीं कि आप लोगों को एक मजदार किस्सा सुनाती हूँ। हमारे यहाँकी नौकरानी है न। उसकी लड़की ने वह हथकंडे दिखाए कि दाँतों तले अँगुली दबानी पड़ी। हम तो पहले से ही उस लड़की से परेशान थे। सारा घर सिर पर उठा रखा था। पचासों अवारे लड़के उसके यार-दोस्त थे और रात-रात उससे मिलने आते थे, चारों तरफ बदनाम थी। उसकी माँ को निकलवाना चाहा तो बेचारी बहुत रोई, गिड़गिड़ाई। मिस्टर नायर ने सोचा, चलो पुरानी नौकरानी है—माफ कर दिया, पर मुझ समझा दिया था कि आगे से लड़की ऐसा-वैसा नहीं करेगी। उसने अब ऐसे को फाँसा कि बेचारा बुरी तरह से ही फँस गया। मुकदमा चला, दोनों के बयान हुए और तब मजबूरन लड़के को उस लड़की से शादी करनी पड़ी। उसने झट से 'लोकल पेपर' मेरी तरफ बढ़ाया, देखिए दोनों के फोटो छपे हैं। मैंने एक परिचित फोटो देखकर माधुरी से कहा—'देखो कहाँ जाकर फँसा बेचारा, न इधर का न उधर का। अगर उस दिन अकड़ता नहीं तो आज ऐसी हालत क्यों होती?' माधुरी ने फोटो देखा तो कहा—'संयोग ही कहिए.....।'

मैंने कहा बहुत अच्छा हुआ। ऐसों को ऐसे ही सबक मिलना चाहिए। पाँच हजार नकद और स्कूटर के चक्कर में मरी-सी चुहिया हाथ लगी।

लंगड़ चाचा

श्री गिरिधरप्रसाद शर्मा

प्राची के अंक से प्रकाश के उठने का आभास पाकर चाँद और रजनी की क्रीड़ा समाप्त हो रही थी। पक्षियों की खुशी का पारावार नहीं था। मैं भी मुस्कराकर उठ बैठा। क्षण-क्षण में स्पष्ट होनेवाले प्रकाश को नमस्कार किया। इतने में एक लड़का हाँफता हुआ कमरे में दाखिल हुआ। उसने कहा—"लंगड़ चाचा मर गये। लोगों ने आपको बुलाया है।"

यह खबर अप्रत्याशित तो नहीं थी फिर भी मन दुखी हो गया। लड़के के साथ उस पेड़ की ओर चल पड़ा। लंगड़ चाचा की उम्र ४० से अधिक की नहीं थी। लेकिन शरीर जर्जर हो गया था और बीड़ी भी अधिक पीते थे। परसाल बीमार हुए थे तो मैंने अस्पताल में भर्ती करा दिया था लेकिन इस साल तो अपनी बीमारी का हाल मुझसे भी छिपाते रहे। कल शाम को उनकी खराब हालत देखकर एक डाक्टर को बुला लाया था। उस पेड़ के नीचे एक मरीज को देखने के लिए किसी डाक्टर का आना उस गली के इतिहास की पहली घटना थी। यद्यपि उस गली में विवश रोगी ही रहते हैं—लूले, लँगड़े, कोढ़ी, अंधे-सभी वहाँ पड़े रहते हैं। जीवन की आशा में मृत्यु को पास बुलाते रहते हैं।

अँधेरी स्टेशन के प्रथम प्लेटफार्म से एक गली उत्तर की ओर गयी है। इस गली में कोई सवारी नहीं चलती है लेकिन आने-जानेवालों की कमी नहीं रहती है। शायद इसीलिए अपांग व्यक्तियों के लिए यह एक सुरक्षित और व्यवस्थित गली है। पेड़ों की छाया भी है। दोनों तरफ लोहे की पट्टियों की दीवार है। इस प्रकार एक ओर तो गाड़ी का आना-जाना देखा जा सकता है और दूसरी तरफ किसी परिवार के बच्चों का खेलना-कूदना। इसी गली में एक पीपल के पेड़ के नीचे लंगड़ चाचा का आसन जमता था, लेकिन वे किसीके सामने हाथ नहीं फैलाते थे।

लंगड़ चाचा छोटी-छोटी मूँछ रखते थे। दाढ़ी रोज नहीं तो तीसरे दिन जरूर बनाते थे। बाल में तेल डालते थे। कंघी करते थे। उनके दोनों पैर बेकार हो गये थे। पल्थी मारकर नीचे एक मोटे चमड़े का टुकड़ा बाँध लेते थे। खड़ाऊँ जैसी कोई लकड़ी की चीज हाथ मैं पकड़े रहते थे। इस प्रकार वे अपने दोनों हाथों के बल कंधों को हिलाते हुए दनादन चलते थे।

'आधुनिक रेस्तराँ' में वे बरतन माँजते थे। वे अपने हाथों के बल नल के पास जाते थे। वहाँपर सब बरतन रख दिये जाते थे। धीरे-धीरे वे बरतन साफ करते थे। फिर स्नान करते, कपड़ा बदलते और खाना खाकर गली में उस पेड़ के नीचे आ जाते थे। बीड़ी जलाते, धुआँ उड़ाते और मुस्कराते। इस संसार में सुख देने लायक कोई भी चीज उनके पास नहीं थी—पैर नहीं थे, जवानी नहीं थी, जेब मैं पैसे नहीं थे, सिर के ऊपर छत नहीं थी, मुस्कराकर बात करनेवाली पत्नी नहीं थी, फिर भी वे हमेशा प्रसन्न रहते थे। लगता था—उनके सूखे पंगु शरीर के अन्दर कोई अमृत की धारा प्रवाहित होती रहती थी जिसके कारण न तो उनके चेहरे की चमक मन्द पड़ती थी और न अधरों की मुसकान। उस आभा में शांति थी, शालीनता थी और उस हँसी में आकर्षण था।

उस गली में आते जाते मैं उन्हें देखता था। असमर्थ होते हुए भी उनका स्वच्छ कपड़े पहनना, दीन-हीन बच्चों के साथ हँस-हँसकर बातें करना और उनका मन बहलाना, अपने अन्य जातीय असमर्थ व्यक्तियों से सहानुभूति रखना, कभी अकेले बीड़ी पीना, धीरे से मुसकराना और विचार-मग्न रहना आदि उनके विभिन्न रूप थे। मैं उनके इन रूपों को देखता था—कभी आश्चर्य से कभी जिज्ञासा से। एक दिन मैंने उनसे बातचीत करके

...परिचय प्राप्त किया और फिर यह परिचय दोस्ती में ...गया।

× × ×

...दुश्चरित्र जमींदार के द्वारा पति की हत्या किये जाने ...एक वर्ष के श्यामू को लेकर उसकी माँ राजस्थान से ...आयी थी। किसी दयावान ने चिट्ठी लिख दी ...बम्बई में एक मारवाड़ी सेठ के नाम। सेठजी ने ...उसके माँ-बेटे को अपने यहाँ रख लिया था। सीढ़ियों ...नीचे की कोठरी रहने के लिए दिया था। बरतन ...मांजना, कपड़ा धोना, झाड़ू लगाना यही सब काम और ...महीना। वे दिन कुछ अच्छे थ। इतना बहुत था। ...आठ वर्ष के दिन अच्छी तरह से बीते। फिर एक दिन ...घटना घट गयी। परिणामस्वरूप माँ-बेटे फुटपाथ पर ...आये। माँ ने २ या ३ रुपये में घर-घर घूमकर बरतन ...मांजना शुरू किया। ऐसा ही काम करनेवाली दूसरी ...औरतों से जान-पहिचान बढ़ी। गन्दे नाले के किनारे की ...झोंपड़ी में थोड़ी-सी जगह मिली। उसी में श्यामू ...छोड़कर वह दिन भर मजदूरी करती। बारह-तेरह ...होने पर श्यामू अपने पड़ोस के एक लड़के के साथ ...आधुनिक रेस्तराँ में काम खोजने गया। मालिक ने ...उसको सुन्दर देखकर काम न रहते हुए भी रख लिया ...'परिवार कक्ष' में सेवा करने के लिए उसे प्रशिक्षण ...दिया। लेकिन माँ को बेटे की कमाई अधिक दिन तक ...खानी थी। कष्टों से जूझनेवाली उस शेरनी को ...ने अपनी गोद में सुला लिया। लगता है—वह अपने ...बेटे को पैर पर खड़ा करने के लिए ही जिन्दा थी। अपने ...लक्ष्य को लेकर वह निष्ठुर परिस्थितियों से जूझती ...रही। माँ के मरने पर श्यामू उसी रेस्तराँ में ही रहने ...लगा।

× × ×

मैं जब उस पेड़ के नीचे पहुँचा तब वहाँ दीन-हीन बच्चों ...की ही संख्या अधिक थी। कुछ असमर्थ भिखारी, दो-...चार होटल के कर्मचारी तथा मजदूरिनियाँ। एक अपांग ...ने कहा—हम लोगों का आज एक खुशमिजाज साथी ...चला गया। रेस्तराँ के नौकर ने कहा—"आज यह अपने ...दुखी जीवन से छुटकारा पा गया। वैसी जिन्दगी भी ...कोई जिन्दगी थी।" औरतों ने कहा "आज दुखियों के बीच की हँसी चली गयी। न घर, न बच्चे, फिर भी खुश। कोई देवता था जो किसी शापवश नरक भोगने आया था।"

उसकी श्मशान-यात्रा में भी वे ही लोग थे। किसी का एक पैर आधा सड़ गया था, उसपर तेल से तर कपड़ा लपेट लिया था, और लाठी के सहारे चले चल रहे थे। किसीके हाथ की अँगुलियाँ ही गायब थीं। एक विचित्र बात और थी। अर्धनग्न बच्चों की संख्या सबसे अधिक थी। दो-चार औरतें भी थीं। इसके पहले बच्चों और औरतों को श्मशान की यात्रा में शामिल होते मैंने नहीं देखा था। शायद, इस कठोर धरती पर जीने के लिए जी तोड़ प्रयत्न करनेवालों में भय कम होता है। मृत्यु स्वाभाविक है और अग्नि-संस्कार भी परम्परागत है। सफेद कपड़ों में मैं ही अकेला था। मेरे पैर सबके साथ चल रहे थे किन्तु मन लंगड़ चाचा के विगत जीवन की फुलवाड़ी में टहल रहा था।

सेठ राजपाल, उनकी पत्नी विमला तथा बहन शीला जब कभी समुद्र की ओर घूमने के लिए जाते थे तो स्टेशन के पास के आधुनिक रेस्तराँ के सामने अपनी कार रोक देते थे। अन्दर जाकर 'परिवार कक्ष' में बैठते कुछ खाते और तब समुद्रतट पर जाते थे। करीब तीसरे-चौथे रविवार को उस रेस्तराँ में जरूर जाते थे। कभी जाते समय कभी लौटते समय। हर बार श्यामू को उनकी सेवा करने का अवसर मिलता था। उसके रूप से, बोली से, विनम्रता से सभी प्रभावित होते थे। एक दिन जब बातचीत में पता चला कि श्यामू मारवाड़ का है तो परिचय और गाढ़ा हुआ।

विमला देवी और शीला बाई ने सेठ राजपाल से कहना प्रारंभ किया "घर में काम बहुत है और तीन नौकर से काम पूरा नहीं होता है।" सेठ राजपाल बहुत बड़े व्यापारी हैं। कलकत्ते में कई मकान हैं और कपड़े का व्यापार है। बम्बई में भी कमीशन एजेण्ट का काम करते हैं। चूंकि कलकत्ते में ही अधिक काम रहता है इसलिए माता-पिता तथा अन्य भाई-बहन वहीं पर रहते हैं। बम्बई का काम अकेले राजपाल चला लेता है। विवाह को उस समय चार साल भी नहीं हुआ था, युवती विमला अकेली कैसे रह सकती थी। इसलिए बहन शीला भी यहीं पढ़ती थी और अपनी भाभी के साथ रहती थी।

भाभी को पढ़ाई से क्या मतलब और तब शीला बाई को ही ऐसी क्या गरज पड़ी थी पढ़ने की। कभी-कभी पढ़ाई की ओर ध्यान देती थी विशेषतः जब तिमाही या छमाही का परीक्षाफल मिलता था। हरेक कक्षा में दो-दो अध्यापिकाओं की सहायता से दो-दो वर्ष की ताकत लगाकर उस समय मैट्रिक की कक्षा में यात्रा कर रही थी। सत्रह वर्ष पूरा कर लिया था इसलिए विवाह की भी बातचीत चल रही थी। खैर, पत्नी और बहन की सलाह मानकर राजपाल ने श्यामू को कुछ अधिक पगार देकर रख लिया था।

जितनी खुशी एक किसान को अपने यहाँ नये बैलों की जोड़ी देखकर होती है और एक बच्चे को अपने हाथ में नया खिलौना देखकर होती है उससे अधिक खुशी विमला देवी और शीला बाई को अपने घर में श्यामू को देखकर हुई थी। रसोइया तो भोजन बनाने के लिए था ही। एक नौकर रसोइया की मदद करता था, बरतन साफ करता था, कमरों में झाड़ू लगाता था, साग-भाजी लाता था। दूसरा नौकर कपड़ा धोता था, कपड़े पर इस्त्री करता था; यही दूसरा नौकर बिस्तर भी लगाता था। श्यामू के आने पर बिस्तर लगाने का काम दूसरे नौकर से ले लिया गया। राजपाल, विमला और शीला——इन तीनों को श्यामू पानी पिलायेगा; तीनों का बिस्तर लगाएगा; तकिये की खोल बदलेगा; आलमारी के शीशों को साफ करेगा; कंघी, तेल की शीशी आदि को ठीक जगह पर रखेगा; स्नान करने के पहले सेठजी की धोती गंजी आदि को बाथरूम में रख दिया करेगा; स्कूल जाते समय शीला का यूनीफार्म तैयार करके देगा, आने पर घर पर पहनने का फराक देगा और स्कूल का सफेद फराक ले लेगा; विमला देवी जब कुछ सिलना चाहेंगी तब वह सिलाई की छोटी मशीन लाकर सामने रख देगा; साड़ियों में बेल-बूटा, गोटा आदि लगाते समय जरूरी सामान भी सामने लाकर रखेगा; लकड़ी की आलमारी में घुसे तिलचटों को मारकर या जिन्दा ही पकड़कर गटर में फेंकेगा और यदि किसी चूहे ने फ्लैट में प्रवेश करने की धृष्टता की तो उसे मारकर खदेड़ देगा। श्रीमती विमला देवी ने इतने सारे कामों की जिम्मेदारी अकेले बिचारे श्यामू पर डाल दी।

शीला खड़ी-खड़ी भाभी के इस अत्याचार को देख रही थी और सुन रही थी। मौका पाकर श्यामू को अपने कमरे में बुलाया और कहा——देखो, यह मेरी मेज़ है इसको तुम साफ करना। मैं इस खाने में अपनी किताबें रखती हूँ और इसमें कापियाँ। स्कूल से आने के बाद मेरी किताब और कापी को अलग-अलग करके इन खानों में रख देना, इस तीसरे खाने में मेरी पेंसिलें, कलम बाक्स, कम्पास और फाउन्टेनपेन रहते हैं। पेंसिलों को छीलकर रखना और फाउण्टेपेन में स्याही भरकर रखना और.....

शीला कह रही थी लेकिन श्यामू सुन नहीं रहा था। उसका ध्यान दूसरी ओर था। कल शाम को शीला अपनी एक सहेली के यहाँ गयी थी। वहाँसे वह रातरानी की एक टहनी लाई थी। रात भर तो टहनी के फूल महकते रहे लेकिन सबेरा होते ही मुर्झाने लगे, एक एक कर झरने लगे। शीला ने उन्हें सामने के खुले बरामदे में फेंक दिया था। उस टहनी को एक कबूतरी मुंडेरा पर ले गयी। उस मुंडेरे पर बैठी हुई दूसरी कबूतरी ने उस टहनी का दूसरा छोर अपने चोंच से पकड़ लिया। दोनों ने अपनी अपनी ओर खींचना शुरू किया। श्यामू उनकी यही खींचतान देख रहा था और मुस्करा रहा था। शीला ने भी देखा और हँसकर पूछा——कबूतरियों का तमाशा देख रहे हो?

——हाँ !

——इसमें क्या खास बात है ?

——खास बात तो कुछ नहीं है। ये दोनों महज खींचने के लिए ही खींच रही हैं। शायद अपनी अपनी ताकत आजमा रही हैं।

कुछ दिन के बाद श्यामू ने अनुभव किया कि यह जीवन जीने लायक है और वह भी मनुष्य है, स्वस्थ है, सुन्दर है, युवक है। इन बातों की याद उसे बार-बार दिलायी जाती थी। उस परिवार में उसने आकर्षण का अनुभव किया। सुंदर पलंग, ऊँचे गद्दे, सफेद बिछी चद्दर, कोमल तकिए, पलंग के सिर की ओर तथा पैर की ओर दीवार में बड़े-बड़े शीशे लगे थे। विमला अपने कमरे में जाकर दरवाजा बन्द कर लेती थी। शीला के लिए अलग कमरा था। वह कभी-कभी बिस्तर पर लेटे

...ही पानी माँगती थी। श्यामू ले जाता था। पानी ...के बाद कहती थी--"बत्ती बन्द करते जाना।" किसी ...नींद न आने पर बत्ती बुझाकर श्यामू के जाने के बाद ...पुकारी थी--"श्यामू, टेबल लैंप जला दो। और ..., उस आलमारी को खोलो। ऊपर के खाने में दाहिनी ...कुछ किताबें हैं। उन किताबों में एक किताब पर ...में पिस्तौल लिये एक नारी का चित्र है, उस किताब ...निकालकर मुझे दे दो।"

...इसके बाद श्यामू को फुर्सत मिलती थी। वह आकर ...साथियों के बीच में बैठता था। एक रसोइया और ...नौकर ये ही उसके साथी थे। यद्यपि ये तीनों श्यामू ...को अपना मालिक समझते थे किन्तु श्यामू इनके बीच ...बैठता था, प्रेम से बातें करता और कभी-कभी बीड़ी भी ...पीता था। रसोइए की तो थोड़ी इज्जत भी थी बाकी ...नौकरों की कोई इज्जत नहीं थी। ये दोनों नौकर ...वर्षों से इस परिवार की सेवा करते आ रहे थे। एक ...ज़रा सी बात पर शीला ने कड़ककर कहा था-- ..."अपनी पगार लो और नीचे उतर जाओ।" लेकिन ...ने कुछ नहीं कहा, सिर झुकाये खड़ा रहा। इतने दिन ...परिवार की सेवा की और उसका यह फल। अब ...इस उम्र में कहाँ जायें। लगता है इनके शरीर में हाथ-पैर ...के बाकी और कोई अंग नहीं है। दिन भर सबकी सेवा ..., अपना पेट भरना और कुछ बचाकर दूर बैठी अपनी ...पत्नी और बच्चों को भेजना। घसीटते जीवन को मौत ...तक ले जाना और अपने बच्चों के लिए गुलामी की वसीयत ...कर जाना।

एक दिन की बात है। करीब दो बजे थे। तीनों ...नौकर सबेरे से काम करते-करते थककर लेट गये थे। ...श्यामू भी आराम करने जा रहा था लेकिन विमला देवी ने पुकारा--"श्यामू, एक गिलास पानी लाना।"

--"आज दोपहर को सोई नहीं, बाई जी?"

--"ना, चार दिन हुआ तुम्हारे सेठजी को कलकत्ता गये। ...अब तक कोई पत्र नहीं मिला। उन्हींको एक पत्र लिख ...रही थी और फिर सबेरे ही वैद्यजी ने दिन का सोना भी ...छोड़ने के लिए कहा है। देख, तो मैं कितनी मोटी होती ...जा रही हूँ। मर्दों की रुचि भी अजीब होती है। चार वर्ष ...पहले जब मैं इस घर में आयी थी तब दुबली-पतली थी। तब तुम्हारे सेठजी कहते थे--"थोड़ी मोटी होती तो अच्छा था।" और अब कहते हैं--"यह भी कोई शरीर है चारों तरफ से झूलता जा रहा है।" क्यों है न विचित्र बात?

--होगी।

--अरे इधर तो आ। अपना हाथ तो दे। तुम्हारे नाखून कितने बड़े हो गये हैं? तुम्हारी दाढ़ी कितनी बड़ी हो गयी है। उस आलमारी से नख-कटी, सेफ्टीरेजर तथा पत्ती निकाल ले।......इसी कमरे में बनाओ। बाहर क्यों जाता है।

नाखून भी कट गये और दाढ़ी भी बन गयी। श्यामू के गाल पर विमला ने अपने हाथ से ही क्रीम लगायी। पहनने को सेठजी की पुरानी धोती और कमीज दिया। सजाकर उसे बड़े दर्पण के सामने खड़ा कर दिया और बगल में स्वयं खड़ी हो गयी। "सुन्दर शरीर है। कहीं पाव भर भी मांस फालतू नहीं है। सारा शरीर मानों साँचे में ढाला गया हो।"

--"भाभी, तैयार हो जाओ। आज हम लोग कहीं घूमने चलेंगे। ड्राइवर को मैंने कह दिया है।" स्कूल से आकर शीला ने कहा लेकिन बिना रुके ही वह अपने कमरे में चली गयी।

--आज इतनी जल्दी कैसे आ गयी, शीला?

--महीने की आखिरी तारीख है।

अगर कहीं बाहर जाने की योजना बनती थी तो शीला भाई-भाभी से पहले तैयार हो जाती थी। भाभी को भी तैयार होने में मदद करती थी। किन्तु आज तो उसे समय का ज्ञान ही नहीं रह गया है। आलमारी के शीशे के सामने खड़ी होकर फ्राक के बटन खोल रही है। लेकिन एक बटन पर से दूसरे बटन तक हाथ जल्दी नहीं जा रहा है। आलमारी खोलते समय उसे लगा कि उसके हाथ बहुत थक गये हैं। ब्लाउज और स्कर्ट निकाला। आलमारी बन्द किया। फिर शीशा सामने आया। उसने देखा--वह कमजोर ही नहीं दुबली भी हो गयी है। इसी समय भाभी ने कमरे में प्रवेश किया। आकर शीला के पास खड़ी हो गयी। शीला ने देखा लेकिन बोली नहीं। मन में कहा--"इसका पेट है या कच्छपराज की पीठ। कुछ दिन में जमीन छू लेगा। मेरे भैया की जिन्दगी खराब गयी इस हाथी को पाकर। चार दिन के लिए भैया कलकत्ते क्या गये इसका मन ही काबू में नहीं रहा।"

शीला की उदासी का कारण विमला से छिपा नहीं रहा। उसने कहा—आज तो कुछ जरूरी काम है। मैं नहीं जाऊँगी। तुम चली जाओ। साथ में श्यामू को भी भेज दूँगी।

—मुझे नहीं जाना है किसी नौकर के साथ घूमने।

—कोई हर्ज नहीं, ड्राइवर भी तो साथ में है।

इतना कहकर भाभी अपने कमरे में आ गयी। एक घंटे के बाद शीला बाहर घूमने के लिए निकली। भाभी ने श्यामू को भी उसके साथ जाने के लिए कहा। इस बार शीला ने कोई विरोध नहीं किया। ड्राइवर की बगल में श्यामू बैठा और पीछे अकेली शीला।

—कहाँ चलना है, बाईजी?

—नरीमान प्वाइन्ट।

चर्चगेट के आगे श्यामू ने देखा—एक कार पर एक महिला बैठी है। उसीकी बगल में एक बड़ा कुत्ता भी बैठा पीछे के शीशे से देख रहा है, बड़ी सी जीभ बड़े-बड़े दाँत। फिर दूसरी कार में उसने देखा—पीछे की सीट पर एक युवती के साथ पुरुष बैठा है। इसी तरह से और कई कारें गयीं। साफ सफेद वस्त्र में कार पर बैठकर घूमना श्यामू को अच्छा लग रहा था।

बायें तट के अगले भाग में जाकर कार रुक गयी। शीला ने ड्राइवर से कहा—मैं आते समय भूल गयी। अब तुम चले जाओ और तीन-चार पान लगवा लाओ। ऐम्बेसेडर होटल के आगे पानवाला बैठता है।

श्यामू को कार पर ही बैठा रहने का आदेश देकर शीला समुद्र-तट पर आ गयी। अपने दोनों हाथों को पीछे बाँधकर तथा थोड़ा झुककर वह इस तरह से टहल रही है जैसे कोई न्यायाधीश किसी जटिल मुकदमे के विषय में अपना निर्णय लिखने के पूर्व विचार करता हुआ टहलता है। थोड़ी देर में वह फिर कार में आकर बैठ गयी। श्यामू को भी अगली सीट से बुलाकर अपनी बगल में बैठाकर पूछा—आज भाभी तथा तुम्हारे बीच में क्या-क्या बातें हुई थीं।

—कुछ तो नहीं।

—भैया की यह कमीज और धोती तो भाभी ने ही दिया था?

—हाँ।

—क्यों दिया था?

—पहनने के लिए।

—गालों पर क्रीम किसने लगाई?

—आपकी भाभी ने।

—क्यों?

—मालूम नहीं।

शीला आवेश में आ गयी। श्यामू के दोनों कंधों को अपने दोनों हाथों से झकझोरती हुई बोली—क्या तुम बच्चे हो जो कुछ नहीं समझते?

—मुझे समझना ही नहीं चाहिए।

—क्यों?

—यह भी कोई पूछने की बात है।

उत्तर सुनकर शीला चुप हो गयी। वह श्यामू के बहुत पास आ गयी थी। श्यामू ने कहा—चलिए बाहर बैठें। यहाँ तो दम घुट रहा है।

—बाहर बैठूँगी? तुम्हारे साथ?

इस बात को सुनकर श्यामू जोर-जोर से हँसने लगा। उसे लगा कि कई दिन से उसने इस तरह से हँसने का आनन्द नहीं लिया था। वह मुक्त होकर हँसता ही रहा। रुका तब जब ड्राइवर ने शीला बाई को पान देने के लिए कार का दरवाजा खोला। पान लेकर शीला ने कहा—मुझे कार चलाना सिखाओगे?

—जरूर यह तो बहुत ही आसान काम है। जाइए आगे।

श्यामू कार से उतरकर समुद्र के किनारे बैठ गया। वह विस्तृत सागर के वक्ष पर लहरों का मचलता देख रहा था। "बाहर बैठूँगी और तुम्हारे साथ? विचित्र नाटक है।" उसे अपने बचपन की एक घटना याद आ गयी। वह भी इसी तरह से अपमानजनक थी। उसकी माँ एक व्यापारी के यहाँ काम करती थी। वहीं रहती भी थी। सीढ़ियों के नीचे की छोटी सी कोठरी में माँ-बेटे दिन काट रहे थे। उस सेठ का एक लड़का था—राजू। कभी-कभी राजू श्यामू को भी बुला लेता था अपने साथ खेलने के लिए। एक दिन राजू के कई दोस्त भी आ

...तब खेल रहे थे। श्यामू राजू से खेल में आगे रहा। ...लड़कों ने श्यामू की प्रशंसा की। 'नौकरानी का लड़का ...आगे निकल जाये।' राजू ने बहाना ढूँढ़कर श्यामू ...गाल पर एक तमाचा जड़ दिया। फिर क्या था श्यामू ...उस समय जोश में आ गया था। मार-पीट, पटका- ...शुरू हो गयी। दूसरे लड़के तालियाँ बजाकर श्यामू ...सम्मान करने लगे। राजू रोता हुआ अपनी माँ के ...गया। परिणाम यह हुआ कि माँ-बेटे सदा के लिए ...बंगले से बाहर निकाल दिये गये थे।

श्यामू की माँ ने बड़े धैर्य से इस परिस्थिति का सामना ...था। अपने पुत्र को न मारा न डाँटा। अपने मन में ...—इसने जो कुछ किया ठीक ही तो किया। अभी ...है, अपमान सहन करना क्या जाने। इसका बाप भी ...ऐसा ही था—टूट गया किन्तु झुका नहीं।

शाम को दोनों ने होटल से भजिया और पाव खरीद ...पेट को बहलाया। रात आयी तो फुटपाथ पर लेट ...गये। नींद नहीं आ रही थी। बेटे की पीठ सहलाती ...माँ ने कहा था—"बेटा, घबराना नहीं चाहिए, कठि- ...नाइयाँ तो आती ही हैं। कभी घर भरा रहता है किन्तु ...क्षण के बाद सब कुछ नष्ट हो सकता है। परिस्थितियाँ ...अच्छी ही नहीं रहती हैं। अच्छी क्या परिस्थितियाँ ...अक्सर क्रूर होती हैं। लेकिन हम इन परिस्थितियों ...को अपने से बड़ा दर्जा क्यों दें। जब पैर के नीचे की ...धरती भी खिसकने लगे तब भी हँसो? मेरे बच्चे, तब भी ...हँसो। घबराओ नहीं, उदास मत हो, धीरज मत छोड़ो। ...क्रूर परिस्थितियों से अंतिम दम तक लड़ो, हिम्मत के ...साथ लड़ो और हँसते हुए लड़ो। इन तारों के नीचे, इस ...फुटपाथ में, इस कठोर पत्थर पर, आधा खाली पेट लेकर एक ...बार हँस तो दो, मेरे बच्चे। तुम्हारे उजले-उजले दाँत और ...इस कोमल मुख को देखकर मैं मौत को भी भगाने ...की ताकत पाती हूँ। हँसो, देखो मैं भी हँसती हूँ।"

"श्यामू घर भी चलोगे या लहरों का मचलना ही ...देखोगे। हम लोगों से ऐसे रूठकर बैठे कि एक बार भी ...घर नहीं देखा।" ड्राइवर ने आकर कहा।

"भला मैं तुमसे क्यों रूठूँगा, भाई। इधर दूर-दूर ...तक यह नीला सागर देखने में अच्छा लग रहा है। यह ...देखो एक युवक तैर रहा है। जल में खेल रहा है। जब छोटी लहर आती है तब वह उछलकर लहर के ऊपर आ जाता है। और जब कोई बड़ी लहर आती है तब वह झुक जाता है, लहर को निकल जाने देता है लेकिन किसी भी लहर को मुँह पर झापड़ मारने का मौका नहीं देता है।"

दूसरे दिन मौका पाकर श्यामू से विमला देवी ने पूछा, एक बार, दो बार, तीन बार पूछा लेकिन कुछ भी नहीं मालूम हुआ। वैद्यजी के घर जाते समय विमला ने जब ड्राइवर से पूछा तब इतना मालूम हुआ कि जब वह पान लेकर लौटा था तब श्यामू शीला बाई की बगल में बैठा था और जोर जोर से हँस रहा था।

दो हफ्ते के बाद राजपालजी लौट आये और साथ में शीला के भावी पति का फोटो भी लेते आये। लड़का बड़ा बुद्धिमान् है। अभी तक किसी भी क्लास में फेल नहीं हुआ और इस समय कालेज के प्रथम वर्ष में पढ़ रहा है। इसके एक कपड़े की मिल है और कई मकान। राजपाल ने फोटो विमला को दिया और विमला ने शीला को। शीला ने कहा—"मुझे नहीं चाहिए किसीका फोटो।"

—"हाँ, अब सिर्फ फोटो से क्या होता है।" विमला ने हँसकर कहा और टेबल पर फोटो रखकर अपने कमरे में चली गयी।

रात को जब विमला और राजपाल अपने कमरे में चले गये तब शीला ने श्यामू को बुलाया और कहा—"जरा यह फोटो तो देख।"

—"अच्छा तो है।"

—अच्छा एक गिलास पानी ला।

पानी पीने के बाद शीला ने मन में कहा—"काश, श्यामू किसी सेठ का लड़का होता। कमबख्त कितना सुन्दर है। और ये हजरत, मिल मालिक के चिरंजीव महोदय, अगर श्यामू की जगह पर होते तो कोई झाड़ू लगाने के लिए भी न पूछता। अभी से कमर का इतना बड़ा घेरा।"

कुछ इधर-उधर की बातचीत के बाद विमला ने अपने पति से कहा—"श्यामू को लाकर मैंने गलती की।"

—क्यों?

--"चाल-चलन का अच्छा नहीं है। शीला की भी यह अंधी उम्र है। दोनों खूब हँसते हैं। कहीं कुछ हो गया तो मुँह में कालिख लग जायेगी।"

--"आदमी तो ऐसा नहीं लगता है फिर भी अगर तुम्हें पसन्द न हो तो निकाल दो।"

--"मेरी पसन्द का सवाल नहीं है। कहीं शीला...

--"ठीक है, कल तक की पगार देकर उसे विदा कर दो।" बीच ही में रोककर राजपाल ने कहा।

राजपाल के यहाँसे छुट्टी पाने पर श्यामू अपने पुराने रेस्तराँ में नहीं गया। कुछ पैसों की खरीदी एक पाटी (बड़ी टोकरी), दो नेकर और दो कमीज और एक तौलिया। बाकी सब कपड़ों को फेंक दिया। एक नेकर और एक कमीज पहनता था। दूसरे नेकर और कमीज को तौलिया में लपेटकर बोझा ढोते समय सिर पर रखने का बीड़ा बनाता था, रात को सोते समय इसी का तकिया बना लेता था। म्युनिसिपैलिटी के नल तथा संडास से काम चलता था, पाटिए पर कपड़ा सुखाता था, होटल से भजिया, पाव तथा रगड़ा लेकर पेट भरता था और रात को किसी दूकान के ओटले पर पैर फैलाकर सो जाता था। वह प्रायः चर्नी रोड स्टेशन के सामने ही दिखायी पड़ता था। श्यामू की एक और विशेषता थी। वह जब सामान लेकर किसी को स्टेशन से बाहर निकलते देखता तब बड़ी तेजी से किलकारी मारता हुआ उछलकर दौड़ पड़ता। उसकी प्रसन्न मुद्रा देखकर प्रायः लोग उसीको अपना सामान सौंपते थे। अपनी इस उछल-कूद के कारण कभी-कभी श्यामू को पुलिस की डाँट-फटकार भी सुननी पड़ती थी।

श्यामू अपनी इस दशा में भी मस्त था। शरीर में काम करने की शक्ति थी फिर और किसकी चिन्ता? लेकिन दुर्भाग्य उसके पीछे पड़ गया था। उसकी एकमात्र पूँजी--उसका शरीर भी नष्ट करने की योजना बनाने में लग गया था। स्टेशन के सामने एक आदमी अपना सामान लेकर निकला। श्यामू ने जोर से उछलते हुए सड़क को पार करना चाहा। ब्रेक दबाने से पहिले की रगड़ और आदमी के चीखने की आवाज से दिशाएँ गूंज उठीं। शीला की बगल में बैठा हुआ ड्राइवर बाहर निकला। शीला भी बाहर निकली। उसका शरीर काँप रहा था फिर भी कार का सहारा लिये उस हृदय-विदारक दृश्य को देख रही थी।

श्यामू बच तो गया किन्तु वह खड़ा नहीं हो सका था, वह काफी दिन तक अस्पताल में पड़ा रहा। खबर पाकर आधुनिक रेस्तराँ का मालिक भी उसे देखने आया था। उस समय तक श्यामू कुछ ठीक हो चुका था। रेस्तराँ के मालिक ने कहा--"देखो, तुम घबड़ाना मत। मैं तुम्हें खाना भी दूँगा और कपड़ा भी। इसमें मेरा स्वार्थ है। बात यह है कि जिस दिन से तुम मेरे रेस्तराँ में आये थे उसी दिन से मेरी आमदनी बढ़ने लगी थी। तुम्हारा आना इतना शुभ हुआ था कि मेरे रेस्तराँ की बिक्री दिन दूनी और रात चौगुनी होने लगी थी।"

यह वाक्य सुनकर श्यामू खिलखिलाकर हँस पड़ा। वही हँसी पहले वाली--अट्टहास......"मेरा आना बहुत शुभ हुआ था। अच्छा हुआ भाई, मेरे इस दुनिया में आने से तुम्हारा तो कुछ लाभ हुआ। मेरे लिए इतना ही क्या कम है।"

--"हाँ हाँ, मैं सच कहता हूँ। मैं तुमको जाने न देता लेकिन मैं रोक ही कैसे सकता था। मैं विवश था।"

बच्चों ने श्यामू को लंगड़ चाचा कहना शुरू किया और तब सब उसे इसी नाम से पुकारने लगे।

छः लोहे के खंभों के बीच में जलती हुई चिता नीचे बैठती जा रही थी। बहुत कुछ जल चुका था केवल कुछ हड्डियाँ बाकी थीं। थोड़ा घी और डाला गया। और जोर से लपट उठी। एक ने बाँस से सर की हड्डी को फोड़ा। आग की लपट उस तरफ भी तेज हुई। शायद मनुष्य का वह अंश, स्मृतियों का वह भंडार अपने आप नहीं जलना चाहता था। उसे फोड़ कर जलाना पड़ा था।

नवीन प्रकाशन

भक्तमाल'—टीकाकार "प्रियादासजी के मित्र श्री
...नाथजी—श्री सर्वेश्वर प्रेस वृन्दावन से प्रकाशित
...दास कृत 'भक्तमाल' में 'अपनी बात' के पृष्ठ 'ख'
...लिखा है कि—"एक बार जयपुर के गोविन्ददेवजी के
...में कामवन-निवासी श्री गोवर्धनदासजी पधारे।
...श्री प्रियादासजी के परम मित्र थे।"

...यद्यपि उपर्युक्त प्रियादासजी के पौत्र वैष्णवदास
...कृत 'श्री भक्तमाल-माहात्म्य के आधार पर दिया
...गया है, किंतु लेखक ने दो अशुद्धियाँ की हैं—(१) प्रिया-
...दासजी के परम मित्र का नाम गोवर्धनदास न होकर गोवर्धन-
...नाथ था। (२) वे कामवन-निवासी नहीं थे, वृन्दावन
...के थे। भक्तमाल-माहात्म्य में गोवर्धननाथजी का उल्लेख
...प्रकार है[1] :—

"प्रियादास के मित्र ललामा।
श्री गोवरधन नाथ सुनामा।।१।।
तिन श्री भक्तमाल पढ़ि लए।
सांभरि की रामत को गए।।२।।
मग में श्री गोविंद देव के।
दरश हेतु गे सुरन सेवके।।३।।

...प्रियादासजी ने अपने मित्र गोवर्धननाथजी का,
...भक्तमाल की अपनी प्रसिद्ध 'भक्तिरसबोधिनी टीका'
...६३१ संख्यक कवित्त में स्वयं उल्लेख किया है :—

"गोवर्द्धननाथ जू के हाथ मन परयो जाको
करयो वास वृन्दावन लीला मिलि गाई है।"

...रूपकलाजी ने उपर्युक्त पंक्ति का अर्थ करते हुए
...लिखा है[2]—"जिसका मन श्री गोवर्द्धननाथजी के हाथों
...में पड़ गया, इसीसे श्री वृन्दावन में वास करके यह भगवत्
...भक्तों की मिलित लीला जिसने (मुझ प्रियादास ने)
...गाई।"

...रूपकलाजी द्वारा किया हुआ उक्त पंक्ति का अर्थ
...ठीक नहीं है। वस्तुतः उक्त पंक्ति का अर्थ इस प्रकार होना
...चाहिए—"जिसका (प्रियादास का) मन श्री गोवर्द्धन
...नाथजी के हाथों में पड़ गया (अर्थात् जिनके हम प्रेमी
...बने)। फल यह हुआ कि उसे (प्रियादास को) इन्हींके
...कारण, इनके साथी के रूप में वृन्दावन निवास का सौभाग्य
प्राप्त हुआ और वहाँ रहते हुए इन्हीं (गोवर्धननाथ) के
साथ मिलकर भगवद्लीला गाई।"

प्रियादासजी के कथन से स्पष्ट है कि इनके मित्र का
नाम गोवर्धननाथ था और वे वृन्दावन-निवासी थे। उन्हींके
द्वारा प्रियादास को भी वृन्दावन में निवास करने का
सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

प्रियादासजी तथा वैष्णवदासजी के कथनों को पढ़-
कर प्रियादासजी के इन परम मित्र गोवर्धनदासजी का
विशेष परिचय प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न होना स्वा-
भाविक है।

तत्कालीन ब्रज-भाषा-साहित्य का आलोड़न करने से
ज्ञात होता है कि प्रियादासजी के ये परम मित्र गोवर्धन
नाथजी राधावल्लभ-सम्प्रदाय के एक आचार्य थे। चाचा
हित वृन्दावनदासजी ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'रसिक
अनन्य परिचावली' में इनका परिचय निम्न छप्पय में इस
प्रकार दिया है :—

श्री गोवर्धन नाथ रमें निसि दिन सत संगति
कोविद रचना अर्थ रसिक रस गिरा पहुँच मति।।
ललित विशाल सुभाल मधुर मूरति सुख दैंनी।।
सज्जन परम सुसील बुद्धि समुझनि गुन पैंनी।।
श्री प्रियादास मिलि चुनि गुनें भक्तनि चरित सुख [illegible]ज के
कुल श्री वन चंद सुता प्रगट भये भूषन रसिक समाज के।।७२।।"

उपर्युक्त प्रशस्ति से स्पष्ट है कि इन्होंने प्रियादासजी
के साथ मिलकर भक्त-चरित्रों का गान किया था। इससे
गोवर्धननाथजी और प्रियादासजी का मैत्री-भाव पूर्ण
रूपेण प्रकट है, जो कि प्रियादासजी के स्वयं-कथन से
साम्य रखता है।

चाचाजी ने अपनी एक और रचना 'श्री हित भक्ति
कल्पतरु' में गोवर्धननाथजी का वंश-परिचय निम्नलिखित
रूप में दिया है :—

"श्री राम नाथ साखा सुनौं, दरसौ सुंदर येजु।
दरसि परचौ कोविद जननि, जहाँ भक्ति कौ तेजु।।४५२
श्री गोबरधन नाथ जू, श्री विष्णुनाथ पुनि और।
श्री स्याम नाथ पुनि तौ [illegible]रे, पद रति स्यांवल गौर।।४५३

चाचाजी के कथनों से प्रकट है कि गोवर्धननाथजी,
राधावल्लभ-सम्प्रदाय के आद्याचार्य श्री हितहरिवंशजी
के ज्येष्ठ पुत्र गो० वनचन्द्रजी की सुता किशोरीजी के
वंश में थे। इनके पिता का नाम श्री रामनाथ था। ये
तीन भाई थे। अपने समय के ये प्रसिद्ध भक्त और रसिक-
समाज के भूषण थे। श्री चन्द्रलाल गोस्वामी इनके पुत्र

१—देखिए—भक्तमाल सटीक-भक्ति सुधा स्वाद
...(रूपकला-संस्करण) के अन्त में प्रकाशित—
...भक्तमाल-माहात्म्य' पृ० ९६१।
२—वही, पृ० ९३३।

फा० १२

थे। चन्द्रलालजी के संबंध में भी चाचाजी ने 'रसिक परिचावली' में छप्पय लिखा है।

—वेदप्रकाश गुप्त।

युग संदेश—लेखक रामवीर शास्त्री 'अरुणेश', प्रकाशिका श्रीमती राधारानी शास्त्री, अरुणेश प्रकाशन, अरुणेश धाम, बेतिया (बिहार)।

यह पुस्तक अरुणेश ग्रन्थावली का २१वाँ पुष्प है तथा 'नरेन्द्र' नामक एक उपन्यास है, ऐसा द्वितीय पृष्ठ से प्रतीत होता है। कवर पेज से इसका आभास नहीं मिलता कि यह एक उपन्यास है। मुख्य पृष्ठ (कवर पेज) को देख कर तो ऐसा लगता है जैसे कि यह कोई धर्मग्रन्थ हो—क्योंकि मुख्य पृष्ठ पर श्रीराम, श्रीकृष्ण, महात्मा बुद्ध, ईसा मसीह, तथा महात्मा गांधी के चित्र बने हैं और उनके पीछे उनकी पथ-अनुयायी अपार जनता खड़ी है। ऊपर ॐ लिखा है और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के ध्येय के नीचे शान्ति का संदेश देती हुई दो तलवारें पड़ी हैं और उनके बीच दो ढालों पर विश्व का चित्र अंकित है। ऊपर युग संदेश लिखा है (मोटे अक्षरों में) और उसके नीचे छोटे अक्षरों में लिखा है (तड़पती मानवता)। सारांश यह कि पुस्तक के मुख्य पृष्ठ से इसका भी आभास नहीं होता कि भक्ति, पूजा, शान्ति संदेश की आड़ में से अन्दर से निकल आयेगा एक अपठनीय उपन्यास। हाँ! यदि यह उपन्यास इस दृष्टिकोण से लिखा गया हो कि पढ़नेवाले तरुण जन अपने अभिभावकों को मुख पृष्ठ दिखाकर धोखा दे सकें तो इतना कहना ही होगा कि उसको इसमें पूर्ण सफलता मिली है।

मुख्य नायक नरेन्द्र नायक इस कारण नहीं है कि पाठक उसके दुख से दुखी व उसके सुख से सुखी होते हैं—वह नायक इसलिए है कि लेखक उसको नायक बनाना चाहता है इस कारण उपन्यास की प्रथम पंक्ति में ही उन्होंने नायक के सम्पूर्ण गुण उसके चरणों पर अर्पित कर दिये हैं, "२४ वर्षीय स्वस्थ सुन्दर, सुडौल, छरहरा, एकहरा, गौरवर्ण का सुसंस्कृत तेजस्वी तरुण नरेन्द्र मंच से दहाड़ रहा है।" और फिर जिधर से वह निकल जाता है उधर युवतियाँ उसके प्रेम के लिए विह्वल हो जाती हैं और एक वह है जिसे किसीकी परवाह नहीं—उसका यह सुचरित्र दिखलाने में लेखक को मर्यादा तक का विचार नहीं रह गया है और यह पुस्तक एक दो स्थान पर स्त्रियों के अति अधिक प्रेमातुर हो जाने के कारण अपठनीय हो गयी है। इसका आभास प्रायः उपन्यास के प्रथम दो-चार पृष्ठ पढ़ने से ही लग जाता है "शरद की मधुर चाँदनी में साहस करके मैं आपके पलंग पर जा पड़ी, जवानी तथा जोश भरी आपकी दिव्य देह सेलिपट गयी तो आप बलपूर्वक मुझे हटाने लगे। फिर भी मैं नहीं हटी। इसपर क्रुद्ध होकर आपने मुझे ढकेल दिया—'नीलम मेरे जीवन को कलंकित मत करो,......"

नीलम—"कोई नहीं जान पायेगा। फिर आपकी ख्याति को धक्का कैसे लगेगा? क्या ऐसी घटनाएँ को[ई] जान पाते हैं.........."

"नीलम! जो पाप अँधेरी रात के बन्द कमरे [में] किया जाता है वह छत पर चढ़कर बोलता है......"

इतना ही नहीं बाद में नीलम जो करती है वह लि[खा] ही नहीं जा सकता। जब वह उपन्यास के प्रारंभ में ही [ऐसा] कर सकती है तब वह आगे और क्या नहीं कर सकती? मर्यादा से हट जाना एक बात हुई और मर्यादा का ग[ला] घोंट देना एक दूसरी बात—आगे का अउल्लेखनीय विष[य] अउल्लिखित ही छोड़ देना चाहिए। अभी तक देखे आये कि दो पुरुष व दो स्त्रियाँ एक व्यक्ति से प्रेम करने ल[ग] जाते हैं अब इस उपन्यास में देखा कि नायक से तीन स्त्रि[याँ] प्रेम करने लग जाती हैं और तीनों ही विवाह करने [के] लिये अति आतुर हैं और नायक तीनों को समभाव [से] देखते हुए कहते हैं कि तुम ही लोग आपस में निर्णय कर [लो] कि किसको मुझसे विवाह करना है। "क्योंकि एक का म[न] प्रसन्न होगा और दो का तो दुखी होगा ही।" मेरे विचार से यह समस्या 'हिन्दू मैरेज ऐक्ट' लागू होने से उठी वरन् वे तीनों का दिल प्रसन्न कर देते और तीनों से विवाह कर लेते!

खेद इसका है कि ऐसा अवास्तविक, तथा मर्यादा-च्युत उपन्यास एक शिक्षित व्यक्ति की लेखनी से निकले। क्योंकि द्वितीय पृष्ठ पर लेखक के नाम के साथ उनकी योग्यताएँ भी छपी हुई हैं। बी० ए०, सिद्धान्तवाचस्पति, विद्यावाचस्पति, भू० पू० अभ्यर्थी—भारतीय प्रशासन सेवा (I. A. S.)!

वास्तविकता कहीं भी उपन्यास में नहीं है। जहाँ भी 'नरेन्द्र रंगमंच से दहाड़ते हैं' 'वहीं अमर रहो सेनानी नरेन्द्र अमर रहो! भव्य भारत अमर रहो।' आवाज की गूँज मच जाती है। भाभी देवर को पत्र लिखती है तो आत्मीयता का नाम नहीं लगता है मानो किसी पत्र लिखने की कला सिखानेवाली पुस्तक से एक पत्र उतारकर रख दिया है।

लेखक को कविता से भी प्रेम है—कई कविताएँ उप-न्यास के बीच में आई हैं। एक उदाहरण यहाँ उतार दिया है। वह स्वयम् ही दृष्टान्त है। उसपर टिप्पणी की आव-श्यकता नहीं।

> लेकर जब कलशों को कर में
> तुम भर लोगे अपने उर में
> मसल चूम कर चल दोगे जब
> पकड़ हाथ में मल दोगे जब
> तभी स्वर्ग में पा जाऊँगी।
> फूली नहीं समा पाऊँगी॥

१९६४ संक्षिप्त आक्सफोर्ड हिन्दी साहित्य परिचायक—श्री ...राम गर्ग। प्रकाशक, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ...कत्ता। बड़ा आकार। सजिल्द मूल्य १२·५० नये

यह एक साहित्यिक कोश है जिसमें हिन्दी और ...के लेखकों, रचनाओं, अंतर्कथाओं, प्राचीन भौगो-...नामों आदि का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। ...में इस प्रकार का एक बड़ा ग्रंथ 'चरिताम्बुधि' ...हो चुका है। यह दूसरा और उससे छोटा ग्रंथ ...से एक छोटे ग्रंथ की आवश्यकता थी--विशेषकर ...र्थियों और साधारण पाठकों के लिए। यह प्रयास ...है और लेखकों ने इसे उपयोगी बनाने का प्रयत्न ...किया है। किंतु इसका क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत, और ...र बहुत छोटा होने के कारण, इसमें जो जानकारी ...है वह अपर्याप्त है और उससे पाठकों की जिज्ञासा ...तरह से शान्त न हो सकेगी। इतने बड़े ग्रंथ में--जिसमें ...प्रकार के लेखकों और रचनाओं, प्राचीन भौगालिक ...और अंतर्कथाओं का संक्षिप्त वर्णन देने का प्रयत्न ...गया हो, लेखक को अपने विवेक का उपयोग करना ...है। ऐसे में यदि कुछ पुराने लेखकों के नाम छूट जायँ तो ...नहीं, किंतु लोग बहुधा कोशों का सहारा ऐसे ही ...लोगों की जानकारी प्राप्त करने के लिए करते ...इस कोश में भी ऐसा ही हुआ है। अमृतलाल ..., राधाकृष्ण मिश्र, द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी, जगन्नाथ ...चतुर्वेदी आदि कितने ही पुराने लेखकों के नाम ...कोश में नहीं हैं। कहीं-कहीं कुछ भूलें भी हैं। जैसे ...मेघ के लेखक मधुसूदनदास को मथुरानिवासी ...गया है जब कि वे इटावा के रहनेवाले थे। ...का प्रकाशन जनवरी १९०० से आरंभ हुआ, ...इसमें उसका आरंभ १८९९ में बताया गया है। ...ग्रंथ १९६३ में प्रकाशित हुआ, तथापि इसे देखने ...मालूम होता है कि चतुरसेन शास्त्री अभी जीवित हैं। ...परिचय में यह भी नहीं बतलाया गया कि ...लेखक कहाँ का था। जैसे रूपनारायण पांडेय ...में। ऐसे कितने ही उदाहरण दिये जा सकते ...है कि अगले संस्करण में ये त्रुटियाँ दूर कर ...जायेंगी। पुस्तक उपयोगी है और जिस उद्देश्य से ...गयी है, उसकी बहुत कुछ पूर्ति करती है।

भुज (कच्छ) की व्रजभाषा पाठशाला--लेखक, कुँअर चन्द्रप्रकाश सिंह। प्रकाशक हिन्दी विभाग, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा। बड़ा आकार। सचित्र। मूल्य, डेढ़ रुपये।

बड़ौदा के महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय ने अपने शोधकार्य के प्रकाशन के लिए एक हिन्दी शोध-निबन्धमाला का आयोजन किया है। यह अत्यन्त ही सुखद, शुभ और समीचीन संयोग है कि गुजरात के इस विश्वविद्यालय से प्रकाशित होनेवाली माला का प्रथम पुष्प या रत्न भुज की व्रजभाषा पाठशाला का इतिहास और वर्णन है। 'सरस्वती' में इस पाठशाला का संक्षिप्त वर्णन प्रकाशित हो चुका है, तथा इसपर हम टिप्पणी भी लिख चुके हैं। उस परिचयात्मक लेख को पढ़कर हमारे कितने ही पाठकों को इस पाठशाला के सम्बन्ध में अधिक जानकारी प्राप्त करने की उत्सुकता हुई। इसलिए हमें उस पुस्तक को देखकर और भी अधिक प्रसन्नता हुई। इस पाठशाला के प्रायः दो सौ वर्षों के इतिहास की खोज करके उसके सम्बंध में तथ्यों का एकत्र करना, उससे सम्बंधित कवियों की काव्य रचनाओं का पता लगाना, उनका अन्वेषण और पुष्टि करना तथा विवादग्रस्त तथ्यों का परीक्षण करके उचित निष्कर्ष निकालना, आदि ऐसे कार्य थे जो पुस्तकालय के वातानुकूलित कक्ष में बैठकर नहीं किये जा सकते थे। इन सबके लिए विद्वान् लेखक को भुज की ही नहीं, प्रत्युत अन्य स्थानों की भी यात्राएँ करनी पड़ीं, बिखरे हुए साहित्य को प्राप्त करने, या उसकी प्रतिलिपि करने तथा उसकी अन्य प्रतियों से पुष्टि करने के लिए कितने ही स्थानों में जाना पड़ा। किंतु इस अध्यवसाय के बाद जो अध्ययन किया गया है वह हिंदी भाषा और साहित्य के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ता है। हिन्दी क्षेत्रों और गुजरात के साहित्यिक एवम् सांस्कृतिक संपर्क कितने घनिष्ठ थे, और दोनों में युगों से कितनी आत्मीयता रही है--इसका प्रमाण यह शोधनिबंध है। चाहे शोध प्रक्रिया की दृष्टि से देखा जाय, चाहे विषय की महत्ता की दृष्टि से, यह छोटा-सा शोध निबन्ध हिन्दी शोध को सही दिशा देकर एक आदर्श उपस्थित करता है। यह सभी प्रकार के हिंदी पाठकों और विद्वानों के पढ़ने योग्य है। हम विद्वान् लेखक और म० स० विश्वविद्यालय को इसके प्रकाशन पर हार्दिक बधाई देते हैं।



ग्रीष्म--

मध्याह्ने चलतालवृन्तमनिलः सर्वात्मना सेवते
वारि स्वेदमिषेण शीतलवधूवक्षोजमालम्बते।
निद्रा नेत्रमुपैति पक्ष्मयुगलच्छायाश्रिता देहिकी
पान्थानामथ पादयोर्निपतति च्छायापि मा यान्त्विति ॥

ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्न में प्रखर ताप से बचने के लिए हवा भी हिलते हुए पंखे की शरण लेने लगती है, जल मानों पसीने का रूप धर कर युवतियों के शीतल पयोधरों के नीचे पहुँच जाता है, निद्रा भी आँखों की बरौनियों की छाया में चली जाती है। यहाँ तक कि पथिकों के शरीर की छाया उनके पैरों के नीचे आकर मानों उनसे विश्राम करने का अनुरोध करती है।

तप्ता मही विरहिणामिव चित्तवृत्ति-
स्तृष्णाध्वगेषु कृपणेष्विव वृद्धिमेति।
सूर्यः करैर्दहति दुर्वचनैः खलो नु
छाया सतीव न च मुंचति पादमूलम् ॥

ग्रीष्म ऋतु की गर्मी की प्रखरता का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि पृथ्वी उसी प्रकार तप रही है जैसे वियोगियों के हृदय, पथिकों की प्यास कृपणों की धन की तृष्णा के समान बढ़ रही है, जिस प्रकार दुष्ट लोग अपने दुर्वचनों से दूसरों को कष्ट देते हैं उसी प्रकार सूर्य अपनी तीखी किरणों से लोगों को कष्ट दे रहा है, और जिस प्रकार सती स्त्री अपने पति के चरणों का आश्रय पकड़ लेती है वैसे ही वृक्ष की छाया उसकी जड़ को पकड़े हुए है।

दुर्भाग्य--

खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणैः सन्तापितो मस्तके
वाञ्छन्देशमनातपं विधिवशात्तालस्य मूलं गतः।
तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्नं सशब्दो शिरः
प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रापदां भाजनम् ॥

गर्मी के दिनों में एक गंजा व्यक्ति छाया की खोज में था। उसे सिवाय ताड़ के एक वृक्ष के और कोई वृक्ष नहीं दिखायी पड़ा। वह उसके नीचे पहुँच कर उसकी विरल छाया में अपने संतप्त मस्तक को कुछ राहत देने के लिए रुक गया। किंतु दुर्भाग्य! जैसे वह उस वृक्ष के नीचे पहुँचा कि ताड़ के एक विशालकाय फल ने उसकी (गंजी) खोपड़ी पर गिर कर उसे चूर-चूर कर दिया। यह ठीक कि अभागा व्यक्ति जहाँ कहीं भी जाय, आपत्ति उसका पीछा नहीं छोड़ती।

पत्रं नैव यदा करीरविटपे दोषो वसन्तस्य किं
नोलूकेन विलोक्यते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम्।
धारा नैव पतन्ति चातकमुखे मेघस्य किं दूषणं
यद्धात्रा निजभालपट्टलिखितं तन्मार्जितं कः क्षमः ॥

वसन्त होने पर भी यदि करील पत्रहीन ही रहे तो इसमें वसन्त का क्या दोष है? इसी प्रकार यदि उल्लू को दिन में न दिखायी पड़े तो इसके लिए सूर्य को कैसे दोष दिया जा सकता है। और यदि वर्षा होते रहने पर भी चातक के मुँह में एक बूँद जल भी न जाय तो मेघों को क्या दोष दिया जाय? वास्तव में ब्रह्मा ने जो जिसके भाल (भाग्य) में लिख दिया है उसे टालने की शक्ति किसमें है?

घृष्टं घृष्टं पुनरपि पुनश्चन्दनं चारुगन्धं
छिन्नश्छिन्नः पुनरपि पुनः स्वादु चैवेक्षुदण्डः।
तप्तं तप्तं पुनरपि पुनः कांचनं कान्तवर्णं
प्राणान्तेऽपि प्रकृतिविकृतिर्जायते नोत्तमानाम् ॥

बार-बार घिसे जाने पर भी चन्दन अपनी सुंदर सुगन्ध (देना) नहीं छोड़ता। बार बार काटने पर भी ईख (गन्ना) अपना मिठास नहीं छोड़ता, और सोना बार-बार तपाये जाने पर भी अपना सुंदर चमकता हुआ रंग नहीं छोड़ता। ठीक ही है, सज्जन पुरुष प्राणान्त होने पर भी अपनी उत्तम प्रकृति को विकृत नहीं होने देते।

दृश्यन्ते भुवि भूरिनिम्बतरवः कुत्रापि ते चन्दनाः
पाषाणैः परिपूरिता वसुमती वज्रो मणिर्दुर्लभः।
श्रूयन्ते करटारवाश्च सततं चैत्रे कुहूकूजितम्
तन्मन्ये खलसंकुलं जगदिदं द्वित्राः क्षितौ सज्जनाः ॥

नीम के पेड़ तो संसार में भरे पड़े हैं, किंतु चंदन के पेड़ कहीं कहीं मिलता है। यह पृथ्वी पत्थरों से भरी हुई है पर इसमें हीरा-मणि दुर्लभ हैं। कौओं की काँव काँव तो बराबर बारहों महीने सुनायी पड़ती है किंतु कोकिल की कूक चैत ही में सुनी जा सकती है। इसी तरह इस संसार में खलों की प्रचुरता है, सज्जन तो कहीं कहीं दो-चार भले ही दिखलायी पड़ जायँ।

ब्रज-माधुरी

—

बुरो पंच को, दबोच[2] दैनदारी बुरी
मोच बुरी मुरखा[3] की, सुनारि बिना सिच्छा की।
बुरो खाज की, बजारहू की भिच्छा बुरी,
बुरो बुरी पापी को, धरो (ह) र बुरी टुच्चा[5] की।
मतोल' मित्र तुच्छा की मिताई बुरी,
सवाई बुरी दोष की, कमाई बुरी कुच्चा[6] की।
बुरो सिर की, अपोट[7] सब ही तें बुरो,
लोट[8] बुरी बंधु की, लपेट बुरी लुच्चा की॥

—

उठि आनि इतै बोलि बोलि जात, तेऊ
झूठे भय बोल सब बायस बिहंग के।
तिहारी सब झूँठी हैं 'निवाज कवि'
झूठे दृग फरकैं हमारे बाम अंग के।
हाथ झूठे, कारे कागदौ तिहारे झूँठे,
कारे ये हमारे नैन झूँठे बिन ढंग के।
! कछू तुमही मिले न हमें झूँठे,
सबं झूंठे मिले दई के सँवारे कारे रंग के!

में प्रीति, रस रीति सब आँखिन में,
आँखिन में आखर लिखे हैं सुघराई के।
में लाज, औ ढिठाई सब आँखिन में,
आँखिन में दूत बसैं सील सुघराई के।
कहत रंग-रोष सब आँखिन में,
आँखिन में स्ववस सुभाव हैं वसाई के।
अलक्षन ततक्षन विचारि देखौ,
आँखिन में भाव हैं बुराई औ भलाई के॥

जगमगे जागे जामिनी के,
जोबन की जेब जोहि उमगे परत हैं।
के माते, मतवारे-जैसे घूमत हैं,
झूमत, झुकत, झुकि-झुकि उघरत हैं।

'आलम जू' नवल निकाई इन नैनन की
पाँखुरी पदुम पर भौंर फरकत हैं।
चाहत हैं उड़िबे कौं देखत मयंक मुख,
जानत हैं रैन, तातैं ताही में रहत हैं॥

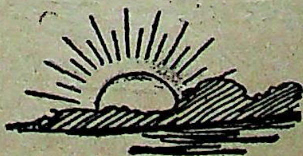
याहि मति जानियो सहल, कहै 'रघुनाथ'
अति ही कठिन रीति निपट कुढंग की।
याहि करि काहू, काहू भाँति सों न कल पायौ,
कलपायौ तन-मन, मति बहुरंग की।
एक हौं कहौं सो कथा कान दैकैं सुनि लीजे,
प्रगट कही है बात बेदन के अंग की।
तब कहूँ प्रेम कीजै, पहिले तें सीखि लीजै,
बिछुरनि मीन की और मिलन पतंग की।

आई बरसाने तें बुलाई वृषभानु सुता
निरखि प्रभात प्रभा भानु की अथैं गई।
चक चकवान के चुकाये चक चोटिन के
चौंकत चकोर चक चौधैं-सी चखै गई।
'देव' नँदनंदजू के नैनन अनंदमई
नंदजू के मंदिरन चंदमयी ह्वै गई।
कंजन कलिनमयी, कुंजन अलिनमयी,
गोकुल की गलिन नलिनमयी कै गई॥

बरुनीन में नैन झपैं-उझपैं
मनों खंजन मीन के जाले परे।
दिन औधि के कौ लौं गनौं सजनी!
अँगुरीन के पोरन छाले परे।
कहु 'ठाकुर' कासों कहा कहिए?
हमें प्रीति किये के कसाले परे।
जिन लालन चाह करी इतनी,
तिन्हें देखिबे के अब लाले परे।

जबतें दरसे मनमोहन जू
तब तें अँखियाँ ये लगी सो लगीं।
कुल-कानि गई सखी! वाही घरी
जब प्रेम के फंद पगी सो पगीं।
'कवि ठाकुर' नेह के नेजन की
उर में अनी आनि खगी सो खगी
तुम गाँवरे! नाँव रे कोऊ धरौ
हम साँवरे रंग रँगीं सो रँगीं!

1—भर्त्सना, 2—ऐसे की देनदारी जो बराबर ... 3—एड़ी के ऊपर का भाग, 4—खुजाना, ...बार-बार थोड़ा-थोड़ा करके माँगेगा, 6—दूसरों ... खरीद करते समय उसमें से कुछ बचा लेना, 7—... 8—अहित (भाई द्वारा किया गया)।



मनोरंजक संस्मरण

प्राय: पचास-साठ वर्ष पूर्व तक राजा-महाराजाओं के दरबारों में राज्याश्रित कवि रखने की परिपाटी थी। उन्हें जीविका के लिए एक-दो गाँव दे दिये जाते थे तथा विशेष अवसरों पर धन, सिरोपाव, हाथी, घोड़े देकर उनका सम्मान किया जाता था। ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं कि जब कवि को पुरस्कार में हाथी दिया गया किंतु वह उसे रखने में असमर्थ था। तब उसे हाथी के बदले कुछ भूमि दे दी जाती थी। रींवा के कई महाराज लगातार स्वयं अच्छे साहित्यिक हुए जिनमें महाराज विश्वनाथसिंह जू देव और उनके पुत्र महाराज रघुराजसिंह जू देव प्रसिद्ध कवि थे। ये महाराजे कवियों का बड़ा सत्कार करते थे और उनके दरबार में अनेक कवि रहते थे।

महाराज विश्वनाथसिंह जू देव के सुपुत्र महाराज रघुराजसिंह का विवाह उदयपुर के महाराजा सरदार-सिंहजी की राजकुमारी से हुआ था। उदयपुर दरबार में भी कवियों के रखने की परम्परा थी, और उन दिनों सभी रजवाड़ों में व्रजभाषा की कविता उसी प्रकार चलती थी जिस प्रकार आज देश में खड़ीबोली चलती है। यहाँ तक कि पंजाब में महाराज रंजीतसिंह के दरबार में भी हिन्दी (व्रजभाषा) के कवि रहते थे जिनमें सबसे अधिक ख्याति मथुरानिवासी ग्वाल कवि ने प्राप्त की थी। सो, महाराना उदयपुर के दरबार में भी कितने ही व्रजभाषा हिन्दी के कवि थे।

राजकुमार रघुराजसिंहजी के विवाह के अवसर पर उदयपुर में एक दरबार हुआ। उसमें उदयपुर दरबार के 'प्रसाद' कवि ने महाराना की प्रशंसा में यह छन्द पढ़ा:

बाढ़ी पातसाही प्रलयकाल के सजल ज्योंही,
डूबे राव राजा पै न कीन्हो तेग खर को।
देन लागे नवल दुलहिया नवरोजन की,
पाछे आनि देखैं नीठि नीठि मुख घर कों।
बाँधि तरवार पातसाहन सों कीनी रारि,
भनत 'प्रसाद' अवतार साँचो हर को।
दोऊ दीन जाना बात अकह कहाना, सदा
ऊँच्यौ रह्यौ राना जैसे पाना अखैबर को!

महाराज विश्वनाथसिंह जू देव के साथ भी ... कई दरबारी कवि बारात में उदयपुर गये थे। एक ... द्वारा महाराना का यशोगान सुनकर रींवावालों ... जोश आया और उन्होंने रींवा दरबार के कवि अज... जी को कुछ कहने को प्रेरित किया। प्रसाद कवि ने ... राना की उच्चता की उपमा अक्षयवट के पत्ते से दी ... अजबेशजी ने भी अक्षयवट का रूपक बाँधा। जन... यह है कि शेरशाह सूर से हार जाने पर हुमायूं ने ... अकबर के साथ कुछ दिनों के लिए बाँधवगढ़ में ... महाराज का आश्रय लिया था। इस जनश्रुति को ध्यान में रखकर अजबेशजी ने तुरन्त यह छन्द बना कर पढ़ा:

दिल्ली के जितेक सरदार, मनसबदार,
राजा, राव, उमराव सब कौ निपात भौ।
बेगम बिचारी बही, कतहूँ न थाह पायी,
बाँधौगढ़ गाढ़ौ गूढ़ ताकौ पक्षपात भौ।
शेरशाह सलिल-प्रलय सौं बाढ़यौ, अजबेश,
बूड़त हुमायूँ के महा ही उतपात भौ।
बलहीन बालक अकब्बर बचाइबे कों
वीरभानु भूपति अखैबर को पात भौ।

बाँधवेश का यश और भी बढ़ाते हुए उन्होंने दू... छन्द पढ़ा —

सरन कों सलिल समिटि सरितान आवैं,
सरिता सरन आवैं नीर-निधि नाह के।
देवता दबे तें चतुरानन की सरन आवैं,
आवैं चतुरानन सरन चारि-बाँह के।
चन्द्रमा सरन आवैं उड़गन अजबेश,
चन्द्रमा सरन आवैं कुमुदिन दाह के।
आवत जगत सब साह की सरन,
साह आवत सरन बाँधवेश पातसाह के।

इन आशु छन्दों ने उस अवसर पर रींवावालों ... बहुत प्रसन्न किया और अजबेशजी की काव्य-प्रतिभा की धाक जो पहिले ही से जमी हुई थी, और भी दृढ़ हो गयी।

लार्ड केलविन

श्री उदयनरायण वाजपेयी

एक वह समय था जब मनुष्य बिजली, बादल, नदी और समुद्र आदि प्राकृतिक पदार्थों से भयभीत होकर उनको प्रसन्न रखने के उपाय किया करते थे। एक यह समय है जब इन चीजों को अपना आज्ञाकारी दास बनाकर वे मनमाना काम लेते हैं। यह उलट फेर जिन प्रतिभासम्पन्न महात्माओं की बदौलत हुआ है, उन्नीसवीं शताब्दी के जगद्विख्यात विज्ञानवेत्ता और गणितज्ञ लार्ड केलविन भी उन्हीं में से हैं।

जन्म और शिक्षा

आपका जन्म २६ जून, सन् १८२४ ई० को बेलफास्ट नगर में हुआ था। आपके पिता का नाम जेम्स था। वे ग्लासगो विश्वविद्यालय में गणित शास्त्र के अध्यापक थे। लार्ड केलविन की शिक्षा यहीं प्रारम्भ हुई। दस वर्ष की उम्र में इन्होंने इस विश्वविद्यालय की प्रवेश परीक्षा पास कर ली। यहाँ से आप केम्ब्रिज के पीटर्स कालेज में गये। १८४५ ई० में आप वहाँ की अन्तिम परीक्षा में उत्तीर्ण हुए।

अध्यापन तथा वैज्ञानिक कार्य

शिक्षा समाप्त करके आप ने पेरिस की यात्रा की। वहाँ रेनाल्ट के वैज्ञानिक परीक्षागार में कुछ दिनों तक काम करते रहे। वहाँ से लौटने पर दूसरे वर्ष १८४६ में आप ग्लासगो, विश्वविद्यालय में प्राकृतिक विज्ञान के अध्यापक नियत किये गये। यह काम आप ने पूरे पचास वर्ष किया। पचासवें वर्ष के अन्त में आपकी जुबिली बड़ी धूमधाम से मनाई गई। उसी साल, १८९६ ई० में, आपने कालेज से सम्बन्ध छोड़ा।

जिस समय अटलांटिक महासागर में सामुद्रिक तार लगाये जा रहे थे उस समय आप इंगलैण्ड में विद्युच्छास्त्र के सबसे बड़े ज्ञाता समझे जाते थे। इसलिए इस काम में सहायता देने के लिए वे दो बार नियत किये गये। पहले १८५७-५८ में, फिर १८६५-६६ में। इस काम को करते हुए उन्होंने दो नवीन यंत्र ईजाद किये। इनका उपयोग किया जायगा। इस काम में आप ने खूब ही सफलता प्राप्त की। आपका नाम संसार में चारों ओर फैल गया। अन्य देशों ने भी इस काम में सहायता पाने के लिए आप से प्रार्थना की। १८६९ ई० में, फ्रान्स ने, १८७३ में ब्राज़िल ने और १८७५ ई० में अमेरिका ने अपने अपने यहाँ समुद्री तार लगाने में आपके अनुभव से लाभ उठाया। जब नियागरा-जल-प्रपात की शक्ति को कल-कारखाने चलाने के लिए काम में लाने की बात पहले उठी तब उसके लिए एक सलाहकार समाज स्थापित किया गया। आप उसके सभापति बनाये गये। यद्यपि इस विषय में आपकी राय अमेरिका वालों से न मिलती थी तथापि उसके स्वीकार करने में आप ने जरा भी पसोपेश न किया।

अमेरिका की सैर

यों तो आप ने कई देशों में भ्रमण किया, परन्तु अमेरिका की सैर आपको अधिक प्रिय थी। वहाँ आप पाँच बार गये। पहले दो दफे, १८६५ और १८६६ में, तो आपको सामुद्रिक तार लगाने के सम्बन्ध में जाना पड़ा। परन्तु पिछली तीन बार की यात्रायें केवल सैर के लिए थीं। सन् १८८४ में आपके वहाँ कई व्याख्यान हुए। अन्तिम बार आप ने कई विश्वविद्यालयों का निरीक्षण भी किया। इनमें से किसी किसी ने आपको एल-एल० डी० आदि पदवियों से विभूषित किया।

देश-विदेश में सम्मान

लार्ड केलविन राजा-प्रजा, देश-विदेश सभी के सम्मान-भाजन थे। १८६६ में, अटलांटिक महासागर में तार लगाने में सफलता प्राप्त करने पर, महारानी विक्टोरिया ने उनको नाइट की उपाधि से विभूषित किया। अपने वैज्ञानिक आविष्कारों के द्वारा मनुष्य जाति का जो उपकार उन्होंने किया था उसके बदले में, १८९२ में, वे केलविन के लार्ड" बनाये गए। वे "प्रिवी कौंसिल" के मेम्बर भी थे। वे कितनी ही सभाओं के सभ्य थे, कितने ही पद, पदक और पदवियाँ अपने दीर्घजीवन में उन्होंने प्राप्त की थी। उन सब का संक्षिप्त वर्णन भी इस छोटे से लेख में नहीं हो सकता। सिर्फ इतना कहना काफी होगा कि इंगलैण्ड में शायद ही कोई विद्वानों की सभा बची हो जिसके वे कभी न कभी सभापति न रहे हों। आप ने सन् १८७१ में, "ब्रिटिश एसोसिएशन" १८९० से १८९५ तक "रायल सोसायटी" और चार दफे "एडिनबरा रायल सोसायटी" के सभापति के पद को सुशोभित किया। इनमें से पिछली दो सभाओं से "शाही पदक" भी आपको मिला। याद रहे कि ये पद, पदक और इनाम विरले ही भाग्यशाली विद्वानों को मिलते हैं। १९०४ से मृत्युपर्यन्त आप ग्लासगो-विश्वविद्यालय के चैंसलर रहे। अध्यापकी के ५० वर्ष पूरे होने पर, जिस समय आपकी जुबिली, मनाई गई उस समय डबलिन, केम्ब्रिज और एडिनबरा विश्वविद्यालयों में से हर एक ने एल-एल० डी० और आक्सफर्ड विश्व-विद्यालय ने डी० सी० एल० पदवी प्रदान कर आपका सम्मान किया। इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार से प्राप्त, जी० सी० बी० ओ०, एम० ए०, एल-एल० डी०, डी० सी० एल०, डी० एस-सी०, एम० डी०, एफ० आर० एस०, एफ० आर० एस० ई०, डी० एल० आदि पदवियाँ और उपाधियाँ आपकी उत्कृष्ट विद्वत्ता, देश-व्यापी प्रतिष्ठा और विज्ञान सम्बन्धी आपके प्रगाढ़ पांडित्य को प्रकट करती हैं। लार्ड केलविन विदेशों में भी वैसे ही प्रतिष्ठित समझे जाते थे जैसे कि अपने देश में। वे परिस और बर्लिन की वैज्ञानिक सभाओं के विदेशी सभ्य थे। उन्होंने प्रशिया, बेलजियम और जापान से कई प्रतिष्ठित उपाधियाँ प्राप्त कर यह साबित कर दिया था कि "स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान सर्व पूज्यते"।

वैज्ञानिक खोज और आविष्कार

लार्ड केलविन के जीवन का अधिक भाग वैज्ञानिक

गूढ़ तत्वों के खोज, विचार, अध्ययन और अनुशीलन में गया। यों तो गणित और प्राकृतिक विज्ञान में वे विशेष पारदर्शी थे, पर उनके आविष्कारों का सम्बन्ध विद्युच्छास्त्र और नौकानयन शास्त्र ही से है। समुद्र में तार लग जाने से मनुष्यमात्र को जैसा लाभ हुआ है, सांसारिक राजकीय, व्यापार सम्बन्धी आदि--कार्य निर्वाह करने में जैसी सुविधा हुई है, देश-विदेश के नित्य नये समाचार जानकर, अपनी उन्नति करने का जैसा सुभीता हाथ आया है, वह सब लार्ड केलविन ही की शोधक और विशाल बुद्धि की बदौलत है। स्थल के तारों के समान समुद्र वाले तारों के विद्युत्प्रवाह का वेग भी धीरे-धीरे घटता जाता है। इससे खबरों के भजने में बड़ी गड़बड़ होती थी। १८६६ ई० में अटलांटिक महासागर में तार लगाते समय, इस त्रुटि को देखकर, इन्होंने विद्युत्-प्रवाह-मापक और विद्युत्-कम्प-लेखक ऐसे दो यन्त्र निकाले, जिनसे यह गड़बड़ हमेशा के लिए मिट गई। इन यन्त्रों को अँगरेजी में (Minor Galvano meter) और (Siphon Recorder) कहते हैं। यह ध्यान देने योग्य बात है कि इन उपयोगी यन्त्रों को आपने पटेंट नहीं कराया। इन्हें आपने मनुष्य मात्र के अर्पण कर दिया, जिसका जी चाहे इनसे लाभ उठावे। आजकल जहाजों पर जो कुतुबनुमा काम में लाया जाता है वह भी आप ही का आविष्कृत है। समुद्र में जहाज का ठीक स्थान बताने वाली, सम्नर नाम के साहब की निकाली हुई, तरकीब को आपने अपने बुद्धि बल से अधिक सरल कर दिया। आपकी निकाली हुई सबसे बढ़ कर उपयोगी कल, 'नादकारीयन्त्र' है। इसके द्वारा एक तेज चलने वाला जहाज पानी में ४०० हाथ की गहराई तक गर्जन कर सकता है। ऐसे ही जहाज वालों तथा अन्य लोगों के उपयोगी न मालूम कितने यन्त्र आपने ईजाद किये हैं।

इन्होंने ज्वालामुखी पहाड़ों के स्फोट और भूकम्प का एक नया कारण ढूँढ़ निकाला। आप ने यह सिद्ध किया कि पृथ्वी के पेट में अब तक आग भरी हुई है। जो चीजें उसके भीतर हैं, तरल अवस्था में हैं और जल रही हैं। पृथ्वी का ऊपरी भाग ठंडा है। उसी के नीचे से कभी कभी बड़े-बड़े पर्वतप्राय कगार फट-फटकर पृथ्वी के पेट के भीतर जो अग्निमय तरल समुद्र है उसमें गिरते हैं। तब वह तरल सागर ऊँचा उठकर बाहर निकलने का मार्ग ढूँढ़ने लगता है। तभी ज्वालामुखी पर्वतों का स्फोट होता है। ऐसे पर्वतों के गह्वर ठेठ पृथ्वी के पेट तक चले गये हैं। उन्हीं के रास्ते भीतर गली हुई तरल ज्वालामयी चीजे ऊपर उड़ उड़ कर आती हैं। भूकम्प का भी यही कारण आप ने बतलाया। जब बड़े-बड़े कगार फट करके भीतर अग्निगर्भ समुद्र में गिरते हैं तब बड़े ही भीषण हिल्लोल उठते हैं और उनके आघात से पृथ्वी का पृष्ठ-भाग कँप उठता है। पहले आग्नेय पर्वतों के स्फोट बहुत होते थे। अब कम हो गये हैं। क्योंकि पृथ्वी का उदर धीरे-धीरे शीतल होता जाता है। किसी समय वह बिलकुल शीतल हो जायगा। तब आग्नेय गिर-वर्ग का [illegible] भी एक दम बंद हो जायगा। पर भूकम्प शायद तब [illegible] होते रहें। क्योंकि पृथ्वी का भीतरी भाग सिकुड़ता [illegible] है। इससे उसमें बड़े-बड़े गर्त हो जाना संभव है। [illegible] उसमें आस पास के कगार कट कट कर गिरेंगे तो [illegible] ही पृथ्वी को धक्का लगेगा और कम्प उत्पन्न होगा।

बहुत दिनों हुए इन्होंने एक ऐसा यंत्र बनाया [illegible] जिससे समुद्र की घटती-बढ़ती की सूचना हो जाती [illegible] उसमें कुछ दोष थे। अमेरिका वालों ने उन्हें दूर [illegible] यंत्र को अब बहुत सुधार दिया है। अब उससे आगे [illegible] ज्वार-भाटे का सही-सही हाल मालूम हो जाता है [illegible] निर्भ्रान्त बतला देता है कि समुद्र अब और कितना [illegible] चढ़ेगा। इस पूर्व-सूचना से अधिक बाढ़ से होने [illegible] हानि से बचने का यत्न पहले ही से लोग कर सकते हैं।

लेख और ग्रंथ

लार्ड केलविन के समस्त लेख और पुस्तकें सात जि[illegible] में हैं। इसके सिवा प्राकृतिक विज्ञान शास्त्र पर एक [illegible] सी पुस्तक आप ने अध्यापक "टेंट" के साथ मिल कर लि[illegible] है। वह इसमें शामिल नहीं है। इनमें से एक [illegible] "गुरुत्वाकर्षण और विद्युच्छास्त्र" पर है। "गणित [illegible] प्राकृतिक विज्ञान" पर उन्होंने जितने लेख लिखे हैं [illegible] सब तीन जिल्दों में पूरे हुए हैं। बाकी तीन जिल्दों [illegible] उनके प्रसिद्ध व्याख्यान और वक्तृतायें हैं।

उपसंहार

गत वर्ष की १७वीं दिसम्बर को आप इस अ[illegible] संसार को छोड़ कर परलोक सिधारे। उस वक्त आप[illegible] उम्र ८४ वर्ष की थी। पर मरते समय तक आपके [illegible] हवास सब दुरुस्त रहे। आपका शव 'वेस्टमिनिस्टर [illegible] नामक कबरस्तान में महापण्डित न्यूटन के पास ही [illegible] किया गया। उस समय वहाँ पर योरप के बड़े-बड़े वि[illegible] विशारद, राज प्रतिनिधि, लार्ड मेयर, और प्रायः [illegible] विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधि उपस्थित थे। महा[illegible] सप्तम एडवर्ड और प्रिंस आव् वेल्स ने भी अपने, अपने [illegible] निधि वहाँ पर भेजे थे।

आपके दो विवाह होने पर भी कोई सन्तान न [illegible] इससे आपकी कुल जायदाद, जो करीब डेढ़ करोड़ [illegible] के है, वसीयतनामे के अनुसार आपकी स्त्री को मि[illegible] इनमें से पचहत्तर हजार रुपये आप ग्लासगो विश्ववि[illegible] को दे गये हैं।

इसमें शक नहीं कि आपकी मृत्यु से विज्ञान के [illegible] आकाश का एक चमकता हुआ तारा टूट गया। [illegible] मनुष्य दुनिया में बहुत कम जन्म लेते हैं जो अपने ज्ञान[illegible] से केवल स्वदेश ही को नहीं किन्तु सारे संसार को [illegible] पहुँचाते हैं। इस दृष्टि से लार्ड केलविन की मृत्यु से [illegible] इंगलण्ड ही को नहीं किन्तु सारे संसार को हानि पहुँ[illegible] है। इसमें कुछ भी संदेह नहीं।

प्रकाशक बी० एन० माथुर, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

उपन्यास

…—श्री बंकिमचन्द्र चटर्जी २·००
…कुण्डला—श्री बंकिमचन्द्र चटर्जी १·५०
…मठ—श्री बंकिमचन्द्र चटर्जी १·५०
…—श्री बंकिमचन्द्र चटर्जी १·००
…का बिल—श्री बंकिमचन्द्र चटर्जी १·५०
…—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ४·००
…—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर २·००
…अध्याय—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर १·५०
…-रहस्य—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर २·००
…—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ०·३१
…—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी ६·००
…—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी ३·५०
…समाज—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी २·००
…—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी २·५०
…—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी २·००
…—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी १·५०
…—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी १·५०
…—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी १·३१
…की बेटी—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी १·५०
…—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी ०·७५
…का बिल—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी ०·७५
…—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी १·००
…—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी ०·६२
…—श्री रमेशचन्द्र दत्त २·७५
…जीवन-प्रभात—श्री रमेशचन्द्र दत्त २·००
…जीवन-सन्ध्या—श्री रमेशचन्द्र दत्त २·००
…—श्री रमेशचन्द्र दत्त १·५०
…—श्री रमेशचन्द्र दत्त १·२५
…पथिक—श्री चारुचन्द्र …ोपाध्याय २·७५
…सलाम—डॉ० व्रजेश्वर वर्मा ४·५०
…—डॉ० व्रजेश्वर वर्मा २·००
…—स्वर्गीय चन्द्रभूषण वैश्य २·५०
…—स्वर्गीय चन्द्रभूषण वैश्य १·२५

अपना-पराया—देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' २·५०
उड़ते पत्ते—पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' २·५०
शीलादेवी—श्री नलिनीरंजन चौधरी २·७५
संगति—श्री गोपालचन्द्र शास्त्री १·५०
युद्ध और शान्ति—महर्षि टालस्टाय ५·००
अभागिनी अन्ना भाग १— २·२५
भाग २— २·००
लक्ष्मी—श्री रामनरेश त्रिपाठी १·००
ब्रजनाथ का विवाह—श्री नगेन्द्रनाथ गुप्त २·२५
नवीन संन्यासी—श्री प्रभातकुमार मुकर्जी ४·७५
सत्याग्रही—श्री उपेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय १·५०
प्यारा भारत—प्रोफेसर प्यारेलाल ४·५०
वंचिता—पं० उमेशचन्द्र मिश्र ३·५०
निष्कलंकिनी—श्री महावीरप्रसाद गहमरी ०·६२
बलिदान-मन्दिर—पं० गौरीशंकर मिश्र २·००
अग्नि—श्री 'वनफूल' १·५०
दिव्यचक्षु—श्री र० व० देसाई ३·५०
नवदुर्गा—श्री ठाकुरदत्त मिश्र १·२५
शनि की दिशा—श्रीमती कांचनमाला देवी २·००
कादम्बरी—श्री गदाधरसिंह ०·७५
रामलाल—श्री मन्नन द्विवेदी १·७५
अन्न का आविष्कार—यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक' २·२५
संकट—श्री हरिदत्त दूबे २·५०
ठाकुरद्वारा—श्री हरिदत्त दूबे ३·००
प्रान्तिक—ताराशंकर वन्द्योपाध्याय—अनुवादक ठाकुरदत्त मिश्र ३·००
पुनर्जन्म—श्री हरिदत्त दूबे ३·००
अनजानी राहें—कुमारी कंचनलता सब्बरवाल ३·००
अरब के बद्दू—योगेन्द्र नाथ गुप्त २·७५
महीम डकैत—योगेन्द्र नाथ गुप्त ३·००
अवृश्य शत्रु—ले० डा० नवलबिहारी मिश्र मूल्य १·००

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

दीवारी नकशे

मूल्य प्रत्येक ९) रुपये

(१) भारतवर्ष (३) एशिया

(२) उत्तर प्रदेश (४) भू-मण्डल

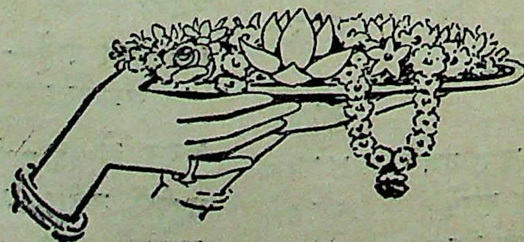
जीव-विज्ञान के रंगीन चार्ट

निर्माता—आर० डी० विद्यार्थी, एम० एस्-सी०

१५ चार्ट हैं। ये सभी तीन आकर्षक रंगों में छपे हैं। प्रत्येक चार्ट के पीछे महीन कपड़ा लगा है, जिससे ये सभी काफी टिकाऊ हैं। टाँगने की सुविधा के लिए दोनों सिरों पर लकड़ी के रोलर लगे हैं। निम्नलिखित चार्ट तैयार हैं:—

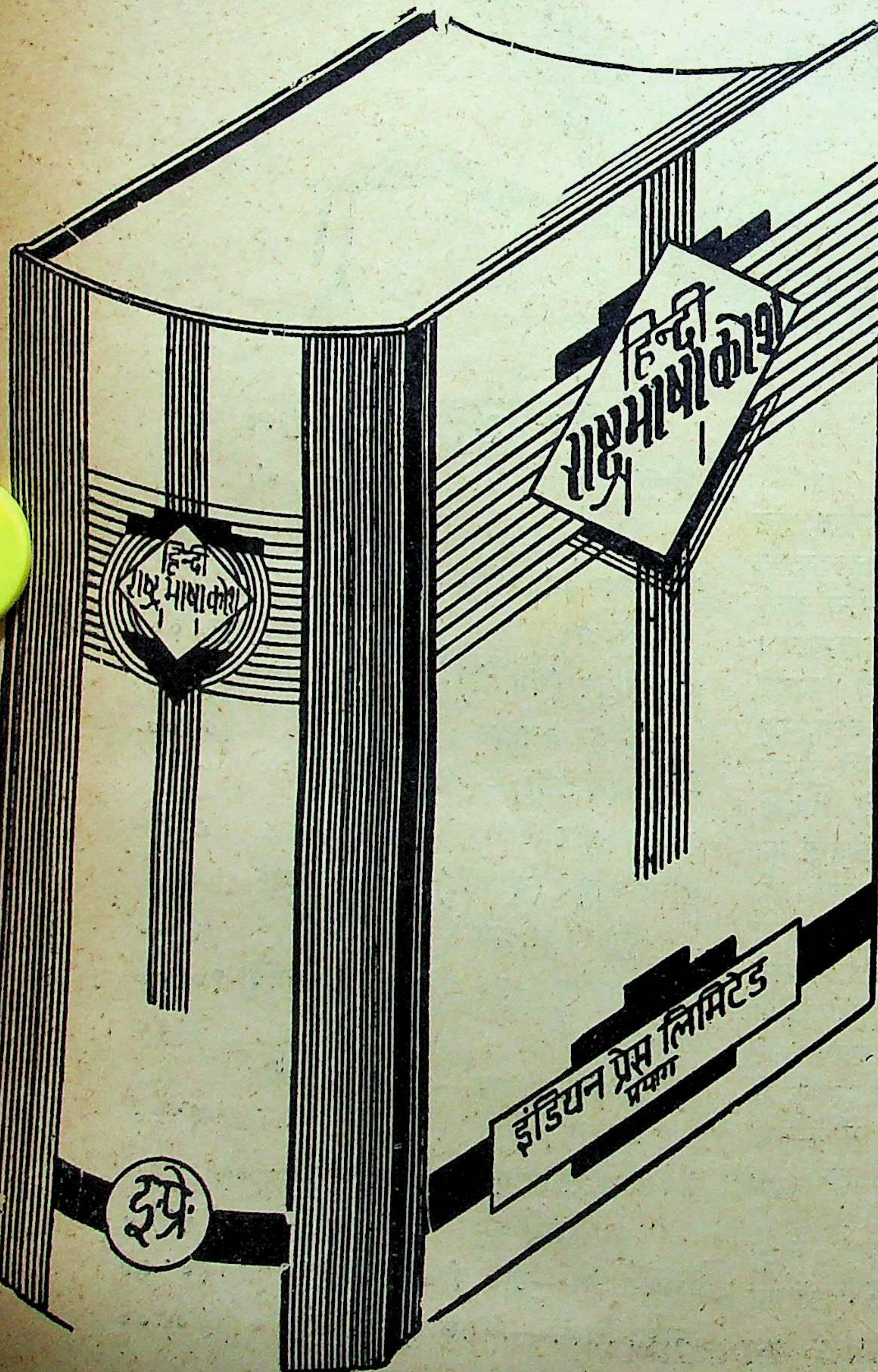
(१) मलेरियाणु का जीवन-चक्र	(२७×४० इंच)	मूल्य ६) रु०
(२) हाइड्रा भोजन प्राशन तथा प्रचलन (१)	,,	,,
(३) ,, रचना (२)	,,	,,
(४) ,, प्रजनन (३)	,,	,,
(५) आर्टीरियल संस्थान	,,	,,
(६) वेनस संस्थान	,,	,,
(७) चूलोथ्रिक्स का जीवन-चक्र	(४०×५४ इंच)	८) रु०
(८) स्पायरोगायरा का जीवन-चक्र	,,	,,
(९) कम्पोजिटी कुल	,,	,,
(१०) पैपीलिओनेटी कुल (मटर-कुल)	,,	,,
(११) भिंडी कुल (Malvaceae)	,,	,,
(१२) केंचुए का रुधिर-संस्थान	,,	,,
(१३) फर्न का जीवन-चक्र	,,	,,
(१४) वाकेरिया का जीवन-चक्र	,,	,,

ये सभी चार्ट माध्यमिक कक्षाओं के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं और हमें आशा है कि जीव-विज्ञान के सभी अध्यापक इन्हें अपने विद्यार्थियों के लिए खरीदेंगे।



इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हिन्दी राष्ट्रभाषा कोश



भारी कमी की पू

- प्राचीन साहित्य
- नवीन साहित्य
- गद्य-पद्य
- कहावतें-मुहाविरे
- संविधान-शब्दावली

सभी एक कोश में

भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ॰ राजे
नई दिल्ली–'हिन्दी राष्ट्रभा
को तैयार कर आपने राष्ट्र
जो अमूल्य सेवा की है, इस
धन्यवाद स्वीकार कीजिए।

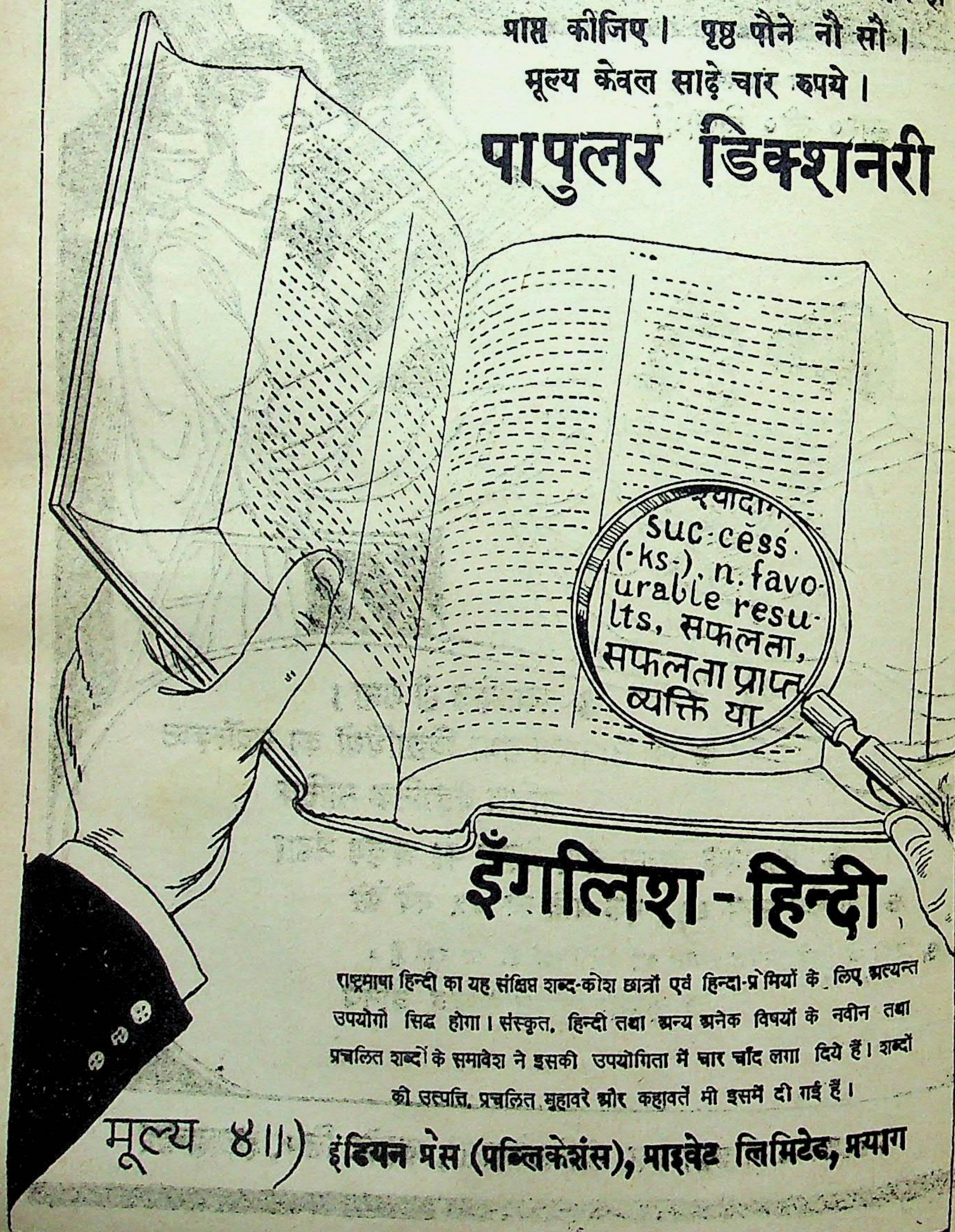
पृष्ठ १५८४

शब्द-संख्या लगभग ५०,०००

छात्रों और विद्वानों विद्यालयों और कार्याल सभी के लिए समान से उपयोगी !!!

मूल्य चौदह रुपए

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग



कीमत में बेहद कमी !
आप भी इस डिक्शनरी की एक प्रति आज ही प्राप्त कीजिए। पृष्ठ पौने नौ सौ। मूल्य केवल साढ़े चार रुपये।
पापुलर डिक्शनरी
suc·cess (-ks-), n. favourable results, सफलता, सफलता प्राप्त व्यक्ति या
इँगलिश - हिन्दी
राष्ट्रभाषा हिन्दी का यह संक्षिप्त शब्द-कोश छात्रों एवं हिन्दी-प्रेमियों के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। संस्कृत, हिन्दी तथा अन्य अनेक विषयों के नवीन तथा प्रचलित शब्दों के समावेश ने इसकी उपयोगिता में चार चाँद लगा दिये हैं। शब्दों की उत्पत्ति, प्रचलित मुहावरे और कहावतें भी इसमें दी गई हैं।
मूल्य ४॥)
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

हमारे ये नवीनतम प्रकाशन

किशोर सीरीज़

अंगरेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की सत्रह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान संबंधी किशोरोपयोगी उपन्यासों के अनुवाद डा० नवलबिहारी मिश्र के तत्त्वावधान में किये गये हैं। पुस्तकें इतनी रोचक हैं कि किशोर तथा वयस्क इन्हें पढ़कर मनोरंजन ही नहीं, अपनी ज्ञानवृद्धि भी कर सकते हैं।

समुद्र-गर्भ की यात्रा—(मूल लेखक जूले वर्न) अनु० श्रीमती जयन्तीदेवी। मूल्य १·७५

नर-भक्षकों के देश में—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० कु० शैवालिनी मिश्र, एम० एस्-सी०। मूल्य १·७५

उड़ते अतिथि—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्रीमती विनोदिनी पाण्डेय एम० ए०। मूल्य २)

रहस्यमय द्वीप—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्रीमती जयन्ती देवी। मूल्य १)

...का रहस्य—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री सन्तकुमार अवस्थी, बी० ए०, एल्-एल० बी०। मूल्य २·२५

...गर्भ की यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री प्रभातकिशोर मिश्र बी० ए०। मूल्य १·७५

...प्रतिज्ञा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री रामअवधेश त्रिपाठी। मूल्य २·२५

गुब्बारे में अफ्रीका यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० कु० शैवालिनी मिश्र एम० एस्-सी०। मूल्य २)

चंद्रलोक की यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री सूर्यकान्त शाह। मूल्य १·७५

चंद्रलोक की परिक्रमा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री केशव एस० केलकर। मूल्य २·७५

अस्सी दिन में पृथ्वी की परिक्रमा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री रामस्वरूप गुप्त एम० ए०। मूल्य २·७५

गुलीवर की यात्राएँ—(मू० ले० जोन आथन स्विफ्ट) अनु० श्री शिवाकान्त अग्निहोत्री बी० ए०, एल्-एल० बी० दो भागों में। मूल्य २·२५

मास्टर मैन रेडी—(मू० ले० कैप्टेन मैरियट) अनु० कु० कौशल श्रीवास्तव बी० ए०। मूल्य २·७५

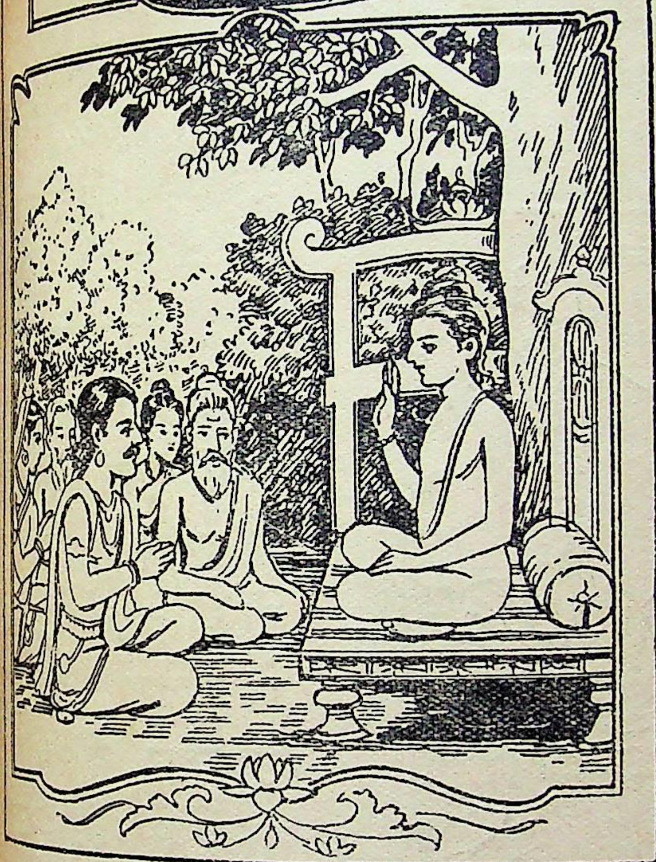
नीली झील—(मू० ले० स्टैकपोल) अनु० डा० कुमुदिनी तिवारी एम० बी० बी० एस०। मूल्य २)

स्विस परिवार राबिसन—(मू० ले० रुडाल्फ वाएस) अनु० श्री देवेन्द्रकुमार शुक्ल। मूल्य २·५०

आकाश में युद्ध—(मू० ले० एच्० जी० वेल्स) अनु० श्री सन्तप्रकाश पाण्डे। मूल्य २)

गुप्तधन—(मूल ले० राइडर हेगार्ड) अनु० श्री जे० एन० वत्स, एम० ए०। मूल्य २·७५

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद



श्रीमद्भागवत में वेदव्यासजी ने लीला-पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्र की लीलाओं का वर्णन मुख्य रूप से किया है। साथ ही अनेक राजवंशों और ऋषियों का वर्णन किया है। इसको पढ़ने से ज्ञात होगा कि उस समय भारत में असुरों ने और स्वार्थी लोगों ने कैसा उपद्रव मचा रक्खा था, जिसको दूर करके समाज की रक्षा करने के लिए श्रीकृष्ण ने अवतार लिया। इस अवतार में बालकृष्ण ने दुष्टों का दमन ऐसी युक्तियों से किया कि किसी को पता भी नहीं चला कि इन असम्भव कार्यों को कौन किस रूप में करके हमारी रक्षा कर रहा है। इसमें विविध नीतियों और अमूल्य उपदेशों का वर्णन है जिनको व्यवहार में लाकर हम जीवन को सफल कर सकते हैं। महर्षि वेदव्यास के पुत्र शुकदेवजी से केवल सात दिन में इस ग्रन्थ को सुनकर राजा परीक्षित कृतकृत्य हो गये। बढ़िया जिल्द है, चित्रों की अधिकता है। पुस्तक के दो खंड हैं। प्रत्येक खंड का मूल्य ८)।

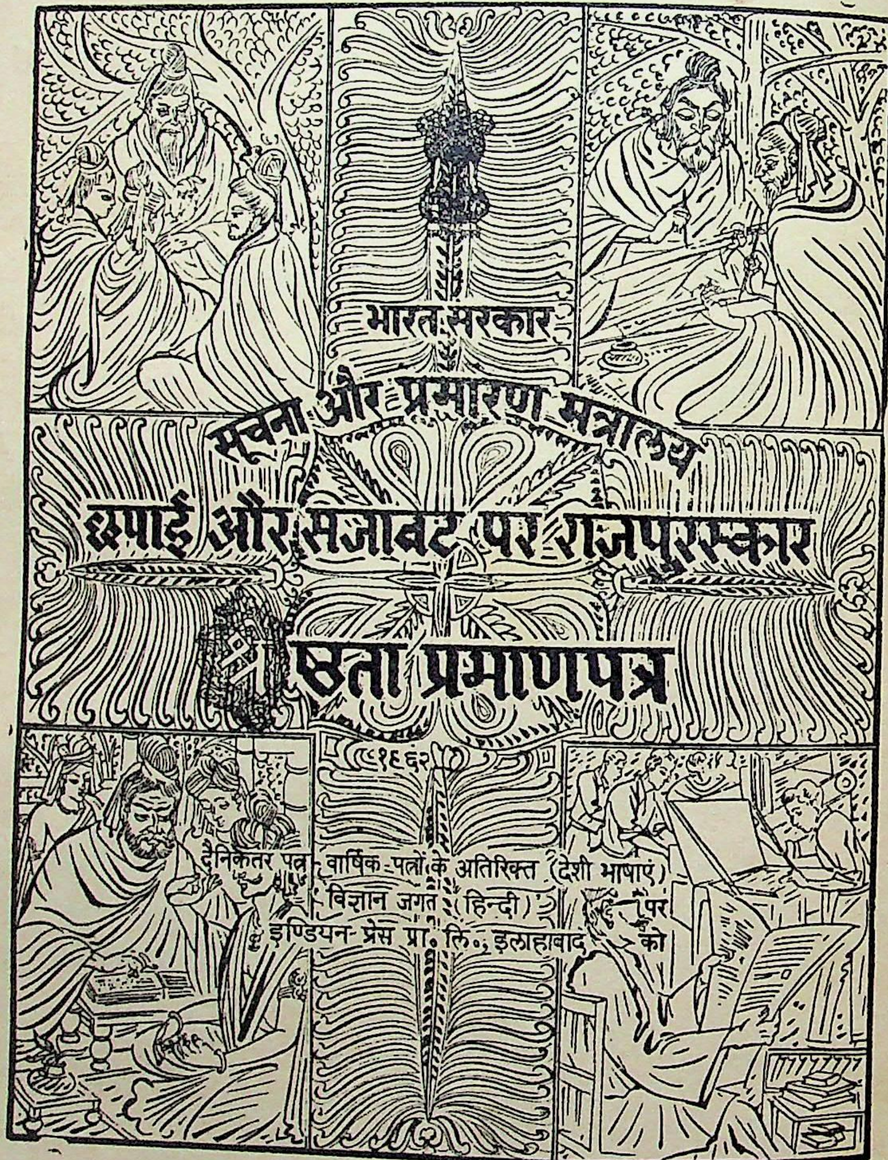

रस्वती
जून १९६४
पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी

विज्ञान-जगत्

को

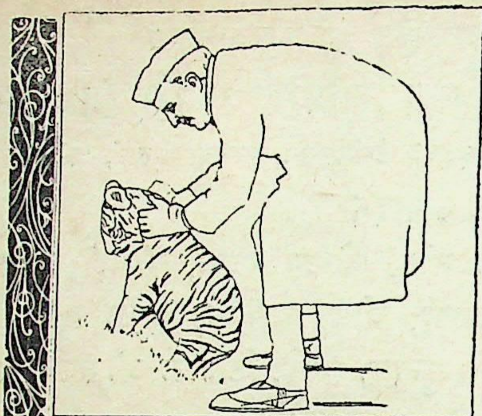
श्रेष्ठ आकल्पन तथा मुद्रण पर भारत सरकार का

प्रमाण-पत्र



- सर्व साधारण तथा विद्यार्थियों का सर्वोत्कृष्ट सचित्र वैज्ञानिक मासिक
- वैज्ञानिक चेतना तथा प्रेरणा का अक्षय भंडार
- वार्षिक मूल्य ९); एक प्रति का ७५ नये पैसे
- बिक्री के लिये प्रत्येक स्थान पर एजेन्सियाँ दी जा रही हैं।
- कृपया तुरन्त ग्राहक बनिये तथा विज्ञापन देकर लाभ उठाइए।

प्रकाशक : इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, इलाहाबाद



विश्व राजनीति के कर्णधार
पण्डित जवाहरलाल नेहरू
के
जीवन-अवसान पर
समस्त
हिन्दी संसार के लिए पठनीय

मानवता का प्रहरी

ले० पी० डी० टंडन पत्रकार

सुप्रसिद्ध पत्रकार श्री पी० डी० टंडन की नेहरू साहित्य को यह अनुपम भेंट है। इन पृष्ठों में आपको नेता नेहरू की नहीं इंसान नेहरू की दिलचस्प झाँकियाँ देखने को मिलेंगी। ये नेहरूजी के व्यक्तिगत जीवन की वे झलकें हैं जिनसे आप अब तक अनजान हैं। पुस्तक उबा देनेवाली गाथाओं का पिटारा नहीं बल्कि छोटी-छोटी कहानियों का खुशनुमा गुलदस्ता है। पंडितजी के चित्रों का इसमें ऐसा खजाना है जो प्रायः अब तक प्रकाश में आया ही नहीं। पुस्तक ज्ञानवर्धक होने के साथ-साथ सरल और बड़ी ही मोहक है। हमारे देश की तमाम पत्र-पत्रिकाओं ने नारा लगाया है कि यह पुस्तक प्रत्येक पढ़े-लिखे व्यक्ति के पास होनी चाहिए और सब पुस्तकालयों, स्कूलों और निजी संग्रहों में इसे उच्च स्थान पाना चाहिए।

छपाई, सफाई और आवरण पृष्ठ सभी उच्च कोटि के हैं। मूल्य ५·५० नये पैसे।

लेखक की अन्य कृति

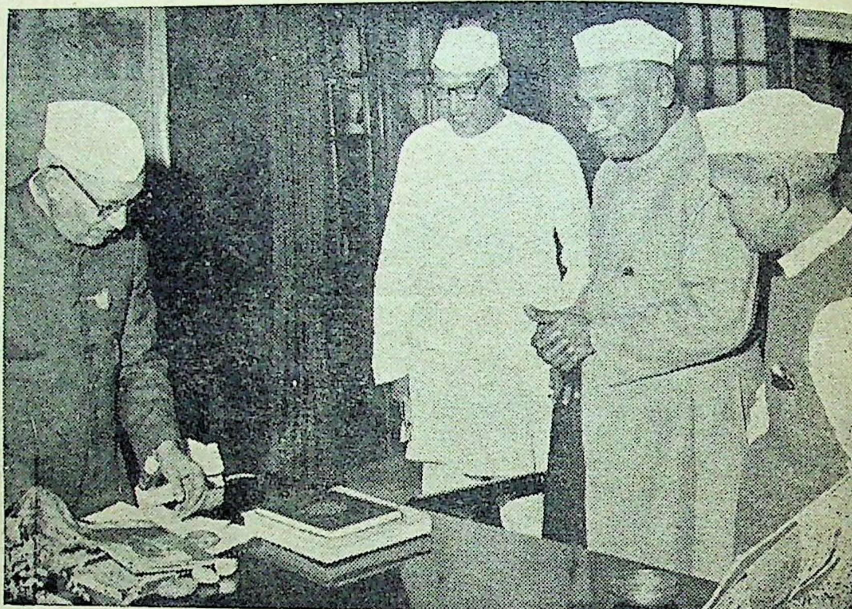
कुछ देखा कुछ सुना

टंडनजी कुशल पत्रकार ही नहीं कुशल लेखक भी हैं। उनकी पैनी लेखनी से निकले इन १२ व्यंगात्मक लेखों में आप देखेंगे कि आज सर्व उच्च विचारों के पीछे नीचता, बड़प्पन के पर्दे में ओछापन और बुद्धिमत्ता की ओट में मूर्खता के कैसे दर्शन होते हैं। हास्य एवं व्यंग्य का सहारा लेकर समाज का जो विश्लेषण लेखक ने किया है वह हिन्दी साहित्य में एकदम नया प्रयोग है। यथास्थान सामयिक कार्टूनों से किताब और भी सजीव हो गई है। मूल्य १।।) या १·५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

सचित्र समाचार

नेहरू चाचा के हाथ में 'नेहरू चाचा'



- १—प्रधान मंत्री पं० जवाहरलालजी को उनके जीवन काल में कवि श्री सोहनलाल द्विवेदी ने उन्हें 'नेहरू चाचा' पुस्तक भेंट की थी। नेहरूजी इस नवीन कृति को प्रसन्नतापूर्वक गौर से देख रहे हैं।
- २—भारत के राष्ट्रपति तथा शिक्षा-मंत्री ने बच्चों की प्रिय पुस्तक 'नेहरू चाचा' की सराहना मुक्तकंठ से की है।
- ३—'नेहरू चाचा के सम्बन्ध में भारत के उपशिक्षा मंत्री ने लिखा है :—

आपने 'नेहरू चाचा' नाम से जो पुस्तक लिखी है, वह मुझे बहुत पसन्द आई है। उसे चित्रमय बनाकर तो आपने उस पर चार चाँद ही लगा दिये हैं और अब इस कारण सब बच्चे उसे और भी पसन्द करन लगे हैं। कृपया इस सफलता के लिए मेरे हार्दिक साधुवाद स्वीकार कीजिए।

मूल्य केवल दो रुपये २५ नये पैसे।

प्राप्तिस्थान—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस). प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

पिछले वर्षों की प्रतियाँ

बहुधा हमारे पास सरस्वती के कृपालु प्रेमियों द्वारा सरस्वती की पिछले वर्षों की प्रतियों की माँग आती है। अतएव हमने जनवरी १९६१ ई० से सरस्वती की पूरी फाइलें रखने की व्यवस्था की है। १९६१ से अब तक की पूरी फाइल या फुटकर अंक हम ३ रुपये प्रति अंक की दर से दे सकते हैं। जो कृपालु प्रेमी पिछली प्रतियाँ अपने संग्रहालय के लिए लेना चाहें वे हमसे कृपया मँगा लें। आर्डर के साथ पेशगी आना आवश्यक है।

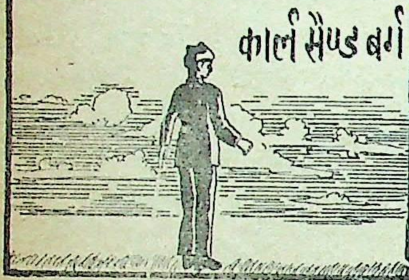
व्यवस्थापक : पत्रिका विभाग
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

ग्राहकों से निवेदन

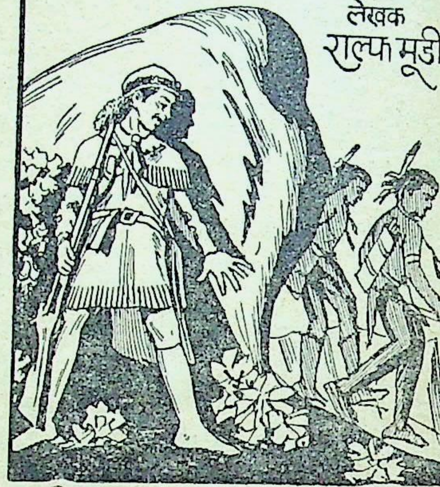
ग्राहकों से निवेदन है कि पत्र-व्यवहार के समय अपना ग्राहक संख्या, चन्दा भेजने की तिथि अवश्य लिखा करें ताकि हम उनके आदेशों का पालन अविलम्ब कर सकें।

—व्यवस्थापक पत्रिका विभाग
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।



अनु०—श्रीयुत हरवंशराय शर्मा, एम० ए०
मूल्य ३ रु० २५ नये पैसे
लोकप्रसिद्ध जनकवि कार्ल सण्डबर्ग के बाल्यकाल का हृदयग्राही वर्णन।



अनु०—तिलकराज चोपड़ा, एम० ए०
मूल्य २ रु० ७५ नये पैसे
पहाड़ी नेता किटकार्सन के वयस्क जीवन का ललित वर्णन।



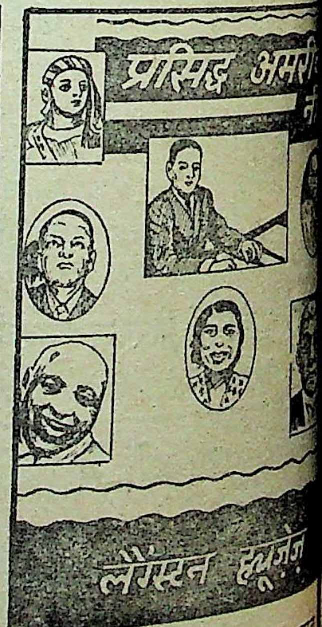
अनु०—हरवंशराय शर्मा
मूल्य २ रु० ५० नये पैसे
लेखिका के बाल्य जीवन की कहानी में उस समय के ... जिक जीवन का दिग्दर्शन



अनु०—सत्यप्रकाश त्रिपाठी एम० एस-सी०
मूल्य ३ रु० ५० नये पैसे
विख्यात वैज्ञानिकों के अनुसंधानों का सजीव चित्रण उनके जीवन-चरित्रों सहित।



अनु०—एम० पी० लखरा, एम० ए०
मूल्य ३ रु० ५० नये पैसे
अन्धों को नया मार्ग दिखानेवाली ऐन सलिवाँ और उनकी शिष्या हैलेन कैलर की कहानी।



अनु०—रामऔतार अग्रवाल
मूल्य २ रु० ७५ नये पैसे
महत्वपूर्ण अमरीकी नीग्रो लोगों की जीवन-कथाएँ।

अदृश्य शत्रु

डा० नवलबिहारी मिश्र एम० बी० बी० एस०

यह एक अद्भुत वैज्ञानिक उपन्यास है। तेहरान विश्वविद्यालय से दो विचित्र आकार की बसों ने लड़के-लड़कियों को एक दिन चुपके से भगा लिया। भारत में नन्दा देवी चोटी के नीचे हिममानव सरीखी एक ला दिखाई पड़ी। लाश की पोशाक की जेब में सुहागा रक्खा मिला। भारत और चीन में लोहे के पुल और रे की पटरियों को मुर्चे की तरह धूल बन जाते देखा गया। एक घायल आदमी भी भारत में पाया गया जिसके पा सुहागा मिला। पहले की लाश की गर्दन में त्वचा के नीचे दो वाल्व पाये गये। लाश पर पहरा देने वाले सिपा गायब कर दिये गय। ये उड़ती हुई मोटरों की विचित्र करामातें थीं। वे पकड़ी नहीं जाती थीं। रडार भी उन कुछ पता नहीं लगा पाता था। बाहरी ग्रह से धरती पर सुहागे के संग्रह के लिए हमला हो रहा था। आक्रम शत्रु अदृश्य रहने की शक्ति रखता था। वह भू-वासी आदमियों के गले में वाल्व की कलम लगाकर उन स्मृति भंग कर अपने काम करवाता था। संसार की सभी पहाड़ी चोटियों पर उसके अड्डे थे। संसार भर के राष्ट्र ने शत्रु का सामना करने के उपायों पर विचार प्रारम्भ किया। अंत में बृहस्पति ग्रह के ये अदृश्य शत्रु कि कारण पृथ्वी पर से भाग गये। इसी तरह की सनसनीदार घटनाओं से पूर्ण यह वैज्ञानिक उपन्यास सब क मनोरंजन कर सकता है। पुस्तक में कौतूहलवर्धक चित्र भी दिये गये हैं।
पृ० सं० ८३, मूल्य १) रुप

अधूरा आविष्कार

डा० नवलबिहारी मिश्र एम० बी० बी० एस०

इस संग्रह में डाक्टर मिश्र की पन्द्रह वैज्ञानिक कहानियाँ हैं। प्रत्येक कहानी क्या कला की दृष्टि से औ क्या कौतूहल बढ़ाने के दृष्टिकोण से अनुपम है। एक बार आरम्भ कर देने से बिना समाप्त किये पाठक क मन नहीं मानता। वर्तमान युग में जो वैज्ञानिक आविष्कार हुए हैं उनकी विलक्षणता कहानियों में प्रकट है ढाई सौ से अधिक पृष्ठ हैं। कलापूर्ण रंगीन आवरण है। मूल्य ४·५० न० पै०।

ले०—जेराल्ड वेन्ट **परमाणु ऊर्जा और उसके शान्तिपूर्ण उपयोग** अनु०—रामनिवास राय

परमाणवीय पदार्थों के विज्ञान और परमाणु ऊर्जा के इंजीनियरी उपयोगों से संसार के सभी लोग लाभ उठा सकेंगे। साधारण जनता के लिए इन नई बातों का जानना उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कोयले और भाप के उपयोगों को समझना। शीघ्र ही इस नई शक्ति का विस्तृत उपयोग होने लगेगा। अतएव इस नये ज्ञान के, और सामान्य शान्तिमय जीवन में इसके उपयोग के परिचय की तुरन्त आवश्यकता है, विशेषतः उन शिक्षकों के लिए जो स्कूलों में पढ़ाते हैं और जो जनता के लिए कुछ लिखते हैं। मूल्य २) रु०।

ATOMIC PROBLEMS AND HOW TO SOLVE THEM

In English   by S. S. NEHRU, Ph.D., LL.D., I.C.S. (Red.)   अँगरेजी में

परमाणु बमों के विस्फोट से, समुद्र की मछलियाँ, द्वीपों के फलफूल विस्फोट के क्षेत्रों में विषाक्त होकर किस प्रकार मानव स्वास्थ्य और जन्तुओं तथा मानव के प्रजनन पर भयंकर परिणाम डाल सकते हैं। संसार भर की हवा विषाक्त धूल कणों से भर जाती है, गंगाजल परमाणु की रेडियमधर्मी शक्ति से कैसा अद्भुत लाभकारी है। गंगा से कावेरी तक किसी दिन बेकार बचे बमों के विस्फोट द्वारा नहर खोद डालना शायद संभव हो सके आदि आदि, अनेक मनोरंजक प्रसंग इस पुस्तक में दिए गए हैं।
मूल्य २) रुपये

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

देवनागरी लिपि में

उर्दू के चार ग्रन्थ-रत्न

महाकवि 'ग़ालिब' की ग़ज़लें—टीकाकार—रामानुजलाल श्रीवास्तव। मूल्य २ रु० २५ नये पैसे। शब्दार्थ, भावार्थ, प्रासंगिक कथाएँ तथा यथास्थान हिन्दी काव्य से तुलनात्मक विवेचनाएँ।

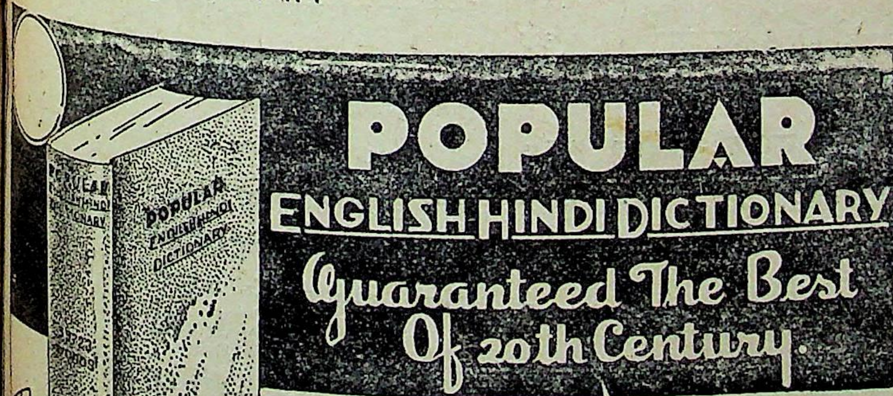
मौलाना हाली और उनका काव्य—टीकाकार—ज्वालादत्त शर्मा। मूल्य १ रु० ५० नये पैसे। शब्दार्थं, भावार्थ तथा टीका। हाली मिर्जा 'ग़ालिब' के पट्ट-शिष्य थे। इन्होंने उर्दू काव्य को नया मोड़ दिया था।

सुबह-वतन--पं० ब्रजनारायण 'चकबस्त' की अमर राष्ट्रीय कविताएँ। सम्पादक--ब्रजकृष्ण गुर्टू। मूल्य २ रु० ७५ नये पैसे। शब्दार्थ सहित यह ग्रन्थ राष्ट्रीय कविताओं का अनुपम संग्रह है।

महाकवि अकबर--संग्रहकर्ता—रघुराजकिशोर 'वतन'। मूल्य १ रु० २५ नये पैसे। शब्दार्थ तथा टीका सहित। 'अकबर' इलाहाबादी उर्दू-काव्य में हास्यरस के जनक हैं। चारों पुस्तकें अपनी-अपनी शैली में अनूठी हैं।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हिन्दी, अंगरेजी की अगणित डिक्शनरियों के आधार पर निर्मित इस डिक्शनरी की प्रामाणिकता और लोकप्रियता का यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि इसके अनेक संस्करण हाथोंहाथ बिक चुके हैं। इस डिक्शनरी में अंगरेजी शब्दों के शब्दार्थ अंगरेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में दिये गये हैं। इस कारण यह डिक्शनरी न केवल अंगरेजी से अंगरेजी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए, प्रत्युत अंगरेजी से हिन्दी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए भी बड़ी उपयोगी है। छात्रों के लिए इस डिक्शनरी की उपयोगिता अपरिहार्य है। प्रायः सभी उपयोगी शब्द और मुहाविरे इसमें संकलित किये गये हैं। पृष्ठ पौने नौ सौ।



पापुलर इंग्लिश-हिन्दी डिक्शनरी

सजिल्द प्रति का मूल्य ४·५० नये पैसे।

प्रकाशक—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

विषय-सूची

...हाईस्कूल में हुई, किन्तु हाईस्कूल कक्षा में पहुँचने पहिले ही वे १९२१ के प्रथम आन्दोलन में स्कूल ...कर जेल चले गये। जेल से लौटने पर वे काशी ...पीठ में भर्ती हो गये, जिसे हाल ही में बाबू शिव-...जी गुप्त ने राष्ट्रीय संस्था के रूप में स्थापित किया और जिसका उद्‌घाटन स्वयं महात्माजी ने किया था। ...के आचार्य स्वर्गीय श्री नरेन्द्रदेवजी थे और अध्यापकों ...आचार्य कृपलानी और डा० सम्पूर्णानन्दजी के समान ...व्यक्ति थे। विद्यापीठ में स्नातक (बी० ए०) की ...को 'शास्त्री' कहा जाता है। उन्होंने वहाँसे 'शास्त्री' ...ग्रहण की। फिर लाला लाजपतराय द्वारा स्थापित ...सेवक-मंडल (सर्वेन्ट्स आफ पीपुल सोसाइटी) के ...बनकर उन्होंने अपना सारा जीवन देश की सेवा ...समर्पण कर दिया। वहाँ वे उसके आजीवन अध्यक्ष ...पुरुषोत्तमदास टंडन के निकट सम्पर्क में आये और ...के दाहिने हाथ हो गये। राजनीति में वे सदैव सक्रिय ...लेते रहे। स्वतंत्रता आन्दोलन में सात-आठ बार ...गये। सब मिलाकर प्रायः नौ वर्ष जेल में रहे। ...१९३७ में वे उत्तर प्रदेश की विधान सभा के सदस्य चुने ...। पं० गोविन्दवल्लभ पन्त ने उन्हें तुरन्त सभासचिव ...दिया, और बाद में गृहमंत्री। कांग्रेस के महामंत्री ...बनाये जाने पर वे उत्तर प्रदेश छोड़कर दिल्ली चले गये। ...उन्होंने कांग्रेस संगठन को दृढ़ करने में अभूतपूर्व योग्यता ...दिखायी और वे प्रधान मंत्री के बहुत निकट आ गये। ...के बाद ही वे संसद के सदस्य चुने गये और रेलमंत्री ...बना दिये गये। बाद में वे गृहमंत्री बनाये गये। काम-...राज योजना के अन्तर्गत उन्होंने अपने पद से त्यागपत्र दे ...किन्तु प्रधान मंत्री जब भुवनेश्वर में अस्वस्थ हुए तब ...उन्होंने शास्त्रीजी को फिर से बुलाकर अपनी सहायता ...के लिए मंत्रिमंडल में ले लिया।

शास्त्रीजी स्वभाव से गंभीर, व्यवहार में अत्यंत ...और मृदुल हैं। उनका जीवन-दर्शन समन्वयवादी ...। उन्होंने कितनी ही बार इस दृष्टिकोण के द्वारा ...परिस्थितियों को सुलझाने में सफलता प्राप्त की है। ...नेहरूजी के जितने निकट थे, तथा उनके विचारों और ...नीतियों को जितना जानते और समझते हैं, उतना शायद ...और कोई जानता और समझता हो। उनका चुनाव ...इस बात का आश्वासन देता है कि भारत सरकार नेहरूजी ...की नीतियों पर दृढ़ रहेगी।

जिस शोभनीय ढंग से शास्त्रीजी का सर्वसम्मत चुनाव ...हुआ है उससे कांग्रेस की प्रतिष्ठा बढ़ी है तथा जनता का ...विश्वास उसमें पुनःप्रतिष्ठित हुआ है। इससे यह भी प्रमाणित ...हो गया है कि कांग्रेस के वरिष्ठ नेता संकट-काल में क्षुद्र ...स्वार्थों से ऊपर उठकर देश के लिए मिलकर काम कर ...सकते हैं। शासन के स्थायित्व के लिए यह बहुत बड़ा ...लक्षण है।

हम शास्त्रीजी को हार्दिक बधाई देते हैं। किन्तु हम जानते हैं कि इस समय शास्त्रीजी के लिए प्रधान मंत्रित्व काँटों की सेज के समान है। आज पाकिस्तान और चीन का संकट हमारे सिर पर मँडरा रहा है। कश्मीर की समस्या ने जटिल रूप धारण कर लिया है। नागालैंड का विद्रोह नासूर हो रहा है। दक्षिण-पूर्वी एशिया में युद्ध के बादल घिर रहे हैं और भारत को उस क्षेत्र में शान्ति बनाये रखने में प्रयत्न करना है। देश में मँहगी बुरी तरह से बढ़ रही है। भ्रष्टाचार के घुन से प्रशासन की रक्षा करनी है। देश को सैनिक दृष्टि से शक्तिशाली बनाना है। योजनाओं में गति लानी है, तथा देश की समृद्धि बढ़ानी है जिससे शिक्षितों और अशिक्षितों की बेकारी दूर हो। ऐसी अनेक जटिल और परमावश्यक समस्याएँ मुँह बाये खड़ी हैं। शास्त्रीजी को इस समय देशवासियों की सहानुभूति और हार्दिक सहयोग की आवश्यकता है। हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि उन्हें ये प्राप्त हों, और वे सफल हों। उनकी सफलता ही से देश का कल्याण और देशवासियों की भलाई है।

स्वर्गीय योगेन्द्रनाथ गुप्त—बंगाल के प्रख्यात साहित्यिक, बँगला विश्वज्ञान-कोष 'शिशु भारती' के सम्पादक श्री योगेन्द्रनाथ गुप्त का देहान्त, ८२ वर्ष की अवस्था में, कलकत्ता में रविवार ३१ मई १९६४ को प्रातःकाल हो गया।

प्रवीणतम तथा जनप्रिय इस साहित्यिक के देहान्त का समाचार पाते ही कलकत्ते के प्रमुख साहित्यिक और अनेक साहित्यिक मित्र, चारुचन्द्र अवेन्यू स्थित निवास-स्थान में श्रद्धांजलि अर्पण करने को एकत्र हो गये। अन्त्येष्टि क्रिया के समय अनेक लेखकों, पाठकों तथा गुण-मुग्ध देशवासियों ने (केवड़ानला) श्मशान में जाकर इस महान् लेखक के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की।

आजकल के पाकिस्तान के अन्तर्गत ढाका जिले के विक्रमपुर गाँव के आप निवासी थे। इसी विक्रमपुर संबंधी, आपके द्वारा लिखित, इतिहास ने आपको सर्वप्रथम साहित्य-जगत् में प्रतिष्ठित किया। यह ऐतिहासिक तथ्यपूर्ण सुलिखित ग्रंथ विद्वत्समाज में विशेष आदृत हुआ; परन्तु गप्तजी का महान् कार्य था विख्यात 'शिशु-भारती' का प्रणयन, जिसको इलाहाबाद के इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन) प्राइवेट लिमिटेड प्रकाशनगृह ने बड़ी धूम से प्रकाशित किया था। यह विश्वज्ञान-कोष १० खण्डों में प्रकाशित हुआ था। इसके बाद इन खण्डों का एक परिशिष्टांक (विषय-सूची) प्रकाशित हुआ। गुप्त-जी ने शिशु-भारती के संयोजक खण्ड में आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की नई-नई बातों को समन्वित कर नया ग्रन्थ प्रस्तुत किया जो इस समय मुद्रित हो रहा है और शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

इनकी आजीवन साहित्य-सेवा के पुरस्कार-स्वरूप पश्चिम बंगाल की सरकार ने इन्हें साहित्यिक पेंशन दी थी।

एक जवाहर था !

श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव

जीना सार्थक रहा तुम्हारा।
रो-रोकर, सब सोच रहे हैं,—अब होगा क्या हाल हमारा ?

अथ की इति होती ही है, पर तुमको नहीं बुढ़ापा आया।
रोग, शोक के सम्मुख तुमने, कभी नहीं निज माथ झुकाया।
कल ही हरे-भरे पाहुन के, 'सहसधार' ने पाँव पखारे।
हे विमान-यात्रा के प्रेमी ! किस विमान पर आज सिधारे ?
पूछ रही मानवता, व्याकुल;—कहाँ जवाहर ?—जग का प्यारा !

गान्धी जी ने सौंपी तुमको, दुखिया भारत की सेवकाई।
सकल विश्व में कीर्ति छा गई,—ऐसी तुम ने नीति निभाई !
दुख सह, बन्धन-मुक्त हुए तुम, औरों को भी मुक्त कराया।
कितने देशों ने तुमसे, अपने संकट में सम्बल पाया।
अब भी हैं विपत्तियाँ हम पर, कह दो, किसका गहें सहारा ?

तुम तो पलक-झपकते पहुँचे वहाँ, जहाँ है राज्य शान्ति का।
दुनिया में अब भी फैला है, सभी ओर, साम्राज्य भ्रान्ति का।
कल जाना था तुम्हें समुन्दर-पार, गुत्थियों को सुलझाने।
आज अचानक चले गए तुम, रुला सभी—जाने-अनजाने।
क्या हमने ही तुमको अपने सच्चे मन से नहीं पुकारा ?

आज विश्व में सन्नाटा है, आज अँधेरा नभ में छाया।
आज चर-अचर सभी रो रहे, आज उदधि का उर अकुलाया।
एक जवाहर था ! जिसके जौहर से सभी ज्योति पाते थे।
एक सितारा था ! जिसकी रौनक पर सभी रीझ जाते थे।
किया आज उस तेज-पुंज ने, हमसे, हा हतभाग्य ! किनारा।।
जीना है अब व्यर्थ हमारा।
जीना सार्थक रहा तुम्हारा।।

———

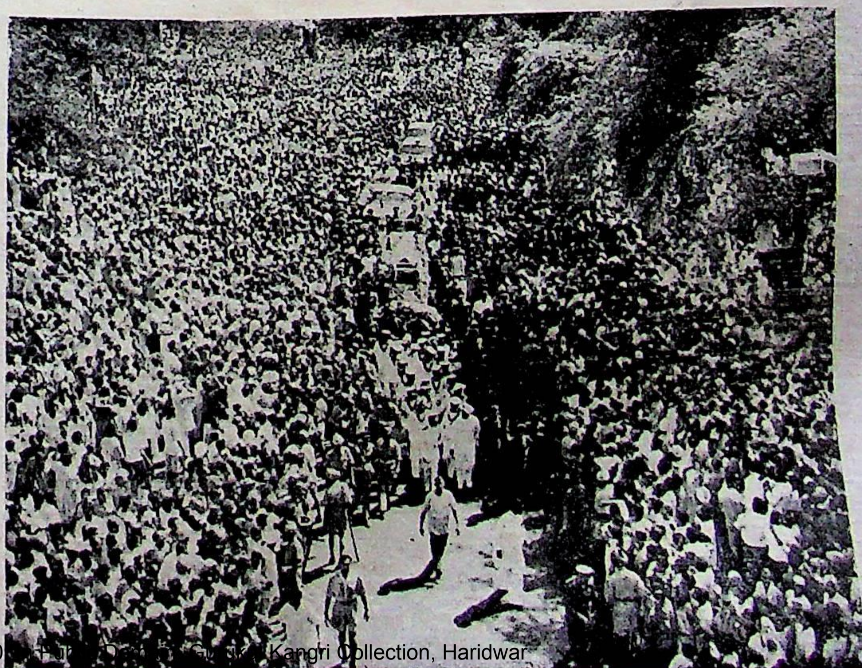


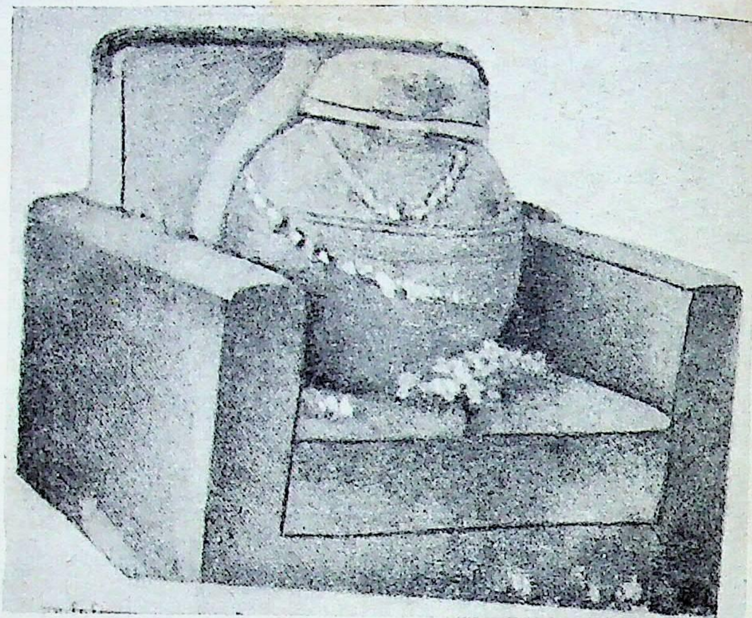
पं० जवाहरलाल नेहरू चिरनिद्रा में।



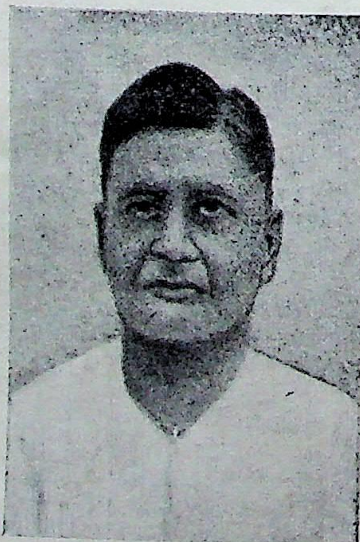
पं० जवाहरलाल नेहरू की अर्थी (तोपगाड़ी पर) उनके निवास स्थान से श्मशान-यात्रा का आरंभ कर रही है।

पं० जवाहरलाल नेहरू की श्मशान-यात्रा का दृश्य। शोकाकुल और श्रद्धालु जनता के लिए उमड़ पड़ी थी।





प्रधान मंत्री के निवासस्थान मेंउनके प्रिय वृक्ष के नीचे सोफे पर अस्थिकलश सम्मानपूर्वक रक्खा गया।



श्री योगेन्द्रनाथ गुप्त

पंडित जवाहरलाल नेहरू

उनके जीवन और कार्यकलाप की मोटी रूपरेखा

...व्यक्तित्व के धनी पंडित जवाहरलाल नेहरू का जन्म १४ नवंबर सन् १८८९ में प्रयाग में हुआ था। ...भारत के सांस्कृतिक नवजागरण के राष्ट्रीय आन्दोलन ...संस्कृति का संक्रमण काल था। उन्हें पाश्चात्य ढंग की ...घर पर दी गयी और बाद में वे इंग्लैण्ड में हैरो के पब्लिक स्कूल में विद्यार्थी के रूप में प्रविष्ट हुए। ...की शिक्षा समाप्त करके केम्ब्रिज विश्वविद्यालय से ...विज्ञान से स्नातक परीक्षा पास की और फिर ...का प्रशिक्षण प्राप्त किया। इंग्लैण्ड के प्रवास में ...रुचि भारतीय राजनीति की ओर बढ़ी। इंग्लैण्ड ...और वातावरण की नरमी भी उन्हें भारत के ...का प्रशंसक बनाने से न रोक सकी।

जवाहरलालजी विद्यार्थी के रूप में सात वर्ष विदेश ...कर यहाँ वापस लौटे और अपने पिता पं० मोती-लाल नेहरू के प्रौढ़ निर्देशन में उन्होंने इलाहाबाद हाईकोर्ट ...वकालत शुरू कर दी। वकालत तो वे काफी दिनों तक ...रहे पर उस धन्धे का 'मशीनी तीखापन' उन्हें ...न कर सका। श्री नेहरू जिस सामाजिक वर्ग के ...उसके जीवन की कृत्रिमता और मन्थन की एकरसता उन्हें ...लगी और वे अपनों में बेगाने से हो गये।

...भारतीय राजनीति से उनका सम्पर्क १९१२ में शुरू ...। इस वर्ष वे कांग्रेस के बाँकीपुर (पटना) अधि-वेशन में प्रतिनिधि बनकर गये। तत्कालीन राजनीति पर ...नेता हावी थे। तिलक जेल में थे और गोखले ...। गोखले की सर्वेण्ट्स आफ इण्डिया सोसाइटी ...उनकी शान्त राजनीति ने जवाहरलाल की श्रद्धा ...की पर उनकी निष्ठा प्राप्त करने के लिए वे ...न थीं।

जवाहरलाल के जीवन में १९१६ का विशेष महत्त्व ...। इस वर्ष उनकी भेंट महात्मा गांधी से पहली बार ...। इसी वर्ष वसन्त पंचमी के दिन उनका कुमारी कमला कौल से दिल्ली में विवाह हुआ। कुछ समय बाद उनकी प्रथम सन्तान इन्दिरा प्रियदर्शिनी का जन्म हुआ। सन् १९२४ में श्रीमती कमला नेहरू ने एक बालक को भी जन्म दिया पर एक सप्ताह में ही उसकी मृत्यु हो गयी।

महात्मा गांधी से उनकी प्रथम भेंट विशेष महत्त्व-पूर्ण नहीं रही। पर धीरे-धीरे घटनाचक्र ने भारतीय राजनीति के इन दो महापुरुषों को एक-दूसरे के निकट ला दिया और इनके संयुक्त तत्त्वावधान में कांग्रेस का लक्ष्य जन-मुक्ति का आन्दोलन हो गया। अँगरेजों से जवाहर-लाल की सबसे पहली मुठभेड़ १९२० में हुई। वे अपनी रुग्ण माँ और पत्नी को मसूरी ले गये थे। वे वहाँके प्रसिद्ध अँगरेजी होटल में, जिसका नाम 'सेवाय' था, ठहरे और प्राय: १ महीने वहाँ रहे। मसूरी में उन दिनों अफ-गानिस्तान का एक प्रतिनिधि मण्डल आया हुआ था। १९१९ में अफगान युद्ध के बाद यह प्रतिनिधि मण्डल भारत सरकार से समझौता वार्ता कर रहा था। अँगरेजों को भय हुआ कि कहीं जवाहरलालजी प्रतिनिधि मण्डल के सदस्यों से मिलकर कोई षड्यन्त्र न करें। इसलिए सरकार ने उनसे यह आश्वासन देने को कहा कि वे मसूरी में प्रतिनिधि मण्डल के किसी सदस्य से नहीं मिलेंगे। यद्यपि उनका कोई इरादा उस प्रतिनिधि मंडल से मिलने का नहीं था, तथापि वे दबाव से इस प्रकार का अनुचित आश्वासन देने को तैयार न हुए। इस पर सरकार ने उन्हें २४ घंटे के भीतर देहरादून जिले को छोड़ देने का आदेश दे दिया, और उन्हें मसूरी छोड़कर इलाहाबाद आना पड़ा। इलाहाबाद आने पर संयोग से उन्हें आस-पास के गाँवों में जाकर किसानों से मिलने, जनता के निकट आने और उसकी समस्याओं को समझने का अव-सर मिला जिसने उनके राष्ट्रीय विचारों को पुष्टि प्रदान की और वे तन मन धन से मुक्ति-संघर्ष में कूद पड़े।

असहयोग आन्दोलन के आरंभ होने पर पंडितजी ने उसमें खुलकर भाग लिया और वे पहली बार जेल गये। उनके प्रथम बार जेल जाने का कारण यह था कि उन्होंने ब्रिटेन के युवराज (प्रिंस आफ वेल्स) की भारत-यात्रा पर बहिष्कार आन्दोलन में प्रमुख भाग लिया था और उनके नेतृत्व में इलाहाबाद में युवराज के बहिष्कार में पूर्ण हड़ताल रही। १९२३ में वे कांग्रेस के महामंत्री निर्वाचित हुए।

१९२६ में नेहरूजी ने इटली, स्विट्जरलैण्ड, इंग्लैण्ड, बैलजियम, जर्मनी और सोवियत रूस का दौरा किया। बेलजियम में उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में परतंत्र देशों के सम्मेलन में भाग लिया। मास्को में १९२७ में वे अक्टूबर की समाजवादी क्रान्ति की १०वीं वर्षगाँठ के समारोह में सम्मिलित हुए। १९२८ में लखनऊ में साइमन कमीशन के विरुद्ध एक जलूस का नेतृत्व करते समय पंडितजी पर पुलिस ने लाठियाँ चलाईं जिससे उन्हें काफी चोट आयी। १९२९ में उन्होंने उन अफसरों और सैनिकों के पक्ष का समर्थन किया जिन पर देश द्रोह का अभियोग लगाया गया था।

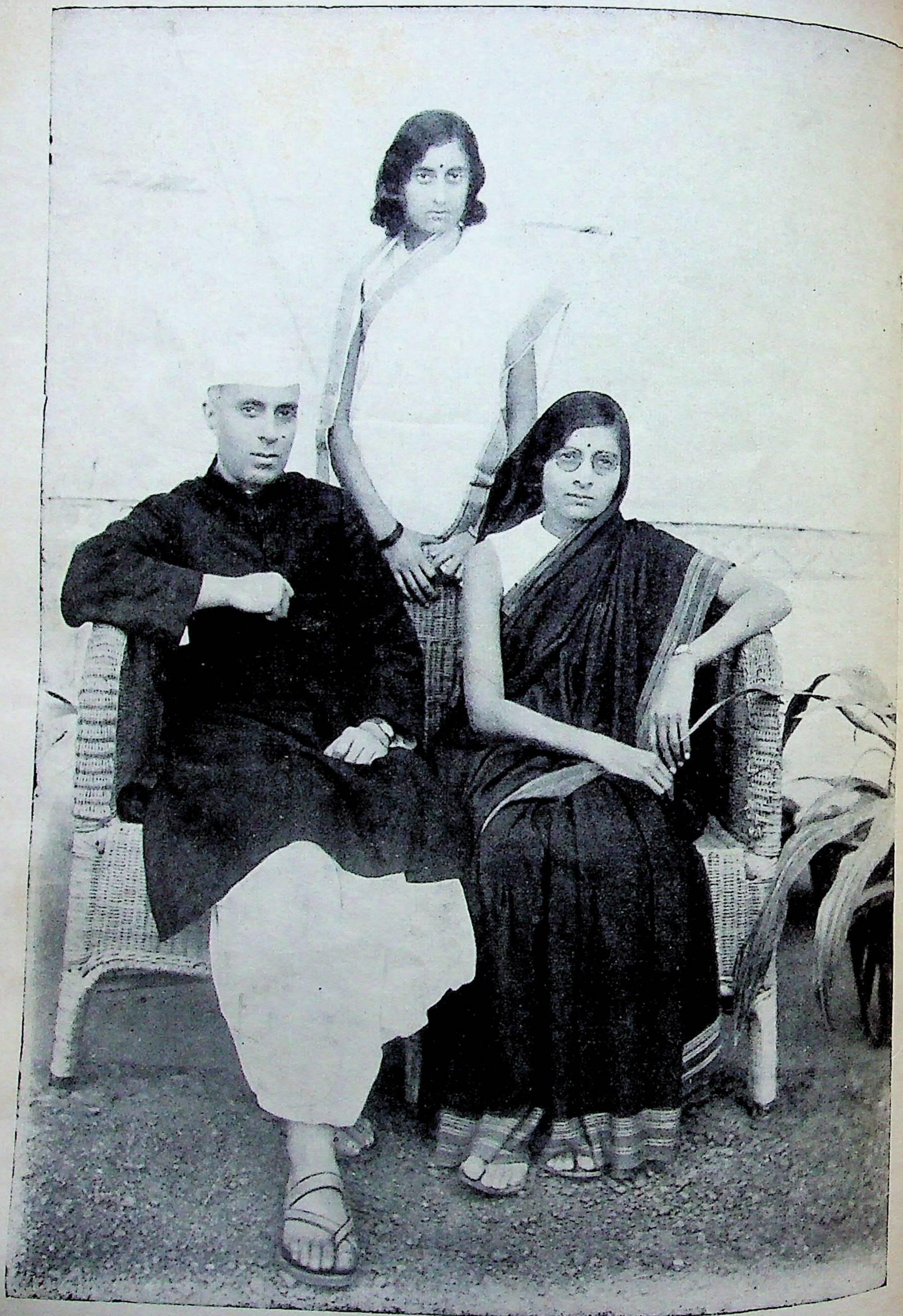
१९२८ में उनके पिता पं० मोतीलालजी नेहरू कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये थे। १९२९ में कांग्रेस ने पं० जवाहरलालजी को अपने लाहौर अधिवेशन का अध्यक्ष चुना। इसी लाहौर अधिवेशन में, उनकी अध्यक्षता में, कांग्रेस ने भारत के लिए पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव स्वीकार किया तथा रावी के तट पर भारतवासियों ने पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने की शपथ ली। इसी वर्ष वे अखिल भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस के अध्यक्ष भी निर्वाचित हुए। इसके बाद वे पुनः १९३६ और १९४६ में तथा १९५१ से १९५४ तक राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष रहे। १९५८ में इस पद पर उनकी पुत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी का निर्वाचन हुआ। इस प्रकार नेहरू परिवार की तीन पीढ़ियों ने राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्षता करने का गौरव प्राप्त किया।

१९३० में सविनय अवज्ञा आन्दोलन में भाग लेने के अभियोग पर पं० जवाहरलाल को ६ महीने का कारावास दिया गया था। अक्टूबर में वे रिहा किये गये, पर आठ दिन बाद उन्हें धारा १४४ भंग करने के अभियोग में पुनः पकड़ लिया गया। उन पर ३ अभियोग लगाये गये और ३० महीने का कारावास दण्ड दिया गया किन्तु १ वर्ष बाद उनके पिता की रुग्णता के कारण उन्हें रिहा कर दिया गया। रिहाई के १२ दिन बाद पं० मोतीलालजी नेहरू का स्वर्गवास हो गया। ६ महीने बाद वे पुनः गिरफ्तार किये गये, और उन्हें २ साल की सजा हुई; पर कुछ समय बाद उन्हें अस्थायी रूप से छोड़ दिया गया जिससे वे अपनी पत्नी से, जो उस समय बहुत बीमार थीं, मिल सकें। ११ दिन बाद पत्नी की हालत सुधरने पर उन्हें फिर जेल भेज दिया गया। पर उनकी पत्नी की तबियत पुनः बिगड़ गयी और उन्हें भुवाली सेनेटोरियम भेज दिया गया। सरकार ने पं० जवाहरलालजी को अल्मोड़ा जेल भेज दिया जिससे वे अपनी पत्नी से समय-समय पर मिल सकें। इस बीच बंबई में उनकी माँ श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू पर पक्षाघात का आक्रमण हुआ। कुछ समय बाद श्रीमती कमला नेहरू की हालत बहुत खराब हो गयी और उन्हें इलाज के लिए जर्मनी भेज दिया गया। वहाँ उनके स्वास्थ्य में कोई परिवर्तन न हुआ। उनकी बिगड़ती हालत देखकर पंडितजी की सजा रोककर उन्हें जर्मनी जाने की आज्ञा दे दी गयी। वे हवाई जहाज से वहाँ पहुँचे, किन्तु उसके कुछ ही दिनों बाद उनकी पत्नी का निधन हो गया।

द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ होने पर भारतीय राजनीति ने फिर एक करवट ली। महात्मा गांधी ने बिना जनता की राय के भारत को लड़ाई में घसीटने का विरोध किया, और जब वायसराय से उनकी समझौता-वार्ता असफल हो गयी तब उन्होंने व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन शुरू किया। इसमें सबसे पहले सत्याग्रही आचार्य विनोबा भावे और दूसरे पंडित जवाहरलालजी थे। उन्हें ४ वर्ष की सजा हुई, पर एक वर्ष बाद ही सरकार ने सब व्यक्तिगत सत्याग्रहियों को रिहा कर दिया। इसके कुछ ही समय बाद जापान ने पर्ल हार्बर पर आक्रमण कर दिया और वह खुलकर मित्र राष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध में आ गया। अँगरेजों के विरुद्ध जापान के युद्ध में आ जाने से भारत पर भी आक्रमण का खतरा उत्पन्न हो गया। इस अवसर पर गांधीजी और पं० जवाहरलालजी तथा कुछ अन्य नेताओं में अहिंसा के प्रश्न पर तीव्र मतभेद हो गया। गांधीजी के लिए अहिंसा एक जीवन-व्यवस्था थी, पर पं० जवाहरलाल उसे केवल एक राज-



महान् पिता और महान् पुत्र
पं० मोतीलालजी बैठे हुए और पं० जवाहरलालजी खड़े हुए हैं।



पं० जवाहरलाल नेहरू और उनकी पत्नी श्रीमती कमला नेहरू।
पीछे नेहरूजी की छोटी बहिन श्रीमती कृष्णा हथीसिंह खड़ी हैं।

साधन ही मानते थे। इसके अतिरिक्त पं० जवाहरलाल धुरी राष्ट्रों (जर्मनी-इटली) के विरुद्ध थे। चाहते थे कि यदि देश पर जापानी सेनाएँ आक्रमण करें तो भारतवासी उनका सामना डटकर करें।

१९४६ में कैबिनट मिशन से जवाहरलालजी ने स्वतंत्रता के सम्बन्ध में बात अवश्य की परन्तु मिशन की 'संघीय' योजना को अस्वीकार कर दिया। मिशन योजना स्वीकार होने पर देश में संविधान सभा के लिए चुनाव हुए। अगस्त में वायसराय ने जवाहरलालजी को अन्तरिम सरकार बनाने का निमंत्रण दिया। मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान बनने की आशा न देखकर 'प्रत्यक्ष कार्रवाई' शुरू कर दी जिसके फलस्वरूप पूर्वी बंगाल तथा देश के अन्य भागों में भीषण रक्तपात हुआ। मुस्लिम लीग ने अन्तरिम सरकार में शामिल होने से इनकार कर दिया, पर जवाहरलाल के समझाने पर लीग के ६ सदस्य उसमें सम्मिलित हुए। नयी कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गयीं। लीग के अध्यक्ष ने लीगी सदस्यों को संविधान सभा का बहिष्कार करने का आदेश दिया और अन्तरिम सरकार में अपने प्रतिनिधियों को आन्तरिक गड़बड़ी के लिए प्रोत्साहित किया। इधर सरकार का यह रंग-ढंग था, उधर देश में स्थान-स्थान पर हिंसात्मक और साम्प्रदायिक दंगे हो रहे थे। ब्रिटिश सरकार ने इस समस्या का समाधान ढूँढ़ने के लिए लार्ड माउंटबेटन को वायसराय बनाकर भेजा। उन्होंने देश के विभाजन के आधार पर भारत को स्वतंत्रता देने की योजना तैयार की। जवाहरलालजी ने इस योजना का तीव्र विरोध किया पर अन्त में उन्होंने और सरदार पटेल ने इसे मान लिया और १५ अगस्त १९४७ को भारत स्वतंत्र हुआ और वे स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधान मंत्री बनाये गये। इस पद पर वे आजीवन बने रहे।

राष्ट्र-निर्माता

स्वतंत्रता-प्राप्ति के तत्काल बाद जवाहरलाल के सामने देश में एकता और कुशल शासन स्थापित करने की समस्या आयी। विभाजन और लाखों की संख्या में शरणार्थियों के आने से जो समस्या पैदा हो गयी थी उसे सुलझाना था, भारत की ५०० से अधिक रियासतों को आत्मसात् करना था और देश को २०० वर्ष की दासता से उत्पन्न गरीबी और अशिक्षा से मुक्त करके अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत को अपनी प्रतिष्ठा के अनुरूप गौरवपूर्ण स्थान दिलवाना था। राष्ट्र की एकता के निर्माण में जवाहरलाल की सारी चिन्ता सरदार पटेल ने सम्हाली और आश्चर्यजनक रूप से अल्पअवधि में उन्होंने रियासतों को भारतीय संघ में मिला लिया।

नेहरू के नेतृत्व में देश के आर्थिक विकास की बहुमुखी योजनाएँ शुरू हुईं। भारत को समृद्धिशाली बनाने के लिए जो पंचवर्षीय योजनाएँ तैयार की गयीं वे जवाहरलालजी की सलाह, मार्गदर्शन और प्रेरणा का ही फल हैं। भारत में योजनाबद्ध विकास की कल्पना मुख्यतः नेहरूजी ने ही स्वाधीनता की प्राप्ति से पहले ही की थी, और उस समय कांग्रेस ने देश के भावी विकास के लिए जो कार्यक्रम बनाये उसके प्रेरक जवाहरलालजी ही थे।

स्वतन्त्र विदेश नीति

अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में गुटों से अलग रहकर जवाहरलाल ने स्वतंत्र भारत की विदेश नीति को एक निश्चित दिशा दी और तमाम विरोध और दबाव के होते हुए भी वे इस पर अडिग रहे। उन्हें पंचशील का जन्मदाता कहा जा सकता है जिसे बांडुंग सम्मेलन में स्वीकार किया गया।

एशिया और अफ्रीका के देशों की मित्रता को मजबूत बनाने में उन्होंने बड़ी रुचि दिखायी। २३ मार्च १९४७ को दिल्ली में जो एशिया सम्मेलन हुआ वह इसकी पहली ठोस अभिव्यक्ति थी। यही सम्मेलन १९५५ के बांडुंग सम्मेलन की आधारशिला बना जिसमें एशिया और अफ्रीका के देशों ने भाग लिया।

जवाहरलालजी ने बड़ी दृढ़ता और निर्भीकता से विश्वशान्ति और सब देशों की स्वतंत्रता का समर्थन किया। १९४८, १९५६ और १९६१ में उन्होंने संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा में जिस निर्भीकता और कुशलता से अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया उसकी व्यापक सराहना हुई। १९६० में उन्होंने संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा में भारतीय दल का नेतृत्व किया और एक प्रस्ताव रखकर आइजनहावर और ख्रुश्चेव से व्यक्ति-

गत सम्पर्क बनाने की अपील की। अन्य राज्याध्यक्षों के साथ उन्होंने सितम्बर १९६१ में बेलग्रेड में गुटों से अलग देशों के सम्मेलन में सक्रिय भाग लिया।

संयुक्त राष्ट्रसंघ में जवाहरलाल की बड़ी आस्था थी। वे इसे विश्वशांति का एक रचनात्मक माध्यम बनाने के लिए न केवल इच्छुक थे, वरन् प्रयत्नशील भी थे।

भारत और पाकिस्तान के तनावपूर्ण संबंधों से वे बड़े चिन्तित रहते थे और उन्हें दूर करने में अन्त तक लगे रहे।

जवाहरलालजी को कम्यूनिस्ट चीन पर पूरा विश्वास था। इसीलिए उन्होंने उसे सबसे पहले मान्यता दी और शायद इसी कारण चीन के तिब्बत हड़प लेने पर वे चुप रहे। उन्होंने उसे बांडुंग सम्मेलन में आमन्त्रित कराने की पूरी कोशिश की। १९५४ में उन्होंने श्री चाउ-एन लाई के साथ पंचशील के सिद्धान्तों पर हस्ताक्षर किये और सदा चीन के प्रति मित्रतापूर्ण भाव रखा तथा उसे राष्ट्रसंघ का सदस्य बनवाने का बराबर समर्थन करते रहे। इसलिए जब १९६२ में चीन ने भारत पर हमला किया तो उनके हृदय को अत्यधिक आघात पहुँचा।

वे अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत को महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली स्थान दिलाना चाहते थे। इसलिए वे अंतर्राष्ट्रीय मामलों में विशेष रुचि लेते थे और संसार के सभी देशों से निकट सम्पर्क रखना चाहते थे। वे विदेशी राज्यों के नेताओं को बराबर भारत निमंत्रित किया करते थे, तथा भारत के राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति का भी विदेशों में जाना ठीक समझते थे। वे स्वयं भी, इसी दृष्टि से, बहुधा विदेशों की यात्रा किया करते थे। अक्टूबर १९४९ में अमरीका के राष्ट्रपति ट्रूमैन के निमंत्रण पर नेहरूजी वहाँ गये। १३ अक्टूबर को उन्होंने संयुक्त राज्य अमरीका की कांग्रेस में भाषण किया और २४ अक्टूबर को उन्होंने कनाडा की संसद में भी भाषण किया। १९५६ और १९६१ में वे पुनः अमरीका गये। १९५५ में और फिर १९६१ में नेहरूजी सोवियत संघ गये और १९५६ ई चीन गये। १९५१ के जून में और १९५९ में नेहरू नेपाल की यात्रा की। १९५३ के मई में लंदन में महारा एलिजाबेथ की राजगद्दी के समारोह में शामिल हु १९५४ के दिसम्बर में उन्होंने मलय, इंडोनेशिया, देश और बर्मा की यात्रा की। १९५५ के जून-जुलाई नेहरूजी ने सोवियत संघ, यूगोस्लावाकिया, पोलै चेकोस्लावाकिया, आस्ट्रिया, इताली और मिस्र का दौ किया। जुलाई ८, १९५५ को उन्होंने रोम में पोप से गो के विषय में बातचीत की। इसी वर्ष दिसम्बर १३ उन्होंने सोवियत रूस के प्रधान मंत्री श्री बुल्गानिन के स शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के बारे में संयुक्त बयान निकाला १९५६ के जून-जुलाई में नेहरूजी ने आयरलैण्ड, पश्चि जर्मनी, फ्रांस, युगोस्लाविया, ग्रीस, मिस्र, सीरिया लेबनान का भ्रमण किया। जून १९५७ में नेहरूजी सीरिया, डेनमार्क, फिनलैण्ड, नार्वे और स्वीडन में मित्र बढ़ाने के लिए यात्रा की और अगले महीने वह हाल मिस्र और सूडान गये। अक्टूबर १९५७ में वह जा गये।

जुलाई १५, १९५५ को सोवियत संघ की यात्रा लौटते हुए ही नेहरूजी को भारत के राष्ट्रपति ने देश सर्वोच्च सम्मान "भारतरत्न" उनकी राष्ट्रसेवा विश्वशांति के लिए उनके अथक प्रयत्नों के सम्मान दिया।

नेहरूजी साहित्यकार भी थे और साहित्य-प्रेमी उन्हें विज्ञान, इतिहास और राजनीति में विशेष थी। वे स्वयं भी उच्चकोटि के लेखक थे।

नेहरूजी की रचनाएँ विश्वप्रसिद्ध हैं। उन "आत्मकथा", "विश्व इतिहास की झलक" और "भा की खोज" नामक पुस्तकों का अनुवाद देश और वि की भाषा में हुआ है।





पं० जवाहरलाल नेहरू प्रसन्न मुद्रा में



भारत के नवनिर्वाचित प्रधान मंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री

वैदिक साहित्य में देव तथा देवता तत्त्व

पंडित चक्रवर्ती रघुराज मिश्र, वाराणसेय संस्कृतविश्वविद्यालय

व्याकरण महाभाष्य के आदिम प्रकरण पस्पशाह्निक में भगवान् पतंजलि ने प्रकरणवश वैदिक साहित्य का उद्धरण दिया है। वे कहते हैं—

"एकशतमध्वर्युशाखाः, सहस्रवर्त्मा सामवेदः। एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्। नवधाथर्वणो वेदं इति।"

यजुर्वेद की १०१ शाखाएँ हैं। सामवेद की एक सहस्र शाखाएँ, ऋग्वेद की २१ शाखाएँ एवं अथर्ववेद की नौ शाखाएँ प्रसिद्ध हैं। इस पंक्ति का यद्यपि एक वैज्ञानिक अर्थ होता है तथापि महाभाष्यकार श्री पतंजलि का तात्पर्य वेदः ग्रन्थराशि की बहुलता प्रदर्शित करने का है। इस प्रकार पूरे वेद की संहिताओं की शाखासंख्या ११३१ होती है। प्रत्येक संहिता भाग के ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् भी होते थे। इस प्रकार प्रत्यक्ष वैदिक साहित्य का कलेवर ही ४५२४ ग्रन्थसंख्याओं में परिणत होता है। वे ग्रन्थ आज लुप्त हो गये हैं और संहिता भाग के कतिपय ग्रन्थ एवं ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् के भी कुछ विशृंखल ही ग्रन्थ उपलब्ध हैं। केवल एक शुक्ल यजुर्वेद संहिता का ब्राह्मण जो "शतपथ" नाम से प्रसिद्ध है, अविकल उपलब्ध है। फिर भी वैदिक साहित्य की जो सामग्री उपलब्ध है उसका भी अध्ययन भारतीयों ने छोड़ दिया है। यह वैदिक साहित्य मूल रूप से संस्कृत भाषा में निबद्ध है। आज दुर्भाग्यवश संस्कृत का अध्ययन कुछ दीन-हीन दरिद्र समाज में प्रतिष्ठा-उपेक्षित व्यक्ति ही कर रहे हैं। उसमें भी प्रायः परम्परा के संस्कृताध्ययन करनेवाले लोग व्याकरण, साहित्य, ज्योतिष एवं दर्शनों का ही अध्ययन मुख्य रूप से करते हैं। दर्शनों में भी न्याय और वेदान्त, ये दो दर्शन अधिकांश में पढ़े जाते हैं। व्याकरण में भी नवीन और प्राचीन दो भाग हो जाने के नाते लोग नवीन व्याकरण ही पढ़ते हैं। इस प्रकार इस वैदिकेतर वाङ्मय में भी एक बहुत बड़ा भाग अछूता पड़ा हुआ है, जैसे प्राचीन व्याकरण, वैशेषिक दर्शन, सांख्य, योग-दर्शन, मीमांसा दर्शन, तन्त्र, आगम, धर्मशास्त्र, वाल्मीकि रामायण, महाभारत एवं पुराण साहित्य। इस प्रकार पूरा संस्कृत वाङ्मय उपेक्षित पड़ा हुआ है। वेद के विषय में तो कुछ कहना ही नहीं है। वैदिक व्याकरण भी अत्यन्त प्राचीन काल का होने के नाते आज के लौकिक व्याकरण से कुछ भिन्न है। वेद का कुछ व्याकरण प्रातिशाख्यों में प्रतिपादित है, जो प्रातिशाख्य आजकल किन्हीं बड़े-बड़े पुस्तकालयों में ही सम्भव है उपलब्ध हों; पुस्तक-विक्रेताओं के यहाँ ये उपलब्ध नहीं हैं।

इस प्रकार आज की इस विषम परिस्थिति में वैदिक साहित्य के किसी विषय के ऊपर कुछ कहते हुए एक घोर निराशा होती है। कहीं भी किसी आश्रय की उपलब्धि नहीं प्रतीत होती क्योंकि जो विषय कहा जा रहा है उसकी प्रामाणिकता की परख होनी नितान्त आवश्यक है, अन्यथा यह प्रतिपादन एक प्रमत्तप्रलाप ही मान लिया जायगा, जैसा कि महाकवि कालिदास ने सूत्रधार के मुख से अभिज्ञानशाकुन्तल के प्रारम्भ में कहा है—

"बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः।"

"अत्यन्त शिक्षित मनुष्य को भी अपने विषय में पूरा विश्वास नहीं हो पाता।"

तथापि एक वैदिक तत्त्व को विद्वानों के समक्ष रखा जा रहा है। लोग इसे पढ़ें, ध्यान से पढ़ें और इस दृष्टि से पढ़ें कि इस विषय-प्रतिपादन में कहीं त्रुटि तो नहीं रह गयी है। यदि त्रुटि प्रमाणित हो तो उसे सुधार दिया जाय। पर उस त्रुटि के निर्धारण में यह ध्यान देना आवश्यक होगा कि इस विषय का प्रतिपादन ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण, तैत्तिरीय आरण्यक निघण्टु, निरुक्त एवं शौनक की बृहद्-देवता पर आधारित है। अतः इन ग्रन्थों के प्रतीक में दिये हुए उन-उन स्थलों के प्रसंग, उपक्रम एवं उपसंहार की दृष्टि से अर्थ-विवेचन के अनन्तर ही किसी त्रुटि का निर्धारण होना चाहिए।

यद्यपि आत्मा अजर और अमर है, इसमें देश और काल के प्रभाव व्याप्त नहीं होते, ऐसी हम भारतीयों की धारणा है, फिर भी इसकी ज्ञानदृष्टि का समय-समय पर उन्मेष और निमेष होता आया है। सदियों की पराधीनता के अनन्तर भारतवर्ष आज पूर्ण स्वतन्त्र है। स्वतन्त्र ही नहीं है, वह इतिहास में प्रतिपादित अपनी खोयी हुई प्रतिष्ठा को प्राप्त करने के लिए दृढ़ संकल्प लिये हुए उसके लिए भरपूर चेष्टाएँ भी कर रहा है। ऐसी परिस्थिति में उसे अपने

अतीत का अनुसन्धान भी करना है। महाकवि कालिदास की इस उक्ति को ध्यान में रखते हुए कि—

"पुराणमित्येव न साधु सर्वं,
न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते,
मूढः परप्रत्ययनेय बुद्धिः ॥"

कोई वस्तु पुरानी है इसीलिए वह अच्छी ही होगी और कोई वस्तु नयी है इसीलिए वह खराब होगी, यह बात नहीं मानी जा सकती। इसलिए भले लोगों का कर्त्तव्य है कि वे इन प्राचीन और नवीन दोनों की परीक्षा करें और उस परीक्षा में जो खरा उतरे उसे स्वीकार करें।

आजकल के विज्ञान ने एक नयी चुनौती उपस्थित कर दी है। यद्यपि विज्ञान की यह परीक्षा-प्रणाली हमारे यहाँ के उपनिषद् पर्यन्त ग्रन्थों में आज भी उपलब्ध है तथापि उपनिषदों के अनन्तर आविर्भूत होनेवाले भारतीय वाङमय में यह परीक्षा-प्रणाली छोड़ दी गयी है। वह सम्भवतः इसलिए छोड़ी गयी हो कि परीक्षा का युग समाप्त माना गया। जैसे आज विद्युत् के उपयोग के लिए कोई भी व्यक्ति वैज्ञानिक दृष्टि से उसका विश्लेषण नहीं करता अपितु उसका उपयोग ही करता है। सम्भवतः इसी अवस्था का द्योतन न्याय का वह सूत्र करता है जिसमें कहा गया है कि वेद का प्रामाण्य उसी प्रकार से मन्तव्य है जैसे मन्त्र एवं आयुर्वेद का प्रामाण्य माना जाता है—

"मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्याच्च तत् प्रामाण्यम् आप्त-प्रामाण्यात् ।" न्या० सू० २।१।६८

पर आज के विज्ञान ने उस आयुर्वेद के प्रामाण्य को भी चुनौती दे रखी है जो शतप्रतिशत प्रत्यक्षवादी शरीर एवं शरीर की क्रियाओं से सम्बद्ध है। आज यद्यपि भारतीय औषधियों के विषय में परीक्षा एवं अनुसन्धान द्वारा वह तथ्य वैज्ञानिकों द्वारा प्रकट किये जा रहे हैं तथापि वैज्ञानिक प्रक्रिया से परीक्षित विज्ञान की कक्षा में आ जाते हैं। अतः आज के भारतीय का कर्तव्य होना चाहिए कि ओषधियों और मन्त्रों द्वारा मानव-जीवन से सम्बद्ध जो सुविधाएँ अथवा फल शास्त्रों में प्रतिपादित हैं उनका अनुशीलन किया जाय शास्त्रोक्त रीति से। यदि शास्त्रीय विधि से अनुशीलन के अनन्तर भी ये वस्तुएँ अपने अपने प्रयोजन का सम्पादन नहीं कर पाती हैं तो हमें उनका परित्याग करना चाहिए। यद्यपि अपने शास्त्र के प्रति इस प्रकार के वाक्य अभद्र हैं फिर भी आज का युग आज की परिस्थितियों में इस प्रकार के वाक्य कहलवाने के लिए बाध्य कर रहा है।

प्रत्येक वेदमन्त्र में ऋषि, छन्द तथा देवता का ज्ञान आवश्यक माना गया है। उनमें देवता का ज्ञान प्रकृत में प्रस्तुत किया जा रहा है।

वैदिक देव क्या हैं और कितने हैं? इन प्रश्नों के उत्तर ऋग्वेद संहिता तथा शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट रीति से दिये हुए हैं पर चूंकि वैदिक साहित्य का अध्ययन और अध्यापन लुप्त हो गया है, वैदिक तत्त्वों का मौलिक ज्ञान नहीं हो पाता प्रत्युत किंवदन्तियों एवं कहानियों के आधार पर वैदिक तत्त्वों को समझने की प्रथा सी पड़ गयी है। इसीलिए वैदिक तत्त्वों का निर्धारण प्रायः असम्भव सा हो गया है। वैदिक साहित्य में देव शब्द का निर्वचन यद्यपि संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् में कम मिलता है तथापि निरुक्तकार यास्क ने देव शब्द की व्युत्पत्ति नीचे दी हुई ४ विधाओं में की है—

"देवो दानाद्वा, दीपनाद्वा, द्योतनाद्वा, द्युस्थानो भवतीति वा।" अ० ख० ७।१५

इस प्रकार से देव शब्द 'दा' धातु से, 'दीप' से, 'द्युत' से एवं द्युस्थानिक होने के नाते देव कहा गया है। आशय इसका यह है कि जो शक्ति लोक-निर्माण के लिए अपना भी दान कर देती है, जो शक्ति दूसरों को दीप्ति प्रदान करती है एवं जो शक्ति स्वयं दीप्तिमान है एवं द्युलोक में रहनेवाली है उस शक्ति का नाम देव है। सम्भवतः इन देवों की इस दानशीलता को ही अभिव्यक्त करने के लिए 'देवेभ्यः स्वाहा' इस स्वाहाकार की प्रवृत्ति है। स्वाहा का तात्पर्य है—स्व ओहाक् त्यागे, अर्थात् अपने का भी त्याग करते रहना। इस प्रकार इस जगत् में दो प्रकार के हैं तत्त्व विद्यमान हैं। प्रथम तत्त्व है 'देवतत्त्व' और द्वितीय तत्त्व है 'भूततत्त्व'। इसी तत्त्व को भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता के १५वें अध्याय के १६वें श्लोक में कहा है—

**द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥**

ये जो लोक दिखायी दे रहे हैं इनमें क्षर और अक्षर नाम के दो पुरुष वर्तमान हैं। सभी भूतों की संज्ञा क्षर है एवं उन भूतों में अविकल—अपरिणामी—रूप से रहने वाला अक्षर कहा जाता है।

[इस] देवतत्व की संस्थाएँ निरुक्तकार यास्क एवं [बृह]द्देवताकार शौनक ने इस प्रकार माना है—

"[ति]स्र एव देवताः। अग्निः पृथ्वीस्थानः, वायुर्वा [इन्द्र]ो वा अन्तरिक्षस्थानः, सूर्यो द्युस्थान इति।"

[ता]सां महाभाग्यात् एकैकस्या अपि बहूनि नामधेयानि [भव]न्ति। अपि वा कर्मपृथक्त्वात् महाभाग्यात् देवतायाः [एक] आत्मा बहुधा श्रूयते . . .

आत्मैव एषां रथो भवति, आत्मा अश्वः, आत्मा [आयु]धम्, आत्मेषवः, आत्मा सर्वं देवस्य इति।"

(निरुक्त अ० ७ ख० १)।

[इ]सी प्रकार आचार्य शौनक ने बृहद्देवता में इन्हीं अर्थों [को] दोहराया है—

"प्रथमो भजते त्वासां वर्गोऽग्निमिह दैवतम्।
[द्वि]तीयो वायुमिन्द्रं वा, तृतीयः सूर्यमेव च॥"

(बृहद्देवता १।५)।

[ता]सामेव माहात्म्यान्नामान्यत्वं विधीयते।
[त]त्तत्स्थानविभागेन तत्र तत्रेह दृश्यते॥

(बृह० दे० १।१७)।

[ते]षा स्थानं प्रदिष्टास्ताः नामान्यत्वेन देवताः।
[ते]भक्ताः तत्प्रधानाश्च केचिदेवं वदन्ति ताः॥

(बृ० दे० १।७२)।

'तीन ही देवता हैं—अग्नि पृथ्वी में, वायु अथवा इन्द्र [अन्तरि]क्ष में एवं सूर्य द्युलोक में। इन देवताओं के अतिशय [माहात्]म्य के नाते एक-एक देवता के बहुत से नामधेय होते [हैं। अथ]वा पृथक्-पृथक् कर्मों के सम्पादक होने के नाते एक-[एक] देवता के बहुत से नाम हैं.........। आत्मा [ही इन]का रथ होता है, आत्मा ही अश्व, आत्मा आयुध, [आत्मा] इषु एवं देवताओं से सम्बद्ध सब कुछ आत्मा ही [माना] जाता है।' (निरुक्त)।

'इन देवताओं का एक वर्ग अग्नि देवता को आश्रित [है, द]्वितीय वर्ग वायु अथवा इन्द्र एवं तृतीय वर्ग सूर्य पर [आश्रि]त है।'

"इन देवताओं के माहात्म्य से नामों में भिन्नता आ [जाती] है। उन-उन स्थानों के विभाग से देवताओं की [स्थिति] द्युलोक, अन्तरिक्षलोक एवं पृथ्वीलोक में मानी [गयी] है।"

"ये देवता अपने भिन्न-भिन्न नामों से अपने निर्दिष्ट स्थानों [में मा]ने गये हैं और कहीं पर इन नामों की स्तुति की गयी है अर्थात् गौण प्रयोग किया गया है एवं कहीं पर इनका मुख्य प्रयोग किया गया है। इस प्रकार कुछ लोग देवताओं की सत्ता मानते हैं।"

यहाँ निरुक्त एवं बृहद्देवता में 'देवता' शब्द का प्रयोग किया गया है, न कि 'देव' शब्द का। अब यह प्रश्न स्वाभाविक रूप में उपस्थित होता है कि क्या देव और देवता शब्द दोनों पर्यायवाची हैं? दोनों एक ही अर्थ का प्रतिपादन करते हैं? और देव शब्द के अनन्तर जो 'ता' प्रत्यय विहित है वह 'तस्य भावस्त्व तलौ' पाणिनि के निर्देशानुसार भाव अर्थ में नहीं है अपितु 'देवात्तल' सूत्र द्वारा स्वार्थ में ही 'तल' का विधान है? इस प्रश्न के समाधान के लिए हमें थोड़ा सा ऐतिहासिक विवेचन करना होगा।

उपलब्ध वैदिक साहित्य ग्रन्थों में निरुक्त के पूर्व जहाँ कहीं भी इन देवों का उपन्यास किया गया है वहाँ सर्वत्र देव शब्द से ही इनका व्यवहार किया गया है न कि देवता शब्द के द्वारा। आगे दिये हुए दो-एक निदर्शनों से यह बात स्पष्ट रूप से स्पष्ट हो जाती है। ऋग्वेद के तीन स्थलों में इनकी परीक्षा करिये—

(१) "इति स्तुतासो असथा ऋषादसो।
ये स्थ त्रयश्च त्रिंशच्च। मनोर्देवा यज्ञियासः।

(ऋ० मं० ८ सू० ३० म०२)

(२) ये देवासो दिव्येकादशस्थ पृथिव्या मध्येकादश स्थ
अप्सु क्षितौ महिनैकादशस्थ। ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम्।

(ऋ० १।१३९।११)

इसी प्रकार—

(३) त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवाः
नव चासपर्यन्। औक्षन् घृतैरस्तृणन् बर्हिरस्मा
आदिद्धातारं न्यसादयन्त॥

(ऋ० १०।५३।६)

इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण के १४वें काण्ड में आचार्य शाकल्य ने याज्ञवल्क्य से प्रश्न किया है—

"अथैनं विदग्धः शाकल्यः प्रपच्छ—कति देवाः याज्ञवल्क्यति। त्रयस्त्रिंशदिति, ॐ इति होवाच। षट् इति ॐ इति होवाच। त्रय इति ॐ इति होवाच। द्वाविति ॐ इति होवाच। अध्यर्ध इति ॐ इति होवाच। एक इति ॐ इति होवाच। कतमे ते त्रयश्च त्री च

शता, त्रयश्च त्री च सहस्रेति स होवाच महिमान स्वैषा-मेते। त्रयस्त्रिंशत्वेव देवाः इति। कतमे ते त्रयस्त्रिंश-दिति, अष्टो वसवः, एकादश रुद्राः द्वादशादित्याः, त एकत्रिंशत। इन्द्रश्चैव प्रजापतिश्च त्रयस्त्रिंशाविति॥"

(शतपथ १४।६।८।१–३)

इस प्रकार निरुक्त के पूर्व प्रायः देवता शब्द का प्रयोग नहीं मिलता। इसके पहिले देवों के प्रसंग में प्रायः देव शब्द का ही प्रयोग किया गया है। निरुक्तकार ने एवं बृहद्देवताकार ने देवता शब्द का प्रयोग एक पारिभाषिक अर्थ में किया है। निरुक्तकार ने सर्वप्रथम देवों का वर्गीकरण पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्यु लोकों के क्रम से किया है एवं पृथिवी स्थान में इस अग्नि के साथ अग्नि के गणदेव एवं संस्तविक देव तथा अदेवभूत अनेक ऐसे पदार्थों की भी गणना की है जो इस पृथ्वीलोक के सत्व माने गये। पृथ्वीलोक के इन सत्वों की मुख्य रूप से गणना लगभग ३८ के की गयी है जिनमें अश्व, शकुनि, मण्डूक, अक्ष, ग्रावा, नरस्तुति, वृषभ, द्रुघण, नदियाँ, आप्, ओषधियाँ, पितु रात्रि, श्रद्धा, पृथिवी, अप्वा, अरण्यानी, अग्नायी रथ, दुन्दुभि, हस्तघ्न, इषुधि, इषु, ज्या, धनु, कषा, अभीषु एवं कवच आदि युद्धोपकरण इनकी संख्या २८ होती है। इसके अनन्तर आठ द्वन्द्वों की गणना की गयी है। ये द्वन्द्व हैं—(१) शुनासीर, (२) हविर्धान, (३) मुसल तथा उलूखल (४) ऊर्जाहुती देवी, (५) जोष्ट्री देवी, (६) आर्त्नी, (७) रोदसी, (८) विपाट् शुतुद्री। इन ३६ की स्तुति प्रायः अधिक मात्रा में भूमिस्थ देवों के साथ की गयी है। इस प्रकार ऋचाओं द्वारा स्तुत पदार्थों में देव तथा देवेतर सत्व भूत द्विविध पदार्थ आ जाते हैं। इन दोनों पदार्थों का संकलन करने के लिए निरुक्तकार यास्क ने देवता शब्द का उपादान किया है। ये अतिरिक्त पदार्थ भी देवता कैसे कहे जाते हैं, इसके लिए शौनक ने बृहद्देवता में स्पष्ट रीति से प्रतिपादन किया है :—

(१) पृथक् पु स्ताद्ये तूक्ताः लोकादिपतयस्त्रयः।
तेषामात्मैव तत्सर्वं यद् यद् भक्तिः प्रकीर्त्यते॥

(२) तेजस्त्वेवायुधं प्राहुः वाहनं चैव तस्य तत्।
अग्निभक्तिस्तु तान् सर्वानग्नावेव समापयेत्॥
यदिन्द्रभक्तिः तच्चैन्द्रे, सूर्ये सूर्यानुग च यत्।

(बृ० दे० अ० १। श्लोक ७३, ७७)

"पीछे अलग-अलग जिन लोकादिपतियों—इन्द्र, अ... तथा सूर्य की स्तुति के साथ गौण रूप से इन देवों के प्र... में जो-जो भी स्तुति की गयी है वह सब उस देव ... आत्मा ही समझनी चाहिए॥१॥

जैसे उन देवों का तेज आयुध एवं वाहन के रूप ... वर्णित है, उसी प्रकार अग्निदेव के गौण प्रयोग में जि... जिन पूर्वोक्त ३६ सत्वों की स्तुति की गयी है उसे अग्नि... की ही स्तुति मानना चाहिए एवं इन्द्र के प्रसंग में स्तु... गौणभूत सत्वों की इन्द्र में, एवं सूर्य के प्रसंग में आ... हुए द्यु स्थान सत्वों को सूर्यस्तुति में समझना चाहिए। जैसे पृथ्वीस्थान अग्नि के वर्णन में पृथ्वीस्थान ३६ सत्वों का वर्णन किया गया है उसी प्रकार निघण्टु, निरु... तथा बृहद्देवता में इन्द्र और सूर्य के संस्तविक देव एवं अन्तरिक्षस्थानीय तथा द्यु-स्थानीय सत्वों का भी परि... गणन किया गया है। इस प्रकार मीमांसकों के पारिभाषिक ऋषि और देवता-निर्वचन के—अर्थात् मन्त्र का उच्चारयिता ऋषि एवं मन्त्र का सम्बोध्य देवता होता है—अनुसार संवादात्मक तथा विभिन्न सूक्तों में देवशुनी सरमा भी देवता और ऋषि मानी गयी है।

इस प्रकार ऊपर उद्धृत प्रकरण के आधार पर य... निष्कर्ष निकलता है कि देव तथा देवता ये दोनों विभिन्न अर्थों के वाचक शब्द हैं। देवों की संख्या ३३ ही मानी गयी है एवं देवताओं की संख्या अपरिगणित है। उनकी इयत्ता सम्भव नहीं है।

इन देवों की सत्ता हमारे ब्रह्माण्ड में सूर्यलोक-पर्यन्त ही मानी गयी है। इस समूचे ब्रह्माण्ड को ४८ कक्षाओं में बाँटा गया है। इन ४८ कक्षाओं में आदि की प्रथम तीन कक्षायें केन्द्र में एव अन्त की तीन कक्षायें परिधि में गिनी गयी हैं। इस प्रकार शेष बची हुई ४२ कक्षाओं को ६-६ कक्षाओं के एक-एक गुच्छे में बाँटा गया है जिन्हें 'स्तोम' कहा गया है। केन्द्र की तीन कक्षाओं के साथ प्रथम ... के स्तोम को 'त्रिवृत् स्तोम" कहा गया है, एवं द्वितीय स्तोम को 'पंचदश स्तोम', तृतीय को 'एकविंश स्तोम' चतुर्थ को 'त्रिणव स्तोम" एवं पंचम स्तवक को 'त्रयस्त्रिंश स्तोम" कहा गया है। इस त्रयस्त्रिंश स्तोम को एक परिधि मानकर उसका आधा "सप्तदश स्तोम" भी कहीं कहीं चर्चित है। ब्राह्मण ग्रन्थों में इन स्तोमों की भरपूर चर्चा है। इस प्रकार यह हमारा सूर्यमण्डल, एकविंश ...

तोम पर्यन्त माना गया है। उसके अनन्तर दो स्तोमों में सोम की सत्ता मानी गयी है और इस मण्डल को परमेष्ठि मण्डल कहा गया है। इस परमेष्ठि मण्डल के अनन्तर दो स्तोमों में स्वयम्भू मण्डल माना गया है। इस सूर्यमण्डल पर्यन्त त्रिलोकी में ९ कक्षा पर्यन्त पृथ्वी की, अनन्तर १५ कक्षा पर्यन्त अन्तरिक्ष की, एवं उसके अनन्तर २१ कक्षा पर्यन्त द्युलोक की सत्ता मानी गयी है। इस प्रकार ९ कक्षा पर्यन्त पृथ्वीलोक में अग्नि के गणदेव आठ वसुओं की एवं अनन्तरवर्ती अन्तरिक्ष कक्षा में वायु के गणदेव एकादश रुद्रों की एवं अन्तरिक्ष के अनन्तर भावी द्युलोक में सूर्य के गणदेव द्वादश आदित्यों की संस्थाएँ मानी गयी हैं। इस पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष की सन्धि में तथा अन्तरिक्ष एवं द्यु की सन्धि में २ अश्विनीकुमार ये ३२वें और ३३वें देव माने गये हैं। इन ३२वें और ३३वें देवों के विषय में कहीं-कहीं प्रजापति तथा वषट्कार अथवा इन्द्र और प्रजापति भी ३२वें और ३३वें देव कहे गये हैं। इन आठ वसुओं के नाम इस प्रकार वैदिक साहित्य में गिनाये गये हैं—(१) अग्नि (२) जातवेदाः (३) सहौजाः (४) अजिर (५) वैश्वानर (६) नर्यपा (७) पक्तिराधा (८) विसर्पि ये आठ वसु गिनाये गये हैं। इसी प्रकार एकादश रुद्र भी तैत्तिरीय-आरण्यक में इस प्रकार गिनाये गये हैं—(१) प्रभ्राजमान (२) वयवदात (३) वासुकि (४) वैद्युत (५) रजत (६) परुष (७) श्याम (८) कपिल (९) अतिलोहित (१०) ऊर्ध्व एवं (११) अवयतन ये एकादश रुद्रों के नाम हैं। द्वादश आदित्यों के नाम भी बृहद्देवता में इस प्रकार गिनाये गये हैं—(१) भग (२) अर्यमा (३) अंश (४) मित्र (५) वरुण (६) धाता (७) विधाता (८) विवस्वान् (९) त्वष्टा (१०) पूषा (११) इन्द्र (१२) विष्णु। ये १२ आदित्यों के नाम गिनाये गये हैं। इन तैंतीस देवों के नामकरण उनके द्वारा सम्पादित होनेवाले कर्मों के आधार पर किये गये हैं, जैसा कि शौनक ने बृहद्देवता में स्पष्ट रूप से कहा है—

"सर्वाण्येतानि नामानि कर्मतस्त्वाह शौनकः।"

पृथ्वीस्थान की आठ कक्षाओं में आठों वसुओं का स्थान कौन माना जाय, यह बात वैदिक साहित्य के आधार पर प्रमाणित नहीं की जा सकती क्योंकि वैदिक साहित्य प्रायः पद्यबद्ध है। पद्यों में पदों के स्थान अर्थ की क्रमिकता पर आधारित नहीं होते, प्रत्युत पद्य-निर्माण की सुविधा के अनुसार पद्यों में पदों का सन्निवेश किया जाता है।

अतः वैज्ञानिक रीति से २१ कक्षा पर्यन्त सूर्यमण्डल की ३३ कक्षाओं का परीक्षण करने के अनन्तर ही उन उन स्थानों में उन उन देवों का सन्निवेश प्रमाणित किया जाना चाहिए। जो वैज्ञानिक परीक्षण आज के विज्ञान युग में हो रहे हैं उनके परीक्षकों में इन वैदिक तत्त्वों का भी ज्ञाता और परीक्षक कोई व्यक्ति नहीं है। इसलिए इस समस्या का समाधान असम्भव सा प्रतीत होता है।

इस प्रकार इस छोटे से निबन्ध में देवतत्त्व और देवतातत्त्व को पृथक्-पृथक् समझाने का प्रयत्न किया गया है।



आचार्य और अजमेरीजी

श्री मैथिलीशरण गुप्त

यह कैसे सम्भव था कि मेरे सम्बन्ध से मुंशी अजमेरी पूज्य द्विवेदीजी के सम्पर्क में न आते। उनकी लिखावट सुन्दर होती थी। सरस्वती के लिए मेरी कृतियों की प्रति-लिपि वे ही प्रस्तुत करते थे। एक बार पूज्य द्विवेदीजी ने उनके लिखने की प्रशंसा भी मुझे लिख भेजी थी।

परन्तु अजमेरी कोरे लिपिक ही न थे। कभी-कभी उनके सुझाव भी बड़े सुन्दर होते थे। 'अशोकवासिनी सीता' का मैंने इस दोहे से आरम्भ किया था—

जिनके माया सूत्र में ग्रथित सकल संसार,
वन्दी सो ये जनकजा दशमुख के आगार।

अजमेरी ने 'दशमुख के आगार' के स्थान पर 'दशमुख-कारागार' कर देने के लिए कहा। मैं इसे कैसे अस्वीकार करता! मैंने पूज्य द्विवेदीजी को यह बात लिख दी। उन्होंने लिखा—'अजमेरीजी का संशोधन बहुत अच्छा रहा। अशोक वन सीता के लिए कारागार से कम थोड़े ही था। कभी-कभी कवियों के सहचर उनसे भी आगे बढ़ जाते हैं।'

स्वर्गीय पद्मसिंह शर्मा ने भी इस रचना के विषय में पंडितजी को एक पत्र लिखा था।

अजमेरी जब-जब उस ओर जाते थे तब पूज्य द्विवेदी के दर्शनार्थ कानपुर रुके बिना न रहते थे। एक बार जब वे उनके यहाँ पहुँचे तब पंडित देवीप्रसादजी शुक्ल वहाँ बैठे बातें कर रहे थे और पंडितजी दत्तचित्त होकर सुन रहे थे। उन्होंने अजमेरी का स्वागत किया और यह समझकर कि वे यह न समझें कि हम अन्यमनस्क हैं, कहा—शुक्लजी अभी सूरत की कांग्रेस से लौटे हैं। आप भी वहाँके समाचार सुन लीजिए।

शुक्लजी ने बताया वहाँ कुर्सियाँ ही नहीं चलीं, जूते भी चले। परन्तु अपने जनों के बीच में तिलक अक्षत शरीर पंडाल से चले गये। द्विवेदीजी ने कहा, बड़ा भाग्य-शाली पुरुष है।

अन्त में शुक्लजी ने पंडित श्यामबिहारी मिश्र की उस शोक-रचना को सरस्वती में छाप देने का आग्रह किया जिसे द्विवेदीजी ने अस्वीकृत कर दिया था। कहाँ तो द्विवेदीजी हँस रहे थे, कहाँ एक साथ गम्भीर हो गये। बोले, 'क्या छाप दूँ? वैसे तो कानी लड़की को उसका बाप सराहे?' फिर अजमेरी की ओर देखकर बोले—'मैथिली-शरण से कह देना। हमें ऐसा कानी फानी लिखना अच्छा नहीं लगता। इसका ध्यान रक्खें।' अजमेरी हँस गये। फिर बोले—'दो भाई संघे-संघे कविता करते हैं। एक कहता होगा—शुकदेव अस करद्या। बस अब नीक बनिगै। यहि तैं नीक और न बनी।' यह कहकर वे फिर हँसने लगे। शुक्लजी ने कहा—"छुरा अस मारत है। फिर भी वे दुखी हैं। छाप दीजिए।" परन्तु द्विवेदीजी सहमत न हुए। बोले—'उनका लड़का मर गया है। हम मित्र होने के नाते उनके दुःख से दुखित हैं। परन्तु 'सरस्वती' के पाठकों को इससे क्या? उनकी रचना पढ़कर पाठकों के मन में भावोद्रेक होने की सम्भावना हो तो अवश्य हम उसे छाप दें। यों तो 'सरस्वती' हमारे हाथ में है। हम अपने परलोकगत बाप-दादा के हीं चित्र और चरित्र उसमें क्यों न छापने लगें?'

ऐसे दृढ़ थे द्विवेदीजी अपने कार्य में।

एक बार उन्होंने अजमेरी से कहा—आपके यहाँ हमारे पत्र सदा ही जाते रहते हैं। आपको पढ़ने में कठिनाई होती है?' अजमेरी ने कहा—'कभी नहीं महाराज! आपके अक्षर बहुत जमे हुए होते हैं।' द्विवेदीजी ने कहा—'आप एम० ए०, बी० ए० नहीं। परन्तु एक एम० ए० सज्जन ने हमें लिखा—आपका पत्र पढ़ा ठीक-ठीक नहीं जाता, कुछ सँभालकर लिखा कीजिए। ये सज्जन हिन्दी के लेखक वही श्री श्यामबिहारीजी मिश्र हैं।' अजमेरी को आश्चर्य हुआ। उन्होंने संकोचपूर्वक पूछा—'आपने क्या उत्तर दिया?' द्विवेदीजी बोले—'क्या उत्तर देते? यही

दिया कि जब तक हम बना-बनाकर अक्षर लिखना तब तक आप सभ्यता के साथ पत्र लिखना ए।'

एक बार जब अजमेरी पहुँचे तब द्विवेदीजी सबेरे की पी रहे थे। उन्होंने प्याला बायें हाथ में ले लिया दाहिने हाथ से अजमेरी को पान दिया। अजमेरी देते ही हँसकर बोले—'हम चाय पीते जाते हैं उधर पान भी देते जाते हैं। मैथिलीशरण कहेंगे बड़े अधार्मिक हैं।' अजमेरी भले ही वैष्णव हों, थे तो मुसलमान।

दूसरी बार जब अजमेरी उनके यहाँ पहुँचे तब पंडितजी —'आपके भोजन का क्या प्रबन्ध होगा? आप बनायेंगे?' अजमेरी ढीले मुँह से बोले—"बना

आपको बनाना तो आता है।"

आता तो नहीं, परन्तु आशा है, बना ही लूँगा किसी ।"

क्या आपने कभी भोजन नहीं बनाया?"

कभी आवश्यकता नहीं पड़ी।"

कभी नहीं?"

नो।"

पंडितजी को आश्चर्य हुआ। कुछ रुककर उन्होंने कहा—"हमारे यहाँका भोजन करने में आपको कोई बाधा तो न होगी।"

"वह तो मेरे लिए देवता का प्रसाद होगा।"

"तब ठीक है।" पंडितजी ने अपनी परिचारिका को बुलाकर कहा—'मुंशीजी के लिए पूरियाँ बनेंगी।' फिर अजमेरी की ओर देखकर बोले—'आप क्यों अपने हाथ जलायेंगे जब सब कहीं आपके रसोइयाँ मौजूद हैं। हाथ तो हमें जलाने पड़ते हैं और धुवाँ खाना पड़ता है।'

एक बार जब अजमेरी पहुँचे तब कुछ बातचीत करके पंडितजी डिब्बी में से पान निकालकर अजमेरी को देने लगे। ज्यों ही अजमेरी ने लेने को हाथ बढ़ाया त्यों ही उन्होंने कहा—'ई हम खाइत हैं तुमका दूसर मँगाइत हैं।' इसी समय पान लेकर परिचारिका आ पहुँची।

द्विवेदीजी की अस्वस्थता के समय मैंने एक बार उनसे प्रार्थना की कि वे चिरगाँव आकर कुछ दिन रहने की कृपा करें। जलवायु के परिवर्त्तन और यहाँके उपचार से सम्भव है कुछ लाभ हो। पंडितजी ने अनुबन्ध पर आना स्वीकार किया था कि अजमेरीजी नित्य साँझ सबेरे एक एक घण्टा हमें पद भजन और अपनी बातें सुनाया करें। यह तो अजमेरी के लिए सौभाग्य की बात होती। परन्तु हमारे दुर्भाग्य से पंडितजी का आना न हो सका। बहुत पहले संवत् १९६४ में एक ही बार वे चिरगाँव पधारे थे।



राष्ट्रीय अस्मिता के रूमानी संस्कार

प्रो० कुबेरनाथ राय एम० ए०

"रीति-बद्ध कविता मनुष्य को शृंखला-बद्ध करती है।"

—विलियम ब्लेक ('जेरूशलम' की भूमिका)

"शास्त्रीयता, सूखी और मटमैली; पर जीवन सदैव हरा-हरा।"

—ग्येटे ('फास्ट')

भारतीय साहित्य में भावुकता का चरम विकास वैष्णव कविता में मिलता है जो १५वीं शती के बाद प्रत्येक भारतीय भाषा में विकसित हुई। साथ ही वैष्णव जीवन-दर्शन आंशिक रूप में रीतिबद्धता (वैदिक कर्मकाण्ड और वर्ण-सिद्धान्त) को अस्वीकृत करता है। अतः रीति-मुक्ति और भावुकता की दृष्टि से यह रूमानी साहित्य था। वैष्णव प्रेम-काव्य क्लासिकल शृंगार से अधिक तरल और सूक्ष्म है। रीति-मुक्ति का आदर्श भी, कम से कम शैली के क्षेत्र में, जीवन और साहित्य दोनों के अन्तर्गत नया गीतकाव्य, परकीयारति को प्राधान्य, भावपूजा की प्रतिष्ठा एवं उपचार-प्रधान धर्म की अवहेलना आदि के द्वारा स्पष्ट है। पर इतना होते हुए भी सम्पूर्ण रूमानी संस्कारों को ग्रहण करने की शक्ति इस आन्दोलन में नहीं थी। विद्रोह और रीति-मुक्ति एक अत्यन्त सीमित दायरे में ही बँधी रही। वैष्णव धर्म का मूलाधार तो शास्त्र ही था। अतः उस सीमा तक यह रीति-मुक्ति और विद्रोह नहीं ला सकता जिस सीमा तक धर्म-निरपेक्ष जीवन-दर्शन ला सकता है। दूसरी बात है राजनीतिक और सामाजिक लाचारी, जिसमें हिन्दू जाति उस युग में बन्द थी। तीसरी बात है तर्कवाद का अभाव। यूरोप में १९वीं शती के रोमाण्टिक (रूमानी) आन्दोलन के आगमन के पूर्व १८वीं शती का तर्कवाद आता है। कबीर आदि की कविताओं में सीमित तर्कवाद हमें मिलते हैं; परन्तु उस सांस्कृतिक संघर्ष के युग में तर्कवाद से अनुशासन अधिक आवश्यक माना गया। इसीसे तर्कवाद नहीं पनप पाया। इन्हीं कारणों से पूर्ण रूमानीपन आते-आते ही रह गया।

भावुकता रूमानी वृत्ति का एक अंग है। भावुकता के कारण ही रूमानी-वृत्ति कुख्यात हो चुकी है जैसे माया-वाद के कारण वेदान्त। परन्तु भावुकता मात्र ही रूमानी वृत्ति नहीं। रूमानी वृत्ति की अनेक दिशाएँ हैं। व्यक्ति-वाद, विद्रोह, रीति-मुक्तशैली, नवीन की उपासना, अतीत का पुनरागमन, कल्पना-शीलता, अहं की ललकार आदि इसकी अन्य गतिशील वृत्तियाँ हैं। इसकी स्थितिशील वृत्तियों में रहस्यवाद, भावुकता, प्रकृति-प्रेम एवं सौन्दर्यो-पासना आदि हैं। अतः रूमानी वृत्ति जीवन और साहित्य को नवीन विकास देने का मुख्य स्रोत है। प्रत्येक नवीन विकास की भूमिका में जीवन को रूमानी संस्कारों से मुक्त करना पड़ता है। भारतवर्ष में 'रूमानी' शब्द उर्दू कविता के कारण बदनाम है। परन्तु तथ्य तो यह है कि उस रीति-बद्ध दरबारी कविता में आत्मा की मुक्त उड़ान, जो रूमानी वृत्ति का प्राण है, अल्पमात्र भी नहीं विद्यमान है।

भारतीय साहित्य में पूर्ण रूमानीपन १९वीं शती के मानववादी आन्दोलन के बाद आया। मानववादी आन्दोलन तर्कवाद (रेशनलिज्म) पर आधारित था। उत्तर प्रदेश में यह तर्कवाद आर्यसमाज के प्रभाव से आया, परन्तु देर से आया। बंगाल में इसका प्रथम सूत्रपात होता है। इसीसे रूमानी वृत्ति का जन्म भी बंगाल में ही पहले पहल हुआ। साथ ही ब्रिटिश शासन की स्थापना धर्म-निरपेक्ष आधार-शिला पर हुई। व्यक्तिगत स्तर पर मिशनरी वर्ग भले सहायता पाता रहा हो, परन्तु राजकीय विधान एवं नीति धर्म-निरपेक्ष रखे गये। फलतः नवीन शिक्षा भी धर्म-निरपेक्ष रूप से दी जाने लगी। धर्म-निर-पेक्षता के फलस्वरूप 'व्यक्ति' अपने प्राचीन पूर्वग्रहों से मुक्त होकर तर्कवाद का सहारा पाकर भारतीय साहित्य में प्रथम बार अवतरित हुआ। सामाजिक जीवन में वर्ण-व्यवस्था और साहित्य में रस-सिद्धान्त और अलंकार-शास्त्र का बँधा-बँधाया ढाँचा ऐसा था कि 'मुक्त व्यक्ति' का आना असम्भव हो गया था। 'मुक्त व्यक्ति' का प्राकट्य प्रथम बार इस रूमानी आन्दोलन में माइकेल मधुसूदन दत्त के साथ-साथ हुआ। व्यक्ति की मुक्ति में एक अन्य तथ्य ने भी सहायता की। वह है औद्योगिक क्रान्ति, जिसने

...वर्ग का ढाँचा ढीला पड़ गया और वर्गों की ...हुई, तथा मध्यवर्गी संस्कृति या 'भद्रलोक'—संस्कृति ...विकास हुआ। यह मध्य वर्ग आर्थिक दृष्टि से किसी ...र या राज्य पर आश्रित नहीं था और इसकी जीविका ...इसकी शिक्षा। इसीसे इसका चिन्तन अपेक्षाकृत ...रहा। इस मध्यवर्गीय संस्कृति का सूत्रपात भी बंगाल ...में प्रथम-प्रथम हुआ। यही मध्यवर्ग सारी बौद्धिक ...का प्रवक्ता था। उत्तर प्रदेश में यह मध्यवर्ग ...में विकसित हुआ। १९वीं शती में उत्तर प्रदेश में ...वर्ग थे 'रईस' और 'किसान'। बाद में मध्यवर्ग ...दोनों वर्गों के व्यक्तियों से संयुक्त होकर बना। परन्तु ...रईस वर्ग का हिन्दी प्रान्तों की सांस्कृतिक, बौद्धिक ...सामाजिक क्रान्ति में कुछ भी योगदान नहीं। भारतीय ...की यह सबसे कापुरुष एवं क्षुद्र इकाई है जिसकी ...सदैव मरी रही। कम से कम उत्तर प्रदेश और ...के लिए तो यह तथ्य बिल्कुल सही है। बंगाल में ...परिवार जैसे कुछ अपवाद हैं। आज 'मध्यवर्ग' ...'किसान' ये ही दो राष्ट्रीय रथ के विशाल चक्र हैं। ...वर्ग आज इतिहास के अन्धकार में विलीन हो ...गए हैं।

...ऊपर जिन सामाजिक और वैचारिक परिवर्त्तनों ...का ...किया गया है, उन सभीं ने रूमानी संस्कारों के ...और विकास में योग दिया है और साथ ही स्वयं ...संस्कारों से परिपुष्ट और विकसित हुए हैं। ये ...एक दूसरे पर आश्रित हैं।

(२)

भारतीय साहित्य में व्यक्तिवाद एक रचनात्मक भूमिका ...प्रवेश करता है। उसका उद्देश्य है 'नवीन' की ..., क्योंकि प्राचीन का जीर्ण कवच अब व्यर्थ भार-...रह गया है। परन्तु नवीन की स्थापना के हेतु वह ...को नष्ट करने के फेर में नहीं पड़ा। उसकी दृष्टि ...परिवर्तन तक ही सीमित रही। तथ्यों को देखने ...प्रस्तुत करने की शैली बदल गयी पर तथ्य नहीं बदले। ...व्यक्तिवादी साहित्यकार माइकेल मधुसूदन दत्त ...में। 'मेघनादवध' चिर परिचित रामायण की कथा ...इसमें मेघनाद के चरित्र की जन-साधारण-सम्मत ...की अवहेलना करके व्यक्तिगत दृष्टि से मेघनाद ...चरित्र का अध्ययन है। इस महाकाव्य का अन्त है ट्रेजेडी। यूरोप के ट्रेजेडी साहित्य और होमर का प्रभाव इसकी पृष्ठभूमि में है। मेघनाद को नायक बनाने की कल्पना होमर के महाकाव्य के 'प्रतिनायक' हेक्टर का भारतीय संस्करण प्रस्तुत करने की चेष्टा है। कहने का अर्थ यह है कि यह एक लोकसम्मत कथा की पुनर्व्याख्या है जिसका कारण है व्यक्तिगत मान्यता को लोकमान्यता के ऊपर प्रतिष्ठित करने का आदर्श। परन्तु माइकेल ने किसी स्थल पर राम का चरित्र या सौमित्र का चरित्र विकृत करने का प्रयत्न नहीं किया है। राम-द्वेष या उत्तर भारत-द्वेष वशीभूत हुए अनेक तमिल नवजात लेखकों से माइकेल की दृष्टि अति भिन्न है। उन्होंने अतीत को श्रद्धापूर्वक स्वीकार किया है।

व्यक्तिवाद भारत में नवीन की स्थापना का आदर्श तो लेकर आता ही है, साथ ही उसका मुक्त चिन्तन राष्ट्रीय परतन्त्रता की घोर अस्वीकृति प्रस्तुत करता है। उसकी प्रथम माँग है राष्ट्रीय मुक्ति। राष्ट्रीयता धीरे-धीरे उसका जीवन-दर्शन बन जाती है। माइकेल के सानेटों, बंकिम-चंद्र के उपन्यासों और गिरीशचन्द्र घोष तथा डी० एल० राय के नाटकों में अतीत-गौरव-गान की प्रवृत्ति मिलती है। यह अतीत-गौरव-गान राष्ट्रीय 'अहं' को जगाने के लिए है। यह प्रवृत्ति प्रत्येक प्रान्त के साहित्य में पायी जाती है। हिन्दी में जयशंकरप्रसाद के नाटक, मैथिली शरण गुप्त का काव्य, चतुरसेन शास्त्री एवं वृन्दावन लाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यास इसी अतीत-गौरवगान की अभिव्यक्तियाँ हैं। तमिल में सुब्रह्मण्यम् भारती की कविताएँ, उर्दू का इकबाल द्वारा लिखित प्रथम काव्य-संग्रह 'नया शिवाला' इसी दिशा के प्रयत्न हैं। अतीत गौरव-गान की परम्परा में राजदूत-मुगल युग (बंकिम, द्विजेन्द्रलाल, वृन्दावन लाल वर्मा) हिन्दू-बौद्ध युग (जय-शंकर प्रसाद, द्विजेन्द्रलाल राय, क० मा० मुंशी) तक ही सीमित न रह कर वह गुजराती के मूर्धन्य साहित्यकार मुंशी द्वारा वैदिक युग तक पहुँची। 'लोमहर्षिणी', 'भगवान् परशुराम' आदि कृतियाँ उस युग की प्राणवान कल्पना प्रस्तुत करती हैं। (रांगेय राघव का 'मुर्दों का टीला' मोहनजोदरो सभ्यता पर लिखा गया बहुत बाद का उप-न्यास है और वह राष्ट्रीयता से अधिक वर्ग-युद्ध एवं साम्य-वादी विचारों के परिवेश में रचित है। वर्त्तमान प्रसंग में उसका कोई मूल्य नहीं है।) अतीत का गौरव-गान और

अतीत की स्थापना केवल ललित साहित्य तक ही सीमित नहीं थी। उसे हम राष्ट्रीय वस्त्र विन्यास के प्रति मोह, प्राचीन चित्रकला के पुराने मूल्यों की 'टैगौर-अजन्ता शैली' के रूप में पुनर्स्थापना, भारतीय इतिहास का देशी-विदेशी विद्वानों द्वारा पुनर्लेखन और डा० कालिदास नाग प्रभृति द्वारा 'वृहत्तर भारत' का दावा, वेदान्त की दार्शनिक दिग्विजय आदि अनेक विधाओं द्वारा व्यक्त पाते हैं। रूमानी युग के अँगरेजी साहित्य में भी अतीत की पुनर्स्थापना (स्काट के उपन्यासों द्वारा) पायी जाती है। परन्तु उसका उद्देश्य इतना व्यापक नहीं था। वह आंचलिक प्रेम या जनवादी दृष्टिकोण की अभिव्यक्तिमात्र थी। भारतीय रूमानी युग का एवं भारतीय व्यक्तिवाद का, जो व्यावहारिक दृष्टि से एक ही तथ्य के दो रूप हैं, मुख्य पहलू ही है अतीत की पुनर्स्थापना, क्योंकि इसके द्वारा साहित्य देश के अहं को जगाना चाहता है। यह भारतीय पुनर्जागरण का सर्वोच्च साधन बना। पुनर्जागरण और राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए इसके द्वारा बनी-बनायी 'मिथ' (myth) मिल गयी है। अतीत की पुनर्स्थापना की सबसे विराट् स्वीकृति तो गांधीवाद ने 'रामराज्य' और 'स्वराज्य' को एकीकृत करके दिया। वास्तव में तिलक, गांधी, लाजपतराय, विवेकानन्द, रामतीर्थ, दयानन्द आदि इस सहस्र शीर्षा अतीत के ही दो-चार मुखों से सन्देश सुनकर ही राष्ट्रीय जागरण को नेतृत्व प्रदान कर रहे थे। यह प्रेरणा मूलतः हिन्दू-अतीत से ही ली जा रही थी। इस तथ्य को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। परन्तु इसके पीछे कोई संकुचित दृष्टि न होकर राष्ट्रीय मानववाद ही था। अतः इसे साम्प्रदायिकता के समकक्ष रखना उचित नहीं होगा।

अतीत गौरव का बोध मुसलमानों में नहीं आया, ऐसी बात नहीं। हाली की 'मुसद्दस' और इकबाल के 'सर' बनने के बाद के लिखे गीत, काजी नजरुल इस्लाम का टर्की के पाशा का विजयगान आदि इस अतीत गौरव बोध के प्रमाण हैं। परन्तु इस अतीत के नायक न केवल सेमेटिक हेमेटिक (मिस्र, अरब, सीरिया आदि) बल्कि अ-भारतीय आर्य देशों (यूनान, ईरान) के भी थे। परन्तु भारतीय अतीत को इसमें स्थान नहीं। इसीसे भारतीय मुसलमानों के अतीत की भावात्मक अनुभूति को हिन्दू संस्कार ग्रहण कर पाने में असमर्थ रहे। संस्कार और मनोविज्ञान के क्षेत्र में वह राजनीतिक समझौता नहीं चलता जिसे राजनीतिक स्तर पर गाँधी ने 'खिलाफत आन्दोलन' में मुसलमानों का साथ देकर किया था और उसमें हिन्दुओं के शंकराचार्य प्रभु भारती कृष्णजी भी जेल गये थे। परन्तु संस्कार बोध के लिए मात्र समझौता नहीं भावात्मक समन्वय चाहिए, जो राष्ट्रीय दुर्भाग्यवश अनुपस्थित था।

रूमानी संस्कारों से एक ओर तो अतीत की पुनर्स्थापना एवं राष्ट्रीय 'अहं' का उद्बोधन करने की प्रक्रिया चल रही थी, जिसका व्यावहारिक रूप था राष्ट्रीय आन्दोलन। दूसरी ओर 'रूमानी मानववाद' (Romantic Humanism) का भी विकास हो रहा था। इसकी सर्वोच्च व्याख्या रवीन्द्रनाथ के गीतों में हुई। यह कट्टर राष्ट्रीयता के प्रति मूल भारत को विश्वतीर्थ के रूप में देखनेवाली प्रवृत्ति है।

"हे मोर चित्त, पुण्यतीर्थ
जागोरे धीरे—
एई भारतेर महामानबेर सागरतीरे
हेथाय दाँड़ाय दू बाहु बाड़ाये, नमि नर देवतारे
उदार छन्दे परमानन्दे बन्दन करि तंरे।

× × ×

एसो हे आर्य, एसो हे अनार्य, हिन्दू मुसलमान।
एसो एसो आज तुमि इंग्राज, एसो एसो क्रिस्तान।
एसो ब्राह्मण, शुचि करि मन, धरो हात सबाकार
एसो हे पतित, करो अपनीत, सब अपमान-भार
मा'र अभिषेके, एसो एसो त्वरा, मंगलघट हय नि जे भरा
सबार परशे पवित्र करा, तीर्थनीरे
आजि भारतेर महामानबेर सागरतीरे।"

(हे मेरे चित्त, तुम इस पुण्यतीर्थ भारत के महामानव-सागर-तट पर धीरे से जागो। यहाँ मैं खड़ा होकर बाहुओं को बढ़ा कर नरदेवता को प्रणाम करता हूँ। और परमानन्दपूर्वक मुक्त छन्दों में उसकी वन्दना करता हूँ। .... हे आर्य, हे अनार्य, हे हिन्दू मुसलमान, हे क्रिस्तान, हे अंग्रेज तुम सब आओ। ओ ब्राह्मण, तुम अपना मन शुद्ध करके इन सबका हाथ पकड़ो। हे पतित! सब अपमानों को फेंककर (भूलकर) आओ। आओ, माता के अभिषेक के लिए मंगलघट अभी भरा नहीं गया। सब अपने स्पर्श से इस तीर्थ जल को पवित्र करो, आज भारत महामानव-सागर के तट पर।—'गीतांजलि'

इस कविता की एक ओर बंकिम के 'वन्देमातरम्' या गुप्त जी की 'भारती भारती' से, तथा दूसरी ओर हाली के 'मुसद्दस' तथा इक़बाल के 'तराने मिल्ली' से तुलना करने पर दृष्टिकोण का अन्तर स्पष्ट हो जायगा। 'तराना मिल्ली' की कुछ पंक्तियाँ ये हैं:—

"चीन-ओ-अरब हमारा, हिन्दोस्ताँ हमारा
मुस्लिम हैं हम, वतन है सारा जहाँ हमारा

× × ×

तेग़ों के साये में हम पल कर जवाँ हुए थे
ख़ंजर हिलाल का है क़ौमी निशाँ हमारा
मग़रिब की वादियों में गूँजी अज़ाँ हमारी
थमता न था किसीसे सैले रवाँ हमारा

× × ×

ऐ मौजे-दजला! तू भी पहचानती है हमको
अब तक है तेरा दरिया, अफ़सान-ख़्वाँ हमारा
ऐ अर्ज़े-पाक तेरी हुरमत पै कट मरे हम
है ख़ूं तिरी रगों में अब तक रवाँ हमारा
'इक़बाल' का तराना बाँगे-दरा है गोया
होता है जादा-पैमा फिर कारवाँ हमारा।"

इस प्रकार रूमानी संस्कारों के प्रभाव से अतीत के तीन पक्ष, जो ऊपर तीन प्रकार की कविताओं में हैं, हमारे सामने आये। तीनों ने अलग-अलग राष्ट्रीय आन्दोलन को परिनिष्ठित किया। स्वतंत्रता में प्रथम और तृतीय पक्ष को तिरस्कार मिला है और केवल 'रूमानी मानववाद' स्वीकृत किया गया है। यह पक्ष राष्ट्रीय आन्दोलन की नरम पंथी राजनीति का रहा है, जो तिलक-गाँधी एवं लाजपतराय के द्वारा अस्वीकार कर दी गयी थी और १९४७ तक मौन बैठी रही।

(३)

भारतीय साहित्य की रूमानी वृत्ति की दूसरी महत्त्व-पूर्ण उपलब्धि है अन्तर्मुखी चिन्तन। व्यक्तिवाद सदैव अपनी ओर उन्मुख होकर अपनी सत्ता खोजता है। इस व्यक्ति का अपनी अस्मिता के साक्षात्कार का प्रयत्न इसके लिए पुराना अभ्यास है। इस दिशा में भारत में जो प्रयोग उपनिषद् युग के बाद आज तक हुए अन्य देशों में नहीं हुए। दर्शन के क्षेत्र में इस का श्रेष्ठतम आधुनिक विकास है अरविन्द-दर्शन, काव्य के क्षेत्र में श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति है: 'गीतांजलि' एवं 'कामायनी'। कामायनी का ठीक से मूल्यांकन भाषागत-अनभिज्ञता के कारण अखिल भारतीय पैमाने पर नहीं हुआ है। पर जिन्हें इसका परिचय प्राप्त है, वे इसे स्वीकार करते हैं। उदाहरण के लिए दक्षिण प्रसिद्ध समीक्षक डॉ० के० आर० श्रीनिवास आयंगर। (देखिए उनका 'द ऐडवेंचर्स ऑफ क्रिटिसिज्म)।* रवीन्द्रनाथ की प्रतिभा गीतात्मक थी। "सम्भवत:" वे महाकाव्य नहीं लिख सकते थे। उन्होंने एक कविता "अमि नामिबो महाकाव्य संचरने छिलो मने" में ऐसा भाव व्यक्त किया है। महाकाव्य लिखने के लिए वर्षों तक मस्तिष्क को एकरस उदात्त भावभूमि पर कल्पना और दर्शन की रस्सियों से खींचकर उर्ध्वमुखी किये रहना एक घोर हठयोग है। अरविन्द ने एक महाकाव्य 'सावित्री' लिखा है। परन्तु इसकी भाषा अंग्रेजी है, और किसी भी अनुवाद के द्वारा इसका मूल भावपक्ष मन पर आरोपित करना कठिन है। दूसरी बात है इसका दार्शनिक उलझाव साधारणीकृत नहीं हो पाया है। हो सकता है कि यह माध्यम-दोष हो, पर इन पंक्तियों के लेखक को तो ऐसा ही लगा। 'कामायनी' में एक सामाजिक उत्तरदायित्व का भी बोध होता है जो उसके आत्म-प्रत्यभिज्ञान से समन्वित है। कवि ने इस उत्तरदायित्व को आत्मबोध के बराबर महत्त्व दिया है। कवि का समाजदर्शन 'कामायनी' को व्यक्तिपरक काव्य से ऊपर उठा देता है। टी० एस० इलियट के 'वेस्टलैण्ड' में यह सामाजिक उत्तरदायित्व स्पष्ट है, यद्यपि उसकी शैली कामायनी से बिल्कुल अलग है। अरविन्द ने भविष्य की कविता की जैसी कल्पना 'आत्मा का काव्य' कहकर की है वह उनके गीतों में और बाद के कवियों में जैसे सुमित्रानन्दन पन्त (अतिमा, चिदम्बरा), दिनकर (उर्वशी) एवं श्री बेन्द्रे और श्री गोकक की कन्नड़ कविताएँ आदि में मिलती हैं। अरविन्द का सर्वाधिक प्रभाव हिन्दी काव्य पर ही पड़ा है।

(४)

रूमानी संस्कार की एक अन्य महत्त्वपूर्ण वृत्ति है भावनिष्ठ सौन्दर्यबोध। रूमानी वृत्ति भावनिष्ठ (सबजे-

---

*तेलगू भाषा में 'कामायनी' पर एक समीक्षा भी प्रकाशित हुई है। (देखिये 'कन्टेम्परेरी इण्डियन लिटरेचर, पृष्ठ २९७)।

क्टिव) अधिक और वस्तुनिष्ठ (आबजेक्टिव) कम होती है। नारी, प्रकृति आदि रूप और शोभा के उपकरणों को अधिक भावनिष्ठ देखने का प्रयत्न प्रत्येक भाषा के साहित्य में हुआ। बंगला में यह प्रवृत्ति बिहारीलाल चक्रवर्ती से प्रारम्भ होती है। रवीन्द्रनाथ सौन्दर्यबोध के अद्वितीय कवि हैं। उनकी तो कोई बात ही नहीं। सत्येन्द्रनाथ दत्त, कालिदास राय, कुमुदरंजन मल्लिक आदि उनका अनुधावन करनेवाली प्रतिभाओं में भी यह पुष्ट रूप से विद्यमान है। हिन्दी में 'छायावाद' के चार कवि, प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी इस परम्परा के वाहक हैं। भक्तियुग के बाद छायावाद ने ही हिन्दी साहित्य में सौन्दर्यबोध को मौलिक रूप एवं नया संस्कार प्रदान किया। यह संस्कार भावनिष्ठ होने के कारण रहस्यवादी सा ज्ञात होता है। गुजराती में उमाशंकर जोशी, मराठी में भास्कर रामचन्द्र ताम्बे, असमिया में रघुनाथ चौधरी, उड़िया में राधानाथ राय एवं मधुसूदन इस नये सौन्दर्यबोध के प्रमुख कवि हैं जिन्होंने शोभा के रंगों और विविध चित्रों को गीतात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की। गीतात्मकता एवं शब्द-संगीत इस सौन्दर्यबोध की खास बारीकी थी। प्रत्येक शब्द के सीधे अर्थ के अतिरिक्त उसका एक 'भावबोध' होता है जो उसके सूखे अर्थ से अलग है। इस भावबोध की अनेक परतें हैं। इन कवियों ने बड़ी सूक्ष्मता से इस भावबोध की विविध परतों को परखा और उनकी छिपी शक्ति को खोजने की चेष्टा की। शब्द अपने स्थूल अर्थ को छोड़कर अमूर्त रसबोध की व्यंजना करने लगे।

कुछ कालोपरान्त जब इस भावनिष्ठ सौन्दर्यबोध की परिपाटी सी बन गयी तो इसकी भावनिष्ठता एवं परिपाटी से विरोध के रूप में 'रूमानी यथार्थवाद' (Romantic Realism) का पदार्पण हुआ। बँगला का 'सबुज-पत्र'-दल (कल्लोलयुग) एवं उड़िया का 'युग-वीण' दल तथा मराठी का 'रविकिरण मण्डल' इस दिशा के नये प्रयत्नों की चेष्टा में रत हुए। निराला और पन्त की बाद की कविताओं में यह प्रभाव स्पष्ट है। यह रूमानी यथार्थवाद, प्रगतिशील यथार्थवाद से अलग है। यह सौन्दर्यबोध की दिशा है सामाजिक चिन्तन की नहीं, यद्यपि इसके कवि (यथा पंत और ब्रेन्द्रे या मर्ढेकर) उक्त दिशा की ओर उन्मुख हुए। रवीन्द्रनाथ की बाद की रचनाएँ, यथा 'मध्याह्न', 'सबुज पत्र' आदि इसकी दिशा का संकेत पहले ही कर चुकी थीं। वास्तव में यह कोई नयी वस्तु [illegible] पुराना सौन्दर्यबोध ही वस्तुनिष्ठ (आबजेक्टिव) [illegible] प्रगाढ़ हो गया है। उसकी रहस्यमयता कम हो गयी [illegible]

दक्षिण के इस सौन्दर्यबोध के कवियों में [illegible] (तमिल), वल्लतोल (मलयालम), ब्रेन्द्रे, पुट्टप्पा, गोकक (कन्नड), रायप्रोलु सुब्बाराव (तेलगू) मुख्य [illegible]

(५)

रूमानी वृत्ति की एक अति परिचित दिशा है 'भावु-कता' (सेन्टीमेण्टलिज़्म) जिसमें जीवन को न सामाजिक यथार्थ के कटु सत्यों के रूप में देखते हैं न उसे सौन्दर्यबोध के दार्शनिक स्तर पर देखते हैं। दोनों दृष्टिक्रम की बौद्धिक स्थितियाँ हैं। इन दोनों [illegible] बुद्धिवाद को त्यागकर जीवन को भावों, मनोवेगों के माध्यम से देखना ही भावुकता है। यह रूमानी कथा-साहित्य [illegible] पायी जाती है। समस्त रूमानी कथा-साहित्य, [illegible] उसका परिवेश राष्ट्रीय आन्दोलन हो (जैसे 'घरे बाइरे' रवीन्द्रनाथ) या सामाजिक न्याय-अन्याय (शरत् [illegible] उपन्यास) या व्यक्तिगत जीवन (जैनेन्द्र), इसी भावुकता से व्याप्त है। उपन्यास की शैली, भाषा एवं उसकी [illegible] उपलब्धि सब कुछ भावुकता पर ही केन्द्रित रहती [illegible] कभी-कभी तो भावुकता पीड़ा-'रस' एवं व्यथा-सुख (सैडिज़्म और मस्कोविज्म) में परिणत हो जाती है। जैनेन्द्र [illegible] 'त्यागपत्र' इसका उदाहरण है। जैनेन्द्र अपने विचारों एवं प्रवचनों में गांधीवादी हैं। इसीसे जैनेन्द्र को [illegible] गांधीवादी कथाकार कह बैठते हैं। पर यह दृष्टि [illegible] है। गांधीवाद की स्पष्टता, सरलता एवं दृढ़ता जैने[illegible] के पात्रों में नहीं मिलती। जैनेन्द्र के उपन्यासों की [illegible] मात्र उपलब्धि है अति रूमानी भावुकता और [illegible] करुणा। गांधीवाद की करुणा बड़ी प्रखर, सक्रिय एवं [illegible] कारी है। वह 'कर्म' और 'अनासक्ति' के दर्शन से बँधी [illegible] उसके साथ जैनेन्द्र की निरीह करुणा को संलग्न करना [illegible] नहीं है। जैनेन्द्र में अनजाने रूप में मसीही करुणा, [illegible] प्रतीक है 'मेरी मैग्डेलीना', बड़े स्पष्ट रूप में आयी [illegible] यह जैनेन्द्र की महानता है कि उन्होंने जाने-अनजाने [illegible] को मसीही 'क्रूसिफिक्शन'-भाव के सन्दर्भ में अनुभूत [illegible] है। शरदचन्द्र का जीवन-दर्शन भिन्न है। वे आदर्श[illegible] ऊपरी नीरस खोल के नीचे शाश्वत प्रेम एवं आदर्श [illegible] को ढूँढ़ने की चेष्टा करते हैं। उनकी दृष्टि बहुत कुछ [illegible]

१९६४

भावधारा से प्रभावित है, और उनका परिवेश भी अधिक सामाजिक यथार्थ से संलग्न है, यद्यपि दृष्टिकोण मूलतः रोमांटिक ही रहता है। जिस नारीपुरुष-शाश्वत-प्रेम के आदर्श को बंकिम 'विषवृक्ष' में प्रारम्भ करते हैं उसकी चरम परिणति शरद में होती है। दोनों का आधार है हिन्दू-जीवन-दृष्टि का स्वच्छ रूप।

(६)

रूमानी वृत्ति की एक विशेष अभिव्यक्ति मिलती है 'अहं' की घोर उपासना में। यही 'अहं' उसके विद्रोह एवं विस्फोट-प्रधान स्वरों का जनक है। उत्तर भारत के कवियों में यह निराला, नज़रुल इसलाम और इक़बाल में विशेषरूप में मिलती है। बँगला साहित्य में नज़रुल का 'विद्रोही' इस अहं के विस्फोट की प्रतिनिधि रचना है, इसके पीछे बंगाल की क्रान्तिकारी राजनीति और बोल्शेविक जीवनदर्शन है। समस्त कविता आदि से अन्त तक उन्मुक्त विद्रोह की घोषणा है।

"बलवीर—
बल उन्नत मम शिर
शिर निहारि आमारि नत शिर एई शिखर हिमाद्रिर
बलवीर
महाविश्वेर आकाशमहाकाश फाड़ि,
चन्द्र सूर्य ग्रह तारा आड़ि
भूलोक द्युलोक गोलोक भेदिया
खोदार आसन 'आरस' भेदिया
उठिया जे चिरविस्मय आमि विश्व विधाभीर
मम ललाटजले रुद्रभगवान ज्वले राज राजटीका दीप्त जय"

(भेदिया = छेद कर, खोदार — खुदा का)

नज़रुल राष्ट्रीयतावादी कवि हैं। उन्होंने मुस्लिम जागरण के लिए "चल चल रे मुसलमान" एवं 'कमालपाशा' आदि गीत सम्प्रदाय-निरपेक्ष दृष्टि से लिखे, यद्यपि इन कविताओं का प्रयोग पूर्वी पाकिस्तान में '४५,'४६ में दूसरे उद्देश्य के लिए हुआ। मुस्लिम जातीयता के विशुद्ध कवि हैं सर इक़बाल जिनका जिक्र किया जा चुका है। जहाँ तक अहं-जीवनदर्शन का प्रश्न है, इकबाल उसके दो रूपों से प्रभावित हैं। एक तो सूफी रूप है जिसमें 'आत्मा' या 'अहं' के भीतर डूबकर अनन्त शक्तियों को हम प्राप्त कर सकते हैं। "खुदी में डूबकर ज़र्बे-कलीम पैदा कर" उन्हींका कथन है। अहं असीम शक्तियों का स्रोत है, इसकी आत्मानुभूति उनकी कविताओं में प्रारम्भ से अन्त तक मिलती है। सूफीभाव की अभिव्यक्ति का उदाहरण इन पंक्तियों से दिया जा सकता है।

"काँपता है दिल तेरा अन्देश-ए तूफाँ से क्या
नाखुदा तू, बहर तू, कश्ती भी तू, साहिल भी तू
देख आकर कूच-ए-चाके गरीबाँ में कभी
कैस तू, लैला भी तू, सहरा भी तू, महफिल भी तू
वाये नादानी कि तू, मौहताजे-साक़ी हो गया,
मैं भी तू, मीना भी तू, साक़ी भी तू, महफिल भी तू
बेख़बर! तू जौहरे-आइ ए-अय्याम है
तू ज़माने में ख़ुदा का आख़िरी पैग़ाम है।"

'अहं' की यह अनुभूति इकबाल को नीत्शे की ओर ले जाती है। वास्तव में वे नीत्शे से अत्यन्त प्रभावित थे। इसका फल यह होता है कि उनका चिन्तन अहं से 'कर्म-वाद' की ओर न जाकर विध्वंस-प्रधान हो जाता है। इसी विध्वंस-प्रधान दृष्टि ने उनके 'अहं' को इतना उन्मुक्त किया कि सूफीवाद भूलकर वे पाकिस्तान की कल्पना कर बैठे। (पाकिस्तान का प्रस्ताव लीग ने उन्हींके समर्थन एवं उन्हींकी अध्यक्षता में पास किया था।) उनकी बाद की कविताओं में मानववाद की पराजय ही पराजय है। फिर भी उनकी प्रतिभा और महानता के बारे में दो रायें नहीं हो सकतीं। वैसी सशक्त भाषा हिन्दी में निराला-जी ही लिख पाये हैं। निराला के अहं के पीछे उनका वेदान्त था और उन्होंने विवेकानन्द से प्रेरणा लेकर कर्म-वाद तथा मानववादी क्रान्ति का दर्शन उपस्थित किया। उनकी 'बादलराग' एवं 'जागो हे एक बार' कविताएँ इसका प्रमाण हैं। इकबाल और निराला में वही भेद है जो नीत्शे और विवेकानन्द में है। नीत्शे का सूपरमैन (अतिमानव) 'बायरन'-जैसा व्यक्तित्व है जो विध्वंस की उपासना करता है और वेदान्त का 'सूपरमैन'* असीम शक्तियोंवाला स्थितप्रज्ञ पुरुष है। नीत्शे के 'अहं' वाद की राजनीतिक अभिव्यक्ति तो इकबाल द्वारा विभाजन के सिद्धान्त में हुई, परन्तु इसकी प्रतिक्रिया में हिन्दू 'अहं' का विस्फोट भारतीय ललित साहित्य में अभिव्यक्त नहीं हुआ। (यद्यपि इसकी उपस्थिति हिन्दू जीवन में विद्यमान रही।) वेदान्त की तराश-खराश के बाद अहं का विकारग्रस्त विध्वंसक तत्त्व नष्ट हो जाता है। इसीसे हिन्दुओं को कोई ललकार कर नहीं कह सका—"तू जमाने में खुदा का आखिरी पैग़ाम है।" वास्तव में इक-बाल के भीतर एक अन्तर्विरोध चलता है। सूफीवाद और साम्प्रदायिकता दोनों अन्त तक आपस में टकराते रहते हैं। 'निराला' में यह अन्तर्विरोध नहीं।

"जागो फिर एक बार!
मुक्त हो सदा ही तुम
बाधा-विहीन-बन्ध छन्द ज्यों
× × ×
है नश्वर यह दीनभाव, कायरता, कामपरता,
ब्रह्म हो तुम,
पद रज भर भी है नहीं पूरा यह विश्वभार
जागो फिर एक बार।"

---

*वेदान्ती 'सूपरमैन' की थ्योरी विवेकानन्द ने नहीं बल्कि अरविन्द ने अपनी 'सूपरमैन' नामक पुस्तक में प्रस्तुत की है।

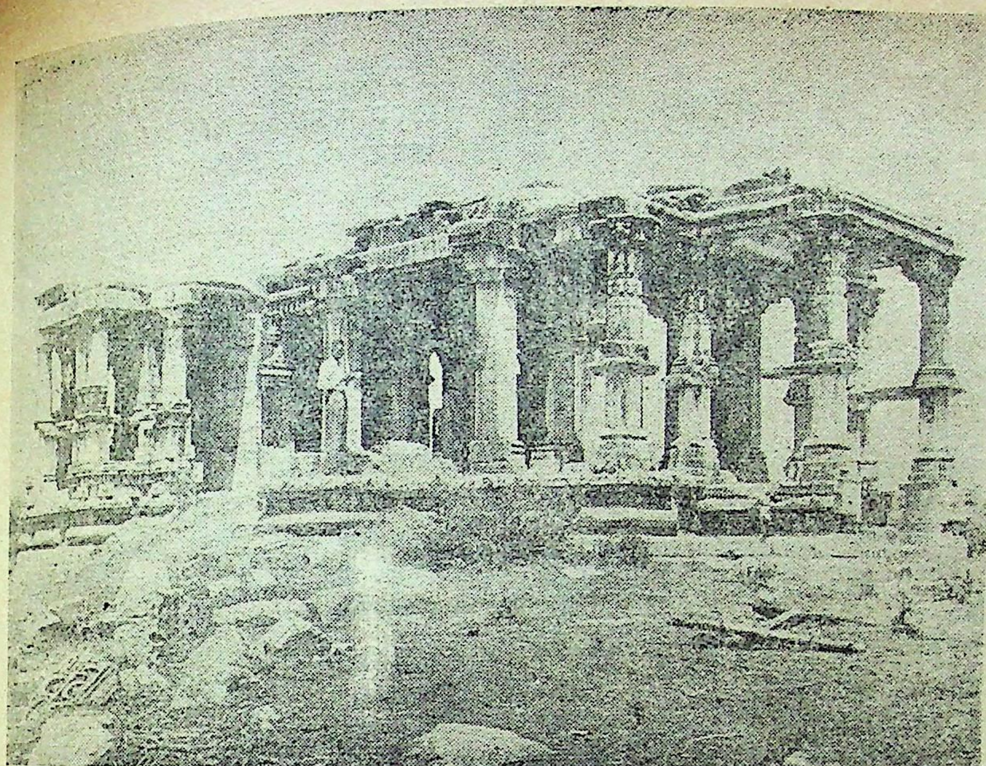
(७)

ऊपर रूमानी साहित्य के मुख्य आयामों का परिचय दिया गया है। हमारा उद्देश्य समस्त भारतीय रूमानी साहित्य का सर्वेक्षण नहीं। अतः सभी भाषाओं और सारे साहित्यकारों का उल्लेख आवश्यक नहीं। जिन मुख्य प्रवृत्तियों की चर्चा ऊपर की गयी है वे कम या वेश सारी भाषाओं के साहित्यों में विद्यमान हैं। वास्तव में भारतीय संस्कृति एवं समाज की एकता का इससे अच्छा प्रमाण नहीं हो सकता कि विविध भाषाओं में लिखे गये साहित्य (अँगरेजी को हम भारतीय भाषा नहीं मानते हैं और न ऐंग्लो-इंडियन साहित्य को भारतीय साहित्य) के अन्दर एकरूपता पायी जाती है। सबका उत्तराधिकार एक है, और सबकी वर्त्तमान उपलब्धि एक है। हाँ कुछ प्रादेशिक विशेषताओं के कारण और कुछ अन्य कारणों से किसीमें कोई शाखा उन्नत है तो किसीमें कोई शाखा। परन्तु सब भाषाओं में साहित्यिक एकरूपता एक सर्वमान्य तथ्य है। उदाहरण के लिए, बँगला का आधुनिक गीतकाव्य सर्वाधिक सम्पन्न है तो हिन्दी के पास आधुनिक युग में सर्वाधिक महाकाव्य लिखे गये हैं और गुजराती के ऐतिहासिक रोमान्स अद्वितीय हैं। यूरोप की आधुनिक शैली प्रधान अभिव्यक्तियों एवं "आधुनिकतावादी" आध्यात्म की सफल व्यंजना में बँगला आगे है तो अरविन्द-दर्शन और सर्वोदय विचारतंत्र का सर्वश्रेष्ठ संवाहक कम से कम पूर्वी और उत्तर भारत में हिन्दी है। दक्षिण की भाषाओं के बारे में भी यही बात है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रादेशिक गुणों के कारण किसी भाषा में कोई शाखा प्राधान्य पा जाती है, परन्तु सभी भाषा के आधुनिक साहित्य में सभी शाखाएँ विद्यमान हैं। प्रारम्भ में पथ-प्रदर्शन का श्रेय बँगला को ही है। यह भी सत्य है।

भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन इसी रूमानी वृत्ति का राजनीतिक प्रस्फुटन है जैसे यूरोप के रूमानी साहित्य का जनक और प्रतिफल दोनों है फ्रांस की राजक्रान्ति। बाद में गांधीवाद के प्रवेश के कारण अतीत की पुनर्स्थापना तो 'रामराज्य' के रूप में मान्य हो गयी परन्तु शेष आयामों को आन्दोलन ने धीरे-धीरे त्याग दिया और सामाजिक यथार्थवाद के द्वारा इस दार्शनिक-शून्यता की पूर्त्ति की। फिर भी आन्दोलन के समूचे दौरान में यह रूमानी वृत्ति मरी नहीं। सन् ४२ का आन्दोलन गान्धीवादी क्रान्ति के अंतिम चरण में हुआ। वास्तव में बिना कल्पनाशीलता और रूमानीपन के किसी भी आदर्श के लिए, चाहे ऊपर से वह कितना भी 'ग़ैर-रूमानी' क्यों न हो, मर मिटने की आकांक्षा पैदा हो ही नहीं पाती। भाव-संवेग के उत्प्रेरण के बिना क्रियाशीलता पैदा हो ही नहीं सकती, और भाव-संवेग ठण्डी कोरी तर्कबुद्धि से नहीं रूमानी-उष्मा से उठता है! रूमानी सृजन और क्रान्ति दोनों ही सहगामी है।

फिर भी यथार्थवाद, जो क्रान्तिकाल में रूमानी रंग पकड़ लेता है, आर्थिक विषमता की चेतना है। उसकी चरम परिणति राष्ट्रीयता में नहीं अन्तर्राष्ट्रीयता में होती है। एक तरह से यह राष्ट्रीयता का प्रतिकार है। यथार्थवाद की यूटोपिया में 'व्यक्ति' का स्थान क्षुद्र है। यथार्थवाद की धारणा है कि 'व्यक्ति' की दुष्टता के कारण ही वैषम्य और विकृति पैदा होती है। परन्तु साहित्य में सूची-भेद्य व्यूह नहीं बनता। साहित्य यदि 'पार्टीप्रोग्राम' की प्रचार पुस्तिका से आगे की वस्तु है तो उसमें इतना वायु-रुद्ध व्यूह नहीं बन सकता कि रूमानीपन और व्यक्ति यथार्थवादी साहित्य में प्रवेश ही न कर सकें। यथार्थ का सूची-भेद्य व्यूह जीवन की घोर अस्वीकृति होगा। इस अस्वीकृति को साहित्य सहन नहीं कर सकता। इसीसे कटु से कटु यथार्थवादी अनुभूति में रूमानीपन और व्यक्तिवादी के बीज मिल ही जाते हैं।

१९वीं शती से लेकर २०वीं शती में सन् ३० तक रूमानी संस्कारों का प्राधान्य रहा, जीवन और साहित्य दोनों में। परन्तु यह रूमानीपन सोद्देश्य है। रवीन्द्रनाथ, मैथिलीशरण, भारती, छायावादी कवि, क० मा० मुंशी सभी की रूमानी दृष्टि के पीछे रचनात्मक दृष्टिकोण है। इसकी कल्पना और इसका रस-बोध तथागत अनुभूति को अस्वीकृत नहीं करते। परन्तु सन् ३० के बाद "नयी संवेदना" और "आधुनिकता" के नाम पर निर्जीव रूमानीपन आया, जो नवीन सेक्स मनोविज्ञान एवं विकृति-प्रधान चिन्तन पर आश्रित था। यह नया रूमानीपन पुराने रूमानी संस्कार से उसी भाँति भिन्न है जिस प्रकार गांधीजी का 'राष्ट्रीय मानववाद' श्री मानवेन्द्रनाथ राय के 'आमूल परिवर्त्तनवादी मानववाद' (Radical Humanism) से। यह निरुद्देश्य एवं तथ्यहीन रूमानी वृत्ति राष्ट्रीय अस्मिता पर भार बन गयी। यह अब भी उसी बिखरी हालत में है, यद्यपि काल के प्रभाव से विकृति और 'यौन-अतीन्द्रियता' (परस्पर विरोधी चेतना-योग) को धीरे-धीरे त्याग कर तथ्य का मार्ग पकड़ रही है। इसकी एक महत्त्वपूर्ण देन है भाषा की भावप्रवणता का वर्द्धन। पर इसके पास राष्ट्रीय अस्मिता को देने के लिए कुछ भी नहीं है। यह रचनात्मक देन की दृष्टि से अति दरिद्र है। इसकी दरिद्रता, दिवालियापन तब तक नहीं जायगा जब तक वह 'यौन अतीन्द्रियता' और 'बीटनिक' कल्चर तथा नये वैचारिक फैशनों, अस्तित्ववाद, अति यथार्थवाद आदि का परित्याग करके देश की मिट्टी से प्राण-रस न प्राप्त करे। इसे अरविन्द और विनोबा की ओर मुड़ना होगा। पश्चिम के केंचुओं से अरविन्द की कुण्डलिनी निश्चय ही अधिक तेजस्वी और अधिक जानदार है। इसी मार्ग से रूमानी वृत्ति के आधुनिक नैतिक संकट का अन्त हो सकता है।



वर्मान (आबू) में एक प्राचीन सूर्यमन्दिर के अवशेष

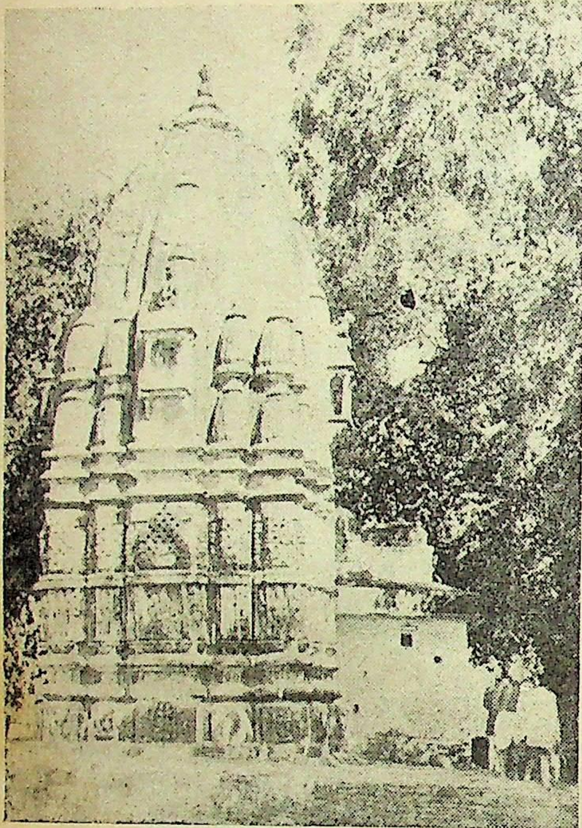
राजस्थान में सूर्योपासना की परम्परा

डा० सत्यप्रकाश

प्रायः जनसाधारण की यह धारणा रही है कि राजस्थान में सूर्योपासना की परम्परा सूर्यवंशीय राजपूतों के राजस्थान में स्थान पाने के बाद से मध्ययुग से है। पर राजस्थान में सूर्यमन्दिरों की बहुत संख्या में यत्र-तत्र स्थिति इस बात का प्रमाण है कि इस प्रदेश में सूर्य के उपासक अति प्राचीन काल से रहे हैं और यह परम्परा लगभग आठ सौ वर्षों से अधिक समय से चली आ रही है। शिलालेखों में भी उनका उल्लेख बहुत प्राचीन काल से है।

भारतवर्ष में सूर्य के मन्दिर अधिक नहीं मिलते हैं। सूर्य की प्रतिमायें भी राजस्थान में गुण व परिणाम की दृष्टि से अधिक मिली हैं तथा मिल रही हैं। इनका यहाँ निर्माण ८वीं शताब्दी से प्रारम्भ हो जाता है। शिलालेखों से भी सूर्योपासना की इस क्षेत्र में पुष्टि इसी युग में होती है। सम्पूर्ण भारत के विभिन्न क्षेत्रों की सामग्री पर दृष्टिपात करने से भी हमें ज्ञात होता है कि सूर्योपासना हमारे देश में भी ८वीं शताब्दी से पूर्व नहीं हुई। काठियावाड़ का स्थित सूर्य मन्दिर विद्वानों की दृष्टि में ८वीं शताब्दी का ही माना जाता है। यह भी प्राचीनतम सूर्यमन्दिरों में है। कश्मीर का मार्तण्ड मन्दिर, गुजरात का मुडहरा सूर्य मन्दिर व उड़ीसा का कोणार्क सूर्य मन्दिर भी क्रमशः ९वीं, ११वीं तथा १३वीं शताब्दी के हैं। आश्चर्य की बात है कि सूर्य की उपासना का उल्लेख वेदों में दिये गये मन्त्रों के आधार पर होने पर भी हमारे देश में तत्सम्बन्धी प्रतिमाएँ तथा मन्दिर इतनी देर में बने और उनका उल्लेख हमारे शिलालेखों में भी बहुत देर में हुआ। इस विषय पर अधिक खोज व मनन की आवश्यकता है। सम्भव है कालान्तर में हमें कोई सामग्री अब तक प्राप्त से प्राचीन उत्खनन एवं सर्वेक्षण के आधार पर मिले और हम अपनी वैदिक परम्परा की पुष्टि कर सकें। शिलालेखों के आधार पर हमें पता चलता है कि चण्डमहासेन चहमाण ने धवलपुरी (वर्तमान धौलपुर) के गहन वन में सूर्यमन्दिर बनवाया था। यह हमें उक्त सम्राट् के विक्रम संवत् ८९८ के शिलालेख से पता चलता है। नवीं शताब्दी का यह शिलालेख सूर्य की उपासना हेतु मन्दिरनिर्माण का लिखित प्रमाण उपस्थित करता है।

इसी प्रकार के अन्य उल्लेख १०वीं शताब्दी के कई शिलालेखों में हैं। इन शिलालेखों में से एक के आधार पर चौहान महासामन्त इन्द्रराज ने प्रतापगढ़ से सात मील दूर पर इन्द्रादित्य नामक सूर्यमन्दिर बनवाया। चौहान-अल्हण और कीर्तिपाल का शिवोपासक होने के साथ-साथ सूर्योपासक होना भी हमें शिलालेखों से ज्ञात होता है।



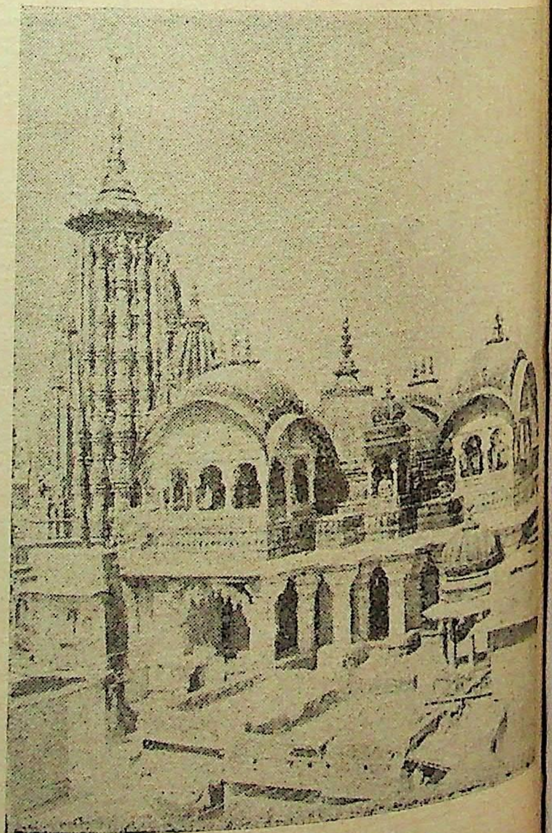
बूढ़ादीत (कोटा) का प्राचीन सूर्यमंदिर

सोनगरा चौहानों ने भी भिन्नपाल के जगामदेरा स्थित सूर्यमन्दिर को बहुत सा दान दिया था। इस कथन से इस बात की पुष्टि होती है कि सूर्योपासना उस समय होती थी और चौहान सूर्योपासक थे। उनकी वह परम्परा अब तक इस प्रदेश में चली आ रही है।

राजस्थान में तथा उसके पास के प्रान्त गुजरात में सूर्यमन्दिरों की संख्या अब तक अधिक है। इसका क्या कारण है, यह कहा नहीं जा सकता। हम यहाँ संक्षेप में राजस्थान के सूर्यमन्दिरों पर दृष्टि डालेंगे जो कि यहाँ पर अवशिष्ट दशा में भी हमारे प्राचीन गौरव की झाँकी आज तक दिखा रहे हैं। ये मन्दिर पूर्व मध्य युग से लेकर १८वीं शताब्दी तक के हैं। ये मन्दिर एक ही दिशा में न होकर सब दिशाओं में बिखरे पड़े हैं। एक ओर जहाँ मारवाड के ओसियाँ, बमणेरा, मीनमाल, राणकपुर, पाली क्षेत्र में सूर्यमन्दिर अब तक विद्यमान है, वहाँ दूसरी ओर निकटवर्ती सिरोही प्रदेश में भी वर्माण, बसन्तगढ़ और नितोरा के भी सूर्यमन्दिर पूर्व मध्य एवं मध्ययुग की संस्कृति के परिचायक हैं। केवल बीकानेर एवं जैसलमेर क्षेत्र को छोड़कर अन्य क्षेत्रों में सब कहीं सूर्योपासना के कोई न कोई चिन्ह प्राप्त होते हैं। मेवाड़ के आहाड़, टूस, दरौली, नान्देसमा तथा चित्तौड़गढ़ का वर्तमान कालिका मन्दिर (जो किसी समय सूर्यमन्दिर था) उस क्षेत्र में प्राचीन काल में सूर्योपासना की स्थिति पर प्रकाश डालते हैं। निकटवर्ती प्रदेश बाँसवाडा स्थित तलवाडा और वहींके अन्य स्थानों पर प्राप्त मन्दिर भी उस क्षेत्र में सूर्योपासना के प्रचार की ओर इंगित करते हैं। हाड़ौती क्षेत्र में झालावाड़ का सूर्य मन्दिर तथा कोटा का बूढावीत का मन्दिर उस क्षेत्र के वर्तमान निवासियों के पूर्वजों द्वारा सूर्य के प्रति अटूट श्रद्धा के परिचायक हैं।

यद्यपि इस क्षेत्र के संग्रहालयों में सूर्य की प्रतिमाएँ मिलती हैं तथापि सूर्य के मन्दिर अधिक नहीं मिलते हैं। इस दिशा में अधिक खोज की आवश्यकता है। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि इस हाड़ौती प्रदेश के पार्श्व क्षेत्र मालवा के दशपुर में लाट के बुनकरों द्वारा विक्रम संवत् ४९३ में सूर्यमन्दिर बनवाने का उल्लेख एक शिलालेख में मिलता है। इतने प्राचीन काल में सूर्योपासना का उल्लेख मिलने पर भी इतने प्राचीन मन्दिरों एवं इतनी प्राचीन मूर्तियों का मिलना भी आश्चर्य की बात है।

पूर्वी राजस्थान में आमेर का ९वीं शताब्दी का सूर्य-मन्दिर तथा सतवास का पूर्व-मध्ययुगीय मन्दिर इस क्षेत्र में आज से १००० वर्ष की सूर्योपासना की पुष्टि करते



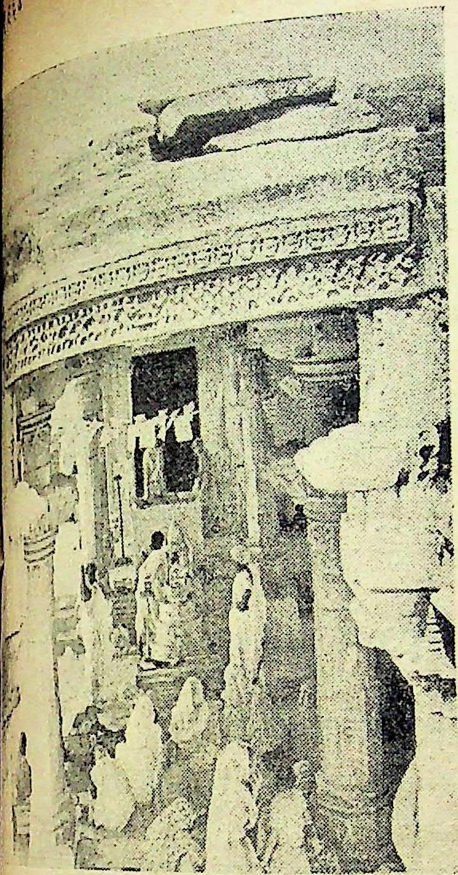
झालरापाटन का सूर्यमंदिर



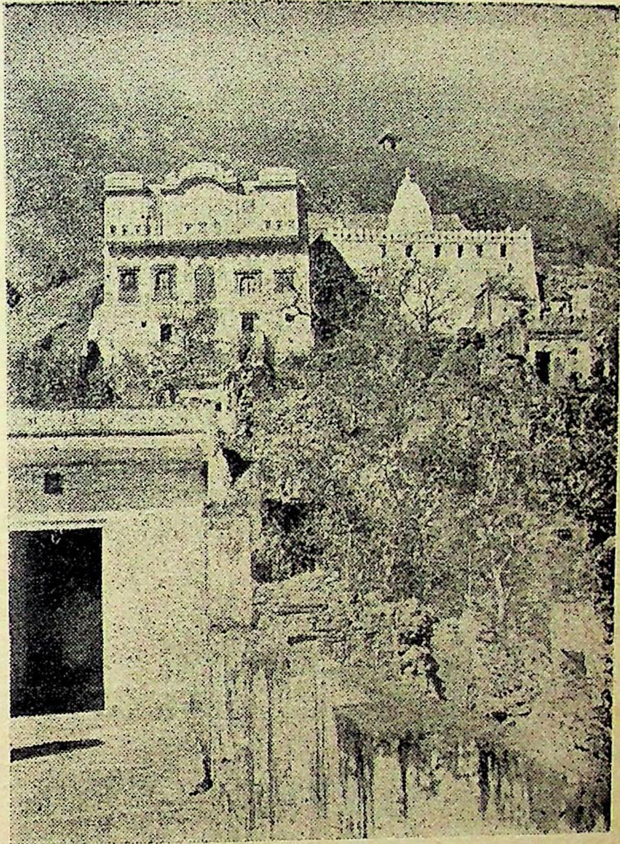
रागिनी टोडी

राजस्थानी शैली]

[राजस्थान पुरातत्त्व संग्रहालय के सौजन्य से।



...नांग (आबू) के सूर्यमंदिर का भीतरी भाग

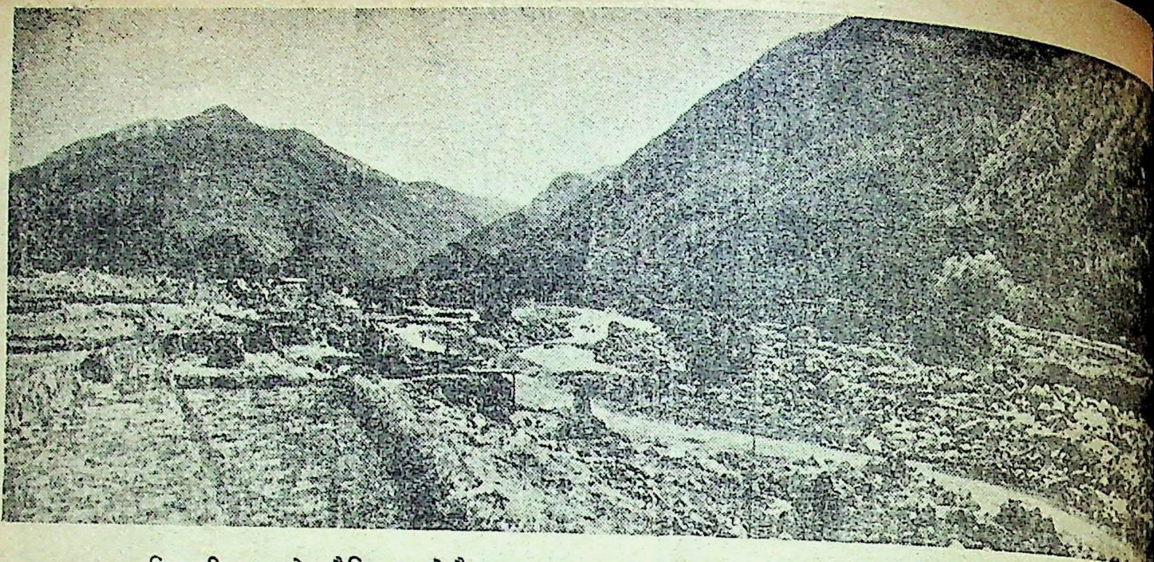


आमेर (जयपुर) का सूर्यमंदिर

...उपासना अठारहवीं शताब्दी में भी तीव्र गति से ...में चालू रही। इसका प्रमाण हमें गलता (जयपुर ...स्थित) सूर्यमन्दिर, किशनगढ़ के नवग्रह तथा ...के सूर्यमन्दिर से मिलता है। इन मन्दिरों का ...११वीं शताब्दी के आसपास हुआ। इसी युग में ...के गोल नामक स्थान पर भी सूर्यमन्दिर विक्रम ...११८१ में बनवाया गया। प्राप्त मूर्तियों में, जो या ...संग्रहालयों में स्थान पा रही हैं या मन्दिरों में हैं, ...रथ के घोड़े देखने को मिलते हैं या सूर्य की प्रतिमा ...हुए मिलती है। अगवानी से प्राप्त सूर्य की प्रतिमा, ...स्थित पुरातत्त्व संग्रहालय में अब भी सुरक्षित ...शताब्दी की कला की अच्छी परिचायिका है। ...पूर्व-मध्ययुगीय एवं मध्ययुगीय प्रतिमाएँ कोटा, ...आदि संग्रहालयों में प्रदर्शित हैं। सूर्य की प्रति-...मन्दिरों से भी प्राप्त हुई हैं। ऐसी मूर्तियाँ प्रायः सभी क्षेत्रों से प्राप्त हुई हैं। सूर्यमन्दिरों की प्राप्ति कई क्षेत्रों में न होते हुए भी सूर्यमूर्तियाँ भरतपुर, उदयपुर, अलवर क्षेत्र में सूर्येत्तर मन्दिरों में अन्य देवताओं के साथ देखने को मिलती हैं।

भारतवर्ष में पूर्व के उड़ीसा स्थित कोणार्क से लेकर पश्चिम में गुजरात के गोपमन्दिर एवं मुडहरा के मन्दिर सूर्योपासना के विस्तृत क्षेत्र का आभास देते हैं। सूर्यमंदिरों की ये कड़ियाँ ऐसी जुड़ती चली जाती हैं कि राजस्थान में यह श्रृंखला एक दर्जन से अधिक मन्दिरों की हो जाती है। इसके आधार पर ही हम राजस्थान में सूर्योपासना का कालक्रम से इतिहास जान पाते हैं। अतः यह कहना तर्कयुक्त होगा कि राजस्थान में सूर्योपासना की परम्परा पूर्व-मध्य-युग से लेकर ११वीं शताब्दी तक अबाध गति से चलती रही और उसका निर्वाह कई घरानों में अब भी हो रहा है।





त्रिशूली हाइड्रोइलैक्ट्रिक प्रोजैक्ट—उस स्थान का दृश्य जहाँ पर यह योजना भारत सरकार की सहायता से बनायी जा रही है।

नैपाल राज्य

भौगोलिक विवरण और सैनिक स्थिति

मेजर सीताराम जौहरी (अवकाश प्राप्त)

"अब नैपाल क्या करेगा? चीन का साथ देगा अथवा हमारा?" प्रत्येक व्यक्ति की जीभ पर यही प्रश्न था। राजा महेन्द्र भारत सरकार से वार्तालाप करने के बाद अपने देश लौट चुके थे। "नैपाल जो भी कर रहा है उससे अधिक नहीं कर सकता। वह चीन के विरुद्ध युद्ध नहीं ठान सकता। वह ऐसी स्थिति में नहीं है कि चीन से शत्रुता मोल ले सके। उसकी सीमा इतनी दृढ़ नहीं है कि चीन के आक्रमण को रोक सके। नैपाल के लिए यह उचित है कि वह निष्पक्ष ही रहे।"

मेरे इस उत्तर से प्रश्न पूछनेवालों को संतोष कैसे होता? वे तो केवल इतना ही जानने के इच्छुक थे कि नैपाल भारत का मित्र है अथवा शत्रु। उनमें इतना भी धैर्य नहीं था कि वे नैपाल के विषय में कुछ आवश्यक जानकारी प्राप्त कर लें। सीधी सी बात जो वे जानते थे वह यह कि नैपाल एक हिन्दू राज्य है। इस कारण उसको भारत का मित्र होना आवश्यक है। और जो भारत का मित्र है वह चीन का स्वाभाविक शत्रु। अपने इस विचार से वे इतने प्रभावित हो उठे थे कि वे यह तो सोच भी नहीं सकते थे कि दो देश एक ही धर्म के होते हुए भी आपस में युद्ध कर सकते हैं। वे न तो यह सोच सकते थे कि इंग्लैण्ड और जर्मनी, दोनों ही ईसाई देश होते हुए भी आपस में दो बार घमासान युद्ध कर चुके हैं, और न वे यही विचार कर सकते थे कि मुसलमान अरबों ने मुसलमान तुर्किस्तान के विरुद्ध क्रान्ति की, और अरब को स्वतन्त्रता दिलायी। उन्हें यह भी ज्ञात नहीं था कि राजस्थान को सबसे अधिक हानि मराठों से पहुँची। इसलिए नैपाल भारत का मित्र भी हो सकता है, और शत्रु भी। समान धर्म होना राजनीति में बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं है। अतएव इस विषय में कुछ बातों का समझना आवश्यक है। बिना उन्हें ठीक तरह समझे नैपाल के सम्बन्ध में कोई भविष्यवाणी करना अनधिकार चेष्टा होगी।

भौगोलिक दृष्टि से नैपाल पूर्ण रूप से तिब्बत से पृथक् नहीं है। पश्चिमी नैपाल को तो हिमालय श्रेणी ने तिब्बत से कुछ पृथक् भी कर रखा है, परन्तु मुसतंग [illegible] उसके पूर्व में पहाड़ों की ऊँची श्रेणी नैपाल की अन्तर्राष्ट्रीय सीमा के उत्तर में हैं। मध्य और पूर्वी नैपाल की अधिकांश नदियों के उद्गम तिब्बत में हैं। पश्चिमी सीमा [illegible] ष्ट्रीय जल-विभाजक के पीठ पर ही है। परन्तु [illegible]

...जल विभाजक तिब्बत में हैं, और नैपाल-तिब्बत ...के दक्षिण में है। इससे स्पष्ट है कि नैपाल की ...सीमा ही उसकी दुर्बलता है, और उसकी यह ...ही भारत की दुर्बलता है।

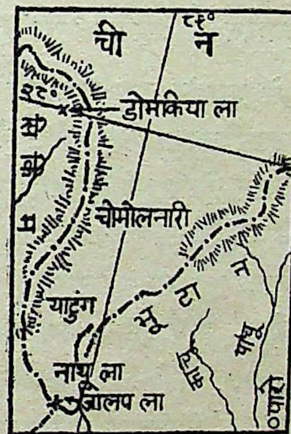
...को जानेवाले यात्री गर्मयाँग से कालापानी ...राज्य में चला करते हैं। इन यात्रियों ने देखा ...टिकरखोला काली नदी में गर्मयाँग से केवल ...उत्तर में सम्मिलित होता है। तात्पर्य यह कि ...नैपाल भारत से उस तरह पृथक् नहीं है जिस ...गढ़वाल-कुमायूं कैलाश-मानसरोवर से। भारत और ...नैपाल के बीच में कोई अन्तर्राष्ट्रीय जल-विभाजक ...यदि चीनी टिकरखोले में आ जायें तो उनको ...घुसने में तनिक भी असुविधा न होगी। यदि ...में हमारी सेना की कोई टुकड़ी हो तो उसकी ...चीनी बहुत सुगमता से काट सकते हैं।

...सुनिए नैपाल की पहाड़ियों के विषय में।

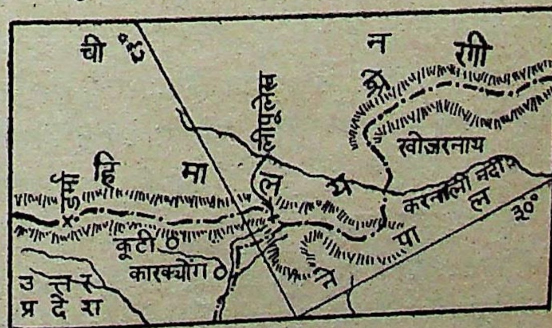
...की अधिकांश नदियाँ उत्तर से दक्षिण की दिशा ...हैं और जितने भी प्रथम स्थानीय जल-विभाजक ...अधिकतर उत्तर से दक्षिण की ओर दीवारें ...हैं। फिर गढ़वाल-कुमायूँ के उत्तर में पर्वतीय ...है जो इन प्रान्तों को कैलास-मानसरोवर ...पृथक् किये हुए है। किंतु नैपाल में ऐसा नहीं ...पड़ता।

...धाता नैपाल के उत्तर-पश्चिम में है। यह ...१५० वर्ष पहिले नैपाल का एक अंग था परन्तु ...तिब्बत में माना जाता है। मानधाता उस पर्वत ...किनारा है जो इस पहाड़ की गाँठ से निकल ...तिब्बत सीमा बनाता हुआ मुसतंग प्रान्त के ...पहुँचता है। यहाँ पर यह पर्वत-श्रेणी दो भागों ...हो जाती है। एक श्रेणी तो कटी-फटी, ऊबड़- ...इसमें ग्लेशियर हैं। कहीं कहीं तो यह श्रेणी ...भी नहीं है। (वास्तव में इसे श्रेणी कहना ...है)। अन्त में यह दूसरी श्रेणी में मिल जाती ...दूसरी श्रेणी ही वास्तविक पर्वत-श्रेणी है जिसकी ...स्थिति नैपाल को तिब्बत से पृथक् करती है। ...कि तिब्बत-नैपाल जल-विभाजक भी है, मुस- ...निकलती है।

...श्रेणी आरम्भ में मुसतंग के पूरब में बहुत ऊँचा पठार बनाती है। किंतु इसके संबंध में जानकारी बहुत कम है। जब अँगरेजों तक ने इस क्षेत्र का सर्वेक्षण नहीं किया तो चीनी भला क्या करेंगे? इस पठार के पूर्वी भाग से एक ऊँची श्रेणी निकलती है। भौगोलिक दृष्टि से वही नैपाल-तिब्बत जल-विभाजक है। यह श्रेणी-'नोला' (पास) 'ताकूला' (जौंड़का जौंग के उत्तर में) होती हुई कुछ दक्षिण दिशा में मुड़कर नैपाल की ओर आती है। यह केरांग जोंग के पूर्व में पहुँचकर फिर पूर्व-उत्तर की ओर घूम जाती है। यद्यपि यह श्रेणी नैपाल से दूर है तथापि है ब्रह्मपुत्रा नदी के दक्षिण में। यह श्रेणी खम्बा जोंग के उत्तर में होती हुई, चुम्बी घाटी को। तिब्बत से पृथक् करती हुई चोमोल हारी में मिल जाती है



इसी कारण तिब्बत का पानी बहकर नैपाल में आता है और नैपाल का पानी भारतीय मैदानों में। यही कारण है कि नैपाल की सीमा को जो भी खतरा है, वह भारत का खतरा है। इसको स्पष्ट रूप से समझने के लिए भी हमें आधुनिक नैपाल-तिब्बत सीमा देखनी होगी।



नैपाल के उत्तर-पश्चिम में करनाली (भारत की सरयू नदी) मानधाता पर्वत के उत्तर में बहती हुई नैपाल

की सीमा को काटती है। इसीकी घाटी से होता हुआ तिब्बत से पर्वतीय मार्ग आता है। इसी मार्ग पर आधुनिक तिब्बत में खोजरनाथ और नैपाल में नारा नामक स्थान हैं। यहींसे एक मार्ग टिंकरखोले में उतरकर गर्मयांग के निकट होकर भारत में प्रवेश करता है।

इस घाटी से मुसतंग तक हिमालय की दीवार ही नैपाल-तिब्बत जल-विभाजक है, और नैपाल की सीमा भी इसकी पीठ पर होती हुई मुसतंग पहुँचती है। यहाँ गंडकी गंगा की उत्तरी शाखा इस दीवार को काटती हुई नैपाल में पहुँचती है। तात्पर्य यह कि गंडकी नदी का उद्गम तिब्बत में है, और इस उद्गम के ऊपर कोरेला भी तिब्बत में। प्रथम नदी है करनाली और द्वितीय गंडकी, जिनके स्रोत तिब्बत में हैं और यह नदियाँ पहाड़ काटकर नैपाल में प्रवेश करती हैं। पश्चिम में मुसतंग से पूर्व में किंचिंगा तक कई नदियाँ तिब्बत से नैपाल में प्रवेश कर उसकी आधुनिक सीमा को काटती हैं।

नैपाली सीमा का तृतीय बेध बूढ़ी गंडकी ने किया है। इस नदी के उद्गम के निकट दो दर्रे हैं। पूर्व में 'ताकूला' और पश्चिम में 'नोला'। इन दोनों दर्रों में लगभग ५० मील का अन्तर है और नोला तो नैपाली सीमा से केवल २० मील के लगभग होगा परन्तु 'ताकूला' ३५ मील से कम न होगा। चौथा पर्वतीय बेध है त्रिशूली नदी का। जिस स्थान पर त्रिशूली नदी नैपाल की सीमा काटकर गोरखा देश में प्रवेश करती है वहाँ बसा है 'रसूआ-गढ़ी' सीमान्त गाँव। इस ग्राम की ऊँचाई ६,००० और ७,००० फुट के बीच में है। यहाँ नैपाली सीमा की विचित्र स्थिति है। प्रथम बात तो है त्रिशूली का उद्गम। यह नैपाल की सीमा से लगभग ४० मील उत्तर में है। केरांग जोंग चीनियों का विशाल सैनिक अड्डा है। समस्त साल चीनी सैनिक केरांग जोंग में आराम पूर्वक रह सकते हैं। इसे भली भाँति समझने के लिए पाठकों को भारत का उदाहरण लेना होगा।

भारत में पश्चिमी धौली गंगा का उद्गम नीती दर्रे के निकट है। इस घाटी के लगभग ३० मील दक्षिण में मलारी भोटिया ग्राम है जिसकी ऊँचाई १०,००० फुट से कुछ कम ही है। इसी घाटी में सुराहीठोटा मलारी से २० मील (नकशे पर) के लगभग दक्षिण में होगा। यदि मान लें कि मलारी इलाका शत्रु का हो और सुराहीठोटा भारत का, तो भारत को कितना शत्रु का भय होगा। बस, यही दशा है केरांग जोंग और रसुआगढ़ी की। हम त्रिशूली के किनारे-किनारे उसके उद्गम की ओर चलें तो ४० मील के पश्चात् ताकू दर्रा पहुँचेंगे। पश्चात् हम भौगोलिक तिब्बत में प्रवेश करेंगे। अब त्रिशूली नदी की दूसरी विचित्रता पर विचार करें।

रसुआगढ़ी के उत्तर-पूर्व में भी एक छोटी नदी त्रिशूली नदी में आकर मिल जाती है। यह तो पाठकों को विदित ही है कि रसुआगढ़ी अधिक नीचे स्थान पर है। रसुआगढ़ी के निकट ही इस सहायक नदी और त्रिशूली का संगम है। यह सहायक नदी लगभग २० मील नैपाल की सीमा है। अर्थात् नदी के दक्षिण में नैपाली खेती करते हैं और उत्तर में तिब्बत निवासी। यह खेती सीमा तक पूर्व से पश्चिम तक होती है। त्रिशूली की कई सहायक शाखाएँ हैं जिनका उद्गम आधुनिक तिब्बत में है। इन समस्त बातों का तात्पर्य यह हुआ कि त्रिशूली नदी नैपाल का बड़ा भारी सिर दर्द है। यह त्रिशूली वही नदी है जहाँ भारतीय सरकार की सहायता से त्रिशूली प्रोजैक्ट पूर्ण की जा रही है। जब तक चीनी तिब्बत में बैठे हैं तब तक त्रिशूली डैम और बिजली की मशीनें की रक्षा चीनी डाकुओं की कृपा पर ही निर्भर रहेगी।

...चलिए रसुआगढ़ी के पूरब में। वहाँ पाठक ...नदी की सीमा पर होते हुए पहुँचेंगे। सन- ...नदी का उद्गम भी तिब्बत में लगभग ६० मील ...है। नदी के किनारे-किनारे यात्रा करने पर ६० मील की यात्रा के पश्चात् थांगला पहुँचेंगे। ...पार करने के पश्चात् टिगरी जोंग आता है। ...चीनियों का नैपाल सीमा पर सबसे विशाल अड्डा है। थांगला के दक्षिण में नेयालाम जोंग ...भी चीनियों का सैनिक अड्डा है। जिस स्थान ...कोसी नैपाल में प्रवेश करती है, वहाँ पर विदारी ...,००० फुट की ऊँचाई पर बसा हुआ है। पाठकों ...स्थान का नाम सुना होगा। कुरी की ऊँचाई ...फुट होगी। यह तिब्बत में ११ या १२ मील भीतर ...मांडू विदारी से ३५ मील (नक्शे पर) होगा। ...चीनी लोग जो सड़क काठमांडू से ल्हासा को ...हैं, वह सड़क विदारी होती हुई कुरी को मिलाती ...मार्ग चीनियों के लिए कितना लाभप्रद होगा, ...अनुमान पाठक स्वयं कर सकते हैं।

...प्रकार मोटा कोसी (तिब्बत में कांग छू) नदी ...सहायक नाले कम से कम दो स्थानों पर नैपाल ...को काटते हैं। मोटाकोसी और उसकी सहायक ...उद्गम भी तिब्बत में ही हैं। यहाँसे तिब्बत ...जाते हैं। पहिला तो कांग छू घाटी होता ...कोसी वाले मार्ग से, नियालाम जांग के थोड़े ही ...जांग में मिल जाता है। और दूसरा रंग ...होता हुआ टिगरी जांग पहुँचता है। इस कारण ...सड़कों का बड़ा केन्द्र बन गया है, और इसमें आश्चर्य की बात नहीं जो टिंगरी जांग में चीनियों ...विशाल फौजी अड्डा बनाया है। यहाँसे चीनी नैपाल पर दो ओर से आक्रमण कर सकते हैं। ...नैपाल का अन्तिम पर्वतीय बेध या कटाव, वहाँ ...नैपाल की सीमा को काटती है।

...नदी एक बड़ी नदी है। यह मुसतंग के उत्तर- ...से निकलकर लगभग १०० मील बहने के ...'टिगरी जांग' के केन्द्र में प्रवेश करती है। टिंगरी ...इसका नाम फुंग छू (Phung Chu) है। टिंगरी ...से पहिले इसको 'येन छू' भी कहते हैं। 'टिंगरी जांग' में लगभग १५० मील और बह कर, आठ या नौ हजार फुट की ऊँचाई पर, वह नैपाल में प्रवेश करती है। इसकी घाटी कई मील चौड़ी और समतल है।

इन पर्वतीय वेधों या कटावों के वर्णन से पाठक समझ गये होंगे कि नैपाल-तिब्बत सीमा कोई पक्की पर्वतीय दीवार नहीं है। चीनी जब भी चाहें, बड़ी सुगमता से नैपाल में प्रवेश कर सकते हैं। अब प्रश्न यह है कि नैपाल ने अपनी सीमा ऐसी क्यों रखी कि चीनियों का आक्रमण इतनी सरलता से हो सके। इसका उत्तर पाने के लिए हमको लगभग २०० वर्ष पूर्व के इतिहास पर दृष्टि डालनी पड़ेगी।

चीनियों का १७९२ का नैपाल पर आक्रमण

नैपाली इतिहास का प्राचीन काल से घनिष्ट सम्बन्ध है। यहाँ गौतम बुद्ध का जन्म हुआ था परन्तु यह भी स्पष्ट है कि वे धार्मिक प्रचार हेतु काठमांडू भी गये थे। इनके पश्चात् सम्राट् अशोक का भी आगमन काठमांडू में हुआ था। परन्तु उन दिनों सम्पूर्ण नैपाल एक राज्य न था। उसमें कई छोटी-छोटी रियासतें थीं। १७६९ में नैपाल कई राज्यों में विभक्त था। पूर्व में कीरता (किरात) थे जिनमें श्रेष्ठ (लिम्बूआना) लिम्बू जाति का राज्य था। नैपाल घाटी भी तीन भागों में विभक्त थी। मध्य और पश्चिमी नैपाल में २४ और २२ राज्य थे। इनमें सबसे बड़ा था 'गोरखा' राज्य। इसके शासक चित्तौड़ के राणा परिवार के सूर्य-वंशी राजपूत थे। इस वंश के सबसे विख्यात राजा पृथ्वी-नारायण शाह थे। इन्होंने चौबीसिया और बाईसिया राज्यों पर विजय प्राप्त करके उन्हें गोरखा राज्य में सम्मि-लित कर लिया। १७६९ में इन्होंने नैपाल घाटी को भी अपने गोरखा राज्य में मिला लिया, और अपनी राजधानी काठमांडू में स्थापित की। क्रमशः लिम्बूआना को भी अपने शासन के अन्तर्गत ले आये। परन्तु दैवयोग से राजा पृथ्वी-नारायण अपना कार्य पूर्ण कर पाने से पहिले ही स्वर्गवासी हो गये। फिर भी इनके परिवार ने नैपाल की सीमा-विस्तार का कार्य जारी रखा, और नैपाल की सीमा नैपाल-तिब्बत के असली जल-विभाजक तक स्थायी रूप से स्थापित कर दी। उस समय 'येन छू' या 'फुंग छू' की पूरी घाटी नैपाल में थी। तकला कोट, टिंगरी जोंग, कैरांग जोंग

सभी नैपाल में थे। कई ब्रिटिश शासकों और यात्रियों के कथनानुसार कैरांग जोंग और टिंगरी जोंग की 'अरुण' जातियाँ नैपाल को कर देती थीं। जब मनुष्य को विजय पर विजय ही प्राप्त होती है तो विजय पाने की क्षुधा उसकी और भी बलवती हो उठती है। फिर भला गोरखा कहाँ रुकनेवाले थे! इन्होंने पूर्व और पश्चिम में हलचल मचा दी। पूर्व में सिक्किम राज्य थरथरा उठा, जिसका प्रभाव तिब्बत पर भी पड़ा। पश्चिम में उन्होंने कुमायूँ-गढ़वाल को अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। यह जबर्दस्ती करके गोरखों ने अंग्रेजों से शत्रुता मोल ली। फलस्वरूप चीनी सम्राट् भी गोरखों के शत्रु हो गये। अब अंग्रेज इस अवसर की ताक में थे कि कब गोरखों को परास्त करके उसे भारतीय सीमा में ले लेवें।

जिस समय नैपाल छोटी-छोटी रियासतों को संगठित करके एक केन्द्रीय सरकार की स्थापना में संलग्न था, उस समय अंग्रेज उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग में बढ़ रहे थे। हिमालय की तराई में ब्रिटिश साम्राज्य और नैपाल साम्राज्य की सीमा मिली हुई थीं। जब दोनों ही पक्ष साम्राज्य-विस्तार के लिए प्रयत्नशील थे तो आपसी मित्रता का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। हृदय से वे एक दूसरे के प्रबल विरोधी थे, पर बाहरी तौर पर क्या थे यह नहीं कहा जा सकता। इसका मूल कारण था चीन। ब्रिटिश चीनियों से झगड़ा मोल लेना नहीं चाहते थे, परन्तु अंग्रेज तिब्बत से व्यापारिक सम्बन्ध अवश्य करना चाहते थे। १७७४ की घटना है कि उधर तो नैपाल बढ़ रहा था और इधर अंग्रेजों का प्रतिनिधि "जार्ज बोगल" शिगाशे पहुँचा। चीनियों ने बोगल को ल्हासा आने की आज्ञा नहीं दी, परन्तु बोगल की तिब्बत यात्रा से चीनियों का सिंहासन डोल गया। चीनी सम्राट् को नैपालियों को पाठ पढ़ाने की चिन्ता हुई और यह भी कि बिना युद्ध किये ही किस प्रकार अंग्रेजों को नीचा दिखाया जाय। अब उसके समक्ष यह समस्या थी कि किस प्रकार फिरंगियों को गोरखों से पृथक् रखकर इस प्रकार युद्ध में पीसा जाये कि भविष्य में वे कभी सिर न उठा सकें।

किसी योजना को कार्यान्वित करने से पहले उसके विषय में अधिक से अधिक सूचना प्राप्त करनी पड़ती है। चीनियों के पास ऐसी कौन सी एजेन्सी थी जो उन्हें फिरंगियों के विषय में पूरी सूचना देती? नैपाल के सम्बन्ध में तो तिब्बत था जो चीनी सम्राट् या सेनापति को आवश्यकतानुसार सूचनाएँ दे देता। १७७४ में बोगल ... लामा से मिल भी आया था। रिचर्डसन के कथनानुसार बोगल ने एक तिब्बती महिला से विवाह किया और सम्भवतः वह स्त्री पंचेन लामा की बहिन थी। यदि मान लें कि बोगल पंचेन लामा का सम्बन्धी नहीं भी था, फिर भी यह सत्य है कि वह और पंचेन लामा घनिष्ठ मित्र हो गये थे। चीनी सम्राट् की दृष्टि में इस कार्य के लिए पंचेन लामा से अधिक उपयुक्त अन्य कोई न था। अब क्या था? चीनी सम्राट् ने पंचेन लामा को पत्र पर पत्र लिखने आरम्भ किये, और उसके हृदय में अचानक पंचेन लामा के दर्शनों की इच्छा तीव्रता से प्रज्वलित हो उठी। उसने लिखा, "वृद्ध हूँ, मृत्यु से पूर्व आपके दर्शनों का इच्छुक हूँ।" धार्मिक ग्रन्थ पढ़ने वाले, शान्ति प्रेमी, लामाओं के गुरु भला चीनियों के षड्यंत्र को क्या समझते! फिर लामा ही क्या, कोई भी जाति चीनियों को समझने का दावा नहीं ही कर सकती है। हाँ, एक महान् व्यक्ति अवश्य था जो २५ वर्ष चीन में रहा, और जिसने चीनियों को भली भाँति समझा। उसका नाम था 'आर्थर स्मिथ।' यह एक अमरीकन मिशनरी था जिसने चीनियों का वास्तविक चित्रण किया है। चीनी आर्थर स्मिथ के नाम से अपरिसीम घृणा करते हैं। ... तो पंचेन लामा पीकिंग गये। उनके और चीनी सम्राट् के मध्य क्या वार्तालाप हुआ, यह तो अविदित है। प्रत्येक ... अपना मतलब होता है और उसीके अनुसार वह मार्ग खोज लेता है। अंग्रेजों को व्यापार करना था, और उनका यही उद्देश्य था कि उन्हें तिब्बत में व्यापार करने में चीनी सम्राट् बाधक न हों। लामा गुरु के साथ महाराजा बनारस का 'गोस्वामी' नाम का एक कारिंदा भी पीकिंग गया था। उसके पत्र से ज्ञात होता है कि लामा गुरु ने अंग्रेजों के संबंध में कुछ अच्छे विचार सम्राट् के समक्ष अवश्य रखे थे। 'मारखम' के लेख से ज्ञात होता है कि वार्तालाप के मध्य पंचेन लामा ने बोगल को तिब्बत का मानचित्र दिखाना चाहा। यदि बोगल उस मानचित्र को देखकर उसकी प्रतिलिपि भारत ले आता तो उसको केवल आर्थिक लाभ ही न होता, वरन् उसका सम्मान भी सातवें आसमान पर पहुँच जाता। परन्तु बोगल ने इन सांसारिक बातों पर विचार न करके मानचित्र देखना अस्वीकार कर दिया। वह तो केवल भारत-तिब्बत वाणिज्य बढ़ाने गया ...

पंचेन लामा ने सम्राट् को विश्वास दिलाया होगा कि यदि सम्राट् नैपाल पर चढ़ाई करें तो अंग्रेज व्यापारिक ... के कारण झगड़े में भाग न लेंगे। सम्राट् को और ... चाहिए था? कहते हैं कि पंचेन लामा पर शीतला ... हुआ और उनकी मृत्यु हो गयी। इसकी सत्यता ... में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता, पर ... निश्चित है कि उन दिनों यदि कोई बड़ा लामा ... गया तो वह फिर ल्हासा या तिब्बत जीवित नहीं ... किसीको हैजा हो जाता था, किसीको माता निकल ... थी और किसीकी मृत्यु अन्य किसी कारण से हो ... थी। पाठकों को ज्ञात होगा कि काश्मीर प्रिंसैस ... वायुयान में चीनियों द्वारा ही बम लगाया गया ... जिसके परिणामस्वरूप भारतीय वायुयान चालकों ... हुई। बाद में सफाई तो सभी देते हैं। इस कारण ... चीनियों अथवा उनके ऐतिहासिक कथन से सम्बन्ध ... । हमें तो इस बात के जानने से मतलब है कि पंचेन ... का मित्र था जो कि सम्राट् के मार्ग में रोड़ा ... सकता था, और उस समय उसकी मृत्यु चीनियों ... लाभदायक थी; और हुआ भी ऐसा ही।

... सम्राट् को सूचना तो मिल गयी कि फिरंगी ... सहायता न देंगे, परन्तु चीनियों को भारत में ... अंग्रेजों से, जो वहाँ विजय पर विजय प्राप्त कर रहे ... तो था ही। उन्होंने उस भय को ही समाप्त करना ... समझा। समस्त संसार में फौज का नियम है कि ... अफसर विदेश यात्रा पर जाय तो लौटने पर ... पर अपनी रिपोर्ट सैनिक केन्द्र को दे। कहते हैं ... भारतीय फौजी अफसर विदेश गया। लौटने पर ... केवल एक वाक्य लिखा "देश में पैसा प्रत्येक वस्तु ... सकता है।" फौजी अफसरों ने इस वाक्य पर ... पूर्वक विचार किया, और इस परिणाम पर ... कि यदि उस देश में रुपया पानी की तरह बहाया ... तो बिना युद्ध के ही विजय पाई जा सकती है। इस ... चीनी सम्राट् को ज्ञात हो गया कि अंग्रेज तो व्यापारी ... और उनको व्यापार के चक्कर में डाल दिया जाय तो ... का कदापि साथ न देंगे। वास्तव में हुआ भी ... चीनी सम्राट् ने ईस्ट इंडिया कम्पनी को कुछ ... सुविधाएँ देने की बात प्रारम्भ की। जब चीनी ... अंग्रेजों से निश्चिन्त हो गया तो उसका ध्यान गोरखा राज्य पर केन्द्रित हुआ। गोरखा राज्य उस समय बिना किसी विघ्न-बाधा के बढ़ा जा रहा था। अब समस्या थी गोरखाओं से यदि सीधी मुठभेड़ की जाय तो बीच में तिब्बत पड़ता है। कहीं वही बाधक न बन बैठे। फिर, कहीं फिरंगी ही तिब्बत के साथ न मिल जायँ। तिब्बत भी तो अवसर पाते ही चीनियों के विरुद्ध आन्दोलन कर बैठता था। शायद यही विचार कर चीन-सम्राट् ने तिब्बत को भी शिक्षा देने की ठानी होगी। अन्त में चीनियों ने यही उचित समझा कि तिब्बत और नैपाल का आपसी झगड़ा करवा दिया जाय। तिब्बत के पास गोरखों से युद्ध में सामना करने योग्य सैनिक शक्ति नहीं थी। तब यह निश्चित था कि वह चीन के सम्राट् से सहायता माँगेगा। इस सहायता के बहाने ही चीनी फौजें नैपाल में घुसकर गोरखों को नीचा दिखा देंगी। ऐतिहासिक तथ्य भी यही है कि चीनी लोग नाक को कभी सीधे नहीं पकड़ते। हर कार्य को घुमा-फिरा कर करना उनका स्वभाव बन गया है। वे इस प्रकार कार्य करते हैं जो दूसरों की समझ में भी न आये। अब चीनियों ने तिब्बत के माध्यम से गोरखों से युद्ध करने की ठान ली। चीन और तिब्बत का आपसी वार्तालाप अविदित है परन्तु अकस्मात् तिब्बत का नैपाल के साथ आपसी व्यवहार बदल गया और वह गोरखों से असभ्य जातियों की भाँति व्यवहार करने लगा, और छोटी-छोटी बातों के लिए नैपाल पर आक्रमण कर देने की धमकियाँ देने लगा।

उन दिनों तिब्बत अपने सोने के सिक्के नैपाल में ढलवाया करता था। तिब्बत ने धीरे-धीरे उन सिक्कों में सोने का अनुपात कम कर दिया जिससे सिक्कों के दाम कम हो गये। इस मिलावट के कारण जो आर्थिक हानि हुई उसे तिब्बत ने नैपाल से पूरा करने को कहा। इस विषय को लेकर लिखा-पढ़ी आरम्भ हुई जिसमें १३ या १४ साल लग गये, पर फल कुछ न निकला और झगड़ा जैसे का तैसा बना रह गया। इसी समय तिब्बतियों ने नैपाल को एक पत्र भेजा जिसमें बताया कि उन्होंने टिंगरीजोंग घाटी में १,२५,००० सेना एकत्र कर ली है। यदि गोरखा चाहें तो रणभूमि में आवें। गोरखों ने चीन के सम्राट् को एक या दो पत्र लिखे, परन्तु वे पत्र तिब्बतियों ने चीन जाने से रोक लिये। तिब्बती लामाओं ने वे पत्र नैपाल [illegible] लौटा दिये। गोरखों को युद्ध के अतिरिक्त [illegible]

दिखायी दिया। तिब्बत सारी बातें चीन को बताता रहा। उस समय तक चीनी सेना ल्हासा न पहुँची थी। चीनी युद्ध के लिए तैयार न थे। गोरखा सैनिक तिब्बत में घुस गये। जब तिब्बतियों ने यह देखा तो तुरंत संकिया के लामा को सन्धि हेतु नैपाल भेजा। नैपाली सेना लौट गयी, और सन्धि के वार्तालाप के मध्य तिब्बतियों ने अपना दोष स्वीकार कर लिया। परन्तु थोड़े दिनों बाद ही उन्होंने सन्धि की शर्तें तोड़ दीं। उस समय तक चीनी युद्ध की तैयारी कर चुके थे।

इसी बीच पंचेन लामा की मृत्यु चीन में हो गयी। पंचेन लामा के गुम्फा की गद्दी खाली हो गयी। पंचेन लामा का 'सुमेर लामा' नामक एक भाई था। वह इस गद्दी पर बैठने का इच्छुक था। इसीको लेकर सुमेर लामा और दलाई लामा में झगड़ा हुआ। सुमेर लामा नैपाल भाग गया और उसने गोरखों को तिब्बत पर आक्रमण करने को राजी कर लिया। गोरखों का तिब्बत से झगड़ा तो चल ही रहा था, उन्होंने अवसर पाकर आक्रमण कर दिया। तिब्बती कुछ न कर सके। गोरखों ने अधिकांश गुम्फों का स्वर्ण लूटा और उसे लेकर नैपाल लौट आये। अब चीनियों से न रहा गया।

एक ओर तो चीनियों ने झगड़ा समाप्त करने के लिए गोरखों से बातचीत आरम्भ की, दूसरी ओर जनरल सन्उफो को ल्हासा भेज दिया। इस जनरल ने चुपचाप ७०,००० फौज ल्हासा में एकत्र कर ली। इधर जनरल सन्उफो नैपाल पर आक्रमण की तैयारी कर रहा था, उधर नैपाल दरबार में चीन का दूत चीन सम्राट् का पत्र लेकर उपस्थित हुआ। कहते हैं कि गोरखों ने इस दूत का सम्मान भली भाँति न किया। पर यह मिथ्या है, ठीक भेड़िया और भेड़ की कहानी की भाँति ही। बस चीनी रुष्ट हो गये, परन्तु फिर भी गोरखे यह न समझ सके कि चीनी उनपर आक्रमण करेंगे। इसीमें दो महीने बीत गये और माघ बीत जाने के कारण पहाड़ी बरफीले दर्रे भी खुल गये। जब गोरखों को चीनी सेना की गतिविधि की सूचना मिली तो वे अपनी सेना तैयार करके नैपाल की सीमा पर आ डटे। यदि चीनी सीधे नैपाल पर आक्रमण करते तो वह पूर्ण रूप से व्यर्थ होता। इसलिए उन्होंने चाल चली।

दुर्भाग्य से हर देश में देशद्रोही होते हैं। नैपाल भी इसका अपवाद न था। कुछ भूमिधरों की भूमि नैपाल रा[illegible] में सम्मिलित कर ली गयी थी। ये सब अपनी सेना [illegible] जनरल सन्उफो से जा मिले। जनरल ने अपनी सेना [illegible] दो भाग किये। एक भाग में ३०,००० जवान थे औ[illegible] दूसरे में ४०,०००। चीनियों का युद्ध का नियम है [illegible] पूर्व में शोर मचाओ, और पश्चिम से गोली चलाओ। सन्उफो ने भी यही किया। उसने ३०,००० फौज अ[illegible] नदी की घाटी की ओर भेजी, और स्वयं नैपाली जमींदा[illegible] की सेना और अपने ४०,००० जवान सहित पश्चिम [illegible] ओर बढ़ गया। गोरखों ने पूर्वी फौज से युद्ध के लिए से[illegible] भेजी। परन्तु जब उन्हें चीनियों की चाल ज्ञात हुई [illegible] विलम्ब हो चुका था। फिर भी उन्होंने साहस न छोड़ा और बड़ी वीरता से युद्ध किया। चीनी कैरांग घा[illegible] से नैपाल में घुसे। घमासान युद्ध हुआ, परन्तु गोरखों [illegible] पराजय हुई। चीनी फौज नवाकोट तक पहुँच चुकी थी और उन्हें भी यथेष्ट हानि हुई। गोरखे तो सन्धि के इच्छु[illegible] थे ही, पर चीनी भी सन्धि ही चाहते थे। फलस्व[illegible] सन्धि करना निश्चित हुआ, और चीनी जनरल ने ज[illegible] विभाजक पर बैठकर हस्ताक्षर किये। उस दिन नैपाल [illegible] जो सीमा निर्धारित हुई, वही आज भी है। गोरखों [illegible] हाथ से उत्तर-पश्चिम में तकला कोट गया, और गया [illegible] समस्त प्रदेश जो नैपाल-तिब्बत के वास्तविक जल-विभा[illegible] के दक्षिण में था। इस प्रकार चीनियों के हाथ आ[illegible] केरांग और टिगरीजोंग की लम्बी घाटी। उस समय [illegible] कोई गोरखों की सहायता कर सकता था तो वे थे अं[illegible] परन्तु वे तो व्यापारिक सुविधाओं के चक्कर में थे। [illegible] उस समय की बात है जब मेजर बुकानन पोलिटि[illegible] आफिसर (यही अफसर आगे चलकर फ्रान्सिस हैमि[illegible] कहलाया) की तूती बोल रही थी। अंग्रेज सरकार उ[illegible] राय आँख मूँदकर मानती थी। उसीकी राय थी [illegible] अंग्रेजों को ऐसी कोई बात न करनी चाहिए जिससे [illegible] की सरकार को सन्देह हो, और वह कहीं नैपाल को [illegible] ही न हड़प ले। यही कारण था कि जब ब्रिटिश गव[illegible] जनरल के पास नैपाल ने सहायता के लिए पत्र भेजा [illegible] उसने सैनिक सहायता देने से साफ इंकार कर दिया, [illegible] नैपाल तथा चीनियों में समझौता कराने के लिए लॉर्[illegible] कर्नल किर्कपैट्रिक को काठमांडू भेजा। कर्नल [illegible] जो ठीक चीनियों के आक्रमण के समय काठमांडू [illegible]

हैं:—"चीनी सदैव के लिए हमारे पड़ोसी बन रहे दशा में सीमा विवाद स्वाभाविक हैं। ये विवाद में ईस्ट इंडिया कम्पनी के चीनी व्यापार में, एशिया न किसी भाग में, गड़बड़ी पैदा करेंगे। इसी अन्य कोई भी घटना चीनी आक्रमण से अधिक नहीं हो सकती। यदि चीनियों का विचार आक्रमण करने का है, तो उसे व्यर्थ करने के लिए कठिनाइयों और राजनीतिक जटिलताओं का सामना पड़ेगा। नैपाल के रीजेंट ने सैनिक सहायता माँगी। का अर्थ होगा सरकार की निर्धारित नीति का और हमारे कैंटन के व्यापार की तात्कालिक। इन कारणों से सैनिक सहायता देने का तो नहीं उठता। फिर भी यदि कुछ सहायता की जा है तो वह है चीन और नैपाल में सन्धि कराने का।" अंग्रेज अपने चीन के व्यापार की रक्षा के लिए को सहायता देने में असमर्थ थे। फलस्वरूप नैपाल देकर चीनियों से अपना पीछा छुड़ाया। चीनियों इस पर सन्तोष किया। सत्य तो यह है कि १७९२ और नैपाल में ऐसा घमासान युद्ध हुआ कि यह कहा जा सकता कि केवल गोरखों की ही हानि हुई। चीनी फौज भी रणक्षेत्र में काम आयी। चीनी ने कहा, "मैंने गोरखों को दो बार युद्ध में पराजय उन्हें सदैव के लिए समाप्त कर दिया और उन्होंने अधीनता स्वीकार कर ली।" उधर नैपाल में अब तक युद्ध के नैपाली वीरों की प्रशंसा में कविताएँ गायी जाती और १७९२ की पराजय नहीं, वरन् विजय ही समझी है। इसका प्रमाण यह है कि उस समय चीनियों ने पर भी आक्रमण करने का निश्चय किया था, परन्तु गोरखों की मार से उनकी सेना इतनी दुर्बल हो चुकी थी जनरल सन्‌फो को साहस न हुआ कि वह भूटान पर करे। वह कुछ सैनिक टुकड़ियाँ के रांग, टिंगरी और में छोड़कर बची-खुची सेना को चीन लौटा ले गया।

इस युद्ध का तिब्बत, नैपाल और भारत पर क्या हुआ? चीनियों ने कर्नल किर्कपैट्रिक को जब काठ- में देखा तो उन्हें सन्देह हुआ कि अंग्रेज छिप कर को सहायता दे रहे हैं, और उन्होंने तिब्बत के द्वार के लिए बन्द करने की ठान ली। १७९२ से पूर्व के द्वार विदेशियों के लिए खुले थे। ईसाई यों के रूप में अन्य योरोपियन भी तिब्बत जा। वे यात्री यद्यपि ल्हासा न जा सकते थे, फिर भी जाते थे। बोगल १७७४ में, १७८३ में टर्नर और तिब्बत जा चुके थे। परन्तु १७९२ के तिब्बत के द्वार यात्रियों के लिए बन्द कर दिये गये। सदी में कुछ अंग्रेज अफसर तिब्बत गये अवश्य, पर खेल कर। इस युद्ध के पश्चात् बरतानियाँ को चिन्ता हुई कि किस प्रकार अपने अफसरों को भेजा जाय।

इस युद्ध का दूसरा प्रभाव तिब्बत पर पड़ा। अट्ठारहवीं शती में तिब्बत अपनी स्वतन्त्रता के लिए कई बार युद्ध कर चुका था, परन्तु जब भी तिब्बत के देशभक्तों ने सिर उठाया, चीनियों ने क्रूरता से उनका दमन किया। १७९२ तक चीनी सेनाएँ १७२०, १७२८ और १७४९ में तिब्बत में प्रवेश कर चुकी थीं। उस समय तिब्बती शक्तिशाली होते जा रहे थे, और चीनियों को भय था कि कहीं तिब्बत चीनियों के चंगुल से निकल न जाय। इसलिए चीनी अपनी सैनिक शक्ति का परिचय तिब्बत को देना चाहते थे। १७९२ के युद्ध में उन्होंने तिब्बतियों के सामने यह प्रमाणित कर दिया कि चीन शक्तिशाली देश है। तिब्बत का उससे झगड़ा मोल लेना व्यर्थ ही नहीं, अहितकर भी होगा। परन्तु यह सोचना कि तिब्बत चुप हो गया, व्यर्थ है। हाँ, थोड़े समय के लिए वह अवश्य शान्त हो गया।

तीसरा प्रभाव सिक्किम पर पड़ा। सिक्किम एक छोटा राज्य है। इसका एक भाग चुम्बी घाटी है जो उपजाऊ है, और यहाँके निवासी तिब्बतियों से भिन्न हैं। चीनियों ने युद्ध के पश्चात् एक कान्फ्रेंस की। उसमें सिक्किम को भी निमन्त्रित किया। परन्तु किसी कारण सिक्किम का प्रतिनिधि उसमें भाग न ले सका। किंतु चीनियों ने इस कान्फ्रेंस में एकतरफा निर्णय देकर चुम्बी घाटी को तिब्बत में मिला दिया, और सिक्किम को विवश किया कि वह चीनियों की रक्षा स्वीकार करे। हिमालय में सैनिक दृष्टि से चुम्बी की घाटी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। उसके चीन के अधिकार में चले जाने से उसका केवल साम्राज्य विस्तार ही नहीं हुआ, बल्कि वह एक प्रकार से बंगाल के समतल मैदान के बिलकुल निकट आ गया। ११२ वर्ष पश्चात् अंग्रेजों को चुम्बी घाटी हस्तगत करने का अवसर मिला भी, परन्तु उन्होंने उसे खो दिया। दूसरा अवसर तो किसीको ही मिलता है।

चुम्बी घाटी के लाभ से भी बड़ा लाभ चीनियों को नैपाल में हुआ। भौगोलिक दृष्टि से नैपाल तिब्बत की छाया में आ गया, और नैपाल की उत्तरी सीमा इतनी अरक्षित और बेकार हो गयी कि चीनी जब चाहें तब उस ओर से अपनी सेना सरलता से नैपाल में भेज सकते हैं। इससे भारत की बहुत बड़ी हानि हुई। भारत-नैपाल सीमा उत्तर प्रदेश और बिहार की तराई के समतल से जाती है। नैपाल तो चीन की पकड़ के चंगुल की पहुँच में आ ही गया, पर उससे भारत की सुरक्षा भी खतरे में पड़ गयी।

ऐसी दशा में यदि अब नैपाल निष्पक्ष न रहे तो करे भी क्या? ऐसा नहीं कि अंग्रेजों ने खतरे के महत्त्व को समझा नहीं, परन्तु वह तो अपनी व्यापारिक सुविधाओं के फेर में थे। फिर भी उन्होंने अपनी समझ से चीनियों को जो लाभ तिब्बत में हुआ था, उसे व्यर्थ करने का प्रयत्न किया। वे इसमें सफल हुए अथवा असफल, यह आगे का विषय है, और इसका वर्णन हम फिर करेंगे।

देखे गाँव भी हमने

एक समाजसेवी महिला

इधर अपने शहरों में निवास करते समय गाँवों की चर्चा बहुत सुनी थी। "गाँवों में जाओ तो मालूम पड़ता है कि भारत में कितनी तरक्की हुई है" आदि आदि। एक आध, प्रत्यक्ष नमूना भी देखा था। अलीगढ़ की नुमाइश में एक ग्रामीण दम्पति एक कपड़े की दुकान के पास खड़े थे कि पत्नी को लाल जरी का एक गर्म दुपट्टा पसन्द आ गया। उसने दुकानदार से पूछा। "कित्ते की है?" दूकानदार ने बड़ी लापरवाही से उत्तर दिया "डेढ़ सौ रुपये की।" स्त्री ने कुछ निराश होकर, कुछ अचरज से आँखें फाड़कर, अपने पति की ओर देखा। उसके पति ने कहा "अब जिउ न मारौ। लै लेउ।" और वह अपनी कमर से नोटों की गड्डी निकालने लगा। यह घटना बहुत दिनों तक मेरे मन में घूमती रही क्योंकि मैंने बड़े-बड़े साहबों को कपड़े की दूकान से बीबियों को टरकाते उसी नुमाइश में देखा था। इसी प्रकार जब सोना १४ कैरट हुआ तो एक सुनार बैठा किस्मत को रो रहा था कि "सोना तो गाँववाले खरीदते थे। शहरी बाबू के सहारे हमारी जिंदगी थोड़े ही चलती थी। अब गाँववाला कैरट-वैरट तो समझेगा नहीं, यही कहेगा "जामें पीतल मिली है हम नाहीं लेहैं।" इन बातों की सत्यता पर तो मैं उतरी नहीं, न मैंने इसीकी खोज की कि ग्रामीण की वह पत्नी दूसरी थी, या कहीं से भगाई हुई थी। बस इन सब बातों का एक असर मन पर पड़ गया कि गाँवों में परिवर्तन आ गया है, तरक्की हो गयी है—चित्रण बदल गया है। अभी तक मोटरों में एक शहर से दूसरे शहर आते-जाते सड़कों के रास्ते पर पड़नेवाले गाँव ही देखे थे।

संयोग से गाँवों का दौरा करने का अवसर मिल गया। उनकी तरक्की की पहली झाँकी तो सड़क से ही मिली। मन्दिरों के खंडहर पर, सूखे तालाबों की ढहती हुई सीढ़ियों पर, छप्पर व खपरैल, पेड़, झोपड़ियों की कच्ची दीवारों पर और कहीं-कहीं बनिये की दूकान की पक्की दीवारों पर भी देखा गया कि अँगरेजी के बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा है। आप विश्वास नहीं करेंगे पर सच में अँगरेजी में लिखा था—

Help to cradicate malaria.
It is sin to hide fever.
Atonce report malaria to your nearest doct[or]
Mosquitoes will.....malaria would disappe[ar]

कहीं-कहीं पर ऐसी भी कविता की पंक्ति लि[खी] मिल सकती है:—

"सर्वेलेंस में कीजिए योगदान।"

काम बड़ी लगन से किया गया था कि कोई भी लिखने यो[ग्य] दीवार छोड़ी नहीं गयी थी। चलती हुई मोटर में चित्र[पट] के दृश्यों के समान बार-बार ये ही सामने आ रहे थे। जैसे-जैसे वे बढ़ते जा रहे थे वैसे ही वैसे मेरा क्षोभ बढ़ता जा रहा था। बहुत आशा लेकर चली थी, शायद क्षोभ इस[ी] लिए बढ़ रहा था। थोड़ी देर में मलेरिया उन्मूलन प[र] एक अँगरेजी की कविता दीवार पर लिखी मिली। अँगरेजी के किसी बड़े कवि ने लिखकर भेजी होगी क्योंकि उसमें तुकान्त अच्छा जमा था। उसको पढ़कर तो मन किया कि सारी सरकार का सिर इन दीवारों से दे मारूँ कि हे हतभागो! तुम्हारी बुद्धि कब जागेगी? कब तुम्हारी आँखें खुलेंगी? तुम अपढ़ होते तो भला था! तुम गद्दार हो! देश को गर्त में डालते हो! कोरे काग[ज] काले करते हो! तुमने लिखकर भेज दिया सरकार के गाँवों पर ९९९ स्थानों पर मलेरिया से बचने का उपाय लिख दिया गया है। पर हे आचार्यो! हे पंडितो! स्या[ही] लगा, समय लगा, पर पढ़ा कितनों ने? ९९८ लेख तो उन साहबों ने पढ़े जिनको मलेरिया होता ही नहीं क्योंकि वो मसहरी में सोते हैं। घर में डी० डी० टी० का स्प्रे होता है, या तो मुफ्त या पैसों की अधिकता के कारण। पढ़े उनमें से एक ही गया क्योंकि वह हिंदी में लिखा गया था। वह भी केवल पढ़ा ही गया, उसका पालन नहीं हुआ। पालन क्या करते, अर्थ ही समझ में नहीं आया। गाँवों में डिक्शनरियाँ (सरकार कुछ भी समझा करे) कम मिलती हैं। "मलेरिया उन्मूलन में हमारी सहायता करो" को समझी? ई उन्मूलन कौन सी चिरइया का नाम आय? और तुहार सहायताओ करे तो कैसे? अरे भइया साफ-साफ लिखो 'आपन कुँआ के पास का गड्ढा पाट डालो। मलेरिया का मच्छड़ वहीं जन्मता है।

...मलेरिया मच्छड़ से होता है बच्चों को तेल लगा
...'धुआँ से मलेरिया का मच्छड़ भागता है—
...दूर पर धुआँ कर दो।'
...कुएँ का पानी पियो और तालाब और पोखरों में
...।' "जूड़ी आये तो...की गोली खाओ—दिन
...आदि-आदि . . .
...सीधी है। गाँववालों के सामने उनके लाभ
...इस रूप में रक्खो जो उनकी समझ में
...तो उसको स्वयम् ही ले भागेंगे—वे होते
...व्यवहार-कुशल, और अपना हित खूब समझते हैं।
...इसी प्रकार एक ग्रामप्रशिक्षण केन्द्र के निरीक्षण
...अवसर भी मुझको मिला। बहुत दिनों से गाँवों में
...कार्य कर सकने की मेरी इच्छा थी पर मैं भी
...आलसी प्राणियों में हूँ जो पलँग पर पड़े-पड़े
...बाधा डालनेवाले अनेक बहानों को कोसा करते
...अब तो सब बहाने हट गये थे। पुरानी अभिलाषा
...हो उठी और मैं बड़े चाव से उस अवसर
...लाभ उठाने की भावना से आगे बढ़ी। जो
...इन केन्द्रों में बनाना सिखाया जाता है वह
...के लिए एक मेज पर सजा था। उनके पुलोवर,
...स्वेटरों को देखकर पूछा क्या उनके बनाने का
...गाँवों में अब सुविधा से मिल जाता है? उत्तर मिला
...मिलता है? हमको तो केन्द्र से मिलता है उसी
...हैं।" आपने सिखाया, पर वे लाभ न उठा
...आपके सिखाने का परिश्रम व्यर्थ ही गया न?
...समझ गयी कि भूल कहाँ है। प्रशिक्षण केन्द्र शहरों
...खुले हैं—गाँवों के प्रशिक्षण केन्द्रों में शहरों के
...की नकल कर दी गयी है। गाँवों की आवश्यकता
...ध्यान नहीं रक्खा गया है।
...सिलाई में जो वस्तुएँ खोल-खोलकर विशेष रूप से
...के रूप में दिखायी जा रही थीं वह थीं कली का
...कोट, बच्चों के बिब, फ्रॉक के नीचे पहनने की अँगरेजी
...की ... पहली बार वहाँ जाना हुआ था और यह
...कि कहीं कोई यह न कह दे कि 'बड़ी बद-
...औरत निरीक्षण करने आयी है। इनको क्या?
...तो आर्डर सैन्टर से मिलते हैं, इसलिए अपने
...की रक्षा करते हुए मैंने धीरे से पूछा "गाँवों में
...बिब लगाने लगे? मेरा तो विचार था कि बहुतों
को झबले के लिए भी कपड़ा नहीं मिलता है, जाँघिये भर को मिल जाय तो बहुत है।"

"गाँवों में तो हम पुराने कपड़ों के बिब बनाना सिखाते हैं।" उनका पटु उत्तर आया—काम की बात दूसरी है, सरकारी महकमे के आदमी पटु उत्तर देने में बड़े कुशल होते हैं।

गाँवों में पुराना कपड़ा! आपका मतलब है चिथड़ों के बिब बनाना सिखाती हैं? गाँवों में पुराना कपड़ा नाम की चीज क्या होती है? जब तक उसमें थोड़ा सा भी जीवन होता है वह उनके शरीर से ही चिपटा रहता है और जब उतरता है तब चिथड़ा होकर उतरता है। जरा गाँव में कहकर तो देखिये कि "भइया, भिक्खू केर कुर्ता पुराना हुइ गवा है। लाओ उह का काट कै बचवा का बिब बनाइ देई, तो देखिए क्या उत्तर मिलता है। समझेंगी कोई बौरही (पागल) से पाला पड़ा है। यह सब मन में आया, पर मुँह पर आकर रुक गया। गाँववालों के भाग्य की सराहना की कि उनको सुधारने का काम इतनी सुघड़ स्त्रियों ने सम्हाला है। अब दूसरी चीज थी कली के पेटीकोट—वो बार-बार खोलकर दिखा रही थीं देखिए कितने अच्छे सिले हैं। मैंने फिर स्वाभाविकता से पूछा "गाँव की स्त्रियाँ पेटीकोट समझने लगीं क्या वस्तु है? पहनने की बात तो दूर रही। अँगिया तक तो पहनती नहीं थीं पहले, फिर सादे और कली के पेटीकोटों का भी भेद समझने लगीं! तब तो वास्तव में गाँवों ने बड़ी ही प्रगति कर ली है।"

उन्होंने फिर उत्तर दिया "नये कपड़े के थोड़े ही, यह भी वो लोग पुराने कपड़ों के ही बनाती हैं।"

सोचा कि कह दूँ कि "ओहो! ढेरों पुराने कपड़े उतरने लगे गाँवों में। बस अब तो हाउस कोट, ड्रैसिंग गाउन, इवनिंग ड्रेस, डाइनिंग सैट, नैपकिन, ट्रैक्लौथ, टी कोजी, कुशन कवर, पर्दे यह और पुराने कपड़ों के बनाना सिखा दीजिए फिर गाँवों का पूरा उद्धार हो गया।"

पर मैंने दबी जबान से कहा "कभी-कभी झबला, जाँघिया और बच्चों के कुर्ते भी सीना सिखा दिया करिये।" उन्होंने लापरवाही से कहा 'हाँ, वह भी सिखाते हैं'—मानों कह रही हों क्या फिजूल की राय दी आपने!'

फिर उन्होंने बड़े शौक से मारमलेड, सन्तरे, पपीते की चटनी, कुछ अचार और स्क्वैश की बोतलें दिखायीं। गाँवों की औरतों को यह भी बनाना सिखाया जाता है। अब तो मेरा दम घुटने लगा और मुझसे रहा नहीं गया। मैंने पूछ ही लिया कि "मारमलेड, औरेंज स्क्वैश, चटनी आदि जो आप उनको सिखाती हैं तो अवश्य ही टोस्ट पर मारमलेड लगा कर खाना वे सीख गयी होंगी। मेरे समय में तो कुहड़े के पत्ते पर चटनी रखी जाती थी--परन्तु क्या उनको गाँवों में यह सब बना कर रखने के लिए बोतलें मिल जाती हैं ?" क्योंकि गाँवों की जो झाँकी मुझको मिलती थी उसमें जिसे मिट्टी का तेल रखने को एक शीशी मिल जाय वह अपने को धन्य भाग्य समझता था, वरना काम कुप्पी से ही चल जाता था। यह भी पूछना व्यर्थ था कि संतरे तो गाँव में मिल ही जाते होंगे ? क्योंकि 'पुराने कपड़ों' के ऊपर उनका उत्तर सुन लेने के बाद यह तो मालूम ही था कि उनका पटु उत्तर आयेगा कि "मारमलेड संतरे का थोड़े ही सन्तरे के छिलके का बनता है।" फिर मेरा यह कहना कि जब सन्तरे न होंगे तब सन्तरे के छिलके कहाँ से आयेंगे, कुछ कुतर्क सा लगता।

लगता है उनमें से कोई और भी मेरे ही जैसे खीजी हुई थी। बोली, 'गाँवों को हम अचार डालना क्या सिखायेंगे ? हम तो अचार की एक बोतल खोलते हैं तो उसको जल्दी खत्म करने की पड़ी रहती है क्योंकि खुली बोतल खराब होने लगती है। उनके अचार बरसों पड़े रहते हैं और लगता है आज डाले हैं। वहाँ बोतलें कहाँ ? हाँड़ियों में डालती हैं। अचार-वचार डालना तो हमसे सीखती नहीं। हाँ ! हाथ के काम सीखने में उनको बड़ी रुचि है। सिलाई, डलिया बनाना आदि बड़े मन से सीखती हैं।' मैंने मन में कहा, 'वे आपसे बुद्धिमान् हैं, समझती हैं क्या चीज हमारे लाभ की है--वरना यदि उनमें भी आप ही की बुद्धि होती तो मारमलेड और स्क्वैश की बोतलें डाल कर घर ले जातीं।'

इधर पूर्वीय प्रान्तों में एक साथ जागृति हो गयी है। इस वर्ष 'ग्राम-लक्ष्मियों' की भर्ती में एक साथ बाढ़ सी आ गयी है। इन ग्राम-लक्ष्मियों के एक क्लास को मैंने देखा ४०-४५-५० वर्ष की स्त्रियाँ डैस्क-कुर्सी पर बैठकर लिखना सीख रही थीं। अक्षर-ज्ञान समाप्त करके मात्रा-ज्ञान पर आयी थीं। यह एक वास्तव में बहुत बड़ी प्रगति थी। हो सकता है इस प्रगति में अंकुश महँगायी ने लगाया हो क्योंकि 'ग्राम-लक्ष्मी' को ३०) मासिक मिलता है। कुछ भी हो, पर ग्राम की वृद्धा अक्षरज्ञान प्राप्त करे यह साक्षरता की ओर बहुत बड़ी प्रगति है। इसी प्रकार प्राइमरी स्कूलों की एक रैली भी देखी। बालकों के पी० टी० अन्य व्यायाम, वैराइटी प्रोग्राम, देखकर चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। इतनी कुशलता से उन्होंने प्रदर्शन किया कि मन में यह धारणा जम गयी कि भूल सीखनेवालों की नहीं, सिखानेवालों की हुआ करती है।

हाँ, तो बात ग्राम-लक्ष्मी की हो रही थी। वहीं पर एक ग्रामसेविका बैठीं थीं। मैंने उनसे पूछा कि आपको क्या-क्या कठिनाई पड़ती है अपने काम में? वे बोलीं "गाँवों में कठिनाइयाँ ही कठिनाइयाँ हैं। दूध नहीं मिलता चाय तक को।" मेरे मुँह से निकल गया, 'गाँव में दूध नहीं मिलता !' मन में आया कहूँ, अभी तो कली के पेटीकोट बिब, मारमलेड, चटनी बन रहे थे ! वे बोलीं, 'हरी सब्जी नहीं मिलती। बस, कहीं-कहीं आलू मिल जाता है, बरसात में आना-जाना मुश्किल और साँप और बिच्छुओं की भरमार और गर्मियों में जो अंधड़ चलता है तो स्वतंत्र वायु का पूरा प्रकोप हमारी झोपड़ी पर पड़ता है। पोखरे का पानी गाँववाले पी लेते हैं, हमसे पिया नहीं जाता। कुआँ मिल जाय गाँव में तो भाग्य अच्छा है। वे तो अपनी धरती के मोह के कारण पड़े रहते हैं--बचपन से आदी भी हैं। हमारे लिए बड़ी समस्या है।'

हम दूध की सोच रहे थे, यहाँ पानी का भी अकाल है ! यह चित्रण है उन गाँवों का जो जरा अन्दर को पड़ते हैं। बिचारी भुगत रही थी, इस कारण कह गयी। प्रशिक्षण केन्द्र शहर के आस-पास ही था। इस कारण पुराने कपड़ों का बिब व पेटीकोट पहना रहा था और मारमलेड व चटती खिला रहा था।

पास ही एक सुशिक्षित समझदार सी २३, २४ वर्ष की महिला बैठी थीं। मैंने उनसे पूछा, आप क्या करती हैं, तो उन्होंने कहा मैं बी० डी० ओ० हूँ। और वे कहने लगीं कि यहाँ "मेरी तो कोई सुनता ही नहीं। कहती हैं, बिटिया ! पहले गृहस्थी बसाओ, कुछ सीखो, फिर हमका सिखाओ। अब हम बिटियन से का सीखी ? परिवार नियोजन की तो मैंने बात ही करनी छोड़ दी है। वे तो सीधा यही कहती हैं

...न बेटा न बिटिया न मंसेधू (पति)। तू का ...बेटा-बिटिया के लिए जिउ कैस अकुलात है। ...तो यह बताओ कि बच्चा होय तो कैसे जिये। ...दयू मारत है ऊपर से तू कहत हो कि बस कोखै ...देउ। तो का निपूती होय के जिई? दैव मारत ...तो आस तो लाग रहत है कि वही दिहिस रहा, ...गवा, अब फिर देई।"

...जीवन के सत्य! उनको चाहिए कि सन्तान हो ...कैसे? इसपर एक बात याद आयी। इसी गाँव के ...निरीक्षण भवन' के चौकीदार की औरत मेरे पास ...और अपना दुखड़ा रोने लगी—"चार बच्चा रहें, ...चले गये। अब हमार जिउ ठीक नाहीं रहत है, जैसे ...सूनइ न होय।" मैंने उसको बहुत समझाया ...तो एक अच्छे खासे कस्बे में रहती हो। तुम्हारे लिए ...ने अस्पताल खोले हैं। उसमें पढ़ी-लिखी लेडी ...हैं। उनके पास जाओ, दवा लेकर आओ। ...महीने इलाज करो। फिर जरूर तुम्हारा रोग दूर ...और गोद भरेगी। बहुत समझाने-बुझाने पर ...लेकर वह चली गयी। और मैं उनकी ...के विषय में सोचकर उदास हो गयी कि देखो ...है, डाक्टरनी हैं, पर इन्हें यह नहीं सूझता कि ...आयें। मेरा मन बड़ा भारी हो गया। औरतों ...में तरह-तरह के कष्ट! शरीर भगवान् ने ऐसा ...कि उसमें कष्ट ही कष्ट।

शाम को मेरे पति लौटे तो मैंने पूछा "आपने क्या यहाँ अस्पताल भी देखा? डाक्टरनी कैसी है?"

वे बोले "हाँ—अस्पताल भी देख आया। हाल कुछ पूछो मत। लेडी डाक्टर तो दूर रही, वहाँ कोई डाक्टर ही नहीं है। एक मेल कम्पाउण्डर (पुरुष कम्पाउण्डर) है। वह अस्पताल में कुछ पर्ची-वर्ची काटकर अस्पताल चालू रखे है। जनता सरकार को कई बार लिख चुकी। जूँ रेंग जाय तो अच्छा ही है।"

गाँवों में डाके पड़ते हैं पर थानों पर किसी सवारी का प्रबन्ध नहीं है। आशा की जाती है कि डाके की खबर आने से पहले ही पुलिस वहाँ पहुँच जाय। पहुँच कैसे जाय? इसके बारे में भी कुछ सोचा है? शहरों की सड़कों पर दौड़ने के लिए गाड़ियाँ हैं। वहाँ भी दौरा करने को गाड़ियाँ हैं जहाँ रेल से काम चल जाता है। घर से दफ्तर ले जाने को गाड़ियाँ हैं। मगर डाका पड़ने पर गाँव की पुलिस को डाके के स्थान पर पहुँचने के लिए गाड़ियाँ नहीं हैं। एक-एक थाने में प्रायः दो सौ गाँव होते हैं।

पर इस समय मैं तो इस चिंता में हूँ कि कहीं उस चौकीदार की औरत से आँखें चार न हो जायँ। कहीं वह मुझको बाहर पाकर रेंगती-रेंगती चली न आये। इसलिए मैंने बाहर घूमना छोड़ दिया है और इस निरीक्षण भवन से जल्दी ही कहीं और चल देने की सोच रही हूँ।



हिन्दी का एक विशिष्ट काव्य-रूप—माँज।

श्री प्रभुदयाल मीतल

हिन्दी काव्य का एक छंद "मंज", "मांज" अथवा "मांझ" कहलाता है। इसमें २८ मात्राएँ होती हैं और यति १६ मात्राओं पर होती है। इस छंद में कुछ कवियों ने एक सुनिश्चित शैली में काव्य-रचना की है। इसके कारण इसने छंद मात्र होने की अपेक्षा एक विशिष्ट काव्य-रूप का सा स्थान प्राप्त कर लिया है।

इस काव्य-रूप की विशिष्टता इसकी भाषा और रचना-प्रणाली के साथ ही साथ इसमें कथित विषय से भी स्पष्ट होती है। ब्रजभाषा के साथ खड़ीबोली की क्रियाओं तथा हिन्दी के साथ फारसी शब्दों का अद्भुत मिश्रण इसकी भाषा-विषयक विशिष्टता है। उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक का अनूठापन, ऊँची उड़ानें और ख्यालात की बारीकियाँ तथा स्वच्छंद एवं उत्तान शृंगार रस के कथन इसकी रचना-प्रणाली और विषयगत विशिष्टताएँ हैं। इसकी सबसे बड़ी विशिष्टता यह है कि इसकी रचना उन विरक्त भक्तों अथवा संतों द्वारा हुई है जो सांसारिक भोग-विलास और वासना से सर्वथा मुक्त होकर भगवान् के भजन-ध्यान में ही सदैव लीन रहते थे।

हिन्दी के इस काव्य-रूप के प्रसिद्ध कवि "सीतल" हुए हैं। मिश्र बंधुओं ने उनकी रचनाओं की अत्यंत प्रशंसा करते हुए उन्हें खड़ीबोली का प्रथम कवि माना है;[१] किन्तु "सीतल" से पहिले गौरगणदास और वल्लभरसिक भी इसी प्रकार की रचनाएँ कर चुके थे। सहचरिशरण इस शैली के अन्यतम कवि हुए हैं। इस प्रकार गौरगणदास, वल्लभरसिक, शीतलदास और सहचरिशरण इस काव्य-रूप के सफल निर्माता हुए हैं। उनमें आरंभिक दोनों कवि १८वीं शती में तथा अंतिम दोनों १९वीं शती में हुए थे।

हम यहाँपर उन चारों के संक्षिप्त जीवन वृत्तांत और उनकी रचनाओं के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत करते हैं—

१—गौरगणदास—उनके जीवन वृत्तांत के संबंध में कोई निश्चित बात ज्ञात नहीं होती है। हिन्दी संसार के लिए तो उनका नाम भी नया है। उनकी रचनाओं की एक छोटी सी पुस्तिका बाबा कृष्णदास ने "गौरांग-भूषण मंजावली" के नाम से प्रकाशित की है, किन्तु उनकी जीवनी के संबंध में उन्होंने कुछ भी नहीं लिखा है।

गौरगणदास ने अपनी रचनाओं में श्री चैतन्य महाप्रभु और उनके पार्षद श्री रूप-सनातन गोस्वामियों तथा अन्य गौड़ीय संतों की बंदना की है। इनसे उनका चैतन्य मतानुयायी भक्त-कवि होना सिद्ध होता है। उनकी रचनाओं के अंतःसाक्ष्य से वे १८वीं शती के आरंभिक काल में विद्यमान जान पड़ते हैं।[२] वे वृन्दावन के एकांत में निवा[स] कर राधा कृष्ण के भजन-ध्यान में सतत लीन रहने वा[ले] विरक्त संत थे।

उनकी रचनाएँ ब्रजभाषा में हैं, किन्तु उन्होंने [अ]धि[कांश] छंद प्रायः खड़ीबोली में लिखे हैं, जिनमें संस्कृत के [साथ] शब्दों के साथ ही साथ फारसी शब्दों का भी प्रयोग हु[आ] है। काव्य की दृष्टि से ये रचनाएँ साधारणतया अ[च्छी] हैं, किन्तु इनमें कहीं-कहीं पर यति-भंग और छंदों[के] दोष भी आ गये हैं। अनेक छंदों में "गति" को "गती", "छवि" को "छवी", "रवि" को "रवी" और "रति" को "रती" पढ़ना पड़ता है। उनकी रचना के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

(१)

वैसा ही रूप सजा दिलवर, हम गाहक हुस्नपरस्ती के
देखत ही मुझे नकाब किया, हो इश्क परस्तां मस्ती के
हम भी क़दमों के चेरे हैं, तुम हो महरूम इस बस्ती के
इस इश्क पेच का भँवर कठिन, तुम हो खेबा इस किस्ती के

(२)

उपमा क्या खोज करें शायर, यह रूप क़हर का फेरा है
मृगराज छवी को बन्द किया, गजराज गती को हेरा है
क्या सिंधुराज का भ्रमर छीन, रवि-तनया तन को घेरा है
हाँ नील कमल सर बीच खिला, रहै काम सुभट का नेरा है
यह छवी कहर का दरिया है, को इसके आगे धीर धरै
लख मीनकेतु रस लहर उठें, पल-पल सीने में पीर करें
क्या नील कदम दल खिले हुए, नोंकों पै किरनें भोर करें
है निखल संपती का सुरमा, क्या कामराज के तीर सरें
जनु मेघ खंड में सेष बाल रबि, तेज अनूप प्रकाश करै
आनंद सिंधु में उदय हुआ, फिर चंद्र सरूप प्रकास करै
हाँ अमी नीर में चुआ हुआ, छवि तेज रूप प्रकास करै
नवनीत छटा भर स्याम घटा, मनसिज का भूप प्रकास करै
क्या मधुर सुधारस भरा हुआ, अरबिंद अरुन दल भाता है
भीतर हीरों की पंक्ति जड़ी, जनु रवी अस्त को जाता है
फिर छटा जुवत गन संग लिए, ससि मेरुगुहा से आता है
उर सिद्धि पीठ लख सरस्वती, तोरन में अरुन समाता है

(३)

फिर हेम चंद सा उदय हुआ, क्या छवी सिंधु में ढाला है
यह प्रेम नीर में चूय रहा, मनमथ का मानों प्याला है
इस सरद चंद को बंद किया, लखि दोष बंक अरु काला है
सब रूप सील गुन तेज पुंज, यह उज्ज्वलता में आला है
दो यूथ छवी के झूल रहे, चश्मों में छाया चौंधा सा
वे तेज पुंज रस रूप भरे, लखि दिल में धाया कौंधा सा

१—मिश्रबंधु विनोद, कवि सं० ६४६, पृष्ठ सं० ६३४।

२—लेखक रचित "चैतन्य मत और ब्रज साहि[त्य]" पृ० २१७-२१८।

...विधि का लभी प्रपंच लखा, सब जान पड़ा है ओंधा सा।
...काम सुभट की सैन्य कहूँ, कै पंचवान का फोंदा सा॥
...श्याम घटा की धार चलीं, दो तेज प्रेम छवि पूरी है।
...नागराज की छोहनियाँ, लखि चंद्र-प्रभा पर रूरी हैं॥
...मुल स्याह मखतूल सकुचि मन, दिल बिच कछु न सबूरी है।
...मजाल से भरी हुई, मोहन की जीवन मूरी है॥

...—वल्लभ रसिक—ब्रजभाषा के भक्त कवियों में ... रसिकजी अपनी सरस और अलंकृत रचनाओं के ...सिद्ध हैं, फिर भी उनका अस्तित्व-काल और जीवन- ...अभी तक प्रामाणिक रूप से निश्चित नहीं हो पाया ...मिश्रबंधु विनोद" में कवि सं० ३८४ और ७८० ...नाम के दो कवियों का उल्लेख हुआ है और उन्हें ...काल का बतलाया गया है। वे विवरण वस्तुतः ...ही वल्लभ रसिक के हैं, जिनमें काल ठीक प्रकार से ...लिखा गया है। हमारे मतानुसार उनका जन्म ...१७०० के लगभग और रचना-काल संवत् १७२५ ...का है।[1] इस प्रकार वे १८वीं शती में विद्यमान ...और गौरगणदास के प्रायः समकालीन थे।

...श्री गदाधर भट्ट के वंशज होने के कारण दाक्षि- ...णात्य ब्राह्मण थे, किन्तु कई पीढ़ियों से वृन्दावन में ...के कारण ब्रजभाषा उनकी मातृभाषा जैसी हो गई ...इसीलिए वे परिमार्जित ब्रजभाषा में सुन्दर रचना कर ...। उनकी रचना का लालित्य दर्शनीय है। इसे पढ़ते ...गोविंद का स्मरण हो आता है। "ल"-कार के ...प्रयोग और अनुप्रासों की मधुर मंद ध्वनि ने ...काव्य को सरसता प्रदान की है। उनके काव्य में ...का विशेष प्रयोग हुआ है। इससे जहाँ उनकी रचना ...हुई है, वहाँ कुछ कठिन भी हो गई है। कलात्मकता ...रचना की विशेषता है, किन्तु इससे भाव-व्यंजना ...नहीं हुई है। उनकी रचना में संयोग श्रृंगार और ...भक्ति का ही कथन हुआ है। उन्होंने अपनी वाणी ...राधा-कृष्ण की सहचरी और उनके प्रेमासव से सनी ...बतलाया है। निस्संदेह उनकी रचना में सात्विक ...है जो भक्त जनों को रसमत्त बना देती है।

...उन्होंने विभिन्न राग-रागनियों के पदों में प्रिया- ...प्रियतम की रसपूर्ण लीलाओं का गायन किया है। उनकी ...रची हुई "मांझ" भी प्रसिद्ध हैं, किंतु उनमें अन्य कवियों की ...फारसी शब्दों का प्रयोग नहीं हुआ है और वे ...बोली की अपेक्षा ब्रजभाषा में ही लिखी गई हैं। उनकी ..."मांझ" नामक रचना पंजाबी भाषा में है। यदि ...अन्य रचनाएँ उपलब्ध न होतीं, तो इस मांझ के ...उन्हें पंजाबी भाषा का ही कवि समझा जाता। ...यहाँ पर उनकी मांझों के कतिपय उदाहरण दिये जाते हैं—

1. चैतन्य मत और ब्रज साहित्य, पृष्ठ सं० २२३।

पूरन ससि-मंडल की किरनें, मनि-मंडल पर छाईं।
चमकि-चमकि चहुँदिसि-दिसि पुलिननि, बन चाँदनी बिछाई॥
अंबर पर सुंदर तारागन, छाति छपाइ तनाई।
"बल्लभ रसिक" विलास रास, उल्लास गाँस सुधि आई॥
नव नागर नट चटक-मटक सों, मोर-मुकुट छबि धारी।
धारी छबि चटकीले दुपटा, लटकत छोर छटा री॥
किये प्रकास रास मंडल पर, तास काछनी न्यारी।
"बल्लभ रसिकन" करली मुरली, सिर लिएँ तीयमन हारी॥

(२)

झमकि चली सँग बाल, हाल करतालनि लै-लै गोरी।
लाई गति मृदंग उपजाई, झाई बन धन घोरी॥
थेई-थेई ततथेई थेई, येई धुनि लै जोरी।
"बल्लभ रसिक" बिहारी प्यारी, प्यारी तान झकोरी॥

(३)

भरि गुलाब-जल बिमल सरोवर, दंपति केलि मचाई।
स्रेनी अमल कमल-नैनी, अलि पंकज पाँति डुलाई॥
गहि-गहि कलस तरंगनि, बदलत डूबन उछरनि लाई।
"बल्लभ रसिक" अंग अंगनि तें, निज-निज छबि दरसाई॥
लै-लै चुभकी अंतर सुभ को, लुभकी परसनि भावें।
लपटनि में लपटनि भजि चोंकनि, नोंकनि नैन चलावें॥
सरस हँसीं बनसी रस हिलगीं, लगीं मीन जिम आवें।
"बल्लभ रसिक" रसनि तन-मन सनि, निकसन मनहिं न ल्यावें॥

(३) शीतलदास—वे हरिदासी संप्रदाय के अंतर्गत टट्टी संस्थान के महंत ठाकुरदास के शिष्य थे। ठाकुरदास जी का आचार्यत्व काल सं० १८५९ से १८६८ तक का है, अतः शीतलदास १९वीं शती के उत्तरार्द्ध में विद्यमान थे। उनके जन्मस्थान, जन्म-संवत् और माता-पिता आदि के विषय में कोई उल्लेख नहीं मिलता है। वे वृंदावन में निवास करनेवाले विरक्त संत थे।

हिन्दी, संस्कृत और फारसी भाषाओं के वे अच्छे विद्वान थे। उनकी रचनाओं की भाषा प्रायः खड़ी बोली है, जिनमें ब्रजभाषा और संस्कृत के साथ फारसी शब्दों का भी प्रचुरता से प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं पर तो उनकी रचना इश्किया उर्दू शायरी जैसी मालूम होती है, जिसमें वासनापूर्ण लौकिक प्रेम का भ्रम होने लगता है।

उनकी रचनाओं में "लालबिहारी" का नाम प्रायः आता है, जिसके प्रति उनकी उत्कट आसक्ति की भावना व्यक्त हुई है। कुछ लोगों की कल्पना है कि "लालबिहारी" कोई सुन्दर बालक था, जिस पर ये आसक्त थे। इस प्रकार का कथन सर्वथा भ्रमपूर्ण और मिथ्या है। वास्तव में यह नाम हरिदासी संप्रदाय के उपास्य ठाकुर श्री बिहारीजी का है और "सीतल जी" की रचनाओं में उनके प्रति अलौकिक प्रेम की व्यंजना हुई है।

उनके रचे हुए गुलजार चमन, आनंद चमन और बिहार चमन प्रसिद्ध हैं, जो मांझ काव्य-रूप के सर्वोत्तम उदाहरण हैं। यहाँ पर उन तीनों रचनाओं के कुछ छंद दिये जाते हैं—

पंकज पर बीरबधू बैठी, उपमा लखि होजा कुंद कहीं।
कै शरद कमल पर दल विद्रुम, देख छुटै दुख द्वंद कहीं॥
पंकज दल ऊपर चुन्नी सी, वरणैं मति रहु मुख मंद कहीं।
कुंदन पर माणिक जड़े हुए, जानी मँहदी के बुंद कहीं॥
नख शरद चंद्र मेंहदी कोरें, कुंदन के बाग सुहाये से।
अघ हरण तिमिर के नाश करन, मेरे उर बीच समाये से॥
नौरतन जड़ी जंजीर झलक, एड़ी गुलाब दल छाये से।
मखमल ज़रदोजी काम कोश, छवि चरण चूमने आये से॥
माणिक के चौके जड़े हुए, विद्रुम रंग जरद जसी से हैं।
छवि छद गुलाब के मात पड़े, उर कंटक दरद कशी से हैं॥
तारागण मोती अस्त बेध, जग राखे ललित असी से हैं।
नख लालबिहारी के 'सीतल', क्या पूरण शरद शशी हैं॥

पूरणमासी के शरद चंद्र को, लखैं सुधा-रस मत्ता सा।
मुख ते नकाव को खोल दिया, जगमगै प्रताप चकत्ता सा॥
मुसकान निकल कर खाय गई, चित सुधा लपेटा कत्ता सा।
भरि नजर न देख सुधाकर को, छुट परैं छपाकर छत्ता सा॥
श्रम सीकर लालबिहारी के, देखे उपमा में दंगल सा।
कुछ हीरे हरे हुए चित में, मोती के जी में मंगल सा॥
अलसाता हुआ नजर आया, अलबेला रूप अखंडल सा।
कै शरद चंद्र पर उदै हुआ, जानी तारागण मंडल सा॥
मुख शरद चंद्र पर श्रम सीकर, जगमगे नखत गण जोती से।
कै दल गुलाब पर शबनम के, हैं कणिका रूप उदोती से॥
हीरे की कनियाँ मंद लगैं, हैं सुधा किरण के गोती से।
आया है मदन आरती को, धर हेम थार पर मोती से।
मुख शरद चंद्र पर ठहर गया, जानी कैं बुंद पसीने का।
या कुंदन कमल कली ऊपर, झमकाहट रक्खा मीने को॥
रहता है कोई होश कहीं, हो पिदर बूअली सीने का।
या लाल बदख्शां पर खैंचा, चौका इलमास नगीने का॥

हीरे से दशन, हँसन माणिक, विद्रुम अधरों से अड़ते हैं।
मुख संपुट जड़ा जड़ाव लहर, चुन्नी के चौके जड़ते हैं॥

(४) सहचरि शरण—उनका अन्य नाम सखीशरण भी था। उनका जन्म सं० १८३० में और देहावसान सं० १८९४ में हुआ था। वे टट्टी संस्थान के महंत राधाशरण जी के शिष्य हुए थे। इस प्रकार वे शीतलदासजी के प्रायः समकालीन थे। अपने गुरु के पश्चात् वे सं० १८७८ में संस्थान के महंत बनाये गये। उनके रचे हुए दो ग्रंथ "ललित प्रकाश" और "सरस मंजावली" हैं।

"सरस मंजावली" में १४० माँज या माँझ हैं। इस रचना का काव्य-सौन्दर्य दर्शनीय है। इसमें शीतलदास जी की शैली का अनुकरण किया गया है। इसकी भाषा व्रज मिश्रित खड़ी बोली है, जिसमें संस्कृत और फारसी शब्दों का प्रचुरता से प्रयोग हुआ है। इसमें कहीं-कहीं पर पंजाबी भाषा के शब्द भी मिलते हैं।

श्री वियोग हरि ने "सरस मंजावली" की प्रशंसा में कहा है—

"इसकी रचना बड़ी उच्च कोटि की है। काव्य-चमत्कार के साथ ही इसमें प्रेम-माधुरी और रस-वारुणी की एक निराली छटा और मादकता है। इसकी भा[षा] भी अनूठे ढंग की है... कोई-कोई छंद तो "तीर त[लवार] वार और तमंचा" का काम कर जाता है।"

यहाँ पर इस रचना के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

कटि किंकणि सिर मोरमुकुट वर, उर बनमाल परो है।
करि मुसक्यानि चकाचोंधी, चित्त चितवन रंग भरो है।
'सहचरिशरण' सु विश्व बिमोहिनि, मुरली अधर धरो है।
ललित त्रिभंगी सजल मेघ तनु, मूरति मंजु खरो है॥

मुख मृदु मंजु महा खूबी, यह गर्व गुलाब हरोगे।
चश्म चारु नरगिस अलिमस्तां, उर संकोच भरोगे॥
लच्छेदार युगल जुलफें छवि, संबुल छैल छरोगे।
'सहचरिशरण' संग लै गुलसन, सैर शिताब करोगे॥

चमन चारु छवि द्विज अनेक, जनु कटि किंकिणी धरोगे।
नैन कलीन विलोकन बाँकी, वचन प्रसून झरोगे।
फल हजारहा इंतजार जहँ, अति अनुराग ढरोगे।
'सहचरिशरण' संग लै गुलसन, सैर शिताब करोगे॥

अलकावृत मखतूल मूल वछि, ते भुज मूलन परसे।
बाँकी भौंह बिलोचन बाँके, रूप रंग रस बरसे॥
अधर बिंब बिंबित नकमोती, नित नौती दुति दरसे।
'सहचरिशरण' पियूष भूख में, मुख-मयूख सुख सरसे॥

नासा वर मुक्ता विशाल, जनु जानि सुराही राखें।
मुख-छवि अधिक वारुणी भरि-भरि, पल प्याले बिच नाखें।
"सहचरिशरण" सु झूमत घूमत, करत पान अभिलाखें।
ए महबूबा श्याम सुखूबा, कृत मतवाली आँखें॥

लटकारी लट कारी नाहक, नागिन प्रान खगैंगी।
मनमोहन की दीठ मोहिनी, रसनिधि ठीक ठगैंगी॥
"सहचरिशरण" सु क्यों न कहा तुम, उर बिरहागि जगैंगी।
ये मालूम न मोहि परी, तब इश्क बलाय लगैंगी॥

अमल चढ़ी भृकुटी वर फरकें, फरकें द्रग रतनारे।
मृदु मुसक्यान बँकीकी बाँकी, बैन विनोद सुधारे॥
मोर मुकुट दी लटक बंक छवि, जुल्फ-जाल अति कारे।
"सहचरिशरण" त्रिभंगी रंगी, उर उरझे मतवारे॥

उर के घाव रूप सो सेकै, हित की सेज बिछावैं।
द्रग डोरे, सुइयाँ वर बरुनी, टाँके ठीक लगावैं॥
मधुर सचक्किन अंग-अंग छवि, हलुआ सरस खवावैं।
श्याम तबीब इलाज करै जब, तब घायल सचुपावैं॥

चखन रूप चकचौंधी में चित, मारी लात खरी है।
अकस्मात यह अलक आइकै, मन जंजीर परी है॥
मृदु मुसक्यान मूढ़ उर घाली, मोहन मोह भरी है।
"सहचरिशरण" रसिक आशिक ने, क्या तकसीर करी है॥

किया प्रान कुरबान, जानि जिय अति अनुराग बढ़ा है।
ए दिलवर दिलवरी करो चलि, दिल दीदार गढ़ा है।
"सहचरिशरण" मदन दर कद का, रस मस्तान अड़ा है।
तेरी कसम, चश्म तेरे लखि, तेरा जान खड़ा है॥

राहुलजी के साथ तिब्बत के अभियान में (१३)

श्री फेनी मुकर्जी

ऊँचे-ऊँचे ठोस पठार पर बसे हुए तिब्बत देश की धार्मिक एवं राजनीतिक विचारधाराएँ सैकड़ों वर्ष से अटल-एक मजबूत शिला-स्तम्भ की भाँति जमी खड़ी थीं। बौद्ध जगत् का एक प्रकाश-स्तम्भ सा, और निर्वाण के लिए अहिंसा-मार्ग सा दीख पड़ता था। उनके कठिन और धार्मिक नियमों और कड़े कानूनों ने जकड़कर बाँध रक्खा था। सरकारी माल की चोरी, राजद्रोह ऐसे बड़े-बड़े अपराधों के लिए प्राण-दण्ड निर्धारित था। अपराधियों को पहाड़ की चोटी से गिराकर, पत्थरों से कुचल कर तथा अंधकूप तहखानों में डालकर मार डाला जाता था।

हाथ-पाँव को काट डालने की सजा के साथ-साथ किसी अपराधी को अंधा भी कर देते थे। शिगट्षी की सड़कों पर देखा था एक दिन एक व्यक्ति को उसके गले में जकड़ा हुआ था एक बड़ी भारी बैलगाड़ी के पहिये की भाँति एक लकड़ी का चक्का। इतने बड़े बोझ को उठाकर चलना और बैठना बहुत मुश्किल था। इस हालत में यह कैदी लेट नहीं सकता था। इस अपराधी को इस हालत में बेबस बनाकर तिब्बत सरकार ने सड़क पर छोड़ दिया था जिससे लोगों को चेतावनी मिल जाये कि सरकारी माल लूटने से ऐसी कड़ी सजा मिलती है। साथ-साथ नगर-निवासियों को आदेश था कि कोई भी इस कैदी को खाना और आश्रय न दे। यह कितनी कड़ी सजा थी! भूख और प्यास से सूखकर और सर्दी की थपेड़ खा-खाकर मरेगा वह व्यक्ति एक कुत्ते की मौत। छोटे अपराधों के लिए निर्धारित थी कोड़े खाने की सजा। सौ से लेकर तीन सौ कोड़े मारे जाते थे प्रतिदिन कैदी को एक चौखट या टिकटिकिया में बाँध कर। सड़ा मांस और सड़ा सत्तू खाकर कैदी अँधेरे कारावास में महीनों और वर्षों पड़ा रहता था। बहुत ही खूंख्वार अपराधी को कुल्हाड़ी या तलवार से काट डाला जाता था। उसके सिर और हाथों को काट कर टाँगने के बाद शरीर के बाकी धड़ को काट-काट कर कौवों और गीधों को खिला देते थे।

सैन्य के अभाव के कारण वह विशाल भारी-भरकम बौद्ध धर्म का स्तम्भ सहसा धराशायी हो गया। राज-नैतिक क्रांति की बाढ़ की थपेड़ खाकर चूर-चूर होकर युग-युग का पुराना धार्मिक किला ध्वस्त हो गया। इतने बड़े दुर्ग के गिरने के धमाके से सारी दुनिया काँप उठी। देखते ही देखते महान धार्मिक देवराज और उनके ऊँचे-ऊँचे सरदार क्रांति की लहरों से टकराते हुए बह चले। अपने प्राण बचाते-बचाते उन्होंने युग-युग का पुराना वह विशाल विराट् बौद्ध धर्म का किला एक लाल रंग की बाढ़ में डूबता हुआ देखा। उसकी वे ऊँची-ऊँची बुर्जियाँ, विशाल स्तम्भ और मजबूत छतें गरजते हुए लाल रंग के बढ़ते हुए ज्वार की तह में समा गयीं। तूफान की गति इतनी भयंकर थी कि धर्मराज्य के देवता और सरदार पीछे मुड़कर इस ऐतिहासिक प्रलय को देख भी न सके।

अपने मुकद्दमे का फैसला सुनने जब हम शिगट्षी नगर के जोंगसरजी की कचहरी में पहुँचे तो उनके अफसर मुझे और मेरे नौकर को जोंगसरजी के निवासभवन में लिवा ले गये। बड़े आदर से उन्होंने हम दोनों को भोजन कराया और दुःख प्रकट किया कि तिब्बती डाकुओं के अत्याचार से हमको इतना कष्ट भोगना पड़ा। उन्होंने नौकर के मारफत हमसे माफी माँगी और भारतीय लामा राहुलजी को भी हमारे द्वारा शुभ कामनाएँ और क्षमा-याचना का संदेश ले जाने को कहा। उन्होंने भोजन के बाद अपने भवन और कचहरी के दर्शन कराये। अनेक बड़े-बड़े सरकारी अफसरों से भेंट कराने के बाद जब वे हमको एक खुले आँगन में ले आये तो देखा कि हमको लूटनेवाले डाकू के सरदार को एक चौखट में बाँधकर कोड़े मारे जा रहे थे। मोटा कोड़ा चमड़े की पट्टियों से गूंथ कर बनाया गया था। खींच कर कोड़ा जब उसकी नंगी देह पर पड़ता था तो वह बिलबिला जरूर पड़ता था परन्तु चीखता चिल्लाता न था। कितनी अद्भुत थी उस नौजवान डाकू की सहनशक्ति! पूछने पर पता चला कि उस अपराधी को दो महीने की कड़ी सजा मिली थी। प्रतिदिन उसको दो सौ कोड़े मारे जायेंगे। एक सौ कोड़े डाका डालने के दंड में, और एक सौ कोड़े तिब्बत सरकार के अतिथि को छेड़ने और तिब्बत राज्य को बदनाम करने के अपराध में उसको प्रतिदिन खाने पड़ेंगे। दो महीने के बाद उसका मुकद्दमा फिर चलेगा और उसके अपराधों का फिरसे विचार होगा। जब हमने जोंगसरजी से प्रार्थना की



तिब्बती सुंदरी श्रीमती नीमा, जिसके डाकू पति ने हमें लूटने की चेष्टा की थी। इस वीर रमणी की अपूर्व कथा पढ़िए।

कि कैदी को बजाय सड़े मांस और सड़े सत्तू के उसकी पत्नी द्वारा लाये हुए ताजे भोजन देने की अनुमति दे दी जाय तो वे बहुत प्रसन्न हुए और बोले, सचमुच भारतीय लामा असली लामा होते हैं। एक डाकू के प्रति भी उनका कितना प्रेम है। उनको यह नहीं मालूम था कि हम यह निवेदन उसकी पत्नी की ओर से कर रहे थे जिसे हम वचन दे आये थे। उन्होंने बड़ी खुशी से अनुमति देकर हमारी बिदाई की।

पड़ाव पर आकर जब हमने कँवलजी, गोम्बूजी और सबों को अपनी सफलता की बातें सुनायीं तो सब ही नर-नारी बड़े प्रसन्न हुए। सायंकाल भोजन के बाद हम सब थोड़ी देर नाच-गान करते रहे और फिर हम सब बेखबर गाढ़ी नींद में सो गये।

दो दिन तक दौड़-धूप करते बीत गये चावल, सूखा मांस, मिट्टी का तेल, सिगरेट-दियासलाई, मक्खन और नमक इत्यादि खरीदने में। शिगट्षी का बाजार तिब्बत में प्रसिद्ध था। तिब्बत में बाजार और दुकानें सब जगह नहीं होतीं। दैनिक जीवन की आवश्यक वस्तुएँ यहाँ के लोग आपस में लेन-देन से प्राप्त करते थे। नगद रुपये पैसे वहाँके लोगों के पास नहीं रहते थे। इसी कारण दूकानदार भी नहीं होते थे। बड़े नगर में पैसेवाले सौदागरों का आना-जाना होता था, इसीलिए दुकानदारी भी चलती थी।

राहुलजी की भेजी हुई लम्बी सूची के अनुसार सब सामान खरीदने में बड़ी दौड़-धूप करनी पड़ी। हमारे देश की भाँति खरीद-फरोख्त आसानी से जल्दी जल्दी नहीं हो सकती थी। पहली अड़चन तो भाषा फिर भाव-ताव और तौल का फैसला करना, और अन्त में तिब्बती पैसों का हिसाब स्वयं समझना और उन ठोस बुद्धिवाले तिब्बतियों को समझाने में घंटों बीत जाते थे। वहाँ लोग तराजू के बदले लकड़ी की कटोरियों में सामान नाप कर बेचते थे। जो वस्तु घर से तौल कर लाते थे उसको फिर से तौल कर दिखाने की आवश्यकता नहीं समझते थे। तौल कर दिखाने को अपना अपमान समझते थे। असल में इस देश में नाप-तौल की जाँच-पड़ताल करने की जरूरत ही नहीं पड़ती थी क्योंकि सारे देश में लेन-देन के नियमों का मूल आधार बौद्ध धर्म की ईमानदारी और पाप-पुण्य के विचारों पर निर्भर था। और ऊपर बता चुका हूँ कि जान-बूझ कर पाप करनेवाले अपराधी को अपना हाथ, पाँव, आँख, कान तथा नाक इत्यादि कटवाने पड़ते थे। मेरे पास सर्दी में पहिनने का लम्बा कोट नहीं था। इसलिए नौकर ने सलाह दी कि कोट यहीं बनवा लें, नहीं तो तिब्बत में और कहीं भेड़ की खाल, कपड़ा और दर्जी नहीं मिलेगा और बिना चमड़े के रोयेंदार कोट के बर्फ के तूफान का मुकाबिला करना असम्भव हो जायेगा। समय के अभाव से यह काम नौकर की पत्नी आचा को सौंपा। तिब्बती पच्चीस संग (अंग्रेजी छः रुपये) अपने कोट की लागत देकर दस तिब्बती संग आचा को अपने लिए एक रोयेंदार बंडी बनाने के लिए इनाम देकर यह काम उसको सौंप दिया। मेरे और उसके पति के शरीर की लम्बाई-चौड़ाई लगभग एक ही सी थी। इसीलिए आचा ने यह दायित्व खुशी से स्वीकार कर लिया। उसने कहा कि कोट के १५ या २० दिन में तैयार हो जाने पर हमारी ओर आनेवाले

...ले काफिले के हाथ वह मुझको पहुँचा भी देगी। सबेरे ...कर जब हम अपना सारा माल-असबाब, लाद कर ...र गुम्पा" की ओर जाने को तैयार हो गये तो सराय के ... नर-नारी हमको बिदाई देने आ गये। नौकर ... पत्नी एवं उसकी दोनों लड़कियों ने हम दोनों को ...म किया। फिर आगे बढ़कर सरकारी सराय के ...दार गोम्बू और उसकी लम्बी पत्नी ने बड़े अदब से ...स्कार किया, अन्त में गोम्बू की साली नीमा-लामा ने ...कर लेट कर हमको प्रणाम किया और अश्रु भरे नैनों ... कहा। आचा ने बताया कि वह कह रही थी कि ... भारतीय लामाओं की बड़ी आभारी है कि हमारे ... के कारण वह अपने डाकू पति से रोज मिल सकेगी ... ताजा भोजन उसको खिला सकेगी वरना तिब्बत में ... अनुमति प्राप्त करना असम्भव था। मैंने उसको ... तीस संग दिये। नीमा-लामा अकेले हमारे पत्र को ... महात्मा के पास ले गयी थी और जवाब लेकर आयी ... लगभग ६० मील का सफर खच्चर पर सवार होकर ... दिन-रात लगातार चलते हुए १८ घंटे में तय किया ... बिना किसी अस्त्र के सहारे उसने यह काम अपने ... पति के खिलाफ अकेले किया था। तिब्बत में विराज-...ती जहाँ-तहाँ हमारे देश की रानी लक्ष्मीबाई और ... बेगम की भाँति वीरांगनाएँ।

...ग्टषी नगर से निकलकर जब हम एक बड़ी ...-नंगी मरुभूमि के समान पठार को पार करते हुए ... थे तो कड़ी धूप की गर्मी से हम सब पसीने में नहा ... लगभग सात मील चलने के बाद हम ऊँचे-नीचे ...ड़ों के बीच में आ पहुँचे। हमारी पगडंडी पहाड़ों को ...ती हुई एक बहुत ही खतरनाक पहाड़ी उतराई पर ... निकली। पगडंडी बड़ी संकीर्ण थी और उबड़-खाबड़ ...रों के ऊपर से हम फिसलते, ठोकरें खाते उतरने लगे ... एक तीन-चार सौ फुट नीचे खड्ड में। धूप में नीचे ... पहाड़ी नदी साँप की तरह बल खाती हुई चमक रही ... नदी के तट पर आकर हम सबों ने अपने कपड़े और ...तार कर खच्चरों पर रख दिये और बर्फ के समान ... पानी के भीतर से अपने-अपने खच्चरों को खींचते ... नदी को पार करने लगे। नदी का पानी कमर से ऊँचा ...था परन्तु उसकी गति भीषण तेज थी। ऊबड़-खाबड़ ... पत्थरों पर लगातार हमारे पैर फिसल रहे थे और ठोकरों से हमारे नंगे पाँवों को बड़ी चोट लग रही थी। ठोकर खाते हुए खच्चरों को लगातार खींचे रहना पड़ता था ताकि माल से लदे खच्चर कहीं पानी में गिर न पड़ें या बैठ न जायें। रुक-रुक कर हाँफता हुआ खच्चर पानी चलते-चलते पीता जा रहा था। नदी के उस पार भी एक ऊँची खड़ी पहाड़ी दीवार थी। इन दोनों पहाड़ों को चीरती हुई यह नदी बह रही थी और नदी की कल-कल ध्वनि बड़े जोर से गूंज रही थी। नदी पार करके जब हम कपड़े पहिन कर चाय-पानी कर रहे थे तो कँवलकृष्ण जी ने कहा कि यह कितनी खतरनाक जगह है। अगर कोई छिपा हुआ डाकुओं का दल हम पर यहाँ हमला कर दे तो हमारे बचाव की कोई सूरत नहीं है। डाकुओं के हमले की भूली हुई बातें फिर याद आ गयीं। सचमुच हम सब एक बड़े ही दुर्गम पथ पर चल रहे थे। थोड़ी देर बाद कँवलजी ने कहा कि जब दिन-दहाड़े इस दुर्गम पथ पर हमारे छक्के छूट रहे हैं तो हम यह बात सोच ही नहीं सकते थे कि श्रीमती नीमा-लामा ने अकेले ही रात्रि के समय इस दुर्गम पथ पर कैसे यात्रा की होगी। नदी को पार करने के बाद फिर हाँफते हुए खच्चरों को खींचते हुए हम लगभग पाँच सौ फुट की खड़ी चढ़ाई पर रेंगते हुए चढ़ गये। सूर्य तेजी से सिर के ऊपर चमक रहा था और हम नोर गुम्पा की ओर भागे चले जा रहे थे।

लगभग १८ मील के सफर के बाद जब सूर्य तिरछा होकर पश्चिम की ओर झुकने लगा था तब हम फिर एक पहाड़ी नदी के पास आ पहुँचे। पहली नदी की भाँति यह नदी भी दो-तीन सौ फुट नीचे बह रही थी। हमारा शरीर थक कर चूर-चूर हो रहा था, खच्चर पानी में उतरने से इंकार कर रहे थे, पर सिवाय आगे बढ़ने के और कोई चारा न था। पहाड़ के नीचे उतरे, नंगे होकर नदी को पार किया और फिर पहाड़ पर चढ़ कर नोर गुम्पा की ओर रेंगते हुए बढ़ चले। चलते-चलते कँवलजी ने अपनी अधजली सिगरेट मेरी ओर बढ़ाते हुए पूछा कि क्या बहुत थक गये हो। उनकी यह ममता भरी बात सुनकर मेरा कंठ रुद्ध हो गया, और उत्तर में बताया कि चलने को अब शरीर में शक्ति नहीं है। ऐसा लग रहा है कि कुछ ही क्षण में बेहोश होकर खच्चर से गिर कर मर जाऊँगा। कँवलजी ने मुस्करा कर पूछा कि फेनी! अगर इस समय डाकू हमारे ऊपर धावा बोल दें तो क्या करोगे?

मुग़ल दरबार में शिष्टाचार (२)

श्री पद्मधर पाठक, एम० ए०, प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

अब हम बिनय बिधु की प्रतिलिपि पाठकों के विनोदार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं।

विनय बिधि वाही बिनेता के लायक है ।। जाकी चटसाल में विनय है भक्ति भेव अरु दीनता परम सेव ।। जाणि मनुष्य कौं च्यारि कौं उपकार प्रतिकार है। प्रभु १ मात पिता २ गुरु ३ खाविंद[१] ४ ।।

प्रथम प्रभु जानै नर देह दई सुर देह तें पुनीत।
दूसरे मात पिता जिन सुत हित सह्यो घाम सीत।।
तीसरो गुरु जो नर तन में नर गुन दाषै।
चोथो षाविंद जो अन्न बल तें नित प्राणहि राषै।।
तीननि कौ प्रतिकार न बणै बिना स्वामि के उपकार।
जो यै सब हो नित्य नैमित्तिक देह के अधीन
अरु देह अन्न के।।

अथ हों वि बुधनि की शिलोंछवृत्ति[२] वारौ एक दिन महफूजषां नाम अहमदशाह कौ उस्ताद जो मोहू पै कृपा राषत हौ ताकी बैठक के ताक मैं दोय यावनी[३] किताब धरी हती—अदाबुस्सलातीन [४] १ मिफताहुज्जवाबित[५] २।। ए दुहूं[६] पातिसाही किताबखाना तें आई हती।। प्रतिबंध हतो जौ इतरजन[७] ताहि न बांचै।। तामें पातिसाहन के नित्य नैमित्तिक दिन कृत्य, अदब की रीति, वैभव-प्रताप, मनसब, जागीर, मरातिब,[८] को ब्योरा इत्यादिक अनेक प्रबंध हते। किताब को दल[९] बिसेष हतो।। एक दिनां षान के दिवानषाना के ताक तैं किताब में लई बांचनि लग्यो। तैंही औसर षान आयो। मोहि बांचिबे को निषेध कियो। मोहि जो तहां तै यादि रही, और यावन-गीर्वाण[१०] ग्रंथन तें जो जानिबे मैं आई, सो या संक्षिप्त प्रबंध मैं लिषी है। जो यैं सीषै तिन्है काम आवैं, चतुर्दे की सभा में आदर बढावै, या प्रबंध कौ नाम 'बद्रुल आदाब'[११] धरचौ है। ताको अर्थ बिनय बिधु। वाके चौदह उदय, अधिकार इत्यर्थः। तास नाम पारसी में तलअत।

प्रथम अधिकार **सिजदा को**—सिजदा नाम सेव्य के सनमुष सेवक दोय गोडे भूमि पै लगाय, दोय हाथ धरती पै धरि सिरहि अवनि लावै*। याकी योग्यता यवन धर्म में षुदाय[१२] कों ही है। हिंदूनि के मत में देवालय, तीर्थ, तपस्वी, गुरु, जोगीन हू कों। कोऊ देस में राजा हूँ कों, जैसे आसाम देस में। याको हिंदी में दंडोत† कहियै।

दूसरो अधिकार **तवाफ**[१३] **कौ**—तवाफ नाम सिजदा के अनंतर तीन बार सेव्य के भांवरै फिरै ज्यों सेव्य पर सेवक की दाहिनी ओर रहै। याकी योग्यता सिजदा सारषी। तवाफ किये अनंतर बहुरचों सिजदा करै। तवाफ कों हिंदी में परिक्रमा १ प्रदक्षिणा कहियै २।।

तीसरो अधिकार **सलाम को**—सलाम शब्दार्थ कुशल वाची है। ताकी लक्षण कुशल पृछा में, वा कुशल प्रार्थना मैं। भावै बचन तें होइ भावैं काय तें। इहाँ संप्रदाय में दाहिनो कर सिर पै धरिवो वाके च्यारि भेदः जेरजानू[१४] १ जेरनाफ[१५] २ षमगर्दन[१६] ३ दस्त ब सर[१७] ४।।

जेरजानू यहै—सेव्य के सनमुष सेवक ठाडो होय दीठि मिलैं दाहिनो करतल गोडा कै नीचै राषि सिर झुकाय करतल सों लगाइ उठावै। आपतौ ऊंचै सिर ठाडो होय वा हाथ गोडा के ढिगही सों दाहिनी ओर सरकै अर्थात्

---

१. पति
२. यहाँ पर 'शांत और विद्वान्' के अर्थ में।
३. फारसी से तात्पर्य है।
४. अदब—तमीज़, शिष्टता; सलातीन—सुलतान का बहुवचन।
५. मिफ़ताह—कुंजी; जाब्ता—कायदा, नियम जिसका बहुवचन 'ज़वाबित।'
६. दोनों पुस्तकें।
७. अन्य कोई।
८. दर्जा, ओहदा, पद।
९. पत्रसंख्या।
१०. फारसी और संस्कृत के ग्रन्थ।

११. बद्र—चाँद; उल्—का; आदाब—विनय, शील।
*जानुभ्यामवनीं गत्वा संस्पृश्य शिरसा क्षितिम्।
—प्राणतोषिणी पृ० ४०६

१२. खुदा।
†निपत्य दण्डवद्भूमौ दण्ड इत्युच्यते बुधैः।
—प्राणतोषिणी, पृ० ४०६

१३. किसी वस्तु के चारों ओर फिरना।
१४. ज़ेर—नीचे, अधीन; ज़ानू—घुटना।
१५. नाफ—नाभि।
१६. गर्दन झुकाकर।
१७. सर के हाथ लगाना।

...लग्यो न आवै ॥ सलाम में अति त्वरा[१८] करै न ...विलंब। प्रथम में या भ्रांति जो सेव्य की सुरति हती ...हती। दूसरे में सेव्य कौं चिर-अवधान[१९] कौ श्रम। ...योग्यता पातिसाह, वजीर, उमरावनि कों, औरहू ...बहुमान्य होइ जैसैं मात-पिता, गुरु, प्रमुष। याको ...सेव्य को प्रथम दर्शन, वा संध्या ज्योति, वा बिदाय ...परंतु पातिसाह प्रमुष कों घर विदाय होत सलाम ...नही। जो यै बिदाय भये पाछै वाही दिन सेव्य ...संप्रदाय शुद्ध नही। और कदाचि[२०] सेव्य को ...कारज उपजै जो सेवक को बुलाइबो अवश्य होइ ...वियोग[२१]समै विनय निमित्त एक तसलीम करै, या ...परि सेव्य के अवधान की अपेक्षा नही। याकौ ...पातिसाहनि कै आँगन की विशालता के अनुसार ...शाह होत हैं; याकों दर्शनभूमि कहियै। जहाँ ...[२२] जसोल तुजक वाले ठाडे रहत। कदीम[२३] रीति ...: जो चोबदार सेवक कौ नाम टेरि[२४] सलाम करावत ...यह रीति त्यक्त[२५] भई। चोबदार सेवक सो ...-अदब सों, कवाइद सों, या बचन के सुनत सेव्य वाकी ...तब सेवक सलाम करै। नाम नही कहत याको ...। कदाचि कोई प्रकार की अवज्ञा, अनादार करि ...औ और देषिबे की तत्काल सेव्य कों रुचि न होइ। ...सलाम कों मुजरा हूं कहत हैं। सलाम कों प्रणाम ...। या सलाम के अनंतर पातिसाहनि कों तसलीम- ...में च्यारि अथवा तीन तसलीम करैं। पाछैं अपुने ...आइ एक तसलीम करि ठाडे रहैं वा बैठैं। वजीर, ...कों बिछौना के प्रांत[२६]तें सलाम के अनंतर दोइ ...। औरन कों एक, अथवा भावैं करौ भावै न ...। यह रीति सेव्य सों सेवक। भृत्य[२७] भर्त्ता[२८] सों ...अर्थनीय[३०] सों करै।

१८. जल्दी।
१९. अधिक समय तक ध्यान।
२०. कदाचित्।
२१. विदा के समय।
२२. हाथ में डंडा लिये तैनात व्यक्ति।
२३. प्राचीन।
२४. के।
२५. उठ गयी।
२६. कोनें।
२७. नौकर।

दूसरी **ज़ेर-नाफ़** नाम—नाभि के नीचै हाथ राषि सलाम करै या सलाम कै तसलीम योग्य नही याकी योग्यता आप तें बडे आदमी कों है अबसर याको प्रथम मिलाप अथवा बिदाय ठौर बिछौना परि अथवा कछूक निकट।

तीसरी **षमगर्दन** नाम—कंधरा कछू निहुडै[३१] याकी योग्यता तुल्यता में अथवा थोडी अधिकता में।

चौथी **दस्त-ब-सर**—कंधरा निहुडै नही, वा करतल मस्तक लाइयै। याकी योग्यता तुल्यता में, अथवा, हीन पद मैं।

चौथा अधिकार **तसलीम** का—तसलीम कौ शब्दार्थ सोंपिबो। लक्षणा करि आत्मा कों सेव्य के वशवर्त्ती करिबो। इहाँ संकेत यहै। हाथ धरती पै परसि मस्तक लगाइबो। याके दोइ भेद मुस्तकी[३२] मैं अर्थात सरल मुनहनी[३३] अर्थात वक्र। प्रथम जो दाहिने हाथ की अंगुरिया भूमि सों लगाइ सूधैई[३४] हाथ सिरपै लावै। दूसरी जो हाथ दाहिनी ओर वृत्त क्षेत्र की परिधि रेखा ज्यों मुडि सिर पै आवै। पुरानी रीति या हती जो हाथ धरती लगाइ नाभि कों परसि सिर पैं लावत हते। अब यह रीति त्यक्त[३५] भई है। याकी योग्यता पतिसाह प्रमुष कों सलाम अनंतर जैसैं सलाम के अधिकार मैं हम कही है। सलाम करि सेवक जब अपुने पद पर ठाडो रहै अथवा बैठे। तब प्रथम तसलीम करै याहि कोरनिश हूं कहत हैं। कोरनिश को अर्थ किनारे रे बैठिबो। अरु आज्ञा प्रामाण्य समैं। जहाँ आज्ञा सुनै तहांई तसलीम करै। आज्ञा साधि आवै तब अपुने पद पै आइ तसलीम करै। कछु विज्ञप्ति करै तब प्रथम अरु पाछै तसलीम करै। नजर दिषायें पाछैं। अथवा इनाम, बकशिस भयै तसलीमगाह मैं जाय तसलीम करैं। सेव्य जो सेवक की स्तुति अभिनंदन करै तो जहाँ सुनै तहांई तसलीम करै।

पांचमो अधिकार **कियाम** कौ—कियाम ठाडौ रहिबो। सेव्य की सभा में दोइ पाइ बराबर राषि दोइ

२८. मालिक।
२९. गरजमंद।
३०. जो गर्ज़ पूरी करनेवाला हो।
३१. मोड़कर।
३२. सरल।
३३. बल खाकर।
३४. फौरन।
३५. उठ गयी।

हाथ नाभि पै धरि ग्रैसें ठाडो रहै ज्यौं परछाही सेव्य पै न पडै। छींक, हुचकी, षांसी, जंभाई, ग्रंगडाई, डकार, अपवायु कों रोकि राषै। सब ग्रोर न देषै ग्रौरनि सों बतलावै नही। वारंवार ग्रावै जावै नही। (न) वरं कोई जरूर कौ काम पडयां। मूछ न मरोडै, डाढी न झिटके, हथियार पर हाथ न धरै। सेव्य बाकी ग्रोर देषै तब दीठि नीची करै। ग्ररज करत सावधानी राषै, जो याके कपरा सेव्य के कपरा सों न लगैं। थूंक मुषते न उछरै।

छठो ग्रधिकार **कऊद** कौ––कऊद बैठिबो। याकी सावधानी ठाडा रहिबा की सावधानीवत ग्रासन प्रश्स्त दोय गोडे मोडि बरा रि राषि बैठै। कदाचि चिर[36] बैठिबे तैं थक जाइ तौ तैही ग्रासन गोडा पर गोडो धरि बैठै।

सातमो ग्रधिकार **तहरीम** को––तहरीम शिष्टाचार। ताके सात भेद:––

प्रथम **इस्तकबाल**––सो ग्रभिगमन कहियै ग्रर्थात् ग्रागंतुक कौं लैन जाइबो। सो काहू कों कितेक दूर लौं, काहू कों घर के ग्रंगन लों, काहू कों बिछौना के पर्यंत लौं, काहू कों ग्रासन ते द्वै च्यारि पाँवडे।

दूसरी **इस्तकामत**––सो ग्रभ्युत्थान कहियै। ग्रागंतुक कों देषि उठि ठाडो होनो। धनवंत पुरुषनि ग्रागंतुक के ग्रादर ग्रनुसार यामें कैयो प्रकार निकासे हैं, जैसे ग्रर्द्धोत्थान १ नितंबस्यं २ दया को ताज़ीम हू कहत हैं॥

तीसरी **मुजालसत**––सो सहासन कहियै, एक ग्रासन परि बैठिबो। याहू में कैयो प्रकार है। जो ग्रागंतुक ग्रधिक पद होय तौ ग्राप ग्रासन छांडि ताहि बैठावे। तुल्यता में दोई बैठैं, ग्रागंतुक हीन पद होय तौ ग्रासन के कौने पै बिठावै।

चौथी **मुजावरत**––उपवेशन कहियै। ग्रपुने ढिग[37] बैठाइबौ।

पाँचमी **मुकालमत**––से संवाद कहियै। बिना प्रयोजन हू बतरावनो जो यैं गृहाधिप[38] के मौन तैं ग्रागंतुक कों षेद न होइ।

छठी **मुराषसत**––सो विसर्जन कहियै, बिदाय करिबौ इत्यर्थः। धनवंत बिदाय समै ग्रागंतुक कौं यथा संपत्ति धन वाहन वसन सुगंध सह भोजन प्रमुष करि सत्कार करत हैं। सामान्य जन तांबूलादिक सों ग्रथवा चाटुवाक्य करि।

सातमी **मुशायअत**––सो ग्रनुगमन कहियै, पहुंचाइबे जाणो। सो ग्रभिगमन वत्।

ग्राठमो ग्रधिकार **इजावत** कौ––सो प्रतीक्षा[39] कहियै ग्रर्थात् ग्रगरे[40] की सलाम को ग्रंगीकार करिबौ। जो सेव्य ग्रति ग्रधिक पद वा सेव्य हीन पद होय तो देषिबो प्रतीक्षा है। तदनंतर सेवक की पदवी को ग्राधिक्य ... कंधरा कंपन १ कर हृदय स्पर्श २ दक्षिण कर सूचना ... दस्त ब सर सलाम ४ उचित है।

नवमो ग्रधिकार **मुवाजिहत** कौ––सो नव संग ... ग्रर्थात प्रथम मिलबौ, ग्रथवा प्रवास तैं ग्राइ मिलिबो ... सो पातिसाहनि के मिलिबे कों ग्रास्तांबोस[41] कहियै, ग्रर्थात ... देहली चुंबन। वजीर, ग्रमीर सो मुलाजमत, ग्रर्थात ... उपासना। गुरु पिता प्रमुष सों कदमबोस ग्रर्थात् चरण ... चुंबन ग्रथवा पाइन ढोक। चाहियै यह तीनों विधि ...

दसमो ग्रधिकार **रिफक** को––सो प्रत्यादर कहियै ... ग्रर्थात नयौ मिलै तासों यथा योग्य रीति को करिबो ... सेवक हीन पद होय तो देषिबो मात्र। तदनंतर ग्रागंतुक ... की पदवी के ग्राधिक्य योग्य कुशल पृछा। सेवक की पीठ ... सिरपै कर धरिबौ; उर्द्धालिंगन १ कछू निहुडि कै उर्द्धा... लिंगन २ उपविष्टालिंगन ३ बाहुस्पर्श ४ करतल घटन ... ५ उचित है। लरिकानि कों ग्राश्लेष ग्रभिवादन ग्रथवा ... ग्रंक[42] मैं लैबो बतराइबो।

ग्यारमौ ग्रधिकार **मुदारा** को––सो चाटुकार ग्रर्थात ... यथावसर वचन भाषिबौ, यह रीति ग्रति ग्रधिक पद ... न करिबी। जो यैं तहाँ मौन ही विनय है। कछू ग्रधिक ... पद होय तासों सलाम करती बार कहैं बंदगी ग्रर्थात् ... तासों, कछु हीन होय तो नियाजमंदी ग्रर्थात् दैन्य, तुल्यता ... में सलाम, लघुनि सो बिनय ग्रंगीकारू में जिदैवाश ग्रर्थात ... चिरंजीव मर्हबा[43] ग्रर्थात स्वागत, भलैं ग्रायो इत्यर्थः ... वर्षुदार ग्रर्था मनोरथ सिद्धि, ग्रधिक पद पास तैं उठै ... चाहे जब उठिबे को कारण कहै नही तो कहै ग्ररजवंदगी ... ग्रर्थात सेवा सूचन, तुल्यता में कहे तषफीफ[44], तसदी[45] ... ग्रर्थात खेद लाघव। राति के समय उठै तो कहै शबबखैर ... ग्रर्थात् निस कुशल। तब जासों बिदाय होय सो कहै ... रोज ब ऐश ग्रर्थात दिवस सुष। जब ग्रधिक पद, कोई ... हीन पद कों बिदाय करै तब कहै षुदाहाफिज ग्रर्थात ... शरण। बुलाइबो होय तो ग्रधिक पद सों कहिबो तश्रीफ[46] ... ल्याइयै ग्रर्थात कृपा कीजियै, तुल्यता में तसदी कीजियै ... ग्रर्थात खेद कीजियै, हीन पद कों कहियै ग्रावो हाजिर ... होहु। पातिसाहन को बचन सो हुकम, वजीर, ग्रमीर को ... ग्रमर ग्रादेश इत्यर्थः। यातें उतरि कै ईर्शाद ग्राज्ञा इत्यर्थः ... तदनंतर फरमाइबो १ कहिबो २ जाहिर करिबो ३ ... करिबो ४ वक्ता की हानि के ग्रनुसार।

---

३६. देर तक।
३७. निकट।
३८. मेजबान।
३९. इन्तज़ार।
४०. ग्रानेवाले की।

४१. ग्रास्ताँ––चौखट, देहलीज़।
४२. गोद।
४३. बहुत खूब; शाबाश।
४४. तख़्फ़ीफ़––कमी करना, हल्कापन।
४५. कष्ट, दुःख।
*हाथ मिलाना।
४६. तशरीफ़।

बारमो अधिकार **इहतियात** को—सो निपुणता ...ई। ताके दस भेद :—

प्रथम **इस्तिर्जा** अर्थात् इछानुलो। सेवक कोई कार्य ... करायौ चाहै तो हुकम पूर्वक न कहिबौ। प्रथम ... जो मरजी मुबारक होय तो ऐसें करिबे में आवै अथवा ...नाकिस[47]में अर्थात मेरी तुछ बुद्धि में ऐसे आवे है। ...सलाह दौलत की ऐसैं है।

दूसरो **ऐतराफ** अर्थात् अनुवाद। सेव्य कोई सेवक के ...ं चूक बतावै सो चूक होय अथवा सेव्य कों भ्रम ही ... सेवक कों चाहियै तत्काल तो अंगीकार करे। ...ो सेवक सों चूक भई।

तीसरो **इकबाल**—सेव्य कोई कार्य की आज्ञा करै। ...र्य सेवक के जोग्य न होय, अथवा शक्ति साध्य नही, ... कोई वात ऐसी कहै जो असंबद्ध असंभव हासास्पद ... सेवक कों चाहिये तत्काल तौ अंगीकार करै।

चौथो **इब्राज** अर्थात विज्ञापन। सेवक कों कोई ...को काम ऐसो उपजै जो सेव्य के ढिगते दूरि गयो ... तब कोइ कै द्वारा कै आपही ता काम की अरज ... हुकम भऐं जाइ।

पांचमो **इस्तितलाब** अर्थात आकारण। सेवक कोई और ... कियौ चाहै जामें सेव्य को खेद चिता नहीं, ताकों ... में जताइ मरजी पाइ पाछैं करि देवै। जो यै अल्प ... की वार वार अरज करिबो सेव्य की लघुता है। ...पुनी सद्भक्ति को अभिमान।

सातमो **तफतीश**—अर्थात विस्तार प्रश्न। जो कार्य ... उपजै जो सेव्य के हुकम बिना न करिबो जो करै तो ... पावै, कै कार्य कौ निदान जान्यौ न परै जो भलौ ... अथवा बुरौ। तैसैं कार्य में गुण दोष दिषाय पकी ... प्रवर्तें।

आठमो **इतहाफ**—अर्थात निवेदन। सेवक के जो वस्तु ... होइ ताहि बिना भोग सेव्य की भेट करै।

नवमो **तअहुद**—अर्थात उत्साहन। सेव्य कै कोई कार्य ... उपजै जामें चिता खेद करि आतुरता होइ। सेवक ... जो कार्य मेरैं साध्य है तौ उपाइ करै नही तो उंर[48] ... ताकी सिद्धि कौ उपाइ ढूंढै।

दसमो **मुहाजिरत**—अर्थात पर्युपासना। सेवक यथा-... सेव्य के मंदिर बिना बुलायै हाजिर होय क्षेत्र काल कौ ...क्रमन करे।

तेरमो अधिकार **मजीदि मुहब्बत** कौ—स्नेहं वृद्धि ...ै। ताके सात भेद :—

प्रथम **कुर्बत**—सो परिचय। मित्र प्रति मित्र के मिलाप ... तौ विलंब न करै जो चिरकाल अतिक्रम सों परस्पर सुष दुष की षबरि न होय। उपालंभ तांई बात पंहुचै। बिरह में पत्र कौ व्यौहार है।

दूसरी **मुतावअत**—सो वचन प्रामाण्य प्रति मित्र जो कार्य कहै ताके संपादन मैं मित्र प्रतिकूलता अनादार विलंब न करै।

तीसरी **रजू**—सो संवेदन। मित्र कै कोई कार्य ऐसौ उपजै जाकी सिद्धि प्रति मित्र की सहायता के अधीन होय चाहियै बिना संकोच प्रति मित्र सों कहै।

चौथा **मुआवजा**—सो प्रतिक्रिया मित्र प्रति मित्र के वस्तु के बदलै वस्तु रीति के बदले रीति, आवणे के बदले जाणां करै।

पाचंमौ **तफक्कुद**—सो आर्त्त[49] गवेषण[50] प्रति मित्र की चिंता में षबरि पूछै, जैसैं रोग पृछा १ मृत सांत्वना २. ऐसैं हर्ष मैं मंगलवाद।

छटा **इस्तंबात**—सो इंगित ज्ञाना मित्र प्रति मित्र की मनोवृत्ति अटकलि संपादन करै।

सातमी **मुताबकत**—सो आनुकूल्य। कोई बात मैं क्रिया बचन बेमरजी न प्रवर्त्तावै।

चौदमो अधिकार **तफक्कुद**—सो सौजन्य कहियै, तीको मूल सौहार्द है। जो पातिसाह चाकर सों करै षानैजाद-पर्वरी कहियै अर्थात भृत्य पोषण १ तदनंतर अनुग्रह दया २ कृपा ३ स्नेह ४ श्रद्धा ५ भक्ति ७ प्रमुष। सौजन्य के पाँच भेद :—

प्रथम **इस्तिषबार**—सो संप्रश्न। निजजन कों आरोग्य वान मिलिबे को हेतु वा चिंता को कारण पूछिबो पुछाइबो।

दूसरो **इस्तिहजार**—सो संगम। मिलैं चिर भयो होइ तो बुलाय पठैबो, अथवा आप जाय मिलिबो।

तीसरो **तबश्शुश**—सो प्रसाद। निजजन कों देषि बिकसित बदन होइबो।

चौथौ **तौकीर**—सो सम्मान। आगंतुक को वचन काय सों आदर करिबौ।

पाँचमी **मुराआत**—सो उपकार। पातिसाह पास ते होय तो अतैया कहियै, अर्थात् बकसिस। तदनंतर दान १ सत्कार २ उपपुष्टि ३ भेट ४ न्योछावर ५ होइ दाता की की पदवी के अनुसार सो मनसब, जागीर, दरमाहा,[51] मुसाइदा[52], इनाम, आल[53], तमगा, मदद, षरच, इज़ाफा[54] प्रमष[55] करि।

---

४७. तुच्छ।
४८. और।

४९. मुसीबतें।
५०. पूछे।
५१. मासिक वेतन।
५२. मददगार।
५३. सम्मानसूचक पहनने का लाल वस्त्र।
५४. बढ़ोतरी।
५५. विशेष रूप से प्रदान करे।

आंगनों के बीच—

श्रीमती शीला शर्मा

इस बार 'वर्ल्ड हैल्थ औरगनाइजेशन' ने अपना दिवस क्षय रोग के उन्मूलन के अभियान के लिये रक्खा। आदमी को अधिक कष्ट अपनी अनभिज्ञता के कारण ही होता है—किसी गलती के लिये कोई पकड़ा जाय और वह यह कहे कि मैं यह कानून नहीं जानता तो उसको इस बिना पर माफी नहीं मिल जाती, सजा उसको भुगतनी ही पड़ती है; क्योंकि आशा की जाती है कि जहाँ आप रहेंगे वहाँके नियमों का ज्ञान आपको होना चाहिये। स्वास्थ्य के साथ भी यह बात पूर्णतः लागू होती है; स्वास्थ्य के किसी नियम से अनभिज्ञ होने की सजा आपको भुगतनी ही पड़ेगी; रोग आपको इस कारण क्षमा नहीं कर देगा कि आप जानते नहीं थे कि इससे यह हो जाता है। ये प्रसार दिवस वास्तव में इसी ध्येय से मनाये जाते हैं कि रोग का ज्ञान जहाँ तक हो सके वहाँ तक फैलायें और अनजाने में ही जो इसके शिकार हो जाते हैं, उनकी अज्ञानता का नाश करें।

क्षय रोग कीड़ों से होता है और उसके अपने अलग विशेष कीड़े होते हैं। यह अब प्रायः सभी पढ़े-लिखे प्राणी जानते हैं। यह भी जानते हैं कि हवादार व धूप का प्रकाश पानेवाले कमरे में रहने से क्षय रोग के कीड़े बढ़ नहीं पाते। पर यह नहीं जानते कि क्षय रोगों के कीटाणुओं में क्या विशेषता है जो उनको अन्य रोगों के कीटाणुओं से पृथक् करती है तथा कैसे हवादार और धूपवाले कमरों में वे कीटाणु मर जाते हैं। जब तक कि किसी विषय का पूर्ण ज्ञान नहीं होता, बात मन में जमती नहीं और न यह ही अन्दाज लगता हैं कि हवा व धूप चाहिये तो कितनी चाहिए।

क्षय रोग के कीटाणुओं में यह विशेषता है कि उनके चारों ओर एक मोम का सा पदार्थ होता है। इस मोम के से पदार्थ में ही उनका जीवन होता है। जब तक यह मोम का सा पदार्थ इनके चारों ओर है तब तक इनको मारना बड़ा दुश्वार काम है—क्योंकि उस मोम के से पदार्थ से उनको वह तरलता प्राप्त होती रहती है जिससे उनको जीवन मिलता है। इसी कारण सीलन के स्थान पर ये निष्कंटक जी सकते हैं क्योंकि सीलन के कारण इनका मोम सा पदार्थ सुरक्षित रहता है। छः घंटे की धूप मिलने पर वह सूख जाता है और क्षय रोग के कीटाणु तब जीवित नहीं रह पाते। हवा भी उनको सुखाने में

...करती है। इसी कारण धूपवाले कमरों को महत्व दिया जाता है।

...रोग के कीटाणुओं में एक बात और महत्व की ... कीटाणु स्वयम् कहीं आ जा नहीं सकते—जहाँ ... वहीं गिर गये। इनको यहाँसे वहाँ जाने के ... किसी साधन की आवश्यकता पड़ती है। वह साधन ... अपनी अज्ञानता के कारण देते हैं। रोगियों ... समीप बैठकर कि कीटाणु रोगी के बोलते व ... समय सीधे आपकी गोद में आ विराजें; रोगी ... के पात्रों में स्वयम् भोजन करके कीटाणु सीधे ... शरीर में प्रवेश कर जायँ; अपने बच्चों को चूम-... प्यार करना उनके शरीर पर कीटाणुओं की ... करना है। पालतू जानवर अपने रोयें और पंजों में ... को एक स्थान से दूसरे स्थान में ले जाने में ... करता है। इस प्रकार अज्ञानता में हम ही इन ... को स्वस्थ प्राणियों तक पहुँचाते हैं।

...एक कारण इस रोग के जड़ पकड़ लेने का है ... अपने शरीर की दुर्बलता। जैसे दुर्बल शरीर को ... जाय तो उसको सर्दी हो जाती है; दुर्बल पेट ... पेट स्वस्थ भोजन कर ले तो उसको पेट की ... हो जाती है; उसी प्रकार दुर्बल शरीर में थोड़े से ... पहुँच जायँ तो अपना घर बना लेते हैं।

...कारण इस रोग के फैलने का है: ऐसे पशु ... उबला दूध जिसे क्षय की बीमारी हो गयी हो। ... के थन के पास गिलटियाँ निकल आती हैं। एक ... से अहीर जानते ही नहीं कि यह रोग है और ... भयानक रोग; दूसरे उनका अपने पेट का सवाल ...; यों दूध देनेवाले जानवरों की छटनी करने लगें ... हो गया काम। गाँवों में अधिकतया, और बहुत ... से आये हुए नागरिकों में भी यह विश्वास है कि ... ही दूध लाभदायक होता है। रोगी पशु का यह ... इतनी मात्रा में दिन प्रतिदिन क्षय रोग के ये ... पेट में पहुँचाता है कि स्वस्थ प्राणियों को भी ... का क्षय हो जाता है। दूध का उबाल लेना अति ... है—तीन उबाल, जिनकी गर्मी के कारण कीटा-... के नष्ट हो जाने में कोई सन्देह ही न रह जाय।

... क्षयरोग की चिकित्सा घरों में भी की जाने ... है। पहले केवल 'सेनटोरियम' भेज कर ही रोगी का ... किया जाता था क्योंकि जब घर पर ही इलाज की ... की गयी तो डाक्टरों के भिन्न-भिन्न मत थे। ... वाद-विवाद हुआ। कोई कहता था कि रोगी ... के आदेशों का पूर्णतः पालन नहीं करता। कहा ... है लेटे रहो। परन्तु वह चलना-फिरना शुरू कर ... है। अभी इलाज को जारी रखना था। परन्तु रोगी ... बीच में ही बन्द कर दिया। कुछ का मत था ... तीन नई औषधियों का यदि काफी समय तक प्रयोग ... जाय तो घर पर भी रोगी अच्छा हो सकता है चाहे खाने-पीने और रहन सहन की व्यवस्था खराब ही क्यों न हो। कुछ का मत था कि पलंग चिकित्सालय में बहुत कम हैं। यदि गणना की जाय तो पचास रोगियों पर एक पलंग पड़ता है। घर वालों को रोगी के सम्पर्क में आने पर जितना भय है अस्पताल में सेवा करनेवालों को भी रोगी के सर्म्पक का उतना ही डर है। औषधियाँ यदि आसानी से और अधिक मात्रा में मिलती रहें और उनका प्रयोग काफी समय तक होता रहे तो इलाज घर पर भी हो सकता है।

अंत में निर्णय यह रहा कि इस नवीनयुग में तीन औषधियों से घर पर ही इलाज हो, परन्तु काफी अधिक समय तक।

जहाँ अस्पताल हों या चिकित्सा की संस्थाएँ हों वहाँ से जो सुविधाएँ मिलें रोगी उनसे भी लाभ उठाए। उन्नत देशों में अब यह प्रथा चल गयी है कि वहाँ शहरों में एक छोटा सा क्लीनिक होता है। वहाँसे रोगियों के घर जाकर यह देखा जाता है कि उन्हें खुली जगह लिटाया जाय, चाहे वह परदा आदि डालकर घर का बरामदा ही क्यों न हो। थूकने के लिए उनको डिब्बे दिये जाते हैं—सिग्रेट के टिन ही, ऊपर ढक्कन लगा होना आवश्यक है। रोगी थूककर फिर ढक्कन लगा देता है। उनके अन्दर गरम राख रहती है जिससे कि थूक इधर उधर बहने न पाये। इन टीनों को उपयोग के पश्चात् दूर दहकती हुई आग में जला दिया जाता है या धरती में गाड़ दिया जाता है।

इनके कपड़े तौलिए, गिलाफ एवं चद्दरें तथा थूक के डिब्बे उठाने के लिए लम्बे चिमटों का प्रयोग किया जाता है। और कपड़ों को खौलते पानी में काफी देर तक उबाला जाता है।

उनके भोजन के पौष्टिक पदार्थों पर विशेष ध्यान रखा जाता है और बच्चों को उनके पास आने से पूर्णतया मना कर दिया जाता है।

ये तीन नई दवाएँ कौन सी हैं जिन्होंने क्षय रोग की चिकित्सा में एक नया युग ही स्थापित कर दिया है पहली दवा है (A) 'स्टेप्टोमाइसीन' जिसको सन् १९४४ में सेलमैन-ए-वेक्स मैन (Selman.A.Wexman) नामक एक अमेरिकन वैज्ञानिक ने निकाला। दूसरी (B) है 'Para Amino-Saliceylic Acid (PAS) (पैरामाइनो सैलिसाइलिक एसिड संक्षेप में PAS)। सन् १९४६ में जार्गेन ले मैन (Jorgan Lehman) ने बताया कि यह कीड़ों का नाशक है।

(3) तीसरी दवा है Isonicotinic Acid Hydrazyde (INH) सन् १९५१ में निकली जो बहुत अक्सीर है तथा बहुत सस्ती है।

इन तीनों दवाओं के द्वारा तथा किसी चिकित्सक की राय और निरीक्षण में अब घर में ही क्षय रोग चिकित्सा की जा सकती है।

गुजराती व्यंजन

ढोकला

सामग्री—तीन कटोरी चावल, एक कटोरी उर्द की धुली दाल, एक कटोरी तिल का तेल, स्वाद के अनुसार पिसी अदरख, हरी मिर्च, खाने का सोडा, नमक। थोड़ा पानी।

विधि—चावल और दाल को अलग अलग एक रात भिगो कर रखो। सुबह अलग अलग पीसकर मिला दो, एक कटोरी तेल डालो, पिसा मसाला और सोडा भी। अच्छी तरह फेंटकर रख दो। शाम को खमीर उठने के बाद एक थाली में आधी थाली भर यह मिश्रण डालकर भाप में आधा घन्टा पकाएं? उतारने पर कतरी की तरह चौरस टुकड़े काट लें। ऊपर से राई और हींग का छौंकन दे दें। ध्यान रहे मिश्रण गाढ़ा रहे, पानी अधिक न होने पाए।

पातरा

दो कटोरी बेसन में अन्दाज से नमक, पिसा सूखा धनियाँ, मिर्च, खटाई, थोड़ा मीठा तेल, हींग डाल कर पूड़ी जैसा माड़ लें। अब अरवी (घुइयाँ) के पत्ते पर उल्टी तरफ तेल लगा कर मड़ा हुआ आटा लगाएँ, ऊपर से उसी प्रकार दूसरा पत्ता रख आटा लगाएँ। अब पत्ते को गोल गोल लपेट लें और आधा घंटा भाप में उबालें। उतारने पर गोल गोल काट कर तेल में तल लें।

पाटुड़ी

बेसन, दही और पानी का ऐसा मिश्रण तैयार करें जैसा कढ़ी के लिए करते हैं। इसमें नमक और थोड़ी पिसी हरी मिर्च और अदरख डाल दें। चूल्हे पर रख कर पकाएं जब तक गाढ़ा न हो जाय? (एक बर्तन पर जरा सा देखिये लगा कर, अगर जम जाय तो समझ लें हो गया)। थाली उल्टी करके उसपर थोड़ा तेल लगा दें। अब इस बेसन के मिश्रण को थाली पर पतला पतला फैलाएं। पर सदा एक ही दिशा में फैलाएं। ठंडा होने पर दो दो इंच के अन्तर से लम्बा लम्बा काट लें। अब हर कटे भाग को गोल गोल लपेट लें। ऊपर से राई हींग का छौंक दें और हरा धनिया बारीक करके डाल दें?

तपेली या हाडवो

सामग्री—

१ कटोरी अरहर की दाल।
१ कटोरी मूंग की दाल।
१ कटोरी चावल।

नमक, हल्दी, तेल मीठा, लाल मिर्च पिसी, हुई, १ कटोरी कसी हुई लौकी, खट्टा दही।

विधि—दाल और चावल मोटा मोटा पीस लें। उसमें एक कटोरी तेल का मोअन डालें, नमक, हल्दी मिर्च भी डाल दें। गाढ़ा मिश्रण बनाने के लिये खट्टा मथा हुआ दही डालें (पानी नहीं पड़ता है) और रात भर रखा रहने दें। सुबह लौकी डालें। एक बर्तन में १ कटोरी मीठा तेल डाल कर दो चाय के चम्मच सफेद तिल, हींग, मिर्च, राई का छौंकन देकर मिश्रण अन्दर डालें। अब आधा घण्टा (तंदूर) में रखें। निकालने के समय साबित ही प्लेट में निकाल लें, नीचे का भाग ऊपर रहे। यह देखने में केक जैसा लगेगा।



हीरा और गुलाब

श्री लक्ष्मण भारद्वाज

रागिनी मर गयी। वह अपनी स्वाभाविक मौत से नहीं मरी थी। मौत से पहले वह स्वस्थ थी। एक दिन अचानक उसे ज्वर चढ़ आया और फिर सारी कोशिशों के बावजूद उसे बचाया नहीं जा सका। मौत आयी और रागिनी को अपने साथ लेकर ही गयी।

मेरा जी चाहता है कि मैं जोर-जोर से चीखकर कहूँ—'रागिनी अपनी स्वाभाविक मौत से नहीं मरी, उसे मरने पर विवश कर दिया गया था।' मेरी कौन सुनेगा? मेरे पास प्रमाण ही क्या हैं? लोग पूछेंगे—मैं रागिनी का कौन हूँ? रागिनी से मेरा क्या सम्बन्ध था? मेरे पास इसका कोई उत्तर नहीं। मैं रागिनी की असामयिक मौत का अभियोग किस पर लगाऊँ? मेरा मन मुझे भीतर से कचोटता है, कहता है—"तुम जानते हो कि रागिनी क्यों मरी? सबसे कह दो कि तुम उसकी मौत का रहस्य जानते हो!" मैं अपने मन के सामने हार गया हूँ। रागिनी की मौत के बारे में मेरे मन में सन्देह है, मेरा एक अनुमान है कि रागिनी इसी कारण से मरी थी पर मैं अपनी बात प्रमाणित नहीं कर सकता।

आज मैंने रेडियो पर एक गजल सुनी—

ये न थी हमारी किस्मत कि विसाले-यार होता,
अगर और जीते रहते यही इंतेज़ार होता।

रागिनी को यह गजल बहुत प्यारी थी। मरते समय उसने भाभी से यही गजल सुनी थी और आँखें मूँद ली थीं। जब रेडियो पर यह गजल आ रही थी तो बाहर पानी बरस रहा था। मैंने जब यह गजल सुनी तो मुझे लगा जैसे बादलों के पर्दे के पीछे से अपनी उखड़ती हुई साँसों में रागिनी गा रही हो।

आज मैं बहुत विचलित हो गया हूँ। जैसे पहाड़ों पर हल्की-हल्की बरफ गिरती है और धीरे-धीरे जमकर एक चट्टान बन जाती है, उसी प्रकार मेरे मन पर हल्की-हल्की उदासी जमकर एक चट्टान बन गयी है। मेरा मन इस चट्टान के नीचे दबता जा रहा है। मैं आज अपनी बात नहीं कहूँगा तो शायद घुटकर मर जाऊँगा। मौत पर कोई जोर नहीं चलता।

रागिनी के मरने के बाद जब मैं उसके घर गया तो उसकी माँ ने कहा—"तुम्हारी कुछ कविताओं की पुस्तकें आलमारी में पड़ी हैं। रागिनी तुम्हें खुद लौटाना चाहती थी। वह अन्तिम साँस तक तुम्हारी प्रतीक्षा करती रही। तुम नहीं आये। मरते समय उसने कहा था—'इन पुस्तकों को कमल को लौटा देना, माँ। मेरी आत्मा को शान्ति नहीं मिलेगी अगर इन्हें कमल को वापस न कर दिया तो। ये पुस्तकें यहाँ नहीं रहनी चाहिएँ। इनकी जगह यहाँ नहीं है।' शायद कोई बहुत कीमती पुस्तकें हैं बेटा। तुम इन्हें आज ही ले जाना।"

मैं पुस्तकें उसी दिन ले आया था। इन्हीं पुस्तकों में रागिनी की दो अपनी चीजें भी साथ चली आयीं—एक थी उसकी डायरी और दूसरी थी उसके कविता-संग्रह की कापियाँ। रागिनी की आदत थी कि वह जब भी कोई नयी कविता पढ़ती या सुनती तो उसे पसन्द आने पर अपनी कापी में उतार लेती थी। इस प्रकार उसके पास हजार-बारह सौ कविताओं का संग्रह हो गया था। रागिनी की ये दोनों चीजें मेरे पास भूल से आ गयी थीं। मैंने इन्हें लौटाया नहीं। जरूरत नहीं समझी। मैंने इन्हें जीवन भर के लिए स्मृति-स्वरूप रख छोड़ा है। आज ये दोनों चीजें टेबुल पर रखी हैं। खिड़की से हवा आ रही है। डायरी और कापियों के पन्ने फड़फड़ा रहे हैं। रागिनी की मौत का आधा रहस्य डायरी के पन्नों में है और आधा मेरे संस्मरणों में।

पहले कुछ संस्मरण सुना दूँ। आज से तीन बरस पहले—

"क्या तुम मुझे एक गुलाब ला दोगे?"

"तुम्हारी कोठी में गुलाब नहीं खिलते?"

"मेरी कोठी में कोई फूल नहीं। कोठी के चारों तरफ मोटरों के गैरेज हैं। फूलों के लिए जगह ही नहीं बचती।"

"ला दूँगा।"

"रोज ला दिया करना। ये लो दस रुपये।"

"क्या करूँगा लेकर? गुलाब कलकत्ता में २-३ आने में मिलता है। मैं इतना गरीब तो नहीं कि २-३ आने भी मेरी जेब में न मिलें।"

"रखो। फल खा लेना। बहुत दुबले हो गये हो। लेकिन रुको। दस से क्या होगा? फलों का दाम तो ६-७ रुपये सेर है। लो ये सौ रुपये रख लो।"

"सौ रुपये के फल क्या खाऊँगा? सौ रुपया तो मेरा महीने भर का कुल खर्च है। मैं तो फलों में ३-४ आने सेर के टमाटर और गाजर खाता हूँ। सेब-अंगूर मेरे लिए फल नहीं, आकाश के तारे हैं।"

"और मेरे लिए मिट्टी। खैर, पैसा रख लो।"

"नहीं। तुम्हारे पिताजी तुम्हें हाथ-खर्च देते हैं। तुम उसमें से मुझे बाँट दो, यह मुझे नापसन्द है।"

"ले लो कमल। यह रुपया ले लोगे तो मैं आज की रात आराम से सो सकूँगी।"

"माफ करो।"

"कमल! तुम मुझे जिन्दगी भर देते रहते तो मैं ना नहीं कहती। एक तुम हो कि एक बार भी नहीं लेते।"

"लेकिन मैं तुम्हें कैसे दे सकता हूँ? रेगिस्तान का एक छोटा-सा झरना भला विराट् समुद्र को क्या देगा?"

"समुद्र खारा होता है, कमल। विस्तार पर मत

जाओ। प्यासे पथिक के प्राण झरने के जल से बचते हैं। समुद्र के तट से हर पथिक प्यासा लौट आता है। काश! मैं इतना बड़ा समुद्र न होती, मीठे पानी का एक झरना होती।"

"भावुकता में मत आओ, रागिनी।"

"इस मशीनी युग में आदमी की भावुकता भी हँसी और व्यंग्य का पात्र बन गयी है। आदमी को भावुक रहने दो, कमल! उसकी भावुकता मत छीनो वरना वह मर जायेगा। मशीन में भावुकता नहीं होती। किसी खूबसूरत फूल को देखकर कोई ट्रक्टर उस पर मोहित नहीं होता, कोई बुल्डोजर उसपर कविता नहीं करता, कोई टैंक उससे प्यार नहीं करता।"

"तुम्हें इस मशीनी सभ्यता से नफरत है ना!"

"न मशीन से नफरत है, न सभ्यता से। मुझे नफरत है आदमी के मशीन बनने से। आदमी और मशीन का अन्तर दिन-ब दिन कम हो रहा है। एक दिन आदमी मशीन बन जायेगा।"

मैंने उस दिन रुपये नहीं लिये थे। गुलाब मैं रोज ले जाता था। एक दिन रागिनी ने मना कर दिया। उसने कहा—"माँ बुरा मानती है। कहती है—'हजारों रुपयों के गहने तुम्हारे पास हैं, इतनी कीमती प्रसाधन-सामग्री है, फिर एक मामूली फूल की क्या जरूरत है। तुम्हें एक साधारण आदमी से गुलाब मँगवाना शोभा नहीं देता। आखिर गुलाब में रखा ही क्या है? वह कोई हीरा तो नहीं है।'

एक दिन रात भर खूब पानी बरसा। ठण्डी हवा चलती रही। बादल गरजते रहे, बिजली कड़क-कड़ककर शोर मचाती रही। सबेरे रागिनी से मिलने गया तो उसने कहा—"कल मुझे सपना आया कि हम दोनों पानी में भींग रहे हैं। तुम मुझे मना कर रहे हो कि मैं ज्यादा देर पानी में न ठहरूँ, मुझे सर्दी लग सकती है। मैं नहीं मानती। तुम मुझे हाथ पकड़कर कोठी के भीतर ले जाना चाहते हो, मैं हाथ छुड़ाकर भाग जाती हूँ। तुम मेरे पीछे-पीछे भागते हो और एक पेड़ के नीचे पहुँच कर मुझे पकड़ लेते हो। मेरी नींद खुल जाती है।"

मैंने कहा—"सपनों का क्या है, रागिनी। सपने तो ऐसे ही ऊल-जलूल आ जाते हैं।"

रागिनी बोली—"हाँ, सपना आखिर सपना ही है। मुझे ऐसे सपने नहीं आने चाहिए। लेकिन क्या तुम नहीं जानते कि आदमी की जो इच्छा पूरी नहीं होती उसका अवचेतन मन उसे स्वप्न का रूप देकर पूरी करता है? मनोविज्ञान तो तुम्हारा विषय था न बी० ए० में?"

"जानते हो कमल, जब पानी बरसता है तो मेरा मन करता है कि खुले आसमान के नीचे खूब खलूँ, दौड़ूँ, नहाऊँ। मेरी कोठी में कहीं खुली जगह नहीं। बाहर पानी बरसता हो तो मेरी कोठी में पता ही नहीं चलता।"

उस दिन नववर्ष का प्रथम दिन था। रागिनी अपने कमरे में अकेली बैठी मिली। "मैंने पूछा—सब लोग कहाँ गये?

"क्लब गये हैं। नववर्ष का आनन्द मनाने।"

"तुम नहीं गयी?"

"क्या करती? क्लब की चारों तरफ से बन्द इमारत में, बल्वों की नकली रोशनी में, एयर कंडीशनर की नकली हवा में लोग चेहरे पर नकली मुस्कराहट लेकर थोथी हँसी हँसेंगे। मन का दुख छिपाकर नाचेंगे गायेंगे—यह दिखाने को कि वे सुखी हैं।

"देखो कमल, आसमान खुला है, वातावरण में कितनी ठण्डक है। ऐसे में चलो कहीं बाहर घूमने चलें। किसी झील के किनारे जाकर बैठें। मछलियों को दाना चुगायें, पानी पर तैरती बतखों को निरखें। हल्के-हल्के बहते पानी पर कागज की नावें तिरायें। अपने हाथों डाँड चलाकर छोटी-सी नौका फिसलायें।

"बसन्त का मौसम है। आजकल बहुत से फूल खिले होंगे। चलो जी भरकर फूल बटोरेंगे। मैं फूलों से वेणी बनाऊँगी।"

एक दिन रागिनी ने पूछा—"कमल! तुम्हें कभी कोई सपना दीखता है?"

मैंने कहा—"रागिनी! दिन भर की मेहनत के बाद इतनी थकान आ जाती है कि खाट पर गिरते ही नींद लेने लगता हूँ। तुम जानती हो—गहरी नींद में सपना नहीं आता।"

"कमल! मेरा एक सपना है। झील के किनारे एक छोटा सा बँगला हो। एक फलों का बगीचा और एक फूलों का बाग। अपने हाथों पेड़ लगायें, फूल उगायें। मुझे तो कोई एक कच्चा अमरूद ला दे तो मैं ये रोटी, केक, बिस्कुट, जेली सब फेंक दूँ। सच मानों, कमल, एक खूबसूरत फूल के सामने हीरा क्या चीज है? फूल कोमल होता है, हीरा कठोर। फूल मुस्कुराता है, हँसता है; हीरा पत्थर है, निर्जीव है। मुझे तो कोई मेरी पसन्द का फूल ला दे और मुझसे हीरा ले ले।"

रागिनी प्रायः सभी कवि-सम्मेलनों में जाया करती थी। एक बार एक अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन का आयोजन था।

रागिनी की पसन्द के बहुत से कवि आये थे। रागिनी उसमें नहीं गयी। मैंने पूछा तो बोली, "पिताजी बुरा मानते हैं।"

"लेकिन इसमें बुरा मानने की क्या बात है?"

"है। तुम नहीं समझोगे। कवि-सम्मेलन किसी बड़े से होटल या क्लब में तो होते नहीं। छोटे-मोटे पार्क आदि में जाना पिताजी प्रतिष्ठा के विपरीत मानते हैं। फिर इन सम्मेलनों में आम जनता आती है। पिताजी नहीं चाहते कि हम बड़े लोग साधारण और मामूली लोगों के साथ उठें-बैठें।....कल मैं क्लब गयी थी। पिताजी

...लड़के से परिचय करवाया। शायद लड़का उन्हें पसन्द है।"

...स्मरणों की ये कड़ियाँ एक बार यहीं टूट जाती हैं। ...बाद मेरा रागिनी से मिलना-जुलना कम होता गया। ...लड़का बार-बार कोठी पर आने-जाने लगा था। ...एक पेट्रोल-कम्पनी का मालिक था। उसका ...और किरासीन तेल का कारबार समूचे देश में फैला ...एक दिन रागिनी की जन्मगाँठ का निमन्त्रण-पत्र ...। मेरी परीक्षा हो रही थी। मैं नहीं जा पाया। ...को फुरसत मिलने पर मैं उससे माफी माँगने ...रागिनी खिड़की के पास खड़ी कोई १०० गज दूर ...निसिपैलिटी के पार्क की ओर देख रही थी। मेरी ...सुनकर वह घूम गयी। वह मेरी पदचाप पहचान ...थी। उसका दावा था कि वह २० फीट दूर से भी ...कमल की आवाज सुनकर निश्चयपूर्वक जान लेती ...कि कमल आ रहा है। मैंने कहा—

...मैं उस दिन नहीं आ सका, रागिनी।"

...हाँ, तुम नहीं आये थे। लेकिन बहुत लोग आये थे, ...से ज्यादा। मैंने बहुत कीमती कपड़े पहने थे। ...हजार की तो साड़ी रही होगी। पचासों हजार ...थे। मैंने नृत्य किया था। लोगों ने मेरे रूप-रंग ...कर प्रशंसा की।

...आज मैं बहुत उदास हूँ। कल लोग मेरी जितनी ...करते गये मेरा दिल डूबता गया। मैं जानती थी ...प्रशंसा झूठी है। एक करोड़पति की इकलौती ...जन्मदिन पर लोग झूठी प्रशंसा करने ही तो ...थे।

...कमल, क्या मैं सचमुच सुन्दर हूँ? तुमने तो मुझे ...नहीं कहा। तुम एक बार अपने मुँह से कह दो, मैं ...।

"...मैं सोचती रही—कमल क्यों नहीं आया। वह ...तो एक आदमी तो ऐसा होता जो सच्ची बात ...असली प्रशंसा करता, गहरी हँसी हँसता। पर ...नहीं आये। आये थे तुम्हारी जगह कलकत्ता भर ...के बड़े-बड़े व्यापारी, किरासीन तेल के एजेण्ट, ...कपड़ा, चमड़ा, लोहा, कागज आदि के व्यवसायी।"

...कुछ दिन बाद सुना—रागिनी की उस लड़के से ...हो गयी। एक दिन विवाह का निमंत्रणपत्र भी ...आया। न जाने उस दिन मेरे मन पर क्या प्रभाव ...कि मैं दिन भर खाना नहीं खा सका। भाभी बार-...कमरे में आयी और झाँककर लौट गयीं। धीरे-धीरे ...फिर आयीं। भाईजी कारखाने से काम करके ...लौटे। भाभी ने शिकायत की—"आज देवरजी ...खाना नहीं खाया। उदास मुँह लिये सारे दिन पलँग ...पड़े रहे। पूछिये ना, क्या बात है?" भाईजी चिढ़ ...बोले—"ये सब बातें क्या मेरे पूछने की हैं। दिन भर कविता गाता फिरता है, किसी से प्रेम-वेम कर बैठा होगा। कह देना उससे कि यहाँ यह सब नहीं चलेगा। कोई जात-कुजात की लड़की पसन्द कर ली तो पिताजी फाँसी लगा लेंगे पर लड़की को घर में घुसने नहीं देंगे।"

भाभी भाईजी के सोने के बाद मेरे कमरे में आयीं। ममता से, दुलार से समझाया—"कोई बात हुई हो तो अपनी भाभी से कह दीजिए, आपको मेरी कसम। मुझसे कुछ मत छिपाइए। पिताजी और भाईजी को मनाना मेरे जिम्मे रहा।"

मैं क्या बताता? मुझे खुद नहीं मालूम कि मैं उस दिन खाना क्यों नहीं खा सका था?

रागिनी का विवाह हो गया। मैं विवाह में नहीं जा सका था। इसके पश्चात् मैंने एम० ए० कर लिया और एक साहित्यिक पत्रिका में सम्पादक बनकर चला गया। वहाँ जब भी मैं कोई कविता छापता तो मुझे बरबस रागिनी की याद आ जाती। एक बार मेरी पत्रिका के मुखपृष्ठ के लिए दो गुलाबों के जोड़े का चित्र छपने के लिए आया। उस दिन मैं सहसा विचलित हो उठा। मैंने भाभी को पत्र लिखा—"रागिनी कैसी है?" भाभी का उत्तर आया—"बहुत दिन बाद याद आयी, देवरजी। रागिनी मर गयी। आपके भैया ने बताया, मरते समय कमल को बहुत याद करती थी। रागिनी के पिता कह रहे थे—सभी लोग आ गये, कमल भी आ जाता तो ठीक था। मरते समय कोई इच्छा तो बाकी नहीं रहती। मैंने सुना तो उससे मिलने गयी। सगे-सम्बन्धी चारों तरफ से घेरे खड़े थे। रागिनी ने किसीकी तरफ आँख भी नहीं उठायी। मुझे आया देखकर बोली—"भाभी, वह गजल सुनाओगी—

ये न थी हमारी किस्मत कि विसाले-यार होता,
अगर और जीते रहते यहे इन्तेज़ार होता।"

"मैंने गजल सुना दी। वह सुनती रही और रोती रही। गजल खत्म होने पर उसने पूछा—भाभी, कमल नहीं आया। मैं नारी हूँ, नारी का हृदय पहचान गयी। मैंने कहा—"रागिनी! जो जिन्दगी भर नहीं आया उसका इन्तजार मरते समय क्यों?" रागिनी आँचल में मुँह ढाँप कर रोने लगी और रोते-रोते एक हिचकी के साथ उसके प्राण उड़ गये।

"तुमने उस दिन तो नहीं बताया था, देवर, पर मुझे पता चल गया कि तुम उस दिन उदास क्यों थे? जिन लोगों ने तुम्हें उदासी दी थी उन्हीं लोगों ने रागिनी की जान ले ली।"

भाभी का पत्र मिला तो मैं उसी दिन कलकत्ता लौट आया। रागिनी की माँ से मिला तो उसने मुझे पुस्तकें ले जाने के लिए कहा। इन्हीं पुस्तकों के साथ भूल से रागिनी की डायरी और कविता की कापियाँ चली आयीं।

रागिनी को डायरी गोपनीयता से लिखने की आदत थी। उसकी बातों पर एक अभेद्य आवरण रहता था।

उस अभेद्य आवरण को चीरकर रागिनी के हृदय की गहराइयों तक पहुँचना किसीके भी लिए संभव नहीं था। मैंने डायरी पढ़ी तो अपने संस्मरणों के प्रकाश में डायरी का हर आवरण से ढका वर्णन स्पष्ट हो गया। डायरी में अलग-अलग तिथियों में लिखा था—"आज मुझसे मेरा गुलाब छीन लिया गया। ठोस चाँदी से बना दिल गुलाब की कोमलता को क्या समझे?"'

"...एक रईस की बेटी बरसात के पानी में खुले आसमान के नीचे नहीं नहा सकती। इससे परिवार की प्रतिष्ठा नष्ट होती है।" गद्देदार कुर्सी पर, एयर कंडिशंड केबिन में बैठकर, संगमरमर की टेबल पर कीमती भोजन प्रतिष्ठा का सूचक है; खेत की मुंडेर पर खड़े होकर गन्ना चूसना या अमरूद के पेड़ पर चढ़कर अमरूद तोड़कर खाना देहातीपन है, फूहड़पन है, गँवारपन है।....."

"...आज दिन भर पानी बरसता रहा। साँझ को आसमान खुला तो मैंने 'उनसे' कहा—चलिये नदी-तट पर घूमें। उन्होंने एक बड़े से होटल का नाम लेकर कहा—रागिनी! एक फ्रांसीसी नर्त्तकी आयी है, चलो तुम्हें उसका नाच दिखा लायें। मजबूरन साथ गयी। एक मांसल शरीर, सुडौल अंग-प्रत्यंग वाली नर्त्तकी नाच रही थी। शरीर पर केवल २ जगह जरा सा कपड़ा था। मैं तो जान ही नहीं पायी कि इस नाच में कला क्या है? वे कह रहे थे—"रागिनी नाच तो विदेशों में होते हैं। जानती हो कई जगह स्टेज पर नर्त्तकी नंगी आती है और कई जगह स्टेज पर आकर एक-एक करके कपड़े उतारती है। यहाँ तो सरकार कुछ करने ही नहीं देती। मैं तो विदेशों में हर रात ऐसे ही नाच देखने आया करता था।..."

"...आज मैंने पूछा—"आप मुझे क्लबों, होटलों में इतना अधिक क्यों ले जाते हैं? मेरा मन नहीं करता।" वे बोले—"लो, ये भी कोई बात हुई। तुम इतनी खूबसूरत हो—आखिर मैं तुम्हें अपने दोस्तों को नहीं दिखाऊँ?"

मैंने कहा—"आपके पास खूबसूरत कपड़े हैं, कीमती अँगूठियाँ हैं, कीमती कार है, खूबसूरत कोठी है—आप इन्हें भी तो दिखा सकते हैं।" वे बोले—"ये सब तो दिखाता ही हूँ। पर तुम भी तो एक खूबसूरत चीज हो, बेशकीमती।"

"...आज हम लोग भारत-भ्रमण करके लौटे। अजंता, कोणार्क, ताजमहल और कन्या कुमारी के इस भारत में, बर्फ की सफेद चूनर ओढ़े हुए पहाड़ियों, हरे-भरे मैदानों, रंग-बिरंगे फलों-फूलों से लदे विविधता से भरे इस भारत में हमने क्या देखा? हमने देखा कि पैट्रोल की नयी एजेंसियाँ कहाँ दी जा सकती हैं, किरासिन तेल के नये डिपो कहाँ खुल सकते हैं और माल की खपत बढ़ाने के लिए हमें कौन-कौन से काम करने चाहिए हैं।"..

डायरी का यह पन्ना उस दिन लिखा गया था जिस दिन रागिनी भारत-भ्रमण करके लौटी थी। उसी दिन वह बीमार पड़ गयी। सातवें दिन वह मर गयी।

मेरा जी चाहता है कि जोर-जोर से चीखकर कहूँ कि रागिनी मरी नहीं, उसे मरने पर मजबूर कर दिया गया था। पर मैं यह अभियोग किसपर लगाऊँ? मेरी कौन सुनेगा? मेरे पास कोई स्पष्ट प्रमाण भी नहीं है। मैं रागिनी का होता ही कौन हूँ?



आकर्षण

एक सत्य घटना पर आधारित

श्रीमती निर्मला मित्र

एक अख्यात खेड़े में एक सुखी कृषक परिवार रहता था। सुखी इसलिए कि गृहस्थी में सिर्फ तीन ही प्राणी थे। माँ, बेटा और बहू।

बेटा भी शहर में रहकर नौकरी करता था। और बहू अभी चार मास हुए गौना होकर आयी है। सो, परिवार में बाल-बच्चों का कोई झंझट ही नहीं है।

सास गिरजा ने सोचा, 'चलो, चौके-चूल्हे से तो मिली छुट्टी, अब मैं सम्पूर्ण मन लगा कर अपनी खेती की देख-भाल कर सकूंगी।'

परन्तु गिरजा की कल्पना पर पानी फेर कर विधाता ने कुछ उल्टा ही खेल दिखाया।

बहू का मन किसी भी काम में आगे होने को नहीं होता। कभी हँसती नहीं, किसीसे कभी बोलती नहीं। उसका मन सदा उड़ा उड़ा, न जाने किस लोक में विचरण करता रहता है।

मगर तारीफ तो यह है कि बहू दिन भर कितनी भी उदास और अनमनी रहे, नित्य ही शाम को नखशिख शृंगार करने में कभी नहीं चूकती थी।

जब गाँव की नदी का घाट शाम को सुनसान हो जाय, तब वह साबुन तौलिया लेकर नहाने चली जाती। वहाँ से आसमानी रंग की साड़ी अति भव्य ढंग से पहनकर घर लौटती। फिर घंटों बैठी रुचिकर ढंग से जूड़ा बाँध कर माथे पर बुंदे लगाती। फिर चार बीड़े पान के लगाकर अपने कमरे में ले जाकर रख देती।

कोई भी बात क्यों न हो, 'अति' सब को बुरी लगती है। रोज का यह ढंग देखकर पड़ोस की स्त्रियाँ आपस में कानाफूसी करने लगीं।

"हाय राम! पति जब घर में नहीं रहता, तब इसका यह अभिसार-वेश किसके लिए रचा जाता है? किसके लिए यह रोज शाम को इतनी सजती-सँवरती है?"

उनकी ये बातें गिरजा को बुरी लगतीं, सो अगली बार जब लड़का महेश दो दिन की छुट्टी में घर आया तो गिरजा बोली, "महेश, तू अबकी इसको साथ ही लेता जा। शहर की रहनेवाली है, यहाँ गाँव-खेड़े में इसका मन नहीं लगता। सदा उदास और गुमसुम सी बैठी रहती है। ऐसे में तो यह शीघ्र ही बीमार पड़ जावेगी।"

महेश बोला "माँ! तुम भी क्या बातें करती हो? वहाँ शहर में क्या हम अल्प वेतनवालों का परिवार लेकर रहना पुसाता है? तुम्हारे पास तो थोड़ी सी जमीन है, रहने के लिए बाप-दादों के हाथ का बना पक्का मकान भी है। तुम दोनों की भोजन-वस्त्र की समस्या आसानी से निभ रही है। वहाँ इसे ले जाकर क्या पेड़ के नीचे गृहस्थी लगाऊँ?"

इसपर बेचारी माँ भी क्या कहती? परन्तु, दिनों-दिन बहू के लच्छन तो चरम सीमा को पार कर रहे थे।

एक दिन गिरजा बोली "बहू! देखना चूल्हे पर दाल चढ़ी है, वह जल न जाय। मैं अभी नदी में एक डुबकी लगाकर आती हूँ।" फिर वह पीतल की कलसि उठा कर नहाने चली गयी।

लौटते समय दास बाबू की बगिया से ही उसकी नाक में जली दाल की गन्ध आयी। गिरजा भागी। उसने पानी से भरा कलसा दालान में धम से पटका, और वैसे ही गीले कपड़े पहिने चौके में घुस पड़ी। दाल की दशा देख कर रुआँसी होकर गिरजा बोली "ओ बहू! दाल तो जल-कर खाक हो गयी!"

वहीं चौके में पटे पर बैठी बहू ने चौंककर केवल इतना कहा—"अरी अम्मा!"

क्षोभ से निरुपाय गिरजा ने अपना सिर पीट लिया।

और अब तो यह गिरजा के लिए नित्य का जलना-कुढ़ना हो गया।

कोई पड़ोसिन कभी बैठने को आ जाती तो बहू उसे देखकर चट से उठकर अपने कमरे के अन्दर चली जाती। चौके से निकलकर गिरजा को ही उसका आदर-सत्कार करना पड़ता।

चलते समय पड़ोसिनें नाक-भौं सिकोड़कर कहतीं, "तुम्हारी बहू कैसी मिजाजिन है, गिरजा? किसी बड़ी-जेठी के पैर नहीं छूती, आदर से सामने कभी आसन-पीढ़ा तक नहीं देती।"

संकोच से भर कर गिरजा कहती, "शहर की रहने-वालियों में अपने खेड़ेवालियों सी तमीज थोड़े ही रहती है ? मगर अब रहते-रहते यहाँ के रीति-रिवाज सब सीख जावेगी।"

परन्तु बहू के अवगुणों पर पर्दा डालने के गिरजा के सब प्रयास विफल हुए और बहू के अवगुण प्रचारित हो ही गये।

एक दिन पड़ोसिन गौरा बैठने को आई, और बोली, "रात को क्या महेश आया है गिरजा ?"

गिरजा बोली "नहीं तो।"

"तो तेरी बहू कल रात को किसके पास रो-रोकर कह रही थी कि 'अब तो मैं तुम्हारी एक भी नहीं मानूँगी, आज तुम मुझे ले ही चलो। रात को हम रूपगंज से लौट रहे थे। तुम्हारे पिछवाड़े से निकले तो बहू की आवाज सुनायी पड़ी। हमने सोचा महेश आया है।"

गिरजा का हृदय धक् से रह गया ! तो क्या बहू सचमुच दुराचारिणी है ? निश्चय ही उसका चरित्र कलुषित है। इसीलिए तो मेरा लड़का उसे फूटी आँख नहीं सुहाता।

नित्य साँझ को बहू का ठाठ से सजना, पान के अतिरिक्त बीड़े लगाकर अपने कमरे में लेकर चली जाना, एकाकी एकान्त कमरे में सोने का प्रबल आग्रह इत्यादि-इत्यादि कितनी बात स्मरण कर करके गिरजा जल-भुंज गयी।

बदनामी के डर से गिरजा दबी बिल्ली सी दबी रही तो क्या हुआ, मोहल्ला-पड़ोसवाले थोड़े चुप रहनेवाले थे ?

तो अब की जब दो दिन की छुट्टी में महेश घर आया तो पड़ोस के भवानी चाचा ने कहा "महेश ! तेरी औरत का चाल-चलन ठीक नहीं है। देश-घर में ऐसी औरत नहीं रहनी चाहिए। तू उसे उसके मायके छोड़ आ।"

महेश ने आकर माँ से पूछा तो माँ भी समर्थन करते हुए बोली "हाँ, ऐसा आभास तो उसके कमरे से रोज मिलता है।"

"तब" ?

"मैं क्या कहूँ बेटा ? मेरा दिमाग तो कुछ काम नहीं करता।"

"मगर मेरा दिमाग काम करके दिखायेगा।" दिन के तीसरे पहर उसने माँ से कहा, "माँ ! साथ ले जाने को मेरा भोजन तैयार कर दो। मैं इसी गाड़ी से शहर जाऊँगा।"

घर से तो वह चला गया परन्तु वह शहर नहीं गया। प्रायः दस बजे रात को वह घर लौट आया। बहू तब अपने कमरे में चटखनी चढ़ाकर सो गयी थी।

महेश बोला "माँ ! आज देखना है कि मोहल्ले का वह कौन सा युवक है जिसमें इतनी हिम्मत हुई है। दुनिया में आज वह ही रहेगा या मैं ही रहूँगा।"

नियमित रूप से ठीक आधी रात को बहू के कमरे से वही रोने और सिसकने की आवाज ! वही चूड़ियों का खनकना और वही झूमा-झटकी !

महेश दबे पाँव जाकर बहू के बन्द कमरे के द्वार [illegible] खड़ा हो गया।

उस समय बहू रो-रोकर कह रही थी, "अरुण ! [illegible] यह जुदाई तो मुझसे सही नहीं जाती। आज तो मैं तुम्हारे साथ चलकर ही रहूँगी।"

"असह्य ! असह्य !!" महेश ने एक लात जम[illegible] किवाड़ पर मारी। फिर प्रचण्ड क्रोध से चिल्लाया "हरामजादी ! किवाड़ खोल, तेरे अरुण को अ[illegible] जहन्नुम भेजता हूँ !" और महेश की लातें धड़ा[illegible] किवाड़ पर पड़ने लगीं।

शोर-गुल सुनकर पड़ोसी जमा हो गये।

बहू ने किवाड़ खोल दिये। रोने से उसकी आँखें ला[illegible] हो रही थीं। भूखे शेर सा महेश एक छलांग में कम[illegible] के अन्दर पहुँच गया।

किन्तु हाय राम, यहाँ तो किसी मानव के होने का चिह्न भी नहीं दीखता। केवल शोकाकुला और अस्त-व्यस्त बहू ही खड़ी थी।

महेश ने क्रोध से तिलमिलाकर पूछा "कहाँ है ते[illegible] यार, किस रास्ते से तूने उसे उड़ाया ?"

निर्भय स्वर से बहू बोली "खिड़की से!"

"असम्भव ! खिड़की में लोहे के मोटे-मोटे छड़ [illegible] हैं। तो क्या तेरा यार हवा बनकर आता है ?" अकपट भाव से बहू बोली "हाँ ! "

महेश हतबुद्धि सा पलँग पर बैठ गया, बोला "तो [illegible] तू भी हवा है ?"

बहू बोली "नहीं।"

"मगर यह अरुण तेरा कौन है? उससे तेरा [illegible] सम्बन्ध है ?"

बहू आँखें नीची करके चुप खड़ी रही।

महेश का दिमाग फिर भड़क उठा। बोला "तू उस[illegible] पता बता दे, मैं उससे निपट लूंगा।"

बहू ने आँखें उठाईं। बोली "साल भर हुए वह [illegible] गया है।"

द्वार के पास खड़े सब स्त्री-पुरुष प्रायः एक [illegible] ही आर्तनाद कर उठे "अरे ! बाप !"

महेश बोला "जब वह मर ही गया है, तब वह [illegible] तेरे पास आता ही क्यों है ?"

निर्भीक होकर बहू बोली, "वह मुझे बहुत चाहता है और मैं भी अब उसके बिना एक क्षण नहीं रह सकती।" फिर वह कोठरी के द्वार की भीड़ को चीरकर तीर की [illegible] यह कहती हुई नदी की ओर दौड़ पड़ी कि "अरुण ! अरुण ! तनिक ठहरो ! मैं आयी, आयी, आयी !" [illegible] तक लोग समझे कि क्या हो रहा है और उसे पकड़ने दौड़े तब तक वह नदी की कगार से उसके गहरे दह में [illegible] चुकी थी।

नवीन प्रकाशन

भारत का इतिहास—बच्चों के लिए—सचित्र। कई ... प्रकाशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण ..., दिल्ली—६। मूल्य, तीन रुपये।

...प्रकाशक के अनुसार यह पुस्तक ९ से १४ वर्ष तक ...बालिकाओं के लिए लिखी गयी है। आजकल ...कितने ही बालक १४ वर्ष की अवस्था में हाईस्कूल की ... उत्तीर्ण कर लेते हैं या उस कक्षा में पहुँच जाते हैं। ...लिए यह पुस्तक अत्यंत आरंभिक है। इसमें भारत के ... की मुख्य-मुख्य बातें क्रमबद्धरूप से और सरलता ...बतायी गयी हैं। लेखन-शैली संतोषजनक है और ...इस ढंग से लिखी गयी है कि भारत के इतिहास की ...बातें मालूम हो जायँ और भारत पर आक्रमण ...अत्याचार करनेवालों के प्रति भी कोई दुर्भावना ...न हो। इस पुस्तक में १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता ...को "महान् विद्रोह" का नाम दिया गया है जो ... 'ग्रेट म्यूटिनी' का अनुवाद मालूम पड़ता है। ...है कि सरकारी प्रकाशन में उसे 'स्वतंत्रता ... का नाम न दिया जाय। पुस्तक का प्रायः चतु-...वर्तमान युग और उसकी भूमिका को दिया गया है, ...तक कि इस इतिहास की पुस्तक में पंचवर्षीय योज-...ना का भी वर्णन कर दिया गया है। सामान्यतः ... की पुस्तकों में चालू युग का हाल नहीं दिया जाता, ... सरकारी प्रकाशनों में शायद 'प्रचार' आवश्यक ... जाता है। बालकों के लिए जो पुस्तकें लिखी ... उनकी भाषा निर्दोष होनी चाहिए। किंतु इस ... में कहीं-कहीं कितने ही प्रयोग चिन्त्य हैं। उदाहरण ...—"जब कभी शाहू...बाहर जाते थे, तब उनके ... में बालाजी ही राजकाज देखते थे।" "उनमें सबसे ... इरादा वाले व्यक्ति एक तुर्क थे", "उन दिनों के बच्चे ... के बच्चों से बहुत अलग तरह के नहीं होते थे।" ... (उन दिनों के कुछ गहने) "आजकल के गहनों ... बिल्कुल अलग थे।" यहाँ 'अलग' का प्रयोग हिन्दी की ... के विरुद्ध है। किंतु शायद लेखक हिन्दी का 'भिन्न' ... बचाना चाहते थे क्योंकि इस पुस्तक में अनावश्यक ... उर्दू शब्दों की भरमार है। दुनिया, क़िस्म, अर्सा, ...ज़्यादा, ज़माना, नज़र, हमेशा, तरीका, शुरू, नुक-...सान, महसूस, मदद, ज़रिए, इस्तेमाल, क़ब्ज़ा, हमला, ...ज़्यादा, दखल, इलाक़े आदि शब्दों का प्रचुर प्रयोग ...। किन्तु इस भाषा में भी एकरूपता नहीं है। कहीं-कहीं विशुद्ध हिंदी का प्रयोग किया गया है। एक जगह (पृष्ठ १५६) लिखा है, "नेहरू की दूसरी प्रसिद्ध पुस्तक का नाम है—'डिस्कवरी आफ इंडिया' या 'हिन्दुस्तान की कहानी।' अँगरेजी नाम का यह हिंदी अनुवाद कितना शुद्ध है, यह पाठक स्वयं देख लें। इस पुस्तक में 'बी० सी०' और "ए० डी०" शब्दों का प्रयोग किया गया है। इसे समझाया भी गया है: "कहीं-कहीं ए० डी० का भी इस्तेमाल होता है। इसका अर्थ है, 'एनो डोमिनी'। 'एनो डोमिनी' लैटिन शब्द है, जिसका अर्थ है 'हमारे प्रभु ईसा के वर्ष में'।" शायद भारत-सरकार की "इंटर-नेशनल शब्दों" को स्वीकार करने की नीति के अनुसार यह सरकारी प्रकाशन "हमारे प्रभु ईसा के वर्ष" का यह लैटिन-अँगरेजी रूप हमारे बच्चों के गले उतार कर उसका प्रचार कर रहा है। पुस्तक में और भी कितनी बातें हैं जिन पर बहुत कुछ कहा जा सकता है, जैसे, "ब्राह्मण ऐसा मानते थे कि ईश्वर की भक्ति करने का और संस्कृत जानने के कारण धर्म-ग्रन्थों को पढ़ने का अधिकार केवल उन्हींको है।" "कहते हैं कि एक बार ज्ञानेश्वर ने एक भैंसे से वेदपाठ करवाया, इससे मूर्ख ब्राह्मणों को अपनी गलती मालूम हो गई।" ब्राह्मणों को 'गरियाना' आजकल फैशन है, सो इसके संबंध में कुछ कहना व्यर्थ है। किंतु "ब्राह्मण ऐसा मानते थे कि ईश्वर भक्ति करने का अधिकार केवल उन्हींको है," इस कथन का क्या प्रमाण है? अलौकिक और चमत्कारिक बातें साधारण रूप से इतिहासों में नहीं दी जातीं, किन्तु यदि कोई कहे कि 'मूर्ख ब्राह्मणों' की मूर्खता-प्रदर्शन करने के लिए लेखक ने गंभीर इतिहास में ऐसी 'चमत्कारिक' बात लिखकर अपनी मूर्खता प्रदर्शित की है तो वह ठीक ही होगा। पुस्तक प्रचार-प्रधान है। यह ऐसा प्रकाशन नहीं है जिसे पढ़कर प्रसन्नता हो।

उथल-पुथल का युग—लेखक, सेठ गोविन्ददास। प्रकाशक, प्रकाशन विभाग, पुराना सचिवालय, दिल्ली ६। बड़ा आकार, सजिल्द। मूल्य, तीन रुपये।

इस पुस्तक का नाम भ्रामक है। वास्तव में यह सेठजी का आत्मचरित है। सेठजी ने एक बृहत् आत्म-चरित भी लिखा है। मालूम पड़ता है कि यह उसका संक्षिप्त संस्करण है। पिछली आधी शती के स्थानीय और अखिल भारतीय सार्वजनिक आन्दोलनों और क्रिया-कलापों से सेठजी का सक्रिय सम्बन्ध रहा है, इसलिए इस पुस्तक में इस ऐतिहासिक युग का स्वानुभूत वर्णन होना अनिवार्य

है। यह बात इस पुस्तक के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण है। इसमें सेठजी के जीवन की कहानी 'उन्हींकी ज़बानी' तो मिलती ही है, साथ ही स्वतन्त्रता आन्दोलन का मनोरंजक वर्णन भी प्रकारान्तर से मिल जाता है। सेठजी के समान ज्येष्ठ और श्रेष्ठ राष्ट्रसेवक का यह आत्मचरित पढ़ने योग्य है। इससे पाठकों का मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन होगा। किन्तु इसमें न तो कोई विषय-सूची है और न लेखक की भूमिका। इन दोनों का, विशेषकर विषय-सूची का न होना खटकता है। आरंभ में "सम्पादक" की एक 'भूमिका' है। मुखपृष्ठ से न तो यह पता लगता है कि यह पुस्तक 'सम्पादित' है, और न यह कि 'सम्पादन' किन सज्जन ने किया है। अच्छा तो यह होता कि यह 'सम्पादक' की 'भूमिका' लिखी ही न जाती। प्रायः आरंभ ही में लिखा है—"पर इसमें संदेह नहीं कि भारत में १९०० से लेकर १९४७ तक का यग बहुत महत्त्वपूर्ण रहा है, क्योंकि भारत ने इस दौरान सैकड़ों वर्षों की गुलामी की जंजीर तोड़ डाली और अब भारत एक स्वतंत्र देश है। इस पुस्तक का समय भी वही है।" 'इस दौरान जंजीर तोड़ डाली' विचित्र प्रयोग है। 'इस पुस्तक का समय भी यही है' से मालूम पड़ता है कि पुस्तक का समय—अर्थात् उसके लिखने का समय 'यही' था! भूमिका में सेठजी के परिवार को 'सामन्ती' परिवार बतलाया गया है—यद्यपि अभी तक हम लोग सामन्त शब्द का प्रयोग उन लोगों के लिए करते थे जो राजाओं के सरदार होते और जिन्हें अपनी जागीरों आदि में प्रजा के ऊपर राजा के समान ही अधिकार थे और जिन्हें अँगरेजी में 'फ्यूडल चीफ' कहते थे। एक सफल और धनी मारवाड़ी सेठ को जिसे अँगरेजों ने राजा, दीवान बहादुर या रायबहादुर की उपाधि दे दी हो, 'सामन्त' कहना विचित्र मालूम होता है। इस भूमिका से एक नयी बात मालूम हुई। "इस परिवार में पैदा होकर जिसमें लोगों को अपने आप नहाना भी नहीं आता था, सेठजी ने...।" यह एक शोध का विषय होना चाहिए कि "सेठजी के परिवार ने नहाना कब और कैसे सीखा?" क्योंकि जहाँ तक हमें मालूम है वर्षों से सेठजी के परिवार के लोग नहाना जानते हैं। "केन्द्रीय व्यवस्थापिका, संविधान सभा.... सभी में सेठजी का एक निजी भाग रहा।" यह 'सेठजी का निजी भाग' हमारी समझ में नहीं आया। हमने कुछ साहित्यिक मित्रों से भी जिज्ञासा की, किन्तु वे भी ठीक-ठीक स्पष्टीकरण नहीं कर सके। और भूमिका का अंतिम वाक्य है—"और अन्तिम रूप में जाकर यह पुस्तक भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का वास्तविक इतिहास लिखने में सहायक होगी।" क्या यह पुस्तक का "अन्तिम रूप" नहीं है? अथवा लेखक ने कोई वाक्य अँगरेजी में सोचा था और उसे वे हिन्दी में ठीक तरह से व्यक्त नहीं कर सके?

ईसप की गीत कथाएँ—पहला भाग—अनुवादक, निरंकारदेव 'सेवक'। प्रकाशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, दिल्ली—६, सचित्र। मूल्य २ रुपये ५० नये पैसे।

ईसप की कथाएँ संसारप्रसिद्ध हैं और इनके ... ही छोटे-बड़े संग्रह हिंदी में भी निकल चुके हैं। किन्तु ... पुस्तक की यह विशेषता है कि कहानियों को पद्यबद्ध ... दिया गया है। ये कविताएँ सरल भाषा में ऐसे मनो... ढंग से लिखी गयी हैं कि बालकों को बहुत रुचिकर ... प्रत्येक कहानी के साथ उपयुक्त चित्र भी दिये गये हैं ... बालकों के लिए प्रत्येक कहानी और अधिक आकर्षक ... गयी है। चित्र स्पष्ट और अच्छे ढंग से बनाये गये हैं ... बालकों को पसन्द आवेंगे। पुस्तक हिन्दी बालसा... में उच्च स्थान प्राप्त करेगी। पुस्तक में बड़े आकार ... डेढ़ सौ पृष्ठ हैं और सामान्यतः इसका जो मूल्य रखा ... है वह चित्रों की संख्या, आकार और छपाई देखते हुए ... ही है। किंतु इतने मूल्य की पुस्तक सामान्य हिंदी... बच्चों के माता-पिता न खरीद सकेंगे। यह सर... प्रकाशन है। रूस के कुछ प्रकाशन हमने देखे थे जो ... सुंदर थे किंतु उनका मूल्य अपेक्षाकृत कम था। साध... प्रकाशकों के लिए लाभांश कम करके सस्ते दामों ... पुस्तक बेचना कठिन है, किंतु सरकार, जो प्रचार में ... रुपये खर्च करती है, यदि कुछ हानि उठाकर भी, ... लाभांश कम लेकर, बच्चों के लिए सस्ती और इस ... की अच्छी पुस्तकें सुलभ कर दे तो शिक्षा-प्रचार ... बालकों में सुरुचि पैदा करने में बड़ी सहायता होगी।

समाज विज्ञान—सिद्धान्त और प्रयोग—लेखक, ... राम शास्त्री। प्रकाशक, प्रकाशन विभाग, सूचना ... प्रसारण मंत्रालय, दिल्ली ६, सजिल्द। मूल्य, चार ... पचास नये पैसे।

भूमिका में विद्वान् लेखक ने लिखा है—"जड़ ... पर मनुष्य के नियंत्रण से जीवन और सम्पत्ति को ... पैमाने पर नष्ट करने के साधन प्राप्त हो गये हैं। ... ही, मनुष्य की वर्तमान मानसिक बनावट और अवि... समाज-रचना से इस बात की संभावना बहुत बढ़ ... कि विनाशकारी साधनों का प्रयोग भी किया जाय। ... खतरे से बचाव का यही रास्ता है कि मनुष्य की मा... बनावट को बुद्धिमानीपूर्वक परिवर्तित किया जाय ... मानव का अधिक युक्तिसंगत ढंग से संगठन किया ... समाजशास्त्रियों के सम्मुख यही मुख्य समस्या है कि ... ने प्रकृति के रहस्यों को जानकर जो अपरिमित शक्ति ... कर ली है, उसका वह शिव उपयोग न करके यदि ... उपयोग करेगा तो मानवता ही नष्ट हो जायगी। ... शब्दों में इसे यों भी कह सकते हैं कि मनुष्य ने ज्ञान (... के क्षेत्र में जितनी प्रगति की है उतनी मानवता के ... या आध्यात्मिकता के क्षेत्र में नहीं की। अणु विघटन ... का ज्ञान उसके लिए 'बंदर के हाथ में चाकू' के समान ... गया है। समाजशास्त्री भी जड़वादी हैं। वे आ... मूल्यों पर विश्वास नहीं करते। लेखक ही ने एक स्थान ... कहा है—"पिछले जमाने में हमारी नैतिक भावना...

...धर्म था। मानवमात्र की मौलिक समानता; ...प्रेम; हिंसा, द्वेष, स्वार्थ, निष्क्रियता, कायरता तथा ...का तिरस्कार; न्याय; निर्बल और शरणागत ...रक्षा; विनम्रता; आत्मसंयम तथा उदारता आदि ...का विधान धर्म के उत्तराधिकार-स्वरूप ही हमें प्राप्त ...है। फिर भी, युद्धों का अन्त नहीं हुआ; दुखियों का ...दूर नहीं हो सका; पशुता और हिंसा का उन्मूलन नहीं ...और मानव-समता, न्याय, मानवता और प्रेम की ...नहीं हो सकी। आज तो धर्म की भी शक्ति क्षीण हो ...है।" इसलिए "इस खतरे के बचाव का यही रास्ता ...मनुष्य की मानसिक बनावट को बुद्धिमानीपूर्वक ...किया जाये।" अर्थात् समाजशास्त्रियों की ...में मनुष्य की मानसिकता, उसके संवेग, उसके ..., उसकी मौलिक मानसिक प्रवृत्तियाँ, उसकी विचार-...का ढंग बदले बिना मनुष्य का भविष्य अंधकारमय ...मनुष्य की मानसिक नैसर्गिक प्रवृत्तियों का बदलना ...के विघटन से कहीं अधिक कठिन है क्योंकि अणु जड़ ...मनुष्य चेतन है। उसके 'मन' पर प्रयोगशाला में प्रयोग ...किये जा सकते। समाजशास्त्री इस कठिनाई को ...ते हैं, किंतु उनका कहना है कि "जिस प्रकार भौतिक ...पर नियंत्रण के फलस्वरूप हमारी भौतिक समृद्धि ...विज्ञान के द्वारा संभव हुई है, उसी प्रकार मानव-...पर नियंत्रण के आधार पर निर्मित होनेवाली ...व्यवस्था सामाजिक मनोविज्ञान के द्वारा ही ...हो सकती है। ....बिना मानव-प्रकृति के बदले ...सामाजिक व्यवस्था में भी सुधार नहीं हो सकता। ...लिए मनोविज्ञान का व्यापक विकास होना चाहिए।" ...की अनेक प्रवृत्तियाँ, जो आज उसकी प्रकृति के ...अभिन्न अंग समझी जाती हैं, वास्तव में, विकृत ऐतिहा-...परिस्थितियों से उत्पन्न विकृतियाँ मात्र हैं। योजना-...से इस प्रकार की विकृतियों के नियंत्रण से मानसिक ...में उन्नति का मार्ग प्रशस्त हो सकता है।" इस ...में, इसी लक्ष्य को सामने रखकर "प्रकृति और ...", "व्यक्ति और समाज" तथा "वर्ग और वर्ण" नामक ...खंडों में आधुनिक समाजशास्त्र के सिद्धान्तों क ...किया गया है। आधुनिक समाजशास्त्र का, ...उस समाजवाद का जिस पर मार्क्स की गहरी ...है, इस पुस्तक से अच्छा परिचय प्राप्त होता है। ...काल में, इस देश के कर्णधारों ने इस देश को ...औद्योगिक राष्ट्र बनाने का संकल्प कर लिया ...और ऐसे राष्ट्रों में पारिवारिक जीवन प्रायः समाप्त ...जाता है। लड़के बड़े होते ही, विदा हो जाते हैं और ...अकेला ही रह जाता है। ऐसी अवस्था में 'सामा-...की अतृप्त अभिलाषा बनी रहती है और वह अतृप्त ...रहता है। मनुष्य को सुखी करने के लिए उसकी ...पारिवारिक मूल भावनाएँ बदलनी होंगी। यह परिवर्तन "योजनाबद्ध ढंग से इस प्रकार की विकृतियों के नियंत्रण से" किया जा सकता है। एक बार 'योजनाबद्ध मानसिक नियंत्रण' का सिद्धान्त मान लेने पर समाजवादी देशों के 'ब्रेनवाशिंग' और 'इन्डॉक्रिनेशन' का कारण समझ में आ जाता है। आधुनिक समाज विज्ञान कार्लमार्क्स के समाज-वाद से इतना प्रभावित है कि वह उसका आधार बन गया है। आधुनिक समाज विज्ञान का परिचय इस पुस्तक से भली भाँति मिलता है। यह पुस्तक बड़े अच्छे ढंग से लिखी गयी है, तर्कपूर्ण है और एक बड़ी विशेषता यह है कि लेखक ने हिंदू ग्रंथोंके भी उद्धरण जहाँ-तहाँ दिये हैं। आधुनिक समाज विज्ञान का ज्ञान प्राप्त करने में यह पुस्तक बड़ी सहायक होगी, तथा स्नातक कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए यह बड़ी उपयोगी सिद्ध होगी।

अमिट रेखाएँ—लेखक, अक्षयकुमार जैन, रत्नसिंह साण्डिल्य, कमल कुञ्ज प्रकाशन—दिल्ली, ४/१४ रूप-नगर (दिल्ली, मूल्य तीन रुपए पचास पैसे, पृष्ठ संख्या १३९।

पुस्तक को रक्षामन्त्री यशवन्तराव चव्हाण का आशीर्वाद भूमिका के रूप में प्राप्त है। पुस्तक में कुछ पौराणिक, कुछ ऐतिहासिक एवं कुछ आधुनिक वीरों की कथाएँ हैं।

सभी कथाओं के पूर्व जिनकी कथाएँ हैं उनके चित्र दिये गये हैं। आधुनिक वीरों के फोटोग्राफिक चित्र हैं। आधुनिक वीरों में से उन वीरों की कथाएँ दी गयी हैं जो भारत-चीन युद्ध में वीर गति को प्राप्त हुए हैं।

इसमें लक्ष्मण, हनुमान, अभिमन्यु, बब्रूवाहन, विदुला, प्रताप, गोविंद सिंह, शिवाजी, लक्ष्मीबाई, अजीजन, अजीमुल्ला खाँ, तेनसिंह, उसमान, मेजर शैतान सिंह, मेजर धन सिंह थापा और जवान केवल सिंह के जीवन-वृतान्त हैं। यह समझ में नहीं आया कि इन सब वीर नीति प्राप्त वीरों के बीच में तेनसिंह कहाँ से आ गया। और लेखक ने उनको 'था' कह कर क्यों सम्बोधित किया। 'आज के युग में तो तेनसिंह ही प्रथम भारतीय था जिसने यह साहस किया।' अभी उनको 'हैं' कहकर सम्बोधित किया जा सकता है और वीर गति प्राप्त लोगों में से उनका नाम हटाया जा सकता है।

कथाएँ संक्षिप्त एवं रोचक हैं यों तो यह पुस्तक सामान्य प्रौढ़ों के लिए भी उपयोगी हैं, किंतु किशोरों के लिए विशेषरूप से लाभदायक हैं। पुस्तक की शैली मनोरंजक और भाषा सरल है। भारतीय वीरों के इन प्रेरणाप्रद रेखाचित्रों से नवयुवकों, सैनिकों और प्रौढ़ों का मनोरंजन होगा और उनकी ज्ञान वृद्धि होगी ।छपाई स्पष्ट और सुन्दर है, तथा अक्षर बड़े हैं।

भारती-कण्ठाभरण

इस पृष्ठ में अभी तक श्लोकों का चयन साहित्यिक दृष्टि से किया जाता रहा है। इस बार महाभारत के शान्ति-पर्व से राजधर्म-संबंधी कुछ उद्धरण दिये जा रहे हैं जिनका महत्त्व सनातन है।

कालो वा कारणं राज्ञो राजा वा कालकारणम् ?
इति ते संशयो माभूद् राजा कालस्य कारणम् ॥

काल राजा का कारण है अथवा राजा काल का, ऐसा संशय तुम्हें नहीं होना चाहिए। यह निश्चित है कि राजा ही काल (युग या समय) का कारण है। अर्थात् राजा के शासन के अनुसार उसका राज्यकाल अच्छा या बुरा होता है।

दण्डनीतिं परित्यज्य यदा कार्त्स्न्येन भूमिपः
प्रजाः क्लिश्नात्ययोगेन प्रवर्तेत तदा कलिः ॥

जब राजा (न्यायोचित) दण्डनीति (राजनीति) को छोड़कर अयोग्य या अनुचित उपायों द्वारा प्रजा को कष्ट देने लगता है तब कलियुग आ जाता है।

राजा कृतयुगस्रष्टा त्रेताया द्वापरस्य च।
युगस्य च चतुर्थस्य राजा भवति कारणम्।

राजा ही सत्ययुग की सृष्टि करता है, और वही त्रेता, द्वापर और कलियुग की भी सृष्टि का कारण है।

ऊधश्छिन्द्यात् तु यो धेन्वाः क्षीरार्थी न लभेत् पयः।
एवं राष्ट्रमयोगेन पीडितं न विवर्धते।

जिस प्रकार दूध की इच्छा करनेवाला व्यक्ति यदि गाय का थन काट ले तो फिर उसे दूध नहीं मिल सकता, उसी प्रकार यदि प्रजा का अनुचित रूप से शोषण किया जाय तो राष्ट्र की उन्नति नहीं हो सकती।

जलौकावत् पिबेत् राष्ट्रं मृदुनैव नराधिपः।
व्याघ्रीव च हरेत् पुत्रान् संदशेन्न च पीडयेत्।

जैसे जोंक इस प्रकार रक्त चूसती है कि मनुष्य को मालूम ही नहीं होता कि उसे जोंक लगी है उसी प्रकार नर्मी से प्रजा से कर ले। जिस प्रकार बाघिन अपने बच्चे को दाँतों से पकड़कर ले जाती है और उसे अपने दाँतों से कष्ट नहीं होने देती उसी प्रकार राजा प्रजा से इस प्रकार कर लेवे कि उसे कष्ट न हो।

कच्चिन्नो वणिजो राष्ट्रे नोद्विजन्ति करार्दिताः।
क्रीणन्तो बहुनाल्पेन कान्तारकृतविश्रमाः।

ऊँचे या नीचे भाव से माल खरीदनेवाले और व्यापार के लिए दुर्गम प्रदेशों में विचरनेवाले व्यापारी तुम्हारे राज्य में करों के भारी भार से पीड़ित हो उद्विग्न तो नहीं होते?

कच्चित् कृषिकरा राष्ट्रं न जहत्यतिपीडिताः।
ये वहन्ति धुरं राज्ञां ते भरन्तीतरानपि।

किसान लोग अधिक लगान के कारण अत्यन्त कष्ट पाकर तुम्हारा राज्य छोड़कर तो नहीं जा रहे हैं? वे (किसान) ही राजाओं का भार ढोते हैं और वे ही दूसरे लोगों का भरण-पोषण करते हैं। (इस युग में "राज्य छोड़कर" न कहकर 'किसानी छोड़कर' कहना अधिक उपयुक्त होगा)।

राज्ञा हि पूजितो धर्मस्ततः सर्वत्र पूज्यते।
यद् यदाचरते राजा तत् प्रजानां स्म रोचते।

जब राजा धर्म का आदर करता है तब उसका (धर्म का) सर्वत्र आदर होने लगता है क्योंकि राजा जो करता है उसी का अनुसरण करना प्रजा को अच्छा लगता है।

यस्य स्म विषये राज्ञः स्नातकः सीदति क्षुधा।
अवृद्धिमेति तद्राष्टं विन्दते सहराजकम्।

जिस राज्य में स्नातक (ग्रेजुएट या शिक्षित) क्षुधा से पीड़ित रहते हैं, वह राष्ट्र वृद्धि नहीं कर पाता। उसमें अराकता फैल जाती है।

अगूढविभवा यस्य पौरा राष्ट्रनिवासिनः।
नयापनयवेत्तारः स राजा राजसत्तमः॥

जिस राजा के नागरिक अपनी सम्पत्ति नहीं छिपाते तथा न्याय और अन्याय (नीति-अनीति) को समझते हैं वही राजा उत्तम है।

ब्रज-माधुरी

हरि पकरि कदंब की ललित डार
खड़े जमुना पै कलानिधि ऐसे वे रहे।
'रघुनाथ' न्हाइबे कों आलिन के साथ आयी
वृषभानु-लली पंथ सौरभ सों च्वै रहे।
देखौ होत भयो कौतुक उदोत भटू !
राधेजू के नैन ऐसी भाँति घरी द्वै रहे।
खंजन से ह्वै कैं, फेरि खंजन से ह्वै कैं
फेरि मीन ऐसे ह्वै करि चकोर ऐसे ह्वै रहे ॥

न जंत्र तें मंत्र तें मूरि तें
जाति कही नहिं होत जथा है।
करैं तन भूलौ फिरै
मन देखि कहै जन बौरौ जथा है।
दई! जनि काहू कें होइ,
कहै 'रघुनाथ' भये ही मथा है।
कहा अनबूझो भली
यह प्रेम बिथा की कथा अकथा है।

जाने कहा भयौ, सुनिए सबल स्याम !
टूटौ गुन धनुष तुनीर तीर झरिगौ।
न चंपलता बोलत समीर बानी
कोकिल कलित सो ललित कंठ परिगो।
छोटे छौना कलहंसन के नीके नीके
तिनके रवन तें श्रवन मेरो भरिगो।
मुद्रित विलोकि विद्यमान भानु
मकरंदहि मलिंद पान करिगो।

(नीलकंठ)

बोरिबे कों व्रज, बोले, वज्रधर प्रलै-
वारिधि पठाये वृथा ताहि समुझाइहों।
आँगुरी के पोर गिरिवर राखि,
गोपी-गोप-गैयन के गन कों बचाइहों।

दूर कौ गुमान बरषा कौ महामेघन कौ,
ह्याँ लौं महा मघवा कों रोदन कराइहों।
वाही के हजार एक लोचन के आँसुन सों
सुंदर पुरंदर के मंदिर बहाइहों।

औसर कौन ? कहा समयौ ? कहा काज ?
विवाद ये कौन सो पावन ?
त्यों पदमाकर धीर समीर
उसीर भयो तपि कै तन-तावन।
चैत की चाँदनी चारु लखे,
चरचा चलिबे की लगे जु चलावन।
कैसी भई तुम्हें ? गंग की गैल में
गीत मदारन के लगे गावन।

सुभ सीतल मंद सुगंध समीर,
कछू छल-छंद से छ्वै गये हैं।
'पदमाकर' चाँदनी चंद हू के
कछू औरहि डौरन च्वै गये हैं,
मनमोहन सों बिछुरे इत ही
बनि कै न अबै दिन द्वै गये हैं।
सखि ! वे हम वे तुम वेई बने,
पै कछू के कछू मन ह्वै गये हैं !

धीर समीर सु तीर तें तीछन
ईछन कैसेहु ना सहती मैं।
त्यों 'पदमाकर' चाँदनी चंद—
चितै चहूँ ओरन चौंकती जी में।
छाइ बिछाइ पुरैन के पातन
लेटती चंदन की चवकी में।
नीच कहा बिरहा करतो सखि !
होती कहूँ जु पै मीच मुठी में।

मनोरंजक संस्मरण

श्रीधर पाठक और मन्नन द्विवेदी गजपुरी

पं० श्रीधर पाठक की सरस खड़ीबोली कविताओं ने अपने युग में जो क्रान्ति उत्पन्न कर दी थी, उसका अनुमान करना भी आज कठिन है। वह ब्रजभाषा की कविता का युग था और खड़ीबोली की कविता एक नयी चीज थी। इस नवीनता के तत्त्व के अतिरिक्त पाठकजी की कविता की विषय-वस्तु भी नयी होती थी तथा अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त होने के कारण उनका दृष्टिकोण अंग्रेजी पढ़े-लिखे हिंदी प्रेमी युवकों को बहुत प्रभावित करता था। एकलव्य की भाँति कितने ही साहित्यप्रेमी युवक उन्हें अपना 'गुरु' मानने लगे थे। उस समय के वातावरण और पाठकजी के प्रभाव का यथार्थ चित्रण करना आज प्रायः असंभव है। किंतु उसका क्षीण आभास देने के लिए यहाँ दो पत्र दिये जा रहे हैं।

पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी बी० ए० गोरखपुर के रहनेवाले थे। वे बड़े प्रतिभाशाली युवक थे और हिंदी के अच्छे कवि थे। पाठकजी से प्रेरणा प्राप्त कर उन्होंने खड़ीबोली में कविता करनी आरंभ की थी और वे, अपने समय के अनेक युवकों की भाँति, पाठकजी को अपना काव्यगुरु मानते तथा उनपर अपार श्रद्धा रखते थे। उन्होंने मैकाले के 'होरेशस' नामक प्रसिद्ध खंडकाव्य का बड़ी ओजस्वी खड़ीबोली में अनुवाद किया था जिसे उन्होंने प्रयाग में हमें स्वयं सुनाया था। उनकी कितनी ही कविताएँ बड़ी उत्कृष्ट थीं। उनकी भाषा का नमूना उनकी 'गंगाजी के प्रति' नामक कविता की दो आरंभिक पंक्तियों से मिलता है:

हे गंगे ! बहुगुणगण-धारिणि, तारिणि, हरणि अखिलसंताप
नाम मात्र ही लिये तुम्हारा मिटता है युग-युग का पाप

मन्ननजी तहसीलदार पद पर नियुक्त हो गये थे। वे बस्ती, काशी और प्रयाग में रहे। दुर्भाग्य से अल्पायु में उनकी मृत्यु हो गयी।

जिस समय वे काशी में नियुक्त थे, उन्होंने पाठकजी से मिलने और उन्हें एक पुस्तक भेंट करने की इच्छा प्रकट की। पाठकजी व्यवहार और शिष्टाचार में बिल्कुल अंग्रेज थे। अतएव मन्ननजी मिलने का दिन और समय निश्चित किये बिना उनसे न मिलते थे। मिलने का दिन निश्चित हो गया और मन्ननजी घर से चले भी, किंतु उनका छोटा भाई सहसा बीमार हो गया जिसका समाचार पाते ही वे काशी लौट गये। समय पर न मिलने के लिए शायद पाठकजी ने उन्हें उलाहना भेजा। इसपर द्विवेदीजी ने उन्हें क्षमा-याचना का यह पत्र लिखा:

आजमगढ़ पैलेस, बनारस
१२-३-१४

हिन्दी संसार के पूर्ण शरच्चन्द्र, कविता कामि[नी] अद्वितीय वल्लभ, खड़ीबोली कविता के आचार्य, साम[ाजिक] सुधार के शक्तिशाली घटवार, सभ्यता, सज्जनता, [...] के निर्मल स्वरूप, गुरुवर श्रीमान् पंडित श्रीधर पाठ[क] के चरणकमलों में चरणकिंकर भक्त-भ्रमर मन्नन [...] सादर प्रणाम स्वीकृत हो।

कृपापत्र पाकर आनन्द और लज्जा हुई, [...] प्रतिज्ञा पूरी न कर सकने के लिए बहुत दुखित और [क्ष]मा प्रार्थी हूँ। कारण यह कि अपने छोटे भाई की बीमारी [की] वजह से मैं शीघ्र बनारस लौट आया। भाई की त[बियत] अच्छी होने पर मैं किसी रोज पुस्तक लेकर अवश्य उप[स्थित] हूँगा।

विनीत
मन्नन द्विवे[दी]

इस पत्र का सिरनामा इस युग में एक अनोखी [...] समझी जायगी। किन्तु इससे इस बात का पता लग[ता है] कि द्विवेदीजी के समान सुशिक्षित और साहित्य[...] सरकारी अधिकारियों के भी हृदयों में पाठकजी के [...] क्या भावना थी।

द्विवेदीजी के छोटे भाई का रोग बढ़ता गया और [...] में उसकी मृत्यु हो गयी। द्विवेदीजी उससे अत्यधिक [...] करते थे। इसका समाचार उन्होंने पाठकजी को निम्नां[कित] पद्यमय पत्र द्वारा दिया:

डोमरियागंज, बस्ती
ता० १२-५-'१४

भगवन् ! !

प्रियवर अनुज विरह परिपीड़ित,
जीव, ब्रह्म चिन्ता चिर चिन्तित,

भव बंधन-बंधित, अति आकुल,
भौतिक देह भार भय व्याकुल,

उत्सुक स्वर्ग सहोदर दर्शन,
भगवत-चरण-कमल मन मधुकर।

भजत भक्त मन्नन पद पंकज,
परम विनीत भाव जोड़े कर,

नित्य निरोग रहैं कवि श्रीधर,
भाषा-भानु परम कोविद वर।

वत्स
मन्नन द्वि[वेदी]

मन्ननजी को अपने भाई की मृत्यु से बड़ा धक्का [लगा।] वे उसे आजीवन न भूल सके और स्वयं अल्पायु में [...] वासी हो गये।

गिरासिया

श्री मुंशी देवीप्रसाद

गिरासिया" राजपूताने की एक पहाड़ी जाति है। ये बिगड़े हुए राजपूत हैं। गोडवाड़ सिरोही, और ... के पहाड़ों में रहते हैं। इनकी सूरत-शक्ल और रहन-सहन मेंणों और भीलों की सी है। परन्तु उनकी तरह चोर और डकैत नहीं हैं। खेती करके अपना ... करते हैं और अपने ही गाँवों में रहते हैं। ये गाँव पहाड़ों में बसते हैं, जिनमें ये लोग अलग-अलग झोपड़े बनाकर रहते हैं। साधारण लोग इनसे डरते हैं कि ये बड़े जादूगर हैं। इसी से कोई इनको नहीं छेड़ता।

गिरासियों की उत्पत्ति के विषय में विख्यात तो यह है कि इनका बाप राजपूत था और माँ भीलनी थी। इस कारण ये लोग नीच गिने जाते हैं। परन्तु इनके भाट कहते हैं कि जब संवत १३६८ में जालोर का राज बादशाह अलाउद्दीन खिलजी ने लिया और वहाँ के राव कान्हड़देव और कुंवर वीरमदेव उससे लड़कर मारे गये तब ... सातल, भोजराज और मूलकदेव, जो उनके भाई थे, कई राजपूतों के साथ भाग कर इन पहाड़ों में ... और भीलों की जमीन छीन कर राज करने लगे। ... जमीन में से कुछ गिरास अर्थात् जीविका उन राजपूतों को भी दी जिससे उनका नाम गिरासिया हो गया ... फिर इस नाम से इन सब की एक अलग ही जाति ... गई।

एक दिन जंगल में आग लगी, जिससे बहुत से जानवर जल मरे। उनमें एक सफेद बैल अधजला पड़ा रहा था। उसको ये लोग सांभर समझ कर खा गये। परन्तु जब मालूम हुआ कि वह तो बैल था तब बहुत पछताये और उसके प्रायश्चित में सफेद भेड़ और बकरे आदि का खाना छोड़ दिया। पर इससे बाहर के भाइयों और सगे ... में कुछ सफाई न हुई। उन्होंने इनके साथ खाने पीने और सगाई व्याह करने का व्यवहार छोड़ दिया। ... राजपूतों से दूर पड़ कर ये मेंणें और भीलों के ... हो गये। पहाड़ों में रहने से इनका रूप रंग और ... भी बदल गया। मेरपुर का राव अब सातल की औलाद में है। उसको कुल गिरासिये अपना स्वामी समझते हैं और उसके पास होली, दिवाली सलाम करने और ... के झगड़ों का निपटारा कराने जाते हैं।

चौहान, सीसोदिया, सौलंखी, राणावत, बाँसिया, ... आदि इनके कई गोत्र हैं। फिर एक एक गोत्र की कई शाखायें भी हैं। गिरासिये अपने को हिन्दू मानते हैं और शिव शक्ति, और भैरव को पूजते हैं। शिव जी ... भैरव और देवी को बकरा और दारू चढ़ाते हैं। पूजन साधारण रीति से करते हैं।

इनका एक मेला मारवाड़ के गेड़वाड़ परगने में त्रिलोकेश्वर महादेव जी के मन्दिर पर होता है, जिससे बहुत लोग जमा होते हैं। यह मेला एक ही दिन रहता है। चैत्र और आश्विन के दशहरों को ये बहुत बड़ा त्योहार मानते हैं। उस दिन ये शराब पीते हैं और माता जी को बकरे चढ़ाते हैं। होली और गनगौर पर भी बड़ी खुशी मनाते हैं। मर्द औरत मिल कर अलग अलग एक महीने तक नाचते हैं। गनगौरों में इनके नाच का यह दस्तूर है कि औरतें सिर के ऊपर जवारे (हरे जव) रख कर घूमर का नाच नाचती हैं। मर्द उनके आस पास घूम घूम कर गाते और बाजे बजाते हैं। मुख्य बाजे इनके बांसुरी, ढोल, थाली और बाँस की छड़ियाँ हैं। छड़ियों को एक दूसरी पर मारने से जो आवाज निकलती है वह बाजों के ताल और राग से मिलकर नाच में मदद देती है। गीत उनके अजब तरह के होते हैं। उन्हें सिवा इनके या भीलों के और कोई नहीं समझ सकता। इन गीतों में ज्यादातर मजमून पेड़ों, जानवरों और पत्थरों का होता है, जो उनके रात दिन नजर आने की चीजें हैं।

गिरासिये शकुन को बहुत मानते हैं। जियादातर शकुन ये जानवरों की बोली पर लेते हैं। हर एक काम शुरू करने से पहले भैरवजी और माता जी के स्थान पर कुछ जव, कुछ गेहूँ और कुछ मक्की ले जाकर रखते हैं। फिर वहाँ का पुजारी, जो भोपा कहलाता है, उसमें से कुछ दाने उठाकर उनके हाथ में दे देता है। वे दाने जो गिनती में उनके मन चीते निकल आवें तो कहते हैं कि शकुन अच्छा है, और उस काम को करते हैं। नहीं तो नहीं करते। इस बात को ये मुहूर्त पूछना भी कहते हैं, ये कुछ स्वरोदय भी जानते हैं।

इनके कामों में ब्राह्मण का कुछ दखल नहीं है। कोई ब्राह्मण उनके गाँव में रहता भी नहीं है। वे ब्राह्मणों की जगह भोपों को मानते हैं। भोपे भी इन्हीं लोगों में से होते हैं। बाज वक्त भील भी भोपा बन जाता है। भोपों का सिर्फ इतना काम होता है कि महादेव जी के केसर, देवी और भैरव के सिंदूर और माली—पन्ना चढ़ावें और रात को चिराग जला देवें। भोपों की यह पहचान है कि वे हाथ में माला रखते हैं।

इनकी रीत रसमें भी अनोखी अनोखी हैं। लड़का जिस दिन पैदा होता है उसी दिन के नाम पर उसका नाम रखते हैं जैसे थावरियो, सोमियो, मंगलियो वगैरह।

गिरासियों में विवाह की तीन किस्में हैं। एक पेरावणा, दूसरा ताणणा, तीसरा व्याह।

पेरावणा इस तरह होता है कि कुँवारे लड़के लड़कियाँ, जो जंगल में ढोर चराने जाते हैं, जवान हो जाने पर एक

दूसरे को चाहने लगते हैं। जब दोनों के मन मिल जाते हैं तब मर्द औरत के हाथ लगा देता है और शाम को घर आकर अपने माँ बाप से कह देता है। वे लड़की के माँ-बाप से कहला देते हैं कि हमारे लड़के ने तुम्हारी लड़की के हाथ लगा दिया है। अब यह दूसरी जगह न जाने पावे। लड़की के माँ-बाप, जब उनको फ़ुरसत होती है, पंचों और सेलोत, अर्थात् गाँव के मुखिया, को जमा करते हैं। वे लड़केवालों को बुला कर उनसे लड़की के माँ-बाप को १२ बछड़े और १२ चादरें नेग की दिला कर राजी करते हैं। एक एक बछड़ा सेलोत और पंच अपने मेहनताने का लेते हैं। फिर लड़की के माँ-बाप एक अच्छा मुहूर्त, ऊपर लिखे मुआफिक देख कर, लड़की को उस मर्द के साथ कर देते हैं। उस समय दोनों को कुछ कपड़े भी पहनाते हैं। इससे इस विवाह का नाम पेरावणा है।

ताणणे में मर्द औरत को राजी करके पकड़ ले जाता है। उसके माँ बाप पता लगाकर १०-१५ आदमियों से उसके ऊपर चढ़ जाते हैं। उस समय पंच और सेलोत बीच में पड़कर गाय, भैंस और बैल लड़की के माँ-बाप को दिला कर नेग का फैसला कर देते हैं। पकड़ ले जाने का नाम ताणणा है।

नेग का दावा इन लोगों में दो दो पीढ़ी तक चलता है। एक पीढ़ी में जो उसके देने लेने का मौका न मिले तो दूसरी पीढ़ी में लेते देते हैं।

ब्याह, सगाई होकर होता है। सगाई का यह दस्तूर है कि दूल्हे का बाप एक रुपया और कुछ नारियल की गिरी दूल्हन के घर भेज देता है। फिर दोनों तरफ के पंच और सेलोत अमल[1], तिजारा[2] पीकर उस सगाई के गवाह बन जाते हैं। जिससे वह सही समझी जाती है।

ब्याह की रीत[3] के कम से कम १६) और जियादह से जियादह ६०) रुपये दूल्हन के बाप को दूल्हे की तरफ से देने पड़ते हैं। ब्याह की सब रीतें, फेरे[4] वगैरह की, रजपूतों के मुआफिक होती हैं। भोपा या श्रीमाली ब्राह्मण, जो इस काम के लिए दूसरे गाँवों से बुलाया जाता है, होम करके फेरे कराता है। हथलेवे में दूल्हन के रिश्तेदार गाय, भैंस, रुपया और कपड़े वगैरह देते हैं और दूल्हन का बाप "पेरावनी" करता है। ब्याह में दूल्हन के घर औरतें जो गीत गाती हैं, उनमें से ये दो अन्तरे, नमूने के तौर पर, नीचे दिये जाते हैं:

भीमजी फौजाँ रोमाँजी आमोरे बाला।
बाई रे पगां घूगरा बाजे रे बाला॥
सगांरी बेरने हेवे रे बाला।
लाल भाणजी काचालीं बूड़ा रे बाला॥

ब्याह में जितना खर्च पड़ता है उतना त णणा में पेरावणा में नहीं पड़ता। इसलिए ब्याह कम होता है दोनों जियादह। इसी सबब से एक एक गिरासिये के कई औरतें होती हैं। ऐसा कमबख्त कोई शायद ही हो कि जिसके एक भी न हो। नाता भी होता है। उसके का फैसला भी सेलोत ही करता है। नाते में यह नि नहीं है कि मर्द रंडवा ही हो। कुँवारा भी विधवा स्त्री नाता कर लेता है। जो कोई पति के रहते उसकी स्त्री घर में डाल लेवे तो उसका निबटारा भी सेलोत ही गाय, भैंस दिलाकर कर देता है। सेलोत को ये लोग मानते हैं। उसका कहना ये वैसा ही मानते हैं जैसा हाकि का।

ब्याह और नाते में गिरासिये भी राजपूतों के मु फिक गोत टालते हैं, अर्थात् अपने गोत में ब्याह नहीं करते।

गिरासिये मेणे भीलों की बेटियाँ भी ले आते हैं, वे जाति में नहीं रह सकते। इसी तरह यदि गिरासि की कोई बहन बेटी किसी मेणे या भील से साथ चली तो वह भी बिरादरी में नहीं आ सकती।

मुरदे को ये लोग जलाते हैं। पर राख और हड्डि कहीं नहीं ले जाते। क्रिया कर्म करना भी जरूरी समझते। तौफीक हो तो करते हैं, नहीं एक दिन सं इकट्ठे हो जाते हैं और मक्की की घूगरी (उबाली मकई) खाकर सोग दूर करा देते हैं।

जो बारहवाँ करें तो यह दस्तूर है कि बारहवें मक्का का दलिया और बकरे का माँस पकाकर भाई को खिला देते हैं। इसको "काँधिया" कहते हैं कभी ये मोसर (भोजन) करते हैं। इसको "बड़ा" बोलते मौसर में बड़ा आदमी तो लापसी और गरीब मक्का दलिया करता है। खिलाते समय दोनों ही उसमें अपनी हैसियत के मुआफिक चुल्लू भर भरकर घी हैं।

ये मेणों और भीलों को नीच समझते हैं और हाथ का पानी नहीं पीते। इनके गाँवों में या ये रहते या भील।

इनका पेशा सिर्फ खेती करने का है। धरती माता नाम पर चिराग जलाकर नारियल चढ़ाते हैं। फिर जोतते हैं।

गिरासिये नंगे बदन रहते हैं। सिर्फ एक मोटा पोति (मुंडास) सिर पर बाँधते हैं। या एक लाँग की पहनते हैं। और एक चादरा देशी कपड़े का पास

१—अफीम।

२—पोस्त।

३—बेटी का जो रुपया मारवाड़ में लिया जाता है उसको कहीं रीत, कहीं व्यवहार और कहीं दाया कहते हैं।

४—भाँवर! दूल्हा दुल्हन का एक एक हाथ जोड़ करके विवाह के समय बैठाते हैं। उसको हथलेवा कहते हैं। विवाह के पीछे जब हथलेवा छूटता है तब दूल्हन के काका, बाबा वा भाई बन्धु उसे कन्यादान के तौर पर ये चीजें देते हैं।

...जाड़ों में रुईदार कपड़े पहनना नहीं जानते। रात को ...लकड़ जलाकर उसके चौतरफ सो जाते हैं। उन लक्कड़ों ...को "सीरक्खा" यानी जाड़े से बचानेवाला कहते हैं। ...हथियार इनके तीर, कमान, कटारी, हँसिया और कुल्हाड़ा ...वगैरह हैं।

आँखें इनकी बड़ी-बड़ी, नाक नोकदार, चेहरा गोल, ...पतले, ढोड़ी नोकदार, छाती चौड़ी, कमर तंग, हाथ ...टाँगें मोटी, और पेट बड़ा होता है। यह हुलिया ...का है। औरतों के बाल लम्बे, दाँत छोटे, बोली महीन, ...हुआ, कमर पतली और बदन मजबूत होता है। ...कपड़े पहनती हैं और खेती वगैरह के कामों में खूब ...करती हैं।

चाँदी और सोना किसी किसी के हाथ और गले में ...है। नहीं तो पीतल या जस्त का गहना और लाख ...चूड़ा आम तौर पर पहना जाता है।

गिरासियों में दो पंथ दस्सा और बीसा हैं। गृहस्थी ...और साधू बीसा कहलाते हैं। ये साधू गिरासियों ...ही हो जाते हैं। मगर भगवा वस्त्र नहीं पहनते और न ...गिरासियों के सिवा दूसरी जातिवाले के घर माँगने जाते ...उनको मरे पीछे गाड़ते हैं।

गिरासिये बहुत सुस्त होते हैं। जब तक खाने को ...में मक्की होती है कुछ उद्यम नहीं करते। जब ही ...है तब लकड़ी और घास पहाड़ के नीचे के गाँवों में ...लाकर बेचते हैं। इनके पहाड़ों में शहद, मूसली, और ...दवाइयाँ बहुत होती हैं। पर ये उनकी कुछ परवा ...नहीं करते। भील लोग अलबत्ता बेचते हैं जो उनकी ...है।

गिरासियों के गावों में भीलों के सिवा और कोई ...नहीं बसती। महाजन उनके बोहरे हैं जो कभी कभी ...उनको नमक, मिर्च, तम्बाकू और कपड़ा वगैरह ...आते हैं। लेन देने में गिरासिये बहुत सच्चे होते हैं। ...भी इनकी अच्छी है। चोरी धाड़ा नहीं करते। ...और जागीरदारों के आदमी साल में दो दफे हासिल ...के लिए इनके गावों में जाते हैं। पर बिना इनकी मरजी ...इनकी किसी चीज को हाथ नहीं लगाते। लोगों को ...विश्वास है कि यदि कोई आदमी बिना इनकी अनुमति के ...जानवर या साग तरकारी इनकी खा जाता है तो उसको ...समय सजा मिल जाती है। या तो वह मर जाता है ...बीमार हो जाता है और जब तक उस माल के मालिक ...की औरत को कुछ कपड़ा वगैरह देकर राजी न करे, बीमार अच्छा नहीं होता। गिरासिया उन चीजों को लेकर या वैसे ही माफ करके बीमार के ऊपर थूक देता है जिससे वह फौरन अच्छा हो जाता है। इसी से लोग खयाल करते हैं कि ये लोग जादूगर हैं।

गिरासिये हमेशा तीर, कमान और तलवार अपने पास रखते हैं। जरूरत के वक्त लड़ने मरने को भी तैयार हो जाते हैं। पढ़े लिखे बिलकुल नहीं हैं। सीधे सादे पहाड़ी आदमी हैं। शराब पीते हैं और माँस खाते हैं। इनके सन्तति भी ज्यादह होती है।

इनके गाँवों में एक एक मुखिया पुश्तों से चला आता है जिसका ये बहुत अदब और मुलाहिजा करते हैं। होली और गनगौर के दिन सब गाँव वाले जुहार करने को उसके घर जाते हैं और वह उनको अमल, तम्बाकू से खातिरदारी करता है। गिरासिये अमल (अफीम) और तिजारा (पोस्त) खाते पीते हैं। अमल को ये बड़ी चीज समझते हैं। जब किसी से बैर-भाव या किसी झगड़े का फैसिला करते हैं तब उसे अपने हाथ से अमल पिला देते हैं। बस सफाई हो जाती है। मारवाड़ में अमल गलने का महावरा सफाई हो जाने से मआनी में आता है। जो वक्त का हाकिम या जागीरदार होता है गिरासिये उसकी बड़ी ताबेदारी करते हैं। उसकी आन (दुहाई) अगर कोई दिलावे तो उसे मानते हैं। यदि कोई आन नहीं मानता तो जब जागीरदार का आदमी हासिल लेने आता है तब सब लोग मिलकर उसका यह कसूर जाहिर कर देते हैं। तब उस पर जागीरदार जुरमाना करता है। उधर सेलोत भी अलग जुरमाना लेता है। जो कोई सेलोत का कहना किसी आपस के झगड़े में न माने तो उस पर भी सेलोत जागीरदार से कहकर जुरमाना करा देता है। सेलोत को जागीरदार की तरफ से हासिल माफ होता है। वही गाँव के कामों के वास्ते भी जागीरदार या हाकिम के पास जाया करता है।

कुछ गिरासिये उदार और धर्मात्मा भी होते हैं। गरीब और कंगाल आदमियों को नाज देना अपना कर्तव्य समझते हैं। गिरासियों में भीख माँगने वाले बहुत ही कम होते हैं। इस से और साधू सन्यासी, जो इनके गाँव जाते हैं उन्हीं को ये दान-पुण्य करते हैं।

औरतें बड़े बूढ़े आदमियों का बहुत अदब करती हैं। वे कहीं जाती हों और राह में ऐसा आदमी मिल जाय तो उसको दोनों हाथ जोड़ कर सिर झुकाये बिना कभी न रहेंगी।

———

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका——शीला शर्मा

वर्ष ६५ जनवरी से जून १९६४

प्रकाशक : बी० एन० माथुर, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक : पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

आचार्य सद्गुरुशरण अवस्थी की साहित्य कृतियाँ

मझली महारानी

आर्य-संस्कृति के उद्धार की चिन्ता करनेवाली महारानी कैकेयी की सूझ-बूझ पर मौलिक प्रकाश डालनेवाला यह नाटक न केवल पठनीय, प्रत्युत अभिनेय भी है। पृष्ठ १३८, दुरंगा आवरण, मूल्य १·७५ नये पैसे।

नाटक और नायक

वैदिक, पौराणिक, ऐतिहासिक और साहित्यिक कथानकों तथा नायकों को युग की दृष्टि से देखने-दिखाने के लिए लेखक ने कुछ नाटकों की रचना की है, जो छः भागों में प्रकाशित किये गये हैं। मूल्य प्रत्येक सजिल्द भाग का १·२५ नये पैसे।

तुलसी के चार दल

गोस्वामी तुलसीदास के रामलला नहछू, बरवै रामायण, पार्वती-मंगल तथा जानकी-मंगल का आलोचनात्मक परिचय तथा अध्ययनपूर्ण टीका। मूल्य प्रथम भाग का ३) तीन रु०; द्वितीय भाग का २·७५ नये पैसे।

विचार-तरंग

इस संग्रह में विद्वान् लेखक के भिन्न-भिन्न समयों पर लिखे ५१ प्रबंध संग्रहीत हैं। इन प्रबंधों का विषय दार्शनिक चिन्तना, काव्य और कल्पना, जीवन संवरण कला, आत्मनिरीक्षण, विचारात्मक भक्ति, व्याख्यात्मक प्रवचन, विभिन्न विचारोत्तेजक विषय, ग्राम्यकला गीता की दार्शनिक व्याख्या आदि हैं। पृष्ठ ३५५, मूल्य ३·५० नये पैसे।

साहित्य-तरंग

साहित्य-समीक्षा-सम्बन्धी यह ग्रंथरत्न साहित्य-प्रेमियों को एक नई दिशा, नई परिपाटी और उत्तम निष्कर्षों का द्योतक है। विचारों और निष्कर्षों के त्रिकालव्यापी शाश्वत तत्त्वों को व्यक्त किया गया है। पृष्ठ ४८० मूल्य केवल ५) पाँच रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक

१९०० ई० से १९५९ ई० तक सरस्वती में प्रकाशित हिन्दी के यशस्वी कवियों, कहानीकारों लेखकों की चुनी हुई रचनाओं का संग्रह इस हीरक जयन्ती अंक में है। यह विशेषांक हीरक जयन्ती के अवसर पर ३१ दिसंबर १९६१ को भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति को राष्ट्रपति भवन, नयी दिल्ली में समर्पित किया गया।

इस हीरक जयन्ती अंक में ८०८ + ५४ पृष्ठों की अनुपम पाठ्यसामग्री है जिसमें ५३ पृष्ठों में वर्तमान साहित्यकारों द्वारा लिखे संदेश और सरस्वती के इतिहास सम्बन्धी संस्मरण हैं और ८०८ पृष्ठों में १०९ कवियों की कविताएँ, ६० कहानी-लेखकों की कहानियां तथा १०० शीर्ष स्थानीय लेखकों के लेख सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त ६५ रंगीन कलात्मक चित्र भी दिये हैं।

मूल्य—साधारण संस्करण—१२ रु०—डाकव्यय–१ रु० २६ नये पैसे

पुस्तकालय संस्करण (बढ़िया कागज पर सजिल्द)—२० रु०—डाक व्यय–१·४९ नये पैसे

[दो साल के लिए सरस्वती के नये ग्राहक बनने वालों या पुराने ग्राहकों को—
साधारण संस्करण—८ रु०, डाक व्यय के लिए १·१५ नये पैसे अतिरिक्त]

विशेष पठनीय सम्मतियाँ--

श्री भगवतीचरण वर्मा

हिन्दी-भाषा के विकास में 'सरस्वती' मासिक पत्रिका का विशिष्ट स्थान रहा है। यह विशिष्टता प्रमुखता का रूप धारण कर लेती है। जिसे हम हिन्दी-साहित्य का द्विवेदी युग कहते हैं उसके प्रवर्तक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी और उन्होंने सरस्वती के माध्यम से ही इस युग का प्रवर्तन किया है। कविता को नवीन धारा इस युग में मिली, पर यह युग हिन्दी गद्य के विकास का युग कहला सकता है।

सरस्वती के हीरक जयन्ती अंक में हम हिन्दी गद्य के विकास का क्रम सुस्पष्ट-रूप से देख सकते हैं। इस अंक साहित्यिक मूल्य के साथ इसका ऐतिहासिक रूप बड़ा सबल है। साठ वर्ष में हिन्दी भाषा कहाँ से कहाँ पहुँच गयी, हीरक जयन्ती अंक में यह सुस्पष्ट हो जाता है। प्रत्येक पुस्तकालय में इस ग्रंथ का होना आवश्यक है। हिन्दी शोधकार्य के लिए यह अमूल्य ग्रंथ है। सरस्वती की हीरक जयन्ती के अवसर पर इस ग्रंथ को निकालकर सरस्वती सम्पादक और प्रकाशक ने हिन्दी साहित्य का कितना उपकार किया है, शायद वे स्वयम् यह नहीं जानते। मैं सरस्वती के सम्पादक और प्रकाशक को हिन्दी जगत् की ओर से इसके लिए धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि हिन्दी का प्रत्येक पुस्तकालय इस ग्रंथ की एक प्रति अपने यहाँ मँगाकर हिन्दी के विद्यार्थियों एवं शोध-कर्ताओं के प्रति अपना दायित्व पूर्ण करेगा।

सरस्वती हीरक जयन्ती विशेषांक का परिशिष्टांक

पृष्ठ-संख्या ७८, मूल्य दो रुपये

इस परिशिष्टांक में दिल्ली में महामहिम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद को सरस्वती का विशेषांक भेंट करने के समारोह से प्रारंभ कर प्रयाग में सरस्वती के प्रतिष्ठित कतिपय लेखकों और पूर्व सम्पादकों के बहुमान और सम्मान, सरस्वती के यशस्वी पूर्व संपादक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की कांस्यमूर्ति का पद्मभूषण मैथिलीशरण गुप्त द्वारा उद्घाटन प्रकाशन का सूत्रपात करनेवाले आधारों—नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी और इंडियन प्रेस, प्रयाग, को ताम्रपत्र प्रदान, जयन्ती पर कुछ विशेष विद्वानों की प्रतिक्रिया पत्रकारगोष्ठी, जयन्ती के संबंध में लेखकों तथा विद्वानों के संदेश, समारोह में श्रीमती महादेवी वर्मा, माननीय श्री हरिभाऊ उपाध्याय, सेठ गोविन्ददास, श्री दिनकरजी आदि के भाषण पठनीय हैं। साथ ही अनेक बहुरंगे और उत्सव के दृश्यों तथा व्यक्तियों के सुन्दर चित्र भी दिये गये हैं।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

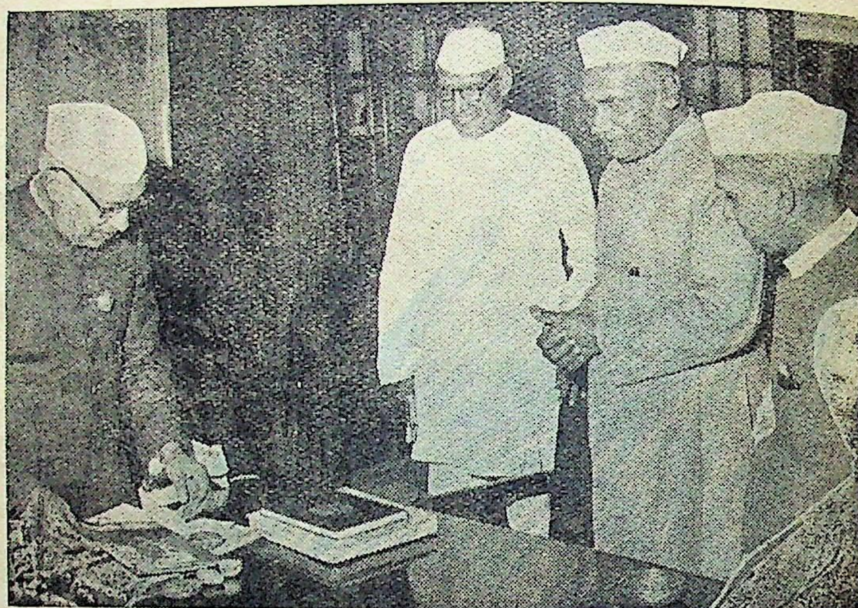
Yearly Subscription : Rupees Seven and Fifty Paise Rs. 7·50
Single Copy : Rs. 0·65 Paise
SARASWATI—Reg. No. L.





जुलाई १९६४

नेहरू चाचा के हाथ में 'नेहरू चाचा'

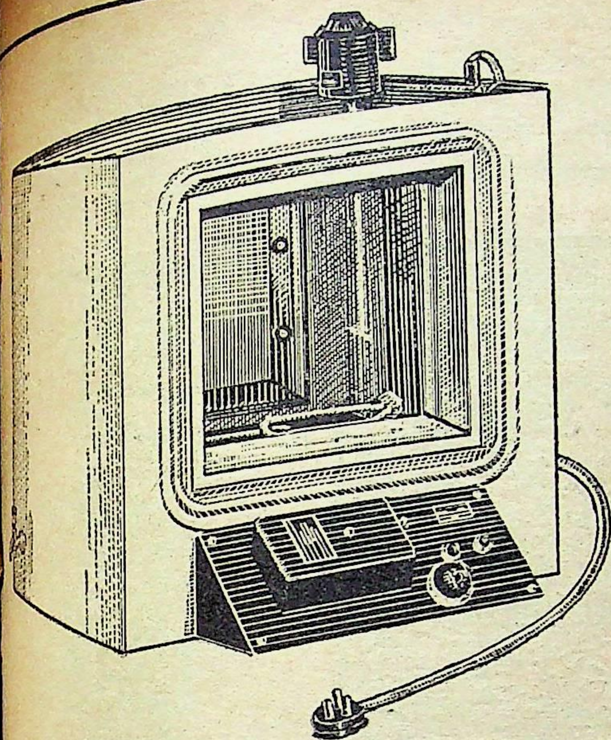


- १--प्रधान मंत्री पं० जवाहरलालजी को उनके जीवन काल में कवि श्री सोहनलाल द्विवेदी ने उन्हें 'नेहरू चाचा' पुस्तक भेंट की थी। नेहरूजी इस नवीन कृति को प्रसन्नतापूर्वक गौर से देख रहे हैं।
- २--भारत के राष्ट्रपति तथा शिक्षा-मंत्री ने बच्चों की प्रिय पुस्तक 'नेहरू चाचा' की सराहना मुक्तकंठ से की है।
- ३--'नेहरू चाचा' के सम्बन्ध में भारत के उपशिक्षा मंत्री ने लिखा है :--

आपने 'नेहरू चाचा' नाम से जो पुस्तक लिखी है, वह मुझे बहुत पसन्द आई है। उसे चित्रमय बनाकर तो आपने उस पर चार चाँद ही लगा दिये हैं और अब इस कारण सब बच्चे उसे और भी पसन्द करने लगे हैं। कृपया इस सफलता के लिए मेरे हार्दिक साधुवाद स्वीकार कीजिए।

मूल्य केवल दो रुपये २५ नये पैसे

प्राप्तिस्थान---इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग



सीको इलेक्ट्रिक वाटर बाथ

साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी के उत्पाद प्रामाणिक हैं और विशेषता (क्वालिटी), कर्म-कौशल (वर्कमैनशिप), रूपांकन (डिज़ाइन) और निष्पादन (परफारमेंस) में सर्वोत्कृष्ट हैं। हमारे निर्मित अन्य उपकरणिकाओं और साधनों (एप्लाएंसेज़) के लिए कृपया हमें लिखें।

दी साइएटिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी लिमिटेड,
इलाहाबाद, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, नई देहली

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ ॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥

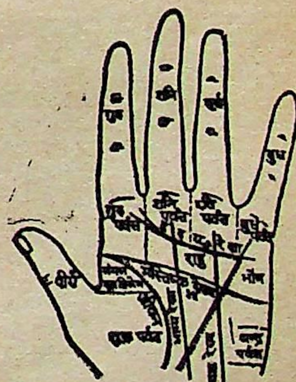


जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य—
प्रोफेसर प्रद्युम्न नारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद,

तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ



२८ महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

देखिये:—डा० एस० सी० जैन, एम० डी० एम० आर० पी० (लन्दन), एम० आर० सी० पी० (एडिनबर्ग) फिजीशियन, मेडिकल कालेज, लखनऊ ता० १२ जून १९५६ क्या कहते हैं:—

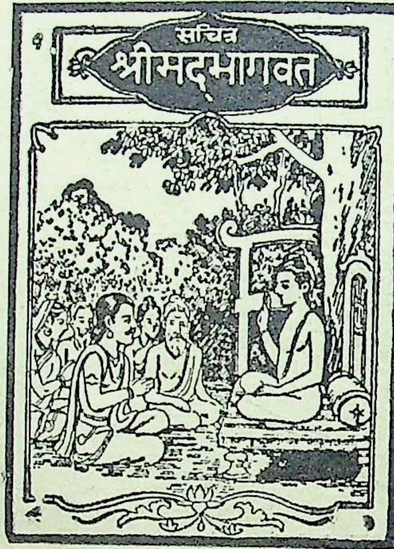
मुझे यह लिखते हुए हर्ष हो रहा है कि ज्योतिषाचार्य प्रोफेसर पी० एन० सिंह प्रयाग के एक विख्यात ज्योतिषी हस्तरेखा-विशारद और तांत्रिक हैं। लगभग सात वर्ष हुए जब श्री सिंह जी ने मेरे भविष्य जीवन के सम्बन्ध में अनेक भविष्यवाणियां की थीं और वे सभी ही आश्चर्य रूप से सत्य सिद्ध हुईं। यहाँ तक कि मास और दिनों तक में उनकी बताई हुई, मेरे विवाह, समुद्र-यात्रा तथा कार्यलाभ की, तिथि आश्चर्य रूप से ठीक निकली।

आ० १

प्रिन्सिपल श्री केदारनाथ गुप्त एम० ए० ने गोस्वामी तुलसीदास के रामचरित मानस और विनयपत्रिका आदि ग्रंथों से अमूल्य रत्नों को ढूँढ़कर इसमें एकत्र किया है। मूल्य १·५०



सरल भाषा में किया गया अविकल अनुवाद। इसमें सादे और रंगीन चित्रों की भरमार है और सुबोध भाषा में होने के कारण सभी के लिए उपयोगी है। २ जिल्दों का मूल्य १६) सोलह रुपये।



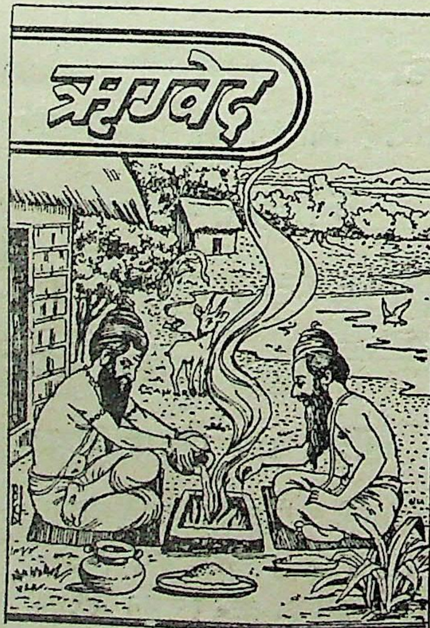
ज्ञानेश्वर महाराज ने मराठी ... के गीता पर जो टीका लिखी है ... यह हिन्दी अनुवाद है। बड़े ... मूल संस्कृत श्लोक, साधारण ... टीका है। सजिल्द प्रति का मूल्य ...



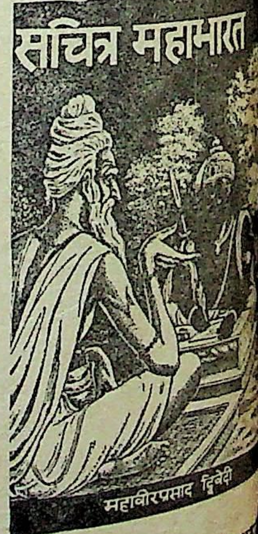
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग द्वारा प्रकाशित धार्मिक सा...



गोस्वामी तुलसीदास की इस अमर रचना के विनय पदों का मर्म समझाने में पं० रामेश्वर भट्ट की टीका बड़ी सहायता करती है। बड़े आकार की सजिल्द प्रति का मूल्य ४) मात्र।



यह ग्रन्थ आठ अष्टकों और दस मण्डलों में विभक्त है। १०१७ सूक्तों में १०,४६७ मन्त्र हैं। ७४ पृष्ठ की भूमिका और ७१ पृष्ठ की विषय-सूची है। पृ० १६५०। सजिल्द प्रति का मूल्य १२)।



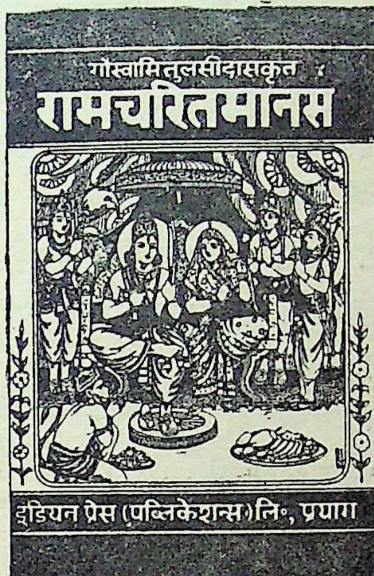
इसमें महाभारत के ... पर्वों की कथा बहुत ही सरल ... में लिखी गई है। इसके लेखक ... महावीरप्रसाद द्विवेदी हैं। ... और सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ...

यह शुद्ध पाठ अच्छे कागज पर छापा गया है। कथा भाग में आये हुए देवताओं और ऋषि-मुनियों का परिचय अन्त में संक्षेप में है। सजिल्द प्रति का मूल्य ३)।

टीकाकार—रामेश्वर भट्ट
यह संस्करण बहुत ही उपयोगी, मनोहर और सस्ता है। टीका बड़े काम की है। दुरंगे-तिरंगे चित्रों की अधिकता है। सजिल्द प्रति का मूल्य ६)।

इस रामायण का पाठ गुसाईंजी की पोथी से शोधा गया है। सत्तर पृष्ठों की भूमिका सहित बड़ी साँची के ११०० से अधिक पृष्ठों के सचित्र सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य केवल १२) बारह रुपये।







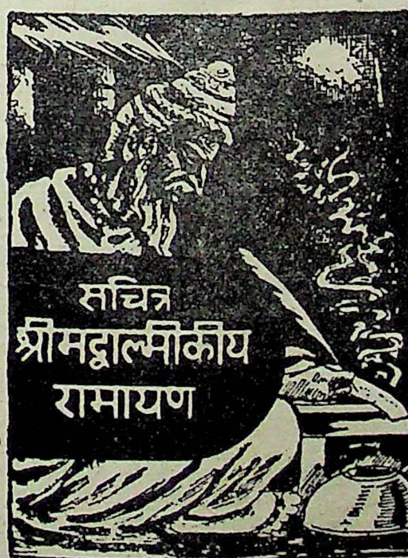
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, प्रयाग द्वारा प्रकाशित रामायण साहित्य

अयोध्या काण्ड
(सटीक)

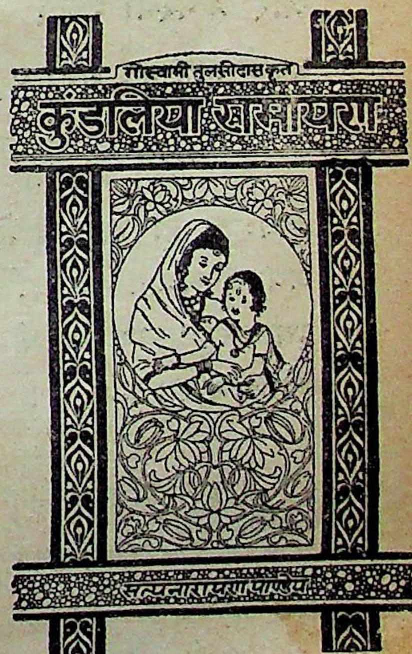
इसमें भरतजी के चरित का वर्णन विस्तार से है। रामवनगमन, भरत-संवाद आदि सुन्दर कथानक हैं। रचना तो अनुपम है ही। मूल्य १.५० नये पैसे।

बाल-रामायण

बालक-बालिकाओं के पढ़ने योग्य रामायण के सातों काण्डों की सरल भाषा में कथा। मूल्य १)



महर्षि वाल्मीकि का रामायण हिन्दू-संस्कृति का इतिहास है। इस ग्रंथ का अनुवाद सभी भाषाओं में हुआ है। सरल भाषा में किये गये हिन्दी अनुवाद का मूल्य ६.५० न० पै० प्रति भाग है।



इसके टीकाकार श्रीयुत सत्यनारायण पाण्डेय हैं। कुंडलिया छंदों में लिखित गोस्वामी तुलसीदास-कृत रामायण, सुन्दर टीका सहित। मूल्य ४)।

हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश

हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वानों की सहायता से सम्पादित और श्री विश्वेश्वरनारायण श्रीवास्तव, एम० ए०, एल्-एल० बी०, साहित्यरत्न तथा पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त', द्वारा संकलित।

प्राचीन और अर्वाचीन हिन्दी-पाठकों के लिए ऐसे कोश की बड़ी आवश्यकता थी, जिसमें उन शब्दों का संग्रह हो, जो भारतवर्ष के विभिन्न हिन्दीभाषी प्रान्तों में व्यापक रूप से प्रचलित हैं। इस कोश को तैयार करते समय इस तथ्य का पूर्णतः ध्यान रक्खा गया है और अर्थ-विचार करते समय जीवित भाषा के अनेक शब्दों के जो नये अर्थ समय-समय पर प्रयुक्त होने लगते हैं, उनका समावेश भी कर दिया गया है। उदाहरणार्थ, संस्कृत का 'मत' शब्द सभी हिन्दी कोशों में मिलेगा; किन्तु उसका समानार्थी 'वोट' इने-गिने कोशों में ही दिया गया है। इस प्रकार के हिन्दी शब्दों के अंगरेजी समानार्थी शब्दों का बाहुल्य इस कोश में है।

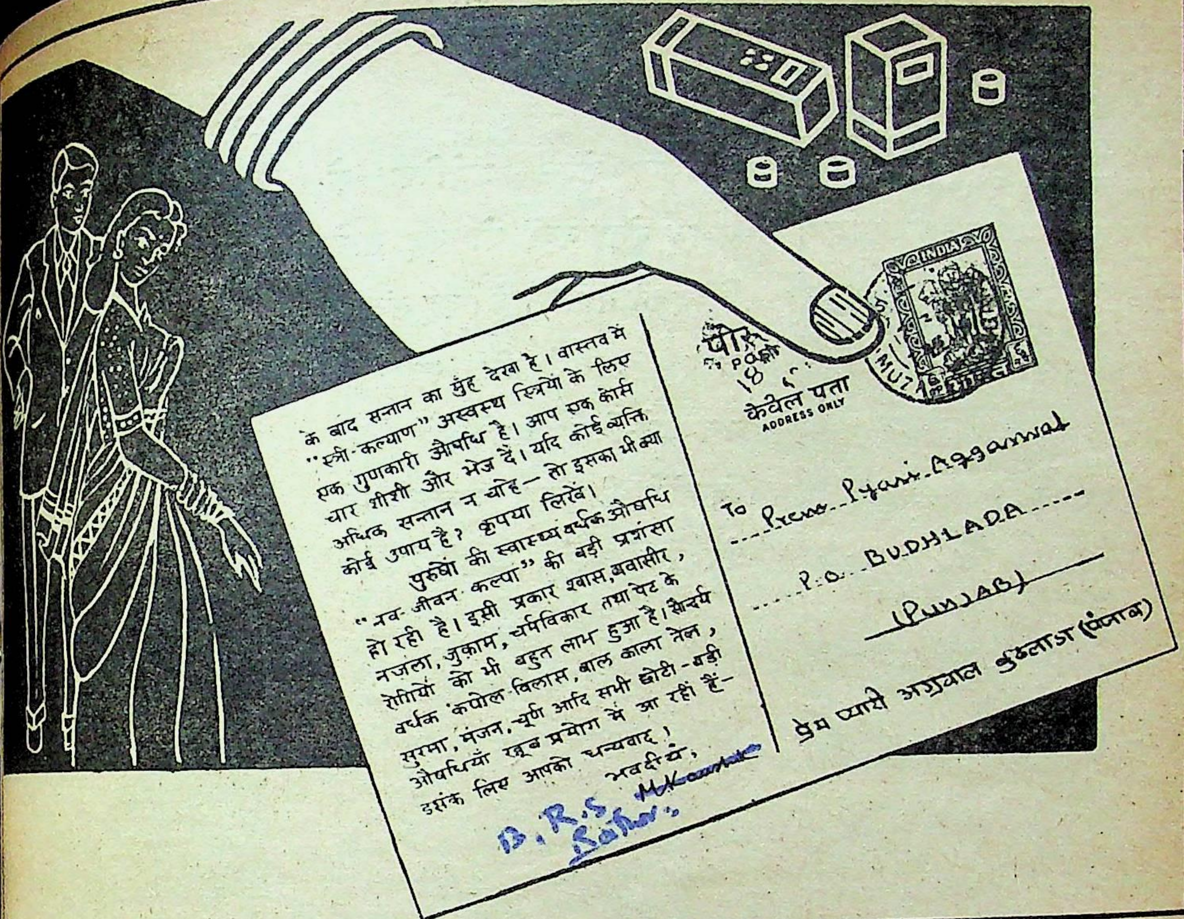
इस कोश में प्रान्तीय भाषाओं के प्रमुख शब्दों का समावेश यथा-स्थान किया गया है और प्रचलित मुहाविरे भी दिये गए हैं। कहावतों और मुहाविरों से बने यौगिक पद भी इसमें संकलित किए गए हैं। इस कोश के अन्त में भारतीय संविधान-परिषद्-द्वारा स्वीकृत हिन्दी और अँगरेजी शब्दों के पर्याय की दो शब्दावलियाँ भी दे दी गई हैं। इससे इस कोश की उपयोगिता कई गुनी बढ़ गई है।

किसी भी शब्द का मानक रूप समझ लेने पर, व्याकरण की दृष्टि से, यह जान लेना भी आवश्यक हो जाता है कि वह कौन-सा शब्दभेद है। इसलिए संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया-विशेषण, क्रिया अथवा अव्यय का निर्देश भी इस कोश में प्रत्येक शब्द के साथ यथास्थान कर दिया गया है। इसी तरह प्रत्येक शब्द के साथ लिंगभेद देकर, कोश का उपयोग करनेवालों की सुविधा का पूरा-पूरा ध्यान रक्खा गया है।

इस कोश का कागज, मुद्रण, आवरण, जिल्द सभी स्थायी और आकर्षक हैं। इसकी शब्द-संख्या लगभग पचास हजार, पृष्ठ-संख्या लगभग १६०० और इसका

मूल्य १४) चौदह रुपए है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग



१०० रुपये के १७५ रुपये !

१२ वर्षीय राष्ट्रीय सुरक्षा प्रमाणपत्र पर।

ये प्रमाणपत्र

५, १०, ५०, १००, ५००, १००० और ५००० रुपये के हैं और बचत बैंक का काम करनेवाले किसी डाकखाने से खरीदे जा सकते हैं।

खरीदने की तारीख से १२ वर्ष बाद इनपर ७५ प्रतिशत ब्याज मिलता है जो इन्कम टैक्स से एकदम मुक्त है।

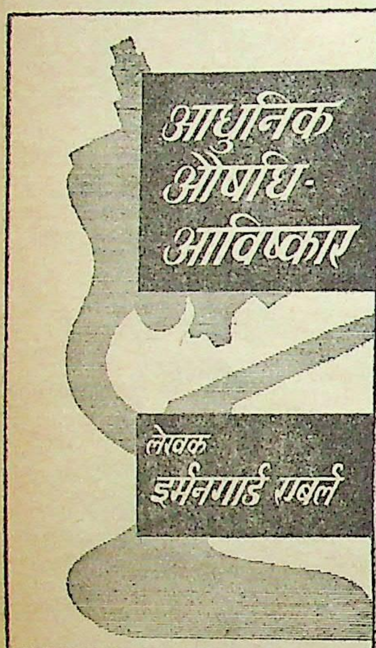
याद रखिये

राष्ट्रीय सुरक्षा प्रमाणपत्र में लगाया जानेवाला धन देश की सुरक्षा और विकास के काम आता है।

पूर्ण विवरण के लिए कृपया राष्ट्रीय संगठनकर्ता, अल्प बचत से कलक्टरी में संपर्क स्थापित कीजिए।

सूचना निदेशालय, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित

इस युग में जो विलक्षण औषधि संबंधी खोजें हुई हैं उनके प्रयोग का मूल वृत्तान्त इसमें पढ़िए। सजिल्द पुस्तक का मूल्य २·५० नये पैसे।

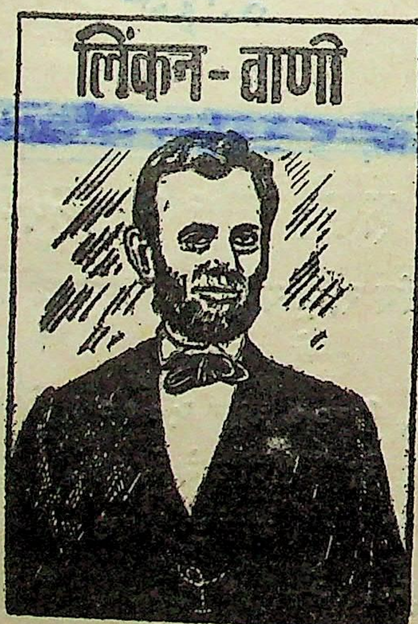




१२ महान् अमरीकी उदारवादियों के जीवन की नई व्याख्या इसमें पढ़िए। सजिल्द प्रति का मूल्य ३·५० नये पैसे।

"लिंकन केवल अमेरिका के महान् नेता नहीं थे, वह सारे विश्व की सम्पत्ति हैं। वह संसार के एक आदर्श वीर पुरुष हैं, उन इने-गिने व्यक्तियों में से जिन्होंने विशाल जनता को प्रेरणा दी और अब भी देते रहे हैं।"

जवाहरलाल नेहरू
प्रधान मंत्री, भारत

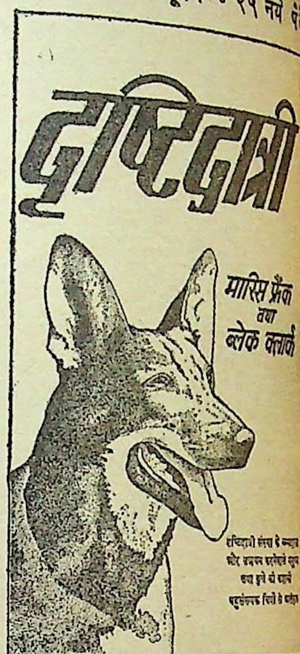


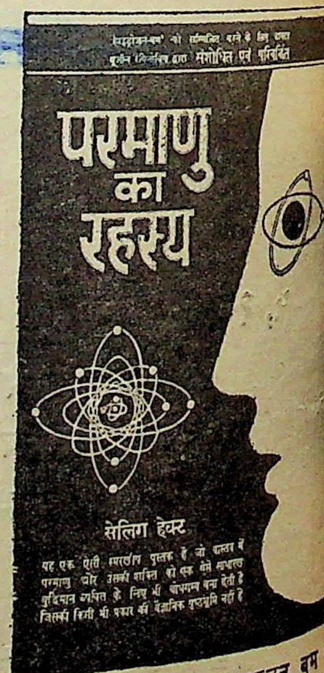
एब्राहम लिंकन के भाषणों, लेखों तथा उक्तियों का संकलन

अनु०—श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन

मूल्य २·७५ नये पैसे।

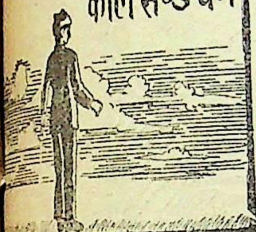
इस नाम की संस्था के जन्मदाता और उन्नयन करनेवाले मनुष्य तथा कुत्ते की सच्ची कहानी। सजिल्द सचित्र प्रति का मूल्य ४·२५ नये पैसे।



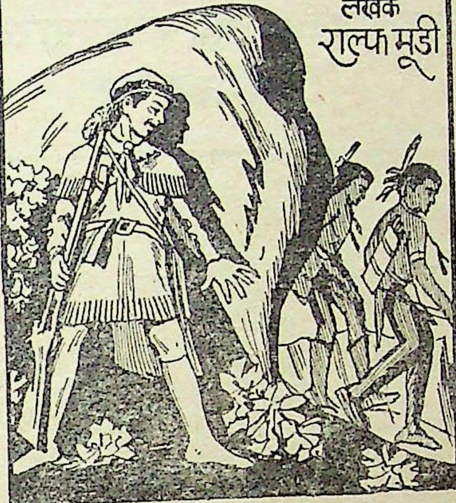


परमाणु बम और उद्जन बम के रूप में विस्फोट होनेवाली ताप प्रक्रिया की युक्तियों के विकास का पूर्ण सारांश इसमें पढ़िए। सचित्र सजिल्द प्रति का मूल्य ३·५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद



अनु०—...राय शर्मा, एम० ए०
मूल्य २ रु० २५ नये पैसे
...कवि कार्ल सण्डबर्ग
...काल का हृदयग्राही वर्णन।



अनु०—तिलकराज चोपड़ा, एम० ए०
मूल्य २ रु० ७५ नये पैसे
पहाड़ी नेता किटकार्सन के वयस्क जीवन का ललित वर्णन।



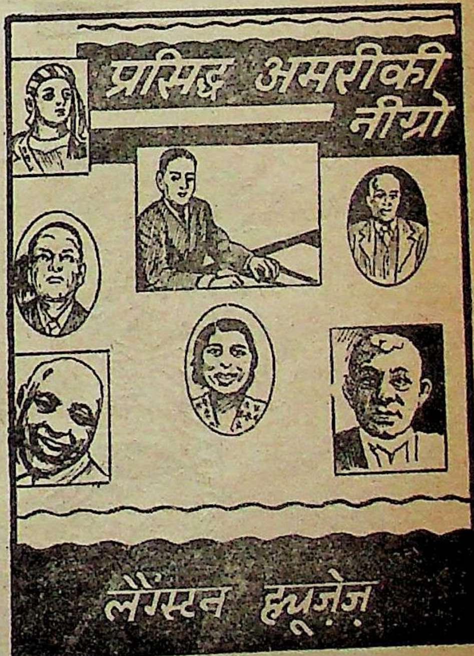
अनु०—हरवंशराय शर्मा, एम० ए०
मूल्य २ रु० ५० नये पैसे
लेखिका के बाल्य जीवन की सुन्दर कहानी में उस समय के सामाजिक जीवन का दिग्दर्शन।



अनु०—सत्यप्रकाश त्रिपाठी एम० एस-सी०
मूल्य ३ रु० ५० नये पैसे
...वैज्ञानिकों के अनुसंधानों का सजीव चित्रण उनके जीवन-चरित्रों सहित।



अनु०—एम० ...० लखेरा, एम० ए०
मूल्य ३ रु० ५० नये पैसे
अन्धों को नया मार्ग दिखानेवाली ऐन सलिवाँ और उनकी शिष्या हैलेन कैलर की कहानी।



अनु०—रामऔतार अग्रवाल
मूल्य २ रु० ७५ नये पैसे
महत्त्वपूर्ण अमरीकी नीग्रो लोगों की जीवन-कथाएँ।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक

१९०० ई० से १९५९ ई० तक सरस्वती में प्रकाशित हिन्दी के यशस्वी कवियों, कहानीकारों तथा लेखकों की चुनी हुई रचनाओं का संग्रह इस हीरक जयन्ती अंक में है। यह विशेषांक हीरक जयन्ती के अवसर पर ३१ दिसंबर १९६१ को भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति को राष्ट्रपति भवन, नयी दिल्ली में समर्पित किया गया।

इस हीरक जयन्ती अंक में ८०८+५४ पृष्ठों की अनुपम पाठ्यसामग्री है जिसमें ५३ पृष्ठों में तो वर्तमान साहित्यकारों द्वारा लिखे संदेश और सरस्वती के इतिहास सम्बन्धी संस्मरण हैं और ८०८ पृष्ठों में १०९ कवियों की कविताएँ, ६० कहानी-लेखकों की कहानियाँ तथा १०० शीर्ष स्थानीय लेखकों के लेख सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त ६५ रंगीन कलात्मक चित्र भी दिये हैं।

मूल्य—साधारण संस्करण—१२ रु०—डाकव्यय-१ रु० २६ नये पैसे
पुस्तकालय संस्करण (बढ़िया कागज पर सजिल्द)—२० रु०—डाक व्यय-१'४९ नये पैसे
[दो साल के लिए सरस्वती के नये ग्राहक बनने वालों या पुराने ग्राहकों को—
साधारण संस्करण—८ रु०, डाक व्यय के लिए १'१५ नये पैसे अतिरिक्त]

कतिपय पठनीय सम्मतियाँ—

श्री भगवतीचरण वर्मा

हिन्दी-भाषा के विकास में 'सरस्वती' मासिक पत्रिका का विशिष्ट स्थान रहा है। यह विशिष्टता प्रमुखता का रूप भी धारण कर लेती है। जिसे हम हिन्दी-साहित्य का द्विवेदी युग कहते हैं उसके प्रवर्तक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी हैं, और उन्होंने सरस्वती के माध्यम से ही इस युग का प्रवर्तन किया है। कविता को नवीन धारा इस युग में मिली, लेकिन यह युग हिन्दी गद्य के विकास का युग कहला सकता है।

सरस्वती के हीरक जयन्ती अंक में हम हिन्दी गद्य के विकास का क्रम सुस्पष्ट-रूप से देख सकते हैं। इस अंक के साहित्यिक मूल्य के साथ इसका ऐतिहासिक रूप बड़ा सबल है। साठ वर्ष में हिन्दी भाषा कहाँ से कहाँ पहुँच गयी, इस हीरक जयन्ती अंक में यह सुस्पष्ट हो जाता है। प्रत्येक पुस्तकालय में इस ग्रंथ का होना आवश्यक है। हिन्दी में शोधकार्य के लिए यह अमूल्य ग्रंथ है। सरस्वती की हीरक जयन्ती के अवसर पर इस ग्रंथ को निकालकर सरस्वती के सम्पादक और प्रकाशक ने हिन्दी साहित्य का कितना उपकार किया है, शायद वे स्वयम् यह नहीं जानते। मैं सरस्वती के सम्पादक और प्रकाशक को हिन्दी जगत् की ओर से इसके लिए धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि हिन्दी का प्रत्येक पुस्तकालय इस ग्रंथ की एक प्रति अपने यहाँ मँगाकर हिन्दी के विद्यार्थियों एवं शोध-कर्ताओं के प्रति अपना दायित्व पूर्ण करेगा।

सरस्वती हीरक जयन्ती विशेषांक का परिशिष्टांक

पृष्ठ-संख्या ७८, मूल्य दो रुपये

इस परिशिष्टांक में दिल्ली में महामहिम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद को सरस्वती का विशेषांक भेंट करने के समारोह से प्रारंभ कर प्रयाग में सरस्वती के प्रतिष्ठित कतिपय लेखकों और पूर्व सम्पादकों के बहुमान और मान-पत्र प्रदान सरस्वती के यशस्वी पूर्व संपादक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की कांस्यमूर्ति का पद्मभूषण मैथिली-शरण गुप्त द्वारा उद्घाटन प्रकाशन का सूत्रपात करनेवाले आधारों—नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी और इंडियन प्रेस प्रयाग, को ताम्रपत्र प्रदान, जयन्ती पर कुछ विशेष विद्वानों की प्रतिक्रिया पत्रकारगोष्ठी, जयन्ती के संबंध में संस्थाओं तथा विद्वानों के संदेश, समारोह में श्रीमती महादेवी वर्मा, माननीय श्री हरिभाऊ उपाध्याय, सेठ गोविन्ददास, श्री दिनकरजी आदि के भाषण पठनीय हैं। साथ ही अनेक बहुरंगे और उत्सव के दृश्यों तथा व्यक्तियों के सुन्दर चित्र भी दिये गये हैं।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

गैस–वायु–पेट दर्द के लिए

गैसहर पिल्स गैस, वायु, गोला, बादी, मंदाग्नि, डकारें, पेट का दर्द, शूल, पेट का भारीपन, और गैस-वायु विकृति के कारण पैदा होने वाली शिकायतों के लिए उपयोगी; खुराक हजम करके दस्त साफ लाकर भूख बढ़ाती है। २४ वर्षों से गैस-वायु-पेट दर्द के लिये उपयोगी होने वाली आयुर्वेदिक औषधि; वैद्य, डाक्टर धर्मार्थ तथा अस्पताल में इस्ते-माल की जाती है। ५० गोलियों की छोटी शीशी रु० १·७५ व १५० गोलियों की बड़ी शीशी रु० ४·२५ और ५०० गोलियों का रु० १२·५० वी० पी० अलावा।

बल-वर्धक, रक्त-वर्धक, स्फूर्ति-वर्धक

दुग्धानुपान गोलियाँ–पाचन क्रिया सुधार कर दस्त साफ लाती हैं। रस, रक्त-रुधिर इत्यादि सप्त धातुओं को पोषण देकर, यौवन-का उत्साह, कार्यशक्ति और वजन बढ़ाने वाली ३५ वर्ष की प्रसिद्ध आयुर्वेदिक औषधि, ३२ गोलियाँ छोटी शीशी रु० १·७५ और ९६ गोलियाँ बड़ी शीशी रु० ४·२५ और ५०० गोलियों का रु० १८·५० वी० पी० अलावा।

बनानेवाले दुग्धानुपान फार्मेसी, गान्धी चौक
'दुग्धानुपान भवन' जामनगर (सौराष्ट्र)

कान के रोगों के लिये

रसिक कर्ण बिन्दु

कान में दर्द, आवाज होना, सूजन, कम सुनाई पड़ना, पीप-रसी, वगैरह के लिए। कीमत प्रति शीशी रु० १·५० तीन शीशी रु० ४·२५ ३ शीशी से साफ सुनाई देता हैं।

महेश पिल्स

कान के पुराने रोग के लिए खाने की आयुर्वेदिक औषधि। ३२ गोलियों की शीशी रु० २·५० और ६४ गोली बड़ी शीशी रु० ४·५०

अपने रोग की सम्पूर्ण हकीकत लिख भेजें। वैद्यराज की सूचनानुसार सलाह मुफ्त भेजी जायगी। लिखें—

वैद्यराज पी० बी० ३२ जामनगर (सौराष्ट्र)

होलसेल स्टाकिस्ट–इलाहाबाद–चंपकलाल कं०, ४६ जोनस्टनगंज। **बम्बई–बोर्छी ब्रदर्स**, ७९ प्रिसेंस स्ट्रीट। **देहली–**जमनादास कं० चांदनी चौक। **देहली–कांतिलाल आर० परीख**, चांदनी चौक। **वाराणसी–राधेलाल संस** बैटरीवाला, चौक। **कलकत्ता–सौराष्ट्र स्टोर्स**, १८ मल्लिक स्ट्रीट। इन्दौर—सेठ ब्रदर्स, ८ महाराणी रोड। **कानपुर–प्रवीणचन्द** मोतीलाल बिरहाना रोड। जयपुर—नटवर मेडीकल स्टोर्स, चाँदपोल। **नागपुर–अनन्तराय ब्रदर्स**, कीराना-ओली। जबलपुर—खुन्नेलाल छिगेलाल जवाहरगंज। रायपुर—सी० पी० मेडिकल स्टोर्स। मथुरा—रामानुज फार्मेसी। **लखनऊ–इन्द्रचन्द कं०**, चौक।

जांचिए

कि स्थिति क्या है।
हमारी आजादी और प्रजातांत्रिक ढंग के जीवन, दोनों को खतरा है।

एकता बनाये रखिये और आजादी की रक्षा कीजिए।

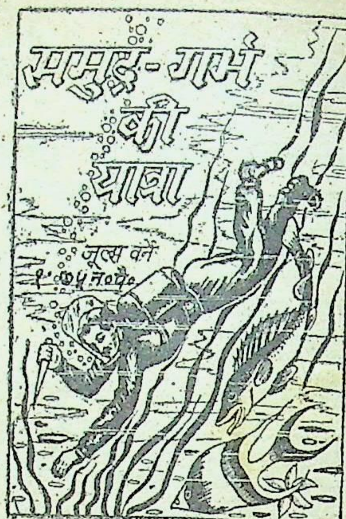
DA63/F20

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

किशोर सीरीज़

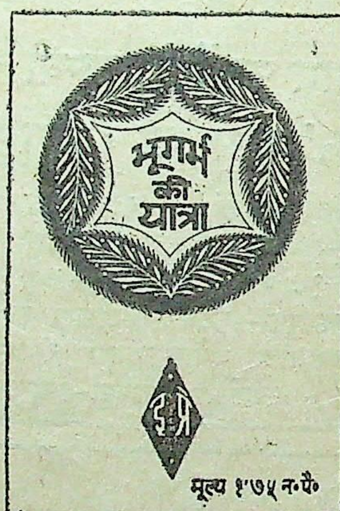
इंडियन प्रेस पब्लिकेशंस प्रा. लि. इलाहाबाद

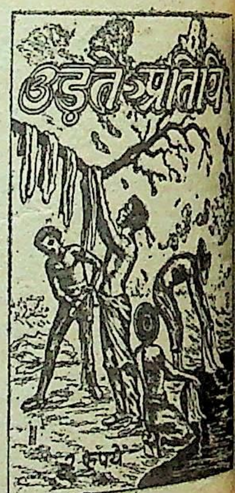
दृढ़ प्रतिज्ञा
२.२५ न.पै.









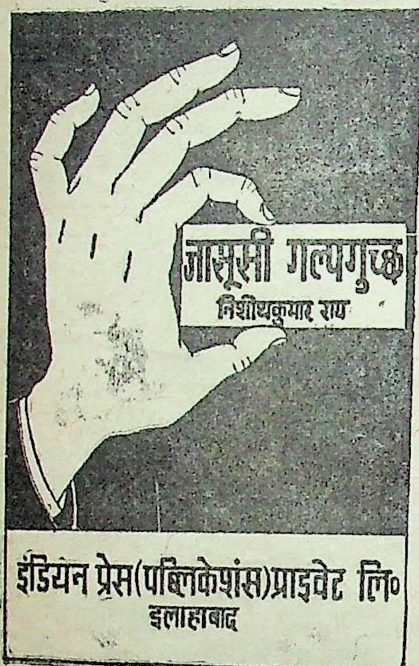








अंगरेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की अठारह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान संबंधी किशोरोपयोगी उपन्यासों के अनुवाद डा० नवलबिहारी मिश्र के तत्त्वावधान में किये गये हैं। पुस्तकें इतनी रोचक हैं कि किशोर तथा वयस्क इन्हें पढ़कर मनोरंजन ही नहीं अपनी ज्ञानवृद्धि कर सकते हैं।



प्रस्तुत हो गया

भेद भरी बातों को जानने की मनुष्य की अदम्य लालसा संसार के देशों में जासूसी कहानियों के रूप में प्रकट होती है। संसार के सब के साहित्य में ऐसी रहस्योद्भाविनी कहानियाँ बहुत तीव्र वेग से प्रका हो रही हैं। लेखक प्रयाग के ख्यातनामा फौजदारी के वकील श्री हरिमोहन राय के पुत्र हैं और स्वयं भी न्यायिक अधिकारी हैं इनकी लिखी जासूसी कहानियाँ हिन्दी जगत् में यथेष्ट ख्याति प्राप्त चुकी हैं। यह उनकी लिखी उत्कृष्ट जरूरी कहानियों का द्वितीय सं है जिसमें समय-समय पर पत्रों में प्रकाशित हुई उनकी ३२ जासू कहानियाँ संगृहीत हैं।

पृ० सं० ३३६ मूल्य ३·५० नये पैसे।

नोट—कृपया अपनी प्रति सुरक्षित कराने के लिए आर्डर शीघ्र भेजि

छेड़छाड़

'श्री विनोद' शर्मा की व्यंग्य कविताओं का संग्रह है।

रचनाएँ साहित्यिक और ऐतिहासिक है। इस संग्रह में घंटाघर, करेलालोचनी, एक अदबी खत, आलू का पेड़, अधकचरा, महाश्वेता, रघुपतिसहाय के लिए आल्हा और विनोद शर्मा की मरम्मत आदि विशिष्ट रचनाएँ पाठकों को हँसाती-गुदगुदाती हैं। पुस्तक सचित्र सजिल्द हैं। अच्छे कागज पर सुन्दरता से छापी गई है। इसकी रचनाएँ बहुचर्चित हैं पर सार्वजनिक रूप में अब प्रकाश में आ रही हैं। मूल्य केवल २·५० पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

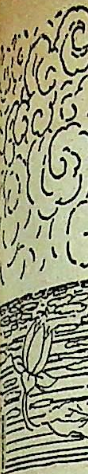
ग्राहकों से निवेदन

...ग्राहकों से निवेदन है कि पत्र-व्यवहार के समय अपना ...क संख्या, चन्दा भेजने की तिथि अवश्य लिखा करें ...कि हम उनके आदेशों का पालन अविलम्ब कर सकें।

—व्यवस्थापक पत्रिका विभाग

...इण्डियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

विषय-सूची





सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—शीला शर्मा

वर्ष ६५ पूर्ण संख्या ७७५ | इलाहाबाद : जुलाई १९६४ : आषाढ़ २०२१ वि० | खण्ड २ संख्या १

सम्पादकीय

हमारे नये प्रधान मंत्री और हिन्दी—भारत-सरकार में कई वर्षों से हिन्दी के विरुद्ध गहरी उपेक्षा और अँगरेजी के प्रति विशेष अनुरक्ति दिखायी पड़ती थी जिसका परिणाम यह हुआ कि अँगरेजी सह-राजभाषा बना दी गयी और भारत-सरकार में हिन्दी का भविष्य आशाजनक नहीं रह गया। केन्द्रीय सरकार के परिवर्तन के बाद हिन्दी संसार यह जानने को उत्सुक है कि नये शासन में यह स्थिति ऐसी ही रहेगी, अथवा उसका रुख हिन्दी के प्रति कुछ नर्म हो जायगा। इसीलिए हिन्दी प्रेमी नये प्रधानमंत्री की हिन्दी सम्बन्धी नीति का आभास पाने के लिए उनके क्रियाकलाप को उत्सुकतापूर्वक देखते हैं और उनके वक्तव्यों को भी ध्यान से पढ़ते हैं। हमें यह लिखते खेद होता है कि अभी तक जो कुछ देखने में आया है उससे हिन्दी संसार आश्वस्त नहीं हुआ। यदि हिन्दी की इस कहावत का सहारा लिया जाय कि "पूत के पाँव पालने ही में मालूम पड़ जाते हैं" तो कहना पड़ेगा कि प्रारम्भिक लक्षण उत्साहवर्द्धक नहीं हैं। हमें यह जानकर बड़ी निराशा हुई कि माननीय प्रधान मंत्री ने अपने पद की शपथ हिन्दी में न लेकर अँगरेजी में ली। इतना ही नहीं, उन्होंने शपथ लेने के बाद शपथ की पुस्तक में अपने जो हस्ताक्षर किये, वे भी अँगरेजी ही में किये। यदि ऐसे औपचारिक कामों के लिये भी, जिनमें हिन्दी के प्रयोग से अहिन्दी-भाषियों को कोई कष्ट या असुविधा होने का प्रश्न नहीं है, प्रधान मंत्री संविधान द्वारा स्वीकृत राजभाषा का उपयोग नहीं करते, तब उनसे यह आशा कैसे की जा सकती है कि वे हिन्दी को वास्तविक रूप से राजभाषा पद पर प्रतिष्ठित करने में विशेष रुचि लेंगे? शपथ लेने के बाद उनका पहिला सार्वजनिक भाषण डाक-तार विभाग में हुआ था। वहाँ वे श्री नेहरू की स्मृति में प्रचारित डाक-टिकटों का प्रचलन आरम्भ करने गये थे। वहाँ भी उन्होंने अपना भाषण अँगरेजी ही में दिया।

सम्भव है कि मंत्रिमंडल (केबिनेट) और प्रधान मंत्री के सचिवालयों में सहसा पड़ जाने के कारण वे इन सचिवालयों के अंगरेजीमय वातावरण से अभिभूत हो गये हों, और "जैसा देश वैसा भेस" की सरल नीति उन्होंने ग्रहण कर ली हो। किन्तु हम प्रधान मंत्रीजी से बड़ी नम्रतापूर्वक यह निवेदन करना चाहते हैं कि आप अपने गौरवपूर्ण पद पर रहकर यह भले ही भूल जायँ कि आप स्वयं हिन्दी भाषी हैं और

फा० ३

आपकी शिक्षा का आरम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के स्थापित विद्यालय में हुआ तथा उसकी परिसमाप्ति उस काशी विश्वविद्यालय में हुई थी जिसमें शिक्षा का माध्यम हिन्दी है और जिसे हिन्दी के अनन्य भक्त पुण्य-श्लोक बाबू शिवप्रसाद गुप्त ने हिन्दी माध्यम से उच्च राष्ट्रीय शिक्षा देने के लिये स्थापित किया था। आप चाहे यह भी भूल जायँ कि आप सदैव उन राजर्षि टंडन के दाहिने हाथ और एकान्त विश्वासपात्र रहे जिनकी प्रत्येक साँस हिन्दी को समर्पित थी। किन्तु आप यह न भूलें कि आपने भारत के संविधान को अक्षुण्ण बनाये रखने की शपथ ली है, और उसमें देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी को देश की राजभाषा स्वीकृत किया गया है। अतएव राजकाज में हिन्दी को उसका दाय दिलवाना आपका पवित्र कर्त्तव्य है। यह संसार अनुकरणप्रिय है। कहा भी है कि "महाजनो येन गतः स पन्थाः।" आप जो करेंगे, उसका अनुकरण अधिकारीवर्ग और अन्य लोग भी करेंगे। आप चाहें तो अपने व्यवहार से, तथा राजभाषा का प्रचुर प्रयोग कर, उसको देश में प्रतिष्ठित ही नहीं कर सकते प्रत्युत उसे उस वर्ग में प्रतिष्ठा भी दे सकते हैं जिसमें अभी वह हीन दृष्टि से देखी जाती है। हम हिन्दी के सेवक आपके मित्र और शुभचिंतक हैं। हम हृदय से चाहते हैं कि आपका कार्यकाल सफल और इतिहास में उल्लेखनीय हो। भारत बहुमुखी उन्नति कर रहा है, किन्तु अभी तक उसको अपनी वाणी नहीं मिल पायी। इसीलिये इस उन्नति और प्रगति का सौरभ जनता तक नहीं पहुँच पाया। हम भारत की सभी भाषाओं की उन्नति की कामना करते हैं और चाहते हैं कि वे सब अपने-अपने क्षेत्रों में सजीव, सम्पन्न और समृद्ध हों जिससे जनता प्रबुद्ध हो सके। इस सम्बन्ध में आप जो भी प्रयत्न करेंगे उनको हमारा समर्थन और हार्दिक सहयोग मिलेगा। हम अँगरेजी से घृणा नहीं करते। उसकी उपयोगिता और महत्व को समझते हैं तथा राजकाज में आवश्यकतानुसार उसके सीमित प्रयोग के भी विरोधी नहीं हैं। किन्तु हम चाहते हैं कि संविधान-सम्मत राजभाषा को उसका दाय मिले, और हम आपसे अपेक्षा करते हैं कि आप सदैव हिन्दी की पद मर्यादा और प्रतिष्ठा का उचित ध्यान रखते हुए उसे उसका दाय दिलाने में सक्रिय भाग लेंगे।

महारानी दुर्गावती की चौथी वीरगति शती—गढ़ामंडला की इतिहास-प्रसिद्ध महारानी ने आज से चार सौ वर्ष पहिले २४ जून १५६४ को जबलपुर से कुछ दूर अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करते हुए महान् शक्तिशाली अकबर की विशाल सेना से लड़ते हुए वीरगति प्राप्त की थी। यद्यपि महारानी दुर्गावती की स्मृति जनता के हृदय में बराबर हरी रहीं, तथापि परतन्त्रता के युग में उनका स्मारक बनाने की किसीको नहीं सूझी। ग्वालियर में जहाँ महारानी लक्ष्मीबाई ने वीरगति पायी थी, वहाँ उनकी समाधि तो किसी प्रकार बना दी गयी थी, किन्तु महारानी दुर्गावती ने जहाँ वीरगति पायी थी, वहाँका चबूतरा बराबर शोचनीय दशा में रहा। यह अवश्य है कि उस क्षेत्र की जनता उस कच्चे-पक्के चबूतरे को तीर्थ की तरह मानती रही। स्वतन्त्रता के इस युग में जब पुराने शहीदों और वीरों का स्मरण किया जा रहा है, वीरगति की चौथी शती के समय स्थानीय लोगों का ध्यान गया और वहाँ एक स्मारक स्तंभ की स्थापना की गयी जिसका उद्घाटन मध्यप्रदेश के मुख्य मंत्री पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र ने किया। सभी भारतवासियों को मध्यप्रदेश के लोगों का, विशेषकर जबलपुर-निवासियों का, इस समयोचित, आवश्यक और महत्वपूर्ण काम के लिए कृतज्ञ होना चाहिए। महारानी दुर्गावती बड़ी वीर रमणी थीं और कालिंजर के चंदेल राजा कीर्तिसिंह की एकमात्र कन्या थीं। उनका विवाह गढ़ामंडला के राजगोंड राजा से हुआ था। पति की मृत्य के बाद उन्होंने अपने राज्य का शासन पुण्यश्लोक महारानी अहिल्याबाई के समान बड़ी योग्यता से किया। अपनी प्रजा के हित के लिए कितने ही अनोखे काम किये। अपनी प्रजावत्सलता के कारण वे अपनी प्रजा में देवी की तरह पूँजी जाने लगीं। उस समय अकबर अपना साम्राज्य विस्तार कर रहा था और उसकी लोलुप आँखें गढ़ामंडला के इस स्वतंत्र राज्य पर गयीं। उसने कड़ा मानिकपुर के सूबेदार सेनापति आसफखाँ को इस राज्य को जीतने का काम सौंपा। तीन बार महारानी ने मुगल सेना को हराकर भगा दिया। चौथी बार के आक्रमण में आसफखाँ की तोपों के सामने महारानी की धनुषबाण और तोड़ेवाली बंदूकों वाली वीरसेना न ठहर सकी। यह युद्ध जबलपुर से प्रायः १२ मील नर्रई नामक एक पहाड़ी नदी के किनारे और बरेला ग्राम के पास हुआ। इस युद्ध में आसफखाँ की तोपें महारानी की सेना को त्रस्त कर रही थीं, किन्तु फिर भी वह वीरता से लड़ रही थी। उसी बीच उनका एक मात्र पुत्र, वीर नारायण, लड़ते-लड़ते मारा गया। रानी हाथी पर सवार थीं। उनकी एक आँख में शत्रु का तीर लगा। उसे निकालने में उसका एक टुकड़ा आँख में रह गया और रानी हौदे में गिर गयीं। उनके गिरते ही उनकी सेना के पाँव उखड़ गये, किन्तु पीछे नर्रई में सहसा बरसाती बाढ़ आ गयी जिससे वे उसे पार न कर सके और घिर गये। जब रानी ने देखा कि वे घिर गयी हैं और कहीं मुगलों के हाथों में न पड़ जायँ, तो उन्होंने हाथी का अंकुश अपनी छाती में भोंककर जौहर कर लिया। हाथी और महावत भी मारे गये। जहाँ दुर्गावती का शरीरपात हुआ था वहीं बाद में श्रद्धालु प्रजा ने एक चबूतरा बना दिया, और पास ही हाथी तथा महावत की भी समाधियाँ बना दी गयीं। महारानी दुर्गावती की वीरता की गाथा चार सौ वर्षों से जनता को अनुप्राणित करती आयी है। उसपर कितने

...लोकगीत बने जो आज भी उस क्षेत्र में प्रचलित हैं। ...तने ही गुणग्राही अँगरेजों ने भी महारानी की ...शंसा की है और उनपर कविताएँ लिखी हैं। पुराने ...प्रदेश के एक अँगरेज अधिकारी ने महारानी पर एक ...हुत ही हृदयग्राही कविता अँगरेजी में लिखी थी जो ...विद्यार्थी-जीवन में हमारे हाथ लग गयी थी। इसके नीचे ...लेखक का नाम नहीं था--केवल संकेताक्षर एस (S) ...लिखा हुआ था। महारानी का पावन चरित्र कितना ...प्रेरणादायक था, इसका अनुमान इसीसे किया जा सकता ...है कि सूखी (सन ड्राइड) सौंठ के समान शुष्क अँगरेज ...सिविलियन भी उससे अभिभूत हो गये थे। हम इस ...कविता को अपने पाठकों के मनोविनोदार्थ अन्यत्र छाप ...रहे हैं। इस अवसर पर बाबू वृन्दावनलाल वर्मा ने 'दुर्गा-...वती' नाम का एक उपन्यास भी प्रकाशित किया है। ...हमने उसे नहीं देखा, किन्तु वर्माजी ने उसे लिखने के लिए ...बहुत ऐतिहासिक सामग्री एकत्र की थी। वह अवश्य ...ही प्रामाणिक तथ्यों पर आधारित होगा। जबलपुर में ...महारानी की प्रतिमा की स्थापना उचित है, किन्तु ...हमारी सम्मति में महारानी की समाधि का पुनर्निर्माण ...आवश्यक है। वह महारानी के महत्व के अनुरूप बनायी ...जानी चाहिए। अन्यत्र भी महारानी की मूर्तियों की स्थापना ...उचित है क्योंकि वे जनता को और भावी पीढ़ियों को ...प्रेरणा प्रदान करेंगी, किन्तु उनकी समाधि को, जो आज ...भी जनता का तीर्थस्थल है, कृतज्ञ जनता की भावना के ...अनुरूप ही विशाल, भव्य और सुन्दर ढंग से इस प्रकार ...निर्मित किया जाना चाहिए कि वहाँ जाकर दर्शकों को ...प्रेरणा मिल सके।

इंग्लैण्ड में काशीनरेश के कुएँ का शताब्दि समारोह--...अप्रैल मास में आक्सफर्ड जिले के स्टॉकरो नामक ...ग्राम में उस कुएँ की शती मनायी गयी जो काशी-नरेश ने ...वहाँ बनवाया था। संयोग की बात है कि आज से ठीक ...पचास वर्ष पहिले 'सरस्वती' में श्री काशीप्रसाद जाय-...सवाल ने उस कुएँ का मनोरंजक वर्णन लिखा था जो हम ...इस अंक में 'पुरानी सरस्वती' शीर्षक स्तंभ में दे रहे हैं। ...हमारे पाठकों को इस लेख से इस कुएँ का इतिहास मालूम ...होगा। इस कुएँ की शती बड़ी धूमधाम से मनायी गयी। ...काशीनरेश की ओर से श्री वी० पी० एन० साही इस उत्सव ...में सम्मिलित हुए थे। इस उत्सव की अध्यक्षता स्वयं ...ड्यूक आफ एडिनबरा ने की थी। समारोह का आरंभ ...कुएँ से जल निकालकर किया गया और उसमें श्री साही ...द्वारा काशी से लाया गया पवित्र गंगाजल डाला गया। ...इस अवसर पर काशीनरेश ने अपनी ये शुभकामनाएँ तार ...द्वारा भेजी थीं जो वहाँ पढ़कर सुनायी गयीं--"मेरे ...परदादा के पिता द्वारा की गयी यह अनुपम भेंट भारत और ...इंग्लैण्ड के मध्य सहानुभूति और सद्भावना की प्रतीक है।" ...काशीनरेश ने इस कुएँ को चालू रखने के खर्च के लिए उसके पास चैरी नामक फलों के वृक्षों का एक बाग भी लगवा दिया था। वह चैरी का बाग आज भी अच्छी दशा में है। इस शती के उपलक्ष में ड्यूक ने इस बाग में चैरी का एक और वृक्ष लगाया। उत्सव के अतिरिक्त रात्रि में एक भोज का भी आयोजन किया गया। भारत में जलदान के लिए लोग कुएँ और तालाब खुदवाते हैं। गर्मियों में प्याऊ या पौसरे बैठाते हैं। इंग्लैण्ड के इस ग्राम के वासियों को कुएँ की यह भेंट उसी परम्परा की कड़ी थी। आज स्टॉकरो में जलकल लग गयी है किन्तु वहाँके निवासी काशीनरेश की इस भेंट को अपने गाँव के इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना समझते हैं और उन्हें इस भेंट का गर्व है। यह शती-उत्सव उनके कृतज्ञतापूर्ण भावना की सुन्दर और मधुर अभिव्यक्ति थी।

विधान मंडलों में हिन्दी साहित्यिकों का प्रतिनिधित्व समाप्त--संसद् के उच्च सदन (राज्य परिषद्) और उत्तर प्रदेश तथा बिहार के विधान परिषदों में क्रमशः राष्ट्रपति और राज्यपाल कुछ लोगों को उनका सदस्य नाम-निर्देशित करते हैं। राज्य परिषद् और उत्तर प्रदेश की विधान परिषद् में ऐसे नामनिर्देशित सदस्यों की संख्या बारह बारह है। संविधान के शब्दों में, ऐसे व्यक्ति नामनिर्देशित किये जायँगे जिन्हें "निम्न प्रकार के विषयों के बारे में विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव है, अर्थात् साहित्य, विज्ञान, कला और सामाजिक सेवा।" विधान परिषद् की सदस्यता की योग्यता में 'सहकारी आन्दोलन' का विशेष ज्ञान तथा व्यावहारिक अनुभव और जोड़ दिया गया है। संसद के विधान परिषद् में मराठी, गुजराती, बंगला, दक्षिण की कुछ भाषाओं के तथा हिन्दी के प्रतिनिधि मनोनीत होते रहे हैं। आरम्भ ही से राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त उसके सदस्य मनोनीत किये जाते रहे। गत अप्रैल में उनका दूसरा कार्यकाल समाप्त हो गया। किन्तु उनके स्थान पर कोई हिन्दी साहित्यकार मनोनीत नहीं किया गया। अन्य कई भारतीय भाषाओं के प्रतिनिधि उसमें अब भी सदस्य हैं और जो नये सदस्य मनोनीत किये गये हैं उनमें भी देशी भाषाओं के साहित्यकार हैं। किन्तु अब उनमें हिन्दी का कोई साहित्यकार नहीं है। अप्रैल ही में उत्तर प्रदेश और बिहार की विधान परिषदों के हिन्दी साहित्यकार सदस्यों (श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़ 'बेढब' और श्री मोहनलाल महतो वियोगी) के कार्यकाल समाप्त हुए। किन्तु इन हिन्दी राज्यों के राज्यपालों ने भी इनके स्थानों में किसी हिन्दी साहित्यकार को नामनिर्देशित नहीं किया। उत्तर प्रदेश में पहिले सदस्य पं० अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी थे। उनके बाद श्रीमती महादेवी वर्मा नियुक्त की गयीं और उनके कार्यकाल समाप्त होने पर श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़ सदस्य मनोनीत हुए। किंतु इस बार केन्द्र और राज्य सरकारों ने एक साथ हिन्दी साहित्यकारों का बहिष्कार किया--या

उपेक्षा की। परिणाम यह है कि अब राज्य परिषद् और उत्तर प्रदेश तथा बिहार के विधान परिषदों में हिंदी के साहित्यकारों का प्रतिनिधित्व समाप्त कर दिया गया। यह कार्य तीनों जगह एक साथ ही हुआ। यह संयोग भी हो सकता है, और हिन्दी की सुनियोजित उपेक्षा भी हो सकती है। यदि यह संयोग है तो बड़ा विचित्र संयोग है! एक साथ ही केन्द्र और दो हिन्दी राज्यों को यह 'इलहाम' हुआ कि उच्च सदनों में अब हिन्दी साहित्य के प्रतिनिधित्व की आवश्यकता नहीं है!

हिन्दी के प्रति हमारी सरकारों की जो उपेक्षा है, उसे हम जानते हैं। इसीलिए हमने सरकार द्वारा की गयी हिन्दी की इस अवमानना पर विशेष ध्यान नहीं दिया। किन्तु हिन्दी के कितने ही साहित्यकारों को सरकार का यह हिन्दी विरोधी प्रदर्शन खटका और उनमें इसकी पर्याप्त चर्चा रही। उनमें से एक प्रमुख साहित्यकार, हमारे मित्र श्री अमृतलाल नागर ने हमें यह पत्र भेजा है :

"सविनय प्रणाम। शायद आपने भी इस बात पर ध्यान दिया हो कि इस वर्ष जहाँ एक ओर केन्द्रीय और राज्य सरकारों के द्वारा हिन्दी को बढ़ावा दिये जाने की सूचनाएँ और नेताओं के उपदेश-सने आश्वासन हमें अखबारों के माध्यम से बराबर दिये जाते रहे, वहाँ ही दूसरी ओर यह तमाशा भी दिखलाया गया कि हिन्दी के एक भी साहित्यिक का नाम न तो गणतंत्र दिवस की राष्ट्रीय अलंकारवाली सूची में था और न राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किये जानेवाले सम्मानित सदस्यों की सूची में ही। चूंकि यह दिल्ली दरबार का खेल था, इसलिए कचोट अनुभव करके भी मैंने उधर से अपना ध्यान हटा लिया। परन्तु हाल ही में उत्तर प्रदेश विधान परिषद् की, सरकार द्वारा नियुक्त होनेवाले सदस्यों की नयी सूची को भी जब हिन्दी के प्रतिनिधित्व से शून्य पाया तो मन को करारा आघात लगा। बहुत इच्छा करने पर भी इस नये प्रहार को भुला नहीं पा रहा हूँ।

दिल्ली की बात न्यारी है। वहाँ तो हिन्दी के आगे हिन्दुस्तान का हौवा खड़ा करने की निखिद्ध चाल कांग्रेसी राज के आदिकाल से ही बराबर चली आ रही है, पर हमारे उत्तर प्रदेश में हिन्दी के किसी साहित्यिक को विधान परिषद् की सदस्यता क्यों नहीं दी गयी, यह मेरी समझ में अब तक नहीं आया। संविधान के अनुसार "Men of letters" की नियुक्ति उत्तर प्रदेश विधान परिषद् के सदस्यों में होनी चाहिए। वह खानापूरी भी की गयी है। उर्दू के एक राजनीतिक पत्रकार और अँगरेजी के एक पत्र-पंडित की नियुक्ति से उत्तर प्रदेश में अँगरेजी और उर्दू का महत्व सकारा गया है। सवाल उठता है, क्या अँगरेजी और उर्दू उत्तर प्रदेश की प्रमुख भाषाएँ हैं? क्या हिन्दी को अब उसके घर में ही अपमानित और उपेक्षित किया जायगा? दूसरा प्रश्न यह भी उठता है कि अपमान के इस घूंट को क्या हम लोग हँसी-खुशी पी लें?

अभी कुछ ही दिनों पहले आचार्य द्विवेदी के जन्मशती समारोह के सिलसिले में एक सरकारी प्रबन्ध की बात को टालते हुए हमारे प्रदेश के एक बड़े अफसर ने अपने आधीन एक छोटे अफसर से कहा था : "उंह, हू केयर्स फॉर हिन्दी"? देश के सबसे बड़े जनसमुदाय द्वारा बोली जानेवाली भाषा के इस लोकमान्य साहित्य-पुरुष की जयन्ती के अवसर पर दौलतपुर की सभा में जब आये लोगों को मैंने द्विवेदी डाक-टिकटों के प्रकाशन की लालसा में रिरियाते हुए देखा तो बहुत उद्विग्न और क्षुब्ध हो उठा। अपने सहज अधिकारों की प्राप्ति के लिये भी हमें कब तक इस प्रकार दीन-हीन होकर गिड़गिड़ाना पड़ेगा? अधिकतर भारतीय नेता और अफसरगण तो अपने क्षुद्र स्वार्थों और उल्टी मति के वशीभूत होकर हमारे राष्ट्रीय स्वाभिमान की जड़ें खोद ही रहे हैं, पर क्या अपनी मौन भरी निष्क्रियता से हम भी उनके इस जघन्य अराष्ट्रीय कार्य को बढ़ावा दें? इस सम्बन्ध में मैं आप जैसे अनुभवी वयोवृद्ध गुरुजन से दिशानिर्देश चाहता हूँ।"

नागरजी का यह पत्र अपने आप में पूर्ण है और इस पर किसी टीका-टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है। जो लोग अपने घर ही में उपेक्षित, अपमानित और लांछित हैं उनका आदर बाहर भी नहीं हो सकता। जब उत्तर प्रदेश और बिहार की सरकारें बड़ी बेफिक्री से, निडर होकर हिन्दी साहित्यकारों की उपेक्षा कर सकती हैं और उनकी इस घोर उपेक्षा पर 'एक कुत्ता भी नहीं भोंकता', तब केन्द्रीय सरकार यदि हिन्दी की उपेक्षा करे तो इसमें क्या आश्चर्य है? किन्तु प्रश्न यह है कि उत्तर प्रदेश और बिहार की सरकारों को हिन्दी की यह उपेक्षा करने का साहस क्यों होता है? राजनीतिक लोगों में न्यायबुद्धि बड़ा दुर्लभ गुण है। वे केवल दबाव, आन्दोलन और शक्ति की भाषा समझते हैं। उर्दू और अँगरेजी की उपेक्षा करने से उन्हें विरोध का और 'वोट' खोने का भय है। हिन्दीवाले तो उनके लिए 'घर की मुर्गी' हैं। वे उनके अंधभक्त और अनुयायी हैं। वे भारतीय पत्नी की तरह कांग्रेसरूपी पति से विवाहित हैं, और उसीकी तरह पति की उपेक्षा, उसके अपमान, अत्याचार के बावजूद उसके प्रति वफादार रहेंगे। उनका वोट तो उन्हें हर हालत में मिलेगा ही। तब उ० प्रदेश और बिहार की कांग्रेस सरकारें उनकी परवाह क्यों करें? स्वयं इन मंत्रियों को हिन्दी से इतना अनुराग है कि उनमें से जो थोड़ी भी अँगरेजी जानते हैं, वे हिन्दी समाचार-पत्र भी नहीं पढ़ते! यदि कोई इस बात की शोध करे कि हमारे हिन्दीभाषी नेता चार-पाँच साल में भी कोई हिन्दी पुस्तक पढ़ते हैं, या १०-५ वर्षों में उन्होंने हिन्दी पुस्तकें कोई खरीदी हैं, तो बड़े मनोरंजक एवं ज्ञानवर्धक तथ्य और आँकड़े प्राप्त हों।

हमारे अफसरों में कुछ सज्जन हिन्दीप्रेमी अवश्य हैं किन्तु उनकी संख्या अत्यल्प है। अधिकांश "अफसर

... अर्थ में "ऐंग्लो-इंडियन" हैं कि उनका दिमाग अँग-रेजी 'ऐंग्लो', और शरीर 'इंडियन' है। नागरजी ने ... प्रदेश के किसी अधिकारी की चर्चा की है जिसने अँगरेजीदाँ होने के कारण शायद हिन्दी से खीज कर कह ... कि "हू केअर्स फॉर हिन्दी ?" किन्तु हमें उनका ... होना चाहिए कि वे इतने आगे नहीं गये जितने ... "बहिन सेवा" (सिस्टर सर्विस) के एक अफसर ... गये थे। कुछ दिन पूर्व हमारे एक मित्र अमरीका गये थे। वहाँ जब वे सैन फ्रांसिसको पहुँचे तब वहाँ उन्हें ... सहायक राजदूतालय (इंडियन कान्सलेट) में ... का अवसर मिला। वहाँ कार्यालय के द्वार के पार्श्व ... का एक बड़ा साइनबोर्ड लगा था। उसमें ऊपर ... ओर भारत का राजचिह्न (अशोक स्तम्भ के सिंह) ... था और उसके नीचे देवनागरी लिपि में भारत-... का आदर्श वाक्य भी खुदा हुआ था। किन्तु उसकी ... इस प्रकार थी : "सन्यमेव जयने"। दुर्भाग्य से ... मित्र इस आदर्श वाक्य का शुद्ध रूप जानते थे। वे ... 'खुदाई खिदमतगारी' के रोग से भी पीड़ित हैं। ... उन्होंने 'रिसेप्शनिस्ट' से कहा कि यह आदर्श वाक्य अशुद्ध लिखा हुआ है, इसे ठीक करा दिया जाय। भार-... दूतावास की रिसेप्शनिस्ट का इन बातों से क्या ...? उसने इनकी बातें सुनी-अनसुनी कर दीं। ... मित्र की 'खुदाई खिदमतगारी' ने जोर मारा और ... 'कान्सल' साहब से मिलने का निश्चय कर लिया। ... प्रतीक्षा के बाद उनसे भेंट हुई। हमारे मित्र ने कहा ... ये वाक्य शुद्ध करा लेने चाहिए। कान्सल साहब ... फारेन सर्विस' के अफसर थे। वे न संस्कृत जानते ... न हिन्दी और न देवनागरी लिपि। बड़ी कठिनता से ... मित्र उन्हें समझा पाये कि आदर्शवाक्य में अक्ष-... की अशुद्धियाँ हैं। किन्तु बड़े साहब ने यह कहकर ... मित्र को टाल दिया कि "हू द डेविल केअर्स फॉर ...?" भारत के कान्सलेट पर "सन्यमेव जयने" ... रहा। संयोग से श्रीमती इंदिरा गांधी इसके कुछ ... बाद अमरीका गयीं। उनके सम्मान में आयोजित ... समारोह में हमारे मित्र भी बुलाये गये। वहाँ ... उनसे भारतीय कान्सलेट में भारतीय गणतंत्र के ... वाक्य की दुर्दशा बतलायी। मालूम होता है कि ... श्रीमती इन्दिरा गांधी ने उन अधिकारी महोदय ... शुद्ध कराने की सलाह दी होगी क्योंकि कुछ दिनों ... हमारे मित्र को कान्सल साहब का टेलिफोन मिला ... आदर्श वाक्य को शुद्ध करने में उनकी सहायता माँगी ...। उनसे सहायता माँगने का कारण यह था कि सारे 'भारतीय' कान्सलेट में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं था जो देवनागरी लिपि जानता हो! हम लोगों के लिए इस ... का अनुमान करना भी कठिन है कि हमारी "फॉरेन" ... कितनी 'फॉरेन' है! शायद जो जितना अभार-... होता है उसे उस 'सर्विस' में घुसने में उतनी ही सफलता मिलती है! हमारे मित्र बतलाते थे कि जब वे इटली गये तो उस समय रोम-स्थित भारतीय दूतालय (ऐम्बैसी) में केवल एक व्यक्ति देवनागरी लिपि जानता था—और वह भारतीय राष्ट्रीयता का नहीं, इटालवी था। द्वितीय युद्ध में वह युद्धबन्दी के रूप में देवली कैम्प में बहुत दिनों तक रखा गया, जहाँ उसने समय काटने के लिए हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि सीख ली थी। किन्तु भारत से जो भारतीय कर्मचारी रोम के 'भारतीय' राजदूतालय में भेजे गये थे वे अँगरेजी में अत्यन्त निष्णात थे, किन्तु देवनागरी लिपि उनके लिए "हैब्रू और ग्रीक" थी। हिन्दी प्रदेशों की उच्च नौकरशाही की स्थिति उससे कुछ ही अच्छी है। अधिकांश उच्च अधिकारी काम-चलाऊ (अर्थात् खानसामा, ड्राइवर, बिसाती और तर-कारीवालों से बात करने योग्य) हिन्दी जानते हैं, किंतु वे हिन्दी में काम नहीं कर सकते। वे हिन्दी सीखने को तैयार भी नहीं हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि वे, कम से कम इस मामले में, मजे से मनमानी कर सकते हैं। किन्तु बेचारे अफसरों ही को क्यों दोष दिया जाय? हमारे कितने मंत्री ही हिन्दी में काम करना पसन्द करते हैं और हिन्दी में टिप्पणियाँ चाहते हैं? वे भी तो उसी 'बुर्जुआ' वर्ग के हैं जिसके 'अफसर' लोग हैं, और उनमें भी अँगरेजी की उतनी ही मानसिक गुलामी भरी हुई है जितनी अफ-सरों में। वे राजनीतिक सुविधा या कूटनीति के कारण, अथवा हिन्दीभाषी जनता को मूर्ख बनाने के उद्देश्य से, हिन्दी के बारे में कभी कभी 'चिकनी चुपड़ी' बातें भले ही कर देते हों, किन्तु उनमें हिन्दी-निष्ठा नाममात्र को ही है। इनमें से कितने ही तो इन पंद्रह सोलह वर्षों में हिन्दी में काम करने का अभ्यास भी नहीं डाल पाये।

किसी पाश्चात्य विचारक ने कहा है कि A Country gets the government which it deserves. (देश को वैसी ही सरकार मिलती है जैसीकी वह पात्र है।) हिन्दी साहित्यकार आज या तो आदर्शवादी हैं जो हवाई ऊँची उड़ानें भर कर अखिल मानवता के उन्नयन, चिरशान्ति आदि का राग अलापा करते हैं, या यथार्थवादी हैं जिनका यथार्थ 'रोटी' और 'वर्गवाद' में समाप्त हो जाता है। शेष स्वार्थों के कीचड़ में फँस गये हैं। हरिश्चन्द्र, राजा रामपाल सिंह, मदन मोहन मालवीय और पुरुषो-त्तमदास टंडन की हिन्दी-सेवकों की परम्परा समाप्त हो गयी है। आज हिन्दी साहित्यिक 'वादों' की 'बादी' से ग्रस्त है। रहीं हिन्दी संस्थाएँ, सो उनमें से जो महत्वपूर्ण हैं, वे स्वार्थान्ध लोगों के कारण निष्प्राण हो चुकी हैं और धीरे-धीरे सरकार के परोक्ष नियंत्रण में आती जा रही हैं। वे हिन्दी आन्दोलन को बन्द करके सरकार की 'साहित्य योजनाओं' से मधु संचय कर रही हैं। शेष या तो स्थानीय हैं, या बिकाऊ हैं और या साहित्य के विशेष वादों में रुचि लेनेवालों के विचार-विनिमय की माध्यम हैं। हिन्दी भाषा के प्रचार, प्रसार या उसके अधिकारों

की रक्षा से उन्हें मतलब नहीं। सरकार जानती है कि आज के हिन्दी साहित्यकार का जनता पर कोई प्रभाव नहीं है। वह 'शून्य' हो गया है। वह जनता का बौद्धिक नेतृत्व करने के बजाय स्वयं राजनीतिक नेताओं के पीछे दौड़ता है। शासक और नेता व्यावहारिक व्यक्ति होते हैं। वे उन निरर्थक लोगों की पर्वाह नहीं करते जो समाज में "शून्य" हैं। जनतंत्र में सम्मान और प्रभाव उन्हीं लोगों को मिलता है और उन्हींकी पूछ होती है जिनकी जड़ जनतारूपी धरती में जमी हुई है। ऐसा न होने पर इन लोगों को नेताओं के दया दाक्षिण्य से भले ही छोटा-मोटा सम्मान या थोड़ी-बहुत आर्थिक सहायता मिल जाय किन्तु वे अधिकारपूर्वक अपने अधिकार नहीं माँग सकते। सरकार के दिखावटी कथनों पर ध्यान न देकर यदि उसके इन पिछले सोलह सत्रह वर्षों की करनी देखी जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि वह हिन्दी-निरपेक्ष है। वह हिन्दी की कुछ भी पर्वाह नहीं करती। उससे हिन्दी साहित्यकार तभी हिन्दी का दाय ले सकते हैं जब वे जनता का अनुमोदन पाकर और संगठित होकर स्वयं शक्ति संचय करें। कमजोरों की सहायता अल्ला मियाँ भी नहीं करते। 'नायम् आत्मा बलहीनेन लभ्यः।' हमारे साहित्यकार यदि अपना स्वरूप पहिचानें और तदनुसार हिन्दी के हितों की रक्षा के लिए कृतसंकल्प हो जायें तथा जनता को अपने साथ ले सकें तो राजनीतिक नेता और अधिकारी दौड़कर उनका स्वागत करेंगे। किंतु यदि वे 'नेता भरोसे' रहते हैं और कुछ करते नहीं तो 'अकबर इलाहाबादी के शब्दों में उनसे यही कहना है:

> **इतना भी जो न हो सके हुजूर से।**
> **मुर्दों के साथ कब्र में आराम कीजिए।।**

आकाशवाणी की आलोचना--इधर कुछ दिनों से कुछ अँगरेजी पत्रों ने आकाशवाणी के विरुद्ध एक तरह का जिहाद सा छेड़ दिया है। इसका आरम्भ बम्बई के एक अँगरेजी पत्र ने किया था और अब कई दूसरे पत्रों ने भी उसमें अपना स्वर मिलाना आरम्भ कर दिया है। ऐसा मालूम पड़ता है कि दिल्ली का आकाशवाणी संस्थान और निदेशनालय इस जिहाद के लक्ष्य हैं। एक पत्र ने तो आलोचना के आरम्भ में ही लिखा है:

> The most shoddy broadcasting of all emanates from the Capital. Fortunately, the regions, specially those with highly developed culture and languages, still maintain some vestiges of artistic sense and broadcasting zeal. It is no exaggeration to say that smaller stations like Jullundur, Lucknow, Nagpur, Srinagar, Vijayawada, Patna and Indore are better in presenting whatever talent they have than Delhi itself.

इससे स्पष्ट है कि किसी कारण से इन अँगरेजी समाचारपत्रों का आक्रोश दिल्ली के आकाशवाणी संस्थान और निदेशनालय पर है। यह कहना तो मूर्खता है कि भारतीय आकाशवाणी सर्वगुण सम्पन्न है और सुधार की गुंजाइश नहीं है, किन्तु जब आलोचक दिल्ली आकाशवाणी संस्थान के प्रसारित कार्यक्रम को अन्य संस्थानों के कार्यक्रम से नीचे के स्तर का घोषित करते हैं तब आलोचक की वस्तुनिष्ठता में संदेह होने लगता है। हमें भी आकाशवाणी के कार्यक्रमों का थोड़ा परिचय है और यह कहना कि दिल्ली के कार्यक्रम ऊपर के संस्थानों के कार्यक्रम से निम्न स्तर के होते हैं, वास्तविकता पर पर्दा डालना है।

इन आलोचकों ने मुख्य रूप से अँगरेजी कार्यक्रमों पर अपने आक्रमण की गोलाबारी केन्द्रित की है। हमें अँगरेजी कार्यक्रमों में विशेष रुचि नहीं है। इसलिए हम उनके सम्बन्ध में कुछ कहना आवश्यक नहीं समझते, किन्तु हमें यह पढ़कर कुछ हँसी आयी कि अँगरेजी समाचार पढ़नेवालों के सम्बन्ध में यह शिकायत की गयी कि They seem terrified of being mistaken for Indians—to the extent of mispronouncing their own names. बुखारी के उस युग में (जिसे कितने ही अँगरेजी-परस्त आकाशवाणी का स्वर्णिम युग समझते हैं), अँगरेजी समाचार पढ़ने की जो परम्पराएँ डाली गयी थीं, वे ही वहाँ बराबर चली आ रही हैं। भारतीय नामों का बराबर 'अँगरेजी ऐक्सैंट' में उच्चारण किया जाता रहा है। आज के अँगरेजी समाचार पढ़नेवाले कोई नयी बात नहीं कर रहे हैं। हमें किन्तु आश्चर्य है कि ये अँगरेजी-परस्त आलोचक इतने दिनों बाद आज भारतीय नामों के शुद्ध उच्चारण की समस्या के प्रति सजग और सावधान हुए हैं!

किन्तु दिल्लीसंस्थान और निदेशनालय की आलोचना करते समय ये आलोचक अपने हिन्दी विरोध को नहीं भूले। हम सामान्यतः उनकी आलोचनाओं पर ध्यान नहीं देते, किन्तु उन्होंने आकाशवाणी की हिन्दी को, और हिन्दी समाचार पढ़नेवालों को भी अपनी आलोचना में लपेट लिया है। हमें इसीलिए यह टिप्पणी लिखना आवश्यक मालूम हुआ। "टाइम्स आफ इंडिया" का एक गुमनाम आलोचक लिखता है:

> In Hindi, specially news bulletins, the excessive obsession with high-falutin; highly Sanskritised' and at times comically obscure Hindi has reached such a stage that listeners who consider themselves quite proficient in Hindi—it is their mother tongue—now find it necessary to sit down with a dictionary to follow A.I.R. Except that some of A.I.R.'s recent verbal concoctions have not yet found their way into the most modern of dictionaries.
>
> This fairly recent back-sliding into un-broadcastable Hindi has led to a direct deterioration in news announcing itself. No

...ger does it seem necessary to have a good ...ce or an intelligent personality to read ...s pronunciation of obscure words seems ...ave become the be-all and end-all of news ...ling. The result: we have more ugly ...es reading Hindi bulletins than in any ...r language; most of them would have ...d primary auditions elsewhere.

पाठक जानते हैं कि दिल्ली में अँगरेजी-परस्त और हिन्दी-विरोधी लोगों का एक प्रभावशाली दल है जिसके ...सरकारी युग में भी वहाँ वर्तमान थे। यह दल ...करण' के नाम पर हिन्दी को 'हिन्दुस्तानी' या ...बनाने पर तुला हुआ है। जब निजाम के समय के ...स्तान' के गढ़ हैदराबाद के श्री गोपाला रेड्डी सूचना प्रसारण के मंत्री हो गये, और 'मोगलिया दिल्ली' ...के लाला शामनाथ उसके उपमंत्री बनाये गये, ...दोनों ने मिलकर सरलीकरण के नाम पर आकाश-वाणी की हिन्दी को 'चाँदनी चौक की हिन्दी' बनाना ...। हिन्दीवालों ने इसका विरोध किया। अन्त ...सरकार को श्री श्रीप्रकाशजी की अध्यक्षता में एक ...समिति बनानी पड़ी जो आकाशवाणी द्वारा प्रसारित ...चारों की भाषा का स्वरूप निर्धारित करती। परिणाम यह हुआ कि 'चाँदनी चौक' की ...के स्थान पर साधारण और सर्वमान्य हिन्दी ...चलने लगी। अँगरेजी अखबारों के लेखक ...-falutin", highly Sanskritised' Hindi, ...sliding into unbroadcastable Hindi आदि ...कर श्री श्रीप्रकाश समिति के किये-कराये को ...उलटवाना चाहते हैं। श्री सत्यनारायण सिंह ...से उन्हें फिर आशा हो गयी है कि यदि वे ...दिलायें तो वे 'चाँदनी चौक' की भाषा को ...हिन्दी' कहकर आकाशवाणी में ले जाने में सफल ...। उन्हें शायद यह भ्रम हो गया है कि नयी सूचना-...श्रीमती इंदिरा गांधी काश्मीरी होने के कारण, उन्हीं ...तरह, 'चाँदनी चौक' की भाषा को 'स्टैंडर्ड हिन्दी' ...गी। इसीलिए जो लोग किसी कारणवश वर्तमान ...लय से असन्तुष्ट हैं, या 'हिन्दी' को फिर 'हिन्दु-...' बनाना चाहते हैं, या अँगरेजी को फिर प्रधानता ...चाहते हैं, वे इस समय एक साथ सक्रिय हो उठे हैं। ...इस सम्बन्ध में उन्हें निराश होना पड़ेगा। श्रीमती ...गांधी जानती हैं कि हिन्दी का स्वरूप क्या है। ...जो लोग आकाशवाणी की भाषा को बिना कोष की ...सहायता के नहीं समझ सकते उनका हिन्दी में 'प्रोफिशि-...' का दावा करना हास्यास्पद है। यदि वे दिल्ली ...स्कूलों में पढ़ायी जाने वाली आठवीं और नवीं कक्षाओं ...की हिन्दी की पाठ्यपुस्तकें पढ़ और समझ सकते होते ...तो ऐसी बेसिर-पैर की बात न कहते। उनकी मातृ-...भाषा हिन्दी भले ही हो, किन्तु यदि वे 'कानवेण्ट' में पढ़े ...हों, जिन्होंने स्कूल में उर्दू पढ़ी है, कभी हिन्दी का अध्ययन नहीं किया तो केवल यह चिल्लाने से कि 'हमारी मातृ-भाषा हिन्दी है', वे हिन्दी जानने का दावा नहीं कर सकते। यदि उन्होंने आकाशवाणी के हिन्दी समाचारों के आधे दर्शन भी ऐसे शब्दों के उदाहरण दिये होते जिनका अर्थ वे बिना कोश के नहीं समझ सकते तो उनके हिन्दीज्ञान और विद्या-बुद्धि की कलई खुल जाती।

सबसे बड़ा अन्याय जो इन आलोचकों ने किया है वह हिन्दी समाचार सुनानेवालों के प्रति। ये सर्वज्ञ आलोचक लिखते हैं: Regional language bulletins do much better in matter of language and voice than Hindi and English. आकाशवाणी में बँगला, असमी, उड़िया, पंजाबी, काश्मीरी, गुजराती, मराठी, तामिल, तैलगू, कन्नड़, मलयालम आदि क्षेत्रीय भाषाओं में समाचार प्रसारित होते हैं। 'टाइम्स आफ इंडिया' के ये जिम्मेदार आलोचक इन सभी भाषाओं के ज्ञाता ही नहीं, उनमें इतने पारंगत मालूम होते हैं कि उन्होंने अधिकारपूर्वक यह प्रमाणपत्र देने का दुःसाहस कर डाला है कि इन भाषाओं में प्रसारित समाचार भाषा और 'वाणी' (language and voice) के मामले में हिन्दी और अँगरेजी के समाचारों की भाषा और वाणी से अच्छे हैं। मानों, ये सर्वज्ञ आलोचक इन भाषाओं को ही अच्छी तरह से जानते ही नहीं बल्कि इनके उच्चारण की बारीकियों से भी पूरी तरह से परिचित हैं! यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि जिन लोगों के कथन में नाप-तोल की इतनी प्रत्यक्ष कमी है, उनकी सम्मति कितनी अविश्वसनीय होगी, और अपने असंयम की पराकाष्ठा तो इस आलोचक ने यह कह कर दी है कि We have more ugly voices reading Hindi bulletins than in any other language.. देवकी नन्दन पांडे, अशोक वाजपेयी आदि वर्षों से हिन्दी समाचार पढ़ रहे हैं। अधिकांश श्रोता उनके प्रशंसक हैं, किन्तु अँगरेजी के प्रेम और हिन्दी-विरोध की पीलिया से पीड़ित इस आलोचक को हिन्दी समाचार पढ़नेवालों में ही 'कुरूप' (ugly) बोलीवाले सबसे अधिक दिखायी या सुनायी पड़ते हैं! क्या किया जाय: पीनस वारौ प्रवीन मिलै तो कहाँ लगि गंधी सुगंधि सुंघावै?"

"मिनिस्ट्री" का परिवर्तन राज्यक्रान्ति के समान होता है। श्री सत्यनारायण सिंह के हटने और श्रीमती इंदिरा गांधी के उनके स्थान पर आने के समाचार ने इन असन्तुष्ट लोगों में शायद आशा का संचार किया है। वे नये मंत्री को अपने आन्दोलन से आकाशवाणी के निदेशनालय और उसकी हिन्दी नीति के विरुद्ध कर देना चाहते हैं। इसीलिए वे एक साथ इतनी उछल-कूद मचा रहे हैं। किंतु हमें विश्वास है कि उनका यह भोंड़ा प्रयत्न उन्हींकी साख को गिरावेगा क्योंकि श्रीमती इंदिरा गांधी और नये उपमंत्री में इस संयुक्त और नियोजित मोर्चे को भाँप लेने की क्षमता है।

सरदार प्रताप सिंह कैरों––भारत के राजनीतिक इतिहास में श्री प्रतापसिंह कैरों का पंजाब के मुख्य-मंत्री पद से हटाया जाना एक महत्वपूर्ण घटना है। श्री कैरों की योग्यता और कार्यकारिणी शक्ति की सभी प्रशंसा करते रहे हैं। उन्होंने अपने शासन काल में पंजाब की बहुमुखी उन्नति की। किंतु पंजाब में और चीजों की उन्नति के साथ-साथ उनके शासनकाल में भ्रष्टाचार ने भी उन्नति की। भ्रष्टाचार ने तो इधर सारे देश में इतनी 'उन्नति' की है कि हमारे गृहमंत्री श्रीनन्दा ने उसके लिए सदाचार समिति बनायी, आयोग स्थापित किया और वे उसे दो वर्ष में निर्मूल कर देने की भीष्म-प्रतिज्ञा कर बैठे हैं। अतएव पंजाब के भ्रष्टाचार को इतनी 'प्रसिद्धि' न मिलती यदि श्री कैरों के शासन में नवाबी ढंग की स्वेच्छा-चारिता और निरंकुशता न आ जाती और यदि उनके लड़के अपने पिता के पद और प्रभाव का उचित-अनुचित लाभ उठाकर अल्पकाल ही में करोड़पति होने के लिए आतुर न हो उठते। भारत के कितने ही नेताओं में अपनी सन्तान के प्रति प्रायः अंधा मोह देखा गया है। मालूम होता है कि श्री कैरों भी उसी मोह से ग्रस्त थे और दास आयोग के अनुसार, अपने पुत्रों के हित में की गयी अनुचित कार्रवाइयों को जान सुनकर भी वे उनकी ओर से आँख मूँद लेते थे। उनकी राजनीति में कूटनीति की मात्रा अधिक थी और कितने ही लोग उन्हें आधुनिक मेकिया-वली या चाणक्य समझते थे। वे शक्तिशाली और दबंग मुख्यमंत्री थे। जिस काम का निश्चय कर लेते थे उसे निर्ममता से करते थे। अफसर लोग नियमों का हवाला देते रहते किंतु "कागज न बही, जो कैरों कहैं वही सही" चरितार्थ हो रहा था। शासन में नियमों की उपेक्षा हो रही थी। सारी शक्ति एक अत्यंत शक्तिशाली व्यक्ति में केन्द्रित हो गयी थी जो विरोध को बर्दाश्त नहीं कर सकता था। जनतंत्र में ऐसी मनमानी बहुत दिनों नहीं चल सकती। आश्चर्य तो यह है कि वह आठ वर्ष से अधिक चलती रही। यह श्री कैरों की योग्यता का प्रमाण है कि सब कुछ होते हुए भी वे अन्त से कुछ पहिले तक दिल्ली का समर्थन प्राप्त करते रहने में सफल रहे। किन्तु पाप का घड़ा भर गया था। असंतोष इतना बढ़ गया था कि दिल्ली भी उसकी उपेक्षा न कर सकी और श्री कैरों के विरुद्ध शिकायतों की जाँच करने के लिए उसे दास आयोग बनाना पड़ा। श्री दास ने जिस योग्यता, परिश्रम और न्यायबुद्धि से इन शिकायतों की जाँच की उसकी जितनी प्रशंसा की जाय वह कम है। वास्तव में भारत में जन-तंत्र को दृढ़ करने में दास आयोग ने ऐतिहासिक सेवा की है। श्री कैरों को अपना पद छोड़ना पड़ा। अवश्य ही वे अत्यन्त योग्य प्रशासक थे और उन्होंने पंजाब को साम्प्र-दायिक गड्ढे में गिरने से बचाया। किंतु यदि कोई अत्यन्त कुशल अधिकारी भ्रष्टाचार में पकड़ा जाता है तो उसकी योग्यता का विचार नहीं किया जाता। वह सदा के लिए अलग कर दिया जाता है किंतु राजनीतिज्ञ, अधिकारियों की तरह, सेवा से सदा के लिए मुक्त नहीं किये जा सकते। समाज का नैतिक-बोध; उसका शिव-अशिव, उचित-अनुचित, सत्य-असत्य का विवेक; उसका उच्च नैतिक मूल्यों पर जोर––निश्चय करते हैं कि सदाचार से पतित व्यक्ति को वह अपने बीच कौन सा स्थान दे। श्री कैरों का भविष्य समाज के इसी विवेक पर निर्भर है।

जिस शीघ्रता और सही ढंग से, और जिस संतुलन के साथ भारत-सरकार ने इस प्रकरण को समाप्त किया उसके लिए वह प्रशंसा ही की पात्र नहीं, बल्कि देश की हार्दिक कृतज्ञता की भी पात्र है। श्री कैरों के उत्तराधि-कारी की समस्या को सुलझाने में कांग्रेस के उच्च अधि-कारियों ने जिस सूझबूझ से काम लिया, उससे यह स्पष्ट हो गया कि श्री नेहरू के स्वर्गवास से कांग्रेस की अखंडता, प्रभाव या क्रियाशीलता को विशेष क्षति नहीं हुई। यह कांग्रेस के भविष्य के लिए बहुत आशाजनक है। इस कांड से यह स्पष्ट हो गया कि भारत के शासन में स्थिरता है। वह स्थिरता यहाँ इसलिए है कि जनतंत्र की जड़ मजबूत है। वह किसी व्यक्ति की महानता पर आधारित नहीं है।

कैरों काण्ड से कांग्रेस के क्षत्रपों, सूबेदारों और स्था-नीय "बॉसों" को भी परोक्ष चेतावनी मिली है। हमें आशा है कि कैरों काण्ड कांग्रेस अधिकारियों के नैतिक मानदंडों को उठाने में बड़ा सहायक होगा। यदि इस कटुकाण्ड से अन्त में यह मधुर फल निकले तो हम इस अप्रिय कांड को भी एक वरदान ही समझेंगे।



द्विवेदी-दर्पण

प्रोफेसर शिवाधार पांडेय

(१)

आज १५ मई को 'मई' की सरस्वती मिली। हिन्दी साहित्य-सम्मेलन भी आज उनकी मूर्त्ति को [illegible] पहना रहा है। 'अत्र कुशलम् तत्राऽस्तु' कह सकता [illegible] नहीं ?

[illegible] सरस्वती की सामग्री बड़े मार्के की है। मैथिलीशरण [illegible] ने गद्य में हृदय खोल दिया है। १४ पंक्तियों की [illegible]" में वह यह नहीं बता सके कि सहकार-लता की [illegible] द्विवेदी-रक्त से फली-फूली रस तो खींच लेगी 'स्वयम्' [illegible], परन्तु कल उसके बल भाई-भाई कैसे भेंटेंगे ? [illegible] करना ('पथिक' के कर्त्ता त्रिपाठीजी की कविता-[illegible]!) गुप्तजी के भाग्य में गुप्त है। भगवतीचरण [illegible] को कहना पड़ा है "यह द्विवेदी युग कब समाप्त हुआ, [illegible] पर मतभेद हो सकता है, लेकिन एक समय यह द्विवेदी-[illegible] संसार में था, इससे इनकार नहीं किया जा सकता।" [illegible] ने यह भी माना है कि "द्विवेदीजी युग के साथ नहीं [illegible] सके।" इस निर्णय में 'लेकिन' और 'इनकार' घुसे हैं। [illegible] जी शुक्ल ने जो लिखा है वह लाख टके का है। [illegible] पढ़कर द्विवेदीजी के दर्शन से हो गये। 'लाड़लेश्वर' [illegible]-संयोग कितना ठीक है, यह चाहे जो कुछ हो परन्तु [illegible] दोनों रूपों की प्रत्यक्ष लीला झलक गयी। द्विवेदीजी [illegible] कितना ऐश्वर्य का अंश था और कितना लाड़ या [illegible] पन का, यह उनकी तीस-बत्तीस रचनाओं से प्रकट [illegible] हो सकता।

द्विवेदीजी के देहावसान पर जो सरस्वती निकली [illegible] उसमें मैंने उनके ऊपर दो स्तम्भों का एक पृष्ठ लिखा [illegible] जिसकी पण्डित देवीप्रसादजी शुक्ल ने मुक्तकण्ठ प्रशंसा [illegible] और जिसे उस अंक के दूसरे लेखों से अच्छा माना [illegible]! उससे अधिक मैं अब कुछ नहीं लिख सकता, पर आज [illegible] यह पत्र लिख रहा हूँ कि द्विवेदीजी का दर्शन अब भी [illegible] हो सकता है—स्थायी रूप में, जो उनके पत्रों का संग्रह [illegible] दिया जाय और जो यह काम मैथिलीशरणजी करें [illegible] कि उन्हें अब अवकाश है। जो उनका पत्र शुक्लजी [illegible] छापा है उसमें और द्विवेदीजी के पत्रों में आकाश-पाताल [illegible] अन्तर है। यह समझते हुए वह इस काम में लगें और अपने आचार्य का ऋण ही न चुकावें, उनकी पूरी सेवा और अर्चना करें। वह "जीवनी" नहीं लिख सके। रोजनामचा नहीं रखते थे। यह अच्छा ही है। इसमें जो उनकी राय थी, वही मेरी भी है। हिन्दी में अच्छे पत्र नहीं छपे हैं। ग्रन्थ द्विवेदी-दर्प का दर्पण ही नहीं होगा, आगामी पीढ़ियों को हिन्दी की ओर उसकी शिष्ट शक्ति की शिक्षा देगा।

(२)

द्विवेदीजी के दर्शन

द्विवेदीजी ने मुझे दो बार दर्शन दिये। कन्नौज में कान्यकुब्ज सभा थी। मैं १६ वर्ष का था। पण्डित देवीप्रसादजी शुक्ल के अनुरोध से मैंने सन् १९०४ में 'कान्यकुब्ज' में अपना पहला लेख 'विद्या' पर लिखा था। तब मैं बी० ए० का छात्र था। सभापति एक पाण्डेयजी थे जो 'एक बीस बिस्वा गोबरगणेश' कहे जा सकते थे। अचानक द्विवेदीजी का नाम सबसे पहले उन्होंने उच्चारण किया। द्विवेदीजी उठ खड़े हुए और एक दस बारह चौपदों की कविता एक पत्र निकालकर पढ़ दी। मुझे उसका इतना ही स्मरण है कि उन्होंने कहा था "मेरा सिर उस तवे की तरह गर्म है जिस पर मैं अभी रोटी पकाकर आया हूँ"। सिर भी उन्होंने खुजला दिया! मुझे केवल इतना सन्तोष हुआ कि वह उस खान-पान पार्टी में नहीं हैं जिसके कुछ समर्थक उस सभा में उछल-कूद करने के उत्सुक थे।

सन् १९०८ में मैं एम० ए०, एल्-एल० बी० होकर कानपुर में नया वकील हो गया था। सुना, द्विवेदीजी जुही में रहते हैं और सरस्वती के सम्पादक नहीं रहना चाहते हैं। मैंने नये उत्साह में एक पत्र बाबू चिन्तामणि घोष को भेज दिया कि मैं सरस्वती का सम्पादक होना चाहता हूँ। साथ ही एक भजन भी भेज दिया जो मेरी पहली खड़ीबोली की कविता थी और अब तक भी पूरी याद है! "शंकर हर आशुतोष दीन के दयालो!" उसकी पहली पंक्ति थी। कोई उत्तर नहीं आया। महीने भर बाद सरस्वती आयीं। उसमें लिखा था कि देवीप्रसादजी सम्पादक का अ-स्थायी काम करेंगे। मैंने सन्तोष किया। शुक्ल

जी जुही आते-जाते रहते थे। सोचा-द्विवेदीजी से परामर्श होता रहेगा। उनके भक्त थे। कभी-कभी मुझसे भी भेंट हो जाती थी। उन्होंने मुझे ग्रीक व रोमन हिस्ट्री क्राइस्ट चर्च कौलेज में पढ़ाई थी, परन्तु राजनीति की रोचकता उससे अधिक बतियाई थी यद्यपि मैं उनकी भाँति 'सुधारक' नहीं हो सका। अगले मास की सरस्वती में मैंने किसी लेख के नीचे एक छोटी-सी टिप्पणी पढ़ी "आज कल के युवक विश्वविद्यालय से निकलकर अपने को चौदहों विद्या का निधान समझने लगते हैं और उन्हें हिन्दी की त्रुटियाँ भाले की नोक सी चुभती हैं, वह ऐसे धृष्ट होते हैं। म० प्र० द्वि०।" टिप्पणी पढ़कर मैं चकृत हो गया। अपने पत्र में मैंने अवश्य लिखा था कि 'सरस्वती' का स्तर कुछ ऊँचा नहीं था। विश्वविद्यालय में भी यह धारणा थी। टिप्पणी पढ़कर मैं समझा कि शुक्लजी ने मेरा पत्र द्विवेदी जी को अवश्य दिखाया है और वह उसे पढ़कर तिलमिला उठे हैं, और अपने आठ वर्ष के कार्यकाल की रक्षा में उन्होंने यह टिप्पणी अनर्गल लिख मारी है और अनावश्यक छपा दी है। खैर, मैं चुप रहा। उनपर मैंने व्यक्तिगत आक्षेप नहीं किया था और न उन्होंने मेरे ऊपर कटाक्ष किया था।

सन् १९१० में मैं प्रयाग आया, 'लीडर' का उप-सम्पादक होकर मालवीयजी के आदेश से। 'अभ्युदय' की सम्पादकी वह छोड़ रहे थे। उसके सम्पादकीय अग्र-लेख मैंने सन् १९११-१२ में साल भर लिखे। शेष काम कृष्णकान्तजी मालवीय करते थे। उसी समय इण्डियन प्रेस' से 'कविता-कलाप' नाम का ग्रन्थ सजधज के साथ निकला। इसमें द्विवेदीजी, मैथिलीशरणजी, राय देवी प्रसादजी, नाथूराम शंकरजी और कामताप्रसादजी गुरु —पाँच सज्जनों की रचनाएँ पढ़ने को मिलीं। चित्र भी अनेक थे। मुझे यह ग्रन्थ नहीं रुचा। मैंने "कलाप या प्रलाप ?" शीर्षक देकर एक लेख मर्यादा में भेजा जिसमें लेखक का नाम 'एक धृष्ट' छपवाया। द्विवेदीजी को वह कैसा रुचा, यह मैं कह नहीं सकता हूँ परन्तु पीछे मैंने सुना कि उन्होंने कुछ लोगों से यह स्वीकार किया कि वह कवि नहीं हैं। यह उनकी प्रकृति के अनुरूप था। लेख में मुझे यही याद है कि मैंने पूछा था कि 'रसिक' सभा के 'पूर्णजी' इस चौकड़ी में कैसे आ फँसे ? और लेख का 'उपसंहार' था 'बड़े मियाँ तो बड़े मियाँ, छोटे मियाँ सुबहान अल्लाह !'

बहुत वर्ष बाद पं० देवीप्रसादजी मैथिलीशरणजी को… स्थान पर एक बार लाये थे जब मैंने उनकी सौम्य मू… और लाल पगड़ी के दर्शन किये, उनका समादर कि… और उनसे प्रार्थना की कि आप अपने छोटे गीत अव… छपाइये। वह अधिकांश चुप ही रहे क्योंकि उनके सा… बनारस के राय कृष्णदासजी भी आये थे जो वाचाल थे… और अपनी कृतियों पर मेरी सम्मति बराबर पूछते र… परन्तु मैंने वे पढ़ी ही नहीं थीं न देखीं। सम्मति कैसे देता ?

इसके पीछे एक घटना घटी। अघटित-घटना-पटीय… लीला तो नहीं थी परन्तु उसकी साधारण रूप से कोई आशा नहीं थी। 'मर्यादा' पत्रिका राजनैतिक लेख भी छापती थी। साहित्य की भी सेवा करती थी। कृष्णकान्तजी सम्पादक थे और अब जागृत हो चुके थे। सरस्वती में आजकल जैसे सर्वव्यापी मार्के के सम्पादकीय निकलते हैं और समय-समय पर गंभीर लेख पूरे-पूरे प्रयत्न से लिखे जाते हैं, ऐसा तब नहीं था। देवीप्रसादजी को समय नहीं मिलता था और वह अपने को हँसी में "डाकखाना" ही कहा करते थे यद्यपि वह अच्छा लिख सकते थे और लेख… जुटा सकते थे। मालूम होता है कि 'सरस्वती' के अधिका… रियों को 'मर्यादा' की उन्नति खटकी। इस बीच में कृष्ण… कान्तजी ने एक टिप्पणी 'हमारे सत्यदेव' निकाल दी जिसमें उन्होंने कदाचित् सत्यदेवजी के 'मर्यादा' में लिखने की प्रशंसा की। इसपर 'सरस्वती' के अगले अंक में एक तीखा कटाक्ष निकला कि सत्यदेव कब से 'मर्यादा' के सत्यदेव हो ग… तो आरम्भ से अपने अमरीका सम्बन्धी लेख 'सरस्वती' ही को भेजा करते थे। 'मर्यादा'वालों ने अपने ऊपर यह आक्षे… अनुचित समझा और पत्रिकाओं का द्वन्द्व युद्ध पसन्द न कर अपनी रक्षा मेरे ऊपर छोड़ दी। मैंने अभ्युदय में एक छोटा सा लेख, अग्रलेख के बाद, छाप दिया। शीर्षक दिया 'द्विवेदीजी की दया' और पूछा कि 'हमारे सत्यदेव' का अर्थ तो साधारण रूप से 'हम सबके सत्यदेव' समझा जाता है (वह राष्ट्रीय लेखक हो गये थे)। उसे 'मर्यादा ही के' सत्यदेव समझने की संकीर्णता क्यों की गयी ? इस प्रश्न का उत्तर 'सरस्वती' में भी कोई न निकला। द्विवेदीजी ने बात मान ली या नहीं, परन्तु मासिक पत्रिका और साप्ता-हिक पत्र के विवाद में साप्ताहिक की चौगुनी शक्ति थी, यह प्रत्यक्ष था। 'कलाप या प्रलाप' के उत्तर में इ…

नारायणजी पाण्डेय ने किसी पत्र में एक लेख छपवाया था जो केवल छापे की भूलों के ऊपर ही था। इससे मैंने उसका कोई उत्तर नहीं दिया। पता नहीं कि रूप-नारायणजी का लेख किसकी प्रेरणा से लिखा गया था। परन्तु मुझे अँतरे-कोने का संग्राम पसन्द नहीं है, न कभी रहा।

इसके कुछ महीने बाद मैं सन् १९१२ में कानपुर गया था। नारायणप्रसादजी निगम वकील और महाशय काशीनाथ के कहने से उनके साथ जुही द्विवेदीजी के स्थान पर गया। मुझे देखते ही द्विवेदीजी ने आड़े लिया और दो घण्टे तक मुझे अभ्युदय प्रेस का 'कर्मचारी' कह कर उस नाते से वाक्य-बाणों की वर्षा करते रहे, यद्यपि तब मैं विश्वविद्यालय में था। यह पत्रों की लड़ाई की करामात थी। मैं बराबर चुपचाप सुनता रहा। एक शब्द भी नहीं बोला। पत्रों के प्रबंधकों के द्वन्द्व से मुझे कुछ सम्बन्ध नहीं था, न उसमें कुछ उत्साह था। साहित्यिक बात या विचारों की व्याख्या तो द्विवेदीजी ने की नहीं थी। परन्तु मुझको प्रत्यक्ष रूप से देखने को मिला कि द्विवेदीजी को 'सरस्वती' के अधिकारियों से कितना प्रेम था, और वे उस विषय में कितना पक्षपात करते थे। वे मालवीय-उद्यमों का विरोध करते थे। साथ ही उनमें कितनी "कनौजि-याई" थी, यह भी अभूतपूर्व रूप से देखने में आयी! लौटते समय गाड़ी में मैंने अपने दोनों साथियों से उस दृश्य के विषय में पूछा। परन्तु वे इतने चकित और स्तब्ध थे कि मौन ही रहे। यही दोनों दर्शन मैंने द्विवेदीजी के किये थे।

यदि उनके पत्रों का संग्रह यथेष्ट रूप से छप जाय तो मैं समझूंगा कि "पत्रकार" की मर्यादा उनकी सरस्वती की कृपा से अमर हो जायगी और उनको कोई हिन्दी पढ़नेवाला कभी भूल नहीं सकेगा। "कूपर" की चिट्ठियाँ मैंने एफ० ए० में पढ़ी थीं। अँगरेजी में वह अनमोल हैं। द्विवेदीजी की निश्छल निर्मल आत्मा की तुष्टि करनी चाहिये, और वह उनके बेजोड़ पत्रों के प्रकाशन से ही हो सकती है। उन्निद्र रहना, जीवन के अन्तिम सत्रह वर्षों तक केवल समाचार-पत्र ही पढ़ना, दूध से अधिक न पचा सकना, आदि अनेक कष्ट उन्होंने अपने ही कर्मों से मोल लिये। बोलचाल और ब्रजभाषा में सच्ची कविता को स्थान देने के वह विरुद्ध नहीं थे। आज कल भी 'सरस्वती' उसी नीति को पकड़े है। परन्तु द्विवेदीजी का कहना कि उनका समय गद्य का युग था सत्य था, यद्यपि सन् १९१९ में 'उच्छ्वास' के छपने से वह युग समाप्त हो गया था। तब भी द्विवेदीजी का १८ वर्ष का सम्पादन काल (सन् १९०३ से १९२० तक) उनका 'युग' अवश्य कहा जा सकता है और उसकी पूरी प्रति-निधि मूर्त्ति की तपस्या उनके बहुमूल्य पत्रों में ही दर्शन देगी। इति।

चतुर्वेदीजी ने अपने अग्रलेख में सरकार का जो जनता से दूर रहने का प्रमाण दिया है उससे सर- कार की आँखें न खुलें, परन्तु जो द्विवेदी-दर्पण छपा तो हिन्दी गद्य अवश्य सरकार की बुद्धि की शुद्धि कर देगा। और उसका पुण्य पूज्य द्विवेदीजी को अब भी प्राप्त होगा। यह मेरा सत्तरवें वर्ष में सुझाव है। हिन्दी संसार ने अभी भी द्विवेदीजी की आत्मा के साथ न्याय नहीं किया। जन्मशती मनाने और पत्थर की प्रतिकृति खड़ी करने ही से उनकी तपस्या की ज्योति हिन्दी के उज्ज्वल भविष्य में चमकाई नहीं जा सकती। उनका 'ज्योतिर्मय जीवन' उनके पुण्य पत्रों ही से बरसेगा।



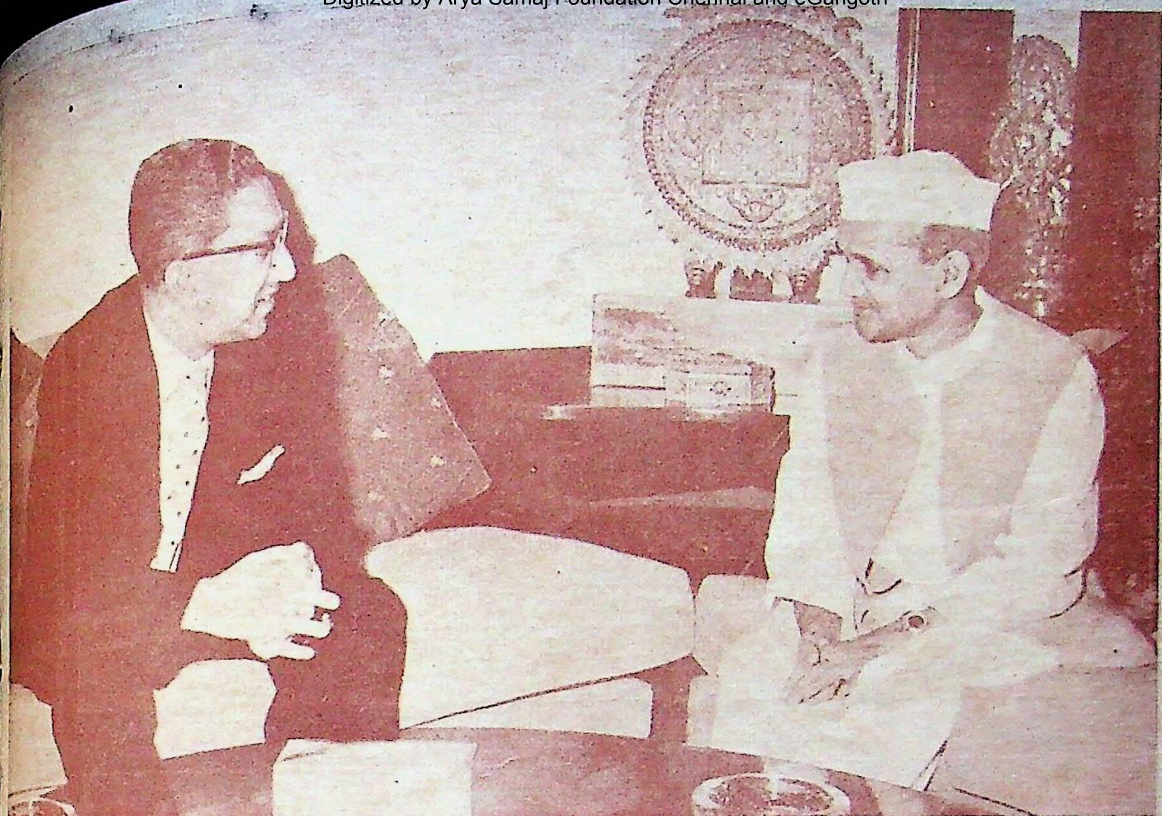
ग्रेट ब्रिटेन के आदि आर्य : द्रविड़ या ड्रुइद

डा० हेमचन्द्र जोशी डी० लिट्०

ब्रिटेन में ड्रुइदों (Druids) के समय की 'दारवेलगार्दन' नामक एक मूर्ति मिली है। इस मूर्ति पर योरोप के कुछ लोगों का इतना अधिक विश्वास और श्रद्धा है कि वे उस पर गाय, बैल, घोड़ा और रुपया चढ़ाने दूर दूर देशों से आते हैं। इन तीर्थ-यात्रियों की भीड़ इतनी अधिक होती है कि अप्रैल १९६३ को इन यात्रियों की संख्या पाँच-छः सौ हो गयी थी।

ब्रिटेन और आयरलैण्ड में कुछ दिनों पहिले तक मूर्ति पूजा रही है। वह आज के ब्रिटेन और आयरलैण्ड में "द्रविड़" धर्म के अवशेष के रूप में है। इसका अंतिम निर्णय न हो सका कि ये द्रविड़ भारत से वहाँ गये अथवा अन्य किसी स्थान से, किंतु कई विद्वान् कहते हैं कि इन 'द्रविड़ों' पर भारत के आर्यों की स्पष्ट छाप है। विद्वान बैरो ने लिखा है: "इसमें नाम मात्र भी शक नहीं कि ब्रिटेन के ड्रुइद, ब्राह्मण थे।" जनरल चार्ल्स वैलैक्सी ने कहा है कि "ये केल्टों के पुरोहित ड्रुइद पहले ब्राह्मणधर्मी थे।" फावर साहब ने अपनी पुस्तक "टेनेट्स एंड डौक्ट्रिन्स आफ द जैन्स एन्ड बुद्धिस्ट्स" में ड्रुइद धर्म की ब्राह्मण धर्म से तुलना की है। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह धर्म विशुद्ध आर्य विचारों का था। स्वयं द्रविड़ शब्द आर्य है। आर्य भाषा में द्रु 'पेड़' को कहते हैं। संस्कृत में द्रुम, द्रु पेड़ का नाम है। दारु शब्द भी इसी मूल से निकला है। हिमालय प्रदेश में प्रायः सब मंदिरों के आस-पास देवदारु के विशाल वृक्ष अपनी सघन छाया मंदिरों पर आज भी करते हैं। पीपल तथा बरगद की पूजा आज भी भारत में प्रचलित है। ब्रिटेन में द्रविड़ (ड्रुइद) भी पड़ों को पूंजते थे; किन्तु लेखक के विचार में आर्य भाषा का दृ धातु द्रु का मूल है। दृ 'डरना, आदर करना' भी द्रुविद का मूल हो सकता है; क्योंकि इस दृ धातु का अर्थ 'डरना, आदर करना' है। ब्रिटेन में आर्य धर्म फैलने से पहले भारतीय आर्य धर्म रहा होगा जिसके माननेवाले अपने इन द्रविड़ पुरोहितों का महान् आदर करते होंगे और उनसे सदा डरते होंगे, इस कारण उन्हें द्रुविद कहते थे। जो आर्य दक्षिण में ज्ञान फैलाने गये, वे प्रचारक, पुरोहित, वैद्य आदि थे। इस कारण उसका नाम द्रविड़ पड़ा। इसी कारण प्राचीन ब्रिटेन, फ्रांस आदि में ये द्रुविद कहलाए। जूलियस सीजर आदि तत्कालीन लोगों ने इन्हें अपनी आँखों देखा था। लेर्टिउस ने लिखा है कि इनके उपदेश का सार है: "देवताओं की आराधना करो, किसीको हानि न पहुँचाओ और निर्भय रहो।" ये द्रुविद पुनर्जीवन और आत्मा की अमरता के सिद्धान्त को बहुत महत्त्व देते थे, और मानते थे कि मनुष्य की आत्मा अपने कर्मों के अनुसार नाना जीवों के रूप में फिर-फिर जन्म लेती है। यह सिद्धान्त अस्पष्ट रूप में अनेक प्राचीन जातियों में पाया जाता था, पर भारतीय आर्यों ने इसे स्पष्ट ही गले लगा लिया। वैदिक काल से आज तक भारत में इसका दबदबा है। ईसा के छः सौ वर्ष पूर्व यूनान में जन्मान्तरवाद का सिद्धान्त पाइथागोरस (=पीथ-गुरु) ने बताया था। ऐसा अनुमान है कि उसे यह सिद्धान्त भारत से मिला था। द्रविड़ इस जन्मान्तरवाद को मानते थे; पर उन्होंने इसे पाइथागोरस से पहले ही अपना लिया था। साथ ही ये "सर्वं ब्रह्ममयं जगत्" का सिद्धान्त मानते थे। इनका विश्वास था कि ईश्वर सर्वत्र और सर्वव्यापी है, अणु-अणु उससे ओत-प्रोत है। उनके कुछ देवता भी सर्वतया भारतीय थ: जैसे ब्रुद, "बुद्ध" के लिए है। ईश्वर तो ईश्वर का प्राकृत रूप है। आग को ड्रुइद लोग दग्ध कहते थे। भारत में बनदेवी 'बनदेव उदारा' की पूजा अनन्त काल से चली आयी है। द्रविड़ इनके परम भक्त थे। इनकी भाषा में सूर्य के नाम संहनं और कृष्ण थे।

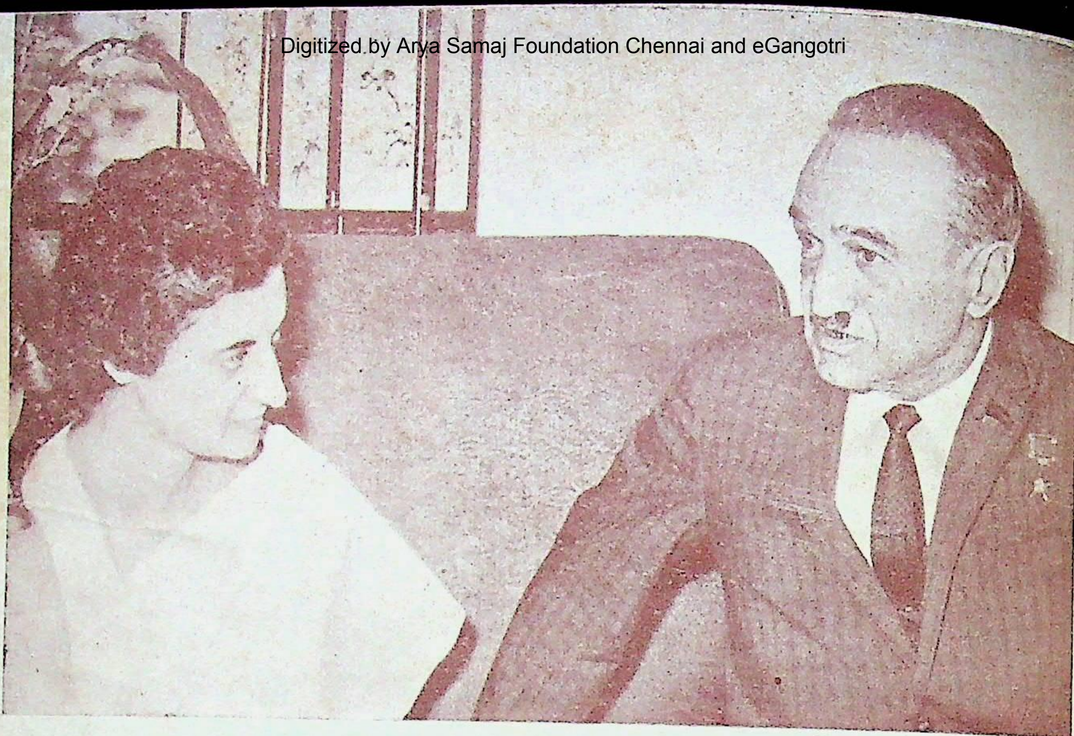
इनका ज्ञान अस्पष्ट होकर यूनान और इटली गया। प्राचीन पुस्तकों से पता चलता है कि इसने पाइथागोरस को मंत्र और ज्ञान दिया, और यह ज्ञान उपनिषदों का ब्राह्मण-ज्ञान ही था। इस धर्म के बारे में यूनानी पंडित हिमरिउस ने लिखा: "एक ड्रुइद गुरु बात करने में सदा आनन्द और मित्रता की मूर्ति था, बड़े बड़े काम जल्दी से जल्दी निबटाने में घोर परिश्रमी था। संकट काल में तुरंत उपाय निकाल लेता और भविष्य के संकटों को निवारने के लिए बड़ा दूरदर्शी था। यह ज्ञान का इच्छुक था। भाग्य पर बहुत कम भरोसा रखता और कर्मवीर एवं धर्मवीर था।" यह वर्णन पढ़कर आँखों के आगे प्राचीन भारत के उन ज्ञानियों के साथ ही संसार के कारबार में



नेपाल के तत्रभवान महाराज गत मास दिल्ली पधारे और प्रधान मंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री से भी मिले।



राष्ट्रीय खेल परिषद की २४वीं बैठक गत मास महाराज पटियाला की अध्यक्षता में दिल्ली में हुई।



रूस के उप
श्री मिको
स्व० प्रधान
के स्वर्गवास
श्रीमती इं
गांधी से
समवेदना
करते

गत मास प्र
में गंगा-यमु
के संगम
स्व० नेहरू
की अस्थियों
विसर्जन
पौत्र श्री रा
और श्री सं
ने किया

जनक, कृष्ण, कौटिल्य आदि के रूप नाचने लगते हैं ब्रह्मज्ञानी और लोक संग्रह में व्यस्त कर्मयोगी थे।

भारत में भी जो पक्के ज्ञानी थे, आर्य विचारों का प्रचार करने दक्षिण गए थे। वे इसीलिये द्रविड़ कहलाये। लोग केल्ट जाति के नेता, ज्ञानी, पुरोहित, न्याया- और वैद्य थे। भारत के आर्य जो दक्षिण, मलाया, आदि गये वे भी ज्ञानी थे। आज के भीरु हिंदुओं वीरों की उपमा नाम को भी नहीं दी जा सकती। और आध्यात्मिक और मानसिक दुर्बलता के कारण स्थान में भी जान के लाले पड़े रहते हैं। किंतु ये ज्ञान के अमृत में मग्न घोर हिंसक जातियों में घुसकर सभ्य बनाने का बीड़ा उठाने में परमानंद का अनुभव थे। यूरोप के द्रुविदों ने यूनानियों से भी पहले वहाँ दिया जलाया, और भारतीय द्रविड़ों ने ज्ञान और की मशाल हाथ में लेकर पूर्वी एशिया और तक में मानवता की दिव्य ज्योति फैलायी। दूसरे से हजारों मील की दूरी पर और एक को नाम से भी न जाननेवाले इन आर्य द्रविड़ और ज्ञानियों के दो भिन्न-भिन्न समूहों की जंगल और विश्व के दीनों, दरिद्रों और दुःखियों और सुख का प्रचार करने की यह एकांत जिस वीरता और निर्भयता के उत्साह की लहरों हिंसक और असभ्य जातियों के बीच ले जाती उसका वर्णन तो केवल गीता में मिलता है कि संग्रह के लिये कर्मयोगी सुख-दुःख, लाभ-हानि, -मरण, सबको एक सा समझते हैं, इससे कर्म योगी नहीं, काम करते जाते हैं, फल की परवाह नहीं। द्रविड़ों ने ऐसा ही किया और इन्हें सर्वत्र पूर्ण मिली। इन विद्वान् कर्मयोगियों द्वारा विश्व ने संस्कृति बहुत आगे बढ़ायी।

द्रविड़ों की भाषा आर्य थी, यह सब मानते हैं। की जानकारी के लिये इनके कुछ शब्द दिय जाते वैदिक तथा संस्कृत भाषाओं से मिलते हैं : दिअ (देव), (मातृ), भ्रातैर (भ्रातर), वतेस (वैद्यस्), टर), बिम (भूमि), दोरस् (द्वारस्), सकर्द (सुक्रतु यानी), मैंहने (महान्), मिस (मास), रिओध (राजा) (ज्ञान, घुटना), नओइ (नाव), दि (दि+न), बिम), मेआधोन (मध्य), रूअध (रुधि+र), लोक), मु (भु), तू (त्वं), केअल (कैलास, स्वर्ग) सन+ (संस्कृत)। अंक देखिये आजोन one, एक, दा (द्वौ), त्रि (त्रय), चैथर (चत्वार), सथोइग (पंच); (संस्कृत प यूरोपियन भाषाओं में कहीं कहीं क हो जाता है) सिआ (षट्) सेआस्द (सप्त), ओख्द (अष्ट), नोई (नव), देइख, (दस) आदि आदि।

द्रविड़ों की शिक्षा प्रणाली भारतीय आर्य ढंग की थी। उनके गुरुकुल जंगलों में होते थे, जहाँ पूरे बीस साल की पढ़ाई होती थी। उन्होंने अपने अक्षरों की लिपि बना रखी थी पर पढ़ाई सदा मौखिक होती थी, ज्ञान श्रुति द्वारा ही बताया जाता था। भारत में वेद इसलिये श्रुति कहे जाते हैं और वे सदा मुख द्वारा रटाये जाते थे। यही रिवाज द्रुविदों में प्रचलित था। प्राचीन लेखकों ने जो द्रुविदों के संपर्क में आये थे, बताया है कि ब्रिटन, फ्रांस, आयरलैंड 'आर्य भूमि' आदि में 'द्रुविदों' के बड़े बड़े गुरुकुल थे। इनकी शिक्षा पूर्ण होने से पहले छात्रों को कम से कम बीस हजार पद अपने शास्त्रों के याद करने पड़ते थे। इससे यह पता चलता है कि द्रुविदों का साहित्य भी विशाल था। कहा जाता है कि इनकी अनगिनत पुस्तकें थीं। कहा जाता है कि नूमा नाम के एक द्रुविद के साथ हजारों ग्रंथ दफना दिये गये। इनकी तीन तरह की शिक्षा तो स्पष्ट है। वैद्य, सूत और द्रुविद का पद प्राप्त करने के लिये अलग अलग प्रकार की उपयुक्त शिक्षा दी जाती थी। विशेष शिक्षा के अधिकारी छात्र, गुरु के समीप रहने के बाद अपने उच्च आचरण के कारण चुन लिये जाते थे और तब उन्हें दीक्षा दी जाती थी; क्योंकि द्रुविद जानते थे कि ज्ञान शक्ति है और इसका दुरुपयोग आजकल के विज्ञान के दुरुपयोग की भाँति लोक-कल्याण के स्थान पर विश्व का संहार कर सकता है। भारतीय आर्य भी यह सत्य जानते और मानते थे। वे शिक्षा में पहला स्थान चरित्र-निर्माण को देते थे।

यह उन वीर आर्यों की गाथा है जो विश्व को सभ्य बना गये हैं और जिन्होंने सारा संसार हाथ में आँवले की तरह बहुत छोटा और अपना चरागाह समझा। उन तेजस्वी और पराक्रमी आर्य संतानों से हमें बहुत सीखना है। वे चरित्र के धनी थे। इनके बारे में यह उक्ति सत्य होती है कि ये तप के धनी और धन के दरिद्र थे। इनके इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण हैं कि जीवन हँसते खेलते बलिवेदी पर चढ़ा दिया पर इन्होंने मानवता का प्रेम या कल्याण का मार्ग न छोड़ा। उन्हींकी संतान हम आज दुराचार के दलदल में डूबकर अपने देश की दुर्दशा करने में अग्रसर हो रहे हैं। क्या हम अपने पूर्वजों से कुछ भी सीखेंगे? इनका अनुकरण करने पर हम भारत को महा राष्ट्र बना सकते हैं। 'तेजस्विनावधीतमस्तु'।



किरातार्जुनीयम् का राजनीतिशास्त्र

डॉ० विश्वनाथप्रसाद वर्मा, अध्यक्ष, राजनीति विभाग, पटना विश्वविद्यालय

भारवि संस्कृत साहित्य के एक महान कवि हैं। अपने "अर्थगौरव" के लिए वे प्रसिद्ध हैं। कालिदास के नाम के साथ ही उनके नाम का उल्लेख "ऐहोल शिलालेख" (६३४ ईसवी) में पाया जाता है। काशिकावृत्ति में भी उनका उल्लेख है। इतिहास-लेखक कीथ ने ५५० ईसवी के लगभग उनका काल माना है। उनका किरातार्जुनीय महाकाव्य महाभारत के आधार पर विरचित है। इस काव्य के प्रथम, द्वितीय और तृतीय सर्ग में राजनीतिक विचारों का तात्त्विक विवेचन है। इनका मुख्य विचारणीय विषय है राजनीति का धर्मनीति से सम्बन्ध अभिज्ञापन।

प्रथम सर्ग के प्रारंभ में इस प्रकार का वर्णन है कि जिस गुप्तचर को युधिष्ठिर ने दुर्योधन के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए भेजा था, वह लौटकर आ गया है। वह बड़ी उदात्त भाषा में दुर्योधन की नीति और शासन-चातुर्य की प्रशंसा करता है। राजनीतिक दृष्टि से इस वृत्तांत में अनेक उल्लेखनीय बातें हैं। भूपतिचरित को उसने 'निसर्गदुर्बोध' कहा है। इससे मालूम पड़ता है कि उस समय राजनीति को एक कठिन शास्त्र समझा जाता था। राजा को चारचक्षुष कहा है, अर्थात् गुप्तचर ही राजाओं की आँख हैं। जो मित्रों से कल्याण की बातें नहीं सुनता उसे "किंप्रभु" कहा है। नृप और अमात्य में अनुकूलता रहने पर ही सर्वसंपद की प्राप्ति होती है। राजनीति के लिये 'नयवर्त्म' शब्द का प्रयोग बताता है कि इसकी साधनात्मकता[1] और धर्मशीलता[2] पर बल दिया गया है। गुप्तचर युधिष्ठिर को बताता है कि दुर्योधन जुए के छल से विजित पृथ्वी को नीति से जीतना चाहता है। इस प्रकार "छद्मजय" और "नयजय" में पार्थक्य प्रायः उसी अभिप्राय का बोध कराता है, जिसे रूसो ने अपने प्रसिद्ध वाक्य में व्यक्त किया है कि केवल शक्ति से अधिकार की प्राप्ति नहीं हो सकती। दुर्योधन अपने शासन को नययुक्त और पौरुषयुक्त बनाना चाहता है। इसी कारण उसने क्रोधकामादि षड्वर्ग का परि[...] किया है। आचार्य कौटिल्य ने भी राजा को इन्द्रि[...] का पूर्ण उपदेश दिया है। दुर्योधन को अस्ततन्द्री, अ[...] सर्वदा क्रियाशील बताया गया है। कौटिल्य के अर्थ[...] और धम्मपद में भी अप्रमाद का उल्लेख है। गुप्तचर[...] बताया है कि दुर्योधन इस प्रकार व्यवहार करता है [...] उसके बन्धु ही अधिकारी हैं। अर्थशास्त्र में भी कहा[...] कि "सहायसाध्यं राजत्वम्"। दुर्योधन धर्म, अर्थ [...] काम का समपक्षपात से आराधन करता है, अतएव [...] विरोध नहीं है। उसकी साम की नीति सर्वदा [...] सहित व्यवहार में आती है। दंडसमता दुर्योधन के रा[...] की बड़ी विशषता है। वह वैयक्तिक लाभ के भाव[...] आक्रांत होकर दंड-विधान नहीं करता, अपितु स्व[...] पालन ही उसका मुख्य उद्देश्य है। "गरूपदिष्टेन [...] सुतेऽपि वा निहन्ति दण्डेन स धर्मविप्लवम्।"[1] शंका[...] होकर सर्वत्र रक्षकों की नियुक्ति करने के बाद भी [...] ऐसा व्यवहार करता है मानों वह अशंकित हो। [...] की वृद्धि के लिए कृत्रिम जल-ग्रहण के उपायों [...] व्यवस्था उस समय थी, ऐसा किरातार्जुनीय के प्र[...] सर्ग से मालूम पड़ता है। उसकी सेना (धनुर्[...] सर्वदा अपने प्राणों की बाजी लगाकर दुर्योधन [...] रक्षा के लिए तैयार है। वह दूसरों की नीति का [...] लगा लेता है, किन्तु उसकी नीति का पता नहीं [...] पाता। कभी भी धनुष उठाने की अथवा क्रो[...] अपने आनन (मुख) को विकृत करने की दुर्योधन [...] आवश्यकता नहीं होती है। परंपरागत वैदिक यज्ञ[...] का भी वह अनुष्ठान करता है। इस प्रकार दु[...] के यशस्वी शासनकाल का वर्णन कर गुप्तचर ने यु[...]ष्ठिर से, जो अपने भाइयों और द्रौपदी के साथ [...] वर्ष का वनवास कर रहे थे, दुर्योधन के प्रति [...] प्रत्युत्तर देने का निवेदन किया।

युधिष्ठिर ने गुप्तचर की बातों का वर्णन जब [...] परिवार के लोगों से किया, तब विकल होकर द्रौप[...]

१—साधनों और उनके परस्पर संबंधों का उपकरण संबंधी तथा व्यवहारवादी विज्ञान (Instrumentalisstic and pragmatic science of means and relationships)

२—धर्मशीलता—राजनीति का उद्देश्य नय नीति की ओर आना है। अर्थात् केवल उपयोगिता का परित्याग कर राजनीति को श्रेयानुमोदित बनना है।

१. किरातार्जुनीयम्, १।१३।

युद्ध करने को कहा। अपनी विचारधारा के समर्थन में उन्होंने शक्तिवाद की युक्तियों का आश्रय लिया। जो मायावियों के साथ मायापूर्ण नीति का प्रयोग नहीं करते वे शीघ्र अवश्य ही नष्ट हो जाते हैं--यही उसकी युक्ति रही।

द्रौपदी ने कहा :--

व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधानसंवृतांगान्निशिता इवेषवः।
(किरात०, १।३०)

जो क्रोध कर सकता है और सफलता प्राप्त कर सकता है, उससे सभी डरते हैं किंतु जो क्रोधशून्य है उसकी मैत्री और उसकी शत्रुता निरर्थक है :--

अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना न जातहार्देन न विद्विषादरः॥ *(Sanskrit couplet as printed:)*

(किरात०, १।३३)

बड़े ओजस्वी शब्दों में द्रौपदी ने युधिष्ठिर को शान्ति की नीति का परित्याग करने को कहा :--

विहाय शान्तिं नृपधाम तत्पुनः प्रसीद संधेहि वधाय विद्विषाम्
व्रजन्ति शत्रूनवधूय निःस्पृहा शमेन सिद्धिं मुनयो न भूभृतः॥
(किरात०, १।४२)

शान्ति की नीति द्रौपदी के अनुसार साधुओं और संन्यासियों के लिये उपयुक्त है, न कि धनुर्धारी क्षत्रियों के लिये। इस कारण द्रौपदी ने कहा कि तेरह वर्ष की अवधि तक वनवास भोगने की आवश्यकता नहीं है :--

अभिमानधनस्य गत्वरैरसुभिः स्थास्नु यशश्चिचीषतः।

समयपरिरक्षणं क्षमं ते निकृतिपरेषु परेषु भूरिधाम्नः।
अरयो हि विजयार्थिनः क्षितीशा विदधति सोपधि संधिदूषणानि॥
(किरात०, १।४५)

इस प्रकार स्पष्ट है कि द्रौपदी शक्तिवादिनी राजनीति का, जिसे जर्मन भाषा में "माख्टपालिटीक" कहते हैं, समर्थन करती है। अनुबंध में कोई-न-कोई दूषण लगाकर विजय की इच्छा करनेवाला नृप अपना अभियोग व्यक्त करता है, अर्थात् वह प्रतिज्ञा से बद्ध नहीं होता। अतः, उसके अनुसार वनवास की अवधि तक ठहरना युक्तिसंगत नहीं है। द्रौपदी के व्याख्यान में राजनैतिक यथार्थवाद का तीव्र समर्थन है।

द्वितीय सर्ग में भीम भी इसी शक्तिवादिनी राजनीति का समर्थन करते हैं। भीम के अनुसार राजनीति एक कठिन और गम्भीर शास्त्र है और धैर्य से ही इसका सम्यक् बोध हो सकता है। भीम का कथन है कि जो नृप आलस्य-युक्त हो, शत्रुओं की बढ़ती हुई शक्ति की उपेक्षा करता हो, उसको राज्य-लक्ष्मी छोड़ देती है। शत्रुओं के उदय और पतन पर ध्यान रखना आवश्यक है। अनुभवी पुरुष केवल तभी शांत रहता है, जब शत्रु को शीघ्र ही भावी और बड़े खतरे की आशंका हो और इसके विपरीत स्वयं उसका अपना भविष्य निष्कंटक प्रतीत होता हो, अन्यथा वह प्रत्युपाय और प्रतीकार करता है। शक्ति की साधना करनेवाले ही सफलता प्राप्त करते हैं। प्रभव के दो आधार हैं--कोष और दंड। राजनीति को पंचांगविनिर्णय[१] कहा है; अर्थात् इसके पाँच अंग हैं। पंचांगविनिर्णय को कामंदक ने अपने नीतिसार ग्रंथ में यों स्पष्ट किया है :--

(क) कर्मणामारम्भोपायः--अर्थात् कार्य के आरंभ करने का उपाय।

(ख) पुरुषद्रव्यसंपत्--अर्थात् पुरुष (जनता अथवा सेना) और द्रव्य की प्राप्ति।

(ग) देशकालविभाग--कार्यारंभ का उचित समय और स्थान प्राप्त करना।

(घ) विनिपातप्रतीकारः--आगामी भयों के विरुद्ध तैयारी करना।

(ङ) कार्यसिद्धिः--पूर्ण कृतकार्यता।

भीम आत्मपौरुष का समर्थन करते हैं। इससे समस्त भयों का विनाश होता है। विक्रमहीन को विपत्ति ग्रस्त करती है। हतगौरव मनुष्य राज्यलक्ष्मी को नहीं प्राप्त कर सकता है। विषाद से समृद्धि की प्राप्ति नहीं हो सकती। भीम को इस बात का संदेह है कि कुटिलवृत्ति दुर्योधन अवधि के अनंतर भी राज्य नहीं छोड़ेगा। राज्य को विजय के द्वारा प्राप्त करना चाहिए। यह कोई दान से प्राप्त करने की वस्तु नहीं है। पराक्रमी व्यक्ति दूसरों के द्वारा दी गयी भूति को नहीं चाहता :--"न महानिच्छति भूतिमन्यतः।" युद्ध के समर्थन में भीम ने कहा है कि लक्ष्मी की प्राप्ति तो इसका आनुषंगिक फल है। युद्ध का मुख्य अभिप्राय है कि क्षणभंगुर शरीर से शाश्वत यश

१--किरातार्जुनीयम्, २।१२ : कृतपंचांगविनिर्णयो नयः।

की प्राप्ति होती है।[१] अपमानयुक्त होकर जीने से मृत्यु भली है। अन्यों की उन्नति का न सहन करना ही राजनीतिक दृष्टि से महान् पुरुषों की प्रकृति है। अतएव प्रमाद को छोड़कर युद्ध करना ही भीम के अनुसार परम कर्त्तव्य है :--

कुरु तन्मतिमेव विक्रमे नृप निर्धूय तमः प्रमादजम्।
ध्रुवमेतदवेहि विद्विषां त्वदनुत्साहहता विपत्तयः॥

(किरात०, २।३०)

गुप्तचर, द्रौपदी और भीम के द्वारा युद्ध करने की नीति का ही समर्थन सुनकर युधिष्ठिर ने भीम को शांत करना चाहा। यधिष्ठिर शीघ्रता से कार्य नहीं करना चाहते हैं :--

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।
वृणुते हि विमृश्यकारिणम् गुणलुब्धाः स्वयमेव संपदः।

(किरात०, २।३०)

युधिष्ठिर धैर्य और विवेक से काम लेना चाहते हैं। पराक्रम की संसिद्धि तभी होती है जब नीति-मार्ग से सफलता मिलती है :--"प्रशमाभरणं पराक्रमः स नयापादितसिद्धिभूषणः"।[२] कार्याकार्यविकल्प में शास्त्र के अनुसार ही व्यवहार करना चाहिए। यदि महात्माओं के मार्ग में चलते हुए असफलता भी मिले, तो भी वह संग्रहणीय है। विजय की इच्छा रखनेवाले पुरुष अपनी वृत्तियों का संयम कर, अपनी शक्तियों का सम्यक् कार्य में उपयोग करते हैं। रोषमय तिमिर का निराकरण, उदय चाहनेवालों के लिये आवश्यक है। बलवान् भी अगर कोप से उत्पन्न मोह का निवारण नहीं करता है तो नष्ट हो जाता है। युधिष्ठिर के अनुसार, समय को देखते हुए कभी क्षमा और कभी तेज की नीति का व्यवहार होना चाहिए :-- "समवृत्तिरुपैति मार्दवं समये यश्च तनोति तिग्मताम्।"[३] दुष्टेन्द्रियों से युक्त मनुष्य कदापि सफलता नहीं प्राप्त कर सकता है। अतएव युधिष्ठिर भीम को असामयिक क्षोभ प्रकट करने से रोकते हैं। जो आभ्यंतर रिपुओं का दमन नहीं करते वे निंदा को प्राप्त करते हैं। अतएव युधिष्ठिर भीम को संयम का आदेश देते हैं, अन्यथा क्रोध उन्हें नीतिफल की प्राप्ति से वंचित कर देगा। क्रोध से अनिष्ट की आशंका है। तितिक्षा के समान साधन नहीं हैं। युधिष्ठिर का विश्वास है कि वृष्णि लोग कदापि दुर्योधन की सर्वदा प्रार्थना नहीं करेंगे। वृष्णियों के मित्रगण और अन्य नृपगण, जो उनकी इच्छा के प्रतिकूल कार्य करना चाहते हैं, दुर्योधन का समर्थन उसके निमित्त नहीं करते; अपितु अपने कार्यसाधन के लिए ही करते हैं। युधिष्ठिर केवल धर्मवादी राजनीति का ही समर्थन नहीं करते, अपितु उनकी बातों में वास्तविकता का भी आभास है। यह उनके इसी कथन से स्पष्ट हो जाता है कि वृष्णि लोग और इनके मित्रगण हमारे (युधिष्ठिर के) साथ हैं, किन्तु यदि उत्तेजित होकर हम अभी युद्ध की घोषणा कर देते हैं तो, अवधि के पूर्व कार्य करने से, सभी हमारे शत्रु हो जायेंगे। यह निश्चित है कि दुर्योधन अभिमानी है और वह राजाओं का अपमान करेगा। यदि साधारण मनुष्य अपमान और अधःक्रिया को सहन करता तो राजाओं के लिए तो वह एकदम असह्य है। विभूति और शक्ति की प्राप्ति निस्संदेह दुर्योधन में अभिमान का संचार करेगी और वह विनय को खो बैठेगा। मद से समुद्धत नृप मूढ़ हो जाता है, और नयहीन राजा से जनता को अपराग हो जाता है। धैर्य और सहिष्णुता के सहारे बड़े शत्रु का भी विनाश सहज हो जाता है। जनता का अपराग बड़ा भयंकर है। अमात्यों और दुर्ग के प्रकोप से उत्पन्न वैर राजाओं का नाश कर डालता है। शिष्टाचार का उल्लंघन करनेवाले शत्रु की उपेक्षा करनी चाहिए, क्योंकि उसके आंतरिक छिद्र स्वयं उसका विनाश कर डालते हैं। नृप की लघुवृत्ति (ओछेपन) से वह और अंतर्गत भेद उत्पन्न होते हैं और उनके कारण पार्श्ववर्ती राजा लोग उसके मंडल को हर लेते हैं।

युधिष्ठिर इस प्रकार शांतिवाद, धैर्य आदि की व्याख्या कर ही रहे थे कि उसी समय व्यास आ गये। उन्होंने कहा कि कर्ण आदि की संगति करने के कारण दुर्योधन को सफलता नहीं मिल सकती। युधिष्ठिर के समान शीलवान् पुरुष को छल से विध्वस्त करनेवाले को विपत्तिग्रस्त होना पड़ेगा। अतएव विजय की आशा

१--शतपथ ब्राह्मण में भी युद्ध का समर्थन करते हुए कहा है :--ब्रह्म वै ब्राह्मणः क्षत्रं राजन्यस्तदस्य ब्रह्मणा च क्षत्रेण चोभयतः श्री परिगृहीता भवति। युद्धं वै राजन्यस्य वीर्यम्।

(शतपथ १३।१।५।३, ६)

२--किरातार्जुनीयम् २।३२।

३--किरातार्जुनीयम् २।३८।

निमित युधिष्ठिर को शक्तिसंचय करने का व्यास ने दिया :—

धरित्री तव विक्रमेण ज्यायांश्च वीर्यास्त्रबलैर्विपक्षः ।
प्रकर्षाय विधिर्विधेयः प्रकर्षतन्त्रा हि रणे जयश्रीः ॥

(किरात०, ३।१७)

वीर्यविधूत भीष्म, कालाग्नि के समान द्रोण और मृत्यु भी आतंकित करनेवाले कर्ण कौरवों के पक्ष में हैं, उनका प्रतिकार करने के लिये व्यास अर्जुन को विद्या देते हैं जिसके सहारे तपस्या कर अर्जुन प्रचंड प्राप्त कर सकेंगे। उस योगविद्या को प्राप्त कर को बोध हुआ। शीघ्र ही यक्ष अर्जुन को इंद्रकील पर तपस्या के लिए ले गया। अर्जुन की उग्र तपस्या आतंकित हो इंद्रकील के निवासी गुह्यकों ने इंद्र की प्रार्थना की। इंद्र के द्वारा भेजी गयी अप्सराओं के सारे प्रयत्न अर्जुन को तपस्या से नहीं डिगा सके। शीघ्र इंद्र स्वयं उपस्थित होता है। अर्जुन ने कहा कि तपस्या और धनुर्धारण नितांत विरोधी वस्तुएँ नहीं हैं। लक्षण क्षत्रिय गृहस्थ का कार्य है—

वंशलक्ष्मीमनुद्धृत्य समुच्छेदन विद्विषाम् ।
निर्वाणमपि मन्ये ह्यन्तरायं जयश्रियः ॥

(किरात०, ११।६९)

अर्जुन को शिव की उपासना करने का उपदेश इंद्र दिया। किरातार्जुनीयम् महाकाव्य के अंत के तीन सर्गों कवि ने किरातरूपधारी शिव और अर्जुन के युद्ध का किया है। अन्त में किरात ने अपना असली रूप प्रकट किया और अर्जुन ने उनकी प्रार्थना की। प्रसन्न होकर शिव और लोकपालों ने अर्जुन को विविध अस्त्र दिये :—"विजयि विविधास्त्रं लोकपाला वितेरुः।"

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि राजनीति तत्त्व में इस महाकाव्य की दो विशिष्ट देन हैं :—(१) द्रौपदी और भीम की उदात्त शब्दावली के बावजूद युधिष्ठिर अधर्म का अवलम्बन नहीं करना चाहते। इस प्रकार की विचारधारा राजनीति को एषणावाद के दलदल से हटाकर प्रशस्त संस्कृति की वाहिनी बनाती है। (२) शक्ति प्राप्त करने के लिये तपस्या आवश्यक है—आर्य सभ्यता और संस्कृति के आधारभूत इस सिद्धांत का यहाँ सर्वतोभावेन परिपूर्ण समर्थन है। राम, परशुराम, भीष्म आदि विशिष्ट शक्तिधारी महापुरुष तपस्या के प्रभाव से ही अविजित रहे। इस महाकाव्य में भी कहा है :—

अनेन योगेन विवृद्धतेजा निजां परस्मै पदवीमयच्छन्।
समाचराचारमुपात्तशस्त्रो जपोपवासाभिषवैर्मुनीनाम्॥

(किरात०, ३।२८)

साधना और अभ्यास के सहारे शक्ति का पूर्ण केन्द्रीकरण और अधर्म के नाश में अनासक्त होकर शक्ति का प्रयोग—इस महान् संदेश का इसमें समर्थन है। तपस्या ही विजय देती है। अतएव, कौरवों को जीतने के लिए अर्जुन ने विकट तपस्या की। आधुनिक युग में भी दयानंद, तिलक, अरविंद और महात्मा गांधी ने शक्ति को तपःप्रसूत बताया है।



जन-सहानुभूति का साहित्यिक सन्दर्भ

श्री कुबेरनाथ राय

"मैं उनका कवि हूँ जो कर्म-व्यस्त हैं। मेरी कविता तपती धूप की, काम की, और पसीने की है। भाई, विलास-विवश हृदय और सपनों के लिए मेरे पास समय नहीं।"
—प्रेमेन्द्र मित्र ('आमि कवि...

जिस प्रकार वस्तुवाद की कई श्रेणियाँ हैं उसी भाँति यथार्थ-भावबोध की भी अनेक दिशाएँ हैं। आज के साहित्य में यथार्थ-भावबोध को हम सीमित अर्थ में ही ग्रहण करते हैं। इसका मुख्य विषय है—सामाजिक न्याय-अन्याय, आर्थिक दावा एवं इससे उत्पन्न संघर्ष, उल्लास, निराशा एवं घुटन। इसे हम 'सामूहिक यथार्थवाद' कह सकते हैं।* यथार्थवाद तो साहित्य के जन्म के साथ ही चलता है। रामायण, महाभारत, शकुन्तला और शेक्सपियर, ग्येटे में भी वह विद्यमान है। पर प्राचीन साहित्य में इसका उद्देश्य था चरित्र चित्रण या रसनिष्पत्ति में सहायता देना। यह सदैव पृष्ठ-भूमि में रहता था। 'रस' या 'चरित्र' को गाढ़ा करने के लिए अथवा भाव-विश्राम के लिए ही प्रयुक्त होता था। यह विष्कम्भक-प्रवेशक मात्र था, अधिकारिक कथा नहीं। परन्तु आज इसके महत्व में परिवर्त्तन हुआ है। २०वीं शती का साहित्य धर्महीन यथार्थवादी साहित्य है। आज यह गौण या सहायक भावबोध मात्र नहीं। यही केन्द्र की अनुभूति बन गया है। यह स्वतंत्र विषय बनकर आ रहा है तथा इसने रूमानी संस्कारों या रस संस्कारों के समकक्ष अपनी सत्ता घोषित कर दी है। विशेषतः उपन्यास एवं कहानी का तो जन्म ही यथार्थवाद की अभिव्यंजना के लिए हुआ है। जिस प्रकार यथार्थवाद शेक्सपियर और कालिदास में पृष्ठ-भूमि में 'भाव-विश्राम' के लिए आता है, उसी प्रकार आज यह रूमानी और रस-संस्कारों को अपनी टेकनीक का अंग बनाकर पृष्ठ-भूमि में रखकर चल रहा है। उदाहरण के लिए ताराशंकर बनर्जी या फणी-श्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यासों में रस-संस्कार और चरित्र-चित्रण यथार्थ चित्र के बोध को और स्निग्ध और प्र... करने के लिए आते हैं।

(२)

भारतीय साहित्य में यथार्थवाद की सशक्त ... स्वतन्त्र सत्ता की स्थापना के पीछे तीन कारण हैं: राष्ट्रीय संघर्ष का आर्थिक पहलू, वर्ग-संघर्ष और मध्यवर्गी व्यक्ति का आत्मसंकोचन। राष्ट्रीय संघर्ष का आर्थिक प... नील-आन्दोलन, चम्पारन-सत्याग्रह, स्वदेशी आन्दोलन, खादी, नमक आन्दोलन, बारदोली सत्याग्रह आदि ... साहित्य में इसकी प्रथम अभिव्यक्ति भारतेन्दु की रच... (भारत दुर्दशा) एवं बंगला नाटक 'नील दर्पण' (... देवी) ने की। वर्ग संघर्ष राष्ट्र के भीतर दो वर्गों ... आपसी संघर्ष है। यह शोषक-शोषित संघर्ष ठीक ... से तो बाद में स्पष्ट होता है पर अन्तर्हित असंतोष ... सूत्रपात राजा राममोहन राय के समय से ही हो गया था। ... खेतिहर एवं नील-कृषकों का संघर्ष सर्वप्रथम बंगाल में ... अश्विनीकुमार दत्त के द्वारा प्रारम्भ हुआ। उस स... राममोहन राय ने कवीन्द्र रवीन्द्र के बाबा प्रिन्स द्वारका-नाथ के साथ अँगरेज जमींदारों की ओर से गवाही दी ... फिर भी राममोहन राय किसानों की दुरवस्था देखकर ... दुःखी रहते थे। उन्होंने हाउस ऑव कामन्स के सम्मुख भारतीय भूमि व्यवस्था के सम्बन्ध में एक 'दलील' ... की थी। दलील अब तक अप्रकाशित है। १९६... शरदकालीन अंक में बंगला प्रगतिशील पत्र 'उत्तर...' ने उसक एक अंश प्रकाशित किया है। एक जगह पर ... की रैयतवाड़ी और बंगाल की जमींदारी प्रथा के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए राय महाशय कहते हैं: "दोनों प्रथाओं में किसान की अवस्था अतिशोचनीय है। एक ओर तो जमींदारों की तृष्णा और रोबदाब, दूसरी ओर अमीन या अन्य सरकारी कर्मचारियों का षड्... मुझे बंगाल के देहातों की दशा देखकर अत्यन्त दुःख ...

*यहाँ हॉवर्ड फास्ट या अन्य वामपंथी आलोचकों द्वारा प्रचारित 'सोशलिस्ट यथार्थवाद' शब्द को जान-बूझकर व्यवहृत नहीं कर रहे हैं, क्योंकि इस 'सोशलिस्ट यथार्थवाद' में संघर्ष, उल्लास एवं निराशा की एक निश्चित विधा है जो कम्यूनिस्ट फार्मूले से बँधी है, जो इतिहास को एक लेनिन-प्रचारित दृष्टिभंगी से देखती है। यहाँपर हम 'सामूहिक यथार्थवाद' शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में कर रहे हैं। लेख पढ़ने से ही यह स्पष्ट हो जायगा।

र भी खजाना वसूलने में सरकारी प्रबन्ध था जाता र किसान को कोई संरक्षण नहीं। फसल अच्छी ने मालगुजारी बढ़ गयी। सारा अन्न बेच कर वह र का खजाना चुकाता है। बीज के लिए या बाल-ों के लिए तो कुछ बचता ही नहीं।"

निलहे साहबों के खिलाफ दूसरा आन्दोलन गांधी के द्वारा चम्पारन में छिड़ा, जिसमें देशरत्न राजेन्द्र जैसा व्यक्ति भारतीय राजनीति में प्रविष्ट हुआ। ने सुप्त चेतना को जगा दिया। जगा सिंह सोया नहीं। उसके डेढ़ या दो दशक बाद बड़े धूम उत्तर प्रदेश में जवाहरलाल, गौरीशंकर मिश्र, बाबा नन्द, पुरुषोत्तमदास टंडन, आचार्य नरेन्द्र देव आदि तथा बिहार में स्वामी सहजानन्द सरस्वती ने एवं में प्रोफेसर रंगा ने किसान आन्दोलन का संचा-प्रारम्भ किया, यद्यपि श्री रंगा ने अपना 'रंग' कई र बदला।*

वर्ग संघर्ष के तीन केन्द्र हैं: भूमि, पूँजी और समाज। की चर्चा हम कर चुके हैं। सामाजिक स्तर पर यह संघर्ष हरिजन आन्दोलन के रूप में चला। इसका स्वामी दयानंद ने किया। गांधी ने इसे नेतृत्व । सन्तराम का 'जाति-पाँति तोड़क मण्डल' इसी की अभिव्यक्ति है। दर असल हमारे उत्तर भारत हरिजनों के प्रति कोई वैसी घृणा नहीं थी। केवल और रोटी का सम्बन्ध नहीं था। पर वह तो यों और वैश्यों की कौन कहे, आपस में ब्राह्मणों विविध वर्ग यथा कान्यकुब्ज, त्यागी-भूमिहार, मैथिल सरयूपारी भी नहीं करते हैं। वास्तविक अस्पृश्यता में थी। दक्षिण का ब्राह्मण-धर्म बहुत ही आडम्बर-हो गया था। इसीसे वहाँ पर ब्राह्मण-द्वेष का सूत्रपात । ब्राह्मण-विरोध का फल हुआ आर्य-विरोध, संस्कृत-एवं उत्तर-विरोध। स्कूलों और कालेजों की सीटों ब्राह्मण बालकों के लिए सीट का अनुपात निर्धारित कर गया। तमिल भाषा से संस्कृत शब्दों के बहिष्कार का आन्दोलन चला। राम और गणेश की मूर्तियाँ सड़कों पर तोड़ी गयीं। इन विरोधों के देखते हुए वहाँ के ब्यूरोक्रेटिक वर्ग ने, जिसमें ८०% ब्राह्मण हैं, एक नयी चाल चली और हिन्दी-विरोध को प्रश्रय देना प्रारम्भ किया। हिन्दी बनी बलि का बकरा (स्केप गोट), और ब्राह्मण-विरोध धीमा पड़ गया। शिखण्डियों और शकुनियों को अँगरेजी पत्रों के जरिए उसे चंग बनाकर उड़ाने का मौका मिला। संक्षेप में यही है दक्षिण के द्रविड़ कड़गम की राजनीति। दक्षिण के ब्राह्मणों के पापों के लिए हिन्दी और समस्त भारत को दंड भोगना पड़ रहा है।

वर्ग-संघर्ष का सबसे स्पष्ट रूप पूंजी के क्षेत्र में मिलता है। पूंजीपति-मजदूर संघर्ष मार्क्सवादी चेतना का विस्तार है। भारत में मजदूर-संस्कृति की स्वतंत्र सत्ता अभी तक बन नहीं पायी है। भावबोध एवं रस-बोध की प्रक्रिया अभी तक ग्राम संस्कृति के पैटर्न पर चलती है। पर टाटानगर, भिलाई, राउरकेला और दुर्गापुर में एक नयी संस्कृति विकसित हो रही है जो पल्ली संस्कृति या ग्राम-संस्कृति से अलग, शहरी संस्कृति की ही एक शाखा होगी। इस संस्कृति में 'व्यक्ति' का मनोविज्ञान शहर के मध्यवर्गीय 'व्यक्ति' और गाँव के किसान दोनों से भिन्न होगा। इस नयी संस्कृति की अवस्था अभी तक पुष्ट नहीं हो पायी है। मामा वरेर-कर जैसे एकाध उपन्यासकारों को छोड़कर साहित्य में इसकी वैसी सशक्त और गहरी अभिव्यक्ति नहीं हुई है जैसी किसान संस्कृति की अभिव्यक्ति प्रेमचन्द की कलम से हुई। इसका कारण यह है कि अभी तक इस संस्कृति की निर्माणावस्था चल रही है। परिपक्वता आने पर अवश्य कोई इसको प्रतिनिधि कलाकार मिल जायेगा जैसे नवशिक्षित मध्यवर्ग को रवीन्द्रनाथ तथा किसानों को प्रेमचन्द मिल गये थे। पर एक अत्यन्त दुःख की बात है। भारत में इस मजदूर संस्कृति का जैसा विकास हुआ है और हो रहा है उसे देखकर बड़ी निराशा होती है। विकृति की आराधना को ही उनके विकृत जीवन में प्रोत्साहन मिला है। पर विकृत हो या परिष्कृत, भारतीय संस्कृति के कंकाल की यह नयी अस्थि है जिसका विकास औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप हुआ है।

---

*देखिए: स्वामी सहजानन्द 'मेरा जीवन संघर्ष'; प्रकाश नारायण: 'टुवर्ड्स स्ट्रगल'; आचार्य नरेन्द्र : नेशनलिज्म एण्ड सोशलिज्म'; राहुल सांकृत्यायन हजारी क्षय हो।' 'भागो नहीं बदलो', नटराजन: मूवमेण्ट इन इण्डिया।'

राष्ट्रीय संघर्ष के आर्थिक पहलू और वर्ग संघर्ष के बाद हम तीसरी बात, 'व्यक्ति' का आत्मसंकोचन, पर आते हैं। पश्चिमी साहित्य में व्यक्ति अपने को धीरे-धीरे 'स्व' के कोटर में रख रहा है। फलतः साहित्य और जीवन में एक कच्छप-मनोवृत्ति का विकास होता है जो सामाजिक उत्तरदायित्व-हीनता का पोषण करती है। प्रतीकवाद, अति यथार्थवाद, दादावाद, आवर्त्तवाद आदि इसी कच्छप मनोवृत्ति के रक्तबीज हैं। भारतीय साहित्य में अभी इतनी स्व-केन्द्रित अभिव्यक्ति नहीं हुई है। यहाँ व्यक्ति का जीवन अब भी किसी न किसी रूप में समाज से संयुक्त है। भारत के सबसे बड़े नगर कलकत्ता के धर्मतल्ला मैदान में ५ बजे शाम को भी ऐसा नहीं लगता कि हम 'अकेले' हैं, 'अजनबी' हैं और चारों ओर दौड़ने वाले लोग, भागनेवाले चेहरे मिथ्या हैं एवं मुझे छोड़ कर यह निर्जीव यंत्र-चालित पुतलों का नगर है। वहाँ भी टी० एस० इलियट की 'अनरीयल सिटी' (वेस्टलैण्ड) की अनुभूति नहीं होती। फिर भी कई लेखकों में कछुए की तरह आत्मा को संकुचित करने की—'आत्म-संकोचन' की आंशिक प्रवृत्ति आ गयी है।

वर्ग संघर्ष के सतही साहित्यकारों ने मार्क्सवादी पौराणिकता के नाम पर 'व्यक्ति' का तिरस्कार करना शुरू कर दिया, और दूसरी ओर व्यक्ति ने भी पश्चिम के अनुकरण पर अपने को कुछ अलग, एक आत्मनिष्ठ सत्ता के रूप में, सोचना प्रारम्भ किया जो रवीन्द्रकालीन रूमानी आन्दोलन के बाद स्वाभाविक ही था। इस प्रवृत्ति के दो प्रभाव पड़े। एक छोर पर तो सतही यथार्थवाद का जन्म हुआ, जो व्यक्ति को छोड़कर पंगु तथा परकटी भावाभिव्यक्ति बनकर रह गया, और दूसरा आरोपित व्यक्तिवाद। सतही यथार्थवाद की दृष्टि अत्यन्त यांत्रिक है और वस्तुवादी भावबोध के नाम पर वह 'वस्तु' की लिस्ट भर पेश करता है। इसका उदाहरण प्रगतिशील आन्दोलन में मिलता है।

(३)

यथार्थवादी साहित्य की सर्वोच्च प्रतिनिधि रचना है प्रेमचंद का 'गोदान।' पर 'गोदान' के बहुत पूर्व जब ऋषि बंकिम 'आनन्दमठ' आदि के द्वारा रूमानी कथा साहित्य की नींव रख रहे थे, उड़िया के एक साहित्यकार फकीर मोहन सेनापति एक दरिद्र जुलाहा परिवार की कथा अपने उपन्यास 'तीन एकड़ आठ मण्डा' में [illegible] रहे थे। आर्थिक उत्पीड़न पर आधारित 'गोदान' [illegible] म्परा का यह प्रारम्भिक उपन्यास है और गोदान [illegible] परम्परा की सर्वोच्च कृति। आज तक 'गोदान' [illegible] बाँधी सीमा का अतिक्रमण कोई भी नहीं कर सका [illegible] (यहाँपर अन्य रूमानी या लोक-रस-परक विधाओं [illegible] बात हम नहीं कर रहे हैं।) प्रेमचन्द कथन की [illegible] में विश्वास करते थे, खराश-तराश में नहीं। उत्तर प्रदेश की धरती पर अनावश्यक हरियाली नहीं रहती। [illegible] हरियाली है वह ठोस शस्य की। शस्य कट जाने पर भूमि सपाट नग्न रहती है। तुलसी और कबीर तथा प्रेमचन्द के साहित्य में अनावश्यक भावुकता की हरीतिमा—भावुकता का दलदली रूप, जो बंगाल के कथा साहित्य [illegible] मिलता है, विद्यमान नहीं है। यह जमीन की ता[illegible] है। वातावरण के अनुसार ही मानस भूमि को संस्[illegible] मिलते हैं। ग्राम्य जीवन के चित्रों में प्रेमचन्द ने जबरद[illegible] बौद्धिक ईमानदारी दिखलायी है। बिना किसी तराश[illegible] घुलावट के जो शरद और रवीन्द्र की खूबी है, बड़े [illegible] ढंग से समस्या का सूत्र पकड़कर कथा को मांसल रूप [illegible] उतार दिया है। वे शहरी जीवन में 'रजील' वर्ग त[illegible] मुस्लिम मनोविज्ञान के बड़े पारखी थे। पर जहाँ-जहाँ उन्होंने मध्यवर्ग के रूमानी पहलू को पकड़ा है वहाँ चित्र निर्[illegible] हो गये हैं। कहीं-कहीं बड़ा बचकानापन आ गया है। प्रोफेसर मेहता यदि मिस मालती को कन्धे पर न चढ़ा[illegible] तो भी काम चल सकता था। पर किसान-संस्कृति और कस्बे की 'रजील'—जिन्दगी की वे रग-रग पहचा[illegible] थे। प्रेमचन्द की दूसरी विशेषता है, जीवन के प्रति [illegible] सत्य के प्रति आशापूर्ण दृष्टिकोण। वे आस्था[illegible] कलाकार थे। सारी कटुताओं, विकृतियों के बाव[illegible] भी कहीं न कहीं 'शिवम्' का बीज वर्त्तमान रहता है। धनी-गरीब, शोषक-शोषित, दुष्ट-सज्जन सबके अन्त[illegible] में एक शिवम् शक्ति है, जो सारी विकृतियों का व्यूह तो[illegible] कर निकल आती है और पाप के मुख से भी अपनी [illegible] की स्तुति करवा लेती है। इसे ही आलोचकों ने [illegible] शोन्मुख यथार्थवाद कहा है। प्रेमचन्द गरीबी और [illegible] के बीच 'सुन्दर सत्य' की खोज करते थे। यह विश्[illegible] उन्हें गान्धीवाद से प्राप्त हुआ था। यह प्रेमचंद [illegible] यथार्थवाद की मुख्य दिशा है, पर उनकी एक [illegible]

कता भी है। वह है 'व्यंग्य।' आज जब हम प्रेमचंद को पूरक दिशा के बल पर बामपंथी-महाल में प्रगतिशीलों के पट्टी-स्रोत में घसीटना चाहते हैं तो भूल जाते हैं यह उनका खास महाल नहीं था। 'गोदान' में प्रेमचन्द ने किसानों को ठीक से समझा है। होरी जैसा आदमी कभी भी झण्डा उठाकर क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त नहीं कर सकता। किसान, भारतीय किसान विशेषतः, क्रान्तिकारी नहीं होता। उनकी यह पकड़ मार्क्सवादी आलोचकों से अधिक सटीक है जो सिर्फ मार्क्स की पोथी पढ़ते हैं। वे किसी वाद के नहीं थे। वे साहित्यकार थे। मार्क्सवाद का अश्वमेध यज्ञ जब भारत में प्रारम्भ हुआ उसके बहुत पूर्व से ही वे दीनता को अपनी लेखनी का आशीर्वाद दे रहे थे। उनकी प्रतिभा रवीन्द्रनाथ या शरत्‌चन्द्र जैसी बहुमुखी नहीं थी। अपनी 'किस्म' के भीतर वे बहुत ही सशक्त थे, पर उस 'किस्म' से बाहर जाने पर उनका कृतित्व तीसरे दर्जे का हो जाता है। यह भी एक तथ्य है।

मुल्कराज आनन्द ने पंजाब की भूमि और दलित वर्गों को अपनी अभिव्यक्ति का विषय बनाया। पर 'अनटचेबुल' को छोड़कर शेष उपन्यासों में उनकी दृष्टि में बनावट अधिक है, स्वाभाविकता कम। वे उत्पीड़न को शहरी तहजीब की आँखों से देखते हैं। इसीसे चित्र अतिशयोक्तिपूर्ण होते गये हैं, और अतिशयोक्ति का कारण है लेखक का अपना विश्वासहीन मन ('गिल्टी कान्शेंस') कि कहीं चित्र जिसके द्वारा मैं अमुक चीज सिद्ध करने जा रहा हूँ, कमजोर तो नहीं हो रहा है। मुल्कराज आनन्द की सारी कला इसी मन की दीनता (क्योंकि मुल्कराज के पास 'सुन्दर सत्य' के प्रति आस्था का अभाव है) के कारण पराजित होकर यान्त्रिक और बनावटी हो गयी है। ख्वाजा अहमद अब्बास में भी यही रोग है। 'कमिटेड' प्रगतिशील इस तथ्य को भले न मानें पर सारे कमिटेड प्रगतिशील (ख्वाजा अब्बास, किशन चन्दर) इसी दीनता के शिकार हैं। उनकी शैली के पास अनुभूति की ईमानदारी कम होने के कारण ही उन्हें कभी-कभी दैन्य के चित्रण को गहरा करने के लिए हिन्दुस्तानी गालियों को रोमन लिपि में लिखना पड़ा है। यह यांत्रिक दृष्टि है। प्रेमचन्द इस दैन्य को किसी अन्य अधिक शक्तिशाली और स्पष्ट विधा से प्रस्तुत करते। यह यथातथ्यवाद (नेचुरलिज्म) है जो यूरोप में १०० वर्षों से अधिक पुराना हो गया है। मुल्कराज बालज़ैक की परम्परा में आते हैं और प्रेमचन्द गोर्की-गोगोल तॉल्सत्याय की। यह बात यहाँपर अभिव्यक्ति की विधा को लेकर कही जा रही है।

पाठक को मुल्कराज आनन्द की अनुभूतिगत ईमानदारी पर शंका उनके अँगरेजी माध्यम से ही हो जाती है। यदि वे उस ईमानदारी से उत्प्रेरित रहते तो रवीन्द्रनाथ और प्रेमचन्द की तरह उनका हृदय उस भाषा में लिखने को मजबूर हो जाता जिसे उनके पात्र बोलते हैं। वे निश्चय ही पंजाबी में लिखते। पंजाबी लोक जीवन के चित्र को अँगरेजी में लिखने पर और चाहे जो आये, पर भावात्मक ईमानदारी आ ही नहीं सकती। रचनात्मक साहित्य के लिए भारतीय विषय-वस्तु की सफल व्यंजना भारतीय भाषा में ही हो सकती है। कोई भी बँगला और अँगरेजी 'गीतांजलि' की तुलना करके देख ले। बात स्पष्ट हो जायगी। यह और बात है कि राजनीतिक कारणों से बी० शान्ता राव, नयनतारा सहगल या भवानी मुखर्जी की प्रशस्ति अँगरेजी के पत्र गायें और श्री दिनकर तथा ताराशंकर बनर्जी के बारे में मौन रहें। पर ऐंग्लो इण्डियन साहित्य का रचनात्मक भाग सदैव पंगु और निर्जीव ही रहेगा। प्रेमचन्द को उनके विषय ने मजबूर कर दिया कि दरबारी वातावरण में निखार पायी नाजुक भाषा उर्दू को छोड़कर सशक्त जन भाषा को अपनायें और स्वाभाविक अभिव्यक्ति की शक्ति का उपयोग करें। भोजपुरी मुहावरों की उजड्ड धक्का-मुक्की में "लखनऊ और दिल्ली की बाँदी" बेचारी का क़चूमर निकल जाता। वे भरसक उर्दू छोड़ कर हिन्दी में नहीं आये। पात्रानुरूप भाषा उनकी सफलता का सबसे बड़ा कारण है।

आधुनिक बँगला साहित्य "भद्रलोक" (बाबू संस्कृति) का साहित्य है, कम से कम रवीन्द्र और शरद के युग का। इसीसे उनका विषय सामाजिक न्याय-अन्याय की परिधि में बँधा होने पर भी 'व्यक्ति' के मन में निहित 'रस' की निष्पत्ति है। अतः रवीन्द्र और शरद युग का

---

*राजाराव का 'सरपेण्ट एण्ड द रोप' टेकनीक की दृष्टि से उत्तम रचना है। पर जनभाषा में यह और अच्छी उतरती। कला की दृष्टि से राजाराव को लेखक मुल्कराज आनन्द से अधिक सफल मानता है।

कथा साहित्य रूमानी है। 'पथ के दावेदार' में संघर्ष का संकेत है पर सब मिला-जुला कर सामूहिक यथार्थवाद वहाँपर रवीन्द्र-शरद युग में उपेक्षित रह गया। भद्र-लोक संस्कृति व्यक्तिप्रधान संस्कृति है। इसका भी एक अपना महत्व है। भारतीय बौद्धिक जागरण की मशाल इसी बंगाली भद्रलोक के हाथ में रही। पर सामूहिक यथार्थवाद की सच्ची पकड़ पाने में यह असफल रही। उत्तरप्रदेश में दो वर्गों ('किसान' और 'रईस') के लोग शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़े। 'रईस' वर्ग नौकरशाही में घुसा, और राजनैतिक सांस्कृतिक चेतना के संवाहक ग्राम्य संस्कृति में उत्पन्न किसानों के बेटे बने। यहाँपर 'भद्रलोक' संस्कृति उतनी स्पष्ट नहीं हो पायी। इसीसे यथार्थवाद की अनुभूति यहाँ 'भद्रलोक' की आँखों से न होकर विशुद्ध किसानी आँखों से प्राप्त हुई।

(४)

यथार्थवादी अनुभूति के दो विभाजन आसानी से किये जा सकते हैं: जन सहानुभूति और वर्ग-संघर्ष। जन-सहानुभूति-परक साहित्य शिविरवादी नहीं है। प्रेमचन्द (हिन्दी), ताराशंकर (बँगला), विश्वनाथ सत्यनारायण (तेलगू), कल्कि (तमिल) हरेकृष्ण मांहताब (उड़िया), एवं मामा वरेरकर (मराठी) आदि इसी कोटि में आते हैं। यह वर्ग उत्तम साहित्य निर्मित कर सका है, क्योंकि यह शिविर के अदब-कायदे से बँधा नहीं है। दूसरी ओर वर्ग-संघर्ष-परक साहित्य मार्क्सवादी शिविर में बैठ कर लिखा गया है और मोर्चे के सिपाही का जगत् कभी भी 'समग्र जगत' नहीं हो सकता। इसीसे अधूरे सत्यों की ट्रेजडी से बँधा हुआ अतिशयोक्ति प्रधान तथा कम या बेश (बंगला के कथाकारों को छोड़कर) शैली की दृष्टि से यथातथ्यवादी है। राहुल, किशन चन्दर, अब्बास में यथार्थवाद जगह-ब-जगह काम-ज्वर से पीड़ित है और मार्क्सवाद आरोपित सा लगता है। **वह रचना के अन्दर से नहीं फूटता बल्कि ज्यामिति को साध्यों की भांति साधारण प्रतिज्ञा पहले आती है और समूचा उपन्यास उसीकी उपपत्ति है।** यह हीनतर कला है।* इनकी कृतियों पर मार्क्स का 'चेहरा' लगा है पर असली मुख-कृति शुद्ध रूमानी है। ये साहित्यकार वास्तविक जिन्द-नहीं 'कोटेशनों'--उद्धरणों--की जिन्दगी जीते हैं। इनके सारे विचार, सारी अनुभूतियाँ उधार ली गयी हैं मार्क्स और लेनिन की किताबों से। वैसा जीवन जीकर उन्हें वे नहीं मिलीं। प्रेमचन्द और रवीन्द्रनाथ अपने विचार के अनुरूप जीवन जिये हैं। इसीसे भावात्मक ईमान-दारी को प्राप्त कर सके हैं। यशपाल, रांगेय राघव और अमृतलाल नागर अवश्य ही ख्वाजा अहमद अब्बास या किशन चंदर से बड़े कलाकार हैं। पता नहीं क्यों ट्रेड मार्क वाले मित्र किशन चन्दर का ही ढोल पीटते हैं। वैसी रूमानी भाषा लिखनेवाला क्यों प्रेमचंद की बगल में बैठाया जाता है? यह विचित्र देश है। यहाँपर सब कुछ—भाषा, साहित्य, कला और जीवन का एक-मात्र आधार है: राजनीति। रांगेय राघव जैसा सशक्त साहित्यकार अपने प्रगतिशील-महाल से भी उचित मूल्यां-कन न पा सका। डॉ० राम विलास शर्मा ने एक स्थल पर अवश्य स्वीकार किया है कि नागरजी किशनचन्दर से बड़े लेखक हैं। किशन चन्दर में काम-ईहा की अन्तः-धारा एवं आर्किडों सी 'नाजुक' भाषा के सिवाय और है क्या? जहाँ तक व्यंग्य का प्रश्न है उनका तरीका बड़ा ही भद्दा और 'क्रूड' है। व्यंग्य की वास्तविक विधा बँगला के परशुराम के पास थी। निराला का "कुल्लीभाट' उस प्रकार की श्रेणी में रखा जा सकता है। इसके शायद दो कारण हैं। प्रथम तो उर्दू भाषा की प्रकृति ही ऐसी है कि वह केवल एक विषय, 'कस्बे की रंगीन तहजीब', का ही शक्तिशाली माध्यम बन सकती है। अन्य विषयों के लिए उसे देशज शब्दों की खोज में लोकभाषा की ओर जाना पड़ेगा, तब उसका उर्दूपन खतम हो जायगा। वह हिन्दी बन जायगी। दूसरा कारण है किशन चन्दर की शहरी संस्कार। बम्बई के विलासपूर्ण वातावरण में अभि-नेता-अभिनेत्रियों के परिपार्श्व में जीनेवाले कलाकार की अनुभूति-शक्ति कुछ खास प्रकार के विषयों के लिए ही तेज रहेगी, शेष के लिए वह कुंठित हो जायगी। जिन संस्कृति के विनाश के लिए तुमने प्रतिज्ञा की है उसके

---

*मैं मानता हूँ कि २० शती में साहित्य की दृष्टि-भंगी रस-प्रधान या आस्वादन-प्रधान नहीं रह सकती। इस बुद्धिवादी युग में साहित्य को भी सोद्देश्य होना होगा। पर वह उद्देश्य रचना के अन्दर से स्वतः फूटना चाहिए न कि उद्देश्य को उपपन्न करने के लिए रचना का आवरण लाना चाहिए। साहित्य और प्रचार का भेद ध्यान में रखना होगा।

१९६४

...ता और सुख का उपभोग करते रहने से तुम्हारी ...ता की धार क्या कुंठित नहीं हो जायगी? प्रेमचन्द ने इस तथ्य को पहचाना था। उनका जीवन इसका ...ण है।

मार्क्सवादी कलाकारों ने भी रूपायन और शैली ...त्र में सशक्त और सफल प्रयोग किया है। हिन्दी में ...पाल, नागार्जुन और अमृतलाल नागर तथा बँगला में ...क बनर्जी, समरबसु और गोपाल हलधर ऐसी प्रति-...यां हैं कि यदि वे शिविरबद्ध न रहतीं तो बहुत ही प्राण-...न साहित्य दे सकती थीं। इनके प्रयोग और इनकी ...यां इनकी अन्तर्हित शक्ति के प्रमाण हैं।

भारतीय यथार्थ की असली भूमि देहात है। उसमें ...कृति है तो रस और उदारता भी है। विकृत, सरस ...और उदात्त ये तीनों यथार्थवाद के अंग हैं। उदात्तता ...का चित्र समय-समय पर प्रेमचन्द के द्वारा मिलता है और ...रसता का चित्र फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' ...और 'परती परिकथा' में उपलब्ध है। ताराशंकर बनर्जी ...ने सरसता और सोद्देश्य जीवन दर्शन को लेकर अति ...सशक्त रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। सम्भवतः वर्त्तमान यथार्थ-...वादियों में सबसे प्रतिभाशील लेखक ताराशंकर ही हैं। ...कारा', 'गणदेवता', 'कवि' तथा हाल के उपन्यास ...'...कारी कथा' में उन्होंने शोषण और पीड़ा की विविध ...स्थितियों की मार्मिक पहचान प्रस्तुत की है। उनका सर्वो-...त्तम उपन्यास 'हाँसुली बाँकेर कथा' एक गाँव की कहानी है। टेकनीक है पर्लबक के 'गुड अर्थ' की। पर उसे ...की गीतात्मकता का निखार देकर उन्होंने नयी शैली ...बना दी है। उनके नवीनतम उपन्यास 'आरोग्यनिकेतन' ...को दिनकरजी ने नोबेल पुरस्कार के योग्य घोषित किया है। बंगाल के दूसरे कथाकार हैं: विभूति भूषण वन्द्यो-...पाध्याय। इनकी कृतियां 'पथेर पाँचुली' और 'आरण्यक' ...चर्चित हो चुकी हैं। ये आर्थिक उत्पीड़न की खोज में ...न जाकर ग्राम्य जीवन के कुछ प्राणवान सम्वन्धों, प्राण-...वान क्षणों को अपनी अनुभूति का अंग बनाते हैं। यह ...रूमानी भावुकता नहीं। माँ बेटे के प्यार की तरह इस ...भावुकता की नींव बड़ी गहरी है। जीवन में निहित ...बहुत कुछ सुन्दर और सरस इसी नींव और इसी विश्वास ...पर आश्रित है। इसी 'जीवन के गुरुत्वाकर्षण' या अन्तर-...रूप की बदौलत पाप और व्यथा के जगत में हम जीते रहने की आकांक्षा करते हैं। यह यथार्थवाद की मार्मिक दिशा है जो रूमानी या किताबी वृत्तियों से अलग है। यह उस फैशन से अलग चीज है जो खाने-पीने, उठने-बैठने, घास-भूसा सब में वर्ग संघर्ष ढूँढ़ता है। आर्य-द्रविड़ वर्ग-संघर्ष, ब्राह्मण-क्षत्रिय वर्ग-संघर्ष आदि की फैशनेवुल चर्चा हिन्दी में कुछ दिनों तक प्रगतिवादी महाल में खूब चली थी। पर वर्गों का जन्म औद्योगिक क्रान्ति के बाद होता है। लोग इस बात को भूल जाते थे कि वैदिक युग या ब्राह्मणयुग में 'वर्ण' थे 'वर्ग' नहीं, और दोनों का सामूहिक मनोविज्ञान नितान्त भिन्न है। भारतीय यथार्थवादी कथा साहित्य की नवीनतम दिशा है: 'आंचलिक उप-न्यास।' अन्त में इसपर भी दो शब्द आवश्यक हैं। आदिवासियों की संस्कृति एवं अंचलों की संस्कृति की ओर आकर्षण का प्रारंभिक कारण है सोवियट सरकार की सांस्कृतिक नीति का अनुकरण। सोवियट राज्य में यूक्रेन, मध्य एशिया, या अन्य अंचलों की संस्कृति को पर्याप्त आदर और संरक्षण दिया जाता है। भारत में लोक संस्कृति के प्रति मोह का प्रारम्भिक कारण रूस से मिली प्रेरणा ही है। पर बाद में इन लोक संस्कृतियों के अनेक सुन्दर तत्व और सजीव भावतन्तुओं को पाकर अनेक कलाकारों का मन इसमें रम गया। वास्तव में हरेक उच्च श्रेणी का कलाकार विशेषतः कथाकार, आंच-लिक भावों और अभिव्यक्तियों से ही जीवन प्राप्त करता है। पूर्वी यू० पी० प्रेमचन्द का, लखनऊ नागरजी का, लाहौर 'अश्क' का और मिथिला नागार्जुन का अनुभूति क्षेत्र है। इधर हिन्दी में दो अति सुन्दर आंचलिक उप-न्यास आये हैं 'मैला आँचल' (रेणु) और 'कब तक पुकारूँ' (रांगेय राघव) जिन्हें स्थायी कीर्त्ति मिलेगी। हिन्दी से बाहर आदिवासियों पर उड़िया में गोपीनाथ की 'अमृत सन्तान' और असमियां में नागाओं पर श्री वीरेन्द्र भट्टाचार्य की 'ईयारुंगम' अखिल भारतीय स्तर पर सम्मान पा रही हैं।

(५)

कथा साहित्य के समानान्तर ही सामूहिक यथार्थ-वाद से अनुप्राणित काव्य की धारा भी नागार्जुन एवं केदारनाथ आदि में फूटी थी और हिन्दी में इसे प्रगतिवाद कहा जाता था। आज यह नयी कविता का पूरक अंग बन गयी है। निराला ने अप्रत्यक्ष तौर पर, परन्तु

दिनकर और पंत ने प्रत्यक्ष तौर पर मार्क्सवाद की वकालत प्रारम्भ की थी। परन्तु ये शिविर के अदब कायदे में बाँधी जाने वाली आत्मा लेकर उत्पन्न नहीं हुए थे। अतः उन्होंने इस पथ का त्याग कर दिया। पन्त और दिनकर अरविन्द दर्शन की ओर उसी तरह मुड़ गये जैसे ओडेन और सन् ३० की आंग्ल कविता के 'क्रुद्ध तरुण' आस्तिक अस्तित्ववाद की ओर। नयी पीढ़ी के प्रगतिवादियों में शिवमंगल सिंह 'सुमन', भवानीप्रसाद मिश्र, ठाकुर-प्रसाद सिंह, रामदास मिश्र, केदारनाथ सिंह आदि में कोई भी "वामपंथी" उस अर्थ में नहीं जिस अर्थ में अमृतराय हैं। इनकी कविताओं में आशा, विश्वास एवं उल्लास मिलता है, बौद्धिक रुझान और निराशा प्रधान दर्शन का तिरस्कार रहता है। बस। इसी अर्थ में वे प्रगतिवादी हैं कि वे आस्थावान हैं। पर आस्था का विरोध हिन्दी कविता में कभी भी घोर अर्थ में नहीं हुआ। अज्ञेय और धर्मवीर भारती की कई रचनाएँ आस्था और विश्वास से अनुप्राणित हैं। 'ट्रेड मार्क' न हो, यह और बात है। श्री शमसेर को छोड़कर कोई भी हिन्दी का कवि 'तथ्य' को अस्वीकृत करके विशुद्ध 'शैली' प्रधान नहीं है। यही कारण है कि 'नयी कविता' में दोनों विरोधीवर्ग एक विन्दु पर आकर अन्तर्मुक्त हो रहे हैं। ठाकुरप्रसाद सिंह की कृति 'वंशी और मादल' इन सब प्रगतिशील रचनाओं से अलग व्यक्तित्व रखती है। यह संताल जीवन के माध्यम से गृहीत अनुभूतियों का गीत काव्य है। अन्य भाषाओं में स्वस्थ प्रगतिवाद के गीतकारों का दल विद्यमान है: बंगला में विष्णु दे, सुकान्त भट्टाचार्य, प्रेमेन्द्र मित्र और जीवनानंद दास (अन्तिम रचनाएँ); असमिया में वीरेन्द्र भट्ट, अब्दुल मलिक; उड़िया में सचीराउत राय; तेलगू में श्री श्री (श्रीनिवास श्रीरंगम); पंजाबी में भाई वीर सिंह और अमृता प्रीतम; उर्दू में साहिर लुधियानवी आदि मुख्य नाम हैं। पर कुछ बहु-प्रचारित कविताओं का (यथा साहिर लुधियानवी की 'एशिया जाग उठा') साहित्यिक मूल्य गांधीवादी युग के 'चर्खे का गान' और 'स्वराज्य भजनावली' से अधिक नहीं। यथार्थवादी अभिव्यक्ति सबसे बड़ी पहचान है 'अनुभूत रस बोध' या गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के शब्दों में 'निविड़ उपलब्धि' (प्रगाढ़ अनुभव)। यदि यह नहीं मिलता तो कविता केवल नारों और 'कोटेशनों' की लिपि मात्र है।

(६)

"साहित्य की पंथा विशाल है। एक ओर तो 'निज' है और दूसरी ओर उसका 'परिवेश'। ये दोनों मिलकर यथार्थ जीवन को पूरा करते हैं।"

——रवीन्द्रनाथ ('यथार्थ और साहित्य')

यह 'निज' है व्यक्ति। 'परिवेश' है व्यक्ति का समूचा सम्बन्ध-जाल, अर्थात् उसका सामाजिक-आर्थिक एवं राजनैतिक जगत जिसमें वह जी रहा है। दोनों के सप्राण होने पर ही समूचा जीवन सप्राण होता है। साहित्य की विषय-भूमि दोनों हैं। परिवेश-प्रधान साहित्य सामूहिक यथार्थवाद का साहित्य है। पर साहित्य की पंथा यहीं समाप्त नहीं होती। 'व्यक्ति' है। व्यक्ति के अन्तराल में चक्करदार अँधेरी गुफाओं वाला 'मन' है। इन तीनों——परिवेश, व्यक्ति और मन——के परे हैं कुछ सनातन मूल्य, जो कभी नहीं बदलते हैं। प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक मन और प्रत्येक परिवेश में वे 'वही' रहते हैं जो अशोक और बुद्ध के काल में थे और जो २२वीं शताब्दी में रहेंगे। मार्क्सवाद की नैतिक कमजोरी का कारण यह है कि उसमें सनातनी मूल्यों को अस्वीकृत कर दिया गया है। पर साहित्य का राजमार्ग अति विशाल है। साहित्य भीम और द्रौपदी तक ही जाकर नहीं रुकता है, वह युधिष्ठिर तक जाता है जिनका रथ महाभारत की लड़ाई में धरती से सदैव चार अंगुल ऊपर-ऊपर चलता था।



भूटान का इतिहास और उसकी सुरक्षा-समस्या

मेजर सीताराम जौहरी (अवकाश प्राप्त)

१६४४ में चीन की राज्य सत्ता मंचू वंश के हाथ में आई। उसके नेतृत्व में चीनियों ने दक्षिण की ओर बढ़ना आरम्भ किया जिसका प्रभाव तिब्बत पर भी पड़ा और वहाँ हलचल मच गई। कुछ तिब्बती तो चुपचाप चीनियों के आधीन हो गये थे, परन्तु कुछ तिब्बती समूह ऐसे भी थे जिन्होंने चीनियों का विरोध किया। ऐसे विरोधियों को निःशेष कर दिया गया। उनमें जो बचे वे हिमालय के दक्षिणी ढालों पर आकर बस गये। तिब्बत का यह आन्दोलन हिमालय की रियासतों तक जा पहुँचा। भूटान का महत्त्व बढ़ गया। भारत के लिए भूटान का महत्त्व बढ़ रहा है। ३०० वर्ष से अधिक हो गए जब से चीनी भूटान को अपने अधिकार में लाने का षड़यंत्र कर रहे हैं, परन्तु इसमें उन्हें आज तक सफलता न मिली। इसके कई कारण हैं।

भौगोलिक स्थिति

भूटान के उत्तर में हिमालय की चोटियाँ विशाल दीवार की भाँति खड़ी हैं। यद्यपि यह चोटियाँ इतनी ऊँची नहीं हैं जैसे माकालू अथवा एवरेस्ट समूह की चोटियाँ हैं फिर भी कुछ विशेष नीची भी नहीं। भूटानी हिमालय की कुछ चोटियाँ तो २४,००० फुट तक की हैं। इस कारण भूटान से तिब्बत के लिए मार्ग कम ही हैं। केवल उत्तर-पूर्व में खुरु छू (Khuru Chu) नाले के २ या ३ सहायक नाले ऐसे हैं जिनका उद्गम तिब्बत में है। इन पर्वतीय नालों के कारण भूटान से तिब्बत को दो मार्ग हैं। भूटान के पूर्व में एक दूसरी पर्वत श्रेणी उसे कामेंग फ्रन्टियर डिवीजन से पृथक करती है। इस श्रेणी को 'नियाम जांगछू' (Nyam Jang Chu) नदी कामेंग होती हुई काटती है और भूटान में प्रवेश करती है। यह नदी कामेंग की सीमा को खिन्जेमाने (Khinzemane) के उत्तर में काटती है। जब चीनियों ने १९६२ में भारतीय सुरक्षा रेखा धौलाधार पर तोड़ दी, तब आसाम राइफिल के सैनिकों की टोलियाँ इसी नदी की घाटी-घाटी चल कर भूटान में प्रविष्ट हुईं और भूटान पार करके आसाम जा पहुँचीं। कुछ समय पश्चात् भारतीय सैनिक भी धौलाधार या तवांग मार्ग से भारत पहुँचे। 'ताशीगांग' बस्ती 'नियाम जांगछू' के तट पर बसी है। १९३२ से ताशीगांग का महत्व बढ़ गया। भारत में 'नियामजांग छू' मनहास नदी के नाम से प्रसिद्ध है। मनहास नदी का महत्व तिस्ता नदी से कम नहीं है।

भूटान के दक्षिण में जंगलों की एक चौड़ी पेटी है। इस पेटी को साधारणतया तराई कहते हैं। इस तराई से कुछ पगडंडियाँ भूटान के पर्वतों तक पहुचती थीं। इन मार्गों के निकास पर ग्राम बसे हुए थे जो 'द्वार' कहलाते थे। ऐसे १८ द्वार थे, ११ बंगाल में और ७ आसाम में। कुछ भौगोलिक इन द्वारों को तराई भी कहते हैं। पर इन्हें तराई कहना उचित नहीं। तराई के जंगल इतने घने और भयंकर थे कि वे भूटान को भारत से पृथक रखे हुए थे। शायद ही कभी कोई इन जंगलों में प्रवेश करता होगा। बहुधा यह डाकुओं का रक्षा-गृह था। आजकल तो यह जंगल काफी साफ किये जा चुके हैं, और यहाँ पर चाय के बड़े-बड़े बगीचे हैं जैसे, बानारहाट, वीनागुड़ी, जैगाँव के बगीचे।

भूटान के पश्चिम में भी एक ऊँची पर्वतश्रेणी है जो भूटान को चुम्बी घाटी से पृथक् करती है। इस पर्वत की सबसे ऊँची चोटी चोमोलहारी (Chomolhary) है जिसकी ऊचाई २३,९२० फुट है। भूटान से चुम्बी घाटी के लिए तीन पगडंडियाँ जाती हैं। दो फारीजोंग (Phari Dzong) को और एक याटुंग (Yatung) को। भारत से तिब्बत जाने, या भारत से भूटान जाने के लिए याटुंग का मार्ग ही विशेषतया उपयोग में लाया जाता था।

भूटान की तिब्बती और भारतीय सीमाओं के विवरण से स्पष्ट है कि भौगोलिक दृष्टि से भूटान तिब्बत और भारत से अलग रहा क्योंकि प्राकृतिक अवरोधों के कारण भूटान का सम्पर्क न तिब्बत से हो पाता था और न भारत से। आधुनिक वैज्ञानिक उन्नति द्वारा घने जंगल, तराई आदि की प्राकृतिक बाधाओं को हटा कर भूटान को भारत के निकट लाने का प्रयत्न किया जा रहा है। परन्तु हिमालय की दीवार पर विजय प्राप्त करना अभी भी वैज्ञानिक शक्ति के परे है। आज भी चीनी हिमालय दीवार के उत्तर में ही डेरा डाले पड़े हैं। हिमालय लाँघ कर भूटान में प्रवेश करना उनके लिए कठिन है। वे नैपाल आक्रमण

(१७९२) के पश्चात् भूटान पर भी आक्रमण करने के इच्छुक थे, पर हिमालय की यह दीवार उनके लिए बहुत बड़ी बाधा थी। वही आज भी है।

पश्चिमी भौगोलिकों ने भूटान को पूर्व से लेकर पश्चिम तक (laterally) तीन पट्टियों में बाँटा। यह विभाजन वहाँ बसी हुई जातियों के आधार पर था। सबसे दक्षिण वाली पट्टी में नैपाली रहते थे। यह पट्टी जंगलों से भरी थी। दूसरी पट्टी में नदियों की घाटियाँ थीं। यह उपजाऊ थी। यहाँ भूटानी नागरिकों का निवास था। तीसरी पट्टी में ऊँचे ऊँचे पर्वत थे। यहाँ हरी भरी चरागाहें थीं। आजकल दक्षिण के जंगल कट गये हैं और यहाँकी जनसंख्या बढ़ गयी है।

भूटानी दक्षिण में आकर बस गये हैं। बीच की पट्टी के भूटानियों के ग्रामों में अब नैपाली भी पाये जाते हैं। तिब्बत से भूटान का व्यापार समाप्त हो जाने से तो उत्तरी पट्टी के भूटिया भी नीचे के स्थानों पर आ चुके हैं। तात्पर्य यह कि इन तीनों पट्टियों का पुराना जातिगत महत्त्व समाप्त हो गया है। भूटान को इस पुराने विभाजन के आधार पर समझा भी नहीं जा सकता। आजकल के भूटानवासी अपने देश को, उत्तर से दक्षिण, (Transversally) तीन भागों में बाँटते हैं—पूर्वी, मध्य, और पश्चिमी भाग। पूर्वी भाग को काला पहाड़ का जल-विभाजक मध्य भाग से पृथक् करता है। पूर्वी भाग का समस्त जल लेकर मनहास नदी ब्रह्मपुत्र में मिल जाती है। इस भाग में दो उल्लेखनीय बस्तियाँ हैं। ताशीगांग और टांगसा (Tongsa)। काला पहाड़ श्रेणी में कई जगह पहाड़ नीचा हो गया है और दर्रे बन गये हैं जिनमें होकर उसके आरपार जाया जा सकता है। इनमें सबसे विख्यात 'पालेला' (Pale La) है। भूटानी यात्री अधिकतर इसी का प्रयोग करते हैं। आज भी जितना व्यापार ताशीगांग और पुनाखा के बीच होता है, वह पालेला द्वारा ही।

मध्य भाग को पश्चिमी भाग से डाचुला नामक पर्वतश्रेणी पृथक् करती है। इस मध्य भाग का समस्त जल मोछू (Mo-Chu) नदी द्वारा दक्षिण को बहकर ब्रह्मपुत्र में चला जाता है। इस भाग की सबसे बड़ी बस्ती (भूटान में अभी तक कोई शहर नहीं है) पुनाखा है। कुछ दिनों पूर्व पुनाखा भूटान की जाड़ों की राजधानी थी, परन्तु आजकल महाराजा-भूटान सारे वर्ष थिम्पू नामक स्थान में निवास करते हैं। धीरे-धीरे पुनाखा का महत्त्व घटता जा रहा है। पुनाखा से कुछ मील दक्षिण में राजमहल बना है जिसको वांग्दी फोटांग (महल) कहते हैं। यह राजप्रासाद पुनाखा-टांगसा मार्ग पर स्थित है।

पश्चिमी भूटान का जल वांग छू और आमोछू नदियाँ बहाकर ब्रह्मपुत्र में ले जाती हैं। आमोछू नदी का वास्तविक निकास चुम्बी घाटी से है। यह कहना भी असत्य न होगा कि पश्चिमी भूटान की प्रमुख नदी वांगछू ही है। थिम्पू और पारो पश्चिमी भूटान के मुख्य स्थान हैं। कुछ समय पूर्व भूटान में दो पैनलोप (Governor) होते थे जिनमें एक का नाम टांगसा पैनलोप और दूसरे का पारो पैनलोप था। परन्तु आजकल तीन पैनलोप हैं। तीसरा पैनलोप फुन्टशोलिंग से लगभग ५४ मील उत्तर में रहता है। यह मध्य भूटान के शासन का कार्य देखता है। दक्षिणी भूटान अधिकांशतः पहाड़ी प्रदेश है। यहाँ जन-संख्या भी कम है। यहाँ शासन सम्बन्धी देख रेख भी यही पैनलोप करता है। इसका अधिकांश समय फुन्टशोलिंग-सामची में ही व्यतीत होता है। भूटान की पर्वतीय श्रेणियाँ उत्तर से पूर्व की ओर आती हैं। इन श्रेणियों की ऊँचाई भी अधिक है जिसके कारण किसी भी सेना का पूर्व से पश्चिम अथवा पश्चिम से पूर्व में प्रवेश करना सरल नहीं है, और यहाँ मार्ग बनाना भी दुष्कर है।

भूटान की राजधानी

भूटान की राजधानी का विवरण देना कुछ सरल कार्य नहीं है। महाराजा भूटान बारहो मास थिम्पू में निवास करते हैं परन्तु उनके मंत्री का कार्यालय (सचिवालय) शीत ऋतु में सामची में, और ग्रीष्म ऋतु में पारो में रहता है। इस कार्यालय का कुछ भाग भूटान हाउस कालिम्पांग में भी रहता है। भूटान के मुख्य मंत्री कुमार निग्मे डोरजी अपने निजी स्टाफ सहित कलकत्ते में रहते थे। फिर शासकीय दृष्टि से फुन्टशोलिंग भी भूटान का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। भूटान सरकार का अधिक प्रभाव पश्चिम में ही है। ताशीगांग और टांगसा के जांगपैन बहुधा यहाँ ही समय व्यतीत करते हैं। टांगसा पैनलोप का अधिकांश समय सामची, पारो और थिम्पू में ही व्यतीत

...ता है। यह कहना असत्य न होगा कि भूटान का क्षेत्रफल ...,००० वर्ग मील से अधिक होने पर भी समस्त रियासत ... शासन वांगछू घाटी से ही संचालित होता है।

अब यदि हम उस स्थान को राजधानी मानें जहाँ ...राजा का निवास है तो थिम्पू राजधानी हुई। परन्तु ...चीन ऐतिहासिक और भौगोलिक पुस्तकों में पुनाखा ...धानी बतलायी गई है। वर्तमान महाराजा ने शीतकाल ...में पुनाखा जाना बन्द कर दिया, इसी कारण पुनाखा ...धानी नहीं रही। १६४४ के पूर्व भूटान भारत की ...च रियासत का एक प्रमुख अंग था। इन्हीं कोचों की ...धानी बाद में कोचबिहार हुई। जब तिब्बत में गैलुग्पा ...र निंग्पा नामक दो बौद्ध पंथों में चीनियों की लगाई ...ग प्रज्वलित हुई तो निंग्पा संघ पर गैलुग्पा संघ द्वारा ...त्याचार होने लगा। निंग्पा संघ शाक्त धर्म से प्रभावित ...। पद्मसम्भव बौद्ध-शाक्तों के प्रसिद्ध विद्वान् हो गये ...। निंग्पा संघ वाले पद्मसंभव को, जिन्हें वे रिम्पोछे कहते ...बुद्ध का अवतार मानते हैं। चीनियों ने गैलुग्पा (दलाई ...लामा के) संघ को हर प्रकार से सहायता दी। चीनियों ...के अत्याचार से बचने के लिए निंग्पा पंथ के नेता तिब्बत ...के दक्षिणी भाग में भूटान के पास भाग आये। वे भूटान में ...रहने लगे और वहाँके कोच राजा से उनका संघर्ष हुआ। ...उनके मुख्य लामा ने कोच राजा को पराजित कर दिया ...और ये तिब्बती लामा भूटान पर शासन करने लगे। ...तिब्बती लामा खम्पा शाखा से थे। खम्पा राजपूतों की ...भाँति ही युद्धप्रिय हैं और अधिकांश खेती अथवा व्यापार ...करते हैं। भूटान में जानेवाले लामा तलवार के प्रेमी थे। ...यह युद्धप्रेम उन्हें पुरखों से प्राप्त हुआ था। जब वे ...भूटान में बस गये तो उन्होंने अपने मुख्य लामा को ...'धर्मराजा' की उपाधि दी। वे देश में केवल धार्मिक ...कामों की ही देखभाल करते थे। राज्य का शासन करने ...के लिए 'देवराजा' का निर्वाचन होता था। उस समय ...शासन की सुविधा के लिए भूटान पूर्वी और पश्चिमी, ...दो भागों में विभक्त कर दिया गया था। पूर्वी भाग ...का पैनलोप टांगसा में निवास करता था और पश्चिमी ...का पारो में। कहने को तो देवराजा एक परिषद द्वारा ...निर्वाचित होता था, पर वास्तव में यह उस पैनलोप ...का आदमी होता था जो उस समय शक्तिशाली हो। ...धर्मराजा अवतारी पद था। एक धर्मराजा के स्वर्ग-वासी होने पर, दलाईलामा की तरह, उसका अन्य अवतार खोजा जाता था। इस खोज में खूब षड्यंत्र चलते थे, और साथ ही कभी-कभी भूटानियों में तलवारें भी चल जाती थीं। फिर यदि धर्मराजा मिला भी तो एक पैनलोप ने स्वीकार किया दूसरे ने नहीं, और फिर परस्पर युद्ध ठन गया क्योंकि इन पैनलोपों की रगों में पूर्वजों का युद्ध-प्रिय खम्पा रक्त था ही। देवराजा की मृत्यु के उपरान्त ऐसे युद्ध बहुधा हुआ करते थे। वास्तव में ये दोनों पैनलोप बहुत शक्तिशाली थे। कुछ भूटानी जनता इनमें से एक पैनलोप की, और शेष दूसरे की अनुगत हो जाती थी। इस प्रकार समस्त भूटान दो दलों में विभाजित हो जाता था। अब कठिनाई यह थी कि इस गृह युद्ध को निरन्तर जारी रखने के लिए धन की आवश्यकता थी, पर वह धन प्राप्त कहाँ से हो? इसके लिए 'द्वारों' की लूट मार की जाती थी। भूटानी भारतीयों को लूटने के लिए द्वारों पर छापा मारा करते थे जिसमें उन्हें भारतीय 'दास' भी मिलते थे और धन भी। भूटान की सीमा पर रहनेवाली भारतीय प्रजा पीड़ित थी, पर इन भूटानियों के भी वन नहीं रहता था। लूट के बटवारे के लिए दोनों पैनलोपों में झगड़ा होता था। विवाद के अन्य कारण भी पैदा हो जाते थे। परिणाम यह था कि इन पैनलोपों के युद्ध बराबर चला करते थे और भूटान में कभी शान्ति न होने पाती थी। जब १७७३ में बोगल, १७८३ में टर्नर, १७८५ में डा० ग्रिफिथ, १८३७ में पैम्बरटन, और १८६५ में एश्ले ईडन नामक ब्रिटिश अधिकारी भूटान गये तो उन्होंने देखा कि भूटान में पैनलोपों का युद्ध निरन्तर चल रहा था। इस गृह युद्ध के कारण भारतीय सुरक्षा को भय था। चीनी तो अपनी सीमा पर इस प्रकार के झगड़ों के इच्छुक थे ही, जिससे कि दो की लड़ाई में उन्हें बीच-बिचाव करने का अवसर मिले, और न्याय की आड़ में भूटानी शासन पर अपना प्रभुत्त्व जमाने का अवसर मिले। अन्त में १८८३ में पारो और टांगसा के पैनलोप देवराजा से झगड़ पड़े, और उन्होंने देवराजा का आदेश मानने से इंकार कर दिया। फलस्वरूप देवराजा ने चीनी आमवन से सहायता माँगी। आमवन ने दोनों पैनलोपों को १८८४ में फारीजोंग बुलाया। टंगसा पैनलोप ने आमवन से मित्रता कर ली, परन्तु पारो पैनलोप ने आमवन का कहना न माना। इस पर चीनियों ने पारो के पैनलोप को पकड़ने के लिए सेना भेजी। पारो

की सेना की पराजय हुई, और उसके पैनलोप ने आत्म-हत्या कर ली। इसके बाद से देवराजा और पैनलोपों के निर्वाचन में चीनियों का हाथ रहने लगा।

इस बीच ईस्ट इंडिया कंपनी के माध्यम से अंग्रेज भारत में जम चुके थे। धीरे-धीरे अंग्रेज चीनियों की विचारधारा से अवगत होने लगे, और भूटान पर उनके प्रभाव का काट करने के लिए उन्होंने भूटान से मित्रता करने का प्रयत्न किया। इसमें उन्हें सफलता भी मिली। अन्त में १९०४ के पश्चात् भूटान का सम्बन्ध तिब्बत से एकदम विच्छिन्न हो गया। भूटानी डाकुओं का उपद्रव रोकने के लिए अंग्रेजों ने भूटान पर आक्रमण कर दिया, भूटानी परास्त हुए और १८६६ की भूटानी-ब्रिटिश सन्धि से भूटान-भारत सीमा पर स्थित अठारहों 'द्वार', जो पहले भूटान के अधिकार में थे, भारत में सम्मिलित कर लिए गए। इसका भूटान की तीन बातों पर प्रभाव पड़ा। एक तो जब तराई पर डाके डालना बंद हो गया तो लूट के बँटवारे के झगड़े भी समाप्त हो गये, और पैनलोपों में झगड़े की जड़ ही कट गयी। दूसरे, १९०७ में भूटान ने अंग्रेजों की सहायता से वंशानुगत चलनेवाले राजवंश की स्थापना की। अर्थात् 'देवराजा' का चुनाव होना बंद कर दिया गया और राज्याधिकार पिता से पुत्र को प्राप्त होने लगा। वर्तमान भूटान-महाराज उस वंश के तीसरे महाराज हैं। 'धर्मराजा' के अवतार सम्बन्धी ढोंग की भी समाप्ति हुई। इससे राज्य के प्रमुख शासकों में धर्म-राजा के चुनाव को लेकर होने वाले झगड़े भी न रह गये। १९०७ के पश्चात् महाराजा ही धर्मराजा की नियुक्ति करने लगे। किंतु सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह हुई कि चीनियों का हस्तक्षेप भूटान से हट गया। १९१४ से बाहरी तिब्बत (Outer Tibet) भारतीय सरकार के प्रभाव-क्षेत्र में आ गया। गृह युद्ध समाप्त होने के कारण और अन्य झगड़ोंवाली बातों की समाप्ति के कारण भूटान में शान्ति छा गयी।

परन्तु यह समझना कि झगड़ों की एक दम जड़ ही मिट गई, मिथ्या होगा। अंग्रेजों के समय में भी रियासत में छोटे मोटे झगड़े होते रहे। वंशानुगत राजवंश की स्थापना के साथ दूसरे सरदार और अधिकारी भी जो चुने जाते थे, वंश-परम्परागत मान लिये गये। भूटान में अब ऐसे परिवार उत्पन्न हो गये जिनके हाथों में सत्ता आगयी। साधारणतः राष्ट्रों में सामन्तशाही शासन के पश्चात् राज्याधिकार, और राज्याधिकार के पश्चात् प्रजा-तन्त्र शासन आता है। परन्तु भूटान इसका अपवाद था। पारिवारिक राज्याधिकार होने के कारण उसे राजा के, पैन-लोपों आदि के चुनाव के और धार्मिक झगड़ों से तो मुक्ति मिल गई, परन्तु कुछ परिवारों में धन और शक्ति केन्द्रित हो गया। प्रमुख सत्ताधारियों में व्यक्तिगत द्वेष फिर प्रारम्भ हो गया। भूटान में एक विशेष वर्ग बन गया जिसके सदस्य राजा, प्रधान मंत्री, पैनलोप और फौज के अफसर आदि हो गये। वर्तमान राजा के बड़े साले कुमार डोरजी थे, और सिक्किम के स्वर्गीय सर ताशी नामगियाल उनकी पत्नी के नाना। कुमार डोरजी के दूसरे भाई डोरजी रिमपोछे (लामा) कहलाते हैं। कहा जाता है कि इनकी पत्नी महाराज की सौतेली बहिन थीं। उनके एक बच्चा भी है। रिमपोछे महाशय आजकल एक और स्त्री के साथ फुन्टशोलिंग में रहते हैं। इनकी यह मंगेतर कलकत्ते की एक महिला हैं जो निश्चय ही भारतीय नहीं हैं। प्रधान मन्त्री के सब से छोटे भाई जिनकी अवस्था २८ साल से अधिक न होगी, सेक्रेटरी जनरल हैं। सेक्रेटरी जनरल भार-तीय चीफ सेक्रेटरी के समान होता है। सम्भवतः इन्हीं दोनों भाइयों में से भूटान–महाराजा किसीको अपना प्रधान मंत्री नियुक्त करेंगे। यदि उन्होंने मंत्रिमंडल का निर्माण किया तो सम्भव है यह दोनों भाई उसके सदस्य हों। महाराजा के छोटे भाई पारो के ताशो हैं। सम्भव है इन्हें भी कोई स्थान मिल जाय। भूटान एक सामन्त-शाही रियासत ही रही, परन्तु व्यक्तिगत झगड़े और द्वेष हृदय में छिपे रहे। किंतु धन की आय का स्रोत (डाके-जनी) के सूख जाने से उनमें आपस में लड़ने के साधन न रहे।

२

जो लोग भारतीय मैदानों में लूट मार करने आते थे, और जो दिन रात आपस में झगड़ते रहते थे वे ही अंग्रेजों की राजनीति के कारण बाहर से शान्तिप्रिय बन गये। उसी देश में एकाएक (१९६२ में) बहुत सा धन पहुँचा और भूटान में फिर से चेतना आई और फिर से व्यक्ति-गत द्वेष का प्रारम्भ हुआ।

१९५९ में दलाई लामा ल्हासा से भाग कर भारत में शरणार्थी बन कर आए। उस समय भारतीय शासन

१९५४ ... के मधुर और मादक स्वप्न में खोये हुए थे। ... की इस युग-प्रवर्तक घटना से वे कुछ चैतन्य हुए। ... टूटने पर उन्होंने देखा कि चीनी उत्तरी पर्वतों पर ... जम गये हैं। अब भारत के शासकों को भारत ... चिन्ता हुई।

१९१२ में जनरल चाँग ऐर फेंग (Chang Er ...) नामक एक उच्च चीनी सैनिक अधिकारी ... चीन के विस्तार पर विचार किया। उसने अपनी ... सरकार को सुझाव दिया कि नैपाल, सिक्किम और भूटान ... चीन के दाँतों की भांति एक पंक्ति बनाए हुए हैं। ... इनको तिब्बत में सम्मिलित करके इनका एक संघ (... फेडरेशन) बना दिया जाय तो अति उत्तम हो। उसने ... चीन के प्रधान मंत्री को भी यह सुझाव दिया। इस चीनी ... जनरल की इस कल्पना को कितने ही पश्चिमी लेखकों ने उछाला। जहाँ-तहाँ इस संघ की चर्चा होने लगी। ...१९२८ में पर्सीवल लैण्डन ने अपनी पुस्तक 'नेपाल' में ... जनरल चाँग के इस सुझाव के संबंध में स्पष्ट रूप से लिखा ... इसलिए भारत सरकार को इसका ज्ञान अवश्य होगा। ... इधर पैटरसन आदि पाश्चात्य लेखकों ने लिखना आरम्भ कर दिया कि नेफा, भूटान, सिक्किम, नैपाल और ... हाथ की उंगलियों के समान हैं जो कि तिब्बत ... हथेली के साथ संघ बना सकते हैं। जब पश्चिम के ... लेखकों ने इतना हल्ला मचाया तब भारत सरकार का ध्यान भूटान की समस्या की ओर गया।

इन सब कारणों से हमारी सरकार भूटान का महत्त्व ... समझने लगी और उसने उसमें दिलचस्पी लेना आरंभ किया। १९६१ में भारत सरकार ने भूटान की उन्नति के ... लिए १८ करोड़ रुपये दिये। अब क्या था? भूटान के ... परिवारों का, विशेषतया डोरजी परिवार का, तो ... क्रम ही बदल गया। भूटान के सरकारी कर्मचारियों ... में तो मानों प्राण ही आ गए। मोटरें, जीपें आदि की भरमार हो गयी। नये नये पद बढ़े, और बढ़ा बड़े बड़े ... पदों पर नियुक्ति का अधिकार। आपसी द्वेष जो सोया था, फिर से जाग उठा। इधर चीनियों के तिब्बत पर अधिकार करके भूटान की सीमा पर पहुँच जाने से ... भूटान में फिर से अशान्ति आरंभ हो गई। भूटान की जो ... उन्नीसवीं शती में थी, वह बड़ी प्रबलता से फिर से ... उठी।

चीनियों से रक्षा हेतु भूटान में कार्य।

स्वतन्त्र भारत और भूटान में १९४९ में संधि हुई। इस संधि के आधार पर भूटान की सीमा-सुरक्षा का भार भारत को अपने कंधों पर लेना पड़ा। परन्तु इसमें यह लिखा गया कि कब और कहाँ शत्रु की आशंका है, इसका निश्चय भूटान ही करेगा। तात्पर्य यह कि जब भूटान आवश्यकता समझेगा तभी भारत से सहायता माँगेगा। परन्तु भूटान की माँग के बिना भारतीय सैनिक भूटान में पैर भी नहीं रख सकते। यदि भारतीय फौजी अफसरों को किसी सरकारी कार्य वश भूटान जाने की आवश्यकता आ पड़ती है तो उन्हें भारतीय विदेश मंत्रालय से आज्ञा लेनी पड़ती है, और वहाँ जाने के लिए सिविलियन वस्त्र पहिनने पड़ते हैं।

अब प्रश्न यह है कि जब भारतीय सेना भूटान में न हो और उस पर आक्रमण हो जाय तो उस समय भूटान की सीमा की रक्षा कौन करे। इसके लिए भूटान ने निश्चय किया कि भूटानी मिलिशिया ही भूटान की उत्तरी सीमा की देख रेख करेगी। भूटान में सेना तो सदैव ही रही है। पैनलोप तो सदैव आपसी युद्ध किया ही करते थे। किन्तु यह स्पष्ट था कि भूटानी केवल पुराने ढंग से लड़ना जानते हैं और उनके पास हथियार पुराने ढंग के हैं। इन दोनों कमियों को पूरा करना आवश्यक था। अतएव भूटान ने निश्चित किया कि कुछ भारतीय सैनिक वहाँ जाकर भूटानी सैनिकों का आधुनिकीकरण करके उन्हें नवीन युद्ध-पद्धति की शिक्षा दें। जब नेपाल के महाराजा त्रिभुवन ने राणाओं को हटाकर शासन की बागडोर अपने हाथ में ली तो उन्होंने भी भारतीय सैनिक अधिकारियों के प्रशिक्षण दल को नैपाल बुलाया था। वह वहाँकी सेना को प्रशिक्षण देकर भारत वापिस लौट आया था। उस समय कुछ ऐसे नेता नैपाल में थे जो विदेशी सैनिक टीम को अपने देश में देखना पसन्द नहीं करते थे। नैपाल ने आंतरिक पूर्ण स्वतंत्रता देर से प्राप्त की थी। वहाँके नये नेता अपनी नवीन स्वतंत्रता पर गर्वित थे। भूटान में भी ऐसा आज नहीं, तो कल होगा। जो भी हो, चीनियों के पास अग्नि प्रज्वलित करने के लिए यह भी एक मसाला है।

जब विपत्ति पड़ने पर भूटान की रक्षा का भार भारतीय सेना पर है तो पहिली मुख्य बात यह है कि भारतीय सेना इतनी तत्पर रहे कि एक आवाज पर भूटान में प्रवेश करके

उसे सहायता दे सके। भारतीय सेना इस कार्य के लिए तैयार है। उन रेलवे स्टेशनों पर जहाँ कुछ दिनों पहिले रात्रि में बाघ का गर्जन सुनाई पड़ता था, अब लगातार मालगाड़ियाँ खाली हो रही हैं, और पंजाब, राजस्थान आदि से आये हुए सैनिक घूमते दिखाई देते हैं। जो जंगल निर्जन और नीरव पड़े थे उनमें आज सैनिकों के स्वर गूँज रहे हैं।

समय आने पर भारतीय सेना भूटान में प्रवेश करने को तैयार तो है, किंतु उसके लिए भूटान में यातायात की सुविधाएँ होनी आवश्यक हैं। थिम्पू से फुंटशोलिंग तक टेलीफोन लग गया है। वहाँ तार घर भी खुल गये हैं, तथा थिम्पू, पारो और फुंटशोलिंग अब तार द्वारा कलकत्ते से जोड़ दिये गये हैं। रहीं सड़कें, सो वे बनाई जा रही हैं। निम्नलिखित मार्ग तैयार हो गये हैं:

सड़क का नाम	दशा	निकटतम रेलवे स्टेशन
चुरमुची—पारो	केवल खच्चरों के लिए	—बनार हाट (Banarhat)
फुंटशोलिंग—छुमडो जोग—पारो	जीप सड़क १०७ मील लंबी	—हासीमारा (Hasimara)
फुंटशोलिंग—छुमड़ो जोग—थिम्पू	जीप सड़क १०८ मील लंबी	— " "
दीवानगिरी*——ताशीगोंग	जीप सड़क ११८ मील लंबी	—रंगिया (Rangiya)
हाथीसार—पारो	जी। सड़क ४० मील तक बन चुकी है।	—बोनगाई (Bongaigaon)

सड़क बनाने के लिए ताशीगाँग से पुनाखा तक का सर्वेक्षण हो चुका है। कुछ वर्षों में ताशीगाँग से थिम्पू तक सीधी सड़क बन जायगी। पूर्वी भूटान के ताशीगाँग से ड्रांगलाँग नेफा तक सड़क बनाकर पूर्वी भूटान को धीरे-धीरे नेफा से मिला दिया जायगा।

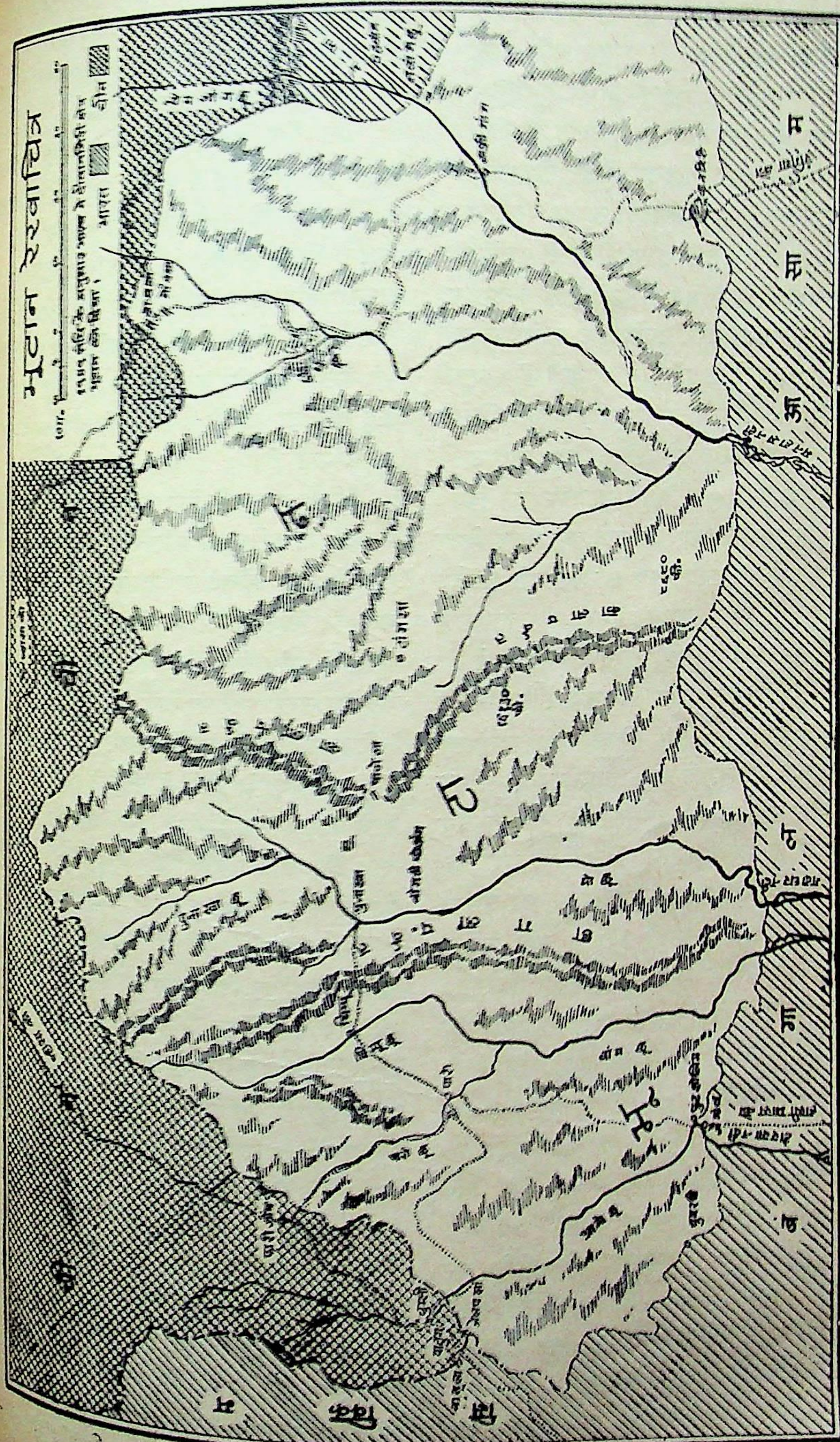
हमारी सेना को भूटान में प्रवेश करने में आज कुछ कठिनाइयाँ हैं तो चीनी सेना को और भी अधिक असुविधाएं हैं। फिर महाराजा भूटान इस बात पर दृढ़ हैं कि यदि चीनी सेना भूटान में प्रवेश करेगी तो वे उसके साथ गुरिल्ला युद्ध करेंगे, और उन्हें विश्वास है कि भारत से भी भूटान को पूरी सहायता मिलेगी और अन्त में भूटान में चीन को मुँह की खानी पड़ेगी।

किंतु गुरिल्ला प्रणाली की लड़ाई की सफलता के लिए कुछ बातें अत्यन्त आवश्यक हैं। पहिली बात तो यह कि गुरिल्ला युद्ध नागरिकों के परोक्ष सक्रिय सहयोग और हार्दिक सहानुभूति के बिना नहीं चल सकता। इसलिए यह परमावश्यक है कि स्थानीय नागरिकों में जागृति हो। वे समझें कि गुरिल्ला युद्ध उन्हींकी स्वतन्त्रता के लिए लड़ा जा रहा है और उन्हींका युद्ध है। महाराजा भूटान जनता के लिए सड़कों का निर्माण करवा रहे हैं, पाठशालाएँ खुलवा रहे हैं, औषधालय खुलवा रहे हैं। इन जनहित कार्यों के कारण वहाँकी जनता महाराज से बहुत प्रभावित है। पाठक कह सकते हैं कि ऐसा तो चीनी भी करेंगे। परन्तु एक तो उन्हें ऐसा करने में समय लगेगा, दूसरे वे कम्युनिस्ट हैं जिनका उद्देश्य ही समाज को तोड़-फोड़ कर उसका रूपान्तर करना है। पहाड़ी जातियाँ सामान्यतः ऐसे तोड़-फोड़ के क्रांतिकारी आन्दोलन नहीं चाहतीं। वे परम्परा से जैसे जीवन व्यतीत करती रही हैं, उसी प्रकार आगे भी करना चाहती हैं। किंतु यह भी सम्भव है कि चीनी सैनिक अपने साथ तिब्बत में गुप्त बनाये गये बौद्ध लामाओं को लावें और उनके द्वारा भूटान की जनता को बहकाएँ। यहाँ यह याद रखना चाहिये कि भूटानियों का अपना धार्मिक संघ या संगठन है जो तिब्बतियों से भिन्न है। यहाँके बौद्ध पंथ को दलाई लामा के दल से पीड़ित किए जाने पर तिब्बत छोड़ना पड़ा था। वे तो भूटानी लामाओं के अतिरिक्त तिब्बती लामाओं की बात न सुनेंगे। उन्होंने विदेशियों का शासन न कभी स्वीकार किया है, और न करेंगे। यह उनकी परम्परागत विशेषता रही है।

यदि गोरिल्ला युद्ध में कोई अन्य देश भी सहायक हो तो गोरिल्लाओं की विजय अवश्य होगी। इसके लि

---

*दीवानगिरी पहिले आसाम प्रदेश में था परन्तु ८ अगस्त १९४९ की सन्धि के बाद दीवानगिरी और उसके पास का लगभग ३२ वर्ग मील का भाग भारत सरकार ने भूटान को दे दिया।


भूटान रेखाचित्र

भारतीय जनता तत्पर है। कुछ लोग कहेंगे कि सम्भव है चीन कुछ ऐसी अंतर्राष्ट्रीय बाधा उपस्थित करदे जिससे भारत तटस्थ रहने को विवश हो जाए। यदि भारत ने तिब्बत में चीनी आक्रमणकारियों के विरुद्ध गुरिल्ला युद्ध करने वाले तिब्बत के खम्पा वीरों की सहायता की होती तो आज चीनी निश्चिन्त और निष्कंटक होकर हिमालय को जीतने की योजना बनाते हुए दिखाई न पड़ते। चीनी बहुत चालाक हैं। हमारे नेता दूसरों की मीठी मीठी बातों और व्यक्तिगत प्रशंसा से इतने भ्रमित हो जाते हैं कि वे खुशामद करनेवालों की असलियत और उनके दुष्ट अभिप्राय नहीं समझ पाते। वे आसानी से धोखे में आजाते हैं। पुरानी कहानी है कि कौवे के मुँह में रोटी का टुकड़ा देखकर बिल्ली के मुँह में पानी आ गया और उसे लेने के लिए उसने उसके मधुर गान की प्रशंसा के पुल बाँधने आरम्भ कर दिये। प्रशंसा से फूल कर ज्योंही कौए ने गाने का प्रयत्न किया त्योंही रोटी का टुकड़ा उसकी चोंच की पकड़ से छूटकर गिर पड़ा जिसे बिल्ली लेकर चम्पत हो गई, और कागराज काँव काँव करते ही रह गए। यह भारतीय नेता ही थे जो अपने पड़ोसी की, और अपने तथा साम्राज्य विस्तारवादी चीन के बीच के अवरोध अर्थात् तिब्बत की स्वतंत्रता की निर्मम हत्या मूक बने देखते रहे। फिर यह भी जानने योग्य है कि जिसे भी भारत सरकार से कुछ राष्ट्रीय सुविधा लेनी होती है वह भारतीय नेताओं की उदारता, विशालहृदयता, अंतर्राष्ट्रीयता, शान्तिप्रियता की प्रशंसा करने लगता है और वे भी उसको निराश नहीं करते। नेता जैसा करेंगे भारतीय जनता भी वही करेगी। हमारी राजनीतिक अकर्मण्यता इतनी जगजाहिर हो गयी है कि कई लेखकों ने उसकी चर्चा की है। उदाहरण के लिए वेम्बरी ट्रेसी का कहना है कि The Hindu is too indolent to excite himself into fanaticism and he is too indifferent to risk his life for the sake of remedying political wrong. यदि भारत आँख मूंद कर निष्पक्षता की नीति पर चलता रहा और उसने सुरक्षा की दृष्टि से अपने राष्ट्रीय हितों का सजगता से ध्यान न रखा तो यह नहीं कहा जा सकता कि इसका परिणाम भारत के लिए क्या होगा। किंतु हमें आशा है कि कांग्रेस में कुछ नेता अवश्य ऐसे होंगे जो भूटान के चीनियों से गुरिल्ला युद्ध करने पर भारत सरकार को भूटान की सहा[यता] करने के लिए बाध्य कर सकेंगे। यदि उसे भारत [की] सहायता समय पर और समुचित रूप में मिल गयी [तो] भूटान की विजय अवश्यम्भावी है।

भारतीय सेना भूटान की सहायता के लिए उस[की] सीमा पर जमी हुई है। किंतु उसे कुछ असुविधाएं भी हैं। ज्योंही सीमा के चाय बागानों के मालिकों को [यह] सूचना मिली कि वहाँ भारतीय सेना आनेवाली है, त्यों[ही] उन्होंने शीघ्रता से आसपास की भूमि को खरीदना आरम्भ कर दिया। ये भारतीय पूँजीपति न कुछ वलिदान करने को तैयार थे, और न हैं। सेना को वहाँ पहुँचना था, [और] वह वहाँ जा पहुँची। परन्तु ये लोग उसके वहाँ जाने [से] प्रसन्न नहीं हैं।

जिस समय द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हुआ उस समय आसाम के अधिकांश चाय के बगीचों के मालिक गोरे थे। सेना के वहाँ पहुँचने पर चायबागानों के कारखाने बन्द हो गए थे। चायबागानों के गोरे मालिक और कार्यकर्ता (जो युवक थे) फौज में भर्ती हो गये और उनकी महिलाएँ सैनिकों के लिए तरह तरह के कार्यों में लग गईं। चायबागानों के श्रमिक सड़कों के निर्माण कार्य में लगा दिये गये। मुझे एक बार युद्ध के दिनों में गौहाटी से सड़क द्वारा दीमापुर जाने का अवसर मिला। मैंने देखा कि नौमालीगढ़ की चाय की फैक्टरी बन्द पड़ी थी। मीलों तक आदमी नहीं दिखायी देता था। चाय की झाड़ियाँ जंगली झाड़ियों में परिवर्तित हो चुकी थीं। चायबागानों के क्लब फौजी अधिकारियों के लिए खुल गए थे। परन्तु आजकल ऐसा नहीं है। आज बहुत से चायबागान भारतवासियों के अधि[]कार में हैं। इस बार शायद ही कोई चायबागान का मालिक या अधिकारी [से]ना में आया हो, और शायद ही उनकी स्त्रियाँ सैनिक कार्यों में लगी हों। यद्यपि इनके क्लब फौजी अफसरों के लिए खोल दिये गये हैं, फिर भी यदि किसी सन्ध्या को सैनिक अफसर मनोरंजनार्थ इन क्लबों में [जाते] हैं, तो उनसे ऐसा व्यवहार किया जाता है कि मानो उन्होंने वहाँ अनधिकार प्रवेश किया हो। यह दशा है बंगाल और आसाम की तराई के चायबागानों के पूँजीपतियों की। इन धनी लोगों के मानसिक सन्तुलन को [ठीक] रखने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि भारत सरकार एक निश्चित आय से अधिक आय वालों के लिए, एक निश्चित

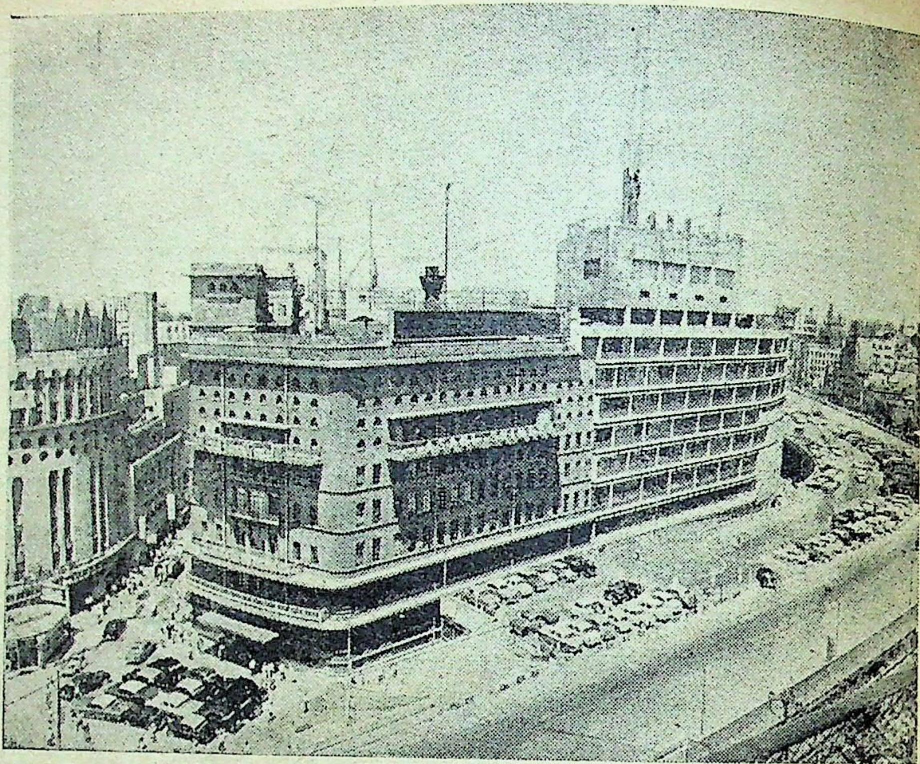
अवधि के लिए सैनिक सेवा अनिवार्य कर दे। जब इन चायबागानों के मालिकों और अधिकारियों के परिवारों के पिता, पुत्र, भाई सेना में होंगे तो भारतीय सेना के प्रति उनमें अपनत्व की भावना उत्पन्न होगी और उनसे सेना को पूरी-पूरी सहायता मिलेगी।

अब रही बात जन-साधारण की। उसका व्यवहार भी सैनिकों के प्रति हार्दिक नहीं कहा जा सकता। यह इस कारण कि भारत में अंगरेजों की सेना विदेशी समझी जाती थी, और जनता उसे अपना न समझती थी। इसलिए सामान्य जनता में भारतीय सेना के प्रति कोई ममता या सौहार्द उत्पन्न नहीं हो पाया। आज स्थिति बदली हुई है। यह समस्या सुलझाई जा सकती है और अपनी सेना के प्रति अनुराग उत्पन्न किया जा सकता है। जहाँ सेना जाती है वहाँ स्थानीय लोगों को लाभ होता है। जब सैनिकों से जनता को धन-लाभ होगा तब उसका दृष्टिकोण भी बदल जाएगा। जो भी हो, किन्तु यह अति आवश्यक है कि स्थानीय जनता को प्रसन्न रखने के लिए तथा उनका हार्दिक सहयोग और सहानुभूति प्राप्त करने के लिए उस प्रान्त के हृष्ट पुष्ट युवक अधिकाधिक संख्या में सेना में लिए जाएँ। अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि, सैनिकों का जितना सम्मान पंजाब, बम्बई और राजस्थान आदि प्रान्तों में है उतना पूर्वी प्रान्तों में नहीं। स्थानीय युवकों के सेना में भर्ती होने और नागरिकों के व्यवहार में परिवर्तन आने में समय लगेगा। परन्तु इसके लिए सरकार प्रचार तो कर ही सकती है।

सेना की अन्य असुविधाएँ भूटान से सम्बन्धित हैं। भारतीय सेना के अभी पैर भी नहीं जमे थे कि धौलाधार (सेला) पर युद्ध प्रारम्भ हो गया। जिन युनिटों ने १९६२ कामेंग के युद्ध में भाग लिया था उनमें कई यूनिट ऐसे थे जो सितम्बर में पहुँचे। उस यूनिट के जवानों ने उस भूमि को देखा तक न था जिस पर उन्हें लड़ना था। उस अपरिचित भूमि पर भारतीय सैनिक लड़े। इसके विपरीत, चीनी सेना 'सेला' और जांग की पूर्वी भूमि-खंड से भली भाँति परिचित थी। यदि भूटान में भी भारतीय सैनिकों को इस प्रकार अचानक जाना पड़े तो भय है कि उसी घटना की पुनरावृत्ति हो जो कामेंग में हुई थी। यह भी सम्भव है कि यदि हमारी सेना भूटान में प्रवेश करे तो चीनी सेना भूटान में उत्तर से घुस कर दक्षिण की ओर बढ़े। परन्तु इस भय को दूर करने की कई रीतियाँ हैं। हमारे सैनिक भूटान की भूमि पहिले से देख सकते हैं। वहाँके नागरिक हमारी सेना का मार्ग-दर्शन पूरी तरह से कर सकते हैं।

दूसरी असुविधा है भूटान के विषय में भारतीयों का अज्ञान। सामान्य भारतीय सैनिकों के लिए भूटानी और चीनी में कुछ भी अन्तर नहीं। उन्हें दोनों एक से जान पड़ते हैं। जो मित्र और शत्रु में भेद भी न कर सके, उसकी कठिनाइयों का अनुमान किया जा सकता है। भारतीय लोग भूटानियों और चीनियों का भेद तभी समझ सकते हैं जब भूटानियों के साथ उनका सम्पर्क बढ़े। वे उन्हें ठीक तरह से समझें, उनकी भाषा की ध्वनि से परिचित हों। उनके रहन-सहन रीति-रिवाजों को जाने। अभी तक भूटानियों को भारत में आने में कोई बाधा नहीं है, पर भारतीयों को भूटान जाने के लिए भूटान सरकार से आज्ञा प्राप्त करनी आवश्यक है। यदि दोनों ओर से अबाध आवागमन होने लगे तो भारतीय नागरिक भूटानी नागरिकों को भली भाँति पहिचानने लगें। इसमें भूटानियों का ही लाभ होगा। यहाँ पर यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि उत्तर से चीनी लोग भूटान की उत्तरी और मध्य की उपजाऊ घाटियों पर दृष्टि लगाए हुए हैं। ऐसी स्थिति में भूटान को दूरदर्शिता से काम लेना पड़ेगा।





असाही का टोकियो कार्यालय

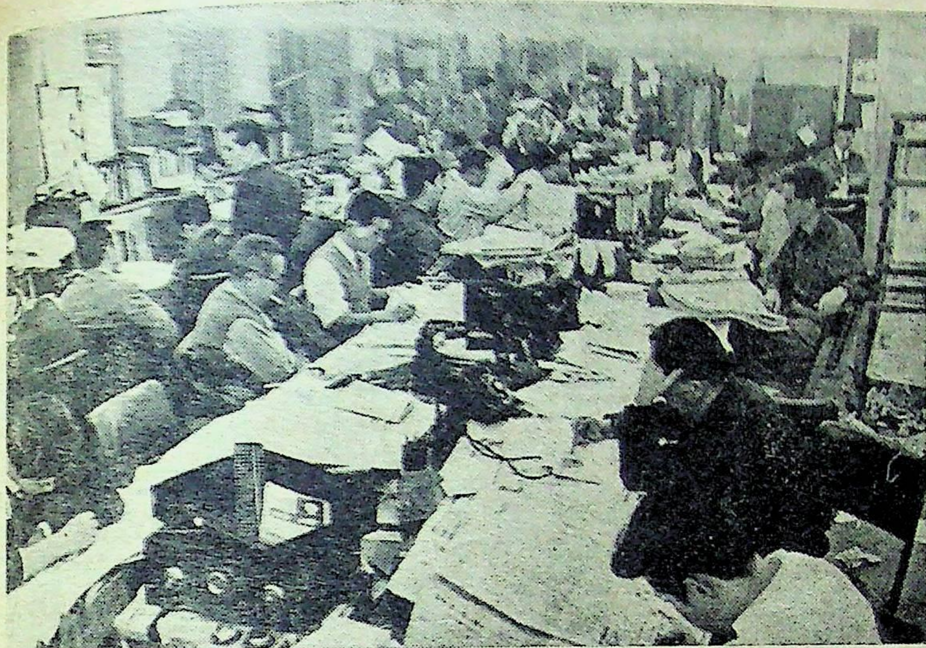
(फोटो असाही शम्बुन के सौजन्य से

जापान का गौरवशाली पत्र—असाही

श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी

८५ वर्ष हुए जनवरी २५, १८७९ में जापान के ओसाका नगर में एक नये पत्र का उदय हुआ था। इसका नाम रखा गया था—'असाही,' जिसका अर्थ जापानी भाषा में होता है—उदीयमान सूर्य। इस पत्र को प्रकाशित करते समय इसके प्रकाशक श्री मुरायामा ने लिखा था, "इस पत्र का सम्पादन इस प्रकार होगा कि इसका पढ़ना आसान हो बच्चों तक के लिए और इसलिए इसमें चित्र तथा अन्य ऐसी व्यवस्था होगी। इसका उद्देश्य होगा साधारण जनता, स्त्री-पुरुष, बूढ़े-बच्चों को दिशा-निर्देश देना। उन्हें सामाजिक न्याय की शिक्षा देना।" आज जब कि यह दैनिक पत्र अपनी ८५वी वर्षगाँठ मना रहा है, तब भी अपने मूल सिद्धान्तों पर टिका हुआ है। जापानी जनतंत्र को दिशा-निर्देश के काम में लगाये हुए है। आज इसका प्रचार ५० और ६० लाख के बीच में आँका जाता है।

असाही शुम्बुन पत्र की यह विशेषता नहीं है कि इसका प्रचार कितना है या यह कि चार नगरों में इसके कार्यालय हैं जहाँसे चार संध्याकालीन और बारह प्रातःकालीन संस्करण प्रकाशित होते हैं तथा विभिन्न नगरों को ११ स्थानीय संस्करण जाते हैं। आज जब कि सारे संसार के देशों में व्यापारिकता का प्राधान्य हो रहा है, विशेष उन देशों में जो कि पत्र की स्वाधीनता का दम भरते हैं, उस समय यह पत्र की स्वतन्त्रता और कर्म की आन्त रिक आजादी, दोनों की, रक्षा कर सका है। आज 'असाही' के मालिक इसके दो प्रारम्भकर्त्ताओं के परिवार श्री मोरायामा और श्री यूनो तथा इस पत्र के ६,५०० कर्मचारी। श्री मोरायामा ने जब पत्र की स्थापना की उसी समय समझ लिया था कि व्यापारियों की गिद्ध-दृष्टि इसपर पड़ सकती है और उन्होंने यह निश्चय किया कि इस कम्पनी के शेयर सिवाय उन लोगों के



असाही का सम्पादकीय कक्ष

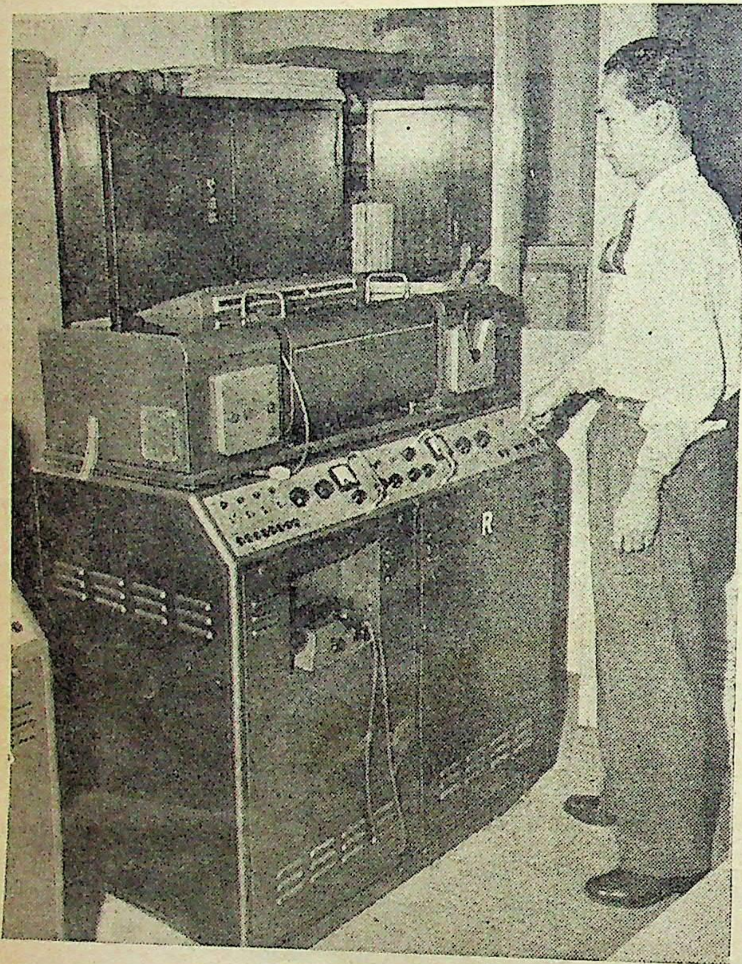
(फोटो असाही शम्बुन के सौजन्य से

असाही से सम्बन्धित हों और किसीको नहीं हस्तान्तरित किये जा सकते। परिणामस्वरूप सबसे अधिक प्रसार और सबसे अधिक प्रभाववाला यह दैनिक पत्र अभी भी अपनी स्वतन्त्रता कायम रख सका है।

'असाही' ने किस प्रकार भाँति-भाँति के प्रभाव से अपने सिद्धान्तों की रक्षा की है, उसका इतिहास बड़ा गौरवपूर्ण है। जबकि जापान में युद्ध-लार्डों का शासन था, असाही ने साहस करके निरस्त्रीकरण की माँग की थी। सन् १९०५ में जब कि टोकियो की जनता ने पोर्ट्‌स माउथ सन्धि के पश्चात् सरकार की आलोचना करने के लिए एक बड़ी सभा की तथा उनको गोलियों से भून दिया गया, असाही ने इस अत्याचार का विरोध किया, सरकार की निन्दा की और जो लोग मारे और घायल हुए थे उनके साथ अपनी सहानुभूति प्रकट की। परिणाम यह हुआ कि १५ दिन के लिए अखबार को अपना प्रकाशन बन्द करना पड़ा। सन् १९१३ में जब कटसूरा मंत्रिमंडल ने संविधान को भंग करना चाहा तो इस पत्र ने संविधान की रक्षा के लिए आन्दोलन किया और अन्त में संविधान की रक्षा करा ली। सन् १९१८ में इसने साइबेरिया में जापानी फौज भेजने का विरोध किया और जब पत्र की स्वाधीनता पर चोट हुई तो उसका डटकर मुकाबला किया। इसपर गुंडों ने श्री मुरायामा पर हमला किया। पर उससे न घबड़ाकर सन् १९२० में असाही ने दो आन्दोलन छेड़े। एक वयस्क मताधिकार के लिए, और दूसरा निरस्त्रीकरण के लिए। पहला आन्दोलन १९२५ में सफल हुआ जबकि संसद ने वयस्क मताधिकार को स्वीकार कर लिया और निरस्त्रीकरण के आन्दोलन का यह प्रभाव हुआ कि शस्त्रास्त्रों में कमी हो गयी। असाही का जनता और सरकार पर कितना प्रभाव था, उसका अन्दाजा इससे लगाया जा सकता है कि २६ जनवरी, १९३६ में सेना ने विद्रोह कर दिया और राज्य अपने हाथों में ले लिया, तो जिन-जिन स्थानों पर सैनिकों ने आक्रमण किया, उनमें असाही का कार्यालय एक प्रमुख स्थान था। पर इससे असाही ने हिम्मत नहीं हारी और १९३८ में जब सारे देश में लामबन्दी का कानून पास हुआ तो असाही ने इसके खिलाफ आन्दोलन छेड़ा। लामबन्दी के परिणामस्वरूप जापान द्वितीय महायुद्ध में सम्मिलित हुआ। असाही बन्द हो गया।

सन् १९४५ में जब लड़ाई समाप्त हो गयी तो असाही का फिर उदय हुआ। उस समय असाही ने अपने सिद्धान्त इस प्रकार घोषित किये—

(१) कि असाही एक जनतांत्रिक राज्य की स्थापना और विश्वशान्ति की स्थापना में सहयोग देगा और



असाही की फेक्सिमिल संदेशवाहक मशीन। इस पर सैकड़ों मील दूर से हाथ लिखे या टाइप किये कागज की प्रतिलिपि ज्यों की त्यों आती है।

निष्पक्षता तथा द्वेषहीन दृष्टि से भाषण की स्वतन्त्रता की रक्षा करेगा ;

(२) कि असाही जनता के सुख के उद्देश्यों के लिए अपनी शक्ति लगाएगा और हर प्रकार के अन्याय, अत्याचार और भ्रष्टाचार का विरोध करेगा ;

(३) कि असाही घटनाओं और सत्य को शीघ्रता से और निष्पक्षता से प्रकाशित करेगा तथा उचित और प्रगतिशील टिप्पणियाँ करेगा।

(४) कि असाही हमेशा सहनशीलता का ध्यान रखेगा, अपनी गरिमा और उत्तरदायित्व को महत्व देगा और तेज और सन्तुलित दृष्टिकोण का सम्मान करेगा।

असाही जैसे पत्र का देश के राजनीतिक जीवन और उसकी सांस्कृतिक और वैज्ञानिक उपलब्धियों पर ही नहीं, पत्र-जगत् के ऊपर भी एक बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रभाव रहा है। असाही के संचालक ने अपनी वसीयत में जो यह धारा रख दी कि उस पत्र के शेयर केवल उन्हींको दिये जाएँगे जो असाही के उत्पादन में लगे हुए हों, उसको देश के समाचारपत्र सम्बन्धी कानून में स्थान मिला है।

फिर भी असाही ऐसा पत्र नहीं है जो संसार के अन्य बड़े पत्रों का मुकाबला न कर सके। इसकी पूंजी २० करोड़ ७० लाख येन की है। इस पत्र में ६,५०० कर्मचारी काम करते हैं, जब कि संसार के सब से समृद्ध और शक्तिशाली पत्र समझे जानेवाले 'न्यूयार्क टाइम्स' में ५,३४६ कर्मचारी काम करते हैं। इन ५,३४६ कर्मचारियों में केवल ९१२ सम्पादकीय विभाग में थे, जबकि असाही के ६,५०० कर्मचारियों में से १,९३६ कर्मचारी सम्पादकीय विभाग में हैं। असाही टोकियो, ओसाका, कोकुरा और नागोया नामक चार नगरों से प्रकाशित होता है और इस प्रकार उत्तर से दक्षिण तक जापान के सारे क्षेत्र में फैला हुआ है। इन चारों कार्यालयों की अपनी निजी टेलीफोन-लाइनें, टेलीफोटो-लाइनें, टेलीफेक्स मशीनें तथा अपने प्रसारण-स्टेशन हैं। असाही की अधिकतर गाड़ियों में वी०एच०एफ० ट्रांसमीटर और रिसीवर लगे हुए हैं, जिनके द्वारा गाड़ियों में बैठे-बैठे समाचार-पत्रों को समाचार भेजे जाते हैं। प्रायः प्रत्येक असाही-रिपोर्टर के हाथ में वाकीटाकी ट्रांसमीटर होता है, जिसके द्वारा वे बिना किसी तारघर को गये जहाँ पर होते हैं वहींसे, सीधे अपने कार्यालय को समाचार भेजते रहते हैं। असाही के पास अपने हवाई जहाज हैं, अपनी ब्राडकास्टिंग कम्पनी है और टेलीविज़न स्टेशन हैं। ओसाका में जो इसका मुख्य कार्यालय है उसमें एक बड़ा विशाल हाल है, जिसमें बड़े पैमाने पर सांस्कृतिक कार्यक्रम होते हैं।

जापान के सांस्कृतिक, वैज्ञानिक तथा कलात्मक विकास में असाही का भाग कम नहीं रहा है। सन् १९१



असाही की विशालकाय रोटरी जिस पर वह छपता है।

(फोटो असाही शम्बुन के सौजन्य से

असाही ने दो अमरीकन वायुयान-चालकों, मार्स ...आइवर को जापान बुलाया था जिससे कि जनता ...यन के प्रति उत्साह पैदा हो। १९२३ में असाही ...ने हवाई जहाजों द्वारा टोकियो से ओसाका और ... को प्रथम नियमित एयरलाइन सर्विस प्रदान की। इसके दो वायुयानों ने १९२५ में मास्को, बर्लिन, लंदन और रोम की सद्भावना यात्रा की थी। ... में असाही ने प्रशान्त महासागर को बिना रुके ...करनेवाली पहली उड़ान के लिए २५ हजार डालर पुरस्कार दिया था। १९३६ में जबकि ग्रेट ब्रिटेन में ...का राज्याभिषेक हुआ, तो असाही के वायुयान ...से सीधे लंदन को उड़े और इस प्रकार उन्होंने ...का एक नया कीर्तिमान कायम किया। असाही उन ...लोगों को, जिन्होंने वर्ष में विज्ञान, कला, खेल तथा ...क्षेत्रों में विशेष योगदान दिया हो, पुरस्कार प्रदान ...ता है। इसके अलावा विशेष योग्यतावाले वैज्ञानिकों ...शोधकर्ताओं को वार्षिक अनुदान भी देता है। असाही ...के विकास के लिए एक अध्ययन-केन्द्र की स्थापना ...की। इसने अपने खर्चे से संसार के चोटी के खिलाड़ियों ...सांस्कृतिक विभूतियों को जापान बुलाया है। जब मैं ...स्थित असाही कार्यालय की सातमंजिली इमा-...को देखने गया, तो विभिन्न विभागों में जाने-जाने में ...घण्टे लग गये। ३५ मोनोटाइप मशीनों पर पेपर ...हो रहा था और ६४ इंच चौड़े तेज गैस मशीन ...जिसमें विभिन्न रंगों की छपाई का प्रबन्ध है, पत्र छप ...था। असाही का कार्यालय वास्तव में एक समाचार-पत्रों का क्लब है, क्योंकि उसी भवन में हमें एसोसिएटेड प्रेस आफ अमरीका, लन्दन टाइम्स, न्यूयार्क टाइम्स, पाना तथा अन्य विदेशी समाचारपत्रों तथा समाचार एजेंसियों के कार्यालय देखने को मिले। असाही को एसोसिएटेड प्रेस, रायटर्स, एजेंसी फ्रांस प्रेस, लंदन टाइम्स और न्यूयार्क टाइम्स आदि विदेशी संस्थान अपने समाचार सीधे भेजते हैं।

दैनिक असाही के अतिरिक्त इसी कार्यालय से साप्ताहिक असाही, चित्रमय असाही ग्राफ, असाही खेल-कूद, बालकों का असाही, स्त्रियों का असाही, विज्ञान का असाही, कृषि का असाही, असाही कैमरा, असाही बालक पंचांग, असाही खेलकूद पंचांग, असाही आर्थिक पंचांग, असाही शब्दकोष, असाही गृह पत्रिका, कोका, मासिक कला पत्रिका, असाही कैमरा वार्षिक, असाही प्रेस फोटोग्राफी, अन्तर्राष्ट्रीय फोटोग्राफिक सैलून आदि अनेक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित की जाती हैं। असाही बहुत सी पुस्तकों का भी प्रकाशन करता है। साथ ही अंग्रेजी में एक वार्षिक "यह है जापान" और अँगरेजी का दैनिक पत्र 'असाही ईवनिंग न्यूज' भी निकलता है।

यद्यपि असाही का कार्यालय इतना बड़ा है, तथापि दैनिक असाही ऐसा मोटा अखबार नहीं है, जैसे कि अमरीका और ब्रिटेन में निकलते हैं। इसका आकार और पृष्ठसंख्या भारत के बड़े-बड़े पत्रों से छोटी है। इसमें कुल आठ पृष्ठ होते हैं और प्रातःकालीन और सायंकालीन असाही का चन्दा २८० येन अर्थात् ३।। रु० प्रतिमास है। इसमें २५-३० प्रतिशत तक ही विज्ञापन छपते हैं, जब कि न्यूयार्क टाइम्स जैसे पत्र में कहीं अधिक विज्ञापन छपते



असाही की फैक्सिमिल छपाई की मशीनें
(फोटो असाही शम्बुन के सौजन्य से

हैं। परिणाम यह है कि पश्चिम के पत्रों की तरह असाही अपने कर्मचारियों को बड़े ऊँचे वेतन नहीं दे सकता, लेकिन यहाँपर वेतन में बहुत अन्तर भी नहीं है। पत्रकारिता के क्षेत्र में अगर काम प्रारम्भ करनेवाले को १० हजार येन प्रतिमास मिलता है, तो जो लोग १५-२० वर्ष काम कर चुके हैं उन्हें ६० से ७० हजार येन तक प्रतिमास मिलता है। प्रायः अधिकांश कर्मचारी कम्पनी के भागीदार हैं, उनको लाभांश और सुविधाओं की दृष्टि से बहुत प्रोत्साहन है। टोकियोस्थित असाही आफिस का अपना थियेटर हाल है, जहाँ पर फिल्म दिखायी जाती हैं, सांस्कृतिक कार्यक्रम होते हैं तथा सभाएँ होती हैं। रात्रि को ३३० कर्मचारियों के सोने का प्रबन्ध है। टोकियो बहुत महँगा शहर है, लेकिन यहाँपर कार्यालय में जो नाई की दूकानें हैं, उनमें ६ आने में बाल कट जाते हैं। कैंटीन में सभी प्रकार की सामग्री बहुत सस्ते दाम पर मिलती है। प्रतिवर्ष दो बार यूनियन के समझौते के अनुसार वेतन बढ़ाया जाता है। असाही इस प्रकार यद्यपि अपने कर्मचारियों को बहुत अधिक वेतन नहीं देता, तथापि उनको सन्तुष्ट रखता है।

असाही ने न केवल जापानी पत्रकारिता, बल्कि संसार की पत्रकारि[ता] प्राविधिक क्षेत्र में प[...] क्रान्ति कर दी है। जापानी [...] में कम से कम ७०० चित्र[...] को हाथ से कम्पोज कर[ना] था। १९६० से असाही ने [...] टेलीटाइप और ओटो[...] मोनोटाइप मशीनें लगा [...] ओटोमेटिक मोनोटाइप के [...] के द्वारा जापानी कम्पो[...] पाश्चात्य कम्पोजिंग के स[...] बना। लेकिन अब जापानी [...] परफोरेटेड टेप पर काट दि[...] हैं, जिसके बाद वे अपने [...] अक्षर उतार देते हैं।

१९५९ में असाही ने [...] प्रणाली के द्वारा एक और [...] प्रयोग किया। इसके [...] टोकियो में निर्मित अ[...] पन्नों के प्रूफ माइक्रोवेव के [...] ओकेडो और सप्पोरो भेजे [...] लगे। इसमें फोटोग्राफ ता[...] आफसेट प्रणाली की [...] मशीनों और ब्लाक बनाने की अतितीव्र प्रतिक्रिया [...]हित थी। अब तो फिल्म और फोटो मशीनों [...] द्वारा पन्ने के पन्ने मेकअप होते हैं और आफसेट [...] मशीनों पर भेजे जाते हैं। इस समय जापान के [...] नए पत्रों में ८० फोटो-सेटिंग मशीनों द्वारा कम्पोजि[ंग] काम होता है जो कि संसार में अपने ढंग का अनोखा [...] ये मशीनें भी परफोरेटेड टेप द्वारा संचालित होती हैं [...] ब्लाक भी एलेक्ट्रोनिक प्रणाली से बनाये जाते हैं। १[...] में असाही ने एक वेरियो क्लिश्चोग्राफ मशीन का [...] किया, जिससे पचरंगी छपाई हो सकती है। १९[...] असाही टोकियो और ओसाका कारखानों में ऐसी [...] थीं।

इस प्रकार असाही आज संसार के सबसे प्रभाव[शाली] पत्रों में से ही नहीं, सबसे आधुनिक पत्रों में से है। उसके विशेषज्ञ उसकी प्रगति से अभी भी सन्तुष्ट नहीं [...] अब वे एक ड्राई-रिलीफ आफसेट रोटेरी प्रेस बना[ने] लगे हैं, जो कि असाही जैसे बड़े अखबार की [...] छपाई कर सके। ऐसा प्रयत्न अमरीका में असफल हो [...] था, परन्तु जापानी विशेषज्ञ इस प्रकार की मशीन [...] में सफल हो गये हैं।

भारतीय संस्कृति का प्रतीक—कलश

डा० शिवनन्दन कपूर

...श की गणना भारतीय संस्कृति में अष्ट मांगलिकों में की गयी है। जल से पूर्ण तथा आम्र-पल्लवों से युक्त ...पुरातन काल से धार्मिक संस्कारों का एक अवि-...अंग रहा है। वह भारतीय संस्कृति और कला का ही ...नहीं है, सृष्टि एवं पूर्ण व्यक्तित्व का भी प्रतीक ...थों में कलश को 'कृत-सदन'—सृष्टि के अखंड ...का धर्त्ता कहा गया है।

...कलश की पवित्रता की उद्घोषणा इस प्रकार की गयी —इसके मुख पर ब्रह्मा, ग्रीवा में शंकर, मूल में विष्णु, ...मध्य में मातृगण स्थित हैं। अन्य दिक्पाल तथा ...इसे अभितः वेष्टित किये हैं।'

'कलशानां मुखे ब्रह्मा ग्रीवायां शंकरः स्थितः।
मूलेतु संस्थितो विष्णुः मध्ये मातृगणाः स्थिताः॥
दिक्पाला देवताः सर्वे वेष्टयन्ति दिशो दश।''

...लक्ष्मी कमलासना कही गयी हैं, किंतु एक स्थल पर ...युत कमल कलश से निकलता हुआ भी दिखाया ...है।

"कालिका पुराण" (८७ अध्याय) के अनुसार विश्व-...ओं ने सागर-मंथन से उद्भूत पीयूष के स्थापनार्थ, ...ताओं की कलाओं को लेकर जिस पात्र का सृजन ...उसे 'कलश' की संज्ञा दी गई। इस प्रकार कलश ...आदि निर्माता विश्वकर्मा हैं, 'पीयूषधारणार्थाय निर्मितो ...कर्मणा।'

'कलश' ही नहीं, कुंभ आदि के भी आकार-प्रकार ...संबंध में कालिका-पुराण में स्पष्ट निर्देश हैं। तदनुसार ...का व्यास पचास अंगुल, उत्सेत्र १६ अंगुल तथा ...की चौड़ाई ८ अंगुल हो,

"पंचाशदंगुलो व्यासं उत्सेधः षोडशांगुलः।
कलशानां प्रमाणन्तु मुखमष्टांगुलं मतं॥"

...के विपरीत, 'कुंभ' का विस्तार ३६ अंगुल होना ...है। उसमें बीस द्रौण के लिये स्थान अपेक्षित है। ...कुम्भ द्रौणविंशतिः।' प्राचीन माप के अनुसार एक द्रौण ...सेर के लगभग होता है। वेदों में भी हिरण्य कलश ...उल्लेख है। 'मृच्छकटिक' के चतुर्थ अंक में स्फटिक ...कलश की चर्चा है।

प्राचीन काल में सुवर्ण-कलश से प्रत्येक गृह शोभित था। देखो स्कंद पुराण (अवंतिका खंड)। मंदिरों की चूड़ा पर भी कलश-स्थापना प्रचलित रही। व्यक्ति-विशेष के स्वागत में पल्लवयुक्त कलशों की स्थापना-पद्धति आज भी महत्त्वपूर्ण है। हाल ने तो प्रेयसी के हृदय-मंदिर में पदार्पण करनेवाले प्रेमी के लिये सुसज्जित पूर्ण कलशों की कल्पना की है,

"रत्थापइण्णणअणुप्पला तुमं सा पडिच्छए एतम्।
दारणिहिएहिं वि मंगलकलसेहिं व थणेहिं॥गाथा २-४०॥

इस कल्पना के मूल में नारी के स्तनों से कलशों की तुलना है। इस उपमा का हेतु कलशों की गोलाकृति, पवित्रता एवं सरसता है। मानव-जीवन के अति निकट दोनों ही हैं।

केवल स्तनों की उपमा के लिये ही कलश का प्रयोग हुआ हो, ऐसी बात नहीं। कबीर ने नश्वर मानव-शरीर के लिये भी 'कुंभ' की कल्पना की है। कबीर से भी बहुत पूर्व से मनुज-तन को घट की संज्ञा मिलती आई है। जैसे प्रत्येक घट में सूर्य का प्रतिबिंब दृष्टिगत होता है, उसी प्रकार मनुष्य मात्र में ईश का वास है। घट के शरीर-गत रूपक में यही रहस्य निहित है।

७वीं शताब्दी का चित्रण करनेवाले ग्रंथ 'हर्ष-चरित' में, राजा की यात्रा के वर्णन में, उसके साथ-साथ एक स्वर्ण-कलशधारी व्यक्ति के चलने का उल्लेख है। अजंता के चित्रों में भी इस प्रकार का एक दृश्य राज-यात्रा में अंकित है। 'हर्षचरित' में ही राजा के स्वागत में ग्रामीणों द्वारा जलपूर्ण कलश लाने का वर्णन है। राजा के स्नानार्थ हेम-कलश प्रयुक्त होते थे। यह स्नान वेश्यायें कराती थीं। (ह० च०)।

राज्याभिषेक में भी हेम-कलशों का अपरिहार्य एवं महत्त्वपूर्ण स्थान था। वाल्मीकि रामायण में राजा दशरथ, राम के अभिषेकार्थ, शत स्वर्ण-कलश लाने की आज्ञा देते हैं। (२-३-११) ये अभिषेक-भाण्ड बड़े आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। राम वन जाते समय अभिषेक-भाण्ड की परिक्रमा करते हैं। (२-१९-३१) वन-गमन के समय राम क ते हैं, "अभिषेकार्थ एकत्र कलश से अब मेरा 'तापस-स्नान' होगा।" इससे सिद्ध है कि कलश न केवल राज्या-भिषेक में व्यवहृत था, अपितु किसी भी व्रतारंभ में प्रयोज्य

था। अभियान के पूर्व हर्ष ने भी स्वर्ण-रजत-कलशों से स्नान किया था। (ह० च०)

तंत्र-साधना एवं लोक-विश्वासों के क्षेत्र में भी कलश का कम महत्त्व नहीं। 'कादंबरी' में पुत्र-प्राप्ति हेतु, पवित्र जल, रत्न, फल, फूल, बट-पत्र आदि से पूरित, वृद्ध ग्वालिनों द्वारा अंकित, कुंकुमादि चिह्नों से उपेत स्वर्ण-कलशों से मंगल स्नान का उल्लेख है। कभी तो यह स्नान गोशालाओं में, और कभी 'सयानों' द्वारा चौराहे पर खींचे गये मंडलों के मध्य, कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि में होता था। 'सौरि-गृह' में कात्यायनी से रक्षार्थ, स्थापित मंगल-कलशों में मोर-पंख खोंसे जाते थे, तथा इधर उधर सफेद सरसों बिखेर दी जाती थी। (कादंबरी) राजा के अभियान-काल के समय मंगलार्थ जल-कलश के सुलक्षण आगे किये जाते थे। किसी बड़े आदमी से मिलने जाने के पूर्व, शुभ मुहूर्त में, गोबर से लिपे आँगन के चबूतरे पर, श्वेत माला तथा आम्र-पल्लवों से युक्त, आटे के घोल से अंगुलियों की छाप दी हुई, जल भरी कलसी देखी जाती थी। वाम-मार्ग में घट-कंचुक साधना अनिवार्य थी। घट में कंचुक-संग्रह प्रति साधक द्वारा एक कंचुक ग्रहण, तथा अन्विष्ट कंचुक को धारण करनेवाली नारी का रति-साधन रूप में प्रयोग ही इस क्रिया का स्वरूप है।

'हर्षचरित' में कलश के कई भेद मिलते हैं, यथा मंगल-कलश, निद्रा-कलश, कोष-कलश आदि। मंगल-कलश के विभिन्न उल्लेख ऊपर आ चुके हैं। राज्यश्री तथा उसके पति की सौभाग्य-रात्रि के अवसर पर, कक्ष में चाँदी का निद्रा-कलश रखे जाने का उल्लेख मिलता है। (हर्ष-चरित–चतुर्थ उ०) शिव पार्वती की मधु-यामिनी में भी कौतुकागार में स्वर्ण कलश का वर्णन कवि कालिदा[illegible] किया है। (कुमारसंभव ७-९४) यह कलश दुर्दे[illegible] परिहारार्थ स्थापित किया जाता था।

'हर्ष-चरित' के चतुर्थ उच्छ्वास में कोष-कलश [illegible] अर्थ-कलश का भी उल्लेख मिलता है, 'द्विजदीयमानैः [illegible] कलशैः'। कोष-कलश में अलंकारादि होने का [illegible] 'हर्ष-चरित' में प्राप्य है। एक स्थान पर यंत्र-कलश [illegible] भी वर्णन है। विवाह में पंचमुख कलश की स्थापना [illegible] भी उल्लेख है।

प्राचीन काल में, क्रीट द्वीप में, आदिवासियों [illegible] विशाल घड़ों में शवों को रख कर दफनाने की प्रथा [illegible] तमिल देश में भी पुरातन काल में यही प्रथा थी। [illegible] बेबीलोन, ईरान, पंजाब, सिंध, तथा दक्षिण भारत में [illegible] घड़े मिले हैं। अगस्त्य मुनि कुंभ में उत्पन्न होने के कारण कुं[illegible] कहे गये। 'द्रोण' भी, द्रोण-काष्ठ कलश से उद्भूत हु[illegible] दुर्योधन आदि शत भ्राताओं का पोषण भी घृतपूर्ण घड़ों [illegible] ही हुआ है। निश्चय ही, शिशुओं के पालन की आ[illegible]दिक क्रियाओं में भी घट का महत्त्वपूर्ण स्थान था।

घट एक प्रतीक है। जिस प्रकार से खाली घड़े [illegible] कोई महत्त्व नहीं, उसी प्रकार स्नेह की सरसता से [illegible] मनुष्य भी मनुष्य नहीं। इसी कारण मानव-जीवन [illegible] पूर्ण बनाने के लिये आदर्श रूप में प्रत्येक पावन-पर्व [illegible] इस पवित्र पात्र की प्रतिष्ठा अपरिहार्य मानी गयी। मिट्[illegible] का पुतला मिट्टी के पात्र से शिक्षा ले––स्नेह की, सर[illegible] की; और एक बार फिर ऋषियों की पूत वाणी गूंज उ[illegible]

'सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्।'



भारत का वर्तमान खाद्य-संकट

श्री अशोक महाजन

"मेरा सिर उस वक्त शर्म से झुक जाता है जब मैं यह सोचता हूँ कि जिस मुल्क की ७० फी सदी आबादी खेती में लगी हुई है, उसे अपनी खुराक के लिए विदेशों का मुँह देखना पड़ता है।"—आज से कुछ मास पूर्व पं० जवाहरलाल नेहरू द्वारा कहे गये इन शब्दों में निहित सत्य से भला कौन इंकार कर सकता है। प्राप्य आँकड़ों के अनुसार पहली पंचवर्षीय योजना में विदेशों से लगभग [illegible] करोड़ टन अनाज आयात किया गया था। दूसरी पंचवर्षीय योजनावधि में अन्नाभाव को पूरा करने के लिए लगभग ७ अरब रुपये का खाद्यान्न भारत द्वारा आयात किया गया। नीचे की तालिका पर जरा गौर कीजिए—

वर्ष	परिमाण (टनों में)	मूल्य (रुपयों में)
[illegible]-५७	२१,२६,०००	८९,३०,००,०००
[illegible]-५८	३६,३४,०००	१,६०,००,००,०००
[illegible]-५९	३४,२४,०००	१,२८,००,००,०००
[illegible]-६०	३७,६३,०००	१,४०,००,००,०००
[illegible]-६१	५०,२८,०००	१,९५,००,००,०००
योग	१,९७,००,०००	७,१२,००,००,०००

वस्तुतः यह दुर्भाग्य और लज्जा का ही विषय है कि आजादी के सोलह बरस बाद भी हम खाद्यान्न के मामले में स्वावलम्बी नहीं हो सके हैं। उल्लेखनीय है कि तृतीय पंचवर्षीय योजना के निर्माताओं के अनुसार सन् १९६०-६१ में प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन औसतन १६ औंस अन्न प्राप्त था। इसे निर्धारित लक्ष्य के अनुसार सन् १९६५-६६ तक बढ़कर १७.५ औंस हो जाना चाहिए। पर सत्य तो यह है कि अब प्रतिदिन १६ औंस अन्न ही प्रति व्यक्ति उपलब्ध नहीं है। यही कारण है कि भारत में मृत्युदर अन्य देशों की तुलना में बहुत ऊँची है और मनुष्य की औसत आयु बहुत कम। निम्न तालिका से स्पष्ट है कि भारत में एक व्यक्ति की वार्षिक खुराक की तुलना में एक कनाडावासी की खुराक लगभग तिगुनी है—

वस्तु	एक भारतीय की औसत वार्षिक खुराक	एक कनाडावासी की औ० वा० खुराक
गल्ला	२७० पौण्ड	१४७ पौण्ड
आलू	२४ पौण्ड	१३४ पौण्ड
शक्कर	३० पौण्ड	९० पौण्ड
चर्बी या घी	९ पौण्ड	४६ पौण्ड
दूध व प्रोटीन	११ पौण्ड	३७ पौण्ड
मछली	२ पौण्ड	११ पौण्ड
गोश्त व अंडा	४ पौण्ड	४५८ पौण्ड

आज का खाद्य-संकट भारत-सरकार की गलत नीतियों का ही परिणाम है। खेद की बात है कि प्रथम और द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि-क्षेत्र को वह प्राथमिकता नहीं दी गयी जिसकी वह हकदार है। कृषि उत्पादकों में आत्म-निर्भरता के लिए पंचवर्षीय योजनाओं में पंचायतों और कृषि सहकारी समितियों के पुनर्गठन पर जोर दिया गया था और इस प्रकार कृषि के विकेन्द्रीकरण के जरिए कृषि-कार्य को प्रोत्साहन देने की योजना बनायी गयी थी, पर आशाओं के अनुकूल कुछ भी संभव न हुआ। अर्थ-अनुसंधान की राष्ट्रीय परिषद ने इस तथ्य को इन शब्दों में स्वीकार भी किया है—"आशा के अनुरूप कृषि-विकास न होना ही आर्थिक क्षेत्र में गतिरोध का कारण है।"

रिजर्व बैंक आफ इंडिया की सन् १९६१-६२ की कृषि सम्बन्धी रिपोर्ट में कहा गया है कि देश के सिंचाई साधनों में से केवल ४६% का ही उपयोग हो पा रहा है। कृषि-विकास के लिए अब तक अनेक बाँध बने; विशाल, मध्यम और लघु सिंचाई योजनाएँ बनीं; नलकूप बने ताकि जल का अभाव दूर हो सके और कृषि व्यवसाय समृद्ध हो सके। लेकिन, इन सिंचाई योजनाओं के पीछे असफलता और भ्रष्टाचार की एक लम्बी कहानी है। बाँध बनकर तैयार हैं, लेकिन उनके टूटने का भय भी विद्यमान है। नहरें बनी हैं लेकिन उनमें पानी नहीं आता है। नहर से सिंचाई की प्रति एकड़ दर भी अधिक है। किसान इतना गरीब है कि उसमें अधिक आर्थिक भार को सहन करने की किसी प्रकार की सामर्थ्य ही नहीं है।

अन्न-संकट बनाम जनसंख्या

सन् १९५९ में फोर्ड फाउण्डेशन द्वारा प्रकाशित 'भारत का खाद्य-संकट तथा उसके निवारण के उपाय' शीर्षक लेख में कहा गया है कि "भारत में कृषि-उत्पादन की तुलना में जनसंख्या-वृद्धि की रफ्तार बहुत तेज है। यदि भारत को विदेशों से खाद्यान्न न मिलें तो भारत में दुर्भिक्ष की स्थिति पैदा हो जाय।" वस्तुतः आज जनसंख्या और खाद्यपूर्ति में असंतुलन की समस्या हमारे सामने मुँह बाये खड़ी है। सन् १९५१-६१ में अर्थात् १० वर्षों की अल्पावधि में जनसंख्या में २१·५% की वृद्धि हुई है पर इस अवधि के बीच खाद्यान्नों की उत्पत्ति में केवल १४·६% की ही वृद्धि हुई है। पिछले प्रबुद्ध अर्थशास्त्री वाल्टन ने अनुमान लगाया था कि भारत में लगभग १२% जनसंख्या के लिए खाद्यान्न की कमी है।

जनसंख्या की वृद्धि के कारण देश में प्रति व्यक्ति कृषि-भूमि क्रमशः घटती जा रही है। आज भारत में एक सौ एकड़ भूमि पर आश्रित व्यक्तियों की संख्या ८० है जब कि इँग्लैण्ड में ६, अमेरिका में ५·३ और पूर्व यूरोप के देशों में १५ है। स्पष्टतया कृषि पर जनसंख्या का भार अत्यधिक होने के कारण ही खाद्य-समस्या से भारत को छुटकारा नहीं मिल पा रहा है।

खाद्य-पदार्थों की मूल्यवृद्धि

ईस्वी सन् १३४५ में प्रसिद्ध पर्यटक इब्नबतूता ने भारत-यात्रा के बाद अपनी डायरी में लिखा था—"भारत में खाने-पीने की वस्तुएँ बहुत सस्ती हैं।" लेकिन आज—सात सौ साल बाद—परिस्थिति यह है कि खाद्यान्न काफी महँगे हैं।

यदि हम लगभग पिछले १०० वर्षों में खाद्यान्नों के मूल्यों में हो रही निरन्तर वृद्धि का अध्ययन करें तो हमें स्वीकार करना होगा कि सन् १९४५ के बाद मूल्य-वृद्धि की गति बहुत तेज रही है। नीचे की तालिका से यह स्पष्ट है—

वस्तु	सन् १८५७	सन् १८९०	सन् १९४५	सन् १९
चावल	१) प्रतिमन	२) प्रतिमन	१६) प्रतिमन	३७) प्रति
गेहूँ	१) ,,	१॥=) ,,	९) ,,	२९)
चना	१) ,,	१॥।) ,,	८) ,,	२४)
चीनी	५॥।) ,,	८) ,,	१३।) ,,	५५)
घी	५॥।) ,,	२०) ,,	५३) ,,	२७७)
दूध	।।) ,,	१) ,,	१५) ,,	३७॥)

खाद्य-संकट का निवारण कैसे हो?

खाद्य-संकट के निवारणार्थ आवश्यक है कि भू सुधार हो, कृषि-उत्पादन बढ़ाने के लिए कृषि-प्रशासन नवीनीकरण हो, अनाज के अनुचित संग्रहों पर रोक ल जाय, आदि। लेकिन अनेक अर्थशास्त्रियों के मत में समस्या को सुलझाने का सर्वोत्तम उपाय है—अनाज मूल्यों की गारण्टी। सरकार को प्रतिवर्ष फसल की के छः मास पहले बुनियादी अनाजों के भाव निश्चित देने चाहिए। इससे किसान को कभी हानि का भय रहेगा। फलतः कृषि-उत्पादन में वह मन लगाकर जुट जा इस प्रसंग में एक संस्मरण उल्लेखनीय है—कई शता पूर्व चीन में अकाल पड़ा। चारों ओर त्राहि-त्राहि गयी। संताप-निवारण का कोई उपाय कारगर न राजा-प्रजा दोनों महात्मा कन्फ्यूशस के पास गये। शस ने कहा—"राजन्! खाद्य जब व्यापार की चीज जाती है तो इसका परिणाम एक न एक दिन अका होता है। तुम खाद्य के क्रय-विक्रय पर दण्ड का नियम दो और किसानों को आदेश दे दो कि उन्हें खाद्या उचित मूल्य दिये जाएँगे।" राजा ने ऐसा ही किया परिणामस्वरूप स्थिति में सुधार हो गया।

स्पष्टतया खाद्य-समस्या के हल के लिए जब सरकार चोरबाजारों, सट्टेबाजों और भ्रष्टाचारी कारियों के खिलाफ सक्रिय होकर खाद्यान्न-उत्पादन वृद्धि के लिए किसानों को प्रोत्साहित न करेगी त खाद्य-संकट का निवारण हो सकना दुस्साध्य ही होता है।



राहुलजी के साथ तिब्बत के अभियान में (१४)

श्री फेनी मुकर्जी

सूर्य डूब चुका था। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। गुलाबी बादलों के बड़े-बड़े टुकड़े नीले गगन में उड़े चले जा रहे थे। ऊँचे-नीचे पठार के आसपास हरे-भरे उपजाऊ खेत भी थे। इस उपजाऊ और सुन्दर हरियाली के बीच एक छोटा सा सुन्दर गाँव दिखाई पड़ा। गाँव के निकट आकर हमारे खच्चर हिनहिनाकर खड़े हो गये। हम तीनों भी थककर चूर हो गये थे। यही तय हुआ कि इसी गाँव में रात भर विश्राम किया जाय।

गाँव में घुसने पर पता लगा कि वह छोटा-सा गाँव झोपड़ियों का था। केवल चार-छः परिवारों का यह गाँव और चारों ओर का वातावरण बहुत ही गंदा था। झोपड़ी के भीतर से बड़ी दुर्गन्ध आ रही थी। आखिर हम तीनों का यह विचार हुआ कि तीनों खच्चरों को मैदान की हरियाली में चरने को छोड़कर हम लोग भी झोपड़ियों के बाहर ही सोकर रात बिता लें। खच्चरों की पीठ से माल-असबाब उतारकर एक झोपड़ी में रखकर खच्चरों को मैदान में छोड़ दिया। गाँववालों की सहायता से उबले अंडे और सत्तू खाकर प्रकृति के चाँद तारे के तम्बू के नीचे लेट गये।

आधी रात को एक खच्चर की ठोकर खाकर आँख खुली तो ऐसा लगा कि हमारे होंठ और कानों में कोई चीज रेंग रही है। टटोलने पर ऐसा लगा कि उनसे लम्बे-लम्बे मस्से लटक रहे थे। घबड़ाकर उठ बैठा, और सोचने लगा कि दो चार घंटों में इतने बड़े-बड़े मस्से कैसे निकल आये। साथी लोग भी उठ पड़े। सबों की यही शिकायत थी कि दो-चार घंटों में इतने लम्बे-लम्बे मस्से कैसे निकल आये। थोड़ी देर टटोलकर नौकर ने बताया कि वे मस्से नहीं थे बल्कि जोंकें थीं जो हमारी देह के खुले भाग पर चिपटकर खून पी-पीकर लटक रही थीं।

खच्चर ने ठोकर मारकर हमको गहरी नींद से जगा दिया था, इसलिए पहिले तो उसपर बड़ा गुस्सा आया था। मैं सोच रहा था कि मूर्ख जानवर हरे-भरे मैदान को छोड़कर हमें तंग करने हमारे पास क्यों आ गया! क्या उसको भी भूत, चुड़ैल का डर लगता है? नौकर ने बताया कि बेचारा जानवर भी इन जोंकों का शिकार होकर बेचैन हो रहा था। सारी रात बड़ी परेशानी में कटी। आज समझ में आया कि एक अनजाने अविकसित देश में रहना कितना संकटमय था।

हवा में आक्सीजन गैस की कमी के कारण हर समय बिना जल की मछली की भांति हाँफते रहना, ईंधन और आक्सीजन के अभाव के कारण कच्चा सूखा मांस चबाते रहना; देश में अत्यन्त गरीबी के कारण हर समय हथेली पर जान लिये फिरते रहना और थोड़ी-सी गफलत होने पर डाकुओं की गोली या कटारी का शिकार बनना पड़ता था। महीनों बिना नहाये शरीर में एक इंच मोटी मैल की परत को चीर कर सैकड़ों जुओं का काटते रहना कभी-कभी हमको खुजली से पीड़ित कुत्ते की भाँति बेचैन कर देता था। तिस पर आज का यह जोंकों का हमला 'कोढ़ में खाज' बन गया। इसपर जब यह सुनता था कि आने वाली सर्दी में बर्फ की थपेड़ पर थपेड़ पड़ेगी और बर्फ से भी ठंडी आँधियाँ चलेंगी तो सच कहता हूँ कि मुझे इस बात की आशा भी न रह गयी कि मैं भारत के फिर दर्शन कर पाऊँगा।

धीरे-धीरे सूर्य भगवान् के आगमन पर वह संकटमय रात ज्यों-त्यों बीती, और दिन के उजाले में हम एक दूसरे के नंगे शरीर से उन जोंकों को काट काटकर छुड़ाने लगे जो हमारा रक्त पी-पीकर मोटी हो गयी थीं। दिन के उजाले में देखा कि झोपड़ियों के उस पार एक ऊँचे चबूतरे पर विचित्र प्रकार की एक चहारदिवारी बनी हुई थी। उसके निकट जाने पर देखा कि उसके चारों ओर बड़ी गन्दगी है और दुर्गन्धि के मारे वहाँ ठहरना कठिन है। यह काले-भूरे रंग की चहारदिवारी याक (चमरी गाय) के सींगों के ढेर से बनी थी। पूछने पर पता चला कि यहाँ के कसाई "नोर" मठ के निवासियों के भोजन के लिए याक और भेड़-बकरी का मांस भेजा करते हैं। ये कसाई झुंड के झुंड जानवर लाकर बौद्ध धर्म के माननेवाले लामाओं, पुजारियों और अन्य निवासियों के भोजन के लिए काटा करते थे। यह जगह नोर मठ से लगभग छः मील की दूरी पर थी।



नोर गुम्पा (यह रंगीन चित्र लेखक ने वहीं बनाया था)

नौकर ने बताया कि तिब्बती लामा मांस खाना पाप नहीं समझते क्योंकि वे स्वयं न तो किसी पशु की हत्या ही करते थे और न किसीसे उनकी हत्या करने को कहते ही थे। कसाई लोग अपने रोजगार के लिए पशु काटते हैं, और इसी कारण इस पापी जाति को शहर-निकाले की सजा मिली है कि वे मठ से दूर एक मैदान में रहें!

ये सारी बातें देख-सुनकर हमें इस गंदे वातावरण में उबकाई सी आने लगी। थोड़ी देर में हमारे डेरे की (जिसमें खच्चरों से उतारकर सामान रखा गया था) स्वामिनी चाय लेकर आयी। वह ऊपर से नीचे तक इतनी गंदी लग रही थी कि मानों संडास में डुबकी लगाकर आयी हो! भद्रता के नाते चाय पीने जरूर लगे परन्तु डर लग रहा था कहीं उल्टी न हो जाय। चाय पीते-पीते देखा कि झोपड़ी के एक अँधेरे कोने में बैठा एक बूढ़ा, पवित्र मंत्रों से भरी डुगडुगी को घुमा-घुमाकर धार्मिक मंत्रों का जप कर रहा था। हमारे साथी कँवल कृष्ण ने पूछा कि क्या इस बूढ़े कसाई को भी स्वर्ग-प्रवेश का परमिट मिल सकता है जो कि अपने सारे जीवन निर्बोध पशुओं को काटता रहा था? नौकर ने तुरन्त उत्तर दिया कि अवश्य [illegible] उसे मुक्ति प्राप्त होगी क्योंकि वह सारे जीवन बि[illegible] प्रमाद या आलस्य किये लामाओं की सेवा में स्वादि[illegible] भोजन प्रस्तुत करता रहा था। और उसने यह भी बता[illegible] कि काटे गये जानवरों को भी मुक्ति मिलेगी क्यों[illegible] उनका तुच्छ जीवन महान् लामाओं की सेवा में बलि क[illegible] दिया गया था!

धर्म के इस जटिल तर्क और मनोविज्ञान की उधे[illegible] बुन करते हुए हम अपने-अपने खच्चरों पर सवार हो[illegible] "नोर" गुम्पा की ओर चल पड़े। चलते-चलते जब दू[illegible] नोर गुम्पा दिखायी पड़ी तो ऐसा लगा कि हम मानों [illegible] के द्वार के निकट आ पहुँचे। खुले नीले गगन में बड़े[illegible] राजहंसों की भाँति पंख फैलाये बहे चले जा रहे थे [illegible] बादल। हमारे सामने था खुला हुआ चौरस एक [illegible] भारी मैदान। मैदान में जहाँ-तहाँ सुन्दर [illegible] भिन्न-भिन्न आकारों के मानी और स्तूप खड़े थे। [illegible] कोई ऊँचे और भारी स्तूप लाल पगड़ी पहिने मठ के [illegible] लग रहे थे। यह गुम्पा चौरस मैदान के एक सिरे [illegible]



रुग्ण राहुलजी डाँडी से नोर गुम्पा ले जाये जा रहे हैं।

[illegible] हुआ था। इसके सटे हुए मटमैले भवनों के बीच-बीच [illegible]लाल रंग की कंगूरोंदार ऊँची बुर्जियाँ बड़ी ही सुहावनी [illegible] रही थीं। इस विशाल गुम्पा के पीछे एक बहुत ही [illegible] पहाड़ी थी जो एक चौकोर दीवार के आकार में खड़ी [illegible]। वह तेज हवा और तूफानों से गुम्पा की रक्षा करती [illegible]। वह मानों अपनी गोदी में तिब्बत के प्राचीन और [illegible]ख्यात नोर गुम्पा को छिपाये हुए खड़ी थी। ऐसा लग [illegible] था कि बादलों से घिरी हुई यह सूखी पहाड़ी एक [illegible] धानी रंग की मखमली चादर ओढ़े खड़ी हो। एक [illegible]कार होने के नाते मैं इस मनोरम दृश्य को देखता [illegible] रह गया, मानों प्रकृति ने अपने कुशल करों से अंकित [illegible] हमारे सामने एक बहुत ही सुन्दर बड़ा भारी चित्र [illegible] दिया हो।

हम लोग गुम्पा के बाहर की बस्ती के पास पहुँचे [illegible] थे कि हम भारतीय अतिथियों का सैकड़ों खूंख्वार कुत्तों [illegible] एक साथ लपककर स्वागत किया। इस आक्रमण को [illegible] ही बस्ती के कितने ही लोग हमारी सहायता को [illegible] पड़े और उन्होंने पत्थर मार-मारकर कुत्तों को भगा दिया। बस्ती में किसी अजनबी के प्रवेश करते ही कुत्ते भौंकने लग जाते थे, नगर निवासी समवेत ऊँचे स्वर से कुत्तों को भगाने लगते थे। इससे जो कोलाहल उत्पन्न हो जाता था, वह तिब्बती नगर के शान्त वातावरण को भंग कर देता था। सारे नगर निवासी इस कोलाहल की चेतावनी से चौकन्ने होकर अपने-अपने घरों से निकल पड़ते थे।

मठ के निकट आते ही देखा कि हमारे दयालु भाई गेशेलाजी हमारे स्वागत के लिए लपके हुए चले आ रहे हैं। गेशेलाजी अपनी नयी सुन्दर पोशाक में कुछ अधिक नौजवान लग रहे थे। वे एक नयी फेल्ट हैट सिर पर तिरछी लगाये हुए थे। हँसते हुए उन्होंने हाथ उठाकर अंग्रेजी में "Welcome, brave friends!" कहकर हमारा स्वागत किया। हम दोनों अपने खच्चरों से उतरकर उनसे लिपट गये। हम तीनों जब बातें करते मठ की ओर बढ़े चले जा रहे थे तो अचानक देखा कि एक तिब्बती सुन्दरी अप्सरा हमारे बाट में एक गली के नुक्कड़ पर खड़ी है। इस मैली-कुचैली गली में एक तिब्बती परी को देखकर



चश्मा और हैट लगाये गेशेला और उनके बगल में उनकी प्रेयसी 'खम्मो' (एक तिब्बती दूकान पर)

हम दोनों टकटकी लगाये उसे देखते ही रह गये। वह भी शर्माकर सिर झुकाये हमारे सामने खड़ी थी। घने भूरे बालों की दो मोटी चोटियाँ उसके सिर पर लिपटी हुई थीं। लाल काश्मीरी सेबों की तरह उसके गाल चमक रहे थे। लम्बी खींची हुई भौंहों के नीचे काले भौंरे के समान उसके दो बड़े-बड़े सजीव नैन पतले गुलाबी होठों की आड़ से एक छिपी हुई मुस्कराहट से कुछ कानाफूसी कर रहे थे। उसके निर्दोष मोम के समान कोमल मुखड़े पर उसके सुंदर केशों की लटें पड़ी हुई थीं। बिना सोचे-समझे मैं अपने मित्र गेशेलाजी से एक बेहूदा सवाल कर बैठा—"From where did you get this wild rose"? यह जंगली गुलाब का फूल तुमको कहाँ से प्राप्त हुआ? गेशेलाजी ने बिना किसी संकोच के सरल भाव से जवाब दिया—"She is my wife Khammo. एक शिक्षित तिब्बती लामा के मुख से इस उत्तर को सुनकर हम दोनों ही ऐसे सटपटा गये कि हमारी बोलती बंद हो गयी। स्थिति को सुधारते हुए हमने पूछा हमारे पूज्य राहुल-महात्मा कैसे हैं? उन्होंने आगे कदम उठाते हुए बताया कि "उनकी तबियत शिगटषी में बहुत खराब हो गयी थी। तुम लोगों के ग्यानषी चले जाने के बाद राहुलजी शिग-टषी के पास एक गाँव में अपनी पुरानी प्रेमिका से मिलने गये थे। चार वर्ष पहिले राहुलजी जब यहाँ आये थे तो उन्होंने उस तिब्बती नारी को अपनी पत्नी बना लिया था। एक सुन्दर लड़का भी हुआ था जो अब चार वर्ष का हृष्ट-पुष्ट बालक है। वहाँ जाकर उनकी हालत एक दम बिगड़ गयी। तब हम लोग उन्हें डांडी पर नोर... ले आये जिससे यहाँ उनका कुछ इलाज हो सके। ... उनकी हालत कुछ अच्छी है। याक के दूध और अ... भोजन से उनका स्वास्थ्य पहिले से कुछ सुधरा अवश्य पर उनका मूल रोग अभी ज्यों का त्यों बना है। ... वे बहुत पीड़ित हैं।" हम लोग बातें करते-करते ... जा रहे थे, और वह तिब्बती अप्सरा लाल कोट पहिने ऊँचे रंगीन बूट कसे अपनी पतली कमर लचकाती ... हमारे पीछे-पीछे चली आ रही थी। एक आध बार कि... बहाने से पीछे मुड़कर चोरी से देख लेता था उसके मु... प्रभात के निर्मल सूर्य के समान तमतमाते हुए मुखड़े ...

बीच बीच में यह भी ध्यान आ जाता था कि राहुलजी हमारी राह कितने दिनों से बेचैनी के साथ देख रहे हैं और उन्हें कितना कष्ट है।

पड़ाव पर पहुँचकर देखा कि गुम्पा के बाहर एक छोटी सी कोठरी में गेरुआ वस्त्रधारी राहुलजी तिब्बती मोटी-मोटी पुस्तकों के ढेर से घिरे बैठे हुए कुछ लिख रहे थे। हमें अचानक आया देखते ही वे उठ खड़े हुए और दौड़कर हम दोनों से लिपट गये। कई दिनों से हजामत न बनने के कारण उनके सिर पर ब्रुश की तरह काले बाल उग आये थे। ठोड़ी पर हलकी दाढ़ी उग आयी थी। अत्यन्त कमजोर होने के कारण उनका शरीर एक हड्डियों का ढाँचा मात्र लग रहा था। धँसी हुई बड़ी-बड़ी आँखों के चारों ओर काली छाया पड़ी हुई थी। साँस के साथ दुर्गंध आ रही थी। उन्होंने अपने काँपते हुए हाथों से पकड़कर हमें अपने पास बिठा लिया। हमारी पीठ पर हाथ फेरकर बड़े प्यार से पूछा, 'अच्छे हो?' मैंने भी दोनों हाथ जोड़कर धन्यवाद देते हुए बताया कि हमारे साथी कँवलकृष्ण जी को डाकुओं ने बुरी तरह से घायल कर दिया था परन्तु अब वह ठीक हो गये हैं। कँवलजी की तरफ देखकर, उन्होंने विनोद करते हुए पूछा कि तिब्बती जीवन का मजा कैसा लग रहा है? मेरे सहपाठी होने के नाते कँवलजी भी राहुल जी का सम्मान और लिहाज करते थे। उन्होंने धन्यवाद देते हुए अपनी कृतज्ञता प्रकट की कि उनकी कृपा से वह इस वर्जित देश (Forbidden Land) में घूम-फिर कर हर प्रकार के ज्ञान की प्राप्ति कर रहे थे। थोड़ी देर में एकान्त होने पर राहुलजी ने मुझसे पूछा कि जिस दवा के लिए मैं गया था वह मिली कि नहीं। मेरे मन में भी उनको अपनी इस सफलता की खुशखबरी देने के लिये गले में एक फांस सी लग रही थी। दवाई की प्राप्ति की खबर से राहुलजी के शरीर में एक स्फूर्ति और आशा की लहर दौड़ गयी। वे उसके लिए इतने उत्सुक थे कि कमजोर होते हुए भी वे खुद ही लड़खड़ाते हुए पार्सलों के बंडलों की ओर दौड़ पड़े और टटोल-टटोलकर देखने लगे कि किस पार्सल में उनकी दवाई है। मैंने उनसे आराम करने को कहा और स्वयं सामान को खोलकर उनकी दवा निकालकर मैंने उसे उनके सुपुर्द कर दिया। उस दवा में अंग्रेजी दवाइयों की कई बोतलें और गोलियों के कई पैकिट थे। दवाई की सेवन-विधि भी संलग्न थी। उसे पढ़कर उन्होंने तुरन्त ही दवाई की पहली खुराक ले ली। दवाई पीते ही संतोष की एक ठंडी साँस खींचकर वे हँस पड़े, और फिर वही अपनी पुरानी आदत के अनुसार बड़े स्नेह से बोले—"फेनी, तुमने मुझे मरने से बचा लिया।"

नोर गुम्पा अपने रंग रूप में जितना आकर्षक थी, उतना ही नीरस था वहाँका जीवन हमारे लिए। इस मठ के अधिकारी लामागण तिब्बत के लाल टोपी शाखा दल के लामा थे। वे तिब्बत की अत्यन्त प्राचीन धार्मिक शाखा के माननेवाले थे। इनके विचार के अनुसार भोग-विलासमय जीवन व्यतीत करते हुए मोक्ष प्राप्ति करना चाहिए। नारी-भोग, शराबखोरी, मांसाहार और अनेक प्रकार की अवर्णनीय क्रियाओं के करने की प्रथाएँ इस लाल टोपी शाखा के लामाओं में प्रचलित थीं। उनके क्रिया-कलापों में हमें मानव का पतन और अघोरपन ही दिखायी पड़ा, और उनकी चर्चा करते हुए भी हमें लज्जा मालूम होती है। आगे चलकर लाल टोपीवाली शाखा कई छोटी-छोटी उपशाखाओं में बँट गयी, अर्थात् साक्क्या, करमापा, दुकपा, ज़ोकचेनपा इत्यादि-इत्यादि। इन सबों का विश्वास था कि मोक्ष-प्राप्ति का रास्ता संसारी भोग-विलास के बीच से होकर जाता है। इस विचार-धारा के प्रवर्तक थे एक तान्त्रिक महात्मा लोबोन पदमा चुंगी। अनुमान किया जाता है कि वे काबुल के उरकैन राज्यवंश से आये थे। उनके विचार के अनुसार मनुष्य अपनी पाँचों राक्षस-इन्द्रियों को अतिरिक्त भोग-विलास के द्वारा ही दमन कर सकता था। लगभग पाँच सौ वर्ष यह बौद्ध तान्त्रिक विचारधारा सारे तिब्बत में प्रचलित रही, परन्तु धीरे-धीरे वहाँके लामाओं में मतभेद होने लगे और एक नई धार्मिक विचारधारा चल निकली।

आरम्भ में नयी और पुरानी विचारधाराओं के माननेवालों में बड़े झगड़े हुए, लेकिन आगे चलकर एक नयी पवित्र विचारधारा प्रकट हुई और वह सारे तिब्बत पर छा गयी। नये मत को पीली टोपीवालों का संप्रदाय कहा जाता है। इस नये सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे भारत से आये हुए महात्मा "पालदान-आतीशा"। ग्यारहवीं शती में तिब्बत की पतनोन्मुखी तान्त्रिक विचारधारा की प्रति-क्रिया हुई और एक स्वच्छ, पवित्र रूप लेकर बौद्ध-धर्म ने पल्टा खाया। आगे चलकर तिब्बत में बौद्ध-धर्म के महान्

आचार्य जे-शोंग-खा-पा ने डंका बजाकर इस पवित्र सम्प्रदाय की धार्मिक पताका को फहराया था। यह महात्मा अमदो अंचल के रहनेवाले थे जो कि आजकल चीन देश की सीमा पर स्थित है। धार्मिक सुधार का यह आंदोलन तिब्बत में धार्मिक क्रान्ति का एक बड़ा महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक आंदोलन था। शक्तिशाली विरोधी दलों के विरोध के बावजूद धार्मिक शुद्धि और सुधार का यह कार्य इन महान् लामाओं ने धैर्य और शांति के पथ पर चलकर किया था, तथा अपने देश के धर्म और समाज को पवित्र और निर्मल बनाया था। यह कठिन कार्य बिना खून की नदियाँ बहाये तभी सम्भव हो सका था जब पुराने पंथ के माननेवालों को अपने पुराने तरीके से रहने और चलने की आजादी दे दी गयी थी। भले-बुरे दो सम्प्रदायों के एक साथ चलते रहने से धीरे-धीरे अच्छे विचारवाले संप्रदाय की वृद्धि होती गयी, लेकिन कहीं-कहीं पुराने तान्त्रिक बौद्ध सम्प्रदाय के माननेवाले उस समय भी तिब्बत में मौजूद थे, और इस नोर गुम्पा के लामा उसी तांत्रिक सम्प्रदाय के अनुयायी थे। हमारे गेशेलाजी भी प्राचीन तांत्रिक मत के पक्षपाती हो गये थे, और नोर गुम्पा के लामाओं के सम्पर्क में आने पर उन्होंने खुलेआम अपने को 'तान्त्रिक लामा' घोषित कर दिया था।

नोर गुम्पा के लामाओं ने हमको गुम्पा में रहने की अनुमति नहीं दी। शायद वे डरते हों कि हम भारतीय लामा उनके जीवन की वास्तविकता को देख न लें। हमारे साथ उन्होंने बड़ा ही दुर्व्यवहार किया था। हमको प्राचीन संस्कृत, पाली और सिंहली भाषा में लिखी हुई प्राचीन तालपत्र की पोथियों को अपने डेरे पर लाने तक की आज्ञा नहीं दी। बड़ी कठिनता से उन पोथियों को वहीं बैठकर पढ़ने की अनुमति दी थी। पर इन तान्त्रिक लामाओं के भीतर इतना भ्रष्टाचार था कि इनके लोभी भिक्षु रुपये-पैसे के लालच में खुद ही चोरी-छिपे हमें वे पोथियाँ उठाकर ला देते थे जिन्हें हम चाहते थे। भिक्षुओं की सहायता से उन पोथियों को अपने डेरे पर मँगाकर हम उनके पृष्ठों की फोटो ले लेते, और फिर उन्हें जहाँ का तहाँ रखवा देते थे। राहुलजी बहुत कमजोर हो गये थे और रात-दिन गद्दे पर पड़े रहते थे। कभी एकाध पोथी मिल जाती तो उसके पृष्ठों की फोटो उतार डालता था। नोर नगर-निवासी अधिकतर आलसी और कामचोर मालूम हुए। वे नशाखोरी भी बहुत काफी करते थे। गेशेलाजी अपनी खम्मो रानी के साथ दुल्हा लामा बने फिरते रहते थे। अधिकतर वे अपनी तूलिका से उस तिब्बती सुन्दरी का चित्र बनाते रहते थे। गेशेलाजी वास्तव में निपुण कलाकार थे। उन्होंने बड़े परिश्रम से उस शकुन्तला जैसी सुंदरी का एक बहुत ही सुंदर चित्र तैयार कर लिया।

खम्मो की आयु थी लगभग तेईस वर्ष। वह रहने वाली थी खम्प अंचल की जो हमारे राजपूतों की भाँति वीरता और सौंदर्य के लिए प्रसिद्ध हैं। यही वीर जाति थी जो अभी हाल में अपने दलाई लामा को अपने बाहु-बल से, और अपना रक्त बहाकर, बचाकर भारत ले आयी। जिस प्रकार इतिहास में राजपूत रमणियों की सुन्दरता प्रसिद्ध है, और जिस प्रकार उनके सौन्दर्य के कारण युद्ध हुआ करते थे, उसी प्रकार तिब्बत में भी इस खम्प अंचल की सुन्दरियाँ और उनके कारण होने वाले युद्ध भी प्रसिद्ध थे। गेशेलाजी ने बताया कि इस महिला का नाम था पासंग डोरमा, क्योंकि वह शुक्रवार को जन्मी थी। गेशेलाजी ने उसके सौन्दर्य का वर्णन करते हुए उसके हर एक अंग की विस्तृत प्रशंसा लिख डाली थी। फलस्वरूप उसका नाम दो पन्नों की एक कविता बन गयी थी। किंतु वे प्यार से उसे "खम्मो" ही कहकर पुकारते थे। जब गेशेलाजी ने उसका रंगीन चित्र तैयार कर लिया तो वह इतना सुन्दर बना था कि उसे घंटों देखने पर भी मन नहीं भरता था। भरे भी कैसे? गेशेलाजी कह उठते थे कि इसके सौंदर्य की मादकता ने मेरा अमूल्य ब्रह्मचर्य नष्ट कर दिया है। यह कोई ऐसी-वैसी अप्सरा नहीं है। इसको पूरी तरह पाने के लिये मुझको अनेक बार जन्म लेकर इस पृथ्वी में आना पड़ेगा। यह चित्र जब उन्होंने एक सुन्दर फ्रेम बनवाकर उसमें जड़ दिया तब 'खम्मो' शीर्षक देकर अपनी कविता भी सुन्दर सुनहरे में उसके पीछे लिख दी।

एक दिन जब वह नशे में खम्मो के पास बैठे उसकी तस्वीर का निरीक्षण कर रहे थे तो मौका पाकर मैंने उनसे निवेदन किया कि उसके ऊपर लिखी कविता का अनुवाद मुझे सुना दें। सौभाग्यवश वे राजी हो गये, और खम्मो के एक-एक अंग पर हाथ फेरते हुए सुरीली लय में वे पढ़ने चले उसके नाम की कविता। घने बालों की दोनों ओर

...ऊँगलियों की उपमा दी थी उन काले नागराजाओं से जो विराजमान रहते हैं शंकर भगवान् के सिर के ऊपर मुकुट बनकर और गले में माला बनकर। इसी प्रकार उनके वर्णन में था कि उसके गाल थे काश्मीर के बगीचे के किसी डाली में लटके हुए लाल दो सेबों का एक जोड़ा। उसकी आँखें थीं ईरान की शराब-भरी हुई दो प्यालियाँ––एक मजनूं के हाथ की और दूसरी थी उमर खय्याम की साकी। लाल गुलाब के बीच में था सफेद (दाँत) चमेली का गुच्छा जो भरपूर था इत्र की महक से और घिरा था शहद के मिठास के ओठों से। उसकी सुराहीदार गर्दन और पतली कमर को देखकर ईरान और फारस के कलाकारों ने शराब रखने के लिए घड़ों के डिजाइन बनाये थे। इत्यादि।

उन्होंने तिब्बती और भारतीय साहित्य की अनेक पुस्तकें पढ़ी थीं। उनको बड़े-बड़े पंडितों के साथ उठने-बैठने का मौका मिला था। इस कारण वे तिब्बती मठ के मामूली लामाओं से कहीं ऊँचे विद्वान् थे। कभी-कभी राहुलजी के साथ बैठकर प्राचीन इतिहास अथवा मनोविज्ञान पर तर्क-वितर्क और वाद-विवाद करने लगते थे। मैं वे पुरानी बातें सोच रहा हूँ। हे महापंडित राहुल जी! हे गेशे गेन्दोम छोमफेल लामा ला! तुम दोनों आज स्वर्गवासी हो। हम तुम्हारी जीवन गाथा इस मृत्युलोक में गाकर संतोष कर लेते हैं। राहुल महात्मा जैसे एक अति आधुनिक विचारक से प्रेरणा लेकर गेशेला क्रांति के पथ पर बढ़ चले थे। उन्होंने खम्मो के गुलाबी रंग के दुपट्टे की पताका मानों अपने विरोधी दल को दिखाने के लिये उठायी थी। पुरबैया चलने पर जब युद्ध में टूटी हुई मेरी पसलियाँ पीड़ा करने लगती हैं तो मीठे-मीठे दर्द के साथ-साथ याद आते हैं वे दोनों महान् योद्धा जो इस दुनिया के सुधार के संग्राम में कूद पड़े थे। जिगर में चुभी हुई एक फाँस बनकर रह गयी है यह स्मृति कि वह निडर, बहादुर और साहसी वीर (गेशेलाजी) समाप्त हो गया अकेला लड़ता हुआ हिमालय के उस पार अंधकारपूर्ण तिब्बत में।

तीखी धूप

श्री रघुनाथ प्रसाद घोष

तीखी धूप!
भटक गये पाखी बनजारा
टेर गये बन-प्रान्तर सारा
ताल-तलैया सूनी-सूनी
दहकी धूप
बहकी धूप
शापित ताप सरीखी धूप!
तीखी धूप!!

सूनापन हर गली-गली में
पैठ गया हर कुन्द-कली में
उमस-घुटन का पाहुन हर घर
लहसी धूप
बहसी धूप
मृदुल-दंश-सी तीखी धूप!
दीखी धूप!!

सबके मन का चैन चुराये
सबकी साँसों को झुलसाये
दाहभरी, विष की पूँजी-सी
तलती धूप
छलती धूप
ओठों में जा चीखी धूप!
तीखी धूप!!



मशीनें जो देखती, सुनती और सोचती हैं!

डा० अरविंद मोहन

आज से बारह वर्ष के भीतर ही संसार की जलवायु संबंधी भविष्यवाणी करने, प्रमुख हवाई अड्डों पर नियंत्रण करने तथा शतरंज में विश्वविजय पाने, तीनों में, एक सामान्य बात यह होगी कि वे मशीनी मस्तिष्क का चमत्कार होंगे। आज की वैज्ञानिक खोजों के फलस्वरूप इलेक्ट्रानिकी के ऐसे यंत्र बनेंगे जो कि मानव मस्तिष्क से अधिक चतुर, बढ़कर ज्ञानी तथा अधिक जानकारी प्राप्त करनेवाले होंगे।

धीरे-धीरे इनमें सुधार होकर ऐसे यांत्रिक रूप तैयार हो जावेंगे जिनमें मानव क्रियाओं, मस्तिष्क तथा ज्ञान को संचय करने की शक्ति दी गयी होगी, और वे मशीनें सोच-विचार कर काम करने में सफल होंगी। इस अजीबो-गरीब मशीनी दुनिया की झाँकी "बायोनिक्स" नामक विज्ञान की खोजों में आज भी स्पष्ट मिलने लगी है। जीवित वस्तुओं की क्रियाओं का अध्ययन और उनकी मशीनी नकल बनाना इस नवीन विज्ञान का उद्देश्य है ताकि ऐसी मशीनें बन सकें जो 'देख', 'सुन' तथा 'सोच' कर कार्य कर सकती हों।

विचित्र प्रकृति की नकल--आज विज्ञान का यह नवीन क्षेत्र, बायोनिक्स, मानव के लिए एक उपयोगी भविष्य का निर्माण कर रहा है। इसके अंतर्गत भौतिकी, रसायन, जीव-विज्ञान, इलेक्ट्रानिक्स इत्यादि सभी का ज्ञान एक-बारगी उपयोग किया जाता है; और जितना ही अधिक इस नवीन प्रयास में मानव प्रेरणा अग्रसर हो रही है उतना ही प्रकृति की विचित्रता पर आश्चर्य तथा विस्मय बढ़ता जा रहा है।

उदाहरण के लिए, नेत्र तथा मस्तिष्क के योग से किसी भी देखी गयी वस्तु में से मनचाही बात को समझ लेना (चाहे वह एक बगीचे में का छोटा फूल हो अथवा किताब में लिखा एक शब्द) आश्चर्यजनक है। सजीव शरीर में नसों का विस्तार कितना अजीब व महत्त्वपूर्ण कारीगरी का नमूना है जो कि विभिन्न प्रकार की सूचनाओं को अलग-अलग जगहों से पाकर एक केंद्र पर पहुँचाता है। इनकी बनावट का सेल न्यूरॉन अपनी कारीगरी तथा अनोखेपन में अद्वितीय है।

प्रकृति ने इन गुणी नसों को सोचने, समझने, बचाव करने, निर्णय लेने, आदेश देने इत्यादि कार्यों के लिए अ[illegible] अलग गुच्छों में एकत्रित किया है, तथा दिमाग को चक्क[illegible] में डाल देनेवाली विचित्र विधि से शरीर के हर [illegible] तक पहुँचाया है। जैसे, प्रकृति ने उल्लू, चमगाद[illegible] मकड़ी तथा विशेष मछली को ऐसे ध्वनि-यंत्र दिये हैं [illegible] वे उनके द्वारा तरंगों को बाहर भेजकर अपना मार्ग [illegible] लेते हैं ताकि किसी रुकावट से टकरा न जावें। दूस[illegible] ओर, सर्प रात्रि को अपने भोजन के लिए अन्य जानव[illegible] के शरीर से निकलनेवाली गरमी को दूर से ही [illegible] कर उनकी ओर पहुँच जाते हैं। कबूतर तथा दूसरे प[illegible] किसी अज्ञात प्रेरणा से सैकड़ों मील दूर चले जाने [illegible] भी अपने स्थान को सीधे लौट आते हैं। मेढक की आं[illegible] तथा मस्तिष्क की यह विचित्रता है कि अपने शत्रु [illegible] आहार पर ऐसा ध्यान लगाता है कि आगे-पीछे, अग[illegible] बगल की किसी वस्तु का उसकी दृष्टि में कोई प्रति[illegible] नहीं बनता!

प्रकृति के इन विचित्र गुणोंवाले जीवों की नसों [illegible] जाल ऐसा है कि नवीन परिस्थिति में भी वे [illegible] काम करती हैं, तथा कुछ अंश के काट देने या टूट [illegible] पर भी पूरी तरः बेकार नहीं हो जातीं।

विचित्र मशीनों की सृष्टि--ऋतु भविष्यवाणी [illegible] कार्य, आपको विदित ही है, अब कृत्रिम उपग्रहों [illegible] लिया जा रहा है। एक उपग्रह पृथ्वी से सैकड़ों [illegible] ऊपर ५ मील प्रति घंटे की गति से चलते हुए बादलों [illegible] उनके आवेश (विद्युत्) का चित्रण करता है तथा [illegible] पर यह सब जानकारी इस चुस्ती से भेजता जाता है [illegible] उसको पढ़ना, छाँटना, समझना एक कठिन समस्या [illegible] गई है।

इसी भाँति व्यावसायिक केन्द्रों में भी कार्य की जटि[illegible] इतनी बढ़ती जा रही है कि मानव प्रयास उसको सँभा[illegible] में अपर्याप्त ही नहीं वरन् निकम्मा हो रहा है। अधिका[illegible] ज्ञान की आवश्यकता, तत्काल निर्णय लेने की समस्या [illegible] गलतियों के फलस्वरूप हानि की अधिकता आज [illegible] को चकराये हुए हैं। नवीन मशीनें इनमें हमको [illegible] देती हैं ताकि उपरोक्त तीनों कठिनाइयों का हल हो [illegible]

ऐसी मशीनें बनायी गयी हैं जो कि स्थिर तथा चल-चित्रों, रडार व टेलीविजन, पुस्तकों तथा नोटिसों, मानव ध्वनियों तथा सांकेतिक विद्युत् संस्मरणों आदि को एक साथ ग्रहण कर सकें, उसमें से बेकार तत्त्वों को निकाल कर तथा आवश्यक बातों के ऊपर विचार करके कार्य-प्रणाली निश्चित कर सकें। निस्संदेह ऐसी क्षमता किसी एक मनुष्य या एक संस्था में भी लाना कठिन है।

स्मरणशक्ति का भी मशीनों में समन्वय किया जा रहा है ताकि वे किसी निर्णय पर पहुँचकर उसको पुराने अनुभवों के सहारे आजमा सकें और फलस्वरूप निकलने-वाले परिणाम भी एक साथ रख सकें, अर्थात्, एक निर्णय या कई निर्णय, ध्वनि शब्द, छपे उत्तर, चित्रित उत्तर तथा अनेक कन्ट्रोल संकेत आदि ये मशीनें परि-स्थितियों के अनुसार दे सकती हैं।

नवीन मशीनों का युग—बनावट की दृष्टि से आजकल की यह मशीनें मस्तिष्करहित कहला सकती हैं क्योंकि वे विचार या निर्णय करती तो अवश्य ही हैं परन्तु वैसे नहीं जैसे हमारा मस्तिष्क अपने बूते पर ही करता है। उनको सदैव आदेश देते रहना आवश्यक है। भविष्य की मशीनें मानव मस्तिष्क के समान कार्य करेंगी अर्थात् उनके आँख, कान होंगे! और निश्चय ही उनकी जटिलता आज की मशीनों से कहीं अधिक बढ़कर होगी।

भविष्य की मशीनों में दूसरी विशेषता यह रहेगी कि वे अति छोटे सरकिटीय अवयवों के बने होंगे जिनको जोड़कर अनेक कार्य किये जा सकेंगे। एक अंग टूटने पर पूरी मशीन पंगु न हो जावेगी। यह सूक्ष्म विचित्र इले-क्ट्रानी अंग वास्तव में मानव मस्तिष्क के 'न्यूट्रॉन' सेलों के समान होंगे। न्यूट्रानों के असंख्य सेल ही हमारी सोचने विचारने की क्रिया का आधार हैं।

इस विचित्र विज्ञान में त्रिविस्तारीय प्रयास चालू हैं :

(क) जीव विज्ञान प्रकृति के उन रहस्यों को खोज रहा है जो कि यह ज्ञान देंगे कि जीवधारियों की इस कार्य-शक्ति के पीछे क्या-क्या र स्य हैं।

(ख) रसायन व भौतिकी विज्ञान उन तत्त्वों या पदार्थों की खोजबीन या निर्माण में लगे हैं जिनमें उपरोक्त प्रकार की कार्यशक्ति के अनुकरण करने की क्षमता हो।

(ग) गणित तथा मशीनी विशेषज्ञ इस प्रकार की खोज में लगे हैं ताकि वे ऐसे समूह उत्पन्न कर सकें जो तार्किक दृष्टिकोण से खरे उतरें ताकि मानव मस्तिष्क की क्रियाओं का अनुकूलन किया जा सके।

रूपरेखा व बनावट—आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि इन प्रयासों में मेढकों का योग अत्यन्त आवश्यक है। जैसा कहा जा चुका है, इसकी आँखों में यह विचित्र क्षमता होती है कि वह आवश्यक वस्तु को पूरे दृश्य में से जैसे निकालकर देखती हैं। इस प्रकार की मशीन बनाने का प्रयत्न कुछ हद तक सफल भी हो रहा है।

आँखों के पश्चात् 'कान' भी मशीनों में लगाने का प्रयत्न किया जा रहा है। ध्वनि उच्चारण को, माइक्रोफोन के जरिये से, विद्युत् तरंग में बदलकर एक मशीन में भेजा जाता है। मशीन की स्मरणशक्ति में प्रत्येक शब्द उच्चारण की विद्युत् तरंगीय छवि रहती है जिसके साथ तुलना करके वह सुने गये शब्दों को पहिचान लेती है। यही क्रिया हमारे मस्तिष्कों में भी होती है। इस प्रकार का एक टाइपराइटर भी बना है जो शब्दों को छापने के स्थान पर ध्वनि उच्चारण करता है।

बायोनिक्स की विशेषता यह है कि यंत्रों का उत्पादन बड़ी संख्या में तथा इतने छोटे आकार में हो सकेगा कि एक घन इंच स्थान में लाखों या करोड़ों सरकिट-अंग एकत्रित किये जा सकेंगे। धारणा है कि प्रत्येक कार्य (देखने, सुनने आदि) के हेतु मशीनों को ऐसे करोड़ों अंगों को जोड़कर मानव मस्तिष्क के समान ही शृंखलायुक्त बनाना पड़ेगा। पुरानी पीढ़ी के वाल्व आदि वाले रेडियो भागों से ऐसी आशा करना बेकार था, क्योंकि इनके योग से बनी, एक मानव मस्तिष्क के समान कार्य कर लेने वाली मशीन के लिए इतनी विद्युत् शक्ति आवश्यक होती जितनी भाखरा बाँध भी न दे पाता। फिर, इनके द्वारा इतनी ऊष्मा उत्पन्न होती जो पूरा भाखरा का पानी भी ठंडा करने में असमर्थ रहता। परन्तु नवीन वैज्ञानिक खोजों ने इसका एक हल दे दिया है।

ट्रांज़िस्टर, सुरंगीय डायोड तथा विविध नवीन "ठोस विज्ञान" पद्धतियों ने अतीव सूक्ष्म यंत्रों की भरमार कर दी है जिनका उपयोग बायोनिक्स क्षेत्र में भी किया गया है। साथ ही इनमें बिजली की मात्रा भी अत्यन्त कम चाहिए। इनमें ऊष्मा तो नहीं ही उत्पन्न होती है। मक्खी

के आकार के बराबर बड़ा पूर्ण रेडियो बनाया जा चुका है, और इस लेख के छपते-छपते तक तो मक्खी से छोटा रेडियो भी बन चुकेगा। मच्छर की आँखों की पलकों के बालों के समान सूक्ष्म यंत्र बनाये गये हैं जिनको हम देखने में भी असमर्थ हैं।

एक ऐसा यंत्र है कृत्रिम स्मरणशक्ति का कोष जिसका आकार इतना छोटा है कि करोड़ों ऐसे यंत्रों को एक छोटे से डिब्बे में रखना संभव है। इसको दिया गया समाचार उसमें सुरक्षित बना रहता है तथा आवश्यकतानुसार पुनः मिल जाता है। साधारण अनेक भागोंवाले रेडियो के स्थान पर केवल एक सूक्ष्म पुर्जा वाल्वों, तार, कुंडली, कंडेंसरों आदि का पूरा-पूरा काम सँभाल लेता है।

ट्रांसिस्टर तो स्वयं सूक्ष्म हैं परन्तु इनका भी आकार घटाया गया है। ट्रांज़िस्टर के बारीक कणों को वाष्प से ठंडा करके कुचालक पदार्थ पर पतली परत में जमा कर पूरे बड़े यंत्र के स्थान पर केवल एक पतली परत से काम चल जाता है। साधारण डाक-टिकट के ऊपर बीस-पचीस सहस्र ऐसे यंत्रों को आसानी से सजाया जा सकता है। और आज के विशालकाय विद्युन्मय यंत्रों को (जो कि कई बड़े कमरों को ठसाठस भरे देते हैं) पुस्तक के एक पृष्ठ के आकार के स्थान में जमा दे सकते हैं।

आज के मशीनी मस्तिष्कों में काफी समय सूचना को मशीनी भाषा में परिवर्तित करने में लगता है। नवीन बायोनिक्स का ध्येय है कि मशीनें साधारण बोलचाल की भाषा समझें, और क्या करना उचित है, यह बिना बाहरी आदेश के, स्वयं सोचकर करें। यह कठिन कार्य भी सफल रहा है।

कल आनेवाली मशीनों में और कुछ रोचक गुण होंगे। काम को समझने का गुण अर्थात् आदेश पालन की समझ होगी ताकि मशीनें अपने को दिये गये कार्य के लिए सर्वोत्तम विधि अपना सकें। और सबसे आश्चर्यजनक मशीनें वे होंगी जो कि उन बातों को भी समझ सकेंगी जिन्हें उनको बनानेवाले तक न समझ सकते थे।

बायोनिक्स विज्ञान एक क्रान्तिकारी रूप न लेकर धीरे-धीरे विकसित होनेवाला आश्चर्य है। इसकी प्रगति निम्न रूप से हो रही है :

(क) सर्वप्रथम आधुनिक मशीनों को ऐसा रूप देना कि वे शब्दों में कहे गये आदेशों का पालन करने लगें।

(ख) दूसरा कदम भी १९७० के अन्त तक उठाया जा सकेगा जब कि अपना भला-बुरा सोचकर मशीनें स्वयं कार्य किया करेंगी : यह न बताना पड़ेगा कि कार्य किस प्रणाली से किया जावे।

(ग) तीसरा कदम वह होगा जब कि कमरों में विभिन्न विविधता के प्रश्नों या समस्याओं का हल करने की शक्ति रखनेवाली अनेक मशीनें होंगी और लाउड-स्पीकर से निकलते आदेशों को अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार 'सुन' कर प्रत्येक विशेषज्ञ मशीन अपने आप काम में लग जावेगी।

इस प्रकार भविष्य में एक साधारण मनुष्य को भी मशीनों के बल पर संसार के सबसे चतुर, ज्ञानी तथा उत्तम मस्तिष्क वाले मनुष्य से भी बढ़ी-चढ़ी शक्ति प्राप्त रहेगी और खूंटे के बल बछड़ा कूदे वाली उक्ति के अनुसार मानव मशीनों के दम पर डींग हाँकेंगे। कदाचित् वह दिन भी आवे कि कोई मशीनी मस्तिष्क अपने मानव मालिक को धक्का देकर संसार के प्राणियों के ऊपर अपना प्रभुत्व जमा ले। निश्चय ही बायोनिक्स का विज्ञान मानव को बहुत दूर तक ले जावेगा—सर्वनाश या सफलता की ओर, यह देखना है।



श्रद्धा के फूल

श्रीमती निर्मला मित्रा

पिछली रात की मैली सी छिटकी चाँदनी से आलोकित रास्ते में हम दो मानव-अनुभूति। एक दूसरे के पीछे चले जा रहे हैं।

राह कुछ साफ नजर नहीं आ रही है। धुँधलके में आकाशगंगा भी अब लुप्त !

रास्ता भी धरती ऐसा नहीं, शायद दोलायमान सेतु का पुल; नीचे सम्भव है कि कल-कल करके बहती हुई माता गंगा की पावन जलधारा बहती हो।

हम दोनों के अतिरिक्त-और भी कोई दिव्य शक्ति साथ में है जिसे मैं देख नहीं पा रही हूँ, मगर उनका अंग-सौरभ रह-रहकर मेरे घ्राण में समा रहा है। मैं विषाद से मलिन और उदास हो रही हूँ; कभी रास्ता भी समाप्त होगा या नहीं !

किन्तु वह हुआ समाप्त।

विरक्ति से दिव्य पुरुष बोले, "कभी सतयुग में ऐसी घटना घटित हुई थी, जानते हो भद्र बन्धु ?"

"निश्चय ही, उस घटना से मैं परिचित हूँ, परन्तु यह मेरी बहिन है......।"

"ओह ! मुझसे कुछ गलती हुई, माफ करना महानुभाव ! मगर अब इसे समझा दो बन्धु ! कि अब हम स्वर्गभूमि स्वर्ग में प्रवेश करनेवाले हैं, वहाँ मनुष्य का प्रवेश निषिद्ध है। यह अब यहींसे लौट जाय।"

भद्र महोदय बोले "महाशया! मैं आपकी अनुकम्पा का आभारी हूँ। बिना अनुमति के मैं--स्वर्गीय कानून नहीं भंग कर सकता।"

दिव्य पुरुष ने भद्र पुरुष की मूक सराहना करते हुए कहा, "मुझे मालूम है महान् आत्मा ! तुम कानून के कितने पाबन्द रहे, और आज मैंने देख भी लिया कि बिना अनुमति के तुम स्वर्गीय नियम नहीं तोड़ सकते। बन्धु, इसीलिए तुम्हें एक बार ही स्वर्ग नसीब हो गया। वह देखो, पूर्वाशा की पटभूमि में बैकुंठपुरी का तोरणद्वार--जो वृत्रासुर की अस्थि पर बना बिजली की पालिश सा चमचमा रहा है। अब वह द्वार खुलने ही वाला है। तुम अपनी बहिन से शीघ्र ही बिदा ले लो। मगर एक बात नहीं समझ पा रहा हूँ बन्धु, कि भारतवर्ष के करोड़ों नर-नारियों के शोक-ग्रस्त मन से इसका मन किस प्रकार भिन्न है। इसका मन क्यों तुम्हारे साथ चला आया ?"

"वह इसलिए कि इसका मन गहरा अनुसन्धानशील है। मैं यहाँ पर कैसे रहूँ, कैसे बसूँ, नाना प्रकार से सोच-सोच कर यह मन में सन्तोष पा लेगी।"

फिर एक बार दिव्य पुरुष ने भद्र पुरुष की ओर प्रशंसा की दृष्टि से देखा और बोले, "बन्धु ! तुम गहरे मनोवैज्ञानिक हो। मैं जानता हूँ स्वर्गलोक में तुम्हें 'बृहदारण्यक' पर शोधकार्य सौंपा जावेगा। बन्धु अब आराम से उपनिषदों पर गवेषणा किया करना।"

"धन्यवाद मेरे स्वर्गदूत !" फिर मुझे संबोधित करके भाई बोले, "मेरी बहिन, मुझे याद है, जब कांग्रेस के प्रचार कार्य में मैं तेरे गाँव से होकर गुजरा था और मेरी कार चलने ही वाली थी, तब मैंने देखा था कि लाल गुलाब का गुच्छा लिये तू पागल सी दौड़ी आ रही है। मैंने कार रुकवा दी थी। तू बेतहाशा हाँफते-हाँफते केवल कह पाई 'भाई !' मैं तेरी वह हार्दिक प्रसन्नता नहीं भूल सकता, मगर बहिन ! अब तुम कभी विचलित न होना। मैंने पार्थिव शरीर छोड़ दिया तो क्या हुआ, आत्मा तो अजर-अमर और अविनश्वर है। गीता का वह श्लोक याद करो 'न हन्यते हन्यमाने शरीरे'।"



महारानी दुर्गावती की प्रशंसा में एक अँग्रेजी कविता

(उपर्युक्त कविता का भावानुवाद)

DURGAWATI

Hail ! to Garha's dauntless queen
Still in death she keeps her station.
Lo ! mid yonder rocks is seen
Watching o'er her chosen nation,
Guarding from among the dead
Those for whom her body bled.

गढ़ा की साहसी रानी की जय हो ! मृत्यु के बाद भी वह अपने स्थान पर अडिग है। देखो ! सामने की चट्टानों के बीच वह मृत सैनिकों के साथ अपनी प्रजा की पहरेदारी कर रही है।

Heard ye not the tiger roar
'Mid the rocks at night time prowling,
Wolf upon the scent of gore,
Bird of night or jackal howling,
Panther cry, and o'er the steep
Dreary winds that never sleep ?

क्या तुम्हें रात में चट्टानों के बीच घूमनेवाले शेर की दहाड़ नहीं सुनायी पड़ी, अथवा शिकार का पीछा करते हुए भेड़िये की और उल्लू की आवाज, सियारों का रोना या तेंदुए की चीत्कार भी नहीं सुन पड़ी ? और क्या तुमने इस पहाड़ी पर चलनेवाली उन भयंकर तूफानों की आवाज भी नहीं सुनी जो कभी बंद नहीं होते ?

Nay, the spirits of the dead
Round the spot are silent never,
It is they that, where she bled,
Gond and Moghul shriek for ever,
And at fall of every night
Still resume the ghastly fight.

नहीं, इस स्थान के आस पास मृत वीरों की आत्माएं कभी मौन नहीं रहतीं। जहाँ उसने (दुर्गावती ने) अपना खून बहाया था, वहाँ गोंड और मुगल अविश्रान्त रूप से चीत्कार करते रहते हैं, और प्रति दिन रात होने पर अपना भयंकर युद्ध फिर छेड़ देते हैं।

Thrice she conquered, thrice the foe
Fled before her banners cow'ring,
But the fourth time fell the blow
Crashed the legion overpowering,
There where Vindhya's mountains merge
On the dim horizon's verge.

उसने तीन बार विजय प्राप्त की, तीन बार उसके झंडों के सामने से भयकंपित शत्रु भाग गये। किन्तु चौथी बार उन्होंने फिर चोट की, और दुर्दान्त एवं असंख्य शत्रु समूह ने उस स्थान पर आक्रमण कर दिया जहाँ क्षितिज की मद्धिम रेखा में विन्ध्य पर्वत लीन हो जाता है।

Then she fled with all her few,
Fled across the Hirun river
While she heard the Moghul crew
Hurtling on her footsteps ever,
Till the tide of battle broke
O'er the city of her folk.

(उस दुर्दान्त आक्रमण के कारण) वह अपने बचे हुए सैनिकों को लेकर पीछे हटी, उसने हीरन नदी को पार किया, किन्तु मुगल सेना उसका पीछा करती हुई चली आ रही थी और अन्त में जब राजधानी के निकट आ गयी तब उसने फिर एक बार दुर्दान्त प्रहार किया।

Here amid those rocks she stood,
Still her foemen's fear and wonder,
'Mid the carnage and the blood
While they slew her folk, and thunder
Of their cannons left and right
Foiled her charges, checked her flight.

वहाँ, उन चट्टानों के बीच में, वह डट कर खड़ी हो गयी। अब भी उसके शत्रु उससे भय खाते थे और उसकी वीरता से आतंकित थे। वह वहाँ (लड़ते हुए) अड़ गयी जहाँ भीषण रक्तपात हो रहा था, जहाँ उसकी प्रजा मारी

१९६४

रही थी। शत्रुओं की तोपों की धुआँधार मार न उसे आगे जाने देती थी और न बाएँ। उसके कारण न तो वह आक्रमण ही कर पाती थी और न पीछे ही हट सकती थी।

"Curse upon you! cowards that wreak
On frail women, lust and slaughter,
Have not I, a woman weak,
Orphaned many a Moghul daughter,
Many a Moghul warrior driven
To his houries and his heaven?

"तुम्हें धिक्कार है! तुम कायर लोग अबलाओं का सतीत्व भंग करते और उनकी हत्या करते हो। क्या मेरे समान निर्बल स्त्री ने कितनी ही मुगल बालिकाओं को पितृहीन नहीं कर दिया? कितने ही मगलों को हूरों के पास जन्नत में नहीं भेज दिया?

Curse you! vulture birds obscene!
On my people raven sated.
Shall you touch a Rajput queen?
Never till this hour has waited—
One more weapon in its sheath
That shall foil you, and 'tis Death."

"तुम्हें धिक्कार है! तुम मुर्दा खाने वाले गिद्धों की तरह मेरी प्रजा को ताक रहे हो। क्या तुम्हारा यह साहस कि तुम राजपूत बाला का अंग छुओ? यह असम्भव है। यह नहीं होने का। तुम्हारी अभिलाषा नष्ट करने के लिये अभी मेरे पास एक हथियार सुरक्षित है, और वह है—मृत्यु।"

From her mahout's hand, who slain
By her beast of war was lying,
Snatched the goad and plunged amain
In her bosom deep and dying
Then her folk and foe between
Fell the proud barbaric queen.

हाथी के पास मरा हुआ महावत पड़ा था। उसकी मुट्ठी में दबे हुए अंकुश को रानी ने झपट कर ले लिया और उसे अपनी छाती में जोर से भोंक दिया। अपने अनुयायियों और शत्रुओं के बीच वह स्वाभिमानी रानी गिर गयी।

Years have fled, yet where she fell
Still is heard the sound of battle
Rolling sullen like a knell
And the drum's tumultous rattle
Frights the dark, and o'er the steep
Murmurs moan that never sleep.

युग बीत गये, किन्तु फिर भी जहाँ वह गिरी थी वहाँ अँधेरा होने पर अब भी शोक-सूचक ध्वनि के समान युद्ध का तुमुलनाद और नगाड़ों की चोटों की डरावनी आवाज सुनायी पड़ती है, और पहाड़ी के अंचल में से रोने की सी ध्वनि आती है जो कभी बन्द नहीं होती।

(यह कविता मध्य प्रदेश के किसी गुमनाम सहृदय अंग्रेज अधिकारी ने पिछली शती के उत्तरार्द्ध में लिखी थी। कृपया संबंधित सम्पादकीय टिप्पणी देखिए। सम्पादक, सरस्वती।)



कसम प्रधान विश्व करि राखा

डा० श्यामसुन्दर व्यास

चाहे जिसकी कसम खाकर कह सकता हूँ कि कसम खाने की चीज नहीं है, फिर भी खायी जाती है और स्वाद-विहीन होने के बाद भी स्वाद ले लेकर दिन में सौ बार खायी जाती है। सभ्य-असभ्य, ठग-ठाकुर, चोर-साहूकार, बच्चे-बूढ़े, आदमी-औरत सभी कसम खाते हैं। शायद अपनी इस सर्व-सुलभता के कारण ही कसम में दम नहीं रहा है; फिर भी दम-दिलासा देने की इससे अच्छी 'सामाजिक दवा' अन्य नहीं है।

कसम का सबसे बड़ा भार हर देश, जाति एवं समाज में भगवान् को उठाना पड़ता है। धार्मिक सहिष्णुता, भावात्मक एकीकरण एवं समन्वयवादिता का अपूर्व सम्मिलन यदि कहीं सुलभ है तो कसम में। किसी भी हिन्दू से कसम डलवाकर पूछ लीजिये अगर उसने अल्ला की कसम न खायी हो, किसी भी मुसलमान से पूछ लीजिये, अगर वह 'बाई गॉड' कहने में हिचकिचाया हो या किसी भी ईसाई से पूछ लीजिये अगर उसे भगवान् की कसम खाने में ऐतराज हो! और तो और, देशी घर की बचकानी बेटे-बेटियाँ अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त कर जब बचपन से ही 'बाई गॉड' 'बाई गॉड' की रट लगाते हैं तो माँ-बाप का कलेजा इस विलायती कसम पर बल्लियों उछल जाता है। देशी गधी अगर पूरबी चाल चलने लगे तो किसे प्रसन्नता न होगी! भगवान तो सबका है, सबके लिए है और सदैव सुलभ है, फिर उसकी कसम खाने में कौन आगा-पीछा सोचता है? सच पूछा जावे तो कसम ही ईश्वर के अमरत्व की कसौटी है और आप दिन में दस बार चाहे उसकी झूठी कसम खाइये, उसकी शान में जरा भी बट्टा नहीं लगता! कोर्ट-कचहरी से लगाकर घर की साधारण 'किच किच' तक में उसकी माँग है। गज को ग्राह से चाहे उसने एक बार बचाया हो, द्रोपदी की लज्जा चाहे उसने एक ही बार रखी हो मगर संकट-ग्रस्तों के संकट में वह प्रति दिन काम आता है; एक नहीं सैकड़ों-करोड़ों बार। पूछिये—कब? कसम खाते समय! जैसे शराबी का गवाह कलाल, वैसे ही कसम खानेवाले का मददगार भगवान्! अतः परमात्मा, कसम का 'कस' याने उसकी आत्मा है।

परमात्मा के बाद, कसम का भार माँ-बाप को वहन करना पड़ता है। सपूत संतानों के प्रति आखिर कुछ कर्त्तव्य-भार भी तो चाहिये। इसीलिए कसम खानेवा[illegible] सपूत संतानें परमात्मा के बाद माता-पिता का स्म[illegible] करती हैं। अतः कसम मातृ-स्मरण एवं पितृ-सुमिरन [illegible] पाठ पढ़ाती है और परमात्मा के पश्चात् संतानों द्वा[illegible] माता-पिता का सम्मान बढ़ाती है। 'देशी बोली' में [illegible] नहीं 'साहबी भाषा' में भी यह प्रचलन है और इससे अ[illegible] अंदाज लगा सकते हैं कि कसम के घाट पर देशी बो[illegible] की नौका के साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिवाली भाषा [illegible] स्टीमर भी लगता है, याने भाव प्रकाशन के क्षेत्र में दोनों [illegible] कोई अंतर नहीं है।

'बच्चे-बच्ची' कसम के तृतीय प्रकार के भार-वाह[illegible] हैं। संतान दुर्दिन में ही काम आती है, माता-पिता का [illegible] विश्वास, उस क्षेत्र में भी सार्थक होता है। यद्यपि संतानों [illegible] की तरह, बात बात में, माँ-बाप बच्चे-बच्चियाँ को [illegible] घसीटते तथापि 'बुभुक्षितः किम् न करोति पापम्' की तर[illegible] 'मरता क्या न करता' के नाम पर माँ-बाप भी 'बच्चे [illegible] कसम' या 'बच्ची की कसम' खा जाते हैं। राजा दश[illegible] की परंपरा तो इस कलिकाल में निभने से रही, फिर [illegible] उसका कुछ अंश पिताओं को पुत्र की सौगंध–झूठी सौगं[illegible] खाने से रोकता रहता है। वैसे 'एक को ढूंढ़िये, हजार मिल[illegible] हैं' के अनुसार ऐसे अनेक पितृगण भी जगत् में सुलभ [illegible] जो 'कौड़ी' के पीछे अपने कोहनूर से बेटे की कसम [illegible] सकते हैं।

माताएँ इस मामले में जरा अनुदार है। धर्मभ[illegible] देश के 'दकियानूसी संस्कारों के कारण' (जैसा [illegible] आजकल की हवावाले कहते हैं!) संतान के अ[illegible] की आशंका से वे प्रायः अपने पुत्र-पुत्रियों की सौ[illegible] खाने से कतराती हैं और जब तक बहुत ही आवश्य[illegible] अनुभव नहीं होती, वे संतानों को कसम का मा[illegible] नहीं बनातीं।

पत्नियाँ इस मामले में अपनी सेवाएँ स्वयं सम[illegible] कर देती हैं और कसम खाना-खिलवाना उनके [illegible] 'स्वांतः सुखाय' सा होता है। 'खाओ मेरी कसम' कह[illegible] वे पतियों का इस दिशा में मार्ग-दर्शन करती हैं। कसम[illegible] फंदे में वे अपना सिर और गला भी स्वयं फँसाती हैं [illegible] पतियों को अपने गले तथा सिर की कसम खाते देख[illegible]

...न ही मन मोदक फोड़ती रहती हैं। प्रायः पतियों की ...नैष्ठा को वे अंगद के पाँव की तरह दृढ़ न भी मानें, ...र इस मृग-तृष्णा का मोह उनके मन से दूर नहीं होता। ...हैं वे स्वयं इस दिशा में बड़ी कृपण होती हैं। इसलिए ...देवता' या मुन्ना-मुन्नियों के बाबूजी को, बहुधा कसम ...माध्यम नहीं होना पड़ता। जहाँ तक उनका वश ...लता है, वे अपने 'उनको' इस बला से बचाती रहती हैं! ...कसम के क्षेत्र में, 'मेरा-तेरा' भी माधुर्य की मधुमती ...बन जाता है। ज्ञानियों ने 'मेरा-तेरा' को दुःख ...कारण माना है; मेरा-तेरा से ही "तू-तू मैं-मैं" होती है ...जगत् अशांति का घर हो जाता है; परन्तु कसम ...क्षेत्र में इससे 'तू-तू मैं-मैं' का शमन होता है। 'खा, ...कसम' का आमंत्रण 'हाँ, तेरी कसम' में परिणत ...सारे विवाद पर पूर्ण विराम लगा देता है। अतः ...विवाद का पूर्ण विराम है।

कागज के टुकड़े का यों कोई मोल नहीं; पर मुहर ...जाने के बाद वही हुंडी या नोट बनकर बाजार में धन्ना-...जाता है। ठीक इसी प्रकार चाहे लोग कसम की ...कीमत न करें मगर जब वह खायी जाती है तो अपने ...ही उसका मूल्य हो जाता है। सभी गंगा उठानेवाले ...नहीं होते, मगर कसम की मुहर लग जाने के कारण ...माने जाते हैं। सभी शपथ-ग्रहण करनेवाले धर्मराज ...यह भी नहीं कहा जा सकता, फिर भी हर भले ...में पद-ग्रहण करते समय भी—लोग शपथ लेते हैं ...धर्मावतार के रूप में ढाले जाते हैं। अतः धूर्तावतार ...धर्मावतार के रूप में परिणत करनेवाले इस मुलम्मे ...नाम कसम ही है। लाख मुलम्मा हो मगर मुलम्मेबाजी ...इस युग में इसका माधुर्य कहाँ नहीं है? कचहरी से ...कर घर की साधारण 'किच्-किच्' तक जिसका ...राज्य हो, उसे कौन चुनौती दे सकता है? अँगरेजी ...राज्य का कभी अस्त न होने वाला महिमा-मार्तण्ड भी ...अस्ताचलगामी हो गया, मगर कसम-कलाधर की चारु-...का आज भी विश्व-व्यापिनी है क्योंकि यह बेचारे ...की गर्दन तोड़कर नहीं तपी, मर्माहतों के मन पर ...लगाकर अपनी दूधिया मुस्कान बिखेरती रही है। ...कसम, किसकी कोख से, कब उत्पन्न हुई, यह कहना तो कठिन है मगर यह कल्पना की जा सकती है कि किसी 'छलना' नामधारी स्त्री ने जब 'विश्वास' नामक पुरुष की बाँह थापी होगी तो उनके प्रणय के परिणामस्वरूप 'कसम' का जन्म हुआ होगा और उसी अलक्षित अनिर्णीत घड़ी से यह भुवन-मोहिनी, त्रिभुवन-विजयिनी के रूप में प्रख्यात हो गयी होगी क्योंकि देव-दानव और मानव में कौन ऐसा है जिसने इसे नहीं अपनाया? मर्यादा पुरुषोत्तम राम से लगाकर राहों में भटकते 'रमते राम' भी इसका राग अलापते हैं। खुशहाल घर-गृहस्थियों से लगाकर खाना-बदोश लोगों तक की जबान पर इसका नाम है। नीर-क्षीर-विवेकियों ने भी इसकी शरण ली है और क्षीर में नीर मिलानेवाले तक इसकी ओट लेते हैं! वास्तव में कसम छलना और विश्वास का सिक्का है जो चलते-चलते घिस गया है, फिर भी चल रहा है।

काल सर्वजयी, सर्व-भक्षक एवं सर्व-संहारक माना गया है। परन्तु कसम के सामने उसे भी अपने हथियार डाल देने पड़े हैं! बच्चे की नन्हीं सी तुतली जिह्वा पर तुल जाने वाली हलकी सी कसम को न तो काल के डग नाप पाये, न काल के जबड़े पचा सके और न काल के दाँतों में इसका कचूमर बना। बड़े-बड़े नद-नदियों का जल सूख गया मगर कसम का प्रवाह न रुका। धरती का उर्वर कोष भी अनेक बार चुक गया मगर कसम का अक्षय कोष आज तक रीता नहीं हुआ। 'क्षिति, जल, पावक, गगन समीरा' वाला यह पंचभूतात्मक विश्व कितने उथल-पुथल देख चुका है मगर कसम के कार्य-कलाप में कोई अंतर नहीं आया। प्यार में, रार में, दुलार में, फटकार में, सर्वत्र-कसम का बाहुल्य रहा और आज भी देश-काल की संकीर्ण सीमाओं से ऊपर उठकर, कसम, विविध भावाओं की वेश-भूषा धारण कर कथनी-करनी का कल्पवृक्ष बनी हुई है।

जो किसीको नहीं खाती और जिसे सब खाते हैं, उसकी सहिष्णुता की महिमा अवर्णनीय है। कुबेर का कोष, अन्नपूर्णा का भंडार, सागर का जल, गगन का विस्तार, धरती की सहिष्णुता, पवन का संचार सब कसम के सामने छोटे हैं। अतः संक्षेप में यही कहा जा सकता है—

"कसम प्रधान विश्व करि राखा।
जो जस खाये तस फल चाखा॥"

आंगनों के बीच—

पुरानी प्रथाएँ

पुरानी प्रथाएँ—हमारे समाज में कुछ पुरानी प्रथाएँ चली आ रही हैं। उनके अर्थ आज लुप्त हो गये हैं। हम बिना अर्थ जाने ही लकीर पीटते चले जा रहे हैं। परन्तु यदि उनका अर्थ भी जान जायँ तो उनको करने में एक नवीन चाव लगेगा।

रुद्राक्ष—रुद्राक्ष यदि शुद्ध और असली है तो यह कहा जाता है कि उस के सतत स्पर्श से 'रुधिर चाप' (ब्लड प्रेशर) के रोग में लाभ होता है। जिनको 'हाई ब्लड प्रेशर' का रोग होता है रुद्राक्ष पहनना उनको औषधि के रूप में बताया जाता है। वृद्धावस्था में जब लोग अधिक धार्मिक हो जाते थे तब इसकी माला पहिनते थे। उसी अवस्था में अधिकतर लोगों को रक्तचाप हो जाता है।

तुलसी—तुलसी की महिमा से हमारे पुराण भरे पड़े हैं। पूजा में इसका विशेष स्थान है। प्रसाद में तुलसी न पड़े तो भगवान् को भी प्रसाद मान्य नहीं है। पूजा भारतीयों के जीवन का एक विशेष अंग था और प्रत्येक गुणकारी वस्तु पूजा के साथ इस प्रकार जोड़ दी गयी थी कि उसका सेवन अनिवार्य हो जाय। आधुनिक अन्वेषणों ने तुलसी में अनेक गुण खोज निकाले हैं। ज्वर, सर्दी आदि में यह औषधि का काम देती है। आधुनिक अन्वेषकों ने पता लगाया है कि तुलसी का नियमित सेवन करनेवाले को क्षय रोग नहीं होता। इसी कारण तुलसी अनिवार्य होकर हमारे जीवन में आ गयी थी।

विवाह में छः दिन तक हल्दी चढ़ाना—विवाह में एक प्रथा थी कि वर और बधू के शरीर में छः दिन तक हल्दी का लेप किया जाता था और सातवें दिन स्नान होता था। अब वह प्रथा इस रूप में रह गयी है कि हल्दी शरीर से छः बार छुआ दी जाती है। बहुत हुआ तो थोड़ी हाथ, पाँव, मुँह में मल दी गयी, और काम समाप्त हुआ। वास्तव में हल्दी चढ़ाने के पीछे एक वैज्ञानिक तत्व है। शरीर पर से अधिक रोओं को दूर करने के लिए छः दिन

तक उस स्थान पर हल्दी मलना फिर धो डालना कारगर उपाय है। इससे रोएँ अपने आप झड़ जाते हैं और फिर जल्दी उगते नहीं। यदि कई बार इस प्रकार छः छः दिन हल्दी का उपचार किया जाय तो रोओं का नाश सदा के लिये हो जाता है।

छः वर्ष की अवस्था में विद्यारंभ——बालकों को छः वर्ष की वय में शुभ दिन देखकर पट्टी पर लिखाकर विद्यारंभ कराया जाता था। उसके पहले चाहे जितनी कंठस्थ करा दें, या पद, दोहे भी याद करा दिये जांय परन्तु लिखना नहीं सिखाया जाता था। नेत्र-विशेषज्ञों का कहना है कि जिस प्रकार ४० वर्ष की अवस्था पार करने के बाद प्राणी को समीप की वस्तु का दीखना कम हो जाता है, उसी प्रकार बालक भी दूर की वस्तु तो स्पष्ट देख सकते हैं परन्तु उनके नेत्रों की मांस-पेशियों में इतनी शक्ति और लोच नहीं आती कि वे उनकी सहायता से आँखों को निकट केंद्रित करके समीप की वस्तु देख सकें। इसी कारण बहुत से छोटी अवस्था के बालक घूम-फिरकर रटना तो पसन्द करते हैं, परन्तु पढ़ने से जी चुराते हैं क्योंकि उनकी आँखों की मांसपेशियों में केंद्रित करने की शक्ति देर से आती है। वृद्ध लोगों के नेत्रों की मांसपेशियाँ जब शिथिल हो जाती हैं तब वे उनकी आँखों को समीप केंद्रित नहीं कर सकतीं और वे समीप देखने की शक्ति खो बैठते हैं। इसके विपरीत बालकों के नेत्रों की मांसपेशियों में कुछ अवस्था तक इस काम को करने की शक्ति नहीं आ पाती। अन्तर यह है कि वृद्ध प्राणियों का इसका ज्ञान होता है कि वे ठीक से देख नहीं पा रहे हैं, और बालकों को इसका ज्ञान नहीं होता। जिस प्रकार सभी वृद्धों के ४० साल पर चश्मा नहीं लग जाता; कुछ के कभी लगता है और कुछ के कभी; उसी प्रकार यह नहीं है कि सब बालक छः साल के पूर्व पास की चीज पढ़ नहीं सकते। उनमें कुछ को अधिक स्पष्ट दीखता है, कुछ को कम। पर वे इस बात को व्यक्त नहीं कर सकते। छः साल के होते-होते प्रायः सभी बालकों की दृष्टि में समीप की वस्तु भली भाँति देखने की शक्ति आ जाती है। इसी कारण उनका विद्यारम्भ छः वर्ष की आयु में रक्खा गया था।

जच्चा को सवा महीने का स्नान कराकर ही शुद्ध मनाने की प्रथा चली आती है। सवा महीने तक उससे कोई काम नहीं कराया जाता; खाने पीने की चीजें छूने की विशेष मनाही होती है और घर के बाहर भी जाने की अनुमति नहीं होती। आजकल भी बहुत से घरों में इस बात का पूरा ध्यान रक्खा जाता है। परन्तु धीरे-धीरे यह प्रतिबन्ध ढीला पड़ने लगा है। इसका एक कारण तो संयुक्त परिवार की समाप्ति के कारण स्त्रियों का अकेले रहना है। कोई सहारे को घर पर नहीं होता और उनको विवश होकर ही जल्दी ही गृहस्थी देखनी पड़ती है। कुछ स्त्रियाँ आधुनिकता की पुकार पर 'मौडर्न' लगने के प्रलोभन में यह प्रतिबन्ध नहीं निभातीं। वास्तव में सवा महीने का प्रतिबन्ध रक्खा इसलिये गया था कि सन्तानोत्पत्ति के बाद गर्भाशय को अपनी वास्तविक अवस्था में आने में सवा मास लगता है——जब तक कि वह अपनी वास्तविक अवस्था में न आ जाय तब तक असावधानी से हिलने-डुलने से हानि पहुँच सकती है और उसके रोगी हो जाने या उसमें किसी प्रकार की क्षति पहुँचने से स्त्रियों का जीवन अभिशाप हो सकता है।



अनुवादित कहानी

नवीन नचिकेता

श्री रूपनारायण पाण्डेय

(१)

इसी महल्ले का लड़का है। जैसी बुद्धि है, वैसी ही प्रतिभा। जैसा चतुर है, वैसा ही चटपटा। सभी लोग उससे बहुत कुछ आशा करते हैं। लेकिन एकाएक यह क्या हुआ? एक दिन सवेरे लड़का घर से गायब हो गया। बहुत दौड़ धूप करने पर भी कुछ पता नहीं लगा। नचिकेता लापता हो गया।

असल बात यह है कि नचिकेता के मन में एकाएक संसार से वैराग्य उत्पन्न हो गया। पढ़ना-लिखना, आहार-विहार, कलकत्ते के लेक, पार्क, सिनेमा, क्रिकेट, फुटबाल सब बेमजा हो गये। अत्यन्त साधारण वेष से उसने ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिए घर से यात्रा कर दी। ब्रह्मज्ञान प्राप्त किये बिना वह घर नहीं लौटेगा।

घर से निकल कर कुछ दूर जाते ही महल्ले की लड़की वासन्ती ने पुकारकर कहा—नाची दादा, इतने तड़के कहाँ जा रहे हो?

नचिकेता से कोई उत्तर न पाकर लड़की ने फिर कहा—सुनो तो सही। तुम्हें याद है, तुमने कालिज-स्क्वायर से मुझे दो गज छींट ला देने के लिए कहा था? देखो, आज भी न भूल जाना।

नचिकेता ने रूखेपन से कहा—मुझसे यह कुछ न होगा।

वासन्ती—क्यों? तुम आज इतने नाराज क्यों हो?

नचि०—जाओ, दिक न करो। अब मुझसे संसार का कोई भी काम न होगा। मैंने संसार का त्याग कर दिया है।

वासन्ती ने आश्चर्य से गाल पर हाथ रखकर कहा—बाप रे! यह क्या कह रहे हो जी?

नचि०—मैं सच कहता हूँ। इसमें एक अक्षर भी झूठ नहीं है।

वासन्ती—तुम पागल तो नहीं हो गये?

नचि०—नहीं, पागल नहीं हुआ। तुमसे बहस करना बेकार है। साफ बात यह है कि अब तुमसे भेंट न होगी। अब मैं जाता हूँ।

वासन्ती को भी क्रोध आ गया। "यमराज के घर जाओ!" कहकर वह भी घर की ओर चल खड़ी हुई।

"वहीं तो जा रहा हूँ", कहकर नचिकेता भी आगे बढ़ा। शायद नचिकेता की बाल्यसखी वासन्ती की आँखों में आँसू की दो बूंदें चमक उठीं। मगर संसार से विरक्त नचिकेता को उधर ध्यान देने की फुरसत कहाँ?

(२)

नचिकेता चला सो चला। न जाने कितना रास्ता वह तेज़ी के साथ चल चुका है और अभी न जाने कितना रास्ता उसे तय करना होगा। यमराज का घर कुछ थोड़ी दूर तो है नहीं। पृथ्वी के उस पार अथवा स्वर्ग में जाने पर ही तो यमराज से मुलाक़ात होगी! कितने बीहड़ वन, कितने पहाड़, कितने रेगिस्तान, कितना दुर्गम मार्ग पार करता हुआ नचिकेता बढ़ता ही चला जा रहा था। जंगलों में ऋषि-मुनियों के दिये हुए कंदमूल-फल खाकर उसने अपने ज़ीवन की रक्षा की। आगे बढ़कर उसने देखा, पेड़ों पर सेब, नाशपाती, संतरे, अंगूर, शरीफे, अमरूद आदि तरह तरह के फल लटक रहे हैं। छोटे-छोटे कंद-मूलों को धरती से उखाड़ते ही आलू, गाजर, मूली आदि कंद निकल आते हैं। मतलब यह कि ऋषि-मुनियों को जब भूख लगती है, तब उन्हें वहाँ आसानी से कंद-मूल-फल मिल जाते हैं। परन्तु खाने के लिए काफी कंद-मूल-फल मिलने पर भी ऋषि-मुनि लोग जब देखो तब मरभुखों की तरह ठूँस-ठूँसकर उन्हें नहीं खाते। केवल भूख मिटाने के लिए, शरीर-धारणमात्र के लिए वे थोड़ा-सा आहार करते हैं। उससे अधिक नहीं खाते। नचिकेता भी इसी तरह नपा-तुला आहार करते-करते धीरे-धीरे शीर्ण से शीर्णतर होते-होते आगे बढ़ने लगा।

एक जगह पर एक सुन्दर मैदान मिला। वहाँ बहुत-से लड़के खेल रहे थे। उन्होंने नचिकेता को देखकर कहा—आओ भाई, हमारे साथ खेलो।

नचिकेता ने कहा—नहीं भाई, मैंने खेलकूद छोड़ दिया है। अब मुझे यह कुछ अच्छा नहीं लगता।

लड़कों ने कहा—यह क्या कहते हो भाई? इस अवस्था में खेलकूद छोड़ देने से काम कैसे चलेगा? आओ, खेलो। खेलने के बाद कुछ जलपान भी होगा। जान पड़ता है, तुम बहुत दूर से आ रहे हो। तुम्हारा मुँह

रहा है, पैरों में धूल जमी हुई है। भूखे भी हो। आओ ... आओ।

नचिकेता ने कहा--ना भाई, मैं यह सब नहीं खाऊँगा। ... संसार का त्याग कर दिया है। वन के कंद-मूल-फल ... सिवा और कुछ मैं नहीं खा सकता।

... लड़कों ने अचरज के साथ कहा--कैसे गजब की ... है!

नचिकेता ने दुःखित होकर कहा--भाई, तुम मेरे ... का रहस्य समझ नहीं सकोगे। मैं चलता हूँ।

नचिकेता चल दिया। लड़के फिर खेलने लगे।

और भी बहुत दूर नचिकेता निकल गया। एक ... सुन्दर झरना मिला। झरने के पास बहुत-से बड़े ... पत्थर थे। पत्थरों के पास उथला पानी था। एक ... बड़े पत्थर के ऊपर एक स्त्री बैठी साबुन लगाकर ... धो रही थी। स्त्री अधेड़ अवस्था की थी। रास्ते ... नचिकेता को देखकर उसे कुछ आश्चर्य हुआ। इस ... में तो कोई मनुष्य कभी नहीं आता। स्त्री ने नचिकेता ... पुकारा—भैया, जरा इधर तो आओ।

नचिकेता उसके पास गया। महिला ने देखकर ...—जान पड़ता है, दूर से आ रहे हो। मुँह सूख गया ... बैठ जाओ, तनिक विश्राम कर लो। मैं अभी घर ... हूँ। मेरे साथ चलो। घर का दूध और मिठाई ... है। खाकर, पानी पीकर ताजे हो लो।

नचिकेता ने कहा—नहीं माता जी, यह न होगा। ... विरक्त ब्रह्मचारी हूँ। ये चीजें नहीं खा सकता। राह ... में जो कुछ कंदमूल-फल मिल जाते हैं, वही खाकर ... हूँ।

महिला ने कहा—ऐसा पागल लड़का तो मैंने कभी ... देखा। चलो बेटा, घर के बने बढ़िया लड्डू रक्खे हैं। ... दो-एक खा लेना।

नचिकेता ने जोर से सिर हिलाकर कहा—मुझे माफ ... करो।

यों कहकर नचिकेता चल दिया। महिला आश्चर्य ... उसकी ओर ताकती रह गई।

(३)

अन्त में नचिकेता स्वर्ग में पहुँच गया। एक देवता से ... इन्द्रपुरी का रास्ता पूछा और सीधा इन्द्रभवन के ... सामने जा खड़ा हुआ। इन्द्र का बहुत बड़ा भव्य महल था। नचिकेता विस्मय से आँखें फाड़फाड़कर कुछ देर तक उसे ताकता रहा। बहुत लंबी-चौड़ी दीवारें थीं। भवन की कारीगरी देखते ही बनती थी। फाटक आकाश को छू रहा था। तरह तरह के कीमती रत्न उसमें जगमगा रहे थे। उस अलौकिक महल की शोभा देखकर नचिकेता दंग रह गया। लेकिन कोई बाहरी आडम्बर या दिखावा नचिकेता जैसे लड़के को बहुत देर तक अटका नहीं सकता। उसने देखा, सामने महल के फाटक पर मोटा-ताजा अस्त्र-शस्त्रों से लदा हुआ पहरेदार खड़ा है। नचिकेता ने सीधे उसके पास जाकर पूछा—क्यों भाई, यमराज का घर यहाँ कहाँ पर है, बता सकते हो?

पहरेदार ने पहले सिर से पैर तक इस साहसी निडर लड़के को देखा; फिर कहा—हाँ, बता क्यों नहीं सकता। स्वर्ग के निवासी सभी देवताओं को हम लोग पहचानते हैं, उनके घर भी जानते हैं। नहीं तो हमें पहरेदारी की नौकरी कैसे मिलती?

नचिकेता ने उत्सुक होकर कहा—तो फिर बताओ, मैं किस राह से जाऊँ।

पहरेदार ने कहा—यहाँ से सीधे तेरहवें मोड़ तक पहले जाना। फिर दाहनी ओर घूमकर ग्यारहवें मोड़ तक जाना पड़ेगा। वहाँ से बाईं ओर घूमकर नवें मोड़ पर पहुँचोगे। वहाँ से दाहनी ओर देखना, सातवाँ घर यमराज का ही है।

पहरेदार को धन्यवाद देकर नचिकेता आगे बढ़ा। स्वर्ग की सड़कें और रास्ते खूब साफ सुथरे थे। कहीं कूड़े कर्कट का नाम न था। देवता देवियों के साथ पैदल, रिक्शा पर, मोटर पर और गरीब देवता साइकिलों पर आ-जा रहे थे। आकाश एकदम नीला था। आबहवा न बहुत गर्म थी, न बहुत ठंडी। सदा वसन्त की बहार रहती है। फूल खिलने के बाद फिर मुरझाते नहीं। बुढ़ापे या मौत का वहाँ फेरा नहीं होता। इसीलिए देवी और देवता अधिक सन्तान नहीं उत्पन्न करते। अगर वे इसका खयाल न रक्खें तो स्वर्ग में भी रहने को मकानों की, खाने को अन्न की और पहनने को कपड़े की कमी होने लगे। वहाँ भी राशनिंग, कंट्रोल और चोरबाजारी चलने लगे। देवी और देवता सदा जवान रहते हैं। नचिकेता को वहाँ एक भी बूढ़े या बुढ़िया के दर्शन नहीं हुए। बच्चा भी कोई नजर

नहीं आया। देवयोनि के लड़के-लड़कियाँ जवान ही पैदा होते हैं और सदा जवान रहते हैं।

इधर उधर देखते-देखते और मोड़ गिनते-गिनते नचिकेता यमराज के महल के सामने पहुँच गया। तीन सीढ़ियाँ चढ़कर एक लंबे चौड़े बरामदे में वह दाखिल हुआ। यमराज का घर पहचानने में किसी को कोई कठिनाई नहीं हो सकती। सारा घर एकदम कालेरंग का है। ब्लूब्लैक स्याही का रंग सर्वत्र पुता हुआ है। भीतर दीवारों पर अलकतरे का रंग का डिस्टेंपर लगा है। फर्श काले पत्थर का है। सारे फर्नीचर में काली पालिश की हुई है। सोफों और कुर्सियों पर काले रेशम के गिलाफ चढ़े हुए हैं।

नचिकेता ने इधर उधर देखा, कहीं कोई न देख पड़ा। तब उसने बुलाने की घंटी बजाई। एक मोटा ताजा बैरा आकर हाजिर हुआ। जान पड़ता था, जैसे काले पत्थर को तराशकर उसका शरीर गढ़ा गया है। रूप भयंकर होने पर भी उसकी बातचीत भले आदमियों की-सी थी। बैरा ने एक बार नचिकेता को सिर से पैर तक देखकर पूछा—किससे मिलना चाहते हैं आप?

नचि०—यमराज से।

बैरा—आप यहाँ बैठिये। मैं मालिक को ख़बर देता हूँ। बताइये, आप का क्या परिचय दूँ?

नचि०—कहना, मनुष्यलोक से एक लड़का आप से मिलने आया है। बहुत जरूरी काम है।

बैरा चला गया। नचिकेता बरामदे के पास ही बैरा के बताये हुए 'हाल' में घुसकर एक सोफे पर बैठ गया। राह चलते-चलते वह इतना थक गया था कि उसे नींद आ रही थी।

(४)

यमराज ने आकर दर्शन दिये। शरीर बहुत विशाल और रंग घोर काला था। काली ही पोशाक पहने थे, जिसमें बढ़िया कारीगरी का काम किया हुआ था। पीछे एक बहुत बड़ा दण्ड हाथ में लिये उनका अर्दली भी था। वह दण्ड देखने में हमारी कौंसिल के सभापति के दण्ड से बहुत कुछ मिलता जुलता था। यमराज आगे बढ़कर नचिकेता के पास एक आराम कुर्सी पर बैठ गये। उन्होंने पूछा—बच्चा, तुम्हारा नाम क्या है?

नचि०—मुझे नचिकेता कहते हैं।

यम०—रहते कहाँ हो?

नचि०—मनुष्यलोक में, कलकत्ते में।

यम०—अच्छा अच्छा। यहाँ कैसे आये? तुम बड़े साहसी लड़के देख पड़ते हो!

नचि०—जी, बात यह है कि मेरे मन में संसार के प्रति वैराग्य उत्पन्न हो गया है। मैं आप से ब्रह्मज्ञान [illegible] करने आया हूँ।

इसी समय हाल के एक दरवाजे से यमराज की अर्द्धांगिनी ने प्रवेश किया। उन्हें देखते ही अर्दली [illegible] से चला गया। यमराज की पत्नी धीरे-धीरे आकर [illegible] केता के पास बैठ गईं। उन्हें देखते ही नचिकेता मुग्ध [illegible] गया। उन का जैसा सोने का सा रंग था, वैसे ही [illegible] शरीर पर सोने के जड़ाऊ गहने जगमगा रहे थे और [illegible] ही उनके होठों पर स्वर्णवर्ण उज्ज्वल हास्य की रेखा [illegible] यमराज के पास यमराज की पत्नी, एकदम उल्टा [illegible] था। जैसे रात के पास दिन या अन्धकार के पास प्रका[श] इतना बड़ा विपरीत दृश्य आजकल ट्राम या बस में भी [illegible] देख पड़ता। नचिकेता ने भक्तिभाव से गद्गद [illegible] यमराज और उनकी पत्नी को साष्टांग प्रणाम किया।

यमपत्नी ने कहा—सुखी रहो बच्चा! बहुत [illegible] से आये हो, निश्चय ही तुम्हें भूख लगी होगी।

नचिकेता ने हँसकर कहा—हमारी माताओं को [illegible] एक रोग होता है। किसी को देखते ही उन्हें जान [illegible] है कि वह भूखा है!

यमपत्नी ने कहा—हाँ भैया, इसी से तो हम [illegible] माता कहलाती हैं। बैठो, मैं कुछ तुम्हारे लिए जलपान [illegible] आऊँ। चाय पीते हो न?

नचि०—सभी कुछ खाता-पीता था मा; लेकिन [illegible] सब छोड़ दिया है मैंने। अब तो केवल कंदमूल [illegible] ख़ाता हूँ।

यमपत्नी—जब तुम जंगल में थे, पहाड़ी [illegible] चलते थे, तब फल-मूल खाये तो ठीक किया। वहाँ [illegible] मिलता ही क्या? अब तो तुम स्वर्गपुरी में हमारे [illegible] आ गये हो। यहाँ किस बात की कमी है बेटा? यहाँ जंगल तो है नहीं। यहाँ तो छप्पन भोग लगते हैं। [illegible] जी चाहे, खाओ। अमृत भी दुर्लभ नहीं है।

यों कहकर यमराज की पत्नी घर के भीतर चली [illegible] और कुछ देर के बाद एक बड़ी सी रकाबी में अनेक [illegible]

खाद्यसामग्री—नमकीन और मिठाई—लाकर एक छोटी गोल मेज पर रख दी। पीछे पीछे एक नौकर ले आया। नौकर ने वह गोलमेज नचिकेता के सामने रख दी। बहुत दिनों बाद चाय की खुशबू पाकर नचिकेता का चित्त चंचल हो उठा। थोड़ी देर के लिए उसने वैराग्य को ताक पर उठा कर रख दिया और चाय के साथ बढ़िया खाद्य सामग्री खाने में जुट गया। अवश्य ही उसने एक बार ढीलीढाली नाहीं-नूहीं की, जिसे 'हाँ' में ही समझना चाहिए। यमपत्नी को भी एक आध बार अनुनय और आग्रह करना पड़ा। मनुष्यलोक सम्बन्धी बातचीत के साथ चाय पीने का पर्व समाप्त हुआ। यमराज की पत्नी उठकर भीतर चली गई थीं। गिरस्ती के और काम भी तो देखने थे!

यमराज ने पूछा—अच्छा अब ठीक ठीक बताओ, क्या चाहते हो?

नचिकेता ने आग्रह के साथ विनीत भाव से कहा—मैंने आपसे कह दिया कि मैं अब संसार से विरक्त हो गया हूँ। मुझे आप ब्रह्मज्ञान की शिक्षा दीजिए। जीवन भर इस ज्ञान को पक्का करने के लिए तपस्या करना चाहता हूँ।

यमराज ने कहा—तुम गलती कर रहे हो नचिकेता, गलती कर रहे हो!

नचिकेता ने चकित होकर कहा—क्यों? ऐसा क्यों कह रहे हैं?

यम ने कहा—सुनो! तुम्हें इस नये ज़माने की बिलकुल ही खबर नहीं है। एक समय ज़रूर ऐसा था, जब चाहे ब्रह्मज्ञान हो और चाहे और किसी तरह का ज्ञान, उसे प्राप्त करने का तरीक़ा अभ्यास, अध्यवसाय अर्थात् लगन, साधना और गुरु की सेवा करना आदि था। लेकिन ये सब आदम के ज़माने के तरीक़े अब नहीं चलते। आजकल शिक्षा का माध्यम या उपाय बिलकुल ही दूसरे ढंग का है। आजकल का तरीक़ा ऐसा सहज और दिलचस्प है कि अब यही तरीक़ा ज्ञान लाभ का श्रेष्ठ उपाय गिना जाता है और सर्वसाधारण ने इसीको स्वीकार कर लिया है। जानते हो यह नया ढंग क्या है? सुनो, एक यथार्थ घटना तुम को इस बारे में सुनाता हूँ। तत्त्व की अपेक्षा उदाहरण जल्दी समझ में आ जाता है।

(५)

यमराज ने कहा—कुछ दिन पहले की बात है। हमारे लोक के उस महल्ले में वरुण देवता रहते हैं। उनका भांजा बुरी संगति में पड़कर बिगड़ गया था। सदा झूठ ही बोलता था। कितना समझाया गया, मगर सब बेकार हुआ। हिंदी की दूसरी किताब से "सदा सच बोलो", यह पाठ दो हजार बार रटाया गया; मगर कुछ फल न हुआ। इसके बाद रामायण, महाभारत और पुराणों से रामचन्द्र, युधिष्ठिर, हरिश्चन्द्र आदि के कितने ही उदाहरण देकर बहुत दिनों तक उपदेश दिया गया। इससे भी कुछ नहीं हुआ। "सत्यमेव जयते नानृतम्" का महामंत्र भी बहुत दिनों तक जप कराया गया। वह भी वृथा गया। यहाँ तक कि जार्ज वाशिंगटन और चेरी वृक्ष की कहानी भी याद कराई गई। किन्तु कुछ न हुआ।

एक दिन गणेशजी से भेंट हुई। उन्होंने सब हाल सुनकर कहा—इन उपायों से कुछ न होगा। सुशिक्षा के लिए अच्छे माध्यम की ज़रूरत है। एक काम करो। उसे कई दिन तक लगातार "सत्य की राह" नाम की जो फिल्म एक साथ पाँच सिनेमाघरों में दिखाई जा रही है, वही देखने के लिए भेजो। देखना, दो-चार दिन सिनेमा देखते ही वरुण का भांजा झूठ बोलना छोड़ देगा।

वरुण ने कहा—यह तुम क्या कह रहे हो भैया गणेश? इतने बड़े-बड़े उपायों से जो आदत नहीं छूटी, वह सिनेमा देखने से कैसे छूट जायगी?

गणेश ने कहा—मैं ठीक ही कहता हूँ। मंदाकिनी एवेन्यू में "सत्य की राह" नाम की जो फ़िल्म दिखाई जा रही है, उसकी 'ओपनिंग सेरिमनी' (उद्घाटन समारोह) स्वयं इन्द्रदेव ने की थी। शुक्राचार्य ने इस उत्सव में फ़िल्म की प्रशंसा करते हुए एक लंबा-चौड़ा भाषण किया था। उद्घाटन के अवसर पर देवदेव भगवान् शंकर प्रधान अतिथि के रूप में उपस्थित हुए थे। अभिनेता और अभिनेत्री थे गंधर्व, किन्नर और अप्सराएँ और किन्नरियाँ। उन सबका अभिनन्दन किया था लक्ष्मी और नारायण ने। आजतक किसी फ़िल्म के प्रदर्शन में इतने देवता नहीं एकत्र हुए थे। फ़िल्म देखने के लिए देवियों और देवताओं के झुंड के झुंड मनुष्यलोक गये थे। टिकट लेने के लिए उनकी मीलों लंबी कई कतारें बन गई थीं। टिकटघर के सामने देवताओं के सिर ही सिर दीख पड़ते थे।

वरुण ने कहा——तो क्या तुम्हें यह विश्वास है कि यह तमाशा देखकर मेरा भांजा एकदम सत्यभक्त बन जायगा ?

गणेश ने कहा——बेशक बेशक !

गणेशजी की सलाह मानकर वरुण के भांजे को यह फ़िल्म देखने के लिए भेजा गया। इस तमाशे में एक गाना है। उसी गाने ने उस लड़के की शिक्षा को पूर्ण, सर्वांग-सम्पन्न कर दिया। एक अनिन्द्य सुन्दरी अप्सरा पर्दे पर दिखाई दी। उसके मुख में एक दाग़ का दोष अवश्य था ; पर वह मेकअप की सफ़ेदी में छिप गया था, वैसे ही जैसे चन्द्रमा की किरणों में उसका कलंक छिप जाता है। उसकी पोशाक, पहनावा और साजसज्जा अपूर्व थी। अधिक वर्णन करने की ज़रूरत नहीं। पैरों में घुँघरू बँधे थे। वह अपूर्व हावभाव के साथ नाचती-नाचती गा रही थी——"तुम सत्य बोलो रे, तुम सत्य बोलो रे।"

यह नाच और गाना देखने-सुनने के बाद परम चरम मिथ्यावादी भी एकदम सत्यवादी हरिश्चन्द्र हो उठे ; जैसे पारस को छूकर लोहा सोना हो जाता है। वरुण देवता का भांजा भी सत्यभक्त होकर नित्य सिनेमा में "सत्य की राह" देखने जाने लगा। वरुण देवता को भांजे के सुधरने का विश्वास हो गया।

(६)

ज़रा रुककर यमराज फिर नचिकेता से कहने लगे——अब तो तुम अच्छी तरह समझ गये होगे कि आजकल शिक्षा का माध्यम क्या है ? साहित्य, विज्ञान, इतिहास, धर्म, नीति, जो कुछ भी सीखना चाहो, सब इसी सिनेमा में तुमको मिलेगा। सूखी नीरस साधना, लगन और परिश्रम की कोई ज़रूरत नहीं। शास्त्र आदि का पढ़ना बिलकुल व्यर्थ है।

नचिकेता ने कहा——लेकिन ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के लिए तो शास्त्र का ज्ञान होना चाहिए। शास्त्र का ज्ञान शास्त्र को पढ़े बिना नहीं हो सकता। शास्त्र को कोई बिना लगन के और व्याकरण आदि पढ़े बिना पढ़ नहीं सकता। इसके बिना ब्रह्मज्ञान कैसे होगा ?

यमराज ने कहा——व्याकरण ! तुम्हारे भोलेपन पर मुझे हँसी आती है मिस्टर नचिकेता ! तुम्हारी बुद्धि पर तरस भी आता है। आज के युग में व्याकरण में सिर खपाना पागलपन के सिवा और कुछ नहीं समझा जाता। आजकल लोगों को इतनी फ़ुरसत कहाँ है कि वे व्याकरण पढ़ें ? तभी तो लोग नाटक न देखकर सिनेमा देखते हैं, उपन्यास न पढ़कर छोटी कहानियाँ पढ़ते हैं ! आजकल तो हर काम चटपट होता है। लोग चाय की चुस्कियाँ लगाते-लगाते अख़बार चाट जाते हैं। बड़ी-बड़ी पुस्तकों की समालोचना केवल टाइटिल पेज पढ़कर कर दी जाती है। सम्पादक लोग हेडिंग और लेखक का नाम देखकर रचना स्वीकृत या अस्वीकृत कर देते हैं। एक आध कविता पढ़कर लोग कविता करने लगते हैं। इसीलिए व्याकरण आदि का झंझट नहीं रह गया। चटपट ज्ञान प्राप्त कर लेना ही आजकल की परिपाटी है। मेरी सलाह है कि अगर तुम चटपट ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना चाहते हो तो किसी सिनेमाघर में जाकर साधना करो। वहाँ ज्ञानलाभ के लिए व्याकरण, शास्त्र के अध्ययन, साधना आदि किसी दक़ियानूसी उपाय की ज़रूरत नहीं होती।

नचिकेता ने कहा——मैंने इस बारे में कभी इस दृष्टि से विचार ही नहीं किया था। अगर यह मालूम होता तो इतना कष्ट उठाकर इतनी दूर क्यों आता और आपको क्यों कष्ट देता ?

यमराज ने कहा——सवेरे का भूला शाम को घर आ जाय तो वह भूला नहीं कहलाता। यहाँ आने से तुम्हें कुछ अनुभव ही प्राप्त हुआ। तुम्हारे इस आग्रह, साहस और शुभ संकल्प को देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं आशीर्वाद करता हूँ, तुम्हारी मनोकामना पूरी हो।

नचिकेता——अच्छा, तो फिर मुझे आज्ञा दीजिये।

यमराज——लेकिन लौटोगे किस तरह ? पैदल जाने में तो तुम्हें बड़ा कष्ट होगा। फिर वही जंगलों की ख़ाक छाननी पड़ेगी। नहीं, इसकी ज़रूरत नहीं। मैं तुम्हारे जल्दी घर पहुँचने की व्यवस्था किये देता हूँ।

यमराज नें उठकर इन्द्र को टेलीफ़ोन किया—देखिए, मनुष्यलोक से एक जीनियस लड़का आया है। उसका सब हाल मिलने पर फिर तुमसे कहूँगा। अब वह मनुष्यलोक को लौटना चाहता है। अपना विमान ज़रा पाँच मिनट के लिए भेज दो। उसे कलकत्ते पहुँचा दे।

इसी बीच में यमराज की धर्मपत्नी फिर हाल में लौट आईं। उन्होंने सब हाल सुनकर, नचिकेता की ठोढ़ी छूकर दुलार के साथ कहा——पगले, जा, घर में रहकर ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा कर।

इन्द्र का विमान आकर यमराज के घर के सामने

के आँगन में उतरा। विमान की घरघराहट सुनकर नचिकेता उठा। यमराज और उनकी पत्नी को प्रणाम करके विमान पर बैठ गया। विमान जब उड़ने को हुआ, तब यमराज ने नचिकेता से कहा—याद रक्खो नचिकेता—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन;
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः तस्यैव आत्मा वृणुते तनुं स्वाम्।

मतलब यह कि आत्मज्ञान न प्रवचन से मिलता है, न मेधा (बुद्धि) से, न बहुत उपदेश सुनने से। जिस पर परमात्मा की कृपा होती है, उसीकी आत्मा को अपने रूप का ज्ञान होता है।

(७)

नचिकेता घर लौट आया। मा-बाप को बड़ी खुशी हुई। लड़का यमराज के घर से लौट आया था, जहाँ से कोई नहीं लौटता! नचिकेता नित्य सिनेमा देखने लगा। कभी किसी पत्र का सम्पादक, सहकारी या संवाददाता बनकर मुफ्ती पास ले आता था, और कभी माँ के छिपाकर रखे हुए पैसे चुराकर या माँगकर उनसे टिकट ख़रीद लेता था। जिन चित्रों में लौकिक मत से रमणीय, और शास्त्र के मत से वर्जनीय, दृश्य अधिक दिखाये जाते थे, उन्हींको वह बार बार और अधिक देखता था; क्योंकि वे उसके वैराग्यलाभ और ब्रह्मज्ञान-प्राप्ति के सहायक थे। नचिकेता की देखादेखी महल्ले के और लड़के भी सिनेमा-भक्त बन गये। नचिकेता की बाल्यसखी वासन्ती ने, जिसके कहने से वह यमराज के घर गया था, ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के लिए उत्सुक होकर, पढ़ना-लिखना और घर के काम करना छोड़कर सिनेमा देखने लगी। सिनेमा-भवन में नित्य दोनों की भेंट होती थी।

कुछ दिनों में ही दोनों को पूर्ण ब्रह्मज्ञान हो गया। दोनों ने संसार से विरक्त होकर अपना घर छोड़ दिया। सुनने में आया है, अब नचिकेता और वासंती दोनों फ़िल्म-स्टार बनकर लाखों नर-नारियों को ब्रह्मज्ञान का उपदेश देते हुए अपने जीवन को सफल बना रहे हैं।*

पुरस्कार

(श्रीमती सरोजिनी नायडू के एक अंग्रजी गीत का भावानुवाद)

अनु० वीर 'विजेता'

दे देना खेतों औ' बन को
मधु ऋतु का वरदान,
बाज और सारस को उनके
पंखों का अभिमान।
चीते को देना छवि उसकी,
पंडुक को वह रंग सुघर।
मुझको मेरे ईश! मिले
अनुरागजनित आनन्द प्रवर॥

अवगाहक के कर में देना
रत्नाकर का रत्न,
स्वप्न देखने वाले के
उर को यौवन का स्वप्न।
दुलहे की आँखों को देना
परिणीता का रूप सुघर।
मुझको मेरे ईश! मिले
सच्चाई का आनन्द प्रवर॥

पूजक को, सिद्धों को उनकी
धार्मिकता का 'नन्द
नृपों, सैनिकों को कर्मों का
देना सुयश अमन्द।
विजित व्यक्ति को शान्ति दान,
देना यौवन में आशा भर।
मुझको मेरे ईश! मिले
गीतों का ही आनन्द अमर!

*श्रीयुत 'भास्कर' की 'शिक्षा का माध्यम' कहानी का स्वतन्त्र हिंदी रूप।

(स्वर्गीय पाण्डेय जी ने १९४९ या १९५० में यह अनुवाद किया था और इसकी पांडुलिपि एक परिचित सज्जन के यहाँ भूल गये थे। वे इसे किसी पत्रिका में प्रकाशनार्थ भेजना चाहते थे। उन सज्जन ने गत मास हमें यह पांडुलिपि सरस्वती में प्रकाशित करने के लिए दी। पाण्डेय जी का सरस्वती से इतना घनिष्ठ संबंध था हम उसे प्रसन्नतापूर्वक प्रकाशित कर रहे हैं। सम्पादक, सरस्वती)

एक पौराणिक कहानी

देवता, मनुष्य और राक्षस

श्री श्रीनाथ सिंह

आदि काल में देवता, मनुष्य और राक्षस अलग-अलग रहते थे; परन्तु सृष्टिकर्ता, ब्रह्मा के मुख से निकले उपदेश के एक अक्षर का तीनों ने तीन अर्थ लगाया और उसपर आचरण आरम्भ किया तब तीनों की एक विशाल मानव जाति बन गयी। कदाचित् सृष्टिकर्ता की यही इच्छा थी।

इसकी कथा बृहदारण्यक में इस प्रकार है:—

जब ब्रह्मा ने देवताओं, मनुष्यों और राक्षसों में अति संघर्ष देखा तब यह सोचकर कि कहीं सृष्टि का विनाश न हो जाय, उन्होंने तीनों के प्रतिनिधियों को उपदेश के लिये बुलाया। देवता, मनुष्य और राक्षस तीनों ब्रह्मलोक में गये। तीनों बराबरी के दर्जे पर, एक आसन पर, बैठे।

ब्रह्मा ने उपदेश प्रारम्भ किया—द-द द। ऐसा शब्द हुआ कि जान पड़ा जैसे शत शत मेघ एक साथ गरज रहे हों। तीनों ने अपने-अपने कानों में उँगली डाल ली। इतने पर भी ब्रह्मा का उपदेश उनके कानों का पर्दा तोड़ कर उनके अन्तर में गूँज उठा।

देवताओं ने सर्वप्रथम हाथ जोड़कर कहा—"प्रजापते! हम समझ गये।"

"क्या समझे?" ब्रह्मा ने उनकी ओर देखते हुए संकेत द्वारा पूछा।

देवताओं ने उत्तर दिया—"हम देवतागण स्वर्ग में निवास कर रहे हैं। हमारा स्वर्ग समस्त सुखों, समस्त आनन्दों, समस्त भोगों की भूमि है। हमारा सम्पूर्ण समय इन्द्रिय-सुख भोग में व्यतीत हो रहा है। आप 'द' अर्थात् दमन अर्थात् इन्द्रिय-दमन का उपदेश कर रहे हैं।"

प्रजापति मुस्कराये; जिसका तात्पर्य था, ठीक समझा है तुमने।

तभी मनुष्य चिल्ला पड़े—"प्रजापते, हम भी समझ गये।"

"क्या समझे?"

"हम मानव कौड़ी-कौड़ी माया जोड़ने में लगे हैं। धन संचय ही हमारे जीवन का चरम लक्ष्य बन गया है। आप 'द' अर्थात् दान अर्थात् धन-दान का उपदेश कर रहे हैं।"

प्रजापति पुनः मुस्कराये। इस बार भी उनका तात्पर्य यही था कि ठीक समझा है तुमने।

तभी राक्षस उठकर खड़े हो गये—"प्रजापते! हम भी आपका आशय समझ गये।"

"क्या समझे?"

"हम राक्षसगण स्वभाव से ही क्रोधी और हिंसक हैं। सदैव क्रोध की मुद्रा में रहना और समस्त जीवों का वध करना हमारा धर्म बन गया है। आप कह रहे हैं—द अर्थात् दया अर्थात् जीवों पर दया करो।"

इस बार तो ब्रह्मा की मुस्कराहट अट्टहास में बदल गयी जिसका तात्पर्य था, "ठीक समझा है तुमने भी।"

तीनों ब्रह्मलोक से चले आये। ब्रह्मा के बताये उपदेश पर चलने लगे। परन्तु वे पूर्णतया सफल न हुए क्योंकि ब्रह्मोपदेश के घन गर्जन के समय तीनों ने कानों में उँगली डाल ली थी। फिर भी इसका एक परिणाम तो हुआ ही। तीनों की एक जाति बन गयी जो आज विशाल मानव जाति है और आज यह पता लगाना कठिन है कि वर्तमान मानवों में कौन देवता है, कौन मनुष्य और कौन राक्षस।

इसलिए उचित यही है कि आज के मानव प्रजापति के इन तीनों उपदेशों अर्थात् इन्द्रिय-दमन, दान और दया को अपनावें।



नवीन प्रकाशन

साहित्यिक निबन्ध—लेखक म० म० पण्डित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, सम्पादक—शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी, एम० ए० साहित्य व्याकरणाचार्य, प्राध्यापक संस्कृत महा विद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, प्रकाशक—मोतीलाल बनारसी दास पो० बा० ७५ नेपाली खपरा वाराणसी, मूल्य—३ रु० ५० नये पैसे ; पृष्ठ संख्या—१८५।

यह म० म० पण्डित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी के समय-समय पर लिखे लेख हैं जिनको कि उनके पुत्र ने संग्रह करके पुस्तकाकार छपा दिया है। शर्माजी जैसे संस्कृत के विद्वान् हैं, वैसे ही हिन्दी के भी, और उनके लेख उनकी सूझ-बूझ के द्योतक हैं तथा ज्ञान वृद्धि के दृष्टि से अमूल्य हैं। उनके कुछ लेख सामान्य पाठकों के हेतु लिखे गये हैं, कुछ अन्य साहित्य तथा भाषा के जिज्ञासुओं के लिए। कुछ निबन्ध शोध सम्बन्धी हैं। तात्पर्य यह कि इस पुस्तक से कई श्रेणी के लोग लाभ उठा सकते हैं।

शर्माजी के लेखों में रूढ़िवादिता एवं स्वतन्त्र विचारों का अनोखा सम्मिश्रण है। इससे इनके लेखों में नवीनता एवं ताजगी आ गयी है। इससे मालूम पड़ता है कि विचार उनके अपने हैं और उनको लिखने के पूर्व पूर्णता से उनपर मनन किया गया है। वरन् उनमें नये एवं पुराने के बीच की धारा इतनी स्थिर न रहती।

शर्माजी की समस्त स्थापनाएँ तर्कों एवं प्रमाणों पर आधारित हैं। आधुनिक युग में समस्याओं के समाधान की दृष्टि से इन निबन्धों की उपयोगिता बहुत अधिक है। यह आश्चर्य की बात है कि जीवन भर संस्कृत भाषा के क्षेत्र में कार्य करते रहने पर भी शर्माजी के हिन्दी के लेख संस्कृत के प्रभाव से विरक्त होते हैं। उनकी भाषा सरल एवं सुबोध है। इसी कारण अपने एक निबन्ध 'रूप' में वे उन सभी दोषों को बड़ी पैनी दृष्टि से देख सके हैं जो संस्कृत से हिन्दी के प्रयोग में आ गये हैं। हिन्दी में संस्कृत शब्दों के प्रयोग पर तो बहुत लोगों ने लिखा है, परन्तु संस्कृत के शब्द किस त्रुटि के साथ हिंदी में प्रयुक्त होते हैं, इसपर विरला ही कोई प्रकाश डालता है। ऐसे लेखों के पढ़ने के बाद यदि हिंदी में संस्कृत शब्दों का प्रयोग किया जायगा तो वह कम से कम दोषयुक्त तो न होगा। वे हिन्दी का अस्तित्व अलग समझते हैं और संस्कृत का अलग, और चाहते हैं कि दोनों ही अपना अस्तित्व अलग-अलग बनाए रखें।

दूसरा लेख जो उल्लेखनीय है वह है 'ऋतुओं के नाम'। इसमें उन्होंने वैदिक भाषा में वर्णित मासों के नाम पर जो प्रकाश डाला है वह पूर्णतया वैज्ञानिक है। वैसे तो सम्पूर्ण लेख ही विज्ञान की दृष्टि से बड़ा उपयोगी है। अमावस्या का अर्थ है साथ-साथ निवास। सूर्य और चन्द्रमा का एक भाग में साथ-साथ निवास होने के कारण ही उस तिथि का नाम अमावस्या पड़ा है। इसी प्रकार सोमवार, मंगलवार, रविवार आदि के दिन किसी और 'वार' के नहीं हो सकते हैं, और मंगलवार के दिन मंगलवार ही हो सकता है और रविवार के दिन रविवार ही। क्योंकि उस दिन सूर्य की ही होरा पड़ेगी। इसलिए वह रविवार ही होगा, तथा फिर सोम की ही होरा पड़ेगी, अतः वह सोमवार होगा। यह सब इतने वैज्ञानिक एवं सरल रीति से लिखा गया है कि हमें इसपर आश्चर्य होता है कि हम सब अपने दिन के नामों के कारण जानने में कितने अनभिज्ञ हैं, और हमारी शिक्षा कितनी त्रुटिपूर्ण है कि हम पढ़-लिखकर भी दिवस, मास ऋतु से संबंधित सामान्य बातों को भी नहीं जानते।

'तुलसी का पौधा' नामक लेख में तुलसी की उत्पत्ति का अर्थ बहुत ही वैज्ञानिक ढंग से किया गया है। बारह आदित्यों में एक आदित्य का नाम विष्णु है। जलंधर—यह नाम बादल का है। घटा में चमकनेवाली बिजली वृन्दा है। विष्णु नाम का आदित्य ग्रह प्रवेश करता है। उसी घटा के जल से आज भी यह बात प्रसिद्ध है कि जब मेघ पूर्ण रूप से छाया हुआ हो, सूर्य का प्रकाश मेघ की घटा से जब बहुत अंशों में छिपा हो तभी तुलसी का नया पौधा लगाते हैं। सूर्य की उपस्थिति में वह जमता नहीं, मुरझा जाता है।

निबन्धों की शैली प्रवाह युक्त और मनोरंजक है। स्थान-स्थान पर हास्य का पुट है जिसके कारण निबन्धों में रोचकता आ जाती है। इससे शोध सम्बन्धी लेख भी सरल और मनोरंजक हो जाते हैं।

मन के चमत्कार—लेखक, श्री जयवंत राम, प्रकाशक, आत्माराम एण्ड सन्स कश्मीरी गेट, नई दिल्ली—६, मूल्य, दो रुपया, पृष्ठ संख्या—१००।

पुस्तक लिखने का उद्देश्य है कि आधुनिक मनोविज्ञान तथा प्राचीन भारतीय मनोविज्ञान में सामंजस्य स्थापित किया जाय। इसी आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए यह पुस्तक प्रकाशित की गयी है। विभिन्न दृष्टि से विषय को बारह प्रकरणों में विभाजित किया गया है। जैसे-मन और धन, मनके छोटे-छोटे रोग और उनको दूर करने का उपाय, समय का बटवारा, ज्योतिर्मय जीवन, उन्नति की गति और अवरोध, क्या आपने भरसक प्रयत्न किया है, महात्वाकांक्षा, आदि। मन और धर्म में लेखक ने

लिखा है कि "दरिद्रता के छः कारण हैं—निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य, दीर्घ सूत्रता।"

प्रोफेसर जेम्स तथा अन्य पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों की रचनाओं से महत्वपूर्ण बातें खोजकर पुस्तक में लिखी गयी हैं, और नवीन और प्राचीन दोनों ही दृष्टिकोणों में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

सामान्य पाठकों के लिए पुस्तक उपयोगी है। भाषा सरल एवं सुबोध है। अति शीघ्र निराश हो जानेवाले पाठकों के लिए पुस्तक में अच्छे सुझाव हैं। तरुण वर्ग के लिए पुस्तक विशेष उपयोगी है।

बाल्टिक से अटलांटिक तक—लेखिका श्रीमती अन्नपूर्णा खन्ना, सम्पादक—डा० नारायण दास, अमर प्रकाशन ७२, महाजनी टोला, इलाहाबाद, मूल्य—ढाई रुपया, पृष्ठ संख्या १०५।

यह श्रीमती अन्नपूर्णा खन्ना की विदेश यात्रा माला की दूसरी पुस्तक है। इसमें इन्होंने फिनलैण्ड, स्वीडन, डेनमार्क, बेलजियम तथा हालैण्ड की चर्चा की है। वे स्वयं ही लिखती हैं कि, "मैंने इन देशों की शिक्षा, संस्कृति, अर्थव्यवस्था, राजनैतिक विचारधारा, रहन-सहन, आदि के वही विवरण पाठकों के समक्ष रखे हैं जो सम्बद्ध देशों के व्यक्तियों के साथ बातचीत के सिलसिले में मुझे ज्ञात हो सके थे। निःसन्देह इन विषयों का मैंने सिद्धान्तवादी तथा गम्भीर विवेचन नहीं किया है। परन्तु वह सारी जानकारी अवश्य दे दी है जिससे मेरे देश की ग्राम्य तथा नागरिक जनता साधारण रूप से लाभ उठा सकती है और उक्त विषयों के व्यावहारिक स्वरूप से परिचित हो सकती है।' यह आपने यथार्थ ही लिखा है। पुस्तक पाठकों को इन देशों की साधारण जानकारी करा देती है। किंतु कहीं भी उन देशों के गृहस्थों की समस्याएँ; स्त्रियों और बच्चों के जीवन की झाँकियाँ नहीं मिलतीं। पुस्तक में चित्र भी हैं। सरस और सुबोध शैली में लिखी गयी पुस्तक सामान्य पाठकों को विदेशों का हल्का-फुल्का ज्ञान करा देती है। यही इस पुस्तक की उपयोगिता है। स्थानों का जो परिचय दिया गया है वह सुंदर है।

गाय का आर्थिक मूल्यांकन—लेखक श्री परमेश्वरी प्रसाद गुप्त, प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, मूल्य ७५ नये पैसे, पृ० सं० ५६।

पुस्तक भारतीय अर्थ-व्यवस्था में गाय का आर्थिक मूल्यांकन लेकर लिखी गयी है। लेखक ने पुस्तक बापू को समर्पित की है और उसपर एक चित्र छपा है जिसमें वे बापू को लेकर अपने फार्म की जानकारी करा रहे हैं। इससे प्रतीत होता है कि लेखक ने कुर्सी-मेज पर बैठकर गायों का ज्ञान नहीं प्राप्त किया है वरन् उन्हें गायों के पालन पोषण का स्वयं अनुभव है और वे पुस्तक लिखने के अधिकारी हैं।

गोपालन से खेती के कार्य में कोई बाधा नहीं पड़ती। गोपालन तथा खेती साथ-साथ चलेंगी। आजकल जो फसलें बोई जाती हैं इनके बीच में हरे चारे की फसलें इस प्रकार उत्पन्न की जायँगी कि खेतों की उपज में कमी न हो। वरन् इससे धरती की उपजाऊ शक्ति बढ़ती जायगी ताकि चारे के अतिरिक्त अन्य फसलों का उत्पादन अधिक हो। ये सब बातें वैज्ञानिक ढंग से आँकड़ों द्वारा स्पष्ट की गयी हैं। पुस्तक में चित्र तथा आँकड़े देकर लेखक ने अपने दृष्टिकोण का समर्थन किया है।

यह भी बताया गया है कि किस प्रकार पशुओं को हरा चारा खिलाकर पशुपालन के व्यय में बचत की जा सकती है। पशुओं को खिलाने के लिए चारा बोने के अतिरिक्त भूमि कहाँसे आये, इन कठिनाइयों को दूर करने के सुझाव दिये गये हैं। 'भूमि खेती की उत्पत्ति' तथा 'गाय और मनुष्य का अटूट सम्बन्ध' इनके समुचित संतुलन पर ही राष्ट्र का निर्माण निर्भर है, इसको लेकर लेखक ने बहुत उपयोगी सुझाव दिए हैं। पुस्तक उपयोगी है।

विश्व पथिक—रवीन्द्र नाथ—लेखक—श्री विश्व[illegible] भट्टाचार्य

प्रकाशक—ब्रह्मवीर गुप्त, नैट्रो पालीटियन बुक कम्पनी, दिल्ली—१ मूल्य—४ रुपये पृष्ठ संख्या—१[illegible]

इस पुस्तक की भूमिका राष्ट्रपति श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन् द्वारा लिखी गयी है। पुस्तक में १३ अध्याय हैं। वे रवीन्द्र बाबू के विभिन्न दृष्टिकोण लेकर लिखे गये हैं। अध्यायों का क्रम इस प्रकार रखा गया है कि पुस्तक समाप्त होने तक वह रवीन्द्र बाबू के संबंध में अच्छा खासा ज्ञान करा देती है। उसकी भाषा सरल, रोचक एवं सुबोध है। यह ध्यान रखते हुए कि इसका लेखक बंगाल देश का वासी है, वह इस हिंदी पुस्तक की भाषा के प्रवाह एवं रोचकता के लिए बधाई का पात्र है। पुस्तक में रवीन्द्र बाबू की कई कविताओं का सुन्दर अनुवाद भी है।

कविता की प्रेरणा जहाँ-जहाँ उन्हें अपने व्यक्तिगत जीवन से मिली उसका भी पुस्तक में इतना एक रस होकर संकेत आता है कि उनके व्यक्तिगत जीवन और साहित्यिक प्रतिभा, दोनों ही का ज्ञान पाठक को एक साथ हो जाता है।

उनकी बहुमुखी प्रतिभा के अनेक पहलुओं पर [illegible] प्रकाश डाला गया है। रवीन्द्र बाबू के मानवता प्रेम, सौं[illegible] बोध, सत्यान्वेषण के बारे में स्वतन्त्र अध्यायों में विचार प्रस्तुत किए गए हैं। संगीत के क्षेत्र में उन्होंने जिस [illegible] परम्परा—'रवीन्द्र-संगीत'—को जन्म दिया था, उस पर भी एक स्वतन्त्र अध्याय में प्रकाश डाला गया है। [illegible] लोग 'रवीन्द्र-संगीत' पर शोध कार्य कर रहे हैं [illegible] नाम भी पुस्तक में उल्लिखित हैं।

पुस्तक की सबसे बड़ी सफलता इसमें है कि वह पाठकों को रवीन्द्र बाबू के विषय में अच्छा ज्ञान करा देती है और उनकी विशेषताओं को सरल रीति से प्रस्तुत करती है।

ब्रज-माधुरी

...ता-रस—

जीवनदायक कोऊ नहीं,
इमि आपही खोजि कें देखौ दिसा दस।
बासुकी वास पताल में है,
सुधा धाम शशांक कौ चाटि गये सस।
सागर-मंथन तें निकस्यौ,
बच्यौ बूँद ना, पी गये देव अमी अस।
है, तो यही कविता रस है,
नहीं और कहाँ बसुधा पै सुधा रस?

——सनेही

...व—

...ाप कें पंथ अकेलौ चलै ना,
अकेलो न शत्रु सभा महँ जावै।
दुर्जन सों न अकेलौ मिलै,
तरुणी सौं अकेलौ न बातन लागै।
भोजन-स्वाद अकेलौ करै न——
अकेलौ धँसै सुनहे गृह-बागे।
सोवत हैं बहु लोग जहाँ तहाँ
आप अकेलौ अगार न जागै॥

...र—

बैर-प्रीति करिबे में मन में न संका,
न राजा-राव देखि कबौं छाती धक धक री।
आपने बचन के निबाहिबे की चाह जिन्हे
एक से दिखाँय तिन्हे बाघ और बकरी।
'ठाकुर' कहत हैं बिचारी है बिचार करि,
यही मरदानगी की रीति एक अकरी।
गही तौन गही, और छाँड़ी तौन छाँड़ि दई,
करी तौन करी, और ना करी सो ना करी।

सम्वाद——

"हैं री मेरे लाल?" "कहौ ऐसी निधि पायी कहाँ?"
"हैं री खगबाहन?" "न मैंने सखि! पाले हैं।"
"हैं री गिरिधारी?" "ह्वैहैं रामदल माँझ कोऊ,"
"हैं री घनस्याम?" "सखी! सीत के कसाले हैं।"
"हैं री कृष्ण चन्द्र?" "बौरी! चन्द्र कहूँ कृष्ण होत?"
तब झखि राधे कह्यौ——"मोरपच्छवाले हैं?"
भीतर दुराय सखी स्याम, पट खोलि, बोली——
"मोरे कहाँ आये जो तिहारे पच्छवाले हैं!"

सुजान——

लै मन फेरिबो सीखे नहीं,
बलि नेह-निबाह कियौ नहिं आवत।
हेरि कें फेरि मुखै 'हरिचंद जू'
देखन हूँ कौं हमें तरसावत।
प्रीति पपीहन कों घन साँवरे,
पानिप रूप कबौं न पियावत।
जानों न नेक बिथा पर की,
बलिहारी! तऊ हौ सुजान कहावत!

एक अतिशयोक्ति——

एक हुती षीन (छीन), पर एते पर एतौ मान!
भई अति दूबरी बिरह ज्वाल जरती।
पास धरौ चंदन, सुबास ही तें बाढ्यौ बोझ,
अंग लाग्यौ होतो तौ उसाँसौ ना निसरती।
कंचन की रेख रही आभा अभिषेक, सो तौ
देखत बनत नहिं कहत बनै रती।
ल्यावती गुबिन्द अरविन्द की कली में राखि
जो पै मकरन्द में न बूड़िबे कों डरती!

शेख——

मनोरंजक संस्मरण

मीठा-नमकीन

पं० गयाप्रसाद शुक्लजी सनेही का शिष्य-परिवार बहुत बड़ा है। उसमें सभी वर्गों के लोग हैं। यदि उनमें धनी, रईस और शिक्षित व्यक्ति हैं तो सामान्य स्थिति के काव्य रसिक भी हैं। अपने शिष्यों में सनेहीजी 'गुरू' के नाम से विख्यात हैं, और शिष्य भी उनका अपने परिवार के बड़े-बूढ़ों की तरह आदर करते हैं। यद्यपि सनेहीजी यात्रा करने से बचते हैं, तथापि जब कभी किसी शिष्य के विशेष आग्रह करने पर उन्हें बारातों में भी जाना पड़ता है। यदि सनेहीजी मौज में रहे तो वहाँ कभी-कभी काव्यमय आशीर्वाद भी दे देते हैं, नहीं तो भंग छानकर बारात का आनन्द लेकर लौट आते हैं। एक बार उनका एक शिष्य अपने लड़के की बारात में उन्हें बहुत आग्रह करके ले गया। वधू के पिता का नाम मिट्ठनलाल था और उनका मिठाई का व्यवसाय चलता था। बारात की बड़ी खातिर हुई और सनेहीजी भी आवभगत से बहुत प्रसन्न रहे। किंतु उन्हें कविता की मौज नहीं आयी और उन्होंने कोई काव्यात्मक आशीर्वाद नहीं दिया। विदा के समय वधू पक्ष के लोग विदाई देने को आये, उनमें वधू के पिता (लाला मिट्ठनलाल) भी थे। जब उन्होंने सनेहीजी के पास आकर उन्हें प्रणाम किया तब सनेहीजी एकाएक मौज में आ गये और मिट्ठनलालजी की प्रशंसा में बोल उठे—

संबंधी सुंदर मिले, खुशदिल और हसीन भी
लाला मिट्ठन लाल हैं मीठे भी, नमकीन भी!

(उनकी दूकान पर मिठाई और नमकीन दोनों ही मिलती थीं)।

द्विवेदी का कटाक्ष

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी आलोचक थे। दूसरों द्वारा की गयी अपनी आलोचना में यदि उन्हें तनिक भी संदेह हो जाता कि उनके स्वाभिमान पर चोट की गयी है तो वे क्षमा नहीं करते थे। एक बार एक हिंदी मासिक पत्र में किसी ने उन्हें "एंग्लो वर्नाक्यूलर पंडित" लिख दिया था। उन्होंने इसे अपना अपमान समझा, और इतने अप्रसन्न हुए कि कानपुर के प्रसिद्ध वकील राय देवीप्रसादजी पूर्ण से उन्होंने उस पत्र के सम्पादक, उस लेख के लेखक तथा प्रकाशक को मानहानि का कानूनी नोटिस दिलवा दिया। जब तक इन तीनों ने लिखित क्षमा प्रार्थना ही न कर ली, प्रत्युत उनसे अपने पत्र में भी आचार्य की शान में इन 'अपमानसूचक' शब्दों का उपयोग करने के लिए खेद प्रकट नहीं करवा लिया तब तक वे शान्त नहीं हुए। सामान्य पत्र-व्यवहार में भी यदि उनकी कोई आलोचना करता तो वे कटाक्षपूर्ण उत्तर देने में नहीं चूकते थे। एक बार श्री शिवचरणदास नामक एक सज्जन ने इनके किसी लेख या टिप्पणी को पढ़कर इन्हें एक पत्र में लिखा कि (उस लेख में) जो कुछ छपा है उससे यह स्पष्ट होता है कि अब भी भारतवासियों के हृदय में दासता की भावना गहरी पैठी हुई है। द्विवेदीजी कब माननेवाले थे कि मुझमें दासता की भावना है? वे तो 'सेवावृत्ति की विगर्हणा' लिख चुके थे और अच्छी खासी सरकारी नौकरी को लात मार चुके थे। उन्होंने आक्रामक ढंग से उन्हें लिखा कि—'खेद तो इस बात का है कि जिस दास्य से आपको इतनी घृणा है, वह उसी के लिए आपके नाम में (शिवचरणदास में) प्रयुक्त हुआ है।"

इंगलैंड के देहात में महाराजा बनारस का कुवाँ

श्री काशी प्रसाद जायसवाल

आक्सफर्ड से २० मील पर स्टोकरो नाम का एक गाँव है। वहाँ पर ग्राम्यजीवन का सुख अनुभव करने के लिए मेरे एक मित्र (मि० शाकिरअली, सेक्रेटरी, लंदन ... सोसायटी) कुछ दिनों के लिए आ रहे थे। एक ... जुलाई में, जो प्रातःकाल भ्रमण से मैं लौटा तो ... कमरे में इन्हें बैठे पाया। मैं नहर पर से जंगली गुलाब का एक फूल लाया था। उसे उन्हें देकर मैंने कहा, ... शाकिर, आक्सफर्ड में जंगली गुलाब* होता है। ... पर उन्होंने हँस कर कहा कि जहाँ मैं रहता हूँ, वहाँ तुम्हारे जंगली गुलाब के जंगल लगे हुए हैं। वहाँ का ... मनोहर वर्णन करके उन्होंने मुझे वहाँ जाने के लिए ... किया। मैंने कहा कि किसी दिन दोपहर को ... और शाम को लौट आऊँगा। अस्तु।

२६ जुलाई को १ बजे रेल के स्टेशन पर पहुँचा। ... से गोरिंग नाम की जगह आध घंटे का रास्ता है। ... शिलिंग में आने-जाने का टिकट मिला। गोरिंग से स्टोकरो ६ मील पैदल जाना पड़ता है। कोई सवारी ... मिलती।

लंदन से ५ मील बाहर हर तरफ देहात है। खेतों ... नहीं बोया जाता, घोड़ों के लिए घास उगाई जाती ... बारहों महीने खेत हरे रहते हैं। कोई सप्ताह ऐसा ... जाता कि ३, ४ दिन पानी न बरसे। कड़ी धूप, गर्मियों ... कभी-कभी होती है। नहीं तो हमेशा थोड़ी-बहुत ... रहा करती है। आजकल, जुलाई में, बादल ... न रहे तो धूप से चीजें तप जाती हैं। एक दिन ... थी। खिड़की से मेज पर जो धूप आती थी ... दावात की स्याही बिलकुल सूख गई और किताबों ... जिल्दें ऐंठ गईं। पानी बरसने से यह मतलब नहीं ... यहाँ की सी वर्षा होती है। यहाँ वर्षा होती है ... छतरी की जरूरत नहीं पड़ती। झींसी पड़ती है। ... ओवरकोट पहन लिया जाता है, उससे पानी से पूरी रक्षा ... जाती है। ओवरकोट से बरसाती का मतलब नहीं। गोरिंग से स्टोकरो जाते समय खूब धूप थी। खेतों ... जंगली लाल पोस्त फूले हुए थे। सड़क के किनारे छोटे-छोटे जंगली फूल खिल रहे थे जिन्हें कहीं-कहीं लड़कियाँ ... रही थीं। सड़क पर पथिक नहीं थे। चलने के श्रम ... पसीना निकल रहा था। रास्ता निश्चय करने के लिए ... (घास की खेती करनेवालों के खलियान) वालों से जाकर पूछना पड़ता था। ३ मील चलने पर दोनों तरफ सनोबर के ऊँचे-ऊँचे सीधे वृक्षों के जंगल बड़े ही सुहावने मिले। रास्ते में एक बुड्ढा आदमी अपनी देहाती गाड़ी लिए मिला। उसने गाड़ी रोककर कहा कि आप सवार होकर मेरे साथ एक मील तक चल सकते हैं। मैंने उसका यह सत्कार स्वीकार किया। बुड्ढा पूरा देहाती था। कहने लगा, वह जो मकान देख पड़ता है वहीं मैं पैदा हुआ था। और वह जो टीला देख पड़ता है उसकी एक झोंपड़ी में मैं १९ बरस तक था। अब यहाँ से मील भर पर जो मकान है उसमें २० बरस से हूँ। उसकी अँगरेजी बोलने के साथ ही समझ में नहीं आ जाती थी। उसने उँगली उठाकर बताया कि बगल के जंगल में चिड़ियाँ पली हुई हैं। उनके बच्चे दो महीने में तैयार हो जायँगे, तब लोग शिकार खेलने आवेंगे। अस्तु। इसी तरह की बातें वह करता रहा। उतरते समय मैंने उसे आधे शिलिंग का एक रजत-खंड भेंट किया।

पौने दो घंटे में वेस्ट मैनेस्टर नामक स्थान पर, जहाँ मेरे मित्र थे, पहुँचा। यह मकान पहले रीड नामक प्रसिद्ध उपन्यासकार का था। इसी में रह कर वह उपन्यास लिखता था। इसके चारों ओर कोई दूसरी इमारत नहीं; जंगल और खेत हैं। यहाँ पहुँचने पर मैंने देखा कि मेरे मित्र नहीं हैं। पास के किसी गाँव में किसी के यहाँ गये हैं।

मकान का मालिक अपना बाग और घास-प्रसवा भूमि दिखाने लगा। घास का भाव शशकों का बाहुल्य, अपने घोड़ों की उम्र, ७ बरस के कुत्तों की प्रशंसा, आदि से उसने मेरा मनोरंजन किया। इतने में रूँध में कुत्ते ने एक खरगोश जा पकड़ा। आप दौड़े और देखते-देखते कान पकड़ कर मुर्दा शशक को लिए प्रसन्नवदन लौट आये। कहने लगे, कुत्ता खूब समझदार नहीं; खरगोश छोटा है; व्यर्थ मारा। बड़े प्रेम से आपने पूछा कि रात को खाइए तो इसी "रैबिट" को पकवावें। मैंने कहा, बहुत बहुत धन्यवाद, माफ कीजिए। मैं रात को कुछ न खाऊँगा। दूध अगर मिलेगा तो पी लूँगा।

गाँव था; घर का मालिक ग्रामीण था; पर घर में घड़ी और पिआनो का अभाव नहीं था। रात हो गई, मित्र महाशय नहीं लौटे। मुझे चुप चाप देख गृहपति ने कहा ताश खेलिए। मैंने कहा, खेद है मुझे ताश का कोई खेल नहीं आता। तब उसने अपनी दो बहनों को पियानो बजाने के लिए कहा। यदि नगर में किसी के यहाँ होता तो राजनैतिक बातों की कुछ न कुछ चर्चा जरूर छिड़ती, अमेरिका और जापान के बीच लड़ाई होने या न होने की संभावना पर राय देनी पड़ती, या इँगलैण्ड

---

* जंगली गुलाब का पेड़ साधारण गुलाब का सा होता ... फूल में पंखड़ियों की एक ही पाँत होती है और सुगंध ... भीनी भीनी रहती है।

के वैरी जर्मनी के बलविक्रम पर बहस होती। पर यहाँ घास की फसल और घोड़ों, कुत्तों की उम्र की प्रशंसा थी। रात के ११ बजे मेरे मित्र घर आये।

दूसरे दिन प्रातःकाल धारोष्ण दूध पीने को मिला। दूध यहाँ का पतला होता है, बालाई नहीं पड़ती। पर यह उष्ण दूध सुस्वादु था। मेरे भोजन का सवाल दरपेश हुआ। मेरे मित्र को मेरा तितम्मा मालूम था। क्योंकि इन्हीं ने पहले पहल लंदन में मेरे लिए सब प्रबन्ध किया था। गृहपति ने कहा कि बाग में जितने फल हैं सब मेरी नजर हैं। अस्तु मटर की फली, गूजबरी, रैस्पबरी, करंट, स्ट्राबरी आदि मैं घंटों खेत में खाता रहा। इसके बाद

महाराजा बनारस का कुवाँ

देखने रवाना हुए। इस गाँव में कोई कुवाँ पहले नहीं था। कुछ गड्ढे थे जिनके सड़े पानी पर गुजर होती थी। उपन्यासकार रीड का एक भाई कप्तान रीड ईस्ट इंडिया कम्पनी में नौकर था। उसने महाराजा ईश्वरी-प्रसाद नारायण सिंह से अपने गाँव में एक कुवाँ बनवा देने की प्रार्थना की। अतः १८६३ ईसवी में कुएँ का काम शुरू हुआ और १८६४ में पूरा हुआ। ६९६ पौंड १२ शिलिंग ३ पेंस इसके बनाने में खर्च पड़े। कोई साढ़े दस हजार रुपये हुए। कुएँ के सामने एक उद्यान है जो मछली* के आकार का है। बगल में एक बड़ा सा रमना है। यह सिर्फ गायों के चरने के लिए है। वह देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि अब तक इस रमने में गाय के सिवा कोई जीव नहीं जाने पाता, यहाँ तक कि मुझे भी भीतर नहीं जाने दिया। रक्षिका ने बड़े अदब से कहा कि महाराजा ने सिर्फ गायों के लिए इसे उत्सर्ग किया है। कुछ आमदनी के लिए इसमें १०१ चेरी के वृक्ष लगे हैं। इससे १२० रुपये सालाना आमदनी होती है। इसका नाम "ईश्वरी पार्क" है। इसमें दो गड्ढे महाराज के राजचिन्ह के आकार के हैं। जब कुवाँ न था, उन्हीं गड्ढों का पानी लोग पीते थे।

कुवाँ पक्का बँधा है। जगत के ऊपर एक हिन्दू ढाँचे की छतरी है। इस पर एक सुनहरी कलशी है। छतरी के छज्जे के ऊपर "महाराजा आव् बनारस" अंगरेजी लिखा हुआ है। छज्जे के नीचे, द्वार पर, ऊपर नीचे, म[illegible] राज का सुनहरा राजचिन्ह, दो मछलियाँ, अंकित [illegible] कुएँ के चारों ओर लोहे का जंगला है। अरहट यंत्र [illegible] एक डोल लटकता है, इसी यंत्र से पानी निकाला जाता है। ८ मिनट में एक डोल पानी ऊपर आता है। मैंने आ[illegible] माना चाहा, पर रक्षिका ने कहा आज इतवार है; [illegible] नहीं। अरहट के ऊपर एक हाथी की मूर्ति है। यहाँ [illegible] नोटिस लगा है, उसमें लिखा है कि पानी का कुछ [illegible] आपसे नहीं माँगा जाता। आपसे कूपसम्पर्क सिर्फ [illegible] माँगता है कि जाते वक्त कूप बंद करते जाइए [illegible] कोई गिर न पड़े। इसकी गहराई ३४६ फीट है।

कुवें से हट कर, आध मील पर गाँव वालों के [illegible] मकान हैं। उनका नाम, महाराज के आदर के लिए, [illegible] लोगों ने "ईश्वरी-टेरस" रख दिया है। कुवें के [illegible] गाँव के गिरजाघर वाले हैं। गिरजाघर में इस कूप [illegible] एक बेहूदा सा कल्पित इतिहास टँगा है। कुवें के [illegible] कूपरक्षक के लिए एक छोटा सा कुटीर है। इसमें दो [illegible] इस समय रहती हैं। कूपदर्शन के बाद हम लोग [illegible] शोभा देखने लगे। जंगली पुष्प और सनोवर के [illegible] हुए वृक्ष, जंगली मधुर फल, ऊँचे वृक्षों के वन, और [illegible] के बीच खलियान, बड़े मन लुभावने थे। एक [illegible] से आक्सफर्ड के समीपवर्त्ती गाँव देख पड़ते थे। [illegible] खलियान बहुत ही प्रियदर्शी, २०० फीट नीचे स्थली [illegible] था। खलि ान की छाजन फूँस या पत्थर के स्लेटों [illegible] होती है। पास ही घास का अटाल लगा होता है। [illegible] से चलने वाले गियर नामक यंत्र से घास की टाल [illegible] हैं। एक "रोलर" से घास काटते हैं, वह भी घोड़ों [illegible] से चलाया जाता है। खलियान में आदमी एक या [illegible] होते हैं। काम पड़ने पर दूसरे खलियान के लोग [illegible] करते हैं। घास की कटनी पर ये लोग बड़ा आ[illegible] मनाते हैं।

संध्या समय अपने मित्र के साथ टहलते हुए गाँ[illegible] स्टेशन पहुँचा और फिर रेल द्वारा आक्सफर्ड।

२—मछली, महाराज काशिराज का राजचिन्ह है।

प्रकाशक: बी० एन० माथुर, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक: पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

प्रकाशित हो गया

अदृश्य शत्रु

प्रकाशित हो गया

डा० नवलबिहारी मिश्र एम० बी० बी० एस०

यह एक अद्भुत वैज्ञानिक उपन्यास है। तेहरान विश्वविद्यालय से दो विचित्र आकार की बसों ने ५० लड़के-लड़कियों को एक दिन चुपके से भगा लिया। भारत में नन्दा देवी चोटी के नीचे हिममानव सरीखी एक लाश दिखाई पड़ी। लाश की पोशाक की जेब में सुहागा रक्खा मिला। भारत और चीन में लोहे के पुल और रेल की पटरियों को मुर्चे की तरह धूल बन जाते देखा गया। एक घायल आदमी भी भारत में पाया गया जिसके पास सुहागा मिला। पहले की लाश की गर्दन में त्वचा के नीचे दो वाल्व पाये गये। लाश पर पहरा देने वाले सिपाही गायब कर दिये गये। ये उड़ती हुई मोटरों की विचित्र करामातें थीं। वे पकड़ी नहीं जाती थीं। रडार भी उनका कुछ पता नहीं लगा पाता था। बाहरी ग्रह से धरती पर सुहागे के संग्रह के लिए हमला हो रहा था। आक्रामक शत्रु अदृश्य रहने की शक्ति रखता था। वह भू-वासी आदमियों के गले में वाल्व की कलम लगाकर उनकी स्मृति भंग कर अपने काम करवाता था। संसार की सभी पहाड़ी चोटियों पर उसके अड्डे थे। संसार भर के राष्ट्रों ने शत्रु का सामना करने के उपायों पर विचार प्रारम्भ किया। अंत में बृहस्पति ग्रह के ये अदृश्य शत्रु किसी कारण पृथ्वी पर से भाग गये। इसी तरह की सनसनीदार घटनाओं से पूर्ण यह वैज्ञानिक उपन्यास सब का मनोरंजन कर सकता है। पुस्तक में कौतूहलवर्धक चित्र भी दिये गये हैं। पृ० सं० ८३, मूल्य १) रुपया

अधूरा आविष्कार

डा० नवलबिहारी मिश्र एम० बी० बी० एस०

इस संग्रह में डाक्टर मिश्र की पन्द्रह वैज्ञानिक कहानियाँ हैं। प्रत्येक कहानी क्या कला की दृष्टि से और क्या कौतूहल बढ़ाने के दृष्टिकोण से अनुपम है। एक बार आरम्भ कर देने से बिना समाप्त किये पाठक का मन नहीं मानता। वर्तमान युग में जो वैज्ञानिक आविष्कार हुए हैं उनकी विलक्षणता कहानियों में प्रकट है। ढाई सौ से अधिक पृष्ठ हैं। कलापूर्ण रंगीन आवरण है। मूल्य ४·५० न० पै०।

ले०—जेराल्ड वेन्ट **परमाणु ऊर्जा और उसके शान्तिपूर्ण उपयोग** अनु०—रामनिवास राय

परमाणवीय पदार्थों के विज्ञान और परमाणु ऊर्जा के इंजीनियरी उपयोगों से संसार के सभी लोग लाभ उठा सकेंगे। साधारण जनता के लिए इन नई बातों का जानना उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कोयले और भाप के उपयोगों को समझना। शीघ्र ही इस नई शक्ति का विस्तृत उपयोग होने लगेगा। अतएव इस के ज्ञान के, और सामान्य शान्तिमय जीवन में इसके उपयोग के परिचय की तुरन्त आवश्यकता है, विशेषतः उन शिक्षकों के लिए जो स्कूलों में पढ़ाते हैं और जो जनता के लिए कुछ लिखते हैं। मूल्य २) रु०।

ATOMIC PROBLEMS AND HOW TO SOLVE THEM

In English — अँगरेजी में

by S. S. NEHRU, Ph.D., LL.D., I.C.S. (Red.)

परमाणु बमों के विस्फोट से, समुद्र की मछलियाँ, द्वीपों के फलफूल विस्फोट के क्षेत्रों में विषाक्त होकर किस प्रकार मानव स्वास्थ्य और जन्तुओं तथा मानव के प्रजनन पर भयंकर परिणाम डाल सकते हैं। संसार भर की हवा विषाक्त धूल कणों से भर जाती है, गंगाजल परमाणु की रेडियमधर्मी शक्ति से कैसा अद्भुत लाभकारी है। गंगा से कावेरी तक किसी दिन बेकार बचे बमों के विस्फोट द्वारा नहर खोद डालना शायद संभव हो सके आदि आदि, अनेक मनोरंजक प्रसंग इस पुस्तक में दिए गए हैं। मूल्य ३) रुपये

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हमारे चार अनुपम प्रकाशन

धर्म निरपेक्ष राज्य

लेखक : श्री रघुनाथ सिंह—प्राक्कथन लेखक : श्री जवाहरलाल नेहरू

डिमाई आकार पृ० सं० २३७, मूल्य ६.५० नये पैसे।

लेखक ने इस आवश्यक विषय पर पुस्तक लिखकर उसके मूल सिद्धान्तों की तरफ ध्यान आकर्षित किया है। हमें संसार के सामने यह उदाहरण उपस्थित करना है कि एक ही देश और एक ही राज में किस प्रकार परस्पर सौहार्द और शान्ति के साथ भिन्न-भिन्न संप्रदायों के अनुयायी, भिन्न-भिन्न भाषाओं के बोलनेवाले, भिन्न-भिन्न रीति के अनुसार चलनेवाले लोग रह सकते हैं। संसार के विकास में हमारा यही अनुदान है। इससे बढ़कर मनुष्य के वास्तविक कल्याण का दूसरा कार्य नहीं हो सकता।

प्लेटो का प्रजातन्त्र

अनुवादिका—सुश्री विनीता वांचू, एम० ए०

यूनान के इस महान् दार्शनिक की सबसे उत्कृष्ट कृति यह ग्रंथ ही है। यह उसकी सबसे बृहद रचनाओं में से एक है। इस रचना में ही उसकी गहरी व्यंगोक्ति, कल्पना या हास्य का प्रचुर वैभव तथा नाटकीय प्रभाव उसकी अन्य सब रचनाओं से अधिक है। इसी में जीवन तथा चिन्तन को ओतप्रोत करने अथवा दर्शन से राजनीति को सम्बन्धित करने का प्रयत्न किया गया है। खंड एक, पृष्ठ २१२, मूल्य ५) पाँच रुपये, खंड दो, पृष्ठ ३९४ मूल्य १०) दस रुपये।

विष्णुधर्मोत्तर में चित्रकला (सचित्र)

लेखक, श्री बद्रीनाथ मालवीय, एम० ए०

श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण में चित्रकला का सांगोपांग वर्णन है। उसके आधार पर लेखक ने इस पुस्तक में कला-विषयक ज्ञान संकलित करके इस विषय को सर्वसाधारण के लिए प्रस्तुत किया है। पुस्तक में १० अध्याय और ३ परिशिष्ट हैं। सचित्र पुस्तक का मूल्य दो रुपये।

विष्णुधर्मोत्तर में मूर्त्तिकला (सचित्र)

लेखक, श्री बद्रीनाथ मालवीय, एम० ए०

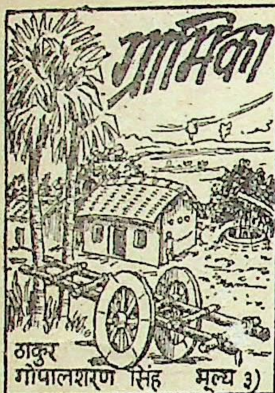
श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण में मूर्तिकला के सम्बन्ध में जो वर्णन है उसके आधार पर लेखक ने इस पुस्तक का प्रणयन किया है। इसमें ३८ अध्याय और ४ परिशिष्ट हैं। किस देवता की मूर्ति का निर्माण किस प्रकार का होना चाहिए, यह इसमें पढ़ने से पाठकों को ज्ञात होगा कि इस विषय में हमारे पूर्वजों को कितनी विशद जानकारी थी। सजिल्द पुस्तक का मूल्य चार रुपये।

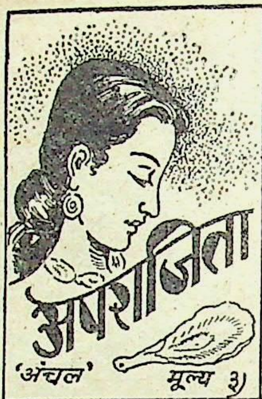
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

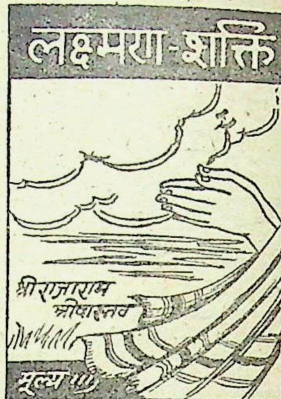
कुछ चुने हुए नाटक-प्रहसन तथा उपन्यास

हमारी कुछ चुनी हुई पुस्तक

नवीन काव्य-कृतियाँ


ग्रामिका
ठाकुर
गोपालशरण सिंह मूल्य ३)


अपराजिता
'अंचल' मूल्य ३)


लक्ष्मण-शक्ति
श्री राजाराम
श्रीवास्तव
मूल्य ।।)


ज्योतिष्मती
ठाकुर
गोपाल
शरण
सिंह


तक्षशिला
उदयशंकर भट्ट
मूल्य ३)


वनवास
राजाराम श्रीवास्तव
मूल्य १)


मानवी
ठाकुर गोपालशरण सिंह
मूल्य २।।)


सुमना
ठाकुर गोपालशरण


तुमुल
श्यामनारायण
पाण्डेय
मूल्य २)


रूपान्तर
श्यामनारायण
पाण्डेय
मूल्य २)


मेघदूत
श्यामसुंदरदास
मूल्य १)

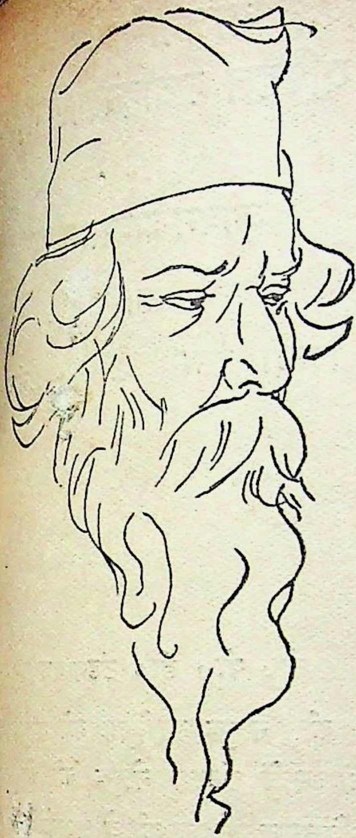

दैत्यवंश
हरदयालु सिंह


संक्षिप्त
बिहारी
श्री रमाशंकरप्रसाद
मूल्य २)


सवेरा
और
माया
श्री विद्याभास्कर मूल्य १।।)


सुबह वतन
चकबस्त
मूल्य २।।)


रानी दुर्गावती
१।)
देवीदयाल चतुर्वेदी मस्त



'सत्यं, शिवं, सुंदरम्' का आदर्श भले ही पुराना रहा हो, किन्तु आधुनिक भारत को उसका परिचय कराया कवीन्द्र रवीन्द्र ने। इन तीनों का समन्वय रवीन्द्रनाथ की आत्मा है, जो उनकी कविताओं, उनके लेखों, उनके भाषणों में झाँक रही है। अपने विशाल दृष्टिकोण के कारण ही वे मानवतावादी और युग की समस्या के दर्शन करानेवाले युगद्रष्टा थे। कवि की परिभाषा के अनुसार रविबाबू कवि-र्मनीषी परिभूः स्वयंभू थे। आधुनिक भारत में एक ओर तो कबीर, दादू, तुलसीदास की परम्परा की अद्यतन कड़ी थी, तो दूसरी ओर नवीन भारत में कवीन्द्र रवीन्द्र आधुनिकता के पुजारी थे। अतएव उनके साहित्य में भी पूर्व और पश्चिम, नूतन और पुरातन का अद्भुत समन्वय है।

अमर-रवीन्द्र-साहित्य

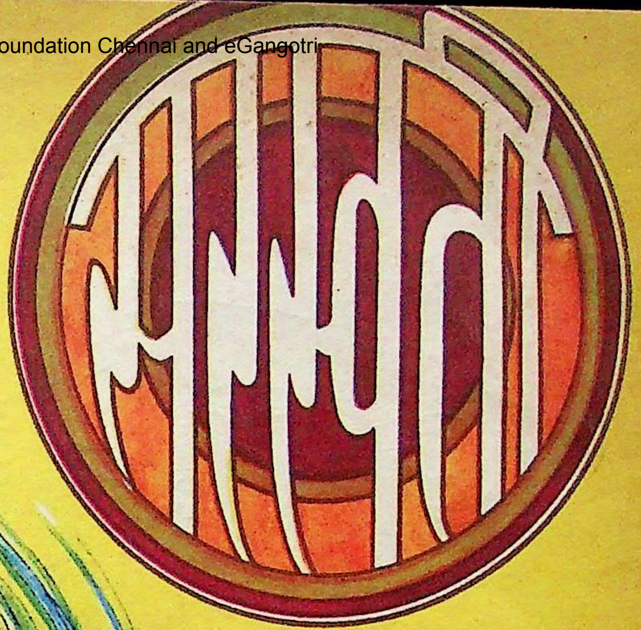
बच्चों के रवीन्द्रनाथ	२·२५
रवि बाबू के कुछ गीत	२·५०
विश्वकवि रवीन्द्रनाथ	५·००
रवीन्द्र की चुनी हुई कहानियाँ	१·५०
विश्वपरिचय	२·००
मास्टर साहब	०·५०
योगायोग	४·००
विचित्र वधू रहस्य	२·००
रूस की चिट्ठी	१·५०
मेरा बचपन	२·००
आश्चर्य घटना	२·५०
चार अध्याय	१·५०





गीताञ्जली	१·५०
मुकुट	०·५०
विचित्र प्रबन्ध	२·२५
प्राचीन साहित्य	१·५०
गल्प गुच्छ भाग १	१·२५
गल्प गुच्छ भाग २	१·५०
गल्प गुच्छ भाग ३	१·५०
गल्प गुच्छ भाग ४	१·५०
व्यंग कौतुक	१·२५
हास्य कौतुक	१·२५
राजर्षि	२·००
डाकघर	०·७५

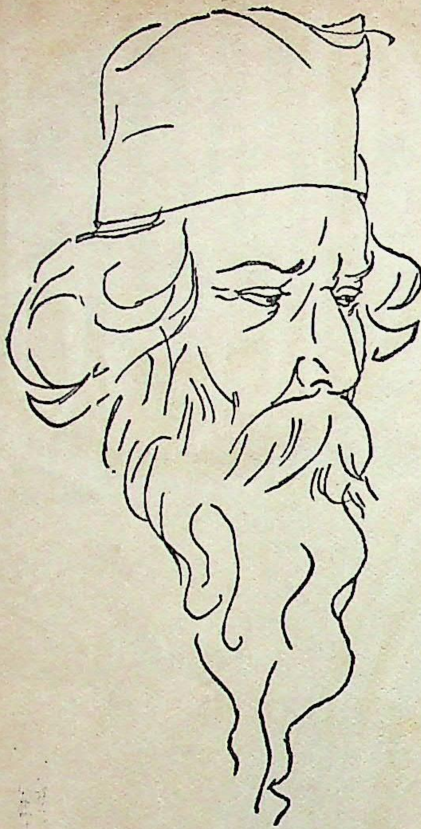
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग



17/8/64



अगस्त १९६४



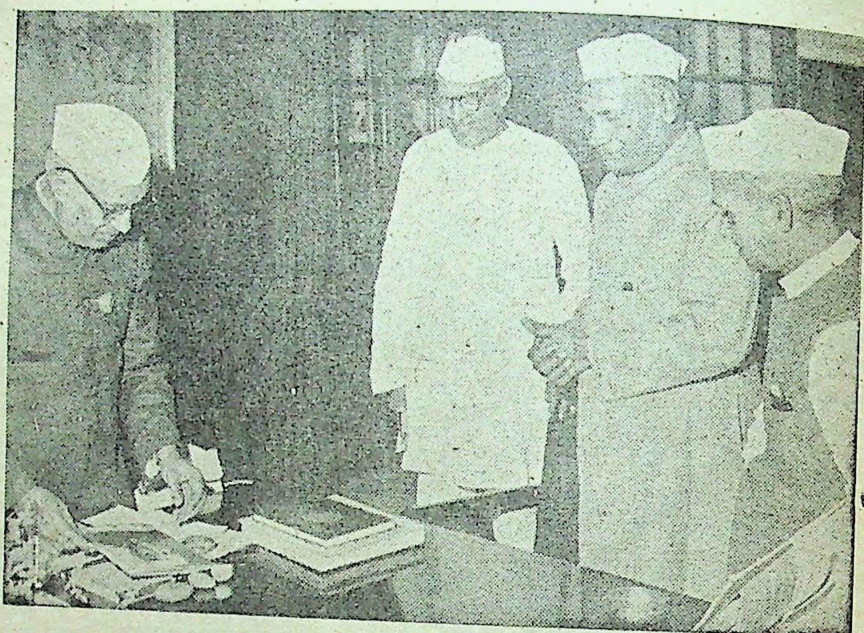
'सत्यं, शिवं, सुंदरम्' का आदर्श भले ही पुराना रहा हो, किन्तु आधुनिक भारत को उसका परिचय कराया कवीन्द्र रवीन्द्र ने। इन तीनों का समन्वय रवीन्द्रनाथ की आत्मा है, जो उनकी कविताओं, उनके लेखों, उनके भाषणों में झाँक रही है। अपने विशाल दृष्टिकोण के कारण ही वे मानवतावादी और युग की समस्या के दर्शन करानेवाले युगद्रष्टा थे। कवि की परिभाषा के अनुसार रविबाबू कवि-मनीषी परिभूः स्वयंभू थे। आधुनिक भारत में एक ओर तो कबीर, दादू, तुलसीदास की परम्परा की अद्यतन कड़ी थी, तो दूसरी ओर नवीन भारत में कवीन्द्र रवीन्द्र आधुनिकता के पुजारी थे। अतएव उनके साहित्य में भी पूर्व और पश्चिम, नूतन और पुरातन का अद्भुत समन्वय है।

अमर-रवीन्द्र-साहित्य

बच्चों के रवीन्द्रनाथ	२·२५	गीताञ्जली	१·५०
रवि बाबू के कुछ गीत	२·५०	मुकुट	०·५०
विश्वकवि रवीन्द्रनाथ	५·००	विचित्र प्रबन्ध	२·२५
रवीन्द्र की चुनी हुई कहानियाँ	१·५०	प्राचीन साहित्य	१·५०
विश्वपरिचय	२·००	गल्प गुच्छ भाग १	१·२५
मास्टर साहब	०·५०	गल्प गुच्छ भाग २	१·५०
योगायोग	४·००	गल्प गुच्छ भाग ३	१·५०
विचित्र वधू रहस्य	२·००	गल्प गुच्छ भाग ४	१·५०
रूस की चिट्ठी	१·५०	व्यंग कौतुक	१·२५
मेरा बचपन	२·००	हास्य कौतुक	१·२५
आश्चर्य घटना	२·५०	राजर्षि	२·००
चार अध्याय	१·५०	डाकघर	०·७५

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

नेहरू चाचा के हाथ में 'नेहरू चाचा'



- १—प्रधान मंत्री पं० जवाहरलालजी को उनके जीवन काल में कवि श्री सोहनलाल द्विवेदी ने उन्हें 'नेहरू चाचा' पुस्तक भेंट की थी। नेहरूजी इस नवीन कृति को प्रसन्नतापूर्वक गौर से देख रहे हैं।
- २—भारत के राष्ट्रपति तथा शिक्षा-संत्री ने बच्चों की प्रिय पुस्तक 'नेहरू चाचा' की सराहना मुक्तकंठ से की है।
- ३—'नेहरू चाचा' के सम्बन्ध में भारत के उपशिक्षा मंत्री ने लिखा है :—

आपने 'नेहरू चाचा' नाम से जो पुस्तक लिखी है, वह मुझे बहुत पसन्द आई है। उसे चित्रमय बनाकर तो आपने उस पर चार चाँद ही लगा दिये हैं और अब इस कारण सब बच्चे उसे और भी पसन्द करने लगे हैं। कृपया इस सफलता क लिए मेरे हार्दिक साधुवाद स्वीकार कीजिए।

मूल्य केवल दो रुपये २५ नये पैसे

प्राप्तिस्थान—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस). प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

तुलना न कीजिए .....



इससे सदैव निराशा होती है। जब आप मेट्रिक बाट व नापों की पुराने बाट जैसे कि सेर आदि से तुलना करते हैं तब भी यही होता है। ऐसा करने से आपका समय नष्ट होता है और लेन-देन में अक्सर नुकसान रह सकता है।

उचित और सुविधाजनक लेन-देन के लिए

मेट्रिक बाटों का प्रयोग कीजिए

DA 63/262

आपकी बचत ही आपके सुखमय भविष्य की सबसे बड़ी गारंटी है।

सोच विचार में समय नष्ट न कीजिए

और

आज ही से पैसा बचाना प्रारंभ कीजिए

तथा

अपना धन राष्ट्रीय बचत योजना में लगाइए।

खरीदिए

१२ वर्षीय राष्ट्रीय सुरक्षा प्रमाणपत्र   प्रीमियम इनामी बांड

१० वर्षीय सुरक्षा डिपाजिट प्रमाणपत्र

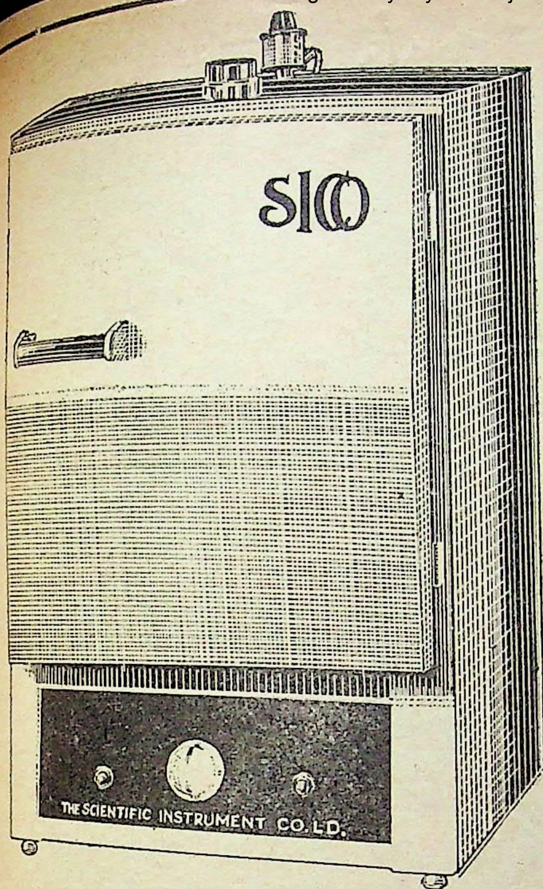
और

आयकर रहित बढ़िया ब्याज प्राप्त करने के साथ ही

देश को अधिक समृद्ध बनाइए।

पूर्ण विवरण के लिए कृपया जिला संगठनकर्ता, राष्ट्रीय बचत से संपर्क स्थापित करें।

सूचना निदेशालय, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित



सीको इलेक्ट्रिक वाटर बाथ

साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी के उत्पाद प्रामाणिक हैं और विशेषता (क्वालिटी), कर्म-कौशल (वर्कमैनशिप), रूपांकन (डिज़ाइन) और निष्पादन (परफारमेंस) में सर्वोत्कृष्ट हैं। हमारे निर्मित अन्य उपकरणिकाओं और साधनों (एप्लाएंसेज़) के लिए कृपया हमें लिखें।

दी साइएटिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी लिमिटेड,
इलाहाबाद, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, नई देहली

अर्द्धशताब्दी से जनता की सेवा में सतत् संलग्न एवं आधुनिकतम उपकरणों से सुसज्जित प्रदेश की प्रतिष्ठित मिल होने का गौरव प्राप्त

दि इन्दौर मालवा युनाइटेड मिल्स लिमिटेड इन्दौर (म० प्र०)

टेलीफोन : ४१६४, ४१६५, ७००७, ६०६३ टेलीग्राम : 'मालवा मिल्स', 'क्रीसैन्ट'

विशिष्ट उत्पादन

शर्टिंग, धोती, काली जीन, खाकी जीन, कोटिंग पट्टा, चौकड़ी, हरक, लांग क्लाथ, साड़ी मज़री, मलमल, चोल, ब्लांकेट, धुस्सा आदि

मालवा मिल इन्दौर के वस्त्र सुनिश्चित ही सुन्दर, सस्ते, टिकाऊ और विश्वस्त होते हैं

सिटी शाप—११५, एम० टी० क्लाथ मार्केट, इन्दौर (म० प्र०)
रिटेल शाप—(१) मालवा मील कर्मचारी परस्पर सहकारी संस्था मर्यादित, इन्दौर,
(२) हीरालाल बबलीशाह, बुरहानपुर
(३) दि इन्दौर मालवा युनाइटेड मिल्स लि०, नरनारायण मन्दिर के सामने, कालबादेवी, बम्बई।

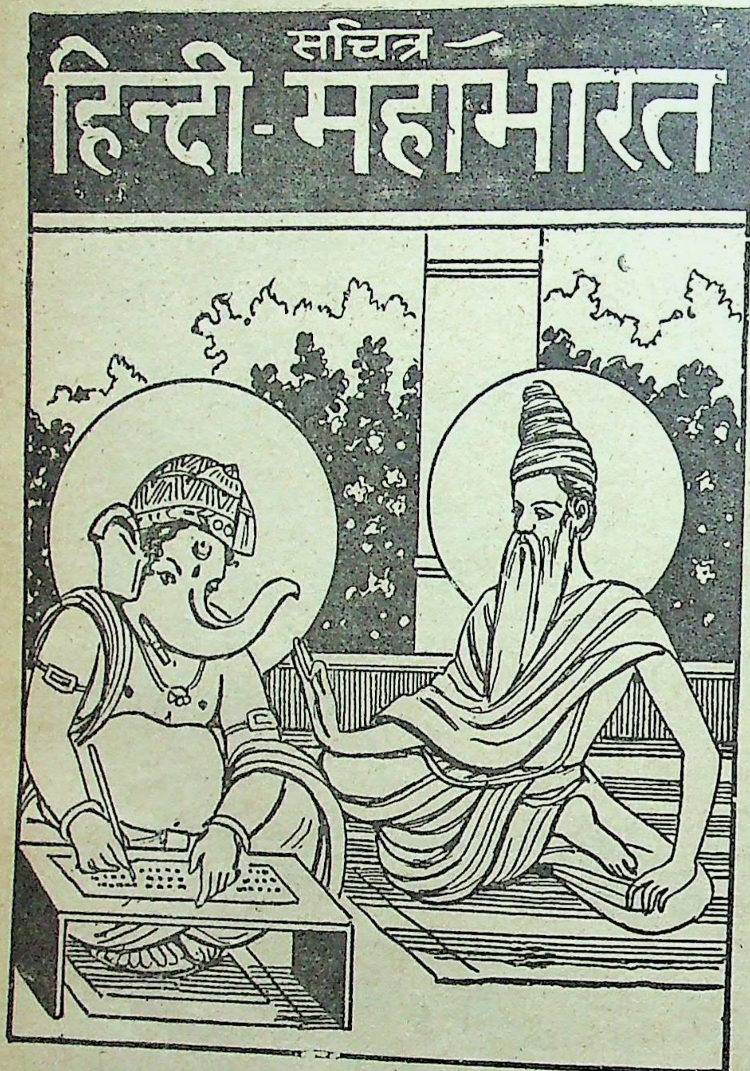
सेलिंग एजेन्ट्स

१—मेसर्स मध्यभारत टेक्सटाइल एजेन्ट्स (ग्रे क्लाथ)
२—मेसर्स भारत ट्रेडर्स (प्रोसेस्ड क्लाथ)
३—मेसर्स पूरणामल सत्यनारायण (ब्लेक एन्ड रज)

एम० टी० क्लाथ मार्केट, इन्दौर

माल मँगाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

महर्षि वेदव्यास की विशद कृति



महाभारत को पाँचवाँ वेद कहते हैं। इस ग्रन्थ में महर्षि वेदव्यास ने अनेक शास्त्रों का वर्णन करके जीवनक्रम की सुलभ रीति बतलाई है। इसमें तीर्थों और व्रतों का वर्णन है, पुण्य पुरुषों की चरितावली है, ऋषियों के उपदेश हैं, सुन्दर उपाख्यान हैं और धर्म पर स्थिर रहकर उन्नति करने का मार्ग बतलाया गया है। यह ग्रन्थ १० खण्डों में समाप्त हुआ है। रंगीन और सादे चित्रों की अधिकता है। बढ़िया जिल्द है। १ से ८वें खण्ड तक प्रत्येक खण्ड का मूल्य १०) रु०। ९वें खण्ड का ५.५० नये पैसे। दसवें खण्ड की सहायता से पढ़नेवाला पुस्तक में तुरन्त अपने मन के स्थल को ढूँढ़ लेता है। इस खण्ड का मूल्य ४.२५ नये पैसे।

सचित्र महाभारत

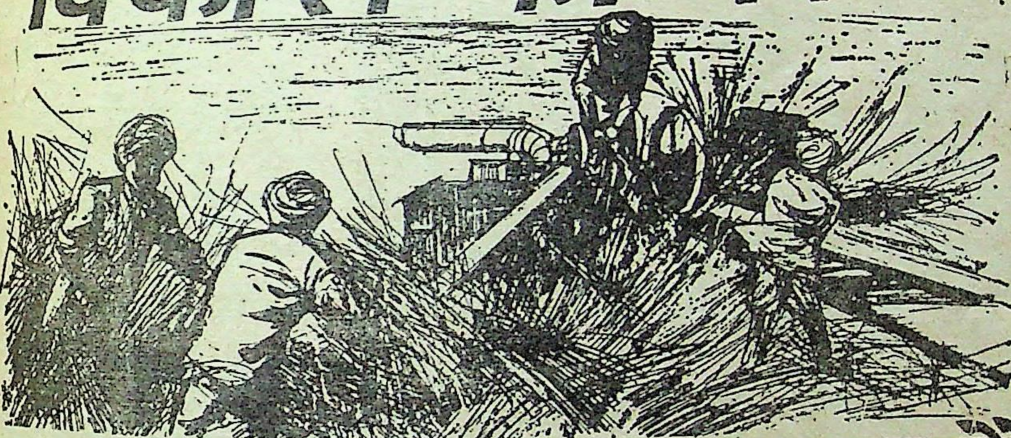
इसमें महाभारत के अठारहों वर्षों की कथा बहुत ही सरल भाषा में लिखी गई है। इसके लेखक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी हैं। सचित्र और सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ६)।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्रा० लि०, प्रयाग

रक्षा और



विकास का काम



साथ साथ चलता है

रक्षा-प्रयत्नों में भरपूर मदद देने के लिए यह जरूरी है कि प्रत्येक गांव का एक-एक कृषि उपज कार्यक्रम तैयार किया जाए।

नीति सम्बन्धी तालमेल रखने और खेतों में पैदावार बढ़ाने के लिए एक उच्च अधिकार प्राप्त केन्द्रीय कृषि उपज बोर्ड बनाया गया है। वर्तमान संकट को ध्यान में रखते हुए कृषि-उत्पादन बढ़ाने, आयात कम करने और विदेशी मुद्रा को रक्षा सम्बन्धी जरूरतों के लिए बचा कर रखने की हर संभव कोशिश की जा रही है।

कृषि पैदावार बढ़ाने के अभियान में आप मन, वचन और कर्म से पूरा-पूरा सहयोग दीजिए।

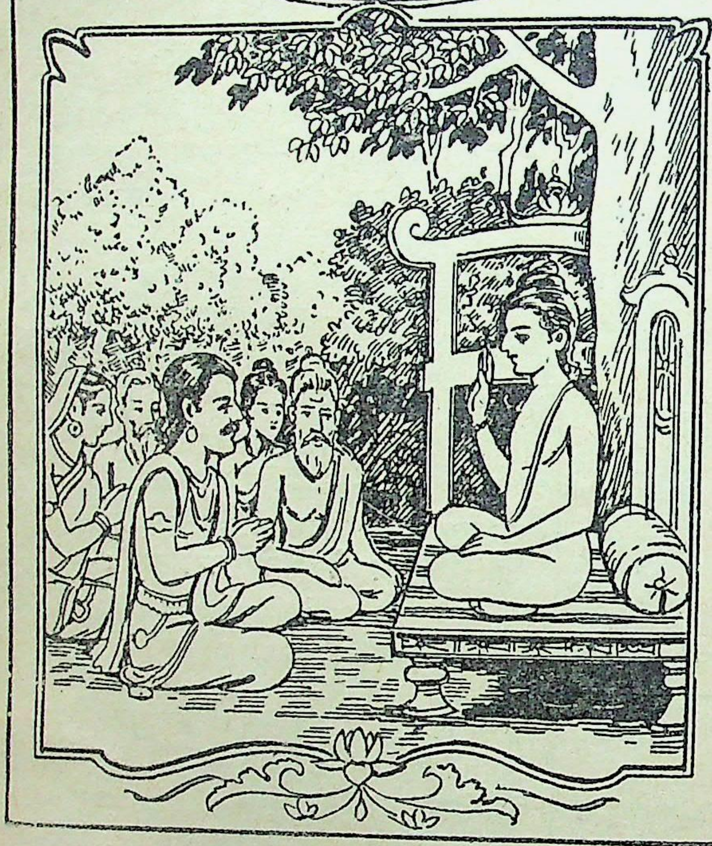


योजना को सफल बनाइये

भारत की रक्षा-व्यवस्था को सुदृढ़ कीजिए

डीए ६३/५०५

 माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।



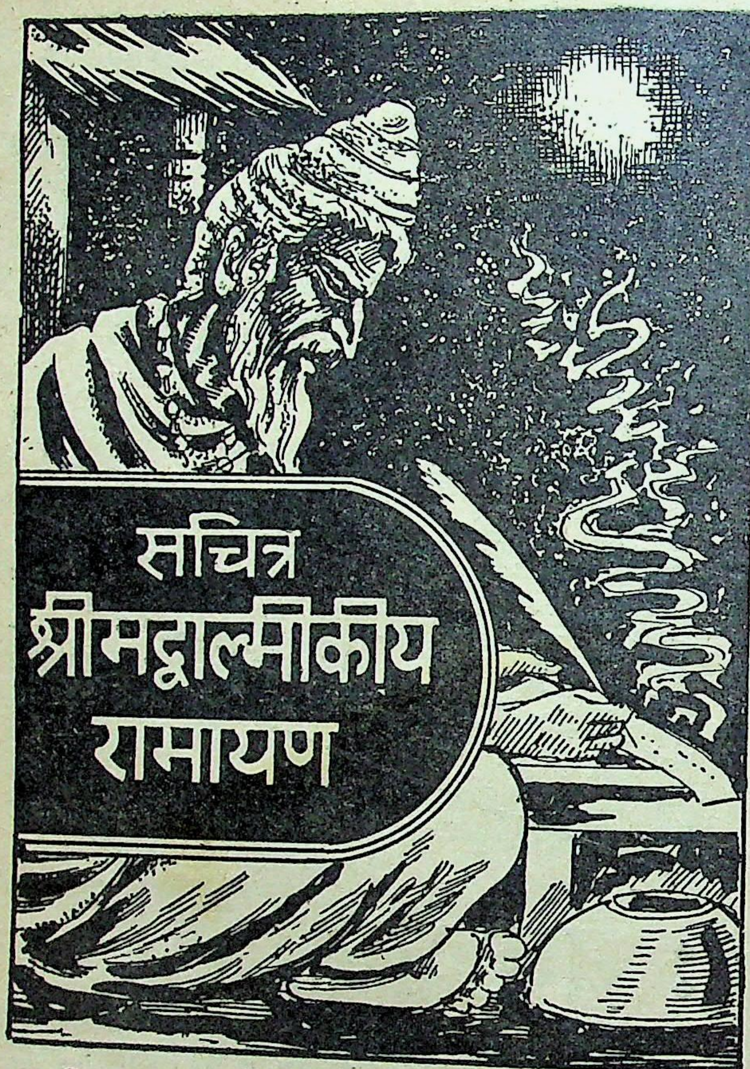
श्रीमद्भागवत में वेदव्यासजी ने लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्र की लीलाओं का वर्णन मुख्य रूप से किया है। साथ ही अनेक राजवंशों और ऋषियों का वर्णन किया है। इसको पढ़ने से ज्ञात होगा कि उस समय भारत में असुरों ने और स्वार्थी लोगों ने कैसा उपद्रव मचा रक्खा था, जिसको दूर करके समाज की रक्षा करने के लिए श्रीकृष्ण ने अवतार लिया। उस अवतार में बालकृष्ण ने दुष्टों का दमन ऐसी युक्तियों से किया कि किसी को पता भी नहीं चला कि इन असम्भव कार्यों को कौन किस रूप में करके हमारी रक्षा कर रहा है। महर्षि वेदव्यास के पुत्र शुकदेवजी से केवल सात दिन में इस ग्रन्थ को सुनकर राजा परीक्षित कृतकृत्य हो गये। बढ़िया जिल्द है, चित्रों की अधिकता है। पुस्तक के दो खंड हैं। प्रत्येक खंड का मूल्य ८)।

श्रीमद्भगवतगीता—गीता की प्रशंसा में कुछ भी कहना सूर्य को दीपक दिखाना है। इस पुस्तक में श्लोकों सहित पूरा गीता महात्म्य प्रारंभ में २५ पृष्ठों में दिया है। लगभग ३०० पृष्ठों की अर्थ सहित गीता का मूल्य प्रचार के लिए केवल ०'५० नये पैसे मात्र रक्खा गया है।

ज्ञानेश्वरी—ज्ञानेश्वर महाराज ने मराठी भाषा के गीता पर जो टीका लिखी है उसका यह हिन्दी अनुवाद है। बड़े अक्षरों में मूल संस्कृत श्लोक, साधारण अक्षरों में टीका है। सजिल्द प्रतिका मू० ६)।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।



आदिकवि वाल्मीकि ऋषि के बनाये इस पुनीत ग्रन्थ में मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी के चरित का वर्णन विस्तार से है। इस ग्रन्थ में संस्कृत का सरल हिन्दी में रूपान्तर है। इसमें आदि कवि ने रामचन्द्रजी की कथा का वर्णन करते हुए उस संगठन का वर्णन किया है जिसके आधार पर आज तक हिन्दू-समाज टिका हुआ है। इसमें बतलाया गया है कि हमें माता-पिता, भाई-भौजाई, सास-ससुर, और पड़ोसी आदि के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए और संकट से निस्तार पाने के लिए क्या करना चाहिए। सचित्र सजिल्द पुस्तक के दो खण्ड हैं। मूल्य प्रत्येक खण्ड का ६·५० पैसे।

कुंडलिया रामायण—इसके टीकाकार श्रीयुत सत्यनारायण पाण्डेय हैं। कुंडलिया छंद में लिखित गोस्वामी तुलसीदास-कृत रामायण, सुन्दर टीका सहित। मूल्य ४)।

अयोध्याकांड—इसमें भरतजी के चरित का वर्णन बड़े विस्तार से है। रामवनगमन, केवट प्रसंग आदि सुन्दर कथानक हैं और रचना तो अनुपम है ही। मूल्य ३·५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

विषय-सूची



वासना, सौन्दर्य की साकार प्रतिमा उर्वशी अर्जुन के समक्ष

--चित्रकार दिनेशचन्द्र शर्मा



सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—**शीला शर्मा**

17/8/64

वर्ष ६५ पूर्ण संख्या ७७६ | इलाहाबाद : अगस्त १९६४ : श्रावण २०२१ वि० | खण्ड २ संख्या २

सम्पादकीय

अखिल भारतीय शिक्षासेवा—भारत का संविधान संघीय है, अर्थात् सारी सत्ता केन्द्रीय सरकार ही में केन्द्रित नहीं है। राज्यों को बहुत से क्षेत्रों में पूरी स्वतन्त्रता है। किन्तु केन्द्रीय सरकार के कितने ही विभाग और अधिकारी राज्य सरकारों की यह स्वतंत्रता पसंद नहीं करते और सारी सत्ता अपने हाथ में रखना चाहते हैं। वे संविधान के वास्तविक प्रयोजन (अर्थात् कुछ विषयों में राज्यों को स्वतन्त्र रखने) को विकृत कर धीरे-धीरे, अनेक प्रत्यक्ष और परोक्ष उपायों से उनकी स्वतंत्रता का अपहरण करते जा रहे हैं। 'भारत की एकता' के नाम पर वे सारे देश में 'एकरूपता' लाना चाहते हैं। पहले तो परोक्षरूप से राज्यों पर दबाव डाले गये। भारत-सरकार जिस योजना को चलाना चाहती है, उसे चलाने के लिए राज्यों को रुपये का प्रलोभन देकर राज्यों को राजी करती है। राज्यों की आय सीमित है। वे मनमाना व्यय नहीं कर सकते। भारत-सरकार के पास अपार धन है। वह अपनी योजनाओं के लिए विदेशों से भी प्रचुर धन प्राप्त कर लेती है। धनाभाव से पीड़ित राज्य केन्द्रीय सरकार के रुपयों के लोभ में उसकी अनेक उन योजनाओं को भी स्वीकार कर लेते हैं, जिनके लिए उनमें उत्साह नहीं होता। और इस प्रकार, रुपयों के जोर से, केन्द्र सारे देश में अपनी योजनाएँ चला लेता है। उदाहरण के लिए, सारे राज्यों में दो वर्षों की हाई स्कूल की, दो वर्षों की इंटर की तथा दो वर्षों की बी० ए० की पढ़ाई होती थी। केंद्रीय सरकार ने तय किया कि इंटर कक्षाएँ समाप्त कर हाई स्कूल और बी० ए० के पाठ्यक्रम तीन-तीन वर्षों के कर दिये जायँ। शिक्षा में यह क्रांतिकारी परिवर्तन है। इसमें यूनिवर्सिटियों और डिग्री कालिजों को एक-एक वर्ष अधिक पढ़ाने का प्रबंध करना पड़ेगा, अतिरिक्त प्राध्यापक रखने पड़ेंगे। अतिरिक्त भवनों, प्रयोगशालाओं, छात्रावासों आदि की आवश्यकता होगी। हाई-स्कूल की पढ़ाई एक वर्ष बढ़ जाने से निम्न मध्यम वर्ग को अपने बालकों को एक वर्ष अधिक पढ़ाने का भार उठाना पड़ेगा। कितने ही राज्य इसके लिए तैयार न थे, किंतु केंद्रीय सरकार ने इतना प्रचुर धन देने का वचन दिया कि अधिकांश राज्य इस परिवर्तन के लिए तैयार हो गये। उत्तर प्रदेश इसे नहीं चाहता था, किंतु दोनों सरकारें कांग्रेसी हैं। अतएव राज्य सरकार ने अन्त में सिद्धान्ततः इसे मान लिया, किंतु वहाँ इस परिवर्तन के करने में इतना अधिक व्यय होगा कि राज्य सरकार उसे वहन

फा० ३

नहीं कर सकती। केंद्रीय सरकार कुल व्यय देने को तैयार नहीं है। इसी लिए मामला खटाई में पड़ा हुआ है। किंतु अंत में राज्य सरकार को केंद्रीय सरकार के दबाव में आकर परिवर्तन करना ही होगा।

शिक्षा का विषय ऐसा है जिसमें संविधान के अनुसार राज्य सरकार, कम-से-कम माध्यमिक शिक्षा के स्तर तक, पूरी तरह स्वतंत्र है। अब भाषावार राज्य बन गये हैं। माध्यमिक शिक्षा का माध्यम भी राज्यों की भाषाएँ ही हैं। अतएव यह आवश्यक है कि इस विभाग के अधिकारी अपने राज्य की क्षेत्रीय भाषा के अच्छे ज्ञाता ही न हों, किंतु उनमें उन भाषाओं के प्रति निष्ठा भी हो। अभी शिक्षा विभाग के उच्च अधिकारी प्रायः अपने राज्यों के ही होते हैं। वे राज्यों के सेवक होते हैं, उन्हींके द्वारा वे नियुक्त किये जाते हैं और अपनी उन्नति के लिए वे अपने राज्य की सीमा के बाहर, दिल्ली की ओर, नहीं ताकते। शिक्षा-निदेशक, उपशिक्षा-निदेशक, ट्रेनिंग कालिजों और डिग्री कालिजों के प्रिंसिपल और प्राध्यापक सभी राज्यसेवा (स्टेट सर्विस) में होते हैं। इस कारण वे राज्य सरकार के पूर्ण नियंत्रण में रहते हैं। वे प्रायः अपने ही राज्य के होते हैं और वहाँ की भाषा, संस्कृति, जीवन आदि से पूरी तरह परिचित होते हैं।

किंतु अब केन्द्रीय सरकार राज्यों की शिक्षा में हस्त-क्षेप करना चाहती है, और उनमें अपनी नीति चलाना चाहती है। इसके लिए वह एक तो संविधान में संशोधन करके राज्यों की शिक्षा के विषय को ऐसा विषय बनाना चाहती है जिसमें केन्द्रीय और राज्य सरकार, दोनों ही का, अधिकार रहे। दूसरे, वह 'अखिल भारतीय शिक्षा सेवा' का निर्माण करके राज्यों के शिक्षा विभागों के उच्च पदों पर अपने अधिकारी भेजना चाहती है। ये 'अखिल भारतीय सेवा' के अधिकारी केंद्रीय सरकार के नौकर होंगे, उसीके द्वारा नियुक्त किये जायँगे, उन पर अंतिम अनुशासन केंद्र का ही होगा। केंद्र राज्यों की आवश्यकतानुसार उन्हें उनमें भेज देगा जहाँ उन पर राज्य सरकार का सामान्य अनुशासन रहेगा। किंतु पदोन्नति, सेवामुक्ति आदि के मामलों में वे अंतिम रूप से अपने वास्तविक स्वामी—केंद्रीय सरकार—की ओर ही देखा करेंगे। उसके सेवक होने के कारण वे स्वभावतः केन्द्र की नीतियों को कार्यान्वित करने का प्रयत्न करेंगे—चाहे राज्य सरकार उन्हें पसंद न भी करे।

देश में और भी अखिल भारतीय सेवाएँ हैं, जैसे आई० ए० एस०, आई० पी० एस०, आई० एफ० एस० (इंडियन फारेन सर्विस), इंडियन रेलवे सर्विस। इनमें भर्ती अखिल भारतीय स्तर पर होती है और इनमें अंग्रेजी का प्राधान्य है। जो भी कारण हो, यह स्पष्ट है कि इन सेवाओं में हिंदी क्षेत्र के लोग बहुत कम आ पाते हैं। भर्ती का ढंग कुछ ऐसा है कि इनमें अधिकांश मदरास, मैसूर, केरल, आंध्र, बंगाल और पंजाब के अभ्यर्थी सफल होते हैं। उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, असम और उड़ीसा के लोग इनमें अनुपाततः बहुत कम आ पाते हैं। अतएव अखिल भारतीय सेवाओं में विशेष क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व बढ़ता जा रहा है, और उनकी प्रधानता होती जा रही है। उनमें हिन्दी क्षेत्र के लोगों का अनुपात कम होता जा रहा है। भारत-सरकार की इन वर्तमान अखिल भारतीय सेवाओं की तरह यह प्रस्तावित 'शिक्षा सेवा' भी इसी प्रकार बनेगी, इसमें संदेह करने का कोई कारण नहीं मालूम होता। अतएव इसके बनने से सारे भारत के राज्यों की शिक्षा का संचालन और प्रशासन इन विशेष क्षेत्रों के लोगों के हाथ में आ जायगा। ये ही लोग हिंदी क्षेत्रों में शिक्षा के अधिकारी होकर आवेंगे। जिन क्षेत्रों से ये अधिकांश लोग लिये जाते हैं उनके 'शिक्षित' लोग हिंदी के कितने विरोधी हैं, यह सभी जानते हैं। हिंदी क्षेत्रों में राजभाषा हिंदी है, किंतु आई० ए० एस० और आई० पी० एस० आदि के उच्च अहिंदीभाषी अधिकारियों की हिंदी की उदासीनता या उपेक्षा इस बात का एक बहुत बड़ा कारण है कि उनमें हिंदी राजभाषा के रूप में नहीं चल पा रही। किंतु जब इन्हीं अहिंदी क्षेत्रों के अधिकारी हिंदी राज्यों में शिक्षा-निदेशक, शिक्षा-उपनिदेशक, कालिजों के प्राचार्य और प्राध्यापक होंगे तब वहाँके शिक्षा विभाग में हिंदी में जो थोड़ा बहुत काम होने लगा है, वह भी खतरे में पड़ जायगा। दूसरी बात यह है कि हिंदी राज्यों की नीति है कि शिक्षा का माध्यम सभी स्तरों पर हिंदी हो। यह सर्वविदित है कि कथा के बैंगन की तरह केंद्रीय शिक्षा विभाग दिखावे के लिए जब कभी हिंदी माध्यम का नाम ले लेता हो, किंतु उसके अधिकारियों का प्रयास अंग्रेजी ही को पुष्ट करने का है। जब ऐसी सरकार के अहिन्दीभाषी

वरन् (जिनके प्रान्तों के शिक्षित वर्गों में हिंदी का विरोध है) हिंदी क्षेत्रों में शिक्षा का संचालन और प्रशासन करेंगे तथा जब वे वहाँके शिक्षामंत्रियों के मुख्य परामर्शदाता होंगे, तब हमारे हिन्दी क्षेत्रों में हिन्दी की जो अवस्था हो जाती है उसका अनुमान करने के लिए प्रखर कल्पना की आवश्यकता नहीं है। तब यह आशा करना बुद्धिमानी न होगी कि हिंदी क्षेत्रों की शिक्षा में हिंदी को उसका न्यायसंगत अधिकार और स्थान मिल पावेगा। भाषा के मामले में इन अखिल भारतीय सेवा के लोगों की मानसिकता प्रायः वही है जो हमारे अँगरेज शासकों की थी। अतएव इनके हाथों में हिंदी क्षेत्रों की शिक्षा का प्रशासन आने पर हिंदी की वही अवस्था हो जायगी जो हेलेट, डिलाफोस या मैकेंजी के समय उत्तर प्रदेश में थी।

'अखिल भारतीय सेवाओं' के समर्थन में एक बड़ा तर्क यह दिया जाता है कि इससे देश में 'एकता' की भावना बढ़ती और पुष्ट होती है। यदि इन सेवाओं में क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व संतुलित हो तो उपयुक्त वातावरण में यह संभव हो सकता है। किंतु आज अखिल भारतीय सेवाओं में जिस प्रकार कुछ विशेष क्षेत्रों का प्राधान्य होता जा रहा है और अन्य क्षेत्रों की जो उपेक्षा हो रही है, उसकी प्रतिक्रिया अच्छी नहीं है। यदि 'भारतीय' सेवा का व्यावहारिक परिणाम यही हुआ कि उत्तर प्रदेश या बिहार में तो राज्य के वरिष्ठ सचिव (सेक्रेटरी), कमिश्नर, कलक्टर विभागाध्यक्ष, वाइसचांसलर आदि उच्च पदाधिकारी इन हिंदी-विरोधी क्षेत्रों के लोग होते रहे, किंतु उनके क्षेत्रों में अधिकार के पदों पर हिंदीभाषी लोग दशहरे के नीलकंठ हो जायँ तो 'भावनात्मक एकता' के स्थान पर उससे बिल्कुल विपरीत भावना उत्पन्न हो जायगी। आज हिंदीभाषी क्षेत्रों में कितने ही ऐसे क्षेत्रों के अहिंदीभाषी अधिकारी नियुक्त हैं जिनमें हिंदी और हिंदीभाषी क्षेत्रों का विरोध है? इसके विपरीत, उपर्युक्त अहिंदी क्षेत्रों में उत्तर प्रदेश या बिहार या राजस्थान के कितने अधिकारी हैं? क्या 'देश की भावनात्मक एकता' हिंदी क्षेत्रों पर अहिंदी क्षेत्रों के अधिकारियों के लादने ही से उत्पन्न हो जायगी? क्या अहिंदी क्षेत्रों में हिंदी क्षेत्रों के अधिकारी भेजने से वह खतरे में पड़ जायगी? यदि वास्तव में भारत-सरकार भावनात्मक एकता चाहती है तो उसे अखिल भारतीय सेवाओं में क्षेत्रीय अनुपात को संतुलित रखने के लिए शीघ्र ही कोई संतोषजनक कार्रवाई करनी चाहिए। हिंदी क्षेत्रों के निवासी देश की एकता के लिए बहुत कुछ त्याग करते आये हैं। वे अब भी त्याग करने को तयार हैं। किंतु यह 'एकतर्फा इश्क' बहुत दिनों नहीं चलने का। अखिल भारतीय सेवाओं में हिंदी क्षेत्रों को उचित प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। यदि अखिल भारतीय शिक्षासेवा बनायी ही जाय तो उसकी भर्ती के लिए प्रत्येक राज्य का 'कोटा' निश्चित कर दिया जाय। आज अखिल भारतीय सेवाओं में उत्तर प्रदेश, बिहार, गुजरात, मध्य प्रदेश, असम, राजस्थान, उड़ीसा आदि का अनुपात बहुत कम है। यह असंतुलन इस नयी सेवा में नहीं रहना चाहिए। इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि जिस राज्य में जो अधिकारी भेजा जाय उसकी मातृभाषा राज्य ही की भाषा हो। हम अंग्रेजी के ज्ञान को भारत की एकता का प्रतीक नहीं मानते। हम 'काम चलाऊ हिन्दी' के ज्ञान की असलियत भी जानते हैं। हम चाहते हैं कि हिन्दी क्षेत्रों की जनता के हित में, वहाँकी शिक्षा के हित में, हिन्दी के उन्नयन और प्रचलन के हित में तथा "क्षेत्रीय दुर्भावनाओं" को बचाने के लिए अखिल भारतीय शिक्षासेवा बनायी ही न जाय, किंतु यदि सरकार उसे बनाने पर ही तुली हुई है और हमारी राज्य सरकारें उसे रोकने में असमर्थ हैं तो इस बात का ध्यान रखा जाय कि उसमें राज्यों के प्रतिनिधित्व का मिश्रित अनुपात हो तथा किसी क्षेत्र में ऐसा अधिकारी न भेजा जाय जिसकी भाषा उस राज्य की भाषा न हो। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो सरकार को जान लेना चाहिए कि शिक्षा की वही दशा हो जायगी जो अंग्रेजों के समय में थी। इससे कुछ वर्गों में अंग्रेजी का खूब प्रचार होगा, अंग्रेजी का स्तर भी शायद कुछ उठे (क्योंकि अहिंदीभाषी अधिकारी अंग्रेजी के जोर पर ही प्रशासन करेंगे), किंतु सामान्य शिक्षा का स्तर गिरेगा, हिन्दी की (मातृभाषा की) अवनति होगी, तथा शिक्षित वर्ग में अहिन्दी-भाषियों के प्रति एक दुर्भावना उत्पन्न होगी जो देश की एकता के लिए घातक सिद्ध हो सकती है।

विवेकहीन सरकारी सहायता--हमारी सरकार ने उपयोगी और सत्साहित्य को प्रोत्साहन देने के लिए भी योजनाएँ बनायी हैं। इनमें एक योजना यह है कि जिन

अच्छी पुस्तकों के प्रकाशन के लिए प्रकाशक तैयार नहीं होते, उनके प्रकाशन के व्यय का एक अच्छा अंश सरकार अनुदान के रूप में दे देती है। उत्तर प्रदेश में यह योजना चल रही है। किंतु कभी-कभी यह सहायता बिना आवश्यक छानबीन के, और बिना यह देखे कि पुस्तक ठीक है या नहीं, दे दी जाती है। इसका एक उदाहरण हमारे सामने आया है।

पुस्तक का नाम है---नव जीवन-ज्योति-प्रवेशिका। उसके नीचे दो पंक्तियों में लिखा है (बाल मनोविज्ञान) (For Mentally Retarded Children) उसके नीचे ये वाक्य लिखे हैं:

"यू० पी० के राज्यपाल (गवर्नर) द्वारा, मानसिक अविकसनशील बच्चों के लिये यह पुस्तक प्रकाशनार्थ लेखक को सरकारी सहायता स्वीकृत।" इसके लेखक हिन्दी के एम० ए० और साहित्यरत्न हैं। ये उपाधियाँ आवरण पर उनके नाम के नीचे छपी हुई हैं। पुस्तक में कुल ३३० पृष्ठ हैं। बीच बीच में रेखाचित्र भी हैं। जिल्द बँधी है। सरकारी सहायता से 'अविकसनशील' बच्चों के लिए प्रकाशित इस पुस्तक का मूल्य केवल साढ़े दस रुपये है! आरंभ में श्रीमती इंदिरा गाँधी का आशीर्वाद और 'राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली' के सचिव श्री पी० एन० नातू की भूमिका भी है। वे कहते हैं कि लेखक ने "यह व्यावहारिक और उपयोगी पुस्तक, अपने अनेक वर्षों तक, ऐसे बच्चों को पढ़ाने के अनुभव के आधार पर लिखा है, जो कि उनके अध्यापन-कार्य के सफलता का द्योतक है।" शायद उन्होंने यह भूमिका अंग्रेजी में लिखी थी। यह उसका अनुवाद मालूम होता है।

यही नहीं, पुस्तक के अंत में कई प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों की सम्मतियाँ भी छपी हैं। इनमें श्री त्रिभुवन नारायण सिंह, श्री श्यामधर मिश्र, चाइल्ड गाइडेंस क्लिनिक के डाइरेक्टर श्री भाटिया, इंडियन काउंसिल आफ चाइल्ड वेलफेयर के डाइरेक्टर श्री डी० पाल चौधरी, डा० दशरथ ओझा के प्रशंसापत्रों पर पाठकों का ध्यान अवश्य जायगा।

अब इस प्रशंसित और सरकार से सहायता प्राप्त पुस्तक की कुछ बानगी देखिए। 'इतिहास' के अंश में शाहजहाँ पर यह पैराग्राफ अविकल उद्धृत किया जाता है:

"शाहजहाँ का नाम इसलिए संसार के इतिहास में प्रसिद्ध है कि उसे ईमारत बनवाने का शौक था। उसने बड़ा-बड़ी और मजबूत ईमारतें बनवाईं। जैसे जामा मस्जिद, मोती मस्जिद, लाल किला और ताजमहल। अपनी प्यारी स्त्री नूरजहाँ के अन्तिम इच्छा की पूर्ति के लिये शाहजहाँ ने ताजमहल बनवाई जो केवल संगमरमर पत्थर का बना हुआ है। इसके बनाने में करोड़ों रुपये खर्च हुए और कई वर्ष तक हजारों मजदूर कार्य करते रहे। वास्तव में नूरजहाँ के अन्तिम इच्छा, ताजमहल के निर्माण ने ही, उसके नाम को अमर कर दिया। इसमें शाहजहाँ और नूरजहाँ के मकबरे पास पास हैं।"

एक उद्धरण कृषि सम्बन्धी भी देख लीजिए:

"शीतकाल में गेहूँ, जौ, चने, सरसों और तम्बाकू पैदा होता है। इसे असाढ़ की फसल कहते हैं। ग्रीष्म ऋतु में चावल, गन्ना, चाय, पटसन और बाजरा आदि की खेती होती है। इसे सावनी की फसल कहते हैं।"

'राज्य सरकार' शीर्षक के नीचे लिखा है:

"बड़े बड़े सूबों में प्रबन्ध करने के लिये जनता द्वारा चुने हुये सदस्य विधान-मंडल में भेजे जाते हैं। इसमें दो सभायें होती हैं।

१. राज्य परिषद्।

२. विधान सभा।

ये सूबे के स्थानीय मामलों का स्वतंत्रतापूर्वक प्रबन्ध करते हैं।"

लेखक ने 'नगरपालिका' शब्द का प्रयोग न करके 'नगर-परिषद्' शब्द का प्रयोग किया है। 'नगर-निगम' का कर्तव्य यों बतलाया है:

"बड़े बड़े शहरों जैसे कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, दिल्ली आदि में नगरवासियों के सामूहिक जीवन सम्बन्धी असुविधाओं को दूर करने के लिये यह संस्था नगर-परिषद् की तरह चुनी जाती है।"

हम समझते हैं कि पुस्तक का 'महत्व' बतलाने के लिए इतनी बानगी पर्याप्त है। शायद ही कोई ऐसा पृष्ठ हो जिसमें भाषा, व्याकरण या तथ्य सम्बन्धी अशुद्धियाँ न हों। सामान्य अशुद्धियों के कुछ नमूने देखिए:

"सदस्य संख्या पहिले ही से निश्चित होते हैं।"

"लोकसभा में ५०० सदस्य और राज्यसभा में ३५० सदस्य होते हैं।"

"बच्चा को रोते हुये सुन कर एक दम्पति नीमा और नीरू नामक जुलाहा उसे घर लाकर पालन-पोषण किया।"

"आपस में वैमनस्यता थी।"

"आपने राजदूत पद पर बड़ी सरलतापूर्वक कार्य किया है।"

The Idealist View of Life का अनुवाद लेखक ने "आदर्शवादी दृष्टिकोण में जीवन" किया है। लेखक ने बालकों के लिए कुछ शिक्षाप्रद कहानियाँ दी हैं। एक कहानी यह है :

"साहस की जीत

एक दिन दो चूहे भोजन की तलाश में संयोग-वश एक दही के मटके में गिर पड़े। दोनों ने बहुत प्रयत्न बाहर निकलने का किया, परन्तु असफल रहे। उनमें से एक चूहा हताश होकर अपना उछल-कूद बन्द करने के परिणाम स्वरूप उसी में मर गया, परन्तु दूसरे ने अपना प्रयत्न नहीं छोड़ा। उनके उछल-कूद से मटके में मक्खन का मोटा तह जम गया। दूसरा चूहा मक्खन के ऊपर से छलांग लगा कर बाहर निकल गया।

आजकल जगह जगह से पाठ्य पुस्तकों में अशुद्धियों और त्रुटियों की शिकायतें आ रही हैं। महाराष्ट्र में एक ...ी की पाठ्य पुस्तक में व्याकरण की अशुद्धियाँ पायी ...। इससे एक तूफान खड़ा हो गया और सरकार को ... पुस्तक निकाल देनी पड़ी। हमारी सरकार की शिक्षा ...ी शुभ कामनाएँ और शिव संकल्प असंदिग्ध हैं। ...न्तु उसके यंत्र में कुछ ऐसी खराबी आ गयी है कि ...ता, सावधानी, कार्यदक्षता का एकदम अभाव हो ...ा है। अच्छी पुस्तकों के प्रकाशन के लिए सरकारी ...ता देने की योजना प्रशंसनीय है, किन्तु यदि उस ...ना से इस प्रकार की पुस्तकों को प्रोत्साहन और ...यता मिले तो उस योजना से लाभ के बदले हानि ...क होगी। लेखक की भाषा के लिए क्या कहा जाय? ...े किसी विश्वविद्यालय के (हिन्दी में) एम० ए० हैं। ...ी साहित्य-सम्मेलन ने भी उन्हें साहित्यरत्न की उपाधि ...ी है। ऐसी भाषा को लिखनेवाले जब हिंदी भाषा की ये सर्वोच्च उपाधियाँ प्राप्त कर सकते हैं, तब हाईस्कूल, बी० ए० आदि में हिन्दी का स्तर कैसा होगा! दुःख तो इस बात का होता है कि हमारे बड़े उच्च पदासीन और योग्य सज्जन, जिन्हें हम लोग उत्तरदायी अधिकारी समझते हैं, ऐसी पुस्तकों को अपने हृदय की कोमलता के कारण 'प्रशंसापत्र' दे देते हैं जिनके बल पर उन्हें सरकारी सहायता भी मिल जाती है और उनकी पुस्तकों का प्रचार भी होता है। यदि सरकार इस बात का निश्चित प्रबंध नहीं कर सकती कि केवल बहुत अच्छी और त्रुटिहीन पुस्तकों को ही सहायता दी जाय, तो अच्छा तो यही हो कि अनुदान की यह योजना ही समाप्त कर दी जाय।

प्रेस इन्स्टिट्यूट द्वारा आयोजित हिन्दी पत्रकारों का प्रशिक्षण शिविर—गत मास जयपुर में 'प्रेस इन्स्टिट्यूट आफ इण्डिया' ने हिन्दी के पत्रकारों के लिए एक प्रशिक्षण शिविर का आयोजन किया था। यह शिविर पाँच दिन चला। इसमें राजस्थान, पंजाब, मध्य प्रदेश, दिल्ली और उत्तर प्रदेश से तीस के लगभग पत्रकार आये थे। शिविर का संचालन इन्स्टिट्यूट के निदेशक श्री चंचल सरकार ने किया। हिंदी पत्रकारिता से सम्बंधित कई विषयों और समस्याओं पर विचार गोष्ठियाँ भी हुईं जिनमें श्री बाल-कृष्ण राव, श्री अक्षय कुमार जैन, श्री अशोक जी, श्री जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी और श्री मोहनलाल गुप्त ने विषय-प्रवर्तन किया। हमें भी इनमें भाग लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। एक दिन राजस्थान के राज्यपाल डा० सम्पूर्णानन्दजी ने भी पधार कर इस शिविर का गौरव बढ़ाया।

हिन्दी पत्रकारों के लिए यह अपने ढंग का पहिला शिविर था। इस आयोजन के लिए प्रेस इन्स्टिट्यूट हिन्दी पत्रकारों के धन्यवाद का पात्र है। श्री चंचल सरकार ने इस शिविर की व्यवस्था बड़े परिश्रम और योग्यता से की, तथा उसे सफल बनाने के लिए पूरा प्रयत्न किया। उसकी सफलता का श्रेय उन्हें और उनके सहयोगी श्री टंडन को है। इन्स्टिट्यूट के निदेशक होने तथा पत्रकारिता के अनुभव के कारण उनका शिविर का निदेशक होना सर्वथा उपयुक्त था, किंतु विचार-विनिमय को आरंभ करने तथा उसे संचालित करने के लिए यदि किसी वरिष्ठ हिन्दी पत्रकार की सहायता ली जाती तो अधिक अच्छा

होता। श्री सरकार अंग्रेजी के पत्रकार हैं। वे हिन्दी नहीं बोल सकते। इसलिए उन्हें अपना सारा काम अंग्रेजी में करना पड़ा। हिंदी पत्रकारों के शिविर या गोष्ठी का संचालन अंग्रेजी में होना हमें उचित नहीं मालूम पड़ा। अंग्रेजी के पत्रकार होते हुए भी श्री सरकार ने हिंदी पत्रकारों की समस्याओं में जो रुचि ली, उसे देखकर हमें प्रसन्नता हुई।

इस शिविर ने जो एक बड़ा काम किया वह यह कि ऐसे आयोजनों की आवश्यकता और उपयोगिता को प्रमाणित कर दिया। हमें विश्वास है कि आगत पत्रकारों को इससे अनेक प्रकार के लाभ हुए। सबसे बड़ा लाभ तो यह हुआ कि एक साथ इतने हिंदी पत्रकारों से भेंट हुई और कितनों ही से पहिली बार परिचय हुआ। हमने भिन्न भिन्न राज्यों के हिन्दी पत्रों और पत्रकारों की समस्याओं की अधिक गहरी जानकारी प्राप्त की। हिंदी पत्रकारिता के हित में हिन्दी पत्रकारों का एक अलग संगठन आवश्यक है जो सेवा सम्बंधी समस्याओं और आर्थिक मामलों पर विचार न करके हिंदी पत्रकारिता की समस्याओं पर ही विचार किया करे। सेवा सम्बंधी और आर्थिक समस्याओं के लिए वर्किंग जर्नलिस्ट फैडरेशन आदि संस्थाएँ हैं। हिंदी पत्रकारों को हिंदी पत्रकारिता को उन्नत करने का अलग से सुसंगठित प्रयत्न करना चाहिए। इस शिविर में कई महत्त्वपूर्ण समस्याओं पर विचार किया गया और विचार-विनिमय से बहुत सी समस्याओं का यदि हल नहीं तो रूप अवश्य ही स्पष्ट हो गया।

जयपुर के पत्रकार बंधुओं ने राजस्थान की गौरवशाली परम्पराओं के अनुरूप ही आगन्तुक सहयोगियों का स्वागत सत्कार किया। हम जयपुर के शिविर की अनेक मधुर स्मृतियाँ लेकर लौटे।

प्रति घंटे दो हजार मील चलनेवाला विमान–– साधारण वायुयान प्रति घंटे सौ-सवा सौ मील घंटे की चाल से चलते हैं। नये जेट विमानों की चाल पाँच सौ मील प्रति घंटे है। उनकी यही गति हमें आश्चर्यजनक मालूम होती थी किन्तु अब अमरीका ने एक ऐसा नया विमान बनाया है जो २,००० मील प्रति घंटे की चाल से चलता है ! दिल्ली से कलकत्ते की सीधी दूरी ९०० मील से कुछ कम ही है। अभी जो सबसे तेज विमान बीच में बिना कहीं रुके दिल्ली से कलकत्ते जाता है वह दो घंटे दस मिनट लेता है। किंतु यदि अमरीका के इस नये विमान में यात्रा की जाय तो दिल्ली से कलकत्ता पहुँचने में आध घंटा भी न लगेगा। प्रायः २७ मिनट में वहाँ पहुँच जायेंगे। कलकत्ते से लंदन वायुमार्ग से ४९५४ मील है, और लंदन से न्यूयार्क ३४५९ मील। अर्थात् यह नया विमान यात्री को कलकत्ते से लंदन ढाई घंटे में पहुँचा सकता है। और वहाँसे न्यूयार्क जाने में पौने दो घंटे ही और लगेंगे।

किंतु यह 'बिजली की गति' से चलनेवाला विमान अभी यात्रियों को उपलब्ध नहीं है। यह अमरीकी वायु-सेना के लिए है और अभी इसके सम्बन्ध की बहुत सी बातें गुप्त रखी गयी हैं। यह विमान पाँच वर्षों से बन रहा था। इसे बने काफी दिन हो चुके हैं। जिस कारखाने में यह बना है उसमें ७८,००० कर्मचारी काम करते हैं। रहस्यों को गुप्त रखने में अमरीका कितना पटु है यह इसीसे मालूम हो सकता है कि जब तक हाल ही में राष्ट्रपति जान्सन ने इसके बनने का समाचार नहीं प्रकाशित किया तब तक अमरीका ऐसे देश में भी किसीको इसके बनने और बनकर तैयार होने तथा उड़ते रहने की कानोंकान खबर नहीं हुई ! कहते हैं कि इस विमान की योजना बनाने, प्रयोग करने और तैयार करने में अमरीका ने पचास करोड़ डालर (मोटे रूप से प्रायः दो अरब पचास करोड़ रुपये) व्यय किये। और मजा यह है कि अमरीका के विशाल आय-व्यय में इतनी बड़ी रकम ऐसी मद में छिपी पड़ी रही कि किसीको उसका पता ही न लगा। इस वायुयान का विवरण गुप्त रखा गया है। संभव है कि उसकी गति दो हजार मील से भी कुछ अधिक हो। वह बहुत ऊँचाई पर उड़ता है और अनुमान किया जाता है कि सामान्यतः वह पृथ्वी से ९०,००० फुट से अधिक ऊँचाई पर उड़ान भरता है––अर्थात् पृथ्वीतल से १७ मील से अधिक मील तक की ऊँचाई पर ! उस ऊँचाई पर इतनी तेज गति से चलने पर अल्यूमिनियम का बना विमान बहुत गर्म हो जायगा। इस गर्मी से उसके जोड़ खुल जाने का भय है। इसलिए यह वायुयान टिटेनियम नामक धातु से बनाया गया है। इस धातु पर गर्मी का प्रभाव बहुत कम पड़ता है। वह इस्पात की तरह मजबूत होती है किन्तु उसका वजन इस्पात से ४० प्रतिशत कम होता है। आज इसका विवरण गोपनीय है क्योंकि वह सैनिक विमान है। ...

हवाई अरब के वायुयान के बनाने में अभियन्ताओं ने जो अनुभव प्राप्त किया है उसका उपयोग किसी न किसी दिन सामान्य व्यक्तियों की सुख-सुविधा के लिए भी अवश्य किया जायगा।

दक्षिण-पूर्वी एशिया में युद्ध की पैंतरेबाजी—एशिया के दक्षिण-पूर्व में एक विशाल प्रायद्वीप है जिसे हिन्द-चीन कहते हैं। इसमें कई देश हैं: थाईलैंड, कम्बोडिया, लाओस और वियतनाम। इनमें थाईलैण्ड को छोड़कर शेष तीनों उसी प्रकार फ्रांसीसियों के अधिकार में थे जिस प्रकार भारत अंग्रेजों के अधिकार में था। इसके दक्षिणी भाग में कम्बोज (अब कम्बोडिया) और अनाम हैं जिसका पुराना नाम चम्पा था। सुदूर अतीत में यहाँ के लोग हिन्दू थे और यहाँ हिन्दू राजाओं का राज्य था। बोरोबुदुर और अंगोरवाट के विशाल मंदिर अब भी हिन्दू-स्मारकों के रूप में वहाँ मौजूद हैं। ये सब देश 'विशाल भारत' के अंग थे। बाद में यहाँ बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ और तब से इन देशों का धर्म बौद्ध है। यह प्रदेश चीन से लगा हुआ है। चीनी सदैव ही से विस्तारवादी रहे हैं और उन्होंने दो बार इस प्रदेश पर अधिकार कर लिया था; किंतु दोनों ही बार यहाँके लोगों ने उन्हें मार भगाया। अनाम, वियतनाम, लाओस और कम्बोडिया में राजवंश शासन करने लगे। किंतु इनके आपसी झगड़ों का लाभ उठाकर फ्रांसीसियों ने इस प्रदेश पर अधिकार कर लिया।

जब द्वितीय महायुद्ध में फ्रांस परास्त हो गया और जब फ्रांस पर जर्मनों का अधिकार हो गया तब विची नामक स्थान में आधे फ्रांस की एक कठपुतली सरकार बन गयी। बाद में जब जापानी भी लड़ाई में कूद पड़े और उन्होंने फिलिपाइन, हांगकांग आदि पर अधिकार कर लिया तब विची की परास्त और असहाय सरकार ने जापानियों को हिन्द-चीन पर अधिकार कर लेने दिया।

राष्ट्रीयता की जो लहर एशिया में फैल रही थी उसका प्रभाव हिन्दचीन पर भी पड़ा, और वे लोग फ्रांसीसियों के राज्य को समाप्त करने के लिए कृतसंकल्प हो गये। किन्तु इस राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व कम्यूनिस्टों के हाथ में चला गया था। जब द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति पर जापान पराजित हुआ और फ्रांस अपनी दुरवस्था के कारण एकदम हिन्दचीन में नहीं पहुँच सका तब इन कम्यूनिस्ट नेताओं ने इस गड़बड़ी का लाभ उठा कर देश में अपनी स्थिति मजबूत कर ली। ये लोग उत्तरी वियतनाम में (जो चीन से लगा हुआ है) अधिक शक्तिशाली हो गये।

जब फ्रांस को थोड़ा अवकाश मिला तब उसने हिन्द-चीन के अपने साम्राज्य पर फिर अधिकार करने का प्रयत्न किया। किंतु तब तक वहाँ राष्ट्रीय भावना इतनी प्रबल हो चुकी थी, तथा लोग इतने शक्तिशाली हो चुके थे कि फ्रांस के आठ वर्ष तक लगातार प्रयत्न करने के बाद भी वह उस पर अधिकार न कर सका। इस बीच उत्तरी वियतनाम पर कम्यूनिस्टों का अधिकार हो चुका था। दक्षिणी वियतनाम (जिसमें अनाम भी सम्मिलित है), कम्बोडिया और लाओस स्वतन्त्र राज्य हो गये। जुलाई १९५४ में जिनेवा में संधि हुई जिसके अनुसार १७वीं अक्षांश रेखा के उत्तर में वियतमिन्ह (कम्यूनिस्ट) सरकार, और उसके दक्षिण में वियतनाम (गैरकम्यूनिस्ट) सरकार का अधिकार मान लिया गया। कई राष्ट्रों ने इस बात का विश्वास दिलाया कि वे किसी राष्ट्र के द्वारा इन देशों की सीमाओं का अतिक्रमण न होने देंगे। अमरीका इस संधि में सम्मिलित न था, किंतु बाद में उसने स्वेच्छा से यह घोषणा की कि वह स्वयं इन राज्यों की सीमाओं का अतिक्रमण न करेगा, और किसी अन्य के द्वारा उनके अतिक्रमण को अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति का भंग करना मानेगा।

वियतनाम के अधिकांश निवासी धर्मभीरु बौद्ध हैं। फ्रांसीसी राज्य में उन्हें कैथलिक ईसाई बनाने के संगठित प्रयत्न हुए और कई लाख बौद्ध ईसाई हो भी गये। उन्हें फ्रांसीसी शिक्षा तथा पक्षपात के कारण अच्छे सरकारी पद भी मिल जाते थे। किंतु बौद्ध हों या कैथलिक ईसाई, वियतनामी स्वभाव से सरल हृदय और दयालु होते हैं। उन्हें कम्यूनिज्म से घृणा है। अतएव जब उत्तरी वियतनाम पर कम्यूनिस्टों का अधिकार हो गया तब वहाँसे नौ लाख वियतनामी भाग कर दक्षिण वियतनाम में चले आये। इतने लोगों के एक साथ वहाँ आ जाने के कारण वहाँकी अर्थ-व्यवस्था गड़बड़ा गयी। जापानी अधिकार तथा आठ वर्ष के फ्रांसीसी युद्ध के कारण देश वैसे ही अस्त-व्यस्त हो रहा था। वहाँ फिर आंतरिक क्रांति हुई और सम्राट् को पदच्युत करके जनतन्त्र घोषित कर दिया गया।

उसका राष्ट्रपति न्गो दिन्ह डायम चुना गया जो एक कैथलिक ईसाई था। जब उसने देखा कि वियतनाम की अर्थ-व्यवस्था इतनी बिगड़ गयी है कि वह अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो सकता तब उसने अमरीका से सहायता माँगी।

इस बीच च्यांग काई शेक को निकाल कर चीनी कम्यूनिस्टों ने चीन पर अधिकार कर लिया था। उत्तरी वियतनाम में कम्यूनिस्ट सरकार थी ही। कम्यूनिस्ट सारे दक्षिण पूर्वी एशिया पर अधिकार करके सिंगापुर, मलाया आदि पर दाँत लगाये हुए थे जिससे वे भारतीय महासागर तक पहुँच जायें। अमरीका की विश्व-राजनीति का एक प्रमुख उद्देश्य यह है कि अब कम्यूनिस्टों को किसी नये देश पर अधिकार न करने दिया जाय। वियतमिन्ह की कम्यूनिस्ट सरकार (जिसे चीन की सहायता प्राप्त थी) लाओस और दक्षिणी वियतनाम पर अधिकार करना चाहती थी। कम्यूनिस्टों की नयी तरकीब यह नहीं है कि वे सीधे किसी देश पर आक्रमण कर दें। जिस देश पर वे अधिकार करना चाहते हैं उसमें वे कम्यूनिस्ट दल के द्वारा विद्रोह करा देते हैं और उनसे गुरिल्ला युद्ध करा देते हैं। वे इन विद्रोहियों को, हर प्रकार की सैनिक सहायता देते रहते हैं। यदि इन विद्रोहियों ने कुछ सफलता प्राप्त कर ली तो वे उनकी सरकार बनवा कर, तथा उसे मान्यता देकर उससे संधि कर लेते हैं और उसकी रक्षा के लिए (संधि के अनुसार) खुली सैनिक सहायता करने लगते हैं। दक्षिणी वियतनाम में भी इसी प्रकार कम्यूनिस्ट गुरिल्ला (जो या तो उत्तरी वियतनाम से आते थे या जिन्हें उससे सहायता मिलती थी) राष्ट्रपति डायम के लिए सिरदर्द हो गये। अतएव जब उसने अमरीका से सहायता माँगी तब कम्यूनिस्टों को आगे बढ़ने से रोकने की अपनी नीति के अनुसार अमरीका ने तुरन्त ही उसे सहायता देना स्वीकार कर लिया।

इस अमरीकन सहायता से दक्षिणी वियतनाम की आर्थिक व्यवस्था में बहुत कुछ सुधार हुआ, किंतु १९५९ के बाद से दक्षिणी वियतनाम में गुरिल्ला योद्धाओं की सरगर्मी बढ़ गयी। इसी बीच डायम की बौद्ध विरोधी नीति के कारण वहाँ क्रांति हो गयी और शक्ति सेनापतियों के हाथ में आ गयी। इससे दक्षिणी वियतनाम की सरकार उत्तर के गुरिल्लों को दबा नहीं सकी। वे अधिक शक्तिशाली हो गए और राजधानी (साइगोन) के पास तक आ कर लूटमार करने लगे। अमरीका दक्षिणी वियतनाम की सहायता के लिए अपार धन व्यय कर रहा है। अनुमान किया जाता है कि वह वहाँ १५ लाख डालर प्रतिदिन खर्च कर रहा है। उसके १६००० सैनिक, 'सलाहकार' के रूप में, वहाँ पड़े हैं। किन्तु २०-३० वर्षों से सतत युद्ध से परेशान शांतिप्रिय बौद्ध वियतनामी लड़ाई से ऊब गये हैं। देश में ऐसा कोई नेता नहीं है जो उन्हें अपनी रक्षा के लिए अनुप्राणित कर सके।

उन गुरिल्लाओं को जो दक्षिणी वियतनाम में आते हैं सारा प्रशिक्षण उत्तरी वियतनाम में मिलता है तथा यह भी विश्वास किया जाता है कि उन्हें सारी सैनिक सहायता भी वहींसे मिलती है। खदेड़े जाने पर वे उत्तरी वियतनाम में चले जाते हैं जहाँ उनका पीछा नहीं किया जा सकता। ऐसा भी संदेह किया जाता है कि इन गुरिल्लाओं में वियतनाम सेना के लोग भी होते हैं, अतएव सैनिक दृष्टि से इन्हें तभी रोका जा सकता है जब उत्तरी वियतनाम को इन्हें सहायता देने से रोका जा सके। किंतु जब वह जान बूझ कर उनको प्रेरणा और सहायता दे रहा है तब उसे रोकना संभव नहीं है। एक ही उपाय है। वह यह कि उत्तरी वियतनाम पर आक्रमण करके उसे पराजित किया जाय किंतु इसमें एक बड़ा खतरा यह है कि यदि चीन उसकी सहायता के लिए अपनी सेनाएँ भेज दे तो यह स्थानीय युद्ध न रह कर तीसरा विश्वयुद्ध हो जायगा। इसे सभी समझदार लोग बचाना चाहते हैं।

किंतु इधर जो घटनाएँ हुई हैं उनसे स्थिति बदल गयी है। उत्तरी वियतनाम के पूर्व में टॉनकिन की खाड़ी है। उसमें (खुले समुद्र में) एक अमरीकन विध्वंसक जहाज पर कुछ वियतनामी गनबोटों ने टारपीडो से आक्रमण किया। इसके दो-तीन दिन बाद अमरीकन युद्धपोतों पर फिर इसी प्रकार आक्रमण किया गया। इस पर अमरीका ने बदला लेने के लिए उत्तरी वियतनाम के नाविक जहाजी अड्डों पर भयंकर बमवर्षा करके उन्हें नष्ट कर दिया, और पैट्रोल की एक टंकी में आग लगा दी। यह कार्रवाई अत्यन्त उग्र है। यदि उत्तरी वियतनाम इसे चुपचाप सहन कर लेता है तो उसके गुरिल्लाओं द्वारा दक्षिणी वियतनाम को जो हानि पहुँचेगी, उसका इसी प्रकार बदला लिया जा सकता है। और यदि उत्तरी वियतनाम ने अमरीका के विरुद्ध कोई कड़ी कार्रवाई की तो प्रत्यक्ष युद्ध आरंभ हो जायगा। किंतु उत्तरी वियतनाम अमरीका से अकेला नहीं लड़ सकता। वह तभी मैदान में आवेगा जब चीन भी लड़ने को तैयार होगा। चीन चाहे जितनी कड़ी भाषा का प्रयोग करे, अभी ऐसा नहीं मालूम होता कि वह अमरीका ऐसे शक्तिशाली राष्ट्र से लड़ने की स्थिति में है। इसलिए वियतनाम की ये घटनाएँ केवल स्थानीय महत्त्व की ही मालूम होती हैं।



रस की परिभाषा

डा० नगेन्द्र

रस के सम्पूर्ण विवेचन का आधार है भरत का यह प्रसिद्ध सूत्र :

तत्र विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः ।

(नाट्यशास्त्र–काव्यमाला ४२, १९४३, पृ० ९३) ।

यह वस्तुतः लक्षण नहीं है, यद्यपि स्वयं अभिनवगुप्त ने इसे लक्षण माना है :

एवं क्रमहेतुमभिधाय रसविषयं लक्षणसूत्रमाह ।

इस प्रकार (उद्देश्य में) क्रम (रखने) के हेतु को बताकर रसविषयक लक्षण सूत्र को कहते हैं। (हिन्दी अभिनव-भारती, पृ० ४४२) ।

इस सूत्र में मूलतः रस की निष्पत्ति का आख्यान है, स्वरूप का नहीं। परन्तु रस के स्वरूप का विवेचन भी इसी में निहित है और आगे चलकर इसी के आधार पर उसका पल्लवन हुआ है। स्वयं भरत ने अपने मन्तव्य को इस प्रकार स्पष्ट किया है :

यथा हि नानाव्यंजनौषधिद्रव्यसंयोगाद्रसनिष्पत्तिर्भवति यथा हि गुडादिभिर्द्रव्यैर्व्यंजनैरोषधिभिश्च षाडवादयो रसा निवर्तन्ते, तथा नानाभावोपगता अपि स्थायिनो भावा रसत्वमाप्नुवन्तीति ।

अत्राह—रस इति कः पदार्थः। उच्यते। आस्वाद्यत्वात्। कथमास्वाद्यते रसः। यथा हि नानाव्यंजनसंस्कृतमन्नं भुंजाना रसानास्वादयन्ति सुमनसः पुरुषा हर्षादींश्चाधिगच्छन्ति तथा नानाभावाभिनयव्यंजितान् वागंगसत्वोपेतान् स्थायिभावानास्वादयन्ति सुमनसः प्रेक्षकाः हर्षादींश्चाधिगच्छन्ति तस्मान्नाट्यरसा इत्यभिव्याख्याताः। (नाट्यशास्त्र काव्यमाला पृ० ९३)

—जिस प्रकार नाना प्रकार के व्यंजनों, ओषधियों तथा द्रव्यों के संयोग से (भोज्य) रस की निष्पत्ति होती है, जिस प्रकार गुडादि द्रव्यों, व्यंजनों और ओषधियों से "षाडवादि" रस बनते हैं, उसी प्रकार विविध भावों से संयुक्त होकर स्थायी भाव भी (नाट्य) "रस" रूप को प्राप्त होते हैं।

यहाँ प्रश्न उठता है रस कौन-सा पदार्थ है अथवा रस को रस क्यों कहा जाता है? उत्तर—आस्वाद्य होने से अर्थात् जो आस्वाद्य हो वह रस है। जिस प्रकार नानाविध व्यंजनों से संस्कृत अन्न का उपभोग करते हुए प्रसन्नचित्त पुरुष रसों का आस्वादन करते हैं और हर्षादि का अनुभव करते हैं इसी प्रकार प्रसन्न प्रेक्षक विविध भावों एवं अभिनयों द्वारा व्यंजित—वाचिक, आंगिक तथा सात्त्विक (मानसिक) अभिनयों से संयुक्त स्थायी भावों का आस्वादन करते हैं तथा हर्षादि को प्राप्त होते हैं। इसलिए नाट्य के माध्यम से आस्वादित होने के कारण ये नाट्य रस कहलाते हैं।

उपर्युक्त विवेचन का सारांश इस प्रकार है :

१—रस आस्वाद नहीं है, आस्वाद्य है अर्थात् अनुभूति नहीं है अनुभूति का विषय है : नवीन शब्दावली में, रस विषयिगत नहीं है, विषयगत है।

२—विविध भावों अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव से संयुक्त एवं त्रिविध अभिनयों द्वारा व्यंजित स्थायी भाव ही रस (या नाट्यरस) में परिणत हो जाता है। जिस प्रकार व्यंजन आदि से संस्कृत अन्न ही भोज्य रस (षाडवादि) का रूप धारण कर लेता है, इसी प्रकार नाट्य-सामग्री (विविध भाव+त्रिविध अभिनय) द्वारा प्रस्तुत स्थायी भाव ही नाट्य रस बन जाता है। यहाँ स्थायी भाव अन्न के समकक्ष है और नाट्य-सामग्री व्यंजन, ओषधि (मसाले) आदि के।

स्थायी भाव=अन्न

नाट्य-सामग्री=व्यंजनादि

अभिनवगुप्त ने इस दृष्टान्त के अवयवों में भी संगति स्थापित करने का प्रयत्न किया है (देखिए : हिन्दी अभिनव-भारती पृ० ४९६), किन्तु वह न अधिक समीचीन है और न आवश्यक ही : उससे मूल तथ्य उलझ जाता है, स्पष्ट नहीं होता।

३—स्थायी भाव 'रस' नहीं है, किन्तु 'रस' का आधार है क्योंकि नाट्य-सामग्री से संयुक्त होकर वही तो 'रस' बन जाता है—जैसे अन्न रस नहीं है किंतु रस का आधार है क्योंकि व्यंजन आदि से संस्कृत होकर वही रस बन जाता है। उदाहरण के लिए रति स्थायी भाव अपने मूल रूप में श्रृंगार रस नहीं है, परन्तु नायक-नायिका, स्मिति-कटाक्ष, हर्ष-वितर्क आदि के प्रसंग में

फा० ४

परिबद्ध होकर त्रिविध अभिनयों के द्वारा जब वह रंगमंच पर प्रस्तुत किया जाता है तो श्रृंगार रस का रूप धारण कर लेता है।

४--यहाँ स्थायी भाव से अभिप्राय सहृदय या कवि के स्थायी भाव का न होकर नायक के स्थायी भाव का है और नायक चूँकि लोक का प्रतिनिधि है, अतः नायक के स्थायी भाव का अर्थ है लोक-सामान्य स्थायी भाव।

५--इस प्रकार रस कला का आस्वाद नहीं है स्वयं कला अथवा कलात्मक स्थिति है जो आस्वाद का विषय है।

६--सहृदय इसका आस्वादन करता है परन्तु उसका यह आस्वाद रस रूप नहीं होता, हर्षादि रूप ही होता है।

७--हर्षादि के दो अर्थ किये जाते हैं--एक तो यह कि रसास्वाद केवल आनन्दमय ही नहीं होता विभिन्न स्थायी भावों के अनुसार विभिन्न प्रकार का होता है, दूसरा यह कि भरत ने 'आदि' के द्वारा हर्षविरोधी अर्थात् कटु अनुभूतियों की व्यंजना नहीं की वरन् कुतूहल आदिक आनन्दमयी अनुभूतियों की ओर ही इंगित किया है। प्राचीनों में रामचन्द्र गुणचन्द्र पहले मत के प्रवर्त्तक हैं और अभिनवगुप्त दूसरे मत के। आधुनिक विद्वानों का बहुमत धीरे-धीरे पहले अर्थ के ही पक्ष में होता जा रहा है, यद्यपि आनन्दवादी मत के समर्थकों की भी संख्या कम नहीं है--हम स्वयं इसी मत के पोषक हैं।

विषयगत परिभाषा

इस प्रकार भरत के अनुसार नानाभावोपगत स्थायी भाव ही रस है--और स्पष्ट शब्दावली में विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों से संयुक्त एवं वाचिक, आंगिक तथा सात्त्विक अभिनयों से व्यंजित स्थायी भाव ही रस है। अर्थात् रस एक प्रकार की भावमूलक कलात्मक स्थिति है जो कवि-निबद्ध विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के प्रसंग से नाट्य-सामग्री के द्वारा रंगमंच पर उपस्थित हो जाती है। उदाहरण के लिए रम्य तपोवन के दृश्यों से सज्जित रंगमंच पर दुष्यंत और शकुन्तला (विभाव) का अभिनय करनेवाले नट-नटी जब वाचिक, आंगिक तथा सात्त्विक अभिनयों के द्वारा अनुभाव, व्यभिचारी आदि की अभिव्यक्ति करते हुए रति स्थायीभाव को सर्वांगरूप में प्रस्तुत करते हैं तो एक रमणीय, भावमूलक स्थिति उत्पन्न हो जाती है जो सहृदय प्रेक्षक के चित्त में हर्ष, कुतूहल आदि जागृत करती है। यह रमणीय भावमूलक स्थिति ही भरत के अनुसार 'रस' है; सहृदय की अनुभूति इससे भिन्न है--वह तो इसका आस्वाद है जो हर्ष, कुतूहल आदि के रूप में अनुभूत होता है। यह स्थिति नाट्य-सौन्दर्य मात्र भी नहीं है--अर्थात् केवल नाट्य, अलंकार और वस्तु का सौन्दर्य भी रस नहीं हो सकता। **नाट्य-सौन्दर्य और काव्य-सौन्दर्य के माध्यम से स्थायी भाव की उपस्थिति ही रस है।**

रस की यह परिभाषा विषयगत है और भरत के विवेचन पर आधृत होने के कारण मौलिक भी। इसे पूर्व काल में अलंकारवादियों ने इसे काव्य के क्षेत्र में भी इसी रूप में ग्रहण कर लिया और परिभाषा का रूप किञ्चित् परिवर्तित होकर इस प्रकार बन गया :--शब्द-अर्थ के सौन्दर्य के माध्यम से विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों से संयुक्त स्थायी भाव ही रस का रूप धारण कर लेता है।

प्राक्प्रीतिर्दशिता सेयं रतिः श्रृंगारतां गता।
रूपबाहुल्ययोगेन तदिदं रसवद्वचः। (काव्यादर्श २-२८१)

विभावादि से अपुष्ट रति केवल 'प्रीति' (नामक 'भाव') ही होती है किन्तु विभाव, अनुभाव और संचारी से परिपुष्ट होकर श्रृंगार रस में परिणत हो जाती है।

यहाँ भी रस का स्वरूप विषयगत ही है अर्थात् वह आस्वाद्य रूप है, आस्वाद नहीं है।

विषयिगत परिभाषा

भरत-सूत्र के व्याख्याता आचार्यों के विवेचन के फलस्वरूप रस का स्वरूप क्रमशः विषयिगत होता गया और वह 'आस्वाद्य' से 'आस्वाद' बन गया। इस परिवर्तन का सर्वाधिक दायित्व अभिनवगुप्त पर है। अभिनवगुप्त शैवाद्वैतवाद के प्रसिद्ध आचार्य थे अतः उन्होंने अपनी दार्शनिक मेधा के द्वारा रस-विवेचन को भी शैवाद्वैत सिद्धान्त के रंग में रँग दिया। उनके अनुसार रस का अर्थ है आनन्द और आनन्द विषयगत न होकर आत्मगत ही होता है : विषय तो आत्म-परामर्श या आत्मास्वाद का माध्यम मात्र है जिसके द्वारा प्रमाता संविद्-विश्रान्ति लाभ करता है। यह संविद्-विश्रान्ति ही आनन्द है। अतः रस नाट्यगत नहीं हो सकता--नाट्य तो संविद्-विश्रान्ति रूप रस का माध्यम मात्र ही हो सकता है। इस भूमिका में रस के आनन्देतर रूप की कल्पना का स्वतः ही निराकरण हो गया। अभिनवगुप्त से लेकर पण्डितराज जगन्नाथ तक रस का यही रूप स्वीकार किया गया

...त्या का आधार थोड़ा-बहुत बदल गया, किन्तु प्रति-
...ह वही रहा।

अभिनव ने रस का स्वरूप-विश्लेषण इस प्रकार
...या है :

"नट के द्वारा किये जानेवाले (नटगत) अभिनय
...प्रभाव से प्रत्यक्ष-सा दिखलाई देने वाला (साक्षा-
...त्कारायमाण), एकाग्र मन की निश्चलता के कारण अनु-
...भव होनेवाला, समस्त नाटकों और किसी-किसी काव्य-
...विशेष से (भी) प्रकाशित होनेवाला अर्थ नाट्य कह-
...लाता है। वह यद्यपि (भिन्न-भिन्न प्रकार के नायक-नायिका
...आदि आलंबन तथा उद्दीपन विभावों के अपरिसंख्येय
...होने के कारण) अनन्त विभावादि रूप है तथापि समस्त
...जड़ विभावों के ज्ञान में (पर्यवसित होने से) और
...उस (ज्ञान) का भोक्ता (आलम्बन विभाव रूप किसी
...व्यक्ति-विशेष) में (पर्यवसान होने से) और (इस प्रकार
...अनेक) भोक्ताओं के प्रधान भोक्ता (अर्थात् नायक)
...में पर्यवसान होने के कारण नायक कहलानेवाले भोक्ता-
...विशेष के (रत्यादि रूप) स्थायिभावात्मक चित्तवृत्ति
...स्वरूप (अर्थ नाट्य) होता है।

अभिनव० और वह (प्रधान-चित्तवृत्ति रूप नायक
...की) एक चित्तवृत्ति, लौकिक गीतों के (नाटक या काव्य
...में आये हुए) गेय पदादि, लास्य (नृत्य-विशेष) आदि
...दस अंगों से युक्त और स्वीकृत लक्षण वाले, गुण-
...अलंकार-गीत वाद्य आदि के संयोग द्वारा अत्यंत सौन्दर्य
...प्राप्त काव्य की महिमा तथा नट के द्वारा की जाने
...वाली प्रयोग-परम्परा एवं अभ्यास-विशेष के प्रभाव से,
...(ये विभाव आदि मेरे हैं या दूसरे के हैं इस प्रकार के)
...स्वकीय परकीय भाव से रहित हो जाती है, इसलिए साधा-
...रणीकरण हो जाने से (नायक की अपनी चित्तवृत्ति)
...सामाजिकों को भी अपनी सत्ता के भीतर समाविष्ट करती
...है, और नायक तथा सामाजिक की चित्तवृत्ति के तादा-
...त्म्य (अभेद-साधारणीकरण) होने के कारण ही अनुमान
...एवं आगम (रूप परीक्षात्मक) एवं (इन्द्रियसंयोगादि
...साधनों की अपेक्षा न रखनेवाले अर्थात् इन्द्रियसन्नि-
...कर्ष आदि के बिना ही उत्पन्न हो जानेवाले) योगिप्रत्यक्ष
...आदि साधन (करणक) तटस्थ (उदासीन, रसादि का अनु-
...भव न करनेवाले) प्रमाता एवं प्रमेय से विलक्षण तथा
...परकीय लौकिक चित्तवृत्ति से भिन्न रूप से प्रतीत होने-
वाली, (नायक-विशेष के) अपने परिमित स्वरूप के आश्रय
से प्रतीत न होने के कारण, लौकिक प्रमदादि से उत्पन्न
अपनी रति और शोक के (वर्णन के) समान (लज्जा-
नाशादि रूप रसविरोधिनी) अन्य चित्तवृत्ति के उत्पादन
में अक्षम होने से ही निर्विघ्न अनुभूति की विश्रान्ति रूप
आस्वादन नाम से कहे जानेवाले व्यापार के द्वारा गृहीत
होने के कारण (रस्यते इति रसः इस व्युत्पत्ति के अनुसार)
'रस' शब्द से कही जाती है।[1]

अभिनव की व्याख्यान-शैली में अर्थ-गरिमा के साथ शब्दाडम्बर का भी विचित्र संयोग है—अतः उपर्युक्त उद्धरण का विवेचन करना आवश्यक है। लोक-सामान्य के प्रतिनिधि प्रधान पात्र की चित्तवृत्ति रूप स्थायी भाव काव्य-सौन्दर्य और नाट्य-सौन्दर्य के प्रभाव से साधारणीकृत होकर सामाजिक की चित्तवृत्ति से तादात्म्य स्थापित करता हुआ, निर्विघ्न अर्थात् देश-काल की सीमा से मुक्त, संविद्विश्रान्ति रूप में रसनीय होने के कारण रस बन जाता है। एक उदाहरण लीजिए :—कुशल नट-नटी दुष्यंत-शकुन्तला के रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित होते हैं। ये तपोवन की रमणीय कुंजों में पहले-पहल मिलते हैं (विभाव)। दोनों एक दूसरे के आह्लादकर सौन्दर्य को देखकर चकित हो जाते हैं और तृषित-उत्सुक नेत्रों से एक-दूसरे

१—तत्र नाट्यं नाम नटगताभिनयप्रभावसाक्षात्कारायमाणैकघनमानसनिश्चलाध्यवसेयः समस्तनाटकान्यतमकाव्यविशेषाच्च द्योतनीयोऽर्थः। स च यद्यप्यनन्तविभावाद्यात्मा तथापि सर्वेषां जडानां संविदि, तस्याश्च भोक्तरि, भोक्तृवर्गस्य च प्रधाने भोक्तरि पर्यवसानात्, नायकाभिधानभोक्तृविशेषस्थायिचित्तवृत्तिस्वभावः।

सा चैकचित्तवृत्तिः स्वकीय-परकीयमिति प्रतीयमानानन्तचित्तवृत्त्यन्तरशतविशेषितालौकिकगीतगेयपदादिलास्यांगदशकोपजीवनस्वीकृतलक्षणगुणालंकारगीतातोद्यादिसम्यक्सुन्दरीभूतकाव्यमहिमप्रयोगमालाभ्यासविशेषाश्रयत्वात्। स्वपरभावात् प्रच्याविता, अतएव साधारणीभूततया सामाजिकानपि स्वात्मसद्भावेन समावेशयन्ती, तादात्म्याद्देव च अनुमानागमयोगिप्रत्यक्षादिकरणक-तटस्थप्रमातृप्रमेयपरकीयलौकिकचित्तवृत्तिविलक्षणतया निर्भासमाना, परिमितस्वात्माश्रयतानिर्भासनाविरहाच्च लौकिकप्रमदादिजनितनिजरतिशोकादिवत् चित्तवृत्त्यन्तरजननाक्षमा अत एव निर्विघ्नस्वसंवेदनात्मकविश्रान्तिलक्षणेन रसनापरपर्यायेण व्यापारेण गृह्यमाणत्वाद् रसशब्देनाभिधीयते।

—हिं अ० भा०—आ० विश्वेश्वर (पृ० ४२७–४२८)

की ओर देखते हैं—अनिच्छापूर्वक जाती हुई शकुन्तला चोरी-चोरी दुष्यन्त पर दृष्टिपात करती है (अनुभाव)। वियोग में कभी उत्कण्ठा और कभी निराशा से व्यग्र होकर वे एक-दूसरे से मिलने को आतुर हो उठते हैं (व्यभिचारी भाव)। सौभाग्य से शकुन्तला, सखी की सहायता से, पत्र द्वारा दुष्यंत पर अपना प्रेम प्रकट करने का अवसर प्राप्त करती है। इतने ही में दुष्यंत वहाँ आकर सहसा उपस्थित हो जाता है और इस प्रकार दोनों प्रेमियों का संयोग हो जाता है। जब यह सब (विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी आदि का प्रपंच) काव्य, संगीत, रंग-वैभव आदि की सहायता से मंच पर प्रदर्शित किया जाता है, तो प्रेक्षक के चित्त में वासना रूप से स्थित रति स्थायी भाव जागृत होकर उस चरम सीमा तक उद्दीप्त हो जाता है जहाँ प्रेक्षक वीतविघ्न होकर अर्थात् व्यक्ति, देशकाल का अंतर भूलकर, प्रस्तुत प्रसंग के साथ तन्मय हो जाने से आत्मविश्रान्तिमयी आनन्द-चेतना में विभोर हो जाता है—यही आनन्द-चेतना रस है।—इस प्रकार, संक्षेप में, अभिनव के अनुसार—नाट्यादि के सेवन से, भाव की भूमिका में, आत्मविश्रांतिमयी आनन्द-चेतना ही रस है।

अभिनव के उपरान्त मम्मट ने रस की इसी परिभाषा का व्याख्यान किया और पंडितराज जगन्नाथ तक वह निरन्तर चलती रही—अन्तर इतना ही हुआ कि पंडितराज ने शैव दर्शन के स्थान पर आवरण की भग्नता के लिए नव्य न्याय और वेदान्त का आश्रय लिया।

सामान्य अर्थ

संस्कृत काव्यशास्त्र में रस का सामान्य काव्य-सौन्दर्य के अर्थ में भी प्रयोग मिलता है। उदाहरण के लिए दण्डी ने माधुर्य गुण-विवेचन में रस का इसी अर्थ में प्रयोग किया है :—

१—मधुरं रसवद् वाचि वस्तुन्यपि रसस्थितिः।
का० द०

२—कामं सर्वोऽप्यलंकारो रसमर्थे निषिचतु।
का० द०

यहाँ वाणी में अर्थात् शब्द में रस की स्थिति और अलंकार द्वारा अर्थ में रस का निषेक—ये दोनों तथ्य इस बात की ओर इंगित करते हैं कि प्रस्तुत प्रसंग में रस का अर्थ भावमूलक काव्य-सौन्दर्य न होकर अभिव्यक्ति का सौन्दर्य मात्र है। वास्तव में रस का यह अर्थ परिनिष्ठित और पारिभाषिक नहीं है। आज भी इसका प्रचलन यथावत् है—अभिव्यक्ति के चमत्कार के लिए रस शब्द का प्रयोग व्यवहार में ही नहीं साहित्य में भी बराबर होता है, किन्तु, यह लक्षणा के द्वारा मूल अर्थ का विस्तार ही है क्योंकि रस का अर्थ केवल आह्लाद नहीं है—रागात्मक आह्लाद है, जो शब्दार्थ के चमत्कार में अनिवार्यतः नहीं रहता।

अतः संक्षेप में रस के तीन अर्थ हैं :—

१—भावमूलक काव्य-सौन्दर्य (भाव की कलात्मक अभिव्यंजना)।

२—भावमूलक काव्य-सौन्दर्य की अनुभूति।

३—सामान्य काव्य-सौन्दर्य।

इनमें से तीसरा अर्थ परिनिष्ठित नहीं है अपितु शास्त्रीय न होकर केवल व्यावहारिक है।

पाहन उबारते

श्री भोजराज चतुर्वेदी

नयन थक चले पथ निहारते।
श्वेत लगे होने कच काले, नियमित धूसर मग बुहारते।
स्वप्न-क्षितिज पर संगम का भ्रम,
सुख अभिनय के निष्फल उपक्रम,
अश्रु-गीत के करुण जलद नित, दिव्य, अमिट पद-छवि निखारते।
पागल करती प्रीत मादक ध्वनि,
भ्रम चुभती पीड़ा बन जाता, किन्तु न तुम मुझको पुकारते।
कितने तो रूपों में आया,
पर न कभी भी तुम को भाया,
लग, जल, धुल कर जनम बिताये भीतर-बाहर छवि निखारते।
चिति छीनो, फिर पत्थर कर दो,
जड़ता, अवसादों के वर दो,
सीख चुका, क्यों चरण तुम्हारे, छू मुझ-से पाहन उबारते।

पश्चिमोत्तर प्रांत का हिन्दी गजट

डा० मोती बाबू

१८ अक्तूबर, १९४७ ई० से संयुक्त प्रांतीय सरकार का गजट हिन्दी में भी प्रकाशित होने लगा। किन्तु इस प्रांत में हिन्दी गजट के प्रकाशन का यह पहला अवसर नहीं था। लगभग एक शताब्दी पूर्व तत्कालीन पश्चिमोत्तर प्रांत का गजट भी हिन्दी में निकल चुका था। राज्य द्वारा बनायी गयी विधि और सरकारी आदेशों के प्रकाशन का मुख्य साधन सरकारी गजट होता है। अतः प्रत्येक राज्य के लिए सरकारी गजट का प्रकाशन आवश्यक हो जाता है। पश्चिमोत्तर प्रांत के सृजन के बाद शीघ्र ही, अर्थात् १८४० ई० से, उस प्रांत का एक अपना सरकारी गजट निकलने लगा। राजकाज की भाषा अंगरेजी होने के कारण इस गजट का अँगरेजी में होना स्वाभाविक था। किन्तु इसमें यत्र-तत्र हिन्दी का भी प्रयोग मिलता है। इसके अतिरिक्त पर्याप्त समय तक उस प्रांत का गजट हिन्दी में भी निकला। इस हिन्दी गजट की कोई प्रति प्रयत्न करने पर भी प्राप्त नहीं हो सकी है, किन्तु अँगरेजी गजट में प्राप्य सामग्री के आधार पर इसका परिचय दिया जा सकता है।

६ अप्रैल सन् १८५२ ई० के अँगरेजी गजट के पृष्ठ ३६७ पर हमें निम्नलिखित हिन्दी विज्ञप्ति[1] मिलती है:

गवर्नमेंट का विचार

जाना गया है कि सरकारी कानून और आईन जो गवर्नमेंट गजट के द्वारा प्रकाश किये जाते हैं रियाया में ऐसे प्रगट नहीं होते जैसे कि चाहियें कारण इसका कुछ तो यह है कि वह गजट बड़ा बहुत होता है और कुछ यह कि उसका हिन्दी भाषा में उल्था नहीं छापा जाता इसलिये विचार हुआ कि उस गजट का उरदू और हिन्दी उल्था इस रीत से छपा करे कि हर एक पृष्ठ पै एक ओर हिन्दी और एक ओर उरदू हुआ करे॥

२—इस गजट का नाम हिन्दी गजट होगा और वह महीने में एक बार छपा करेगा और पश्चिम देश के लिये जो कोई आईन जारी होगी अथवा कोई आज्ञा या इश्तहार ऐसा दिया जायगा कि जिसके जानने से प्रजा का प्रयोजन निकलै वे सब इस गजट में प्रकाश किये जायगे॥

३—हिन्दी गजट मुफ्त दिया जायगा उन सब सरिश्तों को जो हाल में गवर्नमेंट गजट पाते हैं और कोतवालों को और थानेदारों को और उन पुलिस अफसरों को जो अपने आप पुलिस का अधिकार रखते हैं और उनके पास जहाँ मोहररर नियुक्त हों और बड़ी सड़क के पड़ावों और माली अफसरों को और सरकारी दवाईखानों को और सरकार के तहसीलदारी पाठशालों को॥

४—साहिबान कलक्टर और मजिस्ट्रेट को उचित होगा कि जिन जिन स्थानों को हिन्दी गजट सिरकार की तरफ से जाय वहाँ ऐसा बन्दोबस्त करें कि जिस्से वह के सब लोग उन गजटों को देख सकें और विशेष करके ऐसा कि जिस्से बड़ी सड़क के स्थानों पै ब्योपारी और मुसाफिर अर्थात् बटोही भी उनको देख सकें।

५—जो कोई हिन्दी गजट मोल लेना चाहेगा उस्से २) दो रुपया बरसगंड़ी या ।) महीना लिया जायगा और अगर वह पेशगी दाम देगा तो ।) जो कोई उस गजट को मोल लेना चाहे वह आगरे में जान पार्कस लेडली साहिब गवर्नमेंट गजट के सम्पादक से दरखास्त करे॥

हुक्म हुआ कि यह विचार सब के जताने के हेतु आगरा गवर्नमेंट गजट और हिन्दी गजट के द्वारा प्रकाश किया जाय॥"

इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि हिन्दी गजट अप्रैल, १८५२ ई० से निकलना प्रारंभ हो गया। दिसम्बर १८५४ ई० में इसकी वितरण-व्यवस्था में कुछ परिवर्तन किया गया[1]। आगे चल कर यह साप्ताहिक

१—जनरल डिपार्टमेण्ट संख्या ५८८ दिनांक ३१ मार्च सन् १८५२ ई०।

१—आगरा गवर्नमेण्ट गजट दिनांक १९ दिसंबर सन् १८५४ ई० के पृष्ठ १०२६ पर प्रकाशित सदर रेवेन्यू बोर्ड का परिपत्र संख्या १६, दिनांक ८ दिसंबर १८५४ ई० देखियें।

रूप में निकलने लगा। प्रतीत ऐसा होता है कि १८५७ ई० के स्वातंत्र्य-युद्ध के कारण इसके प्रकाशन में बाधा उपस्थित हो गयी थी। किन्तु जनवरी, १८६१ ई० में इसका प्रकाशन फिर प्रारंभ हो गया[1]। कुछ वर्षों तक यह गजट इसी प्रकार निकलता रहा। आगे उर्दू का प्रयोग बढ़ने पर हिन्दी गजट अनावश्यक समझकर बन्द कर दिया गया। स्वयं उर्दू गजट कुछ समय तक अँगरेजी के साथ--अँगरेजी-उर्दू गजट के रूप में--निकला और फिर अलग, किन्तु अन्त में वह भी बन्द हो गया और संयुक्त प्रांत का गजट केवल अँगरेजी में निकलता रहा।

पश्चिमोत्तर प्रांत के इस हिन्दी गजट की भाषा का अनुमान हम तत्कालीन अँगरेजी गजट में प्रयुक्त हिन्दी से लगा सकते हैं, जिसके कुछ उद्धरण यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं:--

(१)

"१ प्रकरण इन दिनों में जो प्रजा की शिक्षा के लिये संचारित उपाय हैं उनकी पूछपाछ से निश्चित हुआ है कि यहाँ के लोगों में बड़ी मूर्खता फैली है और ऐसे कोई उपाय संचरित नहीं हुए हैं जो दोनों के पढ़ने के लिये उपयुक्त हों वरन विद्या के पढ़ने का साहित्य थोड़ा और जो पढ़ाया जाता है सो भी कच्चा और उस्से कुछ काम नहीं निकल सकता॥ २ प्रकरण अब जो उपाय ठहराये गये हैं उनसे प्रयोजन यह है कि ऐसी रीत चलानी चाहिये जिस्से लोग मूर्खता रूप निद्रा से जाग कर विद्या पढ़ने में आपसे आप स्नेह कर मन लगावें और आलस तज विद्या का अभ्यास करें और यह भी चाहते हैं कि पढ़ाने वाले और पुस्तकों के मिलने का उपाय किया जाय और जो पढ़ाने वाला अपने सिखाने के काम में श्रम करेगा और विद्यार्थी विद्या पढ़ने में जैसा चाहिये वैसा मन लगावेगा उसे उचित पारितोषिक मिलेगा और विद्या उपार्जन की प्रशंसाओं से प्रसन्न किया जायगा......"[2]

(२)

"पश्चिम और उत्तर के बड़े शहरों का भाव-पत्र॥

सब अच्छी से अच्छी जिनसों का भाव जो महीने के आखरी दिन को बाजार में था सो नक्शे में जो इसके साथ हैं लिखा है और जिनसों के पास (थ) अक्षर का निशान है उनका भाव थोक बिक्करी और मन का हिसाब लिखा है और बाकी का भाव रेजगारी बिक्करी के हिसाब से है और सिक्के और बांट कंपनी के हैं॥...."[1]

(३)

"जो माँगने समय उक्त कर दिया न जावे तो कर उघाने वाले अहलकार इस बात के अधिकारी हैं कि बोझे व पशुओं को जिनके मध्ये उक्त कर का लेना उचित है वा उनका उतना माल जो कर चुकाने के लिये प्रभित हो गिरफ्तार करें और उक्त कर गिरफतारी के खर्चे समेत चौबीस घंटे तक चुक न जावे तो चाहिये कि मामला कर की उघाई के प्रबंधकर्ता के सामने पेश किया जाय और उक्त प्रबंधकर्ता जायदाद को जो कर चुक जाने के लिये गिरफ्तार हुई हो उक्त कर के प्राप्त करने के मनोरथ से और संपूर्ण खर्च के प्राप्त करने के लिये जो कर न देने और गिरफतारी और नीलाम के मध्ये उठा हो नीलाम करेगा और जो कुछ बच रहे माल के स्वामी को माँगने पर फेर देगा और उक्त अधिकारी जायदाद के प्राप्त होने पर इस बात का इश्तिहार प्रचलित करेगा कि अगले दिन मध्याह्न के समय इस नियम से कि उस दिन इतवार या और कोई छुट्टी का दिन ना हो उक्त जायदाद नीलाम की जायगी पर नियम यह है कि जो किसी समय नीलाम के प्रारंभ होने से पहले कुर्क किये हुए माल का मालिक संपूर्ण खर्चा जो हुआ हो और दूना कर जो उससे लेना आवश्यक था देना अंगीकार करे तो उक्त अधिकारी तुरंत जायदाद को कुर्की से छोड़ दे।"[2]

--अधिनियम संख्या ८, सन् १८५१ ई० की धारा ३॥

१--१८६१ ई० के आगरा गवर्नमेण्ट गजट के पृष्ठ ३७१ पर विज्ञप्ति देखिये।

२--१८५० ई० के आगरा गवर्नमेण्ट गजट के पृष्ठ ११५-११७ पर प्रकाशित जनरल डिपार्टमेंट की विज्ञप्ति संख्या १४९-अ, दिनांक ९ फरवरी सन् १८५० ई०।

१--यह भावपत्र कई वर्षों तक बराबर हिन्दी में निकलता रहा है, उदाहरणार्थ १८५४ ई० के आगरा गवर्नमेण्ट गजट के सप्लीमेण्ट देखिये।

२--१८५९ ई० के पश्चिमोत्तर प्रान्तीय गजट का पृष्ठ ८७४ इत्यादि।



चित्रकार केशवदास की एक छवि

डा० आनन्दकृष्ण

केशवदास अकबर की सभा के प्रसिद्ध चित्रकार थे। अबुलफज्ल अपनी प्रसिद्ध आईन-अकबरी में उनका उल्लेख उस समय के बारह श्रेष्ठ चित्रकारों में करता है। अकबर ने प्रायः १५६० ई० में एक नई चित्र शैली प्रवर्तित की और इस प्रकार मुगल शैली की नींव रखी जो प्रायः साढ़े तीन सौ वर्षों तक अपना उत्थान पतन देखती, आज भी टिमटिमा रही है।

इस शैली का सबसे अधिक उदात्त स्वरूप अकबर काल से प्राप्त होता है। यह एक नवजागरण का युग था। देश अकबर के नेतृत्व में एक नई करवट ले रहा था, जिसका प्रमाण संगीत, साहित्य, कला आदि सभी क्षेत्रों में मिलता है। अकबर भारतीयों से भी बढ़कर भारतीय था——भारतीयता का सच्चा पुजारी। आज हम भारतीय संस्कृति, परम्परा, धर्म, विज्ञान, भाषा और लिपि को जब गँवारू समझते हैं, तब अकबर हमारे लिये एक प्रकाशस्तंभ के रूप में उपस्थित होता है।

अकबर के आश्रय में प्रायः डेढ़ सौ कलाकारों ने काम किया और अनुमानतः उन्होंने बीस पच्चीस हजार उच्च-कोटि की रचनाएँ कीं। इनमें अधिकांश कला की दृष्टि से अमर कृतियाँ हैं। संसार भर में कला के सृजन का इतना विशाल कार्यक्रम किसी युग में नहीं मिलता। उदाहरण के लिये ओलन्द देश (हालैंड) में रेंब्रा के युग में (१६०६-१६६९) बहुत अधिक संख्या में महत्वपूर्ण चित्र बने। परन्तु उनकी संख्या पाँच सौ तक न पहुँचेगी। अकबर काल के चित्र आसानी से कई हजार प्राप्त हैं और ऐसे संकेत मिलते हैं, जिनके द्वारा मूल संख्या का अनुमान हो सकता है।

ऐसे महद् आन्दोलन के लिये देश भर से कलाकारों को इकट्ठा करना आवश्यक था जिससे यह रूप-सत्र संपन्न हो। अकबर ने इस हेतु ईरान से चित्रकारों को नहीं बुलाया, अथवा ईरानी चित्र शैली का अनुकरण नहीं किया वरन् भारतीय परम्पराओं को ही उद्बुद्ध किया। इसके लिये केशवदास के समेत प्रायः एक सौ पच्चीस भारतीय परम्परावादी चित्रकार इकट्ठे हुए जिनका चूड़ामणि दसवन्त नामक कहार था, दूसरा नम्बर बसावन का था।



अकबर के शाही चित्रकार केशवदास का स्वनिर्मित चित्र।

हमारे सौभाग्य से इन सभी कलाकारों की अमर कृतियाँ काफी बड़ी संख्या में विद्यमान हैं।

भारतीय कलाकारों को क्या सम्मान प्राप्त था, इसका प्रमाण अबुलफज्ल की आईन अकबरी वाली प्रसिद्ध उक्ति से मिलता है—"भारतीय चित्रकार संसार में सर्वश्रेष्ठ हैं।" अबुलफज्ल ईरानी, पश्चिमी एशियाई, चीनी, यूरोपी आदि चित्रों से भली भाँति परिचित ही नहीं उनका मर्मज्ञ रहा होगा। ऐसी स्थिति में उसका उक्त कथन वस्तुतः अकबर, उसकी राजसभा का इन चित्रकारों के प्रति दृष्टि-कोण स्पष्ट करता है। अकबर की आज्ञा और व्यक्तिगत रुचि के कारण दर्जनों ऐतिहासिक, महाकाव्य, काव्य, दृष्टान्त, वैज्ञानिक आदि ग्रंथों के चित्रण हुए जिनमें

मानव जीवन का संभवतः कोई ऐसा अंग न बचा होगा जिसका चित्रण न हुआ हो। इन चित्रों में मानव, पशु, पक्षी, वनस्पति सभी का बड़ा मार्मिक अंकन हुआ है। इस प्रकार अकबर ने प्रस्तुत भारतीय चित्र परम्परा को पुनरुज्जीवित किया।

इनमें केशवदास का महत्त्व भी कम नहीं है। वस्तुतः अकबर के दरबार में केशवदास नामक दो व्यक्ति थे—अतएव पुस्तकालय के अधिकारियों ने बड़े केशवदास (केशो कलाँ अथवा केशोदास कलाँ) और छोटे केशवदास (केशो खुर्द) के नाम से इनका उल्लेख किया है। उक्त बड़े केशवदास बूढ़े आदमी थे। संभवतः जब अकबर की सेवा (प्रायः १५६० ई०) में आए उसके पूर्व ही परिपक्व कलाकार हो चुके थे और उसी कारण उनकी दरबार में पूछ हुई होगी। उनके बनाये चित्र रामायण और महाभारत के फारसी संस्करणों में हैं जिन्हें अकबर ने बड़े उत्साह से तैयार कराया था। अब ये प्रतियाँ जयपुर के महाराज सवाई मानसिंह द्वारा निर्मित एक ट्रस्ट के संग्रहालय में हैं।

केशवदास १५८० ई० में बहुत वृद्ध हो चुके थे—प्रायः ८० वर्ष के। वृद्धावस्था से उनका जर्जर शरीर एकदम कृश हो गया था और कमर झुकने के कारण वे बिलकुल दुहरे हो गये थे। संभवतः अकबर ने उनके दयनीय स्वास्थ्य को देखकर यादगार के लिये उनका चित्र बनवाया। यह चित्र इस समय टचुबिंगन विश्व-विद्यालय (पश्चिमी जर्मनी) के पुस्तकालय में सुरक्षित है। जहाँगीर बादशाह ने तत्कालीन ईरानी सम्राट् शाह अब्बास को १६१८ ई० में अपने प्रतिनिधि के हस्ते कुछ सौगात भेजी थी। उनमें कई चित्राधार भी थे। इनमें से कुछ अंश यूरोप-अमेरिका आदि में पहुँच गया। उक्त विश्व-विद्यालय के पुस्तकालय में भी ऐसा एक चित्राधार विद्यमान है। इसमें अकबर जहाँगीर काल के अनेक उत्कृष्ट चित्र हैं।

केशवदास चित्रकार के उक्त चित्र से एक अन्य महत्त्व-पूर्ण बात का पता चलता है जो आज हमें प्रेरणा देगी—अकबर के दरबार में हिन्दी में प्रार्थनापत्र या अर्जियाँ दी जाती थीं। इस चित्र में बूढ़े केशवदास एक अर्जी लिये हुए खड़े हैं जो नागरी लिपि और हिन्दी भाषा में लिखी हुई है। स्थानाभाव के कारण इसके चित्रकार ने केवल शिर-नामा ही दिया है। मूल में उक्त इस प्रकार है:—

सिद्धि श्री
य लाल
दीन अक
बर पातिशा
हि चिरंजी
व संवतु
१६४६ पो
ष सुदिनौ
मी लिषितं
केशवदास
चित्रकार

इस चित्र को देखकर मन में एक बात आती है, आज के युग में केशवदास किसी उच्चाधिकारी अथवा मंत्री के सम्मुख ऐसा वस्त्र पहन कर और हिन्दी भाषा और नागरी लिपि में अर्जी लेकर जाते तो क्या होता। शायद चपरासी उन्हें धक्का देकर बाहर निकाल देता।



चीनी विचारधारा और बौद्धधर्म

चीन के विचारक सदा बौद्धधर्म के विरुद्ध रहे हैं

जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी

चीन के बारे में साधारणतः यह विचार रहा है कि समस्त चीन ने बौद्धधर्म अपना लिया था और चीनी लोग बौद्धधर्म के बड़े समर्थक थे। पर बात ऐसी नहीं है। चीन में बौद्धधर्म पहले तुर्किस्तान प्रदेश के रास्ते से आया था और उसको तभी विशेषता प्राप्त हुई जब कि तारतार लोगों ने, विशेषतया वीई वंश के लोगों ने, जो पश्चिमी चीन के स्वामी हुए बौद्धधर्म को विशेष रूप से स्वीकार किया। फाहियान और सुंगयुन उसी काल में भारत आये थे। जब थांग वंश का चीन पर पुनः राज्य स्थापित हुआ तो चीन के राजा बौद्धधर्म को पसंद नहीं करते थे और उनके काल में बौद्धधर्म बुरी स्थिति में था और अनेक मत-मतांतरों में बँटा हुआ था। इसी कारण ह्वेनसांग भारत आया था। उसको भारत आने की चीन के सम्राट् ने अनुमति नहीं दी थी। उसको छिप-छिपकर आना पड़ा और जब वह चीन की दीवार पार करने लगा तो उस पर निशाना चलाया गया और वह बच निकला। जब वह तुर्फान की भारतीय बस्ती में आया तभी उसका स्वागत हुआ और वह जैसे-जैसे बौद्ध मतावलम्बी तुखारों, तुर्कों और अन्य जातियों के सम्पर्क में आता गया उसकी यात्रा का मार्ग प्रशस्त होता गया।

पाँचवीं शताब्दी में चीन के राजाओं ने बौद्धधर्म का दमन करने का निश्चय किया था। इसका इतिहास चीन के एक अत्यन्त प्रसिद्ध लेखक हानयू ने दिया है। हानयू ७८६ ई० से लेकर ८८४ ई० तक जीवित रहा। आधुनिक चीनी साम्यवादी भी उसको चीन का सर्वोत्तम निबंध-लेखक और अपने काल का वास्तविकतावादी लेखक मानते हैं। हानयू ने चीन के सम्राट् को आवेदन किया था। उसमें यह कहा था कि चीनी सम्राटों को बौद्धधर्म का दमन करना चाहिए और उन्हें किसी प्रकार का प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए। हानयू ने लिखा था: "आपका सेवक यह कहने की अनुमति चाहता है कि बौद्धधर्म असभ्य लोगों के मत से कुछ भी अधिक नहीं है और वह अन्तिम हानों के समय में भी फैला था। प्राचीन काल में इसका यहाँपर स्थान नहीं था। जब थांग वंश के सम्राट काओत्सू को स्वी राजवंश का राज सिंहासन मिला तो उन्होंने बौद्धमत का दमन करने पर विचार किया। लेकिन उस समय उनके जो बहुत से अधिकारी थे वे अज्ञानी थे और कम योग्यतावाले थे और वे प्राचीन राजाओं के सिद्धांतों को अथवा भूत और वर्तमान की आवश्यकताओं को नहीं समझ सकते थे और इस प्रकार वे सम्राट् के बुद्धिमत्तापूर्ण निश्चय का परिपालन नहीं कर सके और उस बुराई को भ्रष्टाचार से न बचा सके। आपके सेवक को इस बात का सदैव दुख रहेगा कि इस प्रकार यह मामला समाप्त हो गया।

"आपने जो कि संधि विग्रह के मामलों में निष्णात हैं और जिनको असंख्य युगों तक न प्राप्त होने वाला दिव्य गौरव प्राप्त हुआ है राज सिंहासन पर बैठने के पश्चात् आज्ञा निकाल दी कि कोई स्त्री या पुरुष बौद्ध धर्म में दीक्षित न हो सके और कोई मन्दिर या मठ न बन सके। इससे इस सेवक को विश्वास हो गया कि श्रीमान् के हाथों से काओत्सू की इच्छा का परिपालन होगा। यदि बौद्ध मत का दमन अभी असंभव भी हो फिर भी आपके सेवक को यह विश्वास नहीं हो सकता था कि श्रीमान् उल्टे इसको प्रोत्साहन देंगे जिससे कि यह फैले। अब आपके सेवक ने यह सुना है कि श्रीमान् ने भिक्षुओं के समुदाय को आदेश दिया है कि वे फैनसियांग जाकर बुद्ध की एक अस्थि का स्वागत करें और श्रीमान एक स्तंभ पर चढ़कर उस अस्थि का महल में आने पर दर्शन करेंगे और विभिन्न मन्दिरों को यह आदेश दिया गया है कि उसका स्वागत और पूजा करें।"

इस आदेश से क्षुब्ध होकर हानयू ने बौद्धधर्म के विपरीत बहुत कुछ कहा था जिसकी चर्चा हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं कि किस प्रकार बुद्ध एक असभ्य देश के लोगों में पैदा हुआ था। हानयू ने अपने एक लेख में बताया था कि बौद्धमत और चीनी विचारधारा में क्या अन्तर है। हानयू ने कन्फूशियस का उदाहरण देते हुए कहा कि कन्फूशियस उन सामंतों को असभ्य समझता था जो असभ्य प्रथाओं को मानते थे और उनको चीनी समझता था जो चीनी तौर तरीकों का प्रचलन करते थे। उसने लिखा कि असभ्य लोगों के यदि राजा भी हैं तो भी वे बिना राजा वाले चीनियों तक की बराबरी नहीं कर सकते। उसने आगे लिखा : "पश्चिम और उत्तर के असभ्य लोगों के विरुद्ध लड़ाई लड़ो और चिंग और शू के असभ्य लोगों को दंड दो। और आज बौद्ध लोग अपने असभ्य तरीकों के साथ आते हैं और उन्हें हमारे प्राचीन राजाओं की शिक्षाओं से ऊपर मानते हैं। क्या इस प्रकार वे स्वयं असभ्य नहीं हो जाते।" हानयू ने बताया कि चीनियों का वास्तविक मार्ग क्या है और वह बौद्धों का या अन्य मतावलम्बियों का मार्ग नहीं है। उसने लिखा : "यह है जिसको मैं मार्ग कहता हूँ। याऊ ने इसे शुन को बताया, शुन ने यू को, यू ने थांग को, थांग ने राजा वैन, राजा वू और चाऊ के राज को। इन लोगों ने इसे कन्फूशियस को सिखाया और कन्फूशियस ने मैंशियस को। पर जब मैंशियस मर गया तो वह किसी और को नहीं बता सका। हुसून त्जू और

यांग सुंग ने इसके कुछ तत्वों को समझा पर उनकी समझ में गहराई की कमी थी। वे इसके बारे में पूरी बात नहीं कर सके। चाऊ के राव के समय से पहले संत लोग राजा थे और वे मार्ग का परिपालन कर सकते थे। लेकिन चाऊ के राव के बाद वे सिर्फ सरकारी अफसर रह गये और वे लम्बे लम्बे लेख भर लिख सके।

"अब क्या हो सकता है। मैं कहता हूँ कि जब तक इनको (बौद्धधर्म तथा अन्य मतों को) दबाया नहीं जाएगा मार्ग नहीं चलेगा। जब तक इन लोगों को रोका नहीं जाएगा सही मार्ग का परिपालन नहीं होगा। जब तक भिक्षुओं को फिर गृहस्थी नहीं बना दिया जाता, जब तक कि उनकी पुस्तकों को जला नहीं दिया जाता और जब तक कि उनके मन्दिरों को घरों में परिवर्तित नहीं कर दिया जाता। हमारे पुराने राजाओं का मार्ग उनको स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए।"

हानयू के समय में तो उसकी बात नहीं चली पर उसकी मृत्यु के पश्चात् होने वाले सम्राट् वूत्सुंग ने एक आदेश निकालकर चीन में बौद्धधर्म का व्यापक दमन किया। उसके दमन की तो हम चर्चा कर चुके हैं और उसने दमन के लिए जो आज्ञापत्र निकाला वह चीन की कन्फूशियन विचारधारा का बड़ा प्रामाणिक चित्र है। सन् ८४५ ई० के आठवें महीने के आदेश में यह लिखा हुआ है: "हमने सुना है कि तीन वंशों के काल में बुद्ध का नाम कभी बोला नहीं जाता था। यह केवल हान और वी वंश में ही था कि मूर्तियों का यह धर्म प्रमुख रूप से सामने आया। अपने पिछले युग में इसने अपने अजीब तरीकों को चारों तरफ फैला दिया और यह एक घनी बेल की तरह फैल गया है। इसने हमारे राष्ट्र की प्रथाओं में जहर घोल दिया है। धीरे धीरे और इससे पूर्व कि किसीको खबर हो इसने हमारी जनता के दिमागों को बरगला और बहका दिया है, इसके परिणामस्वरूप अधिकाधिक लोग गलत रास्ते पर चले गए हैं। यह नौ प्रांतों के पहाड़ों और मैदानों में फैल गया है और हमारी दोनों राजधानियों के स्तंभों और दीवारों के बीच में भी। प्रत्येक दिन इसके भिक्षु और सेवक बढ़ते जाते हैं और इसके मन्दिर और ऊँचे होते जाते हैं। यह मिट्टी और लकड़ी के निर्माण कार्य से लोगों की शक्ति क्षीण करता है। सोने और रत्नों के आभूषणों के लिए उनके धन में चोरी करता है और लोगों को उकसाता है कि वे अपने स्वामियों और पिताओं को शिक्षकों के साथ के लिए छोड़ दें। यह पुरुषों को अपनी स्त्रियों से अलग करता है। कानून को नष्ट करने और मनुष्य मात्र को हानि पहुँचाने में इस विचारधारा का मुकाबला कोई नहीं कर सकता।

"अब अगर एक आदमी भी अपने खेतों में काम नहीं करता तो किसी न किसी को भूखा रहना पड़ेगा। अगर एक औरत भी अपने रेशम के कीड़ों को नहीं पालती तो किसी न किसी को ठंड बरदाश्त करना पड़ेगा। आजकल साम्राज्य में भिक्षु-भिक्षुणियों की इतनी बड़ी संख्या है कि उसकी गिनती नहीं हो सकती और वे इस बात की प्रतीक्षा में हैं कि किसान उसको भोजन दें और रेशम के कीड़े रें जिससे कि वे कपड़े पहन सकें और सार्वजनिक तथा निजी मन्दिर भी असीमित संख्या के हो गए हैं। उनके ऊँचे-ऊँचे स्तंभ, पच्चीकारी के काम शाही महल से भी बढ़ चढ़कर हैं। वस्तु और जनशक्ति का इस प्रकार जो नाश हो रहा है और चिन, सुंग, ची और लयांग राजवंशों में जो नैतिकता का पतन हुआ था वह इसी स्थिति के कारण था।

"हमारे राजवंश के संस्थापकों काओत्सू और तैत्सुंग ने विद्रोह और अशांति को दबाने के लिए अपनी सैनिक कला का उपयोग किया था और चीन में व्यवस्था लाने के लिए अपनी शांति की कला का। इन दो दण्डों को हाथ में लेकर ही वे शासन कर सके थे। कोई इस प्रकार की कल्पना कैसे कर सकता था कि वह पश्चिमी जंगलों के इस धर्म की चुनौती को अपने सामने बराबर खड़ा रहने दे। चेन क्वान और कैयुवान राजाओं के काल में (६२७ ई० से ६४९ ई०, ७१३ ई० से ७४१ ई०) इस बात के प्रयत्न किए गए थे कि बौद्धमत का नियंत्रण किया जाए पर इसका उन्मूलन पूर्ण नहीं किया गया। परिणाम-स्वरूप यह और भी लोकप्रिय होकर दौड़ा।

"पिछली रिपोर्टों का पूरी तरह परीक्षण करने के पश्चात् और सब तरह से जनमत जानने के पश्चात् हमारे मन में इस बात का लेशमात्र भी संदेह नहीं है कि इस पाप का उन्मूलन होना चाहिए। हमारे दरबार के और प्रांतों के राजभक्त मंत्रियों ने हमारे ऊँचे उद्देश्यों को अपना समर्थन दिया है और उन्होंने ऐसे उचित रास्ते हमारे सामने रखे हैं जिनको हम अमल में लाना चाहते हैं।

"साम्राज्य के वे मन्दिर जो नष्ट कर दिये गये हैं ४६०० हैं और २६५०० भिक्षु-भिक्षुणियों को पुनः गृहस्थ जीवन में परिवर्तित कर दिया गया है और उनपर एक साल में दो बार दिया जाने वाला कर लगा दिया गया है। लगभग ४० हजार घरेलू मन्दिर नष्ट कर दिए गए हैं जिनसे तीन-चार करोड़ चिंग (एक माप) उपजाऊ और ऊँची कोटि की धरती खाली हो गयी है और १ लाख ५० हजार स्त्री और पुरुष सेवक भी उपलब्ध हो गये हैं जिन पर साल में दो बार दिया जानेवाला कर लगेगा। भिक्षु-भिक्षुणियों को विदेशों के संचालक के मातहत कर दिया गया है जिससे यह बात स्पष्ट हो जाए कि एक विदेशी धर्म है। इसके अलावा हमने नेस्टोरियन और मजदा (पारसी) सम्प्रदाय के दो हजार लोगों को आदेश दिया है कि वे गृहस्थी जीवन व्यतीत करें और चीन के रीति-रिवाजों को नष्ट करने से रुकें।

"हमें अफसोस है कि जो चीज पहले नहीं हो सकी उसे इस अवसर के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ी। यदि बौद्ध मत इस समय पूर्णतया नष्ट नहीं कर दिया जाता है तो कौन यह कहेगा कि यह कार्यवाही सामयिक नहीं है

...भी एक लाख आलसी और अनुत्पादक बौद्ध लोग निकाल दिये गये हैं और उनकी हजारों भड़कीली, बेकार इमारतें नष्ट कर दी गयी हैं।"

इस सम्राट् की मृत्यु के कारण बौद्धधर्म के उन्मूलन का कार्य रुक गया। थांग वंश के बाद सुंग राजा हुए। उन सुंगों के काल में भी जो लेखक हुए उन्होंने चीन की विपत्ति का कारण बौद्धधर्म ही बताया। ११वीं शताब्दी में १००७ से लेकर १०७० तक प्रसिद्ध लेखक ओ यांग स्यू हुआ। उसने भी बौद्धधर्म के खिलाफ कसकर लिखा। उसने लिखा: "बौद्धमत ने चीन को १००० वर्षों से पीड़ित कर रक्खा है। प्रत्येक युग में दूरदर्शी लोगों ने इसके झूठ को और कुछ नष्ट करने की इसकी योग्यता को समझा है और इसे भगाने की कोशिश की है पर यद्यपि उन्होंने इसे भगा दिया है यह और अधिक शक्ति के साथ प्रकट हुआ है। यद्यपि उन्होंने इसपर आक्रमण किया और इसे दबाया पर यह और भी मजबूत हुआ है। इसपर चोट हुई है पर यह बिल्कुल नष्ट नहीं किया गया। पर क्या स्थिति वाकई निराशाजनक है या हमने इसके लिए उचित उपाय नहीं अपनाए हैं।

"जब कोई वैद्य किसी रोग का इलाज करता है तो वह रोग का कारण जानना चाहता हे। इसी प्रकार जब कोई किसी देश के रोगों का उपाय सोचता है तो उसे पता लगाना चाहिए कि इसका प्रारंभ कहाँ से हुआ और कौन से क्षेत्रों पर प्रभाव है।"

"बुद्ध एक बर्बर था जो चीन से बहुत दूर था और बहुत पहले पैदा हुआ था। य ओ, शुन और तान वंशों के काल में जबकि राजाओं का राज्य था सही प्रथायें और धर्म प्रचलित था। उस समय यद्यपि बौद्धधर्म मौजूद था पर वह चीन में प्रवेश न कर सका लेकिन तीन वंशों के पतन के २०० वर्ष बाद जब राजाओं का राज्य समाप्त हो गया और प्रथाओं और धर्म की उपेक्षा हुई तो बौद्धधर्म चीन में आया। यह स्पष्ट है कि बौद्धधर्म ने पतन के समय का और हमारी उपेक्षा का लाभ उठाया और आकर हमें पीड़ित करने लगा। इस प्रकार यह बीमारी पहले पहल आई। इस पतन का अगर हम उपाय करें और जो चीज व्यवहार में नहीं आती है उसका व्यवहार करने लगें और राजाओं के राज्य की चमक को पुनः स्थापित कर दें और उस समय के रीति-रिवाजों और धर्म का पूर्णतया प्रचलन कर दें तो यद्यपि बौद्धधर्म जीवित रहेगा परन्तु उसका हमारी जनता पर कोई प्रभाव नहीं होगा। यह अपने आप ही हो जाएगा।"

इस लेखक ने बौद्धधर्म को दबाने के लिए यह उपाय सुझाया कि केवल कन्फूशियसवाद का प्रचलन होना चाहिए, तभी बौद्धधर्म दब सकता है। उसने लिखा : "हान काल में दर्शन के सभी मत साथ-साथ चलते थे। तुंग चुंग शू को इस पर चिन्ता हुई और वह केवल कन्फूशियसवाद के प्रचलन में लगा क्योंकि वह जानता था कि जब कन्फूशियस का मार्ग प्रशस्त होगा तो अन्य वाद अपने आप समाप्त हो जायेंगे।"

उसने आगे कहा : "आजकल एक लम्बा-चौड़ा योद्धा जो कि हथियारबंद है और एक बड़ी सेना में है, वीरता में बहुतों को मात करता है जब बुद्ध को देखता है तो नीचे सिर झुका लेता है और जब वह बुद्ध के सिद्धान्तों को सुनता है तो उसको वाकई डर लग जाता है और वह उधर झुक जाता है। क्यों? इसलिए कि यद्यपि वह मजबूत है और शक्तिशाली है लेकिन उसका दिल स्पष्ट नहीं है और उसके पास कोई ऐसी चीज नहीं है जिससे वह चिपक सके। लेकिन जब एक विद्वान्, वह कितना ही छोटा और कमजोर क्यों न हो और आगे बढ़ने में कितना ही भयभीत क्यों न हो, जब वह बुद्ध के सिद्धान्तों को सुनता है तो उसकी सत्य निष्ठा उसके चेहरे पर उतर आती है और वह बजाए इसके कि सिर झुकावे और हार माने वह इच्छा करता है कि उसपर दौड़ पड़े, उसे नष्ट कर दे। क्यों? इसलिए कि उसको विद्या का ज्ञान है और उसको अपनी प्रथाओं और धर्म में विश्वास है और उसके हृदय में कोई ऐसी चीज है जिससे वह इस मत को जीत सकता है। इसलिए हमारी प्रथायें और धर्म वह मूलभूत चीज हैं जिससे बौद्ध-धर्म को हराया जा सकता हे। अगर एक भी विद्वान् जो रीति-रिवाजों को और धर्म को समझता है इस मत को मानने से रोका जा सकता है तो हमारे सामने काम केवल यह रह जाता है कि हम सारी दुनिया को इन प्रथाओं और धर्म को समझा दें और यह विदेशी मतवाद अपने आप ही नष्ट हो जाएगा।"

चीन के एक अन्य विद्वान् चेंग ई ने जो ११वीं, १२वीं शताब्दी में जीवित रहा कन्फूशियसवाद का नये सिरे से प्रसार किया और वह नव कन्फूशियसवाद का संस्थापक समझा जाता है। उसने बौद्ध धर्म की आलोचना की। उसने लिखा : "बौद्ध धर्म के सिद्धान्त हमारे सन्तों के सिद्धान्तों की बराबरी नहीं कर सकते। बौद्धधर्म किस प्रकार प्रचलित हुआ जरा इसका हम ध्यान करें। अपने माँ-बाप और परिवार को छोड़कर बुद्ध ने सारे सामाजिक सम्बन्धों को नष्ट कर दिया। वह जंगलों में केवल अपने अकेले के लिए रहा। ऐसे आदमी को किसी समाज में न रहने देना चाहिए। साधारण तौर पर उसने दूसरों के साथ वह किया जिससे वह स्वयं घृणा करता था। ऐसा दिमाग न संत का होता है, न किसी भद्र व्यक्ति का। बौद्ध लोग राजा और मंत्री के सम्बन्धों के सिद्धान्त पर नहीं चलेंगे। बाप और बेटे के सिद्धान्त को नहीं मानेंगे। पति पत्नी के सम्बन्धों को नहीं मानेंगे और जो ऐसा नहीं करते उनकी आलोचना करते हैं। वे इन मानवीय सम्बन्धों को छोड़ देते हैं और औरों से कोई सम्बन्ध नहीं रखते, अपने को एक विशेष प्रकार का जीव बना लेते हैं। अगर लोगों को आगे ले चलने का यही रास्ता है तो इससे मानव जाति समाप्त हो जाएगी। उनकी भावनायें जीवन के प्रति प्रेम और मृत्यु के ऊपर आधारित है यह नितान्त स्वार्थ है।"

'अवन्ती' का अन्वेषण

श्री सूर्यनारायण व्यास

उज्जैन का पुरातनतम नाम 'अवंती' है। ऋग्वेद, और तैत्तिरीय-आरण्यक में जिस प्रकार अवंती शब्द का आध्यात्मिक-रूप में उल्लेख किया है उसी तरह वाल्मीकि रामायण ने भी अवन्ती का नाम ही लिया है। परंतु साथ में 'आव्रवंती मवन्तीश्च सर्वमेवानुपश्यत' अवंती के साथ 'आव्रवंती' का प्रयोग भी किया है। बौध-ग्रंथों में भी अवंती का उपयोग हुआ है। महाभारत में कई स्थानों पर उज्जयिनी को अवंती ही कहा गया है। कुछ स्थलों पर अवंती के साथ आकरावंती बतलाया गया है। अवंती की वैदिक-व्याख्या है 'रक्षन्ती' और कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में अवंती का उल्लेख करते हुए उसीको अपर-मालव प्रदेश भी माना है। 'आवंत्याः अवंती-देशोद्भवास्त एव अपरमालव्याः' आदि। वराहमिहिर ने अवंती, और मालव को अलग-अलग बतलाया है।

प्रश्न यह है कि यह अवंती शब्द कैसे आया। क्या यह व्यक्तिवाचक है, या प्रदेशसूचक है? दीर्घकाल-पर्यंत जब तक उज्जैन नाम लोकप्रिय नहीं बना, इस स्थान का नाम अवंती ही कहा जाता रहा है, और स्थल का ही नहीं पूरे विस्तृत-प्रदेश का नाम ही अवंती-प्रदेश, अवंती जनपद रहा है। अवंती प्रदेश का विस्तार भी बहुत व्यापक रहा है। बुद्ध-समकालीन सम्राट् प्रद्योत के शासन-काल में अवंती की सीमा बहुत बड़ी थी। ११वीं शती के राजशेखर के समय तक भी बहुत बड़े क्षेत्र को अवंती प्रदेश माना जाता था——जिसमें आबू (अर्बुदाचल) तक समाविष्ट था। पुरा काल में भारत के प्रमुख १६ राष्ट्रों में अंग-वंग-कलिंग की तरह ही अवंती का स्वतंत्र अस्तित्व था। यही कारण है कि उसकी अपनी भाषा, और शैली भी थी, जो 'अवन्ती-रीति' के नाम से विश्रुत थी। आवंती-भाषा भी स्वतंत्र थी, भाषाशास्त्री डा० सुनीति-कुमार चटर्जी का तो यह अभिमत है कि अशोक के समय जब वह अवंती में गवर्नर होकर रहा और विदिशा की देवी से विवाह किया, तब उसकी अवंती में उत्पन्न संतान महेन्द्र तथा संघमित्रा ने लंका-यात्रा की थी। उन्होंने अवंती की भाषा में ही प्रचार किया। बौद्ध-साहित्य की तत्कालीन भाषा आवंती ही थी।

पुराणों में अवंती नाम-करण के विभिन्न कारण दिये हैं। अधिकांश वर्णनों से यह प्रतीत होता है कि अवंती नाम व्यक्तिपरक है और उसका सम्बन्ध कार्तवीर्यार्जुन के पुत्र 'अवंती' से जुड़ाया जाता है। अवश्य ही कार्तवीर्यार्जुन अत्यंत प्रतापी राजा थे। महाभारत और पुराणों में उनका विस्तारपूर्वक उल्लेख हुआ है। तथ्यवादी महाकवि कालिदास ने रघुवंश में भी उन्हें——'अनन्यसाधारण-राजशब्दो, बभूव योगी किल कार्तवीर्यः' अनन्य-साधारण राजा के नाम से स्मरण किया है। हैहयवंश के इस योगी-नरेश कार्तवीर्य का उत्तर भारत में वर्चस्व प्रति-ष्ठित था। प्रबल-प्रभाव प्रतिष्ठित था। मत्स्य पुराण में भी यही बताया गया है। और मार्कण्डेय पुराण की तरह लिंग-पुराण में भी अवंती के प्रथम शासक का सम्बन्ध कार्तवीर्यार्जुन से ही जुड़ाया जाता है। लिंग-पुराण में यह बतलाया गया है कि कार्तवीर्यार्जुन के अनेक पुत्रों में से जिन्होंने अवंती पर शासन कर ख्याति अर्जित की थी ——उनमें शूर, सूर-सेन, दृप्त, कृष्ण, वायुध्वज प्रमुख थे।

किंतु कार्तवीर्यार्जुन की राजधानी माहिष्मती में थी जो अवंती से अधिक दूरी पर नहीं है। तब अवंती में अलग सत्ता संचालित करने, इतने निकट अन्य राजधानी बनने का क्या कारण हो सकता है? माहिष्मती भी मालव में ही है। संभव है, कार्तवीर्यार्जुन के पश्चात् उनके अनेक पुत्रों में विग्रह उत्पन्न हुआ हो, और सत्ता का बंट-वारा हो गया हो। मार्कण्डेय-पुराण के एक उल्लेख से हमारी इस धारणा का समर्थन मिल सकता है। उसमें लिखा है कि हैहय वंश पाँच शाखाओं में विभक्त हो गया था। जैसे वीतिहोत्र, वीरहोत्र, कुंतिभोज (भोज), अवंती, और कुण्डिकेर। ये लोग दक्षिणी-विन्ध्य और अपरांत के भागों में विभक्त हो गए थे, और सत्ता स्थापित करली थी। मार्कण्डेय पुराण में कुंति-भोज, कुण्डि-केर, और वीरहोत्र आदि की राज्य-सीमा का भी वर्णन आया है। वहाँ एक अवंती की सीमा विन्ध्य भाग में तथा दूसरी अवंती की सीमा अपरांत में बतलाई है। महाभारत और भगवद्गीता में भी इन स्थानों के [illegible] का उल्लेख 'नरपुंगव' कहकर किया है। यथा——

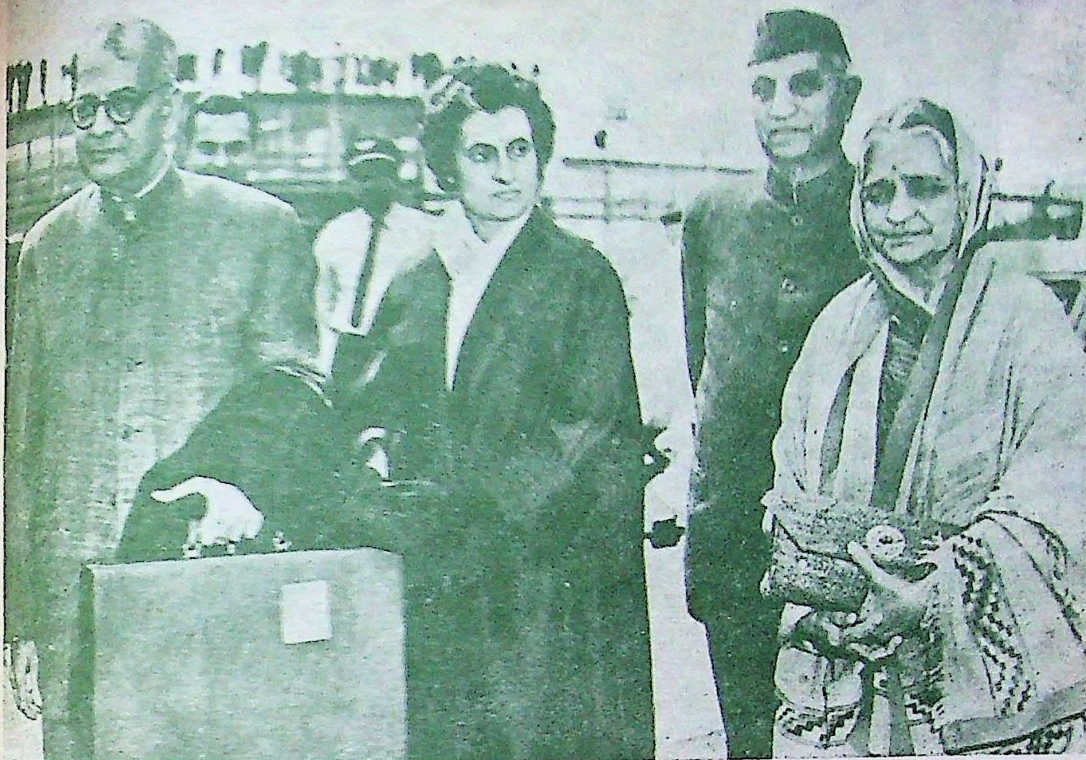
'पुरुजित् कुंतिभोजश्च शैव्यश्च नरपुंगवः' और 'वीतिहोत्रो धनंजयः' आदि ये बड़े शूर वीर भी थे।

अवंती, यदु-वृष्णियों का आपस में विवाह सम्बन्ध भी होता था——यह विष्णुपुराण और अग्निपुराण से विदित होता हे। अंधक-वंश के शूर-पुत्र वसुदेव की पांच बहिनें थीं। उनमें से एक यदुराज की कन्या राज्याधिदेवी का विवाह अवन्ती नरेश के साथ हुआ था। उससे दो पुत्र हुए थे——विंद, और अनुविंद। महाभारत में अवंती के इन राजकुमारों का पर्याप्त वर्णन हैं। इन्हें महारथी कहा गया है। ये अपनी अक्षौहिणी सेना लेकर पांडवों के विरुद्ध कौरवों के पक्ष में लड़ने गए थे। महाभारत में कहा है——

"आवन्त्यौ च महीपालौ महाबलसमन्वितौ। प्रथमा-ऽक्षौहिणीश्यानौ——"तथा——

'विंदानुविंदौ——आवन्त्यौ' इन्हींका हाथी 'अश्व-त्थामा' था, जो बड़ा बलशाली था। महाभारत में लिखा है——

"परप्रमथनं घोरं मालवेन्द्रस्य वर्मणः।
अश्वत्थामा हत इति——"



राष्ट्रमंडल के लंदन अधिवेशन में भारत के प्रतिनिधि वित्तमंत्री श्री टी० टी० कृष्णमाचारी और श्रीमती इन्दिरा गांधी के लंदन पहुँचने पर उच्चायुक्त डा० जीवराज मेहता और श्रीमती मेहता ने उनका स्वागत किया।

भारत के गृहविभाग ने राजकाज में हिन्दी की प्रगति के लिए एक कार्यकारी दल बनाया है। उसकी पहिली बैठक ११ जुलाई को हुई। गृहमंत्री श्री नन्दा ने उसकी अध्यक्षता की। हिन्दीभाषियों की ओर से श्री सुधांशुजी, दिनकरजी, डा० सेठ गोविन्ददास भी उसमें उपस्थित थे।

नन्दादेवी शिखर (ऊँचाई २५,६४५ फुट) पर चढ़ने में केप्टन एन० कुमार के नेतृत्व में भारतीय सैनिक दल के श्री नोवांग गोम्बू को सफलता मिली। ऊँचाई पर आरोहियों को सामान पहुँचाने का काम सैनिक हैलिकाप्टरों ने किया। पीछे नंदादेवी शिखर है। एक हैलिकाप्टर आरोहियों को सामान पहुँचा रहा है।

नंदादेवी के शिखर पर एक छोटा सा हिमाच्छादित चौरस स्थान है। २० जून को दिन में ११ बजे श्रीगोम्बू उस पर पहुँचे और उन्होंने उस पर भारत का राष्ट्रीय ध्वज स्थापित किया।



इस उल्लेख में बहुत महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अश्वत्थामा ने इन्हीं को 'मालवेन्द्र' का कहा है। महाभारत-काल में अवंती के शासकों को 'मालवपति' कहा जाता था। स्पष्ट ही यह अवंती-नरेश विंद-अनुविंद के लिए ही है। इसलिए जो लोग अवंती में 'मालवों' का प्रवेश बहुत बाद में होना बतलाते हैं, उन्हें यह ध्यान में रखना होगा। इसी तरह हैहयों के लिए भी अथर्ववेद में "मल्व" (या मालव) ही कहा गया है जो अवंती-प्रदेश के ही थे।

दूसरी महत्त्व की बात यह है कि आरंभ में अवंती एक विशाल-प्रदेश था। किंतु कुछ समय के बाद वह दो भागों में विभाजित हो गई थी। एक भाग का नरेश विंद था और दूसरे का अनुविंद था। इसीलिए शायद पूर्व मालव, और अपर-मालव दो नामों से ज्ञापित किया है। थोड़ी और भी गहराई से देखें तो यह स्पष्ट विदित होता कि विंद की शासन-सीमा 'विन्ध्य' होगा। विंद, और विन्ध्य में बहुत साम्य है। इसी प्रकार अनुविंद से अनु-विन्ध्य (अर्थात्––अपर अवंती या अपर-मालव) होना चाहिए। अनुविंध्य का मतलब है विंध्य से लगी हुई सीमा। अब यह भी स्पष्ट हो जाता है कि 'आकर-अवंती' नामकरण क्यों है। विन्ध्य की खनिज-संपदा के कारण ही यह खनिज वाला भाग 'आकरावंती' कहा गया होगा। उससे कौटिल्य के उस शब्द–– आवंतिका: अवंती-देशोद्भवा: त एव अपर मालव्या: अवंती देश में उत्पन्न ही अपर मालव है। इससे यह पूर्व और अपर-मालव का भेद मिट जाता है। यह सारा ही अवंती-देश था। यह संगति लग जाती है तथा विंद, और अनुविंद का शासन विन्ध्य और अनुविन्ध्य तक विस्तृत था।

महाभारत में इन दोनों अवंती-नरेशों को महारथी (आवन्त्यौ च महारथौ) माना गया है। महान् सेनानी और विचक्षण भीष्म ने अवंती के इन दोनों नरेशों के शौर्य की मुक्त कंठ से प्रशंसा की थी। कहा था––

'आवंती के नरेश विंद और अनुविंद दोनों ही रथ-युद्ध में परम प्रवीण हैं; शक्तिशाली, शूर, एवं युद्ध-कौशल में निपुण हैं। वे अपनी गदा, लम्बे तीरों, और भालों को अपने कुशल हाथों से चलाकर शत्रु-सैन्य को विनष्ट कर देंगे। मृत्यु के मूर्तिमान्-अवतार यमराज की तरह शत्रु-सैन्य में विग्रह मचा देंगे। समर के समय क्षुद्र जन्तुओं के मध्य में वे गजराज के समान प्रतीत होते हैं।" (महाभारत––पर्व ५-१६६) "युद्धारंभ के समय वे भीष्म के आदेशानुरूप बड़े शौर्य के साथ लड़ते रहे। बाद में शक्तिसम्पन्न अर्जुन पर आक्रमण करने का आदेश दिया गया, उन्होंने अर्जुन-पुत्र इरावत (नागकन्या से उत्पन्न) पर आक्रमण किया; पांडवों के सेनापति धृष्टद्युम्न पर भी चढ़ाई की, तथा अपनी सेना से अर्जुन को घेर लिया, और भीम से भी संघर्ष किया। (महाभारत पर्व ६)

"जब द्रोण ने कौरव-सेना का सूत्र अपने हाथों में लिया तब पांडवों के साथी––चेकितान, विराट आदि से युद्ध किया। अंत तक बड़े शौर्य से लड़ते रहे और अर्जुन के हाथों से वीरगति प्राप्त की।" (महा० पर्व––७-९९)

"पर्व ११-१२ में एक स्थान पर भीम के हाथों होना भी लिखा गया है।"

वैदिक काल में अवंती-जनों का शासक की तरह रहने का प्रमाण उतना स्पष्ट नहीं है परंतु अथर्ववेद के चतुर्थ खण्ड में हैहयों का 'मल्व' के रूप में शासक होना विदित होता है, किंतु महाभारत में आवंतिक-जन बड़े शूर, शक्तिशाली-शासक के रूप में पर्याप्त प्रतिष्ठित थे। सात शक्ति-सम्पन्न राज्यों में आवंती का नाम है। बौद्ध ग्रंथों में जहाँ अवंती, प्रद्योत की चर्चा है वहाँ महा-कात्यायन तथा अनेक थेरियों, भिक्षुओं का भी उल्लेख है। परंतु साथ माहिष्मती के राजधानी होने का वर्णन भी है। सारभंग-जातक में अवंती को दक्षिण-भाग में होना सूचित किया गया है। चण्ड प्रद्योत को सारभंग का समसामयिक बतलाया है। सारभंग गौतम बुद्ध के समकालीन थे, तब जातकों में अवंती की जो दो सीमाओं की परम्परा विदित होती है उससे संगति कैसे बिठलाई जा सकती है? इसपर हमारा अनुमान यह है कि महाभारत काल में जो अवंती दो सीमाओं में विभक्त हो गयी थी––संभवत: प्रद्योत-काल में एक हो गयी थी क्योंकि प्रद्योत शासन की (अवंती की) सीमा वत्सराज की कौशाम्बी के निकट तक लगी हुई थी, जहाँ प्रद्योत ने नकली हाथी छोड़कर वत्सराज को बंदी किया था, और उसे अपनी पुत्री वासवदत्ता देकर (राजनीतिक कारणों से ही) विरोध समाप्त कर मित्र बना लिया था। वत्स अवंती का सीमावर्ति-राज्य होने के कारण ही अवंती-नरेश को उसके विरोध का भय था। उसने चतुराई से वासवदत्ता देकर सम्मान किया था। इससे स्पष्ट है कि अवंती की सीमा वत्स तक लगी हुई थी।

जातक और कौटिल्य अर्थशास्त्र में विवरण है कि कार्तवीर्य हैहय को खराब समय देखना पड़ा था। (अर्थशास्त्र पृ० ११) जातकों में कार्तवीर्य को हजार हाथों वाला कहा गया है। तालजंघों के विषय में भी इसी तरह की चर्चा है जब कि पुराणों में तालजंघों को कार्तवीर्य की संतान बतलाया है। पुराणों में यह भी लिखा है कि पुरातन-अवंती वंश के अमात्य पुलकिन ने अपने स्वामी की हत्या कर दी थी, और अपने पुत्र प्रद्योत को सत्ता पर बिठला दिया था। पुराणों, जातकों में प्रद्योत के विषय में पर्याप्त विवरण है। भास के नाटक––स्वप्नवासवदत्ता, तथा प्रतिज्ञायौगन्धरायण में प्रद्योत की स्थिति पर पर्याप्त प्रकाश मिलता है। इस प्रद्योत वंश के पश्चात् अवंती मौर्य-साम्राज्य अंग बन गयी थी। इस तरह महाभारत काल की दो भागों में विभक्त अवंती पुन: एक-

अखण्ड बन गयी थी। अशोक के अधिकार में रहकर पाटलिपुत्र से लेकर मालव तक अभिन्न हो गयी थी। आरंभ में भी एक थी, परंतु कुछ काल के लिए विभक्त बनकर पुनः एक ही हो गयी थी। किंतु वेद, रामायण से लेकर महाभारत-पर्यंत इस प्रदेश और नगर का नाम अवंती क्यों और किस कारण से हुआ, इस पर स्पष्ट प्रकाश प्राप्त नहीं होता। महाभारत और पुराणों से यही सूत्र-संधान लगता है कि कार्तवीर्यपुत्र अवंती के कारण शायद यह 'अवंती' बनी हो। यदि यह व्यक्तिपरक नाम हो तो इसे पुंल्लिग माना जाना चाहिए, किंतु तीन हजार वर्ष पूर्व पाणिनि ने इसे पुंल्लिग नहीं माना है। उसने अपने सूत्र में—'स्त्रियाम्-अवंती-कुंती-कुरुन्यास च' स्पष्ट स्त्रीलिंग बतलाया है।

शिलालेखों के उल्लेखों से इसे 'आकरावंती' सूचित किया है। स्पष्ट बोध होता है कि यह खनिज-भूमि रही है। कालिदास ने यहाँ रत्न-राशि के ढेर बाजारों में होना बतलाया है। बाण ने भी यही संकेत किया है। और विदेशी-यात्री पेरिप्लस ने उज्जैन से आनेवाले गोमेद-रत्न का वर्णन किया है। यह वर्णन काल्पनिक नहीं था। कुछ समय पूर्व ही उज्जैन में केंद्रीय पुरातत्व-विभाग द्वारा उत्खनन किया गया था। तब पुरातन-भूखण्ड से ३०० फुट नीचे रत्नों का ढेर उपलब्ध हुआ भी था। और उनको पॉलिश करने के उपकरण भी मिले थे। इससे यह प्रमाणित होता है कि—

हारांस्तारान्तरलगुटिकां कोटिशः शंखशुक्तिः
शष्पश्यामान्मरकतमणीनुन्मयूखप्ररोहान्।
दृष्ट्वा विप्रांन्विपणिरचितान्विद्रुमाणां च भंगान्
संलक्ष्यन्ते सलिलनिधयस्तोयमात्रावशेषाः।'

महाकवि के इस कथन में अवश्य ही तथ्य निहित है। भूगर्भ के जिस स्तर से ये रत्न उपलब्ध हुए थे, उत्खनन-कर्ता, और प्रवीणों की मान्यता के अनुसार दो हजार वर्ष के काल के ही हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि कालिदास ने उज्जैन के बाजारों में रत्नराशि को प्रत्यक्ष देखकर ही लिखा था। तभी उसने उज्जैन के लिए मुक्तकंठ से कहा है कि—

'दिवः कान्तिमत् खण्डमेकम्' स्वर्ग का यह एक चमकता हुआ खण्ड ही है।

एक विधुर पंछी

अनुवादक—श्री ललितमोहन बहुगुणा

एक विधुर पंछी
पतझड़ की नंगी शाखा पर
अश्रु बहाता विफल प्रणय पर;
ऊपर चलती वायु शीत थी,
नीचे बहता हिम का निर्झर;
पत्रहीन, उस वन में कोई पात नहीं था;
फूल नहीं था वहाँ धरणि पर;
और वायु में गति भरता था
केवल मिल का पहिया सस्वर।



क्या 'मेर' शब्द नेर की छाया पर बना है ?

आ० बदरी प्रसाद साकरिया

सरस्वती, दिसम्बर १९६३ में पं० किशोरीदास बाजपेयी का एक लेख—"**जैसलमेर आदि का 'मेर' शब्द**" प्रकाशित हुआ है। उसमें जैसलमेर, अजमेर, बाड़मेर और आमेर शब्दों के अंत के 'मेर' शब्द को बीकानेर के अंतिमांश 'नेर' शब्द की छाया बतलाते हुए इसकी पूर्व परंपरा को बड़ी विचित्र चीज कहकर विवेचन किया है। लेख में प्रसंगवश और शब्दों की भी चर्चा की है; पर खास चर्चा 'मेर' की है, जिसके संबंध में श्री बाजपेयीजी ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं :—

१—'मेर' के पहले '**नेर**' बना।

२—'नेर' की छाया '**मेर**' है। जैसलमेर अजमेर आदि का 'मेर' शब्द उसी 'नेर' की छाया है।

३—'नेर' के वजन पर गढ़ा हुआ '**मेर**' शब्द है। 'मीठा' के वजन पर '**सीठा**' शब्द गढ़ लिया। '**मिष्ट**' का रूपान्तर 'मीठा' और '**मीठा**' के वजन पर '**सीठा**'।

४—परंतु 'नेर' और '**मेर**' समानार्थक है; जबकि 'मीठा सीठा' भिन्नार्थक।

५—नगर-वाचक शब्दों के ही अंतिमांश '**नेर**' तथा 'मेर' शब्द हैं। अन्यत्र इनके दर्शन नहीं।

६—वर्णाम्नाय की पूर्वापर स्थिति के कारण ही 'नेर' पुरखा नहीं है; विकासक्रम से भी इसकी पुष्टि है।

'मेर' के संबंध में बाजपेयीजी ने जिन छः उपरोक्त बातों का उल्लेख किया है उनमें से एक भी यथार्थ नहीं है। बाजपेयीजी हिन्दी व्याकरण और भाषाशास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान् हैं। शब्दों के विवेचन के संबंध में उन्होंने बहुत महत्वपूर्ण और प्रेरणाप्रद काम किया है। परंतु शब्दों की दुनिया भी अपार और विचित्र है। उसके अनेक भेद और प्रभेद होते हैं। उनके अनुसार ही उनका विवेचन और मूल्यांकन होता है। कस्तूरी और बारूद के रंग और दानों को देखकर ही उनकी उत्पत्ति और परम्परा को एक मान लेना जिस प्रकार उचित नहीं होगा, उसी प्रकार इन शब्दों के संबंध में भी है।

नगर, गाँव और जलाशयों आदि के नाम प्रायः इतिहास, भूगोल और व्यक्ति-विशेष एवं इनके संबंध की किसी घटना से संबंधित होते हैं। इसलिये इस प्रकार के शब्दों का विवेचन उनके इन क्षेत्रों के माध्यम से ही होना चाहिये। इस दृष्टि को ओझल करके किया गया विवेचन अपूर्ण और भ्रमपूर्ण होता है।

'मेर' महत्वपूर्ण शब्द है। इस उल्लेख में वह इतिहास से, भूगोल से, व्यक्ति-विशेष से, समाज से और साहित्यादि अनेक बातों से संबंधित है। वह किसी '**नेर**' की छाया नहीं है और '**नेर**' का समानार्थ तो हो ही नहीं सकता।

'मेर' शब्द 'मेरु' का रूपान्तर है; पर इससे भिन्न भी इसकी बड़ी हस्ती है। यहाँ हम इस शब्द के कुछ अर्थ, संक्षिप्त विवेचन और टिप्पणियाँ दे रहे हैं, जिससे नगरों के अंतिमांश में उसका वास्तविक स्वरूप और अन्य क्षेत्रों में उसके अन्यतम दर्शन हो जायँ।

शब्दार्थ और विवेचन के पूर्व यहाँ यह जान लेना पहले आवश्यक होगा कि श्री बाजपेयीजी उल्लिखित '**नेर**' वाले बीकानेर नगर और 'मेर' वाले सभी नगरों का निर्माण-काल क्या है और उनकी भौगोलिक स्थिति क्या है? अतः यहाँ हम तुलना-प्रकार से निर्माणकाल और भौगोलिक स्थिति दे रहे हैं—

बीकानेर

जोधपुर नगर को बसानेवाले राव जोधा के पुत्र राव बीका ने अपने नाम पर वि० सं० १५४५ में मरु-जांगल प्रदेश में इसे बसाया। यह समतल भूमि पर बसा है। निकट में कहीं पर्वत नहीं है।

चारों 'मेर' नगर

१—**जैसलमेर**, माड प्रदेश में वडगिर पर्वत पर रावल जैसल ने अपने नाम पर वि० सं० १२१२ में इसको बसाया।

२—**अजमेर**, मेर जाति के मेरवाड़ा प्रदेश में तारागढ़ और बीटली पर्वत पर चौहान अजय-पाल ने अपने नाम पर ११वीं शती में इसे बसाया।

३—**बाड़मेर**, यह द्विजन्मा है। अपने प्रथम जन्मस्थान से कई सदियों के बाद तिरोहित हो करके ८-१० कोस की दूरी पर पुनः आविर्भूत हुआ। मारवाड़ के मालानी प्रान्त में पर्वतों में स्थित था और अब भी है। इसे

चौहान बाहड़ ने अपने नाम पर बसाया था।[१]

४—**आमेर,** जयपुर से उत्तर दिशा में। अनेक पर्वतों से घिरी अनेक सदियों पूर्व निर्मित जयपुर राज्य की प्राचीन राजधानी।[२]

ये सभी नगर राजस्थान के हैं। 'मेर' अंतिमांश शब्द वाला 'कुंभलमेर' नाम का एक नगर और राजस्थान में है, जिसे महाराणा कुंभा ने अपने नाम पर वि० सं० १५१५ में आडावला (अरावली) पर्वत की एक ऊँची चोटी पर बसाया था।

इन नगरों के निर्माण काल को देखने से मालूम होता है कि '**मेर**' नामा सभी नगरों की उत्पत्ति '**नेर**' नामा बीकानेर से सदियों पहले हो गयी थी। अतः '**मेर**' से पहले '**नेर**' नहीं बना और जब **नेर** पहले नहीं बना तो 'मेर' के ऊपर उसकी छाया नहीं और **नेर** का कोई वजन भी नहीं। तब वर्णाम्नाय में पुरखा संबंध और विकासक्रम की पुष्टि—ये दोनों बातें तो अपने आप उड़ जाती हैं।

श्री बाजपेयीजी की दो दलीलें और हैं—

१—'**नेर**' और '**मेर**' समानार्थक हैं।

२—नगर-वाचक शब्दों के ही अंतिमांश '**नेर**' और '**मेर**' हैं। अन्यत्र इनके दर्शन नहीं।

छाया और वजन के आधार पर बने और अन्यत्र कहीं दर्शन नहीं होने की दलील एक ऐसी दलील है, जिसका अर्थ स्पष्ट रूप से यह होता है कि शब्द-संसार में '**मेर**' शब्द की कोई हस्ती नहीं है। यहाँ एक बात अवश्य है कि हिंदी कोश-ग्रन्थों ने भी इस शब्द को अपने यहाँ जगह नहीं दी है; इसीलिए बाजपेयीजी ने यह समझ लिया हो कि जिसकी इस प्रकार उपेक्षा की गयी है, उसे छाया और वजन के रूप में ही सही, वे ही इसे इस प्रकार अपनी चर्चा और विवेचन का विषय बनाकर सबसे पहले प्रकाश में ला रहे हैं। हमारा यह अनुमान झूठा हो सकता है; पर हिंदी कोश-ग्रंथों में जगह नहीं मिलने के कारण इस शब्द का अस्तित्व झूठा नहीं हो सकता। यह इसलिए भी झूठा नहीं है; क्योंकि यह असम्भव है कि बड़े से बड़े कोश ग्रंथ में सभी के सभी शब्दों का संकलन हो ही जाय। श्री बाजपेयीजी को, इसलिए जबकि वे अपने से अन्य प्रान्त के नगरों के शब्दों पर विचार कर रहे हैं तो वहाँके कोश और इतिहास आदि ग्रन्थों को भी देख लेना चाहिये था।

अब हम, इस शब्द का जन-साधारण, इतिहास, भूगोल और साहित्यादि विषयों में क्या स्थान है और इनका उनसे क्या संबंध है; शब्दार्थ रूप में पाठकों के सम्मुख रख रहे हैं; जिससे बाजपेयीजी की इन दो दलीलों का भी समाधान हो जाय।

मेर (सं० मेरु)

१—एक पर्वत का नाम।

२—पर्वत[३]
३—पर्वत शिखर[४]
} जैसलमेर, अजमेर आदि का अंतिमांश 'मेर' शब्द इन्हीं तीन अर्थों का द्योतक है।

इन नगरों के अंतिमांश '**मेर**'[५] शब्द को '**मेरु**' रूप में भी लिखा जाता है; क्योंकि **मेरु** शब्द के भी ये अर्थ प्रसिद्ध हैं। ताम्र पत्रों, शिलालेखों, ग्रन्थ-प्रशस्तियों और मुद्राओं आदि में '**मेरु**' और '**मेरो**' इन नगरों के अंतिमांश में लिखा मिलता है। यहाँ '**मेर**' नामान्तक शब्दों के '**मेरु**' और '**मेरौ**' नामान्तक समानार्थक रूपों के कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं—

(अ) विषमतमाभंग सारंगपुर नागपुर गागरण नराणक **अजयमेरु** मंडोर मंडलकर[६].....

१—पूर्वाविर्भूत बाड़मेर के खंडहर 'जूना बाड़मेर' के नाम से प्रसिद्ध है। शिलालेखों, प्रशस्तियों आदि में 'बाहड़मेरु' और 'वाग्भटमेरु' नाम भी अंकित हैं।

२—इसका नाम 'आम्बेर' कहा जाता है। आम्बेर के पर्वत पर अम्बादेवी के नाम पर प्राचीन नाम 'अम्बमेरु' कहा जाता है; जिससे आगे जाकर 'अम्बमेर' और फिर आम्बेर और आमेर हो गया हो। 'अम्बनेर' और 'अम्बावती नगरी' नाम भी कहे जाते हैं।

३—हिंदी क्षेत्र के अवधी आदि भाषाओं के कोश ग्रंथों ने इस शब्द के अस्तित्व को तो स्वीकार किया है पर हमारे अर्थ और व्युत्पत्ति के रूप में नहीं।

४—मेरु पर्वत—the mountain. (Monier Williams's Sanskrit English Dictionary.

५—भगवद् गोमंडल कोश।

६—राणकपुर त्रैलोक्य दीपक की सं० १४९६ की महाराणा कुंभा की प्रशस्ति की एक पंक्ति का कुछ अंश।

१६४

(ग) श्री कुंभलमेरु महाराणा श्री कुंभकरणस्य।[७]
(घ) संवत् १५१६ वर्षे शाके १३८२ वर्तमाने अश्विन शुद्ध३ श्री कुम्भमेरौ महाराज श्री कुम्भकर्णेन वटे प्रद्युम्न मूर्तिः संस्थापिता।[८]
(ङ) महामेरु श्री कीर्त्तिस्तम्भ[९] ....
(च) Mer (Meru) signifies '*a hill*' in Sanskrit, hence Komul or properly Kombhameer is the *hill* or *mountain* of Kumbha a prince, Likewise Ajmer is the *hill* of Ajaya, *the invincible hill.*[१०]

४—हुक्के की एक नली, जिसमें उसकी चिलम रखी जाती है।

५—जप-माला का एक सबसे बड़ा मनका।

६—वीणा का एक भाग।

७—अंत, समाप्ति।

मेरु व्युत्पत्ति से भिन्न अर्थ——

१—ओर, तरफ, दिशा।

२—एक आदिवासी जाति।[११]

राजस्थान, गुजरात, सौराष्ट्र आदि प्रान्तों में बहुत बड़ी संख्या में यह जाति बसी हुई है। राजस्थान में इस जाति के नाम पर 'मेरवाड़ा' प्रदेश बसा हुआ है, जो कुंभलमेर से लगाकर अजमेर तक के पहाड़ी प्रदेश में फैला हुआ है।[१२] यह भी प्रसिद्ध है कि महाराणा कुंभा ने कुंभलमेर गढ़ के निर्माण के समय गढ़ की नींव में एक मेर की बलि दी थी; इसीलिए नगर का नाम 'कुंभमेर' या 'कुंभलमेर' रखा गया। मेर की याद में छत्री (स्मारक) बनी हुई अब तक विद्यमान कही जाती है।[१३] कवियों ने भी इस घटना की साक्षी दी है।[१४] अब कुछ उदाहरण शब्द के आद्यांश के जिनमें व्यक्ति, वंश और प्रदेश आदि का समावेश हो जाता है, दिये जा रहे हैं——

मेर नाम मेर जाति के नाम पर बने, 'मेरवाड़ा'[१५] प्रदेश और 'मेरावत'[१६] वंश इतिहास-प्रसिद्ध है। सिसोदियों के 'आदित्य' नामा पूर्वजों में **'मेरादित्य'**[१७] एक प्रसिद्ध पूर्वज हुए हैं।

मेवाड़ का **'मेरा'**[१८] इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्ति हुआ है।

मेरजी, मेरो, मेरोजी, मेरसी, मेरसिंह और मेरियो आदि 'मेर' के लघुता और सम्मानसूचक पुरुष नाम प्रच-

---

७—महाराणा कुंभा की ताम्र मुद्रा के एक ओर का लेख। राजस्थान-भारती, कुंभा विशेषांक, पृ० ९२।

८—शोध-पत्रिका, भाग ८, अंक ३, चैत्र २०१४, पृ० १०, श्री रत्नचन्द्र अग्रवाल के लेख से।

९—राजस्थान-भारती, कुंभा विशेषांक, पृ० १५० शिलालेख सं० ३१ श्री विजयशंकर श्रीवास्तव के लेख से।

१०—*Foot note* : Annals and Antiquities of Rajasthan, Part II, Pages 11.

११—इस आदिवासी जाति के दो तीन भेद बताये जाते हैं। इनमें से एक भेद मुसलमान मेर जाति का है। मेर जाति के विवरण के लिये लेखक द्वारा संपादित 'नैणसी-री ख्यात' भाग १ और २, हिंदी वीर काव्य——टीकमसिंह तोमर, गुजरात——एक दर्शन——शिवप्रसाद, और ओझाजी आदि के इतिहास ग्रंथ।

१२—'मेर' शब्द को पहाड़ अर्थ में स्पष्ट करते हुए मेर जाति के संबंध में कर्नल टॉड लिखते हैं——

From Komulmeer to Ajmer the whole space is termed Merwārā and is inhabited by the mountain race *Mer* or *Mair.*

The Mer or Mair is the mountaineer of Rajputana and the country he inhabits is styled *Mairwārā* or the *region of hills.* The Mair is but a branch of menā or Mainā one of the aborigines of India. He is called Mairāwat— (Annals and Antiquities of Rajasthan, Part II, Pages 11 and 702.

१३——राजस्थान-भारती, महाराणा कुंभा विशेषांक पृ० ११८।

१४——राजस्थान-भारती, महाराणा कुंभा विशेषांक, पृ० ११९, साँवलदान आसिया के महाराणा कुंभा संबंधी छप्पयों में से——

विण दिह कूंभे रांण, नींव आरंभ गढ की वौ
चणत दुरग तद कोट, होय राते पड़ सीधौ
कहियो सिलपीकार, गढ मांनव बळि मांगै
तद सिर देवण त्यार, जात मेर हुय आगै
सीस काट नीमह रख्यो, तिण महलां पूजै तथै,
कुंभ साथ मेर नांमा वचन, कुंभळमेर सारा कथै।

१५/१६——दे० टिप्पणी सं० १२ और लेखक द्वारा संपादित 'नैणसी री ख्यात' भाग १ पृ० ४५।

१७——लेखक द्वारा संपादित 'नैणसी री ख्यात' भाग १ पृ० १०।

१८——'नैणसी री ख्यात' तीनों भागों के अनेक स्थलों में।

लित हैं। प्रसिद्ध वीर वणवीर चौहान के पिता का नाम 'मेर'[१९] विख्यात है।

गुजरात में **मेराई** नाम की एक जाति है, जिसका संबंध भी **मेर** जाति से बताया जाता है।

दीपावली के दिन राजस्थान, गुजरात और सौराष्ट्र आदि में '**मेर मेरायो**'[२०] नाम की एक बाल-क्रीड़ा, जो '**मेर**' के मेरु और सूर्य अर्थ को लेकर मनायी जाती है, जिसमें वर्षा और खेती का इस उत्सव से संबंध बताया जाता था। आज इस उत्सव का परिवर्तित रूप बालकों तक ही रह गया है।

"सूरज मेर बैठ गयो। दीवो मेर हो गयो। तू कठीनै मेर हो गयो हो?" बीसियों मुहावरे मेर संबंधी प्रचलित हैं। मेर संबंधी कहावतें भी अनेक हैं।

'**मेर**' शब्द के और भी अर्थ व प्रयोग हैं; परंतु यहाँ वे ही लिखे हैं जो अधिक प्रचलित और अधिक जानकारी में हैं।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि '**मेर**' दूसरे शब्दों की तरह एक सजीव और स्वतंत्र शब्द है। व्युत्पत्ति रहित छाया वाला शब्द नहीं है। अतः '**नेर**' से '**मेर**' का कोई संबंध नहीं। नगर नामों का यह '**मेर**' संस्कृत के '**मेरु**' शब्द से व्युत्पन्न है, जो मेरु पर्वत की श्रेष्ठता और उसके '**पर्वत**' पर्याय को लेकर पर्वत के ऊपर या उसके सान्निध्य में निर्मित नगरों के लिये प्रयुक्त हुआ है; जबकि जाति-विशेष और दिशा आदि अर्थों वाला '**मेर**' शब्द, मेरु से **भिन्न** व्युत्पत्ति को लेकर प्रसिद्धि में आया है।

१९—लेखक की "नैणसी री ख्यात" भाग १ पृ० १७२ वाव और सुईगाँव के चौहानों की वंशावली में २१वाँ नाम।

२०—भगवद्गोमंडल कोश और जोडणी कोश आदि।

सामने आता नहीं है

कुँवर सोमेश्वर सिंह

है उसे मिलती बधाई
दाँव में जो जीतता है
पर पराजित के हृदय पर
मौन जो कुछ बीतता है—
सामने आता नहीं है।

मुग्ध है करती सभी को
सुयश से सजकर सफलता,
यह कि असफल को विवश है
सालती रहती विफलता
सामने आती नहीं है।

कौन कब लगता किनारे?
शीघ्र लग जाता पता है,
किन्तु कोई पड़ भँवर में
जब अचानक डूबता है
सामने आता नहीं है।

हैं भले लगते सभी को
दीप हैं जो जगमगाते,
यह कि बुझते नित्य कितने
स्नेह जो वे हैं न पाते
सामने आते नहीं हैं।

सहज ही समवेदना से
हैं विलखते शान्ति पाते
पर व्यथा कितनी दबाये
आँख तक आँसू न आते
सामने आते नहीं हैं।



परमाणु-ऊर्जा की उत्पत्ति और विकास

श्री ब्रजेश्वर प्रसाद शर्मा

विज्ञान आज प्रत्येक क्षेत्र में मनुष्य के सुख, शांति व प्रगति के लिए नवीन उपयोगी उपलब्धियाँ प्रदान कर रहा है। दृष्टिक्षेत्र के अंतर्गत जिस वस्तु पर भी हम दृष्टिपात करते हैं उसमें विज्ञान के अस्तित्व का चिह्न पाते हैं। हम देखते हैं कि विज्ञान के सूर्य ने सम्पूर्ण क्षितिज को तीव्र प्रकाशित रश्मियों से आपूरित कर दिया है। वास्तव में यह आटोमेशन (यांत्रिक-कार्य-प्रक्रम) का युग है। विदेशी राष्ट्रों में विशेषकर यूरोप और संयुक्त राज्य अमेरिका में छोटे से छोटा कार्य भी मशीनों द्वारा किया जाता है। मशीनों को विद्युत् या कोयले द्वारा गति प्राप्त होती है। किन्तु आजकल वैज्ञानिक साधन सम्पन्न राष्ट्रों में परमाणु-ऊर्जा का उपयोग मशीनों को चलाने में हो रहा है। परमाणु ऊर्जा प्राप्त करना अत्यंत सुविधाजनक हो गया है। विज्ञान के इस नवीन आविष्कार की खोज हुए अभी केवल ३० वर्ष ही हुए हैं किन्तु प्रत्येक जन-जीवन के क्षेत्र में इसके उपादान इतने बहुमूल्य एवं लाभ-दायी रहे हैं कि उनके समक्ष अन्य कोई भी नया या पुराना आविष्कार नहीं टिक पाया।

परमाणु-ऊर्जा क्या है

आज से लगभग ३० वर्ष पूर्व, पश्चिम के भौतिकविदों एवं रसायनविदों ने यूरेनियम धातु का एक समस्थानिक (साधारण यूरेनियम-परमाणु से भार में कम) खोज निकाला। जब इस समस्थानिक को मंद-न्यूट्रान्स द्वारा बमबार्ड कराया गया तो वैज्ञानिकों ने श्रृंखलाबद्ध प्रतिक्रिया का अध्ययन किया। इस प्रकार की प्रतिक्रिया में उन्होंने विशाल परिमाण में ऊर्जा उत्पन्न की। यूरेनियम का यह नव आविष्कारित समस्थानिक बाद में यूरेनियम – २३५ के नाम से जाना गया। यूरेनियम का एक साधारण परमाणु २३८ परमाणु-भार रखता है परन्तु उसका एक समस्थानिक २३५ परमाणु-भार रखता है। ३ न्यूट्रान इस समस्थानिक में साधारण यूरेनियम परमाणु की अपेक्षा कम होते हैं। हम परमाणुओं की श्रृंखलाबद्ध प्रतिक्रिया के फलस्वरूप ही यह अमित ऊर्जा प्राप्त करते हैं अतः इसे 'परमाणु-ऊर्जा' कहते हैं। यूरेनियम – २३५ की एक पौंड मात्रा की शक्ति २०,००० टन टी० एन० टी० की शक्ति के बराबर होती है। आप भली भाँति अनुमान लगा सकते हैं कि परमाणु-ऊर्जा की कितनी विशाल मात्रा अत्यंत अल्प मात्रा में यूरेनियम – २३५ का उपयोग कर प्राप्त की जा सकती है।

रेडियो-आइसोटोप (समस्थानिक)

वर्तमान समय में परमाणु ऊर्जा उद्योग, व्यवसाय, जहाजों, विशाल यंत्रों को गति प्रदान करने एवं पनडुब्बियों में ईंधन के रूप में प्रयुक्त की जा रही है। विशालकाय परमाणु-भट्टियाँ विद्युत् के रूप में विशाल ऊर्जा की मात्रा विसरित करती हैं व उनमें विभिन्न धातुओं के रेडिय-समस्थानिक भी बनाये जाते हैं। मनुष्य के लिए अब विभिन्न प्रकार की रेडियधर्मी धातुएँ बनाना संभव हो गया है। इन वस्तुओं की चिकित्सा तथा अन्य विज्ञानों में बड़ी आवश्यकता थी। इस प्रकार प्राप्त रेडियमधर्मी समस्थानिकों को रेडिय तत्त्वों का नाम दिया गया। विज्ञान तथा टेकनालाजी के सभी क्षेत्रों में रेडिय-धर्मी तत्त्वों के कृत्रिम-निर्माण का एक सम्मानित स्थान है। कोबाल्ट, यूरेनियम, थोरियम, रेडियम, आयोडीन और सोडियम इत्यादि धातुओं के रेडिय-आइसोटोप विभिन्न कार्यों के लिए उपयोग में जाते हैं। कोबाल्ट धातु का एक समस्थानिक कोबाल्ट – ८० मक्खियों का संहार करता है। यह उनकी प्रजनन-शक्ति नष्ट कर देता है। रेडियधर्मी आयोडीन – १३१ क्रेटिन और मिक्सीडिमा रोगों को ठीक कर देता है। रेडियम और पोलोनियम धातुओं के रेडिय-समस्थानिक कैन्सर जैसी भयानक बीमारी को भी ठीक करने में सक्षम हैं। धातु रेडियम का उपयोग करके तीव्र इन्फ्रारैड रश्मियाँ उत्पन्न की जाती हैं जिन्हें रोगी के कैन्सर से प्रभावित भाग पर केन्द्रित किया जाता है, परिणाम यह होता है कि धीरे-धीरे व्याधि समाप्त हो जाती है। इस प्रकार रेडिय-समस्थानिकों द्वारा मनुष्य को बीमारियों से बचाया जा रहा है।

कृषि एवं चिकित्सा में परमाणु

रेडियधर्मी कोबाल्ट और टैन्टालम अब कुछ विशेष प्रकार के आँख के ट्यूमर को ठीक करने में उपयोगी हैं। पहले रोगी का जीवन उसके नेत्र को निकालकर ही बचाया

जाता था। परन्तु अब यह सब नहीं होता। एक्स-किरणों का विकिरण (इररेडियेशन) आँख को ही नहीं बचाता वरन् दृष्टि को भी सुरक्षित करता है। चिकित्सा में सोना, फास्फोरस, आयोडीन और सोडियम के रेडिय-धर्मी आइसोटोपों का भी उपयोग किया जा रहा है। उदाहरण के लिए रेडिय फास्फोरस और रेडिय स्ट्रान्शियम रक्त और त्वचा के रोगों के उपचार में सफलता अर्जित कर चुके हैं। जब-जब ये तत्त्व त्वचा पर फेंके जाते हैं, रश्मियों के रूप में, तो वे बीटा रश्मियों का वितरण करते हैं जो त्वचा द्वारा अवशोषित कर ली जाती है। रेडिय फास्फोरस पोलेमिया रोग को ठीक कर देता है। रेडिय धर्मी विकिरण जिसे कि 'रश्मियों का चाकू' (रे-नाइफ) की संज्ञा दी गयी है, अदृश्य विकिरण का एक सीधा समूह है जो खोपड़ी का स्पर्श किये बिना या घाव का कोई चिह्न छोड़े बिना ही मस्तिष्क के ट्यूमर को समूल नष्ट करने में सक्षम है। हाइपर टैन्शन नाम के रोग से पीड़ित व्यक्ति को वायु एवं रेडिय धर्मी जीनान के परमाणुओं के मिश्रण को श्वसन के रूप में उपयोग में लाने को कहा जाता है। रेडिय धर्मी समस्थानिकों का उपयोग मार्गदर्शक या ट्रेसर की भाँति होता है। इसका अर्थ यह है कि जब कोई रेडियधर्मी समस्थानिक किसी पौधे, जानवर या मनुष्य के शरीर में होकर चलता है तो वह अपनी किरणों द्वारा अपने चलने का मार्ग बतलाता जाता है।

वैज्ञानिक नये-नये रेडिय समस्थानिकों की खोज में लगे हुए हैं जो शरीर की विभिन्न प्रकार के रोगों से रक्षा कर सकें। अगस्त, १९५५ की जेनेवा में होनेवाले 'शांति के लिए परमाणु' सम्मेलन में यू० एस० परमाणु ऊर्जा आयोग के कमिश्नर नोबल पुरस्कार-विजेता डा० विलर्ड एफ० लिबी ने कहा कि जब परमाणु विज्ञान में पर्याप्त उन्नति हो जायेगी तो रोग की पहचान करने के लिए डाक्टर रोगी को केवल एक रेडिय धर्मी गोली खिला दिया करेंगे। इस गोली में बहुत थोड़ी रेडिय धर्मिता होगी। अत्यन्त सुग्राहक यंत्रों से रोगी की रेडिय धर्मिता की परीक्षा करके उसकी बीमारी का ठीक-ठीक कारण मालूम हो जायेगा जिससे फिर उसका ठीक-ठीक इलाज भी हो सकेगा।

रेडिय धर्मी पदार्थ कृषि-क्षेत्र में भी लाभकारी सिद्ध हो रहे हैं। नाइट्रोजन, फास्फोरस आदि सभी खादीय तत्त्वों के रेडिय आइसोटोप प्राप्त किये जा सकते हैं। ट्रेसर की भाँति इन आइसोटोपों का प्रयोग करके हम यह पता लगा सकते हैं कि किसी विशेष प्रकार की फसल को भिन्न-भिन्न खादीय तत्त्व किस अनुपात में आवश्यक हैं। उसी अनुपात से उन तत्त्वों को खाद में मिला दें तो बहुत सी खाद बरबाद होने से बच जायेगी एवं भूमि को उपजाऊ बनाने की समस्या हल हो जायेगी। इस प्रकार के उपायों से भारत में चावल की पैदावार बहुत बढ़ सकती है। रेडिय फास्फोरस की सहायता से किसान यह जान सकते हैं कि पौधे कितनी खाद का शोषण कर सकते हैं। इस प्रकार संयुक्त राज्य अमेरिका में उत्तरी कैरोलिना के तम्बाकू उत्पन्न करनेवाले किसान प्रतिवर्ष ४००० टन से भी अधिक खाद की बचत करने लगे हैं। सिंचाई की नालियों में पानी का बहाव देखने के लिए भी रेडिय-ट्रेसर काम में लाये जाते हैं।

पौधों के लिए रेडिय-धर्मी तत्त्वों से प्राप्त ऊर्जा अत्यंत लाभदायक है। उदाहरण के लिए जब मक्का को रेडिय-कोबाल्ट के विसरण की थोड़ी मात्रा प्रदान की गयी तो उसके हरे भागों की मात्रा में १५% की वृद्धि हुई उन पौधों की अपेक्षा जो उसी क्षेत्र में उगाये गये थे, परन्तु रेडिय-विकिरण (इररेडियेशन) से वंचित थे। रेडिय-विकिरण वाले पौधों ने दो या तीन फलों के स्थान पर चार या पाँच फल एक साथ उत्पन्न किये। रेडिय विकिरण के उपयोग में अच्छी गुणयुक्त नवीन किस्म को पैदा करने की महान् संभावनाएँ निहित हैं।

कीटाणुओं से रक्षा

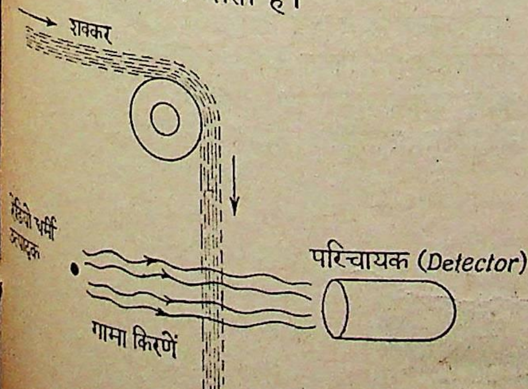
विनाशकारी कीटाणुओं के प्रभाव से फल, तरकारी, मांस, मछली, फसल और अनाज आदि सड़ने लगते हैं। रेडिय धर्मी विकिरण के प्रभाव वे कीटाणुओं को नष्ट किया जा सकता है। वस्तुओं की बरबादी रोकी जा सकती है और खाने की वस्तुओं को कीटाणु-मुक्त किया जा सकता है। इस काम के लिए रेडिय-समस्थानिक परमाणु-भट्टी से उप-पदार्थ (बाई-प्रोडक्ट) के रूप में मिल जाते हैं।

जीव-विज्ञान में पौधों, जानवरों और कीड़े-मकोड़ों पर अनुसंधान करने में भी रेडिय समस्थानिकों से बहुत अधिक सहायता मिलती हैं। समस्थानिकों के अनुसंधान से यह पता लग सकता है कि पौधे सूर्य की धूप और कार्बन

...आक्साइड से किस प्रकार स्टार्च और शर्करा बनाते ...ऐसा होने पर वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशालाओं में खाद्य ...र्थों का निर्माण कर सकेंगे जिससे संसार में मनुष्यों के ...न की कमी नहीं रहेगी।

उद्योग में

परमाणु शक्ति अनेक प्रकार के उद्योगों में हमारी ...यता कर रही है। कई प्रकार से रेडिय धर्मी पदार्थ ...खानों में बननेवाली वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि और ...की परीक्षा करने में काम आते हैं। उनके उपयोग से ...दन शीघ्रता और सरलता से होता है। परमाणु ...किरण के प्रभाव से प्लास्टिक को अधिक तापरोधक ...या जा सकता है जिससे वह बहुत ऊँचे ताप तक गर्म ...ने से भी नहीं जलेगा। रबर की बनी हुई वस्तुओं को ...ने में बड़ी शीघ्रता और सरलता हो जायगी और ...की रासायनिक क्रियाओं में भी सहायता मिलेगी। ...यों के तेल के कारखानों से सैकड़ों मील लम्बे पाइप ...द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार का तेल जहाजों पर बाहर भेजने ...के लिए पहुँचाया जाता है। एक प्रकार के तेल को दूसरे ...कार के तेल से अलग करने के लिए दोनों के बीच में ...थोड़ा सा रेडिय धर्मी डाल देते हैं। जाइगर-गणक (रेडिय-समस्थानिकों की उपस्थिति मालूम करने का उपकरण) ...इस पदार्थ की उपस्थिति ज्ञात हो जाती है और दोनों ...तेलों को अलग-अलग इकट्ठा कर लिया जाता है। घर्षण ...कम करने के लिए चिकने पदार्थों की उपयोगिता भी रेडिय ...आइसोटोपों से मालूम की जाती है। रबर, कागज और ...धातु की चादरों की मोटाई रेडिय आइसोटोपों से नापी ...जा सकती है और उसपर नियंत्रण भी रखा जा सकता है। ...हवाई द्वीप में परमाणु शक्ति का उपयोग कर चीनी ...तौली जाती है। पहिए के ऊपर चलनेवाली एक पेटी से ...लगातार चीनी नीचे गिरती रहती है। रेडिय आइसो-टोपों से उत्पन्न होनेवाली गामा किरणें चीनी की धार में ...होकर निकलती हैं तो वह अपने मार्ग से मुड़ जाती हैं ...किरणों का मुड़ना गिरनेवाली चीनी की मात्रा पर निर्भर ...होता है। इसलिए काउन्टर से किरणों का मुड़ना देखकर ...चीनी के भार का पता लग जाता है।



ईंधन के रूप में परमाणु ऊर्जा

यूरेनियम – २३५ की संहति का बहुत छोटा भाग ही ऊर्जा में परिणत होकर हमें विशाल ऊर्जा का स्रोत प्रदान करता है। आइन्सटाइन के 'सापेक्षिता सिद्धांत' (Theory of relativity) के अनुसार द्रव्य और ऊर्जा एक दूसरे में बदले जा सकते हैं। नाभिक प्रतिक्रियाओं (Nuclear Reactions) और परमाणुओं के रेडिय-धर्मी विखण्डन (Radio-active Disintegration) में उक्त सिद्धांत की पुष्टि हो जाती है।

आइन्सटाइन के सिद्धांत के अनुसार यदि १ ग्राम पदार्थ को किसी प्रकार ऊर्जा में बदला जा सके तो उससे प्राप्त होनेवाली

ऊर्जा = (पदार्थ की संहति × प्रकाश का वेग) = १ × (३ × १०^{१०})^{२} = ९ × १०^{२०} अर्ग जो एक रेलगाड़ी को ४५ मील प्रति घण्टे की चाल से १० वर्ष तक लगातार चलाने के लिए पर्याप्त होगी।

परमाणु विखण्डन के परिणामस्वरूप उत्पन्न ऊर्जा की प्राप्ति आजकल विशालकाय परमाणु-भट्टियों (Atomic Reactors) में उक्त शृंखलाबद्ध प्रतिक्रिया कराकर हो रही है।

परमाणु-भट्टियाँ विशाल आकार की फर्नेस के समान होती हैं जिनमें नाभिक विखण्डन होता है और परिणामस्वरूप ऊर्जा की विशाल मात्रा उत्पन्न होती है जो आजकल रचनात्मक कार्यों में प्रयुक्त होती है। रेडिय-समस्थानिकों का निर्माण इन्हीं संयंत्रों में होता है और इस प्रकार परमाणु शक्ति के क्रांतिपूर्ण उपयोगों की दिशा में एक दृढ़ कदम है। विश्व के बहुत ही कम राष्ट्रों के पास परमाणु-भट्टियाँ हैं और भारत उनमें से एक है। भारत में अब तक ३ परमाणु-रिएक्टरों—अप्सरा, जरलिना और ट्रॉम्बे में कैनाडा-इण्डिया की स्थापना हो चुकी है।

भारत में परमाणु शक्ति आयोग के अध्यक्ष डा० होमी जहाँगीर भाभा ने कहा है कि शीघ्र ही भारत एक नया परमाणु-रिएक्टर स्वयं निर्माण करेगा जिसमें केवल १०% विदेशी उपकरण प्रयुक्त होंगे।

यूरेनियम के समस्थानिक का उपयोग कर अत्याधुनिक जहाजों में परमाणु ऊर्जा यांत्रिक ऊर्जा में परिणत की जाती है, और इस प्रकार कोयले का प्रयोग ईंधन के रूप में अब धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा है। परमाणु-ईंधन का उपयोग कर पनडुब्बियाँ वर्षों तक समुद्र में रहकर यात्रा कर रही हैं, बिना किसी बंदरगाह पर रुके हुए। अमेरिका की विशाल पनडुब्बियाँ 'नाटिलस', 'सी-वुल्फ', 'सोर्ड फिश', 'सी-ड्रैगन', 'ट्राइटन' इत्यादि व रूस का विशाल बर्फ तोड़क जहाज 'लेनिन' आधुनिक विज्ञान की प्रगति के परिचायक हैं। इन समस्त पनडुब्बियों एवं जहाजों में परमाणु ऊर्जा ही प्रयुक्त हो रही है।

पनडुब्बियों और मालवाही जहाजों के बाद, इंजीनियरों के ड्राइंग-बोर्ड पर परमाणु चालित स्टीम-इंजनों, मोटरकारों और हवाई जहाजों के नक्शे तैयार होकर, उन नक्शों को अमली जामा पहिनाया जा रहा है। रूस, ब्रिटेन और अमेरिका ऐसे बिजलीघर (पावर-हाउस) तैयार कर चुके हैं जो परमाणु की ताकत से बिजली पैदा करके, उसे ग्रामों और नगरों को दे रहे हैं।

परमाणु-ऊर्जा का भविष्य

मानव-समाज के आर्थिक जीवन में ऊर्जा का बहुत बड़ा महत्त्व है। वर्षों से पृथ्वी के गर्भ से प्राप्त कार्बनिक ईंधन-लकड़ी, काठ-कोयला, पत्थर का कोयला, पैट्रोल, पीट आदि—ऊर्जा के मुख्य स्रोत रहे हैं। लेकिन वर्तमान खपत को देखते हुए यह अनुमान लगाया गया है कि अगले कुछ ही दशकों के भीतर मनुष्य जाति को गंभीर ऊर्जा-अभाव का सामना करना पड़ेगा। वैसे ऊर्जा प्राप्त करने के लिए—कई नदियों पर बाँध बनाकर बिजली पैदा की जा सकती है; सूर्य की किरणों का अधिक व्यापक पैमाने पर उपयोग किया जा सकता है। समुद्रों की लहरों, तूफानों और ज्वारभाटों की ऊर्जा तथा पृथ्वी के गर्भ की ऊष्मा का अभी भी उपयोग नहीं किया जा रहा है। लेकिन इन स्रोतों में से कई ऐसे हैं कि अपनी वर्तमान प्राविधि से हम उनका उपयोग नहीं कर सकते। इस प्रकार ऊर्जा का तीव्र उत्स्रव (एक्जाशन) हो रहा है। ऐसी परिस्थिति में पिछले कुछ वर्षों में नाभिकीय ईंधन—यूरेनियम तथा थोरियम के उपयोग में सफलता पर सफलताएँ मिली हैं, अस्तु यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कार्बनिक ईंधनों के अभाव में परमाणु ऊर्जा को प्रयुक्त किया जायगा। कई देशों में परमाणविक बिजलीघर बने हैं और बनाये जा रहे हैं। निस्संदेह इससे ऊर्जा के दुष्काल का खतरा टलता तो है, पर हमें याद रखना चाहिए कि पृथ्वी में यूरेनियम तथा थोरियम बहुत अधिक मात्रा में नहीं हैं। यदि संसार के सभी बिजलीघर नाभिकीय ईंधन के विदारण द्वारा ही बिजली पैदा करने लगें, तो ऊर्जा व्यय की जो रफ्तार आज है उससे वह सौ-दो-सौ वर्ष भर को ही काफी हो पायेगा। तब तक संसार का कोयले तथा पैट्रोल का भंडार भी समाप्त हो चुका होगा।

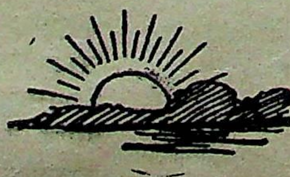
क्या इसका मतलब यह है कि शक्ति का अकाल अनिवार्य है? नहीं। पृथ्वी पर ईंधन का कभी अभाव न होगा। कोयला, पेट्रोल व गैस-चालित नये बिजलीघरों का बनाना और उनसे प्राप्त ऊष्मीय ऊर्जा की शक्ति को बढ़ाना संभव है। विज्ञान ने आनेवाली सदियों के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया है। नाभिकीय संश्लेषण की ऊर्जा के शांतिमय सदुपयोगों के जो कई तरीके हैं, उनमें हाइड्रोजन बम की ऊर्जा को नियंत्रित करने की संभावनायें सबसे उज्ज्वल हैं। भविष्य की उन्नत प्राविधि इस संभावना को मूर्त रूप देगी।

भावी ईंधन

प्रकृति में विकिरणशील ईंधनों की कोई कमी नहीं है। मनुष्य सबसे अधिक प्रभावी ऊष्मा-नाभिकीय ईंधन को ही अपने उपयोग में लायेगा—सामान्य हलकी हाइड्रोजन को नहीं, वरन् ड्यूटीरियम तथा ट्राइटियम जैसे उसके सक्रिय समस्थानिकों को। ट्राइटियम ने ऊष्मा-नाभिकीय जहाजों, हवाई जहाजों तथा राकेटों का बनाना संभव किया है। वैज्ञानिक ऊष्मा नाभिकीय मोटर इंजन के नमूने के बारे में विचार भी करने लगे हैं। आनेवाली सदियों में भारी हाइड्रोजन पर चलने वाले बिजलीघरों को चलाने के लिए सिर्फ पानी की ही जरूरत पड़ेगी। वे बिजलीघर वस्तुतः पानी से अविश्वसनीय शक्ति स्रोत प्राप्त करेंगे।

हमारी पृथ्वी पर १४०००००००००० अरब टन पानी है। इस पानी में २५०००० अरब टन भारी हाइड्रोजन है। यह मनुष्य जाति के लिए करोड़ों साल के लिए काफी है। पृथ्वी पर ऊष्मा-नाभिकीय बिजलीघरों के बनने के साथ शक्ति की अविश्वसनीय प्रचुरता के युग का आरंभ हो जायेगा। जहाँ कहीं भी पानी होगा, वहीं निस्सीम ऊर्जा प्राप्त करना संभव हो जायेगा। ईंधन को ढोने या लंबी दूरियों तक बिजली को ले जाने की आवश्यकता खत्म हो जायेगी। कोयला, पैट्रोल तथा पीट फिर रसायन-शास्त्रियों के उपयोग के लिए ही रह जायेंगे। ऊर्जा की स्वामी होने के नाते हमारी संततियाँ प्रकृति पर एकछत्र राज्य करेंगी।

इस प्रकार परमाणु शक्ति के उपयोग से संसार में बड़े महत्त्वपूर्ण कार्य हो रहे हैं और भविष्य में और अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य होने की आशा है। इस महान् वैज्ञानिक आविष्कार ने मनुष्य जाति के इतिहास में एक नवीन युग का आविर्भाव किया है। हमें आशा करनी चाहिए कि परमाणु शक्ति पृथ्वी के मनुष्यों को प्रगति एवं समृद्धि से ओतप्रोत प्रकाशित जीवन प्रदान करेगी।



यँगहस्बैण्ड अभियान (एक्सपिडीशन) १९०४

मैंने अपने एक मित्र को बताया कि सिक्किम के महाराजा ने कहा है कि "मैंने भारत सरकार को चुम्बी घाटी के विषय में लिखा है।" उसने छूटते ही पूछा, "क्या पाकिस्तान की भाँति इन्हें भी कुछ शरारत सूझी है?" मुझे हँसी आई यह सोचकर कि इन्हें इतना भी पता नहीं कि चुम्बी घाटी कहाँ है।

"चुम्बी घाटी तिब्बत में है। कोई भारत ने उसे थोड़े ही दबा रखा है।" मैंने हँसते हुए बात साफ करने का प्रयत्न किया।

"तो राजा सिक्किम ने भारतीय सरकार को क्यों लिखा है?"

"चुम्बी घाटी पहिले सिक्किम की थी। भौगोलिक दृष्टि से अब भी यह सिक्किम का एक हरा-भरा भाग है। यहाँके निवासी तिब्बतियों से भिन्न हैं। उनको 'त्रोमो पा' कहते हैं। राजा ने भारतीय सरकार को लिखा है कि वह चुम्बी घाटी चीनियों से सिक्किम को दिलवा दे।"

"यह घाटी तिब्बत के हाथ आई कैसे?"

मैंने कहा, "यह लम्बी कथा है। इसको फिर सुनाऊँगा। यह यँगहस्बैण्ड अभियान (एक्सपिडीशन) से सम्बन्धित है। क्या कभी यँगहस्बैण्ड का नाम सुना है?"

वे बोले, "हाँ एक बार पंडित जी ने कहा था कि यँगहस्बैण्ड अभियान (एक्सपिडीशन) साम्राज्यवादी अभियान (इम्पीरियलिस्ट एक्सपिडीशन) था जिसने सैनिक शक्ति द्वारा तिब्बत से अपनी माँगें स्वीकृत करवाईं। इस विचार से यँगहस्बैण्ड साम्राज्यवादी था।"

"खैर, इस विषय में अभी से कोई मत न दीजिए। यह प्रश्न नैपाल के सामने भी आया था, पर नैपाल ने यही निर्णय दिया कि यँगहस्बैण्ड अभियान (एक्सपिडीशन) साम्राज्यवादी अभियान (इम्पीरियलिस्ट एक्सपिडीशन) नहीं था। अँगरेज चीनियों की मध्यस्थता के बिना स्वयं ही दलाई लामा से राष्ट्रीय वार्ता करने के इच्छुक थे। परन्तु दलाई लामा ने व्यर्थ ही जिद की जिससे यँगहस्बैण्ड साहब को कुछ सैनिकों सहित जाना पड़ा। इस अभियान (एक्सपिडीशन) के पश्चात् तिब्बती अँगरेजों को और अँगरेज तिब्बतियों को जान गये।

(२)

नकशे में चुम्बी घाटी सिक्किम और भूटान के मध्य एक खूँट की तरह मालूम होती है। यह वास्तविक भारतीय-तिब्बती जलविभाजक के दक्षिण में है। इस घाटी में आमो छू नदी का उद्गम होता है। इस प्रकार इस घाटी का समस्त जल भारत में ही आता है। अमोछू का उद्गम तो १४,००० फुट तक होगा परन्तु यह नदी मीलों तक १०,००० से ७००० फुट तक की ऊँचाई पर बहती है। फिर बरसाती हवाएँ अमोछू की घाटी द्वारा चुम्बी घाटी के उत्तर वाले जल विभाजक से टकराती हैं जिससे वर्षा भी अधिक होती है। वर्षा और कम ऊँचाई होने के कारण यहाँ हरियाली अधिक है और खेती भी अच्छी होती है। यहाँ चावल भी होता है। चुम्बी घाटी के विख्यात ग्राम हैं याटुंग (Yatung), चुम्बी ग्राम और फारी जोंग। याटुंग में मारवाड़ियों की दुकानें थीं। यह और चुम्बी ग्राम अमोछू के तट के निकट ही बसे हुए हैं। चुम्बी ग्राम की ऊँचाई लगभग १०,००० फुट होगी। इसके थोड़ी ही दूर उत्तर में पेड़ों की रेखा समाप्त हो जाती है। तीसरा स्थान है 'फारी जोंग'। 'जोंग' का अर्थ है 'दुर्ग' और वास्तव में यहाँ है भी एक दुर्ग। इसकी ऊँचाई १४,२०० फुट है। यहाँसे धीरे-धीरे चढ़ाई आरम्भ होती है और यह चढ़ाई टांग ला तक जिसकी ऊँचाई केवल १५,२०० फुट है, समाप्त हो जाती है। फारीजोंग से टाँग ला ७ या ८ मील होगा। तो इतनी दूरी में १,००० फुट की ऊँचाई सुगम ही मानी जाएगी। टाँग ला के बाद मीलों तक भूमि समतल है। टाँग ला के बाद वास्तविक तिब्बत आरम्भ होता है। यहाँ नदियों की धीमी गति से भूमि का ढाल ज्ञात होता है। यदि यह नदियाँ न हों तो वहाँकी धरती के ढलाव की दिशा ज्ञात ही न हो। भारत में तो अमोछू बड़ी तीव्र गति से प्रवाहित होती है। इसके विपरीत तिब्बती नालों की गति धीमी है। यही कारण है कि तिब्बती सेना सुगमतापूर्वक चुम्बी घाटी में प्रवेश कर सकती है। १७९२ के युद्ध से प्रथम यही टांग ला सिक्किम की सीमा थी। बस यही बात है सिक्किम के उत्तर में, Kangra-la काँग्रा ला के पश्चात् खम्पा जोंग तक ढाल हल्का ही है। एक समय खम्पा जोंग भी सिक्किम का ही एक अंग था।

"पश्चिम में तिब्बत के लिए एक आकर्षण था जो आज भी है। उन्नीसवीं सदी के अन्त तक अफरीका में कुछ ही स्थान अज्ञात रह गये थे। दक्षिणी ध्रुव प्रदेश के अतिरिक्त केवल तिब्बत ही एक ऐसा भूभाग रह गया था जिसके विषय में संसार को बहुत ही थोड़ा ज्ञान था। जो ज्ञान था भी वह मन में कुतूहल तथा जिज्ञासा उत्पन्न करनेवाला था। योरोपियन इच्छुक थे कि किसी प्रकार तिब्बत के द्वार खुल जाएँ जिससे कि वे अपने वैज्ञानिक अनुसन्धान द्वारा तिब्बत के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकें। परन्तु चीनियों ने १७९२ के पश्चात् विदेशियों के लिए तिब्बत के द्वार बन्द कर दिए थे। न तो चीनी तिब्बत के द्वार ही खोलते थे और न अँगरेज तिब्बत के आकर्षण से अपने को मुक्त कर पाते थे। वह प्रयत्नशील रहे कि और कुछ न सही उनके

यँगहसबैण्ड अभियान १९०४ का मार्ग (चुंबी घाटी के मतलब हैं आमोछू का ऊपरी जल प्रणाली का क्षेत्र।) खम्पाजोंग, फारी, चुम्बी, याटुंग १७९२ तक सिक्किम में थे।

वैज्ञानिकों को ही अनुसन्धान के हेतु तिब्बत में प्रवेश करने की आज्ञा दे दी जाए। इस विषय को लेकर अँगरेजों का चीनियों से वार्तालाप आरम्भ हुआ। १८४२ में चीनी 'अफीम की लड़ाई' में अँगरेजों से परास्त हो ही चुके थे। इससे उनका दिमाग कुछ ठीक हो गया था और वे अँगरेजों की बात सुनने को तैयार हो गए। इस विषय पर बातचीत चलते चलते ३० साल बीत गए। अन्त में १८७६ में चीनियों ने अँगरेज वैज्ञानिकों को तिब्बत में आकर अनुसन्धान करने की आज्ञा दे दी। परन्तु इस बातचीत का कुछ भी पता तिब्बत सरकार को न था। अँगरेजों ने १८८६ में अपने वैज्ञानिकों को तिब्बत भेजा, किन्तु तिब्बतियों ने उनको न घुसने दिया। फिर जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि अँगरेज वैज्ञानिकों को चीनियों ने पासपोर्ट दिया है तो वे मारे क्रोध के आगबबूला हो उठे। उन्होंने वैज्ञानिकों का प्रवेश एकदम रोक दिया। उस समय तक चीनियों का प्रभाव भी तिब्बत में समाप्त-प्राय था। सिक्किम चीनियों का साथ छोड़कर अँगरेजों का सहारा ले चुका था। भूटान भी धीरे-धीरे तिब्बत से मुक्ति पा चुका था। नैपाल ने १८५६ में ल्हासा पर आक्रमण करके अपना १७९२ का बदला भी चुका लिया था। इस नैपाल-तिब्बती युद्ध में तिब्बतियों को काफ़ी मार खानी पड़ी थी। ल्हासा ने चीन से सैनिक सहायता माँगी भी परन्तु वह व्यर्थ ही रही। चीनी सहायता न कर सके। इस प्रकार चीनी न तो तिब्बतियों की सहायता कर पाये और न सिक्किम की। इसलिए तिब्बत और उसके निकटवर्ती प्रान्तों में एक हलचल सी फैली हुई थी। फिर चीनी षडयंत्र के फलस्वरूप आठवें, नवें, दसवें, ग्यारहवें और बारहवें दलाई लामाओं को १८ साल की आयु तक पहुँचने के पहिले ही मौत के घाट उतारा जा चुका था। इस प्रकार तिब्बती को चीनियों के नाम से चिढ़ हो गयी थी। फिर जब उन्हें ज्ञात हुआ कि चीनियों ने अँगरेजों को तिब्बत में प्रवेश की आज्ञा दे दी है, तब स्पष्ट रूप से उनकी समझ में आ गया कि अब चीनी उनकी धार्मिक स्वतन्त्रता में भी हस्तक्षेप करने लगे हैं। उन्होंने अपनी धार्मिक स्वतन्त्रता की रक्षा करने का निश्चय किया, और सिक्किम से सीमा-विवाद आरम्भ कर दिया। उन्होंने १८८८ में अपने लड़ाकू होने का प्रमाण सिक्किम की सीमा पर दिया। उस साल वह 'जैलप ला' पार कर लिंगटू तक पहुँच गये। यहाँ पहुँचकर उन्होंने रातोंरात भारत-तिब्बत मार्ग पर एक ऊँची दीवार चुन ली। जब ब्रिटिश भारत सरकार को ज्ञात हुआ तो उन्होंने भारतीय फौज की एक कम्पनी को तिब्बतियों को सिक्किम सीमा से बाहर निका-

...ने का आदेश दे दिया। भारतीय जवान जैसे ही लिंगटू ...हुँचे वैसे ही तिब्बती सेना तिब्बत लौट गई। परन्तु ...से ही भारतीय जवान लिंगटू छोड़कर अपने हेडक्वार्टर ...स पहुँचे, वैसे ही तिब्बती फिर लिंगटू पहुँच गये। ...नका कहना था कि लिंगटू तिब्बत का है। अँगरेज तंग ...आ गये और चीनियों से फिर सीमा सम्बन्धी वार्ता आरम्भ ...हुई। १८९० में फिर अँगरेजों और चीनियों की सीमा ...सम्बन्धी लिखा-पढ़ी होने के पश्चात् सीमा सन्धि हुई। ...इस सन्धि के आधार पर वर्तमान सिक्किम की सीमा को ...अन्तर्राष्ट्रीय सीमा मान लिया गया और कुछ समय ...पश्चात् इस सीमा पर खम्भे भी लगा दिए गए। इस सन्धि ...के पश्चात् 'भारत-तिब्बत वाणिज्य' वार्ता भी चीनियों ...से चलती रही। और अँगरेजों ने वाणिज्य सम्बन्धी सन्धि ...भी चीनियों से कर ली। इस संधि पर १८९३ में दोनों ...सरकारों के हस्ताक्षर हो गए। परन्तु तिब्बतियों ने चीनियों ...की एक न मानी, और इन सन्धियों को स्वीकार करना ...एकदम इंकार कर दिया। चीनियों की राजनीतिक स्थिति ...इतनी गिर चुकी थी कि वे तिब्बतियों पर जोर न डाल ...सके कि तिब्बत इन सन्धियों को स्वीकार कर ले। चीनियों ...को पूर्ण रूप से अवगत होने लगा कि तिब्बत उनके पंजे ...से निकल जाएगा। उन्होंने तिब्बतियों को शिक्षा देने ...की ठानी। परन्तु समस्या यह थी कि किस प्रकार वह ...शिक्षा दी जाय?

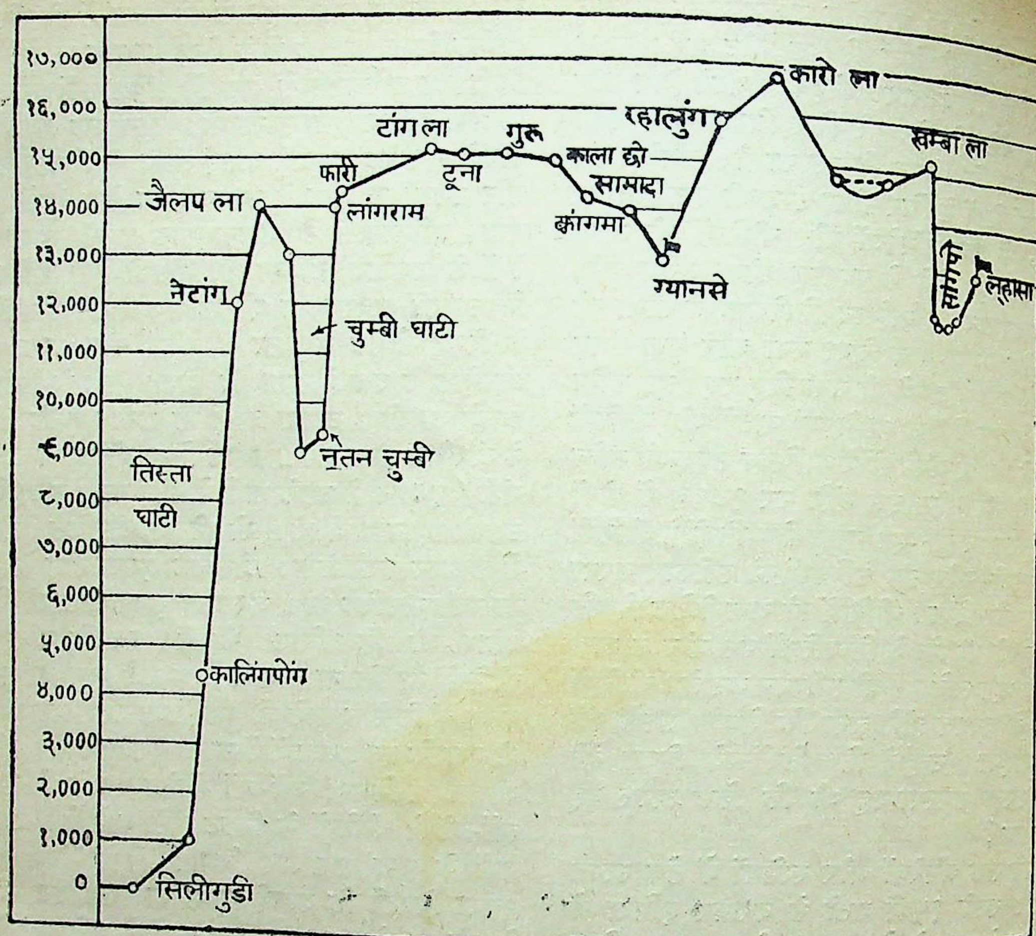
...उस समय तक अँगरेजों और रूसियों में द्वेष उत्पन्न ...हो चुका था। रूसी १५वीं शती से बराबर एशिया में ...आगे बढ़ते ही चले जा रहे थे। इस रूसी साम्राज्यवादिता ...से चीन भी त्रस्त हो उठा। इधर अँगरेजों ने सोचा कि ...कहीं रूस भारत पर आक्रमण न कर दे। ब्रिटिश-रूस ...में सन्धि हो चुकी थी, और उत्तर पश्चिम में 'डरहम ...लाइन' भारत की सीमा स्थिर हो चुकी थी। परन्तु अँग-...रेज रूस से घबराते ही रहे। यद्यपि उन्हें पूर्ण विश्वास ...था कि रूस तिब्बत पर आक्रमण नहीं करेगा, फिर भी ...रूस का ल्हासा में प्रभाव भारत के लिए हानिप्रद ही होगा। ...वे नहीं चाहते थे कि तिब्बत में रूसी प्रभाव आये। वह ...रूसियों को तिब्बत से दूर रखना चाहते थे। उन्होंने इस ...कार्य को सम्पन्न करने के लिए चीनियों से सहायता ली ...और उन्होंने वही किया जो चीनियों ने कहा। जिसमें ...साधारण सी बात यह थी कि अँगरेज चीनियों के मित्र ...बने रहे और रूस से युद्ध होने की संभावना मानकर तैयारी ...भी करते रहे। इस स्थिति का लाभ उठाकर चीनियों ...ने अपना उल्लू सीधा किया, और अँगरेजों को अपने षड्-...यंत्र में एक साधक बनाने का निश्चय किया।

(४)

...ल्हासा मध्य एशिया का प्रमुख धार्मिक केन्द्र है। ...यहाँ मंगोलिया, तुर्किस्तान, चीन और रूस के पश्चिमी ...क्षेत्रों से बौद्ध यात्री आया करते थे। ल्हासा के निकट ...तीन धार्मिक गुम्फे हैं। ड्रापुंग, सेरा और गाडेन। इनमें से प्रत्येक गुम्फे में हजारों की संख्या में बौद्ध विद्यार्थी धार्मिक शिक्षा ग्रहण करने के लिए आया करते थे। परन्तु किसी अज्ञात कारण से इन विश्वविद्यालयों में मंगोल विद्यार्थी प्रवेश नहीं पा सकता था। परन्तु एक रूसी मंगोल डोरजिक नामक युवक ने दलाई लामा से मित्रता कर ली और उनकी सहायता से उसका प्रवेश सेरा गुम्फे में हो गया। इतिहासज्ञों के कथनानुसार दलाई लामा अँग-रेजों से भयभीत तो था ही, उसको ऐसी शक्तिशाली मित्रता की आवश्यकता थी जो समय आने पर अँगरेजों के विरुद्ध सैनिक सहायता दे सके। कहा जाता है कि डोरजिफ ने दलाई लामा की मित्रता रूस के सम्राट् से कराने का बीड़ा उठाया। यह भी सम्भव है कि चीनियों ने डोरजिफ द्वारा अपना स्वार्थ सिद्ध होते देखा तो उनके मंत्री 'आभ,वन' ने उसके मार्ग में कोई बाधा न डाली और उसको सहायता दी हो। जो भी हो, डोरजिफ सेरा गुम्फे में अध्ययन करने लगा। डोरजिफ एराल झील के किनारे का रूसी नागरिक था। जब भी वह घर जाता तो विचित्र प्रकार की किंवदन्तियाँ फैलतीं। इन किंवदन्तियों में चीनियों का कितना हाथ था, यह नहीं कहा जा सकता। परन्तु चीनियों ने आगे जो कुछ किया उससे यह प्रमाणित हो गया कि इन अफवाहों में उनका पूरा हाथ था। चीनियों को अवसर मिला। ज्यों-ज्यों अँगरेज रूस के विरुद्ध होते, त्यों-त्यों वे चीनियों के निकट होते जाते थे। जब अँग-रेजों के गुप्त समाचार विभाग (Intelligence) को सूचना मिलती कि दलाई लामा का रुख रूस की ओर मित्रता का होता जा रहा है तब अँगरेज तिब्बत में प्रवेश करके सीधे दलाई लामा से सन्धि करने की बात सोचते। चीनी अँगरेजों की इस मूर्खता पर हँसते होंगे। रूस सरकार ने अँगरेज सरकार को कई बार विश्वास दिलाया कि उनका विचार तिब्बत पर अधिकार जमाने का तनिक भी नहीं है। परन्तु अँगरेज चीनियों के जाल में फँसे हुए थे। भला वे क्यों किसी की सुनते? परन्तु इतना होने पर भी अँगरेज तिब्बत में प्रवेश करने से झिझकते थे। चीनियों की इच्छा थी कि अँगरेज अपनी सेना सहित तिब्बत में प्रवेश करके तिब्बतियों का दर्प दलन करें। इन सब कारणों से अँगरेजों और तिब्बतियों में शत्रुता हो गयी। फिर भी ग्रेट ब्रिटन सरकार ने संयम और साहस से काम लिया। उन्होंने तिब्बत पर आक्रमण नहीं किया, चीनियों की चाल व्यर्थ हो गयी। परन्तु चीनी सरलता से पराजय स्वीकार करनेवाले नहीं, उन्होंने दूसरा षड्यंत्र किया और उसमें वे सफल हुए।

२ अगस्त १९०२ को पीकिंग स्थित अँगरेज राजदूत का एक तार लंदन पहुँचा। उसमें सूचना थी कि चीनियों और रूसियों में गुप्त सन्धि हो गयी है। इस सन्धि में १९ धाराएँ थीं, जिनमें निम्नलिखित धाराएँ विशेष महत्त्व की थीं:

१—चीन को अपनी दुर्बलता का भली भाँति ज्ञान



यँगहस्‌बैण्ड अभियान १९०४ का मार्ग

है। इसी कारण चीन ने अपने हितों की रक्षा रूस को सौंप दी है। इसके बदले में रूस ने चीन की राष्ट्रीय सीमा सुरक्षा का पूर्ण उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया है।

२—रूस ने इस उत्तरदायित्व को निभाने का उस दिन से वादा किया है जिस दिन से तिब्बत पर उसका पूरा शासन स्थापित हो जाए।

३—रूस ने यह उत्तरदायित्व भी अपने ऊपर लिया कि वह चीन के उन आंतरिक विद्रोहों और दंगों को दबाने में सहायता करेगा जिनका दमन करने में चीन सरकार असमर्थ हो।

४—रूस तिब्बत में शासन-प्रबंध करने के लिए वहाँ रूसी अफसर नियुक्त करेगा, परन्तु चीन को ल्हासा में अपने मंत्री नियुक्त करने का पूर्ण अधिकार रहेगा।

५—रूस तिब्बत में ईसाई धर्म का प्रचार नहीं करेगा, और यदि रूस ने तिब्बत में रेलवे लाइन भी बिछाई तब भी धार्मिक स्थानों और मन्दिरों को क्षति न होने दी जायगी।

६—चीन को तिब्बत में खानों में से खनिज पदार्थ निकालने और रेलें बनाने के कार्य में भाग लेने का अधिकार रहेगा। चीन का जो सामान व्यापार के सिलसिले में तिब्बत जाएगा, उसपर कोई टैक्स नहीं लगेगा और यदि लगा भी तो नाम मात्र को।

इस सन्धि का पूर्ण विवरण चीन टाइम्स में प्रकाशित हुआ। फिर भला इसपर कौन अविश्वास करता? कुछ वाक्य ऐसे अवश्य थे जिन पर अँगरेज सन्देह कर सकते थे पर वे तो चीनियों को बुद्धू समझते थे। जब चीनी सरकार से इस सन्धि के विषय में पूछा गया तो उत्तर मिला कि ऐसी कोई सन्धि नहीं हुई। फिर सन्धि तो गुप्त रूप से हुई थी तो चीनी इसको क्यों, और कैसे स्वीकार करते? फिर कोई ऐसा विशेष कारण भी नहीं था कि जो सन्धि को पूर्ण रूप से अस्वीकार किया जाता।

इस सन्धि के पश्चात् ग्रेट ब्रिटेन की सरकार ने दृढ़ निश्चय किया कि भारतीय फौज ल्हासा भेज कर सीधे दलाई लामा से राजनैतिक वार्ता की जाए।

(५)

फ्रांसिस यँगहस्‌बैण्ड अँगरेज थे। वे अँगरेजी सेना में अफसर रह चुके थ। वे सुपठित, साहसी और यात्रा के शौकीन थे। ये उत्तरी कोरिया की यात्रा कर चुके थे, और

१९६४

उन दिनों प्रायः असंभव समझा जानेवाला काम--अर्थात् चीन से गोबी रेगिस्तान होते हुए सिंग्क्यांग पहुँचना--कर चुके थे। इन्होंने ही सिंग्क्यांग में मुस्ताग (Mustagh) आता श्रेणी का पता लगाया था। यह मुस्ताग आता श्रेणी काराकोरम श्रेणी के उत्तर में है। इनको पर्वतों का और पर्वतीय यात्रा का पूर्ण अनुभव था। वे लार्ड कर्जन के मित्र भी थे। जब ग्रेट ब्रिटेन ने कुछ सैनिक टुकड़ी सहित एक शिष्ट मंडल (मिशन) दलाई लामा के पास तिब्बत भेजने का निश्चय किया तो प्रश्न उठा कि इस मिशन का मुखिया किसे बनाया जाय। इसका सौभाग्य सर फ्रांसिस यँगहस्बैण्ड को प्राप्त हुआ। यह सोचा गया कि चूंकि कुछ फौज भी मिशन की सहायता के लिए भेजनी थी, इस कारण मिशन का अध्यक्ष कोई सैनिक अधिकारी ही हो। यँगहस्बैण्ड अपनी विद्वत्ता, बुद्धिमानी, व्यवहार-कुशलता, साहसिक यात्राओं के कारण प्रसिद्ध हो गये। वे उस समय इंदौर में रेजीडैण्ट थे। सेना में भी रह चुके थे और उन्हें कर्नल का पद प्राप्त था। बाद में 'सर' की पदवी भी मिली किन्तु वे कर्नल यँगहस्बैण्ड के नाम से ही संसार में प्रसिद्ध रहे। मिशन ने १९ जून १९०३ को तिब्बत के लिए सिलीगुरी से कूच किया। उनका मार्ग कितना बीहड़ था, तथा उन्हें हिमालय को पार करके ल्हासा तक पहुँचने में कितने ऊँचे मार्गों को पार करना पड़ा, यह साथ में दिए हुए दोनों मानचित्रों से ज्ञात हो जाएगा।

ब्रिटिश सरकार ने बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया। उन्होंने मिशन को केवल खम्पा जोंग तक जाने की आज्ञा दी। उनकी इच्छा थी कि तिब्बती यदि स्वयं ही मित्रता के लिए तैयार हो जायें तो भारतीय सेना को ल्हासा भेज कर धन और समय क्यों नष्ट किया जाए।

(११)

मिशन गैंगटाक होता हुआ थांगू (Thangu) पहुँचा, और थांगू से कांगरा ला होता हुआ ७ जुलाई को खम्पाजोंग। खम्पाजोंग में कोई ऐसा तिब्बती या चीनी अफसर न आया जिससे संधि की बातचीत हो सकती। मिशन खम्पाजोंग में तिब्बती दूत की प्रतीक्षा करता रहा, परन्तु कोई भी तिब्वती उच्चपदाधिकारी नहीं आया। खम्पाजोंग में हुए दो विशेष कारणों ने अँगरेजों के मिशन को ल्हासा जाने के निश्चय को दृढ़ कर दिया। पहिला कारण तो यह था कि दो अँगरेजी गुप्तचर लाचेन निवासी तिब्बतियों द्वारा पकड़ लिये गये और उनको ल्हासा जेल में बन्द कर दिया गया। अँगरेजी सरकार कुछ पंचशील का ढोंग तो लिये हुए थी नहीं जो उसकी आड़ में दुबक जाती। वह सरकार तो ऐसी थी कि उसके किसी भी कर्मचारी का अपमान सरकार का अपमान माना जाता था। आज तो स्थिति ही दूसरी है। कांगो में एक भारतीय फौजी अफसर की अमरीकनों ने मार-मारकर कमर तोड़ दी, किंतु भारत सरकार ने एक कड़ी चिट्ठी लिखकर ही संतोष कर लिया। जैसे ही भारत की अँगरेज सरकार को सूचना मिली कि उनके दो गुप्तचरों को तिब्बतियों ने बन्दी कर लिया है तो लार्ड कर्जन ने विलायत को स्पष्ट रूप से लिख दिया कि मिशन ल्हासा अवश्य भेजा जाना चाहिए।

दूसरा कारण था चीनियों द्वारा गढ़ा हुआ एकदम असत्य। दिन रात मिशन को रूसियों के विषय में सूचना मिलने लगी। एक दिन तो यह सूचना मिली कि २००० रूसी सैनिक तिब्बतियों की सहायता के लिए शीघ्र ही ल्हासा पहुँच रहे हैं। मालूम होने लगा कि योरोपियन शक्ति से युद्ध अवश्यंभावी है। भारत में भी वाइसराय ने तैयारी शुरू कर दी। कर्नल यँगहस्बैण्ड को फिर शिमला बुलाया गया और होने वाले अभियान की पूरी योजना बतायी गयी। अभी तक मिशन के साथ उसकी रक्षा के लिए थोड़ी सेना थी, किंतु अब युद्ध की संभावना थी। इसलिए मिशन के साथ अधिक सेना भेजना आवश्यक हो गया। उसका प्रमुख अफसर जनरल मैकडानल को बनाया गया। कर्नल यँगहस्बैण्ड मिशन के रक्षा दल को खम्पाजोंग ही छोड़कर स्वयं ११ अक्टूबर को शिमला चले आये थे।

जब सारी सैनिक तैयारी हो गयी तो ११ दिसम्बर को ३,००० सिपाही और १०,००० कुली मिशन सहित नालंग (Gnalong) से विदा हुआ। जैलप ला पार कर १३ दिसंबर को यह मिशन 'आमोछू' की घाटी में उतरा। जो भी तिब्बती अफसर अथवा लामा आता, वह केवल कर्नल साहब से यही कहता कि पीछे हट जाओ, परन्तु कर्नल साहब उनको विश्वास दिलाते कि यदि तिब्बतियों ने गोलियाँ नहीं चलाईं तो भारतीय सनिक कदापि गोली न चलाएँगे। इस प्रकार फौज बिना गोली चलाए फारी-जोंग तक पहुँच गयी। फारीजोंग के दुर्ग में पीछे का केन्द्र (rear head quarter) भी बना लिया गया। फारीजोंग से टांग ला (१५,२०० फुट) पहुँची। यहाँ पर भारतीय सैनिक टुकड़ी भी जो खम्पाजोंग में रह गयी थी, पहुँच गयी। अन्त में ८ जनवरी को कर्नल साहब अपनी सारी सेना सहित टूना Tuna पहुँचे। यहाँ भी वही परि-हास होता रहा। तिब्बती अफसर आए और आए लामा। सबने स्वर मिलाकर केवल यही गान किया कर्नल यँगहस्बैण्ड! याटुंग लौट जाओ। परन्तु उन्हें तो ल्हासा जाना था। तिब्बती फौज गुरू में जो टूना से १० मील पर स्थित था एकत्र हो चुकी थी। समस्त तिब्बती सैनिकों को अंधविश्वास था कि कर्नल ने ल्हासा में प्रवेश किया नहीं कि उनपर दलाई लामा का ऐसा कोप होगा कि समस्त भारतीय फौज भस्म हो जाएगी। और बिना युद्ध के ही अँगरेजों की पराजय होगी तो व्यर्थ युद्ध क्यों करें। यही विचार कर तिब्बती बन्दर भबकी देते रहे। उन्होंने गुरू में एक दीवार बना ली थी उसीके पीछे उन्होंने मोर्चा बनाया।

३१ मार्च को मिशन टूना से गुरू की ओर अग्रसर हुआ। जब गुरू में सेना पहुँची तब भी वही ढंग। 'इसी

वाद-विवाद में तिब्बती जनरल को क्रोध आ गया और उसने एक सिख के ऊपर फायर कर दिया। यद्यपि गोली निशाने पर नहीं लगी, तथापि सैनिकों को फायर करने का बहाना मिल गया। तिब्बतियों की कारतूसी बन्दूकें क्या काम देतीं ? वे बिना युद्ध किये ही लौटने लगे। वे भागे नहीं, गोलियों की बौछार पड़ती रही। उसमें वे सिर नीचा किये हुए धीरे-धीरे वापिस जा रहे थे। प्रायः छः या सात सौ तिब्बतियों सहित उनका जनरल मारा गया। वह युद्ध क्या था, एक प्रकार की निर्मम हत्या थी। ब्रिटिश फौज के केवल ६ सैनिक घायल हुए।

फौज बिना किसी बाधा के ग्यान्टसे (Gyantse) पहुँच गयी। और उसने वहाँ अपना अड्डा बना लिया। यहाँ ३ मई का (Karu-La) कारू ला अभियान बहुत महत्त्वपूर्ण है। ब्रिटिश सरकार नहीं चाहती थी कि कोई भी फौजी टुकड़ी ग्यान्टसे से आगे जाए परन्तु प्रत्येक सैनिक टुकड़ी कारू ला पहुँची। यहाँपर भी तिब्बतियों ने ल्हासा मार्ग पर एक २४०० फीट लम्बी पत्थरों की दीवार बना रखी थी। इस दीवार की ऊँचाई ७ फीट और मोटाई ४ फीट थी जिसे भारतीय सैनिकों को सीधे पार करना बहुत कठिन था। उसे केवल एक ही रीति से पार किया जा सकता था। वह यह कि दायें और बायें पर्वतों पर चढ़ा जाए और तिब्बती सेना पर पीछे से फायर किया जाए। प्रातःकाल बाईं ओर गोरखों का एक सैक्शन (१२ सैनिकों का), और दाईं ओर दूसरा सैक्शन सिखों का रवाना हुआ। चढ़ते-चढ़ते घंटों लग गये, लगभग १½ बजे यह सैक्शन १८,५०० फुट की ऊँचाई पर पहुँचा और तिब्बतियों पर पीछे से गोली चलाना आरंभ कर दिया। तिब्बती सेना के पाँव उखड़ गये। कारू ला खाली हो गया, और ब्रिटिश फौज इस दीवार पर विजय प्राप्त करके ग्यांटसे लौट गयी। ग्यांटसे में तिब्बतियों ने गोलाबारी जारी रखी, पर ब्रिटिश फौज की अधिक हानि न हुई। अन्त में १४ जुलाई को ब्रिटिश फौज ने ल्हासा के लिए कूच किया। ब्रह्मपुत्र पार करके २ अगस्त को सेना ल्हासा से ७ मील रह गयी। तिब्बतियों ने फिर बात की कि ब्रिटिश सेना ल्हासा में प्रवेश न करे। परन्तु बढ़ती हुई सेना अपना लक्ष्य पूरा किये बिना भला कैसे रुकती ? यँगहस्बैण्ड ने ३ अगस्त को ल्हासा में प्रवेश किया।

ल्हासा पहुँचने पर ज्ञात हुआ कि रूसी फौज के आने की धमकी व्यर्थ थी। वहाँ रूसी सेना तो क्या, कोई रूसी भी न था। चीनी आभवन (राजमंत्री) तो प्रसन्न होता ही। तिब्बतियों को शिक्षा जो मिल गयी। दलाईलामा ल्हासा छोड़कर उत्तर की ओर जा चुका था। परन्तु वह एक बड़े लामा को सन्धि करने का अधिकार दे गया था। एक महीने के वादविवाद के बाद ७ सितंबर को इस संधि पर कर्नल यँगहस्बैण्ड और तिब्बती लामा के हस्ताक्षर हुए। चीनी राजमन्त्री ने हस्ताक्षर करने से इंकार कर दिया। आज तक तो तिब्बत के मामले में जो संधि होती थी उसपर तिब्बतियों के साथ चीनी भी हस्ताक्षर करते थे, परन्तु इस बार केवल ब्रिटिश सरकार तथा तिब्बत सरकार के प्रतिनिधियों के हस्ताक्षर हुए। तात्पर्य यह कि अँगरेज तिब्बत के रक्षक बन गये, और चीनी पराये हो गये। भला चीनी यह कब सहन कर सकते थे ! उन्होंने अँगरेजों से बात करके अपने षड्यंत्र द्वारा एक और सन्धि के लिए सहमत कर लिया। यह सन्धि १९०६ में कलकत्ते में हुई जिसके द्वारा ब्रिटिश सरकार ने तिब्बत के ऊपर चीन की प्रभुता स्वीकार कर ली। चीन का मतलब पूरा हो गया। ब्रिटिश कभी भी तिब्बत को अपने अधिकार में लेना नहीं चाहते थे। वह इसी बात के इच्छुक थे कि चीन के अधिकार में तिब्बत रहे क्योंकि इसीमें उनका स्वार्थ सिद्ध होता था। चीनियों ने अवसर हाथ से न जाने दिया और एक विशाल सेना जनरल चांग एरह (Chang-Er-Fang) की कमान में पूर्वी तिब्बत भेजी। इस जनरल ने तिब्बतियों की जो हत्या की उसका वर्णन लेखनी से परे है। जो भी हो, जनरल चांग ने 'भीतरी' (इनर) तिब्बत की नींव डाली। उसने चामगे का पूरा प्रान्त रौंद डाला और उसकी एक फौजी टुकड़ी लोहित होते हुए वालोंग के निकट जा पहुँची। लोहित बड़ा विकट प्रदेश है यहाँ हर समय पर्वत टूटते रहते हैं। जनरल की सेना यहाँ से लौट गयी। आसाम के मैदान में न आयी। जनरल 'चांग एरहफैंग' की दो सिफारिशें महत्त्वपूर्ण थीं। पहिली बात उसने यह कही कि चामगे का प्रान्त चीन में सम्मिलित कर लिया जाए। इसका पालन १९४४ में किया गया, और चामगे (ल्हासा के लगभग १०० मील पूर्व में) आज भी चीन में सम्मिलित है। चीनियों ने इस प्रान्त का असली तिब्बती नाम बदलकर चीनी नाम सीकांग (नया प्रदेश) रख दिया। (सीकांग सिक्यांग से भिन्न है।) दूसरी बात जो उसने कही वह आज भी महत्त्वपूर्ण है। उसने कहा कि नैपाल, सिक्किम, तिब्बत एवं भूटान को मिलाकर इनका एक संघ (federation) बना दिया जाए।

(६)

७ सितम्बर की ल्हासा की सन्धि के पश्चात् ब्रिटिश फौज ने भारत की ओर डग बढ़ाए, उन्होंने रक्तपात किया और पीछे हटे। सीमान्त प्रान्तों के लिए यह नीति सदैव ही वहाँके निवासियों के लिए बड़ी ही हानिप्रद रही है। और हुआ भी ऐसा ही। १९२० में चीनियों ने तिब्बत में प्रवेश किया और मनमानी की। फिर यह सन्धि भी क्या थी और इसका भारत और तिब्बत पर क्या प्रभाव पड़ा ? सन्धि की शर्तों में प्रमुख बातें निम्नलिखित हैं:—

(१) तिब्बत किसी अन्य देश से ब्रिटिश की आज्ञा बिना राजनीतिक वार्ता नहीं करेगा (बाद में १९०६ की कलकत्ता सन्धि से वह अधिकार अंग्रेजों के चंगुल से निकल कर चीनियों को मिल गया) अंग्रेज तिब्बत के लिए विदेशी हो गये और चीनी बने रक्षक। ब्रिटिश ने १९०४ की

...के पश्चात् दलाई लामा से सीधे वार्ता करने का जो अधिकार प्राप्त किया था उससे भी हाथ धो बैठे।

(२) भारत को भारतीय-तिब्बत वाणिज्य की ...ओं के लिए याटुंग, सिघाटशे और गन्तोग में अपना ... कार्यालय' स्थापित करने का अधिकार मिल गया। ...यह अधिकार भी १९०८ की वाणिज्य सन्धि से ...हो गया। क्योंकि इस नवीन सन्धि के आधार पर ...ीय व्यापारी तिब्बत के लिए विदेशी हो गये। १९०८ ...भारतीय व्यापारी तिब्बत में इच्छानुसार व्यापार के ...जाते थे। ल्हासा की ओर जाने में और कठिनाइयाँ ...। तिब्बती आज्ञा केवल ब्रह्मपुत्र नदी तक काम ...थी उसके पश्चात् चीनी पासपोर्ट लेना पड़ता था ...यह कि तिब्बत चीनियों का देश हो गया था।

(३) भारतीय सरकार को आज्ञा मिल गई कि वह ...तक अपना तार बिछा दे। इससे भारत को कुछ ...नहीं हुआ। ब्रिटिश ने ल्हासा में अपना एजेन्ट रखने की माँग नहीं की थी। तिब्बती इस तार द्वारा ...और कलकत्ता से चीन शीघ्रता पूर्वक सूचनाएँ ...से भेजने लगे।

भारत ने अपने डाक बँगले भी याटुंग से शिगटसे तक ...लिये थे। वह सब भारत ने १९५४ में छोड़ दिया। ...ने तिब्बत को चीन का अंग तो स्वीकार किया ही ...स्वरूप तार की लाइन और बँगले भी दे दिये। ...सैनिकों की जो टुकड़ी आढ़ती प्रतिनिधियों की ...हेतु तिब्बत में रहती थी वह भी हटा ली।

(४) यंगहसबैन्ड का विचार था कि हिमालय में ...घाटी सबसे महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने इस वादी को ...सा रख लिया। तिब्बत को युद्ध का हरजाना देना ...। यह राशि ७५,००,००० रु० निश्चित की गयी। ...एक छोटा प्रदेश है। इतनी भारी राशि वह कहाँ ...। तो यह निश्चय हुआ कि वह यह राशि ७५ किश्तों ...और तिब्बत ने स्वयं यह स्वीकार किया कि जब ...यह धन न चुका दे तब तक चुम्बी घाटी ब्रिटिश ...के आधीन रहेगी। इस प्रकार चुम्बी वादी आज भी ...का ही अंग होता और यही उचित भी था क्योंकि ...लिक दृष्टि से यह भारत का महत्त्वपूर्ण अंग है। ...१७९२ से पहिले यह सिक्किम का ही एक अंग था। ...साहब ने साम्राज्य के लाभ की दृष्टि से यही उचित ...कि इसे भारत में ही सम्मिलित कर लिया जाय। ...लारेन्स उनको व्यक्तिगत पत्रों में बता चुके थे कि ...इस बात का बुरा न मानेगा कि ब्रिटिश ने चुम्बी वादी ...में सम्मिलित कर ली। फिर उस समय रूस पूर्वी ...से संग्राम के चक्कर में था और जापान के साथ ...में संलग्न था। परन्तु ब्रिटिश सरकार ने यंगहस्बैन्ड ...एक न सुनी। ७५,००,००० के २५,०००० लाख ...दिये और समय की शर्तें भी हटा ली। जब चीनियों ने इस हरजाने को तीन किश्तों में निबटा दिया तो ब्रिटिश की आँखें खुलीं पर अवसर बार-बार तो आता नहीं।

(७)

यंगहस्बैन्ड के अभियान से चीनियों को पूर्ण लाभ मिला। तिब्बत की सैनिक शक्ति गिर गयी और चीनियों के लिए तिब्बत के द्वार खुल गये। विनाश हुआ तिब्बतियों का और गोला बारूद तथा धन व्यय हुआ भारत सरकार का। भला चीनियों को ब्रिटिश से अधिक बुद्धू कौन मिलता। अर्थात् चीनियों की कूटनीति के समक्ष ब्रिटिश को नीचा देखना पड़ा। लेकिन ब्रिटिश की तो केवल हानि हुई तिब्बत तो नष्ट भ्रष्ट हो गया।

दलाई लामा तिब्बत के पूर्व में चले गये थे। चीनियों की चाल से वे १९५० में पीकिंग पहुँच चुके थे। उस समय उनका सम्मान हुआ परन्तु १९०४ में दलाई लामा को चीनी सम्राट् के समक्ष नतमस्तक होना पड़ा। यह तिब्बतियों के लिए बहुत बड़ा अपमान था। दलाई लामा अन्तर से चीनियों से घृणा करते थे पर वे करते क्या। यदि कोई उनकी सहायता कर सकता था तो वे थे अंग्रेज। पर अंग्रेजों का तो निश्चित मत था कि तिब्बत चीन का ही एक अंग है। तो दलाई लामा जाएँ जहन्नुम में उनकी बला से। जब १९०८ में दलाईलामा तिब्बत वापिस आये तो उनकी विचित्र स्थिति थी। चीनी उन पर रुष्ट थे। अंग्रेज उन्हें चीनियों के मातहत समझते थे। परन्तु १३वें दलाई लामा ने साहस से काम लिया। समय काटा और अंग्रेजों से सहायता माँगी परन्तु चार्ल्स वैल्स ने मीठी बातों में टाल दिया और कह दिया कि चीनियों से मित्रता रखने में ही दलाई लामा का हित है। पर भला बाघ और बकरी की मित्रता कैसी। चीनी तिब्बत में जमे रहे। अचानक तिब्बतियों को सहायता मिली। वह सहायता थी चीनी आन्दोलन।

चीन में आन्दोलन हुआ। फलस्वरूप मानचू सम्राट् सिंहासन से हटा दिया गया। प्रजातन्त्र सरकार बनी। इस आन्दोलन का प्रभाव तिब्बत स्थित चीन की सेना पर भी पड़ा और वेतन न मिलने पर उन्होंने अपने अफसरों के प्रति विद्रोह कर दिया जिसमें कई चीनी अफसर मारे गए। अफसरों का प्रभाव न रहने के कारण चीनी सेना दुर्बल हो गयी। दलाई लामा ने अपनी फौज द्वारा उनके शस्त्र रखवाकर उन्हें देश से निकाल दिया। पर चीनी सिपाही १९१३ में कलकत्ते की राह अपने देश लौट गये। दलाई लामा स्वतन्त्रता की घोषणा तो १९१२ में ही कर चुके थे परन्तु चीनी सेना हटने से तिब्बत वास्तव में स्वतन्त्र था। जिस देश को ब्रिटिश जैसी राष्ट्रीय शक्ति स्वतन्त्रता न दिला सकी उसको चीन के राष्ट्रीय आन्दोलन ने स्वतंत्रता दिलाई। परन्तु ब्रिटिश के विचारों में परिवर्तन न हुआ वे तिब्बत को चीन के मातहत ही समझते रहे।

पर्वतीय कवि गुमानी की काव्य-साधना

श्री चारुचन्द्र पांडे

संस्कृत कवियों की परम्परा में पर्वतीय कवि गुमानी का एक विशिष्ट स्थान है; किन्तु दुर्भाग्य है कि ऐसे कुशल कवि की रचनाएँ अभी तक दुर्लभ ही बनी हैं। केवल दो-एक पुस्तकों में गुमानी की कुछ कविताओं का संग्रह प्राप्त होता है, शेष काव्य का पता लगाने की दिशा में उल्लेखनीय प्रयास नहीं हो पाया। साहित्यिक शोधकार्य करनेवाले नवयुवकों को यह कार्य अपने हाथ में लेना चाहिए।

कविवर गुमानी का जन्म, छाना निवासी श्री देवीदत्त पांडेजी के अनुसार, वि० संवत् १८४७ में काशीपुर में हुआ था, और मृत्यु वि० संवत् १९०३ में। उनका असली नाम लोकनाथ था। गुमानी के प्रसिद्ध ग्रंथ रामनामपंचपंचाशिका, राममहिमा, गंगाशतक, जगन्नाथाष्टक, कृष्णाष्टक, रामसहस्रगणदण्डक, चित्रपद्यावली, कालिकाष्टक, तत्त्वविद्योतिनी पंचपंचाशिका, रामविषय-विज्ञप्तिसार, नीतिशतक, शतोपदेश तथा ज्ञानभैषज्यमंजरी हैं।

गुमानीजी ने गुरु से विधिवत् दीक्षा लेकर चौबीस वर्ष की अवस्था तक अखण्ड विद्योपार्जन किया। गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने हेतु विवाह किया, किन्तु पुनः किसी कारण से विरक्ति का ध्यान प्रबल हो उठा और बारह वर्ष के लिए तीर्थाटन हेतु निकल पड़े। प्रयाग में गायत्री का अनुष्ठान किया और भागवत का पारायण। वर्षों फलाहार पर रहे। व्रतोद्यापनानन्तर माता के आग्रह को स्वीकार कर गृहस्थ-प्रवेश किया और सरस्वती की साधना की।

गुमानीजी के विषय में पूछताछ के सिलसिले में लेखक को उनकी पौत्र-वधू से जो बातें ज्ञात हुई उन्हें निम्न दो अवतरणों में सारांश रूप में दिया जाता है।

गुमानीजी के पिता नैपाल में फौजदार थे। गुमानीजी की चार शादियाँ हुई थीं। मृत्यु के समय उनके पुत्र गंगादत्तजी ६ महीने के व रामदत्तजी १८ वर्ष के थे। कहते हैं, गुमानीजी अपने उपरड़ा के घर की दीवारों में कुछ धन चिनवाकर छोड़ गये थे। उस धन के साथ एक लेख (ताम्रपत्र ?) भी था, जिसे पढ़वाने के लिए बनारस भेजा गया था। वे ६, ७ हाथ लम्बा एक पत्रा भी छोड़ गये थे और कह गये थे कि इसे जलाना मत। किन्तु वह पत्रा भी अन्य सम्पत्ति के साथ रामदत्तजी ले गये जो अपनी ससुराल कालसिला में बस गये थे। उस पत्रे में क्या था और अब वह है या नहीं, दैव जाने।

गुमानीजी राम के अनन्य भक्त थे। तीन वर्ष तक देवप्रयाग की एक गुफा में इन्होंने साधना की और दूब का रस पीकर रहे। हरिद्वार में, कुम्भ के अवसर पर, ये अपने चाचा द्वारा योगीवेश में भी पहचान लिये गये और मनाजनाकर घर लाये गये। इस प्रकार इनका गृहस्थ-जीवन प्रारंभ हुआ और साथ ही साहित्य-सेवा भी। गंगोली में ये भागवत आदि की कथाएँ बाँचते और कविताएँ र[illegible] लोग इनकी वाणी तन्मय होकर सुना करते। घर का [illegible] काम छचोड़-छचोड़ियों (दास-दासियों) द्वारा होता।

गुमानी की रचनायें सभी स्फुट हैं। कोई महा[illegible] इन्होंने नहीं लिखा। मन की मौज में जो कुछ प्रस्[illegible] हुआ वही काव्य बन गया। न मालूम कितने ऐसे प[illegible] ही विनष्ट हो गये होंगे जिन पर उन्होंने कविताएँ [illegible] होंगी। कितनी अभी ऐसी रचनाएँ होंगी जो प[illegible] कागज पर हस्तलिखित कहीं पड़ी होंगी। संस्कृत, हि[illegible] उर्दू, नैपाली तथा कुमाउनी में इनकी रचनाएँ प्राप्त [illegible] हैं। उनके रचे हुए संस्कृत के श्लोक बड़े सुमधुर [illegible] सरस हैं एवं भक्ति-रस-वांछित तल्लीनता से आ[illegible] हैं। शब्द-शक्ति तथा प्रयोग-चमत्कार से उनके काव्य-[illegible] सर्वत्र जगमगा उठे हैं। कहीं कोमलकान्त पदावली [illegible] मृदु गुंजार है तो कहीं टवर्गादि संयुक्त परुष वर्णों [illegible] रसोद्रेक।

'हितोपदेश-शतक' के सौ श्लोक अपने ढंग के अ[illegible] हैं। प्रत्येक श्लोक के प्रथम चरण में एक पौराणिक [illegible] का संकेत है, दूसरे में उससे प्राप्त सदुपदेश अथवा व्य[illegible] कुशलता की चर्चा। ग्रंथ गुमानी के विशद अध्ययन [illegible] स्मरणशक्ति का प्रतीक होने के साथ ही उनकी क[illegible] शक्ति का भी परिचायक है। पौराणिक उदाहरणों के आ[illegible] पर सदाचार शिक्षा का यह अद्भुत प्रयास है। इस पु[illegible] का मंगलाचरण भृगु की लात मारने की कथा लेकर [illegible] सिंधु भगवान् विष्णु की आराधना से प्रारम्भ होता है:

त्रिषु देवेषु महान्तं भृगुर्बुभुत्सुः परीक्ष्य हरिमेकम्।
मेनेऽधिकं महिम्ना सेव्यः सर्वोत्तमो विष्णुः॥

नहुष की याद दिलाकर ऐश्वर्य प्राप्त हुए व्यक्ति [illegible] मत्त न होने का परामर्श किस कौशल से दिया गया है:

स्वाराज्यमश्नुवानः प्रकोप्य नहुषो मुनीनहिर्भूत्वा।
न्यपतत्त्वरितमधस्तात्, प्राप्तैश्वर्यो न दृप्तः स्यात्॥

विषय-विषवर्जन हेतु यह उक्ति देखिये :—

विहरन् वधूभिरन्तःपुरेऽग्निवर्णो दिवानिशं कामी।
ग्रस्तोऽथ यक्ष्मणाभूद् विषयानं विषभीषणान् विद्यात्॥

काम का आवेग कितना दुर्जेय होता है। विश्[illegible] कुत्ता बनकर उर्वशी के पीछे-पीछे चले :—

मुनिरपि विश्वामित्रः श्वाभूत्वा गूढमुर्वशीवशगः।
अन्वव्रजत स्मरार्तो, भेतव्यं दुर्जनात् कामात्॥

दत्तात्रेय की कथा का संकेत देकर नीच से भी स[illegible] ग्रहण करने की प्रेरणा इस कथन में दी गयी है:

एकाग्रतां स्वकर्मणि दत्तात्रेयः प्रपश्य शरकर्तुः।
समशिक्षतात्मयोग्यां, नीचादपि सद्गुणो ग्राह्यः॥

इसी प्रकार विभिन्न पौराणिक प्रसंग लेकर जी[illegible] विभिन्न क्षेत्रों में पग-पग पर व्यक्ति को सचेत [illegible] गया है।

...मंजरी' में कवि ने दुहरा उद्देश्य पूरा
छन्द के प्रथम चरण में भगवद्विषयक आह्वान
विवेचन है, तो दूसरे चरण में उसीके समा-
निवारण की विधि या ओषधि, यथा :

एकः प्रकृष्टभवतापवारणप्रथितः।
केवल इव पर्पटक्वाथः॥

का सम्यक् ज्ञान ही संसार-भय का नाश
जैसे केवल पित्तपापड़ा का क्वाथ पित्तज्वर को
है।

रससंगगर्भा यदि हि समुत्सारयेन्न संसारम्।
न जरये तर्हि शिवा क्षौद्रसम्पन्ना॥

संसार का आवागमन विषयों से अनासक्ति
तो जानो शहद मिलाई हरड़ का चूर्ण भी विषम
न करे।

अन्य प्रकार से भी वैद्यक शास्त्र सम्बन्धी उपचार
हैं :

शास्त्रं वितनोत्यात्मप्रबोधमनधीतम्।
अभ्युदयं, करोत्यभुक्तं त्रिकटुचूर्णम्॥

उपनिषद् शास्त्र नहीं पढ़ा गया तो आत्मज्ञान
। वैसे ही त्रिकटु--सौंठ, मिर्च, पीपल—बिना
जठराग्नि कैसे बढ़ेगी?

गुरुवाक्यं, प्रजायते सावधारणं भ्रमजित्।
तत्सतैलं लशुनमपस्मारविध्वंसि॥

यह सत्य है कि विश्वास सहित गुरुवचन भ्रम-
तो यह भी सत्य है कि तेल मिश्रित लहसुन मृगी
करनेवाला है।

शमाढ्यो हृत्सन्तोषो न शोकनाशकरः।
अभ्रकरसो गुड़ाढ्यो न शोथहरः॥

असंगत है कि शमसहित चित्तसंतोष शोकनाश
वैसे ही यह भी असंगत है कि गुड़ सहित अभ्रक-रस
न करे।

...नाशिका' का अध्यात्म-निरूपण कवि की
साधना का दर्पण है।

...तत्त्व निरंजन तत्त्व है, सत्व, रज, तम के संसर्ग
भासित होता है जैसे रंग-बिरंगे फूलों से स्फटिक
आभा धारण करता है :

स्वयं विशुद्धस्त्रिगुणोपाधिप्रधानसंसर्गात्।
तत्स्वरूपः प्रसूनयोगादिव स्फटिकः॥

ही आत्मतत्त्व समस्त विश्व में अनेक कैसे हो
जैसे एक चन्द्रमा अनेक जलपात्रों में अनेक हो गया :

...विलेषु प्रतिबिम्बित एक एव सन्नात्मा।
...ति बहुविधरूपो हिमकर इव नीरपात्रेषु॥

...सूक्ष्मत्व, सर्वातिशयता, अखंडता, सर्वव्यापकता,
..., 'ऊर्णनाभित्व', 'कनककुंडल इव भेदाभेदत्व'
अनेक गहन तत्त्वों का विवेचन उपनिषदों की ही
...सा प्रतीत होता है :

छेदविशोषणदाहाद्यविषयप्रसक्तमस्पृश्यम्।
सूक्ष्मं सर्वगमचलं भवति ब्रह्मान्तरिक्षमिव॥
(दृष्टव्य : अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातन--गीता)

स्फुटदृश्ये क्षणनाशिनि, विश्वे मायामयेन्वस्मिन्।
तादात्म्यतो निगूढं ब्रह्म ततं क्षीर इव सर्पिः॥
(दृष्टव्य : सर्वव्यापिनमात्मानं क्षीरे सर्पिरिवार्पितम्-
श्वेताश्वतर०)

अन्तः सुदुर्विभाव्यं वस्तु समस्तस्य भुवनकोशस्य।
आधारभूतमेकं मुक्ताहारस्य सूत्रमिव॥
(दृष्टव्य : मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव-गीता)

जगतः स एव एक स्वमुपादाननिमित्तमस्य द्विविधम्।
कारणमयमात्मा, तन्तुचयस्योर्णनाभ इव॥
(दृष्टव्य : यस्तन्तुनाभः इव तन्तुभिः प्रधानजैः स्वभावतो।
देव एकः स्वमावृणोत्। स नो दधाद्ब्रह्माप्ययम्-
--श्वेता०)

नाम-रूप केवल बीच के व्यवधान हैं—

रूपाभिधानभूतं भेदोपाधि निरस्य तत्कालम्।
ब्रह्मत्वमेति जीवः कनकत्वं कुण्डलादिरिव॥

जीवात्मा-परमात्मा कठोपनिषद् में एक वृक्ष पर बैठे दो पक्षी बताये गये हैं; गुमानी के शब्दों में भी :

विहितास्पदौ शरीरे मिथः सखायौ सनातनौ सयुजौ।
वसतः परात्मजीवौ, खगाविव द्वौ महावृक्षे॥
(दृष्टव्य : द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्व-
जाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥)
--कठ०)

भोगेच्छया हृषीकैः सह निर्यत्सत्वरं मनो दूरम्।
हरति प्रसह्य बुद्धिं पयसि तरीं मातरिश्वेव॥
(दृष्टव्य : इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि--गीता)

ह्रीमूढ़त्व प्राप्त होने पर उसके संसर्ग से आत्मा भी दूषित हो जाता है—

अज्ञानमात्मनोन्तःकोशनिरुद्धस्य बहिरवस्थानात्।
स्वसरूपतां प्रयुङ्क्ते पेशस्कारीव कीटस्य॥

इसी सन्दर्भ में 'भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया' अथवा 'उमा दारुयोषित की नाईं। सबहिं नचावत राम गोसाईं' भाव को गुमानी ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

त्रिगुणैः कर्मभिरन्तः संकलितान् देहिनः परेशोन्तः।
व्यापारयति यथेष्टं, सूत्रैरिव पुत्तिकाः कुहकः॥

देवी देवताओं की स्तुतियों में कवि ने भाषा, भाव तथा छन्द का ऐसा मनोरम सामंजस्य उपस्थित किया है कि इस पावन त्रिवेणी में स्नान कर मन की समस्त मलिनता सहज ही दूर हो जाती है। प्रसंगानुकूल रूप, शील तथा सामर्थ्य का यथातथ्य चित्रण भाव-विभोरता में हृदय को डुबा देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीराम के दिव्य चरित्रों पर उनका मन अधिक टिका। लोकानुरंजन की

अपेक्षा लोक-संग्रह पर प्रवृत्ति अधिक रहने से कृष्ण की अपेक्षा राम को ही उन्होंने अपना इष्ट माना। इस सन्दर्भ में यह ध्यान देने योग्य बात है कि कुमाऊँ में कृष्णलीला विषयक साहित्य का प्रसार अपेक्षाकृत बहुत ही कम हुआ। यदा कदा होनेवाली भागवत की कथा, जन्माष्टमी आदि पर्व तथा कुछ लोकगीतों के अतिरिक्त अन्यत्र कृष्णचरित्र का विकास यहाँ नहीं दीखता। श्रीराम की उपासना अधिक मान्य रही। संस्कार-गीतों में रामकथा की बहुलता, राम-लीला की विशिष्ट शैली, मानस-प्रेम तथा राम मन्दिरों की स्थापना इस मान्यता को पुष्ट करती है। गुमानी के काव्य में राम की स्तुतियाँ बहुत ही सुन्दर बन पड़ी हैं :

भुवनप्रथितप्रथमेशकृत प्रथयोर्धृतवारिजसायकयोः।
तडिदभ्ररुचो रतिमन्मथरूपकयोर्न्मथनैकविधायकयोः।
प्रकृतीश्वरयोः समुपस्थितसंक्रथन स्तवयोशिवदायकयोः।
स्मर मानस मंजु मिथोमिथुनं मिथिलेन्द्रसुतारघुनायकयोः॥

इसमें विश्वविश्रुत परब्रह्म-मर्यादित श्रीराम तथा जनकनन्दिनी सीता की युगल-छवि का साकार चित्रण विभिन्न उपमानों द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

अतुलरविकुलजलधिभुविकल रुचिविपुलबलफलकलयितरि।
निजभजनमतिजनयजनवति जनकरति जवजनयितरि।
स्वयमुदयकृत बुधकुमुदमुदि मदनकृतमद भरम दयितरि।
विशतु दशरथशिशुविशदमुख शशिनिहृदशिव शतशमयितरि॥

अनुप्रास की छटा के साथ ही छन्द का संगीतात्मक प्रभाव दर्शनीय है। पुनः ५, ७, ७, ७ के विराम से २६ वर्णों का यह प्रवाह देखिये—

धरणिधर दनुजभरहर हर दमनपर पर शमनशर।
विधृत वर वरगुणनिकर कर कलितदर दर दमन कर।
प्रकृतिपर पर कपट नर नरसखमुखर खरकृतसमर।
नरकहर हरहृदय चर चर मुनि विसर सरमधि विहर॥

इसमें अत्याचारी राक्षसों का तथा परपीड़कों का क्षय करनेवाले, पाप का नाश करनेवाले, परम श्रेष्ठ मायामनुष्य हरि, वानरों के मित्र, खरारि, श्रीराम की वन्दना है।

राम के भक्त की दैन्यभावनाजनित पुकार किस प्रकार प्रकट होती है, इसके उत्कृष्ट उदाहरण उनके काव्य में सर्वत्र मिलते हैं, यथा—

भववरुणसद्म-सन्तरण-पर कारणं तव चरणपद्ममहमिह वेद्मि नावं।
शरणमुपयामि हा हन्त हन्त्रस्तहृत्वामहं भयमहागहनदावम्।
हृदयमुरुवोर्यतव किं न खलु दीर्यते करुणमाकर्ण्य मम वाग्वि-रावं।
भज महाराज रघुनाथ निज नाथवति मयि गुमानिनि सदा सदयभावम्।

इसी प्रकार निम्न श्लोक में गुमानी की भक्तिरस में डूबी आत्मविज्ञप्ति बड़ी विनम्रता से व्यक्त हुई है। हवन-यज्ञ, तप, दान, पंचाग्नि-सेवन, वेदपाठ, सत्संग आदि न भी किया तो क्या, राम के चरणों में भक्ति होने से गुमानी की जय ही हुई—

न मदनरिपु गजवदन गगनमणि परिदृढ़ सुरगण सवनवितानो।
न विहितहुतवह बहुलहवनविधि रविधृतवपुरपि तपसि न दानो।
न कठिन निगमपठनपटुतरमति रतिशठनिकट वसो अभिमानो।
तदपि जयति निज रति रघुपतिपद सरसि जगति ि जगति गुमानो॥

मानव रूप में अवतरित दशरथात्मज श्रीराम की स्तुति शान्तरस के सभी उपकरणों से युक्त है :

भज भज भुवनाधारं स्मर जगदाधारं।
दशरथराजकुमारं धृतमनुजाकारं॥
शान्तं निष्कलमेकं नित्यं गतमायं।
त्रिगुणातीतमगोचरमविकृतमनपायं।
बहुविधरूपविलासं सकलगुणाभासं।
कुन्दकुसुमसितहासं नीलधनाभासं।
पीताम्बर मुकुटालंकृततनु मकरालं।
मृगमदतिलकितभालं विलसितवनमालम्॥

र वर्णयुक्त श्रीराम के पचास नामों की सूची कवि ने 'पंचाशिका' में प्रस्तुत की। उदाहरणार्थ :

रम्यांगो रमणीसखो रतिपतिप्रख्यो रसज्ञो रसो
राजीवच्छदलोचनो रुचिमयो रागो रणद्भूषणः।
राकेन्दुप्रतिमाननो रतिकरो राजन्यवर्य्यो रयो।
रूढ़ो रुक्मधनूरुमापतिसखो रक्षोहरो रक्षकः॥

श्रीराम के साथ ही हनूमानजी की स्तुति बरबस चित्त को खींच लेती है :

प्रतिभय तरल नयन मति बलधर पृथुभुजयुगलमतुलबलं स्तनुं।
दशरथतनुजचरणरतमविरतममरदनुजमुनिमनुजनुतम्।
निखिलरजनिचरनिकरनिविड़वनशिखिनमतुलमणिमुकुटधृतं।
कपिकुलबहुलकुमुदवनहिमकरमनुदिनमनुसर पवनसुतम्।

तथा—

सदसि वसन्तं सुमृदुहसन्तं कपिषु लसन्तं धुरि सन्तम्।
जितहरिदन्तं कृतविपदन्तं युधि विनदन्तं शितसन्तम्।
सदनुभवन्तं सततभवन्तं प्रभुवरवन्तं प्रभवन्तम्।
स्वहृदि रमन्तं स्वरुतनुमन्तं स्मर परमं तं हनुमन्तम्।

गंगा का भारत से अखंड योग रहा है। वह ... सलिला है, पापियों का उद्धार करनेवाली है, अपने ... पम जल से समस्त व्याधियों को हरनेवाली है। ... के रूप में वह अपनी संतान का पोषण और रक्षण ... आयी है। ऐसी सुरसरिता हमारी धरती पर उतरी, ... धन्य हुई; भगीरथ निमित्त बने, भगीरथ धन्य हुए; ... पदनख से शिवजटा पर उतरी, महादेव धन्य हुए; ... से किलोल करती हुई सागर से जा मिली, सागर ... हुआ।

गुमानी की दिव्य लेखनी गंगामाता का यशोगान करते नहीं थकती—

पतिरपि यत्त्वां शिरसा दध्रे शिवः सबहुमानम्।
जगति जनोऽन्यः सेवितुमिह देवि किं चित्रम्।
दृढमपि दुरितं त्वदम्बुपीयूषपाविते वपुषि।
विलीनं तप्तायसि वारिविन्दुरिव॥
हरो दधत्त्वां प्राहुः कुर्वन् भगीरथो धन्यः।
धरा वहन्ती धन्यः परिरम्भमाणोऽब्धिः॥
वारिविन्दुमात्रं निपीय पीयूषजित्वरं जन्तुः।
पुनर्जनन्या न जननि जन्मान्तरे पिबति॥

अमृतोपम जलवाली गंगा जिसकी कृपा से मा का दूध पीने की नौबत नहीं आती—'पुनरपि पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनं' को नष्ट करनेवाली गंगा माई धन्य है। शंकराचार्य ने भी गंगा स्तुति में लिखा था—

'...स्नातः स्रोतः स्नातः पुनरपि जठरे सोऽपि न जातः।'

गंगा के शुभ्रावदात रूप का इतना समुज्ज्वल वर्णन कहाँ मिलेगा—

...मुकुट तुहिन कर सहचरि जय हरिपदनखजनिततले।
...सति विमलवसनवति जय भगवति करधृत
कमले।
...पुरविहरणकृतसुखि जय शतमुखि शशधर-
धवले।
जय जननिवृजिनभरविजयिनि जय सुरमुनिकृत-
सुकृतफले।

...सहस्र किरणों के आलोक से समस्त सृष्टि के संताप को नष्ट करनेवाले सहस्रांशु की स्तुति में ...वृत्त्यनुप्रास की ही अद्भुत छटा नहीं है, वरन् वही ...वही तेज, वही आलोक, वही आमोद है जिसका ...अनादि काल से इस अग्निपिंड द्वारा हमारी धरती ...होता रहा है :

...समस्तसर्गविस्तरस्थितिस्फुरीयवस्तु सत्
...पुः स्तुतः पुरस्तवैरवस्त पद्महस्तयुक्।
...सुस्तपार दुस्तरापवस्तरिध्वतस्तरि
...रस्तमित्रहस्तिनो महस्तनुर्निरस्तशुक्।
...समस्तत्ररितस्ततो यशस्तिभिर्महस्तपन्
...विस्तमोभिदस्तु नः प्रशस्तमोदशस्तयुक्॥

गुमानी के काव्य में उच्चकोटि की अलंकृत शैली में ...भावों का चित्रण मणि-आलोक सदृश व्याप्त है। ...कुछ उदाहरण इस सन्दर्भ में समीचीन होंगे। ...आदि द्वारा अर्थ-चमत्कार के ये प्रसंग दर्शनीय हैं :

...गुहसंदर्शितहार्दो भूतैर्व्याप्तो धराधरजामिलितः।
...जनतापहरस्तनोतु ...कूटो रामः॥

कितनी खूबी से शंकर तथा राम को मिला दिया है।
(गुह—कार्तिकेय, निषाद; भूत—प्रेत, प्राणी; जनताप—जन+ताप+हरण, जनता+अपहरण जनतापहरः ...जनानां ताप: तथा ...अपहरणं सीतायाः अपहरणम्;

धरात्मजा—धर+आत्मजा वा धरा+आत्मजा—पार्वती, सीता)

इसी प्रकार :

द्विजराजरुग्विषण्णोऽप्यन्तद्विजराजरुग्विषण्णोऽभूत।
रामः कान्तारहितः कान्तारहितोऽभ्यर्धविपिने॥

अथवा—

अहितापकारि वीर्यः स्फुरत्पृथुधर्मः सवज्रभुपाढ्यः।
निज नन्दनेक्षणोत्कः सुखयतु रामः शुनासीरः॥

कवि ने अन्य स्फुट रचनाओं में विभिन्न सम्प्रदायों के साधुओं का यथातथ्य रूप चित्रण किया है। अवधूत-वर्णन में शिरजटा, कौपीन, भस्म तथा मृगछाला का वर्णन है। उसे तृष्णारहित योगी तथा 'ओम् नमो नारायण' जपनेवाला कहा गया है। वैरागी माथे पर ऊर्ध्व-पुण्ड्र चंदन लगाता है, गले में तुलसी की माला धारण करता है, बगल में गीता रखता है, शिर में शालिग्राम-समूह ले चलता है। उसके दो हाथों में शंखघंट रहते हैं, कमर में मुंजमेखला पहनता है और जय सीताराम का जाप करता है। इसी प्रकार नानकपंथी, नाथ, उदासी, साँई आदि बाबा लोगों का चित्रण है। मलंगसाधु के वर्णन की सजीवता देखिये—

स्वरूपेण किं सोदरस्तस्य राहुः कृतान्तस्य दूतः पिशाचः
किमाहो।
रणल्लौहदण्डं दधन्मूर्ध्नि बाहुर्न्यवाजै मलंगा 'भला कर
भला हो।'

गुमानी ने अँगरेजी राज्य के वर्णन में शासन तंत्र के अंग-उपांगों की बड़ी रोचक व्याख्या की है। ब्रिटिश फौज की कवायद का वर्णन तो देखते ही बनता है। कुछ सुधारों की प्रशंसा यों है—

स्थाने स्थाने शिविररचना दुर्गविन्यासपूर्वा
सेतुस्यूताः सकलसरितो मार्गवीथ्यो विशालाः।
घोराटव्यो जनपदनिभा दस्युभिर्मुक्तमार्गाः
हिन्दोस्थानं यदवधि समाक्रान्तवानंगरेजः॥

सेना के रंगों का वर्णन इस प्रकार है—

धूम्रा क्वचित्कवचन चारु पिशंगवर्णा
शोणा क्वचिद्धरितवर्णवती क्वचिच्च।
नीलच्छविः क्वचिदलं क्वचिदर्जुनश्रीः
सा वाहिनी लसति शक्रधनुर्लतेव॥

शासनतंत्र के वर्णन में बलाधिकारी (जंगी), प्रजाधिकारी (मुल्की) लाट, जर्नैल (जनरल) आदि चमूचर, कर्नैल (कर्नल), मेजर अजीटन (ऐडजुटैन्ट), कम्पु (कैम्प), पल्टन आदि शब्दों की तत्कालीन व्याख्या है। सूबेदार, जमादार, हवलदार, अमलदार, सन्तरी, गोलंदाज आदि के नाम आये हैं। इनके अतिरिक्त लाट, कमिश्नर, सिरश्तेदार, मुंशी, कलट्टर (कलेक्टर), तहसीलदार, पेशकार, कानूगोय (कानूनगोय), पटवारी, मालगुजार, नाजिर, नकी, मुसद्दी, चपरासी, मुद्दालै, मुद्दई, अपीलांट, रस्पाण्ड (अपीलैन्ड, रेस्पौंडेन्ट), मुख्तार, मुवक्किल आदि के कार्य

बताये हैं। वकाल्तन, असाल्तन, कोर्टमार्शल, जरीमाना आदि शब्दों को संस्कृत श्लोकों में समझाया गया है।

परेड का चित्रात्मक वर्णन उल्लेखनीय है––

संयतकलाभ्यासकृतिर्भटानां फिरंगिभिः सा कथिता कवायद्।

× × ×

उच्चैराध्माततम्बूविगुलरवकृत ह्वानसंकेतविज्ञा-
स्तत्क्षणात्त्यक्तकार्या द्रुतपदमभितः कूर्दमाना व्रजन्ति।
स्कन्धन्यस्ताग्निशस्त्राः शिरसि विनिहितैस्त्युदग्रैः शिरस्त्रैः।
भ्राजन्तो रञ्जितोऽर्णा घनपटविलसत्कञ्चुकाः सैन्ययोधाः॥

गुमानी ने जवानों के अनुशासनबद्ध कलाभ्यास को कवायद कहा है। तम्बू, बिगुल का बजना, संकेत जानकर फौरन सब काम छोड़ शीघ्र कूदते हुए मैदान में पहुँच जाना–शिर पर शिरस्त्राण, बदन पर वर्दी, कंधे पर बंदूक सजाकर योद्धाओं की कवायद का चित्रात्मक वर्णन देखते ही बनता है। पुनः––

विस्तीर्णैकततिः क्षणं पृथगभिव्यक्तालिभेदात् क्षणम्
भूयो मण्डलिताकृतिः क्षणमथ व्याकीर्णरूपा क्षणम्।
चाञ्चल्योल्लसदावलिः क्षणमथो संरुद्धचेष्टा क्षणम्।
धत्ते तत्र फिरंगिराजपृतना प्रावृट् तडित्तुल्यताम्।

पंक्तिबद्ध होना, पृथक् हो जाना, बिखर जाना सब खटाखट सेकिंडों में होता है। चंचल क्रियाशील उल्लसित कतारें कभी फौरन जड़ सी हो जाती हैं, वर्षाऋतु की विद्युत् से फिरंगी सेना को उपमित किया गया है। एक अन्य उपमा में इसे स्वामी का रंजन करनेवाली नायिका बताया गया है, जो नाना वाहनों से भूषित है तथा पदविन्यास से प्रादुर्भूत निःस्वनों से प्रेरित है :

वाहिनी वाहनैर्भूषिता भूषितैः पादविन्यासजैर्नोदिता निस्वनैः।
शीलयन्ती कलास्तत्र नानाविधाःक्रीडति स्वामिनो रंजयन्ती मनः

गुमानी की काव्य-कला का एक अन्य रूप 'लोकोक्ति-समस्या पूर्ति' में मिलता है। इसके अन्तर्गत छन्द के तीन चरणों में एक आख्यान है और चतुर्थ चरण में उसका लोकोक्ति द्वारा पुष्टीकरण। लोकोक्ति अंश हिन्दी, नैपाली, कुमाऊनी तीनों में हैं

पापः परद्विट् परतापहारी परापवादी परदारहर्ता।
बभ्रंश राज्यासनतो दशास्यो 'नीयत नहीं तो बरकत कहाँ से॥'

पराई स्त्री को हरनेवाले अत्याचारी रावण को राज्य खोना पड़ा कहा है 'नीयत नहीं तो....'

जगद्गुरुभ्यां विपिने सयत्नं संरक्ष्यमाणापि रघूत्तमाभ्याम्
अहारि सीता दशकंधरेण 'होनी हुए बिन रहती नहीं है'

जगवन्द्य राम लक्ष्मण ने यत्न से सीता की रक्षा की, फिर भी रावण उसे हर ले गया––'होनी हुए....'

यस्मिन्देशे निर्गुणे निर्विवेके न क्वापि स्याद्वेदशास्त्रस्य चर्चा।
प्राज्ञः प्रज्ञाहीनवत्तत्र तिष्ठेत् 'कीजै काणे देश में आँख काणी॥'

ऐसे देश में जहाँ सभी निर्गुणी और मूर्ख हों, कहीं भी वेदशास्त्र की चर्चा न होती हो, वहाँ विद्वान् को भी मूर्खवत् ही रहना चाहिए––'कीजै काणे....'

रामवधूमहरद्दशवक्त्रो बन्धनमाप मुधैव समुद्रः।
व्यक्तमसज्जनसंगफलन्तत् 'दुर्जन के ढिग बास न कीजै॥'

सीता हरी रावण ने, बँधा समुद्र; यह कुसंग का फल है, अतः 'दुर्जन के ढिग.....'

यावद्बाणः कृष्णेनाजौ न ध्वस्तौ रण संवेगो।
तावत्रातुं नग्ना माता तामूवे हरिरावेगो।
अद्य श्वो वा हन्तव्योऽयं पुत्रस्ते जगदुद्वेगी।
बकरी अपने बच्चे कारण कब लौं खैर मनावेगी?

नंगी होकर पुत्र की रक्षा करने हेतु आयी हुई कोटरा से कृष्ण ने मुँह फेरकर कहा–आज नहीं तो कल तेरा जगत् त्रासक पुत्र (बाणासुर) मारा ही जायेगा। तू उसे कब तक बचायेगी––'बकरी अपने......'

निम्नलिखित तीन उदाहरणों में चतुर्थ चरण कुमाउँनी का है :––

बालं सुतं युधि हतं कुरुभिस्तथा नु
शोचन्तमभ्यधिनमध्यशिरोधिजानु।
पार्थं रुदन्तमवदद्वसुदेवसुनुः
सै साँझ का मरिय सुँ कबलैक रूंणु॥

पुत्र अभिमन्यु के कौरवों द्वारा मारे जाने पर अर्जुन जानुमध्य सिर रखकर रोने लगा तो कृष्ण ने उसे प्रबोधा ––लगती साँझ के समय मरे हुए के लिए कब तक रोना है?

रैवतकन्या प्राग्जनिता नुः सा परिणीता सीरभृतान्।
नो भवदस्याः स्वयमाजानु ज्वे जै ठूलि खसम जै नानु॥

बलरामजी अपनी लम्बी पत्नी के घुटने तक आते थे––'जोरू जो बड़ी खसम जो छोटा'

स्वप्नगतस्मरसूनुनिमित्तं क्षमषमाप्तवती मयि चित्तम्।
हेतुमपृच्छदुषामिति वाणो 'पीड़ कुठौर कि बैद जेठाणी'

उषा अनिरुद्ध के लिए बेचैन है। स्वप्न में प्रियतम को देखा, जागने पर म्लान बैठी रही। पिता ने उदास होने का कारण पूछा––क्या बताती? कहावत है––गुप्त देश की पीड़ा, वैद्य जेठ जी!––कैसे काम चले?

कहाँ औपनिषदिक अध्यात्मदर्शन, कहाँ फौजी हिदायतें और कहाँ शतरंज का खेल। गुमानी की प्रतिभा ने सामान्य मनोविनोद से लेकर गंभीर चिन्तन तक की परिधि में आनेवाले विविध विषयों पर अपनी लेखनी उठायी। शतरंज के खेल में पट बनाने, मोहरों को रखने की विधि निम्न श्लोक में मिलती है :

कोष्टाष्टकाष्टकमनुक्रमतो विलिख्य
बाह्याष्टकद्वितयकेप्युभयत्र मध्ये।
साहं वजीरमनयोरधि पार्श्वमुष्ट्रौ
वाहौ गजौ च पुरतोऽष्ट भटान्निदध्यात्॥

अब इनकी चालें देखिये––राजा एक घर चलता है, किश्त न लगी हो तो एक बार २½ घर भी चलता है। प्यादा सीधे एक घर चलता है, मारता आड़ा है। वजीर टेढ़ा कोने की तरफ, हाथी सीधी पटरी पर, वक्र दोनों, घोड़ा ढाई घर चलता है।

अपना पैदल यदि विरोधी की अन्तिम पटरी

...जाय, तो जिस मोहरे के स्थान पर पहुँचेगा उसीकी ...प्राप्त करेगा अर्थात् वजीर के घर में पहुँच जायेगा ...वजीरजी उठेगा 'प्यादा से फरजी भयो टेढ़ो-टेढ़ो जाय'

...शनैः शत्रुगृहं गतश्चेत्पदं समाक्रामति यस्य तस्य।
...रकादेः सपदि स्वरूपं लब्ध्वा भवेत्तत्प्रतिमप्रभावः॥

इसके अतिरिक्त किश्त की अवस्था, अन्य मोहरे से ...शान, जिच्च, बुर्द, चौमुहरी तथा मात की भी व्याख्या ...गयी है।

शतरंज के अतिरिक्त प्राचीन खेल गंजफा का भी ...ने वर्णन किया है। यह खेल प्राचीन काल में कुमाऊँ ...खेला जाता था, अब इसके जाननेवाले इने-गिने व्यक्ति ...रह गये हैं। गंजफा में आठ रंग कहे गये हैं और प्रत्येक ...बारह-बारह चक्कियाँ बतायी गयी हैं।

...वराचः सुरखः किमाचः सफेद शमशेर गुलाम ताजाः।
...रंगा इह गंजफासु पृथक् पृथक् द्वादशधा विभिन्नाः॥

सुरख मूंगा सदृश, वराच लाल, चंग हरा, किमाच ...हला, शमशेर गुलाबी सफेद काला, ताज कलेजी, ...लाम पीला होता है:

...भस्तु सुरखोह्यरुणो वराचश्चंगो हरित्कनकपिंग-
रुचिः किमाचः।
...तु पाटलरुचिस्त्वसितः सफेदस्ताजोऽतिधूम्र इह
पीतरुचिर्गुलामः॥

प्रत्येक रंग के शाह और वजीर होते हैं। इनकी पहिचान ...अलग है। शाह के चिह्न: चंग-पक्षी की चोंच, वराच-..., सुरख—सूर्यबिम्ब, किमाच—तकिया, सफेद—...द्रमा, शमशेर—तलवार, गुलाम—मनुष्य, ताज—फूल

...चंचुर्मुकुरोऽर्कबिम्बस्तल्पोपधानं शशिमण्डलञ्च।
...मनुष्यः कुसुमं क्रमेण चंगादिचिह्नं सुधिया विभाव्यम्॥

इसके उपरान्त शाह तथा वजीरों की सवारियों का ...न है। फिर शाह वजीर के बाद चक्कियों को क्रम से ...ने का वर्णन है। खेल में शाह के निकल जाने पर वजीर ...बलवान् होना, वजीर के निकल जाने पर उसके पीछे ...चक्की का सशक्त होना, इसी प्रकार आगे भी बताया ...है। अपने पास बलवान् रंग न होने पर दूसरे की ...युक्त चक्की को गिराकर अपने बलहीन को बलवान् ...ना चाहिए। अपने रंग को बचाकर बलयुक्त चक्की ...नी चाहिए, क्योंकि बलवान् चक्की फेंकने पर दो ...क्कियाँ मिलती हैं:

...लवच्चक्रिकाक्षेपे लभ्यते चक्रिकाद्वयम्।
...रक्षन्तो धीमान् बलवच्चक्रिकाः क्षिपेत्॥

'रंग' कहकर दाहिना शर एक चक्की से काटना ...चाहिए, जब कि दूसरे ने 'वेश' न कहा हो; यदि दोनों ...ओर से शब्द अनुच्चरित रहें तो दाहिने शर को पहिले ...काटना चाहिए:

...नुच्चारितेपि स्वयं रंगशब्दे तथान्येन वेशेत्यनुच्चारितेपि।
...हन्यादशंकं शरन्दक्षिणस्थं प्रमत्तोन्यथा हन्यतेऽसौ परेण॥

इसके बाद बुद्धिमान् को अपने रंगाधिपों की समृद्धि देखकर आगे शर नहीं देना चाहिए। अपने पास के रंगाधिपों को एक साथ ही उतारकर चोरों को छिपाते जाना चाहिए:

अथालोच्य रंगाधिपानां समृद्धिं न दद्याच्छरं निष्फलं तत्र धीमान्।
अवारोहयेद्यौगपद्येन सर्वान् निगूहेत् चौरान् परा चातुरीयम्॥

अपने हाथ में बलवान् रंग न होने पर, शर देने का अधिकार न होने पर खिलाड़ी दूसरे को बूझ देता है। अन्त में तीनों खिलाड़ी अपनी-अपनी चक्कियों को गिनते हैं। बत्तीस से कम निकलने पर हार मानी जाती है। खेल वर्णन के अन्त में कवि लिखता है:

दुरधिगममिदं हि गंजफानां खलु परिदेवनमन्तरेण धीनाम्।
झटिति हृदि बुभुत्सतां शिशूनां प्रमदकर विधिमुज्जगौ गुमानी

शतरंज तो आज भी कुमाऊँ में काफी प्रचलित है, किन्तु गंजफा लुप्त हो चुका है। चौपड़ सयाने लोगों का प्रिय खेल अभी बना हुआ है। ताश तो गाँव-गाँव में पहुँच गये हैं। शतरंज तथा चौपड़ की भाँति गंजफा भी बाह्य सम्पर्क से ही मध्यकाल में कुमाऊँ में आया होगा और काफी समय तक यहाँ लोकप्रिय रहा होगा। पर्वतीय जीवन के सांस्कृतिक विकास में देशज तथा बाह्य खेलों का प्रभाव बड़ा रोचक विषय है; अतः गुमानी इस विषय पर जो काम की सामग्री छोड़ गये हैं, उसका निजी महत्त्व है।

कविवर गुमानी ने संस्कृत साहित्य में अपना नाम अमर किया ही; साथ ही उन्होंने हिन्दी साहित्य के विकास में जो योग दिया उसकी अभी तक हिन्दी-साहित्य के इतिहासों में पर्याप्त चर्चा नहीं हो पाई। इसका कारण गुमानी विषयक शोध का अभाव ही रहा है। उनकी रची हुई कुछ कवितायें ही इस बात को स्वतः सिद्ध करेंगी कि उनकी कल्पना अपने समय के कितने आगे सोच सकती थी। सन् १८५७ के स्वतंत्रता आंदोलन के ११ वर्ष पूर्व ही उनका देहावसान हो चुका था। उनके रचनाकाल में गद्य का रूप प्रेमसागर, सुखसागर आदि ग्रंथों की-सी शैली द्वारा कुछ-कुछ प्रकाश में आ रहा होगा। 'पद्य' तो रीतिकाल की ही जीर्ण प्रेरणा पर अपनी पिटी-पिटाई ब्रजभाषा की कविता-सवैया शैली तक ही सीमित होगा। भारतेन्दु युग की चमक-दमक ही तब भविष्य की वस्तु रही होगी। द्विवेदी युग के नये प्रयोगों की क्या संभावना? ऐसे युग में गुमानी ने पद्य में भाषा के इस तरह के प्रयोग आरंभ कर दिये थे:—

विद्या की जो बढ़ती होती फूट न होती राजन में।
हिन्दुस्तान असम्भव होता वश करना लख वर्षन में।
कहै गुमानी अँगरेजन से कर लो चाहो जो मन में।
धरती में नहिं बीर बीरता तुम्हें दिखाता जो रण में॥

अलमोड़े की बाजार का वर्णन देखिये—

खासे कपड़े सोने के तो बने बनाये तोड़े लो।
पश्मीने गजगाह चमर वो भोट देश के घोड़े लो।

बड़े पान के बीड़े खासे बढ़ के शाल दुशाले लो।
कहै गुमानी नगदी है तो चीज सभी अल्मोड़े लो॥

इतना ही नहीं, उन्होंने अतुकान्त कविता भी लिखी है। खड़ीबोली, ब्रजभाषा तथा कुमाऊँनी को संस्कृत के वर्ण-वृत्तों में ढालकर नवीन प्रयोग किये हैं। भारतेन्दु के आविर्भाव के २५, ३० वर्ष पूर्व गुमानी ब्रिटिश शासन के प्रति रोष प्रकाशन और अँगरेजों की अंधेरगर्दी का चित्रण कर चुके थे। उनकी विभिन्न विषयों पर लिखी गयी स्फुट कवितायें हमारे कथन की सत्यता प्रमाणित करेंगी।

सच्चे अर्थ में धार्मिक व्यक्ति के लिए इन अँगरेजों के राज्य में जीना दुष्कर हो गया, बिना अरबी-फारसी पढ़े गुजर नहीं; नौकरी के आगे स्वतंत्र पेशे समाप्त हो गये। वेदान्त की पुस्तकें कोने में धरी रह गयीं——इस भाव का यह छन्द देखिये——

जो वेदान्त पुराण पुस्तक धरे जो धर्म से ना टरे।
जो लज्जा हल जोतने पर करे जो नौकरी से डरे।
जो थोड़ी नहि फारसी न अरबी न अंगरेजी पढ़े।
सो इसके अँगरेज के अमल में क्योंकर दिनों को भरे?

इसी प्रसंग में समृद्धि के आरोपित रूप के भीतर दुख की छाया किस प्रकार मँडरा रही है——

पुल्वर्याव जगे जगे सड़क हैं ना जोर है चोर का।
राजो रय्यत है सिपाह वश में दुश्मन भि खुश मन रहे।
दुनियाँ में अँगरेज की यह अमल्दारी अजब क्या कहें
होतो पूरण रामराज सम जो दुःखी न होते गुनी॥

यह विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी के हिन्दी काव्य का एक नमूना है। दर्शनीय है कि उक्त छन्द संस्कृत वर्ण-वृत्त शार्दूलविक्रीड़ित के अनुकरण पर लिखा गया है। खड़ीबोली का रूप पाठक स्वयं देखें।

काशीपुर वर्णन के सन्दर्भ में शिखरिणी छन्द में रचित कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:

कथा वाले सस्ते फिरत धर पोथी बगल में,
लई थैली गोली घर घर हकीमी सब करें।
रँगीला सा पत्रा कर धरत जोशी सब बने,
अजब देखा काशीपुर शहर सारे जगत में॥
जहाँ पूरी गर्मागरम तरकारी चटपटी,
दही बूरा दूने भर भर भले ब्राह्मण छकें।
छहे न्यूते वारे सुनकर अठारे बढ़ गये,
अजब देखा काशीपुर शहर सारे जगत में॥

काशीपुर की तुलना काशी से किस चतुरता से की गयी है——

यहाँ ढेला नद्दी उत बहत गंगा निकट में।
यहाँ भोला मोटेश्वर रहत विश्वेश्वर वहाँ।
यहाँ संडे दण्डे कर धर फिरें साँड़ उत ही,
फरक क्या है काशीपुर शहर काशी नगर का?

अँगरेज हिन्दोस्तान में अपनी किस्मत आजमाने आया। किस रूप में आया, किस पोशाक में आया, क्या लेकर आया? किन्तु दुर्दैव ने क्या दिन दिखाये! साम्राज्य का 'लचीला तम्बू' खिचते-खिंचते पूरे देश पर तन गया। रुपये का प्यार, घूस का लालच, आपस की फूट, चुगलखोरी और पदलालसा ने राष्ट्रीयता और ईमान को करारी चोट दी——

दूर विलायत जल का रस्ता करा जहाज सवारी है।
सारे हिन्दुस्तान भरे की धरती बस कर डारी है।
और बड़े शाहों में सबमें धाक बड़ी कुछ भारी है।
कहै गुमानी धन्य फिरंगी तेरी किस्मत न्यारी है॥

× × ×

छोटे पै पोशाक बड़े पै ना धोती ना टोपी है।
कहै गुमानी सुन ले बानी होनी है सो हो ली है।
अंगरेज के राज भरे में लोहा मँहगा सोने से।
दौलत खींची दुनियाँ की सो पानी पीवें दोने से॥

× × ×

अपने घर से चला फिरंगी पहुँचा पहले कलकत्ते।
अजब टोप बन्नाती कुर्ती ना कपड़े कुछ ना लत्ते।
सारा हिन्दुस्तान किया सर बिना लड़ाई कर फत्ते।
कहै गुमानी कलियुग ने यो सुब्बा भेजा अलबत्ते॥

कौन जानता था, इतने बड़े देश की धरती इस तरह दब जायेगी——

को जाने था जल के मारग यहाँ फिरंगी आवेगा?
को समझे था हिकमत करके हिन्दुस्तान दबावेगा?
को जाने था सिक्खन का भी राज इसी वश आवेगा?
कहै गुमानी हरि इच्छा का कोई पार न पावेगा॥

झूठी गवाही, 'चित्त का पट्ट' कर देना, इधर रिश्वत लेकर उधर डिग्री पाना——नाना पापाचार धीरे-धीरे पनपते गये और हमारी शक्ति का ह्रास हुआ——

जो है जाली बड़ा सवाली पापों से ना डरता है।
लिखे बनाय तमस्सुक झूठे गव्वाहों को धरता है।
सो रिश्वत से डिगरी पावे सच्चा रो रो मरता है।
कहे गुमानी जुलम फिरंगी अमला तेरा करता है।

× × ×

सौ पचास इस मुकद्दमे पर खर्च करे तो झट्ट।
धर मजमून जमाय मसौदा करूँ चित्त का पट्ट।
ऐसा रिश्वतखोर मुसद्दी करे मुलक सब चट्ट।
कदी फिरंगी जानै तो सब ये पहुँचैं मरघट्ट॥

किन्तु गुमानी शायद भूल गये कि ऐसों को तो मर-घट से भी अँगरेज घर ले आते क्योंकि ऐसों ही की बदौलत तो उन्होंने इतने वर्ष यहाँ राज किया।

फिरंगी की कृपादृष्टि का चमत्कार 'फिरंगी' शब्द के खिलवाड़ में गुमानी ने कैसा लाजवाब पेश किया है——

उसी की बिपत सब पलक में फिरंगी।
उसी के परी चौक गाती फिरंगी॥
उसी पर चँवर-छत्र जोड़ी फिरंगी।
जिसी पर मेहरबान होगा फिरंगी॥

छन्द भी यदि 'भुजंगी' रहा होता तो प्रसंगानुकूल होता, फिर भी कुछ सामीप्य तो है ही——भुजंगप्रयात!

यद्यपि गुमानी की वृत्ति कृष्ण के लोकरंजक स्वरूप ... नहीं रमी; उनके साधनामय जीवन से पनघट, ... और रास का अधिक मेल नहीं बैठ पाया, किन्तु ... काव्य-विनोद में कुछ पंक्तियाँ उन्होंने कृष्णलीला- ... लिखी भी हैं। शार्दूलविक्रीड़ित छन्द में यह ... दर्शनीय हैं :

... री धनभाग है मृगन को भिल्लन् कि छोरीन को।
... नन्दकिशोर को निरखतीं डर छोड़ि अपनेन को।।

× × ×

... बाप चचा चची भउजई मय्या ससुर सास भी।
... जेठाणि दुष्ट ननदी छिन छिन लड़ैं हैं सभी।
... तो कल नाहिं तान सुनके पल पल घटै मास भी।
... बाजी मुरली अली रस भरी टेरी हरी कुंज में।।

× × ×

... हंस चकोर मोर मुनियाँ कोयल चकेवा गिलन्।
... सारस कीर चातक बया मैना हरीयल घनेल्।
... तित्तर टिट्टिभी पनडुकी स्फटकी स्फरन्नाटकी।
... बाजी मुरली अली रसभरी टेरी हरी कुंज में।।

एक बार टिहरी के महाराजा ने टिहिरी नाम की ... पर छन्द लिखने को कहा तो गुमानी ने तुरन्त ... छन्द राजा के सामने कहा था, जिसकी रचना ... सवैया छन्द में हुई है :—

... तटी रसखान मही धनकोश भरी यहु नाम रह्यो।
... बनाय रच्यो बहु विस्तर वेग नहीं तब जात कह्यो।
... पदों के, वसान बस्यो तब अक्षर एक हि एक लह्यो।
... सुदर्शनशाह पुरी टिहिरी इस कारन नाम रह्यो।।

अर्थात् सुरगंगतटी का 'टी', रसखान मही का 'ही' ... धन कोशभरी का 'री' लेकर इसकी उत्पत्ति बता दी। गुमानी ने संस्कृत तथा हिन्दी में काव्य-रचना द्वारा ... सरस्वती का भंडार भरा, वहाँ उन्होंने अपने पर्व- ... प्रदेश की बोलचाल की भाषा कुमाऊँनी में भी ... रचनायें करके इस जनपदीय साहित्य के प्रथम कवि ... का गौरव प्राप्त किया है। कुमाऊँनी में रचे हुए उनके ... छन्द अनेक रंगों की आभा लिये हैं। कहीं सरल ... परिहास की झलक है तो कहीं पर्वतीय फलों की ... ; कहीं दीना कृषक स्त्री का करुण-रुदन है तो कहीं ... कालपीड़ित जनता का विलाप; कहीं गड़े धन का ... उपयोग करने का संदेश है तो कहीं बच्चों की आभूषण- ... पर व्यंग्य। किन्तु दुर्भाग्य है कि कुमाऊँनी में भी ... कम छन्द प्राप्त हैं, जिससे उनकी इस प्रतिभा का ... मूल्यांकन नहीं हो पाता। सुलभ प्रसंगों में से दो एक ... उदाहरण उनके कौशल को समझने में कुछ सहायता दे ... ।

गंगोली निवासियों की सुकाल अवस्था का वर्णन ... प्रकार है—

केला, निम्बु, आँखोड़, दाड़िम, रिखू[1], नारिंग, आदो[2], दही।
खासो भात जमोलि को, कलकलो[3] भूना[4] गड़ेरी[5] गवा[6]।
च्यूड़ा[7] सद्य उत्योल[8] दूध बाकलो घ्यू गाय को दाणोदार।
खानी सुन्दर मौणियां[9] धपड़ुवा[10] गंगावली रौणियाँ[11]।।

केला, नीबू, अखरोट आदि फल, जमोल चावल का भात, गडेरी कन्द, अन्न के भुने हुए खाद्य च्यूड़ा, उत्पोल, गाढ़ा दूध, दानेदार घी जो गंगोली-निवासी खाते हैं, वह औरों को कहाँ सुलभ है ? किन्तु वे ही गंगोलीवासी अकाल के दिनों में कैसी दुर्दशा को प्राप्त हो जाते हैं—मुश्किल से मोटे आटे की रोटी, बिना नमक के 'डुबुके' (दाल पीसकर बनते हैं) आदि, बिना घी तेल की सब्जी खाकर येन केन प्रकारेण प्राण धारण किये हैं।

पिस्युवा का अणुचालिया खसखसा[12] रोटा बड़ा बाकला[13]।
फानो[14] भट्ट[15] गुरूँस[15] अरु गहत[15] को डुबुका बिना
लूण का।
कालो साग जिनै[16] बिना भुटण[17] को पिंडालु का नौल[18]
को।
ज्यों त्यों पेट भरी अकाल काटनी गंगावली रौणियाँ।।

अपने ग्राम की प्रशंसा में लिखित कवि की ये पंक्तियाँ देखिये :

बनै बनै काफल किल्मड़ो छ[19]। बाड़ा[20] मुणी दाड़िम
काकड़ो छ।
गोठन में गोरू लैण बाखड़ो छ। थातिन में है उत्तम
उपरड़ो छ।।

(वन वन काफल किलमोड़ा के पर्वतीय फल हैं)—खेत में दाड़िम ककड़ी है, गोठों में नई ब्यायी व पुरानी गायें हैं, उपरड़ा ग्राम थातियों में सर्वोत्तम है। काफल तथा हिसालू पर्वतीय जंगली फल हैं। हिसालू का रंग पीला या नारंगी होता है, अन्दर गुठली नहीं होती, काँटे-दार झाड़ी में उगता है। काफल का पेड़ ऊँचा होता है। इसका फल लाल या कलेजी रंग का गुठलीदार होता है। पेड़ पर काँटे नहीं होते। कवि के अनुसार काफल यह विचार करते हैं कि हमें विधाता ने इन्द्र के खाने के लिये बनाया था, कहाँ हमें धरती पर पटक दिया और उसपर भी इस ऊबड़-खाबड़ पहाड़ में। इस क्रोध में वे लाल हो गये, जो बुड्ढे थे वे क्रोध से नीले घुमैले हो गये (अधिक पके फल नीले घुमैले हो जाते हैं)—

---

१. इक्षु, ईख, २. अदरख, ३. घुइयाँ, अरवी की सुखाई पत्तियाँ, ४. घुइयाँ, बण्डे के डंठल, ५. बण्डा, ६. कोमल गाभ, ७. धान भूनकर कूटकर बनाये जाते हैं, ८. चावल भुने हुए, ९. चावल की खूब घी पड़ी मोटी रोटी १०. लेह्य और पेय के बीच का खाद्य-द्रव्य, ११. रहने वाले, १२. सख्त खुरदरे, १३. मोटे, १४. दाल भूनकर पीसकर बनता है, १५. पर्वतीय दालें, १६. जीर्ण, सख्त, १७. भूनने हेतु घी-तेल, १८. घुइयाँ के डंठल—नाल, १९. है, २०. खेत।

खाणा लायक इन्द्र का हम छियाँ[१] भूलोक आई पड़ाँ।
पृथ्वी में लग यो पहाड़ हमरी थाती रचो देव लै।
येसो चित्त विचारि काफल सबै राता भया क्रोध लै।
कोई और बुड़ा[२] खुड़ा शरम लै नीला धुमैला भया॥

हिसालू का फल रसदार है, बड़ा मीठा होता है, उसे प्राप्त करने में काँटे भी उधेड़ खाते हैं, किन्तु कवि कहता है दुधारू गाय की लात सहनी ही पड़ती है:—

हिसालु की बाण बड़ी रिसालू[३] जां जां' पजाछै[४] उधेड़ि खांछै[५]।
ये बात को क्वे गटो[६] नि मानणो दुद्याल की लात सौंणी पड़ंछ॥

दिन की तेज धूप में तप्त हिसालू नुकसान करते हैं इस तथ्य की ओर निर्देश करते हुए इन अमूल्य 'तोहफों' के मधुर स्वाद की व्यंजना दृष्टव्य है:

छनाई छन मेवा रतन सगला पर्वतन में।
हिसालू का तोफा[७] छन बहुत तोफा जनन में।
पहर चौथा ठंडा बखत जनरो[८] स्वाद लिण में।
अहो मैं समजंछु[९] अमृत लग वस्तु क्या हुनलो॥

श्राद्धपक्ष (पितृ पर्व) की समाप्ति पर माल खाने वाले व दक्षिणा पानेवाले ब्राह्मणों की निराशा का वर्णन इस छन्द में किया गया है—

खाँछा भात जमोलि बासमति को घीऊ[१०] बड़ा लोचई[११]।
धोई दाल-बडचाल[१२] साग चटणी कालो जुदो टपकिया[१३]।
गाढ़ो दै भलि खीर लस्कनि[१४] फिरी मुट्ठी भरी दक्षिणा।
बीता सोल सराद हाय छिन में आकाश चाणी भई॥

अपने समकालीन गाँव के दो एक व्यक्तियों को गुमानी अमर कर गये हैं। इन व्यक्तिगत रचनाओं में परिहास अत्यधिक मुखर है। विशाज्यू के गले में घेंघा (कुमा०—'गना') रहा होगा। उन्हें लड़के चिढ़ाते होंगे। गुमानी ने लिखा—'श्री कम्पनी साहब बहादुर का हुक्म है कि कोई विशाज्यू से 'गना' कहेगा तो दण्डित होगा। और स्वयं घेंघे की खूबसूरती का वर्णन किया—

रानो गोल........सुतरो नारिंग दाणो जसो।
कौंलो[१५] भौत[१६] रुआ[१७] जसो कुतकुतो[१८] भटके भेकूना जसो।
बाईं तर्फ मणी मणी निकलियो अटको नसा जाल में।
येसो गान सुभायमान गलि में क्या कुँ विशा जोशि को॥
गली चड़ी बीच बड़ी सुलक्षणी, जाणंछु मैं भाग्यवती छ पुंतुरी॥

× × ×

१. थे, २. बुड्ढे क्षीण, ३. रिसौंही, ४. उपजता है, ५. खाता है, ६. बुरा, ७. बूंद के लिए प्रयुक्त (=तोपा) यहाँ गोल फल, ८. जिनका, ९. समझता हूँ, १०. घी, ११. लोचदार, दानेदार, १२. पत्तीदार साग, १३. पालक आदि का बनता है, १४. घृतांश युक्त, १५. कोमल, १६. बहुत, १७. रुई, १८. मुलायम।

सुन्दर नारंगी सा, बहुत कोमल, रुई सा मुलायम, बाईं ओर थोड़ा उभरा हुआ, शिराओं के जाल में अटका, भटके मेंढक सा कितना सुन्दर है इनका 'गान'!... गले के बीच यह पुट्टलिका बड़ी सुलक्षणा है!

विष्णुवा, मधुवा और लछुवा तीन भाइयों को सम्बोधित कर पिता कहता है—सुतारगाँव के घर के पिछवाड़े तरूड़ कन्द की खाड़ में सोने की बिल्ली है; उसकी एक टाँग काटकर दो भाइयों के व्रतबन्ध, विवाह किये, अब तीन टाँगें तुम तीन भाई बाँट खाना, किन्तु खबरदार किसी से इसका जिक्र न करना:

ओ बिस्नुवाँ मधुवा यथौत[१] लछुवा कैथें[२] कभें[३] झन[४] कया... हमरा छ पछिलो बिना पुछड़ि[५] (ii) की सूना[६] बिरालो... द्वी भै[७] का व्रतबंध ब्याह सुँ हमल् काटो छ जंको[८] खुटो... बांकी तीन खुटा बराबर करी तीनै भाई बाँटिया...

× × ×

सुतार गौं का घर का करेड़ा[१०] तरूड़ की खाड़ पड़ी बिरालो... निकासि ल्या राज्य फिरंगि कोछ। कल्याण धन की के... नि हांती॥

प्रथम अंश शार्दूलविक्रीड़ित तथा द्वितीय उपेन्द्रवज्रा छन्द में है।

मनोरथ पंतजी फिसल पड़े, कमर में चोट आई... दर्द से चिल्ला उठे—'अरे मेरे प्राण उड़े, कमर दो टूक हुई जाती है; आँखों में दाह है! ओ माई! अरे बाबा! अरे काका! सुनते हो? खाने को मिसरी दो भई, अरे जल्दी दूध लाओ, मेरे प्राण उड़ते हैं—हाय मैं मरा!'

यो ब्रह्माण्ड चड़ी उड़ी कमर का द्वी टूक टूटी पड़ा।
आँखन में अति डाह ये बखत छ मेरी खबर को करौं?
ओ ईजा[११], बबज्यू, कका सुण सबै मिश्री खाणा सुँ दियौ...
ल्यावौ दूद सिताब प्राण उड़नी, हा राम यो मैं मरूँ...

जयदेवजी काफी सयाने हो गये हैं, पर बचपन में बाँधा गया गले का 'सुत्ता' अभी गले में ही है। इस पर व्यंग्योक्ति देखिये—

जब लगि भलि कन्या नै मिली ब्याहना सूं।
जब लग मख यैका नै जुङा[१२] छोड़ फूटी।
जब लग धर हिस्सा नै भया पुंतुरी का।
तब लग ये सुत्ता जन खोये जंदुवा तू॥

जैदुवा! जब तक घर की गठरी के हिस्से न हों... तक तेरी शादी न हो, जब तक मूँछें न फूटें, तब तक सुत्ते को मत खोलना।

गुमानी के चतुर्भाषा-बद्ध श्लोक की भी एक झलक देखिये—

१. यथ+औ+त इधर+आ+तो, २. किसी से, ३. कभी, ४. मत, ५. (I) कहना, ५. (II) पूंछ, ६. सोने की, ७. दो भाई, ८. जिसका, ९. पैर, टाँग, १०. पिछवाड़ा, ११. मा, १२. मूछें, १३. चाँदी या सोने का मोटा... (गले का)।

त्रिलोकनाथ शिव की पूजा करें तो करें।
भक्त गणेश का जगत में बाजा हुनी त हुन।
ध्यान भवानि का चरन में गर्दन कसे ले गरन्।
तुलधामनीह रमते रामे गुमानी कविः।

इनमें प्रथम चरण हिन्दी का, द्वितीय कुमाऊँनी का, नैपाली व चतुर्थ संस्कृत का है। कोई शिव की पूजा करता है, कोई गणेश का भक्त है, कोई भवानी का उपासक है, गुमानी राम के ही रूप में रमा हुआ है।

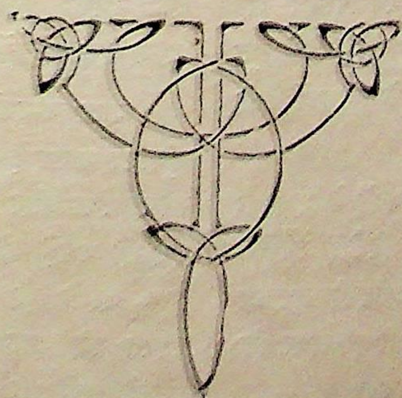
करुण-रस हर साहित्य की अमूल्य निधि रहा है। प्रसंगों में भी करुण रस की धारा ही हमारी आत्मीयता से अधिक प्रसार कर सकी है। दीन कृषक की खेती-बाड़ी के उपकरणों के अभाव में किस प्रकार है, कवि के शब्दों में देखिये।

हाथ पड़ो बड़ा कठिन लै हैगेछ दिन दोफरो[२]।
बल्द[४] मिलोछ एक दिजिय को काँ जौं मैं दैणा[५] मुणो।
एक गरुंस को खिचड़ि सुँ पैंचो[७] लगै नी मिलो।
[८] सुँ हाय काल हराणो काँ जौं के धाना करूँ॥

बड़ी कठिनता से हलवाहा हाथ आया, बायाँ बैल माँग अब दायाँ कहाँसे लाऊँ? खिचड़ी के लिए एक अब तक उधार न मिल सका। हाय, मुझ अभागिन काल भी रूठ गया——कहाँ जाऊँ, क्या करूँ?

इस प्रकार भौतिक जीवन और अध्यात्म के कूलों का स्पर्श करती हुई गुमानी कवि की काव्य-धारा ने पवित्रता, निर्मलता और शीतलता से साहित्य-को लाभान्वित किया है। उनकी प्रतिभा का आभास लेख द्वारा देकर हमारी एक ही विज्ञप्ति साहित्य-प्रेमियों से है कि गुमानी का अधिकांश काव्य अभी प्रकाश में नहीं आ पाया। जिन महानुभावों के पास उनकी रचनायें पड़ी हों, वे उसे प्रकट करें और शोधक सचेष्टता से उनके काव्य की खोज करें। आखिर साहित्य का लक्ष्य तो हित-साधन ही है। वह साहित्य किस काम का जो कागज पर उतरे और चूहों या कीड़ों के पेट में चला जाय।

अन्त में गुमानी सम्बन्धी एक भ्रान्ति का उल्लेख कर देना अप्रासंगिक न होगा। श्री तारादत्त पांडेजी (कसून, अल्मोड़ा) ने लेखक को बताया कि जब उन्होंने देखा हिन्दी विश्वकोष में श्री नगेन्द्रनाथ सेन, (प्राच्य-विद्यामहार्णव) ने गुमानी को 'बिहारी कवि कहा है, आरा बाँकीपुर के पास उनका निवासस्थान बताया है और 'यावद्ग्रामः शस्त्राधारी... ज्यों भीगे त्यों कम्बल भारी' वाला लोकोक्ति समस्यापूर्ति का उदाहरण भी दिया है तो उन्होंने विरोध रूप में स्थानीय पत्रिका 'शक्ति' में एक नोट दिया कि गुमानी कुमाऊँनी हैं, बिहारी नहीं और अन्यत्र भी लेख पढ़े, किन्तु उन्हें कहींसे कोई उत्तर प्राप्त न हुआ। उक्त भ्रान्ति का कारण यह हो सकता है कि संभवतः कई राजदरबारों में गुमानीजी का आना-जाना रहा, कुमाऊँ से नैपाल तक उनके कार्यक्षेत्र का विस्तार रहा; बिहार की ओर भी आना-जाना होता ही होगा। कई तीर्थयात्री गया, जनकपुर होते हुए पशुपति के दर्शनार्थ नैपाल जाते रहते थे। इस तरह बिहार से कुमाऊँ का सम्पर्क बना रहा। पूर्वी प्रदेश के राजाओं वा जनसमूह में गुमानी प्रसिद्धि पा चुके हों और कालान्तर में उन्हें बिहारी समझ लिया गया हो। वैसे विद्वान् लोग उत्तर-दायित्व समझकर ही लिखते हैं, किन्तु फिर भी अनजान में भूलें हो ही जाती हैं। भूल हो सकती है, किन्तु उसका निराकरण भी हो जाना चाहिए। आशा है कि गुमानी के सम्बन्ध में अब कोई ऐसी भ्रांति शेष न रहेगी।



१. हलवाहा, २. दोपहर, ३. बायाँ, ४. बैल, ५. ६. अनाज भरने का पात्र, ७. उधार, ८. अभागिन।

घरेलू शस्त्रों का महत्वपूर्ण विवेचन

श्रीमती शीला शर्मा

'बिन घरनी घर भूत का डेरा।' मतलब यह कि आदमी वह तभी बनता है जब बीबी आ जाती है--यानी जब उसकी शादी हो जाती है--वरना वह भूत का भूत ही बना रहता है।

इसी विश्व सेवा के लिए माँ-बाप लड़कियों को शादी के लिये मजबूर किया करते हैं कि भूतों की यह बस्ती किसी तरह आदमियों की बस्ती बन जाय। लड़कियों को इस तरह मजबूर करने में पिता का हाथ अधिक होता है माता का कम, क्योंकि वह जानता है कि कैसे और किन नाजुक कलाइयों द्वारा वह भूत से आदमी बनाया गया है।

भूत को आदमी बनाने का काम जब औरतों ने सँभाला तो इस दिशा में उन्होंने कई प्रयोग (ऐक्सपैरीमेन्ट) किये। चिमटा, बेलन, चप्पल, मसल और कहने लगीं कि 'जब ओखली में सिर दिया तो मूसल से क्या डर', जिसका अर्थ था कि जब भूत से आदमी बनने चले हो तो पीछे क्या हटते हो? सब प्रयोग तुम्हीं पर किये जायेंगे। इन प्रयोगों में चिमटे का आकार (साइज) कभी छोटा हुआ, कभी बड़ा हुआ; कभी वे लोहे के बने तो कभी पीतल के, और जब फिर भी पूरा असर नहीं हुआ तो पाँचों धातु मिला कर बनने लगे। फिर भी वे ठीक कारगार नहीं बन पाये। यह तो इसीसे स्पष्ट हो गया कि पंच धातु भी पीछे छूट गई, और औरतों ने 'स्टेनलैस स्टील' के चिमटों की माँग शुरू कर दी।

औरतों के इस अस्त्र का मुकाबला मर्दों ने भरसक किया। एकाएक अपने हथियार नहीं डाल दिये। उन्होंने भी चिमटों की फरमाइश की। पर भूत आदमी बनकर भी कितना आदमी बनेगा? इतना ही सोच पाया कि मुकाबला करने को और बड़े चिमटे बनवा लो--पर वह उनका इस्तेमाल न कर पाया, और बैठा चिमटा बजाता रहा। और जब वह भी ठीक से न बज पाया तो उसको जमीन में गाड़कर धूनी रमाकर बैठ गया।

भूतों को सीधा करने के कुछ उपयोग धरती पर किये जाते हैं तो कुछ हवा में। बेलन असल में हवा में प्रयोग करने के लिये बना था। वह जरा और चक्कर काटता हुआ अपने लक्ष्य पर जाकर विजय प्राप्त कर सके, इस के लिये औरतों ने जो एक बार यह हल्का अस्त्र अपनाया तो फिर उसमें हेर-फर करने की आवश्यकता न समझी। अत्यधिक आवश्यकता पड़ने पर वे साक्षात जलते अग्निवाण सीधे चूल्हे से भी निकालकर फेंक चुकी थीं। हाँ। कलाई के नाप के साथ-साथ कभी बेलन मोटे और भारी बना लिये जाते थे। तो कभी दुबले और नाजुक बनते रहे--क्यों कि हर औरत को अपने-अपने भूतों के लिये उनकी जरूरत थी।

ऐसा न था कि भूतों के सिर पर जूं न रेंगी हो। उनमें से जो पूरे आदमी बन चुके हैं उन्होंने कभी औरतों के आगे हथियार उठाने की नहीं सोची। वे जानते हैं कि हाथों का सबसे बेहतर इस्तेमाल औरतों को सलाम करने में ही है। पर जो अभी आधे आदमी हैं उनके दिमाग में कुछ कुसंस्कार बने रहे, और यह सोच कर कि दुश्मन के हथियार जैसे हों अपने हथियार भी कुछ वैसे ही होने चाहिए, बल्कि उससे भी अधिक वजनदार होना चाहिये--उन्होंने भी कुछ बेलन बनवा डाले। पर चिमटे की तरह वे भी इतने भारी और इतने बड़े हो गये कि उनका इस्तेमाल भी न बन पड़ा, और वे उनको आज तक सड़कों पर लुढ़काये घूमते हैं।

बात चप्पलों पर आ गई--मिर्गी वालों को जूता सुंघाया जाता है तो होश कुछ जल्दी आ जाता है। यही सोचा गया और चप्पलें चमड़े की बनने लगीं कि भूतों पर भी चमड़े की गन्ध का कुछ न कुछ असर पड़ेगा और भूत जल्दी ही भागते दिखलायी पड़ें। वरना प्राचीन भारत की काठ की खटपटिया व खड़ाऊँ क्या बुरे थे। उनकी ध्वनि का मूल्य बहुत था। उनकी वर्षा की चटाचट आवाज चप्पलों में भी थोड़ी बहुत कायम रक्खी गई--क्योंकि किसी भी खिड़की से आती हुई आवाज से पड़ोसियों के भूत अन्दर ही अन्दर काँप जाते हैं--बिल्कुल जैसे कि बम गिरे कहीं पर और कि

...परन्तु उसकी आवाज से सारा पड़ोस यही सम- ...ता है कि बस आया मेरे ही ऊपर !

...चप्पलों ने बड़ी उन्नति की; जैसे हवाई जहाज का ...नया मॉडल निकलता है वैसे ही जरूरत के हिसाब ...इनके भी रोज नये मॉडेल निकलने लगे क्योंकि ये भी ...हवाई जहाज की तरह आवश्यकता पड़ने पर ऊँची उड़ान ...कर ठीक स्थान पर 'लैण्ड' करने का गुण रखती हैं। ...कुछ पुराने हो गये थे; तो कुछ नये थे। पुरानों की ...कम थी, नयों की ज्यादा—और कुछ वो थे जो हमेशा ...में आते थे। पेशावरी मूँछों की तरह आगे को मुड़ा ...मॉडेल ऐसा था जो हमेशा 'डिमाण्ड' में था। पुरानों ...बात ही क्या? हाँ, सबसे नया था नुकीली हील वाला ...। हाई हील तो बहरहाल कोई नई चीज न थी, ...नु उसका सुई के अनुसार नुकीले हो जाने में एक बड़ा ...और रहस्य था। जब से सुना है कि आबादी प्रतिदिन ...दूनी रात चौगुनी बढ़ रही है तब से औरतों ने सिकुड़ ...धरती पर औरों के लिये जगह छोड़ दी है। वे खुद ...भी एड़ियों पर चलने लगी हैं। इसे कहते हैं दूरदर्शिता, ...कहते हैं समय देखकर चलना, इसे कहते हैं जैसा वक्त ...वैसी चाल चलना।

एक बार की बात है। जूतों की दूकान पर बड़ी ...भीड़ थी। पूछा गया कि आखिर क्या बात है जो गर्म ...पकौड़ियों की तरह जूतियों की बिक्री हो रही है, तो 'सेल्स ...मैन' ने कहा कि साहब! यह डेलीगेशन विलायत जा ...रहा है। और विलायत में जूते बहुत मँहगे मिलते हैं। ...पूछने वाले को न जाने जूतों में क्यों अधिक दिलचस्पी ...थी, पूछने लगा 'आखिर क्यों? हर चीज हिन्दुस्तान ...से सस्ती और बेहतर मिलती है, फिर जूतों पर इस ...मँहगाई क्यों टूट पड़ी है?'

'सेल्स मैन' ने एक बार जरा सोचा, और फिर संजीदगी से उत्तर दिया; 'लगता है वहाँ जूते अधिक चलते हैं।'

पूछने वाला मुड़ते हुए बोला, "मालूम होता है कि विलायत की औरतों ने बहुत तरक्की कर ली है। हिन्दुस्तान की औरतें अभी पीछे ही हैं।" फिर न जाने कैसे उसका हाथ अपनी गंजी चाँद पर पड़ गया, और वह उसको खुजाता हुआ बोला, "पर हाँ, बहुत पीछे नहीं।" और फिर जूतों की दूकान पर औरतों की भीड़ को देखकर सिर पर पैर रखकर भागता दिखलायी पड़ा।

सत्य सौन्दर्य*

अनुवादक, श्री रामस्वरूप आर्य

जो प्यासा है पाटल वर्ण कपोलों का,
या है मात्र प्रशंसक अधर प्रवालों का,
अथवा खोज रहा है जो नक्षत्रों-सी उज्ज्वल आँखें
निज अन्तस् की ज्वालाओं के शमन हेतु।
काल चक्र के साथ बदलते हैं ये ज्यों ज्यों,
प्रेम-ज्वाल उसकी भी घट जाती है त्यों त्यों।
किन्तु सुकोमल और अचल मन
होता इच्छुक मात्र सौम्य विचारों का
युगल-हृदय में तुल्य-प्रीति से
अमर-प्रेम की ज्योति जागती।
इनसे हीन घृणित हैं, सुन्दर—
लोचन, लोल कपोल, मृदु अधर।

***प्रस्तुत कविता अँगरेजी कवि टी० केस्चू रचित** 'The True Beauty' **का भावानुवाद है।**



फ़िरदौसी और उसका शाहनामा

श्री राजेन्द्रप्रसाद जैन

अजम ज़िन्दा करदम् बदीं पारसी--फ़िरदौसी
--इस काव्य के द्वारा मैंने ईरान में प्राण फूँके हैं।

ईसा की नवीं शती में बगदाद की अब्बासी खिलाफ़त ढीली पड़ने लगी और प्रान्त स्वतन्त्र राज्यों का रूप धारण करने लगे जो केवल नाम मात्र के लिये खलीफा की सत्ता स्वीकार करते थे। इन्हींमें से एक स्वतन्त्र राज्य की नींव डालनेवाला बुखारा का सूबेदार इस्माइल सामानी था। इस्माइल का भाई नसर सामानी समरक़न्द का सूबदार था। नसर के निःसन्तान मरने पर समरकन्द पर भी इस्माइल का अधिकार हो गया।

सामानी प्राचीन ईरानी राजवंश से थे। उनकी रगों में ईरानी रक्त उबाल खाता था। यह देखकर उनका कलेजा फटा जाता था कि यद्यपि ईरानी जाति में हज़ारों कवि हैं परन्तु वे सब अरबी में कविता करते हैं। फ़ारसी जैसे कि समाप्त हो गई हो। अपनी मातृभाषा को उन्नत करने के लिए सामानियों ने बहुत उद्योग किया। रुदकी पहिला कवि है जिसने फ़ारसी में दीवान[1] लिखा। यह नसर सामानी के दरबार में रहता था। नसर के कहने से ही इसने हितोपदेश को फ़ारसी में कविताबद्ध किया था जिसके उपलक्ष में राज्य की ओर से उसे चालीस हज़ार दिरहम का पुरस्कार मिला था[2]।

सामानी बादशाहों की बड़ी इच्छा थी कि उनके समय तक का ईरान का सारा इतिहास प्रचलित फ़ारसी भाषा में काव्यबद्ध हो जाय। वास्तव में वे एक राष्ट्रीय महाकाव्य चाहते थे जिसे पढ़कर ईरानी जनता को अपने प्राचीन गौरव, सभ्यता और संस्कृति पर अभिमान उत्पन्न हो। सम्भव है यह इच्छा उन्हें रामायण और महाभारत देखकर उत्पन्न हुई हो, या होमर के इलियड से उन्होंने यह प्रेरणा ग्रहण की हो, क्योंकि उन दिनों मुसलमानों में यूनानी पुस्तकों के अनुवादों की भी होड़ लगी हुई थी। इस उद्देश्य से सामानी बादशाहों ने प्राचीन पोथियों का संग्रह करना आरम्भ किया और एक विशाल पुस्तकालय स्थापित किया जो सारे विश्व में 'अदीमुलमिस्ल' (अद्वितीय) था और जिसकी विश्वविख्यात विद्वान् अबुसीना ने भी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। सन् हिज्री ३६५ में (लगभग सन् ई० ९७७) सामानी सम्राट् नूह बिन मंसूर ने 'दक़ीक़ी' नाम के एक कवि को इस काव्य को लिखने का भार सौंपा। 'दक़ीक़ी' ने इस महाकाव्य का नाम 'शाहनामा' रक्खा परन्तु अपने जीवन काल में वह इसका थोड़ा सा ही अंश लिख सका।

इसी बीच सामानी सम्राट् अब्दुल मलिक बिन नूह के गुलाम अलप्तगीन तुर्क ने गज़नी में एक स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया जो अलप्तगीन के बाद उसके गुलाम सुबुक्तगीन तुर्क के हाथ लगा। सुबुक्तगीन के बाद उसका बेटा महमूद गजनवी गज़नी के राजसिंहासन पर बैठा। महमूद गज़नवी ने सामानी राजवंश को समाप्त करके उनका विशाल पुस्तकालय भी हस्तगत कर लिया।

महमूद गज़नवी की बहुत बड़ी इच्छा थी कि विश्व-विख्यात विजेता के साथ-साथ कवियों और विद्वानों के आश्रयदाता की हैसियत से भी इतिहास में उसका नाम अमर रहे। उसके दरबार में ४०० कवि थे जिनमें प्रमुख अंसरी था। महमूद का हुक्म था कि अंसरी को दिखाये बिना कोई कविता दरबार में न पढ़ी जाय। कहा जाता है कि अंसरी इतना धनाढ्य था कि उसकी रसोई के तवे और कढ़ाई भी सोने चाँदी के थे। महमूद ने जब यह सुना कि सामानी सम्राट् शाहनामा लिखवाने की हसरत लिये हुए ही मर गये, तो जो काम किसी से न हो सका उसे पूरा करने की महत्त्वाकांक्षा में वह ऐसे कवि की खोज में था जो इस काम को पूरा कर सके। उधर फ़िरदौसी पहिले से ही इस काम में लगा हुआ था। जब वह महमूद के दरबार में पहुँचा तो उसे शाहनामा लिखते-लिखते २५ वर्ष हो चुके थे और उसकी आयु उस समय ५५ वर्ष के लगभग थी।

फ़िरदौसी का जन्म सन् ई० ९४६ के लगभग ईरान के तूस प्रदेश के एक ग्राम में हुआ था। उसका पिता इसहाक़ एक धनाढ्य जमींदार था। फ़िरदौसी का असली नाम हसन बिन इसहाक़ है फ़िरदौसी उसका तखल्लुस (उपनाम) है। फ़िरदौसी को बाग लगवाने का शौक़

---

१. काव्य संग्रह--रुदकी से पहिले के फ़ारसी कवियों की केवल फुटकर कविताएँ मिलती हैं।

२. अंसरी

...था इसलिये कुछ विद्वानों ने उसे माली लिख दिया है, परन्तु यह नितान्त भ्रामक है। फ़िरदौसी ने अपने शाहनामे में कुलीनता और जन्म पर बहुत ज़ोर दिया है। यदि वह माली होता तो ऐसा कभी न करता। ईरान में जमशेद द्वारा स्थापित जन्मज वर्ण-व्यवस्था का भी उसने सगर्व उल्लेख किया है। फ़िरदौसी ने कुलीनता पर इतना अधिक जोर दिया है कि बहुत से विद्वानों की राय में महमूद गज़नवी उससे चिढ़ गया था, क्योंकि महमूद गज़नवी स्वयं कुलीन न होकर एक खरीदे हुए गुलाम का बेटा था।

शाहनामा लिखवाने के लिये महमूद ने फिरदौसी को अपना विशाल पुस्तकालय उपलब्ध कर दिया, और प्राचीन ईरानी वीरों के जो चित्र, अस्त्र-शस्त्र, वस्त्राभूषण आदि उसने संग्रह किया था वह सब भी फ़िरदौसी को देखने को मिल गये। उसने फिरदौसी से कहा कि शाहनामा में जितने शेर होंगे उतने ही दीनार(स्वर्ण) तुम्हें पुरस्कार में मिलेंगे। परन्तु फ़िरदौसी के शाहनामा लिखने, और महमूद गजनी के उसे लिखवाने में उद्देश्यों का महान् अन्तर था।

महमूद के दरबार में १५ वर्ष तक कठोर परिश्रम करने के बाद फ़िरदौसी शाहनामा पूरा करने में सफल हुआ। इस प्रकार शाहनामा की रचना में कुल ३५ वर्ष लगे, परन्तु फ़िरदौसी ने कहीं-कहीं इसका समय ३० वर्ष लिखा है। शाहनामा ६० हजार शेर का महाकाव्य है जिसमें एक हजार शेर 'दक़ीक़ी' वाले शाहनामा के भी सम्मिलित हैं। फ़िरदौसी लिखता है कि एक दिन मैंने स्वप्न में देखा कि मेरे हाथ में शराब का प्याला है जिसे लेकर दक़ीक़ी ने कहा, "शराब ईरानी पद्धति से पिया करो। मैंने भी एक हज़ार शेरों में ईरानी सम्राट् गश्ताप और अरजास्प की कहानी लिखी है। यदि वे शेर तुम्हें मिल जायें तो अपने शाहनामे में सम्मिलित कर लेना जिससे लोगों को पता चल जाय कि तुम्हारे अतिरिक्त और भी किसी ने इस दिशा में प्रयत्न किया था।" फ़िरदौसी लिखता है कि यह सोचकर कि एक दिन मुझे भी मरना है मैंने दक़ीक़ी की इच्छा पूरी कर दी। यह फ़िरदौसी की उदारता है, परन्तु अन्त में वह भी कविसुलभ ओछेपन पर उतरने से न रुक सका। दक़ीक़ी के शेर नक़ल करने के बाद दक़ीक़ी को सम्बोधन करते हुए फ़िरदौसी लिखता है, "जब तुमको ऐसी ही कविता करनी आती है तो इससे तो तुम कविता न करते तो ही अच्छा था। जब तुम्हारे भावों में प्रवाह नहीं तो फिर सम्राटों के इतिहास की ओर क्यों हाथ बढ़ाते हो।"

शाहनामा पूरा होने पर महमूद ने 'अश्वत्थामा हतो, नरो न कुंजरो' वाली नीति के अनुसार अयाज़ के हाथ फ़िरदौसी के घर पुरस्कार-स्वरूप ६० हजार चाँदी के दीनार भिजवाये। जब अयाज़ पहुँचा तो फ़िरदौसी स्नान कर रहा था, खुशी के साथ उछलकर बाहर आया और बड़ी व्यग्रता के साथ हाथ आगे बढ़ाया ही था कि चाँदी के दीनार देखते ही 'हाय!' करके रह गया। उसने खड़े-खड़े वे सारे दीनार भिखारियों को लुटा दिये, और अगले दिन केवल एक लाठी और चादर लेकर गज़नी छोड़कर चला गया। जाते समय वह अयाज़ के हाथ में बादशाह के नाम एक बन्द लिफ़ाफ़ा देता गया। बादशाह ने खोला तो उसमें अपनी हिजो पायी जिसके कुछ शेर पाठकों के मनोरंजनार्थ नीचे दिये जाते हैं—

अगर शाह रा शाह बूदे पिदर।
बसर बर निहादे मिरा ताजे ज़र॥

—यदि बादशाह का बाप भी बादशाह होता (महमूद का बाप गुलाम था) तो वह मेरे सिर पर सोने का मुकुट रखता।

वगर मादरे शाह बानो बुदे।
मिरा सीमोज़र ता ब ज़ानू बुदे॥

—यदि बादशाह किसी मलका (रानी) का पुत्र होता तो बादशाह मुझे सारे को सोने चाँदी से ढक देता।

बाद में विद्वानों ने यह हिजो भी 'शाहनामा' में सम्मिलित कर दी।

दस वर्ष तक मारे-मारे फिरने के पश्चात् ८० वर्ष की अवस्था म फ़िरदौसी ने तूस नगर में अपनी इहलीला समाप्त की। फ़िरदौसी के जाने के बाद पहिले तो महमूद को बहुत क्रोध आया और उसने फ़िरदौसी की गिरफ़्तारी की आज्ञा निकाली, बाद में धीरे-धीरे क्रोध का स्थान उपेक्षा ने, और उपेक्षा का स्थान पश्चात्ताप ने ले लिया। एक दिन अपने वजीर के मुँह से फ़िरदौसी के शेर सुनकर महमूद फड़क उठा, और उसने तुरन्त ही ६० हजार स्वर्ण दीनार फ़िरदौसी के पास भिजवाने की आज्ञा दी। संयोग से

जिस समय यह पुरस्कार तूस पहुँचा उस समय लोग फ़िरदौसी का शव गाड़ने के लिए लिये जा रहे थे।

फ़िरदौसी ने एक लड़की छोड़ी थी। जब महमूद को फ़िरदौसी के मरने का समाचार मिला तब उसने आज्ञा दी कि उत्तराधिकार के रूप में यह पुरस्कार उसको भेंट किया जाय। लेकिन उस आत्माभिमानिनी ने बाप का प्राण लेने वाले बादशाह से कुछ भी लेना अस्वीकार कर दिया। हताश महमूद ने उस धन राशि से फ़िरदौसी के नाम पर एक बहुत बड़ी कारवाँसराय (धर्मशाला) बनवायी और फ़िरदौसी के गाँव में बहने वाले एक प्राकृतिक स्रोत का बाँध पक्का करा दिया। अपने जीवन काल में फ़िरदौसी इस बन्द को पक्का कराने के लिये बहुत प्रयत्न कर चुका था। बहुत दिनों तक फ़िरदौसी की समाधि विद्याव्यसनियों के लिये तीर्थ-स्थल बनी रही।

सुल्तान महमूद गज़नवी ने फ़िरदौसी के साथ ऐसा दुर्व्यवहार क्यों किया इसके बारे में विद्वानों ने बहुत-सी अटकलें लगाई हैं उनमें से एक यह है कि फ़िरदौसी शिया था इस वास्ते कट्टर सुन्नी महमूद उससे अप्रसन्न हो गया। परन्तु फ़िरदौसी तो जन्मजात शिया था यह बात किसी से छिपी हुई नहीं थी। जब वह महमूद के दरबार में गया और शाहनामा लिखने का कार्य उसे सौंपा गया तब भी वह शिया था। फिर महमूद गज़नवी कट्टर मुसलमान अवश्य था परन्तु कट्टर सुन्नी न था। उसके आश्रय में बहुत से शिया विद्वान् थे जिनमें अबुरैहानबैरूनी बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। मैं जिस क्षेत्र* में रहता हूँ वह पाकिस्तान बनने से पहिले शिया सम्प्रदाय के सैयदों का सबसे बड़ा गढ़ था। इतिहास में ये 'सादात बारा' के नाम से प्रसिद्ध हैं, मुगल सेना की हिरावल इन्हींके हाथ में रहती थी। उत्तरकालीन मुगल बादशाहों के समय में ये बादशाह-गर के नाम से प्रसिद्ध हो गये हैं। ये जिसे चाहते दिल्ली का सम्राट् बना देते, जिसे चाहें सिंहासन से उतार देते। भारतवर्ष में पहिला ताज़ियों का जलूस १७२४ ई० में हमारे ही क्षेत्र में निकला था। ये लोग अपने आप को ईरानी सम्राट् नौशेरवाँ की पोती शहर बानो और पैगम्बर मुहम्मद साहब के दौहित्र हज़रत इमाम हुसैन की सन्तान बतलाते हैं। ये लोग महमूद गज़नवी को प्रच्छन्न शिया मानते हैं और उसका नाम बड़े आदर से लेते हैं। इनका कहना है कि जब महमूद गज़नवी हिन्दुओं से पराजित होकर भागा तो शिया सम्प्रदाय के पूजनीय इमाम रज़ा के रोज़े में जाकर दुआ माँगने लगा। आकाशवाणी हुई कि सैयदों की पाद सेवा करो तभी हिन्दुओं पर विजय प्राप्त कर सकते हो। फलतः महमूद ने सैयद अबुल फ़रह वास्ती को अपनी सेवा से प्रसन्न किया और विजय पर विजय प्राप्त करता चला गया। महमूद ने प्रसन्न होकर सैयद अबुल फरह वास्ती को सरहिन्द और कलानौर की जागीर प्रदान की। सादात बारा इन्हींके वंशज हैं। शम्सुलउलेमा मौलाना शिब्ली नौमानी का कहना है कि फ़िरदौसी के शिया होने के कारण तो नहीं बल्कि इस कारण कि फ़िरदौसी का पत्र-व्यवहार वैलमी सरदारों जैसे साम्प्रदायिक शियों से चलता था महमूद उससे अप्रसन्न हो गया था क्योंकि वैलमी महमूद के राजनैतिक रूप से भी शत्रु थे। परन्तु यह बात भी समझ में नहीं आती कि महमूद ने कभी फ़िरदौसी को वैलमियों से पत्रव्यवहार करने से नहीं रोका और न फ़िरदौसी व वैलमियों के सम्बन्ध से महमूद को कोई राजनैतिक हानि ही पहुँची।

यह कहना भी कि ईर्ष्यालु दरबारियों ने बादशाह को फ़िरदौसी की ओर से भड़का दिया था गलत मालूम होता है। महमूद गज़नवी जैसा विजेता इतना भोला नहीं था कि उसपर ईर्ष्यालु लोगों का कुचक्र चल सके। कुछ विद्वानों का कहना है कि फ़िरदौसी बहुत उच्च और कठोर चरित्र का व्यक्ति था। उसने बादशाह के चहेते माशूक अयाज़ की ओर कभी रुख़ नहीं किया इससे अयाज़ ने चिढ़कर बादशाह के कान भर दिये। यह बात कितनी बे-सिर-पैर की है इसका इसीसे अनुमान हो सकता है कि जब शाहनामा बनकर तैयार हुआ तो अयाज़ की आयु ३५ वर्ष की थी। अयाज़ ने उलटे फ़िरदौसी की बहुत सहायता की। जब फ़िरदौसी गज़नी से जाने लगा तो अयाज़ ने ही उसे मार्ग-व्यय के लिये आवश्यकता से अधिक धन दिया था। जिस स्वाभिमानी फ़िरदौसी ने बादशाह के ६० हज़ार दीनार खड़े-खड़े लुटा दिये उसे अयाज़ की यदि कुछ भी सन्देह होता तो वह उसकी दी हुई सहायता कभी स्वीकार न करता।

*दिल्ली से लगभग ६४ मील उत्तर प्रदेशान्तर्गत ज़िला मुज़फ़्फ़रनगर की तहसील जानसठ।

फ़िरदौसी के हृदय में ईरान को आक्रान्त करनेवाले मुसलमानों के प्रति गहरा क्षोभ था। उसने शाह-[नामा] एक चोट खाये हुए बेहोश राष्ट्र के स्वाभिमान को [जगाने]वाले देशभक्त कवि की हैसियत से लिखा है, मुसलमान की हैसियत से नहीं। इसी कारण शाह-[नामा] के प्रकाशित होते ही मुल्ला-मौलवी उसके शत्रु बन [गये]। फ़िरदौसी के प्रशंसकों के पास मुल्ला-मौलवियों [की] धार्मिक कट्टरता का कोई उत्तर नहीं था। महमूद [यदि] ईरानी नहीं, तो अरब भी नहीं था। वह तुर्क [था] और इसलिये अरब आधिपत्य के विरुद्ध उठनेवाले [ईरानी] राष्ट्रवाद को एक सीमा तक वह तुरकों के लिये [अच्छा] समझता था। मेरी धारणा है कि स्वयं मुल्ला [मौलवि]यों के फ़तवों से बचने और फ़िरदौसी को उनकी [दुश्मनी] से बचाने के लिए उसने जान-बूझकर फ़िरदौसी [को] भागने दिया। इस प्रसंग में कुछ बातें ध्यान देने योग्य [हैं]—

१—फ़िरदौसी को तूस के वाइज़ ने काफ़िर घोषित [किया] और उसकी लाश को मुसलमानों के क़ब्रिस्तान [में दफ़]न नहीं होने दिया। फ़िरदौसी की लाश उसीके [अपने] बाग में दफ़नाई गई। महमूद गज़नवी ने जब [यह] सुना तो उसने वाइज़ को शहर से बाहर निकाल दिया।

२—फ़िरदौसी जब बगदाद के ख़लीफा के पास [पहुँ]चा तो वहाँकी जनता ने (जो मुसलमान थी) उसे [घेर] लिया और कहा कि तुम मुसलमान नहीं हो। तुमने [सारा] जीवन काफ़िरों (पुराने ईरानी बादशाह धर्म से [पारसी थे]) के गुणगान में बिताया है। इसपर मुसल-[मा]नों को प्रसन्न करने के लिये फ़िरदौसी ने 'मस्नवी [यूसुफ़] ज़ुलेखा' लिखी जो काव्य की दृष्टि से एक बहुत [साधा]रण सी रचना है क्योंकि फ़िरदौसी को इसके लिखने [में] न कोई रस था, और न प्रेरणा।

३—शाहनामा के बाद ही मुसलमानों ने 'उमर-[ना]मा' नाम का महाकाव्य लिखा जिसकी भूमिका में लिखा [है]: "चूँकि फ़िरदौसी ने ईरानियों की झूठ-सच कथाएँ लिख [कर] प्रसिद्ध कर दीं, इसलिये यह रचना हज़रत उमर [फ़ारूक़][३] की विजय गाथाओं के वर्णन में लिखी गई है [जिससे] जनता की रुचि शाहनामा से हट जाय।"

४—फ़िरदौसी की इस विशाल रचना में अरबी के शब्द नहीं के बराबर हैं। वे भी केवल वे ही हैं जिनके पर्यायवाची फ़ारसी शब्द एक भिन्न सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को लिये हुए हैं, जैसे, अरबी शब्द 'नमाज़' के लिये हम 'प्रार्थना' शब्द का प्रयोग नहीं कर सकते। दक़ीक़ी के शाहनामे में भी अरबी शब्द बहुत कम हैं।

५—महमूद गज़नवी ने कई बार फ़िरदौसी से कहा कि जब एक हज़ार शेर पूरे कर लिया करो तो मुझे सुना दिया करो और लगे हाथ अपने एक हज़ार दीनार ले लिया करो। परन्तु फ़िरदौसी, जो अपनी कमजोरी को भलीभाँति जानता था, हर बार यही उत्तर देता था कि 'बीच में क्या लूँ? जब सारा काव्य पूरा हो जायेगा तो एक साथ इकट्ठा ही ले लूंगा।' यदि फ़िरदौसी तात्कालिक लालच में पड़ जाता तो शाहनामा दस-बारह हज़ार शेरों से आगे नहीं बढ़ पाता।

६—फ़िरदौसी के समय में अरबी भाषा में ईरान के इतिहास पर अनेक पुस्तकें थीं, परन्तु उसने अपने शाह-नामा में किसी भी अरबी पुस्तक का आभार स्वीकार करना उचित नहीं समझा। ईरानी भाषाओं की पुस्तकों के प्रति स्थान-स्थान पर आभार प्रदर्शित किया गया है। इन्हीं में से दो हजार वर्ष पुरानी (अब से तीन हज़ार वर्ष पुरानी) एक पुस्तक का भी नाम आया है। अब से तीन हज़ार वर्ष पूर्व ईरान की भाषा 'ज़िन्द' थी जो वैदिक संस्कृत की बहिन है। इससे अनुमान होता है कि फ़िर-दौसी संस्कृत को भी जानता होगा। जब गौदर्ज़ पीराने वीसा का रक्त पान करता है और उसे अपने मुख पर मलता है तो महाभारत के भीम और दुःशासन की याद आ जाती है। फ़िरदौसी की इन पंक्तियों में तो उप-निषदों की स्पष्ट झलक है—

तरहर च बर चश्म ब गुज़रदा
ब गञ्जद हमी दर दिलत या ख़िरद॥

—जो भी आँखों का विषय है, जो भी मन या बुद्धि द्वारा ग्रहण किया जा सकता है वह ईश्वर नहीं है।

चुनाँ दाँ के यज़्दाँ न के द हश।
ज़ुज़ आनस्तव जीँ बर मगर दाँ मनश॥

—इसलिये जान ले कि ईश्वर के स्वरूप को कोई नहीं जान सकता। जो वह है और जो यह है वह सब ईश्वर नहीं है। ईश्वर इनके अतिरिक्त है।

---

[३] दूसरे ख़लीफ़ा—शिया इन्हें नहीं मानते।

फ़िरदौसी न केवल धार्मिक बल्कि राजनैतिक सहिष्णुता का भी पाठ पढ़ाता है।

शुनीदम ज़ दाना के दानिश बसऐस्त।
व लेकिन परागन्दा बहर कस ऐस्त॥

—मैंने एक ज्ञानी से सुना कि संसार में बुद्धि बहुत है परन्तु बिखरी हुई, थोड़ी थोड़ी करके सबके पास।

ईरानी सेनापति साम ने काबुल विजय के पश्चात् वहाँके मंदिरों को नष्ट करने की आज्ञा दी। काबुल नरेश ने और उपाय न देखकर मलका सीन दुख्त के सामने जौहर का प्रस्ताव रक्खा। मलका ने कहा अभी ठहरो, ईरानी इतने बुरे नहीं होते। मुझे आज्ञा दो तो मैं एक बार साम को समझाकर देख लूँ। पति की अनुमति ले बहुत से उपहारों के साथ, जिनमें दो सौ भारतीय तलवारें* भी थीं, सीन दुख्त ने साम के पास जाकर कहा

ख़ुदावन्द मा ओ शुमा यकऐस्त।
ब यज़दाँ हेच पैकार नेस्त॥
गुज़िश्ता अज़ो क़िबलये मा बुतस्त।
च दर चीनो काबुल च दर हिन्दुऐस्त॥
शुमारा ख़ुरव आतिश पर फ़रोग़।
तो दानी कज़ ईंदर न गुफ़्तम दरोग़॥

—हमारा तुम्हारा ईश्वर एक ही है। ईश्वर की सत्ता को लेकर तुममें हममें कोई मतभेद नहीं। प्राचीन काल से मूर्त्ति हमारे लिये पूजनीय रही है। चीन, काबुल और भारतवर्ष में। तुम्हारे लिये आग की पूजा ही ठीक है। तुम जानते हो कि इसमें मैंने कुछ झूठ नहीं कहा।

साम ने अपनी आज्ञा वापिस ले ली और ईरान व काबुल में सन्धि हो गई परन्तु हमारे देवालयों को नष्ट करनेवाले गजनवी को क्या यह प्रसंग अच्छा लगा होगा?

७—फ़िरदौसी का शाहनामा पढ़कर ईरान का प्राचीन गौरव आँखों के सामने नाचने लगता है। सौन्दर्य, बल, शौर्य, पराक्रम, ऐश्वर्य, चरित्र और उदारता, सभी में; फ़िरदौसी के पात्र तुरकों व अरबों से बढ़-चढ़कर हैं। सोहराब रुस्तम, कैख़ुसरू, बहराम और गौर, नौशेरवाँ आदि प्राचीन ईरानी वीरों की कीर्ति गाथाओं में ईरानियों में स्वजाति प्रेम और अतीत के प्रति अभिमान उत्पन्न कर दिया। फ़िरदौसी प्राचीन पारसी धर्म को तो पुनर्जीवित नहीं कर सका, परन्तु उसकी कृपा से ईरान अरबों और तुरकों के आधिपत्य से मुक्त होकर एक स्वतंत्र राष्ट्र बन सका। ईरानी वेशभूषा, खान-पान और रीति-रिवाज नष्ट होने से बच सके। यह फ़िरदौसी का ही प्रभाव था कि ईरानियों में अपनी मातृभाषा फ़ारसी के प्रति ममता उत्पन्न हुई और वे उसका गर्व करने लगे। इसके साथ ही फ़ारसी भाषा अरबी के प्रभाव से मुक्त हुई और उसने कल्पनातीत उन्नति की। यहाँ तक कि ईसा की ग्यारहवीं शती में सलजूकी सुल्तान अलपरसलाँ ने अरबी हटाकर फ़ारसी को राजभाषा का पद दिया। फ़िरदौसी ने ठीक ही लिखा है कि :—

बसे रञ्ज बुरदम दरीं साल सी।
अजम ज़िन्दा कर दम बदीं पारसी॥

तीस वर्ष तक अनेक कष्ट उठाकर मैंने इस काव्य द्वारा ईरान में प्राण फूँके हैं।

हमा मुर्दा अज़ रोज़गारे दराज़।
शुद अज़ गुफ़्त मन नाम शाँ ज़िन्दाबाद॥

—दीर्घ काल से जो मरे हुए पड़े थे—जिह्वा पर भी जिनका नाम आना बन्द हो गया था उन सभी की कीर्ति को मैंने अमर किया है।

हमारे राष्ट्रीय संग्राम के सुपरिचित शब्द 'ज़िन्दाबाद' का प्रथम बार प्रयोग फ़िरदौसी ने ही किया है। इसीलिये हमारा कर्तव्य है कि जब जब हम 'इंक़लाब ज़िन्दाबाद' का नारा लगानेवाले शहीदों को स्मरण करें तब तब फ़िरदौसी को भी एक आध श्रद्धा का फूल चढ़ा दिया करें।

फ़ारसी कवियों में एक फ़िरदौसी ही ऐसा है जिसका काव्य अप्राकृतिक प्रणय और अश्लीलता दोनों ही दोषों से मुक्त है। फ़िरदौसी की नारी नायिकाएँ रूप, लावण्य, शोखी, नाज़ो अन्दाज से भरपूर होने पर भी सती साध्वी और पति-परायणा हैं। देश और धर्म पर संकट आने पर वे परदे से बाहर आने में भी नहीं हिचकतीं। सोहराब ने ईरान पर आक्रमण किया तो शहज़ादी

---

*जान पड़ता है प्राचीन काल में हमारा देश अपनी तलवारों के लिये बहुत प्रसिद्ध था। फ़िरदौसी, मौलाना निज़ामी गंजूमी व अन्य फ़ारसी कवियों ने कई-कई बार 'शमशीरे हिन्दी' व 'तेगे हिन्दी' का उल्लेख किया है।

पुरुष वेष में क़िले से बाहर आकर बड़ी वीरता-
बड़ी। फ़रोद जब मारा गया और विजय की कोई
न रही, तो राजमाता ने जौहर की आज्ञा दी। सारी
ने क़िले की दीवार से कूद-कूदकर प्राण दे दिये।
ने अपने पेट में खंजर मारा और प्राण
दिये।

ईरानी गौरव का वर्णन करते-करते फ़िरदौसी भूल
है कि वह मुसलमान है। उसका ईरानी रक्त
मारने लगता है। अल्लामा शिब्ली नोमानी लिखते
शाहनामा, "सर ता पा ग़ैर क़ौमों का कारनामा था,
(उसमें) जहाँ-जहाँ मुसलमानों का ज़िक्र आ गया था
हिक़ारत[1] से उनको याद किया गया था।" जब
से इस्लाम का तूफ़ान उठा और ईरान से उसकी
हुई तो फ़िरदौसी की सहानुभूति सहधर्मी अरबों
न होकर काफ़िर ईरानियों के साथ है। पैग़म्बर
साहब ने जब ख़ुसरू परवेज़ को इस्लाम स्वीकार
के लिये लिखा तो सम्राट् ख़ुसरू ने उस पत्र को
जूते से मसल दिया और बहुत कुछ अनाप-
बका। इस घटना से मुसलमानों का जी
है, इसलिये वे सत्य के नाते केवल सरसरी तौर से
इसका उल्लेख करते हैं, परन्तु फ़िरदौसी व मौलाना
निज़ामी गंजूमी ने जी खोलकर इसका विशद वर्णन किया
है। फिर भी पैग़म्बर साहब की मान-मर्यादा का कुछ
थोड़ा-बहुत ध्यान फ़िरदौसी ने अवश्य रक्खा है, परन्तु
जहाँ हज़रत सादो क़ास ने सम्राट् यज्दजुर्द को एक
ऐसा ही संदेश भेजा है वहाँ फ़िरदौसी एकदम भड़क
उठता है।

ज़शीरे शुतर ख़ुरदन ओ सुसुमार।
अरब रा ब जाये रसीदस्त कार॥

--ऊँट का दूध और गोह[2] का मांस खाते-खाते
अब अरब को यह दिन लगे।

के तख़्ते कियाँ रा कुनँद आरज़ू।
तुफ़ू बर तो ऐ चर्ख़े गरदाँ तुफ़ू॥

--कि अब ईरानी राजसिंहासन की इच्छा उत्पन्न
हुई। ऐ काल-चक्र तुझ पर थू। और फिर थू!!

शाहनामा पढ़ने के पश्चात् यह प्रश्न ही नहीं उठता
कि महमूद ग़ज़नवी ने फ़िरदौसी के साथ दुर्व्यवहार क्यों
किया। उल्टे यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि महमूद को
अपने किये हुए पर पश्चात्ताप क्यों हुआ।

१--घृणा

२--गोह का मांस इस्लाम में निषिद्ध है।



आंगनों के बीच—

[भारत की महिलाओं का विचार है कि विदेशों की स्त्रियाँ, विशेष कर अमरीका की, बड़े आराम और चैन की जिन्दगी बसर करती हैं। साज-शृङ्गार के अलावा उन्हें कोई काम ही नहीं। जैसा कि चित्र से ही लगता है यह अमरीकी महिला वृद्धा अवस्था की ओर अग्रसर हो रही हैं—उस उमर पर आ गई हैं जिस पर भारत में महिलायें गोद में पोते खिलाया करती हैं। ये भारत दर्शन के लिये अमरीका से एक माह के लिये आई थीं। मेरे आग्रह पर इन्होंने अपने नित जीवन का एक पृष्ठ 'सरस्वती' के लिये लिख कर भेजा है जिस से भारतीय महिलाओं को अमरीकन महिलाओं के नित-प्रति जीवन की एक झाँकी मिल सके—सह-सम्पादिका।]

अमरीकी महिला के जीवन का एक दिन

सुश्री एलिजाबेथ प्राउट

अमरीका-निवासियों का जीवन संसार के अधिकांश स्थानों के और विशेष-रूप से भारतीयों के जीवन से बहुत भिन्न है। मैंने सुना है कि भारतीय स्त्रियां यह समझती हैं कि अमरीका में स्त्रियाँ बड़े सुख-चैन का जीवन बिताती हैं। पर यह विचार पूर्णतया सच नहीं है। हाँ, भारतीय स्त्रियों के जीवन की तुलना में अमेरिकी स्त्रियों को जीवन की काफी सुख-सुविधायें अवश्य उपलब्ध हैं पर उनका जीवन आराम का तो निश्चय ही नहीं है।

अब मैं आपको अपनी दिनचर्या बताती हूँ। मैं एक छोटे से घर में अकेले रहती हूँ जो मेरा निजी घर है। इसमें एक बैठने-उठने का कमरा, एक भोजन कक्ष, एक शयन कक्ष, गुसलखाना, मकान के आगे और पीछे एक-एक पोर्च, एक बरसाती, और इस सबके नीचे बड़ा सा एक तहखाना है। यह सब २५ फुट चौड़ी और १२५ फुट लम्बी जमीन पर है। मकान के सामने एक छोटा सा लान है और पिछवाड़े एक बड़ा लान, बाग, तथा

सब्जी का खेत है। घर की देखभाल, खाना बनाना, धोना, इस्तरी करना, पेण्ट करना तथा बागवानी सारे काम मैं स्वयं करती हूँ।

मैं एक स्कूल में अध्यापन कार्य भी करती हूँ। इस मुझे दो धन्धे करने पड़ते हैं। अब आप समझ सकती कि मेरा जीवन कितना व्यस्त है।

अब सुनिये मेरी दिनचर्या। मैं सबेरे ६ बजे उठती जाड़ों में उस समय बहुत अँधेरा रहता है क्योंकि स्थान अमेरिका में सुदूर उत्तरी भाग में है। सबसे मैं कुल्ला से दाँत साफ करती हूँ और नहाती हूँ। बाद कलेवा तैयार करती हूँ। प्रायः कलेवे में दलिया, दूध और काफी लेती हूँ। कभी-कभी के भी एक-दो टुकड़े खाती हूँ। फिर बर्तन धोना, ठीक से लगाना, और घर को ठीक करना होता मुझे यह बिल्कुल पसंद नहीं कि चीजें बेकायदे पड़ी मैं चाहती हूँ कि प्रत्येक वस्तु बड़े कायदे और से यथास्थान रहे।

इसके बाद मैं फिर नहाती हूँ और कपड़े पहनती हूँ। समय रहा तो कुछ मिनटों के लिए टेलीविजन पर चार देखती हूँ या कभी थोड़ी बहुत बुनाई करती हूँ। कभी जरा भी समय बर्बाद नहीं करती।

सवा सात बजे मैं स्कूल जाने के लिए तैयार हो जाती पाठशाला मेरे घर से थोड़ी ही दूर पर है। हमारी पाठशाला का भवन बहुत बड़ा है। यह पूरी एक एकड़ पर बना है और चार मंजिला है। मेरी कक्षा भवन ऊपरी हिस्से में तीसरी मंजिल पर है। सड़क के पार और स्कूल का भवन है जो तीन चौथाई एकड़ जमीन बना है। उसके आगे मोटरखाना है जहाँ स्कूल की खड़ी की जाती हैं। मोटरखाने के बाद मेलोन हाल वहाँ हमारी पाठशाला का वाद्यसंगीत विभाग है।

प्रायः जब मैं स्कूल पहुँचती हूँ उस समय विद्यार्थी प्रतीक्षा करते हुए मिलते हैं। ये वे विद्यार्थी होते हैं या तो विशेष सहायता की आवश्यकता होती है कुछ ऐसे होते हैं जो गैरहाजिर होने के कारण अपना काम पूरा करने में सहायता के लिए आते हैं। स्कूल में प्रत्येक विद्यार्थी को प्रतिदिन उपस्थित अनिवार्य है। केवल बीमार होने पर ही वे अनुपस्थित हो सकते हैं। जो विद्यार्थी अनुपस्थित रहें



सुश्री एलिजाबेथ प्राउट

उन्हें अपना छूटा हुआ काम पूरा करना होता है। इसलिये वे समय से पहले स्कूल आ जाते हैं।

कक्षायें ८ बजे से शुरू होती हैं। पहला घण्टा ८ बजे से ८.५५ तक, दूसरा ९ बजे से ९.५५ तक, और तीसरा १० बजे से ११ बजे तक। ११ बजे ४५ मिनट के लिए खाने की छुट्टी दी जाती है। इस समय पास रहने वाले विद्यार्थी अपने घर खाना खाने चले जाते हैं। कुछ विद्यार्थी अपने साथ खाना लाते हैं और स्कूल में ही खा लेते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ स्कूल के उपहार घर में ताजा खाना खाते हैं। इसके बाद ११.५० से १२.४५ तक चौथा घण्टा, १२.५० से १.४५ तक पाँचवाँ, १.५० से २.४५ तक छठाँ और २.५० से ३.४५ तक सातवाँ घण्टा होता है। इस तरह प्रतिदिन ७ घण्टे पढ़ाई होती है। हफ्ते में कक्षायें ५ दिन होती हैं और वर्ष में १० महीने स्कूल में पढ़ाई होती है।

जैसा मैंने ऊपर बताया, मैं करीब ७.१५ बजे स्कूल पहुँचती हूँ और ८ बजे तक विद्यार्थियों को अतिरिक्त सहायता करती हूँ। पहले घण्टे में मेरी कोई कक्षा नहीं होती। इसलिये यह समय मैं अपना अध्यापन-पाठ तैयार करने, विद्यार्थियों के काम की जाँच करने, प्रधाना-

ध्यापक के कार्यालय में काम करने में अथवा पुस्तकालय जाकर पढ़ने में उपयोग करती हूँ।

दूसरे घण्टे में मैं अँगरेजी व्याकरण, लेखन तथा अँगरेजी और अमेरिकी साहित्य पढ़ाती हूँ। मेरी इस कक्षा में १४ से १५ वर्ष के ३१ बालक-बालिकाएँ हैं। इनमें कुछ तो पढ़ने में बहुत मन लगाते हैं पर कुछ उतना अधिक नहीं लगाते। मेरा पूरा विश्वास है कि अन्य स्कूलों में भी ऐसा ही होता है। तीसरे घण्टे में मुझे २४ विद्यार्थी पढ़ाने होते हैं। इस प्रकार सबेरे मैं ५५ विद्यार्थियों को पढ़ाती हूँ।

मेरा घर स्कूल के बहुत पास है। इसलिए ११ बजे खाने की छुट्टी में मैं घर आकर अपने लिए थोड़ा खाना बनाती हूँ। ज्यादा खाना नहीं बनाती क्योंकि १० मिनट में ही मुझे खाना खा लेना पड़ता है।

अपराह्न में बहुत व्यस्त रहती हूँ। चौथे घण्टे में मुझे ३३ विद्यार्थी पढ़ाने होते हैं। पाँचवें घण्टे में २३, छठें में ३२ और सातवें में २४ विद्यार्थी। अर्थात् प्रतिदिन १६७ विभिन्न कक्षाओं के विद्यार्थियों को पढ़ाना पड़ता है। उनको पढ़ाना, काम की जाँच करना तथा उनका ब्यौरा रखना आवश्यक कार्य है। इसके लिए मुझे आवश्यकतानुसार उन सब विद्यार्थियों के माता-पिता से परामर्श करना पड़ता है। अब आप समझ सकती हैं कि स्कूल में मेरा जीवन कितना व्यस्त रहता है। किन्तु यह समय होता बड़ा रोचक है और इसका मुझे लाभ भी होता है। प्रायः जब विद्यार्थी पढ़ने में मन नहीं लगाते तो बड़ी निराशा होती है। हमारे यहाँ हर व्यक्ति का जीवन इसी तरह व्यस्त है, चाहे वह कोई काम करता हो।

चार बजे मैं स्कूल से लौटती हूँ। कभी-कभी सामान खरीदने बाजार चली जाती हूँ। यहाँ का मुख्य बाजार स्कूल से थोड़ी ही दूर है। इसलिए मुझे इसके लिए दूर नहीं जाना पड़ता। अगर मुझे राशन आदि खरीदना हुआ और सामान अधिक हुआ तो मैं अपनी मोटर लेकर शहर या पास के किसी दूसरे शहर जाकर खरीददारी करती हूँ।

यदि बाजार न जाना हुआ तो मैं सीधे घर लौट आती हूँ और नहाती हूँ। फिर कपड़े बदल कर शाम को घर पर ही रहती हूँ और अपने लिए खाना पकाती हूँ। दिन भर इतनी मेहनत करने और थोड़ा सा खाने के कारण इस समय भूख बहुत तेज लगती है। प्रायः रात को भोजन के समय मेहमान आ जाते हैं। यह मुझे बड़ा अच्छा लगता है क्योंकि लोगों से मिलना-जुलना मुझे बहुत पसंद है। खाने के बाद बर्तन साफ करती हूँ और रसोई को सुव्यवस्थित करती हूँ।

शाम को अकेले रहने पर मैं दो दैनिक अखबार पढ़ती हूँ, टेलीविजन देखती हूँ और सिलाई-बुनाई करती हूँ। मैं एक क्षण भी बेकार नहीं बैठती। सोने के पहले मैं अपने बिस्तरे पर लेटकर आराम के साथ मनपसंद चीजें पढ़ती हूँ। मेरे पलंग के बगल में एक रेडियो है। पढ़ते समय मैं उसे खोल कर शास्त्रीय संगीत सुना करती हूँ।

यह तो मेरी एक सामान्य दिनचर्या है। इसके अतिरिक्त कई ऐसे काम हैं जो मुझे हर सप्ताह करने ही पड़ते हैं। उदाहरण के लिये, शुक्रवार को शाम के समय धुलाई करना। मेरे पास धोने का स्वचालित यंत्र है इसलिए यह काम कठिन नहीं है। शनिवार को मैं पूरे घर की सफाई और कपड़ों पर इस्तरी करती हूँ। कपड़ों की मरम्मत भी हमेशा करनी ही पड़ती है।

रविवार को हमेशा सबेरे ८ बजे मैं चर्च जाती हूँ। फिर पत्र लिखना, बीमार लोगों को देखने जाना वगैरह वगैरह काम लगे ही रहते हैं।

अब आपने देखा कि मैं वास्तव में कितनी व्यस्त रहती हूँ। दिन भर आराम करने या पैर फैलाने का अवकाश नहीं, वह तो रात में ही मिलता है जब मैं अपने बिस्तरे पर लेटती हूँ। प्रतिदिन सबेरे ६ से रात १० बजे तक १६ घण्टे मैं काम करती हूँ। लेकिन फिर भी इस व्यस्त जीवन में मैं मनोरंजन का अवसर पा ही जाती हूँ। यहाँ अमेरिका में हम लोग अपने कार्य का पूरा आनन्द लेते हैं और उसीमें हँसने और मनोरंजन का ढंग भी निकाल लेते हैं।

मुझे आशा है कि इस विवरण से आपको हमारे जीवन के बारे में जानकारी मिलेगी। इस बारे में और अधिक जानकारी के लिए यदि आप कोई प्रश्न करना चाहें तो मैं उनका स्वागत करूँगी।

सफ्फा मसजिद

मू० ले० श्री लक्ष्मणराव सरदेसाई : अनु० श्री रा० र० सर्वटे

...ड़ों से पनजिम की ओर जानेवाली सड़क से आज मैं और प्रभा घूमने गये थे। प्रभा प्रकृति की अत्यंत ...वाली-प्रकृति के सच्चे सौन्दर्य का रसास्वादन बड़ी ...नता से करनेवाली। आकाश के विरल बादलों पर ...क्रम से और आश्चर्यकारक रीति से बदलते जानेवाले ...मनोहर विविध रंगों और उसके कारण आस-पास ...प्रकृति पर अंकित होनेवाली तरल छटा का निरीक्षण ...ते समय उसे बड़ा आनंद होता।

आज नित्य की अपेक्षा हम काफी आगे चले गये थे। ...तक नजर जाती थी वहाँ तक की टेकड़ियाँ और पर्वत ...पर उग रही घनी हरियाली और पेड़-पौधों के कारण ...से ऐसे लग रहे थे मानों फूल कढ़े हरे कालीन बिछे हों। ...क की दायीं ओर, विस्तृत और ऊँचा-नीचा मैदान ...हुआ था और उसमें जगह-जगह पर छोटे-छोटे खेत ...उनमें धान, बाजरा और उरद आदि की फसलें लहरा ...रही थीं। बीच ही में एकाध नाला नजर आ जाता जो ...जल्दी-जल्दी रास्ता बनाता हुआ, किसी आदर्शवादी की ...तरह संकट की परवाह न कर, आगे बढ़ रहा था।

एक नाले के उस पार, वृक्षों की ओट में, एक पुरानी ...इमारत दिख रही थी। उसकी ओर अँगुली दिखाकर, ...प्रभा ने बड़ी उत्सुकता से कहा—

"वह कौन सी इमारत है? बड़ी पुरानी मालूम ...होती है।"

"उस इमारत का नाम सफ्फा मसजिद है। वह बड़ा ...इतिहास-प्रसिद्ध स्थान है। छः शताब्दियों का अद्भुत रम्य ...इतिहास उसके पीछे खड़ा है।"—मैंने कहा।

इस उत्तर से प्रभा की जिज्ञासा बढ़ी। उसने उत्सुकता-...पूर्ण स्वर में कहा—

"चलो न? जरा देखें उसे।"

सड़क से नीचे उतरकर, एक पगडंडी से, हम तुरंत ...उस मसजिद के तालाब पर पहुँचे। तालाब काफी बड़ा ...है और उसके किनारे पूर्व की ओर मुख करके टूटी-फूटी ...वह मसजिद खड़ी है।

तालाब में उतरने के लिए उसकी लंबाई की तरफ से ...और चौड़ाई की तरफ से एक-एक इस तरह सब ...मिलाकर छः पथरीली सीढ़ियों के भव्य जीने हैं। तालाब ...के स्वच्छ नीले जल में भीतर गहराई तक गयी हुई पथरीली ...सीढ़ियाँ दीख पड़ती हैं। किनारे की ऊँची पथरीली दीवालों ...में समान आकार और शिल्प के दरवाजे हैं और उनमें ...छोटे-छोटे कमरे बने नजर आते हैं। किनारे की दीवालों ...का कुछ हिस्सा तालाब के पानी में जैसे प्राण देने के लिए ...आतुरता से पानी पर झुका हुआ है। किनारे के समीप ...पानी में, किनारे के पत्थरों की दरारों में उगे बरगद पीपल इत्यादि पाषाण-भेदी पेड़ों और मसजिद के ऊपरी हिस्से का प्रतिबिंब पड़ा है और बीच के पानी में नीला आकाश लेटा हुआ है।

मसजिद ऊँची है, पर अधिक विस्तृत नहीं। उसके टूटे-फूटे हुए रूप की ओर देखकर, काल के विध्वंसक कार्य की कल्पना हो जाती है। पाषाण कड़ा है सही, पर काल उसको भी क्षय रोग की तरह खा डालता है। समूचे कोंकण सूबे में किसी समय अत्यंत विख्यात और ऐश्वर्यसंपन्न यह मसजिद धूप और वर्षा की मार से आज बिलकुल काली पड़ गयी है। जहाँ विजेता मुसलमानों की प्रार्थना का कोलाहल दिन-रात सुनाई देता था, वहीं आज श्मशानवत् शांति फैली हुई है। मसजिद की काली पथरीली दीवालों में बाहर से, ऊपर-नीचे, कमानियाँ बनी हैं जिनके कारण समूची इमारत को एक अलग अपरिचित और गूढ़-सा स्वरूप प्राप्त हो गया है। मसजिद के आसपास टूटे हुए और झुके हुए कुछ खंभे खड़े हैं और आगे एक विस्तृत प्रांगण है जिसे पत्थरों की कतारों से भिन्न-भिन्न भागों में विभाजित कर दिया है।

मुख्य दरवाजे की ओर ले जानेवाला दस-बारह सीढ़ियों का दुर्गम जीना चढ़कर, हमने मसजिद में प्रवेश किया। भीतर सिर्फ एक ही कमरा था। खिड़कियाँ खुली थीं। उनमें दरवाजे नहीं थे। दरवाजे के सामने की दीवाल में एक आला बना था। उस तक जाने के लिए चार-पाँच सीढ़ियों का एक छोटा-सा जीना था और उससे टिकी एक कुबड़ी रखी थी।

प्रभा का ध्यान उस कुबड़ी की ओर जाते ही उसने बड़े कुतूहलपूर्ण स्वर में मुझसे पूछा—

"इस कुबड़ी का क्या मतलब? क्या इसका कोई इतिहास है?"

पर मुझे उस इतिहास की कोई जानकारी नहीं थी। इसलिए मैंने कहा—"बाहर चलें। वहाँ किसीसे पूछेंगे।"

सीढ़ियाँ उतरकर हम नीचे आये और मसजिद की बायीं तरफ से चक्कर लगाकर नजदीक ही दिखनेवाली कुछ पुरानी कबरों की ओर मुड़ पड़े। उनमें की एक कबर काफी बड़ी थी। उसके नजदीक ही एक छोटा-सा कुआँ था। कबरों पर बड़े-बड़े पेड़ उगे थे। उनके कारण आस-पास का वातावरण एक प्रकार की उदासीनता, गूढ़ता और रहस्यमयता से भरा हुआ है, ऐसा लगता। यह सब देखकर, प्रभा ने मुझसे पुनः पूछा—

"यह बड़ी कबर किसकी होगी?"

मसजिद की परिक्रमा पूरी करके हम तालाब के किनारे पहुँचे। हम दोनों के ही मनों में उस कुबड़ी और उस कबर के बारे में तीव्र जिज्ञासा उत्पन्न हो गयी थी।

उन वस्तुओं के पीछे क्या कोई रहस्यमय अद्भुत रम्य इतिहास है, ऐसा प्रश्न हमारे मन में खड़ा हुआ।

तालाब के किनारे एक वृद्ध मुसलमान कँटिया से मछलियाँ पकड़ने में निमग्न हो गया था। इस आशा से कि उससे कुछ जानकारी मिलेगी, हम उसके पास गये और हमने उससे कहा—

"मसजिद में रखी कुबड़ी और उस बड़ी कबर के बारे में आप हमें कुछ जानकारी दे सकेंगे क्या?"

"वह एक बड़ी दिलचस्प और कलेजे को हिला देनेवाली कहानी है।"—उस मुसलमान ने जवाब दिया।

"क्या आप वह सब हाल हमें सुनाने की मेहरबानी करेंगे?"

"क्यों नहीं? जरूर बताऊँगा। पर वह एक बड़ी लंबी कहानी है। जल्दी पूरी नहीं हो सकेगी। आप यहाँ तशरीफ रखें। मैं वह कहानी आपको सुनाता हूँ।" इतना कहकर, उसने पानी से कँटिया निकाला और उसमें भक्ष्य लगाकर, उसे पुनः पानी में छोड़ दिया। इसके बाद वह कुबड़ी की कहानी सुनाने लगा।

घटना सन् १४८० की है। गोमांतक प्रांत उस वक्त बहामनी बादशाहों के कब्जे में था और उसे तलकोकण सूबा कहते थे। उस सूबे की मुख्य राजधानी फोंडा थी। इसलिए तलकोकण का मुख्य सूबेदार उल्मुल्क वहीं मर्दन-गढ़ नामक किले में रहता था। शहर के आसपास मजबूत चहारदीवारी थी जिसके अवशेष आज भी देखने को मिलते हैं। उल्मुल्क अत्यंत सज्जन और धार्मिक वृत्ति का मुसल-मान था और ज्योतिष पर उसकी बड़ी श्रद्धा थी। उसके आश्रय में एक-दो अच्छे-बुरे ज्योतिषी हमेशा ही रहा करते थे। उनसे पहले वह अपना भविष्य सुन लेता और उसके अनुसार अपने कामों की योजना बनाता और शासन के महत्त्वपूर्ण कार्य करता।

उसके अमीना नाम की एक अठारह वर्ष की इकलौती लड़की थी। अमीना बड़ी होशियार, चतुरा और रूपवती थी। थी स्त्री, पर पिता ने उसे पुत्र की तरह शिक्षा दी थी। इस कारण वह हमेशा उल्मुल्क के साथ रहती। जब घोड़े पर सवार होकर, उल्मुल्क कहीं घूमने जाने लगता तो उसके पीछे घोड़े पर बैठी अमीना भी तैयार। शासन के किसी गहन कार्य में जब उल्मुल्क उलझा हुआ होता तो उस समय भी, उसके रोबदार गंभीर चेहरे के पीछे अमीना का सुंदर मनोहारी और विपुल केश-भार में छिपा हुआ मुखकमल अवश्य दीख पड़ता। अमीना जब कोई धार्मिक ग्रंथ जोर से पढ़ती तो उल्मुल्क बड़े प्यार, कौतुक और अभि-मान से उसकी ओर देखकर, नादमधुर स्वर में हो रहे उसके पठन को सुनने में खो जाता। ऐसा क्रम हमेशा चलता रहता। जब कभी उल्मुल्क चिंता में डूबे हुए मन से बुर्ज पर बैठकर, आसपास के दृश्य की ओर उदास नजर से देखता होता तो अमीना पिता के पास प्यार से पहुँच जाती और उसके मस्तिष्क के दुखद विचारों को निकालकर, उसका मन बहलाने के लिए नीचे फैले हुए प्राकृतिक सौन्दर्य की ओर उसका ध्यान खींच लेती। ऐसे समय आकाश के किसी बादल की ओर अँगुली दिखाकर वह कहती—"पिताजी, पंख फैलाकर आसमान में उड़नेवाले पक्षी की तरह दिखने-वाले उस बादल को आपने देखा क्या?" अथवा, "कि[illegible] के नीचे की विस्तृत और गहरी घाटी के विशालकाय वृक्ष यहाँसे देखिए कैसे दिख रहे हैं, जैसे बहुत से बौने मनुष्य खड़े हों।" अथवा, "देखिए, समुद्र का कुछ भाग क्षितिज से मिल जाने के कारण वहाँ कैसा उदात्तरम्य दृश्य उपस्थित हो गया है?" इत्यादि प्रश्न वह उल्मुल्क से बड़ी आतुरता से पूछती और उसके मन से दुख को निकाल देने का भरसक प्रयत्न करती।

कुछ सालों से उल्मुल्क बहुत उदास दिख रहा था। कोई गहरी चिंता उसके कलेजे को खाये जा रही थी। चिंता में डूबे हुए उसने अनेक रातें बिना सोये गुजार दी थीं। उसकी प्यारी अमीना उसके दिल-बहलाव के लिए जी-जान से कोशिश करती। परंतु उसकी वृद्धावस्था के साथ उसका अज्ञात दुख भी बढ़ता जाता।

एक बार सफ्फा मसजिद में एक नये फकीर के आने का समाचार फैला। सैकड़ों भावुक मुसलमान उससे मिलने गये। सब लोगों पर उस अज्ञात फकीर का विलक्षण प्रभाव पड़ा। हाथ और चेहरा देखकर, वह भविष्य बिलकुल अचूक बता देता है ऐसी उसकी ख्याति शीघ्र ही सब तरफ फैल गयी।

वह सारा दिन धर्म ग्रंथों को पढ़ने और ईशचिंतन में बिताता था। वह यद्यपि बिलकुल तरुण था, फिर भी उसकी प्रत्येक कृति में सांसारिक सुखों के प्रति अनासक्ति प्रतिबिंबित होती थी। उसके कोमल मुख पर उदासीनता, गंभीरता और साधुत्व का तेज, इनका मिलाप हुआ दिखाई देता था। उसकी मुद्रा मोहक और तेजस्वी थी और उसका [illegible] पर जन्मगत बड़प्पन की आब झलकती थी। उसका [illegible] गत गोरा वर्ण धूप की मार के कारण जरा काला-सा दिख रहा था। बारीक नाजुक दाढ़ी कुछ लाल सी थी। उसकी विशाल आँखों में आदर्शवादियों की दृढ़ता झलकती थी। परंतु उसके चेहरे का और उसके बर्ताव का सूक्ष्म निरीक्षण करनेवाले को झट से यह पता चल जाता कि उसके [illegible] में कोई रहस्य छिपा है और उसका मन किसी भय से [illegible] हो गया है।

वह शहर के भीतर कभी नहीं जाता था। यह देखकर [illegible] कि वह लोगों से इस तरह दूर क्यों रहता है, सब [illegible] आश्चर्य होता। परंतु जो लोग उससे मिलने आते, उनसे अलबत्ता वह अत्यंत सौजन्य और प्रेम से मिलता और [illegible] करता। उसकी नजरों और बातों में एक प्रकार का [illegible] था। इस कारण जितने भी भावुक उससे मिलने [illegible] वे सब वहाँसे उसके दास होकर ही लौटते। सफ्फा मसजिद में बैठकर, वह कुरान पढ़ता—नमाज पढ़ता और न[illegible] की धर्मशाला में जो भी सीधा लोगों से उसे प्राप्त होता [illegible]

...कर जाता। जब सूर्य की किरणें सौम्य होने लगतीं तब वह तालाब के किनारे बैठकर, किसी विषय के चिंतन में खो जाता था।

इसी समय सब तरफ यह खबर फैली कि विजयनगर का पराक्रमी राजा मल्लिकार्जुन दस हजार फौज लेकर गोंडा पर आक्रमण करने आ रहा है। तलकोकण पर कब्जा करने के उद्देश्य से इससे पहिले भी मल्लिकार्जुन राजा ने गोंडा पर दो बार आक्रमण किया था। परंतु उनमें उसे सफलता न मिली थी। फिर भी उसके नाम का आतंक विलक्षण था। मंजिल पर मंजिल तय करती हुई हिंदू सेना तिनई घाट के रास्ते गोमांतक की हद के भीतर घुस आयी है, ऐसा विश्वसनीय समाचार पाते ही उल्मुल्क के छक्के छूट गये। इस भयंकर संकट का सामना किस तरह किया जाए यह वह समझ नहीं पा रहा था। उसके पास सेना कम थी—बारूद गोला भी बहुत थोड़ा था। ऐसी स्थिति में राजधानी की रक्षा करना असंभव था।

मसजिद में आये नये फकीर का नाम सूबेदार के कानों में इससे पहिले ही पहुँच चुका था। बहुत दिनों से सूबेदार का मन कर रहा था कि उस फकीर से मिलकर अपने भविष्य के बारे में उससे कुछ पूछे। उल्मुल्क ने उससे प्रार्थना की कि किले में आकर वह उससे मिले। परंतु मालूम नहीं क्यों फकीर ने निस्पृहता से किले में आने से इंकार कर दिया था। अंत में यह देखकर कि संकट बिलकुल द्वार पर ही आ गया है, उल्मुल्क ने खुद जाकर उस फकीर से मिलने का निश्चय किया।

अपनी प्यारी अमीना को साथ लेकर, सूबेदार मर्दनगढ़ से सफ्फा मसजिद गया। वहाँ मन-ही-मन ईश्वर की प्रार्थना करके वह सामने की धर्मशाला में पहुँचा। उस तरुण फकीर के दर्शन होते ही सूबेदार को बड़ा संतोष हुआ। प्रथम-दर्शन में ही उस तरुण फकीर के प्रति उसके मन में प्रेम और आदर उत्पन्न हो गया। उसने इससे पहले बहुत फकीर देखे थे पर इतना पावित्र्य, इतना तेज और इतनी त्यागी वृत्ति उसे कहीं भी नहीं दिखी थी।

कोई धार्मिक ग्रंथ पढ़ने में कुछ खोये-से उस फकीर ने, आहट सुनते ही गर्दन उठाकर सूबेदार और अमीना की ओर देखा और उसका चेहरा एकदम बदल गया। चेहरे पर अधिक गंभीरता और उदासीनता फैल गयी। कोई अज्ञात और बेकाबू हुई भावनाएँ उसके हृदय में खलबली मचा रही हैं और वे किसीको बाहर दिखायी न दें इसलिए वह जी-जान से सावधानी बरत रहा है, ऐसा दीख पड़ा।

थोड़ी देर के लिए वह असमंजस में पड़ गया। परंतु तुरंत ही उसे अपनी गलती महसूस हुए बिना न रही। फकीर से उसका नाम और गाँव पूछना उचित नहीं होता यह सूबेदार न जानता था यह बात नहीं। परंतु फकीर को देखते ही उसके मन में जो अननुभूत मधुर भावना उत्पन्न हुई उसके कारण फकीर का पूर्व इतिहास जान लेने की तीव्र जिज्ञासा उसके मन में जाग उठी और इसीलिए उसने फकीर से उपर्युक्त अनुचित प्रश्न पूछा। उस प्रश्न को सुनते ही फकीर थोड़ी देर के लिए सोच में पड़ गया। उसके चेहरे पर चिंता की छाया फैल गयी। बाद में उसने कहा,—"सारी दुनिया मेरा गाँव है।"

फकीर के इस गूढ़ उत्तर के कारण सूबेदार और अधिक चकरा गया। कुछ तो कहना ही चाहिए था इसलिए वह बोला—

"यहाँ आप किस उद्देश्य से आये हैं?"

"सब मुल्कों में मैं घूम चुका।"—फकीर ने एक लंबी आह लेकर जवाब दिया—"हिंदुस्थान घूमा। बड़े-बड़े संतों से मिला, मक्का शरीफ हो आया; पर शांति कहीं नहीं मिली। कर्तव्य-पालन किये बिना शांति मिलना असंभव है। मैंने अपना कर्तव्य अभी तक पूरा नहीं किया। उसके पूरा करने के बाद ही शायद मुझे अखंड शांति मिलेगी। फकीर के ऐसे निराशा-भरे उद्गार से सूबेदार को लगा कि फकीर से उसके पूर्व-जीवन के बारे में प्रश्न पूछ कर उसने ठीक नहीं किया और फकीर की अज्ञात स्थिति पर उसे दया हो आयी। अमीना की आँखों में अश्रु चमक उठे।

कुछ देर बाद सूबेदार ने कहा—"हस्त-सामुद्रिक में आपने अच्छी प्रवीणता प्राप्त की है ऐसा हमने सुना है। इसलिए मन कर रहा है कि आपसे कुछ प्रश्न पूछूँ।"

"ज्योतिष पर आपकी बड़ी श्रद्धा मालूम होती है।" ऐसा कहकर, सूबेदार द्वारा आगे बढ़ाया गया हाथ उसने अपने तनिक काँपते हुए हाथ में पकड़ा और उसकी हथेली की रेखाएँ वह देखने लगा। सूबेदार की उत्कंठा चरमावधि को पहुँची। अमीना निश्चल दृष्टि से फकीर की ओर देखने लगी।

सूबेदार के हाथ का निरीक्षण समाप्त कर, फकीर ने भारी आवाज में कहा—

"आपके राज्य पर शीघ्र ही एक भयंकर संकट आने वाला है।"

इस भविष्य-कथन से अमीना घबरा उठी। परंतु सूबेदार अस्वस्थ हुआ दिखायी नहीं दिया। पर फकीर आगे क्या कहनेवाला है यह जानने के लिए बेशक वह बड़ा अधीर हो उठा। अमीना डरे हुए खरगोश की नजर से, क्षण में सूबेदार के विचार-मग्न चेहरे की ओर तो क्षण में, फकीर के गूढ़ गंभीर और उदासीन मुद्रा की ओर बारी-बारी से देखने लगी।

"पर इस संकट को टालने के लिए क्या कोई उपाय भी है?" सूबेदार ने चिंता-भरी उत्सुकता से पूछा।

"राज्य पर आनेवाले संकट का निवारण करने के लिए सिर्फ एक ही उपाय है। पर वह बड़ा भयंकर है।" फकीर करुण स्वर में धीरे-धीरे बोला।

सूबेदार का हृदय धड़क उठा। अमीना की सारी शक्तियाँ कर्णेन्द्रिय में सिमट आयीं।

फकीर ने सूबेदार के हाथ की रेखाओं को पुनः बारीकी से देखकर कहा—

"आपके परिवार का कोई व्यक्ति यदि आत्माहुति दे तो यह संकट निश्चित ही टल जाएगा।"

इस भयंकर उत्तर को सुनकर, उन बाप-बेटी की क्या अवस्था हुई होगी इसकी आप ही कल्पना करें। दोनों हाथों से अपना मुँह ढाँककर अमीना वहीं रोने लगी। सूबेदार का सारा बदन भय से ठंडा पड़ गया। हमारे घर का एक व्यक्ति अपनी खुशी से मौत को गले लगाए! कितनी भयंकर सजा! सूबेदार के मन में इसी समय एक पुरानी स्मृति जाग उठी। दस वर्ष पहिले इसी स्थान पर घटी एक घटना की उसे याद हो आयी। इसीके समान एक फकीर वहाँ आया हुआ था। वह जो भविष्य बताता, वह अचूक निकलता था ऐसी उसकी ख्याति थी। अन्य लोगों की तरह सूबेदार ने भी उसे अपना हाथ दिखाया था और बाद में अपने अठारह वर्ष के पुत्र रहीम का हाथ दिखाकर, उसका भविष्य पूछा था।

पिता की संगति से रहीम को भी ज्योतिष में रुचि हो गयी थी। ज्योतिष पर उसकी उल्मुल्क की अपेक्षा भी अधिक श्रद्धा थी।

रहीम का हाथ देख चुकने के बाद उस फकीर ने बताया था कि और दस वर्ष के बाद राज्य पर संकट आएगा और उस समय इस लड़के की आत्माहुति से वह संकट टलेगा।

उस भयंकर भविष्य को सुनकर, रहीम के कोमल श्रद्धापूर्ण मन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। दूसरे ही दिन किसीको भी न बताकर, वह लापता हो गया। सूबेदार ने पुत्र की खोज के लिए दो वर्ष तक भरसक कोशिश की। पर व्यर्थ। रहीम मिला नहीं। सूबेदार को यकीन हो गया कि पागल रहीम ने आत्महत्या कर ली। अमीना उस समय आठ साल की थी। रहीम के विरह में घुल-घुलकर उसकी माँ थोड़े ही दिनों में परलोक सिधार गयी।

सूबेदार को उपरोक्त हृदयद्रावक इतिहास याद हो आया। पहिले के और अब के दोनों फकीरों द्वारा दी गई संकट की सूचना और उसे टालने के लिए बताया गया भयंकर उपाय, इन दोनों बातों के कारण उसका मन भयसंत्रस्त हो गया।

× × ×

अपने पिताजी और अपने राज्य के सुख के लिए छटपटानेवाली अमीना मदनगढ़ के अपने महल की एक ऊँची अटारी पर सचिंत मुद्रा से बैठी हुई थी। उस अटारी से किले के आसपास का दस मील तक का भूभाग दिख रहा था। पर्वत जिन पर हरे-हरे वृक्ष चँवर ढल रहे थे छोटे-छोटे समूहों जैसे दिख रहे थे। विस्तीर्ण मैदान से बहनेवाली स्वच्छ पानी की नदियाँ छोटे निर्झरों की तरह शोभा दे रही थीं। क्षितिज से टिके एक के बाद एक उन्नत होते जाने वाले उत्तुंग पर्वत भिन्न-भिन्न रंगों के वस्त्र परिधान कर खड़े थे। नजदीक की कतार के पर्वत हरे-काले दिख रहे थे। उनके बाद गहरे नीले रंग के पर्वत झाँक रहे थे। उनके पार धूसर रंग के पर्वत फैले हुए थे। उनसे भी आगे नीले रंग पर सफेदी दिये गये आकाश के रंग में विलीन होते जाने वाले पर्वत दिखाई देते और इन सब पर आकाश के बहुरंगे बादलों ने चमत्कारिक छत्र पकड़ रखा था। ऐसे उदात्त और सर्वव्यापी दृश्य को हमेशा घंटों देखने में खो जाने वाली अमीना म्लान और भयानक मुद्रा से मदनगढ़ के नीचे फैली हुई भयानक घाटी की ओर देख रही थी।

फकीर ने कल जो भयंकर भविष्य बताया था, अमीना के दिमाग में वह कुहराम मचा रहा था। राज्य पर आये संकट को टालने के लिए पिताजी अब आत्माहुति दिये बिना हरगिज न रहेंगे। उनके आत्महत्या कर लेने पर राज्य बच जाएगा यह सच है। पर समूची दुनिया में मेरा अपना कौन रहेगा? भाई बचपन में ही चल दिया! माँ का स्वर्गवास हो गया और शायद मेरा यह दुख अभी जैसे कम था इसीलिए अब यह महान् संकट मुझ पर आ गया है। इस तरह उसके मन में भिन्न-भिन्न विचार आ रहे थे। उसे पिता प्रिय था, परंतु राज्य की इज्जत उसे कम प्रिय थी यह बात नहीं। अठारह वर्ष की तरुणी, पर उल्मुल्क से उसका बर्ताव किसी छोटे बच्चे की तरह रहता। बाप के पीछे घोड़े पर बैठनेवाली, उसके साथ खेलनेवाली, हरे पर्वतों की चौकट में प्रकृति द्वारा बैठाए गये चित्र के सुंदर स्थलों की ओर पिता का ध्यान खींचनेवाली अमीना, पर वह आज उल्मुल्क से भी अधिक गंभीर मन से फकीर के द्वारा बताए गये भविष्य के बारे में सोच रही थी। पिताजी, अथवा पिताजी का अधिकार जिस पर है वह राज्य, इन दोनों में से किसी एक से मुझे वंचित होना पड़ेगा। फिर! उसके मस्तिष्क में एक विचार कौंधा और काफी सोचने के

...उस विचार को कार्य रूप में परिणत करने का जब ...ने निश्चय किया, तब कहीं उसके मन को संतोष मिला।

...रात चांदनी थी। आकाश के तारे सफ्फा मसजिद ...तालाब के नीले जल में खेल रहे थे। मसजिद के इर्द-...वृक्षों की छायाएँ फैली हुई थीं जिसके कारण आसपास ...दृश्य बड़ा भयानक लग रहा था। सब ओर बिलकुल ...रहा था। ऐसे समय एक आकृति तालाब की दिशा में ...रही थी। वह चलते-चलते बीच ही में ठिठक जाती, ...ही में पीछे मुड़कर देखती और काफी दूर चाँदनी में ...वाले मदनगढ़ पर अपनी निगाह टिका देती। ...तालाब पर पहुँचते ही वह नीचे उतरी और पानी के ...किनारे खड़ी होकर, वह मन-ही-मन परमेश्वर ...प्रार्थना करने लगी। इसी समय सफ्फा मसजिद से ...ने गंभीर और दृढ़ आवाज में जोर से कहा——

"पीछे लौट।"

अमीना चौंककर एकदम पीछे सरकी और उसने ...कर पीछे देखा। पुनः वही आवाज उसके कानों में ...—

"अमीना, यह नादानी मत कर। पीछे लौट।"

और तुरंत ही तालाब की सीढ़ियाँ उतरकर, एक ...क्ति अमीना के पास आया। अमीना ने भय, आश्चर्य ...इत्यादि विकारों से व्याप्त होकर, कहा——

"आप कौन? अपना निश्चय मैं पूरा करूँगी। आप ...मुझे मत रोकिए।"

"तेरे सुख की चिंता करनेवाला एक मनुष्य तुझसे ...कह रहा है कि तू यह साहस मत कर। राज्य पर जो संकट ...आया है, वह तेरी मृत्यु से नहीं टलेगा। जो ईश्वर की ...इच्छा होगी, वही होगा। जिसकी मृत्यु से यह संकट टलने-...वाला है, वह व्यक्ति उचित समय पर अपना कर्तव्य पूरा ...किये बिना नहीं रहेगा।"

अमीना ने उस व्यक्ति को पहचान लिया और आदर ...से उसने अपने घुटने जमीन पर टेक दिये। उसके सामने ...मसजिद में आया हुआ वह तरुण तेजस्वी फकीर खड़ा था। ...उसके शब्दों में उसे दिव्य जादू दीख पड़ा और उसका निश्चय ...बर्फ की तरह पिघल गया। यह फकीर मेरा हितैषी है ...ऐसा उसे लगा।

"पर यह संकट तो टल जाएगा न?"——अमीना ने ...दयनीय मुद्रा से गिड़गिड़ाहट-भरे स्वर में पूछा।

"हाँ! टल जाएगा। निश्चित ही टल जाएगा।"—उसने पूर्ण आत्मविश्वास के स्वर में उत्तर दिया। वह फकीर और आगे बढ़ा। अमीना मंत्रमुग्ध की तरह वहीं खड़ी थी। संकट टलेगा पर वह किसकी मृत्यु से टलेगा इसका वह विचार कर रही थी। फकीर ने उसका दाहिना हाथ पकड़ा। अमीना चौंक पड़ी। रोमांचित हो उठी। परंतु फकीर के हाथ से अपना हाथ छुड़ा लूँ यह उसे न सूझ पड़ा। उलटे, उसी स्थिति में——उस विकट स्थिति में भी उसके हस्तस्पर्श से उसे लगा जैसे वह किसी अननुभूत मधुर भावनाओं का आस्वाद ले रही है। उसने स्निग्ध प्रेम-भरे स्वर में कहा——

"क्या मैं जान सकती हूँ कि आप कौन हैं?"

"क्या बता दूँ कि मैं कौन हूँ?" कहकर, वह फकीर रुका।

बाद में उसने कहा——"पर नहीं——जल्दी ही तुम्हें इसका पता चल जाएगा।"

इतना कहकर, उसने अमीना का हाथ छोड़ दिया।

जो घटना हुई उसके बारे में विचार करती हुई अमीना वहाँसे चल दी। वह फकीर भी वहाँसे अदृश्य हो गया।

× × ×

अमीना ने डरते-डरते रात की घटना उल्मुल्क से कही। अपनी प्यारी अमीना एक संकट से मुक्त हुई इसके लिए उसने मन-ही-मन उस फकीर और परमेश्वर को अनेक धन्यवाद दिए। यह निश्चित हो गया कि अमीना के प्राण-त्याग से यह संकट नहीं टलेगा। फिर मेरे सिवा और किसकी आत्माहुति से वह टलेगा इसका स्पष्टीकरण कर लेने के लिए दूसरे दिन अमीना को साथ लेकर उल्मुल्क सफ्फा मसजिद की ओर रवाना हुआ। रास्ते में अपनी तीक्ष्ण दृष्टि से उसने आसपास के ऐश्वर्य संपन्न दृश्य को देखा। विस्तृत खेतों और नारियल के भरे-पूरे बागों के किनारे-किनारे मुड़-मुड़कर बहनेवाली 'जुवारी' नदी रजत सर्प की तरह दिख रही थी। खेतों में फसलों के पक जाने के कारण ऐसा लग रहा था जैसे सर्वत्र स्वर्णोदक का छिड़काव हो गया है।

मसजिद में पहुँचते ही उल्मुल्क अमीना के साथ धर्म-शाला में गया, पर वहाँ उसे वह तरुण फकीर न दिखा। उसकी कुछ पोथियाँ और सामान जमीन पर पड़ा हुआ दिख रहा था। यह सोचकर कि फकीर शायद सफ्फा

मसजिद में होगा, उल्मुल्क मसजिद में गया। पर वहाँ भी वह उसे न दिखा। वह कहाँ होगा इस विचार में उल्मुल्क सो ही रहा था कि इसी समय तालाब की तरफ कुछ कोलाहल सुनायी पड़ा। सूबेदार ने अपने एक सेवक को पूछताछ करने के लिए तालाब के किनारे भेजा। घबड़ाए हुए चेहरे से सेवक शीघ्र ही लौट आया और काँपते हुए स्वर में उसने कहा——

"अन्नदाता, धर्मशाला में रहनेवाला फकीर तालाब के पानी में मरा पड़ा है।"

यह समाचार सुनते ही अमीना चीख उठी। उल्मुल्क का हृदय धड़कने लगा और उसकी आँखों से अश्रु प्रवाहित होने लगे। उसे इतना दुःख हुआ जैसे उसके अपने परिवार का ही कोई व्यक्ति उसे छोड़कर सदा के लिए चला गया है।

थोड़ी देर में उस अज्ञात फकीर की लाश मसजिद के सामने लायी गयी। उल्मुल्क और अमीना ने जोर-जोर की सिसकियों के बीच उस लाश के सामने घुटने टेककर, उसे हृदय से प्रणाम किया। फकीर के वस्त्रों से पानी चू रहा था। केशों और दाढ़ी पर पानी की बूंदें मौक्तिक बिंदु की तरह चमक रही थीं और उसके गंभीर चेहरे पर मुस्कराहट की रेखा दिख रही थी।

उल्मुल्क के मुख से एकाएक दुख के उद्‌गार निकल पड़े——

"कितना धर्मात्मा?"

फकीर के गले में सोने का एक सुंदर ताबीज दिखायी दिया। सूबेदार ने उसे निकाला और इस उद्देश्य से कि उसके कारण फकीर के बारे में कुछ और जानकारी मिलेगी, उसने उसे खोला। उसे खोलते ही उसमें से एक कागज का मुड़ा हुआ टुकड़ा बाहर निकल पड़ा। अधीर मन से सूबेदार ने उस मुड़े हुए कागज को खोला और अपनी आँखों के सामने पकड़ा। उसमें लिखा था——"मैं आपका अभागा बेटा रहीम हूँ। अपने राज्य के लिए मैं आज आत्मार्पण कर रहा हूँ। दस साल पहले यहाँ आये एक फकीर का भविष्य आज सच निकल रहा है।" इन वाक्यों को पढ़ते ही उल्मुल्क बेहोश होकर गिर पड़ा। अमीना गलितधैर्य होकर आक्रोश करने लगी।"

× × ×

यहाँ वह वृद्ध मुसलमान रुक गया। उसने एक दीर्घ निश्वास छोड़ा और कहा,——"उपरोक्त घटना को डेढ़ सौ वर्ष हो गये। पर उस धर्मात्मा का स्मृति-दिन इस मसजिद में मुसलमान लोग आज भी मनाते हैं। यहाँ की मुसलमानी हुकूमत खत्म हो गयी और आज पोर्तगाली हम पर हुकूमत कर रहे हैं। परंतु यहाँ के मुसलमान समाज के दिलों पर उस धर्मात्मा की हुकूमत आज भी चल रही है। वह कुबड़ी और वह बड़ी कबर, ये दोनों चीजें उस फकीर की ही हैं और इसलिए वे आदर और श्रद्धा की चीजें हो बैठी हैं।"

उस मुसलमान को धन्यवाद देकर हम खिन्न मन से लौट पड़े। रास्ते में प्रभा बोली,——"मुझे लगता है कि भविष्य पर आवश्यकता से अधिक विश्वास ही उस फकीर की मृत्यु का कारण हुआ।"

"होगा। पर अपने देश के लिए उसने जो त्याग किया वह त्याग असाधारण था। मैं उसे शहीद कहूँगा और अगर पोर्तगाली भाषा में कहना पड़े तो Martyr (मारटिर) कहूँगा।"



नवीन प्रकाशन

बापू-संस्मरण—जमनालाल बजाज की लेखनी से। प्रकाशक—सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, मूल्य—रुपये, पृष्ठसंख्या ३४१।

पुस्तक श्री जमनालाल बजाज सेवा ट्रस्ट, वर्धा की ओर से श्री मार्तण्ड उपाध्याय द्वारा प्रकाशित है। यह ट्रस्ट का आठवाँ प्रकाशन है। वास्तव में यह पुस्तक पुस्तक-माला के प्रथम खण्ड, बापू के पत्र का दूसरा भाग है। पुस्तक दो भागों में विभाजित है। पहले में जमनालालजी बजाज की डायरियों में से तथा मित्रों एवं परिवार वालों को लिखे पत्रों में से बापू सम्बन्धी उल्लेखों का संकलन है तथा दूसरे में बजाज परिवार के सदस्यों द्वारा लिखे बापूजी के संस्मरणों का संग्रह है।

इसके पूर्व 'पाँचवें पत्र को बापू का आशीर्वाद है' नामक एक ग्रंथ प्रकाशित हुआ था। उसमें उसीकी प्रेरणा थी और उसे बढ़ाकर अलग रूप दे दिया गया है और यह पुस्तक उसीका फल है। इस संकलन से जमनालालजी बजाज ने एक साधक के रूप में महात्माजी की जो सेवा की, वह निखर आती है।

प्रथम भाग में दिए हुए 'डायरी' के उद्धरण इतने संक्षिप्त हैं कि लगता है, उन्हें केवल नोट के तौर पर लिखा गया है कि भविष्य में पढ़कर याद ताजा किया जाय और उनका उपयोग किया जा सके। उनका महत्त्व तो सामान्य पाठक के लिए नहीं के बराबर है।

'डायरी' के भाग अलग-अलग वर्ष के हिसाब से भिन्न-भिन्न अध्यायों में बाँटे गए हैं। पुस्तक के पिछले भाग में श्री जानकी देवी बजाज को जमनालाल बजाज द्वारा लिखे पत्रों में से गाँधीजी सम्बन्धी उल्लेख छापे गए हैं, जिनमें उपन्यास की सी रोचकता आ जाती है। उन दिनों मारवाड़ी स्त्रियों के लिए घूँघट खोलना, पैर में पड़ी चाँदी के कड़े खोलना कितना कठिन था, उसका मानसिक द्वन्द्व जानकी देवी द्वारा लिखित 'सब कुछ प्रश्नार्पण' नामक अध्याय में बड़ी मनोरंजकता से व्यक्त किया गया है। ससुर के इस तरह के वाक्यों का महत्त्व स्त्रियाँ ही जानती हैं।

ससुर जी बोले, "गाँधीजी केव्हे वियाँ जमन करै, और जमन केव्हे वियाँ वीनणी करै—इ में वीनणी को कांई कसूर!" जमनालालजी की माताजी कहतीं, "पड़दो तो इश्यो करयो के कोई नख भी देख नहीं सके। और छोड़यो तो इश्यो छोड़यो के भोट्याराँ की सभा में व्याख्यान देवे लागी।"

पुस्तक में कहीं झूठा आडम्बर नहीं है। गाँधी-साहित्य प्रेमियों के लिए पुस्तक अमूल्य है।

समय की पुकार—समुद्र-मंथन या हमारी समस्याएँ और उनका समाधान—लेखक चन्द्रवाहन सिंह

प्रकाशक:—रवीन्द्रप्रतापनारायण सिंह, धरसन पोस्ट कंधरापुर, आजमगढ़, उत्तर प्रदेश।

मूल्य—दो रुपये। पृष्ठसंख्या—१६३

पुस्तक बहुत जोश से लिखी गयी है। इसमें २८ प्रकरण हैं। प्रायः भारत की जितनी भी आधुनिक समस्याएँ हैं, सभी के सुझाव इसमें प्रस्तुत हैं। जैसे बेकारी की समस्या, गुण्डागर्दी, वेश्याओं की समस्या, गोरक्षा की समस्या, नेताओं की लफ्वाजियाँ, सरस्वती मन्दिर की व्यापारिक कोठियाँ, शहीदों के प्रति यह कृतघ्नता, चीन की समस्या, काश्मीर की समस्या, ग्रामों की समस्या, पाक के अल्पसंख्यकों की समस्या, अन्नसंकट का शाप। इसी प्रकार अन्य समस्याओं पर भी प्रकरण के नाम हैं।

प्रायः प्रत्येक भारत की समस्या पर एक प्रकरण है। इसमें संदेह नहीं कि लेखक के जो सुझाव हैं उन पर यदि अक्षरशः चला जाय तो भारत में कोई समस्या ही न रह जाय। पुस्तक की भाषा भी बहुत जोशीली है। पुस्तक के एक पृष्ठ से कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं। ये उदाहरण एक ही पृष्ठ के हैं और पुस्तक की समस्त भाषा वैसी ही है।

"चौदह वर्ष से जी तोड़ समझौता की आरजू, मिन्नत, चिरौरी और विनती हुई।"

"हमारे नेता प्रत्येक विषय में '२५ रुपए, २५ बेंत, २५ प्याज' वाली कहावत चरितार्थ करते थे।"

"यू० एन० ओ० मिशन, शरणार्थी-समस्या, बेरुवारी, निकोबार, पैंजलिका, सैकड़ों लूट खसूट, अतिक्रमण, हाई कमिश्नर का मय परिवार के अपमान, सभी विषयों में हमारी सरकार ने यही किया। हर विषय में भीगी बिल्ली बन पाक के आगे हथियार डाल देती है। रह-रह कर गरज भी देती है। उस साँड़ की दशा हमारे नेताओं की होती है जो अधिक बलवान् साँड़ को देखकर जोश में सींगों से खुरचता, हुरपेटता है। और पीछे से भय के कारण दूसरी दशा भी करता जाता है।"

विध्वंस किए गए मंदिरों की समस्या पर अन्त में लेखक का सुझाव है कि

"सद्भावना स्वरूप दूसरी मस्जिदें पहले से अच्छी, बड़ी संख्या में पाँच के स्थान पर छः आर्यधर्मियों द्वारा बनवाकर मुस्लिम भाइयों को मदद कर देना चाहिए।" दूसरा सुझाव है कि

"अतः मन्दिरों को गिराकर बनाई हुई ज्ञानवापी, विन्दुमाधव, लाटभैरव, अटाला, बाबरी, लाल मस्जिद मथुरा, कुतुबल इस्लाम मस्जिद तथा अन्य मस्जिदें तत्काल आर्यधर्मावलम्बी मात्र को वापस करके सही सद्भावना का मार्ग प्रस्तुत करना इस युग की पुकार है।"

ग्रामों की समस्याओं को हल करने के लिए इन्होंने अट्ठारह सुझाव रखे हैं। जैसे, "भ्रष्टाचार दूर कर चकबन्दी शीघ्रातिशीघ्र की जाए, हिस्ट्री-शीटर अँधेरी रात में थानों पर सोवें आदि आदि।"

पुस्तक के प्रारम्भ में लेखक की ओर से जो लिखा गया है उसकी भाषा का उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है—

"दो बार कारावास का भी पुरस्कार प्राप्त किए।"

"विज्ञजनों के पीछे बैठने के कुछ-कुछ योग्य भी हुआ।"

इतने जोशीले लेखकों को जिनके पास हर समस्या के चुटकियों में हल करने के सुझाव हैं कार्यक्षेत्र में आकर कार्य करना चाहिए। घर बैठकर पुस्तक लिखने से क्या लाभ?

पुस्तक की छपाई और कागज सस्ता है। लेखक ने घोषित किया है कि बिक्री की आय में से आधा उनके ग्राम में स्थापित होने वाले जूनियर हाई स्कूल को दिया जायगा।

संक्षिप्त मनुस्मृति—प्रकाशक—विश्वेश्वरानन्द संस्थान प्रकाशन, वैदिक शोध संस्थान प्रेस, साधुआश्रम, होशियारपुर। मूल्य—३ रु० ५० पैसा, पृष्ठसंख्या १९०।

पुस्तक में एक पृष्ठ पर मूल पाठ दिया हुआ है और दूसरे पृष्ठ पर उन्हीं श्लोकों का सरल हिन्दी अर्थ। अर्थ बहुत सरल है। और उसमें कहीं भी वह जटिलता नहीं आयी जो संस्कृत से अनुवाद करने पर हिन्दी में आ जाती है। पुस्तक में बारह अध्याय हैं और अन्त में श्लोकानुक्रमणिका दी हुई है। पुस्तक में अशुद्धियाँ नहीं हैं। छपाई उत्तम है। मनुस्मृति में लगभग २६८५ श्लोक हैं। इस संक्षिप्त मनुस्मृति में ६८५ श्लोक दिये गए हैं। संस्कृत ज्ञानहीन जनसमुदाय को इस अनुवाद से मनुस्मृति के महत्त्वपूर्ण श्लोक सुलभ हो गये हैं। इनको पढ़कर उनको अपने पूर्व गौरव का ज्ञान होगा कि आज से हजारों वर्ष पूर्व हमारे समाज के नियंत्रण के लिए जो नियम बनाये गये थे वे कितने सोच-समझकर बनाए गए थे कि आज तक उसी प्रकार लागू हैं। जो लोग उनसे अनभिज्ञ होने के कारण उनका पूर्ण लाभ नहीं उठा सकते उनके लिए यह पुस्तक पथ-प्रदर्शक है। मनुस्मृति में जीवन से संबंधित सभी परिस्थितियों के संबंध में मार्ग प्रदर्शन मिलता है। कुछ उदाहरण देखिए:

"नीचे लिखों के लिए रास्ता छोड़ देना चाहिए :— जो रथ पर बैठा है; ९० वर्ष से ऊपर है; रोगी है; बोझ उठाए हुए है; स्नातक, दूल्हा और राजा।"

आज खाद्य पदार्थों की कमी अवश्य हो परन्तु तबका यह श्लोक आज का नारा बन सकता है। "अत्यधिक भोजन रोग को लानेवाला, आयु को कम करनेवाला, दुःखदायी, पापकारक तथा जनता की निन्दा के योग्य होता है, अतः अत्यधिक भोजन छोड़ देना चाहिए।"

मनुष्य की अकर्मण्यता की ओर संकेत है—

फलं कतकवृक्षस्य, यद्यप्यम्बु प्रसादस्य।
न नाम ग्रहणादेव, तस्य वारि प्रसीदति॥

'यद्यपि कतक (निर्मली—जिसके फल से जल निर्मल हो जाता है) वृक्ष का फल जल को निर्मल कर देता है, तो भी केवल उसका नाम लेने से जल निर्मल नहीं हो जाता अर्थात् उसका फल पीसकर जल में डालना पड़ता है।

रामचरितमानस में शिवतत्त्व—लेखक, रामकिंकर उपाध्याय। प्रकाशक, श्री तुलसी साहित्य परिषद्, ४२-१ स्टैण्ड रोड, कलकत्ता—७। मूल्य, १ रु० २५ पैसे। पृष्ठसंख्या ७५।

श्री रामकिंकर उपाध्याय सुप्रसिद्ध कथावाचक हैं। पुस्तक रूप में छपे उनके प्रवचनों से उन प्राणियों को भी लाभ होगा जिन्हें कि उनका प्रवचन सुनने का सौभाग्य प्राप्त न हुआ हो। जैसा कि पुस्तक का नाम है, यह पुस्तक 'मानस' में जहाँ-जहाँ शिवतत्त्व आया है और जिस रूप में आया है उसपर भक्ति और ज्ञान दोनों के ही दृष्टिकोण से प्रकाश डालती है।

किंकरजी के शब्दों में, 'मानस' [में शिवतत्त्व का प्रतिपादन विश्वास के रूप में किया गया है। भक्ति की आधारशिला विश्वास है। आज समाज में आस्था और विश्वास का अभाव है। विश्वास की प्रतिष्ठा भी विग्रह रूप में है। मानस की दृष्टि के रूप में विश्वास की दृष्टि क्या है, यह बताने की चेष्टा प्रस्तुत पुस्तक में की है।

'किंकरजी' ने जो कुछ भी बताने का प्रयत्न किया है वह बहुत ही तर्कसंगत एवं सुचारु-रूप से बताया है।

रामायण में जो अनेक रूपक आये हैं उनके आन्तरिक अर्थों का किंकरजी ने स्पष्टीकरण किया है। इससे पुस्तक में वास्तविकता आ जाती है साथ-साथ रोचकता भी। स्थान-स्थान पर उपयुक्त 'मानस' की चौपाइयाँ भी उद्धृत हैं। किंकरजी का मत है—

'गोस्वामीजी का शिवभक्ति से अभिप्राय शिव की केवल बाह्य पूजा ही नहीं अपितु शिवतत्त्व की वास्तविक आराधना भी सम्मिलित है।'

'भवानीशंकरौ वंदे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ' में श्रद्धा एवं विश्वास की व्याख्या बहुत ही सुन्दर की है। अन्त में तुलसी साहित्य परिषद् के विषय में भी दो शब्द कहना आवश्यक है। यह तुलसी साहित्य परिषद् का प्रथम प्रकाशन है। इस परिषद् का उद्देश्य तुलसी साहित्य के उत्तमोत्तम ग्रंथों के प्रकाशन हैं। यह अत्यंत सराहनीय उद्देश्य है। रामचरितमानस पर भक्ति-भाव से लिखे गए ग्रंथों का प्रकाशन तो हो जाता है परन्तु मानस पर

दृष्टिकोण से लिखे गए ग्रंथों के प्रकाशन में विशेष अड़-चन है। 'मानस' को भक्ति ग्रंथ माननेवाले ज्ञान के दृष्टिकोण से लिखी गयी पुस्तकों का स्वागत नहीं करते क्योंकि उससे उनकी भक्ति की धारणा को ठेस लगती है। ऐसा होना तो नहीं चाहिए क्योंकि ज्ञान के प्रकाश में भक्ति को और सुदृढ़ हो जाना चाहिए।

तुलसी साहित्य परिषद का यह कार्य सराहनीय है।

आर्ट की कहानी——लेखक, रामनाथ पसीजा, प्रकाशक——नेशनल पब्लिशिंग हाउस; २६ ए० चन्द्र-लोक, जवाहर नगर दिल्ली; बिक्री केन्द्र——नई सड़क दिल्ली, मूल्य दो रुपया, पृष्ठसंख्या——५४।

श्री रामनाथ पसीजा एक कुशल चित्रकार हैं। उन्होंने अपने ज्ञान, अध्ययन और अनुभव से कला पर यह पुस्तक लिखी है। आज से लगभग २०,००० वर्ष पूर्व जब मनुष्य ने पशु एवं शिकार के चित्र गुफाओं की दीवार पर बनाए थे तब से लेकर अब तक सारे संसार में चित्रकला एवं मूर्तिकला कैसे एवं किन-किन रूपों में विकसित हुई; यह संक्षेप में इस पुस्तक में बताया गया है। कला का यह संक्षिप्त इतिहास ज्ञानवर्धक भी है और रोचक भी है। इसमें इस बात पर भी विचार किया गया है कि मनुष्य के जीवन से कला का क्या सम्बन्ध है।

इस पुस्तक में विश्व के अनेक प्रसिद्ध कलाकारों की कला और उनके सुन्दरतम चित्रों का संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है। मिस्र, यूनान और अजंता के प्राचीन कलाकारों के अतिरिक्त लियो नार्दो दाविन्सी, रैफल, माइकेल एंजिलो, एम्ब्रा, वानगॉग, पिकासो आदि की चित्रकला का भी वर्णन हे। केवल चित्रकला ही नहीं मूर्तिकला, रंगीन सीसों के बने प्रसिद्ध चित्र, लकड़ी के ठप्पों पर छापे गए जापानी चित्र, काँसे आदि के चित्रित बर्तन आदि के भी चित्र पुस्तक में मिलते हैं।

चित्रकला अपने युग का दर्पण होती है। आधुनिक चित्रकला भी आज के युग का दर्पण है। इस पर लेखक की सुलझी हुई दृष्टि प्रकाश डालती है।

कुछ चित्रकारों ने कूची से रंग लगाने के बजाय रंग छिड़ककर, टपकाकर और अनजाने में गिराकर नई-नई शक्लें पैदा की हैं। जागृत अवस्था में हमारे शरीर की सभी हलचलें मन की उस अवस्था से संचालित होती हैं जिसे चेतना की संज्ञा दी जाती है। नींद में या कई बार जागते हुए भी हमारा मस्तिष्क अर्धचेतना की अवस्था में आ पहुँचता है......

इस अवस्था में हमारे मस्तिष्क में ऐसी धुंधली आकृतियाँ पैदा होती हैं जिनका मतलब किसीको समझाना तो दूर, खुद अपनी समझ में नहीं आता है। ऐसी अवस्था में कार्य करके कुछ चित्रकारों ने अद्भुत आकृतियाँ बनायी हैं। कुछ चित्रकारों ने तर्क-संगत मत को छोड़कर स्वप्नों में दृष्टि आनेवाली बेतुकी एवं अनहोनी सी लगनेवाली बातों के भी चित्र बनाए।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद योरोप में नैतिक एवं सामा-जिक गिरावट आ जाने से लोगों के मस्तिष्क एवं स्वभाव में एक चिड़चिड़ापन, निराशा, शुष्कता और हर बात के मजाक उड़ाने की आदत आ गई है। ऐसे ही कुछ निराश चित्रकारों ने तमाम रूढ़ियों, मानदण्डों, नियमों और कायदों से विद्रोह करके एक ऐसी शैली आरंभ की है जिसका समझना साधारण व्यक्ति के लिए अत्यंत कठिन है। इस आर्ट में आज के वैज्ञानिक एवं औद्योगिक युग की भाग-दौड़, विकलता और आध्यात्मिक उथल-पुथल की झलक मिलती है। इसमें एटमी युद्ध के खतरे से पैदा होने वाले, भय एवं नैराश्य की छाया भी है।

अक्षर बड़े हैं तथा पुस्तक सुन्दर छपी है। यदि इसमें कुछ सुप्रसिद्ध आधुनिक भारतीय चित्रकारों की चित्रकला की समीक्षा भी मिल जाती तो यह पुस्तक भारतीय दृष्टिकोण से अधिक उपयोगी होती।

गाँव का मेरुदण्ड किसान——लेखक हरगोविंद गुप्त; भूमिका डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, प्रकाशक——आत्मा-राम एण्ड सन्स, दिल्ली ६। मूल्य एक रुपया ५० पैसे। पृष्ठसंख्या ८५।

पुस्तक में १३ अध्याय हैं—किसान और किसानी, खेत, बैल, वर्षा, खाद, जुताई, बीज, बुआई, कृषि आस्था आदि। सभी अध्याय उन विषयों पर हैं जो कि किसानों के दिन प्रति दिन काम में आते हैं। स्थान-स्थान पर लोकोक्तियों का समावेश है जिससे पुस्तक में रोचकता आ जाती है। लोकोक्तियों से एक लाभ तो होता ही है कि वे स्मृति में एक साथ जम जाती हैं और बिना प्रयास के ही याद हो जाती हैं। अशिक्षित जनसमुदाय को शिक्षित बनाने का यह सबसे सरल उपाय है। यदि एक व्यक्ति को भी लोकोक्तियों का ज्ञान है तो बातों ही बातों में अनजाने में वह कितने ही लोगों को उस ज्ञान का दान दे देता है और इस प्रकार ये लोकोक्तियाँ कई लोगों की जीभ पर चढ़ जाती हैं, और इस प्रकार गाँव भर को शिक्षित कर देती हैं।

'करिया बैल औ जेठौ पूत जौ बाजे के होय सुपूत।'
'बैल लिये जोत के; भैंस लिये दोह के।'
'बड़ी मुतौस लम्बे कान, हर देखे से तजें पिरान।'

ऐसे बैल हल को देखते ही प्राण छोड़ देते हैं। कुछ उपयोगी लोकोक्तियाँ लम्बी हैं किन्तु उपयोगी हैं। जैसे,

रात कलेवा ना मिलै, छै मइना तक नोन।
पूँछें चील चमार सों, लम्बरदार के बैल हैं कौन?

जिन बैलों को रात में घास और चार-चार छः-छः महीने तक नमक नहीं मिलता, उनकी बाट चील देखती हुई चमार से पूछती है कि नम्बरदार का बैल कौन सा है? नम्बरदार का बैल इसलिये कि उसकी देख-रेख का भार उनके नौकर पर होता है।

चित्र भी पुस्तक के अनुकूल है। लेखक को ग्रामीण जीवन का अनुभव है। यह नहीं लगता कि कुर्सी पर बैठे बैठे ग्राम-जीवन का चित्रण अपनी कल्पनाशक्ति के आधार

पर लेखक ने कर दिया है। वह ग्रामीण जीवन में उतरा है, इसी कारण पुस्तक में सजीवता आ गई है।

भारत के आदिवासी--लेखक नरेन्द्रनाथ चतुर्वेदी, अरविंद प्रकाशन, इलाहाबाद। मूल्य १ रु० ५० पैसे, पृष्ठसंख्या ८०।

यह पुस्तक मुख्यतः १०-१२ वर्ष के बच्चों के लिये लिखी गई है। हिन्दी का कम ज्ञान रखनेवाले व्यक्ति भी इससे लाभ उठा सकते हैं। जैसा कि पुस्तक के नाम से विदित होता है, यह जन जाति तथा वनवासी भाई--संक्षेप में आदिवासियों के ऊपर लिखी गई है और उनका प्रारम्भिक तथा संक्षिप्त परिचय कराती है; उनके रहन-सहन, विवाह, जीवन-यापन का ज्ञान कराती है।

इसमें ९ अध्याय हैं। विभिन्न प्रांतों के आदिवासियों को चुनकर उनका वर्णन किया गया है। जैसे, वनवासी गोंड, स्वामिभक्त आदिम जाति भील, धनुर्धारी कोरवा, घुमक्कड़ आदिम जाति संथाल, भावुक वनवासी 'हों', अज्ञेय नागा, गारो, तथा दक्षिण भारत की टोड़ा जाति का परिचय इस पुस्तक से हो जाता है।

पुस्तक रोचक है। आदिवासियों का जीवन वृत्तान्त स्वयम् में ही रोचक होता है। छपाई स्पष्ट तथा सुन्दर है, तथा पुस्तक के चित्र उसके उपयुक्त हैं।

कहिये समय विचार--लेखक श्री लक्ष्मीनिवास बिड़ला, प्रकाशक सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली। मूल्य, एक रुपया; पृष्ठसंख्या ६२।

यह लेखक के लघु निबन्धों का एक संग्रह है। इसमें ९ निबन्ध हैं, "कहिए समय विचारि' उसी में एक निबन्ध है जिस पर कि पुस्तक का नाम रक्खा गया है। अन्य निबन्ध हैं कला; चौथो बल है दाम; सत्य; संतोष; सुख; दुख; सम्भवामि युगे-युगे; वह पूँजीपति। इसमें सबसे बड़ा लेख 'कहिए समय विचारि' ही है।

ये लेख विद्यार्थियों के लिए विशेष रूप से उपयोगी हैं। मालूम होता है कि उनकी छपाई भी इसी दृष्टिकोण से की गई है। टाइप बड़ा है और विद्यार्थियों के लिए विशेष रूप से उपयुक्त है। लेख रोचक हैं तथा किशोर पाठक तथा अन्य लोग भी जिन्हें निबन्धों में रुचि है उन्हें अवश्य पसन्द करेंगे। भाषा में प्रवाह है तथा विचार सुलझे हुए और व्यावहारिक हैं। यह संतोष और प्रसन्नता की बात है कि एक व्यापार में व्यस्त सज्जन को साहित्यसेवा का शौक है और वे समय निकाल कर हिन्दी में भी लिखते हैं। उनके समान अनुभवी सज्जन से हम उच्चकोटि के अनुभवजन्य साहित्य की भी अपेक्षा करते हैं।

स्मृतिविज्ञान--लेखक मुनिश्री श्रीचन्दजी 'कमल'; प्रकाशक श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, ३ पोर्चुगीज स्ट्रीट, कलकत्ता--१; मूल्य ५० पैसे। पृष्ठसंख्या २९।

स्मृतिशक्ति पर लिखा गया यह एक निबन्ध है। स्मृतिशक्ति के साधनों की जानकारी के अभाव में उसका विकास नहीं हो पाता, उसके साधनों का ज्ञान आवश्यक है। यह पुस्तक इसी उद्देश्य से लिखी गई है। श्री 'कमल' जी ने जैनदृष्टि से यह प्रयत्न किया है। पुस्तक लिखने के पूर्व आपने कई नगरों व कुछ विश्वविद्यालयों में अवधान का प्रयोग किया; तत्पश्चात् यह पुस्तक लिखी गई है।

पुस्तक वैज्ञानिक ढंग से लिखी गई है तथा विशेष उपयोगी है। इसके पढ़ने से तरुणों व किशोरों को विशेष लाभ होगा; तथा एकाग्रता के लिये किये जानेवाले भिन्न-भिन्न साधनों के विषय में भी उनको यथोचित ज्ञान होगा 'व्यवहार में एक वस्तु पर आधा घंटे या एक घंटे भर दृष्टि टिकाना उच्च कोटि का अवधान हो सकता है। पर इससे मानसिक विकास नहीं होता।' एक बिन्दु पर दृष्टि टिकाने से नई कल्पना, नया चिन्तन नहीं हो सकता। इससे दृष्टि धुँधली पड़ जायगी, या हम कृत्रिम निद्रा अथवा सम्मोहन अवस्था में पहुँच जायेंगे। संक्षिप्त रूप से स्मरणशक्ति का विकास, ग्रहण के प्रकार; एकाग्रता का महत्त्व, अभाव अभ्यास तथा बाधक तत्त्व; याद रखने के साधन; धारणा आदि पर प्रकाश डाला गया है। पुस्तक को पढ़ने से ज्ञात होता है कि किसी लेख को पुस्तक का आकार दे दिया गया है।

नेफा और लद्दाख के साहसी वीरों की गाथाएं--लेखक---वीरेन्द्रमोहन रतूड़ी, प्रकाशक---उमेश प्रकाशन, ५ नाथ मार्केट, नई सड़क, दिल्ली-६; मूल्य---दो रुपए पचास पैसे; पृष्ठसंख्या ८४।

जैसा शीर्षक से ही स्पष्ट है, पुस्तक में नेफा और लद्दाख के साहसी वीरों की गाथाएँ हैं। इसमें ऐसे ११ वीरों की युद्धकथाएँ रोचक एवं सरल ढंग से लिखी गयी हैं।

'मेजर धनसिंह थापा (परम वीर चक्र)', 'स्क्वेड्रन लीडर वधुवाव (वीर चक्र) और फ्लाइट लेफ्टीनेन्ट नारायण (वीर चक्र)' 'लांसनायक राघवन् (वीर चक्र)', 'ब्रिगेडियर होशियार सिंह,' सिपाही केवल सिंह', 'मेजर शैतान सिंह (परमवीर चक्र)' 'रायफल-मैन बच्ची सिंह', 'हवलदार स्वरूपसिंह (महाबीर चक्र)', 'सिपाही बाजं... राम थापा', 'हवलदार-मेजर सौदागरसिंह', और 'सूबेदार जोगिन्दर सिंह (परमवीर चक्र)' की वीरता की कथाएं भारत के भावी संतानों के लिए पथप्रदर्शक हैं।

इन कथाओं के अन्त में पहिली परिशिष्ट में भारत चीन सम्बन्ध की प्रमुख घटनाएँ तथा तिथियाँ दी गई हैं। दूसरी परिशिष्ट में भारत चीन सीमा को स्पष्ट किया गया है। परिशिष्ट ३ का शीर्षक है--'नेफा और लद्दाख भारत के अभिन्न अंग हैं।'

ब्रज-माधुरी

...षु कवित्व निवेदनम्––

...रिबौ है समुद्र कौ शम्बुक में,
छिति कौ छिगुनी पर धारबो है ;
...बिवौ है मृनाल सों मत्त करी,
जुही फूल सौं सैल बिदारिबो है ;
...निबो है सितारन कौ कविशंकर,
रेतु सों तेल निकारिबौ है ;
कविता समुझाइबौ मूढ़न कों,
सबिता गहि भूमि पै डारिबौ है।

––नाथूराम 'शंकर' शर्मा

...ना झूला––

...वनी तीज सुहावनि कौं सखी !
सूहे दुकूल सबै सुख साधा;
त्यौं 'पदमाकर' देखें बनै,
न बने कहते रस-रंग अगाधा ;
प्रेम के हेम-हिंडोरन में
सरसै बरसै रस-रंग अबाधा;
राधिका के उर झूलत साँवरौ
साँवरे के उर झूलति राधा !

...सी बूंदन के बदरा !

...गन अंगन माहिं अनंग के–
तुंग तरंग उमाहत आवैं;
त्यौं 'पदमाकर' आस हू पास
जवासन के बन दाहत आवैं ;
...मानव तीन के प्रानन में
जू गुमान के गुंबज ढाहत आवैं ;
...बान सी बूंदन के चदरा–
बदरा बिरहीन पे बाहत[१] आवैं !

[१] आक्रमण करते हुए।

गोपी को सीख––

वार[२] ही गो-रस बेंचु री ! आज
तू माय[३] के मूँड़ चढ़ै मत मौंड़ी[४] !
आवत जात ही होइहै साँझ,
बहै जमुना भतरौंड़[५] लौं औंड़ी[६] ;
ऐसे में भेंट भई 'रसखान',
तो होइगी आँख अकाज कनौड़ी ;
साँझहि लौं सिगरे ब्रज में,
बजि है ब्रजराज-सनेह की डौंड़ी !

चबाइयों के अत्याचार का फल––

लहि जीवन-मूरि कौ लाहु अली !
वै भली जुग-चारि लौं जीबौ करैं ;
'द्विजदेव जू' त्यों हरखाइ हिएँ,
बर-बैन-सुधा-मधु पीबौ करैं ;
कछु घुंघट-खोल हरि ओरन
चौथ-ससी-दुति लीबौ करैं ;
हम तौ ब्रज कौ बसिबोई तज्यौ,
अब चाव-चबाइन कीबौ करैं !

हमें नीकी लगी––

हम एक कुराह चलीं तौ चलीं,
हटकौ इन्हे, ये न कुराह चलें !
यह तौ भल आपुनौ सूझती हैं,
प्रन पालिए सोई जो पालें पलें ;
'कवि ठाकुर' प्रीति करी है गुपाल सों,
टेरें कहौं, सुनो ऊँचे गलें ;
हमें नीकी लगी सो करी हमने,
तुम्हे नीकी लगौ न, लगौ तौ भलें !

२ इसीपार, ३ माता, ४ लड़की, ५ गोकुल से कुछ मील नीचे जमुना के किनारे पर बसा हुआ एक गाँव, ६ गहरी।



मनोरंजक संस्मरण

चाणक्य और राक्षस

मुद्राराक्षस नाटक में चाणक्य ने चंद्रगुप्त मौर्य को पाटलीपुत्र के राजसिंहासन पर बैठाने के बाद यह प्रयत्न किया है कि महानन्द का सुयोग्य मंत्री, जिसका विचित्र नाम राक्षस था, चंद्रगुप्त का भी मंत्री होना स्वीकार कर ले। प्रसादजी ने भी चंद्रगुप्त पर एक ऐतिहासिक नाटक लिखा है जो अपने ढंग का अनूठा है और हिन्दी के नाटक साहित्य में बहुत समादृत है। उसमें चाणक्य का चरित्र-चित्रण बहुत उदात्त हुआ है। जब वह प्रकाशित हुआ तो प्रसाद जी ने अपने मित्र और प्रसिद्ध कलाविद् एवम् साहित्यकार राय कृष्णदासजी को भी उसकी एक प्रति भेंट की। राय साहब ने उसे बड़ी रुचि से पढ़ा। प्रसादजी की बैठक कभी-कभी रायसाहब के यहाँ भी होती थी। उस समय रायसाहब गंगाजी के किनारे अपनी विशाल पैतृक कोठी में रहते थे जिसके कमरों और सामने की छत से गंगाजी का बड़ा सुंदर दृश्य दिखायी पड़ता था। रायसाहब ने चंद्रगुप्त नाटक समाप्त ही किया था कि संयोग से प्रसादजी उनसे मिलने पहुँच गये। रायसाहब के दिमाग में उस समय चंद्रगुप्त नाटक घूम रहा था और मालूम होता है कि वे चाणक्य के चरित्र-चित्रण से सबसे अधिक प्रभावित हुए थे। प्रसादजी को देखते ही रायसाहब उनका स्वागत करते हुए बोल उठे—"आइए चाणक्य जी!" प्रसादजी ने बड़े सहज भाव से तुरन्त ही उत्तर दिया—"जब तुम राक्षस बन गये तो मुझे चाणक्य बनना ही पड़ेगा!" रायसाहब तथा सभी उपस्थित सज्जन इस मजेदार उत्तर को सुनकर खिलखिलाकर हँस पड़े।

चुप रहौ ऊधो !

उन दिनों रत्नाकरजी ने अपना उद्धवशतक समाप्त ही किया था, और उन्हें अपनी यह नवीनतम कृति इतनी पसन्द थी कि आगन्तुक साहित्य-प्रेमियों को वे उसे घंटों सुनाया करते थे। काशी में एक बार प्रसादजी, मैथिली-शरणजी गुप्त और राय कृष्णदास किसी काम से कहीं गये थे। वहाँ काफी विलम्ब हो गया था। भोजन का समय भी हो गया था। किन्तु लौटते समय रास्ते में रत्नाकरजी का मकान पड़ गया, और इन तीनों महारथियों ने यह उचित समझा कि रत्नाकरजी के दरवाजे से होकर उनसे बिना मिले न निकल जाना चाहिए। सो वे उनसे मिलने उनकी बैठक में चले गये। रत्नाकरजी इन तीन साहित्यिक महारथियों को एक साथ देखकर गद्‌गद हो गये। साधारण शिष्टाचार के बाद रत्नाकरजी इन महान् साहित्यिकों को उद्धवशतक के रस से सिक्त करने का प्रलोभन न रोक सके और उन्होंने पाण्डुलिपि निकालकर उद्धवशतक के छन्द सुनाने आरंभ किये। दो-चार छन्द तो इन लोगों ने बड़े प्रेम और रुचि से सुने, और दाद भी दी। किंतु 'दाद' से प्रोत्साहित होकर रत्नाकरजी ने एक सिरे से जो उद्धव शतक सुनाना आरंभ किया तो बीसों छन्द सुनाते चले गये। इन महापुरुषों के पेटों में जो चूहे उछल कूद मचा रहे थे वे इतने नीरस थे कि रत्नाकरजी के काव्यरस से संतुष्ट होने वाले न थे, किन्तु संकोच और शिष्टता के कारण ये कुछ कह भी न सकते थे। इसी बीच एक छन्द के बाद रत्नाकरजी साँस लेने के लिए कुछ रुके तो प्रसादजी एकदम बोल उठे—रत्नाकरजी! हमें तो आपका वह छन्द बहुत अच्छा लगा—"चुप रहो ऊधो सूधौ पथ मथुरा कौ गहौ। उसे एक बार फिर सुना दीजिए। इस पर दोनों मित्र हँस पड़े। रत्नाकरजी व्यञ्जना समझ गये और उन्होंने कविता पाठ समाप्त कर दिया। इस प्रकार प्रसादजी की सूझ से इन थके और बुभुक्षित महारथियों की काव्य की मूसलाधार वर्षा से रक्षा हुई।

कवियों की ऊर्म्मिला-विषयक उदासीनता

भुजङ्ग भूषण भट्टाचार्य

कवि स्वभाव ही से उच्छृंखल होते हैं। वे जिस तरफ झुक गये झुक गये। जी में आया तो राई का पर्वत कर दिया; जी में न आया तो हिमालय की तरफ भी आँख उठाकर न देखा। यह उच्छृंखलता या उदासीनता साधारण कवियों में तो देखी ही जाती है, आदिकवि तक इससे नहीं बचे। क्रौंच पक्षी के जोड़े में से एक को निषाद द्वारा वध किया गया देख जिस कवि-शिरोमणि का हृदय दुःख से विदीर्ण हो गया, और जिनके मुख से "मा निषाद" इत्यादि सरस्वती सहसा निकल पड़ी, वही परदुःखकातर मुनि, रामायण निर्माण करते समय, एक नवपरिणीता दुःखिनी वधू को बिलकुल ही भूल गया। विपत्ति-विधुरा होने पर उसके साथ स्वल्पादल्पतरा समवेदना तक उसने न प्रकट की—उसकी खबर तक न ली।

वाल्मीकि-रामायण का पाठ किंवा पारायण करने-वालों को ऊर्म्मिला के दर्शन सबसे पहले जनकपुर में सीता, माण्डवी और श्रुतकीर्ति के साथ होते हैं। सीता की बात तो जाने ही दीजिए। उनके और उनके जीविताधार रामचन्द्र के चरित-चित्रण ही के लिए रामायण की रचना हुई है। माण्डवी और श्रुतकीर्ति के विषय में कोई विशेषता नहीं। क्योंकि आग से भी अधिक सन्ताप पैदा करनेवाला पति-वियोग उनके हुआ ही नहीं। रही बालवियोगिनी बेचारी ऊर्म्मिला, सो उसका चरित सर्वथा गेय और आलेख्य होने पर भी, कवि ने उसके साथ अन्याय किया। मुने! इस देवी की इतनी उपेक्षा क्यों? इस सर्वसुखवंचिता के विषय में इतना पक्षपात-कार्पण्य क्यों? क्या इसलिए कि इसका नाम इतना श्रुति-सुखद, इतना मंजुल, इतना मधुर है, और तापस जनों का शरीर सदैव शीतातप सहने के कारण कठोर और कर्कश होता है—पर, नहीं, आपका काव्य पढ़ने से तो यही जान पड़ता है कि आप कटुता-प्रेमी नहीं। भवतु नाम। हम इस उपेक्षा का एकमात्र कारण भगवती ऊर्म्मिला का भाग्य-दोष ही समझते हैं। हा हतविधिविलसिते! परमकारुणिकेन मुनिना वाल्मीकि-नापि विस्मृतासि।

हाय वाल्मीकि! जनकपुरी में तुम ऊर्म्मिला को सिर्फ एक बार वैवाहिक वधू-वेश में दिखा कर चुप हो बैठे। अयोध्या आने पर ससुराल में उसकी सुध यदि आपको न आई थी तो न सही। पर क्या लक्ष्मण के वन-प्रयाण समय में भी उसके दुःखाश्रुमोचन करना आपको उचित न जँचा? रामचन्द्र के राज्याभिषेक की जब तैया-रियाँ हो रही थीं, जब राजान्तःपुर ही क्यों सारा नगर नन्दन-वन बन रहा था, उस समय नवला ऊर्म्मिला कितनी खुशी मना रही थी सो क्या आपने नहीं देखा? अपने पति के परमाराध्य राम को राज्यसिंहासन पर आसीन देख ऊर्म्मिला को कितना आनन्द होता। इसका अनुमान क्या आपने नहीं किया? हाय! वही ऊर्म्मिला एक घंटे बाद, राम-जानकी के साथ निज पति को १४ वर्ष के लिए वन जाते देख, छिन्नमूल शाखा की तरह राज-सदन की एक एकान्त कोठरी में भूमि पर लोटती हुई क्या आपके नयनगोचर नहीं हुई? फिर भी उसके लिए आपकी "वचने दरिद्रता"। ऊर्म्मिला वैदेही की छोटी बहन थी। सो उसे बहन का भी वियोग सहना पड़ा, बहनोई का भी वियोग सहना पड़ा और प्राणाधार पति का भी वियोग सहना पड़ा। पर इतनी घोर दुःखिनी पर भी आपने दया न दिखाई। चलते समय लक्ष्मण को उसे एक बार आँख भर देख भी न लेने दिया। जिस दिन राम और लक्ष्मण सीता देवी के साथ चलने लगे—जिस दिन उन्होंने अपने पुरत्याग से अयोध्या नगरी को अंधकार में, नगरनिवा-सियों को दुःखोदधि में और पिता को मृत्युमुख में निप-तित किया, उस दिन भी आपको ऊर्म्मिला याद न आई। उसकी क्या दशा थी, वह कहाँ पड़ी थी, सो कुछ भी आपने न सोचा! इतनी उपेक्षा!

लक्ष्मण ने अकृत्रिम भ्रातृस्नेह के कारण बड़े भाई का साथ दिया। उन्होंने राज-पाट छोड़कर अपना शरीर रामचन्द्र के अर्पण किया। यह बहुत बड़ी बात की। पर ऊर्म्मिला ने इससे भी बढ़कर आत्मोत्सर्ग किया। उसने अपनी आत्मा की अपेक्षा भी अधिक प्यारा अपना पति राम-जानकी के लिए दे डाला और यह आत्मसुखोत्सर्ग

उसने तब किया जब उसे ब्याह कर आये हुए कुछ ही समय हुआ था। उसने अपने सांसारिक सुख के सबसे अच्छे अंश से हाथ धो डाला। जो सुख विवाहोत्तर उसे मिलता उसकी बराबरी १४ वर्ष पतिवियोग के बाद का सुख कभी नहीं कर सकता। नवोढत्व प्राप्त होते ही जिस ऊर्म्मिला ने, रामचन्द्र और जानकी के लिए, अपने सुखसर्वस्व पर पानी डाल दिया उसीके लिए अन्तर्दर्शी आदिकवि के शब्दभाण्डार में दरिद्रता!

पतिप्रेम और पतिपूजा की शिक्षा सीतादेवी को जहाँ मिली थी वहीं ऊर्म्मिला को भी मिली थी। सीतादेवी की सम्मति थी कि :—

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते।
पिय बिनु तियहिं तरनि ते ताते॥

ऊर्म्मिला की क्या यह भावना न थी? जरूर थी। दोनों एक ही घर की थीं। ऊर्म्मिला भी पतिपरायणता धर्म को अच्छी तरह जानती थी। पर उसने लक्ष्मण के साथ वन गमन की हठ जान-बूझकर नहीं की। यदि वह भी साथ जाने को हठ कर तैयार होती तो लक्ष्मण को अपने अग्रज राम के साथ उसे ले जाते संकोच होता और ऊर्म्मिला के कारण लक्ष्मण अपने उस आराध्य-युग्म की सेवा भी अच्छी तरह न कर सकते। यही सोचकर ऊर्म्मिला ने सीता का अनुकरण नहीं किया। यह बात उसके चरित्र की बहुत बड़ी महनीयता की बोधक है। वाल्मीकि को ऐसी उच्चाशय रमणी का विस्मरण होते देख किस कवितामर्म्मज्ञ को आन्तरिक वेदना न होगी।

तुलसीदास ने भी ऊर्म्मिला पर अन्याय किया है। आपने इस विषय में आदिकवि का ही अनुकरण किया है। "नानापुराणनिगमागमसम्मत" लेकर जब रामचरित-मानस की रचना करने की घोषणा दी थी, तब यहाँ पर आदि काव्य की ही अपने वचनों का आधार मानने की कोई वैसी जरूरत न थी। आपने भी चलते वक्त लक्ष्मण को ऊर्म्मिला से नहीं मिलने दिया। माता से मिलने के बाद झट कह दिया :—

गये लषण जहँ जानकिनाथा।

आपके इष्टदेव के अनन्य सेवक लषण पर इतनी सख्ती क्यों? अपने कमण्डलु के करुण वारि का एक भी बूंद आपने ऊर्मिला के लिए न रक्खा। सारा का सारा कमण्डलु सीता के समर्पण कर दिया। एक ही चौपाई में ऊर्म्मिला की दशा का वर्णन कर देते। अथवा उसीके मुंह से कुछ कहलाते। पाठक सुन तो लेते कि राम-जानकी के वनवास और अपने पति के वियोग के सम्बन्ध में क्या-क्या भावनायें उसके कोमल हृदय में उत्पन्न हुई थीं। ऊर्म्मिला को जनकपुर से साकेत पहुँचा कर उसे एकदम ही भूल जाना अच्छा नहीं हुआ।

हाँ, भवभूति ने इस विषय में कुछ कृपा की है। राम, लक्ष्मण और जानकी के वन से लौट आने पर भवभूति को बेचारी ऊर्म्मिला एक बार याद आ गई है। चित्र-फलक पर ऊर्म्मिला को देखकर सीता ने लक्ष्मण से पूछा :—"इयमप्यपरा का?" अर्थात लक्ष्मण यह कौन है? इस प्रकार देवर से पूछना कौतुक से खाली नहीं। इसमें सरसता है। लक्ष्मण इस बात को समझ गये। वे कुछ लज्जित होकर मन ही मन कहने लगे। ऊर्म्मिला को सीतादेवी पूछ रही है। उन्होंने सीता के प्रश्न का उत्तर दियें बिना ही ऊर्म्मिला के चित्र पर हाथ रख दिया। उनके हाथ से वह ढक गया। कैसे खेद की बात है कि ऊर्म्मिला का उज्ज्वल चरित-चित्र कवियों के द्वारा भी आज तक इसी तरह ढकता आया।



प्रकाशक : बी० एन० माथुर, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक : पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड 'इलाहाबाद

आचार्य सद्गुरुशरण अवस्थी की साहित्य कृतियाँ

मझली महारानी

आर्य-संस्कृति के उद्धार की चिन्ता करनेवाली महारानी कैकेयी की सूझ-बूझ पर मौलिक प्रकाश डालनेवाला यह नाटक न केवल पठनीय, प्रत्युत अभिनेय भी है। पृष्ठ १३८, दुरंगा आवरण, मूल्य १·७५ नये पैसे।

नाटक और नायक

वैदिक, पौराणिक, ऐतिहासिक और साहित्यिक कथानकों तथा नायकों को युग की दृष्टि से देखने-दिखाने के लिए लेखक ने कुछ नाटकों की रचना की है, जो छः भागों में प्रकाशित किये गये हैं। मूल्य प्रत्येक सजिल्द भाग का १·२५ नये पैसे।

तुलसी के चार दल

गोस्वामी तुलसीदास के रामलला नहछू, बरवै रामायण, पार्वती-मंगल तथा जानकी-मंगल का आलोचनात्मक परिचय तथा अध्ययनपूर्ण टीका। मूल्य प्रथम भाग का ३) तीन रु०; द्वितीय भाग का २·७५ नये पैसे।

विचार-तरंग

इस संग्रह में विद्वान् लेखक के भिन्न-भिन्न समयों पर लिखे ५१ प्रबंध संग्रहीत हैं। इन प्रबंधों का विषय दार्शनिक चिन्तना, काव्य और कल्पना, जीवन संवरण कला, आत्मनिरीक्षण, विचारात्मक भक्ति, व्याख्यात्मक प्रवचन, विभिन्न विचारोत्तेजक विषय, ग्राम्यकला गीता की दार्शनिक व्याख्या आदि हैं। पृष्ठ ३५५, मूल्य ३·५० नये पैसे।

साहित्य-तरंग

साहित्य-समीक्षा-सम्बन्धी यह ग्रंथरत्न साहित्य-प्रेमियों को एक नई दिशा, नई परिपाटी और उत्तम निष्कर्षों का द्योतक है। विचारों और निष्कर्षों के त्रिकालव्यापी शाश्वत तत्त्वों को व्यक्त किया गया है। पृष्ठ ४८० मूल्य केवल ५) पांच रुपये।

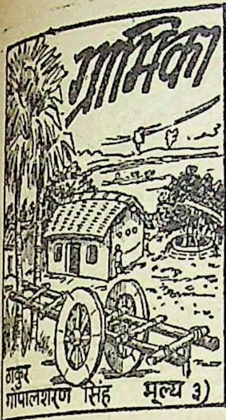
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

हमारी कुछ चुनी हुई पुस्तकें

- विश्वकवि रवीन्द्रनाथ — उमेश-चन्द्र मिश्र — मूल्य ५)
- योगायोग — श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर — मूल्य ४)
- मेरा बचपन — श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर — मूल्य २)
- चार अध्याय — श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर — मूल्य [illegible]
- विश्व-परिचय — श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर — मूल्य १)
- रूस की चिट्ठी — श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर — मूल्य १।।)
- मास्टर साहब — श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर — मूल्य ।।)
- रवि बाबू के कुछ गीत — मूल्य २)
- विषवृक्ष — बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय — (मूल्य ३) — अनुवादक - सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
- कृष्णाकान्त का विल — बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय — (मूल्य २।।) — अनुवादक - सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
- आनन्दमठ — बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय — (मूल्य १।।) — अनुवादक - सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
- कपाल-कुण्डला — बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय — मूल्य [illegible]
- नवीन संन्यासी — प्रभात मुखोपाध्याय — मूल्य ३।।)
- महाराष्ट्र-जीवन-प्रभात — रमेशचन्द्र दत्त — मूल्य २)
- माधवी-कंकण — रमेशचन्द्र दत्त
- राजपूत-जीवन-सन्ध्या — रमेशचन्द्र दत्त — मूल्य २)

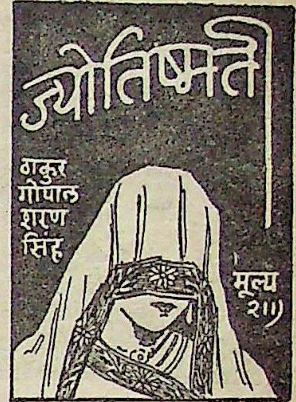
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

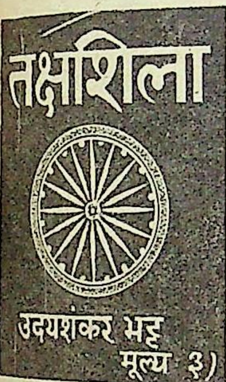
नवीन काव्य-कृतियाँ

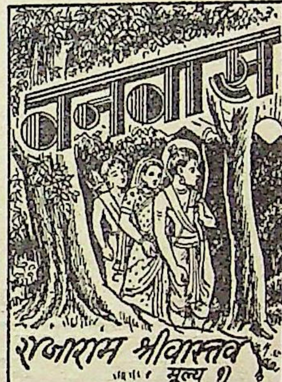


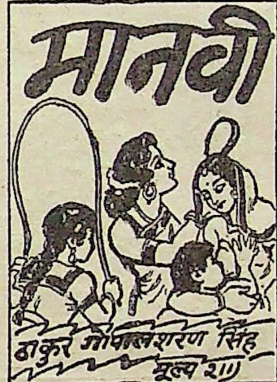








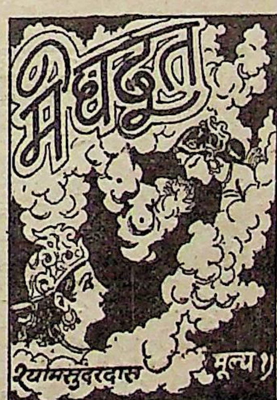


















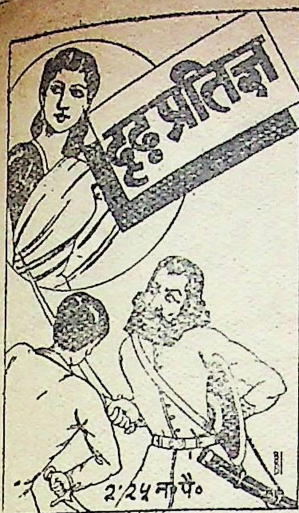




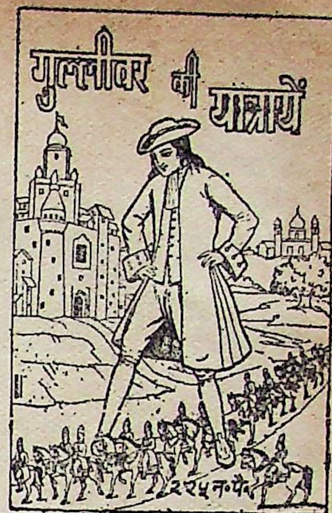
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

किशोर सीरीज़

इंडियन प्रेस पब्लिकेशन्स प्रा. लि. इलाहाबाद

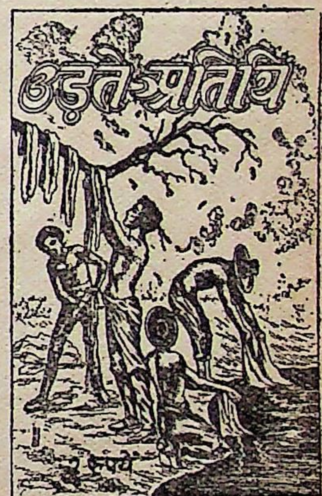


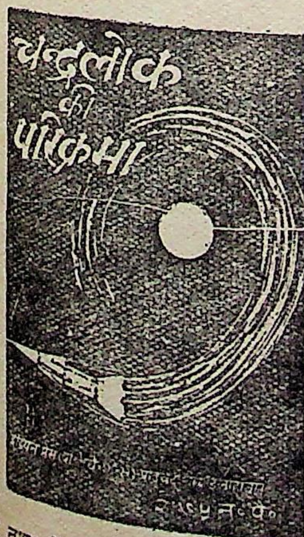








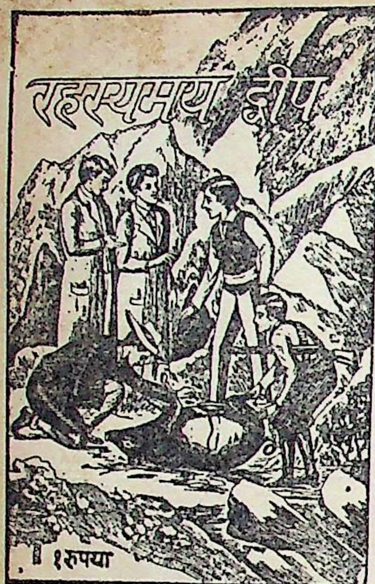


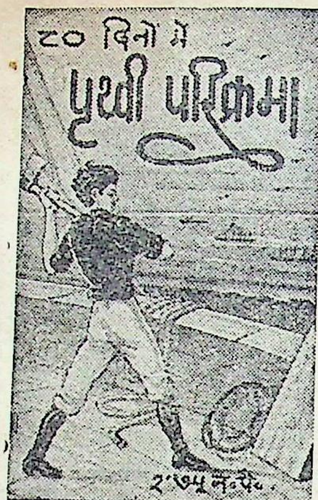




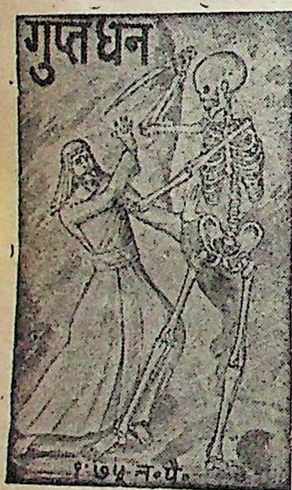


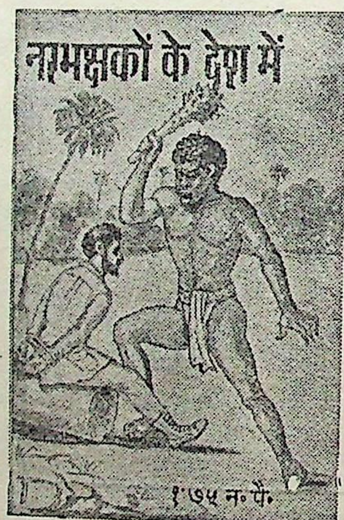
अंग्रेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की अठारह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान संबंधी किशोरोपयोगी उपन्यासों के अनुवाद डा॰ नवलबिहारी मिश्र के तत्त्वावधान में किये गये हैं। पुस्तकें इतनी रोचक हैं कि किशोर इन्हें पढ़कर मनोरंजन ही नहीं अपनी ज्ञानवृद्धि कर सकते हैं।

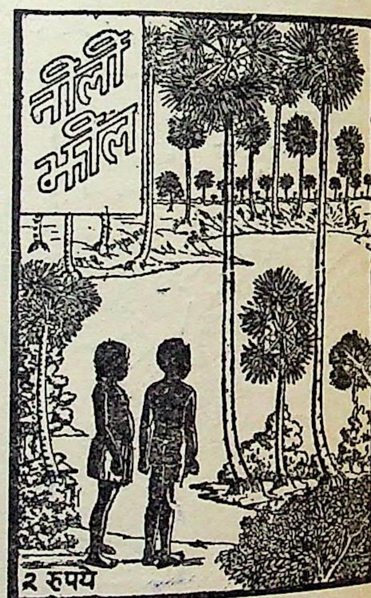


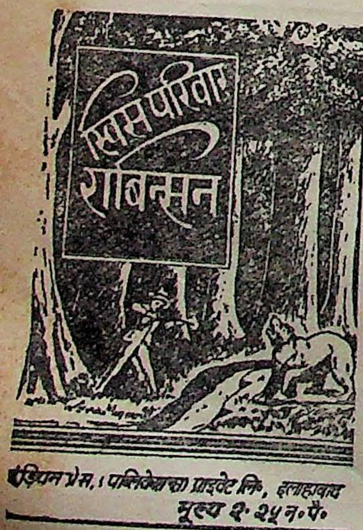




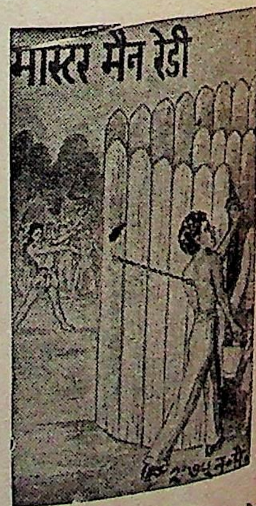












किशोर सीरीज

अंगरेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की अठारह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान संबंधी किशोरोपयोगी उपन्यासों के अनुवाद डा० नवलबिहारी मिश्र के तत्त्वावधान में किये गये हैं। पुस्तकें इतनी रोचक हैं कि किशोर व वयस्क इन्हें पढ़कर मनोरंजन ही नहीं अपनी ज्ञानवृद्धि कर सकते हैं।

12/9/64





सितम्बर १९६४

हमारे ये नवीनतम प्रकाशन

किशोर सीरीज़

अंगरेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की सत्रह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान संबंधी किशोरोपयोगी उपन्यासों के अनुवाद डा० नवलबिहारी मिश्र के तत्त्वावधान में किये गये हैं। पुस्तकें इतनी रोचक हैं कि किशोर तथा वयस्क इन्हें पढ़कर मनोरंजन ही नहीं, अपनी ज्ञानवृद्धि भी कर सकते हैं।

समुद्र-गर्भ की यात्रा—(मूल लेखक जूले वर्न) अनु० श्रीमती जयन्ती देवी। मूल्य १·७५

नर-भक्षकों के देश में—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० कु० शैवालिनी मिश्र, एम० एस्-सी०। मूल्य १·७५

उड़ते अतिथि—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्रीमती विनोदिनी पाण्डेय एम० ए०। मूल्य २)

रहस्यमय द्वीप—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्रीमती जयन्ती देवी। मूल्य १)

द्वीप का रहस्य—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री सन्तकुमार अवस्थी, बी० ए०, एल्-एल० बी०। मूल्य २·२५

भूगर्भ की यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री प्रभातकिशोर मिश्र बी० ए०। मूल्य १·७५

दृढ़प्रतिज्ञ—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री रामअवधेश त्रिपाठी। मूल्य २·२५

गुब्बारे में अफ्रीका यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० कु० शैवालिनी मिश्र एम० एस्-सी०। मूल्य २)

चंद्रलोक की यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री सूर्यकान्त शाह। मूल्य १·७५

चंद्रलोक की परिक्रमा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री केशव एस्० केलकर। मूल्य २·७५

अस्सी दिन में पृथ्वी की परिक्रमा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री रामस्वरूप गुप्त एम० ए०। मूल्य २·७५

गुलीवर की यात्राएँ—(मू० ले० जोन आयन स्विफ्ट) अनु० श्री शिवाकान्त अग्निहोत्री बी० ए०, एल्-एल० बी० दो भागों में। मूल्य २·२५

मास्टर मैन रेडी—(मू० ले० कैप्टेन मैरियट) अनु० कु० कौशल श्रीवास्तव बी० ए०। मूल्य २·७५

नीली झील—(मू० ले० स्टैकपोल) अनु० डा० कुमुदिनी तिवारी एम० बी० बी० एस्०। मूल्य ३)

स्विस परिवार राबिंसन—(मू० ले० रुडाल्फ वाएस) अनु० श्री देवेन्द्रकुमार शुक्ल। मूल्य २·५०

आकाश में युद्ध—(मू० ले० एच्० जी० वेल्स) अनु० श्री सन्तप्रकाश पाण्डे। मूल्य ३)

गुप्तधन—(मूल ले० राइडर हैगार्ड) अनु० श्री जे० एन्० वत्स, एम० ए०। मूल्य २·७५

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद



मान लीजिये आप अगले १२ वर्षों तक हर महीने १०० रु० का एक १२-वर्षीय राष्ट्रीय रक्षा पत्र खरीदते हैं। १२ वर्ष बाद हर महीने एक रक्षा पत्र पक जायेगा और इस तरह हर महीने आपको १७५ रु० मिलते जायेंगे। यह करमुक्त आय आपकी वृद्धावस्था के लिए वरदान सिद्ध हो सकती है क्योंकि यह पेंशन आपको नियमित रूप से मिलती रहेगी।

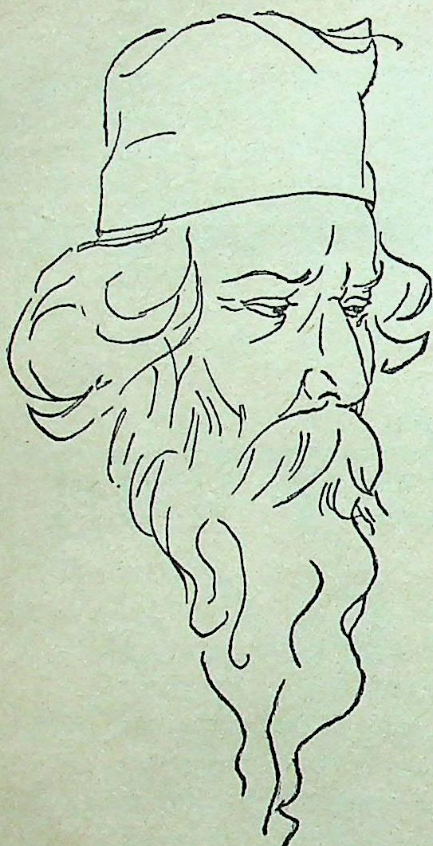
आपके लिए मासिक पेंशन

रक्षा पत्रों के पक जाने पर, अगर आप चाहें तो प्राप्त रकम में से ७५ रु० रखकर १०० रु० की मूल पूंजी फिर राष्ट्रीय रक्षा पत्रों में लगा सकते हैं। इसका परिणाम यह होगा कि रकम लगाने की नई तारीख के १२ वर्ष बाद से आपको या आपके अवलम्बियों को उसी तरह निश्चित आमदनी प्राप्त होती रहेगी। राष्ट्रीय रक्षा पत्रों से आप अपने और अपने आश्रितों के लिए सुरक्षा की सर्वश्रेष्ठ व्यवस्था कर सकते हैं।

राष्ट्रीय रक्षा पत्र खरीदिये

 राष्ट्रीय बचत संगठन

डीए ६४/२१८



'सत्यं, शिवं, सुंदरम्' का आदर्श भले ही पुराना रहा हो, किन्तु आधुनिक भारत को उसका परिचय कराया कवीन्द्र रवीन्द्र ने। इन तीनों का समन्वय रवीन्द्रनाथ की आत्मा है, जो उनकी कविताओं, उनके लेखों, उनके भाषणों में झाँक रही है। अपने विशाल दृष्टिकोण के कारण ही वे मानवतावादी और युग की समस्या के दर्शन करानेवाले युगद्रष्टा थे। कवि की परिभाषा के अनुसार रविबाबू कवि-र्मनीषी परिभूः स्वयंभू थे। आधुनिक भारत में एक ओर तो कबीर, दादू, तुलसीदास की परम्परा की अद्यतन कड़ी थी, तो दूसरी ओर नवीन भारत में कवीन्द्र रवीन्द्र आधुनिकता के पुजारी थे। अतएव उनके साहित्य में भी पूर्व और पश्चिम, नूतन और पुरातन का अद्भुत समन्वय है।

अमर-रवीन्द्र-साहित्य

बच्चों के रवीन्द्रनाथ	२·२५	गीताञ्जली	१·५०
रवि बाबू के कुछ गीत	२·५०	मुकुट	०·५०
विश्वकवि रवीन्द्रनाथ	५·००	विचित्र प्रबन्ध	२·२५
रवीन्द्र की चुनी हुई कहानियाँ	१·५०	प्राचीन साहित्य	१·५०
विश्वपरिचय	२·००	गल्प गुच्छ भाग १	१·२५
मास्टर साहब	०·५०	गल्प गुच्छ भाग २	१·५०
योगायोग	४·००	गल्प गुच्छ भाग ३	१·५०
विचित्र वधू रहस्य	२·००	गल्प गुच्छ भाग ४	१·५०
रूस की चिट्ठी	१·५०	व्यंग कौतुक	१·२५
मेरा बचपन	२·००	हास्य कौतुक	१·२५
आश्चर्य घटना	२·५०	राजर्षि	२·००
चार अध्याय	१·५०	डाकघर	०·७५



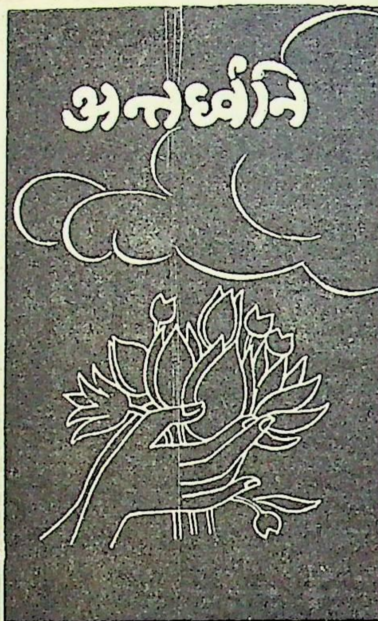


इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग



देवेन्द्रदत्त तिवारी

'रजनीगंधा' हिन्दी काव्योद्यान का नया खिला हुआ गमकता पुष्प है। देवेन्द्रजी का राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने एवं पीड़ित मानवता को आर्थिक शोषण से मुक्त करने का प्रयास 'रंजनीगंधा' के गीतों में सफल हुआ है। सफल गायक का कोमलतम स्वर इन गीतों में गूंज रहा है। प्रस्तुत कृति में भाषा की प्रभविष्णुता, भावों की मौलिकता और कल्पना की सम्पन्नता एक साथ सत्यं शिवं सुंदरं के दर्शन कराती है। साथ ही देश के प्रमुख कलाकार श्री सुधीर खास्तगीर द्वारा प्रस्तुत किया हुआ आवरण-पृष्ठ ऊँची कला का प्रतीक है। हिन्दी काव्योपासक इस कृति को देखते ही आनन्द-विभोर हो उठेंगे। मूल्य २·५०।



देवेन्द्रदत्त तिवारी

कवि के शब्दों में "ज्ञान विज्ञान और बुद्धि के युग में भी जब तक मानव का मन स्नेह-जन्य सुख-दुखों से आन्दोलित होता रहेगा, जब तक उसे दूसरे की पीड़ा, दूसरे के आँसू विकल करते रहेंगे तब तक समाज में कविता को आदर का स्थान प्राप्त रहेगा।"

कवि ने अपनी इस नवीन काव्य-रचना में मानव की कोमलतम अनुभूतियों, मधुतम स्पन्दनों तथा मर्मस्पर्शी भावों की अभिव्यक्ति प्रवाहमय शैली तथा प्रांजल, प्रौढ़ एवं हृदयग्राही भाषा में की है। इन कविताओं के पाठ से जीवन की शाश्वत सुन्दरता तथा अनन्त माधुर्य की गूंज मन में उठती रहती है। कवि ने अन्तस के समुद्र का मंथन कर कविताओं के रूप में मणिरत्नों को साहित्यसेवियों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। कवि हिन्दी काव्योद्यान में ऐसा सुन्दर सुमन प्रस्तुत करने के लिए बधाई का पात्र है। मूल्य २·५० नये पैसे।



प्रस्तुत हो गया निकल गया

भेदभरी बातों को जानने की मनुष्य की अदम्य लालसा संसार भर के देशों में जासूसी कहानियों के रूप में प्रकट होती है। संसार के सब देशों के साहित्य में ऐसी रहस्योद्भाविनी कहानियाँ बहुत तीव्र वेग से प्रकाशित हो रही हैं। लेखक प्रयाग के ख्यातनामा फौजदारी के वकील स्वर्गीय श्री हरिमोहन राय के पुत्र हैं और स्वयं भी न्यायिक अधिकारी हैं। इनकी लिखी जासूसी कहानियाँ हिन्दी जगत् में यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं। यह उनकी लिखी उत्कृष्ट जरूरी कहानियों का द्वितीय संग्रह है जिसमें समय-समय पर पत्रों में प्रकाशित हुई उनकी ३२ जासूसी कहानियाँ संगृहीत हैं।

पृ० सं० ३३६ मूल्य ३·५० नये पैसे

नोट—कृपया अपनी प्रति सुरक्षित कराने के लिए आर्डर शीघ्र भेजिये।

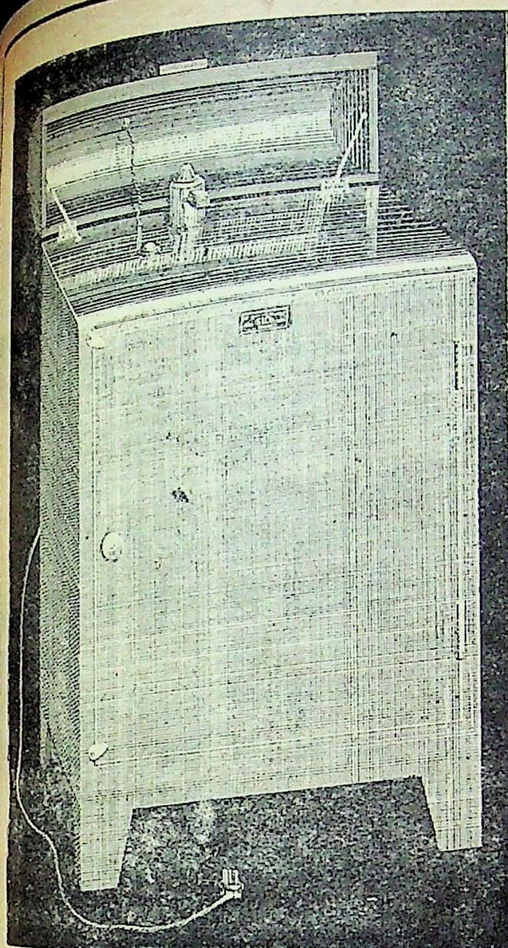
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

ग्राहकों से निवेदन

ग्राहकों से निवेदन है कि पत्र-व्यवहार के समय अपना ग्राहक संख्या, चन्दा भेजने की तिथि अवश्य लिखा करें जिससे हम उनके आदेशों का पालन अविलम्ब कर सकें।

—व्यवस्थापक पत्रिका विभाग

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद



सीको इनक्यूबेटर

साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी के उत्पाद प्रामाणिक हैं और विशेषता (क्वालिटी), कर्मकौशल (वर्कमैनशिप), रूपांकन (डिज़ाइन) और निष्पादन (परफारमेंस) में सर्वोत्कृष्ट हैं। हमारे निर्मित अन्य उपकरणिकाओं और साधनों (एप्लाऐंसेज़) के लिए कृपया हमें लिखें।

दी साइरिटफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी लिमिटेड,

इलाहाबाद, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, नई देहली

देवनागरी लिपि में

उर्दू के चार ग्रन्थ-रत्न

महाकवि 'ग़ालिब' की ग़ज़लें—टीकाकार—रामानुजलाल श्रीवास्तव। मूल्य २ रु० २५ नये पैसे। शब्दार्थ, भावार्थ, प्रासंगिक कथाएँ तथा यथास्थान हिन्दी काव्य से तुलनात्मक विवेचनाएँ।

मौलाना हाली और उनका काव्य—टीकाकार—ज्वालादत्त शर्मा। मूल्य १ रु० ५० नये पैसे। शब्दार्थ, भावार्थ तथा टीका। हाली मिर्जा 'ग़ालिब' के पट्ट-शिष्य थे। इन्होंने उर्दू काव्य को नया मोड़ दिया था।

सुबह-वतन—पं० ब्रजनारायण 'चकबस्त' की अमर राष्ट्रीय कविताएँ। सम्पादक—ब्रजकृष्ण गुर्टू। मूल्य २ रु० ७५ नये पैसे। शब्दार्थ सहित यह ग्रन्थ राष्ट्रीय कविताओं का अनुपम संग्रह है।

महाकवि अकबर—संग्रहकर्ता—रघुराजकिशोर 'वतन'। मूल्य १ रु० २५ नये पैसे। शब्दार्थ तथा टीका सहित। 'अकबर' इलाहाबादी उर्दू-काव्य में हास्यरस के जनक हैं। चारों पुस्तकें अपनी-अपनी शैली में अनूठी हैं।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश

हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वानों की सहायता से सम्पादित और श्री विश्वेश्वरनारायण श्रीवास्तव, एम० ए०, एल्-एल० बी०, साहित्यरत्न तथा पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त', द्वारा संकलित ।

प्राचीन और अर्वाचीन हिन्दी-पाठकों के लिए ऐसे कोश की बड़ी आवश्यकता थी, जिसमें उन शब्दों का संग्रह हो, जो भारतवर्ष के विभिन्न हिन्दीभाषी प्रान्तों में व्यापक रूप से प्रचलित हैं। इस कोश को तैयार करते समय इस तथ्य का पूर्णतः ध्यान रक्खा गया है और अर्थ-विचार करते समय जीवित भाषा के अनेक शब्दों के जो नये अर्थ समय-समय पर प्रयुक्त होने लगते हैं, उनका समावेश भी कर दिया गया है। उदाहरणार्थ, संस्कृत का 'मत' शब्द सभी हिन्दी कोशों में मिलेगा; किन्तु उसका समानार्थी 'वोट' इने-गिने कोशों में ही दिया गया है। इस प्रकार के हिन्दी शब्दों के अँगरेजी समानार्थी शब्दों का बाहुल्य इस कोश में है।

इस कोश में प्रान्तीय भाषाओं के प्रमुख शब्दों का समावेश यथा-स्थान किया गया है और प्रचलित मुहाविरे भी दिये गए हैं। कहावतों और मुहाविरों से बने यौगिक पद भी इसमें संकलित किए गए हैं। इस कोश के अन्त में भारतीय संविधान-परिषद्-द्वारा स्वीकृत हिन्दी और अँगरेजी शब्दों के पर्याय की दो शब्दावलियाँ भी दे दी गई हैं। इससे इस कोश की उपयोगिता कई गुनी बढ़ गई है।

किसी भी शब्द का मानक रूप समझ लेने पर, व्याकरण की दृष्टि से, यह जान लेना भी आवश्यक हो जाता है कि वह कौन-सा शब्दभेद है। इसलिए संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया-विशेषण, क्रिया अथवा अव्यय का निर्देश भी इस कोश में प्रत्येक शब्द के साथ यथास्थान कर दिया गया है। इसी तरह प्रत्येक शब्द के साथ लिंगभेद देकर, कोश का उपयोग करनेवालों की सुविधा का पूरा-पूरा ध्यान रक्खा गया है।

इस कोश का कागज, मुद्रण, आवरण, जिल्द सभी स्थायी और आकर्षक हैं। इसकी शब्द-संख्या लगभग पचास हजार, पृष्ठ-संख्या लगभग १६०० और इसका

मूल्य १४) चौदह रुपए है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

...शित हो गया

अदृश्य शत्रु

प्रकाशित हो गया

डा० नवलबिहारी मिश्र एम० बी० बी० एस०

यह एक अद्भुत वैज्ञानिक उपन्यास है। तेहरान विश्वविद्यालय से दो विचित्र आकार की बसों ने ५० ...लड़कियों को एक दिन चुपके से भगा लिया। भारत में नन्दा देवी चोटी के नीचे हिममानव सरीखी एक लाश ...ई पड़ी। लाश की पोशाक की जेब में सुहागा रक्खा मिला। भारत और चीन में लोहे के पुल और रेल ...ड़ियों को मुर्चे की तरह धूल बन जाते देखा गया। एक घायल आदमी भी भारत में पाया गया जिसके पास ...ा मिला। पहले की लाश की गर्दन में त्वचा के नीचे दो वाल्व पाये गये। लाश पर पहरा देने वाले सिपाही ...कर दिये गये। ये उड़ती हुई मोटरों की विचित्र करामातें थीं। वे पकड़ी नहीं जाती थीं। रडार भी उनका ...पता नहीं लगा पाता था। बाहरी ग्रह से धरती पर सुहागे के संग्रह के लिए हमला हो रहा था। आक्रामक ...अदृश्य रहने की शक्ति रखता था। वह भू-वासी आदमियों के गले में वाल्व की कलम लगाकर उनकी ...भ्रंग कर अपने काम करवाता था। संसार की सभी पहाड़ी चोटियों पर उसके अड्डे थे। संसार भर के राष्ट्रों ...त्रु का सामना करने के उपायों पर विचार प्रारम्भ किया। अंत में बृहस्पति ग्रह के ये अदृश्य शत्रु किसी ...पृथ्वी पर से भाग गये। इसी तरह की सनसनीदार घटनाओं से पूर्ण यह वैज्ञानिक उपन्यास सब का ...रंजन कर सकता है। पुस्तक में कौतूहलवर्धक चित्र भी दिये गये हैं। पृ० सं० ८३, मूल्य १) रुपया

अधूरा आविष्कार

डा० नवलबिहारी मिश्र एम० बी० बी० एस०

इस संग्रह में डाक्टर मिश्र की पन्द्रह वैज्ञानिक कहानियाँ हैं। प्रत्येक कहानी क्या कला की दृष्टि से और ...कौतूहल बढ़ाने के दृष्टिकोण से अनुपम है। एक बार आरम्भ कर देने से बिना समाप्त किये पाठक का ...नहीं मानता। वर्तमान युग में जो वैज्ञानिक आविष्कार हुए हैं उनकी विलक्षणता कहानियों में प्रकट है। ...सौ से अधिक पृष्ठ हैं। कलापूर्ण रंगीन आवरण है। मूल्य ४·५० पैसे।

श्रीभगवत्तत्त्व

श्री स्वामी हरिहरानन्दजी सरस्वती (करपात्री)

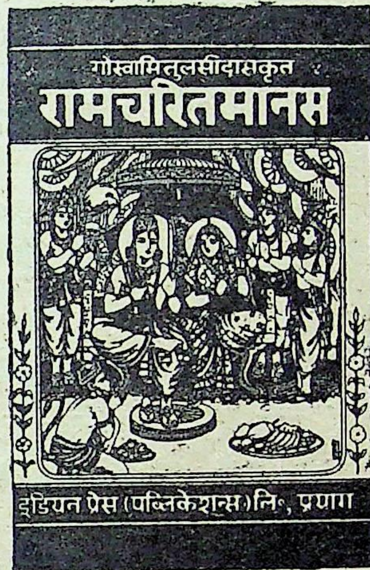
इस ग्रन्थ में श्री स्वामी करपात्रीजी ने वेदान्तरससार, निर्गुण या सगुण, श्रीकृष्ण जन्म ...र बालक्रीड़ा, व्रजभूमि, श्रीरासलीला रहस्य, भगवान् का मंगलमय-स्वरूप, श्रीरामभद्र का ध्यान ...ाति माहात्म्य, आदि शीर्षकों के अन्तर्गत धर्म के गूढ़ तत्त्वों की व्याख्या करके जनता का अमूल्य ...कार किया है। इस ग्रन्थ का स्वाध्याय करने से धर्म का तत्त्व समझ में आ जाता है। अच्छे पुष्ट ...गज पर छपी ७०० से अधिक पृष्ठों की इस कल्याणकारी पुस्तक का मूल्य केवल ३) है जो ...न्थ के आकार को देखते हुए कुछ भी नहीं है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

...ह मूल पाठ अच्छे कागज पर ...छापा गया है। कथा भाग में ...ए देवताओं और ऋषि-मुनियों ...का परिचय अन्त में संक्षेप ...सजिल्द प्रति का मूल्य ३)।



टीकाकार—रामेश्वर भट्ट
यह संस्करण बहुत ही उपयोगी, मनोहर और सस्ता है। टीका बड़े काम की है। दुरंगे-तिरंगे चित्रों की अधिकता है। सजिल्द प्रति का मूल्य ६)।



इस रामायण का पाठ गुसाईंजी की पोथी से शोधा गया है। सत्तर पृष्ठों की भूमिका सहित बड़ी साँची के ११०० से अधिक पृष्ठों के सचित्र सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य केवल १२) बारह रुपये।



...डियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लि०, प्रयाग द्वारा प्रकाशित रामायण साहित्य

अयोध्या काण्ड
(सटीक)

...समें भरतजी के चरित का वर्णन ...विस्तार से है। रामवनगमन, ...प्रसंग आदि सुन्दर कथानक हैं ...रचना तो अनुपम है ही। ...३·५० पैसे।



महर्षि वाल्मीकि का रामायण हिन्दू-संस्कृति का इतिहास है। इस ग्रंथ का अनुवाद सभी भाषाओं में हुआ है। सरल भाषा में किये गये हिन्दी अनुवाद का मूल्य ६·५० पैसे प्रति भाग है।

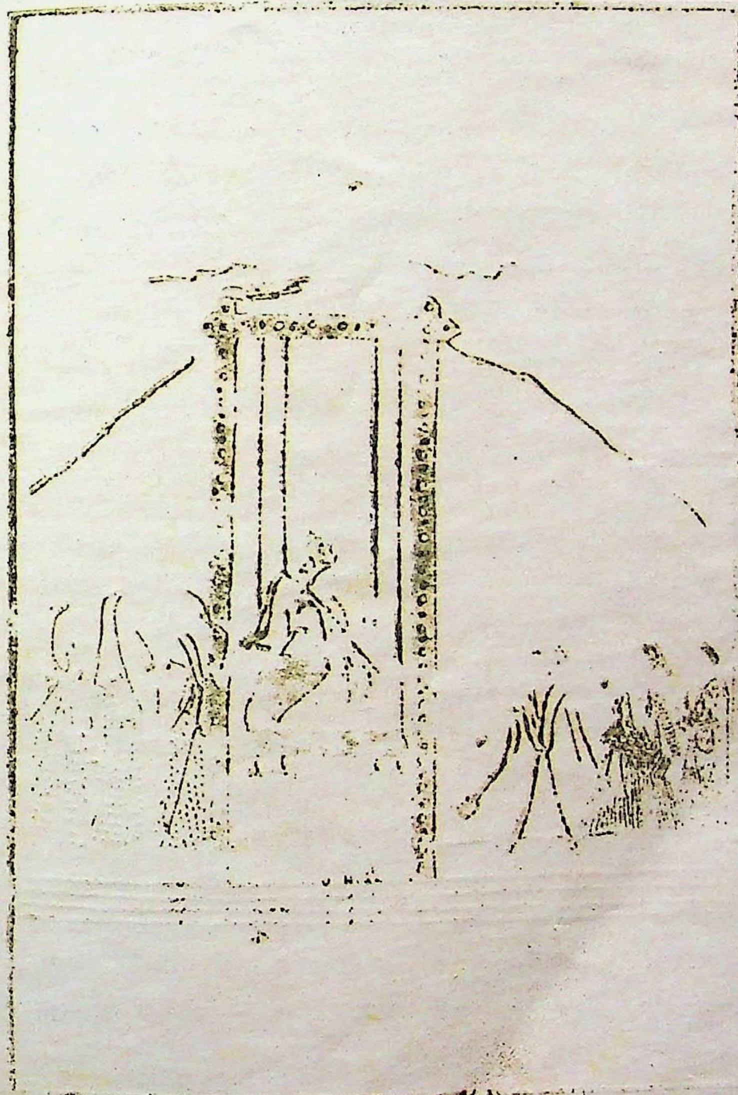
बाल-रामायण

...बालक-बालिकाओं के पढ़ने ...रामायण के सातों काण्डों की ...भाषा में कथा। मूल्य १)



इसके टीकाकार श्रीयुत सत्यनारायण पाण्डेय हैं। कुंडलिया छंदों में लिखित गोस्वामी तुलसीदास-कृत रामायण, सुन्दर टीका सहित। मूल्य ४)।

विषय-सूची





राग हिंडोला

[राजस्थान पुरातत्त्व विभाग के सौजन्य से



सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—**शीला शर्मा**

वर्ष ६५ | पूर्ण संख्या ७७७ } इलाहाबाद : सितम्बर १९६४ : भाद्रपद २०२१ वि० { खण्ड २ | संख्या ३

सम्पादकीय

राजस्थान की मर्दानगी—कहते हैं कि महाराणा प्रताप का आदर्श वाक्य था : "जो हठ राखे धर्म की, तेहि राखें करतार"। यदि धर्म का विस्तृत और व्यापक अर्थ किया जाय तो देशभक्ति, स्वतंत्रता आदि सभी ऐसी चीजें जो मनुष्य को अपनी इच्छानुसार शुभ कार्य करने की स्वतंत्रता देती हैं, धर्म का अंग हैं। भाषा तो और भी अधिक धर्म का अंग है। मुसलमान 'अरबी' को पवित्र या धार्मिक भाषा मानते हैं। उर्दू भाषा उनकी पवित्र अरबी लिपि में लिखी जाती है, इसलिए वे वह लिपि छोड़ने को तैयार नहीं हैं। वल्लभ सम्प्रदाय के वैष्णवों में ब्रजभाषा पवित्र भाषा मानी जाती है। साधुओं की 'सधुक्कड़ी' या बंगाल की 'ब्रजबुलि' इसी प्रकार की पवित्र भाषाएँ हैं। हमारे लिए हिन्दी पवित्र भाषा है। वह हमारी मातृभाषा है, राष्ट्रभाषा है और हम उसमें तुलसीदास की रामायण और सूरदास के पद धार्मिक भावना से पढ़ते हैं। यदि हम तुलसीदास की रामायण का अँगरेजी अनुवाद पढ़ें तो क्या उससे हमें वह आध्यात्मिक आह्लाद प्राप्त होगा जो मूल पुस्तक पढ़ने से होता है? यह स्पष्ट है कि भाषा भी हमारे उस जीवन का एक विशेष अंग है जिसे हम धर्म या कर्त्तव्य समझते हैं। इसीलिए राजस्थान सरकार ने हिन्दी-विरोधी विधेयक वापस लेकर महाराणा प्रताप के आदर्श वाक्य के अनुसार 'धर्म की हठ' रखी है।

हम राजस्थान सरकार के इस साहसिक और जनतंत्रीय कार्य के लिए हार्दिक बधाई देते हैं। यह विधेयक केन्द्रीय सरकार के दबाव से लाया गया। इस परिस्थिति में मुख्य मंत्री श्री सुखाड़ियाजी उसे विधानसभा में लाने को विवश थे। किन्तु सौभाग्य से राजस्थान के कांग्रेस विधायकों और मंत्रियों में कुछ ऐसे प्रभावशाली लोग थे जिन्होंने दल में उसका कड़ा विरोध किया। विपक्ष के विधायक तो उसके विरोधी थे ही। इसके अतिरिक्त राजस्थान के साहित्यकारों और हिन्दी-प्रेमियों ने उसके विरोध में जयपुर में एक वृहद् सम्मेलन किया। श्री सुखा-

ड़ियाजी लोकमत और जनता की भावना को पहिचानते और उसका आदर करते हैं। इसमें शिक्षा-मंत्री श्री हरिभाऊ उपाध्याय ने विशेष प्रयत्न किया तथा गृहमंत्री श्री माथुर ने भी विशेष रुचि ली। राजस्थान के राज्यपाल डा० सम्पूर्णानन्दजी का मार्गदर्शन सरकार को बराबर उपलब्ध रहा। जनता, साहित्यकारों, मंत्रियों आदि ने इस विषय में अपनी सम्मति स्पष्ट शब्दों में दे दी थी। श्री सुखाड़ियाजी "झूठी प्रतिष्ठा" (फाल्स प्रेस्टिज) में विश्वास नहीं करते। वे जानते हैं कि सरकार को जनमत की भावना को ठेस पहुँचाने का कोई अधिकार नहीं है। किन्तु एक बार कोई कदम उठा कर उसकी गलती समझकर उसे वापस ले लेने के लिए साहस और मर्दानगी की आवश्यकता है। हमें यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि राजस्थान की सरकार अपने प्रदेश की गौरवपूर्ण परम्पराओं का अब भी पालन कर रही है। इसके लिए उसकी जितनी प्रशंसा की जाय, वह कम है। उसने प्रमाणित कर दिया कि अभी "मही" 'वीर-विहीन' नहीं हुई। राजस्थान का ऐतिहासिक निर्णय हिन्दी के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा। धन्य राजस्थान! धन्य राजस्थान की मर्दानगी!

और उत्तर प्रदेश! जब हिंदी-जनता-रूपी मयूर ने अपने रंगीन पंख फैलाये "मनु ससि सेखर की अकस किय सेखर सत चंद"—और उनकी दिव्य सौन्दर्य शोभा को देखा तो वह आनंद-विभोर होकर नाच उठा। किन्तु उसी समय उसकी निगाह अपने पैरों (आधाररूपी उत्तर प्रदेश) पर गयी। उनकी कुरूपता देखकर वह चीख पड़ा। सहसा हमें यह पंक्तियाँ याद आ गयीं:

एक वह हैं जो हर इक बात बना लेते हैं।
एक हम हैं कि सूरत बिगाड़ ली जिसने।

कई महीने पहिले जब यह समाचार आया था कि केंद्रीय सरकार ने राज्य सरकारों को ऐसा विधेयक पारित करने की सलाह दी है जिससे २६ जनवरी, १९६५ के बाद भी विधानसभाओं में अंग्रेजी का प्रयोग हो सके, तभी हिंदी-प्रेमी सजग हो गये थे। उनके कुछ प्रतिनिधि उसी समय श्री चन्द्रभानुजी गुप्त से मिले थे, और गुप्तजी ने उन्हें यह आश्वासन दिया था कि वे ऐसे किसी विधेयक को विधानसभा में प्रस्तुत न करेंगे। किन्तु उनके बाद श्रीमती सुचेता कृपलानी उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री हो गयीं। हिंदी-भाषी क्षेत्र न तो कभी प्रान्तीयतावादी रहा, और न संकुचित विचारों का पोषक ही। इसलिए उसने "भाषावार राज्यों" के युग में, धारा के विरुद्ध चलने का प्रयत्न किया और एक अहिंदी-भाषी को अपने हिंदी-भाषी राज्य का मुख्यमंत्री बनाया और यह आशा की कि हिंदी के हित उसके हाथ में सुरक्षित रहेंगे। उसे यह भी आशा थी कि उत्तर प्रदेश के अनेक कांग्रेसी नेता, मंत्री और विधायक जो हिंदी-प्रेमी होने का दावा करते हैं, हिंदी के हित में सचेत और सावधान रहेंगे। किन्तु 'जो कि देखा ख्वाब था, और जो सुना अफसाना था'। एक दिन सहसा, बिना किसी पूर्व सूचना के, उत्तर प्रदेश सरकार ने विवादग्रस्त भाषा-विधेयक विधानसभा में उपस्थित कर दिया। मानो विधानसभा पर अनभ्र वज्रपात हुआ। विधानसभा स्तंभित रह गयी, और जो कुछ हुआ वह जग-जाहिर है। न ऐसा दृश्य विधानसभा में कभी उपस्थित हुआ था और न एक साथ प्रायः संपूर्ण विरोधी दल सदन से निकाला ही गया था। उस शोर-गुल और हंगामे के बीच, जिसमें एक को दूसरे की बात नहीं सुनायी पड़ती थी, डिप्टी स्पीकर ने उस विधेयक को स्वीकृत घोषित कर दिया! हमने सुना था कि प्राचीन युग में यदि कोई शक्तिशाली व्यक्ति अपने लड़के का विवाह किसी ऐसी लड़की से करना चाहता जिसका पिता उस विवाह के लिए राजी न होता, तो वह शक्तिशाली व्यक्ति किसी दिन, एकाएक, सौ-दो सौ लठैतों को लेकर चढ़ जाता और लड़की को घर से निकाल ले आता। जब तक कन्या पक्षवाले सँभलें-सँभलें तब तक किराये के पंडितों द्वारा यह घोषणा कर दी जाती कि 'भाँवरें पड़ गयीं;' और कन्या पक्षवाले चुप होकर बैठ जाते थे। ऐसे विवाहों को 'आसुरी विवाह' कहते थे। उत्तर प्रदेश सरकार ने कुछ ऐसे ही उपायों से यह विधेयक 'आसुरी' पारित किया है।

उत्तर प्रदेश में इस भाषा-विधेयक ने गंभीर समस्या धारण कर ली है। जनता इसे बिल्कुल नहीं चाहती। श्रीमती सुचेता कृपलानी इसे अधिनियम का रूप देने पर तुली हुई हैं। जनता अधिकाधिक उत्तेजित होती जा रही है और हिंदी साहित्यकारों ने एक स्वर से इसका विरोध किया है। हमारे मित्र प्रसिद्ध उपन्यासकार, श्री अमृतलाल नागर ने तो यह कहा है कि यदि सरकार ने इसे

न लिया तो मैं आमरण अनशन करूँगा। अभी विधान-परिषद् में जाना है। यद्यपि वहाँ भी कांग्रेस का ही बहुमत है, तथापि वर्तमान क्षुब्ध वातावरण को देखते हुए यह कहना कठिन है कि परिणाम क्या होगा।

यदि सरकार ने इस विधेयक को उपस्थित करने की पूर्व-सूचना दी होती तो हमें भी अपने विचार प्रकट करने का अवसर मिलता। अब इस अवस्था में उसपर कोई राय देना बेकार है, क्योंकि सरकार अपने पशु-बहुमत (ब्रूट मेजॉरिटी) के बल पर उसे स्वीकार कराने को कृतसंकल्प मालूम होती है। दूसरी ओर क्षुब्ध और उत्तेजित जनमत है। किंतु कांग्रेस को दो-तीन वर्षों में ही जनता के पास वोट की भिक्षा माँगने को जाना पड़ेगा। अतएव संभव है कि वह पशु-बहुमत से इस समय सरल विजय प्राप्त करके भविष्य को खतरे में न डाले। देखना है कि इस विधेयक का ऊँट किस करवट बैठता है। अंतिम निर्णय हो जाने पर, हम इसपर अपने विचार प्रकट करेंगे।

हम एक बात अवश्य कहना चाहेंगे। अभी तक हिंदी आन्दोलन का नेतृत्व कांग्रेसियों के एकाधिकार में होता आया है। आज भी उसके शीर्षस्थ नेता सेठ गोविंददास, श्री दिनकर, श्री सुधांशु, श्री हरिभाऊ उपाध्याय आदि कांग्रेसी ही हैं। किन्तु क्रमशः तीन बातें स्पष्ट होती जा रही हैं—पहली तो यह कि यदि डा० संपूर्णानन्द आज वहाँ मुख्यमंत्री होते तो यह विधेयक उत्तर प्रदेश विधान-सभा में कदापि न आता। दूसरी यह कि हिंदी-निष्ठ कांग्रेसी नेताओं का उन उच्च कांग्रेसी नेताओं पर प्रभाव नहीं रह गया जो कांग्रेस की उच्च नीति का निर्धारण करते हैं, और तीसरे यह कि उत्तर प्रदेश के कांग्रेसी मंत्रियों और विधायकों में एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं निकला जो हिंदी के हितों के लिए जागरूक हो और जिसने इस क्षुब्ध वातावरण को शांत करने का कोई प्रयत्न किया हो। वे अब हिंदी-निरपेक्ष होते जा रहे हैं। कम से कम उत्तर प्रदेश के कांग्रेस जन की तो दशा यही मालूम होती है। इस विषय पर हमसे एक वरिष्ठ कांग्रेस नेता से बात हुई, और वे इस विधेयक के औचित्य को समझाने के बजाय हमें अपनी और अपने दो-चार कांग्रेसी मित्रों की हिंदी-निष्ठा और पुरानी सेवाओं की बात करने लगे। हमने उत्तर में उनसे केवल यही कहा कि आपने १० या २० वर्ष पहिले हिंदी के हित में जो कुछ किया, उससे आपकी आज की हिंदी-विरोधी कार्यवाही नहीं धुल सकेगी। हमें हितैषीजी की ये पंक्तियाँ स्मरण हो आयीं :

> **अब तो विकट विरक्ति हुए हो,**
> **थे अनुरक्ति हृदय की, तब थे!**
> **होकर उपल बरसते हो अब,**
> **द्रवित तरल जब जल थे, तब थे!**
> **अब तो हो रवि-रौद्र उषा की**
> **जब मुस्कान मधुर थे, तब थे!**
> **अब तरु शुष्क निराशा के हो,**
> **आशा के अंकुर थे, तब थे।**

भारतीय अमरीकन दूतावास में हिन्दी—हम अपने पाठकों को बतला चुके हैं कि हमारी "फारेन सर्विस" (विदेश मंत्रालय की सेवा के अधिकारी और अधिकारी वर्ग) कितने "फारेन" हैं। भारत की राज्यभाषा, संविधान के अनुसार, हिन्दी है। किन्तु हमारे 'फारेन सर्विस' के लोग हिन्दी की कौन कहे, देवनागरी लिपि तक नहीं जानते। भाषा के मामले में ब्रिटिश फारेन सर्विस और इंडियन फारेन सर्विस में कोई अन्तर नहीं है। जैसे नया मुसलमान ज्यादा प्याज खाता है वैसे ही फारेन सर्विस के ये 'नये अँगरेज' कभी-कभी तो अँगरेजी का ऐसे अवसरों पर उपयोग करते हैं कि वह हास्यास्पद मालूम पड़ता है। किन्तु भारत सरकार अँगरेजी की इतनी भक्त है कि उसने संविधानसम्मत राजभाषा होने पर भी हिन्दी को अपनी 'फारेन सर्विस' में वही स्थान दे रखा है जो अँगरेजों के समय में था। हमारे कुछ मित्रों की तो धारणा यह है कि हिन्दी जानना वहाँ 'अयोग्यता' (डिस्क्वालिफिकेशन) समझा जाता है।

हम अपनी राजभाषा का आदर नहीं करते। अपने राजदूतालयों में ऐसे लोग भेजते हैं जो हिन्दी या देवनागरी लिपि नहीं जानते। हम स्वयं अपने संविधान और अपनी राजभाषा की अवमानना करते हैं। किन्तु दूसरे देश हमारी राजभाषा का कितना सम्मान करते हैं, इसका अनुमान इस निम्नांकित संवाद से कर सकते हैं :

श्री सुरेशकुमार (गुरुकुल कांगड़ी) ने अपने पत्र में हमें यह समाचार दिया है :

"जुलाई, १९६४ की 'सरस्वती' की सम्पादकीय चर्चा में सैनफ्रांसिस्को के भारतीय सहायक दूतावास के महाप्रभु

के विषय में पढ़कर मैं भी अपनी जानकारी आपके पास भेजने के लिए प्रेरित हुआ हूँ।

भारतीय विदेशी सेवा के अफसरों के देवनागरी, हिन्दी की बात तो फिर भी कुछ दूर रह जाती है, के अज्ञान पर भारत सरकार के रुख को मेरी निम्नलिखित सूचना के परिवेश में रखकर देखिये :

मेरे एक मित्र हैं जो भारत स्थित अमरीकी दूतावास के सूचना विभाग में अच्छे ऊँचे पद पर काम करते हैं। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने बताया कि अमरीकी सरकार की नयी नीति के अनुसार अब से भारत स्थित अमरीकी दूतावास के पचास प्रतिशत अमरीकी अधिकारी हिन्दी जानने वाले होंगे। अगले दौर में यह प्रतिशत बढ़कर पचहत्तर हो जायेगा और अन्त में नब्बे। बहुत ऊँचे ओहदों के दस प्रतिशत अफसरों पर यह अनिवार्यतः लागू नहीं होगा क्योंकि उनकी सेवाओं का उपयोग अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर किया जाता है।"

अर्थात् भारतीय सरकार से हिन्दी में पत्राचार आदि करने के लिए अमरीकन सरकार अपने भारतीय दूतावास में हिन्दी जाननेवाले कर्मचारी रख रही है। यह समझकर कि भारत की राजभाषा हिन्दी है, वह भारत में ऐसे लोगों को भेजेगी जो हिन्दी जानते हों। किन्तु क्या भारत सरकार का विदेश मंत्रालय अमरीकी दूतावास से पत्राचार हिन्दी में करेगा? जिस सरकार के मंत्रीगण भी पद की शपथ अँगरेजी में लेते हैं, शपथ की पुस्तक पर हस्ताक्षर भी अँगरेजी में करते हैं, उस देश के विदेश मंत्रालय (जिसमें भारत के अँगरेजीपरस्तों में से छाँटकर घोर अँगरेजीपरस्त लिये जाते हैं) से हिन्दी में काम करने की आशा दुराशा मात्र है। देखना है कि अमरीका के इस कदम से उसे कुछ शर्म आती है या नहीं।

दिल्ली में हिन्दीभाषी राज्यों का हिन्दी-सम्मेलन—गत मास दिल्ली में हिन्दीभाषी राज्यों के प्रतिनिधि इस बात पर विचार करने के लिए एकत्र हुए थे कि हिन्दी-भाषी प्रान्तों में राजकाज में हिन्दी को किस प्रकार पूर्णरूप से प्रतिष्ठित किया जाय। इस सम्मेलन की अध्यक्षता बिहार विधानसभा के अध्यक्ष और प्रसिद्ध हिन्दी विद्वान् श्री लक्ष्मीनारायणजी 'सुधांशु' [illegible]। सभी हिन्दीभाषी राज्यों ने अधिनियम बनाकर हिन्दी को अपनी राजभाषा बना दिया, किन्तु इनमें हिन्दी चली नहीं। उसका कारण बतलाते हुए श्री सुधांशुजी कहते हैं :

"एकाएक हिन्दी के प्रयोग से राजकाज में असुविधा होती, इस कारण इन चारों हिन्दीभाषी राज्यों ने २६ जनवरी, १९६५ तक अँगरेजी में भी काम करने की छूट दे दी। साथ ही इस अवधि तक हिन्दी को पूर्ण सक्षम बनाने का निर्णय भी किया। यदि निष्ठापूर्वक हिन्दी में काम किया जाता, तो निश्चय ही इस अवधि तक इन चारों हिन्दीभाषी राज्यों के सरकारी कार्यों का हिन्दीकरण हो गया होता, किन्तु दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं हो सका। चतुर राजकर्मचारियों ने हमारी राजभाषा समस्या तथा उसमें अँगरेजी के लिए छूट का अनुचित लाभ उठाया। इन चारों हिन्दीभाषी राज्यों के मंत्रियों ने भी राजभाषा हिन्दी के प्रति अपने कर्तव्य-पालन पर यथेष्ट ध्यान नहीं दिया। मंत्रियों का मुख्य कर्तव्य है संविधान के अनुसार राज्य की नीतियों का निर्धारण और उनका संचालन। अपने इस कर्तव्य के अनुसार उनके लिए यह आवश्यक था कि वे राज-कर्मचारियों को हिन्दी में काम करने के लिए बाध्य करते। यदि इन चारों हिन्दीभाषी राज्यों के मंत्रिगण राष्ट्रीय स्वाभिमान के साथ अपने कर्तव्यों का ठीक से पालन करते, तो निश्चय ही इन चारों हिन्दीभाषी राज्यों का हिन्दीकरण हो गया होता; किन्तु दुःख है कि अधिकतर मंत्रियों ने अपने सचिवों की अँगरेजी टिप्पणी का अँगरेजी में ही समर्थन अथवा विरोध किया। अँगरेजी में ही आदेश या निर्देश दिया। फलतः सचिवों की बन गयी। उनका तो अँगरेजी का अभ्यास था। अतः इन चारों राज्यों में राजभाषा हिन्दी प्रायः कागज पर बनी रही और आधे से अधिक कार्य अँगरेजी में होते रहे। यदि केवल अँगरेजीपरस्त अधिकारी ही इन हिन्दीभाषी राज्यों में ऊँचे पदों पर आवेंगे तो इसी प्रकार इन राज्यों का नुकसान होता रहेगा।"

सुधांशुजी ने इस रोग का बहुत ठीक निदान किया है। हिन्दी का सबसे बड़ा विरोधी अँगरेजीपरस्त अफसर वर्ग है जो हमारे मंत्रियों पर हावी है। हमारे मंत्रियों का मेरुदंड इतना मजबूत नहीं है कि नौकरशाही से जोर से कह सकें कि 'हिन्दी में काम करो', इसका एक कारण यह भी है कि अधिकांश मंत्री स्वयं इस 'बुर्जुआ वर्ग',

...त्रुटि अँगरेजी राज्यकाल में हुई थी, के हैं और ...अंतरस्त हैं।

२६ जनवरी १९६५ के बाद संविधान के अनुसार ...राज्यों में सारा काम हिन्दी में होना चाहिए। किन्तु ...की नौकरशाही का हिन्दी-विरोधी षड़यंत्र बन्द नहीं ...। सुधांशुजी कहते हैं:

"...अँगरेजी से फायदा उठानेवाला सरकारी कर्मचारी-...सजग हो गया है। वह इस प्रयत्न में है कि किसी ...इन हिन्दीभाषी राज्यों में भी यह विधेयक पास ...किया जाय कि अभी हिन्दी का ऐसा विकास नहीं ...है कि उसमें पूर्णरूप से सरकारी काजकाज हो सके, ...अनिश्चित काल के लिए इन राज्यों में भी अँगरेजी ...रहने दिया जाय। यही नहीं, यह वर्ग सरकारी कार्यों ...की सुविधा के नाम पर भी अँगरेजी कायम करने का प्रयत्न ...। दुर्भाग्यवश हिन्दीभाषी राज्यों के कुछ मंत्रियों ...पर इसका जादू चल जायगा। यह वर्ग केन्द्रीय नेताओं ...के लिए राज्यों पर दबाव भी डलवाने का प्रयत्न ...। यदि ऐसा विधेयक इन राज्यों में पास हो गया, ...हिन्दी का भविष्य विनष्ट हो जायगा।"

सुधांशुजी ने एक बड़ी मार्मिक बात कही है। भारत ...हिन्दी की दो स्थितियाँ हैं। एक तो वह संविधान के ...भारत सरकार (केन्द्र) की राजभाषा है। दूसरे, ...हिन्दीभाषी प्रदेशों की क्षेत्रीय या राजभाषा भी है। ...बंगालवाले, या मदरास आदिवाले, हिन्दी का सीमित ...भी नहीं करना चाहते तो न करें। सुधांशुजी ...हैं:

"आज जो कुछ अहिन्दीभाषी राज्य अपनी (क्षेत्रीय) ...भाषा को भी दबाकर अँगरेजी का दामन पकड़े हुए हैं, ...जब तक चाहें, अँगरेजी का दामन पकड़े रहें किन्तु ...यह अधिकार नहीं होना चाहिए कि वे दूसरों पर अँगरेजी लादे रहें।...हम हिन्दी का साम्राज्यवाद ...नहीं चाहते, हम इतना ही चाहते हैं कि 'हिन्दीभाषी ...राज्यों में हिन्दी के माध्यम से प्रशासन का कार्य हो। ...जनता की भाषा का सीधा अर्थ होना चाहिए, जनता ...द्वारा बोलने की मुख्य भाषा।"

भारत सरकार में अँगरेजीपरस्तों का बोलबाला है। ...की नौकरशाही जितनी शक्तिशाली है उतनी ही ...अँगरेजीपरस्त भी है। वह इस देश में अँगरेजी को 'अचल' करने के ऐसे उपाय कर रही है जिन्हें करने का साहस अँगरेजों को भी नहीं हुआ। सुधांशुजी ने कहा है:

"इधर कुछ राज्यों में निम्न प्राथमिक श्रेणियों से ही अँगरेजी की पढ़ाई शुरू की जा रही है। यह ध्यान में रखने की बात है कि ब्रिटिश शासनकाल में भी निम्न प्राथमिक श्रेणियों में अँगरेजी की पढ़ाई निषिद्ध मानी गयी थी। किन्तु फिर से अँगरेजी की जड़ जमाने के लिए ऐसा किया जा रहा है। कहा जाता है कि केन्द्रीय सेवाओं की प्रतियोगिता परीक्षाओं में अँगरेजी अनिवार्य रहने के कारण ऐसी आवश्यकता पड़ गयी है। योजना के अनुसार देश में डाक्टर, इंजीनियर और टेकनिशियन की जरूरत है जो अँगरेजी पढ़ाये बिना सम्भव नहीं है। ऐसा मालूम पड़ता है कि सारे राष्ट्र को इन्हीं लोगों से भर देना है। स्कूल-कालेजों के परीक्षा-परिणामों से यह स्पष्ट हो गया है कि दस प्रतिशत से अधिक विद्यार्थी अँगरेजी में अच्छे प्राप्तांक से उत्तीर्ण नहीं हो सकते! फिर नियम कानून के बल पर अँगरेजी ठूँसकर बालक-बालिकाओं की प्रतिभा के साथ खिलवाड़ क्यों किया जाता है? यदि भारतीय भाषाओं में ऊँची शिक्षा का प्रबन्ध नहीं किया जाता तो फिर स्वाधीनता का क्या अर्थ है, यह हमारी समझ में नहीं आता।"

लोकसेवा आयोग में बड़ी कठिनता से कुछ विषयों की परीक्षा हिन्दी के माध्यम से लेने का निश्चय किया गया है। एक तो ये विषय सीमित और थोड़े हैं, दूसरे हिन्दी माध्यमवाले परीक्षार्थियों को अँगरेजी की भी परीक्षा देनी होगी जिसका स्तर उतना ही ऊँचा होगा जितना कि वह सदैव रहा है। यदि परीक्षार्थी का अँगरेजी का ज्ञान इतना ऊँचा है तो वह आसानी से अँगरेजी माध्यम से परीक्षा दे सकता है। वास्तव में हिन्दी माध्यम से परीक्षा देनेवालों को बड़ी कठिनाई होगी, अर्थात् वे इतनी अँगरेजी जानें जितनी अँगरेजी माध्यम से परीक्षा देनेवाले जानते हैं। दूसरे, वे हिन्दी भी इतनी अच्छी जानें कि उसके माध्यम से इतिहास, दर्शन, अर्थ-शास्त्र आदि विषयों के उच्च स्तर के प्रश्नों का उत्तर दे सकें। हिन्दीवालों पर दोहरी मार पड़ेगी। अतएव यह 'सुविधा' केवल काल्पनिक ही है। इसपर सुधांशुजी कहते हैं:

"सूचना प्रकाशित हुई है कि भारत सरकार अगले सितम्बर १९६५ से अखिल भारतीय प्रतियोगिता परीक्षाओं

में हिन्दी को वैकल्पिक माध्यम के रूप में रखने का विचार कर रही है। ऐसा समझने का भ्रम हो सकता है कि भारत सरकार हिन्दी पर बड़ी कृपा दिखाने जा रही है। हम अपनी सरकार से पूछना चाहते हैं कि क्या ऐसा करना भारतीय संविधान का अपमान नहीं है? जिस संविधान के प्रति हमने ईश्वर के नाम पर या निष्ठापूर्वक शपथ ली है, उस संविधान के भाषा-विषयक अनुच्छेद १२० तथा २१० से, २६ जनवरी, १९६५ ई० के बाद 'या अंग्रेजी में' पद स्वतः लुप्त हो जायँगे। संविधान में मूलतः उल्लिखित रह जायगी केवल संघीय भाषा हिन्दी और अधिनियमों के अधिकृत राज्यों की राजभाषाएँ। संसद के एक अधिनियम द्वारा अँगरेजी को अनिश्चित काल तक एक सहकारी भाषा के रूप में स्वीकृत किया गया है। प्रधान भाषा तथा सहकारी भाषा में वैधानिक अन्तर है। संविधान की विहित संघीय भाषा हिन्दी और अधिनियम की सहकारी अँगरेजी भाषा की पारस्परिक प्रतिष्ठा में क्या कोई भेद नहीं है? सहकारी भाषा प्रधान भाषा का स्थान नहीं ले सकती। हम अपने न्याय-प्रिय नेताओं से पूछना चाहते हैं कि क्या यह न्याय की बात है कि १९६५ ई० से हिन्दी को वैकल्पिक माध्यम बनाया जाय। रानी को चेरी बनाना क्या राष्ट्रीय स्वाभिमान की बात है? न्याय की माँग है कि १९६५ ई० से संविधान-सम्मत संघीय भाषा हिन्दी ही प्रतियोगिता परीक्षाओं का सामान्य माध्यम रहे और संसद के अधिनियम से अनुप्राणित, अँगरेजी सहकारी रूप में वैकल्पिक भाषा हो। जो लोग अँगरेजी को अनिश्चित काल तक कायम रखना चाहते हैं वे जब तक चाहें, वैकल्पिक रूप में उसे रख सकते हैं। इतनी सुविधा उन्हें मिलनी चाहिए। यदि सभी राज्य एकमत हों तो अखिल भारतीय स्तर की नौकरियों का कोटा विभिन्न राज्यों की जनसंख्या के अनुपात पर बाँध दिया जाय और किसी भी राज्य-विशेष के लोगों को उनकी संख्या के अनुपात से अधिक नौकरियाँ न दी जायँ। ऐसा करने से किसी राज्य को दूसरे राज्य से शिकायत नहीं होगी। जब किसी वस्तु की कमी हो जाती है और सबको अपना अंश मिलना कठिन हो जाता है तब उसपर नियंत्रण किया जाता है। यदि नौकरियों को लेकर विवाद बढ़ेगा तो खाद्य पदार्थों की तरह नौकरियों पर भी 'कंट्रोल' लगाना पड़ेगा। राष्ट्रीय दृष्टि से यह बुरा है, किन्तु अँगरेजी के कारण जितनी राष्ट्रीय क्षति हो रही है उससे यह बहुत ही कम है।"

हम सुधांशुजी को इस सारगर्भित और विचारोत्तेजक भाषण के लिए हार्दिक बधाई देते हैं।

क्या उत्तर प्रदेश सरकार अपने विश्वविद्यालयों में हिन्दी माध्यम चाहती है?—विश्वविद्यालय में उपकुलपति (वाइस चांसलर) का पद बड़ा महत्त्वपूर्ण है। यदि वह हिन्दीप्रेमी हुआ तो विश्वविद्यालय में हिन्दी [illegible] सकती है, और यदि वह हिन्दी-विरोधी या हिन्दी-निरपेक्ष हुआ तो वहाँ हिन्दी के लिए कोई गुंजाइश नहीं। [illegible] बार लखनऊ विश्वविद्यालय के उपकुलपति स्वर्गीय आचार्य नरेन्द्रदेवजी हो गये थे। उन्होंने अल्पकाल ही में माध्यम के रूप में तथा कार्यालय के कार्य के रूप में हिन्दी का [illegible] प्रवेश करा दिया था। उनके बाद वहाँ जो वाइस चांसलर आये वे या तो हिन्दी-निरपेक्ष थे, या हिन्दी के प्रबल विरोधी थे। परिणाम यह हुआ कि आचार्यजी के [illegible] कार्य पर हरताल फिर गयी।

यदि उत्तर प्रदेश सरकार की यह नीति होती [illegible] हमें अपने विश्वविद्यालयों में हिन्दी का प्रवेश कराना [illegible] तो वह प्रोफेसरों और उपकुलपतियों की नियुक्ति [illegible] समय इस बात का ध्यान रखती कि जो लोग नियुक्त [illegible] जाते हैं वे हिन्दीनिष्ठ हैं और हिन्दी में काम कर [illegible] और पढ़ा सकते हैं। उत्तर प्रदेश में चार सामान्य विश्व-विद्यालय हैं जिनका नियंत्रण उत्तर प्रदेश सरकार [illegible] है। यहाँ वाइस चांसलर की नियुक्ति के लिए एक [illegible] मौलिक पद्धति चलायी गयी है। तीन व्यक्तियों की [illegible] समिति बनायी जाती है जो कुलपति को वाइस चांसलर के पद के लिए तीन नाम भेजती है। कुलपति इनमें [illegible] एक को वाइस चांसलर नियुक्त कर देता है। इस समिति में एक सदस्य विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी से [illegible] जाता है, दूसरा कुलपति द्वारा मनोनीत किया जाता [illegible] और तीसरा प्रयाग हाईकोर्ट का चीफ जस्टिस या [illegible] मनोनीत व्यक्ति होता है। 'कुलपति' राज्यपाल होते [illegible] अतएव सरकार जो कुछ निर्णय करती है, उसे वहीं [illegible] पड़ता है। पिछली बार चार विश्वविद्यालयों में जो वाइस चांसलर नियुक्त हुए, उनमें से एक कन्नड़ (मैसूर [illegible] दूसरे बंगाली, तीसरे बिहारी और चौथे उत्तर प्रदेश [illegible] एक प्रिंसिपल थे। बिहार या उत्तर प्रदेश के दोनों [illegible] में से एक भी हिन्दी-निष्ठा या हिन्दी साहित्य के [illegible] लिए प्रसिद्ध नहीं थे। परिणाम यह हुआ कि उत्तर प्रदेश [illegible] विश्वविद्यालयों में हिन्दी ने कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं [illegible]

अगले अक्तूबर में पुराने वाइस चांसलरों का [illegible] काल समाप्त होगा। तीन विश्वविद्यालयों के [illegible] समितियाँ बन गयी हैं। वे इस प्रकार हैं: (लखनऊ के लिए) आचार्य जुगलकिशोर, डा० कैलाशनाथ [illegible] और चीफ जस्टिस (गुजराती-भाषी)। (प्रयाग, [illegible] गोरखपुर के लिए) श्री श्रीप्रकाशजी, श्री सी० [illegible] देशमुख (मराठी-भाषी) और चीफ जस्टिस (गुजराती-भाषी)। इनमें से कई लोगों के हिन्दी-सम्बन्धी [illegible] जनता को मालूम हैं। डा० काटजू मौका पड़ने पर [illegible] को उत्तर प्रदेश का भी बतला देते हैं। उनका मत है [illegible] भारत की राष्ट्रभाषा संस्कृत होनी चाहिए। वे [illegible] संस्कृत नहीं जानते, और जब वे मध्यप्रदेश में स्व० रविशंकर शुक्ल के बाद मुख्यमंत्री हुए तो उन्होंने [illegible]

...काम, जो शुक्लजी ने हिन्दी में कर दिया था, ...में करना आरंभ कर दिया, और वहाँ राजकाज ...हिंदी की दशा दयनीय हो गयी। इसीसे अनुमान किया ...सकता है कि उनमें कितना हिंदी-प्रेम है——हिंदी-निष्ठा ...बात तो उठती ही नहीं। डा० देशमुख के विचार हिन्दी ...के बारे में क्या हैं, यह जानकार लोगों को मालूम ...अभी से 'बाजार' में तीन-चार अहिन्दी-भाषियों के ...की चर्चा होने लगी है जिनके वाइस चांसलर बनाये ...की संभावना बतलायी जाती है। सरकार के हिन्दी-...रुख को देखते हुए यह आश्चर्य ही की बात होगी ...कोई हिन्दीभाषी और हिन्दीनिष्ठ व्यक्ति इन पदों ...लिए उपयुक्त समझे जायँ।

...काशी में सुरेका जी का मानस-मंदिर——कलकत्ते के ...धर्मप्रेमी और रामायणभक्त सेठ सुरेका ने अपने ...चैरिटेबुल ट्रस्ट" से काशी में एक विशाल और भव्य ...मानस-मंदिर निर्मित किया है। यह भवन सेठजी की ...धर्मप्रियता तथा रामायण-निष्ठा का मूर्त स्मारक ...यह संगमर्मर का मंदिर विशाल और भव्य है और ...काशी जानेवाले लोग उसे न देखेंगे तो उनकी यात्रा ...अधूरी समझी जायगी। इस मंदिर की सबसे बड़ी विशेषता ...है कि इसमें सम्पूर्ण रामायण संगमर्मर पर खोद दी ...गयी है। सेठजी की कल्पना और श्रद्धा की जितनी प्रशंसा ...की जाय, वह कम है। किन्तु पत्थर पर रामायण अंकित ...कराने का काम, मालूम पड़ता है कि असावधानी से और ...अकुशल लोगों के हाथों में सौंप दिया गया था। वृन्दावन ...के प्रसिद्ध विद्वान् श्री विन्दुजी महाराज ने हमें उन ...अशुद्धियों की सूची भेजी है जो पाठभेद नहीं हैं, किन्तु ...शुद्ध अखरौटी की भूलें हैं। किसी भी ग्रन्थ की प्रतिलिपि ...शुद्ध होनी चाहिए, तिसमें रामायण ऐसे धार्मिक ग्रन्थ की ...एक-एक मात्रा तक ठीक होनी चाहिए, क्योंकि हिन्दुओं के ...विश्वास के अनुसार, अशुद्ध पाठ से दोष लगता है। ...स्वामीजी ने जो सूची भेजी है उसमें १५० से अधिक ...अशुद्धियां हैं। यह निर्माता का दोष नहीं, किन्तु काम ...करनेवालों का दोष है। एक दृष्टि से देखा जाय तो सारी ...रामायण को अंकित कराने में केवल १५० भूलें हुईं। ग्रन्थ ...के आकार और हमारे कार्यकर्त्ताओं की अकुशलता देखते ...हुए ये भूलें बहुत अधिक नहीं कही जा सकतीं, किन्तु ...रामायण ऐसे ग्रन्थ की प्रतिलिपि में एक अशुद्धि भी क्षम्य ...नहीं है। ये अशुद्धियां किस प्रकार की हैं, उनके कुछ नमूने ...दिये जाते हैं:—

अशुद्ध	शुद्ध
बालकांड	
...बंदउं गुर पद पदुम परागा।	बंदउं गुरु पद पदुम परागा।
...साधु सरित सुभ चरित कपासू।	साधु चरित सुभ सरिस कपासू।
...नारदहू यह भेद न जाना।	नारद हू यह भेद न जाना।
...मज्जन सरऊ जल।	करि मज्जन सरजू जल।
हृदय कंप मुख दुति कुमलानी।	हृदय कंप मुख दुति कुम्हलानी।
लोभन लोलुप कल कीरति चहई।	लोभी लोलुप कीरति चहई।
धरि मुनि तनु जनु बरस।	धरि मुनि तनु जनु बीररस।
अयोध्याकाण्ड	
नाम मन्थरा मन्द मति चेरि कै कै केरि।	नाम मन्थरा मन्द मति चेरि कैकई केरि।
सेवा समय दैअं बन दीन्हा।	सेवा समय दैव बन दीन्हा।
दै अहि दोष देहिं मन माहीं।	दैवहि दोष देहिं मन माहीं।
परम तुम्हार राम कर जानिहि।	प्रेम तुम्हार राम कर जानिहि।
अरण्यकाण्ड	
ससि गुर तिय गामी नहुषु।	ससि गुरु तिय गामी नहुष।
पावन अमिय अनूप।	पावन अमल अनूप।
लोभी जस यह चार गुनानी।	लोभी जस चह चार गुमानी।
किष्किन्धाकाण्ड	
कबहुं न मिलै भरि वोदर अहारा।	कबहुं न मिल भरि उदर अहारा।
सुन्दरकाण्ड	
लोभ मोह मछर मद माना।	लोभ मोह मत्सर मदमाना।
उत्तरकाण्ड	
भइ सरऊ अति निरमल नीरा।	भइ सरजू अतिनिर्मल नीरा।
तनु धरि मिले बर परमालही।	तनु धरि मिले बर सुषमा लही।
भव नाथ सो समरामहे।	भव नाथ सोइ स्मरामहे।
काग भुसुंडि गरुर प्रति गाई।	काग भुसुंडि गरुड़ प्रति गाई।
मेलि जनेऊ लोह कुदाना।	मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना।

हम आशा करते हैं श्री सुरेकाजी तथा उनके ट्रस्ट के ट्रस्टी इन अशुद्धियों को शीघ्र ही ठीक करा देंगे जिससे धार्मिक जनता और रामायण-प्रेमी जनता के हृदयों को ठेस न पहुँचे।

चन्द्रमा-विजय की दिशा में एक और सफल चरण——३१ जुलाई, १९६४ को भारतीय समय के अनुसार संध्या ६·५५ बजे अमरीका का चंद्रयान रेंजर–७ चंद्रमा के धरातल पर उतर गया। रेंजर–७ चन्द्रमा के धरातल के चित्र लेकर पृथ्वी पर भेजने और वहाँके वातावरण संबंधी सूचनाएँ एकत्र करने के लिए भेजा गया था। इस यान का भार ८०६ पौण्ड था और यह ५८०० मील प्रति घण्टे की गति से यात्रा करके ६७ घण्टे और ३५ मिनट में २४३६६५ मील की दूरी पार करके चंद्रमा की धरती से जा टकराया। इस यान के सामने के नुकीले भाग में, जिसे "नासिका" कहते हैं, ६ कैमरे लगाये गये थे। इनमें से दो कैमरे व्यापक क्षेत्रों का चित्र लेने और शेष चार कैमरे छोटे क्षेत्रों का चित्र लेने के उद्देश्य से लगाये गये थे। यह यान इस तरह बनाया गया था कि चंद्रमा की सतह पर पहुँचने के १६ मिनट ४० सेकेंड पहले इसे पृथ्वी से निर्देश मिलेंगे और उन निर्देशों के मिलते ही सब कैमरे

चंद्रमा का चित्र लेना और उसे धरती पर भेजना शुरू कर देंगे। निर्धारित समय पर रेंजर–७ को अमरीका के केलिफोर्निया टेक्नालाजी संस्थान की जेट प्रोपेलशन प्रयोगशाला से निर्देश भेजा गया और तत्काल यान ने सुमधुर स्वर में रेडियो संकेत भेजने आरम्भ कर दिये। इन संकेतों को चुम्बकीय टेप में भर लिया गया और उससे ९० फुट लम्बी ३५ मिलीमीटर की फिल्म तैयार कर ली गयी। यान ने प्रायः चार हजार चित्र भेजे। अंतिम चित्र यान के चन्द्रमा पर टकराने के एक सेकेंड के कुछ ही पहले लिया गया जो चंद्रमा के धरातल का अब तक सबसे निकट से लिया गया चित्र है। २,२८,५०० मील मार्ग तय करके ये चित्र बड़ी अच्छी स्थिति में पृथ्वी पर पहुँचे हैं। ये चित्र इतने स्पष्ट हैं कि इनमें चंद्रमा के धरातल की १६ इंच व्यास तक की वस्तुएँ देखी जा सकती हैं।

अमरीका ने चंद्रमा पर मानव को उतारने के पूर्व वहाँके धरातल, वातावरण और जलवायु आदि की जानकारी प्राप्त करने के लिए एक विशाल योजना बनायी है। इसके लिए २० अरब डालर की धनराशि निर्धारित की गयी है। इस योजना के अनुसार रेंजर–४ यान चंद्रमा के चित्र लेने और उन्हें रेडियो संकेत से पृथ्वी पर भेजने के लिए भेजा गया था। पर पृथ्वी से उड़ते समय यान के "मस्तिष्क" (रेडियो संकेत लेने और भेजनेवाला कक्ष) में खराबी पैदा हो गयी और वह चंद्रमा से बिना कोई संकेत भेजे उसके पिछले क्षेत्रों में, जहाँ शाश्वत अंधकार रहता है, टकराकर नष्ट हो गया। इस वर्ष के प्रारम्भ में अमरीका का रेंजर–६ चंद्रमा की खोज-यात्रा पर भेजा गया पर उसके चित्र-प्रेषक यंत्र समय पर काम न कर सके और वह भी चंद्रमा की सतह पर टकराकर नष्ट हो गया। रेंजर–७ के अतिरिक्त चंद्रमा पर अबतक ३ और यान पहुँच चुके हैं। इनमें से ३ अमरीका के, और १ रूस का है। रूस का यान 'लूनिक द्वितीय' १९५९ में चंद्रमा पहुँचा था। इसके अतिरिक्त रूस ने दूसरे अन्य अंतरिक्ष यानों से चंद्रमा के धरातल के चित्र प्राप्त करने में सफलता पायी है। वास्तव में अंतरिक्ष यान से रेडियो संकेत द्वारा चंद्रमा के चित्रों को प्राप्त करने में सफलता का श्रेय पहले रूस को ही मिला। अंतर्राष्ट्रीय समझौते के अनुसार अंतरिक्ष संबंधी अनुसंधान की उपलब्धियों से रूस और अमरीका एक दूसरे को अवगत रखते हैं। किन्तु फिर भी दोनों महाशक्तियों में इस क्षेत्र में एक दूसरे से आगे बढ़ने की होड़ लगी रहती है, क्योंकि अंतरिक्ष-ज्ञान में नयी सफलता का अंतर्राष्ट्रीय शक्ति-संतुलन और शीत-युद्ध पर प्रभाव पड़ता है। रूस की सफलताओं ने संसार में यह विश्वास पैदा कर दिया है कि अंतरिक्ष-ज्ञान में वह अमरीका से श्रेष्ठ है। इधर अमरीका ने जो प्रयास किये उनमें आरम्भिक विफलताओं के कारण न केवल [illegible] के अन्य देशों में, बल्कि अमरीका में भी, निराशा के [illegible] ही चन्द्रमा पर मानव की विजय के प्रयासों की [illegible] के प्रति संदेह और अविश्वास की भावना (जड़ पकड़ने) लगी थी। गत १ वर्ष से अमरीका की अंतरक्षीय [illegible] संधान योजना की उस देश में तीखी आलोचना हो रही थी, और अमरीकी सिनेट के कुछ सदस्यों ने इस [illegible] संधान कार्य के लिए निर्धारित २० अरब डालर की [illegible] में १० प्रतिशत कटौती का प्रस्ताव रखने की सूचना दी थी। पर रेंजर–७ की सफलता ने सारी आलोचना और निराशा को एकबारगी समाप्त कर दिया।

रेंजर–७ से जो सूचनाएँ मिली हैं उनका अभी सम्पूर्ण मूल्यांकन नहीं किया जा सका है। फिर भी इससे कुछ बहुत मार्के की बातें मालूम हो चुकी हैं। अभी तक यह विश्वास था कि चंद्रमा के धरातल पर असंख्य क्रेटर हैं। ज्वालामुखी पहाड़ के मुख को अंग्रेजी में क्रेटर कहते हैं। इस कारण वैज्ञानिकों के सम्मुख यह समस्या थी कि उनका प्रथम मानव-वाही यान चंद्रमा पर कहाँ सुरक्षित रूप से उतर सकता है। रेंजर–७ से प्राप्त सूचनाओं से पता चला है कि वहाँ ऐसे स्थान भी हैं जहाँ क्रेटर [illegible] कम संख्या में हैं और जहाँ चन्द्र-यान को सरलता से उतारा जा सकता है। यह भी पता चला है कि चंद्रमा का धरातल ठोस चट्टानों का बना हुआ है जिसपर भुरभुरी मिट्टी या धूल की पतली सी तह है जिस पर चलने पर वैसा ही अनुभव होगा जैसे बर्फ के ऊपर बूट पहनकर चलने से होता है। चंद्रमा के धरातल के बारे में नयी जानकारी से यह भी स्पष्ट हो गया है कि वहाँ अमरीका के [illegible] चन्द्र-मानव-यान को उतरने में कठिनाई न होगी। [illegible] अमरीका अपोलो नामक यान बना रहा है जिस पर [illegible] यात्री चंद्रमा की यात्रा करेंगे। इस यान के तीन [illegible] हैं। जिस भाग में यात्री बैठेंगे वह अंत में, वाहक [illegible] से अलग होकर, चंद्रमा की सतह पर उतरेगा। [illegible] यान में चार पाये होंगे जो तश्तरी के आकार के और [illegible] होंगे। १० टन भार का यात्री-यान चन्द्रमा पर [illegible] तरह सीधा उतरेगा जैसे कोई चारपाई लटकाकर [illegible] रख दी जाये। इस यान में यह व्यवस्था भी रहेगी [illegible] यात्री इसे चाहे तो १ हजार फुट दायें या बायें घुमा [illegible] रेंजर–७ की सूचनाओं ने चन्द्रमा के धरातल के बारे में मूल्यवान् जानकारी दी है उससे यह विश्वास हो [illegible] है कि मनुष्य का चन्द्रमा पर पहुँचने का पुराना स्वप्न [illegible] ही सत्य होनेवाला है।

रस का स्वरूप

डा० नगेन्द्र

एक ओर भरतादि और दूसरी ओर अभिनव तथा उनके अनुयायियों की व्याख्या के आधार पर यह प्रमाण-पूर्व कहा जा सकता है कि रस का स्वरूप द्विविध है: (१) विषयगत अर्थात् भाव की कलात्मक अभिव्यंजना=भावमूलक काव्य-सौन्दर्य।

२—विषयिगत अर्थात् उक्त काव्य-सौन्दर्य का आस्वाद। इनमें से पहला रूप मौलिक होते हुए भी प्राय: तिरोहित हो गया—और अनुभूति-परक रूप ही शेष रह गया। ऐतिहासिक तथ्य चाहे कुछ भी हो, भरत का आशय जो भी रहा हो, भारतीय साहित्य एवं साहित्यशास्त्र में अभिनव-प्रतिपादित आस्वाद-परक रूप ही मान्य हुआ। विषयगत अर्थ अर्थात् भरत का अभीष्ट अर्थ 'रस' के स्थान पर 'काव्य' का वाचक बन गया। भाव की कलात्मक अभिव्यंजना 'रस' नहीं है—'काव्य' है; और इस प्रकार परिभाषित काव्य का आस्वाद 'रस' है। भारतीय काव्यशास्त्र में रस का प्रतिनिधि एवं परिनिष्ठित अर्थ अंततः यही मान्य हुआ: इसीके सन्दर्भ में रस के स्वरूप का विवेचन सार्थक होगा—अस्तु।

अभिनव ने रस के स्वरूप का निर्वचन इस प्रकार किया है:—

१—लोकव्यवहार में कार्य-कारण सहकारी रूप लिंगों (अनुमापक हेतुओं) को देखकर (रत्यादि रूप) स्थायिभावात्मक, अन्य व्यक्ति की चित्तवृत्ति के अनुमान के अभ्यास की तीव्रता के कारण, उन्हीं उद्यान, कटाक्ष-वीक्षण आदि (अनुभावों) के द्वारा (जो कि नाटकों में) कारणत्व आदि रूप को छोड़कर विभावना, अनुभावना एवं समुपरंजकत्व मात्र रूप को प्राप्त, इसलिए अलौकिक विभावादि नामों से कहे जानेवाले, कारणादि रूप पुराने संस्कारों के उपजीवित्व द्योतन के लिए विभावादि नाम से निर्दिष्ट किये जानेवाले और भावाध्याय (सप्तम अध्याय) में भी जिनका स्वरूप आगे कहेंगे इस प्रकार के (विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारिभावों के) सामाजिक की बुद्धि में गुण-प्रधान भाव से भली प्रकार से योग अर्थात् सम्बन्ध अथवा एकाग्रीभाव को प्राप्त हुए (विभावादि) के द्वारा अलौकिक तथा निर्विघ्न संवेदन रूप चर्वणा का विषय बनाया गया हुआ (रत्यादि रूप) अर्थ जिसका चर्वणा ही एकमात्र सार है न कि (घटादि के समान पहिले से सिद्ध अर्थात्) विद्यमान स्वरूपवाला अर्थात् केवल उस (चर्वणा के) काल में ही रहनेवाला अर्थात् चर्वणा से अतिरिक्त काल में न रहनेवाला (इसलिए भट्टलोल्लट तथा शंकुक आदि के रसाभिमत) स्थायिभाव से विलक्षण 'रस' होता है।[1]

२—इसलिए अलौकिक-चमत्कार-स्वरूप रसास्वाद स्मृति, अनुमान, लौकिक, प्रत्यक्षादि से भिन्न ही है।

क्योंकि लौकिक अनुमान की प्रक्रिया से संस्कृत (सामाजिक, नाटकों में) प्रमदादि (विभावादि) को (लौकिक परगत रत्यादि के समान) तटस्थ रूप से ग्रहण नहीं करता है। अपितु हृदयसंवादात्मक (समस्त सामाजिकों के हृदय की एकरूपता रूप) सहृदयत्व के बल से अखण्ड रसास्वाद के अंकुर रूप से, अनुभाव, स्मृति आदि की प्रक्रिया में आये बिना ही तन्मयीभाव से प्राप्त (उचित) चर्वणा के उत्पादक रूप से (प्रमदादि विभावों का अनुभव करता है)।

अभिनव—और वह चर्वणा (उस रसास्वाद से) पहले किसी अन्य प्रमाण से नहीं होती है कि उसे स्मृति कहा जा सके। और न उसमें लौकिक प्रत्यक्षादि प्रमाणों का व्यापार होता है। किन्तु अलौकिक विभावादि के संयोग के बल से ही यह चर्वणा प्राप्त होती है। और वह (रस-चर्वणा) (१) प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम तथा उपमान रूप लौकिक प्रमाण से उत्पन्न रत्यादि के ज्ञान से, तथा (२) योगिप्रत्यक्ष से होनेवाले (अर्थात् दूसरे के द्वारा अनुभव

१—तत्र लोकव्यवहारे कार्यकारणसहचारात्मकलिंगदर्शने स्थाय्यात्मपरचित्तवृत्त्यनुमानाभ्यासपाटवाधुना तैरेवोद्यानकटाक्षवीक्षादिभिर्लौकिकीं कारणत्वादिभुवमतिक्रान्तैर्विभावनानुभावनासमुपरंजकत्वमात्रप्राणैः, अत एवालौकिकविभावादिव्यपदेशभागिभिः, प्राच्यकारणादिरूपसंस्कारोपजीवनख्यापनाय विभावादिनामधेयव्यपदेश्यैर्भावाध्यायेऽपि वक्ष्यमाणस्वरूपभेदैर्गुणप्रधानपर्यायेण सामाजिकधियि सम्यग्योगं सम्बन्धमैकाग्र्यं वासादितवद्भिः, अलौकिकनिर्विघ्नसंवेदनात्मकचर्वणागोचरतां नीतोऽर्थः चर्व्यमाणतैकसारो, न तु सिद्धस्वभावः, तात्कालिक एव, न तु चर्वणातिरिक्तकालावलम्बी स्थायिविलक्षण एव रसः।

(हिन्दी अभिनवभारती—आचार्य विश्वेश्वर, पृ० ४८३)

किये जानेवाले रत्यादि के) तटस्थ पर-संवेदनात्मक ज्ञान से एवं (३) समस्त विषयों के प्रति वैराग्य-युक्त (असम्प्रज्ञात समाधि में स्थित) परम योगी में रहनेवाले स्वयं केवल स्वात्मानंद के अनुभव (रूपसाक्षात्कारात्मक ज्ञान) से भिन्न प्रकार की होती है। क्योंकि इनमें यथायोग्य (१) (लौकिक-प्रमाण-जन्य में) अर्जनादि रूप अन्य विघ्नों के आ जाने से (२) (प्रारम्भिक युज्जान योगी के प्रत्यक्ष में परगत रत्यादि का प्रत्यक्ष करने के कारण) ताटस्थ्य एवं अस्पष्टता होने के कारण तथा (३) (परयोगी के प्रत्यक्ष में आत्मनिष्ठतारूप) विषयावेश की विवशता के कारण (सौन्दर्य) आह्लादकत्व का अभाव होने से (रसचर्वणा इन सबसे भिन्न प्रकार की है)।[1]

३—इसलिए विभावादि रस के उत्पत्ति के कारण (अर्थात् कारकहेतु) नहीं हैं। क्योंकि (यदि विभावादि को रस का कारक हेतु माना जाय तो) उसके ज्ञान के समाप्त हो जाने पर भी रस की उत्पत्ति संभव हो सकती है।

और न (विभावादि रस के) ज्ञापक हेतु हैं कि जिससे वे प्रमाणों में गिने जावें क्योंकि (पूर्वसिद्ध घटादि के समान) प्रमेयभूत किसी पूर्व से विद्यमान रसादि की सत्ता नहीं है।

(प्रश्न) तो फिर ये विभावादि क्या हैं?

(उत्तर) चर्वणा में उपयोगी यह विभावादि व्यवहार अलौकिक है। (लोकभाषा में उनकी ठीक स्थिति निर्दिष्ट नहीं हो सकती है)।[1]

उपर्युक्त उद्धरणों में अभिनव की शैली फिर स्पष्ट व्याख्यान में बाधक होती है। संक्षेप में उनके मत का सारांश इस प्रकार है:

(१) लोक में रत्यादि भावों के जो कारण, द्योतक तथा पोषक होते हैं, वे काव्य-नाटकादि में विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी नाम से अभिहित किये जाते हैं। काव्य-निबद्ध हो जाने पर कारण-कार्यादि सम्बन्धों से मुक्त होकर इनका लौकिक रूप नष्ट हो जाता है और ये एक प्रकार का अलौकिक रूप धारण कर लेते हैं।

(२) सहृदय द्वारा इन अलौकिक विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी के समवेत रूप का प्रत्यक्ष अथवा मानस साक्षात्कार या चर्वण ही 'रस' है।

(३) यह रस चर्वण अथवा आस्वाद से अभिन्न होता है—अर्थात् रस आस्वाद रूप ही होता है, आस्वाद्य रूप या आस्वाद का विषय नहीं। इस प्रकार स्थायी भाव रस नहीं है।

(४) अलौकिक विषय का आस्वाद होने के कारण रस स्वयं भी अलौकिक अर्थात् स्मृति, अनुमान, प्रत्यक्ष अनुभव आदि से भिन्न होता है। वह न कार्य है, न ज्ञाप्य है, न सविकल्पक ज्ञान है और न निर्विकल्पक।

(५) और, जैसा कि रस की परिभाषा के प्रसंग में स्पष्ट किया जा चुका है, चर्वणा की इस स्थिति में प्रमाता का चित्त देश-काल, स्व, पर, तटस्थ आदि की सीमाओं से मुक्त एकतान, आत्मविश्रांतिरूप हो जाता है: अर्थात् रस अनिवार्यतः आत्मविश्रांतिमयी आनन्द-चेतना है।

परवर्ती आचार्यों ने प्रायः रस की इन्हीं विशेषताओं का प्रकार-भेद से व्याख्यान किया है; चौदहवीं शती के

१—तेनालौकिकचमत्कारात्मा रसास्वादः स्मृत्यनुमानलौकिकस्वसंवेदनविलक्षण एव।

तथाहि—लौकिकेनानुमानेन संस्कृतः, प्रमदादि न ताटस्थ्येन प्रतिपद्यते। अपि तु हृदयसंवादात्मकसहृदयत्वबलात् पूर्णीभवद्रसास्वादांकुरीभावेन अनुमानस्मृत्यादिसोपानमनारुह्यैव तन्मयीभावोचितचर्वणाप्रवणतया।

न च सा चर्वणा प्राङ्मानान्तरात्। येनाघुना स्मृतिः स्यात्। न चात्र लौकिकप्रत्यक्षादिप्रमाणव्यापारः। किन्त्वलौकिकविभावादिसंयोगबलोपनतैवेयं चर्वणा। सा च प्रत्यक्षानुमानागमोपमानादिलौकिकप्रमाणजनितरत्याद्यवबोधतः, तथा योगिप्रत्यक्षजनित-तटस्थपरसंवित्तिज्ञानात्, सकलवैषयिकोपरागशून्य - शुद्धपरयोगिगतस्वानन्दैकघनानुभवाच्च विशिष्यते। एतेषां यथायोगमर्जनादिविघ्नान्तरोदयात् ताटस्थ्य-अस्फुटत्व-विषयावेशवैवश्येन च सौन्दर्यविरहात्।

(हिन्दी अभिनवभारती—आचार्य विश्वेश्वर, पृष्ठ ४८५)

१—अतएव विभावादयो न निष्पत्तिहेतवो रसस्य, तद्बोधापगमेऽपि रससम्भवप्रसंगात्।

नापि ज्ञप्तिहेतवो येन प्रमाणमध्ये पतेयुः। सिद्धस्य कस्यचित् प्रमेयभूतस्य रसस्याभावात्।

किं तर्ह्येतद्धि विभावादय इति? अलौकिक एवायं चर्वणोपयोगी विभावादिव्यवहारः।

क्वान्यत्रेत्थं दृष्टमिति चेत्, भूषणमेतदस्माकमलौकिकत्वसिद्धौ। पानकरसास्वादोऽपि किं गुडमरिचादिषु दृष्ट इति समानमेतत्।

(हि० अभिनवभारती—पृ० ४८६-८७)

१६६४

ग्राहक आचार्य विश्वनाथ ने रस-स्वरूप-विषयक इस व्याख्यान-विश्लेषण का सारांश अपने शब्दों में इस प्रकार प्रस्तुत किया है :—

सत्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्दचिन्मयः।
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः।
लोकोत्तरचमत्कारप्राणः कैश्चित्प्रमातृभिः।
स्वाकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः॥

——साहित्यदर्पण, ३/२, ३।

चित्त में सतोगुण के उद्रेक की स्थिति में विशिष्ट संस्कारवान् सहृदय जन अखण्ड, स्वप्रकाशानन्द, चिन्मय, अन्य सभी प्रकार के ज्ञान से विनिर्मुक्त, ब्रह्मास्वाद सहोदर, लोकोत्तरचमत्कारप्राण रस का निज स्वरूप से अभिन्नतः आस्वादन करते हैं।

इस परिभाषा के अनुसार :—

(१) रस आस्वादन का विषय है—किन्तु निज स्वरूप से अभिन्न रीति से——अर्थात् रस आस्वाद से अभिन्न है। रस आस्वाद-रूप है।

(२) उसका आविर्भाव सतोगुण के उद्रेक की स्थिति में होता है।

(३) वह अखण्ड है।

(४) अन्य ज्ञान से रहित है।

(५) स्वप्रकाशानन्द है।

(६) चिन्मय है।

(७) लोकोत्तरचमत्कारमय है।

और (८) ब्रह्मास्वाद-सहोदर——अर्थात् ब्रह्मास्वाद के अलौकिक समान है।

उपर्युक्त उद्धरण की अधिकांश शब्दावली शास्त्रीय एवं पारिभाषिक है—अतः आधुनिक शब्दावली में उसका पुनराख्यान आवश्यक है।

(१) रस का अपने स्वरूप से अभिन्न रीति से आस्वादन किया जाता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि रस मूलतः आस्वाद रूप ही है, आस्वाद्य पदार्थ नहीं है——किन्तु फिर भी व्यवहार में 'रस का आस्वादन किया जाता है,' ऐसा प्रयोग होता है। इस विरोधाभास को हृदयंगम करने के लिए अद्वैत सिद्धान्त की शरण लेनी होगी। अद्वैत दर्शन के अनुसार केवल एक आत्मतत्त्व की ही सत्ता है—तत्त्वतः यह आत्मा आनन्द रूप है, आनन्द इसका स्वभाव है भोग्य पदार्थ नहीं है, फिर भी व्यवहारतः आत्मा द्वारा आनन्द के भोग की चर्चा शास्त्रों में बराबर मिलती है। इस प्रकार आत्मा, आनन्द और भोग——अर्थात् आस्वादयिता, आस्वाद्य और आस्वाद तत्त्वरूप में एक हैं, केवल व्यवहाररूप में भिन्न हैं।

रस आस्वाद-रूप है आस्वाद्य पदार्थ नहीं——इसका अर्थ यह हुआ कि भरत तथा ध्वनि-पूर्व काल के अलंकारवादियों की वस्तु-परक व्याख्या अशुद्ध है। रस शब्दार्थ-सौन्दर्य या नाट्य-सौन्दर्य का पर्याय नहीं है। शब्दार्थ का सौन्दर्य तथा नाट्य-सौन्दर्य तो 'काव्य' और 'नाट्य' हैं जो रस के निमित्त हैं: रस तो इनका आस्वाद है——दार्शनिक शब्दावली में, इनके निमित्त से आत्म-तत्त्व का आस्वाद है।

(२) रस का आविर्भाव सतोगुण के उद्रेक की स्थिति में होता है। रजोगुण और तमोगुण से असंस्पृष्ट अन्तःकरण को सत्त्व कहते हैं——सामान्य शब्दावली में सांसारिक-रागद्वेष से मुक्त चित्त का वैशद्य ही सतोगुण की स्थिति है। अतः उपर्युक्त वाक्य का आशय यह हुआ कि (क) रस का आस्वाद रागद्वेष से मुक्त चित्त के वैशद्य की समाहिति की अवस्था में ही सम्भव है। और (ख) यह आस्वाद ऐन्द्रिय उत्तेजना आदि से भिन्न सात्त्विक——अर्थात् अत्यंत परिष्कृत कोटि का होता है। यह स्थापना मूलतः भट्टनायक ने की है——अभिनव ने इसे प्रायः यथावत् स्वीकार कर लिया है।

(३) रस अखण्ड है: इस उक्ति का विवक्षित अर्थ व्यापक है। (क) एक तो इसका आशय यह है कि रसानुभूति में विभाव, अनुभाव व्यभिचारी आदि की पृथक्-पृथक् अनुभूति नहीं होती वरन् सभी की समञ्जित——अथवा एकान्वित अनुभूति होती है। (ख) दूसरी विवक्षा यह भी है कि रसानुभव में, आत्मा का पूर्ण तन्मयीभाव होने के कारण, मात्राभेद अर्थात् कोटियाँ नहीं होतीं। पूर्णता में तारतम्य की सम्भावना नहीं है——क्योंकि पूर्ण से पूर्णतर की तो कल्पना ही नहीं की जा सकती और जो पूर्ण से कम हैं वहाँ रस की स्थिति नहीं है।

(४) रसानुभव अन्य ज्ञान या अनुभव से रहित है। जैसा कि अभी स्पष्ट किया, रस पूर्ण तन्मयीभाव की स्थिति है और तन्मयीभाव में स्वभाव से ही अन्य ज्ञान की संभावना नहीं रहती। वर्तमान सन्दर्भ में इसका आशय यह है कि रस की स्थिति में प्रमाता स्व, पर, तटस्थ

आदि की भावना से मुक्त हो जाता है—देश-काल का बंधन उसे नहीं व्यापता और वह प्रस्तुत प्रसंग के साथ पूर्ण तादात्म्य का अनुभव करता हुआ कुछ समय के लिए सर्वथा आत्मलीन हो जाता है।

(५, ६) रस स्वप्रकाशानन्द है और चिन्मय है। यह शब्दावली भी प्रायः भट्टनायक के वक्तव्य से ही प्रेरित है। इसका अर्थ यह है कि रसानुभूति आत्मचैतन्य से प्रकाशित आनन्दमयी चेतना है—अर्थात् यह एक प्रकार की आनन्दमयी चेतना है और इस आनन्द में मृण्मय अर्थात् ऐन्द्रिय अनुभूति का प्रायः अभाव तथा चैतन्य आत्मास्वाद का सद्भाव रहता है। वस्तुतः यहाँ भी प्रकारान्तर से वही बात कही गयी है जिसका उल्लेख सत्त्वोद्रेक के प्रसंग में हो चुका है—रसानुभव एक प्रकार का स्वस्थ-परिष्कृत आनन्द है—वह ऐन्द्रिय आनन्द अथवा विषय-सुख की कोटि का आनन्द नहीं है।

(७) रस लोकोत्तरचमत्कारप्राण है—रस न प्रत्यक्ष अनुभव है, न परोक्ष; न कार्य है, न ज्ञाप्य है; न सविकल्पक अर्थात् ऐसा ज्ञान है जिसमें ज्ञाता की चेतना विद्यमान रहती है और न निर्विकल्पक अर्थात् ऐसा ज्ञान है जिसमें ज्ञाता की चेतना विलीन हो जाती है। इस प्रकार सभी तरह की लौकिक परिभाषाओं से मुक्त होने के कारण वह अनिर्वचनीय है और अलौकिक है। वास्तव में यह अलौकिक शब्द अत्यंत विवादास्पद है और इसीको लेकर आधुनिक विचारकों ने रस-सिद्धान्त पर अनेक आक्षेप किये हैं। काव्य लोक की वस्तु है अतः उसका आस्वाद अलौकिक कैसे हो सकता है? इसके उत्तर में रस के समर्थकों ने कहा कि अलौकिक का अर्थ अतिप्राकृतिक नहीं है, अतीन्द्रिय है—अर्थात् इन्द्रियों के द्वारा उसका अनुभव नहीं किया जाता।[1]

(८) रस ब्रह्मास्वादसहोदर है—ब्रह्मास्वाद के समान है। रस विषयानन्द से भिन्न है, उसका अनुभव चिन्मय है: वह इन्द्रियों का विषय न होकर चैतन्य आत्मा का विषय है। किन्तु फिर भी वह शुद्ध आत्मानन्द या ब्रह्मानन्द नहीं है क्योंकि (क) ब्रह्मानन्द स्थायी होता है, रस अस्थायी; (ख) रस में लौकिक विषयों का सर्वथा तिरोभाव नहीं होता।

पण्डितराज के दृष्टिकोण से त्रिविध आनन्द की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है:—

१—लौकिक सुख (विषयानन्द)=आनन्दभास=चैतन्याभास से आभासित अन्तःकरण की वृत्तियों के विषय-सामंजस्य से मिलनेवाला अतः अन्तःकरण-वृत्ति-रूप।

२—ब्रह्मानन्द=आत्मानन्द (विशुद्ध)=निरुपाधिक चैतन्य का स्वरूपानन्द।

३—काव्यानन्द (रस)=आत्मानन्द-सोपाधिक=सोपाधिक चैतन्य का आनन्द, विशुद्ध रत्यादि की उपाधि से उपहित चैतन्यकाराकारित चित्तवृत्ति का आनन्द।[1]

इस प्रकार काव्यानन्द और ब्रह्मानन्द में अंतर है, परन्तु वह प्रकृति का नहीं है, गुण का है। काव्यानन्द और ब्रह्मानन्द दोनों आत्मानन्द के ही भेद हैं—काव्यानन्द में विशुद्ध (साधारणीकृत) रत्यादि की भूमिका रहती है, अतः वह अस्थायी है और सोपाधि है; ब्रह्मानन्द में इस प्रकार की कोई भूमिका नहीं रहती, अतः वह स्थायी और निरुपाधि है। विषयानन्द में भी आनन्द तत्त्व आत्मपरामर्श या आत्मास्वाद का ही वाचक है, किन्तु वह विषय से ग्रस्त है अर्थात् प्रकृति के दोष उसमें विद्यमान हैं: भोग्य जड़ पदार्थ की स्थूलता और उससे प्रेरित भोक्ता चित्त के रागद्वेष उससे संलग्न हैं; अतः वह मिश्रित है, अपेक्षाकृत स्थूल तथा मृण्मय अंश से आविष्ट है। काव्यास्वाद= रस की स्थिति मध्यवर्ती है; वह विषयानन्द की अपेक्षा अधिक शुद्ध एवं चिन्मय है: अधिक सूक्ष्म-परिष्कृत है; और, ब्रह्मानन्द की अपेक्षा अधिक स्थूल।

उपर्युक्त विवेचन का सारांश यह है:—

रस काव्य का आस्वाद है। यह आस्वाद आनन्दमय है—अर्थात् रस एक प्रकार की आनन्द-चेतना है।

आनन्द-चेतना का अर्थ है आत्म-साक्षात्कार—अभिनव के शब्दों में आत्मपरामर्श और भट्टनायक के शब्दों में संविद्विश्रान्ति।

इस आनन्द-चेतना में मृण्मय अर्थात् ऐन्द्रिय भोग आदि का प्रायः अभाव तथा चैतन्य आत्मानन्द का सद्भाव रहता है। लौकिक भाव काव्य-निबद्ध होकर अपना स्थूल, ऐन्द्रिय रूप त्याग कर सूक्ष्म रूप धारण कर लेते हैं: शास्त्रीय शब्दावली में वे देशकाल की सीमा से मुक्त, साधारणीकृत हो जाते हैं। फलतः वे प्रमाता के प्रत्यक्ष अनुभव का विषय नहीं बनते—साधारणीकृत होने के कारण वे अपने संसर्ग से प्रमाता को भी स्व, पर, तटस्थ आदि की भावना अथवा व्यक्तिगत रागद्वेष से मुक्त कर देते हैं। अतएव काव्य अर्थात् कवि-निबद्ध भावों के माध्यम से प्रमाता को जो आत्मपरामर्श या संविद्विश्रांति उपलब्ध होती है उसमें ऐन्द्रिय भोग आदि का प्रायः अभाव रहता है।

किन्तु, फिर भी यह आनन्द शुद्ध आत्मानन्द नहीं है क्योंकि यह न तो स्थायी होता है और न इसमें लौकिक विषयों का एकान्त तिरोभाव ही हो पाता है।

इस प्रकार संस्कृत काव्यशास्त्र के प्रतिनिधि आचार्यों के अनुसार: **शब्दार्थ के माध्यम** से, विशुद्ध भाव-भूमिका में, आत्मचैतन्य के (आनन्दमय) **आस्वाद** का नाम रस है।

---

[1]—देखिए पं० केशवप्रसाद मिश्र के विचार—साहित्यालोचन (१९९९) पृ० २८०।

[1]—रसगंगाधर का शास्त्रीय अध्ययन: डा० प्रेम स्वरूप गुप्त—पृष्ठ २०४।

पंडित श्रीधर पाठक की 'स्व-जीवनी'

[पं० श्रीधर पाठक ने कविता में अपनी आत्मकथा लिखनी आरंभ की थी, किंतु वे उसे समाप्त नहीं कर सके। ... वर्ष की अवस्था होने पर उन्होंने मित्रों के अनुरोध से यह कार्य आरंभ किया था। यह जीवनी अभी तक ... नहीं हुई, यद्यपि इसके आरंभिक सात-आठ छंद 'माधुरी' में निकले थे। उनके पौत्र श्री पद्मधर पाठक ... से हमें इसकी प्रतिलिपि मिली है। हम 'सरस्वती' के पाठकों के मनोरंजनार्थ खड़ीबोली के प्रथम मान्य ... की यह ऐतिहासिक रचना प्रकाशित कर रहे हैं। सम्पादक, सरस्वती।]

(१)

वर्ष पैंसठ हुई आज अपनी वयस,
हर्ष-पूरित हुई स्व-गृह-जन-मंडली;
मन हुआ मुदित अति, उदित रवि-दरस संग
प्रात के समय ज्यों सरस सरसिज-कली
मंडली शब्द पर्यन्त इस पद्य की
पंक्ति, उत्सव सुलभ विमल मंगलमयी,
जनवरी मास तारीख तेईस उन्-
नीस पच्चीस सन बीच विरचित हुई।

बहुत से मित्र अनुरोध अति कर रहे
कीजिये शीघ्र लिपि-बद्ध निज जीविनी;
न अति विस्तृत न अति लघु न अत्युक्ति युत
किन्तु सब सत्य, सुव्यक्त, स्व व्यक्ति-गत,
सकल-घटना-घटित, सरलता से वलित,
सुभग सुन्दर ललित, सुघर साहित्य सं-
स्थान से अस्खलित, सुलभ कल कोकिला-
काकली सी भली।

किन्तु मम जीवनी
वस्तु ऐसी नहीं जो कि हो जगत के
जानने योग्य; अतएव इस ओर मति
अतिव आती नहीं, चित्त में सुरुचि समु-
चित समाती नहीं। पर सुजन वृन्द या
सुहृद-जन-संघ की ओर से की गयी
प्रबल यों प्रार्थना विवशता-विवश स्वी-
कार्य होती हुई जगत् के बीच है
प्राय देखी गयी।

अतः लिखना उचित
जीवनी का हुआ, शक्ति अनुसार कुछ
सार संयुक्त, यद्यपि लगै कार्य यह
निपट एक भार है।

आगरा प्रान्त की
फ़िरोजाबाद तहसील में जौधरी
नाम एक ग्राम है। वहाँ अगले समय
में कुछक काल तक, किम्वदन्ती कथित,
विप्र-वर वंश एक नृ-कुल-अवतंस, अघ-
संघ-विध्वंस-कर, भूमि-पति था, सकल
अंश

अंश में सुकुल-आचार-परिपूत, सुवि-
चार-संभूत-गुण-आढ्य, शुचि-भावना-
भरित, शुभ-चरित-परिवार-परिपूर्ण, मति-
मान-मूर्द्धन्य, अज्ञान-तम-शून्य, विद्-
वान-जन-मान्य, राजन्य-गण-पूज्य, बहु-
देश-विख्यात, अवदात-यश-राशि, कृत-
विद्य, अतिहृद्य, प्रतिपत्ति? (पात्तं?)-सम्पन्न, अति-
भद्र, अविषस्म, सुमनस्क, सुव्यस्क, शुचि
वृत्त, सात्विक बली। देश पञ्जाब था
आद्य उसका सुभग, ज्ञाति षट्कुल विदित
सुघर सारस्वत प्रवर पाठक सुवि-
ख्यात विप्राग्रणी।

एक से एक बढ़
उदित नर-वर हुए उस विशद वंश में
जो सुयश-धाम हैं; उन्हींमें इस विनत
दीनजन के पुनः पुनः स्मरणीय; अति
समादरणीय, नमनीय-आचरण, सुर-
वन्द्य,

वन्द्य, पितृ-चरण का परम पावन, अतिव
श्रुति-सुहावन, सुजन-हृदय-भावन, दुरित-
व्रत-नसावन, प्रपंत-शान्ति-लावन, सतत
सकल-जग-पूज्य, आराध्य शुभ नाम है।
सु-गुण-सम्पन्न थे वह महा-महिम, मृदु

शील सौन्दर्य सौजन्य शुचि मूर्ति, कम-
नीय-वपु-कान्ति-तेजस्विता-स्फूर्ति-मं-
डल-अलंकृत अखंडल-अटल-कीर्ति; अति
सदय, शुचि-हृदय, शुभ-उदय, धृति-निलय, धृत-
अखिल-आचरण-हित-यम-नियम नीति, त्यों
शुचि-समागम, सुजन-साधुजन-प्रीति, अति
सुदृढ़-संकल्प थे, सरल-ऋषि-कल्प; नर ऋषभ, अवि-
कल्प-मति; अतिव-आनन्द-अनुभूत, शुचि-
सुघर-सात्विक-प्रकृति; सुहित-पर, सुकृत घर
अनघ-गति; सुलभ-रति, वचन-रचना-चतुर
विमल-वाणी-विशद-कल्पना-पूत।

गो-
पाल-पद-भक्त, गृह-बाल-अनुरक्त, द्विज-
कृत्य-कटि-बद्ध; सद्भाव-प्रेरित सुकृत-
सतत-सन्नद्ध, बहु-दीन-प्रतिपाल, जग-
जाल सुविमुक्त। पर निपट धनहीन थे,
गृह्य व्यवहार में तदपि अक्षीण थे,
क्षुस्म-पथ-अनुसरण में न अणु दीन, त्यों
त्रिजग-प्रिय-प्रेम-पथ-पथिक; सुप्रवीण थे
नाम था कलित-कमनीय-गुणग्राम, मा-
धुर्य-संमिलित, महनीयता-धाम; शुचि
आर्य, सूच्चार्य, श्रुति-सुखद, उरधार्य, वुध-
वर्य लीलाधर, अतीव अभिराम।

(२)

उस
ग्राम में, स्मरण-रमणीय-प्रिय-नाम में
जन्म अपना हुआ। अब्द उन्नीस सो-
लह असित माघ निशि अर्द्ध चौदस रविन-
वार वर लग्न भूषित प्रपत याम में।

ग्राम वह उस समय सकल सुख ठाम था,
शान्ति का सुमति-सम्पन्न विश्राम था,
जहाँ पर सर्वदा कभी निष्काम और
कभी शुचि कामना-मिलित अभिराम हो-
ता रहै पुण्य का कुछ न कुछ प्रेम-मय
सार्विक क्षेममय, सुरस्पृहणीय, कम-
नीय शुभ काम था।

यादवों का वहाँ
भूमि-स्वामित्व था, जिन्हें स्थानीय कुछ
प्राप्त नामित्व था, यदपि धन-धरणि-सं-
पर्क-संजनित दुर्धर्ष दुर्वृत्त व्यव-
हार-मूलक उन्हें लोक-अपवाद भी
प्राप्त कुछ कम न था।

एक वयोवृद्ध उन-
में पुरुष-श्रेष्ठ थे; बृहत परिवार भर
में वही ज्येष्ठ थे। रूप में सुघर, आ-
कार में भव्य, व्यवहार में शुद्ध; बर-
ताव में शिष्ट थे। नाम ठाकुर लछी
राम सिंग् ख्यात था, घर "हवेली" तथा
"गढ़ी" कर ज्ञात था।

ज्ञात नहिं किस विकट
जाल के बीच पड़, उन्होंने या किसी
पूर्व जन ने बहुत अल्पधन में रेहन
गाँव वह रख दिया कोटिला ग्राम के
आ–प ? के पास जो उसी कुल से अतिव
निकट सम्बद्ध था। फिर किसी भाँति उस
से न वह छुट सका। आज वह वंश अति
दुर्दशा-ग्रस्त है; द्रोह से दग्ध दा-
रिद्रय से ध्वस्त है। ग्राम में आज औ-
छराड्य का राज है; अनवरत पतन का
सज रहा साज है।

वहाँ कुछ वैश्य भी
विभव-सम्पन्न थे; धर्म में जैन, बहु-
नम्रता-ऐन सब, सुघर सन्तान धन-
धान्य से धन्य, उस ग्राम में सदृश उन-
के न जन अन्य थे। किन्तु वह भी अधो-
गमन में लग्न थे; कुमति-कृत कलह के
पंक में मग्न थे। आज दिन वह दुखित
दीन दुःखस्थ हैं; आत्म-अस्तित्व में
अतिव अस्वस्थ हैं।

उसी विधि दीखते-
सुखित कृषिकार थे, प्राय उनके सभी
श्लाघ्य व्यवहार थे। आज वह भी निपट
भिन्न हैं हो रहे, स्वात्मगत स्वत्व के
चिह्न हैं खो रहे।

घर हमारा विभव
में न अभ्यस्त था, धार्मिक व्यसन में

हो रहे व्यस्त था, आज वह भी नहीं
विपद से रहित है, कर चुका बहुत कुछ
आत्मगत अहित है।

ग्राम उस समय जिस
समय की है कथा, दूर तक प्रान्त के
बीच विख्यात था। दृश्य उसका अभी
हृदय पर है खिंचा, स्पष्ट जैसा कि हो
आज ही का रचा।

एक प्राचीन "पर-
कोट" जिसका अधिक भाग था भग्न और
भूमि से मिल रहा मूल से लग्न जिस-
के कि खाई खुदी कहीं देती दिखा-
ई कहीं लुप्त थी। बीच उसके कहीं
सजल कीचड़, कहीं सघन-काई-सनी
पड़ी बेलें सिंघाड़े तथा कमल की
सरल कहिं कुटिल कहिं पड़ी रहती बहुत
थीं मनोहर बड़ी। कहीं पर उसीमें
खेत रहते सजे सघन सुन्दर हरे
ललित शोभा-भरे। साग भाजी सरस
बेल पल्लवित मृदु फूल बहु रंग के
मंजु मिश्रित खिले। आम के बहुत से
बाग थे ग्राम के पूर्व पश्चिम व उत्-
तर दिशा में खड़े। पूर्व कुछ दूर एक
किंशुकारण्य था, जहाँ पर वन्य वा-
राह मृग शशक त्यों अन्य वन जन्तु अनि-
रुद्ध स्वातन्त्र-संयुक्त थे विचरते।
बाग और ग्राम के मध्य बहु दूर तक
भूमि थी नग्न नीची मृदुलता-मयी
बीच जिसके रहे गढ़े गहरे बड़े
कीच-संकुलित बहु मलिन जल के कई।
तहाँ सारस रहें ध्यान में लीन थे,
क्योंकि उस सलिल में बसे बहु मीन थे;
अन्य पक्षी कि जो मीन-भक्षी रहे
आय वह भी वहाँ प्रायः मंडलायँ थे
ग्राम शूकर तथा महिष के वृन्द भी
अमित आनन्दयुत नित्य थे क्रीड़ते।
तथा भंगी प्रभृति निम्न जातीय जन

जाल थे मछलियों के लिए डालते,
दृश्य उनका सभी को लगै घृण्य था
ग्राम का उच्च जातीय समुदाय जिस
को निरख प्राय हो जाय अति खिन्न था।
तदपि वह ग्राम शुचि प्रेम का स्थान था
हृदय में सभों के सदा उसका सुदृढ़
निहित हित कामना सहित अभिमान था।
पास उसके बसे और जो ग्राम हैं
निम्न निर्दिष्ट उनके सुभग नाम हैं:--

१ सराय नूर महल	९ उदीगढी
२ महराजपुर	१० सोंठिकौ नगरा
३ रंछोर गढ़ी	११ सुनावई
४ सिकाद (सखावत) पुर	१२ रुदऊ
५ हिम्मतपुर	१३ रामपुर
६ फते (फतह) गढ़ी	१४ हुसेनपुर
७ खेरिया	१५ सदा गढी
८ गोंदई	

बाल्य से विदित श्रुति मधुर प्रिय नाम ये,
स्मरण-मन-हरण, कृषि कर्म मर्म सं-
मनन श्रम-स्वेद, उर-खेद तर तम सुगम
रीति-सम्बुद्ध मति भीति भ्रम ग्राम्य जन
ज्ञान-विज्ञान-संजनन सुखधाम हैं
दक्षिणी सीम पर सुघर शाही दड़ा
आगरे को चला गया सीधा बड़ा;
ओर पश्चिम, अधिक उपवनों से जड़ा;
दूर उत्तर अवधि विपुल ऊसर पड़ा।
दड़े के निकट कुल-सती का स्थान है।
पंद्रवी शताब्दी बीच सुगृहीत शुभ
नाम श्री नरोत्तम शर्म पाठक प्रयत-
पाणि पीड़ित प्रिया श्रीमती देविलौं-
गाभिधा यहाँ पर सती सद्विधि हुईं;
अतः उस स्थान का तीर्थ सम मान है।
सती-मठ मध्य संनिहित शिव-लिंग है।
प्राय होता वहाँ पर अतः ग्राम के
सुजन समुदाय का सांध्य सत्संग है।
पाठकों के सकल मांगलिक कार्य का
सती-अर्चन अनुल्लंघ्य एक अंग है।

अतः उसका कोई कुलज करता नहीं
इस सनातन कुलाचार को भंग है।
उत्तरी अलँग में अनति ही दूर एक
अल्प कृषि-भूमि "ठेरा" सुविख्यात है-
अंश अवशिष्ट उस वंश-संपत्ति का
पूर्व जिसकी कही जा चुकी बात है।

(३)

पूर्व आषाढ़ नक्षत्र था जन्म का,
नाम "भूधर" तदनुसार रक्खा गया;
किन्तु पश्चात् कब किसीको ज्ञात नहिं
नित्य का नाम किस भाँति "श्रीधर" पड़ा।
नामकरणादि का स्मरण कुछ भी नहीं,
अक्षरारम्भ का बना कुछ ज्ञान है।
किन्तु उस समय पर किया था रुदन बहु,
पठन में रुचि न थी, चित्त उद्विग्न सा,
रुग्न सा रहा कइ एक दिन क्रोध-भय-
भ्रान्ति घिन व्याकुलित शान्ति बिन निपट निर-
विस्म निस्तेज। क्या हेतु था ज्ञात नहिं।
वर्णमाला बड़ी कठिनता से पढ़ी।
पिताजी को उसे सिखाने में मुझे
कई दिन तक बहुत अधिक मिहनत पड़ी।
सातवें वर्ष आत्मीय उत्कर्ष-प्रद
सकल सुकुलीन ग्रामीण जन हर्ष कर
सुमत शास्त्रीय सुविमर्श पूर्वक सुनिर-
णीत शुचि प्रयत विधि सहित उपनयन का
स्वकुल अनुकूल उत्सव अनुष्ठित हुआ।
मंत्र-दीक्षा मिली पूज्य पितृ चरण से
पूर्व-जन-प्रथित-पथ-उचित-अनुसरण से।
विनय शिक्षा, प्रणति, प्रण, तितिक्षा, प्रणय
सुवच, शुचिता, सुजन-संग, अनुदिन नियम-
बद्ध संध्या-त्रितय, आदि अनवद्य उप-
मोल मिलने लगे, स्नेह-मधु में पगे।

ग्यारवें वर्ष में व्याह व्यवहित हुआ
मधुपुरी पुरी से अनति दूरस्थ गो-
कुल महावन निकट, कृष्ण-व्रज-गोपिका-
केलि-लीला-निलय-सुखद-सान्निध्य-गत
चौहरी नाम सौन्दर्य-निधि ग्राम में।
श्वसुर-कुल यदपि सामान्य कुल था, तदपि
सुकुल था, सकल सम्मान-भाजन, सुजन-
वृन्द-वन्दित-सुयश विमल-चारित्र्य-घन
सौम्यता, भद्रता, नम्रता के लिए
विदित था वह भली भांति उस ठाम में।
उस सुकुल की सुता, सकल-सद्‌गुण-युता,
देव कन्या सदृश रूप छवि की लता
काल की चाल के विवश इस बाल की
बनी दस साल की बाल-पत्नी प्रिया।

(४)

अक्षरारंभ के बाद बहु काल तक
कठिन क्रम से नियत पठन चलता रहा,
पिताजी के निकट कभी घर पर, कभी
मदरसे में, तथा कभी टलता रहा।
पिताजी ने ततः कौमुदी का करा-
या स्वयं सविधि आरंभ सुमुहूर्त से।
संधि का भाग श्रम सहित उनसे पढ़ा,
शेष क्रमबद्ध भागीरथी पुरी से।
थे परिव्राजक-प्रवर वह विज्ञ व्युत्-
पन्न वैयाकरण सुमति सम्पन्न सद्-
व्यसन, सत्संग-प्रिय, यदपि संसार से
विरत, निस्संग अति, सतत सु-प्रसन्न-मन,
प्रयत-आचरण, मानव-सभा आभरण,
विनय-नय-निपुण, सौजन्य के सिन्धु, सद्-
रुचि, सुजन-बन्धु। और छात्र थे वह स्वयं
पितृ-चरण-भ्रात के, नाम जिनका रहा
देश-सुगृहीत श्रीयुक्त शास्त्री जगद्-
विदित धरणीधर। स्वीय कुल दीप, द्विज
वंश-अवतंस, आस्तिक शिरोरत्न, शुचि-
कृत्य-रत-सतत, वह सुपथ-संलग्न थे।
न्याय-दर्शन-निपुण, हिन्दु-मत-तत्वविद्
धर्म-शास्त्रादि-सद्ज्ञान-सम्पन्न थे।
श्वास से किन्तु रहते सदा रुग्ण थे,
त्यों विविध रूढ़ि विश्वास में मग्न थे।
अतः उनके विचारादि बहुधा विषम,
अतिव अनरीति-युत, भीति-भ्रम-भग्न थे।
अतः संसार के काम कम कर सकें;

गूढ़ा कर्मण्यता, दया दाक्षिण्य, दा-
क्षिण्य से युक्त व्यवहार उपचार इ-
त्यादि में पूर्ण साफल्य की प्राप्ति हित
तुष्टि-प्रद, पुष्ट प्राबल्य नहिं भर सके।
अतः शिक्षा न उनसे मुझे मिल सकी,
भ्रात के साथ त्यों प्रीति-प्राकृत प्रथा,
प्रेम परिपक्व जो उचित थी सर्वथा,
क्या विधि एक पल भी नहीं चल सकी।
अतः अध्ययन मेरा सु-क्रम-बद्ध बहु-
काल पर्यन्त सुस्थिर नहीं रह सका;
कठिनतम कारणों के सुसमवाय से
विवशता-विवश विच्छिन्न होता गया।
पिताजी तो स्वयं बड़े पंडित न थे,
उक्त स्वामी बहुत दिन नहीं टिक सके!
संस्कृताध्ययन इस भांति बहु काल को
दैव दुर्दृष्टि से बहुत कुछ रुक गया।

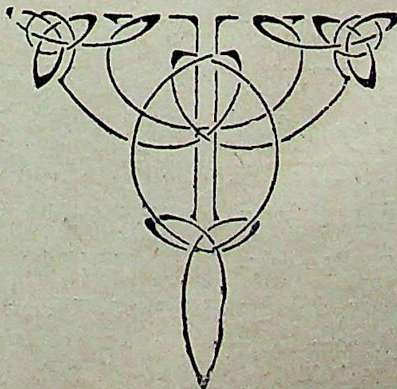
किन्तु मम प्रकृति-गति अतिहि अनिरोध्य थी,
विघ्न-बाधादि से अति अनवरोध्य थी;
अतः मैं स्वयं प्राचीन ग्रन्थादि को,
जो कि घर में धरे विविध बहु-संख्य थे,
किसी भी दूसरे के सहारे बिना,
परम शुचि प्रेम, औत्सुक्य, त्यों सुरुचि से,
नित्य ही देखने तथा पढ़ने लगा,
और यह शौक़ अब रोज़ बढ़ने लगा।
किन्तु इस कृत्य से लाभ अति कम हुआ;
त्वरित अतएव तत्र इसे तजना पड़ा।
और ग्रामस्थ वर्नाक्यूलर स्कूल को,
निपट निरुपाय हो, शरण चलना पड़ा।
स्कूल-क्रम परम आमोद-प्रद था,
निपट नवल था, अतः औत्सुक्य का मूल था,
तथा मम चित्त के अतिव अनुकूल था।
गणित भूगोल इतिहास आदिक विषय
प्रचुर चातुर्य-प्रद रुचिर अति ही लगे,
स्वगृह-प्राचीन-शिक्षण प्रथा त्याग कर
स्कूल में पठन का अतः प्रण कर लिया,
और निज हृदय में प्रबल अभिलाष युत
सु-प्रण-निर्वाह का सु-दृढ़ व्रत धर लिया।

(५)

बरस दो डेढ़ तक स्कूल-अध्ययन क्रम
अति व्यतिक्रम-रहित सुविधि चलता रहा।
बाद को ग्राम तज फिरोजाबाद तह-
सील के स्कूल में युक्त होना पड़ा।

अन्तिम श्लोक--

विपरीततामुपगते हि विधौ
व्यर्थतामेति सकलार्थसाधनम्॥



संस्कृति शब्द तथा उसके अर्थ का इतिहास

डा० वागीश शास्त्री

सम्प्रति संस्कृति शब्द के अर्थ उतने ही प्रचलित हैं जितने संस्कृत भाषा में हरि एवं गो शब्द के। संस्कृत का उल्लिखित शब्दद्वय निश्चित अर्थों का वाचक है। प्रयुज्यमान संस्कृति शब्द तो तत् तद्देशीय समस्त क्रिया-कलापों का निर्देशक माना जा रहा है। चाहे नृत्य गीत, वाद्य हों अथवा याज्ञिक वेदोच्चार, सभी क्रियाएँ संस्कृति शब्द द्वारा अभिव्यञ्जनीय होती हैं।

कुछ विद्वानों के मतानुसार "Culture शब्द का अनुवाद होने के कारण इस अर्थ में प्रचलित संस्कृति शब्द अनुपयुक्त है। कल्चर के मूलभूत शब्द Cultrā का अर्थ कृषि है। अतः कल्चर के अर्थ में 'कृष्टि' शब्द ही प्रयोजनीय है "संस्कृति" नहीं।"

आजकल संस्कृति शब्द जिन अर्थों में प्रयुक्त होता है उनमें से कुछ प्रस्तुत हैं—

१—शोधन, २—उन्नति, ३—जोताई, ४—उत्पत्ति, ५—सभ्यता, ६—विकास, ७—आभूषण, ८—नैतिक अनुशासन, ९—मानवीय व्यक्तित्व की विशेषताओं का समूह, १०—माँजी-सँवारी जीवनवृत्ति, ११—भूषण-भूत कृति प्रभृति। समन्वयात्मक भारतीय दृष्टिकोण से संस्कृति शब्दार्थ प्रस्तूयमान है—

'संपरिभ्यां करोतौ भूषणे' (पा० अ० ६/१/१३७) सूत्र द्वारा √कृ (डुकृञ्) धातु से भूषणार्थ में सुट् प्रत्यय होता है। इसके अनुसार सम्=सम्यक्, शोभन, स्=भूषण (भूत), कृति=क्रिया—संस्कृति शब्द का अर्थ होता है। भाव में क्तिन्, घञ् तथा ल्युट् प्रत्ययों के होने से संस्कृति संस्कार एवं संस्कृत शब्द पर्यायवाचक होते हैं। सुट् प्रत्यय करनेवाला पाणिनि का द्वितीय सूत्र स्मरणीय है—'समवाये च' (६/१/१३८)=समवाय अर्थ में सम् पूर्वक √कृ धातु से सुट् प्रत्यय होता है। कैयट ने 'स्थानेऽन्तरतमः' (१/१/५०) सूत्र के महाभाष्य पर समवाय का अर्थ—'कस्याञ्चिल् क्रियायां मेलनम्' किया है। 'समुदित इत्यर्थः'—पदमञ्जरी। संस्कुर्वन्ति=संघी-भवन्ति—सिद्धान्तकौमुदी। द्वितीय सूत्र के अनुसार 'संस्कृति' शब्द का अर्थ पूर्वोक्त एवं संघीभाव दोनों होंगे।

पाणिनि-प्रतिपादित पूर्वोक्त दोनों अर्थों के न रहने पर भी सम् पूर्वक √कृ धातु से सुट् प्रत्यय देखा जाता है—'संस्कृतं भक्षाः' (पा० अ० ४/२/१६)। व्याकरण भूषण और संघात दो अर्थों का ही प्रतिपादन स्पष्टतः करता है। संस्कृत वाङ्मय में इन दो अर्थों के अतिरिक्त भी अनेक अर्थ उपलब्ध होते हैं। फलतः हम इस शब्द के अर्थ-विकास का परीक्षण सुविशाल साहित्य-प्रांगण में करेंगे।

संस्कार शब्द का अर्थ—

'संस्कारो गन्धमाल्याद्यैर्यः स्यात्तदधिवासनम्' (अ० को० २/६/१३४)='मांगल्य धूप इत्यादि द्वारा वस्त्र अथवा ताम्बूल आदि को सुवासित करने का नाम संस्कार है।' यहाँ 'संस्कार' शब्द से एक का दूसरे को प्रभावित करना अथवा रंग चढ़ाना (**छाप डालना**) अभिप्रेत है।

मेदिनी कोशकार द्वारा संगृहीत 'संस्कार' के तीन अर्थ मननीय हैं—'संस्कारः प्रतियत्नेऽनुभवे मानसकर्मणि' (शब्दवर्ग २३३)

१—प्रतियत्न=गुणान्तराधान, रचना।

२—अनुभव

३—मानसकर्म

वेद से लेकर कालिदास तक के साहित्य में प्रयुक्त संस्कृति (संस्कार) शब्द उक्त तीनों अर्थों में क्रमशः परिलक्षित होता है।

शतपथ ब्राह्मण में इष्टका चयन निरूपण के अवसर पर प्रतियत्न अर्थ में प्रयुक्त **संस्कृति** शब्द—

"अथातः संस्कृतिरेव सा। या अमूरेकादशेष्टका उपदधाति"
(का० ८, अ० ३, ब्रा० १, खं० ११)

तृतीयचितौ या इष्टकाः सन्ति ताभिरुपहृताभिश्चि-त्याग्निरूपस्य प्रजापतेर्लोकस्तदभिमानिदेवतादिरूपः संस्कार एवोत्पाद्यत इत्यर्थः (सायण भाष्य) ='तृतीय चयन में उपस्थित ईंटों के संघात से चित्याग्नि रूप प्रजापति के लोक-सम्बन्धी अभिमानी देवतादिरूपी **संस्कार को उत्पन्न करने का नाम संस्कृति है।**"

शतपथ ब्राह्मण में सोमक्रय रूप यत्न के अर्थ में प्रयुक्त संस्कृति शब्द—

"स जुहोति। सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा"
(का० ४, अ० २, ब्रा० १, खं० ...)

सोमस्य क्रयरूपा या संस्कृतिः क्रियते सा प्रथमा

[अभि]षवादि-संस्काराणां तदनन्तरभावित्वात् (सायण[भाष्य])="अभिषव आदि संस्कारों के पहले सोम खरीदा [जा]ता है। वही खरीदना (अदलाबदली) पहली संस्कृति [है]। वह विश्व=समस्त ऋत्विगों द्वारा वारा=वरणीय [है]।" यहाँ विश्व का अर्थ संसार अप्राकरणिक है।

ताण्ड्य ब्राह्मण में गुणधान अर्थ में प्रयुक्त संस्कृति [श]ब्द—

'[सु]ता इन्द्राय वायवः, इति संस्कृत्यै'

(ता० म० ब्रा० ११, ३, १)

[सं]स्कृति=संस्कारगुणातिशय का आधान (सायण)

शतपथ ब्राह्मण में गुणोत्कर्ष हेतु के अर्थ में प्रयुक्त [सं]स्कृति शब्द—

"[ए]तस्य पुरुषस्य बाहू कुर्यात्. . .एतयोरेव सा संस्कृतिः, एतयोर्वृद्धिः"

(कां० ७, अ० ४, ब्रा० २, खं० ४५)

[सं]स्कृति=गुणोत्कर्ष-हेतुक संस्कार–(सायण-भाष्य)[1]

संस्कारमात्र अर्थ में प्रयुक्त संस्कृति शब्द—

"[दे]वस्थानं भवति प्रतिष्ठायै, संकृतिर्भवति संस्कृत्यै"

(ताण्ड्य महाब्राह्मण १५, ३, २८)

संस्कृति=संस्कार–(सायण-भाष्य)[2]।

ताण्ड्य महाब्राह्मण के अनुसार सामवेद का नाम [सं]कृति है क्योंकि साम से संस्कार किया करता था—

"संकृतिना समस्कुर्वंस्तत् संकृतेः संकृतित्वम्, देव-[स्था]नेन वै देवाः स्वर्गे लोके प्रत्यतिष्ठन्" (१५, ३, २८)।

"[संस्कृति]=संस्कार का साधन होने के कारण साम का नाम [सं]कृति, संकृतित्व हुआ। अतः वह संस्कृति से युक्त है"—(सायण-भाष्य)।

फलस्वरूप प्रथमतः √कृ धातु से सुट् प्रत्यय नहीं [लग]ता रहा। संकृति का विकसित रूप संस्कृति वेदितव्य है।

ऐतरेय आरण्यक में संस्कृति शब्द 'अतिशय हेतु' [अ]र्थ में प्रयुक्त हुआ है—

"यानि दश नव प्राणा: आत्मैव दशमः, सात्मनः संस्कृति-[रे]तावद्धा उक्थं तेऽश्नुते यद् यत् कामयते य एवं वेद"

(१, ३, ७)।

१—संस्कृतिर्गुणोत्कर्षहेतुः संस्कारः।
२—संस्कृत्यै=संस्काराय।

संस्कृतिः=अतिशयहेतुः (सायण)। यह अतिशय हेतु प्रभाव (छाप) के अतिरिक्त कुछ नहीं।

अमरसिंहकृत नामलिंगानुशासन में क्रिया=कृति के नौ अर्थ दर्शनीय हैं—

आरम्भो निष्कृतिः शिक्षा पूजनं संप्रधारणम्।
उपायः कर्म चेष्टा च चिकित्सा च नव क्रियाः॥

१—आरम्भ, २—निष्कृति=प्रत्युपकार, ३—शिक्षा, ४—पूजन=सत्कार, ५—संप्रधारण=निश्चय, ६—उपाय=उद्योग, ७—कर्म, ८—चेष्टा=इच्छा-पूर्वक यत्न, ९—चिकित्सा=सुधार।

वाजसनेयी संहिता में सत्कार (संस्कार) अर्थ में प्रयुक्त संस्कृति शब्द—"सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा" (७,१४)=सोम-क्रय के अवसर पर किये गये उसके सत्कार को संस्कृति कहते हैं। वह सत्कार-रूप संस्कृति विश्ववारा इसलिए है क्योंकि इस अवसर पर ऋत्विक् अनृत्विक् सब लोगों द्वारा सोम का वरण किया जाता है। अथवा उस सोम (सत्कार) में जगत् की उत्पत्ति का बीज संनिहित है। अतः वह विश्व को व्याप्त करता है।[1]

अमरकोश में क्रिया=कृति मात्र का पूजन=सत्कार अर्थ स्मरणीय है। उक्त मन्त्र में संस्कृति का सत्कार अर्थ प्रसंगात् सोम सम्बन्धी जानना चाहिए।

श्रीमद्भागवत में पवित्रीकरण रूप संस्कार अर्थ में प्रयुक्त संस्कृति शब्द—

"पुरोधसा ब्राह्मणैश्च यथावद् द्विजसंस्कृतिम्" (१०/४५/२६)।

संस्कृति=संस्कार अर्थ में √वज तथा √व्रज धातु—

√वज √व्रज संस्कृतौ—वोपदेव (चुरादि परस्मैपद)।

इनसे वाजि, व्रज एवं परिव्राजक शब्द निष्पन्न होते हैं।

उक्त ग्रन्थों में 'संस्कृति' शब्द प्रतियत्न अनुभव और मानस कर्म अर्थों में प्रत्यक्षतः प्रयुक्त हुआ है। अन्य प्रसिद्ध अप्रसिद्ध ग्रन्थों में यह शब्द प्रायः उपलब्ध नहीं होता। अतः

१—संस्कृतिः=सोमसत्कारः क्रियते सोमक्रये। विश्ववारा=विश्वैः सर्वैर्यत्र सोमो व्रियते। विश्वं वृणोति वा। सोमे क्रीयमाणे यत्र जगदुत्पत्तिबीजत्वात् सा विश्ववारा संस्कृतिः (उव्वटभाष्यम्)।

विश्वैः=सर्वैर्ऋत्विग्भिरनृत्विग्भिश्च व्रियते यत्र सोमः सा विश्ववारा। यद्वा विश्वं वृणोति क्रीयमाणः सोमो यत्रेति विश्ववारा,-जगदुत्पत्तिबीजत्वात् (महीधरभाष्य)।

अर्थ-शृंखला की अवच्छिन्नता के हेतु हम तत्समानार्थक संस्कार शब्द उपस्थापित करेंगे। आकार-प्रकृत्यन्तर होने पर भी दोनों में अर्थ-साम्य अवस्थित है।

उदाहृत संस्कृति शब्द का अर्थ भूषणभूत कृति नहीं है। यहाँ अर्थ है—उत्तरोत्तर जायमान क्रियाओं की समुदित छाप। संस्कृति क्षण मात्र में घटित घटना-विवरण नहीं है। वह तो अनेक क्रियाओं के संघात से कलित भावना-विशेष है—(संस्कारः=भावनाख्यः, (तर्कसंग्रह पर अन्नं भट्ट की टीका) भावना=क्रिया)। सम्=सिलसिलेवार, पुनः—'स्' (सुट्)= सामुदायिक रूप में आ गयी, कृति=क्रिया का नाम संस्कृति है। फलतः किसी भी देश की संस्कृति अपने में शत-सहस्र वर्षों का इतिहास उपगूहित रखती है। अतः संस्कृति तथा इतिहास पर्याय-वाची शब्द नहीं हैं। इतिहास केवल भूतकालिक सूचना देता है। संस्कृति सातत्य-बोधिका है। सभ्यता-असभ्यता की परिभाषाएँ सार्वभौम समत्व की प्रतिपादिकाएँ नहीं होतीं। भारतीय सभ्यता विशेष का आफ्रिका आदि देशों में असभ्यता-विशेष, वहाँके सभ्यता-विशेष का भारत आदि देशों में असभ्यता-विशेष, हो जाना संभव है। अतः संस्कृति शब्द से सभ्यता की समानार्थकता सुतराम् दुष्प्र-योजनीय है। संस्कृति का अर्थ तो है—(एक दूसरे पर) क्रमिक प्रभाव (छाप) पड़ने का समुदित रूप।

संस्कृति का अर्थ समझने के लिए एक बात यहाँ सुमननीय है—कृति=क्रिया मात्र के उच्चारण करने पर प्रधान क्रिया (समुदाय) में अनुस्यूत रहनेवाली अनेक क्रियाओं का बोध स्वतः हो जाता है।[१] उदाहरणतः पचाना क्रिया को ही लीजिए। इसका उच्चारण करने पर—१—भोजन बनाने की इच्छा, २—तत्पूर्त्यर्थ यत्न, ३—उठना, ४—कोयला आदि लाना, ५—चूल्हा उठाना आदि, ६—कोयला आदि भरना, ७—तेल आदि डालना, ८—आँच लगाना, ९—दाल-चावल बीनना (साफ़ करना), १०—बटलोई में पानी भरना, ११—चूल्हे पर चढ़ाना, १२—नमक आदि छोड़ना, १३—शाक छीलना, १४—दाल आदि चलाना, १५—आटा गूँथना, १६—दाल उतारना, १७—शाक छौंकना, १८—तवा चढ़ाना, १९—रोटी पोना, २०—सेकना आदि दर्जनों क्रियाओं के साथ या अनन्तर एक कृति होती है—'पकाना'। यदि हम कहते हैं—'भोजन पकाना है', तो पूर्वोक्त समस्त क्रियाएँ, पकाना रूप क्रिया-उच्चारण के साथ ही, हमारे मस्तिष्क में चित्रवत् उपस्थित होने लगेंगी। यह 'पकाना' कृति समस्त क्रियाओं की समुदित कृति है। 'पकाना' क्रिया के उच्चारण करने पर किसी एक क्रिया को निर्दिष्ट नहीं किया जा सकता। यदि यह कृति सिलसिलेवार विधि-विधान के साथ पायी गयी हो अथवा पायी जा रही हो तो संस्कृति है। यह स्वाभाविक होती है तथा (मान-वीय) भावनाओं का प्रतिनिधित्व करती है। इसके साथ भूषण-अभूषण का प्रश्न ही नही उठता। अ-भूषण भूत कृति=संस्कृति—यह अर्थ हृदयावर्जक नहीं है। संस्कृति विभिन्न देशों में विभिन्न प्रकार से पायी जाती है। अतः इसका अर्थ भूषण-अभूषण शोभन-अशोभन करना अवाञ्छनीय है।

खजुराहो के मन्दिर उस काल की क्रिया-विधि को व्यक्त करते हैं। उस काल के मनोभावों की छाप (संस्कार) का स्मरण दिलाते हैं। उन्हें (हेतु को) ले-कर हम इतिहास (साध्य) का पता लगा लेते हैं।

इसी सिलसिलेवार स्वाभाविक क्रिया ने पत्र… शिष्टता (बहुमत) का रूप धारण कर लिया। शि… अर्थ परवर्ती है। नियमों की पश्चात्तनता सर्वदोदि… हैं। दोष-गुण-विवेचन-पुरस्सर काट-छाँट का नाम सु… है। संस्कृति मानव-मनोभावों की प्रतिकृति है। नैस… मनोभाव को तत्क्षण गुण-दोष-रूपेण विभक्त नहीं कि… जा सकता। गुण दोष विवेचन पीछे की कल्पना है। … राहो की मूर्तियों में, तथाकथित सभ्यताभिमानियों की … में, दोष दिखलाई पड़ेंगे। अतः वे सुधारणीय हैं… सुधरी न होने पर भी वे मूर्तियाँ तात्कालिक जन-मनो… का स्मरण दिलाती हैं। वह संस्कृति है।

यहाँ संस्कृति का अर्थ है—प्रभाव (छाप) … संक्रमण। विश्व-संस्कार विधियाँ इन अर्थों में सु… हैं। भारतीय संस्कार—विवाह संस्कार, गर्भाधान सं… पुंसवन संस्कार, सीमन्तोन्नयन संस्कार आदि। पाश्… संस्कार—बपतिस्मा आदि। इन संस्कारों की इति… व्यता केवल अपनी छाप छोड़ने में है। शुद्धि-अशुद्धि …

१—नानाक्रियाः कृषेरर्थाः । नावश्यं कृषिर्विलेखन एव वर्तते। किं तर्हि? प्रतिविधानेऽपि वर्तते। यदसौ भक्तबीजबलीवर्दैः प्रतिविधानं करोति स कृष्यर्थः (महा-भाष्य ३, १, १२६)

...नुरूप कल्पनामात्र है। जटाधर ने संस्कार को शुद्धि ...ही है। शुद्धि की व्याख्या है—अदृष्टविशेष-जनककर्म। ...का अर्थ होगा—छाप डालकर एक नया (विलक्षण) ...प्रदान करनेवाला कार्य। ऐतिह्य श्रृंखला का योजक ...पुनः इस प्रकार है—

वाजसनेयी संहिता में उपकरण अर्थ में प्रयुक्त सम् ...√कृ धातु-'संस्कृतम्' (वा० सं० ४, ३४)= सर्वो-...करणयुक्त—(उव्वटभाष्य)।

मनु के अनुसार विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त संस्कार (=संस्कृति) शब्द—

...: शरीर-संस्कारः (मनु० २/२६)=गर्भाधानादिशरीर-संस्कार (कु० भट्ट)

...संस्कारार्थं शरीरस्य (मनु० २/६६)=शोधनार्थम् (कु० भट्ट)

...संस्कारो वैदिकः स्मृतः (मनु० २/६७)=उपनयनाख्य (कु० भट्ट)

...संस्कर्ता चोपहर्ता च (मनु० ५/५१)=पाचकः=रसोइया (संस्कारः=पाचनम्)

...गर्भिणी संस्क्रियते (मनु० ९/१७३)=परिणीयते (कु० भ०)। संस्कार (संस्कृति)=परिणय

महाभारत के अनुसार भाव, भावित (=भावना) रूप संस्कार—

...भावितम् (म० भार० १२,३,२१६,९)=संस्कृतम् (नीलकण्ठ)

...भावः (म० भार० १२,३,२७५,९)=पूर्वसंस्कारः (नीलकण्ठ)

महामुनि पाणिनि के अनुसार छः अर्थों में प्रयुक्त सम् ...√कृ धातु (संस्कृत)—

१. संपरिभ्यां करोतौ भूषणे (पा० सू० ६/१/१३७)=भूषणे।

२. समवाये च (पा० सू० ६/१/१३८)=संघाते।

३. संस्कृतम् (पा० सू० ४/४/३)=सत उत्कर्षाधानं संस्कारः।

४. संस्कृतं भक्षाः (पा० सू० ४/२/१६)=विनियोगे (संक्रमणे)।

५. संस्कारे (धा० वृ० १०/८३, क्षीरत० १०/२३५)=√मार्ग।

६. संस्कारे (धा० वृ० १०/८३)=√व्रज।

बौद्ध-मत के अनुसार संस्कार—

संस्कारबन्ध—पुण्यापुण्य आदि धर्मसमुदाय (सूत्र १, अ० १, उ०)।

संस्कार स्कन्ध—राग द्वेष मोह मद मात्सर्य भय शोक और विषाद आदि चित्तज धर्मों को संस्कार-स्कन्ध कहते हैं (वैभाषिक सौत्रान्तिक मत)

भगवान् पतञ्जलि के अनुसार संस्कारार्थक एक अन्य शब्द—

'अनुभूतविषय'—समस्त (तत् तत्) वृत्तियों के अनुभव होने पर (तत् तत्) संस्कार होता है (यो० सू० १/११ की भास्वती टीका)।

न्याय-मत में संस्कार(=संस्कृति) को गुणविशेष माना है। वह तीन प्रकार का होता है—

१—वेगसंस्कार—मूर्त पदार्थ-स्थायी। कहीं वेगजन्य, कहीं कर्मजन्य।

२—स्थिति-स्थापक संस्कार—पृथिवी, जल तेज तथा वायु का गुण, अतीन्द्रिय एवं स्पन्दन का कारण।

३—भावना संस्कार—यह आत्मा का अतीन्द्रिय गुण है। उपक्षा से भिन्न, निश्चयजन्य। यह स्मरण तथा पहिचान में हेतु होता है (भाषा-परिच्छेद)

वाचस्पति के अनुसार संस्कार के सात अर्थ होते हैं—

१—गुणान्तराधान रूप प्रतियत्न (संक्रमण)। उदाहरणतः अलंकार रत्न और वस्त्र प्रभृतियों का क्रमशः उद्दीपन तीक्ष्णीकरण और मार्जन इत्यादि।

२—व्रीहि आदि को यज्ञांग बनाने के निमित्त वैदिक मार्ग से सिंचन का नाम संस्कार।

३—शास्त्राभ्यासजन्य व्युत्पत्ति।

४—व्याकरण शैली से शब्दसाधन-प्रकार।

५—गर्भाधान आदि षोडश संस्कार।

६—क्रिया-कलाप तथा

७—पाक।

महाकवि कालिदास ने रघुवंश में संस्कार के तीन अर्थ बतलाय हैं—

१—प्रतियत्न (गुणान्तराधान रूप)—'प्रयुक्तसंस्कार इवाधिकं बभौ (३/१८) संस्कार=शाणोल्लेख आदि (मल्लिनाथ)।

२—अनुभव—'संस्काराः प्राक्तना इव' (१/२०)—संस्कार =पूर्वकर्मवासना (मल्लिनाथ)।

३—मानस-कर्म—'निसर्ग-संस्कार-विनीत इत्यसौ' (३/३७)
—संस्कार = शास्त्राभ्यास - जनित वासना (मल्लिनाथ)।

शूद्रककृत मृच्छकटिक में संस्कार का अर्थ होता है—निश्चय (बुद्धि, विचार)—

"अहो! स्थिरसंस्कारता व्यवहारार्थिनः"='प्रतिवादी का दृढनिश्चय आश्चर्योत्पादक है' (मृच्छ० अंक ९, पञ्चम श्लोक के नीचे का गद्य)।

भट्टिकाव्य में संस्कार (सम्पूर्वक √कृ धातु) का अर्थ योग्यता-प्राप्ति होता है—

'यज्ञियैः संस्कृता द्विजैः' (भट्टि० ७/४५)=योग्यत्वमापादिता (जयमंगला)

प्रणयन संस्कार का उल्लेख शिशुपालवध (१४/२२) में प्राप्त होता है। हेमचन्द्र ने संस्कार के तीन अर्थ दिखलाये हैं—(१) वासना, (२) भावना, तथा (३) अनुभूत का अविस्मरण (अभिधानचिन्तामणि १३७३)।

नानार्थ संग्रहकार ने दो अर्थ बतलाये हैं—(१) संकल्प (निश्चय) और (२) यत्न (५८)। शाश्वतकोश संकल्प तथा प्रतियत्न दो अर्थों का अनुमोदक है (५५८)। अनेकार्थ संग्रहकार मेदिनीकोश का अनुगमन करते हैं (३, ६१०)।

महाभारत आदि ग्रन्थों में क्रिया का अर्थ संस्कार (संस्कृति) होता है। यहाँ संस्कृति क्रियामात्र को विज्ञापित करती है—

कर्तुम् (महाभारत ४/१/९/१८)=संस्कर्तुम् (नीलकण्ठी)।

कुरुते (महाभारत १२/३/२७०/२)=संस्कुरुते (नीलकण्ठी)।

शून्यानलकांश्चकार (रघुवंश ६/२३)=संस्कृतवान् (मल्लिनाथ)।

कृतक्रियः (रघुवंश ८/४)—क्रिया=अभिषेक-संस्कारः (मल्लि०)।

संक्षेपतः कल्चर (culture) के मूल रूप कुल्ट्रा (cultrā) का अर्थ कृषि होने के कारण कल्चर का अनुवाद 'कृष्टि' करना अतितराम् असंगत होगा। इस प्रकार के अर्थों को व्यक्त करने वाला संस्कृति संकृतिं (साम)—समान ग्रन्थों में प्रथमतः विद्यमान है। कुल्ट्रा >कल्चर शब्द वाले देशों की संस्कृति का प्रक्रम भले ही कृषि से हुआ हो। अधिक संभव है भारतीय संस्कृति का श्रीगणेश विनिमय से हुआ हो। भारत-भू बिना जोते-बोये अन्न-राशि उगलती थी—अकृष्टपच्या। जोतना-बोना पश्चात्-नतर है। संस्कृति शब्द की प्रयोजनीयता कृषि अर्थ में भी हो सकती है, यह बात अन्य है। भूमि का भी संस्कार होता है। 'हलषष्ठी' इसका एक विशेष संस्कार दिवस है। प्रस्तुत लेख में निरूप्यमाण ऐतिहासिकता की दृष्टि से भारतीय संस्कृति का उपक्रम कृषि को लेकर नहीं हुआ है।

'यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्'=कच्चे मिट्टी आदि के पात्र पर चढ़ाया गया रंग नहीं मिटता के अनुसार संस्कार (=रंग आदि) अभिनव अथवा नवीन-सदृश (ग्राहक) वस्तु पर स्थिर होता है। वहां किसी अन्य क्रिया का संस्कार पुनः दुश्शक होगा। बलाबल के दृष्टिकोण से एक वस्तु पर अनेक संस्कार भी संभव हो जाते हैं। यह आदि संस्कार अथवा अविभाज्य संस्कार-संक्रमणता—सिलसिलेवार कार्यसमुदाय—संस्कृति है। मनोभावों (व्यक्तियों) की छाप है। मनोभावों के विनिमय का प्रतिफल है। विकास इसमें स्वतः परिदृश्यमान है। अतः किसी विशेषण को न जोड़कर 'पारम्परिक क्रिया-समुदाय' का नाम संस्कृति माननीय है।

'संस्कृति' शब्दार्थ के क्रमिक परिवर्तन का इतिहास चक्करदार नहीं है। यह शब्द मूलतः 'प्रतियत्न'=(संक्रमण, रचना), सामग्री आदि अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—शतपथ ब्राह्मण, महाभारत पाणिनि आदि। शनैः शनैः इसका अर्थ स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर विकसित होने लगा। तदनन्तर संस्कृति शब्द अनुभव अर्थ में उपलब्ध होता है—ताण्डच महाब्राह्मण (११,३,१), रघुवंश (१/२०)। अर्थविकास की तृतीय धारा में प्रकृत शब्द मानस कर्म अर्थ में प्रयुक्त होने लगा—महाभारत (१२, २१६, ९), रघुवंश (३, ३७), मृच्छकटिक (९, ५) तथा भट्टिकाव्य (७, ४५)। मानस कर्म का अर्थ है—विचार, वासना, भावना, योग्यता-प्राप्ति आदि। तृतीय धारा-गत विकसित अर्थ अद्यतन प्रयुज्यमान-'संस्कृति' शब्द में मननीय है। उत्तरोत्तर जायमान क्रियाओं की समुदित छाप अर्थ का विकास 'विचार-संदोह' एतदर्थ हो जाता है, क्योंकि किसी भी क्रिया में मनोभाव-विशेष (=व्यक्तित्व) का संस्कार विद्यमान रहता ही है। क्रमेण अवरोह की विलोम दशा में 'संस्कृति' द्वारा प्रतियत्न=रचना आदि अर्थों को व्यक्त करने की संभावना स्थिर है।



अमेरिकन राष्ट्रपति का चुनाव

श्री परिपूर्णानन्द वर्मा

(अगले नवम्बर में अमरीका के राष्ट्रपति का पंचवर्षीय चुनाव होगा। वहाँ दो राजनीतिक दल हैं: डिमोक्रेटिक दल और रिपब्लिकन दल। रिपब्लिकन दल ने सिनेटर बारी गोल्टवाटर को इस पद के लिए खड़े करने का निश्चय कर लिया है। जैसा कि प्रायः निश्चित ही था दूसरे दल की ओर से वर्तमान राष्ट्रपति श्री जान्सन खड़े किये गये हैं। अमरीका इस समय संसार का सबसे धनी ही नहीं, प्रायः सबसे शक्तिशाली देश है। आज रूस और अमरीका ही में भयंकर आणविक अस्त्रों द्वारा संसार को नष्ट कर देने की शक्ति है। इतना ही नहीं, उसकी आर्थिक और राजनीतिक नीतियों पर संसार की उन्नति और शान्ति निर्भर है। इसलिए सारे संसार की आँखें इस चुनाव पर लगी हैं। अमरीका में राष्ट्रपति को युद्ध और शान्ति के असीम अधिकार हैं। इसलिए अमरीका के राष्ट्रपति का चुनाव केवल स्थानीय महत्त्व का नहीं है। किंतु वहाँ राष्ट्रपति के चुनाव की प्रक्रिया भारत से बिलकुल भिन्न है। श्री परिपूर्णानन्दजी वर्मा ने यह मनोरंजक और ज्ञानवर्द्धक लेख इस आशय से लिखने की कृपा की है कि 'सरस्वती' के पाठकों को इस महत्वपूर्ण चुनाव की प्रक्रिया मालूम हो जाय और वे चुनाव-सम्बन्धी समाचारों को ठीक तरह से समझ सकें।——सम्पादक)

संयुक्त राज्य अमेरिका में वोटिंग के अधिकार-प्राप्त उम्र के इस समय लगभग ११ करोड़ नर-नारी हैं। इनमें से आशा की जाती है कि लगभग ७ करोड़ व्यक्ति ...ाई १९६४ से लेकर नवम्बर, १९६४ तक होनेवाले चतुर्थ ...वें राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेंगे। वोटर की उम्र ...से कम १८ वर्ष की होनी चाहिये पर सभी प्रदेशों में ...की कैद एक समान नहीं है। उदाहरण के लिए, जार्जिया ...केंटकी प्रदेश में १८ वर्ष की उम्र होनी चाहिए; ...स्का में १९, हवाई में २० तथा अन्य प्रदेशों में २१ ...होनी चाहिए। कुछ प्रदेशों में यह भी जरूरी है कि ...टर साक्षर हो। साक्षरता का एक स्थानीय "टेस्ट" ...जाता है, तब वोटर की फेहरिस्त में नाम लिखा जाता ...। वोटर बनाना सरकार का काम नहीं है। वर्ष में ...के निश्चित समय तक जिसे वोटर बनना हो, अपनी ...र्ज दे सकता है। राजनैतिक दल इस बात की चेष्टा ...रते हैं कि जितने अधिक से अधिक अपने समर्थक वोटर ...ना सकें, उनका नाम दर्ज करा लें।

इसी नवम्बर में होनेवाले राष्ट्रपति के चुनाव में ७ करोड़ वोटर वोट देंगे, पर वास्तव में देखा जाय तो ३०-...० लाख से अधिक व्यक्ति वोटिंग में सक्रिय रूप से भाग ...हीं लेंगे। जब प्रथम राष्ट्रपति संयुक्त राज्य अमेरिका के ...राष्ट्रपिता जार्ज वाशिंगटन का चुनाव हुआ था, उस समय, ...सन् १७८९ में, इनको निर्विरोध नहीं चुना गया था। इनके विरोधी उम्मीदवार थे जॉन ऐडम्स। जार्ज वाशिंगटन की, चुनाव के समय, उम्र ५७ साल की थी। ऐडम्स की उम्र ६१ साल की थी।

सबसे कम उम्र में चुनाव थियोडोर रूजवेल्ट का हुआ था। उस समय वे ४२ वर्ष के थे। राष्ट्रपति मैककिनले की हत्या के बाद उप राष्ट्रपति होने के कारण पहली बार पदेन राष्ट्रपति बने थे। वे गणतन्त्र दल के थे तथा चार कार्यकाल इस पद पर रहे। अपने चुनाव के समय जान एफ० केनेडी की उम्र ४३ साल की थी——रूजवेल्ट से एक वर्ष अधिक। जनवरी, २० सन् १९६१ से २२ नवम्बर १९६३ तक वे राष्ट्रपति पद पर रहे और उसी दिन उनकी हत्या हुई। राष्ट्रपति की हत्या के बाद उनके उपराष्ट्रपति लिंडन एच० जॉनसन राष्ट्रपति बने। राष्ट्रपति की हत्या या मृत्यु के बाद उपराष्ट्रपति पद पर होने के कारण राष्ट्रपति बनने वाले वे सातवें व्यक्ति हैं। ऐसे पदेन राष्ट्रपति बनने वाले का आगामी चुनाव में पुनः राष्ट्रपति चुना जाना प्रायः निश्चित रहता है। अतएव जॉनसन का पुनः निर्वाचन प्रायः निश्चित है।

सबसे अधिक दिनों तक इस पद पर फ्रैंकलिन डी० रूजवेल्ट आसीन रहे। वे प्रजातन्त्र दल के थे। सन् १९३७ से लेकर सन् १९४५ तक। अपने चौथे कार्यकाल में उनका अप्रैल, १९४५ में ६३ वर्ष की उम्र में देहान्त हो गया और उनके उपराष्ट्रपति ट्रूमन उनके उत्तराधिकारी बने।

अब कानून बन गया है कि दो बार से अधिक कोई राष्ट्रपति नहीं रह सकता।

राष्ट्रपति और गवर्नर

अमेरिकन राष्ट्रपति का पद संसार में सबसे अधिक बलशाली तथा शक्तिशाली प्रजातन्त्रीय पद है। राष्ट्रपति के हाथ में वे सब शक्तियाँ हैं जो हमारे प्रधान मन्त्री तथा राष्ट्रपति को मिलाकर होती हैं। हमारा प्रधान मंत्री लोकसभा के निर्णय की अवहेलना नहीं कर सकता। अमेरिकन राष्ट्रपति ऐसा कर सकता है। नया राष्ट्रपति तथा प्रदेश का नया गवर्नर चुने जाते ही वह ऊपर से लेकर नीचे तक समूचे उच्च पदों पर अपने विश्वास के आदमी नियुक्त करता है। पुलिस कमिश्नर तक बदल जाता है। उस देश के हर जिले में जज का, मुकद्दमा करनेवाले मैजिस्ट्रेट का तथा सरकारी वकील का भी चुनाव होता है। जज का कार्यकाल १४ वर्ष का होता है। राजनीति का पेशा तथा राजनैतिक नेताओं का बोलबाला सबसे अधिक उसी देश में है।

अपने सिद्धान्त के कारण अपनी जान खोनेवालों में अब्राहम लिंकन (हत्या १५ अप्रैल, १८६५), जेम्स गारफील्ड (हत्या १९ सितम्बर, १८८३), मैककिनले (हत्या १९०१), हार्डिंग (हत्या १९२३) तथा केनेडी १९६३) के बलिदान इतिहासप्रसिद्ध हैं।

राष्ट्रपति ही मुख्य सेनापति तथा नौसेना तथा जलसेना का भी प्रधान होता है। १०० अरब डालर यानी ५०० अरब रुपये का खर्च उसके अधीन रहता है। हाँ, उसे भारतीय राष्ट्रपति की तरह किसी प्रदेश या केन्द्र की पार्लमेंट को विसर्जित कर नया चुनाव करने का अधिकार नहीं है। आन्तरिक शासन में हरेक प्रदेश स्वतन्त्र हैं। वे अपना गवर्नर चुनते हैं। गवर्नर का कार्यकाल प्रदेश के अपने संविधान के अनुसार २ से ४ वर्ष का होता है। कहीं-कहीं पर दुबारा गवर्नर नहीं बन सकते। हरेक प्रदेश की अपनी विधान सभा होती है।

केन्द्रीय शासन में एक "हाउस आव रिप्रेजेंटेटिव्ज़" (लोकसभा) तथा सीनेट (राज-परिषद् होता है। इन दोनों को मिलाकर हमारी पार्लमेंट की तरह "कांग्रेस" बनती है। चाहे किसी प्रदेश की आबादी कितनी भी हो, उसे केवल दो व्यक्ति चुनकर छः वर्ष के लिए सीनेट में भेजने होते हैं। लोकसभा के लिए आबादी के औसत के हिसाब से सदस्य भेजने का अधिकार है। पर इनका कार्यकाल दो वर्ष ही होता है। प्रदेश की विधान सभा अपने प्रदेश का निर्वाचन-क्षेत्र तय करती है। इससे ऐसा भी होता है कि बेतुका निर्वाचन-क्षेत्र बन जाता है। जैसे कहीं पर ९ लाख पर एक प्रतिनिधि, तथा कहीं पर [illegible] लाख पर। अब सुप्रीम कोर्ट ने फैसला दिया है कि इस प्रकार का बेतुका निर्वाचन-क्षेत्र समाप्त करना चाहिए। हरेक प्रदेश का राष्ट्रपति के चुनाव में प्रत्यक्ष रूप से भाग अपने प्रतिनिधियों के द्वारा होता है यानी सीनेट तथा लोकसभा के मेम्बरों की सम्मिलित वोट होती है। इसका नतीजा यह होता है कि बड़े प्रदेशों का बहुमत हो जाता है। न्यूयार्क प्रदेश के ४३ वोट हुए तथा डिलावेयर प्रदेश के केवल ३ वोट हुए।

चुनाव का दिन तथा महीना युगों से निश्चित चला आ रहा है। नवम्बर के महीने में प्रथम सोमवार के बाद पड़नेवाले मंगलवार को राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति का चुनाव होता है। इस बार इस दोनों के चुनाव के साथ सीनेट के ३५ सदस्य, २६ प्रदेशों के गवर्नर तथा लोकसभा की सभी ४३५ सीटों का चुनाव होगा। इनके अलावा कई प्रदेशों में प्रदेश के खजांची, जिला के सरकारी वकील, शहर कोतवाल, म्युनिसिपल प्रशासक, जज, मैजिस्ट्रेट आदि भी चुने जायेंगे।

राष्ट्रपति के चुनाव का कार्यक्रम इस प्रकार है:—

मार्च-जून	राजनैतिक दलों द्वारा अपने उम्मीदवार का क्षेत्रीय तथा प्रादेशिक चयन।
जुलाई-अगस्त	राजनैतिक दलों के महासम्मेलनों द्वारा अपने उम्मीदवारों का चुनाव।
सितम्बर-नवम्बर	निर्वाचित उम्मीदवार के लिए चुनाव का आन्दोलन तथा चुनाव।
जनवरी—	सीनेट तथा लोकसभा की सम्मिलित वोट द्वारा राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति का केवल औपचारिक (फार्मल) चुनाव।

नवम्बर के महीने में राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति का जो देश-व्यापी चुनाव हो जाता है, कांग्रेस उसीको "व्यावहारिक" रूप से चुन लेती है। २० जनवरी को नये राष्ट्रपति द्वारा शपथ ग्रहण का जाती है। आम चुनाव में यदि कोई शंका होती है तो कांग्रेस का निर्णय

...होता है। सन् १८७३ में ऐसा ही झगड़ा पड़ा था ...कांग्रेस ने ३ वोट रद्द कर दिये थे। सन् १८७८ में ४ ...देशों के वोटों का झगड़ा पड़ा। कांग्रेस ने एक चुनाव ...कमीशन नियुक्त किया था और उसके निर्णय के अनुसार ...रदर्फोर्ड हामेज राष्ट्रपति बने।

अखाड़े में खिलाड़ी

चुनाव के अखाड़े में वास्तव में दो दल ही खिलाड़ी हैं—गणतन्त्र तथा प्रजातन्त्र। प्रथम का चिह्न हाथी है दूसरे का गधा। पहले कई दल थे, अब मुख्य दो रह गये हैं। जार्ज वाशिंगटन फेडरलिस्ट यानी "संयुक्त राज्य"—संघीय शासन दल के थे। ऐडम्स नेशनलिस्ट रिपब्लिकन थे। रिपब्लिकन दल को ही हम गणतन्त्रवादी तथा डिमाक्रेटिक पार्टी को प्रजातन्त्रवादी कहते हैं। लिबरल पार्टी—ह्विग दल के भी तीन राष्ट्रपति रह चुके हैं। प्रजातन्त्रीय दल के तेरहवें राष्ट्रपति जॉनसन हैं। सन् १८३७ में इसके प्रथम उम्मीदवार टेलर राष्ट्रपति बने थे। गणतन्त्र दल के १४ राष्ट्रपति हो चुके जिनमें लिंकन, हूवर, आइसनहॉवर आदि प्रसिद्ध हैं। विलसन, रूजवेल्ट, केनेडी आदि प्रजातन्त्र दल के हैं।

इन दोनों राजनैतिक दलों का भारतीय राजनैतिक दलों के समान शहर, जिला या क्षेत्रीय संगठन नहीं है। यों राष्ट्रपति अपने दल का प्रधान होता है, पर हमारे यहाँ की तरह लोकसभा में भी विरोधी नेता या विरोधी दल नामक कोई चीज नहीं होती। दोनों पार्टियों के केन्द्रीय कार्यालय होते हैं जो धीरे-धीरे अगले चार साल तक चुनाव की तैयारी करते रहते हैं। चुनाव के समय गाँव से लेकर प्रदेश तक के चुनाव के दल जाग उठते हैं। रिपब्लिकन यानी गणतन्त्र दल को जी० ओ० पी० यानी ग्रान्ड ओल्ड पार्टी (शानदार पुराना दल) कहते हैं। सन् १८५० में उत्तरी अमरीका में दास-प्रथा विरोधी दल के रूप में इसका जन्म हुआ था। सन् १९३२ तक इस दल का बड़ा प्रभाव था। बोलबाला था। तब से लेकर सन् १९५२ तक आइसनहॉवर के चुनाव तक यह दल बराबर हार खाता रहा। आइसनहॉवर का कार्यकाल १९६० में समाप्त हुआ। तब से यह दल फिर पिछड़ गया है। प्रजातन्त्रीय दल अधिक प्रगतिशील समझा जाता है।

वही व्यक्ति राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति पद का उम्मीदवार हो सकता है जो कम से कम १४ वर्ष तक संयुक्त राज्य अमरीका में रहा हो। अमरीका में पैदा हुआ हो और ३५ वर्ष की उम्र से कम का न हो। पुराने जमाने में विरोधी उम्मीदवार एक ही मंच पर खड़े होकर भाषण देते थे, तथा चेष्टा करते थे कि जनता का मन अपनी तरफ कर लें। सन् १८५८ में अब्राहम लिंकन तथा उनके विरोधी उम्मीदवार स्टीफेन डगलस ने यही किया था। पार्टी का उम्मीदवार घोषित हो जाने के बाद बड़ी मेहनत करनी पड़ती है। बड़ा दौरा करना पड़ता है। केनेडी ने १० दिन में १७,००० मील का दौरा किया था। पूरे चुनाव अभियान में उन्होंने ४४,००० मील का दौरा किया था।

पार्टी में निर्वाचन

पार्टी का उम्मीदवार बनने में भी बड़ी कठिनाई होती है। बड़ी दौड़-धूप होती है। मित्रों का बड़ा सहारा लेना पड़ता है। कुछ जगहों में पार्टी के लोग सम्मेलन करके वोट देते हैं कि किसे उम्मीदवार बनाया जाय। उम्मीदवार की स्वीकृति होना भी जरूरी नहीं है। ऐसे अवसर पर प्रदेश के गवर्नर से लेकर नगर के मेयर तक का बड़ा असर पड़ता है। कुछ प्रदेशों में पार्टी द्वारा केवल प्रारम्भिक चुनाव होकर तय कर लिया जाता है कि किसे उम्मीदवार बनाया जाय। सन् १९६४ में ऐसा निर्वाचन १५ प्रदेशों में होगा। शेष ३४ प्रदेशों में पहले प्रारम्भिक चुनाव होगा, या केवल चुनाव करने के लिए प्रतिनिधि चुने जायेंगे। यह जरूरी नहीं है कि चुनाव करनेवाले जिस उम्मीदवार को दृष्टि में रखकर प्रतिनिधि चुनें वह उनके मन के उम्मीदवार को वोट देगा ही। सन् १९५२ में सिनेटर केफावेर प्रारम्भिक चुनाव में जीतते गये। १५ प्रदेशों में से वे १२ में सफल रहे। इलिनॉय प्रदेश में उन्हें ५,३६,३०१ वोट मिले। राष्ट्रपति पद के लिए उम्मीदवार उन्हींके दल के स्टीवेंसन को ५४,३६६ वोट ही मिले। पर राष्ट्रीय सम्मेलन में, जिसमें सब प्रदेशों द्वारा चुनकर प्रतिनिधि भेजे जाते हैं, वे बुरी तरह से हार गये। समझ लीजिए कि ये प्रतिनिधि उसी ढंग से चुने जाते हैं जैसे हम प्रदेश कांग्रेस के लिए प्रतिनिधि चुनते हैं और वे ही कांग्रेस के महाधिवेशन के प्रतिनिधि होते हैं। ये प्रतिनिधि एक तत्कालीन निर्वाचित तटस्थ अध्यक्ष के संचालन में सभा करते हैं। हर एक उम्मीदवार के समर्थक काफी शोर-गुल, हो-हल्ला मचाते हैं। सोमवार,

जुलाई १३, १९६४ को गणतन्त्र दल की महासभा सैन-फ्रैंसिस्को में हुई और उसने अपना उम्मीदवार चुना। २४ अगस्त, १९५४ को न्यूजर्सी में प्रजातन्त्रीय दल का चुनाव हुआ। अब दोनों दलों के उम्मीदवार अखाड़े में उतर आये हैं। इन दोनों दलों की महासभा में जो प्रतिनिधि चुने जाते हैं उनकी संख्या इस बात पर निर्भर करती है कि पिछले चुनाव में किस प्रदेश में उस दल को कितने अधिक वोट मिले थे। इस बार रिपब्लिकन पार्टी की महासभा में १३०८ प्रतिनिधि थे। हरेक की एक वोट थी। डिमाक्रेटिक यानी प्रजातन्त्रीय दल में २९४४ प्रतिनिधि थे।

सितम्बर तक दोनों दलों के उम्मीदवार अपने चुनाव अभियान में उतर पड़ते हैं। टेलिविजन, रेडियो, गाँव-गाँव में प्रचार, ऐसी ट्रेनों से यात्रा जो जहाँ चाहे रोक दी जाय और व्याख्यान हो जाय—सब शुरू हो जाता है। यह जरूरी नहीं है कि लोग जिस दल का राष्ट्रपति चुनें उसी दल का कांग्रसमैन भी। हाँ, राष्ट्रपति तथा उप-राष्ट्रपति के सम्बन्ध में यह धारणा बरती जाती है। केनेडी प्रथम कैथोलिक यानी सनातनी ईसाई हैं जो राष्ट्रपति बने जब कि उस देश में प्रोटेस्टेंट ईसाइयों का बहुमत है; पर उनके साथ उपराष्ट्रपति का चुनाव लड़नेवाले जॉनसन प्रोटस्टेंट ईसाई हैं।

नवम्बर में चुनाव होगा—आम चुनाव, सुबह ६ बजे से शाम को ५ बजे तक। अब तो वोट देने की मशीनें बन गयी हैं। मतदान गुप्त होता है। पिछले चुनाव में, जब केनेडी राष्ट्रपति चुने गये थे, वोट का क्रम इस प्रकार था :—

केनेडी (प्रजा०)	३,४२,७७,०१६
निक्सन (गण०)	३,४१,०८,५४६
अन्य	५०,२३६

प्रजातन्त्र का वास्तविक रूप तथा अद्भुत रूप अमरीकन राष्ट्रपति के चुनाव में देखने को मिलता है।

दो छंद

पंडित शिवरत्न शुक्ल 'सिरस'

(१)

बादर आदर औनि[1] करै तुम्हरो, बड़-बूंदन कों बरसाऔ।
आइ नगीचे, घिरौ चहुँ ओर सों, श्यामघटा नभ पै छहराऔ।
बाहर भौन[2] न देखि परै कोऊ, शासन कों करि कैं सुखलाऔ।
सेवहु मध्य दशा, न बढ़ौ न घटौ, कवि 'श्रीरस' तौ यश पाऔ।

(२)

रे तम! तू क्यों अँध्यार करै, दृग देखि न पावत वस्तु धरी।
राति कों पाय अनीति चलावत, भूलभुलैया करीं डगरी।
लोग गिरैं, मग सूझत ना कछु, साँप पर्‌यौ कि परी रसरी।
'श्रीरस' भाजिहै भोर भये, चुपकें भजिहै लै मनों गठरी!

१—अवनि, २—भवन।

पृथ्वी की आयु कितनी है ?

श्री अशोक महाजन

पृथ्वी को बने कितने वर्ष हो गये, यह एक रोचक कहानी है। इसका कुछ अंश कल्पित है, कतिपय प्रामाणिक और अधिकांश धुँधला है। पृथ्वी की आयु ज्ञात करने के लिए हेली, पाइथागोरस, हिरोडोटस और अरस्तू जैसे अनेक वैज्ञानिकों और दार्शनिकों ने समय-समय पर अनेकानेक प्रयासों को प्रणीत किया। १७वीं शताब्दी के प्रधान धर्माध्यक्ष उशर के मत में पृथ्वी की रचना ४००४ ई० पूर्व हुई है। ईसाइयों की धर्मपुस्तक के अनुसार जमीन-आसमान को बने ५७ सदियाँ गुजर गयी हैं।

लेकिन, गुरुनानकदेवजी ने 'जपुजी साहिब' में इन समस्त तिथियों को अप्रामाणिक बताते हुए कहा है—"न तो पुराणों के प्रणेता पंडित ही जानते हैं और न कुरान के रचयिता मौलवियों को ही इसका बोध है कि किस शुभ वेला में, किस क्षण, किस मास तथा किस ऋतु में पृथ्वी रची गयी।···न कोई योगी और न अन्य कोई इसको जानता है। इस संसार का रचयिता परमेश्वर—जिसने यह सृष्टि रची है—एकमात्र वही इसके विषय में जानता है।"

हमारे यहाँ चार युग माने गए हैं—सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि। मनुस्मृति के अनुसार सत्ययुग ४८०० दिव्य वर्षों का, त्रेतायुग ३६०० दिव्य वर्षों का, द्वापर युग २४०० दिव्य वर्षों का और कलियुग १२०० दिव्य वर्षों का है। १ दिव्य वर्ष ३६० मानव-वर्षों के बराबर होता है। इस प्रकार युगों की चौकड़ी की अवधि हुई १२००० दिव्य वर्ष अर्थात् १२०००×३६०=४३,२०,००० मानव वर्ष। इन चार युगों के चक्र को 'महायुग' कहते हैं।

सत्ययुग=४८००×३६०=१७,२८,००० मानव वर्ष
त्रेतायुग=३६००×३६०=१२,९६,००० मानव वर्ष
द्वापरयुग=२४००×३६०=८,६४,००० मानव वर्ष
कलियुग=१२००×३६०=४,३२,००० मानव वर्ष

महायुग (चतुर्युग) =४३,२०,००० मानव वर्ष

---

७१ महायुग=१ मन्वन्तर=३०,६७,२०,००० मानव वर्ष

प्रत्येक मन्वन्तर के पश्चात् प्रलय और १४ मन्वन्तर (अर्थात् ४ अरब २९ करोड़ ४० लाख ८० हजार वर्ष) के बाद महाप्रलय होती है। महाप्रलय के बाद पुनिसृंष्टि होती है। हमारे पुराणों के अनुसार गत महाप्रलय के बाद से ६ मन्वन्तर बीत चुके हैं; सातवाँ इस वक्त चल रहा है। इस सातवें मन्वन्तर के भी २७ महायुग बीत चुके हैं; अब २८वाँ चल रहा है। २८वें महायुग के भी सत्य, त्रेता तथा द्वापर नामक तीन युग बीत चुके हैं और कलियुग भी बीत ही रहा है। कलियुग की अवधि है ४ लाख ३२ हजार वर्ष। इस अवधि के अभी केवल ५०६० वर्ष ही बीते हैं। अतः पिछले महाप्रलय के बाद
=६×मन्वन्तरकाल+२७×महायुगकाल+सत्य+त्रेता+द्वापर+बीता कलियुग
=६×३०,६७,२०,०००+२७×४३,२०,०००+१७,२८,०००+१२,९६,०००+८,६४,०००+५०६०
=१९७१,२२१,०६० वर्ष।

यही हमारी पृथ्वी की आयु है। पश्चिम के वैज्ञानिकों के मतानुसार पृथ्वी की आयु लगभग २ अरब वर्ष है। अतएव कहा जा सकता है कि पश्चिम के वैज्ञानिकों ने पृथ्वी की आयु के संबंध में आधुनिक विज्ञान की सहायता से जो निर्णय किया है वह हमारे प्राचीन ऋषियों और विद्वानों के मत की पुष्टि करता है।



अमर शहीद भगत कँवरराम

श्री गुलाबराय भोजवाणी

आज से ३० वर्ष पूर्व ऋषियों, सन्तों और सूफी साधुओं की पुण्य-भूमि सिंध के किसी कोने से ब्राह्ममुहूर्त में, ठीक ४ बजे प्रातःकाल को—'रामु सुमिर प्रभात, मेरे मन, रामु सुमिर, रामु सुमिर' की मधुर मादक ध्वनि गूँज उठती और दूर से, पाँवों में घुँघरू बाँधे एक साधु पुरुष मंच की ओर बढ़ते दिखायी देते। सारा एकत्रित जन-समूह चौंक उठता और मंत्रमुग्ध होकर एक ही स्वर में दुहराता—"रामु सुमिर प्रभात, मेरे मन, रामु सुमिर।' ये अमर गायक थे सिंध के सन्तशिरोमणि, पुण्यात्मा और अन्त में शहीदी का जाम पीने वाले—सन्त कँवरराम साहब। और जब रात्रि की नीरवता को भंग करते हुए रेडियो से कभी-कभी पुनः वही मधुर संगीत वातावरण में तैरता हुआ कानों तक पहुँचता है तो मन रोमांचित हो उठता है और उस महान् आत्मा का स्मरण हो आता है।

सन्त कँवरराम के माता-पिता वर्षों तक पुत्र-प्राप्ति के लिए साधु-महात्माओं, पीर-औलियों की मिन्नतें मानते रहे और निराश हो उठे। लेकिन इनकी माता तीर्थबाई सेवा-कार्य में लगी रहीं। उनके गाँव जरवार में एक गृहस्थी साधु, सन्त खोताराम साहब, जिन्होंने गृहस्थ धर्म निभाने के लिए छोटी सी दूकान खोल रखी थी, प्रतिदिन प्रातः व सायं दूकान की सहन में ही हरि-कीर्तन किया करते थे। सत्संग में लोग अच्छी संख्या में आते और माता तीर्थबाई उस सत्संग में दोनों समय झाड़ू लगाती तथा पानी भरती। सन्त खोताराम ने, जिन्हें वाक्‌सिद्धि प्राप्त थी, माता तीर्थ-बाई से एक दिन इस सेवा का कारण पूछा। माता की आँखों में आँसू छलछला आये। कण्ठावरोध हो गया। सन्त के आश्वासन देने पर वह पुत्र-प्राप्ति की याचना करती हुई रो उठी। सन्त का हृदय पसीज उठा, और सहज स्वभाव उसके मुख से निकल ही गया—"माँ! तुम्हें पुत्र होगा, और अवश्य होगा, जो संसार में यशस्वी होगा, लेकिन वह पुत्र हमें देना पड़ेगा।" माता तीर्थबाई खिल उठीं। उनकी समस्त साधनाएँ फलीभूत हुईं। फलस्वरूप चैत्र संवत् १९४२ विक्रमी, तदनुसार अप्रैल १८८५ ई० में भाई ताराचन्द व माता तीर्थबाई के यहाँ प्रातःकाल की शुभ वेला में पुत्रोत्पत्ति हुई।

भाई ताराचन्द तथा माता तीर्थबाई नवजात शिशु को लेकर सन्त खोतारामजी के यहाँ पहुँचे और बच्चा उनकी गोद में देते हुए बोले—'आप ही इस बच्चे के सच्चे माता-पिता तथा गुरु हैं, अतः इसका नाम आप ही रखिए।' सन्त खोताराम बच्चे को गोदी में लेकर ध्यानस्थ हो गये, और थोड़े समय बाद आँखें खोलकर बोले—"आज से इनका नाम 'कँवर' है और यह कँवर (कमल) की तरह ही खिलेगा और अपनी सुगंधि से संसार को सुरभित करेगा।"

सन्त कँवरराम बचपन से ही शान्त तथा साधु प्रकृति के थे। पाँच वर्ष की अवस्था में उन्हें हिन्दू सिंधी (एक प्रकार की मुड़िया लिपि) सीखने के लिए भेजा गया। शीघ्र ही वे लिखना-पढ़ना सीख गये। साथ ही गुरुमुखी भाषा में गुरु ग्रन्थसाहब का पाठ करना भी सीख गये। इनकी माता इन्हें चने तथा पकौड़ी बनाकर देती जो ये गाँव में जाकर बेच आते। कभी-कभी लोग इन्हें गाने का आग्रह करते थे तो ये टालते नहीं थे। इनके स्वर में एक विशेष मधुरता थी जो सबका मन मोह लेती थी, और सब श्रोता झूम उठते। बचपन से ही इनमें ईश्वर-भक्ति की भावना थी। एक बार कँवरराम अपने पिता की आज्ञा से खेत की रखवाली करने गये। वहाँ पर गीत गुनगुनाते हुए ध्यानस्थ हो गये। ध्यान टूटने पर मालूम हुआ कि उस गाँव में टिड्डी-दल आया हुआ था, पर उस खेत के अलावा अन्य सभी खेतों का सफाया हो चुका था।

एक बार गुरु ग्रन्थसाहब के पाठ में उन्हें भी वाचक चुना गया। रात्रि का पाठ समाप्त करके वे कहीं चल दिये। जब लोगों ने देखा कि वे बिस्तर पर नहीं हैं, तो ढूँढ़ना शुरू किया, और देखा कि वे एक कोने में ध्यानमग्न हैं।

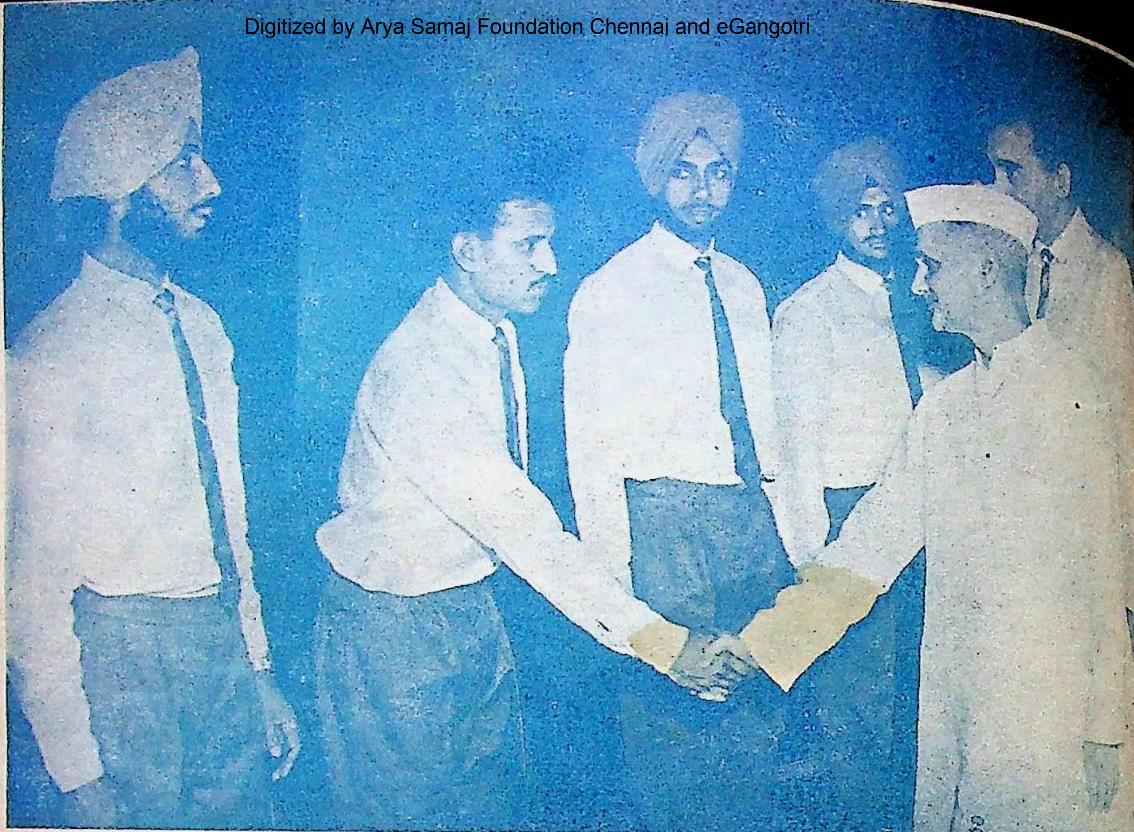
इनके पिता अपने वचन के अनुसार इन्हें गुरु को सौंपने गये। इस बीच सन्त खोतारामजी का देहावसान हो चुका था, और उनके स्थान पर उनके पुत्र स्वामी सतरामदासजी विराजमान थे। उन्होंने कँवररामजी को स्वीकार कर लिया।

कँवरराम अपने गुरु को ब्रह्मस्वरूप समझते थे, और उनके स्वर्गवास के बाद भी उनकी सन्तान में गुरुनिष्ठा



श्री अमरनाथ की यात्रा

कश्मीर में श्री अमरनाथजी के स्वयंप्रकाश हिमलिंग के दर्शन वर्ष में एक बार श्रावणी पूर्णिमा को होते हैं और यात्री पहलगाम से अपनी यात्रा आरंभ करते हैं। इस वर्ष यह यात्रा बड़े उत्साह से हुई। अमरनाथजी का रास्ता बड़ा कठिन और मनोरम है। रास्ते में हिमालय के इन तीन श्रृंगों के दर्शन होते हैं जो 'ब्रह्मा, विष्णु और महेश' कहलाते हैं।



टोकियो के ओलम्पिक के लिए भारतीय हॉकी टीम (टोकियो जाने के पहिले उसके सदस्य प्रधान मंत्री से मिले।)



भारतीय वायुसेना के नये अध्यक्ष एयर-मार्शल अर्जुनसिंह

…थे। कहीं कीर्तन के लिए बाहर से निमन्त्रण आता …बिना उनसे आज्ञा लिये स्वीकृति नहीं देते थे।

जिस प्रकार अवतारों की लीला करने के लिए मण्ड… होती हैं, उसी प्रकार भजन-कीर्तन करनेवाले सिंध …भगत कहलाते हैं। आजकल तो पैसा कमाने के लिए …एक पेशा बन गया है, लेकिन सन्त सतरामदास (कँवर…जी के गुरु) भक्ति के आवेश में सत्संग करते थे और …राम को भी साथ रखते। इस प्रकार की भगत के …विशेष पहनावा पहना जाता है। मस्तक पर चक्कर…गोल पाग, शरीर पर लम्बा चुननदार जामा, काछनी …तरह घुटनों तक धोती, और पाँवों में घुँघुरू बाँधे जाते …भगत के बाद वे अपनी झोली फैलाते और लोग उसमें …नुसार रुपये-पैसे आदि डाल देते। सन्त कँवरराम …सब वस्तुओं को गरीबों में बाँट देते। अपने गृहस्थ …के लिए कँवरराम दूकान चलाते थे।

संवत् १९६० विक्रमी में सन्त कँवरराम का विवाह …। इनके पिता भाई ताराचन्द ने जब देखा कि विवाह …अवसर पर उपस्थित लोगों के लिए भोजन कम है, तो …ने इनके गुरु सतरामदास को बताया। स्वामी सत…रामदास ने एक सफेद चादर से भोजन ढाँक कर गुरु ग्रन्थ…साहब का पाठ किया, और डोंडी पिटवायी कि लंगर में …गाँववासी आकर भोजन करें। आश्चर्य की बात …हुई कि सभी के भर पेट भोजन करने पर भी भोजन…सामग्री कम नहीं हुई।

"भगत" के समय सन्त कँवरराम की आँखें मुँदी …रहतीं, और वे हरि-प्रेम में मग्न होकर नाचते-गाते। …घुँघरुओं की झंकार और भक्ति-भाव से ओतप्रोत मधुर …को सुनते ही वातावरण में निस्तब्धता छा जाती और …उपस्थित जनता झूम उठती। एक बार जब पूज्य …(गांधीजी) सक्खर पधारे तो जनता अशान्त हो …थीं। सौभाग्यवश सन्त कँवरराम वहाँ उपस्थित …उन्होंने तान छेड़ दी, तुरन्त ही चारों ओर सन्नाटा छा …।

सन्त कँवरराम ऊँच-नीच, हिन्दू-मुसलमान सबसे …का व्यवहार करते थे। नीच जाति तथा रुग्ण लोगों …सेवा सम्बन्धी कई उदाहरण उनके जीवन में मिलेंगे …यहाँ विस्तार से वर्णन नहीं किया जा सकता। …एक लड़के तथा एक लड़की की मृत्यु के समाचार इनको उस समय मिले जब वे हरिकीर्तन कर रहे थे। लेकिन वे विचलित नहीं हुए और पूर्ववत् हरि-कीर्तन करते रहे। श्रीमद्भगवद्गीता के स्थितप्रज्ञ के सभी लक्षण उनमें विद्यमान थे।

वे क्षमा और नम्रता के साक्षात् स्वरूप थे। वे एक महान् समाज-सुधारक भी थे। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य व पंचायतों के संगठन में सक्रिय भाग लिया। सन्त कँवरराम के गायन में अलौकिक मादकता और मधुरता थी। कण्ठ का सुरीलापन व भक्ति की तल्लीनता के सम्मिश्रण से लोग मन्त्रमुग्ध होकर झूमने लगते थे।

उन्हें वाक्‌सिद्धि भी प्राप्त थी। उनकी दैविक प्रतिभा का उदाहरण देते हुए श्री कन्हैयालाल, तत्कालीन दहरिकी गाँव के स्टेशन-मास्टर अपनी आँखों-देखी घटना का वर्णन इस प्रकार करते हैं कि एक दिन दहरिकी में जब सन्त कँवरराम का भजन हो रहा था, एक स्त्री अपने मरे हुए लड़के की लाश को कपड़े में ढककर और प्रसाद का थाल लेकर आई। प्रसाद का थाल सामने रखकर बच्चे को स्वामीजी के हाथ में देकर लोरी देने की प्रार्थना की। लोरी देने के बाद जब सन्त स्त्री को बच्चा वापिस देने लगे तो स्त्री ने प्रार्थना की कि बच्चे को हँसा कर अथवा रुला कर दिखाइये। स्वामीजी ने ज्योंही कपड़ा हटाया तो देखा बच्चा मरा पड़ा है। उन्होंने स्त्री से कहा कि इस प्रकार छल-कपट करना अनुचित है। सृष्टि के गुह्य रहस्यों में कभी हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। लेकिन स्त्री टस से मस न हुई। भरी सभा में अनुनय-विनय करने लग गयी। स्वामीजी पसीज गये। स्वामी ने पुकारकर कहा—"लाला! कहो राम, कहो राम।" स्वामीजी का इतना कहना था कि बच्चा रो उठा, और चारों ओर से बधाई की बौछार होने लगी, लेकिन स्वामीजी ने प्रतिज्ञा की कि इसके बाद वे किसी भी ऐसे बच्चे को लोरी नहीं देंगे, जिसका कि मुँह ढँका हुआ हो।

१९३७ ई० में जब सिन्ध बम्बई से अलग हुआ, सिन्ध के हिन्दुओं के लिए बुरे दिन आये क्योंकि हिन्दू अधिक धनवान् थे, इसलिए मुसलमान गुण्डों तथा डाकुओं ने उन्हें लूटना तथा उन पर अत्याचार करना आरम्भ किया। तब एक अवांछनीय घटना घटी। भरचुंडी के पीर के सवा लाख मुसलमान मुरीद थे। उनका एक लड़का सक्खर घूमने आया। बदले की भावना से हिन्दू गुण्डों ने उसकी

खूब पिटाई की। इसके फलस्वरूप भरचुंडी के पीर के यहाँ सन्त कँवरराम की हत्या करके हिन्दुओं से प्रतिशोध लेने का गुप्त षड्यन्त्र रचा गया। यद्यपि इसमें सन्त कँवरराम का कोई दोष नहीं था, तथापि मुसलमानों का विचार था कि चूँकि हिन्दुओं ने पीर के लड़के को पीटा है, अतः इसका बदला भी वे ऐसे व्यक्ति से लेंगे जिसकी मान-मर्यादा हिन्दुओं में उपरोक्त पीर की तरह हो। जब हिन्दुओं को इस षड्यन्त्र का पता चला तो उन्होंने स्वामी-जी की सुरक्षा के लिए सरकार से बन्दूक का परवाना लेने का निश्चय किया, पर स्वामीजी ने इनकार कर दिया। अन्त में बहुत समझा-बुझा कर उन्हें राजी कर लिया गया, और जहाँ भी वे जाते, दो बंदूकधारी सेवक उनके साथ रहते। एक दिन दादू में हरिकीर्तन करने के बाद दुपहर को सन्त कँवरराम दीवान हरिदासमल कलेक्टर के यहाँ भोजन करने पधारे। भोजन करते समय खाँसी के कारण उनके मुख से कौर गिर पड़ा, इस पर उन्होंने धीरे से कहा—"इस संसार से अब हमारा अन्न-जल उठ गया है।"

१ नवम्बर १९३९ ई० को स्वामीजी दादू से सक्खर को रवाना हुए। रात्रि के ९ बजे 'रुक' स्टेशन पर स्वामी जी गाड़ी बदलने के लिए ज्योंही प्लेटफार्म पर उतरे, त्योंही दो बंदूकधारी मुसलमान उनके पास आकर नाम-धाम पूछने लगे। नाम बताकर स्वामीजी ने उन्हें प्रसाद-स्वरूप अंगूर दिये, जो लेकर उन्होंने स्वामीजी से अपनी कार्य-सफलता के लिए आशीर्वाद माँगा। स्वामीजी ने कहा—"अपने मुरशिद को याद करो, तुम्हारा काम सफल होगा और तुम्हें विजय मिलेगी।" यह कहकर स्वामीजी गाड़ी में जा सवार हुए। गाड़ी प्लेटफार्म से बाहर निकली भी नहीं थी कि बंदूक का फायर हुआ, और स्वामीजी राम का नाम लेकर लुढ़क गये। गोली उनके मस्तिष्क में लगी थी। खून की धारा बह चली। गाड़ी रुकवायी गयी। पुलिस आयी, परन्तु उसने अपराधी को पकड़ने की कोई कोशिश न की और बयान लेकर चली गयी। डाक्टर ने भी, जो मुसलमान था, साधारण पट्टी बाँधने के अलावा कुछ न किया और कहा कि सीधे सक्खर जाकर इलाज करावें। गाड़ी के आराई स्टेशन तक पहुँचते-पहुँचते स्वामीजी स्वर्गवासी हो गये। उस समय उनके मुख पर दिव्य ज्योति चमक रही थी, और होंठों पर हल्की मुस्कान। सक्खर में स्वामीजी के स्वागत के लिए हजारों की भीड़ जमा थी, लेकिन स्वामीजी के निधन का दुखद समाचार पाते ही सबके हृदय धक् से रह गये। सारे सिंध में तार द्वारा इस दुखद घटना का समाचार फैल गया। चारों ओर शोक व्याप्त हो गया। सारे सिंध में हड़ताल हो गयी। करीब आधी लाख जनता उनकी अर्थी में सम्मिलित हुई। उनकी चिता को ज्योंही उनके सुपुत्र पेसूरामजी ने अग्नि दी त्योंही आर्तनाद और चीत्कारों से आसमान फटने लगा। वहाँ पर चिता नहीं, प्रत्येक उपस्थित सिंधवासी का हृदय जल रहा था। सिंध के हिन्दुओं का यह घाव भरनेवाला नहीं है। उनके नाम पर जगह-जगह धर्मशालाएँ व पुस्तकालय निर्मित कराये जा रहे हैं। उनके जीवन से संबंधित "कँवर" रचना को भारतीय साहित्य अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हो चुका है।

उनके जीवन पर आधारित फिल्म जब अहमदाबाद में प्रदर्शित किया गया, तब स्वामीजी के निधन के दृश्य पर एक व्यक्ति की हृदय-गति रुक जाने से मृत्यु हो जाने का समाचार प्रकाशित हुआ था। यह थी सन्त कँवरराम के प्रति लोगों की अपूर्व श्रद्धा। भगत कँवरराम के नाम पर अजमेर में एक भव्य धर्मशाला का निर्माण कराया गया है जहाँ प्रतिवर्ष उनके शहीद दिवस पर लगातार तीन दिन तक मेला लगता है जिसमें विभिन्न कार्यक्रम होते हैं और सारे भारत से विद्वान्, कलाकार तथा हजारों की संख्या में दर्शनार्थी सन्त कँवरराम को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए उमड़ पड़ते हैं।



मारीशस

समुद्र के मध्य अवस्थित वाटिका

श्री वी० विष्णुदयाल (सेण्ट लुई, मारिशस)

वर्तमान युग में यात्रियों को जो सुविधाएँ मिलती हैं वे प्राचीन काल के यात्रियों को प्राप्त न थीं। रेगिस्तान यात्रा करनेवाले साहसी को मरूद्यान पाते ही जो आनन्द हुआ करता है वही आनन्द समुद्र-यात्रा करने-वालों को उस समय नसीब होता है जब वे लंबी समुद्र-यात्रा करके मारीशस पहुँचते हैं।

सन् १५९८ से यह द्वीप आबाद हुआ। उससे पूर्व घना और निर्जन जंगल था। सर्वप्रथम डच लोगों ने आबाद किया था। उस समय दो वृक्षों के बीच से रास्ता मुश्किल था, पक्षी निरीह भाव से लोगों के कंधों पर आकर बैठ जाया करते थे, समुद्र की मछलियाँ स्नान करनेवालों को देखकर भागती न थीं।

फ्रांसीसियों का आगमन इस द्वीप में १७१५ में हुआ। उनके शासन काल में ही राज्यपाल लाबुर्दोने ने राज्य किया। ये महानुभाव प्रजाजन को मामलेबाज होने से रोकते थे। दास बनाये गये मानव और उनके गौरांग प्रभु को एक आँख से देखते थे। उस युग में कालों को सेना में भर्ती करते थे।

फ्रेंचों ने जंगल को बाग में परिवर्तित किया। ऊख के खेतों से टापू को भर दिया। अनावश्यक वृक्षों को काट-कर घर बनाये गये। १७६७ में जनसंख्या २० हजार हो गयी।

उसी साल दिनांक १९ दिसम्बर को बेरनार्दें देसें प्येर नामक लेखक यहाँ पधारे। उस समय यहाँ कुछ भारतीय कारीगर आ गये थे जो इस लेखक के मित्र बन गये।

सें प्येर स्वप्नदर्शी थे। बचपन ही से उनमें यात्रा करने का शौक था। इसलिए एक दिन जब वे छोटे थे, उनके पिता उन्हें रुआँ नगर में एक गिरजाघर दिखाने के विचार से ले गये। जब उन्हें गिरजाघर का उत्तुंग शिखर दिखाया गया तब युवक सें प्येर बोल उठे, "ये पक्षी उड़ रहे हैं!" लोग हँसने लगे। किंतु उनकी दृष्टि उड़ते हुए अबाबील पर जा अटकी थी। उड़ती चिड़ियों की तरफ, मेघ, आकाश की ओर इनका ध्यान सदैव जाता था।

सें प्येर स्वर्ग को पृथिवी पर उतारकर स्थापित करने में प्रयत्नशील थे। उन्हें मारीशस में स्वर्ग दिख-लायी पड़ा। वे यहाँ १७६७ से १७७० तक ठहरे। ता० ९ नवम्बर को फ्रांस के लिए रवाना हुए।

१७८८ में स्वदेश पहुँच जाने के बाद उन्होंने "पाल और विर्जिनी" नामक लघु उपन्यास प्रकाशित करवाया जिसने उनकी कीर्ति में चार चाँद लगा दिये। इंग्लैण्ड और अमरीका में अठारहवीं सदी के अन्तिम १२ वर्षों में इस पुस्तक का अंग्रेजी में अनेक बार अनुवाद छपा। सब अनुवादकों ने अपने अनुवाद का पूरा नाम : "पाल और विर्जिनी—एक भारतीय कहानी" रखा। उन दिनों अभिज्ञान शाकुन्तल का उल्था पश्चिम में लोकप्रिय हो चुका था। पाठक और अनुवादक ने देखा कि इस पुस्तक में भी वनों, नदियों, लताओं, पौधों, वृक्षों का सुन्दर वर्णन है। पाल और उसकी सहेली विर्जिनी वन में विचरनेवाली शकुन्तला ही के समान थे। एक यात्री ने यहाँ भारत के फूल देखे थे।

सें प्येर ने महाकवि कालिदास को पढ़ा न था। वे इतना अवश्य जानते थे कि भारत तत्त्वज्ञानियों की जन्म-भूमि है। भारत में ऋषि और मुनि गण प्रकृति के सान्निध्य में रहा करते थे।

अठारहवीं शती में विदेशी लेखक को इस सत्य का ज्ञान होना कि भारत में वन-तपोवन था न कि जंगलियों या असभ्यों का निवासस्थान, यह कम महत्त्व की बात नहीं थी। योगी, तत्त्वज्ञानी, ईश्वरभक्त वनों में हिंस्र पशुओं को वशीभूत कर लिया करते थे और यह उपदेश अपनी एक-एक चेष्टा से देते थे कि वासनाओं को भी इसी तरह मानवों को दबाना चाहिए।

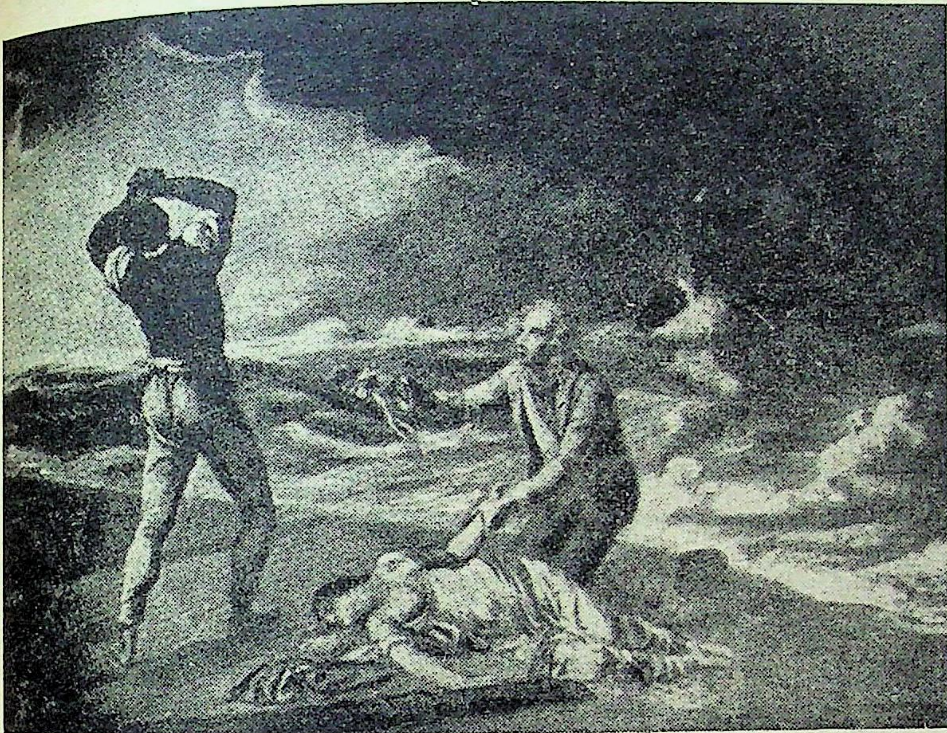
पाल और विर्जिनी बड़े हुए और उनकी माताओं ने उन्हें हमेशा के लिए एक दूसरे का जीवनसाथी बनाने का निश्चय किया। इतने में विर्जिनी की नानी की ओर

विर्जिनी मारीशस को छोड़ रही है।

से यह प्रस्ताव आया कि लड़की को पैरिस भेजा जाय। नानी ने राज्यपाल के पास धन भी भेजा जिसे लेकर वे इनकी कुटिया पर पधारें। लाबुर्दोने ने पाल को गले लगाया। विर्जिनी की विदाई के समय हृदय-विदारक दृश्य उपस्थित हुआ। वनदेवी की भाँति जीवन के प्रारम्भिक अंश को बिताकर यह बालिका फ्रांस के समाज से थोड़े ही दिन में ऊब गयी। धन त्यागकर स्वदेश लौटी, परन्तु हा हन्त! बार-बार तूफान से आहत होनेवाले देश पर एक भयंकर तूफान ने हमला किया और जहाज मारीशस के समुद्र में डूबा। साथ-साथ विर्जिनी की जल-समाधि हो गयी। पाल ने अपनी आँखों से देखा कि जहाज कैसे नष्ट हुआ। विर्जिनी न रही जो पाल के अँधेरे में दीपक बननेवाली थी। असह्य ग्लानि के कारण वह भी स्वर्ग सिधारा। दोनों परिवारों के एक-एक व्यक्ति का ही नहीं, उनके दासों का भी देहान्त हुआ। उनका प्यारा कुत्ता भी न रहा।

इस नन्हें उपन्यास ने समस्त योरप को रुला दिया। कवि-सम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर के जन्म से ५ साल [illegible] इसका बंगाली में भाषान्तर हुआ था। किशोरावस्था [illegible] बड़े भाई की आँख बचाकर उनकी अलमारी से "[illegible] बन्धु" पत्रिका निकालकर, जिसमें सारी कथा छप [illegible] थी, महाकवि बननेवाले बालक ने उसे आद्योपान्त प[illegible] विश्व-यात्री हम्बोल्ट ने आज से एक शताब्दी पूर्व [illegible] था कि "पाल और विर्जिनी" (उपन्यास) मेरा सहचर [illegible] मैं इसे यात्रा के समय भी छोड़ नहीं सका था।

सें प्येर का निधन १८१४ में हुआ, अतः इस [illegible] उनकी १५०वीं बरसी मनायी जा रही है। मारीशस [illegible] प्रवासी भारतीयों ने ही यह बरसी सर्वप्रथम मना[illegible] इस द्वीप के मध्य में स्थित नगर सें पोल में एक पुस्त[illegible] ने, जिसका नाम प्रकाश पुस्तकालय है, विगत ता० [illegible] अप्रैल को बरसी के अवसर पर पुस्तकों की प्रदर्शनी [illegible] आयोजन किया। भाषण भी करवाये गये। अपने भा[illegible] में वक्ताओं ने बताया कि इस युग में सें प्येर के मान[illegible] वादी हृदय के समान हृदयों की आवश्यकता है।



विजिनी का शव

भारत के परम मित्र सें प्येर पर भारतीय ही ...ों का ध्यान गया। अन्ततः जनसंख्या के शेष ... सजग हुए। लोग इस पुस्तक को नये सिरे से ... लगे। दासता की प्रथा के युग का स्मरण कराया ... जब गलती करनेवाले दास-दासियों को कोड़े ... जाते थे। फ्रेंच शासनकाल में गुलामों के ... गोरे लोग रंचमात्र सहानुभूति नहीं दिखाते थे। ... को लगा कि १७६७ में न पधारकर ग्रन्थकार ... यहाँ आये हुए होते तो इतना सुन्दर ग्रन्थ रच ... पाते।

आजकल मारीशस की जनसंख्या सात लाख की है। ... रहने के लिए घर बनाये जा रहे हैं। गगनचुम्बी ... खड़े किये जा रहे हैं, और नदी, पहाड़ी, तालाब, ... पौधे का सौन्दर्य आँखों से ओझल होता जा रहा है। ... युग में मानव निर्मित महलों से द्वीप को भर ... गया होता तो वे लेखक यहाँ बहुत दिन ठहरते ... नहीं।

प्राकृतिक दृश्यों का जो वर्णन इस लघु पुस्तक में किया गया है उसे पढ़कर १७८८ से लेकर आज तक कितने ही कलाकारों ने अनेक चित्र बनाये हैं। सचित्र "पाल और विर्जिनी" की १७६ साल माँग बनी रही। सें प्येर ने अपने ग्रन्थ में स्थल-स्थल पर शब्द-चित्र दिये हैं। यदि केरमर संस्करण देखा जाय (जो चित्रमय "पाल और विर्जिनी" का विख्यात संस्करण है) तो यह मानना पड़ेगा कि मारीशस 'लघु भारत' है। हरे-हरे वृक्षों के बीच पड़े हुए तालाब, नदियाँ इत्यादि कश्मीर का सहसा स्मरण कराती हैं। एक फ्रांसीसी यात्री ने क्या ही अच्छा कहा है कि मारीशस एक फूलों से भरी टोकरी है। और तो और जो मछलियाँ भारत के समुद्र में जीती हैं वे जब रास्ता भूल जाती हैं तो मारीशस के समुद्र में आ जाया करती हैं।

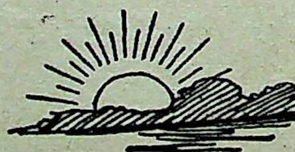
सें प्येर का लघु उपन्यास विश्व भर के फ्रेंच-भाषियों को याद दिला रहा है कि मारीशस में फ्रेंच बोली और पढ़ी जाती है। जो छः दैनिक पत्र राजधानी पोर्ट लुई

से प्रकाशित होते हैं वे सबके सब फ्रेंच में हैं, चाहे उनके संचालक गोरे हों। प्रवासी भारतीय या पाकिस्तान से संबंध रखनेवाले मुस्लिम हों, हिन्दी बेचारी अभी यहाँ बाल्यकाल से ही गुजर रही है।

फ्रेंच की एक अपभ्रंश बोली है जिसका नाम 'क्रिओल' है। यह भाषा दासों ने प्रचलित की क्योंकि वे स्कूल नहीं जाते थे और फ्रेंच सीखने में असमर्थ थे। मारीशस में ब्रिटिश काल का आरम्भ सें प्येर के शरीरान्त के चार वर्ष पूर्व हुआ। अधिक संख्या में ब्रिटिश काल में भारतीय यहाँ आये। ये श्रमिक थे और इन्हें भी पाठशाला में पढ़ने का अवसर न मिला। इन्होंने इस अपभ्रंश में भारतीय शब्दों का प्रवेश करके उसमें नये प्राण फूँके। यह भाषा जनसंख्या के सब तत्त्व बोलते और समझते हैं। इसमें गीता का अनुवाद किया गया है, जिस तरह मादागस्कर द्वीप के निवासियों ने इस महद् ग्रन्थ का मल्गासी भाषा में उल्था किया है। यद्यपि प्रवासी भारतीयों की संख्या अब ४ लाख ६० हजार हो गयी है, तथापि इनमें से कुल ढाई लाख हिन्दी और उर्दू बोलते हैं जब कि ७ लाख मारीशसियों में से एक भी ऐसा व्यक्ति पाया नहीं जाता जो क्रिओल न बोलता हो या कम से कम इसे समझता न हो।

जो यह अपभ्रंश बोलते हैं वे फ्रेंच जल्दी सीख लेते हैं। मारीशस में जन्मा कोई भी व्यक्ति नहीं कह सकता कि मैंने "पाल और विर्जिनी" को नहीं पढ़ा है, या कम से कम उसे पढ़ते नहीं सुना है।

जब यह शती मनायी जाने लगी तब इस बात की ओर सबका ध्यान आकृष्ट हुआ और पत्रकार लिखने लगे कि यह ऐसा उत्सव है जो इस साल मतभेदों को मिटा रहा है। पैरिस से एक मारीशसीय पत्र के लिए "पैरिस की चिट्ठी" लिखते हुए एक सिद्धहस्त पत्रकार ने कहा कि मारीशस में मेल किया जा सकता है, मेल के उपकरण विद्यमान हैं क्योंकि वहाँ सें प्येर की मृत्युशती के अवसर पर एक [illegible] के महापण्डित ने हिन्दी में भाषण किया और फ्रेंच साहि[illegible] पर प्रकाश डाला। इन प्रवासियों में साहित्य-सेवी भी हैं उन्होंने अपनी जन्मभूमि के व्यर्थ के झगड़ों का अन्त [illegible] का उत्तम उपाय देश को बताया है। सें प्येर का भी [illegible] था कि भारत की विश्व में इज्जत होनी चाहिए। अपनी "भारतीय झोंपड़ी" नाम की कहानी में उन्होंने सु[illegible] ढंग से बताया है कि भारत की यही शिक्षा है कि [illegible] मनुष्य का मूलगत धर्म है। उस समय इस कहानी का हिन्दी अनुवाद हुआ न था जब बापूजी को एक फ्रांसी[illegible] ने वह सुनायी थी। कहना न होगा कि श्रोता मन्त्र-मुग्ध हुए थे। वर्तमान भारत के दो सर्वश्रेष्ठ मानवों को प्र[illegible] करने में जिस ग्रन्थकार में शक्ति थी, क्या उनसे भारत[illegible] कभी भी परिचित न होंगे? अब "पाल और विर्जिनी" का हिन्दी अनुवाद भी हो गया है।



नेताओं के लिए आशंका

श्री रामनरेश पाण्डेय 'पद्मेश'

बन बानिक जीवन की तरणी निज सागर में लिये डूब न जायें।
इन बाह्य अग्राह्य प्रलोभनों में पद के मद को लिये डूब न जायें।
निज जीवन अल्प में रुद्ध स्वयं अपने पथ को किये डूब न जायें।
युग के बहते हुए तीव्र प्रवाह में ये जलते दिये डूब न जायें।

साहित्य की उत्तरकालीन दिशा : समाजवाद ?

श्री कुबेरनाथ राय

"प्यारी माँ, तुम जरा देखो एक नये किस्म का हृदय पैदा हो गया है--एक नया दिल जीवन में उभर कर आ रहा है। सभी पुराने हृदय विविध स्वार्थों के संघातों में कुचले हुए हैं।..... समय आ गया है। तुम सोचो कि हमारे स्वार्थ एक हैं, केवल एक : उगने और बढ़ने की उत्कट लालसा।"
--गोर्की ('द मदर')

ऐसा लगता है कि भारत का इतिहास-चक्र किसी न किसी रूप में समाजवाद की ओर मोड़ ले रहा है। यहाँ हमारा तात्पर्य समाजवादी शासन-व्यवस्था एवं तन्त्र से ही नहीं बल्कि उक्त व्यवस्था के फलस्वरूप उत्पन्न संस्कारों से भी है। प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या समाजवाद भारतीय साहित्य में वैसी ही संजीवी भूमिका निभा सकेगा जैसी वेदान्त अथवा भक्ति के द्वारा विगत शताब्दियों में अभिनीत हुई है। दरअसल समाजवाद के अनेक चेहरे हैं। यह कामरूप है। इसकी शक्ति मायाविनी है। इसकी 'मिथ' बड़ी ही आकर्षक है। इस समय इसका व्यास-मुख 'मार्क्सिज्म-लेनिनिज्म' है जिसके मुख्य व्याख्याता अपने सारे आन्तरिक मतभेदों के बावजूद भी रूस और चीन हैं। चीन में छिन् और हान् राजवंशों के काल से मन्दारिनों (पण्डितों) की सौ विचारधाराएँ प्रचलित थीं जिन्हें 'शतपुष्पक' कहते थे। माओत्से तुंग ने अपने शासन के प्रारम्भ में ही 'Let Hundred Flowers Bloom' की थीसिस प्रस्तुत की एवं शतपुष्पक को अभय दान दिया। पर व्यवहार में देखा गया कि उन समस्त पुष्पों को जीवित रहने के लिए सिर्फ एक रंग लाल को धारण करना होगा। ख्रुश्चेव ने इधर स्वीकार किया है कि मार्क्स का दर्शन प्राक्परमाणु-युगीन है और उसमें संशोधन करके आंशिक गणतान्त्रिकता लायी जा सकती है। तब से रूस में कुछ स्थिति बदली है।[1] अन्यथा रूसी मार्क्सवादी समीक्षा पद्धति के नाम पर कितने ही स्वतन्त्र चेता विचारकों की हत्या हुई। मायकोवोस्की जैसा कलाकार आत्मघात करने को बाध्य हो गया। बोरिस पास्तर्नाक उसी परम्परा का उपसंहार है। मार्क्सवाद का यह व्यासमुख मार्क्स एवं ऐंगेल्स की प्रारम्भिक कृतियों को ही प्रामाणिक मानकर चलता है। मार्क्स के अन्तिम लेख एवं ऐंगेल्स का पत्राचार इस बात के प्रमाण हैं कि अन्तिम काल में मार्क्स अपनी विचारधारा में कुछ संशोधन की ओर झुक रहा था। ये संशोधन कट्टर लेनिनपंथी विचारधारा के प्रतिकूल जाते हैं। पर जिन विचारकों ने इस भाँति का विचार व्यक्त किया उनकी हत्या ही करवा दी गयी। उदाहरण के लिए प्रतिभाशील मार्क्सवादी महिला विचारक रोजा लक्जेमबर्ग को वैचारिक मतभेद के कारण ही कम्यूनिस्ट गुर्गों ने हथौड़े से सिर तोड़कर मार डाला। मार्क्स ही नहीं अन्य विचारकों के कथन को भी तोड़-मरोड़कर जनता के सम्मुख रखना कम्यूनिस्ट विचार पद्धति का राजमार्ग है। उदाहरण के लिए डार्विन के 'ऑरिजिन ऑव स्पेसीज' के कई तथ्यों को रूसी संस्करण में काटकर निकाल दिया गया है। (प्लेखानोव : 'आर्ट्स एण्ड सोशल लाइफ', भूमिका) हाल ही में जर्मन साहित्यकार टामस मान की एक वार्त्ता को इसी तरह से तोड़-मरोड़कर सोवियत प्रचार के उपयुक्त बनाया गया है। ('एक रूसी लेखक का पत्र' : 'इनकाउण्टर' जून, १९६४)

दूसरे शब्दों में समाजवाद जिस रूप में अपने व्यास-मुख--मार्किसस्ट-लेनिनिस्ट प्रणाली--के द्वारा प्रदर्शित है वह मानववाद का निषेध-मात्र है। यह निषेध तीन बिन्दुओं पर अधिक स्पष्ट है। प्रथम तो यह कि इसमें व्यक्ति के महत्त्व को एकदम अस्वीकृत किया गया है। फलस्वरूप व्यक्ति पर आश्रित 'परिवार' का ध्वंस एवं

[1] लण्डन से प्रकाशित प्रसिद्ध मासिक पत्र 'इनकाउण्टर' के जून '६४-अंक में एक रूसी लेखक का पत्र छपा है जिसमें ख्रुश्चेव-कालीन वैचारिक स्वातन्त्र्य की लम्बी समीक्षा है। उसे पढ़ करके तो यही लगता है कि स्थिति बहुत अधिक नहीं बदली है।

उसके स्थान पर 'कम्यून' ('समूह') की स्थापना इसका उच्चतम सामाजिक आदर्श है। दूसरा यह कि यह सारे सनातन मूल्यों की सनातनता अस्वीकृत करके उन्हें राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का पिछलग्गू-मात्र मानता है। इस प्रकार त्याग, वीरता, दया, करुणा, प्रेम आदि को जो सभ्यता के साथ-साथ विकसित हुए हैं, बूर्वा संस्कार का छद्म जाल मानकर या तो मन-माने ढंग से तोड़-मरोड़कर प्रचारात्मक बना देता है अथवा सर्वथा अस्वीकृत कर देता है। फल यह होता है कि बिना इन मूल्यों के 'समूह' के बीच जीवित रहने वाले व्यक्ति की स्थिति और दयनीय हो जाती है। तीसरा बिन्दु है, राष्ट्रीयता की अस्वीकृति। मार्क्सवाद की सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि मजदूर अन्तर्राष्ट्रवाद के स्वप्न के नशे में यह तथ्य भूल जाता है कि राष्ट्रवाद अभी भी शक्तिशाली है। श्रीमानवेन्द्रनाथ राय ने जिन्हें क्रेमलिन ने चीन में क्रान्ति का सन्देशवाहक बना कर भेजा था, आज से तीस वर्ष पूर्व चीन के बारे में स्पष्ट चेतावनी दी थी कि चीनी समाजवाद एवं राष्ट्रवाद का और छिन्-हान्-वंशीय साम्राज्यवाद का एक नवीन संस्करण मात्र होगा। माओ ने १९६३ में चंगेज खाँ की कब्र पर रेशमी चादर चढ़ाकर राय महाशय के कथन को प्रमाणित कर दिया। रूस के अन्दर यह राष्ट्रीयतावाद उतना अहिफेन-मत्त नहीं। उसके अन्तर्गत विविध राष्ट्रों का समावेश है: यथा स्लाव, मंगोल, कज्जाक आदि। फिर भी यूक्रेन संस्कृति, कज्जाक संस्कृति एवं मंगोल संस्कृति की आपसी आन्तरिक होड़ अब भी वहाँ चलती है। अतः यह सोचना गलत है कि राष्ट्रवाद समाजवादी व्यवस्था में मर जाता है। दूसरी बात यह कि राष्ट्रीयता या राष्ट्रवाद पूँजीवादी हितों का मोर्चामात्र नहीं। इसे फासिस्टवाद कहकर कोसना भी दृष्टि-भ्रम मात्र हैं। समाजवादी देश भी फासिस्ट हो सकता है। कलकत्ता के मठाधीश इसे मानें या न मानें पर लाल चीन एक फासिस्ट देश है। समझ में नहीं आता कि कलकत्ता वाले मठ के बुद्धिवादी लामा किस तरह रवीन्द्रनाथ और माओ के चित्रों को साथ-साथ अभिनन्दित करते हैं। मुझे विश्वास है कि गुरुदेव जिन्दा होते तो माओ की बगल में नाक पर रूमाल रखकर ही बैठते।

साहित्य का मूल्य सार्वकालिक होता है। वह दैनिक समाचार-पत्रों के द्वारा उद्घोषित तात्कालिक मूल्यों से अप्रत्यक्ष सम्बन्ध रखते हुए भी 'पद्मपत्रमिवाम्भसा' उनसे परे होता है। ऐसी अवस्था में समाजवाद का वह चेहरा जो व्यक्ति, सनातन मूल्यों एवं राष्ट्रीयता को अस्वीकृत करता है हमारे साहित्य के परिवेश में कोई स्थायी भूमिका नहीं अभिनीत कर सकेगा। स्थायी भूमिका एवं दीर्घजीवी पृष्ठभूमि के लिए समाजवाद को नया चेहरा खोजना होगा।

(२)

समाजवाद द्वारा व्यक्ति के तिरस्कार के अनेक विशिष्ट कारण हैं। 'लेसेफ़ेअर' का व्यक्ति न केवल आर्थिक क्षेत्र में शोषक था बल्कि साहित्य और कला के सन्दर्भ में वह अशुभ परिवेशों से सम्पन्न हो गया था। मार्क्स के समय व्यक्तिवाद अपनी घोरतम अवस्था में था। गलित भावधारा (डिकेन्डेन्स : आस्कर वाइल्ड आदि), प्रतीकवाद (बोदलेअर, मलार्मे) एवं प्रभाव-वादी विधा आदि व्यक्तिवाद की एकान्तिक साधाना थीं, जिनका साहित्य को मूल अवदान था: विकृति निराशा और अस्पष्टता (शैलीवाद और तथ्य-तिरस्कार के फलस्वरूप)। मार्क्स से पूछा गया कि किन-किन कवियों को वह चाव से पढ़ता है तो उसका उत्तर था शेक्सपियर और गेटे। इन दोनों कवियों की रचना में 'व्यक्ति' की महिमा प्रतिष्ठित है। दरअसल मार्क्स ने तत्कालीन व्यक्ति-परक साहित्य को रोगग्रस्त देखकर उसे अमान्य घोषित कर दिया था। व्यक्ति के स्थान पर सामाजिक संघर्ष एवं प्रकृति पर बुद्धि की विजय ये दो नवीन विषय मार्क्सवाद ने सामने रखे। इसका नायक पूरा 'समूह' है, व्यक्ति नहीं। यह साहित्य को नयी पर विपरीत दिशा में ठेलता है। यह साहित्य का नया आयाम है। पर इसके भावबोध का स्तर अत्यन्त छिछला है।

मार्क्सवाद व्यक्ति को 'समूह मानव' के रूप में परखता है। यह निराशा, कुंठा एवं विकृति तथा दैन्य के आच्छादन का विरोधी है। मार्क्स की यूटोपिया 'विश्व मजदूर राज्य' एक 'अंधी आशा' का आग्रह है। अतः निराशा की जरा भी शिकन इसे बरदाश्त नहीं। निराशा और विकृति मनुष्य को कमजोर करते हैं।

...रस का स्वाद बिगड़े दिलों का शौक है जिनके ... भावी समाज की रचना में कोई सहयोग नहीं ... सकता। वर्त्तमान पीढ़ी को उक्त यूटोपिया की ... के लिए आस्थापूर्वक सर्वस्व समर्पण करना ...। प्रयोग की अवस्था में व्यक्ति स्वातन्त्र्य एवं ...-महिमा को प्रोत्साहन देना घातक है। जब प्रयोग-... हो जायगा, उक्त विश्वराज्य की स्थापना हो जायगी, ... व्यक्ति को उचित आसन प्रदान कर दिया जायगा। ... व्यक्ति की महिमा गाने का अर्थ होता है कुसंयम ... को प्रोत्साहन। संक्षेप में मार्क्सवादियों का यही तर्क ... पर इस तर्क का उपयोग दुश्मनों का सफाया करने ... के लिए अधिक किया गया है और यूटोपिया के लिए ...। कई कारणों को देखते हुए व्यक्तिवाद के इस ... का औचित्य स्पष्ट हो जाता है। पर बात 'लोक... के लिए व्यक्ति का विरोध', यहीं तक समाप्त नहीं ...। **व्यक्ति की धूमकेतु स्थिति का विरोध और बात है और व्यक्ति को मार डालने की चेष्टा और बात।** मार्क्स-... समाजवाद ने व्यक्ति को नष्ट करने एवं एक नयी ... 'समूहमानव' (Mass man) की स्थापना करने की चेष्टा की है। यह चरमपंथी दृष्टि है, उतनी ही चरमपंथी जितनी कि व्यक्ति की धूमकेतु स्थिति। व्यक्ति आधार है। परिवार उसका परिवेश है। गुहामानव ने अंतः-... का आरम्भ किया, तब से आज तक व्यक्ति ने प्रेम, दया, ... नीति आदि मूल्यों को परिवार की परिधि में रहकर ... किया है। यह भाव साधना तथा ये मूल्य, जिन्हें ... सनातन मानते हैं, व्यक्ति तथा उसके परिवेश परिवार पर बहुत कुछ निर्भर हैं। समाजवाद ने इस परिवेश को नष्ट करके परिवार के स्थान पर 'समूह' (कम्यून) का आदर्श रख करके व्यक्ति को और दयनीय तथा पंगु बनाने की चेष्टा की है। यह आमूल परिवर्त्तन है। भावों और प्रत्ययों का सारा उत्तराधिकार इससे समाप्त हो जाता है।

इसमें सन्देह नहीं कि हमारे देश में 'समूह' (कम्यून) की स्थापना एक बहुत बड़ी भाव क्रान्ति लायेगी) प्रेम, करुणा, शृंगार आदि भावों की धुरी ही बदल जायगी। ... के लिए शृंगार रस (कान्तारति) का स्तर ... ऐन्द्रिक ही रहेगा। उल्लास का रसबोध भी ऐन्द्रिक ... ही होगा। पूर्ण आत्मसमर्पण का भाव समाप्त हो जायगा जिसके आधार पर अतीन्द्रिय प्रेम की अनुभूति होती है। 'एक के लिए' एवं 'निजत्व' का लोप हो जाने से, एवं पत्नी और प्रेमिका के स्थान पर 'समूह नारी' और 'सब की भोग्या' के आ जाने से अतीन्द्रिय प्रेम एवं एकान्त आत्म-समर्पण का प्रश्न ही समाप्त हो जायगा। तब कामाचार होगा आवश्यकता पूर्त्ति मात्र। पिता और माता का भाव समाप्त हो जाने पर वात्सल्य नहीं रहेगा। शृंगार और प्रेम केवल 'सख्य' की उपासना होंगे। इसी प्रकार अन्य भाव, यथा वीरता, उदारता एवं उत्साह आदि की भी धुरी एवं मानदण्ड सर्वथा नवीन हो जाँयगे। रसबोध की एक सर्वथा नवीन शैली की स्थापना होगी। हम यह नहीं कहते कि रसबोध ही मर जायगा। पर रस-बोध की वर्त्तमान प्रक्रिया एवं वर्त्तमान विधा का निश्चय ही लोप हो जायगा। यह शुभ होगा या अशुभ? यह प्रश्न ही आज व्यर्थ है। और, आदत पड़ जाने पर प्रत्येक विधा शुभ हो जाती है। पर आदत पड़ेगी कैसे? यह विधा ही प्रकृति का विरोध है। भावसाधना का यह हठयोग साहित्य में उपस्थित करने का प्रयत्न इधर कुछ चीनी कथाकारों ने किया है। पर व्यक्ति बड़ी ही जानदार सत्ता है, उसे कितने दिनों जबर्दस्ती निष्कासित किये रहेंगे? जरा-सा छिद्र पाकर भी वह हमारे कल्पना-महल में घुस आता है! कठोर आत्म-दमन के अशोक-वन में भी घुसकर कल्पना की सीता को राम का सन्देश दे आता है। अभिमान की लंका जलकर राख हो जाती है। रावण भले ही बैठकर शुतुरमुर्ग पुराण लिखता रहे।

जातिगत व्यक्तित्व को ही राष्ट्रीयता कहते हैं। राष्ट्रीयता के नाम पर संसार में अनेक कलंकपूर्ण कार्य हुए हैं। पर यह बात धर्म के लिए भी कही जा सकती है। विशेषतः इस्लाम और ईसाई धर्म की कई शताब्दियाँ रक्तपात, व्यभिचार एवं उत्पीड़न की शताब्दियाँ है। पर इन धर्मों ने मनुष्य को शान्ति एवं आत्म-विकास का रास्ता भी बताया है। राष्ट्रीयता और धर्म अनेक मंगलकारी कार्यों के आधार रहे हैं। ये अटूट शक्तियों के स्रोत हैं। राष्ट्रीयता व्यक्ति की तरह ही कभी नहीं मरती और अन्त में अपना दाँव लड़ा ही देती है। गत महायुद्ध में रूस की रक्षा के लिए सोवियत कलाकारों ने ईगोर-गाथा को राष्ट्रीय गाथा का रूप दे दिया। वोल्गा एवं पीटर महान् की प्रशस्तियाँ भी लिखीं। इन राष्ट्रीय मिथों में शक्ति का

विद्युत् केन्द्र छिपा है जिससे समस्त जाति किसी भी क्षण अनुप्राणित की जा सकती है। आत्मिक शक्ति के इस महत् स्रोत को तिरस्कृत करने के बजाय हम इसे शुभ दिशाओं की ओर उन्मुख कर सकते हैं। गांधीजी ने यही किया था। 'मिथ' पर नयी व्याख्या एवं भावों की नयी परत भी चढ़ा सकते हैं। डा० राममनोहर लोहिया का लिखा हुआ प्रबन्ध 'श्रीकृष्ण' इसी दिशा का एक स्तुत्य प्रयत्न है। पर इसका सर्वोत्तम उदाहरण है लोकमान्य द्वारा लिखित गीता की कर्मयोगी टीका। के० एम० मुंशी एवं चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने कहीं कहीं मिथ को नवीन रूप में रखा है। पर इनका दृष्टिकोण लोहिया की तरह समाजवादी दर्शन से अनुप्राणित नहीं। ये शुद्ध साहित्यिक प्रयत्न हैं। दरअसल आज देश में कल्पनाशील सामाजिक एवं राजनीतिक विचारकों का अभाव सा है। विशेषतः हिन्दी प्रान्तों के शासनारूढ़ नेतृवर्ग के पास न तो कोई संस्कार है और न चूड़ीदार पायजामा से अधिक परिष्कृत रुचि का उन्हें ज्ञान है। लेखक का अनुभव है कि हिन्दी प्रान्तों की बुद्धिजीवी संस्कृति अन्य प्रान्तों की अपेक्षा अधिक छिछली और बदतर होती जा रही है। अप्रिय सत्य को स्वीकार करना ही अच्छा है।

इसमें सन्देह नहीं कि आज व्यक्ति साँप की तरह कुण्डली मारकर स्वकेन्द्रित एवं विषधारी हो गया है। इसमें सन्देह नहीं कि राष्ट्रीयता का अभावात्मक पहलू (परराष्ट्र-घृणा, साम्राज्यवाद) ही अधिक जोर पर है। पर हम चाहें तो हमें ऐसा उपाय मिल सकता है जिससे व्यक्ति की कुण्डली खोलकर उसे मुक्त विहार, मुक्त वायु-पान के लिए प्रेरित किया जा सकता है जिससे वह अपने अहं को समूह के साथ संयुक्त कर दे तथा 'स्व' एवं 'कम्यून' के बीच अपना 'गृह' भी सुरक्षित रख सके। इस देश को सर्वदा मध्यम मार्ग ही रुचा है और वही चला है। "तुलसी घर बन बीच ही राम-प्रेम पुर छाय।" इसी भाँति राष्ट्रीयता के भावात्मक पहलू पर जोर देकर उसे हम गरलहीन बना सकते हैं एवं राष्ट्र-शक्ति का उपयोग रचनात्मक कार्यों के लिए कर सकते हैं।

(३)

हमने ऊपर लेनिनिस्ट-मार्क्सिस्ट समाजवाद की चर्चा करके उसकी उन त्रुटियों का संकेत किया है, जो उसे साहित्य में दीर्घजीवी एवं सशक्त भूमिका निभाने में असमर्थ बना देती हैं। पर भारतवर्ष में जो समाजवाद आ रहा है, जिसकी कल्पना भारत की प्रत्येक पार्टी (कम्यु-कत्ता के वामपंथी-महाल को छोड़कर) कर रही है, वह मार्क्सिस्ट-लेनिनिस्ट नहीं। हम नेहरू के समाजवादी नारे के राजनीतिक पहलू की बात नहीं करते। प्रोग्रामों में अन्तर होते हुए भी नेहरू का समाजवाद डॉ० लोहिया या जोशी के समाजवाद से भावात्मक पक्ष पर भिन्न नहीं है। यह व्यक्ति, सनातन मूल्यों एवं राष्ट्रीयता की सम्पूर्ण अस्वीकृति नहीं है। इसका आदर्श कम्यून नहीं है। यह सी० पी० आई० के समाजवाद से अलग है। यह बहुत कुछ 'फेबियन समाजवाद' से मिलता-जुलता है जो जार्ज-बर्नार्ड शॉ एवं एच० जी० वेल्स जैसे साहित्यकारों को अनु-प्राणित कर सका था।

समाजवादी भाव विकास के दो विभाजन किये जा सकते हैं। एक तो समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के पूर्व वर्ग-संघर्ष काल का और दूसरा उसके बाद का। वर्ग-संघर्ष अज्ञातरूप से विकासशील समूहों एवं समाज के अन्य वर्गों के बीच सदैव चलता है। ऐसा एक कट्टर समाज-वादी मानता है। पर इसे वर्ग-संघर्ष न कहकर केवल 'संघर्ष' या 'प्रयत्न' कहा जाय तो अधिक सही होगा। क्योंकि वर्गों का परम्परागत विभाजन जमींदार-किसान अब समाप्त हो गया। दूसरी बात यह है कि यह आर्थिक सामाजिक एवं धार्मिक जटिलताओं का देश है। अतः आर्थिक आधार पर वर्ग-विभाजन बहुत भ्रामक है: तीसरी बात यह कि **आज शोषण की टेकनीक बदल गयी है** और आज **उत्तर प्रदेश, बिहार आदि हिन्दी इलाके के गाँवों में आज वर्ग-संघर्ष कम पर नैतिक संकट ज्यादा हो गया है।** ग्राम पंचायतों की स्थापना हो जाने के बाद जो आज नैतिक-संकट उपस्थित हुआ है उसकी क्रूरता को फिर से अभिव्यक्ति प्रदान करनेवाले एक नये प्रेमचन्द की आवश्यकता है।

पर यह संघर्षकालीन साहित्य जिसके विषय आस्था, विश्वास, जन-सहानुभूति एवं नैतिक-संकट की समीक्षा होंगे अन्त में चलकर मुक्ति-प्रधान समाजवादी साहित्य में विलीन हो जायगा। समाजवाद की स्थापना के बाद या तो मानव-मुक्ति होगी, नहीं तो मानव का मशीनीकरण होगा। पहली अवस्था में साहित्य की दिशा सर्वोदय की ओर मुड़ेगी। दूसरी अवस्था में साहित्य का दमन होगा। वेदान्त और समाजवाद दोनों के मेल से सर्वोदय पैदा होगा।

है। साहित्य और कला के स्तर पर वेदान्त, समाजवाद और सर्वोदय को एक दूसरे से अलग करना बड़ा कठिन है। तीनों एक दूसरे से संपृक्त चलते हैं। जिस प्रकार वेदान्त ने भक्ति आन्दोलन को आधार बनाकर साहित्य निर्मित किया वैसे ही समाजवाद को भी सर्वोदय जैसी सरस, मुलायम पृष्ठभूमि लेनी होगी। बिना किसी मुलायम ज़मीन के आकाश में लटकते त्रिशंकु भाव-प्रत्ययों से रचनात्मक साहित्य नहीं उगता है। त्रिशंकु के वाचाल मुँह से गिरी लार कर्मनाशा की रचना कर सकती है परन्तु साहित्य की गंगा के लिए उस शक्ति का चरण-कमल चाहिए जो पोषण एवं वृद्धि का आदि स्रोत है। समाजवादी भाव-प्रत्ययों को सगुण भूमि सर्वोदय के द्वारा ही मिल सकती है। सर्वोदय का आधार है वेदान्त। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु'। पर सबको आत्मवत् मानते हुए भी वेदान्त माया को नकारने का आदेश देता है। यह विषमता पर आधारित शोषण मानवकृत, मिथ्या एवं माया है। इसे दैवकृत मानना और इसका संरक्षण करना अविद्या है। अविद्या के सहचर अर्थात् निशाचर हमारे आत्मवत् नहीं हैं। राक्षसों को आत्मवत् मानना वेदान्त का तथ्यहीन नकारात्मक अर्थ निकालना है। यह घोर अविद्या है। **व्यक्ति के अन्दर की अविद्या का नहीं, उसकी आत्मा का सम्मान ही समाजवाद का उद्देश्य है।** समाजवादी व्यक्ति अपने-अपने 'अहं' को मुक्त और सन्तुलित भाव से चारों ओर बिखेर देगा। सारी गड़बड़ी अहं को 'स्व' केन्द्रित रखने से ही होती है। जीवन का एक भाग तो "इदं मम" है पर शेष भाग है "इदं इन्द्राय न इदं मम"। यही समाजवाद है, यही वेदान्त है और यही साहित्य की चिरजीवी भूमिका भी बन सकता है।

(४)

साहित्य की पंथा अति विशाल है। यह समाजवाद तक ही समाप्त नहीं हो जाती है। साहित्य रूपों का एक कामचलाऊ विभाजन इस प्रकार कर सकते हैं––

(क) लोकमंगल (लोकरंजन भी)–प्रधान (तुलसीदास, प्रेमचन्द, व्यास और होमर)

(ख) रस निष्पत्ति-प्रधान

(१) तथ्यवादी (रवीन्द्रनाथ, कालिदास)

(२) शैलीवादी (बोदलेअर, सार्त्र, कामू)

समाजवादी साहित्य का राजमार्ग तो लोकमंगल-प्रधान होगा, परन्तु 'व्यक्ति' की अभिरुचि रसनिष्पत्ति के द्वारा ही परिष्कृत की जा सकती है। अतः तथ्यवादी रस साहित्य से भी समाजवादी उद्देश्यों का गहरा सम्बन्ध है। परन्तु विशुद्ध शैली-प्रधान रस साहित्य यथा अति यथार्थवाद, आदर्शवाद, ऊल-जलूलवाद (कामू का Absurd) तथा अस्तित्ववाद का वर्त्तमान नास्तिक रूप सम्भवतः इसे बरदाश्त नहीं होगा। क्योंकि इनके द्वारा आत्मा के अन्दर रुग्ण संस्कार फैलेंगे एवं रचनात्मक शक्तियाँ कमजोर होंगी।

भारत के आधुनिक साहित्य में घोर शैलीवाद का न तो स्वागत हुआ है और न वह किसी भी भारतीय भाषा के लेखक के द्वारा––यहाँ तक कि 'नकेन' वादियों में भी––तथ्य की सम्पूर्ण चरम अस्त्रीकृति के रूप में ग्रहण किया गया है। हाँ, भारतीय चित्रकला में यह घोर शैलीवाद पनप रहा है। वहाँ तथ्य की कभी कभी सम्पूर्ण अस्वीकृति हो जाता है। उदाहरण के लिए बम्बई के डी० सूजा, जिसे वहींके एक बुद्धिजीवीवर्ग ने बहुत उछाला है। 'क्वेस्ट' परिवार के गंगाधर गाडगिल का विचार है कि कलाकार को 'विशेषाधिकार' है कि चीनी-आक्रमण के मौके पर चुपचाप अपनी गजदन्तों की मीनार में बैठा नक्काशी किया करे। दूसरे शब्दों में कलाकार को विशेषाधिकार है कि वह राष्ट्र के मस्तक पर थूके और कहे : "हमारी पूजा करो। हम कलाकार हैं। देखो, वात्स्यायन के कामसूत्र में थूकना भी एक ललित कला माना गया है।" समाजवादी साहित्य में ऐसे विशेषाधिकार वाले कलाकार के लिए कोई जगह नहीं। ऐसा कलाकार आत्मसम्मान की रोटी खाने के लिए पैदा नहीं हुआ है। समाजवादी व्यवस्था में उसकी जगह इस भारत-भूमि पर न होकर अन्ध महासागर के पार होगी। वहीं बैठकर शैली-नक्काशी किया करेगा और अजनबीपन की प्रव्रज्या धारण करके 'स्व' का रस-भोग करेगा।

(५)

अन्तिम प्रश्न विधा और भाषा का है। विधा का कोई निश्चित रूप नहीं हो सकता। जो कोई भी विधा सोद्देश्यता एवं तथ्य को अस्वीकृत नहीं करती वह समाजवादी साहित्य की विधा बनने में समर्थ है। कथन की प्रेषणीयता को सुरक्षित रखते हुए कोई भी विधा काम में आ सकती है। सोद्देश्यता के बिना साहित्य लोकमंगल

का जनक नहीं हो सकता। जिस प्रकार ब्राह्मण संस्कारों से प्रधान साहित्य में रस-निष्पत्ति गौण रहती है और मूल आधार 'उद्देश्य' होता है उसी भाँति समाजवादी संस्कारों में 'उद्देश्य' वर्त्तमान रहेगा। रामायण, महाभारत ब्राह्मण संस्कारों के काव्य हैं परन्तु 'कुमारसंभवम्', 'रघुवंशम्' क्षत्रिय (राजकीय) संस्कारों के, जिनका मूल उद्देश्य रस-निष्पत्ति है। २० वीं शती फिर से सोद्देश्यता के आदर्श को लेकर आयी है। कोई भी शैली जो इसे अस्वीकार नहीं करती है, समाजवादी संस्कृति में खप सकती है।

यहाँ भाषा की समस्या से हमारा तात्पर्य हिन्दी की समस्या से है। यहाँपर हम सारी समस्याओं का विश्लेषण हिन्दी प्रान्तों को ही दृष्टिगत रखकर कर रहे हैं। भाषा की समस्या अन्त में शब्दों और मुहावरों की समस्या के रूप में ही आती है। नयी शास्त्रीय शब्दावली के संस्कृत और नयी रचनात्मक शब्दावली के लिए हिन्दी क्षेत्रों की बोलियाँ अधिक सहायक होंगी। भाषा की स्वाभाविकता की रक्षा समाजवादी साहित्यकार की मुख्य समस्या है। प्रेमचन्द के सामने जब यह समस्या आयी तो उन्हें बाध्य होकर हिन्दी में आना पड़ा। हिन्दी में भी विशेष रस उन्होंने 'काशिका' भोजपुरी से ही (बनारस तथा गाजीपुर के सैदपुर-जमानियाँ आदि की बोली जो बलिया-आरा-छपरा की भोजपुरी से भिन्न है) ग्रहण किया।

हम जन-भाषा शब्द को हिन्दुस्तानी का पर्याय नहीं मानते। दुर्भाग्य से उत्तर प्रदेश केएक विशिष्ट वर्ग के जन-नेताओं के हठ के कारण जिन्हें, उत्तर प्रदेश के ही बल पर दिग्विजयी और महाप्रतापी आदि बनने का सौभाग्य हुआ, हिन्दी-संस्कृति में सब कुछ दुर्गन्धपूर्ण घोषित कर दिया गया है। हिन्दुस्तानी के नाम पर ये लोग उसी भाषा के शब्द, उच्चारण एवं मुहावरे इस देश पर थोपने की चेष्टा कर रहे थे, और आज भी कम सचेष्ट नहीं, जो समाजवाद के प्रधान शत्रुओं, ताल्लुकेदारों, जमींदारों, नवाबों, उनके मौसेरे भाई वकीलों और मुख्तारों की भाषा थी। लखनउआ दुपल्ली टोपी और फर्शी सलाम एवं मुजरे वाली सड़ी संस्कृति को समाजवादी संस्कृति से संयुक्त करना, काश्मीर एवं पटने के बीच वाले भू-भाग में 'कल्चर', 'जनभाषा' एवं 'राष्ट्रीय एकता' के नाम पर सड़े रूमान को प्रतिष्ठित करना एक जबरदस्त धोखा है। देश के इतिहास में इससे बढ़कर और बड़ा विश्वासघात हो ही नहीं सकता कि 'कल्चर' का प्रमाणपत्र सड़े तबके के 'शौक' एवं 'क़' 'ज़' 'ख़' 'फ़' का उच्चारण मात्र मान लिये जाय। ब्राह्मण, चमार, नाई, दर्जी, धुनिया, किसान, लोहार, कुम्हार, डोम-मुसहर की भाषाएँ भोजपुरी, अवधी, बुन्देली, छत्तीसगढ़ी आदि हैं। समाजवादी भाषा में मुहावरे इन भाषाओं से आयेंगे न कि बनारस-लखनऊ इलाहाबाद और दिल्ली के भाँड़ों, कथकों, जमींदारों और वकीलों की जबान से। माना कि यह वर्ग बहुत चालाक है, पर सत्य के विशाल जगन्नाथी पहिए के नीचे बड़े-बड़ों की चालाकी धूल में मिल गयी है। हिन्दी प्रदेश का इतिहास और क्षेत्रफल चाँदनी चौक एवं 'दारुलशफा' से बहुत पुराना और बहुत बड़ा है।



नवीन सिक्किम

मेजर सीताराम जौहरी

श्रीमंत चोग्याल पोलडेन थानडूप नामग्याल (Chogyal Polden Thandup Namgyal) सिक्किम के बारहवें राजा है। इनका राज्याभिषेक नवम्बर १९६४ में होगा। सिक्किम एक नया राज्य है। ऐशले ईडन के अनुसार सत्तरवीं शती में सिक्किम की नींव पड़ी। १६४४ में चीन के सिंहासन पर मांचू वंश का अधिकार होते ही चीनियों ने दक्षिण की ओर अग्रसर होना प्रारम्भ किया। वे तिब्बती जिन्हें अपना धर्म प्रिय था और जो उसकी रक्षा के इच्छुक थे दक्षिण की ओर चले। इन शरणार्थियों में एक राज्य परिवार था जिसकी एक शाखा पश्चिमी भूटान में पहुँच गई और दूसरी चुम्बी घाटी में। इसी दूसरी शाखा ने सिक्किम राज्य की नींव डाली। यह स्पष्ट है कि भूटान और सिक्किम की स्थापना लगभग साथ ही साथ हुई। इन दोनों राज्यों की नींव तो साथ ही पड़ी किन्तु एक ही परिवार द्वारा उनका विकास भिन्न-भिन्न रीति से हुआ। भूटान में लामा राज्य करते रहे। इस प्रथा का १९०७ में अन्त हो गया परन्तु आज भी बौद्ध धर्म से समस्त राज्य काज भी प्रभावित है। सिक्किम के शासकों ने अपना धार्मिक गुरु (तिब्बत के लामा की भाँति) अलग बना लिया और वे धार्मिक मामलों में तिब्बत से स्वतन्त्र हो गये। समय पड़ने पर उन्होंने तिब्बत का नैतिक भी साथ न दिया। इसी कारण अंग्रेजों ने भूटान की स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप नहीं किया। सिक्किम में लामाओं ने दूसरा खेल खेला। सिक्किम राज्य की स्थापना के कुछ समय बाद राज्य की बागडोर नामग्याल परिवार के फुंटसोग नामग्याल (Phuntsog Namgyal 1604-1642) को दे दी। इस कारण सिक्किम का निर्माण राजाओं द्वारा हुआ। सिक्किम के पूरब में था भूटान (उन दिनों चुम्बी घाटी सिक्किम का एक मुख्य अंग था), और पश्चिम में नैपाल। फिर सिक्किम के दक्षिण में आये अंग्रेज। इन तीनों शक्तिशाली साम्राज्यवादियों से रक्षा हेतु सिक्किम का झुकाव अंग्रेजों की ओर ही रहा। स्वभावतः अंग्रेजों की दृष्टि में सिक्किम खटकता ही रहा, और उन्होंने धीरे-धीरे सिक्किम को अपने अधीन कर लिया। आज भी सिक्किम एक विशेष सन्धि द्वारा भारतीय प्रभुत्व के अन्तर्गत है।



सिक्किम का एक ग्राम सेवक (लेपचा)

हिमालय में सिक्किम ही एक ऐसी पहाड़ी रियासत है जो केवल पर्वतों से आच्छादित है। अंग्रेजों के राज्यकाल में ही सिक्किम की तराई सिक्किम दरबार से ले ली गई थी। इस प्रकार नैपाल, भूटान, तिब्बत और अंग्रेजों ने सिक्किम का बँटवारा कर दिया। आजकल का सिक्किम एक छोटा सा राज्य है जिसकी जनसंख्या लगभग १,६७,००० है। कुछ दिन पूर्व सिक्किम दरबार ने भारत सरकार को लिखा था कि वह चीनी सरकार से खम्पा जोंग और चुम्बी घाटी उसे वापिस दिलाने का प्रयत्न करे। मगर जब अंग्रेज जैसी शक्तिशाली सत्ता इसे न कर सकी तो भला पंचशील की भक्त भारतीय सरकार के लिए तो इसपर विचार करना भी स्वप्न से परे था कि चीन को चुम्बी घाटी और खम्पा जोंग सिक्किम को लौटा देने के लिए लिखा जाये। सिक्किम का वह प्रार्थना-पत्र विदेश मन्त्रालय की किसी मृत फाइल में लगा होगा।

सिक्किम संसार का सबसे सौन्दर्यशाली देश माना जाता है जिसका विस्तार पहाड़ियों तक ही तीसता नदी के किनारे-किनारे है। मानसूनी हवाएँ तीसता की घाटी



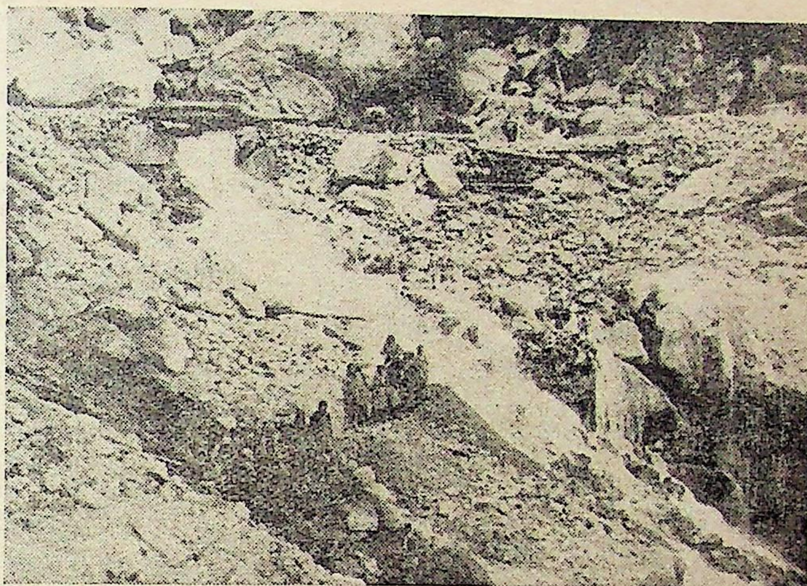
लाछेन का एक सम्मानित व्यक्ति

में होकर सिक्किम में प्रवेश करती हैं और उत्तरी पर्वतों से टकराती हैं। इस कारण यहाँ कभी-कभी वर्ष में २०० इंच तक वर्षा हो जाती है। घाटियाँ दक्षिणी सिक्किम में १,००० फीट की ऊँचाई पर हैं और लगभग १०० मील उत्तर में तीसता का स्रोत (उद्गम) १८,००० फुट की ऊँचाई तक है। अर्थात् केवल १०० मील में ही तीसता का तल १७,००० फुट गिर जाता है। इससे पाठक समझ सकते हैं कि तीसता का बहाव कितना तीव्र होगा। उदाहरण-स्वरूप गेंगटाक से लगभग २० मील 'रा रा' (Ra-Ra) नाला है। यह 'चोला ला' (१५,०००फुट) के निकट से निकलता है और लगभग १२ मील के अन्तर पर डीचू (२,००० फुट) के आस-पास तीसता में मिल जाता है। केवल १२ मील में ही यह १३,००० फुट की नीचाई पर पहुँच जाता है। वर्षा की भीषणता के कारण सिक्किम के पर्वतों की मिट्टी अधिक नरम है। फिर सिक्किम की तीव्रगति से बहती हुई नदियाँ पर्वतों को काटती हुई नीचे चली जा रही हैं। यहाँकी नदियों का पानी अधिकांश समय मटियाला ही रहता है। फिर पर्वतीय चढ़ाई भी प्रायः खड़ी हो गयी है। मंगन (Mangan) के निकट वाली पहाड़ी पर देखभाल के लिए एक सैनिक अफसर ने लगभग ३,००० फुट से चढ़ना आरम्भ किया। वह १२,००० फुट तक चढ़ता गया परन्तु कहीं भी भूमि समतल न मिली और वह पहाड़ी की पीठ पर पहुँच गया। वहाँ से फिर सीधी उतराई आरम्भ हो गई। इन पर्वतों के सीधा खड़े होने और मिट्टी नरम होने के कारण सड़क बनाना तो कठिन नहीं पर उसका रख-रखाव करना यदि असंभव नहीं तो अत्यंत कठिन तो अवश्य है। जब सड़क बनाने के लिए इंजीनियर लोग पहाड़ के किसी स्थान में सुरंग लगाकर उड़ाते हैं तब बहुधा उसकी धमक से दूर स्थान के पहाड़ों के खंड नीचे गिर पड़ते हैं। मार्च १९ में नाथू ला की सड़क पर ऐसा ही हुआ। लगभग १ फुट लम्बा पहाड़ उड़ाते समय समस्त पहाड़ नीचे गिर आया। ऐसी दुर्घटनाएँ सिक्किम में होती ही रहती हैं परन्तु भारतीय इंजीनियर यहाँ अथक परिश्रम करते हैं। भारत सरकार ने भी यहाँ सड़क-निर्माण-कार्य को अन्य कामों से अधिक महत्त्व दे रखा है। इस कार्य पर



लाछेन का पीपन (नम्बरदार)

...की भांति बहाया जा रहा है। ...परिणामस्वरूप गेंगटाक, सिलीगुरी, ...कलिम्पोंग, दारजिलिंग, चुंगथांग और ...ला को सड़कों द्वारा मिला दिया ...है। इसके अतिरिक्त चुंगथांग और ...तक जीप चलने योग्य सड़क ...दी गई हैं। नातू ला से जैलप ला ...भी जीप की सड़क बन चुकी है। ...वर्षा अधिक होने के कारण सिक्किम ...झाड़ हरे भरे हैं। इन पर्वतीय जंगलों ...विभिन्न प्रकार की बूटियाँ और वृक्ष पाये ...हैं। केवल Rhododrendron ...इसी प्रकार का है। इसी प्रकार ...भी विभिन्न प्रकार के पाये जाते हैं। ...भेड़ जो चांगचिनमों, अकसाई-...'काराकोरम' में पाई जाती है यहाँ भी बरफीले ...में विचरती दिखाई देती हैं। वर्षा के कारण हिम-...अधिक होता है और वायु में नमी की अधिकता के



सिक्किम में सड़क निर्माण कार्य



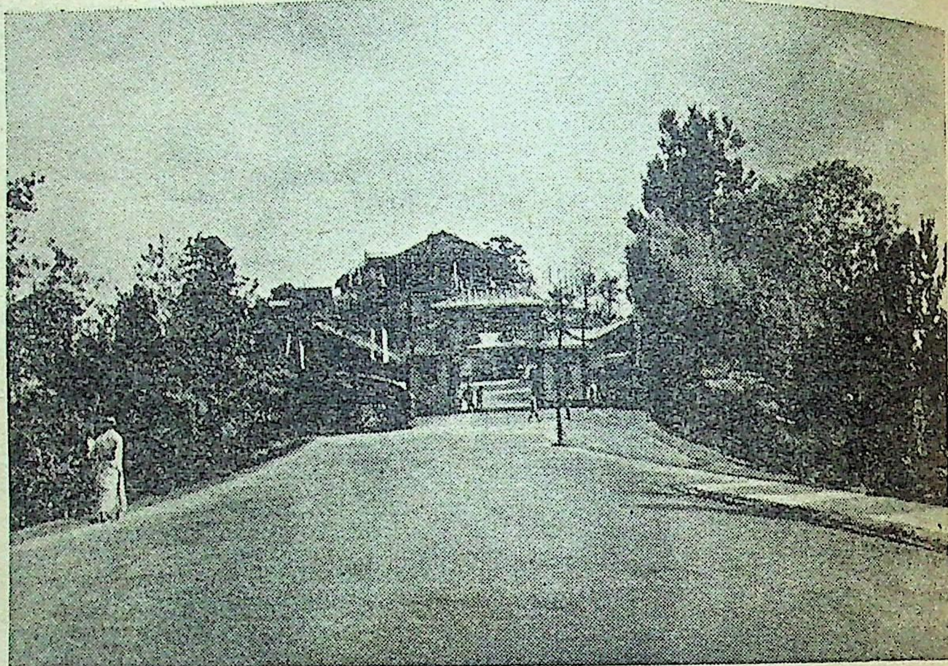
लाचुंग की एक महिला

कारण भाप कम बनती है। इस नमी के कारण ग्लेशियर १२,०००–१३,००० फुट तक आ जाते हैं। विचित्रता यह है कि यही हिम गरमियों में कपूर की भाँति अदृश्य हो जाता है। यहाँका पर्वतीय सौन्दर्य नवम्बर से मार्च तक रहता है। उन दिनों यह पर्वत हिमाच्छादित रहते हैं। अप्रैल के अन्त में जंगलों में विभिन्न प्रकार के पुष्प खिलते हैं और हिम भी पर्वतों से पिघल जाता है। फूलों का समय है मई में, और वही समय है साँपों का। जुलाई से सितम्बर तक ऊँचे ऊँचे पर्वत हिम रिक्त रहते हैं परन्तु नीचे के जंगल के वृक्ष पानी टपकाते रहते हैं। भूमि पर विषधर, जोंकें और वायु में तमाम अन्य प्रकार के जीव कीड़े मकोड़े, टूटे-फूटे पर्वत, टूटे मार्ग यात्रा को दुर्गम ही नहीं, भयंकर भी, बना देते हैं। जब पर्वतारोही इन समस्त कठिनाइयों को पार करके १२,००० फुट की ऊँचाई पर पहुँचे तब कहीं सिक्किम के पर्वतीय सौन्दर्य का दर्शन करे। सिक्किम झीलों का देश है किंतु अधिकतर ये झीलें १२,००० फुट के ऊपर ही मिलती हैं। इन झीलों को देखने की ऋतु भी सितम्बर, अक्टूबर है।

अब भोटिये अधिकतर लाछेन और लाछुंग ग्रामों में निवास करते हैं।

सिक्किमी नागरिक

यहाँ नैपाली—राय, तमंग और लिम्बू—लैपचा और भोटिया रहते हैं। अंग्रेजों के समय में नैपाली



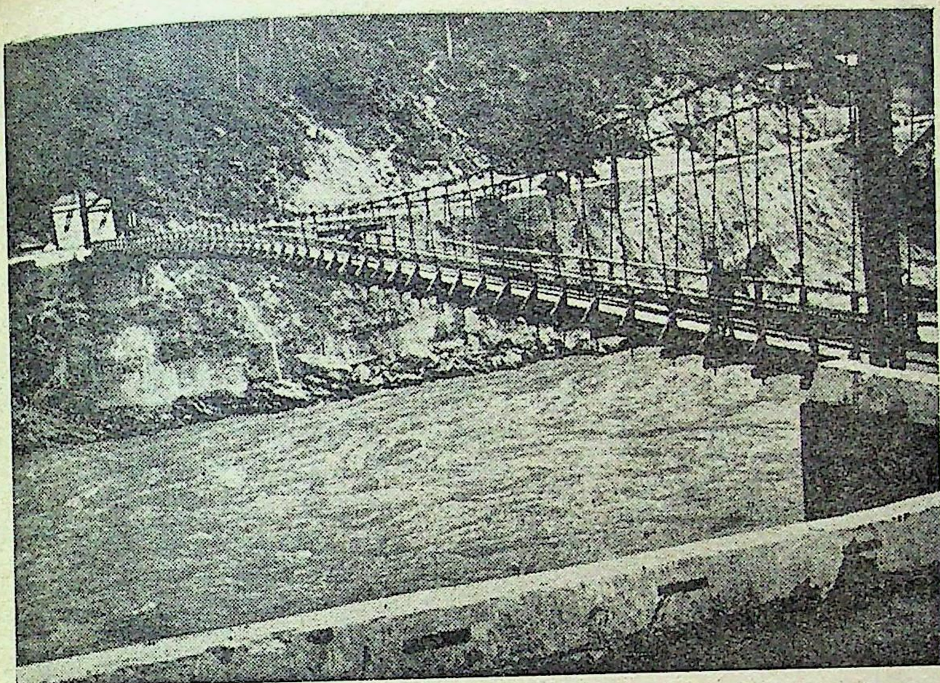
महाराज सिक्किम का राजमहल

लोग तिब्बती प्रभाव कम करने के लिए लाये गये थे। आज सिक्किम में नैपालियों की संख्या ७५ प्रतिशत से कम नहीं है। अधिकतर नैपाली दक्षिणी, पश्चिमी और पूर्वी सिक्किम के निचले भागों में पाए जाते हैं। ये केवल खेती अथवा छोटा मोटा व्यापार ही नहीं करते बल्कि छोटे छोटे सरकारी पदों पर भी कार्य कर रहे हैं। वास्तव में नैपाली सिक्किम की मध्यम श्रेणी के मुख्य अंग हैं।

लैपचा सिक्किम की प्राचीन जाति है। इसके अनेक ग्राम हैं जिनकी देख-रेख सिक्किम राज्य की ओर से विशेष तौर पर की जाती है। सिक्किम के प्रथम राजा जब इस देश में आये तो उन्होंने लैपचा सरदार से मित्रता की और सदैव उस मित्रता को निभाने की शपथ ली। दरबार आज भी उस शपथ का सत्यता से पालन कर रहा है। अधिकांश लैपचा जौंगो में एकत्र हैं। जौंगो एक प्रान्त है जो तीसता की घाटी में मंगन के निकट है। इसकी देख-रेख के लिए दरबार की ओर से एक पृथक् विभाग ही है। इस क्षेत्र से जो लगान आता है वह राजमाता के कोष में जाता है। अन्य सरकारी कर्मचारियों का जौंगो से कोई सम्बन्ध नहीं। दूसरी घाटी तुलुंग छू की है जिसमें लैपचा ही रहते हैं। इनके नाम ग्राम के आधार पर होते हैं। जैसे सिकियांग निवासी सिकियांग 'पा' कहलाते हैं। इस कारण जितने ग्राम हैं, उतनी ही लैपचा जातियां भी हैं। तुलुंग घाटी कभी एक अज्ञात घाटी है। छः (६) यो... पियनों से अधिक ने अभी इस घाटी में प्रवेश नहीं कि... होगा। कहते हैं अभी भी लैपचा की ऐसी जातियां वि... मान हैं जो साँप अथवा बंदर का भक्षण करती हैं। ... न कोई सड़क है, और न खच्चर के लिए मार्ग ही। ... घाटी मंगन से २ मील तीसता के दाएँ किनारे ... जाती है। तुलुंग छू का उद्गम उसी हिमाच्छादित ... पर है जो लेनाक ला नदी के पानी को 'तुलुंग छू' से ... करता है। तुलुंग छू घाटी के ऊपरी भाग में तुलुंग ... है। यहाँसे एक पर्वतीय मार्ग लाछेन ग्राम को जाता है। यह मार्ग केवल बरसाती महीनों में खुलता है।

(२)

दरबार की अनुकम्पा से मुझे उत्तरी सिक्किम ... भ्रमण का अवसर प्राप्त हो गया। मैं मंगन होता ... चुंगथांग पहुँचा। चुंग (संगम) थांग (मैदान) की ... ५,००० फुट से कम ही होगी। यहाँपर 'लाछेन छू' ... 'लाछुंग छू' का संगम है। यहाँसे भोटियों का देश प्रा... होता है। एक मार्ग लाछेन नदी की घाटी घाटी ... ग्राम याथांग (Yothang), थांगू (Thangu), ... खांग (Dong khong) को छोलामू से मिलाता ...



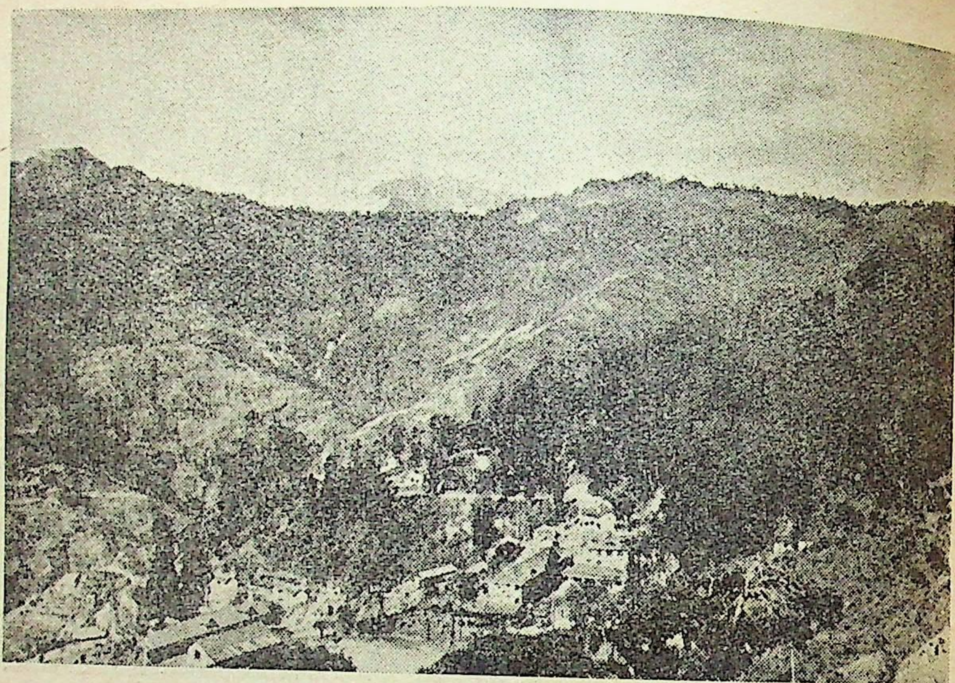
मैली पुल, सिक्किम

दूसरा मार्ग लाछुंग, चुमथांग को छोलामू से मिलाता है। इस भाँति चुंगथांग से जो मार्ग लाछेन, छोलामू होता हुआ लाछुंग आता है उसे हम 'गोल सड़क' कह सकते हैं। लाछेन घाटी में केवल लाछेन ग्राम ही है। इस घाटी की समस्त भूमि 'लाछेन पाओं' (पा के अर्थ है निवासी) की है। वह जब और जहाँ चाहें रह सकते हैं। यह लोग अधिकतर शीतकाल में लाछेन में, और ग्रीष्म में याथांग में रहते हैं। याथांग के उत्तर में सिक्किम की चरागाहें हैं। लाछेन पा पश्चिम में लोहनाक घाटी, उत्तर में कोंग्रा ला, और उत्तर-पूर्व में छोलारमू तक अपने पशु ले जाते हैं। परन्तु उनके पास अभी पशुओं की कमी ही है।

लाछेन घाटी बहुत कम चौड़ी है। इसमें खेती कम ही होती है। फिर भी लाछेन पा याथांग (Yothang) में आलुओं की खेती करते हैं और लाछेन में सेव उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार लाछुंग ग्रामवासी गर्मियों में युमथांग जाते हैं और उनके पशु छोलामों तक घास चरने जाते हैं, और जाड़ों में यह लोग लाछुंग निवास करते हैं। लाछुंग घाटी कहीं-कहीं पर काफी चौड़ी है। यहाँ पर मक्का, जौ और काले गेहूँ की खेती होती है। यह लोग युमथांग में आलू उत्पन्न करते और लाछुंग ग्राम में सेव।

लाछेन और लाछुंग घाटी की यात्रा से दो बातें ज्ञात हुईं।

१—'लाछेन पा' और 'लाछुंग पा' तिब्बती वंश की एक शाखा है। लाछेन पा सांगपो घाटी से आये ज्ञात होते हैं। इन्हें सिक्किम में 'सोपा' कहा जाता था पर अब यह लाछेन पा ही कहलाते हैं। लाछुंग पा का चुम्बी घाटी से घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह अन्य भोटियों से भिन्न हैं। उत्तर प्रदेश के भोटिए हिम गलने पर ही तिब्बत जाते थे और शीतकाल में भारत लौट आते थे। इसका कारण यह था कि इनकी भेड़ बकरियाँ गर्मियों में तिब्बत के चरागाहों में चर सकती थीं और जाड़ों में हिमपात के समय भारतीय ग्रामों में सर्दी से बची रहती थीं। लाछेन और लाछुंग इसके सर्वथा विपरीत हैं। यह पहले ही बताया जा चुका है कि सिक्किम में हिमपात बहुत होता है। लाछेन और लाछुंग ग्राम हिमाच्छदित रहते हैं। इसके विपरीत तिब्बत में हिमपात बहुत कम होता है और पशु लाछेन या लाछुंग की तुलना में यहाँ सुगमतापूर्वक रह सकते हैं। इस कारण गर्मियों में वे तिब्बत पहुँच जाते थे। सिक्किम तिब्बती पठार इतने ऊँचे हैं और इन पर इतनी वर्षा होती है कि यहाँकी चारागाहें हरी भरी रहती है। तात्पर्य यह कि लाछेन और लाछुंग के पशु गर्मियों में सिक्किम और



सिक्किम के गंगटोक नगर का एक दृश्य। (पृष्ठभूमि में किचिंजुंगा शिखर और श्रेणी)

जाड़ों में तिब्बत में रहते थे। अब यदि हम यह सोचें कि ये पशु जाड़ों में भी सिक्किम में रखे जा सकते हैं तो ऐसा करना असंभव है क्योंकि चाहे लाछेन हो अथवा लाछुंग, इन ग्रामों में तीन चार मील नीचे ऊँचाई सहसा बहुत कम हो जाने के कारण दिन में इतनी गर्मी पड़ती है कि लाछेन या लाछुंग के पशु नीचे आ ही नहीं सकते। जब से इन भोटियों का तिब्बत जाना बन्द हो गया है तब से इनके पशु जाड़ों में लाछेन लाछुंग से थोड़े ऊपर आते हैं और गर्मियों में याथांग और यमथांग से ऊपर चरते रहते हैं। परन्तु इनके पास अधिक पशु नहीं हैं। इनके अधिकांश पशु तिब्बत में रह गये। लाछेन का पीपोन (नम्बरदार) और चौकीदार ग्राम के गण्यमान्य व्यक्ति माने जाते है, पर इनके पास भी दस-दस से अधिक याक नहीं हैं। इनके पचास-पचास से अधिक याक तिब्बत में ही रह गए, और जो भेड़-बकरियाँ वहाँ रह गयीं उनकी तो गिनती ही नहीं। परन्तु इतनी हानि होने पर भी इन्होंने साहस नहीं छोड़ा। यद्यपि इनके पास ऊन और ऊनी वस्त्र समाप्त हो चुके हैं फिर भी इन्हें आशा है कि ८ या १० साल में फिर इनके पास पशु हो जाएँगे। आजकल ये लोग उनकी संख्या बढ़ाने में लगे हैं। सिक्किम सरकार इनकी सहायता के लिए उन्हें ऊन देने का विचार कर रही है जिससे कि इनके ग्रामोद्योग चलते रहें। लाछुंग में तो सरकारी ऊन पहुँच गई है और लाछेन में पहुँचने वाली है। सम्भवतः अगले वर्ष तक लाछेन में भी सरकारी ऊन पहुँच जाएगी।

लाछेन और लाछुंग की देखभाल का कार्य कठिन नहीं है क्योंकि यहाँकी आबादी २,००० से अधिक न होगी। परन्तु इनके साथ एक समस्या है। वह यह कि इनका तिब्बतियों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। ये लोग तिब्बतियों को नहीं भूल सकते—विशेष कर लाछुंग निवासी। जब भी इनको अवसर मिलेगा ये तिब्बत अवश्य जाएँगे। इनके इस कार्य के फलस्वरूप उत्तरी सिक्किम में तिब्बती शरणार्थी भारी संख्या में आ गये हैं। यहाँ ये शरणार्थी ऐसे मजे में रहते हैं मानों वे अपने ही देश 'वो यांत' (बौद्ध तिब्बत) में रह रहे हों। इन शरणार्थियों की लाछेन-लाछुंग घाटियों में बस्तियाँ बस गयी हैं। इनके बच्चे सिक्कमी पाठशालाओं में शिक्षा प्राप्त करते हैं, और पुरुष सड़क पर काम करते हैं। अवकाश पाने पर प्रौढ़ आयु के तिब्बती जुआ भी खेलते हैं।

भोटियों का तिब्बतियों के प्रति यह मित्र भाव हम लोग कभी-कभी भारत विरोध समझ बैठते हैं। किन्तु हमें याद रखना चाहिए कि हम चाहे कितना भी प्रयत्न



गंगटोक का शाकभाजी का बाज़ार।

हाँ, भोटिये कभी भी तिब्बत को नहीं भूल सकते। परन्तु इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि वे भारत विरोधी हैं, या चीनियों के साथ हैं। मेरी एक बूढ़े लाछुंग पा से बात हुई। उसने बताया—"भारतीय सरकार हम लोगों को तिब्बत जाने से रोकती है। समस्त सीमा पर फौज लगा रखी है।" मैंने कहा—"चीनी सरकार ने भी तो ऐसा ही कर रखा है। तो भारत सरकार अपने देश की रक्षा-हेतु ऐसा क्यों न करे?"

"हमें चीन से क्या काम और हमें क्या मालूम कि चीन तिब्बत में क्या कर रहा है। हमारा तो इधर से मतलब है। हम तो यह जानते है कि हमें सीमा के निकट भी नहीं जाने दिया जाता, तिब्बत तो दूर की बात है।'"

"मुझे विश्वास है कि यदि तुम सदैव के लिए तिब्बत जाना चाहो तो सरकार तुम्हें नहीं रोकेगी।"

"सदैव के लिए जाने को कौन इच्छुक है?"

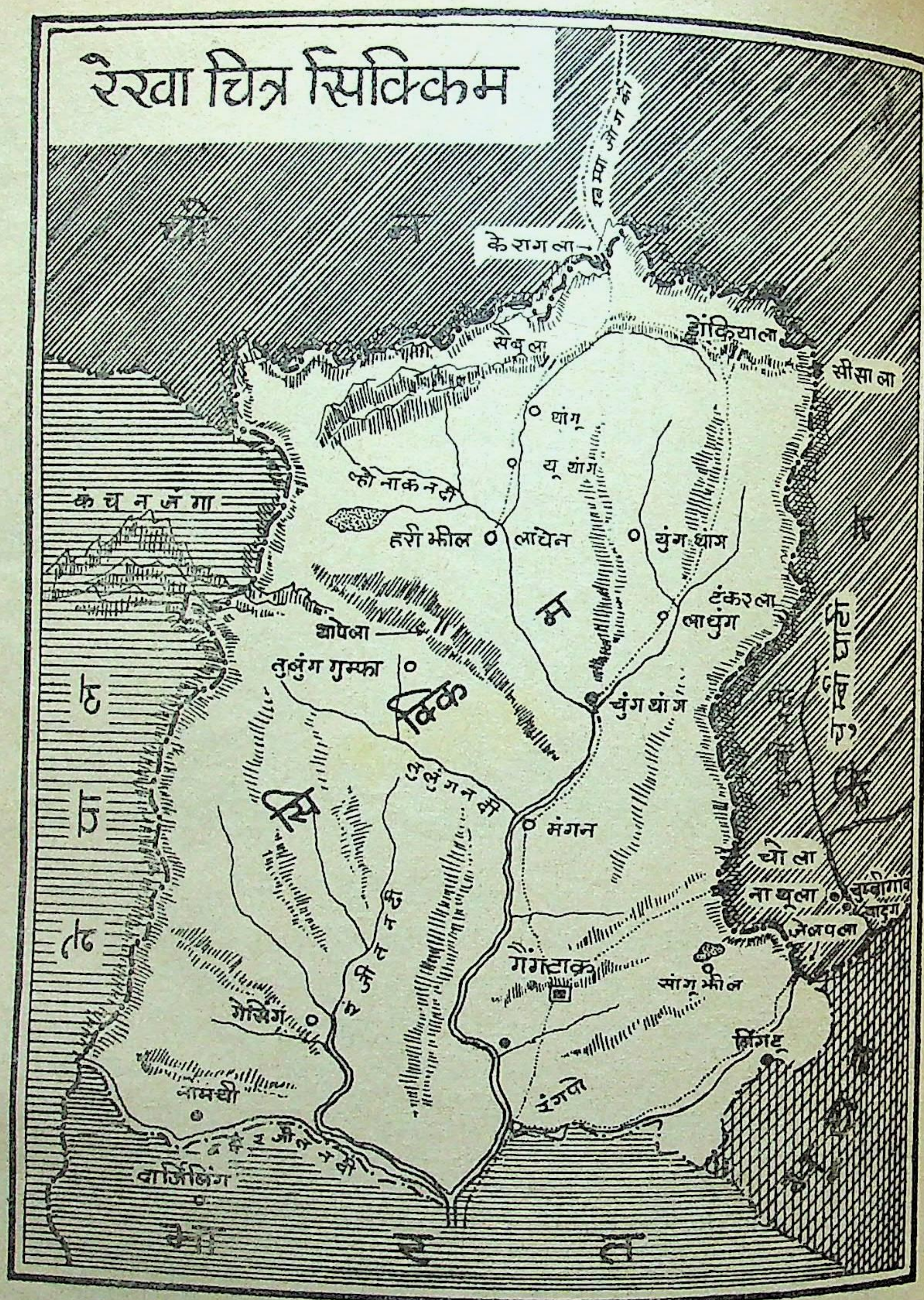
"जब आपको सिक्किम निवास में असुविधाएँ हैं तो तिब्बत क्यों नहीं चले जाते जहाँ समस्त सुविधाएँ प्राप्त होंगी?" मैंने पूछा।

"यदि तिब्बत में जीवन शान्तिमय होता तो इतने शरणार्थी भारत में क्यों आते? नहीं, हम लोग सदैव के लिए तिब्बत जाना नहीं चाहते।" उस लाछुंगपा ने एक लम्बी साँस छोड़ते हुए कहना जारी रखा, "इधर पं० नेहरू बड़े बुद्धिमान और दयावान् हैं। उनके शासन में सभी शान्ति से रह रहे हैं।"

इससे स्पष्ट ज्ञात हुआ कि सिक्किम के भोटिया तिब्बत को नहीं भूल सकते। और यह भी स्पष्ट है कि उनके लिए चीनी और उनका शासन तनिक भी रुचिकर नहीं है। भ्रमणशील होने के कारण वे एक स्थान में रहते-रहते ऊब गए हैं। खेद की बात तो यह है कि हमारी सरकार ने तिब्बत को चीन का अंग घोषित करने से पहले हिमालय-वासियों की तनिक भी सम्मति न ली। उसके लिए तो जो अंगरेज लिख गये वही पत्थर की लकीर थी। सम्भवतः पंचशील रूपी अफीम के प्रभाव से वे चीनियों को केवल भाई ही बना सकते थे।

२—इस यात्रा से जो दूसरी बात ज्ञात हुई, वह है सीमा-सुरक्षा सम्बन्धी।

चुम्बी घाटी भारत के मस्तक में काँटे की तरह चुभी हुई है। अथवा यह भी कह सकते हैं कि चुम्बी घाटी भारत में चीन का अन्तर्वेष्टित क्षेत्र (ऐनक्लेव) है। इस घाटी में चीनियों का एक डिवीजन बैठा है जिसकी शक्ति को हमारी छोलारमू की पोजीशन ने व्यर्थ कर दिया है। चीनी छोलारमू के महत्त्व को व्यर्थ करने के लिए हर संभव प्रयत्न करेंगे। इसी कारण संभव है कि वे कांग्रा ला पर भी कुछ उत्पात करें। थांगू के सामने एक



पर्वत-श्रेणी है। उस श्रेणी को सैबू ला (Sebu La) से पार किया जाता है। यह श्रेणी पूर्व में भारत की सीमा तक पहुँचती है और पश्चिम में कंचेन जुंग में मिल जाती है। पूर्व में इसके सीसा ला (Sesa La) और डोन्किया ला (Donkiya La) नामक दो ढाल हैं। यदि "सीसा ला" डोन्किया ला और सैबू ला की श्रेणियाँ चीनियों के अधिकार में आ जाएँ तो चुम्बी घाटी के युद्ध में उनमें दुबला आ जाती है। इसी कारण सैनिक दृष्टि से यह बहुत संभव है कि वे अवसर मिलते ही चीनी अपनी सेना एकत्र कर कोरांग ला पर आक्रमण कर दें। यह भी सम्भव है कि उस समय भारतीय सरकार उस समस्त भूमि को जो 'सीसा ला' डोन्किया ला और सैबू ला के उत्तर में है

बहुत सुगमतापूर्वक विवादग्रस्त क्षेत्र (disputed-) घोषित कर दे। बाराहोती में भारतीय सरकार कर भी चुकी है। और जब एक बार कर चुकी तो फिर से उसे वही नीति अपनाने से कौन रोक सकता है? इसका परिणाम यह होगा कि 'विवादग्रस्त' क्षेत्र भारत उसकी सुरक्षा के लिए सैनिक प्रयोग न कर सकेगा। परन्तु यह सम्भावना अवश्य है कि ऐसा होने पर सिक्किमी दरबार और जनता बिगड़ जाए। बाराहोती भारत का एक कोना था, परन्तु उत्तरी सिक्किम का उत्तरी पठार इस प्रकार भारत का अंग नहीं है। यह पठार है सिक्किम का। भारत इसको 'विवादग्रस्त क्षेत्र' कैसे घोषित कर सकता है? यही एक जटिल समस्या है भारत के समक्ष।

भारतीय सेना सिक्किम में सिक्किम की सीमा सुरक्षा में लगी है, परन्तु क्या उसका कमांडर अपने उद्देश्य से अवगत है? कहते हैं कि सिक्किम की पूर्वी पर्वतश्रेणी की चोटी सिक्किम की सीमा बनाती है। परन्तु क्या इस बात पर भारत सरकार रुकेगी? पं० नेहरू जब १९५८ में भूटान गए तो उन्होंने चुम्बी घाटी का मार्ग पकड़ा। वे गंगटोक से नाथू ला तक जीप में गए। नाथू ला सिक्किम में है। शताब्दियों से ऐसा ही रहा है। पंडितजी ने नाथू ला से लगभग एक फर्लांग नीचे ही अपनी जीप रुकवा दी। और इस अवसर की स्मृति-स्वरूप वहाँपर एक पत्थर भी लगवा दिया गया। सम्भवतः सिक्किम सरकार से इस कार्य-हेतु सम्मति न ली गई हो। अब नाथू ला से इस पत्थर तक की भूमि को चीनी लोग अपनी भूमि बताते हैं। इस बात को लेकर कभी-कभी भारतीय और चीनी सैनिकों में संघर्ष भी हो जाता है। चीनी समस्त हिमालय में अपना युद्ध वियुक्त क्षेत्र (disengagement zone) स्थापित कर चुका है, केवल सिक्किम रह गया है। जहाँ भारतीय और चीनी सैनिक एक दूसरे के समक्ष डटे हुए हैं। चीनियों के इतिहास को जाननेवालों और उनकी चालों को समझने वालों को विश्वास है कि यहाँ भी वह अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए कुछ न कुछ प्रयत्न अवश्य ही करेगा, और जिस प्रकार हिमालय के दूसरे प्रदेशों में ये युद्ध वियुक्त क्षेत्र सैनिक दृष्टि से भारत के लिए असुविधा-जनक हैं, और पहिले भारत के भाग थे, उसी प्रकार सिक्किम का युद्ध वियुक्त क्षेत्र सिक्किम की धरती लेकर इस प्रकार बनाया जायगा कि सैनिक दृष्टि से चीनियों को उससे आक्रमण की सुविधा, और सिक्किम को अपना बचाव करने में असुविधा हो।



राजस्थानी 'मेर' शब्द पर विद्वानों के विचार

पंडित किशोरीदास वाजपेयी

राजस्थान में 'आमेर', 'अजमेर', 'बादमेर', 'कुम्भलमेर' आदि नगरों का अन्तिमांश 'मेर' शब्द प्रकृत है। ये मेरान्त शब्द निश्चय ही यौगिक हैं। देश में अन्यत्र कहीं भी ऐसे शब्द नहीं सुन पड़ते। राजस्थान के विद्वानों ने इस 'मेर' शब्द का उद्भव संस्कृत 'मेरु' शब्द से माना है। कहते हैं, आमेर, अजमेर आदि के किले ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों पर बने और इसीलिए उन्हें 'मेर' (मेरु, सुमेरु) कहा गया--आमेर, अजमेर आदि।

'मेर' को देखते ही संस्कृत 'मेरु' ध्यान में आ जाना कोई अचरज की बात नहीं है। हिन्दी की 'सिद्ध' क्रिया 'था' पर विचार करते समय लोगों का ध्यान तुरन्त संस्कृत 'स्था' ('ष्ठा') पर गया और पूरे विश्वास के साथ लिख दिया कि हिन्दी का 'था' क्रिया-पद संस्कृत 'स्था' धातु का रूपान्तर है। ऊपरी रंग-रूप देखकर ऐसा भ्रम हो जाता है। बारूद कस्तूरी से बनी; कोई समझ सकता है।

राजस्थान के सभी 'मेर'-अन्त वाले नगर और उनके दुर्ग पहाड़ों पर ही नहीं हैं और जो हैं भी, वे इतने ऊँचे नहीं कि उन्हें 'मेरु' कहा जाये। दुर्ग का प्राशस्त्य उसकी दुर्गमता में है; ऊँचाई में नहीं। इसीलिए देश के जो दुर्ग बहुत ऊँचे पहाड़ों पर भी बने, उन्हें किसीने 'मेर' (मेरु) नहीं कहा। और, राजस्थान में भी दुर्गों के लिए प्रायः पृथक् 'गढ़' शब्द ही प्रसिद्ध है। **'आमेर का किला' 'कुम्भ मेर का गढ़--'कुम्भलगढ़'** आदि प्रयोग बतलाते हैं कि 'आमेर', 'कुम्भलमेर' आदि नाम नगरों के हैं; किलों के नहीं। कहीं नगर और किले को एक मानकर दोनों के लिए भी वैसे शब्दों का प्रयोग होता है। इससे स्पष्ट है कि 'मेरु' को 'मेर' समझ लेना ऐसा ही है, जैसे कि बारूद को कस्तूरिका से बनी समझ लेना।

'मेरु' शब्द देश भर का है; क्योंकि संस्कृत का है। किले भी देश भर में ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों पर हैं और नगर भी पहाड़ों पर हैं; परन्तु कहीं किसी का नाम **मेरान्त** नहीं सुनायी देता। जहाँ 'बीकानेर' जैसे **नेरान्त** शब्द सुनायी देते हैं, वहीं **मेरान्त** भी हैं।

मैंने 'बीकानेर' आदि के 'नेर' शब्द की व्युत्पत्ति बतलाते हुए लिखा था कि 'आमेर' आदि में प्रयुक्त 'मेर' शब्द भी 'नेर' के वजन पर गढ़ा जान पड़ता है; उसीकी छाया; जैसे 'मीठा' की छाया 'सीठा'।

इस पर कहा गया है कि बीकानेर बहुत बाद में बसा; पहले मेरान्त नगर और दुर्ग बने। तब 'नेर' की छाया 'मेर' कैसे?

इस पर जिज्ञासा यह है कि जब बीकाजी ने अपना नगर बसाया, तब उसका नाम रखने के लिए उन्होंने 'नेर' शब्द भी कारीगरों से बनवा लिया; या कि उस क्षेत्र में बहुत पहले से यह ('नेर') शब्द प्रचलित था और उसी को नाम का अंश बना लिया--'बीकानेर'? मैंने यह तो लिखा नहीं कि "बीकानेर के ढंग पर आमेर बसाया गया"। यदि ऐसा कहता, तब मान्य विद्वान् सन्-संवत् देकर उन के निर्माण का पौर्वापर्य्य बतलाते हुए मेरे कथन को निराधार कह सकते थे।

यह भी कहा गया है कि 'मेर' नाम की एक विशिष्ट जाति भी थी और किसी-किसी विशिष्ट व्यक्ति को भी 'मेर' कहा गया है और ऐसे नामों से नगर तथा दुर्ग भी बनते हैं।

सही है; बनते हैं। परन्तु वैसी स्थिति में वे नाम पहले रखे जाते हैं; (आमेर, अजमेर आदि की तरह) अन्त में नहीं। किसी 'मेर' जाति या व्यक्ति के नाम से बसे हुए जनपद, नगर या दुर्ग उसका नाम पहले रखते हैं; जैसे--**मेर**वाड़ा, **मराठ**वाड़ा, **बुँदेल**खंड, **बघेल**खंड, अजय-वाड़ा आदि, और **जय**पुर, **जोध**पुर, **कि**शनगढ़, अजय... आदि। इसी तरह **मुगल**सराय, **इस्लाम**नगर, शाहजहाँ... **तुगलका**बाद आदि। अन्त में वैसे नाम नहीं जुड़ते। अन्त में तो नगर, पुर (या नेर, मेर, पुरा) आदि जुड़ते हैं।

विशिष्ट जाति तथा व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होने वाले 'मेर' शब्द उस (नगर-वाचक) 'मेर' शब्द से भिन्न हैं। 'मीर' का रूपान्तर यह 'मेर' हो सकता है और फिर 'महीधर' का 'मईहर' होकर 'ह'-लोप। म+ई= 'मेर'। जैसे 'भूमिधर' से 'भुइंहार' और 'महीधर' का रूप 'महर'। 'नन्द महर के ढोटा जायो।'

कोश-ग्रन्थों से प्रमाण दिये गये हैं कि 'मेर' या ... के कितने अर्थ हैं। 'मेरु' पर नहीं; 'मेर' पर विचार है और कोश-ग्रन्थों में 'मेर' का अर्थ 'नगर' कोई लिखता ...

१९६४

है, जब कि उसे पता नहीं कि यह ('मेर') शब्द 'नेर' की छाया है और 'नेर' है "नगर' का रूपान्तर। कोशों में तो लिखा है—'त्रिवेणी'—गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम"। जो प्रसिद्ध है; लिख दिया। वाल्मीकि और कालिदास 'सरस्वती' का नाम भूल गये थे! यानी 'वेणी' का पृथक् अर्थ 'प्रवाह' लिखकर भी 'त्रिवेणी' के 'वेणी' शब्द को नदी-पर्य्याय समझा और वैसा ही लिख दिया!. सरस्वती बहती थी; फिर लुप्त हो गयी; पर वह इलाहाबाद की ओर कभी गयी नहीं; कानपुर, इटावा तक भी नहीं पहुँची; देहली की देहली भी उसने पार नहीं की! अब कोई विद्वान् इन कोशकारों के प्रमाण देकर पुरातत्त्वविदों को समझाए कि सरस्वती कभी इलाहाबाद तक बहती थी; तो कैसा होगा?

संस्कृत-प्रशस्तियों में ऐसे नगरों के 'मेर' शब्द का प्रयोग 'मेरु' रूप में किया गया है और विद्वान् लेखकों ने उसे भी अपने पक्ष-समर्थन में रखा है। परन्तु वह 'मेर' का ही संस्कृतीकरण भी तो संभव है न! संस्कृत-प्रशस्तियों में 'सुल्तान' का प्रयोग '**सुरत्राण**' के रूप किया गया है! तो क्या यह मान लिया जाए कि संस्कृत 'सुरत्राण' का रूपान्तर 'सुल्तान' है?

कहीं प्रशस्तियों में 'मेर' का रूप 'मेरो' मिलता है, जो लोकभाषा में एकवचन-प्रत्यय के साथ होगा; जैसे है—"नगर तौ मेरो अछनेरो है"। 'अछनेरा' का रूप 'अछनेरो'। यद्यपि अकारान्त प्रातिपदिकों के रूप राजस्थानी में ओकारान्त नहीं होते; आकारान्त (पुंवर्गीय) प्रातिपदिकों के ही—'जोधपुरो गयो, रामपुरो आ गयो' जैसे ओकारान्त पद चलते हैं; ('जोधपुरा' का 'जोधपुरो' और 'रामपुरा' का 'रामपुरो'); अकारान्त (पुंवर्गीय) प्रातिपदिकों के 'पद' ओकारान्त नहीं होते। 'जयपुर गयो, जोधपुर आयो' प्रयोग होते हैं; 'जयपुरो' 'जोधपुरो' नहीं। इसी तरह '**अछनेरा**' का रूप 'अछनेरो' होगा; पर 'बीकानेर' का 'बीकानेरो' नहीं और 'आमेर' का 'आमेरो' नहीं। परन्तु लोग गलत प्रयोग भी कर जाते हैं। वृन्दावन में रास वाले गा रहे थे—'अब पौढ़न को **समयो** भयो'! 'समय' का 'समयो' गलत प्रयोग है। खास पटना में मैंने बोलते सुना है—'किमतवा'। 'कीमत' स्त्रीवर्गीय शब्द का रूप 'किमतिया' होगा; 'किमतवा' नहीं। पुंवर्गीय शब्दों में 'अवा' लगता है—'अँबवा'। 'जामुन'—'जमुनियाँ'। परन्तु 'किमतवा' भी बोल देते हैं। इसी तरह 'मेर' का 'मेरो' समझिए।

किसी संस्कृत प्रशस्ति में नैमित्तिक रूप ('मेर' का) 'मेरो' हो—'आमेरो मदीयो जनपदः' जैसा कुछ; तो मेरे पक्ष का समर्थन है ही। जब यही भूल गये कि संस्कृत (न०) 'नगर' का रूपान्तर 'नेर' है और उसकी छाया 'मेर' है; तब उसके पुंप्रयोग का दोष ही क्या?

'नेर' का 'मेर' कैसे हो गया? छाया है! 'न' का मेल 'म' से है ही। वैसे 'म' तो 'भ' की जगह भी आ जाता है। 'चीनिया बादाम' भूमि के भीतर पैदा होते हैं; वे ऐसी फली हैं, जो पौधे के ऊपर नहीं, नीचे लगती हैं; मिट्टी में दबी रहती हैं, और इसीलिए उन्हें '**भूमि**फली>**भूम**फली' कहते हैं। '**भूम**फली' को फिर '**मूम**फली' लोग कहने लगे। मूँग (मुदग) की फलियाँ 'मूँगफली' हैं। भूल से लोग 'मूमफली' को 'मूँगफली' कहते-लिखते हैं।

'भूमफली' के ही 'भ' की जगह 'म' नहीं आया है; अन्यत्र भी देख सकते हैं—वल्लभः>'**बलमा**' '**बालम**' आदि। विषयान्तर होता जा रहा है।

खैर, मेरे मत पर विद्वानों ने विचार प्रकट किए और राजस्थानी विद्वानों ने किये, जिनके क्षेत्र में 'मेर' शब्द सुनायी देता है; यह प्रसन्नता की बात है। ऐसे शब्दों की व्युत्पत्ति पर मतभेद हो सकता है। इसीलिए यास्क ने दुरधिगम शब्दों की दो-दो, तीन-तीन और चार-चार व्युत्पत्तियाँ दी हैं। वे सब मत-भेद से ही समझनी चाहिए। जो व्युत्पत्ति ठीक जँचेगी, उसे लोग मान लेंगे। मैंने कसम खाकर हलफिया बयान तो दिया नहीं है कि 'नेर' की छाया ही 'मेर' है और इसलिए दण्ड का पात्र नहीं हूँ।

(इस विषय पर कई लेख छप चुके हैं। मूल लेखक के इस उत्तर के साथ यह चर्चा समाप्त की जाती है—सम्पादक, सरस्वती।)

महाकवि कालिदास के विदूषक

श्री कमला भारती

'विशेषेण दूषयति इति विदूषकः।' वि उपसर्गपूर्वक दुख वैकृत्ये धातु से चुरादिगण में 'ण्वुल प्रत्यय' करने से विदूषक शब्द बनता है। इसका अर्थ होता है, अपने शरीर, वाणी आदि के द्वारा जो दूसरे का अनुकरण कर उसे विकृत करे। जब कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति का ठीक-ठीक अनुकरण करता है तो जिसका अनुकरण किया जाता है उसे अपना अनुकरण होते देख अपने मन में कुछ ग्लानि विकार अवश्य उत्पन्न हो जाता है। आज भी जब कोई किसीको चिढ़ाने का विचार करता है तो उसका 'अनुकरण' करता है।

इससे दर्शकों को विशेष आनन्द होता है और हँसी आ जाती है, भले ही उस एक को जिसका उसने अनुकरण किया हो कुछ क्लेश पहुँचे। विदूषक का यही उद्देश्य है कि वह प्रबन्ध और रस के अनुकूल होकर ग्रन्थ के प्रयोजन का सहायक हो। इसी बात को ध्यान में रखकर नाटकों में विदूषकपात्र की कल्पना की जाती है। विदूषक नाटकीय वस्तु का एक आवश्यक अंग है।

धनञ्जय ने दशरूपक में विदूषक का लक्षण "हास्यकृच्च विदूषकः" लिखा है "तथान्यत्र विकृतांगवचोवेषैः हास्यकारी विदूषकः" यह समान ही लक्षण लिखा है। तात्पर्य यह है कि जो अपने विकृत किये हुए अंगों, वाणी या वेष द्वारा रंगस्थलस्थित सामाजिकों को हँसावे वह विदूषक होता है।

भोजन कितना भी स्वादिष्ट हो, उसके खाते-खाते कुछ मन और रसना से विरसता आ जाती है। अतः बीच बीच अम्लादि पदार्थों की आवश्यकता होती है। उनसे भोजन में पुनः रुचि उत्पन्न हो जाती है। उसी प्रकार नाटकीय इतिवृत्त कितना ही सुन्दर हो, अविच्छिन्न उसी को देखते-सुनते सामाजिकों के मन में कुछ आलस सा उत्पन्न हो जाता है। अतः कवि को विदूषकादि पात्रों [illegible] हास्य रस का पुट दे कर दर्शकों के मन को पुनः विकसि[illegible] करा देना चाहिए। इन्हीं लौकिक अनुभूतियों से अभि[illegible] भूत होकर भरत मुनि ने नाटक में विदूषक के द्वारा हास्य के संचारार्थ एक पात्र की आज्ञा दी है। हास्य रस मनः प्रसादक और इन्द्रियों का विकासक होता है। अतः बीच बीच में विदूषक के विचित्र वेष से, जो केवल हँसाने मात्र के लिए होता है, तथा उसकी अंगभंगियों एवम् विचित्र हास्योत्पादक वाक्यों से ऐसे दर्शक भी जिन्हें रसानुभूति होती ही नहीं, केवल रंगस्थल में काठ की तरह बैठे रहते या औंघाया करते हैं, वे भी एक साथ हँस पड़ते हैं। इसी लिए नाटकों में विदूषक नामक पात्र की कल्पना भरतमुनि ने की है।

नाटकों के दस भेद होते हैं—प्रकरण, भाण, नाटक, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, वीथी, अंक [illegible] नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी इत्यादि। सभी मिलकर [illegible] भेद हैं। इन सबमें विदूषक अवश्य रहता है।

साहित्यदर्पणकार कहते हैं, 'नटी विदूषको वापि पारि[illegible] पार्श्विक एव वा। सूत्रधारेणसहिता संलापं यत्र कुर्व[illegible] नटी, विदूषक या पारिपार्श्विक जब सूत्रधार से [illegible] कार्य के विषय में विचित्र वाक्यों से इस प्रकार बात[illegible] करें जिससे प्रस्तुत कथा की सूचना हो जाय उसे "आमुख" कहते हैं। इससे आमुख के लिए विदूषक की आवश्यकता होती है। किन्तु प्रायः नटी या पारिपार्श्विक की ही पर[illegible] वार्ता प्रस्तावना में देखने में आती है।

त्रोटक नामक भेद में प्रत्येक सविदूषक होता [illegible] एवं विलासिका में विदूषक, विट, पीठमर्द की स्थिति आ[illegible] श्यक होती है तथा दुर्मल्ली को तो दस घंटों के [illegible] में ही पूर्ण किया जाता है। विदूषक की भाषा प्राच्य [illegible]

...। राजा विदूषक को वयस्य, मित्र, इत्यादि शब्दों ... आह्वान करता है।

इन पूर्वोक्त कारणों और हास्यादि क्रिया के लिए ... में विदूषक की आवश्यकता होती है; किन्तु अन्य ... काव्यों में ऐसा कोई नियम नहीं है।

नाटक की कथावस्तु मधुर हो तो उससे प्रेक्षक सामा- ... का मनोरंजन होता रहता है। किन्तु फिर भी कुछ विनोदप्रिय दर्शक भी होते हैं जिन्हें हास्य प्रिय लगता है। ... विनोदार्थ बीच-बीच में ऐसे पात्रों के प्रवेश की भी ... कवि समझता है। अतः विट, विदूषक, पीठ- ... आदि पात्र भी नाटक में प्रवेश कर अपने अद्भुत वचनों ... दर्शकों का मनोविनोद करते हैं।

विदूषक की योग्यता—विदूषक उत्तम कुल का, ... लोक-प्रसिद्ध विद्वान् एवं सर्वकला-कुशल होना चाहिए। ... इन्द्रियजित और धर्मशास्त्र का पंडित भी होना चाहिए ... राजा-महाराजाओं के अन्तःपुर तक उसके प्रवेश ... कोई अवरोध नहीं होता है। धार्मिक कृत्यों को भी ... जानना चाहिए। उसे भीरु न होना चाहिए। यद्यपि ... प्रत्यक्ष न तो नाटक में दिखाये ही जाते हैं और ... विदूषक को कभी युद्ध करना ही होता है तथापि उसे ..., साहसी तथा न्यायशील भी होना चाहिए। कालि- ... के नाटकों में प्रायः ब्राह्मण ही विदूषक देखे जाते हैं।

विदूषक उच्छृंखल या ऐसे वचन जो समयानुकूल ... हों, कभी नहीं कहता। कवि विदूषक पात्र को उचित ... पर नाटक में प्रवेश कराता है और अपने प्रबन्ध- ... अनुकूल वचनों को ही उससे कहलवाता है। यद्यपि ... दोनों तरह के काव्यों में सारभूत होता है, चाहे वह ... काव्य हो या श्रव्य, तथापि काव्यापेक्षया दृश्य काव्य ... निर्माण कठिन और अधिक सावधानीपूर्वक निर्माण ... वस्तु है। वह तनिक सी असावधानी से दूषित हो ... जाता है और अपने अभिप्रेत रस से विरुद्ध हो जाने के ... कारण पूरे प्रबंध को ही विरस बना देता है।

कवि अपने प्रबंधानुकूल अर्थात् निर्मित रस की पुष्टि ... के लिए ही विदूषक का प्रवेश कराता है। ऐसा न होना ... चाहिए कि दर्शकों के केवल हास्य के उद्देश्य से ही विदूषक ... का प्रवेश करा कर रस का विघात करा दें। यद्यपि हास्य रस शृंगार का विरोधी नहीं है, तथापि अन्य वीरादि रसों का तो विरोधी है ही। करुण में तो नितांत ही प्रति-कूल पड़ता है। मान लीजिए, सीता के वियोग में राम जिस समय अत्यन्त व्याकुल और चिताग्रस्त हो रहे हों उस समय यदि कवि विदूषक को उनकी चिन्ता दूर करने के उद्देश्य से प्रविष्ट कराकर हास्य की बातें करावे तो क्या यह करुणरस के अनुकूल होगा? उस समय तो दर्शकों के मन में वह हास्यवैरस्य ही पैदा करेगा और प्रकृत करुण रस के प्रतिकूल हो जायेगा। इसीलिए भवभूति ने करुण रस-प्रधान अपने उत्तररामचरित नाटक में विदू-षक का प्रवेश नहीं कराया क्योंकि हास्यादि कर्मकारी विदूषक की प्रवृत्ति करुण रस के प्रतिकूल हो जाती। कहने का तात्पर्य यह है कि केवल बीच-बीच में हँसाने के लिए ही विदूषक का प्रवेश नहीं होता है। वह होता है प्रकृत रस की पुष्टि के लिए और उसी तरह के वचनों का प्रयोग विदूषक करेगा जो रस के अनुकूल होकर हास्यादि उत्पन्न कर सकें। अतएव सभी नाटकों में विदूषक होना ही चाहिए, यह कोई अनिवार्य नियम नहीं है। केवल हास्य के समावेश से ही कोई प्रबन्ध लोकप्रिय नहीं हो जाता। वह तो कवि की प्रतिभा एवम् काव्य-रचना-कौशल पर निर्भर है।

नाटक के प्रधान पात्र का, जिसे नायक कहा जाता है, विदूषक अभिन्न मित्र होता है। वह नायक के रहस्य का ज्ञाता होता है। नायक दुष्कर असाध्य कार्यों में उसकी सहायता की अपेक्षा रखता है। नायक का विश्वासपात्र होने के कारण अन्तःपुर तक उनका मुक्त प्रवेश रहता है। नायक इसका इतना आदर करता है कि वह वयस्य, मित्र आदि शब्दों से ही उसको किसी कार्य की आज्ञा देता है न कि सामान्य अन्य सेवकों की तरह। अपनी प्रति-च्छाया की तरह वह सर्वदा नायक के सन्निकट रहता है। वह नायक का शुभचिन्तक होता है। उसे गुप्त से गुप्त बात भी मालूम होती है। रस का यही मुख्य कार्य है कि नायक को प्रसन्न रखे और उदास चिन्तित होने पर उसको अपने वचनों से हँसाकर प्रसन्न करे। दुःसाध्य कार्यों में सहायता दे।

प्राचीन काल में नाटक विशिष्ट समुदायों द्वारा खेले जाते थे, और वे इस कार्य के लिए शिक्षित भी किये जाते

थे। ये ही नट कहलाते थे और कृत्य ही नाटकों का अभिनय करना था। यह पाणिनि के 'भिक्षुनटसूत्रयोः' से व्यक्त होता है। 'पाराशर्यीशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः' से भी यही व्यक्त होता है। इसका अर्थ है शिलाली के द्वारा प्रणीत नटसूत्रों के अध्ययन करनेवाले शैलालिन् कहलाते थे। अमर ने भी 'शैलालिनो नटाः' कहकर नट शब्द का पर्य्याय शैलालिन् शब्द माना है। अतः कहा जा सकता है कि नटसूत्रों का प्रणयन, जिनमें नाटकों और नटों के कर्तव्य का वर्णन है, पाणिनि के समय से पूर्व या उनके ही समय में सूत्रबद्ध हो चुका था और जो लोग इस काम को करते थे उन्हें इसका प्रशिक्षण दिया जाता था।

पाणिनि के समय के बारे में मतभेद हैं। उनके स्थान का भी अभी तक कोई निश्चय नहीं है, अनुमान पर सब आधारित है। पाणिनि का एक नाम शालातुरीय भी है। ऐसा कुछ लोग मानते हैं कि यह शालातुर गाँव के रहनेवाले थे। इसलिए इनका नाम शालातुरीय है। यह ग्राम इस समय लाहुर नाम से प्रसिद्ध पंजाब के पेशावर मंडल में, सिन्ध नदी के पश्चिमोत्तर अटक से पश्चिम १५ मील पर वर्तमान ओहिण्ड नामक ग्राम से ३॥ मील के अन्तर में है। कनिंगहम ने ईसापूर्व ३५० वर्ष पूर्व पाणिनि का होना माना है।

भरत मुनि नाटचशास्त्र के प्रधान रचयिता और प्रवर्तक माने जाते हैं। कुछ ग्रन्थों से पता चलता है कि इस शास्त्र के प्रथम आचार्य स्वयंभू ब्रह्माजी हैं। ब्रह्मा जी समस्त विश्व के ही निर्माता हैं। अवश्य ही उन्होंने इस शास्त्र का भी उपदेश महर्षियों को पूर्वकाल में दिया होगा। यह शास्त्र पहले सूत्रों के रूप में रहा होगा, फिर उनका विस्तार आ गया होगा। कुछ ग्रंथ भी बने होंगे। तदनन्तर भरत ने सब सामग्री संग्रहीत कर पुनः नाटचशास्त्र की रचना कर डाली। अवश्य ही सूत्रों की रचना प्राचीन है। श्लोकों की रचना सूत्रकाल के पश्चात् की बात है। भरत के द्वारा नाटचशास्त्र के प्रणीत होने के कारण नटों का नाम भी भरत पड़ गया।

भरत ने नाट्यशास्त्र का निर्माण कर, और नट छात्रों को एकत्र कर इसकी शिक्षा दी होगी और बाद में वे उन्हीं नटों से अभिनय भी कराते होंगे। मानव-रुचि का ध्यान रखकर उन्होंने नाटक के लिए एक पात्र विदूषक की भी आवश्यकता समझी होगी और उसका समावेश उन्होंने अपने नाट्यशास्त्र में किया। इसके बाद इस विषय पर '**दशरूपक**' का निर्माण हुआ। इसमें नाटकोपयोगी अनेक बातों का वर्णन समुचित रूप से दिया गया है। किन्तु इसमें विदूषक के विषय में कोई विशेष चर्चा नहीं है, केवल "हास्यकृच्च विदूषकः" लिखकर छोड़ दिया गया है।

साहित्यदर्पणकार ने भी ६ठे उल्लास में नाटकीय नियमों का वर्णन किया है और उन्होंने ही धनंजय के विदूषक के लक्षण में 'विकृतांगवचोवेषैः' बढ़ा दिया है। वह धनञ्जय के बाद के आचार्य हैं।



भूकम्प की समस्या

श्री परिपूर्णानन्द वर्मा

...तिक भूकम्प संसार के लिए एक कठिन समस्या बन ...ता है। पर इससे भी कठिन समस्या है वह भूकम्प ...थ्वी के गर्भ में पड़ा रहता है और जब कभी करवट ...है हमारी अत्यधिक हानि करता है। इस वर्ष हमारे ...ई तीन बार भूचाल आया। सौभाग्य से हल्का धक्का ...। पर तुरत हानि न भी हो परन्तु इसके कारण मकानों ...था वृक्षों की नींव इतनी खोखली पड़ जाती है कि ...भी भयंकर नर-संहार हो सकता है। जरा सी आँधी ...ड़ का गिर जाना या जरा सी वर्षा में मकान का गिर ...न इसी कारण हो सकता है। विज्ञान के द्वारा यह पहले ...ता चल जाता है कि भूकम्प आनेवाला है पर इस ...कारी से जान की रक्षा हो सकती है, माल की नहीं।

जान का नुकसान

बीसवीं सदी यानी हमारी वर्त्तमान शताब्दि के प्रथम ...स वर्षों में ही पाँच बड़े भूकम्प आये जिससे पाँच लाख ...ने जान से हाथ धो बैठे। वे थे केलिफोर्निया के सान-...स्को का भूकम्प—सन् १९०६, इटली के मसीनानगर ...न् १९०८। इटली के एवेज्जानों में—१९१५, काँसू-...न में, १९२० में तथा सन् १९२३ में जापान में टोकियो ...था याकोहामा नगरों में।

जहाँ जितनी घनी आबादी होगी, वहाँ उतना ही ...कर भूडोल आयेगा। हाल में ही अलास्का (संयुक्त ...ज्य, अमेरिका) की सबसे घनी आबादीवाले नगर ...रेज में शाम को साढ़े पाँच बजे बड़ा भूडोल आया। ...स समय ज्यादातर लोग दफ्तरों के बाहर जा चुके थे। ...कान में बैठे लोगों की संख्या बहुत कम थी। फिर भी ... आदमी जान खो बैठे। पर २४०० किलोमीटर ...मि तहस-नहस हो गयी और २५०० करोड़ रुपये की ...म्पत्ति की हानि हुई। सन् १९२३ में टोकियो तथा याको-...हामा में जो भूडोल आया था उसमें १,४३,००० व्यक्ति ...रे, १,०४,००० घायल हुए तथा टोकियो नगर की कुल पाँच ...ख इमारतों में से ३,७५,००० इमारतें नष्ट हो गयीं। ...याकोहामा की ८० फीसदी इमारतें धराशायी हो गयीं। ...घनी आबादी न होने के कारण आसाम में सन् १९५० ...में जो भयानक भूडोल आया था उसमें जनहानि तो बहुत ...हुई पर उस भूडोल का इतनी दूर तक प्रभाव रहा कि वैज्ञानिकों के कथनानुसार एवरेस्ट की चोटी ५९·४ मीटर और अधिक ऊँची हो गयी तथा पूर्वीय हिमालय का बहुत कुछ हिस्सा और ऊँचा हो गया। घनी आबादी के कारण बिहार के सन् १९३३ के भूडोल में लगभग ४०,००० प्राणियों की हानि हुई थी। आर्थिक हानि लगभग १५ करोड़ रुपये की थी।

हाल के भूकम्प

सन् १९२५ से १९५० तक जितने भूडोल आये उससे लगभग १४,००० व्यक्ति हर साल मरते रहे। किन्तु, इतिहास की जानकारी में सबसे भयानक भूकम्प सन् १५५६ में चीन के शाँसी प्रदेश में आया था जिसमें ८,३०,००० प्राणी काम आये थे। उसके बाद दूसरा इतिहास-प्रसिद्ध भूकम्प सन् १७३७ का है—कलकत्ता में ऐसा भूचाल आया कि ३ लाख व्यक्ति मर गये।

इधर हाल के भूचालों में मोरक्को का १ मार्च, १९६० का भूचाल प्रसिद्ध है। अगादीर का बन्दरगाह इसीमें तबाह हो गया था। नगर की ४०,००० की आबादी में से १२,००० के प्राण गये थे। उसके बाद दूसरा विश्व-प्रसिद्ध भूडोल मई, १९६२ में दक्षिणी चाइल का है जिसमें २०,००,००० व्यक्ति बे-घर के हो गये, ५,००० मर गये। पर इससे भी अधिक भयंकर भूडोल उत्तरी-पश्चिमी ईरान का था—सन् १९६२ में ही जिसमें १२,००० व्यक्ति मरे, १,००,००० घायल हुए तथा १५० ग्राम नष्ट हो गये थे। उसके बाद यूगोस्लाविया के स्कोपल्जी नगर का भूकम्प था—जूलाई २६, १९६३ में, जिसमें नगर तो प्रायः एकदम नष्ट हो गया। १००० व्यक्ति मरे; ३,४०० घायल हुए। मुँगेर (बिहार) जिले के भूकम्प के समान इस नगर में भी कई सप्ताह बाद तक जिन्दा लोग खण्डहरों में दबे हुए पाये गये थे।

भूकम्प का दायरा

भूगर्भ-शास्त्रियों ने भूकम्प के दो निश्चित क्षेत्र निर्धारित कर दिये हैं:—

१—चाइल से मध्य अमेरिका, संयुक्त राज्य अमेरिका अलास्का होती हुई, जापान फिलपीन से गुजरती हुई न्यूजीलैंड तक जानेवाली प्रशान्त-महासागरीय रेखा।

(शेष पृष्ठ २६६ पर देखिए)

आँगनों के बीच—

कुछ अति सम्पन्न तथा रूढ़िवादी परिवारों की गृहिणियों के आग्रह पर यह लेख लिखा गया है। उनको चिन्ता थी कि उनकी विवाह योग्य कन्याएँ आधुनिक प्रचलित पश्चिमी शिष्टाचार से अनभिज्ञ ही रह जाती हैं, और विवाह के पश्चात् कभी-कभी उनको उस जीवन में जब सहसा प्रवेश करना पड़ जाता है तब वे समझ नहीं पातीं कि क्या करें। आशा है यह लेख उनको लाभप्रद सिद्ध होगा।

—सह-सम्पादिका

दावत खाने चलें

प्रातः दिन में भोजन के समय हलके रंग के कपड़े पहनिये, तथा रात्रि में भोजन के समय, यदि गर्मी की ऋतु नहीं है, तो तेज रंग। यदि तेज रंग ही आप पहनना चाहती हैं तो गर्मियों में तेज रंग सूती कपड़ों में पहने जाते हैं। गर्मियों में, एक तो तेज रंग दूसरे रेशम आपको स्वयं ही सुखद नहीं लगेगा। वस्त्र चुनने में इस बात का ध्यान रक्खें कि वे आपको ठीक से 'फिट' आते हों। बहुधा किसी एक विशेष कपड़े को पहिनने के चाव में, या कपड़ों के मेल मिलाने के विचार से, ऐसी वस्तुएँ भी पहन ली जाती हैं जो या तो बहुत चुस्त होती हैं या बहुत ढीली—विशेषकर जूते और ब्लाउज। इससे पहननेवाली को सारे समय अपने वस्त्रों का ही ध्यान बना रहता है, और वह खुलकर बात भी नहीं कर पाती है, और सहमी सी बैठी रहती है। यदि चुस्त जूता काटने लग जाय तो लँगड़ा कर चलने को रोकने रोकने में ही, एक विचित्र प्रकार की चाल को जन्म मिल जाता है, जो लँगड़ाने से भी अधिक हास्यप्रद होती है। और चुस्त ब्लाउज के क्या क्या परिणाम हो सकते हैं, और उससे किस किस प्रकार लज्जित होने की संभावना हो सकती है, इसको तो आपकी कल्पना

...भली भाँति बता सकती है। वस्त्रों के साथ में एक ...प्रकार का बटुआ साथ में रखना इस कारण आवश्यक ...जाता है कि आप रूमाल सुविधा से निकाल सकें और ...में से खींच-खींचकर अपने अंगों का और अधिक ...करने से बच जायँ। फैशन थोड़ा-बहुत अंग-प्रदर्शन ...बार से करा ही देता है।

...जाड़ों के भारी कोट बहुधा बड़े होटलों में ...पहुँचने के उपरांत उतार दिये जाते हैं जिससे कि ...के शरीर का अनुपात बना रहे और जब आप बाहर ...समय फिर ठंड का सामना करें तो अपने शरीर की ...फिर कोट पहनकर, कर सकें। उसे अन्दर पहनकर ...के पश्चात् फिर बाहर जाते समय अधिक ठंड का ...सामना आप कैसे करेंगी ?

कोट को उतारने और फिर पहनाने का काम आपके ...के पुरुष साथी का है। आप इतना ही ध्यान रक्खें ...आपके कड़ों और चूड़ियों में उतारते व पहनते समय ...फँसे नहीं, तथा उसका कालर बिगड़ न जाय। इसी ...प्रकार आपकी मोटर का फाटक खोलने का काम भी ...के पुरुष साथी का है। आपको इसका ध्यान रखना ...कि यदि फाटक आप के साथी ने नहीं खोला है या आपके ...साथी ने कोट नहीं उतारा है तो आप मोटर में विराजमान ...न रहें, या उतरते ही उनको पाठ पढ़ाने के अभिप्राय ...से लड़ने न लगें, और न गाल फुला कर ही बैठ जायँ। ...सहूलियत से उतर आयें। पार्टियों में ऐसा बहुधा ...होता है, और पुरुष साथी सारी दावत भर यही ...सोचता रहता है कि इनके गाल क्यों फूल गये हैं।

होटल में व दावत में अन्दर जाने के उपरांत, आपके ...पीने के लिये पूछा जायगा। शैरी, पोर्ट (जो हलकी ...किस्म की शराब हैं), पाइन एपिल जूस (अनन्नास का ...), टमाटर जूस (टमाटर का) अपनी रुचि के अनुसार ...मँगा लें। कोई चीज अवश्य माँग लें, और सात्विक ...न बैठी रहें, क्योंकि आप वहाँ भोजन करने गई हैं। ...कुछ न माँगने से लगेगा कि आप सत्याग्रह करके ...हैं। यदि आप मदिरा की अभ्यस्त नहीं हैं, तो उसका ...आवश्यक नहीं है। आपको मना करने में संकोच ...होना चाहिये। उसकी जगह कुछ फल के रस ले लें। ...पर बैठते समय आपकी कुर्सी खींचकर आगे करना, फिर आपके उठते समय पीछे करना आपके पुरुष साथी का काम है। अगर वह न करे तो आपसे प्रार्थना है कि आप स्वयम् खींचकर बैठ जायँ।

भोजन के पूर्व मेज पर मीनू कार्ड रक्खा होगा—इन कार्डों की भाषा बड़ी विचित्र होती है। यदि आप उसकी भाषा न समझें तो पूँछ लें कि उसमें लिखा क्या है। वरना यदि आपने कुछ अंट संट ऑर्डर कर दिया तो फिर भुगतना आप ही को पड़ेगा। मेज पर रक्खा कपड़ा (नैपकिन) अपनी साड़ी पर बिछा लें जिससे कि वह खाना गिरने से खराब न हो। समस्त खाना बड़ी प्लेट में लिया जाता है। बाईं ओर रक्खी छोटी प्लेट केवल रोटी के लिये होती है।

यदि आप शाकाहारी हैं तो पहले ही कह दें। संकोच की आवश्यकता नहीं है। शाकाहारी भोजन हर होटल में होता है। पहले सूप मिलता है। कभी कभी बड़ी दावतों में सूप के पहले भी एक डिश फलों की होती है। खाने के उपरांत चम्मच सीधा रक्खें।

चम्मच सीधा रखने का अर्थ है 'हम खा चुके' बर्तन उठाओ।'—होटल के बैरे तथा सभी बैरे यह भाषा समझते हैं।

सूप पीते समय कम हो जाने पर प्लेट को अपने से विपरीत दिशा में टेढ़ा करके अन्तिम बूंद तक पिया जा सकता है। सूप पीने का चम्मच सबसे अधिक गहरा होता है।

फिर मछली का कोर्स आता है। शाकाहारियों के लिये कोई और चीज आती है। इसका चम्मच और काँटा अन्य काँटों से भिन्न होता है और अधिक सुन्दर होता है। प्रायः सबसे आगे रक्खा रहता है।

बैरा आपको बायीं ओर से भोजन देगा, दाहिनी ओर उसके आते ही आप भोजन लेने को न व्याकुल हो जाइयगा।

मीठा आ जाने के पश्चात् भोजन समाप्त समझना चाहिये।

अन्त में कॉफी पीने की प्रथा है। यदि आपको उसकी रुचि न हो तो मना भी कर सकती हैं।

यदि आपको वस्त्र ठीक करने या किसी अन्य कारण

से अलग जाने की आवश्यकता है तो उसके लिये 'क्लोक रूम' या 'टायलेट रूम' कहने की प्रथा है, 'बाथरूम' कहने की नहीं। 'बाथ' का अर्थ है 'स्नान'। आप वहाँ स्नान करने नहीं जा रही हैं।

वाइन (मदिरा) का उपयोग--उसकी बोतल खुलने पर अतिथियों को देने के पूर्व मेजवान के द्वारा पहले घूँट के पीने की प्रथा है। यह इस कारण है कि वह जान सके कि मदिरा अतिथियों को देने के योग्य है कि नहीं, क्योंकि वाइन बहुधा उतर भी जाती है।

भोजन के उपरांत 'फिंगर बोल' में गर्म पानी आता है। हो सकता है उसमें गुलाब की पत्तियाँ भी हों। उसमें केवल उँगलियाँ डुबोकर उन्हें धो लें। वह पीने के लिये नहीं है, और न कुल्ला करने के लिए है। यह इसलिए लिख रही हूँ कि ऐसा भी हो चुका है। यदि कॉफी या चाय के प्याले में गर्म पानी आया है तो वह केवल प्यालों को गर्म रखने के लिये है। उसमें चाय या कॉफी डालते समय उस प्याले के पानी को खाली कर दें, वैसे तो आपका बैरा ही यह काम कर देगा।

चाय आदि बनाना स्त्रियों का काम है।

भोजन करते समय नीचे चप्पल उतार देने का महिलाओं का स्वभाव होता है। वे उन्हें चलते समय पहन लेती हैं। ऐसा न करें। यों तो गड़बड़ न होगी, पर यदि कभी एक चप्पल खसक गई तो!

भोजन के उपरांत 'नैपकिन' तह करके मेज पर ही छोड़ आइये।

अन्दर जाते समय स्त्रियाँ आगे जाती हैं, पुरुष पीछे। सब द्वार स्त्रियों के आने पर पुरुष ही आगे बढ़कर खोलते हैं।

छींक आदि आने पर, या बीच से उठकर जाने पर, कहिये 'Excuse me' या 'क्षमा कीजिये।' 'I am sorry' (मुझे खेद है) नहीं। आपको दुख किस बात का है? छींक आने का?

बस; यदि आप यह सोच लें कि आप रानी साहिबा हैं, और सब पुरुष आपके दास हैं, तो आप कोई गलती नहीं करेंगी। यदि पुरुष उन कामों में से कोई काम करना भूल जायँ जो उन्हें करने चाहिए, जैसा कि आपको बतलाया गया है तो, आप कोई कटु या अशिष्ट बात कह या करके स्थिति को बिगाड़ न दें, क्योंकि देखा गया है कि ऐसी पार्टियों में, या पार्टियों के बाद, बहुधा भारतीय नारियाँ अपने पुरुष साथी से लड़ने लग जाती हैं, और घर में कई दिनों तक यही शिकायतें चला करती हैं कि 'तुमने मेरे लिये 'कार' का दरवाजा नहीं खोला', 'तुमने मेरा कोट नहीं उतारा' आदि।

इसका ध्यान रखिये कि रानी आप दूसरे पुरुषों के लिये हैं, अपने पति के लिये नहीं।

पृष्ठ २६३ का शेषांश

२—हिन्द एशिया, बर्मा, चीन, भारतवर्ष, हिमालय की पर्वतमाला, खारखोरम, हिन्दूकुश, काकेशस होती हुई भूमध्य सागर के नीचे से होकर पुर्त्तगाल पहुँचनेवाली रेखा।

सूर्य के अग्निपिंड से टूटे हुए उस हिस्से को हम पृथ्वी कहते हैं जो ऊपर से तो ठंढी हो गयी है पर भीतर गर्मी बाकी है। वही गर्मी-नर्मी के संघर्ष से भूचाल पैदा होता है। प्रतिवर्ष लगभग दस लाख बार भूकम्प आता है जिसमें से १,००,००० बार कम्प काफी दूर के दायरे तक महसूस होता है। पर इनमें से भी केवल १०० भूकम्प ही घातक तथा विनाशकारी होते हैं। पृथ्वी की सतह के निर्माण में जहाँ पर "दोष" होगा, वहीं भूकम्प होगा। इसी दोषपूर्ण भाग में चट्टानें पृथ्वी के पेट से निकल पड़ती हैं और हमको लम्बे ऊँचे पहाड़ मिल जाते हैं। इन्हीं दोषपूर्ण स्थानों में मीलों पृथ्वी गर्भ में समाकर गहरी खाई या नदी तक पैदा कर देती है। इनके द्वारा ही पृथ्वी के भीतर पड़े हुए अनमोल खनिज पदार्थ बाहर आ जाते हैं। पृथ्वी के पेट की बदहजमी से ही उसके भीतर या समुद्र में ऐसी लहर दौड़ जाती है जिसकी गति ९५० किलो-मीटर फी घण्टा हो सकती है। इन्हीं लहरों के कारण समुद्र का पानी बाँसों उछल पड़ता है। सन् १७३७ में साइबेरिया में पानी ने ६३ मीटर ऊँची उठान ली थी।

भूकम्प के वास्तविक कारण तथा काफी पहले से इसकी चेतावनी देने के साधनों पर बराबर खोज हो रही है। संयुक्त राज्य अमेरिका केवल इसी कार्य के लिये ६५ देशों में १२५ स्टेशन स्थापित कर रहा है।

आसान ड्रैसिंग गाउन

घर में ड्रैसिंग गाउन बनाइये जो सीने में आसान है जिसका उपयोग इस आधुनिक युग में स्त्रियाँ व पुरुष दोनों ही कर सकते हैं। यह ड्रैसिंग गाउन देखने में अत्यन्त सुन्दर लगती है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस ड्रैसिंग गाउन में अन्य ड्रैसिंग गाउनों से कम कपड़ा लगता है, और सिलाई की मेहनत तो कम है ही। इसमें आगे व पीछे कढ़ाई करना आवश्यक है। जापानी कढ़ाई के नमूने, या कोई बड़ा सा फूल-पत्तियों का नमूना इसमें आगे या पीठ के पीछे कढ़ा हुआ सुन्दर लगता है। इस गाउन में कॉलर और कफ आदि न होने के कारण इसको घर में ही सुविधापूर्वक धोया जा सकता है, तथा ड्राई क्लीनिंग को भेजने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

सीधी पट्टियों ही में यह ड्रैसिंग गाउन तैयार हो जाता है। पीछे का पीठ का भाग जितना लम्बा रखना हो उतना फाड़ लें, वैसे घुटनों तक लम्बा रखने की प्रथा है। चौड़ान मोढ़ों से जरा सा गिरता हुआ—जैसे कि साइज़ बड़े कुर्ते का होता है। उनका चौड़ान और लम्बान सीधी पट्टी सी निकाल लीजिये। कहीं काट छाँट करने की आवश्यकता नहीं।

आस्तीन—फिर मोढ़ से कोहनी तक की लम्बान की पट्टी काट लीजिये और जो पीठ की पट्टी निकाली है उसका तिहाई भाग का नाप करके उतनी चौड़ान की दूसरी आस्तीन का कपड़ा फाड़ लीजिये। काट-छाँट की आवश्यकता नहीं है।

सामना—जैसी पट्टी पीठ पीछे के लिये ली गई है, ठीक वैसी ही और उतनी ही बड़ी पट्टी सामने के लिये फाड़ लीजिये और उसको बीच से काट दीजिये जिससे कि वह दो भागों में विभाजित हो जाय।

सामने का भाग एक दूसरे के ऊपर आ सके, इस कारण प्रायः छः इंच लम्बी दो पट्टियों की आवश्यकता और होगी जो कि सामने के भाग में दोनों ओर (६ इंच पट्टी एक ओर तथा ६ इंच की दूसरी पट्टी दूसरी ओर के भाग में आगे की ओर जिधर खुला है) जोड़ दी जायेगी। यह पट्टी नीचे से जोड़ना प्रारंभ करके जहाँ तक तिकोने गले ('वी' गले) का काट आयगा—वहाँ तक जोड़ी जायेगी।

पेटी—एक चौड़ी (प्रायः तीन इंच) पेटी उसी कपड़े की, जिसका कि ड्रैसिंग गाउन है, उस में जोड़ी जायगी।

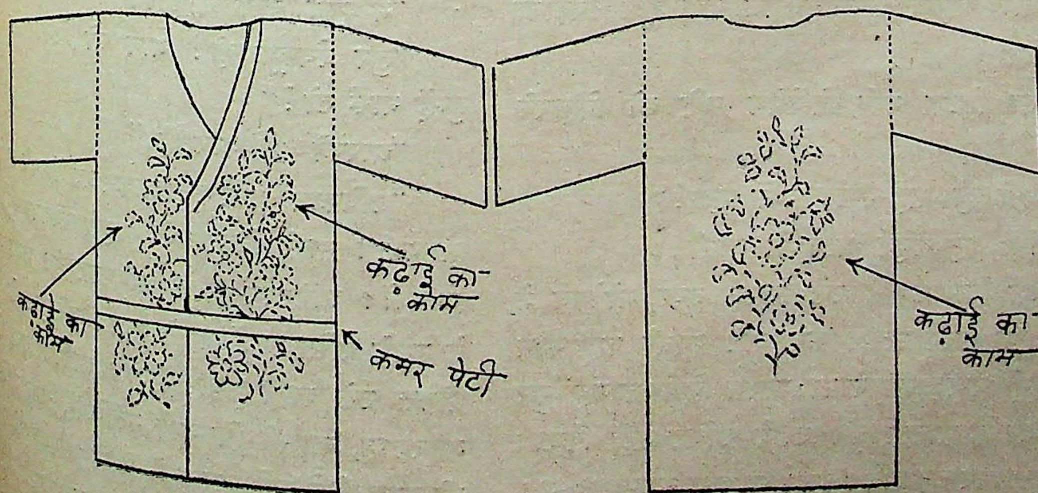
काटछाँट की आवश्यकता इस ड्रैसिंग गाउन में केवल एक स्थान पर पड़ती है। वह है गले का काट। गले का काट तिकोना (अंग्रेजी वी V के आकार का) होता है, तथा इसका ध्यान रक्खा जाता है कि अधिक गहरा न कटे, क्योंकि गहरा कट जाने से अन्दर का वस्त्र दिखाई पड़ता है और उससे ड्रैसिंग गाउन के पहनने का उद्देश्य ही विफल हो जाता है। गला गहरा कम व लम्बा अधिक कटता है। उस में प्रायः डेढ़ इंच पट्टी लगाई जाती है—आगे बढ़ती हुई।

सावधानी—सामने और पीठ पीछे की पट्टी अगर एक में ही फाड़ी जाय तो मुट्ठे पर जोड़ देने की आवश्यकता नहीं। जोड़ न आने पर गाउन अधिक सुन्दर दिखती है।

सीधे-सीधे भाग जोड़कर सी लिये जायँ।

जेबें—दो बड़ी जेबें सामने होनी चाहिए।

सामने　　　　पीछे



घर और बाहर

श्री स्वरूप ढौंडियाल

हल्की सी चरमराहट से दरवाजा खुला। उर्मिला खड़ी थी। चेहरे पर तवे की कालिख के दाग, आटे से सने हुए हाथ, मुख पर हल्की-हल्की घुटन के चिह्न। उर्मिला को देखते ही कमलेश को प्रतीत हुआ जैसे किसी पड़ाव पर पहुँचने पर थके मुसाफिर को कह दिया गया हो—"जगह नहीं है।" बस्ती के भ्रम में दूर प्रकाश देखकर, अनजान प्रदेश में भटकता कोई राही, श्मशान घाट पहुँच गया हो। मानसिक उग्रता बाहर निकलने के लिए छटपटाने लगी। जाने क्यों उकताहट इतनी बढ़ गयी कि उसने एक चपत भोली-भाली उर्मिला के गाल पर जड़ दिया।

उर्मिला कुछ न बोली। सिर झुकाये स्तंभित-सी खड़ी रही। पति की ओर देखे बिना रसोई की ओर जाने के लिए मुड़ी। कमलेश सकपकाया। उर्मिला का बिना प्रतिकार दंड स्वीकार कर लेना, उसे खलने लगा। जैसे उसने किसी असहाय और निहत्थे व्यक्ति को निर्ममता से पीट दिया हो। वह निढाल हो गया। चाहता था, उर्मिला लड़े, झगड़े, उससे स्पष्टीकरण माँगे। कुछ भी न हुआ, इसके विपरीत वह चुपचाप जा रही है, एक शब्द भी नहीं कहा। उसे लगा, उर्मिला उसके खोखलेपन को जानती है। निरर्थक क्रोध की पोल खुल गयी है। वह यह सोचते ही पुनः खिन्न होकर बोला, "ठहरो, कहाँ जाती हो?...मार खाकर चुपचाप चल दी। मुझे चिढ़ाना चाहती हो।"

उर्मिला ठिठक गयी, निर्निमेष पति को निहारने लगी।

"जानती हो यह थप्पड़ क्यों पड़ा?"

"हाँ!" वह सहज भाव से बोली।

कमलेश विस्मय से उसे ताकने लगा, भोलेपन ने अंतर में एक तरंग उत्पन्न कर दी। पगली कहीं की। वह स्वयं भी थप्पड़ मारने का कारण निश्चित नहीं कर पाया, कहती है जानती हूँ। उसने उचित नहीं किया। असंगत बातें और फूहड़पन। इसमें उर्मिला का क्या दोष? माँ-बाप गरीब थे, गरीबी में पली। जो संस्कार उस पर लाद दिये गये हैं वह सुगमता से मिटनेवाले नहीं हैं, और फिर वह भी तो निर्दोष नहीं। सधाने से जानवर भी सध जाता है। स्नायुतंतुओं पर एक भार-सा मालूम पड़ा। सारी मानसिक उग्रता छिन्न-भिन्न हो गयी।

उर्मिला खड़ी थी। सकपकाई, भ्रांत और चकित। कमलेश ने बात निपटाने के हेतु पूछा—"हाँ तो बताओ, तुम्हें थप्पड़ क्यों मारा?"

"गलती की होगी?" वह बोली।

उसने आश्चर्य और हैरानी से पूछा—"क्या गलती?"

"मैं क्या जानूँ?"

कमलेश का अंतःकरण इस सरल, निष्कपट उत्तर से अत्यधिक द्रवित हो गया। उसने चाहा कि उर्मिला को आलिंगन में बाँध ले, लेकिन पहिले वह कुछ और पूछ लेना चाहता था। पूछा—"तुम नहीं जानतीं?"

"आप मुझे बगैर बात क्यों मारने लगे।"

वह सन्न रह गया। कितना विश्वास! कितनी भोली! उसे लगा, गऊ की तरह सीधी पत्नी—नारी को मारकर वह कभी भी संतोष नहीं पा सकता। छल-प्रपंच रहित ढेर-सी बातें सुनने को उसका मन हुआ। पूछने लगा—"मैं बिना बात मारूँ तो?"

"आप ऐसा नहीं करेंगे।"

"करूँ तो?" वह जैसे कुछ पूछने-जानने के लिए उतावला था।

"मैं ऐसा नहीं सोचती।"

"तुम बेवकूफ हो! मान लो बिना किसी कारण तुम्हें मारूँ तो?"

"आपको अधिकार है।"

"अधिकार" शब्द पर आकर प्रश्नों की लड़ी समाप्त हो गयी। सारी जिज्ञासायें गहरी संवेदना में परिणत हो गयीं। अधिकार—उसे अधिकार है। शब्द जोर-जोर से उसके मस्तिष्क में बजने लगा। इतिहास के प्रश्नों में अंकित उसे शाही महफिलें याद आयीं। सुरा से बेसुध शहनशाह, नाचती थिरकती नर्तकियाँ, हाथ बाँधे प्रतिमा की तरह सीधे खड़े गुलाम! अपने बादशाह के हुक्म पर जान देने वाले, उसके इंगितों पर नाचनेवाले, मर-मिटने वाले। शहनशाह के अधिकारों की कोई सीमा नहीं। क्रोधित हो गया तो फाँसी दे दी—हाथ पैर काट दिये।

दृष्टि पड़ी तो राज्य तक दे डाला। उर्मिला की ओर, एक असहाय, अबला पर उसे अधिकार है। दिल दिमाग में तिक्तता भर गयी।

चुपचाप दूसरे कमरे में चला गया। बच्चे नित्य की तरह उससे आ लिपटे। उसकी गोद में चढ़ने के लिए एक दूसरे से होड़ लगाने लगे। परन्तु वह पत्थर के बुत की तरह बैठा रहा। उसकी सारी अनुभूतियाँ जड़ हो गयी थीं। रात्रि का खाना अनिच्छा से खाया। रात चारपाई पर करवटें बदलता रहा; मनहूसियत की एक बोझिल छाया उसे कमरे में मँडराती प्रतीत हुई। उसे महसूस हुआ कि उर्मिला को भी नींद आ रही है। उसने सोने का असफल प्रयत्न किया। घुटन और छटपटाहट उसका पीछा नहीं छोड़ रही थी। आजकल उसे क्या हो गया है? बचपन में वह ऐसा नहीं था। उम्र बीतते-बीतते वह चिड़चिड़ा हो गया है। असहनशील और क्रोधी! अपने दौर्बल्य पर वह छटपटा उठा।

प्रातःकाल नींद खुली, देखा, दिन चढ़ आया था। सूर्य-रश्मियां खिड़की से छनकर बिस्तर पर पड़ रही थीं। चाय पीने की इच्छा से उठा। शरीर टूटता हुआ प्रतीत हुआ। रात्रि के सम्पूर्ण विचार, रात की कालिमा में ही विलीन कर मिट चुके थे।

"नौ बज गये हैं।" बाहर पड़ोस में कोई चिल्लाया। वह हड़बड़ाहकर उठा। घड़ी देखी, तो नौ बजकर दस मिनट हो गये हैं। आफिस के लिए देर हो गयी है। उर्मिला ने भी नहीं जगाया। हजार बार कहा है, अधिक देर तक सोने न दिया करो। मानती नहीं। नौकरी रहे या छूटे, उसकी बला से!

चिड़चिड़े स्वर में पुकारा—"उर्मिला!"

उर्मिला भागी-भागी आई।

वह क्रोध से काँपने लगा—"मुझे जगाया क्यों नहीं?"

उर्मिला स्तब्ध और शांत! कातर दृष्टि से कमलेश को ताकती रही! मौन ने सुप्त क्रोध को और उभार दिया। एक तो महारानी गलती करती हैं और उस पर कुछ पूछो जवाब नदारद! अरुचि, उकताहट ने अपने सम्पूर्ण अस्तित्व में महसूस की। घड़ी की ओर देखा, पूरे सवा नौ! तड़ाक् से एक थप्पड़ उर्मिला के मुँह पर जड़ दिया।

स्वभावानुसार उर्मिला कुछ न बोली। जैसे थप्पड़ उसे विरासत में प्राप्त है। सुबुकती-सुबुकती रसोई में चली गयी।

कमलेश को संतुष्टि नहीं हुई। रसोई में जाकर बड़बड़ाने लगा—"मार खाने के तुम्हारे कर्म ही हैं। हर समय की लापरवाही से आँखें नहीं मूँदी जा सकतीं। सारी जिन्दगी निभानी है। तकदीर फूटनी थी मेरी, फूट गयी। रानीजी! अब सुबुकना बन्द करो और खाना रखो। दफ्तर जाना है। नौकरी छूट जायेगी तो गली-गली भीख माँगती फिरोगी।"

चूल्हे की ओर देखा, दाल उबल रही थी। चावल पतीली में भिगोये हुए थे, गुँधे आटे पर मक्खियाँ भिनक रही थीं। स्पष्ट था कि अभी भोजन पका नहीं।

"खाना"! उसने खीझकर कहा।

उर्मिला चुप रही जैसे रँगे हाथों पकड़ा गया चोर, बार-बार पूछने और मार खाने पर भी, अपनी सफाई देने की आवश्यकता नहीं समझता।

कमलेश की सहनशक्ति अंतिम छोर पर पहुँच गयी थी। साइकिल निकाली और भूखे ही दफ्तर चल दिया।

दफ्तर में सिर भारी रहा। भूख से पेट की अँतड़ियाँ ऐंठने लगीं। काम भार लग रहा था। हर बात पर झुँझला उठता। प्रतीत हो रहा था कि कमरे की प्रत्येक वस्तु फीकी हो, साँस रहित! साथियों से भी उसने बातें नहीं कीं। सबकी प्रसन्नता में उसे छिछोरापन लगा। उनकी मुस्कराहट में जैसे बेवकूफी भरी हो। बे मौके हँसना भी तो भला नहीं लगता।

"मिस्टर!" उसे पुकारा गया।

सिर उठाया। साहब की स्टेनो मिस गुप्ता खड़ी थी।

"क्यों, क्या बात है? रोनी सूरत बना रखी है।" वह खिलखिलाकर हँसते हुए बोली—"घर से मार खाकर तो नहीं आये।"

वह नहीं हँसा, इच्छा नहीं हुई, मिस गुप्ता ने मतलब की बात की—"साहब ने प्रातः जो काम दिया था, माँग रहे हैं। कहते हैं, बहुत देर हो गयी। गुस्सा हो रहे थे।"

झल्लाकर उसने कागज समेटे। घिनौनी-सी एक लहर उसके सिर से पाँव तक दौड़ गयी। बोला—"कह दो, मशीन नहीं हूँ आदमी हूँ।"

मिस गुप्ता चली गयी, वह कागजों पर झुक गया। फड़फड़ाते कागज उसकी विशृंखल विचारधाराओं से

जूझते रहे। वह कागजों को अपलक निहारता रहा, आज काम नहीं हो पायेगा।

चपरासी सामने खड़ा था—"साहब ने आपको बुलाया है।"

वह चेत गया। समझ गया कि क्यों बुलाया गया है। शरीर टूटने लगा। उसे लगा साथी कानाफूसी कर रहे हैं। उसकी मूर्खता पर हँस रहे हैं। कमरे में ढेर-सी फाइलें भी जैसे मुँह बाये उसे चिढ़ा रही हैं। मिस गुप्ता कोने की सीट में बैठी थी। क्रूर नजरों से उसकी ओर देखा, होंठों पर लगी लिपिस्टिक खून की तरह लगी जैसे होंठों पर ताजा खून चिपका हो।

मंथर गति से साहब के कमरे में जाकर, सिर झुकाये खड़ा हो गया। साहब कह रहे थे—"मिस्टर कमलेश! मैं जानता हूँ तुम आदमी हो मशीन नहीं, और यह भी जानता हूँ कि आदमी और मशीन में अंतर होता है। एक जीवधारी है, दूसरा बेजान। . . ."

कमलेश हकलाया—"जी . . . मेरा मतलब यह नहीं था, मैं आजकल सठिया-सा गया हूँ। निरा पागलपन समझ लीजिये। मेरी पारिवारिक स्थिति . . .।"

साहब ने टोका—"मैं तुम्हारी घरेलू जिन्दगी के बारे में नहीं सुनना चाहता। तुम्हारा मतलब कुछ भी रहा हो, लेकिन याद रखो, तुम्हें नौकरी करनी है तो काम करना है। तुम आज लेट आये, मैंने कुछ नहीं कहा। जाओ, आगे से ऐसा न हो।

कमलेश कमरे से निकल गया।

अपनी कुर्सी पर बैठते ही उसे लगा कि उसकी कुर्सी अभी टूटकर टुकड़े-टुकड़े हो जायगी। वह जमीन पर लोटने लगेगा। सारे कमरे में बैठे साथी खिलखिलाकर हँस पड़ेंगे। भयभीत और संशय भरी नजरों से उसने सबको देखा। सब अपने काम में तल्लीन थे। परन्तु उसे लगा, सब कनखियों से उसे देखकर मन ही मन मुस्करा रहे हैं। मिस गुप्ता सचमुच मुस्करा रही थी, नित्य की मुस्कराहट। उसके माथे पर बल पड़े। तनकर खड़ा हो गया। भरे कदमों से मिस गुप्ता के सामने जा पहुँचा। अकड़कर पूछा—"आपने शिकायत की थी?"

"यस!" मिस गुप्ता ने तनकर कहा।

"क्यों?"

मिस गुप्ता ने पूर्ववत् मुस्कराकर कहा—"कर दी, बस!"

तड़ाक् से एक थप्पड़ मिस गुप्ता के मुँह पर पड़ा। वह तड़प उठी। झपटकर खड़ी हो गयी। सीधे साहब के कमरे की ओर दौड़ी। कमलेश खड़ा का खड़ा रह गया। भ्रांत और सुन्न! सम्पूर्ण शरीर में झुरझुरी दौड़ गयी। प्रतीत हुआ कि वह बवंडर भरे रेगिस्तान में जूझ रहा है।

नौकरी, नोटिस, बदनामी, बच्चों का भूखा मरना, सारी कल्पनाएँ उसके दिमाग में एक बार घूम गयीं। उसने यह क्या किया? पराई लड़की पर हाथ उठाने का उसे कोई अधिकार नहीं था। नारी स्वतंत्रता और समानता के इस युग में इससे बड़ा जघन्य अपराध और क्या हो सकता है? उसने मुख पर हाथ फेरा, हथेलियों पर पसीना चिपक गया। उसे लगा कि उसके मुँह का पानी सूख गया है।

"साहब ने आपको बुलाया है।" उसने सुना।

वह साहब के कमरे की ओर देखने लगा और उसने महसूस किया कि इन शब्दों की सम्भावना वह पहले ही समझ चुका था! ओह! अब वह किसी भी स्थिति में नौकरी पर नहीं रखा जा सकेगा। साहब को अधिकार... अधिकार शब्द पर उसकी चेतना केन्द्रीभूत हो गयी। उसने कल भी इस अधिकार शब्द को सुना था। लेकिन किसने कहा? उसे याद आया कि उसने इसी संबंध में शाही महिफिलें याद की थीं, सुरा से बेसुध शहनशाहों को देखा था। नाचती-थिरकती परियों को देखा था, हाथ बाँधे प्रतिमा की तरह खड़े गुलामों को भी याद किया था। उसने अपने थके दिमाग पर जोर दिया। शायद उर्मिला ने कहा था। उसी ने कहा था—"आपको सब अधिकार है।"

"साहब आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।" चपरासी ने याद दिलाई।

वह साहब के कमरे की ओर चल दिया। साहब के सामने जाते ही उसने धाराप्रवाह रूप में बोलना आरम्भ किया—"साहब! इस बार माफ कर दीजिये। मेरे बीबी-बच्चे भूखे मर जायेंगे। मैं गरीब आदमी हूँ। मेरा हरगिज भी बुरा इरादा नहीं था। मैं जानता हूँ कि मुझे आप नौकरी से निकाल सकते हैं, लेकिन मेरा जीवन बरबाद हो जायेगा। मैं मिस गुप्ता से माफी माँग सकता हूँ।"

वह साँस रोककर परिणाम की प्रतीक्षा करने लगा। मिस गुप्ता अपनी शार्टहैंड की कापी पर झुकी हुई मुस्करा रही थीं।

साड़ी, सैंडिल और पर्स

श्री पी० एस० नीन्द्रा

"मालूम होता है रमेश और शीला आज फिर लड़ रहे हैं", अपनी पत्नी की ओर देखते हुए अशरफ बोला।

"मुझे भी ऐसा ही प्रतीत होता है।" कुछ रुक कर सलमा फिर बोली—

"और तो जो कुछ भी है, मुझे उस नन्हें से हीनू पर कहीं ऊब आता है.... हर समय उदास उदास—और ये पति-पत्नी हैं कि बस, जरा-जरा सी बात पर लड़ पड़ते हैं। क्या तुमने कभी रमेश को नहीं समझाया।"

"भई मैं तो रमेश को बहुत समझा चुका—पर क्या करें", कुछ बुरा सा मुंह बनाकर बोला, "शीला भी माने तब न। विचारा रमेश तो.... पर क्या तुमने शीला को कभी नहीं समझाया ?"

"समझाया क्यों नहीं, उसका कुछ दोष हो तब न। बेचारी शीला सारा दिन काम करती रहती है और उसका 'विचारा' रमेश है कि बस हर समय डाँट-फटकार", सलमा ने तुनककर उत्तर दिया।

अशरफ खिड़की से बाहिर कुछ सुनने की चेष्टा कर रहा था, अतः सलमा ने क्या कहा, वह कुछ ठीक न सुन सका। हां! रमेश और शीला की आवाज अब बहुत जोर की आ रही थी। सलमा को सम्बोधित करते हुए अशरफ बोला—

"मालूम होता है झगड़ा कुछ गम्भीर है। मेरी मानों तो चलो जरा बीच-बचाव करवा आयें।"

"हाँ.....मैं भी यही सोच रही थी," यह कहकर सलमा उठी और जल्दी से रसोई ठीक करने लगी।

कुछ समय पश्चात् सलमा ने रसोई से आवाज लगाई—

"मेरी मानो तो कुमार और सुषमा को भी बुला लो....वे भी उनके गहरे मित्र हैं।"

"सलमा अब समय नहीं है किसीको भी बुलाने का। तुम जल्दी से चल पड़ो।"

"चल तो रही हूँ। अब रसोई बिल्कुल इसी तरह कैसे छोड़ सकती हूँ", सलमा की आवाज आयी।

अशरफ को यह सब अच्छा न लग रहा था। औरतें भी भगवान् की एक अजीब मार हैं। वक्त पर कोई काम भी नहीं कर सकतीं—अशरफ ने सोचा। कनखियों से उसने रसोई की ओर देखा। सलमा शीघ्रता से बैडरूम में कपड़े बदलने जा रही थी। ओह....तो मेम साहिब अभी और समय लेंगी, अशरफ भिनभिनाया। बहुत क्रोध आ रहा था सलमा पर उसे।

"अब आओगी भी कि नहीं....कितनी देर और लगेगी, मेमसाहिब, झल्लाकर अशरफ जोर से चीखा।

"आ तो रही हूँ। चीखने की क्या आवश्यकता है। अब कपड़े भी न बदलूँ", तीव्र स्वर से सलमा ने उत्तर दिया। कुछ रुककर फिर बोली—

"और यह आपका 'मेम साहिब', 'मेम साहिब' मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं।"

"जी हाँ, तुम्हें तो मेरी कोई बात पसन्द नहीं। मैं जा रहा हूँ....आ जाना पीछे।"

"क्या—" सलमा भीतर से गर्जी, "एक मिनट भी मेरा इन्तजार नहीं हो सकता—कहा जो है कि अभी आई। मालूम नहीं आपका स्वभाव दिन-ब-दिन चिड़चिड़ा क्यों होता जा रहा है।"

"और इसका कारण....तुम, और कौन," अशरफ आपे से वाहर होता जा रहा था।

"मैं हूँ इसका कारण", हाथ में कंघी-शीशा लिये निकली सलमा—क्रोध से एकदम मुँह लाल—

"आप इतने बढ़ते जा रहे हैं कि मुझे इस तरह दोष दें....मैं यह सहन नहीं कर सकती।"

"सहन करो या न करो....अब जल्दी से चल पड़ो।"

"जायें मेरे दुश्मन। जाना हो तो चले जाओ अकेले।"

"देखो सलमा", तीव्र स्वर में अशरफ बोला, "अब सुबह-सुबह मत झगड़ा करो और मत बको ऊटपटांग, वरन्......"

"हाँ-हाँ, वरन् क्या कर लोगे", अशरफ की बात काटते हुए सलमा बोली, "जान से मार डालोगे क्या ?"

"मत बको" जोर से अशरफ चिल्लाया।

दोनों के स्वर अब काफी दूर तक सुनाई दे रहे थे। पास-पड़ोस के कुछ लोग तो अपने बँगलों से उत्सुकतावश इनकी ओर झाँकने भी लगे थे। शायद सलमा और अशरफ

को इसका कुछ भी आभास न होता, यदि सामने फाटक खुलने की आवाज सुनाई न देती।

"हे भगवान्" उछल पड़ा अशरफ, "यह तो रमेश और शीला हैं....शायद हमारी आवाज सुनकर चले आये हैं।"

बड़ी अजीब स्थिति में दोनों पति-पत्नी अपने आपको पा रहे थे। हत्प्रभ से हो दोनों ने उठकर रमेश और शीला का स्वागत किया।

"कहो सलमा क्या बात है," शीला बोली।

"हैलो, अशरफ, खैरियत तो है," रमेश ने अशरफ से पूछा।

"मेरी तो जान ही निकल गयी थी। बड़े खराब हैं अशरफ भाई भी।" शीला ने चुटकी काटी।

"जी...जी....क्या कहा," अशरफ चकराया।

"पहिले पूरी बात तो सुन लो शीला, फिर किसी को दोष दो," रमेश ने टोका।

"इसमें पूछने की क्या बात है," शीला ने इठलाकर उत्तर दिया, "पति-पत्नी का झगड़ा और पति का दोष---सीधी सी बात है।"

"वाह भाभी वाह.....अच्छा है तुम्हारा न्याय", अशरफ बोला।

सलमा अभी तक चुप थी। अनमनी सी हो सबकी बातें सुनती जा रही थी।

"तुम कुछ नहीं बोलोगी क्या, सलमा। और यह अपनी हालत क्या बना रखी है", शीला ने फिर सलमा को सम्बोधित किया।

इस स्थिति में भी सलमा मुस्कुराये बिना न रह सकी। शीला मेरा हाल पूछ रही है, परन्तु अपना तो देखे, सलमा ने सोचा।

"मैं तो ठीक हूँ, लेकिन तुम अपनी बात कहो.... यह बिखरे बिखरे बाल....रोनी सी सूरत", उसने शीला से पूछा।

शीला के लिए इतनी सहानुभूति पर्याप्त थी। मोटे मोटे अश्रु टपकाकर अपना सिर सलमा के कंधे पर रख दिया और रुँधे स्वर में बोली—

"क्या बताऊँ, बहिन---इस जीने से अच्छा है मर जाऊँ।"

"बाप रे बाप," रमेश सकपकाया, "यह क्या शीला।" रोनी सी सूरत बनाकर अशरफ से बोला—

"अब तुम्हीं बताओ यार! घर से चलने से पहिले मैं मिन्नतें करके चला था। मना लिया था अच्छी तरह। और अब शहजादी हैं कि आते ही....।"

एक लम्बी साँस भर के अशरफ बोला—

"ठीक है भई, तुम्हारे साथ ही नहीं, हम सबके साथ यही होता है। कभी-कभी तो मैं सोचता हूँ कि होम-मिनिस्टर श्री नन्दा के पास अपनी 'कम्पलेंट' करनी चाहिये।"

"और मैं कभी कभी सोचता हूँ कि क्यों न संन्यास ले लूँ", रमेश क्यों पीछे रहता।

"हाँ हाँ जाओ करो कम्पलेंटें और करो धारण संन्यास," सलमा और शीला एक साथ उबल पड़ीं।

"लाहौलबिलाकुवत.... हमारा यह अभिप्राय नहीं था।"

"कुछ भी हो आपका अभिप्राय," सलमा बोली, "हमसे बातचीत बन्द। चलो शीला, हम दूसरे कमरे में चलते हैं। इनको सबक सिखाकर ही रहेंगे आज।"

"हाय राम! अब क्या होगा," दोनों ने ठण्डी साँस भरी।

"वैसे घबराओ नहीं तुम, रमेश। थोड़े समय पश्चात् मान जायेंगी," आश्वासन देते हुए अशरफ बोला। "नहीं यार....तुम्हें शीला के स्वभाव का नहीं पता.... एकदम जिद्दी है।"

काल-बेल की टन टन से दोनों चौंके। इस समय किसीका आना उन्हें बहुत अखरा। कुछ समय पश्चात् कुमार ने कमरे में प्रवेश किया।

"हैलो---अशरफ। और यह रमेश भी यहीं है! इकट्ठे! सुनाओ भई आज सुबह-सुबह क्या हो रहा है? अरे....यह रोनी सी सूरत क्यों बना रखी है।"

"पहिले यह बताओ कि अकेले आये हो या सुषमा भी आई है", अशरफ ने पूछा।

"सुषमा भी पीछे आ ही रही है...परन्तु यह क्यों पूछा। आखिर बात क्या है।

"कुछ नहीं यार...अगर सुषमा आ गयी तो तुम दोनों भी लड़ाई आरम्भ कर दोगे।"

"यह क्यों....यह बात तो बताओ न। पहेलियाँ क्यों बुझवा रहे हो।"

सारी बात सुनने पर कुमार ने जोर का एक ठहाका लगाया, फिर बोला—

"घबराओ नहीं, सुषमा इस तरह नहीं करेगी, और लड़ भी पड़े तो मुझे ढंग आता है उसे मनाने का।"

"जल्द से बता डालो न यार कोई ढंग," दोनों उतावला एक साथ बोले।

"अभी बताता हूँ, भई। इतने बेचैन न हो। बस पत्नी से शापिंग के लिए तैयार हो जाओ।"

"शापिंग"—दोनों ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ हाँ", शापिंग। मैं दोनों भाभियों को जाकर कहता हूँ कि शापिंग के लिए तैयार हो जायें। बस....एक एक साड़ी, सैन्डिल और पर्स लेकर देना होगा।

"क्या कहा", दोनों एक साथ चीखे, "लेकिन यार यह तो बहुत अधिक है।"

"अब देख लो यार...पत्नियों का मामला है।..." कुछ रुककर, फिर बोला, "इससे कम पर तो मेरी सुषमा भी नहीं मानी थी।"

"तो क्या तुम दोनों भी आज लड़ पड़े," अशरफ उछल पड़ा।

"हाँ यार," खिसियाकर कुमार ने उत्तर दिया, और ड्राइंगरूम की ओर लपका भाभियों को मनाने।

"सैन्डिल...साड़ी....पर्स," रमेश ने दोहराया, और सीने पर हाथ रखकर धीरे-धीरे बोला—

"अशरफ"

"हाँ"

"ज़रा मेरे दिल की धड़कन सुनना। रुक तो नहीं गई न।"

"नहीं...अभी नहीं," अशरफ ने गम्भीरता से कहा।

उधर कुमार ने जब ड्राइंगरूम में प्रवेश किया तो कुछ भकपका सा गया। दोनों के क्रोधित चेहरे देखकर उसे अपनी स्कीम की सफलता में कुछ सन्देह हुआ।

"नमस्ते सलमा भाभी....और शीला भाभी। मैं आपको सुषमा का सन्देश देने आया था। उसने आपको शापिंग के लिए बुलाया है।"

"जी हम कहीं नहीं जायेंगे आज! यह हमारा पक्का निश्चय है", शीला ने तीव्रता से उत्तर दिया।

"अरे...रे....रे....यह आप क्या कह रही हैं। ऐसा सुनहरी मौका हाथ से जाने देंगी। अभी-अभी अशरफ और रमेश आपस में कुछ बातचीत कर रहे थे।

पता नहीं...कुछ ऐसा ही कह रहे थे कि आप दोनों को एक एक साड़ी, सैन्डिल और पर्स ले देंगे।

"क्या," दोनों आवेश में एक साथ चिल्लाईं। परन्तु फिर कुछ सम्भलकर और अपनी प्रसन्नता को छुपाने की चेष्टा करते हुए बोलीं—

"जी नहीं, आज हम नहीं जा सकेंगे।"

"अरे छोड़ो अब अपनी जिद....बस जल्दी से तैयार हो जाओ। हम बाहिर वेट कर रहे हैं।

कुमार के बाहर जाने पर दोनों के चेहरे खिल उठे।

"तो...तुम्हारा क्या विचार है" डरते-डरते शीला ने पूछा।

कुछ अटककर सलमा बोली—"अब...चलना ही पड़ेगा।"

"परन्तु हमारे निश्चय का क्या हुआ। और.... उनको सबक कैसे मिलेगा।"

"वो तो सब ठीक है, पर, शीला....साड़ी, सैन्डिल और पर्स...."!!! दोनों मुस्कुरा उठीं।

हिण्डोल राग

यह राग अँगरेजी के मार्च और अप्रैल मासों में गाया जाता है। यह रात का राग है और उस समय गाया जाता है जब रात के मध्य का समय हो आता है। दन्तकथाओं के आधार पर इस राग की उत्पत्ति महादेव के मुख से, जो उत्तर की ओर मुड़ा हुआ है, मानी जाती है।

इस राग का स्वरूप श्रीकृष्ण के समान एक पुरुष है जो वंशी बजाने की मुद्रा में है। उसके चारों ओर वह गोपियाँ हैं जो श्रीकृष्ण की वंशी की ध्वनि पर मुग्ध होकर झूला झूल रही हैं और तन्मयता से स्वयं भी गा रही हैं।

हिण्डोल राग एक पुरुष राग है। इसकी पाँच रागनियाँ हैं। इन रागनियों में ललिता रागनी कलाकारों द्वारा स्त्रीसुलभ लावण्य से ओत-प्रोत प्रदर्शित की गयी है।

हिण्डोल राग का जो चित्र इस अंक में प्रकाशित किया जा रहा है वह अठारवीं शती की राजस्थानी चित्र-कला का उत्कृष्ट नमूना है।

नवीन प्रकाशन

नया सपना नया गाँव—लेखक डा० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'; प्रकाशक साहित्यालोक प्रकाशन, भरतपुर, पृष्ठ संख्या ३०, मूल्य एक रुपया।

'गाँव व पंचायतों के लिये पुस्तकें खरीदी जा रही हैं' मानों यह समाचार सुनकर पुस्तक शीघ्रता में छपाई गई जान पड़ती है। "चटपट एक गाँव की कहानी लिख कर छपवा दो। पुस्तकें आजकल बहुत खरीदी जा रही हैं" सारी पुस्तक यही कहती हुई जान पड़ती है। पुस्तक के लेखक ने एक कहानी गढ़ दी है—जो कि बार-बार और स्थान-स्थान पर पाठक में यह संदेह उत्पन्न करती है कि लेखक को ग्राम-जीवन का आवश्यक ज्ञान और अनुभव है भी कि नहीं। इस विषय में जो रही-सही कसर थी वह चित्रों ने पूरी कर दी है। कहानीकार ने यदि दाल में नमक के बराबर ग्राम-जीवन की कुछ कल्पना की भी तो चित्रकार ने उतनी भी नहीं की। माधव को अपना ग्रामीण जीवन याद आ रहा है 'मैं सोता होता था तो माँ बड़े प्यार से जगाती थी। वह तब तक गाय-भैंस का दूध दुहकर गरम कर रखती थी और दही मथकर माखन निकाल रखती थी। मैं आँखें मलता उठता था तो मेरा मुँह धोती थी और कुछ खाने को माँगता था तो दही और माखन के साथ रोटी मिलती थी। जब चाहता था तब मन भर कर दूध पीता था।' कथन से मालूम पड़ता है ग्रामीण बालक का नहीं कृष्ण कन्हैया का जीवन लिखा जा रहा है। चित्र बना है उल्टा पल्ला मारे, एक नागरी महिला आसन पर पलथी मारे बैठी है, एक नागरिक सा बालक पूरी आस्तीन का कुर्त्ता व धोती अथवा पाजामा पहने नीचे बैठा है। गनीमत है कि पैंट नहीं पहन रक्खा है क्योंकि जो उसके साथी उसके साथ खेलने की प्रतीक्षा कर रहे हैं वे निकर, कमीज, पेटी तथा घुटनों तक मोजे पहने पूरे स्काउट मालूम पड़ रहे हैं। यह आज का गाँव तो है नहीं। हाँ, भविष्य के लिये सुन्दर कल्पना हो सकती है।

इस पुस्तक से यह भी मालूम पड़ा कि श्रीकृष्णजी गोरस की मटकी क्यों तोड़ा करते थ। बात यह थी कि वे यह नहीं चाहते थे कि गोपिकायें गोरस बाहर जाकर बेचें। इस कारण वे मटकी तोड़ डालते थे।

नई चेतना नई योजना—लेखक डा० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'; प्रकाशक साहित्यालोक प्रकाशन, भरतपुर, मूल्य एक रुपया। पृष्ठ संख्या ३२।

यह डा० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' जी की दूसरी पुस्तक है जो उन्होंने गाँवों के लिये लिखी है। प्रथम पुस्तक की चर्चा पहले हो चुकी है। पात्र इसमें भी वही हैं जो प्रथम पुस्तक में थे। केवल नायक माधव इसमें बड़ा हो गया है।

पुस्तक में विनोबा भावे, महात्मा गाँधी, महात्मा बुद्ध, ईसामसीह आदि के उदाहरण भरे पड़े हैं। चित्र भी हैं। पर वे सभी उदाहरण उपर से निकल जाते हैं। हृदय को कोई नहीं छूता। महान् व्यक्तियों के उदाहरण देकर पुस्तक को ऊँचे स्तर का बनाने का प्रयास किया गया है परन्तु वह ऊँची उठ नहीं पाई है। डा० दिनेश हिन्दी विभाग के प्राध्यापक हैं। महारानी श्री जया कालेज, भरतपुर (राजस्थान) के प्राध्यापक होने के नाते उनसे ऊँचे स्तर की पुस्तक की आशा की जा सकती है। आधुनिक हिन्दी साहित्य ने जो प्रगति की है उससे भी वे अपरिचित न होंगे। पुस्तक स्थान-स्थान पर इसका आभास दिलाती है कि लेखक को ग्रामीण जनता का कुछ भी ज्ञान नहीं है। उनके पात्र बारी-बारी से खड़े होकर 'बाबा' से प्रश्न पूछ-पूछकर जब बैठने लगते हैं तब स्कूल के बच्चों की याद आ जाती है जो कक्षा में प्रश्न पूछ-पूछकर बैठ जाते हैं।

यह भी समझ में नहीं आता कि शिक्षा गाँववालों को दी जा रही है या शहरवालों को। 'अपने को ज्यादा चतुर, वीर, ज्ञानी या ऐसा कुछ समझकर दूसरों की मेहनत पर अपना अधिकार बताना पाप है। किसान और मजदूर धरती के बेटे हैं। उनके पसीने की कमाई जो लोग खाते हैं वह यह भी सोचें कि गाँववालों की सेवा करना उनका

है। जब शहरवाले ऐसा करने लगेंगे तभी वह धरती
रहनेवाले माने जायेंगे।" लगता है लेखक जैसे बीच-
में भटक गया हो। एक उद्धरण देखिए--"अभी
बुद्धि के आसमान में उड़ते हैं। वे यह समझते हैं
हम हवाईजहाज बनाते हैं, इसलिये हम बड़े हैं, हमें
की मेहनत से पैदा होनेवाला अन्न-फल, दूध, घी
खाने-पीने का पूरा अधिकार है। गाँवों में रहने
मजदूरों और कारीगरों के बनाए हुए मकानों में
रहने का पूरा हक है, पर ऐसा समझना भूल है।
हड्डियों का ढाँचा बने, काले-कलूटे हम गाँववालों
तकलीफों को भी समझना चाहिए।" समझ में नहीं
कि यह पुस्तक शहरवालों में नई जागृति उत्पन्न
के लिये लिखी गई है या गाँववालों में। 'काले-
का विशेषण भी समझ में नहीं आया। 'काले-
शहर में भी होते हैं और गाँवों में भी। गाँववालों
में सादे, गरीब, ग्रामीण आदि विशेषण तो समझ
आते हैं, किंतु गाँवों के सभी लोगों को काला-कलूटा
कर देने की तुक समझ में नहीं आती।

श्री बदरीनारायण दर्शन--लेखक गयाप्रसाद द्विवेदी ; प्रकाशक सेठ श्रीकृष्णदास, श्री बालकृष्ण मालिक फर्म (श्री ग० टु० जी) ; खरगोन (म०)। पृष्ठ संख्या ४८।

लेखक ने ३६ पृष्ठों में रोला छन्दों में श्री बदरीनाथ का पद्य-बद्ध वर्णन लिखा है। प्रथम बारह पृष्ठों में, तथा लेखक की अन्य कृतियों की चर्चा तथा है। पुस्तक के प्रारंभ में बदरीनाथ जाने के मार्ग कितनी कितनी दूर पर विश्राम करने के स्थान पड़ते भी दिया गया है। आज के युग में जब जीप व बस की जा सकती है, और ठहरने के स्थान बदल हैं, यह पुराना नक्शा उतना उपयोगी नहीं रह गया।
श्री बदरीनारायण दर्शन में 'हर की पैरी' हरिद्वार प्रारंभ होता है और उसके गुण-गान करता हुआ, में आपको 'राय मशविरा' देता हुआ, स्थान-पर सचेत करता हुआ, श्री बदरीनाथजी के दर्शन जाता है।

—यान अश्व मिलते हैं वाहन ;
किन्तु सहज ही परवश तन मन।
जो उन्हें व्यर्थ अतएव सवारी
पैदल यात्रा अभय पुण्य फलदायक भारी।
चलना कम आराम अधिक लेनें में हित है
पीना पानी छान स्वल्प भोजन समुचित है।
देने में कुछ अधिक दाम सुख देने हारी--
मिल जाती अब वस्तु चट्टियों पर हैं सारी।

वास्तव में यह पुस्तक बद्रीनाथ की यात्रा की पद्यमय पथ-प्रदर्शिका है।

आत्मतत्व प्रकाश--लेखक स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती, प्रकाशक वि० वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर, मूल्य १·१० पै०, पृष्ठ संख्या १११।

यह पुस्तक स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती ने अपने जीवन-काल में लिखी थी। परन्तु उसका प्रकाशन उनके शिष्यों ने उनके स्वर्गीय हो जाने के पश्चात् किया है। स्वामी कृष्णानन्दजी अपने जीवन के अन्तिम तीन-चार वर्षों से दार्शनिक एवं योग सम्बन्धी अनुसंधान में लगे थे। उनका विचार था कि 'ब्रह्म विद्या' इस ग्रन्थ के द्वितीय भाग के रूप में छापेंगे। परन्तु मृत्यु के कारण वे यह कार्य न कर पाये। उनके कागजों से जो जो भाग स्पष्ट हो सके वे भाग पुस्तकाकार छाप दिये गये हैं।

पुस्तक को देखकर यह मालूम होता है कि इसका लेखक भारतीय दर्शन तथा आध्यात्म साहित्य का प्रकांड पंडित था। इस पांडित्य के कारण यह पुस्तक जन-साधारण के योग्य तो कम, पंडितों के लिए संदर्भ ग्रंथ के रूप में अधिक उपयोगी है। भाषा संस्कृत-बहुल है, जसी प्रायः दार्शनिक पुस्तकों की हो जाती है। जिसे भाषा का अच्छा ज्ञान है तथा जो दर्शन-शास्त्र से परिचित है वही पुस्तक से लाभ उठा सकता है। शैली भी विषय के अनुरूप ही है। जन-साधारण के लिये क्लिष्ट, परन्तु विषय को जाननेवाले के लिए सरल और सारमय।

स्थान-स्थान पर अनेक प्रमुख उपनिषदों के अंश उद्धृत हैं और उन पर प्रकाश डाला गया है।

जैसा कि पुस्तक के नाम से ही प्रत्यक्ष है, पुस्तक आत्मा के अद्वैत स्वरूप पर लिखी गई है, और उसमें उसी सिद्धान्त का स्पष्टीकरण किया गया है। आत्म-स्वरूप के विवेचन में थोड़ी जटिलता आ जाना स्वाभाविक है। पुस्तक को पढ़ते समय ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे वह किसी एक बृहद् ग्रंथ की रूपरेखा हो। दर्शन के विद्वानों और इस विषय में रुचि लेने वालों के लिए बहुत उपयोगी है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ और विश्वशांति—लेखक, श्री तेजराम उपाध्याय, प्रकाशक—लोकचेतना प्रकाशन, जबलपुर, मूल्य ८ रु०—सजिल्द, पृ० सं० ४७५।

हिंदी में अंतर्राष्ट्रीय राजनीति पर इधर नयी पुस्तकें सामने आ रही हैं। स्वतंत्रता के बाद अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत ने जो महत्त्वपूर्ण स्थान बनाया है उसकी चेतना देशवासियों में तेजी से फैल रही है। वे अब इस विषय में रुचि लेने लगे हैं, और अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सद्भाव फैलाने तथा शांति स्थापना के काम में लगी संस्थाओं की गति-विधि की जानकारी पाने के लिए उनमें जिज्ञासा बढ़ चली है। इस दृष्टि से श्री तेजराम उपाध्याय की यह रचना सामयिक और उपयोगी है।

इस पुस्तक को दो भागों में बाँटा गया है। प्रथम भाग में ११ अध्याय और ९८ पृष्ठ हैं जिनमें संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना का इतिहास और उसका संविधान, आय-व्ययक, भाषा, ध्वज, सदस्य, बृहत्सभा, सुरक्षा-परिषद्, आर्थिक एवं सामाजिक परिषद्, विशिष्ट अभिकरण, प्रन्यास परिषद्, अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय तथा सचिवालय के संबंध में उनका गठन, कार्य-प्रणाली, अधिकार एवं दायित्वों का विवेचन किया गया है।

पुस्तक के दूसरे भाग के शीर्षक विश्व-शांति से स्पष्ट है कि इसके अंतर्गत लेखक ने संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा विश्व में शांति स्थापना के लिए जो प्रयास किये हैं उनका मूल्यांकन किया है। इस खण्ड में संघ की स्थापना से लेकर १९६२ तक की प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं यथा कश्मीर, बर्लिन, कोरिया, फिलिस्तीन, पश्चिम न्यूगिनी, वियतनाम, स्वेज-काण्ड, लेबनान काण्ड, दक्षिण अफ्रीका की समस्या, अल्जीरिया की आजादी, मोरक्को, साम्यवादी चीन को राष्ट्रसंघ में प्रवेश दिलाने के प्रयत्न, कांगो, लाओस, तिब्बत, कुवैत, गोवा, अंगोला, निःशस्त्रीकरण, क्यूबा आदि की समस्याओं का संदर्भ सहित विवेचन और उनके सुलझाने में संयुक्त राष्ट्रसंघ का योगदान एवम् उसकी सफलता या विफलता की चर्चा की गयी है।

पुस्तक के अंत में चार परिशिष्ट हैं। इनमें अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय की कार्यविधि और संदर्भ साहित्य की सूची विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। पुस्तक उपयोगी और संग्रहणीय है। इस पुस्तक की छपाई और कागज संतोषजनक हैं।

उथल पुथल का युग—लेखक डा० गोविन्ददास—प्रकाशक प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार—मूल्य ३ रु०—पृष्ठ-संख्या १६६।

डा० गोविन्ददास हिंदी साहित्य और भारतीय राजनीति में सेठ गोविन्ददास के नाम से प्रसिद्ध हैं। सेठजी साहित्यकार, राजनीतिक नेता और समाजसेवी रहे हैं। उनका जन्म मध्य प्रदेश के एक अत्यंत सम्पन्न घराने में हुआ। किन्तु आपने उन राहों पर चलने का व्रत लिया जो प्रायः उनके समाज के लोग नहीं अपनाते। 'उथल-पुथल का युग' एक संस्मरणात्मक आत्मचरित है। इसमें सेठजी ने १९०० से १९४७ तक की प्रमुख राजनैतिक और सामाजिक घटनाओं की चर्चा और उसमें अपना योगदान, वंश-परम्परा, अपने पारिवारिक जीवन आदि के संबंध में लिखा है। इस पुस्तक से स्वतन्त्रता आन्दोलन के युग के मध्य प्रदेश की राजनीति के बारे में अच्छी जानकारी मिलती है। सेठजी मँजे लेखक हैं, इसलिए पुस्तक रोचक बन पड़ी है। आधुनिक इतिहास और मध्य प्रदेश के राजनैतिक विकास की पृष्ठभूमि के परिचय की दृष्टि से पुस्तक काफी उपयोगी है।

पुस्तक की सज्जा, कागज और मुद्रण आकर्षक है। सरकारी प्रकाशन देखते हुए मूल्य ३ रु० अधिक मालूम होता है।

भारतीय साहित्यदर्शन तमिल-साहित्य—प्रकाशक दक्षिण भारत हिंदी-प्रचार सभा, मद्रास। मूल्य ३ रु० पृष्ठ-संख्या २०४।

दक्षिण भारत हिंदी-प्रचार सभा दक्षिण में हिन्दी-प्रचार की प्रमुख संस्था है। इधर इसने एक अन्य स्तुत्य दायित्व ग्रहण किया है: उत्तर भारत में दक्षिण की भाषाओं और साहित्य का प्रचार। इस कार्य के संपादन के लिए सभा ने दिल्ली में एक शाखा खोली है, और वह विभिन्न उपायों से यह कार्य कर रही है। सभा के प्रचार कार्य का एक रूप यह है कि दक्षिणी भाषाओं के साहित्य के विषय में वह अधिकारी विद्वानों के भाषण आयोजित करती है। इस तरह की एक भाषण-माला तमिल साहित्य का परिचय कराने के लिए आयोजित की गयी। इसमें दक्षिण के अधिकारी विद्वानों ने तमिल वाङ्मय का ऐतिहासिक परिचय, तमिल का नीति-साहित्य, प्राचीन तमिल महाकाव्य, तमिल का शैव भक्ति-वाङ्मय, आलवारों का वैष्णव भक्ति साहित्य, तमिल के कम्ब रामायण और महाभारत, तमिल का आधुनिक साहित्य और तमिल आधुनिक गद्य साहित्य विषयों पर सारगर्भित भाषण किये। प्रस्तुत पुस्तक इन्हीं भाषणों का संग्रह है।

हिंदी-प्रचार सभा का यह कार्य वास्तव में सराहनीय है। ऐसी परिचयात्मक पुस्तकों की आज बड़ी आवश्यकता है। पुस्तक पठनीय और संग्रहणीय है।

वही जो रंगै मन आपनो, आन सुसंग में ध्यान लगावै।
वही जो तजै ममता, अरु आनँद में हरि के गुन गावै॥
वही जो पिता को नवै, अरु कै पुरुषारथ कों दिखरावै।
वही जो उठै पर-स्वारथ, मित्र वही जो बिपत्ति बटावै॥

जयसिंह का दान—

बगसि वितुण्ड दये झुंडन के झुंड रिपु,
मूंडन की मालिका दई है त्रिपुरारी कों।
कहै 'पदमाकर' करोरन कों कोष दये,
षोडसहू दीने महादान अधिकारी कों॥
ग्राम दये, धाम दये, अमित आराम दये,
अन्न जल दीन्हें जगती के जीवधारी कों।
दाता जयसिंह दोय बातें तो न दीनी कहूँ,
बैरिन कों पीठि और दीठि परनारी कों॥

—

दूरि यदुराई 'सेनापति' सुखदाई देखौ,
आई ऋतु पावस, न पाई प्रेम पतियाँ।
धीर जलधर की सुनत धीर भरकी सों
दरकीं सोहागिनि की छोह भरी छतियाँ॥
आई सुधि बर की, हिये में प्रीति खरकी,
सुमिरि प्रान-प्यारी वह प्रीतम की बतियाँ।
भूली औधि आवन की, लाल मनभावन की,
डग भई बावन की सावन की रतियाँ॥

—

जल भरे झूमैं मनो भूमैं परसत आनि,
दसहू दिसानि घूमैं दामिनी लए लए।
धूरि-धार-धूमरे-से, धूम से धुँधारे कारे,
धुरवान धारे, धावैं छवि सों छए छए॥
'श्रीपति सुकवि' कहै घेरि घेरि घहराहिं,
तकत अकत तन तापन तए तए।
लाल बिनु कैसे लाज चादर रहैगी आज,
कादर करत मोंहि बादर नए नए॥

—

चंचला चमक्कैं चहुँ ओरन तें चाह भरी,
चरजि गई ती, फेरि चरजन लागी री।
कहै 'पदमाकर' लवंगन की लोनी लता,
लरजि गई तौ फेरि लरजन लागी री॥
कैसे धरौं धीर बीर! त्रिविध समीरैं तन,
तरजि गई तो फेरि तरजन लागी री।
घुमड़ि घमंड घटा घन की घनेरी अबै,
गरजि गई ती फेरि गरजन लागी री॥

शिवाजी की दृष्टि—

आरज धरम तरु सींचन घटा सी दीसी,
नासन जवासी अवरंग मनसा की है।
जामधि पतंग अफजल बहलोल आदि,
यवन अमीरन को दीपक सिखा सी है॥
माँगे बिनु कविन कौ दारिद मिटाय आसु
पूरे मनसा की गति कलप-लता की है।
'भूषन' गिरा की भूषनीय अरचा की हिंद,
वीरमद छाकी बाँकी नजर शिवा की है॥

मुंशीजी पर व्यंग्य—

म्यान सों कलमदान कर तें निकारि तामें
स्याही जल-विष में बुझाई डार डार है।
चारु युक्ति जौहर जगावत सनेह संग,
आकिल अनेक तामें सकिल सुढार है॥
'जुगुलकिशोर' चलै कागद धरा दै, धाय
धारै ना दया कों नेक लागे वारपार है।
पाय कें गवार गाइ साफ करै साइत में,
मुनसी कसाई की कलम तरवार है॥

'वाह! वाह!'—

उर्द के पचाइबे कों हींग अरु सोंठ जैसे,
केरा के पचायबे कों घिव निरधार है।
गोरस पचायबे कों सरसों प्रबल दंड,
आम के पचाइबे कों नीबू को अचार है॥
'श्रीपति' कहत पर-धन के पचायबे कों,
कानन छुवाय हाथ कहिबो नकार है।
आज के जमाने बीच राजा राव सबै जानैं,
रीझ के पचाइबे कों 'वाह वा!' डकार है॥

मनोरंजक संस्मरण

हम इस स्तंभ में अभी तक पिछले सौ-पचास वर्षों ही के साहित्यिक संस्करण देते आये हैं। हमारे कुछ मित्रों का सुझाव है कि कुछ प्राचीन ऐसे संस्मरण भी दिये जायँ जो परम्परा से हिंदी-संसार में जनश्रुतियों द्वारा चले आ रहे हैं क्योंकि नयी पीढ़ी उनसे प्रायः अपरिचित है। इसलिए अब कुछ दिनों हम थोड़े से पुराने और प्रसिद्ध संस्मरण दे रहे हैं।

अकबर और नरहरि

बादशाह अकबर मुगल होते हुए भी जनता से बहुत घुल-मिल गये थे। उस समय उत्तर भारत की साहित्यिक भाषा ब्रजभाषा थी। केशवदास उनके समकालीन थे। उनके प्रिय मित्र राजा बीरबल भी 'ब्रह्म' उपनाम से कविता किया करते थे। अकबर को भी हिन्दी कविता में रुचि उत्पन्न हो गयी, और कुछ दिनों तो उन्हें उससे इतना प्रेम हो गया कि वे स्वयं ब्रजभाषा में कविता लिखने लगे। उस युग में राजाओं के दरबारों में तरह-तरह के कलावन्तों को आश्रय और संरक्षण मिलता था। कवि भी दरबार के एक आवश्यक अंग समझे जाते थे। यह परम्परा मुगल काल में कई पीढ़ी तक चली, और मुहम्मद-शाह 'रंगीले' तक बादशाहों को हिन्दी कविता से कुछ न कुछ लगाव रहता था।

नरहरि महापात्र हुमायूँ ही के समय में मुगल दरबार में पहुँच गये थे। जब शेरशाह ने हुमायूँ को हरा दिया और हुमायूँ ईरान चले गये तब नरहरि को दरबार से चला आना पड़ा। बाद में जब हुमायूँ लौटे और उनकी मृत्यु के बाद बालक अकबर गद्दी पर बैठे तब बादशाह की माता ने नरहरि को दरबार में फिर बुलाया। अकबर के बाल्यकाल में नरहरि ने उनके लिए नीति के कितने ही छप्पय और छंद बनाये थे जो अत्यन्त उच्च कोटि के हैं। उनके दो नमूने यहाँ दिये जाते हैं:

सर सर हंस न होत, बाजि गजराज न दर दर,
जन जन सुमति न होत, नारि पतिब्रता न घर घर,
तरु तरु सुफल न होत, मलयगिरि होत न बन बन,
फन फन मणि नहिं होत, स्वाति जल-विन्दु न घन घन,
रन बिच होत न सूर सब, जन जन होत न भक्ति-हरि
यह नरहरि सुकवि कवित्त किय, सब नर होत न एकसर।

ज्ञानवान हठ गहै, निधन परिवार बढ़ावै,
बँधुआ करै गुमान, धनी सेवक ह्वै धावै,
पंडित किरियाहीन, राँड़ दुरबुद्धि प्रधानै,
वृद्ध न समझै धर्म, नारि भरता रिपु मानै,
कुलवन्त पुरुष कुल-विधि तजै, बंधु न मानै बंधुहित,
संन्यास धारि धन संग्रहै, ये जग में मूरख विदित।

जब बादशाह अकबर वयस्क हुए और सर्वप्रभुत्व सम्पन्न हो गये तब भी वे नरहरि का बड़ा सम्मान करते थे। नरहरि को अकबर के हृदय की विशालता और धार्मिक उदारता का ज्ञान था। वे स्वयं बड़े धार्मिक थे और उन्हें मुगल-साम्राज्य में इतना क्लेश किसी बात से न होता था जितना गोवध से। अतएव उन्होंने अकबर के हृदय की कोमल भावनाओं और समवेदनशील हृदय को स्पन्दित कर उनकी उदारता से लाभ उठाने का निश्चय किया। इसके लिए उन्होंने एक छोटा-मोटा नाटक रच डाला। एक गाय के गले में उन्होंने एक छप्पय लिखकर बाँध दिया, और उसे प्रार्थिनी के रूप में बादशाह के सामने ला खड़ा किया। फिर बादशाह से बोले कि यह गाय जहाँपनाह से कुछ फर्याद करने आयी है। बादशाह के पूछने पर कि उसकी क्या फर्याद है, नरहरि ने उस गाय के गले में बँधे हुए छप्पय को पढ़ कर सुना दिया। वह छप्पय इस प्रकार था:

अरिहु दन्त तृन धरत, ताहि मारत न सबल कोइ,
हम प्रतच्छ तृन चरहिं, बचन उच्चरहिं दीन होइ,
मधुर न हिंदुहि देहिं, कटुक तुरकहि न पियावहिं,
अमृत-पय नित स्रवहिं, बच्छ जग-हित हम जावहिं,
सो साह अकब्बर अरज सुनु, गौ बिनवत जोरे करन,
कहु कौन चूक मोहिं मारियै, मुएहु चाम सेवत चरन?

कहते हैं कि भावुक अकबर पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा। अपने मंत्रियों और मुल्लाओं से परामर्श करके उसने १३ जिलाहिज्ज को अपने राज्य के ३१वें वर्ष में एक शाही फरमान द्वारा गोहत्या बंद कर दी। अकबर के इस गोरक्षा-कार्य के कारण नरहरि ने अपने एक आशीर्वादात्मक छप्पय के अन्त में लिखा था—

"**गोरच्छ अकब्बरसाह कौ सत्य सुमंगल ना टरै।**"

प्राचीन मिस्र में हिन्दुओं की आबादी

श्री कमलाकर त्रिपाठी

कुछ लोगों का ख़याल है कि प्राचीन काल के हिन्दू कूपमण्डूकवत् रहना बहुत पसंद करते थे। अर्थात् वे घर छोड़कर दूसरे देशों को जाने के बड़े विरोधी थे। पर यह ख़याल भ्रममूलक है। न्यूयार्क, अमेरिका के डॉ० मार साहब ने "इंडियन रिव्यू" में एक लेख लिखा है। इसमें उन्होंने सिद्ध किया है कि साढ़े तीन हजार वर्ष पहले के भारतवासी व्यापार आदि के लिए अन्य देशों में केवल जाते ही न थे, किन्तु वे मिस्र में जाकर बस भी गये थे।

मिस्र में सोने की ऐसी बहुत सी खानें हैं जो ईसा के बाद सोलहवीं, सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में खोदी गई थीं। उस समय पश्चिमी संसार में कोई देश, उद्योग या व्यापार में इतना बढ़ा हुआ नहीं था कि उसे सिक्के चलाने की जरूरत पड़ती। असल बात तो यों है कि इतने प्राचीन समय का एक भी पश्चिमी सिक्का अभी तक नहीं मिला। पुराने से पुराना सिक्का जो मिला है, वह ईसा के पहले चौदहवीं शताब्दी का है। इसके विरुद्ध इस बात के दृढ़ प्रमाण मिलते हैं कि भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीन काल में भी खानें खोदी जाती थीं और उनसे सोना निकालकर सिक्के बनाये जाते थे। श्रुति, स्मृति आदि भारत के प्राचीनतम काल के साहित्य में भी अनेक प्रकार के सिक्कों के नाम आते हैं। यहाँ आबादी और व्यापार बढ़ने के साथ-साथ सिक्कों और गहनों आदि के लिए सोने की माँग भी अवश्य ही बढ़ गई होगी। सम्भव है, यहाँ काफी सोना न मिलने से भारतवासी मिस्र की खानों से सोना लाकर अपनी आवश्यकताओं को पूरा करते रहे हों।

इस बात के सुबूत मिलते हैं कि मिस्र में पहले पहल लंकानिवासी समुद्र के रास्ते से अरब, अबीसीनिया, या एथिओपिया होकर गये। उनके बाद मलाबार, कच्छ, उड़ीसा और बंगाल की खाड़ी के आस-पास के रहनेवाले मिस्र में पहुँचे। उत्तरी भारत के निवासी बेक्ट्रिया, सीदिया और एशिया माइनर होते हुए, उन लोगों से पीछे, अर्थात् ईसा के पहले तेरहवीं शताब्दी में, मिस्र पहुँचे। यद्यपि मिस्रवालों ने अपने इतिहास में भारतवासियों का जिक्र नहीं किया, यद्यपि उन्होंने अपने इतिहास, अपने धर्म-शास्त्र और अपनी वंशपरंपरा को स्वतंत्र रूप देने की चेष्टा की है तथापि उनकी प्रत्येक बात से हिन्दुस्तानी-पन टपकता है। पूर्वोक्त मार साहब ने बड़ी ही दृढ़ और अकाट्य युक्तियों से यह साबित कर दिया है कि हिन्दू लोग मिस्र में जाकर बसे थे और उन्हीं से मिस्रवालों ने सभ्यता सीखी।

मिस्रवाले अपने पहले राजा और धर्म-शास्त्र-प्रणेता का नाम मीनस बतलाते हैं जो हमारे मनु के सिवा और कोई नहीं। केवल मिस्रवालों ने ही नहीं, किन्तु उस समय की अन्य जातियों ने भी मनु को मनिस, मनस, मनः, मने, मन, मन्नु, आदि नामों से अपना आदि व्यवस्थापक माना है। मिस्रवाले कहते हैं कि मनु को हुए कोई ८६८४ वर्ष बीते। रोम और ग्रीस वाले भी अपने एक देवता को इतने ही साल का पुराना मानते हैं। डियोडोरस और जस्टिन आदि इतिहासकारों का कथन है कि यह देवता भारतवर्ष का है।

भारत और मिस्र के प्राचीन सम्बन्ध में अनेक प्रमाण पाये जाते हैं। मिस्र की एक प्राचीन जाति का नाम 'दानव' है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि 'दानव' शब्द पुराणों में सैकड़ों जगह आया है। सत्ताईस सौ वर्ष

पुराने काल्डिया के शिलालेखों से मालूम होता है कि भारत का व्यापार फारस की खाड़ी में खूब होता था। जिनाफन अपने ग्रंथ में लिखता है कि ईसा के ६०० वर्ष पहले भारत का एलची सीजर बादशाह के दरबार में गया था। उसके बाद भारत का व्यापार केवल मिस्र ही में नहीं, किन्तु कार्थेज और रोम तक फैल गया।

बड़े-बड़े विद्वानों का कथन है कि भारतवर्ष ने साढ़े तीन हजार वर्ष पहले ज्योतिष में खूब उन्नति कर ली थी। मिस्र ने सैकड़ों वर्ष पीछे भारतवासियों ही के द्वारा ज्योतिष में ज्ञान प्राप्त किया। इस बात को डूपस नामक एक फ्रेंच विद्वान् ने बड़ी अच्छी तरह सिद्ध किया है।

मिस्र की इमारतें और गुफा-मन्दिर सब हिन्दुस्तानी ढंग के हैं। यही क्यों, एक साहब की तो यह राय है कि आयरलैंड के बुर्ज भी हिन्दुस्तानी काट-छाँट के हैं।

मिस्र की कोई साढ़े तीन हजार वर्ष पुरानी कबरों में नील, इमली की लकड़ी और ऐसी ही अन्य कई चीजें मिली हैं जो केवल भारतवर्ष में पैदा होती हैं। यूफ्रेटिस नदी के किनारे मघेर नामक स्थान पर एक कब्र में सागौन की लकड़ी पाई गई है। यह ५००० वर्ष की पुरानी साबित हुई है। स्मरण रहे कि सागौन के पेड़ हिन्दुस्तान के सिवा दुनिया में और कहीं नहीं होते। कई इतिहासकारों का यह मत है कि प्राचीन समय में मिस्र रोम, ग्रीस और एशिया माइनर में ऐसी बहुत सी ओषधियाँ और वनस्पतियाँ काम में आती थीं जो केवल हिन्दुस्तान में उत्पन्न होती हैं।

प्राचीन भारत के सिक्कों के नाम भी मिस्र आदि पश्चिमी देशों में प्रचलित थे। जैसे, माशा, सिक्का (सिक्का), दीनारस (दीनार) आदि। वहाँ के तौल नाप के बाँट आदि भी हिन्दुस्तान ही के समान थे। बढ़ कर विचित्र बात यह है कि यहाँ का रुपया इसी नाम तौल और रूप में प्राचीन मेक्सिको में प्रचलित था।

प्राचीन मिस्रवाले हिन्दुस्तानियों ही के वंशज थे। मार्टन नाम के एक साहब ने अपने ग्रंथ में एक जगह लिखा है कि मसाला लगे हुए मुर्दों की सौ में अस्सी खोपड़ियाँ आर्य जाति की थीं। भारत के समान मिस्रवाले भी कई वर्णों में विभक्त थे।

एपीनस और प्लीनी आदि इतिहास-लेखकों का कथन है कि लौकी, नारंगी, इंजीर, नाशपाती, चावल और लोहा आदि कई चीजें भारत से मिस्र आदि कई देशों में गईं।

मिस्र की बहुत सी जगहों के नाम जैसे नील, सिन्ध, एलीफेंटा और मेरु आदि बिलकुल भारतवर्ष की नकल हैं। सासी साहब ने अपनी एक पुस्तक के परिशिष्ट में ऐसे ५६० शब्द दिये हैं जो संस्कृत और मिस्री, दोनों भाषाओं, में एक से व्यवहृत हैं।

इन सब प्रमाणों से सिद्ध है कि प्राचीन काल में भारतवासी मिस्र में जाकर अवश्य आबाद हुए थे और उन्हीं से मिस्रवालों ने सभ्यता सीखी।

सूचना

खेद है कि अगस्त की सरस्वती में प्रकाशित 'यंगहस्बैण्ड अभियान' में भूल से लेखक का नाम नहीं छप सका। उसके लेखक हैं मेजर सीताराम जौहरी।



प्रकाशक : बी० एन० माथुर, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक : पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस, प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

प्रसिद्ध कवि श्री बालकृष्ण राव की काव्य कृतियाँ

कवि और छवि

श्री बालकृष्ण राव, आई० सी० एस० हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि हैं। यह उनकी ४४ कविताओं का संग्रह है। इसका प्रत्येक गीत भावना, अनुभूति और कल्पना की अमिट छाप छोड़ जानेवाला है।

बड़े आकार की ८८ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य २) दो रुपये।

हमारी राह

इस कविता-संग्रह में प्रतिष्ठित कवि श्री राव की कुछ तो सन् १९५६ की और अधिकांश १९५५ में लिखी हुई कुल ४९ कविताएँ संगृहीत हैं जो एक से एक बढ़कर हैं। इन कविताओं की रचना नये युग में हुई है, इस कारण इसमें नया सन्देश है। विविध रचनाओं में कवि की नई उद्भावनाओं का चमत्कार देखकर पाठक मुग्ध हुए बिना न रहेंगे। सुन्दर मोटे कागज पर छपी पुस्तक का मूल्य २॥) या २ रु० ५० नये पैसे।

रात बीती

इसमें श्री राव के नये प्रयोग, अतुकान्त और स्वनिर्मित शैली में लिखे हुए 'सानेट' हैं। एक क्षितिज पर छायावाद का अस्तप्राय चन्द्रमा और दूसरे से झाँकता हुआ नई कविता का सूर्य। मूल्य ३) तीन रुपये।

सोने की खाल

श्रीमती उमा राव

रोम और यूनान की ये कहानियाँ संसार भर में सदा उत्साह से कही और सुनी जायँगी। इसकी नवीनता अमर है। हिन्दी पाठक 'सोने की खाल' में इन कहानियों को पढ़कर परम प्रसन्न होंगे। मूल्य १॥) या १ रु० ५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

शैलीकार समीक्षक

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की कृतियाँ

कवि और काव्य

इस पुस्तक से नयी समीक्षा का आरम्भ हुआ। इसमें इन विषयों पर लेख हैं—काव्यचिन्तन, नूतन और पुरातनकाव्य, मीरा का तन्मय संगीत, प्राचीन हिन्दी-कविता, आधुनिक हिन्दी-कविता, छायावाद-रहस्यवाद और दर्शन, कविता में अस्पष्टता, नवीन काव्य क्षेत्र में महिलाएँ, ठेठ जीवन और जातीय काव्यकला, कवि की करुण दृष्टि, कवि का मनुष्य-लोक, वेदना का गौरव, काव्य की लाञ्छिता कैकेयी, काव्य की उपेक्षिता उर्मिला। मूल्य २)

संचारिणी

इस पुस्तक में इन विषयों पर लेख हैं—भक्ति-काल की अन्तश्चेतना, व्रजभाषा के अन्तिम प्रतिनिधि, शरतसाहित्य का औपन्यासिक स्तर, कथा में जीवन की अभिव्यक्ति, कलाजगत् और वस्तु जगत्, भारतेन्दु-युग के बाद हिन्दी-कविता, नवीन मानव-साहित्य, छायावाद का उत्कर्ष, हिन्दी-गीतिकाव्य, कवि का आत्मजगत्, प्रकृति का काव्यमय व्यक्तित्व। मूल्य २·५० नये पैसे।

युग और साहित्य

यह पुस्तक अपने नाम के अनुरूप ही हिन्दी-साहित्य का मार्मिक इतिहास भी है और सरस समीक्षात्मक ग्रन्थ भी है। इसमें इन विषयों पर लेख हैं—नखविन्दु, साहित्य के विभिन्न युग, युगों का आदान, प्रगति की ओर, हिन्दी-कविता में उलट-फेर, इतिहास के आलोक में, वर्त्तमान कविता का क्रमविकास, छायावाद और उसके बाद, कथा-साहित्य का जीवन-पृष्ठ, प्रसाद और 'कामायनी', प्रेमचन्द और 'गोदान', निराला, पन्त और महादेवी। मूल्य ३·२५ नये पैसे।

प्रतिष्ठान

इस पुस्तक में साहित्य की समालोचना के अतिरिक्त संस्मरण और पर्शनल एसे भी हैं। जीवन और साहित्य का ग्रामीण अर्थशास्त्र की दृष्टि से विश्लेषण और निरूपण किया गया है। सभी लेख बहुत सरल और सरस हैं। मूल्य ३)।

परिव्राजक की प्रजा

यह पुस्तक सर्वहारा साहित्यकार की आतम-कथा है। आत्मकथा के माध्यम से देश-काल और समाज का सजीव और मर्मस्पर्शी चित्रण है। अपनी सहजता और स्वाभाविकता के कारण यह पुस्तक हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ आत्मकथा मानी जाती है। मूल्य ३·५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हमारे चार अनुपम प्रकाशन

धर्म निरपेक्ष राज्य

लेखक : श्री रघुनाथ सिंह—प्राक्कथन लेखक : श्री जवाहरलाल नेहरू
डिमाई आकार पृ० सं० २३७, मूल्य ६·५० नये पैसे।

लेखक ने इस आवश्यक विषय पर पुस्तक लिखकर उसके मूल सिद्धान्तों की तरफ ध्यान आकर्षित किया है। हमें संसार के सामने यह उदाहरण उपस्थित करना है कि एक ही देश और एक ही राज में किस प्रकार परस्पर सौहार्द और शान्ति के साथ भिन्न-भिन्न संप्रदायों के अनुयायी, भिन्न-भिन्न भाषाओं के बोलनेवाले, भिन्न-भिन्न रीति के अनुसार चलनेवाले लोग रह सकते हैं। संसार के विकास में हमारा यही अनुदान है। इससे बढ़कर मनुष्य के वास्तविक कल्याण का दूसरा कार्य नहीं हो सकता।

प्लेटो का प्रजातन्त्र

अनुवादिका—सुश्री विनीता वाँचू, एम० ए०

यूनान के इस महान् दार्शनिक की सबसे उत्कृष्ट कृति यह ग्रंथ ही है। यह उसकी सबसे बृहद रचनाओं में से एक है। इस रचना में ही उसकी गहरी व्यंगोक्ति, कल्पना या हास्य का प्रचुर वैभव तथा नाटकीय प्रभाव उसकी अन्य सब रचनाओं से अधिक है। इसी में जीवन तथा चिन्तन को ओतप्रोत करने अथवा दर्शन से राजनीति को सम्बन्धित करने का प्रयत्न किया गया है। खंड एक, पृष्ठ २१२, मूल्य ५) पाँच रुपये, खंड दो, पृष्ठ ३९४ मूल्य १०) दस रुपये।

विष्णुधर्मोत्तर में चित्रकला (सचित्र)

लेखक, श्री बद्रीनाथ मालवीय, एम० ए०

श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण में चित्रकला का सांगोपांग वर्णन है। उसके आधार पर लेखक ने इस पुस्तक में कला-विषयक ज्ञान संकलित करके इस विषय को सर्वसाधारण के लिए प्रस्तुत किया है। पुस्तक में १० अध्याय और ३ परिशिष्ट हैं। सचित्र पुस्तक का मूल्य दो रुपये।

विष्णुधर्मोत्तर में मूर्त्तिकला (सचित्र)

लेखक, श्री बद्रीनाथ मालवीय, एम० ए०

श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण में मूर्तिकला के सम्बन्ध में जो वर्णन है उसके आधार पर लेखक ने इस पुस्तक का प्रणयन किया है। इसमें ३८ अध्याय और ४ परिशिष्ट हैं। किस देवता की मूर्ति का निर्माण किस प्रकार का होना चाहिए, यह इसमें पढ़ने से पाठकों को ज्ञात होगा कि इस विषय में हमारे पूर्वजों को कितनी विशद जानकारी थी। सजिल्द पुस्तक का मूल्य चार रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हमारे नवीनतम कथा साहित्य

पूर्व का पंडित

लेखिका : विपुलादेवी

मानव की संकीर्ण समझ, जीवन में सामंजस्य स्थापित करने के लिए उसके उठाये गये पग, असीम सौहार्द, गहरा स्नेह और उसकी माँगों के प्रति व्यंग आदि इन कहानियों का सुरुचि-पूर्ण विषय है। पुस्तक पढ़ने के बाद ही पाठक भली भाँति समझ सकेंगे कि साहित्य और कला की दृष्टि से हिन्दी कथा साहित्य में इन कहानियों को इतना सम्मान सहज ही क्यों मिल गया। मूल्य दो रुपये मात्र।

मास्को से मारवाड़

लेखक, श्री देवेशदास, आई० सी० एस०

नौ बेजोड़ कहानियाँ इस संग्रह में हैं। भाषा, भाव और घटना सभी दृष्टियों से यह संग्रह कथासाहित्य में लेखक की अपूर्व देन है। पृष्ठ सं० १५०; सजिल्द १ प्रति का मूल्य २)।

कागज की नाव

लेखक, उमाशंकर शुक्ल एम० ए०

इसमें कहानियों का अपूर्व संग्रह है। सब कहानियाँ ऊँचे स्तर की हैं। इन कहानियों में प्यार है, दर्द है और है शोषित वर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति। सजिल्द पुस्तक का मूल्य १·७५।

अन्न का आविष्कार

लेखक, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

वैज्ञानिक कथा-साहित्य के द्वारा जहाँ ज्ञानवृद्धि होती है, वहीं विज्ञान का रूखा क्षेत्र भी जीवन से ओतप्रोत होकर सरस बनता है। लेखक के विज्ञान-सम्बन्धी ज्ञान ने, इस कृति में तन्मय करनेवाली विशेषता तथा समाप्त किये बिना न उठनेवाली अपूर्व रोचकता भर दी है। मूल्य २·२५।

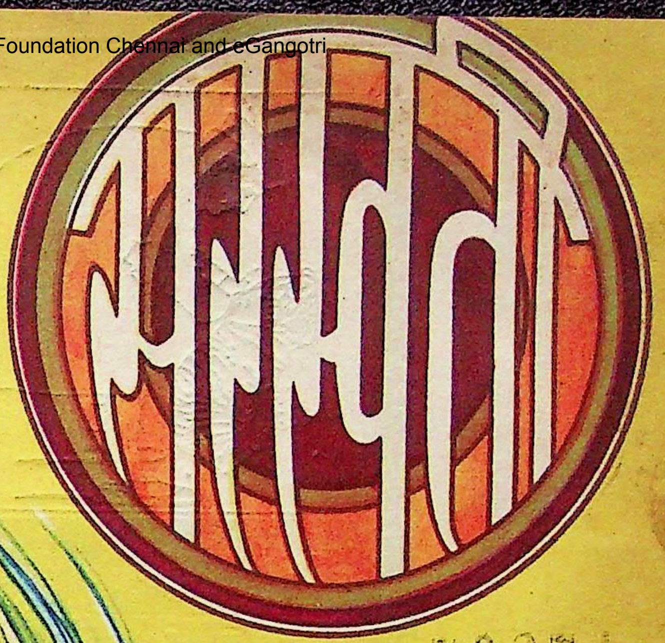
भेड़ और मनुष्य

लेखक, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

इस मौलिक कहानी-संग्रह में गार्हस्थ्य जीवन से सम्बद्ध ऐसी सात लम्बी कहानियाँ हैं, जिनमें लघु उपन्यास की रोचकता और सरसता की मनोरम झाँकी है। मूल्य १·७५।

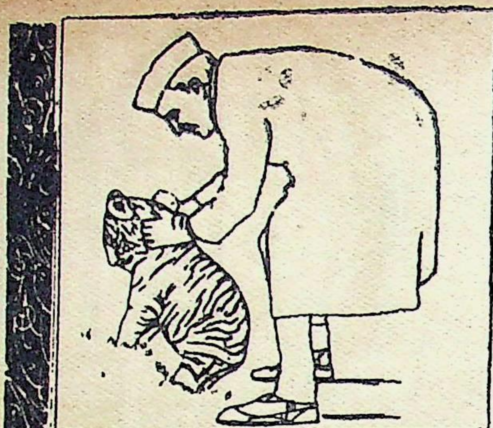
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

Yearly Subscription : Rupees Seven and Fifty Paise
Single Copy : Rs. 0·65 Paise
SARASWATI—Reg. No. L-248





अक्टूबर १९६४



जवाहरलाल नेहरू
मानवता का प्रहरी
पी. डी. टंडन

विश्व राजनीति के कर्णधार
पण्डित जवाहरलाल नेहरू
के
जीवन-अवसान पर
समस्त
हिन्दी संसार के लिए पठनीय

मानवता का प्रहरी

ले० पी० डी० टंडन पत्रकार

सुप्रसिद्ध पत्रकार श्री पी० डी० टंडन की नेहरू साहित्य को यह अनुपम भेंट है। इन पृष्ठों में आपको नेता नेहरू की नहीं इंसान नेहरू की दिलचस्प झाँकियाँ देखने को मिलेंगी। ये नेहरूजी के व्यक्तिगत जीवन की वे झलकें हैं जिनसे आप अब तक अनजान हैं। पुस्तक उबा देनेवाली गाथाओं का पिटारा नहीं बल्कि छोटी-छोटी कहानियों का खुशनुमा गुलदस्ता है। पंडितजी के चित्रों का इसमें ऐसा खजाना है जो प्रायः अब तक प्रकाश में आया ही नहीं। पुस्तक ज्ञानवर्धक होने के साथ-साथ सरल और बड़ी ही मोहक है। हमारे देश की तमाम पत्र-पत्रिकाओं ने नारा लगाया है कि यह पुस्तक प्रत्येक पढ़े-लिखे व्यक्ति के पास होनी चाहिए और सब पुस्तकालयों, स्कूलों और निजी संग्रहों में इसे उच्च स्थान पाना चाहिए।

छपाई, सफाई और आवरण पृष्ठ सभी उच्च कोटि के हैं। मूल्य ५·५० नये पैसे।

लेखक की अन्य कृति

कुछ देखा कुछ सुना

टंडनजी कुशल पत्रकार ही नहीं कुशल लेखक भी हैं। उनकी पैनी लेखनी से निकले इन १२ व्यंगात्मक लेखों में आप देखेंगे कि आज सर्व उच्च विचारों के पीछे नीचता, बड़प्पन के पर्दे में ओछापन और बुद्धिमत्ता की ओट में मूर्खता के कैसे दर्शन होते हैं। हास्य एवं व्यंग्य का सहारा लेकर समाज का जो विश्लेषण लेखक ने किया है वह हिन्दी साहित्य में एकदम नया प्रयोग है। यथास्थान सामयिक कार्टूनों से किताब और भी सजीव हो गई है। मूल्य १।।) या १·५० नये पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हिन्दू-संस्कृति का अगाध सागर



यह हिन्दी के अमर कवि गोस्वामी तुलसीदास की सुप्रसिद्ध रचना है। इसमें गोस्वामीजी ने अपने आराध्य देव रामचन्द्रजी की कथा, सात काण्डों में, दोहा-चौपाई-सोरठा और छन्दों में कही है।

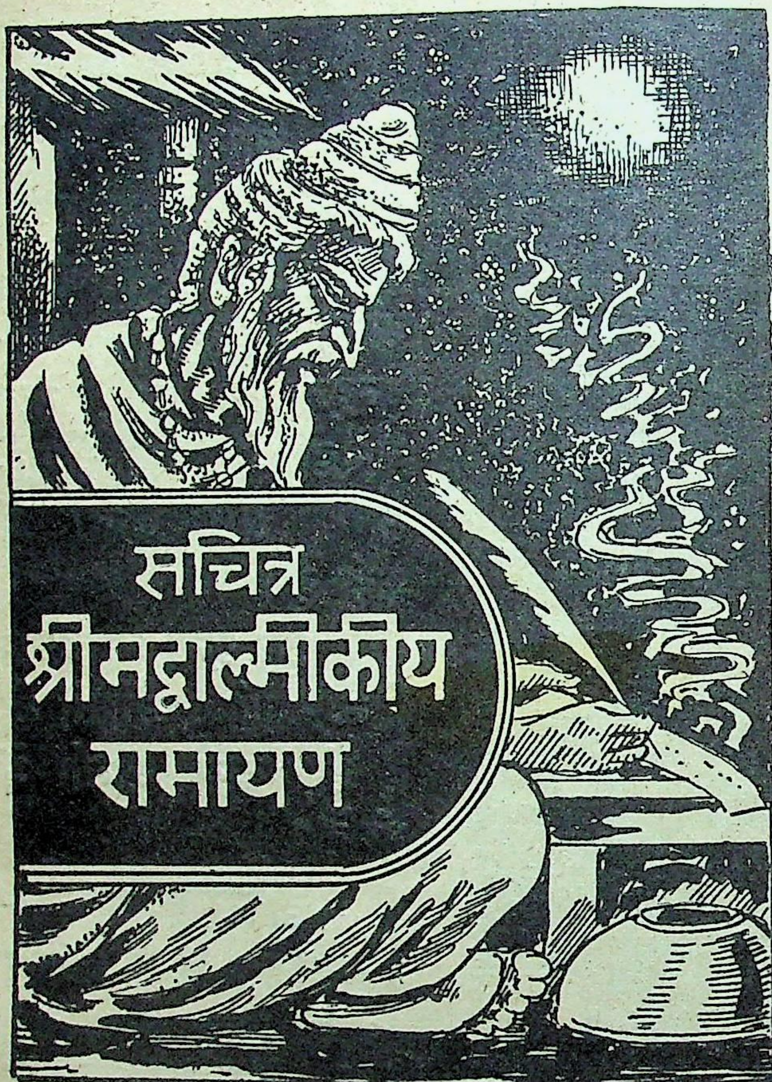
इस ग्रन्थ का प्रचार हिन्दी-भाषी प्रान्तों में तो है ही, दूसरे प्रान्तों में भी है।

डाक्टर श्यामसुन्दरदास ने इस अनुपम ग्रन्थ पर जो टीका लिखी है उससे अर्थ समझने में बहुत सुविधा होती है। ...संस्करण में क्षेपक आदि नहीं हैं। आरम्भ में विस्तृत भूमिका है जिससे ...स्वामीजी के जीवनचरित और उनकी समस्त रचनाओं पर विशद विवेचन ...। चित्रों की अधिकता है। सुन्दर जिल्द है। मूल्य १२)।

...चरितमानस (मूल)—यह शुद्ध पाठ अच्छे कागज पर सचित्र छापा गया है। कथा ...भाग में आये हुए देवताओं और ऋषि-मुनियों आदि का परिचय अन्त में संक्षेप में है। सजिल्द प्रति का मूल्य ३)।

...स्वामी तुलसीदासकृत रामचरितमानस—टीकाकार—रामेश्वर भट्ट। यह संस्करण बहुत ही उपयोगी, मनोहर और सस्ता है। टीका बड़े काम की है। दुरंगे-तिरंगे चित्रों की अधिकता है। सजिल्द प्रति का मूल्य ६)।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्रा० लि०, प्रयाग

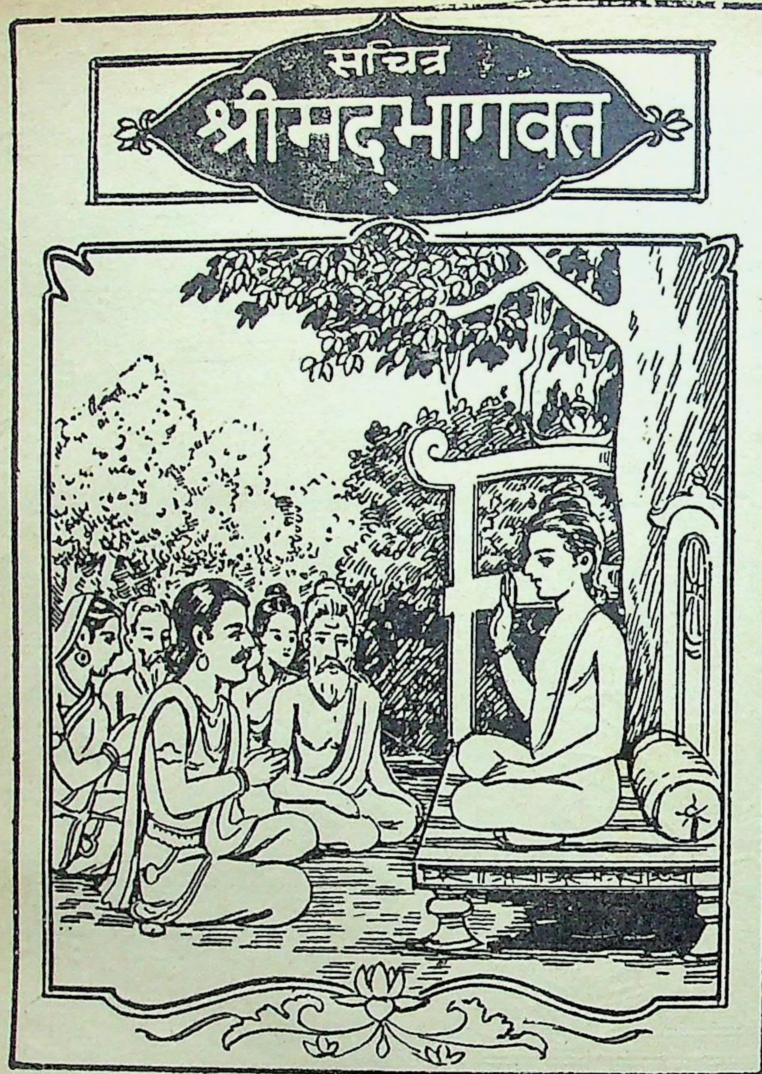


आदिकवि वाल्मीकि ऋषि के बनाये इस पुनीत ग्रन्थ में मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी के चरित का वर्णन विस्तार से है। इस ग्रन्थ में संस्कृत का सरल हिन्दी में रूपान्तर है। इसमें आदि कवि ने रामचन्द्रजी की कथा का वर्णन करते हुए उस संगठन का वर्णन किया है जिसके आधार पर आज तक हिन्दू-समाज टिका हुआ है। इसमें बतलाया गया है कि हमें माता-पिता, भाई-भौजाई, सास-ससुर, और पड़ोसी आदि के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए और संकट से निस्तार पाने के लिए क्या करना चाहिए। सचित्र सजिल्द पुस्तक के दो खण्ड हैं। मूल्य प्रत्येक खण्ड का ६·५० पैसे।

कुंडलिया रामायण—इसके टीकाकार श्रीयुत सत्यनारायण पाण्डेय हैं। कुंडलिया छंदों में लिखित गोस्वामी तुलसीदास-कृत रामायण, सुन्दर टीका सहित। मूल्य ४)।

अयोध्याकांड—इसमें भरतजी के चरित का वर्णन बड़े विस्तार से है। रामवनगमन, केवट-प्रसंग आदि सुन्दर कथानक हैं और रचना तो अनुपम है ही। मूल्य ३·५० पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद



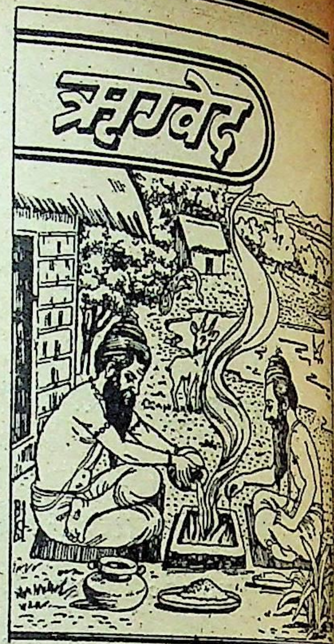
श्रीमद्भागवत में वेदव्यासजी ने लीला-पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्र की लीलाओं का वर्णन मुख्य रूप से किया है। साथ ही अनेक राजवंशों और ऋषियों का वर्णन किया है। इसको पढ़ने से ज्ञात होगा कि उस समय भारत में असुरों ने और स्वार्थी लोगों ने कैसा उपद्रव मचा रक्खा था, जिसको दूर करके समाज की रक्षा करने के लिए श्रीकृष्ण ने अवतार लिया। उस अवतार में बालकृष्ण ने दुष्टों का दमन ऐसी युक्तियों से किया कि किसी को पता भी नहीं चला कि इन असम्भव कार्यों को कौन किस रूप में करके हमारी रक्षा कर रहा है। महर्षि वेदव्यास के पुत्र शुकदेवजी से केवल सात दिन में इस ग्रन्थ को सुनकर राजा परीक्षित कृतकृत्य हो गये। बढ़िया जिल्द है, चित्रों की अधिकता है। पुस्तक के दो खंड हैं। प्रत्येक खंड का मूल्य ८)।

श्रीमद्भगवतगीता—गीता की प्रशंसा में कुछ भी कहना सूर्य को दीपक दिखाना है। इस पुस्तक में श्लोकों सहित पूरा गीता महात्म्य प्रारंभ में २५ पृष्ठों में दिया है। लगभग ३०० पृष्ठों की अर्थ सहित गीता का मूल्य प्रचार के लिए केवल ०·५० पैसे मात्र रक्खा गया है।

ज्ञानेश्वरी—ज्ञानेश्वर महाराज ने मराठी भाषा के गीता पर जो टीका लिखी है उसका यह हिन्दी अनुवाद है। बड़े अक्षरों में मूल संस्कृत श्लोक, साधारण अक्षरों में टीका है। सजिल्द प्रति का मू० ६)।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

हिन्दी ऋग्वेद



क्या आप जानते हैं कि मानव-जाति की प्रथम पुस्तक कौन है ? क्या आपको पता है कि हिन्दू-जाति का सर्व-प्राचीन इतिहास कौन है ? क्या आपको मालूम है कि हिन्दू-धर्म, हिन्दू-संस्कृति और हिन्दू-सभ्यता का आदि स्रोत कौन है ? क्या आपको ज्ञात है कि हिन्दू-जाति को किसने अध्यात्म-विद्या की ज्योति प्रदान की ? सारे संसार के विद्वानों का इन प्रश्नों का एक-मात्र उत्तर है—"ऋग्वेद"।

हमारे पूर्वज कौन थे, वे कैसे मंत्र-द्रष्टा ऋषि होते थे, वे कैसे दिव्य ज्ञान प्राप्त करते थे, कैसे राज्य-शासन करते थे, कैसी समाज-व्यवस्था करते थे, त्याग, तप, सेवा और ब्रह्मचर्य की मूर्ति बनकर वे अपना जीवन कैसे दिव्य, आदर्श, आनन्दमय और प्रतिभाशाली बनाते थे आदि आदि का ज्ञान प्राप्त करने के लिए एकमात्र साधन है ऋग्वेद। यही ग्रन्थ समस्त संस्कृत-साहित्य और हिन्दू-जाति की सारी सद्‌गुणावली का जनक है। इसी का अत्यंत सरल, सरस, सुन्दर, प्रथम और प्रामाणिक हिन्दीभाषान्तर है "हिन्दी ऋग्वेद"। इसमें १६५० पृष्ठ हैं और ऋग्वेद में १०४६७ मंत्र हैं। भाषान्तरकार हैं विख्यात वैदिक विद्वान् पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी। ग्रन्थ के साथ ही

मार्मिक भूमिका और गवेषणा-पूर्ण विषय-सूची

भी दी गई है। ७४ पृष्ठों की विशद भूमिका में वेद-स्वरूप, वेद पर मतवाद, वेदार्थ करने की शैली, वेद-भाष्यकार, वेद-निर्माण-काल, ऋग्वेद-रहस्य, ऋषि, छन्द, विनियोग, स्वर, दैवतवाद, सोमलता, पितृलोक, भूगोल, खगोल, आत्मा, परमात्मा, पुनर्जन्म, अवतार, यज्ञ, आर्य-संस्कृति, युद्ध-कला वायुयान, राज्यशासन, ऋग्वेद और नारी-जाति, धर्म-विज्ञान, ऋग्वेद की अपूर्वता आदि आदि का विवरण बड़ी ही मधुर, मृदुल और मंजुल भाषा में दिया गया है। भाषा की छटा और भावों की घटा देखते ही बनती है।

७१ पृष्ठों की विषय-सूची में ऋग्वेद के सभी महत्त्वपूर्ण विषय दे दिये गये हैं। वैदिक अनुसंधान का कार्य करनेवालों के लिए यह ूची अत्यंत उपयोगी है।

मूल्य लागत भर केवल १२) रुपये है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

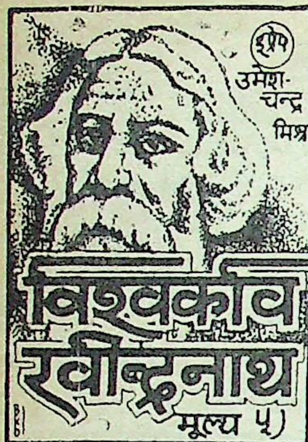
ग्राहकों से निवेदन

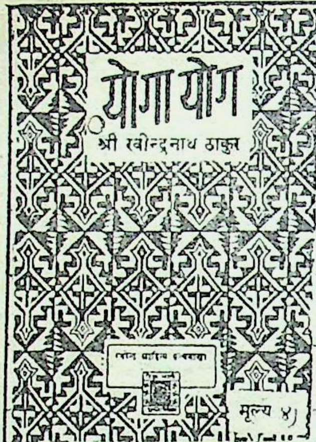
ग्राहकों से निवेदन है कि पत्र-व्यवहार के समय अपना ग्राहक संख्या, चन्दा भेजने की तिथि अवश्य लिखा करें ताकि हम उनके आदेशों का पालन अविलम्ब कर सकें।

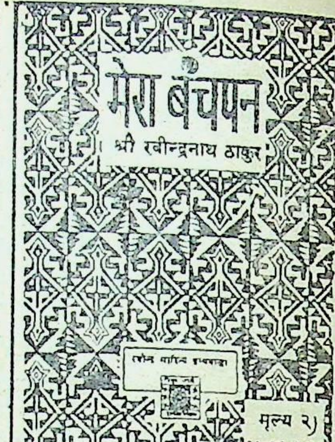
व्यवस्थापक पत्रिका विभाग—

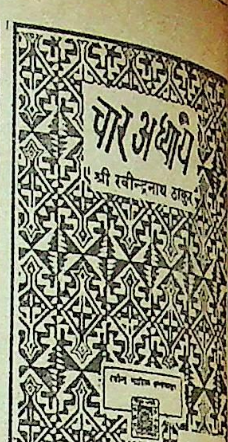
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

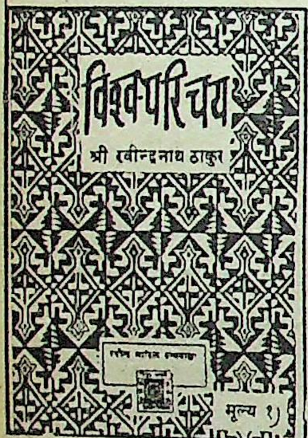
हमारी कुछ चुनी हुई पुस्तकें

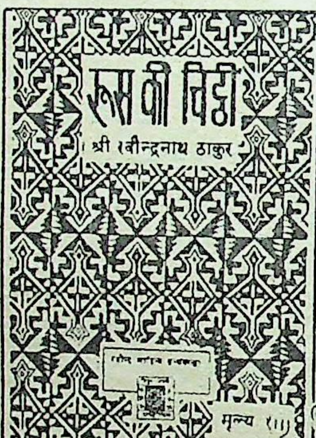


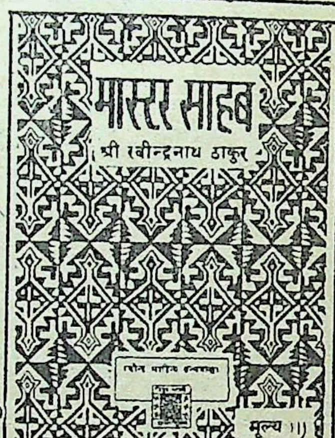


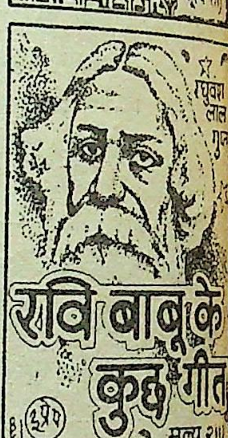


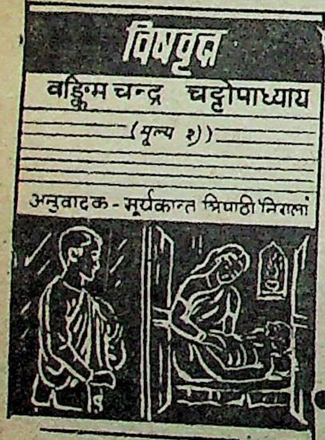


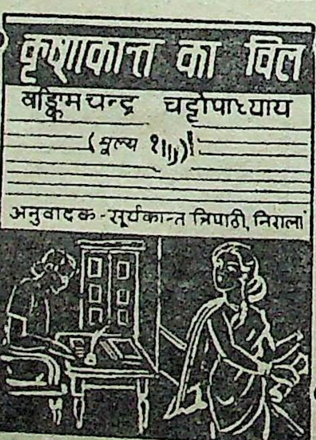


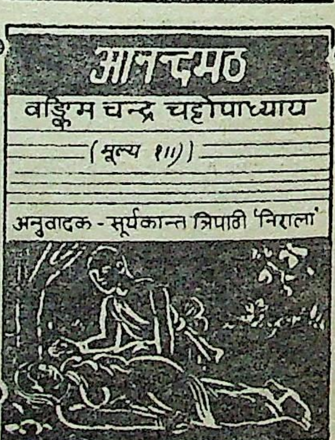








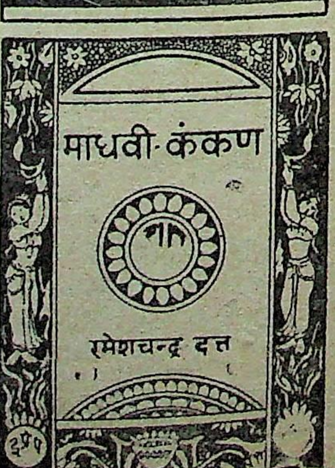










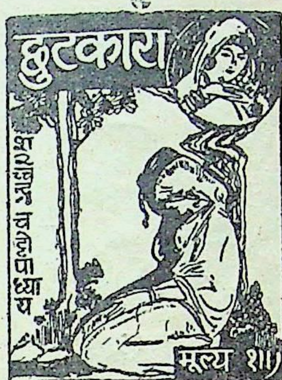




इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

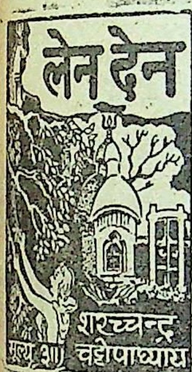
अमर कथाशिल्पी शरच्चन्द्र प्रणीत उपन्यासों का हिन्दी अनुवाद

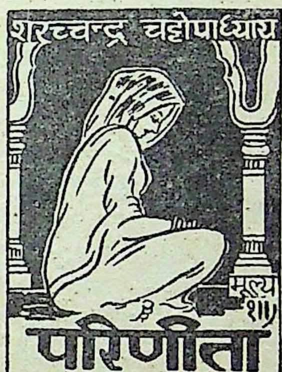








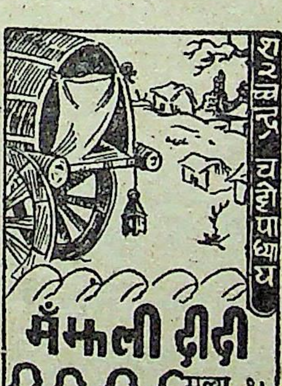








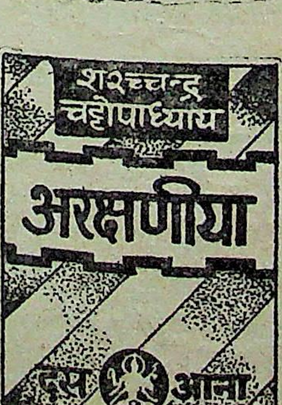










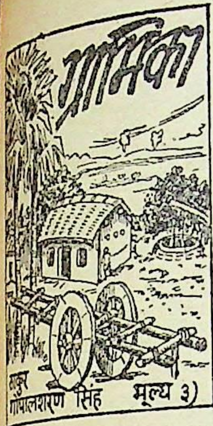






इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

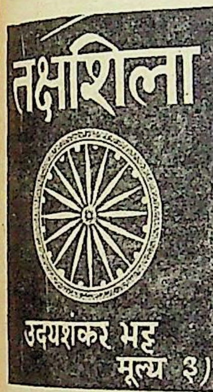
नवीन काव्य-कृतियाँ

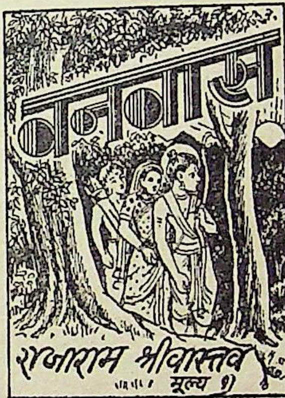


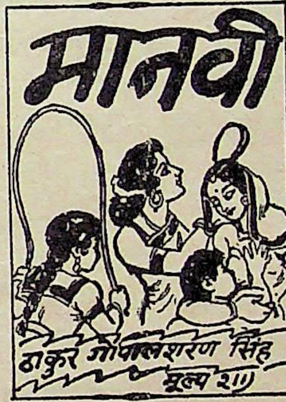






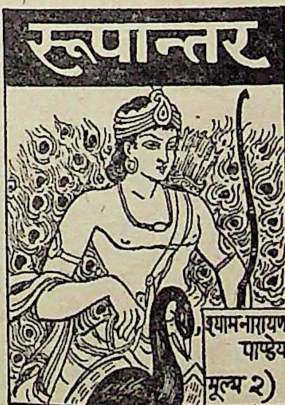




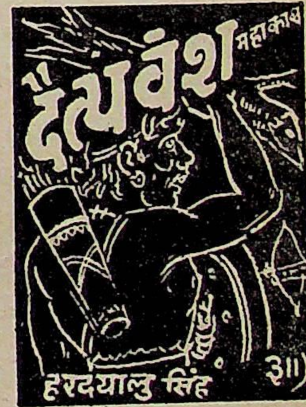




















इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद



गरीबों का सखा, शैतानों का यम और भारत का रबिनहुड

डाकू मोहन के विचित्र अभियान

प्रत्येक का मूल्य १'५०

मैं हूँ डकैत मोहन

मैं सबल के अत्याचार और दुखी की आह को सहन नहीं कर सकता, इससे मैं विद्रोही हूँ इसी से अनियमित-धूमकेतु की तरह मेरा उदय हुआ है। जहाँ अविचार है, जहाँ नृशंसता है और जहाँ कुत्सित वीभत्सता है वहीं पर मैं जा पहुँचता हूँ... मेरे हृदय का रक्त उन्माद हो जाने से नृत्य करने लगता है... मैं मृत्यु की भाँति अनिवार्य होकर कूद पड़ता हूँ। मैं डकैत हूँ, मैं चोर हूँ, मैं नियम को नहीं मानता। ह हा। ह हा।

१ मोहन।
२ मोहन जेल में।
३ रमा और मोहन।
४ रमा की शादी।
५ फिर से मोहन।
६ विरही मोहन।
७ मोहन और पंचमवाहिनी।
८ फाँसी के तख्ते पर मोहन।
९ नागरिक मोहन।
१० मोहन बर्मा की सीमा पर।
११ नारी-रक्षक मोहन।
१२ मोहन का प्रथम अभियान।
१३ नेता मोहन।
१४ मोहन का जर्मनी अभियान।
१५ प्रिय मोहन।
१६ गेस्टापो के मुकाबले में मोहन।
१७ बर्लिन में मोहन।
१८ मोहन का तूर्यनाद।
१९ मोहन का अनुराग।
२० मित्र मोहन।
२१ मोहन और स्वप्न।
२२ स्वप्न का महन्त-दमन।
२३ अफसर मोहन।
२४ डाकू मोहन।
२५ स्वप्न का सीमान्त संघर्ष।
२६ मोहन का प्रतिदान।
२७ नये रूप में मोहन।
२८ मोहन का नया अभियान।
२९ त्राता मोहन।
३० मोहन का प्रतिशोध।
३१ जर्मन षड्यंत्र में मोहन।
३२ मोहन और अणुबम।
३३ मोहन के तीन शत्रु।
३४ तीनों के साथ मोहन का मुकाबला।
३५ सोवियत रूस में मोहन।
३६ मोहन की प्रतिज्ञा रक्षा।
३७ सुन्दर वन में मोहन।
३८ युवक मोहन।
३९ मोहन और वनविहारी।
४० समुद्र-तल में मोहन।
४१ बन्दी मोहन।
४२ नारीत्राता स्वप्न।

दो रुपये जमा करके मोहन सिरीज के ग्राहक बन जाने पर इस सिरीज की प्रत्येक नई पुस्तक पक्के ग्राहकों को साधारण मूल्य में ही मिलेगी। वी० पी० द्वारा कम से कम दो पुस्तकें एक साथ मँगाने से डाकखर्च नहीं लगता।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग



छः नए पैसे

आप को अपने स्वास्थ्य की, अपनी शारीरिक अवस्था की या अपनी किसी बीमारी की चिन्ता सता रही है? आपको, आपके परिवार या आपके किसी सम्बन्धी को कोई ऐसी शिकायत है, जिसका आप इलाज कराना चाहते हैं तो आप को चाहिए कि आप एक लिफाफे में या छः नये पैसे के पोस्ट कार्ड पर ही बीमारी के लक्षण रोगी की उम्र और दशा लिखकर हमारे पास भेज दें। हमारे चिकित्सा-विभाग से आप को मुफ्त सलाह दी जायेगी कि ऐसी हालत में आपको क्या करना चाहिए, क्या दवायें लेनी ठीक होंगी और क्या पथ्य परहेज करना होगा। पत्र-व्यवहार गुप्त रखने का आश्वासन! इसलिए आप जो कुछ भी हो, साफ साफ लिखें।

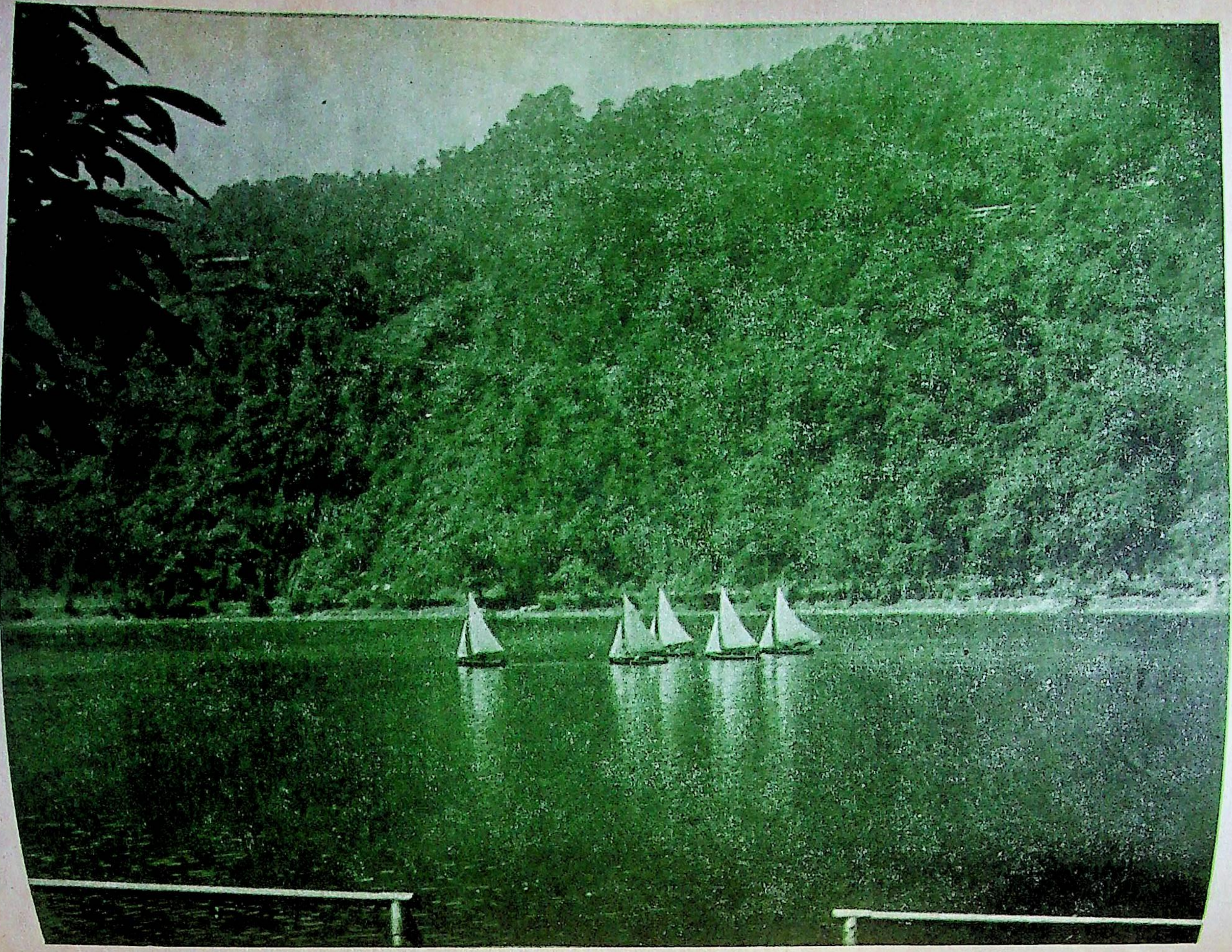
हमारे यहाँ स्त्री-पुरुषों की अनेक शिकायतों के इलाज, स्वास्थ्यवर्धक नुस्खे, बालों के कई प्रकार के तेल, सौंदर्य वर्धक पदार्थ तथा अन्य रस रसायन व दवाइयों का निर्माण होता है। स्त्रियों के लिये हमारी स्वास्थ्यवर्धक औषधि 'स्त्रीकल्याण' तो आज इतना प्रसिद्ध है कि केवल इस एक औषधि की वार्षिक बिक्री एक लाख रुपये से ऊपर है। अब आप स्वयं अनुमान लगा लें कि हमारी दूसरी औषधियाँ कितनी लाभप्रद व अनुपम होंगी। इसलिये जो बहिन या भाई बीमारी के लक्षण लिखते समय हमें दवा भेजने के लिए भी कहते हैं उन्हें उचित दामों में वी॰ पी॰ पार्सल द्वारा भेज दी जाती है।

दवा मंगवाने तथा मुफ्त परामर्श लेने का पता—

प्रेमप्यारी अग्रवाल नं॰ (२४) बुढ़लाड़ा (पंजाब)

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

विषय-सूची



नैनीताल झील में नावें

[मिलन मुकर्जी के सौजन्य से



सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—**शीला शर्मा**

वर्ष ६५ | पूर्ण संख्या ७७८ } इलाहाबाद : अक्टूबर १९६४ : आश्विन २०२१ वि० { खण्ड २ | संख्या ४

सम्पादकीय

नागा प्रदेश के विद्रोह की समस्या—असम के पूर्व और उत्तर के पर्वतीय क्षेत्र में आदिवासी जातियाँ रहती हैं। इनमें एक आदिवासी जाति 'नागा' कहलाती है। [illegible] में इसमें कई उपजातियाँ हैं और शारीरिक गठन [illegible] दृष्टिकोण में वे एक दूसरे से स्पष्ट रूप से भिन्न हैं। [illegible] में ये उपजातियाँ हैं :

नागा उपजाति	जनसंख्या	निवासस्थान
[illegible]	३०,०००	कोहिमा खोनिमा साचिमा आदि
[illegible]	३१,०००	मणीपुर सीमा
[illegible]	५,२५०	असम सीमा
[illegible]	१७,५००	
[illegible]	२,४००	मणीपुर, दक्षिणी सीमा
[illegible]	४८,०००	कोहिमा मोकाक चुंग, त्वेनसांग
[illegible]	५०,०००	मोकाक चुंग, असम सीमा
[illegible]	२३,५००	मोकाक चुंग, असम सीमा
फोम	१३,०००	मोकाक चुंग, त्वेनसांग
रेगमा	५,०००	मोकाक चुंग
संगटाम	२०,०००	मोकाक चुंग
चाँग	१७,०००	त्वेनसांग
खिनमुनवान	१७,०००	”
कोनयक	६३,०००	”
मिश्रित	१३,०००	दीमापुर, त्वेनसांग, मोकाम चुंग नीचगाड क्षेत्र
कुल संख्या	३,५६,२५०	

ये आँकड़े १९६१ की जनसंख्या के पहिले के हैं। अनुमान किया जाता है कि अब इनकी संख्या बढ़कर पाँच लाख के लगभग हो गयी है। असम में नागा क्षेत्र के बाहर और तिरप क्षेत्र में भी नागा बसे हुए हैं। उनकी संख्या चार लाख के लगभग आँकी जाती है।

नागा विद्रोह के सम्बन्ध में कुछ बातें स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए। पहिली बात तो यह है कि नागाओं

की यह गड़बड़ी उन सारे क्षेत्रों में नहीं है जहाँ वे पाये जाते हैं। वह केवल नागा प्रदेश (नागालैंड) के एक विशेष भाग (कोहिमा) में सीमित है। दूसरी बात यह कि यह विद्रोह मुख्य रूप से अंगामी नागाओं ने किया है। फीजो भी अंगामी नागा है। तीसरी बात यह है कि अंगामी नागाओं में ईसाई धर्म का प्रचार सबसे अधिक है। चौथी बात यह है कि जिस क्षेत्र में विद्रोह है वह भारत के पूर्वी सीमान्त पर है और बर्मा से मिला हुआ है। यहाँ पहाड़ियाँ और घने जंगल हैं। किन्तु नागा लोग इनमें होकर बर्मा, और दक्षिणी पश्चिम की ओर चलकर, पाकिस्तान पहुँच सकते हैं। यह भी याद रखने की बात है कि कई नागा उपजातियों में परम्परागत वैमनस्य है। उदाहरण के लिए अंगामी और आओ उपजातियों में पुराना झगड़ा है। अंगामी अधिकतर ईसाई हो गये हैं। आओ भी अधिकतर ईसाई हो गये हैं। अंगामी विद्रोही हैं, आओ अधिकतर भारतनिष्ठ हैं। यह बात भी उल्लेखनीय है कि अंगामी नागा अल्पसंख्यक हैं। चाखेसांग, सीमा, आओ और कोनयक नागाओं की संख्या अंगामियों से अधिक है। नागा क्षेत्र ही में कुल नागाओं में उनकी संख्या पूरी दस प्रतिशत भी नहीं है। फिर भी वे गड़बड़ी करने में सफल हुए। इसका कारण जानने को ब्रिटिश काल और उसके बाद के इतिहास का, तथा तब से अब तक की सरकार की आदिवासी नीति का सिंहावलोकन करना पड़ेगा।

हिन्दू धर्म दूसरे लोगों का धर्म परिवर्तन करने में विश्वास नहीं करता। आदिवासी हिन्दुओं के पड़ोस में हजारों वर्षों से रहते आये हैं, किन्तु वे अपनी प्रकृति पूजा और जादू टोना करते रहे हैं। पड़ोस में रहने के कारण आदिवासियों पर हिन्दू या भारतीय संस्कृति का प्रभाव पड़ना अनिवार्य था, और उन्होंने हिन्दुओं की कितनी ही बातें सीख लीं। इनमें से कुछ धीरे-धीरे हिन्दू धर्म को भी मानने लगे, और असम के वैष्णव या शैव मंदिरों में जाने लगे तथा वैष्णव या शैव महात्माओं के शिष्य भी हो गये। यह परिवर्तन बिना हिंदुओं के किसी प्रयास के, स्वेच्छा से और स्वाभाविक ढंग से हो रहा था। जब इस क्षेत्र पर अंग्रेजों का अधिकार हुआ तब यही स्थिति थी। गेट (Gaite) ने अपने 'असम के इतिहास' में स्पष्ट रूप से लिखा है: "The old tribal beliefs are gradually being abandoned; and the way in which Hindu priests established their influence over non-Aryan chiefs and gradually drove them within their fold is repeatedly exemplified in the pages of Assam history." यह सर्वविदित है कि बर्मा से आये हुए असम के अहोम विजेताओं ने धीरे-धीरे किस प्रकार भारतीय संस्कृति अपना कर प्रदेश की एकता स्थापित की थी। आदिवासियों में भारतीय संस्कृति का प्रचार धीरे-धीरे बढ़ रहा था। किन्तु अंग्रेजी राज्य के साथ-साथ वहाँ ईसाई मिशनरी भी आये। हिन्दुओं और मुसलमानों को ईसाई बनाने का उनका प्रयत्न असफल रहा। उन्हें भारत के आदिवासी अच्छे और सरल शिकार मालूम हुए। अंग्रेजों ने उन्हें इस काम में पूरी सुविधाएँ दीं। किन्तु उनमें ईसाई धर्म आदिवासियों की 'आत्माओं को बचाने' के लिये ही नहीं फैलाया जा रहा था। हेमिल्टन वाल्टर ने अपनी पुस्तक 'हिन्दुस्तान' (प्रकाशन १८२०) में लिखा है:

"Considered as a measure of policy, a christian population holding a decent rank in the motley throng of tribes and castes would tend to consolidate the strength of the State, and to the probable duration of the empire. A colonisation of the nature alluded to, far from being likely to terminate in the saparation of the colony, would rather serve to perpetuate the union by the addition of a tribe whose interests and doctrines much attach them to their European Superiors."

इस नीति का परिणाम यह हुआ कि मिशनरियों को आदिवासियों में ईसाई धर्म का प्रचार करने की खुली छूट मिल गयी। आदिवासी क्षेत्रों में धीरे-धीरे गैर सरकारी भारतवासियों का प्रवेश वर्जित किया जाने लगा। किन्तु ईसाई धर्म के विदेशी प्रचारक बिना किसी रोक के इन क्षेत्रों में जा सकते थे और अपना काम स्वतंत्रतापूर्वक कर सकते थे। भारत-सरकार का रुख हिन्दू-धर्म और ईसाई धर्म के प्रति कैसा था वह प्रकारान्तर से १८८१ की जन संख्या (सेंसस) रिपोर्ट से मालूम हो सकता है। इस सरकारी प्रकाशन में लिखा गया:

"....and their conversion to Hinduism is cerainly more strongly to be deprecated, in as much as they possess at present many simple qirrtues and have not yet had all their manhoodcrushed out of them by a vicious one-sided civilisation."(p. 71)

भारत सरकार का यह रुख ब्रिटिश राज की स्थापना के आरम्भ में ही नहीं था, बल्कि प्रायः अन्त तक बना रहा। अवश्य ही भाषा उतनी विरक्त नहीं है, किन्तु १९३१ की सेंसस रिपोर्ट के इन शब्दों से सरकारी लेखक की प्रसन्नता छलकी पड़ती है:

The progress of christianity in Assam during the decade has been extremely rapid and there is no reason to suppose that it will not continue at the same rate during the next ten years. The Manipur Hills, the Garo Hills and the Naga Hills are the three hill districts in which the number of Christians is still comparatively small and these districts offer probably the most fruitful fields in India today for the growth of Christianity."

(सेंसस रिपोर्ट १९३१) अर्थात् जिन दिनों देश महात्मा गांधी के नेतृत्व में स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहा था

...दिनों ये विदेशी मिशनरी सरकार की सहायता से ...वासियों को तीव्रगति से ईसाई बना रहे थे। अंग्रेजों ...न्य आदिवासियों की अपेक्षा नागाओं को ईसाई बनाने ... बड़ा ध्यान दिया। अपनी पुस्तक The Angami ...gas के पृष्ठ ३२ पर जे० एच० हटन लिखते हैं :
"The Naga has mental outlook and mental ...cesses far more consonant with those of ...ropeans than has the ordinary Indian, whose ...ughts for generations have been stunned ... the continuous wrappings of caste and ...nduism." नागाओं को ईसाई बनाने के पीछे जो ...नीतिक प्रयोजन था, उसका आभास मेजर जनरल ...स्न जेम्स की पुस्तक: My Experiences in ...nipur and the Naga Hills (1890) के इस ...रण से मिलता है: I have pointed out that the ...gas had no religion; that they were highly ...elligent and capable of receiving civilisation; ...with it they would want a religion, and ...we might just as well give them our own, ...make them in that way a source of strength, ...thus mutually attaching them to us. Fai...g this, I predict that, following the example ...other hill tribes, they would sooner or ...er become debased Hindoos or Musalmans. ...सन जेम्स ने नागाओं में भी अंगामी नागाओं को ईसाई ...ने पर अधिक जोर दिया। उन्होंने लिखा :

"Properly taught and judiciously handled, ...Angamis would have made a fine manly set ...istians, of a type superior to most Indian ...verts and probably devoted to our rule." ...नरियों ने इसी सलाह पर काम किया और अधिकांश ...मी नागाओं को ईसाई बना डाला। स्मरण रहे कि ...ो अंगामी नागा ही है। उन्हें ईसाई बनाने का मुख्य ...य यह था कि वे अपने को भारत से अलग समझें, उनमें ...त और भारतीयता के प्रति प्रेम न रहे तथा वे अंग्रेजी ...ज के प्रति वफादार रहें। बाद की घटनाओं ने प्रमाणित ...र दिया कि अंग्रेज और ईसाई मिशनरी अपने इस उद्देश्य ... कितने सफल रहे।

...ईसाई मिशनरियों को आदिवासियों को बेखटके ...ई बनाने के लिए १८७३ में आदिवासी क्षेत्र में बाहरी ...ों के प्रवेश पर रोक लगा दी गयी। किन्तु उस समय ...ा क्षेत्र में (जो असम का अंग था) यह रोक नहीं लगायी ... थी। अतएव उस समय नागा पहाड़ियों में कुछ ...सी पहुँच गये। वे आज भी वहाँ बसे हुए हैं, किन्तु ...स्तुतः भारतवासियों को वहाँ नहीं जाने दिया जाता ...। यह वहाँका अलिखित नियम था, यद्यपि उस समय ...ा क्षेत्र असम का भाग था। किन्तु उस समय भी इस ...त्र में विदेशी मिशनरियों को प्रवेश करने की, मनचाही ...ह में बस जाने की, आदिवासियों को ईसाई बनाने ...था स्कूल चलाने की पूरी स्वतंत्रता थी। वास्तव में सिवाय मिशनरियों के वहाँ और कोई व्यक्ति या समुदाय स्कूल खोल ही नहीं सकता था। सरकार ने भी वहाँ अपने स्कूल नहीं खोले। विदेशी मिशनरियों के हाथ में शिक्षा का एकाधिकार देकर उसने आदिवासियों, विशेषकर नागाओं की भावी पीढ़ी को ईसाई और अंग्रेजभक्त बनाने का मार्ग प्रशस्त कर दिया था।

इन मिशनरियों ने वहाँ अंग्रेजी भाषा और रोमन लिपि का प्रचार किया और नागाओं को 'पाश्चात्य' बनाने का पूरा प्रयत्न किया। अंग्रेजी और ईसाइयत से क्या सम्बन्ध है, इसके बारे में जॉन क्रिश्चियन ले रॉय ने अपनी पुस्तक Modern Burma में (पृष्ठ १८८) लिखा है:

"Macaulay believed that the spread of English would result in the conversion of Orientals to Christianity." (मेकाले का विश्वास था कि एशिया के लोगों को अंग्रेजी पढ़ाने का परिणाम यह होगा कि वे अन्त में ईसाई हो जावेंगे)। उस समय के अधिकांश अंग्रेज और मिशनरी मेकाले के इस मत को पत्थर की लकीर मानते थे, और इसीलिए उन्होंने इन क्षेत्रों में अंग्रेजी भाषा और रोमन लिपि का प्रचार किया।

अंग्रेजों और ईसाई मिशनरियों का ध्येय यह था कि वे भारत के आदिवासियों को भारत की सांस्कृतिक धारा से विलग करके उन्हें पाश्चात्य सभ्यता और ईसाई धर्म में पूरी तरह से रँग दें, तथा उनके हृदय में यह बात बैठा दें कि वे भारत से अलग हैं तथा उनके सच्चे शुभचिंतक अंग्रेज और पाश्चात्य देशों के गोरे लोग हैं। वे भारत की पूर्वी सीमा के इन आदिवासी क्षेत्रों को ईसाई बनाकर और पाश्चात्य सभ्यता में रँग कर उनका एक स्वतंत्र राज्य बनाना चाहते थे। उस समय वे यह नहीं कर सके। किंतु उनके लगाये विषवृक्ष में अब फल लगे हैं, जिसका प्रमाण यह है कि वे ईसाई बनाये गये नागा अपने को भारत का अंग न मानकर आज स्वतंत्र नागा राज्य की माँग कर रहे हैं और उसके लिए खुला सशस्त्र विद्रोह कर बैठे हैं। इस संबंध में श्री गोपीनाथ बारदोलोई ने अपने एक भाषण में जो The Outlook on Nefa में छपा है, कहा था: We are really pained to learn that the former Governors of Assam and their supporters are advocating in England and in other places for a Crown Colony to be formed with the entire hill regions of Assam and the Western hill regions of Burma. They tried to retain administrative hold in this part of our country even after we had thrown off the yoke of foreign domination. After going through the files, I have fully come to understand that the then rulers in Delhi made a plan to form a Crown Colony because they foresaw the possibility of such a colony.

जिन मिशनरियों ने भारत में आदिवासियों को ईसाई बनाने का काम किया उनमें पादरी 'वेरियर ऐलविन' भी थे। बाद में उन्होंने नृशास्त्र पर पुस्तकें लिखीं और लोग उन्हें

आदिवासियों का विशेषज्ञ और नृशास्त्रवेत्ता समझने लगे। वे भूल गये कि पादरी ऐलविन मूलतः मिशनरी हैं। हमारी स्वतंत्र भारत सरकार ने १९५४ में उन्हें आदिवासी मामलों का सलाहकार बना लिया, और नेफा आदि जिन क्षेत्रों में भारतवासियों का प्रवेश वर्जित था, उनमें उन्हें अबाध प्रवेश और भ्रमण की अनुमति दे दी। भारत सरकार को कोई गैर पादरी अंग्रेज या ऐसा भारतवासी न मिला जो उसे आदिवासियों के मामलों में सलाह दे सके। उसे पादरी ऐलविन ही एकमात्र योग्य व्यक्ति दीख पड़े। जब तक वे जीवित रहे, ईसाई आश्वस्त मालूम होते थे। किन्तु उनके मरने के बाद कोई गोरा पादरी भारत सरकार का सलाहकार न रह गया।

ईसाई धर्म के प्रचार, अंग्रेजी भाषा के अनिवार्य पठन-पाठन और गोरे मिशनरियों के भारत-विरोधी प्रचार का परिणाम यह हुआ कि अंगामी नागा (जो ईसाई बना दिये गये थे) भारत से अलग होकर स्वतंत्र राज्य बनाने का स्वप्न देखने लगे। उन्हें यह विश्वास था कि ईसाई मिशनरी तथा पश्चिम के गोरे लोग उनकी सहायता करेंगे। उन्होंने विद्रोह कर दिया। फीजो उस विद्रोह का नेता था। जब उसे भारत छोड़कर भागना पड़ा तब वह इंगलैण्ड पहुँचा और वहाँ उसने पादरी स्काट के यहाँ शरण ली। पादरी स्काट 'विश्वशान्ति' के हिमायती बनते हैं, किन्तु उन्होंने हिंसक फीजो को केवल आश्रय ही नहीं दिया, उसे अनेक प्रकार से सहायता भी दी। 'अमन' का यह 'फरिश्ता' फीजो को अहिंसक या शान्तिवादी नहीं बना सका। वेरियर ऐलविन की मृत्यु के बाद आदिवासी ईसाइयों का कोई गोरा पादरी 'सर-परस्त' भारत में नहीं रह गया था। उस रिक्त स्थान को भरने की चेष्टा विद्रोही फीजो के आश्रयदाता और सहायक पादरी स्काट कर रहे हैं। देश में श्री जयप्रकाश नारायण ऐसे स्वप्नदर्शियों की कमी नहीं है। उनकी सहायता से यह ईसाई पादरी भारत सरकार और फीजो के अनुयायी विद्रोही नागाओं के बीच 'पंच' बन बैठा है। हमें आश्चर्य और खेद है कि भारत सरकार ने अपनी एक घरेलू समस्या सुलझाने के लिए एक विदेशी गोरे पादरी की सहायता लेना स्वीकार कर लिया। पादरी स्काट के सहधर्मियों ने क्या किया है, इसका संक्षेप में बड़ा प्रभावशाली वर्णन श्री श्रीप्रकाशजी ने किया है। वे कहते हैं: "....And in Assam the Christian religion which these missionaries have brought has stood not for a change in the social and intellectual habits of life and thought, but has also, unfortunately, in its effects, made for political alignments of an almost anti-national nature." पादरी स्काट इन्हीं राष्ट्रविरोधी विचारों के फैलानेवालों के दल के हैं। वे अपने कार्यकलाप से संसार के सामने यह प्रमाणित कर रहे हैं कि नागाओं पर भारत सरकार और भारतवासियों का प्रभाव नहीं है। उन पर गोरे लोगों और पादरियों का प्रभाव है। हमें आशा नहीं कि इस प्रकार के ईसाई पादरियों के प्रयत्न से कोई राजनीतिक समस्या राष्ट्र के हित में सुलझ सकती है।

अंगामी नागा भारत-विरोधी हैं। वे विद्रोही हैं। इसके विपरीत दूसरी नागा जातियाँ अपने को भारतीय समझती हैं। 'आओ' नागा उनमें से हैं, और वे अंगामियों से संख्या में कहीं अधिक हैं। वे भारत के प्रति वफादार हैं और सरकार के साथ सहयोग कर रहे हैं। इस समय श्री शीलू आओ नागालैण्ड के मुख्यमंत्री हैं। भय इस बात का है कि स्काट की चिकनी-चुपड़ी बातों में आकर हम कोई ऐसी बात स्वीकार न कर लें जिससे हमारे सहयोगी आओ आदि नागा उपजातियाँ अप्रसन्न हो जायें। शान्ति स्थापना बड़ी वांछनीय वस्तु है, किन्तु उसके लिए मित्रों का बलिदान नहीं किया जा सकता, और वह तभी सम्भव है जब विद्रोहियों का हृदय परिवर्तन हो जाय। स्काट ऐसे गोरे मिशनरी से हमें आशा नहीं है कि वह विद्रोहियों का हृदय परिवर्तन कर सकें। फीजो उसके साथ इतने दिनों रहा। जो इतने दिनों में एक व्यक्ति का भी हृदय परिवर्तन नहीं कर सका, उससे यह आशा करना कि वह सारे विद्रोहियों को ठीक रास्ते पर ले आवेगा, व्यर्थ मालूम होता है। अंगामी नागाओं का विद्रोह भारत का घरेलू मामला है। उसे हमें अपनी बुद्धि और अपने बल से सुलझाना चाहिए। ऐसे मामले में एक विदेशी (वह भी मिशनरी) को पंचायत में डालना हमारी सम्मति में भारत की प्रतिष्ठा या राजनीतिक प्रशासन के सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं है। हमें आशा नहीं है कि इस 'पंचायत' से कोई सार निकलेगा। भारत को स्वयं इसे सुलझाना होगा। किंतु इस बीच हम पादरी स्काट को जो महत्त्व दे रहे हैं, उसका वह क्या उपयोग करेगा, यह विचारणीय है।

उत्तर प्रदेश में भाषा विधेयक—पिछले अंक में हम अपने पाठकों को बतला चुके हैं कि उत्तर प्रदेश की सरकार के भाषा विधेयक को विधान सभा में किस प्रकार उपाध्यक्ष ने पारित घोषित कर दिया था। उ० प्र० के विधान मंडल में दो सदन हैं: विधान सभा और विधान परिषद्। सभा में पारित होने के बाद विधेयक परिषद् में पारित होना था, और यह सम्भावना थी कि वह परिषद् में उसी सत्र में प्रस्तुत करके पारित करा लिया जायगा क्योंकि उसमें भी कांग्रेस का बहुत बड़ा बहुमत है और उसमें उन गड़बड़ियों की सम्भावना नहीं रहती जो विधान सभा में हो जाती हैं।

इस बीच विधेयक के विरोध में राज्य का जनमत अच्छी तरह जागृत हो चुका था। राज्य के अनेक जिलों में इस विधेयक के विरुद्ध सभाएँ हो रही थीं और हिन्दी समाचारपत्रों के द्वारा लोग अपना असन्तोष और रोष व्यक्त कर रहे थे। राज्य के हिन्दी साहित्यकार इसके विरोध में वक्तव्य दे रहे थे। पं० अमृतलाल नागर ने घोषणा कर दी थी कि जिस दिन वह विधेयक विधान

सदन में प्रस्तुत किया जायगा उस दिन से वे उसके विरोध में आमरण अनशन प्रारम्भ कर देंगे। इससे राज्य और राज्य के बाहर के हिन्दीप्रेमियों में खलबली मच गयी थी। हिन्दीप्रेमी कांग्रेसजनों की स्थिति बड़ी खराब हो गयी थी। वे कांग्रेसी अनुशासन में बँधे होने के कारण विधेयक के विरुद्ध कुछ कह न सकते थे, और उनकी राजनैतिक निष्ठा ने उनकी हिन्दीनिष्ठा को दबा रखा था। किन्तु उनमें से कितने ही इस स्थिति से दुखी थे। हमको बताया गया है कि इस वर्ग ने कांग्रेस विधायक दल के नेताओं को अपने विचार अवगत करा दिये थे। पं० कमलापति त्रिपाठी नागरीप्रचारिणी सभा के अध्यक्ष तथा प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के भी अध्यक्ष हैं। वे कल तक उ० प्र० सरकार के वित्तमंत्री थे, तथा आज भी विधान सभा के सदस्य हैं। इस प्रश्न पर उनके मौन रहने से हिन्दी-प्रेमियों में तरह तरह की भ्रान्तियाँ फैलने लगी थीं। किन्तु हमें विश्वस्त सूत्र से पता लगा है कि अंत में वे मुख्यमंत्री से मिले और इस संबंध में उन्होंने उनसे यह स्पष्ट कह दिया कि यदि विधेयक वापस न लिया गया तो वे उसके विरोध में वक्तव्य देंगे तथा उसका खुला विरोध करेंगे। यह भी निश्चय था कि उनके खुल कर विरोध करने पर कितने ही हिन्दीप्रेमी कांग्रेसी विधायक भी, विशेष कर असन्तुष्ट दल के, खुला विरोध करने लगते। मालूम होता है कि त्रिपाठीजी के इस निश्चय से सरकार का आसन हिल गया क्योंकि अभी तक तो उसे विरोधी दलों, विधानमंडल के विरोधी दल के लोगों और हिन्दीप्रेमियों और साहित्यकारों के विरोध का सामना करना पड़ रहा था, किन्तु त्रिपाठीजी की इस अन्तिम चेतावनी ने कांग्रेस-दल के एक समूह के भी खुले विरोध की संभावना खड़ी कर दी। कहा जाता है कि मुख्यमंत्रीजी ने यह कहा कि मुझे इस विधेयक को पारित कराने का कोई आग्रह नहीं है। यदि वैधानिक कठिनाई को दूर करने का कोई उपाय निकाला जा सके तो विधेयक को छोड़ा जा सकता है। इस पर त्रिपाठीजी ने महाधिवक्ता का मत लेने का प्रस्ताव किया। अन्त में वे (पं० कन्हैयालाल मिश्र) बुलाये गये, और सुना जाता है कि उन्होंने कोई ऐसा विधि-सम्मत उपाय बताया जिससे अंग्रेजी का सहारा लिये बिना अंग्रेजी के पुराने अधिनियमों में संशोधन किया जा सके। अतएव मुख्यमंत्री ने इस बात की घोषणा कर दी कि सरकार 'सम्प्रति' इस विधेयक को पारित करने का आग्रह न करेगी। विधान-परिषद् में उसके न पारित होने से कुछ दिनों में केवल विधान सभा द्वारा पारित यह विधेयक अपने आप रद्द हो जायगा। सरकार जानती है कि उसे पुनर्जीवित करने का प्रयत्न करने से बड़ा तूफान खड़ा होगा। इसलिए हमें आशा है कि महाधिवक्ता के अनुसार उत्तर प्रदेश सरकार अब इस विधेयक को छोड़ देगी।

उत्तर प्रदेश में इस विधेयक के समाप्त करने का प्रथम श्रेय उन जागरूक विरोधी दलवालों को है जिन्होंने इसके सहसा प्रस्तुत किये जाने पर उसका डट कर विरोध किया, और जिन्होंने उस अवसर पर उत्तर प्रदेश की जनता की भावना का वास्तविक प्रतिनिधित्व किया। इसके बाद इसका श्रेय उत्तर प्रदेश की हिन्दी-प्रेमी जनता, हिन्दी के समाचारपत्रों, हिन्दी के साहित्यकारों, और हिन्दी के संगठनों को है जिन्होंने इसके विरोध में थोड़े ही समय में राज्य का जनमत जागृत कर दिया। आमरण अनशन का संकल्प करके हमारे मित्र पंडित अमृत-लाल नागर ने हिन्दी के सतत संघर्षशील इतिहास में एक नये अध्याय की सर्जना की। किन्तु इसकी समाप्ति का अन्तिम श्रेय तीन व्यक्तियों को है। वे तीन हैं: पंडित कमलापति त्रिपाठी, पं० कन्हैयालाल मिश्र और मुख्य मंत्री श्रीमती सुचेता कृपलानी। यदि त्रिपाठीजी कांग्रेस-दल के हिन्दी प्रेमियों के असन्तोष को व्यक्त करके सरकार को अन्तिम चेतावनी न देते तो शायद सरकार को अपना निर्णय बदलने में कठिनाई होती। मिश्रजी कानून के जादूगर हैं। सरकारी विधि-परामर्शदाता लोग अंग्रेजी के उपयोग की अनिवार्यता पर बराबर बल दे रहे थे और सरकार उनकी सलाह को 'वेदवाक्य' मान कर इस विधेयक को पारित कराने के लिए कृतसंकल्प थी। मिश्रजी ने उसके लिए ऐसा उपाय बताया कि साँप तो मर जाय और लाठी भी न टूटे, सरकार का काम भी न रुके और अंग्रेजी का उपयोग भी न हो। अन्त में इसका श्रेय श्रीमती सुचेता कृपलानी को है जिन्होंने जनता की भावना की गहराई को समझा, और मिथ्या प्रतिष्ठा की भावना में न पड़ कर इस विधेयक को पारित कराने का आग्रह नहीं किया। हिन्दीप्रेमी जनता इन सब की आभारी है। हमें आशा है कि उत्तर प्रदेश में यह कटु अध्याय अब सर्वदा के लिए समाप्त हो गया है।

हिन्दी और उत्तर प्रदेश की नौकरशाही—हमारे बहुत से हिन्दीप्रेमी मित्र हमसे बहुधा शिकायत करते रहते हैं कि उत्तर प्रदेश शासन ने अधिनियम बना कर हिन्दी को राज्य की राजभाषा बना दिया है, फिर भी वह यहाँ नहीं चल पाती और आज भी उत्तर प्रदेश के सरकारी कार्यालयों में प्रायः सारा काम अंग्रेजी में होता है। इस स्थिति के लिए वे यहाँकी नौकरशाही को मुख्य रूप से उत्तरदायी बतलाते हैं। उनका कहना है कि सारा भारत उत्तर प्रदेश को हिन्दी का केन्द्र समझता है। यहाँ राजकाज में हिन्दी के न चलने से अहिन्दीभाषी मित्र ताना देकर कहते हैं कि "हिन्दी इतनी अक्षम भाषा है कि उत्तर प्रदेश भी, जहाँकी वह मातृभाषा है, हिन्दी में काम नहीं कर सकता; तब आप हम लोगों से यह अपेक्षा क्यों करते हैं कि हम, जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है, हिन्दी में काम कर सकेंगे? पहिले हिन्दी को सक्षम बना कर उत्तर प्रदेश में उसे चला कर दिखलाइए कि उसमें राजकाज हो सकता है। तब हमसे हिन्दी में काम करने को कहिए।" हमारे हिन्दी-प्रेमी मित्र इस ताने से तिलमिला उठते हैं

और उत्तर प्रदेश की नौकरशाही की निन्दा करने लगते हैं। किन्तु वे इस राज्य की नौकरशाही की परम्परा को नहीं जानते। यदि वे उसे जानते होते तो उन्हें मालूम होता कि यहाँकी नौकरशाही की परम्परा बहुत दिनों से हिन्दी के विरोध करने, और विदेशी भाषा को अपनाने की रही है। दिल्ली के सुलतानों के समय तक सल्तनत का राजकाज हिन्दी में होता था। उत्तर प्रदेश के राजा टोडरमल शेरशाह के समय में नौकरशाही के सिरमौर थे। वे उसके, और उसके बाद अकबर के दीवान रहे। वे उत्तर प्रदेश के नौकरशाह राजा टोडरमल ही थे जिन्होंने हिन्दी को हटा कर विदेशी भाषा फारसी को राजकाज की भाषा बना दिया था। जितने लम्बे समय तक उत्तर प्रदेश विदेशी शासन में रहा, उतना शायद भारत का और कोई भाग नहीं रहा। जब उत्तर प्रदेश में अंग्रेजों को राज करते कई दशक बीत चुके थे, तब पंजाब महाराज रणजीत सिंह की छत्रछाया में स्वतंत्र था। अतएव उत्तर प्रदेश की नौकरशाही की विदेशियों की सेवा की परम्परा बड़ी लम्बी है। शतियों तक विदेशी दासता में रहने और विभाषी शासकों की सेवा करते रहने के कारण इस वर्ग को विदेशी भाषा के अपनाने की आदत पड़ गयी है, और उसने अपनी भाषा की इतने दीर्घ काल से उपेक्षा की है कि वह अब उसे सीखने या उसका उपयोग करने में हीनता की भावना का अनुभव करता है। उत्तर प्रदेश का यह वर्ग मुस्लिम-काल में फारसीपरस्त था, और मुस्लिम राज्य के समाप्त होने पर भी जब तक उसने अपने नये स्वामियों की भाषा (अंग्रेजी) भली भाँति नहीं सीख ली, तब तक वह फारसी भाषा और फारसी लिपि का भक्त बना रहा। अपने नये स्वामियों की भाषा सीख जाने पर वह उसका भक्त बन गया। उसकी हिन्दी की उपेक्षा भी (जो कभी-कभी हिन्दी के विरोध का रूप ले लेती है) नयी नहीं है। राजा टोडरमल ने तो अपनी समझ में हिन्दी समाप्त ही कर दी थी। हमारी नौकरशाही एक विदेशी भाषा (फारसी) और विदेशी लिपि (फारसी लिपि) की हिमायत पहिले भी करती थी, और आज भी वह फारसी के स्थान पर एक दूसरी विदेशी भाषा (अंग्रेजी) की हिमायत करती है। उसकी हिन्दी की उपेक्षा ज्यों की त्यों बनी हुई है। उत्तर प्रदेश ही में नहीं, जहाँ भी यह वर्ग गया वहाँ उसने हिन्दी के स्थान पर विदेशी भाषा या विदेशी लिपि को चलाने का प्रयत्न किया। इसको प्रमाण मध्य प्रदेश की एक घटना से लगता है। हम यहाँ सेन्ट्रल प्राविंसेज (मध्य प्रदेश) के स्थानापन्न चीफ कमिश्नर लेफ्टिनेंट कर्नल आर० एच० कीटिंग वी० सी०, सी० एस० आई० के एक ज्ञाप को उद्धृत कर रहे हैं जो जून ८, १८७२ के सेन्ट्रल प्राविंसेज गजट के क्रोड-पत्र (सप्लीमेंट) में छपा था। मध्य प्रदेश में फारसी की जगह हिन्दी राजभाषा कर दी गयी थी, किन्तु जो अधिकारी वहाँ उत्तर प्रदेश (उस समय नार्थ वेस्टर्न प्राविंसेज) से जाते थे वे हिन्दी का विरोध करते थे। इस ज्ञाप में मध्य प्रदेश की उस समय की राजभाषा संबंधी स्थिति का वर्णन इस प्रकार किया गया है:

"१८३५ ई० से पहिले सागर और नर्मदा क्षेत्रों में राजकाज के लिए फारसी भाषा और लिपि का प्रयोग किया जाता था।

तत्कालीन कमिश्नर ने आदेश दिया कि धीरे-धीरे उन्हें हटा कर देवनागरी या हिन्दी लिपि में लिखी हिन्दुस्तानी भाषा का प्रयोग किया जाय।

ऐसा मालूम पड़ता है कि जब तक कमिश्नर सिद्धान्त-रूप से देवनागरी लिपि का प्रयोग कराने में दृढ़ रहे तब तक इसके उपयोग में किसी कठिनाई का अनुभव नहीं हुआ, किन्तु सागर और नर्मदा क्षेत्रों में जो योरोपियन और देशी अधिकारी भर्ती किये जाते थे वे दोनों ही पश्चिमोत्तर प्रान्त के होते थे। इनमें से अधिकांश को (भाषा का) यह परिवर्तन सख्त नापसन्द था, और उन सभी को इस (के प्रयोग) में कठिनाई होती थी। अतएव नौकरशाही की सुविधा को कारण बना कर (भाषा का) यह प्रश्न फिर से उठाया गया।

अन्त में अक्तूबर १८४३ में भारत सरकार ने एक मिश्रित प्रणाली के उपयोग के आदेश दिये। इसके अनुसार देवनागरी का उपयोग मुफस्सिल को भेजे जाने वाले कागजों के लिये सीमित कर दिया गया क्योंकि यह स्वीकार कर लिया गया कि फारसी लिपि में लिखी गयी उर्दू भाषा जनता नहीं समझ सकती।

वे ही लोग, जिन्होंने ऐसे देश में काम किया है जहाँ दो भाषाएँ मिलती हैं, यह समझ सकते हैं कि नौकरशाही फारसी लिपि के प्रयोग को कितना अधिक महत्त्व देती है। इसमें बहुत कुछ कारण तो उनकी वास्तविक भावना है, किन्तु हमें भय है कि इसका कुछ कारण भ्रष्टाचार का वह अनुभव भी है जिससे उन्हें (नौकरशाही) इस बात से अत्यधिक लाभ होता है कि शासकों और जनता को एक दूसरे की बात समझाने का उन्हें एकाधिकार मिल जाता है।" (मूल अंग्रेजी पृष्ठ ३२९ पर देखिए)

यदि अंतिम पैराग्राफ में 'फारसी' की जगह 'अंग्रेजी' कर दी जाय तो इसमें कही हुई बात आज की स्थिति पर पूरी तरह लागू हो जाय।

जब तक शासकों और जनता की भाषा (अर्थात् शासन की भाषा) एक नहीं है तब तक जनता को सरकारी आदेशों, कानूनों, नियमों को समझने के लिये नौकरशाही पर या अन्य अंग्रेजीदाँ लोगों पर आश्रित रहना पड़ता है। इसीलिए जनतंत्र में शासन की भाषा को जनता की भाषा बनाने पर इतना बल दिया जाता है।

किन्तु जो बात ध्यान देने की है वह यह कि पश्चिमोत्तर प्रदेश (आज के उत्तर प्रदेश) से ली गयी नौकरशाही ने मध्य प्रदेश में देवनागरी-हिन्दी का विरोध करके फारसी लिपि का समर्थन किया था। जब वहाँके चीफ कमिश्नर ने उनकी बात नहीं सुनी तो उन्होंने अपनी सरकार के विरुद्ध भारत सरकार के द्वार खटखटाये, और

चीफ कमिश्नर पर फारसी लिपि के पुनःप्रतिष्ठा-के लिए जोर डलवाया। किन्तु मध्य प्रदेश की जनता किसी भाव पश्चिमोत्तर प्रान्त से आये नौकरशाहों की भाषा स्वीकार करने को तैयार न थी, और यह इतिहास प्रसिद्ध है कि उस समय हिन्दी और देवनागरी का पक्ष चीफ कमिश्नर ने लेकर मध्य प्रदेश में हिन्दी को बचा रखा। यदि उत्तर प्रदेश (पश्चिमोत्तर प्रदेश) से आए हुए नौकरशाहों का बस चलता तो आज भी मध्य प्रदेश की कचहरियों और सरकारी कार्यालयों में वही फारसी लिपि में लिखी अरबी-फारसी-बहुल भाषा चलती दिखायी देती जो उनकी कृपा से उत्तर प्रदेश में चल गयी। अब परिवर्तन केवल इतना ही हुआ है कि उत्तर प्रदेश की नौकर-शाही अपने बहुत पुराने स्वामियों (मुगलों) की भाषा छोड़ गयी है, किन्तु डेढ़ सौ वर्ष से पढ़ी हुई, सद्यःगत स्वामियों (अंग्रेजों) की भाषा के प्रति उसका आज वही लगाव है जो पहिले फारसी के लिए था। उसे न हिन्दी से कोई लगाव तब था, और न अब है। जब तक इस तत्त्व को ठीक तरह से नहीं समझ लिया जाता तब तक उत्तर प्रदेश के राजकाज में हिन्दी को प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता। आज आवश्यकता इस बात की है कि हिन्दी-प्रचार की शक्ति उत्तर प्रदेश की नौकरशाही में हिन्दी प्रचार करने में, उनमें हिन्दी-प्रेम उत्पन्न करने में और (यदि आवश्यक हो तो) उन्हें हिन्दी में काम करने को बाध्य करने में लगे। यह नौकरशाही इतनी शक्तिशाली है कि बिना उसकी मर्जी और सहयोग के उत्तर प्रदेश में राजभाषा के रूप में हिन्दी नहीं चल सकती। उत्तर प्रदेश राजभाषा अधिनियम (१९५०) विधि साहित्य की शोभा भले ही बढ़ाता रहे, किन्तु नौकरशाही की मर्जी के बिना वहाँ हिन्दी को अपना उचित, न्यायसंगत और विधि-सम्मत स्थान नहीं मिल सकता।

हम उत्तर प्रदेश की नौकरशाही के प्रति न्याय करने की दृष्टि से यह स्पष्ट रूप से कह देना आवश्यक समझते हैं कि उसमें सदैव कुछ न कुछ अपवाद भी रहे हैं और आज भी हैं।

एक महान् सारस्वत साहित्यकार का स्वर्गवास—हमारे पाठकों को इस समाचार से बड़ा दुःख हुआ होगा कि २३ सितम्बर को नयी दिल्ली में मराठी के प्रख्यात साहित्यकार मामा वरेरकर का स्वर्गवास हो गया। मृत्यु के समय उनकी अवस्था ८१ वर्ष की थी, किन्तु अन्त तक उनका जीवन कर्मठ और उत्साहमय बना रहा। उन पर वृद्धावस्था का प्रभाव नहीं के बराबर था।

मामा वरेरकर भारतीय साहित्य जगत् के उन विशिष्ट, वरिष्ठ और मान्य व्यक्तियों में थे जो सर्व-साधारण के प्रति संवेदनशील, नवोदितों के प्रति उदार, साहित्यिकों के स्नेहशील सहायक और संरक्षक थे। भारतीय साहित्य के विशाल क्षेत्र के अनुरूप उनकी दृष्टि भी विशाल थी। वह अन्तर्भारती के उन्नायक थे। भारतीय साहित्य के बीच अन्तर्देशीय पारस्परिक आदान प्रदान के कार्य में वे सदा आगे रहे। विभिन्न प्रदेशों और क्षेत्रों में वर्द्धमान विकासशील भारतीय साहित्य को वे अपना निजी संसार मानते थे। सब भाषाओं के साहित्यिक उनके अपने जन थे। सबकी समस्याओं और प्रश्नों को, उनके सुख और दुखों को वे अपना समझते थे। हर एक भारतीय साहित्यिक उनका अपना था। साहित्यिकों के मान-सम्मान और प्रतिष्ठा का वे बहुत ध्यान रखते थे।

नाटक और कथा साहित्य के मौलिक सृजन में, और बँगला भाषा से मराठी में रवीन्द्र और शरद् साहित्य को अनूदित करने में उनकी प्रतिभा खूब चमकी थी। नाटक के जगत् में उनकी देन को कौन नहीं जानता? अभिनेता और तंत्र सूत्रधर को वह मनीषा का माध्यम मानते थे, और नाटककार या नाटक के स्रष्टा साहित्यिक को वह सर्वाधिक महत्त्व देते थे। मराठी रंगमंच उनका सर्वदा ऋणी रहेगा और हिन्दी रंगमंच के पुनरुद्धार के हेतु उनके प्रयत्न हम हिन्दीभाषियों के बीच आदर और स्नेह के साथ याद किये जावेंगे। हिन्दी साहित्यिकों के लिये वे आत्मीय गुरुजन के समान थे।

डेढ़ सौ से ऊपर पुस्तकों के रचयिता, नाटककार, उपन्यासकार और विचारक स्व० भार्गवराम विट्ठल वरेरकर का जन्म २७ अप्रैल, १८८४ में रत्नगिरि जिले के चिपलूण गाँव में हुआ था। सन् १९२० से आप राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने लगे थे। किन्तु उनकी मूल प्रवृत्ति साहित्यिक थी, इसलिए उन्होंने साहित्य को राष्ट्रीय पुनरुत्थान और समाज-सुधार के उद्देश्यों की पूर्ति का माध्यम बनाया। रंगमंच का प्रयोग भी उन्होंने इसी उद्देश्य से किया, और स्वाभाविक बोलचाल से भाषा के प्रति इनका आग्रह इनके नाटकों को सफल बनाने में बहुत सहायक हुआ। सोद्देश्य कथोपकथन में हास्य और व्यंग्य का पुट इनकी शैली की विशिष्टता थी। नाटकों के विषयों का चुनाव इन्होंने अनेक क्षेत्रों से किया है। विषय ऐतिहासिक, सामाजिक और राजनीतिक तो है ही, वे देश के मराठी क्षेत्र से इतर अंचलों से भी चुने गये हैं। बंगाल और बँगला साहित्य का अध्ययन मामा साहब की विशेषता थी। इस स्रोत से वंग सरस्वती की धारा को महाराष्ट्र में पहुँचाने वालों में वे अग्रणी थे। सम्पूर्ण शरत्साहित्य का अनुवाद मामा साहब ने मराठी भाषा में किया था। ठेठ मराठी भाषा के ठाठ में मामा वरेरकर ने मार्दव और लोच का अनोखा पुट दिया था।

समस्याओं और सम्प्रश्नों से वे कतराते न थे। वादविवाद में भाग लेते, और कभी छद्म नाम से, तो कभी प्रत्यक्ष रूप से प्रहार करते थे। वे हँसा-हँसा कर मार करने में दक्ष थे। उनका कृतित्व और व्यक्तित्व भी इसलिये कभी-कभी वाद-विवाद का विषय बन जाता था। किन्तु मामा साहब की निष्ठा, हार्दिकता और सारस्वत आदर्श पर विरोधियों की कटुता से कभी आँच नहीं आई।

वे संकुचित प्रादेशिकता के पोषक न थे। अन्त-

भारती के आदान-प्रदान में उनका अनुराग अकृत्रिम, और योगदान महान् था। हिन्दी के अखिल भारतीय प्रयोग के वे समर्थक थे। वे हिन्दी को 'भारती' नाम से पुकारते थे।

भारतीय नारी के प्रति उनके मन में अपार संवेदना थी। उनकी छत्रछाया में दुखियों को सहानुभूति और सहायता मिलती थी। उनका सारा साहित्य और जीवन इसका साक्षी है।

साहित्यिक की प्रतिष्ठा को वे कभी न भुलाते थे। वे स्वयं तो प्रतिष्ठा के भूखे न थे, पर अपने सहधर्मियों के बारे में इस विषय में अतिशय व्यग्र रहते थे। राजनीति हो, प्रशासन हो, रंगमंच, सिनेमा या प्रकाशन हो, हर क्षेत्र में साहित्यिक मनीषी ही उनकी दृष्टि में सर्वोपरि था।

अखिल भारतीय महत्त्व की उनकी साहित्यिक सेवाओं के लिए राष्ट्रपति ने उन्हें राज्यसभा का सदस्य बनाया था। वे १९५८ में संगीत नाटक अकादमी द्वारा सर्वमान्य नाटककार के रूप में पुरस्कृत हुए थे, और १९५९ में उन्हें पद्मभूषण का सम्मान प्रदान किया गया था। राज्य सभा में अपने कार्यकाल में मामा साहब ने हिन्दी की हित-रक्षा में सदा आवाज और कलम उठायी। रेडियो में हिन्दी का स्वरूप बिगाड़ने की कुचेष्टा का उन्होंने प्रबल विरोध किया था, और अँगरेजी को सह-राजभाषा के रूप में बनाये रखने का विधेयक प्रस्तुत होने पर उन्होंने उसके विरोध में प्रधान मंत्री को विरोध-पत्र लिखा, तथा सार्वजनिक रूप से भी उसका विरोध किया था, जबकि संसद में हिन्दी के अनेक प्रतिनिधि भी ऐसा करने का साहस न बटोर सके थे।

मामा साहब इधर छत्रपति शिवाजी और महाकवि भूषण को लेकर नाटक लिखने की तैयारी कर रहे थे, और भूषण के संबंध में सामग्री एकत्र कर रहे थे। वे कहा करते थे कि सुदूर अतीत में भी हिन्दी के एक कवि ने शिवाजी को अपने काव्य का नायक बनाया और उनके कार्य के राष्ट्रीय महत्त्व को पहचाना, यह इस बात का प्रमाण है कि हिन्दी का कार्य-क्षेत्र सदा से सम्पूर्ण भारत या सम्पूर्ण राष्ट्र रहा है, और राष्ट्र की चेतना उसमें सदैव अभिव्यक्त होती रही है। दुःख है कि अपने इस नाटक को पूरा करने के पहले ही मामा साहब चले गये। अन्त समय तक उनकी कलम चलती रही और उन्होंने कर्मयोगी की गति पायी। हम सरस्वती की ओर से भारती के इस यशस्वी सेवक को हिन्दी जगत् की विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

श्री मुक्तिबोध का स्वर्गवास—गत मास दिल्ली में लम्बी बीमारी के उपरान्त मध्य प्रदेश के प्रसिद्ध कवि और साहित्यकार श्री गजानन माधव मुक्तिबोध का देहान्त हो गया। श्री मुक्तिबोध भूतपूर्व मध्यभारत के एक महाराष्ट्र परिवार में उत्पन्न हुए थे। उन्होंने ग्वालियर और इंदौर में शिक्षा पायी थी। वे कुछ दिनों अध्यापक रहे, किन्तु बाद में वे साहित्य क्षेत्र में आ गये। यद्यपि उनकी मातृभाषा मराठी थी, तथापि आरम्भ ही से उन्हें हिन्दी से प्रेम था और उन्होंने जीवन के मुख्य कार्य के लिये हिन्दी साहित्य की सेवा को ही वरण किया। वे नयी पीढ़ी के कवियों की प्रथम पंक्ति में गिने जाते थे। उन्हें मस्तिष्क का मैनेंजाइटिस नामक भयंकर रोग हो गया था जिसके कारण वे कई महीने संज्ञाहीन रहे। मध्यभारत सरकार की ओर से भोपाल के मेडिकल कालिज में उनकी चिकित्सा होती रही, किन्तु बाद में प्रधान मंत्री के आदेश से वे दिल्ली पहुंचाये गये। वहाँ उनकी चिकित्सा देश के सर्वोत्तम अस्पताल में की गयी। किन्तु उससे भी कोई लाभ नहीं हुआ, और संज्ञाहीन अवस्था ही में उनका स्वर्गवास हो गया। श्री मुक्तिबोध की अकाल मृत्यु से हिन्दी ने एक प्रतिभाशाली कवि और साहित्यकार खो दिया। वे उन उदार मराठी-भाषी साहित्यकारों की माला के एक चमकते हुए मणि थे जिन्होंने राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा का व्रत लिया था। हम उनके शोक-संतप्त परिवार के प्रति अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हैं। इस समय 'तार सप्तक' में प्रकाशित उनकी 'मृत्यु और कवि' नामक कविता हमें रह-रह कर याद आती है जिसमें मृत्यु के प्रति उनका दृष्टिकोण स्पष्ट हो गया है। हम इस अवसर पर उनका यह 'मरण गीत' यहाँ उद्धृत कर रहे हैं:

घनी रात, बादल रिमझिम हैं, दिशा मूक, निस्तब्ध वनान्तर,
व्यापक अन्धकार में सिकुड़ी सोई नर की बस्ती, भयकर।
है निस्तब्ध गगन, रोती सी सरिता धार चली घहराती,
जीवन-लीला को समाप्त कर मरण सेज पर है कोई नर।
बहुत संकुचित छोटा घर है, दीपालोकित फिर भी धुंधला,
वधू मूच्छिता, पिता अर्द्धमृत, दुखिता माता स्पन्दनहीना।
घनी रात, बादल रिमझिम हैं, दिशा मूक कवि का मन गीला,
"यह सब क्षणिक, क्षणिक जीवन है, मानव जीवन है क्षणभंगुर।"
ऐसा मत कह मेरे कवि, इस क्षण संवेदन से हो आतुर
जीवन चिन्तन में निर्णय पर अकस्मात मत आ, ओ निर्मल।
इस वीभत्स प्रसंग में रहो तुम अत्यन्त स्वतंत्र निरा त,
भ्रष्ट न होने दो युग युग की सतत साधना महाराधना,
इस क्षण भर के दुःखभार से, रहो अविचलित, रहो अचंचल।
जीवन के इस गहन अतल के लिए मृत्यु का अर्थ कहो तुम।
क्षण भंगुरता के इस क्षण में जीवन की गति, जीवन का स्वर,
दो सौ वर्ष आयु यदि होती तो क्या अधिक सुखी होता नर?
इसी अमर धारा के आगे बहने के हित यह सब नश्वर,
सृजनशील जीवन के स्वर में गाओ मरण-गीत तुम सुन्दर।
तुम कवि हो, ये फैल चलें मृदु गीत निबल मानव के घर घर,
ज्योतित हों मुख नव आशा से, जीवन की गति, जीवन का स्वर।

काव्यानन्द का स्वरूप

डॉ० नगेन्द्र

भारत के सभी प्राचीन तथा अनेक आधुनिक आचार्य और उधर पश्चिम के भी अनेक मनीषी रस को एक प्रकार का अलौकिक आनन्द या अनुभव मानते हैं। प्राचीन आचार्यों ने रस की अलौकिकता की सिद्धि अत्यन्त आग्रहपूर्वक और प्रबल तर्कों के आधार पर की है। उनके मत का सारांश इस प्रकार है:

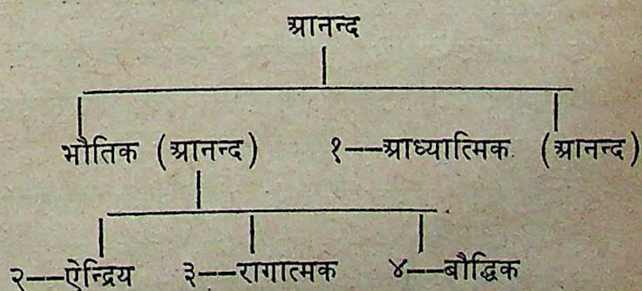
लौकिक भाव और उनके विषय काव्य-निबद्ध हो जाने पर कारण-कार्य सम्बन्धों से मुक्त हो जाते हैं और उनका लौकिक रूप नष्ट हो जाता है। अलौकिक विषय का आस्वाद होने के कारण रस स्वयं भी अलौकिक ही होता है अर्थात् स्मृति, अनुमान, प्रत्यक्ष अनुभव आदि से भिन्न होता है: वह न कार्य है न ज्ञाप्य है, न सविकल्पक होता है और न निर्विकल्पक।

अनेक पाश्चात्य विद्वान् भी अपने ढंग से प्रायः इसी मत की आवृत्ति करते हैं:

"वास्तविक संसार का (जिस अर्थ में कि हम इस शब्द का सामान्यतः प्रयोग करते हैं) अंग होना या अनुकृत होना इसकी (काव्य) प्रकृति नहीं है; यह तो एक (निराला ही) संसार है—अपने में स्वतंत्र, पूर्ण और स्वायत्त।"[1] "फलतः किसी कला-कृति का रसास्वादन करने के लिए हमें जीवन से कुछ भी साथ लाने की आवश्यकता नहीं है—न उसकी धारणाओं और कार्य-कलाप का ज्ञान आवश्यक है और न उसके मनोवेगों का परिचय ही।"[2] इस संदर्भ में डा० रिचर्ड्स का मत है[3] कि प्रस्तुत धारणा का उद्गम-स्रोत कान्ट का ग्रंथ है; बाद में उसीके आधार पर हीगेल ने सौन्दर्य का सम्बन्ध आत्मवाद के साथ स्थापित किया और परवर्ती विचारकों ने—क्रोचे, ...नी, ब्रैडले, बोसान्के, क्लाइव बैल आदि ने—सौन्दर्यानुभूति के विशिष्ट स्वरूप की एक सुनिश्चित प्रकल्पना ही प्रस्तुत कर दी: सौन्दर्य की अनुभूति विलक्षण और विशिष्ट होती है। इनमें से कान्ट और हीगेल तो इस विशिष्ट अनुभव को आनन्दरूप मानते हैं, किन्तु परवर्ती आलोचकों ने अपने नवोत्साह में आनन्द को या तो इस अनुभव की विधि मात्र माना है, या इसे आनन्द से भी विलक्षण माना है। इस विलक्षणता या वैशिष्ट्य का आधार यह है कि सौन्दर्य की अनुभूति तटस्थ, परोक्ष, अव्यक्तिगत, साधारणीकृत—और, बौद्धिक तथा सामान्य ऐन्द्रिय या रागात्मक अनुभूतियों से भिन्न होती है। इस प्रकार प्रस्तुत सिद्धान्त के उत्साही प्रवर्तक काव्य की अनुभूति को वास्तव में लौकिक और आध्यात्मिक दोनों ही अनुभूतियों से भिन्न मानते हैं।

उपर्युक्त विवेचन के प्रकाश में यह स्पष्ट हो जाता है कि अलौकिक और विशिष्ट या विलक्षण विशेषणों का भावार्थ प्रायः समान ही है। रस अथवा काव्यानुभूति जीवनगत अन्य अनुभूतियों से भिन्न है—वह बौद्धिक अनुभति नहीं है, प्रत्यक्ष या परोक्ष अनुभव अर्थात् प्रत्यक्ष या परोक्ष ऐन्द्रिय अथवा रागात्मक अनुभूति भी नहीं है; व्यक्तिगत रागद्वेष से मुक्त है, व्यक्ति-चेतना की सीमाओं से परे साधारणीकृत अनुभव है—जब कि अन्य जीवनगत अनुभूतियाँ प्रायः इन्हीं कोटियों में आती हैं, अर्थात् या तो वे वैयक्तिक रागद्वेष से लिप्त प्रत्यक्ष-परोक्ष ऐन्द्रिय अथवा रागात्मक अनुभूतियाँ होती हैं या बौद्धिक अनुभूतियाँ। इसीलिए भारतीय मनीषियों ने इसको अनिर्वचनीय कहकर मुक्ति पाई और पाश्चात्य विचारकों ने एक नवीन भावना (सौन्दर्य भावना) की कल्पना कर डाली।

आत्मा की सत्ता में विश्वास कर चलें तो अनुभूति और तदनुसार आनन्द के स्थूलतः चार भेद कर सकते हैं:



स्पष्ट रूप से यह विभाजन स्थूल है, आत्यन्तिक नहीं है; क्योंकि ऐन्द्रिय या बौद्धिक अनुभूति बिना आध्यात्मिक अनुभूति के असम्भव है। इसी प्रकार आध्यात्मिक या

1—ऑक्सफर्ड लैक्चर्स ऑन पोइट्री—ब्रैडले—पृ० ५।
2—आर्ट—क्लाइव बैल, पृ० २५।
3—प्रिंसिपल ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म—'वायवी संवेदना'—पृ० १५।

बौद्धिक अनुभूति ऐन्द्रिय अनुभूति से निरपेक्ष कैसे हो सकती है? अथवा बुद्धि की सहायता के बिना हमारी इन्द्रियाँ या आत्मा कैसे क्रियाशील हो सकती हैं? अतएव यह विभाजन अनुभूति में उपर्युक्त किसी एक तत्त्व की प्रधानता का ही द्योतक है—अनुभूति का कोई भी रूप सर्वथा निरपेक्ष नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए, प्रियजन के स्पर्श का आनन्द ऐन्द्रिय है, प्रिय-स्नेह का आनन्द रागात्मक है, शास्त्र के किसी प्रश्न के समाधान का आनन्द बौद्धिक है और आत्म-तत्त्व के साक्षात्कार का आनन्द आध्यात्मिक है।

अब यह देखना है कि काव्यानन्द इनमें से किसके अन्तर्गत आता है या किसीके अन्तर्गत नहीं आता—वह सर्वथा निरपेक्ष एवं विलक्षण है। संस्कृत के अधिकांश आचार्यों ने अलौकिक और अनिर्वचनीय कहकर उसकी विलक्षणता का प्रतिपादन अवश्य किया है, किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि उन्होंने स्वरूप-विश्लेषण का प्रयास ही नहीं किया। रस-स्वरूप के प्रसंग में हम यह स्पष्ट कर चुके हैं कि भारतीय काव्यशास्त्र में काव्यास्वाद के विषय में दो मत प्राप्त होते हैं: भौतिकवादी और आत्मवादी। प्राचीनों में भरत और भट्ट लोल्लट का, तथा परवर्ती आचार्यों में जैन विद्वान् रामचन्द्र गुणचन्द्र का दृष्टिकोण भौतिकवादी है। भरत रस और उसके आस्वाद में भेद करते हैं: रस सुखदुःखात्मक भावों पर आश्रित कलात्मक स्थिति या सौन्दर्य-सृष्टि है और उसका आस्वाद हर्षादि-समन्वित एक प्रकार का प्रीतिकर अनुभव है। स्पष्टतः दोनों की ही स्थिति भौतिक है। रस भी इन्द्रियगम्य है और उसका आस्वाद भी ऐन्द्रिय है। भट्ट लोल्लट रस को भावानुभूति से अभिन्न मानते हैं और काव्य के आस्वाद को चमत्कार रूप मानते हैं: रस के भोक्ता मूल नायकादि ही होते हैं; सहृदय उसका सादृश्य आदि के आधार पर नट पर आरोपण करता हुआ चमत्कार का अनुभव करता है। यहाँ रस का स्वरूप तो स्पष्टतः भौतिक है, परन्तु नाट्य-कौशल आदि के कारण सहृदय द्वारा अनुभूत चमत्कार का क्या स्वरूप है, यह कहना कठिन है। वह भी संदर्भ से भौतिक ही प्रतीत होता है; किन्तु उपयुक्त प्रमाण के अभाव में निश्चयपूर्वक ऐसा ही मान लेना कदाचित् समीचीन नहीं होगा। जैन आचार्यों का मत सर्वथा निर्भ्रान्त है। उनके अनुसार रस सुखदुःखात्मक अनुभव है; श्रोता या प्रेक्षक उसीका आस्वाद करता है, यद्यपि इस आस्वाद में काव्य-कौशल और नाट्य-कौशल-जन्य चमत्कार का भी मिश्रण हो जाता है। अतः उनके अनुसार काव्यानुभूति निश्चय ही ऐन्द्रिय अनुभूति है और वह सर्वदा आनन्दरूप नहीं होती।

आत्मवादी मत निश्चय ही आनन्दवादी है और यही भारतीय काव्यशास्त्र का प्रतिनिधि मत है। इस मत के अनुसार रस काव्यानन्द ऐन्द्रिय आनन्द या विषयानन्द नहीं है, वह आत्मानन्द के अत्यधिक निकट है यद्यपि शुद्ध आत्मानन्द भी वह नहीं है। काव्यानन्द में रत्यादि भावों की भूमिका रहती है, अतः वह विषयानन्द से सर्वथा असंस्पृष्ट नहीं है; किन्तु ये भाव विशुद्ध अर्थात् साधारणीकृत होने के कारण रागद्वेष से मुक्त होते हैं, अतः काव्यानन्द में मृण्मय अंश कम, और चिन्मय अंश अधिक होता है। चिन्मय अंश का प्राधान्य होने से वह आत्मानन्द के निकट तो पहुँच जाता है किन्तु रत्यादि की भूमिका के कारण वह अस्थायी और सोपाधि ही रहता है—स्थायी और निरुपाधि नहीं बन पाता। इस प्रकार काव्यानन्द की स्थिति मध्यवर्ती है: वह विषयानन्द की अपेक्षा अधिक शुद्ध एवं चिन्मय है और आत्मानन्द की तुलना में स्थूल तथा अस्थायी है। वास्तव में भारत के आनन्दवादी दर्शनों में आनन्द को प्रत्येक स्थिति में आत्मास्वाद रूप ही माना गया है—विषयानन्द में भी आनन्द तत्त्व आत्मास्वाद का ही वाचक है और काव्यानन्द में भी आनन्द का अर्थ स्पष्टतः विशुद्ध भाव-भूमिका में आत्म-भोग ही है। अतः काव्यानन्द आत्मानन्द से प्रकृति या प्रकार की दृष्टि से नहीं, गुण की दृष्टि से भिन्न है और विलक्षण केवल इसी अर्थ में है कि न तो वह विषयानन्द है और न शुद्ध आत्मानन्द ही।

पश्चिम में काव्यास्वाद के स्वरूप का इतिहास काफी रोचक रहा है। प्लेटो बुद्धि और आत्मा को एक मानते हुए दो प्रकार की अनुभूतियों की सत्ता स्वीकार करते हैं—आध्यात्मिक (बौद्धिक) अनुभूति और ऐन्द्रिय अनुभूति। काव्यानुभूति को उन्होंने सौन्दर्यानुभूति से (जिसे वे आत्मा का अनुभव मानते हैं) पृथक्—ऐन्द्रिय अनुभूति मानकर मिथ्या, निम्नकोटि का तथा अस्वस्थ आनन्द माना है:—

"सोक्रेतेस (सुकरात): इनमें से कुछ कला-प्रक्रियाएँ ऐसी होती हैं जो आत्मा के परम कल्याण का विधान करती

+ + + कल्याण की अवज्ञा करके केवल और उसकी सिद्धि के उपाय की ओर ही ध्यान देती यह विचार नहीं करतीं कि कौन-सा आनन्द सत् है, कौन-सा असत्।

\+ + + +

सोक्रेतेस ०—+ + + क्या उसका (त्रासदी का) प्रयोजन और लक्ष्य प्रेक्षकों को सुख प्रदान करना होता है या वह उसका (सुख का) विरोध करती है और उनके मधुर पापों का कथन न करके शब्दों और गीतों द्वारा स्वेच्छापूर्वक प्रिय एवं अप्रिय सत्यों का आख्यान करती है? तुम्हारे विचार से उसकी प्रकृति क्या है?

कल्लिक्लेस—सोक्रेतेस! इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि त्रासदी सामाजिक के सुख और परितोष की ओर ही उन्मुख रहती है।

सो०—और कल्लिक्लेस! क्या यह वैसी ही वस्तु नहीं जिसे हमने अभी-अभी चाटुक्रिया (मिथ्या परितोष) शब्द से अभिहित किया है?

(गोरगिअस—पृ० ५०१-५)

अरस्तू ने भी काव्य के आनन्द को आध्यात्मिक न मानकर लौकिक ही माना है, परन्तु प्लेटो की तरह असत् अथवा अस्वस्थ कहकर उसकी गर्हणा नहीं की। उनके अनुसार काव्य का आनन्द आध्यात्मिक आनन्द नहीं है, केवल ऐन्द्रिय आनन्द नहीं है और बौद्धिक आनन्द भी नहीं है—यह प्राकृत जीवन के अन्तर्गत ही प्रत्यभिज्ञान का आनन्द है, किन्तु प्रत्यक्ष प्रत्यभिज्ञान का नहीं कल्पनात्मक प्रत्यभिज्ञान का, अर्थात् यह आनन्द प्रत्यक्ष ऐन्द्रिय-मानसिक आनन्द की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म है। अठारहवीं शती के अंग्रेज आलोचक एडिसन ने इसे ही 'कल्पना का आनन्द' कहा है। कल्पना के इस (गौण) आनन्द को वे सर्वत्र ही मन की उस क्रिया का परिणाम मानते हैं, जो मूल वस्तुओं से उत्पन्न विचारों (मानस-बिम्बों) की, इन वस्तुओं की मूर्ति, चित्र, अथवा संगीतात्मक अभिव्यंजना से उत्पन्न विचारों (मानस-बिम्बों) के साथ तुलना करती है।" यह उद्धरण निश्चय ही अरस्तू के वाक्य की व्याख्या है—एडिसन ने अरस्तू की अनिश्चित विवेचना को पारिभाषिक शब्दावली में बाँध दिया है।[1]

१—देखिए—अरस्तू का काव्यशास्त्र—भूमिका—पृ० ३०।

प्लेटो और अरस्तू के पश्चात्, प्लेटो की ही ज्ञात-अज्ञात प्रेरणा से यूरोप में क्रमशः 'आध्यात्मिक सौन्दर्य' की परिकल्पना का विकास हुआ। क्रोचे ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'ऐस्थेटिक' में इसे 'रहस्यवादी सौन्दर्य-दर्शन' कहा है। इसका स्पष्ट प्रतिपादन सबसे पहले यूनानी-रोमी विद्वान् प्लोटिनस ने किया। उनके मंतव्य का सारांश इस प्रकार है: "प्रकृति के सौन्दर्य का उद्गम आत्मा है। अतएव प्लेटो का यह निर्णय भ्रान्त है कि कला प्रकृति का अनुकरण करती है और प्रकृति स्वयं ज्ञान की अनुकृति है, इसलिए अनुकृति की अनकृति होने के कारण कला मिथ्या और अस्पृहणीय है। कारण यह है कि कला का उद्गम भी वही ज्ञान है जो स्वयं प्रकृति का।"[1] यह रहस्यवादी अथवा आध्यात्मिक सौन्दर्य-दर्शन अन्धकार युग में धर्म के रंग में रँग गया और कला का दर्शन तथा धर्म के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गया। कई शताब्दियों बाद जब यूरोप में जर्मन अध्यात्मवाद का उद्भव और विकास हुआ तो सौन्दर्य एवं कला की भी अध्यात्मपरक गहन व्याख्याएँ प्रस्तुत की गयीं—कान्ट, शिलर, हीगेल आदि ने इस सिद्धान्त के विकास में पूर्ण योगदान किया। इन दार्शनिकों के सूक्ष्म सैद्धान्तिक भेदों की विवेचना करना यहाँ न तो अभीष्ट है और न संगत: सामान्यतः इन सभी का स्पष्ट मत था कि कला (या सौन्दर्य) की सर्जना आध्यात्मिक क्रिया है: "इस प्रकार सौन्दर्य आत्मा की (मूर्त्त) इन्द्रिय-गम्य अभिव्यक्ति का नाम है"।[2] इस रूप में परिभाषित सौन्दर्य की चर्वणा भी स्वभावतः आध्यात्मिक अनुभूति ही होनी चाहिए। अतएव इस वर्ग के विचारकों के मत से काव्य का आस्वाद आध्यात्मिक अनुभूति है और यह अनुभूति निश्चित रूप से आनन्दमयी है। कांट के शब्दों में यह एक ऐसा अतीन्द्रिय एवं सार्वभौम आनन्द है जो एक ओर योग-क्षेम की भावनाओं से मुक्त है, और दूसरी ओर बौद्धिक धारणाओं से।[3]

कालान्तर में इस अध्यात्मवादी सौन्दर्य-दर्शन का विरोध हुआ और मार्क्स तथा फ्रायड के युगान्तरकारी सिद्धान्तों के प्रकाश में सौन्दर्य और उसकी अनुभूति की अत्यंत प्रबल शब्दों में भौतिकवादी व्याख्याएँ की गयीं।

१—देखिए—ऐस्थेटिक (क्रोचे) १९५३—पृ० १६८।
२—वही—पृ० २९९।
३—वही—पृ० २८०।

मार्क्सवाद के अनुसार कला की अनुभूति आर्थिक हितों से अनुशासित भौतिक अनुभूति है और उधर फ्रायड के मत से वह काम-प्रेरित ऐन्द्रिय आस्वाद है। बीसवीं शती में भी अनेक काव्य-सिद्धान्तों का आविर्भाव हुआ जिनके द्वारा काव्यानुभूति के स्वरूप के बौद्धिक, नैतिक एवं मनोवैज्ञानिक व्याख्यान प्रस्तुत किये गये; परन्तु वे प्रायः सभी उपर्युक्त धारणाओं के ही रूपान्तर हैं। हाँ, क्रोचे का 'सहजानुभूति' सिद्धान्त थोड़ी-सी नवीनता लेकर आया। उनके मत से आत्मा की दो क्रियाएँ हैं: (१) विचारात्मक और (२) व्यवहारात्मक। "विचारात्मक क्रिया अथवा ज्ञान के दो रूप हैं: ज्ञान स्वयं प्रकाश्य होता है अथवा प्रमेय; कल्पना द्वारा प्राप्त ज्ञान अथवा प्रमा द्वारा प्राप्त ज्ञान; व्यष्टि (विशेष) का ज्ञान अथवा समष्टि (सामान्य) का ज्ञान; विशिष्ट वस्तुओं का ज्ञान, अथवा उनके परस्पर सम्बन्ध का ज्ञान; वास्तव में ज्ञान या तो बिम्ब का उत्पादक होता है या धारणा का।"

कला का सम्बन्ध ज्ञान के प्रथम भेद अर्थात् स्वयं प्रकाश्य ज्ञान से है। इसीका नाम सहजानुभूति भी है: कला सहजानुभूति ही है। इस प्रकार क्रोचे के अनुसार भी कला एक प्रकार की आध्यात्मिक क्रिया है जो आत्मा की विचारात्मक प्रवृत्ति अथवा ज्ञान का ही अंग है। कला अर्थात् सहजानुभूति का आस्वाद कलाकार के लिए आनन्दमय होता है और जब वह मूर्त रूप धारण कर लेती है तो स्वभावतः उस मूर्त रूप का आस्वाद भी सामाजिक के लिए आनन्दमय होता है। अतः यहाँ कला या काव्य के आस्वाद को मूलतः आध्यात्मिक मानते हुए भी राग की अपेक्षा कल्पना पर ही आश्रित माना गया है और क्रोचे की यह परिकल्पना वस्तुतः अध्यात्मवादी दार्शनिकों तथा अरस्तू की धारणाओं का समन्वित रूप है।

उपर्युक्त विवेचन के फलस्वरूप काव्यानन्द अथवा 'रसास्वादन-समुद्भूत आनन्द' के स्वरूप के विषय में निम्नलिखित सिद्धान्त प्राप्त होते हैं:

(१) काव्य का आनन्द प्रत्यक्षतः ऐन्द्रिय-मानसिक आनन्द है। प्राचीनों में प्लेटो ने, और नवीन विचारकों में मार्क्स तथा फ्रायड ने अपने अपने ढंग से इस मत का प्रतिपादन किया है।

(२) काव्य का आनन्द आत्मिक आनन्द का ही एक रूप है: संस्कृत के प्रतिनिधि आचार्यों का—अभिनव, मम्मट, जगन्नाथ आदि का—और उधर पश्चिम के अध्यात्मवादी विचारकों का यही मत है।

(३) काव्यानन्द कल्पना का आनन्द है: अरस्तू से प्रेरित होकर एडीसन ने अठारहवीं शती में इस मत का प्रवर्तन किया। बीसवीं शती में क्रोचे ने इसीको दार्शनिक रूप में प्रस्तुत कर सहजानुभूति का आनन्द माना।

(४) काव्य का आनन्द सभी प्रकार के लौकिक (और आध्यात्मिक) अनुभवों से भिन्न एक प्रकार का विलक्षण आनन्द है जो सर्वथा निरपेक्ष है। यों तो यह सिद्धान्त काफी पुराना है, परन्तु उन्नीसवीं शती के अंत और बीसवीं शती के आरम्भ में ब्रेडले, क्लाइव बैल आदि कलावादियों ने इसकी व्यवस्थित रूप में प्रतिष्ठा की है। यद्यपि यह सिद्धान्त भी कुछ-कुछ रहस्यवादी प्रकृति में रँगा हुआ है और रिचर्ड्स ने इस पर कान्ट तथा हीगेल आदि का अप्रत्यक्ष प्रभाव भी माना है, तथापि 'विलक्षण अनुभूति' और 'आध्यात्मिक अनुभूति' को एक मानना उचित नहीं होगा क्योंकि यह 'विलक्षण अनुभूति' केवल लौकिक आनन्द से ही नहीं आध्यात्मिक आनन्द से भी तो विलक्षण है।

काव्यानन्द या रस का स्वरूप-निर्णय करने के लिए इन चारों सिद्धान्तों का परीक्षण आवश्यक है। अन्तिम सिद्धान्त से ही आरम्भ करना उपयोगी होगा। विलक्षणता के पक्ष में जितने तर्क दिये गये हैं वे यह तो सिद्ध कर देते हैं कि काव्य का आस्वादभाव—प्रत्यक्ष या परोक्ष ऐन्द्रिय-रागात्मक अनुभूति से भिन्न है, शुद्ध बौद्धिक अनुभव—समस्या के समाधान, अनुमान, प्रमाण आदि के अनुभव से भी भिन्न है और उधर शुद्ध आत्मानन्द—योग आदि के आनन्द—से भी भिन्न है। परन्तु उनसे यह सिद्ध नहीं होता कि वह सामान्य जीवनगत अनुभव नहीं है—इस लोक का अनुभव नहीं है। उसमें ऐन्द्रिय तत्त्व है और, आत्मा बौद्धिक तत्त्व का भी एकान्त अभाव नहीं है और, आत्मा के विश्वासियों के अनुसार, आत्मानुभव का भी असंसर्ग नहीं है। इस अनुभव के स्वरूप का संघटन अन्य अनुभूतियों से भिन्न अवश्य है परन्तु उसके आधार-तत्त्व सर्वथा विलक्षण नहीं हैं; अतः वह प्रकार में भिन्न होने पर भी स्वभाव में एकान्त भिन्न नहीं है। तटस्थ अनुभव या व्यक्तिगत रागद्वेष से मुक्त साधारणीकृत अनुभव भी तो ऐन्द्रिय-रागात्मक अनुभव का ही परिष्कृत रूप है। जैसा

डा० रिचर्ड्स ने लिखा है, काव्यानुभूति की सम्पूर्ण प्रक्रिया में हमारी इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदि ही माध्यम हैं—अतः जब तक हम सौन्दर्य के आस्वाद के लिए अतिरिक्त इन्द्रिय-विशेष की सिद्धि न कर लें, तब तक सौन्दर्य-चेतना को विलक्षण भाव या अनुभूति मानना असंगत होगा। इस तर्क से विलक्षणतावादियों का मत स्वतः ही असिद्ध हो जाता है।

काव्यानन्द कल्पना का आनन्द है—यह मत केवल अंशतः ठीक है। काव्यानन्द में भाव की भूमिका भी अनिवार्यतः रहती है, इस महत्त्वपूर्ण तथ्य की यहाँ उपेक्षा कर दी गयी है। काव्य का आधार मूलतः हमारा रागात्मक जीवन है—कल्पना उसका माध्यम है और अनिवार्य माध्यम है, इसमें संदेह नहीं; फिर भी, केवल कल्पना के आधार पर काव्य के स्वरूप का निर्माण सम्भव नहीं है। अतः काव्य का आस्वाद भी केवल कल्पना का आस्वाद नहीं हो सकता। काव्य के क्षेत्र से बाहर भी ज्ञान के अनेक क्षेत्रों में कल्पना का प्रचुर उपयोग होता है—विज्ञान के आविष्कारों में कल्पना का जितना प्रयोग है उतना और कहाँ हो सकता है? किन्तु इस प्रकार की अनुभूतियों का काव्यास्वाद से कोई वास्ता नहीं। इसके अतिरिक्त, कल्पना भी तो मन और बुद्धि की ही क्रिया है; अतः कल्पना का आनन्द भी मानसिक-बौद्धिक आनन्द की ही परिधि में आ जाता है: वह आनन्द का कोई नवीन या भिन्न प्रकार नहीं है।

काव्य का आनन्द आत्मिक आनन्द का ही एक रूप है। वास्तव में इस मंतव्य के विषय में तर्क करना अपेक्षाकृत कठिन है क्योंकि आत्मा की सत्ता एवं स्वरूप ही विवादास्पद है। भारतीय रस-सिद्धान्त के मूल-स्रोत शैव-दर्शन के अनुसार आनन्द आत्मा का ही लक्षण है, अतः प्रत्येक स्थिति में आनन्द आत्मपरामर्श अथवा आत्मास्वाद रूप ही होगा: विषयानन्द में भी आनन्द तत्त्व आत्मास्वाद का ही पर्याय है। इस प्रकार, जैसा कि हम अन्यत्र कह चुके हैं, ऐन्द्रिय और आत्मिक आनन्द का भेद प्रकृति का नहीं, गुण का भेद है और विषयानन्द, काव्यानन्द तथा आत्मानन्द में शुद्धता की मात्रा का ही अंतर रह जाता है। वेदान्त का मत इससे भिन्न है—उसके अनुसार ऐन्द्रिय आनन्द मिथ्या है, मायाजन्य भ्रान्ति मात्र है: आत्मज्ञान आत्मा की शुद्ध निर्विकार स्थिति—निर्वितर्क ज्ञान का ही नाम है। पाश्चात्य आध्यात्मवादी दार्शनिक प्रायः आत्मानुभूति को अतीन्द्रिय अनुभव मानते हैं—किंतु वे भी इन्द्रियों के संसर्ग का निषेध नहीं करते। उनका मत यही है कि आत्मानुभव में ऐन्द्रिय संसर्ग अन्ततः छूट जाते हैं और शुद्ध निर्विकार स्थायी आनन्द की स्थिति शेष रह जाती है।

उपर्युक्त व्याख्याओं के प्रकाश में यह तो सर्वथा स्पष्ट ही हो जाता है कि काव्यानन्द शुद्ध आत्मानन्द नहीं है और वस्तुतः ऐसा किसीने एकदम माना भी नहीं है। दोनों में प्रकृति का भेद न मानते हुए भी गुण का भेद तो अवश्य माना ही गया है। आत्मानन्द जहाँ शुद्ध आत्म-तत्त्व का भोग है, वहाँ काव्यानन्द में भौतिक जीवन की भूमिका अवश्य बनी रहती है। साधारणीकृत भाव-भूमिका भी अभौतिक नहीं है: उसमें व्यक्तिगत रागद्वेष से मुक्ति के फलस्वरूप भाव का परिष्कार है, उन्नयन है परन्तु यह स्थिति भी अभौतिक या अतीन्द्रिय क्यों है? इसका अनुभव भी तो मन ही करता है। काव्य का आनन्द प्रत्यक्ष स्थायी भाव का आस्वाद नहीं है—काव्य-निबद्ध का काव्य द्वारा परिशुद्ध स्थायी भाव का आस्वाद है। अब प्रश्न यह है कि क्या स्थायी भाव काव्य-निबद्ध होकर या प्रमातृचेतना में काव्य के प्रभाव से व्यक्तिसंसर्गों से मुक्त होकर, आध्यात्मिक अनुभूति में परिणत हो जाता है? मैं समझता हूँ कि इसका उत्तर नकारात्मक ही हो सकता है क्योंकि काव्य की रचना या अनुभूति की क्रिया आत्मा की क्रिया नहीं है—कम से कम उस अर्थ में तो नहीं ही है जिस अर्थ में कि योग-साधन या ब्रह्म-चिंतन आदि हैं। ऐसी स्थिति में काव्य-निबद्ध या काव्य-प्रेरित स्थायी भाव के आस्वाद को भी आध्यात्मिक आनन्द नहीं कहा जा सकता। अर्थात् काव्यानन्द प्रचलित अर्थ में आत्मानन्द का पर्याय या उसका रूप-विशेष नहीं है। वस्तुतः इस स्थापना के लिए सामान्य अनुभव से बढ़कर और क्या प्रमाण होगा? यदि हम यह मानकर चलते हैं कि प्रत्येक अनुभूति आत्मा की ही अनुभूति है और आनन्द के सभी प्रकार आत्मानन्द के ही रूप हैं, तब तो सारा भेद ही मिट जाता है। किन्तु यदि हम आनन्द के विभिन्न रूपों और स्तरों में भेद करते हैं, तब फिर काव्यानन्द को अत्यंत उदात्त और अवदात्त अनुभव मानने पर भी आत्मानन्द रूप नहीं माना जा सकता।

अब पहला विकल्प शेष रह जाता है। काव्य का आनन्द ऐन्द्रिय आनन्द है। प्लेटो ने उसे प्रत्यक्ष ऐन्द्रिय

आनन्द माना—किंतु उनका यह मत काव्य-सत्य तथा वस्तु-सत्य की भ्रांति पर आश्रित था और इसका हम सतर्क खण्डन कर चुके हैं। तब भी, प्रत्यक्ष ऐन्द्रिय या लौकिक अनुभव न होने पर भी, काव्य का आनन्द लौकिक जीवन की ही अनुभूति है—इस स्वतः स्पष्ट तथ्य का निषेध कैसे किया जा सकता है? भक्ति और रहस्यवाद को छोड़कर काव्य के समस्त विषय लौकिक ही होते हैं, उसके उपकरण—भाव, कल्पना, बुद्धि आदि तत्त्व भी लौकिक ही हैं; उधर उसके आस्वाद के माध्यम चक्षु-श्रोत्र तथा मन-बुद्धि भी लौकिक हैं और आस्वादयिता भी सवासन सामाजिक ही होता है, भक्त या योगी नहीं। ऐसी स्थिति में काव्यानन्द लोक-बाह्य एवं अतीन्द्रिय अनुभूति नहीं है, यह निर्विवाद है। अर्थात् वह लौकिक—ऐन्द्रिय-मानसिक—अनुभूति ही है और जैसा कि हम पहले सिद्ध कर चुके हैं, उसके आधार भाव है। अतः मनोविज्ञान की परिधि के भीतर ही उसका स्वरूप-निर्णय करना होगा।

एक उदाहरण लेकर इस प्रसंग का विवेचन करना अधिक उपयोगी होगा :—

> अस कहि फिर चितये तेहि ओरा।
> सियमुख ससि भए नयन चकोरा।।
> भए बिलोचन चारु अचंचल।
> मनहुँ सकुचि निमि तजे दृगंचल।।
> देखि सीय सोभा सुख पावा।
> हृदयँ सराहत बचनु न आवा।
> जनु बिरंचि, सब निजु निपुनाई।
> बिरचि बिस्व कहँ प्रगट देखाई ।।
> सुन्दरता कहँ सुन्दर करई।
> छबिगृहँ दीपसिखा जनु बरई।।
> सब उपमा कवि रहे जुठारी।
> केहि पटतरौं बिदेह - कुमारी।।
> (बालकाण्ड–दोहा २२९-२३०)

यह रामचरितमानस का जनकवाटिका-प्रसंग है। इसका मनन कर मुझे निश्चय ही आनन्द का अनुभव होता है: प्रसंग श्रृंगार का है और मेरे इस आनन्द का प्रेम (रति) भाव के साथ निश्चित सम्बन्ध है, अर्थात् मेरा मन रति-भाव के अनुभव में से गुजरता हुआ आनन्द का आस्वाद करता है। किन्तु फिर भी इस आनन्द में और प्रत्यक्ष प्रिय-मिलन (रति-भाव) के आनन्द में स्पष्ट भेद है, इसमें संदेह नहीं। मैं इस भेद का अनुभव करता हूँ, प्रत्येक सहृदय इसका अनुभव करता है। यह भेद किस प्रकार का है? जीवनगत रति का अनुभव प्रत्यक्ष है और व्यक्ति-गत रागद्वेष से आविष्ट है, अतः अपेक्षाकृत अधिक तीव्र है; काव्य-निबद्ध रति (श्रृंगार रस) का अनुभव प्रत्यक्ष ऐन्द्रिय-मानसिक अनुभव नहीं है, व्यक्तिगत रागद्वेष से आविष्ट भी नहीं है—अतः उतना तीव्र भी नहीं है। इस अनुभव के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए काव्यास्वादन की प्रक्रिया का विश्लेषण आवश्यक है। जब मैं उपर्युक्त पंक्तियों को पढ़ता हूँ तो पहले शब्द और लय का संगीत मेरे चित्त का अनुरंजन करता है, फिर प्रायः असंलक्ष्यक्रम रीति से अर्थ-बोध होता है; इसके बाद काव्य-भाषा के कल्पनात्मक तत्त्वों (लक्षणाव्यंजना) के प्रभाव से मेरी कल्पना सक्रिय हो जाती है—सीमित अर्थ-बोध (अभिधा) के बंधन टूट जाने से अनेक प्रकार के संस्कार-चित्र उभर आते हैं, विभिन्न संचारियों से परिवृत मेरा अपना रति-भाव उद्बुद्ध हो जाता है जो किसी वास्तविक व्यक्ति के प्रति उन्मुख न होने के कारण वैयक्तिक रागद्वेष से मुक्त होता है और अंततः इस सम्पूर्ण अनुभव-प्रक्रिया की परि-णति एक सुखद अनुभूति में हो जाती है। स्पष्टतः यह सुखद अनुभूति प्रत्यक्ष रति-भाव का आनन्द नहीं है, परोक्ष रति-भाव अर्थात् रति-भाव की स्मृति का भी आनन्द नहीं है क्योंकि कल्पनागत अनुभूति होने पर भी स्मृति व्यक्ति-गत रागद्वेष से निश्चय ही अलिप्त रहती है और इसलिए स्वरूपतः सुखदुःखात्मक होती है; साथ ही यह रति-भाव के सफल विवेचन का भी आनन्द नहीं है क्योंकि यह मात्र बुद्धि की क्रिया नहीं है। यह वास्तव में एक प्रकार का समंजित आस्वाद है जिसमें ऐन्द्रिय, रागात्मक और बौद्धिक तत्त्वों का लवण-नीर-संयोग रहता है। अब प्रश्न शब्द रह जाता है—अनुभूति—जो व्याख्या की अपेक्षा करता है। अनुभूति का विश्लेषण करने पर हमारे हाथ में केवल संवेदन (सेंसेशन्स) रह जाते हैं जिनको वास्तव में हम मनोजगत् के अणु-परमाणु कह सकते हैं। शारी-रिक रूप में ये प्रत्यक्ष और स्थूल होते हैं, मानसिक रूप में ये सूक्ष्म और प्रतिबिम्बरूप होते हैं, और बौद्धिक रूप तक पहुँचते-पहुँचते इतने सूक्ष्म हो जाते हैं, अर्थात् इनके प्रति-बिम्ब भी इतने सूक्ष्म हो जाते हैं कि ये लगभग अरूप ही लगते हैं। उनका रूप नहीं, केवल अन्वितिसूत्र ही

...है: जैसे बहुत बारीक जंजीर की कड़ियाँ नहीं ...पड़तीं, केवल सूत्र ही दिखायी पड़ता है। इस प्रकार ...में अनुभूति अपने सभी रूपों में मूलतः संवेदन-...है, उसमें (शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक सभी ...में) केवल प्रत्यक्षता की मात्रा का ही अन्तर है, ...प्रकार का नहीं। अतः काव्य की अनुभूति या आनंद ...रूप ही है, परन्तु ये संवेदन स्थूल एवं प्रत्यक्ष न ...सूक्ष्म और प्रतिबिम्ब रूप होते हैं। साधारण रूप में ...क्षता और तीव्रता की मात्रा के विचार से हम क्रमशः ...प्रकार के संवेदनों की कल्पना कर सकते हैं—१–एक ...शुद्ध प्राकृतिक संवेदन (ये एकांत प्रत्यक्ष तथा स्थूल ...हैं) जो, उदाहरण के लिए, हमें अपने प्रियजन के ...स्पर्श आदि से प्राप्त होते हैं। २–दूसरे वे संवेदन, ...उस स्पर्श के स्मरण से प्राप्त होते हैं—ये मानों पहले ...प्रकार के संवेदनों के प्रतिबिम्ब रूप हैं। स्वभावतः ही ये ...क्ष तथा स्थूल कम, और आंतरिक अथवा सूक्ष्म ...होते हैं। ३—तीसरे वे संवेदन, जो इस स्मृति के ...विश्लेषण या बौद्धिक अध्ययन आदि से प्राप्त होते हैं। ये ...नों प्रतिबिम्ब के भी प्रतिबिम्ब हैं और स्वभाव से ही ...अंत आंतरिक एवं सूक्ष्म होते हैं। वास्तव में, इनका ...शारीरिक अंश प्रायः नष्ट ही हो जाता है। इन्हें हम ...बौद्धिक संवेदन कह सकते हैं। सभी प्रकार की बौद्धिक ...क्रियाओं में हमें इसी प्रकार के संवेदन प्राप्त होते हैं। प्रत्यक्ष ...जीवन में प्रायः ये ही तीन प्रकार के संवेदन हमारे अनुभव ...में आते हैं, परन्तु पिछले दो प्रकार के संवेदनों के बीच ...चौथे प्रकार के संवेदन भी होते हैं जो स्मृति के भावन ...(शुक्ल जी के शब्दों में उसकी सहजानुभूति से, और साधारण ...व्यावहारिक शब्दावली में, उसको काव्य रूप में उपस्थित ...ग्रहण करने से) प्राप्त होते हैं। यह भावन का अनुभव ...न तो स्मृति का प्रत्यक्ष अनुभव होता है और न उसके ...विश्लेषण आदि का बौद्धिक अनुभव; स्मृति के अनुभव ...की अपेक्षा यह अधिक सूक्ष्म और बौद्धिक अनुभव की अपेक्षा ...अधिक स्थूल होता है, और उसी अनुपात से इसके संवेदन ...पहले की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म और दूसरे की अपेक्षा स्थूल ...होते हैं। इस प्रकार, काव्य से प्राप्त संवेदनों की स्थिति प्रत्यक्ष मानसिक संवेदनों से सूक्ष्मतर और बौद्धिक संवेदनों से अपेक्षाकृत अधिक प्रत्यक्ष एवं स्थूल ठहरती है। इसीलिए तो काव्यानुभूति में एक ओर ऐन्द्रिय अनुभूति की स्थूलता एवं तीव्रता (ऐन्द्रियता एवं कटुता) नहीं होती और दूसरी ओर बौद्धिक अनुभूति की अरूपता नहीं होती; और, इसीलिए—वह पहले से अधिक शुद्ध, परिष्कृत तथा दूसरी से अधिक सरस होती है।[1]

१—रीति काव्य की भूमिका।

अच्छा लगता है !

श्री सुरेशचंद्र

मुझे पत्थरों से टकराना अच्छा लगता है
और खिलखिला हँसते जाना अच्छा लगता है।।
अच्छा लगता पथ में कोई यदि आ जाए जंगल,
पतझर हो, तरु भूरे काले, उड़ते हों पल्लव-दल,
लिपट लिपट तरु से पूछूँ विहगों की निठुर कहानी,
पाकर शीतल परस हमारी शिरा शिरा हो चंचल।
दुलराकर फिर गाते जाना अच्छा लगता है,
मुझे पत्थरों से टकराना अच्छा लगता है!!
जहाँ बढ़ाकर बाहु शिखर दो स्नेह भरे झुक जाएँ,
उस गहराई में जा खेलें मेरी मधुधाराएँ,
और शिलाओं का मुख धोते उतर वेग से आना
अपनी गहराई में डूबें-उभरें स्वयम् कथाएँ
रुला शिलाएँ, बढ़ते जाना अच्छा लगता है,
और खिलखिला हँसते जाना अच्छा लगता है!!
अच्छा लगता शापग्रस्त बंजर में दूब खिलाऊँ,
और शरत् में तट की बाहों में गुपचुप सो जाऊँ;
खेतों का हरियाला मखमल कब सोना बन जाए,
देखूँ, सावन-भादों में अँगड़ाई ले लहराऊँ।
सपनों में मुस्काते जाना अच्छा लगता है,
मुझे पत्थरों से टकराना अच्छा लगता है।।

हिंदी भाषा-विज्ञान के कुछ अस्पष्ट शब्द

डा० हेमचंद्र जोशी डी० लिट्०

हिंदी व्याकरणकार बताते हैं कि हिंदी में चार प्रकार के शब्द पाये जाते हैं। उनके नाम उन्होंने रक्खे हैं—**तत्सम, तद्भव, देशी** और **विदेशी**। इन नामों से यह समझ में नहीं आता कि **तत्सम** और **तद्भव** का अर्थ क्या है। हिंदी के विद्वान् **तत्** का अर्थ संस्कृत बताते और समझते हैं, किंतु ऐसा बताना या समझना भ्रम है। तत् का अर्थ हम आदि-आर्य-भाषा भी समझ सकते हैं, वैदिक भाषा भी मान सकते हैं और संस्कृत भी समझ सकते हैं। यह अपनी अपनी समझ की बात है। इस कारण **तत्सम** और **तद्भव** शब्द अँगरेजों, जर्मनों, द्रविड़ों आदि के लिए महान् भ्रम पैदा करनेवाले हैं। अब हिंदी को राष्ट्रभाषा का पद मिला है और संसार में अनेक विश्व-विद्यालयों में इसकी पढ़ाई होती है। सभी सभ्य देशों में भारत के लिए रेडियो का कार्यक्रम भी हिन्दी में चलता है और उनसे समाचार भी हिन्दी में प्रसारित किये जाते हैं। हिंदी भाषा में कई ऐसी उलझनें हैं जो विदेशियों या भारत के अहिन्दी प्रदेशों के लोगों के हिंदी के अध्ययन में बड़ी-बड़ी रुकावटें डालती हैं। हमारे पुंल्लिंग और स्त्रीलिंग स्वयं भारत के प्रादेशिक भाषाएँ बोलनेवालों को बहुत कष्ट देते हैं। एक बार श्री गोपालन रेड्डी लखनऊ पधारे थे। उन्होंने हिंदी साहित्यिकों को निमंत्रण दिया। मैं भी उनके डेरे पर गया। वहाँ उन्होंने हिंदी भाषा की चर्चा छेड़ी। कहा कि हिंदी भाषा बहुत अच्छी है। इस राष्ट्र-भाषा को सीखना प्रत्येक भारतवासी का प्रथम कर्तव्य है। इसके सूर, तुलसी आदि कवि प्रत्येक देश-वासी को पढ़ने चाहिए; किंतु मुझे हिन्दी में सबसे बड़ी जो कठिनाई लगती है वह है **लिंग-भेद**। जब हम सोचने लगते हैं कि यह कठिनाई कैसे हल हो तो हमारा मस्तिष्क जवाब दे देता है। हमको इतना जानना चाहिए कि भाषा किसी प्रकार क्यों न निकली हो, उसके बोलनेवालों का धर्म है कि उसे क्लिष्ट से सरल और सरलतर बनाते जाएँ। भाषा समाज-सेवा की सुविधा के लिए उत्पन्न हुई है। उसकी पहली समस्या यही थी कि मनुष्य परिवार के भीतर ही अपने बंधु-बांधवों, स्त्री-बच्चों आदि को अपने मन के भाव किस प्रकार बताये। इस उत्कट इच्छा ने कुछ शब्द और वाक्य पैदा किये। उस समय किसीको इतना ज्ञान नहीं था कि हम जो भाषा बना रहे हैं उसमें, भविष्य में क्या क्या अड़चनें पैदा होंगी। पुरुष ने स्त्री जाति देखी तो उसे भिन्न समझकर उसका लिंग ही दूसरा बना दिया, जिसे हम प्रकृति की दृष्टि से देखें तो स्वाभाविक ही मालूम पड़ता है। यह अड़चन अँगरेजी भाषा में भी कभी उप-स्थित थी। अब उन्होंने अपनी भाषा का व्याकरण ऐसा कर दिया है कि लिंग-भेद न उन्हें दुरूह लगता है और न हम विदेशियों को अँगरेजी पढ़ने में इस कठिनाई का कुछ आभास ही होता है। लिंग-भेद का कुछ उपाय राष्ट्र-भाषा के विद्वानों द्वारा किया जाना चाहिए। जर्मन, फ्रैंच, रूसी आदि भाषाओं में सदा इस दृष्टि से सुधार किये जाते हैं कि भाषा सरल से सरलतर बन जाय। **तत्सम** और **तद्भव** शब्द भी अस्पष्ट होने के कारण अपना अर्थ साफ-साफ समझा नहीं सकते।

जैसा मैं पहले बता चुका हूँ—**तत्** कुछ नहीं बताता कि वह किस ओर संकेत करता है। **तत्सम** का अर्थ है 'उसके समान'। मुझे तो भले ही अध्यापकों ने बता रखा हो कि **तत्** का अर्थ 'संस्कृत' है और मैं समझता हूँ कि तत्सम का अर्थ 'संस्कृत के समान' है।

इस दशा में यदि हम एक शब्द **कमल** लें तो हमारे अध्यापक इसे तत्सम या तद्भव या इसे संस्कृत बताएँगे। यह बात ध्यान में रखने की है कि जो पुरुष आपके समान होगा वह आप नहीं होंगे, कोई दूसरा ही होगा; क्योंकि वह आप नहीं हैं बल्कि आपके समान है। **वृक्ष** के समान उसका पर्याय **पादप** है और पादप के समान **विटप** है तथा **विटप** के समान **द्रुम** है और **द्रुम** के समान पेड़ है। ये सब शब्द पर्याय हैं, इस कारण समान हैं; किंतु एक नहीं हैं। **वृक्ष** का अर्थ है 'वह पेड़' जिसे लोग काटते हैं। यह **वृश्च्** धातु से बना है जिसका अर्थ है 'काटना'। इसी धातु से **वृश्चिक** 'बिच्छू' शब्द भी बना है जिसका मूल अर्थ है 'काटनेवाला कीड़ा'। **पादप** शब्द **वृक्ष** के समान होने पर भी अर्थ में थोड़ा भेद रखता है। इसका अर्थ है 'पाँव से जल पीनेवाला'। यहाँ पाँव का अर्थ 'जड़ या मूल' है जिसके बल पर पेड़ खड़ा रहता है। **विटप** का अर्थ है 'मैली खाद खाने वाला'। **द्रु-म** में **दृ** धातु वर्तमान है जिसका अर्थ है 'चीरना, फाड़ना, दलना'। इसका रूप

...में 'ट्री' tree है। अब पाठक देखेंगे कि किसी ...न बताना, पदार्थ को मूल पदार्थ से भिन्न ...है। **कमल** शब्द एक **फूल** का नाम है जो **कन्** ...एक लुप्त हुए **कम*** (चमकना, सुंदर दिखाई देना) ...से बना है। पाठक जानते ही हैं कि **कन्** धातु से **कांत**, ...त, **कनक** आदि शब्द बने हैं। उसके ही दूसरे रूप ...धातु से **कमल, कमला, कमनीय** आदि शब्द निकले ...वह **कम** धातु अवेस्ता में भी दिखाई देती है। उसमें ...शब्द है जिसका अर्थ 'वह रमणीय पदार्थ जो कम ...जाता है'। फारसी शब्द **कम** इसी **कम्र** का आधु- ...रूप है। अब इस **कमल** की तारीफ सुनिए कि यह ...त से अर्द्धमागधी, पाली, नाना प्रकार की प्राकृतों से ...हुए हमारे पास हिन्दी तक पहुँचा है। इसलिए इसे ...त कहें, पाली कहें या प्राकृत, समझ में नहीं आता। ...प्राकृत शब्द इसी प्रकार के हैं। प्राकृत में **सूर्य** के लिए ..., हिरन के लिए **हरिण, संचार** के लिए **संचार, हाथ** ...लिए **कर** और **सूर्य की रश्मियों** के लिए **किरण** मूल संस्कृतरूप में ही वर्तमान हैं। अतः इन शब्दों को ...त ही कहना उचित होगा। ये तत्सम नहीं, शुद्ध संस्कृत ...जो भाषा-विज्ञान के अनुसार इन्हें **प्राचीन भारतीय** ...भाषा के शब्द कहना ही उचित होगा; क्योंकि इस ...वैदिक और संस्कृत भाषाओं का उक्त नाम ही शुद्ध ...जाता है। जो शब्द प्राचीन भारतीय-आर्य-भाषाओं ...विकृत होकर हमारे पास आये हैं उनमें बहुत से पाली, ...आदि द्वारा हिंदी में पहुँचे हैं। इनकी परंपरा ...समय मध्य-भारतीय-भाषा का उल्लेख करना ...; क्योंकि इन सब में ध्वनि-विकार का रूप मध्य ...भाषाओं से आया है। इस कारण मेरे विचार से ...शब्द अशुद्ध है, क्योंकि हिंदी में सीधे संस्कृत से ...में ध्वनि-विकार नहीं हुआ है। यह तद्‌भवता संस्कृत ...नहीं आयी है। अर्द्धमागधी, पाली और नाना ...द्वारा इनमें ध्वनि-विकार आया है। संस्कृत का ...स्वयं वैदिक में **अद्य** हो गया था। संस्कृत में अद्य ...। अर्द्धमागधी और पाली में इसकी ध्वनि बदल ...और यह शब्द **अज्ज** हो गया। प्राकृत भाषाओं में ...रूप **अज्ज** ही मिलता है। अपभ्रंश में इसमें उ ...जुड़कर यह **अज्जु** रूप में आ गया। पर यह **अज्जु** ...हिंदी में नहीं आया। यह समझ लेना चाहिए कि हिंदी **भात** शब्द अपभ्रंश के **भत्तु** से नहीं निकला और न यह संस्कृत के **भक्त** से निकला है। यह तो प्राकृत शब्द **भत्त** से आया है। हिंदी के अधिकांश शब्द प्राकृतों से आये हैं। बहुत थोड़े शब्द हिंदी ने अपभ्रंश से पाये हैं। इस तथ्य को न जानने के कारण हमारे भाषा-वैज्ञानिक **भात** को **भत्तु** से निकला बताते हैं। **भत्तु** से यदि कोई हिंदी शब्द आता तो उसका रूप **भातु** होता, **भात** नहीं। हमारा ऐसा विचार है कि हिंदी अपभ्रंश से आयी है। इसमें कोई संदेह नहीं कि हिंदी के वाक्यों का रूप, जिनके भीतर शब्द और उनका व्याकरण भी आता है, वह अप-भ्रंश के सहजिया संतों की कविता द्वारा हमें प्राप्त हुआ है। जैसे सरहपा संत ने लिखा है—

'अलिओ! धम्म-महासुह पइसइ।
लवणो जिमि पाणीहि विलिज्जइ॥

पाठक देखेंगे कि इस पद से हम धीमे धीमे प्राचीन हिंदी और उसके बाद नयी हिंदी में आये हैं। इस पद का अर्थ है 'हे सखाओ! धर्म में महासुख है, इसमें वही सुख है जो लवण को पानी के साथ मिलकर पानी के अणु-अणु में विलीन हो जाने का है।' हिंदी ने अपभ्रंश का व्याकरण थोड़ा-बहुत अपनाया है, उसके **उकार-बहुल** नामों को नहीं। इस उकार-बहुलता के कारण तुलसी ने **पसाउ, रामू** आदि शब्दों का व्यवहार किया है। ये रूप हिंदी में नहीं आये। हिंदी में **अज्जु** से आज नहीं हुआ और न कज्जु से काज। हिन्दी में **आज** और **काज** मध्य-भारतीय-भाषाओं के **अज्ज** और **कज्ज** रूपों से प्राप्त हुए हैं। इस कारण हमें अपने गम्भीर अध्ययन से इतना तो जानना ही चाहिए कि हिंदी के अपने शब्द अर्द्धमागधी, पाली और नाना प्राकृतों से आये हैं, न कि शब्दों के अंत में उकार जोड़नेवाली अपभ्रंश से। बौद्धों की अपभ्रष्ट-संस्कृत में भी उकार बहुत चलता था। उसमें **पितु-मातु** रूप भी चलते थे। इसलिए अपभ्रंश में **पिउ-माउ** भी हो गया।

हिंदी शब्दों का तीसरा प्रकार **देशी** कहा जाता है। इस **देशी** का अर्थ विचित्र और भ्रम में डालनेवाला है। **देशी** का तो अर्थ देश में पैदा या देश से संबंधित होना चाहिए। हिंदी में **देसी** और **देसावरी** शब्द स्वदेशी और विदेशी माल के लिए चलते हैं। इसलिए कई अध्यापक बताते हैं कि हिंदी के देशी शब्द वे हैं जो इस देश में बहुत पुराने समय से चल रहे हैं, किंतु वे यह नहीं बताते कि ये देशी

शब्द कब से चले, कैसे चले और क्यों चले। उक्त बातें जानना हिंदी के छात्रों के लिए अत्यंत आवश्यक है। वास्तव में ये **देशी** शब्द ऋग्वेद से भी पुराने हैं। उदाहरणार्थ, ऋग्वेद में एक शब्द **वस्त** है और इसका अर्थ है 'बकरा' जो किसी संस्कृत धातु से व्युत्पन्न नहीं होता। इस कारण यह शब्द भारत में बसनेवाली प्राचीन जातियों का, जिन्हें हम **निषाद** अर्थात् 'निकट में बसनेवाले', 'पड़ोसी' कहते थे, उनकी बोली से वैदिक भाषा में आ गया होगा। नियम यह है कि इस समय की जीवित भाषाओं और स्वयं हिंदी में जो जो घटनाएँ संभव हो रही हैं वह आदि काल से सब प्राचीन भाषाओं में भी एक ही प्रकार से घट रही होंगी। इस समय हम हिंदी में देखते हैं कि शब्दों का रूप बदलता जाता है, शब्दों की ध्वनि में परिवर्तन हो रहा है। देखा जा रहा है कि हमारे हिंदी के विद्वान् **वसिष्ठ** को **वसिष्ट**, **गरिष्ठ** को **गरिष्ट**, छ (६) को **छः** और **छह** लिखने लगे हैं। रात-दिन विदेशी शब्द अपनाए जा रहे हैं। हमारी राष्ट्रीय महासभा अमरीकन और अंग्रेजी भाषा की नकल पर कांग्रेस कहलाती है, और तमाशा देखिए कि सारा भारत इस शब्द से अति प्रेम करता है। रेल, पोस्ट, इनकम टैक्स आदि शब्द घर-घर विराजमान हैं। अंग्रेजी के हजारों शब्द हिंदी में घर कर गये हैं। चीनी युद्ध के भय से इस समय जो संकट उपस्थित हो गया है उससे फ्रेंच शब्द **कारतूस**, अंग्रेजी **मशीनगन**, एअरोप्लेन, ऐटमबम आदि तथा योरप के नाना देशों के अनेक शब्द हिंदी हो गये हैं। इसी प्रकार प्राचीन समय में भी द्रविड़, तिब्बती, फारसी, अरबी, आदि विदेशी भाषाओं के शब्द वेद से लेकर अपभ्रंश तक की सभी भाषाओं में घुलमिल गये। ये शब्द, इनकी व्युत्पत्ति न जानने के कारण, देशी कहलाए। अर्थात् ये शब्द संस्कृत आदि में कहीं बाहर से आये। संस्कृत में कभी यह बहस छिड़ी थी कि **कोकिल**, पपीहा आदि संस्कृत नहीं, विदेशी हैं। और हैं भी ये विदेशी। स्वयं ऋग्वेद में **सच मनहिरण्या में मना** शब्द खल्दी भाषा का है जो पाँच, छः हजार वर्ष पहले सुमेरिया नामक देश में बोली जाती थी। **मना** का अर्थ है 'मन'। यह हमारे शरीर के भीतर का मन नहीं है। यह वह 'मन' है जिसका प्रचलन प्रायः दो वर्ष से सरकार ने बंद कर दिया है। यह चालीस सेर का 'मन' है। ऋग्वेद के उक्त सूत्र में पाठक देखेंगे कि इस 'मन' से उस समय हिरण्य या सोना तौला जाता था। इस कारण इसका वजन कुछ तोले होता होगा। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, यह मन विदेशी होने पर भी वैदिक आर्यों ने ले लिया था। हेमचंद्र सूरि के देशी नाम-माला नामक ग्रंथ में द्रविड़, अरबी, तिब्बती आदि शब्द भी देशी माने गये हैं। उदाहरणार्थ उसमें **थुलमो** शब्द है। यह आजकल भी कुमाउँनी भाषा में **थुलमो** ही कहा जाता है, पर यह शब्द भारत का नहीं है। यह विदेशी और तिब्बती भाषा का है। इसका अर्थ है 'ऊन का मोटा और गरम कम्बल'। नैनीताल के गाँधी आश्रम में अथवा गढ़वाल या अलमोड़े में कुछ थुलमे अब भी प्राप्त हो सकते हैं। इसे हेमचंद्र ने देशी नाममाला में **थुलमो दूसे** लिखा है तथा अपनी टीका में बताया है—'थुलमो पटकुटी'। तिब्बती और भोटिया लोग जाड़े के दिनों में जब बाहर यात्रा पर जाते हैं तो अपने पास पाँच-सात थुलमे ले जाते हैं। रास्ते में थुलमे का तम्बू भी बना लेते हैं, नहीं तो खुले में थुलमा ओढ़कर रात को बाहर ही सो जाते हैं और यदि रात को थुलमे के ऊपर बरफ पड़ी तो प्रातःकाल उठते ही थुलमे को जोर से हिलाकर रात की पड़ी हुई बरफ को साफ कर देते हैं। हेमचंद्र के समय कोई गुजराती तीर्थ-यात्री बदरीनाथ की ओर आया होगा, और हेमचंद्र सूरि की ज्ञान-पिपासा देखिए कि उसने उक्त यात्री से उसकी यात्रा का वृत्तान्त पूछकर तिब्बती शब्द **थुल्मे** का पता भी चला लिया। एक और देशी शब्द, जो विदेशी और तिब्बती है तथा देशीनाममाला के भीतर ले लिया गया है, वह है **लामा**। **लामा** तिब्बत के धर्माचार्य और साधारणतया वहाँके फकीरों को कहते हैं। ये लामा अपने मुँह पर नकली चेहरा लगाकर डाकिनियों की भाँति नाच भी करते हैं। जिस गुजराती यात्री ने **लामाओं** को कुमाऊँ में नाचते देखा होगा उसने हेमचंद्र सूरि को बताया होगा कि डाकिनियों की तरह नाचनेवाले कुछ पुरुषों और स्त्रियों को वहाँ **लामा** भी कहते हैं। ये लामा हजारों बरस से जाड़ों में कुमाऊँ में उतरकर आते रहे हैं। इस कारण देशीनाममाला में लामा को डाकिनी बताया गया है। धन्य है यह हेमचंद्र सूरि, जिसने देशी शब्दों की खोज में सब प्रकार के यत्न किये। देशी शब्द वास्तव में वे हैं जो प्राकृत में बाहर से आये हैं और जिनका रूप कभी-कभी संस्कृत होने पर भी अर्थ संस्कृत के संगत नहीं है। एक शब्द को लीजिए—देशी नाममाला के अनुसार गदहे का देशी नाम **काम-किशोर** भी था। शायद किसी हँसोड़ ने दिल्लगी में गदहे का नाम 'काम-किशोर' रख दिया होगा। शब्द तो चल पड़ा, किंतु उस समय के लोग यह न समझे कि गदहे का नाम ऐसा क्यों पड़ गया। इस कारण काम-**किशोर** का 'गदहा' तो रह गया; किंतु कोई विद्वान् संस्कृत भाषा से उसकी संगति न बिठा सका। इन देशी शब्दों में कुछ ऐसे हैं जो वास्तव में वैदिक शब्दों के विकृत रूप हैं और जिन्हें हम प्राकृत कह सकते हैं; किंतु मूल वैदिक शब्द से संगति न बिठा सकने के कारण विद्वान् यह न समझ सके कि इसका मूल किस प्रकार घिसते-घिसते और बिगड़ते-बिगड़ते ऐसा बन गया कि उसके मूल का पता चलाना ही असंभव हो गया। ऐसा एक शब्द **णक्को** है जिसके बारे में हेमचंद्र ने लिखा है:—**घाणे मूके णक्को**। देशी शब्द **णक्क** का अर्थ था—'घ्राण और मूक'। इस णक्क से हमारा नाक शब्द निकला है। यह वैसे ही निकला जैसे **रज्ज** से राज, **णच्च** से नाच आदि। इस **णक्क** का तमाशा देखिए कि यह वैदिक शब्द अनीक का विकृत रूप है। पाठक जानते होंगे कि अनु

का अर्थ 'साँस लेना' है। इस कारण **अनीक** का मूल नाक था जो साँस लेनेवाली इन्द्रिय है। पाठक जानते हैं कि हिंदी में चेहरे के लिए **वदन** शब्द काम में आता किंतु वदन का आख्यात **वद्** 'बोलना' है। तुलसी ने गज-वदन षडानन माता' में **वदन** का अर्थ मुँह किया जो सर्वथा ठीक है, पर हम चंद्र-वदनी आदि में **वदन** का अर्थ सारा चेहरा करते हैं। इतना ही नहीं, फारसी में सारे शरीर को **बदन** कहते हैं। यह शब्द भी भार-इरानी **वद्** 'बोलना' धातु का ही रूप है। बोलनेवाली इन्द्रिय '**मुख**' का अर्थ विस्तृत होकर चेहरे के लिए प्रयुक्त होने लगा और फारसी में तो यह सारे शरीर का पर्याय बन गया। यह अर्थ-विस्तार **अनीक** पर भी लागू हुआ। बाद में अनीक 'साँस लेनेवाली नाक' पर भी अर्थ-विस्तार की क्रिया ने अपना जादू डाला और अनीक का अर्थ संस्कृत में 'चेहरा' हो गया। ऋग्वेद में अनीक का एक अर्थ 'साँस लेता हुआ भी है। हम रोज संध्या में यह सूक्त दुहराते हैं—दृशे विश्वाय **सूर्यम् चित्रम् उदगात् अनीकम्** अर्थात् सारे विश्व को (प्रकाशमय कर) दृष्टि में आने लायक बनाने के लिए सूर्य का चेहरा साँस लेता हुआ उगा है।' पाठक यह भी देखेंगे कि **चेहरा** शब्द अवेस्ता के **चित्थ्र** शब्द से निकला है। उक्त पद में चित्र का अर्थ भी 'चेहरा' ही है। वास्तव में **सूर्यम् चित्रम् उदगात्** का अर्थ है—'चमकता हुआ चेहरा ऊपर को गया है।' हमारे यहाँ चित्र का एक अर्थ 'तसवीर' भी है जिसका अर्थ है 'मनुष्य की कागज, कपड़े या पत्थर में बनी मूर्ति।'

अस्तु। यह **अनीक** शब्द अ खो बैठा और **णिक्क** बन गया। यह णिक्क स्वभावतः **णक्क** में परिणत हो गया। णक्क और णक्को एक ही शब्द के दो रूप हैं। **णक्को** गूँगे को भी कहते हैं। गूँगा होना अच्छा नहीं बुरा ही है। अब दूसरा चक्कर देखिए कि कुमाऊँनी भाषा में बुरे को **नक्को** कहते हैं। यह देखकर आनन्द प्राप्त कीजिए कि शब्दों के रूप और अर्थ किन छोटे कारणों से कहाँ के कहाँ चले जाते हैं, और यह आनन्द भी लीजिए कि **अनीक** शब्द जो शुद्ध वैदिक है किस प्रक्रिया से देशी **णक्क** बन गया। इस प्रकार के देशी शब्द भी अनेक हैं।

हिंदी में अनेक धातुएँ संस्कृत से नहीं आयीं। प्राकृत में ऐसी धातुओं को **धात्वादेश** कहा जाता है। हमारी हिंदी में 'भूलना-चूकना' ऐसी ही धातु हैं। इन धातुओं के विषय में प्राकृत व्याकरणों में यह नहीं बताया गया है कि ये कहाँ से आयी हैं, किंतु ये हिंदी में रात-दिन व्यवहृत होती हैं। इनके विषय में डा० रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' ने रामनारायण लाल द्वारा प्रयाग से प्रकाशित अपने कोश में लिखा है कि **भूलना** संस्कृत **विह्वल** से निकला है। ऐसा ही उन्होंने **चूकना** के बारे में भी लिखा है कि यह संस्कृत च्युत से और प्रा० **चूकि** से निकला है। प्राचीन संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर में भी कुछ इसी प्रकार का था। ये भूलें हमारे प्राकृत-ज्ञान के अभाव के कारण पैदा हो रही हैं क्योंकि प्राकृत में ये धात्वादेश हैं जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं। ये भुल्ल और चुक्क के रूप हैं। हमारे व्याकरणों में इन धातुओं पर भी विचार होना चाहिए जिससे हम जानें कि हिंदी में ये धातु प्राकृत से आयी हैं। संस्कृत में इनका मूल ढूंढ़ना बुद्धिमत्ता नहीं है। और देखिए हमारी हिंदी का **अघाना** क्रिया दे० **अग्घाण** से निकली है जिसका अर्थ है 'तृप्त होना', किंतु हमारे कोषों में इसे संस्कृत मूल से भी निकाला गया है। डा० रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' जी ने इसका मूल संस्कृत रूप **अग्रह** दिया है। **अग्रह** से **अघाना** या **तृप्त** होना कैसे निकला, यह समझ के बाहर की बात है। हिंदी शब्दसागर ने षष्ठ संस्करण में, जो मेरे सामने निकला, इसका मूल रूप प्रा० **अग्घाण** दिया है। वास्तव में **अग्घाण** शब्द प्राकृत नहीं है। वह देशी है, अर्थात् कहीं ऐसे स्रोत से आया है जिसकी संगति किसी प्रकार संस्कृत से नहीं बैठती। यह शब्द केवल हेमचंद्र सूरि के देशीनाममाला में १, १९ में आया है। अतः हमारे व्याकरणों को इस देशी मूल के हिंदी शब्दों का स्पष्टतया वर्णन कर देना चाहिए जिससे हिंदी व्याकरण के विद्यार्थी अपने शब्दों के मूल रूपों को जानें।

मेरे विचार से उक्त हिंदी शब्दों के चारों वर्गों में कुछ संशोधन होना ही चाहिए। भाषा-विज्ञान ने वैदिक और संस्कृत भाषाओं को प्राचीन भारतीय-आर्य-भाषा कहा है जो बड़े बड़े जर्मन विद्वानों ने बहुत सोच-विचार कर निश्चित किया है। वाकर नागल ने प्राचीन भारतीय आर्य भाषा का जो व्याकरण छः खण्डों में लिखा है, उसका नाम रक्खा है Altindinsche Grammatik अर्थात् प्राचीन भारतीय भाषा का व्याकरण। यह वैदिक और संस्कृत का व्याकरण है। इस कारण हमें तत्सम के स्थान पर प्राचीन-भारतीय-आर्य-भाषा नाम रखना चाहिए। तद्भव का कोई विशेष अर्थ नहीं होता। इस कारण योरप के भाषा-विज्ञानी मध्यकाल की सब भारतीय भाषाओं (अर्द्धमागधी, पाली, प्राकृत आदि) को अब मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा कहते हैं। इस कारण तद्भव का यही नाम हमारे व्याकरणों में भी आना चाहिए। देशी-विदेशी शब्द ठीक ही हैं। हमें अब संसार के भाषा-विज्ञानियों के साथ अपने व्याकरण के रूप बदलने चाहिए, क्योंकि बहुत अध्ययन और मनन के बाद जर्मनी के विद्वानों ने ये शब्द स्थिर किये हैं।

तत्सम शब्द प्राचीन या नवीन संस्कृत कोषों में कहीं नहीं पाया जाता है। **तद्भव** शब्द मोनियर विलियम्स ने अपने कोष में दिया है और इसका अर्थ बताया है 'उससे पैदा हुआ।'

'संगच्छध्वम् संवदध्वम् सं वो मनांसि जानताम्।'

द्विजेन्द्रलाल राय

डा० महादेव साहा

इस वर्ष बँगला साहित्य संसार ने प्रसिद्ध बँगला नाटककार श्री द्विजेन्द्रलाल राय की जन्मशती मनायी है। हिंदी संसार श्री द्विजेन्द्रलाल राय से (जिन्हें अधिकतर लोग उनके नाम के अँगरेजी संस्करण 'डी० एल० राय' से जानते हैं) अपरिचित नहीं है। उनके प्रायः सभी नाटकों का हिंदी में अनुवाद हो चुका है, और एक युग था जब उनके 'शाहजहाँ', 'मेवाड़-पतन' आदि नाटक बड़ी रुचि और उत्साह के साथ हिन्दी भाषी क्षेत्रों में खेले जाते थे। राय महोदय की साहित्यिक प्रतिभा बहुमुखी थी। नाटककार होने के अतिरिक्त वे अच्छे कवि और व्यंग्य लेखक भी थे। देश में राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न करने, उच्च कोटि का मनोरंजक एवम् गंभीर साहित्य देकर जनता की साहित्यिक रुचि परिष्कृत करने तथा अनेक लेखकों को अनुप्राणित करने में उन्हें स्पृहणीय सफलता मिली। वे उन साहित्यकारों में थे जिनका प्रभाव अपने प्रान्त तक सीमित न था, किंतु देशव्यापी था। उनकी जन्मशती के वर्ष में 'सरस्वती' इस महान् साहित्यकार के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करती है। इस अंक में हम उनका संक्षिप्त जीवन वृत्तान्त, उनकी आत्मजीवनी और उनके दो लेखों के अनुवाद तथा उनकी मूल रचनाओं एवम् उनके हिन्दी अनुवादों का विवरण प्रकाशित कर रहे हैं। राय महोदय की कृतियाँ भुलाई नहीं जा सकतीं। वे भारतीय साहित्य की अमूल्य निधि हैं। हम आशा करते हैं कि हिन्दी भाषी साहित्य प्रेमी इस महान साहित्यकार के कृतित्व का अध्ययन कर उससे प्रेरणा लेते रहेंगे।

सम्पादक, सरस्वती]

साहित्य, कला, विज्ञान, राजनीति के क्षेत्र में विशिष्ट कर्मियों की शतवार्षिकी के अवसर पर हम उन्हें श्रद्धा से याद करते हैं, उनके कामों से नये सिरे से परिचित होते हैं, नये सिरे से मूल्यांकन करते हैं और कितने ही क्षेत्रों में अपनी समस्याओं को सुलझाने के लिए उनसे सबक और प्रेरणा लेते हैं। कवि, नाट्यकार, देशभक्त और जनहितैषी द्विजेन्द्रलाल राय को शतवार्षिकी के अवसर पर उन्हें याद करना हमारा पुनीत कर्त्तव्य है।

द्विजेन्द्रलाल का जन्म नदिया जिले के कृष्णनगर में १९ जुलाई १८६३ को हुआ था। इनके पिता कार्त्तिकेय-चन्द्र कृष्णनगर के महाराजा के दीवान थे। वे साहित्यिक, संगीतज्ञ और दानी थे। संस्कृत के भी अच्छे ज्ञाता थे और इस भाषा में 'क्षितीश वंशावली' लिख गये हैं। पिता के सारे गुण पुत्र को विरासत में मिले।

बचपन से ही द्विजेन्द्रलाल मेधावी थे। १८७८ में प्रवेशिका और १८८४ में अँगरेजी में कृतित्व के साथ एम० ए० पास किया। इसके बाद सरकारी वजीफा लेकर कृषि-विज्ञान पढ़ने के लिए विलायत गये। उन्होंने कई उपाधि परीक्षाएँ पास कीं, अँगरेजी में बहुत सी कविताएँ लिखीं और उन्हें 'लिरिक्स आव इन्ड' के नाम से प्रकाशित कराया। बँगला में लिखी उनकी कविताएँ ग्रंथाकार में पहिले ही प्रकाशित होने लगी थीं। विदेश में रहते समय ही उनके माता-पिता का देहान्त हो गया।

१८८६ में देश लौटकर छोटे लाट से बातचीत के वक्त उन्होंने जिस स्वाधीनता का परिचय दिया उससे उन्हें अच्छा पद नहीं मिला। २५ दिसम्बर १८८६ को वे डिप्टी मैजिस्ट्रेट बनाए गये और कुछ ही महीनों के बाद सर्वे-सेट्लमेन्ट का काम सीखने के लिए मध्यप्रदेश भेज दिये गये।

इधर समुद्रपार जाने के कारण उनके कट्टर सम्बन्धियों और बिरादरीवालों ने उनका सामाजिक बहिष्कार करना चाहा और बिरादरी से निकाल भी दिया। उन्होंने डटकर इसका मुकाबिला किया, 'एकघरे' (=जाति-च्युत) लिखकर समाज की सारी ग्लानि, मलिनता और दोषराशि पर प्रचंड प्रहार किया। समाज के अत्याचार का कवि पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा।

अप्रैल १८८७ में देश-विख्यात होमियोपैथ डाक्टर प्रतापचन्द्र मजुमदार की कन्या सुरबाला से द्विजेन्द्रलाल का ब्याह हुआ। १ जनवरी १८८८ को वे सहकारी सेट्लमेन्ट अफसर बनाकर श्रीनगर, बनैली, आदि में सर्वे का काम करने के लिए भेजे गये। उन्होंने इस काम में न्याय-निष्ठा, कर्त्तव्यानुराग और सत्यानुगत्य का परिचय दिया। गैरकानूनी तरीके से जमीदारों द्वारा दबायी हुई जमीन किसानों को दिलायी।

१८९० में द्विजेन्द्रलाल बर्दवान स्टेट की मेदिनीपुर जिले के सुजामुटा परगने में सेट्लमेन्ट का काम करने के लिए भेजे गये। नाप में जहाँ बन्दोबस्त की गयी जमीन से ज्यादा जमीन मिलती वहाँ वे लगान नहीं बढ़ाते यद्यपि ऐसा करना आम कायदा बन गया था। बर्दवान के महाराजा ने इसके खिलाफ मुकदमा दायर किया। जज ने लगान बढ़ाने का फैसला दिया। बंगाल के छोटे लाट एलियट ने सरजमीन जाकर जाँच की और द्विजेन्द्रलाल को लगान न बढ़ाने के लिए फटकारा। कानून दिखाकर द्विजेन्द्रलाल ने अपने काम का समर्थन किया। लाट आग-बबूला हो गया। कलकत्ता लौटकर लाट बहादुर ने लगान बढ़ाने के लिए एक हुक्मनामा निकाला और उसे सेट्लमेन्ट मैनुअल में जोड़ दिया।

जज की राय के खिलाफ हाईकोर्ट में अपील हुई और नीचे की अदालत का फैसला रद्द कर के सेट्लमेन्ट अफसर की बात ही कानूनी मानी गयी। हाईकोर्ट ने अपने फैसले में लाट के हुक्मनामे की कड़ी आलोचना की।

हाईकोर्ट के इस ऐतिहासिक फैसले से सारे देश के इस्तमरारी बन्दोबस्तवाले इलाके के करोड़ों किसानों

...वर्षों ६०/६५ सालों तक अरबों रुपये का फायदा ... हमारे देश के किसी और साहित्यकार के किसी ... किसानों को इतने बड़े फायदे पहुँचने की बात ... मालूम नहीं है। सुजामुटा के किसान आज भी उन्हें ... राय' के नाम से याद करते हैं।

...द्विजेन्द्रलाल को इसकी कीमत चुकानी पड़ी। उनकी ... रोक दी गयी। वे सारे बंगाल के आबकारी इन्स- ... नियुक्त हुए और सालों दर-दर भटकते फिरे। ... ढाका, कलकत्ता, खुलना, मुर्शिदाबाद के बाद ... में अस्थायी सब-डिविजनल अफसर बनाये गये। ... बीच १९०३ में सुरबाला चल बसी थी। कलकत्ते ... ने एक मकान बना लिया था और बीच-बीच में ... आते-जाते रहते थे। बंगभंग के बाद शुरू होनेवाले ... आन्दोलन में भी वे भाग लेते रहते थे। आन्दो- ... को बल देने के लिए उन्होंने बहुतेरी जोशीली कवि- ... ताएँ लिखीं।

...गया में द्विजेन्द्रलाल से जिला मैजिस्ट्रेट लोकेन ... से गहरी दोस्ती हो गयी। एक दिन 'वंगभाषार ... नामक पुस्तक में रवि बाबू के स्वलिखित परिचय ... दोनों मित्रों में बातें हुईं। रवि बाबू का यह दावा कि ... ईश्वरीय प्रेरणा से लिखते हैं, द्विजेन्द्रलाल को नहीं रुचा। ... बारे में लिखे पत्र का उत्तर भी रविबाबू ने कुछ ... अशोभनीय भाषा में दिया। द्विजेन्द्रलाल और रविबाबू ... वालों में जो विवाद हुआ उसमें औचित्य उनके पक्ष ... होने पर भी उन्हें बड़ी कीमत चुकानी पड़ी।

द्विजेन्द्रलाल बड़े दोस्तनिवाज थे। उनके यहाँ ... कलाकारों और साहित्यरसिकों की भीड़ लगी रहती ... वे सब का हृदय से स्वागत और उनकी खातिर- ... के लिए मुक्तहस्त से खर्च करते थे। उनकी 'पूर्णिमा- ... गोष्ठी हर पूर्णिमा को होती थी। मृत्यु के उप- ... समाप्त हो गयी थी। अब फिर चालू हुई है।

...१९०६-१० में गया, जहानाबाद और गया होते ... १९१० में उनका तबादला कलकत्ते के अलीपुर ... हुआ। अन्यत्र काम करते समय उन्होंने कभी अपनी ... को विश्राम नहीं लेने दिया। अब कलकत्ता आ ... कर और जमकर साहित्य-सृजन करने लगे।

...१९१२ में द्विजेन्द्रलाल सख्त बीमार पड़े। नौकरी ... भर की छुट्टी ली। लेकिन बीमारी के और बढ़ ... से २२ मार्च १९१३ को नौकरी से अलग हो गये ... एक अच्छा मासिक पत्र निकालने की योजना बनाने ... उनके 'भारतवर्ष' को मशहूर प्रकाशक गुरुदास ... चट्टोपाध्याय निकालने के लिए तैयार हो गये। पहिले ... का काम भी कुछ हुआ। १७ मई १९१३ को प्रति- ... की मौत के बाद ही इसका प्रकाशन आरंभ हुआ। ... स्मृति में यह आज भी प्रकाशित हो रहा है।

विलायत जाने के पहिले ही द्विजेन्द्रलाल बँगला पत्रिकाओं में लेख और कविताएँ लिखते थे। उनकी कविताओं और गानों का एक संग्रह भी निकल चुका था। विलायत में उन्होंने अँगरेजी साहित्य और विशेषकर नाटकों और नाट्यमंच का गंभीर अध्ययन किया। देश लौटकर अपनी भाषा के नाटकों का अध्ययन किया, अभिनय देखा। छन्दबद्ध कथोपकथन और रुचिहीन गानें उन्हें नहीं भाये। विलायत में अर्जित नाटक सम्बन्धी ज्ञान का प्रयोग शुरू हुआ। देश की पराधीनता, सामाजिक संकीर्णता और मानवप्रेम उनके विषय बने। उनके ऐतिहासिक-पौराणिक नाटकों में भी यही बात झलकती है।

देशप्रेम और हास्यरस के गानों के लिए द्विजेन्द्रलाल कुछ कम मशहूर नहीं हैं। नाट्यकार और गीतकार के रूप में अपने जीवन-काल में ही उन्हें जो ख्याति और प्रतिष्ठा मिली, वह हमारे देश में अधिक नहीं देखी गयी है। उन्होंने अपने सभी नाटकों को अभिनीत होते देखा। आज भी उनके नाटकों की जनप्रियता नहीं घटी है। 'सीता' नाटक विदेशों में भी सफलता के साथ खेला गया है।

नाटक साहित्य की शैली में उन्होंने जो मौलिक परिवर्त्तन किये उन्हें परवर्त्ती नाट्यकारों ने स्वीकार कर लिया है। बँगला के अलावा और भाषाओं के नाटकों पर भी उनका प्रभाव दिखायी पड़ता है।

द्विजेन्द्रलाल जबर्दस्त व्यक्तित्व सम्पन्न थे। झूठ, मक्कारी से वे नफरत करते थे। सरकारी नौकर होते हुए भी सरकारी जुल्म के सामने वे कभी नहीं झुके। उन्होंने सदा ही उसका डटकर विरोध किया और इसके लिए कीमत चुकायी। आज के लेखक उनके जीवन से सबक ले सकते हैं।

पिछली सदी से ही हिन्दी के नाटकों पर बँगला के नाटकों का प्रभाव पड़ता आ रहा है। पाठकों की सुविधा के लिए उनके हिन्दी में अनूदित नाटकों की सूची हमने अन्यत्र दे दी है। इनकी जनप्रियता का पता इसी बात से चल जायगा कि एक-एक नाटक कई जगहों से कई बार छपा है और छप रहा है।

हिन्दी नाटकों पर लिखनेवालों ने द्विजेन्द्रलाल की दिल खोलकर प्रशंसा की है और उनका ऋण स्वीकार किया है। चन्द्रराज भंडारी ने अपना 'सिद्धार्थ' नाटक इन्हें समर्पित किया है। 'महात्मा ईसा' के लेखक बेचन शर्मा और 'अंजना' के लेखक सुदर्शन ने अपने नाटकों को द्विजेन्द्रलाल के आदर्श को सामने रखकर लिखा था। शिवरामदास गुप्त तो इन्हें आदर्श मानते थे।

साम्राज्यवाद विरोधी, देशभक्त, मानव-प्रेमी, जातीय एकता, आशावाद और नर-नारी की समानता के हामी कवि और नाट्यकार को शतवार्षिकी के मौके पर उन्हें याद करना हमारा कर्त्तव्य है।

आत्म-कथा

(बँगला से अनूदित)

श्री द्विजेन्द्रलाल राय



द्विजेन्द्रलाल राय

सन् १८६३ के जुलाई महीने में मैं नदिया जिले के अन्तर्गत कृष्णनगर में जन्मा। नौ वर्ष की अवस्था में मेदा, तिल्ली आदि की बीमारियों के कारण हवा-पानी बदलने के लिए मुझे शान्तिपुर भेजा गया। साथ में थीं समव्याधिग्रस्त मेरी दिवंगत सबसे छोटी बहन। शान्तिपुर के डाक्टरों ने हमारे ऊपर बहुतेरी दवाइयों के गुणागुण की परीक्षा करके अन्त में हमारे जीवन की आशा छोड़ दी और मेरे घरवालों को उचित व्यवस्था की अनुमति देकर विषयान्तर में मनोनिवेश करने के लिए छुट्टी ली। मेरे घरवाले कृपा करके मौत के पहिले हमें अपनी रुचि का भोजन करने देने लगे। इस व्यवस्था से मेरी सबसे छोटी बहन खोआ दही और मैं खोआ दूध काफी खाने-पीने लगा। नतीजा यह हुआ कि हमदोनों आश्चर्यजनक शीघ्रता से अच्छे हो गये और उपर्युक्त डाक्टरों के लिए अत्यधिक अचरज के कारण बन गये।

इसी समय (शायद १८७३) में एक दिन बड़े जोरों का पानी बरसा। इससे शान्तिपुर के जिस मकान में हम थे वह गिर पड़ा। हमने उस आधी रात को घर गिरने के कुछ पहिले ही निकटवाले एक डाकखाने में शरण ली। मुझे एक नौकर की गोद में बैठ एक करैत सर्प का पड़ोसी बन बरामदे में रखी एक पालकी में विश्राम करने का सुअवसर मिला। एक ही रात में दो-दो संकट। फिर भी इन दोनों संकटों से छुटकारा पा अगले दिन सवेरे मकान के अन्दर गया और अगले दिन सवेरे कृष्णनगर लौट गया।

मेरे विद्याभ्यास का वृत्तान्त इस प्रकार है :

सन् १८७८ में मैंने कृष्णनगर कालेजियेट स्कूल से एन्ट्रैंस परीक्षा और १८८० में एफ० ए० परीक्षा पास की। १८८२ में हुगली कालेज से बी० ए० और १८८४ के प्रारंभ में प्रेसिडेन्सी कालेज से एम० ए० की परीक्षा पास की। इसके कुछ ही दिनों बाद अर्थात् उसी साल के अप्रैल में मैं कृषि की शिक्षा के लिए स्टेट स्कालरशिप पाकर विलायत गया। वहाँ एम० आर० ए० एम० ई० और एम० आर० ए० सी० डिप्लोमा प्राप्त कर २३ दिसम्बर १८८७ को देश लौट आया।

विलायत से लौटते ही सेट्लमेन्ट का काम सीखने के लिए बंगाल सरकार ने मुझे मध्यप्रदेश भेजा। वहाँसे लौटकर वही काम सीखने के लिए मैं फिर मुजफ्फरपुर भेजा गया। ये दोनों काम १८८७ के अन्दर ही खतम हुए। १८८८ में मैं श्रीनगर और बनैली इस्टेट का सहकारी सेट्लमेन्ट अफसर होकर भागलपुर जिले के धपार परगने में गया। वहाँसे मुंगेर और वहाँसे पूर्णिया में उपर्युक्त काम समाप्त कर १८९० में मैं बर्दवान स्टेट के सुजाभुटा परगने का सेट्लमेन्ट अफसर बनाया गया। यह काम तीन सालों तक किया। यहाँ सेट्लमेन्ट के बारे में एक घटना हुई जिससे बंगाल का एक उपकार हुआ। मेरे पहिले के सेट्लमेन्ट अफसर सर्वे में अधिक जमीन पाने पर मालगुजारी बढ़ा देते थे। सुजाभुटा के सर्वे में मैंने यह मत प्रकट किया कि इस तरह मालगुजारी बढ़ाना अन्याय और कानून के खिलाफ है। प्रजा से जब पहिले जमीन का बन्दोबस्त किया गया था तब जमीन नाप कर नहीं दी गयी थी। अन्दाज से जमीन का परिमाण हस्तबुद में लिखा गया था। यहाँ तक कि यह भी होना संभव है कि वही जमीन अब सर्वे में अधिक लग रही है। इसके लिए उससे अधिक मालगुजारी की माँग अनुचित है। इसलिए राजा अगर अधिक जमीन के लिए अधिक मालगुजारी की माँग करता है तो उसे दिखाना होगा कि प्रजा ने कौन-सी अधिक जमीन पर कब्जा किया है। इसके अलावा नहरों के बन्द हो जाने से जमीन की सालाना पैदावार की कमी के लिए मैंने प्रजा की मालगुजारी घटा दी। इस राय के खिलाफ जजी अदालत में अपील की गयी और बड़े साहब ने मेरी राय उलटकर प्रजा की मालगुजारी बढ़ा दी। उन दिनों सर चार्ल्स एलियट बंगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर थे। यह विभ्राट देख इसके बारे में जाँच करने वे खुद मेदिनीपुर आये और कागजात देख मुझे काफी फटकारा। मैंने अपने मत का समर्थन करते हुए बंगाल के सेट्लमेन्ट कानून के बारे में उनकी अनभिज्ञता समझा दी।

लाट ने गुस्सा होकर मेरा पहिले का इतिहास जानना और उसे जान कलकत्ता लौट सेट्लमेन्ट अफसरों के बारे में एक लम्बा मन्तव्य प्रकाशित किया उसे उसी दम कानून में जोड़ दिया, और कुछ दिनों मेरी पदोन्नति बन्द कर दी। इसी बीच जज की राय खिलाफ हाईकोर्ट में अपील हुई। हाईकोर्ट ने जज की उलटकर मेरी राय से सहमति प्रकट की और हाई- की उसी रूलिंग के अनुसार अब तक बंगाल में सेट्ल- का काम चल रहा है। अब सर्वे में अधिक जमीन पर प्रजा के असहमत होने पर मालगुजारी नहीं जाती है। इसी बीच हाईकोर्ट की एक दूसरी अपील चार्ल्स का उपर्युक्त मन्तव्य भी बड़ी बेरहमी से चित हुआ। इससे वे मन्तव्यों को सेट्लमेन्ट मैनुअल निकाल देने के लिए बाध्य हुए।

ऊपर संभवतः मैंने कुछ अहम् प्रकट किया है। लेकिन भी इस बात को कहने का प्रबल लोभ अतिक्रम नहीं सका। मैं सचमुच ही इसे श्लाघा की बात मानता हूँ मैंने अपनी छोटी सी क्षमता से अपने पैरों में कुल्हाड़ी , फिर भी सारे बंगाल का एक उपकार किया है—वाले किसानों को अन्यायपूर्ण मालगुजारी की बढ़ती बचाया है। भविष्य में ऐसे और काम कर सकूँगा, या नहीं।

इस सेट्लमेन्ट के बाद मुझे सेट्लमेन्ट के काम से छुटकारा मिला और डिप्टी मैजिस्ट्रेट बनाकर दिनाजपुर भेजा गया। और १८९४ में वहाँसे बंगाल के आबकारी विभाग का प्रथम इन्सपेक्टर बनाया गया। वही काम मैं आज तक कर रहा हूँ।

शैशव में ही स्वजनों में मेधावी होने की मेरी विशेष ख्याति थी। वे मेरे भविष्य के बारे में बहुतेरी आशाएँ करते थे उन्हींके उत्साह से पन्द्रह साल की अवस्था में मेहेरपुर (जिला नदिया) स्कूल में तीन महीने में तीन भाषण दिये (दो बँगला में और एक संस्कृत में), और कृष्णनगर लौटकर ऐंग्लो वर्नाकुलर स्कूल के हाल में बँगला में तीन घंटे भाषण दिया। इसमें कृष्णनगर के मशहूर वकील श्री तारापद वन्द्योपाध्याय सभापति थे। आगे चलकर अपने कालेज के क्लब में मैं ही प्रधान छात्र-वक्ता था। इसमें एक बार डाक्टर वाट्स ने सभापति का आसन ग्रहण किया था। हुगली कालेज में पहुँचने पर कालेज के विद्यार्थियों के क्लब का मैं बहुत दिनों तक सह-सभापति रहा। बचपन से ही संगीत के प्रति मेरी विशेष रुचि थी। मेरे पिता सुविख्यात गायक थे। तड़के उठकर भैरव असावरी आदि राग अलापते थे। मैं ओट में सुनता था। शैशव से ही मैं गीत और कविता लिखता था। आर्यगाथा में प्रकाशित नक्षत्र-विषयक गीत मैंने बारह साल की अवस्था में लिखा था। १८८२ में मैंने आर्यगाथा का प्रथम भाग लिखा। वह उन दिनों की सभी सामयिक पत्रिकाओं में बहु-प्रशंसित हुई। आगे १८८३ में विलायत के प्रवास के समय मैंने Lyrics of Ind नामक एक अँगरेजी कविता की किताब लिखी। दो-एक मशहूर विलायती पत्रिकाओं में (जैसे Westminister Review, Scotsman इत्यादि) उसकी अत्यधिक प्रशंसा हुई, और कवि सर एडविन आर्नल्ड ने अतिरिक्त प्रशंसा करते हुए मुझे एक पत्र लिखा। विलायत से लौटकर १८८७ में मैंने 'एकघरे' (बिरादरी से बाहर) नामक एक सामाजिक पत्र छपवाया और उसके लिए शत्रु-मित्र करीब सभी की गालियाँ खाईं। १८९३ में आर्य-गाथा का दूसरा भाग प्रकाशित हुआ। उसकी विशेष प्रशंसा या निन्दा नहीं हुई। केवल 'साधना' में 'आर्यगाथा' शीर्षक एक लम्बी कवोष्ण आलोचना और भारती में 'आर्य गाथार गुटिकतक गान' (आर्यगाथा के कुछ गाने) नामक प्रशंसा से भरा एक लेख निकला। १८९५ में मेरा 'कल्कि अवतार' नामक प्रहसन निकला। 'इंगलिशमैन' (एक अँगरेजी दैनिक) में उस पर एक दिन एक 'पैरा', और बाद में फिर एक दिन एक 'लीडर' (अग्रलेख) में उसकी प्रशंसा निकली और वंगवासी में एक मीठी-कड़वी आलोचना प्रकाशित हुई थी।

विलायत जाने के पहिले आर्यदर्शन, नव्य भारत आदि पत्र पत्रिकाओं में लिखता था। विलायत रहते समय अपने माननीय भाई श्री ज्ञानेन्द्रलाल राय द्वारा सम्पादित 'पताका' नामक पत्रिका में नियमित रूप से विलायत की चिट्ठी लिखता था। विलायत से लौटकर मैं अकसर 'भारती', 'साहित्य' आदि पत्रिकाओं में लिखता रहा। वे रचनाएँ अभी तक पुस्तकाकार नहीं प्रकाशित हुई हैं।

अपने पारिवारिक सम्बन्धों के विषय में मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि मेरे पिता का नाम स्वर्गीय कार्त्तिकेय-चन्द्र राय, माता का नाम प्रसन्नमयी देवी है। पिता कृष्ण-नगर के महाराज के दीवान थे और माता शान्तिपुर के अद्वैत ठाकुर के वंशधर श्री कालाचाँद गोस्वामी की बहन थीं। माता-पिता दोनों मेरे विलायत-प्रवास के समय सात पुत्र और एक कन्या छोड़कर परलोक सिधारे। सात भाइयों में मैं सबसे छोटा हूँ। मेरी छोटी बहन १८९६ में न्यूमोनिया से मरी। १८८७ में मैंने कलकत्ते के होमिओ-पैथी के डाक्टर श्री प्रतापचन्द्र मजुमदार की बड़ी बटी श्रीमती सुरबाला देवी का पाणिग्रहण किया। ('जन्म-भूमि' कार्त्तिक १३०४ वंगाब्द=१८९७ ई०)।



मेरे नाट्य जीवन का आरम्भ

(बँगला से अनुवादित)

श्री द्विजेन्द्रलाल राय

बचपन से ही कविता और नाटक पढ़ने में मेरी रुचि थी। इतनी अधिक थी कि पढ़ते समय बायरन के मैनफ्रेड (Manfred) और चाइल्ड हैरल्ड (Childe Harold) के दो सर्ग, और मेघदूत तथा उत्तररामचरित के काव्यांश का कुछ हिस्सा कंठस्थ किया था। विलायत जाकर निरन्तर शेली पढ़ता था और वहाँसे लौटकर लगातार वर्ड्सवर्थ और शेक्सपीयर बार-बार पढ़ता था; और शेषोक्त कवि के नाटकों के जो काव्यांश श्रेष्ठ लगते थे, उन्हें याद करता था।

विलायत जाने के पहिले मैंने केवल 'हेमलता'[1] और नीलदर्पण नाटक का अभिनय देखा था। इसके अलावा कृष्णनगर के शौकिया दल द्वारा अभिनीत 'सधवार एकादशी'[2] और 'ग्रंथकार' नामक एक प्रहसन का अभिनय देखा था और ऐडिसन का केटो (Addison's Cato) तथा शेक्सपीयर का 'जुलियस सीजर' का आंशिक अभिनय भी देखा था। उसी समय से अभिनय की ओर मैं आकर्षित हुआ था। विलायत जाकर बहुतेरे नाट्य-मंचों पर बहुत से नाटक देखे। और धीरे-धीरे अभिनय मेरे लिए प्रियतर हो उठा।

विलायत से लौटकर मैंने कलकत्ते के नाट्य-मंचों पर अभिनय देखे और उसी समय वंगभाषा में लिखे नाटकों से मेरा परिचय हुआ।

बारह साल की उम्र से मैं गाने लिखता था। बारह से सत्रह साल की अवस्था में लिखे मेरे गाने 'आर्यगाथा' में पुस्तकाकार छपे। तब मैं कविताएँ भी लिखता था। लेकिन तब मेरी कोई कविता नहीं छपी। केवल 'देवघरे सन्ध्या' नामक मेरी एक कविता 'नव्य भारत' में प्रकाशित हुई थी। विलायत जाकर अँगरेजी में कविता लिखने लगा और उन्हें इकट्ठा करके सर एडविन आर्नल्ड को समर्पित करने की अनुमति माँगी और साथ ही कविताओं की पांडुलिपि भी उन्हें भेज दी। कविताओं को प्रकाशित कराने के बारे में उन्होंने मुझे उत्साह-भरा पत्र लिखा और समर्पण की अनुमति भी साग्रह प्रदान की। तभी मैंने कविताओं को 'लिरिक्स आव इन्ड' के नाम से प्रकाशित कराया।

विलायत से लौटकर हास्य रसात्मक कविताओं की कमी पूरी करने के इरादे से Ingoldsby Legend के अनुकरण पर कुछ हास्यरसात्मक कविताएँ बँगला में लिखकर 'आषाढ़े' नाम से प्रकाशित करायीं। इन दिनों मैं अँगरेजी गाने बहुत गाता था। अँगरेजी गाने अकसर बंगाली श्रोताओं को अच्छे नहीं लगते थे। तब अँगरेजी गाने गाना बन्द कर बँगला में गाने लिखकर गाना शुरू किया। व्याह के बाद प्रेम सम्बन्धी बहुत से गाने लिखकर 'आर्यगाथा द्वितीय भाग' के नाम से छपवाये और हँसी के कुछ गाने भी लिखे। हँसी के ये गाने अविलम्ब बहुतों को प्रिय हो गये और काम के सिलसिले में मैं किसी शहर में जाता तो मुझे ये गाने गाकर सुनाने पड़ते थे। उनका संग्रह ग्रंथ के रूप में बहुत दिनों बाद छपा।

मैंने ऊपर लिखी बातों का उल्लेख इसलिए किया है कि इनमें से प्रत्येक बात ने मेरे नाटक लिखने की प्रवृत्ति में सहायता की थी।

पहिले पहल प्रहसनों का अभिनय देखकर उनकी स्वाभाविकता और सौन्दर्य पर मोहित होता था अवश्य लेकिन उनकी अश्लीलता और कुरुचि देखकर व्यथित भी होता था। इसी समय एकमात्र 'कल्किअवतार' प्रहसन गद्य-पद्य में लिखकर प्रकाशित कराया। बाद में अपने पहिले लिखे कुछ हँसी के गानों को एकत्रकर 'विरह' नामक नाटक लिखा और आगे स्टार थियेटर में उसका अभिनय हुआ। इसके बाद उसी तरह "त्र्यहस्पर्श" लिखा और वह भी स्टार में अभिनीत हुआ।

साथ ही मेरी गंभीर रचनाएँ भी चल रही थीं। मेरा लिखा 'सीता' नाट्य-काव्य 'नवप्रभा' में प्रकाशित हुआ। बाद में 'पाषाणी' नाटक प्रकाशित कराया। इसके बाद 'ताराबाई' छपा।

जिस कारण से मैं प्रहसन लिखने में लगा था उसीके अनुरूप कारण से मैं नाटक लिखने में जुटा। बँगला भाषा में नाट्य-साहित्य में स्वाभाविकता और कथानक के निर्माण में असाधारण निपुणता देखता था, लेकिन उसमें कवित्व का अभाव खटकता था। अपनी काव्यशक्ति (जो कुछ भी थी) मैं अपने नाटकों में प्रगट करने में लग गया।

१—हरलाल राय का यह नाटक १५ अगस्त १८७३ को प्रकाशित हुआ था। पहिले पहल इसका अभिनय १३ दिसम्बर १८७३ को नैशनल थियेटर में हुआ था। —अनुवादक।

२—दीनबन्धु मित्र द्वारा रचित।

पहिले शेक्सपीयर के अनुकरण पर Blank verse (अमित्राक्षर पद्य) में नाटक लिखना शुरू किया। 'ताराबाई' समाप्त होने पर स्वर्गीय कवि नवीनचन्द्र सेन को उनके देखने के लिए एक प्रति भेजी। पढ़कर उन्होंने यह मत व्यक्त किया कि यह नये किस्म का अमित्राक्षर है—माईकेल की माधुरी इसमें नहीं है—यह अमित्राक्षर नहीं चलेगा। साथ ही स्वर्गीय माईकेल मधुसूदन की भविष्यवाणी पूरी हुई कि अमित्राक्षर में नाटक अब चल सकता है। भाषण अमित्राक्षर में चल सकता है लेकिन कथोपकथन में संलाप को गद्य की तरह होना ही होगा। शेक्सपीयर का अमित्राक्षर मिल्टन के अमित्राक्षर से पृथक है। Of Man's disobedience इत्यादि में एक झंकार है लेकिन To be or not to be that is the question इसे तो गद्य ही कहना चाहिए। फिर इसे कविता कहने की चेष्टा क्यों? गद्य में लिखने से कौन क्षति होती? किन्तु इसके बाद ही Who would bear the whips and scorns of time For in that sleep of death what dreams may come है बाकायदा कविता है। देखा कि शेक्सपीयर में कुछ गद्य है, कुछ पद्य; फिर भी दोनों मेल खा रहे हैं क्योंकि अंग्रेजी भाषा में वैसी हालत आ गयी थी। लेकिन बँगला में "तुमि यदि आस सखि, आमि सेथा जावो" इसके बाद "कोन नीरद श्याम निकुञ्जविहारी" ऐसी रचना असहनीय रूप से बेमेल लगेगी। लेकिन गद्य में एक साथ दोनों चलती हैं। गद्य आज उस हालत में पहुँच गया है।

कार्लाइल के मतानुसार साधारण से गंभीरतम ऐसा कोई भाव नहीं है जो पद्य की अपेक्षा गद्य में सुन्दरतर ढंग से प्रगट नहीं किया जा सकता है। पद्य का झंकार गद्य में दिया जा सकता है, लेकिन गद्य की स्वाधीनता और स्वच्छन्द गति पद्य में नहीं है।

बंकिमबाबू का गद्य अनेक स्थलों पर पद्य है। शिलर, लेसिंग, इबसन, मोलियेर इत्यादि के पद्य-नाटचकारों के बहुतेरे महा-नाटक गद्य में लिखे गए हैं, लेकिन इससे उनकी महिमा घटी नहीं है। शिलर के गद्य की भाषा और रूपक एवम् अनुप्रास पद्य का प्रपितामह है।

फिर नाटक अभिनय करने की चीज है। अभिनय में घटनाएँ जितनी प्रत्यक्षवत् हों उतना ही अच्छा। इसीलिए कथन जितने स्वाभाविक हों, (हाँ, भाषा की मर्यादा की रक्षा करते हुए) उतना ही श्रेयस्कर है। लोग बातचीत पद्य में नहीं करते हैं, गद्य में करते हैं। अतएव पद्य में नाटक लिखने पर कथन अस्वाभाविक लगेंगे ही।

इन बातों को सोचकर मैंने तब से नाटकों को गद्य में ही लिखना तय किया। इसीलिए मैंने अपने ताराबाई के बादवाले नाटकों को (राणा प्रताप, दुर्गादास, नूरजहाँ, मेवाड़पतन और शाहजहाँ) गद्य में ही लिखा। लेकिन कविता के प्रति मेरे अन्दर अधिक आसक्ति होने के कारण मैं गद्य की भाषा को पद्य के आसन पर बैठाने के प्रलोभन को नहीं छोड़ सका। मगर जहाँ मुझे ऐसा लगा कि संस्कृत शब्दों की अपेक्षा प्रचलित शब्द अधिक मजबूती से भावों को प्रगट करते हैं वहाँ प्रचलित शब्दों का ही व्यवहार किया है।

जब ऊपरवाले गद्य नाटक लिख रहा था, तभी मैंने एक आपेरा (सोराब-रुस्ताम=सोहराब रुस्तम) गद्य-पद्य में लिखा क्योंकि 'आपेरा' में कथोपकथन का स्वाभाविक होने के बदले श्रुतिमधुर करना ही श्रेयस्कर समझा था। वह आपेरा अनेक स्थलों पर शैली के अनुकरण पर लिखा था। वस्तुतः वह कविता के प्रति मेरी अत्यधिक आसक्ति का परिणाम है। बीच-बीच में कविता लिखने का लोभ नहीं रोक सका।

(नाटच-मंदिर, श्रावण १३१७, वंगाब्द=१९१०)

(संदर्भ—हिंदी सम्पादकीय, हिंदी और उत्तरप्रदेश की नौकरशाही पृष्ठ ३१०)

Minute by Lieutenant Colonel R. H. Keatinge V. C., C. S. I. officiating Chief Commissioner of the Central Provinces on the subject of court languages in the Central Provinces—Dated Nagpur, the 30th September, 1871.

"Previous to the year 1835 the Persian language and character were in use in all the courts and offices of the Sagar and Narbada Territories for all official purposes. The Commissioner of that time ordered its gradual abolition and the substitution of Hindustani in the Devanagari or Hindi character. No difficulty seems to have been experienced in carrying out the measures, as long as the Commissioner was firm in urging the use of Devanagari from principle, but the Sagar and Narbada territories were recruited by both European and native officers from the North-Western Provinces, to most of whom the change was hateful, and to all a real difficulty. The question was soon reopened on the ground of mere official convenience.

At last, in October 1843, the Government of India directed a mixed system to be used, Devanagari being confined to processes issued in the Mofussil, as it was acknowledged that Urdu in the Persian character could not be understood by the people.

Those only who have served in a country where two languages meet can understand the enormous importance the native bureaucrats assign to maintaining the use of the Persian character; much of it is genuine feeling, but some, it must be feared, arises from a corrupt experience of the enormous advantage they derive from being sole interpreters between the governing class and the people.

काव्य में नीति

(बँगला से अनूदित)

श्री द्विजेन्द्रलाल राय

भ्रष्टाचार काव्य में संक्रामक हो उठा है। इसे उखाड़ फेंकना होगा। जो लोग धर्म और नीति की ओर हैं, वे मेरे सहाय हों।

कविता लिखने को कहने पर नये कविगण प्रेम पर ही लिखने बैठ जाते हैं। उपन्यास, नाटक भी प्रायः ऐसे ही होते हैं। मानों संसार में माता नहीं है, भाई नहीं है, मित्र नहीं हैं। सभी नायक और नायिका हैं। बंकिम बाबू के अनुकरण पर एक नायक और दो नायिकाएँ हों तो अच्छा ही होता है। नायिकाएँ और अधिक हों तो कोई क्षति नहीं होती। फिर भी अगर कविगण दाम्पत्य प्रेम को लेकर लिखते तो उसे बरदाश्त किया जा सकता था। इन्हें चाहिए—या तो विलायती कोर्टशिप, नहीं तो टप्पा का प्रेम। नहीं तो प्रेम नहीं होता। अविवाहित पुरुष और नारी होनी चाहिए। इस वक्त हमारे देश में अविवाहित पुरुष और नारी का प्रेम अवैध प्रेम है क्योंकि समाज में बारह साल से अधिक उम्र की भले घर की अनूढ़ा कन्या एक तरह से मिलती ही नहीं है। और बारह साल के पहिले प्रेम नहीं होता है। परिणाम होता है, ऐसा प्रेम या तो अँगरेजों का (अतएव हमारे देश में अस्वाभाविक) नहीं तो भ्रष्टाचारपूर्ण होता है। साहित्य के क्षेत्र से दोनों का उन्मूलन आवश्यक है।

अँगरेजी में भी कोर्टशिप की दशा के बहुतेरे गाने हैं सही, लेकिन 'दाम्पत्य-प्रेम' के गानों की भी कमी नहीं है। पर हमारे देश में जहाँ 'दाम्पत्य-प्रेम' के सिवा दूसरे प्रकार का विशुद्ध प्रेम नहीं है, वहाँ 'दाम्पत्य-प्रेम' के गाने नहीं के बराबर हैं। हाय भाग्य!

उदाहरण देने की आवश्यकता है? रवीन्द्रबाबू के प्रेम के गानों को लीजिए। "से आसे धीरे", "से केन चुरि करे चाय", "दु जने देखा हले" इत्यादि बहुतेरे मशहूर गाने हैं—सभी अँगरेजी कोर्टशिप के गाने हैं। उनका "तुमि जेओ ना एखनइ", "केन यामिनी ना जेते जागाले ना" इत्यादि गाने लम्पट या अभिसारिका के गाने हैं। उनके जिन थोड़े से गानों को "दाम्पत्य-प्रेम" का गाना कहा जा सकता है, वे उतने मशहूर नहीं हुए हैं।

आश्चर्य की बात यह है कि इस तरह के गानों में मौलिकता भी नहीं है। सेज बिछाना, माला गूँथना, दीप जलाना, ये बातें वैष्णव कवियों की कविता से ली गयी हैं। जगह-जगह पंक्ति की पंक्ति इस प्रकार से ली गयी है। मगर रविबाबू से इन वैष्णव कवियों का अन्तर यह है कि रवि बाबू की कविता में वैष्णव कवियों की भक्ति नहीं है, लालसा काफी मात्रा में है।

रवि बाबू की खंड कविताओं में भी यही पद्धति दिखायी देती है। कहा जा सकता है कि नायिका के सिवा नारी जाति की अन्य प्रकार की कल्पना उन्होंने नहीं के बराबर की है। नारी जाति को देखकर इस कवि को मातृत्व स्वसृत्व की बात याद नहीं आती है। नारी जाति को देखकर उन्हें सिर्फ "भरमे गुमरि मरि छे कामना कत" की बात ही याद आती है।

दोष पाठकों और श्रोताओं का ही अधिक है, मानता हूँ। उन्हें, विशेष करके रवीन्द्र बाबू के इन भक्तों को यह लालसा, यह संभोग जितना मधुर लगता है, नारी की सेवा, करुणा, सहिष्णुता उतनी मधुर नहीं लगती है। लेकिन बड़े कवियों के लिए यह उचित नहीं है कि पाठक जो चाहते हैं, उन्हें वही दिया जाय। उन्हें चाहिए—पाठक तैयार करना।

इसके बारे में एक बड़ा उदाहरण दिये बिना काम नहीं चलता।

रवीन्द्रबाबू के 'चित्रांगदा' काव्य को लीजिए। रवीन्द्रबाबू के भक्तों को यह बहुत प्रिय है इसीलिए—इसीलिए चित्रांगदा को ही लेता हूँ।

महाभारत में वर्णित चित्रांगदा की कहानी संक्षेप में इस प्रकार है:—

...४

...र्जुन मणिपुर राज्य में विचरती हुई चित्रांगदा ...लेकर मुग्ध हुए, और चित्रांगदा के पिता की अनु-...लेकर उन्होंने उससे विवाह कर लिया।

...यह कहानी रवीन्द्र बाबू को बहुत गद्यमय लगी; ...ा के पिता की अनुमति लेकर कन्या का पाणिग्रहण ...नहीं करते हैं। रवीन्द्रबाबू अगर ऐसा करते हैं तो ...हें व्यासदेव के स्तर पर नीचे उतर आना पड़ेगा। ...न्द्रबाबू ने कोर्टशिप की अवतारणा की। अस्वाभाविक ...तो क्या? नया तो हुआ। "डुबबे ना हाय डुबबे–– ...ह्रा नूतन हबे सुर।" कोर्टशिप के सिवा कहीं प्रेम ...ना है!

रवीन्द्रबाबू के "काव्य" का कथानक इस प्रकार है:–– ...वन में अर्जुन को देख उपयाचिका कुरूपा चित्रांगदा ने ...आत्मसमर्पण किया। अर्जुन ने उसे स्वीकार नहीं किया। ...के बाद मदन और वसन्त से चित्रांगदा ने रूप उधार ...या। तब अर्जुन राजी हुए। अर्जुन ने उस अनूढ़ा ...न्या के साथ वर्षकाल भोग किया। इसके बाद उनका ...(बाद) व्याह हुआ।

विचित्र कोर्टशिप है। ऐसी कोर्टशिप के लिए एक ...धारण अँगरेज नारी भी तैयार नहीं होती। लेकिन ...क हिन्दू राजकन्या ने माँगकर अपनाया! वाह!

देखिए, रवीन्द्रबाबू ने अर्जुन को कैसा पशु के रूप ...चित्रित किया है। यदि भले घर का कोई भी युवक ...ना करता तो उसे हम अपने साथ एक ही आसन पर ...बैठने देना नहीं चाहते। अर्जुन ने एक कुमारी का धर्म ...बिगाड़ा। जरा भी आगा-पीछा नहीं किया, मन में तनिक ...संकोच नहीं किया। साल भर एक भद्र महिला से ...ग किया। और वे ऐसे-वैसे व्यक्ति नहीं हैं––राजपुत्र ...पंचपांडवों में से एक हैं, श्रीकृष्ण जिनके सारथि थे, ...इतने जितेन्द्रिय थे कि उन्होंने उर्व्वशी के प्रेम को ...ठुकरा दिया था। जो वेश्या-सक्ति को भी अनुचित ...समझते हैं उन्होंने रवीन्द्रबाबू की मुट्ठी में पड़ अनायास ...के राजकन्या का धर्मनाश किया।

और चित्रांगदा! बेचारी, बिटिया मेरी! वंग के ...कवि के पल्ले पड़ तुम्हारी ऐसी दुर्गति होगी, इसे शायद ...तुमने सपने में भी नहीं सोचा होगा। एक जैसी-तैसी ...साधारण हिन्दू कुलवधू जिस हालत में प्राण दे देती, लेकिन धर्म नहीं देती, उस हालत को तुमने उपयाचिका बनकर ग्रहण किया! और क्या कहूँ––साल भर––द्विविधा नहीं, संकोच नहीं, धर्म नहीं,––केवल नित्य भोग, भोग; और बेहयायी से उसका वर्णन; और केवल रूप अपना न होने के कारण आत्मग्लानि! दुःख इस बात का नहीं है कि "कल्प रात्रिकाले कि करिलाम।" दुःख सिर्फ इस बात का है––"हाय आमि यदि स्वयं सुरूपा हइताम, ताहा हइले आरो उपभोग करिताम।" साल भर के अन्दर, या इसके बाद भी व्यभिचारिणी के मन में एक दिन के लिए भी पछतावा नहीं हुआ!

इसीसे समझ में आता है कि इस काव्य को दुर्नीति-परायण बनाने की मंशा थी। क्या यह मानव-स्वभाव की छवि है? नहीं, वह भी नहीं। यह चित्र अस्वाभाविक है। लज्जा, संकोच, संभ्रम, सभी देशों में नारी की सम्पत्ति है। एक कुलांगना को ऐसी बेहया कुलटा बनाने के लिए इतने आयोजन की आवश्यकता होती है! अर्थात्, वह क्यों कुलटा हुई, उसे दिखाना होगा। अगर एक नासिका-हीना नारी को चित्रित करना है तो क्यों वह नासिका-हीना हुई, इस बात को कम से कम हमारे काव्य में समझाना होगा; नहीं तो काव्य में ऐसा चित्र अस्वाभाविक है। रविबाबू ने ऐसे विचित्र मामले में कोई आयोजन नहीं दिखाया है।

रवीन्द्रबाबू के ग्रह-उपग्रहगण भारतचन्द्र को निश्चय ही बहुत अश्लील कवि बताते हैं, और रविबाबू को 'Chaste' कवि कहते हैं। लेकिन भारतचन्द्र जो कुछ भी करें, उन्होंने विद्या के भोग का जो वर्णन किया है, वह दाम्पत्य-प्रेम का भोग है––indecent (अश्लील) है, लेकिन immoral (अनैतिक या पाप) नहीं। रवीन्द्रबाबू की चित्रांगदा का संभोग अभिसारिका का संभोग है। हिन्दू समाज ही क्यों, संसार के किसी भी सभ्यसमाज में यह चित्रांगदा मुँह नहीं दिखा सकती थी।

"अश्लीलता" घृणास्पद अवश्य है; किन्तु "अधर्म" भयावह है। घर घर में "विद्या" हो तो समाज घूर बन जायगा मगर घर घर में इस चित्रांगदा के होने पर समाज मिट ही जायगा। सुरुचि वांछनीय है, मगर सुनीति अपरि-हार्य है। और रवीन्द्र बाबू ने इस पाप को जिस खूबी से चित्रित किया है, वैसा आज तक बंगाल के किसी

कवि ने नहीं किया है, इसलिए यह कुनीति और भी भयानक है।

मैं चित्रांगदा की समालोचना करने नहीं बैठा हूँ। इसकी सुन्दर भाषा मधुर छन्दोबद्ध है, इसकी उपमा की छटा अतुलनीय है। माईकेल के बाद इतना मधुर अमित्राक्षर शायद दूसरा कोई नहीं लिख सका है। फिर भी इस पुस्तक को जला देना चाहिए।

कोई-कोई "भक्त" कहेंगे (एक ने उस दिन कहा भी था) कि यह भ्रष्टाचार हो, लेकिन सुन्दर काव्य है। उन्हें रस्किन की वाणी याद रखनी चाहिए कि जिसके मूल में भ्रष्टाचार है वह काव्य नहीं होता। और जिस काव्य को पढ़ने से किसी ऊँची प्रवृत्ति को उत्तेजन नहीं मिलता, जिसे पढ़कर कोई अपने को महत्तर और पवित्रतर नहीं समझता, वह ऊँचा काव्य नहीं होता। भ्रष्टाचार के होते हुए भी काव्य सुन्दर नहीं होता। सूरज के न होने पर दिन नहीं होता।

यह भ्रष्टाचार वंग साहित्य में फैलता जा रहा है। बँगला काव्य खोलते ही "दुजने देखा हल", "प्रति अंग काँदे", "से चारु वदन", "सोछि शयन—" यही मिलता है। बँगला काव्य में एक ओर जिस प्रकार प्राकृतिक सौन्दर्य के वर्णन का अभाव मिलता है, दूसरी ओर उसी तरह मनुष्य की मनःप्रकृति के वर्णन का अभाव भी। बायरन, शेली, कीट्स इत्यादि कविगण प्रकृति के नाम पर पागल हो उठते हैं। उनका प्राण प्रकृति से एक होने के लिए व्याकुल हो उठता है। और हमारे देश के कवियों ने रमणी के पीन पयोधरों और सरस अधर के सिवा और कुछ जाना-समझा ही नहीं। जिस देश की प्रकृति ने नीलिमा, श्याम-लता में; पर्वत, उपत्यका, खेत, निर्झर में; सौरभ में; झंकार में पृथिवी के प्रायः सभी देशों को परास्त किया है, उसकी सन्तानों ने मुँह फेर उधर एक बार देखा भी नहीं। और घूमाच्छन्न, मेघाच्छन्न इंगलैंड के कवि उतना सा सौन्दर्य लेकर उन्मत्त हैं। इस दुःख का पारावार नहीं।

इसके अलावा मनुष्य का अन्तर्जगत् है। जननी का स्नेह, स्त्री की तन्मयता, कन्या की सेवा, मित्र का सौहार्द, भक्त की भक्ति, त्यागी का त्याग, कृतज्ञ की कृतज्ञता—इन महिमामयी कहानियों को छोड़कर "से केनो चुरि करे चाय" और "जागि पोहाल विभावरी", इसे ही क्या सदा सुनना पड़ेगा? रवीन्द्र बाबू ने तो हजार से ऊपर स्फुट (फुटकर) कविताएँ और गाने लिखे हैं। पति-पत्नी का पवित्र प्रेम,—जिसकी जड़ में संभोग नहीं, स्वार्थ-त्याग है—वह प्रेम क्या उनकी तीन कविताओं में भी है?

कोई-कोई मन ही मन मुझसे पूछ रहे हैं कि मैं रवीन्द्र बाबू पर ही इतने आक्रमण क्यों करता हूँ। मैं पूछता हूँ, "ऐसा नहीं करके क्या घुरहू-कतवारू पर आक्रमण करूँ?" उसका क्या कसूर है? वह बेचारा अन्धा अनुकरण-कारी मात्र है। वह प्रतिभाहीन रवि बाबू है। ऐसे व्यक्ति आलोचक के लिए अवज्ञा की वस्तु हैं। उनके काव्य के लिए आधे जिम्मेदार वे स्वयं हैं, आधे जिम्मेदार हैं उनके आदर्श कवि रवीन्द्र बाबू। शुद्ध पाप से कुछ बनता बिगड़ता नहीं। लेकिन भ्रष्टाचार की शक्ति भयंकर होती है। इसकी जड़ काटनी होगी। शायद बाजीराव पेशवा ने ही कहा था—"जड़ काटो, शाखाएँ आप ही सूख जायँगी।"

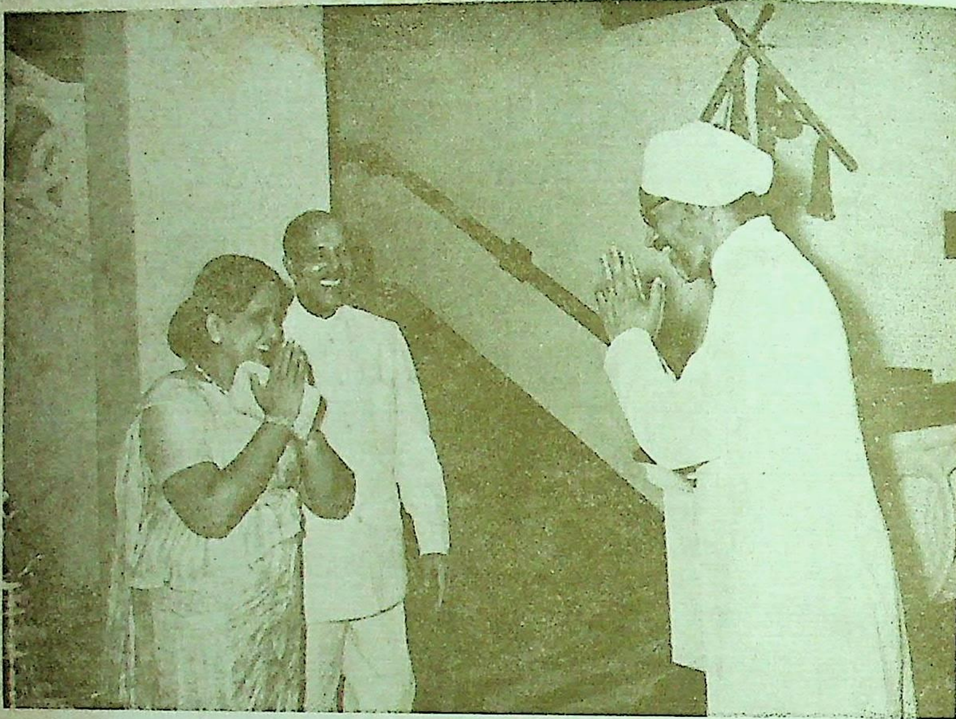
रवि बाबू की कविताओं के प्राणहीन, भावहीन अनुकरण के उत्पात से मासिक पत्रों के सम्पादकों और पाठकों दोनों का नाकों दम है। उस दिन 'प्रवासी' के सम्पादक ने इस प्रेम के तुक्कड़ों को सम्बोधन करके व्यंग्य किया था। लेकिन मैं कहता हूँ कि उन बेचारों का क्या कसूर है। वे समझते हैं कि जैसे ही "जलभरे" के साथ "छलभरे" तुक मिलाना सीख गये, वैसे ही कवि बन गये। उन्हें जैसा सिखाया जायगा, वैसा ही तो सीखेंगे। उनके लिए रवि बाबू के गुणों को आयत्त करना साध्यातीत है, लेकिन उन्होंने उनके दोषों की हू-बहू नकल कर ली है। यहाँ तक कि बहुधा They have out Heroded Herod!। (गुरू गुड़ ही रह गये, चेले शक्कर हो गये)

("साहित्य" जेठ १३१६ वंगाब्द=१९०९ ई०)





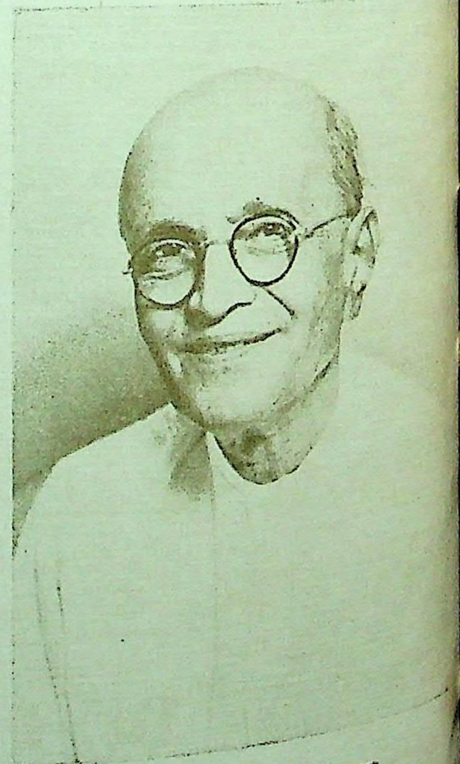
राष्ट्रपति राधाकृष्णन् सितंबर में रूस गये थे। वहाँ मास्को विश्वविद्यालय ने उन्हें डाक्टरी की सम्मानित उपाधि से विभूषित किया। चित्र में राष्ट्रपति उपाधि-पत्र ग्रहण कर रहे हैं।



परराष्ट्र मंत्री सरदार स्वर्णसिंह गत मास श्रीलंका गये थे। चित्र में हवाई अड्डे पर वहां की मुख्यमंत्री श्रीमती भंडारनायके उनका स्वागत कर रही हैं।



गत मास अखिल भारतीय हस्तकला उद्योग परिषद् के साथ अहमदाबाद में एक प्रदर्शिनी भी हुई। चित्र में श्रीमती कमला चट्टोपाध्याय और गुजरात के मुख्यमंत्री श्री बलवंतराय मेहता (दाहिने प्रथम) निरीक्षण करते हुए।



स्वर्गीय श्री मामा वरेरकर

द्विजेन्द्रलाल राय साहित्य

(मूल और हिन्दी अनुवाद)

—भीष्म—अनु० रूपनारायण पाण्डेय, बम्बई, १९१८। ५वाँ मुद्रण १९५७।

—चन्द्रगुप्त—अनु० सूर्यनारायण दीक्षित—शिवनारायण शुक्ल। बम्बई १९१८। १३वाँ मुद्रण, १९५६।

—चन्द्रगुप्त—अनु० रूपनारायण पाण्डेय। लखनऊ १९५७।

—दुर्गादास—अनु० रूपनारायण पाण्डेय। बम्बई १९१६।

—दुर्गादास—अनु० रूपनारायण पाण्डेय। १२वाँ मुद्रण, १९५६।

—दुर्गादास—अनु० द्वारिकानाथ मित्र (२रा मुद्रण) कलकत्ता, १९२०।

—मेरी आशा—अनु० शिवरामदास गुप्त बनारस, १९२८ (परपारे का हिन्दी अनुवाद)।

—मेवाड़ पतन—अनु० रामचन्द्र वर्मा। बम्बई १९१७। ११वाँ मुद्रण १९३५। इसके बाद भी १९५५ में छपा इसका मुद्रण मिलता है।

—शाहजहाँ—अनु० रूपनारायण पाण्डेय। बम्बई, १९१७। १३वाँ मुद्रण, १९५५।

—'चार एकांकी' में 'भाई का बदला'—राय के 'राणाप्रताप' से अवधनन्दन कृत संक्षिप्त अनुवाद है। मद्रास, १९४०।

—'मूर्ख-मंडली' राय के 'त्र्यह-स्पर्श' का रूपान्तर है। लखनऊ, १९१८, पाँचवाँ मुद्रण, १९२७।

—भारत रमणी—अनु० रूपनारायण पांडेय। पाँचवाँ संशोधित संस्करण। बम्बई १९५६।

—उसपार—अनु० रूपनारायण पांडेय। बम्बई १९२० मूल के पात्रों के नाम बदल दिए गए हैं। मूल के दादा पोती का मजाक भी निकाल दिया गया है। अघरचन्द्र मजुमदार की बंगला में लिखी इस नाटक की आलोचना का तर्जुमा भी दिया गया है।

—सिंहल-विजय—अनु० रामचन्द्र वर्मा। बम्बई १९१९। तृतीय मुद्रण १९५५। मूल के दो ही गीत दिए गए हैं। बाकी गीत राय की अन्य रचनाओं से चुनकर दिए गए हैं। गीतों का तर्जुमा राम चरित उपाध्याय का किया हुआ है।

१५—राणाप्रताप सिंह—अनु० रूपनारायण पांडेय। लखनऊ १९५४। 'प्रवासी' में बँगला में लिखी राय के मित्र विजय मजुमदार की आलोचना का तर्जुमा दिया गया है।

१६—राणा प्रताप सिंह—अनु० रामचन्द्र वर्मा। पाँचवीं बार। बम्बई १९५४।

द्विजेन्द्रलाल राय रचनावली (मूल)

१—आर्य्यगाथा (कविता ओ गान):
प्रथम भाग कलकत्ता, १८८२। पृ० ९१।
द्वितीय भाग कलकत्ता, १८९३। पृ० ६०+४६।

२—The Lyrics of Ind, London, 1886 M 79.

३—एक घरे (व्यंग)। कलकत्ता, १८८९। पृ० ३५।

४—समाज विभ्राट ओ कल्कि-अवतार (सामाजिक प्रहसन)। वंगाब्द १३०२ (=ई १८९५)। पृ० १०३।

५—विरह (नाटिका)। वंगाब्द १३०४ (=ई० १८९७) पृ० १०९।

६—आषाढ़े (व्यंग काव्य) वं० १३०५ (=१८९९)। पृ० १४८।

७—हासिर (गान)। वंगाब्द १३०७ (=१९००)। पृ० ५१।

८—पाषाणी (गीति-नाटिका)। १३०७ (=१९०० ई०)। पृ० ९६।

९—=यह स्पर्श वा सुखी परिवार (प्रहसन)। १३०७ (=१९००)। पृ० ९६।

१०—प्रायश्चित (नाटक)। १३०८(=१९०२)। पृ० ९४।

११—मन्द्र (काव्य)। १३०९ (=१९०२)। पृ० १०४।

१२—ताराबाई (ऐतिहासिक नाटक)। १३१० (=१९०३)। पृ० १५६। सामग्री टॉड के 'राजस्थान' से।

१३—प्रताप सिंह (ऐतिहासिक नाटक)। १९०५। पृ० १०२।
१३११ वंगाब्द में 'नवप्रभा' में प्रथम प्रकाशित।

१४—The Crops of Bengal, Calcutta, 1906। M 2 + 184.

१५—दुर्गादास (ऐतिहासिक नाटक)। १३१३ (=१९०६)। पृ० १९४।

१६—आलेख्य (काव्य)। १३१४ (=१९०७)। पृ० ११२।

१७—Lessons in English
Part I 1907 M. 7 + 56.
" II 1908 M. 1 + 68.
" III 1909 M. 1 × 80.

१८—नुरजाहान (ऐतिहासिक नाटक)। १९०८। पृ० १७६।

१९—सोराब-रुस्ताम (नाटक)। १३१५ (=१९०८)। पृ० ९२।
सामग्री फिरदौसी के 'शाहनामा' से।

२०—सीता (नाटच-काव्य)। १९०८। पृ० १२८।
फागुन १३०७—पूस १३०९ तक 'नवप्रभा' में प्रकाशित।

२१—मेवार पतन (ऐतिहासिक नाटक)। १९०८)। पृ० १७१।

२२—साजाहान (ऐतिहासिक नाटक)। १९०९। पृ० १६१।

२३—चन्द्रगुप्त (नाटक)। १९११। पृ० १६७।

२४—पुनर्जन्म (प्रहसन)। १९११। पृ० ३७।

२५—परपारे (सामाजिक नाटक)। १९१२। पृ० १८१।

२६—त्रिवेणी (खंड काव्य)। वंगाब्द १३१९ (=१९१२)। पृ० ८५+२।

२७—आनन्द-विदाय (पैरडी)। १९१२। पृ० ६४।

मृत्यु के बाद प्रकाशित

२८—भीष्म (नाटक)। १९१४। पृ० २३६।

२९—कालिदास ओ भवभूति (आलोचना)। १३२[illegible] (=१९१५)। पृ० १६९।
१३१७-१८ के 'साहित्य' पत्रिका में प्रथम प्रकाशित। इसका तर्जुमा हिन्दी में भी हो चुका है।

३०—गान। १९१५। पृ० १९९।
२३० के आसपास गानों का संग्रह।

३१—सिंहल-विजय (ऐतिहासिक नाटक)। १३२२ (=१९१५)। पृ० २३६।

३२—वंगनारी (सामाजिक नाटक)। १३२२ (=१९१६)। पृ० १४१।
मृत्यु के दो-तीन साल पहिले। इसीका एक हिस्सा लेकर 'परपारे' लिखा।

१—द्विजेन्द्र-ग्रंथावली। वंगीय-साहित्य-परिषत्। प्रथम भाग (कविता और गाने)। १३५३ (=१९४६)। पृ० ७३६।
सूची: आर्य्यगाथा, दो भाग, आषाढ़े; हासि गान; मन्द्र; त्रिवेणी; गान;

२—द्विजेन्द्र रचनावली। दो खंड। १३७० (=१९६४)। पुस्तकाकार मुद्रित ग्रंथों के अलावा पत्र-पत्रिकाओं में छपी फुटकर रचनाएँ भी इसमें दी गई हैं।



कुलनाम

श्री पुरुषोत्तमदास स्वामी

...नाम अंग्रेजी शब्द सरनेम (surnames) का हिंदी पर्यायवाची शब्द है। कुलनाम के अंतर्गत जाति-...शब्दों की गणना भी की जाती है। कुलनाम सब ...कार कितने हैं, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा ...ता; पर संसार भर में प्रयुक्त कुलनामों की संख्या काफी ...है। रॉलेण्ड हंटफोर्ड के अनुसार स्वीडेन देश में ...की ७५ लाख की आबादी का एक तिहाई से भी अधिक ...सब मिलाकर १९ कुलनामों तक ही सीमित है। ...कुलनाम सनांत हैं अर्थात् इन सबके अंत में 'सन' ...है जो पुत्र का अंग्रेजी पर्याय है। लगभग चार लाख अधिक व्यक्तियों का कुलनाम 'ऐंडर्सन' है। ऐंडर्सन ...तात्पर्य एंडर्स का पुत्र (Son of Anders) है। भारत ...में बहुत से कुलनाम ऐसे प्रयुक्त होते हैं जिनके अंत ...'वत' रहता है जो सुत का तद्भव रूप है। ऐसे ...नाम ऊदावत, शक्तावत, बीदावत, बीकावत, रांका-...त, हड़कावत आदि हैं।

भारतीय कुलनामों का मोटे तौर पर वर्गीकरण इस ...कार किया जा सकता है :—

१—गोत्र के अनुसार—शांडिल्य, कश्यप, दाधीच्य, ...क, पाराशर, वाशिष्ठ, मैत्रेय, आत्रेय, आदि।

२—नख के अनुसार—सूवटा, देवत, अभा, टांटिया, ...ल, ग्रेवाल आदि।

३—मूलनिवास स्थान के अनुसार—पालीवाल, ...नीवाल, लखनवी, लुधियानवी, झूँझनूवाला, जयपुरिया, ...पुरिया, ब्रजवासी, मालवीय, आसोपा आदि।

४—वर्ण के अनुसार—वैश्य, पंडित, याज्ञिक आदि।

५—वर्णवाचक शब्दों के अनुसार—गुप्त, शर्मा, ...दास आदि।

६—संतकुल के अनुसार—रामसनेही, दादूपंथी, ...पंथी, निरंजनी आदि।

७—धार्मिक मत के अनुसार—वैष्णव, निंबावत, शैव, ...स्वामी, साधु आदि।

८—देश के अनुसार—भारतीय, नेपालिया, ...ली आदि।

९—देवताओं के नाम के अनुसार—पुरंदर, नारा-...ण, गंगाधर आदि।

१०—काम या धंधे के अनुसार—इंजीनियर, पटेल, ...री, पटवारी, रंगरेज, धीवर, पंडा, दर्जी, सुथार, ...वाला, टोपीवाला, सुनार, लुहार आदि।

११—देवियों के नाम के अनुसार—शारदा, सरस्वती, ...देवी आदि।

१२—ऋषियों के अनुसार—भारद्वाज, ऋषि, मुनि, ...प, भार्गव, जमदग्नि, शृंगि, व्यास आदि।

१३—प्राकृतिक या कृत्रिम वस्तुओं के नामों के ...सार—नेहरू, पर्वतीय, पहाड़ी आदि।

१४—किसी विशेष कारण से संख्यावाचक शब्दों के अनुसार—चौबीसा, चतुर्वेदी, द्विवेदी, त्रिवेदी, तिवाड़ी, दुबे, चौबे, साठे, सहस्रबुधे आदि।

१५—भंडार या कक्षवाचक शब्दों के अनुसार—कोठारी, भंडारी, भंडारनायक, कोठारे आदि।

१६—अंग्रेजी शब्दों के अनुसार—कंट्रेक्टर, कैंफर आदि।

१७—जंतुवाचक शब्दोंके अनुसार—रोगड़ा, बाघेला, चिड़ीमारिया, टांटिया, सूवटा, हिरण आदि।

१८—प्रजाति के अनुसार—आर्य, द्रविड़ आदि।

१९—वाहन के अनुसार—पालकीवाला, रथ आदि।

२०—शस्त्र के अनुसार—चाकू, तलवार आदि।

यहाँ पर विभिन्न कुल-नामों को उनके अंतिम शब्द के अनुसार अकारादि क्रम से दिया जा रहा है :—

अकारान्त कुलनाम—नाग, ग्रोवर, मेनन, गुप्त, हड़कावत, रांकावत, रामावत, ओक, जाट, श्रीवास्तव, भटनागर, जैन, अग्रवाल, ओसवाल, पुरोहित, व्यास, मिश्र, मित्र, मित्तर, मित्तल, सिंह, निझावन, कूमावत, मणिकंकर, किर्लोस्कर, नादिरशाह, कालेलकर, राठ, पाटणकर, मोडावल, कुंभावत, राठौड़, पोद्दार, गोयल, सहाय, राय, राव, ठाकुर, टैगोर, सेनगुप्त, उपाध्याय, दास, दलाल, आयंगर, सेन, भट्टाचार्य, सुथार, लुहार, खटीक, नागर, माथुर, मालवीय, सिंहल, सामर, गर्ग, पटेल, मुखोपाध्याय, तोमर, तँवर, पँवार, परमार (प्रमार), मेहतर, आर्य, पंडित, चेलावत, लाल, कुमार, कुम्हार, सुखवाल, नींबावत, पांडेय, खंडेलवाल, बंसल, जिंदल, पड़िहार (प्रतिहार), भार्गव, हक्सर, कौल, कोल, किरात, भील, महंत, कपूर, हूमड़, दाधीच, हारीत, गौड़, गूजर, जाट, चव्हाण, चौहान, सेठ, इस्सर, देशमुख, नायर, नैयर, बंशीवाल, यादव, पालीवाल, शेखावत, पायक, रावत, श्रोत्रिय, चमार, वैद, शाह, कासलीवाल, बारू-पाल, राणावत, नारलीकर, पणिक्कर, दांडेकर, तिलक, थापड़, लोईवाल, मल्हाण, भाणोत, कुरुप, मुद्गल, वाशिष्ठ, काश्यप, कौशिक, साद, साध, उज्ज्वल, कक्कड़, मधोक, सूद, निर्वाण, दीवान, धोधियाल, कोचर, तलवार, इस्मा-इल, पारीक (पारीख), पारख, शक्तावत, शुक्ल, चूँडावत, बाज, जावड़ेकर, श्रीनगेश, बांगड़, आचार्य (अचारज), सहगल, वैश्य, कुलश्रेष्ठ, जेब, शैख, चिब्बर (छिब्बर), बैजल, सिमलोत, भाल, संतोष, भगत, रऊफ, सारंगदेवोत, काक, भावन, कापड़दार, राज, बज, हारल, गंगल, हारीत, मंगल, भट्ट, टाक, गोमावत, सारस्वत, दीक्षित, मनोहर, रावल, धौलवाल, सरीन, विजय, पाठक, गहलोत, हिरण, बेग, लतीफ, कमठान, धारीवाल, मालावत, चारण, चंदेल, भारद्वाज, खांडेकर, वटार, पंत, भोजग, ऊदावत, जसोल, सोरल, टंडन, मुदालियर, कासिब, सनाढय, हक, बजाज,

खासगीवाल, धावन, लूणावत, शांडिल्य, मंडन, खूँगर, बादल, आनंद, शेल, केशोट, महनोत, महाजन, गौतम, तोषणीवाल, मल्लिक, घोष, लाल, मंदावत, बोस, विनोद, विश्वास, मदान, वासिन, कुम्मठ, सचदेव, पथिक, वैष्णव, धीवर, धीर, विजयवर्गीय, निगम, दासगुप्त, डंगायच, प्रधान, टांक, हर्ष, नागदेव, खुल्लड़, पाबूवाल, प्रीतम, कावनीवाल, मीणावत, याज्ञिक, औदीच्य, मुनेन, बछावत, कंसल, वसंत, कंवर, राष्ट्रवर, कर्णावत, मरड़, महलावत, सियाग, भव्य, भुरट, सहल, सावल, जैमन, कमल, टिक्कीवाल, मजूमदार, सबनिस, पुरंदर, नाथावत, भारतीय, दुसाद, मस्त, कुमेदान, गंगवाल, दुसाज, द्रविड़, दुग्गड़, खड्गावत, चोयल, पाल, दास, दलाल, सेंगर, अन्नोल, अब्बेकर, अचल, आदित्य, अढयालकर, आल्तेकर, अंबेगांवकर, अमीन, अम्मल, आनंद, आयंगर, आर्नीकर, असोलकर, हुपरीकर, आत्रेय, औलुक्य, अयाचित, ऐयर, वंद्योपाध्याय, बानिक, बापट, बर्मन, बेड़ेकर, भौमिक, भोपटकर, विश्वास, चरण, चिनोय, दाभोलकर, दर्शनाचार्य, वेंकटाचार्य, दस्तूर, दत्त, दयाल, दर, धर, दिवेकर, डाक्टर, ऐश, इंजीनियर, गाड़ेकर, गाड़गिल, गंजवार, घटक, घोषाल, दस्तीदार, गिल, गोपीनाथ, ग्रेवाल, गुह, हकीम, हल्दार, हजुरबाजार, इनामदार, जालान, जावड़ेकर, झिगन, झिंगरन, जोग, जोगलेकर, कदम, कँवर, कलमकर, कामथ, कंचन, काणेकर, कपिलकर, करंदीकर, कर्मरकर, करेकर, कटियार, केलकर, केशकर, केतकर, खानोलकर, खास्तगीर, खेर, क्षेत्रपाल, खोपकर, खोट, कोछड़, कोरेगाँवकर, कोथूरकर, कोयल, क्षीरसागर, कुरूलकर, कुरार, कैमल, लंगुठ, लश्कर, लाड़, लेग्रिस, लोयल, मागर, मल्ल, महलनवीस, महापात्र, मैत्र, मैत्रेय, मल्लिकार्जुनेश्वर, मलूरकर, मामक, मंडल, मंडन, मंकड़, मितबंदर, मोहसिन, मूस, मुल्हेरकर, मुशरान, नबार, नायक, निगम, नंबियार, नंबूदरीपाद, नंदन, नारायण, नरूरकर, नस्कर, नौटियाल, नावलेकर, ओक, पकनीकर, पाल, पालित, पालेकर, पान, पांचल, पलुस्कर, परनायक, पाटिल, पटनायक, पटवर्द्धन, पुणेकर, पुणतांबेकर पुराणिक, पुरकायस्थ, पुसालकर, कासिम, हलधर, आंगिरस, दिवाकर, घेमावत, जाज, खुर्द, पाराशर, बेचलस, महेंद्र, वज, जूनीवाल, तायल, गौस जैतवाल, नादान, पारीदार, मदान, भदावर, नारंग, भरवाह, तेजपाल, जांगोड़, भाणावत, हरपावत, शलभ, धावड़, नुवाल, खवास, रामपाल, गंगाधर, कुरावत, मुद्गल, बोगावत, बाकलीवाल, दादरवाल, साधन, याज्ञिक, खट्टर, सोरल, एलतंस, वीर, जैमन, सभरवाल, विजय, जैरठ, खंगारोत, भालेराव, सुंदरेसन, करोल, थापन, घुम्मन, खेर मरणोत, कुच्छल, ढाड़ डूँगर, भुप्पल, वधवार, कांग, मार्कंडेय, गंभीर, दुग्गल, बारहट, रेलन, भारिल्ल, झारिल्ल, सरकार, विज, जौहर, पंजल, सेठ, वर्गिस, खट्ठर, कंनर, शरदान, राजावत, चपलोट, उजादान, जाज, थूलल, कृपलानी, ओभन, पालनवंकर, धूत, ग्रेस, जांगीर, कूलर, मंडल, मारिक, नीमावत (निंबावत), राजदान, सिकंदर, संत, सदीक, शिखर, सिद्दल, सूदन, ताल्लुकदार, वीर, भीष्मपाल, धौधियाल, वाकनेलकर, भावन, भगरोद, कणिक, भिप्पेवलर, कांट्रेक्टर, नम्बियार, नम्बीसन, सुब्बाराव, डोरेराज, रत्नन, उप्पल, बुटवाल, मसंद, रेसिन, राजन, राजदेरकर, रक्षित, रंगनाथ, रण्यन, रजदान, रायमहाशय, रजक, रेहिल, रेंगन, सलेतोर, सामंतराय, संपत, सांदिल, संगल, संत, सान्याल, सांवल, शर्राफ (सराफ), शरण, सरोज, सतूर, सत्याश्रय, सांयल, सईट, सेबेस्टीन, सील, शेषाचार, शांडिल्य, सेनोलीकर, शितूत, शील, सिद्धांत, सिलवत, सिरूर, सीताराम, सोम, सोनार (सुनार), सौंदर, श्रीरामदास, सूर, तामस्कर, तपादार, तायल, थेकर, ठक्कर, थपलियाल, थेकरकर, थींड, थिरुवेंकटाचार्य, थोसर, तूर, ट्रेहन, त्रिगुणायत, उर्स, वड़, वाडलकर, वैद्य, वरियार, वार्ष्णेय, वर्त्तक, वासुदेव, वाटल, वेलनकर, वेंबन, वेंगसरकर, वेंगुरलेकर, वेसुगर, विद्यांत, विग, वाघ, वैद्यशेखर, जंजुखाँड़, कैंफर, भगोलीवाल, भर, भौमिक, बोरवनकर, बीर, हेरतवाल, कर, कारकुन, महेश्वर, मंगराज, मेढ़, मोड़क (मोदक), नारगुंडकर, नटेकर, पनाकल, रक्षपाल, रुद्र, वालम, जायसवाल, ओड़, सोम, तेलंग, टीकेकर, वाड़, चिपलूणकर, इम, कुचल, सूर, वज, केजड़ीवाल, अभ्यंकर, अंबेदकर, अस्पर, लाठ, दाभोलकर, ध्यानसागर, हल्दार, केलकर, खनोलकर, शेनोय, मुलगाँवकर, वासन आदि।

आकारान्त कुलनाम—हांडा, कल्ला, वर्मा, शर्मा, सक्सेना, बापना, मेहता, अरोड़ा, सिन्हा, गोयंदका, गोयनका, झाला, हाड़ा, कछुवाहा (कुशवाहा), ओझा, झा, चोपड़ा, लोढ़ा, आहुजा, हूजा, रंगा, मेहरा, मेहरोत्रा, मल्होत्रा, छबड़ा, छागला, मीणा, डागा, लड्ढा, मोहता, झूँझनूवाला, कुड़छीवाला, पंडा, पंड्या, दूधवेवाला, तनेजा, बिड़ला, दारूवाला, बंदूकवाला, पालकीवाला, कछारा, खां, ओला, घामोरा, शारदा, नंदवाना, मिर्धा, मुरारका, सराहावा, दलेला, तनखा, सुराणा, घुरा, वोहरा, खुराणा, खन्ना, रूंगटा, महेचा, जाड़ेजा, बड़ाया, बड़जात्या, बिस्सा, काला, सहीवाला, सुरेखा, बावेजा, नरूला, कुकरेजा, बांगला, खोसला, दशोरा, खूंटेरा, सांखला, देवड़ा, महेछा, बैरवा, दरड़ा, देवपुरा, रैना, मलूगा, मूंधड़ा (मूंदड़ा), चौबीसा, खीमेसरा, आढ़ा, बुंदेला, चंदेला, बाघेला, लोहरा, भाखरा, गुप्ता (गुप्त), शुक्ला (शुक्ल), चड्ढा, सिंघा, हुड़ा, राजोरा, नरूका, पलरिछा, गोदरा, बाड़मेरा, खींवसरा, मानधना, हजेला, मूथा, बुधराजा, अजमेरा, गोदारा, चंदोला, बगड़ा, रायना, पोटा, चावला, सोढ़ा, भुट्टा, भट्टा, लोढ़ा, करवासरा, बतरा, रायजादा, आसोपा, भदादा, कांडा, बड़ोला, संघा, भाव्या, मुदया, गोदरा, सिल्पा, नाथूरामका, बारला, रारा, हुरा, बहुगुणा, नाहटा, ढड्ढा, भुवालका, अदेशरा, अध्या, रोवा, आर्जिक्या, अनेजा, अस्थाना, बागला, बरुवा, भोला, कामा,

चीमा, छीना, ढींगरा, हाजरा, हसीजा, जालोटा, खेरा, कोंडैया, कोत्रप्पा, लड़वा, लॉ, लूँबा, लूथरा, मल्ल्या, मन्ना, मरवाहा, मूँगा, मुनि गवियप्पा, नंदा, मंजुरैया, नयूदम्मा, ओल्पादवाला, पागड़ी-पंचाक्षरप्पा, पारीजा, पशरिचा, रायना, बसावड़ा, वड़ेरा, खींचा, मल्ला, अमेठा, दुलारा, तलेसरा, जोंडा, भूतड़ा, दुधैला, मिकारा, शा, तोतला, बड़जात्या, बाला, थाड़ा, रोगड़ा, नलवाया, पटा, आगा, बोइत्रा, अघाना, कालरा, मेवांड़ा, अलरेजा, पहवा, चौकन्ना, नोत्रा, बधवा, खरबंदा, महात्मा, पाहुजा, सूवटा, बीका, बीदा, अमिता, ऊनवाला, कोगटा, चीमा, ब्रोका, ब्रोचा, गोगना, तोतूका, जूड़ा, सरोया, मखोजा, थंकम्मा, असावा, बोथरा, चौना, काबरा, लोहरा, मनचंदा, सतीजा, बोड़ा, मोगरा, घाघा, बहुरा, संजाना, थिमैया, रहेजा, रमणैया, रमैया, राणा, सदाशिवैया, सहा, सालूजा, सेहरा, शेषय्या, शेषप्पा, सेठना, सिद्ध-सिदप्पा, सुबैय्या, सुब्बारामैया, थापा, तिमयरैया, तुतेजा, उदुपा, बेंकय्या, बधवा, बेहुरा, भंजा, कैला, सेहरा, तिक्खा, भ ला, मोजा, मुंडा, बेहरा, खडंगा, खेरा, परीदा, वाच्छा, बंबा, बंबावाला, बिंद्रा, महाराणा, राणा, रोला, उदूणा, बधावा, खादी-दाहिमा, सोनरिक्सा, ऊभा, चालीहा, रतरा, रंधावा, आदि।

इयान्त कुलनाम—लारोइया, सागानेरिया, सुखाडिया, जयपुरिया, जावलिया, बोर्दिया, चोरड़िया, जावरिया, सीसोदिया, लुहाड़िया, दाहिया, लाव-कावड़िया, केवलिया, रामपुरिया, गाड़ोदिया, चिड़ी-डालमिया, सरूपरिया, सुलानिया, गिरासिया, टांटिया, पनघड़िया, कर्णपुरिया, मेनारिया, मजेथिया (मजीठिया), गलूँडिया, कविया, माहिरिया, मैहारिया, कंवरिया, बीसारिया, कालवेलिया, पाड़लिया, कृपासिया, बोलिया, आँचलिया, हल्दिया, कंठारिया, भोरिया, पिलानिया, कालिया, सरोलिया, भर-जवेरिया, बाँठिया, डीडवाणिया, लोरिया, धनेतिया, जकड़िया, सेठिया, जागोतिया, सोखिया, लवाणिया, लूणिया, सीकोरिया, मेमो-मीरासिया, कानोड़िया, वाड़िया, अदेतिया, अहलू-दिवेतिया, कनिया, कापड़िया, खूंटिया, पारिया, खोसारिया, संबरिया, डेकलिया, ढावरिया, डूंगरपुरिया, पटारिया, गुरलिया, नाजिया, पुनमिया, ठोलिया (थोलिया), डंडिया, फांसिसकोपरिया, गजरिया, कंजोलिया, कटारिया, ऐंक्लोसरिया, नानिया, नानगिया, महोबिया, धोलकिया, पांडलिया, कांकरिया, कराड़िया, वाढ़िया, राज-महारिया, सायकिया, सेकरिया, शिलेचिया, जक-हेजिया, घिया, बाजोरिया, रिछाड़िया, साथिया,

बिसारिया, जगासिया, मेंडेलिया, सिंघानिया, पलसानिया, भरतारिया, कुरियाँ आदि।

इकारांत कुलनाम—गिरि, महर्षि, कृष्णमूर्ति, मुनि, दक्षिणमूर्ति, राममूर्ति, लक्ष्मीपति, मंत्रमूर्ति, नृसिंहमूर्ति, पद्मनाभमूर्ति, पाणि, पार्थसारथि, कुलहरि, केशवमूर्ति, ऋषि, चंद्रमणि, सत्यमूर्ति, विष्णुमूर्ति, रामचंद्रमूर्ति, सत्य-पति, शेषाद्रि, शेषगिरि, वाचस्पति, वीरमणि, येदनापल्लि, कुर्तकोटि, जमदग्नि, पद्मिनि, ज्योति, कृष्णवेणि आदि।

ईकारांत कुलनाम—खैरी, स्वामी, त्यागी, सेठी, चतुर्वेदी, द्विवेदी, त्रिवेदी, तिवाड़ी (तिवारी), त्रिपाठी, बदी, निर्वेदी. नागोरी, वैरागी, पुरी, चट्टर्जी, बनर्जी, मुखर्जी (मुकर्जी), सोनी, गोस्वामी, कृष्णास्वामी, रामस्वामी, अली, भंडारी, कोठारी (कोठ्यारी), राठी, बैराठी, मोदी, माली, बख्शी, शास्त्री, साँधी, डाँगी, दर्जी, धोबी, कसाई, कंदोई, धामाई, पंजाबी, जोशी, साँसी, भंगी, चौधरी, बेंगाणी, साहनी, मलानी, सोहनी, सिपाही मलानी, मनवानी, मलकानी, कृपलानी, मीरचंदानी, तुलानी, दम्माणी, सोमाणी, सबीखी, वीराणी, निरंजनी, रामस्नेही, दादूपंथी, कबीरपंथी, मुंशी, पंचोली, सिंधवी, कृष्णमाचारी, वेंकटा-चारी, चारी, मथाई, श्रीवराणी, कोहली, किशनावली, रामाणी, बिश्नोई, वाजपेयी, नानावती, काजी, खिल्जी, गाँधी, सदासुखी, सत्संगी, भूटानी, मंत्री, गनी, मैनी, चंदनानी, रस्तोगी, रतूड़ी, सुहरावर्दी, विद्यार्थी, सूरी, बेरी, ऐदासानी, चिनाई, चक्रवर्त्ती, ललवाणी, बालानी, श्रीमाली, माली, बाघवानी, माहेश्वरी, अवस्थी, बिसानी, सिद्दीकी, महादेवी, कोली, सोलंकी, महसानी, पाटनी, कुरैशी, नियाजी, थान्वी, यदुवंशी, अंसारी, नेपाली, बालवी, मीरानी, वर्मानी, भारती, जौहरी, साही, महभी, स्वानी, गोरी, सजनानी, ओहरी, डाबी, परवारी, भाटी, छंगाणी, भंसाली, फारूकी, दरबारी, असरानी, इसरानी, दूदानी, सारथी, नेगी, बचवानी, दोसी (दोषी), लूमी, कुलकर्णी, अंबानी, जानी, खत्री, खीची राजवंशी, बियाणी, कोटवानी, सोगाणी, लिखियानी, भागी, केशवानी, खिलनानी, रूपायली, पाराशरी, महसानी, टेकचंदानी, डानी, बाली, पुजारी, जैदी, चौदवानी, संचेती, जुत्सी, कोशी, दालवी, शालिनी, सावित्री, नेगी, मैत्रेयी, जगधारी, रिजवी, हिंगोरानी, जगतियानी, सोंधी, अधिकारी, अड़वानी, अग्निहोत्री, अज-वानी, अप्पाजी, असुंडी, अवधानी, बागची, बाहरी, भादुड़ी, भाटकी, ब्रह्मचारी, चंचाणी, कर्सेटजी, देवरानी, देसाई, गांगुली, गेजी, घड़ियाली, गुलेरी, गुलाटी, ज्ञानी, गार्गी, नाणावटी, हट्टियंगड़ी, हजारी, हेममंड़ी, ईरानी, जती, जोली, कबाड़ी, कबासी, काबी, कलापेशी, कस्तूरी, किदवई, किलपाड़ी, कुंबनानी, लाहिड़ी, लिली, महाजनी, महाजन-सेट्टी, महांती, नैथानी, मैथानी, मनी, मोहरी, मुदरेड़ी, मुरखी बाणीं, नादकर्णी, नामजोशी, नंदी, नियोगी, पाधी, पाई, पकराशी, पालचौधरी, पंचभाई, पाणिग्राही, पंथकी, पर्ती, पेशोरी, पित्ती, पृथी, पुनवानी, घोषी, भंभानी, दानी,

गंगलानी, करतानी, श्रृंगी, बादलानी, चंडवानी, सोढ़ी, तेजवानी, अडवानी, उस्मानी, त्रिपुरी, हरजानी, कल्याणी, वनाती, अदालती, कृष्णानी, बिही, पंसारी, व्रजवासी, हाथी, प्रेमी, मदनानी, पानेरी, मथाई, दाबी, पंजवानी, भोगी, वासवानी, भागचंदानी, ओहरी, सैनी, सूरी, रतूड़ी, मंशारायानी, हुकमानी, ज्ञानचंदानी, नियाती, सुखानी, कालानी, संचेती, गोववानी, शिवपुरी, धाई, जाफरी, कावसजी, वाही, न्याती, टुक्की, मसीगजवानी, नोटानी, जालानी, सिंधी, छंगाणी, झांझी, एमलाड़ी, बानी, खांडसुरी, लीखी, लुहानी, मदानी, मिस्त्री, सावाई, वाधानी, विजयी, तैमनी, भंसाली, बाहेती, साथाली, शेखड़ी, मोतवानी, आसनी, चाँदवानी, जैतली, वसंती, गोरवानी, सजनानी, कीर्त्तनी, राजगोपालाचारी, राजगोपालस्वामी, रमाणी, रायशास्त्री, रंगास्वामी, राय चौधरी, रोहतगी, सनातनी, साराभाई, सरस्वती, सर्वाधिकारी, सावदत्ती, शफी, शापुरजी, सिरसी, सोबती, सोही, सोपीरी, श्यामचौधरी, तलारी, ताँगरी, तोनायी, तुली, बशी, वाढी, वाही, वली, वामी, अज्मी, बादामी, डोरोस्वामी, कमलानी, मुलतानी, नकवी, प्रकाशी, पटकी, प्रस्ती, पुन्हानी, तालपसाई, वरदाचारी, आबदी, एड़की, जगवाणी, कटानी, माजी, अगस्ती, लावटी, चैनानी, जैराजपुरी, बर्सी, बिशोई, रुस्तगी, शतपथी, वच्छानी, देवी, सारंगी, सुरंगी, हटी, वच्छाई, अलीकुन्ही, बलवानी, एलबद्री, काहली, मिरासी, मोगरी, नोटाणी, भगवती, मटियानी, पहाड़ी, भावनगरी आदि।

उकारान्त कुलनाम—प्रभु, वसु, कोसरु, गणमुथु, कुंदु, साधु, संतापउ, सोमयाजुलु, श्रीरामुलु, वैंकटरायडु, वेंकटेश्वरुलु, पीछामुल्यु, कुंतुल, वेणु, राजगुरु, चिरंजीवुलु आदि।

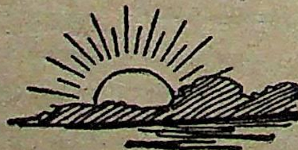
ऊकारान्त कुलनाम—काठजू, नेहरू, काटजू, काथजू, मारू, वांचू, कुंजरू, बिजू, हुक्कू, साँद्रू, रेऊ, टिक्कू, गुर्टू, पानू, झाड़ू (किराड़), सिद्ध, अम्मीराजू, कुंद्रू, हाँडू, हू, किचलू, कचरू, मागू, मालू, मुट्टू, नायडू, पन्नू, मंजू, मलू, भू, चाकू, बस्सू, दादू, राजू, साहू, वाखलू, खोशू, तकरू, महेंद्रू आदि।

एकारान्त कुलनाम—दुबे, चौबे, दवे, गोरे, काले, ग्वटे, खोटे, गंरोंडे, पांडे, पिल्ले, गोड़से, रे, मोहले, अगरे, हलवे, थट्टे, छाये, शातने, भाले, करकरे, अगासे, शिवहरे, बकोरे, राणे, रोडे, आपटे, अथावले, अवसरे, बर्वे, भिड़े, बोले, कदंबे, चित्रे, डाकवाले, दामले, दे, देशपांडे, घोटे, गानपुले, गारपुरे, घाटे, गोखले, गुप्ते, लेले, कर्वे, कतरे, कोठारे, लावटे, लावंडे, लेले, लोकरे, माचवे, महाबले, मांडे, मराठे, नेत्रे, पित्रे, मोघे, मूले, ओगले, पाध्ये, परांजपे, फड़के, फुटाने, पिंगले, पलसुले, अंडले, काणे, साठे, दक्षणे, भिसे, गर्दे, गार्गे, मिस्त्री, धुनके, सिवाड़े, इंगले, चत्रे, अड़े, बाँके, डोरे, नंदे, लेफरे, राजोपाध्ये, राणाडे, रेगे, सहस्रबुद्धे, सप्रे, सोखे, सुखाले, तालपड़े, तमाने, तावड़े, तुलपुले, चिताले, लकटके, मालखेड़े, मुंडले, नबे, पिटके, साणे, शामीहोके, गदरे, कुटुंबे, शाहरे, गावंदे, हेड़गे, आंबले, दहके, जेरे, खनाड़े, पेंडले, विष्णुमित्रे, गोड़बोले, भंडारनायके, शेवड़े, गद्रे, लिमये आदि।

ओकारांत कुलनाम—सिल्गर्दो, कैरों, ढिल्लों, शैलों, कानूगो, कानूनगो, चक्को, टोपो, पत्रो आदि।

इन कुलनामों में पाठक देखेंगे कि एक ओर काले, गोरे, पिंगले हैं तो खरे, खोटे, काणे भी विद्यमान हैं। निर्वेदी से लेकर वेदी अर्थात् एकवेदी, द्विवेदी, त्रिवेदी एवं चतुर्वेदी तक कुलनाम हमारा मनोरंजन करने में कोर कसर नहीं रखते। इनमें यदि उपाध्याय हैं तो पाठक भी हैं। अतः यह कहना असंगत न होगा कि कुलनाम अनेक प्रकार के हैं। हाँ, एक बात अवश्य खटकती है कि आधुनिक युग में कुलनामों में हमें रथ तथा पालकीवाला से ही संतोष करना पड़ेगा। संभव है, आगे चलकर मोटरवाला, यानक या राकेटवाही आदि कुलनाम भी चल पड़ें?

(कुलनामों के अधिक वैज्ञानिक और ऐतिहासिक अध्ययन की आवश्यकता है। यह परिचयात्मक लेख इस आशा से प्रकाशित किया जा रहा है कि इसे पढ़ कर कोई विद्वान् इस पर विवेचनापूर्ण लेख लिखे। सम्पादक, सरस्वती।)



केशव-प्रतिभा की एक नई प्रभा

श्री शिवनारायण शास्त्री एम० ए०

कवीन्द्र मधुसूदन तथा उनके मनोज्ञ ग्रन्थ 'रसचन्द्रिका' का परिचय अब तक भारत के सुधीसमाज को अज्ञात था। यह ग्रन्थ सन् १६९५ ई० की वैशाख शुक्ल पंचमी को नवद्वीप के महाराज रामजीवन राय के सभाकवि मधुसूदन कवीन्द्र द्वारा लिखा गया था ('रसचन्द्रिका'–१६/२०)। 'रसचन्द्रिका' 'मोक्षशृंगार' का एक निराला ग्रन्थ है तथा भारत के सांस्कृतिक मिलन की एक कड़ी भी कह सकते हैं। यह विश्व-भारती संस्कृत पोथी-शाला में संरक्षित, एक 'प्रोटोटाइप एकक पोथी' है। खोज के द्वारा जहाँ तक पता चला, उसके आधार पर यह विश्वास किया जा सकता है कि इसकी दूसरी प्रति अब तक अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। सम्भवतः यह महाराज रामजीवन राय की निजी प्रति थी, जिसे १६१७–१८ शकाब्द के श्रावण में रघुनन्दन नाम के किसी लिपिक ने लिखा था। ('रसचन्द्रिका' १६/२२) इस ग्रन्थ पर कवि केशवदास का प्रभाव स्पष्ट है। केशवदास की प्रतिभा की व्यापकता तो अब सर्वविदित है, किंतु बंगाल के मनीषिमंडल में, खासकर वहाँकी शिक्षा तथा संस्कृति के प्राण-केन्द्र नवद्वीप में, उनकी प्रतिष्ठा कहाँ तक जमी हुई थी, 'रसचन्द्रिका' उसका जीता जागता उदाहरण है।

कवीन्द्र मधुसूदन, कवीन्द्र केशव की 'रसिकप्रिया' की शैली का अनुसरण करते हुए 'रसचन्द्रिका' के प्रथम आलोक में अपने पृष्ठ-पोषक नदिया के महाराज रामजीवन राय, उनके पूर्वज तथा नवद्वीप के सुधीसमाज का वर्णन करते हैं। प्रथम आलोक के पन्द्रहवें श्लोक के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि, महाराज को 'रसिकप्रिया' बड़ी प्यारी थी, और उन्होंने अपने सभाकवि मधुसूदन को उस ढंग का एक संस्कृत ग्रन्थ लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। ('रसचन्द्रिका'–१/१५) राजा रामजीवन की भी काव्य, नाटक तथा संगीत शास्त्रों में विशेष रुचि थी। (क्षितीश वंशावली चरित—पृ० ४२, ५२) साहित्यानुराग इस वंश की परंपरागत विभूति है। राजा रामजीवन राय 'वेणीसंहार' नाटक के रचयिता भट्टनारायण के २५वें वंशज थे। (W. W. Hunters report, Distt. handbook, Nadea, W.B. appenddix.p. xxvi

'रसिकप्रिया' नाम के दो ग्रन्थ अब तक हमें उपलब्ध हैं। एक जयदेव के 'गीतगोविंद' की टीका, दूसरा केशव की 'रसिकप्रिया'। प्रथम 'रसिकप्रिया' में प्रसंगानुसार रसशास्त्र का व्यापक विश्लेषण अवश्य है, किंतु न तो वह कोई मौलिक ग्रन्थ है, न उसकी कोई निजी सत्ता, शैली, या विषय-वस्तु है; वह केवल एक टीका है। द्वितीय 'रसिकप्रिया' से 'रसचन्द्रिका' की उतनी ही समता पायी जाती है, जितनी कि रुद्रभट्ट के 'शृंगारतिलक' से 'रसिकप्रिया' की है। ('रसिकप्रिया'; विश्वनाथप्रसाद मिश्र, भूमिका, पृ० २१) केशवदास तथा मधुसूदन की पारिपार्श्विकता में भी तुल्यरूपता पायी जाती है। दोनों ही कवि पर्याप्त ऐश्वर्य तथा प्रतिष्ठाशाली महाराजों के सभाकवि थे और दोनों ही अपने संरक्षक की प्रार्थना से ग्रन्थ रचना में प्रवृत्त हुए थे।

केशवदास 'रसिकप्रिया' में ओड़छा दरबार की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का एक सुन्दर चित्र खींचते हुए गहड़वार राजवंश का गौरव, कुमार इन्द्रजीत के दरबार, तथा (अन्यत्र) ओड़छा राजसभा की विभूतियों पर—जिनमें 'वीरमित्रोदय' के निर्माता मित्र मिश्र भी संमिलित थे—उज्ज्वल प्रकाश डालते हैं। मधुसूदन उसी प्रकार नदिया राजवंश के महत्त्व, उसकी संरक्षकता से नवद्वीप में साहित्य, संगीत तथा दर्शनादि शास्त्रों की चर्चा तथा उन्नति, एवं नवद्वीप की तत्कालीन प्रमुख विभूतिओं के सादर वर्णन के साथ साथ अपने संरक्षक महाराज रामजीवन राय की गौरवगाथा का प्रचार करते हैं। ('रसचन्द्रिका'—४/१०) राजा रामजीवन राय के राज्यकाल को नवद्वीप की सांस्कृतिक पराकाष्ठा का समय भी माना जा सकता है। (बांगालीर सारस्वत अवदान—पृ० १९५) उनकी सभा में 'पदार्थमाला' आदि दार्शनिक ग्रन्थों के निर्माता जगद्गुरु जयराम न्यायपंचानन, 'पदांकदूत' आदि काव्यग्रन्थों के रचयिता श्रीकृष्ण सार्वभौम आदि दिग्गज विद्वान् विराजमान थे। (Hist. of Philosophy, S. C.Vidyabhusan p. 477—8) केशव और मधुसूदन दोनों ही कवि कवीन्द्र उपाधि के अधिकारी थे तथा दोनों के ग्रन्थों में भाव, रीति तथा विषय की एकात्मकता देखी जाती है।

'रसिकप्रिया' तथा 'रसचन्द्रिका' दोनों में ही वर्ण्यमान विषयों में स्थान स्थान पर भिन्नता रहते हुए भी दोनों के मूलस्रोत में एकरूपता पायी जाती है। 'रसिकप्रिया' की भाषा है बुंदेलखंडी हिन्दी प्रभाव-गन्धित ब्रजभाषा, और 'रसचन्द्रिका' की भाषा है संस्कृत। प्रथम मंगल श्लोक में दोनों ने ही श्रीगणेश की वन्दना की है। किन्तु 'रसिकप्रिया' के द्वितीय मंगलश्लोक में रुद्रभट्टरचित 'शृंगारतिलक' के मंगलश्लोक की छाया तथा श्रीमद्भागवत की काया देखी जाती है (शृंगारतिलक–१।१; भागवत—१०) रसचन्द्रिका के द्वितीय मंगलश्लोक पर कालिदास तथा पंडितराज जगन्नाथ का प्रभाव स्पष्ट है, विशेषतया 'रसचन्द्रिका' में मधुसूदन के स्वरचित उदाहरणों में जयदेव से लेकर गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय के रसिक कवियों की 'कोमलकान्त पदावली' के भाव तथा उसकी ध्वनि अनुरणित होती है।

विषय-विन्यास तथा ग्रन्थपरिकल्पना की दृष्टि से 'रसिकप्रिया' तथा 'रसचन्द्रिका' में अन्तर बहुत कम है। दोनों ही ग्रन्थ १६ अध्यायों में विभाजित हैं जिनकी तुलनात्मक समीक्षा इस प्रकार की गयी है,—'रसिकप्रिया'

के अध्यायों का नाम है 'प्रभाव'। प्रिया का प्रभाव तो सर्वमान्य है। 'रसचन्द्रिका' के अध्यायों का नाम है, 'आलोक', क्योंकि चन्द्रिका का आलोक ही विश्वमानस को मुग्ध करता है। दोनों की श्लोकसंख्या में भी अन्तर है। 'रसिकप्रिया' में श्लोकों की संख्या है ५३०, तथा 'रसचन्द्रिका' में श्लोकों की संख्या है ६४४।

केशव की 'रसिकप्रिया'

अध्यायों के नाम		अध्यायों में वर्णित विषय
प्रथम	प्रभाव	प्रच्छन्न प्रकाश संयोग-वियोगवर्णनम्
द्वितीय	,,	चतुर्विधनायक प्रच्छन्नप्रकाशवर्णनम्
तृतीय	,,	स्वकीयापरकीयादिभेदवर्णनम्
चतुर्थ	,,	चतुर्विधदर्शन प्रच्छन्न प्रकाशवर्णनम्
पंचम	,,	श्री राधाकृष्णचेष्टा दर्शन-मिलनस्थान वर्णनम्
षष्ठ	,,	राधिका हाव-भाववर्णनम्
सप्तम	,,	नायिकासंभोगश्रृंगारवर्णनम्
अष्टम	,,	विप्रलम्भश्रृंगारपूर्वरागवर्णनम्
नवम	,,	,, मानवर्णनम्
दशम	,,	,, मानमोचनवर्णनम्
एकादश	,,	संभोगश्रृंगारप्रवासवर्णनम्*
द्वादश	,,	सखीजनवर्णनम्
त्रयोदश	,,	सखीजनकर्मवर्णनम्
चतुर्दश	,,	नवरसवर्णनम्
पंचदश	,,	चतुर्विधकवित्ववृत्तिवर्णनम्
षोडश		रस अनरसवर्णनम्

मधुसूदन की 'रसचन्द्रिका'

अध्यायों के नाम		अध्यायों में वर्णित विषय
प्रथम	आलोक	श्रृंगाररसवर्णनम्
द्वितीय	,,	नायकवर्णनम्
तृतीय	,,	स्वकीयापरकीयादिभेदवर्णनम्
चतुर्थ	,,	चतुर्विधदर्शन प्र छन्नप्रकाशवर्णनम्
पंचम	,,	राधाकृष्णचेष्टावर्णनम्
षष्ठ	,,	हाववर्णनम्
सप्तम	,,	संभोगश्रृंगार नाम ....
अष्टम	,,	विप्रलम्भश्रृंगारे पूर्वरागवर्णनम्
नवम	,,	,, ,, मानवर्णनम्
दशम	,,	,, ,, मानमोचनवर्णनम्
एकादश	,,	,, ,, प्रवासवर्णनम्
द्वादश	,,	सखीजनवर्णनम्
त्रयोदश	,,	सखीजनकर्मवर्णनम्
चतुर्दश	,,	नवरसवर्णनम्
पंचदश	,,	चतुर्विधकवित्ववृत्तिवर्णनम्
षोडश	,,	रसारसवर्णनम्

केशवदास के बारे में खोज तो काफी हो चुकी है किन्तु उनके व्यक्तिगत परिचय तथा प्रभाव के सम्बन्ध में अभी बहुत खोज की आवश्यकता रह गयी है। केशवदास हिन्दी साहित्य के एक महाकवि थे तो सही; परंतु यह उनका यथेष्ट परिचय नहीं। वास्तव में वे एक सार्वभौम व्यक्तित्वसम्पन्न सार्वदेशिक विद्वान् थे, जिनकी प्रतिभा देश, भाषा, तथा काल की सीमा को पार कर सर्वभारतीय एवं सर्वकालिक स्तर पर पहुँच चुकी थी। मुख्यतः वे संस्कृत साहित्य, दर्शन, ज्योतिष तथा पुराण आदि के अथाह पंडित थे। संभवतः संस्कृत साहित्य में अनभिज्ञ अपने संरक्षकों की तुष्टि के निमित्त, तथा समकालीन समाज की चाह मिटाने के लिए—"जिनके कुल के दास भाषा बोलि न जानहीं"—उन्हें हिन्दी में काव्य-निर्माण करना पड़ा। आप केवल एक विचक्षण दरबारी कवि, दूरदर्शी राजनीतिज्ञ तथा विद्याप्रेमी मानव-सेवक ही नहीं थे; अपितु विद्वानों के एक महान् आश्रयदाता भी थे। 'रसविलास' (अलंकार ग्रन्थ) तथा धर्मविजय (नाटक) आदि ग्रन्थों के निर्माता भूदेव शुक्ल ने अत्यन्त श्रद्धा के साथ स्वीकार किया है कि वे किसी राजर्षि के आश्रित थे। म० म० पं० नारायण शास्त्री खिस्ते उन्हें हिन्दी के अन्यतम महाकवि केशवदास से अभिन्न मानते हैं (धर्मविजय-भूमिका पृ० २ सरस्वती भवन, काशी)। केशवदास नाम के अब तक चार ख्यातिमान् विद्वानों की खोज मिली है। (१) प्रथम हैं वृन्दावन के केशवदास (कश्मीरी)। जनश्रुति है कि चैतन्यदेव से शास्त्रार्थ में पराजित होकर वैष्णव धर्म को स्वीकार करते हुए उन्होंने वृन्दावन में जीवन बिताया था। (२) द्वितीय हैं—अलंकार शेखर के रचयिता केशव मिश्र। वे लगभग सन् १५६३ ई० को कांगड़ा के राजा माणिकचन्द्र के सभाकवि थे। (Hist. of Poetics. Kane, P 317)। (३) तृतीय केशव हैं—हिन्दी के अन्यतम महाकवि केशवदास। धर्मविजय नाटक की प्रस्तावना में भूदेव शुक्ल स्वीकार करते हैं कि वे (भूदेव शुक्ल) "दिल्लीश्वरदयितवेतनदानामात्य" राजर्षि

---

*एकादश 'प्रभाव' की पुष्पिका में 'संभोगश्रृंगार-प्रवासवर्णनम्' पाठ है। यह मूल पोथी में लिपिकर कृत अशुद्धि मालूम होती है। पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र संपादित केशव ग्रन्थावली (हिन्दुस्तानी एकाडेमी द्वारा प्रकाशित) में, तथा 'रसिकप्रिया प्रसाद तिलक' में भी यही पाठ ग्रहण किया गया है। 'प्रवास' संभोगश्रृंगार का विषय नहीं, वह विप्रलंभ श्रृंगार का विषय है। मम्मटाचार्य के मत से "अपरस्तु अभिलाषविरहेष्या प्रवासशापहेतुक इति पंचविधः" (काव्यप्रकाश, पृ० १०२) 'रसचन्द्रिका' के एकादश आलोक की पुष्पिका में मधुसूदन लिखते हैं, "इति विप्रलंभश्रृंगारे प्रवासवर्णनम्"। इस पर संभवतः 'रसिकप्रिया' के संपादक महाशय की दृष्टि नहीं पड़ी।

...दास की कृपा से यह नाटक लिखते हैं (धर्मविजय—
...१-२)। केशव मिश्र केशवदास से कुछ पूर्वतन थे।
...ही मिश्र उपाधि के अधिकारी थे। न तो केशव मिश्र
...दिल्लीश्वरदयित वेतनदानामात्य" होने का कोई
...सूत्र उपलब्ध होता है, और न केशवदास का
...के राजा माणिकचन्द्र की सेवा में रहने का कोई
...मिलता है। दोनों के कालक्रम में करीब करीब
...वर्ष का अन्तर है। किन्तु केशवदास का बादशाह
...गीर से घनिष्ठ संपर्क की गवाह है—'जहाँगीर-जस-
...का'। 'ओड़छा' दरबार से संपर्क प्रतिष्ठित होने के
...से ही केशवदास को समय समय पर घरेलू तथा
...मामले में मध्यस्थता करनी, तथा राजदूत की
...लेनी पड़ती थी। कुमार वीरसिंह से शाहजादा
...की जो पुरानी दोस्ती थी, उसके कारण क्या यह
...नहीं है कि आगे चलकर उसी मित्रता के ग्रन्थि-
...विचक्षण राजनीतिज्ञ केशवदास, वीरसिंह देव के
...प्रतिनिधि की हैसियत से, बादशाह जहाँगीर के
...में रहते समय दिल्लीश्वर के 'दयित' तथा 'वेतन-
...मात्य' न बन गये हों? उनकी दौलत भी किसी एक
...से कम नहीं रही होगी। भूदेव शुक्ल के वर्णनानुसार
...जितने बड़े विद्वान् थे, उतने ही बड़े धनी भी थे। भूदेव
...के विचार से लक्ष्मी तथा सरस्वती का पुराना झगड़ा
...दास ने ही मिटाया (धर्मविजय—पृ० ३-४)। वे
...नीतिमान् तथा संस्कारवान् ऋषि सदृश ब्राह्मण थे;
...राजर्षि होने का सम्मान आपके लिए उचित ही था।
...दरबार से घनिष्ठ संपर्क रखने के कारण हिन्दुओं
...मुसलमानों के अधिक मेल-मिलाप से देश भर में जो
...तथा व्यभिचार फैले हुए थे, उनसे केशवदास का
...परिचय था। जाति के इस नैतिक पतन ने सिर्फ
...दास को ही नहीं, १६वीं और १७वीं शती के तुलसी-
...आदि सभी सन्तों के चित्त को व्यथित किया था।
...है कि इस भयंकर सांस्कृतिक अवक्षय से देश को
...करने के उद्देश्य से ही केशवदास के संकेत से भूदेव
...ने 'धर्मविजय' नाटक लिखा हो। इस प्रसंग में यह
...अत्युक्ति नहीं होगी कि भूदेव शुक्ल का 'धर्म-
...केशवदास की 'विज्ञानगीता' का एक संक्षिप्त
...संस्करण है। संस्कृत के विद्वान् होते हुए भी
...में काव्य लिखने का शायद यह भी केशवदास का
...अन्यतम कारण रहा होगा कि जैसे वैष्णव समाज के
...प्रचारकों के 'मोक्षशृंगार' ने भाषाकाव्य के माध्यम से
...हुई जाति को बड़ा भारी सहारा दिया, उसी प्रकार
...दास की सरस, भावमय, तत्त्वपूर्ण, ज्ञान एवं भक्ति
...कविताएँ साधारण जनों के जीवन में एक नया
...तथा नैतिक और सांस्कृतिक दृढ़ता ले आ सकें।
...) चतुर्थ हैं, केशव पंडित अध्यक्ष। वे महाराज छत्र-
...शिवाजी के पुत्र शम्भुजी के दरबार में सन् १६८४
...लगभग रहते थे। ये केशव भूदेव शुक्ल से कुछ अर्वा-
चीन काल के हैं। अतः 'धर्मविजय' में वर्णित राजर्षि केशव-दास से ये स्वतन्त्र व्यक्ति रहे होंगे। इस प्रसंग में उल्लेख किया जा सकता है कि यद्यपि शम्भुजी की संस्कृत ग्रन्थ-निर्माण-योग्यता के सम्बन्धों में मतभेद है, तथापि वे हिन्दी में काव्य रचना-कुशल थे,—इस विषय में मतभेद नहीं। उन्होंने 'नखशिख' तथा 'नायिका-भेद' नाम के दो ग्रन्थ हिन्दी में लिखे। शम्भुजी के नखशिख के ऊपर केशवदास के नखशिख की प्रभा कहाँ तक प्रतिफलित हुई है—इसका भी विवेचन करना चाहिये। (The Budhabhusans of King Sambhu, Intro p. xiii-xv, By H. D. Velankar, B. O. R. I. Poona)

बातचीत के सिलसिले में केशव ग्रन्थावली के संपादक पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने कविता के इस साम्य को देखकर मधुसूदन कवीन्द्र को उत्तर भारतीय होने का अनुमान लगाया था। राजा रामजीवन राय ने अपने राज्य-काल में दो बार नवद्वीप में बहुत बड़ी पंडितसभा बुलायी थी, जिसमें काशी, काञ्ची, वृन्दावन आदि स्थानों से बड़े-बड़े विद्वान् तथा अनेक प्रमुख राजा निमंत्रित किये गये थे। प्रथम सभा उनके पिता रुद्रराय के श्राद्ध के अवसर पर बुलायी गयी थी। रुद्रराय का देहान्त सन् १६८९-१६९१ के लगभग हुआ था। (क्षितीश वंशावली चरित—पृ० ४०-४१) रसचन्द्रिका की रचना सन् १६९५ ई० में समाप्त होती है। यह असंभव नहीं है कि उक्त श्राद्ध के अवसर पर मधुसूदन कहीं बाहर से आकर काव्य-प्रेमी महाराज रामजीवन के दरबार में कुछ दिन रह गए हों; तथा महाराज की प्रार्थना से 'रसिकप्रिया' के आधार पर 'रसचन्द्रिका' लिखी हो। नदिया का राजवंश पंडितों की संरक्षकता के लिए सदा से ही प्रसिद्ध है। महा-राज रामजीवन के अन्य सभासद् पं० जयराम न्यायपंचा-नन आदि को नदिया दरबार की तरफ से भूमि आदि का दान मिलने का प्रमाण मिलता है। महाराज राघवराय के समय से महाराज कृष्णचन्द्र राय के समय तक नदिया में शायद ही कोई ऐसा विद्वान् रह गया था जिसे नदिया राज से भूमि आदि का दान न मिला हो, किन्तु कवीन्द्र मधुसूदन अथवा मधुसूदन नाम के किसी समकालिक ब्राह्मण के नाम भूमि आदि के दान का कोई रेकार्ड नदिया जिला कलेक्टरी में अब तक उपलब्ध नहीं। अतः यह अन्दाज लगाना अवास्तविक नहीं है कि कवीन्द्र मधुसूदन कहीं बाहर से आये थे, तथा कुछ दिनों तक महाराज रामजीवन के दरबार में रहकर फिर स्वस्थान वापस लौट गये क्योंकि 'रसचन्द्रिका' की समाप्ति-काल तक रामजीवन की राजनैतिक स्थिति बहुत बिगड़ जाती है। सन् १६९५ ई० के लगभग किसी समय वे नवाब के प्रति-निधि राधावल्लभ तथा उनके वैमात्रेय भाई रामकृष्ण राय के षड्यंत्र से कैद हो जाते हैं, तथा उन्हें राज्य से हाथ धोना पड़ता है। (क्षितीश वंशावली चरित—पृ० ४२) इस प्रसंग में यह स्मरण रखना चाहिए कि

कवीन्द्र मधुसूदन दार्शनिक मधुसूदन सरस्वती से भिन्न पुरुष थे।

किन्तु उक्त अनुमान में भी अव्याप्ति है। 'रसचन्द्रिका' में 'नवद्वीप' तथा 'नवद्वीप निवासियों' के 'गुणों' का जैसा वर्णन किया गया है, वह एक आगन्तुक के लिए अप्रत्याशित है। 'पञ्चाननादि' अनेक 'वागीशों' की—जिनकी जिह्वा पर देवी सरस्वती नाचा करती थीं', मधुसूदन मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हैं। नवद्वीप की विद्वद्गोष्ठी में केवल केशवदास की 'रसिकप्रिया' की प्रतिष्ठा का अनुमान और भी दो मुख्य सूत्रों से किया जा सकता है। प्रथम यह है कि उस समय नवद्वीप भारत का प्रमुख विद्या-केन्द्र था जहाँ देश देशान्तर से विद्वान् तथा छात्र, साहित्य, दर्शन, धर्मशास्त्र, आगम, विशेषतया नव्य न्याय के अध्ययन के निमित्त जाया करते थे। संभव है, केशवदास की 'रसिकप्रिया' इस प्रकार आगत विद्वानों अथवा छात्रों द्वारा नवद्वीप में प्रतिष्ठित हुई हो। बंगाल के रसिक समाज में 'रसिकप्रिया' के प्रतिष्ठाता गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय के सन्त प्रचारक भी हो सकते हैं। वे वैष्णव धर्म से सम्बन्धित, विशेषतया कृष्णलीला संबंधी सरस काव्य ग्रन्थों के माध्यम से देश भर में नीति तथा धर्म का प्रचार किया करते थे। ग्राम जनता में शिक्षा, नीति तथा धार्मिक भाव प्रचार करने के लिए वे संस्कृत साहित्य की अपेक्षा देशीय भाषाओं में लिखे हुए साहित्य को अधिक महत्त्व देते थे। केशवदास स्वयं वैष्णव थे। वैष्णव धर्म संगठन के साथ उनका घनिष्ठ संपर्क भी स्वाभाविक था। इसके अतिरिक्त उस समय उड़ीसा से लेकर राजस्थान तक गौड़ीय वैष्णव धर्म की तूती बोल रही थी। ईसा की १६ वीं तथा १७वीं शती में व्रजभाषा करीब-करीब सारे आर्यावर्त्त के भाव-विनिमय का सर्वजनबोध्य माध्यम रही होगी। वृन्दावन के गौड़ीय-वैष्णव संप्रदाय के प्राणकेन्द्र होने के कारण व्रजभाषा को गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय ने अपना लिया था। उस समय आज की तरह हिन्दी और बंगला भाषा में इतनी भाषातात्त्विक दूरी नहीं थी। मीरां, सूर, तुलसी, कबीर, भक्तमाल आदि की भाषा से चंडीदास, विद्यापति, बलराम, कृष्णदास, ज्ञानदास, गोविन्ददास आदि की भाषा में अन्तर बहुत ही कम था। अतः वैष्णव साहित्य में कृष्णलीलात्मक एक उच्चकोटि का सरस काव्य ग्रन्थ होने के कारण एक शती के भीतर ही 'रसिकप्रिया' का नदिया के सुधी-समाज में उचित मर्यादा प्राप्त करना स्वाभाविक था।

'रसचन्द्रिका' के संपादन के प्रसंग में मेरी दृष्टि केशवदास की 'रसिकप्रिया' पर पड़ी। 'रसचन्द्रिका' के कवि मधुसूदन स्वयं स्वीकार करते हैं कि:—

आदिष्टो 'रसिकप्रियो'दित रसादचालोच्य 'देवो' दितः
काव्यं वर्णयितुं मनोहरतया तस्मिन् कवीन्द्रो द्विजः॥

प्रस्तुत श्लोक में 'देव' शब्द से हिन्दी के अन्तिम प्रमुख कवि 'देव' की ओर संकेत है या नहीं, यह भी विचारणीय है।

हिन्दी साहित्य मेरा क्षेत्र नहीं। प्रसंगानुसार इस अनधिकार प्रवेश से मुझे केशवदास की सर्वजनमान्य विद्वत्ता तथा सार्वभौम प्रतिभा से किंचित् परिचय हुआ। समकालीन सर्वभारतीय कविसमाज में केशव-प्रतिभा की व्यापकता देखकर हम चमत्कृत हुए। मधुसूदन की 'रसचन्द्रिका' (सन् १६९५ ई०) पर 'रसिकप्रिया' का तथा महाराज शम्भुजी के 'नख शिख' पर (सन् १६८४ई० के लगभग) केशव के 'नख-शिख' का प्रभाव देखकर यह ज्ञात होता है कि 'केशव-कीर्त्ति' एक ही शती के भीतर भारत के पूर्व तथा पश्चिम समुद्र में समानरूप से अवगाहन कर रही थी।



मध्ययुगीन कुछ वस्त्रों और आभूषणों की चर्चा

श्री पद्मधर पाठक, एम० ए०

...र की सजावट में वस्त्रों और आभूषणों का बड़ा ...थ है। तरह तरह से कवियों ने यौवन का चित्रण ...है परन्तु शरीर को अधिक आकर्षक बनानेवाले ये ...वन अपना अलग स्थान रखते हैं। यद्यपि सुन्दर ...सुडौल शरीर के लिए बिना आभूषण भी काम चल ...है तथापि जब ये गहने शरीर की कसावट से होड़ ...हैं तब शायद कवि की कल्पना भी एक बार तरस ...है। बिहारीलाल भी सीधी नजर के हिमायती नहीं, ...नों का महत्व खोलते हुए लिखते हैं :—

...के तन की अच्छ छवि, स्वच्छ राखिबे काज।
...-पग पौंछन कों किए, भूषण पायन्दाज॥

अर्थात् दृष्टि की सीधी चोट को रोकने की दृष्टि से आभूषण मानों पायन्दाज का काम करते हैं।

...और काव्य पक्ष से हटकर यदि हम वस्त्रों और आभू-...पर शोध की दृष्टि से भी विचार करें तो हमें जन-...के एक सुन्दर अंग का परिचय मिलेगा। यद्यपि ...विद्वानों ने इस संबंध में लिखा-पढ़ा है, तथापि अभी ...विषय में शोध की इतनी अपेक्षा है कि उसकी पूर्ति ...धीरे ही होगी। इस विषय का साहित्य इतना फैला ...है कि दावे के साथ किसी विषय पर विराम लगा ...केवल नासमझी होगी। वैसे तो पुराने चित्रों में हमें ...षणों और कपड़ों के नाना प्रकार देखने को मिलते हैं ...ऐसे मूक आधार की कमी वे ही ग्रंथ पूरी कर पाते हैं ...हमें इनके नाम और प्रचलन के क्षेत्र का भी पता ...सके।

प्रस्तुत लेख तीन हस्तलिखित ग्रंथों पर आधारित ...दो ग्रन्थों में आभूषणों और वस्त्रों के नाम मात्र लिखे ...हैं तथा तीसरे में लगेहाथों कुछ आभूषणों आदि के भी ...आ गये हैं यद्यपि उसका शीर्षक 'मीयाँ बीबी वारता' ...यह अंतिम ग्रन्थ शेष दोनों से अधिक रोचक है और ...संबंधी चर्चा के अतिरिक्त औरतों की मनोवृत्ति ...दौड़ में ले आता है। तीनों ग्रन्थ राजस्थान प्राच्य विद्या-प्रतिष्ठान की संपत्ति हैं। एक एक करके हम इनको उठाते हैं।

१—संग्रहांक ९९९ (शाखा चित्तौड़गढ़)—इस ग्रन्थ को छोटे से कोष की संज्ञा दी जा सकती है जहाँ एक ही वस्तु के अनेक नाम गिनाये गये हैं। देश नाम, जीव नाम, घोड़ा नाम, गज नाम, भला वस्त्र नाम, शृंगार नाम आदि। ग्रन्थ का लिपिकाल १८वीं शताब्दी का अन्तिम चरण निकलता है। लेखक का कोई पता नहीं। शृंगार नाम के अन्तर्गत निम्नलिखित गहनों आदि के नाम आये हैं। कोई हाथ का है तो कोई पैरों, गले, ललाट, कमर, कर्ण, केश आदि का। आगे बढ़ने से पूर्व यहाँ इस बात का संकेत कर देना आवश्यक है कि जितने भी गहनों और कपड़ों का जिक्र यहाँ हुआ है उनके विस्तृत अध्ययन के लिए बड़ौदा विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित "वर्णक-समुच्चय" पठनीय है। यद्यपि कई गहनों आदि के नाम इस पुस्तक में नहीं मिलते हैं और इसका कारण यह है कि गुजरात के अपने अलग शब्द हैं परंतु जहाँ जहाँ इनके नाम मेल खा गये हैं वहाँ वे एक दूसरे की पुष्टि करते हैं। ग्रन्थ (१) में आये गहनों के नाम—

अणवट, अंगथली, विछिआ, पोलरा, कड़ा, कांछि, कांकण, कटीमखुल, बाजूबंघ, बहरखां, खुणचियां, छांपा वीटी, हारा, अर्द्धहार, उलडी, चोकी चीड, सांकलि, माला मोती, घडतेहड, मोतीसर, एकशांधो, घुघरी, राखड़ा, सहेली टीकी, काजल, कुंकुं।

'भला वस्त्र' नाम इस प्रकार हैं:—

सालू, सेल, सरिसाप, घुसा, सलहती, सूपासी, चोरसो, चीर, चुनडी. चीणी, सीन्दूरी, छींट मुलतानी, मलमल, मखमल, महमूदी, पाडरी, पटका, पछेडी, पटोली, प चवटू, पटू अटाण, अतलस, अघोतर, एलायचा, खासाखोरी, भयरव, बाहादरी, बदामी, दरियाई, दोताला।

२—संग्रहांक २२३५२ (जोधपुर कार्यालय)—केवल एक पत्र के इस ग्रन्थ में पकवान और आभूषणों के

नाम गिनाये गये हैं। कागज की दृष्टि से इसका लिपिकाल ऊपरवाले ग्रन्थ से कुछ और पीछे का लगता है। आभूषणों के निम्न प्रकार यहाँ मिलते हैं:—

हथ सांकलो, सहेली, पगपान, नखला, नकवेसर, गजरा, नवसरहार, टीको, अकोटा, हथआरसी, हथवाडलो, पंचलडी, काबी, चंपकली, जेहड, बाजूबंध, रमझोल, गूघरी, सूंदडी, चंदनहार, मोतीसरी, वाललो, सीसफूल, चुडी, चीढ, घुघरा, गुजरी, करणफूल, मुद्रिका, पावटा, पंचलडी, मादलीयो, पगपांन, जव, माला, कांकण।

मीयाँ-बीबी की वार्ता अपने ढंग की निराली है। बेचारी बीबी के पास संभव है उतने गहने, जेवर और वस्त्र न हों जितने वह शेखी में गिनाए जा रही है परंतु इतना तो सिद्ध हो ही जाता है कि यदि इतने महँगे और खालिस आभूषण उसके पास आ जाते तो जीते जी उसको स्वर्ग प्राप्त था। बीबी का रोना आगे प्रस्तुत कर दिया है। पढ़ते ही पता लगता है कि किस प्रकार टूट-टूटकर बीबी आभूषणों के नाम गिना रही है, जब कि पान की डिब्बी के अतिरिक्त शेष सभी मन के लड्डुओं वाली बात है। ऐसे ग्रन्थों को 'मनोरंजन-साहित्य' की श्रेणी में ले सकते हैं, जिसके द्वारा हमें समकालीन समाज के नादान और बकवासी पक्ष का भी दिग्दर्शन होता है। अठारहवीं शताब्दी के अंत अथवा लगती उन्नीसवीं में ग्रन्थ लिखा गया है और ऐसा प्रतीत होता है कि राजदरबार की किसी लौंडी-बाँदी के रवैयों पर आधारित यह किस्सा है। बीबी की आवाज में समकालीन सामाजिक वातावरण का भी पता लग सकता है। अर्थात् किस्से-कहानियों से भी अनेक उपयोगी परिणाम निकाले जा सकते हैं। कोतवाल की मुस्तैदी और साथ ही बीबी से चुटकियाँ लेना, राजाशाही सिक्कों का वर्णन, प्रचलित शब्दों का प्रयोग—यह सब हमें जन-जीवन के इतिहास के अध्ययन में सहायक होंगे। चोरी में मियाँजी का भी सामान गया जिसको बीबी की भाषा में ही पढ़ना अधिक माकूल होगा। वारता इस प्रकार है:—

अथ साच जूठ उपर मीयां बीबी वारता लिख्यते:
कर मरदानी वेस चली, मुलतांन सू खांधै धर
कहै दरवान सु, नीत सुणावणा जाय सही सूलतांन सू।
हजरत मोरा जूलम हूआ, मैरा सैहर मै कहे बीबी।
तेरा क्या क्या गया:

हजर सीसफूल, सीस सूलीना, सोना का दोय टीका था,
रतन जडत मेरे रखडी थी, पीपल पता का नाका था,
ओर जबजबी साडी थी, नाक गला सोना का था उवे
सोना सूं लगीया था
क्या जांणू कीतना का था?

दली[1] का दोय चूडा था, लाहोर का दोय लूंबा था,
बुंदी की दोय फूंदी थी, पाटण का दोय पुणछा था,
डाल बगडी उसमै थी।
क्या जांणू कीतना का था?

नाक की नकवेसर थी, सात मौहर का डंड उसका,
नव मोहर का जलरा था, सात मोहर का संकल मेरा,
अरै काच पलका था, इक डबा मै डब्री थी,
उसमै मूंदडा मूंदडी, उसमै काच ही डबी थी
दीन उगां मूख नीर्षती थी[2], चबीदार दोय मेरा
उस्मै हरचा नगीना था।
क्या जांणू कीतना का था?

एक डबा मै डबा था उस्मै नवसर हार था,
चंद्रहार की जोडी मेरी, पांच कली सोना की थी,
दोय लडी मोतीयन की मेरी, मेबी मोती सच्चा था।
क्या जांणू कीतना का था?

और गेहणा क्या वखांणू, काजल की कजलोटी मेरी
हीगुला का डबा था, मोरर्रै मोर की टीकी
मेरी उसकै मोती लगीया था।
क्या जाणूँ कीतना का था?

दोय (?) लुगां की मेरी सराणै, रेशम की अंगीयां थी,
रात पेरण की साडी मेरी सेज उपरली,
माला सोना की थी, छावडी का तंबू मेरा, बैठण
कूं सवा लाख रा बाजोट था। पोढण कूं पीलंग
मेरा, ओटण कुं सीरखडी थी। करणफूल हाथ
सुलीना, पाव फूल पाव का था, गुघरु मेरा
धमकण हुता, वीच्या मेरा वाजणा था, दोय
तोलो को अणवट मेरा, एवी मैरा उस्मै था।
क्या जाणूँ कीतना का था?
बाराकी रकेबी मेरी, गंगाजल की झारी थी,

१—दिल्ली।
२—देखती थी।

पेसकबज पांना का मेरा उस्मै चुना चांनो थी,
उवाबी सोनां सु लगती थी।
क्या जाणूं कीतना का थी ?
और गेहणा क्या वखांणू, दोय कपडा का बुगचा था,
छपनसे[1] की साडी मेरी, तैरैसे[2] का गगरा था,
साथ से (ज) की अंगीया मेरी, उसकै मोती
लगीया था।
क्या जांणू कीतना का था ?
मुखमल का दोय खलका था, तीलक सूथण होती थी,
मुखमल की दोय जोडी मेरी, चवद्देसै मै पैहरी थी,
मैं क्या जाणू जाती रहसी—वे मे कद्दे न पहरी थी,
अतलस की दोअ अंगीया थी, छठै महीनै काढयौ
कसीदौ-ऐभी मेरा उसमे था, सब गैणो सोना
को मोरो, सवाइ के मोती लगीया था।
केतांका तौ नांम न जाणू,
क्या क्या जांणू मेरा क्या क्या था ?
पिण इतना सा तौ मेरा था, मियाँजी का तो न्यारा था
दुपदोस का कपडा मेरा, जरीकस का दोय जांमा था,
पांचसे को पगडी मेरी, अणमोल्या रूमाल था,
हरीया दोनू दुपटा मेरा, दोय थाल सोना का था,
उस्मै मीयाँजी जीमता था, तासली सोना की थी मेरी,
उस्मै आबखोरा था मीयाँ पाणी पीता था,
दोय सीसी अंतर की थी, भांत २ का अंतर था,
मियां को कसबोइ[3] थी, ब(?) दोय बुंदी का था,
तुरकण तरवार थी, ढाल दोय ढलकण थी, दुलमाम
दलो का था, सांगानेर रा दोय संगा था;

उवै भी मेरा उस्मै था।
क्या जांणू कीतना का था ?
उस टबा मैं डबा था, उसमै मीयाँजी का गैणा था
सर की तौ कलंगी, मीयाँ की तीस मोहर का
चोकोरा था, कांनां का दोय मेरा कडा, मूंदडी
उस्मै था, दोय हीरा की कंठी मैरी, उस्मै
नवसर हार था, बांह हाथ की (?) मेरी,
उस्मै हरचा नगीना था, उवैबी मेरा सच्या था।
क्या . . . .
ओर गेहणा क्या क्या वखांणू, राजासाइ रोक
रुपीया, मैमदसाइ न्यारा था।
तू क्युं बीबी नीद कर सूती ?
हजरत, लगता मास जेठ का,
आया हवा छौक, मैं सूती थी, परवाइ का पवन
चलता था, नींद उरसु आवती थी, सोच फकर
मैं सब ही भुली जब ही नचीती सूती थी।
अवछल राज पातिसाह जीकौ नही जाबता
रखती थी। घर माहरा मेला कै नीचै चौरन सूँ
नही डरती थी।
तेरा दुसमण जताई तुजनै
वात मंगाई थी, जमेखात्तर राख बीबी तेरा
माल परा दराउगा, नहीतर मुह पर मार पराउंगा,
क्युं बीबी २ चल इस वातन मैं तुबी थाह,
वै हजरत का मोर था च्यार खूंट दबाई
मेरी तौ सरपाव दराउगा, नही तौ मार पडाउगा।
इस बीबी का मालकीन संकरौ,
चौर मार के दकरौ। कोटवाल चालीयौ
ठमै ठमै चौकी बैठी पगै २ डाबा पूणी
को कडो—ए बीबी का माल।
इति वात मीयाँ की संपूर्ण।



१—५,६००
२—१,३००
३—खुशबू

'स्वास्थ्य-पान' की प्रथा

श्री देवप्रिय गुप्त

कबीर रो पड़े थे, इसलिए कि लोग चलती को गाड़ी कहते हैं। मेरे एक कबीरपंथी मित्र ने भी मुझे यह पहेली बुझायी थी कि सिगरेट पी कैसे जाती है और दही खाया कैसे जाता है। मेरे मित्र को पुरब देस के 'जलखावा' और बंगाल के "चा खाबे" से परिचय नहीं था। न मेरे मित्र को यही पता था कि ये विरोधाभास हमारी अविकसित नेटिव भाषाओं में ही नहीं, राजभाषा अँगरेजी में भी है; जहाँ हर दावत के अंत में 'टोस्ट' ड्रिंक किया जाता है। टोस्ट-ड्रिंक करने को हमारे केन्द्रीय शिक्षा विभाग के पारिभाषिक-शब्द-विश्वामित्र शायद 'स्वास्थ्य-पान' करना कहेंगे। हमारे स्वर्गीय प्रधान मंत्री इसे 'जामे-सेहत' कहते थे। किसी की सेहत का जाम पीने से उसकी सेहत कैसे बुलंद हो जाएगी, इसका रहस्य तो अखिल भारतीय चिकित्सा परिषद् के विशेषज्ञ ही बतला सकते हैं, लेकिन इससे इस समस्या का समाधान नहीं होता कि आखिर टोस्ट जो डबल रोटी का भुना हुआ कुरकुरा टुकड़ा होता है, ड्रिंक यानी पिया किस प्रकार जा सकता है।

इस रहस्य की कुंजी मिली अँगरेजी भाषा के एक निबंध में। (पता नहीं इसपर पी-एच० डी० मिली या डी० लिट०।) इसमें बताया गया है कि शराब के गिलास में भुने हुए टोस्ट का एक टुकड़ा डाल देते थे, जिससे उसमें सोंधी सुगंध आ जाए। सनद शेक्सपीयर की है। उनका प्रसिद्ध विदूषक फाल्स्टाफ कहता है—अरे, मेरे लिए शराब का एक पौआ लाओ और उसमें टोस्ट डाल दो (फेच मी ए क्वार्टर आफ सैक ऐंड पुट ए टोस्ट इन इट।)

लेकिन टोस्ट की सोंधी सुगंध से और किसी की सेहत के लिए जाम पीने से क्या संबंध? हाँ, संबंध है और तगड़ा। जिस इंगलैंड में शेक्सपीयर हुए, उसीमें उसीके बाद चार्ल्स द्वितीय नामक एक बादशाह भी हुआ जिसे 'मेरी मानर्क' या 'मस्त बादशाह' कहा जाता था। कहते हैं कि जब दुश्मन के जहाज टेम्स नदी में घुसकर लंदन तक चले आये और इंगलैंड के जहाजों को जला गये उस समय ये मस्त शाह सुंदरियों के साथ आँखमिचौनी खेल रहे थे। मस्त बादशाह के दरबारी भी मस्त। इंगलैंड में एक जगह थी बाथ। यहाँ पर गंधक के पानी के सोते थे जिनमें नहाना स्वास्थ्य के लिए अच्छा समझा जाता था। शाही घराने और रईसों में वहाँ नहाने का फैशन था। नहान के दिनों में यह परियों का अड्डा बन जाता था। इंगलैंड भर के रईस यहाँ आते थे और दावतों व नाच का ताँता लग जाता था। मजनू यहीं माशूकाओं से नैन लड़ाते थे। माताएँ अपनी लड़कियों के लिए शिकार फाँसने की फिराक में रहती थीं और खूब नाच रंग, हा हा हू हू का दौर दौरा रहता था।

इसी मस्त शाह के जमाने में एक बार एक प्रसिद्ध सुंदरी बाथ में नहा रही थी (यह नहान घर भी पब्लिक होता था।) तो एक मजनू ने एक गिलास पानी उस कुंड से भर लिया जिसमें वह सुंदरी नहा रही थी, और यह कहकर पी गया कि इसमें सुंदरी की सुगंध है। पर सुगंध से उसकी नाक भले ही तृप्त हुई हो मुँह तो कड़ुआ हो गया, और मजनू मियाँ यह कहते हुए कुएँ में कूद पड़े कि टोस्ट की सुगंध नहीं, मुझे तो टोस्ट ही चाहिए।

यह गप्प नहीं है। इसके प्रमाण में इंगलैंड के प्रसिद्ध पत्र टैटलर के ख्यातनामा संपादक अँगरेजी के चोटी के चुटीले गप्प लेखक सर रिचर्ड स्टील की गवाही है।

अस्तु, तभी से इंगलैंड में किसी सुंदरी के नाम पर टोस्ट पीने की प्रथा चली। लक्षणा यह रहती थी कि जिस तरह शराब टोस्ट से सुगंधित होती है, उसी तरह सुंदरी के सौंदर्य की वास इसमें आ जाती है।

धीरे-धीरे सुंदरियों के बजाय राजा और नेताओं के नाम के साथ शराब पीने की चाल चली। इंगलैंड में गृहयुद्ध के जमाने में इसी स्वास्थ्य-पान को लेकर तलवारें चल जाती थीं। यदि किसी जगह राजा के पक्षवाले प्रबल हुए तो भोजन के अंत में खड़े होकर वह राजा का नाम लेकर जाम उठाते थे, यदि कोई प्रजातंत्रवादी इस टोस्ट में न शरीक हुआ तो तलवारें खिंच जाती थीं। स्टुअर्ट वंश के राजाओं के गद्दी से हटाये जाने और निर्वासित होने के बाद, जब हैनोवर वंश के राजा गद्दी पर बैठे, तो यह टोस्ट या जामे-सेहत, राजभक्ति की कसौटी बन गया। ऐसे समय जब दावत के अंत में 'राजा' के नाम पर शराब का जाम पीने की ललकार होती थी, तो स्टुअर्ट वंश के समर्थक राजा शब्द के बाद धीरे से कह देते थे—'समुद्र पार का', उसी तरह जैसे युधिष्ठिर ने 'अश्वत्थामा हतो' के बाद धीरे से कहा था 'नरो वा कुंजरो वा।

अस्तु अब तो स्वतंत्रता के साथ-साथ हमने भी योरोप की प्रगतिशील संस्कृति को अपना लिया है और राजसी दावतों के समय अपने सम्मानित और परमश्रेष्ठ अतिथियों के सम्मान में जामे सेहत पीने लगे हैं, भले ही वह जाम टमाटर के जूस या शुद्ध जमना-जल का हो।

मगर यह न समझिए कि यह जामे-सेहत हमने विदेशियों से ही सीखा है। हमें भली भाँति याद है, अपने मथुरिया चौबेजी की जो भाँग का लोटा उठाकर कड़कदार आवाज लगाते थे—दाऊ दयाल व्रज के राजा! भंग पीना हो तो आ जा! इससे तगड़ी टोस्ट और क्या हो सकती है? कोटि 'मनोज' लजावन हारे, गोपी वल्लभ कन्हाई के बड़े भाई मस्त मौला हलधर से बड़े 'पैट्रन' भंग की तरंग में लीन रहनेवालों को और कौन मिल सकते हैं।

इसलिए हम भी इसी कड़क के साथ अपना गंगाजल का लोटा उठाते हैं—बम शंकर, कांटा लगे न कंकर—दुश्मन को तंग कर—आमद बढ़ा और खर्चे को कम कर!

शुभाशुभ शकुन विचार

श्री गोस्वामी रामबालक, साहित्यरत्न

यात्रा के समय अथवा गृह व ग्राम प्रवेशकाल में जो पदार्थ सर्वप्रथम सम्मुख आवे, उससे शुभाशुभ का विचार हो जाता है। वस्तु का प्रथम-दर्शन ही कार्य की सफलता व विफलता का सूचक है। यों यह भी समझ लेना चाहिए कि शुभाशुभ की द्योतक वस्तु में वस्तुतः कोई भलाई या बुराई नहीं होती है, वह तो बस आपके कार्यारम्भ के फल की सूचक मात्र है।

यात्रा और **कार्यारम्भ काल के शुभ शकुन**—फल, मछली, स्वस्थ गऊ, ब्राह्मण समूह, दही, मधुर वाद्य (बाजा), मांस, जल से भरा हुआ घड़ा, ऊख, प्रज्वलित-अग्नि (सुगंधिमय), मंगल-गान श्रवण, ससंतान (गोदभरी) सुहागिन स्त्री, राज-चिह्न, चँवर, छत्र, रोदन रहित-शव-यात्रा, मधुर वेद-मंत्र-श्रवण।

विशेष:—यहाँ मांस-मछली आदि कुछ (खाद्य) वस्तुओं के नाम आये हैं, वे मात्र दर्शन के लिए हैं। हाँ, एक बात और। यद्यपि खाली घड़ा देखना यात्राकाल में सर्वथा अशुभ है, फिर भी वह यदि अपने से पीछे हो या जल भरने के विचार से कोई पनघट की ओर जा रहा हो, तो अशुभ नहीं, शुभ ही होता है। इसी प्रकार गधे की आवाज यदि अपने से बाँयी ओर शुभ है। अपशब्द, झगड़ा, किसी का गिरना अपशकुन का सूचक है।

दिशाशूल विचार—यात्राकाल में पुराने लोग दिशाशूल का भी विचार करते हैं। दिनों के अनुसार दिशाशूल इस प्रकार समझना चाहिए—

सोम, शनिश्चर, पूरब न चालू।
मंगल, बुध, उत्तर दिशि कालू॥
रवि, शुक्र जो पश्चिम जाय।
हानि होय, पथ-सुख नहिं पाय॥
गुरु दक्खिन कों करे पयाना।
कष्ट होय ताकों विधि नाना।

छींक शकुन:—छींक हरहालत में अशुभ है। कोई भी काम हो, छींक शुभ नहीं होती है। छींक होने पर कोई भी जरूरी काम क्यों न हो, तुरंत बंद कर देना चाहिए। यात्राकाल में यदि छींक सम्मुख हो, तो कार्य निश्चितरूप से बिगड़ता है। हाँ, पीठ-पीछे की छींक शुभकारक कही गयी है, पर अति अल्पांश में।

किसी एक आदमी के छींकने के बाद यदि कोई दूसरा आदमी तुरंत छींक देता है, अथवा वही पहला व्यक्ति ही लगातार छींके तो उसकी छींक का कोई फलाफल नहीं होता है। वृद्ध, गुरु, बालक, कफ-सर्दी के रोगी, या जान-बूझकर की गयी छींक का भी कोई प्रभाव नहीं होता है। पर भोजन और निद्रा के अंत में छींक को शुभ नहीं समझना चाहिए। किसी नवीनकार्य के संकल्पकाल में यदि कोई दूसरा छींक दे तो वह कार्य अवश्य ही हानिकारक या अशुभ होता है। पर यदि कार्य करने वाला स्वयं ही छींके तो थोड़ी देर ठहरकर ही कार्य आरम्भ करना उचित है। बायीं ओर की, और पीठ पीछे की छींक से न कोई विशेष हानि और न कुछ विशेष लाभ ही होता है। किंतु ग्राम-प्रवेशकाल में बायीं ओर की छींक अशुभ और दाहिनी ओर की छींक शुभ कही गयी है। किसी काम के लिए जाते समय यदि स्वयं को ही छींक आ जाए तो भय ही समझना चाहिए।

इसी प्रकार नवीन वस्त्राभूषण धारण काल में भी शुभाशुभ शकुन समझना चाहिए।

पल्ली-पतन का शुभाशुभ—पल्ली (छिपकिली) यदि शरीर पर गिरती है, तो अंग भेद से उसका फलाफल भेद भी समझना उचित है। छिपकिली गिरकर यदि ऊपर की ओर चढ़े तो शुभ, तथा पड़ी (स्थिर) रहे या बायीं ओर जाए, तो अशुभ होता है।

शुभफल-लाभ एवं अशुभफल के विनाश के लिए सचैल जल स्नान करके शिवालय में घृत-दीप जलाकर यथाशक्ति दान-पुण्य (संन्यासी को) करना चाहिए।

छिपकिली दो रंग की होती है, एक श्वेत और दूसरी श्याम। श्वेत (उजली) पल्ली से ही शुभाशुभ फल होता है, काली छिपकिली के पतन से कोई फल नहीं होता है।

यथासंभव सभी अवयवों पर छिपकिली के गिरने के फल का शुभाशुभ विचार नीचे दिया जाता है—

अंग-स्थान	फल
सिर पर	राज्य (पद) लाभ
ललाट	(मित्र) बंधु-दर्शन
भौंहों के बीच	राज्य सम्मान
ऊपरी ओष्ठ	धन-नाश
अधरोष्ठ	ऐश्वर्य-प्राप्ति
नासाग्र	रोग
दक्षिण कर्ण	आयु-वृद्धि
वामकर्ण	प्रचुर लाभ
नेत्र (कोई भी)	बंधन (बाधा)
दक्षिण भुजा	नृप-तुल्यता
बाम भुजा	शत्रु नाश

अंग-स्थान	फल
स्तन (कोई भी)	दुर्भाग्य प्राप्ति
उदर	भूषण लाभ
पीठ	बुद्धि नाश
जंघा (कोई भी)	शुभागमन
हस्त (कोई भी)	वस्त्र लाभ
कंधा (कोई भी)	विजय
नाभि	प्रचुर धन लाभ
कमर	वाहन लाभ
मणिबंध (दायाँ)	मनस्ताप
मणिबंध (बायाँ)	कीर्तिक्षय
हृदय	धन लाभ
दक्षिण पद	यात्रा
बाम पद	हानि
पादांत	कष्ट।

अंग फड़कने का फल विचार——मनुष्य का अंग-फड़कना भी आंतरिक और मनोवैज्ञानिक फल का द्योतक होता है। संक्षेप में इसका फलाफल निम्न प्रकार से समझना चाहिए। हाँ, पुरुषों का दाहिना और स्त्रियों का बायाँ अंग फड़कना शुभ है।

शरीरांग	फल
ललाट	स्थान (पद) लाभ।
उदर	कोष प्राप्ति
भ्रूमध्य	सुख
कर्ण	ऐश्वर्य लाभ
कपोल	शुभ प्राप्ति
ओष्ठ	प्रिय वस्तु
नेत्र	धनलाभ
हनु	महाभाग
पादतल	नृपत्व बुद्धि
भुजा	मधुर भोजन
वक्षःस्थल	विजय
हृदय	इष्ट सिद्धि
कटि	प्रमाद
जंघ	स्वामि लाभ
नाभि	पत्नीनाश

स्वप्न-विचार——स्वप्नों के अनेक कारण हैं। मनुष्य नित्य ही स्वप्न देखता है किंतु वे उसे याद नहीं रहते। सभी स्वप्नों का फल भी नहीं होता। किंतु कुछ स्वप्न बहुत स्पष्टरूप से याद रह जाते हैं। यह कहना कठिन है कि किन स्वप्नों का फल होता है, फिर भी स्पष्ट रूप से याद रहनेवाले और जिनके बाद सहसा आँख खुल जाय, बहुधा फलदायक माने जाते हैं।

अशुभ फलदायक स्वप्न——स्वप्न में—मुंडित केश मस्तक, काली-वस्तु, भूखा-भिखारी, बानर, शूकर, कीट, पतंग, बिड़ाल, व्याघ्र, चन्द्र ग्रहण, सूर्य ग्रहण, दीप का बुझना, भवन का ध्वस्त होना, स्वयं का गिरना—देखना भावी संकट का सूचक माना जाता है।

शुभ फलदायक स्वप्न——स्वप्नावस्था में राजा, हाथी, घोड़ा, सोना, रत्न, गाय, बैल, प्रफुल्लित पत्र-पुष्प, फल, जल-प्राप्ति, राजमहल में भोजन, जल में तैरना, दधि, वस्त्र, सर्पदंश, बावली, कूप, तड़ाग, सुवासिनी-सुंदरी का देखना, आरोग्य, ऐश्वर्य, धन, धान्य और इच्छितफल प्राप्ति का सूचक समझा जाता है।

स्वप्न फल के काल का निर्णय——स्वप्न का फलाफल उसके समय पर भी निर्भर करता है। जैसे रात्रि के प्रथम प्रहर के स्वप्न देर से, तथा अंतिम प्रहर के स्वप्न सद्यः फलदायक होते हैं।

शास्त्रों में अशुभ स्वप्न-फल के नाश के लिए शांति-पाठ तथा भगवन्नाम का जप करना बतलाया गया है।

काक वचन-विचार——यों तो सभी पशु-पक्षियों की बोलियों में एक न एक संकेत रहता है, पर यहाँ केवल काक की बोली के शुभाशुभ का परम्परागत वर्णन किया जाता है। काक की बोली के विषय में कितने ही कवि-लेखकों ने वर्णन किया है। काक की बोली निश्चित फलदायक होती है जिसे हम निम्नविधि से सोदाहरण समझ सकते हैं—

काकस्य वचनं श्रुत्वा गृहीत्वा तृणमुत्तमम्,
त्रयोदश समायुक्ता मुनिभिः भागमाचरेत्।
लाभं नष्टं महासौख्यं भोजनं प्रियदर्शनम्
कलहो मरणं चैव काको वदति नान्यथा॥

जब काले कौवे (काक, काग) की बोली सुनायी पड़े तो, एक बड़ा सा साफ तिनका जमीन पर से (अथवा पवित्र स्थान से) उठा लें और अपनी अँगुलियों से नापकर देखें कि वह कितने अंगुल का है। वह तिनका जितने अंगुल का हो, उसमें तेरह (१३) अंक और जोड़कर उस योग-फल को सात (७) से भाग दीजिए। फिर जो कुछ (भाग का) शेष बचे उसका फल इस प्रकार निश्चित रूप से विश्वास के साथ समझना चाहिए—यदि भाग का शेष एक बचे तो लाभ होगा, दो बचे तो कुछ हानि होगी, तीन बचे तो सुख मिलेगा; चार बचने पर सुभोजन मिलनेवाला है। पाँच बचे तो प्रिय मित्र का दर्शन होगा; छः बचे तो कलह होगा और शून्य अर्थात् कुछ भी शेष नहीं बचेगा तो समझें कि आपकी अपनी या किसी स्नेही की मृत्यु होगी।

बुद्धि और ज्ञान

श्रीमती हीरा कोयला

बुद्धि और ज्ञान में
बहुत फ़र्क है।
तर्क की शक्ति से
किसी बात के पर्त खोल
उसके अर्थ को समझा जा सकता है,
भीतर से उसकी विवेचना कर
उसकी रचना को
जाना जा सकता है।

परन्तु आत्मा से उसका समीकरण
मन की इन्द्रिय से उसका लयीकरण
ज्ञान द्वारा ही संभव है।
कई बार देखा गया है कि
जो बुद्धि से संभाव्य है
ज्ञान से वह संभव नहीं।

आकाश में छलाँग लगा कर
हम उलटे टँग जायँ
अथवा केशों को परों के समान फैला कर
हवा में उड़ने लगें,
इसकी संभावना में बुद्धि
कोई बाधा नहीं डालती
परन्तु ज्ञान की चेतावनी है कि
मानवीय उपकरणों द्वारा
यह संभव नहीं।

शक्ति से उन्मत्त बुद्धि
भ्रम में डालती है और
ज्ञान की नम्रता हमें उस भँवर से
बाहर निकालती है।
बुद्धि की कटार
विश्लेषणपरक है—
बहुत जल्दी काटती है,
सृष्टि के तत्त्वों को
अलग अलग करती है।
ज्ञान पिघला लाख,
संयोजक रसायन है जो
कटे तत्त्वों को आपस में
जोड़ कर एक कर देता है।

बुद्धि अच्छे और बुरे का
भेद नहीं करती
मस्तिष्करूपी यन्त्र को चलाने की
वह एक निर्विकल्प शक्ति है
जो भले और बुरे
सभी कामों को करती है।
दुर्योधन और रावण
शर्विलक और नेपोलियन
चंगेज खां और चीनी
सब अपने अपने शास्त्रों में
प्रवीण थे। कौन कहेगा
ये सब बुद्धिहीन थे?
परन्तु मानवीय कल्याण के
परमतत्त्व में
अवश्य वे क्षीण थे।

बुद्धि परमाणु-बम बनाती है,
ज्ञान उसका नियन्त्रण करता है,
बुद्धि मनुष्य की तड़ित् है,
ज्ञान उसकी ज्योत्स्ना है,
दोनों के संसर्ग से
मनुष्य का कल्याण होता है।
मानवीय कुशलता का
संबल ज्ञान है, जो
बुद्धि के बल से ऊँचा है,
क्योंकि आत्मा और
भावना का तत्त्व भी
इसके पास पहुँचा है।

बुद्धि का पार्थिव शस्त्र
प्रकृति की देन है,
पर ज्ञान का रसायन
हमारा अपना उपार्जन है।
अधिक धन के समान
भगवान जिसको
अधिक बुद्धि देता है,
अपने सहवर्त्तियों का
वह कोपभाजन बन जाता है;
दूसरे की चतुराई
दुःख और ईर्ष्या की सरिता है,
परन्तु ज्ञान परमपावनी गंगा है;
जिसके सिर पर वह
उतरती है, वह मनुष्य से
उठकर सन्त बन जाता है।



नागा आदिवासी अपनी जातीय वेशभूषा में

नागालैण्ड और मणिपुर में भ्रमण

मेजर सीताराम जौहरी, अवकाशप्राप्त

"नागालैण्ड म आज सीज़-फायर हो गया," मेरे एक मित्र ने ७ सितम्बर १९६४ के दिन मुझे बताया।

"तो क्या हुआ?" मैंने उत्तर दिया।

"अब वहाँ शान्ति तो हो गई। हमारी सरकार और विद्रोही नागाओं में अब समझौते की सम्भावना बढ़ गई।"

"यदि समझौते की कुछ सम्भावना थी भी तो वह इस वर्तमान सीज़-फायर से समाप्त हो गई।"

"यह कैसे?"

"इसका उत्तर कोई साधारण तो है नहीं, परन्तु फिर भी जिस समझौते में स्काट जैसे अंग्रेज ईसाई मिशनरी और जयप्रकाश नारायण जैसे स्वप्नदर्शी राजर्षि हों तो क्या वह कभी भी भारत तथा नागालैण्ड का भला कर सकता है?"

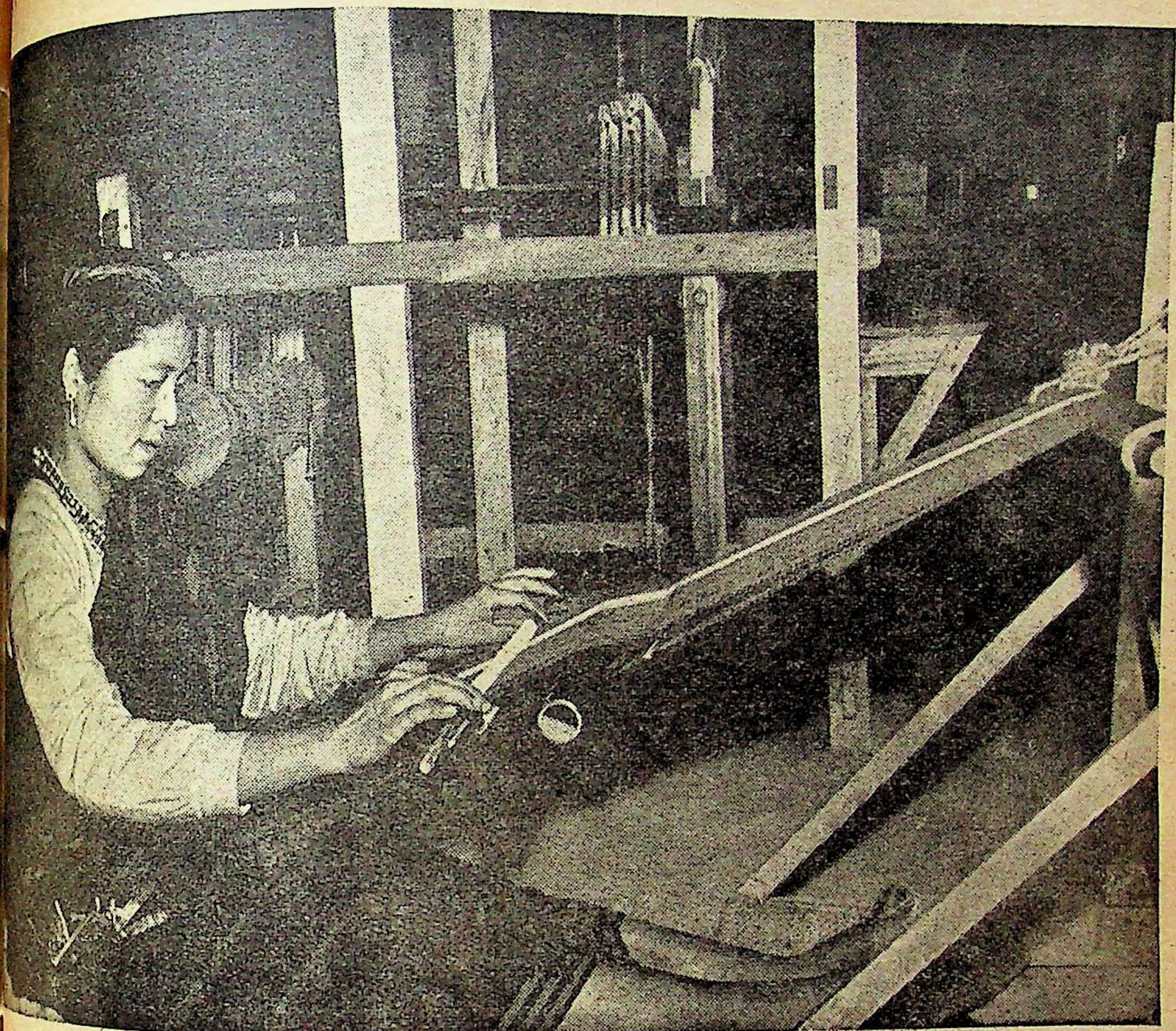
"परन्तु इन दोनों को तो नेहरूजी ने नागालैण्ड भेजा था।"

"इस समय जयप्रकाशजी की बात छोड़िए। स्काट के बारे में जरा विचार कीजिए। याद है एक वह दिन भी था जब नेहरू ने स्काट को नागालैण्ड जाने की अनुमति नहीं दी थी? जब पण्डितजी रोगी होकर निर्बल हो गए तो उन्होंने कुछ राष्ट्रीय समस्याओं को व्यक्तिगत रूप से सुलझाना चाहा। उसी दौर में वे अपनी मृत्यु के आघात के साथ साथ हमारे ऊपर स्काट को भी थोप गए। वेरियर ऐलविन के देहान्त के बाद स्काट साहब भारत सरकार को अपनी राय देने खूब आगए और स्काट तो भारत में ऐसे जमे कि अब जाने का नाम भी नहीं लेते।" मैंने कहा।

"इसमें हानि ही क्या है?"

"जो देश अपनी घरेलू समस्याएँ स्वयं नहीं सुलझा सकता, क्या उस देश में कभी भी शान्ति की आशा की जा सकती है? उपूसी (नेफा) में वेरियर एलविन सरकारी 'रायसाहब' थे। वहाँ क्या हुआ? अब स्काट 'रायसाहब' नागालैण्ड में घुसे हुए हैं। देखो, वहाँ क्या होता है।" मैंने कहा।

विषय गूढ़ था और उधर मेरे मित्र के पास समय

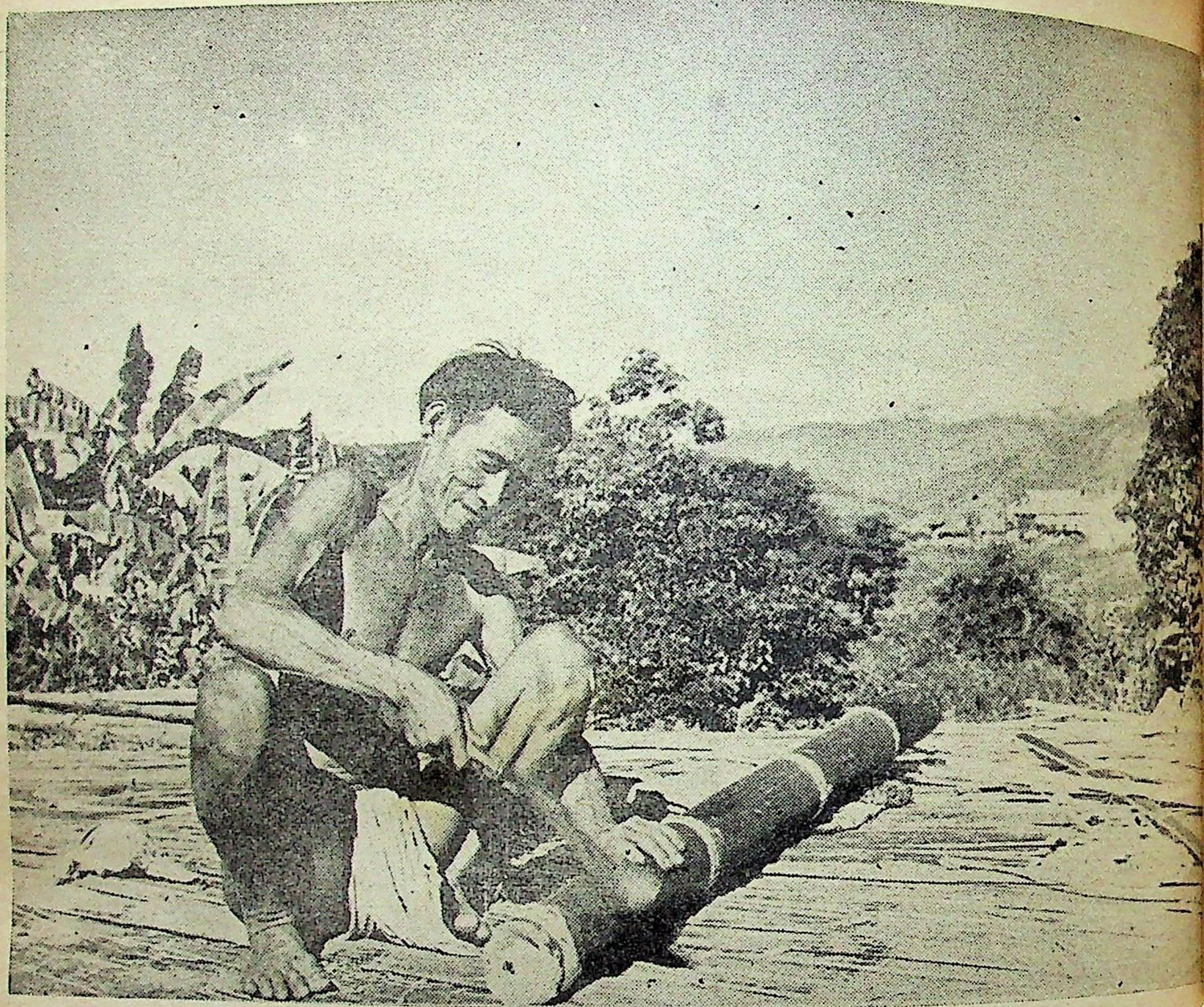


एक नागा लड़की त्वेनसांग में बुनाई का काम सीख रही है।

नहीं था जो इस विषय पर पूरा वार्तालाप होता। वे गये।

मैंने नागालैण्ड और मणीपुर की दो बार यात्रा की। पहली बार १९५५ में नागालैण्ड-मणीपुर होता हुआ ...के रास्ते बर्मा गया, और दूसरी बार १९६२ में। ...बार मैंने काफी समय यहाँ के निवासियों के साथ ...त किया। मेरी पहिली यात्रा के पूर्व इस सीमान्त प्रशासन और नीति के सम्बन्ध में कई परिवर्तन हो ...थे। वास्तव में १९५४-५५ इस सीमान्त के लिए ऐतिहासिक वर्ष था।

१९५४ तक भारत पश्चिमी पाकिस्तानी शरणार्थियों की समस्या को हल कर चुका था। भारत सरकार ...की सफलता पर प्रसन्न थी। अभाग्यवश हमारे नेता ...समझ बैठे कि संसार उन्हीं की राय से चल रहा है। ...के किसी कोने में यदि कोई घटना हुई तो भारत ...अपनी राय देने को तुरन्त तत्पर हो जाता। यदि रूस और अमरीका युद्ध के मार्ग से विरत होकर कोई समझौता कर लेते तो भारतीय नेता यही समझते कि यह भारत का प्रभाव था जो इन विशाल देशों ने एक दूसरे से लोहा नहीं लिया। फलस्वरूप भारतीय नेताओं के मस्तिष्क में संसार में शान्ति स्थापित करने का एक प्रकार का सात्विक उन्माद उत्पन्न हो गया। हमारे स्वर्गीय प्रधान मन्त्री मसीहा बन गये और उनके मंत्री उनके अनुयायी। उन्होंने प्राचीन संस्कृति सागर को मथ डाला। अन्त में उनको सफलता प्राप्त हुई और उन्हें वह रत्न मिला जिससे वे "चिरंतन संसार-शान्ति" और "युद्ध पर विजय" पाने के स्वप्न देखने लगे। चीन, पाकिस्तान और ग्रेटब्रिटेन के सौभाग्य और भारत के दुर्भाग्य से इस रत्न की ज्योति १९५४ के मध्य में सोलह कलाओं से जगमगा उठी। भारत ने चीन से तिब्बत के सम्बन्ध में सन्धि की। इस सन्धि के अनुसार भारत ने तिब्बत जैसे एक स्वतन्त्र देश को चीन का एक भू-भाग मान लिया। एक स्वतन्त्र देश का बलिदान कर के विश्व-शान्ति के हवाई दुर्ग की नींव डाली गयी। इस प्रकार भारत एक नैतिक पाप



एक नागा बाँस की चटाई बना रहा है।

(moral sin) का भागी बना। राजर्षि टंडन ने संसद में इसका विरोध किया, पर वह विरोध नक्कारखाने में तूती की आवाज की तरह खो गया। कुछ देशों ने, सम्भव है कुछ समझदार भारतीय उच्च अधिकारियों ने भी, इस सन्धि के विरुद्ध राय दी हो, परन्तु हमारे नेताओं ने उनकी एक न सुनी। उन्होंने "हिन्दी चीनी भाई भाई" के नारे को इतना बढ़ाया कि अवसर पाते ही इस नारे ने हिमालय की कन्दराओं तक को हिला दिया। चीन ने भारतीय नेताओं की सत्यता की परीक्षा लेनी चाही। चीनियों ने बड़ाहोती, नीलंग और सतलज घाटी में अपने सैनिक भेजे। जैसे गुरु अपने शिष्यों की त्रुटियाँ उन्हें बता देता है, वैसे ही भारतीय पुलिस ने चीनी सैनिकों को उनकी त्रुटि बताई। चीन ने भली भाँति देख लिया कि भारतीय नेता जो कहते हैं वही करते भी हैं, और हुआ भी ऐसा ही। इसी बीच में विश्व-शान्ति के नव-आविष्कृत रत्न का नामकरण 'पंचशील' किया गया, और इस घटना का उत्सव १९५५ के अप्रैल मास में बानडुंग सम्मेलन में बड़े उत्साह से मनाया गया। उस उत्सव में श्री कारटोस पी० रोमोलो-प्रेसीडैन्ट फिलीपाइन—भी उपस्थित थे। जितने दिनों वह बानडुंग बैठक रही, भारतीय प्रतिनिधि तमाम समय चाओ एन-लाई की माँ के समान बने रहे—"The Indian delegate deftly played 'mother hen' to Premier Chou En-lai throughout the conference'। रोमोलो इस मजाक को न सह सके। उन्होंने कहा : "कल के साम्राज्य, कहा जाता था कि जिनमें सूर्यास्त ही नहीं होता, वे एशिया में आज एक एक करके मिटते जा रहे हैं। अब मुझे एक नूतन साम्राज्य (चीन साम्यवाद) का भय सता रहा है जिस पर कभी सूर्योदय ही नहीं होगा। परमात्मा करे, श्रीमान, कि आपका (नेहरू का) भारत इस अन्धकार से न घिर जाए"। "The empires of yesterday on which it used to be said the sun never sets are departing one by one from Asia. What we fear now is the new empire of Communism on which we know

sun never rises. May your (Nehru's) India, never be caught by encircling gloom" सम्भव कि स्वयं नेहरूजी इस वाक्य पर हँसे हों।

भारतीय नेताओं की इस शान्तिप्रियता से फीजो को लाभ उठाने की इच्छा उत्पन्न हुई हो तो हमें आश्चर्य होगा। उसने विद्रोह का झण्डा उठाया और १९५४ उसके कुछ साथियों ने (जो यंगपांग (Yengpang Yimpang)) ग्रामवासी थे) पांगशा (Pangsha) ग्राम के नम्बरदार के पुत्र की हत्या कर दी। यह युवक सरकारी डाकिया था। इस घटना से पांगशावासी बिगड़े, और उन्होंने इस हत्या का बदला लिया। फलस्वरूप कुछ यंगपांगवासी मारे गये। फीजो और उसके ब्रिटिश-पादरी मित्रों ने, जिसमें मुख्य कार्यकर्ता स्काट था, समाचार पत्रों में भारत के विरुद्ध प्रचार आरंभ कर दिया। इस घटना से पहिले भी भारतीय ब्रिटिश ईसाई समाचार-पत्र कल्पित हिन्दू 'इम्पीरियलिज्म' के विरुद्ध प्रचार कर रहे थे। समाचार पत्रों में अनेक मनगढ़न्त कहानियाँ नागा के विषय में छप रही थीं। ऐसा प्रतीत होता था मानो हिन्दू पण्डित नेफावासियों को धोखा देकर हिन्दू बना रहे हैं। शान्ति के पुजारी और प्रशंसा के इच्छुक निन्दा और विरोधी प्रचार से घबराते हैं। इस प्रचार से स्वयं नेहरूजी भी घबरा गये। उन्होंने वेरियर ऐलविन को, जो कि स्काट का आदमी था, आदिवासियों की समस्याओं पर सलाह देने के लिए १५०० रु० से अधिक मासिक वेतन पर (१९५४) नियुक्त कर लिया। स्काट साहब का ईसाई धर्म प्रचार इसके द्वारा होने लगा। दुःख है कि भारत सोता ही रहा।

इन्हीं दिनों मेरी नागा भूमि की पहिली यात्रा हुई। फीजो ने हिंसा का मार्ग अपनाया तो था, परन्तु उसकी हिंसा की अग्नि तब तक इतनी प्रज्वलित न हुई थी कि उसको बुझाने में भारतीय सेना की आवश्यकता होती। आसाम तथा नागाहिल्स के उपद्रव के दमन का उत्तरदायित्व आसाम पुलिस का था। अर्थात् १९५५ में फीजो ने विद्रोह आरम्भ कर दिया था, परन्तु नागाहिल्स की यात्रा कदम जोखिम की नहीं हो गई थी।

मैंने लखनऊ से आसाम-मेल पकड़ी और १८ नवम्बर १९५५ की रात्रि को १० बजे दीमापुर रोड (रेलवे स्टेशन) पर पहुँच गया। स्टेशन के विश्रामालय में ताला लगा हुआ था। मैं स्टेशनमास्टर के पास गया और कमरे की चाबी ले आया। कमरा खोल कर बिस्तर बिछाया और मच्छरदानी लगाई। मैं लेटा ही था कि ६-७ नागा युवक लोग आ पहुँचे। उनकी अवस्था ४० के आस पास की होगी। वह लम्बे और हृष्टपुष्ट थे। मैंने एक साथ इतने नागा पहिली बार देखे थे। बातचीत करने पर मालूम हुआ कि यह अंगामी नागा थे। यह भी सम्भव है कि वह विद्रोहीदल के हों। सभी कोट, पेंट और टाई में थे। मैंने समस्त रात्रि बात-चीत में ही व्यतीत की।

फा० ९

हालांकि मैंने मच्छरदानी लगा रखी थी फिर भी छोटे छोटे मच्छर मच्छरदानी के छेदों से भीतर घुस गए और मुझे रात भर काटते रहे। एक तो मच्छरों की असुविधा, दूसरे नागाओं के शोरगुल ने मुझे सोने न दिया। वह सारी रात्रि अपनी मातृभाषा में बातचीत करते रहे। सबेरा हुआ और मैं मोटर के टिकटघर गया। पैसे दिए और टिकट ले लिया। आकर एक बस में बैठ गया। समय पर यह बस एक दल के साथ हो गई। इस दल में ७-८ गाड़ियाँ थीं। यात्रियों की रक्षा के लिए पुलिस के कुछ सिपाही अपनी गाड़ी में गाड़ियों के दल के आगे-आगे चल रहे थे। दीमापुर-कोहिमा की यात्रा लगभग ५० मील की है। कानवाय ने ७ बजे सुबह यात्रा आरम्भ की और १० बजे तक कोहिमा पहुँच गया। रास्ते में इस दल को नीचूगाढ (दीमापुर से ७ मील) पर रुकना पड़ा था। यहाँ पर यात्रियों के अनुमतिपत्रों का पुलिस चौकी ने निरीक्षण किया और जिन यात्रियों के पास यह पत्र न था उनको जाँच-पड़ताल के बाद नागा हिल्स से गुजरने की अनुमति दे दी।

मैंने कोहिमा में ५ रात्रियाँ वहाँ के स्थायी विश्रामालय में व्यतीत कीं। इस विश्रामालय का चौकीदार एक अंगामी नागा था। उसके पास उसके नागा मित्र आया करते थे। उनसे नागाओं के विषय में काफी बातचीत हुआ करती थी। वे लोग उस समय अंग्रेजों के द्वितीय विश्वयुद्ध की बात सुनाया करते थे। किस प्रकार डिप्टी कमिश्नर के बँगले पर घमासान लड़ाई हुई, जेलहिल कौन-सी है और आर्टिलरी हिल कौन सी है, इत्यादि। नागाओं के विषय में उनका विचार था कि वह नागराज की सन्तान हैं। इसके अतिरिक्त कोहिमा में न किसी प्रकार का कर्फ्यू था न ही कोई जोखिम। मैं रात्रि में देर से घूम-फिर कर विश्रामालय लौटा करता था। ५ दिन के बाद मैं कोहिमा से इम्फाल के लिए चल दिया। इस बार भी मोटरों ने दल बना कर ही यात्रा आरम्भ की। इस दल ने लगभग १०½ बजे यात्रा आरंभ की। १२ बजे के लगभग वह दल माओ पहुँच गया। यह नागाहिल्स (वर्तमान नागालैण्ड) का सीमाग्राम है। वहाँ से इम्फाल ५५ मील है। वहाँ पर कई वैष्णव भोजनालय थे जहाँ शुद्ध शाकाहारी भोजन मिलता था। यहाँ पर यात्रियों ने भोजनपान किया। लगभग १ बजे गाड़ियाँ चल दीं। इस बार गाड़ियाँ दल में न थीं, और न कोई पुलिस टोली ही यात्रियों की रक्षा के लिए ही नियुक्त थी। प्रत्येक गाड़ी स्वतन्त्र थी। वह चाहे जिस स्थान पर चाहे जितनी देर रुके। मेरी गाड़ी भी कई स्थानों पर रुकी। हर स्थान पर मेला सा लगा हुआ था। इन मेलों में केवल स्त्रियाँ ही सामग्री बेच रही थीं। जिस समय गाड़ी चलती तो एक गाड़ी दूसरी गाड़ी से आगे होने का प्रयत्न करती। इस प्रकार ठहरते, चलते अथवा दौड़ते मेरी बस ४ बजे तक इम्फाल पहुँच गई। उस समय मणीपुर को भारतीय विधान में



तीन भिन्न उपजातियों के नागा।

सम्मिलित हुए केवल ६ वर्ष हुए थे। एक नए मुसलमान की भाँति वह कट्टर भारतीय हो गए थे। मैं तो प्राचीन भारत से आया था। जैसे भारतीय मुसलमान किसी अरब का सत्कार करते हैं, उसी प्रकार मणीपुर में मेरा सत्कार हुआ। मैंने स्थानीय खेलकूद, ड्रामा अथवा नृत्य मन भर कर देखे। इन खेलों में मणीपुर पोलो खेल दर्शनीय था। वास्तव में मणीपुर पोलो के नाम से संसार में विख्यात था। पोलो ही मणीपुर का राष्ट्रीय खेल था।

उन दिनों पर्यटक मणीपुर के किसी भाग में बिना किसी सरकारी अनुमति के जा सकते थे। पर्यटक लोग प्रायः शेर के शिकार के लिए युखरुल (Ukhrul) जाया करते थे। मैं भी एक दिन पलेल होता हुआ मोरे (भारतीय सीमाग्राम) पहुँच गया।

मैंने मणीपुर में देखा कि उन दिनों भारतीय व्यापारी बर्मा छोड़ कर अपने देश में आ रहे थे। यदि किसी भारतीय को मांडले छोड़ना होता तो वह एक दुकान कलेवा में खोलता था। जब उसका सामान कलेवा में पहुँच जाता, तब उसका कोई सम्बन्धी इम्फाल में डेरा जमा लेता था। धीरे धीरे उस व्यापारी का सारा माल असबाब भारत में सुरक्षित पहुँच जाता था। परन्तु इस प्रकार बहुत कम संख्या में भारतीय व्यापारी अपनी पूँजी और असबाब भारत ला सके।

मेरी नागालैण्ड-मणीपुर की दूसरी यात्रा १९६२ में हुई। इन सात वर्षों में (१९५५ से १९६२) इन प्रदेशों में घटना-चक्र बड़ी तेजी से घूमा। १९५५ में नागाहिल्स में लिबरल पार्टी बनी। इसके प्रेसीडेण्ट श्री साखरी (Sakhri) थे। फीजो अथवा उसकी पार्टी ने १९५६ के पहिले महीने में इनकी बड़ी निर्दयता से हत्या कर दी। इसके बाद लगभग ५,००० नागा भूमिगत (underground) हो गये। इस विद्रोही दल का नेता फीजो था। थोड़े ही दिनों में फीजो के अत्याचारों ने समस्त नागाहिल्स-ट्वेंगसाँग इलाके को हिला दिया। भारत सरकार इस इलाके के निवासियों की रक्षा करने को विवश हो गयी। परिणामस्वरूप भारत सरकार ने अप्रैल १९५६ में भारतीय सेना की कुछ टुकड़ियाँ नागाओं की रक्षा के लिए इस इलाके में भेज दीं। परन्तु भारतीय सेना केवल सिविल शासन की सहायता के लिए भेजी गयी थी, और आज भी उसका मुख्य काम वही है। सेना को इस बात का अधिकार नहीं है कि वह बिना सिविल शासन की अनुमति के विरोधी दल के विरुद्ध कोई कार्य करे। आज भी विद्रोह-दमन का उत्तरदायित्व सिविल शासन का है न कि सेना का, जैसा कि भ्रम सर्वसाधारण में आज भी फैला हुआ है।

इस घटना के उपरान्त १९५७ अगस्त में एक नागाओं की बैठक हुई। इस बैठक का नाम था 'आल ट्राइब्स पीपुल्स कन्वैंशन"। ऐसी तीन बैठकें हुईं। तीसरी बैठक १९५९ अक्तूबर में हुई। इसमें निश्चय किया गया कि भारत के अन्य प्रदेशों की भाँति नागाहिल्स-ट्वेंगसांग भी एक प्रदेश हो जाए। इसके पूर्व नागालैण्ड ऐसेम्बली (टैरीटोरियल काउंसिल) बन गयी थी। इसके चेयरमैन श्री शीलु आओ थे। नागालैण्ड के बनने के पश्चात् श्री आओ नागालैण्ड के पहिले मुख्य मन्त्री हुए। वर्तमान काल में श्री आओ ही नागालैण्ड में शासन कर रहे हैं।

फीजो विद्रोही होकर अपने दल के साथ जंगलों और पहाड़ों में छापामारी करने लगा। इस कारण नागालैण्ड के सुधरे प्रशासन में उसे कोई पद नहीं मिला। उसने कुछ दूसरे नागाओं से भी लड़ाई मोल ले ली। उसकी पार्टी ने पीपुल्स कन्वैंशन के एक नेता की हत्या कर दी। इस हत्या से नागाओं को फीजो से घृणा हो गई। वहाँ की जनता फीजो के विरुद्ध हो गयी और फीजो को नागालैण्ड छोड़ना पड़ा। उसने पाकिस्तान में शरण ली। यहाँ से उसको इँगलैंड के पादरी स्काट इत्यादि से सम्बन्ध स्थापित करने की सुगमता प्राप्त हो गई। इस प्रकार नागालैण्ड में नेतागीरी अंगामियों के हाथ से निकल गई। काइटो नेता बन भी गए। पर वह भी अधिक दिन न ठहर सके। इन्होंने पाकिस्तान का मार्ग पकड़ा। धीरे-धीरे स्काट का हाथ फीजो की कारगुजारियों में साफ दिखाई देने लगा। अन्त में फीजो पाकिस्तान भी छोड़ गया। वह वर्तमान काल में स्काट का ब्रिटेन में अतिथि है। थोड़े दिनों बाद उसके कुछ और नागा मित्र भी स्काट के घर पहुँच गये। ये सब विद्रोही वहीं रह रहे हैं। स्काट के मित्र वेरियर ऐलविन शिलांग में बैठकर भारत सरकार को आदिवासियों के विषय में राय देते रहे, और बाहर के

ने ब्रिटिश जनता में भारत सरकार के विरुद्ध प्रचार आरम्भ किया।

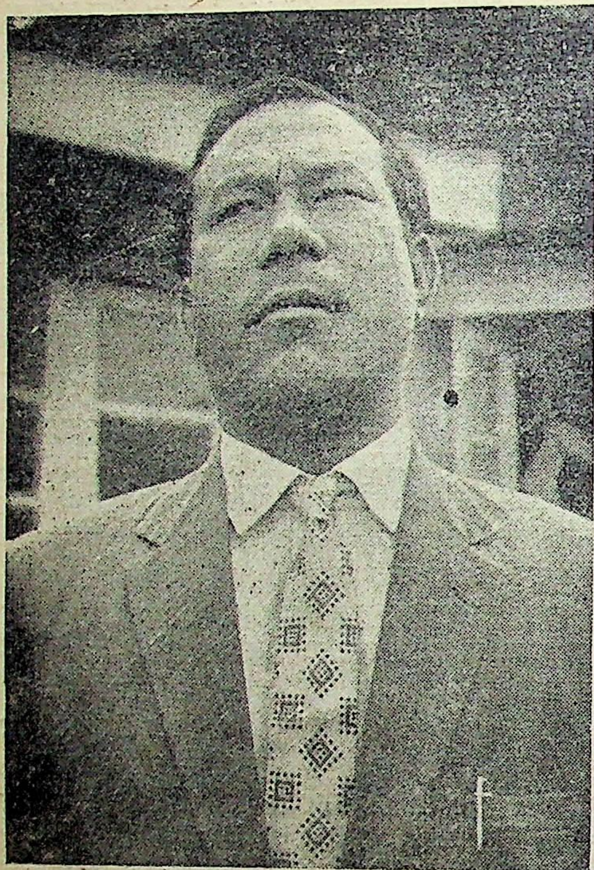
जब वैरियर ऐलविन की मृत्यु हो गयी, तब भारत सरकार को परामर्श देने के लिए कोई गोरा पादरी न रह गया। इससे भारत सरकार में पादरियों की घुसपैठ बंद हो गयी। इससे पादरियों के हितों को हानि होने की सम्भावना थी। इस कमी को दूर करने के लिए विद्रोही नागाओं के संरक्षक पादरी स्काट भारत में घुस पड़े। भारत को गर्व है कि उसकी संस्कृति उत्तम और प्राचीन है, परन्तु फिर भी बिना गोरे मिशनरी की राय के भारत सरकार अपने आप को नागालैण्ड में कार्य करने में असमर्थ समझती है। नहीं कहा जा सकता क्यों? अंग्रेज नागालैण्ड में अपना व्यापार और ईसाई मत फैलाने में लगे थे। अतएव वे उसके प्रशासनिक सुधारों पर ध्यान नहीं देते थे। भारतीय लोग नागालैण्ड में घुस नहीं सकते थे। केवल पादरियों को वहाँ जाने और अपना धर्म फैलाने की पूरी छूट थी। अतएव वे ही नागालैण्ड के 'विशेषज्ञ' माने जाने लगे। ईसाई धर्म फैलाने के कारण ईसाई नागाओं पर उनका प्रभाव भी था। नेहरूजी ने अंग्रेजों के ही तरीके वहाँ के सुधार हेतु स्वीकार किए, और अब शास्त्री महोदय भरत की भाँति नेहरूजी की खड़ाऊँ पूज रहे हैं।

१९६२ में तो नागालैण्ड का चित्र ही बदल गया। उन दिनों यह नागाहिल्स-ट्वेंगसांग ऐरिया (NHTA) के नाम से प्रसिद्ध हो गया। इसमें तीन जिले—कोहिमा, मोकोकचुंग और ट्वेंगसांग—सम्मिलित थे। दीमापुर जो आसाम का भाग था, वह भी एन० एच० टी० ए० में मिला दिया गया। अर्थात् दीमापुर में भी प्रवेश करने के लिए सरकारी अनुमति आवश्यक हो गई। वहाँ के निवासी, अर्थात् 'कछारी', नागालैण्डवासी कहे जाने लगे। रात्रि को डीफू (Diphu) से दीमापुर की ओर यात्रा सुरक्षित न रही। यात्रियों की सुरक्षा के लिए सैनिक गाड़ियाँ रेल के साथ चलने लगीं। कभी कभी तो रेल के आगे एक अकेला इंजिन भेजा जाने लगा। इस इंजिन में रेल लाइन के निरीक्षण और ड्राइवर की सुरक्षा हेतु कुछ सैनिक भी होते थे। मैं रात्रि को दीमापुर पहुँचा। दूसरे दिन इम्फाल यात्रा के लिए स्थानीय सबडिवीजन मजिस्ट्रेट (परगना अधिकारी) के कार्यालय में हाजिरी दी। उसको बातों से प्रसन्न करके नागाहिल्स में प्रवेश करने का अनुमतिपत्र प्राप्त किया। बिना इस अनुमति के कोई यात्री इम्फाल की यात्रा कर ही नहीं सकता था। इसके पश्चात् मैं मणीपुर स्टेट ट्रांसपोर्ट मैनेजर के पास गया। मैनेजर महाशय कहीं गए हुए थे। वह ५ बजे शाम तक आए। उनके तेवर चढ़े हुए थे। बड़े धैर्य से काम लेना पड़ा। अन्त में लगभग ७ बजे तक टिकट मिल गया। यह भी संभव था कि मैनेजर महाशय कह देते कि "कल गाड़ी छूटने के समय से कुछ पहिले आ जाइयेगा, यदि सीट खाली हुई तो टिकट उसी समय मिल जायेगा।" यदि ऐसा होता तो रात्रि करवटें लेते बीतती और ६ बजे से पहिले ही 'क्यू' में जाकर खड़ा होना पड़ता। तब कहीं टिकट मिलता। यह भी सम्भव था कि टिकट न मिलता। उस दशा में फिर एक दिन दीमापुर में व्यतीत करना पड़ता। अगले दिन ६½ बजे तक गाड़ी में बैठ गया। गाड़ी सात बजे एक बड़े दल में जाकर सम्मिलित हो गई। सैनिक-गाड़ियाँ भी कानवाय में जाया करती हैं। २४ घंटों में केवल एक ही कानवाय जाया करता है।

कानवाय की सुरक्षा हेतु दो सैनिक मोटरें रहती हैं एक मोटर कानवाय के आगे और दूसरी कानवाय के पीछे। एक मोटर में एक सैनिक सैक्शन अपने व्यक्तिगत हथियारों के साथ रहता है। इस सैक्शन का संचालक प्रायः हवलदार होता है। ये सैक्शन रेडियो द्वारा आपस में बातचीत भी कर सकते हैं। स्थान स्थान पर इन हवलदारों को अपने ऊपर वाले अफसरों को 'कॉनवॉय' के विषय में सूचना देनी पड़ती हैं। यदि 'कॉनवॉय' को कुछ सैनिक सहायता की आवश्यकता हुई तो पास के सैनिक-केन्द्र में सूचना पहुँचते ही सहायता तुरन्त आ जाती है। कुछ कुछ मीलों के फासिले पर सैनिक चौकियाँ भी स्थापित हैं। कॉनवॉय के चलने से पहिले 'सीटी' बजायी जाती है, और फिर चलने के उपरान्त भी। यात्री को ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वह 'रणक्षेत्र' में यात्रा कर रहा है।

दीमापुर से कई सीटियों की आवाज के बाद कॉनवॉय ने चींटे की चाल से रेंगना आरम्भ किया। जब समस्त सैनिक गाड़ियाँ 'कॉनवॉय' में आकर सम्मिलित हो गईं तो गाड़ियों की चाल कुछ बढ़ी। जैसे ही चाल बढ़ती वैसे ही कोई न कोई सैनिक चौकी आ जाती। निरीक्षण में कुछ समय व्यतीत हो ही जाता है। कोई १५ मिनट के उपरान्त कॉनवॉय फिर रेंगना आरम्भ कर देता। फिर चैकपोस्ट आ जाता। फलस्वरूप ५ घंटों की मोटर यात्रा के पश्चात् यात्रियों ने दूर से कोहिमा शहर देखा। सब यात्रियों की गरदनें दायें ओर मुड़ गईं। जसोमा ग्राम निकट आ गया और कुछ थोड़ी दूर खोनोमा ग्राम भी दिखाई देने लगा। यह दोनों ग्राम अंगामी नागाओं के गाँव हैं। वास्तव में फीजो का ग्राम खोनोमा है। यात्री इन ग्रामों का दर्शन करने को उतने ही इच्छुक थे जितने कि राजस्थान के चित्तौड़ के। धन्य है फीजो को! उसके कारण अंगामी नागाओं को इतना सत्कार तो प्राप्त हुआ! यदि देखा जाय तो अंगामी नागा अल्पसंख्यक हैं, पर भारत में इनके उपद्रवों के कारण इन्हें आवश्यकता से अधिक महत्व मिल रहा है।

यह जाति कोहिमा के इर्दगिर्द रहने के कारण जिले के अंग्रेज अफसरों से घुलमिल गई थी। एक तो लड़ाकू, फिर शासकों की मित्र। भला इस जाति का नागालैण्ड में महत्व न होता तो किसका होता? अभी भी अंगामी उपद्रव के बल अपना झण्डा ऊँचा किये हुये



श्री शीलू ग्राम्रो—नागालैण्ड के वर्तमान मुख्यमन्त्री

हैं। अभी भी विलायत और उसके मित्र पाकिस्तान से इनको सहायता आ रही है। इस समय स्काट विलायती मिशनरी दल के मुख्य प्रतिनिधि मालूम होते हैं।

इस प्रकार मैं १२ बजे के निकट कोहिमा पहुँचा। यहाँ सैनिक टुकड़ियाँ बदली गईं। यदि यहाँ कोई यात्री ठहरना भी चाहता तो व्यर्थ था क्योंकि वहाँ ऐसा कोई होटल नहीं था जहाँ वह ठहर सकता। सरकारी निरीक्षण-गृह सदैव भरे रहते हैं। यदि यात्री किसी सरकारी अधिकारी का रिश्तेदार या मित्र हुआ तो वह उसके यहाँ अनुमति प्राप्त करने के पश्चात् ठहर सकता है। मैं एक कर्नल (अवकाश प्राप्त) के यहाँ १० रोज कोहिमा में रहा। तत्पश्चात् इम्फाल के लिए चल दिया।

लगभग २ बजे कॉनवॉय ने फिर रेंगना आरम्भ किया। कोहिमा से इम्फाल ८० मील से कम न होगा। समस्त भारत में मदरास के रेखांश से मानक समय लिया जाता है। इसी कारण यदि मदरास या इलाहाबाद में ६ बजे सूर्यास्त होता है तो यहाँ ४ बजे ही हो जायेगा। शीत-काल में तो नागलैण्ड और मणीपुर में ४ बजे के लगभग ही सूर्यास्त हो जाता है और सन्ध्या का अन्धेरा ३ बजे से ही इन प्रदेशों को अपने कक्ष में ले लेता है। समझा जा सकता है कि कानवाय सैनिक शासन में धीमी चाल से चल रहा हो और उसको ८८ मील और चलना हो, तो अक्टूबर में दोपहर के दो बजे देर है या नहीं। २ घंटे के बाद रास्ते में अन्धेरा छा गया। कॉनवॉय की चाल वही धीमी थी। यदि विद्रोही दल ने गोली नहीं चलाई तो कॉनवॉय लगभग ६ बजे माम्रो (नागालैण्ड की सीमा पर) पहुँचता। सौभाग्य से उस दिन वह ठीक ६ बजे माम्रो पहुँच गया। यहाँ पर फिर सैनिक टुकड़ियों की बदली हुई। अब इम्फाल ५५ मील रह गया। यहाँ पर भी सैनिकों की अदली बदली में एक घंटे से कुछ अधिक ही लग गया। यहाँ से चलने केबाद 'मरम' आता है और फिर बर्राक नदी। इस नदी पर गाड़ियों को पुल से पार करना होता है। जब गाड़ी पुल के समीप पहुँची तो ८ बज चुके थे। पुल पर सैनिक पहरा रहता है परन्तु यहाँ घाटी का विस्तार भी कम है, दूसरे जंगल भी घना है। इस कारण कॉनवॉय ने बड़ी सावधानी से इस इलाके को पार किया। ज्यों-त्यों करके कॉनवॉय कांगपोकपी पहुँचा। कांगपोकपी ब्रिग्रेड हेड-क्वार्टर है। यहाँ पर सैनिक गार्ड हटा लिया गया और कॉनवॉय को सैनिक शासन से मुक्ति मिल गई। परन्तु कांगपोकपी में गाड़ियों अथवा यात्रियों के निरीक्षण के कारण आधा घंटा तो लग ही गया। अब ९ बज गए। अब ३० मील की यात्रा और शेष रह गई थी। इसका अर्थ यह हुआ १० बजे के उपरान्त ही हमने इम्फाल में प्रवेश किया। एक-दो घंटे विश्रामालय ढूँढने में लग गये। कहीं रात १२ बजे मैं भूखा प्यासा बिस्तर में लेट गया।

इन कुछ वर्षों में यह परिवर्तन केवल यात्रा में ही नहीं हुआ, बल्कि वह सारे मणीपुर में भी दिखाई देता है। मैं जब मणीपुर नृत्य, आदि का प्रदर्शन देखने गया तो मैंने अनुभव किया कि मुझे विदेशी समझा जाता था, और मेरे साथ वैसा ही व्यवहार भी किया जाता था। यह मेरे लिए एक नयी बात थी। दूसरे, मणीपुर के वाता-वरण में कुछ अशान्ति प्रतीत होती थी। मुखरूल, तेमंग-लांग और चूराचाँदपुर 'अशान्त' (डिस्टर्ब्ड) स्थान घोषित

दिये गये थे। इसलिए इन स्थानों में प्रवेश करने के डिप्टी कमिशनर से अनुमति लेनी पड़ी। फिर मैंनें कि मणीपुरियों में आपस में भी मतभेतद बढ़ गये थे। पुरी ब्राह्मणों और अन्य मणीपुरियों में मतभेद मालूम था। 'ब्राह्मण' तो 'भोयांग' (पछाहीं) और दूसरी तियाँ 'मितेई' (स्थानीय जाति) कही जाने लगी थीं। यह भावना भी देखी कि यह 'टांगखुल नागा' है तो कुकी।' इसके अतिरिक्त मणीपुरी नागाओं में १६ जातियाँ हैं और चूराचाँदपुर के कुकियों में २९। पुरवासी अधिकतर हिन्दू, और वनजातियाँ प्रायः ई। धार्मिक भेद से आपसी मतभेद आरम्भ हो गया। तात्पर्य यह कि १९५५ में नागालैण्ड और मणीपुर ओं में शान्ति थी। जनता अपने प्राचीन रीतरिवाजों अनुसार चल रही थी, और वह प्रसन्न थी—खास तौर मणीपुर में। मणीपुरी प्रायः उत्सव मनाया करते थे। स्थान-स्थान पर खेलकूद, नाचरंग होता रहता था, परन्तु १९६२ में नागालैण्ड की तो बात ही अलग है, मणीपुर भी परिवर्तन आ चुका था। शिकार, तैरने, खेलने के स्थान पर मणीपुरी युवक सिनेमा के शौकीन हो चुके थे।

१९५५ में मैंने पोलो का खेल देखा था, परन्तु केवल वर्षों में ही यह खेल जनता ने छोड़ दिया। मैं इम्फाल ११ रोज ठहरा। मैंने बड़े प्रयत्न किए कि मुझे पोलो का खेल देखने को मिल जाय, परन्तु व्यर्थ। मणीपुर पोलो के खेल के लिए प्रसिद्ध था, और मैं वहाँ इस खेल को १९५५ में देख भी चुका था। एक दिन मैं मणीपुर बाजार गया। पोलो के विषय में मैंने कुछ विद्यार्थियों से पूछा।

"पोलो कहाँ खेला जाता है?"

"कैसा पोलो?"

मैंने अंग्रेजी में बताया, हिन्दी में बताया परन्तु इन विद्यार्थियों ने न समझा। उन विद्यार्थियों ने अपने अन्य मित्र बुलाए। बाजार में विद्यार्थियों की भीड़ सी हो गई। उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि मैं एक पागल व्यक्ति हूँ जो उन विद्यार्थियों से एक अनहोनी बात पूछ रहा हूँ। या तो मेरी आयु कहिए, या मेरा 'विदेशी' होना कहिए। या कहिए कि मैं मणीपुरी खेलों की जानकारी के लिए उत्सुक था, विद्यार्थी मुझसे रुष्ट न हुए थोड़ी देर बाद एक विद्यार्थी ने हँस कर कहा, "आप हमसे सिनेमा के बारे में पूछें तो हम आपको बतायें।"

इस युवक ने मणीपुर की सत्य कथा एक वाक्य में कह दी। मैं भी हँस कर चला आया। कुछ दिनों के बाद वहाँ के एक नेता से मेरी भेंट हुई। उन महाशय से भी मैंने पोलो के विषय में प्रश्न किया। उन्होंने बताया कि कुछ वर्षों से पोलो का खेल मणीपुर के राजमहल में खेला जाने लगा है। उनके द्वारा मुझे यह भी ज्ञात हुआ कि अब पोलो सप्ताह में केवल दो बार ही खेला जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि मणीपुर में अब पोलो जनता का खेल नहीं रह गया। मणीपुर में जमींदार हैं कितने जो इस खेल को सदैव खेलते रहेंगे? फलस्वरूप मणीपुर में पोलो का अन्त हो गया, समझना चाहिए। पोलो की मृत्यु को हम मणीपुर के प्राचीन रहन सहन की मृत्यु भी कह सकते हैं, क्योंकि स्थानीय चुनावों के कारण भारत के शहरों की भाँति यहाँ भी राजनैतिक गुट बन गए हैं। वे ही राजनैतिक टण्टे, वे ही भाषण, वे ही उद्घाटन यहाँ भी आरम्भ हो गए हैं। परिणामस्वरूप मणीपुर में भी राजनीतिक दलबंदी और शक्ति के संघर्ष का चक्कर आरम्भ हो गया है।



विज्ञान बनाम पूँछ

कौशलेन्द्र मोहन तिवारी बी० एस-सी०

'हनूमान जी के पूँछ थी, अतः राम के दरबार में उनकी पूछ थी।' से हमारा कोई प्रयोजन नहीं। यहाँ हम मनुष्य की उत्पत्ति बनमानुष से (इवोल्यूशन आव होमोसीपियंस फ्राम एप्स) मानने वालों के विवाद से पीड़ित होकर पूँछ की उत्पत्ति, विकास और उसकी विभिन्न जीव-जन्तुओं में उपयोगिता पर प्रकाश डालेंगे।

प्रायः आपने देखा होगा कि गाय, भैंस, कुत्ता, बिल्ली, बकरी यहाँ तक कि पक्षियों और मछलियों के पास भी एक एक पूँछ शरीर के पिछले भाग में लगी होती है। शरीर वैज्ञानिकों के मतानुसार यह शरीर का एक उद्वर्ध (आउट ग्रोथ) है। किसी जीव में पूँछ बड़ी और किसी में छोटी होती है। इसी प्रकार किसी की पूँछ कोमल, किसी की कठोर, किसी की रोयेंदार और किसी की बिल्कुल साफ होती है। किसी की पूँछ के पिछले भाग में बालों का एक गुच्छा होता है और किसी के नहीं। यदि हमें यह सब आश्चर्यजनक लगे तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। तो फिर यह सोचना कि ये क्यों, कब और कैसे बनी, अर्थात् इनका रहस्य क्या है, स्वाभाविक ही है।

कुछ लोगों की धारणा है कि वनमानुष जसे कि गोरिल्ला और शिंपन्जी आदि, आदिमानव के निकटतम सम्बन्धी हैं। परन्तु अन्य मानव वैज्ञानिकों के मत इसके बिल्कुल विपरीत हैं। उनका कहना है कि एप्स या वन-मानुष की शारीरिक रचना, होमोसीपियंस अर्थात् आधुनिक मानव से कदापि नहीं मिलती है। अतः आधुनिक मानव के पूर्वज वनमानुष नहीं हो सकते हैं। इससे सिद्ध होता है कि हम पहिले बिना पूँछ थे। परन्तु यह प्रमाण भी बहुत सही नहीं कहा जा सकता क्योंकि हो सकता है कि पहिले मनुष्य के भी पूँछ रही हो और कालांतर में शनैः शनैः सहस्रों पीढ़ियों में घटती-घटती समाप्त हो गई हो। और अब यह प्रश्न बन गया है कि आदिमानव के पूँछ थी अथवा वह बिना पूँछ ही था।

पूँछ क्यों होती है? प्रत्येक प्राणी के जिस अंग का वैज्ञानिकों को अध्ययन करना होता है, उसे काट कर अलग कर दिया जाता है। और फिर उस अंग विशेष के न रहने से, उस पर प्रभाव का निरीक्षण किया जाता है। इस प्रकार विभिन्न जीवों की पूँछें काट काट कर और उनके न रहने पर प्रभाव देखकर वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि विभिन्न जीवों में पूँछ के भिन्न भिन्न उपयोग हैं। यही कारण है कि जीवों में पूँछ होती है।

पूँछ क्या है? प्रश्न बड़ा ही साधारण है परन्तु उत्तर उतना ही कठिन। प्रतिदिन की भाषा में हम प्रायः शरीर के पिछले तथा पतले भाग को पूँछ समझते और कहते हैं। परन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से यह त्रुटिपूर्ण है। सत्य पूँछ में नाड़ीदंड (नर्व कार्ड) पूँछ के अन्दर तक जाता है परन्तु असत्य पूँछ में ऐसा नहीं होता है। इस प्रकार साधारण और वैज्ञानिक दृष्टियों से पूँछ दो प्रकार की होती है: एक सत्य पूँछ और दूसरी असत्य पूँछ। पूँछ चाहे जैसी भी हो उसमें माँसपेशियों तथा नाड़ियों के अतिरिक्त शरीर का कोई तंत्र नहीं होता है।

पूँछ की उपयोगितायें

१—स्तनधारियों में पूँछ की उपयोगितायें—स्तन-धारियों के कुछ विशिष्ट-वर्गीय जन्तु कंगारू आदि की बड़ी, कड़ी और लम्बी पूँछ उसे बैठने में आधार का काम देती है। उसी का सहारा लेकर कंगारू धरती पर सरलता-पूर्वक चलते और बैठते हैं।

गाय, भैंस, घोड़े और गधे पूँछ में लगे बालों के गुच्छे को हिलाकर अपने शरीर पर बैठे कीटों और विकिरण हेतु लगी हुई अलाभदायक वनस्पतियों को हटाने का कार्य करते हैं।

लीमर, गलालो, टारसियस और लोरिस आदि सभी बन्दरों के प्रायः पूँछ बड़ी लम्बी हुआ करती है। वे इन्हें वृक्षों के तनों और शाखाओं से लपेटने के कार्य में प्रयोग करते हैं।

कुत्ते अपनी पूँछ हिलाकर स्वामी के प्रति अपनी वफादारी का नमूना पेश करते हैं और खतरे के समय अपनी

...एक विशेष प्रकार से खड़ा करते हैं जिससे शंका ...होती है। खतरे के समय खरगोश भी अपनी पूंछ ...साथियों को खतरे की 'नोटिस' दे देता है और ...ऊंचा उठाना साथियों के लिये 'फालो मी' का काशन ...है।

...गिलहरी अपनी पूँछ को, शीत से बचने के लिये शरीर ...लपेट लेती है और उछलने कूदने में यह उसे आधार ...प्रदान देती है।

३—मछलियों में पूंछ की उपयोगितायें—प्रायः पूंछ ...मछलियों को तैरने या प्रचलन में सहायता पहुँचाती है। ...शब्दों में यह कहना चाहिये कि मछलियों में पूंछ ...लिये होती है। परन्तु कुछ मछलियों, जैसे कि घोड़ा ...मछली (हिपोकैम्पस) आदि में पूंछ 'एन्कर आर्गन' या ...लंगर का कार्य देती है। इसके अतिरिक्त कुछ मछलियों ...जैसे कि 'गागल आईड' में पूंछ श्वसन का कार्य देती है। ...यह मछली काफी समय तक पानी के बाहर भी रह सकती ...है परन्तु ऐसी स्थिति में वह अपनी पूंछ पानी में डाले ...रहती है जिससे श्वसन कार्य सुचारु रूप से चलता ...रहता है।

३—रीढ़धारियों में पूंछ की उपयोगितायें—मेंढक ...और टोड आदि रीढ़धारियों में प्रौढ़ावस्था में तो पूंछ ...होती ही नहीं है परन्तु 'लारवावस्था' में होती है। यह ...प्रचलन में तो सहायता पहुँचाती ही है साथ ही साथ ...लारवा को भोजन भी प्रदान करती है।

४—पक्षियों में पूछ की उपयोगितायें—उड़ते समय ...पक्षी अपने निश्चित मार्ग में ही क्यों जाते हैं? प्रायः ...पक्षियों में पूंछ होने का रहस्य इसी में है। पूंछ पक्षी को ...निश्चित मार्ग में ले चलने के लिये कभी ऊपर कभी नीचे ...कभी इधर तो कभी उधर मुड़कर वायु में 'बैलेंस' ...बनाये रखती है। कबूतर की पूंछ उसकी उड़ान का नियमन ...करने के साथ ही साथ आवश्यकता पड़ने पर एक उत्तम 'ब्रेक' का काम भी करती हैं। कुछ पक्षियों की पूंछ के डंठल इतने कड़े होते हैं कि उनसे पक्षी को बैठने में सहायता मिलती है। तीतर जाति का एक पक्षी मादा को रिझाने के लिये अपनी लम्बी पूंछ को फुलाकर गर्दन को बहुत तेजी से नचाता है। मोर, जो हमारे देश का अत्यंत सुन्दर पक्षी है, को प्रकृति ने सुन्दर, चटकीली, भड़कीली, सतरंगी पूंछ देकर मानो अपनी मादा पर विजय पाने के लिये ही भेज दिया हो। चचा डार्विन ने जहाँ बारहसिंहे की लम्बी सींगों का वर्णन अपनी मादा को रिझाने के लिये किया है, वहीं मोर की लम्बी और रंगीन पूंछ को वे भूले नहीं हैं।

५—सरीसृपों में पूंछ की उपयोगितायें—मगर और घड़ियाल अपनी काँटेदार पूंछ से न केवल पानी में तैरने में ही सहायता पाते हैं, वरन् अपने शत्रु को मारने और उससे अपनी रक्षा भी करते हैं। पेड़ों पर रहने वाली छिपकलियाँ प्रायः अपनी पूंछ से ही बैलेंस बनाती हैं। अजगर या 'पाईथोन' अपनी पूंछ से शत्रु और शिकार को पकड़कर मसल डालता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मूंछ वाले जीव प्रायः पूंछ से अपनी रक्षा, भावभंगिमा का प्रदर्शन तथा 'कमांड-कन्ट्रोल' करते हैं। कुछ जीवों में पूंछ प्रचलन में तो कुछ को उठने बैठने और उछलने कूदने में मदद करती है। पूंछ का प्रयोग शिकार पकड़ने और अपनी मादाओं को रिझाने में तो प्रायः होता ही है। जहाँ तक मनुष्य की पूंछ का सम्बन्ध है, अब तो वह बिल्कुल ही गायब है। हो सकता है कि वह पहिले रही हो और 'वेस्टीजियल-आर्गन' (जिस अंग का क्षय होता है वह वेस्टीजियल आर्गन कहलाता है) की तरह समाप्त हो गई हो। सारांश यह है कि पूंछ जीवों के बहुत लाभ की वस्तु है। अब तो पाठक समझ ही गये होंगे कि पूंछ की कितनी पूछ है।



सीता का त्याग : पूर्वजों की दृष्टि में

श्री श्रीराम गोयल

रावण-वध के उपरान्त राम द्वारा सीता का स्वीकार रामकथाकारों के लिए प्रारम्भ से ही समस्यामूलक रहा है। इसका प्रमुख कारण पति-पत्नी सम्बन्ध की विशिष्ट भारतीय कल्पना को मानना चाहिए। ठीक ऐसी ही एक परिस्थिति का वर्णन यूनानी सुन्दरी हेलेन की कथा में मिलता है जिसके आधार पर होमर ने 'इलियड' नामक महाकाव्य की उसी प्रकार रचना की थी जैसे वाल्मीकि ने रामकथा के आधार पर रामायण की। यूनानी कथा के अनुसार स्पार्टा नरेश मेनेलोस की परम रूपवती पत्नी हेलेन को ट्रॉय का राजकुमार पेरिस भगाकर ले जाता है। इसे समस्त यूनानी राज्य अपना अपमान मानते हैं और इसका प्रतिशोध लेने के लिए सम्मिलित रूप से ट्रॉय पर आक्रमण करते हैं। युद्ध के दौरान में पेरिस की मृत्यु हो जाती है और तदुपरान्त हेलेन का विवाह डेईफोबस के साथ हो जाता है। लेकिन अन्ततोगत्वा ट्रॉय का पतन होता है और हेलेन मेनेलोस को मिल जाती है। इस कथा में जो बात विशेष रूप से विचारणीय है और जो भारतीय जनमानस द्वारा समादृत आदर्शों का वैशिष्ट्य आलोकित कर देती है वह यह है कि यद्यपि हेलेन पेरिस के साथ अपनी इच्छा से गयी थी और उसका एक अन्य पुरुष के साथ विवाह भी हो गया था, तथापि ट्रॉय के पतन के पश्चात् उसे मेनेलोस के साथ जाने में और मेनेलोस को उसे अपनाने में कोई आपत्ति नहीं हुई। उसको अपना लेने से जनता में किसी प्रकार का अपवाद फैलेगा, यह बात तो किसी के हृदय में उत्पन्न ही नहीं हुई। लेकिन भारत में परिस्थिति भिन्न थी। यहाँ 'पतिव्रता' नारियों को, जो तन, मन और वचन से पर-पुरुष के सम्पर्क से दूर रहती थीं, आदर्श माना जाता था। वैदिक काल में विधवा-विवाह और नियोग का प्रचलन तथा पर्दा और सती जैसी प्रथाओं का अभाव था, और स्त्रियों पर अधिक बन्धन नहीं लग पाये थे। लेकिन उस युग में, जब रामकथा की लोकप्रियता विशेष रूप से बढ़ी, 'पतिव्रता नारी' की कल्पना दृढ़तर और अधिक संकुचित होने लगी। इसलिए रामकथाकारों को इस प्रश्न का उत्तर देना आवश्यक हो गया कि राम ने ऐसी पत्नी को जो पर-पुरुष के घर में निवास कर चुकी थी, कैसे अपना लिया ? इसी प्रश्न का उत्तर देने के लिए सीता-त्याग की कथा गढ़ी गयी और उसके अनेक कारण परिकल्पित हुए ।

सीता-त्याग मूलत: अज्ञात था

राम ने, अगर वह ऐतिहासिक पुरुष थे, सम्भवत: सीता का त्याग नहीं किया था। कम से कम वाल्मीकि ने अपनी रामकथा को राम के अभिषेक और रामराज्य के संक्षिप्त विवरण के साथ समाप्त कर दिया था, क्योंकि यह बात सभी रामायण-विशेषज्ञ मानते हैं कि इस ग्रन्थ का उत्तरकाण्ड, जिसमें सीता-त्याग का उल्लेख है, प्रक्षिप्त है। इस निष्कर्ष का समर्थन महाभारत के रामोपाख्यान (जिसे आदि वाल्मीकि रामायण पर आधृत माना जाता है) प्राचीन पुराणों (हरिवंश०, वायु०, विष्णु० तथा नृसिंह०) बौद्ध अनामकं जातकम् एवं गुणभद्रकृत उत्तर पुराण आदि ग्रंथों से होता है जिनकी रामकथाओं में सीता-त्याग का वर्णन नहीं मिलता। लेकिन इनमें दो ग्रन्थ अवश्य ही ऐसे हैं जिनमें सम्भवतः सीता-त्याग के वृत्तान्त का बीज सुरक्षित है। वाल्मीकि रामायण के युद्धकाण्ड में रावण-वध के उपरान्त जब सीता राम के समीप लाई जाती है तब राम के हृदय में लोकापवाद का भय उत्पन्न होता है और वह सीता से कहते हैं: 'तुम्हें मालूम होना चाहिए कि मैंने जो यह युद्ध का परिश्रम उठाया है, यह सब तुम्हें पाने के लिए नहीं, अपने को अपवाद से मुक्त करने तथा अपने विख्यात वंश का कलंक मिटाने के लिए किया है। तुम्हारे चरित्र में सन्देह का अवसर उपस्थित है फिर भी तुम मेरे सामने खड़ी हो। जैसे आँख के रोगी को दीपक की ज्योति नहीं सुहाती, उसी प्रकार तुम आज अत्यन्त अप्रिय जान पड़ रही हो। इसलिए जानकी! तुम्हारी जहाँ इच्छा हो चली जाओ। मैं अपनी ओर से तुम्हें अनुमति देता हूँ। ये दसों दिशाएँ तुम्हारे लिए खुली

कौन ऐसा कुलीन पुरुष होगा, जो तेजस्वी होकर भी दूसरे के घर में रही स्त्री को ग्रहण करेगा?' 'राम के कठोर शब्दों को सुनकर सीता लक्ष्मण से चिता तैयार कराती हैं और अपने सतीत्व को प्रमाणित करती हैं। इसके बाद देवगण आकर इसका समर्थन करते हैं। तब राम सीता को ग्रहण करते हैं। इसी प्रकार अनामक जातकम् में कथा का नायक राजा नायिका रानी का उद्धार करने के बाद कहता है: 'दूसरे के घर में निवास करने वाली स्त्री के चरित्र पर सन्देह किया जाता है। तुम्हें अपनाना क्या परम्परानुसार उचित होगा?' इसके उत्तर में रानी कहती है: 'मुझमें सतीत्व हो तो पृथ्वी फट जाए'। इस पर पृथिवी फटकर उसका सतीत्व प्रमाणित करती है और दोनों सुख से रहने लगते हैं।

लोकापवाद का भय

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मूल रामकथा में सम्भवतः सीता-त्याग की चर्चा बिल्कुल नहीं थी। लेकिन वाल्मीकि के समय ही, शायद उनके कुछ पहले ही इस प्रश्न का उत्तर देने की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी थी कि राम ने पर-पुरुष के घर में रही स्त्री को कैसे अपना लिया। इसका उत्तर सीता की अग्नि-परीक्षा की कथा गढ़कर दिया गया। लेकिन, राम के चरित्र को आदर्श बताने वाले कथाकारों की समस्या इस कथा से हल नहीं हुई। ज्यों-ज्यों समाज में पतिव्रता नारी की परिभाषा संकुचित होती गयी, इस व्याख्या का बल कम होता गया। इसलिए उत्तरकाण्ड में सीता-त्याग की कथा जोड़ी गयी। इसके अनुसार गर्भवती सीता तपोनिष्ठ ऋषियों के आश्रम देखने की इच्छा प्रकट करती है। राम उन्हें अगले दिन भेजने का वचन देकर मित्रों के साथ हास-परिहास करने लगते हैं। उसी समय वह भद्र से पूछते हैं कि मेरे, सीता, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न तथा कैकयी आदि के विषय में लोग क्या कहते हैं। इस पर भद्र उन्हें बताता है कि जनसाधारण उनकी रावण पर प्राप्त विजय की प्रशंसा करते हैं और सीता को अपना लेने की निन्दा। उन्हें रावण बलपूर्वक गोद में उठाकर ले गया, जो अशोक-वाटिका में राक्षसों के अधीन होकर रहीं उनको भी आपने निन्दनीय नहीं समझा। अब हमको भी अपनी स्त्रियों की ऐसी ही बातें सहनी होंगी। यह सुनकर राम,

भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न आदि को बुलाते हैं और कहते हैं कि 'स्वयं मेरी आत्मा यशस्विनी सीता को शुद्ध समझती है परन्तु इस समय पुरवासियों और प्रान्त के लोगों में मेरी बड़ी निन्दा हो रही है...... मैं लोक-निन्दा के भय से तो अपने प्राण भी त्याग सकता हूँ और आप सबको भी छोड़ सकता हूँ, फिर सीता को त्यागना कौन बड़ी बात है?' इसके बाद वह लक्ष्मण को आदेश देते हैं कि वह सीता को गंगा के उस पार निर्जन वन में छोड़ आएँ। यह कथा न्यूनाधिक इसी रूप में रघुवंश उत्तररामचरित, दशावतारचरित तथा कुन्दमाला पउम-चरित आदि ग्रन्थों में मिलती है। रघुवंश और उत्तर-रामचरित में लोकापवाद की सूचना एक गुप्तचर देता है जिसका नाम उत्तररामचरित में दुर्मुख बताया गया है। जैन पउमचरित में स्वयं राजधानी के नागरिक आकर राम से साधारण जन के दुष्ट स्वभाव का वर्णन करते हैं और फिर कहते हैं कि ऐसे लोगों में सीता के अपवाद को छोड़ कर किसी और बात की चर्चा नहीं होती।

धोबी की कथा

लोकापवाद के भय के कारण राम ने सीता का त्याग किया था, यह बात सामान्य जन को प्रिय लगनेवाली थी। इसलिए कालान्तर में इसको नाटकीय बनाने के लिए इसका विविध प्रकार से परिवर्धन किया गया। कथासरित्सागर के अनुसार गुप्त वेश में घूमते हुए राम ने एक पुरुष को देखा जो अपनी स्त्री को घर से निकाल रहा था और दोष दे रहा था कि वह पराए घर गयी थी। इस पर वह स्त्री कहती है कि 'राम ने सीता को राक्षस के घर रहने पर भी नहीं छोड़ा, यह मेरा पति राम से भी बढ़कर है जो मुझे बन्धु के घर जाने पर निकाले दे रहा है। यह सुनकर राम जनापवाद के भय से गर्भवती सीता का त्याग कर देते है। यह कथा गुणाढ्य की बृहत्कथा में भी, जिसके आधार पर कथासरित्सागर की रचना हुई, रही होगी। इसीलिए यह भागवत और पद्म पुराणों में मिलती है। लेकिन पद्म में इसका नाटकीय प्रभाव बढ़ाने के लिए उस पुरुष को जिसने अपनी पत्नी को निकाला था धोबी कहा जाता है। बाद में धोबी की कहानी बड़ी लोकप्रिय हुई। रामा-यणसार, रामचरितमानस तथा तामिल रामायण आदि में इसका वर्णन मिलता है।

राम को सीता के सतीत्व में शंका

उपर्युक्त कथाओं के रचयिताओं के अनुसार राम ने सीता को लोकनिन्दा के भय से त्याग था। यह तथ्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि अगर राम आदर्श पुरुष और सीता आदर्श सती थीं (जैसा कि इन ग्रन्थों के लेखक मानते थे) तो राम के द्वारा सीता का त्याग, केवल एक ही तर्क द्वारा उचित ठहराया जा सकता था और वह यह कि राम को यह भय था कि पर पुरुष के घर में रही सीता के स्वीकार से प्रजा मर्यादारहित हो जाएगी और अपने घरों से भागी हुई स्त्रियाँ अपने पतियों द्वारा पुनः स्वीकृत कर ली जाएँगी। लेकिन उपर्युक्त कथाओं में यह आशंका प्रजा को होती है न कि राम को। और इसके बाद भी राम अपयश के भय से सीता का त्याग करते हैं न कि प्रजा के मर्यादा-रहित हो जाने के भय से। सम्भवतः राम द्वारा सीता को एक बार अपना लेने के कारण रामकथाकारों के लिए यह असम्भव हो गया था कि वे यह कह सकें कि राम ने सीता का त्याग सामान्य जनों के सम्मुख एक उदाहरण स्थापित करने के लिए किया था, क्योंकि उस अवस्था में इस प्रश्न का उत्तर देना असम्भव हो जाता कि अगर राम नैतिक मर्यादा स्थिर करने के लिए इतने आतुर थे तो उन्हें रावण-वध के उपरान्त सीता को ग्रहण ही नहीं करना चाहिए था। उनका सीता को अग्नि परीक्षा के उपरान्त ग्रहण कर लेना और अयोध्या में त्यागना यह सिद्ध करता है कि उनके हृदय में लोक-निन्दा का भय था, पर-पुरुषों के साथ ही स्त्रियों को उनके पतियों द्वारा अपना लिए जाने का रिवाज बन जाने से पैदा हो सकनेवाली अनाचारपूर्ण स्थिति का भय नहीं।

राम द्वारा सीता के त्याग में निहित इस असंगति को दूर करने के लिए दो समाधान प्रस्तुत किये गये। इनमें एक था राम के हृदय में सीता के सतीत्व में शंका। इस विचार का बीज स्वयं वाल्मीकि रामायण में मिलता है। इसमें जैसा कि देखा जा चुका है रावण-वध के अनन्तर राम सीता के चरित्र में सन्देह होने की स्पष्ट घोषणा करते हैं। तिब्बती रामायण में राम के मन में यह सन्देह अयोध्या आने और दो पुत्रों का जन्म हो जाने के बाद उत्पन्न होता है। इसमें कहा गया है कि एक बार राम ने किसी व्यभिचारिणी स्त्री को अपने पति से यह कहते सुना कि 'तुम स्त्रियों के बारे में क्या जानो। सीता को देखो, एक लाख साल तक रावण के साथ रहने के बावजूद भी राम ने उसे अपना लिया।' इस पर राम के हृदय में सीता के सतीत्व में शंका उत्पन्न होती है। वह छिप कर उस स्त्री से मिलते हैं। वह उन्हें बताती है कि स्त्रियाँ 'जबतक कोई देखता सुनता हो, बुरा आचरण नहीं करतीं, लेकिन एकान्त में बन्धन मुक्त होने पर, पर-पुरुष के साथ भी रमण कर लेती हैं।' इससे राम की सीता के प्रति शंका दृढ़ हो जाती है और उन्हें दोनों पुत्रों सहित निकाल देते हैं।

रावण के चित्र का वृत्तान्त

राम के हृदय में सीता के सतीत्व में शंका सामान्य जनों की मनोवृत्ति के अनुकूल होने के कारण लोकप्रिय होने लगी। इसके कारण स्वयं राम के चरित्र में श्रद्धा कम हो जाएगी, इस भय से इसे बौद्धिक आधार प्रदान करने का प्रयास किया गया। यह प्रयास रावण के चित्र के वृत्तान्त में मिलता है। भारत में इसका प्राचीनतम उल्लेख हेमचन्द्र की जैन रामायण (१२वीं शती) में मिलता है जिसके अनुसार राम की अन्य ईर्ष्यालु पत्नियाँ सीता से अनुरोध करके रावण के चरणों का चित्र खिंचवाती हैं और उसे राम को दिखा देती हैं। १६वीं शती की एक जैन रामायण में स्त्रियाँ राम से कहती हैं कि सीता रावण के चरणों की पूजा करती है। बंगाली रामायण में सीता सखियों के कहने से रावण का चित्र खींचती हैं और थक कर उसके पास सो जाती हैं। राम यह देखकर उन पर शंका कर उन्हें त्याग देते हैं। कश्मीरी रामायण में यह चित्र राम की बहिन खिंचवाती हैं। आनन्द रामायण में स्वयं कैकेयी सीता से रावण का चित्र बनाने को कहती है। सीता यह कहकर कि "मैंने उसका केवल अँगूठा देखा था' अँगूठे का ही चित्र बनाती है। बाद में कैकेयी उस चित्र को खुद पूरा करती है और राम को बुलाकर बहकाती है।

रावण के चित्र का वृत्तान्त कालान्तर में विदेशों में भी फैला। मलय के सैरीराम में कैकेयी की पुत्री सीता से एक पंखे पर रावण का चित्र खिंचवाती है और बाद में सोती हुई सीता की छाती पर उसे रखकर राम को बुलाकर दिखाती है। जावा के सेरत काण्ड में कैकेयी

चित्र बनाती है और सीता के निकट रख देती है। हिन्देशिया के हिकायत महाराज, रावण में रावण सोती हुई सीता की छाती पर रावण का चित्र देती है। सीता नींद में उस चित्र का चुम्बन करती उसी समय राम आ जाते हैं। यह दृश्य देखकर वह क्रोध-सीता को कोड़ों से मारते हैं और उनके केश काटकर को उन्हें मार डालने का आदेश देते हैं। लक्ष्मण को उनके पिता के पास भेज देते हैं और एक बकरी मारकर राम को विश्वास दिलाते हैं कि सीता का वध कर दिया गया है। कुछ विदेशी कथाओं में रावण के की कथा का वृत्तान्त कुछ अलौकिक हो गया है। केर में एक यक्षिणी सीता द्वारा खींचे गये चित्र प्रविष्ट हो जाती है जिससे राम के आ जाने पर सीता करके भी चित्र को नहीं मिटा पाती। राम किएन वह कार्य यक्षिणी के स्थान पर सूर्पणखा की पुत्री करती है।

अलौकिक कारण

राम द्वारा सीता का त्याग में निहित असंगति को करने के लिए कुछ रामकथाओं में अलौकिक समाधान किये गये हैं। उदाहरणार्थ रामायण के दाक्षिणात्य के उत्तरकाण्ड में सीता के त्याग का कारण भृगु शाप को बताया गया है। इसमें सुमन्त्र लक्ष्मण को ते हैं कि दुर्वासा ने दशरथ से एक बार कहा था विष्णु ने भृगु की पत्नी की हत्या की थी जिसके परिणामस्वरूप भृगु ने विष्णु को शाप दिया था कि हें भी मनुष्य-रूप में पत्नी का वियोग सहना पड़ेगा। पुराण के पातालखण्ड में अविवाहिता सीता शुकों एक जोड़े को पकड़कर उनसे राम-कथा सुनती है। में वह शुक को छोड़ देती है परन्तु शुकी को तब तक कैद कर देती हैं जब तक राम उन्हें ले नहीं जाते। पर शुकी, जो गर्भवती है, उन्हें गर्भावस्था में राम से बिछुड़ जाने का शाप देकर मर जाती है। उड़िया रामायण में बालि की पत्नी तारा का शाप सीता-त्याग का कारण बताया गया है। तुलसीदास की गीतावली के अनुसार दशरथ की अकाल मृत्यु हो जाने से राम को उनकी आयु का शेषांश मिल गया था। परन्तु पिता की आयु भोगते समय सीता के साथ रहना अनुचित होता, अतः राम ने अपनी आयु समाप्त होने पर सीता को त्याग दिया। अध्यात्म रामायण में देवता सीता के पास आकर उनके वैकुण्ठ चलने की प्रार्थना करते हैं क्योंकि उनके बाद राम भी वहाँ चले जाते। देवताओं की इच्छा पूरी करने के लिए राम लोकापवाद के बहाने सीता को त्याग देते हैं। आनन्द रामायण में तो सीता की केवल रजस्तमोमयी छाया का परित्याग होता है, सीता अदृश्य रूप से राम के वामांग में निवास करती रहती हैं।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन स्पष्ट है कि सम्भवतः मूल राम-कथा में सीता के त्याग की चर्चा नहीं थी। बाद में पर-पुरुष के घर में रही स्त्री को अपना लेना भारतीय नैतिक मर्यादा के विरुद्ध होने के कारण पहले उनका अग्नि-परीक्षा के बाद में परित्याग की कथा गढ़ी गयी। लेकिन राम के चरित्र के आदर्श माने जाने के कारण उनके द्वारा सीता का परित्याग समस्यामूलक हो गया। इसके समाधान के हेतु पहले इसका कारण लोकापवाद (जिसमें धोबी की कथा भी आ जाती है) को बताया गया और इसके असंगत लगने पर राम की शंका को, जिसको सिद्ध करने के लिए रावण के चित्र का वृत्तान्त परिकल्पित हुआ। लेकिन इसके बावजूद सीता-त्याग को उचित ठहराना दुष्कर रहा, इसलिए अन्ततोगत्वा भृगु का शाप, शुकी का शाप, राम द्वारा दशरथ की आयु का भोग और अवास्तविक सीता का त्याग जैसे कारणों की कल्पना की गयी।

आंगनों के बीच —

जब समय भार, और जीवन निरर्थक मालूम होता है

बहुत से वृद्धजनों, छुट्टी पर घर आये विद्यार्थियों तथा बहुत सी महिलाओं की इच्छा होती है कि वे अपने अवकाश-कालमें कुछ करें। वृद्ध जन तथा बहुत-सी महिलाएँ तो जहाँ बच्चे जरा बड़े हुए यह सोचने लग जाती हैं कि हमारा जीवन अब व्यर्थ है। वास्तव में यह भावना क्यों उदित होती है? इसका कारण है कि जिस उद्देश्य से कि वे अभी तक जीवन में अपना काम कर रहे थे, वह उद्देश्य अब उनको प्रेरित नहीं करता। वृद्ध जन परिवार व सन्तान के भरण-पोषण के लिए रात-दिन लगे रहते थे परन्तु वे देखते हैं कि अब उनका आश्रित कोई नहीं रह गया है, सभी अपने पैरों पर खड़े हैं; 'मुझे यह चाहिए' कहकर उनके सामने कोई नहीं आता। अतः उनको अपना जीवन ही निरर्थक लगने लगता है।

माताओं को अपनी संतान से प्रेरणा मिलती है—उनका सारा काम उन्हींके लिए होता है। और उसीमें उनको सुख मिलता है। उनके बड़े हो जाने पर जब वे घर आते ही माँ को पुकार नहीं लगाते, आँखों ही आँखों में माँ को नहीं ढूँढ़ते और जीवन में स्वावलम्बी हो जाते हैं तब माँ कहती है कि मेरे जीने से क्या फायदा? अब तो बच्चे बड़े हो गये। अपने इस कर्तव्य के अलावा यदि किसी अन्य वस्तु में भी समान रुचि हो तो जीवन के इस स्तर पर अवकाश मिलते ही यह भावना आती है कि 'चलो! अब थोड़ी छुट्टी-मिली कुछ अपने मन के काम करने की भी।' और यह भावना नहीं आती कि 'अब जीने ही से क्या लाभ? अब तो मेरा काम खत्म हो गया।' और बहुधा उनके जीवन की इस रिक्त स्थान की कमी धर्म पूरा करता है—अगर उसका अंकुर पहले से कहीं दबा पड़ा हो, तो।

इसके अन्यथा भी बहुत से प्राणियों के पास समय होता है पर वे सोच नहीं पाते कि करें क्या उस समय का! यहाँ कुछ सुझाव हैं।

मेरे एक परिचित वृद्ध सज्जन ने अपने घर के गराज में एक 'डिस्पैन्सरी' खोली थी; उसके लिये उनको रास्ता बाहर से बनवाना पड़ा था जिससे कि घर की स्वच्छता बनी रहे। जब वह डिस्पैन्सरी खुली तब उसमें दो-चार

थीं तथा दो-चार दवाइयाँ लेकर वे ही अकेले बैठते धीरे-धीरे अड़ोस-पड़ोस की स्त्रियाँ, अपने अवकाश समय में सहायता व कुछ सीखने के विचार से आने गर्मी की छुट्टियों में कई तरुण विद्यार्थी अपनी देने लगे। उस स्थान का वातावरण ही बदल गया। चारों ओर सीटी बजाते झुंड के झुंड लड़के साइकिलों घूमते दिखायी पड़ते थे, वहाँ तरुण 'फर्स्ट एड' के दिखाई पड़ने लगे। डिस्पैन्सरी में भी दवाएँ, मेज, अलमारी आदि दान में आने लगीं और आस-के मुहल्ले से डिस्पैन्सरियों में प्रतियोगिता सी लग उन वृद्ध सज्जन का प्रतिक्षण व्यस्त हो गया, और कहाँ तो यह भावना थी कि मेरा जीवन व्यर्थ है, छूट जाय तभी अच्छा, और अब यह इच्छा हो गयी कि डिस्पैन्सरी छोटा सा अस्पताल बन जाय जहाँ हम रोगी निःशुल्क रख सकें तो कितना अच्छा हो!

एक दूसरी महिला ने जो अवकाश के समय में अपनी भी बढ़ाना चाहती थीं इसी प्रकार अपने घर के एक को खाली करके उसमें छपाई का काम प्रारंभ कर था। वे ग्राहकों से काम प्राप्त करती थीं और साड़ी वाले कारीगर को मजदूरी देती थीं। धीरे-धीरे की स्त्रियों के सुझाव आने लगे, नये नये नमूने आने और उनकी घर बैठे अच्छी आय हो गयी।

इसी प्रकार अवकाश का समय उपयोग में लाने के से तथा कुछ अच्छा कार्य करने की भावना से एक की महिलाओं ने मिलकर एक 'गिफ्ट शॉप' 'उप-देने की दुकान' खोली। वे सामान सीधा थोक से थीं, फिर उसकी बिक्री करती थीं। मुहल्ले की उसमें पारी-पारी काम करती थीं; तथा मुनाफा कि प्रतिवर्ष प्रायः ३,००० रुपये होता था, उसको करती थीं। यह नियम था कि मुहल्ले की स्त्रियों को भी उपहार खरीदना होगा उसको वे बाहर की दुकानों लेकर यहींसे खरीदेंगी। दान में रुपये देने के लिए समाचार-पत्रों में पहले ये सूचना निकलवाती थीं कि योग्य आवेदन-पत्र दें। बड़े-बड़े अस्पताल, स्कूल तथा केन्द्रों के आवेदन-पत्र आते थे और फिर महि-की यह कमेटी निर्णय करती थी कि धन किसको जाय।

अवकाश के समय जब पति दफ्तर चले जाते हैं तब के बरामदे या एक कमरे में, या गराज में नर्सरी स्कूल की प्रथा तो अब प्रायः बहुत ही चल निकली है। रुपया स्कूल की फीस तथा १० रु० या ५ रु० नाम लिखाने फीस में २० बच्चों में नर्सरी का सामान आकर १०० किसी अध्यापिका को देकर १०० रुपया आप अपने के रूप में शीघ्र ही निकाल सकती हैं।

एक वृद्ध महिला ने जो कि बड़े शहर में रहा करती थीं, एक नया तरीका निकाल रक्खा था जिससे उनको भी लाभ था तथा माताओं को भी आराम। उन्होंने मुहल्ले में कहला रक्खा था, तथा अपने घर पर भी बोर्ड लगा रक्खा था कि बाहर जाते समय माता-पिता बच्चों को यहाँ छोड़ सकते हैं। वे बच्चे का दूध, बोतल व आवश्यक कपड़े साथ लाने का आग्रह करती थीं; और यदि बच्चा बड़ा हो तो उसको खिलौने आदि भी। दो परिचारिकाएँ उन्होंने रख छोड़ी थीं, और वे स्वयम् भी बच्चों की देख भाल करती थीं। सिनेमा, दावत-पार्टियों में जानेवाले माँ-बाप आजकल नौकरों की समस्यावाले इस काल में इसको वरदान समझते थे। प्रति घंटे के हिसाब से वे माता-पिता से कुछ पारिश्रमिक के रूप से लिया करती थीं।

एक ऐसी महिला से भी मैं परिचित हूँ जिन्होंने ज्योतिष का अध्ययन कर रक्खा था। वे कहती थीं कि हास्यास्पद लगता है सुननेवालों को; परन्तु जो उस पर हँसते हैं, कुछ दिनों के बाद उन्हींको अपने पास किसी न किसी समस्या में उलझा हुआ पाती हैं। इस विषय में उनकी योग्यता भी अच्छी हो गयी थी। पुरुषों में तो बहुत से समय का उपयोग इस रूप में करते हैं। समय का उपयोग भी होता है, मित्रगणों की संख्या भी बढ़ती है तथा आर्थिक दृष्टिकोण की इच्छा हो तो लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

एक धार्मिक महिला ने पुरुष व स्त्रियों की एक कमेटी बना रक्खी थी—और वह कमेटी पास-पड़ोस के जीर्ण मन्दिरों का उद्धार करती थी। उनकी कमेटी में बिना किसी व्यक्तिगत लाभ के काम करने की शर्त थी और आश्चर्य तो यह था कि जब कभी वे रुपया इकट्ठा करने निकलती थीं तो उन्हें धन तथा ईंट, सिमेंट आदि वस्तुओं के रूप में सहायता मिल जाती थी, और धीरे-धीरे करके वे काफी सामान इकट्ठा कर लेती थीं। काम श्रमदान से होता था। इस काम में पास के गाँवों से भी उन्हें बहुत सहायता मिल जाती थी। इस प्रकार उन्होंने कई मन्दिरों का जीर्णोद्धार किया था। फिर उस मन्दिर में किसी गाँव के पंडित को बिठालकर और एक छोटा सा स्कूल खोलकर मन्दिर गाँववालों की देखभाल में छोड़ दिया जाता था। नया मन्दिर बनाने से यह काम अधिक उत्साहवर्धक रहता था; गाँव वालों से भी सहयोग मिल जाता था।

कला में रुचि हो तो अवकाश के समय में उससे सहायता भी मिलती है तथा अपनी आवश्यकता के अनुसार उसको बढ़ाया या घटाया भी जा सकता है। साधारण मनोरंजन से लेकर द्रव्य उपार्जन तक का क्षेत्र उनके लिए खुला है। लेखन, चित्रकला, संगीत, घर के अन्दर की सजावट आदि सब बातें इसी क्षेत्र के अन्दर आती हैं।

बिना घी के, या कम घी के व्यंजन

बहुधा बहुत से लोगों को चालीस या पैंतालीस की अवस्था पर पहुँचने पर भोजन में घी के सेवन की मनाही हो जाती है। यकृत (लिवर), हृदय आदि के रोगों में घी के सेवन की विशेष मनाही है। शरीर की चर्बी कम करना भी जहाँ उद्देश्य होता है, वहाँ भी भोजनों में घी का उपयोग वर्जित कर दिया जाता है। गृहणियों के लिये यह एक बड़ी समस्या रहती है कि बिना घी का भोजन किस प्रकार बनाया जाय जो रुचिकर तथा स्वादिष्ट भी बने, और लाभदायक भी हो। रुचिहीन भोजन तो औषधि के समान हो जाता है; उस से तृप्ति नहीं मिलती और शीघ्र ही दुर्बलता आने लगती है। चालीस पैंतालिस वर्ष की आयु तक एक प्रकार के भोजन खाने की आदत सी पड़ जाती है; उस से भिन्न प्रकार का भोजन दिया जाता है तो खानेवाले को लगता है कि भोजन किया ही नहीं। इस कारण समस्या यह होती है कि भोजन बहुत कुछ वैसा ही हो जैसा कि खाते चले आ रहे हैं, और फिर उसमें घी भी न हो। यहाँ पर कुछ भोजन के सुझाव हैं जिनमें घी नहीं पड़ता और भोजन का प्रकार भी अधिक नहीं बदलता।

कोखड़ा—बेसन को खट्टे दही में सान कर रख दीजिये। शाम तक वह थोड़ा ढीला हो जायगा। उसमें नमक अन्दाज का मिला दें। एक छोटा चम्मच घी, उतना ही पानी और आधा नीबू उसी घी और पानी में मिला कर उसमें डाल दें (कुछ लोग थोड़ा सा सोडा भी डालते हैं। नीबू और सोडा मिलाने से थोड़ा सा झाग सा निकलता है)। अब बेसन को भाप पर रख दें। थोड़ी देर में वह कड़ा सा हो जायगा। उसको काट कर उसमें गरी, हरी मिर्च, धनिया काट कर ऊपर से डाल कर खायें। (भाप देने की विधि एक तो है—पतीली में पानी रख कर उस पर चलनी रख दी जाय, और फिर किसी हल्के बर्तन में बेसन का तैयार किया सामान चलनी के ऊपर रख कर उसे ढक दें। या फिर प्रेशर कुकर का प्रयोग करें।) इस पूरे भोजन में प्रायः आधे सेर या तीन पाव बेसन में केवल एक छोटा चम्मच घी पड़ता है जो कि नहीं के बराबर है।

चिउड़ा-आलू—चिउड़े को पानी में भिगी दें। बनाने के १०, १५ मिनट पहले आलू उबाल लें। भीगा चिउड़ा गल सा जायगा। एक छोटा चम्मच घी लेकर उसमें राई, हींग, मिर्च, हल्दी आदि छोड़ कर चिउड़ा और आलू डाल कर ढक दें। नमक अन्दाज का डाल दें। बहुत जल्दी ही नाश्ते के लिए यह हल्की फुल्की स्वादिष्ट चीज तैयार हो जाती है, और इसमें घी भी नाम मात्र का पड़ता है।

करेला दही का—तले हुए करेलों के स्थान पर दही का करेला दें। करेले को खुरच कर नमक आदि लगा कर उसी प्रकार करलें जिस प्रकार तलने के लिये तैयार किया जाता है। फिर तलने के स्थान पर भगौने में एक चम्मच घी डाल कर करेले को धीरे-धीरें भून लें, फिर (पिसा प्याज यदि प्याज का सेवन करते हों तो) हींग, जीरा, हल्दी, मिर्च आदि मसाला डाल कर ऊपर से खट्टा दही मथ कर (दही जरा पतला हो) डाल दें और चलाते रहें जिससे कि वह फट जाय। जब खदक जाय तब उतार लें। नमक डालना न भूलें। इन करेलों में घी भी नहीं पड़ता और स्वादिष्ट करेला भी खाने को मिल जाता है।

जमीकंद—को सूरन भी कहते हैं। इसके ऊपर मोटी मिट्टी चढ़ा दें और भड़भूजे के यहाँ भूनने को भेज दें, या अपने घर पर ही भट्टी में भून लें। फिर उसकी मिट्टी अलग कर दें। अन्दर के गूदे को बर्फी के समान काट कर रख लें। पतीली में एक चम्मच घी डाल कर जमीकंद के टुकड़ों को भून लें। मसाले और खट्टा दही डाल कर उतार लें। बिना तले भी वह जमीकंद मुंह को नहीं पकड़ेगा।

मटर और छोले—भिगो दीजिये। चाहें तो गलाने के लिए थोड़ा सोडा डाल दीजिए। वैसे वे बिना उसके भी गल जाते हैं। फिर ठीक से धो कर प्रेशर कुकर में भाप से गला लें, और सोंठ के साथ खाने को दें। स्वादिष्ट होंगे और घी का नाम तक न होगा।

ये वे व्यंजन हैं जिनके बारे में हमारी धारणा है कि बिना अधिक घी के बन ही नहीं सकते।

योजना के देवता

डा० हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'

उस दिन जब सुना कि वर्मा की हत्या हो गयी तो बिलकुल विश्वास ही न हुआ। वर्मा जैसे सन्त व्यक्ति का भी कोई दुश्मन हो सकता है—ऐसा सपने में भी न सोचा था।

वर्मा मेरा क्लास-फेलो था। शुरू से ही विज्ञान में विलक्षण, ऐसे-ऐसे प्रयोग करता कि सब हक्के-बक्के रह जाते। प्रयोग करते हुए जहाँ हमारे कैमिस्ट्री के अध्यापक की गाड़ी रुक जाती, वहाँ झट से वर्मा उसे आगे खींच देता। विज्ञान के सभी अध्यापक उसका लोहा मानते। गणित में उसने ऐसे-ऐसे 'गुर' निकाले कि सब के छक्के छूट जाते। पूरा कॉलेज उसका मान करता। विद्यार्थियों में सदा बाजी मार जाता। हाई स्कूल में पाँच विषयों में डिस्टिंक्शन और इंटर में, चार-के-चार में। शुरू से ही उसे कई इनाम मिलते रहे।

विज्ञान में इंटर करने के बाद वह इंजीनियरिंग में चला गया था। वहाँ भी सदा सर्वप्रथम रहा। पढ़ाई में मैंने आज तक ऐसा विचक्षण व्यक्ति नहीं देखा। उसकी प्रतिभा से हम सभी स्तंभित थे। कालेज में कई बार उसे कहा—"वर्मा, प्रेसिडेंटशिप के लिए खड़े हो जाओ, तुम्हारे विरोध में कोई भी नहीं उठेगा" पर वह कभी माना ही नहीं। हमेशा अपने कार्य में तल्लीन। न किसीसे अधिक बातें करता, न किसीकी बुराई ही। हम पहले से ही उसे 'साधु बाबा' कहा करते थे।

कुछ दिन पहले ही इंजीनियर हुआ था और उसके मनपसन्द पहाड़ी जिले में उसकी नियुक्ति हुई थी।

वर्मा को बचपन से पहाड़ बहुत अच्छे लगते थे। वह हमेशा पहाड़ी जीवन की बातें करता। बर्फ से ढकी ऊँची-ऊँची चोटियाँ, घने-घने जंगल, हरे-भरे सीढ़ीनुमा खेत, निरन्तर झर-झर करते झरने, बस इन्हींके सपने देखा करता।

एक बार जब वह केदारनाथ की यात्रा पर गया तो उसने तभी हम सबसे कहा था—"यार, मैं तो सब कुछ छोड़कर केदार घाटी में बस जाऊँगा। कैसी शान्ति मिलती है वहाँ जाकर!"

और जब उसकी मनचाही जगह उसे मिली तो वह आह्लाद हो गया। उसने वहाँसे कई पत्र लिखे। हर पत्र में वहाँकी नैसर्गिक छटा का अद्भुत वर्णन। उसकी चिट्ठियों से मुझे लगता कि वह इंजीनियर के बजाय अब लेखक बन गया है।

सीमावर्ती जिलों में पंचवर्षीय योजनाएँ बड़े जोर-शोर से चल रही हैं। ऐसी खबरें अखबारों में रोज पढ़ने को मिलती हैं।

हिमालय की गोदी में बसे जिलों का महत्त्व बढ़ गया है; क्योंकि सीमा की सुरक्षा के लिए इनका विकास अनिवार्य है। इसलिए हमेशा यही चर्चा रहती कि उधर नई-नई सड़कें बन रही हैं, नई-नई नहरें, नये-नये स्कूल, नये-नये पुल, ब्लाक डेवलेपमेंट का पूरा काम बड़ी तेज रफ्तार से चल रहा है। ऐसी उड़ती-उड़ती बातें कानों में पड़ती ही रहतीं किन्तु इधर वर्मा के पत्रों से एक दूसरी ही झाँकी मिली।

उसने अपने एक पत्र में लिखा—"निर्माण के नाम पर सरकार तो अपनी ओर से भरसक प्रयत्न कर रही है परन्तु बीच में कुछ ऐसे भूखे भेड़िये बैठे हैं जो दिन-दहाड़े मनमानी लूट-खसूट कर रहे हैं।

यहाँ एक स्कूल को सात साल से बीस हजार सालाना ग्रान्ट मिल रही है। मैंने बड़े सपने सँजोए थे उस स्कूल के बारे में, क्योंकि सुना था कि वह एक 'आदर्श स्कूल' है, जहाँ मनोवैज्ञानिक ढंग से शिक्षा दी जाती है। नई और पुरानी परिपाटियों के संशोधित रूप वहाँ प्रयोग में लिये जाते हैं। वहाँकी शिक्षा-पद्धति में, प्राचीन गुरुकुल प्रणाली और हैरो, ईटन आदि आधुनिक पब्लिक स्कूलों की प्रणाली—दोनों का सम्मिश्रण है। इसलिए एक दिन जब वहाँ गया तो पूछा—भाई वह स्कूल कहाँ है। गाँववालों को कुछ भी पता नहीं। मुझे बड़ी हैरानी हुई। जब कुछ दिनों के बाद असलियत मालूम हुई कि वहाँ न कभी कोई स्कूल ही खुला, न कोई स्कूल का मकान ही बना, न लड़के ही, न अध्यापक ही। बस, किसीकी चलती थी। 'चलती का नाम गाड़ी।' वे मजे से ग्रांट लेते रहे और खाते रहे। न वहाँ-के लोगों को ही मालूम हुआ और न बाहरवालों को ही। ऐसी अंधेर-गर्दी चल रही है।

ऐसे ही एक किस्सा अपने विभाग का भी है। उसकी छान-बीन मैं ही कर रहा हूँ। प्लैनिंग डिपार्टमेंट ने एक जगह नहर के लिए पन्द्रह हजार रुपये दिये। बाद में शिकायत आयी कि यहाँ नहर-वहर कुछ नहीं बनी। न-जाने बीच में कौन रुपये खा गया है।

उस दिन जब जाँच-पड़ताल करने गया तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। जब मैंने देखा कि नहर के नाम पर 'न' भी नहीं है। गाँववालों से अनेक प्रश्न पूछे पर पहाड़ी भोले-भाले लोग, एकदम घबरा गए कि न जाने हमारे गाँव का क्या हो रहा है। नहर के बारे में जब उनसे पूछताछ की तो उन्हें कुछ भी पता नहीं। अब सोचता हूँ कि क्या रिपोर्ट दूँ, किसकी दूँ।"

दूसरे पत्र में, जो इसके बाद लिखा था, उसने नहर का राज़ खोला—"उस दिन जब गाँव से लौटा तो रात

को डाक बंगले पर दो आदमी आये बहुत-सारे फल, मिठाई आदि लेकर। इधर-उधर की बातें हुईं तो फिर पैरों में पड़ने लगे--"इंजीनियर साहब, हम बर्बाद हो जाएँगे। हमारे सारे ठेके कैंसिल हो जाएँगे--आप नहर की रिपोर्ट सही न लिखिए। हम आपको पाँच हजार रुपए देने को तैयार हैं।" और फिर उन्होंने पाँच हजार रुपये मेरी तरफ बढ़ाये।

मैं बहुत घबराया। उनसे कहने लगा कि फिर बात करूँगा। आप लोग फिर कभी आ जाइए। मैं अभी रिपोर्ट नहीं भेजूँगा। पर वे माने ही नहीं, उन्होंने एक कागज आगे बढ़ाया और कहा कि आप इसकी नकल कर भेज दीजिए। मैंने सरसरी निगाह से वह कागज देखा तो यकायक चौंक गया। "यह सब झूठ है। मैंने अपनी आँखों से देखा कि वहाँ कहीं नहर नहीं है और न कभी बनवाई ही गयी। फिर कैसे लिख दूँ कि नदी में बाढ़ आने के कारण पूरी नहर बर्बाद हो गयी? मैंने तो गाँववालों से भी पूछा।"

फिर उनमें से एक आदमी ने कहा--"इंजीनियर साहब, इसीलिए तो आपको पाँच हजार दे रहे हैं। यहाँके लोग तो बिलकुल बेवकूफ हैं। उन्हें जो जैसा कह दे, वैसा ही ठीक मान लेते हैं। जब बड़े-बड़े नेता सभी लूट-खसोट कर रहे हैं तो फिर आपकी और हमारी कौन पूछ? पहले जो इंजीनियर थे, उन्हें तो हमने यहाँसे मालामाल करके भेजा है। देहरादून में पहले ही कोठी बनवा दी। आप भी थोड़ा ढंग से काम लें। देखिए जो नेता कल तक भीख माँग-माँगकर अपना गुजारा करते थे, एक-दो साल में ही लखपती हो गये। किसीने मोटर के परमिट लिये, किसीने 'लाइम स्टोन' के लाइसेंस लिये और दूसरों के हाथों बेच दिये। किसीने शरणार्थियों के नाम से जमीन ली और लाखों में बेच-बाचकर धन्नासेठ बन गये। उनकी दनादन कोठियाँ बन रही हैं, बैंकों में बैलेन्स बढ़ते जा रहे हैं। नई-नई कारें खरीदी जा रही हैं। बरसाती नदी की मछली की तरह शासन-सत्ता जिसके हाथ लग गयी, बस, मालामाल हो गया। आप-हम पीछे क्यों रहें?"

और फिर उन्होंने पाँच हजार रुपये मेरी ओर बढ़ाये और चल दिये।

मैं हतप्रभ-सा रह गया। मेरे मुख से एक शब्द भी न निकला। किंकर्तव्य-विमूढ़-सा हो गया। उस रात बिलकुल नींद नहीं आयी। सुबह उठा तो मन भारी-भारी हो गया। इसी परेशानी में हूँ कि रुपये का क्या करूँ। वैसे, तुम तो मेरा स्वभाव जानते ही हो...."

और इसी बीच जब वर्मा की हत्या की खबर मिली तो हृदय को एक भयंकर चोट-सी लगी। मैंने अपने दिल में सोचा--शायद वर्मा ने रुपये वापस कर दिये हों और उन्होंने डर के मारे उसकी हत्या करवा दी हो या फिर किसी चोर-डाकू को मालूम हो गया हो कि वर्मा के पास पाँच हजार रुपये हैं, कहीं उन्होंने ही उसकी हत्या न की हो। ऐसे अनेक विकल्प मन में उठे। उधर पता लगा कि पुलीस खूब छान-बीन कर रही है। मैं चुप ही रहा, क्योंकि वर्मा के पत्रों से कुछ पोल तो खुल जाती पर मैं भी बीच में खाम-ख्वाह घसीटा जाता।

कुछ दिनों बाद पुलीस की रिपोर्ट निकली कि ज्यादा शराब पीने से वर्मा की हृदय-गति रुक गयी। किसीने उसकी हत्या-हुत्या नहीं की।

× × ×

मैंने पुलीस की रिपोर्ट पढ़ी तो बिलकुल ही विश्वास न हुआ। कुछ ऐसे ही परेशान रहा। क्या वर्मा के पत्र पुलीस को दे दूँ? सब भंडाफोड़ हो जाएगा। कभी सोचता कि पुलीस मिल-मिला जाएगी और मैं बीच में बुरा फँस जाऊँगा।

वर्मा की मृत्यु मेरे लिए एक पहेली-सी बन गयी। यही निर्णय किया कि वर्मा के पत्र पुलीस के हाथ देने से कुछ भी नहीं होगा। इसलिए चुपचाप बैठा रहा।

वर्मा के अपने नाम पर सिर्फ एक पिता थे, जो पेन्शन पर गुजारा कर रहे थे। उन्होंने जब बेटे की मृत्यु की खबर सुनी थी तो एकदम दिल का दौरा पड़ गया और बेचारे चल बसे। अब कौन बैठा है जो इस बारे में छान-बीन करे, बात ऐसी ही उलझी रह गयी।

× × ×

दो साल बाद मालूम हुआ कि प्रदेश के किसी जाने-माने तथाकथित बरसाती नेता ने वर्मा की हत्या करवाई थी क्योंकि वर्मा ने एक पुल के बारे में ऐसी रिपोर्ट लिखी थी कि नेता पर भी कुछ आँच आ गयी थी और तब रातों-रात उसका गला घोंट दिया गया।

एक ऐसा गुट बना हुआ था जो निर्माण के नाम पर खुले आम लूट-खसोट कर रहा था। एक बरसाती नेता उस गैंग के भी नेता थे। नहर से लेकर स्कूल का रुपया, पुल का रुपया--सब चट कर जाते और झूठी-मूठी रिपोर्ट भेज देते।

× × ×

पोल तब खुली जब ऐन चुनाव के मौके पर उसी दल के दो व्यक्ति अखाड़े में उतर गये। दोनों एक दूसरे की पोल खोलने लगे और इसी बीच उनके एजेंटों ने वह बात भी खोल दी, पर हुआ कुछ नहीं।

पुलीस की रिपोर्ट पक्की मान ली गयी, क्योंकि चुनाव के मौके पर ऐसा कीचड़ अक्सर लोग उछाला ही करते हैं। बात फिर भी रफा-दफा हो गयी पर निर्माण के देवताओं की कलई वहाँके लोगों के सामने खुल ही गयी थी कि उन्होंने उनके नाम पर कितना-कितना खाया। पर देवता देवता ही ठहरे, उनका कोई बाल भी बाँका न कर सका।

आत्म-हत्या

(मूल मलयाली से अनूदित)

मूल लेखक, श्री नागवल्ली आर० एस० कुरुप

अनुवादक, श्री सुधांशु चतुर्वेदी

[मूललेखक का परिचय——मलयाळम-साहित्य के सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री नागवल्ली आर० एस० कुरुप की कथाएँ पाठकों के अन्तस्तल पर अपनी अक्षुण्ण छाप छोड़ जाती हैं। अपने तथा आसपास के गाँवों में रहनेवाले जीवन पर नागवल्लीजी ने नाषिकमणि, दलमर्म्मरम्, मिण्टाप्राणिकळ् इत्यादि नौ से अधिक कथा-संग्रह प्रकाशित किये हैं। इनकी कथाओं में विषाद की छाया रहती है और कहीं-कहीं मधुरता भी है। इनकी शैली निराली है। कथावस्तु के चयन में उन्होंने अद्भुत कुशलता दिखलायी है। इनके सतत् प्रयास के फलस्वरूप आकाशवाणी द्वारा छोटी-छोटी मलयाली कहानियाँ प्रसारित की जा रही हैं।]

माननीय महोदय,

प्रणाम !

बात दो सप्ताह पूर्व की है। कदाचित् आपको स्मरण हो कि आपके समाचार-पत्र में 'एक युवा कवि की आत्महत्या' नामक शीर्षक से मेरा पत्र प्रकाशित हुआ था। उसी व्यक्ति के द्वारा पुनः आपकी सेवा में यह पत्र समर्पित किया जा रहा है। आपकी ही भाँति बहुतों के हृदय पर उसे पढ़कर गहरी चोट लगेगी जो मेरी 'आत्महत्या' को सत्य मान बैठे थे। परन्तु उसका उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेने को मैं कदापि तत्पर नहीं हूँ।

उस समय जब मैंने आपको पत्र लिखा था तो अपनी जीवन-लीला समाप्त करने का मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया था। यद्यपि जीवन के विषाक्त अनुभवों से तंग आकर मुझे यह निश्चय करना पड़ा था, तथापि अपनी जीविका का परित्याग मैं एकदम न कर सका। उस समय मैंने सोचा था कि आखिर कब तक मैं ऐसा जीवन व्यतीत करता रहूँ? अन्त में विवश होकर इसका अन्त ही कर देना चाहा था।

अपनी जीवन-कहानी सुनाकर मैं आपको विषादा-क्रान्त नहीं बनाना चाहता, और बताये बिना मुझसे रहा भी नहीं जाता। आप यह अवश्य जानते होंगे कि एक सौन्दर्यस्रष्टा कलाकार को इस विश्व में कितना सम्मान दिया जाता है। आज का संसार तो सोने-चाँदी का सम्मान करना जानता है, सच्चे मानव का नहीं।

मेरी साहित्यिक रचनाओं को तो सारी जनता बेहद पसन्द करती थी; परन्तु उसमें से किसीने भी रचयिता के विषय में भी कभी कुछ सोचा हो, यह कौन जाने? साहित्य तो उन सहृदयों के लिए मनोरंजन का साधन है, इसलिए उस साहित्यकार के विषय में सोचकर वे अपने मनोरंजन में बाधा क्यों डालें? आखिर उसके लिए समय भी तो चाहिए उन्हें! साहित्यकार की आह से उपजा हुआ गान किसी भी धनिक के हृदय का संस्पर्श करेगा, इसकी आशा कोई कलाकार कभी नहीं कर सकता। यदि कोई करे तो मूर्खता ही होगी।

मेरा जीवन पराजय का है, यह बात मैं मान रहा हूँ और जबसे विवाह हुआ तब से तो यह धारणा और दृढ़ होती गयी। मेरा अपना विश्वास है कि सच्चे अर्थों में कलाकार की पत्नी का अभी तक जन्म नहीं हुआ है। यह बात सुनी-सुनाई नहीं है, मैं अपने अनुभव से कह रहा हूँ। आप विश्वास कीजिए, मेरी पत्नी विवाह से पूर्व मेरी कला-कृतियों की आराधिका थी, यहाँ तक कि उसकी आँखों में मैं देव-स्वरूप था। फिर भी विवाह के बाद वह मेरे साथ छः महीने ही रही। उसके बाद वह अपने मायके चली गयी और फिर लौटने का नाम न लिया। मैं आश्चर्य-

चकित हो गया कि आखिर बात क्या हुई? कुछ भी हो, वह आगे से मेरे साथ न रहने का निश्चय कर चुकी थी और बाद में उसने अपना निश्चय मुझे स्पष्ट रूप से बता भी दिया।

संक्षेप में मेरा दाम्पत्य-जीवन ऐसा ही था। मुझे इसका रंचमात्र भी दुःख नहीं, क्योंकि मैंने उसकी अधिक प्रतीक्षा भी नहीं की थी, अतः अधिक निराश भी नहीं हुआ।

ऐसी स्थिति में जिस दुनिया को मेरी आवश्यकता नहीं थी, उससे सदा के लिए विदा लेने का निश्चय कर डाला था मैंने। रात के घनघोर अंधकार में चुपचाप यहाँ से सदैव के लिए प्रस्थान कर देना भी मैंने उचित नहीं समझा, क्योंकि साहित्यकार हमेशा यश-कामी होता ही है। इसका वास्तविक स्वरूप संसार को समझाने के इच्छा मेरे मन में जाग उठी। इसीलिए वह एक छोटा-सा पत्र लिखकर आपकी सेवा में प्रेषित किया था।

बात उसी दिन की है। अर्धरात्रि व्यतीत हो चुकी थी। सारी दुनिया निद्रा-निमग्न थी। उस समय मैं निकल पड़ा अपने घर से। चलते-चलते समुद्र के किनारे पहुँच गया। लहरों का भयानक अट्टहास गूँज रहा था चारों ओर। विश्व के प्रादुर्भाव से निरन्तर नाना रहस्यों को अपने में अर्न्तनिहित रखनेवाले समुद्र में अपने को सदैव के लिए अन्तर्भुक्त कर देना ही मेरा उद्देश्य था। तब भी न जाने क्यों, जीने की अभिलाषा मुझसे अलग नहीं हो पा रही थी। पर्याप्ति समय तक मैं उस अनन्त एवम् अगाध सागर को निर्निमेष देखने लगा और देखता ही रह गया काफी देर तक। आकाश के तारों नें मुझे देखकर आँखें मूँद लीं। एक निशाचर पक्षी शोर मचाता हुआ मेरे सिर के ऊपर से होता हुआ कहीं उड़ गया। उस समय समीपस्थ एक मछुए की कुटी से किसीके मधुमय गान की सुरीली आवाज सुनायी दे रही थी। मैं वहाँ क्यों और कैसे आया, यह सब कुछ भूलकर ध्यानावस्थित हो सुनने लगा। साथ ही साथ हृदय में जीवन के प्रति एक नवीन आशा की दिव्य ज्योति जगमग हो उठी। उस सुरम्य गान से सम्पूर्ण वातावरण मधुवेष्ठित हो गया। उस गीत के प्रत्येक शब्द में किसी निराश व्यक्ति को आदर्शवादी बनाने की अपूर्व शक्ति भरी हुई थी। गीत सुनता रहा और मुझे एक अजीब-सी गुदगुदी की अनुभूति होती रही। उस गीत में कुछ ऐसा जादू भरा था कि उसके बाद यहाँ से हमेशा के लिए विदा लेने का मेरा दृढ़ संकल्प एकदम बदल गया, और मैं स्वयं—चालित-सा, तुरन्त ही वहाँसे लौट पड़ा।

भारी कदमों को मैं बड़ी कठिनाई से आगे बढ़ाता जाता था। इसी बीच अचानक उस पत्र का मुझे ध्यान हो आया जो मैंने आपको भेजा था। सोचकर मैं स्तब्ध रह गया। क्या मुसीबत कर डाली थी मैंने! 'क्या करूँ क्या न करूँ', इसी द्विविधा में पड़ गया था मैं। आप मुझसे पचास मील दूरी पर थे। उसी रात वहाँ जाकर आपसे मिलना असम्भव था। मैं मुसीबत में फँस गया बुरी तरह से। इतने में मुझे एक उपाय सूझा। मेरी आत्महत्या के समाचार का सहृदय लोगों ने कैसा स्वागत किया है, इससे अवगत होने की विचित्र इच्छा भी मुझमें हुई। मैं जानना चाहता था कि जिन्दा रहते समय मुझ पर कृपादृष्टि न रखनेवाली दुनिया क्या मृत्यु के उपरान्त भी उसी प्रकार का वीक्षण करेगी? इस बात को अपने अनुभव से ही जानने का एक सुन्दर और बिन माँगा अवसर मिल रहा था। इसीलिए मैं पास के एक गाँव में चला गया। उस गाँव में स्थित एक जीर्ण-शीर्ण मन्दिर के सामने वाला मैदान ही मेरे लिए निर्भय स्थल था।

मेरी आत्महत्या (?) की वार्ता से सचमुच ही सहृदयों के मन में पर्याप्त उथल-पुथल मच गयी थी। आप भी इस बात से अवगत होंगे। न जाने कितनी कविताएँ मेरे ऊपर लिखी गयीं, और कितने संस्मरण निकले थे। उस गाँव में मिलनेवाले अखबारों से ये सब बातें अपनी आँखों से पढ़ लेता और एक अनूठे आनन्द की अनुभूति भी कर लेता था।

अरे, एक बात मैं आप से कहना भूल ही गया। बात बड़ी विचित्र है। कितने ही ऐसे लेखकों ने अपने लेखों द्वारा मेरे साथ अपना गहरा संबंध भी स्थापित कर दिया जो मेरे लिए सर्वथा अपरिचित रहे हैं।

"हे निर्दयी दुनिया! तूने एक युवाकवि का गला दबोच डाला", यही शीर्षक देकर एक महाकवि द्वारा लिखित एक भावपूर्ण संस्मरणात्मक लेख आपके पत्र में प्रकाशित हुआ था। क्या आप जानते हैं कि उन्हीं महाशय से मैंने

...बार सहायता माँगी थी? एक बार भी उन्होंने ...प्रति सहानुभूति प्रकट नहीं की। "मैं भूखा हूँ" यह ...ते हुए भी उन्होंने कभी भोजन नहीं कराया। अब ...मेरी आत्महत्या का उत्तरदायित्व दुनिया के मत्थे ...ने की कोशिश कर रहे हैं! साथ ही इस दुनिया ...'निर्दयी' भी संबोधित कर रहे हैं! यह देखकर मुझे ...सी आ जाती है।

कलाकार को अपने जीवन-काल में सहानुभूति का ...शब्द तक नहीं मिलता, और मृत्यु के पश्चात् उसे ...आसमान पर चढ़ा दिया जाता है। ऐसी अजीब दुनिया ...असली रूप और रंग में अब भली-भाँति देख सका ...। यदि एक भूखा साहित्यकार समाज के लिए उपद्रव ...है तो स्वर्गीय साहित्यकार है उसके लिए एक ...स्मृति की वस्तु! सभी लोग यह जानते हैं कि ...से प्रतिशोध लेने के लिए वह पुनः लौटकर नहीं ...सकता।

इस दुनिया को जीवित साहित्यकार की नहीं बल्कि ...साहित्यकार की आवश्यकता है, ऐसा ही मुझे मालूम ...पड़ता है।

सम्भव है, मेरे नाम पर चार-पाँच स्मारक बनें। ...कृतियों के संग्रह भी निकलें। सुना है कि किसी वाच-...नालय में मेरे एक तैलचित्र का अनावरण होने वाला है। ...के आराधकों द्वारा एक साहित्यिक मासिक पत्रिका ...आरम्भ करने के सम्बन्ध में विचार-विमर्श हो रहा है। ...यह जानकर कि उन लोगों का मेरे प्रति कितना आदर-...भाव है, मैं स्वयं आश्चर्य में पड़ गया हूँ।

आप से सच कहता हूँ कि मुझमें अब जीवित रहने की इच्छा नहीं है, क्योंकि जीवित रहने का अर्थ है—उन आराधकों को निराश करना। इसीलिए मैं दूर जा रहा हूँ। मेरी न कोई मंजिल रहेगी, और न कोई निश्चित रास्ता ही। लम्बी-लम्बी सड़कों से होकर मैं घूमता-फिरता रहूँगा। इसी बीच हो सकता है कि कहीं बेहोश होकर गिरूँ और मेरी मृत्यु हो जाय। स्मारक के निर्माण में व्यस्त सहृदय आराधकों को मेरा धन्यवाद। मेरे नाम पर कितने स्मारक बनाये जायेंगे, यह जानने की इच्छा होते हुए भी कहीं ठहरने का मेरे पास अवकाश नहीं। सुदूरस्थ वह हरी-भरी राह जो मेरी आहट की प्रतीक्षा में बेचैन है उसकी क्षमता नष्ट होती जा रही है....... इसीलिए मैं कहीं नहीं ठहर सकता। अपनी जान हथेली पर रखे हुए मैं यात्रा का प्रारम्भ कर चुका हूँ और आप इसे मेरी अन्तिम यात्रा ही मान लें। आपको मेरा अन्तिम प्रणाम!

भवदीय
युवाकवि

सम्पादकजी ने पत्र पढ़ा। तदुपरान्त कुछ देर तक सोच-विचार में पड़े रहे। थोड़ी देर बाद 'कालिंग बैल' बजाकर फोरमैन को बुलाया। उसकी ओर पत्र बढ़ाते हुए कहा—

"इसको प्रथम पृष्ठ पर प्रकाशित कर देना भाई, शीर्षक मोटे अक्षरों में हो। शीर्षक रखो—"युवा कवि की आत्महत्या का पूर्ण रूप"। कार्यारम्भ में विलम्ब मत करो। निश्चिन्त होकर इस बार समाचार-पत्र की हजार प्रतियाँ अधिक छाप लो।"



नवीन प्रकाशन

भगोड़े युद्ध-बंदियों की सच्ची कहानियाँ—सम्पादक, श्री वरदाचारी पंडित। प्रकाशक, सूर्य प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली—६, मूल्य तीन रुपये।

युद्ध में शत्रु के जो सैनिक बंदी बना लिये जाते हैं वे बंदी-शिविरों में रखे जाते हैं। वहाँसे वे भागने का प्रयत्न करते हैं जिससे वे स्वदेश लौटकर शत्रु के देश का समाचार दे सकें और युद्ध में फिर भाग ले सकें। किंतु शिविरों से भाग निकलना बड़े जोखिम का काम है क्योंकि भागते हुए बंदी को गोली तक मारी जा सकती है। अतएव बंदी शिविरों से निकल भागने के लिए बड़े साहस और बुद्धि की आवश्यकता होती है, तथा जब तक शत्रु-देश से निकल न आया जाय तब तक उसे अपने को छिपा कर रखना पड़ता है तथा बड़े कष्ट उठाने पड़ते हैं। इस संग्रह में ऐसे पाँच बंदियों की सच्ची कहानियाँ हैं जो शत्रु के बंदी शिविरों से निकल भागने में सफल हुए। कहानियाँ बड़ी रोचक हैं और उनके पढ़ने में साहसिक उपन्यास पढ़ने का आनन्द आता है। इस देश में दीर्घकालीन शान्ति के कारण युद्ध संबंधी साहित्य का निर्माण बहुत कम हुआ है और जनता को उसका परिचय भी नहीं के बराबर है। यह रोचक पुस्तक उस दिशा में एक अच्छा प्रयास है।

भारतीय व्यायाम—प्रो० माणिकराव। प्रकाशक, कृ० ब० महाबल। पुस्तक मिलने का पता, श्री जुम्मा-दादा व्यायाम मंदिर, बड़ोदा। सजिल्द और सचित्र, पृष्ठ-संख्या, ४४६। मूल्य, १० रुपये।

श्री माणिकराव बड़ोदा के रहनेवाले थे और अपने समय के सर्वश्रेष्ठ भारतीय व्यायाम-शास्त्री थे। किंतु वे कोरे पहलवान नहीं थे। उनमें कल्पना थी और जीवन के कुछ उच्च आदर्श थे। उन्होंने अपना सारा जीवन समाज-सेवा और तरुणों में व्यायाम के प्रचार में लगाया। उनके व्यायाम-गुरु बड़ोदे के उस समय के सर्वश्रेष्ठ पहल-वान उस्ताद जुम्मा मियाँ थे। उन्होंने अपने गुरु के छोटे से अखाड़े को 'जुम्मादादा व्यायाम मंदिर' का नाम देकर देश का एक श्रेष्ठ व्यायाम मंदिर बना दिया और उसका भवन भी बहुत सुंदर बनवा दिया। उन्होंने नवयुवकों, व्यायाम-शिक्षकों आदि के लिए व्यायाम पर एक वृहद् ग्रंथ लिखा जो भारतीय व्यायाम का ज्ञान-कोश कहा जा सकता है। मूल पुस्तक मराठी में है। प्रस्तुत पुस्तक उसी श्रेष्ठ ग्रंथ का हिंदी अनुवाद है। अनुवाद संतोषजनक है। यह पुस्तक सभी प्रकार के देशी व्यायामों की प्रामाणिक मार्गदर्शिका होने के अतिरिक्त, पाठकों को देशी व्यायामों के संबंध में एक स्वस्थ दृष्टि देती है तथा देशी व्यायामों की उपयोगिता को स्पष्ट करती है। यह पुस्तक व्यायाम-शिक्षकों और व्यायाम में रुचि लेनेवाले तरुणों को पढ़नी चाहिए। यह ऐसी उपयोगी पुस्तक है कि प्रत्येक मिडिल और हाईस्कूल तथा इंटर कालिज में होनी चाहिए।

हिन्दी लेखिकाओं की प्रतिनिधि कहानियाँ—सम्पादक, श्री योगेन्द्र कुमार लल्ला और श्री श्रीकृष्ण। प्रकाशक, आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६, बड़ा आकार, सजिल्द। मूल्य, १० रुपये।

आत्माराम एण्ड सन्स की 'प्रतिनिधि साहित्य माला' का यह आठवाँ पुष्प है। इस उपयोगी माला ने अभी तक जो 'प्रतिनिधि' साहित्य दिया है वह उच्चकोटि का है। इस पुस्तक में भी वह परम्परा अक्षुण्ण रखी गयी है। इसमें हिन्दी की ३६ कहानी-लेखिकाओं की एक एक कहानी संग्रह की गयी है। इस पुस्तक के नाम में 'आधु-निक' शब्द जोड़ दिया जाता तो अधिक अच्छा था क्योंकि इसमें 'बंगमहिला' के समान पुरानी कहानी-लेखिकाओं की कहानियाँ नहीं ली गयीं। आजकल की कहानी-लेखि-काओं में भी श्री निर्मला मित्र और शीला शर्मा के समान लेखिकाएँ छोड़ दी गयी हैं। शायद कहानियों की विशिष्ट प्रकार की 'आधुनिकता' इस 'प्रतिनिधि' संग्रह के चुनाव में निर्णायक थी। हम इसे 'प्रतिनिधि' तभी मान सकते हैं जब इसमें 'आधुनिक' शब्द जोड़ दिया जाय। वैसे यह संग्रह अच्छा है। प्रौढ़ लेखिकाओं के साथ नवो-दित लेखिकाओं की कहानियों की अच्छी बानगी पढ़ने को मिलती है। पुस्तक कहानी-प्रेमियों का मनोरंजन करेगी और पाठकों को हिंदी-लेखिकाओं की सामर्थ्य से आश्वस्त करेगी।

गणेश शंकर विद्यार्थी के श्रेष्ठ निबंध—सम्पादक, श्री राधाकृष्ण। प्रकाशक, आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली ६। सचित्र। मूल्य, ४ रुपये।

कानपुर में 'गणेश शंकर विद्यार्थी स्मारक शिक्षा समिति' नाम की एक संस्था है जिसने कानपुर में विद्यार्थी जी की एक मूर्ति स्थापित की, तथा जो उनके स्मारक रूप में एक माध्यमिक विद्यालय तथा एक पत्रकार विद्यापीठ चला रही है। उसके द्वारा नियुक्त सम्पादकमंडल ने विद्यार्थीजी के सम्पादकीयों में से चुनकर विविध विषयों पर उनके ४४ लेख इसमें संग्रह किये हैं। इनके अतिरिक्त

साहित्यसम्मेलन के गोरखपुर अधिवेशन में दिये उनके अध्यक्षीय भाषण से उनके हिन्दी संबंधी विचार लेख के रूप में दे दिये गये हैं। विद्यार्थीजी अपने सम्पादकीय लेखों की भाषा के प्रवाह और ओज तथा सुलझे हुए विचारों के लिए प्रसिद्ध थे। इन लेखों में उनकी भाषा, शैली और विचारों का अच्छा परिचय मिलता है। इसमें अनेक प्रकार के विषयों पर लेख हैं—जिनमें से कुछ स्थायी महत्त्व के हैं, और कुछ अल्पकालीन महत्त्व के। सभी लेख पठनीय और अपने ढंग के अनोखे हैं। विद्यार्थीजी ने न मालूम कितने लेख लिखे। उनकी संख्या हजार-बारह सौ से कम न होगी। इसलिए हमें ४५ लेखों के इस संग्रह से संतोष नहीं हुआ। न यह विद्यार्थीजी के प्रति न्याय करता है और न यह उनके 'स्मारक ग्रंथ' के रूप का ही काम करता है। फिर भी विद्यार्थीजी का साहित्य इतना कम उपलब्ध है कि हम इसे भी गनीमत समझते हैं। 'अभावे शालिचूर्णं वा' न्याय से संतोष करना पड़ता है।

हिन्दी काव्य की निर्गुण धारा में भक्ति—डा० श्यामसुन्दर शुक्ल, प्रकाशक, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी -५, अजिल्द। मूल्य, सात रुपये।

भारत में मुक्ति-प्राप्ति के तीन सर्वसम्मत मार्ग हैं—ज्ञान, कर्म और भक्ति। निर्गुण उपासना ज्ञान-प्रधान है। भक्ति में सामान्यतः वैयक्तिक ईश्वर आधार होता है। 'निर्गुण' निराकार होने के कारण 'ज्ञान' से 'ज्ञेय' है और उसी के द्वारा प्राप्त होता है। किंतु हमारे देश में कुछ निर्गुणोपासक सन्तों का 'ज्ञान' मार्ग कहीं कहीं—विचित्र तर्क और प्रमाण से—भक्तिमार्ग पर कुछ दूर चला जाता था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० के लिए लिखे गये और स्वीकृत इस शोध निबंध में लेखक ने हिंदी के 'निर्गुण' सन्तों की 'भक्ति' की शोध की है। ४८२ पृष्ठों की बड़े आकार की पुस्तक में इस पहेली का विश्लेषण किया गया है। बहुत से निर्गुण सन्तों पर सूफी मत का काफी प्रभाव था। वे निर्गुण ईश्वर को 'प्रियतम' मानते थे और "सन्तों की विचारसरणि में 'परम प्रियतम' अनुभव गम्य माना गया है।" "ऐसे वातावरण में 'दयाल' का दर्शन पाकर भक्त आप्तकाम और शान्त हो जाता है। फिर उसे कुछ कहना-सुनना या किसीसे ज्ञानचर्चा करना अधिक भी अच्छा नहीं लगता। इस अवस्था का वर्णन करते हुए संत चरणदासजी कहते हैं—

"जबसे अनहद घोर सुनी।
इंद्री थकित गलित मन हूवा, आसा सकल भुनी॥
घूमत नैन सिथिल भई काया, अमल जु सुरत सनी।
रोम रोम आनंद उर उपज करि, आलस सइज भनी॥"

इस प्रकार का 'आनन्द' इन निर्गुण सन्तों को प्राप्त होता था और 'प्रियतम' के प्रति जो उनकी 'लगन' थी, वही शायद उनकी 'भक्ति' का रूप थी। अवश्य ही, सगुण उपासना में भक्ति के तत्त्व कुछ भिन्न होते हैं, किंतु निर्गुण-उपासकों की 'लगन' को भी शायद भक्ति की संज्ञा दी जा सकती है। और इसी दृष्टि से लेखक ने निर्गुण सन्तों की 'भक्ति' पर विचार किया है।

शोध-निबंध होने के कारण इस पुस्तक की शैली सामान्य पाठकों के लिए कुछ दुरूह है। यह पुस्तक हिन्दी के शोध निबंधों की शैली का अच्छा नमूना है, और निर्गुण सन्तों का अध्ययन करनेवालों तथा शोधकर्ताओं के लिए उपयोगी है।

राष्ट्रीय ग्रंथसूची (हिन्दी भाग) १९६१—सम्पादक, श्री बी० एस० केशवन्, सहसम्पादक, श्री शोभराज गुरनाणी। प्रकाशक, भाषा विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, सचिवालय, लखनऊ। सजिल्द, पृष्ठसंख्या ४५३। बड़ा आकार। मूल्य, १० रुपये।

भारत में जो पुस्तकें प्रकाशित होती हैं उनकी प्रतियाँ नेशनल लाइब्रेरी को भेजी जाती हैं। वह प्रत्येक वर्ष के प्रकाशनों की सूची प्रकाशित करती है। वृहद् सूची तो भारत की 'सहराजभाषा' अँग्रेजी में प्रकाशित होती है किंतु देशी भाषाओं की पुस्तकों की सूचियाँ उन भाषाओं में भी प्रकाशित की जाती हैं। हिन्दी की सूची लाइब्रेरी तैयार करती है, और उसे प्रकाशित करने का कार्य उत्तर प्रदेश की सरकार को सौंप दिया गया है। यह सूची १९६१ के प्रकाशनों की है। यह सूची मात्र है। इसमें प्रकाशनों के संबंध में कोई आलोचना या संक्षिप्त विवरण नहीं है। इसलिए इसका उपयोग बहुत सीमित है। उदाहरण के लिए जब तक पाठक स्वयं इस सूची में दी गयी पुस्तकों को न गिने तब तक नहीं जान सकता कि १९६१ में कितनी हिंदी पुस्तकें प्रकाशित हुईं, अथवा भिन्न भिन्न विषयों में कितनी पुस्तकें निकलीं। स्कूली पाठ्य-पुस्तकें भी विषयों की सूची में सम्मिलित हैं। अतएव यह नहीं जाना जा सकता कि पाठ्यपुस्तकों के अतिरिक्त भिन्न-भिन्न विषयों पर क्या साहित्य निकला। उदाहरण के लिए, विज्ञान पर साधारण रचनाओं की संख्या १० है, जिनमें दो (नेशनल रिसर्च डेवलपमेंट कार्पोरेशन आफ इंडिया की छठवीं वार्षिक रिपोर्ट और वैज्ञानिक अनुसंधान और सांस्कृतिक कार्य मंत्रालय की रिपोर्ट के अनुवाद) को छोड़कर शेष आठ स्कूलों की पाठ्यपुस्तकें हैं। इतिहास (आधुनिक, विशिष्ट देश) में २८ पुस्तकें निकलीं। इनमें अधिकांश स्कूलों या कालिजों के लिए लिखी गयी हैं। तीन अँग्रेजी से अनुवाद हैं। यदि इन प्रकाशनों का विश्लेषण किया जाय तो हिंदी भाषा के प्रकाशनों की असंतोषजनक स्थिति का पता लग सकता है। इस बार इस पुस्तक में छापे की भूलें और वर्षों की अपेक्षा कुछ अधिक हैं। यह उपयोगी संदर्भ ग्रंथ है और पुस्तकालयों, समाचारपत्रों के कार्यालयों तथा हिंदी में रुचि लेनेवाले लोगों के लिए उपयोगी है।

१—विचित्र त्रिवेणी

जाहिरै जागति सी जमुना जब बूड़ै, बहै, उमहै वह बेनी।
त्यों 'पद्माकर' हीर के हारनि गंग तरंगनि सी सुखदेनी॥
पाँयन के रँग सों रँगि जाति सी भाँतिहि भाँति सरस्वति सेनी।
पैरे जहाँई जहाँ वह बाल, तहाँ तहाँ ताल में होत त्रिबेनी॥

२—नैनन में कजरा करि राख्यौ !

'देव' मैं सीस बसायो सनेह कै, भाल मृगंमद बिंदु कै नाख्यौ।
कंचुकी में पुचर्यो करि चोवा, लगाय लियो उर में अभि-
लाख्यौ॥
लै मखतूल गुहे गहने, रसमूरतिमंत सिंगार कै चाख्यौ।
साँवरे लाल को साँवरो रूप मैं नैनन कौ कजरा करि राख्यौ॥

३—हठी मन

प्रेम समुद्र पर्यो गहिरे, अभिमान के फेन रह्यो गहि रे मन !
कोप तरंगन तें बहि रे, अकुलाय पुकारत क्यों बहिरे मन ?
'देवजू' लाज जहाज तें कूदि, भर्यो मुख मूँद अजौं रहि
रे मन !
जोरत तोरत प्रीति तुही, अब तेरी अनीति तुही सहि रे मन !

४—अनन्यता

राधिका कान्ह कौ ध्यान धरै,
तब कान्ह ह्व राधिका के गुन गावैं।
त्यों अँसुवा बरसै बरसाने कों
पाती लिखैं लिखि राधे कों ध्यावैं।
राधे ह्वै जाय घरीक में 'देव'
सुप्रेम की पाती लै छाती लगावैं।
आपुन आपुही में उरझैं,
सुरझैं, बिरुझैं, समुझैं समुझावैं !

५—वियोगिनी आँखें

बरुनी बघंबर में गूदरी पलक दोऊ,
कोए राते बसन भगोहें भेष रखियाँ।
बूड़ी जलही में दिन जामिनि हूँ जागैं भौंहैं,
धूम सिर छायो बिरहानल बिलखियाँ॥
अँसुआँ फटिक माल, लाल डोरे सेल्ही पैन्हि,
भई हैं अकेली तजि चेली संग सखियाँ।
दीजिए दरस 'देव' कीजिए सँजोगिनि ये
जोगिनि ह्वै बैठी हैं बियोगिनि सी अंखियाँ॥

६—सत्संग और कुसंग

धूरि चढ़ै नभ पौन प्रसंग तें, कीच भई जल संगति पाई।
फूल मिलै नृप पै पहुँचै, कृमि काठन संग अनेक बिथाई।
चंदन संग कुठार सुगन्ध ह्वै, नीच प्रसंग लहै करुआई।
'दास जू' देखो सही सब ठौरन, संगति को गुन दोष न जाई।

७—कुदेश

यहाँ साधु असाधु सुजाति कुजाति को भेद न कोऊ बिचारि
करैं।
'द्विज श्यामजू' ये अविवेकी अमी औ हलाहल एक में धारि भरैं।
तजैं पारस औ गहैं पाथर धाय लखैं इनके मुँह, पाप परैं।
तजिये यहि देश कों, यासों मराल भले न इतै पग भूलि धरैं।

८—गुणी

जौलों कोऊ पारखी सों होन नहिं पाई भेंट,
तबही लों तनक गरीब से सरीरा हैं।
पारखी सों भेंट होत, मोल बढ़ै लाखन कौ,
गुनन के आगर, सुबुद्धि के गँभीरा हैं॥
'ठाकुर' कहत नहिं निन्दौ गुनवारन कों,
देखिबे में दीन, ये सपूत सूरबीरा हैं।
ईश्वर के अंसन तें होत ऐसे मानस,
जे मानस सहूरवारे धूर भरे हीरा हैं॥



साहित्यिक संस्मरण

गंग और रहीम

मुगल शासकों में अकबर सर्वाधिक सहिष्णु एवं उदार माना जाता है। उसके राज्यकाल में जनता सब प्रकार से सुखी एवं शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करती थी। अतः उसके समय में साहित्य एवं कलाओं की भी खूब उन्नति हुई। अकबर के दरबार में कवि कलाकारों का भी बहुत मान होता था। उसके 'नवरत्न' तो इतिहास प्रसिद्ध हैं। इनमें कई अच्छे कवि भी थे, जिनमें अब्दुर्रहीम खानखाना, तानसेन और बीरबल ने अच्छी ख्याति प्राप्त की थी।

गोस्वामी तुलसीदास, केशवदास, मीराबाई, गंग और नरहरि जैसे कवियों का प्रादुर्भाव अकबर के समय में ही हुआ। इन कवियों के परस्पर मिलन एवं वार्तालाप के अनेक प्रसंग प्रसिद्ध हैं। यहाँ हम एक ऐसे ही प्रसंग का उल्लेख करेंगे जिसमें गंग और रहीम के वार्तालाप का संकेत मिलता है।

रहीम अपनी दानशीलता के लिए विख्यात थे। कवि गंग ने उनकी दानप्रियता एवं नम्रता को दृष्टिपथ में रखते हुए उनकी सेवा में निम्नलिखित दोहा प्रस्तुत किया :—

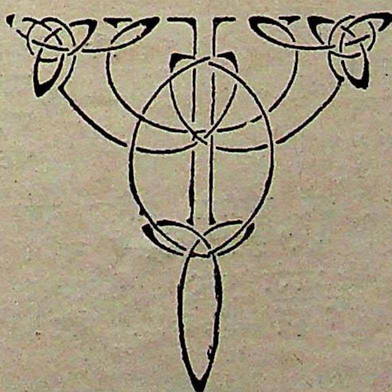
सीखे कहाँ दयालु जी, ऐसी दैनी दैन।
ज्यों ज्यों कर ऊँचो करौ, त्यों त्यों नीचे नैन॥

रहीम ने अत्यन्त विनम्रता एवं निरभिमानता के साथ उत्तर दिया :—

देनहार कोउ और है, भेजत सो दिन रैन।
लोग भरम हम पर धरें, यातें नीचे नैन॥

प्रसिद्ध है कि एक छप्पय पर प्रसन्न होकर रहीम ने गंग को छत्तीस लाख रुपए पुरस्कारस्वरूप दिए थे।*

(* प्रो० रामस्वरूप आर्य द्वारा प्रेषित)



व्यास-स्तवन

श्री मैथिलीशरण गुप्त

१—शुभ सौम्य मूर्ति तेजोनिधान
हो अन्य भानु ज्यों भासमान।
ध्यानस्थ स्वस्थ सद्धर्म्म-धाम
भगवान व्यास! तुमको प्रणाम॥

२—तव गुण अनन्त भू-कण समान
है कौन उन्हें सकता बखान?
उपकार याद कर तव अपार
होते बुध विस्मित बार बार॥

३—कर ज्ञान-भानु तुम ने प्रकाश
अज्ञान-निशा कर दी विनाश।
कर तव शिक्षामृत-पान शुद्ध,
संसार हुआ शिक्षित प्रबुद्ध॥

४—क्या राज नीति, सामान्य नीति,
क्या धर्म-कर्म, क्या प्रीति-रीति।
क्या भक्ति-भाव, व्यवहार-वेश
उपदेश दिये तुमने अशेष॥

५—होता है जग में जो सदैव,
जो हुआ और होगा तथैव।
कथनानुसार तव सो समग्र
होता है, होगा, हुआ अग्र॥

६—जो दिखलाया तुमने समक्ष
है वही देख सकते सुदक्ष।
तुमने न किया हो जिसे व्यक्त
सब उसे बताने में अशक्त॥

७—है विषय अहो! ऐसा न एक
जिसका न किया तुमने विवेक।
रचनायें कवियों की प्रशस्त
उच्छिष्ट तुम्हारी हैं समस्त॥

८—कर वेदों का तुमने विभाग
रक्षा की उनकी सानुराग।
वेदान्त-सूत्र रच कर विचित्र
नर को ईश्वरता दी पवित्र॥

९—सुन कर जिनका शुभ सदुपदेश
रह जाता कुछ सुनना न शेष।
शुचि, शुद्ध सनातन-धर्म-प्राण
सो रचे तुम्हींने हैं पुराण॥

१०—बुधजन-समाज जिसका तमाम
है रक्खे पंचम वेद नाम।
इतिहास महाभारत पुनीत
सो रचा तुम्हींने है प्रतीत॥

११—हो जाता धर्म सहाय-हीन
सब पूर्व-कीर्त्ति होती विलीन।
स्वच्छन्द विचरते पाप, ताप,
लेते न जन्म यदि ईश! आप॥

१२—करता शुभ कर्म प्रचार कौन?
सिखलाता वेदाचार कौन?
हरता तुम बिन त्रयताप कौन?
दिखलाता पूर्व-प्रताप कौन?

१३—करने को तव सन्मार्ग लुप्त
हैं हुए यत्न बहु प्रकट, गुप्त।
वे हुए किन्तु निष्फल, निषिद्ध,
हो क्यों कर सत्य असत्य सिद्ध?

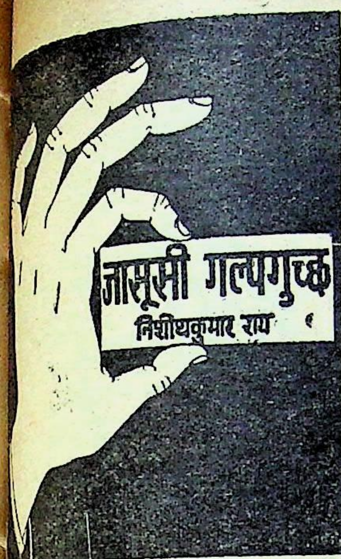
१४—हिन्दुत्व हिन्दुओं का प्रधान
है अब तक भी जो विद्यमान।
हे जगद्वन्द्य, करुणा-निधान
हो तुम्हीं एक इसके निदान॥

१५—जो आर्य-जाति का कीर्त्ति-गान
पाता है जग में मुख्य मान।
है उसका जो गौरव महान
सो किया आप ही ने प्रदान॥

१६—वर्णन करते भी बार बार
रहते हैं तव गुण-गण अपार।
घन चाहे जितना भरें नीर
घटता न किन्तु सागर गभीर॥

१७—है हमें तुम्हारा अमित गर्व
है तव कृतज्ञ संसार सर्व।
है भारत धन्य अवश्यमेव
तुम हुए जहाँ अवतीर्ण देव!

प्रकाशक: बी० एन० माथुर, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक: पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद



प्रस्तुत हो गया निकल गया

भेद भरी बातों को जानने की मनुष्य की अदम्य लालसा संसार भर के देशों में जासूसी कहानियों के रूप में प्रकट होती है। संसार के सब देशों के साहित्य में ऐसी रहस्योद्भाविनी कहानियाँ बहुत तीव्र वेग से प्रकाशित हो रही हैं। लेखक प्रयाग के ख्यातनामा फौजदारी के वकील स्वर्गीय श्री हरिमोहन राय के पुत्र हैं और स्वयं भी न्यायिक अधिकारी हैं। इनकी लिखी जासूसी कहानियाँ हिन्दी जगत् में यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं। यह उनकी लिखी उत्कृष्ट जरूरी कहानियों का द्वितीय संग्रह है जिसमें समय-समय पर पत्रों में प्रकाशित हुई उनकी ३२ जासूसी कहानियाँ संगृहीत हैं।

पृ० सं० ३३६ मूल्य ३·५० पैसे।

नोट—कृपया अपनी प्रति सुरक्षित कराने के लिए आर्डर शीघ्र भेजिये।

छेड़छाड़

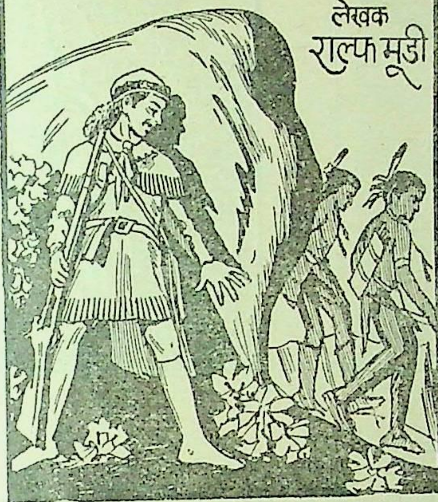
'श्री विनोद' शर्मा की व्यंग्य कविताओं का संग्रह है।

रचनाएँ साहित्यिक और ऐतिहासिक हैं। इस संग्रह में घंटाघर, करेलालोचनी, एक अदबी खत, आलू का पेड़, अधकचरा, महाश्वेता, रघुपतिसहाय के लिए आल्हा और विनोद शर्मा की मरम्मत आदि विशिष्ट रचनाएँ पाठकों को हँसाती-गुदगुदाती हैं। पुस्तक सचित्र सजिल्द है। अच्छे कागज पर सुन्दरता से छापी गई है। इसकी रचनाएँ बहुचर्चित हैं पर सार्वजनिक रूप में अब प्रकाश में आ रही हैं। मूल्य केवल २·५० पैसे।

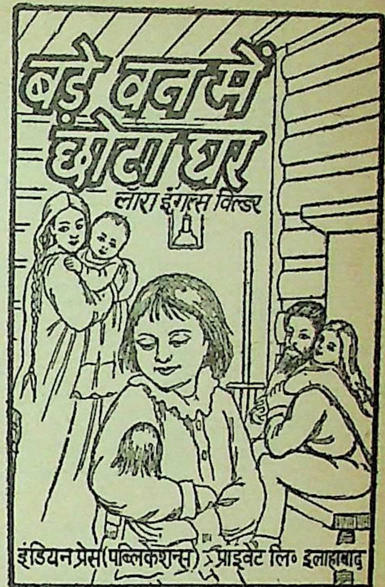
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

कार्ल सैण्डबर्ग

श्रीमत हरवंशराय शर्मा, एम० ए०
मूल्य ३ रु० २५ पैसे
प्रसिद्ध जनकवि कार्ल सैण्डबर्ग के बाल्यकाल का हृदयग्राही वर्णन।



अनु०—तिलकराज चोपड़ा, एम० ए०
मूल्य २ रु० ७५ पैसे
पहाड़ी नेता किटकार्सन के वयस्क जीवन का ललित वर्णन।



अनु०—हरवंशराय शर्मा, एम० ए०
मूल्य २ रु० ५० पैसे
लेखिका के बाल्य जीवन की सुन्दर कहानी में उस समय के सामाजिक जीवन का दिग्दर्शन।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक
लेखक
विलियम ओलिवर स्टीवेन्स

सत्यप्रकाश त्रिपाठी एम० एस्-सी०
मूल्य ३ रु० ५० पैसे
वैज्ञानिकों के अनुसंधानों का सजीव चित्रण उनके जीवन-चरित्रों सहित।



अनु० एम० पी० लखेरा, एम० ए०
मूल्य ३ रु० ५० पैसे
अन्धों को नया मार्ग दिखानेवाली ऐन सलिवाँ और उनकी शिष्या हैलेन कैलर की कहानी।

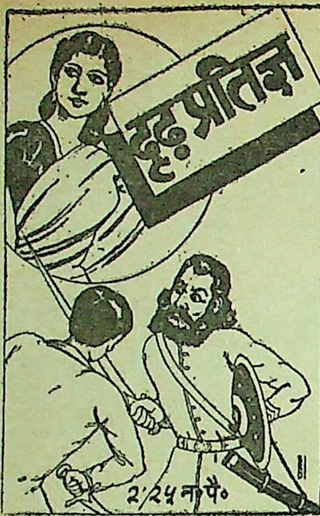


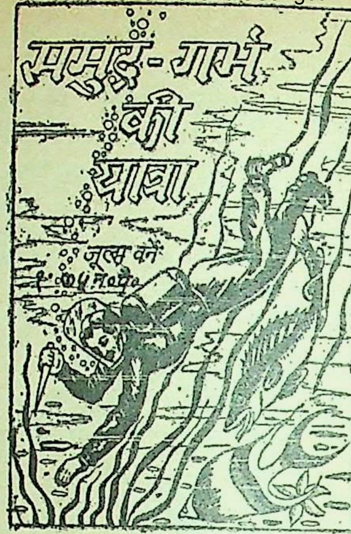
अनु०—रामऔतार अग्रवाल
मूल्य २ रु० ७५ पैसे
महत्त्वपूर्ण अमरीकी नीग्रो लोगों की जीवन-कथाएँ।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

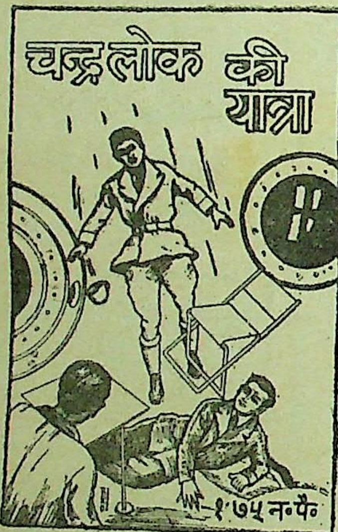
किशोर सीरीज़

इंडियन प्रेस पब्लिकेशंस प्रा. लि. इलाहाबाद

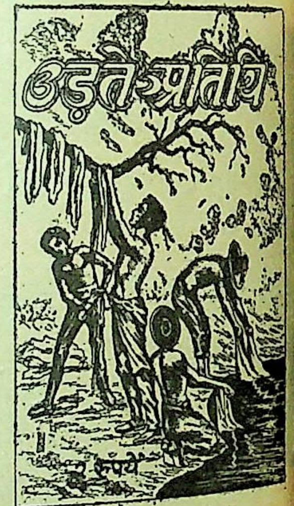






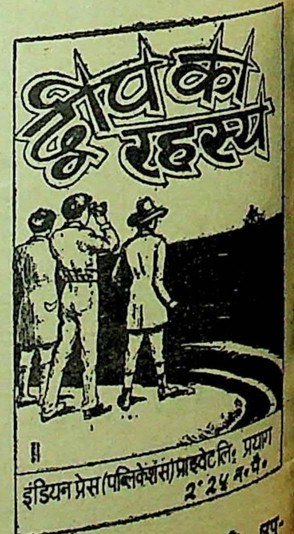








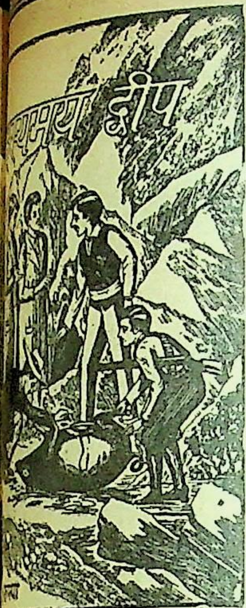




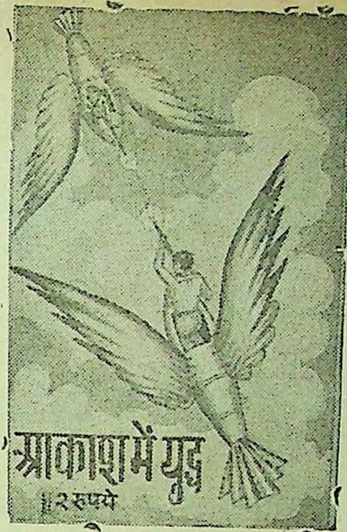
अँगरेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की अठारह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान संबंधी किशोरोपयोगी उपन्यासों के अनुवाद डा० नवलबिहारी मिश्र के तत्त्वावधान में किये गये हैं। पुस्तकें इतनी रोचक हैं कि किशोर तथा वयस्क इन्हें पढ़कर मनोरंजन ही नहीं अपनी ज्ञानवृद्धि कर सकते हैं।

किशोर सीरीज़

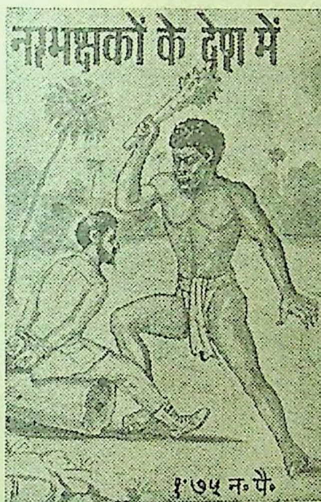
इंडियन प्रेस पब्लिकेशंस प्रा. लि. इलाहाबाद

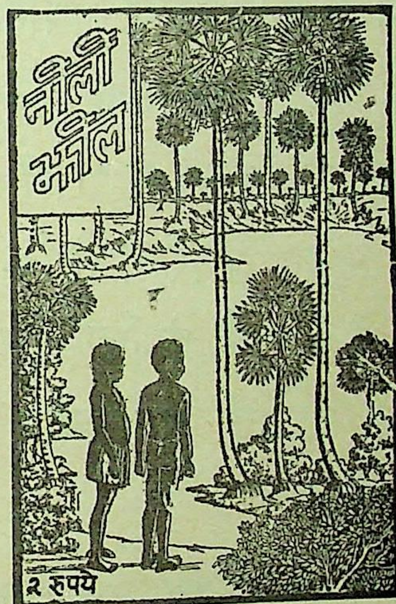




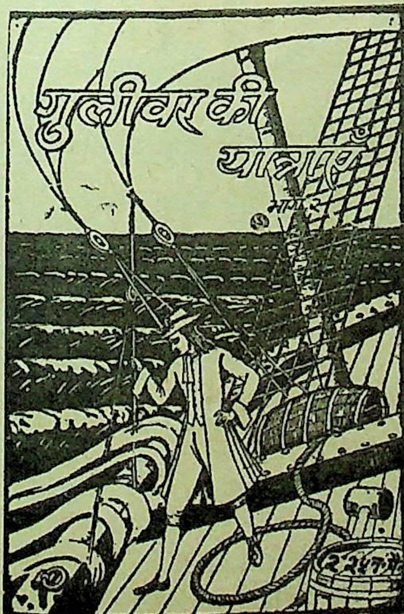














अँगरेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की अठारह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान संबंधी किशोरोपयोगी उप- ... के अनुवाद डा० नवलबिहारी मिश्र के तत्त्वावधान में किय गये हैं। पुस्तकें इतनी रोचक हैं कि किशोर तथा ... इन्हें पढ़कर मनोरंजन ही नहीं अपनी ज्ञानवृद्धि कर सकते हैं।

पापुलर इंग्लिश-हिन्दी डिक्शनरी

हिन्दी, अँगरेजी की अगणित डिक्शनरियों के आधार पर निर्मित इस डिक्शनरी की प्रामाणिकता और लोकप्रियता का यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि इसके अनेक संस्करण हाथोंहाथ बिक चुके हैं। इस डिक्शनरी में अँगरेजी शब्दों के शब्दार्थ अँगरेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में दिये गये हैं। इस कारण यह डिक्शनरी न केवल अँगरेजी से अँगरेजी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए, प्रत्युत अँगरेजी से हिन्दी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए भी बड़ी उपयोगी है। छात्रों के लिए इस डिक्शनरी की उपयोगिता अपरिहार्य है। प्रायः सभी उपयोगी शब्द और मुहाविरे इसमें संकलित किये गये हैं। पृष्ठ पौने नौ सौ।

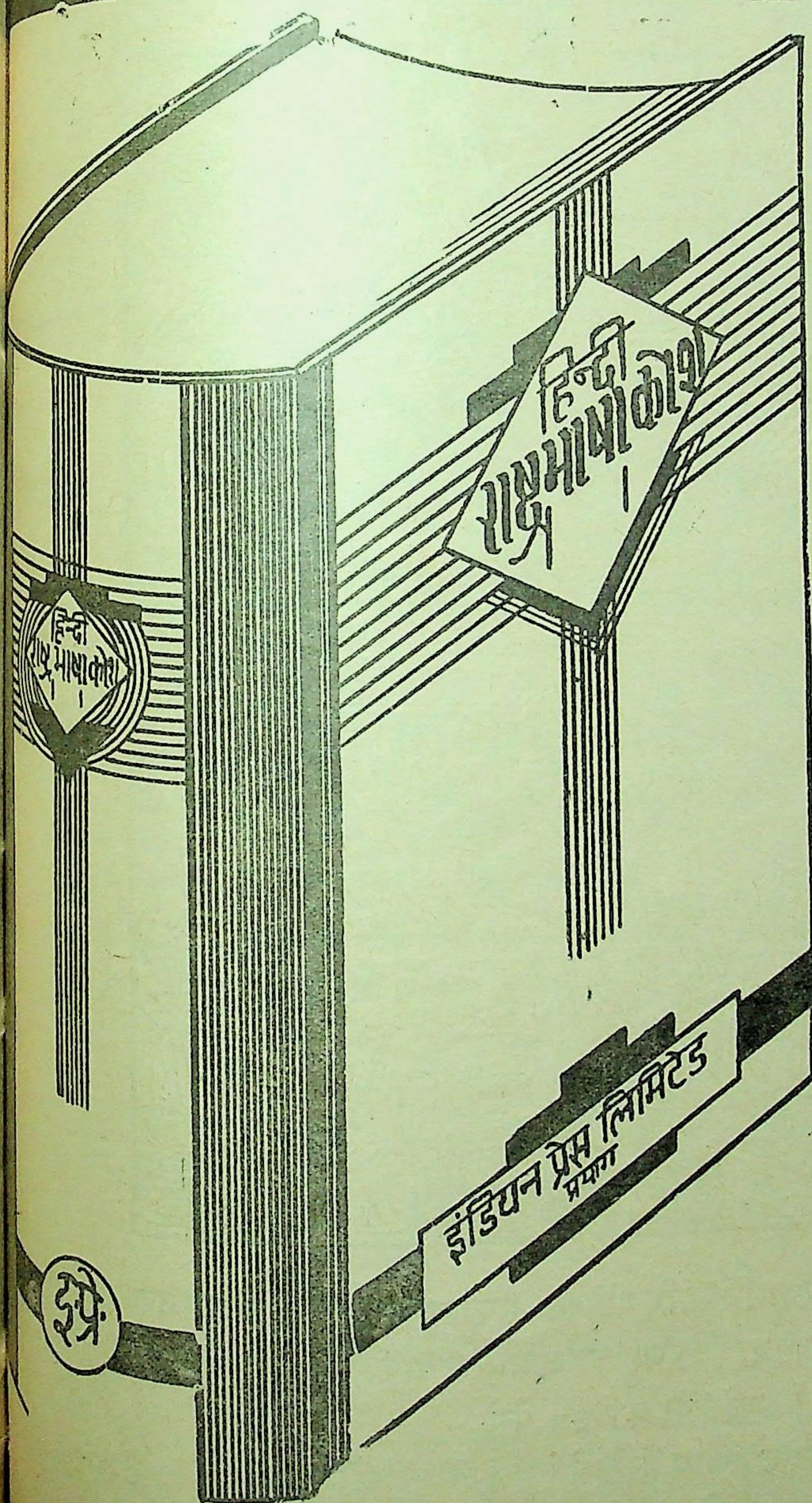
POPULAR
ENGLISH HINDI DICTIONARY
Guaranteed The Best
Of 20th Century.

Perfect accents
with simplified signs

सजिल्द प्रति का मूल्य
४·५० पैसे

प्रकाशक—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हिन्दी राष्ट्रभाषा कोश



भारी कमी की पूर्त्ति

- प्राचीन साहित्य
- नवीन साहित्य
- गद्य-पद्य
- कहावतें-मुहाविरे
- संविधान-शब्दावली

सभी एक कोश में !!

भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद नई दिल्ली—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश को तैयार कर आपने राष्ट्रभाषा की जो अमूल्य सेवा की है, इसके लिए धन्यवाद स्वीकार कीजिए।...'

पृष्ठ १५८४

शब्द-संख्या

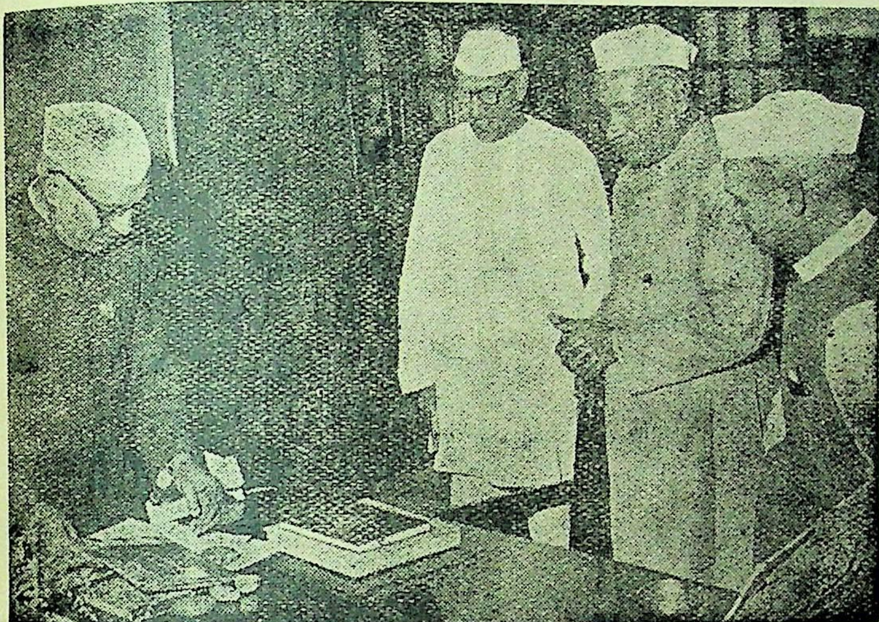
लगभग ५०,०००

छात्रों और विद्वानों विद्यालयों और कार्यालयों सभी के लिए समान रूप से उपयोगी !!!

मूल्य चौदह रुपए

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

नेहरू चाचा के हाथ में 'नेहरू चाचा'



- १--प्रधान मंत्री पं० जवाहरलालजी को उनके जीवन काल में कवि श्री सोहनलाल द्विवेदी ने उन्हें 'नेहरू चाचा' पुस्तक भेंट की थी। नेहरूजी इस नवीन कृति को प्रसन्नतापूर्वक गौर से देख रहे हैं।
- २--भारत के राष्ट्रपति तथा शिक्षा-मंत्री ने बच्चों की प्रिय पुस्तक 'नेहरू चाचा' की सराहना मुक्तकंठ से की है।
- ३--'नेहरू चाचा' के सम्बन्ध में भारत के उपशिक्षा मंत्री ने लिखा है :--

आपने 'नेहरू चाचा' नाम से जो पुस्तक लिखी है, वह मुझे बहुत पसन्द आई है। उसे चित्रमय बनाकर तो आपने उस पर चार चाँद ही लगा दिये हैं और अब इस कारण सब बच्चे उसे और भी पसन्द करने लगे हैं। कृपया इस सफलता के लिए मेरे हार्दिक साधुवाद स्वीकार कीजिए।

मूल्य केवल दो रुपये २५ पैसे

प्राप्तिस्थान--इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

Yearly Subscription : Rupees Seven and Fifty Paise
Single Copy : Rs. 0·65 Paise

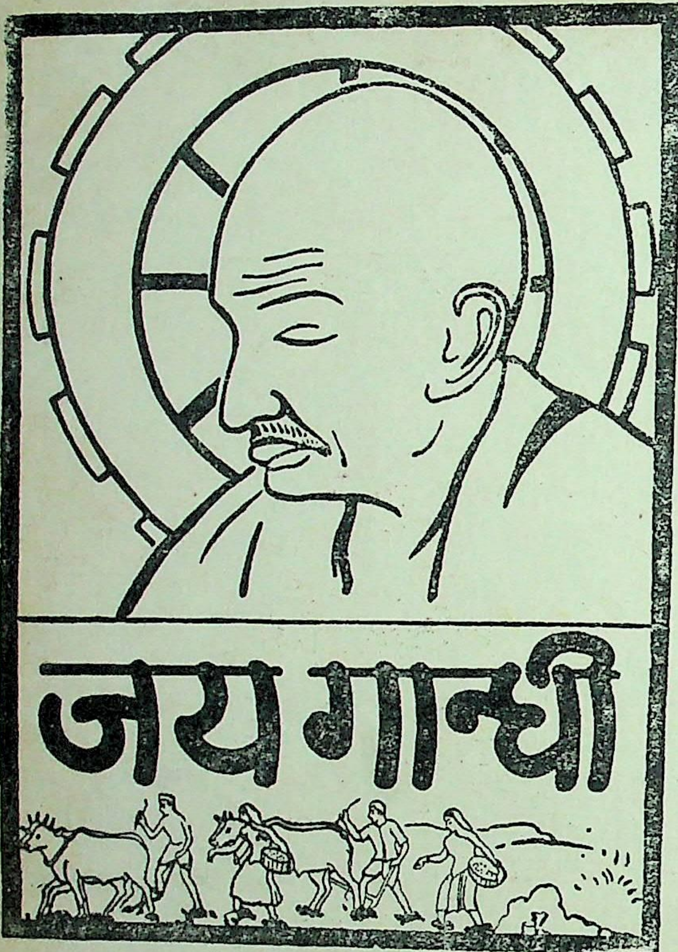
SARASWATI—Reg. No. L-248

सरस्वती

दीपावली अंक



हमारा गांधी साहित्य



सुप्रसिद्ध गांधीवादी कवि सोहनलाल द्विवेदी की लोकप्रिय राष्ट्रीय कविताओं का सर्वाङ्ग-सुन्दर प्रकाशन है। पाठकों के विशेष आग्रह पर हमने यह विशेष संस्करण प्रकाशित किया है।

जय गांधी का नया आकार-प्रकार, नये अलंकरण, नये चित्र, नई रचनाएँ तथा नई सजधज अपूर्व है। देश के चोटी के नेताओं और साहित्यकारों ने इन रचनाओं की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।

ऐसी अमूल्य कृति आप स्वयं अपने पुस्तकालय में रखिए और शुभ अवसरों पर अपने प्रिय मित्रों को स्नेहोपहार में दीजिए। इसी दृष्टि से इसका प्रकाशन भी हुआ है। मूल्य केवल १५) रुपये।

गांधी-मीमांसा

लेखक : स्वर्गीय पं० रामदयाल तिवारी

इसमें गांधी जी के व्यक्तित्व और सिद्धान्तों की तर्कपूर्ण विवेचना प्रस्तुत की गई है। पृ० ८५० मू० ४) रुपये।

जगदालोक

लेखक : ठाकुर गोपालशरणसिंह

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी पर अत्यन्त ओजपूर्ण महाकाव्य, जो प्रत्येक भारतीय के लिए संग्रहणीय है। पृ० ३४१; मू० ४) रुपये।

युगाधार

लेखक श्री सोहनलाल द्विवेदी

उन फड़कती हुई कविताओं का संग्रह जो स्वतंत्रता-प्राप्ति की प्रेरणा और स्फूर्ति देने में मन्त्रों जैसी प्रभावोत्पादक सिद्ध हो चुकी हैं। सजिल्द, सचित्र और १२९ पृष्ठों की पुस्तक का मू० ३·५० पैसे।

गांधी अभिनन्दन ग्रन्थ

लेखक : श्री सोहनलाल द्विवेदी

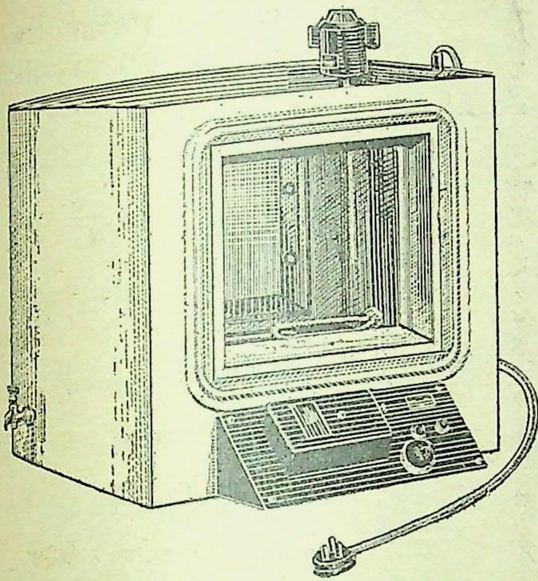
युगपुरुष गांधीजी पर विभिन्न भाषाओं के कवियों ने जो उत्कृष्ट कविताएँ लिखी हैं, उनका अपूर्व संग्रह इस ग्रन्थ में किया गया है। बड़े आकार के इस सजिल्द और सचित्र ग्रन्थ का मू० ७·५० पैसे।

बच्चों के बापू

लेखक : श्री सोहनलाल द्विवेदी

गांधीजी के जीवन का चलता फिरता बोलता हुआ रंगीन सिनेमा है। जिसे प्रत्येक बालक और बालिका को अवश्य देखना चाहिए। आफसेट में, मोटे कागज पर, छपी पुस्तक का मू० लागत मात्र दो रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद


सीको थर्मोस्टेटिक वाटर बाथ

साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी के उत्पाद प्रामाणिक हैं और विशेषता (क्वालिटी), कर्म-कौशल (वर्कमैनशिप), रूपांकन (डिज़ाइन) और निष्पादन (परफारमेंस) में सर्वोत्कृष्ट हैं। हमारे निर्मित अन्य उपकरणिकाओं और साधनों (एप्लाएंसेज़) के लिए कृपया हमें लिखें।

दी साइएंटिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी लिमिटेड,

इलाहाबाद, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, नई देहली

अर्द्धशताब्दी से जनता की सेवा में सतत् संलग्न एवं आधुनिकतम उपकरणों से सुसज्जित

मध्य प्रदेश की प्रतिष्ठित मिल होने का गौरव प्राप्त

दि इन्दौर मालवा युनाइटेड मिल्स लिमिटेड इन्दौर (म० प्र०)

टेलीफोन : ५६४१, ५६४२, ५६४३, ५६४४।

विशिष्ट उत्पादन

शर्टिंग, धोती, काली जीन, खाकी जीन, कोटिंग पट्टा, चौकड़ी, हरक, लांग क्लाथ, साड़ी मझरी, मलमल, चोल, ब्लांकेट, धुस्सा आदि

मालवा मिल इन्दौर के वस्त्र सुनिश्चित ही सुन्दर, सस्ते, टिकाऊ और विश्वस्त होते हैं

सिटी शाप—११५, एम० टी० क्लाथ मार्केट, इन्दौर (म० प्र०)

रिटेल शाप—(१) मालवा मील कर्मचारी परस्पर सहकारी संस्था मर्यादित, इन्दौर,

(२) हीरालाल बबलीशाह, बुरहानपुर

(३) दि इन्दौर मालवा युनाइटेड मिल्स लि०, नरनारायण मन्दिर के सामने, कालबादेवी, बम्बई।

सेलिंग एजेन्ट्स

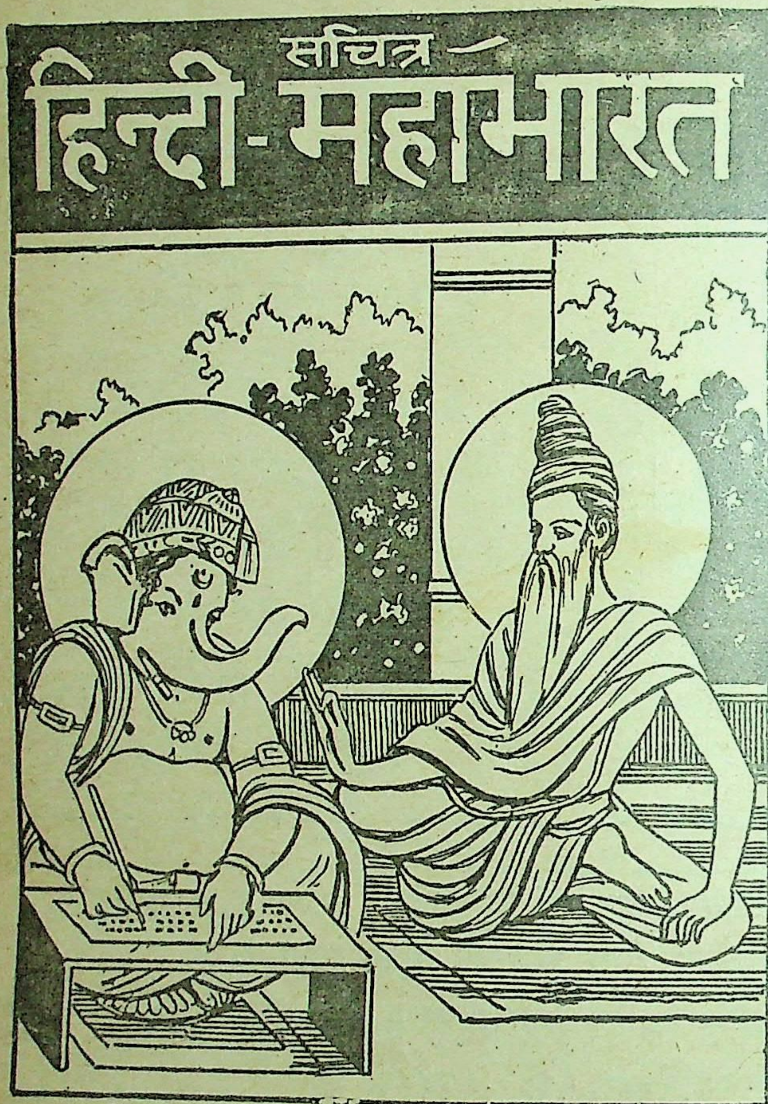
१—मेसर्स मध्यभारत टेक्सटाइल एजेन्ट्स (ग्रे क्लाथ)

२—मेसर्स भारत ट्रेडर्स (प्रोसेस्ड क्लाथ)

३—मेसर्स पूरणमल सत्यनारायण (ब्लंकेट्स एन्ड रग्ज)

एम० टी० क्लाथ मार्केट, इन्दौर

महर्षि वेदव्यास की विशद कृति



महाभारत को पाँचवाँ वेद कहते हैं। इस ग्रन्थ में महर्षि वेदव्यास ने अनेक शास्त्रों का वर्णन करके जीवनक्रम की सुलभ रीति बतलाई है। इसमें तीर्थों और व्रतों का वर्णन है, पुण्य पुरुषों की चरितावली है, ऋषियों के उपदेश हैं, सुन्दर उपाख्यान हैं और धर्म पर स्थिर रहकर उन्नति करने का मार्ग बतलाया गया है। यह ग्रन्थ १० खण्डों में समाप्त हुआ है। रंगीन और सादे चित्रों की अधिकता है। बढ़िया जिल्द है। १ से ८वें खण्ड तक प्रत्येक खण्ड का मूल्य १०) रु०। ९वें खण्ड का ५.५० पैसे। दसवें खण्ड की सहायता से पढ़नेवाला पुस्तक में तुरन्त अपने मन के स्थल को ढूँढ़ लेता है। इस खण्ड का मूल्य ४.२५ पैसे।

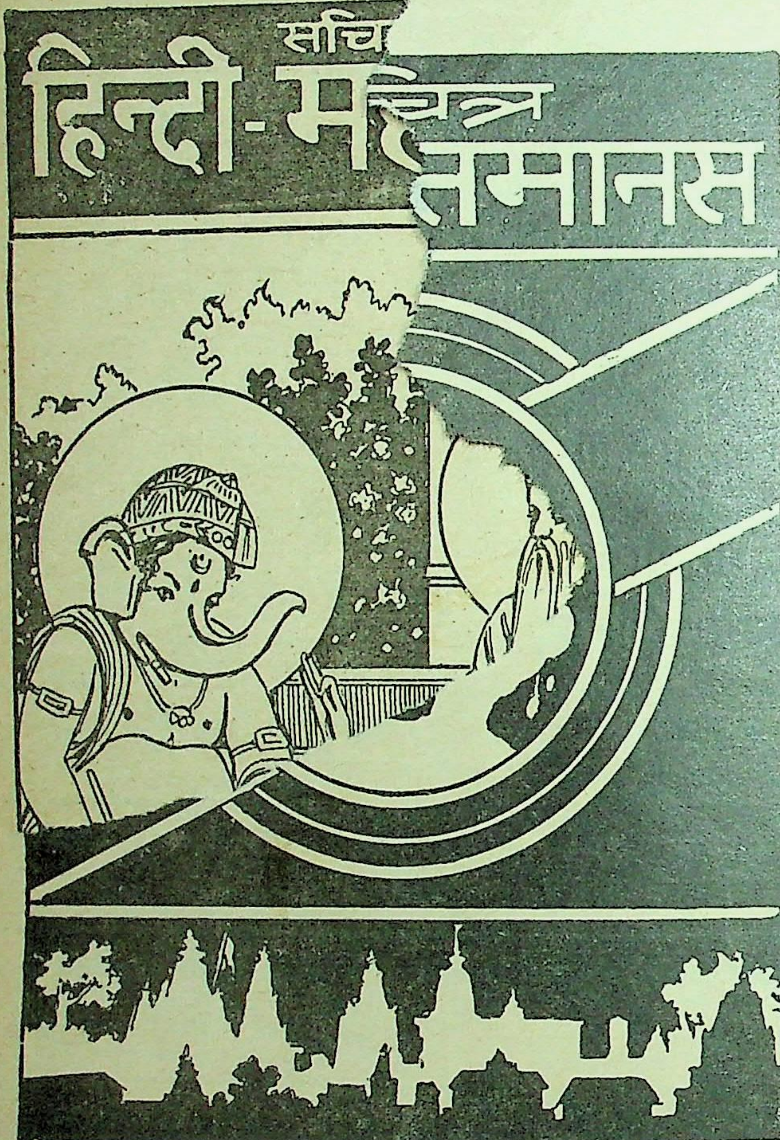
सचित्र महाभारत

इसमें महाभारत के अठारहों पर्वों की कथा बहुत ही सरल भाषा में लिखी गई है। इसके लेखक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी हैं। सचित्र और सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ६)।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्रा० लि०, प्रयाग

महर्षि

संस्कृति का अगाध सागर



यह हिन्दी के अमर कवि गोस्वामी तुलसीदास की सुप्रसिद्ध रचना है। इसमें गोस्वामीजी ने अपने आराध्य देव रामचन्द्रजी की कथा, सात काण्डों में, दोहा-चौपाई-सोरठा और छन्दों में कही है।

इस ग्रन्थ का प्रचार हिन्दी-भाषी प्रान्तों में तो है ही, दूसरे प्रान्तों में भी है।

डाक्टर श्यामसुन्दरदास ने इस अनुपम ग्रन्थ पर जो टीका लिखी है उससे अर्थ समझने में बहुत सुविधा होती है।

इस संस्करण में क्षेपक आदि नहीं हैं। आरम्भ में विस्तृत भूमिका है जिससे गोस्वामीजी के जीवनचरित और उनकी समस्त रचनाओं पर विशद विवेचन है। चित्रों की अधिकता है। सुन्दर जिल्द है। मूल्य १२)।

रामचरितमानस (मूल)—यह शुद्ध पाठ अच्छे कागज पर सचित्र छापा गया है। कथा भाग में आये हुए देवताओं और ऋषि-मुनियों आदि का परिचय अन्त में संक्षेप में है। सजिल्द प्रति का मूल्य ३)।

गोस्वामी तुलसीदासकृत रामचरितमानस—टीकाकार—रामेश्वर भट्ट। यह संस्करण बहुत ही उपयोगी, मनोहर और सस्ता है। टीका बड़े काम की है। दुरंगे-तिरंगे चित्रों की अधिकता है। सजिल्द प्रति का मूल्य ६)।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्रा० लि०, प्रयाग

डाक्टर हेमचन्द्र सेन साहब का

"हेमालरिन"

"एन्टी फ़ेबराईल मिक्श्चर"

प्रसिद्ध और निर्भरयोग्य ज्वर नाशक औषध

यह परीक्षित और प्रसिद्ध औषध अँगरेजी व देशीय औषधियों से तैयार की गई है। जो कि हर प्रकार के पुराने और मौसमी ज्वर, ताप या मलेरिया, तिल्ली, जिगर व तिल्ली के समस्त रोग में अत्यन्त लाभदायक प्रमाणित हुई है और साधारण दुर्बलता को दूर करके खून साफ़ करती है।

एच. सी. सेन एण्ड कम्पनी

(स्थापित १८८० ई०)

अति प्राचीन और निर्भर योग्य औषध प्रस्तुतकारक व विक्रेता

१० एच० सी० सेन रोड, फुव्वारा, दिल्ली—६

ग्राहकों से निवेदन

ग्राहकों से निवेदन है कि पत्र-व्यवहार के समय अपना ग्राहक संख्या, चन्दा भेजने की तिथि अवश्य लिखा करें ताकि हम उनके आदेशों का पालन अविलम्ब कर सकें।

व्यवस्थापक पत्रिका विभाग—

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

ज्ञानवृद्धि के लिए बच्चों का प्यारा

बालसखा

अपने बच्चों को पढ़ायें

वार्षिक मूल्य ५ रु० ५० पै०

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

श्री रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य

सचित्र आकर्षक गेट-अप

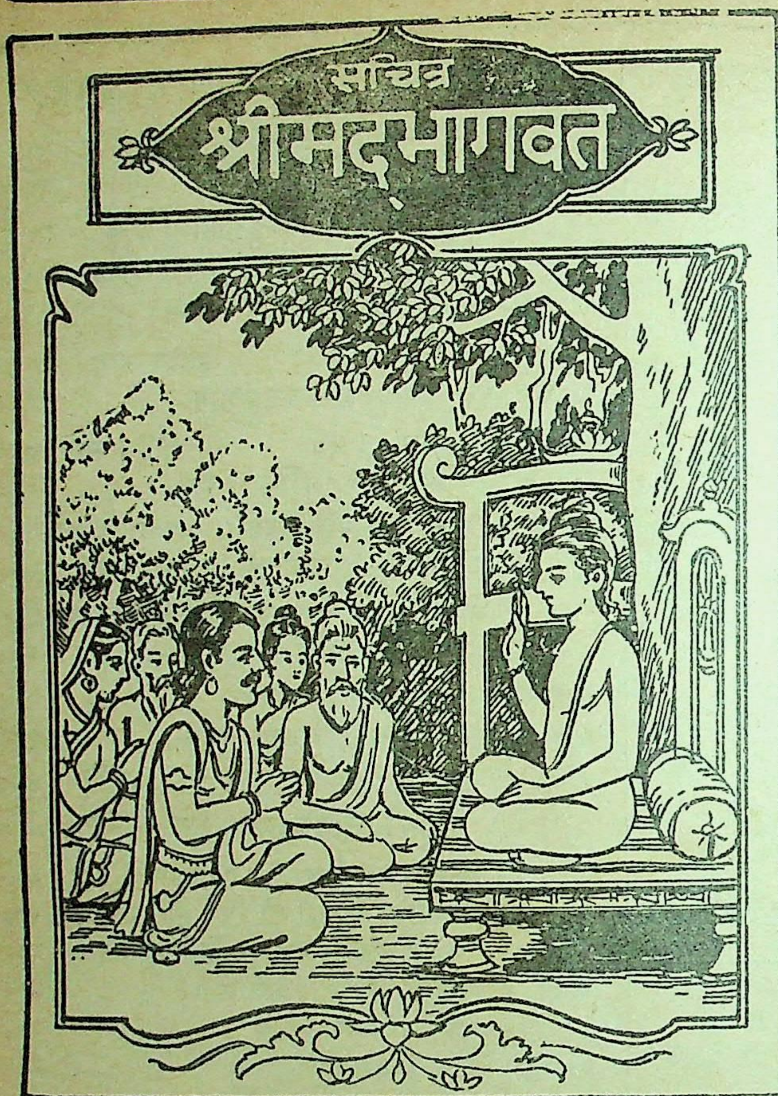
श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग—(सुविस्तृत जीवन चरित)
प्रथम खण्ड ९ रु०; द्वितीय खण्ड १०·००
तृतीय खण्ड ७·००
श्रीरामकृष्णलीलामृत—(जीवन चरित)
प्रथम भाग ५ रु०; द्वितीय भाग ५·००
श्रीरामकृष्ण वचनामृत—प्रथम भाग ६·५०
द्वितीय भाग ६·५० तृतीय भाग ७·००
श्रीरामकृष्ण उपदेश—(पॉकेट साइज) ०·७५
श्रीरामकृष्ण और श्रीमाँ—स्वामी अपूर्वानन्द कृत ३·४०
विवेकानन्द-चरित—सत्येन्द्रनाथ मजूमदारकृत ६·००
साधु नागमहाशय—(श्रीरामकृष्णदेव के अन्तरंग गृही शिष्य का जीवन चरित) १·५०
गीतातत्त्व—स्वामी सारदानन्दकृत २·८०
परमार्थ प्रसंग—स्वामी विरजानन्दकृत ३·२५
रामकृष्ण-संघ—आदर्श और इतिहास ०·७५

स्वामी विवेकानन्द कृत :—

भारत में विवेकानन्द (भारतीय व्याख्यान) ..	५·००
देववाणी (अमरीकी शिष्यों को दिये गये उपदेश)	२·७५
पत्रावली—प्रथम भाग ५·२५ —द्वितीय भाग	४·२५
विवेकानन्दजी के संग में (वार्तालाप) ..	५·२५
जाति, संस्कृति और समाजवाद ..	१·२५
स्वाधीन भारत ! जय हो ! ..	१·५०
परिव्राजक (मेरी भ्रमण कहानी) ..	१·५०
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग ..	१·६०
कवितावली (परिवर्धित तृतीय संस्करण) ..	१·६५
महापुरुषों की जीवनगाथाएँ ..	१·५०
भगवान रामकृष्ण, धर्म तथा संघ ..	१·३०
कर्मयोग .. १·७५ भक्तियोग ..	१·५०
राजयोग .. ३·०० ज्ञानयोग ..	३·५०
प्रेमयोग .. २·०० सरल राजयोग	०·६०
धर्म रहस्य .. १·२५ शिकागो वक्तृता	०·६५
मेरे गुरुदेव १·०० प्राच्य और पाश्चात्य	१·२५
शिक्षा .. ०·८५ धर्म विज्ञान ..	२·००
पवहारी बाबा .. ०·६० हमारा भारत	०·६५
मेरी समर नीति (पाकेट साइज) ..	०·६५
मेरा जीवन तथा ध्येय (पाकेट साइज) ..	०·६०

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखिए :

श्रीरामकृष्ण आश्रम धन्तोली, नागपुर—१

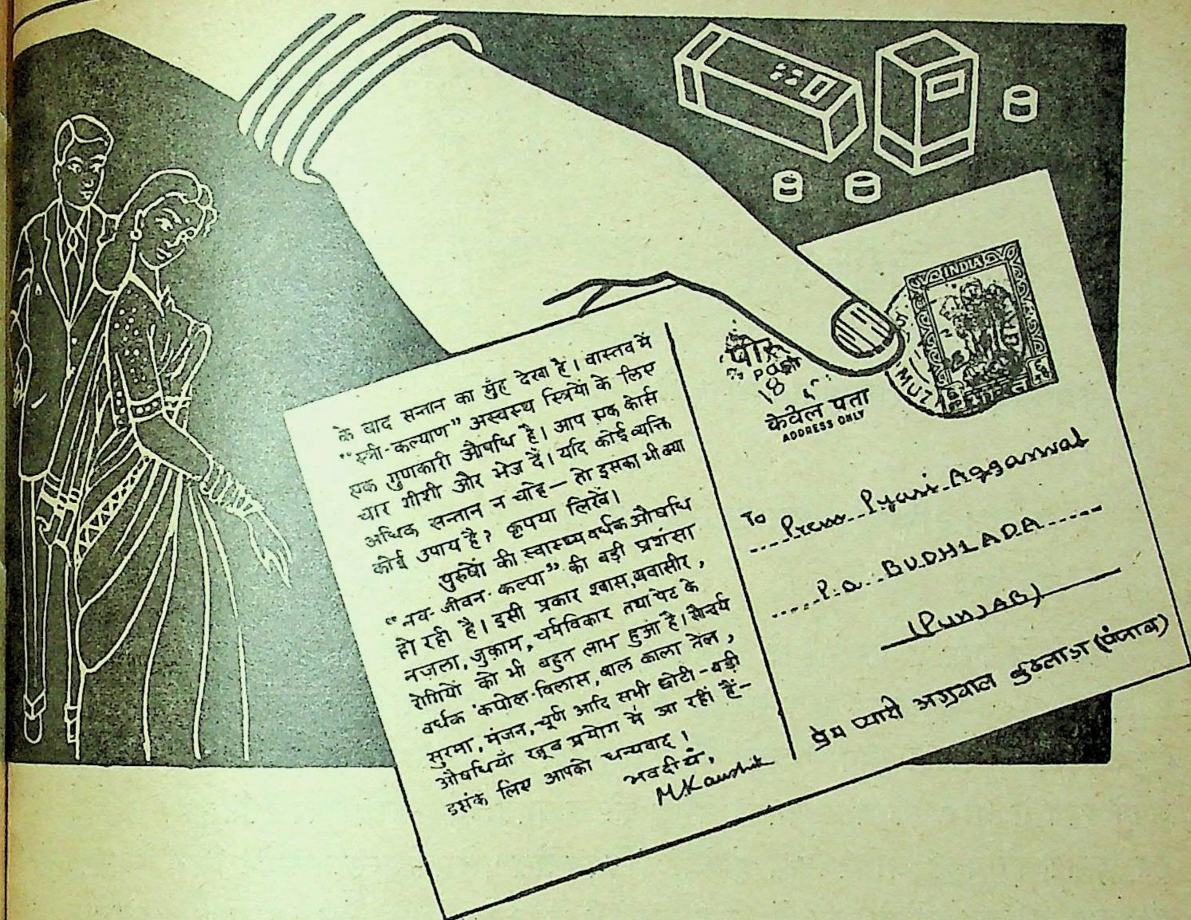


श्रीमद्भागवत में वेदव्यासजी ने लीला-पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्र की लीलाओं का वर्णन मुख्य रूप से किया है। साथ ही अनेक राजवंशों और ऋषियों का वर्णन किया है। इसको पढ़ने से ज्ञात होगा कि उस समय भारत में असुरों ने और स्वार्थी लोगों ने कैसा उपद्रव मचा रक्खा था, जिसको दूर करके समाज की रक्षा करने के लिए श्रीकृष्ण ने अवतार लिया। उस अवतार में बालकृष्ण ने दुष्टों का दमन ऐसी युक्तियों से किया कि किसी को पता भी नहीं चला कि इन असम्भव कार्यों को कौन किस रूप में करके हमारी रक्षा कर रहा है। महर्षि वेदव्यास के पुत्र शुकदेवजी से केवल सात दिन में इस ग्रन्थ को सुनकर राजा परीक्षित कृतकृत्य हो गये। बढ़िया जिल्द है, चित्रों की अधिकता है। पुस्तक के दो खंड हैं। प्रत्येक खंड का मूल्य ८)।

श्रीमद्भगवतगीता—गीता की प्रशंसा में कुछ भी कहना सूर्य को दीपक दिखाना है। इस पुस्तक में श्लोकों सहित पूरा गीता महात्म्य प्रारंभ में २५ पृष्ठों में दिया है। लगभग ३०० पृष्ठों की अर्थ सहित गीता का मूल्य प्रचार के लिए केवल ०.५० पैसे मात्र रक्खा गया है।

ज्ञानेश्वरी—ज्ञानेश्वर महाराज ने मराठी भाषा के गीता पर जो टीका लिखी है उसका यह हिन्दी अनुवाद है। बड़े अक्षरों में मूल संस्कृत श्लोक, साधारण अक्षरों में टीका है। सजिल्द प्रति का मू० ६)।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लि०, इलाहाबाद



छः नए पैसे

आप को अपने स्वास्थ्य की, अपनी शारीरिक अवस्था की या अपनी किसी बीमारी की चिन्ता सता रही है? को, आपके परिवार या आपके किसी सम्बन्धी को कोई ऐसी शिकायत है, जिसका आप इलाज कराना चाहते तो आप को चाहिए कि आप एक लिफाफे में या छः नये पैसे के पोस्ट कार्ड पर ही बीमारी के लक्षण रोगी की उम्र र दशा लिखकर हमारे पास भेज दें। हमारे चिकित्सा-विभाग से आप को मुफ्त सलाह दी जायेगी कि ऐसी हालत आपको क्या करना चाहिए, क्या दवायें लेनी ठीक होंगी और क्या पथ्य परहेज करना होगा। पत्र-व्यवहार न रखने का आश्वासन! इसलिए आप जो कुछ भी हो, साफ साफ लिखें।

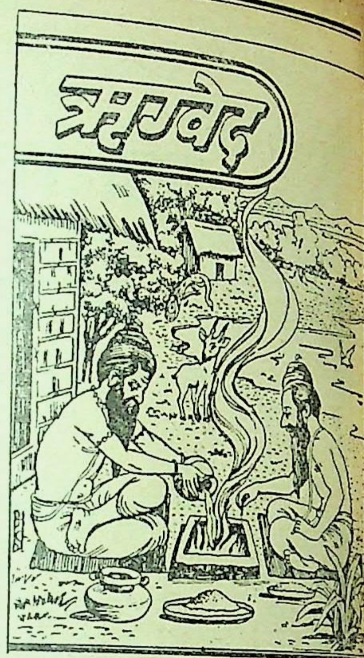
हमारे यहाँ स्त्री-पुरुषों की अनेक शिकायतों के इलाज, स्वास्थ्यवर्धक नुस्खे, बालों के कई प्रकार के तेल, सौंदर्य के पदार्थ तथा अन्य रस रसायन व दवाइयों का निर्माण होता है। स्त्रियों के लिये हमारी स्वास्थ्यवर्धक औषधि कल्याण' तो आज इतना प्रसिद्ध है कि केवल इस एक ओषधि की वार्षिक बिक्री एक लाख रुपये से ऊपर अब आप स्वयं अनुमान लगा लें कि हमारी दूसरी औषधियाँ कितनी लाभप्रद व अनुपम होंगी। इसलिये बहिन या भाई बीमारी के लक्षण लिखते समय हमें दवा भेजने के लिए भी कहते हैं उन्हें उचित दामों में पी० पार्सल द्वारा भेज दी जाती है।

दवा मंगवाने तथा मुफ्त परामर्श लेने का पता—

प्रेमप्यारी अग्रवाल नं० (२४) बुढ़लाड़ा (पंजाब)

माल मँगवाते समय 'सरस्वती' का हवाला अवश्य दीजिए।

हिन्दी ऋग्वेद



क्या आप जानते हैं कि मानव-जाति की प्रथम पुस्तक कौन है? क्या आपको पता है कि हिन्दू-जाति का सर्व-प्राचीन इतिहास कौन है? क्या आपको मालूम है कि हिन्दू-धर्म, हिन्दू-संस्कृति और हिन्दू-सभ्यता का आदि स्रोत कौन है? क्या आपको ज्ञात है कि हिन्दू-जाति को किसने अध्यात्म-विद्या की ज्योति प्रदान की? सारे संसार के विद्वानों का इन प्रश्नों का एक-मात्र उत्तर है––"ऋग्वेद"।

हमारे पूर्वज कौन थे, वे कैसे मंत्र-द्रष्टा ऋषि होते थे, वे कैसे दिव्य ज्ञान प्राप्त करते थे, कैसे राज्य-शासन करते थे, कैसी समाज-व्यवस्था करते थे, त्याग, तप, सेवा और ब्रह्मचर्य की मूर्ति बनकर वे अपना जीवन कैसे दिव्य, आदर्श, आनन्दमय और प्रतिभाशाली बनाते थे आदि आदि का ज्ञान प्राप्त करने के लिए एकमात्र साधन है ऋग्वेद। यही ग्रन्थ समस्त संस्कृत-साहित्य और हिन्दू-जाति की सारी सद्गुणावली का जनक है। इसी का अत्यंत सरल, सरस, सुन्दर, प्रथम और प्रामाणिक हिन्दीभाषान्तर है "हिन्दी ऋग्वेद"। इसमें १६५० पृष्ठ हैं और ऋग्वेद में १०४६० मंत्र हैं। भाषान्तरकार हैं विख्यात वैदिक विद्वान् पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी। ग्रन्थ के साथ ही

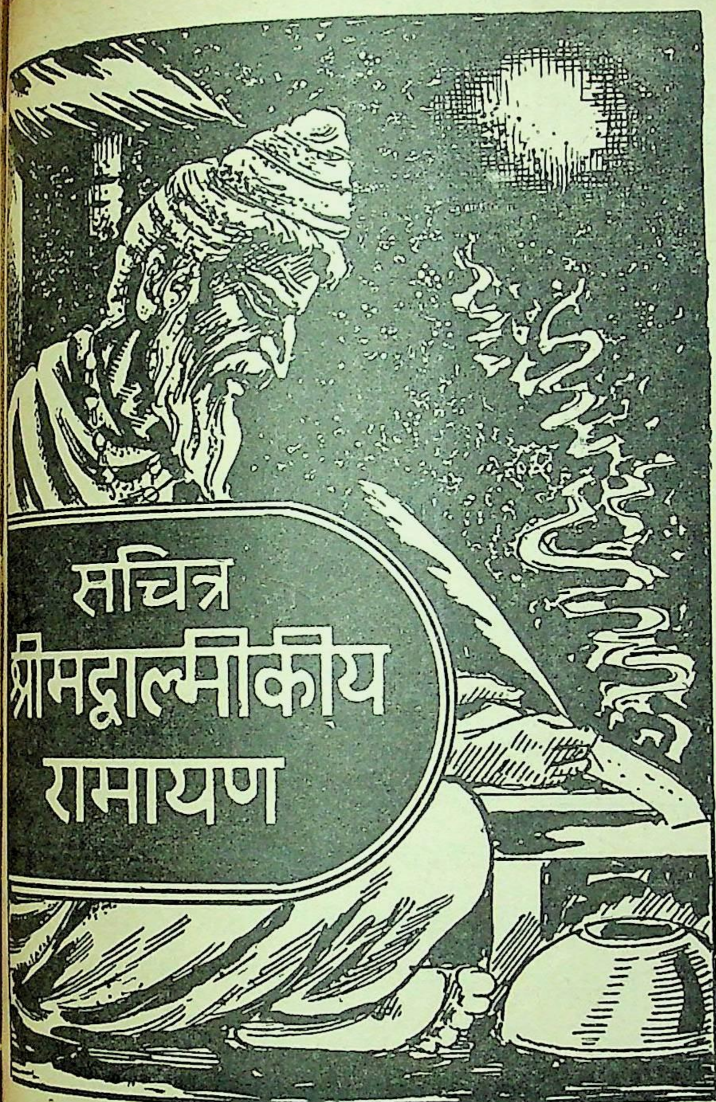
मार्मिक भूमिका और गवेषणा-पूर्ण विषय-सूची

भी दी गई है। ७४ पृष्ठों की विशद भूमिका में वेद-स्वरूप, वेद पर मतवाद, वेदार्थ करने की शैली, वेद-भाष्यकार, वेद-निर्माण-काल, ऋग्वेद-रहस्य, ऋषि, छन्द, विनियोग, स्वर, दैवतवाद, सोमलता, पितृलोक, भूगोल, खगोल, आत्मा, परमात्मा, पुनर्जन्म, अवतार, यज्ञ, आर्य-संस्कृति, युद्ध-कला, वायुयान, राज्यशासन, ऋग्वेद और नारी-जाति, धर्म-विज्ञान, ऋग्वेद की अपूर्वता आदि आदि का विवरण बड़ी ही मधुर, मृदुल और मंजुल भाषा में दिया गया है। भाषा की छटा और भावों की घटा देखते ही बनती है।

७१ पृष्ठों की विषय-सूची में ऋग्वेद के सभी महत्त्वपूर्ण विषय दे दिये गये हैं। वैदिक अनुसंधान का कार्य करनेवालों के लिए यह सूची अत्यंत उपयोगी है।

मूल्य लागत भर केवल १२) रुपये है।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद



आदिकवि वाल्मीकि ऋषि के बनाये इस पुनीत ग्रन्थ में मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी के चरित का वर्णन विस्तार से है। इस ग्रन्थ में संस्कृत का सरल हिन्दी में रूपान्तर है। इसमें आदि कवि ने रामचन्द्रजी की कथा का वर्णन करते हुए उस संगठन का वर्णन किया है जिसके आधार पर आज तक हिन्दू-समाज टिका हुआ है। इसमें बतलाया गया है कि हमें माता-पिता, भाई-भौजाई, सास-ससुर, और पड़ोसी आदि के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए और संकट से निस्तार पाने के लिए क्या करना चाहिए। सचित्र सजिल्द पुस्तक के दो खण्ड हैं। मूल्य प्रत्येक खण्ड का ६·५० पैसे।

कुंडलिया रामायण—इसके टीकाकार श्रीयुत सत्यनारायण पाण्डेय हैं। कुंडलिया छंदों में लिखित गोस्वामी तुलसीदास-कृत रामायण, सुन्दर टीका सहित। मूल्य ४)।

अयोध्याकांड—इसमें भरतजी के चरित का वर्णन बड़े विस्तार से है। रामवनगमन, केवट-प्रसंग आदि सुन्दर कथानक हैं और रचना तो अनुपम है ही। मूल्य ३·५० पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

सरस काव्य साहित्य

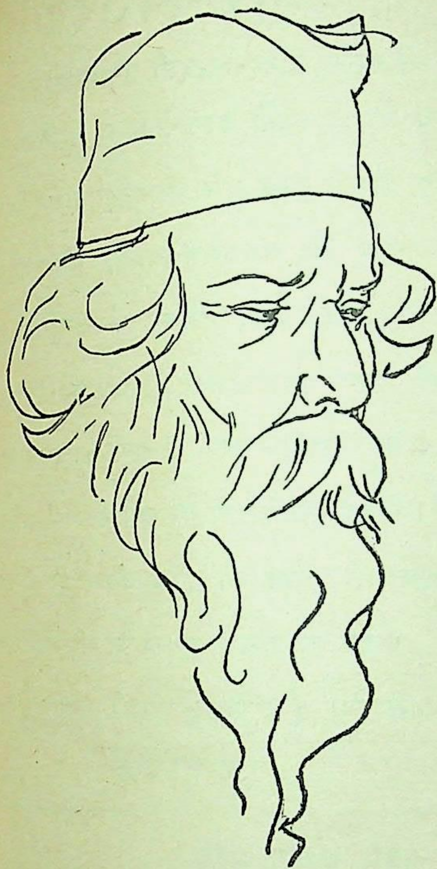
सरस सुमन--श्री गुरुभक्तसिंह	०·५०
मधुस्रवा--श्री राजाराम श्रीवास्तव	१·२५
प्रतिमा--श्री राजाराम श्रीवास्तव	१·००
वनवास--श्री राजाराम श्रीवास्तव	१·००
किंकिणी--श्री राजाराम श्रीवास्तव	०·७५
लक्ष्मण-शक्ति--श्री राजाराम श्रीवास्तव	०·७५
मन्दार-माला--श्री देवेन्द्रनाथ पाण्डेय	२·००
विजया--श्री 'अभिराम'	१·००
नव सतसई-सार--डा० कैलाशनाथ भटनागर	२·७५
चारण--पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी	०·३१
हल्दीघाटी--श्री श्यामनारायण पाण्डेय	२·७५
रूपान्तर--श्री श्यामनारायण पाण्डेय	२·००
तुमुल--श्री श्यामनारायण पाण्डेय	२·००
गांधी-अभिनन्दन-ग्रन्थ--श्री सोहनलाल द्विवेदी	७·५०
जय गांधी--श्री सोहनलाल द्विवेदी	१५·००
कुणाल--श्री सोहनलाल द्विवेदी	३·००
युगाधार--श्री सोहनलाल द्विवेदी	३·५०
भैरवी--श्री सोहनलाल द्विवेदी	२·७५
चित्रा--श्री सोहनलाल द्विवेदी	२·५०
वासन्ती--श्री सोहनलाल द्विवेदी	२·७५
पूजागीत--श्री सोहनलाल द्विवेदी	२·५०
वासवदत्ता--श्री सोहनलाल द्विवेदी	४·५०
बाल-भारती--श्री सोहनलाल द्विवेदी	१·२५
झरना--श्री सोहनलाल द्विवेदी	१·००
विषपान--श्री सोहनलाल द्विवेदी	१·००
बाँसुरी--श्री सोहनलाल द्विवेदी	२·७५

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

बच्चों के बापू—श्री सोहनलाल द्विवेदी	२·००
चेतना—श्री सोहनलाल द्विवेदी	२·००
प्रेमांजलि—ठाकुर गोपालशरण सिंह	४·००
जगदालोक—ठाकुर गोपालशरण सिंह	४·००
संचिता—ठाकुर गोपालशरण सिंह	३·००
ग्रामिका—ठाकुर गोपालशरण सिंह	३·००
मानवी—ठाकुर गोपालशरण सिंह	२·५०
ज्योतिष्मती—ठाकुर गोपालशरण सिंह	२·५०
सुमना—ठाकुर गोपालशरण सिंह	२·००
माधवी—ठाकुर गोपालशरण सिंह	२·००
विश्वगीत—ठाकुर गोपालशरण सिंह	१·७५
क्षण के बीज—गौरीशंकर लहरी	२·००
उद्धव-शतक—श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर'	२·००
गंगावतरण—श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर'	१·२५
द्विवेदी काव्यमाला—संग्रहकर्त्ता—पं० देवीदत्त शुक्ल	४·००
मेघदूत—अनुवादक—राजा लक्ष्मणसिंह	१·००
पद्यमाला—पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी	१·००
माधुरी—श्री नत्थाप्रसाद दीक्षित 'मिलिन्द'	०·७५
एकादशी—श्री नत्थाप्रसाद दीक्षित 'मिलिन्द'	१·५०
दैत्यवंश—श्री हरदयालुसिंह	३·५०
देव-दर्शन—श्री हरदयालुसिंह	२·००
बिहारी-विभव—श्री हरदयालुसिंह	२·००
मंजीर—श्री गिरजाकुमार माथुर	१·००
तक्षशिला—श्री उदयशंकर भट्ट	३·००
कविता-कलाप	३·००
पद्य-समुच्चय—स्वर्गीय कामताप्रसाद गुरु	१·००
रविबाबू के कुछ गीत—अनुवादक—श्री रघुवंशलाल गुप्त	२·५०
खैयाम की रुबाइयाँ—श्री इकबाल वर्मा 'सेहर'	४·००
संक्षिप्त पद्मावत—रायबहादुर सुन्दरदास	२·५०

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

संक्षिप्त बिहारी—श्री रमाशंकर प्रसाद	२·००
सीताराम-संग्रह—रायबहादुर लाला सीताराम	२·५०
ब्रज-सतसई—पं० रामचरित उपाध्याय	०·७५
वन्दना—श्रीमती चन्द्रमुखी ओझा 'सुधा'	२·००
सवेरा और साया—श्री विद्याभास्कर 'अरुण'	१·५०
कवि और छवि—श्री बालकृष्ण राव	२·००
रात बीती—श्री बालकृष्ण राव	३·००
हमारी राह—श्री बालकृष्ण राव	२·५०
अपराजिता—श्री रामेश्वरप्रसाद शुक्ल 'अंचल'	३·००
सुबह-वतन—पं० ब्रजनारायण 'चकबस्त'	२·७५
संक्षिप्त सूरसागर—प्रो० वेणी प्रसाद	३·५०
सूर-संदर्भ—पं० नन्ददुलारे वाजपेयी	२·००
सूरसुषमा—पं० नन्ददुलारे वाजपेयी	१·००
सुदामा के तंडुल—श्री ब्रह्मदत्त दीक्षित 'ललाम'	१·५०
जीवन-कण—श्री जगमोहननाथ अवस्थी	१·००
वेणुकी—श्रीमती तारा पाण्डेय	१·००
रानी दुर्गावती—पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'	१·२५
कश्मीर-विजय—श्री सत्यनारायण पाण्डेय	१·५०
वैरागी—श्री परमानन्द शर्मा	२·००
सरोज—श्री सोमेश्वर सिंह	२·००
शाहजादा खुसरो—कुँवर सोमेश्वर सिंह	२·२५
सिद्धान्त-समर—श्री नर्मदेश्वर उपाध्याय	४·००
अवसाद—श्रीमती 'ममता'	१·२५
मधुमास—श्रीमती हीरादेवी चतुर्वेदी	१·५०
बुन्देलखंडी लोकगीत—श्रीमती हीरादेवी चतुर्वेदी	०·५०
महारथी—श्री मोहनलाल अवस्थी 'मोहन'	१·२५
रजनीगन्धा—श्री देवेन्द्रदत्त तिवारी	२·५०
फूल व पत्ते—श्री कमलाकान्त पाठक	२·००
अन्तर्ध्वनि—श्री देवेन्द्रदत्त तिवारी	२·५०



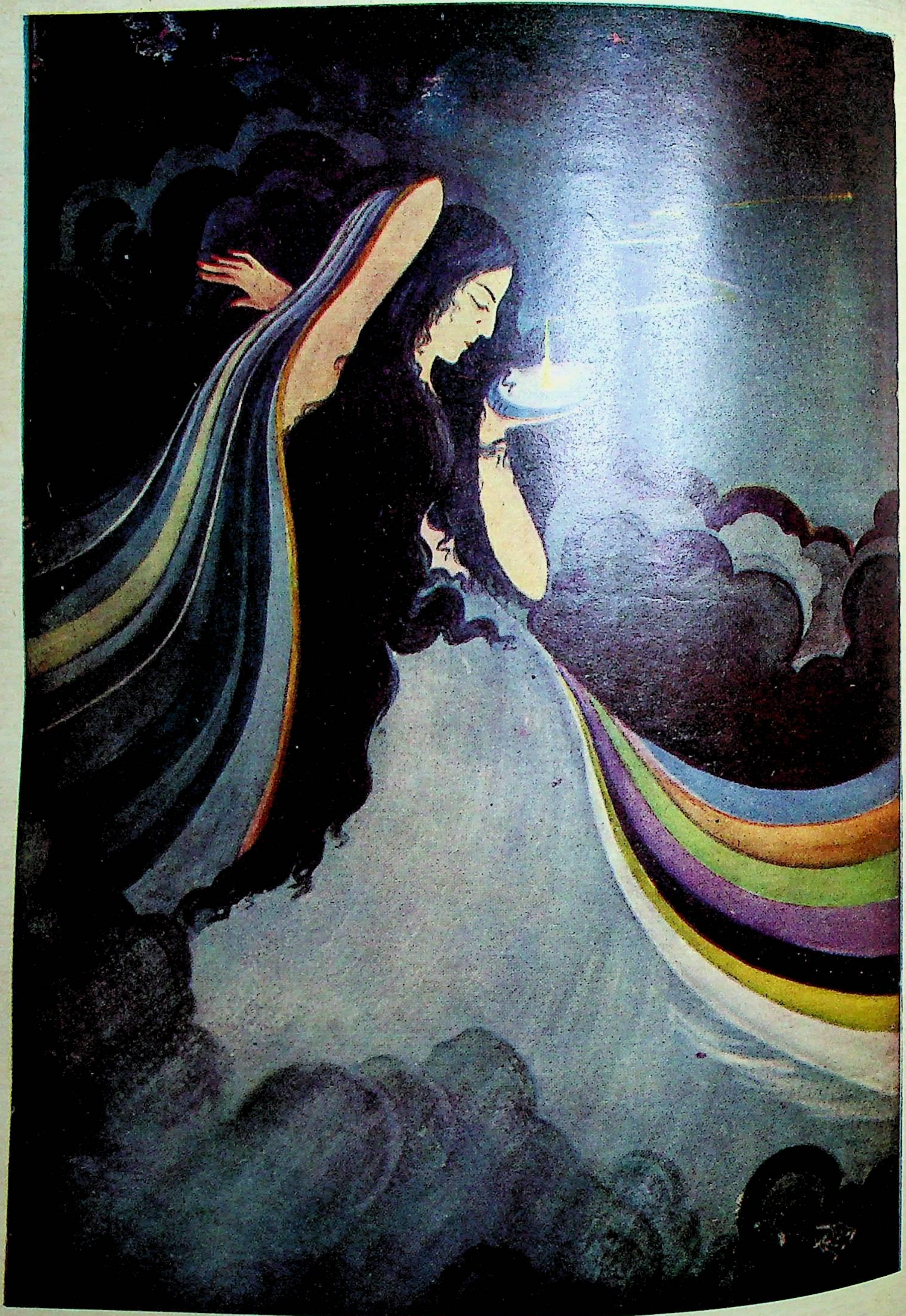
'सत्यं, शिवं, सुंदरम्' का आदर्श भले ही पुराना रहा हो, किन्तु आधुनिक भारत को उसका परिचय कराया कवीन्द्र रवीन्द्र ने। इन तीनों का समन्वय रवीन्द्रनाथ की आत्मा है, जो उनकी कविताओं, उनके लेखों, उनके भाषणों में झाँके रही है। अपने विशाल दृष्टिकोण के कारण ही वे मानवतावादी और युग की समस्या के दर्शन करानेवाले युगद्रष्टा थे। कवि की परिभाषा के अनुसार रविबाबू कवि-मनीषी परिभूः स्वयंभू थे। आधुनिक भारत में एक ओर तो कबीर, दादू, तुलसीदास की परम्परा की अद्यतन कड़ी थी, तो दूसरी ओर नवीन भारत में कवीन्द्र रवीन्द्र आधुनिकता के पुजारी थे। अतएव उनके साहित्य में भी पूर्व और पश्चिम, नूतन और पुरातन का अद्भुत समन्वय है।

अमर-रवीन्द्र-साहित्य

बच्चों के रवीन्द्रनाथ	२·२५	गीताञ्जली	१·५०
रवि बाबू के कुछ गीत	२·५०	मुकुट	०·५०
विश्वकवि रवीन्द्रनाथ	५·००	विचित्र प्रबन्ध	२·२५
रवीन्द्र की चुनी हुई कहानियाँ	१·५०	प्राचीन साहित्य	१·५०
विश्वपरिचय	२·००	गल्प गुच्छ भाग १	१·२५
मास्टर साहब	०·५०	गल्प गुच्छ भाग २	१·५०
योगायोग	४·००	गल्प गुच्छ भाग ३	१·५०
विचित्र वधू रहस्य	२·००	गल्प गुच्छ भाग ४	१·५०
रूस की चिट्ठी	१·५०	व्यंग कौतुक	१·२५
मेरा बचपन	२·००	हास्य कौतुक	१·२५
आश्चर्य घटना	२·५०	राजर्षि	२·००
चार अध्याय	१·५०	डाकघर	०·७५

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

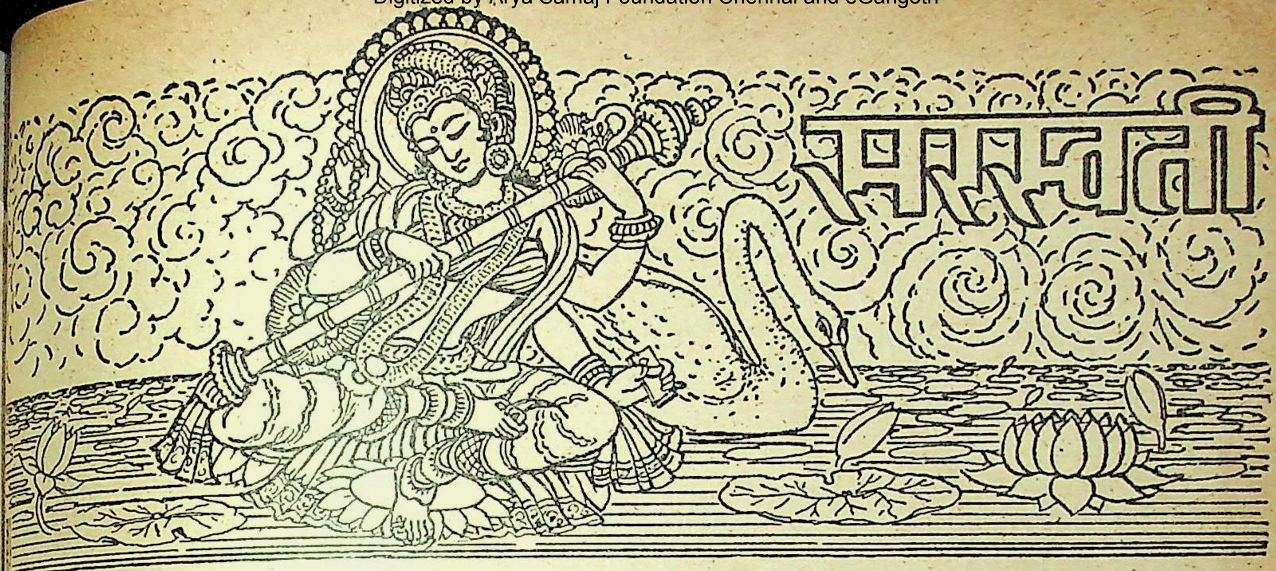
विषय-सूची



दीपशिखा

प्रयाग संग्रहालय के सौजन्य से ।

—चित्रकर्त्री श्रीमती महादेवी वर्मा



सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—**शीला शर्मा**

वर्ष ६५ पूर्ण संख्या ७७६ | इलाहाबाद : नवम्बर १९६४ : कार्तिक २०२१ वि० | खण्ड २ संख्या ५

सम्पादकीय

चीन का अणुबम—सभी राष्ट्रों में महत्त्वपूर्ण सैनिक बातें गुप्त रखी जाती हैं और उनका पता लगना कठिन है। खासकर रूस और चीन के समान कम्युनिस्ट देशों की गुप्त बातों और सैनिक गतिविधियों का जानना तो और भी कठिन है। किंतु पश्चिमी देशों का गुप्तचर विभाग इतना चतुर है, और उनके राजनीतिक पर्यवेक्षक इतने कुशल हैं कि वे इन साम्यवादी देशों के गुप्त भेद भी प्राप्त कर लेते और ताड़ लेते हैं। यह समाचार कि चीन अणुबम बना रहा है, सारे संसार को मिल गया था। अमरीकन राजनीतिक पर्यवेक्षकों ने भविष्यवाणी भी कर दी थी कि वह कब तैयार हो जायगा। सन् १९६२ में प्रेंटिस-हाल ने अपनी पुस्तक Communist China's Strategy in the Nuclear Era में (पृष्ठ १५४ पर) लिखा था :

Thus, according to these calculations, if the Chinese started their nuclear weapons programme at the beginning of 1958, they would explode their first bomb sometime in 1963, and they would become a nuclear power in 1966 or later.

(इस प्रकार इस गणना के अनुसार यदि चीनियों ने अपना आणविक हथियार बनाने का कार्यक्रम १९५८ के आरंभ में प्रारंभ किया हो तो वे अपने पहिले बम का विस्फोट किसी समय १९६३ में करेंगे, और १९६६ में या उसके बाद चीन आणविक शक्ति हो जायगा।)

इस भविष्यवाणी में प्रायः एक वर्ष का अंतर हो गया क्योंकि चीन ने अपने पहिले अणुबम का विस्फोट गत मास किया। इस अंतर का कारण यह मालूम होता है कि दो वर्ष से कुछ अधिक हुए, रूस ने (जिसने चीन को अणु-शक्ति उत्पादक—रिऐक्टर—दिया था और तकनीकी सलाहकार दिये थे) अपनी सहायता बंद कर दी तथा अपने वैज्ञानिकों को वापस बुला लिया। जो भी हो, चीन को अणुबम बनाने में सफलता मिल गयी और उसने उसके विस्फोट की घोषणा भी कर दी। उसके पहिले ही पश्चिमी देशों के वैज्ञानिकों को अपने यंत्रों से उस विस्फोट का पता लग गया था। एशिया के देश अमरीका के सातवें जहाजी बेड़े के हिन्द महासागर में आने का इसलिए विरोध करते थे कि वे एशिया में आणविक अस्त्र नहीं चाहते। किंतु एशिया के हृदय-स्थल में पहिले अणु-बम का विस्फोट हो गया, और अभी न मालूम कितने ऐसे विस्फोट होंगे। भारत की उत्तरी सीमा उस विस्फोट की धमक से परिचित हो

फा० ३

गयी है। हम अपने ऊपर आक्रमण करनेवाले पड़ोसी को उस अणुबम से सज्जित पा रहे हैं जिसको प्रत्येक शान्तिप्रिय मानव इस युग का सबसे बड़ा खतरा और सबसे बड़ा अभिशाप समझता है। तिसमें चीन ऐसे उत्तरदायित्वहीन, आक्रामक और साम्राज्यलोलुप देश के पास अणुबम का होना 'बन्दर के हाथ में छुरी' होने के समान है।

कुछ दिनों पहिले तक अणुबम केवल रूस, अमरीका और इँग्लैण्ड के पास थे। कुछ दिनों पहिले ही फ्रांस ने भी उसे बना लिया, और अब चीन अणुबमी शक्ति हो गया है। मिस्र उसे बनाने का प्रयत्न कर रहा है। पश्चिमी जर्मनी, जापान, कनाडा, आस्ट्रेलिया और भारत में अणु-विस्फोटन की विद्या ने काफी उन्नति कर ली है। उनके पास ऐसे कुशल वैज्ञानिक हैं, और ऐसे साधन भी हैं कि यदि वे प्रयत्न करें तो अणुबम बनाने में सफल हो सकते हैं। पश्चिमी जर्मनी और जापान पिछले महायुद्ध के परास्त देश हैं, और एक निश्चित सीमा से अधिक उन्हें अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाने की अनुमति नहीं है। किंतु शेष देश (कनाडा, आस्ट्रेलिया, भारत) अपने सिद्धान्तों के कारण अणुबम बनाने का प्रयत्न नहीं करते।

चीन का अणुबम, रूस या अमरीका के अणुबमों की तुलना में 'पटाखा' कहा जा सकता है। जब शिशु उत्पन्न होता है तब वह बहुत छोटा होता है, किंतु कालान्तर में बढ़ते बढ़ते वह पूरे आकार का हो जाता है। जन्म के समय यह नहीं कहा जा सकता कि वह बढ़कर कितना बड़ा होगा, या देवता होगा अथवा दानव। उसमें अनन्त संभावनाएँ होती हैं। अभी इतना ही कहा जा सकता है कि चीन में अणुबम का जन्म हो गया है, और कालान्तर में वह बढ़ेगा।

अणुबम के बनाने में यूरेनियम और प्लूटोनियम की आवश्यकता होती है। इन दोनों ही पदार्थों का तैयार करना अत्यन्त कठिन है और उनके तैयार करने की प्रक्रिया बड़ी जटिल है। एक छोटे अणुबम के लिए कितने यूरेनियम और प्लूटोनियम की आवश्यकता होती है, उसके बनाने में साधारण आकार के रिऐक्टर को प्रायः एक वर्ष लग जाता है। इन पदार्थों को बम का रूप देकर विस्फोट करने की प्रक्रिया और भी जटिल है और वह प्रत्येक अणुबम बनानेवाले राष्ट्र ने गुप्त रखी है। अणुबम बनानेवाले नये राष्ट्रों को उस प्रक्रिया का आविष्कार करना पड़ता है। यह तभी संभव है जब देश में विज्ञान का स्तर बहुत ऊँचा हो और उसके वैज्ञानिक बड़े प्रतिभाशाली हों। चीन के इस अणुबम-विस्फोट से स्पष्ट है कि उसने अपने देश में विज्ञान की इस शाखा की काफी उन्नति कर ली है। किंतु अमरीका और रूस के अणुबमों की बराबरी करना सरल नहीं है। उसके लिए और उन्नत विज्ञान तथा अपार साधनों की आवश्यकता है। फ्रांस को अपना अणुबम बनाये काफी दिन हो गये, किंतु अभी वह न तो अपनी सेना के उपयोग के लिए काफी आणविक अस्त्र बना सका और न उन्हें उन्नत ही कर सका। चीन के साधन और उसका वैज्ञानिक स्तर फ्रांस से पिछड़े हुए हैं। अभी सैनिक दृष्टि से उसके अणुबम बहुत उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकते। किंतु आठ-दस वर्ष बाद अवश्य ही स्थिति बदल जायगी।

चीन के अणुबम ने निःसंदेह उसका अंतर्राष्ट्रीय प्रभाव बढ़ाया है। उसकी इस सफलता से उसके पड़ोसी राज्य अवश्य आतंकित हो गये हैं। रूस को छोड़कर उसके सभी पड़ोसी, विशेषकर दक्षिण-पूर्वी एशिया में सैनिक दृष्टि से कमजोर हैं। वह उन्हें प्रत्यक्ष या परोक्ष-रूप से अपने अधीन करना चाहता है। चीन के अणुबम का अस्तित्व मात्र चीन की राजनीतिक चालों को अपार बल और समर्थन देगा।

दक्षिण एशिया में भारत ही ऐसा राष्ट्र है जो धन-जन में चीन का मुकाबला कर सकता है। भारत में विज्ञान का स्तर भी ऊँचा है। हमारे देश में आणविक शक्ति-उत्पादक वर्षों से काम कर रहे हैं, और हमारे यहाँ कई प्रतिभाशाली और अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के अणुविज्ञान के आचार्य हैं। हमारे चोटी के अणु-विज्ञानी डा० भाभा ने कहा है कि हम डेढ़ वर्ष में अणुबम बना सकते हैं। हमारे पास कुछ साधन हैं, कुछ हो सकते हैं। हमारे पास वैज्ञानिकों की कमी नहीं है। किंतु हमारी सरकार सिद्धान्ततः अणु-अस्त्रों के बनाने की विरोधी है। अणुबमों के विरुद्ध वह आरंभ ही से जिहाद कर रही है। किंतु प्रश्न यह है कि जब चीन ने अणु-बम बना लिया है, और जब चीन ने भारत पर आक्रमण कर रखा है, तब यदि हमारे पास भी वैसे ही भयकर अस्त्र न हों जैसे हमारे ऊपर आक्रमण करनेवाले के पास हैं, तब हम उससे अपनी रक्षा किस प्रकार कर सकते हैं? अणु-अस्त्रों की रोक अणुअस्त्र ही हो सकते हैं। रूस और अमरीका में कई बार युद्ध होने की नौबत आयी, पर युद्ध नहीं हुआ। क्यों? दोनों ही पक्ष जानते हैं कि हमारे विरोधी के पास भी भयंकर अस्त्र हैं जिनसे वह हमें इतना अपग कर सकता है कि यदि हम जीत भी गये तो वह जीत व्यर्थ होगी। आज के संसार में केवल शक्तिशाली की पूछ है। जो राष्ट्र सैनिक दृष्टि से कमजोर है, वास्तव में उसकी प्रतिष्ठा केवल दिखाऊ होती है।

अणु-अस्त्रों पर रोक लगनी चाहिए और इसके लिए ससारव्यापी आन्दोलन हो रहा है। प्रायः सभी राष्ट्र इन अस्त्रों की बुराई करते हैं किंतु जिन राष्ट्रों के पास वे हैं, वे उनसे चिपके हुए हैं, और दूसरे राष्ट्र उन्हें बनाने को इच्छुक हैं। पिछले पाँच-छः वर्षों में आणविक अस्त्रों के विरुद्ध आन्दोलन ने जोर पकड़ा, किंतु इन्हीं पाँच-छः वर्षों में दो नये देशों ने अणुबम बना लिये, और एक तीसरा देश उसे बनाने में लगा है। कौन जाने मिस्र को अणुबम बनाते देख इसराइल भी उसे बना डाले; विज्ञान और साधनों में इसराइल इतना सम्पन्न है कि वह अपेक्षाकृत आसानी से अणुबम बना सकता है। संसार का जनमत, अणुबम-विरोधी आन्दोलन और संसारव्यापी शान्ति-

शक्तिमान नये देशों द्वारा अणुबमों का निर्माण नहीं रोक सकते। तब यदि भारत थोथे सिद्धान्तों के कारण अणुबम बनाकर अपनी शक्ति बढ़ाने का प्रयत्न न करे तो इसे हम 'सिद्धान्तों पर शहीद' होना ही कह सकते हैं। जब हम देखते हैं कि अणुबम बनाने से पड़ोसी राष्ट्रों पर चीन का प्रभाव बढ़ गया, अफ्रीकी देश उसको सम्मान की दृष्टि से देखने लगे, उसकी अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा बढ़ी, तब यदि हम एशिया में अपना स्थान बनाये रखना चाहते हैं, और अपनी सुरक्षा दृढ़ता से करना चाहते हैं तो हमें भी अणुबम के निर्माण में आगा-पीछा न करना चाहिए। देश के मनोबल बढ़ाने तथा उसका आत्मविश्वास दृढ़ करने के लिए यह परम आवश्यक है कि हमारी जनता यह अनुभव करे कि हम किसी बात में चीन से पीछे नहीं हैं, और हमारे पास भी वैसे ही शक्तिशाली अस्त्र हैं जैसे हम पर आक्रमण करनेवाले चीन के पास। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से जनता का मनोबल बढ़ाने के लिए हमारे लिए अणुबम बनाना अनिवार्य है।

विदेश में शास्त्रीजी——हमें यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि हमारे प्रधान मंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री जब काहिरा सम्मेलन में गये तो उन्होंने योरोपीय परिधान धारण नहीं किया। वे देश में धोती पहिनते हैं। वहाँ भी उन्होंने उसे ही धारण किया। वे उस हीन भावना के शिकार नहीं हैं जो हमारे कितने ही नेताओं में देखी जाती है, जिसके कारण वे सभी भारतीय चीजों को हीन-दृष्टि से देखते और विदेशी चीजों को अंगीकार कर लेते हैं। धोती भारतीय जनता का परिधान है——भले ही अल्पसंख्यक बाबू लोग उसे 'देहातीपन' का प्रतीक समझते हों। शास्त्रीजी 'बाबू क्लास' के नहीं हैं, वे कोटि-कोटि भारतीय जनता के प्रतिनिधि हैं, और उन्होंने विदेश में जनता के परिधान को धारण कर उसे नयी राजकीय प्रतिष्ठा दी। उनके इस कार्य ने जनता का हृदय स्पर्श करके उसे पुलकित कर दिया है। हम इस कार्य के लिए शास्त्रीजी को साधुवाद देते हैं।

किंतु हमें एक कमी खटकी। अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में राष्ट्रों के प्रतिनिधि सामान्यतः अपनी-अपनी राष्ट्र-भाषाओं में भाषण करते हैं। उनके भाषणों के अनुवाद का वहाँ प्रबंध रहता है। शास्त्रीजी काहरा-सम्मेलन में अंग्रेजी में बोले। यदि वे हिन्दी में बोलते तो अधिक उप-युक्त होता। उससे हमारा राष्ट्रीय व्यक्तित्व निखरता और हमारी राष्ट्रभाषा की प्रतिष्ठा बढ़ती। शास्त्रीजी की यह पहिली विदेश-यात्रा थी। दिल्ली में अंग्रेजी का इतना प्रभाव है और शास्त्रीजी को अभी कार्यभार सँभाले उनके थोड़े दिन हुए हैं तथा इस बीच वे इतने व्यस्त रहे हैं कि वे उस वातावरण को सुधार नहीं पाये। इसलिए शायद उन्हें अपनी तैयारी अंग्रेजी ही में करनी पड़ी। किंतु हम आशा करते हैं कि भविष्य में वे कम से कम अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में हिन्दी में भाषण करेंगे जिससे देश और राष्ट्रभाषा दोनों के गौरव में वृद्धि हो।

विद्यालयों में संविधान-निष्ठा की शपथ——जब हम अमरीका गये थे तो हमें वहाँके अनेक शहरी और देहाती विद्यालयों को देखने का भी सुअवसर मिला था। प्रत्येक विद्यालय में कार्य आरंभ होने से पूर्व अध्यापक के नेतृत्व में सब विद्यार्थी राष्ट्रीय ध्वज के सामने खड़े होकर निष्ठा की शपथ दुहराते हैं। यह शपथ वहाँके संसद (कांग्रेस) द्वारा निर्धारित है। सन् १९५४ में संसद ने इस शपथ को संशोधित किया था। वह शपथ यह है:

I pledge allegiance to the flag of the United States of America and to the Republic for which it stands; one nation under God, indivisible with liberty and justice for all.

(मैं अमरीका के संयुक्त राष्ट्र के (राष्ट्रीय) ध्वज और उस जनतंत्र के प्रति जिसका वह प्रतीक है, निष्ठा रखने की प्रतिज्ञा करता हूँ——जो ईश्वर की छत्रछाया में एक अखंड राज्य है, जिसका विभाजन नहीं हो सकता और जिसमें सभी नागरिकों को स्वाधीनता और न्याय (समान रूप से) उपलब्ध है।)

छोटी-छोटी देहाती पाठशालाओं में भी हमने बालक-बालिकाओं को बड़ी गंभीरता और तन्मयता से यह शपथ लेते देखा। बचपन से इस शपथ को नित्यप्रति दुहराते रहने के कारण उनके हृदयों पर बड़ा गहरा संस्कार पड़ जाता है जो उनमें राष्ट्र-ध्वज और राष्ट्र के प्रति प्रगाढ़ निष्ठा उत्पन्न कर देता है। यह इसलिए संभव है कि एक तो अमरीका में शपथ को ऐसी गंभीर प्रतिज्ञा मानते हैं जो तोड़ी नहीं जा सकती, दूसरे शपथ लेते समय वातावरण अत्यन्त शान्त, गंभीर और गरिमासम्पन्न होता है। वे शपथ का उच्चारण धीरे-धीरे, काकु के साथ और स्पष्ट शब्दों में करते हैं। इस सबका प्रभाव बच्चों के कोमल मस्तिष्कों पर पड़ता है।

हमारे शिक्षामंत्री श्री चागला ने बंगलोर के शिक्षा अधिकारियों के सम्मेलन में घोषित किया है कि सारे भारत के विद्यालयों के विद्यार्थी प्रतिदिन, कार्यारंभ से पहिले, एकत्र होकर भारतीय संविधान के प्रति निष्ठा रखने की शपथ लिया करेंगे। हमारे नये राष्ट्र में, जिसमें 'भावनात्मक एकता' की आवश्यकता बराबर अनुभव की जाती है और जहाँ 'जनतंत्र', 'संविधान', 'राष्ट्र' अभी जीवन्त और जीवनस्पर्शी शब्द नहीं हुए, इस शपथ का मनोवैज्ञानिक महत्त्व है। किन्तु यह तभी संभव है जब शपथ की शब्दावली सरल और हृदयस्पर्शी हो तथा इस बात का ध्यान रखा जाय कि वह गंभीर वातावरण में ली जाती है। अभी तक हम राष्ट्रगान के समय के शिष्टा-चार को भी जनता और विद्यार्थियों को ठीक तरह से नहीं सिखा पाये। कितनी ही जगह राष्ट्रगान के समय लोगों (और विद्यार्थियों) को अनेक मुद्राओं में——और कभी-कभी बात करते हुए भी——देखा जा सकता है। इससे उसकी गरिमा को आघात पहुँचता है। यदि शिक्षा विभाग यह चाहता हो कि बच्चों पर उस शपथ का उचित

मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़े तो उसे इस बात पर विशेष ध्यान देना होगा कि शपथ लेते समय उस स्थान का वातावरण पर्याप्त गंभीर और गरिमापूर्ण हो, वह ठीक ढंग से ली जाय और शपथ की शब्दावली सरल और हृदयस्पर्शी हो।

नागालैण्ड में हिन्दू साधुओं का प्रवेश वर्जित—पटना में भारत साधु-समाज के मंत्री स्वामी हरिनारायणानन्द ने बतलाया कि भारत साधुसमाज भ्रष्टाचार के विरुद्ध सारे देश में सदाचार आन्दोलन आरंभ कर रहा है। उसने ४५ क्षेत्रीय और राज्य-शाखाएँ स्थापित कर ली हैं। किंतु भारत में एक ऐसा राज्य है जिसमें वह काम नहीं कर सकता। वह राज्य है नागालैण्ड। स्वामीजी बतलाया कि स्वर्गीय प्रधान मंत्री नेहरू और स्वर्गीय पादरी वैरियर एलविन में एक समझौता हुआ था जिसके अनुसार नागालैण्ड में हिन्दू साधुओं का प्रवेश वर्जित कर दिया गया था। वह समझौता अब भी लागू है, और उसके कारण हिन्दू साधु अब भी नागालैण्ड में प्रवेश नहीं कर सकते।

हमें यह समाचार पढ़कर बड़ा आश्चर्य हुआ। नागालैण्ड में ईसाई मिशनरियों को वहाँ जाकर अपना प्रचार करने और नागाओं को ईसाई बनाने की पूरी छूट है। हम पिछले अंक की एक सम्पादकीय टिप्पणी में इस संबंध में विस्तार से लिख चुके हैं। यह बात तो समझ में आती है कि अंग्रेज नागाओं को अपना धर्म (ईसाई) में लाने के लिए ईसाई पादरियों को विशेष सुविधाएँ देते रहे, और उन पादरियों को अन्य धर्मों की प्रतिद्वन्द्विता से बचाने के लिए उन्होंने दूसरे धर्म के प्रचारकों को नागालैण्ड में जाने पर रोक लगा रखी थी, किंतु स्वतन्त्र भारत में भी इस भेद-भाव का जारी रहना हमारी समझ में नहीं आता। इसके अर्थ यही हो सकते हैं कि नागाओं को ईसाई बनानेवालों को जो सुविधाएं अंग्रेजों ने दे रखी थीं, उन्हें हम जारी रखे हैं और नागाओं को ईसाई बनाने की अंग्रेजों की नीति को हमने परोक्षरूप से स्वीकार कर लिया है।

नागालैण्ड के सभी निवासी ईसाई नहीं हैं। उनमें हिन्दू भी हैं और कुछ अपने प्राचीन जातीय विश्वासों को मानते हैं। एक धर्म के प्रचारकों को इस प्रकार सुविधा देना, तथा दूसरे धर्मों के प्रचारकों पर रोक लगाना, तथा एक धर्म के लोगों को अपने आध्यात्मिक या धार्मिक गुरुओं के उपदेशों से वंचित रखना हमारी संविधान में दी हुई धार्मिक और विश्वासों की स्वतन्त्रता से मेल नहीं खाता।

भारत की सरकार 'सैक्यूलर' (धर्मनिरपेक्ष) है। 'धर्मनिरपेक्षता' के क्या अर्थ हैं? राज्य धर्म के मामले में उदासीन है। वह किसी धर्म-विशेष का पोषक नहीं है, किंतु वह नागरिकों को अपने मनमाने धर्म को मानने की स्वतंत्रता देता है। वह सब धर्मों को समान रूप से अपना प्रचार करने का अवसर देता है। भारत में किस प्रकार कुछ लोगों ने 'धर्मनिरपेक्षता' (सैक्यूलैरिज्म) की व्याख्या की है उससे तो यह मालूम होने लगता है कि भारत सरकार की 'धर्मनिरपेक्षता' का अर्थ 'धर्म' (रिलिजन) मात्र का विरोध है। ३ अक्तूबर के 'योगी' में श्री मन्मथनाथ गुप्त ने अपने लेख 'शताब्दी की समस्या' में लिखा है —"किसी भी हालत में यह तो स्पष्ट है कि हमको धर्मनिरपेक्षता पर कायम रहना है, **पर धर्म निरपेक्षता धर्म को विसर्जन देने से बहुत दूर नहीं है। यह सभी चिन्तकों के निकट स्पष्ट हो जायगा।** भारत में एक व्यक्ति ऐसा हुआ जिसकी धर्मनिरपेक्षता के विषय में कट्टर से कट्टर कठमुल्लापन में विश्वासी लोगों को सन्देह नहीं रहा। वह हैं जवाहरलाल। पर वह किस प्रकार सोचते थे यह हम उनके वसीयतनामे के उन वाक्यों से जान सकते हैं—"मैं पूरी निष्ठा व ईमानदारी के साथ यह कहना चाहता हूँ कि मृत्यु के बाद मैं अपने लिए कोई धार्मिक संस्कार किया जाना पसन्द नहीं करता, मेरी इस तरह के संस्कारों में कोई आस्था नहीं है और रस्मी तौर पर भी इन्हें करना पाखण्ड होगा और यह अपनों को और दूसरों को भ्रम में डालने की एक कोशिश होगी।"

श्री मन्मथनाथ गुप्त भारत सरकार की एक महत्त्वपूर्ण पत्रिका के सम्पादक हैं और इस स्थिति में मालूम होते हैं कि वे भारत सरकार की नीति का स्पष्टीकरण और अधिकृत व्याख्या कर सकें। अधिकांश भारतवासियों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि 'धर्मनिरपेक्षता धर्म को विसर्जन देने से बहुत दूर नहीं है", अर्थात् कम्यूनिस्टों की तरह वह धर्म-विरोधी है। उन्होंने इस प्रसंग में स्वर्गीय श्री जवाहरलाल नेहरू की वसीयत का उद्धरण देकर बड़ी चतुरता से अपने मत की पुष्टि करने का प्रयत्न किया है। नेहरूजी को भी प्रत्येक अन्य भारतीय नागरिक की भाँति धार्मिक (या अधार्मिक) विश्वासों की स्वतंत्रता थी। किंतु क्या वे 'धर्मनिरपेक्षता' का यह अर्थ लगाते थे कि सारा देश उन्हींके धार्मिक विचारों को स्वीकार कर ले? श्री मन्मथनाथ गुप्त ही नहीं, उनके समान विचार करनेवाले कितने ही लोग 'सैक्यूलैरिज्म' का बहुत कुछ ऐसा ही अर्थ लगाते हैं। इससे देश में बड़ा भ्रम फैल रहा है। इस भ्रम को दूर करने, तथा जनता को सैक्यूलैरिज्म की नीति के व्यावहारिक पहलू से आश्वस्त करने के लिए यह आवश्यक है कि भारत सरकार एक बार फिर इस नीति को स्पष्ट कर दे।

हम 'धर्मनिरपेक्षता' का अर्थ वही समझते हैं जो हमने इस टिप्पणी के चौथे पैराग्राफ के आरंभ में बतलाया है। यदि वह ठीक है तो हमारे मत में नागालैण्ड में हिन्दू साधुओं का प्रवेश वर्जित करना धार्मिक स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप है। उनका प्रवेश वर्जित करके ईसाई प्रचारकों को प्रवेश की छूट दे देना 'जले पर नमक छोड़ने' के समान है। यह स्पष्ट 'भेद-भाव' है। हम नहीं जानते कि स्वर्गीय प्रधान मंत्री ने पादरी वेरियर एलविन से यह समझौता क्यों किया। यह स्पष्ट है कि वह हमारे संविधान के अनुसार अवैध है। नागालैण्ड में ईसाई और गैर ईसाई धार्मिक प्रचारकों और धर्मगुरुओं से राज्य को समान रूप का बर्ताव

चाहिए। इसीमें संविधान की मर्यादा की रक्षा और इसीसे 'धर्मनिरपेक्षता' का सिद्धान्त सार्थक हो सकता है।

डा० जाकिर हुसेन और अंग्रेजी की पढ़ाई—डा० जाकिर हुसेन मूलतः शिक्षक हैं, और शिक्षाशास्त्री हैं। जब महात्माजी ने 'बुनियादी' शिक्षा की कल्पना की तब उसकी रूपरेखा और योजना तैयार करने के लिए उन्होंने डा० जाकिर हुसेन की अध्यक्षता में ही समिति बनायी थी। 'जामिया मिल्लिया' नामक राष्ट्रीय मुस्लिम विद्यापीठ के संस्थापक हैं और वे बहुत दिनों उसका संचालन करते रहे। वे देश के चोटी के शिक्षाशास्त्रियों में हैं। अतएव शिक्षा के संबंध में उनके विचारों का वजन है।

गत मास सनोसरा (गुजरात) में बुनियादी शिक्षा के कार्यकर्त्ताओं का एक सम्मेलन हुआ जिसमें बुनियादी शिक्षा की स्थिति और समस्याओं पर विचार किया गया। डा० जाकिर हुसेन उसमें सम्मिलित हुए। उन्होंने वहाँ एक विचारोत्तजक भाषण दिया जिसमें उन्होंने नयी शिक्षा की कई उलझी हुई समस्याओं का निराकरण किया। भारत सरकार के शिक्षा-मंत्रालय की नयी नीति देश में अंग्रेजी का प्रचार करने की है। वह ऊपर से तो हिन्दी को 'लिंक लैंग्वेज' (अन्तःप्रान्तीय उपयोग की भाषा) बनाने की बात कहता है, किंतु उसकी शक्ति भारत में अंग्रेजी को दृढ़ करने में लगती है। वह चाहता है कि सारे देश में प्रारंभिक (प्राइमरी) पाठशालाओं की तीसरी कक्षा से अंग्रेजी पढ़ायी जाय। अंग्रेजों ने भी देहाती प्रारंभिक पाठशालाओं में अंग्रेजी पढ़ाने का विचार नहीं किया। किंतु 'नया मुसलमान अधिक प्याज खाता है'—वाली कहावत के अनुसार यह नया अंग्रेजी-परस्त शिक्षा मंत्रालय शिक्षा में जगह-जगह अंग्रेजी ठूंसने का प्रयत्न करता है, उसके लिए मुक्तहस्त होकर जनता का पैसा खर्च करता है और अंग्रेजी के प्रचार के लिए अपने महान् प्रभाव का प्रयोग करता है। उसके प्रभाव में आकर राज्यों की सरकारें उसकी 'हाँ' में 'हाँ' मिलाने लगती हैं, और आज यह हास्यास्पद स्थिति हो गयी है कि तीसरी कक्षा में, जिसमें बालक-बालिकाओं को मातृभाषा का भी पूरा ज्ञान नहीं हो पाता, उनके ऊपर अंग्रेजी ऐसी एक विदेशी भाषा का बोझ लादा जा रहा है। उन्हें पढ़ाने के लिए हाईस्कूल उत्तीर्ण अध्यापक रखे जाते हैं जो उन्हें तीसरी, चौथी और पाँचवीं कक्षाओं में अंग्रेजी पढ़ाते हैं। आज हाईस्कूल उत्तीर्ण व्यक्ति के अंग्रेजी ज्ञान का स्तर क्या है, यह छिपा नहीं है। वे स्वयं शुद्ध अंग्रेजी लिख या बोल नहीं सकते। उनके उच्चारण के सम्बन्ध में कुछ न कहना ही ठीक है। फिर भी हमारी अंग्रेजी-परस्त सरकार अपने दुराग्रह पर डटी है। यदि इससे बालक-बालिकाओं पर अनावश्यक बोझ न पड़ता, यदि अंग्रेजी की शिक्षा को दिये गये समय से मातृभाषा, गणित आदि की परमावश्यक विषयों की शिक्षा का समय कम न किया जाता, और यदि इस पर जनता की गाढ़ी कमाई का पैसा बर्बाद न होता, तो हम इसे सरकार का शेखचिल्लीपन कहकर हँसी में उड़ा देते। सरकार के इस कार्य का जनता में विरोध भी हुआ, किंतु सरकार को अंग्रेजीपरस्त वाइसचांसलरों, शिक्षा विभाग के अधिकारियों और 'विशेषज्ञों' का समर्थन प्राप्त है। वह अपनी जिद पर अड़ी है और हमारे ग्रामीण बच्चों को अंग्रेजी पढ़ाने का हास्यास्पद प्रयत्न कर रही है।

इसलिए हमें डा० जाकिर हुसेन के सनोसरा के भाषण के उस अंश को पढ़कर प्रसन्नता हुई जिसमें उन्होंने हमारे विद्यालयों में अंग्रेजी पढ़ाने के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये हैं। उनके भाषण का जो सारांश अंग्रेजी समाचारपत्रों में प्रकाशित हुआ है वह इस प्रकार है—"विद्यार्थियों को अंग्रेजी उनकी आवश्यकताओं के अनुसार पढ़ाई जानी चाहिए। अधिकांश विद्यार्थी (बड़े होने पर) खेती करेंगे या ऐसे कामों में लगेंगे जिनमें उन्हें अंग्रेजी की आवश्यकता न होगी।"

हम इस मत से पूर्णरूप से सहमत हैं। अंग्रेजी पढ़ाई जाय, किंतु वह अनिवार्य न हो। वह उन्हें ही पढ़ाई जाय जिन्हें उसकी आवश्यकता हो। इस देश में केवल अपनी मातृभाषा जाननेवाले के लिए उच्चतम शिक्षा उपलब्ध होनी चाहिए। जिन्हें अंग्रेजी की आवश्यकता हो, उन्हें अंग्रेजी पढ़ाने का प्रबन्ध हो। किंतु भारत सरकार आवश्यकतानुसार अंग्रेजी नहीं पढ़ाती। ऐसा मालूम होता है कि अंग्रेजी का प्रचार करने के लिए अंग्रेजी पढ़ाती है जिससे कालान्तर में, जब प्राइमरी पाठशालाओं में पढ़े हुए लोगों तक में, अर्थात् सभी साक्षरों में उसका ज्ञान व्यापक हो जाय, तब वह यह कहकर कि सारे देश के लोगों को अंग्रेजी का ज्ञान है, वह अंग्रेजी को भारत के 'लिंक लेंग्वेज' (अंतःप्रान्तीय उपयोग की भाषा) के पद पर स्थायी कर दे। नाम के लिए हिंदी भी बनी रहे, किंतु यह निश्चय है कि ये अंग्रेजी-परस्त और इनके उत्तराधिकारी हिन्दी की उपेक्षा करके, उसमें काम न करके, धीरे-धीरे उसे पूरी तरह से समाप्त कर देंगे। हमारी दृष्टि से आज भारत सरकार अंग्रेजी को जो प्रोत्साहन दे रही है उसका कारण 'शिक्षा सिद्धान्त' नहीं, वह आंतरिक राजनीति है जिसमें अंग्रेजी एक वर्ग-विशेष (शासक वर्ग) के स्वार्थसाधन का आधार हो गयी है और उसके द्वारा वे इस देश पर अपने वर्ग का प्रभुत्व कायम रखना चाहते हैं। यदि 'शिक्षा' की दृष्टि से अंग्रेजी पढ़ानी है तो भारत सरकार को डा० जाकिर हुसेन के मत के अनुसार उसके पढ़ाने का प्रबंध करना चाहिए।

श्री चागला का एक चिन्ताजनक वक्तव्य—शिक्षा-मंत्री श्री चागला को हम बड़े सुलझे हुए विचारों का अत्यंत योग्य व्यक्ति समझते हैं। हमें उनकी नियत में भी कोई संदेह नहीं है। हमारा विश्वास है कि उच्च न्यायाधिकारी पद के अनुभव तथा आदर्श भारतीय नागरिक होने के कारण संविधान के प्रति उनकी निष्ठा असंदिग्ध है। किंतु

बंगलोर में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद की बैठक में गत मास भाषण देते हुए उन्होंने एक ऐसी बात कही है जिसे सुनकर लोगों में उनके विचारों के संबंध में भ्रम फैलने की आशंका है। अंग्रेजी समाचारपत्रों में उनके भाषण का जो सारांश आया है, उसके प्रसंगानुकूल उद्धरण ये हैं :

"But the country must fully realise that while encouragement was given for developing and enriching regional languages, they must at the same time have a unifying language—a link language which will combine us all."

"Mr. Chagla said that there was no use pretending that the language question hād been finally solved."

"He said that whether it was Hindi or English the necessity of having one language as a unifying force in India—in the universities, judiciary and other spheres—could not be overemphasized."

("देश को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि क्षेत्रीय भाषाओं के विकास और समृद्धि के लिए प्रोत्साहन देते रहने पर भी हमें एक 'लिंक'—कड़ी जोड़नेवाली—भाषा की आवश्यकता है जो हम सबको एक कर सके।"

"श्री चागला ने कहा कि इस झूठे दावे (या यह बहाना करने) से कोई लाभ नहीं है कि भाषा की समस्या अन्तिम रूप से हल (निर्णीत) हो गयी है।"

"उन्होंने कहा कि वह (लिंक-'कड़ी' मिलानेवाली भाषा) चाहे हिन्दी हो या अंग्रेजी हो, विश्वविद्यालयों, न्यायालयों तथा अन्य क्षेत्रों में भारत को एक सूत्र में बाँध सकनेवाली समर्थ भाषा की आवश्यकता पर जितना बल दिया जाय वह कम है।"

हम लोग यह समझते थे, और अब भी यही समझते हैं कि संविधान में इस प्रश्न का अंतिम रूप से निर्णय कर दिया गया है कि भारत को एकता के सूत्र में बाँधनेवाली भाषा कौन सी भाषा हो। संविधान के अनुच्छेद ३४३ में स्पष्ट रूप से लिखा है कि "संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी।" कुछ लोगों की असुविधा का ध्यान करके अभी अंग्रेजी का भी प्रयोग जारी रखा गया है किंतु संविधान और अंग्रेजी को अस्थायी रूप से सहभाषा बनानेवाले संसद का—दोनों ही का—यह मत, अभिप्राय और उद्देश्य रहा है कि कालान्तर में देवनागरी में लिखित हिंदी ही संघ की—देश की—भाषा हो। हम जानते हैं कि कुछ हिंदी-विरोधी और कुछ अंग्रेजीपरस्त इस निर्णय से असंतुष्ट हैं। वे संविधान, संसद और देश के इस निर्णय को उलट देना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि यहाँ सदा सर्वदा के लिए अंग्रेजी बनी रहे। ४५ करोड़ के इस विशाल देश में कुछ ऐसे लोगों का होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जिन लोगों पर कोई उत्तरदायित्व नहीं है, वे कुछ भी कहने को स्वतन्त्र हैं। किंतु जब भारत सरकार के एक वरिष्ठ और उत्तरदायी मन्त्री जिन्होंने संविधान के प्रति निष्ठा की शपथ ले रखी है, यह कहते हैं कि अभी यह निर्णय होना है कि भारत की 'लिंक' (कड़ी जोड़नेवाली) भाषा कौन सी भाषा हो तो आश्चर्य और संदेह होने लगता है। श्री चागला ने उपर्युक्त उद्धरण के तीसरे अंश में यह कहकर कि "वह 'लिंक' (कड़ी जोड़नेवाली) भाषा हिंदी हो या अंग्रेजी", यह स्पष्ट कर दिया है कि वे अभी भी समझते हैं कि उनके सामने हिंदी या अंग्रेजी में से किसीको देश की 'लिंक' भाषा स्वीकार करने का विकल्प है। जो व्यक्ति समझता है कि अभी यह तय नहीं हुआ कि हिंदी देश की राजभाषा अंतिम रूप से स्वीकृत हो गयी है और कालान्तर में (चाहे पचास वर्ष बाद ही क्यों न हो) वही इस देश के न्यायालयों, कचहरियों, सरकारी कार्यालयों, सचिवालयों, संसद और विधान सभाओं में चलेगी, वह—इस संशय को हृदय में रखते हुए—हिंदी की उन्नति और हिंदी का प्रचार एवम् प्रसार पूरे उत्साह से कैसे कर सकता है? दुर्भाग्य से हिंदी के विकास का कार्य भारत के शिक्षा सचिवालय को सौंपा गया है। बहुत से आलोचकों का कहना है कि पंद्रह वर्ष की दीर्घ अवधि में भी उसने हिन्दी के विकास का कोई ऐसा उल्लेखनीय कार्य नहीं किया जो सारवान या सार्थक कहा जा सके। इस बीच शिक्षा मंत्रालय अधिकतर ऐसे ही लोगों के अधिकार में रहा जिनकी हिंदी-आस्था गहरी नहीं थी। आज उसी शिक्षा-मंत्रालय की अध्यक्षता श्री चागला कर रहे हैं। उन्होंने तो यह मौलिक प्रश्न ही उठा दिया है कि अभी अंतिम रूप से यह निर्णय होने को है कि भारत की "लिंक" भाषा क्या हो! 'संशयात्मा विनश्यति।' हृदय में यह संशय रखते हुए श्री चागला को हिंदी को राजभाषा के रूप में विकसित करने में सफलता नहीं मिल सकती। हमें खेद है कि श्री चागला ने भाषा के प्रश्न पर फिर से विचार करने की बात उठायी है। यह सही है कि उन्होंने 'लिंक' भाषा शब्द का प्रयोग किया है, 'राजभाषा' शब्द का नहीं। किंतु जब यह निश्चित कर दिया गया है कि अंत में संघ का कार्य, पत्राचार, आदि 'राजभाषा' में ही होगा तो वही 'राजभाषा' 'लिंक' भाषा होगी। अतएव दोनों शब्दों के वास्तविक अर्थ में कोई अंतर नहीं है।

यदि समाचारपत्रों में दिये गये सारांश में श्री चागला के भाषण के प्रयोजन की ठीक तरह से अभिव्यक्ति न हुई हो, तो स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। यदि उनके भाषण के प्रकाशित सारांश से हमने उनके विचारों का गलत अर्थ लगाया हो, तो उनके भ्रमनिवारक स्पष्टीकरण से हमें ही नहीं प्रत्युत सारे देश के हिंदी-प्रेमियों को प्रसन्नता होगी।

टोकियो के ओलिम्पिक खेल और भारत—गत मास टोकियो में ओलिम्पिक खेलों का चतुर्थ वर्षीय अंतर्राष्ट्रीय समारोह सम्पन्न हो गया। इसमें ९४ राष्ट्रों ने भाग लिया था। सब मिलाकर प्रायः ८,००० खिलाड़ी आये थे। इन प्रतियोगिताओं से मालूम होता है कि संसार के किन

...रों में शारीरिक दक्षता पर बल दिया जा रहा है, और ...राष्ट्रों ने इस क्षेत्र में कितनी उन्नति की है। इन ...के परिणामों से राष्ट्रों की प्रतिष्ठा बढ़ती है। इनसे ...भी मालूम होता है कि शारीरिक उन्नति सर्वांगीण ...ट्रीय उन्नति का एक अंग है। जो राष्ट्र विज्ञान, विद्या, ...और सैनिक शक्ति में उन्नत हैं, वे शारीरिक दक्षता ...भी उतने ही उन्नत हैं। प्रत्येक खेल में प्रथम आनेवाले ...स्वर्णपदक, द्वितीय आने वाले को चाँदी का पदक और ...य आने वाले को काँसे का पदक मिलता है। इस ...य सैनिक शक्ति, विज्ञान, विद्या और उद्योग-धंधों में ...रीका और रूस सबसे आगे हैं। इन्हीं दो देशों ने इन ...लिम्पिक खेलों में सबसे अधिक सफलता भी प्राप्त की। ...रीका को ३६ और रूस को ३० स्वर्ण-पदक मिले। ...खेलों में सब मिलाकर एक सौ साठ से अधिक खेलों, ...यों आदि में प्रतियोगिताएँ होती हैं। कई छोटे-छोटे ...ों ने भी कई प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्थान प्राप्त ...ये।

इन खेलों का परिणाम इस तालिका में स्पष्ट किया ...ता है:—

देश	पदक		
	स्वर्ण	रौप्य	कांस्य
...रीका	३६	२६	२८
...स	३०	३१	३५
...पान	१६	५	८
...मनी	१०	२२	१८
...ली	१०	१०	७
...री	१०	७	५
...लैंड	७	६	१०
...लिया	६	२	१०
...स्लोवाकिया	५	६	३
...ण्ड	४	१२	२
...गारिया	३	५	२
...लैण्ड	३	०	२
...लैण्ड	३	०	२
...मानिया	२	४	६
...लैंड	२	४	४
...ों	२	३	१
...न	२	२	४
...मार्क	२	१	३
...स्लाविया	२	१	२
...जियम	२	०	१
...न	१	८	६
...डा	१	२	१
...रलैण्ड	१	२	१
...निया	१	०	०
...मा	१	०	०
...ड	१	०	०
...नियया	०	२	१

	पदक		
	स्वर्ण	रौप्य	कास्य
ट्रिनिडाड	०	१	२
टयुनीसिया	०	१	१
क्यूबा	०	१	०
अर्जेण्टीना	०	१	०
पाकिस्तान	०	१	०
फिलिपीन	०	१	०
ईरान	०	०	२
ब्राजिल	०	०	१
घाना	०	०	१
आयरलैण्ड	०	०	१
केनिया	०	०	१
मैक्सिको	०	०	१
नाइजीरिया	०	०	१
उरूगे	०	०	१

इस तालिका से भारत की स्थिति स्पष्ट हो जाती है। भारत का स्थान काफी नीचे—चौबीसवाँ या छब्बीसवाँ है, और वह ईथोपिया तथा बहामा का साथी है। यह स्थिति अत्यन्त असंतोषजनक है। खेलों और शारीरिक व्यायामों की ओर ध्यान देने की आवश्यकता का अनुभव सभी करते हैं, किंतु जिस देश में घी-दूध आदि पौष्टिक भोजन की बात करना तो दूर, पर्याप्त अन्न का भी अभाव हो, वहाँ राष्ट्रीय शारीरिक उन्नति की बात करना बेकार है। जैसा कि हम ऊपर कह आये है, राष्ट्र बहुमुखी उन्नति करता है। शारीरिक उन्नति सर्वांगीण उन्नति का अनिवार्य परिणाम है। फिर भी, यह मानना होगा कि इधर हमारे राष्ट्र में शारीरिक उन्नति की ओर ध्यान देना भी कम कर दिया गया है। पचास-साठ वर्ष पहिले हमारे देश में (कम से कम उत्तर भारत में) अखाड़ों का चलन था। कुश्ती और देशी व्यायाम, जिमनास्टिक आदि का काफी रिवाज था। किंतु बाद में देशी व्यायाम तो 'दकियानूसी' समझकर छोड़ दिये गये, और क्रिकेट, हाकी, फुटबाल, वालीबाल, बैडमिंटन और पिगपांग 'शिष्ट और सभ्य' खेल समझे जाने लगे। ये या तो समय-साध्य हैं, या अर्थ-साध्य। कुछ ही लोग इनमें भाग ले सकते हैं। इन दलीय खेलों (टीम गेम्स) का एक परिणाम यह हुआ कि वे जनता के मनोरंजन का साधन हो गये। जनता उनके देखने में उसी प्रकार रुचि लेने लगी जिस प्रकार सिनेमा में। उनके सफल खिलाड़ी अभिनेताओं के समान लोकप्रिय हो गये। किंतु इससे जनता को अपनी शारीरिक उन्नति करने की प्रेरणा नहीं मिली। आज खेलों में हमारी बौद्धिक रुचि ही रह गयी है। हमारे युवक क्रिकेट, हाकी, फुटबाल आदि में शास्त्रीय और बौद्धिक रुचि अवश्य लेने लगे हैं, किंतु स्कूलों और कालिजों में खेलों का ह्रास हो गया है। यह 'निरपेक्षता' का देश है। हमारे अध्यापक और प्राध्यापक 'खेल और व्यायाम-निरपेक्ष' हैं। विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों और विद्यालयों में सिवाय

उन लोगों के जिनकी जीविका ही खेलों या शारीरिक व्यायाम की शिक्षा में चलती है, ऐसे अध्यापकों या अधिकारियों का मिलना अत्यंत कठिन है जो इनमें वास्तविक रुचि लेते हों। जब तक यह सब नहीं सुधरता तब तक व्यायाम और खेलों में देश कोई उल्लेखनीय उन्नति नहीं कर सकता।

रूस के राजनीतिक मंच से श्री ख्रुश्चेव अन्तर्धान— पिछले महीने एक दिन सहसा यह समाचार आय. कि श्री ख्रुश्चेव अपने वार्द्धक्य तथा अस्वस्थता के कारण रूस के प्रधानमंत्री के, तथा कम्यूनिस्ट पार्टी के महामंत्री के पद से अलग हो गये! इस घटना का कोई पूर्वसंकेत नहीं मिला था, इसलिए इससे संसार आश्चर्यचकित रह गया। यद्यपि स्टालिन के समय से अब रूस की राजनीति में बहुत परिवर्तन हो गया है, फिर भी वहाँकी राजनीति स्पष्ट नहीं है और उसमें असाधारण रूप से गोपनीयता रहती है। बहुत सी घटनाओं का रहस्य एकाएक समझ में नहीं आता। आज भी स्पष्टरूप से नहीं कहा जा सकता कि श्री ख्रुश्चेव को अपने पद से क्यों अलग होना पड़ा। किंतु अब य. बात बहुत कुछ सही मालूम होती है कि वे स्वेच्छा से अलग नहीं हए। वे अलग किये गये हैं। उन्हें अलग करनेवाले उन्हींके सहयोगी थे। इनमें से कितनों ही को तो वे स्वयं महत्वपूर्ण पदों पर लाये थे। उनके अलग किये जाने के कई कारण मालूम होते हैं। इधर कई वर्षों से रूस में कृषि का उत्पादन असंतोषजनक रहा है। श्री ख्रुश्चेव ने कृषि का उत्पादन बढ़ाने के लिए कई नये प्रयोग और उपाय किये, किंतु वे सफल नहीं हुए। स्थिति इतनी बिगड़ गयी कि रूस को अपने प्रतिद्वंदी अमरीका से गेहँ मँगाना पड़ा। इससे साम्यवादी स्वाभिमान को धक्का लगना स्वाभाविक है। इसके बाद भी कृषि-उत्पादन ने कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं की। इसी प्रकार कई अन्य घरेलू मामलों में वे असफल रहे। किंतु उनकी चीन सम्बंधी नीति से साम्यवादी बहुत गबड़ा गये। अभी तक संसार के देशों की कम्यूनिस्ट पार्टियों में बड़ी एकता थी। वे सब एक स्वर से बोलती थीं। सभी 'संसार में क्रान्ति' कराने और क्रान्ति द्वारा संसार के देशों में कम्यूनिस्ट सरकारें स्थापित करने की बात करनी थी, किंतु ख्रुश्चेव ने देखा कि इस उपाय का अवलम्बन करने से भयंकर रक्तपात और विश्वयुद्ध अवश्यंभावी है। आज के अणुयुग में यदि युद्ध हुआ तो मानवता का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जायगा। इसलिए वे 'सहअस्तित्व' में विश्वास करने लगे, अर्थात एक देश दूसरे देशों पर अपनी शासन प्रणाली न थोपें और दोनों शान्तिपूर्वक रहें। पुराने साम्यवादी सिद्धान्त के कारण अमरीका और रूस में शीत युद्ध चल रहा था जिससे विश्वयुद्ध का खतरा बढ़ता जाता था। ख्रुश्चेव ने अमरीका से समझौता करने का प्रयत्न किया और शीत युद्ध में कमी हुई। किंतु चीन अब भी 'क्रान्ति द्वारा संसार को कम्यूनिस्ट बनाने' के पुराने सिद्धान्त पर अड़ा हुआ है। वह सहअस्तित्व में विश्वास नहीं करता। वह विश्वयुद्ध से नहीं घबड़ाता क्योंकि विश्वयुद्ध से सबसे अधिक संहार योरोप और अमरीका में होगा। यदि वे एक दूसरे को नष्ट कर दें तो साठ करोड़ आबादी का शक्तिशाली चीन संसार का एकमात्र शक्तिशाली राष्ट्र रह जायगा, और तब वह सारे संसार पर अपना प्रभुत्व सहज ही स्थापित कर सकेगा। इतना ही नहीं, वह अमरीका को अपना सबसे बड़ा शत्रु समझता है। ख्रुश्चेव उसी अमरीका से समझौता कर रहे थे। यह चीन के लिए असह्य था। अतएव चीन का सारा रोष ख्रुश्चेव पर केन्द्रित हो गया और उसने सारे साम्यवादी संसार में ख्रुश्चेव के विरुद्ध घनघोर प्रचार आरंभ कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक देश की कम्यूनिस्ट पार्टी में दो दल हो गये—एक रूस का समर्थक और दूसरा चीन का समर्थक। इस प्रकार कम्यूनिस्ट दल में, जो अपनी एकता के लिए प्रसिद्ध था, फूट पड़ गयी। रूस को इस बात का खतरा हो गया कि उसके पूर्वी योरोप के कम्यूनिस्ट अनुयायी भी उससे अलग न हो जायँ जैसा कि रूमानिया में हो रहा था। अतएव रूस के कम्यूनिस्ट नेताओं ने चीन से नये सिरे से समझौते की बातचीत करने के पूर्व ख्रुश्चेव का हटाना आवश्यक समझा, क्योंकि ख्रुश्चेव के रहते चीन के नेता, माओत्सुंग, से किसी प्रकार की बातचीत की आशा नहीं की जाती थी। अतएव अपनी गृहनीतियों तथा चीन से झगड़े के कारण उन्हें अपने पद से अलग होना पड़ा।

श्री ख्रुश्चेव के हट जाने से अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में एक बड़ी अनिश्चयता उत्पन्न हो गयी है। उन्होंने शीत युद्ध कम करने तथा पश्चिमी राष्ट्रों को निकट लाने का प्रयत्न कर संसार का तनाव बहुत कुछ कम कर दिया था। अणु अस्त्रों के परीक्षणों पर सीमित बंधन लगा कर निःशस्त्रीकरण का श्रीगणेश हो गया था। सहअस्तित्व के सिद्धान्त से संसार ने राहत की साँस ली थी। आशा है कि उनके उत्तराधिकारी उनकी अंतर्राष्ट्रीय नीति में कोई मौलिक परिवर्तन न करेंगे। इसीमें विश्व का कल्याण है।

श्री ख्रुश्चेव का नाम इतिहास में उन राजनीतिज्ञों के साथ लिया जायगा जिन्होंने मानव-कल्याण का प्रयत्न किया। भारत के प्रति उनकी जो उदारता और सहानुभूति पूर्ण नीति थी उसके लिए भारतवासी उनके सदैव आभारी रहेंगे। उनकी अवस्था सत्तर से अधिक थी, और वे शायद स्वयं अधिक दिनों अपने पद पर न रहते, किंतु जिस नाटकीय ढंग से उन्हें हटना पड़ा वह इस शती के कम्यूनिस्ट देशों में ही संभव है। "धरा कौ प्रभाव यहै 'तुलसी' जो फरा सो झरा, जो बरा सो बुताना।"



महालक्ष्मी

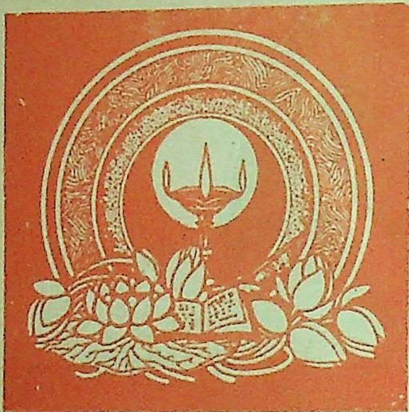
प्रो० कुँवर चन्द्रप्रकाशसिंह

प्रावृट् के
पंक और प्लावन को भेदकर,
विकसि तहो रहा है
पंकज शरद का,—
मोदित निशायें हैं, विनोदित हैं आशायें।

इसी शुभ्र पीठ पर
ज्योत्सनाधौत व्योम के
चंद्रातप की छाया में,
उतर रही हो तुम
पद्मानना, पद्मिनी, पद्मप्रिया,
पद्मदलनयना, गंधमाल्यमंडिता!

अंशुओं के अंशुक से
शोभित हैं अंग अंग,
उठती तरंग तरंग पर है,
हासकी, सुवास की, प्रकाश की,
तुष्टि और पुष्टि की, ऋद्धि और सिद्धि की।
पक्व स्वर्णशालियों के
आदिगन्त हरित प्रसार में
दीप्त है तुम्हारी दीप्ति;
सर, सरि, सिंधु में
बिंबित तुम्ही हो हे सुवर्णरजतस्रजा,
हे हिरण्यवर्णा!

गर्जित पयोद से
द्विरद दिशाओं के
बरसार हे हैं अभिषेक का
अमृतजल,





अभिनंदनोर्ध्व निज शुंडों स,
शशि के कलश का।

दयामयी, तेजोमयी, पूर्णकामा,
नित्य भक्तवत्सला,
देवजुष्टा, परम उदारशीला,
स्नेहस्नतपयोधरा परा जगदंबिका,
विलसो धरित्री के हृदय कमल पर!

दूर करो, दूर करो,
अखिल अमंगल जगत के,
शाप ताप क्षुधा के,
दरिद्रता की यातनायें।

जन जन की दुराधर्ष शक्ति बनो,
साम्य और सख्य की

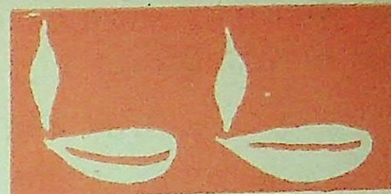
ऐसी दृढ़ निष्ठा बनो
जिससे प्रबुद्ध हो
विप्लव की आग वह,
जल कर क्षार हों
जिसमें आर्थिक वैषम्य सब
सामाजिक अन्याय,
सांस्कृतिक परवशता।

जागो हे अपराजिता राष्ट्रलक्ष्मी!
जन जन में, गृह गृह में
जनपदों में, प्रान्तों में,
सीमाओं पर सभी ओर,
खेतों खलिहानों में,
कल-कारखानों में, सैनिक अभियानों में,
कण कण में राष्ट्र के!





देश-विदेश में दीवाली



श्री विनोद "विभाकर"

आनन्द, उल्लास और ज्ञान के प्रतीक दीपों का त्योहार दीवाली भारत का एक प्रमुख राष्ट्रीय उत्सव है, जिसके आगमन पर हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक सारा देश दीपों के प्रकाश में जगमगा उठता है। वैसे तो इस त्योहार को मनाने के कई कारण बताए जाते हैं, लेकिन विशेष रूप से यह भगवान विष्णु की पत्नी लक्ष्मी की पूजा के पर्व के रूप में मनाया जाता है। पौराणिक आख्यानों के अनुसार लक्ष्मी दरिद्रा देवी की छोटी बहन है। दीवाली मनाने का मुख्य उद्देश्य दैन्य और दरिद्रता की प्रतीक इसी दरिद्रा देवी को भगाकर लक्ष्मी को स्थापित करना है।

भारत के विभिन्न भागों में ही नहीं, बल्कि विदेशों तक में यह पर्व वहाँकी भिन्न-भिन्न सांस्कृतिक एवं परम्परागत रीतियों के अनुसार मनाया जाता है।

गुजरात और महाराष्ट्र

गुजरात में दीवाली 'वाद्य-वरान' उत्सव के नाम से प्रसिद्ध है और इसका आरम्भ द्वादशी के दिन से होता है। नववर्ष का आरम्भ दीवाली से होने के कारण यहाँ यह पर्व विशेष उत्साह और उल्लास से मनाया जाता है। स्त्रियाँ रंगीन आटे और चावल से घर के आँगन को कलापूर्ण ढंग से सजाती हैं। सजावट में वाद्य विशेष रूप से बनाए जाते हैं।

धनतेरस के दिन यहाँ आभूषणों की पूजा और नरक-चतुर्दशी के दिन देवी, काल-भैरव और यमराज की पूजा की जाती है। दीवाली के दिन बच्चे घर-घर जाकर नमक बेचते हैं और पैसों की मिठाई खरीदते हैं। नमक खरीदना और रात्रि को आँखों में काजल लगाना शुभ समझा जाता है।

महाराष्ट्र में दीवाली यम-पूजा के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ के निवासी दीवाली के दिन घरों की सफाई और सजावट पर विशेष ध्यान देते हैं। स्त्रियाँ घरों के आँगन को कला-पूर्ण चित्रों से सजाती हैं, जिनको रंगोली कहा जाता है। रात्रि को घर का कोना-कोना दीपों के प्रकाश से जगमगा उठता है।

विष्णुप्रिया लक्ष्मी की पूजा की जाती है और रात भर जागरण कर उसकी बाट जोही जाती है। जूआ, नृत्य और संगीत की धूम रहती है। महाराष्ट्र के कुछ भागों में राजा बलि की मूर्ति बनाकर उसकी पूजा करने की भी प्रथा है।

बंगाल और बिहार

बंगाल में दिवाली के दिन लक्ष्मी पूजा के अतिरिक्त काली पूजा करने की प्रथा है। कहते हैं एक बार राक्षसों का संहार करने के उपरान्त महाकाली उत्तजित होकर प्राणी-मात्र का नाश करने पर उतारू हो गयी। उस समय भगवान् शंकर ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर महा-काली की क्रोधाग्नि शांत की थी। काली के संहारक रूप से मुक्ति पाने की खुशी में बंगाल में तभी से काली-पूजा करने और घर-घर दीप जलाने की प्रथा है।

दीपावली के दिन बंगाल की युवतियाँ छोटे-छोटे दीये जलाकर उन्हें नदी के प्रवाह में बहा देती हैं। जलते हुए दीये का जलधारा के साथ-साथ बहते जाना इस बात का सूचक समझा जाता है कि वर्ष सुख और शान्ति से बीतेगा।

बिहार में दीवाली मनाने की विचित्र ही प्रथा है। दीवाली की सुबह यहाँ स्त्रियाँ घर के सभी पुरुषों और बच्चों को खांड पर बिठाकर उबटन मलती हैं और स्नान कराती हैं। रात्रि को नृत्य-संगीत का कार्यक्रम होता है। नारियल और पान खाना शुभ समझा जाता है।

राजस्थान

राजस्थान में दीवाली पर बिल्ली को लक्ष्मी का प्रतीक समझा जाता है और उसकी खूब आवभगत की जाती है। बिल्ली के लिए तरह-तरह के पकवान बनाए जाते हैं और उसे पहले खिलाकर फिर परिवार के सदस्य स्वयं भोजन करते हैं। यदि दैवयोग से बिल्ली रसोईघर के सारे पदार्थ चट कर जावे तो यह समझा जाता है कि वर्ष भर

तक लक्ष्मी घर में निवास करेगी। व्यापारी लोग नये साल का खाता इसी दिन से शुरू करते हैं।

उत्तर प्रदेश

भगवान् राम की जन्मभूमि होने के कारण यहाँ रामकथा के अनुसार ही दीवाली मनायी जाती है। स्त्रियाँ घर की दीवारों पर बेल-बूटे और लक्ष्मी गणेश का चित्र बनाती हैं और रात्रि को उनकी खील-बताशों से पूजा की जाती है। रात्रि-जागरण करने की प्रथा है। नववर्ष का आरम्भ दीवाली के दिन से होने के कारण व्यापारी नया खाता बदलते हैं।

पंजाब

पंजाब में दीवाली राम के चौदह वर्ष बाद अयोध्या लौटने और गुरु हरगोविन्द की कारावास-मुक्ति की खुशी में मनायी जाती है। दीवाली के दिन अमृतसर के स्वर्ण-मन्दिर की रोशनी देखते ही बनती है। रात्रि को जुआ खेलना शुभ समझा जाता है।

भारत के अतिरिक्त यह पर्व विदेशों में भी अपनी-अपनी प्रथा के अनुसार मनाया जाता है।

चीन

चीन में दीपोत्सव तीन दिन तक राजकीय स्तर पर बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। हफ्तों पहले से तैयारियाँ शुरू हो जाती हैं। घरों की सफाई करके उन्हें कागज के फूलों से सजाया जाता है। राज्य भवनों और रास्तों में रंगीन रोशनी की जाती है। चीनी लोग तीन दिन तक अपने इष्ट देवता और मृत पितरों की पूजा करते हैं और भेंट चढ़ाकर मिन्नतें माँगते हैं। हमारे देश की तरह ही चीन के व्यापारी भी नववर्ष का आरम्भ दीवाली से मानते हैं और नये खाते बदलते हैं।

चीन में सफेद बल्ब जलाना अशुभ माना जाता है। इसलिए घरों में तेल के दिये जलाए जाते हैं। चीनी अपने घर के चौखटों पर लाल कागज की मनुष्य के आकार की दो मूर्तियाँ काटकर लगा देते हैं। ऐसा करने से उनका विश्वास है कि वर्ष भर तक कोई पैशाचिक बाधा नहीं आएगी।

जापान

जापान में दीवाली का पर्व सितम्बर मास में तीन दिन तक बड़े उत्साह और उल्लास से मनाया जाता है। वहाँके निवासी इन दिनों घरों में झाड़ नहीं लगाते। उनका विश्वास है कि ऐसा करने से घर आयी लक्ष्मी का अपमान होता है। सारे शहर में सफाई की जाती है और स्थान-स्थान पर चित्र और लालटेन व कंदीलों से रोशनी की जाती है। रात्रि को घरों के सब दरवाजे खोल दिये जाते हैं और नृत्य-संगीत का कार्यक्रम होता है। जापानियों का विश्वास है कि दीवाली मनाने से सुख, शान्ति एवं समृद्धि आती है, रोगों का नाश होता है और मृतक खुश होकर संपदा देते हैं। जापान में भी चीन की तरह सफेद 'बल्ब' जलाना अशुभ समझा जाता है।

नेपाल और थाइलैण्ड

पड़ोसी देश नेपाल में दीवाली का त्योहार हमारे देश की तरह ही पाँच दिन तक बड़ी घूमधाम से मनाया जाता है। यहाँ पर इन दिनों जानवरों की पूजा करने की प्रथा है। सफाई, सजावट और रोशनी खूब की जाती है। रोशनी करने के सम्बन्ध में यहाँके लोगों का विश्वास है कि जिस घर के आगे रोशनी नहीं रहती, वहाँ लक्ष्मी प्रवेश नहीं करतीं। आखिरी दिन यहाँ पर भी भारत की तरह भैया-दूज मनाई जाती है।

थाइलैण्ड में दीपोत्सव का पर्व विशेष धूमधाम से रामलीला से ठीक १५ दिन बाद राजकीय स्तर पर मनाया जाता है। रामलीला यहाँ पर अक्टूबर के महीने में होती है। यहाँके निवासी दीवाली पर घरों की सफाई करते हैं और तरह-तरह के पकवान बनाते हैं। यहाँ लक्ष्मी के स्वागत में घरों पर सुनहरे कलश रखते हैं और दीये जलाते हैं। मन्दिरों को विशेष रूप से सजाया जाता है और सारे शहर में रोशनी की जाती है। यहाँके निवासी दीवाली का पर्व विशेष रूप से भगवान-राम की पूजा-स्तुति के लिए मनाते हैं, लेकिन इस अवसर पर वे मन्दिरों में अपने इष्ट-देवता की भी पूजा करते हैं। मन्दिरों को विशेष रूप से सजाया जाता है। सामूहिक रूप से नृत्य और संगीत का कार्यक्रम होता है।

"मुद्राराक्षस" का काल-निर्धारण

श्री सूर्यकान्त बाली

विशाखदत्त द्वारा संस्कृत में रचित "मुद्राराक्षसम्" नाटक के विषय में भारतीय विद्वानों के प्रशंसा-पूर्ण विचार विदित हैं; अनेक स्व-नाम-धन्य पाश्चात्य आलोचकों ने इस रचना को "सम्पूर्ण संस्कृत नाट्य-साहित्य में अन्यतम" कहा है। नाटकीय तत्वों के कुशलतापूर्ण चित्रण एवं लोकप्रियता की दृष्टि से "मुद्राराक्षस" का स्थान कालिदास के "अभिज्ञान-शाकुन्तलम्" नाटक के बाद है—यह कहना निस्सन्देह विशाखदत्त की कृति का सही मूल्यांकन करना है। संस्कृत-साहित्य के इस महत्वपूर्ण नाटक की रचना कब हुई, इस बारे में अभी सकल आलोचक-वर्ग डांवांडोल है। यह वस्तुतः एक दुर्भाग्य का विषय है कि नाटक का रचना-काल न केवल अनिश्चित है, वरन् ईस्वी की सातवीं सदी से लेकर ग्यारहवीं सदी के बीच त्रिशंकु-वत् लटकाया जाता है। संस्कृत-साहित्य के इस कृति की रचना-काल-सम्बन्धी दिक्कत को दूर करने के लिए हम आज नयी विचार-प्रणाली को प्रस्तुत करते हैं। इस नाटक की अन्तरंग-बहिरंग परीक्षा कर चुकने के उपरान्त, तथा उस परीक्षा को तात्कालिक राजनीतिक, सामाजिक एवं संवत् संबंधी जानकारी से भरपूर बना हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि नाटक की रचना गुप्तवंशीय सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय के राज्यकाल में ईस्वी सन् ३६४ में हुई।

राजनीतिक परीक्षा

सर्वप्रथम हम अपने विचार नाटक में वर्णित राजनीतिक वातावरण पर केन्द्रित करते हैं। इस सम्बन्ध में हमारे लिए उपयोगी एक सूत्र नाटक के भरत-वाक्य में उल्लिखित है:

"म्लेच्छैरुद्वेज्यमाना भुजयुगमधुना पीवर राजमूर्तेः
स श्रीमद्बन्धुभृत्यः चिरमवतु महीं पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः।"

इस स्थल पर हमने राजा चन्द्रगुप्त का नाम लिखना उचित समझा है, वह वास्तव में एक अत्यन्त विवादास्पद विषय है। विभिन्न पाण्डुलिपियों में सम्राट् चन्द्रगुप्त के अतिरिक्त तीन अन्य नाम भी गिनाए गये हैं; वे हैं—अवन्तिवर्मा, दन्तिवर्मा एवं रन्तिवर्मा। रन्तिवर्मा का नाम तो यों ही समझिए कि किसी भी आलोचक ने उसे अपने अनुमान का आधार नहीं बनाया है। कतिपय माला-वार-पाण्डुलिपियों के आधार पर श्री रंगास्वामी सरस्वती ने यहाँ दन्तिवर्मा का पक्ष लिया है। श्री तैलंग महोदय की धारणा अवन्तिवर्मा के बारे में अधिक बलवती है; यह दूसरी बात है कि "मुद्राराक्षस" नाटक के स्वसम्पादित संस्करण में वे चन्द्रगुप्त का नाम ही रहने देते हैं। ढुण्ढि-राज ने बताया है कि नाटककार ने चन्द्रगुप्त का उल्लेख किया है और यह चन्द्रगुप्त गुप्तवंशी न होकर मौर्यवंश का संस्थापक चन्द्रगुप्त है। अनेक आलोचक इस भरतवाक्य में वर्णित नाम पर केवल दो मतों में ही मुख्यतः विभक्त हैं: एक मत गुप्तवंशीय सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय का पोषक है जबकि दूसरा मत कन्नौज-राज अवन्तिवर्मा मौखरि को सिद्ध करने पर कृतसंकल्प है।

हमारे विचार में यदि भरतवाक्य में वर्णित राजा के नाम के साथ-साथ हम उसके साथ लगाए गए विशेषण —"बन्धुभृत्य"—पर भी ध्यान दें तो वास्तविक राजा का नाम ढूँढ़ निकालने में अधिक सुविधा रहेगी। 'बन्धु-भृत्य' शब्द पर अब तक किसी आलोचक ने विचार करने का कष्ट नहीं किया है। विचारणीय प्रश्न यह है कि उपर्युक्त चार राजाओं में ऐसा कौन है जो 'बन्धुभृत्य'—भाई का सेवक—रहा हो और साथ-ही-साथ, जैसा कि भरतवाक्य में कहा गया है, जिसने म्लेच्छों को भी पराजित किया हो। स्पष्टतः हमारा ध्यान अपने उस महान इतिहास-पुरुष गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त द्वितीय की ओर जाता है जिसने अपने बड़े भाई रामगुप्त के राज्यकाल में हूणों को पराजित किया एवं हूणपति मिहिरकुल की हत्या की।

इस प्रसंग में गुप्त-वंश सम्बन्धी ऐतिहासिक जानकारी अधिक सहायक सिद्ध हो सकती है। गुप्त-वंश संस्थापक चन्द्रगुप्त प्रथम के सात वर्ष तक सिंहासनासीन रहने के बाद उसका यशस्वी पुत्र समुद्रगुप्त राज्यासन पर अभि-षिक्त हुआ। समुद्रगुप्त ने पचास वर्ष तक प्रतापपूर्ण राज्य किया तथा इतिहास में वह अश्वमेध-कर्ता के रूप में प्रशस्त हुआ। उसके अत्यन्त कायर पुत्र रामदास के राज्यकाल में—जो कुछ महीने ही चल पाया—मिहिरकुल ने भार-तीय सीमाओं का धृष्टतापूर्ण उल्लंघन किया। कायर रामगुप्त ने युद्ध टालने के प्रयत्न में मिहिरकुल से अप-मानपूर्ण-संधि कर ली तथा उसे अपनी पत्नी ध्रुवस्वामिनी

देने का वायदा किया। इस अपमान से ध्रुवस्वामिनी का सतीत्व जाग उठा और उसने रामगुप्त के छोटे भाई——अपने देवर——चन्द्रगुप्त से रक्षा की याचना की। इस प्रार्थना के बाद चन्द्रगुप्त ध्रुवस्वामिनी का वेष धारण कर मिहिरकुल के शिविर में गया और उसने वहीं हूण-पति का काम तमाम कर दिया। वापिस लौटकर उसने रामगुप्त की भी हत्या कर दी तथा ध्रुवस्वामिनी से विवाह कर स्वयं भारत-सम्राट् बन गया। अनेक प्रमाण इस तथ्य की पुष्टि करते हैं।[1]

संक्षेप में भरतवाक्य इस कालविशेष की ओर इंगित करता है जब चन्द्रगुप्त अभी तक अपने बड़े भाई रामगुप्त की 'सेवा' में था और जबकि रामगुप्त की अस्तंगम लोकप्रियता के कारण चन्द्रगुप्त के राजा बनने के पूरे अवसर थे। नाटक की रचना इसी सम्राट् परिवर्तन के व्यवधान-काल में हुई। इस घटनाचक्र का साहित्यिक वर्णन विशाखदत्त के ही एक अन्य सद्यः-उपलब्ध नाटक "देवी-चन्द्रगुप्तम्" में यथाक्रम दिया गया है। इस प्रकार श्री अग्रवाल[2] जी के इस संशय का भी समाधान हो जाता है कि चन्द्रगुप्त के राज्यकाल में हूणों का आक्रमण नहीं हुआ। वस्तुतः हूणों का समूलोन्मूलन कर चुकने के बाद ही चन्द्र-गुप्त राजा बन सका।

ज्योतिष-परीक्षा

इसके पहले कि हम चन्द्रगुप्त के राज्यकाल का विवेचन करें, हम नाटक में उपलब्ध ज्योतिषसम्बन्धी तथ्यों पर प्रकाश डालना उचित समझते हैं। इस सम्बन्ध में दो बातें विचारणीय हैं——(१) शुक्ल पक्ष वर्णन; (२) ग्रहण वर्णन। वस्तुतः ये दोनों वर्णन नाटक के कालनिर्धारण में एक दूसरे के पूरक सिद्ध होते हैं।

नाटक में अनेक स्थानों पर शुक्लपक्ष का वर्णन है। नाटक के प्रारम्भ में ही——अर्थात् प्रस्तावना के उपरान्त प्रथम अंक के आठवें श्लोक में ही हम चाणक्य के मुख से एक-कला-संयुत चन्द्रमा का मधुर वर्णन सुनते हैं:

"अस्वादितद्विरदशोणितशोणशोभां
संध्यारुणामिव कलां शशलांछनस्य।"

ज्यों ज्यों नाटक की प्रगति होती है त्यों-त्यों चन्द्रमा भी अधिकाधिक कलावान् होता जाता है। परिणामस्वरूप हम कभी एकादशी तो कभी पूर्णिमा का वर्णन पाते हैं।[1] यह पता लगाने के लिए कि यह शुक्ल पक्ष कौन से मास-विशेष का प्रतिनिधित्व कर रहा है, हम नाटक में हरि-प्रबोधिनी[2] एकादशी का वर्णन पाते हैं; और हरिप्रबोधिनी एकादशी के केवल कार्तिकमास में संभव होने के कारण यह निष्कर्ष निकालना न्यायपूर्ण है कि नाटक में कार्तिक-शुक्लपक्ष का वर्णन है।

दूसरे शब्दों में, चूँकि सम्पूर्ण नाटक की रचना शुक्ल-पक्ष के दौरान हुई, और चूँकि प्रथम अंक के प्रारम्भ में ही प्रथमा तिथि के चन्द्रमा का वर्णन है, अतः यह घोषणा करना विवेकपूर्ण है कि नाटक की रचना——अर्थात् प्रस्तावना का निर्माणारम्भ——शुक्लपक्ष के ठीक प्रारम्भ में अथवा उससे कुछ पहले, अमावस्या के दिन, हुआ।

अब हम प्रस्तावना में वर्णित 'ग्रहण' पर दृष्टिपात करते हैं:——

"क्रूरग्रहः सकेतुश्चन्द्रमसं पूर्णमण्डलमिदानीम्।
अभिभवितुमिच्छति बलात् रक्षत्वेनं तु बुधयोगः॥"

इस श्लोक में दो मिथ्या-कल्पनाएँ हैं——एक यह कि किसी भी ग्रहण का बुधयोग से कतई सम्बन्ध नहीं है: इतिहास

१-(क) "पत्युः क्लीवजनोचितेन यदि तेनानेन पुंसः कृतः।"
——विशाखदत्त कृत "देवीचन्द्रगुप्तम्।"

(ख) "अरिपुरे च परकलत्रकामुकं कामिनीवेष-श्चन्द्रगुप्तः शकपतिमशातयत्।"
——बाणभट्टकृत "हर्षचरित"।

(ग) "स्त्रीवेषनिन्दत्तश्चन्द्रगुप्तः शत्रोः स्कंधावार-मलिपुरं शकपतिवधायागमत्।"
——भोजकृत शृंगारप्रकाश।

(घ) "हत्वा भ्रातरमेव राज्यमहरत् देवीं च दीनस्ततो——लक्षं कोटिमलेखयत् किल कलौ दाता स गुप्तान्वयः।"
——एपिग्राफिया इंदिका, १८वां भाग, पृष्ठ सं० २४८।

२——देखो——"संस्कृत साहित्य का इतिहास": हंसराज अग्रवाल पृ० २९३।

---

१ "शारदनिशासमुद्गतेनेव पूर्णिमाचन्द्रेण चन्द्रश्रिया-ऽधिकं नन्दन्ति प्रकृतयः।"
"अहो शरत्संभृतविभूतीनां दिशामतिरमणीयता।"
"'अस्ताभिखे सूरे उदिते सम्पूर्णमण्डले चन्द्रे।"

२ नागांकं मोक्तुमिच्छोः शयनमुरुफला चक्रवालोप-धानम्।
निद्राच्छेदाभिताम्रा चिरमवतु हरेर्दृष्टिरेकाकरा वा॥"
मुद्राराक्षसम् : अंक ३: श्लोक सं० २१।

उदाहरणों का पुलिन्दा तैयार किया जा सकता है बुधयोग के होने एवं न होने पर 'ग्रहण' लगा—बुध ई प्रभाव नहीं डाला। इस श्लोक में दूसरी अशुद्धि ग्रहण के सम्बन्ध में है। हम ऊपर कह चुके हैं कि का रचनारम्भ अमावस्या अथवा शुक्लपक्ष के क्षणों में हुआ—वह समय जब चन्द्रमा सम्पूर्ण नहीं ा। असम्पूर्ण—चन्द्रमा के ग्रहण की कल्पना ज्योतिष-त्र के नियमों के प्रतिकूल है—और विशाखदत्त इस कूलता को काव्यबद्ध करने की गलती कर गये हैं। सूत्रधार स्वयं भी चन्द्रग्रहण की सम्भावना से इन्कार ता है।[1]

इस अवस्था में दो विचार सामने आते हैं—क्या यह क प्रक्षिप्त है? क्या श्लोक का मूलरूप बिगाड़ दिया ा है? यदि स्वीकारात्मक रुख अपनाते हुए हम यह कि श्लोक प्रसिद्ध नहीं है और मान लें इसका मूलरूप ाड़ दिया गया है, तब अमावस्या के दिन सूर्यग्रहण कल्पना कर हम इसे इस रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं :

"क्रूरग्रहं सकेतुं चन्द्रः सम्पूर्णमण्डलमिदानीम्।
अभिभवितुमिच्छति बलात् रक्षत्वेनं तु बुधयोगः॥"

प्रकार नाटक की रचना कार्तिकी अमावस्या में प्रादु- सूर्यग्रहण के दिन मान लेने से न केवल हमारी ज्योतिष-म्बन्धी कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं, अपितु इससे नाटक रचना-काल-निर्धारण में हमें महती सहायता प्राप्त ती है। जहाँ तक इस नवीन श्लोक-रूप के नाटक-कथा-म्बन्धी श्लिष्ट अर्थ का प्रश्न है, उस पर अलग से विचार किया जा सकता है।

तत्परीक्षा

अब तक हम दो निष्कर्ष प्राप्त कर चुके हैं :—

) नाटक की रचना चन्द्रगुप्त द्वितीय के गुप्तवंशीय सिंहासन पर बैठने के चन्द सप्ताह पहले हुई;

) नाटक की रचना कार्तिकी अमावस्या के दिन सूर्य-ग्रहण के समय प्रारम्भ हुई।

अब हम निर्णायक पक्ष पर विचार करते हैं। नाटक की रचना किस सदी में हुई, इस पर अनेक मत हैं[1], पर हमारे विचार चन्द्रगुप्त का समय निर्धारित हो जाने के साथ ही साथ नाटक का रचना-काल शत-प्रतिशत रूप से निश्चित हो जाएगा।

गुप्तवंशीय सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय के राज्य-काल के सम्बन्ध में हमारा मत परम्परागत मत से थोड़ा भिन्न है। परम्परागत मत चन्द्रगुप्त की राज्यारोहण तिथि ३७६ ईस्वी निश्चित करता है, पर कुछ निश्चित तथ्यों एवं नवीन अनुसंधान के बल पर हम कह सकते हैं कि चन्द्रगुप्त का राज्यारोहण काल ३७६ ई० नहीं, बल्कि ३६४ ईस्वी है।

सबसे पहले हमारा ध्यान आईने-अकबरी के उस कथन की ओर जाता है जिसमें यह सूचना मिलती है कि संवत्प्रवर्तक विक्रमादित्य एवं गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त द्वितीय के मध्य ४२२ वर्ष का अन्तर है।[2] दूसरे शब्दों में जब चन्द्रगुप्त द्वितीय राजसिंहासन पर अभिषिक्त हुआ तब विक्रम संवत् ४२२ था। यह तिथि हमारे निर्णय के पूर्णतया अनुकूल है : वि० सं० ४२२=ई० सं० ४२२–५८=३६४।

अबूरेहां अल्बेरूनी ने अपनी भारत-यात्रा के वर्णन में यह स्पष्ट कहा है कि गुप्त संवत् (चन्द्रगुप्त प्रथम का राज्यारोहण संवत्) शकसंवत् के २४१ वर्षों बाद चला। अल्बेरूनी के इस कथन का महत्व इसलिए बढ़ गया है क्योंकि वर्तमान दशाब्दी में शकसंवत् के विषय में किए गये नये अनुसंधानों[1] से पता चला है कि शकसंवत् एक नहीं, दो थे। एक शकसंवत् साहसांक बने (जिसे द्रौपदीगुप्त, विक्रमा-

---

१—"कृतश्रमोऽस्मि चतुःषष्टयंगे ज्योतिश्शास्त्रे; प्रवर्त्यतां ब्राह्मणानुद्दिश्य पाकः। चन्द्रोपरागं प्रति केनापि विप्रलब्धासि।"—(प्रस्तावना।)

१—कीथ : ९वीं सदी ई० मानते हैं; डे और दासगुप्ता : ९वीं सदी ई०,
मैक्डॉनल : ८वीं सदी ई०; तैलंग : ६वीं सदी ई०;
विल्सन : ११वीं सदी ई०। इत्यादि।

२—भगवद्दत्त : भारतवर्ष का बृहद् इतिहास : प्रथम भाग : पृष्ठ १६७।

१—(क) "कल्हणकृत कालगणना" : नागरीप्रचारिणी पत्रिका : १९६३ वैशाख-श्रावण अंक।

(ख) सुनिए—१६ जून १९६४ को आल इण्डिया रेडियो से प्रसारित एक महत्त्वपूर्ण वार्ता : "शकसंवत् ही क्यों?"

दित्य और शकान्तक भी कहते हैं) ७८ ई० में चलाया और दूसरा संवत् उसीके भाई विक्रमांक ने (जिसे शूद्रक, अग्निमित्र और विक्रमशील भी कहते हैं) बारह साल पहले अर्थात् ६६ ई० में चलाया। दिलचस्प बात यह है कि जहाँ उत्तर में विक्रमांक शकसंवत् (६६ ई०) प्रचलित था वहाँ दक्षिण में साहसांक शकसंवत् (७८ ई०) प्रचलित था। उत्तरभारतीय अनेक आक्रमणों से आहत हो-होकर अपना संवत् भूल गये, जबकि आक्रमणों से निर्लिप्त हमारे दाक्षिणात्य बन्धु संवत् के प्रचलन के बारे में सचेत रहे। परिणाम यह हुआ कि साहसांक शकसंवत् (७८ ई०) जीवित रहा और वर्तमान भारत की राष्ट्रीय सरकार ने इसीको राष्ट्रीय संवत् मान लिया जो आजकल १९६४—७८=१८८६ है। यदि हम यह मान लें कि अल्बेरूनी का संकेत ६६ ई० वाले शकसंवत् की ओर है तो चन्द्रगुप्त द्वितीय का राज्याभिषेक काल २४१+६६ (ई० सन् के वर्ष)+५७ (चन्द्रगुप्त प्रथम और समुद्रगुप्त का सम्मिलित राज्य काल)=३६४ ई० होगा; दूसरी ओर अगर यह मान लिया जाए कि यह संकेत ७८ ई० वाले शकसंवत् की ओर है तो यह समय २४१+७८+५७=३७६ ई० होगा।

हमारे विचार में हमें यह मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि अल्बेरूनी का संकेत ६६ ई० में प्रारम्भ होने वाले शकसंवत् की ओर है। इसका कारण यह है कि ऐसा मान लेने से अल्बेरूनी हमें जिस निष्कर्ष पर (३६४ ई०) पहुँचाता है, उस साल में घटित एक सूर्यग्रहण से हमारा सिद्धान्त पूर्णरूपेण सुप्रतिपादित हो जाता है। विक्रम संवत् की पाँचवीं सदी में इन वर्षों में सूर्यग्रहण पड़े: ४०४, ४२२, ४४०, ४५८, ४७६ और ४९४। यहाँ पर ४२२ विक्रमी संवत् अर्थात् ४२२-५८=३६४ ई० सन् हमारे पक्ष—सूर्यग्रहण वर्ष—को पुष्ट करता है। यदि हम यह मान लें कि अल्बेरूनी का संकेत ७८ ई० में प्रारम्भ हुए शक संवत् की ओर है तो हमें ३७६ ई० में सूर्यग्रहण की सुविधा नहीं मिलेगी और इस समस्या के लिए कोई असंभाव्य समाधान खोजना पड़ेगा।

निष्कर्ष रूप में—

(१) कार्त्तिक सूर्यग्रहण,

(२) आईने-अकबरी का तिथिसिद्धान्त और

(३) शकसंवतों के बारे में नूतन अनुसंधान—ये तीनों तथ्य हमें एक ही सर्वसिद्ध तथ्य की ओर अग्रसर करते हैं कि राजा चन्द्रगुप्त द्वितीय का राज्याभिषेक ३६४ ईस्वी में हुआ और इसी साल विशाखदत्त की महान् कृति "मुद्राराक्षस" की रचना हुई।

ओ मिट्टी के दीपको!

डा० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'

स्वतंत्रता की सुनहरी सिलवटों के बिम्ब
डूबते जा रहे हैं
भ्रष्टाचार की अमा के तल-हीन सिन्धु में
और उस पार कहीं दूर
मानव की जीवन-चेतना का चाँद
सोए हुए ज्वारों के वियोग में
समय की शिलाओं पर
सिर पटक कर दम तोड़ रहा है!

कैसे आएगा सूर्योदय
नया सूर्योदय
जो सिन्धु!
तुम धरती से उठ कर
आकाश तक छा गए हो!
नक्षत्र बुझते जा रहे हैं
जुगनुओं ने
बरसात का झंडा उठाया है!

सभी रास्तों
और
उनके मोड़ों पर
भयंकर कर्दम फैल गया है।
और
अँधेरा प्रकाश को निगल रहा है।

ओ मिट्टी के दीपको!
यदि साहस हो,
धरती की चेतना हो,
जीवन-मूल्यों के विनाश की चिन्ता हो,
तो उठो
ऐसी लौ बनो
कि आज की यह अमावस्या
फिर कभी धरती पर न आए।

उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध का एक हिन्दी समाचार पत्र

(जगत प्रकासादरस)

प्रा० गोविन्दनाथ राजगुरु एम० ए०, पी-एच० डी०

...की खान ने "मुतखबत-अल-लुबाब" में औरंगजेब-कालीन समाचार-पत्र-प्रणाली का विवरण दिया है। ...के अनुसार मुगल सेना के साधारण से साधारण ...ही को भी अखबार दिये जाते थे। खान के अनुसार ...गजेब समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता का समर्थक था।[1]

डा० भटनागर ने भी मुगलकालीन हस्तलिखित ...चार-पत्रों (१६६० ई०) के एक संकलन की सूचना ...है। इस संकलन में, डा० भटनागर के अनुसार, ...तिक महत्त्व के अनेक समाचार दिये गये हैं। उन्होंने ...भी लिखा है कि राजपूत, सिक्ख और मराठा दरबारों ...ओर से प्रत्येक राजनैतिक केन्द्र पर संवाददाता ...युक्त थे।[2]

...प्रेस आदि आधुनिक सुविधाओं के अभाव में इन ...चार-पत्रों का प्रसार एवम् इनका समाचार सम्बन्धी ...याम भी बहुत सीमित रहा होगा। परन्तु समाचार-...त्रों का अस्तित्व उस युग में था, यह तथ्य इन हस्तलिखित ...चार-पत्रों से सिद्ध हो जाता है।

अठारवीं शती के प्रारंभिक दशकों में ही भारतीय ...षाओं के समाचार-पत्रों का इतिहास आरंभ होता है। ...१७ में कलकत्ता से बंगला के दो पत्र प्रकाशित हुए। ...२० तक देशी पत्रों की बाढ़ सी आ गयी।

राजा राममोहन राय ने संभवतः फारसी का पहला ...त्र 'मीरात-उल-अखबार' संपादित (?) प्रकाशित किया। ...नके 'बंगदूत' में फारसी के साथ साथ हिंदी और बँगला ...षा में भी समाचार रहते थे।

राजा राममोहन राय के फारसी पत्रों से प्रेरणा पाकर ...० हरिहर दत्त ने 'जामे-जहानुमाँ' नामक फारसी पत्र सन् ...२२ में निकाला। पं० अम्बिका प्रसाद के अनुसार इस ...रसी पत्र के प्रारंभिक अंक 'उर्दू' में निकले।

'जामे जहानुमाँ' के सम्पादक मुंशी सदासुख थे। इनके सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं है।

जो भी हो, 'जामे जहानुमाँ' उर्दू का प्रथम 'पत्र' माना जाता है, और फारसी पत्रों में भी इसकी गणना बड़े गौरव से की जाती है। 'विज्ञान-भवन' में एक पत्र प्रदर्शनी के अवसर पर इसकी एक प्रति प्रदर्शित की गयी थी।

'जामे जहानुमाँ' की कितनी प्रतियाँ आज तक मिली हैं, इसका ठीक ठीक पता नहीं चलता। परन्तु 'जगत्-प्रकासादरस' नाम से इस फारसी पत्र के कुछ अंकों का हिन्दी अनुवाद पंजाब में मिला है। समाचार-पत्रों के अनुवाद के साथ-साथ 'जामे-जहाँनुमा' शब्द का अनुवाद भी कर दिया गया है।

इस सूत्र से भारत के प्रारंभिक समाचार-पत्रों के सम्बन्ध में कुछ और ज्ञान-वृद्धि हो सकती है।

'जगत्-प्रकासादरस' के ये चार भाग ७७१ क्रमांक पर सैंट्रल पबलिक लाइब्रेरी, पटिआला में सुरक्षित हैं :—

भाग	अंक संख्या	तिथि विवरण	
१	३३७	७-१-१८२९	से
		२६-१-१८३१	तक
२	३७७	२-२-१८३१	से
		१५-६-१८३१	तक
३	२७८	२-११-१८३१	से
		२३-५-१८३२	तक
४	३२५	६-६-१८३२	से
		२६-१२-१८३२	तक
कुल पत्र	१३१७		

६ × १० इंच आकार के सहस्राधिक अंकों की यह सामग्री केवल आकार की दृष्टि से ही नहीं, अपितु तत्कालीन भारत की राजनैतिक और सामाजिक स्थिति का एक रोचक और विश्वसनीय विवरण देने के कारण भी अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण है।

भारत के अतिरिक्त विदेशी विप्लवों, युद्धों और कुछ महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के सम्बन्ध में मनोरंजक समाचार यहाँ संकलित हैं। वस्तुतः इन चारों भागों में १-८-१९२९

(१) विवरण के लिए
जर्नलिज्म इन माडर्न इंडिया :
दी वर्नाक्यूलर न्यूज पेपर्स
श्री शिवरमन पृष्ठ १९।

(२) राइज ऐंड ग्रोथ आफ दी हिंदी जर्नलिज्म
डा० रामरत्न भटनागर पृ० ६

से लेकर १६–१२–१८३२ तक लगभग चार वर्षों का भारतीय तथा थोड़ा बहुत अंतर्राष्ट्रीय इतिहास भी बिखरा पड़ा है।

यह समस्त सामग्री गुरुमुखी में है, तथा पंजाब की प्राचीन परम्परा के अनुसार इसकी भाषा विशुद्ध खड़ी बोली है। इन दो तथ्यों से हिन्दी भाषा तथा हिन्दी के समाचार पत्रों के इतिहास में एक नव-अध्याय जुड़ सकने की पूरी संभावना है।

भाषा—'जगत् प्रकासादरस' की भाषा पर फारसी का प्रभाव बहुत व्यापक रूप से पड़ा है। संभवतः उस समय यह प्रभाव अनिवार्य ही था। परन्तु इससे 'जगत् प्रकासादरस' की सुबोधता एवम् सरलता में कोई अन्तर नहीं पड़ा। उसमें बहुत ही चलती हुई तथा प्रवाहपूर्ण भाषा प्रयुक्त हुई है।

पंजाबी के शब्द तथा मुहावरे स्थान स्थान पर प्रयुक्त किये गये हैं। ऐसा जान पड़ता है कि लेखक या अनुवादक पंजाबी से पूर्वतः प्रभावित है। भाषा का कलेवर तथा साज-सज्जा खड़ीबोली की है। परन्तु इस कलेवर में प्राण संचार करनेवाली शक्ति पंजाबी है।

जगत प्रकासादरस : आंतरिक क्रम-विन्यास

शीर्षक रूप से मूल फारसी अखबार का पूरा विवरण तथा अखबार के गतांक से पूर्वापर सम्बन्ध सर्वत्र दिखाया गया है। साधारणतया शीर्षक के अवतरण इस प्रकार रहते हैं :—

"इषवार पिछला जगत प्रकासादरस संची १ लंबर गुरमुषी २ लंबर अंग्रेजी ३४३ सातवीं महीना जनवरी १८२९ अठारासौ उणतीह ईसवी बुधवार"

प्रत्येक 'संची' के हाशिये पर अनुवाद सम्बन्धी यह सूचना दी गई है :—

"पटिआले बीच असली छापे की फारसी "जामजहाँ-नुमा" कोलू टोले के छपे हूए से यह गुरमुषी भाषा करी"

'जगत् प्रकासादरस' से कुछ रोचक समाचार सम्बन्धी अवतरण नीचे दिए जाते हैं :—

I "षबर गोरनर जनरल बहादुर की।

पिछले सतवाडे बीच जुमें के दिन गोरनर साहिब षुसी की गाह सिकार वासते मुहमदाबाद के गिरदे[1] मालदह की तरफ सवार हो गए हैं। पंधरा दिन के अरसे में हट आवेंगे।

षबर रूस की। कारासूकी छावनी के मुकाम से जो चौबीसवीं २४ जून के लिषे इषवारी कागज आए तिस करके यह षबर मालूम हुई कि षाकान (पातिसाह-हाशिया) रूस ने आप वरीलाफ जो रूस की अमलदारी बीच किला है—तिसका घेरा कीआ था। तुरक अपनी पार वसाती तलक बहुत सारा जंग जुध करके मुकाबला करते भए।

ओड़क[1] को रूस की फौज कीता[2] बनालिआए। किले की सारी तोपां समेत अरु जंगी समान संयुक्त रूस की फौज के हवाले कीआ।

"तारीष १ दसंबर सन् १८३०"

षबर भूंचाल की। कलकत्ते की षबर मधे"। "इषबार की रू से यह परेसान षबर इस तौर जाहिर हूई कि इगंलसतान वगैरा फरंग के मुलक की तरफ जून के महीने के अन्त में एक भूंचाल ऐसे जोर अरु सषती साथ उस धरती में आइआ कि बाराँ सहर अछे बसते हूए अरु बहुत करके बड़ी २ इमारतें बुलंद अरू मकान मजबूत अरु पाइदार..........बेसुमार ही बरबाद हो गए। सच है ऐसा भूंचाल किसी ने सुणा भी नहीं तो देखणे की किआ बात है। ....दिवालें ऐसी तराँ गिरीं कि जैसे बालू की भीत डिगती है[3]। अरू एक असचरज होर हूआ कि जिस वषत इह भूंचाल का उपद्रव था उस वषत उपर से उलों[4] की बरषा और साथ होती गई और हड़[5] आइआ।

पाणी की सरसाई से बहुत सारे मकान अछे अछे आला और अदना के नास हो गए। नुकसान और घाटा जानों का भी बहुत सारा हूआ। कुछ लिषणें में नहीं आवता। अटकल से पाँच लाष से दस लाष तलक आदमी के प्राण गए हैं।

अलजीरस की षबर

"जाहिर होवे जो पहिले इससे लिषा गइआ है कि

---

(१) गिर्द, तरफ

(१) अंत में (पंजाबी) (२) कृत (सं०) 7 कित्त 7 कित्ता (पंजाबी) काम। वस्तुतः 'कित्ता' को खड़ी बोली में 'कीता' बनाया गया है। (३.) डिगना—गिरना (पं०)। (४) ओले (५) हड़—बाढ़। (पं०)।

जीरस के हाकिम ने फरांनस की फौज के सरदार को कत फरांनस की फौज से हार गया यह कीहश्रा था मैं अपने कुटुम्ब अरू सनबंधीउ समेत अर उस धन जो केवल मेरी निज औकात गुजारी वासते अरू ही है रूस की तरफ जाइकर तहाँ रहाँगा.......
रांनस की फौज के सेनापति ने यह बात मनजूर करी।

.... उहाँ के हाकिम को इह भरोसा नहीं कि फरांनस के लोक अपने काबू में मुलक करने के पीछे रियायत मुरव्वत करेंगे।

बलकन हैरानी षराबी का डर रषता था। इस बात बहुत सारा षुसी और अहसानमंद हूआ। अरु इसके हाकिमी के वषत जो फिकर चिन्ता रषता था से सुषाला[1] और बेफिकर हूआ। ....
चार साइत के अरसे में जो दस घड़ी की मुदत है सो अपने काबू में कर लीआ। जो पहिले बहुत बारी बड़ी फौजें मुकाबले करके भी उस जागा प्रबल नहीं थी। इस वासते उहाँ का हाकिम अपनी षातर जमाँ था इस बात से कि मेरे को कौन जीत सकता है। बात उसे सुपने बीच भी षिआल में नहीं थी कि कोई पीछे सारे मुलक हमारे हवाले करेगा। हासल यह सारा माल असबाब नगद जिनस हमने अपने काबू में आ। दस करोड़ ....रूपैआ जो रोक[2] जपत[3] आ था तिस बीच ते डेढ करोड़ रुपैआ फरानस को ना कीआ।..........इस करके एता षजाना अरू बाव हाथ लगा।

.....तिनको (अलजीरस की फौज के आदमीऊं को) हमने दुमाहे की तलब दीअ है। जो कि इनाँ को रांनस की फते के पीछे अपने तई ओषाउ[4] और रंज पहुँचने का डर था। हमारी तरफ से जो ऐसी मिहर-नीआँ हूई इसते बहुत ही राजी हूए। इनके सिवा और क भी बहुत राजी हैं।

.....सो सब बातें छोड़कर षेती वगैरा करने को जो का कदीमी बिउहार था तियार हुए हैं। नाज वगैरा स माँस वाँस लाकर लसकर बीच बेचते हैं।

(१) सुखी (पंजाबी)
(२) रोक (नकद) रोकड़, रोकड़ी। (३) "जब्त" का हिन्दी रूपान्तर
(४) औषा, औषियाई, कठिन। कठिनता (पं०)

...... दसवीं तारीष जौलाई बीच अलजीरस का हाकिम अपने कुटुंब अरु सनबंधीउ समेत फराँनस के जंगी जहाज उपर चढ़कर अटीलाए (इटली?) को रवाना हूआ।[1]

३—तारीष ८ अठवीं जून

षबर कौंसिल की। चौबीसवीं रजमट के सिपाही गुरदिआल सिंघ नाम ने डेलहौजी सिपहसालार लाड साहिब के हजूर अनसेअन हैडन साहिब के ऊपर की कि पचवजवीं[2] रजमट में दाषल है इस मजमून की नालस करी कि बेसबब हैडन साहिब बंदे को मारकूट करता रहता है। लाड साहिब ने फौज के कई एक साहिबों को इसकी तहकीक वास्ते हुकम दिआ। अरु तहकीक के पीछे उसकी सारी कैफीअत। अपनी समझ की तजबीज समेत लिष कर साहिबान कौंसल के पास भेज दीआ.........., हैडन साहिब को उहदे से दूर कर दीआ।

४—नं० ५७३

षबर सइअद अहमद के मुरीदों के बलवे की। उसने अपने दीन की बातें जारी करनी शुरू करी अरु लुटेरों की तराँ हर गिराऊ[3] अरू...............
पिंड[4] उपर दौड़कर लूटना इषतिआर कीआ अरु षलकत को ईजाँ देने लगा। अरु अपने संबूह[5] अरू संघट को "मुला-ई-कौम" मसहूर किआ। गऊउं का बध अरू आद-मीउं का मारना करके बड़ा फिसाद उठाया। अरु हिंदूउं को गउ के बध अरू जोरो जोरी बामणों[6] को मास षिलाकर धर्म भ्रिसट करके बड़ी षराबी अरू परेसानी हुई"।

निष्कर्ष :—

१—सन् १८२१ के आस पास खड़ीबोली का इतना साफ-सुथरा रूप हिंदी में अन्यत्र नहीं मिलता। फलतः विशुद्ध खड़ीबोली गद्य की दृष्टि से "जगत् प्रकासादरस" एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

---

(१) फ्रांसीसी साम्राज्यवादियों ने १९वीं शती में अलजीरिया की स्वतन्त्रता को पददलित किया। इसकी करुण कथा इस खबर में दी गयी है। खबर का झुकाव फ्रांस की ओर है।
(२) पचपन (पं०) (३) ग्राम (पं०)।
(४) गाँव (५) समूह। लोकोच्चरित रूप सबुंह।
(६) ब्राह्मण। 'बाम्हणः" अधिक प्रचलित है।

२—पंजाबी भाषा तथा पंजाबी उच्चारण का प्रभाव 'जगत् प्रकासादरस' में प्रायः सर्वत्र देखा जा सकता है। यत्र तत्र ब्रज की क्रियाएँ, ब्रज के परसर्ग और सर्वनाम भी प्रयुक्त किये गये हैं।

फारसीनुमा उर्दू का प्रवाह और माधुर्य यत्रतत्र मिलता है।

३—समय सूचक घंटा, मिनट सैकेंड आदि का प्रचलन उस समय नहीं हुआ था। अतः 'साइत' और इसका भी स्पष्टीकरण 'घड़ी' से किया गया है। अभिव्यक्ति के लिए 'अनुवादक' का समस्त प्रयास प्रशंसनीय है।

४—'जामे जहाँनुमा' में उस युग को देखते हुए 'खबरों' का एक व्यापक और बहुत ही रोचक संकलन रहता था। सुप्रीम कोर्ट कलकत्ता के फौजदारी मुकदमों के विस्तृत विवरण, पुस्तक के 'इश्तिहार' तथा अन्य व्यापारिक सूचनाएँ भी इसमें रहती थीं। 'जगत् प्रकासादरस' में यह समस्त सामग्री अक्षरशः अनूदित की गयी है। फलतः पत्रकारिता एवम् सम-सामयिक इतिहास की दृष्टि से भी यह महत्वपूर्ण है।

वस्तुतः पिछले तीन चार सौ वर्षों में पंजाब के लेखकों ने खड़ीबोली गद्य (गुरुमुखी लिपि में) के माध्यम से 'भाषा' को ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न बनाने का प्रशंसनीय प्रयास किया। इस प्रयास के फलस्वरूप पंजाब में उच्च-कोटि के साहित्य का निर्माण हुआ। उन्नीसवीं शती के प्रारंभिक दो तीन दशकों (स्वतन्त्र लाहौर राज्य के समय) में भी खड़ीबोली गद्य की अनेक पुस्तकें लिखी गयीं। इस युग की अनूदित कृतियों में 'जगत् प्रकासादरस' का स्थान महत्त्वपूर्ण है।

स्वप्नों की स्मृति

श्री चंद्रदत्त शर्मा 'इन्दु'

अनजाने से स्वप्न आज चिर निद्रित पलकों में घिर आये।

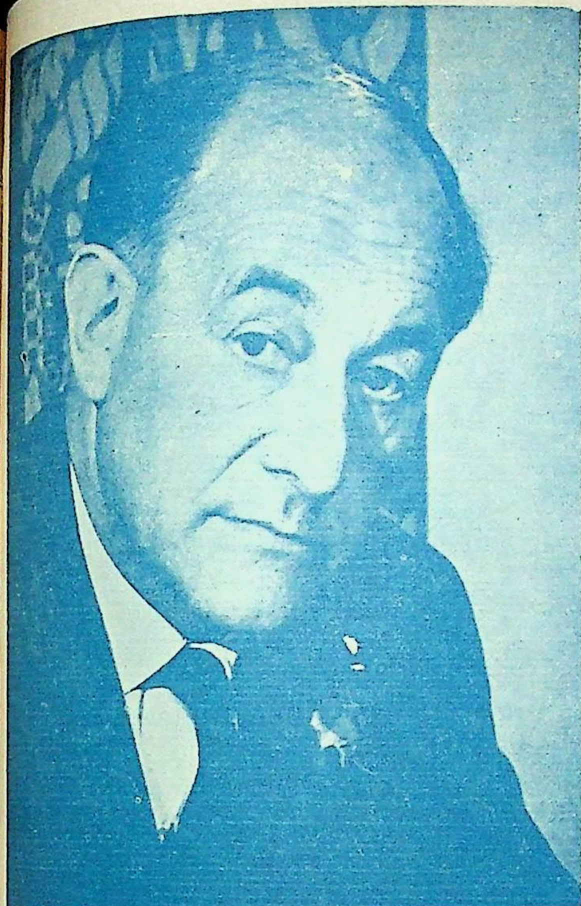
विहगों के कलरव से गुंजित
मधुवन के सौरभ का सरगम,
पनघट की प्यासी संध्या सा
अश्रु ढला आँखों से थमथम ;
कितना अपनाया दुनिया को फिर भी सब रह गये पराये।

नियति नियन्त्रण का निर्देशन
जीवन-मरण वरण करता है,
वासन्ती तृष्णा का बादल
कब, किसके द्वारे झरता है;
गाते गाते भी कितने ही गीत रहे अब तक अनगाये।

छोड़ तटों के बन्धन बहती
यह अनन्त रस की निर्झरणी,
हम सब उठते गिरते तिरते
ले निज विश्वासों की तरणी;
जो तट से बँधकर बहता हो कैसे महाजलधि को पाये।

मेरा मन है, सबको मन दूँ
पुरवैया सा घर घर जाऊँ,
झोली भरे बीज ममता के
क्यारी क्यारी फसल उगाऊँ;
कौन थिरकता धवल किरण सा मुझको धीरे से दुलराये।

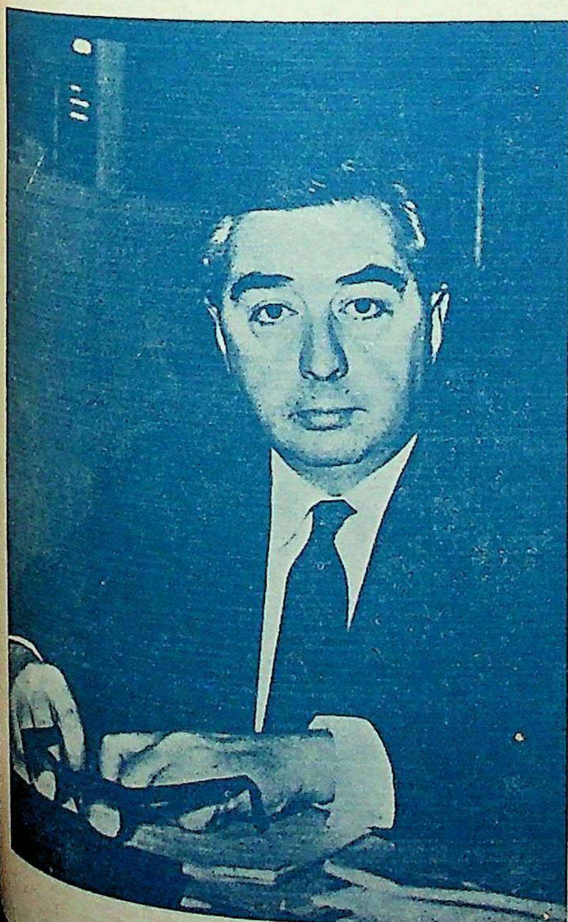




श्री पैट्रिक गार्डन वाकर, विदेश मंत्री



श्री हैरल्ड विल्सन, इंग्लैण्ड के नये प्रधान मंत्री



इंग्लैण्ड के पार्लियामेंट के चुनाव में कंसर्वेटिव दल को हरा कर दीर्घकाल के बाद लेबर (सोशलिस्ट) दल जीता है, और उसने वहाँकी नयी सरकार बनायी है।

श्री जार्ज ब्राउन, आर्थिक मामले के मंत्री



श्री ए० आई० मिकोयन,
सोवियट रूस के राष्ट्रपति



श्री ए० एन० कोसीजिन,
सोवियट रूस के प्रधान मंत्री



श्री एल० आई० ब्रेजनेव,
रूस के कम्यूनिस्ट पार्टी के महामंत्री

दल रूप में संसार के प्रथम अन्तरिक्ष उड़ाके (दायें से बायें)—श्री वी० कोमारोव, अंतरिक्ष यान के चालक तथा
श्री बोरिस यागोरोव और श्री के० फियोक्टिस्टोव

वीर जातियाँ संकटों का सामना कैसे करती हैं

डा० हेमचंद्र जोशी डी० लिट्०

'विषमप्यमृतं क्वचित् भवेत्' 'विष भी कभी अमृत बन जाता है।' महाकवि कालिदास की यह उक्ति अपना महत्त्व रखती है। लंदन में १६६५ई० में जबर्दस्त फैला, छोटे से लंदन में प्रायः सत्तर हजार आदमी के मुँह में चले गये। इस फोड़े के ऊपर दूसरा फोड़ा, दूसरे साल सितम्बर की दो तारीख को लंदन में लगी जो चार दिन तक बुझी नहीं। इसने लंदन के भाग को मिट्टी में मिला दिया। उस काले वहाँ सर्वत्र हाहाकार और त्राहि-त्राहि का मर्मस्पर्शी ही सुनाई दे रहा था। उक्त दो वर्ष लंदन के सर्वनाशी थे; पर यह खंड-प्रलय लंदन को उजाड़ सका। जनता और सरकार अदम्य उत्साह से नया और हवादार स्वस्थ और सुन्दर लंदन बसाने के काम मधुमक्खियों की भाँति जुट गये। लंदन का सेण्ट पॉल आदि सर्वश्रेष्ठ इमारतें उस विनाश की उपज हैं।

मर-मरकर जीनेवाले कैसे हैं? एक नमूना देखिए। अगस्त १९५९ को इक्वाडोर में जो भूकम्प आया छः हजार आदमी मरे, एक लाख मनुष्य गृहहीन और प्रायः साठ करोड़ रुपए का नुकसान हुआ। क्या था प्रलय थी। पेलिलियो नामक वहाँका महत्व- नगर क्षण भर में भूमिसात् हो गया। आम्बाटो प्रदेश प्रतिशत घर मिट्टी में मिल गये। वहाँके प्रायः प्रतिशत निवासी गिरते हुए मकानों से दबकर मर छोटे कस्बे बानो, पिलारो और गुआनो में जनहानि कम हुई पर नब्बे प्रतिशत घर बैठे गये।

रेडियो द्वारा सरकार ने इस प्रलयकारी भूकम्प का प्रचार किया। जनता बेचैन हो गयी कि किसका कौन मरा है। भूकम्प के क्षेत्र के पास कीटो नगर वहाँ सब डर और चिन्ता में व्याकुल थे, क्योंकि आना-जाना इस क्षेत्र में रात-दिन होता था। के दिन भी इनके अनेक संबंधी आम्बाटो की ओर थे। कीटो के साठ-सत्तर गिरजों में मातम का घंटा रहा था। कीटो के दो लाख निवासियों में त्राहि-त्राहि मच गयी कि नीले आकाश में यह बज्रपात कहाँ और कैसे हुआ। स्वयं सरकार घबड़ाई कि यदि थोड़ी देर और रोदन जारी रहेगा तो जनता की आतुरता काबू से बाहर हो जाएगी। तुरन्त सब गिरजों को फौज भेजी गयी कि घंटों का करुण स्वर बंद हो, और जनता अपना होश सँभाले। स्वयं राष्ट्रपति प्लाज्मा विनाश का दृश्य देखने गये, दिल दहलानेवाला दृश्य था। यात्रीज का विशाल गिरजा खण्डहर हो गया था, और उसके नीचे सत्तर बच्चे दब गये थे। पेलिलियो नगर वीरान हो गया था। गुआनो की दुर्दशा देखकर रोंगटे खड़े हो जाते थे?। भूकंप से कब्रें खुल गयी थीं, और उनके भीतर दबी लाशें भूकंप के धक्के से बाहर निकलकर बिखर गयी थीं। कल तक के जीवित मनुष्य उन लाशों में मिले हुए उनका साथ दे रहे थे। सर्वत्र सर्वनाश का भयंकर दृश्य था।

धन्य हैं काल से न हारनेवाले ये इक्वाडोरवासी कि इन्होंने अपने देश को पुनर्जीवित करने का बीड़ा उठाया और इस काम में जुट गये। जीवित जातियों की यही तो एक पहिचान है। ये जातियाँ कार्य करती हैं; न व्याख्यान देती हैं और न व्याख्यान सुनती हैं। बंगाल के प्रसिद्ध नाटककार स्व० द्विजेन्द्रलाल राय ने भारत के नेताओं की अकर्मण्यता और भाषण-प्रतिभा देखकर कहा था कि वे "वक्तृताय महारथी" अर्थात् 'केवल भाषण वीर' हैं। आज भी अधिकांश में यह तथ्य जैसे का तैसा बना है। किंतु इसके विपरीत, इक्वाडोर की कर्मठता का वर्णन पढ़िए:—

अगस्त आठ १९४९ को राष्ट्रपति प्लाज्मा ने रेडियो में छोटा सा भाषण दिया: हमारा राष्ट्र सुखी है। हम न धनी हैं और न निर्धन ही। हमें देश को बचाने का उपाय निकालना चाहिए। जो इस घोर संकट के अवसर पर रो रहे हों, उन्हें चाँदी के आँसू गिराने चाहिए।" शब्दों में जादू भरा था या बिजली कि इक्वाडोरवासी इस फंड में चाँदी नहीं सोना बरसाने लगे। अमरीका के संयुक्त राष्ट्र से अपार सहायता पहुँची। कोलंबिया

की सरकार ने इस कोष में दस लाख रुपए दिये। आर्जेंटाइना से कंबल और जूते वायुयानों द्वारा पहुँचे। एथियोपिया हब्शी राज है। उसके राजा हैले सिलासी ने अपनी जेब से पन्द्रह हजार रुपए दिये। जनता ने दिल खोलकर रुपया दिया। जिससे जितना बन पड़ा उसने सानन्द इन दुःखियों के दुःख को उबारने के लिए किया। एक अंधे ने एक डालर का चेक भेजा, और इक्वाडोर का एक मंत्री जब मौंटविडेओ पहुँचा तो बारह मील का रास्ता पैदल तय करके एक नन्हा बच्चा, चंदे में देने के लिए छः अंडे लाया।

मनुष्यता मनुष्य की विरासत है। धनी या निर्धन वह सभी में रहती है। एक अमरीकन धनी व्यवसायी ने वहाँकी दुर्दशा का हाल पढ़कर कीटो के नगरप्रमुख को फोन किया। उस समय आफिस का बड़ा साहब कार्यालय में न था। एक मामूली क्लर्क के हाथ फोन पड़ा। फोन में धनी व्यवसायी ने पूछा––

"तुम्हारे साहब कहाँ हैं? उनसे जरा बात करनी है" साहब बाहर गये हैं। अभी आध घंटे में आ जाएँगे। क्या आपको उनके लिए कुछ संदेश देना है?" "मेरा नाम अमुक है और मेरे पिता का नाम अमुक है। क्या तुम बता सकते हो कि भूकम्प के पीड़ितों को किन-किन चीजों की दरकार है? मैं उनकी सहायता करना चाहता हूँ।" "हमें तो सब सामान की दरकार है। बताइए आप क्या दे सकते हैं? अपना तो आँचल फैला हुआ है, इसमें जो, जो भी डाल दें" "आप कौन हैं? बड़ी अस्पष्ट बातें करते हैं। क्या आप स्पष्ट शब्दों में साफ नहीं बता सकते कि आपको किस वस्तु की विशेष आवश्यकता है?"

क्लर्क घबराया, उसकी समझ में न आया कि इस प्रश्न का क्या उत्तर दूँ? सामने टेबुल पर एक कागज का टुकड़ा पड़ा था। उसमें लिखा था 'आम्बाटो के लिए पानी साफ करने की मशीन चाहिए" क्लर्क को और कुछ न सूझा, हड़बड़ी में बोल उठा "पानी साफ करने की मशीन चाहिए", व्यवसायी ने कहा "ठीक है। मशीनरी तथा उसे फिट करने वाला इंजीनियर परसों कीटो के हवाई जहाज से पहुँच जाएँगे।" दोनों समय पर पहुँच गये, और आम्बाटों में जल कल लग गयी। सार यह है कि संसार भर में सारा प्रदेश फिर जाग उठा। खंडहर साफ किये गये। नई नहरें बन गयीं। सड़कें पहले से अधिक चौड़ी बन गयीं। रेल की लाइन भी नई बन गयी और एक ही मास के भीतर उत्तम पाँच स्कूल भी बन कर खुल गये।

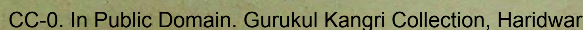
तैयार-मकानों (प्रिफेब्रिकेटेड) के कारखाने खुल गये। जो किसान तब तक मिट्टी या पुआल की छतों के नीचे रहते थे वे अब नये फैशन के मकानों में आनन्द करने लगे। नये मकानों में अल्यूमिनियम की छत, चौड़ी-चौड़ी खिड़कियाँ, साफ-सुथरा चूल्हा और अनाज रखने के लिए भंडार बन गये, इक्वाडोर पर जो विपत्ति पड़ी, उसकी छाप तो रहेगी ही क्योंकि मृत्यु का जो घोर प्रकोप सत्यानाश कर चुका था, क्या उसका इलाज हो सकता है? किन्तु "मनस्वी कार्यार्थी गणयति न दुःखम न च सुखम्", लगन से काम करनेवाले वीर सुख-दुख की परवाह नहीं करते। वे आगे बढ़ना अपना धर्म समझते हैं" आम्बाटो प्रदेशवालों ने भीषण भूकम्प से सर्वग्रासी हाहाकार को पार करने अपने सारे राष्ट्र, या कहिए कि संसार के पिछड़े देशों के लिए एक उज्ज्वल उदाहरण सामने रख दिया और वह भी एक वर्ष के भीतर।

आम्बाटो प्रदेश की यह दिन-दूनी रात-चौगुनी समृद्धि और उन्नति देख इक्वाडोर के सब प्रदेशों में गोया उन्नति की ओर तेजी से बढ़ने की होड़ लग गयी। सब पिछड़े हुए नगरों, कस्बों और गाँवों में सैकड़ों साल पुराना रहन-सहन बदलकर नवीनतम सुख साधन अपनाए जाने लगे। सब अपने स्थानों में बिजली, छना हुआ स्वच्छ पानी, हवादार स्वच्छ मकान, सेवाभावी और नये-नये साधन वाले अस्पताल बनाने की धुन में लग गये।

इक्वाडोर ऐसे छोटे और निर्धन राष्ट्र ने इस अल्पकाल में आश्चर्यजनक उन्नति कर दिखायी। इक्वाडोर एक बहुत छोटा देश है जो बम्बई राज्य के बरार नामक प्रदेश के बराबर होगा। इसकी जनसंख्या ही लीजिए। सारे इक्वाडोर की आबादी इस समय प्रायः ३५ लाख है। कलकत्ता या बम्बई सारे इक्वाडोर से अधिक जनाकीर्ण हैं। कलकत्ता की जनसंख्या इक्वाडोर के ड्योढ़े से भी ज्यादा है। बम्बई की तो शायद और भी अधिक है। दिल्ली और नई दिल्ली की जनसंख्या मिलाकर इक्वाडोर की जनसंख्या के लगभग होगी। इस पर भी तमाशा देखिए कि वहाँकी राजधानी कीटो की जनसंख्या सवा दो लाख है। ज्ञान के क्षेत्र में भी इक्वाडोर ने भारत के कान काट रखे हैं। १९५४ ई० में इक्वाडोर में सत्तर सैकड़ा शिक्षित

[…] मिलते थे, इस समय वहाँ नर-नारी कोई भी […]क्षित नहीं है, निरक्षर भट्टाचार्यों की कृपा भारत […]दा रही और आज भी उनमें विशेष कमी नहीं हुई वहाँ प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य और निःशुल्क है। […]आदमियों के गाँव में भी शिक्षा का प्रबन्ध है और […]ाप को कुछ रुपया मिलता है कि बच्चों को स्कूली […]ा दें, और उन्हें प्रोत्साहन दिया जाता है कि प्राथमिक […]ा प्राप्त बच्चों को बाहर के उच्च स्कूलों में भेजें। […] तमाशा देखिए कि बम्बई और कलकत्ते से छोटे […]वाडोर राष्ट्र में पाँच विश्वविद्यालय हैं जो कीटो, […]एन्का (Cuenca) लोजा जैसे दो लाख से कम […]संख्या वाले छोटे नगरों में स्थापित हैं। इन विश्व-[…]ालयों के साथ नाना कालिज हैं जिनमें साहित्य, विज्ञान, […] और कला सब कुछ पढ़ाया जाता है। इक्वाडोर […] उच्च शिक्षा के लिए विदेशों के विश्वविद्यालयों में […] जाते हैं।

इक्वाडोर का व्यापार-व्यवसाय सीमित है। उक्त […] में सिनकोना (Cinchona) बहुत पैदा होता है। […] सिनकोना उत्तरी अमेरिका को भेजा जाता है और […] वहाँ कुनीन बनायी जाती हैं। इस छोटे राष्ट्र के […] महासागर के किनारे पर होने के कारण यहाँके […] करोड़ों रुपए की मछलियाँ हर साल उत्तरी अमरीका […] भेजते हैं। यह भूमि छोटी होने पर भी शस्य-श्यामला […] इक्वाडोर वाले कड़ा परिश्रम करने अपके खेतों में […] लिए पूरा भोजन तैयार करते हैं और इतना चावल […] करते हैं कि वहाँका एक मुख्य व्यवसाय बढ़िया चावल बाहर भेजकर रुपया पैदा करना भी है। कृषि की एक मुख्य उपज सुन्दर बढ़िया केला भी है जिसका निर्यात भी होता है। कोको और काफी इक्वाडोर की विशेष उपज है। इक्वाडोर में छोटे-छोटे कुटीर उद्योगों का जाल बिछा हुआ है। अपनी आवश्यकता की प्रायः सब चीजें इस जनतंत्र के निवासी अपने देश में ही पैदा कर लेते हैं। फल यह है कि देश में सर्वत्र सुख-शांति और समृद्धि का राज्य है। भूकम्प के बाद सब सुख-साधनों से पूर्ण अपने नवीनतम भवनों में ये इक्वाडोरवासी सब प्रकार से स्वर्ग का सुख लूट रहे हैं। इसका कारण क्या है? इसका मुख्य कारण है उनकी प्रबल इच्छा कि हमारा देश समृद्ध हो और हम परस्पर एक दूसरे की सहायता करके एक दूसरे को ऊँचा उठाकर सारे देश को उन्नति की चोटी पर चढ़ा दें। सच बात तो यह है कि इनका आचरण अति उच्च है। झूठ बोलना, अपने देश-वासियों को धोखे में डालना, पड़ोसियों से जाल-फरेब करना ये जानते ही नहीं। कड़े परिश्रम से इक्वाडोरवासी भागते नहीं। सिर और एड़ी का पसीना एक करना इन लोगों का स्वभाव है। इस कारण ये १९५९ में सर्वनाश के गर्त में गिर जाने पर भी आज फिर फल-फूल रहे हैं और संसार की जातियों में इतने आगे बढ़ गये हैं कि इक्वाडोर की समृद्धि देखकर सब उन्नत राष्ट्र इक्वाडोर के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित करने में नहीं हिचकते। यदि हम इक्वाडोर के कुछ गुण भी अपना सकें तो भारत संसार के उच्चतम शिखर पर पहुँच जाय। तब हमारी दुर्दशा अपने आप लुप्त हो जाएगी।



पत्रकार की अग्निपरीक्षा

गणेशशंकर विद्यार्थी का एक संस्मरण

श्री जी० एस० पथिक

बम्बई में शिक्षा प्राप्त करने के लिए मुझे ग्वालियर रियासत से छात्रवृत्ति मिली। रियासत को कुछ विशेषज्ञों की आवश्यकता थी। सिंधिया-नरेश रियासत के औद्योगीकरण में अग्रसर थे। जिन सज्जनों का मुझ पर दबाव पड़ा, उनमें लाला रामजीदास भी थे। लालाजी मेरी हिन्दी सेवाओं से प्रभावित थे। वे स्वयं हिन्दी के लेखक थे और हिन्दी के प्रचार में उनका बहुत बड़ा अनुराग था। हिन्दी साहित्य सभा के कर्णधारों में पण्डित प्राणनाथ सभाभूषण, पण्डित गणपत जानकीराम दुबे, राधाकृष्ण जायसवाल और लाला रामजीदास वैश्य प्रभृति थे। इनमें दुबेजी सभा के मंत्री थे, हिन्दी के निष्ठावान सेवक थे। विद्वान् थे, उनकी कई रचनाएँ काशी नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित हुईं। थे तो वे गुजराती, किन्तु उनकी वेश-भूषा और बातचीत सब महाराष्ट्रीय थी। रियासत में हिन्दी प्रचार के लिए वे मेरे साथ योजनाएँ तैयार करते। उसके उपरांत हम दोनों श्रीमंत माधवराव सिंधिया से हिन्दी के संबंध में गुजारिश करते। महाराज जहाँ समाज में निरक्षरता नहीं चाहते थे, वहाँ युवकों को केवल नौकरियों की प्रेरणा देनेवाले कालिजों की उच्च अँगरेजी शिक्षा के कठोर आलोचक भी थे। हम लोगों के सुझाव से महाराज चाहते थे कि ग्वालियर में हिन्दी विश्वविद्यालय की स्थापना हो। महाराज ने ग्वालियर में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन करने का प्रस्ताव भी पसंद किया था। द्विवेदीजी की योजना थी कि सिंधिया नरेश सम्मेलन के सभापति हों। किन्तु महाराज की आकांक्षा थी कि सरस्वती के सम्पादक सभापति हों। उस समय पं० महावीर प्रसाद जी द्विवेदी के कई पत्र आए। ग्वालियर नरेश का हिन्दू विश्वविद्यालय में बड़ा योगदान था। यदि कोई व्यक्ति इस कार्य में पूरे तौर से लगता तो हिन्दी विश्वविद्यालय के संबंध में द्विवेदीजी का प्रस्ताव अवश्य साकार रूप ग्रहण करता।

गणेशशंकर विद्यार्थी ने इधर उधर काम करने के बाद कानपुर में कदम जमाया था। फीलखाने के एक छोटे से कमरे में चटाई बिछाकर और लालटेन जलाकर उन्होंने प्रताप का प्रकाशन किया था। प्रताप के प्रांगण में बीसों व्यक्तियों को ला खड़ा किया था, पर समाचार पत्र को शक्तिमान बनाने के लिए उसका जन आन्दोलन में भाग लेना ही उपयुक्त था। उस समय देशी रियासतें थीं, जिनके जन आन्दोलनों का समर्थन करने से पत्रों का प्रचार बढ़ता था।

मेरे कार्य-क्षेत्र का सूत्रपात अजीब ढंग से हुआ। ग्वालियर में मैंने सरस्वती पुस्तकालय की स्थापना की थी। यद्यपि यह संस्था प्रकट में एक लाइब्रेरी थी, किन्तु उसका अप्रकट कार्य सेंट्रल इंडिया और राजस्थान की रियासतों की मूक प्रजा में जागरण उत्पन्न करना था। एक दूकानदार अपनी दूकान में दिखाने के लिए कुछ माल रख ले, किन्तु उसमें बैठकर सट्टा का धंधा करे, वह हालत मेरी थी। राजनीतिक आन्दोलन सहसा करना संभव न था। उस हालत में भीरु और दबे हुए लोग कब कोई बात सुनते और साथ देते? उस जागरण के लिए पहले क्षेत्र तैयार करना आवश्यक था। उसके लिए मैंने हिन्दी को चुना। हिन्दी का नवीन साहित्य लोगों में चेतना पैदा करेगा, उन्हें अपनी दयनीय अवस्था का भान होगा, उनके दिलों में तड़पन पैदा होगी, और तब वे स्वयं ही आगे बढ़ेंगे। जिस प्रकार मेरी योजना कदम-कदम आगे बढ़ी, उस प्रकार मैंने अपने सपने, अपने खींचे हुए नक्शे को साकार रूप लेते हुए देखा। रियासतों की प्रजा का ध्यान ब्रिटिश भारत के राजनीतिक और सामाजिक आन्दोलनों की ओर गया।

इस सन्निधि की सारी चर्चा करना अपने कार्यकलापों का उल्लेख करना है, जो मेरी अभिरुचि के विपरीत है। मैंने काम किया, पर ख्याति पाने के पीछे मैं कभी नहीं दौड़ा। अपनी सेवाओं का बैलेंसशीट समाज के सामने रखना और उनका बखान करना मेरी प्रकृति के विरुद्ध है। जिस भयावह स्थिति में जिस रूप में मैंने काम किया, उसकी कहानी दूसरों के लिए प्रेरणा और स्फूर्ति देने वाली होगी। इसी आशा से प्रकारान्तर से उनका संकेत कर

हूँ। सम्पत्ति और साधनों के विसर्जन और कठोर-ता को मैंने कुछ नहीं माना, किंतु इतना जरूर है कि ती ने मेरे आदर्शवाद को कायम रखा। राष्ट्र के एक सेवक के रूप में अज्ञात रहने में मेरा जीवन सुखद मेरे पास कितने ही व्यक्ति इंटरव्यू लेने के लिए आए, तु मैंने सदैव अपनी असमर्थता प्रकट की। ये संस्मरण उस भावना से लिखे, जिस भावना से गोस्वामी तुलसीदास ने रामकथा का वर्णन किया। इनमें तो राष्ट्र विभूतियों का चरित्र है; मेरा अपना क्या है? पर हें लिखने में भी मुझे हिचक थी। मैंने सोचा कि जीवन इस संध्याकाल में पहुँचने पर अब मेरे पास अपने देश देने के लिए केवल मेरा जीवन अवशेष है, सो भी ता। और वह जीवन मेरे अपने लिए नहीं, महत् र्यों की पूर्ति के लिए देने को है।

मैंने बे-मन से ग्वालियर दरबार की छात्रवृत्ति लेकर बई में शिक्षा प्राप्त करने का प्रस्ताव स्वीकार किया। मैं सोचता था कि मेरे बाहर रहने पर यहाँ का काम ठप्प न पड़ जाए। पर ग्वालियर के शासन का यह ल था कि छात्रवृत्ति के फंदे में बँधने पर और बाहर ने पर आन्दोलन के तूफान खत्म हो जाएँगे। मैं भविष्य में कुछ न कर पाऊँगा। इसलिए रियासत का दोनों कार से लाभ था। पर मेरे आगे के कृत्यों से दरबार की योजना सफल न हुई। परिणाम उल्टा ही हुआ। ड़े में बंद पंछी को बम्बई जैसा कार्यक्षेत्र मिला।

इधर कानपुर से गणेशजी के कई पत्र आए कि प्रताप यासतों के आन्दोलन में किस प्रकार बढ़े। जन-आन्दोलनों के अपनाने पर ही पत्र जनता के हृदय में स्थान ता है। किन्तु कुछ समय तक बम्बई में मैं अपने शिक्षा-कार्य में व्यस्त रहा। लॉ, कॉमर्स और विश्वविद्यालय के बी० ए० क्लास में हाजिर होने के बाद मैं समय कहाँ ता कि कुछ और सोचूं? ग्वालियर के सरस्वती पुस्त-कालय का ध्यान भी नहीं रहा कि वह पौदा हरा-भरा या मुर्झा गया। पर दैव गति विचित्र है। गणेशजी बई आए। उनका प्रस्ताव हुआ कि मैं प्रताप में ग्वा-लियर शासन के विविध कारनामों पर लेख लिखूं। लेख तैयार करना निश्चय हुआ। उनकी और मेरी योजना का परिणाम क्या होगा, उस पर दोनों में से किसी ने नजर न डाली। गणेशजी को स्थिति का पता नहीं था, किन्तु मुझे सोचना विचारना था। रियासत के विरुद्ध कोई भी काम होगा, उसमें शासन को मेरे ऊपर शक होगा। बात प्रकट थी कि रियासत में रहकर कोई व्यक्ति लिखने का साहस नहीं करता और बाहर के किसी व्यक्ति को सारे भेदों की जानकारी नहीं थी। यदि कोई दूसरा भी लिखता तो वह बचा रहता, और अधिकारी-गण मेरा ही काम समझते। मेरी लेखमाला में एक लेख उस अमानुषिक कृत्य पर भी था, जिसमें एक समूचे ग्राम का कत्ले-आम हुआ था। लक्ष्य था कि दूसरे ग्रामवासी डाकुओं को शरण न दें अन्यथा उनकी भी ऐसी ही दुर्गति होगी। प्रताप में जब ये गरम लेख छपे, तब शासन के धैर्य का बाँध टूट गया। अखबार रियासत के बाहर का था, जिस पर हाथ डालना संभव न था। मेरे संबंध में सुबूत जुटाना अधिकारियों को अधिक सरल जँचा।

पहले ग्वालियर में जाँच-पड़ताल हुई। सरस्वती पुस्तकालय, और उसके कार्यकर्ताओं के पीछे सी० आई० डी० के शिकारी दौड़ पड़े। पुस्तकालय में प्रताप की दो कापियाँ आती थीं। सरकारी लाइब्रेरियों में भी प्रताप पहुँचता था। और दूसरे लोग प्रताप मँगाते थे। पर उन में कोई ऐसा न था, जिस पर पुलिस का संदेह होता। रियासत के अपने पोस्ट आफिस थे, इसलिए सभी स्थानों के डाकखानों से प्रताप की कापियाँ रोकी गयीं, लोगों के नाम पते नोट किए गए। उस समय जरा शक पर लोगों पर वार होता, छोटा होता या बड़ा। अगर सरदार सिर उठाता तो उसकी जागीर कोर्ट आफ वार्ड्स के आधीन हो जा और कैबिनेट के सदस्य को खड़े खड़े रियासत छोड़नी पड़ती। जो कुछ हो, जयाजी प्रताप के सम्पादक ठाकुर सूर्यकुमार को आदेश मिला कि वे कानपुर जाकर पता लगाएँ और जानें कि मेरा कहाँ तक हाथ है। वर्मा जी हिन्दी के अच्छे लेखक थे, काशी नागरीप्रचारिणी सभा के सदस्य थे। उनकी कई पुस्तकें भी सभा ने छापी थीं। पर सरकारी नौकरी जो कराए सो थोड़ा। उन्होंने यह नहीं सोचा कि वे किस प्रकार पाण्डुलिपि देख सकेंगे या लेखक का पता लगा सकेंगे। प्रताप-कार्यालय में उनकी कोई अप्रतिष्ठा न होती यदि वे सीधे सादे रूप में जाते और गणेश जी को सारी बातों से अवगत करते। वे ग्वालियर के अधिकारी के रूप में पूरे रुआब से गये। गणेश जी चाहते तो मिलते नहीं, दफ्तर से बाहर निकाल देते। पर

नहीं, उन्होंने शालीनता बरती, सोचा कि वे एक पुराने लेखक हैं, भले ही अपनी अक्ल को ताक पर रख चुके हों। फिर यह भी बात थी कि उनसे बातचीत कर कुछ बातें जानने का खयाल था। उन्होंने पूछा कि क्या सरस्वती पुस्तकालय में प्रताप की प्रति लेखक के पास 'फ्री लिस्ट' में जाती है। उन्हें जवाब मिला कि जनाब! वहाँ कोई भी लेखक तथा रिपोर्टर नहीं है और न कोई फ्री कापी जाती है। सब ग्राहक हैं। वहाँ का वातावरण देखकर फिर वर्मा जी का साहस नहीं हुआ कि वे पाण्डुलिपि दिखाने और लेखक का नाम बताने की बात करें। लेखक या संवाददाता का नाम बताने और कापी दिखाने के लिए अदालत भी मजबूर नहीं कर सकती। सम्पादक सारी जिम्मेदारी लेता है। ठाकुर साहब को अपने काम से लज्जित देखकर गणेश जी ने उनसे इतना ही कहा कि उन्हें यह काम अपने जिम्मे न लेना था। हकीकत यह है कि सरकारी नौकरी में लोग सामान्यतः अपना दिलदिमाग खो बैठते हैं और बन जाते हैं, निरे पशु। पर उस दायरे में रहने पर कभी चेतना नहीं आती। जब नौकरी के खूँटे से छूटते हैं, तब पता लगता है। पर गणेश जी ने इस जाँच पड़ताल को भी साधारण घटना समझा। उन्हें सजग होना था और सब बातों से मुझे अवगत करना था, किंतु उन्होंने इस संबंध में मुझे कोई सूचना नहीं दी।

वर्मा जी ने ग्वालियर लौटने पर जो कहानी कही हो, किंतु उस पर रियासत का कदम बढ़ने में देर न लगी। पर मेरे पास न कानपुर से समाचार आया, और न ग्वालियर से ही। बम्बई में प्रिंसिपल के पास जो समाचार आया था, वह उसका एक अंग था। रियासत से छात्रवृत्ति मिलने के कारण कालिज में मेरी बड़ी साख थी। ग्वालियर से शिक्षा विभाग से रुपया जब कभी भी आए, कालिज से मुझे रुपया मिल जाता। मेरी स्लिप हेड क्लर्क के पास पहुँचती कि रुपया चपरासी दे जाता। इस घटना के काल में एक दिन चपरासी से मैंने रुपए माँगे। उसने देने से तो इन्कार नहीं किया, किन्तु यह कहा कि प्रिंसिपल मुझसे मिलना चाहते हैं। मैं सोच में पड़ गया कि न तो मैं कभी गैरहाजिर रहा, और न पढ़ाई में कमजोर हूँ, तब किस की क्या शिकायत है जो प्रिंसिपल ने बुलाया है। आखिर मैं प्रिंसिपल की चेम्बर में गया। उन्होंने मुझे बड़े गौर से देखा। एक बार नहीं, दो तीन बार। फिर कहा कि बैठ जाओ। उनके मुख पर गंभीरता थी। फिर उन्होंने क्रमशः पूछना शुरू किया। मैं किस होस्टल में रहता हूँ। रियासत से जिस शिक्षा के लिए छात्रवृत्ति मिली थी, उसके अतिरिक्त यूनीवरसिटी में पढ़ता था। यद्यपि प्रिंसिपल को उस सबका पता था, किन्तु फिर भी आज उन्होंने पूछा। मेरे सारे व्यय की जानकारी प्राप्त की। उन्होंने अन्य प्रश्न भी किए। ग्वालियर में मेरे परिवार के संबंध में भी पूछ तांछ की। यह भी पूछा कि रियासत के बाहर मेरे घर के लोगों की आजीविका के कोई साधन हैं या नहीं। मैं नहीं समझ पाया कि वे क्यों ये प्रश्न करते हैं। प्रिंसिपल महोदय बैरिस्टर थे, पर मेरे प्रति उनकी शुरू से सहानुभूति थी। जब तब वे मुझे अपनी चेम्बर में बुलाते। फिर वे कुछ रुक से गए। अंत में कहा कि रुपए ले लो। आगे भी रुपए मिलने में कोई दिक्कत न होगी, भले रियासत से रुपए न आएँ। तब मैंने पूछा कि क्या स्कालरशिप के रुपए नहीं आएँगे, इसका कुछ जवाब न देकर उन्होंने मेरे पास ग्वालियर के शिक्षा विभाग का पत्र मेरे सामने बढ़ा दिया, जिसमें मेरी छात्रवृत्ति बंद करने की सूचना थी। प्रिंसिपल ने कहा कि वे मुझ से प्रभावित हैं, मैं कोई चिंता न करूँ। वे अपने पास से उतने रुपए मुझे देंगे। मेरी छात्रवृत्ति साधारण न थी, मोटी तगड़ी थी, प्रिंसिपल महोदय की इस उदारता से मैं रियासत के हुक्मनामे को भूल गया। वैसे ही ग्वालियर दरबार के निर्णय से मेरे माथे पर जरा सिकुड़न न पड़ी थी, उल्टे एक प्रकार से मुझे प्रसन्नता थी कि रियासत के खूँटे से मेरे गले में पड़ी रस्सी कट गयी, मैं मुक्त हुआ।

मेरा निवास एलफिंस्टन रोड के एक जैन होस्टल में था, उसमें अधिकांश जैनी छात्र थे, बोर्डर थे, एक दो महाराष्ट्रीय थे, और हिन्दी भाषा भाषियों में मैं अकेला था। यहाँ ही मैंने गुजराती सीख ली थी। जब मैं होस्टल में आया, तो मेरे साथियों ने मुझे चिंतित देखा। उनके पूछने पर मैंने सारा वृत्तांत कह सुनाया। वे सब धनी घरों के लड़के थे, सब के सब दौड़े गए, और अपनी-अपनी दुकानों से रुपए बटोर कर मेरे सामने एक हजार रुपए जमा कर दिए। उन्होंने कहा कि वे अपने घर से अधिक रुपए मँगाएँगे, और मेरा खर्च चलाएँगे। सब ने कहा कि वे मुझे होस्टल न छोड़ने देंगे। दूसरे दिन मुझे गणेश जी का

लिखा। उन्होंने भी रुपए की सहायता भेजने की बात की थी।

तब तक मैं बहुत चिंतित न हुआ था, किन्तु गणेशजी के पत्र से मैं विचलित हो उठा। पिता जी मुझ पर नाराज होंगे! उनके क्रोध का मुझे खयाल था। ... में सूचना मिली कि ग्वालियर दरबार ने एक कलम ...कर मेरी सारी सम्पत्ति जप्त कर ली थी। घर के लोगों को नंगा बूचा सड़कपर खड़ा कर दिया था। रियासत थी, कौन खुला प्रतिरोध करता? पर महाराज की कैबिनेट के एक दो सदस्यों ने सुझाव दिया कि इससे रियासत की बड़ी बदनाम होगी। मकान में घर के लोगों को रहने का तुरन्त आदेश दिया गया। जिस दिन यह समाचार मिला उस दिन मैं कहीं नहीं गया। सारे दिन सोचता विचारता रहा। खयाल आया कि पिता जी का क्रोध मुझ पर टूट पड़ा होगा। उन्होंने कहा होगा कि मैं अच्छा सपूत निकला कि सारी सम्पत्ति चौपट कर दी। कुछ थोड़ा बहुत धन खो जाता, तो मैं साहस से कहता कि क्या बात है, चंद दिनों मैं उसे पूरा कर दूँगा। पर इस स्थिति में क्या कह सकता था? मुझे साहस न हुआ कि मैं पत्र लिखूँ। अपने जीवन में मैं सदा पितृभक्त रहा। मेरे कामों के प्रति उनकी जो भी धारणा हो, किन्तु उन्होंने कभी मुझे रोका नहीं। वे कट्टर सनातन धर्मी थे। किन्तु धर्म के मामलों में भी वे मेरा कोई विरोध न करते, उल्टे चुप रहते।

मैं अन्ततः उनका पुत्र था, पुत्र के हाथ से चाहे खोटा काम हो या खरा, पुत्र स्नेह के कारण पिता सब सहता है। मेरे पिता विचलित हो उठे कि कहीं मैं विचलित न हो उठूँ या और कुछ न कर बैठूँ, इसलिए उनका जो पत्र मेरे पास आया, वह महानता का सूचक था। उसमें मुझे एक भी खरी-खोटी बात नहीं लिखी, उल्टे उन्होंने मुझे संतोष दिलाया कि मैं कोई चिंता न करूँ। उन्होंने लिखा कि अपनी यह कुर्बानी एक साधारण सी है, मुझे सावधान रहने के लिए संकेत किया। अंत में स्नेहवश यह भी लिखा कि एकाध सप्ताह की छुट्टी लेकर मैं घर आऊँ, वे और मा मुझे देखना चाहते हैं। मैं नत हो गया, इतनी दूर से मैंने उन्हें प्रणाम किया।

बम्बई में मेरी स्थिति से बहुत से लोग अवगत हो गये थे। कई जगह से सहायता के प्रस्ताव आये। मैं अपने ही परिश्रम से आगे पढ़ना चाहता था। दो एक प्रकाशकों ने कहा कि मैं उन्हें सहयोग दूँ। बम्बई में उस समय कोई ऐसा हिन्दी लेखक नहीं था जो मराठी, गुजराती, और बंगला आदि भाषाएँ जानता हो। एक सज्जन जो मेरे पास आते थे, उन्होंने वल्लभाचार्य महाराज से कहा। महाराज का संदेश आया कि मैं उनकी कोठी पर रहूँ। मैं इस हैरत में था कि मेरे उग्र राजनीतिक और सामाजिक विचारों को जानते हुए भी लोग मुझे रखना चाहते हैं। अंत में मैंने वेंकटेश्वर प्रेस के मालिक सेठ खेमराज जी का प्रस्ताव स्वीकार किया। मैं उनके यहाँ रहने लगा। पर दैव गति विचित्र है। बम्बई शेयर बाजार के एक व्यक्ति से मैं बड़ा प्रभावित था। वे मुझे सेठ जमनालाल बजाज के पास ले गए। मुझे देखकर जमनालाल जी ने कई प्रश्न किए। पर मेरी कहानी सुन कर वे द्रवीभूत हो उठे, उन्होंने सेठ खेमराज जी से फोन में कहा कि वे मुझे उन के यहाँ रहने दें। अंत में यह हुआ कि मैं दोनों जगह रहने लगा। दिन में एक स्थान पर रहता तो रात में दूसरे स्थान पर।

गणेश जी के पास ग्वालियर दरबार का आदेश आया कि वे प्रताप के लेखों के सिलसिले में ग्वालियर आएँ। महाराज के इस पत्र का उन्होंने उत्तर दिया कि वे आएँगे। इसके उपरांत उन्होंने मुझे ग्वालियर चलने के लिए लिखा। लेख तो मेरे लिखे थे, गणेश जी का यह कहना ठीक था कि बिना मेरे वे किस बात का क्या जवाब देंगे। पत्र ने जो कुछ प्रकाशित किया, उसकी उसे किसी व्यक्ति को कैफियत देनी की क्या जरूरत है? मुझे गणेश जी का ग्वालियर जाने का प्रस्ताव नहीं जँचा। मैंने लिखकर उनसे पूछा कि क्या महाराज से मेरे लिए या प्रताप के लिए कृपा पाने की आशा से वे ग्वालियर जाना चाहते हैं। जहाँ तक मेरा प्रश्न है, वह खत्म है। इतना प्रहार सहकर व्यक्तिगत रूप से महाराज के प्रति मेरा सन्मान रहेगा, किन्तु पहले की अपेक्षा अब कहीं अधिक शासन की कठोर आलोचना करूँगा। फिर मैंने जरा चुभते हुए शब्दों में उन्हें इंगित किया कि रियासतें पत्रकारों को बुलाती हैं, और दरबार के सामने उनके मुजरा करने पर वे इनाम पाते हैं और लौटते हैं। मैंने कई पत्रों के नाम लिखे और उनकी करनियों का जिक्र किया। कई पत्रों ने रियासतों को बदनाम कर पैसा कमाने का धंधा बना लिया था। ट्रिब्यून, केसरी और अमृत बाजार पत्रिका तीन ऐसे पत्र हैं,

जो रियासती आन्दोलनों में तपे-तपाये निकले। इसलिए मैंने उन्हें लिखा कि वे मुझसे ग्वालियर चलने का आग्रह न करें। इस प्रकरण की चर्चा मात्र से मेरे परिवार के लोगों को दुख होगा। हम लोग ब्राह्मण हैं, लक्ष्मी के दास नहीं। इस पर गणेश जी के लगातार दो पत्र मेरे पास आए। उन्होंने लिखा कि मेरे नेतृत्व और प्रताप के गौरव के लिए यह आवश्यक है कि लेखों के विरोध में उठने वाले सवालों का कड़ा जवाब दिया जाय। मेरे लिए या प्रताप के लिए दरबार की कृपा पाने का कोई खयाल नहीं है। उनके लम्बे पत्रों का यही भाव रहा। अतः अंत में मुझे साथ लेकर गणेश जी ने ग्वालियर जाने का निश्चय किया। मैं पहले अपने घर पर पहुँचू और वे बाद में मेरे घर पर आएँ।

इस कार्यक्रम के अनुसार मैं बम्बई से अपने घर पर पहुँचा। मेरे पहुँचने पर पिता जी को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने मुझे ढाढस दिया कि सम्पति जब्त हो जाने की मैं जरा भी चिंता न करूँ। अब हमें झुकना भी नहीं है। गणेश जी कानपुर से चलकर झाँसी तक ट्रेन से आए। किन्तु फिर आगे की यात्रा उन्होंने मोटर से की। उनके आगमन की प्रतीक्षा में स्टेशन पर पुलिस और सी० आई० डी० वालों का जमाव रहता। पर वे कार से एक दिन सीधे मेरे घर पर पहुँच गए। मेरे पिता से उन्होंने कहा कि उनसे बड़ा अपराध हुआ, इस घटना के वे ही उत्तरदायी हैं। खैर, करीब कई रोज वे अज्ञात रूप में मेरे घर पर रहे और मेरे हर एक लेख पर बहस की। उनके प्रश्नों के मैं ने उत्तर दिए। इस पर उन्होंने हर एक लेख के साथ अपने लिखे हुए नोट लगाए, जब सब लेखों के नोट तैयार हो गए, तब मैंने कहा कि भाई, अब आप के जीवन और आप की पत्रकारिता के परीक्षा की बेला आ उपस्थित होती है।

अंत में मैं अपने घर के समीप के थाने में गया, और थानेदार को खबर दी कि कानपुर से गणेश शंकर विद्यार्थी जी आये हैं, जो मेरे यहाँ ठहरे हैं। उन्हें मेरे यहाँ से ले जाया जाए। आने का समाचार पाते ही पुलिस अधिकारी भौंचक रह गए के वे किस गाड़ी से आये और कैसे शहर में पहुँच गये। आध घण्टे के अन्दर ही राज्य की घोड़ा गाड़ी आई, जो गणेश जी को उनके सामान के सहित लिवा ले गयी। वे गेस्ट हाउस में ठहराये गये। दिन में किसी समय उनसे महाराज के सेक्रेटरी मिले और इधर-उधर की बातचीत के उपरांत सरकार से बातचीत का समय निश्चय हुआ। प्रति दिन एक घण्टे का समय रखा गया। पहले दिन तो गणेश जी अकेले गये, उस दिन कोई गंभीर वार्तालाप न हो सका। दूसरे दिन से मैं साथ में रहा, अब बहस शुरू हुई। पत्रावलियों पर लाल लाइनें लगी थीं। महाराज प्रश्न करते और गणेश जी उत्तर देते। मैंने देखा कि उन्हों ने अपने उत्तर में अभद्रता नहीं आने दी। वे सवालों के जवाब सफाई से देते, उसमें कोई नरमी नहीं थी, पर अपने सम्बोधन में वे कहते, 'सरकार', 'श्रीमंत', और दूसरे सम्मानजनक शब्द। एक भी अपमानजनक और क्षुद्र शब्द न निकाल कर गणेश जी ने अपनी शालीनता प्रकट की। दूसरी ओर ग्वालियर नरेश का व्यवहार भी पितृवत् था। हम दोनों मानों उनके पुत्र हों, और पिता जिस प्रकार पुत्र से बोलता है, इस प्रकार अपनी बात में सरकार ने खयाल रखा। सरकार को सवाल करने में मदद देने और सवाल बताने में हर रोज जुदे जुदे विभाग के उच्च अधिकारी उपस्थित होते थे। किसी दिन एक मामले में सारा दिन लग जाता, तो किसी दिन दो तीन मामलों पर विचार होता। कभी सरकार दूसरे काम में व्यस्त होने के कारण वे कुछ ही मिनट बैठते। पर बहस संजीदगी से जारी रखी गयी। अन्य पत्रकारों की तरह गणेश जी ने यह भासित नहीं होने दिया कि प्रताप में जो चीज छपी, वह सही नहीं है। व्यक्तिगत शालीनता प्रकट करते हुए मामले का उत्तर तेजी से देते, उस में वे नहीं झुके। हर रोज मेरे साथ पूरी तैयारी कर दरबार के सामने हाजिर होते। कभी कभी दोनों ओर से बहस कड़वी हो जाती। महाराज आपे में नहीं रहते। वे न रहते, किन्तु हम लोग रोष में नहीं आते। दरबार में बैठ कर जहाँ वह संभव नहीं था, वहाँ उचित भी नहीं था। सरकार को पता नहीं था कि बहस इतनी लम्बी होगी और शासन के कारनामे इतने चौड़े में आएँगे। जहाँ वे सैनिक भावापन्न व्यक्ति थे, वहाँ वे कठोर शासक भी थे। कभी कभी वे अधिकारियों को ही डाँट बैठते कि वे गलत कहते हैं। महाराज ने शायद यह अनुभव किया कि दूसरे सम्पादक जो आये, उनमें से कुछेक तो बहस के लिए तैयार ही नहीं हुये, वे आये दरबार की कृपा पाने और यह कहने कि दरबार की सेवा में उनका पत्र रहेगा, और दूसरे ही दिन की चर्चा के बाद पीछे हट गये।

...हाँ यह भी देखना है कि प्रताप का मामला ट्रिब्यून, ...और अमृत बाजार से सर्वथा भिन्न आधार पर था। ...रियासतों पर जब रेजीडेण्ट और वाइसराय का ...र होता, तब इन राष्ट्रीय पत्रों ने रियासतों की रक्षा ...लिए ब्रिटिश सरकार से मोर्चा लिया। इन पत्रों के ...से रियासतों के हितों की रक्षा हुई, उनके अस्तित्व ...न रहे। पर इन निर्भीक पत्रों ने अपनी सेवाओं के ...में रियासतों के शासकों से एक फूटी कौड़ी की ...नहीं की। ये पत्र चाहते तो लाखों रुपए पा सकते ...पर उन्होंने अपने को नहीं बेचा। उनकी यह दूर-...ता थी। अन्यथा, फिर एक दिन ऐसा आता कि ...रियासतों के काले कारनामों का समर्थन करना ...ा। अँगरेज रियासतों को न मिटाएं, इसलिए पत्रों ...उनके विरुद्ध संघर्ष था। इसके सिवाय दूसरा कोई ...नहीं था। पर प्रताप ने जो लिखा, वह रियासत ...बत्तीस लाख प्रजा के अधिकार और दमन के विरुद्ध ...प्रताप का मोर्चा नरेश के विरुद्ध था। एक घटना ...भी हुई, जब ब्रिटिश शासन ने निजाम के विरुद्ध ...उठाया, तब एक भी पत्र ने निजाम का पक्ष नहीं लिया, ...ब्रिटिश सरकार का समर्थन किया। गुजरात की ...छोटी रियासत के राष्ट्रवादी शासक तथा नाभा व ...नरेश के विरुद्ध ब्रिटिश सरकार ने उन्हें जिस प्रकार ...च्युत किया और रियासतों पर कब्जा किया, राष्ट्रीय ...ने एक आवाज से उन राज्यों का समर्थन किया। ...प्रजा के मामले में, रियासत की प्रजा का पक्ष लेकर ...से संघर्ष करने में देश में प्रताप एक अकेला ...रहा।

...सारी बहस में जो उत्तर दिए गए: वे सही थे। ...राज और अधिकारियों में से किसी ने उन्हें गलत नहीं ...। कदाचित वे गलत होते तो यह कब संभव था कि ...र यह कहे बिना कभी न रहते कि तुम लोग झूठ ...ते हो, शरारत करते हो। जहाँ तक गणेश जी का प्रश्न ...उनका पत्र ब्रिटिश भारत से निकलता था, और वे ...नागरिक थे, पर मेरे लिए उन्होंने तेजी से कहा कि ...रियासत से क्या ताल्लुक रहा, किस दर्जे पर रहे ...फिर रियासत हाजा ने तुम्हें किस काम के लिए ...और तुम से क्या ख्वाहिश की गयी, तुम्हारा यह काम ...माफी देने के नहीं है। तुम्हें जो सजा दी गयी है, वह काफी नहीं है।' इसके बाद तो वे गणेश जी और मुझ पर टूट से पड़े: तुम लोगों ने रियासत का नमक खाया और उसी के साथ यह गुस्ताखी! जानते हो कि कहाँ पर खड़े हो? तुम लोगों को कच्ची जेल में डालकर भुस भरवा सकता हूँ। गणेश जी ने अत्यंत विनम्रता पूर्वक उत्तर दिया कि सरकार! हम उसके लिए तैयार हैं। जेल की सजा भोगने से पीछे नहीं हटना चाहते। उससे हमारा पथ प्रशस्त होगा। मेरे विरुद्ध आरोप दुरुस्त था। मगर महाराज ने मेरी ओर देख कर कहा कि फिर भी तुम दरबार में चारागोई कर सकते हो। मैंने अपने उत्तर में इतना ही कहा कि सरकार! मेरा इरादा नहीं है। मगर उन्होंने कहा कि तुम्हारे वालिद दरबार में दरख्वास्त कर सकते हैं। मैं रोष में था, इसलिए मैंने कुछ नहीं कहा। मैं चला जाना चाहता था, मगर फिर भी बैठा रहा।

अब महाराज ने कहा कि गणेश शंकर! तुम प्रताप के एडीटर हो, तुम्हारे पास रियासत के खिलाफ जो शिकायत पहुँचे, उस संबंध में तुम यह कर सकते हो कि उसके सही होने की तहकीकात कर लो। डी० ओ० द्वारा क्या उस विभाग से नहीं पूछ सकते हो? महकमे के जवाब से खबर गलत साबित हो, तो तुम मत छापो वर्ना तुम छाप सकते हो। अब यह चर्चा गणेश जी के लिए खुले तौर पर बोलने की थी। इस बात का उत्तर देने में उन्होंने एक क्षण की देरी नहीं की। सरस्वती मानो उनकी जिह्वा पर बैठ गयी। उन्होंने स्पष्ट कहा कि सरकार! मैं पत्रकारिता के साथ व्यभिचार नहीं करना चाहता। मेरा अपने संवाददाताओं में पूरा विश्वास है। फिर, कौन विभाग अपनी गलती मानेगा? इस उत्तर के उपरांत चर्चा समाप्त हुई। पर सरकार ने दूसरे दिन के लिए फिर प्रोग्राम रखा। दूसरा दिन शनिवार का था। हम दोनों बारह बजे पहुँचे। महाराज पहले से आगये थे।

सरकार ने कोई चर्चा नहीं छेड़ी। कुछ देर के उपरांत उन्होंने घण्टी बजायी। एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण आए। वे अंगरखा और पाजामा पहने थे, सिर पर मराठी पगड़ी थी। सरकार ने इंगित किया और वे चले गए। इसके उपरांत वे चाँदी का एक बड़ा थाल हाथ में लिए पहुँचे। उसमें रोरी थी और मालाएँ रखी थीं, और रखे थे चंदेरी के हाथ के कते और बुने जरी के सुन्दर दुपट्टे।

अब बैठना मुझे नागवार लगा। उसके बाद वही पण्डित जी चाँदी के एक बड़े थाल में विक्टोरिया और एडवर्ड के चाँदी के पचास हजार रुपयों से भरा थाल लाए। दोनों सामने रखे थे, सरकार के इंगित करने पर उन्होंने गणेश जी के मस्तक में रोरी लगायी और माला पहनायी। माला पहनते हुए गणेश जी ने कहा कि उनके साथी को माला पहनाने का प्रयत्न न करना। पर फिर भी पण्डित जी बढ़े। मैंने सरकार से कहा कि मुझे क्षमा किया जाए। दरबार से तो मैं पहले ही सम्मान पा चुका हूँ, मुझे उत्तेजित देखकर उन्होंने कुछ नहीं कहा। तदुपरांत महाराज ने रुपए के थाल पर हाथ रख कर कहा कि ये रुपए तुम्हारी नजर हैं।

अब तक दुबले पतले बदन के गणेश जी सरकार को बेधड़क उत्तर देते रहे थे। किंतु उस समय मैंने देखा कि उनके पैर काँप उठे, अंत में उन्होंने साहस बटोर कर कहा कि सरकार का आदेश सिर आँखों पर है, पर इन रुपयों के लेने पर प्रताप नष्ट हो जाएगा। मगर नजर लेने से इन्कार करने पर दरबार का अपमान होता है। इसलिए मैं दरबार की इज्जत के लिए एक रुपया लेता हूँ। उसे लेकर वे बैठ गये। यह दिखाई दिया कि वे पानी-पानी हो गए हों। किसी जबर्दस्त संकट से उन्होंने छुटकारा पाया हो। ग्वालियर नरेश यह दृश्य देखकर आश्चर्य चकित हो गए। उन्होंने यह नहीं सोचा था कि कोई पत्रकार ऐसा आदर्श उपस्थित करेगा। यह अपने ढंग का अनोखा और पहिला अवसर था जब कि एक पत्रकार महाराज के सामने इस तरह पेश आया हो। सरकार के मंसूबे पूरे न हुए, वे कुछ लज्जित से हुए। अंत में उन्होंने कहा कि तुम इन रुपयों के निस्बत कहते हो कि इनके लेने से तुम्हारा अखबार बर्बाद हो जाएगा। खैर! पर यह दुपट्टा जो रियासत का बना हुआ है, चंदेरी की कारीगरी का है, जो हाथ से कता व बुना जरी का बना है, क्या तुम इसे भी नहीं ले सकते, यह तो प्रताप के काम में इस्तेमाल न होगा। महाराज का यह अनुनय देखकर गणेश जी अत्यंत द्रवित हो उठे। उन्होंने दुपट्टा उठा लिया। बस एक रुपया और दुपट्टा लेकर उन्होंने ग्वालियर नरेश का श्रद्धापूर्वक अभिवादन किया। मैंने भी सरकार का मुजरा किया। फिर हम दोनों राजमहल से बिदा हुए। इतने दिनों की मोतीमहल की बैठक का यह परिणाम निकला।

उनके इस गौरवपूर्ण कृत्य से गणेश जी के प्रति मेरी श्रद्धा अगाध हो गयी। मेरी जानकारी में उनकी समता का कोई पत्रकार न हुआ। वे ग्वालियर राज्य में ही पैदा हुए थे, और उस राज्य और महाराज के प्रति उनकी भावना कोमल थी। किंतु उनकी कर्तव्य बुद्धि इतनी उच्च थी कि वे न्याय और सत्य के मामले में किसी को नहीं बख्श सकते थे। केलकर जी ने पचास हजार रुपए का चेक एक नरेश का नहीं भुँजाया, परन्तु इस प्रकार उनकी भी परीक्षा न हुई थी। गणेश जी का आदर्श अनोखा था। जहाँ वे आदर्शवादी पत्रकार थे, वहाँ वे सच्चे देशभक्त भी थे। गरीबी में से उठ कर उन्होंने अपना निर्माण स्वयं किया था। अपने जीवन में प्रताप के लिए उन्होंने रियासतों से और सामंतवादियों से कभी कोई धन स्वीकार नहीं किया। उनके प्रताप पर कुछ कम संकट नहीं आए। उससे बीसों बार जमानतें तलब की गयीं, पर वे बात की बात में कानपुर की जनता ने भरीं। वे जनता के आदमी थे। उन्होंने पत्र द्वारा धन जमा करने का कभी खयाल नहीं किया। किस संकट में उन्होंने प्रताप निकाला, इसे उनके निकटवर्ती लोग जानते हैं। उस समय उद्योगपतियों ने इस क्षेत्र में प्रवेश नहीं किया था और न पत्र संचालन को धंधे का रूप दिया था। उस समय पत्र संचालक के पास धन कहाँ था? अजीब हालत थी। प्रताप को डाक से भेजने के लिए चंद रुपए गणेश जी की कमीज में रखे हैं, इतने में कोई अतिथि आ गए। वे रुपए उनके सत्कार में लग गए। उस समय इस हालत में तपे हुए पत्रकारों ने देश में आग पैदा की थी और स्वतंत्रता के युद्ध को शक्तिशाली बनाया था। गणेश जी अपनी करनी से अजर अमर हुए। जब तक देश में हिन्दी भाषा रहेगी और पत्र रहेंगे, तब तक गणेश जी का उदाहरण समाज और राष्ट्र को प्रेरणा देगा। एक बार मैंने इस घटना की चर्चा गाँधी जी से की। महात्मा जी के मुख से सहसा निकल पड़ा कि गणेश शंकर बहादुर है, वह अग्नि में तपे हुए विशुद्धतम सुवर्ण है। इससे अधिक गणेश जी के चरित्र और पत्रकारिता के जीवन पर कौन क्या कह सकता है?

गणेश जी ने जहाँ पत्रकारिता में पहला स्थान पाया, वहाँ वे राष्ट्र की एकता के लिए भी दीवाने थे। जिन मुसलमानों की रक्षा के लिए वे बढ़े थे, उन्हीं के समाज के एक आततायी के हाथ से कत्ल होकर उन्होंने अपने प्राण

...कर दिए। बातों से नहीं, अपितु अपने जीवन को ...कर उन्होंने बेमिसाल आदर्श देश के सामने रखा। ...गांधी जी भी चकित हो गए थे। बापू भी उसी पथ ...बढ़े, और उनका वध एक हिन्दू ने किया। कानपुर ...गों के समय मैं ग्वालियर में था। इतना बीमार था ...मेरे घरवालों को आशा नहीं थी कि मैं बचूंगा। एक ...मुझे उनकी हत्या का समाचार मिला, मैं स्तब्ध हो ...गया। विधाता की गति विचित्र है। गणेश जी तो चले ...पर मैं शरीर के रोगों से संघर्ष करता हुआ जीवित ...रहा। यह संस्मरण लिखते समय पुरानी स्मृतियाँ ...सामने आ गयीं। वेदना हुई। यह चर्चा मेरे लिए कष्ट-दायक है। मैंने चाहा कि मैं इससे बचूँ। कई प्रान्तों के लोक-नेताओं और विशिष्ट विद्वानों के अनुरोधों पर मैं सोचता विचारता ही रह गया। पर श्रीनारायणजी चतुर्वेदी ने कस कर एक बात लिखी, कि इससे आपने मानस पुत्रों के प्रति न्याय नहीं किया, यदि आप उनके प्रति कर्तव्यपालन करना चाहते हैं, तो अब और समय खोने का अवसर नहीं है। यदि आप से कुछ साहित्य सृजन कराने में मैं या 'सरस्वती' कुछ भी सहायक सिद्ध हों तो यह हमारी हिन्दी की एक बड़ी सेवा होगी। हम तो निमित्त बनने में ही अपना गौरव अनुभव करते हैं। ये संस्मरण उन व्यक्तियों के प्रति कर्तव्य ही नहीं, अपितु वर्तमान पीढ़ी को प्रेरणा देने में सहायक होते हैं। यदि आप साहित्य को यह चीज दे जाएंगे, तो आपका यश: शरीर सदा विद्यमान रहेगा। इन आदेशों के पालन में मैं आगे बढ़ा, किन्तु शरीर के क्षीण होने से मैं भले प्रकार लिखने में समर्थ न हो सका। तीन चार वर्षों में मुश्किल से कुछ लिखा जा सका। तीन चार और कभी कभी छ: मास में एकाध संस्मरण लिखा जा सका। एक दो संस्मरण अंगरेजी में लिखे, वे हिन्दी की इस कड़ी में नहीं हैं। जिन लोगों ने मेरे दो सौ संस्मरण सुने, उन्हें निराश होना पड़ा। पर लाचारी है। पुलिस की कृपा से यह संभव नहीं हुआ कि मेरे पास नोट्स और पत्र जमा रहते। हर बार सामग्री नष्ट हुई। अवशेष केवल मस्तिष्क की चीजें रहीं। उस दिशा में भी अब विस्मृति का पग बढ़ने से अनेक व्यक्ति और अनेक घटनाएँ ओझल हो रही हैं। इस अकिंचन की इस सेवा का श्रेय उन्हें है, जिनके आदेश से मैं बढ़ा।

यह दीर्घ जीवन सदा संघर्ष में रहा और आज जीवन के संध्याकाल में भी संघर्ष के बीच में है। मैंने कभी सुविधाओं की आकांक्षा नहीं की। अर्थशास्त्र का छात्र होने पर भी धन जीवन का लक्ष्य नहीं रहा। मेरे जीवन के पृष्ठ यातनाएँ और विपत्तियों से लिखे गए। अलबत्ता मैंने गरीबी को अनिवार्य नहीं माना और न यह माना कि क्षुधा और रोग के प्रकृति के नियम हैं। जैसा भी जितना कुछ लिख सका, वह राष्ट्र व समाज के सामने है।

आज मेघ रीत गये

श्री हरिनारायण गौतम

आज मेघ रीत गये
धूप खिली बिरछों में
बहक गयी
कजली के प्राण, पर
झुलस गये..........!
हरियाया यौवन, पर
पवन संग बूँदों के
अलंकरण धरती के
बीत गये.........
यही है टीन शेड,
यही गोल टेबल है,
कहाँ वे खनक-खनक जाती जो चूड़ियाँ ?
कहाँ आज गर्म चाय ?
मेंहदी से रचित कहाँ—नर्म वे हथेलियाँ ?
सूने में बैठ आज लगता है हमको यों:
पुण्य हुये क्षीण सब, दुर्दिन बस जीत गये..!
धूप खिली बिरछों में
बहक गयी
कजली के प्राण, पर
झुलस गये........
आज मेघ रीत गये......!
आज मेघ रीत गये......!!

अस्तित्ववाद: पथ का नया दावेदार

प्रो० कुबेरनाथ राय

(अस्तित्ववाद यूरोपीय चिन्ता का नवीनतम गुम्फ है। यहाँ तीन लेखों के चक्र में उसका हम विवेचन करेंगे। प्रथम लेख सामने है। दूसरे में उसके आस्तिक पक्ष का और तीसरे में उसके नास्तिक पक्ष का विवेचन रहेगा। अस्तित्ववाद के प्रति, विशेषतः भारतीय सन्दर्भ में, मेरी कुछ शिकायतें हैं और कुछ स्वीकृतियाँ भी हैं। दोनों को यथा स्थान देने की चेष्टा करूँगा।)

अस्तित्ववाद चिन्तन की नवीनतम प्रक्रिया है। इसे एक क्रमबद्ध दर्शन न कहकर एक दार्शनिक प्रक्रिया कहना ही ठीक है। न केवल यह आस्तिक और नास्तिक दो पक्षों में विभक्त है, बल्कि प्रत्येक पक्ष के अन्तर्गत भी चिन्तन-भेद एवं विषय-भेद हैं। फिर भी सारी प्रक्रिया के मूल में मनुष्य के अस्तित्व पर नयी ईमानदारी से सोचने की चेष्टा है। सारे पूर्व प्रचलित पूर्वाग्रहों-धारणाओं से मुक्त होकर अनुभूति के निजी साक्ष्य में इस प्रक्रिया का जन्म होता है। अतः इसे वैचारिक फैशन न कह करके इसके आकर्षण को पहचानने की आवश्यकता है। यह नया बौद्धिक तकाजा है। यद्यपि भारतीय सन्दर्भ में इस तकाजे की अनुभूति हलके और मद्धिम संवेगों को ही प्रस्तुत करती है, पर महायुद्ध से धराशायी यूरोप में इसकी अनुभूति अतिप्रगाढ़ है। विशेषतः फ्रांस का चिन्तन और साहित्य इस अनुभूति को अपना मुख्य विषयवस्तु बना चुका है। यह मार्क्सवाद के बाद यूरोपीय चिन्तन की सबसे सचेत दार्शनिक प्रक्रिया है।

महायुद्ध और उसके बाद वाले काल में मनुष्य अपने को नितान्त असहाय परिस्थिति में पाता है। मार्क्सवादी क्रान्ति के वरदान हैं: नर-हत्या तथा नये 'मैनेजरों' की सृष्टि। प्रजातन्त्र का चरम रूप है: खोखले आदर्शों का ढोंग। देशभक्ति, सत्यनिष्ठा, दया, मानवीय बन्धुत्व आदि आदर्श भी अर्थ-रिक्त, व्यर्थ, शब्दों के अतिरिक्त कुछ नहीं। राबर्ट ग्रेब्ज ने लिखा है: 'जिन मध्ययूरोप के अनाथों के लिए मैंने अर्थ-दान दिया वे ही नाज़ी बनकर आज हमारे नगरों का ध्वंस करेंगे और हमारी पुत्री का शील हरण? यह है 'चैरिटी' की विडबम्ना!' मनुष्य की पाशविक उन्मत्तता ने नाज़ीवाद और कम्यूनिज्म के रूप में सारे मूल्यों के प्रति हमारे विश्वास को समाप्त कर दिया है। ऐसी अवस्था में मनुष्य अपने को अकेले नितान्त असहाय पा रहा है। ईश्वर पर उसकी आस्था कभी की समाप्त हो गयी है। शून्य में भय की छाया में वह स्थित है, निराधार त्रिशंकु की तरह। ऐसी अवस्था में अपने 'अस्तित्व' के सम्बन्ध में वह नये सिरे से सोचने के लिए बाध्य हो जाता है। वह प्रतिमा, ईश्वरीयता, या प्रत्ययवादी तथ्यों के भुलावे में पड़कर जिस रूप में स्वयं पड़ा है उसी रूप को अनुभूत करके 'अस्तित्व' के प्रश्न का उत्तर खोज रहा है।

दो पराकाष्ठाएँ और अस्तित्व

अस्तित्ववाद चिन्तन से अधिक अपनी अनुभूति पर आश्रित दर्शन है। यह २०वीं शती तक आने वाले दर्शन के दोनों ध्रुवों को प्रत्ययवाद या आइडियलिज्म (प्लेटो से हेगेल तक) और भौतिकवाद या मैटिरियलिज्म (थेल से मार्क्स तक), अस्वीकृत करता है। प्रत्ययवाद के अनुसार जो कुछ है वह प्रत्यय (आइडिया) है। प्रत्यय के अतिरिक्त शेष सब मिथ्या है। बाह्य शरीर मिथ्या है बाह्य भौतिक जगत मिथ्या है और इस बाह्य शरीर या भौतिक जगत का पात एवं विनाश (जिसे लोग मृत्यु कहते हैं) वह भी मिथ्या है। सारे भौतिक पदार्थों की स्थिति केवल प्रत्यय के रूप म है। प्रत्यय चेतना का अंग है, अतः सैद्धान्तिक रूप से जो कुछ है ज्ञेय है, अज्ञेय कुछ भी नहीं। आगे, इन प्रत्ययों का कार्यकलाप एक बँधे ऋत (नियम-चक्र) के अनुसार चलता है अतः व्यक्ति-स्वातंत्र्य कुछ भी नहीं। 'राज्य' भी एक प्रत्यय-गुम्फ है, अतः अन्य प्रत्ययों की भाँति इसकी भी चरम सत्ता है और इसका भी एक

रूप (एबसोल्यूट-फार्म) है जिसमें व्यक्ति के भावा-
उथल-पुथल एवं स्वातंत्र्य के लिए कोई स्थान नहीं।*
निष्कर्ष यह निकला कि प्रत्ययवाद मृत्यु, अज्ञेयतत्व
(स्य-सत्ता) एवं व्यक्ति-स्वातंत्र्य तीनों की घोर अस्वी-
है। पर व्यवहार में हम पाते हैं कि मृत्यु एक कठोर
है, विश्व में अज्ञेय तत्व की स्थिति विज्ञान भी मानता
तथा व्यक्ति एक सजीव इकाई है जो किसी भी गुलामी
शिकंजे में (किसी भी 'स्टेट' या 'कम्यून' के 'चरम
त्यय' के साँचे में) जड़ कर नहीं रखा जा सकता।
हार में देखा जाय तो समूचा प्रत्ययवाद सत्य को झुठ-
ने की चालाक कोशिश भर है। अस्तित्ववादी मनुष्य
भोगी जीव है, वह व्यवहार में जो अनुभूत करता है
ही मानता है। व्यवहार में अमरता का नारा चाहे
से बुलन्द करें या हेगेल, यह कभी भी अनुभूत नहीं
तो 'मरण' तथ्य को क्यों न स्वीकार करें? यही
रहस्य एवं व्यक्ति-स्वातंत्र्य के बारे में भी। इसी
अस्तित्ववाद प्रत्ययवाद को अस्वीकृत कर देता है।
दूसरी पराकाष्ठा है भौतिकवाद। भौतिकवाद अपने
वैज्ञानिक चिन्तन मानता है। पर उसकी वैज्ञानिकता
त्रिक दृष्टि की प्रस्तुति है। इसके अनुसार प्रकृति की
री घटनाएँ एवं मन की सारी क्रियाएँ बँधे हुए सुदृढ़
कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक नियमों के अनुसार घटित
ती हैं। इस समस्त घटना-शृंखला में, चाहे वह भीतर
की हो या बाहर की, मनुष्य को स्वतंत्र रूप से कुछ करने
का अवसर नहीं। सभी कुछ भौतिक एवं मनोवैज्ञानिक
नियमों से बँधा हुआ है। इसका अर्थ हुआ कि मनुष्य
गुलाम है। उसका आन्तरिक मूल्य कुछ भी नहीं। उसका
जीवन ऊब भरे नियमों का स्वयंचालित चर्खा मात्र है।
दर्शन ने मनुष्य को अत्यन्त हीन और क्षुद्ररूप में उप-
स्थित किया है, और यह भी व्यक्ति-स्वातंत्र्य, रहस्य-
ता एवं मानवीय मूल्य (मनुष्य की मूलभूत महिमा)
अस्वीकृति है। चेतना-प्रधान दर्शन (प्रत्ययवाद)
मनुष्य की मूलभूत महिमा (आन्तरिक मूल्य) को प्रति-
त करता है अवश्य, पर यह दूसरे किस्म की क्षुद्रता
लाद देता है। इसके अनुसार मनुष्य एक प्रत्ययमात्र है जो भावहीन, निर्मम नियमबद्ध प्रत्यय-यन्त्र का एक पुर्जा-भर है। भौतिकवाद उसे भौतिक यन्त्र का पुर्जा मानता है। दोनों दर्शन रहस्य-सत्ता एवं व्यक्ति स्वातन्त्र्य को अस्वीकृत करते हैं। फर्क यही है कि प्रत्ययवाद रंगान्ध (कलर ब्लाइण्ड है) और भौतिकवाद नेत्रहीन। दोनों मनुष्य को क्षुद्र एवं हीन प्राणी के रूप में चित्रित करते हैं।

अस्तित्ववाद इन दोनों पराकाष्ठाओं के प्रति विद्रोह करता है। वह इन दोनों को अस्वीकृत करके नये मानववाद की स्थापना करता है। वह अस्तित्व के समूचे प्रश्नों पर फिर से चिन्तन करने का आग्रह प्रस्तुत करता है। इस अस्तित्ववादी चिन्तन की सारी धाराएँ एक ही दिशा में नहीं चलती हैं बल्कि दसों दिशाओं में इसका घोड़ा छूटता है! कहीं पर तो सत्य मिलेगा ही! पर मूलभूत उद्देश्य एक ही है।

एकदम नयी स्थिति

नीत्शे ने प्रथम प्रथम खुले आम घोषणा की: 'ईश्वर मर गया। हम लोगों ने ही उसे मार डाला है। ईश्वर के न रहने पर सारी जिम्मेवारी अब मनुष्यों के कन्धे पर आ गयी है। अब मनुष्य ही नियामक एवं विधाता है।' यह ईश्वर-हीन स्थिति जिसमें मनुष्य अकेले खड़ा है, और सारे अशिव-शिव कार्यों एवं परिणामों का स्वतः कर्त्ता एवं स्वयं के प्रति उत्तरदायी बन गया है, यह मुक्त स्थिति कोई मौज शौक की चीज नहीं बल्कि अधिक साहस एवं शौर्य माँगती है। पहले तो सब कुछ ईश्वर पर छोड़ कर निश्चिंत थे। पर अब अकेले एकाकी सारा समर करना है। इस ईश्वरहीन स्थिति के बाद फ्रॉयडवाद, मार्क्सवाद तथा गत महायुद्ध ने आकर उन सारे मूल्यों को समाप्त कर दिया जो शिव, सुन्दर एवं सत्य के रूप में समाज में प्रतिष्ठित और जिनकी सत्ता अन्त में जाकर दैवी सत्ता पर ही निर्भर थी। मनुष्य की यह एकदम नयी स्थिति है!

इस नयी स्थिति में मनुष्य अकेले है। उसके चारों ओर जो कुछ है विकृति ही है। हत्या, नर-मेघ, कुरूपता, छल-कपट को बड़े बड़े नामों से सामने खड़ा किया गया है जिनके चेहरे मिथ्या कागजी चेहरे हैं। यदि आज ईश्वर रहता और नहीं तो कम से कम मानवीय महिमा के मूल्यों में (सत्य, मंगल, सुन्दर, करुणा, वीरता आदि) उसका

*हेगेल की 'स्टेट' (राज्य) को एक 'चरम प्रत्यय'
रूप में मानने की धारणा का विकास एवं अभिव्यक्ति
माने हैं नाजी शासनतन्त्र एवं कम्यूनिस्ट शासन तन्त्र

विश्वास ही रहता तो कुछ तो सहारा मिलता। पर वह अकेले है। अपना सहारा उसे नये तौर से गढ़ना है। इस स्थिति में केवल दो उपाय हैं। एक तो है आत्म-घात दूसरा है विद्रोह। निष्क्रिय होकर पड़े रहना आत्मघात है। नये मूल्यों की सृष्टि करना और अपने उत्तरदायित्व के आमन्त्रण को वीरतापूर्वक स्वीकार करना विद्रोह है। यह विद्रोह इसलिए है कि सारे पुराने मूल्यों से धोखा खा-कर मनुष्य "एकदम नये" मूल्य गढ़ने को उत्सुक है। सारे पुराने मूल्यांकन एवं मूल्यांकन की शिव-अशिव की पुरानी कसौटियों ने उसे धोखा दिया—वह दिन पर दिन पीड़ित और हीन बनता गया। सारे पुराने दर्शन प्रत्ययवाद और भौतिकवाद की पराकाष्ठाओं के बीच के दर्शन हैं। वे तथ्य को झुठलाते हैं, अतः नये दर्शन की स्थापना एवं विद्रोह यही मनुष्य को अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए इस एकदम नयी स्थिति में श्रेयस्कर ज्ञात होते हैं।

पर आत्मघात एवं विद्रोह के अतिरिक्त एक तीसरा मार्ग भी है। यह अकेलेपन का शिकार, 'क्षुद्र विधाता', मनुष्य क्या नया मूल्य गढ़ेगा? नीत्शे कहता है: मनुष्य ही 'अतिमानव' (सूपरमैन) बन जायगा और नया मूल्य गढ़ेगा तथा ईश्वर का 'रोल' अभिनीत करेगा! पर क्या अतिमानव का आगमन इस निराधार त्रिशंकु-स्थिति में संभव है? तो फिर? तीसरा मार्ग! वह है इस भयपूर्ण निराशापूर्ण घेरे को फाँद कर फिर से आस्था एवं श्रद्धा के घेरे में चला जाना। यह आस्था-प्लुति अपने आप नहीं आती बल्कि एक संकल्प लेकर इसकी ओर मंडूक-प्लुति की तरह कूद जाना होता है। यह तीसरा हल आध्यात्मिक हल है। आस्था या श्रद्धा हमें आध्यात्मिक चरमसत्ताओं एवं अनन्त आशा के स्रोतों की ओर ले जायगी। आस्था या श्रद्धा का अर्थ पोप के कर्मकाण्डों से बँधी नियम-निषेधों वाली श्रद्धा नहीं बल्कि आन्तरिक आह्लालन मात्र है। यह नयी आध्यात्मिकता है, नयी ईसाइयत का एक स्वरूप। इसका आधार है १९वीं शती का डच दार्शनिक कीर्कगार्द का ग्रन्थ 'अथवा' ('ईदर/ऑर') जो इस आस्तिक अस्तित्ववाद का जनक है।

इस प्रकार आस्था-प्लुति एवं विद्रोह इन दो प्रकार के हलों के आधार पर अस्तित्ववाद के दार्शनिक पक्ष हो जाते हैं **आस्तिक** और **नास्तिक**। दोनों का प्रारम्भ १९वीं शती में क्रमशः कीर्कगार्द (डेनिश) एवं नीत्शे (जर्मन) में होता है, पर दोनों की प्रगाढ़ अनुभूति सन् ३० के बाद मार्क्सवादी मान्यताओं की विकृति को देखकर ही हुई है। दोनों सारे प्राचीन दर्शनों एवं मूल्यों (या कम से कम 'मूल्य की कसौटियों') को अस्वीकृत करते हैं। दोनों आस्तिक के प्रश्न एवं वर्त्तमान अस्तित्व से उच्चतर अवस्था की ओर जाने के मार्ग को सुलझाने के दो विरोधी प्रयत्न हैं। दोनों ने समस्त विश्व के बुद्धिजीवियों को किसी न किसी रूप में आकर्षित किया है, एवं दोनों साहित्य की नवीनतम धुरी बन गये हैं। यद्यपि यह भी सत्य है कि भारतवर्ष में ही नहीं पश्चिम में भी अनास्था प्रधान दर्शन अधिक लोकप्रिय हुआ है। कुछ लोगों को तो भ्रम है कि अस्तित्व-वाद का अर्थ ही है अनास्था और अजनबीपन का दर्शन। एक अर्थ में यह भ्रम ठीक होते हुए भी मूलतः भ्रान्ति ही है। इसका कारण है कीर्कगार्द एवं आस्थावादी अस्तित्व-वाद की अंशतः कम चर्चा होना तथा दूसरी ओर काफ्का, सार्त्र और कामू आदि विख्यात लेखकों द्वारा नास्तिक एवं अनास्था-प्रधान-दर्शन का प्रतिपादन।

'अस्तित्व' : दो समानान्तर व्याख्याएँ

अस्तित्ववाद प्रत्ययवाद एवं भौतिकवाद की दो पराकाष्ठाओं से अलग जाता है। यह अनुभव-प्रधान दर्शन है, चिन्तन-प्रधान नहीं। यह ठोस अनुभूति को तर्क की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय मानता है, यद्यपि तर्क एवं चिन्तन को सम्पूर्णतः अस्वीकृत नहीं करता है। सारे पूर्व दर्शन मनुष्य की मूल प्रकृति (एसेन्स) के बारे में पहले ही धारणा बना कर अस्तित्व पर विचार करते हैं। प्लेटो से हेगेल तक होमर से येटस और रवीन्द्रनाथ तक सभी के पास मानव प्रकृति (एसेन्स) का एक सूत्र है जिसके आधार पर किसी अस्तित्व या मानवीय स्थिति (ह्यूमन सिचुएशन) को देखने और परखने की चेष्टा की जाती है। पर यह गलत प्रक्रिया है। **अस्तित्व पहले आता है और मूल मानवीय प्रकृति बाद में**—*Existence* preceds essenece—यही सही चिन्तन प्रक्रिया हो सकती है। इस तथ्य को साहित्यिक उदाहरणों से समझा जा सकता है। तुलसीदास पहले ही मानकर चलते हैं कि राम एक आदर्श हैं। कालिदास ने शंकुतला की प्रकृति के बारे में, होमर ने एकिलीज या हेक्टर की प्रकृति के बारे में पहले ही निर्णय कर लिया है। पर अस्तित्व-

ों उपन्यासों या नाटकों में पहले ही मान कर नहीं चलते कि कोई भी व्यक्ति कैसा है। वह स्थितियों के अनुसार भिन्न भिन्न होता रहता है मूलतः न तो कोई शूर है, न उदार न कायर है। सार्त्र का एक नाटक है: 'लूसीफर ऐण्ड लॉर्ड' (शैतान और ईश्वर)। इसमें दो चरित्र आते हैं। एक क्रूर विजेता जिसे क्रूरता में कला जैसा निर्वैयक्तिक आनन्द मिलता है और एक नगर-पुरोहित जो नगर की रक्षा में जीवन होम कर देने को प्रस्तुत है। विजेता और पुरोहित आपस में एक वर्ष के लिए अपने कर्त्तव्यों की अदला-बदली करते हैं। विजेता अपनी प्रकृति के सारे क्रूर तत्वों को दमित करके एकदम अपने को दूसरा व्यक्तित्व तैयार कर लेता है, यहाँ तक कि अन्त में उसे जब जनता क्रान्ति का नायक चुनने की चर्चा करती है तो अपने को इस कार्य के लिए उसकी प्रकृति असमर्थ पाती है और अपनी शिव वृत्तियों की आराधना के कारण ही उसे अपमान और मृत्यु मिलती है। अतः हम देखते हैं कि सार्त्र यहाँ पर पहले से मान कर नहीं चलता कि विजेता का 'एसेन्स' ('व्यक्तित्व' या मूल प्रकृति) 'यह' है। यही बात विश्व के प्रत्येक प्राणी के बारे में है। कोई न तो अच्छा है और न बुरा। मानवीय स्थितियाँ उसकी प्रकृति को रूप दिया करती हैं। अतः प्रथम 'मानव-स्थिति' या 'अस्तित्व' है और मूल प्रकृति या 'एसेन्स' का महत्व द्वितीय है।

अस्तित्ववाद की इस व्याख्या को आस्तिक और नास्तिक पक्ष दोनों मानते हैं। पर अधिक जोर नास्तिकों का ही इस पर है। क्योंकि उनको तो मूल प्रकृति के सूत्रों (अच्छा-बुरा, वीर-कायर, उदार-क्रूर आदि) का पूर्व अस्तित्व इस कारण भी स्वीकार नहीं कि ये सूत्र चरम प्रत्ययों पर निर्भर हैं जो अन्त में चल कर किसी 'डिवाइन' (ईश्वरीय) सत्ता पर जा कर टिकते हैं और ईश्वरीय सत्ता की बात ही मिथ्या है। ईश्वर है ही नहीं।

पर सबसे बड़ी बात तो यह कि अस्तित्व के पूर्व मूल मानवीय प्रकृति नहीं बाद में आती है। बाद में आने पर भी इसके सूत्र यदि चरम प्रत्ययों के रूप में किसी ईश्वरीय-सत्ता पूर्व स्थिति माने भी जायँ (जैसा कि प्लेटो मानता है) तो भी मूल प्रकृति की परे या बाद की स्थिति में अन्तर आ जाता है। और, अस्तित्व के पूर्व क्या है, मूल मानवीय प्रकृति के सूत्र चरम प्रत्यय के रूप में अस्तित्व पूर्व ईश्वर में स्थित हैं या नहीं, आदि प्रश्नों से अस्तित्ववादी विचारक से क्या वास्ता? उससे तो अस्तित्व और उसके बाद की अनुभूतियों को ही अपना विषय वस्तु बनाना है। हर अवस्था में अस्तित्व प्रथमतथ्य है, मूल प्रकृति तदनन्तर तथ्य।

अस्तित्व की एक दूसरी व्याख्या भी है। इस दूसरी व्याख्या पर अधिक जोर आस्तिक पक्ष का है। अस्तित्व= एग्जिस्टेंन्स—'एक+सिस्ट'=परे स्थिति। 'एक+ सिस्ट' का अर्थ है ट्रान्सेण्डेन्स (परे) में स्थिति।* अर्थात् व्यक्ति या मनुष्य सदैव अपनी वर्त्तमान स्थिति, वर्त्तमान अस्मिता (सेल्फ), से परे की ओर उन्मुख एवं गतिशील रहता है, वह वर्तमान अस्मिता पर कभी भी स्थितिशील, खड़ा, नहीं रहता। इसी को कीर्कगार्द ने कहा है: "मनुष्य 'है' नहीं 'हो रहा है' (being नहीं, becoming) की अवस्था में रहता है।" सतत विकासशील स्थिति में। इसी को सार्त्र ने कहा है कि मनुष्य सदैव 'अस्मितापरे गति (सेल्फ-सरपासिंग) में रहता है।

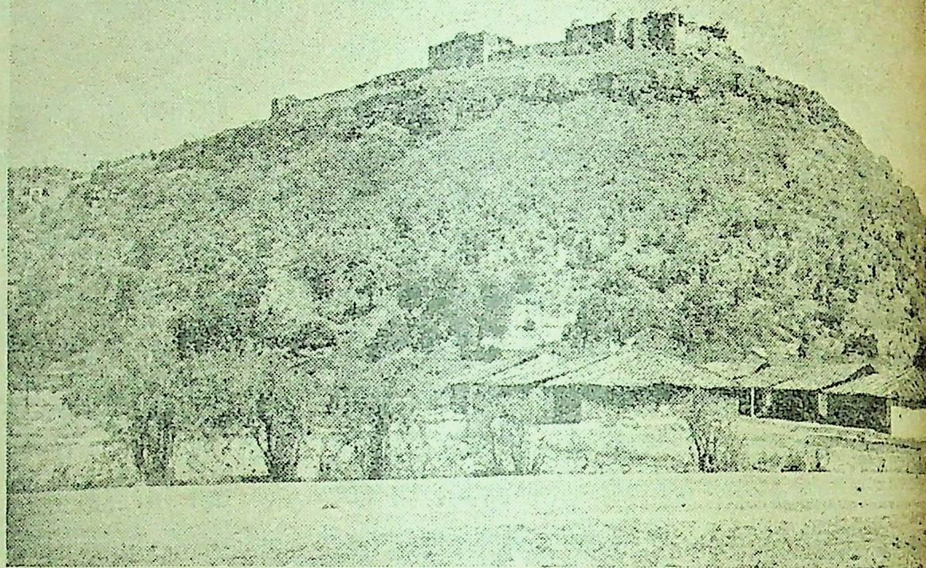
कीर्कगार्द ने इस तथ्य को आगे विस्तार दिया है कि हम अपने वर्तमान में कभी नहीं रहते। हमारी वर्तमान स्थिति में भविष्य की स्थिति का बीज है क्योंकि वर्तमान पर खड़े होकर भी हम उस पर ठोंकी हुई कील नहीं बल्कि उसके परे की गति में हैं। और, वर्तमान के साथ अतीत जुड़ा ही हुआ है। अतः प्रत्येक काल-बिन्दु पर भूत वर्तमान भविष्य तीनों एकत्र हैं। कीर्कगार्द ने दूसरी बात यह कही है कि मनुष्य सदैव 'हो रहा है' या 'बन रहा है' की अवस्था में हैं अर्थात् मनुष्य कभी भी 'बन चुका', सम्पूर्णतः खराशा तराशा, अन्तिम रूप (फिनिश्ड प्राडक्ट) नहीं। अतः **सदैव उसमें निरन्तर विकसित होने की आशा वर्त्तमान। इस प्रकार कीर्कगार्द हमारे लिए इस सिद्धान्त के अन्दर अनन्त एवं सतत विकासशील आशावाद का प्रतिपादन करता है।** नास्तिकपंथी अस्तित्ववादी प्रारम्भिक तथ्य 'अस्मिता-परे गति' को स्वीकार करते हैं, पर इस तथ्य का आशावाद या आस्था-प्लुति के लिए उपयोग नहीं करते इस 'कल्पितार्थ' से वे दूसरा ही 'फल' निकालते हैं जिसमें आस्था या श्रद्धा को अधिक स्थान नहीं। **इस सतत**

(शेष पृष्ठ ४६६ पर देखिए)

*ट्रान्सेन्डेन्स का आध्यात्मिक अर्थ अतिमा या 'जगत-माया-परे' नहीं बल्कि उसका शाब्दिक अर्थ लेना चाहिए: 'एक स्थिति से परे एवं दूसरी उन्नततर स्थिति की ओर।'

रायसेन दुर्ग

श्री शुकदेव दुबे



'तुम्हारे जीवन का अंत काल निकट ही है। क्यों अब अपने गौरव और मान-मर्यादा को नष्ट करते हो? हमने तो यह निश्चित कर लिया है कि हम स्त्रियाँ जौहर कर चिता में जल जायँगी और हमारे वीर पुरुष लड़ते हुए खेत रहेंगे। अगर तुममें कुछ भी लज्जा शेष है, तो हमारा साथ दो।' एक राजपूत रानी के इन भर्त्सना भरे शब्दों के बाद ६ मई, सन् १५३२ ई० को किले में जौहर की चिता जल उठी और लगभग सात सौ स्त्रियों-सहित रानी ने अपने धर्म की रक्षा के लिए जौहर किया। रनिवास की अन्य धर्मावलम्बी स्त्रियों को भी जौहर करने को बाध्य किया गया। इसके बाद किले का शासक अपने कुटुम्बियों-सहित शत्रु की सेना पर टूट पड़ा और वीरतापूर्वक लड़ते हुए सभी वहीं खेत रहे। अन्त में १२ मई, १५३२ को शत्रु की सेना राजपूत सैनिकों की लाशों पर से होकर किले में प्रवेश कर गयी।

यह विवरण मालवा के सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक दुर्ग रायसेन का है। रायसेन का यह महत्वपूर्ण दुर्ग भोपाल से २९ मील और साँची से १५ मील दूर, साँची और भोपाल के बीच, समुद्र की सतह से १९८० फुट की ऊँचाई पर एक पहाड़ी के ऊपर स्थित है। दुर्ग के ऊपर चढ़ने पर साँची का स्तूप साफ दिखायी पड़ता है। मुसलमानी शासन-काल में यह एक महत्वपूर्ण दुर्ग समझा जाता था।

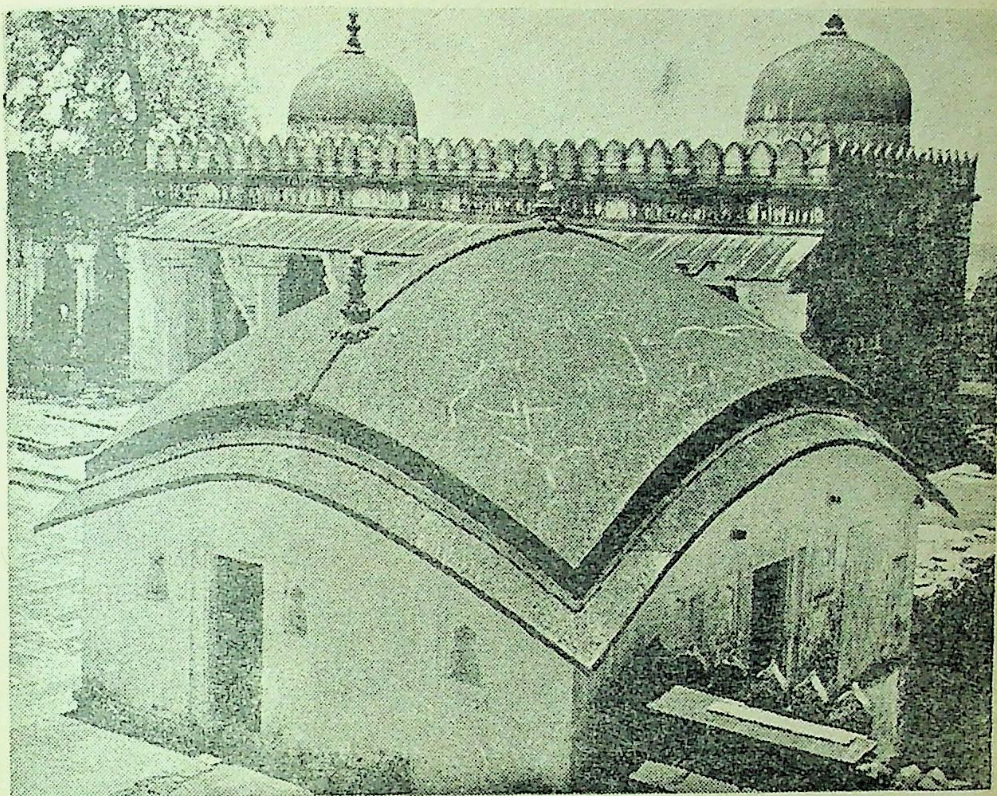
तेरहवीं शती के पूर्व, जिस समय मालवा में हिन्दू राज्य था, संभवतः उसी समय इसका निर्माण हुआ था। इस किले की नींव डालनेवाला राजा रामसिंह या राजा रायसिंह अथवा राजा रायसेन था, जिसके नाम पर इसका नाम रायसेन पड़ा। दूसरा मत यह भी है कि राजवासिनी से बिगड़कर इसका नाम रायसेन बना। परमारों के सं० १२०० के एक दानपत्र में "राजसयन" का उल्लेख है। संभव है, यह रायसेन के लिए ही आया हो।

इतिहास

तेरहवीं शती के प्रारंभ में उत्तरी भारत में मुसलमानों का राज्य स्थापित हो गया था और इनकी दृष्टि मालवा पर लगी हुई थी। सन् १२३४-३५ में अल्तमश ने मालवा पर चढ़ाई की और भेलसा (विदिशा) तथा रायसेन को जीत उज्जैन में महाकाल के सुप्रसिद्ध मन्दिर का विध्वंस किया। परन्तु इतना होने पर भी उसका आधिपत्य इस प्रदेश पर नहीं हो पाया।

बाद में चौदहवीं शती के प्रारंभ में अलाउद्दीन खिलजी के शासन-काल में मालवा दिल्ली राज्य का एक सूबा बन गया। इधर मेवाड़ में राजपूतों का प्रभाव और महत्व बढ़ता देख मालवा के प्रतापी सुलतान महमूद खिलजी (प्रथम) ने अगस्त सन् १५१२ ई० में मेदिनीराय नामक पूरबिया राजपूत को अपना वजीर बनाया। मेदिनीराय बहुत ही वीर और सुविख्यात अनुभवी सेनानायक था और इसके पूर्व वह पूर्वी मालवा के किसी थाने का अधिकारी था। सुलतान की मदद करने के लिए मेदिनीराय ने कई राजपूत सेनानायकों एवं सैनिकों को महमूद की सेना में सम्मिलित कर लिया और उनकी सहायता से उसने मांडू पर विजय पायी। ऐसे ही प्रमुख राजपूतों में सेनानायक सलहदी भी थे। वे तंवर राजपूत थे और उनका जन्म ग्वालियर के पास ही सूखजन (अथवा सुखजान) नामक गाँव में हुआ था।

युद्ध में सहायता करने के पुरस्कार में दिसम्बर, सन् १५१३ में भेलसा का परगना सलहदी को जागीर में मिल गया, जिसमें भेलसा, रायसेन एवं सारंगपुर के प्रदेश शामिल थे। इस प्रकार राजपूतों की शक्ति बढ़ती गयी और महमूद खिलजी उनके हाथ की कठपुतली बन गया। परन्तु महमूद ने गुजरात के सुलतान मुजफ्फरशाह के बहकावे में आकर गुजरात के सुलतान मुजफ्फरशाह की सहायता से उसने मालवा पर चढ़ाई कर दी और फरवरी, १५१८ में मांडू पुनः महमूद खिलजी के हाथ लग गया।



मसजिद, रायसेन किला

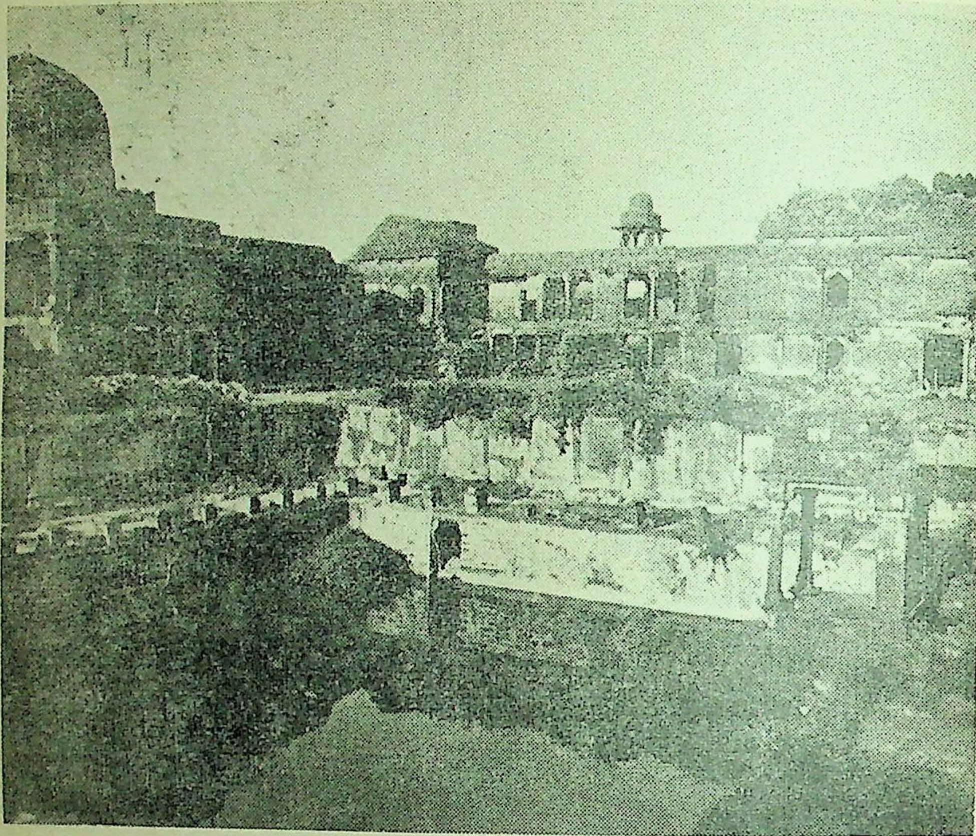
ऐसी स्थिति में ...राय सलहदी के ... मेवाड़ के राणा ... के पास सहायता ... लिए पहुँचा। राणा ... उसे गागरोन, चन्देरी ... का प्रदेश जागीर ... देकर अपना सरदार ... लिया। इधर मालवा ... फैली अ-व्यवस्था का ... उठाकर सलहदी ...गपुर से लेकर राय... का सारा प्रदेश अपने ...कार में कर वहाँ का ... शासक बन बैठा। ...दवाने के लिए महमूद ...लजी अक्तूबर, सन् ...२० में भेलसा की ... बढ़ा। सलहदी ने ... सारंगपुर के पास ...जित कर दिया, ...तु राजपूतों के लूट... में संलग्न हो जाने ... उसने राजपूतों के ... सलहदी को भगा दिया। कुछ समय बाद सलहदी ... महमूद से संधि कर ली और रायसेन को अपनी राज...धानी बना भेलसा, रायसेन एवं सारंगपुर के प्रदेश ... पुनः शासन करने लगा।

इस समय तक गुजरात के शासक बहादुरशाह से ...मूद खिलजी की अनबन हो गयी थी। सलहदी भी ...ने पुत्र भूपतराय के साथ १६ जनवरी, १५३१ को ...बहादुरशाह की सेवा में पहुँच गया और उसकी सहायता ... महमूद खिलजी को १७ अप्रैल, १५३१ को कैद कर ...बहादुरशाह स्वयं मालवा का सुलतान बन बैठा। इसके ... वर्षा आरंभ होने पर जुलाई, १५३१ में सलहदी अपनी ...राजधानी रायसेन आ गया। वर्षा बीतने पर भी जब ...सलहदी वापस नहीं आया, तब बहादुरशाह बहुत ही अ...प्रसन्न हुआ और उसे बुलवाकर २७ दिसम्बर, १५३१ ... धार के किले में कैद कर लिया।

इसकी सूचना पा भूपतराय सहायतार्थ चित्तौड़ के ...राणा के पास पहुँचे और सलहदी के भाई लखमणसेन ...रायसेन दुर्ग को सुसज्जित कर युद्ध की तैयारियाँ करने ...। इसी बीच बहादुरशाह सेना-सहित जनवरी, सन् ...१५३२ को रायसेन के किले के निकट आ पहुँचा। दूसरे ... उसने किले पर घेरा डाल दिया। अब उस पर तोपों ... गोलाबारी होने लगी और कभी-कभी कहीं-कहीं सेना ... आक्रमण करने लगी। बहादुरशाह की सेना के साथ ...सलहदी भी कैदी के रूप में वहाँ उपस्थित था। शाही सेना की शक्ति को देखकर सलहदी जान गया कि बहादुरशाह की जीत सुनिश्चित है। वह निराश हो मुसलमान बनने एवं रायसेन का किला बहादुरशाह के अधिकार में दे देने को तैयार हो गया। विधिवत् इस्लाम धर्म स्वीकार करने पर उसका नामसलाहुद्दीन रखा गया और अल्पकालीन संधि के अनुसार अपने भाई लखमणसेन से मिलने के लिए उसे कैद से छोड़ दिया गया।

सलहदी ने अपने छोटे भाई लखमणसेन से भेंट की और रायसेन का किला बहादुरशाह को सौंप देने का आग्रह किया, परन्तु वह इसके लिए तैयार नहीं हुआ। वह तो राणा सांगा की सेना के साथ सहायतार्थ आने वाले सलहदी के पुत्र भूपतराय की प्रतीक्षा कर रहा था और सुअवसर ढूँढ़ रहा था। कुछ दिनों बाद बहादुरशाह को पता लग गया कि भूपतराय चित्तौड़ की सेना के साथ आ रहा है। उसने सलहदी को पुनः गिरफ्तार कर मांडू भेजवा दिया और इख्तियारखां को रायसेन किले के घेरे का काम सौंप स्वयं राणा की सेना को रोकने चल पड़ा। इसकी सूचना पा भूपतराय के साथ राणा चित्तौड़ वापस लौट गया। रास्ते में राणा से सलहदी-पुत्र पूरनमल भी मिल गया था।

अब तक लखमणसेन भी निराश हो चुका था और इधर बहादुरशाह ने अधिक तत्परता से काम लिया। अप्रैल, सन् १५३२ में लखमणसेन ने बहादुरशाह से निवेदन किया कि सलहदी को रायसेन बुलवा दिया जाय, जिससे उसकी उपस्थिति में किला बादशाह को सौंप दिया



महल जहाँ रानियाँ, पटरानियाँ रहती थीं।

जाय। बहादुरशाह ने उसकी बात मान ली और सलहदी मांडू से रायसेन बुलाया गया। लखमणसेन ने अब बादशाह से मिलकर किला खाली करने का वादा कर दिया और उसकी तैयारी प्रारंभ कर दी। सलहदी की पटरानी दुर्गावती के आग्रह पर सलहदी भी किले में भेज दिया गया। परन्तु वहाँ रानी दुर्गावती ने सलहदी की बहुत ही भर्त्सना की और उसी के बाद वह लगभग सात सौ स्त्रियों-सहित किले में सती हो गयी और किला गुजरात राज में आ गया।

इतिहास-ग्रंथ मिरात-इ-सिकन्दरी में सलहदी के ऐश्वर्य एवं वैभव का वर्णन निम्न प्रकार मिलता है:—"ऐसा कहा जाता है कि उसके (सलहदी के) पास ऐसे-ऐसे बरतन-भांडे, वस्त्र, इत्र-फुलेल आदि अनेकानेक वस्तुएँ थीं कि वैसी उस समय के अन्य किसी सुलतान या राजा-महाराजा के पास कदाचित ही पायी जाती हों। उसके यहाँ नर्तकियों के चार अखाड़े थे और उनमें से प्रत्येक नर्तकी अपनी विशिष्ट कला में सर्वथा अद्वितीय थी। जब ये नर्तकियाँ अपने नृत्य, आदि का प्रदर्शन करती थीं, तब उनमें से चालीस-नर्तकियाँ अपने हाथों में दीपक ले-लेकर खड़ी हो जाती थीं। इन चालीसों नर्तकियों में से प्रत्येक के साथ दो-दो सेविकाएं वहाँ उपस्थित रहती थीं, जिनमें से एक तो पान की गिलौरियाँ लिये रहती थी और दूसरी के पास उन दीपकों में डालने के लिए सुगंधित तेल होता था। सेवा में तत्पर ये सभी स्त्रियाँ सुनहरी जरी के वस्त्र पहने, सुवर्ण-आभूषणों और रत्नों से सुसज्जित बनी-ठनी होती थीं। सलहदी के रनिवास में अनेक रानियाँ तथा कोई सात-आठ सौ उप-पत्नियाँ, खवासिनें आदि थीं। इनमें से कई सौ मुसलमान स्त्रियाँ भी थीं। उसके महल में प्रति-दिन कोई एक करोड़ पान तथा कई सेर कपूर खाया जाता था और कई सौ नारियाँ प्रतिदिन नये वस्त्र पहनती थीं।"

१३ फरवरी, सन् १५३७ को गुजरात के शासक बहादुरशाह की मृत्यु हो गयी। उसके बाद मालवा के एक प्रमुख अधिकारी मल्लूखां कादिरशाह के नाम से मालवा का सुलतान बन बैठा। अब भेलसा से नर्मदा नदी के तट का सारा प्रदेश इसके अधिकार में था। उसने मालवा को पुराने अमीरों में बाँट दिया। तब भपतराय और पूरनमल वापस आ गये और कादिरशाह का आधिपत्य स्वीकार कर रायसेन के किले के आसपास प्रदेश पर पुनः अपना अधिकार कर रहने लगे।

इस बीच पूरनमल ने चन्देरी पर आक्रमण करके उसे अपने अधीन कर लिया, वहाँ के निवासियों को कत्ल कर डाला और लगभग २००० स्त्रियों को अपने रनिवास में रख लिया। उनमें से कुछ स्त्रियाँ नर्तकी का काम करती थीं। इस समय तक शेरशाह सूरी भारत का शक्तिशाली शासक हो गया था। पूरनमल के इस कृत्य से उसे रोष आया। अन्य शासकों के सदृश उसके मस्तिष्क में रायसेन दुर्ग की ऐतिहासिक महत्ता भी चक्कर काट रही थी। उसने सन् १५४३ में रायसेन पर आक्रमण कर दिया। किले के लोगों ने छः महीने तक डटकर मुकाबिला किया, परन्तु वे बर्बाद हो गये। फिर भी वे हटे नहीं। बाद में शेरशाह ने कुरान की कसम खाकर पूरनमल को आश्वासन दिया कि वह उसे तथा उसके संबंधियों के जान-माल को सुरक्षित छोड़ देगा। इस पर संधि हो गयी जिसके फल-स्वरूप रायसेन दुर्ग शेरशाह के अधीन हो गया।

वहाँ से लौटते समय चन्देरी में कत्ल किये गये लोगों की विधवाओं ने शेरशाह से अपनी दर्दभरी कहानी और

...न के अत्याचार की कथा सुनायी। इसे सुनकर का खून खौल उठा। यद्यपि उसने कसम खाकर की सुरक्षा का आश्वासन दिया था, फिर भी हाथी एकत्र कर उसने रायसेन के दुर्ग को पुनः लिया। पूरनमल इसे देखकर आश्चर्य में पड़ गया बचने का कोई उपाय न देख उसने अपनी पत्नी र काट डाला तथा उसे अपने हाथ में लिये हुए रों को वैसा ही करने को उत्तेजित किया। परिणाम हुआ कि राजपूत सरदारों की करवालें निकल पड़ीं उन्होंने अपनी-अपनी बहू-बेटियों को कत्ल कर डाला अफगानों का डटकर मुकाबिला किया। परन्तु अफगानों ने उन्हें गाजर मूली की तरह काट डाला और हाथियों के नीचे कुचल डाला। एक भी आदमी जीवित बच पाया। कुछ औरतें और बच्चे जीवित पकड़े गये। उनमें पूरनमल की एक लड़की भी थी, जिसे की शिक्षा देने के लिए कुछ मंत्रियों के सुपुर्द कर दिया गया था। इस चढ़ाई में उसके बड़े भाई के तीन बच्चों को अमानवीय ढंग से कुचलकर मार डाला गया था।

इसके बाद रायसेन शेरशाह के अधीन हो गया। ने इसे अपना एक प्रमुख दुर्ग बनाया और इसमें १००० के साथ बहुत बड़ी सशस्त्र सेना रखी। बाद में सम्राट् अकबर के शासन-काल में यह उनके अधीन उज्जैन सूबा की एक सरकार का मुख्यालय बना। औरंगजेब ने भी इस के परकोटे की मरम्मत करायी थी। सन् १७६० भोपाल के नवाब फैज मुहम्मद ने इस बहाने से कि मालवा का गवर्नर नुईद अली खाँ स्वतंत्र होने का प्रयत्न रहा है, किले पर अधिकार कर लिया और बादशाह आलमगीर द्वितीय को इसकी सूचना दे दी। बादशाह इस का विरोध करने में असमर्थ था, अतः उसने इसकी स्वीकार करते हुए एक सनद जारी कर दी। सन् १७९६ में नवाब मुरीद मुहम्मद खाँ ने किले को बालाराव इंगलिया को सुपुर्द कर दिया, परन्तु कुछ ही समय बाद सन् १७९८ भोपाल के नवाब वजीर मुहम्मद द्वारा तीस हजार रुपये देकर किला पुनः नवाब के कब्जे में आ गया। तब स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व तक यह दुर्ग भोपाल के नवाब के अधीन रहा, अवश्य ही बीच-बीच में उस क्षेत्र के कुछ भाग का शासन कुछ समय के लिए मराठों के हाथ में चला गया था।

स्मारक

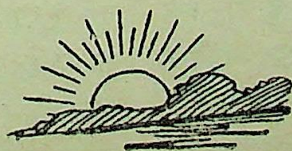
अबुलफजल ने लिखा है कि रायसेन का दुर्ग भारत के सुप्रसिद्ध प्राचीन दुर्गों में से है। फरिश्ता ने भी इस दुर्ग का विस्तृत विवरण दिया है। यह दुर्ग सुदृढ़ पत्थर की दीवारों से घिरा हुआ है, जो कई स्थानों पर टूटी हुई हैं। किले में ९ प्रवेश-द्वार हैं, जिनमें से तीन पूर्व की ओर, तीन उत्तर की ओर और तीन दक्षिण की ओर हैं। इनमें से आठ प्रवेश-द्वार बड़े और एक छोटा है। इस पर पश्चिम की ओर तीन, पूर्व की ओर तीन तथा उत्तर की ओर पाँच बुर्ज हैं। किले के भीतर पैंसठ इमारतें (२५ भग्नावस्था में और ४० खड़ी), तीन प्रमुख जलाशय (डोलाडोली, मदागन तथा सागर) और अड़तालीस कुएँ हैं। इन इमारतों में से तीन हिन्दू प्रासाद रहे हैं।

यहाँ एक कलापूर्ण मसजिद है, जिसकी बीच की मेहराब पर अरबी लिपि में फारसी के पद अंकित हैं। यहाँ गनीमुल-मुल्क द्वारा स्थापित एक विशाल कालेज-भवन भी है जिस पर एक शिलालेख है। किले के भीतर तीन प्रासाद भी हैं, जिन्हें रायसेन-वासी अतरदान, बादल महल और राजा रोहिणी का महल बताते हैं।

किले की दीवारों पर दो-तीन हिन्दी के और तीन फारसी के शिलालेख भी पाये जाते हैं। पूर्वी द्वारों में से एक द्वार पर लगे एक शिलालेख में उल्लेख है कि किले की इमारतों और परकोटे का जीर्णोद्धार सम्राट् औरंगजेब आलमगीर के शासन-काल में हुआ था।

किले का संरक्षण-कार्य सन् १८१८-१९ में प्रारंभ किया गया था। यहाँ हमाम, रानी महल, तालाब, सड़कों आदि के होने से ज्ञात होता है कि किले का निर्माण योजना-बद्ध ढंग से किया गया था। इमारतों की विशालता के अतिरिक्त मालवा के इस ऐतिहासिक सुदृढ़ किले की विशेषता यह है कि इतनी ऊँचाई पर स्थित होने पर भी किले के ऊपर पर्याप्त पानी मिल जाता है।

इसने कितने वैभव-विलास देखे हैं, कितनों के रक्त से अपने वक्षस्थल को रंगा है, कितनी आहुतियाँ ली हैं और कितनों को बनते-बिगड़ते देखा है, यह किले के ऊपर पहुँचने पर स्वयं प्रकट हो जाता है। किले की दीवारों, प्रवेश-द्वारों, प्रासादों, तालाबों आदि को देखने से उनकी कहानी स्पष्ट हो जाती है। सुनसान महलों में बसेरा बनाये हुए चमगादड़ों की चें-चें की सामूहिक आवाज नर्तकियों के घुघरू की झंकार-सी प्रतीत होती है और जौहर तथा कत्लेआम से संबंधित स्थानों पर एक अजीब मनहूसियत-सी दृष्टिगोचर होती है।



मातृभाषा हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है !

कमला रत्नम्

कुछ वर्ष पहिले एक बार मास्को से लन्दन की यात्रा करते हुए हमारा और मैसूर के महाराजा का साथ हो गया। महाराज जयचामराजेन्द्र वाडियार—रूस का दौरा खत्म कर चुके थे और अब आक्सफर्ड में भाषण देने जा रहे थे। बातचीत के आरंभ में ही इन्होंने बड़े उत्साह से कहा, 'आपको मालूम है रूस में कन्नड़ पढ़ाई जा रही है? इन लोगों को अच्छे शिक्षकों की जरूरत है; मैंने इनसे कह दिया है कि ये अपने नवयुवकों को मैसूर भेज दें, मैं उनके पढ़ने का प्रबन्ध करूँगा, और वहाँ से इनके लिये शिक्षक भी भेजूंगा।' मैंने मन ही मन सोचा, यह मातृभाषा का ही प्रभाव है जिसने भिन्न समाजपद्धति में आस्था रखने वाले महाराजा मैसूर को सोवियत रूस का मित्र और शुभचिन्तक बना दिया। अन्तरिक्ष-यात्री पपोविच जब पृथ्वी पर लौटा तब प्रधान मन्त्री ख्रुश्चेव ने उससे उसकी मातृभाषा उक्राईनी ही में बातचीत की, पृथ्वी पर उसे चरम आनन्द अनुभव कराने का यही सबसे अच्छा तरीका था। भाषा और भोजन यह दो वस्तुएँ ऐसी हैं जो जन्म से माँ के दूध के साथ हमारी रगरग में मिल जाती हैं। जिस प्रकार चमड़ी, आँख और बालों का रंग नहीं बदला जा सकता उसी प्रकार भाषा और भोजन को, भारतवासियों के लिये शायद भूषा को भी नहीं बदला जा सकता। जितनी जल्दी ही हम इस तथ्य को पहचान कर स्वीकार करलें उतना ही हमारा कल्याण है। पिछले २५ वर्षों के निरन्तर प्रवास में हमें यदि कोई पक्का और दृढ़ अनुभव हुआ है तो वह यही है और भविष्य में भी इसके बदलने की कोई संभावना नहीं है। भारतवर्ष और शायद लंका और बर्मा को छोड़कर संसार में कोई देश ऐसा नहीं है जहाँ बोलचाल, शासन और प्रशिक्षण का माध्यम विदेशी भाषा हो। लंका और बर्मा में भी जोरों से सिंहली और बर्मी भाषाओं का उत्तरोत्तर प्रयोग हो रहा है। केवल भारत में ही उलटी गंगा बहाने का भगीरथ प्रयत्न किया जा रहा है। एक और उदाहरण सामने आता है और वह छोटे से वीर देश लाओस का है। इसकी जनसंख्या मुश्किल से २० लाख है जिसमें आधे से अधिक आदिम जातियों के लोग हैं जिनकी अपनी अलग बोलियाँ हैं। लाओस प्रत्यक्ष रूप से लगभग ६० वर्ष और अप्रत्यक्ष रूप से दो शती तक फ्रांस के औपनिवेशिक चंगुल में फँसा रहा, परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्त करते ही यहाँ का शासन, प्रशिक्षण, बोलचाल सब लाव भाषा में होने लगा, सार्वजनिक अवसरों पर सब अफसर लावभाषा में बोलते हैं और साधारण बातचीत में भी दो लाव कभी फ्रेन्च में बात करते नहीं देखे जाते।

मातृभाषा में एक जबर्दस्त स्वाभाविकता और खिचाव होता है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। पूर्व और पश्चिम, उत्तर और दक्षिण, नये पुराने, सभ्य और असभ्य सभी देशों में एक ही मूलमन्त्र है कि यदि किसी विदेशी से मित्रता स्थापित करनी है, उसके हृदय को छूना है तो उसकी भाषा के दो चार शब्द सीखना आवश्यक है। 'नमस्ते'! 'धन्यवाद!' जैसे साधारण शब्दों को भी अपनी भाषा की ध्वनियों में सुनते ही मनुष्य के अन्तरतम के तार झंकृत हो जाते हैं, देह पुलकित हो जाती है तथा मुख पर एक अजीब हर्ष और दिलचस्पी का भाव जाग्रत हो जाता है और फिर यह संभव नहीं कि वह मनुष्य आपकी छोटीमोटी बात टाल दे या काम करने में शिथिलता दिखावे। अपने देश में यदि किसी विदेशी के मुँह से हमें ये शब्द सुनने को मिल जाते हैं तो हम विशेष तत्परता से उसकी सहायता, सेवा करने को प्रस्तुत हो जाते हैं, और यदि हम विदेश में हों और वहाँ हमें कोई अपनी भाषा बोलने वाला मिल जाय तो वहाँ के सब दुःख और संकट हमें छोटे लगने लगते हैं। इसी मनोवृत्ति को ध्यान में रखते हुए विदेशी भाषाओं का अध्ययन और उनमें सुचारु संभाषण राजनयिक प्रक्रिया का एक प्रधान अंग माना गया है। खेद की बात है कि हमारे देश में इस तथ्य की ओर जितना ध्यान देना चाहिये था उतना नहीं दिया गया, स्वतन्त्रता के बाद भी नहीं, यह विशेष खेद की बात है।

भारत की स्वतन्त्रता नाममात्र की स्वतन्त्रता है। द्वितीय—महायुद्ध के राजनीतिक दाँवपेंचों तथा एशिया में जापान की अप्रत्याशित सैनिक सफलताओं के कारण हमें १९४७ में स्वतन्त्रता मिल गयी; अँगरेजों को देश के टुकड़े करके शक्तिहीन करना मंजूर था, इसे हमने आसानी से मान लिया। इसलिये भी स्वतन्त्रता मिल गयी। परन्तु वास्तव में अँगरेजों के चले जाने के बाद शासनशक्ति

लोगों के हाथों में आयी, उनमें से स्वतन्त्रता-संग्राम नेताओं और योद्धाओं को छोड़कर बाकी सब वही थे जिन्हें अँगरेजों ने सिखा-पढ़ा कर तैयार किया था, जिनकी चाल-ढाल, रहन-सहन, परिवार सब में अँगरेजी शासन के अनुकूल वातावरण था, जिनके मानसिक और शारीरिक व्यवहारों के सब आँकड़े और मापदण्ड अँगरेजी विचार-धारा द्वारा निर्धारित हुए थे, संक्षेप में जो मनसा, वाचा, कर्मणा अँगरेजी के पूरे गुलाम हो चुके थे। स्वतन्त्रता संग्राम के नेता तो शासननीति की ओर मोटा सा संकेत करके अपने आप देशी और विदेशी राजनीति के चक्रों में व्यस्त हो गयें, परन्तु यथार्थ में सूक्ष्मरूप से शासन का सारा काम, किसी भी नीति को कार्यरूप में परिणत करने का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व पुराने कर्मचारियों के हाथ में ही रहा। स्वतन्त्रता के जोश में आरंभ के दिनों में सबने एक मत होकर संसद की घोषणा स्वीकार कर ली कि हिन्दी ही भारत की राष्ट्र भाषा होगी। सदियों के बाद भारत स्वतन्त्र हुआ था, उसकी अपनी भाषा भी होनी चाहिये थी और यह भाषा हिन्दी ही हो सकती थी जो राष्ट्रीय आन्दोलन से तप कर बाहर आई थी। उस समय किसी के मन में यह विचार नहीं आया था कि राष्ट्र भाषा और राज्य भाषा अलग अलग चीज हो सकती है, अथवा सम्पूर्ण देश की एक भाषा हो जाने पर देश के किसी एक अंग का अहित हो सकता है, स्वतन्त्रता-संग्राम के फलस्वरूप स्वार्थ त्याग और एकता की जो भावना उपजी थी वह अभी प्रबल थी। भाषाओं को लेकर तू-तू-मैं-मैं तो बाद में आरंभ हुई जब कतिपय राजनीतिक नेताओं ने देखा कि केवल इसी अस्त्र को लेकर उन्हें राजनीतिक क्षेत्र में सफलता मिल सकती है। इस युद्ध में उन्होंने न केवल धर्म, बुद्धि और सत्य को तिलाञ्जलि दे दी अपितु झूठ और अन्याय का भी आश्रय लिया। ऐसी अनोखी दलीलें सामने आयीं जैसे संस्कृत भारत के आदि काल में बाहर से आयी थी, यदि एक समय वह समस्त भारत की भाषा हो सकती थी तो अब अँगरेजी क्यों नहीं, जब कि दोनों समान रूप से विदेशी भाषायें हैं। जिस जमाने में भारत में संस्कृत ने बाहर से प्रवेश किया वह समय अबसे लगभग ६ हजार वर्ष पहले का संसार का अति-प्राचीन काल था, मानवता तब तक भाषाओं और जातियों के संकीर्णमय कोष्ठों में विभक्त नहीं हुई थी। संस्कृत का जो भी रूप निखरा वह भारत में भारतवासियों के व्यवहार और प्रतिभा से निखरा। उसको आदर्श और दिशा देने वाला भारत से बाहर का कोई देश नहीं था। अँगरेजी बोलने वाली कोई जाति भारत में घूमते-घूमते भारत में आकर नहीं बसी जैसे संस्कृत बोलने वाले आर्यों की जाति अपने पशुधन के साथ यहाँ आकर बस गयी थी। अँगरेजी विदेशी शासकों द्वारा अपनी सुविधा के लिये हम पर थोपी गयी और इसको थोपने के लिये हमारी पूर्व-विकसित स्वदेशी प्रशिक्षण प्रणाली का सर्वथा उन्मूलन कर दिया गया। इसके लिये डा० राधा कुमुद मुकर्जी का शोध ग्रन्थ "प्राचीन भारत में शिक्षा" और अँगरेज शिक्षाधिकारी मेकाले की रिपोर्टों को देखना आवश्यक है। अँगरेजी शिक्षा ने समस्त भारतीय वस्तुओं के प्रति हमारे हृदय में एक हीन भावना भी उत्पन्न कर दी है, जिस के कारण हम भारत में बनी चीजों, भारतीय वेश भूषा, रहन सहन, तौर तरीकों, यहाँ तक कि समस्त भारतीय भाषाओं को भी अँगरेजी से हीन समझने लगे हैं। इस प्रवृत्ति ने चिन्तन के क्षेत्र में बहुत हानि पहुँचायी है और कहीं-कहीं तो स्वतन्त्र चिन्तन की शक्ति को एक दम कुण्ठित ही कर दिया है। भारतीय भाषाओं के लेखक सब एक स्वर में स्वीकार करते हैं कि अँगरेजी की तुलना में हमारी भाषायें कम समृद्ध, अविकसित और कमजोर हैं जब कि भारतीय भाषाओं में से अकेली संस्कृत ही अँगरेजी अथवा संसार की किसी भी अन्य भाषा से लोहा ले सकती है। इसके प्रमाण में स्वयं अंगरेजों के ही मुँह से निकले सैकड़ों प्रमाण प्रस्तुत किये जा सकते हैं और यह तब जब कि मुसलमानी शासन काल में ही संस्कृत का पठन-पाठन, उपयोग और विकास मन्द पड़ गया था। सच बात तो यह है कि अँगरेजी शिक्षा ने हमारी हीन भावना को इतना प्रबल बना दिया है कि हम सम्पूर्ण रूप से आत्मविश्वास खो बैठे हैं और स्वयं अपनी भाषाओं की शक्ति से अनभिज्ञ हैं।

भाषा क्या है? वह तो हमारा एक दूसरे से सम्पर्क करने का साधन मात्र है, विचार-विनिमय का अस्त्र है। साधन स्वयं उन्नति नहीं किया करते। उनकी उन्नति तो उनके उपयोग से साधकों द्वारा होती है। भाषा का उपयोग करने वाले हम स्वयं हैं, इसलिय भाषा को अशक्त बता कर हम स्वयं अपनी असमर्थता स्वीकार कर रहे हैं। जिस

प्रकार पक्षी के परों की सामर्थ्य उनके कम या अधिक उपयोग पर निर्भर है उसी प्रकार भाषा भी है, जितना ही हम इसका उपयोग करेंगे उतना ही यह सशक्त होती जायेगी। उपयोग में कमी होने से यह उत्तरोत्तर दुर्बल होकर बेकार हो जायगी और हमारी उड़ने की शक्ति नष्ट हो जायगी। **दूसरी भाषा की बैसाखी से हम पृथ्वी पर शायद लँगड़ा कर चल तो सकते हैं परन्तु उन्मुक्त आकाश में स्वच्छन्द उड़ान का, ऊँचे और निरन्तर ऊँचे उड़ते रहने का आनन्द कभी नहीं ले सकते। नवीन सृष्टि, नवीन चिन्तन, नवीन ज्ञान यह सब हमें विदेशी भाषा द्वारा कभी नहीं प्राप्त हो सकते।**

भारतवर्ष के इतिहास की तुलना में योरोप के अन्य देशों का इतिहास अभी नया है। हमारा इतिहास जब उन्नति की चरम सीमा को छूकर मुसलमानों के आक्रमण से ह्रासोन्मुख हुआ उस समय योरप के देशों के इतिहास ने आँखें खोलीं। पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में स्पेन, पुर्तगाल, फ्रांस, हालैण्ड और बाद में इंगलैण्ड के नाविक सब "सुवर्ण भूमि भारत" की खोज में निकले और इस प्रकार महान् साहस और अध्यवसाय से इन लोगों ने नयी दुनिया की खोज की, जलमार्ग बनाये। इसके बाद ही योरप के उपनिवेश काल का आरंभ होता है। एशिया और अफ्रीका के देशों से धन सम्पत्ति खिंच कर योरप चली आयी और इनकी सभ्यता तथा संस्कृति का विकास हुआ। भाषायें समृद्ध हुईं, ज्ञान बढ़ा, उद्योग बढ़ा विज्ञान की नींव रक्खी गयी। संक्षेप में योरप में नव-जीवन, उद्योग और विज्ञान के चमचमाते युग ने प्रवेश किया। अँगरेजी भाषा के ही इतिहास को देखिये। इंगलैण्ड में अब से २०० वर्ष पहले तक न्याय, चिकित्सा शास्त्र, विज्ञान तथा साहित्य की सर्वोच्च भाषा लैटिन थी। बाइबिल भी लैटिन में थी और इसके लोक भाषा अँगरेजी में अनुवाद का घोर विरोध हुआ था। समाज की उन्नति के साथ धीरे-धीरे अँगरेजी का विकास हुआ। हमारे देश में एक बड़े शोध ग्रन्थ की आवश्यकता है जिसका शीर्षक हो "अँगरेजी भाषा का उद्भव और विकास।" इस ग्रन्थ को भारत की सब भाषाओं में लिखकर देश के कोने-कोने में भेजना चाहिये **जिससे हम अँगरेजी के इतिहास से परिचित हों और हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं की वर्तमान असमर्थता पर व्यर्थ के आँसू न बहावें।** कोई कारण नहीं कि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रयुक्त हो कर हिन्दी का भी वही रूप न निखरे जो आजकल अन्य विदेशी समृद्ध भाषाओं का है। राजनैतिक कारणों से शासन, न्याय, व्यापार और शिक्षा के क्षेत्र से भारतीय भाषायें दीर्घकाल तक बहिष्कृत रही हैं अतएव इन क्षेत्रों में इनके अंग कमजोर पड़ गये हैं परन्तु शुद्ध साहित्य की दृष्टि से ऐसी कोई बात नहीं है, आत्मा की गहरी अनुभूति और अध्यात्मदर्शन में भारतीय साहित्य संसार के किसी साहित्य से घटकर नहीं है। **साहित्यिकों ने बराबर अपनी भाषाओं के प्रति अपने कर्तव्य को निबाहा है और आज भी प्रत्येक भारतीय भाषा के साहित्य से कोई न कोई ऐसी चीज निकल आवेगी जो संसार के श्रेष्ठतम साहित्य के मुकाबले में ओछी नहीं ठहरेगी।** शायद इस विषय में नाम गिनाकर उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है।

भारत में अँगरेजी के विरोध में प्रधान रूप से दो बातें कही जा सकती हैं। पहली यह कि यदि हम आशा करें कि भारत का बच्चा-बच्चा अंगरेजी सीख जाय और उसी के द्वारा अपने जीवन के सब काम करे तो यह असंभव बात है। दूसरी यह कि आज हम प्रजातन्त्र का दम भरते हैं। कितने आदमी हैं जो शासन, न्याय और प्रत्येक कामों की भाषा अंग्रेजी को समझते हैं? भारत की ८०% जनता गाँवों में बसती है, गाँव की भाषा बोलती है, भावनात्मक एकता उनमें लानी है अथवा बचे हुए २०% में जो कि शहरों में रहते हैं और वहाँ की संकीर्ण गलियों और आफिस फैक्ट्रियों की पाकशाला में पहले से ही मिलजुल कर एक हो चुके हैं? कुछ यथार्थवादी तो यहाँ तक कहते हैं कि आज जिन अधिकारियों के मुंह पर यह दो शब्द हैं उन्हीं को इनकी सर्वाधिक आवश्यकता भी है। दिल्ली में प्रतिदिन शासन की तथा संसद की कार्यवाही अंग्रेजी में होती है, कितनी जनता उसको समझती अथवा उसमें दिलचस्पी लेती है? क्या इसी को प्रजातन्त्र शासन कहते हैं? अंगरेजी यहाँ सदा से एक सीमित वर्ग की भाषा रही है और रहेगी। **इस सीमित वर्ग के हाथों में देश की समस्त आर्थिक, शारीरिक और मानसिक शक्ति के संवत तथा शासन, न्याय और शिक्षा की नीति के निर्धारण की जिम्मेदारी देकर पिछले पन्द्रह वर्षों में देश के सामने जो जो संकट आये हैं उनसे लोग भली भांति परिचित हैं।** आज

...र्य, अकर्मण्यता और चरित्रहीनता का बोलबाला है। राजधानी में अगस्त '६२ की घटनाएं इसका प्रमाण हैं। 'धर्मयुग' में मधु लिमये ने बहुत ठीक लिखा है ; "शिक्षा, शासन और न्यायालय का माध्यम जब तक एक विदेशी भाषा रहेगी हिन्दुस्तान का शासक वर्ग एक सीमित दायरे में ही निकलेगा, उसका दिमाग साफ और दिल चौड़ा नहीं हो सकेगा, नये साहस और नयी जिम्मेदारियों से वह हमेशा भागेगा।' चीनी आक्रमण के समय यह कथन कितना सत्य सिद्ध हुआ है यह सबको मालूम है। प्रधान मन्त्री ने अंगरेजी को वह खिड़की बताया है जिसके द्वारा हम बाहर की दुनियाँ की प्रगति देखें, जिसके द्वारा बाहर की स्वच्छ हवा हमारे भीतर प्रवेश करती रहे, परन्तु हमें इतनी अक्ल और स्वतन्त्रता होनी चाहिये कि इस खिड़की को हम अपने घर में जगह निर्धारित कर सकें। वह खिड़की किस काम की जिसके अन्दर से हमारा नंगा बदन बाहर झांके, जिसके भीतर से विदेशी हमारे अन्तःपुर के झगड़ों, हमारी बीमारियों, हमारी कमजोरियों पर नजर रक्खें? बाहर की ओर खिड़की के मोह में हम यह न भूल जाँय कि जिस **खिड़की से हम बाहर देखते हैं उसी खिड़की से बाहरवाले भीतर भी देखते हैं।** आज संसद हमारी प्रजातन्त्रात्मकता की मुहर है, परन्तु इससे पहले कि देश का १०% शिक्षित वर्ग यह समझ सके कि हमारी संसद में आज क्या हुआ, लन्दन, अमरीका और पैरिस में हमारे घरेलू झगड़ों और राजनैतिक परिस्थिति की खबरें पहुँच जाती हैं और वहाँ की सरकारों को भारत के प्रति अपनी नीति निर्धारित करने में अमूल्य सहायता देती हैं। हाल ही में अमरीकी रिपोर्टर लिंकन बार्टलेट ने अन्तर्राष्ट्रीय 'लाइफ' पत्रिका में "अंगरेजी—अन्तर्राष्ट्रीय भाषा?" पर लिखते हुए 'हिन्दी के संरक्षण का विफल प्रयत्न' शीर्षक के अन्तर्गत लिखा: 'अंगरेजी भाषा की सबसे बड़ी विजय भारतवर्ष में १९५० में हुई, जब कि केन्द्रीय शासन ने भारत से अंगरेजी राज्य के सब चिह्न मिटाने के प्रयत्न में हिन्दी को राज्यभाषा घोषित कर दिया। इस निश्चय से केवल उत्तर में रहने वाले वे ही लोग सन्तुष्ट हुए जिनकी भाषा हिन्दी थी, इसका विरोध पूर्व में रहनेवालों ने किया जिनकी भाषा बंगाली थी, और भारत के उन करोड़ों निवासियों ने किया जो तमिल तथा अन्य द्रविड़भाषाएँ बोलते हैं। साथ ही साथ यह परिस्थिति भी है कि जनता का ३% से भी कम भाग अंगरेजी जानता है, और इसी वर्ग के हाथ में वे सब अधिकार हैं जिनका संबंध राज्य, शासन, न्याय तथा अन्य कार्यवाहियों से है—संक्षेप में वे ही लोग समाज के सर्वश्रेष्ठ सम्मानित अंग हैं। वास्तव में अंगरेजी का बहिष्कार उस एक मात्र साधन का बहिष्कार करना होगा जिसकी सहायता से देश के भिन्न भिन्न भाग के लोग आपस में विचार-विनिमय करते हैं। फिर भी हिन्दी की सुरक्षा का आन्दोलन जोरों से चल रहा है और मार्के की बात यह है कि यह आन्दोलन अंगरेजी भाषा में किया जा रहा है जिसे प्रधान मन्त्री नेहरू ने अपने देशवासियों के लिये वह खिड़की कहा है जिसके द्वारा वे बाहर के संसार को देख सकते हैं।"

भारत में अंगरेजी को बनाये रखने के भी दो कारण बताये जाते हैं। एक तो यह कि यह आधुनिक विज्ञान की भाषा है जिसके द्वारा हम संसार के अन्य देशों से सम्पर्क करते हैं दूसरे यह कि इसी के द्वारा भारत का शिक्षित वर्ग आपस में एक दूसरे से विचार विनिमय करता है। जहाँ तक पहली बात का संबंध है हमें यह सर्वथा मान्य है, विज्ञान और भारत से बाहर के क्षेत्रों में अंगरेजी की उपयोगिता असंदिग्ध है, यद्यपि इस क्षेत्र में रूसी, जर्मन, फ्रेंच और जापानी भाषायें भी तेजी से आगे बढ़ रही हैं जिनकी ओर से हम उदासीन नहीं रह सकते। नये आँकड़ों के अनुसार आजकल ६०% से अधिक वैज्ञानिक सामग्री अंग्रेजी को छोड़कर अन्य भाषाओं में लिखी जाती है। राजनयिक क्षेत्र में अकेले अंग्रेजी से हमारा काम नहीं चल सकता, इसके लिये हमें संसार की सब भाषाओं का गहरा अध्ययन करना पड़ता है, और इस दिशा में हम प्रयत्नशील भी हैं। परन्तु कौन जाने एशिया की प्रधान भाषाओं चीनी, जापानी, अरबी तथा अपनी पड़ोसी बर्मी, मलय, सिंहली आदि भाषाओं के सम्यक् ज्ञान और प्रयोग से हमें राजनयिक क्षेत्र में इन देशों में अधिक सफलता प्राप्त हो सके? अभी तो अपने पड़ोसी समान एशियाई और अफ्रीकी देशों में हमारी राजनीति का जो हाल है वह किसी की आँखों से छिपा नहीं है। **मेरा अपना अनुभव है कि रूस, चीन, जापान, अरब और दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों में जब हम अँगरेजी के माध्यम से बात करते हैं तो हम न केवल अपना आत्म-सम्मान खोते हैं, साथ ही साथ राजनयिक उपलब्धि में भी बहुत बड़ी हानि उठाते हैं।** भारत से

बाहर के क्षेत्रों में अंगरेजी की आवश्यकता के बहाने से जो उसका व्यवहार भारत के घरेलू कामों में भी करते हैं वे केवल अपने भ्रान्तचिन्तन और संदिग्ध बुद्धि का ही परिचय देते हैं। घर से बाहर कुल्हाड़ी और आरी से भी काटने का काम लिया जाता है, परन्तु कोई यदि रसोईघर के भीतर भी इन्हीं अस्त्रों को काम में लाने लगे तो उसकी बुद्धि की प्रशंसा नहीं की जा सकती। **माना कि घर से बाहर वर्षा के समय छाता लगना उपयोगी है, परन्तु इसी कारण उसे घर के भीतर भी निरन्तर हाथ में लिए रहना कौन सी बुद्धिमानी है?**

रही भारत के भिन्न भागों के शिक्षित व्यक्तियों के आपस में विचार विनिमय कर सकने की बात। अब से १५० वर्ष पहले जब यहाँ अंगरेजी नहीं थी तो क्या हम आपस में बातचीत नहीं कर सकते थे? यदि करते भी थे तो क्या बहुत सीमित दायरे में, संकेतों की भाषा में? जो शिक्षित वर्ग आजकल अँगरेजी के माध्यम से बातचीत करता है वही आवश्यकता पड़ने पर और केन्द्रीय शासन के दृढ़ निश्चय हो जाने पर किसी दूसरी भाषा के माध्यम से भी बातचीत कर सकता है। प्रशिक्षण-प्रक्रिया के प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है कि एक दम विदेशी भाषा की तुलना में हम अपनी ही भाषा से मिलती-जुलती भारतीय भाषा अधिक आसानी से कम समय में सीख सकते हैं। यदि हम १५० साल में अच्छी अँगरेजी सीख सकते हैं तो १५ वर्ष में कामचलाऊ हिन्दी अवश्य सीख सकते थे। नहीं सीखे इसका सम्पूर्ण दोष शासन के ऊपर है और आने वाली पीढ़ियाँ इस सम्बन्ध में वर्तमान शासन को अवश्य दोषी ठहरावेंगी। भारतवर्ष के लिये एक भारतीय भाषा की आवश्यकता स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय ही महसूस हुई थी। यदि अँगरेजी हमारी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती तो अवश्य ही यह स्वतन्त्रता आन्दोलन को भी आगे चला सकती थी। परन्तु गान्धी जी, स्वयं नेहरू जी तथा अन्य नेताओं ने देखा कि अँगरेजी के द्वारा भारत के जनमानस तक नहीं पहुँचा जा सकता, इसलिये राष्ट्रभाषा की पुकार हुई और उसके अध्ययन और प्रचार के संस्थान देश के कोने-कोने में बनने लगे। केवल वर्धा तथा अन्य दक्षिण के केन्द्रों में ही नहीं, उत्तर भारत में भी काशी, प्रयाग आदि स्थानों में नागरी प्रचारिणी सभायें बनीं। आज भी वस्तु स्थिति बदली नहीं है, आज भी अंगरेजी के द्वारा भारत के जनमानस के पास नहीं पहुंचा जा सकता परन्तु आज **अपने स्वार्थ के कारण हमारे नेताओं तथा अधिकारी कर्मचारियों का दृष्टिकोण बदल गया है।** अपने स्वार्थ के कारण ये लोग भूल गये हैं कि **यदि अँगरेजी आजादी जीतने में हमारी सहायता न कर सकी तो उसको रखने में भी हमारी मदद न कर सकेगी।** अंगरेजी आज भारत में उस वर्ग की भाषा है जिसके हाथ में देश के शासन, व्यापार और उद्योग की बागडोर है और इन सब के सूत्र अदृश्य परन्तु विश्वस्त रूप से विदेशी पूंजीपतियों के लाभ के सूत्रों से मिले जुले हैं। इसलिये यह वर्ग देशी भाषाओं को अपना कर अपनी शक्ति में जनसाधारण को हिस्सा देना नहीं चाहता। अंगरेजों के समय में जितने अंगरेजी स्कूल थे आज उनकी संख्या दूनी है, अंगरेजी के समाचार पत्रों तथा अंगरेजी में छपी पुस्तकों की संख्या भी उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। शासन के सब अधिकारी, मंत्री तथा सरकारी पदों की इच्छा रखनेवाले देशी भाषाओं के साहित्यिक भी अपने बच्चों को अंगरेजी स्कूलों में ही शिक्षा दिलाना पसन्द करते हैं, लड़कियों को कान्वेन्ट में भेजते हैं, ये बालक छुट्टी के समय आपस में खेलते समय जिस भ्रष्ट अँगरेजी का प्रयोग करते हैं उसे सुनकर मन लज्जा और ग्लानि से भर जाता है। समझने की बात है कि विदेशी भाषा के माध्यम से हमारे बालक अपने देश, अपनी सभ्यता और अपनी संस्कृति के प्रति सम्मानशील नहीं हो सकते। बचपन से ही उनमें देशी भाषाओं और संस्कृति के प्रति अनादर की भावनायें भरी जा रही हैं। हमारे देश के कतिपय सर्वोच्च पदाधिकारी भारत के उद्भट विद्वानों में प्रमुख तथा भारतीय संस्कृति की आत्मा माने जाते हैं, परन्तु उनकी वाणी भारत की जनता तक नहीं पहुँचती। यदि सच पूछा जाय तो उनकी वाणी केवल विदेशों में ही सुनी गयी है, भारतवासी उनके संदेश से वंचित ही रहे हैं। **अँगरेजी प्रेम की अति के फलस्वरूप हमारे देश में हमारे अपने ही साहित्यकारों का सम्मान नहीं होता।** उनके ग्रंथ बौद्धिक वर्ग द्वारा नहीं पढ़े जाते हैं। उलटे वे लोग उन्हें दूसरे और तीसरे दर्जे का साहित्यकार बता कर उनकी उपेक्षा करते हैं। राहुलजी की बीमारी के समय अधिकारीवर्ग की उदासीनता देख कर जनता को बहुत मानसिक क्लेश पहुँचा था अन्त में एक विदेशी

र अपने खर्चे से राहुलजी और उनकी पत्नी को के लिये अपने देश ले गयी, इससे पहले केरल के ी वल्लतोल का भी यही हाल हुआ था। अँगरेजी जंजीरों में बँधी हमारी अन्तरात्मा की सच्ची तस्वीर ही है। हम यदि तिनके की आड़ करके सत्य को न ना चाहें तो बात दूसरी है। देशरत्न राजेन्द्र बाबू जब हते थे तब यह बात उतनी दुःखदायी नहीं थी क्योंकि की आवाज देश के कोने कोने तक भूखों और गरीबों कानों तक पहुँचती थी। अपने चारों ओर भाषा की र खड़ी करके देश का अधिकारीवर्ग देश की आत्मा लग हो गया है। उसकी प्रतिमा आज भारत के मूक है क्योंकि भाषा ही वह जंजीर है जिसकी यता से राष्ट्र के पदाधिकारी राष्ट्र की आत्मा से स्थापित कर सकते हैं।

कहा जा सकता है कि सारी जनता अँगरेजी न जाने, जनता के निर्वाचित सदस्य सम्मानित 'एम० पी० ं तो अँगरेजी जानता है। आचार्य भूदेव शर्मा के अनु- नवीन निर्वाचित लोकसभा के ५०० सदस्यों में % अंगरेजी बिलकुल नहीं जानते, ६०% को अँगरेजी काम चलाऊ ज्ञान है, १०% अंगरेजी अच्छी तरह समझ ते हैं पर उसमें भाषण नहीं दे सकते, केवल ५% स्य ऐसे हैं जो संसद में अँगरेजी में भाषण दे सकते हैं। द की कार्रवाई में भाषा के सूक्ष्म और पूर्व ज्ञान की श्यकता होती है, मामूली काम चलाऊ भाषा से काम ीं चल सकता। संविधान के गहन प्रश्न जीवन के हर को छूते हैं। ऐसी स्थिति में वह भाषा जो केवल % सदस्यों को मुखरित करती है, कहाँ तक हमारे प्रजा- की भाषा हो सकती है यह विचार का प्रश्न है।

अंगरेजी को रखना अँगरेजों द्वारा लिखे गए इतिहास तथा भारत के विषय में अन्य ज्ञान संबंधी झूठी अफ- ों को जीवित रखना है, उस प्रवृत्ति को मान्यता देना जो अभी तक अँगरेजी के माध्यम से जो कुछ कहा गया वेदवाक्य है, चरम सत्य है। आज राष्ट्रभाषा को उत्तर-दक्षिण और आर्य-द्रविड भाषाओं का जो द्वेष ाया जा रहा है इसके मूल में भी वास्तव में अँगरेजी ही है। भारतीय सभ्यता आर्यों की वैदिक सभ्यता पिछड़ों की अति प्राचीन प्रागार्य सभ्यता के सम्मिश्रण ी थी। इस बात को वेदों में 'निगम' और 'आगम' के नाम से उल्लेख किया गया है। अपनी पुस्तक 'वैदिक-धारा' में डा० मंगलदेव शास्त्री लिखते हैं कि अँगरेजों ने भारत में आकर यह अफवाह उड़ादी कि भारत की सभ्यता केवल आर्यों की सभ्यता है क्योंकि वे आर्यों को अपना सजातीय मानते थे। **भावनात्मक एकता के लिये शंकराचार्य से लेकर तुलसी तक भारत की संत-परम्परा ने जो अमूल्य कार्य किया अँगरेजी ने उसको पलभर में धूल में मिला दिया।** आज हमारा भारत से बाहर के संसार का ज्ञान लगभग सम्पूर्ण रूप से अगरेजी की पुस्तकों के माध्यम से होता है, इस प्रकार **हम बाह्य जगत को विदेशियों के दृष्टिकोण से देखते हैं।** सोचने की बात है कि आज के राजनैतिक वातावरण में इस ज्ञान पर आधारित भारत का अन्य राष्ट्रों के प्रति दृष्टिकोण कहाँ तक स्वस्थ हो सकता है। हमें देखना चाहिये कि समान धर्म, परम्परा और इतिहासवाले अपने पड़ोसी देशों में आज कौन हमारे मित्र हैं और विपत्ति में हम किस पर विश्वास कर सकते हैं।

आज देश के बहुत बड़े भाग में विशेषकर नवयुवक वर्ग में हम असन्तुलन असन्तोष और विद्रोह की प्रवृतियाँ देखते हैं, इसके मूल में बेकारी, निराशा और कुण्ठा के भाव हैं। समस्त उच्चशिक्षा का माध्यम और कार्यक्षेत्र अँगरेजी होने के कारण विद्यार्थियों की किशोर बुद्धि सम्पूर्ण रूप से उसके प्रति आकर्षित नहीं हो पाती। विद्यार्थी अपने विषय में तल्लीन होकर आत्मविस्मृति और तन्मयता का सन्तोष नहीं पाते। यही असन्तोष उनमें भाँति-भाँति की कुण्ठाओं को जन्म देता है तथा उनके व्यक्तित्व को असन्तुलित बनाता है। कार्यदक्षता, उद्योग और सक्षमता ही जीवन में आनन्द भरते हैं, और इसके अवसरों का हमारे तरुण वर्ग के लिये बहुत अंश में अभाव ही है। उच्च शिक्षा का माध्यम अंगरेजी होने के कारण जब विषयों को आत्मसात् करना ही कठिन है तब उनमें नवीन खोज, नवीन सूझ बूझ की आशा करना तो एकदम ही बेकार है। जिन गिने-चुने लोगों का अंगरेजी भाषा पर अधिकार हो भी गया है, वे भी तोते की तरह रट कर उसमें दूसरों के भाव दोहराने के सिवा कुछ और नहीं कर सकते। भारत में अंगरेजी की असफलता का सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि पिछले डेढ़ सौ वर्षों के अध्यवसाय के बाद भी अंगरेजी के गर्भ से अभी तक कोई ऐसा ग्रन्थ, काव्य या उपन्यास नहीं उपजा जिसमें सम्पूर्ण भारत की आत्मा चित्रित हो, जैसे

वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, तुलसीदास और अभी निकट अतीत में रवीन्द्रनाथ द्वारा हुई। अरविन्द, सरोजिनी नायडू आदि कतिपय कवियों ने अँगरेजी में उत्कृष्ट कविताएँ लिखीं परन्तु उन्हें अँगरेजों द्वारा अपनी कविता के किसी संकलन में स्थान नहीं दिया गया, और न सार्वजनिक रूप से वे भारत में लोकप्रिय हुईं। आर० के० नारायणन् अमरीका में अंगरेजी के अच्छे उपन्यासकार माने जाते हैं परन्तु अपने देश में वे अपरिचित ही हैं, स्वयं तमिलभाषी जनता भी उन्हें नहीं जानती। इसके अलावा अंगरेज स्वयं हमारे अधूरे और अपंग अंगरेजी ज्ञान की खिल्ली उड़ाते हैं। कुछ दिन पहिले ब्रिटिश काउन्सिल के निमन्त्रण से भारतीय प्रोफेसर, साधन कुमार घोष इंगलैण्ड भ्रमण को गये थे। लौटकर उन्होंने 'माई इंग्लिश जर्नी' नामक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक की समालोचना करते हुए समाजवादी उदार दृष्टिकोणवाले पत्र 'न्यूस्टस्टेट्समैन" के १३ अप्रैल '६२ के अंक में मैल्कम मैगरिज लिखते हैं:

'Almost the only Englishmen left in the world today are Indians. Who cares about the Boat Race outside Calcutta or Bombay? Where is regimental silver polished as assiduously as in Indian Army messes? If there are any Bertie Woosters still around, they are called, we may be sure, Sen Gupta or Abdul Rahman. Indian Parliamentary eloquence retains Gladstonian echoes, unheard in Westminster for many a long day; Indian editorialists thunder and fulminate in a style which vanished, over here, with Garvin. The fact is that, in expiring the British Raj perpetuated itself in the persons of its successors. Nehru is the last Viceroy; Kipling's ghost walks along the Mall in Simla, not in S.W.1, and those who follow the full Somerset Maugham rituals and put on dinner-jackets in remote places, are likely to be Indian political officers posted to tribal areas. . . This Victorian after-glow is nowhere more apparent than in the field of academic letters. . . . The most woeful consequence of imposing alien rule on a people is what sticks. Amritsar can be forgotten and the Black Hole of Calcutta becomes a dim and legendary memory, but English Literature once implanted echoes through the ages. History soon abolishes imperial pomp and circumstance, but not, alas, the Oxford Book of English Verse. The Captains and the Kings depart, the B.A.s remain; the White Man's Burden, when it grows too heavy and unrewarding, is easily shed, but there is Professor Ghosh to pick it up again, and what is worse, lay it back at our feet. Tagorean Bengal twilight, honourable and right-honourable Swamis, William Morris ashrams, a whole bastard culture, and the derelict hopes and fancies that go therewith—this survives, when the Raj itself is one with Nineveh and Tyre.

Thus Professor Ghosh rises up like an old issue of the Times Literary Supplement. . .'

अँगरेजी के उन्माद में अंधा हमारा उच्च कर्मचारीवर्ग तो मैगरिज के उद्‌गारों को समझ ही गया होगा, परन्तु ९८% जनता तो अंगरेजी नहीं समझती, उनके लाभ के लिये संक्षेप में भाव इस प्रकार है: "आजकल संसार में अगर कहीं असली इंगलिशमैन रह गये हैं तो वे भारत में हैं। केम्ब्रिज की बोटरेसों में कलकत्ते वालों को छोड़कर कौन दिलचस्पी लेता है? ग्लैडस्टन के जमाने की भाषा भारत की ही विधान सभाओं में सुनी जा सकती है। सत्य तो यह है कि मृत्यु के समय ब्रिटिशराज की आत्मा अपने उत्तराधिकारियों के शरीर में उतर आयी। नेहरू अन्तिम वाइसराय है, किपलिंग की रूह शिमला की सड़कों पर मँडराती है....... विक्टोरिया-कालीन इंगलैण्ड की सन्ध्या का यह शेष प्रकाश सबसे अधिक साहित्य के क्षेत्र में दिखायी देता है। विदेशी शासन समाप्त होने के बाद जो कुछ बच जाता है वही उसका सबसे भयंकर परिणाम है। लोग जालियाँवाला बाग भूल सकते हैं, कलकत्ते की काल कोठरी भी पूर्व जन्म की स्मृति बन सकती है परन्तु **अँगरेजी साहित्य एक बार जड़ें ले लेने पर फिर हटाये नहीं हटता।** इतिहास की धूल चक्रवर्ती राज्य के हाव विलासों को सदा के लिये मिटा सकती है परन्तु खेद है कि "आक्सफर्ड बुक आफ इंग्लिश वर्स" (अंगरेजी कविता) को नहीं। वे फौजी अफसर और सम्राट् चले गये परन्तु

...ए० अब भी मौजूद हैं—गधे के इस बोझ को आसानी ... भी दिया जा सकता है परन्तु प्रोफेसर घोष उसे ... उठा कर हमारे चरणों पर रख देने को मुस्तैद हैं। ...द की बात है कि यह वर्णसंकरी सभ्यता अभी जीवित ...ब कि ब्रिटिशराज रोम और ग्रीस के साम्राज्यों के ... धूल में मिल चुका है। लन्दनटाइम्स के किसी ... साहित्यिक-परिशिष्ट की भाँति प्रोफेसर घोष हमारे ... मर कर फिर उठ खड़े हुए हैं।" ....और आगे घोष ... पुस्तक से बहुत से उद्धरण दिये गये हैं जो आजतक के ...ज़ी साहित्य में कोई अर्थ नहीं रखते। इस पर भी ...रा अँगरेजी मोह नहीं टूटेगा ?

इस मोह के परिणामस्वरूप स्वतन्त्रता के इतने वर्षों ... भी आज देश में यह स्थिति उत्पन्न हो गयी है कि ...भाषा **का स्वरूप क्या होना चाहिए, इसके बारे में** ...हम अपना **मत स्थिर नहीं कर पाये हैं।** सरकार ...रेजी को स्थित रखने के लिए संविधान को बदलने में संकोच नहीं करती। इसके मूल में दो कारण हो सकते **१—राष्ट्रभाषा के संबंध में संविधान का आदेश पालन ...ने में शासन की असमर्थता।** १४ सितम्बर १९४९ को ...विधान के विधायक, स्वतन्त्रता संग्राम के अग्रणी, पूज्य ...र वृद्ध नेताओं ने निश्चय किया कि हिन्दी हमारी ...ष्ट्रभाषा होगी। अपने इस निर्णय के संरक्षण और पालन ...भार उन्होंने सरकार के ऊपर डाला। संविधान में ...रिवर्तन करके शासन अपने को उस आदेश के पालन ... असमर्थ सिद्ध कर रहा है। २—देश में विध्वंसात्मक ...र विघटनकारी प्रवृत्तियाँ बढ़ रही हैं और सरकार उन्हें ...ने में असमर्थ है। **यदि अँगरेजी की सहायता से देश ...ी एकता कायम रहे तो हम इसे स्वीकार भी कर लें।** ...न्तु ऐसा हुआ नहीं और होना असंभव है। **स्वतन्त्रता ...न्दोलन में हिन्दी के माध्यम से देश एक हुआ था, ...वतन्त्रता के बाद आज अँगरेजी के लगातार माध्यम रहने ...र भी देश टूटता नजर आ रहा है।** देश की एकता के ...ये राष्ट्र भाषा का प्रश्न बड़ा महत्वपूर्ण है। विघटन...ारी प्रवृत्तियों अथवा किसी वर्गविशेष के दुराग्रह से ...ष्ट्रभाषा के संबंध में कमजोरी दिखाकर सरकार इन ...वृत्तियों के अस्तित्व को मान्यता दे रही है और उनको ...ने में अपनी असमर्थता स्वीकार कर रही है। आगे ...र भी कई बातें स्पष्ट होती हैं:—१—देश के कई कोनों ... क्षेत्रीय भाषाओं, पंजाबी-सूबा और द्रविड़िस्थान के रूप ... राष्ट्रविरोधी आवाजें सुनायी दे रही हैं। अगर इनके ...मने सिर झुका कर संविधान में विधेयक लगाकर ...रिवर्तन किया गया तो विघटनकारी प्रवृत्तियों की ... होगी और देश के विभाजन की प्रक्रिया फिर से आरंभ हो जायगी। अच्छा तो यह होता कि चीनी आक्रमण से पैदा हुई एकता की भावना का लाभ उठा कर राष्ट्र भाषा को आगे बढ़ाया जाता और इस भावना को पक्का कर दिया जाता, भाषा का प्रश्न फिर से उठा कर सरकार ने उलटा ही कदम उठाया। २—१९४९ के बाद अहिन्दी-क्षेत्रों में राष्ट्रभाषा सीखने में जो प्रगति दिखायी दी है—हाल ही का समाचार है कि केरल में ४०%लोगों ने हिन्दी सीख ली है—**इस विधेयक के द्वारा वह गति मन्द पड़ जायगी।** उलटे लोगों को यह भ्रम हो जायगा कि राष्ट्रभाषा के संबंध में सरकार की नीति स्पष्ट और कड़ी नहीं है और हिन्दी के प्रति उनके उत्साह के कम होने के साथ-साथ अन्यभाषाओं को लेकर विघटनकारी प्रवृत्तियों को प्रश्रय मिलेगा। ३—जनता में यह भावना फैलती जा रही है कि अंग्रेजी को बनाये रखने का निर्णय **अल्पसंख्यक अँगरेजी जाननेवालों का देश की बहुसंख्यक अँगरेजी न जाननेवाली जनता के खिलाफ षड्यन्त्र है और उनका ऐसा स्वार्थपूर्ण अभियान है जो प्रजातन्त्र के सर्वथा विरुद्ध है।** ४—पिछले ८-१० वर्षों के दौरान में राष्ट्रभाषा के प्रति शासन की नीति देखकर उन पुरानी दलीलों का स्मरण हो आता है जिनका आश्रय अंग्रेजों ने स्वतन्त्रता सग्राम को दबाने के लिये किया था। अँगरेज हमसे कहते थे कि तुमको स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती क्योंकि तुम अभी अशिक्षित, पिछड़े हुए और गैरजिम्मेवार लोग हो, तुम अभी स्वराज्य के लिये तैयार नहीं हो। हमारी मुट्ठी-भर अँगरेजी जानने वाले अफसरों के और अपने स्वार्थ से अन्धी होकर कह रही है कि भारतीय भाषायें अविकसित हैं, कमजोर हैं अभी वे राज्य भाषा होने के योग्य नहीं हैं ! अँगरेज हमसे कहते थे जब तक आजादी के बारे में देश में एकता नहीं स्थापित होगी हम स्वराज्य नहीं देंगे। हमारी सरकार कह रही है जब तक दक्षिण वाले हिन्दी की माँग नहीं करेंगे तब तक केन्द्र की भाषा अँगरेजी ही रहेगी ! आखिर स्वतन्त्रता संग्राम के अन्त तक हिन्दू-मुस्लिम एकता नहीं हुई और देश के टुकड़े हुए। आज भाषा के बारे में यदि सरकार की यही नीति रही तो **इसमें सन्देह नहीं कि देश की एकता की मूर्ति टूट जायगी और देश टुकड़े-टुकड़े हो जायगा।**

इन सब कारणों से आवश्यकता इस बात की है कि देश के विद्वान और साहित्यकार जनमत को जागृत करने और सरकार तथा विधायकों पर प्रभाव डालने के लिए आन्दोलन करें और सरकार के इस अँगरेजी प्रेम का कड़ा विरोध करें, और **यह विरोध तब तक जारी रहे जब तक सरकार जनमत स्वीकार करने पर बाध्य न हो जाय।**

नागालैण्ड और नागा समाज (२)

श्री सीताराम जौहरी

"कल ६ बजे के स्थान पर हमारा कॉनवॉय रात के ११ बजे पहुँचा," २ अक्तूबर १९६२ को एक पुलिस हवलदार ने मुझ से दीमापुर में कहा। यह हवलदार मेरे रेजिमेंण्ट में रह चुका था।

"ऐसा क्यों हुआ?" मैंने पूछा।

"कुमारी फीजो इम्फाल गई हुई थीं। वह कल हमारे कॉनवॉय से कोहिमा लौटीं। उनके साथ उनकी देखभाल के लिए एक कोहिमा निवासी व्यक्ति भी था।"

"वह इम्फाल क्यों गईं थीं?"

"सुना है कि अपने माता-पिता के लिए अपने मित्रों से चन्दा लेने गई थीं। जब पुलिस को ज्ञात हुआ कि कुमारी फीजो हमारे कॉनवॉय में चल रही हैं तो उन्होंने कुमारी और उनके साथी नागा को ढूँढ निकाला। तलाशी लेने पर नागा के पास ८०० रुपये निकले। जब कॉनवॉय कोहिमा पहुँचा तो सरकारी कार्रवाई में लगभग ३ घंटे लग गये। उन दोनों को कोहिमा में रोक लिया गया। उसके बाद कॉनवॉय चल सका" हवलदार ने बताया।

फीजो की पत्नी अपने बच्चों के साथ कुशलपूर्वक शिलाँग में निवास कर रही हैं। भारत सरकार उनका काफी ख्याल रखती है। फिर भी उनको कुछ खर्चे की आवश्यकता तो होती ही होगी। इसके अतिरिक्त फीजो को भी, जो स्काट के अतिथि बने हुए विलायत में रह रहे हैं, कुछ धन की आवश्यकता होगी ही। रुपया मिसेज फीजो के द्वारा ही भेजा जाता है। यह भी स्पष्ट है कि रुपया चन्दे से ही आता होगा।

"पुलिस ने ऐसा क्यों किया? जब मिसेज फीजो शिलाँग में रह रही हैं तो उनको खर्चे की आवश्यकता तो अवश्य ही होगी। फिर अपने पति की सहायता करने का प्रयत्न भी स्वाभाविक है।"

"सुना है कि पुलिस फीजो के सहायकों के नाम जानना चाहती थी। इसीलिए चंदा देने वालों का पता लगा रही थी।"

"ब्रिटिश काल में जब काँग्रेसी नेता जेलों में हुआ करते थे तो क्या भारतीय धनी लोग उनको सहायता नहीं देते थे? क्या उन दिनों पुलिस को इन सहायकों के नाम नहीं ज्ञात थे?"

"भारत की बात दूसरी है। विलायत में तो एक ही लार्ड 'हाहा' था, हमारे देश में तो असंख्यों लार्ड 'हाहा' हैं। पर नागालैण्ड की बात दूसरी है। अंगामियों में एक भी लार्ड 'हाहा' नहीं मिलेगा।"

"ऐसा क्यों?"

"यदि अंगामी विद्रोहियों को पता लग जाय कि कोई अंगामी सरकार की जासूसी करता है तो वे तुरंत ही उसे और उसके समस्त परिवार को मार डालें। विद्रोहियों के भय के कारण ही नागा लोग भारत सरकार की खुल्लम-खुल्ला सहायता नहीं कर रहे।

"क्या भारत सरकार अपने सहायकों की रक्षा नहीं करती?"

"जैसे ही पुलिस ने किसी संदिग्ध व्यक्ति के विरुद्ध कोई कार्रवाई की, या जाँच शुरू की वैसे ही वह प्रायः भूमिगत हो जाता है और विद्रोहियों से जा मिलता है। जासूसों के नाम मालूम हुए तो वह विद्रोहियों को बता देता है। कभी कभी विद्रोही व्यक्ति लौटकर सरकारी जासूस बन जाता है, और भेद लेकर फिर विद्रोहियों के पास लौट जाता है। इस प्रकार विद्रोहियों को उन लोगों के नाम मालूम हो जाते हैं जो गुप्त रूप से सरकार की सहायता करते हैं।"

"तुम ने कहा कि कुछ विरोधी बाहर आते हैं और अपना कार्य समाप्त करने के बाद फिर भूमिगत हो जाते हैं।" बात काटते हुए हवलदार ने कहा: "केवल हृष्ट पुष्ट नागा। बूढ़े, रोगी या घायल अथवा निर्बल नहीं।"

"देशमें तो प्रेस वाले बड़े प्रसन्न होते हैं जब उनको सूचना मिलती है कि इतने नागा विरोधियों ने अपने को अपने हथियारों के साथ भारतीय पुलिस को समर्पण (सरेंडर) कर दिया।" मैंने कहा।

"पिछले सप्ताह ही आपने पढ़ा होगा कि ७५ नागाओं ने अपने हथियारों के साथ हमारी पुलिस को अपने को समर्पण कर दिया।"

"पढ़ा तो था।"

"इन ७५ विरोधियों में अधिकतर वेही व्यक्ति थे जो हिंसात्मक आन्दोलन चलाने योग्य न थे। यदि कोई

था भी तो वह थोड़े दिन बाद फिर अपने विरोधी के साथ जा मिलेगा।"

"परन्तु उनके हथियार तो कम हो गये।"

"अब हथियारों के बारे में सुनिए। एक बार इन समर्पणकारियों ने ३० राइफिलें दी थीं। उनमें २९ राइफिलें बेकार थीं। केवल एक राइफिल काम की थी।

थोड़ी देर बाद हवलदार फिर बोला।

"जैसे हमारी सेना में ७ साल की सरविस के पश्चात् कुछ सैनिक रिजर्व भेज दिए जाते हैं और उनकी जगह पर नये रंगरूट ले लिए जाते हैं वही यहाँ हो रहा है। जैसे सेना की ट्रेनिंग लगातार जारी रखी जाती है उसी प्रकार विरोधी केन्द्र में भी ट्रेनिंग जारी है। यही कारण है कि विरोधियों की मारकाट चलती रहेगी। यह समर्पण का ड्रामा तो केवल मजाक है।"

इस प्रकार जो हवलदार ने कहा उसमें मुझे भी अपनी सहमति देनी ही पड़ी।

मेरी भेंट एक कछारी महाशय से हुई। यह नेफा शासन के एक अधिकारी भी थे।

"कहिए अब 'कछारी' से 'नागा' हो गये?" मैंने कहा।

"१३शती के पूर्व हम लोग पूर्वी आसाम में शासक थे। अहोमों ने हमको पराजित किया तो हम लोग यहाँ चले आये और दीमापुर हमारी राजधानी हो गयी। परन्तु अहोमों ने हमको यहाँ भी चैन न लेने दिया। दीमापुर पर उनका आक्रमण हुआ। दीमापुर उजड़ गया। कछारी राजधानी मोइनाँग चली गई। जो लोग यहाँ से पूरब-दक्षिण की ओर चले गए वह 'मेच' कहलाए। जिन्होंने दीमापुर ही में रहना उचित समझा वे 'दीमार' कहे जाने लगे। तो पहिले कछारी से दीमार बने, अब नागा हो गये। इसमें हानि ही क्या है? सम्भव है हमारा नागालैण्ड में सम्मिलित होना देश की एकता बढ़ाए।" बड़े गर्व से उन कछारी महाशय ने कहा। मैं ऐसे विचार और आसामियों से भी सुन चुका था। मैंने पूछा:

"आप लोगों की संख्या क्या है?"

"लगभग ६,०००।"

"आपके बच्चे किस भाषा और लिपि में पढ़ते हैं?"

"आसामी और आसामी लिपि में।"

"नागालैण्ड में बच्चों को किस भाषा में शिक्षा दी जाती है?"

"अगामी भाषा में। वह लिखने हेतु रोमन लिपि का प्रयोग करते हैं?"

"क्या त्वेनसाँग में भी ऐसा ही है?"

"वहाँ सम्भवतः दो भाषायें पढ़ाई जाती हैं। अभी तक वहाँ पाठशालाओं में रोमन लिपि का प्रयोग आरम्भ नहीं हुआ है।"

"आप लोग युनिवर्सिटी की शिक्षा कहाँ प्राप्त करते हैं?"

"गोहाटी युनिवर्सिटी में। जब नागालैण्ड में युनिवर्सिटी हो जायेगी तो कोहिमा जाया करेंगे।"

"मेरा एक और प्रश्न है।"

"बोलिए।"

"कुछ विरोधियों के समर्पण के विषय में बताइए।"

"पहिली बात तो यह है कि समर्पण छोटे छोटे शासन केन्द्रों में होता है। वहाँ का संचालक अपने हेडक्वार्टर सूचना भेजता है। उसको शाबासी मिलती है। उधर समर्पण करने वाले विरोधी को पुरस्कार के रूप में कुछ रुपये मिलते हैं और १६ मन अनाज। उद्देश्य यह है कि वह व्यक्ति जो विद्रोह करना छोड़ कर गाँव में शान्तिपूर्वक बसने जा रहा है स्वावलंबी हो जाय। स्थानीय सरकारी अधिकारी भूतपूर्व विद्रोही युवकों को सरकारी नौकरी दिलाने की पूरी कोशिश करता है। किंतु अनुभव यही हुआ है कि नौकरी छोड़कर थोड़े दिनों बाद वह युवक फिर विद्रोही दल में जा मिलता है। यदि इस बात की सूचना ऊपर के अफसरों को भेजी जाय तो सम्भव है कि स्थानीय अधिकारी (जिसने उसको नौकरी में लेने की सिफारिश की थी) कुछ कठिनाई में पड़ जाय। इस भय के कारण वह प्रायः चुप ही रहता है। इस प्रकार विद्रोही लोग आते जाते रहते हैं। वास्तव में विद्रोह में कोई कमी नहीं हुई। यहाँ तो अब 'समर्पण' का नाम सुन कर लोग हँस देते हैं।"

यह महाशय मुझे एक कछारी ग्राम में ले गए। इस प्रकार मुझे कछारी कृषकों का रहन-सहन देखने का अवसर मिला। यह लोग अब आसामी हो चुके हैं और उन्होंने आसामी संस्कृति को पूर्ण रूप से अंगीकार कर लिया है। मेरे विचार से सारे भारत में आसामी ग्राम का रहन सहन सब से श्रेष्ठ है। ये लोग भी आसामियों की भाँति सभ्य, साफ और शान्ति-प्रिय हैं।

(२)

'नोक' का स्थानीय भाषा में अर्थ है मनुष्य। 'नागा' शब्द 'नोक' से ही बना मालूम होता है, और नागालैण्ड का अर्थ तो स्पष्ट ही है। इस प्रकार "नागालैण्ड" शब्द न हिन्दोस्तानी है न बंगाली और न आसामी, न मणीपुरी ही है और न स्थानीय ही। इस शब्द में योरोपीय—अँगरेजी—प्रभाव की झलक आती है। यहाँ पर अंगरेजों ने एड़ी से चोटी तक का जोर लगाकर ईसाई धर्म को कोहिमा—मोकाकचुंग जिलों में फैलाया। त्वेंगसांग के निवासियों की संख्या (जो आज भी प्रकृति के पुजारी हैं) अन्य नागाओं की तुलना में अधिक है। अंगरेजों ने केवल ईसाई धर्म ही नहीं फैलाया, उन्होंने यहाँ के आदिवासियों में अपने बादशाह और गोरे लोगों के प्रति वफादारी की जड़ जमाई। इसीलिए यहाँ पर किसी गोरे मिशनरी को प्रचार या किसी बहाने अन्य कार्य करने की अनुमति देने का अर्थ है—उनके प्रभाव को दृढ़ करना और भारत की एकता से जुआ खेलना। अंगरेजों और मिशनरियों के काम में जो कसर रह गयी थी वह उस समय पूरी हुई जब द्वितीय महायुद्ध में बर्मा से जापानी आक्रमण को रोकने के लिए इस क्षेत्र में अंगरेजी और अमरीकी सेनाओं का जमघट हुआ। उन्होंने भारतीयता के विरुद्ध डटकर प्रचार किया। इस प्रचार में विदेशी ईसाई मिशनरी भी सम्मिलित थे। इन लोगों ने इन भोले आदिवासियों में प्रचार किया कि वे भारतीय नहीं हैं। भारतीय जनता से अलग हैं। ईसाइयत के साथ अंग्रेजी का भी प्रचार खूब किया गया। इन्हीं सब बातों ने यहाँ के (नागाहिल्स और मोकाकचुंग) निवासियों को प्रेरित किया कि उनके प्रदेश को 'नागालैण्ड' कहा जाए। इसी कारण यह प्रदेश नागालैण्ड कहलाता है। इतिहास में तो 'नागालैण्ड' नाम का कभी अस्तित्व रहा ही नहीं। कोहिमा तक इस के शासक अहोम रहे और कोह्मिा के दक्षिण भाग ने मणीपुर की प्रभुता स्वीकार कर ली थी।

आसाम के उत्तर-पूर्वी कोने में हिमालय की पर्वत श्रेणियाँ एकदम दक्षिण की ओर मुड़ जाती हैं, और जैसे ही जैसे दक्षिण की ओर बढ़ती हैं, वैसे ही वैसे उनकी ऊँचाई भी कम होती जाती है। कहीं कहीं तो ये श्रेणियाँ टूट गयी हैं। पूरब की श्रेणी 'पटकोई' एक खड़ी श्रेणी है जिसकी औसत ऊँचाई ६,००० फुट है। यहाँ किसी दूसरी लम्बी श्रेणी का दर्शन सम्भव नहीं है। पटकोई भारत-बर्मा की सीमा पर है। दूसरी पहाड़ियाँ चींटियों के बनाए हुए ढेरों की भाँति स्थान स्थान पर खड़ी हुई हैं। इन पहाड़ियों का ढाल प्रायः दक्षिण की ओर है, परन्तु कहीं कहीं इस ढाल की दिशा बदली हुई भी है। जैसे कि त्वेंगसांग की नदियाँ उत्तर-पूरब की ओर, और कोहिमा की पश्चिम की ओर बहती हैं। इन पहाड़ियों की चोटी पर नागा लोगों के गाँव बसे हुए हैं। ये गाँव और लोगों के गाँवों से बड़े होते हैं। एक गाँव में ३०० घर तो होते ही हैं, वैसे तो १,००० परिवारों के भी गाँव हैं। ऐलविन साहब ने उड़ाया है कि नागा पहाड़ियों की चोटियों पर अपनी रक्षा के हेतु रहे, और स्थानीय युद्धों के कारण ये लोग लड़ाकू हो गये। बर्मा में उन्नीसवीं शती में कैरेन जाति सामूहिक रूप से ईसाई बना दी गयी। १८७५ में अंग्रेजों ने बर्मा सरकार को मजबूर कर दिया कि वह कैरेनों को भिन्न 'जाति' स्वीकार करे। साथ ही साथ डाक्टर मेसन (अमरीकन मिशनरी) ने कहानियाँ गढ़ दीं कि कैरेनियों का निकास बैबीलोनिया से हुआ था, यानी, कैरेनी गोरे लोगों के चचेरे भाई हैं, और बर्मा निवासियों से भिन्न हैं। इसी प्रकार नागालैण्ड के निवासी 'शाही भतीजे' हो गये' और रोनविन साहब जुट गये नागाओं के सत्य को झूँठ, और झूँठ को सत्य बनाने में। उन्होंने नागाओं को इतिहास के आरम्भ से ही बलवान और वीर साबित करने की कोशिश की। भारतीय जनता में तो नहीं, परन्तु आज के भारतीय शासकों में भी यह विचार अपनी जड़ बखूबी जमा चुका है। अब विचारपूर्वक देखा जाय तो बात कुछ और ही है। बात यह है कि पूर्वी देशों में बड़े आदमी साधारण मनुष्यों से ऊँचे स्थान पर ही अपना भवन बनाते हैं। जो जितना बड़ा, उतना ही उसका भवन अन्य मनुष्यों से ऊँचा। यहाँ तक कि बौद्ध-गुम्फे सदैव गाँव के बाहर सबसे ऊँचे भाग में बनाए जाते हैं। तो यह स्वाभाविक है कि नागाओं ने अपने गाँव ऊँचे स्थानों (पहाड़ियों की चोटियों) पर बना कर संसार को यह बताया कि वे एक श्रेष्ठ जाति के हैं। दूसरे, नागालैण्ड की घाटियाँ स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक हैं। कोई भी मनुष्य इन घाटियों में रहने के लिए तैयार कदापि न होगा। मच्छर, डिमडाम, साँप, अजगर, जौंकें आदि मनुष्य को भला रहने देंगे? फिर इन घाटियों की अति गर्मी और अति वर्षा (कहीं कहीं २०० इन्च से अधिक) के कारण अभी तक उनमें मनुष्य का रहना सम्भव नहीं

स्थानीय मनुष्य तो इन घाटियों में होकर निकलना पसंद नहीं करते। नागाविद्रोहियों ने इनकी दुर्गमता के कारण इन्हीं घाटियों के घने जंगलों में अपने केन्द्र बनाये हैं। अतएव नागा अपने स्वास्थ्य की रक्षा के लिए पहाड़ियों की चोटियों पर जा बसे। आज भी वहाँ यदि कोई मनुष्य एक गाँव से दूसरे गाँव जाए तो उसको ३,००० या ४,००० फुट नीचे उतरना और फिर उतना ही ऊपर चढ़ना होगा। इस कठिनाई के कारण एक गाँव से दूसरे गाँवों का सम्पर्क कम हो गया और उनका सामाजिक मिलाप भी नाम मात्र को रह गया। फिर, जैसे जैसे समय व्यतीत होता गया, और गाँवों की जनसंख्या बढ़ती गई वैसे ही वैसे जीवन-यापन के लिए जमीन और जंगलों के कारण आपस में शत्रुता भी बढ़ती गई। हर ग्राम ने अपनी सुरक्षा के लिए प्रबन्ध करना आरम्भ कर दिया। कभी कभी आपस में तीर कमान से लड़ने भी लगे। जंगल निवासी पंचशील क्या जानें? पंचशील से उस अँधेरे युग में उनका निर्वाह सम्भव न था। बस, जैसे अन्य अरण्य जातियाँ अपने बाहुबल से भोजन प्राप्त करती हैं, उसी प्रकार नागा भी इस जीवन संघर्ष में लग गये।

धीरे धीरे जैसे और देशों में नर-बलि प्रचलित हुई, उसी प्रकार यहाँ भी इस रीति ने अपनी जड़ जमाई। यहाँ स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं कि मणीपुरियों ने १९३२ में और नागसथियों--नाकटे नागाओं--ने १९५१ में नरबलि की। नरबलि का रिवाज थोड़े दिनों में 'हेड हंटिंग' में, अन्य देशों की तरह, विकसित हो गया। जैसे कि मध्य तुर्किस्तान में शत्रुओं के सिरों के ढेर (पिरामिड) बनाये जाने लगे थे, उसी प्रकार यहाँ भी शत्रुओं के सिर एकत्र करने वाले का सत्कार होने लगा। यह हवा समस्त पूर्वी आदिवासी जातियों पौर गाँवों में फैल गई। अन्य जातियों ने तो उसे समयानुसार त्याग दिया, परन्तु नागा तो अपने को 'शाही मतीजा' समझते थे, वे इस भयंकर प्रथा को चलाते रहे। प्रचार तो यह किया गया कि ईसाई विदेशी पादरी ही थे जिन्होंने इस रिवाज का बराबर दमन किया। हालां कि 'हैड-हैंटिंग' (शत्रुओं का सिर उतारने) को अपराध घोषित कर दिया गया था, परन्तु अंग्रेज अफसर 'हैड हंटिंग नृत्यों' के उत्सवों में बराबर भाग लेते रहे, और यह रिवाज नागा जाति में अंग्रेज अफसरों की परोक्ष सहानुभूति और सहायता से प्रचलित रहा। अब भी कभी कभी सुनाई दे जाता है कि अमुक ग्राम निवासियों ने अमुक ग्राम पर आक्रमण कर दिया, और इतने सिर काट कर लौट गये।

नागाओं ने ऐलविन जैसे गुपचुप पादरी को लेख लिखने के लिए काफी सामग्री दी। यहाँ तक कि उन्होंने "नागालैण्ड" नामक अपनी पुस्तक में एक सूत कातती हुई युवती का नग्न चित्र दिया है, परन्तु उस पर लिखा हुआ है 'नागा १९४८ में'। ईसाई पादरियों का प्रभाव दिखलाने के लिए एक दूसरा चित्र भी दिया गया है जिसमें एक युवती पश्चिमी वस्त्रों में दिखलाई गयी है। यह युवती आधुनिक युवती बताई गई है। नागालैण्ड भारतीयों के लिए तो बन्द है, परन्तु स्काट के लिए खुला हुआ है। यही नहीं, हमारी भारत सरकार ने पादरी स्काट को विद्रोहियों से मिलने मिलाने के लिए एक 'हेलीकाप्टर' भी दे रखा है। हमारा अनुमान है कि पादरी स्काट भी नागाओं के विषय में एक पुस्तक लिखेंगे। देखें, वे त्वेंग-साँग वासियों का, जो ईसाई नहीं हैं, कैसा चित्रण करते हैं।

नागालैण्ड की भौगोलिक बनावट ने, वहाँ की अति गर्मी और अति वर्षा के कारण अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न करदी हैं। पहिली तो छोटी छोटी नदियों और भिन्न भिन्न दिशा के जलविभाजकों ने सड़कों का परस्पर संबंध कठिन कर दिया है। फिर भूमि में नरम मिट्टी होने, और पत्थरों तथा पथरीली कड़ी जमीन के अभाव के कारण पुलों का बनाना कठिन है। दूसरे, नागालैण्ड की घाटियों में बहुत घने जंगल हैं, उनमें विद्रोही सुगमता से छिप सकते हैं। वहाँ कभी कभी विद्रोहियों का पीछा करना असम्भव सा हो जाता है। नागा उपद्रव के अभी तक दबाये न जाने का एक कारण यह भी है: इस विद्रोह के दमन का एक ही रास्ता है जो कि ब्रिटिश सेना ने मलाया में कम्यूनिस्ट उपद्रव को दमन करने के लिए अपनाया था। जंगलों या पहाड़ियों में (यहाँ सब से ऊँचा पहाड़ जपोवा है जिस की ऊँचाई १०,००० फुट है और जिसपर हिमपात कभी नहीं होता) छापामार युद्ध संशयात्मक हृदय लेकर नहीं लड़े जा सकते।

इन नागालैण्ड में मैंने प्रवेश किया। मैं कुछ मित्रों के साथ एक नागा गाँव को देखने गया। मैंने देखा कि ग्रामीण किशोर अथवा युवक कमीज और नेकर पहिने

स्कूलों और कालिजों को जा रहे थे। यह सब ईसाई धर्म को स्वीकार कर चुके थे। कोहिमा में ईसाई धर्म सभ्यता का चिह्न समझा जाता है। जिन्होंने इस धर्म को स्वीकार नहीं किया वे असभ्य समझे जाते हैं। परन्तु कोहिमा जिले में ऐसे व्यक्तियों की संख्या न होने के बराबर है। ग्राम में मेहतर इत्यादि न थे। नेफा की भाँति सुअर और मुर्गियाँ सफाई का कार्य कर रहे थे। ग्राम में पानी की कमी थी। नागालैण्ड गाँवों के चोटियों पर होने के कारण पानी नीचे से, घाटियों से, लाया जाता है। गाँवों को गंदा रखने में पानी की कमी का पूरा हाथ है। इस ग्राम में जहाँ मैं गया था एक बड़ा गिरजा है। उसके सामने छोटे से खेत में एक नागा लंगोट पहिने अपने मकान की डचोढ़ी पर बैठा हुआ धूप सेंक रहा था। जब हम लोग उसके निकट गये तो मालूम हुआ कि वे महाशय 'मधु' (चावल से बनी शराब) पिये हुए हैं।

"मधु कब पी?" मैंने हँस कर पूछा।

"ब्रेकफास्ट-टाइम पर।"

"अब दूसरी डोज कब पिओगे?"

"लंच-टाइम पर।"

प्रतीत हुआ कि गोरे पादरियों के चले जाने से नागा जनता को धर्म मार्ग दिखाने वाले कम हो गए हैं। यदि हैं तो वे स्थानीय नागा पादरी हैं जो आपस में भेद-भाव रखते हैं। उनको झगड़ों से अवकाश कहाँ! सन् १९६१ में एक जिलियाँग गाँव में कुछ (गैर ईसाई) व्यक्तियों ने कीर्तन किया। ग्राम के कुछ लोगों ने इस कीर्तन को रोकना चाहा परन्तु कीर्तन वाले न माने। जिला हेड क्वार्टर को सूचना गई कि ग्राम में अशान्ति का भय है। ग्राम के दो दलों में कुछ झगड़ा भी हुआ। जब सरकार ने जाँच की तो ज्ञात हुआ कि ग्रामवासियों की एक जमात वैष्णव है। वह कीर्तन करना चाहती है। स्थानीय पादरी ने प्रचार किया कि ग्राम में झगड़ा हो जायगा। बस, कीर्तन रोकने के लिए झगड़े की रिपोर्ट करदी गई। यदि स्थानीय नागा पादरी अपने ईसाई भाइयों के सुधार में लग जायँ तो देश का भला हो और नागालैण्ड का भी। इस समय एक ओर तो नागा जनता अपने पुराने रिवाजों की ओर बढ़ी चली जा रही है, और दूसरी ओर स्कूलों और कालिजों के स्थापित होने से शिक्षक युवकों की संख्या भी बढ़ती जा रही है। इन युवकों और साधारण नागाओं के बीच दिनों दिन खाइँ बढ़ती जा रही है। इस खाइँ को पाटने के लिए समाज को कुछ करना ही होगा। फिर मुख्य बात यह है कि पुराने विचारों वाले नागा किसी न किसी प्रकार नागालैण्ड की धर्ती में अनाज पैदा कर अपना निर्वाह कर लेते हैं, परन्तु आधुनिक नागा युवकों के इस देश में रहकर 'आधुनिक सभ्य' जीवन व्यतीत करना एकदम असंभव है।

सौभाग्य से एक दिन मुझे प्रसिद्ध नागा नेता श्री शीलू आओ से लगभग एक घंटे बातचीत करने का अवसर प्राप्त हुआ। मैंने उनसे पूछा: "नागा आन्दोलन आरम्भ होने का क्या कारण था?"

"जब देश स्वतंत्र हुआ तो यहाँ पर उसका कोई प्रभाव प्रतीत नहीं हुआ। देश की स्वतन्त्रता हमारी स्वतन्त्रता न थी। बहुत दिनों तक ऐसा ही रहा। फिर उन दिनों, और उसके पूर्व, नागाहिल्स में प्रचार हो रहा था कि नागा लोग भारतीयों से भिन्न हैं। भारत सरकार इस प्रचार को न रोक सकी। परिणामस्वरूप नागाओं ने विचार किया कि नागा राष्ट्र भारत से पृथक स्थापित करना ही उचित होगा। भारत सरकार के सम्मुख हमने नागालैण्ड की माँग रखी। भारत सरकार ने हमारी माँग पर कोई ध्यान न दिया। नागा नेता भूमिगत हो गये, परन्तु हमने विरोधियों की हरकतों से देखा कि नागा जाति की अधिक हानि हो रही है। फिर अतर्राष्ट्रीय स्थिति को देखते हुए कुछ नागा नेताओं ने यही उचित समझा कि नागालैण्ड को भारत में रखने ही से लाभ होगा। इस प्रकार नागालैण्ड में दो राजनीतिक दल हो गये।"

"अब यह आन्दोलन कब समाप्त होगा?"

"अब बहुत कम हो गया है। समय दूर नहीं जब कि यह आन्दोलन पूर्ण रूप से समाप्त हो जायगा। आपने पढ़ा होगा कि पिछले सप्ताह ही ७५ नागा विद्रोहियों ने समर्पण किया है।"

"ठीक है। परन्तु क्या यह सत्य है कि जो व्यक्ति आन्दोलन को जारी रखने में असमर्थ हैं, वे ही समर्पण करते हैं, और उनके स्थान पर नौसिखिये नागा युवक भूमिगत होकर विद्रोहियों में मिल जाते हैं? इस प्रकार नागाविरोधियों की संख्या कम नहीं होती।"

"नहीं, इतने युवक तो विद्रोही नहीं होते। थोड़े दिनों बाद हमारे प्रचार से यह संख्या भी कम हो जायेगी।"

"परन्तु क्या आप स्वतंत्रापूर्वक, खुलेआम प्रचार कर सकते हैं? आप स्वयं ही अपने लिये पुलिस गार्ड रखते हैं। और, विरोधी प्रचारक हर एक गाँव में बेरोकटोक जा सकते हैं।"

"नहीं, ऐसा तो नहीं है। मैं जब अकेला होता हूँ तो गार्ड की आवश्यकता होती है, परन्तु जब जनता में भाषण देता हूँ उस समय गार्ड नहीं होता। वर्तमान स्थिति में कुछ असुविधा तो है ही।"

"आपके विचार में आप कितने दिनों में व्यक्तिगत गार्ड रखने से छुटकारा पा लेंगे?"

"जब तक नागालैण्ड में आम चुनाव नहीं होता उस समय तक हम अपने आप को सुरक्षित नहीं समझ सकते।" श्री आओ ने कहा।

जनवरी १९६४ को नागालैण्ड में आम चुनाव भी हो गया परन्तु नागा विद्रोह में कमी नहीं हुई। श्री शीलो आओ ने उस समय कल्पना भी न की होगी कि बीच में पादरी स्काट आ कूदेंगे और उनके आ जाने से विद्रोहियों को नैतिक बल मिल जायगा, और उनका मनोबल बढ़ेगा।

मेरा दूसरा प्रश्न था 'भाषा' के विषय में। नागालैण्ड की आय केवल डेढ़ लाख और खर्च चार करोड़ रुपया वार्षिक है। यह व्यय केवल विकास में किया जाता है। यदि नई सड़कें बनाने का, अथवा सुरक्षा विभाग का भी व्यय इसमें जोड़ा जाय तो यह व्यय सुरसा के मुँह की तरह बढ़ जायेगा। भविष्य में भी कोई आशा नहीं है कि यहाँ की आमदनी ५ लाख सालाना से अधिक हो सकेगी। यहाँ की पहाड़ियों में खनिज पदार्थ नहीं मिलते। कहा जाता है कि यहाँ कोयला पाया जा सकता है परन्तु वह कोयला चूरा होने के कारण घटिया होगा। यदि हम कृषि की उन्नति का विचार करें तो उसकी भी अधिक उन्नति की कोई आशा नहीं प्रतीत होती। जमीन इतनी ढालू है कि इसका अधिक विकास कठिनाई से ही होगा। नागालैण्ड केवल जंगल विभाग से अपनी आमदनी बढ़ा सकता है वह भी सुगमता से नहीं। यहाँ की लकड़ी मूल्यवान नहीं है। इसी कारण मैंने कहा है कि नागालैण्ड स्टेट भविष्य में अपनी वार्षिक आय ५ लाख रुपये तक ला सकता है। ऐसी स्थिति में नागालैण्ड एक छोटा राज्य नहीं रह सकता। इस समय भारत सरकार प्रति वर्ष कश्मीर में छः करोड़, नेपाल में तीन-चार करोड़, सिक्किम में दो करोड़, भूटान में चार करोड़, और नेफा में तीन करोड़ के लगभग उनके विकास पर खर्च कर रही है। क्या वह इतना व्यय सदैव ही करती रहेगी? इस कारण या तो नागालैण्ड में आसपास के समस्त क्षेत्र मिला दिए जायँगे, अथवा नागालैण्ड को किसी पड़ोसी राज्य में सम्मिलित होना पड़ेगा। यदि पहिला प्रस्ताव माना गया तो नागालैण्ड अपनी समस्याओं को नहीं सुलझा सकता, क्योंकि भारत की पूर्वी पहाड़ियाँ खानों से खाली हैं और भूमि ऊँची-नीची होने के कारण वहाँ अनाज की उपज भी अधिक नहीं हो सकती। इस कारण नागालैण्ड की आर्थिक समस्याओं को एक संघ (federation) बना कर ही सुलझाया जा सकता है। और यह स्वाभाविक है कि इस संघ के आसाम और मणीपुर भी सदस्य हों। इन प्रदेशों में बगाली अथवा इससे मिलती जुलती लिपि का प्रयोग होता है। इसके विरुद्ध नागालैण्ड में अधिकतर रोमन लिपि चलती है। कोन्यक लोग (त्वेंगसाँगवासी) जो कि बहुमत में हैं, कदापि अंगामी भाषा को स्वीकार न करेंगे। श्री आओ ने पहिली बात का उत्तर दिया कि समय इस समस्या को सुलझा देगा। एक ऐसी भाषा का जन्म अवश्य हो जायगा जो सब लोगों में प्रचलित हो सके। यह उत्तर कुछ सतोषजनक न था, परन्तु मैंने इस प्रश्न को आगे नहीं बढ़ाया। सम्भव है कि नागालैण्डवासी फिर से आसामी भाषा को अपना लें। अभी तक भी शिक्षित नागाओं की बोलचाल की भाषा आसामी ही है। त्वेंगसाँग के विषय में श्री आओ ने बताया कि १० साल बाद वहाँ के निवासी भाषा के विषय में निश्चय करेंगे। इस का अर्थ यह हुआ कि यदि अंगामी भाषा का पाठशालाओं में प्रयोग हुआ तो वहाँ की जनता आसामी भाषा की माँग करेगी, और यदि आसामी द्वारा वहाँ बच्चों को विद्या दी गई तो कोन्यक नागा हिन्दी की माँग करेंगे। बहरहाल, भाषा के विषय में कोहिमा अथवा मोकाकचुंग में समझौता भले ही हो जाय परन्तु त्वेंगसाँग में कभी न कभी भाषा का भूकम्प अवश्य आवेगा। फिर जिन बच्चों की मातृ भाषा आसामी अथवा मणीपुरी है, उनका क्या होगा? वहाँ के भाषा संबंधी इस गड़बड़झाले के लिए हम भारतीय सरकार के रायदेनेवालों का धन्यवाद दे सकते हैं। इन रायबहादुरों ने समस्याओं को या तो समझा नहीं, और

यदि समझा तो उसका हल टालते रहे। हम इन राय-साहबों के आभारी हैं।

मेरा तीसरा प्रश्न था नागालैण्ड में प्रवेश के लिए अनुमति पत्र प्राप्त करने का।

"श्रीमान, मुझे आप यह बताने की कृपा करेंगे कि आप देसियों को नागालैण्ड में बिना अनुमति के क्यों नहीं घुसने देते? क्या आप को भय है कि वह आप की जमीनें अथवा जंगल छीन लेंगे या वह आपका साहित्य अथवा आपकी संस्कृति नष्ट कर देंगे?"

"हमें देसियों से कोई ऐसा भय नहीं। हम नहीं चाहते कि नागालैण्ड में बाहर से कोई ऐसा व्यक्ति आए जो विद्रोहियों का पक्ष या विपक्ष करे। यह दोनों ही बातें नागालैण्ड में अशान्तिदायक होंगी। जिस रोज भी हमारे देश में शान्ति स्थापित हो गयी, हम नागालैण्ड के द्वार उसी दिन पर्यटकों के लिए खोल देंगे।"

स्वर्गीय प्रधानमंत्री नेहरू और पादरी ऐलविन तो सदैव से ही कहते रहे कि यदि देसी (plainsmen) नागालैण्ड, नेफा इत्यादि में जायँगे तो वे आदिवासियों की जमीनें अथवा जंगल छीन लेंगे। वे आदिवासियों की संस्कृति पर अपनी प्रभुता जमा लेंगे, आदि आदि। श्री शीलू आओ ने इस समय नागालैण्ड में प्रवेश करने के लिए सरकारी अनुमति की अनिवार्यता का जो कारण बतलाया वह ठीक ही है। परन्तु दुःख तो यह है कि भारत सरकार ने पादरी स्काट को जो कि विद्रोहियों की राय से प्रभावित हैं, नागालैण्ड में प्रवेश करने की ही नहीं, बल्कि नागाओं के सभी गाँवों में जाने की अनुमति दे दी है। मिस्टर स्काट एक बार एक शान्ति मिशन चीन ले जा रहे थे। वह तो यह कहो कि चीन ने इस मजाक को सेक दिया और स्काट चीन न जा सके, नहीं तो वे माओ से भारत और चीन के विषय में वार्तालाप कर रहे होते। कहा जाता है कि स्काट को नागालैण्ड में प्रवेश की अनुमति इसलिए दी गयी है कि वह नागाओं में 'शांति' का प्रचार करेगा! फीजो काफी दिनों से स्काट का अतिथि है। स्काट आज तक भी फीजो को अहिंसा-प्रिय न बना सका! तो भला वह नागालैण्ड में शान्ति स्थापित करने में कैसे सफल होगा? जब तक फीजो हिंसा को अस्वीकार नहीं करता उस समय तक स्काट पर विश्वास करना भूल है।

हम तो बात कर रहे थे कि श्रीमती आओ भी आगईं। हम लोगों ने अन्य विषय पर बात-चीत करना आरम्भ कर दिया। चायपान कर मैंने आज्ञा ली और अपने डेरे पर लौट आया।

(३)

भारत में राजनीतिक प्रौढ़ता आ गयी है। वह सभ्य है। राजनीतिक मतभेद वाद-विवाद, बहस और लिखा-पढ़ी से तय हो जाते हैं। "राजनीतिक व्यक्ति की राजनीतिक हत्या" केवल राजनीति में ही होती है, वास्तव में वह जीवित रहता है। परन्तु नागालैण्ड में ऐसा नहीं है। वहाँ जंगल-नियम प्रचलित हैं। फीजो ने अपने राजनीतिक विरोधियों की हत्या की। हत्या का अपराधी होने के कारण वह जंगलों और पहाड़ों में भाग गया और विद्रोही हो गया। आओ जाति ने जिसकी संख्या अंगामी नागाओं की तुलना में अधिक है, भारत सरकार से सहयोग किया और वह आज नागालैण्ड पर शासन कर रही है। जैसे उत्तर प्रदेश में गुप्ता जी त्रिपाठी जी को, अथवा त्रिपाठी जी गुप्ता जी को राज्य या प्रान्तीय संगठन पर कब्जा नहीं करने देते, वैसे ही यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि श्री शीलू आओ कभी भी फीजो के हाथ में नागालैण्ड की शासन-शक्ति न जाने देंगे। अन्य प्रदेशों में तो काँग्रेस के स्थानीय झगड़े हाईकमाण्ड सुलझा देता है, परन्तु नागालैण्ड में खद्दर का सिक्का नहीं चलता। अहिंसा को उन्होंने कभी स्वीकार भी नहीं किया। तात्पर्य यह कि काँग्रेस पार्टी अपनी शाखा नागालैण्ड में नहीं खोलेगी। फलस्वरूप दिल्ली के खद्दरधारियों को नागालैण्ड की समस्याओं को सुलझाने का कष्ट नहीं करना पड़ता। वे आओ और फीजो के बीच पंचायत नहीं कर सकते। इसी कारण फीजो और शीलू आओ में शान्तिपूर्वक समझौता हो ही नहीं सकता। सम्भव है कि इसी कारण नेहरू ने स्काट को नागालैण्ड में समझौता कराने के लिए बुलाया हो। भय यह है कि स्काट अपने अतिथि (फीजो) के हितों का अधिक ध्यान रखे, और उसकी हारी हुई बाजी को जिताने का प्रयत्न कर, तथा इसी दृष्टि से नागालैण्ड की समस्या को सुलझाने के प्रस्ताव रखे। तात्पर्य यह कि यदि फीजो को प्रसन्न करना है तो स्काट की बातों को स्वीकार करो, और आओ के दल की रुष्टता मोल लो। आओ दल ने सदैव भारत सरकार का साथ दिया है। इस दल का साथ छोड़ना राजनीति की बड़ी

होगी। ऐसी स्थिति में यही उचित है कि नागालैण्ड समस्याएँ नागालैण्ड के अपने राजनीतिज्ञों पर छोड़ जायँ। वे जातीय भावनाओं के अनुसार इस वाद-विवाद को अवश्य ही सुलझा लेंगे। यदि उसको किसी बाहर की सहायता की आवश्यकता हो तो भारत सरकार को उसे सहायता देने के लिए सदैव तैयार रहना चाहिए। यदि भारत सरकार किसी कारण ऐसा नहीं करने को तैयार है तो वह अपनी पुलिस अथवा सेना द्वारा इस समस्या को सुलझाये। अंतर्राष्ट्रीय स्थिति को ध्यान में रखते हुए स्पष्ट है कि एक न एक दिन भारत को ऐसा करना ही होगा। देश कब तक इस नागाओं के झगड़े के शान्त होने की बाट देखेगा। हमको यह भली भाँति समझ लेना चाहिए कि यदि सेना ने इस झगड़े को सुलझाने का कार्य अपने हाथों में ले लिया तो विद्रोहियों का दमन करने के लिए वह उन्हीं साधनों और उपायों का प्रयोग करेगी जो कि अंग्रेजों ने मलाया में कम्युनिस्टों के दमन के लिए प्रयोग किये थे। सेना पहिले तो विद्रोहियों की स्थानीय रसद बन्द करेगी, दूसरे वह उन विदेशी सहायकों से, जो विद्रोहियों को सहायता पहुंचा रहे हैं, यातायात तार और सभी प्रकार के संपर्क साधनों और लगाव को तोड़ेगी। सेना का यह प्रथम कार्य होगा कि विद्रोही दल फिज़ो, ऐलविन अथवा स्काट जैसे बगला भगतों से सम्बन्ध न रखने पाए। यदि कल ऐसा होना है तो आज ही ऐसा क्यों न किया जावे ?

"स्काट को नागालैण्ड में जाने की सरकार ने आज्ञा क्यों दी?" मैंने एक नेता से प्रश्न किया।

"मैंने एक केन्द्रीय मंत्री से यही प्रश्न किया था। उन्होंने उत्तर दिया था कि हमारे पास जो सारी गुप्त सूचना इस विषय में है, उसे देखते हुए हमने जो किया वह बिलकुल उचित किया।"

यदि सरकार के पास ऐसी सूचना है तो जनता की जानकारी के लिए वह छपवाई क्यों नहीं जाती? फिर चीन के बारे में भी हम यही सुनते चले आए थे। एक दिन ऐसा आया कि चीन ने भारत पर आक्रमण कर दिया। कोई भी जाति एक भूल को सहन कर सकती है, परन्तु दूसरी त्रुटि को सम्भवतः वह न सहन कर सके।

दूसरी बात यह है कि नागालैण्डवासी भारत सरकार से सहयोग नहीं कर रहे हैं। कारण? मैंने कई नागा व्यक्तियों से जो कि कभी न कभी विद्रोही रह चुके थे, प्रश्न किया।

"विद्रोह का दमन कैसे हो?"

"जो विद्रोही पकड़ा जाए उसको सरकार कड़ा दण्ड दे" मुझे उत्तर मिलता था।

"प्रजातंत्र सरकार ऐसा नहीं कर सकती।"

"तो हम लोगों का सहयोग भी प्राप्त नहीं हो सकता। जो सरकार वफादार नागरिकों की रक्षा नहीं कर सकती तो उस सरकार से कौन सहयोग करेगा? मान लिया जाए कि हमने विद्रोहियों के विषय में सरकार को कुछ सूचना दी तो यह स्वाभाविक है कि वह हमको हानि पहुँचावें। यदि वह पकड़ भी गये तो 'मानवता' के नाम पर उनसे नर्मी का सलूक होगा। उस दशा में उनका तो कुछ बिगड़ता नहीं; हमारी शत्रुता कायम ही रहेगी। भला बैठे बैठाये अपने ही जातिभाइयों अथवा सम्बन्धियों से शत्रुता कौन मोल ले?"

सम्भव है कि भारत सरकार नागा विद्रोहियों से कठोर बर्ताव न करे परन्तु इस बात की आवश्यकता तो है ही कि वह जो कहे उसको पूरा कर दिखाए। दूसरे वह अपने सहायकों की हर प्रकार से रक्षा करे तथा उनको आड़े समय सहायता पहुँचाए।

ठीक है कि 'मानवता' के नाम पर नागालैण्ड में चेती हुई अग्नि को दमन नहीं किया जा रहा है। परन्तु वर्तमान काल में जब कि 'माओ' हिमालय छत पर बैठा हुआ भारत की ओर लोलुप दृष्टि से देख रहा है नागालैण्ड में चिनगारियाँ बनी रहने देना राजनीति के विरुद्ध है। यह चिनगारियाँ मणीपुर और नेफा को भी प्रज्वलित होकर अपनी अग्नि में अवश्य लपेट लेंगी।

हमारे पाठकों को यह भली भाँति ज्ञात है कि आक्रमण के पश्चात् पीछे हटते समय चीनी सैनिक अधिकारी नेफा से कुछ मोनपा, मोनबा अथवा ईदूमिशमी युवकों को पेकिंग में शिक्षित करने के लिए ले गए हैं। आज वे युवक चीन में छापामार सीख रहे होंगे। और उन्हें भारत विरोधी बनाया जा रहा होगा। भारतीयों को इस पर आश्चर्य न होना चाहिए यदि वह एक अथवा दो वर्ष पश्चात् सुनें कि नेफा में भी नेफावासियों ने विद्रोही दल बना लिए और उन्होंने भी शान्तिप्रिय जनता की मार काट करना आरम्भ कर दिया है। जब चीनियों ने नेफा पर आक्रमण किया तो जनता ने ऐलविन को धन्यवाद के नारे लगाए। यदि नेफा फिर जोखिम में पड़ गया तो जनता स्काट को न भूलेगी। आश्चर्य का विषय है कि भारत सरकार को स्वयं असाम्प्रदायिक कहे जाने का गर्व है, परन्तु नागालैण्ड में वह बिना विदेशी पादरियों की राय के एक पग भी नहीं उठा सकती। धर्म प्रचार और धार्मिक प्रचारक सैक्युलरिज्म (असाम्प्रदायिकता) के घोर शत्रु हैं। परन्तु भारत भी एक अनोखा सर्कस है जिसमें सिंह और बकरी दबाव से एक ही कटोरे में पानी पीते दिखलायी पड़ते हैं।



संयुक्तराष्ट्र अमरीका के राष्ट्रपति

श्री राजेन्द्रप्रसाद जैन

सरस्वती सितम्बर १९६४ के अंक में श्री परिपूर्णानन्द जी वर्मा का इस विषय पर एक रोचक लेख छपा है। कुछ और तथ्य जो पाठकों को उतने ही ज्ञानवर्द्धक सिद्ध होंगे, नीचे दिये जाते हैं।

नई खोजों ने सिद्ध किया है कि अमरीका प्राचीनों को ज्ञात था। लगभग १५-२० हजार वर्ष पूर्व एशिया से कुछ लोग धीरे धीरे अमरीका आकर बस गये[1]। अमरीका के मूलनिवासी इन्हीं प्रवासी एशियावालों की सन्तान हैं। मक्का, आलू, चाकलेट, कुनैन, और तम्बाकू विश्व के लिए इन अमरीका के मूल निवासियों की देन हैं।

कालान्तर में अमरीका को हम पुरानी दुनिया के लोग भूल गए, और उसका फिर से पता लगाने का श्रेय कोलम्बस को है जो सन् १४९२ में भारत और योरोप के बीच जलमार्ग[2] की खोज में निकला था, और भूल से अमरीका पहुँच गया था। अमरीका का पता लगते ही धड़ाधड़ योरोप वाले यहाँ आकर बसने लगे परन्तु कनाडा और संयुक्त राष्ट्र अमरीका में सबसे अधिक सफलता अँगरेजों को मिली।

संयुक्त राष्ट्र अमरीका में ब्रिटिश छत्रछाया में कई राज्य स्थापित हुए जिनमें से प्रत्येक का गवर्नर इँगलैंड से आता था और उसकी सहायता के लिए स्थानीय गोरों द्वारा चुनी हुई विधान सभा होती थी। धीरे धीरे इन राज्यों का इँगलैंड से झगड़ा बढ़ा जिसके कुछ मुख्य कारण निम्नलिखित थे :—

१—इन राज्यों में अँगरेजों का बहुमत अवश्य था, परन्तु जर्मन, फ्रांसीसी, स्पेन वालों की संख्या भी कम न थी, और ये इँगलैंड द्वारा शासित होना अपने राष्ट्रीय स्वाभिमान के विरुद्ध समझते थे।

२—इन राज्यों में बसे हुए अँगरेजों में भी बड़ी संख्या प्योरिटन लोगों की थी जो इँगलैंड की सरकार द्वारा होने वाले धार्मिक परिवर्तनों से दुखी होकर १६२८-४० के बीच अपनी जन्मभूमि छोड़कर वहाँ चले गये थे।

३—इँगलैंड अपने स्वार्थ के लिए युरोपियन राष्ट्रों से लड़ता रहता था और उपनिवेश होने के कारण अमरीका को भी अपनी इच्छा के विरुद्ध इन युद्धों में कूदना पड़ता था जिससे अमरीका को कोई लाभ न होता।

४—इँगलैंड नहीं चाहता था कि अमरीका में उद्योग-धन्धे पनपें। वह उसे एक कृषि-प्रधान देश रखना चाहता था। इस संबंध में इँगलैंड ने कई कानून बनाये। अमरीका का कच्चा माल इँगलैंड बहुत सस्ते दामों में लेता था और अपना बनाया कपड़ा आदि तैयार माल वहाँ बहुत महँगे दामों में बेचता था।

संघर्ष बढ़ता गया यहाँ तक कि ४ जुलाई १७७ को इन राज्यों ने मिलकर पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पा कर दिया। युद्ध छिड़ गया। अमरीकी विद्रोहियों के सेनापति जार्ज वाशिंगटन थे। युद्ध में विद्रोहियों की विजय हुई। १७८३ में सन्धि हो गई और अमरीका के ये राज्य स्वतन्त्र घोषित किये गये। अमरीका में बसे हुए सभी अँगरेज विद्रोही नहीं थे। इनमें से २५००० ने इँगलैंड की ओर से शस्त्र उठाये थे।

सन् १७८७ में संयुक्त राष्ट्र अमरीका का वहीं के नागरिकों द्वारा बनाया हुआ विधान बनकर तैयार हुआ जो १७८९ में लागू हुआ। जार्ज वाशिंगटन निर्विरोध प्रथम राष्ट्रपति चुने गये और दूसरी बार भी उनका चुनाव निर्विरोध हुआ।

संयुक्त राष्ट्र अमरीका में अब तक नीचे लिखे अनु

१—'इण्डियन्ज आफ दी अमेरिकाज' ले० जान कोलियर; प्रकाशक न्यु अमेरिकन लायब्रेरी।

२—यूनानी इतिहासकार हेरोडेटस लिखता है कि प्राचीन काल में फेनिशियावासी अफ्रीका का चक्कर काटकर एक जलमार्ग द्वारा भारत से व्यापार करते थे। कोलम्बस का लड़का लिखता है कि पिताजी हेरोडेटस पर विश्वास करके ही भारत के मार्ग की खोज में निकले थे।

३—एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका

१९६४

...र ३६ राष्ट्रपति हो चुके हैं :— (१) जार्ज वाशिंगटन (१७८९–९३, ९३–९७), (२) जान एडम्स (१७९७–१८०१), (३) जेफर्सन (१८०१–०५, ०५–०९), (४) जेम्स मैडिसन (१८०९–१३, १३–१७), (५) ...स मनरो (१८१७–२१, २१–२५), (६) जान ...क्वन्सी एडम्स (१८२५–२९) (७) एण्ड्र्यू जैक्सन (१८२९–३३, ३३–३७), (८) मार्टिनवान बुरेन (१८३७–४१), (९) विलियम हैनरी हैरिसन* (मार्च १८४१—अप्रैल १८४१), (१०) **जानटायलर** (१८४१–४५), (११) जेम्स के पोक (१८४५–४९), (१२) ...क्कारी टेलर* (१८४९–५०), (१३) **मिलर्ड फिलमोर** (१८५०–५३) (१४) फ्रैंकलिन पियर्स (१८५३–५७), (१५) जेम्स बुकनान (१८५७–६१), (१६) अब्राहम ...कन* (१८६१–६५, ६५ मार्च-६५ अप्रैल), (१७) ...ड्र्यू **जानसन** (१८६५–६९), (१८) उलेसस सिम्प-...न ग्राण्ट (१८६९–७३, ७३–७७) (१९) रुदरफोर्ड ...० हेज (१८७७–८१) (२०) जेम्स ए० गारफील्ड* मार्च १८८१–सितम्बर १८८१), (२१) **चेस्टर ए०** ...आर्थर (१८८१–८५), (२२) **ग्रोवर क्लीवलैण्ड** (१८८५–८९, ९३–९७), (२३) बेंजमिन हैरिसन (१८८९–९३), (२४) विलियमम किनले* (१८९७–१९०१, मार्च १९०१–सितम्बर १९०१), (२५) थ्योडर रूजवेल्ट (१९०१–०५, ०५–०९), (२६) विलियम होवर्ड टाफ्ट (१९०९–१३), (२७) वुडरो विलसन (१९१३–१७, १९१७–२१), (२८) वारेन ...जी हार्डिंग* (१९२१–२३), (२९) कालविन कूलिज (१९२३–२५, २५–२९), (३०) हरबर्ट सी० हूवर (१९२९–३३), (३१) फ्रैंकलिन डी० रुजवेल्ट* (१९३३–३७, ३७–४१, १९४१–४५, जनवरी १९४५– अप्रैल १९४५), (३२) हैरि० एस०, ट्रूमेन (१९४५–४९, ४९–५३), (३३) आइजनहावर (१९५३–५७, ५७–६१), (३४) जान फिटजेरल्ड कैनेडी* (१९६१–६३) (३५) लिण्डन बी० जानसन (१९६३–

ग्रोवर क्लीवलैण्ड २२वें राष्ट्रपति को छोड़कर जितने भी राष्ट्रपति दुबारा चुने गये, वे लगातार दुबारा चुने गए। क्लीवलैण्ड दूसरा चुनाव हार गये, परन्तु तीसरा जीत गए। यह क्रम टूट जाने के कारण बहुत से लोग इनकी गिनती दो बार करते हैं और इस प्रकार संख्या ३६ तक पहुँचा देते हैं।

जार्ज वाशिंगटन प्रथम राष्ट्रपति ने ४ मार्च १७८९ को अपने पद की शपथ ली थी। इसके पश्चात् परम्परा बन गई कि जिस वर्ष चुनाव हो उससे अगले वर्ष ४ मार्च को शपथ ग्रहण की जाय। यदि पिछला राष्ट्रपति मर जाय तो उसके मरते ही शपथ ग्रहण की जाती है क्योंकि शासन प्रबन्ध में कुर्सी कभी खाली नहीं रहती। यह परम्परा १९३३ के विधान सम्बन्धी २०वें संशोधन द्वारा बदल दी गई। अब राष्ट्रपति २० जनवरी को शपथ ग्रहण करता है।

जार्ज वाशिंगटन ने यह भी परम्परा डाली थी कि कोई राष्ट्रपति दो बार से अधिक न चुना जाय, परन्तु ३१वें राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने यह परम्परा तोड़ दी। वे चार बार चुने गये। २६ फरवरी १९५१ को २२वें संशोधन द्वारा यह नियम बना दिया गया है कि कोई भी व्यक्ति दो बार से अधिक राष्ट्रपति नहीं रह सकेगा। राष्ट्रपति के बीच में ही मर जाने पर बिना चुनाव के शेष काल पूरा करने के लिए उपराष्ट्रपति ही राष्ट्रपति बन जाता है, और यदि वह भी इस प्रकार दो वर्ष या इससे अधिक समय तक राष्ट्रपति रह चुका है तो वह भी उसका एक बार का काल मान लिया जायगा। यह नियम राष्ट्रपति ट्रूमन के काल में बना था। इसलिये सौजन्य-वश केवल उन्हें इस नियम से मुक्त कर दिया गया था, परन्तु उन्होंने इससे कोई लाभ नहीं उठाया।

राष्ट्रपति ४ वर्ष के लिये चुना जाता है। यदि बीच में उस की मृत्यु हो जाय तो नया चुनाव न होकर शेष काल पूरा करने के लिए वरिष्ठता की सूची के अनुसार उप-राष्ट्रपति ही राष्ट्रपति बन जाता है। इस परम्परा की नींव ९वें राष्ट्रपति हैरिसन की (१८४१ में) मृत्यु हो जाने पर पड़ी थी जिसे बाद में १८८५ के लगभग कानूनी रूप मिल गया। अब तक ८ राष्ट्रपति अपने कार्यकाल के बीच में स्वर्ग सिधार चुके हैं जिनमें से ४ की हत्या की गई।

लिंकन की दास प्रथा समर्थकों द्वारा, जेम्स गारफील्ड की नौकरी की खोज में एक निराश व्यक्ति द्वारा, विलियम मैकिनले की एक अराजकतावादी द्वारा और जॉन एफ० कैनेडी की अभी कुछ समय हुए एक असंतुलित मस्तिष्क के व्यक्ति द्वारा। राष्ट्रपति की मृत्यु हो जाने पर जो उपराष्ट्रपति पदेन राष्ट्रपति बनता है उसका अगले चुनाव में जीत जाना कोई अनिवार्य नहीं है। चार बार ऐसे पदेन राष्ट्रपति अगला चुनाव हार चुके हैं। इनके नाम मोटे अक्षरों में दिये हैं। केवल ३ बार ऐसे राष्ट्रपति अगला चुनाव जीते हैं। आंठवां इसी प्रकार का चुनाव नवम्बर मास में होने वाला है।

अमरीका के राष्ट्रपति बड़े बड़े निर्धन और बड़े बड़े सम्पन्न सभी प्रकार के घरानों से हुए हैं। राष्ट्रपति जैकसन इतने निर्धन थे कि एक अँगरेज ने उनसे अपने जूते पर पालिश करने को कहा और मना करने पर उन्हें खूब मारा। फिलमोर धूने का काम करते थे, लिंकन का बाप उन्हें भाड़े पर मजदूरी के लिये भेजा करता था, हूवर के पिता लोहार थे और उनकी विधवा माँ कपड़ों की सिलाई करके जीवन निर्वाह करती थीं। ट्रूमेन ९ वर्ष की आयु से ऐनक लगाते थे। आँखें खराब होने के कारण जब उन्हें

*अपना कार्यकाल पूरा होने से पूर्व ही स्वर्गवासी हुए।

फा० १०

सरकारी नौकरी नहीं मिल सकी तो ३ डालर प्रति सप्ताह पर एक अत्तार की दूकान पर नौकर हो गये थे। फ्रैंकलिन रूजवेल्ट १२ वर्ष तक बाल पक्षाघात से पीड़ित रहे। अब तक दो राष्ट्रपति थियोडर रूजवेल्ट और वुडरो विल्सन शान्ति नोबल पुरस्कार जीत चुके हैं।

अधिकांश राष्ट्रपतियों को व्यवसाय, या प्रशासन का अनुभव रहता है, जिनमें प्रमुख हैं अध्यापन, सेना व वकालत। जार्ज वाशिंगटन शुद्ध अँगरेजी नहीं लिख पाते थे। वे अखरौटी में बहुत कच्चे थे।

संयुक्त राष्ट्र अमरीका में दो विरोधी विचारधाराओं के व्यक्ति इँगलैंड से आये थे :—प्योरिटन जिनका मुख्य केन्द्र न्यू इँगलैण्ड था। ये मध्यम श्रेणी के, उद्योग करने वाले, दास प्रथा के विरोधी थे। वे बहुमत में थे। ये शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार चाहते थे। दूसरे वे लोग थे जिनके पास बड़े बड़े कृषि के 'फार्म' थे और जो दक्षिणी राज्यों में थे। वे धनी थे, अल्पमत में थे, और विकेन्द्रीकरण के पक्ष में थे। ये ही दल प्रारम्भ में क्रमशः फ़ेडरलिस्ट और डिमोक्रैट कहलाते थे। डिमोक्रेटिक दल को पहिले जेफर्सन की रिपब्लिकन पार्टी भी कहा जाता था परन्तु अब उसके लिए डिमोक्रेट नाम रूढ़ हो गया है, और फैडरलिस्ट लोग रिपब्लिकन कहलाने लगे हैं।

संयुक्तराष्ट्र अमरीका के राष्ट्रपति को एक लाख डालर वार्षिक वेतन तथा पचास हजार डालर कर-मुक्त भत्ता मिलता है। राष्ट्रपति टायलर ने, जब वे अवकाश ग्रहण कर चुके थे, तब १८६२ के गृहयुद्ध में अमरीकी सरकार के विरुद्ध दास प्रथा के समर्थन में शस्त्र उठाया था। राष्ट्रपति एण्ड्र्यू जॉनसन पहिले राष्ट्रपति थे जिन पर भ्रष्टाचार का अभियोग चलाया गया, परन्तु ३५:१९ के बहुमत से वे निर्दोष घोषित किये गये। उनके दल ने वर्जीनिया, कैरोलीना, जार्जिया इत्यादि राज्यों में उनके समर्थन के लिए दो लाख तीस हजार सशस्त्र सैनिक खड़े कर लिये थे, परन्तु राष्ट्रपति जॉनसन ने इनकी सहायता लेना स्वीकार नहीं किया।

केनेडी ही एक मात्र ऐसे राष्ट्रपति थे जो रोमन कैथलिक थे। अन्य सभी राष्ट्रपति प्रोटेस्टेण्ट सम्प्रदाय के अनुयायी रहे हैं। कोई यहूदी आज तक राष्ट्रपति नहीं हो पाया, न कोई नीग्रो ही, और न कोई महिला ही।

हॉकी के खेल में भारत की विश्वविजय

विदेशी खेलों में भारतवासियों ने हॉकी के खेल में सबसे अधिक निपुणता प्राप्त की है। ओलिम्पिक की प्रतियोगिताओं में पिछली रोम की प्रतियोगिता तक बराबर स्वर्णपदक प्राप्त करते रहे, किंतु चार वर्ष हुए रोम में पाकिस्तान ने हमारी हॉकी की टीम को हराकर स्वर्णपदक जीत लिया था। संयोग से टोकियो की ओलिम्पिक प्रतियोगिता में फिर इस बार भारत और पाकिस्तान का सामना अंतिम मैच में हो गया। पाकिस्तान की टीम बड़ी तगड़ी थी, और जानकार लोग भी निश्चित रूप से नहीं कह सकते थे कि कौन सा दल जीतेगा। किन्तु कड़े विरोध के बावजूद भारत ने एक गोल बना लिया। इस प्रकार भारत को हॉकी में एक बार फिर विश्वविजयी होने का गौरव प्राप्त हुआ। इसके लिए भारत के खिलाड़ी देश की हार्दिक बधाई के पात्र हैं। किंतु ओलिम्पिक की मैचों से पता लगता है कि इधर कई देशों ने हॉकी के खेल में बड़ी उन्नति की है। भविष्य में उन्हें बड़ा कड़ा सामना करना पड़ेगा। इसलिए कम से कम हॉकी के खेल में भारत की स्थिति बनाये रखने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वे ही नहीं प्रत्युत सारा देश हॉकी की उन्नति में विशेष रुचि ले। यह खेल अब हमारा राष्ट्रीय खेल हो गया है। हमारी राष्ट्रीय प्रवृत्तियों से यह मेल खाता है और इसमें हमने निपुणता भी प्राप्त कर ली है। किंतु इस क्षेत्र में अपनी पदमर्यादा बनाये रखने के लिए इसकी उन्नति में सतत प्रयत्नशील रहने की आवश्यकता है।

हॉकी को ही यह श्रेय है कि उसीके कारण भारत को एकमात्र पदक—वह भी स्वर्ण-पदक—मिला। भारत अब स्वर्ण से विरक्त होता जा रहा है। देश के नेता हमसे स्वर्ण का परम्परागत मोह छुड़ाने को कृतसंकल्प हैं। शायद इसीलिए भारत ने अधिक स्वर्ण-पदक प्राप्त नहीं किये!



महाकवि

श्री रा० नागरतन

[हमारे दक्षिण निवासी भाइयों ने हिंदी पर कितना अधिकार कर लिया है, उसका प्रमाण देने के लिए हम श्री रा० नागरतन की यह हिंदी में लिखी मूल कहानी, ज्यों-की त्यों, बिना किसी सम्पादन के, छाप रहे हैं। श्री नागरतन ने लिखा है—"इसमें व्यक्त किये गये कई प्रयोग आपको नये लगेंगे, यथा, रात-सारी, लोग सब, स्थिति-गति, पैसे-गिसे आदि आदि। आप तो सम्भवतः जानते होंगे कि मैसूर में भी हिंदी मातृभाषी रहते हैं और दक्षिण भारत भर के नगरों में इनके कई घर कहीं न कहीं मिल जायेंगे। उक्त प्रयोग मैसूरी हिंदी में प्रचलित । अतः (उन्हें) ज्यों का त्यों रख दिया गया है। उद्देश्य इतना ही है कि वहाँ (उत्तर) वालों को हिंदी के मैसूरी रूप के दर्शन भी हो जाएँ।" जो भाषा भारत ऐसे विशाल देश में प्रचलित है, उसमें स्थानीय भेद अवश्यम्भावी हैं। हम कलकतिया हिंदी, बंबैया हिंदी, पंजाबी हिंदी, बंगाली हिंदी से परिचित हैं। श्री नागरतन की कृपा से हमें मैसूरी हिंदी की चाशनी भी चखने को मिल रही है। सम्पादक, सरस्वती।]

"देवियो और सज्जनो!

आपने जो इस महाकवि अभिनन्दन समारोह का अध्यक्षासन ग्रहण करने का गौरव मुझे प्रदान किया है, उसके लिए मैं आपका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। एक प्रकार से कहूँ तो, मैं इस गौरव-भार को ढोने के योग्य नहीं हूँ। फिर भी भगवान की इस सृष्टि में हरेक प्राणी का अस्तित्व कुछ-न-कुछ तो होगा ही। उसकी अपनी योग्यता, कुछ-न-कुछ, तो होगी ही। जैसे सेतु-बन्धन के कार्य में गिलहरी ने भी अपना कर्तव्य-पालन किया। आखिर उसी की सेवा सबसे ज्यादा प्रशंसित भी हुई।

"पर मैं यह नहीं कहूँगा कि मेरा यह कार्य भी प्रशंसार्ह है। हाँ, इतना अवश्य कहूँगा कि इस महाकवि-अभिनन्दन समारोह रूपी यज्ञ में इस अकिंचन को भी सेवा करने का जो सुअवसर आप लोगों द्वारा प्रदान किया गया है, उसके लिए मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ। इस उपकार को मैं कभी भूलूँगा नहीं। यह तो मेरा पूर्व पुण्य ही है कि इस देवार्चन में श्रद्धा के दो-एक सुमन चढ़ाने का सुवर्णावकाश मुझे प्राप्त हुआ।

"यह आप जानते ही हैं कि कवि क्रान्त-द्रष्टा होता है। वह अपने प्रज्ञा चक्षुओं से 'आगामी कल' के भविष्य को देख सकता है। हम जैसे साधारणों को इसका कुछ भी ज्ञान नहीं हो सकता। इसीलिए वह इस 'आगामी कल' को अपनी सिंह वाणी द्वारा व्यक्त करता है ताकि साधारण जनता उससे लाभ उठा सके। उस भविष्य के स्वागत के लिए अपने को तैयार रखे। उसके अनुरूप समाज को ढाले।

"कवि ऐसा क्यों करता है? क्योंकि उसका मन सहानुभूति पूर्ण होता है। वह यह नहीं देख सकता कि उसका अपना ही एक भाई जीवन संघर्ष में छटपटाता रहे। वह यह नहीं चाहता कि उसका अपना ही एक पड़ोसी जीवन की विकट समस्याओं का शिकार बन जाए। काल के निर्दय थपेड़ों को चुपचाप बरदाश्त करता चला जाए।

"हाँ, यह सम्भव है कि समाज का एक वर्ग अपने ही एक अन्य वर्ग की निर्बलता पर हँसी उड़ाये। या उसके आर्तनाद को अनसुनी कर दे। वह भले ही यह कह दे कि यह सब उस वर्ग का प्राचीन कर्म हैं। उसके प्रारब्ध का फल है। और यह भी कि, उसका मार्जन नहीं हो सकता। अतः उसके प्रति सहानुभूति दिखाना अवांछनीय है।

"पर कवि-मानस यह नहीं मानता। वह मानव-मात्र पर भरोसा करता है। वह जानता है कि सभी में भगवान का ही निवास होता है। क्योंकि उसकी आज्ञा के बिना तृण मात्र भी चल नहीं सकता। देश में व्याप्त इस विषमता को दूर करने हेतु वह अपने काव्य रूपी पाञ्चजन्य को हथियाता है। उसकी वाणी शंखनाद बजाने लग जाती है। वह सोई हुई मानवता को जगाने का प्रयत्न करता है। मिट्टी के पुतलों में स्फूर्ति के स्फुलिंग ज्वलित कर देता है। क्लैब्य भारतीयों में सुप्त पुरुषार्थ को छेड़ देता है।

"एक वाक्य में कहें तो आर्तों, असहायों, निर्बलों की मूक वेदना को मेघगम्भीर वाणी देने वाला ही कवि है। इसीलिए उसे मानवता का सजग प्रहरी कहा गया है।

"अब एक सरसरी निगाह वर्तमान परिस्थिति पर भी। हमारा राष्ट्र आज एक संकटमय मार्ग से होकर गुजर रहा है। हर कोई चिल्लाने लग गया है कि आर्थिक स्थिति के सुधरे बिना हमारा देश उन्नति के पथ पर अग्रसर

नहीं हो सकता। इसके लिए हरेक व्यक्ति को कमर कस के काम करना चाहिए। उनमें त्याग वृत्ति तथा देश भक्ति का होना नितान्त वांछनीय है।

"परन्तु आजकल हम प्रत्यक्ष रूप से जो कुछ देख रहे हैं, वह उक्त भावना के अनुकूल है, ऐसा कहा नहीं जा सकता। हर कहीं असन्तोष ही असन्तोष नजर आ रहा है।

"खेती वाले लोग सब, शहर की ओर दौड़े आ रहे हैं। परिणाम यह हुआ कि अन्न की उपज घट गयी। और उधर बेकारी बढ़ गयी। लोगों को पेट भर खाना नहीं मिलता। इसलिए हर कहीं चोरी, डकैती आदि दुष्प्रवृत्तियाँ घर करने लग गयी हैं।

"विद्यार्थी, व्यापारी, कार्मिक वर्ग, नेता गण और समाज सेवी हर कोई परस्पर दोषारोपण में दत्त चित्त हो रहे हैं। आये दिन हड़तालों की इतनी भरमार हो गयी है कि शायद ही कोई महीना इनके बिना गुजरे।

"इन सब कुपरिणामों का एक मात्र मूल कारण, मेरी समझ के अनुसार, हमारा मात्र आर्थिक स्थिति-गति के प्रति बल देना है। यदि हम इसका दशांश भी राष्ट्रीय नैतिक पुनरुद्धार के लिए व्यय करते तो आशातीत सफलता कभी की प्राप्त हो गयी होती।

"यह ठीक है कि अर्थ आधुनिक भवन है। परन्तु यह भी भुलाया नहीं जा सकता कि नीति उसकी आधार शिला है। आधार शिला सशक्त रही तो मनचाहे आकार का मकान बन सकता है। कहा भी गया है कि धन गया तो कुछ नहीं गया। स्वास्थ्य गया तो कुछ गया। और यदि चारित्र्य गया तो सब कुछ खो गया। चारित्र्य का प्राथमिक रूप ही तो नीति है। यह नीति ही धर्म है। इसी धर्म पर अर्थ की कामना करनी चाहिए। तभी मोक्ष (मा=मत, क्ष=क्षय को प्राप्त होओ) को साधा जा सकता है।

"मानव के पुतलों में इस राष्ट्रीय नैतिक पुनरुत्थान की भावना को जगाने की शक्ति एक मात्र कवि की प्रचण्ड वाणी में ही निहित है। और यह हमारा अहोभाग्य है कि जिस महाकवि का अभिनन्दन करने, इतनी भारी संख्या में हम सब यहाँ एकत्र हुए हैं, उनकी प्रत्येक रचना में उपर्युक्त भावनाएँ कूट-कूट कर भरी हुई हैं। उनमें आर्तों के प्रति अनुकम्पा है। दरिद्रों के प्रति दया है। समाज के प्रति त्यागवृत्ति है। देश के प्रति आत्मार्पण का भाव निहित है। यही कवि-कर्म है। यही धर्म है। यही चारित्र्य है। यही संस्कृति है।

"महाकवि माधव! क्या ही सुन्दर व सार्थक नाम है! इनकी रचनाएँ बहुत ही लोक प्रिय हो गयी हैं। यहाँ तक कि इनकी कविताएँ लंगड़ों-लूलों की जीविका ही बनी हुई हैं। अतः उनकी जनप्रियता के बारे में अधिक क्या कहा जा सकता है?

"और अन्त में मैं यह कहना चाहूँगा कि मैंने आपका समय कुछ अधिक ले लिया है। आप मुझे क्षमा करें। करेंगे, ऐसा विश्वास है भी। क्योंकि देवार्चन में मन्त्र पाठ की ही प्रधानता हो जाती है। ऐसे महानुभाव कवियों के जन्म से न केवल हमारा प्रान्त वरन् सारा राष्ट्र गौरवान्वित हो गया है, ऐसी मेरी धारणा है। महाकवि माधव शतायु हों, चिरायु हों। जय हिन्द! जय भारत!!"

× × ×

प्रोफेसर राव जी का मन हर्ष से भर गया था। उनका मुख ऐसा चमक रहा था मानो वे कहीं दिग्विजय करके आ गये हों। वे अभी-अभी महाकवि अभिनन्दन समारोह में सम्मिलित होकर घर वापस जा रहे थे। यह पहला ही अवसर था जब कि उन्होंने इतने बड़े पैमाने पर आयोजित किसी समारोह में भाग लिया था। वहाँ महाकवि को प्राप्त अभूतपूर्व स्वागत, उनकी अश्रुतपूर्व प्रशंसा सुनकर वे मानो मन्त्र-मुग्ध से हो गये थे।

उन्होंने बाहर दृष्टि दौड़ायी। देखा, पेड़-पौधे सभी खुशी के मारे बड़ी द्रुत-गति से दौड़ रहे हैं।

वे यूँ ही विचारों में खो गये। अध्यक्षजी ने जो कुछ कहा था महाकवि की प्रशंसा में, उसके प्रत्येक शब्द चित्रवत्, उनकी आँखों के सामने घूम गया। महाकवि बनना सचमुच भाग्य की बात है। जनता उसे कितनी श्रद्धा, कितनी भक्ति और कितने गौरव के साथ देखती है! महाकवि, कोई बिरला ही, कहला सकता है। उसकी कृति में मानव-मात्र को ऊँचा उठाने के भाव व्याप्त रहते हैं। आखिर ये ही तो वे विचार हैं, जिनके कारण वह जनता के हृदय में अपने लिए एक अमर स्थान प्राप्त कर लेता है!

अध्यक्षजी ने क्या ही ठीक कहा कि आर्तों, असहायों व निर्बलों की मूक वेदना को मेघ गम्भीर वाणी देने वाला ही कवि होता है।... सबल निर्बलों को कुचलता

...ता है। धनिक दरिद्रों को रौंदना चाहता है। ऊँचा, ...का शोषण करना चाहता है। इन सब वैषम्यों को ...नष्ट करना कवि का ही काम है। सामाजिक समभाव ...लोगों में प्रचारित करने का एक मात्र सफल साधन ...की कृति ही है।

...विचार सागर में प्रोफेसर साहब यूँ ही गोता लगा ...थे कि एक दम वे उछल पड़े। और सीधे ड्राइवर की ...से जा टकराये। उनके पीछे फल-फूल आदि जो ...सब मोतियों की तरह तितर-बितर हो गये। पुस्तकें ...उधर फैल गयीं। मोटर के सामने एक चाक ...पाथ के ऊपर सवार हो, विद्युद्दीप के खम्भे से थोड़ी ...पर रुक गया।

ड्राइवर जल्द बाहर निकला और थर-थर काम्पता ...हो गया। प्रोफ़ेसर साहब भी तुरन्त बाहर निकले। ...ने अपनी गाड़ी के चारों ओर गौर से घूम गये। ...को कुछ नहीं हुआ था। दिल ठण्डा हुआ। इधर ड्राइवर ...देखते ही उनके तेवर चढ़ गये। आँखें आग उगलने ...लीं। जीभ शब्दों को मन चाहा रूप देने लगी—"क्यों ...अयोग्य? किस जंगलीने तुझे कार चलाना सिखाया ...? खाये घर में दो चीतता है? गाड़ी को कुछ हो जाता ...? कौन, तेरा बाबा दे देता? चाण्डाल! जानता ...पूरे तीस हजार का माल है! कभी इतना धन ...था है? कम-से-कम यह शब्द सुना भी है? भगवान ...बचाये तुझ जैसे निकम्मों से।"

"नहीं सरकार! मेरी कोई तकसीर......"

"मुँह मूच (बन्द कर)! चोरी, सीना जोरी! क्यों? ...खास चीज होती तो इतनी असावधानी बरतता? ...ही तो कहते हैं! अपना माल सन्दूक में डाल, ...माल बिट्टी (फोकट) का माल! इतना अहंकार! ...हो गया था क्या? पहले तू निवाले-निवाले को ...था। मैंने तुझ पर दया दिखायी। अपने यहाँ ...रखा। उसी का क्या यह प्रति-फल? भगवान ...भूखों मरने छोड़कर ठीक ही किया था। सुन! ...महीने तुझे दरमाह आधी ही मिलेगी। फिर कभी ...तरह किया तो ऐसा लात मारकर निकाल दूँगा कि ...दाँत झड़ जाएँ।'

"मेरे माँ-बाप! मुझ पर न चिढ़ें। तकसीर मेरी ...है। वह आदमी बीच ही में आ धमका। मैं कुछ कर न सका। उसे बचाने के लिए गाड़ी इधर घुमायी। वरना वह मर जाता। और हम आफ़त में....."

"कौन?...क्या कहा?...वहाँ खड़ा हुआ.... क्यों रे! आत्म-हत्या करने की इच्छा थी? मुँह क्यों इधर किये खड़ा है? इधर मुड़...ओह! अन्धा है! हाँ, तो यह मर जाता तो कौन हानि होती? क्या सूरज डूब जाता तेरी मौत से? चाँद उग न आता? कौन बड़ा उपकार कर रहा है जिन्दा रह कर? समाज पर तू एक अवांछित बोझ मात्र है। अरे शैतान! जानता है पूरे तीस हज़ार गिने हैं? एक कौड़ी भी कम नहीं! गाड़ी को कुछ हो जाता तो कौन तू भिखारी देता? जानता है रुपये के कितने नये पैसे होते है? देखा है? सुना है?

"भगवान ने ठीक ही किया जो तुझे आँखें नहीं दीं। वरना, न जाने कितने घर उजाड़ देता? कितनों को तंग करता फिरता?...ओह!...कहाँ है? यहाँ तो पुलिस वाला भी नहीं दिखायी देता! वरना तुझे उसके हवाले कर देता। भीख माँगता फिरता है? देश का गौरव मिट्टी में मिला रहा है? तुझ जैसे नीचों के ही कारण विदेशी हमारी निन्दा करने लग गये हैं।...."

"क्षमा करें बाबूजी! अन्धा हूँ। देख नहीं सकता। मोटर की आवाज, ड्राइवर ने पहले ही कर दी होती तो मैं सावधान हो जाता। पर नजदीक आने पर ही हार्न की आवाज हुई। मुझे कुछ सूझा नहीं। हक्का-बक्का रह गया। दड़-बड़ाता (डर के मारे हाथ-पैरों को जल्दी-जल्दी इधर-उधर हिलाता) हुआ फुटपाथ की ओर सरकने लगा। इस डर और जल्दबाजी के कारण इस खम्भे से भी मैं टकरा गया। हाथ में जो भीख का मिटटी का बर्तन था वह भी आधा टूट गया और....."

"आधा टूट गया!...तो ले, यह मैं पूरा ही तोड़ देता हूँ! किसकी भलाई के लिए अब भी जमीन पर जिन्दा है? तेरा सत्यानाश हो!...."

इतना कहकर प्रोफेसर साहब ने उसके हाथ का मिट्टी का बर्तन झटके से छीन लिया। उसे जोर से जमीन पर दे मारा। 'छिल' की आवाज हुई। तब भी वह पूरा नहीं टूट सका! उसका एक बड़ा हिस्सा ज्यों का त्यों भूमि पर पड़े झूल रहा था! उन्होंने इसे देखा तो उनका पारा और भी चढ़ गया! जूते पहने अपने एक पैर को एकदम ऊपर उठाया। पूरे बल तथा वेग के साथ उस पर

छोड़ा। छोड़ते समय अकस्मात उनकी दृष्टि फूटे बर्तन में रही किसी वस्तु पर होकर गुजर गयी!.....

उनका माथा ठनका! काटो तो खून नहीं! पाँव के वेग को रोकना चाहा। पर असाध्य था। आशा ने प्रयत्न किया। तो वह पाँव सीधे बर्तन पर न जाकर उसके एक पार्श्व पर जा धमका। चिट-पिट, चिटपिट सी आवाज करता हुआ उस बर्तन का और एक भाग भी चकनाचूर हो गया। पलक मारते-मारते ये सारी घटनाएँ घट गयीं थीं।

प्रचण्ड आन्धी की पराकाष्ठा ही आगामी शांति की पूर्वपीठिका है। प्रोफेसर साहब का पारा अब एकदम उतर गया था। उन्हें ऐसा अनुभव हो रहा था कि वे अब जमीन पर खड़े रह नहीं सकेंगे। शरीर-सारा पसीना-पसीना होने लगा। वे धीरे से झुके। मिट्टी के बर्तन के समेत उस वस्तु को उठा लिया। क्षण भर उसी पर अपनी दृष्टि गड़ाए रहे। फिर धीरे से गाड़ी की ओर चले। मन ने चाहा कि उस अन्धे की ओर और एक बार देख लें। पर लज्जा उनकी मुण्डी को जमीन की ओर ही दबाये रही।

इतने में आस-पास के आठ-दस आदमी घेर गये। पहले अन्धे को देखा। फिर गाड़ी को। बस, लगे हो-हल्ला मचाने।—"अन्धे पर गाड़ी छोड़ दी क्या? क्यों? गरीबों की जान, जान नहीं होती? अमीरों में ही क्या जीने की इच्छा होती है? अरे! चलो तो सही! पूछें कार के मालिक से। आड़े हाथों लें। ताकि भविष्य में होशियारी से कार चलाये। और हो सके तो कुछ पैसे-गिसे उस बेचारे को दिला दें।....क्यों ड्राइवर? तुम्हारी आँखें क्या फूट गयी थीं? कौन रे इसका मालिक?... कौ....ओह! आप हैं! कृपया क्षमा करें। हम नहीं जानते थे कि यह गाड़ी आपकी है। आप कभी ऐसा नहीं करेंगे....हम जानते हैं। शायद यही चुड़ैल आपकी गाड़ी की राह में आ धमका हो? कौन जाने?.....

"खैर, आपके दर्शन के लिए बहुत दिनों से तरसते रहे। यह हमारा पुण्य-विशेष ही है कि आज हमारी कामना पूरी हो गयी।"

अन्धे ने आश्चर्य मिश्रित कौतूहल के साथ प्रश्न किया—"भाई! कौन हैं ये सज्जन? सब के सब उनकी प्रशंसा के पुल बान्धते अघाते नहीं दीखते। मैं भी जरा जानूँ!...

तब कोई बोला—"अरे! तुम इतना भी नहीं जानते? जिन के कि तुम,...." बीच ही में प्रोफेसर साहब बोल उठे—"ड्राइवर! इन लोगों से कह दो कि उस बेचारे को कुछ न करें। न ही कुछ कहें। और गाड़ी जल्दी चलाओ।"

× × ×

"मानस भज रे गुरु चरणम्। दुस्तर भव सागर तरणम्"
टप......टप........टप...........टप....
"कौन? कौन हैं?

कामी क्रोधी लालची, इनते भक्ति न होय।
भक्ति करे कोई सूरमा, जाति बरन कुल खोय॥
कथनी मीठी खांड सी, करनी विष की लोय।
कथनी तज करनी करै, तो विष अमृत होय॥"

टप..टप..टप..टप..टप..टप..टप..टप..

"कौन? कौन हैं? कोई हैं तो जरूर! बोलिये... मुँह खोलिये। मैं अन्धा देख नहीं सकता सिर्फ छाया और आवाज के सहारे ही पहचान पाता हूँ। बताइये कौन हैं?......"

मैं...मैं...मैं हूँ......राव...।"

"ओह! अहोभाग्य मेरा कि आपने यहाँ तक पधारने का कष्ट किया! मेरी यह छोटी सी कुटिया आज पवित्र हो गयी। कहते हैं सज्जनों का समागम पूर्व पुण्य का फल है। आइए! आइए!! कहाँ खड़े हैं आप? मैं आपको देख नहीं पाता। मेरा हाथ थामिये महाकवि माधव जी! यहाँ पधारकर आपने, मुझ पर बड़ी कृपा की है। सुना है भक्तों की परीक्षा लेने के बाद ही भगवान प्रसन्न होते हैं। तभी उनका आतिथ्य स्वीकार करते हैं।

"परन्तु....परन्तु मुझे खेद है मैं योग्य रीति से आपकी सेवा कर न सकूँगा। यहाँ जो निर्मल जल प्राप्त है उसे ही आपको समर्पित करूँगा। निवेदन है इसे स्वीकार करें और मेरे मन को सन्तोष प्रदान करें। कहते हैं, भक्त द्वारा श्रद्धा-युक्त मन से अर्पित किये गये जल से ही भगवान प्रसन्न हो जाते हैं!"

"बस! बस!! चुप रहो। मुँह को रोके रहो। यहाँ मैं लज्जा से गड़ा जा रहा हूँ। शरीर सारा पसीना-पसीना हुए जा रहा है। रान (जाँघ) काँपने लग गये हैं। किये का प्रायश्चित्त करूँ। कम से कम इसी दृष्टि से और कुछ दिन जीवित रहना चाहता हूँ। मुझे ऋण-भार से मार न दो अन्धा-गुरु! मार न दो।"

"अन्धा-गुरु?"

"हाँ! अन्धा-गुरु। पिछले दो दिनों में तुम्हारा सारा हाल जान लिया है। इस मोहल्ले के लोगों के तुम श्रद्धा-भाजन हो। तुम इन गरीबों के गुरु हो। सांसारिक झंझटों में फँसे हुए इन बेचारों को उबारने का प्रयत्न करते हो। उचित उपाय द्वारा उनका मार्ग-दर्शन करते हो, शाम के समय हर रोज उस मन्दिर में बैठकर कोई-न-कोई मीठी, मन को भाने वाली कहानी सुनाते हो। यहाँ वाले तुम्हारे मुँह से ही कहानी सुनना पसन्द करते हैं। इन कहानियों से न केवल उनका मनस्तोष होता है, बल्कि वे, नीरस समझे जानेवाले अपने जीवन को रसमय भी बना देते हैं।

"और सुना कि तुम केवल उतना ही भीख लेते हो जितने से कि तुम्हारा जीवन चल जाए। भीख माँगते समय मेरी ही रचनाओं को गाते हो। अपनी मधुर वाणी

उनको अमर बना देते हो। तुम्हारी सुरीली आवाज सुन, एक दिन किसी ने मेरा भावचित्र तुम्हें दे दिया तुम्हें बड़ा सन्तोष हुआ था उस दिन! सन्तोष के उस दिन दोपहर का भोजन तक नहीं किया और उस को हमेशा अपने भिक्षा-पात्र में ही रखे रहना तुमने किया।"

"महाकवि जी! मैं तो और अन्धों की तरह एक ारण अन्धा हूँ। और......"

"हाँ-हाँ! सभी ऐसा ही समझने की भूल करते हैं। ी अब तक समझता ऐसा ही था। मोती भी अपने को साधारण कंकर समझ ले तो यह उसकी महानता के ाय और कुछ नहीं है।"

"आप शान्त हो जाइए। यह सब क्या कह रहे हैं? ा की भी कोई सीमा होती है न?"

"नहीं, मुझे कहने दो। यह तुम्हारी प्रशंसा नहीं है आत्म-शोधन है। मेरा चित्र अब भी जल रहा है। ां मैं जैसा बर्ताव तुम्हारे साथ किया वैसा शायद कसाई नहीं करेगा। उस दिन से मुझे न रात को नींद आती है, दिन को चैन। भीतर-ही-भीतर मैं कुढ़ता जा रहा था। कुढ़ूं भी क्यों नहीं? श्रेष्ठ समझे जाने वाले किसी ि के भाव चित्रको एक अन्धा अपने मानस मंदिर में सकता है! उसकी रचनाओं को श्रुति-मधुर स्वर ाकर उन्हें अमरता प्रदान कर सकता है। उस कागज टुकड़े में प्राण फूँक सकता है। परन्तु...परन्तु इधर ओह! कैसी घोर विडम्बना है! मैं जीव सहित र भी एक मुर्दे से गया-बीता हो गया। तुम सचमुच हो। लोगों ने तुम्हें जो गुरु नाम दिया है, उसमें तिल भी उत्प्रेक्षा नहीं......."

"जाने क्यों ये सारी बातें साँस लिए बिना एकदम कहते चले जा रहे हैं! जरा रुकिये तो सही। इनमें धर रखा है?"

"नहीं। यह तो तुम्हारी उदारता है जो अपने को ारण जन बता रहे हो। तुमने सचमुच अपने नाम सार्थक बना लिया है। इधर मैं 'माधव' हूँ। मेरा ा ही रखा हुआ। माया का पति! क्या सचमुच मैं ोक माया से ऊपर उठ सका हूँ? रत्ती भर भी नहीं। और राष्ट्रीय पुरस्कारों, पत्र-पत्रिकाओं की ऊपरी ाओं, सभा-समितियों के आडम्बरपूर्ण स्वागत-सत्कारों मायाजाल में फँस गया हूँ। मैंने अपने नाम को, उसके गौरव को निरर्थक ही बना डाला!

"मैं कविता लिखना भर जानता हूँ। तुम उसे जीना ते हो। किसी चोर की तरह एक कोने में बैठ कर मैं ता हूँ। तुम धैर्य के साथ जनता के बीच जाकर ा सदुपयोग करते हो। मैं 'कह' सकता हूँ। तुम 'कर' हो। तुम आँखों के अन्धे हो। मैं दिल का अन्धा हूँ। इन चर्मचक्षुओं पर मैं घमण्ड कर रहा हूँ। परन्तु तुम तो अपने प्रज्ञा-चक्षुओं से लोक-कल्याण में तत्पर रहते हो।"

"कहाकवि माधव जी! अपने को सम्भालिये। आप बहके जा रहे हैं। बस कीजिए। ज्यादा मैं सुन नहीं सकता।"

"हाँ! मेरा चित्त अब कुछ-कुछ शान्ति का अनुभव कर रहा है। तुम्हारे दर्शन से उसकी जलन कम होती जा रही है। लोग तुम्हें गुरु कहते हैं। मैं भी तुम्हें अपना गुरु मानता हूँ—दीक्षा-गुरु! जनता मुझे महाकवि कहती है। परन्तु मैं तुम्हें महाकवि मानता हूँ। हाँ, महाकवि! क्रान्त-द्रष्टा—वह जो भूत, भविष्य तथा वर्तमान सब कुछ को देख सकता है। चाहे वह अन्धा ही क्यों न हो। 'अन्धे को सब कछु दरसाई!' ओह! इसका भी रहस्य अब मैं जान सका।

"बस, मैंने लिखा बहुत कुछ है। अब उन पर आचरण करूँगा। पुरस्कार बहुत पाये हैं। अब लोगों में उनका वितरण करूँगा। मेरा गौरव बहुत हुआ है। अब उसको जीऊँगा। दीन-दुःखियों की जबानी वकालत की थी। सचमुच जनता-जनार्दन की सेवा के योग्य, अपने को बनाने के प्रयत्न में लग जाऊँगा.....

"अब मेरा मन हल्का हुआ। शान्ति प्राप्त हुई। अन्धा-गुरु! तुम्हारे ही कारण मैं दानव से मानव बन सका।... अच्छा अब चलता हूँ।...आज्ञा दो...। जब-तब तुम्हारे दर्शन करता रहूँगा।......"

"अरे रे! महाकवि माधव जी! यह क्या? सहस्र नामार्चन की तरह मन में जो आया कह डाला। और अब चल दिये! कम-से-कम आपके आतिथ्य के सुयोग से मुझे वंचित तो न करें!"

"नहीं! नहीं!! मैं तुम्हें अब ज्यादा कष्ट उठाने न दूँगा। मैंने तुम्हारा, और इस नाते मानवता का, घोर अपमान किया था। और अब तुम्हारे ही सम्पर्क से उसका मार्जन कर दिया। अपने अहंकार को धो डाला। यह क्या, कुछ कम अतिथि-सत्कार हुआ?

"फिर भी यह पानी ही सही, पीते जाइए। मेरे यहाँ और रखा ही क्या है? अपने ही हाथों मैं आपको पानी पिलाऊँगा। तभी मुझे सन्तोष प्राप्त होगा। मानवता की रक्षा का बीड़ा जिसने उठाया है उस महाकवि के लिए क्या इतना भी कर न सकूँगा? आइये...इधर आइये।"

मिट्टी के बर्तन में पानी भरकर अन्धे ने उनके सामने पकड़ा। वे भी स्वयम् आगे बढ़े। नीचे बैठ गये। अपनी उँगलियों के सहारे उस बर्तन को पकड़ लिया। मुँह के पास ले गये। बूँद-ब-बूँद पानी ओंठों के द्वारा भीतर जाने लगा। तो इधर बूँद-ब-बूँद आँसू उनकी आँखों से बाहर झरने लगे।

आंगन के बीच—

आप भी तो करते होंगे ?

बच्चे के लिये खिलौना खरीद कर लायी हैं? 'देखो! कितना सुन्दर है! रख दो उठा कर; कितना अच्छा है! टाँग दो दीवार पर नहीं ये अभी दो मिनिट में तोड़-फोड़ कर रख देंगे।" अच्छा! तो यह खिलौना आप अपने लिये खरीद कर लायी हैं! नाम बच्चों का लिया और खरीदा गया अपने लिये कि उसको देख देख कर आप खुश हों! और अगर कहीं वे मन न मार सके और उन्होंने उसे ऊपर चढ़ कर उतार लिया तो बहुत संभव है कि आपका खिलौना तोड़ देने के अपराध में वे आप से दो चपत खा जाँय। तो आप उनको मन मारने का सबक सिखा रही हैं! मन खुश करने को जो खिलौना आया है वह असल में मन मारने के लिये है। दिल तो आप को अपना खुश करना है, उनको बार बार देख कर। आप दें न दें, थोड़ी देर के बाद वह खिलौना भी उनके मन से उतर जायगा क्योंकि बच्चों के मन से हर खिलौने का चाव थोड़ी देर बाद ठंडा पड़ जाता है।

तो आप चाँदी के खिलौने ले आयी हैं? अच्छा ही किया। आजकल हर चीज में व्यापार और व्यवहार चलता है—खिलौने कोई बच्चों के खेलने के लिये ही थोड़े हुआ करते हैं। बच्चों को मिलें न मिलें आप तो अपने मन का खेल उन से खेल ही लीजिये। व्यापार और व्यवहार अधिक जरूरी है। ये बच्चे भी जब बड़े हो जायेंगे तब आप की तरह इनको तिजौरी से निकालेंगे और आप ही की तरह अपने मन का खेल खेल कर खुश होंगे। खिलौने बच्चों के लिये नहीं होते, बड़ों के लिये होते हैं। नाम बच्चों का लिया जाता है।

लेकिन अगर आप सच में बच्चों के लिये ही खिलौने चाहती हैं तो फिर इन बातों का ध्यान रखिये।

प्रथम वर्ष में—बच्चों को खिलौनों की आवश्यकता

पड़ती है जब उनकी आँखें ठहरने लग जाती हैं, और समय झुन-झुने आदि की आवाज भी वे समझने लग ते हैं। इस समय खिलौने हल्के, आसानी से धुल जाने के तथा अति शीघ्र टूट जाने वाले न हों। रंग तेज ने चाहिये। बच्चों को तेज रंग आकर्षक लगते हैं। र आपने सुन्दर सोफियाने रंग लेना शुरू कर दिया तो न जाइये कि आप खिलौना शिशु के लिये नहीं, अपने ये खरीद रही हैं।

दूसरे वर्ष में ऐसे खिलौने हों जो एक के ऊपर दूसरा रखा जा सके और फिर गिर जाय। या गुड़ियाँ हों जिनसे बात कर सके और उसका नाम रख सके।

तीसरे वर्ष में बगीचे में खेलने की बाल्टी, खिलौने की खुरपी, खाना बनाने के गुड़िया के बर्तन आदि प्रिय लगते हैं।

चौथे वर्ष में, रेल, मोटर या लिखने की रंगीन पेंसिलें, रंगीन चाक (खड़िया की बत्तियाँ), या लकड़ी की ईंटें आदि उपयुक्त रहती हैं जिनसे कि बालक स्वयम् अपने मन की मौज के अनुसार नई-नई वस्तुएँ बना सके।

पाँच-छः साल के बच्चे मिल-जुल कर खेलना सीख जाते हैं। उनके लिये, कैरम, लेडर, लूडो आदि उपयुक्त रहते हैं।

एक महिला जो कि एक फ्लैट में रहा करती थीं जगह-जगह बक्सों में बच्चे के खिलौने छिपा कर रख दिया करती थीं। फिर दो चार दिन के बाद एक खिलौना निकाल देती थीं। बच्चा अपने बिछुड़े साथी से इस आतुरता से घंटों मिलता था कि उनको झटपट घर का काम समाप्त कर लेने के लिये काफी समय मिल जाता था।

दूसरी महिला ने अपने बच्चे को एक बड़े से खिलौने के साथ सोने की आदत डाल दी थी और वह रात को उन से लिपटता नहीं था। दो चार बार थप-थपाया, और वह अपने खिलौने को चिपका कर सो रहता था।

इसी प्रकार एक और माँ ने खिलौनों में रुचि डाल कर दूसरों के घर जाकर बच्चे की सामने तोड़ने फोड़ने की आदत पर काबू पा लिया था। बच्चा अपने ही खिलौने में इतना लीन और आकृष्ट रहता था कि दूसरे के घर की चीजें उसको आकृष्ट नहीं करती थीं। यह तो बच्चे में एक स्वभाव डालने की बात है। बार-बार बच्चे के पास आने पर काम में तो बाधा पड़ती ही है, और यह कहने पर कि "जा! वह देख, मेज पर वह चीज रक्खी है, उठा ला उससे खेल, अमुक चीज अमुक स्थान पर टंगी है, उसे उतार ला और उससे खेल;" वह समझने लग जायगा कि हर चीज खेलने की है; हर चीज में दखल रखना मेरा हक है; और उसका इस बात का स्वभाव ही पड़ जायगा कि जो वस्तु भी देखे उसे उठा कर उस पर बाल सुलभ अनुसन्धान कर डाले। अपने पराये का ज्ञान बालक में होता नहीं। जो अपने घर करेगा, वही दूसरे के घर जाकर करेगा। इसके विपरीत बार-बार बालक के पास आने पर जब काम में बाधा पड़े तो ऐसा कुछ कहने पर कि 'जा, खिलौना ले आ, मेरे पास बैठ कर खेल; यह खेलने की वस्तु थोड़े ही है यह तो वहाँ रखने की है। धीरे-धीरे उसके मन में पड़ जायगा कि कुछ वस्तुयें अलग रखने की होती हैं, और कुछ उसके विपरीत खेलने की; और उसका स्वभाव पड़ जायगा कि कुछ को उठा कर रख दे और जो खेलने को दे दी गईं उनसे खेले।

लड़कियाँ तो गुड़ियों का खेल खेलते खेलते चतुर गृहिणी बन जाती हैं; सीना-पिरोना, बिनाई-कढ़ाई, भोजन बनाना शादी-ब्याह के रीत-रस्म सहज ही सीख जाती हैं। खेल गुड़िया का होता है, किन्तु चाव और समझदारी से शिक्षा आगे के जीवन की मिलती है। खिलौनों का स्थान बालक के जीवन में अत्यन्त महत्व पूर्ण है। यदि हम इस तथ्य को ठीक से समझ लें, और यह न करें कि खिलौना लायें तो उनके नाम से और खेलने लग जायँ खुद, तो बालकों का बचपन बहुत आनन्दपूर्ण हो जाय और साथ ही शिक्षाप्रद भी।



घर-गृहस्थी

मसाले की पुड़िया

इन मसालों को कूट कर रख लें फिर देखिये क्या-क्या व्यंजन बनते हैं!

१—सूखा हुआ अमचुर (आम की खटाई) १ छटाँक ;

२—नमक १ छटाँक ;

३—लाल मिर्च १ छटाँक ;

४—सोंठ १ छटाँक ;

५—धनियाँ सूखा १ छटाँक ;

६—जीरा सफेद हल्का भुना हुआ १ छटाँक ;

७—इलायची बड़ी १।४ छटाँक ;

८—लौंग १।४ छटाँक ;

९—काली मिर्च १।४ छटाँक ;

१०—काला नमक १।४ छटाँक

११—हीरा हींग (जरा से घी में भून कर) १।४ छटाँक ;

१२—काला-जीरा १।४ छटाँक ;

सब चीजें ले कर कूट कर और महीन चलनी से छान कर रख लीजिए।

इस मसाले का उपयोग आप—

- आलू चिप्स
- छौंकी हुई मूंग
- तले चने (भिगो कर पहले)
- मटर
- उरद की दाल
- फलों की चाट
- कचौड़ियों में (सौंफ के साथ) करिये।

मीठी सोंठ बनाने में यदि आप उसके सारे मसाले जोड़ने का झंझट नहीं उठाना चाहती हैं तो नमक और गुड़ के साथ इसे प्रयोग में लायें। यह मसाला न केवल सुस्वाद ही है वरन पाचक भी है।

अस्तित्ववाद : पथ का नया दावेदार

(पृष्ठ ४३५ का शेषांश)

अस्मिता परे गति' का तात्पर्य उनके लिए इतना ही है कि मनुष्य किसी नियम के शिकंजे (चरम सत्यों के सांचे में) में कसा नहीं जा सकता, क्योंकि वह 'सतत विकास-शील' है या यों कहें 'सतत परिवर्तनशील' है। उनके अनुसार 'परे-गति' परिवर्त्तन की द्योतक है। यह उच्चतर स्थिति या विकास की भी द्योतक हो, यह निश्चित नहीं। पर कीर्कगार्द इस 'परे गति' को विकासोन्मुख गति मान कर आशावाद की स्थापना करता है।

तर्क की कसौटी पर कीर्कगार्द का आशावाद शायद एक भग्न रथचक्र ही सिद्ध हो पर कभी कभी भग्न रथ-चक्र भी काम आ जाता है। डॉ० धर्मवीर भारती की ये पंक्तियाँ टूटे पहिये के अन्दर निहित आस्था एवं उत्तर-दायित्व को भलीभाँति व्यक्त करती हैं जिनका बोध चक्र-व्यूह में फँसी प्रत्येक प्रबुद्धआत्मा को होता है :—

"मैं
रथ का टूटा पहिया हूँ
लेकिन मुझे फेंको मत
क्या जाने कब
इस दुस्सह चक्र व्यूह में
अक्षौहिणी सेनाओं को चुनौती देता हुआ
कोई दुस्साहसी अभिमन्यु आकर घिर जाय
और अपने पक्ष को असत्य जानते हुए भी
बड़े बड़े महारथी
अकेली निहत्थी आवाज को
अपने ब्रह्मास्त्रों से कुचल देना चाहें
तब मैं रथ का टूटा पहिया
उसके हाथों में ब्रह्मास्त्रों से लोहा ले सकता हूँ
मैं टूटा पहिया हूँ
मुझे फेंको मत
इतिहासों की सामूहिक गति
सहसा झूठी पड़ जाने पर
क्या जाने
सच्चाई टूटे पहिए का ही आश्रय ले।"

दायरे और सीमायें

श्री सुधाकर शर्मा

सुबह के अखबार पर पहली नजर पड़ते ही सुषमा का कलेजा धक से रह गया। एक हाथ से धकधकाते कलेजे को थामे, एक ही साँस में, नजर को ऊपर से नीचे की ओर तैराती हुई चली गई, और तभी यकायक एक जगह उसकी दृष्टि जड़ हो गई, बिलकुल, एकदम, हृदय में ऐसे लगा जैसे किसी ने खूब तेज और नुकीली हूल एक साथ घोंप दी हो। लगा कि अभी एक क्षण पहले का धड़-धड़ाता हुआ हृदय रुक जायेगा। आँखों के आगे बनते हुए गोले धीरे-धीरे इतने छोटे पड़ गये कि फिर कुछ देख सकना भी संभव न रहा, और तभी सुषमा ने एक अस्फुट आर्तनाद के साथ अपना सिर सामने रक्खी मेज के ऊपर दे मारा। क्षण भर में ही घर भर के लोग इकट्ठे हो गये और हावड़ामेल रेल-दुर्घटना का विवरण इतने मुखों से इतनी बार पढ़ा गया कि कहीं शक की कोई गुंजायश निकल आना असंभव सा ही लगने लगा। दुर्घटनाग्रस्त ट्रेन वही थी जिससे सुषमा के पति कलानाथ तिवारी ने पिछले दिन इलाहाबाद से कलकत्ता के लिये प्रस्थान किया था। फिर मरने वालों की सूची में स्पष्ट नाम और पता लिखा था—श्री के० एन० तिवारी एडवोकेट, इलाहाबाद। इसमें सन्देह की गुंजायश कहाँ थी। क्रन्दनध्वनि तीव्रतर हो उठी। तिवारी जी की वृद्धा माता के विलाप से आकृष्ट होकर पास-पड़ोस वाले भी इकट्ठे हो गये और उनमें से भी अधिकांश ने सारी स्थिति का विशद अध्ययन करके अपना निर्णय परिवार के विपक्ष में ही दिया। अन्त में परिवार के एकमात्र बचे हुए पुरुष सदस्य रमानाथ ने भी लोगों के बहुमत के सामने सिर झुका दिया और मान लिया कि अखबार में जिनका विवरण छपा है वह उसके बड़े भाई ही होंगे। क्रन्दन-ध्वनि तीव्रतम हो उठी।

× × ×

मुगलसराय, जहाँ से थोड़ी दूर पर ही यह दुर्घटना घटी थी, के स्टेशन मास्टर एवं अन्य स्थानीय अधिकारियों को समाचार की पुष्टि के लिये तार दिये जा चुके थे और मोहल्ले के एक समाजसेवी उत्साही नवयुवक सुबह से ही डाकखाने में अपने एक मुगलसराय स्थित सम्बन्धी को ट्रंककाल बुक किये बैठे थे। रमानाथ घरपर ही रहकर कभी भाभी को, कभी वृद्धा माता को ढाढ़स बँधाने का वृथा प्रयत्न कर रहे थे। इतने में ही मकान के अहाते में एक रिक्शा आकर रुका और उस पर से एक जर्जरकाय वृद्ध काँपते हुए उतरे। वे सुषमा की छोटी बहिन के ससुर थे जो पुराने कटरे में रहते थे। उन्हें देखकर स्त्रियों का रुदनवेग एक बार फिर फूट पड़ा। सारी बात सुनकर वृद्ध वहीं बरामदे की सीढ़ियों पर धम से बैठ गये मगर बैठते-बैठते जो सन्तोष की एक हल्की सी छाया उनके मुख पर आँखमिचौनी खेल गई, वह आसपास खड़े लोगों की आँखों से छिपी न रही। कुछ देर उसी तरह सिर झुकाये, आँख मीचे बैठे रहे, फिर नीचा मुख किये हुए ही भरे गले से बोले, 'कल बच्चू भी तो उसी गाड़ी से पटना को गया था—पता नहीं—', कहते-कहते उनका कण्ठ अवरुद्ध हो गया और आँखों की कोरों पर काफी देर से रुके हुए अश्रुकण धीरे-धीरे गालों पर बह चले।

'कौन कैलाश भैया', सबसे पहले रमानाथ ने ही बात पकड़ी। 'क्या उनका नाम भी अखबार में—' मगर इतना कहने के साथ बात के अनौचित्य का ध्यान कर जीभ दाँतों से काट ली। बात बदलने के लिये और कुछ कहना ही चाहता था कि वृद्ध व्यथित मुद्रा में सिर हिलाते हुए बोले, 'नाम है भैया, इसीलिये तो सीधा दौड़ा हुआ यहाँ चला आ रहा हूँ। वह भी तो के० एन० तिवारी लिखता था। विजिटिंग कार्ड पर जो पता रहता था—वही तो अखबार में—' गला एक बार फिर जवाब दे गया, और वृद्ध हिचकियाँ भरकर बच्चों की तरह फूट पड़े।

बात की भनक अन्दर कमरे में भी पहुँच गई थी। दुर्घटना के सम्बन्ध में नवीन सम्भावनाओं का मार्ग खुलते ही स्त्रियों का रोना भी हल्का हो गया था और रमानाथ

की माँ सुषमा को अपने पीछे किये हुए कमरे की चौखट से लगकर आ बैठी थीं। मन में एक नई आशा का संचार हो गया था और उस आशा की चमक आँखों में उसी प्रकार छिपाये नहीं छिप रही थी जैसे थोड़ी देर पहले वृद्ध के मुखपर निमेषमात्र की आई सन्तोषभावना। नामों के इस साम्य से वृद्ध को भी आँसू रोकने का बहाना मिल गया था और रमानाथ के घरवालों को भी गृहप्रमुख कलानाथ तिवारी की मृत्यु के अलावा और किसी दिशा में सोचने का अवसर मिल गया था।

× × ×

बाहर वृद्ध से मोहल्ले वालों के निरर्थक सवाल-जवाब चल रहे थे। मोहल्ले वाले प्रकट रूप से यह तो नहीं कहना चाह रहे थे कि दुर्घटनाग्रस्त श्री के० एन० तिवारी उन्हीं के पुत्र बच्चू बाबू ही होंगे पर अपने पड़ोसी की दिखावटी शुभचिन्तना में परोक्ष रूप में इंगित इसी ओर हो रहे थे।

'वह क्या अपने को कैलाशनाथ तिवारी लिखते थे,' एक जिज्ञासु ने पूछा।

वृद्ध ने सम्मति के भाव में सिर हिला दिया।

'क्या आपने उनका छपा हुआ कार्ड कभी देखा था। उस पर पूरा नाम लिखते थे या संक्षेप में केवल के० एन० तिवारी।'

वृद्ध ने फिर एकबार मूकभाव से सिर को ऊपर नीचे कर दिया। मगर जब उन्हें लोगों की जिज्ञासा केवल उनके सिर हिला देने मात्र से शान्त होती नहीं दीखी तो पीछे से इतना और जोड़ दिया, 'कार्ड पर के० एन० तिवारी ही छपा था।'

इस पर मोहल्लेवालों में फुसफुसाहट सी फिर शुरू हो गई। किसी ने कहा, 'हमारे कलानाथ बाबू तो हमेशा पूरा नाम ही लिखते थे। छपा हुआ कार्ड तो वह रखते ही नहीं थे, क्यों न भैया।'

यह भैया सम्बोधन रमानाथ के लिये था। उत्तर में रमानाथ ने एकबार अन्दर कमरे में भाभी और माता की ओर देखकर सिर हिलाते हुए कहा, 'मैंने तो आज तक उनके पास छपा हुआ कार्ड कभी देखा नहीं और न शायद उनके किसी सामान पर ही कहीं उनका नाम लिखा था, —क्यों न भाभी' अन्तिम शब्द भाभी में आशा का संचार करने के लिये एवं अपनी बात का उनसे अनुमोदन पाने के लिये, कहे गये थे।

अन्दर से माँ के उत्तर ने उनकी बात की पुष्टि की।

'वही तो हमने कहा,' कलानाथ बाबू के पड़ोस के एक और मित्र बोल उठे। 'इतने दिनों से हमारा उनका साथ है, हमने उन्हें कभी 'इनीशियल्स' से नाम लिखते नहीं देखा। कोर्ट के कागजों पर भी दस्तखत करते थे तो हमेशा पूरा।'

'क्यों बाबूजी, एक सज्जन ने वृद्ध से फिर प्रश्न किया, 'बच्चू बाबू के कार्ड पर के० एन० तिवारी, इलाहाबाद रहता था या एडवोकेट शब्द भी रहता था।'

इस प्रश्न की तह में जो मतलब छिपा था, उससे वृद्ध मर्माहत हो उठे। फिर एक घूंट सा पीकर तनिक तीखी आवाज में बोले, आप सब लोग कलानाथ के पड़ोसी होने के नाते यही तो चाहते हैं न कि कलानाथ जिन्दा हों। मैं भी यही चाहता हूँ। पर आप मेरे बेटे का बुरा चाहकर कलानाथ की हितचिन्तना क्यों कर रहे हैं, सिर्फ इसीलिये न कि आप मलाका के रहने वाले हैं और मैं और मेरा बेटा पुराने कटरे के—।'

'नहीं नहीं, बुरा किसी का नहीं होगा,' कहते हुए एक सज्जन अभी एक मिनट पहले आकर रुके हुए रिक्शे में से उतरकर एक प्रकार से जबर्दस्ती ही वृद्ध के गले लिपट गये। 'पंडितजी आप देखियेगा कि न हमारे कलानाथ और न कैलाशनाथ किसी का जरा बाल बाँका नहीं हुआ होगा। यह कोई और ही के० एन० तिवारी हैं या छापे की भूल है।'

वृद्ध ने अपनी छलछलाती हुई आँखों को हाथ से पोंछकर देखा कि उनके समधी सुषमा और नीलिमा के पिता, प्रतापगढ़ के पंडित पारसनाथ दुबे उनके सामने खड़े हैं।

समधी की बात से ज्यादा तसल्ली वृद्ध को समधी के इस अवसर पर आ जाने से हुई। जरा उत्साह से बोले, 'आप कब आये'।

'बस सीधा बस-स्टैन्ड से चला आ रहा हूँ। अखबार देखते ही प्रतापगढ़ से चल दिया था।' फिर अन्दर से रोने की आवाज, जो उनके आते ही पुनः आरम्भ हो गई थी, सुनकर और इधर उधर खड़े लोगों पर नजर डालकर बोले, 'मगर आप सब लोग यहाँ कैसे हैं अभीतक। मैं तो समझ रहा था, आप सब मुगलसराय की तरफ चले गये होंगे।'

'उधर की तो लाइन खराब है न। गाड़ियाँ रुकी हैं—'

'जो हो रेल ही तो खराब है, ट्रेनें ही तो रुकी हैं—र का रास्ता तो बन्द नहीं है।' दुबेजी ने बीच में से रमाकान्त की बात काट दी।

'तीन तार किये हुए हैं और एक आदमी 'ट्रंक लगाये खाने में बैठा है,' कहकर एक और सज्जन ने की गई गुजारी से दुबेजी को प्रभावित करना चाहा।

'अरे छोड़ो भाई तार और टेलीफोन को। ऐसे मौकों कहीं तार और फोन से काम चलता है। वह आना होता उसी तरफ से न आगया होता। जरूर तार और फोन भी कुछ खराबी है। और फिर जहाँ ६७ जानें गई हैं सैकड़ों घायल पड़े हैं वहाँ तारों और ट्रंककालों का ठिकाना होगा। बोलिये साढ़े ग्यारह बज गये और तिक,' कहते कहते दुबे जी कुछ झल्ला से उठे। वृद्ध हाथ पकड़कर उठाते हुए बोले, 'उठिये पंडितजी', बेटी सुषमा—रमानाथ जल्दी करो भाई। एक ली को मैं रास्ते में ही कहता आया था, दूसरी रास्ते से लेंगे—नीलिमा और उसकी सास को भी रास्ते से चलेंगे। सुषमा के बच्चे यहीं रहेंगे अपनी बुआ के ।'

× × ×

टैक्सी में ही, दोनों बहिनें जब मिलीं तो एक दूसरे चिपटकर फफक-फफक कर रो उठीं। मुँह से एक बोल न फूटा। कहतीं भी क्या बेचारी। दोनों को अपनी-नी पड़ी थी। आँख से आँख मिलाने की भी हिम्मत होती थी। कौन जाने मन का भाव आँखों की राह री पर प्रकट हो जाय। और मन का भाव क्या था? का कण-कण अपने-अपने पति के क्षोभ के लिये वान से दुआयें कर रहा था। मुँह से बीच बीच में, हे वान्—हे राम— अनजाने ही निकल पड़ता था और साथ हृदय की मूक भाषा में जुड़ा होता था 'वह से हों'......'वह जीवित हों।'.....इन्हीं ओं के साथ जुड़ा हुआ एक विचार आता था कि अच्छा तुम्हारे कलानाथ न हों, और तुम्हारे कैलाशनाथ हों, तो फिर यह अखबार में प्रकाशित नाम के० एन० वारी हैं कौन? सोचकर दोनों बहिनों में ऊपर से नीचे झुरझुरी सी दौड़ जाती थी।

सुषमा का एक मन कहता था कि न वह के० एन० तिवारी मेरे कलानाथ हों और न मेरी बहिन के पति कैलाशनाथ··मेरी छोटी बहिन, मेरी दुलारी, प्राणों से प्यारी बहिन क्या इतनी छोटी उम्र में ही··नहीं नहीं·· हेराम।

निर्मला का एक मन भी इसी प्रकार मनौतियाँ मनाता था, अक्षयवट पर घंटा चढ़ाता था, गरीबों को भोज बुलवाता था, अपने हाल में ही पाये हुए प्रियतम कैलाशनाथ और अपने स्नेही जीजा जी की कुशलक्षेम में मगर तभी बुद्धि कहती थी कि अखबार में तो साफ के० एन० तिवारी एडवोकेट इलाहाबाद, लिखा हुआ था। एक ही नाम पते के दो आदमी इलाहाबाद में निकल आये, यही कौन कम बड़ा संयोग है, तीसरा के० एन० तिवारी तो होना मुश्किल क्या असंभव सा ही है। तभी दोनों बहिनों का दूसरा मन बोल पड़ता कि वह के० एन० तिवारी कोई भी क्यों न हों —भले ही वह मेरे बहनोई ही हों, 'पर मेरे कलानाथ न हों,'—'मेरे कैलाशनाथ न हों।' सोचकर दोनों बहिनें एक दूसरे की ओर कनखियों से देखतीं, एक दूसरे का हाथ कस कर दबा लेतीं और फिर मानो अपनी विवशता पर एक दूसरे से चिपटकर फूट पड़तीं।

दूसरी टैक्सी में दोनों की सासें भी एक दूसरे से बिलकुल सटी हुई बैठी थीं, मगर उनके मन एकदम दो विपरीत दिशाओं में उड़ रहे थे; उनके हृदय दो नितान्त अपरिचित वाणियाँ बोल रहे थे।

रमानाथ अपने भविष्य के बारे में सोच रहे थे कि बड़े भाई की मृत्यु से उनकी पढ़ाई में क्या व्याघात पहुँचेगा और उन्हें उस दशा में क्या करना होगा। नीलिमा के श्वसुर को झपकी सी आ गई थी। केवल दुबे जी लगातार अपनी उसी रट की रचना लगाये हुए थे कि यह के० एन० तिवारी न कलानाथ हैं और न कैलाशनाथ। उनके हृदय और वाणी दोनों में साम्य था।

× × ×

मुगलसराय स्टेशन पर पहुंचकर ज्यादा छानबीन करने की आवश्यकता नहीं हुई। दुबेजी और रमानाथ के स्टेशन मास्टर के कमरे में घुसते ही दोनों साढ़ू मुस्कराते हुए ससुर के सामने आ खड़े हुए जैसे वहाँ पर उन्हीं की

प्रतीक्षा कर रहे हों। दुबेजी ने दोनों दामादों को एक साथ ही छाती में दबोचते हुए, उच्च स्वर से 'बाबा विश्वनाथ की जय' की गुहार की और दोनों को अगल बगल किये हुए स्टेशन से बाहर की ओर चल पड़े। चलते चलते ही दोनों दामादों की दुर्घटना के तुरन्त बाद टेलीफोन से घर कुशल समाचार न भेजने की लानत मलामत भी की। पर जब उन्हें कलानाथ ने बताया कि उन्होंने रात ही एक ट्रक वाले के हाथ एक चिट्ठी इलाहाबाद भिजवा दी थी और उसी के भरोसे वह निश्चिन्त बैठे कलकत्ते की दूसरी गाड़ी का इन्तजार कर रहे थे, तो दुबेजी का बनावटी क्रोध भी दूर हो गया।......दूर से ही दोनों बहिनों ने पिता को अपने पति देवताओं के साथ आते देखा, तो हर्ष के आँसुओं से आँखें पुर गईं, कण्ठ अवरुद्ध हो गया ; रोम-रोम ऐसे ललक उठा जैसे अब कोई कामना बाकी ही न रही हो। सुबह मिलने के बाद से पहली बार दोनों में एक दूसरे को आँखों में आँखें डालकर देखा मानो आपस में क्षमा की भीख माँग रही हों कि बहिन सुबह की नजरों की चोरी के लिये माफ करना,...तब बात ही ऐसी थी। वरना तू मेरी प्राणों से प्यारी छोटी बहिन है,......और तू मेरी प्राणों से प्यारी दीदी है—सुषमा दीदी।

× × ×

दूसरे दिन सुबह जब कलानाथ बाबू के यहाँ अखबार आया तो उस समय बधाई देने वाले पड़ोसियों और सम्बन्धियों का ताँता लगा हुआ था। दोनों साढ़ू हँस-हँस कर सबका स्वागत कर रहे थे और दोनों बहिनें अन्दर पूजा-वन्दना की सामग्री जुटा रही थीं। उस दिन अखबार में रेल-दुर्घटना के कुछ मृत व्यक्तियों के फोटो भी निकले थे। श्री के० एन० तिवारी का फोटो भी था और संक्षिप्त परिचय भी। वे पटना हाईकोर्ट के नवयुवक किन्तु यशः-प्राप्त वकील थे। संभवतः इलाहाबाद के खरीदे हुए टिकट के कारण ही अखबार में उनका पता इलाहाबाद का छप गया था। सुन्दर आकर्षक व्यक्ति था और लगभग

दर्दीला कंठ

श्री रसिक बिहारी 'मंजुल'

एक दिन संगीत से स्वर ने कहा
"क्यों तुम्हारा कण्ठ दर्दीला बहुत है?"

(१)

रात शबनम से नहाती है, मगर
चाँदनी की प्यास कितनी दूर है!
सूर्य्य बरसाये सदा अंगार, पर
वह उषा की माँग का सिंदूर है।
दर्द मन के मौन की है बाँसुरी
क्योंकि तुमको आ गया गाना बहुत है।

(२)

डाल पर बैठी पुकारे कोकिला
प्यार की तड़पन लिये एकांत में,
यह विकलता ही प्रणय का प्राण है
हो गया हूँ इसलिये उद्भ्रांत मैं!
किन्तु मेरी हूक उसकी कूक है
क्योंकि उसका गीत बौराना बहुत है।

(३)

प्रेम की कोमल-कली के रूप को
जो खिलाती, वह भ्रमर की तान है।
कह नहीं पाता हृदय जो बात वह
हाय! कह देती कभी मुस्कान है।
मैं तुम्हारी चाह का शृंगार हूँ
क्योंकि मेरा दर्द बेगाना बहुत है।

तीस वर्ष की अवस्था थी। फोटो देखकर दोनों बहिनों ने एक लम्बी साँस ली और फिर अखबार अलग रखकर पूजा की व्यवस्था में जुट गईं। वह के० एन० तिवारी उनके अपने दायरों और सीमाओं से बहुत दूर का कोई आदमी था, पता नहीं कौन कहाँ का, किन भाग्यहीनों का पुत्र और जाने किस अभागिनी का जीवन-सर्वस्व।

नासमझ की समझ

श्री ब्रह्मदेव

अरे तुम, रानी।" कहते हुए सविता ने अपनी आँखों पर से रानीबाला के दोनों हाथों को हटा। सविता सोफे पर लेटी थी, सामने पुस्तक खुली थी। उठकर बैठ गई।

रानीबाला साथ बैठते हुए बोली, "महारानीजी, ये पुस्तक खोलकर लेटीं बहाना बनाने को कि जानें पढ़ाई हो रही है, पर ख्यालों में डूबी हैं किसी ओठों के जो मुस्काते समय एक ओर से जरा ऊपर उठ जाते हैं।"

"चल हट, पढ़ तो रही थी", सविता ने चेहरा बनाते कहा। "जी हाँ, इतनी मस्ती में ही तो पढ़ाई होती है, दरवाजे पर खड़ी आवाजें देती रही, घंटी भी बजाई महारानी जी की निद्रा ही नहीं टूटी। अंदर आई देखा बिलकुल सामने बैठी हुई पर सोफे पर तो देह है, दिल तो गायब था किसी की सुडौल बाहों में", कहते रानीबाला हँस पड़ी।

सविता ने भी साथ दिया।

रानी ने पूछा, "अच्छा, सच सच बता उसके ओठों की याद सता रही थी, या माथे के सलवटों की, जो गंभीरता से बातें करते समय उसके माथे पर तिलक सा खिच जाता है?"

सविता ने पूछा, "तुझे कैसे पता? तू ने कब उसे देखा?"

रानीबाला हँसी में ही बोली, "मुझे क्यों नहीं पता, न पूछो तो बेहतर रहे। तुमने मुझे क्या नहीं बताया रही मिलने की बात, तू मिलाती ही कहाँ है किशोर से मुझे—तुझे तो खतरा है न कि मैं कहीं लेकर अपने साथ ही न चल दूँ।"

"अरे नहीं री, तुझ से क्या खतरा। तू ही तो मेरी ऐसी सहेली है जिसे मैं मन की सारी बातें बता देती हूँ।" फिर कुछ रुक कर बोली, "अच्छा सुन, तू भी हमारे साथ चलना, इस रविवार को पिक्चर देखने का प्रोग्राम है किशोर के साथ, उनसे मिल भी लेना और मेरा साथ भी हो जाएगा।"

रानी ने चुटकी ली "तो यूँ कहो न कि घर से जाने को साथ चाहिए," और इस प्रकार उस रविवार को रानीबाला किशोर से मिली।

रानीबाला किशोर के डीलडौल, उसकी मुस्कराहट, उसकी हर आदत, हर रुचि एवं उसके तर्क करने के ढंग सभी से तो परिचित है। सविता एक एक बात उसे बताती जो है। रानी को लगा मानों किशोर से उसकी भेंटें पहले भी कहीं हो चुकी हैं, वह इस युवक को अच्छी प्रकार जानती है और मन ही मन शायद उससे प्रेम भी करती है।

पर पुनी सुनाई बातों के आधार पर कोई किसी से प्यार कर बैठता है, ऐसा तो मनोविज्ञान भी नहीं कहता। उधर पर्दे पर चित्र आते रहे, जाते रहे, साथ की सीटों पर सविता और किशोर की फुसफुसाहट, दबी हँसी चलती रही और रानीबाला अपने ही विचारों में खोई रही।

वह सोचती रही, "किशोर की ओर वह क्यों खिंची चली जा रही है। यह सच है कि अगर किसी के विषय में अच्छी अच्छी बातें कोई हमेशा सुनता रहे तो उसके प्रति मन में आकर्षण उत्पन्न हो जाता है, बिना जाने भी वह मन को भाने लगता है, पर एक दम उसका हो जाना तो मूर्खता होगी—और तो और अपनी सहेली सविता के साथ धोखा होगा।"

पर उस दिन के पश्चात् रानी भी किशोर से मिलने के बहाने ढूंढने लगी, घर पर चाय पर सविता को बुलाया तो किशोर को भी बुला लिया। हालांकि सविता को उसने यही बताया कि किशोर को बुलाने का कारण सविता ही है। किशोर ने उस दिन चुटकी लेते हुए कहा, "तुम तो सचमुच ही किसी की रानी लगती हो" तो रानीबाला अपनी खुशी सँभाल न पाई।

किशोर ने भी रानीबाला के इस झुकाव को लक्ष्य किया और सविता का समाचार जानने के बहाने वह रानीबाला से मिलने लगा। रानीबाला में परिवर्तन आ गया, वह चुन चुन कर वह साड़ियाँ पहनती जो उसे पता था किशोर को अच्छी लगती हैं। वह अपने बाल सूखे

रखने लगी क्योंकि वह जानती थी कि तेल लगे बालों को किशोर सीखचों की संज्ञा देता है। वह बालों को ढीला बाँधती जिससे उसके चलने फिरने पर झूलती बेणी में इधर उधर हिलते बाल किशोर को अच्छे लगें।

उसने जोर से ठहाका मार कर हँसने की अपनी आदत पर भी काबू पा लिया क्योंकि सविता से उसे पता लग चुका था कि लड़कियों का ठहाका मार कर हँसना किशोर को बुरा लगता है। किशोर ने एक दिन कहा भी, "तुम्हारी ठहाकामार हँसी को सुनने को तो तरस गया हूँ।"

रानीबाला ने उत्तर दिया, "लड़कियों को उस प्रकार हँसना शोभा नहीं देता।" किशोर ने उत्तर दिया था, "वह बात सब लड़कियों पर लागू तो नहीं होती विशेष रूप से तुम पर क्योंकि ठहाका मार कर हँसने पर तुम्हारे पूरे खुले ओंठ बड़े भले लगते हैं, ऊपर उठी हुई आँखों में जो चमक होती है उसमें न जाने कितने तारों की झिलमिलाहट होती है।"

इस प्रकार रानीबाला और किशोर पास आते गए। पहले जब भी दोनों मिलते, दोनों की अधिकांश बातें सविता के विषय में होतीं, पर धीरे-धीरे वह कम होती गईं, यहाँ तक कि अब दोनों मिलते तो सविता की याद दोनों में से किसी को न आती।

एक दिन जब कालेज पहुँची तो चारों ओर लड़कियाँ खड़ी खुसर-फुसर कर रही थीं। रानीबाला लपकी लपकी क्लास में गई और सविता को लगभग घसीटती सी अलग ले जाने लगी। सविता ने पूछा, "अरे रे, यह क्या करती है? बात क्या है?"

रानी ने पूछा, "बात क्या है, मुझे भी तो बताओ।"

सविता ने हाथ छुड़ाते हुए कहा, "तो इसके लिए अलग खींच ले जाने का क्या मतलब, यह तो सारा कालेज ही जानता है।"

रानी ने अधीरता से पूछा, "क्या हुआ?"

सविता ने बताया, "होना क्या था, वह जो बूढ़ी खूसट प्रोफेसर है न रोमेला, उनका विवाह कल संतोष बाबू के साथ हो गया है।"

रानीबाला ने आश्चर्य से कहा, "क्या कहा रोमेला से? अरे, संतोष बाबू तो हमारी प्रभा दीदी के साथ घूमते रहते थे।"

कई सहेलियाँ एक साथ बोल पड़ी थीं। मतलब यह कि संतोष बाबू प्रेम करते थे प्रभा दीदी के साथ, और मिलते थे रोमेला के घर। रोमेला बूढ़ी तो नहीं, पर हाँ प्रभा से अवश्य बड़ी थी और बड़ी बहिन सा स्नेह करती थी। एक ने कहा, "यह तो प्रभा दीदी को सरासर धोखा देने की बात हुई। पहले तो स्नेह जता कर उन दोनों को अपने घर बुलाया और फिर खुद ही डोरे डालने लग गई।"

दूसरी बोली, "रोमेला को तो डूब मरना चाहिए।"

सविता बोली, "बेचारी प्रभा दीदी, उनका तो बुरा हाल होगा। बेचारी कैसे पढ़ पाएगी और इसी कालेज में जहाँ रोमेला और संतोष बाबू रहेंगे वह अवश्य ही छोड़ जाएँगी यह कालेज।"

किसी अन्य ने कहा, "लेकिन वार्षिक परीक्षाएँ पास हैं उसके बाद ही जा पाएँगी।"

इस प्रकार उस दिन कालेज में सारे दिन पढ़ाई नहीं हुई, सब प्रोफेसर एवं लेक्चरर पार्टियाँ खाते खिलाते रहे और बधाइयों का आदान प्रदान चलता रहा। रोमेला की निंदा का बाजार गरम रहा और प्रभा दीदी के साथ सहानुभूति की सरिताएँ बहती रहीं।

उसके पश्चात् दो दिन लगातार जब रानीबाला कालेज नहीं आई तो सविता उसके घर पूछने गई। रानीबाला की माँ से पता लगा कि रानी कालेज से लौटी तो अनमनी थी और दूसरे दिन जिद पकड़ बैठी कि वह यहाँ नहीं पढ़ेगी। उसी दिन तैयार होकर वह दिल्ली अपने मामा के पास चली गई है कि पढ़ाई वहीं करेगी।"

सविता आश्चर्य चकित रह गई, "लेकिन परीक्षा तो दे देती। और मुझे बताया तक नहीं?"

माँ बोली, "वह कह रही थी कि परीक्षा वहीं से दे लेगी। दूसरे दिन प्रातः उठी तो जैसे निर्णय कर के ही उठी थी कि दिल्ली जाना है। मैं भला क्या कहती, मैंने काफी पूछा भी कि कालेज में किसी ने छेड़छाड़ कर दी है या क्या हुआ। तो वह कुछ कह रही थी कि कालेज की किसी अध्यापिका ने अपनी सहेली के साथ धोखा किया है—उसने उसकी आँखें खोल दी हैं। मेरी समझ में तो कुछ नहीं आया।"

सविता ने लौटते हुए कहा "माँ जी, मुझे भी कुछ समझ में नहीं आया, न जाने क्यों चली गई!" पर सविता कुछ कुछ समझ कर भी न समझने की कोशिश कर रही थी।

शिक्षक शतक—महाकवि पंडित शिवरत्न मिश्र 'सिरस', प्रकाशक, श्री राघवेन्द्र शुक्ल, बछरावाँ जिला रायबरेली), मूल्य, २५ पैसे।

यह पद्यमय छोटी सी (३२ पृष्ठों की) पुस्तिका में शिक्षकों और अध्यापकों के लिए उपदेश हैं। 'सिरस' जी प्राचीन विचारों और आदर्शों के भक्त हैं और उनकी कामना है कि इस देश के शिक्षक और छात्र प्राचीन भारतीय गुरु-शिष्य-परम्परा का पालन करें। इसीलिए वे लड़के-लड़कियों की सहशिक्षा, विद्यार्थी यूनियनों आदि के पक्ष में नहीं हैं। उनके उपदेश 'माडर्न' लोगों को रुचिकर न हों, किंतु देश की विशाल जनता अवश्य उनका स्वागत करेगी। वे शिक्षक से कहते हैं:—

शिक्षक पद सौभाग्य रूप है, गुरु-वर पदवी पाये,
बहु बालक के पिता बने हो, शिक्षा पथ पर लाये।
कुल कुलीन, काया सुंदर है, शिक्षा बिना न भाती,
गई न रंदी शीशम लकड़ी, चमक न उसमें आती।

इसी प्रकार विद्यार्थियों को सरल भाषा में उनके कर्तव्य कर्मों का ज्ञान कराया गया है। पुस्तक स्कूलों की छोटी कक्षाओं, विशेषकर देशी स्कूलों के लिए बहुत उपयोगी है।

कूटकाव्य—डा० रामधन शर्मा, शास्त्री। प्रकाशक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २६ ए०, चंद्रलोक, जवाहरनगर, दिल्ली। सजिल्द, बड़ा आकार। मूल्य साढ़े बारह रुपये।

डा० रामधन शर्मा हिंदी के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् हैं। वे दिल्ली वि० वि० में हिन्दी और संस्कृत के प्राध्यापक थे और बाद में केंद्रीय हिंदी निदेशालय के उपनिदेशक के पद पर कई वर्ष रहे। वास्तव में प्रस्तुत ग्रंथ उनके उस शोधनिबन्ध का अनुवाद है जो उन्होंने पंजाब वि० वि० की पी-एच० डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत किया था। वह अंग्रेजी में था। उसका शीर्षक था—स्टडीज इन कूट पोएट्री विद स्पैशल रेफरैंस टु सूरदासेज़ कूट लिरिक्स। हिंदी में शोधनिबंधों का स्तर एक-सा नहीं है। कुछ बहुत अच्छे होते हैं, कुछ सामान्य और कुछ ऐसे होते हैं कि उनके विषय में कुछ न कहना ही अच्छा है। प्रस्तुत शोध निबंध की गणना उत्कृष्ट शोध निबंधों में होनी चाहिए। यह दो भागों में विभक्त है। पहिले में कूट काव्य का उद्भव और विकास दिया गया है। इसमें कूट काव्य का शास्त्रीय विवेचन और विकास दिया गया है। उसके भेद और उपभेद बतलाये गये हैं। संस्कृत साहित्य में वैदिक काल से लेकर श्रीहर्ष तक के काव्य में कूट पदों का वर्णन किया गया है। तथा हिन्दी काव्य में रहस्यात्मक उक्तियों और उलटबांसियों से लेकर चंद, विद्यापति और सूरदास के कूट पदों का परिचय दिया गया है। दूसरे भाग में सूर के इष्ट कूट पदों का विवेचन किया गया है। डा० शर्मा ने कूट पदों का चयन बड़ी उदारता से किया है। उदाहरण के लिए

"माधौ नेकु हटकौ गाइ।
भ्रमत निसि वासर अपथ पथ अगह गही न जाइ।
छुधित अति, न अघात कबहूँ निगम द्रुम-दल खाइ।
अष्ट दश घट नीर अंचवत तृषा तऊ न बुझाइ"

पद सामान्य रूपक है जो तृष्णा को गऊ के रूप में प्रस्तुत करता है। हमारी सम्मति में यह वास्तविक कूट पद नहीं है। सूर ने सामान्य पदों में बीच-बीच में दधिसुतपति (उदधिसुता लक्ष्मी के पति अर्थात् विष्णु), देवगुरु (वृहस्पति), अवनिसुत (मंगल), हंससुतरिपुसुत (हंस—सूर्य का पुत्र—कर्ण, उसके शत्रु अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु का पुत्र—परीक्षित) आदि वाक्य खंडों और शब्दों के प्रयोग किये हैं, किंतु केवल ऐसे दुरूह शब्दों के प्रयोग से कोई पद 'कूट' नहीं माना जा सकता। वास्तव में सूर के दृष्टकूट के पद ही वास्तविक कूट हैं। विद्वान् लेखक ने कितने ही कूट पदों की सुंदर और पाण्डित्यपूर्ण व्याख्या की है। अंत में सूर के कुछ कूट पदों का संग्रह भी कर दिया गया है। पुस्तक ज्ञानवर्द्धक और विचारोत्तेजक है। प्रकारान्तर से सूरदास के बहुत से पदों के समझने में, तथा उनकी पाण्डित्यपूर्ण और विशिष्ट शैली को समझने में इस ग्रंथ से बड़ी सहायता मिल सकती है। यह ग्रंथ हिंदी साहित्य के एक अंग के अभाव की पूर्ति करता है। इसकी शैली मनोरंजक है और—कितने ही शोधनिबंधों की भाँति—इसमें शब्दाडंबर का घटाटोप नहीं है जिसके कारण बहुत से शोध ग्रंथों को समझना सामान्य पाठकों के लिए दुरूह हो जाता है। इस सुन्दर ग्रंथ के लिए लेखक और प्रकाशक बधाई के पात्र हैं।

तेलुगु की प्रतिनिधि कहानियाँ-पृ० १६३, मूल्य ३ रु०
तमिल साहित्य-पृ० २०४, मूल्य ३ रु०।

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा ने अपने कार्य का विस्तार दिल्ली में भी किया है। दिल्ली निवासी अहिंदी-भाषी बंधुओं को हिंदी सिखाने के साथ-साथ उसने दक्षिण भारतीय भाषाओं की शिक्षा, उनके साहित्य पर हिंदी में व्याख्यान और हिंदी में प्रकाशन की भी व्यवस्था की है। उपर्युक्त दोनों पुस्तकें इसी क्रम में प्रकाशित हुई हैं। तेलुगु की प्रतिनिधि कहानियों में ऐतिहासिक क्रम से तेलुगु के १२ प्रसिद्ध कथाकारों की रचनाएँ संकलित की गयी हैं। प्रारंभ में तेलुगु कहानी और कहानीकारों पर श्री बालशौरि रेड्डी की संक्षिप्त भूमिका भी है। कहानियों का अनुवाद भी तेलुगु भाषी भाइयों ने ही किया है और श्री भैरवप्रसाद गुप्त ने भाषा की मँजाई की है। इससे अनुवाद सुंदर बन पड़ा है। कहानियाँ रोचक हैं और तेलुगु साहित्य की प्रवृत्तियों की परिचायक भी। ऐसा लगता है कि तेलुगु को नयी कहानियों की व्याधि अभी तक नहीं लगी, अथवा हो सकता है कि संग्रह में ऐसी कहानियों को छोड़ दिया गया हो। आशा है कि इस संकलन के बाद तेलुगु कहानियों का और बड़ा संकलन हिंदी में निकलेगा। यदि सभा दक्षिण की चारों भाषाओं का वार्षिक संकलन निकाले तो और अच्छी बात होगी। तमिल साहित्य में तमिल साहित्य पर अधिकारी तमिल विद्वानों के हिंदी

भाषणों का संग्रह है। इनमें पूरे तमिल साहित्य का परिचय मिल जाता है। भाषणों का स्तर ऊँचा है और इनमें साहित्यिक प्रवृत्तियों का विश्लेषण, और साहित्यकारों का मूल्यांकन करने के साथ-साथ उनका परिचय देने का भी प्रयत्न किया गया है। उदाहरणों के कारण इनमें रोचकता बनी रहती है। दोनों पुस्तकें संग्रहणीय हैं। इनकी छपाई शुद्ध और सुन्दर है, केवल एक ही बात खटकती है, रोमन या अंगरेजी अंकों का प्रयोग।

नेशनल बुक ट्रस्ट की दो पुस्तकें

अकबर—मूल लेखक, लॉरेन्स बिन्यन। बिना जिल्द, पृष्ठ संख्या १०९, मझोला आकार, आकर्षक आवरण, मूल्य १ रुपया ७५ पैसे।

जूड़ी और लक्ष्मी—मूल लेखक, नाओमी मिचिसन। बिना जिल्द, पृष्ठ संख्या १३९, छोटा आकार। मूल्य, १ रुपया ५० पैसे।

'नेशनल बुक ट्रस्ट' भारत सरकार ने भारतीय भाषाओं (और अंगरेजी) में अच्छी पुस्तकें प्रकाशित करने के लिए स्थापित किया है। इस पर सरकार प्रचुर धनराशि व्यय करती है। इसे स्थापित हुए कई वर्ष हो गये, किंतु जहाँ तक हिंदी का सम्बध है, इसने इस भाषा में कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया। कुछ दिन पहिले इसका एक हिंदी प्रकाशन (अनुवाद) हमारे पास आया था, किन्तु हमने जान-बूझकर उसकी आलोचना नहीं की। अब ये दो अनुवाद हमारे पास आये हैं। हम समझते हैं कि इन पर हमें अपनी सम्मति देनी चाहिए।

लारेंस बिन्यन की अकबर की जीवनी प्रसिद्ध पुस्तक है। बिन्यन ने उसमें अकबर का बड़ा सहानुभूतिपूर्ण और जीता-जागता चित्रण किया है। उसने अकबर के जटिल चरित्र और प्रयोजनों को जिस गहराई से समझा और जिस स्पष्टता से उन्हें अंकित किया है, वह बेजोड़ है। पुस्तक बड़ी मनोरंजक शैली में लिखी गयी है। नेशनल बुक ट्रस्ट का इसके हिन्दी अनुवाद का प्रकाशन श्लाघनीय कार्य है।

अनुवाद का कार्य अत्यन्त कठिन है, फिर जब वह अनुवाद बिन्यन ऐसे लेखक की कृति का हो जिसके गद्य में काव्य सुलभ शब्दावली और प्रवाह हो। वैसे वह बड़ी सरल भाषा लिखता है। यदि हम अनुवाद को पढ़ जायं तो उसमें भी प्रवाह है तथा भाषा भी सरल है। किंतु जिसने बिन्यन की मूल पुस्तक पढ़ी है, उसे कहीं-कहीं अनुवाद खटकेगा। उदाहरण के लिए यह अंश देखिए—

In vain did Abul-Fazl plead that Akbar, who loved to have foreigners at his court, liked the Fathers above all other foreigners; in vain did he pound to the extraordinary reverence with which he had treated their Bible, far surpassing the respect he pays to a Koran presented to him on the same day', though it was fair more richly bound.

अब इसका अनुवाद देखिए—

"अबुलफजल ने लाख समझाने की कोशिश की कि सारे विदेशियों में अकबर को आप लोग ही सबसे बढ़कर प्रिय हैं, अकबर को अपने दरबार में विदेशियों का रहना अच्छा लगता है; बाइबिल के लिये उसके अपने मन में अपार श्रद्धा है, वह उसकी बेहद इज्जत करता है। लेकिन अबुलफजल का यह तीर भी निशाने पर नहीं लगा। उस दिन एक्वाविका की जितनी अभ्यर्थना की गयी उसमें सबसे बढ़-चढ़कर थी कुरान की भेंट, जिसकी जिल्दबंदी बहुत ही खूबसूरत थी और शानदार ढंग से की गयी थी।"

पाठकगण स्वयं देख सकते हैं कि मूल का कितना भाव अनुवाद में आ सका है। मूल में बाइबिल और कुरान, एक ही दिन, अकबर को भेंट की गयी हैं। अनुवाद में कुरान एक्वाविका को भेंट कर दिया गया है। अनुवाद की बारीकियों पर विचार करना व्यर्थ है।

या यह वाक्य देखिए

Two months later he was murdered in a Hindu mob (true, their temples had been destroyed by the priests, and they had some cause to be enraged) and attained the mortyrdom he had so long desired.

"यहाँ दो महीने के बाद एक हिन्दू भीड़ के हाथों उसकी हत्या हो गयी (कुछ पादरियों ने हिन्दुओं के मंदिर नष्ट-भ्रष्ट कर दिये थे, इसलिए उन्हें भड़कने को पर्याप्त कारण थे।), और इस पुस्तक जैसी शहादत की चाह उसके मन में थी, वही उसे मिली।"

'डिस्ट्रायड' के अर्थ नष्ट-भ्रष्ट नहीं हैं। हिन्दी में 'नष्ट-भ्रष्ट' और 'नष्ट' के अर्थों में अन्तर है।

एक उदाहरण और लीजिए—

The external magnificence might have some touches of the barbaric; but then what barbarities migled with the refinements of European courts? What dirt was disguised in the perfumes? Refinements were here of every sort : not only luxurious appointments and the gratification of the senses, but a love of letters and the arts.

अब अनुवाद देखिए—

"बाहरी वैभव में बर्बरता के तत्व भले ही हों, वैसे तो योरोपीय दरबारों की शालीनता में भी बर्बरता मिली हुई है। धूल थी, पर इत्र की महक ने उसे दबा भी रखा था। शालीनता भी सभी तरह की थी। इंद्रियों को परितृप्त करनेवाली विलास लीलाओं की ही नहीं, बल्कि कला और संस्कृति की भी।"

पहिले वाक्य के अंतिम भाग का सारा भाव गुम हो गया है। दूसरे वाक्य का अनुवाद इस तरह किया गया है कि पता ही नहीं लगता कि वह योरोपीय दरबारों

संबंध में हैं या अकबर के दरबार के संबंध में। और बाद में उसका जोर तो नष्ट ही हो गया है। refinement का अनुवाद 'शालीनता' किया गया है। मंडल के कोश के अनुसार 'शालीनता' के अर्थ हैं—नम्रता, लज्जा" यहाँ refinement से तात्पर्य है सदाचार, शिष्टता, सभ्यता, सुसंस्कृत आचरण, भद्रता, शासत।" अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है, किंतु letters and the arts के लिए "कला और संस्कृति" अनुवाद करना बड़ा विचित्र है।

इसी प्रकार हिलाल के लिए 'हलाल', या "शहंशाह भी धर्म परिवर्तन नहीं करेगा" आदि प्रयोग चिन्त्य हैं। अंत में एक और उदाहरण देकर इस संक्षिप्त आलोचना को समाप्त करते हैं। मूल का वाक्य है:—

इसका अनुवाद किया गया है "सोंसरेट ने यीशू की यातना (Passion of Christ) का एक पूरा विवरण तैयार करके शहंशाह को दिया।" Passion of Christ के अर्थ हैं—

(a) the agony and sufferings of Jesus during the Crucifixion or during the period following the Last Supper; (Webster) अनुवादक ने इसका अर्थ ही नहीं समझा।

नेशनल बुक ट्रस्ट एक सरकारी संस्था है। उस पर सरकार के लाखों रुपये व्यय होते हैं। यह उसके हिन्दी प्रकाशन का स्तर है। हमें इस संस्था से बड़ी-बड़ी आशाएं थीं, किन्तु उसके इस प्रकाशन को देखकर बड़ी निराशा हुई। प्रश्न उठता है कि सरकार और ट्रस्ट के अधिकारियों की सद्भावना और शुद्ध प्रयोजन के रहते भी उसके हिंदी प्रकाशनों का स्तर ऐसा क्यों है? हम ट्रस्ट की कार्यविधि से अपरिचित हैं, किंतु यदि अँगरेजी कहावत 'पेड़ को उसके फलों से पहिचाना जाता है', ठीक है तो अवश्य ही ट्रस्टरूपी पेड़ में कहीं कुछ ऐसे कीड़े लगे हैं या उसकी कार्यप्रणाली ऐसी दूषित है कि वह अपना स्तर उठाने में असमर्थ है। हम आशा करते हैं कि ट्रस्ट गंभीरतापूर्वक इस पर विचार करेगा, और अपने प्रकाशनों की, प्रकाशन से पहिले, अधिकारी और निर्भीक समालोचकों से आलोचना करने के बाद ही हिन्दी की पुस्तकें प्रकाशित करेगा।

दूसरी पुस्तक 'जूडी और लक्ष्मी' भी एक अनूदित पुस्तक है। यह एक छोटा सा उपन्यास है जिसमें एक अंगरेज डाक्टर सपरिवार आकर कुछ दिनों मदरास में रहता है। उसकी लड़की जूडी की एक हिन्दू लड़की से मित्रता हो जाती है। अंगरेजों की दृष्टि में भारत कैसा लगता है—इस बात का कुछ आभास इस उपन्यास से लग जाता है। दक्षिण के एक वर्ग में उत्तरी भारतवासियों के प्रति जो दुर्भावना बतलायी जाती है, वह भी इसमें स्पष्ट कर दी गयी है। लक्ष्मी कहती है—"ये लोग (उत्तर प्रान्त के लोग) हैं जो हमें हेय समझते हैं और देहली से हम पर हुकूमत करने का प्रयत्न करते हैं। पर हम इनकी एक न चलने देंगे। तुम अँगरेज जब शासन करते थे तब तो बुरा था ही। बुरा क्या बहुत बुरा था पर ये लोग भी कुछ ऐसा ख्याल रखते होंगे तो उन्हें भी सबक मिलेगा। कहते हैं हिन्दी सीखना अनिवार्य है! छी:! ये लोग तुम लोगों से भी बहुत बुरे हैं!" मदरास की ब्राह्मण-विरोधी भावना की भी चर्चा है। हम नहीं कह सकते कि नेशनल बुक ट्रस्ट ऐसी संस्था ने इसे अनुवाद के लिए क्यों चुना। उपन्यास साधारण अच्छा है, किंतु यह निर्विवाद नहीं है कि वह इतना महत्वपूर्ण है कि उसका हिन्दी में अनुवाद कराया जाय। हिन्दीभाषी जनता में इससे दक्षिण भारत के सम्बन्ध में भ्रम हो सकता है। हमने मूल पुस्तक नहीं देखी। इसलिए हम यह नहीं कह सकते कि अनुवाद ठीक है या नहीं। किंतु इसमें विराम चिह्नों का उपयोग कहीं-कहीं बड़े गलत ढंग से किया गया है। यथा, "दिन की अपेक्षा रात का किराया कुछ कम बैठता है। और बैठने की सीटें भी काफी आरामदेह होती हैं।" 'पर माँ यह हिन्दुस्तान है' जूडी ने विरोध किया। पहाड़ पर भी मोज़े पहनने की आवश्यकता नहीं हुई।" "उसकी काली साड़ी भीगी हुई थी और आँखें ढंकी थीं, बचारी डूब गई होगी, उसके रिश्तेदारों को ढूँढ़ने का प्रयास जारी है'—उसकी माँ बोली। कहीं-कहीं भाषा के दोष भी दिखलायी पड़ते हैं। यथा "रात के अन्धकार में चन्द घंटों में बाढ़युक्त नदी फरफराती उनके घर, मुर्गीखाने, पालतू भेड़ बकरियों, मछली पकड़ने के जाल...सभी समेट कर बहा ले गई।' हिन्दी में नदी 'फरफराती' नहीं है। कपड़ों का रंग कहीं 'मलाई का रंग' और कहीं 'मक्खन का रंग' बतलाया गया है। शायद मूल में 'क्रीम कलर' शब्द है। यदि हमारा अनुमान सही है तो अनुवाद गलत है क्योंकि अंगरेजी में 'क्रीम कलर' बहुत हल्का बादामी या पीला होता है। 'वे लोग स्कूल की इमारत में आसरा ले सकेंगे।"—इसमें 'आसरा' का जो प्रयोग किया गया है, वह हिन्दी में नहीं होता। इसी प्रकार "योजना पत्र और फाइलें बुलवाई' हिन्दी का प्रयोग नहीं है। पुस्तक में अँगरेजी शब्दों का प्रयोग काफी है। कथावस्तु को देखते हुए शायद यह अनिवार्य था, किंतु जब 'साबुन' के लिए भी 'सोप' का प्रयोग किया जाय तो कुछ अटपटा मालूम होता है।

वैसे अनुवाद में प्रवाह है और अनुवादक ने मुहावरेदार भाषा का प्रयोग करने का प्रयत्न किया है। हमने उपर्युक्त त्रुटियाँ (जो केवल नमूने के रूप में हैं) इस उद्देश्य से दी हैं कि नेशनल बुक ट्रस्ट अपनी पुस्तकों को ठीक तरह से सम्पादित करके ही प्रकाशित करे। हम उससे अपेक्षा करते हैं कि जिस पुस्तक पर उसकी मुहर हो, वह यथासंभव निर्दोष हो।

ब्रज-माधुरी

शरद—

जोतिन के जूहनि, दुरासद दुरूहनि,
प्रकास के समूहनि उजासनि के आकरनि।
कटक अटूटनि महारजत कूटनि,
मुकुत-मनि जूटनि समेटि रतनाकरनि।
छूटि रही जोन्ह जग लूटि दुति 'देव'
कमलाकरनि जूटि कूटि दीपति दिवाकरनि।
नभ सुधासिंधु गोद पूरन प्रमोद सीस,
समुद बिनोद चहूँ कोद कुमुदाकरनि।
फटिक-सिलान सों सुधारचौ सुधामंदिर,
उदधि दधि कैसो उफनाय उमगै अमन्द।
बाहर तें भीतर लौं भीति न दिखाई देत,
छीर के से फेन फैली चाँदनी फरसबंद।
तारा सी तरुनि तामें 'देव' जगमग होत,
मोतिन की ज्योति मिल्यौ मल्लिका कौ मकरन्द।
आरसी से अम्बर में आभा-सी उजारी लसी,
प्यारी राधिका कौ प्रतिबिम्ब सौ लगत चन्द!

सम्हाल कर रखो—

लेहु लली! उठि, लाई हौं लाल कों,
लोक की लाजहुँ सों लरि राखौ!
फेरि इन्हें सपनेहु न पैयत,
लै अपने उर में धरि राखौ!
'देव' लला अबला नवला!
यह चंदकला कठुला करि राखौ!
आठहुँ सिद्धि, नवौ निधि लै
घर-भीतर बाहर हूँ भरि राखौ!

चलने की चर्चा—

बात चलै की चली जबतें,
तब तें चले काम के तीर हजारन।
नींद और भूख चली तब तें,
अँसुआ चले नैनन तें सजि धारन।
'दास' चली कर तें बलया,
रसना चली लंक तें लागि अबारन।
प्रान के नाथ चले अनतें,
तन तें नहीं प्रान चले केहि कारन?

शरद का दिन—

कुल की सी करनी, कुलीन की सी कोमलता,
सील की सी संपति, सुसील कुल कामिनी।
दान कौ सौ आदर, उदारताई सूर की सी,
गुन की लुनाई, गुनवन्ती गज-गामिनी।
ग्रीषम कौ सलिल, सिसिर कौ सौ घाम 'देव',
हेउँत हसंती जलदागम की दामिनी,
पून्यौ कौ सौ चन्द्रमा, प्रभात कौ सौ सूरज,
सरद कैसौ बासर, बसन्त की सी जामिनी।

कटाक्ष का पैनापन—

कान्ह की बाँकी चितौन चुभी,
झुकि काल्हि ही झाँकी है ग्वालि गवाछनि।
देखी है नोखी सी, चोखी सी कोरनि,
ओछे फिर उभरे चित जा छनि।
मारेई जात निहारे 'मुबारक'
ये सहजै कजरारे मृगाछनि।
सींक लै काजर दै री! गँवारिनि!
आँगुरी तेरी कटैगी कटाछनि!

असली मूँछ—

जिहि मुच्छन धरि हाथ कछू जग सुजस न लीजै,
जिहि मुच्छन धरि हाथ कछू पर काज न कीजै,
जिहि मुच्छन धरि हाथ कछू पर-पीर न जानी,
जिहि मुच्छन धरि हाथ दीन लखि दया न आनी,
वह मुच्छ नाहिं है, पुच्छ अज, कवि भरमी उर आनिये,
नहिं बचन लाज, नहिं दान रति, तेहि मुख मुच्छ न जानिए।

जीभ का संयम—

जीभ जोग अरु भोग, जीभ सब रोग बढ़ावै,
जीभ करै उद्योग, जीभ लै कैद करावै।
जीभ स्वर्ग लै जाय, जीभ ही नर्क दिखावै,
जीभ मिलावै राम, जीभ सब देह धरावै।
लै जीभ ओठ एकत्र करि, बाँट सहारे तौलिए,
'बैताल' कहै विक्रम! सुनै, जीभ सँभारे बोलिए!

मनोरंजक संस्मरण

असनी के महापात्र हरिनाथ अपने समय के प्रतिभा-
ली कवि थे। तत्कालीन प्रथा के अनुसार, और अपने
ता नरहरि महापात्र के अनुगामी होकर वे भी बादशाह
कबर के दरबार में रहने लगे थे, और दरबारी कवि
गये थे। उनके संबंध में भी कितनी ही कथाएँ और
दन्तियाँ प्रचलित हैं। पाठकों के मनोविनोद के लिए
के संबंध की एक मनोरंजक किम्बदन्ती यहाँ दी जा
ही है।

निरंकुश और सर्व-प्रभुत्व-सम्पन्न बादशाहों को कभी-
भी विचित्र सनक आ जाया करती थी। कहते हैं कि
क वार किसी आवेश में आकर अकबर ने महाराज
नसिंह को लंका पर चढ़ाई करके उसके राजा से
र वसूल करने की आज्ञा दे दी। मानसिंह अपने
मय के विख्यात सेनापति थे। अकबर ने उन्हें एक ओर
ल, तो दूसरी ओर काबुल की विजय करने का काम
पा था। वे बहुत सफल योद्धा थे। बादशाह की आज्ञा
कर वे लंका-विजय की तैयारी करने लगे।

बादशाह की इस शेखचिल्लीपन की आज्ञा से सभी
रबारी आश्चर्यचकित रह गये थे, किन्तु बादशाह
वेश में थे, इसलिए उनका साहस न हुआ कि उस
मय वे इस योजना की अव्यावहारिकता और निरर्थ-
ता के सम्बन्ध में उनसे कुछ निवेदन करें। कई दिन
द जब बादशाह का आवेश शान्त हो गया और वे
कृतिस्थ हो गये तब प्रमुख दरबारियों ने उन्हें सम-
या कि यह योजना कितनी अव्यावहारिक है। इसमें
ड़ा खतरा इस बात का है कि कहीं मानसिंह के समान
य सेनापति का अनिष्ट न हो जाय। बादशाह अपनी
ल समझ गये और उन्होंने अपनी आज्ञा रद्द कर दी।
न्तु कहते हैं कि मानसिंह जिस काम का आरंभ कर देते
उसको बिना पूरे किये छोड़ते न थे—विशेषकर युद्ध के
भियान। अतएव अब समस्या यह थी कि मानसिंह को
स आकाश के तारे तोड़ने के अभियान से कैसे रोका जाय।
दशाह भी मानसिंह की जिद्दी प्रकृति को जानते थे।
त में मानसिंह को इस अभियान से विरत करने का
म हरिनाथ को सौंपा गया।

संयोग से जिस समय हरिनाथ महाराज मानसिंह के स्थान पर पहुँचे उस समय उनकी सेना कूच करने के लिए तैयार खड़ी थी। महाराज मानसिंह अपने घोड़े पर सवार हो चुके थे और कुछ ही देर में कूच की आज्ञा देने ही वाले थे। हरिनाथ ने महाराज के पास पहुँचकर एक कवित्त सुनाने की आज्ञा माँगी। महाराज ने समझा कि कवि जी यात्रा के समय मंगल कामना का आशीर्वाद देने आये हैं। वे उनका कवित्त सुनने को तैयार हो गये। हरिनाथ ने यह कवित्त पढ़ा—

रावन हू नाहिं, महिरावन हू नाहिं,
मखसूदन हू नाहिं, जापै घालो हतो घाव रे।
ईस वारो नाहिं, दससीस वारो नाहिं
बीस भुजवारो नाहिं, कापै करत उछाव रे?
लंका डरी सूनी तामें बसत न खूनी,
यह बात अनहोनी बिन खून न सताव रे।
राजन के राज! रघुवंसी महाराज! सिंह!
काहे कों रिसात हौ बिभीषन पै रावरे?

मानसिंह इसे सुनकर मुस्कुरा दिये। उन पर हरिनाथ के इस कवित्त का कोई प्रभाव न पड़ा। तब हरिनाथ ने दूसरा छंद पढ़ा—

महत नदी-नद में हेला जगमेला मारि,
दीप दाबि लीन्ह्यौ कहूँ बाँधि उन सेत है।
जीत्यौ बिन खंग, अनखंग हू कौ बादशाह,
सुनत ससंक्यौ कुल सिंघल समेत है।
अटक न होतौ काल्हि कटक समेत पैरि,
पारि लेतौ सिन्धु, 'हरिनाथ' एक हेत है—
बकसि बिभीषन कों राघौ दीन्ह्यौ दान,
रघुबंसी राजा मान यातें लंकहि न लेत है!
फिर—
रघपति दीन्ह्यौ दान, बिप्र बिभीषन जानिकैं।
मान महीपति! मान, दियौ दान नहिं लीजिए।।

इस बार तीर निशाने पर लगा। महाराज की समझ में बात आ गयी और लंका विजय करने का यह शेखचिल्ली अभियान रोक दिया गया।

पत्रोपहार

श्री बैजनाथ

बेटा ओंकार, गत चैत्र मास के आरम्भ में जब मैं तुम्हारे पास से घर आया था तब तुम्हारे बाग में आम बौरा रहे थे। जिधर निकल जाते थे उधर ही सुगन्धित मन्द हवा के झकोरों से मन प्रसन्न हो जाता था :—

छकि रसाल सौरभ सने मधुर माधुरी गन्ध।
ठौर ठौर झौरत फिरें भौंर भौर मद अन्ध॥

वहाँ की भी यही दशा थी। इसलिये जान पड़ता है कि कविवर बिहारीलाल के हृदय में इस दोहे की सृष्टि किसी ऐसे ही स्थान में हुई होगी। प्रतापी ग्रीष्म ने आकर बसन्त की वह विभूति लोप कर दी। उसके बाद वर्षा आई। अब शीतारम्भ है। वर्षा में तो तुम्हारे यहाँ के पर्वत, बन, वाटिका, नवीन पत्र, पुष्प तथा फल धारण करके विशेष शोभामय हुए होंगे। तुमने अपने बाग के जो पच्चीस कलमी आम भेजे थे वे भाभी की कृपा से हमें मिल गये थे। बदले में, हम तुमको "सरस्वती" के द्वारा यह पत्रोपहार भेजते हैं।

तुम आजकल पढ़ते हो। तुमको पद-पद पर सावधानी और अनुभव की आवश्यकता है। यों तो स्वास्थ्य सम्बन्धी असावधानी सभी के लिए दुखदायी है, परन्तु विद्यार्थियों की उन्नति की तो वह अत्यन्त ही बाधक है। इसलिए भोज्य और खाद्य पदार्थों के गुणावगुण, उनके बनाने की विधि, कौन पदार्थ किस रीति से खाना शरीर की प्रकृति के अनुकूल होगा—ये बातें जानना बहुत जरूरी है। हमारे मान्य पूर्वजों ने अनेक विकारी वस्तुओं को, जिनका आजकल सभ्य जातियाँ आदर करती हैं, त्याग कर अपनी सन्तान का बड़ा भारी उपकार किया है। यह उपकार भूलने योग्य नहीं है। परन्तु स्वाद के लालच के कारण हमारे भोजन से सादगी और स्वाभाविकता का लोप हो गया है। हम लोगों ने सादा और स्वाभाविक भोजन करना छोड़ दिया है। इसलिए उसमें अनेक दोष उत्पन्न हो गये हैं। वर्तमान समाज, भावी सन्तान और स्वदेश के कल्याण के लिए उन दोषों को दूर करने के उपाय सोचना और प्रकट करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है।

बेटा, तुम्हारा नगर राजगढ़ प्रकृति का बड़ा प्यारा स्थान है। वह प्रकृति का विहार स्थल है। वहाँ पर्वत, झरने, वन, उपवन आदि सभी कुछ हैं। वृक्षों की तो ऐसी सघनता है कि दूर से सारा नगर एक वृहत् वाटिका के समान प्रतीत होता है। चारों ओर सुन्दर मोर दिन भर निर्भय नाचते रहते हैं। भाँति-भाँति के पक्षियों का कलरव मन को मस्त कर देता है। वसन्त और वर्षा ऋतु में पर्वत की हरी हरी चोटियों का दृश्य देखने में बड़ा आनन्द आता है। मंद मारुत इन शिखरों को आलिंगन करता हुआ नीचे आकर, मानों सबको स्वास्थ्य बाँटता फिरता है। सबका जीवन मूल जल, जो अस्सी फीट नीची चट्टान चीर कर प्राप्त होता है, बड़ा मीठा, शीतल और हलका होता है। इस अनोखे जल-वायु के संयोग से सब प्रकार के फल और शाक बड़े ही स्वास्थ्यप्रद और सुस्वादु होते हैं। ऐसे रमणीय और स्वास्थ्यप्रद स्थान इस अभागे देश में अब थोड़े रह गये हैं। इसलिए तुम बाल्यावस्था से ही प्रकृति के प्रेमी बनो। प्रकृति बड़ी उदार है, बड़ी दयालु है और बड़ी सुखद है। परन्तु जो लोग प्रकृति की अवज्ञा और उसका अनादर करते हैं उन्हें भयानक आपदाओं और क्लेशों का सामना करना पड़ता है। भोजन-पान के सम्बन्ध में भी, और बातों की तरह, मानव जाति ने प्रकृति का साथ छोड़ दिया, उसके आदेशों को न माना, उसकी इच्छा का उल्लंघन कर दिया। इसी से हम लोगों का बहुत समय, बल और धन रोगों से लड़ाई लड़ने में जाता है। हम प्रकृति के आज्ञानुवर्ती और अनुगामी फिर कैसे हो सकते हैं, इस बात पर हम लोगों को विचार करना चाहिए।

तुम्हारे रम्य बाग में जो अनेक प्रकार के फल बारहों महीने उतरते रहते हैं उनको तुम जब चाहो रुचि के अनुसार खा सकते हो। उनसे कभी किसी प्रकार की हानि की सम्भावना नहीं। अनुभव से जाना गया है कि फलाहार, शरीर और मन दोनों की पूर्ण उन्नति और विकास का सर्वोत्तम साधन है। तुमको याद होगा कि शीतकाल में अधपके बेरों को मैं कैसी रुचि से खाता था। तुम्हारे अमृतवान अनोपान नामधारी सुगन्धित केलों, सुमिष्ट नारंगियों और कंद के स्वाद को मंद करने वाले सीताफलों के विषय में तो कहना ही क्या है। यह आहार अकृत्रिम है, अतएव बड़ा हितकर है। तुम बहुधा बाग में घूमते हो, भांति-भांति के पुष्प पत्रादि की छटा देखते हो, तो भी तुमको यह बताना अनुचित न होगा कि वृक्ष, लता, बेलि आदि प्रकृति के आभूषण हैं। वे नेत्र और मन को अद्वितीय आनन्द देने वाले हैं।

शायद फलाहार के गुण तुम नहीं जानते। सारे बाल पक गये, पर अब तक मैं भी न जानता था। सरस्वती-सम्पादक, डाक्टर हैंग और जल-चिकित्सक कूने की कृपा से अब कुछ जानने लगा हूँ। इस भोजन से मन और शरीर निर्मल और निर्विकार हो जाते हैं। सब उपाधियाँ दूर हो जाती हैं। औषधि सेवन तथा वैद्य की जरूरत नहीं पड़ती। मनुष्य मरता अवश्य है, क्योंकि वह मरने ही के लिए बनाया गया है, परन्तु जिन कठिन रोगों से तुम रात दिन लोगों को तड़पते देखते हो वे देखने में न आवेंगे। आलस्य और मानसिक तथा शारीरिक शिथिलता का अभाव हो जायगा। शरीर की गति में स्फूर्ति देख पड़ेगी। आजकल हम लोग कृत्रिम भोजन करते हैं। उसमें स्वाभाविकता नहीं है। वह केवल बनावट, चतुराई अथवा

का भोजन है। वह मन को लुभाने, जिह्वा को धोखा और शरीर को रोगी बनाने वाला है। इससे अनेक के रोग हम लोगों को घेरे रहते हैं। जब से मैं आया तब से घर भर की भोजन प्रणाली में बड़ा परिवर्तन हो गया है। सब को रोटी, ताजा दूध और फल विशेष रुचिकर और गुणदायक प्रतीत होने लगे हैं। का मन प्रसन्न तथा शरीर पीड़ा रहित रहता है। भूख लगती है। नींद भी अच्छी आती है इसलिए घर मानों नये जीवन का संचार हुआ है। बेटा, हमारे देश फलाहार के महत्त्व को लोग बहुत प्राचीन काल से जानते हैं। हमारे पूर्वज केवल फलाहार से ही शुद्ध शरीर और शुद्ध मन सम्पादन करके विद्योपार्जन, स्वदेशहित, परमार्थ साधन और अद्वितीय ग्रन्थ लिखने में समर्थ हुए । इसी सात्विकी भोजन के प्रभाव से वे चक्रवर्ती राजाओं से बढ़कर तेजस्वी, रूपवान और बलवान होते थे। कठिन व्रत और आज्ञापालन से सारे संसार को मुग्ध और चकित करने वाले भगवान रामचन्द्र, देवी सीता, भ्रातृ प्रेम की साक्षात मूर्ति लक्ष्मण ने चौदह वर्ष तक बन में किस आहार के बल पर अनेक कष्ट सह करके भी जीवन रक्षा की थी? किस भोजन की शक्ति से त्रैलोक्य-तापी महाबली रावण-राज और उसकी राक्षसी सेना का संहार किया था! मानना पड़ेगा कि कन्द, मूल और फल ही उनका एक मात्र आहार था। यही प्राकृतिक भोजन करके आदि कवि ने जगत में रामायण की सृष्टि की और महर्षि व्यासदेव ने महाभारत रचा। इनकी समता न होमर की "इलियड" कर सकती है, न वरजिल की "इनियड" और न मिलटन का "पैराडाईज लास्ट"। जयदेवजी भगवान के परम भक्त थे। वे बहुधा बस्ती से दूर बनों में विचरते रहते थे। वहाँ उनके मन और शरीर दोनों को आनन्द देने वाली सामग्री मौजूद थी। उनसे बढ़ कर मधुर और सरस काव्य आज तक कोई किसी भाषा में नहीं बना सका। यह बात प्राकृतिक भोजन की उत्कृष्टता की पोषक है।

शरीर पर तो होता ही है, परन्तु मन पर भी भोजन का बड़ा असर होता है। "पैरेडाईज लास्ट" का प्रणेता मिल्टन उच्च श्रेणी का कवि तो था ही, परन्तु उसका व्यक्तिगत चरित्र भी ऐसा उज्ज्वल, निर्दोष और ऊँचा था कि वह अब भी मनुष्य मात्र के लिए आदर्श है। इसके सिवा वह प्रकृति का पूर्ण प्रेमी, मातृभाषा तथा स्वदेश का अटल स्नेही, विद्वान, वीर, अनेक कलाओं में प्रवीण, भगवद्-भक्त और सत्य-प्रिय भी था। उसका शरीर सुडौल था, बाल कुंचित और मुख लावण्यता-मय था। वह स्वदेश के लिए सदा निर्भीक और स्वतन्त्र होकर अपना मत प्रकाशित करता था। विद्या-व्यसनी होने के कारण बुढ़ापे में नेत्र जाते रहे थे, परन्तु फिर भी उसने साहित्य की सेवा न छोड़ी। मिल्टन इंगलिस्तान के राजा चार्ल्स प्रथम के कामों का विरोधी था। इससे उसके बैरी भी थे। उसने प्रजा द्वारा, चार्ल्स के विरोध का अनुमोदन किया था। वह कहता है कि जो राजा नीति का उल्लंघन करता है वह राजा नहीं रह सकता। वह बड़ा संयमी, व्रती, और धीर था। विषयास्वाद और इन्द्रिय-लोलुपता उसको छू भी नहीं गई थी। ओंकार, तुम नहीं जानते कि यह महात्मा किस पदार्थ का भोजन करता था। वह केवल शाक, फल मूलादि खाता और स्वच्छ पानी पीता था। उसके शरीर में आलस्य न था। वह अरुणोदय से पहले उठ कर प्रथम परमेश्वर की स्तुति करता था, फिर प्रातः-काल की पुनीत वायु सेवन करने जाता था। इसके बाद स्वदेश-हित की चिन्ता करता था। फिर दोपहर को अति साधारण भोजन से क्षुधा निवारण करता था।

"आदमी जैसा भोजन करता है वैसे ही उसके विचार होते हैं, और जैसे उसके विचार होते हैं वैसा ही वह आप बन जाता है"। हम हिन्दुओं को अपनी भोजन-विधि सुधारना बहुत कठिन नहीं है। इस विषय में हमको वैसी प्रबल कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ेगा जैसी पश्चिम वालों का सिर दुखा रही हैं। अपने अनेक व्रतों में फल भोजन का विधान प्राचीन काल से व्यापक सिद्धान्त का चिह्न है। परन्तु अब वह सिद्धान्त निर्जीव सा हो गया है, उसकी सजीवता जाती रही है। उसकी उपयोगिता पर ध्यान देकर उसे करावलम्ब देना चाहिए। वह बिलकुल मरा नहीं है। भावी सन्तान के भाग्य से शायद फिर खड़ा हो जाय—उसमें फिर जान आ जाय।

भर्तृहरि जी लिख गये हैं कि भोगविलास निरुपाधि नहीं हैं, उनके साथ साथ रोगों का भय लगा हुआ है। प्रकृति सब कामों में सरलता और अकृत्रिमता चाहती है। हमारे देश के विलासी बड़े आदमी अपनी निपुणता से चाहे जैसे आचार मुरब्बे तैयार कराके खायँ, चाहे जैसे मोहन-भोग, खीर, अमिर्ती आदि का आस्वादन विश्वास-घातिनी जिह्वा को करावें, और चाहे इस लोलुपता के कारण साधारण जन-समाज की अपेक्षा अपने को कितना ही बड़ा समझें, परन्तु प्रकृति अपने विरोध का बदला लिए बिना कभी किसी को नहीं छोड़ती। वह सबके साथ समान बर्ताव करती है। उसकी दृष्टि में लौकिक भेदों की कुछ बिसात नहीं। स्वाभाव और नियम-विरुद्ध आचरणवाले राजाधिराज को भी वह उतना ही दण्ड देती है जितना कि भिक्षुक को। अडीसन ने एक निबन्ध में लिखा है कि बड़े बड़े भोजों में, जहाँ अनेक व्यंजनों के द्वारा रसना के तृप्त करने के उपाय किये जाते हैं, ध्यानावस्थित होकर देखने से मुझे ऐसा मालूम होता है, मानो वहाँ के एक एक स्वादिष्ट पदार्थ के भीतर एक एक भीम रोग घुसा बैठा है। प्रकृति ने मनुष्य को फल-भोजी बनाया है। यह सिद्धांत निर्विवाद है। हमारे दाँत और आँतें इस बात की गवाह हैं। इस से भिन्न आचरण अस्वाभाविक अर्थात् प्रकृति के नियमों के विरुद्ध है।

कोई कोई अनुमान करते हैं कि महाकवि कालिदास विषय के वशवर्त्ती थे। पर मेरे विचार से ऐसा कहने वाले भूल करते हैं। कालिदास प्रकृति के उपासक थे। प्रकृति, अपने सब रूपों में, उनकी उपास्य देवी थी। सब

प्रकार के सौन्दर्य, शोभा, और रूप को अंकित करने के लिए उनका हृदय, चित्र की भूमिका था। उनका हृदय-पटल बिलकुल स्वच्छ और पवित्र था। नहीं तो ऐसे सुन्दर चित्र उस पर अंकित न हो सकते। जिस सौन्दर्य, जिस शोभा की आराधना कालिदास करते थे, वह विषय से परे है, उसका इन्द्रियों से कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि ऐसा न होता तो कालिदास इतने बड़े कवि न होते। क्या प्रकृति का प्रेमी उसके प्रतिकूल आचरण करेगा। क्या प्रकृति का द्रोही संसार को शकुन्तला, रघुवंश, मेघदूत ऋतुसंहार आदि रत्न अर्पण कर सकता है? नहीं। इसी से जान पड़ता है कि कालिदास आहार-विहारादि में सम्यक रूप से प्रकृति के अनुकूल चलते थे। केवल विकार रहित आहार से ही ऐसी विमल बुद्धि सम्पादित हो सकती है। यदि उनका आचरण सदोष होता तो वे "भारत के शेक्सपियर" न हो सकते।

बेटा ओंकार, तुलसीदास की रामायण के कोई-कोई पाठ तुमने पढ़े हैं, इस कारण तुम उनसे अपरिचित नहीं हो। चित्रकूट में भरतजी के समाज का नित्य का आहार सुनो :—

कोल किरात भिल्ल बनवासी।
मधु शुचि सुन्दर स्वादु सुधा सी॥
भरि भरि पर्ण पुटी रचि रूरी।
कंद मूल फल अंकुर जूरी॥
सबहिं देहिं करि विनय प्रणामा।
कहि कहि स्वादु भेद गुण नामा॥
देहिं लोग बहु मोल न लेहीं।
फेरत राम दुहाई देहीं॥
राम कृपालु निषाद निवाजा।
परिजन प्रजहिं चहिय जस राजा॥
यह जिय जानि सकोच तजि करिय छोह लखि नेहु।
हमहिं कृतारथ करन लगि फल तृण अंकुर लेहु॥

फिर आगे चल कर फल भोजन का माहात्म्य देखो :—

ऋषि रुख लखि कह तिरहुत राजू।
यहाँ उचित नहिं असन अनाजू।
तेहि अवसर फल फूल दल मूल अनेक प्रकार।
लै आये बनचर विपुल भर भरि काँवरि भार॥
तब सब लोग नहाय नहाई।
राम जनक मुनि आयसु पाई।
देखि देखि तरुवर अनुरागे।
जहँ तहँ पुरजन उतरन लागे।
दल फल फूल कंद विध नाना।
पावन सुन्दर सुधा समाना।
सादर सब कहँ राम गुरु पठये भरि भरि भारि।
पूजि पितर सुर गुरु अतिथि लगे करन फलहार॥

सब सभ्य देशों में, विशेष कर भारतवर्ष में, मुख्य भोजन रोटी है। यद्यपि यह स्वाभाविक खाद्य पदार्थ नहीं है किन्तु कृत्रिम है तथापि उसको छोड़ देने से काम नहीं चल सकता। बहुत काल बीत जाने पर स्वभाव का भी परिवर्तन हो जाता है। इसलिए साधारण विधि से तैयार की हुई और अच्छी तरह से सेंकी हुई रोटी पक्के फल ही की तरह गुणदायक है। भेद केवल इतना ही है कि फल सूर्य की गरमी से पकते हैं और रोटी अग्नि से।

बेटा ओंकार, पत्र बढ़ गया है इस कारण अब समाप्त करता हूँ। पर एक बात लिखनी रह गई। उसको छोड़ना उचित नहीं। आहार सम्बन्धी अज्ञानता और असावधानी से मैं भयकर रोगों से पीड़ित हो गया था, यह तुम अच्छी तरह जानते हो। मैं जीवन से निराश हो चुका था। मुझे आशा नहीं थी कि इस हाथ से तुमको फिर कभी पत्र लिख सकूँगा। परन्तु जो बात असम्भव जान पड़ती थी, भगवान ने वही सम्भव कर दी। मेरा शरीर नीरोग हो गया। इसलिए देवी रूपिणी भाभी का मैं विशेष ऋणी हूँ। उसने माता के समान निरन्तर चार मास तक विविध प्रकार के उत्तमोत्तम फल खिला और ताजा दूध पिला कर मेरे निर्जीव शरीर में सजीवता उत्पन्न कर दी। उसकी इस सहायता बिना अपनी स्वाभाविक चिकित्सा में मैं सफलता नहीं प्राप्त कर सकता था। तुम मेरी ओर से विनयपूर्वक उसके पैर छूना। तुम्हारी माता स्वयं भी यदि स्वाभाविक भोजन ग्रहण करने का नियम करले तो मेद वृद्धि का बहुत ह्रास हो सकता है। इसमें उसको कुछ कठिनाई भी है। तुम्हारी दादी को तो इस विधि के थोड़े काल के अनुसरण से आशातीत लाभ हुआ है।



प्रकाशक : बी० एन० माथुर, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक : पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

चुने हुए उपन्यास

विष-वृक्ष—श्री वंकिमचन्द्र चटर्जी	२.००
देवी चौधरानी—श्री वंकिमचन्द्र चटर्जी	१.५०
कपाल-कुंडला—श्री वंकिमचन्द्र चटर्जी	१.५०
आनन्द मठ—श्री वंकिमचन्द्र चटर्जी	१.५०
चन्द्रशेखर—श्री वंकिमचन्द्र चटर्जी	१.२५
कृष्णकान्त का बिल—श्री वंकिमचन्द्र चटर्जी	१.५०
रजनी—श्री वंकिमचन्द्र चटर्जी	०.७५
गौर मोहन—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर	५.५०
योगायोग—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर	४.००
रूस की चिट्ठी—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर	१.५०
मेरा बचपन—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर	२.००
राजर्षि—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर	२.००
चार अध्याय—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर	१.५०
आश्चर्य घटना—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर	१.५०
विचित्र वधू-रहस्य—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर	२.००
मुकुट—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर	०.३१
गृहदाह—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	४.००
श्रीकान्त—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	६.००
लेन-देन—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	३.५०
देहाती समाज—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	२.००
शुभदा—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	२.५०
पंडितजी—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	२.००
परिणीता—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	१.५०
बड़ी दीदी—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	१.५०
छुटकारा—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	१.३१
ब्राह्मण की बेटी—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	१.५०

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

स्वामी—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	०·७५
बैकुंठ का बिल—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	०·७५
मझली दीदी—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	१·००
अरक्षणीया—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	०·६२
नवविधान—श्री शरद्चन्द्र चटर्जी	०·६२
सुधा—श्री रमेशचन्द्र दत्त	२·७५
महाराष्ट्र जीवन-प्रभात—श्री रमेशचन्द्र दत्त	२·००
राजपूत-जीवन-सन्ध्या—श्री रमेशचन्द्र दत्त	२·००
माधवी-कंकण—श्री रमेशचन्द्र दत्त	१·५०
प्रांतिक—श्री ताराशंकर वन्द्योपाध्याय	३·००
समाज—श्री रमेशचन्द्र दत्त	१·२५
पथभ्रान्त पथिक—श्री चारुचन्द्र वन्द्योपाध्याय	२·७५
धोखा-धड़ी—श्री चारुचन्द्र वन्द्योपाध्याय	२·७५
आखिरी सलाम—डा० व्रजेश्वर वर्मा	४·५०
हार या जीत—डा० व्रजेश्वर वर्मा	२·००
कुलबोरन—स्वर्गीय चन्द्रभूषण वैश्य	२·५०
राजदुलारी—स्वर्गीय चन्द्रभूषण वैश्य	१·२५
अपना-पराया—पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'	२·५०
उड़ते-पत्ते—पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'	२·५०
शीलादेवी—श्री नलिनीरंजन चौधरी	२·७५
संगति—श्री गोपालचन्द्र शास्त्री	१·५०
युद्ध और शान्ति—महर्षि टालस्टाय	५·००
रुबिया—श्री अवध उपाध्याय	२·००
सत्याग्रही—श्री उपेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय	१·५०
द्वंद्व—श्री सरोजकुमारी देवी	२·७५
रिक्ता—श्री नीहारबाला देवी	१·२५
ब्रजनाथ का विवाह—श्री नगेन्द्रनाथ गुप्त	२·२५
नवीन संन्यासी—श्री प्रभातकुमार मुकर्जी	४·७५
रत्नदीप—श्री प्रभातकुमार मुकर्जी	२·००

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

निष्कलंकिनी—श्री महावीरप्रसाद गहमरी	०·६२
जीवन-क्रान्ति—पं० गौरीशंकर मिश्र	२·७५
बलिदान-मन्दिर—पं० गौरीशंकर मिश्र	२·००
भक्त जयदेव—पं० गौरीशंकर मिश्र	२·००
उलझन—ठाकुर श्रीनाथसिंह	२·७५
प्यारा भारत—प्रोफेसर प्यारेलाल	४·५०
वंचिता—पं० उमेशचन्द्र मिश्र	३·५०
अभागिनी अन्ना भाग १—	२·२५
अभागिनी अन्ना भाग २—	२·००
लक्ष्मी—श्री रामनरेश त्रिपाठी	१·००
अज्ञात दिशा की ओर—श्री सौरीन्द्रमोहन	१·००
अग्नि—श्री 'वनफूल'	१·५०
दिव्यचक्षु—श्री र० व० देसाई	३·५०
नवदुर्गा—श्री ठाकुरदत्त मिश्र	१·२५
शनि की दिशा—श्रीमती कांचनमाला देवी	२·००
लीलावती का स्वप्न—श्री कात्यायनीदत्त त्रिवेदी	१·००
अनाथ बालक—श्री अनु० कात्यायनीदत्त त्रिवेदी	१·२५
कादम्बरी—श्री गदाधरसिंह	०·७५
रामलाल—श्री मन्नन द्विवेदी	१·७५
नूतन चरित्र—श्री रतनचन्द्र	२·००
अनजानी राहें—श्री कंचनलता सब्बरवाल	३·००
तारा—पं० रूपनारायण पाण्डेय	१·००
अन्न का आविष्कार—यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'	२·२५
धोखे की टट्टी—श्री रामजीदास वैद्य	०·५०
स्वर्णलता—अनु० पं० जनार्दन झा	१·७५
संकट—हरिदत्त दूबे	२·५०
ठाकुरद्वारा—श्री हरिदत्त दूबे	३·००
पुनर्जन्म—श्री हरिदत्त दूबे	३·००

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

साहित्य-समालोचना

पुस्तक	मूल्य
भाषा-रहस्य——डा० श्यामसुन्दरदास	५·५०
साहित्यालोचन——डा० श्यामसुन्दरदास	५·५०
भाषा-विज्ञान——डा० श्यामसुन्दरदास	५·००
हिन्दी साहित्य——डा० श्यामसुन्दरदास	३·५०
रूपक रहस्य——डा० श्यामसुन्दरदास	३·००
संक्षिप्त पद्मावत——डा० श्यामसुन्दरदास	२·५०
निबन्ध-रत्नावली——(पहला भाग)——डा० श्यामसुन्दरदास	२·००
हिन्दी भाषा——डा० श्यामसुन्दरदास	२·००
गद्य कुसुमावली——डा० श्यामसुन्दरदास	१·२५
हिन्दी निबन्ध रत्नावली——डा० श्यामसुन्दरदास	२·७५
काव्य कला——श्री गोपाललाल खन्ना	२·००
हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास——श्री गोपाललाल खन्ना	२·००
काव्य-कलाप——श्री गोपाललाल खन्ना	१·००
काव्य-माला	०·७५
देव-दर्शन——श्री हरदयालुसिंह	२·००
मतिराम-मकरंद——श्री हरदयालुसिंह	१·२५
विहारी-विभव——श्री हरदयालुसिंह	२·००
भूषण-भारती——श्री हरदयालुसिंह	२·२५
पूर्ण-पराग——श्री हरदयालुसिंह	२·००
प्रतिष्ठान——पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी	३·००
परिव्राजक की प्रजा——पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी	३·५०
युग और साहित्य——पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी	३·२५
संचारिणी——पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी	२·५०
कवि और काव्य——पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी	२·००
हिंदी साहित्य : बीसवीं शताब्दी——पं० नन्ददुलारे वाजपेयी	५·००
निबंध-निचय——पं० नन्ददुलारे वाजपेयी	३·००

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास——पं० नन्ददुलारे वाजपेयी १·००
आलोचनांजलि——आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी १·५०
कालिदास की निरंकुशता——आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ०·५०
हिंदी भाषा की उत्पत्ति——आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ०·५०
चिन्तामणि——आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ४·००
आलोचनादर्श——डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' २·५०
साहित्य-प्रकाश——डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' २·००
माधव मिश्र-निबंध-माला——साहित्याभूषण चतुर्वेदी द्वारका-प्रसाद शर्मा ३·५०
विवेचनात्मक गल्प-विहार——संपदिका: स्वर्गीया सुभद्रा-कुमारी चौहान २·००
भाषा-विज्ञान——डाक्टर मंगलदेव शास्त्री ६·००
प्रबंध प्रकाश——डा० मंगलदेव शास्त्री पहले भाग का ४·००
दूसरे भाग का ५·००
द्विवेदी-मीमांसा २·५०
हिंदी साहित्य की ऐतिहासिक चर्चा——पं० गंगाराम शर्मा १·५०
कुमारसम्भव——आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी १·२५
यात्री——श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी २·००
कुछ——श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी १·५०
मेरी अपनी कथा——श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ४·५०
समीक्षा-दर्शन——श्री रामलालसिंह (प्रथम भाग) ६·००
(द्वितीय भाग) ४·००
कामायनी-अनुशीलन——श्री रामलालसिंह ४·००
कामायनी का विवेचन——पं० ब्रजभूषण शर्मा १·५०
सिद्धराज-समीक्षा——पं० ब्रजभूषण शर्मा १·००
तुलसी के चार दल——श्री सद्‌गुरुशरण अवस्थी प्रथम भाग ३·००
द्वितीय भाग २·७५

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

साहित्य-समीक्षा—श्री कालिदास कपूर १·००
महाकवि अकबर—श्री 'वतन' १·२५
हिंदी कविता की पृष्ठभूमि—डा० रामरतन भटनागर ४·००
प्राचीन हिंदी काव्य—डा० रामरतन भटनागर ४·००
महादेवी का विवेचनात्मक गद्य—गंगाप्रसाद पाण्डेय २·७५
प्राचीन साहित्य—डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर १·५०
हिंदी मेघदूत विमर्श—सेठ कन्हैयालाल पोद्दार ४·००
विचित्र प्रबंध—डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर २·००
भारती-कवि-विमर्श—श्री रामसेवक पाण्डेय ३·००
मौलाना हाली और उनका काव्य—श्री ज्वालादत्त शर्मा १·५०
संस्कृत गद्य रत्नावली—पं० अमरनाथ झा १·००
अपभ्रंश-पाथमाला—(प्रथम भाग)—श्री नरोत्तमदास स्वामी १·००
विचार-तरंग—आचार्य सद्गुरुशरण अवस्थी ३·५०
साहित्य-तरंग " " ५·००
हिंदी साहित्य में जीवन चरित का विकास : एक अध्ययन
चंद्रावती सिंह एम० ए० ४·७५

नवीन प्रेरणाप्रद साहित्य

अमेरिका के प्रसिद्ध और यशस्वी लेखकों ने अपने देश के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और साहित्यिक क्षेत्रों में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त करनेवाले व्यक्तियों तथा वैज्ञानिक शोध और आविष्कार क्षेत्र में संसार भर के वैज्ञानिकों और आविष्कारकों की जीवन-कथाओं और उनके महत्त्वपूर्ण युगान्तरकारी कार्यों की विशद चर्चा जिन पुस्तकों में की है उनमें से ही कुछ निम्नांकित हिन्दी के पाठकों के लाभार्थ हिन्दी में अनुवादित होकर प्रकाशित हो गई हैं :—

ले० लॉरा इंगल्स : **बड़े वन में छोटा घर** : अनु० हरवंशराय शर्मा : मूल्य २·५० पैसे : पृष्ठ १८७
ले० लैंग्स्टन ह्यूज़ेज़ : **प्रसिद्ध अमरीकी नीग्रो** : अनु० रामऔतार अग्रवाल : मूल्य २·७५ पैसे : पृष्ठ १७०
ले० राल्फ मूडी : **किट कार्सन और जंगली सीमान्त** : अनु० तिलकराज चोपड़ा : मूल्य २·७५ पैसे : पृष्ठ २०४
ले० हेलेन केलर : **अध्यापिका ऐन सलिवाँ मेसी** : अनु० महावीर प्र० लखेड़ा : मूल्य ३·५० पैसे : पृष्ठ १७६
ले० कार्ल सैण्डबर्ग : **प्रेयरी नगर का बालक** : अनु० हरवंशराय शर्मा : मूल्य ३·२५ पैसे : पृष्ठ २४४
ले० डब्लू० ओ० स्टीवेन्स : **प्रसिद्ध वैज्ञानिक** : अनु० सत्यप्रकाश त्रिपाठी : मूल्य ३·५० पैसे : पृष्ठ २३४
ले० फ्रैंक तथा क्लार्क : **दृष्टिदात्री** : अनु० मायाप्रसाद त्रिपाठी : मूल्य ४·२५ पैसे : पृष्ठ १७४
ले० सेलिग हेक्ट : **परमाणु का रहस्य** : अनु० हरिश्चन्द्र : मूल्य ३·५० पैसे : पृष्ठ १९८
ले० रिचर्ड मेसन : **अमेरिका का महान् उदारवादी** : मूल्य २·५० पैसे : पृष्ठ १७८
ले० इर्मनगार्ड एबर्ल : **आधुनिक औषधि-आविष्कार** : मूल्य २·५० पैसे : पृष्ठ १५६
लिंकन वाणी : अनु० सच्चिदानन्द वात्स्यायन : मूल्य २·७५ पैसे : पृष्ठ १७०

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

धर्म निरपेक्ष राज्य

लेखक : श्री रघुनाथ सिंह—प्राक्कथन लेखक : श्री जवाहरलाल नेहरू
डिमाई आकार पृ० सं० २३७, मूल्य ६.५० पैसे।

धर्म निरपेक्ष राज्य का मतलब एक ऐसा राज्य है जो सब तरह के धर्मों और मजहबों का आदर करता है और उन्हें फलने फूलने का एक-सा मौका देता है। भारत जैसे देश में, जहाँ बहुत से धर्म और मजहब हैं, धर्मनिरपेक्षता की बुनियाद पर ही सच्ची राष्ट्रीयता कायम की जा सकती है। अगर कोई संकीर्ण दृष्टि रक्खी गई तो उस हालत में भारत में हमें हिन्दू राष्ट्रीयता, मुस्लिम राष्ट्रीयता, सिक्ख राष्ट्रीयता या ईसाई राष्ट्रीयता का ख्याल रखना पड़ेगा, भारतीय राष्ट्रीयता का नहीं। ये संकीर्ण राष्ट्रीयतायें पुराने जमाने की बातें हैं। ये पिछड़े हुए और पुराने जमाने के नक्शे हैं।

लेखक ने इस आवश्यक विषय पर पुस्तक लिखकर उसके मूल सिद्धान्तों की तरफ ध्यान आकर्षित किया है। हमें संसार के सामने यह उदाहरण उपस्थित करना है कि एक ही देश और एक ही राज में किस प्रकार परस्पर सौहार्द और शान्ति के साथ भिन्न-भिन्न संप्रदायों के अनुयायी, भिन्न-भिन्न भाषाओं के बोलनेवाले, भिन्न-भिन्न रीति के अनुसार चलनेवाले लोग रह सकते हैं। संसार के विकास में हमारा यही अनुदान है। इससे बढ़कर मनुष्य के वास्तविक कल्याण का दूसरा कार्य नहीं हो सकता।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

प्लेटो का प्रजातंत्र

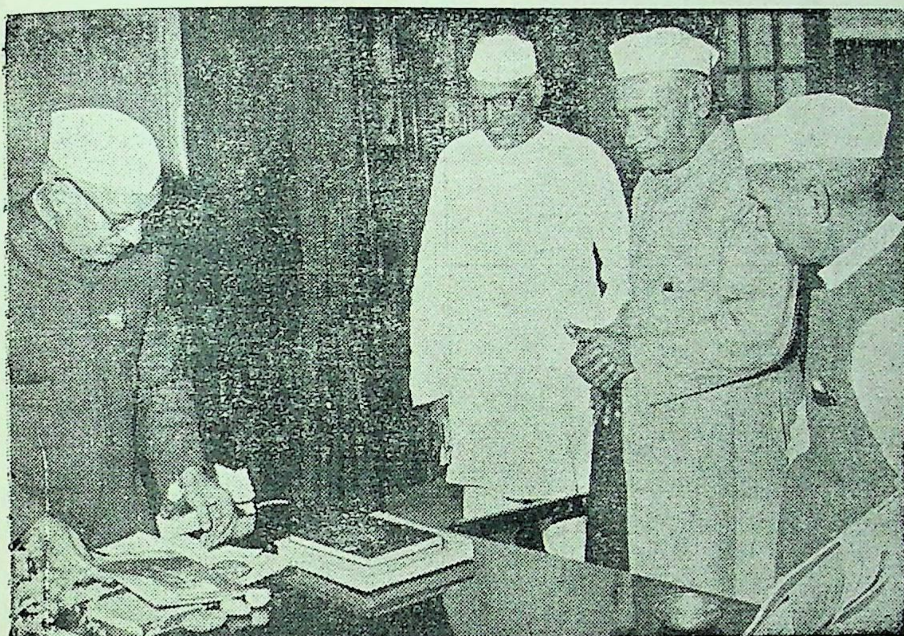
अनुवादिका—सुश्री विनीता वाँचू, एम० ए०

प्लेटो या अफलातून संसार का सबसे प्रतिभाशाली तत्वज्ञ था और किसी भी अन्य प्राचीन विचारक की अपेक्षा उसके दर्शन में ही भावी ज्ञान के अंकुरों का अधिक समावेश है। तर्कशास्त्र तथा मनोविज्ञान की विधायें, सौक्रटीज तथा प्लेटो के विश्लेषणों पर आधारित हैं।

यूनान के इस महान् दार्शनिक की सबसे उत्कृष्ट कृति यह ग्रंथ ही है। यह उसकी सबसे वृहद रचनाओं में से एक है। इस रचना में ही उसकी गहरी व्यंगोक्ति, कल्पना या हास्य का प्रचुर वैभव तथा नाटकीय प्रभाव उसकी अन्य सब रचनाओं से अधिक है। इसी में जीवन तथा चिन्तन को ओतप्रोत करने अथवा दर्शन से राजनीति को सम्बन्धित करने का प्रयत्न किया गया है। खंड एक, पृष्ठ २१२, मूल्य ५), पाँच रुपये खंड दो, पृष्ठ ३९४, मूल्य १०) दस रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

नेहरू चाचा के हाथ में 'नेहरू चाचा'



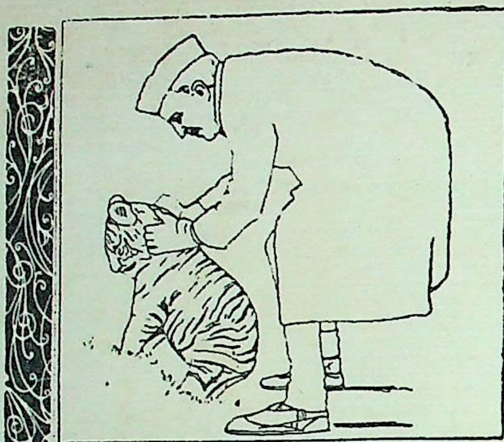
- १--प्रधान मंत्री पं० जवाहरलालजी को उनके जीवन काल में कवि श्री सोहनलाल द्विवेदी ने उन्हें 'नेहरू चाचा' पुस्तक भेंट की थी। नेहरूजी इस नवीन कृति को प्रसन्नतापूर्वक गौर से देख रहे हैं।
- २--भारत के राष्ट्रपति तथा शिक्षा-मंत्री ने बच्चों की प्रिय पुस्तक 'नेहरू चाचा' की सराहना मुक्तकंठ से की है।
- ३--'नेहरू चाचा' के सम्बन्ध में भारत के उपशिक्षा मंत्री ने लिखा है :--

आपने 'नेहरू चाचा' नाम से जो पुस्तक लिखी है, वह मुझे बहुत पसन्द आई है। उसे चित्रमय बनाकर तो आपने उस पर चार चाँद ही लगा दिये हैं और अब इस कारण सब बच्चे उसे और भी पसन्द करने लगे हैं। कृपया इस सफलता के लिए मेरे हार्दिक साधुवाद स्वीकार कीजिए।

मूल्य केवल दो रुपये २५ पैसे

प्राप्तिस्थान—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

Yearly Subscription : Rupees Seven and Fifty Paise
Single Copy 0.65 Paise
SARASWATI—Reg. No. L-248



विश्व राजनीति के कर्णधार पण्डित जवाहरलाल नेहरू के जीवन-अवसान पर समस्त हिन्दी संसार के लिए पठनीय

मानवता का प्रहरी

ले० पी० डी० टंडन पत्रकार

सुप्रसिद्ध पत्रकार श्री पी० डी० टंडन की नेहरू साहित्य को यह अनुपम भेंट है। इन पृष्ठों में आपको नेता नेहरू की नहीं इंसान नेहरू की दिलचस्प झाँकियाँ देखने को मिलेंगी। ये नेहरूजी के व्यक्तिगत जीवन की वे झलकें हैं जिनसे आप अब तक अनजान हैं। पुस्तक उबा देनेवाली गाथाओं का पिटारा नहीं बल्कि छोटी-छोटी कहानियों का खुशनुमा गुलदस्ता है। पंडितजी के चित्रों का इसमें ऐसा खजाना है जो प्रायः अब तक प्रकाश में आया ही नहीं। पुस्तक ज्ञानवर्धक होने के साथ-साथ सरल और बड़ी ही मोहक है। हमारे देश की तमाम पत्र-पत्रिकाओं ने नारा लगाया है कि यह पुस्तक प्रत्येक पढ़े-लिखे व्यक्ति के पास होनी चाहिए और सब पुस्तकालयों, स्कूलों और निजी संग्रहों में इसे उच्च स्थान पाना चाहिए।

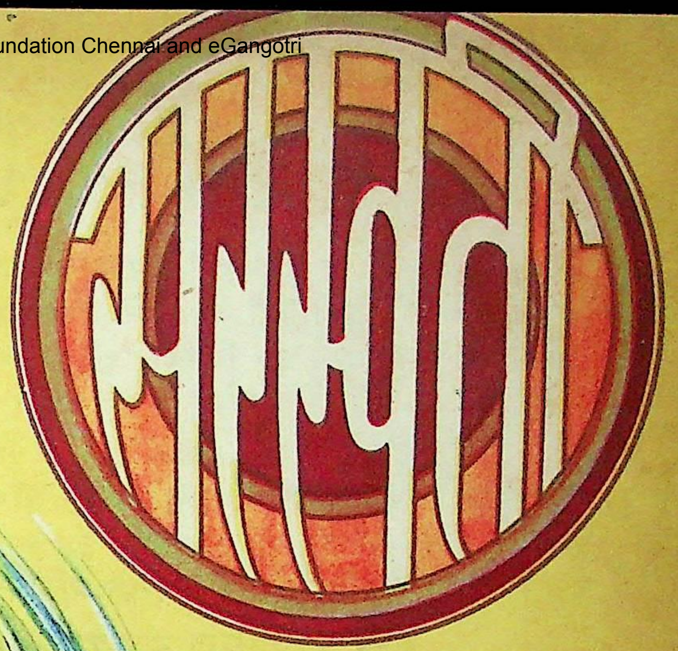
छपाई, सफाई और आवरण पृष्ठ सभी उच्च कोटि के हैं। मूल्य ५·५० पैसे।

लेखक की अन्य कृति

कुछ देखा कुछ सुना

टंडनजी कुशल पत्रकार ही नहीं कुशल लेखक भी हैं। उनकी पैनी लेखनी से निकले इन १२ व्यंगात्मक लेखों में आप देखेंगे कि आज सर्व उच्च विचारों के पीछे नीचता, बड़प्पन के पर्दे में ओछापन और बुद्धिमत्ता की ओट में मूर्खता के कैसे दर्शन होते हैं। हास्य एवं व्यंग्य का सहारा लेकर समाज का जो विश्लेषण लेखक ने किया है वह हिन्दी साहित्य में एकदम नया प्रयोग है। यथास्थान सामयिक कार्टूनों से किताब और भी सजीव हो गई है। मूल्यया १·५० पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद





दिसम्बर १९६४

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक

१९०० ई० से १९५९ ई० तक सरस्वती में प्रकाशित हिन्दी के यशस्वी कवियों, कहानीकारों तथा लेखकों की चुनी हुई रचनाओं का संग्रह इस हीरक जयन्ती अंक में है। यह विशेषांक हीरक जयन्ती के अवसर पर ३१ दिसंबर १९६१ को भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति को राष्ट्रपति भवन, नयी दिल्ली में समर्पित किया गया।

इस हीरक जयन्ती अंक में ८०८+५४ पृष्ठों की अनुपम पाठ्यसामग्री है जिसमें ५३ पृष्ठों में तो वर्तमान साहित्यकारों द्वारा लिखे संदेश और सरस्वती के इतिहास सम्बन्धी संस्मरण हैं और ८०८ पृष्ठों में १०९ कवियों की कविताएँ, ६० कहानी-लेखकों की कहानियाँ तथा १०० शीर्ष स्थानीय लेखकों के लेख सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त ६५ रंगीन कलात्मक चित्र भी दिये हैं।

मूल्य—साधारण संस्करण—१२ रु०—डाकव्यय-१ रु० २६ पैसे

पुस्तकालय संस्करण (बढ़िया कागज पर सजिल्द)—२० रु०—डाक व्यय-१·४९ पैसे

[दो साल के लिए सरस्वती के नये ग्राहक बनने वालों या पुराने ग्राहकों को—साधारण संस्करण—८ रु०, डाक व्यय के लिए १·१५ पैसे अतिरिक्त]

पठनीय सम्मति—

श्री भगवतीचरण वर्मा

हिन्दी-भाषा के विकास में 'सरस्वती' मासिक पत्रिका का विशिष्ट स्थान रहा है। यह विशिष्टता प्रमुखता का रूप भी धारण कर लेती है। जिसे हम हिन्दी-साहित्य का द्विवेदी युग कहते हैं उसके प्रवर्तक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी हैं, और उन्होंने सरस्वती के माध्यम से ही इस युग का प्रवर्तन किया है। कविता को नवीन धारा इस युग में मिली, लेकिन यह युग हिन्दी गद्य के विकास का युग कहला सकता है।

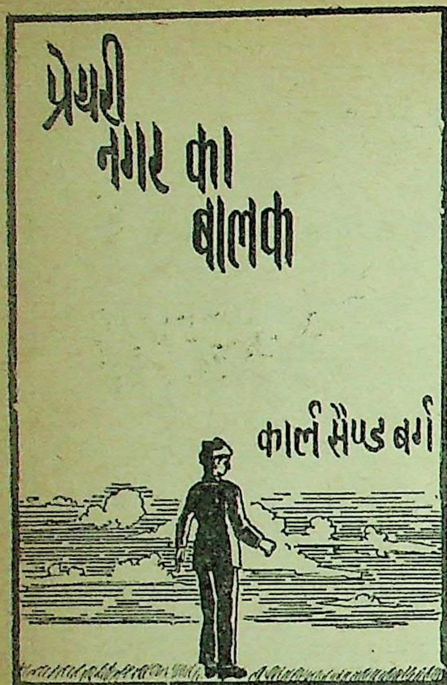
सरस्वती के हीरक जयन्ती अंक में हम हिन्दी गद्य के विकास का क्रम सुस्पष्ट-रूप से देख सकते हैं। इस अंक के साहित्यिक मूल्य के साथ इसका ऐतिहासिक रूप बड़ा सबल है। साठ वर्ष में हिन्दी भाषा कहाँ से कहाँ पहुँच गयी, इस हीरक जयन्ती अंक में यह सुस्पष्ट हो जाता है। प्रत्येक पुस्तकालय में इस ग्रंथ का होना आवश्यक है। हिन्दी में शोधकार्य के लिए यह अमूल्य ग्रंथ है। सरस्वती की हीरक जयन्ती के अवसर पर इस ग्रंथ को निकालकर सरस्वती के सम्पादक और प्रकाशक ने हिन्दी साहित्य का कितना उपकार किया है, शायद वे स्वयम् यह नहीं जानते। मैं सरस्वती के सम्पादक और प्रकाशक को हिन्दी जगत् की ओर से इसके लिए धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि हिन्दी का प्रत्येक पुस्तकालय इस ग्रंथ की एक प्रति अपने यहाँ मँगाकर हिन्दी के विद्यार्थियों एवं शोध-कर्ताओं के प्रति अपना दायित्व पूर्ण करेगा।

सरस्वती हीरक जयन्ती विशेषांक का परिशिष्टांक

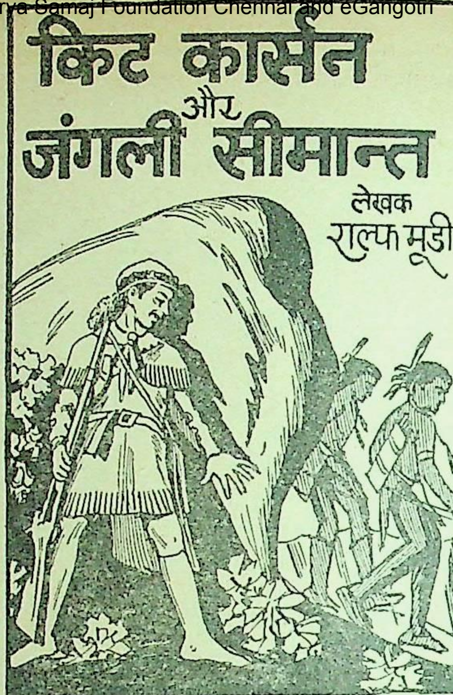
पृष्ठ-संख्या ७८, मूल्य दो रुपये

इस परिशिष्टांक में दिल्ली में महामहिम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद को सरस्वती का विशेषांक भेंट करने के समारोह से प्रारंभ कर प्रयाग में सरस्वती के प्रतिष्ठित कतिपय लेखकों और पूर्व सम्पादकों के बहुमान और मान-पत्र प्रदान सरस्वती के यशस्वी पूर्व संपादक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की कांस्यमूर्ति का पद्मभूषण मैथिली-शरण गुप्त द्वारा उद्घाटन प्रकाशन का सूत्रपात करनेवाले आधारों—नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी और इंडियन प्रेस प्रयाग, को ताम्रपत्र प्रदान, जयन्ती पर कुछ विशेष विद्वानों की प्रतिक्रिया पत्रकारगोष्ठी, जयन्ती के संबंध में संस्थाओं तथा विद्वानों के संदेश, समारोह में श्रीमती महादेवी वर्मा, माननीय श्री हरिभाऊ उपाध्याय, सेठ गोविन्ददास, श्री दिनकरजी आदि के भाषण पठनीय हैं। साथ ही अनेक बहुरंगे और उत्सव के दृश्यों तथा व्यक्तियों के सुन्दर चित्र भी दिये गये हैं।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग



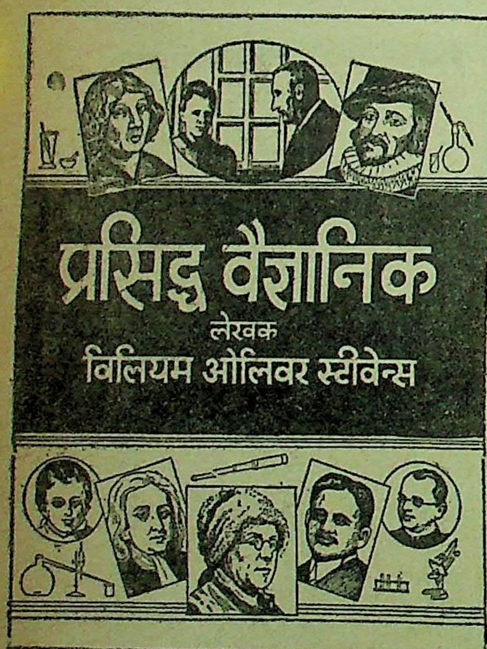
अनु०—श्रीयुत हरवंशराय शर्मा, एम० ए०
मूल्य ३ रु० २५ पैसे
लोकप्रसिद्ध जनकवि कार्ल सैण्डबर्ग के बाल्यकाल का हृदयग्राही वर्णन ।



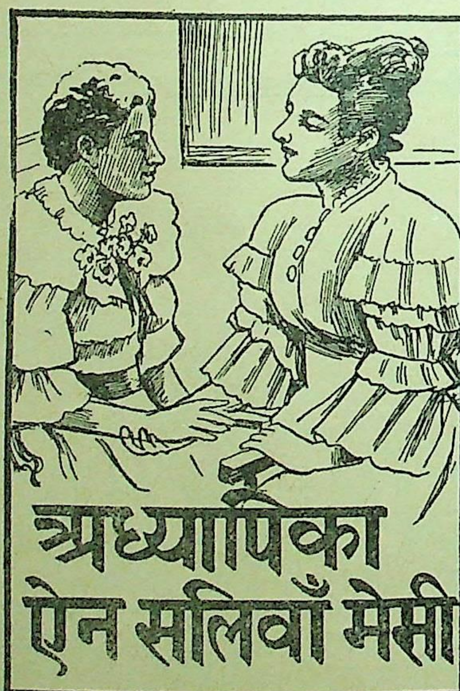
अनु०—तिलकराज चोपड़ा, एम० ए०
मूल्य २ रु० ७५ पैसे
पहाड़ी नेता किटकार्सन के वयस्क जीवन का ललित वर्णन ।



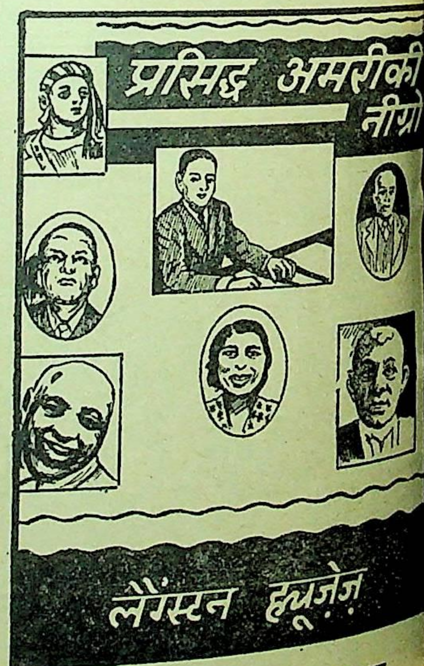
अनु०—हरवंशराय शर्मा, एम०
मूल्य २ रु० ५० पैसे
लेखिका के बाल्य जीवन की सु कहानी में उस समय के सामा जिक जीवन का दिग्दर्शन



अनु०—सत्यप्रकाश त्रिपाठी एम० एस्-सी०
मूल्य ३ रु० ५० पैसे
विख्यात वैज्ञानिकों के अनुसंधानों का सजीव चित्रण उनके जीवन-चरित्रों सहित ।



अनु० एम० पी० लखेरा, एम० ए०
मूल्य ३ रु० ५० पैसे
अन्धों को नया मार्ग दिखानेवाली ऐन सलिवाँ और उनकी शिष्या हैलेन कैलर की कहानी ।



अनु०—रामऔतार अग्रवाल
मूल्य २ रु० ७५ पैसे
महत्त्वपूर्ण अमरीकी नीग्रो लोगों की जीवन-कथाएँ ।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

...युग में जो विलक्षण औषधि ...खोजें हुई हैं उनके प्रयोग का ...वृतान्त इसमें पढ़िए । सजिल्द ...का मूल्य २·५० पैसे ।

आधुनिक औषधि-आविष्कार

लेखक इर्मनगार्ड राबर्ले

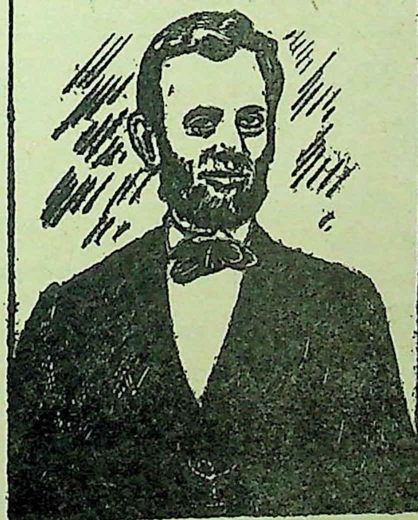
अमेरिका के महान् उदारवादी

सम्पादक गेब्रील रिचर्ड मेसन

...२ महान् अमरीकी उदारवादियों ...जीवन की नई व्याख्या इसमें ...। सजिल्द प्रति का मूल्य ... पैसे ।

"लिंकन केवल अमेरिका के महान् नेता नहीं थे, वह सारे विश्व की सम्पत्ति हैं। वह संसार के एक आदर्श वीर पुरुष हैं, उन इने-गिने व्यक्तियों में से जिन्होंने विशाल जनता को प्रेरणा दी और अब भी देते रहे हैं।"

जवाहरलाल नेहरू
प्रधान मंत्री, भारत

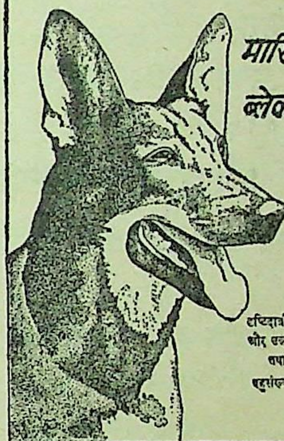


एब्राहम लिंकन के भाषणों, लेखों तथा उक्तियों का संकलन

अनु०—श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन

मूल्य २·७५ पैसे ।

इस नाम की संस्था के जन्मदाता और उन्नयन करनेवाले मनुष्य तथा कुत्ते की सच्ची कहानी । सजिल्द, सचित्र प्रति का मूल्य ४·२५ पैसे ।



परमाणु का रहस्य



सेलिग हेक्ट

परमाणु बम और उद्जन बम के रूप में विस्फोट होनेवाली ताप न्यष्टि की युक्तियों के विकास का पूर्ण सारांश इसमें पढ़िए। सचित्र सजिल्द प्रति का मूल्य ३·५० पैसे ।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

ग्राहकों से निवेदन

ग्राहकों से निवेदन है कि पत्र-व्यवहार के समय अपना ग्राहक संख्या, चन्दा भेजने की तिथि अवश्य लिखा करें ताकि हम उनके आदेशों का पालन अविलम्ब कर सकें।

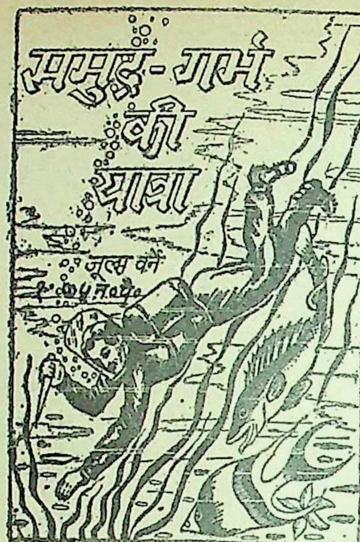
व्यवस्थापक पत्रिका विभाग—

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

किशोर सीरीज़

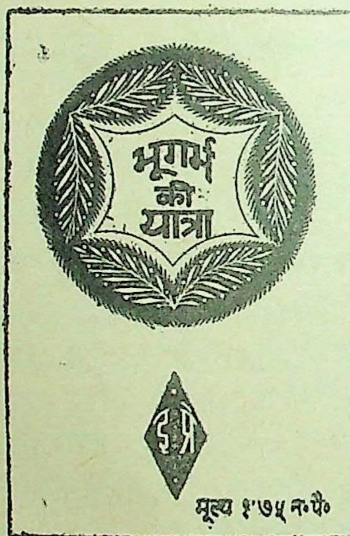
इंडियन प्रेस पब्लिकेशंस प्रा. लि. इलाहाबाद

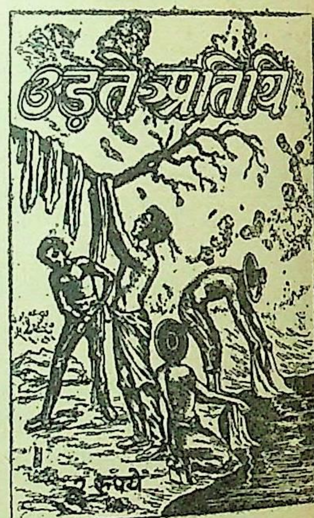






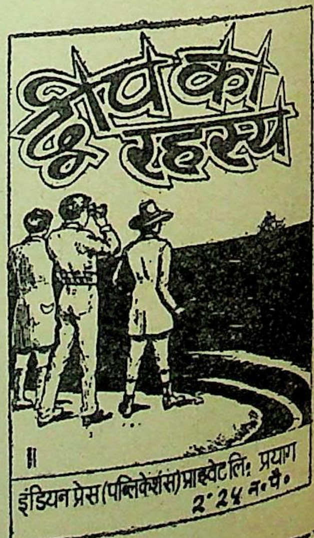








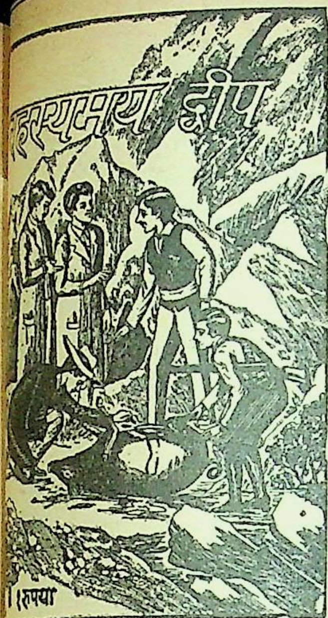




अँगरेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की अठारह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान संबंधी किशोरोपयोगी उपन्यासों के अनुवाद डा० नवलबिहारी मिश्र के तत्त्वावधान में किये गये हैं। पुस्तकें इतनी रोचक हैं कि किशोर तथा वयस्क इन्हें पढ़कर मनोरंजन ही नहीं अपनी ज्ञानवृद्धि कर सकते हैं।

किशोर सीरीज़

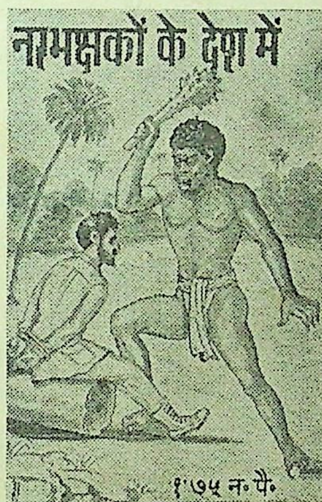
इंडियन प्रेस पब्लिकेशंस प्रा. लि. इलाहाबाद

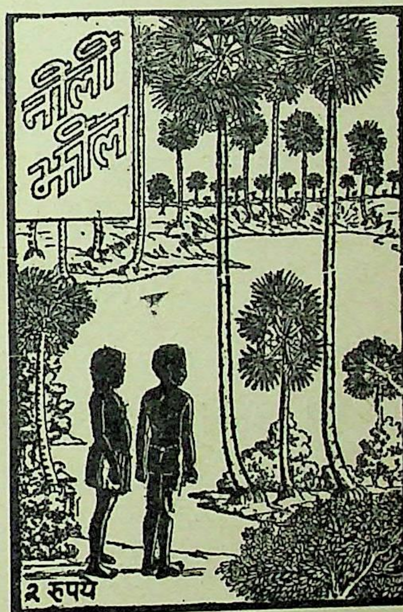


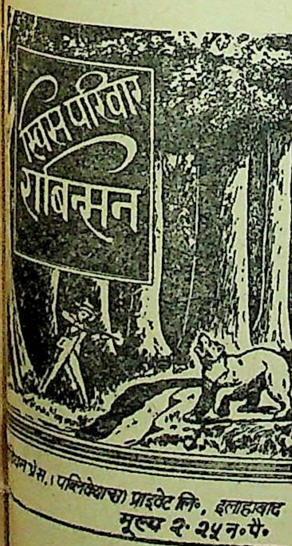


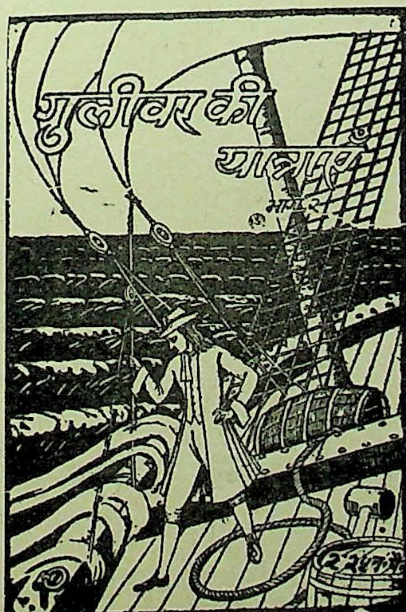


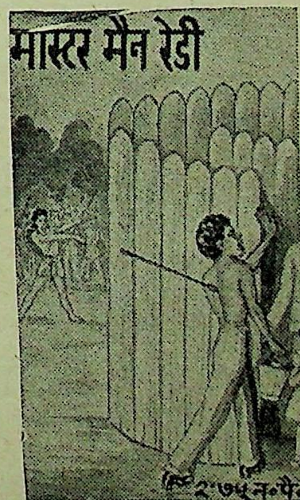












... अँगरेजी तथा फ्रेंच भाषाओं की अठारह साहसिक यात्राओं तथा वैज्ञानिक ज्ञान संबंधी किशोरोपयोगी उप-न्यासों के अनुवाद डा० नवलबिहारी मिश्र के तत्त्वावधान में किये गये हैं। पुस्तकें इतनी रोचक हैं कि किशोर तथा ... इन्हें पढ़कर मनोरंजन ही नहीं अपनी ज्ञानवृद्धि कर सकते हैं।

कुछ संस्मरणात्मक ग्रन्थ

मेरी अपनी कथा

साहित्य वाचस्पति डा० पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

इसमें सुयोग लेखक ने अपनी हिन्दी सेवाओं का वर्णन करते हुए हिन्दी की उन्नति के अनेक मनोरंजक प्रसंगों का उल्लेख किया है। पृष्ठ ढाई सौ से ऊपर, मूल्य ४·५० पैसे।

मेरी आत्मकहानी

डा० श्यामसुन्दरदास

इस आत्मकथा में लेखक के समय के सभी प्रसिद्ध साहित्यसेवियों के कार्य की विवेचना की गई है और उनके समय के हिन्दी की उन्नति के लिए किये गये प्रयत्नों का खासा विवरण है। पृष्ठ २८४, मूल्य २) दो रुपये।

एक आत्मकथा

उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध के प्रतिष्ठित विद्वान् मुन्शी लुत्फुल्ला की आत्मकथा का विचित्र सारांश पढ़ने से उस समय की बहुत सी विलक्षण बातों का परिचय मिलता है। इस पुस्तक में तत्कालीन विलायत यात्रा का बड़ा मनोरंजक वर्णन है। पृष्ठ २४०, मूल्य २) दो रुपये।

मुदर्रिस की रामकहानी

श्री कालिदास कपूर

शिक्षा तथा साहित्य के क्षेत्र में सफलता का वरण करनेवाले विद्वान् लेखक का यह सचित्र आत्मचरित उनके अनुभवों, यात्राओं और संस्मरणों से ओतप्रोत है तथा उस समय की शिक्षानीति और प्रयत्नों का सारांश भी इसमें है। पृष्ठ १००, मूल्य ३) तीन रुपये।

एक क्रान्तिकारी का संस्मरण

लेखक। श्री मनमोहन गुप्त

इस पुस्तक के लेखक जन्मजात क्रान्तिकारी हैं। कैसे-कैसे अराजक और वीरता के काम करके पुलिस अफसरों की आँखों में धूल झोंक दल का काम करते रहे, देशहित के काम को किस सफाई से करते रहे, कहाँ कैसे गिरफ्तार हुए, भाग निकले, इसका रोमांचकारी वर्णन ब्यौरेवार इस पुस्तक में पढ़िये। सजिल्द २५० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल २·७५ पैसे।

हिन्दी साहित्य में जीवन-चरित का विकास—एक अध्ययन

लेखिका—कु० चन्द्रावतीसिंह एम० ए०

संसार की उन्नतिशील भाषाओं में जीवनी साहित्य का एक महत्वपूर्ण स्थान है। कुँवरानी जी ने हिन्दी साहित्य के इस उपेक्षित अंग की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित कर भाषा साहित्य की एक बड़ी कमी को दूर किया है। पृष्ठ-संख्या २७५। मूल्य ४ रु० ७५ पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हमारे चार अनुपम प्रकाशन

धर्म निरपेक्ष राज्य

लेखक : श्री रघुनाथ सिंह—प्राक्कथन लेखक : श्री जवाहरलाल नेहरू

डिमाई आकार पृ० सं० २३७, मूल्य ६.५० पैसे ।

लेखक ने इस आवश्यक विषय पर पुस्तक लिखकर उसके मूल सिद्धान्तों की तरफ ध्यान आकर्षित किया है। हमें संसार के सामने यह उदाहरण उपस्थित करना है कि एक ही देश और एक ही राज में किस प्रकार परस्पर सौहार्द और शान्ति के साथ भिन्न-भिन्न संप्रदायों के अनुयायी, भिन्न-भिन्न भाषाओं के बोलनेवाले, भिन्न-भिन्न रीति के अनुसार चलनेवाले लोग रह सकते हैं। संसार के विकास में हमारा यही अनुदान है। इससे बढ़कर मनुष्य के वास्तविक कल्याण का दूसरा कार्य नहीं हो सकता।

प्लेटो का प्रजातन्त्र

अनुवादिका—सुश्री विनीता वांचू, एम० ए०

यूनान के इस महान् दार्शनिक की सबसे उत्कृष्ट कृति यह ग्रंथ ही है। यह उसकी सबसे वृहद रचनाओं में से एक है। इस रचना में ही उसकी गहरी व्यंगोक्ति, कल्पना या हास्य का प्रचुर वैभव तथा नाटकीय प्रभाव उसकी अन्य सब रचनाओं से अधिक है। इसी में जीवन तथा चिन्तन को ओतप्रोत करने अथवा दर्शन से राजनीति को सम्बन्धित करने का प्रयत्न किया गया है। खंड एक, पृष्ठ २१२, मूल्य ५) पांच रुपये, खंड दो, पृष्ठ ३९४ मूल्य १०) दस रुपये।

विष्णुधर्मोत्तर में चित्रकला (सचित्र)

लेखक, श्री बद्रीनाथ मालवीय, एम० ए०

श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण में चित्रकला का सांगोपांग वर्णन है। उसके आधार पर लेखक ने इस पुस्तक में कला-विषयक ज्ञान संकलित करके इस विषय को सर्वसाधारण के लिए प्रस्तुत किया है। पुस्तक में १० अध्याय और ३ परिशिष्ट हैं। सचित्र पुस्तक का मूल्य दो रुपये।

विष्णुधर्मोत्तर में मूर्तिकला (सचित्र)

लेखक, श्री बद्रीनाथ मालवीय, एम० ए०

श्री विष्णुधर्मोत्तर पुराण में मूर्तिकला के सम्बन्ध में जो वर्णन है उसके आधार पर लेखक ने इस पुस्तक का प्रणयन किया है। इसमें ३८ अध्याय और ४ परिशिष्ट हैं। किस देवता की मूर्ति का निर्माण किस प्रकार का होना चाहिए, यह इसमें पढ़ने से पाठकों को ज्ञात होगा कि इस विषय में हमारे पूर्वजों को कितनी विशद जानकारी थी। सजिल्द पुस्तक का मूल्य चार रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हमारे उत्तमोत्तम नाटक प्रकाशन

संघर्ष

लेखक, श्रीयुत वीरदेव 'वीर'

यह एक सामाजिक क्रान्तिकारी नाटक है। एक राज्यमंत्री की निरंकुशता ने युवराज को कैसे साम्यवादी बना दिया, युवराज प्रजातंत्री शासन की स्थापना के लिए वेश बदले, युवराज का धर्मपुत्र, क्रान्ति का नेता कैसे बन जाता है और उसकी अहिंसा कैसे हिंसा का रूप ले लेती है आदि सामयिक बातों का संदेश देनेवाली यह पुस्तक बड़ी लाभप्रद सिद्ध होगी। मूल्य १ रु० ७५ पैसे मात्र।

न्याय

लेखक श्री वीरदेव 'वीर'

मर्मस्पर्शी सामाजिक नाटक, जिसमें एक ऐसे ढोंगी रायबहादुर का चित्रण है, जो गरीबों को चूसकर मालदार बना था, पर दुनिया की दृष्टि में त्यागी और देशभक्त बनना चाहता था। मूल्य १ रु० २५ पैसे।

भूख

श्री वीरदेव 'वीर'

हृदयविदारक नाटक जिसमें हिन्दू-मुस्लिम एकता, व्यापारियों द्वारा जनता की निर्दय लूट और सार्वजनिक नेताओं के सेवाभाव के अनोखे दृश्य हैं। पृष्ठ ९०; मूल्य १) एक रुपया।

भीगी पलकें

लेखिका डा० कुमारी कंचनलता सब्बरवाल

लेखिका ने इस समस्या-प्रधान पौराणिक नाटक में उस युग की कल्पना की है जब सम्भवतः वस्तुओं का अर्थशास्त्र की दृष्टि से मूल्य निर्धारित नहीं हुआ करता था, और न उस समय कोई राजा था न किसी का राज्य था। सभी को आवश्यकता की वस्तुएँ सरलता से मिल जाती थीं। इस नाटक में सुन्दर प्राञ्जल भाषा में उदात्त विचार हैं। मूल्य १) मात्र।

मझली महारानी

श्री सद्गुरुशरण अवस्थी

आर्य-संस्कृति के उद्धार की चिन्ता करनेवाली महारानी कैकेयी की सूझ-बूझ पर मौलिक प्रकाश डालनेवाला यह नाटक न केवल पठनीय, प्रत्युत अभिनेय भी है। पृष्ठ १३८, दुरंगा आवरण, मूल्य १ रु० ७५ पैसे।

आधुनिक एकांकी

श्री बैकुंठनाथ दुग्गल

सफल नाटककारों के सात प्रतिनिधि एकांकियों का संकलन जो मनोरंजक तथा शिक्षाप्रद है पृष्ठ १८०; मूल्य १ रु० ७५ पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

हमारे नवीनतम कथा साहित्य

पूर्व का पंडित

लेखिका : विपुलादेवी

मानव की संकीर्ण समझ, जीवन में सामंजस्य स्थापित करने के लिए उसके उठाये गये पग, असीम सौहार्द, गहरा स्नेह और उसकी माँगों के प्रति व्यंग आदि इन कहानियों का सुरुचिपूर्ण विषय है। पुस्तक पढ़ने के बाद ही पाठक भली भाँति समझ सकेंगे कि साहित्य और कला की दृष्टि से हिन्दी कथा साहित्य में इन कहानियों को इतना सम्मान सहज ही क्यों मिल गया। मूल्य दो रुपये मात्र।

मास्को से मारवाड़

लेखक, श्री देवेशदास, आई० सी० एस०

नौ बेजोड़ कहानियाँ इस संग्रह में हैं। भाषा, भाव और घटना सभी दृष्टियों से यह संग्रह कथासाहित्य में लेखक की अपूर्व देन है। पृष्ठ सं० १५०; सजिल्द १ प्रति का मूल्य २)।

कागज की नाव

लेखक, उमाशंकर शुक्ल एम० ए०

इसमें कहानियों का अपूर्व संग्रह है। सब कहानियाँ ऊँचे स्तर की हैं। इन कहानियों में प्यार है, दर्द है और है शोषित वर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति। सजिल्द पुस्तक का मूल्य १·७५

अन्न का आविष्कार

लेखक, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

वैज्ञानिक कथा-साहित्य के द्वारा जहाँ ज्ञानवृद्धि होती है, वहीं विज्ञान का रूखा क्षेत्र भी जीवन से ओतप्रोत होकर सरस बनता है। लेखक के विज्ञान-सम्बन्धी ज्ञान ने, इस कृति में तन्मय करनेवाली विशेषता तथा समाप्त किये बिना न उठनेवाली अपूर्व रोचकता भर दी है। मूल्य २·२५।

भेड़ और मनुष्य

लेखक, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

इस मौलिक कहानी-संग्रह में गार्हस्थ्य जीवन से सम्बद्ध ऐसी सात लम्बी कहानियाँ हैं, जिनमें लघु उपन्यास की रोचकता और सरसता की मनोरम झाँकी है। मूल्य १·७५।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

गरीबों का सखा, शैतानों का यम और भारत का रबिनहुड



डाकू मोहन के विचित्र अभियान

प्रत्येक का मूल्य १·५०

मैं हूँ डकैत मोहन

मैं सबल के अत्याचार और दुखी की आह को सहन नहीं कर सकता, इससे मैं विद्रोही हूँ इसी से अनियमित-धूमकेतु की तरह मेरा उदय हुआ है। जहाँ अविचार है, जहाँ नृशंसता है और जहाँ कुत्सित वीभत्सता है वहीं पर मैं जा पहुँचता हूँ... मेरे हृदय का रक्त उन्माद हो जाने से नृत्य करने लगता है... मैं मृत्यु की भाँति अनिवार्य होकर कूद पड़ता हूँ। मैं डकैत हूँ, मैं चोर हूँ, मैं नियम को नहीं मानता। ह हा। ह हा।

१ मोहन।
२ मोहन जेल में।
३ रमा और मोहन।
४ रमा की शादी।
५ फिर से मोहन।
६ विरही मोहन।
७ मोहन और पंचमवाहिनी।
८ फाँसी के तख्ते पर मोहन।
९ नागरिक मोहन।
१० मोहन बर्मा की सीमा पर।
११ नारी-रक्षक मोहन।
१२ मोहन का प्रथम अभियान।
१३ नेता मोहन।
१४ मोहन का जर्मनी अभियान।
१५ प्रिय मोहन।
१६ गेस्टापो के मुकाबले में मोहन।
१७ बर्लिन में मोहन।
१८ मोहन का तूर्यनाद।
१९ मोहन का अनुराग।
२० मित्र मोहन।
२१ मोहन और स्वप्न।
२२ स्वप्न का महन्त-दमन।
२३ अफसर मोहन।
२४ डाकू मोहन।
२५ स्वप्न का सीमान्त संघर्ष।
२६ मोहन का प्रतिदान।
२७ नये रूप में मोहन।
२८ मोहन का नया अभियान।
२९ त्राता मोहन।
३० मोहन का प्रतिशोध।
३१ जर्मन षड्यंत्र में मोहन।
३२ मोहन और अणुबम।
३३ मोहन के तीन शत्रु।
३४ तीनों के साथ मोहन का मुकाबला।
३५ सोवियत रूस में मोहन।
३६ मोहन की प्रतिज्ञा रक्षा।
३७ सुन्दर वन में मोहन।
३८ युवक मोहन।
३९ मोहन और बनविहारी।
४० समुद्र-तल में मोहन।
४१ बन्दी मोहन।
४२ नारीत्राता स्वप्न।

दो रुपये जमा करके मोहन सिरीज के ग्राहक बन जाने पर इस सिरीज की प्रत्येक नई पुस्तक पक्के ग्राहकों को साधारण मूल्य में ही मिलेगी। वी० पी० द्वारा कम से कम दो पुस्तकें एक साथ मँगाने से डाकखर्च नहीं लगता।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

सरस्वती सीरीज नये रूप-रंग में

सरस्वती सीरीज में अनेक विषयों की उत्तम से उत्तम पुस्तकें छापी गई हैं। विषय, भाषा [औ]र छपाई सभी उत्तम है। और दाम भी अधिक नहीं। प्रत्येक पुस्तक का मूल्य केवल एक रुपया [पच]ास पैसे। आबालवृद्ध सभी की रुचि की सामग्री इन पुस्तकों में है। इन पुस्तकों का आदर [ज]नता ने बड़ी रुचि से किया है। नये संस्करण में इनका रूपरंग और भी आकर्षक हो गया है।

[सम]रकन्द की सुन्दरी—श्री व्रजेश्वर वर्मा एम०ए०
[पृथ]्वी का इतिहास—श्री सुरेन्द्र बालूपुरी
[गुप्त]भेद—श्री महावीरप्रसाद गहमरी
[सा]संदर्भ—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी
रामकृष्णचरितामृत—लल्लीप्रसाद पाण्डेय
मेरा संघर्ष—गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम०ए०
दैनिक जीवन और मनोविज्ञान—संशोधित संस्करण—इलाचन्द्र जोशी
वंशानुक्रमविज्ञान—शचीन्द्रनाथ सान्याल

●● ●●● ●●

सरस्वती सीरीज की दुर्लभ पुस्तकें

केवल ६२ पैसे में प्रत्येक पुस्तक,

जो आपके मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन में अपूर्व सहायक सिद्ध होगी।

समस्या का हल
मृत्युलोक की झाँकी
लाल दूत
अनन्त की ओर
वंशानुक्रम विज्ञान
मशीन के पुर्जे
रूपान्तर
रूस की क्रान्ति
धरती माता
इत्सिंग की भारत-यात्रा
परलोक-रहस्य
[illegible] की [illegible]दियाँ

मिलने का स्थान
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स), प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

घर का भेदिया
अग्रणी
नीमचमेली
जीवन-शक्ति का विकास
साथी
निष्कलङ्किनी
पश्चिम की चुनी हुई कहानियाँ
समस्या
च्याँगकाई शेक
हिन्दी के निर्माता (दूसरा भाग)
तीन नगीने
पूर्व के पुराने हीरे

विषय-सूची



भूखों का झुंड—हाट की ओर

चित्रकार : श्री सुधीररंजन खास्तगीर]

[प्रयाग संग्रहालय के सौजन्य से



[प्रयाग संग्रहालय के सौजन्य से

चित्रकार : श्री सुधीररंजन खास्तगीर]

सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—**शीला शर्मा**

वर्ष ६५ पूर्ण संख्या ७८० | इलाहाबाद : दिसम्बर १९६४ : अगहन २०२१ वि० | खण्ड २ संख्या ६

सम्पादकीय

संसार में राज्य-परिवर्तन—१९६४ में कुछ ऐसे ग्रह पड़े थे कि संसार के कितने ही देशों में शासन का परिवर्तन हो गया। यदि ज्योतिष को न भी माना जाय तो यह बड़ा विचित्र संयोग है कि संसार के इतने देशों में शासक बदल गये। सबसे महत्त्वपूर्ण क्रान्ति रूस में हुई जहाँ बड़े नाटकीय ढंग से ख्रुश्चेव को निकाल दिया गया। स्टालिन के बाद ख्रुश्चेव के शासन-काल में उस देश की राजनीति में इतना परिवर्तन आ गया था कि नाटकीय होने पर भी यह परिवर्तन हिंसक नहीं हुआ। ख्रुश्चेव को उन्हींके साथियों ने अलग किया। वहाँकी राजनीति की प्रत्येक बात की तरह उनके हटाये जाने का कारण भी ऐसा सरल नहीं है कि वह स्पष्ट रूप से कहा जा सके। उनके हटाये जाने में उनकी असफल कृषि नीति, औद्योगिक असफलताओं, अमरीका से खाद्यान्नों के आयात से कम्यूनिस्ट प्रणाली की हेठी, चीन से खुला कलह, रूमानिया का [illegible] [illegible] होने के प्रयास आदि नाना कारणों का हाथ है। यह भी कहा जाता है कि उन्होंने स्टालिन पर जिस व्यक्तिपूजा का आरोप लगाया था, वे स्वयं उसके अनुयायी हो गये थे। उनके कई सार्वजनिक काम अंतर्राष्ट्रीय शिष्टता के मानदंड से उतरकर होते थे, जैसे, राष्ट्रसंघ में मेज को जूते से पीटना। स्टालिन के बाद यह निश्चय किया गया था कि शासन का संचालन एक व्यक्ति के हाथ में न रहकर सामूहिक नेतृत्व में रहे। ज्यों-ज्यों ख्रुश्चेव की शक्ति बढ़ती गयी त्यों-त्यों वे सामूहिक नेतृत्व के इस सिद्धान्त की उपेक्षा करने लगे। वे कितने ही महत्त्वपूर्ण निर्णय अपने सहयोगियों से परामर्श किये बिना ही लेने लगे थे। इसलिए उन्हींके समर्थकों में असंतोष बढ़ता गया। किंतु ख्रुश्चेव के समान शक्तिशाली व्यक्ति को हटाना सरल काम न था। इसलिए उनके मित्रों ने कई महीने की गुप्त तैयारी के बाद उन्हें एकाएक हटा दिया। कहा जाता है कि वे किसी गंभीर रोग से पीड़ित भी हैं। उनके रहने के लिए अच्छा स्थान दिया गया है और उन्हें

कुछ पेंशन भी दी गयी है। जो भी हो, ख्रुश्चेव का शासन-काल इतिहास में स्मरणीय रहेगा। उन्होंने आणविक युद्ध की विभीषिका को समझा, और वे इस सही परिणाम पर पहुँचे कि मानवता को नष्ट होने से बचाने के लिए यह आवश्यक है कि अमरीका से किसी प्रकार का समझौता किया जाय। कम्यूनिस्टों का उद्देश्य सारे संसार में कम्यूनिस्ट दल का राज्य स्थापित करना है। उनका कहना है कि बिना युद्ध के पूँजीपति देश नष्ट नहीं किये जा सकते। अतएव युद्ध अनिवार्य है। संसार में कम्यूनिस्ट और पूँजीवादी देश एक साथ नहीं रह सकते। चीन का यही मत है। ख्रुश्चेव ने देखा कि अमरीका इतना शक्तिशाली है कि उससे लड़ने में रूस के नष्ट हो जाने का भी खतरा है। युद्ध के अतिरिक्त संसार के सामने कम्यूनिस्ट प्रणाली की अच्छाइयाँ रखने से भी कम्यूनिज्म फैल सकता है। अतएव उन्होंने साम्यवादी और पूँजीवादी देशों के सह-अस्तित्व, युद्ध की अनावश्यकता और शीतयुद्ध को समाप्त करने की नीति अपनायी। इससे संसार में तनाव कम हुआ, और युद्ध के बादल छटते हुए दीख पड़ने लगे। अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में ख्रुश्चेव की यह सबसे महत्त्वपूर्ण देन है। हम भारतवासी तो उनको विशेष प्रेम के साथ याद करेंगे क्योंकि कश्मीर के मामले में उन्होंने हमारा सदैव साथ दिया, चीन के आक्रमण के समय वे कम्यूनिस्ट चीन के समर्थक नहीं हुए और उन्होंने भारत की औद्योगिक उन्नति तथा सैनिक बल बढ़ाने में हमारी मूल्यवान् सहायता की। यह प्रसन्नता और बड़े संतोष की बात है कि उनके उत्तराधिकारी उन्हींकी नीति का अनुसरण कर रहे हैं। नयी रूसी सरकार के प्रायः सभी नेता भारत से भली भाँति परिचित हैं और उन्हें भारत की मित्रता की उतनी ही कामना है जितनी ख्रुश्चेव को थी।

इस वर्ष का दूसरा महत्त्वपूर्ण शासन-परिवर्तन इँगलैंड में हुआ जहाँ चौदह वर्ष के दीर्घकालीन शासन के बाद 'कंसर्वेटिव' दल को अधिकार की कुर्सी छोड़नी पड़ी। 'सोशलिस्ट' या 'लेबर' दल शक्ति पा तो गया किंतु उसका बहुमत आधा दर्जन ही है। दोनों दलों का इतना जोर था कि यह कहना कठिन था कि इनमें से कौन जीतेगा। सोशलिस्ट दल का बहुमत बहुत कम है, और यह द[illegible] इतनी तेजी से अपने सिद्धान्तों को क्रियान्वित करता जा रहा है कि यह संभव है कि जनता में उसकी प्रति[illegible] हो तथा वहाँ थोड़े दिन बाद ही दूसरा चुनाव हो जाय। सामान्य रूप से सोशलिस्ट दल की भारत के प्रति सहानुभूति रही है, किंतु अभी भारत के प्रतिरक्षा मंत्री श्री चह्वाण जब भारत के लिए सैनिक सहायता और सहयोग प्राप्त करने इँगलैंड गये तब उन्हें वह सहानुभूति नहीं मिली जिसकी आशा की जाती थी। इँगलैंड इस समय आर्थिक संकट में है। वह उसे दूर करने में लगा हुआ है। पाउण्ड (इँगलैंड की) मुद्रा कमजोर होती जा रही है। उसका मूल्य स्थिर रखने के लिए कई देशों ने उसकी सहायता की है। यह कहना कठिन है कि यह नयी सरकार कितने दिनों चलेगी।

तीसरी महत्त्वपूर्ण घटना अमरीका का चुनाव था। श्री कैनेडी की हत्या के बाद श्री लिंडन जानसन उपराष्ट्रपति होने के कारण, विधान के अनुसार, राष्ट्रपति हो गये थे। किंतु इस वर्ष के चुनाव में वे भारी बहुमत से राष्ट्रपति निर्वाचित हो गये हैं। उनके विरोधी सिनेटर गोल्डवाटर थे जो उग्र विचारों के हैं। अमरीका की जनता ने श्री लिंडन जानसन को राष्ट्रपति चुनकर राष्ट्रपति कैनेडी की नीति का समर्थन किया है क्योंकि श्री जानसन भी सामान्यतः उन्हींकी नीति का अनुसरण करते हैं। आशा है कि अगले चार वर्षों में रूस के साथ सौमनस्य बढ़ेगा और संसार इन दोनों महान् आणविक शक्तियों की टक्कर से बच जायगा।

कांगो, वियतनाम और सऊदी अरब में भी शासन परिवर्तन हुए हैं। यह इतिहास का व्यंग्य है कि कटंगा को स्वतंत्र करने का प्रयास करके कांगो का अंग-भंग करने के इच्छुक समूचे कांगो के प्रधान मंत्री हो गये हैं। अधिकांश अफ्रीकी देश उनसे घृणा करते हैं। कांगो के पूर्वी भाग में विद्रोह हो गया है और प्रायः एक-तिहाई देश पर विद्रोहियों ने अधिकार कर लिया है। इन विद्रोहियों को चीन की सहायता प्राप्त है। शोम्बे की सरकार से अमरीका की सहानुभूति है। विद्रोहियों ने अपने अधिकृत क्षेत्र में जो गोरे विदेशी उन्हें मिले उनको पकड़ लिया था। उनका जीवन खतरे में था। उनमें अधिकांश बेलजियम देशवासी थे। जब बेलजियम ने देखा कि उन्हें छुड़ाने का अन्य कोई उपाय नहीं है तब उसने अपने हवाई-छतरी से उतरनेवाले कुछ सैनिक दस्ते उन दो नगरों में उतार दिये जिनमें ये गोरे [illegible] गये थे। [illegible]लजियन सैनि[illegible]

[सैनि]कों को वहाँ उतारने का काम अमरीकन वायुयानों ने [कि]या। इन बेलजियन सैनिकों ने डेढ़ हजार से अधिक [गो]रों का उद्धार किया। उन्होंने कुछ भारतवासियों का [भी] उद्धार किया जो इन नगरों में फँस गये थे। उनका [उ]द्धार करने के बाद बेलजियन दस्ते अपने देश लौट गये। [कि]न्तु अमरीका और शोम्बे के विरोधियों ने बेलजियम [औ]र अमरीका पर कांगो पर आक्रमण करने और उसके [आ]न्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का आरोप लगाया है। [हमा]री सम्मति में बेलजियम और अमरीका का यह कार्य [इ]न निरपराध व्यक्तियों की रक्षा करने के लिए किया [ग]या था और वह प्रशंसनीय था।

अरब या सऊदी अरब एक दूसरा देश है जिसमें शासन [का] परिवर्तन हुआ है। यह देश भारत के अपेक्षाकृत निकट [है]। इसका क्षेत्रफल १५ लाख वर्गमील आँका जाता है [औ]र इतने बड़े देश की जनसंख्या केवल साठ लाख है। [इ]सका कारण यह है कि यह देश अधिकतर मरुस्थल है। [कि]न्तु इसके कुछ भागों में मिट्टी के तेल के बहुत से कुएँ [हैं] जिनमें मिट्टी के तेल का प्रचुर भंडार है। इन कुओं [का] ठेका विदेशी कम्पनियों को दे दिया गया है जो लाभ [का] बहुत बड़ा भाग बादशाह को देती हैं। इस प्रकार [बा]दशाह को इन कम्पनियों से प्रतिवर्ष जो लाभांश मिलता [है] वह भारतीय मुद्रा में २०० करोड़ रुपये के बराबर है। [बा]दशाह इब्न सऊद इस धन का मनमाना उपभोग करते [थे]। उनका खर्च भी शाही था। चार बेगमों के अति[रि]क्त उनके प्रायः एक सौ उपपत्नियाँ हैं। उनसे लगभग ४० लड़के और कितनी ही लड़कियाँ हैं। उन्हें महल [ब]नाने और मोटर रखने का भी बड़ा शौक है। बादशाह [ने] दर्जनों महल बनवा डाले और उनके पास सैकड़ों मोटरें [हैं]। उन्हें अमरीकन मूल्यवान् कडलियक मोटर बहुत [प्रि]य है और अधिकतर वे उन्हें ही खरीदते रहे हैं। उन्हें [या]त्रा का भी शौक है। वे शाही ठाठ से यात्रा करने के [अ]भ्यस्त हैं। इन सब शौकों पर खर्च करने के बाद देशहित [के] लिए बचत मुश्किल से हो सकती थी। परिणाम यह [हु]आ कि जनता उनसे बहुत असंतुष्ट हो गयी। उनके [छो]टे भाई फैजल योग्य तो हैं ही, साथ ही उनका जीवन [ब]हुत सरल और सादा है तथा उन्हें इस प्रकार के खर्चीले [शौ]क नहीं हैं। वे चतुर राजनीतिज्ञ हैं। शाह सऊद से [लो]गों का [असं]तोष पुराना है, और एक बार शाहजादा फैजल को कुछ दिनों के लिए नायब के रूप में शासन के अधिकार मिल भी गये थे। किंतु शाह सऊद को अपने अधिकारों का अपहरण पसन्द न आया। शाहजादा फैजल भी भाई से झगड़ा न करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने 'नायब' पद छोड़ दिया। किंतु इधर शाह सऊद के विरुद्ध असंतोष इतना बढ़ गया कि अरब के मीर मुफ्ती ने उलमाओं और शाहजादों का एक सम्मेलन बुलाया। इस सम्मेलन ने शाह सऊद से कहा कि आप पहिली नववंर तक तख्त छोड़ दें, नहीं तो आप अलग कर दिये जायँगे। शाह को समर्थक नहीं मिले, और अन्त में शाहजादा फैजल सऊदी अरब के बादशाह पद पर अभिषिक्त कर दिये गये। शाह फैजल योग्य राजनीतिज्ञ, अच्छे प्रशासक और चरित्रवान् व्यक्ति हैं। आशा है कि उनके शासन-काल में सऊदी अरब बहुमुखी उन्नति करेगा।

इन परिवर्तनों का सिलसिला अभी बंद नहीं हुआ। हम यह टिप्पणी लिख ही रहे थे कि श्रीलंका की सरकार के पतन का समाचार मिला। संसद में केवल एक वोट से हार जाने के कारण श्रीमती भंडारनायक की सरकार को त्यागपत्र देना पड़ा है। वहाँ शीघ्र ही फिर से चुनाव होंगे। देखना है कि वहाँकी राज्यलक्ष्मी किस दल को वरण करती है।

शिक्षामन्त्री की नीति—हमारा यह बहुत बड़ा दुर्भाग्य रहा है कि हमारी राष्ट्रीय शिक्षा-नीति का संचालन स्वाधीनता-प्राप्ति से लेकर अब तक प्रायः गलत हाथों में रहा है। इसका परिणाम यह है कि वास्तविक अर्थ में शिक्षा की कोई राष्ट्रीय नीति अभी तक नहीं बन पायी है। यहाँ तक कि संविधान में निहित नीति-निर्धारण के मूल सिद्धान्त—ग्राम स्वराज्य की कल्पना पर ही कुठाराघात होता रहा है। खेद यह है कि यह सब किया जा रहा है मानवीय अधिकारों की रक्षा के नाम पर, संयुक्त राष्ट्रसंघ की दुहाई देकर, विधिविशारद शिक्षामन्त्री श्री मुहम्मद करीम चागला द्वारा। हमने श्री चागला की नीति की आलोचना अब तक जान-बूझकर नहीं की। हम इस आशा में बैठे रहे हैं कि वे न्यायप्रिय हैं, वे कम से कम न्यायोचित शिक्षानीति का निर्वाह तो करेंगे, पर जबसे उन्होंने अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाये रखने के लिए ही नहीं, जहाँ वह नहीं थी वहाँ भी उसे फिर से स्थापित

करने के लिए मानवीय अधिकार-पत्र उद्धृत करना शुरू किया है, तबसे हमारा धैर्य टूटने लगा है। श्री चागला ने इधर निरन्तर कुछ बड़े खतरनाक कदम उठाये हैं, जिनकी ओर इशारा करना हमारा कर्त्तव्य हो जाता है। पहला कदम तो उनका था ऐसे शिक्षा-आयोग की स्थापना जिसमें बहुत बड़ी संख्या तो विदेश के लोगों की है, और जो स्वदेश के हैं भी, उनमें से भारतीय शिक्षापद्धति का तथा राष्ट्र-भाषा का प्रतिनिधित्व करनेवाला कोई भी नहीं है। इस्लामी अध्ययन का प्रतिनिधित्व करनेवाला जरूर है। यह आयोग प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय शिक्षा तक की कुल नीति का नकशा तैयार करेगा। स्पष्ट है कि इस आयोग से न तो राष्ट्रीय आकांक्षा और हित की पूर्त्ति हो सकती है और न गांधीजी की बुनियादी तालीम का सपना ही पूरा किया जा सकता है। अब एक नयी घोषणा करके शिक्षामन्त्री ने इस आयोग के अधिकार और बढ़ा दिये हैं। वे इस आयोग से शिक्षा के माध्यम के प्रश्न पर अन्तरिम निर्णय भी माँग रहे हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि जिस प्रश्न पर निर्णय लिया जा चुका है, उसको नये सिरे से उन्होंने झगड़े में डाल दिया है। सन्तोष की बात है कि संसद में श्री चागला के इस नये खतरनाक कदम की आलोचना हुई है, और हम आलोचकों को इस बात के लिए बधाई देते हैं। पर साथ ही हम इस प्रश्न पर शिक्षाशास्त्रियों का ध्यान आकृष्ट करना चाहेंगे कि वे इस नयी घोषणा का खुलकर विरोध करें। हमारे उप-राष्ट्रपति श्री जाकिर हुसैन ने (जो वास्तविक अर्थ में शिक्षाशास्त्री हैं) उचित अवसर पर दिल्ली विश्वविद्यालय के दीक्षान्त भाषण में इस सम्बन्ध में एक मार्मिक बात कही है। उन्होंने कहा है—"यदि भारतीय विश्वविद्यालयों को शिक्षा के लिए सच्ची लगन होती तो उन्होंने क्षेत्रीय भाषाओं को अब तक माध्यम स्वीकार कर लिया होता। यदि उन्होंने अंग्रेजी में सोचने-समझने के बजाय भारतीय भाषाओं में सोचना-समझना शुरू कर दिया होता, अंग्रेजी को सिर्फ एक बाहरी संसार से सम्पर्क बनाये रखने का माध्यम बनाकर रखा होता तो अंग्रेजी की न्यूनतम जान-कारी रखनेवाले युवकों को भी ऊँची शिक्षा देने में वे समर्थ होते।" शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो, यह नीति तो स्वाधीनता मिलने के पहले अपनायी जा चुकी थी, अब [illegible] तर्क देकर एक मरे हुए माध्यम को अपनाने की शर्त करना शिक्षा के विकास को पीछे धकेलना तो है ही, साथ ही अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का गला घोंटना भी है।

श्री चागला का दूसरा खतरनाक कदम है शिक्षा का केन्द्रीकरण। शिक्षा पर व्यय करने के लिए राज्यों को अधिक धन देने के बजाय, पुराने जमींदारों और साहूकारों के हथकण्डे अपनाकर, शिक्षा के क्षेत्र में राज्यों को भिख-मंगा बनाया गया, और अब उनको शिक्षा के अधिकार से बेदखल किया जा रहा है। इसका परिणाम प्रत्यक्ष है। गुजरात राज्य सरकार की नीति की आलोचना करते हुए श्री चागला ने अभी हाल में कहा है कि 'अंग्रेजी को पाँचवीं कक्षा से पढ़ाने की माँग पूरा न करना संयुक्त राष्ट्रसंघ मानवीय अधिकारपत्र की अवहेलना है।' उनका कहना है कि 'प्रत्येक अभिभावक को अधिकार है कि वह अपने बच्चे को जिस भाषा में चाहे शिक्षा दिलाये।' उन्होंने अन्यत्र एक हाईस्कूल को इस बात पर बधाई दी कि उसमें गुज-राती के साथ-साथ अंग्रेजी में भी शिक्षा दी जा रही है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की रिपोर्ट पर संसद में बहस शुरू करते हुए उन्होंने कहा—"मैं ऐसी भाषा चाहता हूँ जो विभिन्न लोगों, विश्वविद्यालयों, न्यायालयों और विद्वानों के बीच कड़ी बन सके और जब तक हिन्दी अंग्रेजी का स्थान ग्रहण न कर ले तब तक हमें अंग्रेजी के जो कि एक मात्र कड़ी है, नष्ट नहीं करनी चाहिए।" उन्होंने यह भी घोषणा की 'मैं अंग्रेजी को माध्यम बनाये रखने के लिए राज्य सरकारों से परामर्श करके संविधान में संशोधन प्रस्तुत करूँगा।' इन घोषणाओं से स्पष्ट है कि शिक्षा को केन्द्रीय विषय बनाने के पीछे शिक्षामन्त्री का मन्तव्य क्या है। वे मानवीय अधिकार-पत्र की दुहाई तो दे सकते हैं, पर भारतीय जनता की आकांक्षाओं का ध्यान नहीं रख सकते। कौन ऐसा देश है जिसमें देश के हित का ध्यान सर्वोपरि न हो और देश का दायित्व नगण्य अल्पसंख्यक का हित हो? अमरीका में ऐसे अल्पसंख्यक अभिभावक अपनी भाषा के माध्यम से शिक्षा का प्रबन्ध अपने खर्च से करते हैं। राज्य कुल जनता के हित के लिए है। पर भारत के शिक्षामन्त्री अंग्रेजी-परस्तों के साथ अन्याय नहीं कर सकते। हाँ, उन्हें भारतीय जनता के हित के साथ अन्याय करने में आपत्ति नहीं है। शिक्षा केन्द्रीय विषय हो भर जाय, श्री चागला के राज्य में हिन्दी का ही नहीं, प्रत्येक भारतीय मातृभाषा का महत्त्व अपने आप कम हो जायेगा।

अब एक नया शिगूफा उन्होंने छोड़ा है। वह यह कि हिन्दीभाषी राज्य गुनहगार हैं कि उन्होंने त्रिभाषीय सूत्र (फार्मूले) का पालन नहीं किया। अहिन्दीभाषी राज्यों में हिन्दी इस फार्मूले के अधीन पढ़ायी जा रही है, पर हिन्दीभाषी राज्यों में हिन्दीतर भारतीय भाषा के नाम पर अधिकतर संस्कृत पढ़ायी जा रही है। स्पष्ट है कि उन्होंने हिन्दीभाषी राज्यों को भारतीय एकता की रक्षा में असमर्थ घोषित करके उन राज्यों की समग्र शिक्षानीति को ही अपराधी करार दे दिया है। जिसे मारना हो, उसको कुत्ता गाली दे दो। श्री चन्द्रभानु गुप्त ने श्री चागला की इस नयी हरकत का करारा जवाब देते हुए ठीक ही कहा है कि "हम लोगों ने तत्कालीन शिक्षामंत्री और प्रधान मंत्री से राय ली थी और उन्होंने त्रिभाषी फार्मूले के अन्तर्गत संस्कृत पढ़ाने से सहमति प्रकट की थी।" श्री चागला यह भूल गये हैं कि भारतीय एकता की रक्षा के लिए संस्कृत कम आवश्यक नहीं है। इस सम्बन्ध में हमें श्री कस्तूरी सन्तानम् का कई वर्षों पूर्व विन्ध्य प्रदेश में दिया गया भाषण स्मरण आता है जिसमें उन्होंने कहा था कि हिन्दीतर भाषाभाषी राज्यों के ऊपर दायित्व होना चाहिए हिन्दी के प्रसार का, और हिन्दीभाषी राज्यों के ऊपर दायित्व होना चाहिए संस्कृत के प्रसार का। तभी एक समन्वित शिक्षानीति अमल में लायी जा सकती है। अहिंदी-भाषी राज्यों में हिंदी सीखना इसलिए आवश्यक है कि वह केंद्र और अंतर्राज्य संचरण की भाषा घोषित की गयी है। उसका कुछ व्यावहारिक उपयोग है और जो हिन्दी-भाषी जन हिन्दीतर भाषी क्षेत्र में आजीविका के लिए रहते हैं या रहना चाहते हैं, वे अपने आप उस क्षेत्र की भाषा सीखेंगे, पर राष्ट्रीय दायित्व की पूर्ति के लिए हिन्दी के अलावा हिंदी भाषाभाषी दूसरी भाषा क्यों सीखने को विवश हों। (वह भी ऐसी भाषा जिसका सामान्य व्यक्ति को शायद सारे जीवन कभी काम ही न पड़े और जिसे अव्यवहार के कारण वह स्कूल छोड़ते ही भूल जाय।) यह बात समझ में नहीं आती। संस्कृत की बात इसलिए समझ में आती है कि संस्कृत के ऊपर दूसरे क्षेत्र ध्यान न दे सकें, उस दशा में संस्कृत को एकता के एक जीवित स्रोत के रूप में जीवित रखना हिन्दीभाषी क्षेत्र का दायित्व हो जाता है। हमारे शिक्षामन्त्री द्वारा उस प्रकार हिन्दी-भाषी क्षेत्र की आलोचना करने से यह भी खतरा है कि अहिंदीभाषी क्षेत्रों में हिन्दीभाषी क्षेत्र के प्रति असन्तोष बढ़े, हिन्दी और हिन्दीतर भाषाओं के बीच एक अस्वस्थ संघर्ष हो जाय। अभी पिछले वर्ष ही तत्कालीन शिक्षामंत्री श्री कबिर ने लखनऊ विश्वविद्यालय के अपने दीक्षान्त भाषण में कहा था कि उत्तर प्रदेश के पिछड़ेपन का कारण हिन्दी है। श्री चागला भी वही राग अलापने लगे हैं। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है। एक मसल है "बिल्ली बख्शे, मुर्गा बाँड़ (पुच्छहीन) ही भला।" उत्तर प्रदेश या दूसरे हिन्दीभाषी राज्य शिक्षा के मामले में केन्द्र का संरक्षण नहीं चाहते, भले ही वे साधनहीन बने रहें। जब राष्ट्रीय हित का संरक्षण करनेवाले ही राष्ट्रीय मूल्यों के भक्षक बन जायँ तो हमें विवश होकर अपने आप राष्ट्रीय हित का संरक्षण करने के लिए उपाय सोचना है।

हम समझते हैं कि समय आ गया है कि हम स्पष्ट रूप से यह माँग करें कि श्री चागला अपने को राष्ट्रीय चिन्तन में ढालने की कोशिश करें, और राष्ट्र की आकांक्षा को अपने रागद्वेष से ऊपर रखें। यदि वे ऐसा न करना चाहें तो भारत सरकार शिक्षामन्त्रित्व किसी ऐसे योग्य आदमी को सौंपे जो हमारी आकांक्षाओं को समझ सके और इसके अनुसार शिक्षानीति का संचालन कर सके। राष्ट्रीय शिक्षानीति का आधार बाहरी जगत् नहीं हो सकता, और न हो सकता है मानसिक गुलामी के शिकार नौकरशाहों के हितों का संरक्षण। राष्ट्रीय शिक्षानीति का आधार भारत की सर्वसाधारण जनता की आवश्यकता और उसके आदर्श हैं। उसके आदर्श अँगरेजी या किसी भी विदेशी भाषा में मूर्त्त रूप नहीं धारण कर सकते, क्योंकि इस जनता का एक विशाल और गौरवशाली इतिहास है। उस इतिहास में अँगरेजी का योगदान नगण्य है।

महाराष्ट्र और बंगाल की राजभाषाएँ—गुजरात ने राज्य बनते ही एक अधिनियम बनाकर गुजराती को अपनी राजभाषा घोषित कर दिया था। महात्माजी के प्रदेश से यही आशा की जाती थी। मदरास ने सन् १९५८ ही में तमिल को राजभाषा बना लिया था। किंतु अन्य भाषायी राज्यों ने, भाषावार राज्य बनाने का बड़ा प्रबल आग्रह तो किया, परन्तु भाषा के आधार पर बन जाने के बाद उन्होंने अपनी भाषा को अपने राज्य की भाषा बनाने में कोई विशेष उत्सुकता नहीं दिखलायी। यहाँ तक कि

बंगाल ने भी, जो अपने भाषा (बँगला) प्रेम के लिए प्रसिद्ध है, बँगला को राज्यभाषा बनाने का काम राज्य बनने के कई वर्ष बाद, रवीन्द्र जन्मशती वर्ष में, किया। उस वर्ष उसने अपना राजभाषा अधिनियम बनाया। उसे बने भी प्रायः एक वर्ष हो गया किंतु अभी तक वह अमल में नहीं लाया गया। अब बंगाल ने उसे कार्यान्वित करने की घोषणा की है। बँगला अगले वर्ष से वहाँके राजकाज में व्यवहार में आने लगेगी। महाराष्ट्र राज्य देर से बना किंतु उसने भी मराठी को राजभाषा बनाने का निश्चय कर लिया है। राजभाषा विधेयक राजपत्रित हो गया है और वह विधान सभा के अगले सत्र में पारित हो जायगा। हमें प्रसन्नता है कि ये राज्य जनता की भाषा में शीघ्र काम करने लगेंगे। स्वराज्य तब तक अर्थहीन है जब तक जनता की भाषा में राजकाज नहीं होता। देश में जनतंत्र की सफलता के लिए यह परम आवश्यक है कि प्रत्येक राज्य में शीघ्र से शीघ्र सारा राजकाज जनता की भाषा में होने लगे जिससे जनता उसके क्रिया-कलाप को सरलता से समझ सके, सरकार के कामों में समझ-बूझकर और समझदारी से योगदान कर सके तथा शासित और शासक वर्गों का अंतर मिट जाय। भाषावार राज्य बन जाने पर भी राजकाज में राज्यों की भाषाओं का उपयोग न करना आश्चर्यजनक है। यदि अँगरेजी ही को राजकाज की भाषा बनाये रखना था तो भाषावार राज्यों की क्या आवश्यकता थी? हमें खेद है कि अब भी कितने ही राज्यों ने अपने राज्यों की भाषा को अपनी राजभाषा बनाने के लिए कोई कार्रवाई नहीं की।

नागा प्रदेश की उलझन——हमारे देश के आदर्श बड़े ऊँचे हैं। हम वह आदर्श काम करना चाहते हैं जो संसार में कभी नहीं हुआ। सुनते हैं कि इस देश में ऐसे तपस्वी भी हुए हैं जिन्होंने बाघों को कुत्तों की तरह पालतू बना लिया था। यह कथा चाहे कोरी कपोल-कल्पना ही क्यों न हो, किंतु हमारे नेताओं ने डाकुओं के हृदय-परिवर्तन का प्रयोग इसी युग में किया, यद्यपि उसके बाद भी मध्य-प्रदेश में डाकुओं की गतिविधि रुकी नहीं। यदि डाकुओं की संख्या कम हुई तो वह पुलिस के प्रयत्नों और उसकी राइफिलों से। हमारी सरकार भी नागा विद्रोहियों की समस्या को बहुत कुछ उसी आदर्शवाद से हल करना चाहती है। विद्रोही नागा बराबर कहते आये हैं कि हम अपना स्वतंत्र राज्य बनाना चाहते हैं, हमने उसे बना भी लिया है, आप उसे मान्यता दे दें। उनकी दृष्टि से समस्या इतनी ही है कि भारत-सरकार उन्हें 'स्वतन्त्र' मान ले! किंतु हमारी सरकार इन बाघों को शाकाहारी बनाना चाहती है। मालूम होता है कि उसे विश्वास है कि वह उन्हें भी गांधीवादी सत्य और अहिंसा का पुजारी बना देगी। यह कार्यक्षेत्र महात्माओं, साधु-संतों और सर्वोदयी लोगों का है। जब तक शासन का अंतिम बल सैनिक शक्ति है तब तक शासन इस प्रकार के हवाई आदर्शों से नहीं चल सकता। अधिकांश नागा भारत के साथ हैं। केवल कुछेक हजार नागा——जो एक दो उपजातियों के हैं——विद्रोह किये हुए हैं। हमारी सरकार की परस्पर-विरोधी नीति हम ऐसे सामान्य मनुष्य की समझ के परे है। नागालैण्ड भारत का अभिन्न अंग है। केन्द्रीय सरकार में अन्य राज्यों की भाँति उसका सम्बन्ध गृह-विभाग से होना चाहिए, किंतु भारत-सरकार का विदेश विभाग उसकी देखरेख करता है। विद्रोही नागा बराबर स्वतन्त्रता की, और अपना अलग स्वतंत्र राज्य बनाने की, बात करते हैं। फिर भी हमारी सरकार उनसे 'समझौता' करने का प्रयास कर रही है। समझौते के बीच में उन्होंने स्वतंत्र राज्य बनाने की जो बातें कही हैं, उनके रहते हमें 'समझौते' की कोई गुंजाइश नहीं मालूम होती। फिर भी हमारी सरकार समझौते की बातें करती जा रही है। इस बीच जो युद्ध-विराम हुआ उसका उपयोग विद्रोहियों ने अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाने म किया। इस बीच उन्होंने अपनी सेना में नये रंगरूट भर्ती किये तथा अपने सैनिकों को सैनिक प्रशिक्षण के लिए पाकिस्तान भेजा। युद्धविराम की एक शर्त यह भी थी कि विद्रोही नागा अपने हथियार समर्पित कर देंगे। उन्होंने इस शर्त को भी पूरा नहीं किया। युद्धविराम का मुख्य परिणाम यह हुआ है कि विद्रोहियों की सैनिक शक्ति बढ़ी है, तथा उनके साथ नरमी का बर्ताव देखकर भारत-निष्ठ नागाओं के मनोबल पर क्या प्रभाव पड़ा होगा, इसकी केवल कल्पना की जा सकती है। सबसे आश्चर्य की बात यह है कि इस गृह-विद्रोह को शान्त करने में हमारी सरकार ने एक विदेशी——रेवरैण्ड स्काट——की सहायता ली है। और इन महाशय का पूर्व इतिवृत्त क्या है? ये वे ही सज्जन हैं जिन्होंने विद्रोही नागाओं के नेता——दे...

...फीजो को लंदन में अपने घर में शरण ही नहीं दी, ...की हर प्रकार से सहायता भी की। यह समझने के ...बड़ी कल्पना या बुद्धि की आवश्यकता नहीं है कि स्काट ...पक्ष व्यक्ति नहीं है। ऐसे व्यक्ति को गृहकलह के ...विवाद में डालने की साधुता हमारी समझ में नहीं ...आयी।

विद्रोही नागा जब पूर्ण स्वतन्त्रता, और अपना अलग ...तन्त्र राज्य चाहते हैं तो उनसे क्या समझौता हो सकता ...? भारत के वर्तमान संविधान में प्रत्येक राज्य को ...आंतरिक शासन में बहुत कुछ अधिकार हैं। वे उसके ...अधीन रहकर अपनी उन्नति कर सकते हैं। नागालैण्ड ...एक अत्यन्त पिछड़ा प्रदेश है। उसकी वार्षिक आय तीन-...चार लाख रुपये होगी। उसे अन्य राज्यों के समकक्ष ...लाने के लिए भारत सरकार उसपर लाखों ही नहीं, करोड़ों ...रुपया प्रतिवर्ष व्यय करती है और करती रहेगी। यदि ...वह स्वतंत्र राज्य हो जाय तो उसका व्यय कैसे चलेगा? ...अवश्य ही विदेशी राष्ट्र उसकी सहायता करेंगे, और इस ...प्रकार वे उसकी नीति को प्रभावित करेंगे। यदि वे भारत ...के विरोधी हुए तो नागालैण्ड भारत के लिए एक नया ...सिर-दर्द हो जायगा। अतएव यदि भारत की अखंडता ...को, कुछ देर के लिए, भुला भी दिया जाय तो इस कारण ...भारत की सहज बुद्धि स्वतंत्र नागालैण्ड को किसी हालत ...में स्वीकार नहीं कर सकती। तब क्या समझौता हो सकता ...है? उसे सिकिम के स्तर का राज्य मान लिया जाय? ...इसमें अनेक व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं, किंतु यदि उनपर ...ध्यान न भी दिया जाय तो भी ऐसा करने से एक नया ...उदाहरण बन जायगा, और द्रविड़स्तान तथा सिक्खिस्तान ...के उग्र समर्थकों को शह मिलेगी और देश टुकड़े-टुकड़े ...होकर निर्बल हो जायगा। अतएव हमारी समझ में सरकार ...को 'समझौते' का नाटक तुरन्त बंद करना चाहिए, और ...उसे निश्चय कर लेना चाहिए कि नागा लोगों के सर्वोच्च ...हितों की रक्षा करते हुए, उनकी संस्कृति, उनके रीति-रिवाजों आदि को सुरक्षित रखते हुए, वह वहाँ उसी प्रकार ...शासन करेगी जिस प्रकार बिहार या उत्तर प्रदेश में शासन ...करती है। सशस्त्र विद्रोह करनेवाले केवल 'बल' की भाषा ...समझते हैं। उनके लिए देश में कानून हैं। सरकार को ...कानून का प्रयोग करके विद्रोहियों को उसी भाषा में ...समझाना चाहिए जिसे वे समझते हैं। नागालैण्ड की भौगो-लिक स्थिति उस सीमान्त पर है जो आज संकटग्रस्त है। ...अतएव नागालैण्ड के विद्रोह की समस्या शीघ्रातिशीघ्र ...सुलझाना हमारे लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। समझौते की ...वार्ता से स्पष्ट है कि विद्रोही नागाओं से समझौता करने ...के लिए कोई वास्तविक आधार नहीं है।

पुरातत्त्व पखवारा—संयुक्त राष्ट्रसंघ के अंतर्गत एक ...संस्था है जिसका नाम United Nations Educational, Scientific and Cultural Organisation—'संयुक्त-राष्ट्र का शैक्षिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन' है। राष्ट्रसंघ के सदस्य इसके भी सदस्य हैं। इस संगठन ने संसार के सब देशों को सलाह दी कि वे अपने-अपने यहाँ नवम्बर का प्रथम पखवारा 'पुरातत्त्व पखवारे' के नाम से मनावें जिससे लोगों में अपने देश के पुरातत्त्व के अवशेषों में रुचि उत्पन्न हो, और वे उनकी सुरक्षा की आवश्यकता का अनुभव करने लगें। भारत-सरकार राष्ट्रसंघ की बड़ी समर्थक है। उसने तुरन्त इस पखवारे को मनाने के आदेश अपने पुरातत्त्व विभाग तथा राज्यों को भेज दिये। इस देश में पुरातत्त्व के प्रति जो व्यापक उदासीनता है वह जनता को इसके सम्बन्ध में जानकारी देने, दीर्घकाल तक योजनाबद्ध कार्यक्रम और उसकी उपयोगिता समझाने ही से दूर की जा सकती है। इसलिए इस संगठन का यह सुझाव बहुत समीचीन था। हम नहीं जानते कि देश के अन्य स्थानों में यह पखवारा किस तरह मनाया गया, किंतु लखनऊ में इसे मनाने के लिए सरकार की ओर से जो प्रदर्शनी की गयी उसे देखने हम अवश्य गये। उसके संबंध में हम अपने विचार व्यक्त करना आवश्यक समझते हैं।

यह प्रदर्शनी केवल फोटोग्राफों की थी। फोटोग्राफ बड़े आकार के थे, और वे बहुत सुन्दर थे। पुरातत्त्व की सूक्ष्मताओं का भी उनमें चित्रण था, किंतु वे फोटोग्राफी कला के बहुत अच्छे नमूने थे। कुछ फोटोग्राफों का महत्त्व इतना पुरातत्त्व की दृष्टि से नहीं था जितना कि फोटोग्राफी की कला की दृष्टि से। फोटोग्राफ वास्तव म प्रशंसनीय थे। किंतु पुरातत्त्व पखवारे के अवसर पर उत्तर प्रदेश की राजधानी में की गयी इस प्रदर्शनी में राज्य के किन पुरातत्त्व-अवशेषों के चित्र दिखलाये गये थे? केवल एक हिंदू मंदिर (भितरगाँव के गुप्तकालीन ईंट के मंदिर) के कुछ चित्र थे। शेष सब चित्र मुगल और नवाबी इमारतों के थे। उत्तर प्रदेश की पुरातत्त्व प्रदर्शिनी में प्रदर्शन करने योग्य हिंदू काल के अवशेष मानों हैं ही नहीं। ताजमहल, फतेहपुर सीकरी के मकबरे और महल तथा लखनऊ के इमामबाड़े ही हमारे पुरातत्त्व के इतने महत्त्वपूर्ण स्मारक हैं जो राज्य-प्रदर्शनी में प्रदर्शित किये जायँ, और वे ही बहुविज्ञापित प्रदर्शनी में जनता के सामने सर्वोत्तम और सर्वाधिक महत्त्व के पुरातत्त्व-स्मारकों के रूप में रखे जायँ। देवगढ़, कालिंजर, वृंदावन, महोबा आदि के हिन्दू स्मारकों का नाम लेने से शायद हमारी सरकार हमें 'साम्प्रदायिक' कहकर अपराधी घोषित कर दे, किंतु क्या उत्तर प्रदेश में ऐसे बौद्ध, जैन या ईसाई स्मारक भी नहीं हैं जिनके चित्र ऐसे अवसरों पर प्रदर्शित किये जा सकें? दुर्भाग्य से हमारे राज्य में 'संस्कृति' एक उपेक्षित विषय है। हम ऊपरी आदेशों के पालन म 'खानापूरी' करके लम्बी-चौड़ी रिपोर्ट भेज देते हैं। ये कार्य किस ढंग से किये गये, उनसे उद्देश्य की पूर्ति हुई या नहीं, उनसे कुछ लाभ हुआ या नहीं—इन बातों पर विचार

करने की आवश्यकता नहीं समझी जाती। हमें खेद है कि उत्तर प्रदेश में इस महत्त्वपूर्ण विषय की इतनी दयनीय उपेक्षा है।

डा० नगेन्द्र के 'रससिद्धान्त' का प्रकाशन––संस्कार और उत्सव का प्रेम मनुष्य-स्वभाव का प्राकृतिक अंग है। वह उसके मन में बड़ा गहरा बैठा हुआ है। किसी लेखक की पुस्तक का प्रकाशन उसके लिए प्रायः उतने ही आह्लाद की घटना है जितना पुत्र-जन्म। अतएव इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि पुस्तक का प्रकाशन भी धूमधाम से मनाया जाय। जिस युग में पुस्तकें छपती न थीं, उसमें पुस्तकों के प्रकाशन का प्रश्न ही न उठता था। शायद कवि या लेखक अपने आश्रयदाता को उसे दरबार में समर्पित करता होगा, और आश्रयदाता प्रसन्न होकर कवि या लेखक को दरबारी पोशाक, आभूषण, हाथी-घोड़े, रथ-पालकी, भूमि या गाँव अथवा धन पुरस्कार में देता होगा। शायद उस समय 'कविरत्न' या 'कविशिरोमणि' की, या ऐसी ही कोई उपाधि भी उसे दे दी जाती होगी। यह निश्चय है कि ऐसे अवसरों पर कवियों और लेखकों का विशेष सम्मान किया जाता था। जब 'ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्' साधारण सम्मान था, तब पुस्तक-समर्पण तो अवश्य ही विशेष सम्मान का अवसर हो जाता होगा। किंतु अब न वैसे आश्रयदाता हैं, और न वैसे कवि। अब लेखकों और कवियों की आश्रयदाता 'जनता' है जो उसकी पुस्तकें खरीदती है। यदि वह उन्हें न खरीदे तो बेचारे प्रकाशक लेखक को लाभांश (रायल्टी) कहाँ से दें? किंतु जनता का दरबार अनोखा है। उसके प्रतिनिधि नेता लोग हैं, और उसके नकीब और चोबदार––आलोचक, समाचार-पत्र संवाद-दाता हैं। अब भी कभी-कभी पुस्तकें कुछ व्यक्तियों को समर्पित की जाती हैं, किंतु इस समर्पण का दृष्टिकोण बदल गया है। अधिकांश पुस्तकें अब आश्रयदात्री जनता को ही समर्पित होती हैं। अभी तक यह समर्पण 'मूक' होता था। इसमें धूमधाम नहीं होती थी। किंतु अब जनता को पुस्तक-समर्पण करने के उत्सव मनाने की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी है। कई वर्ष हुए, हमें एक पुस्तक के 'उद्घाटन' के उत्सव का निमंत्रण मिला। पुस्तक का नाम कुछ सिनेमाघर का सा था। हमें तब तक नहीं मालूम था कि वह किसी पुस्तक का नाम है। उद्-घाटनकर्ता एक राज्य के एक मंत्री महोदय थे। तब तक हमने 'पुस्तक के उद्घाटन' की कल्पना भी न की थी, और न कभी ऐसे उत्सव को देखा ही था। यह समझकर कि मंत्री महोदय किसी छबिगृह का उद्घाटन कर रहे हैं, हम उस उत्सव में नहीं गये। बाद में जब हमने उस उत्सव का विवरण पढ़ा तो हमें अपनी भूल मालूम हुई। किंतु अब ऐसे उत्सव होने लगे हैं। गत वर्ष श्री सुमित्रानंदन पन्त के महाकाव्य 'लोकायतन' का प्रकाशन-उत्सव दिल्ली में मनाया गया था। पुस्तक रेशमी कपड़े में बँधी थी। मुख्य संस्कार उस बस्ते की गाँठ खोलना था। इस संस्कार को 'ग्रंथि-मोचन' का नाम दिया गया था। गत मास उसी दिल्ली में डा० नगेन्द्र की 'रससिद्धान्त' नामक पुस्तक का प्रकाशन-उत्सव मनाया गया। इसकी अध्यक्षता हिंदी के वरिष्ठ साहित्यकार डा० सेठ गोविन्ददास जी ने की। मुख्य संस्कार (जिसे यहाँ 'ग्रंथ-विमोचन' की संज्ञा दी गयी) राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरणजी गुप्त ने किया। इन दो वरिष्ठ साहित्यकारों के ग्रंथों के प्रकाशन-उत्सवों के उपरान्त यह संस्कार, 'महाजनो येन गतः स पन्था' न्याय से प्रतिष्ठित और चालू हो गया। अब ऐसे उत्सव हिन्दी-जगत् में साधारण हो जायँगे।

यह प्रकाशन-उत्सव वास्तव में बड़ा सफल रहा। इसमें राजधानी के प्रायः सभी साहित्यकार, साहित्य-प्रेमी और हिन्दी के प्रमुख भक्त उपस्थित थे। राष्ट्रकवि और डा० गोविन्ददास के सहयोग तथा डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, श्री जैनेन्द्र और पं० उदयशंकर भट्ट के भाषणों ने इस उत्सव को एक अच्छे साहित्यिक समारोह का रूप दे दिया था। डा० नगेन्द्र की यह पुस्तक वास्तव में बड़ी महत्त्वपूर्ण है। वह कई वर्षों के अध्ययन, मनन, चिन्तन और परिश्रम का फल है। इसमें संदेह नहीं कि वह हिन्दी का एक गौरव ग्रन्थ है। ऐसी ठोस और स्थायी महत्त्व की पुस्तकें कभी-कभी ही लिखी जाती हैं। डा० नगेन्द्र ने उसे लिखकर ज्ञान की सेवा तो की ही है, साथ ही साथ उन्होंने हिन्दी ही नहीं भारतीय साहित्य की श्रीवृद्धि भी की है। हम इस मधुर और सफल उत्सव के लिए आयोजकों को, और इस महत्त्वपूर्ण ग्रंथ के लिए डा० नगेन्द्र को बधाई देते हैं।

श्री जहूरबख्श का निधन––हमें यह जानकर दुःख हुआ कि गत मास हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक श्री जहूरबख्श का अल्पकालीन बीमारी के बाद भोपाल में निधन हो गया। श्री जहूरबख्श हिन्दी के इने-गिने मुसलमान लेखकों में थे। उनको हिन्दी से हार्दिक प्रेम था और सारे जीवन वे हिन्दी की सेवा करते रहे। वे सफल कहानी-लेखक थे। वे बड़ी सरल भाषा लिखते थे। उनकी भाषा में प्रवाह था। वे द्विवेदी युग से हिन्दी की सेवा करते आ रहे थे। सागर के साम्प्रदायिक दंगे में उनका घर नष्ट कर दिया गया था। उसके साथ उनका दीर्घकाल में बड़े यत्न से संचित पुस्तकों का संग्रह भी नष्ट हो गया था। उन्हें उस संग्रह के नष्ट होने का बड़ा दुःख था। उस आपत्तिकाल में, उनके एक हिंदी साहित्यकार होने के कारण, उत्तर प्रदेश और मध्यप्रदेश की सरकारों ने उनकी काफी आर्थिक सहायता की थी। श्री जहूरबख्श मध्यप्रदेश की पुरानी पीढ़ी के साहित्यिकों के अवशेष थे। उनके निधन से वह कड़ी समाप्तप्राय तो हो ही गयी, हिन्दी साहित्य की भी बड़ी क्षति हुई है। हम उनके शोक-संतप्त परिवार के प्रति हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हैं।

नयी आस्तिकता : पुरानी धुरी और भग्न रथ-चक्र

श्री कुबेरनाथ राय

मनुष्य चिरन्तन वयः सन्धि की अवस्था में है। वह निरन्तर "हो रहा है" की दशा में है। यह अवस्था निरन्तर विकासशील रूप की अवस्था है। अस्तित्ववादी चिन्तन के आस्तिक पक्ष के आदि गुरु कीर्कगार्द ने इसी निरन्तर विकासमानता के आधार पर अपना आशावादी दर्शन प्रतिष्ठित किया है। कीर्कगार्द का कथन है कि मनुष्य की अस्मिता कभी भी सम्पूर्ण खराशी-तराशी अन्तिम रूप में पूर्ण, 'फिनिश्ड प्राडक्ट' नहीं हो सकती। उसमें सदैव वर्त्तमान अवस्था पर स्थित होकर भी अगली अवस्था की ओर उन्मुख गति वर्त्तमान रहती है, और वह सदैव वर्त्तमान के 'परे' की ओर अग्रसर रहती है। यह परे-मुखी गति (ट्रान्सेण्डेन्स) पशुओं में नहीं केवल मनुष्यों में है। इस स्थिति में तर्क बुद्धि का कोई फार्मूला, कोई सूत्र, इसे सम्पूर्ण अपने शिकंजे में कस नहीं सकता और यह सदैव अज्ञेय, रहस्यमय, रहेगी। वास्तव में "हो रहा है" या "निरन्तर विकास-मानता" का सिद्धान्त हिब्रू संस्कारों का एक मुख्य अंग है। हिब्रू दार्शनिक रबी-बिन-इज्रा (जिस पर राबर्ट ब्राउनिंग ने एक कविता लिखी है) इसी मत का पोषक है। चूंकि मनुष्य निरन्तर विकासमानता की अवस्था में है, अतः हमारी वर्त्तमान स्थिति चाहे कितनी असफलता-पूर्ण एवं ट्रैजिक क्यों न हो, यही हमारा 'अन्त' नहीं। हम इसके 'परे' प्रतिक्षण उन्मुख हैं। इसी धारणा में मनुष्य की आशा टिकी है और वह भावी ईश्वरराज्य (द सिटी ऑफ गॉड) की प्रतीक्षा सारे दुःखों के बावजूद कर रहा है।

कीर्कगार्द ने उक्त हिब्रू आशावाद को अपनी नई ईसाई-आस्था की आधारशिला बनाया है। कीर्कगार्द के बाद परवर्ती दार्शनिकों यथा कार्ल यास्पर्स एवं मार्सेल की चिन्तन धारा ने इस आस्तिक अस्तित्ववाद को और प्रौढ़ एवं प्रखर किया है। पर मूलतः यह है कीर्कगार्द का ही प्रतिदान। कीर्कगार्द का अपना जीवन "कटु, अत्यन्त कटु" रहा। प्रेमिका ने जिस पर युवा दार्शनिक का मन-प्राण निछावर था, इसे परित्यक्त कर दिया। अपने युग के साहित्यकार आलोचकों से भयंकर दुत्कार मिली। कीर्कगार्द की आन्तरिक आँखें एवं उसकी संशय-शील तर्क बुद्धि प्रथमतः तब जागृत हुई जब उसके पिता ने उससे अपने पापों की स्वीकारोक्ति (Confession) करायी। तब से उसकी प्रखर प्रतिभा ने ईसाई श्रद्धा पर नये ढंग से सोचना प्रारम्भ किया। उसके समस्त चिन्तन का संकलन उसके ग्रंथ 'ईदर आर' (अथवा) में मिलता है। कीर्कगार्द ने तर्क बुद्धि (रीजन) की सम्पूर्ण प्रभुसत्ता को समाप्त कर दिया जिसका दावा हेगेल आदि ने पेश किया था। कीर्कगार्द का कथन है कि आस्था तर्क बुद्धि के परे जाती है। तर्क बुद्धि से हम आस्था पर नहीं पहुँचते बल्कि वहाँ पर हमें फाँदकर मण्डूक प्लुति की तरह 'आस्थाप्लुति' के द्वारा जाना होगा। उसने साफ कहा है : "यदि विश्वास और श्रद्धा को तर्क बुद्धि पर घटाया जा सकता है तो विश्वास श्रद्धा की आवश्यकता ही नहीं—फिर अवतारवाद में विश्वास करनेवाले ईसाई धर्म में तो यह बिल्कुल असंभव है।"

रहस्य और अज्ञेयतत्व

कीर्कगार्द के अनुसार ईश्वर और अतिमा दोनों का अस्तित्व है। अतिमा (ट्रान्सेण्डेन्स, माया-परेतत्व) ईश्वर पर आधारित है। यह ईश्वर अनन्त व्यक्तित्व वाला और अज्ञेय तत्व है। इसे दर्शन या चिन्तन से जाना नहीं जा सकता। इसकी परिभाषा नहीं की जा सकती। प्लेटो से लेकर हेगेल तक के दार्शनिकों ने इस ईश्वर के व्यक्तित्व को नष्ट करके उसे एक प्रत्यय (आइडिया) मानकर परिभाषित करने की व्यर्थ चेष्टा की है। ईश्वर तो ईश्वर है, साधारण व्यक्तित्व की भी व्याख्या तर्क या चिन्तन से नहीं की जा सकती। मार्सेल का कथन है कि अस्मिता (सेल्फ) को भी हम अपने अध्ययन या विवेचन की समस्या नहीं बना सकते हैं, क्योंकि वह अज्ञेय तत्व है। यहाँ पर कीर्कगार्द और अन्य अस्तित्ववादी 'रहस्य' के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। ईश्वर, अस्मिता, अतिमा, व्यक्तित्व आदि बुद्धि के द्वारा नहीं जाने जाते हैं। उनकी उपलब्धि हो सकती है अनुभूति के द्वारा। ये अस्तित्व-वादी इनकी अज्ञेयता मानकर चुप हो जाते हैं और

व्यवहार में जो जीवन घटित होता है, अनुभूत होता है, उसीको अपनी विवेचना का विषय बनाते हैं। ईश्वर एवं उसके गुण, व्यक्तित्व तथा अस्मिता एवं अतिमा का विवेचन वे असंभव मानकर चुप रहते हैं।

हेगेल का प्रत्ययवाद और यान्त्रिक भौतिकवाद दोनों रहस्य एवं अज्ञेयतत्व को सैद्धान्तिक रूप से अस्वीकार करते हैं। पर कीर्कगार्द, यास्पर्स और मार्सल ने ईश्वर, अतिमा एवं अस्मिता की रहस्यमयता और अज्ञेयता का स्पष्ट प्रतिपादन किया है।*

अस्मिता और व्यक्ति

अस्मिता (सेल्फ) के ऊपर कार्ल यास्पर्स ने अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि अस्मिता के अस्तित्व का अनुभव हम मृत्यु, पीड़ा और पाप--इन तीनों में एक के द्वारा करते हैं। कभी-कभी तीनों मिश्रित अनुभूति के रूप में भी प्राप्त हो सकते हैं। ईसाई दर्शन में पाप और मृत्यु तथा पीड़ा तीनों को महान् महत्व दिया गया है। समस्त ईसाई दर्शन करुणा पर आधारित है, और करुणा पाप और पीड़ा पर। कार्ल यास्पर्स इन तीनों को न केवल ईश्वरीय करुणा के लिए (जैसा प्रत्येक ईसाई का मत है) बल्कि अस्मिता की अनुभूति के लिए भी आवश्यक बताया है। मृत्यु को हेगेलवादी झुठलाते हैं, पर यास्पर्स मृत्यु की वास्तविकता स्वीकार करता है। यास्पर्स के अनुसार जगत में अस्मिता की सीमा इन्हीं तीनों से बँधी है। इन तीनों में किसीकी परिधि को छूकर हमारी ज्ञान-वृत्तियाँ फिर अपने केन्द्र में लौट आती हैं। इन तीनों के परे है अतिमा ('ट्रान्सेण्डेन्स्' आध्यात्मिक अर्थ में; जिसे 'माया परे' कहते हैं) यह अस्मिता की सांसारिक पराकाष्ठा (मृत्यु पीड़ा और पाप) के परे की सत्ता है जिसकी 'अनुभूति' होती है, 'ज्ञान' नहीं। हेगेलवादी सोचते हैं कि अतिमा या माया परे चरम सत्ता में स्थित चरम प्रत्यय (ऐबसोल्यूट आइडिया) हैं जिसका ज्ञान हो सकता है। पर दरअसल यह 'ज्ञान' नहीं होगा 'फैन्सी' (कल्पना) मात्र होगी।

इसी अस्मिता तत्व को कीर्कगार्द ने सीधे शब्दों में कहा है कि व्यक्ति (यानी अस्मिता का व्यावहारिक स्वरूप) एक 'अनोखी' ('यूनीक') सत्ता है जिसकी तुलना नहीं, परिभाषा नहीं। यह सदैव 'हो रहा है' (becoming) की अवस्था में है। प्रतिक्षण में इसमें नयी संभावनाएँ उत्पन्न होती रहती हैं, प्रतिक्षण वह क्या से क्या बनता जा रहा है। वह खराशा-तराशा तैयार माल नहीं जिसकी सारी संभावनाएँ 'पूर्ण' हो चुकी हैं। वह सदैव 'अपूर्ण' है और प्रतिक्षण पूर्णता की ओर जा रहा है। इसी अर्थ में 'अस्तित्व' का मतलब ही है ('एक्+सिस्ट'=एग्जिस्ट= निरन्तर परे-स्थिति) वर्त्तमान से निरन्तर परे जाने की स्थिति। कीर्कगार्द की यह धारणा ही ईसाई आस्था का मूल है। चूँकि मनुष्य की भावी संभावनाओं का अन्त नहीं--वह तिल-तिल, क्षण-क्षण करके पूर्णता की ओर अग्रसर है। इसीपर ईसाई-हिब्रू विश्वासों का आधार 'प्रामिज ऑफ हेवेन' (स्वर्ग की पुनः प्राप्ति का वादा) भी टिका है। स्वर्ग-राज्य की धरती पर स्थापना एवं आदम के पुत्रों को स्वर्ग प्राप्ति ये दोनों संभव हैं, क्योंकि मनुष्य की संभावनाएँ अभी चुक नहीं गयी हैं।

स्वातन्त्र्य बनाम ऋतचक्र

प्रत्ययवाद (हेगेल) और भौतिकवाद दोनों व्यक्ति के स्वातन्त्र्य को अस्वीकार करते हैं। दोनों के अनुसार जगत बँधे नियम चक्र और ऋतचक्र के अनुसार चलता है। इसमें व्यक्ति का स्थान अति शुभ है। वह ऋतचक्र का एक पुर्जा भर है जिसे स्वयं निर्णय का अधिकार नहीं। ईसाई दर्शन में भी यह बड़ा ही विवादास्पद बिन्दु रहा है। एक वर्ग का कथन है कि सब कुछ ईश्वरेच्छा के अधीन है। ईश्वरेच्छा (Necessity=निश्चित विधान) के आगे मनुष्य के स्वतंत्र निर्णय (Freewill) की कुछ नहीं चलती। यदि ऐसा है तो पाप-पुण्य का प्रश्न कैसा? सब कुछ गोविन्द की मरजी से घटित हुआ तो मेरा क्या दोष? कीर्कगार्द ने इस व्यवस्था का प्रतिकार किया है। (कीर्कगार्द से पूर्व मध्ययुग के आचार्यों ने ही यह प्रतिकार उपस्थित किया था) कीर्कगार्द प्रत्ययवाद और भौतिकवाद के विपरीत 'स्वतंत्र निर्णय' की सत्ता को मानता है। ईश्वरेच्छा, Necessity, निश्चित विधान चाहे जो पुकारें 'ऋतचक्र' ही है। भारतीय शब्दावली में समस्त विधानों

---

*उपनिषदों का ब्रह्म की 'नेति' शैली में परिभाषा देने का यही कारण है कि भाषा के द्वारा उसका विवेचन नहीं हो सकता। दर्शन की भाषा में शब्दों का सामान्य अर्थ नहीं बल्कि प्रतीकार्थ, इसी कारण से, लिया जाता है।

की निश्चित गति के पीछे 'ऋता' है। इसी ऋता को ईसाई दार्शनिकों ने Necessity कहा है। यह ऋता या ऋतचक्र तो चरम शक्ति है ही। कीर्कगार्द ने इसे चैलेंज नहीं दिया है। पर इस ऋतचक्र के नीचे ही व्यक्ति 'स्वतंत्र निर्णय' करता है। व्यक्ति का उत्तरदायित्व पाप-पुण्य इसी स्वतंत्र निर्णय पर निर्भर है। ऋत-चक्र मूलभूत प्रक्रियाओं का ही नियन्त्रण करता है। इसके बाद भी स्वतंत्र निर्णय के लिए अपार क्षेत्र है। ऋतचक्र साल के ४ मास बरसात लायेगा, पर अमुक किसान उसका उपयोग करेगा या घर पर सोता रहेगा, यह उस किसान के स्वतंत्र निर्णय एवं उसके निजी उत्तरदायित्व का प्रश्न है।

मनुष्य 'सम्भावनाओं' का समूह है---'निश्चित फलों' का समूह नहीं, अतः ऋतचक्र के ढाँचे में यह ऐसा कसकर नहीं बँधा है कि इसकी कोई सत्ता ही न हो, कोई अपनी महिमा ही न हो और यह निर्जीव पुजा भर हो। हिन्दू दर्शन में बिल्कुल साफ साफ 'ऋता' और 'स्वतंत्र निर्णय' (कर्मफल के सिद्धान्त के रूप में) माना गया है। बिना इसके मनुष्य क्षुद्र, महिमाहीन और उत्तरदायित्वहीन बन जाता है जैसा कि वह नाजीतंत्र या कम्यूनिस्ट तंत्र में नैतिक दृष्टि से बन गया है।

उत्तरदायित्व और पाप

व्यक्ति अपना कार्य चुनने में स्वतंत्र है। अतः अपने कार्य के लिए वह उत्तरदायी है। यह उत्तरदायित्व है किसके प्रति? कीर्कगार्द का उत्तर है ईश्वर के प्रति। व्यक्ति 'निरन्तर विकासमानता' की स्थिति में है ईश्वर के साक्ष्य या सान्निध्य में। ईश्वर के सान्निध्य में रहकर मनुष्य को उसकी करुणा की अनुभूति होती रहती है। करुणा की अनुभूति के लिए अपने को पापात्मा की अनुभूति की आवश्यकता है, नहीं तो करुणा को लाने की जरूरत ही क्या है? अतः ईश्वर के सतत सान्निध्य का अर्थ हुआ अपने को सतत पापात्मा की अनुभूति करना। 'पापोऽहम्' ईश्वर-प्रेम के लिए, ईसाई के दर्शन के अनुसार आवश्यक है जिससे उसके क्षमाशील रूप का उपभोग व्यक्ति कर सके।* यही पीड़ारस का मूल स्रोत है। पाप से पीड़ा और पीड़ा से प्रभु की असीम करुणा का आस्वादन, यही ईसाई आदर्श है। दोस्तोवस्की के उपन्यासों में पाप और पीड़ा को इसी महिमामय रूप में व्यक्त किया गया है। 'क्राइम ऐण्ड पनिशमेण्ट' में सेनिया का चरित्र पाप का महिमान्वित रूप है। एक गरीब अल्पवयस्का कुमारी जो अन्य व्यक्तियों की जीवन-रक्षा के लिए शरीर-विक्रय करती फिरती है स्वतः 'जेसस क्राइस्ट' है। 'महामूर्ख' (ईडियट) का प्रिन्स तथा 'ब्रदर कारमाजोव' का नायक इसी पीडा-रस एवं पाप के प्रति ईसाई भाव के बोधक हैं।

कीर्कगार्द का कथन है: 'अस्तित्व का ही अर्थ होता है 'पापोऽहम्' की अनुभूति।' (To exist means to feel-sinner) मार्सेल का प्रतिपादन भी कीर्कगार्द के निकट ही आता है। पीड़ा एवं पाप की महिमा एवं आध्यात्मिक अनुभूतियों की उपलब्धि के लिए उनकी आवश्यकता ईसाई दर्शन का अपना खास रंग है।

त्रिसारीय विकास का सिद्धान्त

व्यक्ति या जाति के जीवन में समकेन्द्रिक वृत्तों के ३ छल्ले हैं। कीर्कगार्द ने बड़े विस्तार से इनका विवेचन किया है। ये तीन वृत्त या छल्ले हैं: सौन्दर्य, नैतिकता और धार्मिकता (आध्यात्म)। व्यक्ति को संकल्प (स्वतंत्र निर्णय, फ्री विल) लेकर एक छल्ले से कूदकर दूसरे छल्ले में जाना होता। ये समकेन्द्रिक वृत्तीय छल्ले हैं। अतः एक छल्ला दूसरे पर नहीं पहुँच सकता जैसी भूल से लोगों की धारणा प्रायः है कि सौन्दर्य की आराधना ही शिव की आराधना है। पूर्ण जीवन में तीनों छल्लों का आपसी सन्तुलन और बात है। पर एक ही छल्ले पर रह दूसरे पर नहीं

---

*श्री सम्प्रदाय के वैष्णवों की एक शाखा में भी 'पाप' को अतीव मान्यता दी गयी है। श्री सम्प्रदाय के दो मूल भेद हैं। 'टेंकलै', जो तमिल प्रबंधम् तथा तमिल आलवार-गीतों को प्रामाण्य मानते हैं तथा 'वेंगलै' जो संस्कृत प्रस्थान-त्रयी तथा तमिल प्रबन्धम् दोनों को महत्त्व देते हैं। टेंकलै विशुद्ध तमिलनाड का श्री सम्प्रदाय है, पर वेंगलै उत्तर भारत में विशेष प्रिय है और दक्षिण में भी कम प्रचलित नहीं। टेंकलै-शाखा जो घोर दाक्षिणात्य शाखा है भक्ति के नाम पर घोर निष्क्रियता का उपदेश देती है। (पर वेंगलै में प्रपत्ति के लिए कर्म आवश्यक बताया गया है, इस 'टेंकलै' शाखा में भयंकर 'दोष भोग्य' का सिद्धान्त मिलता है। इसके अनुसार "भगवान् पापों का 'रसास्वादन' करते हैं भक्त के पापहर्त्ता बनकर।" यह दोष भोग्य सिद्धान्त निश्चय ही केरल के ईसाई धर्म का प्रभाव है जो तमिल वैष्णवों की इस शाखा पर आ पड़ा है। यह आर्य दृष्टि के प्रतिकूल है।

पहुँच सकते यदि हम आस्था की छलाँग (प्लुति) न लगाएँ। भारतीय भाषा में इन तीनों छल्लों को सुन्दर (ऐसथेटिक) सत्य (एथिकल) एवं शिव (आध्यात्म) कहेंगे। ऋत चक्र के अन्दर मनुष्य को स्वनिर्णय का अधिकार है। वह निर्णय लेता है कि जीवन को किस छल्ले पर प्रतिष्ठित करेगा और उसके अनुसार छलाँग लगाता है।

सर्वप्रथम सौन्दर्याराधना को पाते हैं। यह तीन प्रकार से अनुभूत होती है: तत्काल स्पर्शसुख, संशय और दुःख। तत्काल स्पर्श सुख का विकसित रूप ऐन्द्रिक सुख है। संशय और दुःख की उत्पत्ति इस ऐन्द्रिक सुख से नहीं होती है। ऐन्द्रिक सुख मानसिक समृद्धि का कारण भी हो सकता है। पर यह ऐन्द्रिक सुख 'अति' की अवस्था में एक अस्तव्यस्तता एवं अप्राकृतिक विखण्डन पैदा करता है, इससे संशय और दुःख पैदा होते हैं। नार्मल अवस्था में नहीं। इसका उदाहरण है बायरन का डॉन जुआन या 'रघुवंशम्' का 'अग्निमित्र।' जब यह संशय और दुःख आ जाता है तो व्यक्ति जीवन को व्यंग प्रधान दृष्टि से देखने लगता है। (बीसवीं शती की व्यंग प्रधान साहित्यिक दृष्टि का यही कारण है।) यह व्यंगानुभूति उसे प्रेरित करती है नैतिक छल्ले पर कूदने के लिए। यहाँ वह सत्य और सदाचार को अपनाता है—'व्यंग्य' धीरे-धीरे बदलकर 'विनोद' में परिवर्त्तित हो जाता है। विनोद का फल होता है कि वह जीवन की प्रत्येक वस्तु से एक फक्कड़पन, एक मस्ती, पाता है और संसार के प्रति आसक्ति नहीं बल्कि एक फक्कड़ प्यार पैदा होता है। इस प्यार के बाद वह तीसरे छल्ले पर छलाँग मारता है और श्रद्धा तथा आस्था को प्राप्त करता है। यही श्रद्धा-प्रधान छल्ला आध्यात्मिक है। यह एकान्त स्थिति है। अपने युग के पुरुषों में जो लोग प्रथम छल्ले में थे उनमें बोदलेयर और अस्करवाइल्ड प्रमुख हैं। जो लोग द्वितीय छल्ले ('एथिकल मोड' नैतिक सदाचार) में जीवन बिता रहे थे उनमें श्री नेहरू का नाम ले सकते हैं। तीसरे श्रद्धा-प्रधान छल्ले में रवीन्द्र-गाँधी-अरविन्द आते हैं।

हमारे देश में वैष्णवों ने तीनों छल्लों को साथ-साथ संतुलित रूप में चलाने का सूत्र खोज निकाला था। वास्तव में पूर्ण जीवन में तीनों छल्ले साथ-साथ चलते हैं। पर कुछ ऐसे व्यक्ति भी हैं जो एक या दो वृत्तों से ही अपने को संयुक्त रखते हैं। ग्रीक सभ्यता में तीसरा छल्ला आध्यात्म मौजूद नहीं था। मध्ययुग की ईसाई साधना में पहले छल्ले का घोर तिरस्कार किया गया है और निवृत्ति का कसकर प्रतिपादन किया गया है। आधुनिक नागरिक सभ्यता में तीसरे छल्ले का तिरस्कार एक सस्ता गौरव माना जाता है।

वैष्णव धर्म साधना और कैथोलिक साधना में सौन्दर्य, सत्य और आध्यात्म को समान प्रश्रय मिला है। पर ईसाई धर्म मूलतः निवृत्ति-प्रधान है और दमन पर ही उसका जोर है। वैष्णव साधना में मुक्ति लक्ष्य है। पर वह प्रवृत्ति प्रेम, सौन्दर्य एवं रस के माध्यम से मिलती है। वह रस का तिरस्कार नहीं करती। रस की साधना जैसी वस्तु विश्व के किसी धर्म में नहीं। ईश्वर स्वतः रस है: 'रसो वै सः'। इस प्रकार का भाव वैष्णव धर्म को घोर निवृत्ति से मुक्त कर देता है। आत्म-संयम, पर आत्म-दमन नहीं। यही वैष्णव आदर्श है।

पर कीर्कगार्द एवं उसके पूर्व के ईसाई 'पाप' पर इतने मुग्ध हैं कि कीर्कगार्द ने तीसरे वृत्त, श्रद्धा और आध्यात्म पर पहुँचने के पूर्व तीन अनुभूतियाँ व्यथा, आत्म-उपेक्षा एवं पाप को अनिवार्य बताया है। वैष्णव दर्शन में ये तीनों अनावश्यक हैं। वहाँ पर केवल एक भाव आत्म-समर्पण की आवश्यकता है। इसीके सहारे आध्यात्मिक जीवन सुलभ हो जाता है। दरअसल वैष्णव जीवन दर्शन में कीर्कगार्द की तरह एक के बाद दूसरे पर फाँदकर जाने जैसी कोई बात ही नहीं कही गयी है। इसमें तीनों जीवन-वृत्त साथ-साथ चलते हैं।

× × ×

आस्तिकतावादी अस्तित्ववाद की चिन्तन परम्परा का एक संक्षिप्त दिग्दर्शन यहाँ पर प्रस्तुत किया गया है। मनुष्य की पराजय एवं मानवीय मूल्यों के पतन और ध्वंस से प्रेरित होकर अस्तित्व के बारे में मौलिक प्रश्न उठाये गये। इसके दो प्रकार के उत्तर मिले। एक में तो आस्था-प्रधान जीवन की ओर फिर से जाने का उपदेश है और आने वाले 'नव क्राइस्ट' (सद् नेतृत्व) के प्रति विश्वास प्रकट किया गया है। दूसरा उत्तर अनास्था-प्रधान एवं नास्तिक अनीश्वरवाद तथा अजनबीपन का प्रतिपादन करता है। प्रश्न एक रहते हुए भी उत्तर दो हैं, और दोनों उत्तर समानान्तर रेखाओं पर एक दूसरे से सदैव अलग-अलग चलते हैं। यह स्मरण रखने की बात है।

थाई और भारतीय भाषाओं में अदभुत साम्य

श्री लल्लनप्रसाद व्यास

दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों की अपनी यात्रा के बाद मैंने अनुभव किया कि वैसे तो ये सभी देश धर्म और संस्कृति के परम्परागत सूत्र द्वारा भारत से आबद्ध रहे हैं और आज भी कुछ न कुछ हैं ही, किन्तु इनमें से भी यदि कोई देश भारत से सबसे अधिक एक रूप है तो वह थाईलैण्ड अथवा श्याम ही है। इस एकरूपता और एकात्मता के आधार प्रमुख रूप से ३ तत्व हैं--धर्म, संस्कृति और भाषा। जब कोई भारतीय थाईलैण्ड जाता है तो उसे धर्म और संस्कृति पर आधारित एकता और एकरूपता के तो तत्काल दर्शन हो जाते हैं क्योंकि इनका प्रभाव स्पष्ट है, प्रत्यक्ष है। कोई भी उसे देख सकता है। किन्तु भाषा का प्रभाव प्रत्यक्ष नहीं दिखाई पड़ता, उसे समझना पड़ता है।

थाईभाषा में लगभग ४० प्रतिशत शब्द संस्कृत के हैं। साथ ही पाली के भी अनेक शब्द हैं। इसके बाद भी भाषागत साम्य के दर्शन केवल इसलिए नहीं होते कि इन शब्दों के उच्चारण में अन्तर होता है। थाईभाषा बोली जाने के समय संस्कृत का ज्ञाता भी उसमें निहित संस्कृत प्रभाव को नहीं जान सकता जब तक कि उसे थाई लिपि का ज्ञान न हो।

अपने संस्कृत प्रभाव और आधार के कारण थाईभाषा हिन्दी के बहुत निकट आ गयी है। उसकी वर्णमाला हिन्दी वर्णमाला से बहुत मिलती-जुलती है। इसमें भी हिन्दी के समान 'स्वर' और 'व्यंजन' होते हैं जिन्हें "स्वरः" और "व्यन्छनः" कहते हैं। थाई में हिन्दी की अपेक्षा 'स्वर' अधिक तथा 'व्यंजन' कम हैं। **थाई में 'क' और 'ख' दो हैं।** उनके उच्चारण भेद से अर्थ भेद हो जाता है। इस भाषा में 'ख' 'ग' और 'घ' के लिए 'ख' ही चलता है, विभिन्न उच्चारण-भेद के साथ। इसी प्रकार छोटे मोटे कुछ अन्य अन्तर भी हैं। सबसे बड़ा अन्तर यही मानना चाहिए कि थाई शब्दों के लेखन और उच्चारण में पर्याप्त भेद है। इसी कारण यह हिन्दी के समान वैज्ञानिक और निर्दोष भाषा नहीं है। हिन्दी की यह विशेषता सर्वविदित और सर्वमान्य है कि उसके जो शब्द लिखे जाते हैं वही बोले या पढ़े जाते हैं और जो बोले या पढ़े जाते हैं उसीके अनुसार वे लिखे भी जाते हैं।



थाईलैंड में हिन्दी और संस्कृत के प्रचारक पं० रघुनाथ शर्मा (गांधी टोपी) के साथ लेखक। श्री शर्मा थाई-भारत संस्कृति आश्रम के संचालक भी हैं।

किन्तु इसके साथ-साथ यह भी स्वीकार करना होगा कि थाई के अनेक शब्द इतने सरल, सुस्पष्ट तथा अपने अर्थ की पूर्णता व्यक्त करनेवाले हैं कि उनकी टक्कर के शब्द शायद कई भारतीय भाषाओं में भी न होंगे। इस दृष्टि से ये शब्द हिन्दी सहित सभी भारतीय भाषाओं के लिए भी अनुकरणीय बन सकते हैं। ऐसे शब्दों को यदि भारतीय भाषाओं में अपना भी लिया जाय तो वे किसी प्रकार भी विदेशी नहीं लगेंगे। ऐसे कुछ शब्द उदाहरण के लिए प्रस्तुत हैं :--

थाई शब्द	थाई उच्चारण
अनुवाद	अनुवाथ
अनुराग	अनुराक

थाई शब्द	थाई उच्चारण
अनुरूप	अनुरूप
अनुरक्ति	अनुरक्क
अनुमोदन	अनुमोथना
अनुमान	अनुमान
अनुगामिक (शिष्य)	अनुखामिक
अनुक्रम	अनुक्रोम
अनादर	अनाथोन
प्रासाद	फ्रासाथ
विहार	विहान
भोजनागार (होटल)	फोचनाखान्
वचनानुक्रम (शब्दकोष)	फचनानुक्रम
पूजा	बूछा
प्रतिदिन (कैलेंडर)	प्रतिथिन
दूरदर्शन (टेलीविजन)	थोर:फाब
समागम (संघ)	समारवुम
सभा	सफा
छाया	छाया
प्रभा	प्रफा



बैंकाक (थाईलैंड) स्थित कला और शिल्प विभाग के द्वार पर विश्वकर्मा की मूर्ति। ऊपर थाई लिपि में विभाग का नाम लिखा हुआ है।

थाई शब्द	थाई उच्चारण
आहार	आहान
सामाजिक	सामाछिक
वंशावली (जीवन परिचय)	फोङसावली
शव	सोब
शासना (धर्म)	सासना
जाति	छाट
सुधाकर	सुथाकोन
दिवाकर	थिवाकोन
आभा	आफा
नारीयाभरण (कपड़े की दुकान)	नारीयःफन्न
रथ यंत्र (कार)	रोटयोन
सहकार	सहकोन
स्वस्ति (शुभकामना सूचक)	स्वड्डी
आयु	आयु
विचारणा (समीक्षा)	फिच्चरणा
शाला (होस्टल)	साला
वनस्पति	फनसबोड़
व्याकरण	वैय्याकोन्
अक्षर	अक्सोन
भाषा	फासा
धर्मशास्त्र	धम्मसात्
परिभोग (खाद्य पदार्थ)	बोरिफोक
उपभोग	उप: फोक
क्रीड़ा स्थान	क्रीथास्थान
शीलधर्म (नैतिकता)	सील:थम्म
लेखगणित (रेखागणित)	लेखाखनित्
भूगोल	फूखोन
प्रवृत्तिशास्त्र (इतिहास)	प्रवतिसात
भूमिशास्त्र (भूगर्भ-शास्त्र)	फूमिसात्
प्रत्युतपन्न काल (वर्तमान काल)	पच्चुबनकान
अनागतकाल (भविष्य)	अनाखुटकान
अतीतकाल (भूत)	अडीडकान

थाई शब्द	थाई उच्चारण
आचार्य	आचान
विद्यालय	विथ्यालय
महाविद्यालय	महाविथियालय
बेला (समय)	बेला
सूचि पत्र	सूचिबत्
प्रकाश (विज्ञापन)	प्रकाट
प्रजाजन	प्रछाछोन
आजीविका	आछीव
कृषिकर (किसान)	किसकोन
पंडित	बंडित
गुरु	खरु
अनुग्रह	अनुखर्राह
आर्यजन (सभ्यलोग)	आर्यछुन
प्रतिक्रिया	पतिक्रिया
चक्रयान (साइकिल)	चकयान

थाईभाषा के पारिभाषिक शब्द तो और भी अधिक रल, सुस्पष्ट और सार्थक हैं। जिस समय भारत सरकार ी व्यवस्था के अन्तर्गत हिन्दी के पारिभाषिक शब्द गढ़े ा रहे थे, उस समय डा० रघुवीर ने थाई-भारत संस्कृति ाश्रम के द्वारा थाई पारिभाषिक शब्दों की सूची अवलोक-ार्थ मगायी थी। किन्तु ऐसा लगता है कि उक्त कार्य में सका कोई विशेष उपयोग नहीं किया गया। यद्यपि छ पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है नमें से कुछ शब्द अलग से भी प्रस्तुत हैं:—

़ैद्युतयान (लिफ्ट)	विथ्यूयान
ाजनाविक सभा (नौसेनाविभाग)	राछबाविक सफा
ाष्ट्रमंत्री सभा (सिनेट)	रथ्थमंत्रीसफा
ाजदूत	राछथून
ायक राष्ट्रमंत्री (प्रधानमंत्री)	नायोक रथ्थमोंत्री
ाष्ट्र मंत्री (मंत्री)	रथ्थमोंत्री
नागार (बैंक)	थनाखोन
नपत्र (नोट)	थनाबट
ातांश (रुपया का सवां भाग)	सतांस
ाद (रुपया)	पाथ
भागार (लाइटहाउज)	परफागान्
ाज्यकार (सरकारी फार्म)	रछकान



थाईलैंड का विष्णुलोक नगर का रेल स्टेशन। वहाँ विष्णु का उच्चारण 'फिश्नु' किया जाता है।

शास्त्राचार्य (मास्टर आफ-लिटरेचर)	सासडाचान
राष्ट्र सभा या सभा राष्ट्र (संसद)	सभारत्तजंन
देशपाल (पालिका)	थेसबान
चराचर (ट्रैफिक)	चलाचोन
प्रेषणीय (डाक सेवा)	प्रौसनी
प्रेषणीय पत्र (पोस्टकार्ड)	प्रैसनीबत्
अधिपति (महानिदेशक)	अथिबड़ी
साधारण दूरशब्द (सार्वजनिक टेलीफोन)	साथारन थोरासफ
स्थानीविद्युत (बिजलीघर)	स्थानीविथयू
दूरशब्द (टेलीफोन)	थोरासप
दूरलेख (तार)	थोरालेख
धनाणंत्य (मनीआर्डर)	थनानत्
सत्ववैद्यशास्त्र (पशुचिकित्सा-विज्ञान)	सत्त फैतसात
औषधशाला	औसुटसाला
नालिका (घंटा)	नालिका
नाड़ी (मिनट)	नाथी
विनाड़ी (सेकंड)	विनाथी
विश्वकर्म (इंजीनियरिंग)	विस्वाकम्प
भेषज्यशास्त्र (औषधिविज्ञान)	फैथ्यासात
दन्तवैद्य (दांत का डाक्टर)	थुन्तवैत

विविध बन्धस्थान (संग्रहालय)	फिफिथफंथस्वान
राजनावी (शाहीनौसेना)	राछनावी
गणराष्ट्रमंत्री (मंत्रिमंड-लीय मंत्री)	खनारथ्थमंत्री
प्रकाशनथिपत्र (सर्टिफिकेट)	प्रकासनिवित्त
स्थानीनगरपाल (थाना)	नखोनवान

सबसे अधिक महत्व की बात तो यह है कि थाईलोगों को अपनी भाषा पर बड़ा गर्व है तथा यही वहाँके समस्त राजकाज और सामाजिक जीवन की एकमेव भाषा है। थाई लोग--यहाँ तक कि अनेक विद्वान् भी यही समझते हैं कि उनकी भाषा किसी अन्य भाषा से प्रभावित नहीं, अन्य कोई भाषा ही इससे प्रभावित हो सकती है। इस प्रकार की भावना तथा थाई-संस्कृत का अद्भुत साम्य यह सिद्ध करता है कि दोनों देशों के संबंध चार-छः शताब्दियों के ही नहीं बल्कि उससे भी कहीं अधिक पुराने--यहाँ तक कि ईसा सन् के पूर्व के भी हो सकते हैं। वैसे बैंकाक के निकट खुदाई में एक मूर्ति मिली थी जो भारतीय मूर्ति कला की अमरावती शैली की लगती है और उसकी प्राचीनता लगभग ईसा की दूसरी शताब्दी से संबंधित होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त पंचबुरी के निकट यक्षिणी की एक मूर्ति मिली है जो चौथी शताब्दी की मानी जाती है। इसके बाद के ऐतिहासिक संबंधों का भी पता चलता है किन्तु क्रमबद्धता के साथ नहीं। १३ वीं शताब्दी के बाद तो यहाँ भारतीय उपनिवेश विद्यमान होने के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। फिर वर्तमान शताब्दी में आकर दोनों देशों के बीच एक सुदृढ़ सांस्कृतिक कड़ी जुड़ी और इसके निमित्त बने स्व० स्वामी सत्यानन्द पुरी, जिन्हें महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने थाईलैंड जाने को प्रेरित किया था। इसके पूर्व महाकवि ने दक्षिण-पूर्व और सुदूर पूर्व की यात्रा की थी और उस यात्रा में ही तत्कालीन थाईनरेश ने उनसे एक भारतीय विद्वान् भेजने का निवेदन किया था। स्वामीजी वर्तमान शताब्दी के तीसरे दशक में थाईलैंड आये, यहाँ की भाषा सीखी, सभी महत्वपूर्ण थाईग्रन्थों का अध्ययन किया और फिर उनका अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया। उन्होंने कुछ भारतीय धर्म ग्रन्थों का भी थाई में अनुवाद किया तथा संस्कृत भाषा के प्रचार पर बल दिया। इन्होंने ही १९४० में बैंकाक में थाई-भारत संस्कृति आश्रम की स्थापना की जो दोनों देशों के बीच सांस्कृतिक संबंधों को बढ़ाने में सबसे अधिक सहायक बना। उस समय से आज तक यह आश्रम अपने महत्वपूर्ण कार्यक्रम में लगा है तथा इस विदेश में संस्कृत और हिन्दी के प्रचार को बढ़ावा दे रहा है। वर्तमान संचालक पं० रघुनाथ शर्मा स्वयं अपने कार्यकर्त्ताओं के साथ यहाँ रोजाना इच्छुक थाईवासियों को संस्कृत और हिन्दी पढ़ाते हैं। इस देश में स्वामी सत्यानंद पुरी के महत्व का अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि द्वितीय महा-युद्ध के समय एक सम्मेलन में भाग लेने के लिए जापान जाते समय जब वे विमान दुर्घटना में स्वर्गवासी हो गये तो सारा थाईलैंड मानों शोक-सागर में डूब गया हो। उस समय तत्कालीन थाई प्रधानमंत्री ने स्वामीजी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा था--"स्वामीजी भगवान बुद्ध के बाद थाईलैंड को भारत की सबसे महत्व-पूर्ण देन थे।"

वस्तुतः भारत और थाईलैंड में आज जो अद्भुत भाषागत साम्य दृष्टिगोचर होता है वह ऐसे ही युग-युग के सांस्कृतिक और धार्मिक संबंधों का परिणाम है। आज आवश्यकता है दोनों देशों के लोग इस साम्य को समझते हुए भ्रातृत्व और मैत्री को बढ़ायें। भारत और थाईलैंड के अन्योन्याश्रित मैत्री-संबंध दक्षिण-पूर्वी एशिया में स्थायी शांति और सद्भावना की स्थापना की दिशा में प्राथमिक आवश्यकता हैं।



कोहेनूर

श्री ईशकुमार एम० ए० (केंटब)

कोहेनूर एक ऐसा हीरा है जिसके साथ राष्ट्रों का उत्थान व पतन सम्बद्ध है। इसे कभी सम्राटों का हीरा और कभी हीरों का सम्राट् पुकारते हैं। इसका रूमानी इतिहास एक उपन्यास से अधिक रोचक है और एक कविता से अधिक रोमांचक।

अनुमान किया जाता है कि यह वही हीरा है जिसका स्यमन्तक नाम से भागवत पुराण में वर्णन है। भागवत पुराण के अनुसार यह हीरा सर्वप्रथम सूर्य देवता ने अपने अनन्य भक्त सत्राजित को प्रदान किया जिस कारण सत्राजित सेन धनी हो गया और अपने भाई प्रजित की ईर्षा का पात्र। प्रसेनजित ने उससे छीन लिया और मथुरा के राजा उग्रसेन को प्रसन्न करने के लिए उसे उपहार देने की इच्छा से मथुरा की ओर चल पड़ा। रास्ते में एक शेर ने उस पर आक्रमण किया और उसे मार डाला। उसकी चीख-पुकार सुनकर जामवन्त नामक शूरवीर योधा उधर भागा। उसे बचा तो न सका परन्तु उसने हीरे को अपने अधिकार में ले लिया। प्रसेनजित और सत्राजित कृष्ण महाराज के निकट सम्बन्धी थे। सत्राजित को सदेन्ह हुआ कि प्रसेनजित की मृत्यु में कृष्ण महाराज का हाथ है। उसने खुल्लम-खुल्ला यह अभियोग लगाया। कृष्ण महाराज ने उचित समझा कि वह प्रसेनजित की खोज करें, और अन्त में जामवन्त के पास पहुँच गये और हीरा माँगा। जामवन्त के इंकार करने पर दोनों में घोर युद्ध हुआ जो सत्ताईस दिन लगातार चलता रहा। जामवन्त हार गया और न केवल हीरा वापिस कर दिया अपितु अपनी पुत्री जामवंती का कृष्ण महाराज से विवाह कर दिया। सत्राजित को हीरा तो मिल गया परन्तु वह अत्यन्त लज्जित हुआ और प्रायश्चित के रूप में अपनी सुन्दर बेटी सत्यभामा का विवाह कृष्ण महाराज से कर दिया और वह हीरा स्त्री धन में दे दिया। कृष्ण महाराज ने उसे अपने पास रखना उचित न समझा और सूर्य भगवान् को लौटा दिया। सूर्य भगवान् ने अपने धर्मपुत्र राजा कर्ण को सौंप दिया। महाभारत के युद्ध में राजा कर्ण दुर्योधन की सेना के सेनापतियों में से एक थे और अर्जुन के हाथों मारे गये। हीरा अर्जुन के हाथ लगा और कुरुक्षेत्र के संग्राम के पश्चात् युधिष्ठिर के मुकुट का अंग बना।

एक और गाथा के अनुसार यह हीरा कश्मीर के राजा भूरिश्रवा के अधिकार में था। वह भी दुर्योधन का सेनापति था। वह हीरे को सर्वदा अपनी भुजा में बाँधे रहता था जिस कारण कोई शत्रु उसे पराजित नहीं कर सकता था। लाचार होकर कृष्ण महाराज ने अर्जुन के कान में कह दिया कि वह उसकी भुजा पर प्रहार करे। तीर का लगना था कि भूरिश्रवा की भुजा हीरे के साथ दूर जा पड़ी। फिर क्या था? अर्जुन विजयी हुए और हीरे को लेकर युधिष्ठिर को उपहार दे दिया। युधिष्ठिर शीघ्र ही सांसारिक ऐश्वर्य से उकता गये और उन्होंने हीरे को राज्य समेत परीक्षित को सौंप दिया। इसके बाद सहस्रों वर्ष इसका कोई हाल नहीं मिला। कदाचित् वह पिता से पुत्र को मिलता गया और उसकी स्थिति किसी को ज्ञात न रही।

यह गाथाएँ कहाँ तक सत्य हैं अथवा स्यमन्तक मणि वही है जिसे आजकल कोहेनूर कहा जाता है या कोई और, इन प्रश्नों का निश्चय से उत्तर देना कठिन है। हाँ, जब १८५१ ई० में लन्दन की प्रदर्शनी में यह हीरा दिखाया गया तो इसके साथ इसका इतिहास भी वर्णित था जो महाभारत के समय से आरम्भ होता था।

इस हीरे का वर्णन फिर राजा पोरस के समय आता है जो चन्द्रवंश से सम्बन्ध का दावा करता था। यदि सिकन्दर पोरस को राज्य वापिस न कर देता तो शायद यह हीरा यूनान पहुँचता और इसका इतिहास भिन्न होता। पोरस से यह मौर्य-वंश के राजा चन्द्रगुप्त और उसके पश्चात् सम्राट् अशोक के हाथ आया। अशोक से उसके पोते उज्जैन के राजा स्मृति को मिला और उसके पश्चात् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य को। विक्रमादित्य के पश्चात् देश में खलबली मच गयी और हीरे का कुछ पता न रहा।

जब इसका फिर वर्णन मिलता है तब यह परमारवंश के राजा रामदेव के पास था जो मालवा राष्ट्र का शासक था और जब १३०६ ई० में अलाउद्दीन खिलजी ने मालवा को विजय किया तो दूसरे अमूल्य रत्नों के साथ यह हीरा भी उसके हाथ लगा और दिल्ली के बादशाहों के अधिकार में रहा यद्यपि दो सौ वर्ष तक फिर इसका कहीं वर्णन नहीं।

१५८६ ई० में जब बाबर ने इब्राहीम लोदी को पराजित किया तब यह हीरा दिल्ली में नहीं था; हुमायूँ को आगरा से मिला जहाँ ग्वालियर के राजा विक्रमादित्य ने बाबर के विरोध में जाने से पहिले रखवा दिया था। एक इतिहासज्ञ का कहना है कि हुमायूँ को इब्राहीम लोदी की माँ से मिला। जब वह हीरे की खोज में राजमहल में प्रविष्ट हुआ तो उसने देखा कि राजवंश की सारी स्त्रियाँ फूट-फूट कर रो रही हैं। उसकी आँखों से आँसू टपक पड़े। उसने उन्हें विश्वास दिलाया कि उसके जीवन में उन्हें किसी प्रकार का भय नहीं है, और फिर उसके अनुरोध पर इब्राहीम की माँ ने हीरा उसे दे दिया। परन्तु यह सत्य प्रतीत नहीं होता। यदि यह हीरा दिल्ली में होता तो जब अमीर तैमूर ने दिल्ली के एक-एक घर को लूटा था तो यह हीरा भी उसके हाथ लगता। बाबर अपने जीवन चरित्र में लिखता है कि जब मैं आगरा पहुँचा तो हुमायूँ ने मेरे स्वागत में यह उपहार मुझे भेंट किया और मैंने उसे पुरस्कार के रूप में वापिस कर दिया। बाबर इसका भार चालीस माशे लिखता है जो ठीक प्रतीत होता है।

जब हुमायूँ अत्यन्त बीमार हुआ तो एक दरबारी ने कहा कि सबसे अमूल्य वस्तु अर्थात् यह हीरा दान दे दिया जाये तो कदाचित् राजकुमार की जान बच जाये। बाबर ने कहा कि मुझे सबसे अमूल्य वस्तु मेरा जीवन है मैं वही न्योछावर करूँगा। इतिहास बताता है कि उसने अपना जीवन भेंट देकर हुमायूँ को बचा लिया था।

हुमायूँ इस हीरे को अत्यन्त प्यार करता था और सदा अपने पास रखता था। जब शेरशाह सूरी ने उसे पराजित किया तो वह इसको लेकर भाग निकला। उसकी इच्छा थी कि मारवाड़ के राजा मालदेव की शरण ले परन्तु राजा ने शरण देने से इन्कार कर दिया और यत्न किया कि वह हीरा हुमायूँ से खरीद ले परन्तु हुमायूँ न माना और उसे लेकर ईरान चला गया जहाँ उसका हार्दिक स्वागत हुआ जिसके बदले में हुमायूँ ने बहुमूल्य रत्नों के साथ यह हीरा भी बादशाह को दे दिया। बादशाह ने उसे कोषगृह में जमा करा दिया।

कब और कैसे यह हीरा मीर जुमला नामक हीरे के व्यापारी के हाथ लगा इस बारे में विभिन्न मत हैं। मीर जुमला व्यापार के लिए हिन्दुस्तान आया और अपनी योग्यता से उन्नति करता हुआ शाहजहाँ के दरबार में दीवान नियुक्त हो गया और उसने यह हीरा उपहार के रूप में बादशाह को दे दिया। उस समय के सिक्कों में इसका मूल्य सवा दो लाख के लगभग लगाया गया। इस प्रकार यह फिर मुगल बादशाहों के कोषगृह में प्रविष्ट हुआ। औरंगजेब के समय यह कोषगृह में ही रहा। टैवर्नियर ने लिखा है कि किस प्रकार १६६५ ई० में विदाई के समय औरंगजेब ने उसे बुलाकर विधिपूर्वक यह हीरा उसे दिखाया। वह यह भी लिखता है कि वैनिस के एक शिल्पकार ने जिसे इसको सुन्दर बनाने का काम सौंपा गया इसे काटकर हल्का कर दिया। सम्राट् बहुत क्रुद्ध हुए और उसको मजदूरी देने के स्थान पर उस पर एक हजार रुपया जुर्माना कर दिया। इतना ही उसके पास था। परन्तु यह सत्य प्रतीत नहीं होता। भिन्न ऐतिहासिकों अर्थात् ट्रावर्नियर, बर्नियर मारिस ने उस शिल्पकार के नाम भिन्न-भिन्न दिये हैं। भारतीय ऐतिहासिकों ने इस का वर्णन तक नहीं किया। इसके अतिरिक्त उस समय भारतीय शिल्पकार योरोपीय शिल्पकारों से अधिक निपुण थे। वैनिस के शिल्पकार को इस काम के सौंपने की क्या आवश्यकता थी?

होते होते मुगल वंश की बागडोर मुहम्मदशाह रँगीले के हाथ आयी। रँगीले की उपाधि से ही स्पष्ट है कि वह विलासासक्त था। १७३९ ई० में नादिरशाह ने दिल्ली पर आक्रमण किया। इतिहास जानता है कि दिल्ली की क्या गति हुई। नौ घण्टे लगातार लूट-मार, आग, हत्या का ताँता जारी रहा। डेढ़ लाख के लगभग मनुष्य मारे गये। मुहम्मदशाह ने उसको प्रसन्न करने के लिए हजारों की संख्या में हाथी, घोड़े, ऊँट और शाही रत्न, तख्तताऊस उस हीरे के समेत भेंट कर दिये। बाजवर्थ ने लिखा है कि हीरा नादिरशाह ने चालाकी से लिया। मुहम्मदशाह हीरे को पगड़ी में रखा करता था। नादिरशाह को पता चल गया। उसने प्रस्ताव किया कि हिन्दुस्तानी रिवाज के अनुसार वे मित्रता को घनिष्ठ करने के लिए पगड़ियों का विनिमय करें। परन्तु, यह सत्य प्रतीत नहीं होता। नादिरशाह ऐसे क्रूर, असभ्य और निर्दयी पुरुष को चालाकी करने की क्या आवश्यकता थी? वह जोर से ले सकता था। नादिरशाह ने ज्योंही हीरे को देखा उसके मुँह से निकल गया 'कोहेनूर' अर्थात् प्रकाश का पर्वत। तब से इस हीरे का नाम कोहेनूर पड़ा।

नादिरशाह ईरान लौटने के पश्चात् शीघ्र ही अपने भतीजे अली कुली खाँ के हाथों मारा गया। हीरे का क्या हुआ, इसपर भिन्न मत हैं। निश्चय रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता क्योंकि एक दूसरे के पश्चात् ईरान के शासक पहिले घातक फिर बलि बनते रहे जिसका एक कारण यह हीरा भी था। यहाँ तक कि अहमदशाह अब्दाली ने, जो एक समय नादिरशाह का जरनैल था और बाद में अफगानिस्तान का शासक, ईरान में अव्यवस्था और घरेलू झगड़े देखकर १७४९ ई० में वहाँके शासन को सँभाल लिया और कोहेनूर का स्वामी बना।

मृत्यु कोहेनूर का पीछा करती रही और मृत्यु के साथ क्रूरता, निर्दयता और निरादर। १७७३ ई० में नादिर शाह मर गया और अफगानिस्तान में फिर अशान्ति फैल गयी। एक निर्बल शासक के बाद दूसरा। जब अहमदशाह का बेटा तैमूरशाह जो अत्यन्त विलासासक्त था मरा तब उसके तेईस बेटे शासन और कोहेनूर के लिए आपस में लड़ने लगे। अन्त में संघर्ष जमानशाह और महमूद शाह के बीच रह गया। कोहेनूर जमानशाह के पास था जो इसे सदा अपने पास रखता था। जब महमूदशाह ने उसे कैद कर लिया तो उसने इसे कारागार की दीवार में छिपा दिया और कह दिया कि उसने सारे रत्नों के साथ कोहेनूर भी दरिया में फेंक दिया है। उसकी आँखें निकाल ली गयीं और कई प्रकारके क्रूर दण्ड दिये गये परन्तु उसने भेद छिपाए रखा। इतने में उनके तीसरे भाई शुजा मिर्जा ने काबुल पर शासन जमा लिया। १८०३ ई० में घोर युद्ध हुआ। महमूदशाह हार गया और जमानशाह के स्थान पर कैद में बन्द कर दिया गया। जमानशाह ने कृतज्ञ होकर कोहेनूर शाहशुजा को दे दिया। शाहशुजा भी काबुल का सिंहासन सँभाल न सका। महमूदशाह चालाकी से कारागार से निकल गया और पुराने विश्वस्त जरनैलों की सहायता से फिर अफगानिस्तान का बादशाह बना। नौ दस वर्ष शाहशुजा शासन को वापिस लेने का प्रयत्न करता रहा परन्तु सफलता न हुई और अन्त में पकड़ा गया और कश्मीर के शासक अतामुहम्मद खाँ के यहाँ कैद हुआ। उसने अपनी स्त्री वफाबेगम को बच्चों और कोहेनूर समेत लाहौर भेज दिया जहाँ उस समय महाराजा रणजीतसिंह शासन करते थे।

महाराजा रणजीतसिंह ने वफा बेगम के साथ

अत्यन्त नम्रता का बर्ताव किया और हर प्रकार के सुख प्रस्तुत कर दिये। वफा बेगम ने महाराजा को कहला भेजा कि यदि वह उसके पति को शत्रु के पंजे से छुड़ा दें तो वह उसे एक बहुमूल्य हीरा बदले में देगी। महाराजा पहले ही कश्मीर की सुन्दरता का वर्णन सुन चुका था और सोच रहा था कि वह उसे विजय करे। झट मान गया।

काबुल का बादशाह तो महमूदशाह था परन्तु तमाम अधिकार उसके वजीर फतह खाँ के हाथ में था। फतह खां का विचार था कि जब तक अता मुहम्मद कश्मीर का शासक है, काबुल को हर समय भय ही रहेगा। उसने रणजीतसिंह से सहायता माँगी और प्रण किया कि इसके बदले वह उसे नौ लाख रुपये प्रतिवर्ष उपहार देता रहेगा। दोनों ओर से आक्रमण हुआ। अता मुहम्मद घिर गया और उसने श्रीनगर के किले में शरण ली। तेरह दिन फतह खाँ ने घेरा डाल रखा और अन्त में अता मुहम्मद पकड़ा गया। अभी तक सिक्खों की सेना श्रीनगर नहीं पहुँची थी। फतह खाँ ने उपहार देने की आवश्यकता न समझी, अपने भाई को कश्मीर का शासक बना दिया और यह कहकर वापिस काबुल चला गया कि महाराजा को कुछ न दिया जाये।

जब रणजीतसिंह को यह सूचना मिली, उसने अफगानिस्तान से लौटती सेना पर आक्रमण कर दिया और पराजित करके शाहशुजा को छुड़ा लिया। शाहशुजा अत्यन्त ठाटबाट के साथ १८१३ ई० में लाहौर में लाया गया जहाँ राजकुमार खड़क सिंह और दूसरे दरबारियों ने उसका स्वागत किया। परन्तु जब वह शहर के अन्दर प्रविष्ट हुआ उसे बन्दी बना लिया गया और उससे कोहेनूर माँगा गया। उसने कई बहानों से टालने का यत्न किया, कभी कहता कि गुम हो गया है, कभी कहता कि उसने इसे छः करोड़ रुपये के बदले कन्धार में गिरवी रख दिया है। अन्त में उसने एक पुखराज पेश किया और कह दिया कि यह कोहेनूर है। परन्तु जौहरियों ने कहा कि यह हीरा नहीं है। रणजीतसिंह को बहुत क्रोध आया और आज्ञा दी कि शाहशुजा और उसके कुटुम्ब को खाने-पीने के लिए कुछ न दिया जाये। दो दिन वह सब भूखे रहे परन्तु कोहेनूर सम्भाले रखा। जब महाराजा ने देखा कि जबरदस्ती से काम नहीं बनता तो उसने खाना तो प्राप्त करा दिया परन्तु कहला भेजा कि वह कोहेनूर खरीदने को तैयार हैं और पचास हजार रुपया बयाना के रूप में भेज दिये। शाह शुजा मान गया। अब रणजीतसिंह को विश्वास हो गया कि कोहेनूर उसके पास है। वफा बेगम से जब उसका मूल्य पूछा गया तो उसने कहा कि यदि एक मनुष्य चारों ओर पत्थर फेंके और एक पत्थर ऊपर फेंके इतने प्रदेश में जितने रत्न इकट्ठे हो सकेंगे वह कोहेनूर का मूल्य होगा। रणजीतसिंह तीन लाख रुपये और पचास हजार प्रति वर्ष की जागीर देने को तैयार हो गया।

शाहशुजा ने कहा कि महाराजा स्वयं उसके लेने के लिये आयें। प्रथम जून १८१३ ई० को महाराजा एक हजार सैनिक लेकर अत्यन्त ठाटबाट से उस हवेली में पहुँचे जहाँ शाहशुजा बन्दी था। उसका स्वागत तो हार्दिक किया गया परन्तु एक घंटा हीरे के बारे में कुछ न कहा गया। अन्त में तंग आकर रणजीतसिंह ने बात छेड़ी और शाहशुजा ने उत्तर देने के स्थान पर एक सेवक को आँखों से संकेत किया जो अन्दर जाकर कपड़े में लपेटी छोटी सी गठरी उठाकर लाया और दोनों के बीच एक समान दूरी पर रख दिया।

रणजीतसिंह ने एक कागज केसर से रंगा और ग्रन्थ साहिब और अपनी तलवार की शपथ खाकर लिख दिया कि वह कोट कमालिया, झंगसयाल और कलहूर का प्रदेश शाहशुजा और उसके उत्तराधिकारियों को सदा के लिये प्रदान कर देगा और अपने कोष और सेना की सहायता से उसे काबुल का सिंहासन वापिस दिलाने का भी यत्न करेगा। मित्रता को घनिष्ठ करने के लिये उन्होंने पगड़ियाँ भी एक दूसरे के साथ बदल लीं।

जब रणजीतसिंह को कोहेनूर मिल गया तो उसने उसका मूल्य पूछा। शाहशुजा को दुःख हुआ और उसने कहा कि इसका मूल्य तलवार है और मौन हो रहा। रणजीतसिंह ने हीरा जेब में डाला और वापिस लौट आया। कोहेनूर के आदर में एक शानदार दरबार लगाया गया। नगर को खूब सजाया गया और दीपमाला की गई।

रणजीतसिंह को यह हीरा अत्यन्त प्यारा था। पाँच वर्ष तक वह भुजबन्द की तरह इसका उपयोग करता रहा और फिर साफे से बाँध लिया और अन्त में जब कोष में जमा करा दिया तो भी जब कभी बाहर जाता उसे अपने साथ ले जाता और उस पर कठोर पहरा रहता। वह उसे अपने आदरणीय अतिथियों को अत्यन्त गौरव के साथ दिखाया करता था। कई योरपीय दूतों ने उसे देखा और बहुत प्रशंसा की। लार्ड आकलैंड का सैनिक सेक्रेटरी बर्न लिखता है कि हीरा कमाल चमक रखता है। डेढ़ इंच लम्बा, एक इंच से कुछ अधिक चौड़ा और आध इंच ऊपर उभरा हुआ है। अण्डे के आकार का, तीन लाख पौंड के मूल्य का होगा। अत्यन्त शानदार और निर्दोष है।

शाहशुजा ने जिस धैर्य और सन्तोष के साथ कोहेनूर दिया उससे महाराजा रणजीतसिंह को सन्देह हुआ कि उसके पास और भी रत्न हैं। उसे फिर बन्दी बना दिया गया और अभियोग लगाया गया कि वह गुप्त रूप से कश्मीर के शासक मुहम्मद आजम खाँ से पत्र-व्यवहार कर रहा है। क्रोध यह भी था कि वफा बेगम ने शाहशुजा के छूटने के बाद अपना प्रण पूरा नहीं किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों ओर से कपट हुआ। कोहेनूर का सारा इतिहास ऐसे छल, कपट अपितु हत्या, हिंसा, विध्वंस, शासन पतन इत्यादि का इतिहास है। अन्त में शाहशुजा ने चालाकी से वफा बेगम को रत्नों समेत सतलुज के पार लुधियाना भिजवा दिया जहाँ उसने

अंग्रेजों की शरण ली। और फिर स्वयं भी लुधियाना पहुच गया।

१८३९ ई० में महाराजा रणजीतसिंह की मृत्यु से थोड़े समय पूर्व उसके मन्त्री राजा ध्यानसिंह ने कोषाध्यक्ष मिश्र बेलीराम को बुलवाया और कहा कि महाराजा ने इच्छा प्रकट की है कि कोहेनूर को जगन्नाथपुरी के पुजारियों को दान दे दिया जाये। महाराजा उस समय बोल नहीं सकता था। बेलीराम ने आपत्ति की कि बीस लाख रुपये पहले ही ब्राह्मणों को दिये जा चुके हैं। कोहेनूर राजकोष में ही रहने के योग्य है और महाराजा के उत्तराधिकारियों की सम्पत्ति है। राजा ध्यानसिंह ने क्रोध से महाराजा की मृत्यु के पश्चात् बेलीराम को चार मास के लिए कैद कर दिया और कोषगृह की चाभियाँ उससे ले लीं।

एक अंग्रेज महिला ऐमिली ईडन ने भी अपने एक पत्र में इसका वर्णन किया है जो उसने शिमला से १९ जुलाई १८३९ ई० में अपनी बहन को लिखा। वह लिखती हैं कि यह अत्यन्त हर्ष अथवा आश्चर्य की बात है कि जब महाराजा बोल भी नहीं सकता था उसके प्रति संकेत का पालन हो रहा था। महाराजा ने अपने सारे रत्न मँगवाए और भिन्न-भिन्न मन्दिरों में भिजवा दिये ताकि ब्राह्मण उसकी मुक्ति के लिए प्रार्थना करें। यह भी आज्ञा दी कि कोहेनूर को जगन्नाथपुरी के मन्दिर में भेज दिया जाये। इसपर सरदारों ने विनय की कि कोहेनूर के समान संसार भर में दूसरा रत्न नहीं है। हिन्दुस्तान का सारा धन उसे खरीद नहीं सकता। तब महाराजा मान गया।

एक कथन यह है कि मिश्र बेलीराम ने आपत्ति की कि कोहेनूर महाराजा की सम्पत्ति नहीं अपितु राष्ट्र की है। सारांश यह कि कोहेनूर कोष ही में रहा।

महाराजा की मृत्यु के पश्चात् विप्लव फैल गया, उपद्रव तथा षडयन्त्र का ताँता बँध गया, हत्याएँ आरंभ हो गयीं। पहिले खड़कसिंह, फिर नौनिहाल सिंह और अन्त में दलीप सिंह सिंहासन पर बिठाया गया जो अभी बच्चा था। इतने में कई सरदारों ने अँगरेजों के साथ पत्र-व्यवहार आरम्भ कर दिया। घोर युद्ध हुए और अँगरेजों ने पंजाब पर अधिकार जमा लिया। लाहौर का सन्धि-पत्र लिखा गया जिसमें एक शर्त यह थी कि कोहेनूर इँगलैंड की महारानी को दे दिया जाये। कहाँ तक यह शर्त उचित थी, इस पर मतभेद है। लार्ड डलहौजी को इसपर बहुत गर्व था। कई अंगरेज एतिहासिकों ने इसे एक कलंक कहा है।

कोहेनूर सर जान लारेन्स के सुपुर्द किया गया जो उस समय पंजाब सरकार के तीन मेम्बरों में से एक था और इन बातों में सबसे चतुर समझा जाता था। उसने उसे एक कपड़े में लपटकर एक छोटी सी डिबिया में डाला और अपनी वास्कट की जब में रख लिया। राष्ट्र के कामों में व्यस्त वह उसे बिल्कुल भूल गया। कई बार उसने वास्कट उतारी और इधर-उधर फेंकता रहा। छः मास बीत गये। लार्ड डलहौजी का सन्देश आया कि महारानी विक्टोरिया ने कोहेनूर माँगा है। बोर्ड की मीटिंग हो रही थी। प्रधान सर हेनरी लारेन्स ने पत्र पढ़कर सुनाया। जान ने तुरंत उत्तर दिया कि उसे शीघ्र ही भेज देना चाहिये। जब उसे याद दिलाया गया कि कोहेनूर तो उसके पास है तो वह भौंचक्का रह गया परन्तु उसने अपने आप को शीघ्र ही सम्भाल लिया। और कहा कि हाँ, मैं तो भूल ही गया था और फिर मीटिंग की कार्रवाई में मग्न हो गया। जब मीटिंग समाप्त हुई तुरन्त वह अपने कमरे में गया और नौकर से पूछा कि क्या तुमने मेरी वास्कट से गिरी हुई छोटी सी डिबिया उठायी है। नौकर बोला, हाँ साहिब, मैंने उसे उठाकर आपके सन्दूक में रख दिया है और तुरत ही उसे निकाल लाया और जब उसे खोला तो कहने लगा कि साहिब इसमें केवल एक छोटा सा शीशा है और कुछ नहीं। लारेन्स की जान में जान आयी। बाद में वह प्रायः कहा करता था कि मैंने उस दिन के समान जीवन में और कोई कष्ट नहीं देखा।

कोहेनूर की लाहौर से बम्बई तक की यात्रा भी अति रोचक है। उसे एक घुड़सवार अफसर को दिया गया और चेतावनी दी गयी कि किसी पर विश्वास न करे क्योंकि उस समय ठग लोगों का बड़ा आतंक था। तेरह सौ मील से अधिक यात्रा, न मोटर न रेलगाड़ी। अफसर ने मुसलमान व्यापारी का भेस बनाया और प्रस्थान किया। ठगों को भी पता चल गया। रास्ते में उसे एक घुड़सवार राही मिला और इच्छा प्रकट की कि वह रक्षा के लिए उसके साथ यात्रा करेगा। अफसर ने कहा कि या तो तुम आगे चल सकते हो या पीछे, मेरे साथ नहीं। वह पीछे रह गया। आगे जाकर अफसर कहीं छिप गया। थोड़े समय में क्या देखता है कि वही व्यक्ति भिन्न वस्त्रों में आ रहा है। और यह देखकर उसके आश्चर्य की सीमा न रही कि उन्हीं वस्त्रों में कई दिन पहिले वह सईस की नौकरी के लिए उसके पास आया था।

कुछ दिनों के बाद वह अफसर एक नदी के किनारे रुका। शाम हो चुकी थी। नदी को पार करना सम्भव नहीं था। रात काटने के लिए वह किनारे पर ही बैठ रहा। इतने में दो राही और आये और कहने लगे कि वह भी रात वहीं काटेंगे। चौकन्ना तो था ही, जब उसने देखा कि वे उसके दोनों ओर सो गये हैं तो उसका संदेह पक्का हो गया और वह जागता रहा। कुछ रात बीते उसने अपनी ऊपर वाली चादर उनमें से एक के साथ बदल ली और स्वयं उसके दूसरी ओर सो गया। परन्तु उसे नींद कहाँ। उसने देखा कि दूसरा राही उठा और शीघ्र ही बीच में सोए अपने ही साथी के गले में फन्दा डाल दिया। यही ठगों का हत्या करने का ढंग था। जब उसे अपनी भूल का ज्ञान हुआ तो उसने चाहा कि अफसर को भी मार डाले परन्तु पिस्तौल उसके गले पर था। उसने क्षमा माँगी। अफसर ने आग्रह किया कि वह अपने साथी के शव को उठाकर नदी के पार चला जाये। डूबना निश्चित था।

इसके पश्चात् उसने एक रात एक सराय में काटी जहाँ एक फटे-पुराने कपड़े पहने एक भिखारी के अतिरिक्त कोई पुरुष नहीं था। वे दोनों एक दूसरे के समीप सो गये। पानी का एक-एक लोटा उनके पास धरा था। अफसर ने एक मलमल का टुकड़ा लोटे पर डाल दिया और जब रात को उसकी जाग खुली तो उसने देखा कि मलमल के टुकड़े पर लाल रंग का चूर्ण पड़ा है। प्रत्यक्ष था कि वह विष था जो भिखारी ने उसके पानी में मिलाने के लिए डाल दिया था। यह भी उसने देखा कि भिखारी के समीप ही रेशमी रुमाल का उसी प्रकार का फन्दा था जो ठग प्रयोग में लाते थे।

कोहेनूर की इस यात्रा का वर्णन करनैल आर्थर्टन के एक लेख पर आधारित है। कहाँ तक इतिहास है, और कहाँ तक उपन्यास, यह कहना कठिन है। क्यों ऐसे बहुमूल्य और ऐतिहासिक हीरे को एक अकेले घुड़सवार के सुपुर्द कर दिया गया, क्यों ठगों ने एक-एक करके मरने के स्थान पर उसपर मिलकर आक्रमण न किया?—ऐसी जिरह का कुछ उत्तर नहीं मिल सकता।

बम्बई से कोहेनूर दो और अफसर इँगलैंड ले गये और ३ जुलाई १८५० ई० को ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डिप्टी चेयरमैन ने महारानी विक्टोरिया को उसे भेंट किया और १८५१ ई० में लन्दन की महान् प्रदर्शनी में उसे दिखाया गया। उसके साथ महाभारत के समय से लेकर उस समय तक का उसका इतिहास भी लेख के रूप में वहाँ रखा गया।

अगले साल अर्थात् १८५२ ई० में कोहेनूर को तरशवाया गया जिससे उसकी सुन्दरता और चमक बढ़ने के स्थान पर कम हो गयी और उसका भार १८६$\frac{१}{१६}$ कैरट के स्थान पर १०६$\frac{१}{१६}$ कैरट रह गया। तरशवाने पर आठ हजार पौंड खर्च हुए और ३८ दिन लगे।

इन दिनों महाराजा दलीपसिंह लेडी लोगन की देखभाल में लन्दन में रहता था। वह कोहेनूर को केवल एक बहुमूल्य हीरा ही नहीं समझता था परन्तु एक ऐसा रत्न जिसके साथ हिन्दुस्तान का इतिहास सम्बद्ध था जिसे महाराजा रणजीतसिंह ने बहुत कठिनाइयों से प्राप्त किया था। महारानी विक्टोरिया ने यह जानने की इच्छा की कि उसके कोहेनूर के बारे में क्या भाव हैं। यह काम लेडी लोगन को सौंपा गया। एक दिन बातों बात में लेडी लोगन ने महाराजा से पूछा कि क्या तुम कोहेनूर को देखना चाहोगे। महाराजा चौंक गया और कुछ संकोच के साथ कहने लगा, हाँ अवश्य, वह हीरा मुझे बहुत प्यारा है। जब मैंने उसे लाहौर के सन्धिपत्र के अनुसार दिया था तो मैं बच्चा ही था। अब मैं बड़ा हो गया हूँ और चाहता हूँ कि उसे स्वयं महारानी के भेंट करूँ।

कहा जाता है कि एक दिन जब कि बकिंघम पैलेस में वह अपनी तसवीर खिंचवा रहा था, महारानी ने कोहेनूर उसे दिया। पन्द्रह मिनट तक वह चुपचाप देखता रहा। कौन कह सकता है क्या-क्या विचार व भाव उसके मन में आये और गये? अन्त में उसने झुककर उसे महारानी को भेंट कर दिया। इस समय वह हीरा इँगलैंड की महारानी के मुकुट पर जड़ा हुआ है।

जब तक हिन्दुस्तान स्वतन्त्रता के संग्राम में व्यस्त था इस हीरे का ध्यान किसीको न आया। आता भी कैसे? जब स्वतन्त्रता ही नहीं थी, देश ही अपना नहीं था कोहेनूर कहाँ रखा जाता? स्वतन्त्रता के पश्चात् सी० वी० रमन पहिला पुरुष था जिसने अपने एक व्याख्यान में कह दिया कि जब तक कोहेनूर वापिस नहीं आता भारत की स्वतन्त्रता पूर्ण नहीं है। सी० वी० रमन को एक हिन्दुस्तानी होने के अतिरिक्त एक वैज्ञानिक के नाते भी कोहेनूर से सम्बन्ध था क्योंकि उन्होंने कई वर्ष हीरों की बनावट की खोज में व्यतीत किये हैं। इसके पश्चात् यह माँग किसी न किसी रूप में जारी रही। जब महारानी ऐलिज़ाबिथ द्वितीय के राज्याभिषेक का समय आया तो भारत के समाचार-पत्रों में इसकी चर्चा हुई। परन्तु निर्णय हुआ कि राज्याभिषेक के समय इस प्रश्न को न छेड़ा जाये।

उन्हीं दिनों लोकसभा में कोहेनूर और दूसरे कला के अमूल्य रत्नों के बारे में एक प्रश्न पूछा गया जिसके उत्तर में श्री के० डी० मालवीय ने कहा कि सरकार इन सारे अमूल्य रत्नों को वापिस लेने का यत्न कर रही है। इस उत्तर का मिलना था कि इंगलैंड में शोर मच गया। समाचार-पत्रों में खूब चर्चा हुई। हर प्रकार की टीका-टिप्पणी हुई। यहाँ तक कहा गया कि कोहेनूर भारत की सम्पत्ति नहीं यह मुसलमान बादशाहों की सम्पत्ति है और लाहौर से इंगलैंड आया था। लाहौर पाकिस्तान में है। यह न सोचा गया कि उस समय पाकिस्तान बना ही नहीं था, और यह कि लाहौर पर

सिक्खों का शासन था जो अब भारत में है। यह भी लिखा गया कि कोहेनूर इंगलैंड की सम्पत्ति नहीं महारानी की निजी सम्पत्ति है क्योंकि ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने महारानी को दिया था। किसीने यह भी लिख दिया कि यह राष्ट्रीय समस्या ही नहीं, कोहेनूर एक निजी भेंट थी जो महाराजा दलीपसिंह ने महारानी विक्टोरिया को दी। कौन सोचता कि महाराजा उस समय कितना स्वतन्त्र था अथवा उसे कोहेनूर देने का कहाँ तक अधिकार था। और यह भी कि लेडी लोगन का कथन कहाँ तक सत्य है। महाराजा दलीपसिंह और महारानी विक्टोरिया दोनों ने चुप्पी साध रखी थी। एक पत्र ने यह लिखा कि ऐसे रत्न वापिस नहीं किये जाते, कई देशों में दूसरे देशों के रत्न पड़े हैं। केवल एक समाचार-पत्र 'डेली वर्कर' ने लिखा कि अब भारतवर्ष स्वतन्त्र है। हमें न केवल पुराना लूट का माल वापिस कर देना चाहिये परन्तु भविष्य में भी व्यापारिक लूट बन्द कर देनी चाहिए।

जब लोकसभा में उत्तर दिया गया था पं० नेहरू दिल्ली में नहीं थे। उनके शान्तिप्रिय स्वभाव को कष्ट हुआ। वह नहीं चाहते थे कि राज्याभिषेक के समय ऐसी चर्चा हो। जब वह दिल्ली आये तो शिक्षा-मन्त्री मौ० अबुलकलाम आजाद ने एक विज्ञप्ति प्रकाशित करायी जिसमें कहा गया था कि सरकार ऐसी सारी अमूल्य वस्तुओं की सूची बनवा रही है जो उपहार अथवा बिक्री के रूप में बाहर चली गयी हैं, और जब यह सूची तैयार हो जाएगी तब सरकार उसपर विचार करेगी कि किस प्रकार सन्धि-पत्र से अथवा खरीदकर उन्हें वापिस लाया जाये। स्पष्ट है कि बिना दूसरे देशों की सम्मति के वे वापिस नहीं लाये जा सकते। लोकसभा में जो उत्तर कोहेनूर अथवा दूसरी ऐतिहासिक अमूल्य वस्तुओं के बारे में दिया गया है उसके सम्बन्ध में सरकार ने कभी विचार नहीं किया क्योंकि यह कला से सम्बन्धित नहीं और अब इंगलैंड के मुकुट का भाग है। इस विज्ञापन से भारत में निराशा सी हुई परन्तु इंगलैंड के समाचार-पत्रों में हर्ष प्रकट किया गया। शान्ति हो गयी।

यह विषय कुछ इस कारण नाजुक और पेचीदा बन गया है कि कोहेनूर इंगलैंड के कोष में नहीं अपितु महारानी के मुकुट में जड़ा है। अँगरेजों के दिलों में महारानी के लिए अपूर्व श्रद्धा है। भारत भी राष्ट्रमण्डल (Commonwealth) का सदस्य है और महारानी के अधिकार को मानता है। मुकुट से निकालकर कोहेनूर को वापिस करना एक प्रकार का निरादर है। यह भी सत्य है कि लाहौर का सन्धिपत्र जबरदस्ती लिखाया गया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी का किसी अवस्था में भी यह अधिकार नहीं था कि कोहेनूर को देश से बाहर ले जाये।

यह भी प्रस्ताव किया गया है कि इसे और इस प्रकार के दूसरे रत्नों को यू० एन० ओ० (U.N.O.) के सुपुर्द कर दिया जाये, जो उनको एक अन्तर्देशीय अजायबघर में रखे। प्रस्ताव तो युक्त प्रतीत होता है, परन्तु अन्त में क्या निर्णय होगा इतिहास ही बताएगा।



प्रकार लाया
त के वे
उत्तर
गुरुओं के
ने कभी
धत नहीं
ापन से
माचार-
।
ादा बन
हारानी
ानी के
(Com-
धिकार
वापिस
है कि
। ईस्ट
धिकार
र इस
O.) के
जायब-
परन्तु

हिन्दी के पहले डी० लिट्०—डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल

श्री केशवानन्द ममगाईं

हमारा हिन्दूधर्म चिर पुरातन है। इसकी परम्परा को बनाये रखने के लिए इस पवित्र भूमि के सन्तों ने आजीवन को समर्पित कर दिया था। इन सन्त प्रवरों ने अपने सुधासिक्त अमर वचनों से हिन्दू जाति को जागृत किया, उसे अपने मार्ग से च्युत होने से रोका तथा विदेशी आक्रान्ताओं और शासकों के अत्याचारों से विचलित न होने दिया। किन्तु कालान्तर में उनकी वाणी दुरूह और जटिल कही जाने लगी और इस कारण लोग उसको उपेक्षा से देखने लगे। यही नहीं लोगों ने सन्त-वाणी पर ध्यान देना ही सर्वथा छोड़ दिया था। ऐसे समय हिमालय का यह पुत्र खम ठोंककर सामने आया और उसने अपनी अलौकिक प्रतिभा के द्वारा सन्त-साहित्य के तत्त्व को सरल बनाकर जनता को समझाने का स्तुत्य प्रयास किया। हमारा संकेत है स्व० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल की ओर।

डा० बड़थ्वाल लकीर के फकीर न थे। महापुरुष अपने लिए अपना मार्गदर्शक स्वयं हुआ करता है। डा० बड़थ्वाल ने अपना मार्ग स्वयं बनाया और उसे प्रशस्त कर दिखाने में उन्होंने कमाल हासिल किया। वे हिन्दी के उन कवियों की रचनाओं को प्रकाश में लाये जिनके सम्बन्ध में तथाकथित दिग्गज साहित्यिक भ्रम में डाल देने वाले मत से जनता को गलत मार्ग पर डाल रहे थे। उनके प्रसिद्ध निबन्ध 'आचार्य कवि केशवदास' के अध्ययन से यही विदित होता है। डा० बड़थ्वाल की दृष्टि उन सभी साहित्य-मनीषी सन्तों पर गयी जिनके साहित्यिक प्रयास और वाणी से हमारी संस्कृति का दिव्य भण्डार विपुल हुआ है। पद्मावत की कहानी जायसी के अध्यात्मवाद का सुन्दर चित्र है। कृष्णभक्त मीरा ने भक्ति के असंख्य भजन गाकर हृदय के तारों को झंकृत कर डाला। महाप्रभु वल्लभाचार्य की कृपा से अष्टछाप के कवि हिन्दी साहित्य में अपना अमृत विखेर गये। कबीर कुल सम्बन्धी जटिल वृत्त पर सूक्ष्म दृष्टि से विवेचना की। ये सारी बातें डा० बड़थ्वाल की कीर्ति को चार चाँद लगाती हैं।

दृढ़प्रतिज्ञ

डा० बड़थ्वाल प्रत्येक बात को सत्य और तथ्यों की कसौटी पर कसने के बाद ही साहित्य-जगत् के सामने प्रस्तुत करते थे, वे तोल-तोलकर शब्दों की विवेचना करने में अपना सानी नहीं रखते थे। फिर जिस विवेच्य विषय को वे एक बार प्रकाश में ले आते थे उसके समर्थन में उनके तर्क देखने योग्य होते थे। तर्क उठाने वाला उनके अकाट्य तर्कों के तीखे बाणों से तिलमिला उठता था, किन्तु अपनी विनम्रता की मरहम से दूसरे के घाव को ठीक करने में सक्षम भी थे। उनकी दृढ़ता उस समय खूब उभर कर आई, जब कि कवि भूषण के कवित्तों से सम्बन्धित एक पुस्तक के विषय में उनकी गांधीजी से जोरदार टक्कर हुई। यह पुस्तक उस समय उत्तर प्रदेश बोर्ड के इण्टरमीजियट पाठ्य-क्रम में निर्धारित थी। म० गांधी ने उनकी उक्त पुस्तक कुछ अंशों पर आपत्ति करते हुए बोर्ड से सिफारिश की कि वह इन अंशों को हटा दे। बोर्ड ने विवादग्रस्त अंशों को डा० बड़थ्वाल के सामने रखा। डा० साहब ने इस बात को साहित्य के प्रति अन्याय समझकर साफ-साफ शब्दों में लिख भेजा—"चाहे आप यह पुस्तक कोर्स में रखें या नहीं, वे अंश नहीं हटाये जा सकते।" भले ही गांधीजी की



डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल

बात मानी गयी हो परन्तु इससे उनकी दृढ़ता और निष्ठा शीशे के समान झलक उठती है।

हिंदी के लार्ड बेकन

डा० बड़थ्वाल जहाँ उच्चकोटि के श्रेष्ठ आलोचक थे, वहाँ कुशल निबन्धकार भी थे। हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ डा० श्यामसुन्दरदास ने उनके सम्बन्ध में एक स्थान पर लिखा है--"आप (डा० बड़थ्वाल) एक श्रेष्ठ निबन्धकार हैं। आपके निबंध तर्कपूर्ण और न्यायसंगत होते हैं। आपके निबन्धों में विवेचना की प्रधानता रहती है। आप इष्ट विषय की पूर्ण विवेचना करते हैं। थोड़े से ही में आपको संतोष नहीं मिलता। विपक्षी की ओर से जो भी तर्क या प्रश्न हो सकते हैं सबको रखकर फिर उनका समाधान करते हैं।" इतना संवेदनशील, सहृदय, धैर्यवान् और न्यायकारी निबन्धकार और आलोचक की अप्रतिम प्रतिभा देखकर दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है। किसी भी बात को साहित्यिक भाषा का प्रयोग करते हुए हृदय और मस्तिष्क में आकर्षक ढंग से बिठला देने में वे सिद्ध-हस्त थे। भाषा का चमत्कार उनकी अपनी विशेषता थी। न्यूनातिन्यून शब्दों में अधिक से अधिक भावों का समावेश करना उनकी अद्भुत लेखनी का ही काम था। सरल शब्दों का प्रयोग करते हुए भी स्पष्टता आकर्षक और इतनी सुन्दर ढंग से आ खड़ी होती है कि देखने से प्रयोजन रखती प्रसाद और ओज उनके निबन्धों के विशेष गुण हैं। यदि यह कह दिया जाये कि उनके अनेक निबन्ध इंग्लैण्ड के सुविख्यात न्यायाधीश लार्ड बेकन के निबन्धों की समता करते हैं तो इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं। श्री ब्रह्मदत्त शर्मा के शब्दों में कहा जाय तो कहना होगा कि-"वे निबन्धकला के पारगामी थे।"

अन्य लोग यदि भारी-भरकम ग्रंथ लिखने में बड़प्पन समझते हैं पर डा० बड़थ्वाल थोड़े ही आकार में जीवन डाल देते थे। डा० रामप्रसाद त्रिपाठी ही एक ऐसे अन्य व्यक्ति हैं। उनमें भाषा, भाव और विचार का थोड़े में मणि-कांचन संयोग कर देने की अद्भुत शक्ति थी।

डा० बड़थ्वाल सन्त साहित्य के मर्मज्ञ थे। तिरुपति ओरिंटियल कान्फ्रेंस के हिन्दी विभाग के सभापति के रूप में हिन्दी काव्य की निरंजनी धारा को प्रकाश में लाये। सिद्ध साहित्य व सन्त साहित्य की बीच की कड़ी नाथ साहित्य को व्यवस्थित ढंग से सामने लाये। इस कड़ी को अब डा० शांतिप्रसाद चंदोला ने म० म० पं० गोपीनाथ कविराज के निर्देशन में और आगे बढ़ाया है। और पं० परशुराम चतुर्वेदी ने सन्तसाहित्य पर कलम चलाई है तो इसका श्रेय डा० बड़थ्वाल को जाता है। डा० साहब पल्लवग्राही पांडित्य में विश्वास नहीं रखते थे। वे विद्वत्ता के अगाध उदधि थे तभी तो सन्त-साहित्य सम्बन्धी रत्न हिन्दी साहित्य को प्राप्त हो सके जो उसकी अक्षय और अमूल्य धरोहर हैं, जिस पर जितना गर्व किया जाये, थोड़ा है।

लेख-संग्रह

डा० बड़थ्वाल के दो लेख-संग्रह सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। १--योगप्रवाह और २--मकरन्द। उनके सभी निबन्ध उनकी विद्वत्ता के अप्रतिम उदाहरण हैं तथा हिन्दी साहित्य उनकी इस अमूल्य सेवा के लिए सदैव ऋणी रहेगा। 'योगप्रवाह' का सम्पादन डा० संपूर्णानन्द ने किया है। यह संग्रह डा० साहब की मृत्यु के बाद प्रकाशित हो पाया। इसके अनेक निबंध उस समय अनेक पत्र-पत्रिकाओं में छपे हैं। ये लेख भक्ति और योग से सम्बन्ध रखते हैं। भाषा का चमत्कार देखना हो तो इसमें देखिए। ऐसा लगता है कि भाषा-रूपी नर्तकी डा० बड़थ्वाल की उँगलियों के संकेत पर झूम-झूम कर नाच रही हो। स्व० डा० बड़थ्वाल के सम्बन्ध में डा० सम्पूर्णानन्द लिखते हैं--"उनके परिश्रम से हमको कैसा लाभ हुआ और उनके असामयिक निधन से हमारी कितनी क्षति हुई इसके प्रमाण में एक वही निबन्ध पर्याप्त है जिसमें उन्होंने गुरु राघवानन्दजी की चर्चा की है। अकेला यह निबन्ध बहुत सी गुत्थियों को सुलझाता है।"

कुछ महत्त्वपूर्ण अंश

डा० बड़थ्वाल 'हिन्दी कविता में योगप्रवाह' नामक लेख में एक स्थान पर लिखते हैं--"जब भक्ति की धारा नई भूमि पर नये आकार और नये वेग से बहने लगी तब उसका नाम निर्गुण धारा पड़ा। निर्गुण धारा को तो साहित्य के इतिहास में उचित स्थान मिला है किन्तु योग-धारा अब तक इस सौभाग्य से वंचित है। उसके प्रवर्तक गोरखनाथ और उनके अनुयायी अन्य योगी कवि चमत्कार-पूर्ण जनश्रुतियों के ही नायक बने रहे..."। निर्गुणों पर

थोड़ा-सा व्यंग्य करते हुए उन्होंने लिखा है--"अपनी वस्तु चाहे बहुमूल्य हो अथवा अल्पमूल्य, उसे अपनी स्वीकार करना ही पड़ेगा, फिर योग की कविता का बहुत प्राचीन साहित्य होने के कारण भी उसका अपना ही अलग मूल्य है जिसके लिए हमें इन योगियों का समुचित आभार मानना चाहिए।" डा० बड़थ्वाल के इन शब्दों में कितनी अधिक आस्था और निष्ठा है।

जीवनवृत्त

डा० पीताम्बरदत्त का जन्म गढ़वाल के पाली ग्राम में १७ मार्गशीर्ष सं० १९५८ में एक सद्वंश में हुआ। सर्वप्रथम अपने ही घर पर संस्कृत पढ़ी तथा उसके बाद हिन्दी और अंग्रेजी पढ़ना प्रारम्भ किया। प्रारम्भिक कक्षाओं को उत्तीर्ण कर वे श्रीनगर (गढ़वाल) के राजकीय हाईस्कूल में प्रविष्ट हुए। वहाँ अधिक दिन न रहे और लखनऊ के कालीचरण हाईस्कूल से उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा पास की। डी० ए० वी० कालेज कानपुर से आपने एफ० ए० की परीक्षा में सफलता प्राप्त की। विद्या की लगन के फलस्वरूप वे काशी विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हुए। डा० बड़थ्वाल में प्रारम्भ से ही होनहार के गुण विद्यमान थे। उनमें गुरु-भक्ति, विनम्रता, सुशीलता, योग्यता और कुशाग्रबुद्धि जैसे दुर्लभ गुण थे, जिनके कारण महामना मालवीयजी का ध्यान इस बुद्धिमान छात्र पर गया। यहीं से बी० ए०, एम० ए०, एल-एल० बी० की परीक्षाएँ उच्च श्रेणी में उत्तीर्ण कीं। वे समस्त संयुक्तप्रान्त (अब, उत्तर प्रदेश) में एम० ए० में सर्वप्रथम आये। सन् १९३३ में आपके निबन्ध 'हिन्दी काव्य की निर्गुणधारा' (दि नैगेटिव स्कूल आव हिन्दी पोइट्री) पर बनारस विश्वविद्यालय ने सम्मान के साथ उन्हें डी० लिट्० की उपाधि से विभूषित किया। हिन्दी के इतिहास में डा० बड़थ्वाल पहले डी० लिट्० हुए हैं। उनके अगाध पांडित्य के प्रतीक इस निबंध के परीक्षक तीन दिग्गज विद्वान् थे--१--डा० श्यामसुन्दरदास, २-प्रो० रानाडे (प्रयाग वि० विद्यालय) और ३--ग्राहम बेली (लंदन यूनिवर्सिटी)। डा० ग्राहम ने डा० बड़थ्वाल के पांडित्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। आजकल यह पुस्तक दर्शन तथा साहित्य दोनों विषयों की उच्च कक्षाओं में सहायक पुस्तक के रूप में विश्वविद्यालयों में चालू है। हिन्दी के प्रसिद्ध टीकाकार ला० भगवानदीन के देहान्त के कारण जो पद रिक्त हुआ उसके पूरक डा० बड़थ्वाल बने। अतः १९३१ से १९३८ तक वे काशी-विश्वविद्यालय में प्राध्यापक के पद पर रहे। इन आठ वर्षों में उन्होंने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया। उसी बीच नागरीप्रचारिणी सभा के शोधकार्य के अवतनिक निरीक्षक अध्यक्ष भी रहे। १९३९ में वे लखनऊ विश्वविद्यालय में आ गये और मृत्युपर्यन्त वहीं रहे। यहाँ पर एक बात लिखना हम नहीं भूल सकते कि लखनऊ विश्वविद्यालय में उनके खिलाफ कुछ तथाकथित विद्वान् प्राध्यापक षड्यंत्र करते रहे। इस घृणास्पद षड्यंत्र से डा० बड़थ्वाल उद्विग्न रहते थे। वे आर्थिक कठिनाइयों में ग्रस्त रहने के कारण अपने स्वास्थ्य का ध्यान न रख सके। उनका स्वास्थ्य गिरता चला गया और दुर्भाग्य से अथक परिश्रम के कारण उन्हें तपेदिक का शिकार बनना पड़ा। वायुपरिवर्तन के लिए वे अपने जन्मस्थान गये जहाँ विक्षिप्तावस्था में उनकी अकाल और दुखद मृत्यु हो गयी। उनकी मृत्यु पर हिन्दी साहित्य के प्रकाण्ड पंडित श्री शम्भुप्रसाद बहुगुणा ने कहा था--"हिन्दी साहित्य की यह क्षति चाहे कभी पूरी हो जाये पर उसके प्रेमियों के घाव नहीं भर सकते।"

अप्रकाशित साहित्य

डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने हिन्दी साहित्य के भण्डार को अपनी अमूल्य देन से भरा है। उसके सम्बन्ध में यहाँ पर सविस्तृत नहीं लिखा जा सकता। उनके अनेक खोजपूर्ण निबन्ध अप्रकाशित हैं उनमें तीन निबन्ध ये हैं--'मौडर्न हिन्दी पोइट्री', 'राऊण्ड दि क्वेश्चन आफ मिस्टीसिज्म' और 'मिस्टीसिज्म आफ कबीर'। उनके पास उनकी स्वरचित अनेक विषयों की पाण्डुलिपियों का अम्बार लगा था, उनमें से कौन सी सामग्री कहाँ गई? कौन ले गया? इसका अब तक ठीक उत्तर (जानकारी) नहीं मिल सका है। हमें इतनी जानकारी विश्वस्तसूत्रों से अवश्य मिली है कि अनेक तथाकथित साहित्यसेवियों और खोजियों ने उस महानात्मा के प्रति न्याय नहीं किया। उनके साहित्य का अपने नाम के लिए उपयोग किया है जो बहुत दुःखदायी बात है। आवश्यकता इस बात की है कि उनका जितना भी अप्रकाशित साहित्य मिले उसे व्यवस्थित ढंग पर प्रकाशित करने की व्यवस्था की जावे।

बड़थ्वाल स्मारक ट्रस्ट

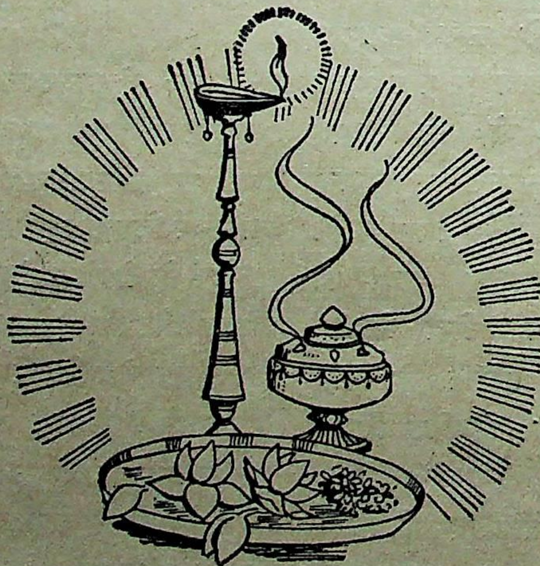
डा० बड़थ्वाल के निधन के पश्चात् लैंसडौन (गढ़वाल) में 'बड़थ्वाल स्मारक ट्रस्ट' की स्थापना की गयी थी। इस ट्रस्ट ने भले ही प्रारम्भ में शायद कुछ कार्य किया हो किन्तु जल्दी ही यह ट्रस्ट निष्क्रिय हो गया और आज बहुत खोज करने पर भी उस ट्रस्ट का कोई धनी-धोरी न मिल पाया। मैं पिछले कुछ वर्षों से डा० बड़थ्वाल से सम्बन्धित सभी प्रकार की सूचनाओं की प्राप्ति के लिए अनेक साहित्य-जीवियों से मिला हूँ किन्तु कोई विशेष सफलता नहीं मिल सकी है।

आज आवश्यकता यह है कि डा० बड़थ्वाल की याद को ताजा रखने के लिए एक समिति गठित की जाये जिसमें डा० सम्पूर्णानन्द, श्री शम्भुप्रसाद बहुगुणा (लखनऊ), डा० शांतिप्रसाद चंदोला (लखनऊ), श्री ललिताप्रसाद नैथानी, वकील (कोटद्वार), श्री भैरवदत्त धूलिया (लैंसडौन), श्री भक्तदर्शन एम० पी० (गढ़वाल) तथा कुछ पत्रकार व सत्यनिष्ठ साहित्यकार शामिल हों। वह डा० बड़थ्वाल के अप्रकाशित साहित्य को प्रकाशकों को न देकर स्वयं प्रकाशित करे। कितने दुःख की बात है कि डा० बड़थ्वाल अर्थाभाव के कारण मृत्यु को प्राप्त हुए। इधर उनकी मृत्यु के बाद उनके परिवार को घोर संकट का सामना करना पड़ा।*

गढ़वाल के लिए तो डा० बड़थ्वाल की जन्म-स्थली एक तीर्थ के समान आदरणीय और श्रद्धा की पात्र होनी चाहिए थी, किन्तु अफसोस है कि उसीके लोगों ने अपने गढ़पुत्र की उपेक्षा कर दी है। डा० पीताम्बरदत्त हिमालय की धूल में पले थे इसीलिए वे हिमालय जैसे महान् बने और सन्त-साहित्य की भागीरथी बहाकर सदा के लिए अमर हो गये।

---

*उत्तर प्रदेश की सरकार श्रीमती बड़थ्वाल को कुछ पेंशन देती है।—सम्पादक, सरस्वती।



विनय-पत्रिका में पाठ-भेद

श्री उदयशंकर शील एम० ए०

हिन्दी-साहित्य के इतिहास में एक बहुत बड़ी समस्या प्राचीन हस्तलिखित पोथियों के पाठभेद की है। लगभग जितने भी प्राचीन हस्तलिखित सद्ग्रंथ मिलते हैं सबकी अनेक नहीं तो दो-चार प्रतियाँ अवश्य उपलब्ध हो जाती हैं। पर इन सभी प्राप्य प्रतियों के पाठ में थोड़ा-बहुत अंतर रहता है जिसका परिणाम यह होता है कि शुद्ध पाठ मिलना अत्यंत कठिन हो जाता है। प्रतियों में पाठभेद होने से साहित्य के क्षेत्र में अनेक भ्रामक विचार उत्पन्न हो जाते हैं। कभी-कभी पाठभेद के कारण अर्थ का अनर्थ भी हो जाता है। हिन्दी साहित्य का आधार प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ ही हैं। ये प्रतियाँ हिन्दी साहित्य की रीढ़ हैं।

प्रस्तुत लेख में मैं गोस्वामी श्री तुलसीदास विरचित विनय-पत्रिका के प्रमुख पाठभेदों का अत्यन्त संक्षिप्त दिग्दर्शन पाठकों को कराना चाहता हूँ। विनय-पत्रिका के इन प्रमुख पाठभेदों का आधार एक हस्तलिखित प्राचीन प्रति है।[१] विनय-पत्रिका की यह प्रति हाथ के बने हल्के सफेद रंग के कागज पर लिखी गयी है जिसका आकार ११"×४' है। पृष्ठों की संख्या में यह प्रति कुल १४७ पृष्ठों की है। पर प्रारम्भिक सात पृष्ठ नहीं हैं, अर्थात् कुल एक सौ चालीस पृष्ठ बचे हैं। अंतिम पृष्ठ, जिस पर पुष्पिका लिखी गयी है, बाँधते-बाँधते घिस गया है। कुल प्रति, पुष्पिका सहित, चमकदार काली स्याही से लिखी गई है। देखने में यह प्रति अपने अक्षरों एवं कागज से ही सत्रहवीं शताब्दी की जान पड़ती है। पर हिन्दी जगत् का दुर्भाग्य है कि इस पर संवत् अथवा लिपिकर्ता का कहीं नाम नहीं है। हो सकता है प्रारम्भिक पृष्ठों में रहा हो। पुष्पिका इस प्रकार है : "इति श्री विनैपत्रिका तुलसीदास कृत समाप्त शुभमऽस्तु"। इस पुष्पिका पर लिपिकर्ता ने लाल रंग की स्याही की तूलिका चला दी है। फिर भी अक्षर साफ हैं। प्रति का पाठ स्वयं लिपिकार द्वारा संशोधित है, पर दूसरी कलम से। जगह जगह हड़ताल और गंधक लगाकर अनुपयुक्त शब्दों को मिटा भी दिया गया है। 'पुष्पिका' लिखावट से पूरी मिलती है। पृष्ठ सं० ५२ के एक स्थान पर पीपल के पत्ते की पूर्ण नसें उतर आयी हैं जो इस बात की सूचक हैं कि पत्ता काफी समय तक वहाँ पड़ा रहा होगा। एकाध स्थान पर लिपिकर्ता ने हाथ के अँगूठे का निशान भी लाल स्याही से बना लिया है। संपूर्ण प्रति लिखावट में आदि से अंत तक एक है।

उपर्युक्त प्रति का महत्त्व निम्नलिखित कारणों से है :—

(१) प्रति का पाठ वर्तमान प्रतियों से भिन्न है।
(२) प्रति पूर्ण रूप से संशोधित है।
(३) अक्षर अत्यंत साफ एवं सुस्पष्ट हैं।
(४) जिस प्रति की यह प्रतिलिपि है कदाचित् वह प्रति तुलसीदास की स्वनिर्मित रही हो या यही प्रति तुलसी बाबा द्वारा लिखी गयी हो।

जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं कि प्रति का पाठ वर्तमान प्रकाशित तथा अप्रकाशित प्रतियों से भिन्न है। पर इस छोटे से निबंध में प्रत्येक पद का विवरण देना एवं प्रकाशित प्रतियों से उसकी भिन्नता दिखाना कठिन है।

आधुनिक समय में विनयपत्रिका की अनेक प्रतियाँ विभिन्न विद्वानों एवं प्रकाशकों द्वारा संपादित एवं प्रकाशित की गयी हैं। पर प्रायः सभी प्रकाशित प्रतियों में 'गीताप्रेस गोरखपुर' से प्रकाशित विनयपत्रिका का पाठ ही स्वीकृत कर लिया गया है। इसका कारण यह है कि इसके प्रकाशक ने परिश्रम करके प्राचीन उपलब्ध प्रतियों का पूर्ण आश्रय लिया है तथा संदिग्ध स्थलों को टिप्पणी रूप में वर्णित कर दिया है। अतः इसी प्रति से तुलना कर मैं उपर्युक्त प्रति का विवरण दे रहा हूँ।

पद सं० ३०

जाके गति है हनुमान की।
ताकी पैज पूजि आई यह रेखा कुलिस पषान की॥१॥
अघटित-घटन, सुघट-विघटन, अस विरुदावलि नहिं आन की।
सुमिरत संकट सोच विमोचन, मूरति मोद निधान की॥२॥

१—यह प्रति लेखक संग्रह में थी। परन्तु गत वर्ष लेखक ने तुलसी-जयन्ती के शुभ अवसर पर उपर्युक्त प्रति श्री तुलसी पुस्तकालय, वाराणसी में भेंट कर दिया है। पुस्तकालय में प्रति अत्यंत सुरक्षावस्था में है।

तापर सानुकूल गिरिजा, हर, लखन, राम अरु जानकी।
तुलसी कपि की कृपा बिलोकनि खानि सकल संसार
की ॥३॥

उपर्युक्त पद में मात्र ६ पंक्तियाँ हैं जबकि हस्तलिखित प्रति में दो पंक्तियाँ अधिक हैं। अंतिम चार पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:—

कौतुक कियो अंजनी नंदन जाय गह्यो रथ भानु की।
उदधि अमोघ उल्लंघन कीनो सत-जोजन परमान की।
तापर सानुकूल गिरिजा, हर, लखन, राम अरु जानकी॥
तुलसी कपि की कृपा बिलोकनि खानि सकल संसार
की ॥४॥

आज की प्रकाशित किसी भी प्रति में ये पंक्तियाँ नहीं मिलती हैं।

पद सं० ३४

सो सब बिधि ऊबर करै, अपराध बिसारी॥
(गी० प्रे०)

सो सब बिधि उपकार करै, अपराध बिसारी॥
(ह० प्र०)

"ऊबर" और "उपकार" शब्द ध्यान देने योग्य हैं।

पद सं० ४२

कबहुँ समय सुधि द्यायबी, मेरी मातु जानकी।
जन कहाइ नाम लेत हौं, किए पन चातक ज्यों प्यास प्रेम-
पान की ॥१॥
सरल प्रकृति आप जानिए, करुना निधान की।
निजगुन, अरिकृत अनहितौ, दास-दोष सुरति-चित रहत
न दिये दान की ॥२॥
बानि बिसालसील है मानद अमान की।
तुलसीदास न बिसारिये, मन करम बचन जाके, सपनेहुँ
गति न आन की।
(गी० प्रे०)

कबहुँ समय सुधि पाइबी, मेरी मातु जानकी।
जनु कहाइ नाम लेत हौं, किएपन चातक ज्यों, प्यास सुप्रेम
पान की।
सरल प्रकृति आपु आनियो करुना निधान की।
निजगुन अरिकृत अनिहितो, दास-दोष सुरतिचित
रहति न दिये दान की।
बात बिसमरनसील है मानद अमान की।
तुलसीदास न बिसारिये, मन-क्रम, बचन जाके, सपनेहुँ
गति न आन की॥
(ह० प्र०)

रेखांकित शब्द ध्यान देने योग्य हैं।

पद सं० ४५

श्री रामचन्द्र कृपालु भजु मन हरण भवभय दारुणं।
नवकंज लोचन, कंजमुख, कर-कंज, पद-कंजारुणं ॥१॥
कंदर्प अगणित अमित छबि, नवनील नीरद सुन्दरं।
पटपीत मानहुँ तड़ित रुचि शुचि नौमि जनक सुतावरं ॥२॥
भजु दीनबंधु दिनेश दानव-दैत्यवंश निकंदनं।
रघुनंद आनन्द कन्द कोशलचन्द दशरथ-नंदनं ॥३॥
सिर मुकुट कुंडल तिलक चारु उदारु अंग विभूषणं।
आजानुभुज शर-चाप-धर, संग्राम-जित-खरदूषणं ॥४॥
इति बदति तुलसीदास शंकर-शेष-मुनि-मनरंजनं।
मम हृदय कंज निवास कुरु कामादि खल-दल-गंजनं ॥५॥
(गी० प्रे०)

प्रथम चार पंक्तियों का क्रम इसी प्रकार है, पर अंतिम ६ पक्तियों का क्रम इस प्रकार से है:—

सिर मुकुट कुंडल तिलक चारु उदारु अंग विभूषणं।
आजानु भुज शर चाप धर संग्रामजित खर दूषणं ॥३॥
इति बदति तुलसीदास शंकर शेष मुनि मन रंजनं॥
भजु दीनबन्धु दिनेश दानव-दलन-दैत्य वंशनिकंदनं ॥४॥
रघुनंद आनन्द कंद कोशल चन्द दशरथ नंदनं।
मम हृदय कंज निवास करि कामादि खलदल-गंजनं॥५॥

परिवर्तित शब्द तथा क्रम विचारणीय है।

पद सं० ४८

हरति सब आरती आरती राम की।
दहन दुख-दोष, निरमूलिनी काम की ॥१॥
(गी० प्रे०)

हरति सब आरतै आरती राम की।
दहति दुख-दोष, निरमूलिनी काम की ॥१॥
(ह० प्र०)

पता नहीं कैसे टीकाकारों ने खींचतान कर 'आरती' का अर्थ आर्ति-पीड़ा लगा लिया। 'आरती' का कभी भी 'आर्ति' नहीं हो सकता है। वस्तुतः टीकाकारों ने यमक के बल पर शुद्ध अर्थ निकाल लिया। पर यह संतोषप्रद नहीं है। यदि 'आरति' होता तो भी ठीक था। 'आरतै'

शुद्ध पाठ है।[1] साथ ही 'दहति' शब्द भी ध्यान देने योग्य है। 'दहन' शब्द पुल्लिंग है। 'आरती' स्त्रीलिंग है। स्त्रीलिंग के साथ पुल्लिंग रखना क्या उचित है? 'दहति' शब्द से यह भ्रम मिट जाता है। साथ ही ऊपर की पंक्ति में 'हरति' शब्द है अतः नीचे की पंक्ति में दहति शब्द उपयुक्त है। इससे यह विश्वास दृढ़ हो जाता है कि प्रति का पाठ ठीक है।

पद सं० ७२

राम सो खरो है कौन मोसो कौन खोटो।
राम सो बड़ो है कौन मोसो कौन छोटो।।२।।

(गी० प्रे०)

राम सो खरो है कौन मोसो कौन खोटो।
राम सो खरो खसम मोसो खल खोटो।।२।।

(ह० प्र०)

उक्त द्वितीय पंक्ति "राम गीतावली" नामक प्राचीन हस्तलिखित प्रति में भी मिलती है जिसका उल्लेख डा० माताप्रसाद गुप्त ने अपने शोध-प्रबंध "तुलसीदास[2]" में किया है। इस पाठ से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रतिलिपिकर्ता ने अवश्य ही "राम-गीतावली" का आश्रय ग्रहण किया होगा न कि अन्य प्रतियों का।

पद सं० ७६

राम को गुलाम, नाम राम बोला राख्यौ राम
काम यहै, नाम द्वै हौं कबहुँ कहत हौं।।१।।

(गी० प्रे०)

"मैं श्रीरामजी का गुलाम हूँ। लोग मुझे रामबोला कहने लगे हैं। काम यही करता हूँ कि कभी-कभी दो-चार बार राम नाम कह लेता हूँ।।" यह अर्थ श्री रामदास जी गौड़ एम० ए० तथा श्री चिम्मनलाल जी गोस्वामी, एम० ए०, शास्त्री ने किया है। श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार प्रकाशक हैं। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि जब तुलसीदास लिखते हैं कि "काम यहै"––मेरा काम यही है, . . . क्या? "कभी-कभी दो-चार बार राम नाम कह लेता हूँ।" तो बाकी दिन गोस्वामी जी क्या करते थे? दूसरे क्या गोस्वामी जी दो-चार-बार ही राम का नाम लेते थे जबकि उनका एकमात्र काम राम-भजन था? यहाँ पर पाठ की अशुद्धता के कारण अर्थ का अनर्थ हो गया है? वह तुलसी, जो 'राम कहत चलु, राम कहत चलु, राम कहत चलु भाई रे' तथा 'राम जपु, राम जपु, राम जपु बावरे'; 'राम राम रटु, राम राम रटु, राम राम रटु, राम राम जपु जीहा' की रटन आठों याम लगाने वाले थे, कैसे दो-चार बार वह भी कभी-कभी, 'राम' का स्मरण कर संतोष करते रहे होंगे। वस्तुतः शुद्ध पाठ यह है––

राम को गुलाम, नाम राम बोला राम राख्यौ,
काम यहै, नाम द्वै कबहुँ-कतहुँ हौं।।

(ह० प्र०)

"कभी भी, चाहे जहाँ कहीं भी रहूँ मेरा काम यही है कि नाम द्वै का उच्चारण करना" कितना सार्थक अर्थ है। संगति भी ठीक है। यही नहीं, पहली पंक्ति का अर्थ भी यह हो जायगा, "मैं राम का गुलाम हूँ, मेरा नाम राम बोला है मेरी रक्षा राम ने की या मुझे राम ने रक्खा (सहारा दिया)।"

पद सं० ९२

काहै ते हरि मोहिं बिसारो।

(गी० प्रे०) १

काहे ते हरि अब मोहिं बिसारो।

(ह० प्रति) २

पद सं० १०४

चित उहै राम-सीय-पद परिहरि अब न कहूँ चलि जैहों।

(गी० प्रे०)

चित उहै राम-सीय-पद परिहरि अनत नहीं कहुँ जैहों।

(ह० प्र०)

पद सं० १३५

राम सनेही सों तैं न सनेह कियो।
अगम जो अमरनि हूँ सो तनु तोहिं दियो।
दियो सुकुल जनम शरीर सुन्दर हेतु जो फल चारि को
जो पाइ पंडित परमपद, पावत पुरारि-मुरारि को।।
यह भरतखंड, समीप सुरसरि, थल भलो संगति भली।
तेरी कुमति कायर! कलप-बल्ली चहति है विषफल फली।।

(गी० प्रे०)

१––'आरति' शब्द मानस में बार-बार प्रयुक्त हुआ है––
आशुतोष तुम अवढर दानी।
आरति हरहु दीन जन जानी।। (अयोध्या कांड)
२––'तुलसीदास,' डा० माताप्रसाद गुप्त; (पृष्ठ २३४)

१––(गी० प्रे०) गीता प्रेस, गोरखपुर।
२––(ह० प्र०) हस्तलिखित प्रति।

प्रकाशित प्रति में इस पद का राग, 'रागसूहा विलावल दिया गया है। पर हस्तलिखित प्रति में इस राग के स्थान पर 'राग सूहो-कान्हरो' दिया गया है। साथ ही "दियो सुकुल......... फली" तक के पहले छंद लिखा गया है।

पद सं० १३७

प्रभु प्रसाद सौभाग्य विजय-जस पांडवनै बरिआइ बरै।

(गी० प्रे०)

प्रभु प्रसाद सौभाग्य विजय-जस पांडव तेहिं बरिआइ बरै।

(ह० प्र०)

इस पंक्ति के "पांडवनै" शब्द पर प्रकाशक ने टिप्पणी दी है--"पांडवनै" पाठ ही शुद्ध है। पांडुतनै पाठ कर देने वालों ने भूल की है। अवधी में पांडव का बहुवचन कर्मकारक का शुद्ध रूप है पांडवनहिं या पांडुवनै। पांडवान्है भी लाघव से बनता है। परन्तु यहाँ एक मात्रा उससे अधिक चाहिए थी।" इतनी माथा-पच्ची करने का कारण शुद्ध पाठ का न मिलना ही है। "पांडव तेहिं" शुद्ध पाठ है।

पद सं० २५५

सुमिरे त्रिविध घाम हरत, पूरत काम,
सकल सुकृत सरसिज को सरु है।

(गी० प्रे०)

सुमिरे त्रिविध ताप हरत, पूरत काम,
सकल सुकृत सरसिज को सरु है।

(ह० प्र०)

'घाम' शब्द पर प्रकाशक ने टिप्पणी दी है--

"घाम=घर्म=ताप। अनेक प्रतियों में "धाम" पाठ है। परन्तु घर्म का अर्थ केवल ज्योति है। ताप कदापि नहीं। पाठान्तर की तरह भी धाम स्वीकार नहीं है।" संभवतः प्रतिलिपिकर्ताओं ने 'ताप' का घाम या धाम पढ़ लिया होगा।

पद सं० २७५

तनु जनतेहु कुटिल कीट ज्यों, तज्यो मातु-पिताहूँ।

(गी० प्रे०)

तुचा तजत कुटिल कीट ज्यों, तज्यो मातु-पिताहु॥

(ह० प्र०)

आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय ने उपर्युक्त पंक्ति का विवरण देते हुये लिखा है--"इस पद में ज्यों से कुछ आशा बँधी तो देखा कि कुटिल-कीट ज्यों" और भी विकट हो गया। पहले लोगों ने संभवतः अभुक्त भूल की प्रेरणा से कुटिल कीट का अर्थ किया था सर्पिणी, परन्तु अब कुछ लोग सोरों सामग्री के आधार पर इसका अर्थ लगाते हैं 'केकड़ा', और कहते हैं--कुटिला का निधन जनमने से हो जाता है।"[1]

डा० माता प्रसाद गुप्त भी लिखते हैं--"दूसरे तनु जन्यो के जो पाठभेद मिलते हैं, वे इस अर्थ का विरोध करते हैं। संवत् १६६६ की प्रति में, जिसका........ "तनुज तऊ" पाठ मिलता है" और एक अन्य प्राचीन प्रति में जिसकी तिथि अज्ञात है और जो प्रस्तुत लेखक के संग्रह में है, "तुचा तजत" पाठ है। इसमें कौन सा पाठ प्रामाणिक है, यह कहना कठिन है; किन्तु जब तक वैज्ञानिक रीति से ग्रंथ का पाठनिर्णय नहीं हो जाता, सं० १६६६ की प्रति का पाठ हम न ग्रहण कर इधर की प्रतियों का पाठ ग्रहण करें" इस बात का पर्याप्त कारण नहीं दिखाई पड़ता, और इस पाठ को लेने पर "कुटिला" आशय की संगति नहीं बैठती; उससे कुटिल-कीट से सर्प का अर्थ लेना ही अधिक संगत होगा।"[1] वस्तुतः डाक्टर साहब का यह कथन ही सत्य है कि कुटिल कीट का अर्थ सर्प लिया जाय। यदि यह अर्थ ग्रहण किया जाय तो अधिक उपयुक्त एवं तर्कसंगत होगा। साथ ही तनुज तऊ, तनु जन्यो, तनु तज्यो आदि पाठान्तरों के स्थान पर 'तुच-तजत' पाठ शुद्ध है। इसके लिये निम्न तर्क उद्धृत किये जा सकते हैं:--

(१) 'कुटिल-कीट' का प्रयोग सर्प जाति के लिये होता है। तथा यह मुहावरा भी प्रचलित है--"सर्प की की तरह कुटिल नीति का मनुष्य"।

(२) 'तुचा तजत' का तादात्म्य सर्प से ही है। इसके अलावा अन्य जीव अपने त्वचा को त्यागते ही नहीं। जहाँ पर सर्प या सर्पिणी अपनी त्वचा छोड़ते हैं, वहाँ जीवन में फिर कभी नहीं जाते। जब तक केंचुल उनके शरीर पर रहता है तब तक वे उसी स्थान पर मदमस्त होकर पड़े रहते हैं। केंचुल छूटते ही उस स्थान से भाग जाते हैं।

(३) जिन विद्वानों ने "कुटिल कीट" का अर्थ सर्पिणी किया है उन्होंने भूल की है। सर्पिणी तो देखने में आती है कि अपने पीठ पर सात-सात, आठ-आठ बच्चों को लपेट कर बिल में बैठी रहती है। फिर कैसे कहा जाय कि वह अपने बच्चों को त्याग देती है।

(४) "कुटिल-कीट" का अर्थ केकड़ा तो कभी भी नहीं हो सकता।

(५) "केंचुली त्यागन' का उपमान हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में ग्रहण किया गया है। महाकवि सूरदास ने ठीक यही उपमान प्रस्तुत किया है--

"ज्यौं केंचुरी भुअंगम त्यागत मातु-पिता यौं त्यागे।
सूरश्याम के हाँथ बिकानी, अलि अंबुज अनुरागे॥[2]॥

इस प्रकार "तुचा तजत" पाठ शुद्ध है। यह तर्कसंगत और सटीक उपमा है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि शुद्ध-पाठ के न मिलने के कारण अनेक प्रकार की असाधारण गलतियाँ एवं भ्रान्तिपूर्ण विचार तुलसी-साहित्य में उपस्थित हो गये हैं। इन भ्रान्तिपूर्ण विचारों का बहुत कुछ परिमार्जन उपर्युक्त प्रति के आधार पर किया जा सकता है।

१--तुलसीदास--आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय, (पृष्ठ १८)

१--'तुलसीदास'--डा० माता प्रसाद गुप्त; (पृष्ठ १६७)।

२--'सूरसागर', पद सं० १००३।

सजिलोवाद

प्रोफेसर राजनाथ पाण्डेय

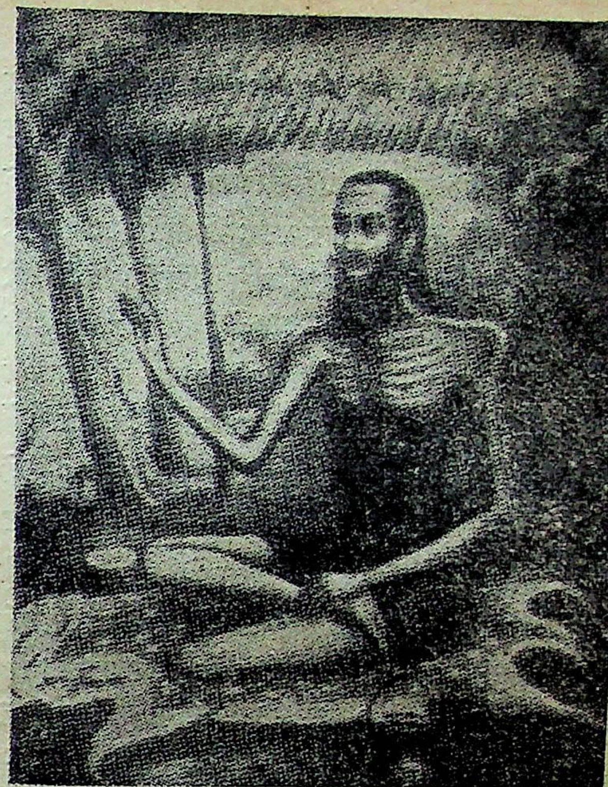
आधुनिक नेपाली कविता में इन दिनों भाषासंबंधी एक विशेष प्रयोग हो रहा है जिसे "झर्रोवाद" कहा जाता है। हाल ही में एक आलोचक ने "झर्रोवाद" की प्रवृत्ति की आलोचना करते हुए इस शब्द पर भी आक्षेप किया है, यद्यपि जिन शब्दों में आक्षेप किया है उन शब्दों के कारण, उनकी राय में जितना उपहासास्पद या अयुक्त वह शब्द है, उससे कहीं अधिक मात्रा में, दूसरों की राय में उनका आक्षेप ही उपहासास्पद बन गया है। मैं "झर्रोवाद" की जगह "सजिलोवाद" नाम की प्रस्तावना कर रहा हूँ, ...ले ही इसमें "झर्रोवाद" शब्द की परिपूर्ण व्यंजना न ...।

नेपाली भाषा का "झर्रो" शब्द हिन्दी के "छर्रा" या ...रित" शब्द का समानार्थी है, और स्वाभाविक सरलता ...ा व्यंजक है। 'सजिलो' शब्द संस्कृत "सरल" का अप-...ंश जान पड़ता है। झर्रोवाद की परिभाषा में इस वाद ...समर्थक एक तरुण आलोचक "ताना सर्मा" (श्री तारा...य शर्मा) ने इस प्रकार कहा है :—

"जब सम्म नेपाली भाषामा आफ्नै शब्दहरू हुन्छन् ...तलाईनै प्रयोग गर्नु पर्छ, र आफ्नै नियम अनुसार गर्नु ...ै भन्नुनै 'झर्रोवाद' हो।" अर्थात् "जब तक नेपाली ...षा में अपने शब्दादि हैं तिनको ही प्रयोग करना चाहिये, ...र अपने नियम अनुसार करना चाहिये कहना ही 'झर्रो-...द' है।"

इस उल्लेख में जिन दो शब्दों पर विशेष ध्यान जाता ...े हैं श्री तारानाथ जी का 'शर्मा' न कहकर अपने को ...र्मा' लिखना, तथा नियम और अनुसार में सन्धि करके ...यमानुसार' न लिखकर 'नियम अनुसार' लिखना। ...रोंवादी' पुस्तक को 'पोस्तक' लिखना पसन्द करते हैं; ...ादकीय न कह कर 'संपादक्यौली' कहते हैं। अवध में ...पाठकों का गाँव 'पठखौली' और मिश्र लोगों का गाँव ...सरौली' या 'मिसरौलिया' कहलाता है।

यह कहना गलत न होगा कि अपनी प्रारंभिक अवस्था ...नेपाली कविता दो धाराओं में बह रही थी। प्रथम ...ा धार्मिक विषयों के प्रतिपादन की अधिकता होने पर ... लौकिक काव्य-धारा थी। इसके प्रारंभिक उन्नायकों ...पंडित उदयानंद अर्ज्याल (सन् १७७६ ई०) का नाम



स्व० स्वामी अभयानन्द
(फुल जेनरल रणवीर सिंह थापा)

लिया जाता है। यहाँ मैं यह बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मेरे इस कथन का यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि नेपाली कविता के १७७६ ई० के आस-पास प्राप्त होने का अर्थ नेपाली भाषा के भी उसके ही आस-पास या उससे कुछ पूर्व विकसित होने की संभावना की ओर मेरा संकेत है। मैं तो इस संबंध में कुछ और सोचता हूँ। वर्तमान नेपाली में गुजराती, राजस्थानी, पंजाबी, व्रजभाषा, खड़ी बोली और भोजपुरी बोलियों के साथ-साथ फारसी के अनेक शब्दों का (हिन्दी में उन फारसी शब्दों के प्रचलित अर्थ से भिन्न)* जो विचित्र समन्वय आज भी मिलता है उसका एक मात्र कारण यही है कि वैदिक काल से लेकर आज तक उस वर्ग का जो नेपाली भाषा-भाषी है भाषा और संस्कृति का विकास एकदम अखंडित रहा है। मेरी यह निजी कल्पना है कि वैदिक आर्यों की जो प्रथम शाखा 'आर्यान' (=ईरान) में बसी थी और सातवीं आठवीं सदी

---

*नेपाली में 'राजीनामा' का अर्थ होता है 'त्याग पत्र'; 'बाजाफ्ता' का अर्थ होता है 'नियम और कानून के विरुद्ध' तथा 'तर्जुमा' का अर्थ होता है स्थापना या आयोजन; न कि अनुवाद। अनुवाद और उल्था दोनों शब्द यहाँ प्रचलित हैं हिन्दी 'तरजुमा' के अर्थ में। —लेखक।

में काबुल में उनके ही वंशज राज्य कर रहे थे। नवीं शताब्दी के अंत में बुखारा के तुर्क आक्रमणकारियों ने उन हिन्दू राजाओं को वहाँ से विस्थापित कर दिया जिसके कारण इन्होंने काबुल से हटकर अटक के समीप उदभांडपुर (ओहिन्द) को अपनी राजधानी बनाई। धीरे-धीरे इनका प्रभुत्व पंजाब की ओर भी बहुत बढ़ गया। इनकी ही एक शाखा का गुजरात में भी शासन था जिसे आठवीं शताब्दी में अरबों ने विस्थापित किया था और जो बाद में बुंदेलखंड में आ बसे थे। वे यजाक (अरबी 'चाच') थे जिससे उनका नया प्रदेश 'यजाक भुक्ति' या जिझोत कहलाया। ये लोग भी ब्राह्मण राजा थे, और उनके ही वंशज मध्य-प्रदेश के 'जिझोतिया' हैं। दसवीं शताब्दी के अंत में गजनी का राज्य महमूद के हाथ आया और उसने उदभांडपुर तथा पूरे पंजाब से उन हिन्दू राजाओं को विस्थापित किया क्योंकि उनको हटाये बिना मुहम्मद और इसलाम का भारत में प्रवेश हो ही नहीं सकता था। मेरी कल्पना है कि अपनी उस समय तक विकसित भाषा तथा संस्कृति को लेकर पंजाब से काँगड़ा होते, कुमायूँ के बाद गोरखा प्रदेश में ये लोग आकर बस गये और वहाँ की तत्कालीन जातियों को भी अपनी भाषा और संस्कृति में घुला मिला लिया जिस तरह अनेक सदियों पूर्व आर्यों ने भारत में आकर इसे संस्कृति और भाषा का नया रूप दिया था। उनमें से जो लोग पहले ही अलग होकर गुजरात, राजस्थान, शौरसेन-प्रदेश तथा अवध में बस चुके थे उनमें मूलभाषा (उसके विकसित रूप) के अंश मात्र पाये जाते हैं, किन्तु नेपाली में वे सभी—जो अंशतः गुजराती, पंजाबी, राजस्थानी, व्रज, अवधी आदि में मिलते हैं—एक साथ सुरक्षित रह गये हैं। इस प्रदेश (गोरखा) और इस जाति की अमित शक्तियों का रहस्य भी उनकी यही अखंडता है। नेपाल में विविधता और अनेकरूपता के मध्य "गोरखा" की इस अखंडता का इतिहास बहुत ही अध्ययन और मनन की वस्तु है। अस्तु।

तो प्रारंभिक कविता की प्रथम धारा के प्रवर्तक पं० उदयानन्द अर्ज्याल थे, जिसका पूर्ण विकास हमें श्री भानुभक्ताचार्य में मिलता है। दूसरी धारा शुद्ध धार्मिक थी, और उसमें विशेषतः 'वाणी' की रचना हुई थी। इस धारा के प्रवर्तक सन्त 'ससधर' थे जो पंडित उदयानन्द के ही समान बड़ा महाराज श्री पृथ्वीनारायण शाह के समसामयिक थे। उस समय इन दोनों ही धाराओं में बहनेवाले काव्य की भाषा में बड़ा अन्तर था। प्रथम धारा के छन्द वर्णिक थे—मन्दाक्रान्ता, द्रुतविलम्बित, मालिनी, शिखरिणी आदि—किन्तु उस समय भी, मुझे ऐसा लगता है कि कविता की भाषा को बाहरी प्रभाव से मुक्त करके उसे जन-वाणी के निकट लाने की स्वाभाविक प्रेरणा भीतर-भीतर काम कर रही थी।

सन्त ससधर की परंपरा में लगभग ७५ वर्ष बाद सन्त ज्ञानदिल दास का आविर्भाव हुआ। सन्त ज्ञानदिल की "वाणी" में प्रथम बार अकपट तथा अकृत्रिम रूप में बोलचाल की भाषा में नेपाली कविता की अवतारणा दृष्टिगत होती है। इस नाते, कहें तो कह सकते हैं कि "झर्रोवाद" के आदि प्रवर्तक सन्त ज्ञानदिल दास ही थे। श्री भानुभक्ताचार्य और सन्त ज्ञानदिल दास दोनों ही राना जंग बहादुर के समकालीन थे।

....आइये, उस समय की कविताओं के कुछ उदाहरण लेकर यह बात एकदम स्पष्ट कर ली जाय। शब्द-चयन, विषयों का प्रतिपादन, और छन्दों के व्यवहार में पंडित उदयानन्द अर्ज्याल और उनके बाद ही आनेवाले श्री इन्दिरस और श्री विद्यारण्य केसरी की कृतियों में संस्कृत का प्रभाव एकदम स्पष्ट है। भाषा में कुछ-कुछ हिन्दी (खड़ी बोली) का भी कहीं-कहीं मेल है; क्योंकि मिल्दा, फुट्दा, नाच्दा आदि नेपाली क्रिया-पदों के साथ ही साथ, आया, जलाया, लाया, आदि क्रिया-पद भी मिलते हैं। जैसे:—

तेस्रो बष्त छ यो लड़ाञि तन् हौं, मिल्दा र फ़ुट्दा महाँ।
चौबिस्का पछि लागि भुप हरकुमार्दत्तसेन नाच्छा जहाँ॥

(तीसरा बखत है इस तन्हौ की लड़ाई का, मिलते और फूटते में वहाँ। चौबीसे (राजाओं) के पीछे लगा, भूप हरकुमारदत्त सेन नाचता है जहाँ॥)

(पंडित उदयानन्द)।

तथा

वरिपरि बसि वैरी, मन्मनै मन जलाया।
छुटपुट पसि आया, गुन् लिया काम लाया॥

(पंडित उदयानन्द)।

श्री विद्यारण्य केसरी की प्रसिद्ध कविता द्रौपदीस्तुति की पंक्तियाँ—

आइनाथ शरणागत तेरी।
हूँगि में जनम जन्मकि चेरी॥
दासि हूँ चरण को म जन्मको।
बात राख अब नाथ! शरण् को॥

हिन्दी की प्रसिद्ध लावनी की निम्न पंक्तियों की याद दिलाती हैं :—

बिनुकाज आज महाराज लाज गइ मेरी।
दुखहरो द्वारकानाथ शरण में तेरी॥

किन्तु सन्त ससधर द्वारा प्रवर्तित दूसरी धारा में प्रवाह की ताजगी अधिक थी जिसके प्रभाव से सन्त ससधर के बाद ७५ वर्षों में ही सन्त ज्ञानदिलदास तक पहुँचते-पहुँचते नेपाली कविता को उसकी शुद्ध (जन-) वाणी मिल चुकी थी। जब कि ७५ वर्ष पूर्व सन्त ससधर, निर्वाणानन्द (महाराजाधिराज श्री ५ रणबहादुर शाह—राज्य काल, १८३४–१८५५ वि० सं०), अभयानन्द (प्रधान सेनानी अमरशूर श्री अमर सिंह थापा के पुत्र तथा प्रधान मंत्री महात्मा भीमसेन थापा के अनुज, जेनरल रणधीर सिंह थापा, जन्म सं० १८३८ वि०) आदि सन्तों की "वाणी" में 'सोही', 'कलिला', 'कति', 'कोहि' आदि नेपाली शब्दों के इने-गिने रूप ही मिलते हैं। उदाहरणार्थ :—

कचा कलिला फूल तोड़ि लाई।
'सोहि' मालिनी मन पछिताई॥
(संत ससधर)।

तथा

यो जग धन्दा, माया के फन्दा, लागे रे भर्म कों फांसि।
बिना गुरु गमसे जनम गयो है, 'कति' रहे जग हाँसि॥
(सन्त ससधर)।

तथा

ज्ञान भयो परवेस, भ्रम्मना छुटि गई।
भर्म भर्ममें भुला सब 'कोही', भर्म छुटा बिर्ला कोही॥

किन्तु सन्त ज्ञानदिलदास तक पहुँचते-पहुँचते नेपाली कविता की भाषा का आकार विमल हो उठा। एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा :—

जंगल को बास छ, फल-पत्र-सिस्नु[1]।
भोजन गर्छु, सुमरन् परम्पद्दे बिस्नु॥
जो छौ दया धर्मि मुठि दान देऊ।
साधु को धर्म लुटि-लुटि लेऊ॥
सबै कहुँ भन्या[2] कहनु हुँदैन[3]।
बिना ब्रह्मज्ञानले[4] पाप धुँदैन॥
साधुको सेवाले चोंड़े तरौला[5]।
दयाधर्म छाँड़ि दिया नर्कमा परौला॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस आधुनिक 'झर्रोवाद' के आदि प्रवर्तक सन्त ज्ञानदिलदास ही माने जाने चाहिये।

१—सिस्नु=विषाक्त काँटोंवाली प्रसिद्ध घास जिसका झोल बनाते हैं। २—भन्या=कह दिया। ३—हुँदैन=होता नहीं। ४—ब्रह्मज्ञान ले=ब्रह्मज्ञान से। ५—तरौंला=तरेगा।

सन्त ससधर नेपाल में "जोसेमनी-(सन्त) संप्रदाय" के संस्थापक थे ; और सन्त ज्ञानदिलदास 'जोसमनी' मत की 'खागी' (भारत में गोरखपुर के प्रसिद्ध 'खाकी' बाबा उन्हीं के अनुयायी थे) शाखा के प्रवर्तक हुए थे। संत ससधर पश्चिमी नेपाल में पैदा हुए थे, जहाँ संस्कृत का बहुत प्रभाव था। वे १३ वर्ष की अवस्था से २५ वर्ष की अवस्था तक जगन्नाथ पुरी में रहे थे। इधर सन्त ज्ञानदिलदास पूर्वी नेपाल में इलाम जिले में जो दार्जिलिंग से सटा है, पैदा हुए थे, और नेपाल की ठेठ जनता के बीच जन-समाज के जीवन में रमे थे। ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता जिससे यह बात निश्चय के साथ कही जा सके कि इनको संस्कृत का पर्याप्त ज्ञान था। उस युग में बहुत (और आज भी बहुत अंशों में) नेपाल के प्रबुद्ध वर्ग में संस्कृतज्ञता अधिक थी, और वर्णाश्रम धर्म के विरोधी किसी भी संप्रदाय को यहाँ मान्यता नहीं मिल सकती थीं।* फिर सन्त ज्ञानदिलदास और उनके अनुयायियों का काव्य भी एकांगी था। जीवन के लौकिक पक्ष का उसमें स्पर्श नहीं था। यही कारण था कि उनका प्रभाव सीमित ही बना रह गया। अतः प्रथम धारा की काव्य-भाषा पर भी उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। फिर भी यह बात निर्विवाद है कि जहाँ तक काव्य-भाषा का सम्बन्ध है उन्होंने (सन्त ज्ञानदिलदास ने) जिस नवीन पार्श्व का संकेत किया था वह ठीक मार्ग का निदेश करता था, और उससे यह प्रमाणित होता है कि किसी भी देश की कला और संस्कृति के विकास में तद्देशीयता की जो स्वाभाविक चेतना काम करती है उसका ही आज का यह 'झर्रोवाद' एक लघु प्रतीक है।

पहले सर्वत्र ही प्रबुद्ध वर्ग के लिये काव्य ही बौद्धिक व्यापार का एक प्रमुख साधन था और साहित्य के क्षेत्र में एक मात्र साधन था। तभी तो पहले 'साहित्य' शब्द काव्य का ही पर्यायवाची था। इस कारण काव्य-भाषा को सब प्रकार से अलंकृत एवं संस्कार-सम्पन्न बनाने का प्रयास किया जाता था। यह प्रवृत्ति प्रायः मध्यकालीन साहित्य की विशेषता के रूप में प्रायः भारत की समस्त प्रादेशिक भाषाओं के साहित्य में परिलक्षित है। प्रारंभिक स्थिति में प्रार्थनाकाव्य और उसके बाद अलंकृत काव्य का जो रूप मध्यकालीन हिन्दी काव्य का है वैसा ही रूप नेपाली काव्य में इन दोनों साथ-साथ बहने वाली काव्य-धाराओं का है। फिर जब धीरे-धीरे गद्य का विकास होने लगा तब भाषा विषयक आर्षता (usage) और "स्थिरैक्यता" (standardisation) के लिये किया जाने वाला प्रयास काव्य-भाषा से उठकर गद्य-भाषा की तरफ पाँव बढ़ाने लगा। नेपाल में भी कविता की भाषा, और सर्वसाधारण की बोलचाल की भाषा में बड़ी दूरी थी,

*राना शासन में नेपाल में "आर्य समाज" तक के प्रचारक आने की अनुमति नहीं पाते थे।—लेखक।

किन्तु इस दूरी को मिटाने की आन्तरिक प्रवृत्ति, जैसा पहले स्पष्ट किया जा चुका है बराबर क्रियाशील थी। किसलिये? इसीलिये कि जनता की ही वाणी काव्य-भाषा का आसन ग्रहण करे। इस समय प्रवृत्ति उन सभी देशों के साहित्य में काम कर रही है जहाँ राष्ट्र-स्वातन्त्र्य चेतना का नया उन्मेष हुआ है, और जहाँ एक ही राष्ट्र में अनेक अंचलों की कई बोलियाँ हैं। प्रत्येक तरुण साहित्यकार 'विनय परिचय का प्रेम कैसा?' इस प्रश्न के मर्म को अच्छी तरह जान चुका है; और अपने अंचल की आत्मा का साक्षात्कार करने के लिये वह अपने एक-एक वृक्ष को आज उसके काँटों सहित (पहले केवल फल से ही जानता था) जानना चाहता है। प्रत्येक नदी, नाला, टीला, कछार के साथ वह संपर्क स्थापित करने के लिये लालायित रहता है। यही कारण है कि आज हिन्दी में आंचलिक कविताओं का ही नहीं, आंचलिक कहानियों और उपन्यासों का भी खूब सृजन हो रहा है, जिनमें अनेक अंचलों की भाषा की अच्छी झलक मिलती है।

मेरी समझ में हिन्दी में भी और नेपाली में भी 'आंचलिकता' (या कुछ अंशों में नेपाली 'झर्रोवाद') का प्रवेश केवल काव्य के ही क्षेत्र तक रहे तो अच्छा है। नेपाली गद्य की स्थिति (या नेपाली की स्थिति) आज हिन्दी से अधिक श्रेयस्कर है क्योंकि नेपाल की अनेक बोलियों —नेवारी, लिम्बू, राई, तामंग, मगर आदि—के बीच न केवल सिद्धान्ततः अपितु व्यवहारशः भी राष्ट्रभाषा के रूप में कार्य-रत है। और जिस तरह अंग्रेजी को "किंग्स-इंगलिश" कहलाने का सौभाग्य प्राप्त है, आज हमें नेपाली का भी "किंग्स'-नेपाली" रूप उपलब्ध है। उसे ध्यान में रखें तो हम यह निश्चय के साथ कह सकते हैं कि नेपाली काव्य-भाषा के क्षेत्र में 'झर्रोवाद' का अनुसरण भले ही हो ले, नेपाली गद्य के अधिकाधिक निखार और विकास में वह सीमित दृष्टिकोण के कारण, वह व्यापकता न दे सकेगा जो किसी भी देश की राष्ट्र-भाषा के लिये अनिवार्य होती है। इस 'किंग्स-नेपाली' को देखकर यह भी स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी-गद्य का क्या स्वरूप हो। इस पर विचार करते समय, इस ओर उत्तराखंड में यहाँ से वहाँ तक व्याप्त, नागरी लिपि में लिखी जाने वाली, नेपाल-राष्ट्र की राष्ट्रभाषा नेपाली के गद्य के वर्तमान स्वरूप की हम उपेक्षा नहीं कर सकते। नेपाली भाषा के वर्तमान उदात्त गद्य यानी 'किंग्स नेपाली" का स्वरूप निम्नांकित अवतरण में साकार है:—

(श्री ५ महेन्द्र के काठमांडौ में १ मई १९६४ ई० के "हिन्द महासागरीय क्षेत्र के अन्तर्राष्ट्रीय परिवार-नियोजन सम्मेलन" के उद्घाटन भाषण का एक अंश।)

"......आजको विश्वमा प्राप्य खाद्यवस्तु तथा बस्ने ठाउँको तुलनामा जनसंख्याको असीमित वृद्धि हुनु अनेक समस्या मध्ये एक महान समस्या हो भन्नेबारे दुइ मत हुन सक्ला जस्तो लाग्दैन। यो समस्या केही न केही मात्रामा हाम्रो देशले पनि अवश्य सामना गर्नु पर्दै आएको छ। त्यसैले जमानाको माँग अनुसार आफ्नो भावी परिवारको स्वास्थ्य, भरण-पोषण, र शिक्षादीक्षाको दायित्व आफ्नो काँधमा लिन नसकिकन वैवाहिक जीवनमा प्रवेश गर्नु आज कुनै स्वाभिमानी नवयुवकयुवती लाई सुहाउने कुरा होइन। यस उसले यस विषयमा यथा संभव बढ़ी मात्रामा आत्मसंयमको अभ्यासगर्न वा कुशल वैज्ञानिक उपाय हरूलाई अपनाउन न प्रत्येक सुखी विवाहिता दम्पती-छउ समेत अनुरोध गर्दछु किनकि आज कन्या कुमारको पूजा गरेर वा कन्यादान गरेर स्वर्ग पुगिन्छ भन्नु भूल होला जस्तो लाग्दछ बरु आफूले सभाल्न सक्ने सम्म स्वस्थ बालक पैदा गरी उनीहरूको स्वास्थ्य रक्षा को साथै समयमा असल शिक्षा-दीक्षा दिई कुशल नागरिक बनाउनु र बाल-विवाह जस्ता समाजका कुरीतिहरू रोक्न सक्नुमा नै हामी सबैले ज्यूँदै स्वर्गको सुख भोग्न सकौंला भन्ने मलाई लाग्दछ। जनसंख्या वृद्धि एउटा यस्तो समस्या भैसकेको छ कि आज प्रत्येक देशमा त्यसलाई येनकेनप्रकारेण सुल्झाउनु प्रत्येक सरकार र जनता को साझा कर्तव्य भएको छ। ...."

—(गोरखा पत्र, २०।१।२०२१, पृष्ठ १, कालम ३-४)

(अनुवाद)

'......आजके विश्व में प्राप्य खाद्यवस्तु तथा वासस्थान की तुलना में जनसंख्या की असीमित वृद्धि होना ही अनेक समस्या मध्य एक महान् समस्या है, (ऐसा) कहने बारे दो मत हो सकेगा ऐसा नहीं लगता। इस समस्या का किसी न किसी मात्रा में हमारे देश को भी अवश्य सामना करना पड़ने को है। इसीसे जमाना की माँग अनुसार अपने भावी परिवार के स्वास्थ्य, भरणपोषण और शिक्षा दीक्षा के दायित्व को अपने काँध में ले न सकने के साथ वैवाहिक जीवन में प्रवेश करना आज किसी भी स्वाभिमानी नवयुवक युवती के लिये सुहावना काम नहीं है। इस उससे इस विषय में यथा संभव अधिक मात्रा में आत्म संयम का अभ्यास करना वा कुशल वैज्ञानिक उपायादि अपनाना मैं प्रत्येक सुखी विवाहितादम्पति समीप (जाकर) सहित अनुरोध करता हूँ क्योंकि आज कन्या-कुमारकी पूजा करके वा कन्यादान करके स्वर्ग पहुँचते हैं कहने में भूल होगी जैसा लगता है, वरन् अपने को सँभाल सकने तक स्वस्थ बालक पैदा कर उन सबकी स्वास्थ्य रक्षा के साथ समय में असल शिक्षा-दे कुशल नागरिक बनाना और बालविवाह जैसा समाज की कुरीतियों को रोक सकने में ही हम सब (ने) जीवित स्वर्ग-सुख भोग सकेंगे ऐसा मुझे लगता है। जन संख्या वृद्धि एक ऐसी समस्या उत्पन्न हो गई है कि आज प्रत्येक देश में उसको येन केन प्रकारेण सुलझाना प्रत्येक सरकार और जनता का संयुक्त कर्तव्य हो गया है। ....'

राजा रघु के अनुयायी ये लघु एस्किमो

डा० हेमचंद्र जोशी डी० लिट्०

मानवता समय की पुकार है। देश, धर्म, जाति और रंग के ऊपर यह गुण ही संसार के वर्तमान संकट को उबार सकता है। कभी विश्व में इस गुण का दौरदौरा था। यह देख ताज्जुब होता है कि मानवता के गुण उन जातियों में बहुत बड़ी मात्रा में मौजूद हैं जिन्हें हम असभ्य और जंगली कहते हैं। तथाकथित सभ्य जातियाँ जो मानवता का नारा बुलन्द कर रही हैं, उनमें इस गुण का किस हद तक अभाव है, इसका परिचय देने की आवश्यकता नहीं। इस समय मैं केवल एक 'असभ्य' जाति एस्किमो की मानवता का जिक्र करता हूँ।

हृष्ट-पुष्ट नानदप कर्का गाँव का सेठ बन गया है। उसने इधर दस वर्ष में बहुत बड़ी सम्पत्ति जोड़ ली है। उसके घर में सील नामक जलजन्तु की पाँच सौ खालें हैं। भोजन के लिए दो-तीन साल का सामान भी भंडार में भरा पड़ा है। चमड़े की नावें कायाक भी उसके घर में कई हैं। कुछ मेवे भी हैं। चित्र भी हैं। नानदप परिवार रात को भोजन करने बैठा हुआ है। परिवार के सब लोग दिन भर कमाई करके आये थे। सबको बहुत भूख लगी थी। तीन चौथाई पेट भर लेने तक किसीके मुँह से आवाज न निकली। जब पेट में चूहों ने दण्ड पेलना बन्द कर दिया तब रमदी अपने पति से बोली: "घर हर तरह से सामान से ठसाठस भर गया है और पदार्थों को रखने के लिए बहुत कम स्थान बाकी है। समझ में नहीं आता कि इतने अधिक अनाज का क्या किया जाय।" नानदप कुछ देर चुप रहा। गोया उसकी समझ में भी नहीं आया कि वर्षों के कड़े परिश्रम से जो सम्पत्ति जोड़ी है उसका क्या उपयोग है? शंकराचार्य ने गाया है:—

अर्थ मनर्थं भावय नित्यम्

नित्य उठकर विचार करो कि क्या वस्तु तुम्हारे काम की है और क्या निरर्थक। यही प्रश्न नानदप अपने मन में हल करने लगा। उसे अपने पिता की याद आई। उसके पास सम्पत्ति जमा होते ही वह अपने सारे गाँव को न्योता भेजता, दावत देता और भोज के बाद सब निमंत्रित लोगों से हाथ जोड़कर प्रार्थना करता, "हे एकत्रित भाइयो! मेरा एक दोष हो गया है। वह यह कि मेरे पास बहुत बेकार सम्पत्ति जमा हो गयी है। जानबूझ कर तो मैंने इसे नहीं जोड़ा, पर परिस्थिति का चक्कर ऐसा आ पड़ा। अब मेरा यह पाप आपकी कृपा से धुल सकता है। जिस भाई को जो कुछ चाहिए वह उसे मेरे घर से उठा ले जाय, सारी सम्पत्ति खुली पड़ी है।" नानदप ने भी ऐसा ही किया और ये ही शब्द कहे। श्रोता कुछ सोचने-विचारने के बाद नानदप के कमरे में गये, और धीमे-धीमे अपने-अपने काम का सामान उठाने लगे। कुछ समय में सारी सम्पत्ति उठ गयी। नानदप के घर में कुछ भी नहीं रह गया। दुनिया की दृष्टि में वह अकिंचन हो गया। पर अपने को निःस्व देख नानदप अपनी स्त्री से बोला "मेरी प्यारी रमदी! आज मेरे पिता स्वर्ग से यह दृश्य देख रहे होंगे। मुझे ऐसा भान हो रहा है कि देवता और मर्त्य मेरी अनर्थक सम्पत्ति-संचय का घोर पाप मानो क्षमा कर रहे हों। अब मैं सोच रहा हूँ कि अपने भाइयों को भूखा मार कर मैंने कितना नृशंस काम किया है।" बात यह है कि नानदप का मन इस पुण्य कार्य से प्रसन्न था; पर अपने संचयरूपी कुकृत्य से बेचैन। मन की विचित्र दशा थी। जंगली नानदप रात भर न सो सका। वह बर्बर है। उसे इतना ही मालूम है कि अपने पड़ोसी के दुःख का निवारण न कर सकना पाप है। ईसा का यह उपदेश है; पर इस पर गैर ईसाई नानदप ने अमल किया। एस्किमो जाति शायद कभी बौद्ध थी। मानवसेवा इस धर्म का स्वभाव है। यह असभ्यवेशी सभ्य जाति क्रोध को कभी अपने पास फटकने नहीं देती। औरों का तो कहना क्या, एस्किमो लोग अपने नन्हें-नन्हें बच्चों को भी नहीं डाँटते। संसार की सब सभ्य जातियों में गालियाँ हैं; पर एस्किमो जाति में गाली नाम की कोई चीज ही नहीं है! क्या आपने यह आश्चर्यमय बात अन्यत्र भी सुनी? एक बार का किस्सा है हम दस नवयुवक विद्यार्थी पैरिस के एक काफे घर में बैठे थे। अचानक एक आदमी के मुँह से गाली सुनकर इस विषय पर छानबीन करने लगे कि किस जाति में सबसे बुरी गालियाँ हैं। गाली-हीन कोई जाति न मिली। योरोप में रूस तथा रोमानियाँ की गालियाँ सबसे निकृष्ट थीं, पर भारत ने सबको मात दे रखी थी। धन्य हैं, ये एस्किमो कि वे गाली जानते ही नहीं।

इस जाति में किसी की बुद्धि में यह बात समाती ही नहीं कि जो सम्पत्ति एक मनुष्य पैदा करता है, उस पर किसी दूसरे मनुष्य का अधिकार नहीं है। इनके समाज में एक आदमी घर बनाता है या तंबू तानता है और दूसरे एस्किमो परिवार उसमें रहने लगते हैं। किसीको यह शिकायत नहीं कि तू मेरे घर में या तम्बू में क्यों घुस गया। वैदिक वाणी "संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्" का नजारा है। और देखिए जब कोई एक एस्किमो भोजन के लिए शिकार करके लाता है तो वह उसे काटकर गाँव के सब घरों को भेजता है; भले ही अपने लिए पेट भर भोजन न रहे। इनका यह उदार आचरण देख याद आता है:

कौपीनवन्तः खलु भाग्यवंतः

गालिब ने ऐसे ही विचारों का हामी होकर लिखा था:—

इन आवलों से पाँव के घबरा गया था मैं।
जी खुश हुआ है राह को पुरखार देख कर॥

महात्मा लोग दुःख का रास्ता पकड़ते हैं ताकि दूसरे को सुख मिले। एस्किमो जाति के ये सभ्य स्वभावतः सभी पड़ोसियों को अपना समझते हैं। क्या हम यह दम भर सकते हैं कि हमारी संस्कृति इनसे ऊँची है? इनके लिए तो कहा जा सकता है:

परोपकाराय सतां विभूतयः

सज्जन दूसरे की भलाई के लिए जन्म लेते हैं। एस्किमो लोगों की पंचायतें इनका सारा प्रबंध करती हैं। यदि किसीने कोई अपराध, चाहे कितना ही बड़ा क्यों न हो, किया हो तो उसे पंचायत के सामने धिक्कारा जाता है। इससे अपराधी फिर भविष्य में कोई अपराध करता ही नहीं।

गाँव की यह सभा या पंचायत हर रोज शाम को बैठती है। इसमें पहला काम यह होता है कि दिन भर मेहनत करके गाँव में रहने वाले नाना लोग जो कुछ कमा लेते हैं वह सबके सामने रख दिया जाता है। वे एक दूसरे से प्रार्थना करते हैं कि जिसे जो कुछ चाहिए वह उसमें से ले ले। सब एक साथ खाना खाते हैं और तब उस आदमी को झेंपाया जाता है जिससे थोड़ी त्रुटि हो गई है। जाड़ों में रात को गाना, नाचना, दावतें आदि होती हैं। भाँति-भाँति के खेल खेले जाते हैं।

इनके महात्मा जंगल में एकान्तवास और ध्यान करना पसंद करते हैं। पुरोहित बनने से पहले एक प्रकार का उपनयन होता है। इसमें स्त्री पुरुष का भेद नहीं है। ब्रह्मचारी ज्ञान प्राप्त करते हैं और तपस्या में लगे रहते हैं। इस प्रकार आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होती है। ये ब्रह्मचारी गुफाओं में रहते हैं और कठोर तपस्या करके गुरु बनते हैं। एक ब्रह्मचारी को गुरु ने हिम की झील में बिठाया, पर उसने चूँ न की। यह है वहाँ की घोर तपस्या का उदाहरण। ये संत एस्किमो जाति के अन्य लोगों को ज्ञान देते हैं। ज्ञान का कोई मूल्य नहीं यदि वह कार्य में परिणत न हो। एस्किमो लोग ऐसी भूमि में रहते हैं। इस कठोर जीवन संग्राम में रह कर किसी प्रकार अपने प्राणों की रक्षा करने वाले ये तथाकथित जंगली एस्किमो किस खूबी से भगवान् कृष्ण का सर्वोत्तम उपदेश—"परस्परं भावयंतः श्रेयः परम-वाप्स्यथ" 'अपने समाज में एक दूसरे की सहायता करके परम आनन्द से जीवन व्यतीत करो' का पालन हम भारतवासियों से बहुत ही अधिक कर रहे हैं और इन्हें बार-बार प्रणाम कर अपने को धन्य समझना चाहिए। सच है:

"हो दर्द गर किसी को, तड़पते हैं हम अमीर।
सारे जहाँ का दर्द हमारे जिगर में है॥"

भारत में किसी समय राजा लोगों का जीवन अपनी प्रजा को सुखी और सब प्रकार से आनन्द से रखने में व्यतीत होता था। राजा दिलीप के विषय में कहा गया है:

प्रजानां विनयाधानात् रक्षणात् भरणादपि।
स पिता पितरस्तासाम् केवलं जन्महेतवः॥

अर्थात् प्रजा को ऐसी उत्तम शिक्षा दे कर जिससे उसका आचरण ऐसा बन जाय कि राष्ट्र उन्नति करे, प्रजा की सब प्रकार रक्षा करने और उसका भली प्रकार भरण-पोषण करने से राजा दिलीप अपनी प्रजा का सच्चा पिता बन गया था। उसके जो पिता थे, उनका काम तो केवल संतान को जन्म देना था। इस एक श्लोक से हमारे राजा के आर्य आदर्श का पता मिलता है। इसका अनुकरण आज इंगलैण्ड, अमेरिका आदि में हो रहा है। प्रजा का काम जन्म देना है, उसकी शेष भलाई राज्य करता है। इन देशों में जन्म लेने के समय से ही सरकार प्रत्येक बच्चे का मानो जीवन-बीमा कर देती है जिससे उसे जीवन भर किसी प्रकार की चिन्ता न रहे। अमेरिका में एक आदमी पीछे सवा या डेढ़ मोटरकार हैं। स्वीडन, नार्वे में एक-एक गाँव में टेलिविजन और टेलीफोन हैं। यह सब हमारे प्राचीन आर्य राजा दिलीप की नीति का अनुसरण करने का ही फल है। इस राजा का पुत्र रघु सारी पृथिवी की विजय करने पर भी प्रजा को शिक्षित, सुखी और मालामाल करना अपना प्रथम कर्त्तव्य मानता था। प्रजा बढ़िया भोजन करती थी, सब प्रकार से आनन्द सागर में गोते खाती थी। धन-धान्य से भर-पूर थी; किंतु सबको महान् आनन्द में रख कर राजा रघु स्वयं मिट्टी के बर्तनों में सादा भोजन करता था। रघु के वंश में राजा राम हुए। इनके राज में वाल्मीकि ने बताया है:

नाकुण्डली नामकुटी नास्रग्वी नाल्पभोगवान्।

अर्थात् रामचन्द्र जी के राज्य में समृद्धि सर्वत्र हाथ जोड़े खड़ी रहती थी। रामराज्य में एक भी नागरिक ऐसा नहीं था जिसके कानों में बहुमूल्य कुंडल न चमचमाते हों, ऐसा एक भी नागरिक नहीं था जो अपने शिर पर बहुमूल्य मणिरत्नों से जटित सोने का मुकुट न रखता हो, ऐसा मनुष्य ही नहीं था जिसके गले में बहुमूल्य मालाएँ सुशोभित न हों। सार यह कि रामजी के राज्य में साधारण मनुष्य भी साधारण भोग नहीं करता था। वह महान् भोग का उपभोग करता था। इस अपूर्व सुख समृद्धि का एकमात्र कारण यही था कि राजा सचमुच में अपनी प्रजा के लिए अपने प्राणों को त्यागने में भी नाममात्र हिचकता न था, और उसके आचार-विचार भी आदर्श होते थे। उनका एक मात्र ध्येय यही था—

त्यागेनैव भुञ्जीथाः

अर्थात् जो कुछ तुम करते हो उसके भीतर त्याग का ही उपभोग होना चाहिए। ये एस्किमो रघु के वंश के आचरण के अनुयायी हैं। इन्हें मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ क्योंकि इनमें त्याग की लगन है और इनका आचरण महान् है।

तेजस्विनाऽवधीतमस्तु।



स्वर्गीय श्री नेहरू के जन्मदिवस पर प्रधान मंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री ने जवाहर-ज्योति जलायी जो देश के विभिन्न भागों में घुमायी जायेगी।

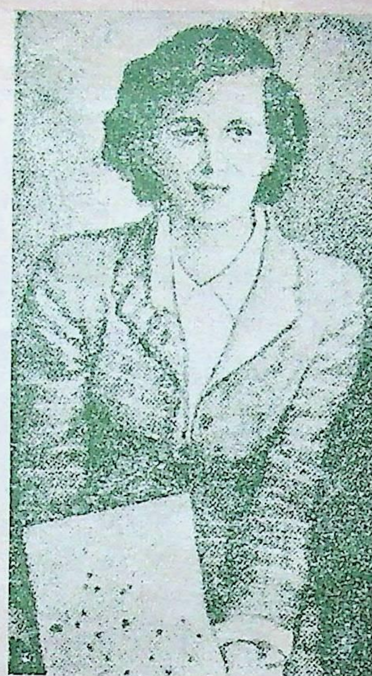


बाल-दिवस पर प्रकाशित १९६४ का डाक-टिकट। इसके बीच में श्री जवाहरलाल नेहरू के स्मारक सिक्के का चित्र है।

गतमास दिल्ली में महिला वकीलों का अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ। उसकी अध्यक्षा श्रीमती वायोलेट अल्वा भाषण दे रही हैं। उनकी दाहिनी ओर प्रधान मंत्री बैठे हैं जिन्होंने इस सम्मेलन का उद्घाटन किया।



श्री जहूरबख्श
गत मास अल्पकालीन बीमारी के बाद भोपाल में इनका स्वर्गवास हो गया।



इस वर्ष रसायन विज्ञान में नोबेल पुरस्कार-विजेता आक्सफोर्ड की अध्यापिका श्रीमती डोरोथी क्राफ्ट हाजकिन



इस साल नोबेल शान्ति-पुरस्कार-विजेता
रेवरेंड एम० एल० किंग





इस साल भौतिक विज्ञान में नोबेल पुरस्कार-विजेता—(संयुक्त रूप में)
चार्ल्स टाउन्स (अमरीकी), अध्या० प्रोखरोव (रूस) तथा प्रोफे० बेसान (रूस)

निमाड़ी लोकगीतों में व्यंग्य-विनोद

श्री दुर्गाशंकर त्रिवेदी

"लोकगीत धरती के गीत हैं, धरती के बेटे-बेटियों के गीत हैं। अपने भाग्य को अपने हाथ में लेकर जीने वाला किसान हल की मूठ पकड़कर जीवन के, शृंगार के, समृद्धि के, संघर्ष के और विजय के गीत गाता है। इन लोकगीतों में हमारा लोक जीवन अपनी समस्त सुन्दरता और शक्ति के साथ मुखर हो उठता है। इन लोकगीतों के साथ धरती गाती है, आसमान गाता है, चाँद-तारे गाते हैं, वन, पर्वत, नदी, नद गाते हैं। प्रकृति के सारे सत्य गाते हैं। पूरा ग्रामीण समाज गा उठता है।"

श्रीकृष्णदासजी की उक्त भावना को जब कभी भी मेरी आँखों ने देखा, चट से मेरा दिमाग निमाड़ी लोकगीतों की ओर आकृष्ट हो गया जिन्हें पढ़ते-पढ़ते स्व० पं० रामनरेशजी त्रिपाठी कह उठे थे:—"इन गीतों को देखकर अनुमान होता है कि निमाड़ तो मधुमय गीतों का समुद्र ही होगा।"

और इन्हीं गीतों की अनुगूंज ने धर्मवीर भारती से कहलवा दिया:—"निमाड़ जब गाता है तो एक ओर उसमें मधुमास का रेशमी खुमार होता है, और दूसरी ओर पलाशकुंज के धधकते हुए फूलों की छाया !"

तो आइए, उन्हीं धधकते हुए फूलों की छाया में अनुगुंजित लोकगीतों की प्रतिध्वनियों का रसास्वादन कीजिए। प्रतिध्वनियों का इसलिए कि इनकी मूल ध्वनि तो उन भोली-भाली निमाड़ी महिलाओं के कण्ठों में ही बंद है, और स्व० त्रिपाठीजी के शब्दों में:—"लोकगीतों का आधा माधुर्य तो नारी कण्ठों में ही रह जाता है।" फिर भी जैसा भी है आपके समक्ष है।

मानव जीवन स्वयं एक खट्टी-मीठी-चरपरी कथा है। समय-समय पर मानव मात्र हास्य-व्यंग्य की शरण में अपने आपको सौंपकर कुछ अपना व्यक्तिगत दर्द भूलने का प्रयत्न करता रहता है।

इन निमाड़ी लोकगीतों में भी ऐसे अनेक प्रसंग समक्ष आते हैं, जिनमें हास्य-व्यंग्य का अद्भुत समन्वय है। तो लीजिए कुछ ऐसे ही खट्टे-मीठे-चरपरे लोकगीतों की झलकियाँ। पढ़ते जाइये, हँसते जाइए, अथवा दाँतों तले उँगली दबा-दबाकर निमाड़ियों की सूझ-बूझ की दाद दीजिए!

विवाह का समय है, उमड़ घुमड़कर उठनेवाले पावस-भरे बादलों की तरह ही अपने घर के सामने से निकलने वाली दूल्हे की शोभा-यात्रा, जिसे निमाड़ी में 'बाना' कहते हैं, देखने की उत्सुकता से एक तरुणी फिसलकर गिर पड़ी।

तभी उसे आस-पास खड़ी कुछ औरतों ने देख लिया, और वे कह उठीं:—

"दल बादल उमड़यो रे,
मोठा रे भाई का आँगण मऽ
ओकी पतलड़ी निसरी रे,
आँगण मऽ रपट पड़ी।
ओको लउंग को बटुओ रे,
दाण ऽ रे दाण बिखर गयो।
ओको छोट्यो देवर दौड़चो रे,
पटापट रे तोने बीण लियो।
ओको समरथ स्वामी आयो रे,
आधा हिस्सो बाँट लियो।"

(उस भाई के आँगन में दल-बादल की तरह जन-समुदाय उमड़ रहा है। उसकी नाजुक स्त्री उसे देखने निकली, तो आँगन में ही फिसल पड़ी।

उसके बटुए के लौंग छार-छार होकर बिखर गये। तभी उसका छोटा देवर आया तो उसने उन्हें चुन चुनकर बीन लिया, लेकिन उसके समर्थ स्वामीजी आये, तो उन्होंने आधे-आधे बाँट लिये।)

इस गीत में जहाँ तरुणी की सुकुमारता एवं दयनीय स्थिति का भावपूर्ण वर्णन है, वहीं उसके स्वामी के पौरुष पर कितना कटु व्यंग्य किया गया है, जो सहज ही जाना भी नहीं जा सकता है।

विवाहों के समय हँसते-गाते दिन गुजरने में समय ही नहीं मालूम देता है। विवाह में लग्न के बाद, दूल्हे को देखकर उससे भी कुछ मधुर विनोद किया जाता है। सच तो यह है कि इस प्रकार नारियाँ दूल्हे की मनःस्थिति का पूर्णरूपेण पता लगा लेने का प्रयत्न करती हैं कि दूल्हा

स्वभाव से कैसा है ! ऐसे ही एक प्रसंग के समय लोकगीत गाती महिलाओं के मध्य एक दूल्हे की दयनीय अवस्था देखकर आप स्वयं भी दूल्हे के प्रति सिफारिश कर उठेंगे, उसकी हिमायत में स्त्रियों को समझायेंगे ! देखिए वे स्त्रियाँ क्या कह रही हैं :--

"लाड़ो खऽ देखी नऽ दुल्लव आयो रे रड़ी !
लाड़ो बंणी रे जैसी फूल की छड़ी !"
सब सुहागेण मण्डप ऽ खड़ी,
कोई न लगई हुसे 'कान खड़ो'
कोई सुहागेण आग ऽ बढ़ी,
ऐख ऽ तो जलम की हाणऽपड़ी,
लाड़ी खऽ देखो न ऽ दुल्लव आयो रे रड़ी।
लाड़ी बंणी रे जैसी फूल की छड़ी !"

(दूल्हन को देख कर दूल्हा रो दिया !
दुलहिन ऐसी बनी है, जैसे फूल की छड़ी हो !
सब सुहागिनें मण्डप में खड़ी थीं,
एक ने कहा :--"अरे ! इसे किसी ने गुच्ची लगा दी होगी,"
तभी दूसरी बोल उठी :--"अरे इसे तो जनम से ही रोने की आदत पड़ी है ?"
दुलहिन को देखकर दूल्हा रो दिया !
दुलहिन ऐसी बनी है, जैसे फूल की छड़ी हो।)

वर-वधुओं को लक्ष्य करके विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले निमाड़ी 'वनरा गीतों' का भी अपना निराला ही ठाठ होता है। पं० रामनारायण जी उपाध्याय ने इन गीतों के लिए सत्य ही लिखा है :--"इन्हें यदि हास्य, विनोद और शृंगार की त्रिवेणी कहें तो भी कोई अत्युक्ति नहीं है।"

तो लीजिए एक 'वनरा गीत' सुनिए ! एक दूल्हा अपनी अतुल सम्पति का वर्णन करते हुए जब वधू से अपनी चाँदनी पर चौसर खेलने के लिए आने का निमंत्रण देता है, तो विनोद भरे स्वरों में वधू पूछ उठती है :--

"बना तम कणके बुलाया रे जल्दी आया।
बनो थारा पिताजी नं लिख्यो कागज भेज्यो,
बनो हम उणांका बुलाया रे जल्दी आया।
बनी म्हारा हात्थी झूल ऽ द्वार,
म्हारा यहाँ घोड़ा की घमसाण,
म्हारी चाँदणी पर चौसर खेलणऽ आवजो।
बना म्हारो हलदी भर्‌यो अंग,
म्हारी पाटी मंऽ गुलाल,
म्हारी चोटी मंऽ अत्तर,
बना म्हारी चाँदणी पर चौसर खेलण आवजो !"

(हे प्रिय ! तुम किसके बुलाने से मेरे यहाँ पर जल्दी आ गये !

इस पर वर स्वाभिमान भरी शब्दावली में उत्तर देता है कि, "हे प्रिये ! तुम्हारे पिताजी ने मुझे पत्र लिखकर बुलाया था। मैं उनके बुलाने से तुम्हारे यहाँ जल्दी आ गया।"

आगे वह अपनी धन-सम्पदा और वैभवशालीनता का वर्णन करता हुआ कहता है कि हे प्रिये ! मेरे दरवाजे पर हाथी झूलते रहते हैं, घोड़ों की भी मेरे यहाँ कमी नहीं है। इसलिए आज तुम मेरी चाँदनी पर चौसर खेलने के लिए जरूर आना।

इस पर वधू मुस्काकर अपनी स्थिति का वर्णन करती हुई, उन्हें अपने यहाँ आने को निमंत्रित करती है। वह कहती है :--

"हे मेरे प्रियतम, अभी मेरे अंगों में हल्दी लगी हुई है,
मेरी माँग में गुलाल पड़ा हुआ है।
मेरी चोटी इत्र से भींगी हुई है।
मैं तुम्हारे यहाँ पर कैसे आऊँ ?
आज तो तुम ही मेरी चाँदनी पर चौसर खेलने के लिए आ जाना।)

आइए अब एक निन्हाली सुनिए। निन्हाली याने स्नेहावली जो विवाह के अवसर पर 'वाना' (भेंट या आभूषण) लानेवाले रिश्तेदार को सुनाई जाती हैं।

सचमुच इस अवसर पर आदमी मूल्य की दृष्टि से कीमती भेंट देकर भी ये गालियाँ अथवा निन्हालियाँ खाकर एक विशेष प्रकार की आनन्दानुभूति अनुभव करता है ! देखिए, इस गीत में एक 'बाना' लानेवाले भाई से स्त्रियाँ पूछ रही हैं, जिसमें व्यंग्य का कितना विचित्र अप्रत्यक्ष सम्पुट है !

"हऊँ तुख ऽपूंछूँ अमुक भाई,
थारी जोय बताव रे राणा ठाकुर।
पान सरीखो पातलई है,
चौलई मंऽ छिप जाय रे राणा ठाकुर !

इलायची सरीखी महेकणई रे,
डब्बा मंऽ छिप जायरे राणा ठाकुर।
नीर सरीखी निरमलई रे,
कवोल ऽ छिप जाय रे, राणा ठाकुर!
चाँद सरीखी उजलई रे,
महलाँ मंऽ उज्झाव रे, राणा ठाकुर।"

(हम तुझसे पूछ रही हैं भाई, जरा अपनी स्त्री को ो बताओ। शायद वह पान की तरह नाजुक है, जो ंगिया में छिप जाती है, या इलायची की तरह सुवासित , जो डिब्बे में खोई रहती है, और वह नीर की तरह र्मल है, जो कटोरे में नहीं दिखती, और वह चाँद की रह उज्ज्वल होगी, जिससे सारा महल उजियारा है। ह सुनते ही बेचारा पति खिसियाकर रह जाता है।)

आइए अब एक 'बनरा-गीत' सुन लीजिए। इस गीत ं सहेलियाँ नववधू को घेरकर उससे विनोद करती हुई पने अन्तर की आवाज उसको लक्ष्य करके प्रकट करती ! जरा गौर से देखिएगा तो आप इस गीत में व्यंग्य पुट भी पर्याप्त मात्रा में पायेंगे! आइए, सुनिए। च्छा हो तो स्वयं भी गुनगुनाइये:—

"बिन्दी तो तुम पैरो हो बनीजी,
तुमखऽ बन्दड़ाजी बुलावऽ॥
थारा रंग महल माँ कसी आऊं रे बना,
म्हारा झाझरिया जो बाज ऽ॥
म्हारा झांझरिया की रुणुक-झुणक,
म्हारा पिताजी सुणी लीसे॥
थारा पिताजी की गालई हो बनो,
नखऽ बहुतज प्यारी लागऽ॥"

े दुल्हन, तुम बिन्दी तो लगा लो,
देखो, तुमको प्रियतम बुला रहे हैं।

इस पर मुसकराते हुए, कुछ स्त्रियाँ सुहावना बहाना ाते हुए दुलहिन की तरफ से तरफदारी करते हुए हती हैं:—

हे प्रियतम, मैं तुम्हारे रंगमहल में किस तरह आऊँ?
मेरे पाँवों की पैंजनियाँ आवाज जो करती हैं।
यदि मेरी पायलों की रुनुक-झुमुक ध्वनि मेरे पिताजी सुन ली तो?

तभी पति की हिमायत में कुछ स्त्रियाँ कह उठती —

'तुम्हारे पिताजी की गाली तो मुझे बहुत ही प्यारी लगती है। तुम आ भी जाओ!)

निमाड़ी लोकगीतों में ननदोई (पति की बहिन के पति) को लक्ष्य करते हुए भी अत्यन्त मधुर विनोद संजोया गया है। आइए, आप भी इसी प्रकार के एक गीत का स्वाद चखिए। ननदोई के मेहमान होकर के आने पर उसका किस तरह रंगीन स्वागत किया जाता है, जरा इसका विनोद और माधुर्यपूर्ण एक चित्र देखिए:—

"एक गहूं की मनऽ रोटी बणई
ओम ऽ नणंद जिमाड़ी ओमऽ नणडई जिमाड़या जी
तोजा पोरया-पारई चौथो साला-हेली,
भूक्य तम रहे जी मतो!
एक डाडा की मनऽ झोंपडी बंधाड़ी!
ओम ऽ नणंद बिठाड़ी, ओम ऽ नणदई बठाड्या!
ओका पोर्या-पारई, चौथी साला-हेली,
घाम ऽ मरजो मतो!
एक ईस की मनऽ खाट बनाडी!
ओपर नणंद सोवाड़ी; ओपर नणदई सोवाड्या।
तोजा पोर्या-पारई चौथा साला-हेली,
भुइं मंऽ सोवजो मती!
एक पूंणी को मनऽ गोदड़ी बनाड़ी!
ओखऽ नणंद ओढ़ाई, ओखऽ नणदई बढ़ाई,
तोजा पोर्या-पारई चौथी साला-हेली,
ठंडऽ मरजो मतो!
म्हारा प्यारा नणदोई!!"

(एक गेहूं की मैने रोटी बनाई।
उसमें ननद को जिमाया, उसमें ननदोई को जिमाया,
उनके लड़के-बच्चों को जिमाया, और उनकी सालाहेली को भी,
कोई भूखे मत रहना जी;!

एक लकड़ी की मैंने झोंपड़ी बनाई?
उसमें ननद को बैठाया, उसमें ननदोई को बैठाया,
उनके लड़के-बच्चों को बैठाया, और उनकी सालाहेली को भी,
कोई धूप मत सहना जी!

एक ईस की मैंने खटिया (पलंग) बनाई!
उस पर ननद को सुलाया, उस पर ननदोई को सुलाया,
उनके लड़के-बच्चों को सुलाया, और उनकी सालाहेली को भी,
कोई जमीन पर मत सोना जी!

एक पौनीं की मैंने रजाई बनाई,
उसे ननद को उढ़ाया, उसे ननदोई को उढ़ाया,
उनके लड़के-बच्चों को उढ़ाया, और उनकी सालाहेली को भी,
कोई ठण्ड मत सहना जी !
मेरे प्यारे ननदोई जी !)

शुभ कार्यों और त्योहारों पर अक्सर पर्याप्त संख्या में रिश्तेदार इकट्ठे हो जाते हैं, तब नारियाँ लोकगीतों के माध्यम से उनसे विनोद करती हैं। विवाह के पर्व पर एक लड़की और जमाई सम्मिलित हुए हैं। तभी स्त्रियों ने जमाई को अपने मनोविनोद का माध्यम बनाकर गा दिया :—

"महाराज आंगणा मंऽ सूखी एल मौरी राज,
आली एल मौरी राज
आया ते अमुक जंवई लई गया जो,
लाओरे ओखऽ पकड़ी न ऽ
बाँधोरे ओखऽ जकड़ी न ऽ
पाँय लगाड़ो अमुक भाई आँगणा मंऽ जी
एतरा मंऽ भाई अमुक बैण भोलई राज,
आज को चोर इराजी छोड़ी देवो जी ॥"

(आज मेरे आँगन में सूखी बेल मौरी है,
गीली बेल मौरी है,
लेकिन अमुक जमाई आये और उसे चुराकर ले गये। अरे कोई उसे पकड़कर लाओ, बाँधकर लाओ, और हे अमुक भाई, उससे आँगन में पैर छुवाओ, इतने में मेरी भोली बहन बाहर आई !

और वह बोल उठी कि हे भाई, आज के इस चोर को तुम आज छोड़ दो।

और इस प्रकार अपनी कन्या के द्वारा जमाई को छुड़ाए जाने की बात सुनकर महिलाओं में एक कहकहा गूंज उठता है।)

निमाड़ी लोकगीतों में अविवाहित व्यक्ति को लेकर भी मधुर विनोद सँजोये हुए हैं। देखिए, एक कुँवारे को जब कहीं भी विवाह होने की उम्मीद नहीं रही, तो वह रुष्ट होकर सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की तरह विभिन्न लौकिक हस्तशिल्पियों से एक नवीन प्रकार की नारी गढ़कर लाने का आदेश देता है।

लेकिन उसकी कल्पना लोक की स्वप्निल नारी जब [illegible] जगत् में आ उतरती है, तो दुर्भाग्य वहाँ भी उसके स्वप्न किस प्रकार छार-छार कर देता है। आइए, जरा उस बेचारे कुँवारे की मनोव्यथा एक लोकगीत के माध्यम से सुन लीजिए, और स्वयं कुँवारे न रहने की कसम खा डालिए। यदि दुर्भाग्य से रह गये तो यही तानाकशी आप पर भी होगी ही ! तो छोड़िए ये कोरी कल्पना लोक में विचरना, और आइए इस लोकगीत की आनन्दानूभूति में अपनेपन को क्षण भर के लिए भूल से जाइये :—

"दल-बादल की बन्नी बढ़ाऊँ !
सुतर्‌या भाई तू म्हारो भाई,
लाकड़ा की जोरू घड़ी लावजे रे भाई !
लाकड़ा की जोरू ख चूल्हऽ बठाड़साँ !
उड़ी गयो फुनग्यो न बलई गई बाई ॥ १॥
दल-बादल की बन्नी बढ़ाऊं
कुम्हाराया भाई तू म्हारो भाई,
माटी की जोरू घड़ी लावजे रे भाई !
माटी की जोरू ख वलेण बठाड़साँ !
आइ गयो मेहुलो धुलई गई बाई ॥२॥
दल-बादल की बन्नी बढ़ाऊँ !
पिंजारा भाई तू म्हारो भाई,
पूर्णी की जोरू घड़ी लावजे रे भाई !
पूर्णी की जोरू ख चौक बठाड़साँ !
आइ गयो वाह्‌लयो न उड़ी गई बाई ॥३॥
दल बादल की बन्नी बढ़ाऊँ !
सौनर्‌या भाई तू म्हारो भाई,
सोन्ना की जोरू घड़ी लावजे रे भाई !
सोन्ना की जोरू ख महेल बठाड़साँ !
आई गया चोर न लई गया बाई ॥४॥
दल बादल की बन्नी बढ़ाऊं !
बजाजी भाई तू म्हारो भाई,
कपड़ा की जोरू बणई लावजे रे भाई !
कपड़ा की जोरू ख पेटी बठाड़साँ
आई गया ऊंदरा न खाई गया बाई ॥५॥

(दल बादल की ओढ़नी उढ़ाऊँगा।
हे सुतार भाई तू मेरा भाई है !
तु मुझे लकड़ी की एक स्त्री बनाकर ला देना रे भाई !
लकड़ी की स्त्री को मैं चूल्हे के पास बैठाऊँगा,
लेकिन चिनगारी उड़ी, और स्त्री जल गई ॥ १ ॥
हे कुम्हार भाई, तू मेरा भाई है, रे !

तू मुझे मिट्टी की स्त्री बनाकर ला देना रे भाई !
मिट्टी की स्त्री को मैं चूल्हे से दूर पानी की धार के नीचे बैठाऊँगा।
लेकिन पानी आया, और स्त्री घुल गई ॥२॥
हे पिंजारे भाई, तू मेरा भाई है !
तू मुझे पौनी की स्त्री बनाकर ला देना रे भाई !
पौनी की स्त्री को मैं (चूल्हे और पानी से दूर) चौके में बिठाऊँगा।
लेकिन तूफान आया और स्त्री उड़ गई ॥३॥
हे सुनार भाई, तू मेरा भाई है !
तू मुझे सोने की स्त्री बनाकर ला देना रे भाई।
सोने की स्त्री को मैं महल में रखूँगा !
लेकिन चोर आये और स्त्री को चुरा ले गये ॥४॥
हे बजाजी भाई, तू तो मेरा भाई है !
तू मुझे कपड़े की स्त्री बनाकर ला देना रे भाई !
कपड़े की स्त्री को मैं पेटी में बन्द करके रखूँगा!
लेकिन चूहे आये और स्त्री को खा गये ॥५॥)

इस प्रकार बिचारे कुँवारे की मन की एक महत्त्वपूर्ण आस दल-बादल की ओढ़नी बिना उढ़ाये ही रह गयी ! वह खीझ उठता है, और उसको खीझते देख स्त्रियाँ प्रमुदित हो उठीं !

विनोद पारिवारिक जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। आइए अब पति-पत्नी के मध्य होनेवाले एक सुरुचिपूर्ण तथा शिष्ट विनोद की एक झलक एक लोकगीत के माध्यम से सुनिए !

एक पति अपने घर से दूर गया था, उस समय उसकी पत्नी प्रसूता थी। वह वापस लौटता है तो वातावरण से उसे ऐसा अनुभव होता है कि उसके बच्चा हो गया है। अतएव वह सहज ढंग से अपनी पत्नी से पूछ उठता है कि :—
"हे प्रिये ! तुमने किसको जन्म दिया है ?"

इस पर जिस मजे से उसकी पत्नी उसे बताती है, वह आनन्द आप भी ले लीजिए, क्योंकि शायद है ऐसा ही मौका आपके जीवन में भी आ जाय, तो लीजिए। सुनिए:—

"चतुर साहेब जी गोह्या पर आया,
तो गोह्या पर सुण्यो जंगी ढोल हो,
गोरी तुनऽ काई हो जायो !
आपणा गाँव संञ्याव हो माड़्यो,
ते गुण वाजऽ जंगी ढोल हो,
पियाजी मनऽ कई नी जायो ॥
चतुर साहेब जी पनघट पर आया,
पनघट पर देखी—पाणी-रेल हों,
गोरी तुनऽ काई हो जायो ॥
सावण भादों को मेहुली सो बरस्यो,
ते गुण आई पाणी-रेल हो,
पियाजी मनऽ कई नी जायो ॥
चतुर साहेब जी गाँव मंऽ आया,
गाँव मंऽ उड़ऽ अबीर गुलाल हो,
गरी तुनऽ काई हो जायो ॥
आपणा गाँव मंऽ मारुजी होलई सो खेल्या,
ते गुण उड़ऽ अबीर गुलाल हो,
पियाजी मनेऽ कई नी जायो ॥
चतुर साहेब जी सेरी मंऽ आया,
सेरी मंऽ आव ऽ आजूं वास हो,
गोरी तुन ऽ काई हो जायो ॥
आपण सासूजी को पेट हो दुखऽ,
ते गुण आव ऽ आजूँ वास हो,
पियाजी मनऽ कइ नी जायो ॥
चतुर साहेब जी आँगणा मंऽ आया,
आँगणा मंऽ आव ऽ सोंठ वास हो,
गोरी तुन ऽ काई हो जायो ॥
अपणा भाभी जी को माथो हो दुःखऽ
ते गुण आव ऽ सोंठ वास हो,
पियाजी मनं ऽ कई नी जायो ॥
चतुर साहेब जी कोठरी मंऽ आया,
पलंग पर खेल ऽ नानो बाल हो,
गोरी तुम झूँठा हो बोल्या,
हम तो हारिया, पियाजी तुम जीतिया,
बोल्या ते वचन संभालो,
पियाजी हमन ऽ लाल हो जायो ॥"

(जब उसके सयाने पति गोहे पर आये, तो उन्होंने गोहे पर जंगी ढोल की आवाज सुनी। अतएव उनने अपनी पत्नी से पूछा कि हे प्रिये ! तुमने किसको जन्म दिया है ? पुत्र को, अथवा कन्या को ?

यह सुनकर पत्नी बोली कि "हे प्रिये ! आप भी कैसी बातें कर रहे हैं, अपने गाँव में विवाह हो रहा है। इसीलिए

तो आपने जंगी ढोल की आवाज सुनी। मुझे तो कुछ भी नहीं हुआ।

जब उसके सयाने पति पनघट पर आये, तो उन्होंने पनघट तक पानी की लाइन बहते हुए देखी थी, अतएव पूछा :--"हे प्रिये तुमने किसे जन्म दिया है ?"

इस पर वह अत्यन्त सहज ढंग से बोली, आज अपने गाँव में प्रिय सावन-भादों की तरह कुछ पानी बरस गया है, इसीसे वह निकला होगा। मुझे तो कुछ भी नहीं हुआ।

उसके चतुर पति जब गाँव में आये, तो उन्होंने गाँव में अबीर-गुलाल उड़ते हुए देखा था, अतएव पूछा कि हे प्रिये, तुमने किसे जन्म दिया है ?

इस पर तनिक मुस्कराकर वह बोली :--"आज अपने गाँव वालों के मन में कुछ होली-सी खेलने की आ गयी थी, इसीलिए अबीर-गुलाल उड़ रहे हैं। मुझे तो कुछ भी नहीं हुआ है।"

उसके चतुर पति जब गली में आये थे, तो उन्हें गली में अजवाइन की गंध आयी थी। अतएव पूछा कि हे प्रिये तुमने किसे जन्म दिया है ?

वह बोली, मेरी सासुजी के पेट में आज तनिक दर्द सा था, इसीलिए आपको अजवाइन की गंध आ गयी होगी। मुझे तो कुछ भी नहीं हुआ है।

उसके चतुर पति जब आँगन में आये, तो आँगन में उन्हें सोंठ की गंध आयी थी। अतएव उनने पूछा :--

"हे प्रिये! सच-सच बताओ, तुमने किसको जन्म दिया है ?"

वह बोली, अपनी भाभी के सिर में आज कुछ दर्द सा हो रहा था, इसीलिए आपको सोंठ की गन्ध आ गयी होगी। मुझे तो कुछ भी नहीं हुआ है।"

अपनी शंकाओं का इतना स्पष्ट समाधान पाकर जब उसके पति ने कमरे में पाँव रखा, तो वहाँ पलंग पर एक नन्हा-मुन्ना खेलता नजर आया!

अतएव वह हर्षातिरेक में बोल उठा :--हे मेरी गौरव-पूर्ण प्रिये! तुमने मुझे व्यर्थ ही बुद्धू बनाया। देखो तुम मुझसे झूठ बोली हो।

इस पर खिलखिलाकर हँसते हुए पत्नी बोली :--"हे प्रिय! हमारी हार, किन्तु आपकी जीत हुई है। लेकिन अपने दिये वचन को निभाइयेगा!

आपने कहा था कि यदि मुझे कन्या होगी तो आप नाराज होंगे, और पुत्र होगा तो उपहारों से ढँक देंगे! सो अब लाइये आप उपहार!

सुनिए, हमने पुत्र को जन्म दिया है।

इतना कहकर वे दोनों खिल-खिलाकर हँस पड़े। कितनी विनोद की स्वस्थ प्रक्रियाएँ इस लोकगीत में वर्णित हैं।

इस प्रकार निमाड़ी लोक-जीवन में व्यंग्य-विनोद की अटूट परम्परा पग-पग पर लोकगीतों में प्रस्फुटित होकर जन-जीवन को स्वस्थ बनाये है।



आप सौ वर्ष तक जीते रह सकते हैं

श्री सन्तराम बी० ए०

"भविष्य में प्रत्येक व्यक्ति सौ वर्ष की आयु तक जीता रहेगा और अपने शतवर्षीय जीवन से आनन्द प्राप्त करेगा। निश्चय है कि एक दिन हमें जीवन की पूरी अवधि प्राप्त हो जायगी और जीवन-काल उतना संक्षिप्त न होगा जितना कि अब है।"

ये प्रोफेसर अन्ना अस्लन के शब्द हैं जो बुखारेस्ट, रूमानिया में वार्द्धक्य-शोध-संस्थान की उच्च अधिष्ठात्री हैं। कुमारी अस्लन का व्यक्तित्व चिकित्सा जगत् में विवादास्पद है। वे रूमानिया में अपनी वार्द्धक्य-चिकित्सा में पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी हैं, यद्यपि उनकी आविष्कृत औषध एच ३ के संबंध में उनकी प्रतिज्ञाएँ सामान्य-रूप से स्वीकार नहीं की गई हैं। हाल में एक सज्जन उनसे मिलने गए थे। उनसे मिलने के उपरान्त जो वक्तव्य उस सज्जन ने दिया है वही आगे दिया जा रहा है।

कुमारी अस्लन की आयु ६४ वर्ष के लगभग है परन्तु हाल ही में जब मैं उनसे मिलने रूमानिया गया तो वे न्यूनाधिक चालीस वर्ष की मालूम होती थीं। मैं उनकी भाषा नहीं जानता था, इसलिए एक रूमानियन डाक्टर ने दु-भाषिये का काम किया और मुझे उनसे निम्नलिखित जानकारी मिली।

प्रो० अस्लन ने वार्द्धक्य अवस्था की शोध सन् १९४९ में आरम्भ की और सन् १९५१ में रूमानिया के स्वास्थ्य-मंत्री ने यह संस्था स्थापित की। इस संस्था की मुख्य अधिष्ठात्री और सर्वेसर्वा कुमारी अस्लन हैं। यहाँ वह आप अपनी सब से अधिक प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित रोगी हैं क्योंकि वह गत ग्यारह वर्ष से अपनी औषध (एच ३) का सेवन आप कर रही हैं।

मैंने उचटती हुई दृष्टि से अस्लन के चेहरे को देखा। उनके बाल भूरे थे। वे कहने लगीं कि यह पहले सफेद हो गये थे। मैंने पूछा, 'बुढ़ापा कब आरम्भ होता है?'

प्रो० अस्लन ने उत्तर दिया, "प्रायः चालीस वर्ष की आयु में।"

४० वर्ष होने पर उपचार तुरन्त आरम्भ हो जाना चाहिए। यह उपचार औषध एच ३ से किया जाता है। यह औषध प्रोकेन का २ प्रतिशत घोल है। इसे संस्था के विशेष योग (नुसखा) के अनुसार तैयार किया जाता है।

बुखारेस्ट की इस संस्था के दो विभाग हैं। पहला विभाग संसार भर के रोगियों को प्रवेश देता है। जब रोगी प्रारम्भिक विभाग में पहुँचता है तो उसकी सामान्य जीवन-शास्त्र संबंधी दशा की छानबीन के लिए उसकी प्रयोगशाला-संबंधी परीक्षाएँ की जाती हैं।

प्रो० अस्लन ने समझाया कि "शरीर के विभिन्न अंग विभिन्न गति से बूढ़े होते हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण परि-वर्तन मस्तिष्क और स्नायुजाल में घटित होते हैं।"

"रोगियों को एक मास संस्था में बिताना पड़ता है। वहाँ उन्हें प्रति सप्ताह तीन इंजेक्शन दिये जाते हैं। फिर यह उपचार दो या तीन वर्ष तक रोगी के घर पर जारी रहना चाहिए। उपचार का आरम्भ संस्था में ही होना आवश्यक है। किसी किसी रोगी में बुढ़ापे के प्रभाव अपरिवर्तनीय और अटल होते हैं और कई एक में वार्द्धक्य को रोका जा सकता है।" जाँच करने वाले प्रारम्भिक विभाग में संसार भर के प्रसिद्ध व्यक्ति आते हैं। एक विख्यात ग्रन्थकार जब उपचार के लिए आया तो प्रवेश के समय उसने बताया कि मैं प्रतिदिन केवल दो तीन घंटे काम कर सकता हूँ। छठे मास के उपचार के उपरान्त अब उसे काम में बहुत रुचि प्राप्त हो गई है और वह प्रति-दिन दस से सोलह घंटे तक लिखने-पढ़ने का काम कर सकता है। सामान्यतः रोगियों का यही मत है कि वे निराशावादी दशा में आते हैं परन्तु आशावादी बनकर घर वापिस जाते हैं। संस्था के दूसरे विभाग में दो सौ मनुष्य स्थायीरूप से आयु भर के लिए रहते हैं, अर्थात् अन्तिम श्वास तक। पुरुषों और स्त्रियों की संख्या बराबर होती है। आने वाले स्वयं प्रवेश की प्रार्थना करते हैं। एक दल का एच ३ में उपचार किया जाता है। और दूसरे दल को (अज्ञात रूप से) प्रभावहीन पिचकारियाँ दी जाती हैं।

प्रो० अस्लन ने कई अतीव महत्वपूर्ण बातें बताईं। बुढ़ापा यद्यपि सामान्य दृष्टि से एक वैज्ञानिक समस्या है, परन्तु यह एक ऐसा विषय है जिसमें शासन को दिल-चस्पी लेनी चाहिए। हम अकाल में मृत्यु का ग्रास हो

जाते हैं भविष्य में हम विज्ञान की दृष्टि से सौ वर्ष तक जीते रहेंगे और जीवन से आनन्द प्राप्त करेंगे।

"क्या स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक काल तक जीवित रहती हैं?"

इसका उत्तर प्रो० अस्लन ने यह दिया कि "जीवन-शास्त्र की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं है, परन्तु एक स्त्री जिसने कठोरता का जीवन बिताया है, जिसे बहुत से गर्भ ठहरे और बहुत से बच्चे पैदा हुए हैं वह पुरुष की अपेक्षा अधिक द्रुतगति से बूढ़ी हो जाती है।"

यहाँ तक पहुँच कर प्रो० अस्लन मुलाकात समाप्त करके चली गईं। परन्तु उनके रूमानिया के सहकारी ने वार्तालाप जारी रक्खी। पहले उन्होंने चित्रों का एक एलबम प्रस्तुत किया। उसमें रोगियों के चिकित्सा के पूर्व और चिकित्सा के उपरान्त लिए हुए फोटो थे। एक फोटो दिखलाकर उन्होंने कहा, "यह रोगी ४९ वर्ष की आयु में बूढ़ा हो गया था। इसके सिर पर एक भी बाल न बचा था। इसके मुखमण्डल पर बुढ़ापे की आभा-हीनता के लक्षण और चिह्न देख पड़ते थे। ५१ वर्ष की आयु में इसका कायाकल्प (नवयौवन) किया गया।" इस रोगी के चित्रों में जो दो वर्ष के उपचार-काल में, थोड़े थोड़े अन्तर पर लिए गये थे, यौवन स्पष्ट रूप से प्रकट था। साफ चिकनी चिन्दिया पर मृदु कोमल केशों का गुच्छा उत्पन्न हुआ। तदुपरान्त ये बाल मोटे और काले हो गये। अन्तिम फोटो में इस रोगी के सिर पर प्राकृतिक काले केश वर्तमान थे और चेहरे पर प्रतिभा, चुस्ती, फुरती और जागरूकता के लक्षण देख पड़ते थे।

एक दूसरे बूढ़े मनुष्य के फोटो देखे। इसकी आयु १०६ वर्ष की है। पहले फोटो में बाल सफेद हैं, अब बाल काले हो गये हैं।

"एच ३ औषध के सेवन से हमें जोड़ों का दर्द (र्यू-मिटिज़्म) और आर्थराइटिस में भी अच्छे परिणाम प्राप्त हुए हैं। यहाँ छः रोगी ११० वर्ष से ऊपर की आयु के हैं। क्या आप सबसे बूढ़े रोगी से मुलाकात करना पसंद करेंगे? वह ११६ वर्ष का बूढ़ा पुरुष है।"

यह वृद्ध रूमानिया निवासी था। यह पहले माली का काम करता था। वह आगे बढ़ा और उसने मुझसे हाथ मिलाया। इसके हाथ की पकड़ काफी कड़ी और सुदृढ़ थी। दुभाषिए डाक्टर ने कहा, "इसकी गर्दन के पुट्ठे देखिए, कैसे अच्छे और कड़े हैं, और बालों का रंग काला है।"

इसके उपरान्त हम एक दूसरे कमरे में गए। उसमें एक ९० वर्ष का पुरुष और उसकी ८४ वर्षीय पत्नी दोनों साथ रहते थे। डाक्टर ने मुस्कुराते हुए कहा, "तीन वर्ष पहले इन दोनों की मुलाकात यहाँ हुई थी। इसके बाद दोनों ने विवाह कर लिया।"

इस भव्य राजकीय संस्थान से प्रस्थान करते समय मैंने अनुभव किया कि यह एक ऐसा महत्त्वपूर्ण स्थान है जिसे विदेशों के विशेषज्ञ लोग देखना पसंद करेंगे। मेरी यह भेंट बहुत संक्षिप्त थी, और मैं चिकित्सागत जानकारी से भी अनभिज्ञ था। इसलिए मैं यहाँ की बातों की पूरी समीक्षा नहीं कर सकता था। मैं अपने प्रश्नों के उत्तर भी एक दुभाषिए के द्वारा ही प्राप्त कर सकता था। इसलिए मैंने जो कुछ वहाँ देखा और सुना उसे वैसे का वैसा प्रस्तुत करता हूँ।

प्रोफेसर अस्लन ने वार्तालाप के मध्य मुझसे कहा कि आस्ट्रेलिया का एक लेखक मस्तिष्क के तनाव और पीड़ाओं से ग्रस्त था। वह इस संस्थान में आकर डेढ़ मास ठहरा। अब वह वापस आस्ट्रेलिया चला गया है। हमने सुना है कि अब उसे मस्तिष्कगत तनाव के दौरे बिलकुल नहीं होते।

मेरी एक परिचित देवी मेलबोर्न में रहती हैं। उनका नाम डीबोरा गारलेण्ड है। वे इस रोगी को देखने गईं। वे लिखती हैं कि "वह ९० वर्ष का है परन्तु ७५ वर्ष का दीखता है। वह कहता है कि अब मैं बहुत अच्छा और स्वस्थ हूँ, कदाचित् उससे भी अच्छा जितना मैं ७० वर्ष की आयु में था!" यद्यपि डाक्टरों को सन्देह है, तथापि जार्ज ब्रशटरोजबड, विक्टोरिया-निवासी, अपनी ९० वर्ष की आयु की चुस्ती और जीवट पर बहुत सन्तुष्ट हैं। यह शक्ति और सामर्थ्य उसे उस उपचार के प्रताप से प्राप्त हुई है जो सन् १९५८ में इस संस्थान में किया गया और जिसके इंजेक्शनों का सिलसिला अब भी यहाँ जारी है।

इस उपचार के संबंध में ब्रिटिश मेडिकल जर्नल ने अपने १२ दिसंबर १९५९ के अंक में निम्नलिखित टिप्पणी प्रकाशित की है :—"प्रोफेसर अस्लन के कथनों और पर्यवेक्षणों की वास्तविकता जो कुछ भी हो, उनके प्रकाशित लेख और प्रबंध और लंदन में हुए उनके हाल के भाषण तो कोई युक्तियुक्त वैज्ञानिक प्रमाण प्रस्तुत करने में असमर्थ हैं।" सारांश यह कि संसार के विचारशील चिकित्सक कहते हैं कि इस क्रिया से कोई लाभ नहीं होता और बुढ़ापे की समस्या एक पहेली बनी हुई है।



टेढ़ी नाल की बन्दूक

महन्त धनराजपुरी

जमशेदपुर की मेरी पहली यात्रा थी। मैं उन दिनों बिहार प्रांतीय फारवर्ड ब्लाक का अध्यक्ष था। अध्यक्ष की हैसियत से, प्रान्तव्यापी दौरे के सिलसिले में, प्रत्येक जिले के मुख्यालयों की खाक छाननी पड़ रही थी। कहीं सार्वजनिक सभायें होतीं और कहीं पार्टी-सदस्यों की रैली। पुरुलिया में, अखिल भारतीय फारवर्ड ब्लाक के तत्कालीन प्रधान मंत्री श्रीशीलभद्र याजी भी (वर्तमान एम० पी०) मुझसे आ मिले थे। हम दोनों साथ ही जमशेदपुर पहुँचे।

ट्रेन में राजनीतिक चर्चा समाप्त होते ही याजीजी ने कहा—"मैंने 'सरस्वती' में आपकी 'जान के लाले' शीर्षक आखेट कहानी पढ़ी। मुझे तो कहानी पढ़ते-पढ़ते ऐसा मालूम होता था कि शेर मुझ पर ही टूट रहा है। इतने झंझट-झमेलों के बीच में आप लिखने का समय कब निकाल लेते हैं?"

मैंने मुस्कुरा कर कहा—"आपकी बड़ी कृपा हो, यदि आप मुझे जेल जाने का हुक्म दे दें। कितनी ही जगहों पर तो प्रान्त में किसान-सत्याग्रह छिड़ा हुआ है। चार छह महीनों में ही मैं कहानियों का बोझा लादे आ जाऊँगा।"

याजीजी ने भी मुस्कुराकर कहा—"तो मैं आज ही जनरल मोहन सिंहजी को पत्र लिख भेजता हूँ। वे जरूर आपको जेल जाने की इजाजत दे देंगे!"

"लेकिन इसका ख्याल जरूर किया जाय कि मुझे किसी अच्छी जगह पर सत्याग्रह करने की इजाजत मिले। कहीं सिंहभूम जिले में सत्याग्रह करने की आज्ञा मिली और बिहार सरकार ने चाईबासा जेल में मुझे ठूँसा तो मेरी ही कहानी कोई दूसरा लेखक लिखेगा!" मैंने जरा धीरे से कहा।

याजीजी ने मेरी बाँह पकड़ते हुए कहा—"नहीं, नहीं, आप खातिरजमा रखें। हम लोग कोशिश करके आपको हजारीबाग सेंट्रल जेल में भिजवा देंगे!"

स्टेशन पर गाड़ी रुकी। जनसमूह में उठनेवाले नारों के तुमुल निनाद में हमारी बातचीत खो गयी। फूल-मालाओं से लदा हुआ मैं एक इन्जिनियर के यहाँ पहुँचाया गया, जो हमारी पार्टी के सदस्य थे। भोजन-विश्राम करने में शाम हो गयी। स्थानीय पार्टी लीडर श्री जी० जी० पागे ने उलाहना-सा देते हुए कहा—"नेताओं को जरा मिहनत करनी चाहिए। सदस्यों की रैली का समय निकला जा रहा है।"

जरा झेंपते हुए मैंने कहा—"लम्बी यात्रा से गाड़ी में कुछ थक गया था!"

"लेकिन सुना है कि आप आखेट में नहीं थकते! कन्धे पर बन्दूक रक्खे सारा दिन पहाड़ों में गुजार देते हैं।" पागेजी ने मुस्कुराते हुए कहा।

मैं कितना बदनाम हो गया हूँ। शिकार की चर्चाएँ कहाँ-कहाँ तक फैल गयी हैं? उत्तर बिहार की प्रतिध्वनि सुदूर दक्षिण बिहार में सुनाई पड़ रही है। इन सब बातों के क्या पंख निकल आते हैं?

मैंने मुस्कुरा कर कहा—"ये सब पुरानी बातें हैं। आजकल की नहीं। आजकल तो आप लोगों ने मुझे कोल्हू के बैल की तरह जोत दिया है। चलता बहुत हूँ; लेकिन वहीं, एक ही जगह! वही पार्टी-सदस्यों की रैली, वही सार्वजनिक सभायें और वही भाषणों की धारावाहिक गोलाबारी! शिकार के लिए जान कहाँ छूटती है?"

"रात में आपका खाना, मेरे एक मित्र के यहाँ निश्चित है। उनका बड़ा आग्रह था कि महन्तजी कुछ मिनटों के लिए मेरे यहाँ पधारें। 'सरस्वती' में प्रकाशित आपकी किसी कहानी पर लट्टू हैं।" जी० जी० पागे ने मुस्कुराते हुए कहा—"दो शिकारी सज्जनों की बातचीत बड़ी दिलचस्प होगी!"

"तो आपके मित्र शिकारी भी हैं?" मैंने पूछा।

"मुझसे पूछने की जरूरत नहीं। उनका बैठकखाना ही इसका पर्याप्त प्रमाण दे देगा। शेर के चमड़ों से पूरा कमरा ढँका पड़ा है।"

"निश्चय ही उन्होंने मेरी कोई आखेट कहानी पढ़ी है। इसी कारण इतना आग्रह है। किन्तु, मैं तो कोई प्रसिद्ध शिकारी नहीं! केवल बन्दूक दागना जानता हूँ।" मैंने जरा मुस्कुराते हुए कहा।

पागेजी ने जोरों से ठहाका लगाया। बोले—"इसकी गवाही तो मैं भी दूँगा! चम्पारन में दागी हुई गोली की आवाज जमशेदपुर में सुनाई पड़ती है!"

मोटर पर सवार हुआ और सदस्यों की रैली में पहुँचा। सत्तर, पचहत्तर पार्टी-सदस्य जमा थे। दो घंटे तक बैठक चलती रही। एक घंटे तक व्याख्यान दिया, सदस्यों से जिला-व्यापी संगठन की रिपोर्ट ली और कुछ प्रश्नों के उत्तर भी दिये। मजदूरों और किसानों के संगठन में तत्परता दिखाने की प्रेरणा के बाद रैली समाप्त हुई। उठने का उपक्रम करते ही एक नौजवान सदस्य ने मेरे पास पहुँचकर निवेदन किया—"हमलोग आपसे आखेट के कुछ अनुभव सुनना चाहते हैं।"

यह तो अच्छी बला हुई। सदस्यों की रैली में शिकार के अनुभव! मैंने जरा मुस्कुराकर कहा—"उसके लिए क्या यह उपयुक्त स्थान होगा?"

"क्यों नहीं? रैली तो समाप्त हो गयी है। हम आप सभी, अप्रासंगिक बातें सुनने-सुनाने के लिए स्वतंत्र हैं। बाधा किस बात की होगी?"

पागेजी ने मेरी रक्षा की। बोले—"आखेट के अनुभव कुछ ऐसे नहीं कि दस-पाँच मिनट में सुने-सुनायें जायें।

उसके लिए कम से कम एक-डेढ़ घंटा चाहिए। आपके खाने में देर होगी। दिन भर के थके को अभी तक हम लोगों ने दम मारने की फ़ुरसत नहीं दीं। जिनको अनुभव सुनने की प्रबल इच्छा हो, वे कृपाकर कल आठ बजे सुबह मेरे दूकानवाले मकान पर चले आवें। जलपान भी होता रहेगा और अनुभव भी सुने जाते रहेंगे। क्यों, ठीक है न?" हमारी जान छूटी। सबों ने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया। हम जी० जी० पागे के साथ, मोटर में बैठकर, खाना खाने के लिए उनके मित्र की कोठी पर पहुँचे। रास्ते में मैंने पागेजी से कहा—"बड़े असमय में आपने मेरी रक्षा की। जाने कब तक मुझे बकबक करनी पड़ती!"

(२)

दरवाजे पर मोटर रुकते ही, सफेद खादी की धोती और कुरता पहने, आतिथेय सज्जन ने आगे बढ़कर हमारा स्वागत किया। भव्याकृति के वे लम्बे, तगड़े जवान दोनों हाथ जोड़े हुए मुस्कुरा रहे थे। मुझे उनकी यह सादगी और विनम्रता पसन्द आयी। उन्होंने मोटर का दरवाजा खोलकर मुझे उतारने के लिए अपना हाथ बढ़ाते हुए नम्रता से कहा—"अहो भाग्य! इतनी रटन के बाद आपके दर्शन तो हुए!"

मैंने छूटते ही कहा—"सिर्फ दर्शन के चक्कर में न रहियेगा। यहाँ तो स्पर्शन का वह कमाल दिखाना है कि थालियाँ पर थालियाँ साफ हो जायँ!"

उनकी जिंदादिली का भी नमूना मिला। तत्काल बोल उठे—"जी! मेरे यहाँ थालियों में खाना नहीं परसा जाता। छीपी और प्याली में परसा जाता है। आप भूल से किसी दूसरे के यहाँ आ गये हैं!"

सम्मिलित ठहाके से सारा वातावरण मुखरित हो उठा। हँसते हँसते पागेजी के पेट में बल पड़ गये। बोले—"आप दोनों की बेतकल्लुफी देखकर तो मैं दंग रह गया हूँ। मालूम पड़ता है, वर्षों की दाँतकाटी रोटी है। कौन कह सकता है कि दो प्रसिद्ध शिकारी योद्धाओं की पहली मुठभेड़ है?"

सचमुच पागेजी की बात, सोलह आने सच निकली। शेर के चमड़ों से बैठकखाने की दीवाल-फर्श मढ़ी-ढँकी नजर आयी। कमरे में कम ही सामान थे। चन्द सोफे, दो टेबुल और कोने में रक्खी चन्द बन्दूकें। यहाँ भी वही सफाई और सादगी का साम्राज्य फैला हुआ था। पागेजी ने छेड़ा—"वीरेन्द्र बाबू! "सरस्वती" की किस कहानी को पढ़कर आप प्रभावित हुए थे?"

"अरे हाँ! मैं तो वह भूल ही गया था! मुझे याद नहीं कि आजकल के जीवन में कभी रोने का अवसर मिला है। किन्तु, "सरस्वती" में प्रकाशित, आपकी "पान की पीक" ने मुझे रुलाकर छोड़ा! यों आपकी आखेट-कहानियाँ भी एक से एक सुन्दर निकली हैं। क्या वह कहानी, सत्य के धरातल पर खड़ी की गयी थी? मुझे तो कुछ [illegible] ही लगी।" वीरेन्द्र बाबू ने कहा।

मैंने जरा मुस्कुराकर कहा—"आपकी कृपा है। बन्दूक की गोलियों से ऊबकर कभी कभी समाज की गलियों में भी घूम लेता हूँ। यद्यपि मैं समझता हूँ कि मेरी यह अनधिकार चेष्टा है।"

"किन्तु, अब मेरी अनधिकार चेष्टा शुरू होगी। मेरी कहानियाँ सुनकर आप ऊबेंगे तो नहीं? क्योंकि मेरी कहानियों में ओज नहीं होगा!" कहकर वीरेन्द्र बाबू मुस्कुराने लगे।

बैठकखाने में ही खाना मँगाया गया। भोजन के साथ-साथ वीरेन्द्रबाबू की कहानी भी प्रारंभ हुई। किसी एक शेर के चमड़े की ओर इशारा करते और फिर उसकी पूरी कहानी सुना जाते। कब, कहाँ और कैसे मारा गया? उसने क्या क्या तमाशे दिखाये? गोली चलाने में क्या क्या दिक्कतें आयीं? कब, कहाँ किस परिस्थिति में उनकी जान के लाले पड़े? घायल शेर ने किस तरह अपनी जान की बाजी लगा दी? आदि, आदि। आध-पौन घण्टे नहीं, खाने में घंटों का समय गुजरने लगा। मुझे तो ऐसा मालूम हुआ कि मैं भारत में नहीं; फिनलैंड में खाना खा रहा हूँ! वहाँ अतिथि को खाने-खिलाने में जितने ही ज्यादा घंटे लगते हैं, अतिथि के प्रति उतना ही अधिक आदर-भाव समझा जाता है!

वीरेन्द्रबाबू के पास एक दो नहीं, दर्जनों कहानियाँ थीं। एक से एक सुन्दर और एक से एक आकर्षक! उनकी कहानियों को सुनकर मैं आश्चर्यचकित रह गया। इनके पास तो आखट की कहानियों का जखीरा है। काश! इनके पास लेखनी भी होती। हकीमुद्दीन साहब की "चालिसवाँ गुलदार" और "बयालिसवाँ गुलदार" भी फीका पड़ जाता। किन्तु, बन्दूक के साथ कलम को भी कौन पकड़ावे?

वीरेन्द्र बाबू ने अपनी विवरणात्मक कहानियों का उपसंहार करते हुए कहा—"माफ कीजियेगा। अनधिकारी वक्ता तो बहुत मिलते हैं, परन्तु, अधिकारी श्रोता जल्द नहीं मिलते। मैंने आपका बहुत समय लिया।"

बैठकखाने में घुसते ही मेरी निगाह बन्दूकों के झुंड पर गयी थी। एक दोनाली बन्दूक की नाल टेढ़ी मालूम होने पर मुझे जरा आश्चर्य भी हुआ था। इस दोनाली की नाल टेढ़ी क्यों है? किन्तु, संभव है यह मेरा ही दृष्टि-दोष हो। किसी भी बन्दूक की नाल टेढ़ी क्यों बनायी जायगी? बन्दूकें गोली दागने के लिए बनती हैं, तमाशे के लिए नहीं। टेढ़ी नाल की बन्दूक से गोली कैसे दागी जायगी? एक ही फायर में नाल के दो टुकड़े हो जायेंगे। शायद उस पर इस तरह रोशनी पड़ रही है कि मुझे भ्रम-वश नाल टेढ़ी दिखाई देती है। किन्तु, हाथ मुँह धोने के लिये उठकर, उस ओर जाते ही सारा भ्रम दूर हो गया। सचमुच बन्दूक की नाल टेढ़ी थी और बुरी तरह टेढ़ी थी। मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मैंने पूछा—"इस बन्दूक की नाल टेढ़ी है क्या?"

"हाँ, हाँ! अरे! मैं तो इसे भूल ही गया था।

दुनिया भर की फालतू कहानियाँ सुनायीं और सबसे अधिक मजेदार कहानी भूल गया। किन्तु, रात तो बहुत अधिक बीत चुकी है। बारह बज गये हैं।

मैंने कहा—"आज मैं यहीं सोऊंगा। बिना कहानी सुने अगर मैं यहाँ से चला जाऊँ तो कल सबेरे कमरे से मेरी लाश निकाली जायगी। रात में नींद तो आयेगी नहीं। यों ही हाय हाय करके मर जाऊँगा। हाँ, अगर आपको कोई तकलीफ हो तो....।"

वीरेन्द्र बाबू ने बात बीच में ही काटी। हँसकर बोले—"बिल्कुल थोड़ी-सी होगी। क्योंकि आपके जैसे दुर्लभ श्रोता, मुझे कई घण्टों के लिए फिर मिल जायगा! संकोच का पर्दा बहुत पहले ही फाड़ा जा चुका है। बेतकल्लुफी की इस छत्र-छाया में तकल्लुफ की बातें कैसी? हाँ क्या-क्या शौक फरमाते हैं, मुझे यह बतलाइये। पान, सिगरेट, सिगार? हम दोनों एक साथ ही एक कमरे में सोयेंगे।"

आसन जमाते हुए मैंने कहा—"शौक कुछ ज्यादा नहीं है। सिर्फ पान और उगालदान चाहिए।"

पागेजीने हँसकर कहा—"आप लोग ऐसा न समझ लीजिए कि मैं उठकर भाग जाऊँगा। कोई न पूछेगा तो मैं फर्श पर लुढ़क रहूँगा।"

हँसी का एक फव्वारा छूटा और शान्त हो गया।

(३)

टेढ़ी नाल की बन्दूक, मेरी गोद में देते हुए वीरेन्द्र बाबू ने कहा—"जरा नाल का मुलाहिजा फरमाइये। लपेटी नाल की डब्ल्यू डब्ल्यू ग्रीनर बन्दूक है। सिर्फ शेर की देह में ही असीम ताकत नहीं होती, शायद उसके दाँत भी फौलाद के बने होते हैं। फौलाद की लपेटी नाल में, कीलों की तरह उसके दाँत घुस नहीं सके हैं सही, किन्तु, जहाँ जहाँ से उसके दाँतों ने इसे दबाया है, इतनी मोटी फौलादी नाल, वहाँ वहाँ से काफी नीचे तक दब गयी है। उसके मुँह की पकड़ में जहाँ तक की नाल आयी है, वहाँ तक की नाल, यों टेढ़ी हो गयी है, जैसे नाल को लाल करके लुहार के हथौड़े से पीटा गया हो। क्या हम उसके दाँतों की ताकत का अनुमान कर सकते हैं?"

नाल को गौर से देखकर मैंने बन्दूक एक ओर रख दी। अविराम गति से कहानी चल रही थी—"संयोग को भी क्या कहा जाय? उड़ीसा के एक मित्र के निमंत्रण पर मैं वहाँ शिकार के लिए गया हुआ था। उसके पहले शेर का शिकार कर चुका था। ठांठी पर बैठे-बिठाये दो एक शेरों को मार कर मैं अपने को तीसमार खाँ समझने भी लगा था। शेरों के थोड़े-बहुत तमाशे भी देखे थे। किन्तु वे तमाशे ऐसे न थे कि छट्ठी का दूध याद आ जाय। हल्की-सी देह में सिहरन और जरा सा आँखों के सामने अंधेरा। फिर शेर पर गोली पड़ी और वह औंधे मुँह लेट गया। सिर्फ यहीं तक मेरी जानकारी थी।

मित्र के यहाँ पहुँचने पर उन्होंने एक मीठी झिड़की दी—"तुम कैसे शिकारी हो जी? शेर की बू पाने पर भी दबक कर बैठ जाते हो? घर से हिलने का नाम नहीं लेते! अगर इस बार नहीं आते तो कभी भेंट होने पर तुम्हें मैं गोली मार देता।"

मीठी झिड़की का मजा लूटना, बहुत कम लोगों के भाग्य में लिखा होता है। उसकी मिठास का क्या पूछना? मैंने हँस कर कहा—"मुझे मालूम न था कि इतना बढ़िया पुरस्कार मिलनेवाला है। नहीं तो इनाम के लालच में अवश्य नहीं आता।"

"चलो, तुम बातें बहुत बनाते हो। पहले स्नान-पूजा करके खा-पी लो। हमें आज दिन भर आराम करना है। कल शिकारगाह में चलेंगे। हाथियों को भेजा जा चुका है, और खेमा वगैरह भी। बन्दूकों का इतना बोझा क्यों लाद लाये? प्रदर्शनी करनी है क्या?"

"सिर्फ तीन हैं। एक बन्दूक और दो राइफल। अगर इनसे पूरा काम न चला तो तुम्हारी बन्दूकें किस दिन काम आयेंगी?"

"मुझे और कोई असुविधा नहीं, सिर्फ एक दिक्कत मालूम हो रही है। यहाँ के दो-तीन अच्छे शिकारियों को राजा साहब कालाहांडी ने अपने शिकार के लिए बुलवा लिया है। खैर, यह कोई ऐसी दिक्कत नहीं। कुछ अधकचरे शिकारी तो मौजूद हैं ही। झड़वे की लम्बी कतार को हम लोग संभाल लेंगे।"

ताश-शतरंज में सारा समय बीत गया। प्रातःकाल जलपान करके हम आखेट-स्थान पर पहुँचे। बहुत सुन्दर प्रबन्ध था। दस, बारह हाथी, छः सात तम्बू और बीस-पच्चीस नौकर-चाकर थे। आज यों ही घूम फिर कर जंगल में ताक-झांक करने की ठहरी और कल सुबह से झड़वा (हाँका) कराने की बात निश्चित हुई। सूअर के स्वादिष्ट गोश्त की भनक मिलते ही सैकड़ों आदिवासी आकर पूछ-ताछ कर गये।

तीसरे पहर, अलग-अलग टोलियों में बँटकर, हम लोगोंने आस-पास के जंगल का एक चक्कर लगाया। मुझे एक बार एक चीतल मिला और एक बार सूअर का बच्चा। किन्तु, मैं फायर न कर सका। शाम को लौटने के बाद ताक-झाँक की पूरी रिपोर्ट मिली। मेरे मित्र ने एक अच्छा दाँतवाला सूअर मारा था। एक शिकारी ने शाही मारी थी। गुलदार बाघ की झलक बहुतों ने देखी। इतना तो मालूम हो ही गया कि जंगली जानवरों की कोई कमी नहीं है। सिर्फ हिम्मत की बुलन्दी, अवसर की उपस्थिति और निशाने की सच्चाई का सवाल था। हाँ, संयोग की बात अलग थी क्योंकि पाड़े की खज पर मचान बाँधने का प्रबन्ध न था।

सूरज निकलने में अभी देर थी और हम लोग जंगल में जगह-जगह, पहाड़ी की बाँही पर हाथी से उतार दिये गये। थोड़ी-थोड़ी दूर के फासले पर हम लोगों ने अपनी अपनी मोर्चे-बन्दी कर ली। जरा लम्बी कतार तो थी ही। किन्तु उसका नियंत्रण करना कुछ कठिन न था। यदि सधे हुए शिकारी थोड़ी सावधानी बरतें तो किसी

जानवर के बच निकलने की संभावना न थी। मैं एक पेड़ पर चढ़कर, घोड़े की सवारी की तरह एक डाल की दोनों ओर पैर लटका कर बैठ गया। पीठ की तरफ टेक लेने के लिए भी डाल थी। कोई-कोई किसी मोटे पेड़ की सिर्फ ओट पकड़ कर खड़ा हो गया। हाथियों और आदमियों ने हाँका शुरू किया।

मेरे बायें से चीतल की एक मादा निकली। सहमी और डरी हुई। दुलकी चाल से दौड़ती निकल गयी। थोड़ी देर बाद मेरे दाहिने से एक बहुत बढ़िया सींग-वाला चीतल निकला। उसको मार लेना बहुत आसान था। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि मेरे दाहिनेवाले शिकारी ने फायर क्यों नहीं किया? वह कर क्या रहा था? खैर, वह भी निकल गया। सुदूर दाहिने एक फायर हुआ। फिर एक फायर हुआ, फिर हुआ। पता नहीं किस शिकारी ने किस जानवर पर दनादन गोलियाँ चलायीं। मेरे बायें से एक बिना दाँतवाला सूअर निकला। मैंने गोली मारी। वह वहीं लुढ़क कर रह गया। सूअर की ओर से दृष्टि हटते ही मैंने देखा कि दाहिने से एक गुलदार शेर जा रहा है। दाहिनेवाले शिकारी पर मुझे बहुत गुस्सा आया। आखिर वह भला आदमी कर क्या रहा है? बायीं ओर तड़ातड़ दो फायर हुए। किसी हिरन पर फायर हुए थे। सिर्फ एक बार रंभाने की आवाज आयी।

शायद मेरा ध्यान कुछ बँट गया था। एक चीता बाघ दाहिनी ओर से निकलते निकलते अकस्मात रुका और मुड़कर मेरे सामने से बाँयीं ओर जाने लगा। मैंने उसकी झलक तब देखी जब वह जरा दूर निकल गया था। जी में आया कि उसकी कमर पर एक गोली मारूँ। किन्तु, वैसा न कर सका। वह पीछे की ओर मुड़ मुड़ कर देखता हुआ निकल गया।

क्रमशः दो हाँके हुए किंतु उनमें कुछ छोटे-मोटे जानवर ही हाथ लगे। दो घण्टे विश्राम और भोजन वगैरह कर लेने के बाद, तीसरे पहर, एक ऐसे वन-खण्ड का हाँका शुरू हुआ, जो अपेक्षाकृत और जंगलों से कुछ अधिक बीहड़ था। साथ ही ऐसा संयोग हुआ कि मेरे दाहिने फिर वही शिकारी पड़ा, जिस पर मैं पहले से झल्लाया हुआ था। वास्तव में वह बहुत ही अनाड़ी शिकारी था। शायद उसने कुछ ही दिन पहले घोड़ा चढ़ाना और लबलबी खींचना सीखा था। हाथी से उतरते ही मैंने मोर्चाबन्दी के लिए किसी अच्छी जगह की तलाश की। आसपास में कोई ऐसा डालदार पेड़ न था, जिस पर चढ़कर मैं आराम और इतमीनान से आसन जमाता। दाहिने-बायें और आगे पीछे तीन-चार चक्कर काटे। किन्तु कहीं उपयुक्त जगह दिखलाई न पड़ी। एक जगह तीन मोटे मोटे पेड़ इतने पास-पास खड़े थे कि उनके बीच में तीन ओर से घुसना बहुत कठिन था। तीन दिशाओं की ओर के तने इतने सटे हुए थे कि उनमें किसी तरह सिर्फ मनुष्य की बाँह मात्र भीतर घुस सकती थी। हाँ, सिर्फ उत्तर की ओर इतनी जगह थी कि उसमें होकर बड़ी आसानी से एक आदमी भीतर घुस सकता था। हाँका भी उत्तर से दक्खिन की ओर हो रहा था। जगह देखते ही मैं प्रसन्नता से नाच उठा। यह तो प्रकृति-निर्मित, बनी-बनायी मोर्चाबन्दी है! मैंने हर तरह से परीक्षा की, सभी तरह की संभावनाओं पर विचार किया। मुझे यह प्राकृतिक किलाबन्दी, सभी दृष्टियों से सुरक्षित मालूम हुई। मैं तुरंत उस प्राकृतिक मोर्चाबन्दी में घुसकर, उत्तर की ओर मुँह करके खड़ा हो गया।

मुझे याद नहीं कि मैंने क्या सोचकर अगली कार्रवाई की। कारतूसों से भरी हुई मेगजीनी ३७५ बोर राइफल को अपनी बगल में एक पेड़ के सहारे खड़ा कर दिया, और दोनली बन्दूक में लीथल के कारतूस डालकर उसे हाथ में ले लिया। मेरी सारी कार्रवाई मूर्खता से भरी हुई थी। मैंने जरा भी नहीं सोचा कि मैं अपने जिस दुर्भेद्य दुर्ग के एक मात्र रास्ते पर खड़ा हूँ, यदि उस राह से कोई खूँख्वार जानवर, अचानक किलाबन्दी में आ घुसे तो मेरी क्या हालत होगी! वैसी अवस्था में भाग निकलने के लिए न कोई दूसरी राह थी और न छिपने के लिए कहीं कोई गुंजाइश! इसका सीधा अर्थ था कि कहीं कोई गड़बड़ी होते ही निशाना चूकते ही स्वयं कूद कर मौत के मुँह में घुस बैठना। शायद मुझे अपने निशाने पर नाज था। शायद मैं अपने को बहुत बड़ा शिकारी समझ बैठने की अकड़ में था।

जरा पहले से ही हाँका शुरू हो गया था। हो-हल्ले की स्पष्टता बढ़ती जा रही थी। मैं हाथों में दोनाली लिये, सिंह द्वार पर खड़ा-खड़ा, सामने की ओर दृष्टि गाड़े, सजग कानों से दाहिने बाएँ की आहट लेता जा रहा था। तल्लीन प्रतीक्षा में केवल एक ही बाधा थी। पैरों में मच्छड़ काट रहे थे। कभी जूते से और कभी झुक कर हाथ से खुजला देता था। सहसा मुझे शेर की हल्की गुर्राहट सुनायी पड़ी। ऐसा मालूम हुआ कि गुर्राहट, मेरे सामने से कुछ हटकर, सुदूर दाहिनी ओर से आयी है। मैं सजग तो हुआ जरूर किन्तु, मेरी सतर्कता में निराशा की छौंक थी। जब दाहिनी ओर से आवाज है, तब, शिकार का मजा तो दाहिनी ओर के शिकारी के भाग्य में लिखा होगा! मेरा उसमें साझा कैसा? हाँ! कुछ चूर-चार भले ही मेरे पास तक भी पहुँच जाय!

दस मिनट से ज्यादा देर न हुई। यों शेर के शिकार में, दस मिनट की प्रतीक्षा, कोई प्रतीक्षा नहीं होती! कुछ आहट-सी पाकर, मैं अपनी आँखें दाहिनी ओर घुमाने ही जा रहा था कि पास में बन्दूक तड़पी। शायद गोली ने पत्थर छू कर उड़ान ली और मेरी बगलवाले पेड़ में घुस गयी! पलक झपकते-न-झपकते, शेर की दहाड़ से जंगल हिला और शेर ने ठीक मेरी बगल से छलाँग मारी! मुझे तो ऐसा मालूम हुआ कि मेरी किलाबन्दी में शेर घुस गया क्या? मैं हिला नहीं, डुला नहीं। मेरे हाथ से बन्दूक भी नहीं छूटी! किन्तु, एक क्षण के लिए मेरी आँखें बन्द हो गयीं।

दाहिनी ओर के शिकारी पर मैं पहले से ही झल्लाया हुआ था। शायद अभागे ने बड़ी हड़बड़ी में बन्दूक दागी थी। या तो गोली ने पूँछ पकड़ी या कान छेद दिया। छेड़ा हुआ घायल शेर! यमराज का सहोदर भाई! अब उसकी सारी विभीषिकायें मेरे सर से गुजरेंगी और वह मूर्ख मचान पर बैठा बैठा मुफ्त में तमाशा देखेगा! पाप उसका, और भुगतूँगा मैं!

सहसा मेरी छाती और दाहिनी बाँह में जोरों का झटका लगा! मालूम हुआ, जैसे छाती की हड्डी, एक इंच पीछे की ओर दब गयी और हडडी टूट जाने के कारण बाँह, आगे की ओर खिसकी जा रही है! या दैव! यह क्या हुआ? आँखें खुलीं और कलेजा मुँह को आ गया! बन्दूक की नाल, शेर के मुँह में थी! किन्तु, भले आदमी ने नाल बीच से पकड़ी थी। नाल से गोली निकलने के मार्ग उसके मुँह से बाहर थे। उसके पैर जमीन पर न थे। शायद अभी उसकी वही पहली छलाँग थी, जिसकी झलक मिलते ही मेरी आँखें बन्द हो गयी थीं। मुँह में बन्दूक की नाल दाबे, वह वायुमार्ग पर उड़ा जा रहा था!

निश्चय ही शेर ने मुझे नहीं देखा। शायद उसकी छलाँग की राह में अनायास ही बन्दूक की नाल आयी और उसने पकड़ ली! संभव है, ठीक उसके मुँह के सामने नाल पड़ी हो। खुले हुए मुँह में, नाल के घुसते ही उसने उसे लकड़ी का टुकड़ा समझा हो और क्रोधावेग में अपनी दाढ़ें उसमें गाड़ दी हों। फिर तो बन्दूक के कुन्दे का प्राणलेवा झटका खाकर, मेरा होश में आना, नितान्त स्वाभाविक ही था। मैं पीठ के बल गिरने से बाल-बाल बचा!

जमीन पर पैर पड़ते ही शेर ने बन्दूक को एक झटका-सा दिया और नाल को चाबने लगा। उसकी गरज और दहाड़ का क्या पूछना। आसमान हिल रहा था, जमीन हिल रही थी, पहाड़ हिल रहे थे! बन्दूक की दोनों नालों में कारतूस भरे पड़े थे। लबलबी खिंचते ही आग बरसने लगती। किन्तु, शायद शेर की झकझोर से लबलबी अछूती रह रही थी।

मालूम पड़ता है, शेर की छलाँग पर जब मेरी आँखें बन्द हो गयीं, तब लबलबी पर चिपकी हुई मेरी उंगली भी शिथिल हो गयी थी। नहीं तो, उस प्राणघातक झटके पर अवश्य ही लबलबी खींचती और नालें आग बरसा बैठतीं। फिर तो मुझ पर शेर की आँखें पड़तीं ही और उसके बाद की घटनायें, यद्यपि भविष्य के गर्भ में छिपी रह गयीं; फिर भी उनका अनुमान सहज तथा सुगम है!

बन्दूक को दो-चार झटके और देकर, शेर आगे की ओर बढ़ा। मेरे सिर से इस बिजली की तड़प के जरा दूर हटते ही मुझे होश हुआ। बगल में खड़ी राइफल उठा ली। शेर तेजी से आगे की ओर जा रहा था। शिर, गरदन और छाती, आँखों से ओझल हो चुकी थी। सिर्फ कमर दिखलाई पड़ी। पल्ले सिरे की गलती की। शायद अपनी प्यारी बन्दूक की दुर्दशा देखकर जोश में आ गया। शायद अनुभवहीन जवानी लहरा उठी। बिना परिस्थिति और परिणाम सोचे, मैंने गोली दाग दी। दो गोलियाँ दागीं। पिछली ने तो साफ मिट्टी उठा ली। किन्तु, पहली ने शेर की कमर तोड़ दी।

दहाड़ता हुआ शेर, शायद पीछे मुड़ने को तैयार हो चुका था। शायद उसने अपनी गर्दन मोड़ ली थी। शायद उसे मेरी झलक मिल चुकी थी। शायद कुछ और ही घटना घटने जा रही थी। किन्तु, बाँयीं ओर के शिकारी ने परिस्थिति सँभाल ली। उसकी दो अचूक गोलियाँ आयीं और शेर की गरदन-छाती में घुस गयीं।

सचमुच शेर का दाहिना कान, बन्दूक की टटकी गोली से छिदा हुआ था!

वीरेन्द्रबाबू की ओर बन्दूक बढ़ाकर मैंने एक गहरी साँस ली।



मणिपुर और वहाँ की जनता

मेजर सीताराम जौहरी

"क्या आप कांग्रेस से प्रभावित हैं अथवा उसके सहायक हैं ?" मैंने पिछली वाली चौकी पर बैठे एक महाशय से पूछा।

"मैं स्वयं कांग्रेस का कार्यकर्ता हूँ।" महाशय ने मुस्कराते हुए कहा।

मैंने विचार किया कि साधारण नागा तो न ही खद्दर का पाजामा-कोट पहनेगा न ही गांधी टोपी अपने सर पर थोपेगा। हो न हो यह महाशय नागा जाति के अवश्य ही मुख्य नेता होंगे, मेरा विचार ठीक ही था।

"अजी साहब इन श्रीमान् का नाम है सीवो ल्हारो। आप टैरीटोरियल सभा के सभापति हैं। आप माओ जाति के मुख्य नेता हैं। आप ने लोकसभा के लिए श्री रिशांग केईसिंह से चुनाव लड़ा था। दुर्भाग्यवश आपकी हार हुई।" एक मणिपुर यात्री ने बीच में बात काटते हुए पूछा।

"श्री रिशांग केईसिंह कौन सी पार्टी से खड़े हुए थे ?"

"वह प्रजासोशलिस्ट पार्टी से खड़े हुए थे।" श्री सीवो ल्हारो ने बताया। "आजकल केईसिंह ने लोकसभा में कांग्रेस पार्टी को अपना लिया है। यह महोदय तांगखुल नागा हैं और इनका समस्त जीवन मुखसल में व्यतीत हुआ है।"

बातचीत होते-होते सीवो ल्हारो स्वयं मेरे पास आकर बैठ गये। उन्होंने बताया कि माओ नागा खाते-पीते व्यक्ति हैं। हमारे इलाके में जपोवा पहाड़ (१०,००० फीट) स्तम्भ सा खड़ा है। माओ इस पहाड़ के ढालों पर कुछ किस्म के फलों तथा आलू की अच्छी कृषि करते हैं।

"मैं जब १९५५ में यहाँ गुजरा था तब तो यहाँ शांति थी, अब यहाँ अशान्ति क्यों दिखायी पड़ रही है ?"

"उस समय तक नागाओं में टोडी नेता नहीं थे। उनको पूर्ण विश्वास था कि भारत उनकी माँग को स्वीकार करेगा। परन्तु श्री शीलूआओ भारतीय सरकार से जा मिले। इस घटना से नागा नेता क्रोधित हो गये हैं। और उन्होंने विद्रोह की अग्नि को प्रज्वलित कर दिया है। इस अग्नि ने इस क्षेत्र को भी समेट लिया है और मुखसल को भी।"

"तो क्या यह विद्रोह कभी समाप्त नहीं होगा ?"

"नहीं ! जब तक कि भारत के प्रतिनिधि (नागा टोडी) नागालैण्ड पर शासन करते रहेंगे।" श्री ल्हारो ने कहा। ल्हारो महोदय इस वाक्य के प्रत्येक शब्द पर जोर डाल रहे थे कि यह विचार विद्रोहियों के हैं जिनसे उनकी प्रायः भेंट हो जाती है।

"नागालैण्ड की स्वतंत्रता से माओ नागाओं का क्या सम्बन्ध है ?"

"माओ और तांगखुल मिलकर एक मुख्य दल बनाते हैं। माओ नेताओं का विचार है कि यदि माओ और तांगखुल ने नागाविरोधियों से संघर्ष किया तो अवश्य नागा आन्दोलन सफलता प्राप्त करेगा। अवश्य ही नागालैण्ड की स्थापना होगी। नागालैण्ड में अपनी बहुसंख्या के कारण इनका दल नवीन प्रदेश पर शासन करेगा।" ल्हारो महोदय ने कहा। थोड़ी देर चुप रहने के पश्चात् वह फिर बोले। "नागाओं ने निश्चय कर लिया है कि यह प्रदेश भारत का एक मुख्य अंग रहेगा।"

"क्या ऐसा प्रदेश कभी स्वयं अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है ?"

"नहीं ! परन्तु यह प्रान्त हिलफेडरेशन का एक प्रदेश होगा।"

"क्या आपका मतलब है कि हिल फेडरेशन का आन्दोलन नागा आन्दोलन से सम्बन्धित है ?"

"निश्चय ही ! यही नहीं बल्कि इस फेडरेशन में नेफा भी सम्मिलित होगा। अर्थात् आसाम के पाँच पहाड़ी जिले तामेंगलांग, चूरापादपुर, द्विगनोपिल, मुखसल, माओ-प्रान्त तथा नागालैण्ड और समस्त नेफा के निवासी आसाम के चारों ओर एक फेडरेशन बनाएँगे।"

"मणिपुर का क्या होगा ?"

"मणिपुर जैसा अब है उसका अन्त हो जायेगा। यदि वह चाहे तो इस फेडरेशन में सम्मिलित हो सकता है। परन्तु मणिपुरियों की संख्या इस विस्तार में अल्प होगी और हमारी उन्नति में मणिपुरी रुकावटें न डाल सकेंगे।"

"इस समय मणिपुरियों की क्या जनसंख्या है ?"

आधुनिक मणिपुर की आबादी लगभग ८ लाख होगी। उसमें लगभग ३लाख आदिवासी होंगे।

"इस प्रकार आपका विचार है कि मणिपुरियों के बहुमत को आप अल्पमत में बदल देंगे।"

"और उपाय है भी क्या ?"

"पर क्या भारत इसको स्वीकार करेगा ?"

"यह कांग्रेस ने बहुत दिनों से निश्चय कर रखा है कि आसाम के पहाड़ी क्षेत्रों की हिलफेडरेशन बनायी जाये।" हँसकर श्री ल्हारो ने कहा।

"क्या पंडित नेहरू को यह ज्ञात है ?"

"क्यों नहीं।"

"आसाम का क्या होगा ?"

"यदि आसाम चाहे तो बराबरी के आधार पर वह भी इस हिलफेडरेशन में सम्मिलित हो सकता है। यदि उसकी इच्छा नहीं है तो अपना डेरा पृथक् ही खड़ा किये रहे।"

मुझे कुछ इन विचारों से आश्चर्य हुआ। हिल-फेडरेशन बनेगा, फिर हमारे नेताओं को इस प्रबन्ध का पूरा ज्ञान भी है। मैं कोहिमा में पढ़ चुका था कि सर राबर्ट रीड (Sir Robert Reid) ऐसे ही विचार प्रकट कर चुके थे। उन्होंने "History of the Frontier Area Bordering Assam from 1883-1941" में कोन्यक नागाओं के

बारे में भाष्य करते हुए लिखा है कि—यदि भविष्य में कोन्यक नागाओं पर शासन करने का विचार किया जाय तो यह उचित होगा कि छोटी-छोटी रियासतों की स्थापना की विधि पर ध्यान दिया जाये "......... Konyak...., and if control is even decided upon in the future it may well be that a scheme for establishing a number of small States may have to be considered" अर्थात् भारत के टुकड़े-टुकड़े करने का बीज रीड साहब बो गये। अब कांग्रेस सम्भवतः इस पौदे का पालन-पोषण कर रही है। जब मेरा रीड साहब के विचारों पर ध्यान गया तो मैंने अपने आप पर विजय पाई और शांतिपूर्वक श्री ल्हारो से वार्तालाप करता रहा। कुछ समय पश्चात् जब मणिपुर लगभग ९ मील रह गया कि गाड़ी रुक गयी और ल्हारो महोदय ने बिदा ली और गाड़ी से उतर गये।

(२)

एक बार शिवजी विष्णु से भेंट हेतु स्वर्गलोक गये। उस समय विष्णु के सम्मुख लक्ष्मी नृत्य कर रही थीं। शिव ने लक्ष्मी-नृत्य देखने की इच्छा व्यक्त की। भगवान् ने शिव से कहा कि वह स्वयं कहीं जाकर जितना मन चाहे पार्वती के संग नृत्य कर सकते हैं जिसने उनके मन को लुभा लिया। शिव ने निश्चय कर लिया कि इस घाटी में नृत्य किया जाये। उन्होंने नृत्य प्रारम्भ कर दिया। उनके नृत्य का दर्शन करने अनन्त नागराज आये। उन्होंने अपनी मणि एक ओर रख दी और ध्यान से नृत्य देखते रहे। इस मणि की ज्योति ने समस्त घाटी को उज्ज्वल कर दिया। शिव ने मन भरकर नृत्य किया। कहा जाता है कि वह एक वर्ष तक नृत्य में मग्न रहे। वह अनन्त नाग से अति प्रसन्न हुए और उन्होंने इस घाटी का मणिपुर नाम रख दिया। उसी प्राचीन काल से इस घाटी का नाम मणिपुर पड़ा और यहाँ पर उसी समय से नागपूजा होती चली आ रही है। महाभारत अनुसार अर्जुन ने यहाँकी कुमारी चित्रांगदा से गांधर्व विवाह किया। फलस्वरूप चित्रांगदा ने बभ्रुवाहन को जन्म दिया। मणिपुर के कथनानुसार बभ्रुवाहन का पालन-पोषण इसी घाटी में हुआ। मणिपुरी एक खास प्रकार के सर्प की पूजा करते हैं। इस सर्प का नाम है 'पाखुंगबा'। इन वाक्यों से स्पष्ट है कि मणिपुर एक जंगली क्षेत्र होगा क्योंकि भुजंग सर्प घने जंगलों में ही रहते हैं। किसी काल में मणिपुर में घने जंगल रहे होंगे। परन्तु आजकल तो यहाँकी पहाड़ियाँ अधिकतर नग्न ही दिखाई पड़ती हैं। शतियों से यहाँकी पहाड़ी जातियाँ जंगल काट-काटकर जला रही हैं और इस जमीन में खेती होती आ रही है। मान लिया जाय कि आज भूमि के एक टुकड़े में जंगल काटे गये और उनको जलाकर कृषि की गयी। तत्पश्चात् यह जमीन वर्षों तक व्यर्थ हो गयी। इस काल में कृषि भूमि के दूसरे टुकड़ों में ले जाया गया और वहाँ भी ऐसे ही जंगलों को काटा और जलाया गया। वह धरती भी व्यर्थ हो गयी। इस प्रकार कृषि नवीन-नवीन टुकड़ों में जाता रहा और जंगलों को काटता और जलाता रहा। कुछ वर्षों पश्चात् पहलेवाले टुकड़े में कुछ जान पड़ गयी। कृषक फिर उसी जमीन पर खेती करने वापस आये। इस कृषि की पद्धति को 'झूम' (Shifting cultivation) कहते हैं, और उस काल को जिससे कृषि अन्य टुकड़ों में काटमार करता रहा उसको 'Jhoom cycle' कहते हैं। भूतकाल में जनसंख्या कम थी। कम अनाज की आवश्यकता थी। फलस्वरूप थोड़े ही जंगल काटने और जलाने से निर्वाह हो जाता था। इसी कारण कहीं-कहीं तो Jhoom cycle पन्द्रह वर्ष तक पहुँच जाती थी। इस काल में जंगल फिर से उपज जाता था और मिट्टी भी उपज शक्ति सम्पूर्ण रूप से प्राप्त कर लेती थी। परन्तु वर्तमान काल में कहीं-कहीं Jhoom cycle केवल तीन साल ही रह गयी है। इस अल्पकाल में न तो जंगल ही पनप पाते हैं और न ही मिट्टी अपनी सम्पूर्ण उपजशक्ति प्राप्त करती है। इसका नतीजा यह होता है कि अनाज भी कम पैदा होता है और धरती पर पड़ने से मिट्टी की गिठन ढीली हो गयी है। फलस्वरूप जमीन की यह दशा हो गयी है कि यहाँ की धरती किसी प्रकार के कम्पन (vibration) को सहन करने के लिए असमर्थ है। जून १९६२ को 'लिमिकांग हाइड्रो इलेक्ट्रिक प्रोजेक्ट' का बिजलीघर टूट गया। जाँच करने से प्रतीत हुआ कि भूमि क्षरण (erosion of soil) इसका मुख्य कारण था। इस कठिनाई से मणिपुर में वैज्ञानिक साधनों से उन्नति बड़ी कठिन हो गयी है। डा० पी० एस० लोकनाथन, डायरेक्टर जनरल, एकनामिक रिसर्च, भारत सरकार—लिखते हैं: "मणिपुर के जंगलों के वैज्ञानिक प्रबन्ध में एक बड़ी कठिनाई यह है कि यहाँ के आदिवासी जंगलों को व्यक्तिगत सम्पत्ति समझते हैं। जब तक कि उनको इस प्राचीन विश्वास से हटाया नहीं जायेगा उस समय तक वैज्ञानिक साधनों से यहाँके जंगलों का प्रबन्ध जनता के लाभ हेतु कदापि नहीं किया जा सकता। फिर सबसे मुख्य बात यह है कि भूमि की समस्या का सुलझाना जंगलों के वैज्ञानिक शासन (Scientific administration) की प्रथम शर्त है।"

जंगलात के निम्नलिखित आँकड़ों से समझा जा सकता है कि मिट्टी को जमाने अथवा स्थिर रखने (stability or preservation) के लिए क्या साधन हैं:—

रिजर्व[1] जंगल= ३८८ वर्गमील; समस्त जमीन का ४·५%
प्रोटेक्टेड[2] ,,= ८५७,, ,, ,, ९·९%

१—ऐसे जंगलों पर प्रदेश वन-विभाग का पूर्ण अधिकार होता है।

२—ऐसे जंगलों पर प्रदेश वन-विभाग का पूर्ण अधिकार अवश्य होता है परन्तु आदिवासी व्यक्तिगत प्रयोग हेतु जंगल से ईंधन इत्यादि काट सकते हैं। दूसरे, समय आने पर यह जंगल स्थानीय सभाओं के सुपुर्द कर दिये जायेंगे।

अनक्लास[3] जंगल
=१,०८० वर्गमील; समस्त जमीन का १२·५%
समस्त जंगल
=२,३२५ वर्गमील; समस्त जमीन का २६·८%
समस्त धरती=८,६३० वर्गमील

रिजर्व जंगल = समस्त जंगलों का	१६·६%
प्रोटेक्ट्रेट जंगल=समस्त जंगलों का	३७·९%
अनक्लास जंगल=समस्त जंगलों का	४५·५%

मणिपुर पहाड़ी प्रदेश है। यहाँ की औसतन ऊँचाई ३,००० फिट है। राष्ट्रीय वन नीति (National Forest Policy of India 1952, Government of India Publication p. 34) के अनुसार पहाड़ी प्रदेश में मिट्टी के संरक्षण के हेतु जंगलों का वर्ग-मील समस्त जमीन का ६०% होना चाहिए। परन्तु मणिपुर में केवल २६·९% है। फिर यह आँकड़े केवल रिजर्व अथवा प्रोटेक्ट्रेट जंगलों के होना चाहिए। मणिपुर में लगभग आधी जंगलों की जमीन (४५·५%) में अनक्लास जंगल लगे हुए हैं। पाठक समझ सकते हैं कि जंगलों वाली जमीन के अल्प होने से मणिपुर की धरती को क्या हानि हो रही है। यह आँकड़े १९६ - तक के हैं। सम्भव है ४ वर्षों में जंगल और कट गये हों।

(३)

मणिपुर हिन्दू वैष्णवों का प्रदेश है। यहाँका वैष्णव धर्म स्वामी शंकर देव (आसाम) के वैष्णव धर्म के समान नहीं। स्वामीजी के समाज में समस्त भक्त एक समान हैं--न कोई भेद-भाव हैं न ही जलपान की कड़ी शर्तें। स्वामीजी का वैष्णव धर्म वास्तव में है भी जनता के उद्धार के हेतु। एक बार राजा नरनारायण-कूचविहार के राजा ने स्वामीजी के समक्ष वैष्णव धर्म को स्वीकार (ग्रहण) करने की इच्छा प्रकट की। स्वामीजी ने राजा की प्रार्थना को अस्वीकार किया और कहा कि उनका धर्म केवल जनता के लिए है न कि राजाओं के हेतु। यदि राजा भक्ति अथवा कीर्तन इत्यादि में लग गये तो राज्य कौन करेगा। आसाम के वैष्णव मधु (rice beer) का पान कर सकते हैं अथवा मुर्गी इत्यादि का मांस भी खा सकते हैं। यह नियम सब पर लागू है चाहे वह ब्राह्मण हो चाहे कायस्थ। फिर आसाम के वैष्णव मत का सबसे मुख्य विचित्रता यह है कि कुछ मठों के महन्त आदिवासी भी हो सकते हैं। इसके विपरीत मणिपुर का मत बंगाली वैष्णव धर्म से मिलता-जुलता है। मदिरा और मांस विष्णु के पुजारियों के लिए निषेध है। इसके अतिरिक्त मणिपुर समाज में जात-पाँत का भेद भाव भी देखा जाता है। जब मणिपुर में अंगरेज नहीं आए थे तब मणिपुरी अपने आदिवासियों को अपने धर्म, संस्कृति अथवा सभ्यता में सम्मिलित कर रहे थे। परन्तु ब्रिटिश ने हिन्दू धर्म के प्रचार के दमन का प्रयत्न किया और ईसाई धर्म के फैलाने में पूरी सहायता दी। परिणामस्वरूप मणिपुर के अधिकतर आदिवासी ईसाई हो गये। जो बचे वे अब स्काट और उनके मित्रों द्वारा ईसाई बनाये जा रहे हैं।

वेरिअरएल्विन हिन्दू धर्म के बड़े मित्र थे। उन्होंने इस धर्म की बड़ी प्रशंसा भी की है परन्तु उन्होंने इस धर्म को आदिवासियों के ग्रहण करने के योग्य नहीं समझा। उन्होंने लिखा है कि कुछ कबूई (Kabui) नागाओं ने हिन्दू धर्म को स्वीकार किया। हिन्दुओं ने उनको मेहतर बना दिया। मैंने इस कहानी की छानबीन की। मैं उन कबूई नागाओं से मिला भी। वास्तव में कहानी कुछ और ही निकली।

पहिली बात तो यह है कि पूर्वी भारत में मेहतरों की आवश्यकता ही नहीं तो यह कहना कि कबूई नागाओं को हिन्दुओं ने मेहतर बना लिया, यह स्पष्ट मिथ्या है। फिर दूसरे नागाओं में भी ऊँच-नीच का विचार रखा जाता है। कबूई नागा अन्य नागाओं में कुछ उच्च श्रेणी के नहीं समझे जाते। ऐसी स्थिति में जब कुछ फिरंगी अफसर इम्फाल में आये तो उनको मेहतरों बिना बड़ा कष्ट हुआ। उन्होंने 'मजरखूल' (Mazur khul), 'साबितमनाई' (Sabit Manai) और 'कीशामथांग' (Keishamthang) के, जो कि तामेंगलांग के तीन ग्राम इम्फाल के निकट बसे हुए हैं, कबूई नागाओं को बुलाया और उनको मेहतर का कार्य करने के लिए कहा। मकान मुफ्त में रहने के लिए और अच्छा मासिक वेतन देने का वादा किया। उधर मणिपुर राजा से इन नागाओं पर दबाव भी डलवाया। स्थानीय दबाव और पैसे के लालच ने कबूई नागाओं को राजी कर लिया। वह अपने ग्राम छोड़कर इम्फाल में आ बसे। और उन्होंने अँगरेजों के कमोड साफ करना आरम्भ कर दिया। उनसे समस्त लाभ उठानेवाला केवल सफेद मनुष्य ही था। खैर यह कबूई अभी भी इम्फाल के बीच रह रहे हैं। आज उनकी जमीन के दाम अधिक बढ़ गये हैं। अन्य धनाढ्य उनकी जमीन कई गुने दामों में मोल लेना चाहते हैं परन्तु यह कबूई नागा बड़े सत्कार सहित इम्फाल में रह रहे हैं। वह अपनी जमीन बेचना नहीं चाहते।

दूसरी बात थी कि मैंने 'मारकोपोलो' की यात्रा में पढ़ रखा था कि कुबलाईखान की सेना बंगाल आयी और उसने किसी बंगाली जाति पर विजय पायी। आसाम और बंगाल ने तो इस घटना के विषय में कुछ सुना भी न था परन्तु जनरल जानस्टोन ने लिखा है कि १२५० शताब्दी में कुछ चीनी सैनिक मणिपुर आये। मणिपुरियों ने उनको पराजित किया। कुछ चीनी सैनिक संग्राम-क्षेत्र में काम आये और कुछ अपने देश लौट गये। जो शेष बचे वे मणिपुर में सूसारामेंग ग्राम में बस गये और उन्होंने

३--ऐसे जंगलों पर ग्राम का पूरा अधिकार होता है।

मणिपुरियों को रेशम कातना और मिट्टी की ईंटें बनाना सिखाया। मैंने इस बात की मणिपुर में जाँच-पड़ताल की। स्थानीय भद्र लोगों ने मुझे रानी पुल दिखाया जिसको स्थानीय कथनानुसार कहा जाता है कि चीनियों ने बनाया। उन्होंने यह भी बताया कि चीनियों ने महल में दो स्तम्भ भी बनाए थे जिनकी राजा गम्भीर सिंह ने मरम्मत कराई थी परन्तु वे मुझे सूसारामेंग के विषय में कुछ न बता सके। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते मैं मणिपुर इतिहासकार श्री इबबूमोहल के पास पहुँचा। उन्होंने बताया कि जनरल जानस्टोन का मतलब सूसाकामेंग था। सूसारामेंग छपाई की गलती है। अगले दिन मैं सूसाकामेंग गया। यह ग्राम खांगहमपट (Khanhampat) से तीन मील पश्चिम की ओर बसा हुआ है। खांगहमपट इम्फाल-कोहिमा सड़क पर बसा हुआ है और पर्यटक सुगमता से बस द्वारा इस ग्राम में पहुँच सकता है। वहाँसे ३ मील पैदल यात्रा के पश्चात् यात्री सूसाकामेंग पहुँचता है। यह ग्राम बड़े रणमीक स्थान पर बसा हुआ है। यहाँके ग्राम-निवासी कोबरू देवी की पूजा करते हैं। स्थानीय नदी के पार एक छप्पर पड़ा हुआ है। उसे ही देवी का मन्दिर समझिए। न वहाँ कोई मूर्ति है न ही बैठने का स्थान। ग्राम के निकट ही एक पहाड़ी है। कहा जाता है कि द्वितीय विश्वयुद्ध में जापानियों का इस पहाड़ी पर बटालियन हेडक्वार्टर था। परन्तु वर्तमानकाल में यहाँ चीनियों का कोई चिह्न नहीं बचा। खुदाई से जो भी चीनी वस्तुयें मिलीं वे भारतीय अजायबघरों को प्रदर्शन हेतु भेज दी गयीं।

(४)

मैंने मणिपुर के डिप्टी कमिश्नर से भेंट की। उन दिनों मुखरूल और तामेंगलांग अशान्ति क्षेत्र घोषित किये जा चुके थे। पर्यटक बिना सरकारी अनुमतिपत्र के इन क्षेत्रों में प्रवेश नहीं कर सकता था। डिप्टी-कमिश्नर साहब मेरे उद्देश्य को जानकर बड़े प्रसन्न हुए। कहने लगे कि भारतीय पर्यटकों का मणिपुर में अधिक संख्या में आने से देश को अति लाभ होगा। मणिपुरियों और देसियों को एक दूसरे से समागम का अवसर मिलेगा और वे एक दूसरे को जानेंगे। मुझे ज्ञात हुआ कि मणिपुर में एल्विन रायसाहब की कुछ दाल नहीं गली थी। यही कारण था कि यहाँ पर सरकारी अफसर भारतीय पर्यटकों का सत्कार करते थे। खैर डिप्टी कमिश्नर साहब ने मेरी मुखरूल यात्रा का प्रबन्ध कर दिया।

"पिछले सप्ताह ही में मैंने १५,००० रुपया फलाँ-फलाँ ग्राम में कृषि कर्जे में बाँटा। परन्तु अगले दिन विरोधी दल आया और २०,००० रुपया उसी ग्राम से एकत्र कर ले गया। इस प्रकार हम ग्रामवासियों की आर्थिक सहायता करते हैं और वे हमसे रुपया एकत्र कर विरोधियों को थमा देते हैं," एक सरकारी अधिकारी ने कहा। बात बिल्कुल सत्य थी। मैंने देखा कि तांगखूल और कुकी नागा सीधे और नासमझ हैं। यदि उनको नागालेण्ड के विद्रोहियों से सहायता न मिलती तो सम्भवतः मुखरूल में शान्ति ही रहती, परन्तु वर्तमान दशा कुछ अच्छी नहीं। मेरी यात्रा के कुछ ही दिनों पूर्व मुखरूल का पोस्टमास्टर विरोधियों से जा मिला था। उन दिनों कोई नहीं कह सकता था कि कौन शान्तिप्रिय नागरिक है और कौन विद्रोही। सायंकाल होते ही सरकारी अधिकारी मकान के किवाड़ बन्द कर लेते थे और यातायात बिल्कुल बन्द हो जाता था।

"मुझे तो कोई नौकर भी नहीं मिलता", एक अधिकारी ने कहा। तांगखूल नागाओं ने सरकारी अफसरों का बाईकाट कर रखा था।

"तो अपने घर से बुलवा लीजिए", मैंने कहा।

"यही विचार कर रहा हूँ। अभी तो मेरी पत्नी बच्चों को देखती है, खाना भी पकाती है और जब मैं बाहर दौरे में चला जाता हूँ तो बेचारी अकेले ही बच्चों के साथ समय व्यतीत करती है। मैं तो कभी यह विचार कर काँप उठता हूँ कि यदि मुझे दौरे पर कुछ हो गया तो मेरे बीवी-बच्चों का क्या होगा?"

"सरकार अवश्य सहायता देगी।"

"सहायता आने तक कुछ समय लग जायेगा। तुरन्त तब तक तो उनको कष्ट ही होगा।"

"क्यों आपके विभाग में कोई ऐसा चन्दा नहीं जिससे समय पड़ने पर (emergency) तुरन्त सहायता पहुँच जाये।"

"नहीं, हमारे यहाँ ऐसा कोई प्रबन्ध नहीं।"

"हमारी सेना में 'वेनोवलेण्टफण्ड' है। जैसे ही किसी अफसर की मृत्यु हुई तुरन्त ही उस फण्ड में से दुःखी (bereaved) परिवार को कुछ रुपया दिया जाता है। इस फण्ड के हेतु हर एक अफसर को मासिक चन्दा देना पड़ता है।"

"हमारे यहाँ ऐसा चन्दा एकत्र भी कहाँ से हो। हम लोग सीमाशासन विभाग (Frontier Cadre) में केवल ८० व्यक्ति ही तो हैं।"

"समय आने पर कुछ प्रबन्ध अवश्य हो जायेगा," मैंने कहा।

मुझसे नेफा के कुछ अन्य अफसरों ने भी ऐसा ही भय प्रगट किया था। सरकार अपने फ्रन्टियर सरविस वाले अफसरों को कहती तो है कि वह व्यक्तिगत स्त्रियों तथा बालकों को पहाड़ों और जंगलों में अपने साथ ले जायें परन्तु क्या सरकार उनके ठीक से रहने-सहने का प्रबन्ध करती है?

मैंने मुखरूल में दो रात्रियाँ व्यतीत कीं। वास्तव में मुखरूल पहाड़ियाँ समस्त पूर्वी भारत में उत्तम और सुन्दर हैं। मुखरूल के पीछे जपोवा (१०,००० फीट) का पहाड़ मुखरूल के सौन्दर्य को दुगुना कर देता है। यहाँके निवासी (तांगखुल) भी हृष्टपुष्ट और सभ्य हैं। यहाँ पर एक

हाईस्कूल है जिसके विद्यार्थियों ने मणिपुर रियासत में ऊँचे-ऊँचे पद प्राप्त किये। वर्तमान काल में श्री रिशांग केइसिंह और मेजर कठिंग का बाल्यपन इस मुखरूल में ही व्यतीत हुआ है। ब्रिटिश काल में कुछ कुकीनागा मुखरूल इलाके में आकर बस गये थे। मुखरूल सबडिविजन में जमीन अधिकतर आज भी खाली पड़ी हुई है। कुकी अमन-चैन से जीवन व्यतीत करते चले आ रहे थे परन्तु नागा आन्दोलन उपरान्त तांगखुलों ने निश्चय कर लिया कि कुकियों को दक्षिण की ओर धकेल दिया जाये। फलस्वरूप उन्होंने कुकियों के ग्रामों पर छापा मारना आरम्भ कर दिया। सरकार ने दक्षिण में कुकियों की कालोनी बना दी है और उनकी रक्षा हेतु पुलिस गार्ड भी दे दिया है।

दुःख तो इस बात का है कि कुकी भी कुछ सन्तुष्ट नहीं प्रतीत होते। उनके नेता बेकार (unemployed) अधपढ़ ईसाई युवक हैं। इन युवकों के मस्तिष्क में घुसा हुआ है कि वह बर्मा के 'चिन' (Chin) और लुशाई हिल्स के 'मीजो' जातियों से मिलते-जुलते हैं। वह उनसे मिलकर एक स्वतन्त्र कुकी रियासत क्यों न बनायें। कुकी के आन्दोलन का केन्द्र है चूराचाँदपुर। अब लीजिए तामेंगलांग को। यहाँके निवासी जिलियांग अथवा कच्चा नागा कहलाते हैं। इनका देश पहाड़ी है। यहाँकी पहाड़ियाँ घने जंगलों से ढकी हुई रहती हैं और यहाँ वर्षा भी अधिक होती है। कुबूई नागा भी तामेंगलांग क्षेत्र के निवासी हैं।

१९३७ में एक सुन्दर कुबूई युवती, देवी के नाम से अकस्मात् प्रसिद्ध हो गयी। ग्राम-ग्राम में नागा इस सुन्दरी को देखने आये। समस्त नागाहिल्स और पड़ोस में हलचल मच गयी। इस युवती का नाम था (है) रानी गैडिलू (Gaidiliu)। रानी गैडिलू ने ब्रिटिश राज्य के विरुद्ध झण्डा उठाया। ब्रिटिश ने गैडिलू को जेल में बन्द कर दिया। १९४७ में स्वतन्त्रता के पश्चात् स्वतन्त्र भारत सरकार ने रानी को बड़े सत्कार से जेल से उसके ग्राम भेजा। सरकार ने उसके रहने के हेतु एक नवीन भवन बनवाया और खर्चे के लिए कुछ माहवार पैन्शन भी देना आरम्भ कर दिया। आजकल रानी गैडिलू भी नागा-आन्दोलन में सम्मिलित हैं। सम्भव है कि अब भी भूमितल हों। वह तामेंगलांग की प्रसिद्ध नेता हैं। इस प्रकार इम्फाल के चारों ओर उपद्रव ही दिखाई पड़ता है। १ जनवरी १९६४ को मणिपुर हिमांचल के समान एक प्रदेश हो गया। आशा थी कि इस नवीन परिवर्तन से स्थानीय आदिवासी लाभ उठायेंगे। इसकी सम्भावना भी थी परन्तु अब मिस्टर माइकिल स्काट, चेअरमेन आफ दी वर्ल्ड पीस ब्रिगेड (Chairman of the World Peace Brigade) अथवा शान्ति सेना के सेनापति के वहाँ कदम पहुँच गये हैं। देश-विद्रोह की बुझी हुई अग्नि फिर प्रज्वलित हो गयी। आश्चर्य तो इस बात का है कि स्काट को शान्ति का कार्य करने के हेतु भारत क्षेत्र ही रह गया था जहाँ कि विश्वशान्ति स्थापित रखने के लिए पंचशील के स्थान पर दसशील नियम बनाये गये हैं। मुख्य बात यह है कि भारत के पास है क्या जिससे वह विश्व की शान्ति भंग करेगा? कहीं ४ फीट की लाठियों से अशान्ति हुई भी है?

(५)

"प्राचीन काल से मणिपुर में कार्य दो भागों में बँटा हुआ है--कठिन कार्य और सरल। पहिला जैसे युद्ध, हाथी पकड़ना, जंगल में लकड़ियाँ काटना, खेती के लिए जमीन तैयार करना, बैलगाड़ी चलाना, सड़कें अथवा नहरें खोदना, छप्पर डालना, हल चलाना पुरुष किया करते थे। सरल कार्य जैसे घरेलू काम, सौदा लाना, सौदा बेचना, पानी लाना, लकड़ियों के छोटे-छोटे टुकड़े करना इत्यादि स्त्रियाँ ही करती थीं। इनमें सौदा बेचना और मोल लेना केवल स्त्रियों ही का मुख्य कर्तव्य था," श्री इबबूमोहल ने मुझे बताया।

"मेरा अनुभव है कि भारत के समस्त पहाड़ी भागों में लगभग श्रम विभाजन (Division of labour) इसी प्रकार है", मैंने कहा।

"नहीं, यहाँकी स्त्रियाँ सदैव और पहाड़ी स्त्रियों से एक प्रकार विचित्र ही रही हैं। उन्होंने सदैव ही पुरुषों का हर कार्य में हाथ बटाया है।"

"मिसाल के तौर पर?"

"आपने तो सत्याग्रह का नाम १९२१ में सुना। हमारे यहाँ यह कार्य स्त्रियों के सुपुर्द था। यदि जनता को राज्य से कुछ गिला हुआ तो स्त्रियों ने सत्याग्रह या कहें कि अहिंसक आन्दोलन किया और पुरुषों ने यदि आवश्यकता हुई तो हिंसा का प्रयोग किया। मणिपुरी पुरुष सत्याग्रह द्वारा अपनी माँगें पूरी करने में अपमान समझा करते थे।"

"मैंने तो यही सुन रखा था कि महात्मा गांधी ने सर्वसाधारण के स्तर पर सत्याग्रह का पहिली बार संसार में प्रयोग किया।"

"हमारे यहाँ अहिंसक सत्याग्रह को 'नूपीलाल' कहते हैं। सत्याग्रह में स्त्रियों को सदैव मनुष्यों की सहायता हुआ करती थी। राजा को भली भाँति ज्ञात होता था कि यदि स्त्रियों की माँग पूरी न की तो मनुष्य अन्याय के निराकरण के लिए तलवार का प्रयोग अवश्य करेंगे। फलस्वरूप राज्य अपनी त्रुटियों को तुरन्त दूर कर लेता था। महाराज चन्द्रकीर्ति सिंह के राज्य में आदेश हुआ कि मनुष्य हाथियों के पकड़ने हेतु जंगलों में जायेंगे। कुछ स्त्रियाँ महल गईं और उन्होंने निवेदन किया कि हाथियों को फसल काटने के उपरान्त पकड़ा जाये। राजा ने एक न सुनी और अपना आदेश वापस न लिया। प्रजा बिगड़ गयी और मनुष्यों ने हिंसा के प्रयोग की ठान ली। राजा ने हाथियों को फसल कटने के पश्चात् पकड़ने का आदेश दे दिया।"

"आप ऐसी मिसाल बताइए जिससे यह प्रमाण मिले कि स्त्रियों के अहिंसात्मक सत्याग्रह द्वारा ही सफलता भी होती थी।"

"१९०४ में एक असिस्टेन्ट सुपरिण्टेण्डेण्ट का भवन जला दिया गया। मणिपुर सरकार ने आदेश दिया कि समस्त स्थानीय रियाया मकान बनायेगी। रियाया बिगड़ गयी। हजारों की संख्या में मणिपुरी स्त्रियाँ रेजीडेन्सी में पोलिटिकल एजेण्ट के पास गयीं। राज्य ने आन्दोलन को दमन करने के लिए पुलिस और सेना भी बुलवा ली। कुछ स्त्रियाँ आन्दोलन में घायल भी हुईं परन्तु उन्होंने सत्याग्रह जारी रखा। मणिपुर १८९१ के युद्ध के पश्चात् मनुष्यों से हथियार छीन लिये गये थे। इस कारण वे विवश थे। वह क्रान्ति नहीं कर सकते थे। ऐसी परिस्थिति में स्त्रियों ही ने सत्याग्रह द्वारा राज्य को मजबूर कर दिया कि उसने अपना आदेश वापस ले लिया। यह मणिपुर का प्रथम 'नूपीलाल' कहलाता है। इसके पश्चात् १९१२ अथवा १९३२ में 'मास' सत्याग्रह हुआ। १९३८ में स्त्रियों ने एक बड़ा सत्याग्रह किया। उस साल दरबार ने चावल बाहर भेजने का निश्चय किया। हजारों की संख्या में स्त्रियों ने सप्ताहों सत्याग्रह किया। अन्त में दरबार को आदेश वापस लेना पड़ा। यह द्वितीय 'नूपीलाल' था।"

महात्मा गांधी ने कहा है कि सत्याग्रह वीरों का शस्त्र है परन्तु मणिपुरियों के विश्वासानुसार यह निर्बल का आधार है अथवा यह शस्त्र बिना हिंसा की सहायता के अधिक सफलता प्राप्त करने में असमर्थ है। पाठक स्वयं ही विचार कर सकते हैं कि अहिंसक सत्याग्रह किसका शस्त्र है--वीरों का या निर्बल व्यक्तियों का?

पर्यटकों को मणिपुर स्त्रियाँ अब भी घर और बाहर का काम करती हुई दिखाई देती हैं। खास तौर पर तीसरे पहर विदेशी मणिपुर स्त्रियों को बड़े-बड़े टोकरों में बाजार की सामग्री सर पर ले जाते हुए देखते हैं। स्त्रियाँ बाजार जाती हैं और इस सामग्री से दूकान लगाती हैं। जो कुछ सायंकाल तक शेष रह जाता है उसको फिर घर ले आती हैं। तत्पश्चात् भोजन पकाती हैं अथवा घर का पूरा कार्य करती हैं। दूसरे दिन फिर अपने परिवार का खाना पकाया और मनुष्य अथवा बच्चों को खिलाने के पश्चात् फिर वही सामग्री बाजार ले जाना और वही फिर चक्कर। अब प्रश्न उठता है कि पुरुष दिन भर क्या करता है? वर्तमान काल में जंगल कट गये। उनके कटने के साथ लकड़ी काटने का काम भी समाप्त हो गया। और अब न तो युद्ध के लिए शत्रु है न ही पकड़ने के लिए हाथी। फिर 'ला' और 'आर्डर' सरकार के हाथ में आ गया है। तो अब पुरुष जीवन कैसे व्यतीत करता है?

(६)

"आप क्या काम करते हैं?" मैंने एक सूटेड-बूटेड मणिपुरी युवक से चूराचाँदपुर जाते हुए 'बस' में पूछा। युवक केप्सटन सिगरेट पी रहा था। उस समय दिन के ११ बजे होंगे यानी समस्त सरकारी दफ्तर, विश्वविद्यालय अथवा वाणिज्यालय अपने-अपने कार्य में लगे होंगे।

"कुछ नहीं", रूखेपन से युवक ने उत्तर दिया।

"तो क्या आप जमींदार हैं?" मैंने प्रश्न किया।

"नहीं जमींदार तो नहीं हूँ", युवक ने उत्तर दिया।

"इस आयु में खाली कौन बैठता है?" मैंने कहा।

"कुछ व्यक्तिगत कार्य करता हूँ।"

"आखिर वह कौन-सा कार्य है?"

"आप पूँछ कर क्या करेंगे?"

"अरे साहब परदेसी हूँ। सम्भव है कि फिर आपसे भेंट ही न हो। आप इतने समय से बात कर रहे हैं तो मैंने यह प्रश्न कर दिया। वरना मेरा कोई मतलब तो है नहीं", मैंने कुछ तीखेपन से कहा।

"श्रीमान् क्रोधित न हों। आपको बताये देता हूँ। मैं बिजिनस करता हूँ", युवक ने कहा।

"जब इतना बताया तो यह भी बता दीजिए कि किस प्रकार का व्यापार करते हैं?" मैंने फिर प्रश्न किया।

"यही सामान लाना और बेचना।"

"आपकी दुकान कहाँ है?"

"मेरी कोई दुकान नहीं है। मैं बर्मा से सामान लाता हूँ और उसे इम्फाल में बेच देता हूँ।"

"तो क्या आप बर्मा जा रहे हैं?"

"मैं साल में केवल एक बार बर्मा जाता हूँ। वह भी वर्षा ऋतु में। इस साल मैं बर्मा हो आया।"

"परन्तु वर्षाऋतु में तो बर्मा का यातायात लगभग बन्द रहता है।"

"तभी तो हमारा बिजिनस चलता है", मुस्करा कर युवक ने कहा।

"मैं आपका मतलब नहीं समझा।"

"साहब मैं बर्मा से सामान चोरी से लाता हूँ और लाभ से उसे यहाँ बेचता हूँ।"

"आपका मतलब है कि आप बर्मा से सामान स्मगल करते हैं।"

"ऐसा ही समझिए।"

"आप क्या-क्या सामान स्मगल करते हैं?"

"साधारण रोजाना प्रयोग का सामान अथवा कभी-कभी स्वर्ण भी।"

थोड़ी देर में चूराचाँदपुर आ गया और हम दोनों ने अपना-अपना रास्ता पकड़ा। समय मिलने पर मैं स्थानीय एक्साइज दफ्तर गया। इन्सपेक्टर एक आसामी युवक था। उसने सत्कार से मेरी आवभगत की। मैंने उसको 'बस' की कहानी सुनाई।

"उस युवक ने आपको ठीक ही कहा। यहाँ अधिकतर मनचले यही बिजिनस करते हैं", इन्सपेक्टर ने बताया।

"तो आपको इस बिजिनस का हाल ज्ञात है?"

"अजी हम लोगों को ही नहीं, बल्कि स्थानीय पुलिस को भी ज्ञात है।"

"आप इस स्मगलिंग को बन्द क्यों नहीं करते?"

"हम कर ही क्या सकते हैं? वास्तव में कोई भी क्या कर सकता है? एक तो मणिपुर की दक्षिणी सीमा

घने जंगलों और जंगलों से ढकी हुई पहाड़ियों से भरी हुई है। दूसरे सीमा का इलाका बिल्कुल खुला है। सीमा के हर स्थान से बर्मा का यातायात हो सकता है। तीसरी मोरे और चूराचाँदपुर के बीच में कोई पुलिस चौकी स्मगलरों का निरीक्षण करने के हेतु नहीं है। मोरे यहाँ से ७० मील के लगभग होगा। फिर चूराचाँदपुर को ही लीजिए। मेरा छोटा सा स्टाफ और अकेला मैं। मुख्य बात यह है कि मेरा दफ्तर सीमा से ५० मील दूर है। भला हम किसीको पकड़ें भी तो कैसे ? अब सुनिए आदिवासियों के विषय में। वे चाहे भारतीय हों चाहे बर्मा के निवासी। उनको १० मील अन्दर तक दूसरे देश में रहने की अथवा बिना पासपोर्ट के चलने-फिरने की स्वतन्त्रता है। फलस्वरूप स्मगलरों के स्थानीय आदिवासियों में मिलजुल कर पुलिस से बचने का काफी चांस है।"

"तो आपका कार्यालय किस काम के लिए बैठा है ?"

"कुछ आप जैसे मनुष्य पासपोर्ट बनवाकर बर्मा में प्रवेश होते हैं। उनका सामान इत्यादि के निरीक्षण हेतु," हँस कर इन्सपेक्टर ने कहा।

"अच्छा यह बताइए कि आजकल स्मगलिंग उन्नति पर है या अवनति पर ?"

"स्मगलिंग का व्योहार विनिमय दर (rate of exchange) पर होता है। आजकल भारतीय १०० रुपये के १२५ बर्मा रुपये मिलते हैं। फलस्वरूप स्मगलरों को अतिलाभ नहीं होता। इस कारण आजकल स्मगलिंग कुछ कम ही है। परन्तु बड़े-बड़े व्यापारी भारी जोखिम उठाते हैं और भारी लाभ भी कमाते हैं।"

इन्सपेक्टर महाशय ने ठीक ही कहा। क्योंकि १९५५ में मैं बर्मा गया था तो १०० भारतीय रुपयों के १६८ से २०० तक बर्मा रुपये मिल जाते थे। उस समय पलेल-टामू-क्लेवा और चूराचाँदपुर—टिडिम दोनों ही सड़कें खूब चालू थीं। खूब ही तो स्मगलिंग होता था।"

"उस युवक ने सोने के स्मगलिंग के विषय में भी कहा था।"

"हाँ सोने के स्मगलिंग में कुछ कमी नहीं सुनाई देती", इन्सपेक्टर ने कहा। संभव है कि 'गोल्ड कण्ट्रोल' के दिनों में कुछ कम हो गया हो वरना इसकी कमी होने की कुछ कम ही आशा है। फिर भी यह समस्या केवल मणिपुर ही की नहीं है, यह समस्या समस्त भारत की है। क्या गोल्ड स्मगलिंग देहली अथवा बम्बई में नहीं पकड़ा जाता ?

इन्सपेक्टर साहब से इधर-उधर की बातें होती रहीं। चायपान कर मैंने बिदा ली। उस दिन के पश्चात् कई युवक मिले जो कि ऐसा ही बिजिनस किया करते थे। परन्तु इन युवकों को भविष्य में यह बिजिनस बन्द होता दिखायी पड़ रहा है। 'जनरल नी विन' इस विषय में काफी दिलचस्पी ले रहे हैं। वह स्मगलिंग बन्द करना चाहते हैं।

एक दिन सूसाकामेंग से लौटते समय मैं एक ग्राम की दुकान पर बैठ गया। वहाँ एक हृष्ट-पुष्ट अधेड़ आयु का मनुष्य बैठा हुआ था। पूछते ही मुझे ज्ञात हो गया कि वह भारतीय सेना में 'फील्ड इंजिनियर्स कोर' में सैनिक रह चुका था। मैंने भी अपने बारे में बता दिया। वह परिचय से अधिक प्रसन्न हुआ। दुकान उसकी भाभी की थी। उसने भाभी से साफ बर्तनों में मुझे चाय लाने को कह दिया। दुकानवाली घर में गयी और एक टी सैट में चाय ले आयी। टी सैट था साधारण पर साफ-सुथरा।

"फौज से कब अवकाश लिया ?"

"कोई ७ साल हो गये।"

"कुछ पैन्शन मिलती है ?"

"सरविस केवल ८ साल ही तो की। १९४४ में भरती हुआ था। मेरे भरती होते ही जापानियों पर मार पड़नी आरम्भ हो गयी। खैर फिर भी मैंने रुड़की, मदरास और मलाया देखा। ३ साल के लगभग तो कलकत्ते में रहा।"

"आजकल क्या करते हो ?"

"यही खेती-बाड़ी का काम।"

"यहाँ खेती-बाड़ी तो स्त्रियाँ करती हैं।"

"खेत की जुताई और फसल की कटाई तो हम पुरुष ही करते हैं।"

"जब फसल कट जाती है तब तुम कैसे समय व्यतीत करते हो ?"

"फिर भी कुछ न कुछ काम लगा ही रहता है।"

"परन्तु वर्षा ऋतु में तो यहाँ इतनी वर्षा होती है कि इन्सान बाहर भी नहीं निकल सकता। क्या रम पीकर समय व्यतीत करते हो ?"

"मैं वैष्णव हूँ। मदिरापान नहीं करता।"

"तो फिर क्या करते हो ?"

"आप फौजी अफसर रहे हैं तो मैं आपसे क्या छुपाऊँ, आपको बताये देता हूँ। मैं बिजिनस करता हूँ।"

"तुम जिस बिजिनस के विषय में कहना चाहते हो मुझे उसके बारे में मालूम है।"

"नहीं मैं साधारण बिजिनस के बारे में नहीं कहता। मैं हथियार स्मगल करता हूँ।"

"कहाँ से ?"

"बर्मा से।"

"वहाँ कहाँ से हथियार मिल जाते हैं ?"

"वहाँ हथियारों की कमी नहीं। बर्मा विद्रोही दल के पास काफी फालतू हथियार हैं।"

"उन हथियारों को कौन मोल लेता है ?"

"मोल लेनेवालों की भी कमी नहीं। हथियार हाथों-हाथ बिक जाते हैं। दाम भी अच्छे मिल जाते हैं। यदि साल में २ राईफिलें बेंच दीं तो समस्त वर्ष का खर्चा निकल आता है।"

"क्या आप लोगों को पुलिस नहीं पकड़ती ?"

"मणिपुर के घने जंगल और अन्धेरी घाटियाँ हमारी

सहायता करती हैं। फिर पुलिस वाले भी तो मणिपुरी ही हैं।"

"मणिपुर पुलिस में बाहर के जवान भी तो हैं। क्या तुम पर उनका शक भी नहीं हुआ ?"

"दो बार पुलिस ने मेरे घर की तलाशी ली परन्तु उन्हें कोई शक की वस्तु मिली ही नहीं। वे क्या करते ?"

मणिपुरी लोग अपना समय किस प्रकार व्यतीत करते हैं, इसका उत्तर ऊपर लिखी हुई घटनाओं से स्पष्ट है। साधारण मनुष्य दैनिक-उपभोग की सामग्री अथवा सोना बर्मा से लाते हैं और इम्फाल में बेचते हैं। उपभोग सामग्री का स्मगलिंग उसी समय समाप्त होगा जिस समय भारतीय और बर्मी रुपये की विनिमय दर (exchange rate) में अधिक अन्तर नहीं रहेगा। रहा सोने के बारे में वह समस्त भारत की समस्या है। सम्भव है कि मणिपुर में उपभोग सामग्री और सोने का स्मगलिंग बन्द हो जाए परन्तु हथियारों का स्मगलिंग बन्द करना कठिन है। एक तो हथियारों के स्मगलर्स अधिकतर सैनिक अथवा पुलिस के अवकाशप्राप्त मनचले जवान हैं जो निडर हैं। दूसरे पूर्वी सीमा की जमीन की बनावट ऐसी है जो स्मगलिंग की सहायक साबित होती है। इसी कारण हथियारों का स्मगलिंग तभी बन्द हो सकता है जब मणिपुर में हथियारों की माँग ही न रहे। नागा-आन्दोलन ने हथियारों की आवश्यकता को ऊँचे शिखर पर स्थापित कर रखा है। उपद्रव के कारण यह बजाय घटने के बढ़ता ही जा रहा है। अब तो स्काट जैसे पश्चिमी मिशनरी शान्ति अग्रसर करने में लगे हुए हैं तो भला अब हम आशा कर सकते हैं कि मणिपुर में हथियार का स्मगलिंग निकट में कम होगा ?

अवलम्बन

श्री सुंदरलाल चतुर्वेदी 'अरुणेश'

बिना प्राण पाए तुम्हारा सहारा,
भला पाँव पथ पर कहाँ चल सकेंगे ?
कहे चाँद जो मैं बड़ा स्वावलंबी,
न रवि से कभी तेज का दान पाता।
बिना भार आभार का कुछ उठाए,
धरा पर सदा रम्य आभा बिछाता।।
निराधार ये अंशुधर के बहाने,
मनुज के हृदय को कहाँ छल सकेंगे ?
अगर छाँह की चाह कुछ भी न होती।
कभी भी लिपटता न उसमें अँधेरा।
अमित प्यास मन में न होती, लगाता
लगातार अलि भी कली का न फेरा।।
बिना प्यार का नेह पाए बताओ,
मिलन के दिए किस तरह जल सकेंगे ?
जहाँ दो बिरोधी कभी तत्व आए,
वहाँ बीच में दौड़ अवलम्ब आया।
तुम्हारी कभी जब मधुर याद आई,
महा मोह-मय जग तभी भूल पाया।।
न होगा अगर याद का हाथ तो फिर,
नहीं भूल के फूल-फल खिल सकेंगे।
जहाँ रंच सहयोग आशा न देगी,
वहाँ फिर व्यथित जी कहाँ जी सकेगा ?
सफलता न जग में जिसे कुछ मिलेगी,
न आशा-सुरा वह कभी पी सकेगा।।
सफलता न उसको मिलेगी कि जिसके,
सभी सुख लगन में नहीं गल सकेंगे।



आंगन के बीच—

बेसन की मिठाइयाँ

१—बेसन को कड़ा कड़ा दूध डालकर माँड़ लीजिये और मुट्ठी से दबाकर मुट्ठी की ही शकल की पिंडियाँ बनाकर घी में धीमी आँच में सेंक लीजिये। ढंडी हो जाने पर उन पिंडियों को कूट लीजिये और मोटी चलनी से चाल कर एक सा चूर्ण कर लीजिये। चीनी की तीन तार की चाशनी बनाकर इस चूर्ण को उसमें खूब मिला दीजिये और घी लगाकर थाली में जमने दीजिये। बाद में बरफी काट लीजिये। जमाते समय थोड़ी पिसी इलायची और यदि चाहें तो कटा पिश्ता आदि डाल दीजिये।

२—**चने की दाल की बरफी**—तीन पाव भीगी हुई चने की दाल १ सेर दूध में तब तक उबालिये जब तक सब दूध सूख जाय। अब इस दाल को महीन पीस डालिये। आधा पाव घी डालकर हल्की आँच पर खुशबू आने तक भून लीजिये। अब ३ पाव चीनी की तीन तार की चाशनी बनाकर उसमें इसको खूब मिलाकर बरफी जमने दीजिये।

३—**दूध दही की बूँदी**—बेसन की बूँदी झाड़ कर इतने दूध में भिगो दीजिये कि दूध अलग बना रहे। इसमें चीनी भी मिला दीजिये। खाते समय इसमें थोड़ा दही और पिसी हुई इलायची मिलाइये। ध्यान रहे बूँदी बहुत देर न भिगोई जाये।

४—**बेसन सेव के लड्डू**—बेसन के महीन सेव बना कर उन्हें तोड़ लीजिये। एक सेर सेव के लिए १ पाव खोवा भून कर दोनों को मिला दीजिये। १ सेर चीनी की गोली की चाशनी बना कर उसमें खोवा सेव मिलाकर लड्डू बना लीजिये। पिसी इलायची और मेवा आदि डालना चाहें तो डालिये।

बेसन के नमकीन व्यंजन

१—एक पाव बेसन में अंदाज से नमक, हींग, जीरा, मिर्चा और हल्दी डालकर कड़ा-कड़ा माँड़ लीजिये। मँड़े

हुये बेसन की उँगली जैसी गोल लम्बी लोई बना लीजिये। अब कढ़ाई में थोड़ा पानी डाल दीजिये और बाँस की कुछ तीलियाँ लेकर कढ़ाई में इस प्रकार रखिये कि पानी से कुछ ऊपर रहें। अब इन लोइयों को उन तीलियों पर सावधानी से बिछा दीजिये। कढ़ाई को चूल्हे पर चढ़ा कर ढक्कन ढाँक दीजिये। पानी के खौलने और भाप से यह लोइयाँ कड़ी हो जायेंगी। जब लोइयाँ खूब कड़ी हो जायँ तो उन्हें चाकू से ¼ इंच मोटी काटकर तेल में तलकर खट्टी चटनी से खायँ। इन टुकड़ों की लहसुन, प्याज आदि डाल कर रसेदार सब्जी भी बनती है।

२—**चने की दाल की टिक्की**—भीगी हुई चने की दाल जरा से घी में हींग, जीरा, मिर्चा का तड़का देकर छौंक दीजिये। नमक एवं अदरक और गरम मसाला भी इच्छानुसार छोड़ दीजिये। पानी इतना डालिये कि दाल गल भर जाय। दाल पीसकर उसमें हरी धनियाँ, हरा मिर्चा और अदरक भरकर छोटी टिक्की बना लीजिये और तवे पर घी डाल-डालकर पराठे की भाँति सेंककर लाल कर लीजिये। खट्टी चटनी से खाइये।

३—भीगी हुई चने की दाल कड़ी पीस लीजिये। सूखा धनियाँ, लहसुन, मिर्चा, जरा सा गरम मसाला, नमक, मिर्चा और अदरक भी पीसकर मिला दीजिये। अब कढ़ाई में जरा से तेल चुपड़कर दाल की पकौड़ी सारी कढ़ाई में टपका दीजिये। दो-तीन परत भी पकौड़ी की हो जायँ तो कोई हानि नहीं। कढ़ाई को किसी ऊँचे बरतन से ढँक कर चूल्हे पर चढ़ा दीजिये। थोड़ी देर में सावधानी से कल्छी से इन पकौड़ियों को एक बार उलट दीजिये। ध्यान रहे कि आँच हल्की रहे जिससे पेंदे की पकौड़ी जल न जाय। अपनी ही भाप से पकौड़ी कुछ कड़ी हो जायेंगी। अब थोड़ा सा पानी इनमें डालकर फिर अच्छी आँच पर थोड़ी देर पकाइये। सारी क्रिया एक प्रकार से भाप से ही पकने की है। जब भली प्रकार कड़ी हो जायँ तो थोड़ा सा तेल कढ़ाई में डालकर चला-फिरा कर इन्हें भून लीजिये। खट्टी चटनी से खाइये।

४—मुलायम ग्वार की फलियों को काटकर प्याज, हरा मिर्चा और हरी धनियाँ के साथ पकौड़ी बनाइये। मजे की बनेगी।

मुलायम गुलाब के पत्ते, नैस्टरिशम, फूल के गोल पत्ते, अंगूर के मुलायम पत्तों को गाढ़े फेंटे हुये बेसन में नमक, जीरा, धनियाँ, मिर्चा और जरा-सी कुटी खटाई डाल कर साबुत तलें।

अमलताश के फूल, अगस्त के फूल, कद्दू के फूलों को ढेर सा काटकर और साफ कर के बेसन में मिलाकर तीन प्रकार की पकौड़ी बनायें बड़ी स्वादिष्ट बनेंगी।

५—बेसन को पतला घोल लें। हींग, पिसा जीरा, हरी कटी धनियाँ, मिर्चा और नमक पीसा हुआ मिला दें। तवे पर थोड़ा सा घी लगा कर कटोरी से बेसन के मिश्रण को तवे पर डाल कर तवे को घुमा कर पूरे पर फैला दें। कुछ देर में उसे उलट दें। इस प्रकार चीला बनेंगे और खट्टी चटनी से खाने में अच्छे लगेंगे।

६—भीगी हुई चने की दाल को हींग, जीरा और मिर्चे का छौंक देकर ढाँक कर गला लें। अदरक, हरी धनियाँ और हरा मिर्चा डालकर इसे पीस कर पिट्ठी बना लें। लोई में भर कर इसके पराठे अथवा कचौड़ी बना सकती हैं।

बेसन की कढ़ी—आवश्यकतानुसार बेसन लेकर तीन हिस्सों में करके दो हिस्से बेसन खूब फेंट डालिये। पकौड़ी बनाने योग्य गाढ़ा रहे। इसमें हींग, कुटा धनियाँ, जरा सी हल्दी और मिर्चा, नमक मिलाकर छोटी-छोटी पकौड़ियाँ बना कर अलग रख लें। अब बचे बेसन को बेसन से दुगना अच्छा दही लेकर खूब फेंटकर मट्ठे जैसा पतला कर लें। उसी पतले दही में बाकी बेसन को फेंटकर मिला दें। कढ़ाई में तेल या घी जो पकौड़ी सेंककर बचा था, उसमें मिर्चा, धनियाँ, प्याज, लहसुन, हल्दी आदि पिसे मसाले का छौंक देकर घुला हुआ बेसन छौंक दें और नमक डालकर उसे कुछ देर बराबर चलाती रहें, अन्यथा वह बेसन दही फट सा जायेगा। जब खदकने लगे पकौड़ियाँ छोड़कर आधा-पौन घंटा पकने दें। हरी धनियाँ पीसकर डाल दें और गरम मसाला भी। पकौड़ियों के स्थान पर इसमें आप बेसन के बने सेव, अथवा बेसन की बूंदी भी डाल सकती हैं। कुछ लोग पकौड़ियों के स्थान पर उबाले और घी में छौंके आलू अथवा हरा छौंका केला भी डालते हैं।

बेसन का पराठा—आधा बेसन और आधा गेहूँ का आटा मिलाकर और उसमें नमक, जीरा, हरी धनियाँ डालकर पानी से माँड़कर पराठा भी बना सकती हैं। मिस्सी रोटी को आधा चने का आटा और आधा गेहूँ का आटा मिलाकर तथा, यदि खाते हों तो, थोड़ा लहसुन, हरी मिर्चा, नमक पीस कर उसमें मिलाकर अन्य रोटियों की भाँति बना लेते हैं।



लहरों में उलझी नाव

डा० हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'

"कहो लच्छो, आज उदास कैसी बैठी हो ? अभी से रानी के यह हाल ? कवि के विरह में सुध-बुध खो बैठी हो ! मालूम पड़ता है ?" ....

हाय, हाय ? क्या प्रियतम की पाती पढ़-पढ़ कर ? अरे, हमें भी तो दिखाओ। कैसे होते हैं ये निगोड़े प्रेम-पत्र ? ब्लाउज में क्यों छिपा रही हो ? क्या कोई ऐसी-वैसी बात लिखी है जिससे हमारी रानी का मुँह ही बंद हो गया ? ....

मत बतलाओ रानी, अपनी तो तकदीर ही खराब है ! कबसे शादी के सपने देख रही हूँ पर कोई 'माई का लाल' ऐसा पैदा ही नहीं हुआ जो हमको भी पसन्द करे। अपना-अपना भाग्य है ? रानी का भाग्य देखकर हमें भी ईर्ष्या होती है।...........

उस दिन कवि-सम्मेलन में दिनेश के गीत क्या सुने कि रानी मर गयी उन गीतों पर ? कैसी कसक थी उन गीतों में ? कैसी मादकता ? दिल पर छुरी चल गयी रानी के, पर किस्मत की बात––तुमने जिसे चाहा वही मिल गया ! यहाँ कितनों को चाहा पर कोई भी न मिला और अब तो कोई उम्मीद भी नहीं है। चलो, कभी-कभी अपने शायर से ही दो-चार शेर सुन लेंगे तो दिल की लगी बुझ जायेगी।"

"बस-बस, बन्द कर अपना ग्रामोफोन !"

"हाय, हाय ! क्या अदाएँ हैं ? हम तो तुम्हीं पर फिदा हो गयी रानी"

"चल हट"

"अरे, रानी जी, जब शादी हो जायेगी तब तो हमें कौन पूछेगा ? इसीको तकदीर कहते हैं। उस दिन माँ ने जन्म-पत्री ज्योतिषी को दिखायी तो चश्मा नाक तक सरकाते हुए कहने लगे कि मधु के ग्रह बड़े क्रूर हैं। सातवें स्थान में राहु-केतु दोनों अशुभ ग्रह बैठे हैं। शादी में बड़ा विलम्ब होगा, ग्रह-शान्ति के लिए पूजा-पाठ करो। और अब तो तीस की हो गयी और न जाने कितनी देर होगी ?

"बस, मधु रहने दे ये सब––जब देखो तब शादी की बात ?"

"अरे, रहने भी दे, अपना ठीक हो गया तो और जाएँ भाड़ में।"

"तेरी भी हो जाएगी ? क्यों बेकार परेशान होती है ?"

"अपनी ? अपनी तो बस अब वहीं होगी। यमराज के राजकुमार से इश्क लड़ाऊँगी।"

"चल, हट, क्यों बहकी-बहकी बातें कर रही हो। अपनी तो अभी बात ही चली और अभी से दुश्मनों ने बदला लेना शुरू कर दिया।"............

पिताजी को किसीने पत्र लिखा कि आप अपनी लड़की की शादी दिनेश से किसी भी कीमत पर न कीजिए। आपको जिन्दगी भर पछताना पड़ेगा। लड़की जीवन भर रोती रहेगी। मैं दिनेश का मित्र हूँ और आप लोगों को भी जानता हूँ। दिनेश को भी। इसलिए आप सोच-विचारकर काम लीजिए। ऐसी बातों में उतावली ठीक नहीं। सुना है कि आप पन्द्रह-बीस दिन के अन्दर ही शादी करना चाहते हैं !

"तो क्या हुआ ? होगा कोई दुश्मन ? ऐसे कामों में तो लोग विघ्न डालते ही हैं। जल रहे होंगे कि लक्ष्मी ने कितना सुन्दर वर पाया ? यह सब उन मनचलों की बदमाशी है––जो कालेज आते-जाते हमारा पीछा किया करते थे। कैसे-कैसे फड़कते शेर दनदनाते थे। जी में आता था कि चप्पल से उनकी खोपड़ी के सारे बाल उखाड़ लूँ। लेकिन अपनी मजबूरी थी........ ....अब कोई करे तो वो मजा चखाऊँ कि जिन्दगी भर याद करे ? पर अब कोई देखता तक नहीं है। मैं तो समझती हूँ कि यह सब उन्हींकी कारस्तानी है। इसमें घबराने की कोई बात नहीं।"

"पर पिताजी तो बहुत परेशान हैं। माँ ने उन्हें काफी समझाया। तब कहीं दफ्तर गये। नहीं तो बैठे-बैठे बार-बार उसी चिट्ठी को देख रहे थे।"

"रहने भी दे। ये सब––यह बतला कि हजरत से फिर भेंट भी हुई या खाली-पाती ही चल रही है ?"

"धत्, जब देखो तब मजाक ?"

"अरे-रे हाँ, उस दिन अपने कवि के गीत सुने थे–– रेडियो से––भई, अपन तो कुर्बान हैं तुम्हारे शायर पर। क्या कल्पना पायी है ? गीतों में क्या गजब की गूँज है ?

और पढ़ने में क्या जादू ? न-जाने कितनी मरती होंगी तुम्हारे शायर पर ?"

"तू तो नहीं मर रही है ?"

"अरे, अपनी क्या बताऊँ। जब से देखा है––तब से दिल धुक्-धुक् कर रहा है। आहें निकलती रहती हैं––तूफान मेल के इंजन के भाप की तरह।......."

"चल, तू ही उनसे शादी कर ले ?"

"जा जा, बड़ी आई, अपने दिल से तो पूछ, और दिल तो यहाँ होगा भी कहाँ––कवि के इर्द-गिर्द चक्कर काट रहा होगा। लक्ष्मी, सच कह रही हूँ कि जब शादी करनी ही है तो देर किस बात की ? तुम्हें तो भगवान ने मनचाहा दिया है।"

(२)

"माँ, तुमने यह अच्छा नहीं किया है। मुझे शादी नहीं करनी है––बार-बार तुमसे कहा कि मेरे सामने ब्याह की बातें मत किया करो, मुझे शादी से सख्त नफरत है। और तुमने वैसे ही 'हाँ' कर दी। ऐसा गजब क्यों किया ?"

"बेटे, मैंने जो कुछ भी किया है, तेरे भले के लिए किया है। तीस-पैंतीस का हो गया। अब बुढ़ापे में ब्याह करेगा ? तेरे पिताजी होते तो न जाने कब की बहू घर में आ जाती। मैं भी तो घर में अकेली-अकेली परेशान हो जाती हूँ। मेरी भी तो एक ही लालसा है कि कब बहू घर में आये और कब ...."

"बस-बस, रहने दो माँ, तुम्हें कैसे समझाऊँ कि मैं शादी बिलकुल नहीं करना चाहता। खामखाँ दूसरे की जिन्दगी बर्बाद हो जायेगी। तुम्हारी बहू जिन्दगी भर तुम्हींको कोसती रहेगी।"

"अरे, जा-जा। बड़ा आया ! लड़की ने स्वयं तुझे पसन्द किया है। वैसे कई जगहों से रिश्ते आ रहे हैं पर उन लोगों की बात ही और है। लड़की भी तो साक्षात् लक्ष्मी है। घर में आयेगी तो घर की काया ही पलट जायेगी।"

"माँ, मैंने आज तक तुम्हारी एक बात भी नहीं टाली––बस, कुछ ऐसी ही मजबूरी है, नहीं तो मैं......."

"कौन सी मजबूरी है ? अरे, कहीं काम-धंधा नहीं लगा तो क्या है। तेरे गीत जो तेरे साथ हैं। अगर नौकरी नहीं करना चाहता तो ठीक है। भगवान् देनेवाला है। तेरे पिताजी ने कैसी-कैसी कठिनाइयाँ झेलीं––मैं ही जानती हूँ।"

"तब की बात ही और थी माँ, अब तो जमाना ही बदल गया है।"

(३)

दिनेश के सभी हथियार बेकार गये। माँ के सामने उसकी एक भी न चली। अपनी मजबूरी को उसने कई प्रकार से व्यक्त किया, परन्तु बेचारी सीधी-सादी माँ कुछ न समझ पायी और तब मजबूरन एक दिन दिनेश की शादी हो गयी। पर दिनेश के सिर पर तब से मानों एक भारी पत्थर पड़ गया हो।

वह गम्भीर रहने लगा। खोया-खोया उदास।

माँ ने कई प्रकार से समझाया––"बहू पसन्द नहीं है क्या ? उसमें कौन-सी कमी है। सभी तो बहू की जी-खोलकर बड़ाई करते हैं। और वैसे भी ऐसी पढ़ी-लिखी समझदार बहू मैंने किसीकी नहीं देखी। बहू क्या है साक्षात् लक्ष्मी। पर तुझे न जाने क्या हो गया। बहू से भी पूछा पर वह बेचारी कुछ न बोली। तू भी तो शादी से बिलकुल ही बदल गया है। न बहू से बात, न किसीसे मिलना-जुलना। आखिर क्या बात है बेटा––सच-सच कह ? कौन-सा खोट है बहू में ?"

"माँ, तुम्हारी बहू में तो कोई खोट नहीं पर तुम्हारे लड़के......."

"फिर, वही रोना, जब देखो तब अपनी ही बात ? तुझमें कौन-सी कमी है ? जैसे मैं तुझे जानती ही नहीं ? ऐसा लड़का किसी भाग्यशाली माँ का ही होता है। आज तक कभी तेरी कोई शिकायत नहीं सुनी। औरों के बारे में कैसी-कैसी बातें उड़ीं पर तेरे लिए मजाल किसीकी जो किसी ने जरा चूँ भी किया हो––तू तो खामखाँ ऐसा बन गया है। अगर मैं ऐसा जानती कि शादी से तुझे ऐसी चिढ़ है तो फिर इतना जोर ही क्यों देती। जब मर्जी, तब शादी करता पर मैंने भी तेरे भले के लिए ही किया है। माँ-बाप भी कभी अपनी औलाद के बारे में बुरा सोच सकते हैं ?"

"अरे माँ, यह सब तो मैं जानता हूँ पर एक बात जो मैंने पहले ही तुझसे कही थी कि मेरी शादी न करना..... पर तुम मानी ही नहीं और अब उसका फल भुगतना पड़ेगा तुम्हारी बहू को।"

"बेटा, बहू से थोड़ा बोल लिया कर ? बेचारी अभी-अभी अपनों से बिछुड़कर यहाँ आई और तू उससे बात

भी नहीं करता ! उस बेचारी पर क्या गुजरती होगी ? बस, उसका ख्याल रखा कर---मुझे तुझसे और कुछ नहीं कहना है ।"

(४)

"प्यारी मधु,

आज सालों के बाद क्या, जैसे एक युग-सा बीत गया, तुम्हें पत्र लिख रही हूँ। इस बीच तुम्हारे अनेक पत्र आये। शादी के निमन्त्रण से लेकर मुन्ना के मुंडन तक। पर मैं कुछ भी न लिख सकी और न स्वयं ही आ सकी। तुम नाराज न होना। मैं तुम्हें कभी भी नहीं भूल सकती।

चिट्ठियाँ क्यों नहीं लिखीं ? कुछ अपनी मजबूरी थी, किन्तु अब मजबूरी से कहाँ तक दबती रहूँ। तेरे बारे में सब सुनती रहती हूँ। शेखर बाबू से तेरी शादी हुई। मैं कितनी खुश हुई, कह नहीं सकती। तेरे दो नन्हें-मुन्ने भी हो गये। मैं उनके नाम भी न भेज सकी, जब कि तूने कई बार मुझे लिखा कि अपने कवि से कुछ अच्छे नाम पूछकर लिख देना, पर मैं मौन ही रही।

मधु, मेरी कुछ ऐसी मजबूरी रही कि मैं पिछले पाँच-छह सालों में बिलकुल किंकर्तव्यविमूढ़-सी ही रही। यहाँ तक कि पिताजी ने कई बार बुलाया पर वहाँ भी न जा सकी। बाद में कुछ ऐसी-वैसी बातें उड़ीं। सास भी कुछ बहक-सी गयी। पर मैं मजबूर थी। किसीसे कुछ कह न सकी। अब तुम्हें दो-चार दिन में पूरा किस्सा मालूम हो ही जाएगा क्योंकि अखबारवाले भला ऐसी खबरों को न छापें तो बिक्री कैसे होगी ?

तुम्हारे कवि व्याह से क्यों चौंकते थे, यह बात शादी के दो महीने बाद मुझे मालूम हुई। पिताजी को उन्होंने ही पत्र लिखे थे तब! पहले वे कतराते रहे। रात-रात बाहर रहे। कभी कवि-सम्मेलनों में, तो कभी अन्य कार्यक्रमों में।

मैं व्यवधान नहीं बनना चाहती थी। डरती थी कि कहीं इनके कोमल हृदय को चोट न लगे। सास ने कई बार समझाया। अनेक योजनाएँ बताईं, पर मैंने कभी कुछ नहीं किया। बाद में वे भी चुप हो गयीं। मुझसे कुछ नाराज भी, पर मैं क्या करती ?

दो महीने बाद जब एक दिन वे रात को घर पर रहे तो मैं उनके चरणों में पड़कर घंटों रोती रही। तब उन्होंने अपना भेद खोला।

मैं उन्हें हृदय से प्यार करती रही पर वे कुछ नहीं समझे। मुझे भी नहीं। और तब शादी के दो महीने बाद उन्होंने एक-एक बात बतला दी। मैंने उन्हें ढाढ़स बँधाया, पर वे तो बिलकुल ही बदल-से गये और अब डाक्टर ने यह कह दिया कि एक महीने के अन्दर ही वे एक सुन्दर स्त्री बन जायेंगे। उनमें पिछले छह साल से कुछ आंगिक परिवर्तन हो रहा था और अब तो वे बिलकुल ही अपनी जात के हो गये। तू इन बातों को सुनकर हैरान होगी।

इसी ऊहापोह में मैं अब तक किसी से न मिलने गयी और न किसीको पत्र लिखा। अपनी मजबूरी व्यक्त नहीं करना चाहती थी पर दुर्भाग्य को कौन रोक सका है।

अब तो कुछ ही दिनों में अखबारों में मोटे-मोटे अक्षरों में यह समाचार छपेगा। रेडियो वाले कवि की जगह कवयित्री के गीत प्रसारित करेंगे और मैं अभागन . . . . खैर, मधु ! मैं क्या, कोई भी क्या कर सकता है ? मुझे भी ईश्वर और भाग्य को मानना ही पड़ा। इस समय ज्यादा नहीं लिख सकती। तुम्हारे नन्हें-मुन्नों को ढेर सारा प्यार।

तुम्हारी,
लच्छो"



सुशीलता की सौरभ

मूल लेखक——श्री 'जयभिक्खु'*

अनु०——श्री कस्तूरमल बांठिया

सौराष्ट्र में एक लेखक रहते थे। बचपन से ही मा शारदा की गोद में सिर रख दिया था। बड़ा भाई रियासत की नौकरी करता था। परन्तु इस मस्त व्यक्ति को सोने का हो तो भी क्या, पिंजरा पसंद नहीं था।

आज तो मा शारदा के हाथ में भीख का ठीकरा दे, धनवानों के द्वार पर अथवा राजदरवाजे पर खड़े बहुतेरे पढ़े-लिखे देखने को मिल जायेंगे; परंतु यथार्थतः विद्वान् तो धुनी होता है, मस्त होता है, अकेला होता है, अकेला शूरा होता है, कटीले पथ का वह राही होता है।

इस लेखक ने कलकत्ते में अपने चार मित्रों के साथ यह प्रतिज्ञा ली : 'संसार के बंधन में नहीं पड़ना, आजीवन ब्रह्मचर्य पालते हुए मा सरस्वती की साधना करना।'

जिसकी यहाँ बात की जा रही है, इस लेखक ने संसार-प्रवेश के सर्व साधनों के होते हुए मस्त रहना ही पसंद किया। इसकी यह मस्ती एवम् सुशीलता जीवन में और कथन में उतरी। सौराष्ट्र के एक समय के पत्रकारित्व में इसकी कलम ने सुशीलता की सौरभ फैलायी थी।

परन्तु यहाँ उसका जीवन-चरित्र लिखने का हमारा इरादा नहीं है। एक छोटी-सी——किसी अँधेरी टेकरी पर टिमटिमाते निस्तेज दीपक जैसी घटना बताना चाहते हैं। तूफानी हवाएँ ऐसी बह रही हैं कि टिमटिमाता दीपक कब बुझ जायेगा, यह कुछ भी कहा नहीं जा सकता। वह बुझ जाये, उससे पहले ही हम इस राहदर्शक दीप के सामने अंगुली निर्देश करना चाहते हैं। किसी समय कोई भूली-चूकी नौका इस दीप का कदाचित् सहारा पा जाये।

इस लेखक के पास एक घड़ी थी।

उस समय घड़ी का बहुत प्रचार नहीं था।

घड़ी बहुत सुंदर थी। उसकी चैन भी सुंदर थी।

लेखक के यहाँ एक रसोइया था। कुछ लहरी!

रसोइया और नौकर रोज घड़ी देखा करते। उसकी तारीफ करते! मौका मिल जाये तो कभी-कभी हाथ में उठाकर देख भी लेते थे। सुइयों को सरकते देख आश्चर्य-चकित हो जाते और कहते :

'भाई! यह अजब बात तो देखो। घंटी के सौ और घंटा का एक। मजदूर जैसा मिनिट का सुआ सारा चक्र फिर जाए तब ये बड़े साहब जैसा घंटे का सुआ केवल एक खाना ही चले।'

एक दिन की बात है।

लेखक घड़ी छोड़कर बाहर घूमने निकल गये। लौटे तो देखते हैं कि घड़ी गायब।

घड़ी के बिना जरा भी नहीं चलता था। ऐसा उनका स्वभाव था। फिर घड़ी सुंदर भी ऐसी थी कि खो जाये तो दिल कट जाये!

उन्होंने खोज शुरू की।

नौकर से पूछा। नौकर बोला : 'साहब! मुझे खबर नहीं।'

रसोइये से पूछा तो वह तो उलटा उलाहना देने लगा : 'साहेब! ऐसी घड़ी चाहे जहाँ रख देते हैं! आप भुलक्कड़ हो, साहब! कहीं भूल आए होंगे!'

और इसके बाद रसोइया ने घड़ी की खोज का काम उठा लिया। वह अड़ोस-पड़ोस के छोकरों को धमकाने-डराने लगा। नौकर की खबर भी लेने लगा।

लेखक स्वयम् शान्त रहे। घर के सामने ही एक कोतवाल रहता था। लेखक का उसके साथ उठने-बैठने का संबंध था।

इस कोतवाल से रसोइये ने जिक्र किया। कोतवाल ने स्वयम् आकर लेखक से पूछा : 'किस उधेड़बुन में हो, महाशय?'

'कुछ नहीं, कुछ नहीं, आप तो हैं पुलिसवाले!' लेखक रुक-रुक कर बोले।

'तो पुलिस का आपको डर क्यों लगता है? पुलिस आपको थाने पर धक्के खिला-खिलाकर थका नहीं देगी। आपके मनुष्यों को भी हैरान नहीं करेगी। और फिर मैं हूँ ना!' कोतवाल ने कहा।

'नहीं, नहीं, मुझे यह बात आपको सौंपना नहीं है।

*सं० १९६३ में गुजरात सरकार से रु० १०००) का नकद पुरस्कार प्राप्त लेखक के 'पाली पखालां' शीर्षक कहानी-संग्रह की एक कहानी का लेखक की अनुमति से अनुवाद। ——अनुवादक

आप मेरे नौकरों पर संदेह करें, उन्हें पकड़ें, उन्हें बाँधें, उन्हें मारें-पीटें।' लेखक के दिल में दया का सोता बहता था। मानो वह दिल कह रहा था, 'हमारे परिग्रह ने ही इस पाप को उत्पन्न किया है!'

'साहब! आप पढ़े-लिखे होकर भी ऐसा कहेंगे? चोर को न पीटें तो क्या चूमेंगे?' कोतवाल ने प्रश्न किया। उसे लगा कि पढ़े-लिखे थोथे पंडित होते हैं।

'परन्तु ये सब चोर कहाँ हैं? यह तो स्वाभाविक वृत्ति से खिंच जाने वाले प्राणी हैं।' लेखक बोले।

'स्वाभाविक याने कैसी?' कोतवाल को इस बात से कुछ आश्चर्य हुआ।

'कैसी याने ऐसी कि किसी का अच्छा मकान देख, हमें वैसा मकान प्राप्त करने का मन हो जाता है ना! हमने शिक्षा पाई है, मन को संस्कृत किया है। इस प्रकार का अच्छा मकान प्राप्त करने के लिए क्या करना चाहिए, इसका प्रशस्त मार्ग हम जानते हैं। ये बेचारे छुटपन से ही पेट की रोटी कमाने की झंझट में शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाये। इनका मार्ग इसीलिए भिन्न होता है। कदाचित् लोभ में आकर चोरवृत्ति का आश्रय लिया हो और घड़ी उठा लेने की भूल भी कर डाली हो।'

कोतवाल यह फिलोसोफी सुनकर देखता रह गया।

फिर खयाल आने से लेखक अपने आफिस में खोजने चल पड़े। बायें हाथ से रखी गयी वस्तु बहुत बार याद ही नहीं आती है।

इधर स्नेही मित्र खबर लगते ही पूछने को पहुँच गये। लेखक तब घर पर नहीं थे। परन्तु सामने ही कोतवाल बैठे थे। सबने उनसे कहा:

'कोतवाल साहब! वे चाहे जो कहते रहें, पर आपका कर्त्तव्य क्या है? आपके रहते सामने के घर में चोरी हो जाये, यह तो ठीक नहीं!'

'मैं तो इसी घड़ी चोर पकड़ दूँ। परन्तु फिर....?' कोतवाल बोले।

'फिर हमारा सिर! चीज मिली कि कोई कुछ नहीं बोलेगा। ये धुनी लोग हैं। इन्हें जाना भी नहीं पुसाता, आना भी नहीं पुसाता।' स्नेही लोगों ने व्यावहारिक बात कही।

कोतवाल ने रसोइया-नौकर को बुलवाया। उन्हें शक रसोइये पर ही था। सच्चा पुलिस तो पैरों से चोर पहचान सकता है।

सबको एकांत में ले जाकर कोतवाल ने एक, दो, और तीन धौलधप्पे लगाये, जेल का डर बताया। 'मान जा, माटी! नहीं तो आज तेरी शामत है।'

चोर के पैर कच्चे होते हैं।

रसोइया गिड़गिड़ाने लगा। बोला: 'साहब! मैंने ली है।'

'जाओ! जहाँ रखी हो वहाँ से ले आओ। नहीं तो चमड़ी उतार लूँगा।'

रसोइया तुरत घड़ी लेने दौड़ा।

इसी अरसे में वे लेखक महाशय आफिस में खोजकर खाली हाथ घर आ गये। घर में पहुँचकर देखते हैं तो अँगीठी ऐसे ही जल रही है। गुँधा हुआ आटा पड़ा है। दाल भात के तपेले उतारे ही नहीं गये हैं। और घर में न रसोइया है और न नौकर!

लेखक के दिल में धड़का हो गया। निश्चय! कोतवाल ने रसोइए-नौकर को पकड़ा होगा और मारा-पीटा होगा। रे बिचारा! वे सोचते होंगे कि किसके यहाँ नौकर हुए जो मार पड़ी! सिर पर कलंक लगा। चोर और साहूकार में अन्तर क्या? साहूकार के पास वस्तु लेने की हिकमत है। चोर के पास वस्तु उचका लेने की हिम्मत है।

हिम्मत की अपेक्षा हिकमत सफल होती है। हिम्मतवाले चौकीदारी या सिपाहीगिरी करते हैं। हिकमतवाला सेठाई करता है।

लेखक व्यथित होकर कोतवाल के घर पहुँचे। कोतवाल हाथ में घड़ी लिये बैठा था। रसोइया बाजू में मुँह लटकाये खड़ा था। गुनाह बेवश है।

'लीजिए! घड़ी यही है ना?" कोतवाल ने घड़ी दी। 'कहाँ मिली?' लेखक ने अतुल जिज्ञासा से प्रश्न किया।

'आपके रसोइए के पास से! कृपानिधान! मनुष्यों को पहचानना सीखिए!'

'आपने इसे मारा-पीटा तो नहीं न!'

'नहीं, नहीं, सहलाया है। महाशय! लातों के भूत बातों से नहीं मानते! चौदहवें रत्न बिना कभी चोरी नहीं पकड़ाती।' कोतवाल ने अपना वर्षों का अनुभव बताया।

उसके शब्दों में स्वाभाविकता थी। परन्तु यह सुनकर लेखक की राढ़ फटी की फटी रह गयी। वह बोला :

'अरे कोतवाल साहब ! आपने अपनी आँखों से देखा ! ज़रा मेरी आँखों से देखा होता न ? नाहक गरीब को मारा-पीटा। मुझे ऐसी घड़ी का क्या करना है? अरे, अभी किसी ने भोजन भी किया नहीं होगा। सच्चा रक्त-उकाला कर दिया इस घड़ी ने। चलिए, हुआ सो हुआ, अब चोर और साहूकार सब साथ बैठ भोजन करें।"

लेखक ने घड़ी हाथ में नहीं उठाई। कोतवाल को साथ भोजन करने को लिया। उसे इन अपराधियों के साथ भोजन करना अच्छा नहीं लगा। परन्तु लेखक का सौजन्य अद्‌भुत था। लेखक ने भोजन करते-करते एक ही बात की।

'कोतवाल साहब ! आपने बिचारे को नाहक मारा-पीटा।'

कोतवाल क्या उत्तर दे? वह सोचता रहा कि ये सब पोथी के कीड़े मात्र हैं, अनुभवहीन। अव्यवहारी होते हैं।

लेखक ने रसोइए को पास बिठाकर भोजन कराया। रसोइया तो डर रहा था कि अभी मुझे लानत मलामत करेंगे, परन्तु उसे बिलकुल नया ही अनुभव हुआ। भोजन कराकर कोतवाल से घड़ी माँगी और रसोइए को प्यार से पूछा :

"यह घड़ी तुझे पसंद है, क्यों ?"

रसोइया क्या उत्तर देता? उसकी आँखों में भय था। वह विचार रहा था कि यह मनुष्य किसी जुदे खमीर का है। भोजन कराता है तो लाड़-प्यार से। परन्तु पगड़ी बँधाकर कदाचित् सिर ही न उतार ले? न जाने क्या होने को है! इसी का उसे भय था। वह कुछ भी नहीं बोला।

लेखक ने कहा : 'भाई ! हमारी पसंद की हरेक वस्तु हमें मिलती नहीं। इसके लिए परिश्रम चाहिए—प्रामाणिक परिश्रम चाहिए। तिस पर भी नहीं मिले तो शांति रखना चाहिए।'

और लेखक ने आगे बढ़कर रसोइए के हाथ में वह घड़ी दे दी।

रसोइए के लिए घड़ी को हाथ से छूना मानों काले नाग को हाथ लगाने से भी भयंकर था।

परन्तु लेखक का आग्रह अटल था।

कोतवाल आश्चर्य के साथ इस धुनी मनुष्य को देख रहा था। अन्त में रसोइए की जेब में वह घड़ी रही। रसोइए की नौकरी भी ज्यों की त्यों रही। मनुष्य की अपेक्षा मनुष्य के हृदय की वृत्ति की परीक्षा का नाम ही विद्वत्ता है। पोथे फाड़ने से क्या हुआ ?

यह छोटी सी घटना मानव की महत्ता भी बताती है।

इस लेखक का नाम था श्री भीमजी हरजीवन सुशील। भावनगर में लंबी बीमारी के बाद ता० १५ मार्च १९६१ को ७३ वें वर्ष में उसने सदा के लिए शांति की चादर तान ली।

[इन्होंने अपने इस दीर्घ जीवन में जीवन-चरित्र, कहानियाँ, उपन्यास और अन्य ग्रंथ लिखे। कुछ बँगला, मराठी और संस्कृत-प्राकृत से अनुवाद भी किये। इन सबकी संख्या लगभग ५० है। जैन होने के कारण सबसे पहली रचना है 'महावीर जीवन विस्तार'। यह भगवान् महावीर के जीवन की समीक्षा है। इसमें भगवान् महावीर के जीवन की उन्होंने समीक्षा करते हुए कलिकाल सर्वज्ञ हेमचंद्राचार्य लिखित महावीर-चरित्र में उनके समकालिक गोशालक के चरित्रचित्रण की भी सौम्य समीक्षा की जिस पर रूढ़ धर्मी लोग इन्हें संघ बहिष्कृत करने तक के लिए उत्तेजित हो गये थे, परन्तु फिर न जाने क्यों ठंडे पड़ गये। आज उनकी कोई भी रचना प्राप्य नहीं है।]



नवीन प्रकाशन

हिन्दी साहित्य और बिहार (द्वितीय भाग)—सम्पादक, आचार्य शिवपूजन सहाय। सहायक सम्पादक, श्री बजरंग वर्मा। प्रकाशक, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना। बड़ा आकार, सजिल्द, पृष्ठसंख्या ४११। मूल्य, ८ रुपये।

इसके प्रथम भाग की समालोचना कुछ दिनों पहिले इस स्तंभ में प्रकाशित हो चुकी है। प्रथम भाग में १८वीं शती के अंत तक के बिहार के हिंदी कवियों और लेखकों का परिचय और उनकी कृतियों के नमूने तथा उनकी समीक्षा की गयी थी। इस भाग में उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध के बिहार के कवियों और लेखकों का परिचय दिया गया है, और इस प्रकार बिहार के हिंदी लेखकों का वर्णनात्मक परिचय आदिकाल से १९वीं शती के पूर्वार्द्ध तक का पाठकों को उपलब्ध कर दिया गया है। इसमें सब मिलाकर ३४० कवियों और लेखकों के जीवन और कृतित्व का परिचय दिया गया है। इनमें ब्रजभाषा, अवधी, खड़ीबोली, मैथिली और भोजपुरी के लेखक हैं। सबसे अधिक संख्या ब्रजभाषा के कवियों की है। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं, क्योंकि १९वीं शती के अंत तक हिंदी संसार में ब्रजभाषा ही काव्य की मान्यभाषा मानी जाती थी। पिछली तीन 'भाषाओं' (खड़ीबोली, मैथिली, भोजपुरी) के लेखक भी थे, किंतु उनकी संख्या अत्यल्प थी। किंतु इस काल में गद्य लेखन आरंभ हुआ। और साहित्य में आधुनिक दृष्टिकोण उत्पन्न होने लगा। नाटकों और अनुवादों का आरंभ हुआ तथा दर्शन, आयुर्वेद, संगीत, भाषाशास्त्र आदि पर पुस्तकें लिखी जाने लगीं। हिंदी का विकास आरंभ हो गया था और वह काल भारतेन्दु युग के ठीक पहिले—उषा के पूर्व—का समय था। सारे हिंदीभाषी क्षेत्र में एक ही प्रकार की प्रवृत्तियाँ काम कर रही थीं। बिहार बंगाल के सबसे निकट था जहाँ अंग्रेजी साहित्य ने सबसे पहिले पैर जमाये। अतएव बिहार का सम्पर्क आधुनिकता से अन्य हिंदी क्षेत्रों की अपेक्षा कुछ पहिले हो गया। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् ने यह पुस्तक निकाल कर हिंदी के इतिहास के लिए अपूर्व सामग्री एकत्र कर दी है। बिहार में हिंदी साहित्य और भाषा की जड़ें कितनी गहरी और व्यापक हैं, यह इस पुस्तक से स्पष्ट हो जाता है। इस महत्त्वपूर्ण ग्रंथ ने हिंदी साहित्य के एक अभाव की पूर्ति की है। हम इसके अगले भाग की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करेंगे।

त्रैमासिक 'साहित्य' का शिवपूजन-स्मृति-अंक—'साहित्य' बिहार हिंदी साहित्यसम्मेलन का शोध-समीक्षा-प्रधान त्रैमासिक पत्र है। इसने स्वर्गीय बाबू शिवपूजन सहायजी की स्मृति में यह विशेषांक प्रकाशित किया है। इसके सम्पादक प्रोफेसर केसरीकुमार और सहकारी सम्पादक श्री श्रीरंजन सूरिदेव हैं। इसमें ३७ विद्वानों के लिखे हुए शिवपूजन बाबू के जीवन और कार्य पर प्रकाश डालने वाले लेख हैं। ये लेख उन लोगों के लिखे हुए हैं जो उन्हें निकट से जानते थे। अतएव इनमें उनके जीवन और कार्य से संबंधित बहुमूल्य, मनोरंजक और महत्त्वपूर्ण सामग्री एकत्र हो गयी है जो स्थायी महत्त्व की है। इस अंक को पढ़ने से शिवपूजन बाबू की बहुमुखी प्रतिभा, उनके विविध कार्यक्षेत्रों और उनके सरल एवम् सन्त-सुलभ जीवन की अच्छी झाँकी मिलती है। 'साहित्य' का यह अंक स्थायी महत्त्व का है। शिवपूजन बाबू का बिहार हिंदी साहित्य-सम्मेलन से जो निकट सम्बन्ध था, उसे देखते हुए उसके मुख पत्र का यह प्रकाशन उचित था। इस सफल स्मृति अंक के लिए वह बधाई का पात्र है।

रामायणी कथा—मूल लेखक, श्री दीनेशचन्द्र सेन, अनुवादक श्री भगवानदास हालना और श्री बदरीनाथ शर्मा वैद्य। प्रकाशक, अभ्युदय प्रेस, इलाहाबाद। सजिल्द, पृष्ठ संख्या ३३४, मूल्य, पाँच रुपया।

यह इस लोकप्रिय और महत्त्वपूर्ण पुस्तक का चौथा संस्करण है। यह पुस्तक बहुत दिनों से अप्राप्य थी। प्रकाशक ने इसे फिर से उपलब्ध करके पाठकों का बड़ा हित किया है। सेन की यह पुस्तक भारतीय वाङ्मय का एक गौरवग्रंथ है। इसमें दशरथ, रामचन्द्र, भरत, लक्ष्मण, कौशल्या, कैकेयी, सीता, हनूमान और बाली के चरित्रों का, वाल्मीक रामायण के आधार पर, बड़ा सुन्दर चित्रण किया गया है। इसके संबंध में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ने भूमिका में कहा है—"कवि कथा को भक्त की भाषा में दुहरा कर उन्होंने अपनी भक्ति की चरितार्थता सिद्ध की है। इस प्रकार की पूजा की आवेगमिश्रित व्याख्या ही हमारे मन में प्रकृत समालोचना है, इस उपाय से ही एक हृदय की भक्ति दूसरे हृदय में संचारित होती है।...हम केवल इतना ही कह देना चाहते हैं कि पाठकगण वाल्मीक के रामचरित्र को केवल मात्र कवि का काव्य ही न समझें किंतु उसको भारतवर्ष की रामायण समझें। इस प्रकार वे रामायण के द्वारा भारतवर्ष को, और भारतवर्ष के द्वारा रामायण यथार्थ रूप से जान सकेंगे।.... भारतवासियों के लिए उनके घर के लोग इतने सच्चे नहीं जितने कि राम, लक्ष्मण और सीता हैं।" भारत के जनमन में जीवित रामायण के पात्रों का यह चरित्र-चित्रण अद्भुत है।

प्रत्येक चरित्र इतनी सहानुभूति, इतनी खूबी और इतनी वास्तविकता से चित्रित किया गया है कि उसकी आत्मा साकार हो उठी है। रामायण को समझने के लिए यह अनुपम भाष्य है। भाषा का माधुर्य, शैली, सुचारुता और विचारों का अनवरत स्वाभाविक प्रवाह इतना सुदर है कि इसके पढ़ने से नाटक, उपन्यास और काव्य के पढ़ने का आनन्द मिलता है। प्रत्येक भारतवासी को यह पुस्तक पढ़नी चाहिए। अनुवाद बहुत सुंदर हुआ है। हम प्रकाशक को इसके नये संस्करण के लिए साधुवाद देते है।

मुस्लिम त्योहार और संस्कार--लेखक, श्री श्रीपाद जोशी। प्रकाशक, गांधी हिन्दुस्तानी सभा, राजघाट, नई दिल्ली-१, पृष्ठ संख्या १०२, मूल्य, १ रुपया ५० पैसा।

यह पुस्तक वस्तुतः लेखक की मूल मराठी पुस्तक का अनुवाद है। इसमें मुसलमान त्योहारों और संस्कारों के अतिरिक्त 'मुस्लिम महीन,' नमाज तथा ऐसी ही दूसरी बातों का परिचय, इतिहास और वर्णन है। वर्णन सरल, स्पष्ट और रोचक ढंग से लिखे गये हैं। लेखक का उद्देश्य केवल मुस्लिम और संस्कारों का ज्ञान देना ही नहीं, हिंदू-मुस्लिम एकता उत्पन्न करना भी है। अतएव यह पुस्तक बड़ी सहानुभूति के साथ लिखी गयी है। गैर-मुस्लिम लोगों को इससे मुसलमान त्योहारों और संस्कारों का इतिहास तथा उनकी विधि तो मालूम ही होगी, कितने ही मुसलमानों का भी अपनी इन बातों के संबंध में ज्ञान-वर्द्धन होगा क्योंकि बहुत से मुसलमान, विशेषकर देहात में रहनेवाले कम पढ़-लिखे लोग, इनमें से कितनी ही बातें न जानते होंगे। वास्तव में यह उनके लिए बड़ा उपयोगी है। लेखक ने भूमिका में लिखा भी है कि महाराष्ट्र के कितने ही मराठा-भाषी देहाती मुसलमानों में इसका मूल मराठी संस्करण काफी लोकप्रिय हुआ। स्वर्गीय मालवी महेशप्रसाद ने इस विषय पर हिंदी में एक पुस्तक लिखी थी जो बहुत महत्त्वपूर्ण है। श्री जोशी ने इसे लिखने में काफी खोजबीन और परिश्रम किया है। हम लोग धार्मिक ढंग से सोचने के इतने अभ्यस्त हो गये हैं कि लेखक के समान हिंदु-मुस्लिम एकता के समर्थक ने भी अरब की महीनों को 'मुस्लिम महीने' लिखा है। अरब में चलने के कारण मुसलमानों ने उनका उपयोग अवश्य किया है किंतु वे 'अरबी महीने' हैं। मुसलमानी नहीं। हजरत मोहम्मद के जन्म से शतियों पूर्व से वे उस देश में चले आते हैं। यही भूल इस देश के तथाकथित असाम्प्रदायिक लोग भी करते हैं जो प्रत्येक भारतीय परम्परा, रीति-रिवाज आदि को 'हिन्दू' कहते हैं। पुस्तक मुसलमानों के त्योहारों और रीति-रिवाज समझने के लिए बड़ी उपयोगी है।

आचार्य द्विवेदी गाँव में--श्री अमर बहादुरसिंह 'अमरेश'। प्रकाशक, हिन्दी प्रचारक, पुस्तकालय, वाराणसी--१, सजिल्द, सचित्र। मूल्य, ३ रु० ५० पैसे।

आचार्य द्विवेदी 'सरस्वती' से अवकाश ग्रहण कर अपने ग्राम (दौलतपुर, जिला रायबरेली) में रहने लगे थे। वे विद्वान् थे। सम्पादक थे। साहित्यकार थे। किंतु वे इससे भी कुछ अधिक थे। वे 'मनुष्य' थे। गाँव में रहकर वे अपना काफी समय अपने गाँव और क्षेत्र की सेवा में देने लगे। उन दिनों 'विलेज पंचायत एक्ट' लागू हुआ। गाँवों में पंचायतें बनायी गयीं। सरपंच की नियुक्ति सरकार द्वारा होती थी। यह पद अवैतनिक था। सन् १९२२ में सरकार ने द्विवेदीजी को दौलतपुर की पंचायत का सरपंच नियुक्त किया। वे इस कार्य को १९२६ तक करते रहे। द्विवेदीजी अपने कार्य में कितने कर्तव्यपरायण और कठोर थे, यह बात हिंदी साहित्य संसार जानता है। उन्होंने सरपंची भी उसी लगन और कर्तव्यपरायणता से की। न्याय निर्मम होता है। न्यायाधीश के आसन पर बैठकर द्विवेदीजी की सहज कठोरता कमजोर नहीं हुई। वे अपने गाँव के कुछ वर्गों में अप्रिय भी हो गये, और वे देहाती पुंगव उन्हें "दुबौना" (द्विवेदी-दुबे-दुबौना) के अवज्ञा-सूचक नाम से पुकारने लगे। इस पुस्तक में उनकी पाँच साल की सरपंची का मनोरंजक इतिवृत्त दिया गया है। श्री अमरेश रायबरेली के उसी क्षेत्र के निवासी हैं जिसके द्विवेदीजी थे। उन्होंने आचार्यजी के गाँव के जीवन का सूक्ष्म अध्ययन किया है। वे उसके जाने-माने विशेषज्ञ हैं। यह पुस्तक लिखकर उन्होंने हिंदी साहित्य ही नहीं, साधारण जनता का बड़ा उपकार किया है। इससे द्विवेदी-जी के व्यक्तित्व के उस पहलू का बड़ा सजीव परिचय मिलता है जो साहित्य संसार को अज्ञात है। इसको जाने बिना उनके संपूर्ण व्यक्तित्व का ज्ञान नहीं हो सकता। पुस्तक बड़े रोचक ढंग से लिखी गयी है। उसके पढ़ने में उपन्यास का सा आनन्द मिलता है। गाँवों में सरपंच को क्या कठिनाइयाँ होती हैं। कर्तव्यपरायण और न्याय-प्रिय सरपंच को किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है, हमारे ग्रामीण बंधुओं का इन संस्थाओं के प्रति क्या दृष्टिकोण और कितना सहयोग है, सरकारी अधिकारियों का इनके प्रति क्या रुख है--प्रकारान्तर से इस पुस्तक में इन सब प्रश्नों का उत्तर मिल जाता है। साथ ही यह भी मालूम हो जाता है कि द्विवेदीजी ने विषम परिस्थितियों का किस तेजस्विता और कर्तव्यपरायणता से सामना किया। यह पुस्तक ग्रामीणों, ग्रामों के कार्यकर्त्ताओं, ग्रामोन्नति में रुचि लेनेवालों और साहित्यकों के लिए समानरूप से उपयोगी और मनोरंजक है। लेखक ने जिस सरल भाषा और मनोरंजक शैली में इसे प्रस्तुत किया है, उसकी जितनी प्रशंसा की जाय, वह कम है। इस महत्त्वपूर्ण और सुंदर पुस्तक के प्रणयन और प्रकाशन के लिए लेखक और प्रकाशक बधाई के पात्र हैं।

सोहति सो न सभा जहँ वृद्ध न, वृद्ध न ते जु पढ़े कछु नाहीं।
ते न पढ़े जिन साधुन सोधित, दीह दया न दिपै जिन माहीं॥
सो न दया जो न धर्म धरै, अरु धर्म न सो जहँ दान बृथा हीं।
दान न सो जहाँ साँच न 'केसव' साँच न सो जु बसै छल छाहीं॥

धूरि चढ़ै नभ पौन प्रसंग तें, कीचभई जल संगति पाई।
फूल मिलै नृप पै पहुँचे, कृमि काठन संग अनेक बिथाई॥
चंदन संग कुठार सुगन्ध ह्वै, नीच प्रसंग लहै करुआई।
'दासजू' देखो सही सब ठौरन, संगति को गुन दोष न जाई॥

यहां साधु असाधु सुजाति कुजाति को भेद न कोऊ बिचारि करैं।
'द्विज श्यामजू' ये अविवेकी अमी औ हलाहल एक में धारि भरैं॥
तजैं पारस और गहैं पाथर धाय, लखे इनके सुँह पाप परैं।
तजिये यहि देश को यासों मराल, भले न इतै पग भूलि धरैं॥

हिलि मिलि जानै तासों मिलिकै जनावै हेत,
हित को न जानै ताको हितू न बिसाहिये।
होय मगरूर तापै दूनी मगरूरी कीजै,
लघु ह्वै चलै जो तासों लघुता निबाहिये॥
'बोधा कवि' नीति को निबेरो यही भाँति यहै,
आपको सराहै ताहि आपहूँ सराहिये।
दाता कहा? सूम कहा? सुंदर सुजान कहा?
आपको न चाहै ताके बाप को न चाहिये॥

कुंज बन जानि 'मून' हंसगन आइ फिरे
गंध बन भृंगन की भंग करि डारे तैं।
पाके फल जानि सुक पुंज पछिताने आय
पाइकै बसन्त बात बृथा पात डारे तैं॥
दूर ते बिलोकि अरुणाई अति फूलन की
आमिष अहार गृद्ध वापिस बिडारे तैं।
ऐरे तरु सेमर के सिफत तिहारी काह,
आस दये पच्छिन निरास करि डारे तैं॥

सुनिय विटप प्रभु सुमन तिहारे हम,
राखिहौ हमैं तो सोभा रावरी बढ़ायहैं।
तजिहो हरखि कै तो बिलगु न मानैं कछू,
जहाँ जहाँ जैहैं तहाँ दूनो जस छायहैं॥
सुरन चढ़ैंगे नर सिरन चढ़ैंगे वर,
सुकवि अनीस हाट बाट में बिकायहैं।
देस में रहैंगे परदेस में रहैंगे,
काहू बेस में रहैंगे तऊ रावरे कहायहैं॥

ए हो नेहधर हम नीरधर चातक हैं,
रटनि हमारि घटिहै न कहैं फेरि फेरि।
भौंर कैसी दौर हम दौरिहैं न ठौर ठौर,
'द्विजश्याम' सुमन समूहन को घेरि घेरि॥
चुनिकै अंगारन चकोर तौर लैहैं नाहि,
मोरहू को तौर लै न नाग खैहैं हेरि हेरि।
प्यास मरि जैहैं द्वार और के न जैहैं,
यों हीं जनम बितैहैं नाम रावरोई टेरि टेरि॥

सेवक सिपाही सदा उन रजपूतन के,
दान युद्ध वीरता में नेकु जे न मुरके।
जस के करैया हैं मही के महिपालन के,
हिये के विशुद्ध हैं सनेही साँचे उर के॥
'ठाकुर' कहत हम बैरी बेवकूफन के,
जालिम दमाद हैं अदेनिया ससुर के।
चोजन से चोजी महा मौजिन के महाराज,
हम कविराज हैं पै चाकर चतुर के॥

राधाश्याम सेवैं सदा वृन्दावन वास करैं,
रहैं निहचिंत पदआस गुरुवर के।
चाहैं धन धाम ना आराम सों है काम,
'हरिचंद जू' भरोसे रहैं नन्दराय घर के।
ए रे नीच नृप हमें तेज तू देखावै काह,
गज परवाही कबौं होहिं नाहिं खर के।
होय ले रसाल तू भले ही जग जीवकाज,
आसी ना तिहाये ये निवासी कल्पतरु के।



साहित्यिक संस्मरण

नरहरि और महारानी दुर्गावती

नरहरि संबंधी संस्मरण हम दे चुके हैं। यह तो सभी जानते हैं कि उनका सम्बन्ध दिल्ली के पठान और मुगल दरबारों से था। वे हुमायूँ और अकबर के दरबारी कवि थे। किंतु उनका संबंध गढ़ा-मंडला की महारानी दुर्गावती से भी था, इस बात का पता नहीं लगता। अकबर की आज्ञा से कड़ा-मानिकपुर के सूबेदार ने गढ़ा-मंडला पर आक्रमण किया था। महारानी ने तीन बार मुगल सेना को हराया, किंतु चौथी बार उसे पराजित होना पड़ा। यह ऐतिहासिक घटना उस समय हुई जब नरहरि अकबर के दरबार में थे। महारानी अत्यन्त योग्य, कुशल और उदार थीं। उनकी प्रजा उन्हें मातृवत् समझती थी। वे जितनी अपनी वीरता के लिए प्रसिद्ध हैं उतनी ही अपनी हृदय की विशालता और बुद्धि की तीक्ष्णता के लिए भी प्रसिद्ध थीं। या तो नरहरि कभी उनसे मिले थे, या महारानी की ख्याति से वे प्रभावित हुए थे। जो भी हो, उन्होंने एक छप्पय महारानी दुर्गावती पर लिखा था जिस पर लोगों का ध्यान कम गया है। वह छप्पय यह है :

कनक तुला मन मुदित दान दिय जो ग्रन्थन भनि।
सतसहस्र गो लच्छ देत बिधि सहित सुद्ध मनि।
असु-रथ, गज-रथ, वसन, ग्राम गनि कहइ कौन कवि ?
बहुरि प्रगट कलि करन, सत्य-हरिचंद प्रात-रवि।
तेहि हत्थ मुकुति अरु भगति दोउ कहि नरहरि तहँ संचरिय।
दुर्गावति मात समत्थ कौ, कहु, केहि, बिधि पटतर करिय ?

यहाँ नरहरि ने महारानी की दानशीलता का वर्णन तो किया ही है, 'तेहि हत्थ मुकुति' कह कर उनके हाथों से युद्ध में मरनेवालों की मुक्ति का संकेत करके परोक्ष रूप से उनकी वीरता की ओर भी संकेत किया है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने बड़े आदर से 'उन्हें माता दुर्गावती' कहकर उनका नाम लिया है। अकबर के दरबार में आश्रित कवि होने पर भी नरहरि में आत्मसम्मान इतना प्रबल था, और उनकी गुण-ग्राहकता इतनी तीव्र थी कि उन्होंने आश्रयदाता की परवाह न करके उनकी शत्रु महारानी की प्रशंसा में अपने हार्दिक मनोभाव कविता में व्यक्त कर देने का साहस किया। यह हमारे लिए गर्व की बात है कि एक तत्कालीन हिंदी कवि ने महारानी दुर्गावती की प्रशंसा में उस युग में भी प्रशस्ति लिखकर हिन्दी की राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति की।



डाक्टर कीलहार्न

पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी

इंडियन ऐंटिक्वेरी में डाक्टर एफ० कीलहार्न की मृत्यु का समाचार पढ़कर दुःख हुआ। १९ मार्च १९०८ को जर्मनी के गाटिंजन नगर में आपका शरीरान्त हुआ।

डाक्टर कीलहार्न का जिक्र कई दफे सरस्वती में आ चुका है। योरपवालों में जो लोग संस्कृत जानने का दावा रखते हैं उनमें से एक कीलहार्न ही ऐसे थे जिन्होंने संस्कृत व्याकरण में अच्छी पारदर्शिता प्राप्त की थी। वैदिक साहित्य और खोज के कामों को छोड़कर संस्कृत सम्बन्धी और बातों में पश्चिमी पण्डितों की पहुँच राम का नाम ही होती है। व्याकरण का तो वे प्रायः मुख-चुम्बन ही करके छोड़ देते हैं। पर डाक्टर कीलहार्न व्याकरण के आचार्य थे। हाँ आचार्य हुए थे वे हिन्दुस्तानी ही पण्डितों की बदौलत।

डाक्टर साहब जर्मनी के निवासी थे। वहीं आपने संस्कृत पढ़ी थी। संस्कृत में कुछ विज्ञता प्राप्त कर लेने पर इस भाषा के अध्ययन से आपको इतना आनन्द मिलने लगा कि आपने उसे बराबर जारी रक्खा और अपने संस्कृत ज्ञान को बराबर बढ़ाते ही गये। कुछ दिन तक आपको अध्यापक मोक्षमूलर के समागम का भी लाभ मिला। मोक्षमूलर उस समय ऋग्वेद का सम्पादन कर रहे थे। उस काम में कीलहार्न ने उनकी बड़ी मदद की। शायद अध्यापक मोक्षमूलर ही की सिफारिश से उन्हें पूने के डेकन कालेज में संस्कृताध्यापक की जगह मिली। आपने भारत आने के पहले ही योरप में अपने संस्कृत ज्ञान के विषय में बहुत कुछ नामवरी प्राप्त कर ली थी। आप अच्छे आलोचक और गुण दोष-विवेचक समझे जाने लगे थे। जर्मनी के लेपजिक नगर से आप शान्तनव के फिट् सूत्र सम्पादन करके १८६६ ईसवी में प्रकाशित कर चुके थे। उनके देखने से मालूम होता है कि व्याकरण में उस समय भी आपको अच्छा अभ्यास था।

फिट् सूत्रों के प्रकाशित होने के कुछ ही समय बाद आपको भारतवर्ष आना पड़ा। यहाँ आप पूना के डेकन कालेज में भारतवासियों को संस्कृत पढ़ाते रहे। डाक्टर साहब के दो एक छात्रों से हमने सुना है कि आप अच्छी संस्कृत पढ़ाते थे। पर आपका संस्कृत उच्चारण सुनकर बड़ा कौतूहल मालूम होता था।

भारत में आकर अनन्त शास्त्री पेंढारकर से आपने यथानियम व्याकरण पढ़ा। कोई बात पढ़ने से आपने बाकी नहीं रक्खी। आप अच्छे वैयाकरण हो गये। इसका फल यह हुआ कि आपने नागोजी भट्ट के परिभाषेन्दुशेखर का सम्पादन करके उसे कई भागों में प्रकाशित किया। उसका आपने अनुवाद भी अँगरेजी में किया और यथास्थान टीका-टिप्पणियों से भी उसे भूषित किया। इतने ही से आपको सन्तोष न हुआ। आपने पतंजलि के व्याकरण महाभाष्य को भी अँगरेजी में सम्पादन किया। नौ-दस जिल्दों में यह पुस्तक समाप्त हुई। आपने बड़ा काम किया। इन ग्रन्थों के सिवा आपने व्याकरण पर और भी कितने ही छोटे-मोटे लेख लिखे। वे सब प्रकाशित हो चुके हैं।

इसके बाद आपका ध्यान भारतवर्ष के प्राचीन शिलालेख, ताम्रपत्र और दानपत्रों की ओर गया। इधर भी आपने अच्छा काम किया। कितनी ही नई-नई बातें मालूम कीं। कालिदास और माघ के स्थिति-समय के विषय में आपने कई खोजें कीं। चेदि संवत् के आरम्भ का भी आपने निश्चय किया। प्राचीन चोल और पाण्ड्य देशों के इतिहास से सम्बन्ध रखनेवाले कई महत्त्वपूर्ण लेख भी आपने लिखे। एक काम आपने बहुत बड़ा किया। जितने प्राचीन शिलालेख आदि इस देश में तब तक निकले और छापे गये थे उन सबकी एक तालिका बनाकर आपने प्रकाशित कर दी।

कोई ४२ वर्ष हुए जब डाक्टर कीलहार्न पहले पहल इस देश में आये थे। बहुत वर्षों तक पूने में अध्यापन करके आप जर्मनी लौट गये। वहाँ आपको गाटिंजन विश्वविद्यालय में संस्कृताध्यापक की जगह मिली। स्वदेश पहुँच कर भी आप ग्रन्थ सम्पादन करने और नई-नई बातें खोजने में बराबर लगे रहे। इस देश से जर्मनी लौट जाने पर डाक्टर बूलर ने एक ऐसी पुस्तक निकालना आरम्भ किया जिसमें आर्यों से सम्बन्ध रखनेवाली बातों के तत्त्वानुसन्धान विषयक लेख निकलते थे। जब तक डाक्टर बूलर रहे इसका सम्पादन करते रहे। उनके मरने के बाद डाक्टर कीलहार्न ने ही उसे चलाया। डाक्टर कीलहार्न और बूलर ने इस पुस्तक का सम्पादन ऐसी योग्यता से किया, और संस्कृताध्ययन तथा पूर्वी पुरातत्त्व विषयों का इतना प्रचार किया कि नये-नये जर्मन विद्वान् पैदा हो गये और इस पुस्तक में बड़े महत्त्वपूर्ण लेख लिखने लगे।

दुःख की बात है कि ऐसा विद्वान् संसार से उठ गया। डाक्टर साहब अभी बहुत बूढ़े न थे। आपकी उम्र कोई ६५ वर्ष की रही होगी। खूब तगड़े थे। लिखने-पढ़ने में जवानों की तरह काम करते थे। समय आ जाने पर मृत्यु न उम्र देखती है, न दशा देखती है, न और ही किसी बात को देखती है। उसका शासन अनतिक्रमणीय है।

भुतही कोठरी

श्री मधुमंगल मिश्र

कुरुक्षेत्र के पास एक कसबा है। यह कसबा कई बार बसा और कई बार उजड़ा। इसका कारण कुछ तो कुरुक्षेत्र का समीप होना है। कुरुक्षेत्र का नाम लेते ही रणक्षेत्र और महाभारत की याद हो आती है। यहाँ पुराने जमाने में महाभारत का घनघोर युद्ध हुआ था। यहीं १०१४ में महमूद गजनवी ने कन्नौज पर आक्रमण के पूर्व लूटपाट मचायी थी। यहीं, थानेश्वर के पास ही, शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी ने, दूसरी बार दगा देकर, रात को हमला करके, पृथ्वीराज पर विजय पाई थी। यहीं कुछ दूर पर पानीपत की तीन प्रसिद्ध लड़ाइयाँ हुई थीं। ऐसे रण-स्थल में भला कब संभव था कि कोई गाँव बसे और आबाद रहे। इतना ही नहीं, इसका एक और भी कारण था। इस कसबे में एक हवेली थी। उस हवेली को लोग काठ की हवेली कहते थे। उसमें एक कोठरी ऐसी मनहूस थी कि उसके कारण भी यह कसबा कभी अच्छी तरह आबाद नहीं होने पाया। इस कोठरी में, लोग कहते हैं, कि कोई एक रात भी नहीं रह सकता था। मैं शक्की नहीं हूँ, और भूत-प्रेत में विश्वास भी नहीं रखता। मैंने खुद इस कोठरी में ठहरने की अनुमति माँगी, क्योंकि मैंने चाहा कि इस सैकड़ों वर्ष की गलतफहमी को दूर कर दूँ। जो कुछ हो यह स्थान सचमुच बड़ा भयानक था। मैं इस कसबे में एक काम से गया था। इसलिए मुझे वहाँ कुछ दिन रहना पड़ा। मेरे टिकने के कुछ दिन बाद जो अद्भुत बात हुई वह बड़ी ही आश्चर्यजनक है। मैं इसी मकान की एक कोठरी में ठहरा था।

उस कोठरी और हवेली के आस-पास सभी बातें भयानक थीं। वह हवेली कसबे की बस्ती से कुछ हटकर एक नाले के किनारे थी। उसके सामने एक मैदान था, जिसमें आगे बढ़कर एक जगह पर चार महीने तक ताल, चार महीने तक दलदल और चार महीने तक खाद के लिए कूड़ा-करकट का एक घूरा रहता था। उसके पास घनी झाड़ियाँ थीं। यदि कोई मुसाफिर भटकता हुआ उधर से निकलता तो या तो वह दलदल में फँस जाता, या रास्ता भूल जाता। उस हवेली के पिछवाड़े ताड़ के बड़े-बड़े पेड़ थे, जिनके सबब से तमाम जंगल काला ही काला देख पड़ता था। इस ताड़-कुंज के पिछवाड़े नाला बहता था। इस हवेली के आस-पास के स्थानों के विषय में ऐसी भयानक बातें फैली थीं, जिनको सुनकर खून थक्का की तरह जम जाता था। वहाँ लकड़ी की अधिकता है। इसी कारण सीड़ बचाने के लिए तख्तों से जमीन भी पटी थी। वह हवेली एक तरह की गोदाम थी। उसमें एक कोठरी जरा अच्छी थी, उसी में मेरा पलँग पड़ा था। यह कोठरी एक तरफ अलग थी। उसके पास एक छोटी सी और भी कोठरी थी। उसमें पलँग के सिवा एक पुराना मेज और दो-तीन पुरानी कुर्सियाँ भी पड़ी थीं। इसीका नाम भुतही कोठरी था। यह बरसों से बन्द पड़ी थी और मेज पर एक अंगुल मोटी गर्द की तह जम गयी थी। इसकी भी ताली मैंने ले ली थी। लोग इस कोठरी से इतना डरते थे कि कोई उस हवेली में पैर तक नहीं रखता था। पर एक बुड्ढा आदमी अपनी पोती के साथ बहुत दिन से यहाँ रहता था। वह किसी से नहीं डरता था। मैंने भी दृढ़चित्त होकर उस भुतही कोठरी में आना-जाना शुरू किया।

इस हवेली के आस-पास की जमीन और पेड़ इत्यादि उदितभान नामक एक ठाकुर के थे। इस कसबे के पास करेंधा नामक एक बड़ा गाँव था। वहाँ पुराने जमाने में कुतुबुद्दीन खिलजी अपनी सेना लेकर दिल्ली के तोगलकों से लड़ने को जाते समय ठहरा था। इतिहास से विदित है कि वह इस लड़ाई में पराजित हुआ था।

मैं एक स्पेक्ट्रस्कोप कम्पनी का नौकर था। इस प्रान्त के दृश्यों का फोटोग्राफ लेने के लिए मैं नियुक्त हुआ था। ठाकुर उदितभान इस स्थान के मालिक थे। उनसे मैंने मुलाकात की। उन्होंने मेरे कार्य में बहुत कुछ सहायता दी, और इस हवेली की पूर्व कहानी भी, जितनी उन्हें विदित थी, सुनायी। उस समय, अर्थात् १९०० के अगस्त तक, कोई ऐसी बातें जो कुतुबुद्दीन के हमले से सम्बन्ध रखती हों, उन्हें या हमें किसी को विदित न थीं। जिस कोठरी में खिलजी साहब सोये थे उसे, लोग कहते थे, बहुत दिन से किसी ने नहीं खोला। यह बात सच है या झूठ, इसका पता लगाना जरा मुश्किल है। हारकर कुतुबुद्दीन खिलजी के भागने पर अली कुलीखाँ नामक उसका एक सैनिक कोई १५ सिपाही लिये हुए इस गाँव की तरफ आया। इस हवेली में पहुँचते-पहुँचते दस ही आदमी उसके साथ रह गये। उसे आशा थी कि शेख फैजुल्लाखाँ नामक एक सेनानायक अपने रिसाले के साथ उसी तरफ से आता होगा। रात ही को उसके चार घायल आदमी अधिक बीमार हुए और चल बसे। शत्रुओं ने अली कुलीखाँ के ठहरने का पता पा लिया था। इससे ज्योंही वह अपने बचे हुए साथियों को साथ लेकर वहाँ से चला त्योंही दुश्मनों का एक गोल उन पर टूट पड़ा और उनका काम वहीं तमाम कर दिया। इसके बाद दुश्मनों ने ऐसा जोर पकड़ा कि शेख फैजुल्लाखाँ का रिसाला तीन का तेरह होकर भाग गया और खाँ साहब भी मारे गये।

उस कोठरी में ठहरने पर दो दिन तो कुशलपूर्वक बीत गये। कोई बात खटके की नहीं हुई। मैंने कहा कि लोग नाहक डरते हैं। यहाँ डर की कोई बात नहीं। तीसरे दिन रात को हवा जरा तेज थी और ताड़ के पत्तों की खड़खड़ाहट से बड़ा शब्द हो रहा था। इस रात को

ज्यों ही मैंने भुतही कोठरी में पैर रक्खा मैं एक अजीब आवाज सुनकर चौंक पड़ा। इधर-उधर मैंने देखा पर कोई नहीं देख पड़ा। पहले तो मुझे सिसकने की आवाज आयी। फिर जान पड़ा जैसे कोई बड़े क्लेश में कराह रहा हो। कुछ देर बाद ऐसा शब्द हुआ मानों कुछ कैदी जंजीर से जकड़े हुए जा रहे हैं। धीरे-धीरे वह आवाज अधिक करीब मालूम हुई। ऐसा जान पड़ा जैसे वे लोग मेरे पैरों ही के पास हों। कुछ देर में आवाज धीरे-धीरे कम होकर बिलकुल ही बन्द हो गयी। पर थोड़ी देर के बाद फिर वही सिसकने की आवाज आयी और बेड़ियों की खड़खड़ाहट भी उसी तरह सुन पड़ी। तमाम रात ठहर-ठहरकर यही होता रहा। मुझे भला इस दशा में नींद कहाँ? प्रातःकाल उठकर पता लगाने पर विदित हुआ कि यही शब्द सैकड़ों वर्ष से सुना जाता है और कभी-कभी दिन में भी सुन पड़ता है। कुछकम समझ आदमियों का विश्वास है कि कोई-कोई भूत मनुष्य को बिलकुल ही नहीं डरते और दिन में भी अदृश्य होकर उन्हें सताते हैं। सोकर उठने पर मैंने कमरे को अच्छी तरह देखा-भाला। पर इसका पता न चला कि बात क्या है।

खैर मैं तो यहाँ से अचम्भे से भरा हुआ चल दिया। मेरे जाने के बाद कोई पाँच वर्ष का समय व्यतीत हुआ होगा कि संयोगवश एक ऐसी घटना हुई कि सब बात खुल गयी। ठाकुर उदितभानु पर एक ऐसी आपत्ति आयी कि उन्हें अपनी जायदाद गिरों रखनी पड़ी। यही नहीं किन्तु उन्हें देश छोड़कर छिपे-छिपे भागने की भी तैयारी करनी पड़ी। पहले वे इसी हवेली में आकर ठहरे, क्योंकि यहाँ उनका ठहरना सहज में लोगों को ज्ञात नहीं हो सकता था। एक दिन उन्होंने वह भुतही कोठरी खोली। उसमें जो खाक से ढका हुआ मेज था उसके दराज को जो उन्होंने खोला तो उसमें एक कागज निकला। वह बहुत ही जीर्ण हो गया था। पुराने समय में लिफाफे का प्रचार न होने से वह लिफाफे में न बन्द था, किन्तु ऐसे ही लपेट दिया गया था। उसके ऊपर के दो पर्त बिलकुल ही धूमिल रंग के हो गये थे। उसे खोलकर पढ़ने पर एक ताली का पता मिला। उसे एक निर्दिष्ट स्थान पर लगाकर जो एक पटरा उठाया गया तो चार बक्स पुराने जमाने के सिक्के मिले। उनमें से एक बक्स तो सोने के सिक्के से भरा था और शेष तीन चाँदी के सिक्कों से। उन्हें देखकर भागते हुए ठाकुर चकित हो उठे। उस पत्र के देखने पर जो सिसकना और बेड़ियों की जो खड़खड़ाहट मैंने सुनी थी उसका भी पता लग गया।

ये रुपये किसके थे और किसने उन्हें वहाँ रक्खे थे? इन्हें नवाब अली कुलीखाँ अपने साथ लाये थे। दुश्मनों को जोर पकड़ने और अपने साथी घटते देख उन्हें ये सिक्के और आग अपने साथ रखना ठीक नहीं समझ पड़ा। क्योंकि साथ ले जाने से शायद वे दुश्मनों के हाथ लग जाते। सो उन्होंने फर्श के चार तख्ते उखाड़कर उनके नीचे उन बक्सों को रख दिया, और एक पत्र में उनके पाने के उपाय और स्थानादि शेख फैजुल्लाखाँ के जानने के लिए लिखकर मेज के दराज के भीतर छोड़ दिया। पर शेख फैजुल्ला खाँ यहाँ पहुँच ही नहीं सके।

कोठरी में न कोई भूत था न प्रेत। बात क्या थी सो सुनिए। मकान को सीड़ से बचाने के लिए उसका फर्श तख्तों से पटा हुआ था। तख्ते लगभग दो फुट मोटे थे। अली कुलीखाँ ने तख्तों के नीचे एक गढ़ा खुदाया था और तख्तों के नीचे एक जंजीर आर-पार बाँध दी थी। दीवार के पास एक जगह ऐसी खुली रक्खी थी जिससे हवा घूमकर जंजीर के पास पहुँचे। वहाँ कुछ पंखे जंजीरों से ऐसे सटा रक्खे थे जो हवा के झोंके से एक जंजीर से हटकर दूसरी में, दूसरी से हटकर तीसरी में, और तीसरी से हटकर चौथी में—योंही एक ओर से दूसरी ओर जाते और फिर लौटकर घूमते-घूमते अपने स्थान पर आ पहुँचते थे। उन पंखों की आवाज से खड़खड़ाहट पैदा होती थी और जान पड़ता था कि कैदी जा रहे हैं। एक तरफ नवाब अली कुलीखाँ ने एक ऐसा तार बाँधा था कि उसके कारण हवा का झकोरा एक चक्करदार तंग मुँह से होकर निकलता था, जो एक सीटी की तरह बना था। उसी में हवा के भरने से सिसकने की सी आवाज सुन पड़ती थी। यों सब बातें खुल गयीं। अब ठाकुर साहब क्यों भगने लगे। उन्होंने अपनी विपत्ति इन्हीं सिक्कों की सहायता से दूर करना चाहा। पर ये सिक्के पुराने जमाने के थे, अब चल नहीं सकते थे। इससे उन्होंने उन सिक्कों को गलाकर बेच डाला और इससे जो कुछ मिला उससे अपनी सारी जायदाद छुड़ा ली। तब से भुतही कोठरी आबाद हो गयी।



सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—शीला शर्मा

वर्ष ६५ | जुलाई से दिसम्बर १९६४ | खण्ड २

विषय	लेखक	पृष्ठ
३०--जापान का गौरवशाली पत्र--असाही	जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी	५०
३१--टेढ़ी नाल की बन्दूक	महन्त धनराज पुरी	५४९
३२--तीखी धूप (कविता)	श्री रघुनाथ प्रसाद घोष	६५
३३--थाई और भारतीय भाषाओं में अद्भुत साम्य	श्री लल्लन प्रसाद व्यास	५१७
३४--दर्दीला कंठ (कविता)	श्री रसिकबिहारी 'मंजुल'	४७०
३५--दायरे और सीमाएँ	श्री सुधाकर शर्मा	४६७
३६--देवता, मनुष्य और राक्षस	श्री श्रीनाथ सिंह	८२
३७--देश-विदेश में दीवाली	श्री विनोद 'विभाकर'	४११
३८--दो छंद (कविता)	पं० शिवरत्न शुक्ल 'सिरस'	२३४
३९--द्विजेन्द्रलाल राय	डॉ० महादेव साहा	३२४
४०--द्विजेन्द्र लाल राय साहित्य		३३३
४१--द्विवेदी दर्पण	प्रो० शिवाधार पाण्डेय	२५
४२--नई आस्तिकता: पुरानी धुरी और भग्न रथ	श्री कुबेरनाथ राय	५१३
४३--नवीन नचिकेता	श्री रूपनारायण पाण्डेय	७६
४४--नवीन प्रकाशन		८३, १७७, २७४, ३७२, ४७३, ५७०
४५--नवीन सिक्किम	मेजर सीताराम जौहरी अवकाश प्राप्त	२४९
४६--नागालैण्ड और नागा समाज (२)	मेजर सीताराम जौहरी ,,	४४८
४७--नागालैण्ड और मणिपुर में भ्रमण	मेजर सीताराम जौहरी ,,	३५०
४८--नासमझ की समझ	श्री ब्रह्मदेव	४७१
४९--निमाड़ी लोकगीतों में व्यंग्य-विनोद	श्री दुर्गाशंकर त्रिवेदी	५४१
५०--नेताओं के लिए आशंका (कविता)	श्री रामनरेश पाण्डेय 'पद्मेश'	२४२
५१--पं० श्रीधर पाठक की स्वजीवनी		२२१
५२--पत्रकार की अग्नि-परीक्षा	श्री जी० एस० पथिक	४२४
५३--परमाणु-ऊर्जा की उत्पत्ति और विकास	श्री ब्रजेश्वर प्रसाद शर्मा	१३९
५४--पर्वतीय कवि गुमानी की काव्य-साधना	श्री चारुचन्द्र पाण्डेय	१५०
५५--पश्चिमोत्तर प्रान्त का हिन्दी गजट	डॉ० मोती बाबू	१२५
५६--पाहन उबारते (कविता)	श्री भोजराज चतुर्वेदी	१२४
५७--पुरस्कार (कविता)	अनु० वीर 'विजेता'	८१
५८--पृथ्वी की आयु कितनी है?	श्री अशोक महाजन	२३५
५९--फिरदौसी और उसका शाहनामा	श्री राजेन्द्र प्रसाद जैन	१६२
६०--बुद्धि और ज्ञान (कविता)	श्रीमती हीरा कोयला	३४९
६१--ब्रज माधुरी		८५, १८१, २७७, ३७४, ४७६, ५७२
६२--भारत का वर्तमान खाद्य संकट	श्री अशोक महाजन	५७
६३--भारतीय संस्कृति का प्रतीक--कलश	डॉ० शिवनन्दन कपूर	५५
६४--भूकम्प की समस्या	श्री परिपूर्णानन्द वर्मा	२६३
६५--भूटान का इतिहास और उसकी सुरक्षा समस्या	मेजर सीताराम जौहरी (अवकाश प्राप्त)	४१
६६--मणिपुर और वहाँ की जनता	मेजर सीताराम जौहरी ,,	५५४
६७--मध्य युगीन कुछ वस्त्रों और आभूषणों की चर्चा	श्री पद्मधर पाठक एम० ए०	३४३
६८--मनोरंजक संस्मरण		८६, १८२, २७८, ३७५, ४७६, ५७३
६९--मशीनें जो देखती, सुनती और सोचती हैं!	डॉ० अरविन्द मोहन	६६
७०--महाकवि	श्री रा० नागरतन	४५९
७१--महाकवि कालिदास के विदूषक	श्री कमला भारती	२६०
७२--महारानी दुर्गावती की प्रशंसा में एक अँग्रेजी कविता		७०
७३--महालक्ष्मी (कविता)	प्रो० कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह	४०९
७४--मातृभाषा हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है	श्री कमला रत्नम्	४४०
७५--मारीशस	श्री वी० विष्णुदयाल (सेण्ट लुई मारीशस)	२३९

प्रकाशक: बी० एन० माथुर सुपरिण्टेण्डेण्ट, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लि०, प्रयाग
मुद्रक: पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस प्राइवेट लि०, प्रयाग।

आचार्य सद्गुरुशरण अवस्थी की साहित्य कृतियाँ

मझली महारानी

आर्य-संस्कृति के उद्धार की चिन्ता करनेवाली महारानी कैकेयी की सूझ-बूझ पर मौलिक प्रकाश डालनेवाला यह नाटक न केवल पठनीय, प्रत्युत अभिनेय भी है। पृष्ठ १३८, दुरंगा आवरण, मूल्य १·७५ पैसे।

नाटक और नायक

वैदिक, पौराणिक, ऐतिहासिक और साहित्यिक कथानकों तथा नायकों को युग की दृष्टि से देखने-दिखाने के लिए लेखक ने कुछ नाटकों की रचना की है, जो छः भागों में प्रकाशित किये गये हैं। मूल्य प्रत्येक सजिल्द भाग का १·२५ पैसे।

तुलसी के चार दल

गोस्वामी तुलसीदास के रामलला नहछू, बरवै रामायण, पार्वती-मंगल तथा जानकी-मंगल का आलोचनात्मक परिचय तथा अध्ययनपूर्ण टीका। मूल्य प्रथम भाग का ३) तीन रु०; द्वितीय भाग का २·७५ पैसे।

विचार-तरंग

इस संग्रह में विद्वान् लेखक के भिन्न-भिन्न समयों पर लिखे ५१ प्रबंध संग्रहीत हैं। इन प्रबंधों का विषय दार्शनिक चिन्तना, काव्य और कल्पना, जीवन संवरण कला, आत्मनिरीक्षण, विचारात्मक भक्ति, व्याख्यात्मक प्रवचन, विभिन्न विचारोत्तेजक विषय, ग्राम्यकला गीता की दार्शनिक व्याख्या आदि हैं। पृष्ठ ३५५, मूल्य ३·५० पैसे।

साहित्य-तरंग

साहित्य-समीक्षा-सम्बन्धी यह ग्रंथरत्न साहित्य-प्रेमियों को एक नई दिशा, नई परिपाटी और उत्तम निष्कर्षों का द्योतक है। विचारों और निष्कर्षों के त्रिकालव्यापी शाश्वत तत्त्वों को व्यक्त किया गया है। पृष्ठ ४८० मूल्य केवल ५) पाँच रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

बाल कवि श्री निरंकारदेव सेवक के अपूर्व प्रकाशन

फूलों के गीत

बच्चे यदि बगिया में खिले नये नये फूल हैं तो इस पुस्तक के बालगीत उनके मन के गीत हैं। मूल्य १·७५ पैसे।

रिमझिम

रिमझिम में निरंकार जी के वे अनमोल बालगीत संगृहीत हैं जिन्हें बच्चे बहुत पसन्द करते हैं। मूल्य २) रुपये।

माखन-मिसरी

इस पुस्तक का प्रत्येक बालगीत मिसरी की तरह मीठा और माखन की तरह कोमल है। बच्चे इसे पढ़ते ही गले से उतार लेंगे। मूल्य २) रुपये।

पंचतन्त्री

पंचतन्त्र की जिन कहानियों में ज्ञान और उपदेश की बातें कूट-कूटकर भरी हैं वे कविता में इस ढंग से कही गई हैं कि बालक एक बार प्रारम्भ करके पूरी पुस्तक बिना समाप्त किये नहीं छोड़ सकता। मूल्य ३) रुपये।

मुन्ना के गीत

बच्चों के सोने-जागने, उठने-बैठने, खाने-पीने, दौड़ने-भागने, पढ़ने-लिखने के ऐसे रसमय बालगीत सूरदास के बाद पहिली बार हिन्दी में लिखे गए हैं। मूल्य २·५० पैसे।

धूपछाया

बच्चों की भिन्न-भिन्न क्रीड़ाओं से सम्बन्धित इतने मनोहर गीत इस पुस्तक में संगृहीत हैं कि बच्चे इन्हें पढ़कर खुशी से झूम झूम उठते हैं। मूल्य १·५० पैसे।

दूध जलेबी

बहुत छोटी आयु के बच्चों के लिए यह अनुपम और बेजोड़ पुस्तक है। इसकी छोटी-छोटी सुन्दर कवितायें बच्चे पढ़ते ही याद कर लेते हैं। मूल्य १·५० पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग